# कबीरसागर

(सम्पूर्ण ११ भाग)

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, बम्बई.

सत्य

# कबीरसागर

## ( सम्पूर्ण ११ भाग )

मूल्य : १२०० रुपये मात्र

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, बम्बई

हमारे प्रकाशनों की अधिक जानकारी व खरीद के लिये हमारे निजी स्थान

**खेमराज श्रीकृष्णदास**
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
९१/१०९, खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,
७ वी खेतवाडी बॅक रोड कार्नर,
मुंबई - ४०० ००४.
दूरभाष/फैक्स-०२२-२३८५७४५६.

**खेमराज श्रीकृष्णदास**
६६, हडपसर इण्डस्ट्रियल इस्टेट,
पुणे - ४११ ०१३.
दूरभाष-०२०-२६८७१०२५,

**गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,**
**लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस व बुक डिपो**
श्रीलक्ष्मीवेंकटेश्वर प्रेस बिल्डींग,
जूना छापाखाना गली, अहिल्याबाई चौक,
कल्याण, जि. ठाणे, महाराष्ट्र - ४२१ ३०१
दूरभाष - ०२५१-२२०९०६१.

**खेमराज श्रीकृष्णदास**
चौक, वाराणसी (उ.प्र.) २२१ ००१
दूरभाष - ०५४२-२४२००७८.



**मुद्रक एवं प्रकाशक:**
**खेमराज श्रीकृष्णदास,™**
**अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,**
**खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,**
**मुंबई - ४०० ००४.**

Printers & Publishers
**Khemraj Shrikrishnadass**
Prop: Shri Venkateshwar Press
Khemraj Shrikrishnadass Marg,
7th Khetwadi, Mumbai - 400 004.

Web Site : http://www.khe-shri.com
E-mail : khemraj@vsnl.com

**Printed by Sanjay Bajaj for M/s Khemraj Shrikrishnadass**
**Prop. Shri Venkateshwar Press, Mumbai-400004,**
**at their Shri Venkateshwar Press, 66 Hadapsar Industrial Estate,**
**Pune -411 013.**

सत्य

# कबीरसागर

## ज्ञानसागर

(प्रथम खण्ड)

*

कबीरपंथी भारत पथिक स्वामी युगलानन्द
(विहारी) द्वारा परिष्कृत

मुद्रक एवं प्रकाशकः

**खेमराज श्रीकृष्णदास,**

अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,

खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग, मुंबई - ४०० ००४.

नं. १ कबीरसागर -

संस्करण : फरवरी २०२०, संवत् २०७६

मूल्य : १०० रुपये मात्र ।

मुद्रक एवं प्रकाशकः
खेमराज श्रीकृष्णदास,™
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,
मुंबई - ४०० ००४.

Printers & Publishers :
Khemraj Shrikrishnadass,
Prop: Shri Venkateshwar Press,
Khemraj Shrikrishnadass Marg, 7th Khetwadi,
Mumbai - 400 004.

Web Site : http://www.Khe-shri.com
Email : khemraj@vsnl.com

Printed by Sanjay Bajaj For M/s. Khemraj Shrikrishnadass
Proprietors Shri Venkateshwar Press, Mumbai - 400 004,
at their Shri Venkateshwar Press, 66 Hadapsar Industrial
Estate, Pune 411 013.

सत्यनाम



श्री कबीर साहिब

# श्रीज्ञानसागरकी अनुक्रमणिका

★



## अवतारों की कथा

# ज्ञानसागरकी अनुक्रमणिका



## इति अनुक्रमणिका समाप्त

सत्य

सत्यसुकृत, आदि अदली, अजर, अचिन्त, पुरुष, मुनीन्द्र, करुणामय, कबीर, सुरति, योग संतायन, धनी धर्मदास, चूरामणिनाम, सुदर्शन नाम, कुलपति नाम, प्रमोधगुरुबालापीरनाम, कमल-नाम, अमोलनाम, सुरतिसनेहीनाम, हक्कनाम, पाकनाम, प्रकट नाम, धीरज नाम, उग्र नाम, दयानामसाहबकी दया, वंश ब्यालीसकी दया.

★

## अथ ज्ञानसागर प्रारम्भः

सोरठा—सत्यनाम है सार, बूझो संत विवेक करि ।
उतरो भव जल पार, सतगुरुको उपदेश यह ॥
सतगुरु दीनदयाल, सुमिरो मन चित एक करि ।
छेड़ सके नहिं काल, अगम शब्द प्रमाण इमि ॥
बंदौं गुरु पद कंज, बंदीछोर दयाल प्रभु ।
तुम चरणन मन रंज, देत दान जो मुक्ति फल ॥

चौपाई

मुक्ति भेद मैं कहौं विचारी । ता कहँ नहिं जानत संसारी ॥
बहु आनंद होत तिहि ठाऊँ । संशय रहित अमरपुर गाऊँ ॥

तहँवा रोग सोग नहिं होई । क्रीडा विनोद करे सब कोई ॥
चंद्र न सूर दिवस नहिं राती । वरण भेद नहिं जाति अजाती ॥
तहँवा जरा मरन नहिं होई । बहु आनंद करैं सब कोई ॥
पुष्प विमान सदा उजियारा । अमृत भोजन करत अहारा ॥
काया सुन्दर ताहि प्रमाना । उदित भये जनु षोडस भाना ॥
इतनौ एक हंस उजियारा । शोभित चिकुर तहां जनु तारा ॥
विमल बास तहँवां बिगसाई । योजन चार लौं बास उड़ाई ॥
सदा मनोहर क्षत्र सिर छाजा । बूझ न परै रंक औ राजा ॥
नहिं तहां काल वचनकी खानी । अमृत वचन बोल भल वानी ॥
आलस निद्रा नहीं प्रकासा । बहुत प्रेम सुख करैं विलासा ॥
साखी-अस सुख है हमरे घरे, कहै कवीर समुझाय ।
सत्त शब्दको जानिके, असथिर बैठे जाय ॥

चौपाई

सुन धर्मनि मैं कहौं समुझाई । एक नाम खोजो चित लाई ॥
जिहिं सुमिरत जीव होय उबारा । जाते उतरो भव जल पारा ॥
काल वीर बांका बड़ होई । बिना नाम बाचै नहिं कोई ॥
काल गरल है तिमिर अपारा । सुमिरत नाम होय उजियारा ॥
काल फांस डारै गल माहीं । नाम खड्ग काटत पल माहीं ॥
काल जँजाल है गरल स्वभाऊ । नाम सुधारस विषय बुझाऊ ॥
विषकी लहर मतो संसारा । नहिं कछु सूझे वार न पारा ॥
सुर नर माते नाम विहूना । औंट मुये ज्यों जल बिन मीना ॥
भूल परें पाखँड व्यवहारा । तीरथ वृत्त औ नेम अचारा ॥
सगुण जोग जुगति जो गावैं । विना नाम मुक्ती नहिं पावै ॥
साखी-गुण तीनोंकी भक्तिमें, भूल परचो संसार ।
कहँ कवीर निज नाम विन, कैसे उतरै पार ॥

धर्मदास वचन–चौपाई

विनऊँ स्वामी दोइ कर जोरी । कहो गुसाईं नामकी डोरी ॥
निरंकार निरंजन नाऊं । जोत स्वरूप सुमरत सब ठाऊं ॥
गावहि विद्या वेद अनूपा । जग रचना कियो ज्योति सरूपा ॥
भक्त वत्सल निजनाम कहाई । जिन यह रचि सृष्टि दुनियांई ॥
सोई पुरुष कि आहि निनारा । सो मोहि स्वामी कहौ व्यवहारा ॥
जिहिंते होय जीवको काजा । सो मैं करहुँ छोड़ कुल लाजा ॥
होहु दयाल दयानिधि स्वामी । बोलहु वचन सुधा रस वानी ॥
नाम प्रभाव निज मोहि बताओ । होहु दयाल मम तृषा बुझाओ ॥
साखी–जो कुछ मुझे सन्देह है, सो मोहि कहो समुझाय ।
निश्चय कर गुरु मानिहौं, औ बंदो तुम पायँ ॥

साहिब कबीर वचन–चौपाई

तुमसों कहौं जो नाम विचारी । ज्योति नहीं वह पुरुष न नारी ॥
तीन लोक ते भिन्न पसारा । जग मग जोत जहाँ उजियारा ॥
सदा वसंत होत तिहि ठाऊं । संशय रहित अमरपुर गाऊं ॥
तहँवा जाय अटल सो होई । धरमराय आवत फिरि रोई ॥
वरनों लोक सुनो सत भाऊ । जाहि लोकतें हम चलि आऊ ॥
जगमग जोती बहुत सुहावन । दीप अनेक गिने को पावन ॥
जगमग ज्योति सदा उजियारा । करी अनेक गिने को पारा ॥

छंद

जहँ ज्योति जग मग अति सुहावन तत्त्व वारिध अति चलै ।
वहत दोई कुल तिमिर मनो पद्म झलहल हलै ॥
फेन उडगन बहन लागे शसि मनोहर हेरि को ।
किमि देउँ पटतर बूझ देखो भाव नहिं वहां जोर को ॥
सोरठा–शोभा अगम अपार, वर्णत बनैं न एक मुख ।
कही न जात विसतार, जो मुख होवै पदम सत ॥

धर्मदास वचन—चोपाई

हे स्वामी मोहि आदि सुनाओ । कैसे पुरुष वह लोक बनाओ ॥
कैसे द्वीप करी निर्मावा । होहु दयाल सो मोहि बतावा ॥

साहब कबीर वचन

सुन हंसा तोहे कहब विचारी । लोक द्वीप जिमि करी सम्हारी ॥
हते अदेह दुतिया नहिं काऊ । सुरति सनेही जान कछु भाऊ ॥
नहिं तहाँ पांच तत्त्व परकाशा । गुण तीनों न छिनहीं अकाशा ॥
नहिं तहाँ ज्योति निरंजन राया । नहिं तहँ दशौ जनम निर्माया ॥
नहिं तहँ ब्रह्मा विष्णु महेशा । आदि भवानी गवरि गनेशा ॥
नहिं तहँ जीव सीव कर मूला । नहिं अनंग जिहिंते सब फूला ॥
नहिं तहँ ऋषी सहस्र अठासी । षट दरशन न सिद्ध चौरासी ॥
सात वार पन्द्रह तिथि नाहीं । आदि अंत नहिं कालकी छाहीं ॥

छंद

नहिं कूर्म चक्रिय वारि पर्वत अग्नि वसुधा नाहिं हो ।
शून्य विशून्य न तहां होई अगाध महिमा सो कहो ॥
जिमि पुहुप तिमि छाया राखो बास भरो ता संग मई ।
स्वरूप बूझो अगम आदि महिमा अक्षर अंग मई ॥
सोरठा—प्रकट कहो जिमि रूप, देखो हृदय विचारिके ।
आदहि रूप स्वरूप, जिहिं ते सकल प्रकाश भयो ॥

चोपाई

तिनहिं भयो पुन गुप्त निवासा । स्वासा सार तें पुहुमि प्रकाशा ॥
सोई पुहुप विना नर नाला । ज्योति अनेक होत झलहाला ॥
पुहुप मनोहर सेतई भाऊ । पुहुप द्वीप सबही निर्माऊ ॥
अजे सरोवर कीन्हो सारा । अष्ट कमल ते आठौं वारा ॥
षोडश सुत तबही निर्मावा । कछू प्रगट कछु गुप्त प्रभावा ॥

पुहुप द्वीप किमि करब बखाना । आदि ब्रह्म तहँवा अस्थाना ॥
सत्रह संख पंखुरी राजे । नौ सौ संख द्वीप तहाँ छाजे ॥
तेरह संख सुरंग अपारा । तिहि नहिं जान काल बरियारा ॥

धर्मदास वचन

धर्मदास कहैं सुनो गुसाईं । द्वीप अनेक पुरुष के ठाईं ॥
सो स्वामी मोहि भेद बताओ । दया करो जनि मोहि दुराओ ॥
तुमसों वरनि कहौं सत भाऊं । मैं मनो आज महा निधि पाऊं ॥
सुनत वचन गदगद सिर मोरा । थकित भये जनु चंद्र चकोरा ॥
मैं भुजंग तुम मलया गीरा । करहु दया मम दुखित शरीरा ॥

साहिब कबीर वचन

धर्मदास पूछो जो मोहीं । सो मैं भेद कहौं सब तोहीं ॥
कमल असंख भेद कहँ जाना । तहँवा पुरुष रहे निर्वाना ॥
मोही सतगुरु दियो बताई । सो सब भेद कहौं तुम पाई ॥
सत्त पंखुरी कमल निवासा । तहँवा कीन्ह आप रहि वासा ॥

साखी—शीश दरस अति निर्मल, काया न दीसत कोश ।
पदम संपुट लग रहै, बानी विगसन होय ॥

चौपाई

प्रगट द्वार जब देखौ शीशा । धर्मनि हिये देखौ अहै ईशा ॥
पाइर द्वीप जहँ निर्मल ठौरा । सो सब भेद कहौं कछु औरा ॥
अंबू द्वीप हंस को थाना । पाइर द्वीप पुहुप निर्वाना ॥
नौ सौ करी ताहि के हीठा । गुरु प्रसाद सबै हम दीठा ॥
तहां आइ पुन पाइर द्वीपा । मंजुल मंगल करी समीपा ॥
तहँवा जाइ अटल सो होई । धर्मराज आवे फिर रोई ॥
द्वीप अनेक औ करी अनेका । पाइर द्वीप हंस के थेका ॥
चार करी हैं सब से सारा । बहु शोभा तहँ रूप अपारा ॥

साखी–करी भेद सुन हंसा, आइ देखु सत लोक ।
गुरु जो बतावहीं, मिट जाईं सब धोख ॥

धर्मदास वचन–चौपाई

हे स्वामी मैं विनऊं तोही । कछु संशय जिव उपज्यो मोही ॥
धर्मराय नहिं पायब दीपा । और सबै सुत द्वीप समीपा ॥
कारण कौन दरस नहिं होई । कहौ अगम जनि राखो गोई ॥

साहिब कबीर वचन

जो तुम पूछो अगम सन्देसा । सो सब तोहि कहौं उपदेसा ॥
आदि पुरुश अस कीन्हो साजा । पाँच बुन्द हुलास उपराजा ॥
बुन्दहि बुन्द अंड परकाशा । धर्म धीर जेहि अंड निवासा ॥
अटल जोत सुरंग उजियारा । तहँवा अंड रहै मनियारा ॥
धर्म धीर जबही उतपाना । आदि ब्रह्म तबही सकुचाना ॥
एकहि मूल सबै उपजाई । मेट्यो तेज अंड कुन्याई ॥

साखी–तेज रह्यो जिहि अंड मो, तेहि नहि दीन्हीं ठौर ।
तेहिते उपज्यो धर्म अब, वंश अगिन के जोर ॥

चौपाई

बावन लक्ष बेर अनुमाना । मेटो न मिटत शब्द परवाना ॥
एकहि मूल सबै उपजाई । मिटै न अंड तेज अन्याई ॥
धर्मराय है काल अँकूरा । उपजो तहाँ काल कौ मूरा ॥
तबहि पुरुष अज जुगत विचारा । रहै धर्म द्वीप सो न्यारा ॥
जोपै रहै सदा सिव काई । तौ एक द्वीप तुमहि निर्माई ॥
पुरुष शब्द ते सबै उपराजा । सेवा करैं सुत अति अनुरागा ॥
जानैं भेद न दूसर कोई । उत्पति सबकी बाहिर होई ॥
अभिअन्तर जो उत्पति होई । काया दरश पाय सब कोई ॥
काया दरश सुरति इक पावे । संगहि द्वीप सबै निर्मावे ॥

धर्म धीर नहिं पावे द्वीपा । और सबै सुत द्वीप समीपा ॥
धर्मराय अस कीन्ह बनाई । कर सेवा तेहि जागहि आई ॥
सेवा बहुत भांति सों किएऊ । आदि पुरुष तब हर्षित भयेऊ ॥
साखी–सेवा कीन्ही धर्म बड़, दियो ठौर अब सोय ।
जाय रहो वहि द्वीप में, सेवा निर्फल न होय ॥

चौपाई

सात द्वीप कौ पायो राजू । भयो आनन्द धर्म मन गाजू ॥
सेवा करि पुन कीन्ह निहोरा । सुनो सहज तुम भ्राता मोरा ॥
सेवा बसहि द्वीप मैं पाएऊँ । कैसो रचो मोहि गम्य न आएऊँ॥
पुरुष सों विनती करु यह भारी । हे भ्राता मैं तुम बलिहारी ॥
करिहौं सोई जो आज्ञा पाऊँ । कैसे मैं नव खंड बनाऊँ ॥
चले सहज जहँ द्वीप अमाना । कीन्ह जाय दण्डवत प्रणामा ॥
बहुविधि विनती सहज कियो जबही। बेग पुहुप बानी भई त ही ॥
पुरुष वाणी ते भया उजियारा । सुनहु सहज तुम वचन हमारा ॥
पक्षि पालना पाय है अंडा । सो लै धर्म रचैं नव खंडा ॥
चले सहज तब बार न लावा । धर्म धीरसौं मता सुनावा ॥
साखी–सुनत संदेशो पुरुष को, धर्म शीस तब नाव ।
पायो आज्ञा पुरुष की, अब फाबी मो दांव ॥

चौपाई

सुनत संदेश भयो हरषंता । आन अंड जो चले तुरंता ॥
देखो धर्म जब कूर्म शरीरा । बारह पालंग है बल वीरा ॥
नव पालंग धर्म परमाना । बनै न घात तब करे तिवाँना ॥
धावहि दशहू दिशा रिसाई । कैसे अंड लेऊं मैं जाई ॥
तबहि जुक्ति अस कीन्ह बनाई । तोरि शीस अस करचो उपाई ॥
शीस कीन्ह तब नख सौं छीना । अमी अंक तोरि कियो मीना ॥

शीस तोरि लियो द्वीप अपारा । तबहि धर्म भयो बरियारा ॥
पांचौ तत्त्व अंडसौं लीन्हा । गुन तीनौं सुशीस कर कीन्हा ॥
पांचौ तत्त्व तीन गुन सारा । यही धर्म सब कीन्ह पसारा ॥
तब कियो नीर निरंजन राया । मीन रूप तबही उपजाया ॥
करि चरित्र धर्म तब आया । आज सहज सों विनती लाया ॥

साखी-जाय कहौ तुम पुरुष सों, बहु सेवा मैं कीन्ह ।
सब सुत रहिहैं लोकमहँ, नव खँड हम कहँ दीन्ह ॥

चौपाई

इतने में नहिं मोर रहाऊँ । जहँवा रहव देव मोहि ठाऊँ ॥
चले सहज पुरुष पर जबहीं । विनती धर्म कीन्ह पुनि तबहीं ॥
मांग्यो बीज कीन्ह बड़ लोभा । जातैं द्वीप पावों मैं शोभा ॥
सहज विनय पुरुष सों कीन्हा । हे स्वामि तुव सुन बल हीना ॥
मांगै और ठौर पुनि सोई । धर्म धीर जो तुव सुत बल होई ॥
अति अधीन मांगै जौ बीजे । सोहै द्वीप पुहुप वहि दीजे ॥
तबहि पुरुष सेवा वश भयऊ । अष्टांगी कामिनि सो दयऊ ॥
मान सरोवर ताकर नाऊँ । सोऊ दियो धर्म कहँ ठाऊँ ॥
अष्टांगी कन्या उत्पानी । जासौं कहिये आदि भवानी ॥
रूप अनूप शोभा अधिकाई । कन्या मान सरोवर आई ॥

साखी-चौरासी लक्ष जीव सब, मूल बीजके संग ।
ये सब मान सरोवरा, रच्यो धर्म बड रंग ॥

चौपाई

सहज संदेशो ल्याये जहँवा । धर्म धीर ठाढे हैं तहँवा ॥
कह्यो संदेश धर्म मन गाजा । मान सरोवर जाइ विराजा ॥

साखी-देखि रूप कामिनि कौ, पल भर रह्यो न जाइ ।
आगे पीछे ना सोचिया, ताकौ लीन्हेसि खाइ ॥

चौपाई

कन्या सों अस कीन्ह अन्याई । सहजसों लियो जो तुरत छुड़ाई ॥
यहै चरित पुरुष जब देखा । दीन्हें शाप सो कहौं विशेखा ॥
सवा लक्ष जीव करौ आहारा । तऊ न ऊदर भरै तुम्हारा ॥
सुमिरन कूर्म्म पुरुष को कीन्हा । अहहो पुरुष धरम सिर छीन्हा ॥
तुव आज्ञा मैं अंड जो दीन्हा । धर्मराज काहे सिर लीन्हा ॥
सुनत वचन प्रभु बहुत रिसाने । जोगजीत तबही उतपाने ॥
आज्ञा भई तुम वेग सिधारौ । धर्मराज कहँ मार निकारौ ॥
आज्ञा मांग चले तब ज्ञानी । धर्मराय सो बातैं ठानी ॥
अरे पापी तू पुरुष को चोरा । भागहु बेग कहा सुन मोरा ॥
सुनतहि क्रोध भये धर्म धीरा । जोग जीतके सन्मुख भीरा ॥
जोग जीत तबहीं फटकारा । जाय रहो तब लोक ते न्यारा ॥
जोग संतायन चल भये जबही । धर्म धीर आयो पुनि तबही ॥
बार अनेक युद्ध जिहि कीन्हा । मारे न मरत बहुत बल कीन्हा ॥

धर्मराज वचन

तब मैं हतौ पुरुष के ठाऊँ । तब नहिं सुन्यो तुम्हारो नाऊँ ॥
को तुम हौ सो मोहि बताऊ । सहज भाव तुम फेर बनाऊ ॥

ज्ञानी वचन

धर्म धीर सों कहा बखानी । मर्दन धर्म नाम मम ज्ञानी ॥
जब तुम कीन्ह चार का काजा । तातें पुरुष मोहि उपराजा ॥
मारहुँ तोहि कहौ सतभाऊ । अष्टांगी तैं कामिन खाऊ ॥
सुनतहि क्रोध धरम पर जरेऊ । जरत हुताश मनहु घृत परेऊ ॥

साखी—करहिं युद्ध बहु भांति सों, कैसेहु क्षमा न होय ।
क्षण एक लरचो सहज तुम, करु उपाय अब सोय ॥

चौपाई

पुरुष आज्ञा अस भयउ अपारा । मारहु धर्म के मांझ कपारा ॥
आज्ञा पुरुष ज्ञानी दियो जबही । मारो शीश परो खस तबही ॥
संशय भयो तासु की देहा । ताकहँ भयो जी महँ संदेहा ॥
धर्म धीर को रुधिरसे जबही । विषम सरोवर उपजो तबही ॥
कन्या निकस जो बाहिर आई । संशय काल तिहिं घटहि समाई॥
शीश दियो लै कुर्म्म के पासा । पुरुष आज्ञा सौं कीन्ह निवासा॥
आज्ञा कीन्ही बेग निकारहु । कहै जोइ अब धर्म सिधारहु ॥
छाड़हु अंश खंड का गाऊ । विषम सरोवर माहि सा जाऊ ॥
देखो बहुत रूप उजियारा । अस कामिनि तैं कीन्ह अहारा ॥
फिर मैं गयो पुरुष के पासा । धर्म धीर अस करहि तमाशा ॥
कह कामिनि सुन पुरुष पुराना । मैं अपना कछु मरम न जाना ॥
कौन पुरुष मोही उपजाई । सो मोहि गम्य कहौ समुझाई ॥

धर्मराय वचन

कन्या मैं उपजायो तोही । रहौ अलख नहिं भेंटसि मोही ॥
कन्या कह सुन पिता हमारा । खोजो वर होय व्याह हमारा ॥
वर खोजौं जो दुतिया होई । कन्या मैं अब व्याहौं तोही ॥
पुत्री पिता न होवत व्याहा । पितहि पाय बहुतै औगाहा ॥
साखी–धर्म कहै सुन कन्या, भर्म भयो मति तोहि ॥
पाप पुण्य हमरे घरै, क्या डहकस तैं मोहि ॥

चौपाई

आदि भवानी और धर्मराऊ । इन सब कीन्ह सृष्टि निर्माऊ ॥
पांच तत्त्व तीन गुण रहेऊ । बीज सहित अष्टांगी दएऊ ॥
चौरासी लक्ष जीव दियो सम्हारी । रचहु सृष्टि अब आदि कुवांरी ॥
सेवा करहु सृष्टिकी ओरा । अलख निरंजन नाम है मोरा ॥

छन्द

कहैं भवानी सुनहु निरंजन यह मन्त्र निज सोई भले।
अस करहु कुलफ कपाट दै सब जीव जाहितैं ना चले॥
दस चार सुत दीजे भयंकर जिहि तैं होय त्रास हो।
तिहु लोक होत झटा पटा अब चार जुगन निवास हो॥
सोरठा–चौदह वीर अपार, चित्रगुप्त दुर्गदानी सम।
आन देई अहार, सवा लक्ष जिव रात दिन॥

चौपाई

जस कछु मत कियौ आदि भवानी। धरमराय ऐसी मति ठानी॥
जाइ रह्यौ जहाँ पांजी वाँका। धरती शीस सरग का नाका॥
दशौं दिशा रूँधे सब ठाऊँ। है द्वार मैं कहि समुझाऊँ॥
गुरु जो कहै औ पन्थ बतावे। ओहि पन्थ हंस घर आवे॥
धर्मराय मूदो वह द्वारा। तबहि भवानी युक्ति विचारा॥
तीनौं गुण तिय अण्ड सम्हारा। पुनि भाखौ आगिल व्यवहारा॥
नाम कहौं कह राखौं गोई। रजगुन तमगुन सतगुन होई॥
अष्टांगी अण्डन मन दीन्हां। धरमराय कछु उद्यम कीन्हां॥
मीन रूप जो प्रथम सुभाऊ। ता पीछे कूर्महि निर्माऊ॥
ता पीछे बाराह को थाना। ता पर उग्र कीन्ह उतपाना॥

छन्द

अस कीन्ह सबहि निरंजना तब दीन्ह मही को थेग हो॥
महीतल दीन्हा मीन कच्छप सूकर दीन्हा शेष हो॥
सुम्मेर पर्वत अति धुरंधर दीन्ह मही जो नाचलै॥
दशौं दिशा दिग्गज चार दीन्हैं जिहितैं मही ना डग मगै॥
सोरठा–दीन्हौं महि कौ भार, वारी जगत लगायकै।
जाकौ तमहि अपार, चतुर विधाता ठग भये॥

धर्मदास वचन—चौपाई

धर्मदास टेके गहि पाऊ। नाम जमन को मोहि सुनाऊ ॥
चौदह यम मोहि वरनी सुनाओ। दया करहु जिन मोहि दुरावो ॥

साहेब कबीर दास

दुर्ग दाँनी चित्रगुप्त वरियारा। एता जमन के हैं सरदारा ॥
मनसा मह्न अपरबल मोहा। काल सैन मकरंदी मोहा ॥
चित चञ्चल औ अन्ध अचेता। मृत्यू अन्ध जतन जो खेता ॥
सूरा संख और कर्म रेखा। भावी तेज तालुका पेखा ॥
अग्नि औ क्रोधित कहिये अन्धा। जामें जीव जन्तु सब बन्धा ॥
परमेश्वर अपर्बल धर्मराया। पाप पुण्य सबसों बिलछाया ॥
ये सब जम जो निरंजन कीन्हा। लिखना कागज रचके दीन्हा ॥

छन्द

चित्रगुप्त लेखौ लगवौं बंधु दोइ चतुर भल।
लख चौरासी रसन जाकै लखि लावत कै छलै ॥
लेखा लगावत जीव को जब अवधि पूजे आइ हो।
सवा लक्ष प्रमाण बांध्यो ठग निरंजन राइ हो ॥

सोरठा—ऐसा कीन्ह विचार, वारी जगत लगाय के।
भूल परो संसार, एक नाम जांने विना ॥

चौपाई

देख भयंकर जम की काया। चौरासी लक्ष जिव डरपाया ॥
विकट रूप देखत जम पासा। सब जीवन भये जो बहु त्रासा ॥
सब मिलि कै तब स्तुति ठाना। सुमरण एकहि आद प्रवाना ॥
यहि विधि विनती हसन ठानी। तबहि भई घर अधर तैं वानी ॥
वानी विगसत भये उजियारा। जोग संतायन तब पगुधारा ॥
आज्ञा कहा पुरुष मोहे कीजे। करब सोई जो आयसु दीजे ॥

पुरुष वचन

हंस दुखित भये काल के पासा । जाइ छुड़ावहु कालकी फाँसा ॥
कहा करो जो हारो बोला । बरवस करब तौ सुकृत डोला ॥
जोग जीत तुम बेग सिधारो । भव सागर ते हंस उबारो ॥

ज्ञानीवचन

चले ज्ञानी तब मस्तक नाई । पहुँचे तहँ जहँ धरम रहाई ॥
धर्मराय ज्ञानी कहँ देखा । क्रोध भयो जनु पावक रेखा ॥
यहँवा आये किहिं व्यवहारा । लोकहि से मोहि मारि निकारा ॥
मानेव आज्ञा छांड़िब लोका । यही जान परे तुम धोखा ॥
करो संहार सहित तोहे ज्ञानी । मरम हमार तुम कछू न जानी ॥
साखी--संहार करौ पल भीतर, कहौं वचन परचार ॥
पेलौ मान सरोवरै, विध्वंसौ द्वीप सब झार ॥

चौपाई

ज्ञानी कहँ सुन धर्मनि आगर । तो कह ठौर दीन्ह भवसागर ॥
तीनौ पुर दीन्हौं तोहि राऊ । पुरुष आज्ञा आयो धरि पांऊ ॥
चौरासी लक्ष जीव तोहि दीन्हा । तैं जीवन बड़ सासत कीन्हा ॥
आज्ञा पुरुष करो परवाना । जीव लोक सब करौ पयाना ॥
पुरुष वचन मेटे फल पावहु । कियो अवज्ञा लोकसे आवहु ॥
सोइ करहु रहन जो पावहु । की यहवाँ तैं वेग सिधावहु ॥
कै जीवन कहँ दीजे बांटा । बोलहु वचन धर्म तुम छांटा ॥
साखी--धरम कहैं सुन ज्ञानी, आज्ञा पुरुष की सार ॥
सेवा करत रैन दिन, पल पल सहित विचार ॥

चौपाई

आज्ञा मान लीन्ह मैं तोरा । अब सुनिये कछु विनती मोरा ॥
सो ना करब जो मोर विगारा । मांगौं वचन करौ प्रतिपारा ॥
पुरुष दीन्ह मोहे राज बुलाई । तुमहीं देव जो संशय जाई ॥

लीजे हंस जो भक्त परमाना । तीनों जुग हैं मेरे थाना ॥
चौथा जुग तबही उत्पानी । तबहि सम्हार सुनौ हो ज्ञानी॥
कैसे सम्हारो मोही समझावहु । की भक्ति जो मोहि सुनावहु॥
कहैं धर्म सुन जोग संतायन । ऐसे हंस न होय मुक्तायन ॥
हरि मन्दर मैं रचौ बनाई । तहँवा हंस करत मम नाई ॥
जो कोई गम्य न करै विचारा । सात जन्म लौं चोर हमारा॥
सुन ज्ञानी विहँसित मन कीन्हा । कैसा हरि मंदिर का चीन्हा ॥

धर्मरायवचन

जब मम कन्या भयो प्रसंगा । मनमथ उपज्यौ भयौ उमंगा॥
चल्यौ रुधिर कामिन के जबही । नख रेखा भग उपजी तबही ॥
चल्यौ रुधिर ताको रज भएऊ । गर्भ प्रसंग अंड तिय ठएऊ ॥
तेहि प्रसंग तिय गुण उपराजा । तबतै अधर निरञ्जन राजा ॥

साखी--ज्ञानी कहैं धर्म सो, छल मतौ तुम्हाँर ॥
जाको मैं चेतावहूं, सो तुमहीं सो न्यार ॥

चौपाई

विनती तोर करों प्रतिपाला । जुग तीनों जीवन वर साला ॥
चौथा जुग अंश मम आवहि । नाम प्रताप हंस मुक्तावहि ॥

धर्मरायवचन

हे स्वामी वर आयसु होई । कछु मांगों अब दीजे सोई ॥
सो न करब जो सब जिव जाई । भवसागर खाली परजाई ॥
ऐसा मत ज्ञानी तुम ठाँनहु । आज्ञा पुरुष की तुमहू मानहु॥
पुरुष बोल हारा मोहि पाहीं । सो न करब जो सब जिय जाहीं ॥
कह ज्ञानी सब मैं मानी । कह्यौ वचन सो करब प्रमानी॥
सतजुग त्रेता द्वापर जाई । कलियुग कौ प्रभाव जब आई॥
चार अंश मैं कीन्हौ थाना । खूंट गहौ तो नहीं प्रमाना ॥

धर्मरायवचन

साखी--बाँवन नरसिंह अंश मम, परसराम बलबीर ॥
रामचन्द्र आगे करौ, तब पुनि कृष्ण शरीर ॥

चौपाई

कृष्ण देह छाँडव मैं जहियाँ । कलियुग चौथा युग होय तहियाँ॥
तब हम करिहैं बौद्ध शरीरा । जगन्नाथ सरोवर के तीरा ॥
राजा इंद्र दवन परवाँना । मंडप काम लगावैं तवाँना ॥
मंडप तासु उठन नहिं पाई । सायर उमंग खसावन आई ॥
तब ज्ञानी पूछैं यह बाता । तोहि ते उपजै सायर साता ॥
जगन्नाथ तै कष्ट बनाई । सायर कवनहु भाँति खसाई ॥
हँस्यो धर्म कहि सतौ अपाना । कहौ करतूत सुनौ परिवाना ॥
दैत्य अनेक जीव जो मारौं । अंश मोर तेहि जाय सँहारौं ॥
राम रूप जब होय हमारा । तिनसौं होइ है द्रोह अपकारा ॥
दैत्य अनेक जीव को फेरा । वालि वधे औ सायर तेरा ॥
वालि बैर मैं तुरत दिवायव । व्याधि फाँसी सो कृष्ण मरायव॥

साखी--सायर बैर ना पावई, करि है वाऊ सौं घात ॥
मंडप उठन न पाइ है, जातैं कहो अस बात ॥

चौपाई

हे ज्ञानी अस मतौ विचारहु । प्रथमहि सागर तीर सुधारहु ॥
मोहिं थापहु मैं करहुँ निहोरा । तातें भाव जरै नहिं मोरा ॥
मण्डप उठे अटल हो राजू । पुरुष वचन कहँ तुम कहँ लाजू ॥
पहिले थापहु मो कहँ ज्ञानी । सागर तीर बैठहु अन्तर्यामी ॥
कहै जोग जीत सुनो धर्मराई । पुरुष बोल मेटा नहिं जाई ॥
सतजुग त्रेता द्वापर माहीं । तीनौ जुग अंश मोर जहँ जाहीं॥
कोई कुल हंस शब्द जो पावई । तीनौ जुग जीव थोरा आवई ॥
कलियुग मोर मनुष्य शरीरा । जा कहँ सुनियों नाम कबीरा ॥

जो जिव नाम शरण गति आवै। होय निशंक लोक कहँ जावै॥
और इकोतर नामहि पावै। तुम कह जीत हंस घर आवै॥
माँग्यो वचन करौं प्रतिपाला। जुग तीनों जीवन वरशाला॥
जातें पुरुष वचन अब हारा। करौ सो वचनन कौ प्रतिपारा॥

साखी--जगन्नाथ मैं थांपब, जायब सागर तीर॥
हंस लोक लै आएब, देह जब धरब कबीर॥

चौपाई

यहि प्रकार आयो ज्ञानी जबहीं। मारचो तुरत बांधके तबहीं॥
कियो अवज्ञा गरस्यो नारी। मान सरोवर तै मार निकारी॥

धर्मराय वचन

हे स्वामी मैं कहौं विचारी। रोकौ न हंस जो शरन तुम्हारी॥
जो कोई जीव जो होय तुम्हारा। अपने कांध उतारौं पारा॥

साखी–यह चरित्र सब ज्ञानी, कीन्ह धरम के पास॥
जाय कह्यो तब पुरुष सौं, सुख सागर कीन्ह निवास॥

चौपाई

अभैपक्ष ज्ञानकी कौ द्वीपा। तहाँ सत्ताईस द्वीप समीपा॥
तहँकी काल खबर नहिं पाई। तहँ न सतावे काल अन्याई॥

धर्मदास वचन

धरमदास तब कीन्ह प्रमाना। अगम अपार सुनै यह ज्ञाना॥
हे स्वामी यह कहौ बुझाई। कौन मते अब सृष्टि बनाई॥
सो विरतंत कहो समुझाई। जिहिं ते मन की संशय जाई॥
तुम्हरे वचन मोहि सार गुसाईं। सुन हर्षब धन रंक की नाईं॥

साहेब कबीर वचन

कहै कबीर सुनो धर्मदासा। जब कन्या कछु कीन्ह तमासा॥
तीनौं अण्ड भये तिय वारा। ताके रूप भये अधिकारा॥

रजगुन भाव ब्रह्मा उतपानी । सतगुन भाव विष्णु को जानी॥
तमगुन भाव रूद्र का लेखा । तीनों गुन तिय अंड विशेषा ॥
जब देवी तिन सुत उतपानै । धरमराय निद्रा अलसानै ॥
सोवत चार युग गय बीती । इक युग प्रथम अंड सो प्रीती ॥
उठि जागै कोइ जान न भेदा । ताकी स्वांस तैं चारौं वेदा ॥
स्तुति वेद कियो पुनि तहँवा । चतुर रूप विधाता जहँवा ॥
मीन रूप जो कीन्ह बनाई । तीन छोड़ि रह चौथे ठाई ॥
जो तुम संशय करहु धर्मदासा । वेद चरित्र अब कहौं प्रकाशा ॥
कूर्म्म घाव कियौ काल अन्याई । बुंद प्रसेद तहाँ पुनि पाई ॥
एक बुंद धरती परगासा । दूसरा बुन्द घट माहीं निवासा॥
बुँद प्रभाव वेद भये ताही । ऐसे बुन्द की उतपति आही ॥
और चरित्र जस कीन्ह भवानी। सो अब तुमसौं कहा बखानी ॥

साखी—तीन देव जब ऊपजे, ब्रह्मा विष्णु महेश ॥
कर जोरे स्तुति करें, तैं अब कहौ संदेश ॥
आज्ञा कह मोहि माता, सोइ कहौ समुझाइ ॥
सोई करब हम निहचै, बोले तीनौ राइ ॥

ब्रह्मा करहु तुम सृष्टि उरेहा । जात जीव धरैं सब देहा ॥
कैसे करहि सो युक्ति बतावहु । क्रिया करहु जनि मोहि दुरावहु॥
सतगुन पहिले भयो उतपानी । तैंतिस कोटी देव बखानी ॥
रजगुन तमगुन अंड जो भयऊ। दैत्य अनेक तबहि निरमयऊ ॥
दैत्य देव सों होय संग्रामा । जो मैं कहौ करब सो कामा ॥
जाय खनावहु सागर साता । जातैं दैत्य न करैं उतपाता ॥
सागर नीर करो उतपानी । जाते दैत्य गति रहै भुलानी ॥
रचौ सिन्धु जल होय अपारा । तब कहि हौं आगिल व्यौहारा॥

चल्यो ब्रह्मा मातहिं सिरनाई । सोच रह्यो कस करब उपाई ॥
बहुतक जने परिश्रम कीन्हा । चलो प्रस्वेद सोइ पशु चीन्हा॥
साठ सहस्र बुन्द अनुसारी । बुन्द प्रभाव सबै नख धारी ॥
नख धारिन स्तुति अनुसारा । कहा करैं सुन पिता हमारा ॥

ब्रह्मा वचन

साखी--खनहु सिन्धु मम वचन इम, मन्त्र कहौं समुझाय ॥
माटी उठे जु खनत महँ, ता कह घालिब खाय ॥

चौपाई

चतुर रूप कीन्हा तिन चारी । कहौ नार सबते अधिकारी ॥
रचा सिन्धु कछु लागि न बारा । सागर सात रच्यो विस्तारा ॥
सागर नीर जब भयो प्रकाशा । नख धारिन तब काल गरासा ॥
सागर रचि ब्रह्मा अनुरागा । अडसठ तीरथ रचन तब लागा॥

साखी-गङ्गा यमुना सरस्वती, गोदावरी समान ॥
रची नदी तब गंडकी, जहँ तहँ शिल उत पान ॥

चौपाई

सालिग्राम गंडक अंकूला । पांहन पूजत पंडित भूला ॥
और नर्मदा नदी गोदावरी । सोनभद्र पुनि करमनासावरी॥
और अनेक रच्यो विस्तारा । जाते भूल परचो संसारा ॥
सिन्धु सम्हार गये देवी ठाऊं । चतुर मुख आन गहे तब पाऊं॥
हे माता आज्ञा तुम मानी । रच्यो सिंधु तुव वचन प्रवानी ॥

भावानी वचन

मथौ सिन्धु सुत कहा हमारा । वहि में पैहौ कामिनि वारा ॥
तीनों जनैं चले सिर नाई । मथन सिन्धु कस करब उपाई॥
पर्वत आनि मथनियां कीन्हा । फनपति लेह फाहरी दीन्हा ॥
मथतहि सिन्धु मतो अस कान्हा। आपन अँश उतपानहिं लीन्हा॥

अंश बारि महँ पाये जबहीं । कन्या तीन उत्पन्न भई तबहीं ॥
पाय कन्या तब भये आनन्दा । देवी पास चले तिय संगा ॥
लै कन्या तब आगे कीन्हा । कर जोरें प्रणाम मन दीन्हा ॥

साखी—हे माता यह कन्या, पायो सिन्धु मझार ॥
जस कछु आज्ञा कीजिये, तस कछु करब विचार ॥

भवानी वचन चौपाई

कहे भवानि सुन ब्रह्म कुवाँरा । कामिन के तुम सदा भरतारा ॥
सावित्री ब्रह्मा कहँ दीन्हा । लक्ष्मी कृपा विष्णु पर कीन्हा ॥
पारवती रहि संकर पांहीं । अटल अहिवात करयो भवमाहीं ॥
पायो कामिनि भयौ हुलासा । बहुरि विनय कियो देवी पासा ॥
हे माता तुव आज्ञा सारा । जो कछु कहौ सो करौ विचारा ॥
कहे भवानी सुन ब्रह्म कुवाँरा । जाइ मथो अब सागर खारा ॥
पइहौ वस्तु सो आनहु जानी । अस कछु बोली आदि भवानी ॥
चले देव त्रिय लाग न वारा । मथ्यो सिन्धु करि हर्ष अपारा ॥
पाये वेद ब्रह्मा सो लीन्हा । विष्णु भाव सो हमहू चीन्हा ॥

साखी—चार वेद ब्रह्मा लिया, अमृत विष्णु सम्हार ॥
मथे अनिल जो विष भया, सो लीन्हा त्रिपुरार ॥

चौपाई

यह चरित्र त्रय देव बनाया । यहि सुधि दैत्य सुनै जब पाया ॥
आइ कीन्ह सब बाद विवादा । पायहु वस्तु देहु मोहि आधा ॥
वेद अनिल विष सब तुम लेहू । सुधा आहि सो हम कहँ देहू ॥
कहैं विष्णु सुन दैत्य अधीरा । सदा खाइकर विपति शरीरा ॥
दोनों मिल अस कीन्ह विचारा । सब मिल खईये अमृत सारा ॥
दोई पांति बैठे भल जोरी । दैत्य देव तैंतीस करोरी ॥
विष्णु चरित काहू नहिं जाना । बाँटत अमृत छल जो ठाना ॥

साखी-देवन अमृत पानयो, काहु न कीन्ह प्रसाद ॥
बांटत राहू तब ग्रस्यो, चन्द्र भानु कियो बाद ॥

चौपाई

जब सब मिलिके आयसु पाई । सभा बैठ कैसे के खाई ॥
सुनके विष्णु क्रोध तब कीन्हा । चक्र मार राहु सिर छीना ॥
अमृत परचो ताहि के पेटा । शीश के राहु देह सो केता ॥
भयो युद्ध दोनों दल भारी । बहुत दिन लरे जो बैर सम्हारी ॥
चन्द्र भानु जो राहु मुरावा । ग्रासै जान बैर को भावा ॥
यह चरित भयो सागर तीरा । देवी पास चले त्रय वीरा ॥
तब देवी अस मतौ विचारा । रचहुं सृष्टि जग होइ उजियारा ॥
अंडज माता किया उतपानी । पिंडज भाव ब्रह्मा को जानी ॥
ऊष्मज विष्णु कीन्ह व्यवहारा । शिव कीन्हौ रोम अठासी धारा ॥
लख चौरासी योनिन कीन्हा । आधा जल आधा थल दीन्हा ॥

साखी-जलके जीव पताल सब, औ पृथ्वी परचंड ॥
रचो अहार शंभू सबै, वनस्पती को अंग ॥

चौपाई

स्थावर महेश जो कीन्हा । उष्मज दोइ तत्त्व कर चीन्हा ॥
तीन तत्त्व अंडज मैं दीन्हा । चार तत्त्व पिंडज को कीन्हा ॥
मुक्ति क्षेत्र नर कौ अवतारा । ता महँ पांच तत्त्व हैं सारा ॥
और जो इन में बरतै भाऊ । मनुष्य जन्म में प्रगट स्वभाऊ ॥
मनुष्य जन्म उत्तम सो होई । विना नाम पुनि जाइ बिगोई ॥
स्वासा सार तै वेद जो भएऊ । सो पुनि मीन पास लै धरेऊ ॥
एकहि सुरति तब ब्रह्मा पावा । तेहि पढिबे का मन चितलावा ॥
वेद पढ़त बूझ अस परेऊ । पृथ्वी आकाश जोत अनुसरेऊ ॥

साखी-निराकार निरंजन, सृष्टि कीन्ह उतपान ॥
मैं जानौं भल मरम अब, नहिं कीन्ह्यो आदि भवान ॥

चौपाई

चले ब्रह्मा माता पर आये । दोई कर जोरिके विनती लाये ॥
हे माता मैं पूछौं तोहीं । जो पूछौं सो कहिये मोहीं ॥
कौन पुरुष मुहि कीन्ह प्रकाशा । सो सब मातु कहौ मोहि पासा ॥
कहे भवानि सुनु ब्रह्म कुवाँरा । पृथ्वी अकाश मैं अनुसारा ॥
मैं कीन्हा दुतिया नहिं कोऊ । तुम कस भूले सो कहु भेऊ ॥
हे माता मैं वेद विचारा । है कोई शून्यमें सिरजन हारा ॥
निरंकार निरञ्जन राया । ज्योति अपार श्रुति गुण गाया ॥
साधु साधु कहि आदि भवानी । आदि पुरुष जेहि तैं उत्पानी ॥
कहां अहै सो मोहि बताओ । कृपा करो जिन मोहि दुराओ ॥

साखी–चरण सप्त पाताल हैं, सात स्वर्ग हैं माथ ॥
पुहुप लैकर परसौ, जामें होहु सनाथ ॥

चौपाई

चले ब्रह्म मातहि शिर नाई । उत्तर पन्थ सुमेरुहि जाई ॥
जाइ ठाढ भये तिहिं अस्थाना । शून्य आद जहाँ शशि नहिं भाना ॥
बहु विधि स्तुति ब्रह्मा करई । ज्योति प्रभाव ध्यान अस धरई ॥
दुखित सुर्त जो भई तुम्हारी । स्तुति करत भये जुग चारी ॥
यहु विधि बहुत दिवस चलि गएऊ । आदि भवानी मन चित ठएऊ ॥
जेठा पुत्र जो ब्रह्म कुवाँरा । कहाँ गयो वह पुत्र हमारा ॥

साखी–अब मैं करब उपाय सो, जिहिं तैं ब्रह्मा आय ॥
गायत्री उतपानऊ, ताहि कही समुझाय ॥

चौपाई

ब्रह्मा गये पिता के ठांईं । पिता दरश अजहूँ नहिं पाई ॥
बहुत दिवस भये बेग लै आवहु । बहुत भांति कर तिहि समुझावहु ॥
चली गायत्री ब्रह्मा पासा । तिनसौं जाइकर वचन प्रकाशा ॥

पुहुप लैकर दरशन आएहु । पिता दरश अजहूं नहिं पाएहु ॥
ब्रह्मा कहै कवन तैं आही । मोर मरम पाये किहिं पाही ॥

दर्शन

आदि भवानी मोहि उपजाई । तुमहि लैन को यहां पठाई ॥
चलहु बेगि जिन लावहु बारा। तुम विन सृष्टि न हो अनुसारा॥
कहे ब्रह्मा कैसे मैं जाऊँ । पिता दरश अजहूं नहिं पाऊँ ॥
एक उपाय चलौ सुनु बाता । तौ कहँ बात पूछिहै माता ॥
मोरे हित कह झूठ स्वभाऊ । तौ तुव संग अब धारौं पाऊ ॥
गायत्री कहँ आयसु होई । पुन परमारथ है बड सोई ॥

चौपाई

साखी-चलु ब्रह्मा माता पर, होवै सृष्टि उपाय ॥
झूठ वचन मैं भाषिकै, जाय सुनाइब माय ॥

चलि गायत्री ब्रह्मा साथा । माता प्रेम सौं चूम्यौ माथा ॥
कुशल प्रभाव सौं चूम्यो शीसा। और मातु दियो बहुत अशीशा॥
कैसो भयो तहां तोहि भाऊ । सो सब ब्रह्मा मोहि सुनाऊ ॥
ब्रह्मा कहै सुनौ हो माता । यह पूछौं गायत्री बाता ॥
गायत्रिहि आज्ञा भई जबही । अचरज बात कही कछु तबही॥
परस पुहुप लै पितु ही माथा। देखो सबै रही मैं साथा ॥
आदि भवानी बहुत बिहँसानी। दोई झूठ कही सहिदानी ॥
ज्येष्ठ पुत्र मम ब्रह्म कुंवारा । बहुत झूठ तिन वचन उचारा ॥
ब्रह्महि शाप दियो तब जानी । होहु अपूज्य कहि आदि भवानी ॥
औ कमल केतकी अस अविश्वासा। निरघिन ठौर तोर होइ बासा॥
गायत्री होई वृद्ध भरतारा । पांच सात औ बहुत पसारा ॥

साखी-शाप्यो ब्रह्मा गायत्री, फिर पाछे पछताय ॥
क्रोध क्षमा नहिं कीन्हेउ अब कस करे निरञ्जन राय॥

चौपाई

ततक्षण भई अकाश तैं वानी । नहिं भल कीन्हौं आदि भवानी॥
ऊँचे होइ जो नीच सतावै । ताकर बैर मोहि सन पावै ॥
लेहुँ बैर सुन कहा हमारा । तोरे होइ हैं पञ्च भर्तारा ॥
सतयुग त्रेतायुग जैहैं जबही । द्वापर को प्रभाव होय तबही ॥
राजा द्रुपद घर तो अवतारा । द्रौपदी नाम तोर उजियारा ॥
पांडव होई हैं कंत तुम्हारा । निश्चय मानहु कहा हमारा ॥
शाप बैर देवी जब पावा । सोच करै मनमें पछतावा ॥

साखी-सोच करा कह अब मैं, दुर्ग निरंजन राइ ॥
आइ परी बस अधम के, विष्णुहि देखौ जाइ ॥

चौपाई

सुनहु विष्णु तुम कहा हमारा । बेर गमन कर सप्त पताला ॥
जाय पिता कर परहू पाऊँ ।सो सब विष्णु तोहि समुझाऊँ॥
अच्छत पूजा लियो कर जोरी । पताल पंथ की अगम है डोरी॥
चलत जात कछु अंत न पावा । शेष नाग विष गरल स्वभावा॥
विष के तेज विष्णु कुम्हलाना । येहि चरित्र निरंजन जाना ॥
स्वान शरीर भय विष के ज्वाला । भइ अकाशवानी तत काला ॥
सुनहु विष्णु तुम कहा हमारा । विषम पंथ है सप्त पतारा ॥
प्रथम पतालको है अस ज्वाला। आगे होइ तोर जिव काला ॥

साखी-फिरचो विष्णु परमान इमि, कह जो दियो समुझाय॥
मध्य पंथ है दारुन, कैसे परसौं पाय ॥

चौपाई

गरल भाव उर स्यामल अंगा । ताकर बैर कहौं परसंगा ॥
जो को करै जीव वरियाई । दुर्ग राइ तिहि बैर दिवाई ॥
सतयुग त्रेता गत हो जबही । द्वापर को प्रभाव हो तबही ॥

विष्णु भाव पुनि कृष्ण शरीरा। नाथहि काल कालिन्दी तीरा ॥
जो कुछ विष्णु पातालहि सुना । देवी पास कहौ सतगुना ॥
सुनकर देवी विहँसत भएऊ । विष्णु अशीश बहुत के दिएऊ ॥
सत्य वचन तें भयौ हुलसा । लेउ अशीश विष्णु मोहि पासा ॥
जहँ लग जीव जंतु उतपानी । सब पर विष्णु तुमहि परमानी ॥
तीनों पुर में आन तुम्हारी । वचन मोर सुनु सत्य मुरारी ॥
साखी–यह चरित्र कर देवी, चलि जो शिव के पास ॥
कर जोरे स्तुति करै, कीन्हौं बहुत हुलास ॥

चौपाई

दोइ पुत्र को मतौ सुनावा । मांगु महादेव तुम मन भावा ॥
मांगौ सो जो कीजो दाया । यह नहिं बिनसै हमरी काया ॥
वैसे होहु सुनो हो वारा । साधौ जोग जो मतौ अपारा ॥
जब लग पृथ्वी अकाश पतारा । तब लग काया न बिनसै तुम्हारा ॥
ब्रह्मा विष्णु तजैं शरीरा । तैंतिस कोट देव रनधीरा ॥
जब लग चन्द्र सूर्य औतारा । बिनसैं न देह सुनु कहा हमारा ॥
तीनों पुत्र को कीन्ह सन्माना । तब माता अस आज्ञा ठाना ॥
रचौ सृष्टि तुम तीनों भाई । प्रथमहि कैसे युक्ति बनाई ॥
नर नारी कीन्हो दोइ देहा । तातें उपज्यो मदन सनेहा ॥
दश द्वारा सुर नर मुनि कीन्हा । धरती भार भए अकुलीन्हा ॥
साखी–दशौं दिशा तब निरमयो, भयो मनुष्य अपार ॥
पृथ्वी भई तब व्याकुल, सहि न सकै अस भार ॥

चौपाई

गौ रूप हो वसुधा गयऊ । विष्णु स्थान ठाढ पुनि भयऊ ॥
हे स्वामी भयो मनुष्य अपारा। मोर अंग बलसहि न सम्हारा ॥
चलत पंथ नहिं भूमि अडाही । माथे पर लै हाथ चढाही ॥
सुनकै विष्णु समाध लगावा । निरंकार सौं अस्तुति लावा ॥

अहो पुरुष का करब उपाई । पृथ्वी भार बहुत अकुलाई ॥
ततक्षण भई अकाश ते वाणी । सुनहु विष्णु कर सबकी हानी॥
शिव विहाय चौदह सुत मोरा । इनैं छांडकर शंकर ओरा ॥

साखी–जाहु पृथ्वी घर अपने, करौं चरित अब सोय ॥
भार उतारो मही को, आज्ञा अस जो होय ॥

चौपाई

चली आय वसुधा निज गेहा । जमन विष्णु तब कीन्ह सनेहा॥
मारहु जारहु अब जिव जन्तू । सुन अन्तक सुन भयो अनंतू॥
आई पावक तब रखना लीन्हा । सब जिव मार विष्णु कह दीन्हा॥
मारे देव तैंतीस करोरी । ब्रह्मा मार मही सब घोरी ॥
कीन्हो युग निकंद भयो जबही । जुग निकंद विष्णु कियौ तबही॥
सब जीव घाल आप में लीन्हा । प्रथम स्वभाव जमन तब कीन्हा॥

साखी–सवा लक्ष जीव विष्णु ते, चले जात नित नेम ॥
जस अनाज की कोठरी, करि कृषानु बहु प्रेम ॥

चौपाई

ले अनाज कोठी वहरावै । खरच लेइ पुन फेर मुदावे ॥
अस चरित्र कियो अन्त कराऊ । अब कछु भाखौं अगिल स्वभाऊ॥
विष्णुहिं सैं सतभाव जो देखा । छांडो अंश करौ सृष्टि उरेहा ॥
सतगुण भाव विष्णु कौ जानी । नाभि कमल ब्रह्मा उतपानी ॥
ततक्षण ब्रह्मा गयो अकाशा । विष्णु ध्यान अस वचन प्रकाशा॥
येहो स्वामि निरंजन राया । वसुधा कैसे करौं उपाया ॥
बारी सहित मही जो बोरी । प्रकट करन की युक्ति है थोरी ॥
रजगुन भयो जो ब्रह्मा निवासा । ताकी नाभि से पवन प्रकाशा॥
तीनौं गुन तिय अंड जो भयऊ । दैत्य देह तिन दोनों धरेऊ ॥
उठि ठाढे नहिं पावहिं थाहा । गये जहां तहँ प्रभु अवगाहा ॥

करहिं युद्ध बहु भुजा पसारी। वे दोई बांह विष्णु भुजचारी॥
बहुतक दिवस युद्ध जो कीन्हा। तिन पुनि ऐसो बोलहि लीन्हा॥
मांगहु विष्णु देव मोहि सोई। मैं भय छल भाखौं अब सोई॥
मधु कैटभ तुम दैत्य अपारा। अवश्य होहु तुम वध्य हमारा॥
होउ वध्य जहँवा जल नाहीं। दोनों गये विष्णु के ठाहीं॥
यहै चरित्र विधाता कीन्हा। तेजय जल सब सिन्धु महँ दीन्हा॥
तबहि कियो पुन सप्त पतारा। मीन रूप वसुधा अनुसारा॥
तेजय बल सब सिंधुमें दएऊ। उनचास कोट मेदनी ठएऊ॥
साखी-तहां बैठ जो दैवत, जब भयो पृथ्वि प्रचार॥
तीन देव विन्ती करें, कीजै सृष्टि विचार॥

चौपाई

प्रथमहिं सतयुग कीन्हौं थाना। कीन्हौं जीव जन्तु उतपाना॥
सत्यदेह पुनि भयल कुमारी। यह प्रकार रचना अनुसारी॥
वडवा नाल अग्नि प्रकाशा। सो तीनौं पुर कीन्ह निवासा॥
कीन्ह्यो ऋषि सब सहस्र अठासी। नौई नाथ सिद्ध चौरासी॥
कीन्ह्यो देव प्रथम परगाशा। ये सब कीन्हें अपने आशा॥
और अनेक राजा सब कीन्हा। यह चरित्र काहू नहिं चीन्हा॥
यहि कारण मारहि उपजावहिं। आप स्वारथी जीव हतावहिं॥

छंद

नहिं बूझ परत अपार महिमा सुरत ऐसी विधि कियो।
बाज लगावहिं भावहू सब जीव जम के वश रह्यो॥
तुम बूझि देखो चरित्र वाको जन न कोई बूझई।
सेवा करत सब स्तुति यम जीव को अटकावई॥
सोरठा-सुनु धर्मदास सुजान, नाम गहौ चितलाय कै।
शब्द गहौ परवान, विना नाम नहिं मुक्ति फल॥

धर्मदास वचन–चौपाई

धर्मदास विन्ती अनुसारी। हे स्वामी तुम्हरी बलिहारी ॥
अब मैं पायो भेद तुम्हारा। मोर मनोरथ करौ प्रतिपारा ॥
पृथ्वी केर चरित्र सुनावहु। जन्म जन्म के भाव बतावहु ॥
जग समीप हरि को विस्तारा। तुम कछु स्वामी अगम विचारा॥
आदि अन्त बूझौं प्रभु राया। अब गुरु कहौ गहौं तुव पाया ॥

साहिब कबीर वचन

सुन धर्मन मैं तोहि बुझाऊँ। हरि चरित्र सब तोहि सुनाऊँ ॥
दैत्य महा बलि भये अपारा। यज्ञ अश्वमेध कीन्ह विस्तारा ॥

## बलि चरित्र

बलि भयो दानी महा प्रचंडा। स्वर्ग पताल मही नौ खंडा ॥
जो जांचैं तिहि देय तुरन्ता। जांचय फिर आवै हरषन्ता ॥

छन्द

जाचक भयो जो धनी बहुविधि दीन्ह नहि कोई जग रह्यो।
पाई मुक्ति वर अवराध्यौ दैत्य ऐसो वृत गह्यो ॥
शुक्र मन्त्री मन्त्र ठान्यो अश्वमेध यज्ञ जो कीजिये।
मुक्ति बर पावै नहीं तो स्वर्ग बरबस लीजिये ॥

सोरठा–अश्वमेध रचि राज, जान महाफल मुक्ति कर।
करब स्वर्ग कर राज, इन्द्र करब बस आपने ॥

चौपाई

जानी तीन लोक के भूपा। तब पुनि कीन्हो वामन रूपा ॥
तौन रूप धरि गये पताला। जहँवाँ बलि राची यज्ञ शाला ॥
प्रतिहारै तब बात जनाई। है दुज ठाढ सुनौ बलिराई ॥
महा पंडित मुख वेद उच्चारा। आज्ञा कहा सो कहौ भुवारा ॥

सुनतहिं बलि अब धरे उपाऊ । अर्घ पाबडे कीन्ह बनाऊ ॥
नमस्कार कर पूछी बाता । आज्ञा कहा सुनौ तुम दाता ॥
माँगौं सो मोहि दीजै राऊ । दानी सुन आएऊ तोहि ठाऊ ॥
मोहि देव माँगौं जो स्वामी । महा पंडित तुम अन्तर्यामी ॥

छन्द

परनकुटी छावन चहैं महि देव तुम बलिराई हो ।
पग तीन मांगौं नापतै जामैं होय अटाव हो ॥
सुनि विहँसे बलिराय तबहीं अहो विप्र माँगौ कहा ।
हीरा रत्न मानिक पदार्थ छांड़ महिमें क्या रहा ॥
सोरठा–मांगौ थोरा दान, यही रुचि मोहि सुन नृपति ।
प्रथम वचन परमान, तृष्णा स्वारथ निधि कहौ ॥

चौपाई

शुक्र मंत्रि सुन शीश डुलावा । हे नृप दान मोहि नहिं भावा ॥
राजा सुनत क्रोध तब कीन्हा । बूझि बोल मन्त्री मतिहीना ॥
लीन्हा नृपति हाथ कुशपानी । कीन्ह संकल्प मही दियौ दानी ॥
मानहु विप्र वचन परवाना । लेव तहां जहँवाँ मन माना ॥
तीनौं पुर तीनौं पग कीन्हा । प्रगटे हरि तब सबहिन चीन्हा ॥
देव पूरा नृप आधा पाऊँ । नातर जाय पुण्य परभाऊ ॥
लेव नापि प्रभु पीठ हमारी । तातैं विष्णु वाक्य मैं हारी ॥

छन्द

नाप दीन्ही पीठ अपनी बलि नृपति बड़ राइ हो ।
वाचा व्रत में बांधि राख्यो लक्षमता पैठाय हो ॥
विश्वास दीन्हा मुक्ति कौ भरमाई राख्यो तेहि हो ।
यही भांति प्रपंच कीन्ह्यो तपी सिद्ध सबहि हो ॥
सोरठा–बूझो सन्त सुजान, हरि दीन्हा जस मुक्ति फल ।
पछतइहो अन्त निदान, एक नाम जाने विना ॥

# सनक सनंदन चरित्र

चौपाई

सनक सनंदन चले हरषाई। पुर वैकुंठ सुमेर पर जाई॥
जय रु विजय दोइ रहैं प्रतिहारा। रोकि न तेहि न दीन पैठारा॥
सुनिकै क्रोध ऋषि तब कीन्हा। जय रु विजय कहँ शाप जो दीन्हा॥
हाऊ दैत्य तुम दोनों भाई। जाई रहो मृत्यु मंडल ठाई॥
सुनिकै शाप दोनों गये जहँवा। हरि बैठे लक्ष्मी सँग तहँवा॥
कहि न जाइ तिहि ऋषिकर भाऊ। सुनकर विष्णु कीन्ह पछताऊ॥
थोरी चूक शाप बड़ दीन्हा। नहिं भल कीन्ह अवज्ञा कीन्हा॥
ऋषिन बुलाय कही अस बाता। है परभाव बैर कर घाता॥

साखी–जय रु विजय कहँ शापेऊ, होहू दैत्य प्रभाव।
ताको सुत तुम होहु अब, शाप का बदलो पाव॥

चौपाई

अब स्वामी तुम वचन प्रमाना। मो कहँ देव भक्ति भगवाना॥
जय अरु विजय काल वश भयऊ। तिन कौ जन्म मनुष्यहि ठएऊ॥
हिरनाकुश वा हिरनाक्ष राऊ। कीन्हा सेवा बहु शम्भू ठाऊ॥
पा वरदान भये बलवन्ता। नहिं कोई देव यक्ष गुणवंता॥
सोई आन पुनि कीन्ह संग्रामा। भाजे देव छांड़ि सब धामा॥

साखी–तब प्रपंच हरि कीन्हा, अस ठाना व्यवहार॥
ताकी नार औधान रहि, भयो पुत्र अवतार॥

चौपाई

हिरनाकुश जब भये हरषंता। चले असुर घर जन्मो पूता॥
सेवकन दीन्हैं रतन पदारथ। शिव सुत दीन्ह जन्म मम स्वारथ॥
बर्ष पांच को भयो जो बारा। गुरु बुलाय पढ़ने बैठारा॥
शिवकी भक्ति तुम याहि पढ़ावहु। माँगहु इच्छा सो फल पावहु॥
लै घर विप्र गये तब बारा। पढ़ौ सु सुत शिव भक्ति विचारा॥
प्रहलाद शिवको भक्ति जो धरहूं। हरषे नृप मम बिथा बिसरहूं॥

साखी–केतौ गुरु प्रबोधै, शिव न पढ़ै प्रहलाद ।
विष्णु विष्णु गुहरावई, सुन गुरु करै विषाद ॥

चौपाई

एक बार नृप सभा मझारी । बैठे सुत कहँ कीन्ह गुहारी ॥
गये प्रतिहार ले आए बारा । गुरु समीप पढ़ने बैठारा ॥
हर्षत चूम्यो सुत को शीसा । सकल सभा दियो बहुत अशीसा ॥
सुत मोहि कछु पाठ सुनावहु । कहौ वचन मम हृदय जुड़ावहु ॥
तब प्रहलाद पढ़न अनुसारा । धन्य विष्णु जिन काय सम्हारा ॥
पानी तैं जिन पिण्ड बनावा । तिहि प्रभुको कोइ अन्त न पावा ॥
अलख निरंजन देव मुरारी । सुनौ तात मैं तुव बलिहारी ॥
सुनत वचन हिरनाकुश राऊ । क्रोध कीन्ह जस अग्नि स्वभाऊ ॥

साखी–अहो मंद जड़ अकरमी, किमि ठानो मम बार ॥
जाइ पढ़ावहु शंकर, नातर झोंको भार ॥

चौपाई

दिन दशमें पढ़ाइ लै आवहु । शिव कि भक्ति भली भांति सिखावहु ॥
नृप आज्ञा पढ़वे को दीन्हा । तब प्रहलाद पढ़े अस लीन्हा ॥
हरि तज काहि पढ़ौं मैं ताता । चार पदारथ के फलदाता ॥
भक्ति पक्ष सन्तन सुखदाई । जिन प्रभु सकल सृष्टि उपजाई ॥
तब नृप सुन अस वचन उचारा । मारहु सुत यह शत्रु हमारा ॥
हस्ति बुलाए अति बलवन्ता । चलत छांहि भुव देइ पदंता ॥
ता कहँ आज्ञा दीन्ह भुवारा । देव महाबल आंकुश भारा ॥

साखी–हस्ति देख प्रहलाद कह, चलै पराइ पराय ॥
नरसिंह रूप दिखराय हरि, भक्ति करत मन लाय ॥

चौपाई

तब नृप ऐसी युक्ति विचारी । जरत अग्नि देव सुत कहँ डारी ॥
अग्नि जरत तब पवन उड़ानी । प्रहलाद पढ़ैं तब सारंग पानी ॥

तब नृप ऐसी युक्ति अरंभा । बांधो सुत कहँ गाड़ो खंभा ॥
जो कोइ होय तोर रखवारा । ता कहँ सुमिरो सुत हो वारा ॥
नातर छांडु विष्णु कर नाऊँ । अबही घात करों यहि ठाऊँ ॥
तब प्रहलाद सुमिरै भगवाना । कहा तू करब दैत्य बलवाना ॥
अहो धरणिधर अहो मुरारी । यहि औसर प्रभु लागु गुहारी ॥

साखी-खंभा सौं हरि नीकसे, की भयंकर गात ॥
आधा नर आधा सिंह का, कीन्ह दैत्य ही घात ॥

दोऊ बंधु महा बलि मारा । दैत्य मारि महि भार उतारा ॥
फारयो उदर नखन सौं छीना । सुर औ नरन हरष बहु कीना ॥
मांग प्रहलाद इच्छा फल आजू । तोहि भक्त लग हनौ दैत्यहि राजू ॥
कर जोरे प्रहलाद अस भाखा । हे स्वामी भक्तन प्रण राखा ॥
मोक्ष पिता कहँ दीजै स्वामी । मोहि भक्ति सुन अन्तर्यामी ॥
साधु साधु विष्णु अस भाखा । पुत्र पिता प्रण भल तुम राखा ॥
दोई जन्म आगे औतारब । तब तोर पिता देख मैं तारब ॥
तैं मम भक्ति कीन्ह बडि सेवा । ताकर फल भाषौ कछु भेवा ॥
दैत्य हते जब बाल कन्हाई । आवै देव सबै तेहि ठाई ॥
करहिं सुयस हरि सबहि बखाना । प्रहलादहि देव स्वर्ग अस्थाना ॥

साखी-कीन्ह इन्द्र प्रहलाद कहँ, सब मिलि कीन्ह विचार ॥
नरसिंहरूप नर कीन्हा, ताको यह व्यवहार ॥

## नारद चरित्र

चौपाई

एक समय इन्द्र यज्ञ ठानी । निवते सिद्धि ऋषि औ ज्ञानी ॥
पहुँचे गन गंध्रब सब झारी । सब मिलि कीन्ह स्नान सुधारी ॥
जो कोई गया इंद्र अस्थाना । इच्छा भोजन सब कहँ ठाना ॥

बहु विधि इंद्र करे सतकर्मा । पुरै न घंट जानसको मरमा ॥
तब नारद अस कीन्ह विचारा । धरौ धीर कहौ वचन उचारा ॥
ऋषि जमदग्नि इच्छा खावा । तिहिं प्रभाव अनंग जनावा ॥
ऋषि रत करैं कै छांड़ैं ठावा । बजै घंट अस मता सुनावा ॥
सुनतहि ऋषि तब कीन्ह पयाना । बज्यो घंट पूरण यज्ञ जाना ॥
साखी–ऋषि मन में तब बूझ्यो, जान करौ अब व्याहु ॥
ऋतमान जब आये, राजा कश्यप ठांहु ॥

चौपाई

देव नृपति कन्या इक मोही । मांगौ आजु जाव नृप तोही ॥
तब कन्या नृप दीन्ह बुलाई । कीन्हो व्याह ऋषी तेहि ठाई ॥
लै कन्या ऋषि घरहि सिधाये । भृगु कुल हरि औधानहि आये ॥
जो धर्मदास संशय कछु तोही । कहौ बुझाय चरित्र अब वोही ॥
भय क्षत्री महि व्याकुल भयऊ । मारन तासु जन्म हरि लयऊ ॥
निछत्र कीन्ह बहु जीव संहारा । बैर हेतु भृगुकुल औतारा ॥
सहसबाहु ऋषिगन जो मारी । पिता बैर सो प्रथम सम्हारी ॥
क्षत्री मारि निक्षत्री कीन्हा । भृगु रूप विष्णु को चीन्हा ॥
साखी–यहि विधि क्षत्री निकंदऊ, परसराम बली वीर ॥
आगे भाव बतावऊँ, सुनौ संत मत धीर ॥

## श्रवण चरित्र

चौपाई

अवध नगर दशरथ बड राऊ । पुरुषारथ जिन कहौ प्रभाऊ ॥
तिनहि नारि बहु सबहि पियारी । रात दिवस जौ कर हित भारी ॥
एक समय आखेटहिं गये राऊ । पशु भोरे कियौ ऋषि कहँ घाऊ ॥
पानी तट ऋषि हरि हरि कीन्हा । नृप पछितानो जब मुनि चीन्हा ॥
ताके पितहि श्रवणकी बाता । तुव सुत दशरथ कीन्हो घाता ॥

साखी-अहो ऋषि तुव सुत कहँ, दशरथ मारयो बाण ॥
यह चरित्र सुन मुनिवर, तत्क्षण छांडयो प्राण ॥

दोनों ऋषी काल बस भयऊ । नृप अन्याय बैर हरि ठयऊ ॥
सुत बिहून जस ऋषि तन त्यागा । तैसे काल नृप तोर अभागा ॥
पुत्रके शोक काल होय तोरा । देहू वैर कहा सुन मोरा ॥
नारद ऋषि तब कीन्ह तिवाना । राजा दक्ष यज्ञ जो ठाना ॥
देव ऋषी आये तिहिं ठाईं । सब नृप बहुतै सेवा लाई ॥
ऋषि तब कहै सुनो दक्ष राऊ । शिवको जियत निवत बुलवाऊ ॥
इन्द्र यज्ञ जब निवत जु आये । गण गन्धर्व सब देव रहाये ॥
तहँ शिव कीन्ह तोर अपमाना । आई कहौ सुन नृपति सुजाना ॥
सुनतहि क्रोध नृप पर जरेऊ । जरत हुताश मनहु घृत परेऊ ॥

साखी-शिव विहाय सब निवते, चले सबै तिहि पास ॥
देख गगना मुनि वरन को, सती वचन परकास ॥

चौपाई

हे प्रभु कहां जायँ मुनि राईं । सो प्रभाव प्रभु मोहि बताईं ॥
राजा दक्ष यज्ञ जो ठाना । तहां जायँ ऋषि चढे विमाना ॥
हे प्रभु मो कहँ आयसु होई । यज्ञ तात कर देखों सोई ॥
निवते बिन न बूझियत नारी । ऐसी इच्छा आहि तुम्हारी ॥
चली सती तब लागि न बारा । पिता भवन तहँवा पगु धारा ॥
देखत नृपति महा डर जरेऊ । काहू समाधान नहिं करेऊ ॥
व्याकुल भई दिगम्बर नारी । यही ब्याह मम कुल भई गारी ॥
सुनत विषाद सती मन जागा । परी अनल तब देही त्यागा ॥
हाहाकार भयो सभा मझारी । यज्ञ विध्वंस भयो सुन चारी ॥
हिमाचल गृह सती अवतरिया । गण दीन्ह नाम पारवती धरिया ॥
यहै चरित्र विष्णु जब देखा । शिव विवाह गुण मनमें पेखा ॥

साखी–शिव समाधि छूटै नहीं, कीन्हौं विष्णु उपाय ॥
काम भाग परपंच कर, संगहि दीन्ह छिपाय ॥

चौपाई

सर समीर लागौ जब अंगा । बाल वृद्ध व्यापौ सब संगा ॥
बार बार सब जग बस भयऊ । ऋषिमुनि व्याप्ति काम जो ठयऊ ॥
नारद ऋषि पारासर दोऊ । भये काम बस मुनिवर सोऊ ॥
तिन कुल व्यासदेव उतपानी । इनहू रति जो बरबस ठानी ॥
पारासर गए सागर तीरा । देख नारि मन धरहि न धीरा ॥
मछोदरी जा कहँ जग कहई । व्यास देवकी जननी अहई ॥
नारद ऋषि किय तहां तिमाना । राजा एक स्वयम्बर ठाना ॥
ता कुल कन्या है कुलवंती । निश्चय व्याह करो जिहि संती ॥
चल ऋषि हरिसों बिन्ती कीन्हा । ब्रह्मा पुत्र कहिं वचन अधीना ॥
हे स्वामी मोहि दीजे रूपा । करिहौं व्याह मोहि रुचि भूपा ॥
विष्णु अपन मन कीन्ह विचारा । कर परपंच ऋषि सब झारा ॥

साखी–शिव की नारि बनाऊं, सोई करब उपाय ॥
भयो काम बस नारद, बैर देव मम भाय ॥

चौपाई

नहिं जाने नारद मतिहीना । वानर कर मुख ऋषिकर दीन्हा ॥
चलो ऋषी मन भयो अनंदा । कृपा कीन्ह मोहि बालगुविन्दा ॥
अवशि जाय हम व्याहैं नारी । जहँ पुनि पहुँचे तहां कुँवारी ॥
दर्पन दीन्हों सभा मँझारी । ऋषि अपनो प्रतिबिब निहारी ॥
देखत ऋषि क्रोध तब कीन्हा । विष्णु भाव कबहू नहिं चीन्हा ॥
जब हरि बिहँसे नारद पाहीं । सती यज्ञ तुम बूझव नाहीं ॥
परबस देखत मैं तन जारा । अब मैं कीन्हा भाव तुम्हारा ॥

साखी–बूझ परचो नारद जबै, गहे विष्णु के पांय ॥
क्षमा करो अपराध प्रभु, नर कौ रूप बनाय ॥

चौपाई

कन्या हाथ लीन जयमाला । नावहु गले गहि चरण गुपाला ॥
शिव विवाह पार्वती सों कीन्हा । सती हेत तिन भल कै चीन्हा ॥
तबही रूप प्रथम कर दीन्हा । दीन्ह शाप विष्णु सुन लीन्हा ॥
अहो विष्णु तुम वैर विचारा । तुमहू वैर देव व्यवहारा ॥
वसुधा भारहि व्याकुल आही । सुत पुलस्त महा बल ताही ॥
ले अवतार मारहुगे सोई । सो पुन हर तुम्हारा जोई ॥
नारदका जस कीन्हौं अंगा । तईसन जाय करो परसंगा ॥
बरबस वैर लेव सब पाहीं । विधिना रूप बनावै ताहीं ॥
विष्णु अपन मन कीन्ह तिवाना । काके गिरह लेहुँ अवधाना ॥
पूर्व जन्म जो दशरथ राऊ । सेवा कीन्ह यहा परभाऊ ॥
माँगिन तिन फल अंतक बारा । पुत्र होहु गोपाल हमारा ॥
आये नृपति संग त्रैनारी । सेवा कीन्ही यही प्रकारी ॥

साखी—लेव अवतार अयोध्या, दैत्य बधन जो होय ॥
आज्ञा भयी आकाश तैं, करु उपाय अब सोय ॥

चौपाई

हिरनाकुश हिरण्याक्षहि मारा । ताकौ दियो मुनि गृह अवतारा ॥
मुनि पुलस्त गृह जन्मौ बारा । रावन कुंभकर्ण बरियारा ॥
जा कहँ विष्णु स्वर्ग कर राऊ । भक्ति हेतु ता कहँ जन्माऊ ॥
नाम विभीषण भक्त हरि केरा । जपै विष्णु नहि लावै बेरा ॥
नृप कश्यप दुतिया अवतारा । सो तो भयऊ अवध भुवारा ॥
तिनके गृह अवतारहि लीन्हा । अपने अंश चार तिन कीन्हा ॥
राजा के गृह जन्मौ वारा । ज्योतिष राम वर्ग उच्चारा ॥
जेष्ठ पुत्र कौशल्या सुतही । राम नाम थापो पुन तबही ॥
सुमित्रा के दोई बालक आंही । लषन शत्रुहन भाषौ ताँही ॥

दोई जन्म सुमित्रा किये सेवा । तातें हरि प्रगटे दोई भेवा ॥
कैकई सुतहि भरत जो भाखा । विप्रन दीन्ह पदारथ थाका ॥
कौशिक ऋषि आये तेहि ठाई । नृप दशरथ तब हित बहु पाई ॥
बार अनेक दण्डवत कीन्हा । नृप कहँ आशिर्वाद जो दीन्हा ॥
हे प्रभु कह आयसु जो होई । कृपा करो जिन राखौ गोई ॥
जेष्ठ पुत्र जो राम सुजाना । ताहि देव नृप हो मम माना ॥

साखी—नृप बूझौ मन आपने, दिये बनै परकाज ॥
थाती सौंपौ पुनि तुमहि, आन देखु मुनिराज ॥

चौपाई

राम लषण चले मुनिके साथा । ताडुका बांधि ब्याहब रघुनाथा ॥
चले राम लछमन मुनि संगा । देख रूप जैसे कोटि अनंगा ॥
दिक्षा मंत्र दियो ऋषि जानी । दीन्ह जाप कहि अमृत वाणी ॥
ऋषि आश्रम आये रघुराया । यज्ञ शाला मुनिवर बैठाया ॥
दीन्ह तुरंत तब निर्भय भारा । मुनिके दैत्य जो करे संबारा ॥
आये बीर महाबल भारी । लागी होन परस्पर मारी ॥
मुनिवर आज्ञा दीन्ही जबही । ताडुका दैत्य मार हरि तबही ॥
ताडुका दैत्य राम जब मारा । ऋषि मुनिवर तब कियो यज्ञ शाला

साखी—मिथिला नगरी रहत हैं, रच्यो स्वयंवर राय ॥
चलो राम सो देखिये, मुनिवर संग सहाय ॥

चौपाई

चले राम लक्ष्मण औ राऊ । मिथिला नगर अब धरिये पाऊ ॥
पाहन शिला जबै पग लागा । प्रभु प्रगटे जो खटका भागा ॥
गौतम नारि अहिल्या नाऊँ । ताको हरि पठई निज ठाऊँ ॥
समाचार मिथिलापति पाये । आदर कै मुनिवर लै आये ॥
समाधान नृपति बड़ कीन्हा । उत्तम मंदिर बैठक दीन्हा ॥

जो कोइ आय जान यज्ञ शाला । सब कहँ पोषण कीन्ह भुवाला ॥
पहुँचे अवधि सुदिन आये । राजा नगर महँ ढोल बजाये ॥
साखी-जाके बल बहु होवै, धनुष उठावै सोय ॥
सीता ब्याहों ताहिको, मिथ्या वचन न होय ॥

चौपाई

चल भइ सीता जहँ फुलवाई । देवी पूजन मातु पठाई ॥
आवत राम मार्ग जब देखा । सुफल जन्म आपुन तब लेखा ॥
अहो अंबिका आदि भवानी । सुनिये मातु तुम अन्तर्जामी ॥
मोर मनोरथ पुरबो माता । सो बर देव जो मनमें राता ॥
बिधि बिन्ती सीताकी जानी । ततक्षण भई अकाश तें वाणी ॥
अहो सीता लक्ष्मी अवतारा । निश्चय तोर राम भरतारा ॥
सुनत संदेशा भयो अनन्दा । जिमि चकोर पाये निशि चंदा ॥
देवी पूजि गई निज सीता । मनमें हर्ष बहुत पुनि कीता ॥
आई सिय जहँ सृष्टि भुवारा । उठै न धनुष सबै बल हारा ॥
रावन बालि महा बलधारी । उठै न धनुष सबै बल हारी ॥
जब नृप जनक भयौ बिसमादा । उठै न धनुष जन्म मम बादा ॥
तब रघुवर मुनिको शिर नावा । सभा मांझ तब धनुषं उठावा ॥
खैंचो राम धनुष चढ़ो जबही । महा अघोर शब्द भयो तबही ॥
साखी-मुनि गण त्याग्यो ध्यान तब, महि मंडल भुइं चाल ॥
हरष्यो राजा जनक तब, सिया दीन्ह जयमाल ॥

चौपाई

टूट्यो धनुष धूम भइ भारी । परसराम तब लाग गुहारी ॥
आवत तासु जो नृपति सकाने । बहुत नाम जो सुनत प्रमाने ॥
सभा मांझ आये परसरामा । सब मिल दंडवत कीन्ह प्रणामा ॥
भृगुकुल कह सुन मिथिला राऊ । तोरयौ धनु किन मोहि बताऊ ॥

रघुपति कहैं धनुष मैं मापा । तुम किहि काज करत है दापा ॥
देखि राम भृगुकुल किय रोषा । मारौं शीस जो करौ सरोषा ॥
बिहँसे राम लखन दोइ भाई । हे द्विज यान करौ सुरमाई ॥
जान बूझि जिन होहु अयाना । मिटै तिमिर ऊगै जब भाना ॥
द्विज कुल देखि किया परमाना । तातें तुमको भयो अभिमाना ॥

साखी–द्विज कुल धनुष जो आपनो, दीन्ह रामके हाथ ॥
मैं क्षत्री बल भञ्जन, खैंचो हो रघुनाथ ॥

चौपाई

खैंच्यो राम तासु धनु कैसा । तृणहि उठाय लेत हैं जैसा ॥
परशराम गहि ताके पाऊ । क्षमा करो कौशिल्या राऊ ॥
कर प्रणाम भृगु वनहिं सिधारे । रामचन्द्र रहे सभा मझारे ॥
ये जो आहि सो त्रिभुवन राऊ । तिन महि मंडल तेज प्रभाऊ ॥
कहैं सबै हरि को अवतारा । परशुराम औ राम भुवारा ॥
जो निज इच्छा आवत जाई । तौन गर्भ काहे दुख पाई ॥
ऐसा निरंकार परकाशा । सब तें न्यारा सब में बासा ॥
इच्छा कर जस त्रिभुवन राऊ । इच्छा आस करैं निर्माऊ ॥
बाजा लगा जीव जो राखा । ताकी भक्ति सबै मिल भाखा ॥

साखी–कोइ इक ज्ञानी पारखी, परखे खरा औ खोट ।
कहे कबीर तब बांचि हैं, रही नाम की ओट ॥

चौपाई

राम लखन के सुनो प्रभावा । मिथिलापति एक दूत पठावा ॥
नृप दशरथ बेगहि चलि आहू । राम लखन कर सुनो विवाहू ॥
नृप दशरथ बेगिही चलि आएहू । ऋषिन करायवो तहां विवाहू ॥
चारौं भाइ ब्याह तिहिं पाहीं । बहुत अनँद कीन्ह मन माहीं ॥
चारौं भाई और भुवारा । लै चलि आये अवध मझारा ॥
तहां आइ विप्रन दिय दाना । कछु दिन कियौ सुखराम सुजाना ॥

भरत गये जहँ जननी ताता । विद्या पढैं बहुत हरषाता ॥
अवध नरेश मता अस ठाना । रामहिं राज देहु मन माना ॥
सब मिलि ऐसा मत उपराजा । करब बिहान राम कहँ राजा ॥
यह चरित्र जब देख भवानी । समझी निराकार की बानी ॥

साखी–मूढ मनुष्य न बूझै, राम लीन्ह अवतार ॥
मारे दैत्य संघारे, लंका के सरदार ॥

चौपाई

सवा लक्ष जीव प्रतिदिन खाई । कौतुक राज बनावत राई ॥
अंबिका गई कैकेई पासा । हे रानी तुव पति मति नाशा ॥
रामहि काल देत हैं राजू । निश्चय ह्वै हैं तोर अकाजू ॥
जो वर दियो नृपति तोहि काहीं । सो तुम मांगो आजुहि माहीं ॥
भरतहि राज राम बनो बासा । माँगहु आज जो होइ हुलासा ॥
गयी कैकेई मांगा बर सोई । राम बिछोह प्राण नृप खोई ॥
त्यागो प्राण अवध नृप जबहीं । सरवन बैर जन्म लियो तबहीं ॥
चले राम लक्ष्मण सिय साथा । करहिं शोक धुनहीं बहु माथा ॥
रामहिं संग दूर लग जाई । फिरहु राम तुम तात दुहाई ॥
सुमंत मंत्री अस वचन सुनाये । पठये दूत तब भरत बुलाये ॥
जाइ बुलावहु भरतहि आजू । उन कहँ देहु अवध कर राजू ॥
आज्ञा भयी फिरचो सब लोगा । सब कहँ भयो राम कर शोगा ॥

साखी- भरतहि पठे संदेश पुनि, तबहि भयो रवि सांझ ॥
गये जहां तहां रघुपति, बैठ गये वनमांझ ॥

चौपाई

राम लखन बैठे सिया लाई । फिरहु भरत तुम तात दुहाई ॥
फिरहु भरत प्रभु आयसु होई । प्रजा लोक संग सब कोई ॥

राम लक्ष्मण औ सिय साथा । वन मारग लीन्है धनु हाथा ॥
बहु दिन रहै ऋषिनके ठाई । समाचार लंकापति पाई ॥
लीन संग मारीच बलवंता । हरै सिया मन हो हर्षंता ॥
मारीच ही कीन्ह मृग वेषा । नहिं छल बूझे राम नरेशा ॥
मृग को देख नृपत तब भूला । लोभ मोह को वन जो फूला ॥
प्रगटचो सांझ अन्ध भो भाना । बिगरचो मोह जो ज्ञान छिपाना ॥
राम लखन गए मृगहि शिकारा । सीतहि रावन रथ बैठारा ॥
आगे मारग रोक जटाऊ । मार गयो तिहि रावण राऊ ॥
मारीचहि राम कीन्ह जब घाता । बूझ परी नारदकी बाता ॥
सिय हर रावन मार लुटेवा । जाकी जगत करत है सेवा ॥
ढूँढहु लक्ष्मण वन गुहराई । मोह भयो जब सिया न पाई ॥
मारीचहि मार राम पछिताना । जबहि जटाउ कही सहिदाना ॥
हनूमान मिल पंथ मँझारा । रावन मारचो राम भुवारा ॥
सुन स्वामी तू त्रिभुवन नाथा । कृपा करो तुम मोरे साथा ॥
हनूमान जब कीश अनुसारा । कुशल प्रभाव पूँछ तिहि बारा ॥
बालि सुग्रीव दोइ जन भाई । बालि लीन्ह वध बंधु छुडाई ॥
जो प्रभु कीजे कपि पर दाया । मारो बालि सुनो रघुराया ॥

साखी—रामचन्द्र अस बोले, कीने बालि कुकर्म ॥
मारौं ताहि पल भीतरैं, जान कहौं अस मर्म ॥

चौपाई

आए रघुपति जहँ गए राजा । बालि मार सुग्रीव निवाजा ॥
मार बालि कहँ एकहि तीरा । बूझो सन्त गही नहिं पीरा ॥
यह तो भेद जानि है सोई । सतगुरु दया जाहि पर होई ॥
तब हनुमान लंक कियो गवना । पहुँचे जाय जहाँ रह रवना ॥
पहुँचे जाय भेट भइ सीया । दैत्य देख वह कौतुक कीया ॥

मारहिं कपि कहँ कौतुक जानी । तब हनुमान आप बल ठानी ॥
जारि नगर तब कीन्हों छारा । नगर लोग सब कहैं बिकारा ॥

साखी-आय कहौं रघुपति सौं, समाचार हनु वीर ॥
सिंधु बांधि हरि ऊतरे, दैत्य वधन रनधीर ॥

चौपाई

आए कीन्ह दैत्य संग्रामा । मारे दैत्य बहुत तब रामा ॥
कुंभकरण निद्रा सौं जागा । रघुवर सौं युद्ध करै अनुरागा ॥
कहै विभीषण सुन नृप रावन । आए राम जो असुर सतावन ॥
सिया संग लै जाहु तुरंता । क्षमा अपराध गहु पग हर्षंता ॥
मारी लात बिभीषण भाई । क्रोधित मिलो राम कहँ आई ॥
समाधान नृपति बड कीन्हौं । लंका बकसि ताहि कौ दीन्हौं ॥
कुंभकरण गहि समर अपारा । ताको हरि बहु बल सौं मारा ॥
इंद्र जीत तब लाग गुहारी । कर अश्वमेध तपस्या भारी ॥
तिन कपि रोके कपिदल जुथ्था । विभीषण भेद कहो अज गुथ्था ॥
जौलौं पूर्ण जज्ञ ना होई । मारहु राम वध करै सोई ॥
भयो प्रभात राम जब देखा । लक्ष्मण् लाग्यो बान विशेखा ॥

साखी-मार सो महाबली, मेघनाद जिहि नाम ॥
सुनत क्रोध, रावन कियो, कठिन कीन्ह संग्राम ॥

चौपाई

दैत्य महाबल शक्ति संधाना । जूझे लक्ष्मण भया निदाना ॥
तुम हनुमान लै आवहु मूरी । उत्तर दिशा देश बड़ दूरी ॥
दौनागिर पर्वत कर नाऊ । संजीवन सहित ताहि लै आऊ ॥
संजीवन बास तें लक्ष्मण जागा । हर्ष भये तब कपिकर भागा ॥
तब रघुवीर घेर गढ लंका । दैत्यनके जी उपजी शंका ॥
तब रावण गहि समर अपारी । बंधुहि व्याकुल है सब झारी ॥

रामचन्द्र रावन कहँ मारा । वार अनेक सीस भुइ पारा ॥
मारयो हृदय ताक कै जबही । रावन काल वश्य भयो तबही ॥
सीता समाधान हरि कीन्हा । ताको रूप न काहू चीन्हा ॥
सिया लीन्ह रघुवीर बुलाई । राज विभीषण दीन्ह सुहाई ॥
लै सीतहि अवधपुर आना । भरतहि कीन्ह बहुत सनमाना ॥
सीता सती रही अवधाना । गर्भ वास लौकुश उतपाना ॥

साखी—राज करै रघुवंश मणि, तब अस कीन्ह प्रमान ॥
थाप्यो कोट अयोध्यहि, सुनो मंत्र हनुमान ॥

चौपाई

जबहि राम लंका से आये । अयोध्या कोट उठावन लाये ॥
लक्ष्मण भाइ संग तब लीन्हा । सुदिन जानकै तब निव दीन्हा ॥
उठत कोट सो भय अस शोरा । है कछु द्रव्य नीच अस बोला ॥
सुन अस वचन राम रघुराई । खनहु खनहु अस आज्ञा पाई ॥
चहुँ दिश खनै जो बाजु कुदारा । तपसी एक देख तहँवारा ॥
लुहिडा माथे दै तप करई । जोग अरंभ सदा चित धरई ॥
भौंह बार मुख रहे छिपाने । बैठे महि के तले सयाने ॥
देखा ऋषिहि बहुत भय माना । शाप न देई बहुत सकाना ॥
छांड़ि समाधि निरखि जब हेरा । राम दंडवत किये चहुँ फेरा ॥

साखी—बोले वचन ऋषी तब, कोहो सो कहु मोहि ॥
रूप भाव बहु आगर, देखों नृप सम तोहि ॥

रामचंद्र वचन—चौपाई

दशरथ तनय राम मोहि नाऊ । रहौं समीप अवधपुर गाऊ ॥
ऋषि कहो भयो राम अवतारा । पूँछौ यह कह करब भुवारा ॥
हे ऋषि राज मैं कीर्ति बनाऊँ । जातैं रहे यहि जग में नाऊँ ॥
कह ऋषिराज जीवन है थोरा । छांडो कोट कहा सुन मोरा ॥

राम कह्यो ऋषि सो निज मर्मा । केते दिवस किया तपधर्मा ॥
लोमश ऋषि मोर है नाऊ । अपने जन्म को कह्यो प्रभाऊ॥
आठ पहर रात दिन होई । अहो रात कहैं सब कोई ॥
दोई पाख कर प्रहर प्रमाना । सो एक दिवस पित्रन को जाना॥
वर्ष दिवस जब उनको होई । एक दिवस देवन को सोई ॥
बारह वर्ष दिवस जब जाना । चौदह सहस्र इक मनु जो बखाना ॥
सप्त मनु जबही जाइ बिगोई । तब इक इन्द्र काल सब होई ॥
सप्त इन्द्र जब होवै नाशा । इक ब्रह्मा को होई बिनाशा ॥

साखी-सप्त ब्रह्मा जब विनशहीं, तब एक विष्णु को नाश॥
सप्त विष्णु जब बीतहीं, तब इक रुद्र बिनाश ॥

सोरा रुद्र गति जब हो जाई । तब इक रोम मम परे खसाई ॥
तातैं लोमस नाम है मोरा । करा समाध जीतबै है थोरा ॥
सुन रघुवीर अचंभित भयऊ । ऋषिको वचन प्रतीत न लयऊ॥
राम चरित्र ऋषी तब जाना । क्या सोंचौ रघुवीर सुजाना ॥
देव अंगुष्ठ भैंटहु जो मोही । तैसे अंगुष्ठ देऊँ मैं तोही ॥
यहै कमंडल मोरे साथा । काढ़ौ गिन जो आवहि हाथा ॥
क्रोधित हाथ डार भगवाना । गिनि उनचास कोट परवाना ॥
परचो पाय रघुवीर न जाना । लोमश वचन सत्त कर माना ॥
एतिक मुदरी गिनी बिशेषा । कमंडलको कहँ कहिये लेखा ॥
इतने राम रावन होय गएऊ । सुनि रघुवीर अचंभौ भएऊ ॥

साखी-जान्यो जन्महि अल्प जब, चले स्वर्ग अस्थान ॥
निराकार निरञ्जन, तासु मर्म नहिं जान ॥

चौपाई

त्याग्यो राजपाट बन्धु चारी । गये स्वर्ग नृप सैन सिधारी ॥
आप इच्छा जन्म पुन लीन्हा । कृष्ण चरित्र आगे पुन कीन्हा॥

जाहि राम को जपत संसारा। ताको तो ऐसो व्यवहारा ॥
बाजी दिखाय जीव सब राखा। मारे अन्त करे अस लाखा ॥
काह करे जिव बस परेऊ। तातैं सत्त शब्द चित धरेऊ ॥
जमराजा है अति बरबंडा। मारे ब्रह्मा विष्णु नौ खंडा ॥
काल फांस कैसे मुक्तावे। जब लग सत्तनाम नहिं पावे ॥

साखी—नाम अदल जो पावै, कहै कबीर विचार ॥
होय अटल जो निश्चय, जमराजा रहे हार बार॥

चौपाई

सुन धर्म मैं तोहि सुनाऊं। कृष्ण चरित्र को भाव बताऊं ॥

## कृष्णचरित्र

राम रूप त्रेता अवतारा। गयो बियोग सकल संसारा ॥
करे भेख बहुत विधि कैसा। लेखा मूल ब्याज है जैसा ॥
एक नार रघुपति दुख पाया। सोरा सहस्र गोपि निरमाया ॥
प्रथमहि गोपिन को निरमाया। पीछे कृष्ण देव है आया ॥
देवकी कहँ जन्म लियो जाई। दीन्ह सबै गोकुल पहुँचाई ॥
नंद के गेह आन तिन राखा। है मम पुत्र जसोधा भाखा ॥
करें नंद जसोधा महरी। पल भर कृष्ण राख न बहरी ॥
गोपी सबै विलास बनावैं। रात दिवस हरिके गुण गावैं ॥
नृप दशरथ वसुदेव अवतारा। कौशिल्या सुमित्रा देवकी वारा॥
नारद ऋषि कंसहि कह भेऊ। यह निज जन्म न जानै केऊ ॥
उपजो तुव वैरी भगवाना। नंद गेह गोकुल अस्थाना ॥
सुन नृप कीन्ह जो बहुत उपाई। मारहु ताहि कहै अस राई ॥
कागासुर इक दैत्य अपारा। बलपौरुष जिहिंके अधिकारा ॥
ताको कंस वचन अस भाखी। राम कृष्ण कर फोरहु आंखी॥
चल्यो दैत्य आयो हरि पाहीं। सखा संग जहँ बाल कन्हाहीं ॥
जान्यो कृष्ण दुष्ट यह आही। चपट कै मार्‌यो है हरि ताही॥

साखी-मारौ दैत्य महा बली, दैत्य राज भयमान ॥
भगनी तासु जो पूतना, ता कहँ दीन्हों पान ॥

चौपाई

चली पूतना कर छल भेषा । गरल लगाइ पयोधर रेखा ॥
लेकै पयोधर कृष्ण लगाई । तारी तबै सबै विष खाई ॥
एक बार ग्वालन संग गएऊ । जान बकासुर छैंकै लएऊ ॥
मारयो कृष्ण ताहि पल माहीं । नहीं दैत्य जीते कोइ जाहीं ॥
इन्द्र पूजा नहिं दीन्ह गुवारा । वर्षे इंद्र अखंडित धारा ॥
डारयो इंद्र वर्षा दिन साता । हरि गिर लीन्ह्यो ऊपरहाथा ॥
साखी-सात दिवस जब वर्षेऊ, जान्यो इंद्र भुवार ॥
क्षमा अपराध अब कीजिये, देव विनय अनुसार ॥

चौपाई

एक बार कालिन्दी तीरा । बछड़े लै गए जादौ बीरा ॥
लागी प्यास पियावहिं पानी । पीवत ही भइ सब की हानी ॥
देखत कृष्ण अचंभौ भयऊ । उरग गरल सांवल तन भयऊ ॥
पुन धँस गये तहं यदुराई । नाथ्यो नाग वारि महँ जाई ॥
साखी-यह चरित्र माधव कियो, जानत नाहिन कोय ॥
बूझेंगे कोइ बिरले, सतगुरु मिलिया सोय ॥

चौपाई

केसी नाम बंधु बड़ बीरा । तिन पुनकीन्हा असुर शरीरा ॥
तब निकंद कीन्हे जो ठाना । छलके मारयो तेहि भगवाना ॥
सुकल केश कहँ बेग पठावहु । राम कृष्ण कौं बेग लै आवहु ॥
चल अक्रूर आये हरि पाहीं । कृष्ण चरित्र बूझे पल माहीं ॥
सोरा सहस्र अबला सों नेहा । बूझ न परै जीव दोइ देहा ॥
साखी-बहु क्रीडा हरि कीन्हीं, जानत नाहिं न कोय ॥
अजिया पुत्रहि पालिये, आप स्वारथी होय ॥

चौपाई

मारत तासु बार नहिं लावा । ऐसा देखो हरी स्वभावा ॥
रावन कुंभकरन जा मारा । ताकोजन्म शिशुपाल अवतारा॥
चलत कृष्ण गोपिन किए शोगा। संग भले तब जादों लोगा ॥
मारन कौं हरि मता जो ठाना । मथुरासे हरि कीन्ह पयाना ॥
मुष्ट चार और दोइ खँडावा । सब असुरनहिं कंस गुहरावा ॥
रंग भूमि नृप कंस बनावा । काल रंग भूमी ही आवा ॥
चल भए कृष्ण जहां कहँ तबही। कुबरीको सन्मान कियो जबही॥
पूर्व जन्म तिन सेवा कीन्हा । भक्ति हेतु ताको रति दीन्हा ॥

साखी-कुबरीको सन्मान कर, चल भयो राज द्वार ॥
हस्ती कौं बल महाबल, तिनको पहिले मार ॥

चौपाई

मारत तासु वीर जो धाये । मुष्ट चार अरु दोइ खंडाये ॥
मुये नृप पुन तब खस परेऊ । कालिन्दी तट आन जराएऊ॥
उग्रसेन कीन्हों सन्माना । गये हरि मात पिता अस्थाना ॥
पूर्व जन्म सेवा तिन कीन्हा । भक्ति हेतु मैं दर्शन दीन्हा ॥
जरासन्ध नृप लाग गुहारी । सत्रह बार तिन कीन्हीं मारी ॥
तैंतिस क्षोहणि दल तिन जीता । जमन केर सम्हर पर बीता ॥
नृप मुचकुंदहि तब पुनि मारा । ताकौ हरि पुनि बैर विचारा ॥

साखी-यह चरित्र कहु कैसौ, जमन को आनि मराव ॥
जीव कौ बदला जीव है, अदल अंश कर न्याव॥

चौपाई

कंस मार हरि गोकुल गएऊ । गोपिन समाधान हरि किएऊ॥
सब मिलि कीन्हों मंगलचारा । तब हरि ऐसौ वचन उचारा ॥
दुरवासा ऋषि तप बड़ कीन्हा । इच्छा भोजन माँगहि लीन्हा ॥

जाय सबै लै जमुनहि पारा । लै चलि भोजन भर भर थारा ॥
जमुना बहु विधि आप गुसाई । तब हरि ऐसा वचन सुनाई ॥
कहो जाइ कालिन्दी तीरा । कृष्ण छुवा नहिं मोर शरीरा ॥
होई है थाह जाइ हो पारा । चल भो गोपी लाग न बारा ॥
साखी-कृष्ण सन्देशा कहिके, सबै भई तब पार ॥
जाइ कराइन भोजन, तब विन्ती अनुसार ॥

चौपाई

तब गोपिन अस बचन सुनावा । हे प्रभु पार जाहिं किहिं भावा ॥
कालिन्दी से कहि सब मादा । ऋषि नहिं खाइब मोर प्रसादा ॥
कहत सन्देशा सब भई पारा । अचरज भयो मन माहिं बिचारा ॥
ठगई लगा तीनों पुर माहीं । कृष्ण कहाये अचरज नाहीं ॥
चौथे लोक बसै परधाना । ताहि खबर कहु विरलन जाना ॥
तपके तेज कहा बड़ भएऊ । तीन लोक जो अचरज ठएऊ ॥
एकबार शिशुपाल भुवारा । कृष्ण से कीन्ह जो समर अपारा ॥
मारयो तबै दैत्य बल बीरा । निकसे प्राण जो छांड़ शरीरा ॥
सब के देखत कृष्ण जो खावा । तेहु न बूझे काल स्वभावा ॥
सब के देखत ग्रास जो कीन्हा । तासों कहे मुक्ति हरि दीन्हा ॥
साखी-काल सबन को ग्रास्यो, वचन कह्यो समुझाय ॥
कहैं कबीर मैं का करो, देख नहीं पतिआय ॥

चौपाई

बूझो संतो काल की हानी । हरि को भाव भले मैं जानी ॥
कृष्ण के भयो जो प्रदुमन बारा । ताकुल अनिरुध लीन्ह अवतारा ॥
सुन प्रवीन बानासुर राऊ । शिव सेवही महाबल पाऊ ॥
ता नृप के दुहिता एक भयऊ । ऊखा नाम तासु सो ठयऊ ॥
रूप आगर किमि करों बखाना । ताहि देख कर काम लजाना ॥
उन्मद यौवन भयो पुन जबही । काम बान सर लागेउ तबही ॥

साखी-तासु दूत गए द्वारिका, अनिरुध अंश भुवार ॥
दोऊ उपजो मर्म अब, जस हंसनकी ज्वार ॥

चौपाई

दिवस आठ दस बीते जबही। अनिरुध कुँवर प्रगट भयो तबही॥
बानासुर ने क्रोध दल साजा। अगणित बाज सम्हर कौ बाजा॥
युद्ध करें दैत्य तहँ जाई। अनिरुध सब कहँ मार हटाई॥
छै प्रकार जीतो उन जबही। सातई बार भर्म भयो तबही॥
दैत्य मार गहि समर अपारा। बांध चपल कै कृष्ण कुँवारा॥
कोई कहै मारो विषको मूला। शत्रु राखके नृपकस भूला॥
मंत्री कहई सुना भुवारा। शिव की आज्ञा मैं यह मारा॥
नारद ऋषि तबही सुधि पाई। कृष्णहि बात जनावहु जाई॥
चल भयो कृष्ण जो क्रोध अपारा। दैत्य जहां तहँवा पगु धारा॥

साखी-गरुड़ चढ़े तब कृष्ण सो, पुरही पहुँचे आय॥
जाही नग्र अग्नि दियो, दैत्य राज तिहि ठायँ॥

चौपाई

आय दैत्य करै संग्रामा। हरि भेटें तेहि यम उन ग्रामा॥
मारो हलधर अगिनित वीरा। बानासुर देख परे तेहि भीरा॥
मोरा कृष्ण मता सुन आजू। अटल दियो महि शंकर राजू॥
बहु विधि युद्ध दैत्य तब कीन्हा। कृष्ण चपल तेहि बांधहि लीन्हा॥
बांध्यो नृप शंकर सुधि पाई। क्रोधित आइ तब कृष्ण लराई॥
दोनों वीर महा बल धारी। लागी होन परस्पर मारी॥
दोनों मंत्र पुनि दीन अडाई। तारी मार मार पुन धाई॥
दोइ जुरे पुन मल्ल समाना। कौतुक आइ निरंजन जाना॥
दोउके समर पावक उठि जबही। आदि भवानी चलभइ तबही॥
दोनों सुत कहँ जब बिलगावा। बादल पवनके जैसे स्वभावा॥

साखी-दोई सुत तब बरजी, आदि भवानी आय ॥
बर ऊषा अनिरुद्धको, शंकर दीन्ह मिलाय ॥

चौपाई

चले कृष्ण और सुत भामिनि । तासु अंग चमकै जिमि दामिनि॥
कृष्ण द्वारिका पहुँचे जाई । सो वृत्तान्त कहौं समुझाई ॥
जोपै हर हरिको व्रत धरई । प्रभु सेवक कहु काहे लरई ॥
प्रभु सेवक कहु कैसे लड़ाई । सो गति मोहि कहौ समुझाई ॥
हरि हर युद्ध सबै कोइ जाना । सहस नाम किमि करबबखाना॥
यमराजा जु ठगौरी लायी । ज्ञान देख कर चेतो भायी ॥
बूझौ सब मिलि पाखंड धरमा। मैं जानौं भल कालही मरमा ॥
अदेख देख सब कहि समुझाई । ताको विरला जन पति आई ॥

साखी-शङ्कर कियो युद्ध हरिसों, तब कहु कैसो दास ॥
पंडित जन सब थापहीं, सहस्र नाम विश्वास ॥

चौपाई

चारौं वेद को मूल बताऊँ । सहस्र नाम को सार बुझाऊँ ॥
काशीमें विश्वास जनावई । विश्वनाथके मंदिर धावई ॥
विश्वनाथको भेद बतावहु । सार ग्रन्थ मोही समझावहु ॥
सबै ग्रन्थ करि आगिल कीन्हा । भक्ति तत्त्व सबै मिलि चीन्हा॥
सब पर सहस्र नाम परवाना । जहँ लग शास्त्र रु वेद पुराना ॥
तेहि जानै जेते सब कोई । बूझै मरम जु विरला कोई ॥
बूझौ पंडित भेद बताई । प्रभु सेवक कहु कैसे लराई ॥
यह सब बन्ध बहुत मैं भाखी । ते यमराजा सब ठग राखी ॥
ज्यों नारी पिय को व्रत तजई । दूजे जु प्रेम प्रीति सों भजई ॥
तैसो देखो यह संसारा । नाम बिना किमि उतरे पारा॥

साखी-भूल परी सब दुनियां, पाखंडके व्यवहार ॥
मूल छांड़ि डारै गहै, कैसे उतरै पार ॥

चौपाई

तब हरि कीन्हे चरित अपारा । सो अब भाखौं अगिल व्यवहारा ॥
पांडव पांच सेवा बहु करई । तिन सों कृष्ण हेतु बहु धरई ॥
मारन तासु को मतौ बिचारा । पांडव कौरव नृप दोइ मारा ॥
दोनोंमें छल कियो भगवाना । ताको मर्म काहु नहिं जाना ॥
बंधु विरोध वैर उपजाई । प्रतिदिन समर करें तहँ आई ॥
राजा द्रुपद स्वयम्बर ठाना । तहँ पारथ राहू संधाना ॥
दुर्योधन अस कीन्ह उपाई । कन्या मारि लेव पांचों भाई ॥
कृष्ण ताहि छल मत उपजावा । तातें ताहि पांच पति भावा ॥
तेहि मारन हरि मतौ बिचारा । गीता कह अध्याय अठारा ॥
कौरव आइ जो करहि लड़ाई । ताहि कृष्ण छलसे मरवाई ॥
मारचो करण गंगसुत द्रोना । सबको मारि कियो दल सूना ॥
मारचो दुर्योधन जो राई । अठारह क्षोहणी मार गिराई ॥

साखी-पांचों पांडव बचि रहे, औ जूझे सब झार ॥
धरमराय अस कीन्हा, कृष्ण परी हंकार ॥

चौपाई

चल भये कृष्ण स्वर्ग अस्थाना । शून्यआदि जहँ शशि नहिं भाना ॥
पुर वैकुंठ ते आगे गयेऊ । तहां जाइके स्तुति कियेऊ ॥
अलख निरंजन अंतर्यामी । सब तें न्यारे हौ तुम स्वामी ॥
सबमें व्याप्त निरंजन राया । पांचो तत्त्व शून्य उपजाया ॥
तुमही ब्रह्मा विष्णु महेशा । आदि अंत तुम देव गणेशा ॥
अहो कृपालु कृपानिधि स्वामी । करहु दया तुम अंतरयामी ॥
ततक्षण भई अकाशतें वाणी । अहो कृष्ण सबको उतपानी ॥
अब जो कहैं करो सो जानी । सोई वचन लेव सिर मानी ॥
तुम भेजा महि भार उतारहु । असुरनको विध्वंसके मारहु ॥

साखी–मारहु जादव वंश कहँ, मानो वचन रसाल ।
गोपी जाय संहारो, तेहि पाछे तुव काल

कृष्ण वचन–चौपाई

कृष्ण कहै सुनु पुरुष पुराना । काल अभै कहां मोर ठिकाना॥

निरंजन वचन

तैं मम अंश मोहिमें बासा । काल रूप संसार निवासा ॥
पातक जीव जो रहैं महाबल ।मारहु तिनिही तुम अतिबल छल॥
उपजत विनसत क्षीन भइ देहा । कलियुग आवै क्षीण सनेहा ॥
क्षीण शरीर अवधि भइ थोरा । पूजी अवधि आई कै तोरा ॥
जस कछु कहो किया सो चहिहौ। जाको दिया राज महि करिहौ॥
छाड़ो महि मंडलको भाऊ । जगन्नाथ में कष्ट बनाऊ ॥
तजो कृष्ण अब बेग शरीरू । आये अत्र अब दास कबीरू ॥

कृष्ण वचन

साखी–सुन कियो कृष्ण अचंभो, कैसो दास कबीर ॥
सो मोहि स्वामी कहब सब, तब मैं तजों शरीर ॥

निरंजन वचन–चौपाई

कली अनेक राज है मोरा । कलियुग नरहि अवधि है थोरा॥
पांडव नंदन यज्ञ जो ठानहि ।ऋषिगण सबही निवतजु आवहि॥
यज्ञ पूर्ण नहिं ताकर होई । नाम प्रभाव कहै नहिं कोई ॥
कलि उत्पन्न मनुष्य शरीरू । जा कहँ सुनियो दास कबीरू॥
तिनके शिष्य सुपच जो होई । पूरण यज्ञकर ततक्षण सोई ॥
या सहिदानी तोहि बताऊँ । तोहि सेती महि मंडल छाऊँ ॥
बालिही राम रूप तुम मारा । ताकर होई व्याध औतारा ॥
ताकर बैर देहुँ तुम जाई । फेर जीव कछु संशय नाई ॥
सुनिकै कृष्ण चले सिरनाई । नगर द्वारिका पहुँचे आई ॥

पांडव निवते यज्ञ पठाये । चलिये स्वामी बेग बुलाये ॥
मारन बंधु या क्रिया लागा । तातें यज्ञ रची है रागा ॥
चल भये कृष्ण बार नहिं लाये । पुर पांडव के आश्रम आये ॥
आवत समाधान नृप कीन्हा । छत्र तानि सिंहासन दीन्हा ॥
आवत कृष्णसभा सिर नावा । भोजन को तब आज्ञा पावा ॥

साखी–बैठे गन्धरव देव गण, ऋषि मुनिवर सब झार ॥
सब मिलि कीन्हा भोजन, इच्छा के अनुसार ॥

चौपाई

भोजन भये घंट नहिं बाजा । राय युधिष्ठिर को भयी लाजा ॥
अहो कृष्ण का करौं उपाई । सो मोहि स्वामी कहिये समुझाई ॥
जबहि कृष्ण अस भाव बताया । सुनहू मंत्र युधिष्ठिर राया ॥
खोजहु भक्त जो निर्गुण गावयी । सतगुण महिमा सदा बतावयी ॥
आनब ताहि यज्ञ निवताई । दीन भाव कर ताहि लिवाई ॥
कृष्ण वचन सुनि युधिष्ठिर राया । भगत बुलावन दूत पठाया ॥
सुनिके दूत चले चहुँ देशा । नहिं कोइ भक्तन भेटें वेशा ॥
चले भीम तब लागि न वारा । चहुँ दिश फिर काशी पगुधारा ॥
बैठे सुपच ताहि सों कहई । निर्गुन भक्त यहां कोइ रहई ॥
कहै सुपच निर्गुन को जानों । सतगुरु महिमा सदा बखानों ॥

साखी–कहै भीम सुन हरिजन, कृपा करौ मम संग ॥
चलो जहां हरि बैठे, स्वामी बाल गुविन्द ॥

चौपाई

कहै सुपच प्रभु कैसे कहऊ । कालहि जान कृष्ण परिहरऊ ॥
सुनतहि भीम कोप तब कीन्हा । यामैं कहा भक्त वर चीन्हा ॥
यहि मारो तो राख रिसाई । कह्यो मंत्र राजा पर जाई ॥
तीन लोक के जे प्रभुराई । तिनको भाखै काल कसाई ॥

कृष्णहि कहै काल की फांसी । कीन्ही आय भक्त की हांसी ॥
मारचो नहिं पर तुव भय माना । यह सुनकर बिहिसे भगवाना ॥

साखी-जाव युधिष्ठिर वेग दै, तुम आनो गहि पांय ॥
आज्ञा मानि चले तब, आये युधिष्ठिर राय ॥

चौपाई

अहो संत तजिये अपराधा । अधम उधारन सुनियत साधा ॥
चलो स्वामी मेरे गृह आजू । कृपा करौ मम होवै काजू ॥
कहैं सुपच सुन पांडव राऊ । तोर का काज होय वहि ठाऊ ॥
तुम्हरे गये होय मम काजा । परमारथ तुम को बड़ साजा ॥
चल परमारथ कारण संता । सभा माहिं बैठे हरषंता ॥
आवत स्वपच कृष्ण जब जाना । होय काज पूरण सनमाना ॥
राय युधिष्ठिर पखारे पांऊ । भोजन सादर आन जिवाऊं ॥
भोजन करके सुपच भयो ठाढा । बाज्यो घंट शब्द भयो गाढा ॥
बाज्यो घंट यज्ञ भयो पूरा । कौतुक देखि ऋषीगण भूला ॥
पूरण यज्ञ विष्णु जब जाना । तबही कीन्ह द्वारिका पयाना ॥

साखी-बूझो रे नर परानी, क्या सुपचै अधिकार ॥
गण गन्धर्व मुनि देव ऋषि, सब मिलि कीन्ह अहार ॥

चौपाई

सब के खाये घंट नहिं बाजा । धर्म की देह युधिष्ठिर राजा ॥
सो सब रहे पूर्ण यज्ञ नाहीं । नामहि महिमा जानत नाहीं ॥
सुपच जान भल नाम प्रभाऊ । तातें पूरण यज्ञ कराऊ ॥
कृष्ण शक्ति में मुनि ऋषि झूला । जान बूझिकै पंडित भूला ॥
बूझौ सन्तो नाम हमारा । नाम विना किमि उतरौ पारा ॥
कृष्ण पारथ ही वेग बुलावा । तेहि पुनि निज मतौ सुनावा ॥
गोपी लैकै जाऊँ मैं जहँवा । पुर वैकुंठ सुमेर है तहँवा ॥

मथुरा तैं तुम वेग लै आवहु । जाहु तुरन्त गहर जनि लावहु ॥
चल भयो पार्थ हाथ धनु तीरा । गोपी लैन कोटिन यदुबीरा ॥
आपस में जो करे लड़ाई । इक मारे एक मरजाई ॥
छप्पन कोटि जो सबै सिरानो । सो नट षट कृष्णहि के जानो ॥
अष्ट कन्या लखी चित्रसारी । तिनकहँ कृष्ण जो यहि विधि मारी ॥

साखी–मारिन सब जेती हती, कृष्ण काल बरि यान ॥
तब अपने मन में गुनौ, क़रो उदधि अस्थान ॥

चौपाई

वधिक देव घात संधाना । बालि बैरको भाव जो जाना ॥
जम सब प्रान घेर लै गयेऊ । मार्यो कृष्ण मूर्च्छित भयेऊ ॥
निरंकार निरंजन राऊ । आपहि मारि जो ताहि नसाऊ ॥
बालि का बैर ब्याधा जब लीन्हा । यह तो भेद न काहू चीन्हा ॥
तीन लोक के कृष्ण भुवारा । रहै न बैर जीव व्यवहारा ॥
जो जीव आप स्वारथहि मारा । सोजीव अपनौ किमि निस्तारा ॥
तबहि कृष्ण अस मता विचारा । तत्त्व मता अस रूप संहारा ॥
जादव रूप कृष्ण सब मारे । पारथ बान रहे सब हारे ॥
गोपी रही जो प्राणहि प्यारी । तिनको कृष्ण येहि बिधि मारी ॥
आये कृष्ण पहँ अर्जुन बीरा । लाज न छांड़े अत्र शरीरा ॥

साखी–कहैं कृष्ण सुन अर्जुन, छाड़ो यहि संसार ॥
हम तो जात हैं स्वर्ग को, इत परपंच अपार ॥

गये पारथ जहँ चारौं भाई । चलौ वही जहँ यादो राई ॥
कहै सन्देश सुनौ हो राऊ । यहवाँ मोर दरश नहिं पाऊ ॥
मृत मंडल नहि मेटव मोही । छाड़ौ महि बोलों अस तोही ॥
छाड़ौ राज पाट सब भाई । पुत्र राज देऊ सब जाई ॥

चारेउ पांडव काल बश भयेऊ । राय युधिष्ठिर सदेह तब गयेऊ ॥
ता कहँ बड़ शासन जो कीन्हा । नाम विना देखो अस चीन्हा ॥
देखत कृष्ण अपन तन त्यागा । चिता तासु की रचन जो लागा ॥
चन्दन काष्ठ तासु तन जारा । चल भयो काष्ठ समुद्र मझारा ॥
इंद्र देवन हरि सपना दयेऊ । तिन पुनि काष्ठ आन धरि लयेऊ ॥
मूंद्यायो द्वार काहु नहिं जाना । ठक २ उठे दिन रात प्रवीना ॥
शिशुपाल भुजा चार रहो जाही । मारयो कृष्ण जो भक्ष्यो ताही ॥

साखी—सबै अंग सम्पूर्ण हैं, जगन्नाथ को भाव ॥
शिशुपाल की भुजा उखारी, ताको बैर दिवाव ॥

चौपाई

दोइ भुजा काष्ठ जेहि उरेहा । बैर न छूटे सो गहि देहा ॥
जो काइ जीव जोर कर मारा । तासु जन्म किमि हो निस्तारा ॥
राम कृष्ण तैं को बड़ आही । बैर घात तासों न रहाही ॥
कृषी करै किसान जस भाऊ । ऐसी दसों जनम निर्माऊ ॥
दसों जनम ऐसे ही बीते । तासों कहै कि मुक्ति करीते ॥
बूझो नहि चरित्र भगवाना । तीन जुग गये काल नियराना ॥
है बड़ ठाकुर ज्योति स्वरूपा । तिन सब रच्यो मही औ भूपा ॥
आप स्वार्थी तिनहू मारे । ज्यौं नकटी विश्वासहि वारे ॥

साखी—जिस सिरदार मही को, करै चरित्र भुवार ॥
जहँ तहँ शील पटावै, मल्ल बली तब धार ॥

चौपाई

कलियुग अन्त मलेच्छ व्यवहारा । तब हरि निष्कलंक अवतारा ॥
मारहिं मलेच्छ सबै पुर कैसे । पावक मध्य तृण है जैसे ॥
पावक रूपनि कलंक अवतारा । तृण समान मलेच्छ संहारा ॥
बहुर कलंकी ज्योति समाई । कौतुक करै निरंजन राई ॥
ऐसे दसों जन्म निर्मांये । निरंकार पुनि ताहि सताये ॥

धर्मदास वचन

धर्मदास कहैं सुनौं गुसाईं । दसों जन्म कहि मोहि सुनाईं ॥
कलप अनेक निरंजन राजा । आगे कैसा करि है साजा ॥
सो सब स्वामी मोहि जनाओ । उत्पति प्रलय भाव बताओ ॥
उत्पति प्रलय सुनौं तुम पाही । कहौ सबै जो संशय जाही ॥

साहिब कबीर वचन

चारौं युग हैं रहट स्वभाऊ । सो अब तोहि कहौं समुझाऊँ ॥
चारौं युग अंत जब होई । वर्षै अग्नि निरंजन सोई ॥
पृथ्वी जार करै सब पानी । रहै स्वर्ग सो कहौ निशानी ॥
रहै जो देव तैंतीस करोरी । रहै जब तपसी तपकी जोरी ॥
चन्द्र सूर्य तारागण झारी । जबही देह तजै मुख चारी ॥
विष्णु बीतही दस अवतारा । नहिं शिव बीत योग जो धारा ॥
यहि विधि बहत्तर चौकड़ी जाई । सेवा फल पावै अन्याई ॥
उत्पति करै पुन प्रथम स्वभाऊ । ऐसे भवसागर निर्माऊ ॥

छंद-महा प्रलय जब किया निरंजन अग्नि सेवत ना रहो ।
लोमस ऋषि तब होय अंतहि शशि भानु पानी सब गयो ॥
तीन गुन पांच तत्त्व बीते दस चार सुत आकाश हो ।
महा देवी आदि कन्या ताही करै वह गरास हो ॥

सोरठा-सब भक्षै निरंजन राय, आदि अंत ना कछु रहै ।
शिव कन्यानाम बिहाय, सब जी राखै आपमें ॥

चौपाई

सतगुरु दया जाहि पर होई । नाम प्रताप बाचै जन सोई ॥
निज घर हंसा करहि पयाना । और सकल जीव तहां समाना ॥
जाई रहैं जहां धर्महि द्वीपा । प्रथम करी जो लोक समीपा ॥
उत्पति कारण सेवा करहीं । पुनि यहि भांति सृष्टि अनुसरहीं ॥

भक्त अभक्त सबै पुनि खाई। सबको भक्षै निरंजन राई ॥
सो पुनि महिमा वेद बखाने। वेद पढे पर भेद ना जाने ॥

छंद-जेहि को भरोसा सोई चुरावै कहो तब कैसी बने।
सेवा करैं जेहि पुरुषकी सो भक्षण प्रति दिन करै ॥
जानी कै बूझै नहिं केतो कहो समुझाय हो।
आदि अंत सबै ग्रसै अस निरंजन राय हो ॥

सोरठा-काल सबनको खाय, हरि हर ब्रह्मासे सबै।
बाचै कौन उपाय, एक नाम जाने बिना ॥

धर्मदासवचन-चौपाई

धर्मदास टेके गहि पाऊ। हे स्वामी मोहि भेद बताऊ ॥
कैसे आयो यहि संसारा। सो कहिये मोसों व्यवहारा ॥

साहब कबीर वचन

सत्य युगमें कबीर साहबका पृथ्वी पर प्रगट होना

सुन धर्मनि मै तोहि बताउं। लोक छोड़ि मै इहँवां आउं ॥
सतयुग सत सुकृत मम नाउं। सोई सबै तोहि समझाउं ॥
हंस उबारन आयेउ जबही। मथुरा नगरहि पहुँचे तबही ॥
गुरुमठ मांझ जो आसन कीन्हा। रह्या अंत मोहि काहु न चीन्हा ॥
कहौं भक्ति बहु भाति दृढाई। बिन अंकूर न जीव जगाई ॥
बिबसी नाम रहै इक नारी[1]। ज्ञानवंत औ वरण कुँमारी ॥
तासों कहो भक्ति परमाना। बिबसी सुनै अचंभौ माना ॥

बिबसी वचन

साखी-अचरज कही तुम स्वामी, लोक वर्ण उजियार ॥
पहिले लोक दिखाओ, पीछे हो इतबार[2] ॥

---

१ रानी-ऐसा भी पाठ है। २-विश्वास

चौपाई

तब हम मता अस कीन्हा । ताके शीश हाथ जो दीन्हा ॥
परसत शीश ताकर भय भागा । शून्य मंदिरमें मुहरा जागा ॥
देखत सुरति निरति सौ लोका । बिबसीका मेटचो सब धोखा ॥
हे स्वामी अब कीजे दाया । यमके घरसे जीव मुक्ताया ॥
बार अनेक विनय तिन कीन्हा । तब हम नाम लखाई दीन्हा ॥
भक्ति भावसों करै अनंदा । ज्यों चकोर पाये निशि चन्दा ॥
ताके गृह निंदक सब रहई । बिबसी देखत ही पर हरई ॥

साखी–जाके पाछे हंस जो उबरे, तिनहिको जो बताव ॥
हंस ग्यारह आयऊ, गुरुसे कीन्ह भिटाब ॥

चौपाई

तिन कह सत्त शब्द जो दीन्हा । परम पुरुषके दर्शन कीन्हा ॥
तब उठि गयो पुरुषके ठाऊँ । सतयुग सत सुकृत मम नाऊँ ॥
आवत जात लखे नहिं कोई । आज्ञा पुरुषकी जापर होई ॥

त्रेतायुगमें कबीर साहबका प्राकटच

चौपाई

त्रेतायुग आयो पुनि जबही । युग अनुमान चलो मैं तबही ॥
नाम मुनींद्र धरो निःशंका । प्रथम जाय देखेउ गढ़लंका ॥
द्वारपाल सों कहि समुझाई । राजाको ले आव बुलाई ॥
सुन प्रतिहार कह अस वानी । रावन मरम सिद्ध नहिं जानी ॥
महा गर्व कछु गिनै न आनो । शिवकेबल कछु शंक न मानो ॥
मारहि मोहि कहौं जो जाई । गर्व प्रहारी है रावन राई ॥

मुनींद्रवचन

जाहु तुरत कहा सुन मोरा । बार बंक नहिं होवहिं तोरा ॥
प्रतीहार जब बात सुनाई । सिद्ध एक है ठाढ़ गुसाई ॥
सुनिनृपक्रोधअनलसमकीन्हा । प्रतीहार तुम मति अति हीना ॥
भिक्षुक एक जो मोहिं बुलावै । शिव सुत मार दरशनहिं पावै ॥

साखी-कहा रूप तेहि ऋषीकर, मोहि कहो समझाय ॥
जो मांगे सो देव वहि, लेइ बहुर घर जाय ॥

चौपाई

हे प्रभु आहि सेत जो भाऊ । सेत अंग जैसे शशि राऊ ॥
माला तिलक बदन है सेता । कहै नृपति कोई आहि अजेता ॥
मन्दोदरि कहै सुनो हो राजा । ऐसा रूप और नहिं छाजा ॥
सेत रूप महिमा मैं जानौं । निश्चय है कोई पुरुष पुरानो ॥
जाई तुरन्त गहो तुम पाऊ । होऊ अकल सुन रावन राऊ ॥
दस सिर बचन सुनत पर जरेऊ । जगत हुताशन जनु घृत परेऊ ॥
चलि भयो असुर अनिल समचीन्हा। बहुत वेग मनमें अस कीन्हा॥
सत्तरवार खड्ग सो चलावा । तब हम ओट तृणकी लावा ॥

साखी-तृण ओट जेहि कारणे, गर्व परिहरो राव ॥
तृण जबही ना टूटचो, राजहि शोक जनाव ॥

चौपाई

कह मन्दोदरि गहि मम पाऊ । गर्व न छाड़ रावन राऊ ॥
शिवकी सेव करै मन मानी । अटल राज दीन्हा तिन ठानी ॥
तब चलत हम कही अस बाणी । मूढ़ नृपति तुम मर्म न जानी ॥
सुनु रावण जो लंक मझारा । सब कहँ रामचन्द्र जो मारा ॥
काहू मुक्ति गम्य नहिं पाई । तातें मै कछु कहों बुझाई ॥
तो कहँ भक्षहि काल अन्याई । काचा मास स्वान जिमि खाई॥
काल भक्ष जिव सबहि निदाना । अधिक तोर कछु मरदै माना ॥
अगिला जन्म तोर होइ जबही । भक्षी कृष्ण देख पुन तबही ॥
उनसै करिहौ बहु अभिमाना । ताकर तोहि कहा परवाना ॥
तृण नहिं टूटो बल तुम बूझा । आगै कहा तोह बल सूझा ॥
वालि नाम इक कपि जो होई । रख छह मास तोहि कहँ गोई ॥
तिनकी कांख रहिहो छै मासा । ऐसा कहँ पग कीन्ह प्रकाशा ॥

साखी-रावणको अपमान करि, अवध नगर चलि आय।
दशा सन्त की जान कै, मधुकर पकरै पाय ॥

प्रसंग-चौपाई

नमस्कार कर गहि लिये पाऊं। बाल गोपाल चरण तर नाऊं ॥
ताकी प्रीति नीक मैं जाना। तासों लोक संदेश बखाना ॥
तिन कीन्ही विन्ती बहुवानी। हे प्रभु देखों लोक सहिदानी ॥
लैकर चले पंथ तेहि जहँवा। पांजी एक रहे धर्म तहँवा ॥
देखि ताहि दौरे यम दूता। कहां ले चले विप्रको पूता ॥
कहँ मुनींद्र सुनो यमराई। इनको जिन रोकौ तुम आई ॥
जाकर दूत जाव तेहि पासा। पाछे करो बैर की आशा ॥
ब्रह्मा विष्णु शिव आज्ञा देही। तीन लोक महँ जिव गहि लेही ॥
साखी-छोड़ देव यह मारग, तुम अब आहू कौन ॥
यहां कोई नहिं आवै, तुम कह करत हो गौन ॥

चौपाई

तव मुनींद्र अस बोले लीन्हा। होहु दूत तुम सब बलहीना ॥
शब्द प्रमाण न होई बल थोड़ा। दूतन जीत गये महि ओरा ॥
तिनको दिव्य दृष्टि कर दीन्हा। तहँवा जाय लोक तिन चीन्हा ॥
देखि स्वरूप सुरंग अपारा। झलके जोत जहां उजियारा ॥
देखत मधुकर बहुत प्रतीती। हे स्वामी तुम यम कहँ जीती ॥
मो कहँ दीजै शब्द दृढाई। जेहिते हम परम पद पाई ॥
अति आधीन देखा मैं जबहीं। नाम दृढाय दियो तेहि तबहीं ॥
अति आधीन जो बोल स्वभाऊ। मोरे गृह अब धारो पाऊ ॥
ताके गृह आयो मैं जबहीं। सोरा जीव शरण भये तबहीं ॥
साखी-मधुकर जेते जीव सब, लोकहिं कीन्ह पयान ॥
तातैं नाम मुनींद्र कहि, जीव सत्त दियो दान ॥

चौपाई

तब हम गये आप सुख सागर । अभय पक्ष जहँ नाम उजागर ॥
विन्ती दंडवत कीन्ह अनेका । पुहुप द्वीप द्वीपन को थेगा ॥
क्रीडा विनोद होत बहु भावा । द्वापर युग धर्म न नियराया ॥

द्वापरमें कबीर साहिबका प्राकट्य

आज्ञा पुरुष दीन्ह मोहिं सारा । ताते बहुरि नाम उर धारा ॥
करुणा मय मम नाम प्रकासा । बहु जीवन कहँ छुड़ायो फांसा ॥
आयो जहँ चन्दबिज बड़राऊ । गढ़ गिरनार नगर तेहि ठाऊ ॥
ताकी नारि रहे व्रतधारी । पूजे साधु कुल लाज विसारी ॥
तिन पुनि सुधि सो हमारी पाई । लैगयी बहु विधि तुरत लिवाई ॥
आई चेरि बिन्ती कीन्हा । तुव दर्शन रानी चित दीन्हा ॥
मैं नहिं राजा रावकर जाऊं । उठ रानी आपहि चलि आऊ ॥
नमस्कार कै कहि अस बानी । मोरे गृह पगु धारौ ज्ञानी ॥
ताकी प्रीति नीक मैं जाना । राजा गृह तब कीन्ह पयाना ॥
रानी कह उपदेश जो दीन्हा । राजा कर कछु शंक न कीन्हा ॥

साखी-एक दिवस जो रानी, बूझा मता अपार ॥
कहा मता तुम ज्ञानी, सो कछु कहो विचार ॥

रानी इन्दुमतीका कबीर साहबसे ज्ञान चर्चा करना-चौपाई

तासो कह्यो सुनौ हो रानी । अधरहिं रहों नाम मम ज्ञानी ॥
जो कोइ माने कहा हमारा । ताको पठऊं जम सों न्यारा ॥
कहे रानी मोहि कीजे दाया । जातें नहिं हते यमराया ॥
बहुत भांति तत्त्व जो चीन्हा । बहु विधि विन्ती मुक्ति अधीना ॥

कृष्ण-विष्णु-व्यवहार

सोवत कृष्ण स्वप्न इक देखा । बहु वैकुंठ सेत जनु रेखा ॥
उग्यो बादल सेतहिं फूला । सपना देख कृष्ण मन भूला ॥

अहो ब्रह्मा मैं सपना देखा । बादल उमंग पहुप की रेखा ॥
सोवत देखा पुरमें अपना । ब्रह्मा वेद देख कहु सपना ॥
रास वर्ग गनि मोहि बताओ । जेहि ते जीवका भर्म मिटाओ॥
तब पुनि ब्रह्मा वेद विचारा । पुनि भाष्यो ताकर उपचारा॥
सुनो विष्णु समझाऊं तोही । यही आज्ञा भयी सो मोही ॥

साखी–है कोई ज्ञानी जीव बड़ा, तेहि कारण प्रभु आव ॥
दूत ताहि नहिं पावई, सत्त पुरुष सुन नाव ॥

चौपाई

सुनिके विष्णु अचरज मन कीन्हा। ब्रह्मा सों तब बोले लीन्हा ॥
सोइ करौ जो जीव न जाई । राखौ ताहि महि भरमाई ॥
सुनिके ब्रह्मा मतौ विचारा । तक्षक रूप दूत पगु धारा ॥
यह सब भेद जबै हम जानी । इन्दुमती सो आज्ञा ठानी ॥
काल रूप तक्षक को आही । डस है तोहि जो कष्ट जनाई ॥
बिरहुलि शब्द गहो मन लाई । यमको दूत जीत नहिं जाई ॥
रानी शब्द बिरहुली पाई । ता कहँ तब प्रतीति मन लाई ॥
बहुविधि सुमरै शब्द अघाई । काल घरी निकटै ह्वै आई ॥
चारौ दूत पठाव यम राऊ । गढ़ गिरनार बेग चल आऊ ॥

साखी–रानी भक्ती लीन्ह मन, काल न पावै दाव ॥
साध चले घर आपने, रानी मस्तक नाव ॥

चौपाई

राजा रानी दोई शिष्य मोरा । रानी लीन्ह राव मति भोरा ॥
तब यमदूत मता अस कीन्हा । चित्रसारमें पहुँचे लीन्हा ॥
रानी चली सिज्या पर जबहीं । तक्षक ग्रास भर्म भयो तबहीं ॥
रानी कहे डस्यो मोहि सांपा । राजा कियो कठिन संतापा ॥
मंत्री गुणी सब तुरत बुलाये । राजा आज्ञा सों सब आये ॥

रानी शब्द बिरहुली भाखा । दूर दूर सबहिन को राखा ॥
रानी क्रोध बहुत तब कीन्हा । बहुत होय नृप अति आधीना ॥
अरे भाई मम प्राण प्यारी । यही बार तुम लेव सम्हारी ॥
मूर्छित रानी सब चलि आये । जाग्रत जान के सबै सिधाये ॥
तक्षक विष नहिं लाग्यो नारी । अंतक दूत रहे सब हारी ॥

साखी–रानी उठि ठाढ़ी भई, राजहि हरष अपार ॥
सुमिरन हम को कियो, धन्य है गुरू हमार ॥

चौपाई

तक्षक राव तब आये जहवां । ब्रह्मा विष्णु महेश्वर तहवां ॥
विष को तेज शब्द सों जीता । सुनिके विष्णुहिं भयी तब चिंता ॥
धर्मराय का तुरत हंकारा । यम दूतन को जो सिरदारा ॥
ताका हरि अस मता सुनावा । करियो सबै तुम सेतहि भावा ॥
आने छलिकैं जो नृप नारी । निश्चय आज्ञा आहि हमारी ॥
सुनिके दूत भेष कियो रंगा । अपन कीन्ह सब सेतहि अङ्गा ॥
आये दूत नगर नियरावा । रानी ऐसा सपना पावा ॥
आये गुरू ज्ञानी जो हमारे । बोलत अमृत वचन सुधारे ॥

ज्ञानी वचन

सुन रानी तोहि भेद बताऊं । काल चरित्र सब तोहि सुनाऊं ॥
छलबे अइहैं ताहि सम्हारो । सेत रूप जिन भाव विचारो ॥

साखी–मस्तक ऊंचा कालका, चित्तमें गुणका रंग ॥
यही चिह्न तुम चीन्हियो, और सेत सब अंग ॥

चौपाई

भये प्रभात काल तब आवा । सेत रूप सब अंग बनावा ॥
आये जहां तहां नृप नारी । तिनसौं ऐसो बचन उचारी ॥
चीन्हत है कै नाही रानी । मरदन काल आइस मैं ज्ञानी ॥

मैं तो तोकहँ दीक्षा दीन्हा । तक्षक डसै तोहि कहँ लीन्हा ॥
तब तोहि मंत्र दियो मैं सोई । कालको अजय जाहिते होई ॥
तें पुनि तैसो तत्त्व विचारा । हर्षत भये तब धनी तुम्हारा ॥
बेगी चलो गहर जिन लाओ । प्रभु को दरस तुरत तुम पाओ ॥
इंदु मती सपना जो देखा । बैसो देखो ताकर रेखा ॥
तीनों गुण चक्षु में राता । और पुन देखो ऊंचा माथा ॥
और स्वेत सब देख्यो अंगा । पाइ प्रतीत स्वप्न परसंगा ॥
अरे काल तैं क्या ठग मोही । हंस रूप नहिं छाजै तोही ॥
यह छल मता न लागु तुम्हारा । है समर्थ बड़ गुरू हमारा ॥

साखी- मम गुरुकी परतीत यह, धरनी धरै न पांव ॥
काग न होय मराल सम, यह छति तोहि न भाव ॥

चौपाई

सुनिके दूत कीन्ह तब रोषा । इन्दुमती को दीन्ह सो दोषा ॥
तिन पुनि सुमरे अपने स्वामी । भक्त हेतु चले अन्तर्यामी ॥
ज्ञानी आवत काल पराना । ता कहँ लै पुनि लोक सिधाना ॥
धन्य भाग तिन रानी केरा । ज्ञानी आय काल सों फेरा ॥
रानी मानसरोवर आई । अमी सरोवर ताहि दिखाई ॥
कबीर के सागर पांव परो जबही । सुरति सागरै पहुँची तबही ॥
पहुँचत तासु हंस हरषाने । सब मिलि कीन्ह तासु सन्माने ॥
सतगुरु दाया कीन्ही जबही । षोडश भानु रूप भयो तबही ॥
भयो हर्ष रानी अति शोभा । राजा लग्यो करन अति क्षोभा ॥
हे सतगुरु मै तुम बलिहारी । राजहि आनो पतहि हमारी ॥
सतगुरु कहैं सुन संत सुजाना । राजा भाव भक्ति नहिं जाना ॥
आ तोहि भयो हंसको रूपा । कारण कवन चहै तू भूपा ॥

साखी–राजा भक्ति न जानही, तातें हंस न आव ॥
विना तत्त्व नहिं हिरम्मर, हंस न होय भुक्ताव ॥

चौपाई

हे स्वामी मैं भव जब रहिया । राजा भक्ति न वरजै कहिया ॥
है संसार का ऐसा भाऊ । पुरुष पराय ध्यान नहिं आऊ ॥
जो कोइ राते त्रिया बिरानी । ताकी करै सबै मिलि हानी ॥
छोटे बड़े को यह व्यवहारा । धन्य नृपति जिन ज्ञान बिचारा ॥
करों साध सेवा मैं जबही । राजा मोहि न बरजै कबही ॥
जो राजा अटकावत मोहीं । कैसे भेटत तब मैं तोहीं ॥
धन्य नृपति जिन भक्ति दृढावा । आनिय ताहि हंस पति रावा ॥
सुनि ज्ञानी ताही की बाता । चले तबहि तहँही बिहँसाता ॥
आये भवसागर जब ज्ञानी । यहां नृपति की अवध खुटानी ॥
आये लेन ताहि यमदूता । राजहि कष्ट जो देत बहूता ॥

साखी–हंस ताको नहिं पावे, घेर रहो जो राव ॥
राजा परो अगाध में, सतगुर को गुहराव ॥

चौपाई

राजा तत्त्व मता नहिं चीन्हा । ताते यम राजन दुख दीन्हा ॥
पावे यम नहिं छाड़े ताही । भक्ति योग जो ऐसो आही ॥
तब ज्ञानी आये तेहि ठाईं । देखत जीव बहुत संकाईं ॥
ज्ञानी लीन्ह जीव कर आगे । देखत दूत ताहि सब भागे ॥
दूत चहूँ दिशि देखत जावैं । मरकट दृष्टि पक्षि नहिं पावैं ॥
जस आकाश कहँ जाय पखेरू । मरकट दृष्टि आये सत हेरू ॥
ऐसे ताहि दूत गुहरावे । नहिं जब देखैं तब पछतावे ॥
जहां लगि गम तहँ लग हेरा । आगे देखा धुन्ध कुहेरा ॥
हंस गये जब लोक द्वारा । रूप अनूप देख उजियारा ॥
गये नृपति हंसन की पांती । ता मध्ये पुन जइस अजाती ॥

साखी–रानी चीन्हौं नृपति को, आन धरे तब पांव ॥
नृप मन में बहु संकुचे, लज्जा ताहि जनाव ॥

चौपाई

कह रानी सुन साधु भुवारा । चीन्ह नृपति मैं हौं तुम दारा ॥
इन्दुमती है मेरा नाऊँ । यहि कारण टेक्यो तुव पाऊँ ॥
राव कहे किम करों प्रमाना । बर्ण तुम्हारो हंस समाना ॥
शोभा बहु देखों तुम अंगा । कैसे तोहि कहों अर्धंगा ॥
हंस करुणामय वचन उचारा । निश्चय मानो वचन हमारा ॥
हंस रूप होवे नर नारी । जिन भवसागर भक्ति विचारी ॥
नृप को भयो हंस का भावा । जिन पुनि ऐसी शोभा पावा ॥
भुई में रहें जो अंतक दूता । तिन पुनि विस्मय कीन्ह बहूता ॥
दूत चलि गये जहँ त्रिय राऊ । तिनसों जाय कह्यो सत भाऊ ॥
स्वामी श्वेत वरण यक आवा । रानी नृप लेइ लोक सिधावा ॥
कैसो लोक ब्रह्मा पर जरेऊ ! जरत हुताशन जनु घृत परेऊ ॥
चलो हरी हर संग हमारे । जहँवा राजा रानी सिधारे ॥
चले बेग तब तीनों भाई । बाहन साज चले तिय राई ॥

साखो–सुम्मेरते ऊँचे गये, तब देखा अँधियार ॥
नव खंड महि तब छांड़िके, आगे को पगधार ॥

चौपाई

पहुँचे विषम सरोवर जाई । बिजुली हुओ ह्यां अन्याई ॥
ब्रह्मा शिव बाहन थकि गयऊ । सतगुन तेज विष्णु का भयऊ ॥
अलख निरंजन भयो तिहि ठाऊँ । औ देवी तें आशिष पाऊँ ॥
तेहि ते विष्णु गो अँमर जहँवा । कामिनि मान सरोवर तहँवा ॥
देखत रूप विष्णु मन भूला । श्वेत पुष्प पद्म जस फूला ॥
कामिनि मान सरोवर राजे । जुत्थ जुत्थ जोड़ भल साजे ॥

न अध्यान तहां तिन्ह लागी। सत्त सुकृत बोले अनुरागी॥
सब मिलि भयो अचंभो बाता। ऐसा अचरज नरको बाता॥
कोइ कहे नर देख पखेरू। ऊँची दृष्टि सबै मिलि हेरू॥
वेग निकारौ यहांते आजू। रहन न पावे करौ सों काजू॥

साखी-दोई सठहार जो भेजे, नर से कहो बुझाय॥
छांडौ मान सरोवर; यहां नहीं तुव ठांय॥

चौपाई

प्रतिहारन तब आज्ञा कीन्हा। तिन सों हरि अस बोलन लीन्हा॥
देखा चाहों तुम पुर पाटन। हे प्रभु भेद कहो कछु आपन॥
तब प्रतिहार कहें समझाई। नरको रूप दरश नहिं पाई॥
जौ लग बीरा नाम नहिं पावे। सो जीव कैसे लोक सिधावे॥
भयो जो बड़ो निरंजन राऊ। तेऊ यहां रहन नहिं पाऊ॥
जा तू विष्णु कहा सुन मोरा। नातर चक्षु हीन होय तोरा॥
चले विष्णु तब लागि न बारा। हरि कमलासो मंत्र विचारा॥
यह कछु बात अचंभो आही। कहत न बनै रूप मोहि पाही॥
देख सठिहारन बेग निकारा। चले जीव जहां राज तुम्हारा॥
अचरज बात कही नहिं जाई। धन्य पुरुष जिन लोक बनाई॥
जब मैं ध्यान धरा प्रभु केरा। अलख रूप देखौं बहुतेरा॥
ऐसा रूप कहूं नहिं देखा। अचरज भयो न जाय विशेषा॥

साखी-चले ब्रह्मा हरि शंकर, छाडि लोकके खोज॥
बस शशि के परभावतें, सकुचन होत सरोज॥

कलियुगमें कबीर साहिबका प्राकटय-चौपाई

सतयुग त्रेता बीत जब गयऊ। कलियुगको प्रभाव तब भयऊ॥
छाडचो लोक लोककी काया। प्रथमहि मान सरोवर आया॥

पाँच तत्त्व तीन गुण साना । त्रिगुण रूप कीन्ह उतपाना ॥
रूप मनुष्य सुदेह सम्हारा । नहिं लेई अहार व्यवहारा ॥
जो कोइ ये विधि करै उछेदा । सो तो है करता को भेदा ॥
करता देह तबै निरमावा । तामहिं तत्त्व प्रकृतिहि स्वभावा ॥
आयो निरगुण काछ शरीरा । आवा गमनकी भेंटन पीरा ॥

जगन्नाथके मंदिरकी स्थापना

प्रथमहि आयो सागर तीरा । जगन्नाथ जहँ काष्ठ शरीरा ॥
जाते परम वचन मैं हारा । बाजी मांड किया प्रति पारा ॥
आसन वेल तीर मैं लीन्हा । सो स्वरूप काहू नहिं चीन्हा ॥
आया राम विप्रके रूपा । तासों कथि कह्यो अजगूता ॥

साहिब कबीर वचन

साखी-वाचा बंध मैं आइया, मंडप उठि है तोर ॥
मान त्रास सिंधू जबे, दर्शन देखौ मोर ॥

चौपाई

तो कहँ थापौं वचन प्रवाना । तीन लोक तुम करत बखाना ॥
तो परसै को कहा अधिकारा । सोई कहौ तुम बौद्ध विचारा ॥

बौद्ध वचन

मन वच क्रम परसै जो मोई । कोटि जन्म लगि विप्र सो होई ॥
औ पुनि विद्या औ धनवंता । यहि सुनकै जो भयो हरषंता ॥

साहिब कबीर वचन

आवा गवन निरवारन आयो । सत्त शब्द ते जीव छुड़ायो ॥
जो बहु जन्म थाकौं तुहि पाहीं । कैसे जीव लोक तब जाहीं ॥
बिना नाम नहिं जीव उबारा । कहि अब भाखौं कछु उपचारा ॥
मारकंडे तर जाइ नहाई । अस हँस बोले त्रिभुवन राई ॥

अक्षैबट कृष्णरोहिणी अस्नाना । इन्द्र दमन समुद्र अस्थाना ॥
यहि विधि तीर्थंकरै मन जानी । पुनर्जन्म ना होवै प्रानी ॥

साखी–हँसे कृष्ण छल मता कहि, जिमि माहुरको मीठ ॥
अस पुरुषोत्तम क्षेत्र फल, ज्ञानवन्त कहँ दीठ ॥

चौपाई

समाधान हरिको जब कीन्हा । आसन उदधि तीर में लीन्हा ॥
चौरा कीन्ह तहाँ पुन जाई । इन्द्र दमन तब आज्ञा पाई ॥
जबहीं मंडप काम लगावा । सागर उमँग खसावन आवा ॥
उठावहु मंडप करि निःशंका । उदधि त्रासकी मेटब शंका ॥
आयो क्रोध लहर जब पानी । मेट्यो पुरुषोत्तम सहिदानी ॥
लहर उमंगी सागर तीरा । आय जहां तहँ सत्त कबीरा ॥
देखत दरस महा भय मानी । बोल्यो वचन जोर युग पानी ॥
हे स्वामी तुव मर्म न जाना । जगन्नाथ वर किया पयाना ॥
क्षमौ अपराध मोर प्रभुराया । लेउ बैर अस कीजै दाया ॥
तासों पुनि अस बचन उचारा । बोर द्वारिका बैर तुम्हारा ॥

साखी–राम रूप सागर बँध्यो, तातैं उदधि उमंग ॥
बोरौ नगर द्वारका, भयो रूचिर परसंग ॥

चौपाई

तब तैं उजर द्वारका भयऊ । पंडनको तब स्वप्ना दयऊ ॥
आये मोपर साहिब कबीरा । आवा गमनकी मेटन पीरा ॥
ऐसा स्वप्न पंडन दीन्हा । तीर्थ स्नान तेहि सब कीन्हा ॥
उठ्यो जो मंडप बाज बधावा । कनक उरे नहिं हाथ बनावा ॥
एक दिना कौतुक अस भयऊ । सागर तीर पंडा चलि गयऊ ॥
करि असनान चलो मंडप पासा । मनमें ऐसा वचन प्रकासा ॥
प्रथमहिं चौरा म्लेछ को गयऊ । ठाकुरके नहिं दर्शन कियऊ ॥

तेहिके मन पाखंड जब देखा । किय कौतुक सो कहौं विशेखा॥
जहँ लग मंडप पूजहिं बीरा । तहँ लग देखहि रूप कबीरा ॥
गयो जहां कठ मूरत आहीं । कबीरको रूप भयो तेहि पाहीं ॥
अच्छत पुहुप लै विप्र मन भूला। नहिं ठाकुर जो पूजहु फूला ॥

साखी-तब पंडा सिर नायो, प्रभु चरित्र अवगाह ॥
क्रोध छोड़िये स्वामी, कृपा करो मोहि पांह ॥

चौपाई

अपने मन आन्यो प्रभु हीना । तातैं प्रभु तुम कौतुक कीन्हा ॥
तासौं बचन मैं बोलये लीन्हा । सो पंडा पुनि कही जो कीन्हा॥
सुनहु विप्र तुम्हे आयसु होई । दुबिधा भाव करौ मत कोई ॥
ब्राह्मण छाड़हु जात अजाती । ताते मेटब सबकी फांसी ॥
भोजन माहि भर्म जो करहीं । ताकी अङ्ग हीन अनुसरहीं ॥
तब पडा विन्ता अस ठाना । हे स्वामी मैं तोहि न जाना ॥
करौं सोई जो आज्ञा दीजे । कछु जांचों सो प्रदान मुहि कीजे॥
जो मन इच्छा होय तुम्हारी । देउ सोइ अस वचन उचारी ॥

साखी-सागर नीर बड़ खारा, सो तो ग्रसो न जाय ॥
निर्मल जल मैं मांगौं, सो दीजै प्रभुराय ॥

जहँ चौरा है सागर तीरा । खनहु कूप होय निर्मल नीरा ॥
तहां खनायो आय तब कीन्हा । जल मँगाय पंडन कहँ दीन्हा ॥
कूप बनायो सागर तीरा । तहां भयो पुनि निर्मल नीरा ॥
यह तो भेद जाने सोई संता । कबीर सागर बूझे मतवंता ॥
हरी भेद मैं सागर आयो । तेही सकल चरित्र सुनायो ॥
भृंगी को कीन्ही मैं दाया । ताको एक जो भेद बताया ॥
ताकी दियो मता कडहारी । जीव भेद सों लेत उबारी ॥

पठवै जीव नाम दे जहँवा । मुक्ति पदारथ फल है तहँवा ॥
चार भानु कामिन उजियारी । मान सरोवर है वह नारी ॥

धर्मदास वचन

धर्मदास कहै अस बानी । स्वामी कहू संत उतपानी ॥
हंस रूप जो षोडश भाना । कामिनि चार भानु परवाना ॥

साखी—कारण कौन है कामिनि, चार भानु कछु थोर ॥
शब्द गहे सब हंसा, संशय भई जब मोर ॥

साहिब कबीर वचन—चौपाई

सुन धर्मनि मैं तोहि बताऊँ । यह सब भेद मैं तोहि बुझाऊँ ॥
चौरासी लक्ष जोइन ठाना । मुक्ति छेत्र नरको उत्पाना ॥
तातैं प्रभु प्रगटे नर भाऊ । ताते शोभा हंस बहु पाऊ ॥
आय अदेह पुरुष रह जहँवा । नर को रूप प्रगट भये तहँवा ॥
जेहि मुक्ति चंदा निर्माई । हंस प्यार मुक्ति अधिकाई ॥
भृंगी कीट शिष्य जो होई । पावै भेद मग्न होय सोई ॥
सिंधु मध्य राह तिन केरा । आवै जीव ताहि सों फेरा ॥
वहै राह भृंग राज कहँ दीन्हा । यही भेद विरले जन चीन्हा ॥
पाहै भेद सन्त जन सोई । आन्यो सतगुरु जेहि गम होई ॥
निज बीरा जो चौंरा पावै । इकोतर सौ जीव लोक सिधावै ॥

साखी—यही चरित्र करि आयो, चौंरा के व्यवहार ॥
निज बीरा जो पावै, तब जीव होय उबार ॥

## चन्दवारेमें प्राकट्यकी कथा

चौपाई

आसन कर आयो चंदवारा । चंदन शाह तहाँ पगु धारा ॥
बल रूप धर आयो तहँवा । आठै पहर रह्यो मैं जहँवा ॥

ताकी नारि गई अज्ञाना । रूप देखि ताकर मन माना ॥
ले गये बालक सो निज गेहा । बहुत भांति तिन कीन्ह सनेहा ॥
चंदन साहु देखि रिसियाना । चल गयो नारि तोर अब ज्ञाना ॥
बेग डार बालक को आजू । सुने लोग तो होय अकाजू ॥
जाति कुटुम्ब सुने जो कोई । यह तो भली बात नहिं होई ॥
चेरी हाथ तिन दीन्ह पठाई । उद्यान मास तिन दीन्ह अडाई ॥

## नूरीको मिलनेकी कथा

काशीमें प्राकटच

कछु दिन काया धर दुख पावा । यहि अंतर इक जुलहा आवा ॥
नूरि नाम जो वा संग नारी । देखत बालक भई सुखारी ॥
बालक देख नारि मन भूला । रविके उदय कमल जस फूला ॥
साखी-अति सनेह जिन कीन्हा, नूरी देख रिसान ॥
बालक लीन्हो नारि अब, कहा भयो अज्ञान ॥

बालक वचन-चौपाई

बालक दीन्ह मही महँ डारी । अस सुनि बालक दीन्ह हुँकारी ॥
बूझो काल फांस नर नारी । पूर्व जन्म तेहि लीन्ह उबारी ॥
पाछिलि प्रीति भयी अब मोही । तातैं दरश भयो अब तोही ॥

नूरी वचन

तुम जानो अब मैं नहिं जाना । सो अब मोहि सुनाओ काना ॥

## नूरीके पूर्वजन्मकी कथा

कबीर वचन

पूर्व जन्म तैं ब्राह्मण दूखी । तोरे गृह कबहू नहिं सूखी ॥
श्वपच भक्त मम प्राणन प्यारा । ताको मान पिता अवतारा ॥
श्वपच भक्ति करै पुनि जबही । मात पिता पर लागे तबही ॥

ताकी प्रीति भक्त मन धारा। तातैं भयो विप्र अवतारा ॥
प्रथम प्रीति मोरे मन भावा। तोरे गृह मैं यहि विधि आवा ॥
तोसों कही इक भक्ति दृढाई। राखौ मर्म हमार छिपाई ॥
देव सुवर्ण नित्य मैं तोही। एक मुहर पुनि ताकी होई ॥

साखी-बोलो नहिं यहि कारणे, ताहि मुक्ति नहिं भाव ॥
माया देख भुलानो, यहि कारण तब पाव ॥

चौपाई

घर नहिं रहो पुरुष औ नारी। मैं शिव सों अस वचन उचारी ॥
आनि देव लक्ष्मी संसारा। आपन को निज भीख अहारा ॥
आन की बार बदत हौ योगू। आपन नार करत हौ भोगू ॥
काशी मरे जन्म नहिं होई। तुव महिमा वर्णें सब कोई ॥
औ पुन तुम सब जग ठग राखा। काशी मरे अजल तुम भाखा ॥
जब शंकर होवे तुव काला। कहां रहे तव भक्त बिचारा ॥
जीवन करत जो होय अकाजा। या शंकर तब तुम कहँ लाजा ॥
सुनि शंकर तब चल्यो लजाई। यहि अन्तर जुलहिनि चलि आई ॥
हे स्वामी मम भिक्षा लीजे। सब अपराध क्षमा प्रभु कीजे ॥
एक पुत्र जो विधि मोहि दीन्हा। कबहूं बात कहै नहिं लीन्हा ॥

शंकर वचन

तोरे गृह पंडित अधिकारी। झूठ बोल कस बोलहु नारी ॥
हरि कमला सम देखो ज्ञाना। बुद्धिवंत तुम पुत्र सुजाना ॥

साखी-सुनकर महिमा पुत्रकी, नारि धरे तब पांव ॥
हे स्वामी मम इच्छा, श्रवणन बचन सुनाव ॥

चौपाई

कहा लजान कहा फिर आवा। बिहँसि कहा तुम सिद्ध कहावा ॥
सुनिकै वहै हर्ष बहु कीन्हा। भिक्षा कनक जाति को दीन्हा ॥

भिक्षा दै प्रमुदित चलि आई । हस्तामल को खोज न पाई ॥
वाचा बन्ध तहाँ पुनि आयो । काल कष्ट मैं तोर मिटायो ॥
सुन जुलहा मन भयो आनंदा । जिमि चकोर पायो निशि चंदा ॥
ले सुत चले हर्ष मन कीन्हा । तासों पुनि अस बोलेहि लीन्हा ॥
आगिल जन्म जब होइ तुम्हारा । तुम्हैं पठायब यम तैं न्यारा ॥

साखी–सुत काशी को लै चले, लोग देखन तहँ आव ॥
अन्न पानी भक्ष नहिं, जुलहा शोक जनाव ॥

चौपाई

तब जुलहा मन कीन्ह तिवाना । रामानन्द सौं कहि उत्पाना ॥
मैं सुत पायो बड़ गुणवंता । कारण कौन भखै नहिं संता ॥
रामानन्द ध्यान तब धारा । जुलहा सो तब वचन उचारा ॥
पूर्व जन्म तैं ब्राह्मण जाती । हरि सेवा कीन्हेसि भलि भांती ॥
कछु तुव सेवा हरिकी चूका । तातैं भायो जुलहा को रूपा ॥
प्रीति प्रभू गहि तोरी लीन्हा । तातैं उद्यानमें सुत तोहि दीन्हा ॥

नूरी वचन

हे प्रभु जस कीन्ह्यो तस पायो । आरत हो तुव दर्शन आयो ॥
सो कहिये उपाय गुसाई । बालक क्षुधावंत कछु खाई ॥
रामानंद अस युक्ति विचारा । तुम सुत कोई ज्ञानी अवतारा ॥
बछिया जाही बैल नहिं लागा । सो ले ठाढे करै तेहि आगा ॥

साखी–दूध चलै तेहि थन तें, दूधहि धरौ छिपाइ ॥
क्षुधावंत जब होवै, ता कहँ देउ खवाइ ॥

चौपाई

जुलहा इक बछिया लै आवा । चल्यो दूत कोउ मर्म न पावा ॥
चल्यो दूत जुलहा हरषाना । राख छिपाइ काहू नहिं जाना ॥
सुन भामिनि आगे चल आवा । सो लै जाइ कोई भेद न पावा ॥

दूध न पीवत नाम कबीरा । खेलत संत संग मत धीरा ॥
तिनसौं कहँ जागौ रे भाई । बिना नाम नहिं काल पराई ॥
कोई न बूझै भेद हमारा । रामानंद पर तब पगु धारा ॥
तब अपने मन कीन्ह उपाई । तिनहि दरश केसहु नहिं पाई ॥

रामानन्दको गुरु करना

जाहिं रामानंद गंग स्नाना । तेहि मारग में जा पौढाना ॥
तबहि पांव गुरु लाग कबीरू । रामानंद बोल्यो मत धीरू ॥
उठ कबीर तब वचन उचारा । रामानंद है गुरू हमारा ॥

साखी–करहि गोष्ठी शिष्य सब, कोई ज्ञान जीत नहिं जाय॥
सप्त ऋषि सुधि पाई, गुरु सों बोले आय ॥

चौपाई

विद्या कहे मलेच्छ को दीन्हा । रामानंद क्रोध तब कीन्हा ॥
चले शिष्य तब आज्ञा पाई । कबीर संतको आन बुलाई ॥
सुनतहिं शिष्य चहूं दिशि धाये। हेर खोज कबीरै लाये ॥
आये कबीर लागि नहिं बारा । गुरु मंडलमें आन पगु धारा ॥
अन्तर कपाट शिष्य तब लाया । पूजत रामानंद हरि राया ॥
सुन कबीर आगे चलि आये । गुरुहि आनकर मस्तक नाये ॥
लक्ष्मीनारायण मुकुट सिरनाये। पहिरे वस्त्र माल नहीं समाये ॥
तबहि कबीर वचन अस भाखा । वस्त्र पहिरि माला तुम राखा ॥
अंतर कपाट खोल तब दीन्हा । रामानंद सुन अचरज कीन्हा ॥
दिव्यज्ञान तुम कहँ केहि दीन्हा ।जोर कर गुरुहि विनोदित कीन्हा॥
कब हम तुम को दिक्षा दीन्हा । नाम हमारा काहे तुम लीन्हा॥
गुरू हमैं तुम दिक्षा दीन्हा । झूठ बोलका क्या फल चीन्हा॥

साखी–गुरू जब चलैं नहांने, तब हम दिक्षा पाव ॥
तातैं गुरु कहि थाप्यो, फिर पीछे पछताव

चौपाई

पूज्यो पाहन पंडित धर्मा । पहिल न जानो तुम्हरो मर्मा ॥
मैं तो चाहत मुक्ति पदारथ । तुम पाहिन जापूजे निश्चारथ॥
तब गुरु सुनकै अचरज भयऊ । योग समाधि वैकुंठहि गयऊ ॥
सत्त समाधि विष्णु जब देखा । तापर देश कबीरहि लेखा ॥
जहँ देखा तहां सत कबीरा । झूठ ध्यान भूले मत धीरा ॥
हे कबीर तुम मर्म न जाना । जान मलेछ किया अपमाना ॥
जो कछु आहि मुक्ति सन्देशा । सो सब मोहि कहौ उपदेशा ॥

साहिब कबीर वचन

छोड़ौ सबै मान अभिमाना । तो कह देव मुक्ति फल दाना ॥
शिष्य सखा सौं बात जनाऊ । काल तोर शरणागत आऊ ॥
कहैं कबीर काल है काला । है बड़ दारुण काल कराला ॥

साखी–मुक्तिदेव नहिं लेव तुम, रामानंद गुरु देव ॥
भोरहि जन्म गवांय हो, करि पाहन की सेव ॥

सिकन्दर शाहकी बारता–चौपाई

ता निशि को तब भयो प्रभाता । काशी आइ भयी एक बाता ॥
आये सिकन्दर शाह सुल्ताना । है व्याधा बहु भेद न जाना ॥
रामानंद की सुनी बड़ावा । तातैं शाह आप चलि आवा ॥
आये मंडप जहां सुल्ताना । रामानंद तब देख रिसाना ॥
आये शाह सन्मुख भये जबही । रामानंद मुख फेरा तबही ॥
वार अनेक तिहितें मुख फेरा । तांकी ओर क्रोध कर हेरा ॥
मारचो खंग परचो खसि धरनी । शाह के अङ्ग अनिल सम बरनी ॥
आये शाह जहां दुःख नसावन । अधिक भई जो देह सतावन ॥

पय औ रुधिर चल्यो गुरु अंगा। पावक उठी शाह के अंगा ॥
तबै शाह ने सुधि अस पाई। महिमा जान कबीर बुलाई ॥
साखी-कबीर दर्शन दीन्हा जबै, तपन भई सब दूर ॥
शाह कहा तुम सांच हो, औ अल्लहका नूर ॥

सिकन्दरवचन-चौपाई

पय औ रुधिर चल्यो गुरु अंगा। शाह कहै यह कौन प्रसंगा ॥

कबीरवचन

जेहि तन मान्यो शब्द हमारा। तेहि तैं चले दूध की धारा ॥
कीन्हा कालउ केर विचारा। आधा अङ्ग रुधिर अनुसारा ॥
अगले जन्म मुक्ति जो होई। अंकूरी जीव कहावै सोई ॥

गौको जिलाना

यहै चरित्र तहां पुनि भयऊ। तब नूरी के मंदिर गयऊ ॥
काजी मुल्ला सबै रहाये। गाय आनि के गलो कटाये ॥
देखि दुखित भये सत्त कबीरू। महा व्याधि गाई की पीरू ॥
केहि कारण गाई जो मारा। सो सब मोहि कहो उपचारा ॥
काजी काया देख विचारी। एकहि ब्रह्म गाय क्यों मारी ॥
गाय जिवावहु मुर्गा सारू। नातर वेद अथर्वन हारू ॥
सत्त शब्द है जासु शरीरू। व्यापी महा गाय की पीरू ॥
साखी-उठिके गाय ठाढ़ी भई, आज्ञा जबही कीन्ह ॥
काजी मुल्ला जानि कै, पाव पकर तब लीन्ह ॥

चौपाई

नगर के लोग अचंभो लागा। यह कबीर कर्त्ता हो जागा ॥

मगध गवन

तब तहँ से पुनि कीन पयाना। उत्तर देश मगध अस्थाना ॥
नूवा नूरी काल बस भयऊ। तिन पुनि जन्म मनुष्यहि लयऊ ॥

राजा बीरसिंह देव बड राऊ। ताके गृह अब धारयो पाऊँ॥
कमलावती तासु नृप नारी। तिन बड़ सेवा कीन्ह हमारी॥
ताकौ दीन्ह पान परवाना। तिन कछु भेद हमारा जाना॥
कह्यो तासों मुक्ति प्रभाऊ। सुनत भयो आनंदित चाऊ॥
बिजुलीखां पठान बड़ ज्ञानी। सन्त जान जिन सेवा ठानी॥
तासौं कही मुक्ति परभाऊ। ज्ञान गम्य तिन बहुत कराऊ॥

साखी-अति आधीन जब देखा, ता कहँ दीन्हा नाम॥
प्रीति जानि कै ताकी, कछु दिन किय विश्राम॥

चौपाई

बिजुलीखां कहै पीर हमारे। नृप वीरसिंह शिष्य तुम्हारे॥
साहिब आप तजो जब देहा। दोइ दीन सो कीन्ह सनेहा॥
सुनि विहंसि अस आज्ञा ठानी। दोइ दीन से हम निरवानी॥
हिन्दू तुरक नहीं हो भाई। सुन पठान संशय उपजाई॥
जो तुम दोइसों न्यारी रीती। मेरे मन कैसे होय प्रतीती॥
तुम तो हो अल्लह के बन्दा। यह तो अहै आदमी गंदा॥
तुमहि शरीर तजौगे जबही। शरीर उपाय करों क्या तबही॥
कै पृथिवी कै देहों जारा। करहु हुक्म सो पीर हमारा॥
जो कछु होई लोक व्यवहारा। सोई कहो मम पीर पियारा॥
जो साहिब हुक्म जस करिहौ। मजार तुम्हारा रचिके धरिहौ॥

साखी-बिहँसि कह्यो तब तिनसैं, मजार करौ सम्हार॥
हिन्दू तुरक नहीं हौं, ऐसा वचन हमार॥

चौपाई

दिन कछु गये तासु संबादा। राजा बीरसिंह ने भेजे प्यादा॥
बन्दीछोर आवैं मम गेहा। रानी विन्ती कीन्ह सनेहा॥
ताकी प्रीति तहां पगुधारा। दुःखद्वन्द तिन सबै विसारा॥

तिन पुनि कही सुनौ गुरु ज्ञानी । दुतिया ब्याह लगन में ठानी ॥
ब्याह जो होय बिकट अस्थाना । क्या जानै होवै संग्रामा ॥
कोइ घायल कोइ जाई मारा । खाड़ो आही दुहु दिशि धारा॥
ताकी आज्ञा करौ गुसाई । तिनहि देह क्या करो उपाई ॥
कै गाड़ौं कै जारौं धूरी । यह संशय मेटो प्रभु मोरी ॥
करौ सोई लोक कुल धर्मा । बिन लागै कोई जानै न मर्मा ॥

साखी-जो गाड़ौ तो माटी, जो जारौ तो छार ॥
करो लोककी जो कृति, बोलता ब्रह्म निनार॥

चौपाई

हे स्वामी तुम मोहि बताओ । तुम तन तजो तो काहि कराओ॥
जस प्रभु तस पुन सेवक करई । सेवा युक्ति सदा सो तरई ॥
जो तुम कितहू करहू प्याना । गाड़हि लागै तुमहिं पठाना ॥
हँसै सबै यह देखि परतच्छा । गुरू तुम्हारो आहि मलेच्छा ॥
तस कछु भेद बताओ स्वामी । करो कृपा सो अन्तर्यामी ॥
वास्तव तेही कहो बुझाई । जारौ देह जो क्षार उड़ाई ॥
तातैं लोक मैं नहीं छुड़ाओ । यातैं दोइ दीन फरमाओ ॥
गयो नृपति तहँ साज बराती । कौतुक रचो देह तब त्यागी ॥
सुनत साज दल चले पठाना । राना मुर्दा ले बिल खाना ॥
लेकर गाड़ै करै निमाजा । करन बिहांनक दूरी काजा ॥

साखी-रानी भेजे प्यादहीं, तन जब तजो कबीर ॥
आयो बिजुली खान तब, सुनि वृत्तान्त गंभीर ॥

चौपाई

राजा पास पठाओ पाती । सुनतहि क्रोध जरी तब छाती ॥
छाड़्यो ब्याह चले दल साजी । हनें निशान सम्हर की बाजी॥
बाजा गाजी तुरही आवहि । यह बिजुलीखां युक्ति बनावहि॥
ऐसी भांति सो कीन्ह पयाना । रन के आगे बजे निशाना ॥

बांधी अस्त्र अस चले बहु बीरा । कुहुक बान औ बहु धन तीरा॥
बरछीं सेल औ छुरी कटारी । खड्ग रु तुरी चपल परचारी ॥
दोइ दिशि देख अस्त्र चमकारा । मानो साज चलो जल धारा ॥
राजा कीन्ह मरन का ठाना । वयरख रोप जो रहो पठाना ॥
जब देखा मैं होत लराई । युद्ध जानि अस कन्यो उपाई॥
रानी जान मोर कछु मर्मा । तिन पुनि कही तजो नृप भर्मा॥
साखी-पहिले खोदो माटी, मुर्दा देखु निहार ॥
मुरदा नहिं वहि भीतरे, कहा करत हौ रार ॥

चौपाई

सत्त कबीर नहीं नर देही । जारै जरत ना गाड़े गड़ही ॥
पठयो दूत पुनि जहां पठाना । सुनिके खान अचंभौ माना ॥
दोइ दल आइ सलाहा जबही । बने गुरू नहिं भेटे तबही ॥
दोनों देख तबै पछतावा । ऐसे गुरू चीन्ह नहिं पावा ॥
अपने मनैं अचंभा ठाना । रंक माहिं धन गया छिपाना॥
दोऊ दीन कीन्ह बड़ शोगा । चकित भये सबै पुनि लोगा ॥

## रतनाकी कथा

तब अपने मन कीन्ह विचारा । रतना कँदोइन के पगु धारा ॥
रतना समाधान बहु कीन्हा । राजहि पठय सँदेशा दीन्हा ॥
तुम नृप किमि करते पछताना । निश्चय आही शब्द प्रवाना ॥
रहौ सदा शब्दहि मन लाई । दर्शन मोक्ष होय नहिं भाई ॥
साखी-बिजुलीखां सौं दुआ कहि, किमि कारण पछताव ॥
रहौ नाम लौ लाइके, जाते कर्म कटाव ॥

चौपाई

लोक वेद मैं ऐसे विचारा । किमि कारण मन दुखी तुम्हारा ॥
सुनै दंडवत बहु विध कीन्हा । तत्व मता नामहि गहि लीन्हा॥
रतना सों कहि मता अपाना । तेहि सुनिके हरष बहु आना ॥

हे स्वामी मोहिं कीजै चेरी। जाते कटै कर्म की बेरी॥
धन्य शब्द धनि जो कछु चहिये। सो सब स्वामी मोसों कहिये॥
सवा सेर मिष्टान लै आवहु। और सवासौ पान मँगावहु॥
इतना चहिये और न काजा। तातें भाग चले यमराजा॥
सोई अंश पान निज लीन्हा। ताको जीव दान मैं दीन्हा॥
अंकूरी जिव भेटे निज गेहा। नूबा नाम जो प्रथम सनेहा॥

साखी-ताको पठयों निज भवन, तीन लोक तें न्यार॥
नूरी के मन इच्छा, धर्मदास अवतार॥

चौपाई

सुन धर्म दास यहै कुल धर्मा। मेटो तीरथ बरत कुल भर्मा॥
कोटि जन्म कीन्हौं तप धर्मा। बिन सत गुरु नहिं मिटिहैं भर्मा॥

धर्मदासवचन

हंस राज जो दर्शन दीन्हा। जन्म स्वारथ अधमको कीन्हा॥
हे प्रभु मोरे बन्दी छोरा। हौं आधीन दास मैं तोरा॥
आनहु पान और मिठाई। जितनौ रतना के मन भाई॥
आनहु रतना कहों तुम स्वामी। कृपा करो तुम अन्तर्यामी॥

कबीरवचन

प्रथम हि जो पावै निज बीरा। पुरुष रच्यो सुख सागर तीरा॥
जाके रहे पुरुष औ नारी। बीरा नाम जीव रखवारी॥
सवा लक्ष जीव नित्त जो मारा। तातें सवा सेर व्यवहारा॥

साखी-सवा सेर मिष्टान जो, और सवा सौ पान॥
इतना लेजो शिष्य हो, यम तेहि देखि डरान॥

चौपाई

मुहर देखि जैसे घट वारा। जिन्हैं घाट ऊपर बैठारा॥
जो कोइ झूठा रूप बनावै। बिना पान जान नहिं पावै॥

आने फेर परवाना सोई । जैसा अंक मुहर पर होई ॥
इतनी सुन हरषे धर्म दासा । शिरनी पान लाइ धरे पासा ॥
सेत सिंहासन सेतु ई साजा । सेत पान सिर क्षत्र बिराजा ॥
पानै दलतैं सबहीं कीन्हा । तामें अंक अग्र को दीन्हा ॥
प्रथम हि तिनुका वेग तुरायी । मारग भेद तबै समुझायी ॥
बांएं दाहिने है सहि दानी । इक दिशि धर्म द्वितीय दुर्गदानी ॥
पाछै चित्र गुपित्र को थाना । तेहि तजि हंसा देइ पयाना ॥
टूटै घाट अठासा कोरी । हंसा चढ़े नाम की डोरी ॥

साखी-यमसों तिनुका तोरकै, तब दीजौ निजपान ॥
पाई प्रसादै हर्ष तब, शब्द देख मन मान ॥

चौपाई

जाई उबारौ हंस अंकूरा । मन की दिशा देख मन भूला ॥
हे प्रभु कौन शब्द है सारा । तौन शब्द तैं जीव उबारा ॥
एक शब्द पुनि दीन्हा हेरी । यही शब्द तैं जीव उबेरी ॥
जस दरपर लै दीजे हाथा । दर्शन देखै मुख औ माथा ॥
धर्म दास सुनत मन माना । बिकसे कमल उदै जनु भाना ॥
यही वस्तु से जीव उबारा । और ज्ञान है बहुत अपारा ॥
मूल नाम अक्षर धुनि साचा । जेहि तैं जीव काल सों बाचा ॥
आदि नाम पुरुष कर आहीं । भाग जीव पाव पुनि ताहीं ॥
धन्य भाग वस्तु जिन पाया । मोकहँ सत गुरु अलख लखाया ॥
अक्षर मूल और सब डाला । डारहि में फल फूल रसाला ॥
किंचित को फल पावै सोई । कहैं कबीर अमर सो होई ॥
अक्षर मूल अमी पँच शाखा । साखी रमैनी ताकी पाता ॥
सुमिरन डार पुहुप है जोगा । तेहि सम आहि ना दूसर भोगा ॥

साखी-अक्षर धुनि लौ लावई, अपराधे परिचय योग ॥
कहैं कबीर संशय गयी, भोगहि मध्ये भोग ॥

चौपाई

भव मैं अक्षर परचै पावै । सत्त गहै सतलोक सिधावै ॥
पुहुपहि से फल उपजै सारा । फल है मुक्ति भोगसे न्यारा ॥
हे प्रभु जो इतना नहिं जाना । सो जिव कैसे लोग पयाना ॥
पंच अमीका सुमिरन दीजे । बंदी छोर ताहि किमि कीजे ॥
औ पुनि ताहि देव जप माला । आवहिं लोकसो भौनहि डाला ॥
निश्चय कहो पंथ कर भाऊ । दुविधा भाव लरो मत काऊ ॥
कहो पंथ जो पाँजी वाका । धरती शीश स्वर्ग का नाका ॥

साखी-यहि विधि राह चलावहु, सुनहू हो धर्मदास ॥
जीव छुड़ाओ काल सो, सत्त शब्द परकाश ॥

धर्मदास वचन-चौपाई

हे प्रभु मैं कहत डराऊँ । कहों सो एक वस्तु जो पाऊँ ॥
जो नहिं पावहि एती साजा । तासों किमि डरि है यमराजा ॥

कबीर वचन

साठ समय बारह चौपाई । एही तत्व हंस घर जाई ॥
पांच अमी महँ एकौ पावै । है परमान सो लोग सिधावै ॥
अथवा जो एकौ नहिं पावै । चार करी तत्त्वन मन लावै ॥
चार करी बूझे मन लाई । यमराजा तेहि देख डराई ॥
अदेख देख तत्त्व मन धरयी । बोलता ब्रह्म सो परिचय करई ॥
इनकी देख नाम लौ लावै । डोर गहै सत्य लोक सिधावै ॥

धर्मदास वचन

हे प्रभु जो इतना नहिं जानै । सो जिव कहा करै विश्रामै ॥
नामहि पाइ तत्त्व मन धरई । दुबिधा भाव कबहुँ नहिं करई ॥
निर्गुण नाम रहै लव लाई । ताके निकट काल नहिं जाई ॥

साखी-खोजकर सत शब्द का, गहै तत्व मत धीर ॥
निश्चय लोक सिधाइ है, अस कथ कहैं कबीर ॥

धर्मदासवचन—चौपाई

हे प्रभु जा पर दाया होई । पावै वस्तु सार पुनि सोई ॥
अथवा जो ऐती नहिं पावै । हे प्रभु तो कैसी बनि आवै ॥

साहब कबीर वचन

पावै सार जान निज बीरा । निश दिन सुमिरै धन्य कबीरा ॥
जहाँ सुने सतगुरु को नामा । सुने भक्ति छांड़ै सब कामा ॥
सुने जो भक्ति तत्त्व मन लावै । देह छोड़ि सत लोक सिधावै ॥

धर्मदास वचन

हे प्रभु जो इतना नहिं राता । तासौं कैसी कहिये बाता ॥
माया जीव अधिक लपटाना । तातें प्रभु पूछौं इठ ग्याना ॥

साहिब कबीर वचन

धर्मदास मोहि यहि भावै । करही जाप धनी जो पावै ॥
आवे मल्ल तब करैं लड़ाई । जाने दाव घात चतुराई ॥
तबही बने कृषी को साजा । कोठी बीज खेत उप राजा ॥

साखी-शूरा बैर भल खोजिये, बीज धरहि को सार ॥
ल्याया बीज न बोइये, ऐसा मता हमार ॥

चौपाई

बिना नाम बहु तन डहकाया । फिर फिर भौजल भटका खाया ॥
जुग जुग जन्म बहुरि भव लीन्हा । होई हित नहिं नाम विहूना ॥
नाम पाय जो तत्त्व न धरई । ते पुनि जन्मै गुरु क्या करई ॥
तत्त्व प्रमाण यही धरमदासा । तातैं मिटै कालकी फाँसा ॥

धर्मदास वचन

बालक कहा तत्त्व को जानैं । मुक्त होय तेहि कौन प्रमानै ॥

साहिब कबीर वचन

बालक नाम कौ दीजै बीरा । पहुँचे लोक जब तजै शरीरा ॥
त्रिया कह सनेह है सारा । उपजै भाव होय जम न्यारा ॥
जातैं नर अचेत अज्ञाना । तातैं तत्त्व नाम परमाना ॥
तत्त्व है मूल और सब साखा । ताकौ नाम जोग मय भाखा ॥
जो नर तत्त्व न राखे ज्ञाना । ताकौ ज्ञान बालक सब जाना ॥
पावै आदि अंत निज बीरा । पुरुष रच्यो सुख सागर तीरा ॥
छठै मास बीरा निज पावै । है प्रमान सो लोक सिधावै ॥

साखी–तत्त्व मुक्ति है निश्चय, औ बीरा निज सार ॥
माया लीन्ह नर प्राणी, भूल परा संसार ॥

धर्मदास वचन–चौपाई

निसिदिन रह माया लपटाना । सो प्रभु कैसे होय निर्वाना ॥

साहिब कबीर वचन

निस दिन रहै माया बिस्तारा । पलकौ भज तो उतरै पारा ॥
पलकौ नाम चित्त ना धरई । ते पुनि जन्मैं गुरु क्या करई ॥
कर्म निवारन जेहिते होई । परिचय सहज तत्त्व है सोई ॥

धर्मदास वचन

सो मोहि स्वामी प्रगट बताऊ । केहि विधि जोग कर्म समझाऊ ॥

साहिब कबीर वचन

प्रथम सत्य आसन आराधै । निवरी कर्म जो या विधि साधै ॥
काम मारिये अल्प अहारा । जहाँ काम तेहि जोग बिकारा ॥
कोइ कछु कहै हृदय नहिं धरई । निन्दा बिन्दा सब परिहरई ॥
तजै देह जिमि कांचरि सांपा । आलस निद्रा सहज निदापा ॥
दृष्टि न जावै भल औ मंदा । मनहि न आनै संसो नंदा ॥
धोती बस्ती नेती करई । जिमि कामिन सो ग्रहैं बहरई ॥

तिनका खेह मंदिर में होई। करई दूर भामिनी सोई ॥
या विधि काया संयम राधै। बांधै मूल अरु नाको साधै ॥

छंद–मूल बांधे नाम साधै काया संयम जानिकै।
मन पवन दोई तुरी साजे युक्ति जीव बनायकै ॥
देह ताडना चित्त कौ तुबक सर छाड़े आस हो।
तेही आस चढ़ टोरै ममासा जीवहोय निकास हो॥

सोरठा–ऐसी बाजी होई, मनके संग दौराइये।
मन शूरा पुनि सो, कष्ट परे पुनि ना टरै ॥

चौपाई

परे कष्ट तब तोरिगे वासा। राखै खड्ग नाम को पासा ॥
नाम अस्त्र ते दूत डराई। भागे अरि शूरा जिमि पाई ॥
अरि के भाजें होय हुलासा। दुविधा मिटै कमल परगासा ॥
अष्ट कमल देखै पुनि सोई। मानौ रंक महा धन होई ॥
देखै ब्रह्म जहाँ अस्थाना। भय भाजें तब हो निर्वाना ॥

अष्टकमल वर्णन

अष्ट कमल तोहि भेद बताऊँ। अजपा सोहं प्रगट बुझाऊँ ॥
मूल कमल दल चार ठिकाना।देव गणेश तहां कीन्ह पयाना॥
ऋद्धि सिद्धि बासा तहँ होई। छे सौ जप अजपा तहँ सोई ॥
द्वितीय कमल षटदल परमाना। तहँ कमलन कर आहि ठिकाना॥
सावित्री ब्रह्मा है जँहवां। षट सहस्र जाप है तहँवां ॥

छन्द–त्रय कमल दल अष्ट है हरि लक्ष्मी तिहि संग मौं।
षट सहस्र जहँ होई अजपा निरखि देखो अंग मौं ॥
कमल चौथा द्वादश दल शिव को तहां निवासु हो।
सुरति नरति करि लोक पहुँचैषट सहस्र जहांजासु हो॥

सोरठा-पचयें कमल प्रकाश, तिहिं षोडश दल अहै ॥
आतम जीव निवास, कइ सहस्र अजपा कह्यो ॥

चौपाई

छठवां कमल अहै दल तीनी । सरस्वती तहँ वासा कीनी ॥
दोसौ एक अजपा जहँ होई । बूझे भेद सो बिरला कोई ॥
भौर गुफा दो जल परवाना । सातों कमलको आहि ठिकाना॥
एक सहस्र अजपा परकाशा । तहां बोलता ब्रह्म को वासा ॥
तहां जोग साधे बहु जोगी । इंगला पिंगला सुखमनि भोगी॥
तहां देख असंख्य जो फूला । ब्रह्म थाप काया में भूला ॥
सात कमल जाने सब कोई । अष्टम कमल बिनु मुक्ति न होई ॥
बिनु सतगुरु को भेद बतावै । नाम प्रताप जोग हि आवै ॥
काया तें जो बाहिर होई । भाग जीव पावै पुनि सोई ॥

छन्द-बहु भांति मुनि ऋषि जोग ठान्यो भयो रहित नहिं लेस हो॥
काया थापी सुरति सों सब काग भये नहिं हंस हो ॥
पक्षी होई तब होइ महाबल नाम विना तो काग हो ॥
पक्षी त्यागी जो नाम साधे हंस होय बड़ भाग हो ॥

सोरठा-जोग तो आहि अपार, पक्षी भया पर नयन नहीं ॥
जोग नाम उजियार, नाम तेहि जो पावही ॥

चौपाई

पक्षी भाग नयन जिन पावै । ताके जहां तहां उड़ जावै ॥
देखे लोक जो गुरू बतावै । पक्षी नयन को यहै स्वभावै ॥
अथवा नाम नेक जो पावै । साधे तत्त्व जो लोक सिधावै ॥
नाम नयन पक्षी जो होई । तेहि समान दूसर नहिं कोई ॥
बाहिर को मैं कहब ठिकाना । सुरति कमल सतगुरु निरवाना॥

छः सौ एक एकसौ बीसा। अजपा ऊपर देखे ईसा ॥
सात दल कमल देव ऋषि माना। अष्ट कमल उनहूं नहिं जाना ॥

छन्द–यह भांति अजपा तत्त्वऽराधे बस करे पांचों भूत हो।
रुनक झुनक बाजे आदि अक्षर दिमंकर बाचे तार हो ॥
षट चक्र बांधे देह में तब जोग मुद्रा सार हो।
प्रेम को बाजै पखावज प्रति दिना ततकार हो ॥

सोरठा–आतम जीव जो जाय, मुक्ति मुक्ता संग में ॥
तिन सँग ब्रह्म समाय, जिमि जा सरिता सागरैं ॥

चौपाई

सरिता परै सिन्धु महँ जबहीं। दुबिधा भाव न उपजे कबहीं ॥
सरिता संग रहे यक नीरा। भिन्न भाव कथ कहैं कबीरा ॥
दक्षिण नयन जब नेह निहारी। ते समरै बहुतै अधिकारी ॥
चन्दन निकट वृक्ष जो होई। भेद सुबास प्रबल है सोई ॥
संगति का फल ऐसा होई। यह तो भेद जाने जन कोई ॥
चन्दन नाम सुमेर है जोगा। इतनी प्रगट करै जो भोगा ॥
आतम जीव भेद पुनि होई। चन्दन बेल कहै सब कोई ॥
चन्दन कष्ट सब कोई जाना। यहै भेद बिरले पहिचाना ॥

छन्द–जोग सम कछु भोग नाहीं देखु हृदय विचारि कै।
पांच को बस करो आपने बसै पांच सम्हारि कै ॥
तीन गुण औ नाम चौथा बहुरि इनहि सम्हारिये।
तब जीतिये निष्कंटका हो प्रति योग यहि विधि साधिये ॥

सोरठा–मेटें जम को दंड, मुक्ति होय तेहि अटल पुन ॥
विष को करे निकन्द, जोग होय जो नाम फल ॥

चौपाई

संशय मिटे जोग के धारे । मैं अपने मन कीन्ह विचारे ॥
संशय को खंडन है जोगा । ता सम आहि न दूसर भोगा ॥
जीव को काज जाहितें होई । सोई जतन करो सब कोई ॥
अथवा देह जोग कोई न साधे । तो अब सहज जोग अवराधे ॥
ता में मिल जो यह निस रहई । दुबिधा भाव कबहुँ नहिं करई ॥

साखी-पांच तत्त्व गुण तीन हैं, और प्रकृति पचीस ॥
चौंतीस ऊपर डेरा करई, नाम तत्त्व इक्कीस ॥

चौपाई

चौंतीस ऊपर डेरा करई । नाम तत्त्व पलक नहिं टरई ॥
ये सब एक नखा मैं राखै । गुरू प्रसाद अमीरस चाखै ॥
सत गुरु दया सम्पुट उघराई । शून्य शहर में बैठे जाई ॥
देखे बोलता ब्रह्म तेहि ठाई । करें हर्ष घर्ष सी जाई ॥
ब्रह्म देखि त्रिकुटी मैं मुक्ता । जीव सीव होय इक जुगता ॥
जीव सीव एकै लख जाना । देह जीव तब देख पयाना ॥
शब्द प्रतीत देख सत लोका । गुरु की दया मिटे सब धोखा ॥
अगम अलख सो गुरु समझावे । सुरती निरति से दर्शन पावे ॥
गुरु की दया गम्य जो होई । निश्चय दर्शन पावे सोई ॥
एक बार जो दर्शन पावै । देखै बहुरि विलम्ब न लावै ॥
एकै सुरति निरति जो धारै । सुरति सनेही दीप निहारै ॥
यह निस तत्त्व मता जो धारै । गुरु प्रताप सों लोक सिधारै ॥
जाते सहज योग नहिं होई । तातैं आरति साधे लोई ॥
जो मनसा मारे नहिं कोई । तो पुन दासी कर निज सोई ॥
जो कोइ काछे सन्त का भेखा । तासों कहिये जोग का लेखा ॥

साखी-गेही लीन्हें आरती, संत सोई सो भोग ॥
इडा पिंगला साधिके, सुषमनि राधे जोग ॥

चौपाई

जैसे ग्रेही के मन नेहा। तैसे साधे जोग सनेहा ॥
आसन दृढ पर नारि न जावै। ग्रेही रहै न भेष बनावै ॥
देखी देखा भेष बनावै। राध जोग तो शोभा पावै ॥
भेषै धरै सूरता चाही। कादर भेष की हांसी आही ॥
जाते मन सूरमा नहिं होई। तातैं ग्रेही थाप्यो सोई ॥
ग्रेही में छल मता अपारा। तातें सत्य भक्ति चित धारा ॥
करे जो सेवा सन्त की सोई। आरत भक्त महा फल होई ॥
धन्य सन्त जो आरति साजा। काल जंजाल तेहि घर तैं भाजा॥
आरति समान भक्ति नहीं दूजा। सब ते भली सन्त की पूजा ॥
चरणामृत तासु को लेईं। सुरति निरति चरणन चित देई॥

साखी-सन्त आरती जोग मन, करहि गगनमें बास ॥
ग्रेही जोग न जानहीं, कर आरति परकाश ॥

चौपाई

विना जोग मैं होय उबारा। कै नेवर कै दीपक बारा ॥
तातैं सहज जोग मैं भाखा। शिरनि पान महातम राखा ॥
आरति तो नानाविधि साजे। पान मिष्टान्न भक्त भय भाजे ॥
जो कछु आहि जोगकर भाऊ। सब भाखौ आरति पर भाऊ ॥
वह देही यह ग्रेही व्यवहारै। काया संजम दै अनुसारै ॥
निशिदिन सुरति निरति बिचारा। तातें मंदिर सेत सम्हारा ॥
पांचो तत्त्व तीन गुण साधे। तातें मन बिच आरति राधे ॥
इंगला पिंगला सुषमनि वासा। मन बिच कर्म आरत परकाशा ॥
बांधे मूल नाम को साधे। दुबिधा मिटै एक अवराधै ॥
एक घरै कर प्रकृति पचीसा। सोई पुरुष आरति मैं दीसा ॥

साखी-उलट पवन जब आवै, त्रिकुटी भेंट जो होय ॥
गुरु की दाया प्रकट हो, संपुट उघरै सोय ॥

चौपाई

उघरै संपुट गुरु की दाया । नरिअर को देखै परभाया ॥
तत्त मूल नरिअर मो जाना । ज्ञानवंत भजि हो निर्वाना ॥
अनहद बाजै त्रिकुटी ताला । तातें भक्ति जो होय रिशाला ॥
बिन करताल पखावज बाजे । अनहद धुन निस दिन तहँ गाजे ॥
अष्ट दल कमल फूल जो फूला । तातें सुमिरन किये समतूला ॥
सुन अति जोग छतीसौं रागा । तातें भांति भांति पद जागा ॥
जोग करत में देह बिसारै । या संसार में काज सम्हारै ॥
जोग समाधि छूटत नहिं देखा । आरत से मिटै कर्म विशेषा ॥
प्रतिदिन जो समाधि मन लावै । तातें सदा आरति गावै ॥
जोग हीन तत्त नहिं लहई । तातें पान पढोता चहई ॥
देखो मन बहुरंग अपारा । तातें पुहुप सेत विस्तारा ॥
देह समाधि गंध बहु होई । साधै अग्र प्रबल है सोई ॥
चौका सेत हंस भल छाजै । सेत सिंहासन छत्र बिराजै ॥

साखी–परचै मैं मन बांधै, करे जोग मन बास ॥
संतन आरत जोग मन, दीपक करे प्रकाश ॥

चौपाई

मन औ पवन आहिं दो धारा । तातें पवन अनिल घृत जारा ॥
जोग जुगत बिन संग न होई । पालै पवन पाहन है सोई ॥
गगन बाव गरजै जो जाई । दीप शिखर द्वारै ठहराई ॥
ल्यावै जोग अमीरस चाखा । तातें महाप्रसाद जो भाखा ॥
धन्य अंकूर जीव है सोई । परिचय जोग करै तन जोई ॥
जोग न होय आरती करई । सोई जीव भवसागर तरई ॥
मूल नाम और सब शाखा । पुहुप जोग महातम राखा ॥
जोगी दृष्टि भाव बहु करई । घट घटमें सुमिरन अनुसरई ॥

मूल नाम मुक्ति फल जोगा । ताते नरिअर मिष्टानका भोगा ॥
देह बिसार जोग फल चाखा । मन वच कर्म नरिअर सत भाखा ॥
उज्ज्वल मंदिर सेत सम्हारा । तेहि रूप साज्यो पनवारा ॥
मुक्ति पदारथ अबेधा हीरा । तेहि पाये कोई गहिर गंभीरा ॥
चंदन काष्ठ सिंहासन चाही । सुमिरण नाम इकोतर आही ॥

साखी-उत्तम पान बडो ना, टूटा भंग न होय ॥
नरिअर चहिये निर्मल, महा मुक्ति फल होय ॥

चौपाई

और कछू बात संपत्ति आही । काचा जीव सुन बिचलेताही ॥
ताते सहज बताओ भाऊ । परचै जीवको परम स्वभाऊ ॥
अथवा जो इतना नहिं होई । सहज आरती थापो सोई ॥
सवा सेर आनो मिष्टाना । सत्त सवासो आनो पाना ॥
प्रति पूनौं जो आरति करई । सोई जीव भवसागर तरई ॥

धर्मदास वचन

हे प्रभु पूनों कह अधिकारा । दया करौ दुख भंजन हारा ॥

साहिब कबीर वचन

तुम कह दीन्ह यही दिन पाना । तासौं पूनौं आरति ठाना ॥
अथवा सबई अर्थ नहिं जाना । दोई आरति थाप प्रमाना ॥
छठे मास साजौ निज बीरा । तातें दोई आरती मत धीरा ॥

साखी-जोग आरती फल बड़ा, सत्त बचन परकाश ॥
दुबिधा मेटो निश्चय, सत्तलोक होय वास ॥

चौपाई

सत्तभाव देखहु मति धीरा । लगन साखि देऊ निज बीरा ॥
बिना लगन करो मत शिक्षा । जोती खेती जो भल दिक्षा ॥
ऊसरु बीज डारही कोई । निःफल खेती किसान की होई ॥

ऊसर बीज का ऐसा भाऊ। बोवहि बीज अवृथा जाऊ ॥
काचे जीवकहँ सुमिरत देई। परिचय जीव तात गहि लेई ॥
ता कहँ कैसी करहि जमराजा। देइ धरै तो गुरु कहँ लाजा ॥
बिना लगन मगन भयो जानी। ऐसो अहै शिष्य सहिदानी ॥
पूरा जब शिष्य जो होई। गुरु देव भेद बतावै सोई ॥
अथवा जो गुरु अन्तर राख्यौ। गुरुमें धोख सन्त में भाखौ ॥
लीक करी औ पंथ बतावै। शोभा अधिक गुरू सों पावै ॥
जस बाना तस होवै करनी। ता गुरु सम औरन बरनी ॥
सदा लीन नाम जो भाखै। पांच आत्मा अनुरुचि राखै ॥
पांचमें करे पच्चीसों नारी। ते बस किये जोग अधिकारी ॥
मरत तजो जस कांचरी सांपा। तातें सब को मेटव दापा ॥
करो शिष्य जो यहि विधि कोई। पुरइन पान रहैं जनु सोई ॥

साखी-जो ऐसी बनि आवै, और बान हैं सार ॥
तातें ग्रेही थापो, कडिहारी संसार ॥

गुरुवाके लक्षण चौपाई

आप स्वारथी भेष बनावै। मन की दशा ताहि चित लावै॥
तृष्णा जुक्त करे गुरुवाई। जम सों बाचै कौन उपाई ॥
निश्चय मानो शब्द हमारा। पर द्रोही कैसा कडिहारा ॥
आप अबूझ औरन समझावै। साखी रमैनी झगरो लावै ॥
जातें साधु सेवा नहिं आवै। तृष्णा कारण भेष बनावै ॥
सिंह न चाहै स्वान सियारा। पैरच बिना कैसे कडिहारा ॥
पर नारी औ मन्मथ कर्मा। यह तो भेद काल को मर्मा ॥
मारहि मनसा होइ सो होई। नातर नारि करे पुनि लोई ॥
ग्रेही माहि भक्ति को भेवा। नाम जपै औ साधू सेवा ॥
जोपै सहज भाव कडिहारा। शिष्य कियेका क्या अधिकारा॥

ग्रेही माहि मुक्त फल बासा । सो सब वचन कहौं परकाशा ॥
नाम गहै राखै सत करमा । सब जीव तजै एक पुनि भरमा ॥

साखी-मद रु मांस को त्यागै, और न करै जीव घात ॥
अथवा जो कछु चूकि ह्वै, साधु सेव चित राख ॥

चौपाई

करे आरती मन बिच करमा । पर घर तजै जान निज भरमा॥
गृह में जो रहे उदासा । निश्चय सत्त लोक में वासा ॥
जो कोइ यहै अवज्ञा करई । कछु दिन रूपहीन अनुसरई ॥
जो को चूके साधु की सेवा । ताकर फल भाखों कछु भेवा ॥
जाई सो लोक नाम परतापा । तजै देह जिमि कांचरी सांपा॥
देखै जाइ हंसन की पांती । ता मध्ये अस बैठ अजाती ॥
जातें चूक परैं सेवकाई । तातें शोभा हीन लजाई ॥
जो कोइ याकी करे उछेदा । तातें मैं समझाऊं भेदा ॥
गृही तरै सो कौन विशेखा । गुरु को अचरज यौं बड़ देखा॥
गुरू नहीं कोइ यहि भवसागर । सतगुरु आप अजर मनि आगर॥
जाप आहि जो नाम हमारा । तातें नाम धरा कडिहारा ॥
कडिहार लेवै जीवका भारा । तेहि न सूझ किमि उतरै पारा॥

साखी-जैसे महिमा प्रकट है, तैसे सिन्धु का नीर ॥
सरिता सब कडिहार भये, सतगुरु सिन्धु कबीर॥

चौपाई

सरिता माहि बारि जो होई । जीव जन्तु सुख पावै सोई ॥
सरिता लहै पुण्य परमारथ । सत कडिहारी जोग स्वारथ ॥
अथवा नीर अथाह न होई । सहज जोग भाखौं पुनि सोई ॥
नदी में सोइ सदा जो बारी । ऐसी उत्पति आहि हमारी ॥
प्यासा जाय नदी के पासा । बिन पानी सो जाय पियासा॥

प्यासा पानी नदी न पावै। जहँ पानी तहँ तृषा बुझावै ॥
इक जीव ग्रेही आप उबारा। बार नदी नहिं सत कडिहारा ॥
बांधे अस्त्र करे शुग्माई। तिन के त्रास सौं दुर्जन डराई ॥
काछे रहै शूर का साजा। आयो समय कादर हो भाजा ॥
यहि विश्वास रहै जो कोई। स्वारथ पिंड परै जन सोई ॥
परै पिंड तव होवै हांसी। दै विश्वास जीव जो फांसी ॥
चतुरा पहिले करै उपाई। द्रव्य न मिले अनते नहिं जाई ॥
धन मिले का यही उपाई। ग्रेही भाव रचो जो भाई ॥
क्षुधावंत जाके गृह आवै। भले बुरेके असन न जावै ॥
क्षुधावंत जो करही ग्रासा। सन्तुष्ट होय तुरते हो पासा ॥
औ जहां देखे सत्त का वाना। ता कहँ बहुत करे सन्माना ॥
करै साधु सेवा मनराता। ता कहँ मैं बर्णों विख्याता ॥
जस जासूस द्रव्य नहिं पावै। ताके नग्र सैंध दै आवै ॥
चतुरा करै तासु सन्माना। जो पुन ताको करे बखना ॥
ताके पुर का मता बतावै। विवेककी महिमा दरसावै ॥
ताके गेह दरब न चलै जबही। ताकी महिमा दूत करे तबही ॥
बहुविधि महिमा करे जमदूता। तासौं कोई न करे अजगूता ॥
भाजै कादर नगर बधाई। ताके निकट जान नहिं पाई ॥
धन्य सोई जो गेही करई। भल मन्दा को उदर भरई ॥
ता कहँ होई पुन्य परमारथ। नाम गहै जन्मैं होय स्वारथ ॥
कडिहार सोइ जो शूरा होई। भाखों ताहि आपसम सोई ॥

साखी–कडिहारा औ गृही को, कोई न जाने अन्त ॥
बिन परचै विसमाद है, हरषत परचै सन्त ॥

चौपाई

भाषो संयम सत के राऊ। अस गेही जो करै उपाऊ ॥
प्रात नेम जो करै अस्नाना। प्रथम प्रफुल्लित कमल बिगसाना ॥

मद रु मांस कहँ त्यागै दोऊ । मिथ्या जीव घात पुनि सोऊ॥
सत आमन पर निद्रा त्यागी । भली बुरी सैं रहत बिरागी ॥
जाइ जहाँ बर जहँ हितकारी । ऊचट न परई अन्तर भारी ॥
क्षुधावन्त हित कारी होई । अति प्रिय जानसमोवहि सोई॥
यहि सम दूसर व्रत नहिं जाना । ते जन पूनौं आरत ठाना ॥
कहौं जान दासा तन जोई । भागी जीव पावहि निज सोई॥
शिष्य होय जो तन मन वारै । गुरु आज्ञा कबहूं नहिं टारै ॥
गुरु दै शब्द मुक्ति जे होई । तेहि समान दूसर नहिं कोई ॥

साखी-तन मन गुरु को दीजिये, मुक्ति पदारथ जान ॥
गुरु की सेवा मुक्ति फल, यह गेही सहिदान ॥

गुरु लक्षण-चौपाई

गुरु सोई जो सब ते न्यारा । सो सब मैं भाखौं उपचारा ॥
जल तैं पुरइन का है मूला । पानी पत्र न लागै फूला ॥
जातें देह धरा कडिहारा । तातें चहिये सब उपचारा ॥
जेसे मूल पुरइन को पानी । ऐसेहि दुनियां की सहिदानी ॥
काया धरे सब न कडिहारा । पुरइन भेद तें उतरे पारा ॥
केतो शिष्य करे सनमाना । ते पानी पुरइन सम जाना ॥
इतना सुनै रहै लपटाई । तो वह जग समान है भाई ॥
पुरइन मुक्ति लोक में बासा । गुरु बिन परहि कालकी फांसा ॥
काल बस जीव नहिं तरई । तेहि विश्वास जन्म सोइ धरई॥
कहा सन्त सबहि में भेदा । आप स्वारथी करहिं उच्छेदा॥

साखी-नहीं सहज सत गुरु वचन, करम कुटिलता ठान ॥
चले लोक गति नरकहूँ, सरिता सिंधु समान ॥

लोक गर्व गति राखै भाऊ । ताको देख मास पुनि खाऊ ॥
बहुत यत्न मैं भाव बताया । जो नहिं बूझ अन्त पछिताया॥

धर्मदास वचन

हे स्वामी तुम सुनो सत भाऊ। जो पूछौं सो मोहि बताऊ ॥
जब तन तजे बोलता ब्रह्मा। किहि विधि जाइ कहो सो मर्मा॥
सो मोहि स्वामी भेद बताऊ। धर्मदास टेके गहि पाऊ ॥

साहिब कबीर-वचन

आवै अंत होय नर जबही। अंतक आनै पठवै तबही ॥
जो जीव नाम तत्त्व मन लावै। ताको अंतक दूत नहिं पावै ॥
नौ द्वारा लग छेकै जाई। दशवों द्वार अब देउ बताई ॥
दसों द्वारन केते न्यारा। भौंर गुफा में सो है तारा ॥
गुरू प्रताप पंथ तेहि जायी। आदि पवन तेहि होत सहायी॥
अरध उरध में पवन का वासा। मूल पवन प्रथम जो भाषा ॥
तेहि पर हंस होय असवारा। पचासी पवन का जो सिरदारा॥
तिहिं चढ हंसा घरको जाई। मान सरोवर जा ठहराई ॥
अंतक दूत करै पछताई। सो सब भेद कहौं समुझाई ॥
भक्षै यहि कारण यम राया। तबहि जीव तोहि समझाया ॥

साखी-काल फांस जेहि बांधै, जो नहिं राधै नाम ॥
तत्त्व हीन जीव व्याकुल, अंतक राखै ग्राम ॥

चौपाई

जो कछु पहिले भेद बताया। सो नहिं करै हतै यमराया ॥
छठैं मास बीरा निज होई। सो नहिं होइ करो क्या कोई ॥
किंचित् तत्त्व भाव विधि धारै। गुरु प्रताप ते लोक सिधारै ॥
लोक निकट अंतक जो जाई। होय बलहीन चक्षु ही नाई ॥
तहँवां आहि पंथ का फेरा। एक हमारे इक यमकेरा ॥
गुरु जो प्रथमहिं भेद बतावै। निज घर बैठ हंस सो आवै ॥
आवै शीश ऊपर दै पाऊ। जाय तहां सो कहौं प्रभाऊ ॥
यहि विधि हारै यम को दूता। पाँजी रोकै धर्म अवधूता ॥

प्रथमहि मान सरोवर जाई । जहवाँ कामिनि राज बनाई ॥
शोभा हीन हिरंमर वारा । तातें अटकै हंस पियारा ॥
हंस द्वीप में पहुँचै जाई । शोभा हीन सो बहुत लजाई ॥

साखी–ते पुनि करै अधीनता, हंस सुजन जन पास ॥
कहा अपराध गुसांई, रूप न होय प्रकाश ॥

चौपाई

जब लग मूल दरश नहिं पावै । शोभा तब लग नाहीं आवै ॥
जब लग शोक भगै नहिं भाई । शोभा तब लग नाहीं आई ॥
एक हंस नहिं शोक भराई । जा नहिं जीव इकोतर जाई ॥
पावै सार जान निज बीरा । पलकहि शोक मरै पुन धीरा ॥
प्रथमहि हेत द्वीप पर जाई । शोभा अधिक तहां पुन पाई ॥
शोभा तस षोडश जस भाना । रवितैं क्षीन हो सलिल समाना ॥
यहवां सूरज कांति प्रकाशा । वहवां जोती स्थिर निवासा ॥
ग्रासै सूरज शशि निम्पाई । वहां न सतावै काल अन्याई ॥
जस कमोदिनि सम्पुट प्रभाऊ । तैसा वहां मैं युक्ति बनाऊ ॥

साखी–जस रविके परभावते, कमोदिनि सम्पुट लाग ॥
ऐसे रवि है निर्मल, पावत तनही जाग ॥

रविके उदय जस मिले चकेवा । हंसा हंस मिलै जस भेवा ॥
रैन तज तब देही त्यागा । पहुँचे लोक हंस मिल जागा ॥
मिल जस चकई चकवा कम्ही । हंसा हंस भाव तस धरही ॥
रविके उदय कमल जस फूला । हंस कमल सूरज रवि तूला ॥
रविके उदय तिमिर जस भागा । हर्षहि धर्म हंस मन जागा ॥
सरल गरल तें अन्तर जानी । धर्मराय अपने मन आनी ॥
काया शोभा उडुगन बांती । अस बूझे चिकुरन की क्रांती ॥
सो पुनि चिकुर आहि उजियारा । अस शोभा है हंस पियारा ॥
रजनी मुदित दिवस जो भएऊ । ज्योति अटल तस हंसा गएऊ ॥

साखी–नयन दोई भल छाजै, मानौ शशिकी ज्योति ॥
शशि स्वभाव सो देखिये, ऐसी शोभा होति ॥

चौपाई

वरण तासु चक्षू शोभाई । फूटी चंद दो दिशा समाई ॥
नयन दामिनी होत झलहाला । पाछे नहिं अनिल उजियाला ॥
बादल घन विज्जुली चमकाई । शोभा मानों तेज लजाई ॥
श्रवण सोहैं मनो रवि के चाका । शोभा अधिक सु जाऊ थाका ॥
शोभा कण्ठ जैसे गिरि देवा । नाक कीन्ह सिष्ट जनु देवा ॥
शोभित कहे मिरनाल सरोजा । मुखजो कमल मिरनार कुरोजा ॥
है मिरनाल जनु सेतहि भाऊ । वदन प्रकाश शोभा बहु पाऊ ॥
विगसत कमल उदित जिमि तरणी । हंस पदम दीपक जस बरणी ॥
काया तासू कदली नेहा । रोम रोम मुक्ता को रेहा ॥

धर्मदास वचन

हे स्वामी मैं पूछौं भाऊ । जो पूछौं सो मोहि बताऊ ॥
अन बेधा जस देखियत हीरा । रोमत होवे हंस शरीरा ॥

साहिब कबीर वचन

साखी–जँघ पिंडुरी पग अँगुष्ठा, शोभा अधिक अपार ॥
शब्द रूप कारीगर, रवि शशि अनि जन ढार ॥

चौपाई

नख शोभा किमि करौं बखाना । जातैं हंसन कौ उतपाना ॥
नख न होय जैसे नख हीरा । अंगुरी बाद बरन चँद चीरा ॥
हथली सोहै मनु पूरण चंदा । अँगुरिन पांति शोभा अरबिंदा ॥
जस क्रांती शोभा बहु भांती । छाजै तहाँ नखन की पांती ॥
एही सबै है रूप पर भाऊ । सब उजियार पुरुष से आऊ ॥
सो सब शोभा भाव बताऊ । अगम उपेक्षा सबहि बताऊ ॥
जातै भयो मानो अधिकारा । तातैं कहौं रूप व्यवहारा ॥
जस अकाश महँ ऊगहि सूरा । हो उजियारा सो तिनहू पूरा ॥

पाइर द्वीप होई बड़ चोखा। परमारथ सो करत बड़ तोषा ॥
रविगण पुरुष लगन जो लोका। उड़ गये हंस मिटा सब धोखा ॥
दीप सार औ करी सम्हारी। तेज वरना चन्दा अधिकारी ॥

साखी-तीनौं पुर उजियार भयो, ऊगे भानु अकाश ॥
तैसे पुर की ज्योति में, हंस जो करे प्रकाश ॥

चौपाई

एक सूर्य का किंचित भाऊ। जाग उपेक्षा भाव बताऊ ॥
हंस सुजन हंस के राजा। पल पल हंस दंडवत छाजा ॥
एतिक हेत द्वीप उजियारा। बैठे सब जहँ हंस पियारा ॥
ते पुन हंस दंडवत करही। क्षणक्षण माथ चरनतर धरही ॥

धर्मदास वचन

हे प्रभु हेत द्वीप सुख पाया। अग्र द्वीप ताहि करी दाया ॥

साहिब कबीर वचन

हंस सुसज्जन दंडवत् काहीं। पुरुषसौं फिर विनती अनुसरहीं॥
जोग सन्तायन हंस ले आवहु। हेत द्वीप तिन को बैठावहु ॥
देखा चाहे चरण जौ द्वीपा। मंजुल मंगल करी समीपा ॥
आज्ञा पाय चले हैं हंसा। चरणा द्वीप पहुँचे निःशंसा ॥
अभय पक्ष हंस तहँ आवहि। जोग संतायन भाव बतावहि ॥
जिहितें आहि आदि परवाना। पावे हंस तब करहि पयाना ॥
हंस राज तब मौन होय जाई। आवे हंस बहुत तेहि ठाई ॥

साखी-सहस्र अठासी पालंग, और सहस से तीन ॥
इतने हंस तब आवैं, यह अस्थिर कहँ चीन्ह ॥
पहिले बन्दौं गुरु चरण, सुरति संतायन योग ॥
बन्दौं हंस सुजन जन, तिन प्रसाद यह भोग ॥

चौपाई

धन्य पुरुष जिन परिमल छाया। हंसन सुख बहुतै मन भाया ॥
तब हंसा बहुते हर्षाना। प्रथम हंस सुजन जन ज्ञाना ॥

सुरति सनेही गुरु की दाया । हंस सुख बहुते मन भाया ॥
पुहुप द्वीप ताको विस्तारा । चार करी केता उजियारा ॥
प्रथमहि महिमा जोत विस्तारा । बैठे जिन कहँ जोत अपारा ॥
नौसै संख औ तेरा करोरी । एतिक महिमा द्वीपहि केरी ॥
ता भीतर करी कस देखा । महिमा फल जस रवि को रेखा ॥
अस जनि जानो रवि को भाऊ । उतपक्षा सब भाव बताऊ ॥
अम्बू करी बहुते उजियारा । धन्य पुरुष जिन शब्द उचारा ॥

साखी–इतना भाव सुख उपजै, अम्बुकरी महँ जाय ॥
नाम तत्त्व जो राधे, सो अस्थिर बैठे आय ॥

चौपाई

शुभ करी किम करौं प्रवाना । जातें कूर्म्म काल उतपाना ॥
पक्षि पालना द्वीप बत्तीसा । तापर रूप सूर्य पच्चीसा ॥
इक दिन मनो सूर्य की पांती । दुबिधा भाव न रूप की क्रांती ॥
बरणों सूरज ज्योति अपारा । सोहै अटल रूप उजियारा ॥
औ सब शुभ्र करी को भाऊ । सब उजियार पुरुष से आऊ ॥
सिन्धू मध्य मेघ जस भरई । पुरुष शब्द ज्योति अनुसरई ॥
जस जीव रहै विषय की आशा । शब्द पुरुष सत करे निवासा ॥
प्रथम करी का मर्म न जाना । सो पुनि कैसे जाइ ठिकाना ॥
दूसर द्वीप मम महा सुरंगा । परम हंस बैठे तिन संगा ॥
तीसर द्वीप जोगा जहँ रहई । ताहि द्वीप का मरम ना लहई ॥
आदि द्वीप पुरुष अस्थाना । तहां हिरंमर सुख कर थाना ॥

साखी–पक्षि पालना द्वीप बड़, जामें ज्योति सुरंग ॥
नाम तत्त्व जो राधे, तो मेंटे दुख द्वन्द ॥

चौपाई

मूल द्वीप मूल नाम उचारा । तातें अग्र बीरा निज सारा ॥
मूल अग्र बीरा निज पावै । इकोतर सौ जीव लोक सिधावै ॥
शोक भरे काया नहिं छाजा । शोभा हीन हंस होय लाजा ॥

ते पुन करे बहुत पछितावा । सुजन हंस सौं बिन्ती लावा ॥
हंस सुजन जन कहैं अस बानी । शब्द हमार सुनों हो ज्ञानी ॥
जातें जीव काल बस रहई । पुरुष शब्द जो नाहीं गहई ॥
एक निमिष हंसा कर होई । पुरुष सेज तेहि होवै सोई ॥
सोई हंसा तन मन धरई । परम पुरुष सों परिचय करई ॥
परम द्वीप शोभा बहु होई । सब विस्तार कहौं अब सोई ॥
तहां बिराजे जस पुन कमला । उडुगन सूर सनेह जनु जवला ॥

साखी-रत्न पदारथ थाका, पदम अनूप सुरंग ॥
उदित अवास बहुरि जितै, बिगसत सूर औ चंद ॥

चौपाई

जग मग ज्योति हंस शिर सोहै । ललित मौन रतनन जनु मोहै ॥
हंस के सीस छत्र जो धारा । पुरुष बानी तैं होय उजियारा ॥
मिटै तिमिर उदय जनु भाना । हिरंमर भांति सब रूप प्रवाना ॥
सबै रूप जस भये चकेवा । हंसा हंस मिलै तस भेवा ॥
प्रथम हंस बैठे तहं रहई । सो पुनि भक्ति परम पद करई ॥
बहु दिन रहै नर्क की खानी । धन्य गुरू हंसा कियो पयानी ॥
बैठे हंस सबै इक पांती । मेटो दुख जब भये अजाती ॥
संशय सबै पिछली गएऊ । रंक महानिधि मानो लहेऊ ॥
पुहुप द्वीप महँ बैठे जाई । अमृत फलै जहां मिल पाई ॥
मंगल करी देख जब जाई । देखत शोभा बहुत लुभाई ॥
मेघ महल सो है ब्रह्लंडा । तहँ तस सँग रहै अरबिन्दा ॥
जहँ लग मेघ बुन्द ढरकाई । तैसे कमल तहाँ बिगसाई ॥

साखी-पुरुष आप जस स्वाती, भरै मेघ शब्द झनकार ॥
जल सब भरो जो पोखरी, सोभा भूमि निनार ॥

चौपाई

बुन्द निरंकार बरषावै । शून्य शिखर तब शोभा पावै ॥
करो स्वाति तहँ अमृत आही । प्रथम हंस देखै पुनि ताही ॥

तिन पुनि ध्यान पुरुषसौं धारा । बिगस्यो पुहुप बाणी उच्चारा ॥
फल अमृत तब टूटे चारी । तिहितें फल अनेक विस्तारी ॥
जेते हंस दर्शन को आये । एक एक सब हंसन पाये ॥
आज्ञा मांगि हंस सब पाया । तबते भई अमर की काया ॥
आस प्यास सब हंस अघाना । निर्वृति सुधा सो क्षुधा बुझाना ॥
निर्वृति करी किम करव बखाना । उदित भये जनु अगनित भाना ॥
पालंग कोटि तीन कौ फेरा । निवृति करी इतनौ बिस्तेरा ॥

साखी हंस आवै बहु व्याकुल, बहुत करै पछिताव ॥
दयावंत प्रभु महिमा, मृतक दरस दिखराव ॥

चौपाई

प्रगट रूप देख्या पुन कैसा । जल बिलग गगन तासु रवि जैसा ॥
हंस सबै तब दर्शन पावा । भया हरष मिटा पछितावा ॥
हंस सबै तब भये अधीना । उडुगन माही शशिको चीन्हा ॥
अस जिन जानेउ शशि का भाऊ । उत पक्षा सबइं भाव बताऊ ॥
चातक निस दिन बारि निहारै । पावै जल तब तृषा बिसारै ॥
पुरुष दर्श स्वाती कौ पानी । देखि रूप सो तृषा बुझानी ॥
पदमै संपुट लागा जबहीं । हंसा परम रूप भयो तबहीं ॥
निज अस्थाने हंस न तब जाहीं । हंस द्वीप तहवां ठहराहीं ॥
एकहि जात रूप सब माहीं । दुविधा भाव सो देखत नाहीं ॥
ता भीतर पुहुपन की सेजा । पंकज बीज आहि जनु लेजा ॥
अभै दीप ज्ञानी कौ वासा । तहँवां हंस करहिं सुख रासा ॥
पालंग तीन सोहै पुन द्वीपा । तहाँ पुरुष रहे अधर समीपा ॥
पुहुप द्वीप बिगसो पुनि गुंजा । गुंज मनौ शशि भानु अलुंजा ॥
भये पग स्थिर हंस सुखारी । पुहुप द्वीप सिरजै छत्रधारी ॥
हंसा तब पग अस्थिर आये । अमर चीर शोभा बहु पाये ॥
मान सरोवर बहु नौनाई । शोभा रूप राशि बहु ताई ॥

सुरति सागर डोर समोई । मुक्ति द्वार तहाँ सौं गोई ॥
सो द्वारा जो गुरू बतावै । मानसरोवर तैं चलि आवै ॥
तहाँ हंस शीलका थाना । माणिक मध्य दीप निर्वाना ॥
चौरासी लक्ष द्वीप को फेरा । आवे हंस तहँ कीन्हो डेरा ॥
तहाँ है पुनि कामिनि राजा । जग मग ज्योति तहाँ पुनि छाजा ॥
बरणो शीश रूप भल आही । चार भानु जानो तिहि पाही ॥

छन्द-शीश झलक बहु बरणा पांती रूप शोभा राशि हो ।
नौ लाख उडुगन पोह राखै भानु शसिको भासि हो ॥
जग मगा चीकुर अतिहि सोहै राजै जैसे पुर सही ।
अटल जेहि रूप बरनौ शशि बरणा काया कही ॥

सोरठा-शशि औ भानु निचोर, शोभा राखी शीश पर ॥
सेत वरणा अंजोर, मान सरोवर कामिनी ॥

चौपाई

भले नेत्र दरसन कस देखा । मानहु अर्कहिं सुठार बिशेखा ॥
शब्द कारीगर रूप चम कारा । शशि अनेक ताही जनु ढारा ॥
श्रवण गातु शोभा अधिकाई । जैसे छीर के काढ मलाई ॥
छीर भरो जनु शशि औ भाना । माखन रूप कामिनीं ठाना ॥
मौज अनेक ताके तन चीरा । लागे रवि शशि अगनित हीरा ॥
चमके रूप ज्योति बहु भाऊ । सब उजियार पुरुषसे आऊ ॥

साखी-शोभा बहुते कामिनी, नख शिख सुन्दर रूप ॥
बैठे माना भाव धरि, चन्द्रभानु बहु यूप ॥

चौपाई

सर शब्द पावै जो ताई । ताके बल हंसा घर जाई ॥
इतना रूप कामिनी अंगा । नहिं उपजै तहँ भाव अनंगा ॥
बैठे रहई हंस सुख पावई । दृष्टि भाव परम मन भावई ॥
ऐसी भक्ति नहिं महि माहीं । पटतर बनै देत नहिं ताहीं ॥
जस पाहन मंजुमें डारा । देखौ शोभा अगम अपारा ॥

महल पंच भूत तहँ नाहीं । हंसा बैठे सुख करे ताहीं ॥
अग्र रूचिर छत्र सिर छाजा । हंसा लहत बहुत सुख साजा ॥
जाय दिव्य तहँ करहिं निवासा । विमल अंग शोभा बहु पासा ॥
मिटै भ्रम तब परिचय पाई । जहां रहै तहवां ठकुराई ॥

साखी—करहीं हंस सुख अस्थिर, अम्बू करी अस्थान ॥
देखौ द्वीप सो पावन, कमल करी निर्बांन ॥

चौपाई

धन्य जीव पुरुष शव्द उचारा । जातै शोभा अगम अपारा ॥

धर्मदास वचन

हे प्रभु सुन्यो हंस कर भेऊ । जो कछु पूछौं सो कहि देऊ ॥
जो कछु होय आगे व्यवहारा । आगे होय सो कहौ विचारा ॥

साहेब कबीर वचन

सुनु धर्मदास मैं कहौं बुझाई । आगे जस करि है अन्याई ॥
वंश ब्यालीस अचल तुम्हारा । नाद बहुत है विंद बिचारा ॥
तेही पाछे चरित अस होई । कहौं प्रगट नहिं राखौं गोई ॥
अग्नि कौन अचिन्तपुर गाऊँ । तहां कौ वरणन तुमहि सुनाऊँ ॥
भ्रमत नयन विकट है काया । नाम चक्ररथी काल स्वभाया ॥
मानै जीव सो कहो विचारा । जस रविकोट है मृत्यु है सारा ॥
ताहि नग्र की राज कुवाँरी । सोभा चहै सहित जनु नारी ॥
ताकौ भेद मैं कहौं बुझाई । घर कुम्हार के जन्मे आई ॥
जनमत तात जननी कहँ खाई । दृष्टि परत इतन होइ जाई ॥
जस पावक महँ तृनै समाई । वहिनी खाय जो देखन आई ॥
अग्नि समान चक्ररथी भाई । तृण समान मलेछ अधिकाई ॥
बत्तिस अंगुल तासु शरीरा । कही अगम अस दास कबीरा ॥
श्रवण एक नौ अंगुल ताही । डेढ नाक दो जिभ्या जाही ॥
यही स्वरूप विश्व कहँ ढावै । तेहि अन्तर रानी चलि आवै ॥
रानी दृष्टि परे तेहि पाहीं । भाजे गज केहरि की छांहीं ॥

तैसई भाजै अंतक दूता । वंश तुम्हार थकै अजगूता ॥
मिटहि पंथ धर्मदास तुम्हारा । काल चरित्रै करै अपारा ॥

धर्मदास वचन

हे सतगुरु सो पुनि बतावहु । चक्ररथी को भाव बुझावहु ॥
जब दिखराय काल को भाऊ । धर्मदास मन त्रास जनाऊ ॥
साखी-बहुत त्रास जब कीन्हें, भये व्याकुल मति भंग ॥
चक्ररथी को भाव बतायो, कह्यो वचन परसंग ॥

साहिब कबीर वचन-चौपाई

अबही भाव दूर है ताही । जनि डरो त्रास वज्र जिव चाही ॥
दृढ़ता जान करौ गुरुवाई । जातैं जीव लोक कहँ जाई ॥
जीवको बन्ध छुड़ावहु यम ते । हंस मुक्तावहु नाम जतन ते ॥
साखी-नाम जतन जो करै, ताकर होइ न हानि ॥
ज्ञान सागर सुख आगर, कहे कबीर बखानि ॥

सत्य विचार-चौपाई

ज्ञान सागर ग्रन्थ को भाऊ । समझि बूझि के पारख लाऊ ॥
अनन्त प्रकार के शब्द पसारा । बिनु पारख नहीं होय उबारा ॥
शब्द परख की युगती आही । गुरु मुख कहा रमैनी माही ॥
रमैनी सताईस तेहिको जानू । बूझि विचारके हिरदय आनू ॥
पारख करनकी युक्ति जब जानो । सांच झूठ की परीक्षा आनो ॥
काल दयालको स्वरूप पिछानो । काल सन्धि झाई मन जानो ॥
सार शब्द का पाओ लेखो । उभय आनंद तबहीं तुम देखो ॥
करु पारख तब बन्धन छूटै । बिनु पारख जमै धरि कूटै ॥

इति श्रीज्ञानसागर समाप्त ॥

श्रीः

सत्य

# अनुरागसागर

( कबीरदर्शन ग्रन्थमालाकी द्वितीय मणिका

★

कबीराश्रमाचार्य स्वामी युगलानन्द-
बिहारी द्वारा संपादित

★

मुद्रक एवं प्रकाशकः
खेमराज श्रीकृष्णदास,™
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग, मुंबई - ४०० ००४.

संस्करण : फरवरी २०१९, संवत् २०७५

मूल्य : १३० रुपये मात्र ।



मुद्रक एवं प्रकाशक:
खेमराज श्रीकृष्णदास,™
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,
मुंबई - ४०० ००४.

Printers & Publishers :
Khemraj Shrikrishnadass Prop: Shri Venkateshwar Press, Khemraj Shrikrishnadass Marg, 7th Khetwadi, Mumbai - 400 004.

Web Site : http://www.Khe-shri.com
Email : khemraj@vsnl.com

Printed by Sanjay Bajaj For M/s.Khemraj Shrikrishnadass Proprietors Shri Venkateshwar Press, Mumbai-400 004, at their Shri Venkateshwar Press, 66 Hadapsar Industrial Estate, Pune 411 013

सत्यनाम



श्री कबीर साहिब



# प्रस्तावना

अनुरागसागर आजतक लखनऊ, पटना, काशी, नरसिंहपुर और बम्बई में भिन्न-भिन्न रूप से छप चुके हैं। जिनमें से अंतिम बार बम्बई में जो ग्रन्थ छपा है वह मेरे नाम से छापा गया है। क्योंकि वह ग्रन्थ मैंने ही 'श्रीवेंकटेश्वर प्रेसाध्यक्षको दिया था। यद्यपि इसके मुद्रणके आरंभमें मेरे पास इस ग्रन्थकी १३ हस्तलिखित प्रतियाँ उपस्थित थीं, तथापि प्रेसवालोंकी शीघ्रताके कारण उसे पूर्णरूपसे सब प्रतियों द्वारा शुद्ध करनेका अवसर नहीं मिल सका, इसलिये विशेष स्थानों पर अन्य ग्रन्थों के साथ मिलकर छपनेको दे दिया था। यही कारण है कि उसकी प्रस्तावना भी लिखी न जा सकी।

किन्तु उस समय भी उपर्युक्त १३ प्रतियोंको देखनेका अवसर मिलनेसे मुझे ज्ञान हो गया कि, उन तेरहों प्रतियोंमें परस्पर बहुतही विभिन्नता है। इससे किसी शुद्ध और पुरानीसे पुरानी प्रतिकी खोजमें मैं लग गया। जिसका परिणाम यह हुआ कि, छपी और हस्तलिखित सब मिलाकर इस समय ४६ प्रतियाँ मेरे पास उपस्थित हैं, जिनका ब्योरा इस प्रकार है :—

१ प्रति जो सबसे पुरानी है, प्रमोद गुरु बालापीरसाहबके समय की लिखी हुई जान पड़ती है, क्योंकि 'वंशावली लिखते हुए लिखनेवालेने वहीं तक वंशोंका नाम लिखा है और वह समय भी उन्हींका था।

२ प्रतियाँ-कमलनाम साहबके समयकी लिखी हैं, इसके अतिरिक्त ८ प्रतियाँ और भी सं. १८६० से लेकर १९३० तककी लिखी हुई मुझे अपने पिता श्रीजी के पुस्तकालयसे प्राप्त हुई थीं।

१ प्रति-अमोलनाम साहबके समय की लिखी है, जो गया जिलेके किसी सन्तकी लिखी हुई है।

१ प्रति-सुरतसनेही नाम साहबके समयकी लिखी है जो खास सिघौंडीमें बैठकर लिखी गई है, जो खास मुकाम सहरांव पो. कांथा जि. उन्नावके कबीरपंथी सेवक आसादीन तम्बोलीसे मिली थी, जिसके वंशमें कई पीढ़ी तक महन्ती चली आयी थी।

५ प्रतियाँ-पाकनाम साहब के समयकी लिखी हुई हैं।

८ प्रतियाँ-प्रकटनाम साहबके समयकी लिखी हैं; जिसमें १ तो धीरजनाम साहबकी प्रधान धर्मपत्नी श्रीरानी सूरजकुँवरसाहबके हाथकी लिखी हुई है।

९ प्रतियां-प्रकटनाम साहब के पश्चात्‌की लिखी हैं जिनमें से ४ प्रतिहीमें वंशावली धीरजनाम साहबतक और शेष ५ में. पं. श्रीउग्रनाम साहबतक लिखी हैं, इसीसे १ प्रति वह भी है जो कबीरधर्म नगरके कबीरधर्मप्रकाशमें छपने के लिये लिखायी गयी थी किंतु छप नहीं सकी।

१ प्रति-बांधोगढ़ सिलौडी स्थानके वंशगुरु गोसाईं मधुकर नाम साहब के पुत्र श्रीगोपालदास-जीके हाथकी लिखी है, जो मुकाम कसबा जि. पूर्निया के महन्त श्रीहरिचरणदासजी साहबने कृपा करके ग्रन्थ छपते समय भेज दी थी।

२ प्रतियां—छपरा जिलेके बांधोगढ़के अनुयायी महन्तोंकी लिखी हैं।

२ प्रतियां-जागूसाहबके घरानेवालोंकी लिखी हुई हैं १ और प्रति काशीकें अनुयायी किसी साधुने महन्त रंगूदासजीके समय लिखी थी वह हैं। शेष

५ प्रतियां-पांच स्थानों की छपी हुई प्रतियां हैं।

इस प्रकार इस ग्रन्थके संशोधन समय ४६ प्रतियाँ मेरे पास उपस्थित थीं यदि इन प्रतियों की परस्पर विभिन्नताके विषयमें जो कुछ मैंने नोटकर रखा है उसे यहां लिखने लग जाऊँ तो एक अच्छी पुस्तक तैयार हो जायगी इस लिये मैंने विचार किया है कि "अनुरागसागरकी भूमिका नामकी एक पुस्तक अलग ही लिखकर पाठकों को भेंट करूंगा।

तथापि इतना तो अवश्य कहे बिना नहीं रहा जाता कि,इन ४६ प्रतियों की परस्परविभिन्नताके कारण एक-एक विषयको जाननेके लिये कभी तो कुल ४६ प्रतियोंको उलटना पड़ता था, कभी एक विषयको जाननेके लिये सच्चे ग्रन्थको ही पढ़ जाना पड़ता था, और भिन्न भिन्न शाखा (पंथ) वालोंने अपनी बड़ाई जताने के लिये एक दूसरे की निन्दा और खण्डनमण्डन लिखे हुए हैं, ऐसे स्थानों-पर कई कई दिनोंतक विचार करना पड़ा था। जिसका विशेष वृत्तांत जाननेके लिये उपर्युक्त भूमिकाको अवश्य देखना चाहिये, इस प्रकारसे कई महीनोंके कठिन परिश्रमसे सब ग्रन्थोंको मिलाकर मैंने यह ग्रन्थ ठीक किया है।

यद्यपि मेरे परिश्रमका फलस्वरूप यह ग्रंथ ऐसा सुन्दर और इतना बड़ा हुआ है कि, आजतक किसी भी मठ मकान और स्थानके साधु, संत, महन्त और आचार्यके पास इसके जोड़का ग्रन्थ मिलना असम्भव है, तथापि जिन ग्रन्थोंके द्वारा शुद्ध और मिलान करके यह ग्रन्थ छपाया गया है उन ग्रन्थों की परस्परविरोधताको देखकर मेरा मन परस्परके ऐसे स्वार्थसाधक खण्डवाले ग्रन्थोंसे घबरा उठा है और मैं इस बातकी खोजमें हूँ कि, इन प्रतियोंसे भी पुरानी प्रति मिले तो उससे फिर इसे शुद्ध करूँ।

कबीरधर्मनगर दामार, खेडा,
१–४–१९१४
वैशाख बदि ८ स. १९७१ वि.

भवदीय–
कबीराश्रमाचार्य स्वामी
**श्रीयुगलानन्द बिहारी.**

सत्यनाम

# अनुरागसागरकी विषयानुक्रमणिका

इति अनुरागसागर की विषयानुक्रमणिका समाप्त




# सद्गुरुस्तुतिः

## श्लोकाः

सत्यं ज्ञानस्वरूपं विमलमधिगतं ब्रह्म साक्षान्नृरूपं
शीर्षन्यस्ताच्छरत्नद्युतिसितमुकुटं श्वेतवासोऽभिरामम् ।
भास्वन्मुक्तावलीभिः कृतरुचिहृदयं दिव्यसिंहासनस्थं
भक्तानां पारिजातं विकसितवदनं सद्गुरुं नौम्यहं तम् ॥१॥

सत्य और ज्ञानके स्वरूप, विमल साक्षाद्‌ब्रह्मके प्राप्त मनुजस्वरूप, मस्तकमें धारण किया हुआ, स्वच्छ हीरा आदि रत्नोंकी कांतिसे धवलित मुकुटसे युक्त, श्वेत वस्त्रोंसे अलंकृत, देदीप्यमान मोतियोंकी मालाओंसे शोभित हृदय, दिव्य सिंहासन पर विराजमान, भक्त लोगोंके लिये कल्पवृक्ष प्रफुल्लित मुखारविंद है जिसका उस सद्‌गुरुको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ १ ॥

यदंघ्र्यनुध्यानविधूतमोहाःसन्तो महत्त्वं शमवाप्य यन्ति ।
ब्रह्माऽद्वयं निर्गुणमाश्वनूहं तं सत्यनामानमहं नतोऽस्मि॥२॥

जिसके चरणके ध्यान करनेसे संत लोग मोह पाशसे छूटकर महत्त्व और कल्याण को प्राप्त होते हैं, उस अद्वैत ब्रह्म स्वरूप सत्य नामको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ २ ॥

यस्यामलेन यशसा विशदीकृतेऽस्मिँल्लोके जनोऽज्ञतमसं तरसा विधूय । सन्तं पुमांसमधिगत्य शमेति तस्मिन् श्रीसत्यनामनि परे जगतो रतिः स्यात् ॥ ३ ॥

जिसके स्वच्छ यशसे परिमार्जित इस संसारमें मनुष्य शीघ्र ही अज्ञानांधकारको नाश कर, सत्पुरुषको प्राप्त होकर कल्याण पदपर पहुंचता है उस श्रेष्ठ श्रीसत्यनाममें जगतकी प्रीति होवे ॥ ३ ॥

अनुध्ययया यस्य सदासिनाऽऽशां छित्वा स्वगेहादिषु योगिवन्द्याः ।
विन्दंत्यथाऽऽनन्दममंदमेते स सत्यनामा विदधातु भूतिम् ॥ ४ ॥

लोग जिसके ध्यान रूपी खड्गसे स्वगृहादिकोंमें जो आशा है उसे छेदन कर योगियोंसे वन्दनीय होते हैं और विशेष आनन्द को पाते हैं वह सत्य नाम ऐश्वर्यको बढावे ॥ ४ ॥

अकलितमहिमानं पूर्णकामं कृपालुं धृतमनुजशरीरं भक्तसन्तारणाय
सुरमुनिगणवंद्यं दिव्यदेहाभिरामं हृदयतिमिरभानुं सत्कवीरंस्मरामः

अगणितमहिमावान्, पूर्णकाम, दयायुक्त, भक्त लोगोंके उद्धार करनेके लिये मनुष्य शरीर धारण करनवाले, देवता और मुनिगणोंसे वंदनीय, दिव्य देह करके मनोहर हृदयान्धकारके नाश करनेके लिये सूर्यके समान ऐसे सत् कबीरको हम लोग स्मरण करते हैं ॥ ५ ॥

सर्वमंगलमांगल्यं सर्वविघ्नविनाशनम् ।
अधमोद्धारणं देवं सद्गुरुं प्रणमाम्यहम् ॥ १ ॥
यं सर्वेश्वरदेव हि स्तुवंति सततं सुराः ।
ध्यायन्ति मुनयश्चापि तं गुरुं प्रणमाम्यहम् ॥ २ ॥

शश्वज्जन्मजरामयाधिनिधनैर्दुःखैः सदा पीडितान्,
दृष्ट्वा पाणभृतः कुशेशयदले स्वैरं च धृत्वा वपुः ।
शास्त्राब्धि प्रविगाह्य बीजकसुधाज्ञानं च तेभ्यो ददौ
तं वन्दे शिरसा प्रणम्य चरणौ वीरं कवीरं गुरुम् ॥३॥
नित्यानन्दस्वरूपो यो मायाऽऽतीतो महोदयः ।
सच्छास्त्रविषयः साक्षात्कवीरं प्रणतोऽस्म्यहम् ॥ ४ ॥
नमः श्रीधर्मदासाद्यमहामुन्यन्तसत्तमान् ।
द्विचत्वारिंशदाचार्य्यान् भूतभव्यभविष्यतः ॥ ५ ॥

सत्य

# अनुरागसागर प्रारंभ

सत्यसुकृत, आदिअदली, अजर; अचिन्त पुरुष, मुनीन्द्र,
करुणामयकबीर सुरतियोगसन्तायन, धनीधर्मदास,
चूरामणिनाम, सुदर्शन नाम, कुलपति नाम प्रमोध,
गुरबालापीर, केवल नाम, अमोलनाम, सुरति,
सनेही नाम, हक्कनाम, पाकनाम; प्रगट नाम,
धीरजनाम, उग्रनाम, साहबकी दया,
वंशब्यालीसकी दया ।

★

मंगलाचरण । छन्द हरिगीतिका

प्रथमवन्दोंसतिगुरुचरण जिन,अगमगम्यलखाइया ।।
गुरुज्ञान दीपप्रकाशकरि पट,खोलिदरशदिखाइया ।।
जिहि कारणे सिद्धचापचेसो, गुरु कृपाते पाइया ।।
अकह मूरति अमिय सूरति, ताहि जाय समाइया ।।

गुरुदेव पूर्ण है

सोरठा–कृपासिंधु गुरुदेव, दीनदयालु कृपालु है ।।
विरले पावहिं भेव, जिन चीन्ह्या परगट तहां ।।

अधिकारी कौन है ? छन्द

कोई बूझई जन जौहरी जो, शब्दकी पारख करै ।।
चितलाय सुनहिं सिखावनो, हितजाके हिरदय धरै ।।

तम मोह मोसम ज्ञान रवि,जब प्रगट हो तबसूझई॥
कहत हूं अनुरागसागर,संत कोइ कोइ बूझई ॥ २॥

विना अनुराग वस्तुको पा नहीं सकते

सोरठा—कोइ इकसन्त सुजान, जो मम शब्द बिचारई॥
पावै पद निर्बान, बसत जासु अनुराग उर॥ २॥

धर्मदास वचन—अनुरागीके लक्षण विषय प्रश्न

है सतगुरु विनवौं कर जोरी । यह संशय मेटो प्रभु मेरी ॥
जाके चित अनुराग समाना । ताकर कहो कवन सहिदाना॥
अनुरागी कैसे लखि परई । बिन अनुराग जीव नहिं तरई॥
सो अनुराग प्रभु मोहिं बताऊ। देइं दृष्टान्त भले समझाऊ ॥

सतगुरुवचन—अनुरागीके दृष्टान्त

धर्मदास परखहु चितलाई । अनुरागी लच्छ कहुं समुझाई॥

मृगाका दृष्टान्त

जैसे मृगा नाद सुनि धावै । मगन होय व्याधा ढिग आवै ॥
चित कछु संक न आवै ताही । देत सीस सो नाहि डराही॥
सुनि सुनि नाद सीस तिन दीन्हा। ऐसे अनुरागी कहँ चीन्हा ॥

पतंगका दृष्टान्त

औ पतंगको जैसो भाऊ। ऐसे अनुरागी उर आऊ ॥

सतीका दृष्टान्त

और लच्छ सुनियो धर्मदासा। सतगुरु शब्द करो प्रकाशा॥
जरत नारि ज्यों भूतपति संगा। तनिको जरत न मोरत अंगा॥
तजे सुगृह धन धाम सुहेली । पिय विरहिन उठि चलै अकेली॥
सुत लै लोगन आगे कीन्हा । बहुत मोह ताकहँ पुनि कीन्हा॥
बालक दुर्बल तोहि विनु मरिहै। घर भोसुन्नकाहि विधिकरि है॥
बहु संपति तुमरे घर अहई । पलट चलहुगृह अस बस कहई॥
ताके चित कछु व्यापे नाहीं ।पिय अनुराग वसै हियमाहीं॥

छन्द

तेहिं बहुत कहिसमुझावहीं, नहिंनारिसमुझतसोधनी॥
नहिं काम है धन धाम सों, कछु मोहितो ऐसीबनी॥
जग जीवना दिन चारि है, कोइ नाहिं साथी अंतको॥
यह समुझि देख्यो ऐ सखी, ताते गह्यो पदकंतको॥३॥
सोरठा–लिये कियाकरमाह, जाय सरा ऊपर चढ़ी॥
गोद लियो निज नाह, रामनामकहते जरी॥३॥

तत्त्वानुरागी के लक्षण

धर्म । येह अनुरागी बानी । तुम तत देख कहुं बिलछानी
ऐसे जो नामहिं लौं लावे । कुलपरिवार सबहि विसरावे॥
नारी सुतको मोह न आने । जीवनजनम सपन केरि जाने॥
जगमें जीवन थोरो भाई । अन्त समय सो नाहिं सहाई॥
बहुत पियारि नारि जगमाहीं । मातु पितहु जाहि सर नाहीं॥
तेहि कारण नर सीस जु देही । अन्त समय सो नाहिं सनेही॥
निज स्वारथ कहँ रोदन करई । तुरतहि नैहरको चित धरई॥
सुत परिजनधन सपनसनेही । सत्यनाम गहु निजमति एही॥
निजतनुसमप्रिय और न आना। सो तन संग न चलत निदाना॥

कालसे कौन छुड़ा सकता है ?

ऐसा कोइ न दीखे भाई । अन्त समयमें लेइ छुड़ाई॥
अहै एक सो कहौं बखानी । जेहि अनुराग होय सों मानी॥
सत गुरु आहि छुड़ावन हारा। निश्चय मानो कहा हमारा॥

सद्गुरु क्या करता है ?

कालहिं जीत हंस लै जाहीं। अविचलदेश पुरुष जहँ आहीं॥
जहां जाय सुख होय अपारा। बहुरि न आवै यहि संसारा॥

अविचल देशको कौन पहुँच सकता है ? छन्द

बिसवास कर मनवचनको, तब चढे सतकी राहहो ॥
ज्यों सूरमा रनमें धसे, फिर पाछ चितवन नाहहो ॥
सती शूरा भाव लखके, संत सो मग धारिये ॥
मृतके भाव विचारगुरुगम, काल कष्ट निवारिये ॥

अधिकारीकी दुर्लभता

सोरठा–कोइक, शूर जीव, जो ऐसी करनी करै ॥
ताहि मिलगो पीव, कहे, कबीर विचारिके ॥४॥

धर्मदास–वचन मृतक किसे कहते हैं

मृतक भाव प्रभु कहो बुझाई । जाते मनकी तपनि नसाई ॥
केहि विधिमरत कहो यह जीवन। कहो विलोय नाथ अमृतघन ॥

कबीरबचन–मृतकके दृष्टांत

धर्मदास यह कठिन कहानी । गुरुगम ते कोइ विरले जानी ॥

भृङ्गीका दृष्टांत

मृतक होयके खोजहिं सन्ता । शब्दविचारि गहैं मगु अन्ता ॥
जैसे भृङ्ग कीटके पासा । कीटहिंगहिपुरुगम परगासा ॥
शब्द घातकर महितिहि डारे । भृङ्गी शब्द कीट जो धारे ॥
तब लैगौ भृङ्गी निज गेहा । स्वाती देह कीन्हो समदेहा ॥
भृङ्गी शब्द कीट जो माना । वरण फेर आपन करजाना ॥
बिरलाकीट जो होय सुखदाई। प्रथम अवाज गहे चितलाई ॥
कोइ दूजे कोइ तीजे मानै । तनमनरहित शब्दहित जानै ॥
भृङ्गी शब्द कीट ना गहई । तौ पुनि कीट आसरे रहई ॥
धर्मदास यह कीट को भेवा । यहि मति शिष्य गहे गुरुदेवा ॥

### भृङ्गीभावकी प्राप्ति कैसे होती है छन्द

भृंगि मति दिढक गहे तो, करो निजसमओहि हो ॥
द्वुतियाभाव न चित व्यापे, सो लहे जिव मोहिहो ॥
गुरु शब्द निश्चय सत्यमाने, भृंगि मत तब पावई॥
तजि सकल आसा शब्द बासा, काग हंस कहावई॥

### हंस कौन है ?

सोरठा–तज कागेकी चाल, सत्य शब्द गहि हंसहो॥
मुकता चुगे रसाल, पुरुष पच्छ गुरु मग गवन ॥५॥

### मृतकके और दृष्टांत

सुनहु संत यह मृतक सुभाऊ। विरला जीवपीव मग धाऊ॥
औरै सुनहु मृतकका भेवा। मृतक होय सतगुरु पद सेवा॥
मृतक छोह निभाव उरधारे। छोह निभावहि जीव उबारे ॥

### पृथ्वी का दृष्टांत

जस पृथ्वीके गंजन होई। चित अनुमान गहे गुणसोई॥
कोई चन्दन कोई विष्टा डारे। कोई कोई किरषी अनुसारे ॥
गुण औगुण तिन समकर जाना। महाविरोध अधिक सुखमाना॥

### ऊखका दृष्टान्त

औरो मृतक भाव सुनि लेहू। निरखिपरखिगुरुमगुपगु देहू ॥
जैसे ऊख किसान बनावे। रती रती कर देह कटावे ॥
कोल्हू महँ पुनि आप पिरावे। पुनि कड़ाहमें आप उँटावे ॥
जिन तनु दाहे गुड़ तब होई। बहुरि ताव दे खांड विलोई॥
ताहू माहिं ताव पुनि दीन्हा। चीनी तबै कहावन लीन्हा ॥
चीनी होय बहुरि तन जारा। ताते मिसरी है अनुसारा ॥
मिसरीते जब कंद कहावा। कहे कवीर सबके मन भावा॥
यही विधिते जो शिष सहई। गुरु कृपा सहजे भव तरई ॥

मृतकभाव कौन धारण कर सकता है ? छन्द

मिरतक भाव है कठिन धर्मनि, लहे विरलशूरहो ॥
कादर सुनतेहि तनमन दहै,पाछे न चितवतकूरहो॥
ऐसे शिष्य आप सम्हारे, नाव सही गुरुज्ञानको ॥
लहै भेदी भेद निश्चय, जाय दीप अमानको ॥६॥

मृतक ही साधु होता है

सोरठा–मृतक हो सो साधु, सो सतगुरुको पावई॥
मेटे सकल उपाध, तासु देव आसा करें ॥ ६ ॥

साधु किसे कहते हैं

साधूमार्ग कठिन धर्मदासा । रहनी रहे सो साधु सुबासा ॥
पांचों इन्द्री सम करि राखे ।नाम अमीरसनिशिदिन चाखे॥

चक्षुर्वशीकरण

प्रथमहिं चक्षु इन्द्री कहँ साधे। गुरु गम पंथ नाम अवराधे ॥
सुन्दर रूप चक्षुकी पूजा । रूप कुरूप न भावे दूजा ॥
रूप कुरूपहिं सम करजाने । दरस विदेह सदा सुख माने ॥

श्रवणवशीकरण

इन्द्री श्रवण वचन शुभ चाहै । उत्कट वचनसुनत चित दाहै॥
बोल कुबोल दोउ सह लेखै । हृदय शुद्ध गुरुज्ञान विशेखै ॥

नासिकावशीकरण

नासिका इन्द्री बास अधीना । यहि सम राखै संत प्रवीना॥

जिह्वावशीकरण

जिभ्या इन्द्री चाहै स्वादा । खट्टा मीठा मधुर सवादा ॥
सहज भावमें जो कछु आवै । रूखा फीका नहिं विलगावै ॥
जो कोई पंचामृत लै आवै । ताहि देख नहिं हरष चढ़ावै॥
तजे न रूखा साग अलूना । अधिक प्रेमसौ पावैं दूना ॥

शिश्नवशीकरण

इन्द्री दुष्ट महा अपराधी । कुटिलकाम होई विरलेसाधी ॥
कामिनि रूप कालकी खानी । तजहु तासु सँग हो गुरुज्ञानी ॥

कामवशीकरण

जबही काम उमंग तन आवै । ताहि समय जो आप जुगावै ॥
शब्द विदेह सुरत लै राखे । गहिमन मौन नामरसचाखे ॥
जब निहतत्त्वमें जाय समाई । तबहीं काम रहैं मुरझाई ॥

कामदेव लुटेरा है । छन्द

काम परबल अति भयंकर, महा दारुण काल हो ॥
सुरदेव मुनिगणयक्षगंधर्व, सबहि कीन्ह विलास हो ॥
सबहिं लूटे विरल छूटे, ज्ञान गुण निज दृढ गहे ॥
गुरुज्ञान दीप समीप सतगुरु, भेदमारग तिन लहे ॥७॥

कामलुटेरेसे बचने का उपाय

सोरठा–दीपक ज्ञान प्रकाश, भवन उजेरा करि रहो ॥
सतगुरुशब्द विलास, भाज चोर अँजोरा जब ॥७॥

अनलपक्षिका दृष्टान्त

गुरू कृपासों साधु कहावै । अनलपच्छ ह्वै लोक सिधावै ॥
धर्मदास यह परखो बानी । अनलपच्छ गम कहों बखानी ॥
अनलपच्छ जो रहै अकाशा । निशि दिन रहै पवनकी आशा ॥
दृष्टिभाव तिनरति विधिठानी । यहविधिगरभ रहेतिहिजानी ॥
अंडप्रकाश कीन्ह पुनि तहवां । निराधार आलंबहिं जहवां ॥
मारग माहिं पुष्ट भो अंडा । मारग माहिं त्रिरह नौखण्डा ॥
मारग माहिं चक्षु तिन पावा । मारग माहिं पंख पर भावा ॥
महि ढिग आवा सुधि भइताहीं । इहां मोर आश्रम नहिं आहीं ॥
सुरति सम्हार चले पुनि तहवां । मात पिताको आश्रम जहवां ॥

अनलपच्छ तेहि लेन न आवैं । उलटचीन्हनिजघरहि सिधावैं ॥
बहु पंछी जग माहिं रहावैं । अनलपच्छ सम नाहिं कहावैं ॥
अनलपच्छजसपच्छिन माहीं । अस विरले जिव नाम समांहीं ॥
यहि विधि जो जिव चेतै भाई । मेटि काल सतलोक सिधाई ॥

साधु अनलपक्षी समान कब होता है ? छन्द

निरालंब अलंब सतगुरु, एक आसा नामकी ॥
गुरुचरणलीनअधीननिशिदिन, चाहनहिंधनधामकी
सुतनारि सकल विसारिविषया, चरणगुरुदृढकैगहे ॥

ऐसे साधुको गुरु

सतगुरुकृपादुखदुसहनाशैं, धाम अविचलसो लहे ॥

अविचल धामकी प्राप्ति किससे होती है ?

सो०-मनवचक्रमगुरुध्यान, गुरुआज्ञानिरखत चले ॥
देहि मुक्ति गुरु दान, नाम विदेह लखायकै ॥ ८ ॥

नाम ध्यान माहात्म्य

जबलग ध्यान विदेह न आवे । तबलगजिवभवभटका खावे ॥
ध्यान विदेह औ नाम विदेहा । दोइ खल पावे मिटे संदेहा ॥
छन इक ध्यान विदेह समाई । ताकी महिमा वरणि न जाई ॥
काया नाम सबै गोहरावे । नाम विदेह विरले कोई पावे ॥
जो युग चार रहे कोई कासी । सार शब्द विन यमपुरवासी ॥
नीमषार बद्री परधामा । गया द्वारिका प्राग अस्नाना ॥
अडसठ तीरथ भूपरिकरमा । सार शब्द विन मिटै न भरमा ॥
कहँलग कहों नाम परभाऊ । जा सुमिरे जमत्रास नसाऊ ॥

नाम पानेवालेको क्या मिलता है

सार नाम सतगुरुसो पावे । नाम डोर रहि लोक सिधावे ॥
धर्मराय ताको सिर नावे । जो हंसा निःतत्व समावे ॥

सार शब्द क्या है

सार शब्द विदेह स्वरूपा । निअच्छर वहि रूप अनूपा ॥
तत्त्व प्रकृतिभाव सब देहा । सार शब्द नितत्त्व विदेहा ॥
कहन सुननको शब्द चौधारा। सार शब्दसों जीव उबारा ॥
पुरुष सु नाम सार परवाना ।सुमिरण पुरुष सार सहिदाना॥
बिन रसनाके जाय समाई । तासों काल रहे मुग्झाई ॥
सूच्छम सहज पन्थ है पूरा । तापर चढो रहे जन सूरा ॥
नहिं वहँ शब्द न सुमरा जापा। पूरन वस्तु काल दिख दापा॥
हंस भार तुम्हरे शिर दीना । तुमको कहों शब्दको चीन्हा॥
पदम अनन्त पँखुरी जाने । अजपा जाप डोर सो ताने॥
सुच्छम द्वार तहां तब परसे । अगम अगोचर सत्पथ परसे॥
अन्तरशून्य महि होय प्रकाशा। तहँवाँ आदि पुरुषको बासा॥
ताहिं चीन्ह हंस तहँ जाई । आदि सुरत तहँ लै पहुंचाई॥
आदि सुरत पुरुषको आदी । जीव सोहँगम बोलिये ताही॥
धर्मदास तुम सन्त सुजाना । परखो सारशब्द निरबाना ॥

सारशब्द ( नाम ) जपनेकी विधि गुरुगमभेद छन्द

अजपा जाप हो सहजधुना, परखिगुरुगम डारिये॥
मन पवनथिरकर शब्दनिरखै, कर्ममनमथ मारिये॥
होत धुनि रसना विना,कर माल विन निरवारिये॥
शब्दसार विदेह निरखत,अमरलोक सिधारिये॥९॥
सोरठा-शोभा अगम अपार,कोटिभानुशशिरोमइक॥
षोडश रवि छिटकार, एकहंस उजियार तनु ॥९॥

धर्मदासकाआनन्दोद्गार

हे प्रभु तब चरण बलिहारी । किये सुखी सब कष्ट निवारी॥
चक्षुहीन जिमि पावे नैना ।तिमि मोहि हरषसुनततव नैना॥

कबीर वचन

धर्मदास तुम अंस अंकूरी । मोहि मिलेउ कीन्हे दुख दूरी ॥
जस तुम कीन्हे मोमन नेहा । तजिधनधामरु सुत पितु गेहा ॥
आगेशिष्यजोअसविधिकहिहैं। गुरुचरण मननिश्चलधरिहैं ॥
गुरुके चरण प्रीत चित धारै । तन मन धन सतगुरुपर वारै ॥
सोजिवमोहिंअधिक प्रिय होई। ताकहँ रोकि सकै नहिं कोई ॥
शिष्य होय सरबस नहिं वारे । हृदयकपट मुख प्रीति उचारे ॥
सो जिव कैसे लोग सिधाई । बिन गुरु मिलै मोहिं नहिं पाई ॥

अबीसीकर्मधनदाता

यह सब तो प्रभु आपहि कीन्हा । नहिं तो हतो मैं परम मलीना ॥
करके दया प्रभु आपहिं आये। पकड़ि बांह प्रभु काल छुड़ाये ॥

सृष्टिउत्पत्तिविषयप्रश्न

अब साहब मोहिं देउ बताई । अमर लोग सो कहां रहाई ॥
लोकदीप मोहिं बरनि सुनावहु । तृषनावन्तको अमी पियावहु ॥
कौन द्वीप हंसको वासा । कौने द्वीप पुरुष रह वासा ॥
भोजन कौन हंस तहँ करई । और बानी कहँ पुनि उच्चरई ॥
कैसे पुरुष लोग रचि राखा । द्वीपहिं करकैसे अभिलाखा ॥
तीन लोक उत्पत्ती भाखो । वर्णहुसकल गोय जनि राखो ॥
कालनिरंजनकेहि विधि भयऊ । कैसे षोडश सुत निर्मयऊ ॥
कैसे चार खानि बिस्तारी । कैसे जीव कालवश डारी ॥
कैसे कूर्म शेष उपराजा । कैसे मीन बराहहिं साजा ॥
त्रय देवा कौने विधि भयऊ । कैसे महि अकाश निरमयऊ ॥
चन्द्र सूर्य कहु कैसे भयऊ । कैसे तारागण सब ठयऊ ॥
किहि विधि भइ शरीरकी रचना । भाषो साहब उत्पत्ति बचना ॥
जाते संशय हो उच्छेदा । पाय भेद मन होय अखेदा ॥

छन्द

आदि उत्पतिकहोसतगुरु, कृपाकरी निजदासको ॥
बचन सुधा सु प्रकाश कीजै,नाश हो यमत्रासको॥
एक एक विलोयबर्णहु, दास मोहि निज जानिकै॥
सत्य वक्ता सदगुरू तुम,लेब निश्चयमानिकै॥१०॥
सो०-निश्चयबचनतुम्हार,मोहिंअधिकप्रियताहिते॥
लीला अगम अपार,धन्यभाग दर्शन दिये॥१०॥

कबीर वचन

धर्मदास अधिकारी पाया। ताते मैं कहि भेद सुनाया ॥
अब तुम सुनहु आदिकी बीनी। भाषों उत्पति प्रलय निशानी॥

सृष्टिके आदिमें क्या था ?

तबकी बात सुनहु धर्मदासा। जबनहिंमहिपाताल अकाशा॥
जब नहिं कूर्म बराह और शेषा। जब नहिं शारदगौरिगणेशा ॥
जब नहिं हते निरंजन राया। जिन जीवनकहबांधिझुलाया॥
तेतिस कोटि देवता नाहीं। और अनेक बताऊ काहीं ॥
ब्रह्मा विष्णु महेश न तहिया। शास्त्र वेद पुराण न कहिया॥
तब सब रहे पुरुषके माहीं। ज्यों बट वृक्ष मध्य रह छाहीं॥

छन्द

आदि उत्पति सुनहु धर्मनि,कोइ न जानत ताहिहो॥
सबहि भो बिस्तार पाछे, साख देउँ मैं काहि हो॥
वेदचारो नाहिं जानत, सत्य पुरुष कहानियाँ ॥
वेदको तब मूल नाहीं,अकथकथा बखानियाँ॥११॥
सोरठा-निराकारते वेद, आदिभेद जाने नहीं ॥
पण्डित करत उछेद, मते वेदके जग चले॥११॥

### सृष्टिकी उत्पत्ति सतपुरुषकी रचना

सत्य पुरुष जब गुपत रहाये । कारण करण नहीं निरमाये ॥
समपुट कमल रह गुप्त सनेहा । पुहुपमाहिं रह पुरुष विदेहा ॥
इच्छा कीन्ह अंश उपजाये । हंसन देखि हरष बहुपाये ॥
प्रथमहिं पुरुषशब्द परकाशा । दीपलोकरचि कीन्ह निवासा ॥
चारि कर सिंहासन कीन्हा । तापर पुहुप दीपकर चीन्हा ॥
पुरुष कला धरि बैठे जहिया । प्रगटी अगर वासना तहिया ॥
सहस अठासी दीपरचि राखा । पुरुष इच्छातैं सबअभिलाखा ॥
सबै द्वीप रह अगर समायी । अगर वासना बहुत सुहायी ॥

### सोलह सुतका प्रगट होना

दूजे शब्द भयेजुपुरुषप्रकाशा । निकसे कूर्मचरण गहि आशा ॥
तीजे शब्दभयेजुपुरुष उच्चारा । ज्ञान नाम सुत उपजे सारा ॥
टेकी चरण सम्मुख ह्वै रहेऊ । आज्ञा पुरुषद्वीपतिन्ह दएऊ ॥
चौथे शब्द भये पुनि जबहीं । विवेकनाम सुत उपजे तबहीं ॥
आप पुरुष किये द्वीपनिवासा । पंचम शब्दसो तेज परकासा ॥
पांचवे शब्द जब पुरुष उच्चारा । काल निरंजन भो औतारा ॥
तेज अंगते काल ह्वै आवा । ताते जीवन कह संतावा ॥
जीवरा अंश पुरुषका आहीं । आदिअन्त कोउ जानत नाहीं ॥
छठे शब्द पुरुष मुख भाषा । प्रगटे सहजनाम अभिलाषा ॥
सतयें शब्द भयो संतोषा । दीन्हो द्वीप पुरुष परितोषा ॥
अठयें शब्द पुरुष उचारा । सुरति सुभाष द्वीप बैठारा ॥
नवमें शब्द आनन्द अपारा । दशयें शब्द क्षमा अनुसारा ॥
ग्यारहें शब्द नाम निष्कामा । बारहें शब्द जलरंगी नामा ॥
तेरहें शब्द अचिंत सुत जाने । चौदहें शब्द सुत प्रेम बखाने ॥
पन्द्रहें शब्द सुत दीन दयाला । सोलहें शब्दभे धीर्यरसाला ॥

सत्रहवें शब्दसुतयोगसंतायन । एक नाल षोडषसुत पायन ॥
शब्दहिते भयो सुतन अकारा । शब्दते लोक द्वीप विस्तारा ॥
अग्र अभी दिव्य अंश अहारा । द्वीप द्वीप अंशन बैठारा ॥
अंशन शोभा कला अनन्ता । होत तहां सुख सदा बसन्ता ॥
अंशन शोभा अगम अपारा । कला अनन्त को वरणै पारा ॥
सब सुत करें पुरुषको ध्याना । अमी अहार सदासुख माना ॥
याही बिधि सोलह सुत भेऊ । धर्मदास तुम चितधरि लेऊ ॥
द्वीप करी को अनत शोभा, नहि बरणतसो बने ॥
अमितकल अपार अद्भुत, सुनत शोभाको गने ॥
पुरके उजियारसे सुन, सबै द्वीप अजो रहो ॥
सत पुरुषरोम प्रकाश एकहि, चन्द्र सूर्य करो रहो ॥
सो०-सतगुरुआनँधाम, शोकमोहदुःख तहँ नहीं ॥
हंसनको विश्राम, पुरुष दरश अँचवन सुध ॥१२॥

निरंजनकी तपस्या और मानसरोवर तथा शून्यकी प्राप्ति

यहिविधिबहुतदिवसगये बीती । ता पीछे ऐसी भइ रीती ॥
धरमराय अस कीन्हतमासा । सो चरित्र बूझहु धर्मदासा ॥
युग सत्तर सेवा तिन कीन्ही । इकपद ठाढ पुरुष हर्षित दीन्ही ॥
सेवा कठिन भांति तिन कीन्हा । आदिपुरुष हर्षित होय चीन्हा ॥

पुरुष वचन निरंजन प्राप्ति

पुरुष अवाज उठी तब बानी । कहा जानि तुम सेवा ठानी ॥

निरंजनवचन

कहै धरम तब सीस नवायी । देहु ठौर जहां बैठों जायी ॥
आज्ञा किये जाहु सुत तहवाँ । मानसरोवर द्वीप है जहवाँ ॥
चल्यो धरम तब मानसरोवर । बहुत हरषचितकरतकलोहर ॥

मान सरोवर आये जहिया। भये आनन्द धरमपुनि तहिया॥
बहुरि ध्यान पुरुषको कीन्हा। सत्तर जुग सेवा चित दीन्हा॥
यक पगु ठाढे सेवा लायी। पुरुष दयालु दया उर आयी॥

पुरुषवचन सहजप्रति

विकस्यो!पुरुषउठ्योजब बानी। बोलत बचन उठ्यो अधरानी॥
जाहु सहज तुम धरमके पासा। अबकसध्यानकीन्ह परकासा॥
सेवा बहु कीन्हा धर्मराऊ। दियो ठौर वहि जहाँ रहाऊ॥
तीन लोग तब पलमें दीन्हा। लखिसेवकाइ दया अस कीन्हा॥
तीन लोक कर पायो राजू। भयो अनन्द धरम मन गाजू॥
अबका चाहें पूछो जाई। जो कुछ कह सो देउ सुनाई॥

सहजका निरंजनके पास जाना

चले सहज तब सील नवाई। धरमराय पहँ पहुँचे जाई॥
कहे सहज सुनु भ्राता मोरा। सेवा पुरुष मान लइ तोरा॥
अबका मांगहु सो कह मोही। पुरुष अवाज दीन्हा यह तोही॥

निरजनवचन सहजप्रति

अहो सहज तुम जेठे भाई। करो पुरुष सो बिन्ती जाई॥
इतना ठात्र न मोहि सुहाई। अब मोहि बकसि देहहुठकुराई॥
मोरे चित असभौ अनुरागा। देउ देश मोहि करहु सभागा॥
कै मोहि देवलोक अधिकारा। कै मोहि देहु देश यक न्यारा॥

सहजवचन सत्पुरुषप्रति

चले सहज सुन धर्मकी बाता। जाय पुरुषसो कहे विख्याता॥
जो कछु धर्मराय अभिलाषी। तैसे सहज सुनाये भाषी॥

पुरुषवचन सहजप्रति। छन्द

सुन्यो सहजके वचन, जबही पुरुष बैन उच्चारेऊ॥
धरमसे सन्तुष्ट हैं हम, वचन मम उर धारेऊ॥

लोक तीनों ताहि दीन्हो, शून्य देश बसावहू ॥
करहु रचना जाय तहँवा, सहज वचन सुनावहू ॥ १३ ॥
सो०—जाहु सहज तुम वेग, अस कहि आवो धर्मसो ॥
दियो शून्यकर थेग, रचना रचहु बनाइके ॥ १३ ॥

निरंजनको सृष्टि रचनाका साज मिलानेका वृत्तांत

सहज वचन निरंजन प्रति

आये सहज वचन सुनावा । सत्यपुरुषजसकहिसमुझावा ॥

कबीर वचन धर्मराज प्रति

सुनतहि वचन धर्म हरषाना । कछुकहर्षकछुविस्मय आना ॥

निरंजनवचन सहज प्रति

कहे धर्म सुनु सहज पियारा । कैसे रचौं करौं विस्तारा ॥
पुरुष दयाल दीन्ह मोहिं राजू । जानु न भेद करों किमि काजू ॥
गम्य अगम मोहे नहिं आयी । करों दया सो युक्ति बतायी ॥
विन्ती करो पुरुषसों मोरी । अहो भ्रात बलिहारी तेरी ॥
किहिविधिरचूँनवखण्ड बनाई । हे भ्रात सो आज्ञा पाई ॥
मो कहँ देहु साज प्रभु सोई । जातें रचना जगत्की होई ॥

सहजका लोकको जाना

तबही सहज लोक पग धारा । कीन्ह दंडवत बारम्बारा ॥

पुरुषवचन सहज प्रति

अहो सहज कस इहँवा आई । सो हमसो तुम शब्द सुनाई ॥

कबीर वचन धर्म दास प्रति

कहो सहज तब धर्मकी बाता । जो कछु धर्म कही विख्याता ॥
धर्मराज जस विन्ती लायी । तैसे सहज सुनायउ जायी ॥

पुरुषकी आज्ञा सहजसे

आज्ञा पुरुष दीन्ह तेहि वारा । सुनौ सहज तुम वचनहमारा ॥

कूर्मके उदर आदि सब साजा । सो ले धर्म करे निजकाजा ॥
विनती करे कूर्म सौ जाई । मांगि लेति तेहि माथ नवाई ॥

सहज धर्मरायके निकट जाकर पुरुषकी आज्ञा सुनाना

गये सहज पुनि धर्मके पासा । आज्ञापुरुष दीन्ह परकासा ॥
विनती करो कूर्मसो जाई । मांगि लेहु सीस नवाई ॥
जाय कूर्म ढिग सीस नवावहु । करिहैं कृपा बहुत तव पावहु ॥

निरंजनको कूर्मके पास साज लेनेको जाना

कबीरवचन धर्मदास प्रति

जलिभो धरम हरष तब बाढो । मनहिकीन ग़ुमान अतिगाढो ॥
जाय कूर्मके सम्मुख भयऊ । दंडपरनाम एक नहिं कियऊ ॥
अमी स्वरूप कर्म सुखदाई । तपननतनिकोअतिशितलाई ॥
करि ग़ुमान देख्यो जब काला । कूर्म धीर अति है बलवाना ॥
बारह पलँग कूर्म शरीरा । छे पलँग धरम बलबीरा ॥
धावै चहुँ दिशि रहै रिसाई । किहिविधिलींजैउत्पति भाई ॥
कीन्हो कालसीस नख घाता । उदरते निकसे पवन अघाता ॥
तीन सीसके तीनहु अंशा । ब्रह्मा विष्णु महेश्वर वंशा ॥
पांच तत्व धरती आकाशा । चन्द्र सूर्य उडगन रहिवासा ॥
विसरच्यो नीर अग्नि शशिसूरा । निसरच्यो नभढाकनमहिथूरा ॥
मीन शेष बराह महिथम्भन । पुनि पृथ्वीको भयो अरम्भन ॥
छीना सीस कुर्मको जबही । चले प्रसेव ठांव पुनि तबही ॥
जबही प्रसेव बुंद जल दीन्हा । उंचासकोट पृथ्वीको चीन्हा ॥
क्षीर तोय जस परत मलाई । अस जलपर पृथ्वी ठहराई ॥
बारह दंत राहु महिकरमूला । पवन प्रचण्ड महीस्थूला ॥
अंडस्वरूप आकाशको जानों । ताके बीच पृथ्वी अनुमानों ॥

कूर्म उदर सुत कूर्म उतपानो । तापर शेष वराहको थानो ।
शेष सीस या पृथ्वी जानो । ताके हेठ कूर्म विरयानो ॥
किरतम कूर्म अण्डके मांही । कूर्म अंश सो भिन्न रहाही ॥
आदि कूर्म रह लोक मँझारा । तिनपुनिपुरुषध्यानअनुसारा॥

कूर्मवचन सत्पुरुषप्रति

निरंकार कीन्हो बरियाया । कालकलाधरि मो पहँ आया॥
उदर विदार कीन्ह उन मोरा ।आज्ञा जानि कीन्ह नहिं थोरा॥

पुरुष वचनकूर्मप्रति

पुरुषअवाज कीन्ह तेहिबारा । छोटे बंधु वह आहि तुम्हारा॥
आही यही बडनकी रीती ।औगुन ठावँ करहिं वह प्रीती॥

कवीरवचन धर्मप्रति

पुरुषवचन सुनि कूर्म आनंदा । अमीसरूप सो आनंदकंदा ॥
पुरुषध्यानपुनि कीन्हनिरंजन।जुग अनेक किय सेवा संजन ॥
स्वार्थ जानि सेवा तिन लाई । करि रचना बैठे पछताई ॥
धर्मराय तब कीन्ह विचारा । कहवालो त्रयपुर विस्तारा ॥
स्वर्ग मृत्यु कीन्हो पाताला ।विनाबीजकिमिकीजै ख्याला॥
कोन भांति कस करव उपाई ।किहि विधि रचों शरीर बनाई॥
कर सेवा मांगों पुनि सांई । तिहुँ पुर जीवित मेरो होई ॥
करि विचार अस हठ तिनधारा। लाग्यो करने पुरुष विचारा॥
एक पांव तब सेवा कियेऊ । चौंसठ युगलों ठाढे रहेऊ ॥

बहुरि पुरुषका सहजको निरंजनके निकट भेजना । छन्द

दयानिधि सतपुरुष साहिब, बस सुसेवाके भये ॥
बहुरि भाष्यो सहज सेती, कहा अब याचत नये॥
जाहु सहज निरंजनापहँ, देउ जो कुछ मांगई ॥
करहि रचना पुरुष वचना, छल मता सब त्यागई ॥

सहजका निरंजनके निकट पहुँचना

सो०-सहज चलेसिरनाय, जबहिं पुरुष आज्ञा कियो॥
तहँवा पहुचे जाय, जहां निरंजन ठाढरह ॥१४॥

देखत सहज धर्म हरषाना। सेवा वस पुरुष तब जाना॥

सहजवचन

कहै सहज सुनु धर्मराया। केहि कारणअब सेवा लाया॥

निरंजनवचन

धर्म कहै तब सीस नवायी। देहु ठौर जहँ बैठौं जायी॥

सहजवचन

तब सहज अब भाषै लीन्हा। सुनहु धर्म तेही पुरुषसब दीन्हा॥
कूर्म उदर सो जो कछु आवा। सो तोहि देन पुरुष फरमावा॥
तीनों लोक राजा तोहि दीन्हा। रचना रचहु होहु जनि भीना॥

निरंजनवचन

तबैं निरंजन विनती लायी। कैसे रचना रचूं बनायी॥
पुरुषहिं कहौं जोर युग पानी। मैं सेवक दुतिया नहिं जानी॥
पुरुष सो विनती करो हमारा। दीजै खेत बीज निज सारा॥
मैं सेवक दुतिया नहीं जानूं। ध्यानपुरुषको निशिदिनआनू॥
पुरुषहिं कहो जाय यह बानी। देहु बाज अम्मर सहिदानी॥

कबीरवचन धर्मदासप्रति

सहज कह्यो पुनि पुरुषहि जाई। जस कछु कह्यो निरंजनराई॥
गयो सहज निजदीपसुखासन। जबहिपुरुष दीन्हे अनुशासन॥
सेवा वश सत्पुरुष दयाला। गुण औगुणनहिंचितकिरपाला॥

अबांकी उत्पति

इच्छा कीन पुरुष तेहि बारा। अष्टंगी कन्या उपचारा॥
अष्ट बाहु कन्या होय आई। बायें अंग सो ठाढ़ रहाई॥

अष्टांकी उत्पति

माथ नाय पुरुष सो कहई। अहो पुरुष आज्ञा कस अहई॥

सत्य पुरुषका आद्याको मूलबीज देना

पुरुष वचन अद्याप्रति

तबहीं पुरुष वचन परगासा । पुत्री जाहु धरमके पासा ॥
देहुँ वस्तु सो लेहु सम्हारी । रचहु धर्म मिलि उतपतिवारी ॥

कबीरवचन धर्मदासप्रति

दीन्हो बीज जीव पुनि सोई । नाम सुहंग जीव कर होई ॥
जीव सोहंगम दूसर नाहीं । जीवसों अंश पुरुष को आहीं ॥
शक्ति पुनि तीन पुरुष उत्पाना । चेतनि उलंघनि अभया जाना ॥

छन्द

पुरुष सेवावश भये तब, अष्ट अंगहि दीन्ह हो ॥
मानसरोवर जाहु कहिया, देहु धर्महि चीन्ह हो ॥
अष्टङ्गी कन्या हती जेहि, रूप शोभा अति बनी ॥
जाहुकन्या मानसरवर, करहु रचना अति घनी ॥
सोरठा–चौरासी लखजीव, मूलबीज तेहिसंग दे ॥
रचना रचहु सजीव, कन्या चलि सिरनायके ॥
यह सब दीन्हो आदि कुमारी । मानसरोवर चलिभई नारी ॥
ततछिन पुरुष सहज टेरावा । धावत सहज पुरुष यहिं आवा ॥

पुरुषवचन सहजप्रति

जाही सहज धरम यह कहेहू । दीन्ह वस्तु जस तुम चहेहू ॥
मूल बीज तुमपहँ पठवावा । करहु सृष्टिजसतुवमनभावा ॥
मानसरोवर जाहि रहाहू । ताते होइ है सृष्टि उराहू ॥

पुनि सहजका निरंजनके ढिग जाना

चले सहज तहवाँ तब आये । धर्म धीर जहँ ठाढ़ रहाये ॥
कहेउ सुवचन पुरुषको जबहीं । धर्मराय सिर नायो तबहीं ॥

निरंजनका मानसरोवरमें अद्याको पाकर मोहवश हो उसे निगल जाना और सत्यपुरुषका शाप पाना

पुरुष वचन सुन तबही गाजा । मानसरोवर आन विराजा ॥
आवत कामिनी देख्यो जबही । धर्मराय मन हरष्यो तबही॥
कहा देखि अष्टंगी केरी । धर्मराय इतरान्यो हेरी ॥
कहा अनन्त अंत कछु नाहीं । काल मगन ह्वै निरखत ताहीं॥
निरखत धर्मसु भयो अधीरा । अंग अंग सब निरख शरीरा॥
धर्मराय कन्या कहै ग्रासा । कालस्वभाव सुनो धर्मदासा॥
कीन्हीं ग्रास काल अन्याई । तब कन्या चित विस्मय लाई॥
तत छण कन्या कीन्ह पुकारा । काल निरंजन कीन्ह अहारा॥
तबही धर्म सहज लग आई । सहज शून्य तब लीन्ह छुड़ाई॥
पुरुष ध्यान कूर्म अनुसारा । मोसनकाल कीन्ह अधिकारा॥
तान शीश मम भच्छण कीन्ह्यो । हो सत पुरुष दया भल चीन्ह्यो॥
यही चरित्र पुरुष भल जानी । दीन्ह शापसो कहों बखानी॥

पुरुषका शाप निरंजनप्रति

लच्छ जीव नि ग्रासन करहू । सवालच्छ नितप्रति बिस्तरहू॥

छन्द

पुनिकीन्हपुरुषतियानतिही, किमिमेटिडारोकालहो
कठिन काल कराल जीवन, बहुत करइ बिहाल हो॥
यहि मेटत अबना बनै मुहिं, नालाइक सुत षोडसा॥
एक मेटत सबै मिटिहै, वचन डोल अडोलसा॥१६॥
सोरठा–डोल वचन हमार, जो अब मेटा धरमका॥
वचन करो प्रतिपाल, देश मोर अब ना लहैं॥१६॥

सत्पुरुषका जोगजीतका निरंजनके पास उसे मानसरोवरसे
निकाल देनेकी आज्ञा देकर भेजना

जोगजीत कह पुरुष बुलावा। धर्मचरित सब कहि समुझावा॥

सत्पुरुष वचन जोगजीत प्रति

जोगजीत तुम वेगि सिधारो। धर्मरायको मारि निकारो॥
मानसरोवर रहन न पावै। अब यहि देशकाल नहिं आवै॥
धर्मके उदर माहिं है नारी। तासो कहो निजशब्द सम्हारी॥
जाकर रहो धर्म वहि देशा। स्वर्ग मृत्यु पाताल नरेशा॥
उदर फारिकै बाहर आवे। धर्मविदार उदार फल पावे॥
धर्मरायसों कहो विलोई। वहै नारि अब तुम्हारी होई॥

कबीरवचन धर्मदासप्रति

जोगजीत चल भे शिर नाई। मानसरोवर पहुँचे जाई॥
जोगजीत कहँ देखा जबहीं। अति भो काल भयंकर तबहीं॥

निरंजनवचन जोगजीतप्रति

पूछा काल कौन तुम आई। कौन आज तुम यहां सिधाई॥

जोगजीतवचन निरंजन प्रति

जोगजीत अस कहै पुकारी। अहो धर्म तुम ग्रासेहु नारी॥
आज्ञा पुरुष दीन्ह यह मोही। इहिंते बेगि निकारो तोही॥

जोगजीतवचन अद्या प्रति

जोगजीत कन्या सो कहिया। नारी कहे उदरमहँ रहिया॥
उदरफारि अब आवहु बाहर। पुरुष तेज सुमिरो तेहि ठाहर॥

कबीरवचन धर्मदासप्रति

सुनिके धर्म क्रोध उर जरेऊ। जोगजीत सौ सन्मुखभिरेऊ॥
जोगजीत तब कीन्हे ध्याना। पुरुष प्रताप तेज उर आना॥
पुरुष आज्ञा भई तेहि काला। मारहु माझ लिलार कराला॥
जोगजीत पुनि तैसो कीन्हा। जस आज्ञा पुरुष तेहि दीन्हा॥

छन्द

गहि भुजा फटकार दीन्हों, परेउ लोकत न्यारहो॥
भयो त्रासित पुरुष डरते, बहुरि उठेउ सम्हार हो॥
निकसि कन्या उदरते पुनि, देख धर्महि अतिडरी॥
अब नाहिंदेखोदेश वह, कहौ कौनविधिकहवाँपरी १७

सोरठा-कामिनिरहीसकाय, त्रासितकालकडरअधिक
रही सो सीस नवाय, आसपासचितवत खड़ी ॥१७॥

निरंजनवचन अद्याप्रति

कहै धर्म सुनि आदि कुमारी । अब जनि डरपो त्रास हमारी॥
पुरुषा रचा तोहि हमरे काजा । इकमति होय करहु उपराजा॥
हम हैं पुरुष तुमहि हौ नारी ।अब जनि डरपो त्रास हमारी॥

अद्यावचन निरंजनप्रति

कहै कन्या कस बोलहु बानी । भ्राता जेठ प्रथम हम जानी॥
कन्या कहै सुनो हो ताता ।ऐसी विधि जनि बोलहु बाता॥
अब मैं पुत्री भई तुम्हारी । ताते उदर मांझ लियो डारी॥
जेष्ठ बन्धु प्रथमहिके नाता । अब तो अहो हमारे ताता॥
निरमलदृष्टिजब चितवहु मोहीं । नहिं तो पाप होय अब तोहीं॥
मन्द दृष्टि जनि चितवहु मोही। ना तो पाप होय अब तोही॥

निरंजनवचन अद्याप्रति

कहै निरंजन सुनो भवानी । यह मैं तोहि कहों सहिदानी॥
पाप पुण्य डर हम नहिं डरता। पाप पुण्यके हमहीं करता॥
पाप पुन्य हमहींसे होई । लेखा मोर न लेहै कोई॥
पाप पुन्य हम करब पसारा । जो बाझे सो होय हमारा॥
ताते तोहिं कहौ समुझाई । सिख हमार लो सीस चढ़ाई॥
पुरुष दीन तोहिं हमकहँ जानी । मानहु कहा हमार भवानी॥

कबीरवचन धर्मदास प्रति

बिहँसी कन्या सुन अस बाता। इक मति होय दोई रंगराता॥
रहस वचन बोली मृदु बानी। नारिनीचबुधिरतिविधिठानी॥
रहसवचन सुनि धरम हरषाना। भोग करनको मनमें आना॥

छन्द

मन नहिं कन्या कहती असचरितकीन्ह निरंजना॥
नख घात कियेभगद्वारततछिण, घाटउत्पतिगंजना॥
नखं रेषशोनितचल्या, तिहुँको खब खासआरंभनी॥
आदिउत्पत्तिसुनहु धर्मनि, कोउ नहिं जानत जम मनी॥
त्रियावार कीन्ही रति तबै, भये ब्रह्मा विष्णु महेशहो॥
जेठे विधि विष्णु लघु तिहि, तीज शंभु शेष हो॥१८॥
सोरठा-उत्पति आदिप्रकाश, यहिविधितेहिप्रसंगभो॥
कीन्हो भोगविलास, इकमनि कन्या काल है॥१८॥

भवसागरकी रचना

तेहि पीछे ऐसा भो लेखा। धर्मदास तुम करौ विवेका॥

निरंजनवचन अद्याप्रति

अग्निपवनजलमहि आकाशा। कूर्म उदरतें भयो प्रकाशा॥
पांचौ अंस ताहि सन लीन्हा। गुण तीनों सीसनसों कीन्हा॥
यहि विधि भये तत्त्वगुण तीनों। धर्मराज तब रचना कीनों॥

कबीर वचन धर्मदास प्रति

गुणतसम कर देविहि दीन्हा। आपन अंश उत्पने कीन्हा॥
बुन्द तीन कन्या भग डारा। तासँग तीनों अंग सुधारा॥

१ यह तो पुरानी प्रतियोंमें ऐसाही है किन्तु नवीन प्रतियोंमें उपर्युक्त दोनों पंक्ति नहीं हैं जो विचारपूर्वक प्रसंगोंके पढनेसे ठीक नहीं जान पड़ता।

पांच तत्त्व गुण तीनों दीन्हा । यहिबिधिजनकीरचना कीना॥
प्रथम बुन्दते ब्रह्म जो भयऊ । रजगुणपंचतत्त्व नेहि दयऊ ॥
दूजो बुन्द विष्णु जो भयऊ । सतगुण पंच तत्त्वतिन पयऊ॥
तीजे बुन्द रुद्र उत्पाने । तमगुण पंच तत्त्व तेहि साने॥
पंच तत्त्व गुण तीन खमीरा । तीनों जनको रच्यो शरीरा ॥
ताते फिरि फिरि परलय होई । आदि भेद जाने नहिं कोई॥
कहै धर्म कामिनि सुनबानी । जो मैं कहूँ लेहु सोमानी ॥
जीव बीज आहै तुव पासा । सो ले रचना करहु प्रकाशा॥
कर्ण निरञ्जन पुनि सुनु रानी । अब अस करहु आदि भवानी ॥
त्रय सुत सौंप तोहि कहँ दीन्हा । अबहम पुरुषसेवचित्त लीन्हा॥
राज करहु तुम लै तिहुँ बारा । भेद न कहियो काहु हमारा ॥
मोर दरस त्रय सुत नहिं पैहैं । जो मुहि खोजत जन्म सिरैहैं॥
ऐसो मता दिढैहो जानी । पुरुष भेद नहिं पावै प्रानी ॥
त्रयसुत जबहिं होहिं बुधिवाना । सिंधुमथन दे पठहु निदाना॥

कबीरवचन धर्मदासप्रति

कहेउ बहुत बुझाय देविहि, गुप्त भये तब आहि हो॥
शून्य गुफहिं निवास कीन्हों, भेद लहको ताहिहो॥
वह गुप्त भा पुनि सङ्ग सबके, मन निरंजन जानिये ॥
मन पुरुष भेद उच्छेद देवे, आप परगट आनिये ॥
सो०—जीवभयेमतिहीन, परिसि अगमसो कालको॥
जनम जनम भये खीन, मुरुचा कर्म अकर्मको १८
जीव सतावै काल, नाना कर्म लगायके ॥
आप चलावै चाल, कष्ट देय पुनि जीवको ॥२०॥

सिन्धुमथन और चौदह रत्न उत्पत्तिकी कथा

त्रय बालक जब भये सयाने । पठये जननी सिंधु मथाने ॥
बालक माते खेल खिलारी । सिंधुमथनहिं गयउ खरारी ॥
तेहि अंतर इक भयौ तमासा । सो चरित्र बूझो धर्मदासा ॥
धार्‍यो योग निरंजन राई । पवन आरंभ कीन्ह बहुताई ॥
त्यागो पवन रहित पुनि जबही । निकसेउ वेदस्वास सँग तबही ॥
स्वास सँग आयउ सो वेदा । बिरला जन कोई जानेभेदा ॥
अस्तुति कीन्ह वेद पुनि ताहां । आज्ञाका मोहि निर्गुनाहां ॥
कह्यौ जाव करू सिंधुनिवासा । जेहि भेटे जैहौ तिहिपासा ॥
उठी आवाज रूप नहिं देखा । जोतिअगम दिखलावतभेखा ॥
जलेउ वेद पुनि तेज अपाने । तेज अन्न पुनि विष संधाने ॥
चले वेद तहँवा कहँ जाई । जहँवा सिंधु रचा धर्मराई ॥
पहुँचे वेद तब सिंधु मँझारा । धर्मराय तब युक्ति विचारा ॥
गुप्त ध्यान देविहि समुझावा । सिंधुमथनकहँकस बिलमावा ॥
पठवहु बेगि सिंधुत्रय बारा । दृढ़के शोचहु वचन हमारा ॥
बहुरिआपपुनि सिंधु समाना । देवी कीन्ह मथन अनुमाना ॥
तिहुँबालक कहँ कह समुझायी । आशिष दे पुनि तहां पठायी ॥
पैहो वस्तु सिन्धुके पाहीं । जाहु वेगि तीनों सुत ताहीं ॥
चलिभौ ब्रह्मा मान सिखाई । दोउ लहुरा पुनि पाछे जाई ॥

छन्द

त्रय सुत बाल खेलत चले, ज्योंसुभगबालमरालहो ॥
एकगहिछोड़तमहीपुनि, एककरगहिचलतलटपटचालहो ॥
क्षणहिधावतक्षणस्थिर खड़े, क्षणभुजहिगरलावहीं ॥
तेहि समयकी शोभा भली, नहिं वेद ताकहँ गावहीं ॥

सोरठा-गये सिंधुके पास, भये ठाढ़ तीनों जने ॥
युक्तिमथनपरकास,एक एकको निरखही ॥२१॥

प्रथमवार सिन्धु मथन

तीनों कीन्ह मथन तब जाई । तीन वस्तु तीनों जन पाई ॥
ब्रह्मा वेद तेज तेहि छोटा । लहुरा तासुमिलेविष खोटा ॥
भेटि वस्तु त्रय तीनों भाई । चलिभये हर्षकहत जहँमाई ॥
मातापहँ आये त्रय वारा । निजनिजवस्तुप्रगट अनुसारा ॥
माता आज्ञा कीन्ह प्रकाशा । राखुवस्तुतुमनिजनिज पासा ॥

द्वितीय वार सिन्धुमथन

पुनि तुम मथहु सिन्धु कहे जाई। जौ जेहि मिले लेउ सो भाई ॥
कीन्हचरितअस आदिभवानी। कन्या तीन कीन्ह उत्पानी ॥
कन्या तीन उत्पान्यो जबहीं । अंसवारिमहँ नायो सबहीं ॥
सब माताको आगे कीन्हा । माताबांटितिन्हनकहँ दीन्हा ॥
पठयो सिंधु महि पुनि ताही । त्रय सुत मर्मसो जानत नाहीं ॥
पुनि तिन मथनसिंधुको कीन्हा । भेट्यो कन्याहर्षितह्वै लीन्हा ॥
कन्या तीनहु लीन्हे साथा । औ जननी कहँ नायहु माथा ॥
माता कहे सुनहु सुत मोरा । यह तो काज भये सब तोरा ॥
एकएकबांटि तीनहुको दीन्हा । काहु भोग कस आज्ञा कीन्हा ॥
सावित्री ब्रह्मा तुम लेऊ । है लक्ष्मी विष्णु कहँ देऊ ॥
पारवती शंकर कहँ दीन्ही । ऐसी माता आज्ञा कीन्हीं ॥
तीनउ जन लीन्हीं सिरनाई । दीन्ह अद्याजस भाग लगाई ॥
पाई कामिनि भये अनन्दा । जस चकोर पाये निशिचंदा ॥
काम बसी भए तीनों भाई । देव दैत दोनों उपजाई ॥
धर्मदास परखो यह बाता । नारी भयी हती सो माता ॥
माता बहुरि कहें समझाई । अब फिर सिंधु मथो तुम भाई ॥
जो जेहि मिलै लेहुसो जाई । अबजनिकरोविलंब तुम भाई ॥

तृतीयवार सिंधुमथन

त्रयसुत चले तब माथ निवायो । जो कछु कहेउ करब हम जायो ॥
मथ्योसिंधुकछुविलंबनकीन्हा। मिला वेदसो ब्रह्म लीन्हा ॥
चौदह रतनकी निकसी खानी । ले माता पहँ पहुँचे आनी ॥
तीनहु बन्धु हरषि है लीन्हा ।विष्णुसुधापायउहरविषदीन्हा॥

अद्याका तीनों पुत्रोंको सृष्टिरचनेकी आज्ञा देना और सब मिलकर पांच खानकी उत्पत्ति करना

पुनि माता अस वचन उचारा। रचहु सृष्टि तुम तीनों बारा॥
अण्डज उत्पत्ति कीन्हा माता। पिंडज ब्रह्मा कर उत्पाता ॥
ऊष्मजखानिविष्णु व्यवहारा।शिव अस्थावर कीन्ह पसारा॥
चौरासी लख योनिन कीन्हा । आधाजल आधाथल कीन्हा॥
एक तत्त्व अस्थावर जाना । दोय तत्त्व ऊष्मज परवाना॥
तीन तत्त्व अण्डज-निरमाई । चार तत्त्व पिंडज उपजायी॥
पांच तत्त्व मानुष विस्तारा ।तीनों गुण तेहि माहिं सँवारा ॥

ब्रह्माका वेद पढकर निराकारका पता पाना

ब्रह्मा वेद पढ़न तब लागा । पढ़त वेद तब भा अनुरागा॥
कहे वेद पुरुष इक आही । हैं निरंकार रूप नहिं ताही ॥
शून्य माहिं वहि जोत दिखावे । चितवन देह दृष्टि नहिं आवे॥
स्वर्ग सीस पग आहि पताला। तेहिमत ब्रह्मा भौ मतवाला॥
चतुरानन कहें विष्णु बुझावा ।आदिपुरुष मोहिं वेद लखावा॥
पुनि ब्रह्मा शिवसों अस कहई। वेद मथन पुरुष एक अहई ॥

ब्रह्मावचन विष्णुप्रति

अहै पुरुष इक वेद बतावा । वेद कहे हम भेद न पावा ॥

कबीरवचन अद्याप्रति

तब ब्रह्मा माता पहँ आवा । करि प्रणाम तब टेके पावा ॥

ब्रह्मावचन अद्याप्रति

हे माता मोहि वेद लखावा । सिरजनहार और बतलावा ॥

छन्द

ब्रह्मा कहे जननी सुनौ, कहहु कन्त तुम्हार है ॥
कीजै कृपा जनि मोहि दुरावो,कहाँ पिता हमार है॥

अद्यावचन ब्रह्मप्रति

कहे जननीसुनहुब्रह्मा,कोउ नहिं जनक तुम्हारहो॥
हमहितेभई सब उत्पति,हमहिसबकीनसम्हारहो२१॥

ब्रह्मावचन अद्याप्रति

सोरठा-ब्रह्मा कहे पुकार, सुनु जननी तैं चित्त दे॥
कहत वेद निरुवार, पुरुष एक सौगुप्त है ॥२२॥

अद्यावचन ब्रह्मप्रति

कहे अद्या सुनु ब्रह्मकुमारा । मोसे नहिं कोउ स्रष्टा न्यारा॥
स्वर्ग मृत्यु पाताल बनाई । सात समुन्दर हम निरमाई॥

ब्रह्मावचन अद्याप्रति

मानो वचन तुमहि सब कीन्हा । प्रथमगुप्त तुम कसरखलीन्हा॥
जबै वेद मोहि कहै बुझाई । अलखनिरंजन पुरुष बताई ॥
अब तुम आप बनो करतारा । प्रथम कहे न किया विचारा॥
जो तुम वेद आप कथि राखा ।तोकसतुमअलखनिरंजनभाखा
आपे आप आप निरमाई । काहे न कथन कीन तुम माई॥
अब मोसनतुमछलजनिकरहू ।सांचे सांच सब कहि उच्चरहू॥
जब ब्रह्मा यहिविधि हठठाना । तब अद्यामन कीन्हतिवाना॥

कबीरवचन धर्मदासप्रति

केहि विधि याहि कहूँ समझाई । विधि नहिं मानत मोर बड़ाई॥
जो यदि कहौं निरंजन वाता ।केहिविधिसमझे यह विख्याता॥
प्रथम कह्यो निरंजन राई । मोर दरश काहू नहि पाई ॥
जबै जो यहीं अलख लखावों।केहिविधिकहिताकोदिखलावों॥

अष्टावचन ब्रह्मप्रति

असविचार पुत्रब्रह्मै समझावा।अलखनिरञ्जनहिंदरसदिखावा॥

ब्रह्मावचन अष्टाप्रति

ब्रह्मा कहे मोहि ठौर बतावो । आगा पीछा जनि तुम लावो॥
मैं नहिं मानौं तुम्हारी बाता । ऐसी बात न मोहि सुहाता॥
प्रथम तुम मुहि दीनभुलावा । अब तुम कहो न दरसदिखावा॥
तासु दरश न पैहो पूता । ऐसी बात कहो अजगूता॥

छन्द

दरशदिखायतत्कालदीजै, मोहिनभरोसतुम्हारहो॥
संशयनिवारयहिकालदीजै, कीजेनविलंबलगारहो॥

अष्टावचन ब्रह्मप्रति

कह जननी सुनो ब्रह्मा, कहौं तोसों सत्तही॥
सातस्वर्ग है माथ ताको, चरण पतालसप्तही॥२२॥
सोरठा–लेहु पुष्प तुम हाथ,जो इच्छा तेहि दरशकी
जाय नवाओ माथ,ब्रह्मा चले शिरनाइके॥२३॥
जननी सुन्यो वचन चितमाहीं । मोरि कही यह मानति नाहीं॥
यह कहँ वेद दीन्ह उपदेशा । पै दरश ते नहिं पावै भेशा॥
कह अष्टंगि सुनो रे बारा ।अलखनिरञ्जन पिता तुम्हारा॥
तासु दरश नहिं पैहै पूता । यह मैं वचन कहौं निजगूता॥
ब्रह्मा सुनि व्याकुल ह्वै धावा । परसन सीस ध्यानहियलावा॥
ब्रह्मा चले जननि सिर नाई । सीस परसि आवै तेही ठाई॥
तुरतहि ब्रह्मा दीन्ह रिंगायी । उत्तर दिशा बेगि चलि जाई॥
आज्ञा मांगि विष्णु चलेबाला। पिता दरशको चले पताला॥
इत उत चितयमहेश न डोला । सेवा करत कछू नहीं बोला॥

तेहिशिवमनअसचितअभावा । सेवा करन जननि चितलावा ॥
यहिविधिबहुतदिवसचलिगयऊ। माता सोचपुत्र कह कियऊ॥

विष्णुका पिताके खोजसे लौटकर पिताके चरणतक
न पहुँचनेका वृत्तान्त कहना

प्रथम विष्णुजननी ढिग आये । अपनी कथा कहि समुझाये॥
भेंटचो नहिं मोहि पगु ताता । विषज्वालास्यामल भौगाता॥
व्याकुल भयउ तबै फिर आवा । पिता पगुदरश मैं नहिं पावा॥
सुनि हरषित भइ आदिकुमारी । लीन्हविष्णुकहँनिकटदुलारी॥
चूमेउ बदन सीस दिये हाथा ।सत्य सत्य बोलउ सुतबाता॥

धर्मदासवचन कबीरप्रति

कहे धरमनि यह संशय बीती । साहब कहहु ब्रह्मकी रीती ॥
पितासीस तना परसन कीन्हा। किहोयनिरासपीछेपग दीन्हा॥

छन्द

गयउ ब्रह्मा सीस परसन, कथा ता दिनकी कही॥
भयो दिष्ट मेराव कि,नहि तासु दरशन तिनलही॥
यह बरनि सब कहो सतगुरु, एकएक बिलीयके ॥
निजहास जानि परगासकीजे, धरहुनिजजनिगायके२३॥
सो०–प्रभु हम हैं तुव दास, जन्मकृतारथमोरिकरि॥
करहु वचन परगास,तेहि पीछे जो चरित भा ॥२४॥

पिताके खोजमें गये हुए ब्रह्माकी कथा। कबीरवचन धर्मदासप्रति

धरमदास मुहिं अतिप्रिय अहहू। कहो संदेश परखि दृढगहहू ॥
चलत ब्रह्म तब वार न लावा ।पिता दरश कहँअतिमनभावा॥
तेहि स्थान पहुँचि गे जाई । नहिं तहँरविशशि शून्यरहाई॥
बहुविधि अस्तुति करे बनायी । ज्योति प्रभावध्यानतहँलाई॥

ऐसे बहु दिन गये बितायी। नहि पायो ब्रह्मा दरशपितायी॥
शून्य ध्यानयुग चार गमावा। पिता दरश अजहुँ नहिं पावा॥

ब्रह्मा के लिये अष्टाकी चिन्ता

ब्रह्मा तात दरश नहिं पाई। शून्य ध्यान महँ जुग बहु जाई॥
माता चिंता करत मनमाहाँ। जेठ पुत्र ब्रह्मा रह काहाँ॥
किहि विधि रचना रचहुँ बनाई। ब्रह्मा आवै कौन उपाई॥

गायत्री उत्पत्ति

उबटि शरीर मैल (न) गहिकाढी। पुत्री रूप कीन्ह रचिठाढी॥
शक्ति अंशनिज ताहि मिलावा। नाम गायत्री ताहि धरावा॥
गायत्री मातहि सिर नावा। चरणचूमि निज सीस चढ़ावा॥

गायत्रीवचन अष्टाप्रति

गायत्री विनवै कर जोरी। सुनु जननी यक विनती मोरी॥
कौन काज मोहँ निरमाई। कहो वचन लेउँ सीस चढ़ाई॥

अष्टावचन गायत्रीप्रति

कहे अष्टा पुत्री सुनु वाता। ब्रह्मा आहि जेठहि तुव भ्राता॥
पिता दरश कहँ गयो अकाशा। आनौ ताहि वचन प्रकाशा॥
दरश तातकर वह नहिं पावे। खोजत खोजत जन्म गमावे॥
जौने विधिते इहँवा आई। करो जाय तुम तीन उपाई॥

गायत्रीका ब्रह्माके खोजमें जाना। कबीर वचन धर्मदासप्रति

चलि गायत्री मारग आई। जननी वचन प्रीति चितलाई॥
चलत भई मारग सुकुमारी। जननी वचन ध्यान उर धारी॥

छन्द

जाय देखो चतुरमुख कहँ, नाहिं पलक उघारई॥
कछुक दिन सो रही तहवाँ, बहुरि युक्ति विचारई॥
कौन विधि यह जागि है,अबकरौं कौन उपायहो॥
मनगुनितसोचबहुतविधि, ध्यानजननीलायहो २४॥

ब्रह्माको जगानेके लिये अद्याका गायत्रीको युक्ति बताना

सो०-अद्या आयसु पाइ, गायत्री तब ध्यान महँ ॥
निज कर परसेउ जाय,ब्रह्मा तबहीं जागि है ॥२४॥

गायत्री पुनि कीन्ह तैसी । माता युक्ति बताई जैसी ॥
गायत्री तब चित्त लगाई । चरणकमल कहँ परसेउ जाई॥

ब्रह्माका जागकर गायत्रीपर क्रोध करना

ब्रह्मा जाग ध्यान मन डोला । व्याकुल भयो वचन तब बोला॥
कवन अहै पापिन अपराधी । कहा छुड़ायहु मोरि समाधी॥
शाप देहुँ तोकहँ मैं जानी । पिताध्यानमोहिखण्डयोआनी

गायत्री वचन ब्रह्माप्रति

कहि गायत्री मोहिन पापा । बूझि लेहु तब देहहु शापा ॥
कहों तोहिसो सांची बाता । तोहि लेन पठयी तुव माता॥
चलहु वेगि जननिलावहुबारे । तुम विन रचना को विस्तारे॥

ब्रह्मावचन गायत्रीप्रति

ब्रह्मा कहे कौन विधि जाऊँ । पितादरश अजहुँ नहिं पाऊँ॥

गायत्रीवचन ब्रह्माप्रति

गायत्री कह दरशन पैहो । बेगि चलहु नहिं तो पछतै हो॥

ब्रह्माका गायत्रीको साक्षी देनेको कहना और गायत्रीका ब्रह्मासे रति करनेकी बात कहना

ब्रह्मा कहै देहु तुम साखी । परस्यो सीस देख मैं आंखी॥
ऐसे कहो मातु समुझायी । तो तुम्हरे सङ्ग हम चलिजायी॥

गायत्रीवचन ब्रह्माप्रति

कह गायत्री सुन श्रुति धारी । हम नहीं मिथ्या बचन उचारी॥
जो मम स्वारथ पुरवहु भाई । तो हम मिथ्या कहब बनाई॥

ब्रह्मावचन गायत्रीप्रति

कह ब्रह्मा नहिं लखी कहानी । कहौं बुझाय प्रगटकी बानी ॥

गायत्री वचन

कह गायत्री देहु रति मोही । तो कह झूठ जिताऊं तोही ॥

कबीरवचन धर्मदासप्रति

गायत्री कहै है यह स्वारथ । जानि कहौं मैं पुन परमारथ ॥
सुनि ब्रह्मा चित करे विचारा । अबका यत्न करहुँ इहिबारा ॥

छन्द

जो विमुख या कह करौं अब तो नहीं बन आवई ॥
साखि तो यह देय नहीं जननि मोहि लजावई ॥
यहाँ नाहिं पिता पायो भयो न एको काज हो ॥
पाप सोचत नहिं बने अब करौं रति विधि साजहो २५
सो०-कियो भोगरतिरंग, बिसर्‍यो सो मनदरशका
दोउ कहँ बढ्यो उमंग, छलमति बुद्धिप्रकाशकिले २६॥

सावित्री उत्पत्तिकी कथा

कह ब्रह्मा चल जननी पासा । तब गायत्री वचन प्रकाशा ॥
औरो करौ युक्ति इक ठानी । दूसरी साखि लेहु उत्पानी ॥
ब्रह्मा कहे भली है बाता । करहु सोई जेहि मानै माता ॥
तब गायत्री यतन विचारा । देहि मैल गहि कीन्ह नियारा ॥
कन्यारचि निज अंशमिलावा । नाम सावित्री तासु धरावा ॥
गायत्री तिहि कह समुझावा । कहियो दरशब्रह्म पितु पावा ॥
कह सावित्रीहम नहिं जानी । झूठ साखि दै आपनि हानी ॥
यह सुनिदोउकहँचिन्ता व्यापा । यह तौ भयो कठिन संतापा ॥
गायत्री बहु विधि समुझाई । सावित्री के मन नहिं आयी ॥
पुनि गायत्री कहा बुझाई । तब सावित्री वचन सुनाई ॥
ब्रह्मा कर मोसों रति साजा । तो मैं झूठ कहौं यहिं काजा ॥
गायत्री ब्रह्महि समुझावा । दै रति या कहँ काज बनावा ॥
ब्रह्मा रति सावित्रिहि दीन्हा । पाप मोट आपन शिर लीन्हा ॥

सावित्री कस दूसर नाऊं । कहि पुहुपावति वचन सुनाऊं ॥
तीनों मिलिके चलि भे तहवां । कन्या आदिकुमारी जहवां ॥

ब्रह्माका गायत्री और सावित्री के साथ माताके पास पहुँचना
और सबका शाप पाना

करि प्रणाम सन्मुख रहे जाई । माता सब पूछी कुशलाई ॥

अद्यावचन ब्रह्माप्रति

कह ब्रह्मा पितु दरशन पाये । दूसरि नारि कहांसे लाये ॥

ब्रह्मावचन

कह ब्रह्मा दोऊ हैं साखी । परस्यो सीस देव इन आंखी॥

अद्यावचन गायत्रीप्रति

तब माता बूझे अनुसारी । कहु गायत्री बचन बिचारी॥
तुम देखा इन दर्शन पावा । कहा सत्य दर्शन परभावा ॥

गायत्रीवचन

तब गायत्री वचन सुनावा । ब्रह्मा दर्श सीस पितु पावा ॥
मैं देखा इन परसेउ शीशा । ब्रह्महि मिले देव जगदीशा ॥

छन्द

लेइ पुहुप परसेउ शीशपितु इन दृढमें देखत रही॥
जल ढार पुहुप चढ़ाय दीन्ह हे जननि यह है सही ॥
पुहुपते पुहुपावती भयी प्रगट ताही ठामते ॥
इनहु दर्शन लह्यो पितुको पूछहु इहि वामते ॥२६॥
हे जननी यह है सही तुम पूछि लो पुहुपावती ॥
सबही सांच मैं तोसों कहूँ नहिं झूठहै एको रती॥

अद्यावचन पुहुपावतीप्रति

माता कह पुहुपावतीसी कहो सत्य हि मो सना ॥
जो चढ़े सीसहि पिताके तुम वचन बोलहु ततखना॥

१ यह छन्द पुरानी प्रतियोंमें नहीं है

सो०–कहु पुहुपावति मोहि, दरश कथा निरवारके।।
यह मैं पूछों तोहि, किम ब्रह्मादरशन किये।।२७।।

सावित्री वचन

पुहुपावंती वचन तब बोली । मातासत्य वचन नहीं डोली।।
दर्शन सीस लह्यो चतुरानन । चढ़े सीस यह धर निश्चय मन।।

कबीरवचन धर्मदास प्रति

साख सुनत अद्या अकुलानी । भा अचरज यह मर्म न जानी।।

अद्याकी चिंता

अलखनिरंजन अस प्रण भाखी। मोकहँ कोउ न देखै आंखी ।।
ये तीनहुँ कस कहहिं लबारी । अलखनिरंजन कहहु सम्हारी।।
ध्यान कीन्ह अष्टंगी तिहि क्षण। ध्यानमहिं अस कह्यो निरंजन ।।

निरंजन वचन

ब्रह्मा मोर दरश नहिं पाया । झूठिसाखिइन आन दिवाया।।
तीनों मिथ्या कहा बनाई । जनि मानहु यह है लबराई।।

अद्याका ब्रह्माको शाप देना

यह सुनि माता कीन्हे दापा । ब्रह्मा कहँ तब दीन्हो शापा ।।
पूजा तोरि करै कोई नाहीं । जो मिथ्या बोलेउ मनमाहीं ।।
इक मिथ्या अरु अकरम कीन्हा। नरक मोट अपने शिर लीन्हा।।
आगे है जो शाख तुम्हारी । मिथ्या पाप करहिं बहुभारी।।
प्रगट करहिं बहु नेम अपारा । अन्तर मैल पाप विस्तारा ।।
विष्णु भक्तोंसे करहि हँकारा । तांते परिहैं नरक मँझारा ।।
कथा पुराण औरहिं समुझैं हैं । चाल बिहून आपन दुख पैहैं।।

---

१ पुराने ग्रन्थोंमें यह चौपाई इस प्रकार है–
सावित्री अस वचन उचारी । मानो निश्चय वचन हमारी

उनसे और सुनैं जो ज्ञाना । करिसो भक्ति कहों परमाना॥
और देवको अंश लखैहैं । औरन निन्दि काल मुख जैहैं॥
देवन पूजा बहु विधि लैहैं । दछिना कारण गला कटै हैं॥
जा कहा शिष्य करैं पुनि जाई। परमारथ तिहि नहिं लखायी॥
परमारथके निकट न जैहैं । स्वारथ अर्थ सबै समुझैहैं ॥
आप स्वारथी ज्ञान सुनैहैं । आपनि पूजा जगत दृढ़ै हैं ॥
आप ऊंच औरहि कहँ छोटा । ब्रह्मा तोर सखा होइ खोटा ॥

कबीर वचन धर्मदासप्रति

जब माता अस कीन्ह प्रहारा । ब्रह्मा मूर्छित महीकर धारा ॥

अद्याकागायत्रीको शाप देना

गायत्री जान्यो तेहि वारा । हुए है तोर पंच भरतारा ॥
गायत्री तोर होई वृषभ भर्तारा । सांत पांच और बहुत पसारा॥
धर औतार अखज तुम खायी । कहा जानि यह दीन्ही साखी॥
निज स्वारथ तुम मिथ्या भाखी। कहा जानि यह दीन्ही साखी॥
मानि शाप गायत्री लीन्ही । सावित्रिहि तब चितवन कीन्ही॥

अद्याका सावित्री को शाप देना

पुहुपावति निजमान धरायेहु । मिथ्याकहनिजजन्मनशायेहु॥
सुनहुपुष्पावतितुम्हरोविश्वासा।नहिं पूजिहैं तुम्हसे कछु आशा॥
होय कुगंध ठौर तव बासा ।भुगतहु नरक कामगहि आशा॥
जो तोहि सींच लगावे जानी । ताकर होय वंशकी हानी ॥
अब तुम जाय धरौ औतारा ।क्योडा केतकी नाम तुम्हारा॥

कबीरवचन धर्मदासप्रति छन्द

भये शापवश तीनों विकलमति, हीनछीन कुकर्मते॥
यह काल कलाप्रचंडकामिनि,डस्यो सब कहँ चर्मते ॥

ब्रह्मादि शिवसनकादिनारदको उन बचि भागहो ॥
सुनुधरमनिविरलाबच शब्द सतसो लागि हो ॥२८॥
सो०-सत्य शब्द परताप, कालकला व्यापै नहीं ॥
निकट न आवै पाप,मनवच कर्म जो पदगहे॥२९॥

शाप देदेने पर अद्याका पश्चाताप और निरंजनके डरसे डरना । छन्द

शाप तीनोंको दैलियो मन माहीं तब पछतावई ॥
कस करहि मोहि निरंजनापल छमा मोहि नआवई॥

निरंजनका अद्याको शाप देना

आकाशबानी तबै भयी यह काह कीन भवानिया॥
उत्पत्तिकारणतोहिपठाई कहा चरित यह ठानिया॥
सो०-नीचहि ऊच सिताय, बदल मोहि सोपावई॥
द्वापर युग जब आय तुमहिं पञ्च भर्तार हो ॥३०॥

अद्याका निडर होना । कबीर वचन धर्मदासप्रति

शापओयलजबसुनेउ भवानी। मनसनगुने कहा नहिं बानी॥
ओयलप्रभाव शाप हम पाया। अब कहा करब निरंजनराया॥
तोरे वस परी हम आई। जस चाहौ तस करौ मिताई॥

विष्णुका गौरसे श्याम होने का कारण अद्यावचन विष्णुप्रति

पुनि कहि माता विष्णु दुलारा। सुनहु पुत्र इकवचन हमारा ॥
सत्य सत्य तुम कहो बुझाई । पितुपद परसन जब गै भाई॥
प्रथमहु तो तुम गौर शरीरा ।कारण कौन श्याम भये धीरा॥

विष्णुवचन अद्या प्रति

आज्ञा पाय हम तत्काला ।पितुपद परसन चले पताला॥
अक्षत पुहुप लीन्ह करमाहां । चले पताल पंथ मग जाहां ॥
पहुँचि शेष नाग पहँ गयऊ । विषके तेज हम अलसयऊ ॥

भयो श्याम विषतेज समावा । भइ अवाज अस वचन सुनावा॥
अहो विष्णु माता पहँ जाई । वचन सत्य कहियो समुझाई॥
सतयुग त्रेता जैसे जबही । द्वापर ह्वै चौथा पद तबही ॥
तब तुम होहु कृष्ण अवतारा । लैहौ ओयलसो कही विचारा॥
नाथहु नाग कलिन्दी जाई । अब तुम जाहु विलंब न लाई॥
ऊंच होइके नीच सतावे । ताकर ओयल मोहिसो पावे॥
जो जिव देई पीर पुनि काहू । हम पुनि ओयल दिखावै ताहू ॥
पहुँचे हम तब ही तुव पासा । कीन्हेउ सत्य बचन परकाशा॥
भेटउ नाहिं मोहिं पद ताता । विषज्वाला साँवल भो गाता॥
व्याकुल भयो तबै फिर आयो । पितु पद दर्शन मैं नहिं पायो॥

अद्याका विष्णुको ज्योतिका दर्शन कराना

इतना सुनि हर्षित भइ माई । लीन्ह विष्णु कहँ गोद उठाई॥
पुनि अस कहेउ आदि भवानी । अब सुनहु पुत्रप्रियममबानी ॥
देख पुत्र तोहि पिता भिटावों । तोरे मन कर धोख मिटावों॥
प्रथमहि ज्ञान दृष्टिसों देखो । मोर वचन निज हृदय परेखो॥
मनस्वरूप करता कहँ जानो । मनते दूजा और न मानो ॥
स्वर्ग पताल दौर मन केरा । मन अस्थिर मन अहै अनेरा॥
क्षणमहँ कला अनन्त दिखावे । मनकहँ देख कोइ नहि पावे ॥
निराकार मनहीको कहिये । मनकीआशादिवसनिशिरहिये
देखहु पलटि शून्यमह जोती । जहवां झिलमिलझालर होती॥
फेरहु श्वास गगन कह धायो । मार्ग अकाशहि ध्यान लगायो॥
जैसे माता कहि समुझावा । तैसे विष्णु ध्यान मन लावा॥

छन्द

पेठि गुंफा ध्यान कीन्हो श्वास संयम लायके ॥
पवन धूँका दियो जबते गगन गरज्यो आयके ॥

बाजासुनततबमगनभापुनिकीन्हमनकसख्यालहो ॥
शून्यस्वेतपीतसब्जलालदियायरंगजगालहो ॥३०॥
सो०–ताहपीछे धर्मदास, मनपनि आपदिखायऊ ॥
कीन्ह ज्योति परकास,देखि विष्णु हर्षित भये३०॥
मातहि नायो शीश, बहु अधीन पुनि विष्णुभा ॥
मैं देखा जगदीश, हे जननी परसाद तुव ॥ ३१ ॥

धर्मदास वचन

धर्मदास गहि टेके पाया । हे साहिबइकसंशय आया ॥
कन्या मनको ध्यान बतावा ।सो यह सकल जीव भरमावा॥

सद्गुरु वचन

धर्मदास यह काल स्वभाऊ । पुरुष भेद विष्णू नहिं पाऊ॥
कामिनिकी यह देखहु बाजी । अमृतगोय दियो विष साजी॥
जात काल दूजा जनिजानहु ।निरखि धर्म सत्यहि पुरआनहु॥
प्रगट सु तोहिं कहो समुझाई । धर्मदास परखहु चितलाई ॥
जब परगट तस गुप्त सुभाऊ। जोरह हृदय सो बाहर आऊ॥
जब दीपक बारे नर लोई । देखहु ज्योति सुभाव विलोई॥
देखत ज्योति पतंग हुलासा । प्रीति जान आवै तिहिपासा॥
परसत होवे भसम पतंगा । अनजाने जरि परहि मतंगा ॥
ज्योतिस्वरूपकाल अस आही। कठिनकाल यह छांडत नाहीं
कोटि विष्णु औतारहि खाया। ब्रह्मा रुद्रहि खाय नचाया ॥
कौन विपति जीवनकी कहऊँ। परखि वचन निज सहजहि रहऊँ
लाख जीव वह नित्यहि खाई। असविकरालसोकालकसाई ॥

धर्मदास वचन

धर्मदास कह सुनहुँ गुसाई । मोरे चित्त संशय असआई ॥
अष्टंगीहि पुरुष उत्पानी ।जिहिविधि उपजी सो मैं जानी॥

पुनि वहि मास लीन्ह धमराई। पुरुष प्रताप सु बाहर आई ॥
सो अष्टंगीहि असछल कीन्हा। गोइसि पुरुष प्रगटयम कीन्हा॥
पुरुष भेद नहिं सुनन बतावा। कालनिरञ्जन ध्यान करावा ॥
यह कस चरित कीन्ह अष्टंगी। ताजा पुरुष भइकाल किसंगी॥

सद्गुरु वचन

धर्म सुनहु जन नारि सुभाऊ। अब तुहि प्रगटवरणिसमझाऊ॥
होय पुत्री जेहि घर माहीं। अनेक जतन परितोषै ताहीं॥
वस्त्र भक्ष सुख सेज निवासा। घरबाहर सब तिहि विश्वासा॥
यज्ञ कराय देय पितु माता। बिदाकीन्हहितप्रीतिसों ताता॥
गयी सुता जब स्वामी गेहा। रात्या तासु संग गुण नेहा ॥
माता पिता सबै बिसरावा। धर्मदास अस नारि स्वभावा ॥
ताते अद्या भई बिगानी। काल अंग ह्वै रही भवानी ॥
ताते पुरुष प्रगटने लायी। कालरूप विष्णुहि दिखलायी॥

धर्मदासवचन कबीर प्रति

हे साहब यह जान्यो भेदा। अब आगेका करहु उछेदा ॥

कबीर वचन धर्मदास प्रति

पुनि माता कहि विष्णु दुलारा। मरद्यो मान जेठ निजबारा ॥
अहो विष्णु तुम लेहु अशीशा। सब देवनमें तुमहीं ईशा ॥
जो इच्छा तुम चितमें धरिहौं। सो तब तोर काज मैं करिहौं॥

मायाका विष्णुको सर्वप्रधान बनाना

प्रथम पुत्रब्रह्म दुरि गयऊ। अकरमझूठिताहि प्रिय भयऊ॥
देवन श्रेष्ठ तुमहिं कहँ मातहिं। तुम्हारी पूजा सब कोई ठानहिं॥

कबीरवचन धर्मदासप्रति

कृपा वचन अस मातै भाखा। सबते श्रेष्ठ विणुकह राखा ॥
माता गयी रुद्रके पासा। देख रुद्र अति भये हुलासा॥

अष्टाका महेशको बरदान देना

पुनि लहुरा कहँ पूछे माता । तुम शिव कहो हृदयकी बाता॥
माँगहु जो तुम्हरे चित भावे । सो तोहि देऊ माता फुरमावे॥
दोउ पुत्रन कहँ मात दृढावा । माँग महेश जो मनभावा॥

महेशवचन

जोरि पानि शिवकहबे लीन्हा। देहु जननि जो आज्ञा कीन्हा॥
कबहिं न विनसे मेरी देही । हे माता मागों वर एही॥
हे जननी यह कीजै दाया । कबहु न विनशै मेरी काया॥

अष्टावचन

कह अष्टंगी अस नहीं होई । दूसरा अमर भयो नहिं कोई॥
करहु योग तप पवन सनेहा । रहै चार युग तुम्हरी देहा॥
जौलौं पृथ्वी अकाश सनेही । कबहु न बिनशै तुम्हरी देही॥

धर्मदासवचन

धर्मदास विनती चित्त लाई । ज्ञानि मोहि कहो समुझाई॥
यह तो सकल भेद हम पायी । अब ब्रह्माको कहो उथायी॥
अष्टा शाप ताहि कहँ दीन्हा । तेहि पीछे ब्रह्मा कस कीन्हा॥

कबीर वचन

विष्णु महेश जबै वर पाये । भये आनन्द अतिहि हरषाये॥
दोनों जने हरख मन कीन्हा । ब्रह्मा भयो मान मद हीना॥
धर्मदास मैं सब कुछ जानों । भिन्न भिन्न कर प्रगट बखानों॥

शाप पानेके कारण दुःखित हो ब्रह्मा विष्णुके पास जाकर
अपना दुःख कहना और विष्णुका उसे आश्वासन देना

ब्रह्मा मनमें भयो उदासा । तब चलि गयो विष्णुके पासा॥

ब्रह्मावचन विष्णुप्रति

जाय विष्णुसे बिन्ती ठाना । तुम हो बंधु देव परधाना॥
तुम पर माता भई दयाला । शाप विवश तुम भये बिहाला॥

निज करनी बल पायेहो भाई। किहि विधि दोष लगाऊँ माई ॥
अब अस जतन करो हो भ्राता। चले परिवारे वचन रहै माता ॥

विष्णुवचन

कहे विष्णु छोड़ो मन भंगा। मैं करिहौं सेवकाई संगा ॥
तुम जेठे हम लहुरे भाई। चित संशय सब देहु बहाई ॥
जो कोइ होवे भक्त हमारा। सो सेवै तुम्हारो परिवारा ॥

छन्द

जगमाहि एस दिढाई हौं फलपुन्य आशा जोयहो ॥
यज्ञ धर्म रु करे पूजा द्विज बिना नहिं होय हो ॥
जो करे सेवा द्विजनकी तेहि महापुण्य प्रभावहो ॥
सो जीवमोकहँअधिकप्यारेराखिहौं निजठाँवहो ३१

कबीरवचन धर्मदासप्रति

सो०—ब्रह्मा भये अनंद, जबहि विष्णु असभाषेऊ ॥
मेटेउ चितकर द्वंद्व, सखा मोर सब सुखीभौ ॥ ३२ ॥

कालप्रपंच

देखहु धर्मनि काल पसारा। इन ठग ठग्यो सकल संसारा ॥
आशा दै जीवन बिलपावै। जन्म जन्म पुनि ताहि सतावै ॥
बलि हरिचंद बेनु बइरोचन। कुंती सुत औरौ महिसोचन ॥
ये सब त्यागी दानि नरेशा। इन कहँ ले राखे केहि देशा ॥
जस गंजत इन सबकी कीन्हा। सो जग जानेकाल अधीना ॥
जानत है जग होय न शुद्धी। कालअमरबलसबकीहरबुद्धी ॥
मन तरंगमें जीव भुलाना। निजघर उलटिनचीन्ह अजाना ॥

धर्मदास वचन

धर्मदास कह सुनो गुसांई। तबकी कथा मोहि समुझाई ॥
तुम प्रसाद जमको छल चीन्हा। निश्चय तुम्हरे पदचित दीन्हा ॥

भव बूड़त तुमसी गहि राखा । शब्द सुधारस मोसन भाखा॥
अब वह कथा कहो समुझाई । शाप अंत किया कौन उपाई॥

कबीरवचन धर्मदासप्रति गायत्रीके ब्रह्माको शाप देनेका वृतान्त

धर्मनि तुम सन कहों बखानी। भाषो ज्ञान अगमकी बानी ॥
मातु शाप गायत्री लीन्हा । उलटि शाप पुनिमातहिं दीन्हा
हम जो पांच पुरुषकी जोई । पांचोंकी तुम माता होई ॥
बिना पुरुषकी तू जिनि है बारा। सो जानही सकल संसारा ॥
दुहुन् शाप फल पायो भाई । उगरह भयो देह धरि आई॥

जगतकी रचनाका विशेष वृत्तान्त

यह सब द्वंद्व बाद ह्वै गयऊ । तब पुनि जगकी रचना भयऊ
चौरासी लख योनिन भाऊ । चार खानि चारिहु निरमाऊ॥

छन्द

प्रथम अंडज रच्यो जननी, चतुरमुख पिण्डज कियो॥
विष्णु उष्मज रच्यो तबहीं, रुद्र स्थावर लियो ॥
लीन्ह रचि जेहि खानि चारों, जीव बंधन दीन्हहो॥
होन लागी कृषीकारण, करण कर्ता चीन्हहो ॥
सो०–यहि विधि चारो खानि, चारहु दिशि विस्तार किया
धर्मदास चित जान, वाणी चारि उचारको ॥३३॥

धर्मदास वचन कबीरप्रति

धर्मनि कहें जोरि युग पानी । तुम सद्गुरु यह कह्यो बखानी॥
चार खानिकी उत्पति भाऊ । भिन्न भिन्न मुहि वरणि सुनाऊ॥
चौरासी लख योनिन धारा। कौन योनि केतिक बिस्तारा॥

चार खानकी गिनती। कबीरवचन धर्मदास प्रति

कह कबीर सुन धर्मनि बानी । योनि भाव तोहि कही बखानी॥
भिन्न भिन्न सब कहु समुझाऊं। तुमसे अन्त न कछू दुराऊं ॥
तुम जिन शंका मानहु भाई। वचन हमार गहो चितलाई ॥

चौरासी लाख योनिकी गिनती

नौ लख जलके जीव बखानी । चौदह लाख पक्षी परवानी ॥
किरम कोट सत्ताइस लाखा । तीन लाख अस्थावर भाखा ॥
चतुर लक्ष मानुष परमाना । मानुष देह परम पद जाना ॥
और योनि परिचय नहिं पावे । कर्म बंध भव भटका खावे ॥

मनुष्य खानि सबते अधिक क्यों है ? धर्मदासवचन

धर्मदास नायो पद शीशा । यह समुझाय कहो जगदीशा ॥
सकलयोनि जिव एकसमाना । किमिकारणनहिंइकसमज्ञाना ॥
सो चरित्र मुनि कहो बुझाई । जाते चित संशय मिटिजाई ॥

सद्गुरुवचन

सुनु धर्मनि निज अंश अभूषण । तोहि बुझाय कहौं यह दूषण ॥
चार खानि जिव एकै आहीं । तत्त्व विशेष अहैं सुन ताहीं ॥
सो अब तुमसों कहों बखानी । तत्त्व विशेष अहैं सुन ताहीं ॥
ऊष्मज दोय तत्त्व परमाना । अंडज तीन तत्त्व गुण जाना ॥
पिण्डज चार तत्त्वगुण कहिये । पांच तत्त्व मानुष तन लहिये ॥
तासों होय ज्ञान अधिकारी । नरकी देह भक्ति अनुसारी ॥

किन २ खानिमें कौन २ तत्त्व है । धर्मदासवचन कबीरप्रति

हे साहिब मुहि कहु समुझाई । कौन कौन तत्त्व इन सब पाई ॥
अंडज अरु पिंडजके संगा । ऊष्मज और अस्थावर अंगा ॥
सोसाहिब मोहिवरणि सुनाओ । करो दया जनि मोहिदुराओ ॥

कबीरवचन धर्मदासप्रति छन्द

सतगुरु कहैं सुन दास, धर्मनि तत्त्वखानिनिबेरनो ॥
जाहि खानि जो तत्त्व दीन्हों, कहों तुमसो टेरनो ॥

---

१ इस पदको कई प्रतियोंमें लिखा है ।
सकल जिवन जिव एक समाना । नर सब औरनको नहिं ज्ञाना

खनिअण्डज तीन तत्त्व हैं, आप वायु अरु तेजहो॥
अचल खानी एकतत्त्वहि, तत्त्वजलका थेगहो३३॥
सो०–ऊष्मज तत हैं दोय, वायु तेज समजानिये॥
पिंडज चारहिं सोय, पृथ्वी तेहि अपवायुसम ॥३४॥
पिंडज नर परधान, पांच तत्त्वतेज संग है॥
कहे कबीर परमान, धरमदास लेहुपरखिके ॥३५॥
पिंडज नरकी देह सँवारा। तामें पांच तत्त्व विस्तारा॥
ताते ज्ञान होय अधिकाई। गहै नाम सत लोकहिं जाई॥

सब मनुष्योंका ज्ञान एक समान क्यों नहीं ? धर्मदास वचन

धर्मदास कह सुनु बन्दी छोरा। इक संशय मेटो प्रभु मेरा॥
सब नर नारि तत्त्व सम आहीं। इक सम ज्ञान सबनको नाहीं॥
दया शील संतोष क्षमा गुनन। कोई शून्य कोइ होय सम्पूरन॥
कोई मनुष्य होय अपराधी। कोईशीलतलकोईकालउपाधी॥
कोई मारि तन करे अहारा। कोई जीव दया उर धारा॥
कोई ज्ञान सुनत सुख माने। कोई काल गुणवाद बखाने॥
नाना गुण किहि कारण होई। साहिब बरणि सुनावो सोई॥

कबीरवचन धर्मदासप्रति

धर्मदास परखो चित लाई। नरनारी गुण कहूँ बुझाई॥
जानते नर है ज्ञानी अज्ञानी। सो सब तोहि कहों सहिदानी॥
नाहर सर्प औ स्वान सियारा। काग गिद्ध सूकर मंजारा॥
और अनेकजो इन अघखानी। खाहि अखजअधमगुणजानी॥
इन जो इतने जे जिव आवा। नरकी जोन जन्म जिन पावा॥
पीछे जो इन सुभावन छूटे। कर्म प्रधान महापुन छूटे॥
ताते सब चले कागके लेखे। नरकी देह परगट तेहि देखे॥

जिहि जो इतने जो नर आऊ। ताको तैसो आहि सुभाऊ ॥
अघकरमी घातक विष पूजा। जो इन प्रभाव होय नहिं दूजा ॥

योनिप्रभाव मेटनेका

सतगुरु मिले तो ज्ञान लखावै। काग दशा तव सब बिसरावै ॥
मुरचा जो इन छूटै तब भाई। ज्ञान मसकला फिरे बनाई ॥
जब धोबी वस्तर कहँ धोवे। जससाबुन मिल उज्वल होवे ॥
थोर मैल कर वस्तर भाही। थोड़े परिश्रम मैल नसाई ॥
निपट मलिनजे वस्तर आही। ताकहँ अधिक अधिक श्रमचाही
जैसे मैल वस्तर कर भाऊ। ऐसे जीवन करे सुभाऊ ॥
कोइ कोइ जो अंकुर होई। स्वल्प ज्ञान सो गहे विलोई ॥

धर्मदास वचन

यह तो स्वल्प जोनि करलेखा। खानि भाव अब कहूँ विशेषा ॥
चारि खानिको जिव है जोई। मनुष्य खानमहँ आवे सोई ॥
ताकर लच्छन मोहि बताओ। विलगबिलगकरिमुहिसमझाओ
जेहि परखी मुहहिं महँ चेतू। कर अब साहब यहि बड़ हेतू ॥

चारि खानिके लक्षणोंकी पारख । कबीरवचन

धर्मदास परखहु चित लायी। चारिखानिगुणकहुँसमुझायी ॥
चारों खानि जीव भरमाया। तब ले नरकी देह धराया ॥
देह धरे छोड़े जस खाना। तैसे ता कहँ ज्ञान बखाना ॥
लच्छन औ अपलच्छन भेदा। सो सब तुमसौं कहौं निषेदा ॥

अण्डजखानसे मसुष्यदेहमें आये हुए जीवकी पारख

प्रथम कहों अण्डजकी बानी। एकहिं एक कहों बिलछानी ॥
आलस निद्रा जा कहँ होई। काम क्रोध दारिद्री सोई ॥
चोरी चंचल अधिक सुहाई। तृष्णा माया अधिक बढ़ाई ॥
चोरी चुगुली निन्दा भावे। घर बनझाड़ी अगिन लगावे ॥
रोवे कूंदे मंगल गावे। भूत प्रेत सेवा मन भावे ॥

देखत देत और पुनि काहू । मन मन झंखे बहु पछताहू ॥
वाद विवाद सबसों ठाने । ज्ञान ध्यान कछु मनहिं न आने॥
गुरुसतगुरु चीन्हें नहिं भाई । वेद शास्त्र सब देइ उठाई ॥
आपन नीच ऊंच मन होई । हमसमसरि दूसर ना कोई ॥
मैले बस्तर नहीं नहाई । आंख कीन मुख लार बहाई ॥
पांसा जुवा चित्त मन आने । गुरुचरणनिशिदिननहिंजाने॥
कुबरा मूड़ ताहिका होई । लंबा होय पाव पुनि सोई ॥

छन्द

यहि भांतिलक्षणमैं कहा, तुम सुनहु धर्मनि नागरू॥
अंडज खानिन गोयराखा, कह्यो भेद उजागरू ॥
यह खानि वर्णन कहों तोसों, कछु नाहिं छिपायऊ॥
सोसमुझावानीजीवथिरकै, धोखसकलमिटायऊ ३४

उष्मज खानिसे मनुष्य देहमें आये हुये जीवनकी पारख

सोरठा–दूजीखानि बताय, ताहि लक्ष तोसों कहो॥
उष्मजते जिय आय, नर देही जिन पाइय ॥ ३६ ॥
कहैं कबीर सुनो धर्मदासा । उषमज भेद कहौं परगासा ॥
जाइ शिकार जीव बहु मारे । बहुतसे आनन्द होय तेहि वारे॥
मारि जीव जब घरकहँ आयी । बहुविधि रांध ताहि कहँ खाई॥
निन्दे नाम ज्ञान कह भाई । गुरु कहँ मेठि करे अधिकाई॥
निन्दे शब्द और गुरु देवा । निन्दे चौका नरियर भेवा ॥
बहुत बात बहुतेनरि आयी । कथे ज्ञान बहुते समुझायी ॥
झूठे वचन सभामें कहई । टेढ़ी पाग छोर उरमहई ॥
दया धरम मनहीं नहिं आवे । करें पुन्य तेहि हांसी लावे ॥
माल तिलक अरु चन्दन करई । हाट बजार चिकन पटफिरई॥

अन्तर पापी ऊपर दाया । सो जिव यमके हाथ विकाया ॥
लंब दांत अरु वदन भयावन । पीरे नेत्र ऊँच अति पावन ॥

छन्द

कहे सतगुरु सुनहु धर्मनि, भेद भल तुम पाइया ॥
सतगुरु विना नहिंभेदपावे, भलीविधितोहिदरसाइया
भेंटिया तुम मोहिको, कछु नाहिं तोहिं दुराइहौं ॥
जो बूझिहो तुम मोहिसो, सकलभेद बताइहौं ॥३५॥

स्थावर खानिसे मनुष्य शरीरमें आये हुए जीवनकी पारख

सो०-तीजीखानि सुभाव अचलखानि जेहि कहत
नरदेही तिनपाव, ताकर लक्षण अब बताइहौं॥३७॥

अचल खानिको कहो सँदेसा । देह धरे जस होवें भेसा ॥
छनिक बुद्धि होवे जिव केरी । पलटत बुद्धि न लागे बेरी ॥
झङ्गा फेटा सिर पर पागा । राज द्वार सेवा भल लागा ॥
घोड़ा पर होवे असवारा । तीन खरग औ कमरकटारा ॥
इत उत चित सैन जो मरई । पर नारी करि सैन बुलवाई ॥
रससों बात कहें मुख जानी । काम बान लागे उर आनी ॥
पर घर ताकइ चोरी जायी । पकर बांधि राजा पहँलायी ॥
हांसी करे सकल पुनि जगहूँ । लाज शर्म उपज नहिं तबहूँ ॥
छिन इक मन महँ पूजा करई । छिन इकमन सेवा चितधरई ॥
छिन इक मन महँ बिसरे देवा । छिन इक मनमहँकीजै सेवा ॥
छिन इक ज्ञानी पोथी बांचा । छिन इकमांहिंसबनघरनाचा ॥
छिन इक मनमें सूर कहोई । छिन इकमें कादर हो सोई ॥
छिन इक मनमें साहु कहाई । छिन इक मनमें चारि लगाई ॥
छिन इक मनमें करे जु धम्मर्म । छिन इक मनमें करे अकम्मर्म ॥

भोजन करत साथ खजुआई । बाँह जाँघ पुनि मींजत भाई॥
भोजन करत सोय पुनि जाई । जो जगाय तिहि मारन धाई॥
आंख लाल होहिं पुनि जाकी । कहँलग भेद कहों मैं ताकी॥

छन्द

अचलखानीभेद धर्मनि, छिनक बुद्धि सो होयहो॥
छिन माहिं करके मेट डारे, कहों तुमसों सोयहो॥
मिले सतगुरु सत्य जा कहँ, खान बुधिसबमेटही॥
गुरुचरणलीन अधीन होवै, लोकसोहँसापैठही॥३६॥

पिंडज खानिसे मनुष्य शरीरमें आये हुए जीवनकी पारख

सोरठा–सुनहु हो धरमदास, पिंडज लक्षणगुणकहो॥
कहों तुम्हारे पास चौथीखानिकी युक्तिसो ॥३७॥
पिंडज खानिके लच्छ सुनाऊँ। गुण अवगुणका भेद बताऊँ ॥
वैरागी उनमुनि मत धारी । करे धर्म पुनि वेद विचारी ॥
तीरथ औ पुनि योग समाधी । गुरुके चरणचित्तभलबाँधी ॥
वेद पुराण कथे बहु ज्ञाना । सभा बैठि बातें भल ठाना ॥
राजयोग कामिनी सुख माने । मनशंका कबहूँ नहिं आने ॥
धन संपति सुख बहुत सहायी। सेज सुपेद पलंग बिछायी ॥
उत्तम भोजन बहुत सुहायी । लौंग सुपारी बीसों खायी ॥
खरचे दाम पुन्य महँ सोई । हिरदे सुधि ताकर पुनि होई॥
चच्छु तेज जाकर पुनि जानी । पराक्रम देही बल ठानी ॥
देखो स्वर्ग सदा तेहि हाथा । देखे प्रतिमा नावे माथा ॥

छन्द

बहुतलीन आधीन धर्मनि, ताहि जितकहँजानिहो॥
सतगुरुचरणनिशिदिनगहे, मतशब्दनिश्चयमानिहो॥

एक एक बिलोय धर्मनि, कह्यो सत मैं तोहिसों ॥
चारखानी लक्ष भाषेउँ, सुनो आगे मोहिसों ॥३८॥

मनुष्य शरीरसे मनुष्यदेहमें आनेवाले जीवकी पारख

सोरठा—छूटे नरकी देह, जन्म धरे फिर आयके ॥
ताका कहौ सँदेह, धर्मदास सुनु कानदे ॥३९॥

धर्मदासवचन

हे स्वामी इक संशय आयी । सो पुनि मोहि कहो समझाई ॥
चौरासी योनिन भरमावे । तब मानुष की देही पावे ॥
यह विधि मोसन कह्यो बुझायी । अब कैसे यह संधि लखायी ॥
सो चरित्र गुरु मोहि लखाऊ । धर्मदास गहि ठेके पाऊ ॥
मानुष जन्म धरे पुनि आयी । लक्षण तासु कहो समझायी ॥

कबीरवचन

धर्मदास तुम भलिविधि जानो । होय चरित सो भले बखानो ॥

आयु रहते भी मृत्यु होती है

आइ अछत जो नर मर जायी । जन्म धरे मानुषको आई ॥
जो पुनि मूरख ना पतियाई । दीपक बाती देख जराई ॥
बहुविधि तेल भरे पुनि ताही । लागै वायु तबै बुझ जाही ॥
अग्नि लायके ताहि लेसावे । यहिविधि जीवहु देह धरावे ॥
ताको लक्षण सुनहु सुजाना । तुमसों न गोय राखूं ज्ञाना ॥
शूरा होवे नरके माहीं । भयउ डरताके निकट जाहीं ॥
माया मोह ममता नहिं व्यापे । दुश्मन ताहि देखि डरकांपे ॥
सत्य शब्द प्रतीति कर माने । निन्दा रूप न कबही जाने ॥
सतगुरु चरण सदा चितराखे । प्रेम प्रीतिसो दीनता भाखे ॥
ज्ञान अज्ञान होइ कहँ बूझे । सत्यनाम परिचय नित सूझे ॥
जो मानुष अस लक्षण होई । धर्मदास लखि राखो सोई ॥

छन्द

जनमजनमको मैल छूटे, पुरुष शब्द जो पावई ॥
नाम भा सुमिरण गहे सो, जीव लोक सिधावई ॥
गुरुशब्द निश्चय दृढगहेसो, जीव अमियअमोलहो
सतनामबल निज घर चले,करे हंसकलोलहो॥२८॥
सोरठा–सत्यनामपरताप, काल न रोके जीवकहँ ॥
देखिवंशको छाप, काल रहै सिर नायके ॥ ४०॥

चौरासी धार क्यों बनी ? धर्मदासवचन

चारि खानिके बूझेउ भाऊ । अब बूझों सो मोहि बताऊ॥
चौरासी योनिनकी धारा । किह कारण यह कीन्ह पसारा॥
नर कारण यह सृष्टि बनाई । कै कोह और जीव भुगताई॥
है साहिब जनि मोहि दुराओ। कीजे कृपाबिलंबजनिलाओ॥

मनुष्यके लिये चौरासी बनी है सद्गुरुवचन

धर्मनि नर देही सुखदायी । नर देही गुरु ज्ञान समाई ॥
सो तनु पाय आप जहँ जावे । सतगुरुभक्ति विनादुख पावे॥
नर तनु काज कीन्ह चौरासी । शब्द न गहे मूढ़मतिनाशी॥
चौरासीकी चाल न छाड़े । सत्य नाम सो नेह न माड़े॥
लै डारे चौरासी माहीं । परचै ज्ञान जहां कछु नाहीं ॥
पुनिपुनि दौड़ि कालमुखजाहीं। ताहूते जिव चेतत नाहीं ॥
बहुत भांतिते कहि समुझावा। जीवत बिपति जान गुहरावा॥
यह तनु पाय गये सतनामा । नामप्रताप लहे निजधामा ॥

छन्द

आदिनाम विदेह अस्थिर,परखि जो जियरा गहे॥
पाय बीरा सार सुमिरण, गुरु कृपा मारग लहे ॥

तजिकागचाल मराल पथगहि, नीरक्षीरनिवारिके ॥
ज्ञानदृष्टिसोअदृष्टि देखे, क्षरअक्षरसुविचारिके॥२९॥
सोरठा–निह अक्षर है सार, अक्षरतै लखि पावई ॥
धर्मनि करो विचार निह अक्षर निहतत्त्व है ॥४१॥

धर्मदासवचन

धर्मदास कहे शुभ दिन मोरा । हे प्रभु दरसन पायउँ तोरा ॥
मुहि किंकर पर दाया कीजै । दास जानि मोहि यहु बरदीजै॥
निशिदिन रहो चरण लौलीना । पल इक चित्त न होवे भीना॥
तुव पदपंकज रुचिर सुहावन । पद परागबहुपतितन पावन॥
कृपासिंधु करुणामय स्वामी । दया कीन्ह मोहि अंतरयामी॥
हे साहिब मैं तव बलिहारी । आगल कथा कहो निरवारी॥
चारखानि रचि पुनिकसकीन्हा। सो सब मोहि बतावो चीन्हा॥

जीवोंके लिये कालका फन्दा रचना । कबीरवचन

सुनु धर्मनि यह है यमबाजी । जेहि नहिं चीन्हे पंडितकाजी॥
जा यम ताहि गोसइयां भाखे। तजे सुधा नर विषकहँ चाखे ॥
चारिहु मिलि यह रचना कीन्हा। कच्चा रंग सु जीवहि दीन्हा॥
पांच तत्त्व तीनों गुण जानो । चौदह यम ता संग पिछानो ॥
यहि विधि कीन्ही नरकीकाया। मरे खाय बहुरि उपजाया ॥
ओंकार है वेदको मूला । ओंकारमें सब जग भूला ॥
है ओंकार निरंजन जानों । पुरुष नाम सो गुप्त अमानो॥
सहस अठासी ब्रह्मा जाया । भा विस्तर कालकी छाया ॥
ब्रह्माते जिव उपजे बारा । तिन पुनि कथे बहुत विस्तारा॥
स्मृति शास्त्र पुराण बखाना । तामें सकल जीव उरझाना॥
जीवनको ब्रह्मा भटकावा । अडखनिरंजन ध्यान दृढ़ावा॥

वेद मते सब जिव भरमाने । सत्य पुरुषको मर्म न जाने॥
निरंकार कस कीन्ह तमासा । सो चरित्र बूझो धर्म दासा॥

छन्द

असुर ह्वै जीवन सतावे, देव ऋषि मुनि कारकं ॥
पुनि धरि औतार रक्षक, असुर करै संहारकं ॥
जीवको दिखलाय लीला, अपनी महिमा घनी ॥
यहिजानजीवनबांधिआशा, यही है रक्षक धनी४०
सो०–रक्षककला दिखाय, अन्तकाल भक्षण करे ॥
पीछे जिव पछताय, जबहि कालके मुख परे ॥४२॥

अडसठ तीरथ ब्रह्मा थापा । अकरम करम पुण्य औ पापा॥
बारहराशि नखत सत्ताइस । सात वार पंद्रह तिथि लाइस॥
चारों युग तब बांधे तानी । घड़ी दंड स्वासा अनुमानी॥
कार्तिक माघ पुन्य कहि दीन्हा । यमबाजी कोइ बिरले चीन्हा॥
तीरथ धामकी बांधि महातम। तजे न भरम न चीन्हे आतम॥
पाप पुण्यमहँ सबै फँदावा । यहि विधि जीव सबै उरझावा॥
सत्य शब्द विनु बांचे नाहीं । सारशब्द बिन यममुख जाहीं॥
त्रास जानि जिव पुण्य कमावे । किंचित फल तेहि छुधा न जावे॥
जबलग पुरुष डोर नहिं गहई । तब लग योनिन फिर२लहई॥
अमित कला जम जीव लगावे। पुरुष भेद जीव नहिं पावे ॥
लाभ लोभ जिव लागे धायी । आशा बंध काल धर खायी॥
यम बाजी कोइ चीन न पावे । आशा दे यम जीव नचावे ॥
प्रथमैं सतयुगको व्यवहारा । जीवहि यम लै करै अहारा॥
लच्छ जीव यम नितप्रति खाई। महाअपरबल काल कसाई ॥
तप्तशिलानिशिदिन तहँ जरई। तापर लै जीवन कहँ धरई ॥

जीवहि जारै कष्ट दिखावे । तब फिर लै चौरासी नावे ॥
ता पीछे योनिन भरमावे । यहि विधि नानाकष्ट दिखावे॥
बहुविधि जीवन कीन्ह पुकारा। काल देत है कष्ट अपारा ॥

तप्त शिलापर कष्ट पाकर जीवोका गुहार करना और कबीर साहबका सतपुरुषकी आज्ञासे जाकर उन्हे छुड़ाना

यमकर कष्ट सह्यो नहिं जाई। हे गुरु ज्ञानी होहु सहाई ॥

छन्द

जबदेखिजीवनकोविकल अतिदया पुरुषजनाइया ॥
दयानिधि सत पुरुषसाहिब, तबै मोहि बुलाइया ॥
कहे मुहिं समुझाय बहुविधि, जीवजाय चितावहू ॥
तुम दरशदेतेहो जीव शीतल,जायतपनबुझायहू४१॥
सोरठा–आज्ञालीन्हामान,पुरुषसिखापनसीसधरि ॥
ताक्षण कीन्ह पयान, सीसनायसतपुरुष कहँ ॥४३॥
आये जहँ यम जीव सतावे । काल निरंजन जीव नचावे ॥
चटपट करे जीव तहँ भाई। ठाढ़े भये तहां पुनि जाई ॥
मोहि देख जिव कीन्ह पुकारा। हे साहिब मुहि लेहि उबारा॥
तब हम सत्य शब्द गुहरावा । पुरुष शब्दते जीव जुड़ावा ॥

जीवोंका स्तुति करना

सकल जीव तब अस्तुति लाये। धन्य पुरुष भल तपन बुझाये॥
यमते छोर लेव तुम स्वामी । दया करो प्रभु अन्तरयामी ॥

कबीरवचन जीवोंप्रति

तब मैं कहा जीव समुझाई । जोर करो तो वचन नसायी॥
जब तुम जाय धरौ जग देहा । तब तुम करिहो शब्द सनेहा॥
पुरुष नाम सुमिरण सहिदाना। बीरा सार कहो परवाना ॥
देह धरी सत शब्द समाई । तब हंसासत लोके जाई ॥

जहां आशा तहां बासा

जहँ आशा तहँ बासा होई । मन वच करम सुमिर जो कोई ॥
देह धारि कीन्हे जिहि आसा । अंत आय लीन्हेउ तहँ वासा ॥
जब तुम देह धरो जग जाई । बिसरचो पुरुषकाल धरिखाई ॥

जीवन वचन कबीर प्रति

कहे जीव सुनु पुरुष पुराना । देह धरी बिसरचो यह ज्ञाना ॥
पुरुष जान सुमरेउ यमराई । वेद पुराण कहे समुझाई ॥
वेद पुराण कहे पति एहा । निराकार ते कीजे नेहा ॥
सुर नर मुनि तेतीस करोरी । बांधे सबै निरंजन डोरी ॥
ताके मते कीन्ह मैं आसा । अब मोहि चीन्ह परे यम फांसा ॥

कबीर वचन जीवोंप्रति

सुनो जीव यह छल मम केरा । यह यम फंदा कीन्ह घनेरा ॥

छन्द

काल कला अनेक कीन्हों, जीव कारण ठाट हो ॥
तीर्थव्रत जग योग फन्दे, कोइ न पावत बाट हो ॥
आप तन धरि प्रगट ह्वैके सिफत आपन कीन्हेऊ ॥
नानागुणनमन कर्म कीन्हे, जीव बंधन दीन्हेऊ ॥४३॥
सोरठा-कालकराल प्रचण्ड, जीवपरे वश ताहिके ॥
जनम जनमभे दण्ड, सत्यनाम चीन्हे विना ४४

---

१ यह छन्द कई ग्रंथोंमें कई प्रकारसे लिखा है दूसरे प्रकारसे जो दो सौ वर्षसे भी अधिकके लिखे पुराने ग्रंथ में इस प्रकार है--

छन्द-काल कन्या अनेक कीन्हे जीव कारण जाल हो ।
वेद शास्त्र पुरान स्मृति ते रुधें काल कराल हो ।
देव धरि नर प्रगट हो फ़िरे, ताहि आशा कीन्हेऊ,
भ्रमत इत उत काल वसि, बहुपंथमें चित दीन्हेऊ ॥

कबीरवचन धर्मदासप्रति

छन इक जीवन कहँ सुख दयऊ। जीव प्रबोध पुरुष पहँ गयऊ॥
छन इक जीवन कहँसुख दीन्हा। जीवन कह्यो ज्ञानको चीन्हा॥
जब तुम देह धरो जग जाई। तब हम शब्द कहब गोहराई॥
जौं गहि हो सत नामकी डोरी। तब आनब हम जमसे छोरी॥
जीव परमोधि पुरुषपहँ गयऊ। जीवनको दुख वरनि सुनयऊ॥
पुरुषदयाला दयानिधि स्वामी। जिनके मूल अमान अकामी॥
कह्यो मोहिं बहुविधि समुझाई। जीवन आनों शब्द चेताई॥

धर्मदासवचन

धर्मदास अस विनती लायी। ज्ञानी मोहिं कहो समझायी॥
जो कछु पुरुषशब्दसुख भाखो। सो साहिब मोहि गोय न राखो॥
कौन शब्दते जीव उबारा। सो साहिब सब कहो बिचारा॥

सद्गुरुवचन

पुरुष मोहि जैसे फुरमायी। सो सब तुमसों संधि लखायी॥
कहेउ मोहिबहुविधिसमझायी। जीवहि आनो शब्द चितायी॥
गुप्त वस्तु प्रभु मोकहँ दीन्हा। नाम विदेह मुक्तिकर चीन्हा॥
दीन्ह पात परवाना हाथा। संधिछाप मोहि सौंप्यो नाथा॥
बिनु रसनाते सो धुनि होई। गुरुगमते लखि पावे कोई॥
पंच अमीय मुक्तिका मूला। जाते मिटे गर्भ अस्थूला॥
यहि विधि नाम गहे जो हंसा। तारौ तासु इकोतर बंसा॥
नाम डोरि गहि लोकहि जायी। धर्मराय तिहि देखि डरायी॥
ज्ञानी करो शिष्य जेहि जाई। तिनका तोरो जल अँचवाई॥
जिहिविधिदीन्ह तुमहिमैं पाना। तेहिविधिदेहुशिष्य सहिदाना॥

गुरुमहिमा

गुरुमुख शब्द सदा उर राखे। निशिदिन नामसुधारस चाखे॥
पियानेह जिमि कामिनि लागे। तिमिर गुरुरूप शिष्य अनुरागे

पल पल निरखे गुरुमुखकान्ती । शिष्यचकोरगुरूशशिशान्ती॥
पतिव्रता ज्यों पतिव्रत ठाने । द्वितीय पुरुष सपने नहिं जाने॥
पतिव्रता दोउ कुलहिं उजागर । यह गुण गहे संतमति आगर॥
ज्यों पतिव्रता पिया मन लावे । गुरु आज्ञा अस शिष्य जुगावे॥
गुरुते अधिक और कोइ नाहीं। धर्मदास परखहु हिय माहीं॥
गुरुते अधिक कोइ नहिं दूजा । भर्म तजै करि सतगुरुपूजा ॥
तीर्थ धाम देवल अरु देवा । शीश अर्पि जो लावैं सेवा ॥
तो नहिं वचन कहें हितकारी । भूले भरमें यह संसारी ॥

छन्द

गुरु भक्ति अटल अमानधर्मनि, यहि सरस दूजा नहीं ॥
जप योगतप व्रतदान पूजा, तृणसदृश यह जग कहीं॥
सतगुरुदया जिहिसन्तपर तिहि, हृदययहिविधि आवई॥
ममगिरापरखेहरषिकेहिय, तिमिरमोहनशावई॥४३॥
सोरठा—दीपकसतगुरुज्ञान, निरखेहु सन्तअंजोरतोहि
पावे मुक्ति अमान, सतगुरु जेहि दाया करे ॥५४॥

शुकदेवजीकी कथा

शुकदेव भये गरभ जोगेशर । उन समान नहिं थाप्यो दूसर॥
तपके तेज गये हरि धामा । गुरु बिन नहीं लहे विश्रामा॥
विष्णु कहे ऋषि कहँवा आये । गुरु विहीन तप तेज भुलाये ॥
गुरु विहीन नर मोहि न भावे । फिर २ जो इन संकट आवे ॥
जाहु पलटि गुरु करहु सयाना। सब पैहौ यहवां अस्थाना ॥
सुनिसुनि शुकदेव वेगि सिधाये। गुरुविहीन तहँ रहन न पाये ॥
जनक विदेह कीन्ह गुरुजानी । हरषि मिले तब सारंगपानी ॥
नारद ब्रह्मा सुत बड़ ज्ञानी । यह सब कथा जगतमें जानी॥

और देव ऋषि मुनिवर जेते । जिन गुरुलीन्ह उतर सो तेते॥
जो गुरु मिले तो पंथ बतावे। सार असार परख दिखलावे॥
गुरु सोई जो सत्य बतावे । और गुरु कोइ काम न आवे॥
सत्य पुरुषके कहे सँदेशा । जन्म जन्मका मिटै अँदेशा॥
पाप पुन्यकी आशा नाहीं । बैठे अक्षय वृक्ष की छांहीं ॥
भृङ्गी मत होवे जिहि पासा । सोइ गुरुसत्य सुनो धर्मदासा॥

छन्द

जो रहित घर बतलावई, सो गुरु सांचा मानिये ॥
तीन तजि मिलि जाय चौथ,तासुवचनपरमानिये॥
पांच तीन अधीन काया, न्यार शब्द विदेह हैं ॥
देह मांहि विदेह दरशै,गुरुमत निज ए कहौं ॥४५॥
सोरठा-ध्यान विदेह समा, देह धरेका फल यहै ॥
नहिं आवै नहिं जाय,मिलइ देह विदेह होइ ॥४६॥
अस गुरु करे बनाय, बहुरि न जग देही धरे ॥
नहिं आवे नहि जाय, जिहि सतगुरुदाया करे॥४७॥

धर्मदासवचन

हे प्रभु मोहि कृतारथ कीन्हा । पूरण भाग्य दरश मुहि दीन्हा॥
तव गुण मोसन वरणि न जाई। मो अचेत कहँ लीन्ह जगाई ॥
सुधा वचन तुम मोहि प्रियलागे। सुनतहि वचन मोह मद भागे॥
अब वह कथा कहो समुझायी।जिहि विधि जगमें प्रथमैं आयी॥

कबीरसाहबका सत्पुरुषकी आज्ञा पाकर जीवोंको चितानेके लिये चलना,निरंजनसे भेट होना और उससे बात चीत करके आगे बढना

कबीरवचन

धर्मदास जो पूछ्यो मोही । युग युग कथा कहौं मैं तोही॥
जबही पूरुष आज्ञा कीन्हा ।जीवनकाज पृथ्वी पग दीन्हा॥

करि प्रणाम तबहीं पगु धारा । पहुँचे आय धर्म दरबारा ॥
प्रथमैं चलेउ जीवके काजा । पुरुष प्रताप शीशपर छाजा ॥
तेहियुग नाउ अचिन्त कहाये । आज्ञा पुरुष जीव पहँ आये ॥
आवत मिल्यो धर्म अन्याई । तिन पुनि हमसों रार बढ़ाई ॥
मो कहँ देखि धर्म ढिग आवा । महा क्रोध बोले अतुरावा ॥
योगजीत इहवां कस आवो । सो तुम हमसो वचन सुनावो ॥
कै तुम हमको मारन आओ । पुरुष वचन सो मोहि सुनायो ॥

जोगजीत वचन

तासो कह्यो सुनो धर्मराई । जीव काज संसार सिधाई ॥
बहुरि कह्यो सुन सो अन्याई । तुम बहु कीन्ह कपट चतुराई ॥
जीवन कह तुम बहुत भुलावा । बार बार जीवन संतावा ॥
पुरुष भेद तुम गोपित राखा । आपन महिमा परगट भाखा ॥
तप्त शिलापर जीव जरावहु । जारि बारि निजस्वाद करावहु ॥
तुम अस कष्टजीव कह दीन्हा । तबहिपुरुषमोहिआज्ञा कीन्हा ॥
जीव चिताय लोक लै जाऊं । काल कष्टसे जीव बचाऊं ॥
ताते हम संसारहि जायब । दे परवाना लोक पठायब ॥

धर्मराय वचन

यह सुनि काल भयंकर भयऊ । हम कहँ त्रास दिखावन लयऊ ॥
सत्तर युग हम सेवा कीन्ही । राज बड़ाइ पुरुष मुहिं दीन्ही ॥
फिर चौंसठ युग सेवा ठयऊ । अष्ट खंड पुरुष मुहिं दयऊ ॥
तब तुम मारि निकारे मोही । योगजीत नहिं छांड़ों तोही ॥
अब हम जान भली विधि पावा । मारों तोहि लेउँ अब दावा ॥

जोगजीत वचन

तब हम कहा सुनों धर्मराया । हम तुम्हरे डर नाहिं डराया ॥
हम कहँ तेज पुरुष बल आही । अरे काल तुव डर मोहि नाही ॥

पुरुष प्रताप सुमिरितिहि बारा। शब्द अंगते कालहि सारा ॥
ततछण दृष्टि ताहि पर हेरा।श्याम ललाट भयो तिहि केरा॥
पंख घात जस होय पँखेरू। ऐसे काल मोहि पहँ हेरू ॥
करे क्रोध कछु नाहिं बसाई। तब पुनि परेउ चरण तर आई॥

धर्मरायवचन छन्द

कह निरंजन सुनो ज्ञानी, करो विनती तोहिसों ॥
जान बन्धु विरोध कीन्हों,घाट भयी अब मोहिसों॥
पुरुष सम अब तोहि जानों नहिं दूजी भावना ॥
तुम बड़े सर्वज्ञ साहिब, क्षमा छत्र तनावना ॥ ४९ ॥
सो०—तुमहूँ करो बखशीश, पुरुष दीन्ह जसराजमुहिं॥
षोडशमहँ तुम ईश, ज्ञानी पुरुष एकसम ॥४८॥

ज्ञानी वचन

कह ज्ञानी सुनु राय निरंजन। तुम तो भये वंशमें अञ्जन ॥
जीवन कहँ मैं आनब जाई। सत्य शब्द सत नाम दृढ़ाई॥
पुरुष आज्ञाते हम चलि आये। भौ सागरते जीव मुक्ताये ॥
पुरुष अवाज टारु यहि बारा। छनमहँ तो कहँ देउँ निकारा ॥

धर्मराय वचन

धर्मराय अस बिनती ठानीं। मैं सेवक द्वितीया नहिं जानी॥
ज्ञानी विनती एक हमारा। सो न करहु जिहि मोर विगारा॥
पुरुष दीन्ह जस मोंकहँ राजू। तुमहूँ देहु तो होवे काजू ॥
अब हम वचन तुम्हारो मानी। लीजो हंसा हम सो ज्ञानी ॥
विनती एक करों तुहि ताता। दृढ़ कर मानो हमरी बाता ॥
कहा तुम्हारो जीव नहिं मानहिं। हमरी दिशिह्वै बादबखानिहिं॥
दृढ फन्दा हैं रचा बनायी। जामें जीव रहे उरझायी ॥
वेदशास्त्र सुमिरिति गुणनाना। पुत्री तीन देवन परधाना ॥

तिनहू बहु बाजी रचि राखा । हमरी डोरि ज्ञान मुखिभाखा॥
देवल देव पखान पुजाई । तीरथ व्रत जप तप मनलाई ॥
पूजा विश्व बलि देव अपराधी । यहि मति जीवन राख्यो बांधी॥
जग्य होम अरु नेम अचारा । और अनेक फन्द मैं डारा ॥
जो ज्ञानी जैहो संसारा । जीव न माने कहा तुम्हारा ॥

ज्ञानीवचन

ज्ञानी कहे सुनो अन्याई । काटों फन्द जीव लै जाई ॥
जेतिक फन्द तुम रचे विचारी । सत्य शब्दते सबै बिडारी ॥
जौन जीव हम शब्द दृढ़ावे । फंद तुम्हार सकल मुक्तावे ॥
जबजीव चिन्हीं है शब्द हमारा। तजहि भरम सब तोर पसारा॥
सत्य नाम जीवन समझायब । हंस उबार लोक ले जायब ॥

छन्द

देहुँ सत्यशब्ददिढायहंसहि, दयाशील क्षमाघनी ॥
सहज सील सन्तोषसारा, आतमपूजा गुन धनी ॥
पुरुष सुमिरन सार वीरा, नाम अविचल गाइहौं ॥
शीस तुम्हरे पाँव देके, हंसहि लोक पठाइहौं॥४८॥
सो०–अमीनाम विस्तार, हंसहि देह चिताइहौं ॥
मरदहिं मात्र तुम्हार, धर्मदास सुनु चित्तदे ॥४९॥
चौका करी परवाना पाई ।पुरुषनाम तिहि सेउँ चिन्हाई॥
ताके निकट काल नहिं आवे । संधि देख ताकहँ शिर नावे ॥
इतना सुनत काल सकाना । हाथ जोरिके विनती ठाना ॥
दयावन्त तुम साहिब दाता । एतिक कृपा करो हो ताता ॥
पुरुष शाप मोकहँ अस दीन्हा।लच्छजीव नित ग्रासन कीन्हा॥

धर्मरायवचन

जो जिव सकललोक तुव आवे। कैसे क्षुधा सो मोरि बतावे ॥
पुनि पुरुष मोपरदाया कीन्हा। भौसागर कहँ राजमुहि दीन्हा॥
तुमहूँ कृपा मोपर करहूँ। मांगो सो वर मुहि उच्चरहू॥
सतयुग त्रेता द्वापर माहीं। तीनहु युग जीव थोरे जाहीं ॥
चौथा युग जब कलियुग आवे। तब तुव शरण जीव बहु जावे॥
ऐसा वचन हार मुहिं दीजे। तब संसार गवन तुम कीजे ॥

ज्ञानीवचन

अरे काल परपंच पसारा। तीनों युग जीवन दुख डारा॥
विनती तोरि लीन्ह मैं जानी। मोकहँ ठगा काल अभिमानी॥
जस विनती तू मोसन कीन्ही। सो अबबसि तोहि कहँ दीन्ही॥
चौथायुगजब कलियुग आये। तब हम आपन अंश पठाये॥

छन्द

सुरति आठों अशसुकृत, प्रगटि हैं जग जासके ॥
ता पीछे पुनि सुरतनौतन, जाय ग्रह धर्मदासके ॥
अंश ब्यालिस पुरुषके वे, जीवकारण आवई ॥
कलिपन्थ प्रगट पसारिके,वह जीव लोकपठावई४७
सोरठा–शत्यशब्द दे साथ जिहि परवाना देइहैं ॥
सदा ताहि हम साथ, सोजिव यम नहिं पाइ हैं ॥

धर्मराय वचन

हे साहिब तुम पन्थ चलाऊ। जीव उबार लोक लै जाऊ ॥
बंश छाप देखौं जेहि हाथा। ताहि हंस हम नाउब माथा॥
पुरुष अवाज लीन्ह मैं मानी। विनती एक करो तुहिं ज्ञानी ॥

कालका अपना वाहर पन्थ चलानेकी बात कबीरसाहबसे कहना

पन्थ एक तुम आप चलाऊ। जीवन लै सत लोक पठाऊ॥
द्वादश पन्थ करों मैं साजा। नाम तुम्हार ले करों अवाजा॥

द्वादश यह यम संसार पठैहों। नाम तुम्हारे पंथ चलैहों ॥
मृतु अन्धा इक दूत हमारा । सुकृत ग्रह लै है अवतारा ॥
प्रथम दूत मम प्रगटै जायी । पीछे अंश तुम्हारा आयी ॥
यहि विधि जीवनको भरमाऊँ । पुरुष नाम जीवन समझाऊँ ॥
द्वादश पंथ जीव जो ऐहें सो । हमरे मुख आन समैं हैं ॥
एतिका बिनती करो बनाई । कीजे कृपा देउ बगसाई ॥

कालका कबीरसाहबसे जगन्नाथ स्थापनाका
वरदान मांगना

कलियुगप्रथमचरणजबआयब ।तब हम बौद्ध शरीर बनायब ॥
राजा इन्द्रदवन पहँ जायब । जगन्नाथ हम नाम धरायब॥
राजा मंडप मोर बनैहै । सागर नीर खसावत जैहै ॥
पुत्र हमारा विष्णु तहँ आही ।सागर ओइलसात तेहि पाही॥
ताते मण्डप वचन न पाई । उमँगे सागर लेइ डबाई ॥
ज्ञानी एक मता निर्माऊ । प्रथमै सागर तीन सिधाऊ ॥
तुम कहँ सागर लांघि न जाई। देखत उदधि रहे मुरझाई ॥
यहि विधि मोकहँथापिहुजायी। पीछे आपन अंश पठायी ॥
भवसागर तुम पंथ चलाओ । पुरुष नामते जीव बचाओ ॥
सन्धि छाप मोहि देहु बतायी। पुरुष नाम मोहि देहु सुझायी॥
विना सन्धि जो उतरै घाटा । सो हंसा नहिं पावे बाटा ॥

ज्ञानीवचन छन्द

धर्म जस तुम मांगहू सो, चरितहमभल चीन्हिया॥
पंथद्वादश तुम कहेउ सो अमी घोर विष दीन्हिया॥
जो मेटि डारों तोहिको अबपलटिकलादिखावऊँ॥
लै जीवबन्द छुड़ाय यमसों अमरलोक सिधावऊँ ४८

सो०–पुरुषवचनअसनाहिं,यहै साच चित कीन्हेऊ ॥
लै पहुँचावहुँ ताहि, सत्यशब्द जा दृढ गहे ॥ ५१ ॥
द्वादश पन्थ कहेउ अन्याई । सो हम तोहि दीन्ह बगसाई॥
पहिले प्रगटे दूत तुम्हारा । पीछे लेहि अंश औतारा ॥
उदधि तीर कहँ मैं चलि जायब। जगन्नाथको माड मडायब ॥
ता पाछे हम पन्थ चलायब । जीवन कहँ सतलोक पठायब॥

धर्मरायका कबीरसाहबको धोखा देकर उनके गुप्त भेदका पूछना

धर्मराय वचन

सन्धि छाप मोहि दीजे ज्ञानी। जस दैहौं हंसहि सहिदानी ॥
जो जिन मोकहँ सन्धि बतावे ।ताके निकट काल नहिं आवे॥
नाम निसानी मो कहँ दीजे । हे साहिब यह दाया कीजे ॥

ज्ञानी वचन

जो तेहि देहु सन्धि लखाई । जीवन काज होइहो दुखदाई ॥
तुम परपंच जान हम पावा । काल चलै नहिं तुम्हरो दावा॥
धर्मराय तेहि परगट भाखा । गुप्त अंक बीरा हम राखा ॥
जो कोई लेई नाम हमारा । ताहि छोड़ि तुम होहु नियारा॥
जो तुम हंसहि रोको जायी ।तो तुम काल रहन नहिं पायी॥

धर्मराय वचन

कहे धर्म जाओ संसारा । आनहु जीव नाम आधारा॥
जो हंसा तुम्हरो गुण गाये ।ताहिं निकट तो हम नहिंजाये॥
जो कोई जैहैं शरण तुम्हारा । हम शिर पग दै होवै पारा ॥
हम तो तुमसन कीन्ह ढिठाई। पिता जान कीन्हों लरिकाई॥
कोटिन औगुण बालक करई । पिता एकहिरदय नहिं धरई॥
जो पितु बालक देह निकारी । तबको रक्षा करे हमारी ॥
धर्मराय उठ सीस नवायो । तब ज्ञानी संसार सिधायो ॥

कबीरवचन धर्मदासप्रति

जब हम देखा धर्म सकाना। तब तहवांते कीन्ह पयाना॥
कह कबीर सुनु धर्मनि नागर। तब मैं चलि आयउँ भवसागर॥

कबीरसाहेबकी ब्रह्मासे भेंट

आया चतुराननके पासा। तासों कीन्ह शब्द परकाशा॥
ब्रह्मा चित दै सुनवे लीन्हा। पूछ्यो बहुत पुरुषको चीन्हा॥
तबहिं निरंजन कीन्ह उपाई। ज्येष्ठ पुत्र ब्रह्मा मोर जाई॥
नीराजन मन घंट विराजै। ब्रह्मा बुद्धि फेरि उपराजै॥

ब्रह्मावचन

निराकार निर्गुण अविनाशी। ज्योतिस्वरूप शून्यके वासी॥
ताहि पुरुष कहँ वेद बखाने। आज्ञा वेद ताहि हम जाने॥

कबीरसाहबका विष्णुके पास पहुंचना

जब देखा तेहि कालदृढ़ायो। तहँते उठे विष्णु पहँ आयो॥
विष्णुहि कह्यो पुरुष उपदेशा। कालवशी नहिं गहे सँदेशा॥

विष्णुवचन

कहे विष्णु मोसमको आही। चार पदारथ हमरे पाही॥
काम मोक्ष धर्मारथ साही। चाहे जैन देउँ मैं ताही॥

ज्ञानी वचन

सुनहु सो विष्णु मोक्षकस तोही। मोक्ष अक्षर परले तर होही॥
तुम नहिं थिर थिर कस करहू। मिथ्या साखि कवण गुण भरहू॥

कबीरबचन धर्मदासप्रति

रहे सकुच सुन निर्भय बानी। निज हिय विष्णु आपडरमानी॥
तब पुनि नागलोक चलि गयऊ। तासे कुछकुछ कहिबे लयऊ॥
पुरुष भेद कोउ जानत नाहीं। लागे सभे कालकी छाहीं॥
राखनहार कहँ चीन्हों भाई। यहसों को तुहि लेइ छुड़ाई॥
ब्रह्मा विष्णु रुद्र जिहि ध्यावैं। वेदे जासु गुण निशिदिन गावैं॥

सोइ पुरुष तेहिं राखनहारा । सोइ तुमहिं लै करिहै गारा ॥
राखनिहार और कोउ आही । करु विश्वास मिलाऊँ ताही ॥
शेष खानि विष तेज सुभाऊ । वचन प्रतीत हृदय नहीं आऊ ॥
सुनहु सुलक्षण धर्मनि नागर । जब मैं आयउँ या भवसागर ॥
आये जब मृत्युमण्डल माहीं । पुरुषजीव कोउ देख्यो नाहीं ॥
काकहँ कहिय पुरुष उपदेशा । सा तो अधिकै यमको भेषा ॥
जो घातक ताको विश्वासा । जो रक्षक तेहि बोल उदासा ॥
जाहि जपै सोई धरि खाई । तब मम शब्द चेत चित आई ॥
जीव मोहवश चीन्हे ताही । तब अस भाव उपज हियमाहीं ॥

छन्द

मेटि डारो काल शाखा, प्रगट काल दिखावऊँ ॥
लेऊँ जीवन छोरि यमसो, अमरलोक पठावऊँ ॥
जाहि कारण रटत डोलों, सो मोकहँ चीन्हई ॥
कालके वश परे जीव सब, तजि सुधाविषलीन्हई ॥
सो०—पुरुषवचनअसनाहि, यहीसोचचित कीन्हऊ ॥
ले पहुँचायो ताहि, शब्द परख दृढको गहे ॥ ५२ ॥

पुनि जस चरित भयो धर्मदासा । सो सब बरनि कहों तुवपासा ॥
ब्रह्मा विष्णु शंभु सनकादी । सबमिलिकीन्हीशून्यसमाधी ॥
कवन नाम सुमिरो करतारा । कवनहिं नाम ध्यान अनुसारा ॥
सबहिं शून्यमहँ ध्यान लगाये । स्वाति सनेह सीप ज्यों लाये ॥
तबहिं निरंजन जतन विचारा । शून्य गुफाते शब्द उचारा ॥
ररां सु शब्द उठा बहुबारा । मा अक्षर माया संचारा ॥
दोउ अक्षर कहँ समकै राखा । रामनाम सबहिन अभिलाषा ॥
रामनाम लै जगहि दृढायो । काल फन्द कोइ चीन्ह न पायो ॥
यह विधि रामनाम उत्पानी । धर्मनि परख लेहु यह बानी ॥

धर्मदास वचन

धर्मदास कहे सतगुरु पूरा । छूटेउ तिमिर ज्ञान तुव सूरा॥
माया मोह घोर अँधियारा । तामहँ जीव परे बिकारा ॥
जब तुव ज्ञान प्रगट है माना । छूटे मोह शब्द परखाना ॥
धन्य भाग हम तुम कहँ पायी। मोहि अधम कहँ लीन्ह जगायी॥
अब वह कथा कहों समुझायी। सतयुग कौन जीव मुकताई ॥

सत्ययुगमें सतसुकृत ( कबीरसाहब ) के पृथ्वीपर
आनेकी कथा । सद्गुरुवचन

धर्मदास सुनु सतयुग भाऊ । जिन जीवनको नाम सुनाऊ ॥
सतयुग सत्तसुकृत मम नाऊँ। आज्ञा पुरुष जीव चेताऊँ ॥

धोंधल राजाका वृत्तान्त

नृप धोंधल पहँ मैं चलिजाई । सत्य शब्द सो ताहि सुनाई॥
सत्य शब्द तिन हमरो माना । तिन कह दीन्ह पान परमाना॥

छन्द

राय धोंधल सन्त सज्जन, शब्द मम दृढके गह्यो ॥
सारसीत प्रसाद लीन्हौ, चरण परसत जल लह्यो ॥
प्रेमसे गदगद सब भयो, तजेउ भर्म विभाय हो ॥
सारशब्दहिं चीन्ह लीनो, चरण ध्यान लगायहो५०

खेमसरीका वृत्तान्त

सो०-धोंधल शब्द चिताय,तब आयउ मथुरा नगर
खेमसरि आयो धाय,नारि वृद्ध गो बालिसों ॥५३॥
कहे खेमसरी पुरुष पुराना । कहवाँते तुम कीन्ह पयाना ॥
तासों कहेउ शब्द उपदेशा ।पुरुष भाव अरु यमको भेषा॥
सुना खेमसरि उपजा भाऊ ।जब चीन्हा सब यमका दाऊ॥

खेमसरीको लोकका दर्शन करना

पै धोखा इक ताहि रहाई । देखे लोक तब मन पतियाई ॥
राखेउ देह हंस लै धावा । पलइक माहिं लोक पहुंचावा ॥
लोक दिखाय हंस लै आयो । देह पाय खेमसरी पछतायो ॥
हे साहेब लै चलु वहि देशा । यहां बहुत है काल कलेशा ॥
तासो कहेउ सुनो यह बानी । जो मैं कहूं लेहु सो मानी ॥

टीका पूरनेपर ही लोककी प्राप्ति होती है

जबलों टीका पूर न भाई । तब लग रहो नाम लौ लाई ॥
तुम तो देखा लोक हमारा । जीवनको उपदेशहु सारा ॥

जीवोंका उपदेश करनेका फल

एकहु जीव शरणागत आवे । सो जीव सत्य पुरुषको भावे ॥
जैसे गऊ बाघ मुख जार्यी । सो कपिलहि कोइ आय छुड़ायी ॥
ता नरको सब सुयश बखाने । गऊ छुड़ाय बाघते आने ॥
जस कपिला कहँ केहरि त्रासा । ऐसे काल जीव कहँ ग्रासा ॥
एक जीव जो भक्ति दृढावे । कोटिक गऊ पुण्य सो पावे ॥

खेमसरी वचन

खेमसरि परे चरणपर आयी । हे साहिब मोह लेहु बचायी ॥
मोपर दाया करहु प्रकाशा । अब नहिं परौं कालके फांसा ॥

सुकृत वचन

सुन खेमसरि यह यमको देशा । बिना नाम नहिं मिटै अँदेशा ॥
पान प्रवान पुरुषकी डोरी । लेहि जीव यम तिनका तोरी ॥
पुरुष नाम बीरा जो पावे । फिरके भवसागर नहिं आवे ॥

खेमसरी वचन

कहे खेमसरि परवाना दीजे । यमसों छोरि अपन करि लीजै ॥
और जीव हमरे गृह आही । नाम पान प्रभु दीजे ताही ॥
मोरे गृह अब धारिय पाऊ । मुक्तिसन्देश जीवन समझाऊ ॥

कबीरवचन धर्मदासप्रति

भयेउँ तासु ग्रह भाव समागम। परेउ चरणतर नारि सुधासम॥
खेमसरी सब कहि समझायी। जन्म सुफल करुरे सब भायी॥

खेमसरीवचन परिवारप्रति

जीवन मुक्ति चाहु जो भाई। सतगुरु शब्द कहो सो आई॥
यमसो येहि छुड़ावन हारे। निश्चय मानो कहा हमारे॥

कबीरवचन धर्मदासप्रति

सब जीवन परतीत दृढ़ावा। खेमसरी संग सबजिव आवा॥

सब मिलकर विनय करते हैं

आय गये सब चरण हमारा। साहिब मोर करो निस्तारा॥
जाते यम नहिं मोहि सताये। जन्म जन्म दुख दुसह नसाये॥

कबीरवचन धर्मदास प्रति

अति अधीन देखेउ नर नारी। तासों हम अस वचन उचारी॥
जो कोई मनिहै शब्द हमारा। ताकहँ कोई न रोकनहारा॥
जो जिय माने मम उपदेशा। मेटो ताकर काल कलेशा॥
पुरुष नाम परवाना पावे। यमराजा तिहि निकट न जावे॥

सुकृतवचन खेमसरी प्रति

आनहु साज आरती केरा। काल कष्ट मेटों जिय केरा॥

खेमसरी वचन

कह खेमसरी प्रभु कहो विलोई। कवन वस्तु लै आरति होई॥

सुकृतवचन खेमसरी प्रतिछन्द

भाव आरती खेमसरि सुनु, तोहि कहुँ समुझायके॥
मिष्ठान पान कर्पूर केरा, अष्ट मेवा लायके॥
पांच बसन श्वेत वस्तर, कदलिपत्र अच्छन्दना॥
नारियल अरु पुहुप श्वेतहि, श्वेत चौकाचंदना॥५१॥

सो०—यह आरति अनुमानि, आनुखेमसरिसाजसब॥
पुंगीफल परमान, शब्द अंग चौका करे ॥५॥
और वस्तु आनहु सुठिपावन । गो घृत उत्तम श्वेत सुहावन ॥

कबीरवचन धर्मप्रति

खेमसरि सुनि सिखावन माना । ततक्षण सब विस्तार सो आना॥
सेत चंदोवा दीन्हों तानी । आरति करनयुक्तिविधि ठानी॥
पंच साधु इच्छा उपराजा । भक्ति भजन गुरुज्ञानविराजा ॥
हम चौकापर बैठक लयऊ । भजन अखंड शब्दधुन भयऊ॥
भजन अखंड शब्दध्वनि होई । दुनियां चांप सके नहिं कोई ॥
सत्य समय लै चौका साजा । ज्योतिप्रकाशअखंडविराजा ॥
शब्द अंग चौका अनुमाना । मोरत नरियल काल पराना॥
जब भयोनरियर शिलासंयोगा । काल शीश पुनि चम्पै रोगा॥
नरियल मोरत बास उड़ायी । सत्य पुरुष कह जानि जनायी॥
पांच शब्द कहि तब दल फेरा । पुरुष नाम लीन्हो तिहि बेरा॥
छन एक बैठे पुरुष तहँ भाई । सकल सभा उठि आरति लाई॥
तब पुनि आरति दीन्ह मँडाई । तिनका तोरे जल अँचवाई ॥
प्रथम खेमसरि लीन्हों पाना । पाछे और जीव संमाना ॥
दीन्हेउ ध्यान अग समुझाई । ध्यान नामते हंस बचाई ॥
रहनि गहनि सब दीन्ह दृढ़ाई । सुमिरत नाम हंस घर जाई॥

छन्द

हंस द्वादश बोधि सतगुरु, गयउ सुखसागर करी ॥
सतपुरुष चरण सरोज परसेउ, विहसिके अंकमभरी ॥

---

१ किसी किसी प्रतिमें द्वादशके स्थानमें त्रयोदश लिखा है । और किसी किसीमें द्वादश त्रयोदश कुछभी न लिखकर " दिनदश बांधि " लिखा है

बूझिकुशल प्रसन्न बहुविधि मूल जीवनके धनी ॥
बंधुहर्षितसकलशोभा, मिली अति सुन्दर बनी ॥५२॥
सो०-शोभाबरणि न जाय, धर्मनिहंसनकान्तिकर ॥
रविषोडश शशिकाय, एक हंस उजियारजौं ॥५५॥
कछु दिन कीन्हो लोक निवासा। देखेउ आय बहुरि निजदासा॥
निशिदिन रहों गुप्त जगमाहीं । मोकहँ कोइ जिव चीन्हत नाहीं॥
जो जीवन परबोध्यो जायी । तिनकहँ दीन्हो लोक पठायी॥
सत्य लोक हंसन सुखबासा । सदा बसंत पुरुषके पासा ॥
सो देखे जो पहुँचे जाई । जिन यहि रचा सोकहा चिताई॥

त्रेता युगमें मुनींद्र (कबीरसाहब) के पृथ्वीपर आनेकी कथा

सतयुग गयो त्रेतायुग आवा । नाम मुनींद्र जीव समुझावा ॥
जब आयेउ जीवन उपदेशा । धर्मराय हितभये अँदेशा ॥
इन भवसागर मोर उजारा । जिव लै जाहि पुरुष दरबारा॥
कैतो छल बल करे उपाई । ज्ञानिडर तिहि नाहिं ठराई ॥
पुरुष प्रताप ज्ञानिके पासा । ताते मोइ न लागे फांसा ॥
इनते काल कछु पावै नाहीं । नाम प्रताप हंस घरजाहीं ॥

छन्द

सत्यनाम प्रताप धर्मनि, हंसाघर निज कै चलै ॥
जीमिदेख केहरित्रास गज, हिय कंपकरधरनीरलै ॥
पुरुष नाम प्रताप केहरि, काल गज सम जानिये ॥
नाम गाहि सतलोक पहुँचे, गिराममफुरमानिये॥५३॥
सो०-सतगुरुशब्द समाय,गुरु आज्ञा निरखन चले ॥
रहै नाम लौलाय कर्म भर्म मन मति तजै ॥५६॥

त्रेता युग जबही पगु धारा। मृत्युलोक कीन्हों पैसारा॥
जीव अनेकन पूछा जाई। यमसे को तुहिं लेहिं छुड़ाई॥
कहे भर्म वश जीव अयाना। हमरा करता पुरुष पुराना॥
विष्णु सदा हमरे रखवारा। यमते मोहिं छुड़ावन हारा॥
कोइ महेशकी आश लगावें। कोइ चण्डी देवी गावें॥
कहा कहों जिव भयो विगाना। तजेउ खसमकहँजारबिकाना॥
कर्म कोठरी सब दिन डारा। फंदा दे सत जीवन मारा॥
सत्य पुरुषकी आयसु पाऊँ। कालहि मेटि छोर जिवलाऊँ॥
जोर करों तो वचन नसाई। सहजहिं जीवन लेउँ चिताई॥
जो ग्रासे जिव सेवै ताहीं। अनचीन्हे यमके मुख जाहीं॥

विचित्र भाटकी कथा लंकामें

चहुँ दिश फिरि अयेउँ गढ़लंका। भाट विचित्र मिल्योनिःशंका॥
तिनि पुनि पूछेउ मुक्ति संदेशा। तासों कह्यो ज्ञान उपदेशा॥
सुनि विचित्र तबहि भ्रम भागा। अति अधीनह्वै चरणन लागा॥
कहे शरण मुहि दीजैं स्वामी। तुम सब पुरुषससुखधामी॥
कीजै मोहि कृतारथ आजू। मोरे जिवकर कीजे काजू॥
कह्यो ताहि आरति को लेखा। खेमसरिहि जस भाषेउ रेखा॥
आनेहु भाव सहित सब साजा। आरति कीन्हशब्दधुनिगाजा॥
तृण तोरा वीरा तिहि दीन्हा। ताके गृहमें काहु न चीन्हा॥
सुमिरण ध्यान ताहिसों भाखा। पूरण डोरि गोय नहिं राखा॥

छन्द

विचित्र वनिता गयी नृप ढिग,जाय रानीसो कही॥
इकयोगी सुन्दर है महामुनि,तासुमहिमा काकही॥
श्वेतकला अपार उत्तम, और नहिं अस देखेउँ॥
पतिहमारेशरणगहितिहि, जन्मशुभ करिलेखेऊँ ५४

मन्दोदरीका वृत्तान्त

सो०-सुनत मँदोदरि चाव, दरशलेन अकुलानेऊ ॥
वृषली संगले आव, कनक रतनले पगु धरचो॥५७॥

चरण टेकिके नायो शीशा। तब मुनीन्द्र पुनि दीन्ह अशीशा॥

मन्दोदरी वचन

कहे मँदोदरि शुभ दिन मोरी । विनती करों दोउ कर जोरी ॥
ऐसा तपसी कबहु न देखा । श्वेत अंग सब श्वेतहि भेखा॥
जिवकारज मम हो जिहि भांती। सो मोहि कहो तजो कुलजाती॥
हे समरथ मोहि करहु सनाथा। भव बूड़त गहि राखो हाथा ॥
अब प्रतिप्रिय मोहि तुम लागे । तुम दयाल सकल भ्रम भागे॥

मुनींद्रवचन मन्दोदरीप्रति

सुनहु वधू प्रिय रावण केरी । नाम प्रताप कटे यम बेरी ॥
ज्ञान दृष्टिसों परखहु भाई । खरा खोट तोहि देऊँ चिन्हाई॥
पुरुष अमान अजरमनिसारा । सो तो तीन लोकते न्यारा ॥
तेहि साहिब कहँ सुमिरे कोई । आवागमन रहित सो होई ॥

कबीरवचन धर्मदासप्रति

सुनतहि शब्द तासु भ्रम भागा । गह्यो शब्द शुचिमन अनुरागा॥
हे साहिब मोहि लीजै शरणा । मेटहु मोर जन्म अरु मरणा॥
दीन्हों ताहि पान परवाना । पुरुष डोर सौंप्यों सहिदाना॥
गदगद भई पाय घर डोरी । मिलिरंकहि जिमि द्रव्यकरोरी॥
रानी टेकेउ चरण हमारा । ता पाछे महलन पगु धारा ॥

विचित्र वधूका वृत्तान्त

विचित्र वधूरानी समुझावा । गही शरण जीवन मुकतावा॥
विचित्रनारिगहिशनिसिखापन।लीन्हेसिपानतजाभ्रमआपन ॥

मुनींद्रका रावणके पास जाना

तब मैं रावणपहँ चलि आयो। द्वारपालसों वचन सुनायो ॥

मुनींद्रवचन द्वारपालप्रति

तासों एक बात समुझाई । राजा कहँ तुम आव लिवाई॥

द्वारपाल वचन

तब पौरिया विनय यह लाई । महा प्रचंड है रावण राई ॥
शिवबल हृदय शंकर नहिं आने। काहूकेर वचन नहिं माने ॥
महागर्व अरु क्रोध अपारा । कहों जाय मोहि पलमें मारा॥

मुनींद्रवचन द्वारपालप्रति

मानहु वचन जाव यहि बारा । रोम बंक नहिं होय तुम्हारा ॥
सत्य वचन तुम हमरो मानो । रावण जाय तुरत तुम आनो॥

प्रतिहारवचन

ततक्षण गा प्रतिहार जनायी । द्वै कर जोरे ठाढ़ रहाई ॥
सिद्ध एक तो हम पहँ आयी । ते कह राजहि लाव बलाई ॥

रावणका क्रोध प्रतिहारप्रति

सुनु नृप क्रोध कीन्ह तेहि बारा।तै मतिहीन आहि प्रतिहारा॥
यह मति ज्ञान हरों किन तोरा । जो तैं मोहि बुलावन दौरा॥
दर्श मोर शिवसुत नहिं पावत। मोकहँ भिक्षुक कहा बुलावत॥
हे प्रतिहार सुनहु मम बानी । सिद्धरूप कहो मोहि बखानी॥
वर्णन है कौन कौन तेहि भेषा । मो सन दृष्टि जस येहि देखा॥

प्रतिहारवचन

अहो रावण तेहि श्वेतरूपा ।श्वेतहि माला तिलक अनूपा॥
शशि समान है रूप विराजा ।श्वेत वसन सब श्वेतहि साजा॥

मन्दोदरीवचन

कहे मँदोदरी रावण राजा । ऐसो रूप पुरुषको छाजा ॥
वेगे जाय गहो तुम पाई ।तो तुव राज अटल होय जाई॥
छोड़हु राजा मान बड़ाई । चरण टेकि जो शीश नवाई ॥

कबीरवचन धर्मदास प्रति

रावण सुनत क्रोध अतिकीन्हा। जरत हुताशन मनुघृत दीन्हा॥
रावण चला शस्त्र लै हाथा। तुरत जाय तिहि काटों माथा॥
मारों ताहि सीस खसि परई। देखों भिक्षुक मोर का करई॥
जहँ मुनींद्र तहँ रावण राई। सत्तर बार अस्त्र कर लाई॥
लीन्ह मुनींद्र तृण कर ओटा। अति बल रावण मारै चोटा॥

छन्द

तृण ओट यहि कारणे, गर्व धरी राय हो॥
तेहि कारणे यह युक्ति कीन्ही,लाज रावण आयहो॥

मन्दोदरी वचन

कहे मन्दोदरि सुनहु राजा, गर्व छोड़ो लाज हो॥
पांव टेकहु पुरुषके गहि, अटल होवै राज हो॥५९॥

रावण वचन

सो०-सेवाकरोंशिवजाय,जिनमोहिराज अटल दियो
ताकरटेकों पांय पल, दंडवत क्षणिताहिको॥५८॥

मुनीद्रवचन

सुन अस वचन मुनींद्र पुकारी। तुम हो रावण गर्व अहारी॥
भेद हमारा तुम नहिं जाना।वचन एक तोहि कहों निशाना॥
रामचंद्र मारें तुहि आयी।मांस तुम्हार श्वान नहिं खायी॥

कबीरवचन धर्मदासप्रति

रावणको कीन्हो अपमाना।अवधनगर पुनि कीन्ह पयाना॥

मधुकरकी कथा छन्द

रावणको अपमान करी, तब अवधनगरहि आयऊ॥
विप्र मधुकर मिलेउ मारग, दरशतिनमन पायऊ॥

१ इसके बदले पुराने ग्रन्थोंमे ऐसा लिखा है-
"तीन जीव परमोधि लंका, तब अवध नगरहि आयऊ"

मिलेउ मोकहँ चरणगहि, तबशीसनायअधीनता ॥
करिविनयबहुलेगयोमंदिर,कीन्हबहुविधिदीनता ५८
सो०-रंकविप्र थिर ज्ञान, बहुत प्रेममोंसो किया ॥
शब्द ज्ञान सहिदान,सुधासरितविहँसतवदन॥५९॥

देख्यो ताहि बहुत लवलीन्हा । तासों कह्यो ज्ञानको चीन्हा ॥
पुरुष सँदेश कहेउ तिहि पासा।सुनतवचन जिय भयउ हुलासा॥
जिमि अंकुर तपै बिन वारी । पूर्ण उदक जो मिले खरारी॥
अम्बुमिलत अंकुर सुख माना ।जैसेहि मधुकर शब्दहि जाना॥

मधुकरवचन

पुरुष भाव सुनतेहि हरषंता । मोकहं लोक दिखावहु संता॥

मुनींद्रवचन

चलहु तोहि लै लोक दिखावों।लोकदिखाय बहुरिलै आवों ॥

कबीरवचन धर्मदास प्रति

राख्यो देह हंस लै धाये । अमर लोकलै तिहि पहुँचाये॥
शोभा लोक देख हरषाना । तव मधुकरको मन पतियाना॥

मधुकर वचन

परचोचरण मधुकर अकुलाई। हे साहिब अब तृषा बुझाई ॥
अब मोहिं लेइ चलो जगमाहीं। और जीव उपदेशो ताहीं ॥
और जीव गृहमाहिं जो आई। तिनकहँ हम उपदेशब जाई ॥

कबीर वचन धर्मदासप्रति

हंसहि लै आये संसारा । पैठि देहि जाग्यो द्विजवारा ॥
मधुकर घर षोडशजिव रहई । पुरुष संदेश सबनसों कहई ॥
गहहु चरण समरथके जाई । यही लेहिं जमसों मुक्ताई ॥
मधुकर वचन सबन मिलि माना।मुक्ति जान लीन्हो परवाना॥

मधुकरवचन

कह मधुकर विनती सुन लीजै। लोकनिवास सबनकहँ दीजै ॥
यह यम देश बहुत दुख होई। जीव अम्बु बूझै नहिं कोई ॥
मोहि सब जीवनलै सुस्वामी। कृपा करहु प्रभु अन्तर्यामी ॥
छंद-यहि देश है यममहापरबल,जीवसकलसतावई॥
कष्ट नाना भाँति व्यापे, मरण जीवन लावई ॥
काम क्रोध कठोर तृष्णा, लोभ माया अतिबली॥
देवमुनिगण सबहि व्यापे,कोट जीवन दलमली ५७
सो०-तिहु पुरयमको देश, जीवन कहसुखछनकहिं॥
मेटहु काल कलेश, लेइ चलहु निज देशकहँ॥६०॥

कबीरवचन धर्मदासप्रति

बहुत अधीन ताहि हम जाना। करचौका तब दीन्ह परवाना॥
षोडश जिव परवाना पाये। तिन कहँलै सतलोक पठाये ॥
यमके दूत देख सब ठाढ़े। चितवहिं तेजन ऊर्द्ध अखाड़े॥
पहुँच जाय पुरुष दरबारा। अंशन हंसन हर्ष अपारा ॥
परसे चरण पुरुषके हंसा। जन्म मरणको मेटेउ संसा ॥
सकल हंस पूछीं कुशलाई। कहुद्विज कुशल भये अब आई॥
धर्मदास यह अचरज बानी। गुप्त प्रगट चीन्हे सोई ज्ञानी॥
हंसन अगर चीर पहिराये। देह हिरम्मर लखि सुखपाये॥
षोडश भानु हंस उजियारा। अमृत भोजन करे अहारा ॥
अगर वासना तृप्त शरीरा। पुरुषदरश गदगद मतिधीरा॥
यहि विधि त्रेतायुगको भावा। हंस मुक्त भये नाम प्रभावा ॥

द्वापरयुगमें करुणामय ( कबीर साहब ) के पृथ्वीपर आनेकी कथा

त्रेता गत द्वापर युग आवा। तब पुनि भयो कालपरभावा॥
द्वापर युग प्रवेश भा जबही। पुरुष अवाज कीन्ह पुनि तबही॥

पुरुषवचन

ज्ञानी वेगि जाहु संसारा । यमसों जीवन करहु उबारा ॥
काल देत जीवन कहँ त्रासा । काटो जाय तिनहिको फांसा ॥
कालहि मेटि जीव लै आवो । बार बारका जगहि सिधावो ॥

ज्ञानीवचन

तब हम कहा पुरुषसों बानी । आज्ञा करहु शब्द परवानी ॥

पुरुषवचन

कहा पुरुष सुनु योग संतायन । शब्द चिताय जीव मुक्तायन ॥
जो अब काल कीन्ह अन्याई । हो सुत तुम मम वचन नसाई ॥
अब तो परे जीव यह फन्दा । जुगुतहि आनु परम आनंदा ॥
काल चरित परगट ह्वै जाई । तब सब जीव चरण गहें आई ॥
ज्ञान अज्ञान चीन्ह नहिं जाई । देखहु भाव जिवनको भाई ॥
सहज भाव जग प्रगटहु जाई । जाय प्रगट ह्वै जिवन चिताई ॥
तोहिं गहे सो जिव मुहि पैहै । तनु प्रतीत बिरले मय खैहै ॥
जाइ करहु जीव कडिहारी । तो पर है परताप हमारी ॥
हमसो तुमहिं अन्तर नाहीं । जिमि तरंग जलमाहिं समाहीं ॥
हमहिं तुमहिं जो दुइकर जाना । ता घट यम सब करिहै थाना ॥
जाहु बेगि वा तुम संसारा । जीवन खेइ उतारहु पारा ॥

कवीरवचन धर्मदासप्रति

चले ज्ञानी तब माथ नवायी । पुरुष आज्ञा जगमाहिं सिधाई ॥
पुरुष अवाज चल्यो संसारा । चरण टेकु मम धर्म लवारा ॥

निरंजनवचन छन्द

तुहे धर्मराय अधीन है बहु भाँति विनती कीन्हेऊ
किहि कारणे अब जगसिधारेहु, माहि सोमति दीन्हेऊ
अस करहुजनि सब जग चितावहु इहे विनती मैं करौं
तुमबंधु जेठे छोट मैं कर जोर तुम पायन परौं ५८

ज्ञानीवचन

सो०–कह्योधर्मसुन बात,विरल जीवमोहि चीन्हिहैं।।
शब्दनको पतियात,तुम अस कै जीवन ठगे ।।६१।।

कबीरवचन धर्मदासप्रति

अस कह मृत्युलोक पगु धारा। पुनि परमारथ शब्द पुकारा।।
छोड़्यो लोक लोककी काया। नरकी देह धारि तब आया ।।
मृत्युलोकमें हम पगु धारा । जीवनसो सत शब्द पुकारा ।।
करुणामय तब नाम धराया । द्वापर युग जब महिमें आया।।
कोई न बूझे हैला मेरी । बांधे काल विषमभ्रम बेरी ।।

रानी इन्द्रमतीकी कथा

गढ़गिरिनारतबहि चलि आये। चंद्रविजय नृप तहां रहाये ।।
तेहि नृप गृहरह नारि सयानी। पूजै साधु महातम जानी ।।
चढ़ी अटारी वाट निहारे । संत दरश कहँ कायागारे ।।
रानी प्रीति बहुत हम जाना ।तेहि मारग कहँ कीन्ह पयाना।।
मोहि पहँ दृष्टि परी जब रानी। बृषली रसना कह यह बानी ।।

इन्द्रमती वचन

मारग बेगि जाहु तुम धाई । देखहु साधु आनु गहि पाई।।

दासीवचन

बृषली आय चरण लपटानी ।नृपवनिता मुख भास सयानी।।
कही बृषली रानि अस भाषा । तुम दर्शन कहँ अभिलाषा ।।
देहु दरश मोहिं दीनदयाला । तुम्हरे दरश मिटे सब शाला।।

करुणामय वचन दासोप्रति

तब ज्ञानी कहि वचन सुनावें। राज रावघर हम नहिं जावें ।।
राज काज है मान बड़ाई । हम साधू नृप गृह नहिं जाई।।

---

१ दासी लौंड़ी

दासीवचन रानीप्रति

चली वृषली रानी पहँ आयी । द्वै कर जोरे विनय सुनायी ॥
साधु न आवे मोर बुलाई । राज राव घर हम नहिं जाई॥
यह सुन इन्द्रमती उठि धाई । कीन्ह दंडवत टेके पाई ॥

इन्द्रमती वचन

हे साहिब मोपर करु दाया । मोरे गृह अब धरिये पाया ॥

कबीरवचन धर्मदासप्रति

प्रीति देख हम भवन सिधारे । राजा घर तबहीं पग धारे ॥
कहे रानी चलु मन्दिर मोरे । भयो सुखी दर्शन लिये तोरे॥
प्रीति देखितहि भवन सिधारे । दीन्ह सिंहासन चरण खटाये॥
दीन्ह सिंहासन चरण पखारी । चरणपरछालन अंगोछाधारी॥
चरण धोय पुनि राखे सिरानी। पटपद पोंछ जन्मशुभ जानी॥

इन्द्रमती वचन

पुनि प्रसादको आज्ञा मांगी । हे प्रभु मोकहँ करहु सुभागी॥
जूठन परै मोरे गृहमाहीं । सीताप्रसाद लै हमहूँ खाहीं ॥

करुणामयवचन

सुनु रानी मोहि क्षुधा न कोई । पंचतत्व पावे जेहि सोई ॥
अमृत नाम अहार है मोरा । सुनु रानी यह भाष्यो थोरा ॥
देह हमारि तत्व गुण न्यारी । तत्वप्रकृतिहि कालरचिवारी॥
असी पंच किहु कालसमीरा । पंच तत्वकी देह खमीरा ॥
ताहम आदि पवन इक आहीं। जीव सोहंग बोलियो ताही ॥
यह जिव अहै पुरुषको अंशा । रोकसि काल ताहि दे संशा ॥
नाना फन्द रचि जीव गरासै । देह लोभ तब जीवहि फांसै॥
जिवतारन हम यहि जग आये । जो जिव चीन्हे ताहि मुक्ताये॥
धर्मराय अस बाजी कीन्हा । धोक अनेक जीव कहँ दीन्हा॥
नीर पवनकृत्रिम किहु काला । विनशिजाय बहुकरे बिहाला॥

तन हमार यदि साजते न्यारा। मम तन नहिं सिरज्यो करतारा॥
शब्द अमान देह है मोरा। परखि गहहु भाष्यो कछु थोरा॥

कबीरवचन धर्मदास प्रति

सुनी वचन अचल भौ भारी। तब रानी अस वचन उचारी॥

रानी इन्द्रमती वचन

हे प्रभु अचरज यह होई। अस सुभाव दूजा नहिं कोई॥

छन्द

इन्द्रमती आधीन है कहै, कृपा करहु दयानिधी॥
एक एक विलोय वरणहु, मोहिते सकलहु विधी॥
विष्णु सम दूजा नहिं कोई रुद्र चतुरानन मुनि॥
पंचत्व खमीर तनहि, तत्त्वके वश गणगुणी॥५९॥
सो०—तुम प्रभु गम अपार, बरनो मोते कितभये॥
भेटहु तृषा हमार अपनो, परिचय मोहि कह॥६२॥
हे प्रभु अस अचरज मोहि होई। अस सुभाव दूजा नहिं कोई॥
कौन आहु कहवाँते आये। तन अचिंत प्रभु कहँवा पाये॥
कौन नाम तुम्हरो गुरु देवा। यह सब बरणि कहो मोहि भेवा॥
हम का जानहि भेद तुम्हारा। ताते पूछों यह व्यवहारा॥

करुणामय वचन

इन्द्रमती सुनो कथा सुहावन। तोहि समुझाय कहों गुणपावन॥
देश हमार न्यार तिहुँ पुरते। अहिपुर नरपुर अरु सुरपुरते॥
तहां नहीं यमकेर प्रवेशा। आदि पुरुषको जहवां देशा॥
सत्य लोक तेहि देश सुहेला। सत्य नाम गहि कीजे मेला॥
अद्भुत ज्योति पुरुषकी काया। हंसन शोभा अधिक सुहाया॥
आदि पुरुष शोभा अधिकारा। पटतर काहि देहुँ संसारा॥
द्वीपकरी शोभा उजियारी। पटतर देहुँ काहि संसारी॥

यहि तीनों पुर अस नहिं कोई । जाकर तटपर दीजै सोई ॥
चन्द्र सूर यहि देश मंझारा । इन सम और नहीं उजियारा ॥
सत्य लोककी ऐसी बाता । कोटिक शशि इकरोम लजाता ॥
एक रोमकी शोभा ऐसी । और वदनकी वरणों कैसी ॥
ऐसा पुरुष कान्ति उजियारा । हंसन शोभा कहों बिचारा ॥
एक हंस जस षोडश भाना । अग्र वासना हंस अधाना ॥
तहँ कबहूँ यामिनि नहिं होई । सदा अजोर पुरुष तन सोई ॥
कहा कहों कछु कहत न आवै । धन्य भाग जे हंस सिधावै ॥
ताहि देशते हम चलि आये । करुणामय निज नाम धराये ॥
सतयुग त्रेता द्वापर नामा । तोसन वचन कहों सुख धामा ॥
युगन युगनमें मैं चलि आवों । जो चेते तेहि लोक पठावौं ॥

इन्द्रमती वचन

हे प्रभु औरो युग तुम आये । कौन नाम उन युगन धराये ॥

करुणामय वचन

सतयुगमें सतनाम कहाये । त्रेता नाम मुनींद्र धराये ॥
युगन युगन हम नाम धरावा । जो चीन्हा तिहि लोक पठावा ॥

कबीरवचन धर्मदास प्रति

धर्मदास तेहि कह्यो बुझाई । सतयुग त्रेता कथा सुनाई ॥
सो सुनि अधिक चाह तिन कीन्हा । और बातसू पूछन लीन्हा ॥
उत्पति प्रलय और बहु भाऊ । यम चरित्र सब बरनि सुनाऊ ॥
जेहि विधि षोडश सुत प्रगटाना । सो सब भाषा सुनायो ज्ञाना ॥
कूर्म विदार देवी उत्पानी । सो सब ताहि कहा सहिदानी ॥
ग्रास अष्टंगी और निकासा । जेहि विधि भये मही आकासा ॥
सिंधुमथन त्रय सुत उत्पानी । सबहि कहेउ पाछिल सहिदानी ॥

जेहिविधिजीवनजमठगिराखा। सो सब ताहि सुनायउ भाषा ॥
सुनत ज्ञान पाछिल भ्रम भागा। हरषि सो चरण गहे अनुरागा॥

इन्द्रमती वचन

जोरि पाणि बोली बिलखायी। प्रभु यमते लेहु छुड़ाई ॥
राज पाट सब तुम पर बारों।धन सम्पति यह सब तजि डारों॥
देहु शरण मुहिं दीनदयाला। बंदिछोर मुहिं करहु निहाला॥

करुणामय वचन

इन्द्रमती सुन वचन हमारा। छोरों निश्चय बंदि तुम्हारा॥
चीन्हेउ मोहिं परतीत दृढाना। अब देहुँ तोहि नाम परवाना॥
करहु आरती लेहु परवाना। भागे यम तब दूर पयाना॥
चीन्हों मोहि करो परवाती।लेहु पान चालु भौ जल जाती॥
आनहु जो कछु आरती साजा।राजपाट कर मोहि न काजा॥
धन सम्पति कछु मोहि न भावा।जीव चितावन यहि जग आवा॥
धन सम्पति तुम यहवाँ लायी। करहु सन्त सम्मान बनायी॥
सकल जीव हैं साहिब केरा। मोह वश जिय परें अँधेरा॥
सब घट पुरुष अंश कियो बासा।यही प्रगट कहिं गुप्त निवासा॥

छन्द

सब जीव हैं सतपुरुषका वश,मोह भ्रम विगानहो॥
यमराजको यह चरित सब, भ्रमजाल जग परधानहो॥
जिव कालवश लरत मोसे भ्रमवश मोहि चीन्हई॥
तजिसुधाकीन्होनेहविषसे,छोड़िघृत अँचवें महीं६०॥
सो०-कोइइकविरला जीव,परखि शब्द मोहि चीन्हई॥
धाय मिले निज पीव, तजे जारको आसरो॥६३॥

इन्द्रमती वचन

इन्द्रमती सुन वचन अमानी। बोली मधुर ज्ञान गुण बानी॥

मोहि अधमको तुम सुख दीन्हा।तुव प्रसाद आगमगम चीन्हा ॥
हे प्रभु चीन्ह तोहि अब पाहू । निश्चय सत्यपुरुष तुम आहू॥
सत्यपुरुष जिन लोक सवारा। करेहु कृपा सो मोहि उदारा ॥
आपन हिरदै असहम जाना ।तुमते अधिक और नहिं आना॥
अब भाषहु प्रभु आरती भाऊ। जो चाहिये सो मोहि बताऊ॥

कबीरवचन धर्मदास प्रति

हे धर्मनि सो ताहि सुनावा ।जस खेमसरि सो भाषेउ भावा॥
चौका कर लेवहु परवाना । पीछे कहों अपन सहिदाना ॥
आने उसकलसाज तब रानी । चौका बैठि शब्दध्वनि ठानी॥
आरति कर दीन्हा परवाना ।पुरुष ध्यान सुमिरण सहिदाना॥
उठि रानी तब माथ नवायी । ले आज्ञा परवानी पायी ॥
पुनि रानी राजहि समुझावा । हे प्रभु बहुरि न ऐसो दावा॥
गहो शरण जो कारज चाहो । इतना वचन मोर निरवाहो ॥

राजा चन्द्र विजय वचन

तुम रानी अरधंगी सोई । हम तुम भक्त होय नहिं होई॥
तोरि भक्ति कर देखो भाऊ । किहिविधि मोहि लेहु मुक्ताऊ॥
देखो तोरि भक्ति परतापा । पहुँचै लोक मिटै संतापा ॥

कबीरवचन धर्मदासप्रति

रानी बहुरि मोहिपहँ आयी । हम तिहिकाल चरित्र लखाई॥
रानी आई हमरें पासा । तासों कियो वचन परकासा॥

करुणामय वचन

सुनु रानी एक वचन हमारा । कालहु कला करे छल धारा॥
काल व्याल ह्वै तोपहँ आयी । डसे तोहि सो देउँ बतायी ॥
ता कह शिष्य कीन्ह मैं जानी। डसे काल तक्षक ह्वै आनी ॥
तब हम तो कहँ मंत्र लखायी । काल गरल तब दूर परायी ॥

दीन्हों शब्द विरहुली ताहीं । काल गरल जेहि व्यापे नाहीं॥
पुनि यम दूसर छल तोहि ठानी । सो चरित्र मैं कहों बखानी ॥
छलकर यम आये तुम पासा । सो तुहि भेद कहों परगासा ॥
हंसवर्ण वह रूप बनायी । हमसम ज्ञान तोहि समझायी॥
तुमसन कहे चीन्ह मोहिरानी । मरदन काल नाम ममज्ञानी ॥
यहि विधि काल ठगे तोहि आयी। काल रेख सब देउ बतायी ॥
मस्तक छोट कालकर जानू । चक्षु गुंपनको रंग बखानू ॥
काल लक्ष मैं तोहि बतायी । और अंग सब सेत रहायी॥

इन्द्रमती वचन

रानी चरण गहे तब धायी । हे प्रभु मोहि लोक लै जायी॥
यह तो देश आही यमकेरा । लै चलु लोक मिटै झकझोरा॥
यह तो देश कालकर थानी । हे प्रभु लै चलु देश अमानी॥

करुणामय वचन

तब रानीसों कहेउ बुझाई । वचन हमार सुनो चितलाई॥
अब तोर तिनका यमसों टूटा । परिचय भयो सकल भ्रम छूटा॥
निशिदिन सुमरो नाम हमारा। कहा करे यह धर्म लबारा ॥
जब लगि ठेका पूरे नाई । तब लगि रहो नाम लौ लाई॥

छन्द

सुमरु नाम हमार निशिदिन, काल तो कहँ जब छले॥
टीका पुरे नाहिं जौलों तौलौं जीव नाहीं चले ॥
काल कला प्रचंड देखो, गजरूप धर जग आवई॥
देखि केहरि गजत्रास माने, धीर बहुरि न लावई॥६१॥
सो०-गजरूपी है काल, केहरि पुरुष प्रताप है ॥
रोप रहो तुम ढाल, काल खड्ग व्यापे नाहीं॥६४॥

इन्द्रमती वचन

हे साहिब मैं तुम कहँ जानी । वचन तुम्हार लीन्ह सिर मानी ॥
विनती एक करों तुहि स्वामी । तुम तो साहिब अंतरयामी ॥
काल व्याल हुए मोहिं सताई । अरु पुनि हंसरूप भरमायी ॥
तब पुनि साहिब मोपहँ आऊ । हंस हमार लोको लै जाऊ ॥

करुणामय वचन

कह ज्ञानी सुन रानी बाता । तुमसों एक कहों विख्याता ॥
काल कला धरती पहँ आयी । नाना रंग चरित्र बनायी ॥
तोरो ताहि मान अपमाना । मोहि देखि तब काल पराना ॥
तेहि पीछे हम तुम लग आवैं । हंस हमार लोक पहुँचावैं ॥
शब्द तोहि हम दीन्ह लखाई । निशिदिन सुपरी चित्त लगायी ॥

कबीर वचन धर्मदासप्रति

इतना कह हम गुप्त छिपाया । तक्षक रूप काल हो आया ॥
चित्रसार पर तक्षक आया । रानी केर तहँ पलग रहाया ॥
जबही रात बीत गई आधी । रानी उठि चली सेवा साधी ॥
रानी तब कहँ सीस नवायी । चली तबै महलन कहँ आयी ॥
सेज आय रानी पौढ़ायी । डसेउ व्याल मस्तक महँ जायी ॥

इन्द्रमती वचन

इन्द्रमती अस वचन सुनायी । तक्षक डसेउ मोहि कहँ आयी ॥
सुन राजा व्याकुल है धावा । गुणी गारुणी वेगि बुलावा ॥
राय कहे मम प्राणपियारी । लेहु चिताय जो अबकी बारी ॥
तक्षक गरल दूर हो आयी । देहुँ परगना तोहि दिवायी ॥

इन्द्रमती वचन छन्द

शब्द बिरहुली जपेउ रानी, सुरति साहब राखिहो ॥
वैद गारुणि दूर भाग्या, दूर नरपति नाहिं हो ॥

मन्त्र मोहि लखाय सतगुरु, गरल मोहि न लागई ॥
होत सूर्यप्रकाश जेहिक्षण, अन्ध घोर नशावई ॥६२॥
सोरठा-ऐसे गुरु हमार, बार बार विनती करौं ॥
ठाढभयी उठिनार, राजा लखि हरषित भयो ॥६५॥

यमदूतवचन

चल्यो दूत तब उहवां जायी । जहँ ब्रह्मा विष्णु महेश रहायी॥
कहे दूत विषतेज न लागा । नाम प्रतापबंध लो भागा ॥

विष्णुवचन

कहे विष्णु सुन हो यम दूता । सेतहि अंग करो तुम पूता ॥
छक करि जाइ लिवाइय रानी । वचन हमार लेहु तुम मानी ॥
कीन्हों दूत सेत सब अंगा । जलेउ नारि पहँ बहुत उमंगा ॥

यमदूतवचन

रानीसों अस वचन प्रकाशा । तुम कस रानी भई उदासा ॥
जानि बूझि कस भई अचीन्हा। दीक्षा मन्त्र तोहि हम दीन्हा॥
ज्ञानी नाम हमारो रानी । मरदो काल करौं पिसमानी॥
तक्षक काल होय तोहि खायी।तब हम राख लीन्ह तोहि आयी॥
छोड़हु पलँग गहो तुम पाई । तजहु आपनी मान बड़ाई ॥
अब हम लेन तोहि कहँ आवा। प्रभुके दर्शन तोहि करावा ॥

इन्द्रमती वचन

इन्द्रमती तब चीन्हेउ रेखा।असकछु साहिब कहेउ विशेखा॥
तीनों रेख देख चक माहीं । जर्द सेत अरु राता आहीं ॥
मस्तक ओछ देख पुनि ताको। भयो प्रतीत वचनको साको॥
जाहु दूत तुम अपने देशा ।अब हम चीन्हेउ तुम्हारो भेसा॥
काग रूप जो बहुत बनाई । हंस रूप शोभा किमि पाई॥
तस हम तोरा रूप निहारा । है समर्थ बड़ गुरू हमारा ॥

यमदूतवचन

यह सुन दूत रोष बड़ कीन्हा। इन्द्रमतीसों बोले लीन्हा ॥
बार २ तो कहँ समुझावा। नाहिंन समुझत मती हिरावा॥
बोला वचन निकट चलि आवा। इन्द्रमती पर थाप चलावा ॥
थाप चलाय सुमुखपर मारा। रानी खसि परि भूमि मझारा॥

इन्द्रमती वचन

इन्द्रमती तब सुमिरण लाई। हे गुरु ज्ञानी होहु सहाई ॥
हमकहँ काल बहुत विधि ग्रासा। तुमसाहिब काटो यमफांसा॥

कबीरवचन धर्मदासप्रति

सुनत पुकार मुनि रहो न जायी। सुनहु धर्मनि यह मोर सुभायी॥
रानी जबही कीन्ह पुकारा। तब छिन मैं तहांहि पगुधारा॥
देखत रानी भयी हुलासा। मनते भाग्यो कालको त्रासा॥
आवत हमरे काल पराया। भयी शुद्ध रानीकी काया ॥

इन्द्रमतीवचन

पुनि कह इन्द्रमती कर जोरी। हे प्रभु सुनु विनती एक मोरी॥
चीन्हि परी मोहियमकी छाहीं। अब यहि देश रहब हम नाहीं॥
हे साहिब लै चलु निज देशा। तहवां है बहु काल कलेशा ॥
इहि विधि कही भली उदासा। अबहीं लै चलु पुरुषके पासा॥

कबीरवचन धर्मदासप्रति

प्रथमहिं रानी कीन्हो संगा। मेट्यो काल कठिन परसंगा॥
तबही टीका पूर भराया। ले रानी सतलोक सिधाया॥
ले पहुँचायो मान सरोवर। जहवां कामिनि करहिं कतोहर॥
अमी सरोवर अमी चखायो। सागर कबीर पांव परायो ॥
तेहि आगे सुरतिको सागर। पहुँची रानी भई उजागर ॥
लोक द्वार ठाढ़े तब कीनी। देखत रानी अति सुख भीनी॥
हंस धाय अंकमें लीन्हा। गावहिं मंगल आरति कीन्हा॥

सकल हंस कीना सनमाना । धन्य हंस सतगुरु पहिचाना॥
मल तुम छोड़ेउ कालका फंदा । तुम्हारो कष्ट मिटचो दुखद्वंदा॥
चलो हंस तुम हमारे साथा । पुरुष दरश करि नावहु माथा॥
इन्द्रमती आवहु संग मोरे । पुरुष दरश होवें अब तोरे॥
इन्द्रमती अरु हंस मिलाहीं । करहिं कुतूहल मंगल गाहीं॥
चलत हंस सब अस्तुति लावें । अब तो दरश पुरुषको पावें॥
तब हम पुरुष सन विनती लावा । देहु दरस अब हंस ढिग आवा॥
देहु दरश तिहिं दीनदयाला । बंदीछोर सु होहु कृपाला॥
बिकस्यो पुहुप उठी अस बानी । सुनहु योग संतायन ज्ञानी॥
हंसन कहँ अब आव लिवाई । दरश कराइ लेउ तुम आई॥

छन्द

ज्ञानीखाउ हंस लग तब, हंस सकला ले गये॥
पुरुषदर्शन पाय हंसा, रूप शोभा तब भये॥
करहिं दंडवत हंस सबही, पुरुष पहँ चित लाइया॥
अमीफल तब चार दीन्हों, हंस सब मिल पाइया॥६३॥
सो०–जस रविके परकाश, दरश पायपंकज खुले॥
तैसै हंस विलास, जन्म जन्म दुखमिटि गयो॥६६॥

इन्द्रमतीको लोकमें पहुँच पुरुष ओर करुणामयको एकही
रूपमें देखकर चकित होना

पुरुष कांति जब देखेउ रानी । अद्भुत अमी सुधाकी खानी॥
गदगद होय चरण लपटानी । हंस सुबुद्धि सुजन गुणज्ञानी॥
दीनों शीश हाथ जिव मूला । रविप्रकाश जिमि पंकज फूला॥

इन्द्रमती वचन

कह रानी तुम धनिकरुणामय । जिमिभ्रम मेटि आनियहिठामय

पुरुष वचन

कहा पुरुष रानी समझायी। करुणामय कहँ आनु बुलाई॥

कबीरवचन धर्मदासप्रति

नारि धाय आई मो पासा। महिमा देखि चकित भये दासा॥

इन्द्रमतीवचन

कह रानी यह अचरज आही। भिन्न भाव कछु देखों नाहीं॥
जे कोइ कला पुरुष कहँ देखा। करुणामय तन एक विशेखा॥
धाय चरण गह हंस सुजाना। हे प्रभु तब चरित्र सब जाना॥
तुम सतपुरुष दास कहलाये। यह शोभा कस कहां छिपाये॥
मोरे चित यह निश्चय आई। तुमहि पुरुष दूजा नहिं भाई॥
सो मैं आय देख यहिं ठाईं। धन समरथ मुहिं लिया जगाई॥

इन्द्रमती स्तुति करती है। छन्द

तुम धन्य हो दयानिधान सुजान नाम अचिंतयं॥
अकथ अविचलअमरअस्थितअनघअजसुआदियं॥
असंशय निःकाम बाम अनाम अटल अखंडितं॥
आदि सबके तुमहि प्रभु हो सर्व भूतसमीपतं॥६४॥
सो०—मोपर भये दयाल, लियहु जगाई जानि निज॥
काटेहु यमको जाल, दीन्हो सुखसागरकरी॥५७॥

कबीरवचन धर्मदासप्रति

संपुट कमल लगो तेहि बारा। चले हंस निज दीप मँझारा॥

करुणामय (ज्ञानी) वचन इन्द्रमतीप्रति

ज्ञानी बूझें रानी बाता। कहो हंस तुम्हरो विख्याता॥
अब दुख द्वंद तोर मिटि गयऊ। षोडश भानु रूप पुनि भयऊ॥
ऐसे पुरुष दया तोहि कीन्हा। संशय सोग मेटि तुव दीन्हा॥

इन्द्रमतीका अपने पति राजा चन्द्रविजयको लोकमें लानेके लिये विनती करना इन्द्रमती वचन

इन्द्रमती कह दोउ कर जोरी । हे साहिब इक विनती मोरी ॥
तुम्हरे चरण भागते पायी । पुरुष दर्श कीन्हा हम आयी ॥
अंग हमार रूप अति सोही । इक संशय व्यापे चित मोही ॥
मो कहँ भयो मोह अधिकारा । राजापति आहि हमारा ॥
आनहु ताहि हंसपति राई । राजा मोर कालमुख जाई ॥

करुणा वचन

कहे ज्ञानी सुन हंस सुजाना । राजा नहिं पाये परवाना ॥
तुम तो हंसरूप अब पाया । कौनकाज कहँ राव बुलाया ॥
राजा भाव भक्ति नहिं पाया । सत्वहीन भव भटका खाया ॥

इन्द्रमती वचन

हे प्रभु हम जग माँह रहेऊ । भक्तितुम्हारि बहुत विधि करेऊ ॥
राजा भक्ति हमारी जाना । हम कहँ बरजेउ नहीं सुजाना ॥
कठिन भाव संसार सुभाऊ । पुरुष छोड़ कहु नारि रहाऊ ॥
सब संसार देहि तिहि गारी । सुनतहि पुरुष डार तेहि मारी ॥
राज काज अतिमान बड़ाई । पाखंड क्रोध और चतुराई ॥
साधु संतकी सेवा करऊ । राजकेर त्रास ना डरऊ ॥
सेवा करौं संतकी जबहीं । राजा सुनि हरषित हो तबहीं ॥
जो मोहि तजि न देता राजा । तो प्रभु मोर होत किमि काजा ॥

छन्द

रायकी हम हती प्यारी, मोहिं कबहुँ न बरजेऊ ॥
साधु सेवा कीन्ह नित हम, शब्द मारग चीन्हेंऊ ॥
चरण मो कहँ मिलत कैसे, मोहि बरजत रायजो ॥
नामपाननमिलत मोकहँ, कैसे सुधरत काजजो ॥ ६५ ॥

सो०–धन्य राय सुज्ञान, आनहु ताहि हंस ॥
तुम गुरुदयानिधान, भूपति बंद छुड़ाइये ॥६८॥

कबीरवचन धर्मदासप्रति

सुन ज्ञानी बहुतै विहँसाये । चले तुरंग बार नहिं लाये ॥
गढगिरनार बेगि चलि आया । नृपति केरि अवधी नियराया ॥
घेर्‌यो ताहि लेन यमराई । राजहि देत कष्ट बहुताई ॥
राजा परे गाढ़ महँ आया । सतगुरू कहे तहां गुहराया ॥
घोड़े नृप नाहीं यमराई । ऐसे भक्ति चूक है भाई ॥
भक्ति चूक कर ऐसे ख्याला । अवधि पूर यम करे विहाला ॥
चन्द्रविजयका करगहि लीन्हा । तत्क्षण लोक पयाना दीन्हा ॥
रानी देखि नृपति ढिग आई । राजा केर गह्यो तब पाई ॥

इन्द्रमती वचन

इन्द्रमती के सुनहु भुवारा । मोहि चीन्हों मैं नारि तुम्हारा ॥

राजा चन्द्रविजय वचन

राय कहें सुनु हंस सुजाना । वरण तोर षोडश शशिमाना ॥
अंग अंग तोरे चमकारी । कैसे कहों तोहि मैं नारी ॥
तुम तो भक्त कीन्ह भल नारी । हमहू कहँ तुम लीन्ह उबारी ॥
धन्य गुरु अस भक्ति दृढ़ाई । तोरि भक्ति हम निज घर पाई ॥
कोटिन जन्म कीन्ह हम धर्मा । तब पाई अस नारि सुकर्मा ॥
हम तो राजकाज मनलाया । सतगुरु भक्ति चीन्ह नहिं पाया ॥
जो तुम मोरि होत ना नारी । तो हम जात नरककी खानी ॥
तुव गुण मोहि वरणि ना जाई । धनगुरु धन्य नारि हम पाई ॥
जस हम तो कहँ पायउ नारी । तैसे मिले सकल संसारी ॥

कबीरवचन धर्मदासप्रति

सुनत वचन ज्ञानी वहसायी । चन्द्रविजय कहँ वचन सुनायी ॥

करुणा मय वचन

सुनो राय तुम नृपति सुजाना । जो जिव शब्द हमारा माना ॥
ते पुनि आय पुरुष दरबारा । बहुरि न देखे वह संसारा ॥
हंस रूप होवे नर नारी । जो निजमाने बात हमारी ॥
पुरुष दर्श नरपति चितलायी । हंस रूप शोभा अतिपायी ॥
षोडश भानु रूप नृप पावा । जानुमयंकम ढार बनावा ॥

धर्मदासवचन छन्द

धर्मदास विनती करे, युग लेख जीव सुनायऊ ॥
धन्य नाम तुम्हारा साहिब, राय लोक समायऊ ॥
तत्त्वभाव न गहेउ राजा, भक्ति तुव निजठानिया ॥
नारिभक्ति प्रतापते, यमराजसै नृप आनिया ॥६६॥
सो०—धन्यनारिकोज्ञान, लीन्ह बुलायस्वनृपति कहँ ॥
आवागमन नशान, जगमें बहुरि न आइया ॥६९॥
ता पीछे पुनि का प्रभु कीना । सोई कथा कहो परबीना ॥
कैसे पुनि आये भवसागर । सो कहिये हंसन पतिनागर ॥

कबीरवचन धर्मदासप्रति

धर्मनि पुनि आये जगमाहीं । रानी पति लै गये तहांहीं ॥
राख्यो ताहि लोक मंझारा । तत छिन पुनि आयउ संसारा ॥
काशी नगर तहां चलि आये । नाम सुदरशन सुपच जगाये ॥

सुपच सुदर्शनकी कथा

नाम सुदर्शन सुपच रहाई । ता कहे हम सतशब्द दृढाई ॥
शब्द विवेकी संत सुहेला । चीन्हा मोहि शब्दके मेला ॥
निश्चय वचन मान तिन्ह मोरा । लखि परतीत वंदि तिंहि छोरा ॥
नाम पान दियो मुक्ति सँदेशा । मेटचो सकल काल कलेशा ॥

शब्द[1] ध्यान तेहि दीन्ह दृढाई। हरषित नाम सुमिरे चितलाई॥
सतगुरु भक्ति करे चितलाई। छोडी सकल कपट चतुराई॥
तात मात तेहि हर्ष अपारा। महाप्रेम अतिहित चितधारा॥
धर्मनि यह संसार अँधेरा। विनु परिचय जिव यमको चेरा॥
भक्ति देखि हर्षित हो जायी। नाम पान हमरो नहिं पाई॥
प्रगट देखि चीन्हे नहिं मूढ़ा। परे कालके फन्द अगूढ़ा॥
जैसे श्वान अपावन रांचेउ। तिमिजगअमीछोड़िविषखांचेउ
नृपति युधिष्ठिर द्वापर राजा। तिन पुनि कीन्ह यज्ञको साजा॥
बन्धु मार अपकीरति कीन्हा। ताते यज्ञ रचनके चित दीन्हा॥
कृष्ण केर जब आज्ञा पाई। तब पांडव सब साज मँगाई॥
यज्ञकी सामग्री गहि सारी। जहँ तहँते सब साधु हँकारी॥
पाण्डव प्रति बोले यदुपाला। पूरन यज्ञ जान तिहिकाला॥
घण्ट अकाश बजत सुनि आवे। यज्ञको फल तब पूरन पावे॥
संन्यासी वैरागी झारी। आवे ब्राह्मण औ ब्रह्मचारी॥
भोजन विविध प्रकार बनाई। परम प्रीतिसे सबहिं जेवांई॥
इच्छा भोजन सब मिलि पावा। घण्ट न बाजा राय लजावा॥
जबहि घण्ट न बाज अकाशा। चकित भयो राय बुधिनाशा॥
भोजन कीन सकल ऋषिराया। बजा न घण्ट भूप भ्रम आया॥
पांडव तबहिं कृष्णपद गयऊ। मन संशय करि पूछत भयऊ॥

युधिष्ठिर वचन

करिके कृपा कहो यदुराजा। कारण कौन घण्ट नहिं बाजा॥

कृष्ण उत्तर

कृष्ण अस कारण तासु बताया। साधू कोइ न भोजन पाया॥

---

१ "शब्द ध्यान" के बदले किसी प्रतियोंमें "सुरति ध्यान" लिखा है।

युधिष्ठिरवचन

चकित भै तब पाण्डव कहेऊ । कोटिन साधु भोजन लहेऊ ॥
अब कहँ साधु पाइय नाथा । तिनते तब बोले यदुनाथा ॥

कृष्ण वचन

सुपच सुदर्शनको ले आवो । आदरमान समेत जिमावो ॥
सोई साधु और नहिं कोई । पूरन यज्ञ जाहिते होई ॥

कबीरवचन धर्मदास प्रति

कृष्ण आज्ञा जब अस पयऊ । पाण्डव तब ताके ढिग गयऊ ॥
सुपच सुदर्शनको ले आये । विनय प्रीतिसे ताहि जेवांये ॥
भूपभवन भोजन कर जबहीं । बजा आकाशमें घंटा तबहीं ॥
सुपच भक्त जब ग्रास उठावा । बाजो घण्ट नाम परभावा ॥
तबहुँ न चीन्हे सतगुरु बानी । बुद्धि नाश यम हाट बिकानी ॥
भक्त जीव कहँ काल सताये । भक्त अभक्त सबन कहँ खाये ॥
कृष्ण बुद्धि पांडव कहँ दीन्हा । बंधु घात पांडव तब कीन्हा ॥
पुनि पांडव कहँ दोष लगावा । दोष लगा तेहिं यज्ञ करावा ॥
ताहूपर पुनि अधिक दुखावा । भेजि हिमालय तिन्हैं लगावा ॥
चार बंधु सह द्रौपदि गहेऊ । उबरे सत्य युधिष्ठिर रहेऊ ॥
अर्जुन सम प्रिय और न आना । ताकर अस कीन्हा अपमाना ॥
बलि हरिचन्द्र करण बड़ दानी । काल कीन्ह पुनि तिन्हकी हानी ॥
जिव अचेत आशा तेहि लावे । खसम बिसार जारको धावे ॥
कला अनेक दिखावे काला । पीछे जीवन करे बिहाला ॥
मुक्ति जान जिव आशा लावै । आशा बांधि कालमुख जावै ॥
सब कहँ काल नचावै नाचा । भक्त अभक्त कोइ नहिं बाचा ॥
जो रक्षक तेहि खोजे नाहीं । अनचीन्हे यमके मुख जाहीं ॥
बार बार जीवन समुझावा । परमारथ कहँ जीव चितावा ॥

अस यम बुद्धि हरी सब केरी। फंद लगाय जीव सब घेरी ॥
सत्य शब्द कोइ परखे नाहीं। यम दिशि होय लरै हम पाहीं॥
जबलगि पुरुष नाम नहिं भेटे।तब लगि जन्म मरण नहिं मेटे ॥
पुरुष प्रभाव पुरुष पहँ जाई । कृत्रिम नामते यम धरिखाई॥
पुरुष नाम परवाना पाये ।कालहि जीत अमर घर जावे॥

छन्द

सत नाम प्रताप धर्मनि, हंस लोक सिधावई ॥
जन्ममरणको कष्ट मेटै,बहुरि न भव जल आवई॥
पुरुषकी छबि हंस निरखहिं,लहे अति आनँद घना॥
अंशहंसमिलिकरैकुतूहल,चन्द्रकुमुदिनिसँगबना ६६
सो०—जैसेकुमुदिनि भाव,चन्द्र देखि निशि हर्षई ॥
तैसइ हंस सुख पाव, पुरुष दर्शके पावते ॥ ७० ॥
नहिं मलीन सुखभाव, एक प्रभाव सदा उदित ॥
हंससदा सुख पाव,शोकमोह दुख क्षणक नहिं॥७१॥
जबै सुदर्शन ठेका पूरा । ले सत लोक पठायो सूरा॥
मिले रूप शोभा अधिकारा । हंसन संग कुतूहल सारा ॥
षोडश भानु रूप तब पावा । पुरुष दर्श सो हंस जुड़ावा॥

धर्मराय वचन

हे साहिब इक बिनती मोरा । खसम कबीर कहु बंदीछोरा॥
भक्त सुदरशन लोक पठायी । पीछे साहिब कहां सिधायी ॥
सो सतगुरु कहो मुहि संदेशा । सुधा वचनसुनि मिटै अँदेशा॥

कबीरवचन

अब सुनु धर्मनि परम पियारा । तुमसों कहौं अलग व्यवहारा॥
द्वापर गत कलियुग परवेशा । पुनि हम चल जीवन उपदेशा॥
धर्मराय कहँ देख्यो आई । मोहि देखि यम गयो मुझांई॥

धर्मराय वचन

कहे धर्म कस मोहिं दुखावहु । भच्छ हमार लोक पहुँचावहु ॥
तीनों युग गवने संसारा । भवसागर तुम मोर उजारा ॥
हारी वचन पुरुष मोहि दीन्हा । तुम कस जीव छुड़ावन लीन्हा ॥
और बंधु जो आवत कोई । छिनमहँ ताकहँ खांव बिलोई ॥
तुमते कछू न मोर बसाई । तुम्हरे बल हंसा घर जाई ॥
अब तुम फेर जाहु सगमाहीं । शब्द तुम्हार सुनै कोउ नाहीं ॥
करम भरम मम असकै ठाटा । ताते कोई न पावै बाटा ॥
घर घर भरम भूत उपजावा । धोखा दै दै जीव नचावा ॥
भरत भूत ह्वै सब कहँ लागे । तोहि चिन्है ताकहँ भ्रम भागे ॥
मद्य मांस खावै नर लोई । सर्व मांस प्रिय नरको होई ॥
आपन पंथ मैं कीन परगासा । मांस मद्य सब मानुष ग्रासा ॥
चण्डी जोगिन भूत पुजाओं । यही भ्रम है जग जहँ माडाओं
बांधि बहुफंदहिं फन्द फन्दाओ । अंतकाल कर सुधि बिसराओ ॥
तुम्हरी भक्ति कठिन है भाई । कोइ न मनिहैं कहौं बुझाई ॥

ज्ञानी वचन

धर्मरायते बड़ छल कीन्हा । छल तुम्हार सकलो हम चीन्हा ॥
पुरुष वचन दूसर नहिं होई । ताते तुम जीवन कहँ खोई ॥
पुरुष मोहि जो आज्ञा देही । तो सब होय नाम सनेही ॥
ताते सहजहिं जीव चेताऊँ । अंकुरी जीवसकल मुकताऊँ ॥
कोटि फन्द जो तुम रचिराखा । वेद शास्त्र निज महिमा भाखा ॥
प्रकट कला जो धरि जग जाऊँ । तो सब जीवनको मुकताऊँ ॥
जो अस करौं वचन तब डोलै । वचन अखंड अड़ोल अमोलै ॥
जो जियरा अंकूरी शुभ होई । शब्द हमार मानि है सोई ॥
अंकुरी जीव सकल मुकताओं । फन्दा काटि लोक लैजाओं ॥
काटि भरम जो दैहौं ताही । भरम तुम्हार मानि हैं नाहीं ॥

छन्द

सत्य शब्द दिढाय सबहीं, भ्रम तोरि सब डारिहौं ॥
छलतोर सब चिन्हाइ तबहीं, नामबल जियतारिहौं ॥
मनवचनसत्य जो मोहि चीन्ही, एकतत्त्वलौंलाइहौं॥
तवसीस तुम्हारे पांव देहीं, अमललोक जिव आइहैं६८
सो०–मर्दहि तोरा मान, सूरा हंस सुजान कोइ ॥
सत्यशब्द सहिदान, चीन्हहि हंसहरषअती ॥७२॥

धर्मराय वचन

कहै धर्म जीवन सुखदाई । बात एक मुहि कहो बुझाई॥
जो जिव रहे तुम्हैं लौ आई । ताके निकट काल नहिं जाई॥
दूत हमार ताहि नहिं पावै । मूर्छित दूत मोहि पहँ आवै ॥
यह नहिं बूझ परी मोहिं भाई । तौन भेद मोहिं कहो बुझाई॥

ज्ञानीवचन

सुनहु धर्म जो पूछेहु मोही । सो सब हाल कहो मैं तोहीं॥
सुन धर्म तुम सत सहिदानी ।सोतोसत्य शब्द आहि निर्वानी॥
पुरुष नाम है गुप्त परमाना । प्रकट नामसत हंस बखाना ॥
नाम हमार हंस जो गहई । भवसागर सो सो निरबहई ॥
दूत तुम्हार होय बल थोरा । जब मम हंस नाम ले मोरा ॥

धर्मराय वचन

कहै धर्म सुनु अन्तरयामी । कृपा करो अब मोपर स्वामी॥
यदि युग कौन नाम तुव होई । सो जनि मोंपर राखहु गोई ॥
वीरा अंक गुप्त गन आऊ । ध्यान अंग सब मोहि बताऊ॥
केहि कारन तुम जाहु संसारा ।सोइ कहहु मोहि भेद गुन न्यारा॥
हमहूँ जीवन शब्द चेतायब । पुरुषलोक कहँ जीव पठायब॥
मोहिं दास आपन कर लीजै। शब्द सार प्रभु मोकहँ दीजै ॥

ज्ञानी वचन

सुनहु धर्म तुम कस छल करहू। प्रगट सुदास गुप्त छल धरहू ॥
गुप्त भेद नहिं देहौं तोहीं। पुरुष अवाज कही नहिं मोहीं॥
नाम कबीर मोर कलिमाहीं। कबीर कहत यम निकट न जाहीं

धर्मराय वचन

कहै धर्म तुम मोहि दुरै हो। खेल एक पुन हमहु खेलै हो॥
ऐसी छल बुधि करब बनाई। हंस अनेक लेव सँग लाई ॥
तुम्हार नाम ले पंथ चलायब। यहिविधि जीवनधोखदिखायब

ज्ञानी वचन

अरे काल तू पूरुष द्रोही। छलमति कहा सुनावसि मोही॥
जो जिव होई है शब्द सनेही। छल तुम्हार नहिं लागै तेही॥
जौहरी हंस लेहिं पहिचानी। परखि हैं ज्ञान ग्रंथ मम बानी॥
जेहि जीव मैं थापब जाई। छल तुम्हार तेहि देव चिन्हाई॥

कबीरवचन धर्मदासप्रति

यहि सुनत धर्मराय गहु मौना। ह्वै अन्तर्धान गयो निज भौना॥
धर्मनि कठिन कालगति नन्दा। छल बुध कै जीवन कहँ फन्दा॥

धर्मदास वचन

कह धर्मनि प्रभु मोहि सुनाओ। आगल चरित्र कहि समझाओ॥

जगन्नाथ मंदिरकी स्थापनाका वृत्तान्त

कबीरवचन धर्मदासप्रति

राजा इन्द्रदमन तेहि काला। देश उड़ेसेको महिपाला ॥

सद्गुरुवचन

राजा इन्द्रदमन तहँ रहई। मंडप काज युगति सो कहई॥
कृष्ण देह छांड़ी पुनि जबही। इन्द्रदमन सपना भा तबही ॥
स्वप्नेमें हरि अस ताहि बताई। मेरो मंदिर देहु उठाई ॥
मोकहँ स्थापन कर राजा। तोपह मैं आयउ यहि काजा॥

राजा यहि विधि सपना पाई । ततक्षण मंडप काम लगाई॥
मंडप उठा पूर्ण भा कामा । उदधि आय बोरा तेहि ठामा॥
पुनि जब मंदिर लाग उठावा । क्रोधवंत सागर तब धावा ॥
क्षणमें धाय सकल सो बोरे । जगन्नाथको मंदिर तोरे ॥
मंडप सो षट बार बनायी । उदधि दौर तिहिं लेत डुबायी॥
हारा नृप करि यतन उपायी । हरिमंदिर तहँ उठे न भाई ॥
मंदिरकी यह दशा विचारी । वर पूरब मन माहिं सम्हारी॥
हम सन काल मांग अन्याई । बाचा बन्ध तहां हम जाई॥
आसन उदधि तीर हम कीन्हा। काहू जीव न मोही चीन्हा ॥
पीछे उदधि तीर हम आई । चौरा तहँ बनायउ जाई ॥
इन्द्रदमन तब सपना पावा । जहो राय तुम काम लगावा॥
मंडप शंक न राखो राजा । इहवाँ हम आये यहि काजा॥
जाहु बेगि जनि लावहु बारा । निश्चय मानहु वचन हमारा॥
राजा मंडप काम लगायो । मंडप देखि उदधि चल आयो॥
सागर लहर उठी तिहि बारा । आवत लहर क्रोधचित धारा॥
उदधि उमंग क्रोध अति आवे । पुरुषोत्तम पुर रहम ना पावे॥
उमँगेउ लहर अकाशे जायी । उदधि आय चौरा नियरायी॥
दरश हमार उदधि जब पाई । अति भय मान रह्यो ठहराई॥

छन्द

रूप धारचो विप्रको तब, उदधि हमपहँ आइया ॥
चरण गहिके माथ नायो, सर्म हम नहिं पाइया ॥

उदधिवचन

जगन्नाथ हम भोर स्वामी, ताहिते हम आइया ॥
अपराध मेरो क्षमा कीजे, भेद अब हम पाइया ॥६९॥

सो०-तुम प्रभु दीनदयाल,रघुपति बोइल दिवाइये।
वचन करो प्रतिपाल कर जोरै विनती करो ॥७३॥
कीन्हेउ गवन लंक रघुबीरा । उदधि बाँध उतरे रणधीरा ॥
जो कोइ करै जोरावरि आयी ।अलखनिरंजन बोइल दिखाई॥
मोपर दया करहु तुम स्वामी ।लेउ ओइल सुनु अन्तरयामी॥

कबीर वचन

ओइल तुम्हार उदधि हम चीन्हा। बोरहु नगर द्वारका दीन्हा ॥
यह सुनि उदधि धरे तब पांई । चरण टेकिके चले हरषाई ॥
उदधि उमङ्ग लहर तब धायी । बोरयो नगर द्वारका जाई ॥
मण्डप काम पूर तब भयऊ । हरिको थापन तहवाँ कियऊ॥
तब हरि पण्डन स्वपन जनावा ।दासकबीर मोहिपहँ आवा ॥
आसन सागर तीर बनायी । उदधि उमङ्ग नीरतहँ आयी॥
दरश कबीर उदधि हट जाई ।यहि विधि मण्डप मोर बचाई॥
पण्डा उदधितीर चलि आये ।करि अस्नान मंडप चलि आये॥
पण्डन अस पाखंड लगायी ।प्रथम दरश मछेच्छ दिखायी॥
हरिके दर्शन मैं नहिं पावा ।प्रथमहि हम चौरालग आवा॥
तब हम कौतुक एक बनाये । कहों वचन नहिं राखु छिपाये ॥
मंडप पूजन जब पण्डा गयऊ । तहँवा एक चरित अस भयऊ॥
जहँ लग मूरति मण्डप माहीं । भये कबीर रूप धर ताहीं ॥
हर मूरति कहँ पण्डा देखा । भये कबीर रूप धर भेखा ॥
अक्षत पुहुप ले विप्र भुलाई ।नहिं ठाकुर कहँ पूजहुँ भाई ॥
देखि चरित्र विप्र सिर नाया । हे स्वामी तुम मर्म न पाया॥

पण्डा वचन

हम तुम काहि नहीं मनलाया । ताते मोहि चरित्र दिखाया ॥
क्षमा अपराध करो प्रभु मोरा । बिनती करों दोइ करजोरा ॥

कबीर वचन । छन्द

वचन एक मैं कहों तोसों, विप्र सुनु तू कान दे ॥
पूज ठाकुर दीन्ह आयसु, भाव दुविधा छोड दे ॥
भ्रम भोजन करे जो जिव, अंगहीन हो ताहिको॥
करे भोजन छूत राखे, सीस उलटे ताहिको ॥७०॥
सोरठा–चौराकरिव्यवहार, भ्रमाविमोचनज्ञानदृढ ॥
तहँते कियो पसार, धर्मदास सुनु कानदे ॥७४॥

धर्मदास वचन

धर्मदास कहे सतगुरु पूरा । तुम प्रसाद भयो दुख दूरा॥
जेहि विधि हरि कहँ थापउ जाई। सो साहिब सब मोहिं सुनाई॥
ता पीछे कहवाँ तुम गयऊ । कौन जीव कैसे मुकतयऊ ॥
कलयुगकेर कहो परभाऊ । और हंस परमोधेउ काऊ ॥
सो माहि वरणि कहो गुरुदेवा। कौन जीव कीन्ही तुम सेवा॥

कवीर वचन

धर्मदास तुम बूझहु भेदा । सो सब हमसों कहो निषेदा॥

चार गुरुकी स्थापनाका वृत्तांत

सुनहु सन्त यह ज्ञान अनूपा । गज थलदेस परमोध्यो भूपा॥

रायबंकेजी

रायबंकेज नाम तेही आही । दीनेउ सार शब्द पुनि ताही॥
कीन्ह्यो ताहि जीवन कडिहारा । सो जीवनका करैं उबारा ॥

सहतेजी

शिलमिली दीप तहां चलि आये । सहतेजी एकसन्त चिताये॥
ताहूको कडिहारी दीन्हा । जब उन मोकहँ निजकर चीन्हा॥

---

१ किसी ग्रन्थमें यह चौपाई ऐसे लिखी है—
सुनो संत यह कथा अनूभा । गज अस्थल परमोध्यो भूपा ॥

चतुरभुज

तहांते चलि आये धर्मदासा। राय चतुरभुजपति जहँ बासा॥
ताकर देश आहि दरभङ्गा। परखिसि मोहि सतपर संगा॥
देखि अधीन ताहि समझावा। ज्ञान भक्ति विधि ताहि दृढ़ावा॥
दृढ़ता देखि ताहि पुनि थापा। मिला मोहि छाडि भ्रम आपा॥
मायामोह न तनिको कीन्हा। अमर नाम तब ताही दीन्हा॥
ताहूँ कहँ कडिहारी दीन्हा। चतुरभुजशब्द हेत करि लीन्हा॥

छन्द

हंस निरमल ज्ञान रहनी, गहनी नाम उजागरा॥
कुल कानि सबै बिसारि विषया, जौहरीगुण नागरा॥
चतुर्भुज बंकेज औ सहतेज, तुम चौथ सही॥
चारिहैं कडिहार जिवके, गिरानिश्चल हम कही७१॥
सो०—जम्बुदीपके जीव, तुम्हरी बांह मोकहँ मिल।
गहे वचन दृढ पीव, ताहि काल पावे नहीं॥७५॥

धर्मदास वचन

धन सत गुरु तुम मोहिं चेतावा। काल फंदसे मोहिं मुकतावा॥
मैं किंकर तुम दासके दासा। लीन्हों मोरि काटि जमफांसा॥
मोते चित अतिहरष समाना। तवगुणमोहि न जाय बखाना॥
भागी जीव शब्द तुव माना। पूरण भाग जो तुव व्रत ठाना॥
मैं अघकर्मी कुटिल कठोरा। रहेउँ अचेत भ्रम जिव मोरा॥
कहा जानि तुम मोहिं जगाये। कौने तप हम दशन पाये॥
सो समुझाय कहो जियमूला। रबि तब गिरा कमल मनफूला॥

धर्मदासके पिछले जन्मोंकी कथा कबीर वचन

इच्छा कर जो पूछा मोही। अब मैं गोइ न राखौं तोही॥
धर्मनि सुनहु पाछली बाता। तोहि समझाय कहों विख्याता॥

सन्त सुदर्शन द्वापर भयऊ। तासुकथा तोहिं प्रथम सुनयऊ॥
तेहि ले गयो देशनिज जबहीं। विनती बहुत कीन तिन तबहीं॥

सुपचवचन

कहे सुपच सतगुरु सुनलीजै। हमरे मात पिता गति दीजै॥
बन्दी छोड़ करो प्रभु जाई। यमके देश बहुत दुख पाई॥
मैं बहु भांति पिता समुझावा। मातु पिता परतीति न पावा॥
बालकवत नहिं ज्ञान सिखावा। भक्ति करत नहिं मोहि डरावा॥
भक्ति तुम्हारी करन जब लागे। कबहुँ न द्रोह कीन्ह मम आगे॥
अधिक हर्ष ताही चित होई। ताते विनती करौं प्रभु सोई॥
आनहु तेहि सत शब्द दृढ़ाई। बन्दीछोर जीव मुकताई॥

कबीरवचन धर्मदासप्रति

विनती बहुत संत जब कीन्हा। ताकर वचन मान हम लीन्हा॥
ताकर विनय बहुरि जग आवा। कलियुग नाम कबीर कहावा॥
हम इक वचन निरंजन हारा। वाचा बंध उदनि पगु धारा॥
और दीप हंसन उपदेशा। जम्बुदीप पुनि कीन प्रवेशा॥
सन्त सुदर्शनके पितु माता। लक्ष्मी नर हर नाम सुहाता॥
सुपच देह छोड़ी तिन भाई। मानुष जन्म धरे तिन आई॥

सुपचसुदर्शन माता पिताके पहला जन्म कुलपति और महेश्वरीकी कथा

सन्त सुदर्शन केर प्रतापा। मानुष देह विप्रके छापा।
दोनों जन्म होय तब लीन्हा। पुनि विधि मिलैताहि कहँ दीन्हा॥
कुलपति नाम विप्रकर कहिया। नारि नाम महेसरि रहिया॥
बहुत अधीन पुत्र हित नारी। करि अस्नान सुर्यव्रतधारी॥
अञ्चल लै विनवै कर जोरी। रुदन करे चित सुतकह दौरी॥
तत्क्षण हम अञ्चल पर आवा। हम कहँ देखि नारि हरषावा॥
बाल रूप धरि भेंटयो वोही। विप्र नारि गृह लै गइ मोही॥

कहै नारि कृपा प्रभु कीन्हा । सूर्य व्रत करफल यह दीन्हा॥
बहुत दिवसलग तहां रहाये । नारि पुरुष मिल सेवा लाये॥
रहे दरिद्रते दुखी अपारा । हम मनमहँ असकीन विचारा॥
प्रथमहि दरिद्रता इनकर टारों।पुनिभक्तिमुक्तिकरवचनउचारों॥
जब हम पलना झटक झकोरा । मिलत सुवर्ण ताहि इकतोरा॥
नितप्रति सोन मिलै इक तोला । ताते भये वह सुखी अमोला॥
पुनि हम सत्य शब्द गोहराई । बहुप्रकारसे उनहिं समुझाई॥
ता हृदये नहिं शब्द समायी । बालक ज्ञान प्रतीत न आई॥
ताहि देह चीन्हेसि नहिं मोहीं । भयोगुप्त तहँ तन तजि वोहीं॥

सुपच सुदर्शनके पिता माताके दूसरे जन्ममें चन्दसाहु
और ऊदाकी कथा

नारि द्विज दोई तन त्यागा । दरश प्रभाव मनुजतनु जागा॥
पुनि दोनों भये अंशु मिलाऊ । रहहि नगर चन्द वारे नाऊ॥
ऊदा नाम नारी कहँ भयऊ । पुरुष नाम चन्दन धरि गयऊ॥
परसोतमते हम चलि आये । तब चन्दवारा जाइ पगटाये॥
बालक रूप कीन्ह तेहि ठामा । कीन्हेउ ताल माहि विश्रामा॥
कमल पत्र पर आसन लाई । आठ पहर हम तहाँ रहाई॥
पीछे ऊदा अस्नानहि आयी । सुन्दर बालक देखि लुभाई॥
दरश दियो देहि शिशुतनधारी । लेगई बालक निज घर नारी॥
ले बालक गृह अपने आई । चन्दन साहु अस कहा सुनाई॥

चन्दनसाहु वचन

कहु नारी बालक कहँ पायी । कौने विधिते इहँवा लायी॥

ऊदावचन

कह ऊदा जल बालक पावा । सुन्दर देखि मोर मन भावा॥

चन्दनसाहुवचन

कह चन्दनते मूरख नारी । वेगि जाहु दै बालक डारी॥
जाति कुटुम्ब हँसिहैं सब लोगा । हँसत लोग उपजै तन सोगा॥

कबीरवचन धर्मदास प्रति

ऊदा त्रास पुरुष कर माना । चन्दन साहु जबै रिसियाना ॥

चन्दनसहुवचन धर्मदास प्रति

बालक चेरी लेहु उठाई । लै बालक जल नेहु खसाई ॥

कबीर वचन धर्मदास प्रति

चल चेरी बालक कहँ लीन्हा । जलमहँडारनताहिचितदीन्हा ॥
चलि भइ मोहि पवांरन जबहीं । अन्तरधान भयो मैं तबहीं ॥
भयउ गुप्त तेहि करसे भाई । रुदन करे दोनों बिलखाई ॥
बिकल होय मन ढूंढत डोलैं । मुग्धज्ञान कछु मुख नहिं बोलैं ॥

सुपच सुदर्शनके माता पिता तीसरे जन्ममें नीमा हुए

यहिविधिबहुतदिवसचलिगयऊ । तजितनजन्मबहुरितिनपयऊ
मानुष तन जुलहा कुल दीन्हा । दोउ संयोग बहुरि विधि कीन्हा ॥
काशी नगर रहे पुनि सोई । नीरू नाम जुलाहा होई ॥
नारि गवन लावे मग सोई । जेठमास बरसाइत[१] होई ॥
नारि लिवाय आय मगमाहीं । जलअचवन गहबनिताहीं ॥
ताल नाहिं पुरइन पनवारा । शिशु होय मैं तहँ पगुधारा ॥
तहां जस बालकै रहुँ पौढाई । करौं कुतूहल बाल स्वभाई ॥
नीमा दृष्टि परी तिहि ठाऊ । देखत दरश भयो अति चाऊ ॥
जिमिरविदरशपदुमबिगसाना । धाय गयो धन रंक समाना ॥
धाय गही कर लिया उठायी । बालक लै नीरूपहँ आयी ॥
जुलहा रोष कीन्ह तेहि वारी । बेगि देहु तुम बालक डारी ॥
हर्ष गुनावन नारी लाई । तब हम तासो वचन सुनाई ॥

१ वरसाइत वटसावित्रीका अपभ्रंश है । यह वटसावित्री व्रत ज्येष्ठ शुद्धपूर्ण-मासीको होता है इसकी विस्तारपूर्वक कथा महाभारतमें है । उसी दिन कबीर साहब नीमा और नूरीको मिले थे इस कारणसे कबीर पंथियोंमें बरसाइत महातम पंथकी कथा प्रचलित है । और उस दिन कबीरपंथी लोग बहुत उत्सव मनाते हैं

छन्द

सुनहु वचन हमारे नीमा, तोहि कहु समझायके ॥
प्रीत पिछली कारणे तुहि, दरस दीन्हो आयके ॥
आपने गृह मोहि लै चलु, चीन्हिके जो गुरु करो ॥
देऊँ नाम दृढाय तो कहँ, फन्द यमके नापरो॥७२॥
सो०-सुनत वचन अस नारि, नीरूत्रास न राखेउ॥
लै गइ गेह मँझार, काशि नगर तब पहुँचेउ॥७६॥

नारी न मान त्रास तेहि केरा। रंक धनद सम लै चलि डेरा॥
जोलहा देखि नारि लौलीना। लेइ चलो अस आयसु दीना॥
दिवस अनेक रहे तेहि ठाईं। कैसहु तेहि परतीत न आई॥
बहुत दिवस तेहि भवन रहावा। बालक जान न शब्द समावा॥

सुपच सुदर्शनके माता पिताका चौथे जन्ममें मथुरामें
प्रगट होकर सत्यलोक जाना

बिन परतीत काजा नहिं होई। दृढ कै गहहु परतीत विलोई॥
ताहि देह पुनि मोहि न चीन्हा। जानि पुत्र मोहि संग न कीन्हा॥
तजि सो देह बहुरि जो भाई। देह धरी सो देहुँ चिन्हाई॥
जुलहाकी तब अवधि सिरानी। मथुरा देह धरी तिन आनी॥
हम तहँ जाय दरश तिन दीन्हा। शब्द हमारा मानसों लीन्हा॥
रतना भक्ति करे चितलाई। नारि पुरुष परवाना पाई॥
ता कहँ दीन्हेउ लोक निवासा। अंकूरी पठये निज दासा॥
पुरुष चरण भेंटे उरलाई। शोभा देह हंसकर पाई॥
देखत हंस पुरुष हरषाने। सुकृति अंश कही मन माने॥
बहुत दिवस लगि लोक रहाये। तब लगि काल जीव संताये॥
जीवनदुःखअतिशय भयो भाई। तबही पुरुष सुकृत हंकराई॥

आज्ञा कीन्हा जाहु संसारा । काल अपार बल जीव दुखारा ॥
लोक संदेशा ताहि सुनाओ । देइ नाम जीवन मुकताओ ॥
आज्ञा सुनत सुकृत हरषाये । तुरतहिं लोक पयाना आये ॥
सुकृत देखि काल हरषाई । इन कहँ तो हम लेब फँसाई ॥
करि उपाय बहुत तब काला । सुकृत फँसाय जलमहँ डाला ॥
बहुत दिवस गयो जब बीता । एकहु जीव न कालहिं जीता ॥
जीव पुकार सतलोक सुनाये । तबहीं पुरुष मोकहँ हँकराये ॥

कबीरसाहबका धर्मदासजीको चितानके लिये लोकसे पृथ्वीपर
आना पुरुष वचन

पुरुष अवाज उठी तिहि बारा । ज्ञानी वेगि जाहु संसारा ॥
जीवन काज अंश पठवायी । सुकृत अंश जग प्रगटे जायी ॥
दीन्ह आज्ञा तेहिको भाई । शब्द भेद वाही समझाई ॥
लावहु जीवन नाम अधारा । जीवन खेइ उतारो पारा ॥
सुनत आज्ञा वहि कीन पयाना । बहुरि न आये देश अमाना ॥
सुकृत भवसागर चलि गयऊ । कालजालते सुधि बिसरयऊ ॥
तिनकहँ जाय चितावहु ज्ञानी । जेहिते पंथ चले निरवानी ॥
वंस ब्यालिस अंस हमारा । सुकृत गृह लैहैं औतारा ॥
ज्ञानी वेगि जाहु तुम अंसा । अब सुकृत अंसकर मेटहु फंसा ॥

कबीर वचन

चलेहु हम तव सीस नवाई । धर्मदास अब तुम लग आई ॥
धर्मदास तुम नीरू औतारा । आमिन नीम प्रगट बिचारा ॥
तुम तो आहू प्रिय मम अंसा । जाकारन हम कीन्हा बहुसंसा ॥
पुरुषहि आज्ञा तुमरे ढिग आये । पिछली हेतु पुनि याद कराये ॥
यहि संयोग हम दर्शन दीन्हा । धर्मनि अबकी तुम मोहि चीन्हा ।
पुरुष अवाज कहूँ तुम पासा । चीन्हेहु शब्द गहो बिश्वासा ॥
धाय परे चरणन धर्मदासा । नैन बारि भर प्रगट प्रगासा ॥

धरहि न धीरज बहुत संतोषा। तुम साहिब मेटहु जिवधोखा॥
धरे न धीरज बहुत प्रबोधे। बिछुरिजननिजिमिमिल्यो अबोधे
युग पग गहे सीस भुई लाये। निपट अधीरन उठत उठाये॥
बिलखत बदन वचन नहीं बोले। सुरति चरणते नेक न डोले॥
निरखत बदन बहुरोपदगहहीं। गदगद हृदय गिरा नहिं कहहीं॥
बिलखत बदन स्वास नहिं डोले। उनसुनिदशा पलक नहिं खोले॥

धर्मराज वचन

बहुरि चरण गहि रोवहिं भारी। धन्य प्रभु मोहितारनतनधारी॥
धरि धीरज तब बोले सम्हारी। मोकहँ प्रभु तारन पगधारी॥
अब प्रभु दया करहु यहि मोही। एकौ पल ना बिसरों तोही॥
निशिदिन रहों चरण तुम साथा। यह बर दीजै करहु सनाथा॥

कबीर वचन

धर्मदास निह संशय रहहू। प्रेम प्रतीति नाम दिढ़ गहहू॥
चीन्हेउ मोहि तोर भ्रम भागा। रहै सदा तुम दृढ़ अनुरागा॥
मन बचकर्म जाहि जो गहई। सो तेहि तज अंत कस रहई॥
आपन चाल बिना दुख पावे। मिथ्या दोष गुरु कहँ लावे॥
पंथ सुपंथ गुरु समझावे। शिष्य अचेतन हृदय समावे॥
तुम तो अंश हमारे आहू। बहुतक जीव लोक ले जाहू॥
चार माहि तुम अधिक पियारे। किहि कारण तुम शोचविचारे॥
हम तुमसों कछु अन्तर नाहीं। परक शब्द देखो हियमाहीं॥
मन बच कर्म मोहि लौ लावे। हृदये दुतिया भाव न आवे॥
तुम्हरे घट हम वासा कीन्हा। निश्चय हम आपन कर लीन्हा॥

छन्द

आपनो कर लीन्ह धर्मनि, रहो निःसंशय हिये॥
करहु जीव उबार दृढ़ है, नाम अविचल तुहि दिये॥

मुक्ति कारण शब्द धारण पुरुष सुमिरण सारहो ॥
सुरति बीरा अंकधीरा जीविका निस्तार हो ॥७६॥
सो०—तुमतौ हौ धर्मदास, जंबुदीप कड़िहार जिव ॥
पावे लोक निवास, तुहि समेत सुमिरे मुझे ॥७७॥

धर्मदास वचन

धन सतगुरु धन तुम्हरी वानी। मुहिं अपनायदीन्हगनि आनी॥
मोहिं आय तुम लीन्ह जगायी। धन्य भाग्य हम दर्शन पायी॥
धन साहब मुनि शाप न कीन्हा। मम शिर चरण सरोरुह दीन्हा॥
मैं आपन दिन शुभ करिजाना। तुम्हरे दरश मोक्ष परमाना॥
अब अस दया करहु दुख भंजन। कबहुँ मोहि न धरे निरंजन॥
काल जाल जौनी बिधि छूटे। यमबंधन जौनी बिधि टूटे॥
सोई उपाय प्रभु अब कीजे। सार शब्द बताय मोहि दीजे॥

कबीर वचन

धर्मदास तुम सुकृत अंशा। लेइ पान अब मेटहु संशा॥
धर्मदास आपन करि लेऊँ। चौका करि परवाना देऊँ॥
तिनका तुडाय लेहु परवाना। कालदशा छुटे अभिमाना॥
शालिग्रामको छाड़हु आसा। गहि सत शब्द होहु तुम दासा॥
दश औतार ईश्वरी माया। यह सब देखु कालकी छाया॥
तुम जगजीव चितावन आये। काल फंद तुम आय फसाये॥
अबहूँ चेत करो धर्मदासा। पुरुषहिं शब्द करो परकासा॥
ले परवाना जीव चिताओ। काल जालते हंस मुकताओ॥
यहि कारज तुम जगमें आये। अब न करहु दोसर मन भाये॥

---

१ कर्णधार मल्लाह नाव खेकर पार उतारनेवाला भवसागर से गुरु पार उतारते हैं इस कारण उन्हें कड़िहार कहते हैं।

छन्द

चतुर्भुज बंकेज सहतेज, और चौथे तुम अहो ॥
चार गुरुकडिहार जगके वचन यह निश्चय गहो ॥
यही चार अंश संसारमें, जीव काज प्रगटाइया ॥
स्वसंवेदसोइनसंग दियो, जेहि सुनि काल भगाइया॥७४॥
सोरठा–चरोंमें धर्मदास, जम्बुदीपके गुरु सहि ॥
ब्यालिस वंश विलास तरैं जीव तेहि शरणगहि॥७८॥

## आरतीविधिवर्णन

कबीर साहबका चौका करके धर्मदासको परवाना देना

धर्मदास वचन

धर्मदास पद गहि अनुरागा । हो प्रभु मोहि कीन्ह सुभागा॥
हे प्रभु ! नहि रसना प्रभुताई । अमित रसन गुण बरनि न जाई॥
महिमा अमित अहै तुम स्वामी । केहि विधि बरनों अंतरयामी॥
मैं सबविधिअयोग्य अविचारी। मुझ अधमहिं तुम लीन उबारी॥
अब चौका भेद कहो मुहि स्वामी। काहि कहहु तिनका सुखधामी॥
जो तुम कहो करौ मैं सोई । तामहँ फेर न परि हैं कोई ॥

कबीरवचन चौकाका साज

धर्मदास सुनु आरति साजा । जाते भागि चले यमराजा ॥
सात हाथको बस्तर लाओ । श्वेत चँदोबा छत्र तनाओ ॥
घर आंगन सब शुद्ध कराओ । चौकाकरि चन्दन छिड़काओ॥
तापर आँटा चौक पुराओ । सवासेर तंदुल लै आओ ॥
स्वेत सिंहासन तहां बिछाई । नाना सुगंध धरु तहां लगाई॥
स्वेत मिठाई स्वेतै पाना । पुंगीफल स्वेतहि परमाना ॥
लौंग इलायची कपुर सँवारो । मेवा अष्ट केरा पनवारो ॥

जित्र पीछे नरियल लै आओ। यह सब साज सुआनि धराओ॥
जो कछु साहब आज्ञा कीन्हा। धर्मदास सब कछु धरि दीन्हा॥
बहुरि धर्मनि विनती अनुसारा। अब समरथ कहु मुक्ति विचारा॥
सबहिं वस्तु मैं आनेउँ साँई। जस तुम निजमुख भाखि सुनाई॥
सुनत वचन साहब हर्षाने। धन्य धर्मनि अब तुम मनमाने॥

चौकाविधिते पोति प्रभु, आसन बैठिया जायहो ॥
लघु दीरघ जीव धर्मनि, सबहिं लीन्ह बुलाय हो ॥
नारिपुरुष एक मति करि, लीन नरियल हाथ हो॥
गुरुसन्मुखधरि भेंट कीन्हा, बहुविधि नाये माथ हो॥
सो०–सतगुरुचरणमयंक, चितचकोर धर्मनि कहा॥
मेटयोसबमनशंक, भावभक्ति अतिचितधन्यो॥७९॥

चौका कीन शब्द धुनि गाजा। ताल मिरदंग झांझरी बाजा॥
धर्मदासको तिनका तोरा। जाते काल न पकरे छोरा॥
सत्य अंक साहब लिख दीना। ततछिन धर्मदास गहिलीन्हा॥
धर्मदास परवाना लीन्हा। सात दण्डवत तबहीं कीन्हा॥
सतगुरु हाथ माथ तिहि दीन्हा। दै उपदेश किरतारथ कीन्हा॥

कबीर साहबका धर्मदासजीको उपदेश देना

कहैं कबीर सुनो धर्मदासा। सत्यभेद मैं कियो परकासा॥
नाम पान तुहि दीन लखाई। कालजाल सब दीन मिटाई॥
अब सुनु रहन गहनकी बाता। बिनजाने नर भटका खाता॥
सदा भक्ति करो चितलाई। सेवो साधु तजि मान बड़ाई॥
पहले कुल मरजादा खोवो। भयसे रहित भक्त तब होवो॥
सेवा करो छाँडि मत दूजा। गुरुकी सेवा गुरुकी पूजा॥

गुरुसे करे कपट चतुराई । सो हंसा भव भरमे आई ॥
ताते गुरुसे परदा नाहीं । परदा करे रहे भवमाहीं ॥
गुरुके वचन सदा चित दीजे । माया मोह सुकोर न भीजे ॥
यहि रहनी भव बहुरि न आवे । गुरुके चरणकमल चितलावे ॥

छन्द

सुनुहु धर्मदास दृढकै गहो, एक नामकी आस हो ॥
जगत जालबहु जञ्जाल है, काल लगाये फांस हो ॥
पुरुष नाम परताप धर्मनि, सुमति होय सुधि लहे ॥
नारि नर परिवारसबमिलि, काल कराल तब ना रहे ७६
सोरठा-तुम घरजेतिक जीव, सब कहँ बेगि बुलावहू ॥
सुरति धरो दृढ पीव, बहुरि काल पावे नहीं ८० ॥

धर्मदास वचन

हे प्रभु तुम जीवनके मूला । मेटेउ मोर सकल तन सूला ॥
आहि नरायण पुत्र हमारा । सौंपहु ताहि शब्द टकसारा ॥
इतना सुनत सद्गुरु हँसि दीन्हा । भाव प्रगट बाहर नहिं कीन्हा ॥

कबीर वचन

धर्मदास तुम बोलाव तुरन्ता । जेहिको जानहु तुम शुद्धअन्ता ॥
धर्मदास तब सबहिं बुलावा । आय खसमके चरण टिकावा ॥
चरण गहो समरथके आई । बहुरि न भव जल जन्मो भाई ॥
इतना सुनत बहुत जिव आये । धाय चरण सतगुरु लपटाये ॥
यक नहिं आये दास नरायन । बहुतक आय परे गुरु पायन ॥
धर्मदास सोच मन कीन्हा । काहे न आयो पुत्र परबीना ॥

नारायणदासजीका कबीरसाहबको आज्ञा करना

धर्मदास वचन अपने दासदासियोंपर

दास नरायन पुत्र हमारा । कहाँ गयो बालक पगुधारा ॥

ताकहँ ढूँढ़ लाहु कोइ जाई । दास नरायन गुरुपहँ आई ॥
रूपदास गुरु कीन्ह प्रतीता । देखहु जाय पढ़त जहँ गीता ॥
वेगि जाइ कहु तुम्हें बुलायी । धर्मदास समरथ गुरु पायी ॥
सुनत सँदेशी तुरतहि जायी । दास नरायण जहां रहायी ॥

संदेशीवचन नारायणदासप्रति

चलहु बेगि जनि बार लगाओ । धर्मदास तुम कहँ हँकराओ ॥

नारायणदास वचन

हम नहिं जायँ पिताके पासा । वृद्ध भये सकलौ बुद्धि नाशा ॥
हरिसम कर्ता और कहँ आही । ताको छोड़ जपैं हम काही ॥
वृद्ध भये जुलहा मन भावा । हम मन गुरु विठलेश्वर पावा ॥
काहि कहौं कछु कहो न जाई । मोर पिता गया बौराई ॥

संदेशी वचन

चल संदेशी आया तहँवा । धर्मदास बैठा रह जहँवा ॥
कह संदेशी रह अरगाये । दास नरायण नाहीं आये ॥
यह सुन धर्मदास पगुधारा । गये तहां जहँ बैठे बारा ॥

धर्मदासवचन नारायणदासप्रति । छन्द

चलहु पुत्र भवन सिधारहु, पुरुष साहिब आइया ॥
करहु विनती चरण टेकहु, कर्म सकल कटाइया ॥
सतगुरुकरोतिहिआयकहुँचलु, बेगितजिअभिमानरे ॥
बहुरि ऐसो दाव बने नहिं, छोडि दे हठ बावरे ॥७७॥
सो०—भलसतगुरु हम पाव, यमके फंद कटाइया ॥
बहुरि न जनमहँ आव, उठहु पुत्र तुम वेगिही ८१

नारायणदास वचन

तुम तो पिता गये बौराई । तीजे पन जिंदा गुरु पाई ॥

राम नाम सम और न देवा । जाकी ऋषि मुनि लावहिं सेवा ॥
गुरु विठलेश्वर छांडेउ हीता । वृद्ध भये जिंदा गुरु कीता ॥

धर्मदास वचन

बांह पकर तब लीन्ह उठाई । पुनि सतगुरुके सन्मुख लाई ॥
सतगुरु चरण गहो रे बारा । यमके फन्द छुड़ावन हारा ॥
बहुरि न योनी संकट आवे । जो विन नाम शरणगत पावे ॥
तज संसार लोक कहँ जाई । नाम पान गुरु होय सहाई ॥

नारायणदास वचन

तब मुख फेरे नरायन दासा । कीन्ह मलेच्छ भवनपरगासा ॥
कहँवाते जिंदा ठग आया । हमरे पितहिं डारि बौराया ॥
वेद शास्त्र कहँ दीन उठाई । आपनि महिमा कहत बनायी ॥
जिंदा रहे तुम्हारे पासा । तो लग घरकी छोड़ी आसा ॥
इतना सुनत धर्मदास अकुलाने । ना जानो सुत का मत ठाने ॥
पुनि आमिन बहुविधि समझायो । नारायण चित एकु न आयो ॥
तब धर्मदास गुरु पहँ आये । बहुविधिते पुनि बिनती लाये ॥

धर्मदास वचन कबीर वचन प्रति

कहो प्रभु कारन मोहि बताई । कोइ कारन पुत्र दुचिताई ॥

कबीर वचन

तब सतगुरु बोले मुसकायी । प्रथमहिं धर्मनि भाख सुनायी ॥
बहुरि कहों सुनहू दे कानो । यामहँ कछु अचरज ना मानो ॥
पुरुष अवाज उठी जिहिबारा । ज्ञानी वेगि जाहु संसारा ॥
काल देत जीवन कहँ त्रासा । वेगि जाहु काटहु यमफांसा ॥
ज्ञानी तत्क्षण मस्तक नाई । पहुँचे जहां धर्म अन्याई ॥
धर्मराय ज्ञानी कहँ देखा । विपरीत रूप कीन्ह तब भेखा ॥

धर्मराय वचन

सेवा बस दीप हम पाया । तुम भवसागर कैसे आया ॥
करों सँहार सही तोहि ज्ञानी । तुम तो मर्म हमार न जानी ॥

ज्ञानी वचन

ज्ञानी कहै तब सुनु अन्याई । तुम्हरे डर हम नाहिं डराई ॥
जो तुम बोलेउ वचन हँकारी । तत्क्षण तोंकहँ डारी मारी ॥

धर्मराय वचन

तबै निरंजन बिनती लाई । तुम जग जाय जीवमुक्ताई ॥
सकलो जीव लोक तुव जावे । कैसे क्षुधा सु मोरि बुझावे ॥
लक्षजीव हमनिशि दिन खाया । सवालक्ष नितप्रति उपजाया ॥
पुरुष मोहिं दीन्ही रजधानी । तैसे तुमहू दीजे ज्ञानी ॥
जगमें जाय हंसा तुम लावहु । काल जालते तिन्हें छुडावहु ॥
तीनों युग जिव थोरा गयऊ । कलियुगमें तुम माड मडयऊ ॥
अब तुम आपन पंथ चलैहो । जीवन लै सतलोक पठैहो ॥
इतना कही निरंजन बोला । तुमते नहीं मोर बस डोला ॥
और बन्धु जो आवत कोई । छिनमहँ ताकहँ खात बिगोई ॥
मैं कहौं तो मनिहो नाहीं । तुम तो जान जगतके माहीं ॥
हमहूँ करब उपाय तहांहीं । शब्द तुम्हार माने कोइ नाहीं ॥
करम भरमें अस करूँ ठाटा । जाते कोइ न पावे बाटा ॥
घर घर भूत भरम उपजायब । धोखा देइ देइ जीवभुलायब ॥
मद्य मांस भक्षै नर लोई । सर्व मांस मद नर प्रिय होई ॥
तुम्हरी कठिन भक्ति है भाई । कोई न मनिहैं कहौ बुझाई ॥
ताहीते मैं कहौं तुम पाहीं । अब जनि जाहु जगतके माहीं ॥

कबीर वचन

तेहिं क्षण कालसन हम भाखा । छलबल तुम्हरो जानि हम राखा ॥

छन्द

देउँ सत्य शब्द दिढाय, हंसहि भरम तेरो टारऊँ ॥
लक्ष बल तुम्हार सब चिन्हायडारूँ, नामबलजिवतारऊँ ॥

मन कर्म बानी मोहि सुमिरे, एक तत्व लौंलाइहै॥
सीस तुम्हरे पांव दै जिव, अमरलोक सिधाइहै७८॥
सोरठा–मरदे तुम्हरे मान, सूरा हंस सुजान कोई ॥
सत्यशब्द परमान, चीन्हे हंसहि हर्ष अति ॥८२॥
इतना सुनत काल जब हारा । छलमत्ता तब करन विचारा ॥

धर्मराय वचन

कहै धरम अंश सुखदायी । बात एक मुहिं कहौ बुझायी॥
यहियुग कौन नाम तुम्ह कोई । तौन नाम मुहि भाखो सोई ॥

कबीर वचन

नाम कबीर हमार कलिमाहीं । कबीर कहत जम निकट न आहीं॥

धर्मराय वचन

इतना सुनत बोला अन्याई । सुनौ कबीर मैं कहौं बुझाई ॥
तुम्हरो नाम लै पंथ चलायब । यहिविधिजीवनधोखलखायब॥
द्वादश पंथ करब हम साजा । नाम तुम्हारे करब अवाजा ॥
मृतु अन्धा है हमारो अंशा । सुकृतके घर होवे वंशा ॥
मृतु अन्ध तुम्हरे गृह जैहैं । नाम नरायन नाम धरै हैं ॥
प्रथम अंश हमारा जाई । पीछे अंश तुम्हारा भाई ॥
इतनी विनती मानो मोरी । बार बार मैं करौं निहोरी ॥

कबीरवचन धर्मदासप्रति

तब हम कहा सुनो धर्मराया । जीवन काज फंद तुम लाया॥
ताकहँ वचन हार हम दीन्हा । पीछे जगहिं पयाना कीन्हा ॥
सो मृतु अन्धा तुम घर आवा । भयउ नरायन नाम धरावा ॥
काल अंश तो आहि नरायन । जीवन फंदा काल लगायन ॥

छन्द

हम नाम पथ प्रकाश करि हैं, जीव धोखा लावई॥

भूत भेद न जीव पावे, जीव नरकहिं नावई ॥
जिमिनाद गावत पारधीबश, नादमृग कहँ कीन्हेऊ॥
नाद सुनि ढिग मृग आयो जब, चोटतापर दीन्हेऊ॥७९॥
सो०—तस यम फन्द लगाय, चेतनहारा चेति हैं ॥
वचन वंश जिन पाय, ते पहुँचे सतलोक कहँ८३॥

## द्वादश पंथका वर्णन

### धर्मदास वचन

द्वादश पन्थ कालसों हारा । सो साहिब मोहि कहो विचारा॥
कौन पंथकी कैसी रीती । कहिये सतगुरु होय प्रतीती॥
हम अजान कछु मर्म न जाना । तुम साहिब सतपुरुष समाना ॥
मो किंकर पर कीजे दाया । उठि धर्मदास गहे दोइ पाया ॥

### कबीर वचन

धर्मनि बूझहु प्रगट संदेशा । मेटहुँ तोर सकल भ्रम वेषा॥
द्वादश पंथ नाम समाऊँ । चाल भेद सब तोहिं लखाऊँ॥
जस कछु होय चाल व्यवहारा । धर्मदास मैं कहों पुकारा ॥
तोरे जिवका धोक मिटाऊँ । चित संशय सब दूर बहाऊँ॥

### मृत्युअन्धा दूतका पन्थ १

प्रथम पन्थका भाखौ लेखा । धर्मदास चित करो विवेका॥
मृतु अन्धा इक दूत अपारा । तुम्हरे गृह लीन्हों अवतारा॥
जीवन काज होय दुखदाई । बार बार मैं कहों चिताई ॥

### तिमिर दूतका पन्थ २

दूजा तिमिर दूत चल आवे । जात अहीरा नफर कहावे ॥
बहुतक ग्रन्थ तुम्हारा चुरैहैं । आपन पन्थ नियार चलैहैं॥

### अन्ध अचेत दूतका पन्थ ३

पन्थ तीसरे तोहि बताऊँ । अन्ध अचेत सो दूत लखाऊँ॥

होय खवास आय तुम पासा । सुरत गुपाल नाम परकासा ॥
अपनो पन्थ चलावै न्यारा । अक्षर योगजीव भ्रम डारा ॥

मनभगदूतका पन्थ ४

चौथा पन्थ सुनो धर्मदासा । मनभंग दूत करै परकासा ॥
कथा मूल ले पंथ चलावे । मूपन्थ कहि जगमहिं आवे॥
लूढ़ी नाम जीव समुझाई । यही नाम पारस ठहराई ॥
झंग शब्द सुमरिन मुख भाखे । सकल जीव थाका गहि राखे॥

ज्ञानभङ्गीदूतका पन्थ ५

पंथ पांचों सुनो धर्मनि ज्ञान भंगी दूत जो ॥
पंथ तिहिं टकसार है सुर साधु आगम भाख जो॥
जीभनेत्र ललाटके सब रेखा जिवके परखावई ॥
तिल मसा परिचय देखिके तब जीवधोखलगवावई ॥८०॥
सो०जस जिहि काम लगाय, तस तिहि पान खवाइ हैं॥
नारी नर बधाय, चहुँ दिश आपुन फरि हैं ॥८४॥

मनमकरंद दूतका पन्थ ६

छठे पन्थ कमाली नाऊ । मनमकरन्द दूत जग आऊ॥
मुरदा माहिं कीन्ह तिहिं बासा । हम सुत होय कीन परकासा॥
जीवहिझिलमिलज्योतिदृढ़ाई।यहि विधि बहुत जीव भरमाई॥
जौं लगि दृष्टि जीवकर होई । तौं लगिमिलझिल देखो सोई॥
दोनों दृष्टि नाहिं जिन देखा । कैसे झिल झिल रूप परेखा॥
झिलमिल रूप कालकरमानो । हिरदे सत्य ताहि जनि जानो॥

चितभंग दूतका पन्थ ७

साते दूत आहि चित भंगा । नाना रूप बोल मन रंगा ॥
दौन नाम कह पन्थ चलावे । बोलनहार पुरुष ठहरावे ॥

पांच तत्त्व गुण तीन बतावे। यहि विधि ऐसा पंथ चलावे॥
बोलत वचन ब्रह्म है आपा। गुरुवसिष्ठ राम किमि थापा॥
कृष्ण कीन्ह गुरु की सेवकाई। ऋषि मुनि और गने को भाई॥
नारद गुरु कह दोष लगावा। ताते नरकवास भुगतावा॥
बीजक ज्ञान दूत जो थापे। जस गूलर कीडा घट व्यापे॥
आपा थापी भला न होई। आपा थापि गये जिव रोई॥

अकिलभंग दूतका पन्थ ८

अब मैं आठवें पन्थ बताऊँ। अकिल भंग दूत समुझाऊँ॥
परमधाम कहि पंथ चलावे। कछु कुरान कछु वेद चुरावे॥
कछु कछु निरगुण हमरो लीन्हा। तारतम्य पोथी इक कीन्हा॥
राह चलावे ब्रह्मका ज्ञाना। करमी जीव बहुत लपटाना॥

विशम्भर दूतका पन्थ ९

नववें पंथ सुनो धर्मदासा। दूत विशम्भर केर तमासा॥
राम कबीर पंथ कर नाऊ। निरगुण सरगुण एक मिलाऊ॥
पाप पुन्य कहँ जाने एका। ऐसे दूत बतावे टेका॥

नकटानैनदूतका पन्थ १०

अब मैं दशवां पंथ बताऊँ। नकटा नैन दूत कर नाऊँ॥
मतनामी कह पन्थ चलावै। चार वरण जिव एक मिलावै॥
ब्राह्मण और क्षत्री परभाऊँ। वैश्य शूद्र सब एक मिलाऊँ॥
सतगुरु शब्द न चीन्हें भाई। बांधे टेक नरक जिव जाई॥
काया कथनी कहि समुझावे। सत्य पुरुष की राह न पावे॥

छन्द

सुनहु धर्मनि काल बाजी, करहि बड़ फन्दावली॥
अनेक जीवन लइ गरास, कालकर्म कर्मावली॥
जो जीव परखे शब्द मम, सो निसतरें जमजालते॥
गहेनाम प्रताप अविचल, जाय लोक अमानते॥८१॥

सो०-पुरुषशब्द है सार, सुमिरण अमी अमोलगुण॥
हंस होय भौ पार, मन बचकर जो दृढ गहे॥८५॥

दुरगदानी दूतका पन्थ ११

पंथ इकादश कहों विचारा। दुरगदानि जो दूत अपारा॥
जीव पंथ कहि नाम चलावे। काया थाप राह समुझावे॥
काया कथनी जीव बतायी। भरमे जीव पार नहिं पायी॥
जो जिव होय बहुत अभिमानी। सुनके ज्ञान प्रेम अतिठानी॥

हंसमुनि दूतका पन्थ १२

अब कहुँ द्वादश पंथ प्रकाशा। दूत हंसमुनि करे तमाशा॥
वचन बंस घर सेवक होई। प्रथम करे सेवा बहु तोई॥
पाछे अपनो मत प्रगटावे। बहुतक जीव फंद फँदावे॥
अंश बंस का करे विरोधा। कछु अमान कछु मान प्रबोधा॥
यहि विधि यम बाजी लावे। बारह पंथ निज अंश प्रगटावे॥
फिरि फिरि आवे फिरि फिरि जाई। बार बार जगमें प्रगटाई॥
जहां जहां प्रगटे यमदूता। जीवनसे कह ज्ञान बहूता॥
नाम कबीर धरावे आपा। कथित ज्ञान काया तहँ थापा॥
जब जब जनम धरे संसारा। प्रगट होयकै पन्थ पसारा॥
करामात जीवन बतलावे। जिव भरमाय नरक महँ नावे॥

छन्द

असकालपरबल सुनहु धर्मनि करे छलमति आयके॥
मम वचन दीपक दृढगहे, मैं लेहुँ ताहि बचायके॥
अंश हंसन तुम चितायउ, सत्य शब्दहिं दानते॥
शब्द परखे यमहि चीन्हे, हृदय दृढ गुरुज्ञानते॥८२॥
सो०-चितचेतो धर्मदास, यमराजा असछल करे॥

गहे नाम विश्वास,ताकहुँ यम न पावई हिं॥८६॥

धर्मदास वचन

हे प्रभु तुम जीवनके मूला । मेटहु मोर सकल दुख शूला॥
आहि नरायन पुत्र हमारा । अब हम तहँकर दीन्ह निकारा॥
काल अंश गृह जन्मो आई । जीवन काज भयो दुखदाई ॥
धन सतगुरु तुम मोहि लखावा। काल अंशको भाव चिन्हावा॥
पुत्र नरायन त्यागि हम दीन्हा। तुमरो वचन मानि हम लीना॥

धर्मदास साहबको नौतम अन्शका दर्शन होना

धर्मदास विनवै सिर नाई । साहिब कहो जीव सुखदाई ॥
किहि विधि जीव तरै भौसागर। कहिये मोहि हंसपति आगर ॥
कैसे पन्थ करौं परकासा । कैसे हंसहिं लोक निवासा ॥
दास नरायन सुत जो रहिया। काल जान ताकँह परिहरिया ॥
अब साहिब देहु राह बताई । कैसे हंसा लोक समाई ॥
कैसे बंस हमारो चलि है । कैसे तुम्हरो पंथ अनुसरि है ॥
आगे जेहिते पंथ चलाई । ताते करों विनती प्रभुताई ॥

कबीर वचन

धर्मदास सुनु शब्द सिखापन। कहों संदेश जानि हित आपन॥
नौतम सुरति पुरुषके अंशा । तुव गृह प्रगट होइहै वंशा ॥
वचन वंश जग प्रगटे आई । नाम चुणामणि ताहि कहाई॥
पुरुष अंशके नौतम वंशा । काल फन्द काटे जिव संशा॥

छन्द

कलि यह नाम प्रताप धर्मनि, हंस छूटे कालसो ॥
सत्तनाम मन बिच दृढ़गहे, सोनिस्तरे यमजालसो ॥
यम तासु निकट न आवई,जेहि बंशकी परतीतिहो॥
कलिकालके सिर पांवदैं,चलेभवजलजीतिहो ॥८३॥

सो०-तुमसों कहों पुकार, धर्मदास चित परखहू ॥
तेहि जिव लेउँ उबार वचन जो वंश दृढगहे ॥८७॥

धर्मदास वचन

हे प्रभु विनय करों कर जोरी । कहत वचन जिव त्रासै मोरी ॥
वचन वंश पुरुषके अंशा । पावउँ दर्श मिटे जिव संशा ॥
इतनी विनय मान प्रभु लीजे । हे साहिब यह दाया कीजे ॥
तब हम जानहिं सतकी रीती । वचन तुम्हार होय परतीती ॥

कबीरवचन मुक्तामणि प्रति

सुन साहिब अस वचन उचारा । मुक्तामणि तुम अंश हमारा ॥
अति अधीन सुकृत हठलायी । तिनकहँ दर्शन देहु तुम आयी ॥
तब मुक्तामणि क्षण इक आये । धर्मदास तब दर्शन पाये ॥

धर्मदासवचन

गहिके चरण परे धर्मदासा । अब हमरे चित पूजी आसा ॥
बारम्बार चरण चितलाया । भले पुरुष तुम दर्श दिखलाया ॥
दर्श पाय चित भयो अनंदा । जिमि चकोर पाये निशिचंदा ॥
अब प्रभु दाया करो तुम ज्ञानी । वचन वंश प्रकटे जगजानी ॥
आगे जेहिते पंथ चलाई । तेहिते करौं विनती प्रभुताई ॥

कबीरवचन । चूडामणिकी उत्पत्तिकी कथा

कहैं कबीर सुनौ धर्मदासा । दशै मास प्रगटे जिव कासा ॥
तुम गृह आय लेहि अवतारा । हंसन काज देह जगधारा ॥
धर्मदास सुनु शब्द सिखापन । कहो सँदेश जान हित आपन ॥
वस्तु भंडार दीन तुम पांहीं । सौंपहु वस्तु बतावहु ताही ॥
अब जो होइ है पुत्र तुम्हारा । सोतो होइ हैं अंश हमारा ॥

धर्मदास वचन

धर्मदास अस विनती लायी । हे प्रभु मोकहँ कहु समुझाई ॥
हे पुरुष हम इन्द्री वशकीन्हा । कैसे अंश जन्म जग लीन्हा ॥

कबीर वचन

तब आयसु साहब अस भाखे। सुरतिनिरति करि आज्ञा राखे॥
पारस नाम धर्मनि लिखि देहू। जाते अंश जन्म सो लेहू॥
लखहु सैन मैं देऊँ लखाई। धर्मदास सुनियो चितलाई॥
लिखो पान पुरुष सहिदाना। आमिन देहु पान परवाना॥

धर्मदास वचन

तब गयउ धर्मदास कह शंका। दृष्टि समीप कीन्हा परसंगा॥
धर्मदास आमिन हँकरावा। लाय खसमके चरन परावा॥
पारस नाम पान लिख दीन्हा। गरभवास आसा सो लीन्हा॥
रतिसुरति सो गरभ जो भयऊ। चूरामनिदासबास तहँ लयऊ॥
धर्मदास परवाना दीन्हा। आमिन आय दंडवत कीन्हा॥
दसों मास पूजी जब आसा। प्रगटे अंश चूरामणि दासा॥
कहिये अगहन मास बखानी। शुक्ल पक्ष सातमदिन जानी॥
मुकतायन परगटि जब आये। द्रव्य दान औ भवन लुटाये॥
धन्य भाग मोरे गृह आये। धर्मदास गहि टेके पाये॥

कबीर वचन

जाना कबीर मुकतायन आये। धर्मदास गृह तुरत सिधाये॥
अहै मुक्तकेर अक्षर मुक्तायन। जीवनकाज देहधर आयन॥
अजर छाय अब प्रगटे आये। यम सो जीव लेहु मुक्ताये॥
जीवन केर भयो निस्तारा। मुक्तामनि आये संसारा॥

ब्यालीसवंशके राज्यकी स्थापना

कछुक दिवस जब गये बितायी। तब साहिब इक वचनसुनायी॥
धर्मदास लो साज मँगाई। चौका जुगत करब हम भाई॥
थापन वंश बयालिस राजू। जाते होय जीवकी काजू॥
धर्मदास सब साज मँगाई। ज्ञानी आगे आन धराई॥

धर्मदास वचन

और साज चाहो जो ज्ञानी । सो साहिब मोहि कहो बखानी ॥

कबीर वचन

साहिब चौका जुगमत मडावा । जो चाहिये सो तुरत मँगावा ॥
बहुत भांतिसों चौक पुरायी । चूरामणि कहैं ले बैठायी ॥
पुरुष वचन जगमहँ आये । तेहि विधि जीव लेहु मुक्ताये ॥
वंश बयालिस दीन्हा राजू । तुमते होय जीव कहँ काजू ॥

चूडामणिको कबीरसाहबका उपदेश देना

तुमते वंश बयालिस होई । सकल जीव कहँ तारैं सोई ॥
तिनसो साठ होइ हैं शाखा । तिन शाखनते होइ हैं पर शाखा ॥
दश सहस्र परशाख तुव ह्वै हैं । वंशन साथ सबै निरवहि हैं ॥
नाता जान करे अधिकाई । ताकहँ लोक बदों नहिं भाई ॥
जस तुम्हार हुइ है कडिहारा । तैसे जानो साख तुम्हारा ॥

छन्द

पुरुष अंश नहिं दूसरे तुम, सुनहु सुवंश नागरा ॥
अंश नौतम पुरुषके तुम, प्रगट मैं भौसागरा ॥
वेद जीवन कहँ विकल तब, पुरुष तोहि पठायऊ ॥
हंश दूजो कहै तेहि, जीव यम लै खायऊ ॥८४॥
सोरठा—वंश पुरुषके रूप, ज्ञान जौहरी परखि हैं ॥
होवे हंस स्वरूप, वंश छाप जो पाइ है ॥८८॥

कबीर वचन धर्मदासप्रति

सतगुरु कहै धर्मनि सुनि लेहू । अब भंडार सौंपि तुम देहू ॥
प्रथम तुमहि जो सौंपा भाई । सबहिं सबहि तुम देहु लखाई ॥
तब चूडामणि होवैं पूरा । देखत काल होय चकचूरा ॥
आज्ञा सुनत उठे धर्मदासा । चूरामणि हँकराये निजपासा ॥

वस्तु लखाय तेहि छन दीन्हा। तनिको विलंबन तामहँ कीन्हा॥
दोउ आय पुनि गुरुपद परसे। कांपन लग्यो काल तब डरसे॥
सतगुरु भये हुलास मनमाहीं। देखि चुरामणि अतिहरषाहीं॥
बहुरि धर्मनि सन भाषन लागे। सुनहु सुकृत तुम बहुत सुभागे॥
वंश तोर भये जग कडिहारा। जग जीवन होइ हैं भवपारा॥
इतने होइ हैं ब्यालिस बंसा। प्रथमै प्रकटै सोई मम अंसा॥
वचन वंश मम सोइ कहावै। बहुरि होय सों विंदजग आवै॥

वंशका माहात्म्य

वंश हाथ परवाना पइ हैं। सो जिव निभरयलोक सिधैहै॥
ता कहँ यम नहिं रोके वाटा। कोट अठासी ढूँढ़े घाटा॥
कोटज्ञान भाखे मुख बाता। नाम कबीर जपे दिनराता॥
बहुतक ज्ञान कथे असरारा। वंश बिना सब झूठ पसारा॥
जो ज्ञानी करी है बकवादा। तासों बूझहु व्यंजन स्वादा॥
कोट यतनसों बिंजन करई। साम्हर बिन फीका सब रहई॥
जिमिबिंजनतिमि ज्ञानबखाना। वंस छाप सतरस समजाना॥
चौदह कोटि है ज्ञान हमारा। इतने सार शब्द है न्यारा॥
नौ लख उडुगन उगें अकाशा। ताहि देख सब होत हुलासा॥
होवे दिवस भानु उगि आवे। तब उडुगनकी ज्योति छिपावे॥
नौलख तारा कोटि गियाना। सार शब्द देखहु जस भाना॥
कोटि ज्ञान जीवन समुझावे। वंश छाप हंसा घर जावे॥
उदधि मांझ जस चलैं जहाजा। ताकर और सुनो सब साजा॥
जस वोहित तस शब्द हमारा। जस यरिया तस वंश तुमारा॥

छन्द

बहु भांतिधर्मनि कहों तुमसों, पुरुष मूल बखानिहो॥
वंशसों दूजो करे जोइ, सो जाय यमपुर थानहो॥

वंश छाप न पाव जौ शिव, शब्द निशिदिन गावई ॥
काल फन्दमें फँद तेहि, मोहि दोष न लावई ॥ ८९ ॥
सो०—सजे कागकी चाल, परखि शब्दसो हंसहो ॥
ताहि न पावै काल, सार शब्द जो दृढ गहे ॥८९॥

भविष्यकथा प्रारम्भ । धर्मदास वचन

धर्मदास विनती अनुसारी । हे प्रभु मैं तुम्हरी बलिहारी ॥
जीवन काज वंश जग आवा । सो साहिब सब मोहिं सुनावा ॥
वचन वंश चीन्हे जो ज्ञानी । ता कह नहिं रोके दुर्ग दानी ॥
पुरुष रूप हम वंशहि जाना । दूजा भाव न हृदये आना ॥
नौतम अंश परगट जग आये । सो मैं देखा ठोक बजाये ॥
तबहूँ मोहि संशय एक आवे । करहु कृपा जाते मिट जावे ॥
हमकहँ समरथ दीन पठायी । आये जग तब कालफसायी ॥
तुम तो कहो मोहि सुकृत अंसा । तबहूँ काल कराल मुहिडंसा ॥
ऐसहिं जो वंशन कहँ होई । जगत जीव सब जाय बिगोई ॥
ताते करहु कृपा दुखभंजन । वंशनछले नहिं कालनिरंजन ॥
और कछू मैं जानौं नाहीं । मोरलाज प्रभु तुमकहँ आहीं ॥

कबीर वचन

धर्मदास तुम नीक विचारा । यह संशय सत आदि तुम्हारा ॥
आगे अस होइहिं धर्मदासा । धर्मराय एक करै तमासा ॥
सो मैं तुमसे गोय न राखों । जस होइहिंतससतसत भाखों ॥
प्रथम सुनो आदिकी बानी । करिके ध्यान लेहु तुम जानी ॥
सतयुग पुरुष मोहीं हँकराई । आज्ञा कीन्ह जाहु जग भाई ॥
तहँते चले काल मँग भेंटा । बहु तकरार दर्प तिहि मेटा ॥
तब तिन कपट मोसन कीन्हा । तीनयुगमांगिमोहिंसनलीन्हा ॥
पुनि अस कहेसि काल अन्याई । चौथायुग नहिं मांगो भाई ॥

ऐसा वचन हार हम दीन्हा । तब संसार गमन हम कीन्हा ॥
युग तीनों हार तिहिं हम दीन्हा । ताते पंथ प्रगट नहिं कीन्हा ॥
चौथा युग जब कलियुग आयो । बहुरि पुरुष मुहि जगत पठायो ॥
मगमहँ रोक्यो काल कसाई । बहुत विधि सों करी बरियाई ॥
सो कथा हम प्रथम जनाई । बारह पन्थको भेद बताई ॥
कपट करचो बारह बतलायो । औरो बात न मोहि जनायो ॥
तीनि युगन मोहि दीन हिरायी । कलियुगमां बहुफन्द मचायी ॥
बारह पथ प्रगट मोहि भाखा । चार पन्थ सो गुप्तहिं राखा ॥
जब मैं चार गुरू निरमाया । कालहु आपन अंश पठाया ॥
जब हम कीन्हा चार कडिहारा । धर्मराय छलबुधि विस्तारा ॥
पुरुष हम सन कीन परकासा । जानि परमारथ कहों धर्मदासा ॥
यह चरित्र सोइ बुझि हैं भाई । जासु हृदय निज नाम सहाई ॥

निरंजनका अपने चार अंशको पंथ चलानेकी आज्ञा देनेकी कथा

चारहि अंश निरञ्जन कीन्हा । तिनकहुँ बहुत सिखापन दीन्हा ॥

निरंजन वचन

तिनते कह्यो सुनहु हो अंशा । तुम तो आहु मोर निज बंसा ॥
तुमसे कहौं मानि सो लीजै । आज्ञा मोर सो पालन कीजै ॥
वैरी हमार अहै एक भाई । नाम कबीर जगमाहिं कहाई ॥
भवसागर मेटन सो चाहै । औरलोक सो बसावत आहै ॥
करि छल कपट जगत भरमावै । मोर राहते सबहिं छुटावै ॥
सत्य नाम कर टेर सुनाई । जीवन कहँ सो लोक पठाई ॥
जगत उजारन सो मन दीन्हा । ताते तुमहिं हम उत्पन्न कीन्हा ॥
आज्ञा मानि जगत महँ जाहूँ । नाम कबीर पंथ प्रगटाहू ॥
जगत जीव विषया रस माते । मैं जो कहहुँ करहु सोइ घाते ॥
पंथ चार तुम जग निरमाओ । आपन आपन राह बताओ ॥

नाम कबीर चारों धरि राखो। विना कबीर न वचनमुख भाखो॥
नाम कबीर जब जिव आवैं। कहहु वचन तिनके मन भावैं॥
कलियुग जीव ज्ञानसुधि नाहीं। देखा देखी राह चलाहीं॥
सुनत वचन तुम्हरो हरषावैं। बार बार तुम्हरे ढिग आवैं॥
जब सरधा तिनकी दृढ होई। भेद भावना मनि हैं कोई॥
तिन पर जाल आपनो डारो। भेद न पावैं देखि सम्हारो॥
जम्बुदीप महँ करिहो थाना। नाम कबीर जहाँ परमाना॥
जब कबीर बांधो गढ़ जावे। धर्मदास कहँ निज अपनावे॥
ब्यालिस वंश तब थापै राजू। तबही सोवे राज विराजू॥
चौदह यमते नाका रोका। बारह पन्थ हम लाया धोका॥
तबहूँ हम कहँ संशय भाई। ताते तुम कहँ देत पठाई॥
ब्यालिसपर तुम करिहो घाता। तिनहिं फँसावहु अपनी बाता॥
तबहीं तो हम जानब भाई। वचन मोर तुम लियहु उठाई॥

चारों दूत वचन

सुनत वचन हरषे तब दूता। आज्ञा मान लीन्ह तुव बूता॥
जैसी आज्ञा तुव मोहि दीन्हा। मानि वचन हमसिरपर लीन्हा॥
हाथ जोर विनवन लागे। तुम किरपा हम होब सुभागे॥

कबीरवचन धर्मदासप्रति

इतना सुनत काल हरखाना। अतिही सुख दूतनते जाना॥
औरहु तिनको बहुत बुझावा। काल अन्याई राह बतावा॥
जीव घात बहुत मन्त्र सुनाई। तिनकहँ कहे जाहु जगभाई॥
चारहु चार भाव धनि जाहू। ऊंच नीच छांडहु जनिकाहू॥
अस करि फानफनहु तुम भाई। जेहिकरि मोर अहार न जाई॥
सुनत वचन तिन मन अति हरषे। काल वचन जिमि अमृत वरषे॥
यही चार दूत जग प्रगटे हैं। चार नामते पंथ चले हैं॥

चार दूत कहँ नायक जानो । बारह पन्थकर अगुवा मानो ॥
इन्हहीं चार जो पंथ चलैं हैं । उलट पुलट तिनहू अरथै हैं ॥
चार पंथ बारह कर मूला । वचन वंश कहँ होइ हैं शूला ॥
सुनत वचन धर्मनि घबराने । हाथ जोर विनती तिन ठाने ॥

धर्मदास वचन

कह धर्मदास सुनो प्रभु मोरा । अब तो संशय भयो बरजोरा ॥
अब तो विलम्ब न कीजे साईं । प्रथम बतावहु तिनकर नाईं ॥
जीवन काज मैं पूछौं तोही । तिनकर चरित्र सुनावहु मोही ॥
तिन दूतन कर भेष बताओ । कहो चिह्न ताको परभाओ ॥
कौन रूप तिन जगमें धारैं । केहि विधिते सो जीवन पारैं ॥
कौन देश परगटि हैं आई । हे साहिब मुनि देहु बताई ॥

कबीर वचन

धर्मदास मैं तोहि लखाओं । चारि दूतकर भेद बताओं ॥

चार दूतोंके वर्णन

तिनकर नाम प्रथम सुनि लीजे । रंभ कुरंभ जयविजय भनीजे ॥

१ रंभ दूतका वर्णन

रंभ दूत कर करौं बखाना । गढ कालिंजर रोपिहै थाना ॥
भगवान भगत वहि नाम धराई । बहुतक जीव लेई अपनाई ॥
जो जियरा होइहिं अंकूरी । सो बांचहि यम फन्दा तूरी ॥
रंभ जोरावर यम बड़ द्रोही । तुमहि खंडि अरु खंडिहि मोही ॥
आरती नरियर चौका संहारी । खंडिहि लोकदीप सबझारी ॥
ज्ञान ग्रन्थ औ खंडिहिं बीरा । कथहिं रमैनी काल गभीरा ॥
मोर वचन लेइ करे तकरारा । तेही फांस फँसे बहुसारा ॥
चारों धार कथे असरारा । हमार नाम ले करे पसारा ॥
आपहि आप कबीर कहाई । पांचतत्त्व बसि मोहि ठहराई ॥
थापिहिं जीव पुरुष समभाई । खंडिहिं पुरुष जीव वर लाई ॥

हंस कबीर इष्ट ठहराई। करता कहँ कबीर गुहराई ॥
कर्ता काल जीवन दुखदाई। तेहि सरीख मोहि यह यमराई॥
कर्मी जीवहि पुरुष ठहराई। पुरुष गोइहिं आपु प्रगटाई ॥
जो यह जीव आपुहिं होई। नाना दुख कस भुगुते सोई॥
पांच तत्त्ववसि जीव दुख जावे। जीव पुरुष कहँ सम ठहरावे॥
अजर अमर पूरुषकी काया। कला अनेक रूप नहिं छाया॥
अस यमदूत खण्ड देइ ताहीं। थापे जीव पुरुष यह आहीं॥
तिस सागर झाई निज देखी। धोखा गहै निअच्छर लेखी॥
बिनु दर्पण दरसे निज रूपा। धर्मनि यह गुरुगम्य अनूपा॥

छन्द

यहि विधिरम्भअपबलसुनिधर्मनि, करइ छलमत आइकै॥
बहु जीवहि फाँस फँसबिहिजग, नामकबीरहि गाइके॥
अंश वंशहि चेताइ हौं तुम, शब्दके सहिदानते ॥
परखिममशब्दहियमाहिचीन्हे, रहेगुरुगमज्ञानतै ८९
सो० चित चेतो धर्मदास, यमराजा अस छल करे॥
गहि शब्द विश्वास, हंसन शब्द चिताइहौं ९०॥

२ कुरम्भ दूतका वर्णन

रम्भकथा तोहि कहि समुझावा। अब कुरम्भके बरनूँ भावा ॥
मगध देशमें परगटि है जाई। धनीदास वहि नाम धराई ॥
ज्ञानी जीवन कहँ भटकावे। कुम्भदूत बहुजाल खिडावे ॥
जाको छुद्र ज्ञान घट होई। धोक दे यम ताहि बिगोई ॥

धर्मराय वचन

हे साहब मोहि कहौ बुझाई। कौन ज्ञान वह कथि है आई॥

कबीर वचन

धर्मनि सुनो कुरम्भकी बाजी । कथी टकसार फन्द दृढसाजी ॥
चन्द्र सूर तत लगन पसारा । राहु केतु कथि है असरारा ॥
पांच तत्त्व मतिसार बखानी । जीव अचेत भर्म नहिं जानी ॥
ज्योतिष मत टकसार पसरिहैं । ग्रह गोचर वश प्रभु बिसरैहैं ॥
नीर पवन कहँ कथि हैं ज्ञाना । पवन पवनके नाम बखाना ॥
आरति चौका बहु अरथै हैं । धोका दे जीवन भरमै हैं ॥
शिष जब करिहै करिहिं विशेषा । अंग अंगकी निरचै रेखा ॥
नखसिख सकल निरखिहै भाई । करम जाद जीवन भरमाई ॥
निरखि परखि जिव सूर चढाई । सूर चढाय जीव धरि खाई ॥
कनक कामिनि दछिना अरपाई । यह विधि जीव ठगौरी लाई ॥
गांठ बांशि फेरहिं तब फेरा । करम लगाय करिहि यम चेरा ॥
पवन पचासी कालकी आहीं । पवन नाम लिखि पान खवाहीं ॥
नीर पवन कथि करै पसारा । पवन नाम गहि आरति तोरा ॥
पवन पचासी करि अनुहारी । आरति चौका करै विचारी ॥
क्या नारी क्या पुरुष दे भाई । तिल मासा निरखे सब ठाई ॥
शंख चक्र औ सीपकर देखि हैं । नख सिख रेखा सबै परखिहैं ॥
ऐसो काल दुष्ट मति भाई । जीवन कहँ संशय उपजाई ॥
संशय लगाय गरसि है काला । करहि जीवको बहुत बिहाला ॥
औरहु सुनहु काल व्यवहारा । जस कछु कथिहै काल लबारा ॥
साठ समैं बाहर चौपाई । देहि उठाय भरम उपजाई ॥
पंच अमी एकोत्तर नामा । सुमिरन सार शब्दगुण धामा ॥
जीव काज बदि जो कछु राखा । तामें काल धोखा अभिलाखा ॥
पांचो तत्त्व केर उपचारा । कथि हैं यही मता है सारा ॥
पांचो तत्त्व परकीर्ति पचीसा । तीनों गुण चौदह यम ईशा ॥

यहि फन्दे जिव फन्दैं भाई । पांच तत्व यम जाल बनाई॥
तृन धरि सुरति तत्त्वमो लावे। तन छूटे कहुँ कहां समावे ॥
जहँ आशा तहँ बासा पावे । तत्त्व मतो गहि तत्त्व समावे॥
नाम ध्यान सो देह छुड़ाई । राखै तत्त्व फांस अरु बाई ॥
धर्मनि कहँ लगि कहौं बखानी । दूत कुरम्भ करिहै घमसानी ॥
ताकी छलमति चीन्हे सोई । जो जिव मोहि लखिहै समोई॥
पांचों तत्त्व कालके अंगा । ताके मते जीव होय भंगा ॥

छन्द

सुनेउ धर्मनि कुरम्भबाजी, करि बहु फंद फँसावई॥
अनन्त जीवन गरासि लेवे, तत्त्व मता फैलावई ॥
लेइ नाम कबीर जग महँ, पंथ वहि परगट करे ॥
भ्रमवंश जिवे जाय तेहि ढिग,कालके मुखमें परै८७
सो०-पुरुषशब्द है सार,सुमिरन अमी अमोल गुण॥
सो हंस हो भवपार,मन वच कर्म जो दृढ गहे॥९१॥

३ यमदूतका वर्णन

रंभ कुरम्भ यह कह्यो बखानी । अब परखहु तुम जयकी बानी॥
यह यमदूत कठिन विकरारा । मूलमूल वइ कथिहि लबारा॥
ग्राम कुरकुट प्रगटे आई । गढ़ बांधोंके निकट रहाई ॥
कुल चमारके प्रगटे सोई । ऊँचे कुलकी जात विगोई ॥
साहब दास कहावे दूता । गणपत होइहैं ताकर पूता ॥
दोई काल प्रबल दुखदाई । तुम्हरे बंसको घेरिहिं आई ॥
कथई मूल हमारे पासा । तुम्हें उठाय दई धर्मदासा ॥
अनुभव कहिहैं ग्रंथ बहुभाई । ज्ञानी पुरुष संवाद बनाई ॥
कथिहैं मूलन पुरुष मोहिं दीन्हा। धर्मदास निज मूल न चीन्हा ॥
अस वहि काल जोरावर होई। छेई भरम वंशको सोई ॥

वंशहिं निज मत देह दिढ़ाई । पारल थाका भूल चढ़ाई ॥
मूल छापले वंश बिगोई । पारस देहिं काल मति सोई ॥
झंग शब्द वह कथि हैं भाई । कच्चे जीवन देइ भुलाई ॥
जाहि नीर ते काया होई । थापिहि ताकहँ निजमति सोई ॥
काया मूल बीज है कामा । राखिहि ताकहँ गुप्तहिं नामा ॥
प्रथमहिं थाका गुप्तहिं राखी । सिषहिं साधि संधी तब भाखी ॥
प्रथमहिं ज्ञान ग्रंथ समुझायी । तेहि पीछे फिर काल दिढ़ायी ॥
नारि अंग कहँ पारस देहैं । आज्ञा मांगि शिष्य पहँ लइहैं ॥
प्रथमहिं ज्ञान शब्द समुझैहैं । तेहि पीछे फिर मूल पिलैहैं ॥
नरकखानि तेहि मूल बखानी । यमबंका असछल मतिठानी ॥
झँझरी दीप कथा अरथाई । झंग नाम लै ध्यान धराई ॥
अनहद बाजे जमको थाना । पांच तत्त्व करिहै घमसाना ॥
पांचों तत्त्व गुफामें जाई । नाना रंग करे तहँ भाई ॥
पांचों तत्त्व करै उजियारी । ऊठे झंग गुफामें भारी ॥
जब सोहंगम जीव तन छाँडे । तब कहौं झंगकवनविधि मांडे ॥
झंझरी दीप काल रचि राखा । झंग हंग दोउ कालकि शाखा ॥
अथि है अविहरकल अन्याई । अविहरधोख धर्मकर भाई ॥
आरतिचौका कथिहि अपारा । होइहैं तैस बहुत कडिहारा ॥
काल नाम वह साजै बारा । परखो धर्मदास मतिधीरा ॥
ठाम ठाम घट कर्म करै हैं । हमरे नाम लै हमहिं हँसहैं ॥
जनिहैं जगतसबयहिसम आही । बूझहि भेद भरम तब जाही ॥
कहँ लगि कहौं कालकर लेखा । ज्ञानी होय सो करे विवेका ॥

छन्द

ममज्ञानदीपकजाहिकरसो, चीन्हि है यमराजहो ॥
तजि काल विषय जआलहंसा, धाइहै निज काजहो ॥

रहनि गहनि विवेक बानी, परखिही कोइ जौहरी ॥
गहहिं सार असार परिहरि, गिराममजेहिसूधरी८८
सो०-धर्मदासलेहुजान, जम बालकको छलमतो॥
हंसहिं कहु सहिदान, जाते यम रोकैं नहीं॥९२॥

धर्मदास तुव बस अज्ञाना । चिन्हिहैं नहीं काल सहिदाना ॥
जब लग बंस रहौं लवलीना । तब लग काल रहै अतिदीना ॥
रहै काल ध्यान बक लाई । तजि हैं नाम काल प्रगटाई ॥
बेधि मूल बंसमो लगिहैं । तब टकसार धोकमहँ पगिहैं॥
छैकै काल बंस कहँ आई । वस्तुके धोखे काल अरुझाई॥
हमरी चालसे बंस उठै हैं । मूल टकसारके मग अरुझैं हैं॥
नाद पुत्र सो न्यारा रहि हैं । मम बानी नहिं वह दृढ गहि हैं॥
रहै उजागर शब्द अधारा । रहनि गहनि गुनज्ञान विचारा॥
ताहि न ग्रासे काल अन्याई । यह तुम जानहु निश्चय भाई॥

४ विजय दूतका वर्णन

अब तुम सुनहु विजयको भाऊ । एक एक तोहि बरनि सुनाऊ॥
बुन्देलखण्ड यह प्रगटे जाई । ज्ञानी जीवहि नाम धराई ॥
सखा भावको भक्ति दिढाई । रास रची औ मुरलि बजाई॥
सखी अनेक संग लौलाई । आपहिं दूसरा कृष्ण कहाई॥
धोका देई जीवन कहँ सोई । बिन परिचे कस जाने लोई॥
चच्छु अग्र रह मनकी छाया । नासा उरध अकाश बताया॥
कुहिरा परै धोखा यमकेरा । श्याम सेत चित रंग चितेरा॥
छिन छिन चंचल अस्थिर नाहीं । चर्म दृष्टिसे देखे ताहीं ॥
मनकी छाया काल दिखावै । मुक्ति मूल छाया ठहरावै ॥
सत्य नामते देह छुड़ाई । जाते जीव कालमुख जाई ॥

धर्मनि तोहि कहा समझाई । जस चरित्र करि है जमराई॥
चारों दूत करै घन घोरा । यह विधि जीव चोरावै चोरा॥

दूतोंसे बचनेका उपाय

दीपक ज्ञान धरौ दिढ बारी । जाते काल न करै उजारी ॥
इन्द्रमती कहँ प्रथम चितावा । रही सुचेत काल नहिं पावा॥

भविष्य कथन अलग व्यवहार

जस कछु आगे होय है भाई । सो चरित्र तोहि कहौं बुझाई॥
जबलों तुम रहि हौ तनमाहीं । तौलों काल प्रगटिहैं नाहीं ॥
गहो किनार ध्यान बक लाये। जब तन तजो काल तब आये॥
छेकहिं तोर बंसको आई । काल धोकसो बंस रिझाई ॥
बहु कडिहार बंसके नादा । पारस बंस करहिं विषस्वादा॥
बिन्दहि मूल और टकसारा । होइहि खमीर बंस मँझारा ॥
बंसहि एक धोंक बड़ होइ है । हंग दूत देहिं माहिं समैहे ॥
आप हंग अधिक है ताही । आप माहिं सो झगर कराही॥
बिन्द सुभाव आहंग नहिं छोडै।मन मन आय विन्द मनमोड़ै॥
अंस मार सुपन्थ चलै है । ताहि देखि सो रार बढ़ै है ॥
ताको चिन्हि देखि नहिं सकिहै। आपन वाट बंस महँ तकिहै॥
वंस तुम्हार अनुभव कथि रखिहै। नाद पुत्रकी निन्दा भखिहै ॥
सोइ पढ़ि हैं बंश कडिहारा । ताको होइ बहुत हंकारा ॥
स्वारथ आया चीन्ह न पैहैं । अनन्त जीवन कहँ भटकैहैं॥
ताते तोहि कहौं समझाई । अपने वंशन देहुँ चिताई ॥
नाद पुत्र जो प्रकट होई । ताको मिले प्रेमसे सोई ॥
तुमहु नाद पुत्र गम आहू ।यम मन परखहु धर्मनि साहू॥
कमाल पुत्र जो मृतक जियावा । ताके घटमें दूत समावा ॥

पिता जानि तिन आहँग कीन्हा। तब हम थाति तोहि कहँ दीन्हा॥
हम हैं प्रेम भगतिके साथी। चाहौं नहीं तुरी औ हाथी॥
प्रेम भक्तिसे जो मोहिं गहि हैं। सो हंस मम हृदय समै हैं॥
अहंकारते होतेउ राजी। तौ मैं थापत पंडित काजी॥
अधीन देखि थाति तेहि दीना। देखेउ जब तोहिं प्रेम अधीना॥
ताते धर्मनि मानु सिखाई। नाप थापी सौंपिहु भाई॥
नादपुत्र कहँ सौंपिहु सोई। पंथ उजागर जासों होई॥
बंस करि हैं अहंकार बहूता। हम हैं धर्मदास कुल पूता॥
जहां हंग तहवां हम नाहीं। धरमनि देखु परखि मनमाहीं॥
जहाँ हंग तहँ काल सरूपा। नहिं पावे सतलोक अनूपा॥

धर्मदास वचन

हौं प्रभु मैं तुव दास अधीना। तुव आज्ञाते होउँ न भीना॥
नादहिं थाती सौंपब स्वामी। वंश तरै मोर अन्तरयामी॥

कबीर वचन

धरमदास तुव तरि हैं वंशा। याहि बातको मेटो संशा॥
नाम भक्ति जो दिढकै धरिहैं। सुनु धरमनि सोकस ना तरिहैं॥
रहनि रहै तौ सबै उबारों। वचन गहै तो ब्यालिस तारों॥
वचन गहै सोइ बंस पियारा। विना वचन नहिं उतरे पारा॥

धर्मदास वचन

बंस ब्यालिस तो तुम्हारा अंशा। ताको तारयो कौन प्रसंसा॥
बंस अंश जो तारहु साईं। तबहीं जगमें आई बड़ाई॥

कबीर वचन

बंस ब्यालिस बिंद तुम्हारा। सो मैं एक वचनते तारा॥
और वंश लघु जेते होई। विना छाप छूटे नहिं कोई॥
बिंद मिलै तौ वंस कहावे। विना वचन नाहीं घर आवे॥
वचन बंश ब्यालिस ठेका। तिनका समरथ दीन्हों टेका॥

वंस अंस वचन एकै सोई । दीर्घ वंस अंस लघु होई ॥
जेठो अंस वचन मोर जागे । और बंस लघु पीछे लागे ॥
चाल चलै औ पंथ चलावै । भूले जीवनको समुझावै ॥
नाद बिन्द जो पंथ चलावे । चूरामणि हंसन मुक्तावे ॥
धर्मदास तुव वंस अज्ञाना । चीन्है नहीं अंस सहिदाना ॥
जम कछु आगे होइ है भाई । सो चरित्र तोहि कहों बुझाई ॥
छठे पीढ़ी बिन्द तुव होई । भूलै वंश बिन्दु तुव सोई ॥
टकसारीको लै हैं पाना । अस तुव बिन्द होय अज्ञाना ॥
चाल हमार बस तुव झाडै । टकसारीकै मत सब माँडै ॥
चौका तैसे करै बनायी । बहुत जीव चौरासी जायी ॥
आपा हंस अधिक होय ताही । नाद पुत्रसे झगर कराही ॥
होवे दुरमत बंस तुम्हारा । वचन बंस रोके वटपारा ॥

धर्मदास वचन

अब तो संशय भयो अधिकाई । निश्चय वचन करहु मोहि साई ॥
प्रथमे आप वचन अस भाषा । निजइच्छामहँब्यालिसराखा ॥
अब कहहु काल वश परि हैं । दोइबातकिहि विधिनिस्तरिहैं ॥

नाद वंशकी बड़ाई कबीर वचन

धरमदास तुम चेतहु भाई । वचन बंश कहँ देहु बुझाई ॥
जब जब काल झपाटा लाई । तबै तबै हम होब सहाई ॥
नाद हंस तबहिं प्रगटायब । भरमतोहिजगभक्तिदिढायब ॥
नाद पुत्र सो अंश हमारा । तिनते होय पंथ उजियारा ॥
वचन वंश तो होय सचेता । बिन्द तुम्हार न माने होता ॥
वचन वंश नाद सग चेते । मेटै काल घात सब तेते ॥
बिन्द तुम्हार न मानै ताही । आया वंश न शब्द समाही ॥

१ नाद अर्थात् शब्द-शब्द से ही बाला पुत्र अर्थात् शिष्य, साधू, सन्त इत्यादि

शब्दकी चास नाद कहँ होई । बिन्द तुम्हारो जाय बिगोई॥
बिंदते होय न नाद उजागर । परखिके देखहु धर्मनि नागर॥
चारहु युग देखहु समवादा । पन्थ उजागर कीन्हों नादा॥
कहँ निरगुण कहँ सरगुन भाई।नाद बिना नहिं चल पंथाई॥
धर्मनि नाद पुत्र तुम मोरा । ताते दीन्ह मुक्तिका डोरा ॥
याहि विधि हम ब्यालिस तारैं ।जबैं गिरै वह तबै उबारैं ॥
नाद वचन जो विन्द न माने । देखत जीव काल धर ताने ॥
और वंस जो नाद सम्हारै । आप तरै औ जीवहिं तारै॥
कहां नाद कहं बिन्दु रै भाई ।नाम भक्ति बिनुलोक न जाई॥

गुरुमहिमा

गुरुते अधिक काहु नहिं पेखै । सबते अधिक गुरु कहँ लेखै॥
सबते श्रेष्ठ गुरू कहँ मानै । गुरू सिखापन सतकै जानै ॥
बिन्द तुम्हार करै असरारा । बिनु गुरु चहै होन भवपारा॥
निगुरा होइ जगत समुझावे । आप बुड़ै सो जगत बुड़ावे॥
बिना गुरू नाहि निस्तारा । गुरुहिं गहै सो भवते पारा ॥
नाता जानि करै अधिकाई । वंसहि काल गरासै आई ॥
जब जग नात गोत अरुझावे । वचन बंश धोखा तब पावे ॥
तबहिं काल गरासै आई । नाना रूप फिरै जग लाई ॥
तबहिं गोहार नाद मम आवे। देखत काल तुरत भगि जावे॥
ताते धर्मनि देहु चिताई ।वचनवंश बहु विधि समुझाई॥
नादवंस सँग प्रीति निबाहे । काल धोखते बचन जु चाहे॥
नाद वंशकी छोड़ै आसा । ताते विन्द जाय यमफांसा॥
बहु विधि दूत लगावै बाजी । देखैं जीव होय बहुराजी ॥
ते तो जाय काल मुख परिहैं ।नाद वंश जो हित नहिं धरिहैं॥
ताते तोहि कहों समझायी । सबहीं कहँ तुम देहु चितायी॥

नाद वंशकहँ जो जिव जाना । वचन वंस चीन्हे सहिदाना ॥
ताकहँ यम नहिं रोके आई । सत्य शब्द जिन चीन्हा भाई ॥
धरमदास मैं कहौं बुझाई । वचन हमार गहो चितलाई ॥
जीवन कहँ तुम कहिहो जाई । वचन वंस जब तारन भाई ॥
वचन वंस वहि नाद न छांडै । सदा प्रीति नाद संगमांडै ॥
नात गोत कहँ पच्छ न करई । पच्छ करै तो दुखमहँ परई ॥
बहुत विधी मैं दीन्ह चिताई । चेत करै दुःख नहिं पाई ॥
बिन्द तुम्हार नाद सँग जावै । देखत दूत मनहिं पछतावै ॥
यहि उपाय सुख होय बहूता । वचन नाद विंद लगे न दूता ॥

धर्मदास वचन

धर्मदास उठि विनती लाये । अब प्रभु मोही कहहु बुझाये ॥
नाद महातम ऐसो राखा । वचन वंस अधीन करि भाखा ॥
कारन कौन कहहु मोहि साई । वचन वंस काहे निरमाई ॥
नादे बंस जगत चेतै हैं । वचन वंस कामें कब ऐहैं ॥

कबीर वचन

सुनत वचन सतगुरु विहँसाये । धर्मदासकहँ विविधि समझाये ॥
गगिन नाद वचन नहिं मानै । ताते विंद हम निरनय ठानै ॥
बिंद एक नाव बहुताई । बिंद मिले सो बिंद कहाई ॥
वचन वंस हैं पुरुषके अंसा । तिनके सदन छूटे जगहंसा ॥
नाद बिन्दु युगबन्ध जब होई । तबहीं काल रहै मुख गोई ॥
प्रथमैं जस हम तुमहिं बताना । नाद बिंद करयोग दिखाना ॥
विना नाद नहिं विंद पसारा । विना विंदहिं नाद उबारा ॥
कलियुग काल कठिन है भाई । अहंरूप धरि सबको खाई ॥
नादे अहं त्याग कर होई । बिन्दे अहं बिन्द संजोई ॥
याते अंकुश पुरुष निरमाया । नाद बिन्द दोउ रूप बनाया ॥

छाड़ि अहं भजिहैं सतरूपा । सो होइहैं हंस सरूपा ॥
नाद विंद कोई हो भाई । अहंभाव नहिं नीक बताई ॥
अहं करै सो भवमें डूबे । काल फांस पड़िहैं सो खूबे ॥
अहंभाव जब वंसहिं आवे । नादे बिन्दु भेद पड़ जावे ॥
बंस विरोध चले पुनि आगे । काल दबा सब पंथहि लागे॥

धर्मदास वचन

साहब विनती सुनो हमारी । तुम्हारी दया जीव निस्तारी॥
नाद विन्द कहँ रूप लखाया । तिनके तरनको भेद बताया॥
सकल जीव तुम लोकहिं जाई। दास नरायण काह कराई ॥
मोर पुत्र जग माहिं कहावे । ताते चिन्ता मोर मन आवे॥
भवसागरके जिव सब तरिहैं ।दासनरायण कालमुख परिहैं॥
यह तो भली होय नहिं बाता । सुनु बिनती सुखसागरदाता॥
ताकी मुक्ति करो तुम स्वामी ।यहि मोरविनती अन्तरयामी॥

कबीर वचन

बार बार धर्मनि समुझावा ।तुम्हरे हृदयप्रतीत न आवा ॥
चौदह यम तो लोक सिधावें ।जीवन फन्द कहो किन लावें॥
अब हम चीन्हा तुम्हारो ज्ञाना । जानि बूझि तुम भयो अजाना॥
पूरुष आज्ञा मेटन लागे । बिसरयो ज्ञान मोहमद जागे॥
मोह तिमि जब हिरदे छावे । बिसर ज्ञान तब काज नसावे॥
विन परतीत भक्ति नहिं होई । बिनु भक्ति जिव तरै न कोई॥
बहुरि काल फास तोहि लागा।पुत्रमोह तब हिरदय जागा ॥
प्रतच्छ देखि सबे तुम लीना । दासनरायण काल अधीना॥
ताहू पर तुम पुनि हठ कीना । मोरवचन तुम एकु न चीन्हा॥
धर्मराज जो मोसन कहिया ।सोऊध्यान तबहृदयनरहिया॥
मोर प्रतीत तुम्हैं नहिं आवे । गुरुपरतीत जगत कसलावे ॥

आया छोड़ि मिले गुरु आई । सत सीढ़ीपर चढ़े सुभाई ॥
आया पकड़े मोह मद जागे । भक्ति ज्ञान सब तजे अभागे ॥
पुरुष अंश तुम जगमें आये । जीव चेतावन कार उठाये ॥
तुम्हहिं प्रतीत गुरुकर त्यागो । देखत दृष्टि मोह जगपागो ॥
और जीवका कौन ठिकाना । यह जो अहैकार सहिदाना ॥
जस तुम करहु सुनहु धर्मदासा । तस तुव वंस करै परकासा ॥
मोह आग सदा सो जरिहैं । वंस विरोध याहिते परिहैं ॥
सुत बिन नाम नारि परिवारा । कुलअभिमानसबकालपसारा ॥
इनमें तब परिवार भुलैहैं । सत्यनामको राह न पैहैं ॥
देखा देखी जीव फँसाई । देखत दूत मगन है जाई ॥
तबहिं दूत प्रबल ह्वै जैहै । धरि जीवनकहँ नरक पैठैहै ॥
कालफांस जब जीव फँसावे । काम मोहमदलोभ भुलावे ॥
गुरु परितीत तेहि नहिं रहई । सत्य नाम सुनते जिव दहई ॥
जाके घट सतनाम समाना । ताकर कहौं सुनो सहिदाना ॥
काल बात तेहि लागे नाहीं । कामक्रोध मद लोभ न ताहीं ॥
मोह तृष्णा दुर आश निवारै । सतगुरु वचन सदाचित धारै ॥

छन्द

जस भुवंगम मणिजुगावे असशिषगुरु आज्ञागहे ॥
सुत नारिसब विसराय विषया हंसहोयसतपदलहे ॥
गुरु वचन अटल अमान धर्मनि सहै विरलाशूरहो ॥
हंसहो सतपुर चले तेहि जीवन मुक्ति न दूरहो ८९ ॥
सो०-गुरु पद कीजै नेह, कर्म भर्म जञ्जाल तज ॥
निज तन जाने खेह, गुरुमुख शब्द विश्वास दृढ़९३ ॥

धर्मदास वचन

सुनत वचन धर्मदास सकाने। मनहीं माहिं बहुत पछताने॥
धाइ गिरे सत गुरुके पाईं। हौ अचेत प्रभु होहु सहाई॥
चूक हमारी बकसहु स्वामी। विनती मानहु अन्तरयामी॥
हम अज्ञान शब्द तुम टारा। विनय कीन्ह हम बारंबारा॥
अब मैं चरण तुम्हारे गयऊँ। जो संतनिकी विनती करऊँ॥
पिता जानि बालक हठ लावे। गुण औगुण चित ताहि न आवे॥
पतित उधारण नाम तुम्हारा। औगुण मोर न करहु विचारा॥

कबीर वचन

धर्मदास तुम पुरुषके अंशा। त्यागहु दास नारायण वंशा॥
हम तुम धर्मनि दूजा नाहीं। परखहु शब्द देखि हियमाहीं॥
तुम जो जीवकाज जग आऊ। भौसागर महँ पन्थ चलाऊ॥

धर्मदास वचन

हे प्रभु तुम सुख सागर दाता। मुझ किंकरको करचो सनाथा॥
जबलग हम तुमहीं नहिं चीन्हा। तब लग माता कालहर लीन्हा॥
जबते तुम आपन कर जाना। तबते मोहिं भयो दृढ ज्ञाना॥
अब नहिं दुनिया मोहि समायी। निश्चय गहीं चरण तुव धाई॥
तुम तजि मोहि आनकी आसा। तो मुहिं होय नरकमहँ वासा॥

सतगुरु वचन

धर्मदास धन मो कहँ चीन्हा। वचन हमार पुत्र तजि दीन्हा॥
जब शिष हृदय मुकुर मलताहीं। गुरु स्वरूप तबहीं दरसाहीं॥
जब सिखनिजहिय गुरुपद राखे। मेटे सबहिं कालकी साखे॥
जौं लगि सात पांचकी आसा। तौ लगि गुरु नहिं निरखे दासा॥
इक पत शिष्य गुरूपद लागे। छूटे मोह ज्ञान तब जागे॥
दीपक ज्ञान हृदय जब आवे। मोह भर्म तब सबै नशावे॥
उलटि आय सतगुरु कहँ हेरा। बुन्द सिन्धुका भयो निबेरा॥

सिन्धुहि बुन्द समाना जाई । कहे कबीर मिटी दुचिताई ॥
धर्मनि यह गुरु पद परतापा । गुरु पद गहि तज भ्रम दापा॥
यहै गहै सब दुःख नशायी । बिन गुरुशिष्य निरासे जायी॥
अब मैं तोहीं कहौं बुझाई । सुनि संशय तब दूर पराई ॥
दास नरायन तोरे मनि है । वह तो आपनमन निज तनिहै॥
ताकर पन्थ चले संसारा । यामहँ नहिं कछु सोच विचारा॥
अंश हमार जो पन्थ चलाई । ताहि देखि सो रार बढ़ाई ॥
ताकर चढ़ी देखि नहिं सहिहैं। आपन बढ़ी बंस मत कहिहैं॥
पन्थ चलाय हंग बहु आनै । आपन सब छोट बखानै ॥
साधुसंत सो कर अभिमाने । नाद पुत्र सो नहिं वह माने॥
जब लग ऐसी चाल चलावे । तबलग तो नहिं सतपथ पावे॥
वचन वंश और नाद कड़िहारा। इनसँग मिलै तो होय उबारा॥
छोड़ अहंकार मान बढ़ाई । सत्य शब्द जब हृदय धराई॥
वचन वंशको अंश कहै हैं। धर्मनि तबै मोर मन भै हैं ॥
जात तजै और मोह न आवै । सोई अंश वंश कहलावै ॥
कुलकी दशा जानकर खोवे । निश्चय अंश वंश वह होवे॥
तब तेही हम लेव उदारी । निश्चय कहहुँ नहिं संतलबारी॥
यहि विश्वास धर्मनि मन राखो । विनविश्वास वचन नहिं भाखो॥

गुरुमहिमा

कीन विश्वास जीव नहिं तरई। गुरुप्रतीतिविनु नर कहिं वरई॥
गुरु सम और न दानी भाई । गुरु चरनन चित राखु समाई॥

छन्द

दानी और न दूसरा जग,गुरु मुक्तिदानी जानिया॥
अधम चाल छुड़ायके गुरु,ज्ञान अङ्ग लखानिया॥
हंसहि भक्ति दिढावहीं दे, अंक बीरा नाम हो ॥
दुष्ट मित्र चिन्हायके, पहुँचावहीं निज ठाम हो ॥९०॥

सोरठा-गुरू पुरुष नहिं आन, निश्चयकै जो मानहीं॥
ताहि मिलै सहिदान, मिटै कालकलेश सब॥९४॥

सर्गुण भाव पेखु धर्मदासा। कस दृढ गह प्रतीत विश्वासा॥
कर्मी जीवन देखु विचारी। कस दृढ गहे प्रतीत सम्हारी॥
आपहि लै आवै नर माटी। करता कहँ मूरति गढ ठाटी॥
तापर अक्षत पुहुप चढावे। प्रेत प्रतीत ध्यान मन लावे॥
करता कर थापे पुनि ताही। भंग प्रतीत होय नहिं जाही॥
जस धोखहु महँु प्रेम समावे। सोई प्रेम सजिव बन आवे॥
सो जिव होय अमोल अपारा। साहिबको है हंस पियारा॥
उन जीवनको प्रेम बखाने। कैसे दृढ होय धोख लपटाने॥
गुरू नाम हम आप कहाया। गुरू पुरुष नहिं भिन्न बताया॥
अस जिव काल वस है रहई। दृढ प्रतीत कैगुरु नहिं गहई॥
सब मूरति परतीत न आवै। शून्य ध्यान धोखेहु मन लावै॥
जो निश्चय है गुरु मन धरहीं। मुक्ति होय टारे नहिं टरहीं॥
ऐसे करि जो विश्वास दृढ़ावै। गुरुतजिचित्त अनतनहिंलावै॥
यहि रहनीको हंस अमोला। प्रेम रंग जो रंगे चोला॥
प्रेम जानि हैं अमृत गिरागुरु। अँचवतहोतखानिदुरमतदुरु॥
धर्मदास हिय देखु विचारी। गुरुप्रतीत दिढ गहो सम्हारी॥

छन्द

अस कैप्रतीत दृढाय गुरुपद, नेह इस्थिर लाइये॥
गुरुज्ञानदीपक बार निजउर, मोहतिमिरनशाइये॥
गुरुपद पराग प्रतापतें अब, पुंज निश्चय जावई॥
और मध्ययुक्तिनतरनकी, विश्वास शब्द समावई ९१॥

सो०-यह भव अगम अथाह, नाम प्रेमदृढके गहे॥
लेहकृपा गुरुथाह, गुरुगिरा कडिहार मिले॥९५॥

धर्मदासवचन—गुरुशिष्यकी रहनी

धर्मदास विनती अनुसारे । तुम साहब हम दास तुम्हारे ॥
चूक जो कछु पूछौं गुरुराया । सो कहिये करिकै अब दाया॥
गुरु शिषकी रहनी है जैसी । सो समुझाय कहो गुरु तैसी॥

गुरुमहिमा कबीर वचन

सतगुरु कहै गुरू व्रतधारी । अगुनसगुनबिचगुरुआधारी ॥
गुरू बिना नहिं होय अचारा । गुरू विना नहिं होय भवपारा ॥
शिष्य सीप गुरु स्वाती जानो । गुरुपारसशिष लोहसमानो ॥
गुरु मलयागिर शिष्य भुजंगा । गुरुगुरूपरसिशीतलहोय अंगा॥
गुरु समुद्र है शिष्य तरंगा । गुरु दीपक है शिष्य पतंगा॥
शिष्यचकोरगुरुकोशशिजानो।गुरुपदरविकमलशिषविकसानो
यहि स्नेह शिष निश्चय लहई । गुरुपद परस दरश हिय गहई॥
जब शिषयाविधिध्यानबिशेखा। सोई शिष्य गुरूसम लेखा॥
गुरू गुरुनमें भेद विचारा । गुरुगुरु कहै सकल संसारा॥
गुरु सोई जिन शब्द लखाया । आवागमन रहित दिखलाया॥
गुरु सर्जीवन शब्द लखावे । जाके बल हंसा घर जावे ॥
ता गुरुसों कछु अन्तर नाहीं । गुरु औशिष्यमताएकआहीं॥

छन्द

मन कर्म नाना भावना यह, जगतसबलपटानहो ॥
जीवमयभ्रमजाल डारेउ, उलटिनिज नहिं जानहो॥
गुरु बहुत हैं संसारमें सब, फँदे कृत्रिम जाल हो ॥
सतगुरु विना नहिं भ्रममिटे, बड़ाप्रबलकालकरालहो९२
सो०-सतगुरुकी बलिहार, अजर सँदेसा जो कहै ॥
ताही मिलेहोयन्यार, सतपुरुष जिवभेंटई॥९६॥

निशिदिन सुरत गुरू सो लावे। साधु सन्तके चितहि समावे॥
जिनपर दाया सतगुरू करै। तिनका फांस करम सब जरै॥
करनी करै औ सुरति लगावे। ताको लोक सतगुरु पहुँचावै॥
सेवाकरि मन राखे न आसा। ताका सतगुरु काटै फांसा॥
गुरूचरणन जो राखे ध्याना। अमर लोक वह करत पयाना॥
योगी योग साधना करई। विना गुरू सो भव नहिं तरई॥
शिष्य जो गुरु आज्ञा धारी। गुरुकी कृपा होय भवपारी॥
गुरू भगता जो जिव आही। साधुगुरू नहिं अन्तर ताही॥
सांचा गुरू ताहि कर माने। साधुगुरू नहिं अन्तर आने॥
जो स्वारथ पागे संसारी। नहिंगुरुशिष्य न साधुअचारी॥
तिनको काल फन्द तुम जानो। दूत अंस काल कर मानो॥
तिनते होय जीवकी हानी। यह तो अहे धर्म सहिदानी॥
जोई गुरू प्रेम गति जाने। सत्य शब्दको राह पिछाने॥
परम पुरुषकी भक्ति दिढावे। सुरति निरतिकरतहँ पहुँचावे॥
तासों प्रीति करै मन लाई। छोडै दुरमति और चतुराई॥
तबहीं निहसंशय घर पावै। भवतरिके जग बहुरि न आवै॥

छन्द

सत नाम अमी अमोल अविचल, अंकवीरापावई॥
तजि काग चालमरालमतिगहि, गुरुचरणलौलावई॥
और पंथ कुमारग सकल बहु, सो नहीं मनलावई॥
गुरु चरण प्रीति सुपंथ धर्मनि, हंसलोकसिधावई॥
सो०–गुरुपद कीजे नेह, कर्म भर्म जञ्जाल तजि॥
निज तन जाने खेह, गुरुमुखशब्दप्रतीतिकरि॥९७॥

धर्मदास वचन

धर्मदास हियबिच अतिहरषे। गदगद गिरा नयन जलवरषे॥

ममहियतिमिरआहिअँधियारा। मिहर पतंगकीन्ह उजियारा॥
पुनि धीरज धरि बोल विचारी। केहिविधिकरौंप्रभु स्तुति तुम्हारी
जब गुरु विनती सुनो हमारी। जीवन निरनय कहो विचारी॥
कौन जीव कहँ देहों पाना। समरथ कहो वचन सहिदाना॥

अधिकारी जीवनके लक्षण सद्गुरु वचन

धर्मदास निःसंशय रहहू। मुक्ति सँदेशा जीवन कहहू॥
देखहु जाहि दीन लौ लीना। भक्तिमुक्तिकह बहुतअधीना॥
दया शील क्षमा चित जाही। धर्मनि नाम पान दी ताही॥
तासन पुरुष सँदेशा कहिहो। निसदिननामध्यानदृढगहिहो॥
दयाहीन जो शब्द नहिं माने। कालदिशा हो बाद बखाने॥
चञ्चल दृष्टि होय पुनि जाही। सत्य शब्द न ताहि समाही॥
चिबुक बाहर दशन लिखाये। जानहु दूत भेष धरि आये॥
मध्यनेत्र जिहितिल अनुमाना। निश्चय कालरूप तिहिजाना॥
ओछा शीश दीर्घ जिहि काया। ताके हृदय कपट रह छाया॥
तेहि जनि देहु पुरुष सहिदानी। यह जिव करे पंथकी हानी॥

काया कमल विचार। धर्मदास वचन

हे प्रभु जन्म सुफल मम कीन्हा। यमसों छोरि अपनकरलीन्हा॥
जो सहस्र रसना मुख होई। तो तव गुण वरणे नहिं कोई॥
हे प्रभु हम बड़ भागी आहीं। निज सम भाग कहों मैं काहीं॥
सोइ जीव बड़ भागी होई। जासु हृदय तव नाम समोई॥
अब इक विनती सुनो हमारी। यहि तन निर्णय कहो विचारी॥
कौन देव कहँ कहवाँ रहई। कहवाँ रहि कारज सो करई॥
नाडी रोम रुधिर कत अहई। कौने मारग स्वासा बहई॥
आँत पित्त औ फेंफसा झोरी। साहब कहहु विचार बहोरी॥

---

१ यह दोनों चौपाई किसी भी पुराने ग्रन्थोंमें नहीं है।

जाहि ठाम है जासु अस्थाना । साहब बरनि कहो सहिदाना॥
कौनकमलकेता जप परगासा । रात दिवसलग केतिकस्वासा॥
कहवाँते शब्द उठि आवे । कहो कहवाँ वह जाइ समावे॥
कोइजीव झिलमिल कहँ देखा । सौसाहिबमोहि कहो विवेका॥
कौन देवके दरशन पाई । तिहि अस्थान कहो समुझाई॥

सद्गुरु वचन

धर्मनि सुनहु शरीर विचारा । पुरुष नाम कायाते न्यारा ॥
प्रथमहि मूलकमल दल चारी । तहँ रहु देव गणेश पसारी ॥
विद्या गुण दायक तेहि कहिये । षटशतअजपाध्यानसोलहिये॥
मूल कमलके उर्ध अखारा । षट पखुरीको कमल बिचारा॥
ब्रह्मा सावित्री सुर राजे । षटसहस्र अजपा तहँ गाजे ॥
पदुम अष्टदल नाभि स्थाना । हरिलक्ष्मीतहँ बसहिं प्रधाना॥
जाय जहां षटसहस्र प्रमाना । गुरुगमते लखि परइ ठिकाना॥
ता ऊपर पंकज दल द्वादश । रुद्र पारवती ताहि कमलबस॥
षट सहस्र अजपा तहँ होई । गुरुगम ज्ञानते देखु बिलोई ॥
षोडश पत्र कमल जिव रहई । सहस एक अजपा तहँ चहई॥
भवर गुदाफल दोउ परमाना । तहवां मन राजाको थाना ॥
सहस एक अजपा तेह ठाई । धरमदास परखो चितलाई॥
सुरति कमल सतगुरुके बासा । तहँएतिक अजपा परकाशा॥
एक सहस षटशत औ बीसा । परखहु धर्मनि हंसन ईसा ॥
दोइदल उर्ध्व शून्य अस्थाना । झिलमिलज्योतिनिरंजन जाना
धर्मदास सुनु शब्द सँदेशा । घट परचेका कहुँ उपदेशा॥
अब पुनि सुनहु शरीर विचारा । एक नाम गहि धरहु करारा ॥
सबै कुम्भ तन रुधिर सँवारा । कोट रोम तन पृथी सुधारा ॥
नाडि बहत्तर हैं परधाना । नौपहँ तीन प्रजान सुधाना ॥

त्रय नाडी महँ एक अनूपा । सो ले रहे गहे सतरूपा ॥
जेतिक पत्र पदुम जो आही । उठे शब्द प्रगटे गुण ताही ॥
तहँवाते पुनि शब्द उठायी । शुन्यमाहिं सो जाय समायी ॥
आंत एकइस हाथ प्रमाना । सवा हाथ झोरी अनुमाना ॥
सवा हाथ नभ फेरी कहिये । खिरकी सात गुफामें लहिये ॥

छंद-पित्त अंगुली तीन जानों पांच अंगुल दिलकही
सात अंगुल फेफसा है सिंधु सात तहाँ रही ॥
पवन धार निवार तनसो साधु योगी गम लहे ॥
यहिकर्मयोगकियेरहितनाहिं भगति बिनु जोइनबहे ९४

सो०-ज्ञानयोगसुखराशि,नाम लहे निज घर चले ॥
अरिपरबलको नाशि, जीवनमुकता होय रहे ॥९८॥

धर्मनि यह मनको व्यवहारा । गुरु गमते परखो मत सारा ॥
मनुआ शून्य ज्योति दिखलावे । नाना भर्म मनहिं उपजावे ॥
निराकार मन उपजा भाई । मनकी मांड तिहूँ पुर छाई ॥
अनेक ठाव जिव माथ नवावे । आप न चीन्हे धोखा पावे ॥
यह सब देखु निरंजन आमा । सत्य नाम विन मिटे न फांसा ॥
जैसे नट मर्कट दुख देई । नाना नाच नचावन लेई ॥
यहिविधियह मन जीव नचावे । कर्म भर्म भव फंद दिढावे ॥
सत्य शब्द मन देइ ऊछेदी । मन चीन्हे कोइ बिरले भेदी ॥
पुरुष सँदेश सुनत मन दहई । आपनि दिशा जीव ले बहई ॥
सुनु धर्मनि मनके व्यवहारा । मनको चीन्ह गहे पदसारा ॥
या तन भीतर और न कोई । मन अरु जीव रहे घर दोई ॥
पांच पचीस तीन मन झेला । ये सब आदि निरंजन चेला ॥
पुरुष अंश जिव आनसमाना । सुधिभूलीनिजधर सहिदाना ॥
इन सब मिलिके जीवही घेरा । बिनपरिचयजिवयमका चेरा ॥

भर्म वशी जिव आप न जाना । जस सुगवा नलनी फँदाना ॥
जिमि केहरि छाया जल देखे । निजछाया दुतिया वह लेखे ॥
धाय परे जल प्राण गँवावे । अस जिव धोखा चीन्ह न पावे ॥
कांच महल जिमि भूके स्वाना । निज अकार दुतिया करजाना ॥
दुतिया अवाज उठे तहँ भाई । भूँकत स्वान लेहु लखि धाई ॥
ऐसे यम जिव धोख लगाई । ग्रासे काल तबै पछताई ॥
सतगुरु शब्द प्रीति नहिं करई । ताते जीव नष्ट सब परई ॥
किरतम नाम निरंजन साखा । आदिनाम सतगुरु अभिलाखा
सतगुरु चरण प्रीति न करई । सतगुरु मिल निजघरसंचरई ॥
धर्मदास जिव भये बिगाना । धोखे सुधा गरल लपटाना ॥
अस कै फन्द रच्यो धर्मराई । धोखा वसि जिव परे भुलाई ॥
और सुनो मन कर्म पसारा । चीन्हि दुष्टजिव होय नियारा ॥
छंद–चीन्ह है रहे भिन्न धर्मान,शब्द ममदीपकलहे ॥
यह भिन्न भाव दिखात तोकहँ,देखजिवयमना गहे ॥
जौलों गढपति जगे नाहिं, सधि पावत तस्करा ॥
रहत गाफिल भर्मके वशि,तहाँ तस्कर संचरा ॥९५॥
सो०–जाग्रत कला अनूप, ताहि काल पावे नहीं ॥
भर्म तिमिर अधकूप,छलयमराजीवनग्रसे ॥९९॥

मनके पाप पुण्यका विचार

मनको अंग सुनो जन सूरा । चोर साहु परखो गुरु पूरा ॥
मनही आही काल कराला । जीव नचावे करे बिहाला ॥
सुन्दर नार दृष्टि जब आवे । मन उमगे तन काम सतावे ॥
भये जोर मन ले तेहि धावे । ज्ञानहीन जिव भटका खावे ॥
नारि भोग इन्द्री रस लीन्हा । ताकर पाप जीव सिर दीन्हा ॥

द्रव्य पराइ देख मन हरषा । कहेलेब अस व्यापेउ तिरषा॥
द्रव्य पराइ आन सो आने । ताके पाप जीव लै साने ॥
कर्म कमावे या मन बोरा । शासत सहे जीव मतिभोरा॥
पर निंदा पर द्रव्य गिरासी । सो सब देखहु मनकर फांसी॥
संत द्रोह अरु गुरुकी निंदा । यह मन कर्म कालमति फँदा॥
गृही होय पर नारिन जोवै । यह मन अंधकर्म विष बोवै ॥
जीव घात मन उमँग करावे । तासु पाप जिव नर्क भुगावे॥
तीरथ व्रत अरु देवी देवा । यह मन धोख लगावे सेवा ॥
दाग द्वारका मनहिं दिखावे । दाग दिवाय मनहिं बिगरावे॥
एक जनम राजाको होई । बहुरि नरकमें भुगते सोई ॥
बहुरि होय सांडकर औतारा । बहु गाइनको होय भरतारा ॥
कर्म योग है मनको फँदा । होय निहकर्म मिटै दुख द्वंदा॥
छंद-सुनो धर्मनि मन भावनाकहँलोंकहौंनरबारके ॥
त्रय देव तेतिस कोटि फंदे शेष सुर रहे हारके ॥
सतगुरुविना कोइ लख न पावे पड़े कृत्रिम जालहो॥
विरलासंत बिबेककरी चीन्हि छोडयो कालहो॥९६॥
सो०-सतगुरुके विश्वास, जन्म मरण भय नाशइ ॥
धर्मनि सो निजदास, सत्यनाम जो दृढगहे॥१०॥

निरंजन चरित्र

धर्म चरित्र सुनो धर्मदासा । छलबुधिकरनजीवनतिनफांसा
धरि औतार कथा तिन गीता । अंध जीव कोई गम्यन कीता॥
अर्जुन सेवक अति लौलीना । तासों ज्ञान कह्यो सब भीना ॥
ज्ञान प्रवृत्ति निवृत्ति सुनावा । तज निवृत्ति परवृत्ति दृढावा॥
दया क्षमा प्रथमैं तिन भाषा । ज्ञान विज्ञान कर्म अभिलाषा॥
अर्जुन सत्य भक्ति लवलीना । कृष्ण देवसों बहुत अधीना॥

प्रथम कृष्ण दीन्ही तेहि आशा। पीछे दीन्ह नर्कमें बासा ॥
ज्ञान योग तजि कर्म दृढाया। कर्म वशी अर्जुन दुख पाया॥
मीठ दिखाय दियो विष पाछे। जिव बटपार संतछबि काछे॥

छन्द

कहँलों कहों छनद्धि यमके संत कोइ कोइ परखिहैं॥
ज्ञान मारग दृढ रिहे तब सत्य मारग सूझि हैं॥
चीन्हि हैं यम छलमता तब चीन्हि न्यारा तो रहे॥
सतगुरुशरणयमत्रासनाशैं अटलसुख आनंद लहे॥९७॥
सो०-हंसराज धर्मदास, तुम सतगुरु महिमा लहो॥
करहुँ पथ परकास, अजरसंदेशा तोहि दियो १०१

मुक्तिमारग पन्थसहिदानी वर्णन धर्मदास बचन

हे प्रभु तुम सतपुरुष दयाला। वचन तुम्हारा अमितरसाला॥
मनको रहन जाति हम पावा। धन सत गुरु तुम आन जगावा॥
अब भाषो प्रभु आपन डोरी। केहि रहनी जम तिनका तोरी॥

सद्‌गुरुवचन

धर्मदास सुनु पुरुष प्रभाऊ। पुरुषडोरितोहि अबहि चिन्हाऊ
पुरुष शक्ति जब आय समाई। तब नहिं रोके काल कसाई॥
पुरुष शक्ति सुन षोडश आहीं। शक्ति संग जिवलोकहि जाहीं॥
बिना शक्ति नहिं पन्थ चलाई। शक्तिहीन जिव भौ अरुझाई॥
ज्ञान विवेक सत्य सन्तोषा। प्रेम भाव धीरज निरघोषा॥
दया क्षमा अरुशीलनिःकरमा। त्यागवैराग शांतिनिजधरमा॥
करुणा करि निज जीव उबारै। मित्रसमान सबको चित धारै॥
इन मिलि लहे लोके विश्रामा। जले पंथ निरखी जेहि धामा॥
गुरु सेवा गुरुपदे परतीती। जेहि उर बसे चले जम जीती॥
आतम पूजा सन्त समागम। महिमासंत कहइ निगमागम॥

गुरु सम संतभक्ति औराधे । ममता मोह क्रोध गुण साधे॥
अमृत वृक्ष पुरुष सतनामा ।पुरुषसखासतअविचलधामा॥
यह सब डोरी पुरुषको आही ।सत्यनामगहिसत्यपुर जाही॥
चक्षु हीन घर जाय न प्रानी । यह सब कहेउ पंथ सहिदानी॥
पुरुष नाम चक्षु परवाना । लहै जीव तब जाय ठिकाना॥
दिढ परतीति गहे गुरुचरना । मिटे तासु जनम औ मरना॥

पन्थकी रहनी धर्मदास वचन

हे प्रभु तुम सतपुरुष दयाला । वचन तुम्हार अमानरिसाला॥
अब बरनो प्रभु पंथनिजदासा ।विरक्तगिरहीकहँरहनिपरगासा॥
कौन रहनि वैराग कमावे । कौन रहनि गेही गुन गावे॥

सद्‌गुरु वचन

धर्मदास सुन शब्द संदेशा । जीवन कहौ मुक्ति उपदेशा॥
वैरागी वैराग दिढे हो । गेही भाव भक्ति समझे हो॥

वैरागी विरक्त लक्षण

वैरागी अस चाल बताऊ । तजे अखज तब हंस कहाऊ॥
प्रेम भक्ति आने उरमाहीं । द्रोह घात दिगचितवे नाहीं॥
जीव दया राखे हिय माहीं । मनवच कर्मघात कोउ नाहीं॥
लेवे पान मुक्तिकी छापा । जाते मिटे कर्म भ्रम आपा॥
हंस दशा धरि पन्थ चलावे । श्रवणी कंठी तिलक लगावे॥
रूखा फीका करे अहारा ।निसदिन सुमिरे नाम हमारा॥
औ पुनि लेह तुम्हारो नामा । पठवों ताहि अमरपुरधामा॥
कर्म भर्म सब देह बहाही । सार शब्दमें रहे समायी॥

१ शरीरके पोषणमें जिनका काम नहीं पड़ता है उसे अखज अर्थात् उसको अभक्ष कहते हैं, जैसे तम्बाकू गांजा, भंग शराब मांस तथा लहसुन प्याज इत्यादि तमोगुणी पदार्थ जिससे बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। इसी लिये सद्‌गुरुका वचन है। "जैसा जो खाइये, तैसी उपजे बुद्धि। जाको जैसा गुरु मिला ताको तैसी शुद्धि॥"

नारि न परसे बिन्द न खोवे । क्रोध कपट सब दिलसे धोवे॥
नरक खान नारी कहँ त्यागे । इक चित होय शब्द गुरु लागे॥
क्रोध कपट सब देइ बहाई । क्षमा गंगमें पैठि नहाई ॥
विहँसतबदनभजनको आगर । शीतल दशा प्रेम सुखसागर॥
रहै अजांच न जांचै काहू । का परजाका राजा साहू ॥
पच्छिम लहर जगावै जानी । अजपाजाप भजन धुन ठानी॥
रहित रहै बहै नहिं कबहीं । सो वैरागी पावै हमहीं ॥
हमहिं मिलै दमहीं अस होई । दुबिधा भाव मिटावै सोई ॥
गुरु चरणनमें रहे समाई । तजि भ्रम और कपट चतुराई॥
गुरु आज्ञा जो निरखत रहई । ताकर खूट काल नहिं गहई ॥
गुरु प्रतीत दृढकै चित राखे । मोहि सम न गुरू कहं भाखे॥
गुरु सेवामें सब फल जावै । गुरू विमुख नर पार न पावै॥
जैसे चन्द्र कुमोदिनि रीती । गहे शिष्य अस गुरुपरतीती ॥
ऐसी रहनि रहै बैरागी । जेहि गुरु प्रीति सोई अनुरागी॥

गृहीलक्षण

गेही भक्ति सुनहु धर्मदासा । जेहि लै गेही परै न फांसा ॥
काग दशा सब देइ बहाई । जीव दया दिल रखे समाई॥
मीन मांस मद निकट न जाई। अंकुर भक्ष सो सदा कहाई॥
लेवे पान मुक्ति सहि दानी । जाते काल न रोकै आनी ॥
कण्ठी तिलक साधुको बाना।गुरुमुख शब्द प्रीति उर आना॥

१ प्राय: लोग अकुंरजकी आड़ लेकर तम्बाकूगांजाभंग चरस आदि तमो-गुणीन-शैले पदार्थोंको भक्षण करते जाते हैं और जब कभी उन्हें समझाओ तो अंकुर भच्छे सो मानवा, कहकर कन्नी काट, जाते हैं और यह नहीं समझते "कि" फेर शरा नहीं अंगम. नहीं इन्द्रिनके माहिं । फेर परा कछु बुझायो सो निरबारेउ नाहिं ॥ जो सद्गुरुने कहा है सो इन पदार्थोंके सेवनसे बुद्धि नाश होकर सत्यकी सूझ होना अत्यन्त कठिन है, विशेष देखो-"कबीरधर्म दर्शनमें"

प्रेम भाव सन्तनसो राखे । सेवा सत्य भक्तिचित राखे ॥
गुरु सेवा पर सर्वस वारे । सेवा भक्ति गुरूकी धारे ॥
सुमिरण जो गुरु देह दृढाई । मन वच करमसों सुमरे भाई॥

छन्द

पुरुष डोरि सुनहु धर्मनि जाहि ते गेही तरे ॥
चक्षु विन घर जाय नाहीं कौन विधि ताकर करे॥
वंश अंश है चक्षु धर्मनि जीव सब चेतावहू ॥
विश्वास कर मन वचनको तब जरामरण नशावहू॥
सो०-शब्द गहे परतीत, पुरुषनामअहिनिशिजप ॥
चलेसो भवजलजीति,अंकनामजिन पाइया १०२॥

आरतीमाहात्म्य

गेही भक्त आरती आने । प्रति अमावस आरती ठाने॥
अमावम आरती नहिं होई । ताहि भवन रह काल समोई॥
पाख दिवस नहिं होवे साजू । प्रति पूनो कर आरती काजू॥
पूनो पान लेई धर्मदासा । पावे शिष्य होय सुख बासा ॥
चन्द्र कला षोडस पुर आवे । ताहि समय परवाना पावे ॥
यथा शक्ति सेवा सहिदाना । हंसा पहुँचे लोक ठिकाना ॥

धर्मराय वचन

धर्मदास विनती अनुसारा ।अस भाखो जिव होय उबारा॥
कलऊ जीव रंक बहु होई । ताकर निर्णय भाखौं सोई ॥
सकलो जीव तुम्हारे देवा । कैसे कहो करें सब सेवा ॥
सब जिव आदि पुरुषके अंशा । भाषहु वचन मिटे जिव संशा॥

सद्गुरु वचन

धर्मनि सुनो रंक परभाऊ । छठे मास आरति लौलाऊ ॥
छठे मास नहिं आरति भेवा । वर्ष माहिं गुरु चौका सेवा ॥

सम्बत माहि चूक जो जायी । तबै संत साकट ठहराही ॥
सम्बत मांहि आरती करई । ताकर जीव धोख ना परई ॥
नाम कबीर जपे लौ लाई । तुमरो नाम कहे गुहराई ॥
करत अखंडित गुरुपद गहई । गुरुपदप्रीति दोइ निस्तरई ॥
ऐसी रहनि गोहि जो धरहैं । गुरू प्रताप दो निस्तरिहैं ॥
ऐसो धारण गेहि जो करहैं । गुरू प्रताप लोक संचरहैं ॥

छन्द

वैरागिगेहिदोउकहँ धर्मनि रहनि गहनि चितायहू ॥
निज निज रहनी होउतरि हैं शब्द अंग सुनायहू ॥
निपट अतिविकराल अगमअथाहभवसागर अहै ॥
नामनौकागहे दृढकरिछोर[1] भवनिधि तब अहै ॥९९॥
सो०—केवटते कर प्रीति, जो भवपार उतारई ॥
चले सो भव जलजीति,जबसतगुरु केवट मिले१०२

असावधानीका फल

जब लग तनमें हंस रहाई । निरखे शब्द पन्थ चले भाई ॥
जैसे शूर खेत रह मांडी । जो भागे तो होवे भांडी ॥
सन्त खेत गुरु शब्द अमोला । यम तेहि गहे जीव जो डोला ॥
गुरू विमुख जिव कतहुँ न बांचे । अगिन कुंडमहँ जरि बरि नाचे ॥
सासति होय अनेकन भाई । जनम जनम सो नर्कहि जाई ॥
कोटि जन्म विषधर सो पावे । विष ज्वालासहि जन्म गमावे ॥
विष्ठा माहीं क्रिमि तनु धरई । कोटि जन्मलों नर्कहिं परई ॥
कहा कहों सासति जिवकेरा । गुरुमुख शब्द गहो दिढ़ बेरा ॥
गुरु दयाल तो पुरुष दयाला । जेहि गुरुव्रत छुए नहिं काला ॥
जीव कहो परमारथ जानी । जो गुरुभक्त ताहि नहिं हानी ॥

१ किनारा

कोटिक योग अराधे प्रानी । सतगुरु विना जीवकी हानी ॥
सतगुरु अगम गम्य बतलावे । जाकी गम्य वेद नहिं पावे ॥
वेद जाहि ते ताहि बखाने । सत्य पुरुषका मर्म न जाने॥
कोइ इक हंस विवेकी होवे । सत्य शब्द जो गही बिलोवे॥
कोटि माहिं कोई संत विवेकी । जो मम बानी गहे परेखी ॥
फन्दे सबै निरञ्जन फन्दा । उलटि न निजघर चीन्हे मंदा ॥

सावधानी–कोयलका दृष्टान्त

सुनो सुभाव कोइल सुत केरा । समुझि तासु गुण करो निबेरा॥
कोइल चित चातुर मृदुबानी । वैरी तासु काग अघखानी ॥
ताके गृह तिन अण्डा धरिया । दुष्टमित्रइक समचित करिया ॥
सखा जानि कागा तेहि पाला । जोगवे अण्ड काग बुधिकाला ॥
पुष्ट भये अण्डा बिहराना । कुछ दिनगत भो चक्षु सुजाना ॥
पक्ष पुष्ट पुन ताकर भयेऊ । कोयल शब्द सुनावन लयेऊ॥
सुनत शब्द कोयल सुत जागा । निजकुल वचन ताहि प्रिय लागा
काग जाय पुनि जबहिं चरावे । तब कोइल तिहि शब्द सुनावे ॥
निजअंकुर कोइलसुत जहिया । वायस दिशाहिये नहिं रहिया ॥
एक दिवस वायस दिखलायी । कोइल सुत उड़चला परायी ॥
निज बोली बोलत चलुबाला । धाये वायस विकल विहाला ॥
धावत थकित भई नहिं पाई । बहुरि मुरछित भवन फिरि आई॥
कोयलसुत मिलिया परिवारा । वायस काग मुरछि झखमारा॥

छन्द

निजवचनबोलतसुतचला, तबधायमिलापरिवारही॥
धाय वायस विकल ह्वै भयो थकितजबनहिं पावही॥
काग मूर्छित भवन आयो मनहि मन पछितायके ॥
कोइलसुतमिल्यो तात अपने कागरह्योझखमारिके१००॥

सो०-जसकोयलसुतहोय, यहिविधिमोकहँजीवमिले
निजघर पहुँचे सोय, वंश इकोत्तरतारउ ॥१०४॥
कोयल सुन जस शूरा होई । यहि विधि धाय मिलै मुहिं कोई॥
निज घर सुरति करैजो हंसा । तारों ताहि एकोत्तर बंसा ॥

हंस लक्षण

काग गवन बुधि छाँड़हु भाई । हंस दशा धरि लोकहि जाई॥
बोले काग न काहू भावे । कोइल वचन सबै सुख पावे॥
अस हंसा बोले बिलछानी । प्रेम सुधा सम गहु गुरुबानी॥
काहू कुटिल वचन नहिं कहिये । शीतल दशा आप गहि रहिये॥
जो कोई क्रोध अनल सम आवे । आप अम्बु ह्वै तपन बुझावे॥
ज्ञान अज्ञानकी यहि सहिदानी । कुटिल कठोर कुमति अज्ञानी॥
प्रेम भाव शीतल गुरु ज्ञानी । सत्य विवेक सन्तोष समानी॥

ज्ञानीका लक्षण

ज्ञानीसोइ जो कुबुद्धि नशावे । मनका अंग चीन्ह बिसरावे ॥
ज्ञानी होय कहै कटु बानी । सो ज्ञानी अज्ञान बखानी ॥
शूर काछ काछे जो प्रानी । सन्मुख मरे सुजस तब जानी॥
तेहिविधिज्ञानविचारमयआनी । ता कहँ कहू जान सहिदानी ॥
मूरख हिये कर्म ना सूझे । सार शब्द नहिं गुरु कहँ बूझे॥
चक्षु हीन पग विष्ठा परई । हांसी तासु कोइ नहिं करई ॥
दृगन अछत पग धरै कुठाई । ता कहँ दोष देइ नर आई ॥
धर्मदास अस ज्ञान अज्ञाना । परखे सत्य शब्द गुरु ध्याना॥
सर्व माहँ है आप निवासा । कहीं गुप्त कहिं प्रगट प्रगासा॥
सबसे नमन अंश निज जानी । गही रहै गुरु भक्ति निशानी॥

छन्द

रग काचा कारणें प्रहलाद, कस दृढ है रह्यो ॥

यद्यपि तेहि बहु कष्ट दीन्हों, अडिग हो हरिगुणगह्यो
अस धरन धरि सतगुरुगहे, तब हंस होय अमोलहो॥
अमरलोक निवास पावे, अटल होय अडोलहो १०१॥

परमार्थ वर्णन

सो०–भर्म तजे यम जाल, सत नाम लौलावई॥
चलेसत्तकी चाल, परमारथचित दै गहे॥१०५॥

परमार्थी गऊका दृष्टान्त

गऊको जानु परमार्थ खानी। गऊ चाल गुण परखहु ज्ञानी॥
आपन चरे तृण उद्याना। अँचवे जल दे क्षीर निदाना॥
तासु क्षीर घृत देव अघाहीं। गौ सुत परके पोषक आहीं॥
विष्ठा तासु काज नर आवे। नर अघ कर्मी जन्म गमावे॥
टीका पुरे तब गौ तन नासा। नर राक्षस तनले तेहि ग्रासा॥
चाम तासु तन अति सुखदाई। एतिक गुण इक गोतन भाई॥

परमार्थी सन्त लक्षण

गौ सम सन्त गहै यह बानी। तो नहिं काल करै जिवहानी॥
नरतन लहि अस बुद्धी होई। सतगुरु मिले अमरह्वै सोई॥
सुनि धर्मनि परमारथ बानी। परमारथते होय न हानी॥
पद परमारथ सन्त अधारा। गुरुसम लेई सो उतरे पारा॥
सत्य शब्दको परिचय पावै। परमारथ पद लोक सिधावै॥
सेवा करे विसारे आपा। आपा पाथ अधिक संतापा॥
यह नर अस चातुर बुधिमाना। गुन सुभ कर्म कहे हम ठाना॥
ऊँच क्रिया आपन सिर लीन्हा। औगुण करे कहे करि कीन्हा॥
तात होय शुभ कर्म विनाशा। धर्मदास पद गहो निराशा॥
आशा एक नामकी राखे। निज शुभकर्म प्रगट नहिं भाखे॥

गुरुपद रहे सदा लौ लीना । जैसे जलहि न विसरत मीना॥
गुरुके शब्द सदा लौ लावे । सत्यनाम निशदिन गुणगावे॥
जैसे जलहि न विसरे मीना । ऐसे शब्द गहे परवीना ॥
पुरुष नामको अस परभाऊ । हंसा बहुरि न जगमहँ आऊ॥
निश्चय जायपुरुषके पासा । कूर्मकला परखहु धर्मदासा ॥

छन्द

जिमिकमठबाल स्वभाय तिमि मम हंसनिघरधावई ॥
यमदूत हो बलहीन देखत, हंस निकट न आवई ॥
हंस निर्भय निडर गाजई, सत्य नाम उच्चारई ॥
हंस मिल परिवार निज,यमदूत सब झकमारई॥१०२॥
सो०-आनंदधाम अमोल, हंसतहांसुखबिलसहीं ॥
हंसहि हंसकलोल,पुरुषकान्ति छबि निरखहीं१०॥

ग्रन्थकी समाप्ति छन्द

अनुरागसागरग्रन्थकथितोहि,अगमगम्य लखाइया ॥
पुरुषलीला कालको छल, सब बरणि सुनाइया ॥
रहनि गहनि विवेक बानी, जौंहरी जन बूझि हैं ॥
परखि बानीजो गहे,तेहि अगममारगसूझिहैं॥१०३॥

ग्रन्थका सार निचोड़

सो०-सतगुरुपद परतीति, निश्चयनाम सुभक्तिदृढ॥
संतसतीकी रीति पिय कारण निजतन दहै॥१०७॥
सतगुरु पीय अमान, अजर अमर विनशै नहीं ॥
कह्यो शब्द परमान,गहे अमर सो अमरहो ॥१०८॥

सन्त धरे तिहि आस, गहे जीव अमरहिं तहाँ ॥
चिंतचेतो धर्मदास,सतगुरु चरणन लीनरहु॥१०९॥
मन अलि कमल बसाव,सतगुरु पदपंकज रुचिर ॥
गुरुचरणन चितलाव,इस्थिरघरतबहीं मिले ॥११०॥
शब्द सुरतिका मेल, शब्द मिले संतपुर चले ॥
बुन्द सिंधुका खेल, मिले तो दूजा को कहे॥१११॥
शब्द सुरतिका खेल, सतगुरु मिले लखावई ॥
सिंधुबुन्दको मेल, मिले तो दूजा को कहैं ॥११२॥
मनकी दशा बिहाय, गुरु मारग निरखत चले ॥
हंस लोक कह जाय,सुखसागर सुख सो लहै११३॥
बुन्द जीव अनुमान, सिंधु नाम सतगुरु सही ॥
कहै कबीर प्रमान, धरमदास तुम बूझहू ॥ ११४ ॥

इतिश्री भूतपूर्व कबीरनगर स्थित–रसीदपुर शिवहरवाले वंशप्रतापी महंत स्वामी श्रीयुगलानन्द बिहारी हाल कबीराश्रम ( खरसिया ) निवासी कबीराश्रमाचार्य परमार्थी वैद्य आत्मनिष्ठ भारत पथिक कबीरपंथी ग्रन्थोंके एकमात्र जीर्णोद्धारक स्वामी श्रीयुगलानन्दबिहारी द्वारा संगृहीत

अनुरागसागर समाप्त

---

श्रीः

सत्य

# कबीर सागर

## तृतीय खण्ड

जिसमें

## अम्बुसागर, विवेकसागर

और

## सर्वज्ञसागर संयुक्त है

भारतपथिक कबीरपंथी-

स्वामी श्रीयुगलानन्दद्वारा संशोधित

★

मुद्रक एवं प्रकाशकः

खेमराज श्रीकृष्णदास™,

अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,

खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग, मुंबई - ४०० ००४.

संस्करण : फरवरी २०१९, संवत् २०७५ मूल्य : १२० रुपये मात्र ।

सत्यनाम



श्री कबीर साहिब

# कबीरसागर तृतीय भागकी विषयानुक्रमणिका

★

जिसमें

## अम्बुसागर पृष्ठ १ से पृष्ठ ६७ तक है
## विवेकसागर पृष्ठ ६८ से पृष्ठ १२६ तक है
## और
## सर्वज्ञान पृष्ठ १२७ से पृष्ठ १४७ तक है
## तीनोंकी अनुक्रमणिका अलग नीचे देते हैं

## अम्बुसागरकी अनुक्रमणिका



### विवेक सागर की अनुक्रमणिका



### मोह और विवेककी कथाकी अनुक्रमणिका

इति कबीरसागर तृतीय भागकी अनुक्रमणिका

## इतिअनुक्रमणिका समाप्ता

Printers & Publishers :
Khemraj Shrikrishnadass,
Prop: Shri Venkateshwar Press,
Khemraj Shrikrishnadass Marg, 7th Khetwadi,
Mumbai - 400 004.

Web Site : http://www.Khe-shri.com
Email : khemraj@vsnl.com

Printed by Sanjay Bajaj For M/s. Khemraj Shrikrishnadass Proprietors Shri Venkateshwar Press, Mumbai - 400 004, at their Shri Venkateshwar Press, 66 Hadapsar Industrial Estate, Pune 411 013.

# सत्यनाम

सत्यसुकृत, आदि अदली, अजर, अचिन्त, पुरुष मुनीन्द्र, करुणामय, कबीर, सुरती योग, संतायन, धनी, धर्मदास, चूरामणिनाम, सुदर्शन नाम, कुलपति नाम, प्रमोध, गुरुबालापुरी, केवल नाम, अमोल नाम, सुरतिसनेही नाम, हक्क नाम, पाकनाम, प्रगट नाम, धीरज नाम, उग्रनाम, दयानामकी दया, वंश ब्यालीसकी दया

## अथ अम्बुसागर प्रारम्भः

★

### अथ प्रथमस्तरंगः

#### अघासुर युगकी कथा वर्णन

मंगलाचरण

छन्द–आदि ब्रह्म अनादि अकल अभेद अवर्न आगरं ॥
सर्व व्यापक आर्य वीरज आनन्द धामी सागरं ॥
तुव चरण रवि परकाश अविचल सकल कलि कर्मज हरे ॥
अधम जीव अघोर खल जे विना श्रम भव जल तरे ॥

धर्मदास वचन

सोरठा–धर्मदास शिर नाय, बिनय कीन्ह कर जोरिके ॥
तुम बहियां जिव आय, करहु अनुग्रह दासको ॥
तुव चरणन बलिहार, युग लेखा मोहिं भाषिये ॥
जेहि विधि हंस उबार, मर्दन कीन्हो काल को ॥

सोरठा–हंसराज कहु कन्त, जीव उबारेउ पन्थ जिमि ॥
अम्बू सागर ग्रन्थ, सो वर्णन प्रभु कीजिये ॥

सतगुरुवचन–चौपाई

धर्मदास पुरुष गुण गाऊँ । युग युग लेखा ज्ञान सुनाऊँ ॥
तुम बूझ्यो जीवन के काजा । सत्य सत्य भाषूं सब साजा ॥
आदि पुरुष सुकृत जब कहेऊँ । दाया कीन्ह पान तब दयऊँ ॥
जबै पुरुष आज्ञा मोहिं कीन्हा । होय सुकृत पुहुमी पग दीन्हा ॥
आदि अमर मन अम्बू सागर । पावे पान हंस हो आगर ॥
प्रथम अघासुर युग विस्तारा । तबै सुकृत पुहुमी पग धारा ॥
श्वेत स्वरूप कीन्ह सठिहारा । सत शब्दन भाषें संसारा ॥
गण गंधर्व मुनि भेद न पावे । नर देही की कौन चलावे ॥
पाये पान सुकृत के हाथा । सो सठिहार लीन्ह जियसाथा ॥
युग युग देह धरत हम आये । जो चीन्हा तेहि लोक पठाये ॥
घर के दूत खेद हम डारा । सब जीवन कहँ पार उतारा ॥
अभय सेतु पान है भाई । जो पावे अनभय हो जाई ॥
साधू बहुत भये संसारा । आदि अंग कोइ नाहिं बिचारा ॥
आदि आदि सब करें बखानी । आदि अंतकी हाल न जानी ॥
सबही कहें पार भये भाई । पार केरि गति काहु न पाई ॥
नाहिन साख शब्द में होई । ज्ञान नहीं पोथी में सोई ॥
नाहीं वेद पुराण बखाने । योगी जती नहीं कोइ माने ॥

शब्द खोज कीजो नर प्रानी । बिन सत शब्द बांधि यम तानी ॥
आगे अमिय लोक इक आही । तहां शब्द बैठो अति छाही ॥
ताका ज्ञान करो हो साधू । सहजहिं सुरति लगाव समाधू ॥
सहजहि युग अरु सहज प्रमाणा । पावे जीव होय निरवाणा ॥
सहज पाय जिव सहजहि तरई । काया अमर सहज सों करई ॥
सहजहि शब्द सहज गहि राखा । सहजहि दरश पुरुष अभिलाषा ॥
सहजहि अंक गुप्त है भाई । पावे जीव हंस होय जाई ॥
सहजहि पुरुष जगामग ज्योती । पाप पुण्य तेहि घर नहिं होती ॥
युग अघासुर जीवन लायी । एक करोड़ हंस मुकतायी ॥
धर्मदास मैं सत ही भाखूं । पुरुष नाम तोहि गोय न राखूं ॥

छन्द—आदि अम्बु अमर अदली अगम निगम अपार हो ॥
आनंद आर्य अचिन्त अविगत अकह अविचल सार हो ॥
कामोद कंकवत छत्रधारी मुक्ति दाता गाइये ॥
अगाध पुरुषोत्तम जु कहिये अरु मुकुट मणि कहँ ध्याइये ॥

सोरठा—पुरुष नाम अपार, धर्मनि एतक वर्णेऊ ॥
कहेउ वीश निरधार, तुम सुनियो चित लायकै ॥

इति श्रीअम्बुसागरे अघासुरयुगकथावर्णनो नाम प्रथमस्तरंगः ।

## अथ द्वितीयस्तरंगः

### बलभद्र युगकथा वर्णन

#### धर्मदास वचन—चौपाई

धर्मदास बिनये प्रभुराई । दूजे युग मोहिं कथा सुनाई ॥
तुच्छ बुद्धि हम तुम मति आगर । हंसराज भाषो प्रभु नागर ॥

#### सतगुरु वचन—चौपाई

धर्मदास बूझो मतिवाना । भाषू शब्द सत्य सहिदाना ॥

युग बलभद्र दूसरा भाखों । तुमसन गोय कछू नहिं राखों ॥
लोक वेद जिन दूर बहाई । सोइ जीव सु पुरुष मन भाई ॥
आदि नाम के सुमिरन पावा । एक चित्त मन सुरति लगावा ॥
चौदह लाख जीव पठवाई । सत्य लोक महँ बैठे जाई ॥
तिन देखा इक हंस अनूपा । षोडश रवि तहँ देख स्वरूपा ॥
तब हंसा ते पूछन लियऊ । केहि आधार यहां तुम रहेऊ ॥

लोकके हंस वचन–चौपाई

कहे हंस हंसनि सों बाता । सत्त पुरुष निज अहहिं विधाता ॥
उनका शब्द गहा चितलायी । तब पृथ्वी महँ जन्म धरायी ॥
नाम पान पाँजी मोहिं दीन्हा । यहि आधार लोक हम चीन्हा ॥
अब मैं तुम सन बूझूँ भाई । अपनी बात कहो समझाई ॥
दोहा–हम तुम कहँ भल बूझहीं, कहो हंस समझाय ।
कौन डोर चढि आयऊ, सो मोहीं देहु बताय ॥

हंस वचन–चौपाई

कहे हंस हंसन सों बाता । सत्य शब्द निज आहु विधाता ॥
अजवन बीरा दीन्हा हाथा । ताहि डोर आये हम साथा ॥
आदि पुरुष है सिरजन हारा । एकहि मूल एक है डारा ॥
हम तुम एक पुरुष के कीन्हे । अब काहे तुम अन्तर दीन्हे ॥
हम सन भेंट करो तुम आयी । अब काहे को गहर लगायी ॥
सकल हंस के पुरुष है राजा । युगनयुगन जिनजीव निवाजा ॥
निर्गुण पुरुष आहिं निर्वाना । निर्गुण नाम पान सहिदाना ॥
इतना वचन हंस समझायी । तबही हंस मिले उठि धायी ॥
युगल अंक भर कीन्ह मिलापू । भयो हर्ष तब मिट्यो सन्तापू ॥
तबै हंस बैठे रुचि आसन । आज्ञा मांगि पाय अनुशासन ॥
इतनी कथा भई तहँ भाई । चार लाख युग गये बिताई ॥

तेहि क्षण चार अंश चलि आये । आभा ताही बरणि नहिं जाये ॥
कोटि भानु शोभा अति आगर । हंसा देखि चकित भयो नागर ॥
बूझे हंस हंस सुनु बाता । इनकर नाम कहो मोहिं भ्राता ॥

लोकके हंस वचन

कहे हंस हंसा सुन भाई । एतो हंस पुरुष के आई ॥
हंसन केर अहहि सुखदाई । जगमहँ प्रगट होहि जिव लाई ॥
लोकै माहिं पुरुष के अंशा । भव महँ जाइ कहावे वंशा ॥
सोइ कहत ब्यालिश अंश अपारा । देइ पान हंसा निस्तारा ॥
अकह अंश सत्ताइस वंशा । नाम देइ यम मेटहि संशा ॥
षोडश जो हंस अंग बखानी । नाम चतुर्भुज सत की बानी ॥
राम रसाइन ऐसहि साता । सह तेजी जग नाम सुहाता ॥
ये चारों गुरु जग कढिहारा । इनकी बांह जगत हो पारा ॥

हंस बचन—चौपाई

यह सुन हंस बहुत हर्षाना । जस पंकज बिहसे लख भाना ॥
कर दंडवत चरण हिय लाई । चारों गुरुके टेके पाई ॥
भल साहिब मोहिं दरशन दीन्हा । पतित जीव आपन कर लीन्हा ॥
हम साहिब चीन्हा परतापा । जन्म अनन्त मिटा सन्तापा ॥

छन्द—दरश दे आपनो कियो मम जन्म कीन्ह कृतारथा ॥
हंस नायक तुम धनी हो मोहिं दरशकी शारधा ॥
अमर पुरुष के दरश कारण चित्त मम अभिलाष है ॥
स्वाति चातक जिमि रटत तिमि तृषा अति अकुलात है ॥

सोरठा—दर्श करायो मोहिं, युग अनन्त बिछुरत भये ॥
विनय करों प्रभु तोहिं, बेगि विलम्ब न कीजिये ॥

चारु गुरु वचन

छन्द–पुरुष आज्ञा लाय ततक्षण हंस जाय मिलाइया ॥
चरण कण्ठ लगाय हियमें हंस सो भर पाइया ॥
अमिय फल हंसन दिये भय रूप षोडश भानु हो ॥
द्वीप द्वीपन कर कुतूहल, पुष्प सज्या वान हो ॥
सोरठा–हंसहि अनन्द, रजनी गत जिमि दिवस हो ॥
कोक शोक मिट द्वन्द, धर्मदास इमि हंस सो ॥

इति श्रीअम्बुसागरे बलभद्रयुगकथावर्णनो नाम द्वितीयस्तरंगः ।

---

# अथ तृतीयस्तरंगः

## द्वन्दर युग कथा वर्णन

धर्मदास वचन–चौपाई

धर्मदास आनँद मन कीन्हा । गद्गदवाणी अति प्रिय चीन्हा ॥
और कथा कह बन्दी छोरा । हंस उबारन करो निहोरा ॥

सतगुरुवचन

सत गुरु कहै सुनो धर्मदासू । सत्य शब्द भाषूं परकासू ॥
जग द्वन्दर जब प्रगट्यो आई । पुरुष अवाज जीव बरलाई ॥
चीन्हेउ मोहिं कीन्ह तेहि काजा । दीन्हेउ नाम काल उठभाजा ॥
दोय हजार बोध जिव आये । नाम पाय तेहि लोक पठाये ॥
युगहु अखिल दश लाख बखाना । सतसत भाषूं करहु प्रमाणा ॥
पाय पान कीन्हा परकाशा । अगम निगम बैठे सुखवाशा ॥
शुभकृत सेतु हंस ले जाई । अमर देह हंसा तहँ पाई ॥
दीप कथा भाषूं सहिदानी । बैठे योग सतायन ज्ञानी ॥
सत्य अंश उन करहै नाऊ । युग युग पृथ्वी जीव मुक्ताऊ ॥
उनते बोध जीव का होयी । तिनते काल रहे मुख गोयी ॥

श्रुति उत्पन्न पुरुष जब लीन्हा । श्वास शब्दते सब कुछ कीन्हा ॥
अछप द्वीप इक गुप्त रहाई । तहँ जल रंग अंश बैठाई ॥
तिनके बहुत जीव हैं साथा । जीवन माथ देहिं वे हाथा ॥
श्वेत नाम द्वै चँवर डुलाई । कोटि हंस तहँ माथ नवायी ॥
लगी तहां मणिन की पाँती । झमक झमक जहँ बरसे स्वाती ॥
नवो रत्न मन्दिर महि लागे । हंसराज निद्रा महँ पागे ॥
युग असंख्य सहजहि चलि जाई । तब जल रंग जाग उठ भाई ॥
शठिहारन सों बूझहि बाता । मोसन सत्य कहो विख्याता ॥
हम निद्रा महँ रहे मुरझाई । कौन अंश धरणी महँ जाई ॥

### शठिहारा वचन–चौपाई

तब शठिहारन माथ नवाये । दोउ करजोर बिनय उठलाये ॥
युग द्वन्दर साहिब पगधारा । नाम कबीर हंस रखवारा ॥
जीवन पान दीन्ह जग आई । दोय हजार हंस मुकताई ॥
या मारग पहुँचे तब आई । खबर तुम्हारि कीन्ह बहुताई ॥
तब तुम निद्रा लागी स्वामी । हंसन लेइ गये सुख धामी ॥

### जलरंग वचन

कह जलरंग सुनो शठिहारा । पुरुष दीन मोहीं मग भारा ॥
सबकर उतपन कर भल जाना । हमही सत्य सुकृत है पाना ॥
साधु महन्त मोहिं पहँ आई । संग हमार लेय घर जाई ॥
हम आज्ञा युगयुग चलिआवा । मो बिन यहवां जीको पावा ॥
हम आज्ञा काहे नहिं लीन्हा । कैसे कबीर पुहुमि पग दीन्हा ॥
अब कबीर यहवां नहिं आये । कैसे जग महँ पान चलाये ॥
द्वीप एक माणिकपुर नाऊ । आदि पुरुष तहँ आप रहाऊ ॥
रूप रेख तिनके कुछ नाहीं । वर्णत वचन बनत नहिं ताहीं ॥
हीरा नखत सु माथे राजे । अनहद ध्वनि तहँ अतिप्रिय गाजे ॥

कोटिन रवि इक रोम लजाई । अमिय स्वरूप हंस मन भाई ॥
अविगत अचल अभयपद देवा । षोडश सुत तेहि लावहि सेवा ॥
नाम सुपान पुरुष कर सारा । पावत जीव होहिं भव पारा ॥
सत्य शब्द का करे निवेदा । ताको मिले अभय पद भेदा ॥
सत्य शब्द ले बोले भाई । सत्य शब्द ले बैठे जाई ॥
सत्य खोज सतही ले रहई । सत्य शब्द तेहि काल न दहई ॥
जाके हियमें सत्य प्रकाशू । ताकहँ लोक होय सुख बासू ॥

दोहा-लोक लोक सबही कहें, कौन दिशा है लोक ।
लोक लाज कुल तोरही, ताहि ताल नहिं रोक ॥

चौपाई

उत्तर दिशा लोक है भाई । अगम पुरुष जहँ आप रहाई ॥
ताहि नाम पावे परमाना । कोटिन मध्य हंस कोइ जाना ॥
सतगुरु मिले जेहि देहि लखाई । सुरति निरन्तर ध्यान बताई ॥
मकर तार तहँ लागी डोरी । पहुँचे हंस नाम की सोरी ॥
ताहि लोक के नाम अपारा । षोडश नाम ताहि अनुसारा ॥

छंद-अजर अमर अपार अस्थिर अकह माणिक पुर अहे ॥
आनन्द कन्द विशाल निर्मल पुष्प दीपं बिराज है ॥
सत सुख सागर अभय पद रहत लोक मनोहरं ॥
सन्तोष षोडश नाम संज्ञा लोक वर्णन को करं ॥

सोरठा-ऐसे पुरुष अपार, तिन आज्ञा हम पाइये ।
बैठि पताल मँझार, सन्धि दिखावन तब गये ॥

इति श्रीअम्बुसागरे द्वन्दरयुगकथावर्णनो नाम तृतीयस्तरंगः ।

# अथ चतुर्थस्तरंगः

## पुरवन युगकी कथा

चौपाई

सुनत धर्म मन भयउ अनन्दा । कहेउ वचन भेटेउ दुख द्वन्दा ॥
शब्द तुम्हार सुनत प्रिय लागा । दर्शन पाय मोह मद भागा ॥
अकथ कथा सुनि चित मम मोहा । तुम पारस हम हैं जिमि लोहा ॥
आगे और कहो मोहिं स्वामी । चरण गहूँ प्रभु अन्तर्यामी ॥

सतगुरु वचन

धर्मदास युग लेख सुनाऊँ । पुरवनयुग जिमि जगमहँ आऊँ ॥
अंश सजीवन नाम हमारा । हारा पान दीन्ह संसारा ॥
पुरवन युग की आयु बखानी । लाख पचास वर्ष सहिदानी ॥
सुकृत हम घर घर फिरि आये । हंस कोई नाह शब्द गहाये ॥
जहां तहां कर देवन सेवा । आदि पुरुषको लखे न भेवा ॥
आदि पुरुष निर्गुण है भाई । तीन लोक जिव रह दुहकाई ॥
माया त्रिगुण सेव जग राचा । देही धर सकलौं जग नाचा ॥
पारब्रह्म जो ताहि न चीन्हा । प्रेम पुरुष जिन रचना कीन्हा ॥
ध्रुव प्रहलाद सकल जग बीते । शिव सनकादि भये जग रीते ॥

साखी-गण गन्धर्व मुनि देव सब, इन्द्रादिक औ शेष ।
शारद आदि न पानऊं, खोजत थके गणेश ॥

चौपाई

योगी यती तपी को आहीं । सिद्ध सकल काल धर खाहीं ॥
विरला जीव कोइ नामहि जाना । जापर दया पुरुष अनुमाना ॥
हीरा पान जीव कहँ दीन्हा । सात लाख हंसा संग लीन्हा ॥
तिनमें सो पचीस नशाये । शब्द डोर परतीति न लाये ॥
जीव पचीस गये यम द्वारा । फिर गर्भहि लीन्हे अवतारा ॥

मूल मंत्र तिन गहि नहिं पाई । ताते जीव गयो डहकाई ॥
जो कोइ हंसा होय हमारा । सो देखे पुरुष दरबारा ॥
सहस वर्ष आयु जिव कीन्हा । सकल हंस ज्ञानी सँग लीन्हा ॥
ज्ञानी संग सब चलिवे लीन्हा । सत्य लोककी यात्रा कीन्हा ॥
पहुँचे तहां जहां जन रंगू । जल शोभा तहां उठत तरंगू ॥
जल रूपी तहां छत्र विराजे । सिंहासन तहँ अति प्रिय साजे ॥
श्वेत स्वरूप देखि सब ठोरा । आभा कहां कहूँ तेहि ओरा ॥

जलरंग वचन

तब जल रंग कहे को भाई । कौन अंश तुम कहां सिधाई ॥
हम निद्रा महँ रहे अलसाई । तुम हंसन ले लोक सिधाई ॥
अमर पुरुष पाँजी बैठारा । संग होय होवे जिव पारा ॥
हाथ हमार दीन्ह टकसारा । तुम मोहिं मेटि गये कस पारा ॥
पुरुष वचन कस मेटहु भाई । विन बूझे हंसन ले जाई ॥

सतगुरु उवाच

कह ज्ञानी सुनो जल रंगू । हम तुम एक नालके संगू ॥
हंसराज सो या मग तोहीं । सो हम जान कहा कहु मोहीं ॥
हम तुम एक आदि कोउ भाई । कस संशय आपन चित लाई ॥
हम तो युगन युगन मग आये । अमर पुरुष का संधि बताये ॥
सोई संधि आय हम पासा । कस आपन घट आनउ त्रासा ॥
हम लघु तुम जेठे मम भ्राता । एक और सुनिये विख्याता ॥
कुष्टम पक्षी एक रहायी । तिन हमसों इक वचन सुनायी ॥
युग असंख्य बहु गये बितायी । ता दिनकी उन कथा सुनायी ॥
पक्षी कहे नयन हम देखा । युगन युगन का कहूँ विशेषा ॥

जलरंग वचन

तब संशय जल रंग जनायी । सुनिके वचन बोल अकुलायी ॥
महा प्रलय होवे जब भाई । पक्षी कौन अधार रहाई ॥

सो वृत्तान्त कहो मोहिं भाषी । पक्षी मोहिं दिखाओ आँखी ॥

सतगुरु वचन–चौपाई

तब ज्ञानी अस कहे समुझाई । कुष्टमपक्षी कहँ बात सुनाई ॥
महा प्रलय जब होवे भाई । स्वर्ग मृत्यु पाताल जलाई ॥
ता पीछे गति अग्नि विशेषा । चौदह भुवन झला हल देखा ॥
उलट पुलट पृथ्वी हो जायी । स्वर्ग रसातल जात नशायी ॥
ब्रह्म लोक वैकुंठ न रहेऊ । शिव इन्द्रादिक शूर नशि गयेऊ ॥
तीन लोक जल बूडे भाई । कुष्टमपक्षी तब जल उतराई ॥
सो पक्षी किहि भाँति रहाई । नीर माहिं जस फेन तराई ॥
ऐसे पक्षी ता दिन कहई । तीन लोक मुख भातर रहई ॥
ब्रह्मा हर शंकर मुख माहीं । आदि भवानी तहां समाहीं ॥
मच्छ कच्छ अरु शेष वराहू । ध्रुव प्रहलाद इन्द्र मुख माहू ॥
सुर नर मुनि गंधर्व जेते । यक्ष सराहू सब मुख तेते ॥
चन्द सूर उडगण सब झारी । ऋषि अरु नाथ सिद्ध अधिकारी ॥
ये सब कुष्टमके मुख जायी । तीन लोक जिव तहां बचायी ॥

दोहा–तीन लोक चौदह भुवन, औ वैकुंठ पसार ।
जा कहँ तपसी तप करे, सो सब मुखहि मँझार ॥

चौपाई

महा प्रलय भयो सहस सत्ताइस । कुष्टमपक्षी एक रहाइस ॥
यह उत्पन्न तहां ते जानो । तुम जल रंग सत्य कर मानो ॥
सत्य अधार सत्य वह रहई । सत्य पुरुष अस्तुति नित करई ॥
पुरुष अंश पक्षी है सोई । महा प्रलय जानत सब वोई ॥
अगम निगम सुमिरन भल करई । नाम अधार सदा चित धरई ॥

---

१ जलमय । २ अग्निकी ज्वाला ।

जलरंग वचन–चौपाई

कह जल रंग सुनो तुम वाणी । पक्षी दर्शन सुरति समानी ॥
अब तुम मोहि संग ले जाई । पक्षी मो कहँ देहु दिखाई ॥
तब जल रंग भेजि शठिहारा । चलो हंस सब संग हमारा ॥

ज्ञानी वचन चौपाई

यह सुनि ज्ञानी वचन उचारा । शब्द विमान होहु असवारा ॥
उभय विमान चढे मिलि दोई । चल विनोद हंस संग सोई ॥
ज्ञानी अंश चले सब आगे । तब जलरंग संग सब लागे ॥
क्षणमें गे पक्षी के पासा । लोक निरन्तर जहां निवासा ॥
दोय अंश तहँ ठाढ़ रहाये । पक्षी कहँ तब जाय जनाये ॥
पक्षी बैठे आसन मारी । युग पचास की लागी तारी ॥

गण वचन

शब्द केर गण दीन्ह जगाई । खुल गइ तारी देखत लाई ॥
तब गण अस्तुति विनवै लीन्हा । बारम्बार दण्डवत कीन्हा ॥
ज्ञानी अंश पुरुष के आगर । अरु जलरंग साथ तेहि नागर ॥
कोटिन हंस संग तिन लाई । पौरि तुम्हार ठाढ भये आई ॥

कुष्टमपक्षी वचन

ज्ञानी जल रंगहि लाव बुलाई । तिनके साथ और नहिं आई ॥

गण वचन

दोई अंश सुनो मति मानी । पक्षी वचनन सुनुहु प्रमाणी ॥
सेना सकल छांडि तुम देहू । दोय अंश दर्शन तब लेहू ॥
उभय अंश पहुँचे तब जाई । पक्षी दर्शन ततक्षण पाई ॥
आदर बहुत भांति तिन कीन्हा । सिंहासन रचि बैठक दीन्हा ॥
दृष्टि पसार देखि जलरंगू । बहुत ज्योति पक्षी के अंगू ॥
जिमि कोटिन रवि शशि ले छाई । बहुत प्रकाश वरणि नहिं जाई ॥

कुष्टमपक्षी वचन–चौपाई

पक्षी कहे सुनो हो ज्ञानी । केहि कारण तुम यहां सिधानी ॥
तुम तो अंश पुरुष के आगर । केहि कारण पग धारेउ नागर ॥
बड़े भाग दर्शन हम पावा । अति आनँद मोहिं चित आवा ॥
हम तो पक्षी मत नहिं जाना । तुम हो करता आदि पुराना ॥
तुम्हरी सुधि कोई नहिं पाई । कीन्ह कृतारथ मन्दिर आई ॥

जलरंग वचन

तब जलरंग बूझे चितलाई । केतिक युग ते यहां रहाई ॥
एकत संशय मम उर आवा । सत्य वचन मोहिं भाषि सुनावा ॥
आदि अन्त जानो तुम बाता । मोसन भाषि कहो विख्याता ॥
महा प्रलय पुरुष जब कीन्हा । कौन अधार कहां तुम लीन्हा ॥
उलटि पलटि नभ धरणी जाई । तब सब जीव कहां ठहराई ॥
जहवां जीव वास सब लाई । सो थल मो कहँ देहु बताई ॥

कुष्टमपक्षी वचन

सुन जलरंग वचन मैं भाषों । युगकी कथा गोय नहिं राखों ॥
महा प्रलय होवे जेहि बारा । तीनहु लोक होय जरि छारा ॥
पृथ्वी जरी होय भरि पानी । स्वर्ग पताल जलहि जल आनी ॥
दश योजन लग उठत तरंगा । महा प्रलय देखत जिव भंगा ॥
तीन लोक जल परलय कीन्हा । हम तो जलमहँ पग नहिं दीन्हा ॥
जैसे फेन जलहि उतराना । ऐसे बैठि पुरुष धरुं ध्याना ॥
उतपति परलय भाषि सुनाये । हम कबीर के अंश कहाये ॥

दोहा–जब पक्षी मुख बोलिया, अचरज भयो प्रसंग ।
कोटि रूप लखि आपनो, दृष्टि देखि जलरंग ॥

चौपाई

कला देखि चक्रित मन भयऊ । मन का गर्व टूटि सब गयऊ ॥
तब कबीर निरखे चितलाई । जलरंग कौतुक देखि लजाई ॥

जलरंग वचन–चौपाई

लीला देखि शीश तर दीन्हा । अरु कबीरकी अस्तुति कीन्हा ॥
देही धर हम रहे भुलाना । सत पूरुष हम तुमहिं न जाना ॥
आदि अन्त तुम पुरुष हमारा । अस्तुति करे जलरंग अपारा ॥
हम आपन मनमें बड होई । नाम कबीर पुरुष है सोई ॥
यह कौतुक देखा हम ज्ञानी । तुमही पुरुष और नहिं आनी ॥

हंस वचन

अस्तुति करें हंस सब ठाढे । कौतुक देखि हर्ष चित बाढे ॥
धन्य धन्य तुम आदि गोसाईं । पक्षी देह कहो किमि पाई ॥
यही वचन तुम कहो विचारा । तो तुम कर्ता सिरजन हारा ॥

कुष्टमपक्षी वचन–चौपाई

पक्षी कहे सुनो हो भाई । पूरव कथा कहूँ समुझाई ॥
हम कबीर आज्ञा नहिं कीन्हा । ताते पक्षी तन धर लीन्हा ॥
देह धरे भये युग दश लाषा । सत्य वचन हम तुयसन भाषा ॥
सहस सताइस परलय कीता । हम आगे इतना युग बीता ॥
हो जलरंग कहां तक कहऊँ । शून्य असंख्य द्वीपमें रहऊँ ॥
वहां बैठि प्रलय हम देखा । सबही बड़े जीव जल पेखा ॥
पुरवन युगकी कथा सुनाई । देख हंस हर्षित हो आई ॥
हीरा पान जल रंगहि दीन्हा । कुष्टम दर्शन जिहि दिन लीन्हा ॥
हिलि मिलि भेद एककर जानो । तीनेहु अंश बहुत सुख मानो ॥
अब पक्षी के नाम सुनाऊँ । सात नाम मैं प्रगट बताऊँ ॥

साखी–जिव सागर आनंदसुख, हंस उबारन धाय ।
प्रलय देख विस्मित हृदय, दायर कुष्टम नाम ॥

जलरंग वचन–चौपाई

जल रङ्ग पायउ हीरा पाना । संशय गत हर्षित मन आना ॥
तुम लीला स्वामी अवगाहा । अंश हंस नहिं पावत थाहा ॥

छन्द–तुव चरित्र अगम अपार पावन लखि न काहूको परो ॥
मम चित्त गर्व घटाववे गुण देह पक्षी को धरो ॥
तुव कला जानि परी न हमको धरेउ अमित स्वरूप हो ॥
वहां पुरुष ह्यां हंस हो हम जान हंसन भूप हो ॥
सोरठा–चरण कमल बलिहार, कीन्ह दण्डवत विनय बहु ॥
हरषित भये अपार, रंक नरहि जिमि निधि मिले ॥

सकल हंस वचन–चौपाई

खड़े हंस सब पौरि दुवारा । तिन सब हिलिमिलि विनती धारा
कारण कौन दर्श नहिं पाये । तुम हंसन नायक प्रभु आये ॥
गे शठिहार हंस ले आवा । अरु पक्षी के दर्श करावा ॥
देखि रूप अति हर्ष समाना । तब ज्ञानी की अस्तुति ठाना ॥
छन्द–तुम आदिपुरुष अखंड अविचल पतित पावन नाम हो ॥
जीव बन्धन काट फन्दन जात लै निज धाम हो ॥
योग जीत कबीर ज्ञानी नाम जग महँ गाइया ॥
अकह अभय अपार तुम गति भाग जिन पद पाइया ॥
सोरठा–जुरे हंस बहु बृन्द, फूल रहे अरविन्द जिमि ॥
गति यामिनि सुख कन्द, अरुण चरण लखि अमिय कर ॥
विनय कीन्ह बहु वार, पद पंकज को ध्यान धरि ॥
हे प्रभु तुम बलिहारि, करै दण्डवत हंस सब ॥

इति श्रीअम्बुसागरे परवनयुगकथावर्णनं नाम चतुर्थस्तरंगः ।

---

## अथ पंचमस्तरंगः

### अनुमानयुग कथा वर्णन

धर्मदास वचन–चौपाई

धर्मदास टेके गुरु चरणा । अगम कथा भाषेउ प्रभु वरणा ॥
बहुतक ग्रन्थ सुनायउ काना । अम्बूसागर ग्रन्थ बखाना ॥
सुनि हितवचन मोहिं प्रियलागा । चातक स्वाति पाय जिमि पागा॥

युग अनुमान कहो मोहिं भाषी । और शब्द कहँ चित अभिलाषी

सतगुरु वचन—चौपाई

धर्मदास मैं भाषि सुनाऊं । आदि रु अंत प्रसंग बताऊं ॥
जा दिन पुरुष बोल अनुसारा । एक शब्द ते कीन्ह पसारा ॥
वाणी ते माया उतपानी । तीन पुत्र तिन कीन्हा ठानी ॥
ब्रह्मा विष्णु महेश्वर कीन्हा । तीन लोक तिहु पुत्रन दीन्हा ॥
ब्रह्मा हाथ चार दिय वेदा । तीन लोक महँ करत न खेदा ॥
नेम धर्म अरु सकल पुराना । यह ब्रह्मा सब कीन्ह बखाना ॥
विष्णु देव मृत्यु लोकहि आये । तुलसी माला पंथ चलाये ॥
माला गले शंखिनी डारा । तीन लोक महँ है बड भारा ॥
राजा प्रजा सेव सब करई । विष्णु इष्ट सुमिरण मन धरई ॥
सेवत आये भये अनुरागी । करत संहार कहत हम त्यागी ॥
जार बारि तन कष्ट कराई । योग पन्थ यहि भाँति चलाई ॥
योगी यती तपी संन्यासी । आपन मुख कह हम अविनाशी ॥
शिव महिमा भाषत संसारा । दक्षिणदिशि महिमा अधिकारा ॥
तीन पुत्र तिहुँ लोक सपूता । माता सों इन कीन्ही धूता ॥
माया कह माने नहिं कोई । आपहि आप कहावे सोई ॥

आद्या लीला

तब आद्या मन कीन्ह विचारा । तीन पुत्र भये सिरजन हारा ॥
माया मन झंखे बहु बारा । तीनों पुत्र भये बरियारा ॥
नाम हमारा दीन्ह छिपाई । तीन लोकमहँ अदल चलाई ॥
तब आद्या घट सुमिरण लावा । आपन माहिं आप निरमावा ॥
देवी अपनो मथ्यो शरीरू । शक्ति तीन उपर्जा बल वीरू ॥
तिन का नाम कहूं समझाई । रम्भा सुचिल रेणुका आई ॥
इन हिलि मिलि गण गंधर्व मोहा । राग रागिनी बहुविधि शोहा ॥
कर आभूषण गंधर्व लीन्हे । सकल साज तिन हाथन दीन्हे ॥

तिनका नाम कहूँ समझाई । बीनर बाबत मूरा लाई ॥
सितार कमायच अरु मुहचंगा । ताल मृदंग नफेरी संगा ॥
जलतरंग औ मुरली किंकिन । मोहर डपंग मंडल स्वर तिन्तिन॥
बाजे और छतीसों कहिया । गंधर्व हाथ साथ सब लहिया ॥
मास महीना फागुन सोई । ऋतु वसन्त गावें नर लोई ॥
टेसू वनस्पती सब फूले । अम्बा मौर डार सब झूले ॥
चातक धारहिं वचन सुहावन । हंस कोकिला कोयल पावन ॥
पिया पिया चातक प्रिय कहहीं । विरहिनि लाग मदन दुखजरहीं ॥
अंग अबीर गुलाल चढाये । नाना भाँतिन अतर लगाये ॥
कामिनि हेतु काम लव लाये । अंग अनंग बहुत विधि छाये ॥
या चरित्र माया उपराजा । तीनहु लोक राग बल गाजा ॥
जो सुन राग विषय मन धरहीं । बार बार ते यम घर परहीं ॥
अविगत मोह राग रे भाई । राग सुनत जिव गे डहकाई ॥
माया ध्वनि रागन को बांधा । जासे तीन लोक घर सांधा ॥
प्रथमहिं राग षष्ट विधि गावा । तिन रागन का नाम सुनावा ॥

* रागोंके नाम

दोहा–भैंरौं और हिंडोल अति, पंचम राग कवस्त ।
दीपक मेघमलार भल, कीन्ह देव सब दस्त ॥

---

* यद्यपि इसमें ऐसा लिखा है किन्तु समयके फेरसे लेखकोंकी कृपासे ग्रंथोंकी जो दुर्दशा हो रही है उसका न कहना ही अच्छा है इस कारण से अन्य संगीत की पुस्तक से राग-रागनियों के नाम यहाँपर लिखते हैं ।

षट्राग–दोहा

राग प्रथम भैरों कह्यो, मालकोस पुनि जान ।
हिंडोल राग तीजो कहत, दीपक राग बखान ।।
श्रीराग कवि कहत हैं, मेघ राग पुनि सार ।
षट् रागन के नाम यह, कहें भेव विस्तार ।।

चौपाई

कीन्ह उचार राग तेहि वारा। ऋषि मुनि मोह देव सब झारा॥
माया डारी सब पर फांसी। योगी यती तपी संन्यासी॥
ततक्षण देवी रची धमारा। इकसठ रागिनि तहां उचारा॥

## रागोंकी रागिनियोंके नाम

भैरों की धुनि भैरवी, बंगाली बैरारि।
मधुमाधव अरु सिन्धवी, पांचों विरहिन नारि॥
टोडी गौरी गुनकली, कुंमायत पहिचान।
और कोकब को कहत हैं, मालकोसकी जान॥
रामकली पटभंजरी, और कहै देवसाख।
ये नारी हिंडोल की, ललित बिलावल राख॥
देशी नट अरु कान्हरो, केदारो काभोद।
दीपक की प्यारी सबै, महा प्रेम परमोद॥
धनासरी आसावरी, मारू बहुरि वसंत।
श्रीराग की रागिनी, मालश्री है अन्त॥
भोपाली अरु गूजरी, देशकार अरु मल्लार।
बंक वियोगिनी कामिनी, मेघरागकी नार॥

## छहों रागोंके गुण

भैरों शूर शूरता गहै, कोल्हू चलै जु धाय।
मालकोस तब जानिये, पाहन पिघिलि बहाय॥
चलै हिंडोलो आपते, सुनत राग हिंडोल।
बरसे जल घन धार अति, मेघराज के बोल॥
श्रीराग के सुर सुने, सूखो वृक्ष हराय।
दीपक दीयो बरि उठै, जो कोउ जानै गाय॥

## रागोंका समय

पिछले पहरें निशि समै, भैरों राग बखान।
मालकोस तब गाइये, जब सब निकसे भान॥
एक पहर जब दिन चढै, करै राग हिंडोल।
ठीक दुपहरी के समय, दीपक के सुर बोल॥

तेहि रागिनि के नाम सुनाऊँ। भिन्न भिन्न कर प्रगट बताऊँ॥

## इकसठ रागिनियोंके नाम

१ धनाश्री २ जैतश्री ३ मालश्री ४ श्री ५ गुजरी ६ विरावरी ७ आशावरी ८ जैतसारी ९ गन्धारी १० वरारी ११ सिन्धूरी १२ पञ्चश्री १३ गौरी १४ जौनपुरी १५ विहागरा १६ कान्हरा १७ केदार १८ मारू १९ मलार २० धूरिया मलार २१ गौड मलार २२ गडमलार २३ भूपाली २४ सुरकली २५ श्रीमाल २६ धूरकली २७ रामकली २८ रूपकली २९ गुनकली ३० सुहेली ३१ मोरवी ३२ पूर्वी ३३ कैरवी ३४ भैरवी ३५ कान्हारा ३६ तिल्लाना ३७ कल्यान ३८ यमन ३९ कल्यानी ४० सजीवनी ४१ सेंधु ४२ मधुगंध ४३ सावन्त ४४ ललित ४५ सोरठ ४६ मरहठी ४७ टोडी ४८ नट ४९ गोड ५० विभास ५१ सुदेश ५२ सूहा ५३ परज ५४ काफी ५५ चन्द ५६ सुधराय जेंजेंवन्ती ५७ चरनायका ५८ सारंग ५९ बंगला ६० नायका ६१ खम्माच।

चौपाई

मोहे ब्रह्मा विष्णु महेशा। नारद शारद और गणेशा॥
शंकर जग महँ बड अवधूता। काम जार हो रहे सपूता॥
कहँवा भूल गये अनुरागी। काम विरह तन उठ उठ जागी॥
मदन अनूप राग है भाई। सत पुरुषन सों विचलन लाई॥
सुरपति सनकादिक मुनि जेते। काम कला सब नाचे तेते॥

---

श्रीराग चौथ पहर, जौलौं दिन अथवाय।
मेघराज तबही भलो, जबै मेघ बरसाय॥
फागुन में ये राग सब, जागत आठों याम।
वसंत ऋतुमें निशि समय, एकयाम विश्राम॥
भैरों शरद कुसुप शिशिर, अरु हिंडोल वसंत।
दीपक ग्रीषम हेमश्री, मेघ सुपावस अन्त॥

देखत छबि मोहे सब झारी । सुर समान माया गहि मारी ॥
सकल देव जब गे अकुलाई । काहू कर मन थिर न रहाई ॥
बूझो पंडित सुर मुनि ज्ञानी । जा महिमा तुम करत बखानी ॥
वेद पुराण भागवत गीता । पढि गुणि कहैं काल हम जीता ॥
तीनों गुण ईश्वर ठहरायी । माया फन्दा ताहि बनाई ॥
कैसे ताहि होय निस्तारा । जिन नहिं माना शब्द हमारा ॥
राघवानन्द नाम युग केरा । माया चरित कीन्ह तेहि बेरा ॥
तेहि द्विराग का कीन्ह उचारा । सकल जीव इमि मार पछारा ॥
अब हंसन का भाषूँ लेखा । धर्मदास चित करो विवेका ॥

छन्द-ताहि युग हम आय जीवन दीन्ह अमृत पान हो ॥
सहस सात उबारि जीवन जाय लोक समान हो ॥
पुरुष दर्शन कीन्ह ततक्षण रूप अविचल पाइआ ॥
पुष्प शय्या वास कराइ फल अमृत ताहि चखाइआ ॥

सोरठा-तुम बूझहु धर्मदास, युग युग लेखा भाषेऊँ ।
चीन्हे कोइ इक दास, जेहि सतगुरु दाया करें ॥

इति श्रीअम्बुसागरे अनुमानयुगकथावर्णनो नाम पंचमस्तरंगः ।

---

## अथ षष्ठस्तरंगः

### धीर्यमाल युगकी कथा

#### धर्मदास वचन-चौपाई

धर्मदास कहे सुनो गोसांई । अगम कथा तुम मोहिं सुनाई ॥
माया चरित दृष्टि हम आया । तीनों गुण बहु देव भुलाया ॥
अब जो और होय सो भाषो । समरथ मोसे गुप्त नहिं राखो ॥

#### सतगुरु वचन

आगे ज्ञान कही समझाऊँ । मूल नाम की कथा सुनाऊँ ॥
मूल नाम ना काहू पासा । पावे मूल कहावे दासा ॥

कलियुग साधू बहुत कहाये । मूल शब्द कोइ विरले पाये ॥
मूल शब्द ताकर है नामा । जाते वीर हंस भये कामा ॥
रंग रंगीले हंस भये तीनी । पक्षी वीरा हंस प्रवीनी ॥
वीरा दीन हंस पहुँचाई । महा पुरुष के दरश कराई ॥
सोई नाम साधु जो पावे । योनी संकट बहुरि न आवे ॥
द्वीप असंखन करे बिलासा । जरा मरण की छूटी त्रासा ॥
जो वह नाम साधु नहिं जाना । सो साधू भये जिवत मशाना ॥
अकह नाम कैसे कै जानी । लिखि नहिं जाय पढो नहिं वानी॥
कलियुग साधु कहैं हम जाना । झूठ शब्द मुख करहिं बखाना ॥
कोटिक नाम जपो रे भाई । कौनिहु भाँति युक्ति नहिं पाई ॥
नाम अनन्त अहो संसारा । किंचित है निज शब्द हमारा ॥
देही नाम सबै कोइ जाना । नाम विदेह विरल पहिचाना ॥
काया धरि हम घर घर आये । काया नाम कलामल पाये ॥
ताते मोहिं ओछ कर जाना । आप आप में करे बखाना ॥
दिल कहँ कहे कबीर कबीरू । पांचों तत्त्व तीन गुण थीरू ॥
दिल महँ बोलत ब्रह्म बखाना । अन्तकाल होवे जिव हाना ॥
दिल महँ बोलत कौन ठौरा । भेद बतावहु साधू मोरा ॥
ठौर न जान कहे कुछ औरा । सो जिव मार काल झकझोरा ॥
दिल भीतर महँ करे विवेका । करे खोज तब आगे देखा ॥
रचि पचि धुनि माथो गहिमारा । बिन सतगुरु नहिं होवे पारा ॥
नाम सों बंधि सुरति है भाई । सुरति निरति मिलि शब्द समाई॥
सुरति औ निरति शब्द करे ठौरा। सो साधू होवे निज मोरा ॥
तीनों गुण सों बांधे हेता । अन्तकाल होवे सो प्रेता ॥
माथे टोपी तिलक बनायी । माला गले सरवनी लायी ॥
कहे सकल सब हमही पाये । पेलि जीव यम द्वारे आये ॥

अपने मुख हो गुरू कहावे। गुरु कहि कहि सब जीव भुलावे ॥
गुरु शिष्य दोनों डहकायी। विना शब्द जो गुरू कहायी ॥
अथवा पांच नाम नहिं जाना। नरियर मोरहि भय विज्ञाना ॥

दोहा—बहुत गुरू संसार में, कोइ न लागे तीर।
सभी गुरू बदि जायँगे, जाग्रत गुरू कबीर ॥

चौपाई

मूल दीप कर श्वेतहि पाना। धीरज मान जु भाषेउ ज्ञाना ॥
वीरा नाम विरोधिक भाई। धीरमाल युग जीवन पाई ॥
लाख हंस कागज महँ राखा। सुरति नाम जीवन सों भाषा ॥
नाम अचिन्त पुरुष कर सारा। यही नाम जीवन रखवारा ॥
पुरुष नाम खोजो जो भाई। पावे हंस लोक कहँ जाई ॥
लोक वेद की छोडे आशा। अगम पान का कर विश्वासा ॥
आगम आन अगम के हाथा। आदि अन्त वे सब के साथा ॥
वीरा नाम जीव उपदेशा। सतगुरु आये काटि कलेशा ॥
जो हंसा सतगुरु कहे करई। आज्ञा मान चरण कहे धरई ॥
आर्य पुरुष के दर्शन पावे। षोडश भानु रूप जहँ आवे ॥
दक्षिण औ पूरव पुनि पश्चिम। तीनहु खूँट देख हम सूक्षम ॥
उत्तर दिशा धनी को देशा। तहां न व्यापे यम का लेशा ॥

छंद—आर्य पूरुष दीन्ह अ ज्ञा जीव कारण आइया ॥
युग धीर्यमाल में दीन्ह वीरा लक्ष हंस पठाइया ॥
अमर लोकहि लीन्ह वासा पुरुष के दर्शन लहे ॥
रूप षोडश भानु होकर अमिय आसन तहँ अहे ॥

सोरठा—पुष्प मनोहर वास, कर कंकण शिर मुकुट मणि ॥
माथे छत्र विलास, कला कुतूहल हंस मिलि ॥

इति श्रीअम्बुसागरे धीर्यमालयुगकथावर्णनं नाम षष्ठस्तरंगः।

---

# अथ सप्तमस्तरंगः

## तारण युग कथा वर्णन

### धर्मदास वचन–चौपाई

धन्यभाग तुम मम गृह आवन । दर्शन दीन्ह कीन्ह मोहिं पावन ॥
मोहि अधम कह कीन्ह सनाथा । बार अनेक नवायउ माथा ॥
खोजी होय शब्द पहिचाना । जाग्रत हंस होय निर्वाणा ॥
जिन जीवन पर तुम्हरी दाया । तिन कह दीन्हेउ लोकपठाया ॥
और हंस जिन सेवा लाये । युग युग महिमा मोहिं सुनाये ॥

### सतगुरु वचन–चौपाई

सुकृति सुनो लोक की बानी । आदि पुरुष अरु बैठे ज्ञानी ॥
बीरा पुरुष दीन्ह मोहि हाथा । जाते हंसा होय सनाथा ॥
तारण युग परमाना आनी । चार लाख युग आयु बखानी ॥
युग आयुर्बल जीव का भाई । सहस एकादश वर्ष रहाई ॥
उत्तम पंथ रहे इक राई । धर्मदास तेहि कथा सुनाई ॥
योगी यती तपी गहि बांधे । देखत ताहि कोठरी धांधे ॥
संन्यासी ब्राह्मण वैरागी । देखत ताहि क्रोध अतिजागी ॥
षटदर्शन कहँ देखत जरई । जरत हुतास ज्वाल घृत परई ॥
ब्राह्मण माथे टीका ठाटा । लेख परी घस ताहि ललाटा ॥
ब्राह्मणको ले सांटी मारे । तोर जनेऊ आगी डारे ॥
वेद पुरान पढन नहिं पाई । भक्ति राह मर्याद उठाई ॥
या विधि शासत जीवन देई । हरि हरि नाम न कबहूँ लेई ॥
वनके मृगा चरन नहिं पावे । द्विपद चतुष्पद धरि धरि खावे ॥
मारे जीव जन्तु बहुतेरा । कोइ न बचे मार बहु घेरा ॥
ऐसा अधम चाल तेहि राजा । जीवन कष्ट देखि भइ लाजा ॥
तब अपने चित कीन्ह विचारा । व्यंग कौन आयउ संसारा ॥

वटका वृक्ष तासु दरवाजा । ताहि तरे हम आसन छाजा ॥
आसन मारि ध्यान महँ पागे । एकहि सुरति नाम चित लागे ॥
यहि अन्तर इक वृषली आई । नाम सगुनिया तासु रहाई ॥
आय ठाढि भइ साहिब आगे । विनय कीन तब पूछन लागे ॥
कौन देश कौने अस्थाना । यहवां साहिब कीन्ह पयाना ॥
जो मांगो सो देहुँ मँगाई । ले भिक्षा आगे चल जाई ॥
विषम द्वार यह राय अपारा । राजा दर्शन करहि तुम्हारा ॥
राजा नाम सुने जो पाई । तुर्तहि गर्दन मारिहि आई ॥

दोहा–इकइस पौंरि के भीतरहि, तहँ बैठे हैं राय ।
कोई गम नहिं पावई, रानी संग रहाय ॥

### स्वामी वचन–चौपाई

स्वामी कहे सुनो तुम बाता । राजहि जाय कहो विख्याता ॥
दरश हमार करे जब आई । अगम निगम हम भेद बताई ॥
राय परीक्षा हमरी पावे । छूटे हंस लोक कहँ जावे ॥
तुम जिन शंका मन महँ आनो । निश्चय वचन हमारा मानो ॥
वचन हमार राय पहँ जाहू । सकल पौंरिया बश तुम आहू ॥
सुनतहि वचन माथ तब नाई । तब भीतर कहँ दीन्ह रिंगाई ॥
पहिली पौंरि उलंघेउ जबहीं । दूजी पौंरि पहुँचि गयो तबहीं ॥
तीजे पौंरि पै पूछन लीन्हा । चौथी पौंरि जाय पग दीन्हा ॥
पांचे पौंरि संग मिलि गयऊ । बहु आधीन छठी तब भयऊ ॥
सातों पँवरि भयउ उठि ठाढा । आठों पौंरि हरष चित बाढा ॥
नवीं पौंरि पर माथ नवाई । दशे पौंरिया आदर लाई ॥
पौंरि इकादश पूछे बाता । द्वादश पौंरि देख कह माता ॥
त्रयोदश पौंरि वचन अनुसारा । चौदह पौंरि लागि कछु बारा ॥
पन्द्रह पौंरि देखि वश भयऊ । षोडश पौंरि देख मन रहेऊ ॥

सत्रह पौंरि सांच तब बोला । पौंरि अठारह अन्तर खोला ॥
उनइस पौंरि सबन अधिकारा । बीसइ पौंरि कीन्ह पैठारा ॥
इकइस पौंरि ठाढ जब भयऊ । छरीदार तब पूछन लयऊ ॥
कह काहे भीतर चल जाई । कौन काज तहँ राय रहाई ॥
राजा गर्दन मारै तोरी । सत्य वचन माने दृढ मोरी ॥

वृषली वचन--चौपाई

स्वामी रोकि बैठे दरवाजा । तिनकी खबर कहो तुम राजा ॥
भल जानो तो जाय जनाऊ । नातरु फेरि बहुत पछताऊ ॥
छरीदार संशय मन लाई । अगम बात यह जाय सुनाई ॥
सोच करन तब लाग शरीरू । राजा वंग बडे बल बीरू ॥
सत्य वचन तुम कहो विचारी । गर्दन मारे राव हमारी ॥

सगुनिया वचन--चौपाई

कह वृषली सुन बात हमारा । मे तो करता सिरजन हारा ॥
अनहित कर जनि बोलहु वानी । राजहि खबर कहो तुम जानी ॥

छरीदार वचन--चौपाई

छरीदार भीतर चलि गयऊ । कीन्ह प्रणाम ठाढ तब भयेऊ ॥
दोउ कर जोरि बोल सत भावा । सिंह एक द्वारे तुम आवा ॥

राजा वचन--चौपाई

तब राजा बूझन अस लावा । केहि कारण सन्मुख तुम आवा ॥
अपनी बात कहो समझाई । केहि कारण तुम हमलग आई ॥

छरीदारवचन--चौपाई

आय सगुनिया हमरे पासा । वचन एक हम सो परकाशा ॥
स्वामी एक बैठा है द्वारा । तिन राजा कह बेग पुकारा ॥
साहिब दरशन देन कहँ आये । तेहि कारण हम इहां सिधाये ॥
जो महाराजा आयसु पाऊँ । जाय सिखावन ताहि सुनाऊँ ॥

राजोवाच–चौपाई

सुनतहिराय कोप चित लायो । वह स्वामी को मार डरायो ॥
कहै सगुनिया वचन प्रकाशी । तो कहँ राय दिवावे फांसी ॥
यह सुनि छरीदार उठ धाये । वृषली कहँ तब वचन सुनाये ॥
भाग सगुनिया कहै संदेशा । छांडहु द्वार लेहु परवेशा ॥
राज कोप बहु चिन्तन कीन्हा । छरीदार मोहिं मारन लीन्हा ॥
तुम यहवां ते बेग सिधाई । और देश महँ बैठो जाई ॥
पल इक महँ अब होय पुकारा । यहां न रहना होय तुम्हारा ॥
कहूं पुकार सुनो तुम बाता । पल महँ राजा करिहै घाता ॥
साहिबसन चित कीन्ह विचारा । घट भीतर तब सुरति सम्हारा ॥
उठा कोप पुनि कीन्ह समाई । हम तो राय उबारण आई ॥

साखी

जो अन इच्छा होय मम, तुर्त होत है नाश ॥
पुरुष वचन सम्हारके, अन्तहि करहु निवास ॥

चौपाई

यह तो जीव अबुध अज्ञानी । समझ अपन घट नाहिं न आनी ॥
छोडि द्वार तब दीन्ह रिंगाई । पुरी बाहर हम पहुँचे जाई ॥
मान सरोवर जहँ इक सागर । बैठेउ जाय तहां प्रभु नागर ॥
नगर लोक जल तहां भराई । सागर दीरघ अति रहे भाई ॥
सोई जल राजा कहँ जाई । क्षितिया लौंडी ले पहुँचाई ॥
राजा रानी सबै अन्हाये । तेहि वृषली कर जल सब पाये ॥
सवा प्रहर दिन चढे प्रमाणी । तब लग राय नींद अलसानी ॥
उठत राय क्षितिया चलजाई । कंचन कलशा जलकहँ जाई ॥
धोय मांज जल घडा बुडावा । लीला एक तहां हम लावा ॥
घडा तासु बाहर नहिं होई । क्षितिया लौंडी तब अति रोई ॥

तब वृषली बहु कीन्ह पुकारा। तुरतहि राउ डार मोहिं मारा ॥
गगरी भरे उठे नहिं भाई। बहुत नारि देखन कहँ धाई ॥
सरवर भीतर लोग अन्हाई। सो सब गागर आन उठाई ॥
दश अरु बीस पचीसक आये। गागर को सब लोगहि धाये ॥
बजत हँकार लगे तब कीन्हा। रंचक घडा उठन नहिं लीन्हा ॥
सवा पहर दिन ऐसही बीता। क्षितिया त्रास जीव बहु कीता ॥
कैसे जल तें घडा निकारी। भयउ अबेर राउ मोहिं मारी ॥
अपने चित अति मानेउ त्रासा। जलमहँ घडा पकड को गांसा ॥
सागर आवत जन्म बिताई। कौन चरित्र आज भौ भाई ॥
सो दो मानुष तहवां आये। तेऊ हार बहुत सकुचाये ॥
खबर पाय राजा चलि आये। रानी सुनिके अचरज पाये ॥
तब राजा कहँ बात जनाई। सुनके राय रहे अरगाई ॥
तब राजा चित कीन्ह बिचारा। यह तो बात अगम ब्यवहारा ॥
चला राय तब बाहर आवा। सकल लोग कहँ वचन सुनावा ॥
सुनिके लोग भये अज गूता। घडा उठावन चले सपूता ॥
राजा तबही तुरंग मँगाई। हो असवार चले चतुराई ॥
नेगी पंडित और प्रधाना। देखत सकल चले अकुलाना ॥
सहस वीस मानुष तब जाई। राजा संग चले सब धाई ॥
नगर लोग सबहि चलि आये। बालक त्रिया वृद्ध सब धाये ॥
कुंजर रांकर राय नगावा। बांधो घट बहु लोग लगावा ॥
सहस वीस मानुष पचिहारे। किंचित घडा टरत नहिं टारे ॥
तबही राय बहुत हँकराई। सहसन कुंजर दीन्ह लगाई ॥
फीलवान आंकुश गज मारा। मारत गज तब देह चिकारा ॥
नेक घडा नहिं उठत उठाये। राजा मन तब हार लजाये ॥
चार लाख मानुष रह ठाढा। देखत सकल अचम्भा बाढा ॥

छन्द–राय देखत भयउ व्याकुल वार बहु जल निरखही ॥
आज अचरज भयो अति हि घडा गहि यह कोहही ॥
सहस कुंजर लाग मानुष नहीं किंचित सो टरे ॥
कीन्ह बहुत उपाय हारेउ अभय देखत जिव डरे ॥
सोरठा–मंत्री करहु विचार, हम घट अति संशय भयो ॥
व्याकुल चित हमार, कीजे कौन विचार अब ॥

चौपाई

मंत्री कहे सुनो महराजा । कहत वचन आवत है लाजा ॥
साधु एक आया दरवाजा । तापर आप कीन्ह इतराजा ॥
सो स्वामि यह चरित दिखायी । हमरे चित अस बर्तत आयी ॥
यहि अन्तर एक कीन्ह तमाशा । सो लीला भाषूं धर्मदासा ॥
सरवर भीतर वृद्ध रहाई । सुवा रूप धरि बैठे जाई ॥
देखि पारधी ततक्षण आवा । बाण खैंच मारन कहँ धावा ॥
उलटा बाण पारधिहि लागा । लगत बाण पारधी भागा ॥
दोय चार सो जाय जनाये । देखन ताहि लोग पुनि आये ॥
दृष्टि पसार सुवा कहँ देखा । सुन्दर सुवा वरणि अति लेखा ॥
कर गुलेल लै गुला चढाये । टूटा गुला खंड हो जाये ॥
दो चार दश वीस पचासा । सुवा केर सत दीख तमाशा ॥
तारी ठोंके ढोल बजाये । सुवा नहीं तहँ उडे उडाये ॥
तबहीं लोग राय कहँ जाई । सुवा एक यहि वृक्ष रहाई ॥
बहुत रूप ताकर महराजा । कीन्हेउ शोर बजायउ बाजा ॥
तहवां तें नहिं सुवा उठाये । बैठि वृक्ष आनँद मन लाये ॥
गागर छोड राय चल गयऊ । आज्ञा राय पारधी दयऊ ॥
जाय पारधी सुवा फँदावो । जो मांगो सो तुरततहि पावो ॥
चले पारधी तुरतहि गयऊ । सूवा पर फंदा तिन्ह नयऊ ॥

जब फन्दा बहु डारे भाई। तबही सुवा छोट हो जाई॥
जब वह फन्दा छोटा कीन्हा। तबही रूप बडा धर लीन्हा॥
बहुतक यत्न पारधी लाये। ताहि सुवा हाथ नहिं आये॥
सकल पारधी रह तब हारी। राजा सों तब कहें पुकारी॥
सुवा न आये हमरे हाथा। चाहो तुरत कटाओ माथा॥
बहुतक रूप सुवा के अंगा। राजा देखि भये चित भंगा॥
सात रोज ऐसहि जब बीता। राजा अन्न सुधा नहिं कीता॥
हम कहँ देख कीन्ह बड प्रीती। तब मोहिं उठी सत्यकी रीती॥
तब मैं उडा तहां तें भाई। राजा हाथहि बैठ्यो जाई॥
ततक्षण रानी देखी आई। देखि सुवा बहु सुंदरताई॥
जगमग ज्योति बहुत उजियारा। उन सुन रहन सुवा की धारा॥
रानी तब भीतर चलि जाई। अरु राजा कहँ बात जनाई॥
सुनतहि राय हर्ष चित आवा। जैसे रंक महा निधि पावा॥
वेगि राय तहवां पगु धारा। देखि सुवा हर्षेउ बहु वारा॥
राजा चीन्ह सुवा वहि आही। जा कारण हम कष्ट कराही॥
सरवर वृक्ष सुवा मैं देखा। सोई सुवा यह आय विशेषा॥
कंचन केरि कटोरी लीन्हा। दूधे भात ता भीतर कीन्हा॥
रानी लेकर आई धाई। उडकर सुवा हाथ पर जाई॥
तबही पकड प्रेम हित लावा। रानी राजा बहु सुख पावा॥
तब राजा मंत्री हकरायो। चतुर सोनारहि तुरत बुलायो॥
ततक्षण राव कीन्ह ज्योनारा। आये सुनारा बहुत तेहि वारा॥
राजाढिग गये चतुर सोनारा। तिन सो राजा वचन उचारा॥
अहहु प्रवीण चतुर अधिकाई। पिंजरा देहु हमार बनाई॥
सहस पचीस मुहर तब दीन्हा। पिंजरा तबै बनावन लीन्हा॥
सवा लाख हीरा लग मोती। दीन्हेउमणि तिनकी जडज्योती॥
सात हजार लाल की पाती। शोभा बहुत कहूं का भांती॥

बारह वर्ष बनावत गयऊ । तबलग सुवा सहजही रहेऊ ॥
भयो सिद्ध पिंजरा पुनि जबहीं । लेकर सुवा नायउ तेहि तबहीं ॥
रानी तबै पढावन लीन्हा । रामहिराम पढी मन दीन्हा ॥
तबही सुवा वचन अनुसारी । चेतहु राय प्रेत यम धारी ॥
इक दिन विछुरन सब सों होई । मोह प्रीति छांडो सब कोई ॥
वाणी यही कहत बहु बारा । दूजा वचन नहीं चित धारा ॥
राजा रानी कहत विचारा । सुवा बोल कुबोल पुकारा ॥
बार बार हम ताहि पढावा । राम राम चित एक न लावा ॥
इक दिन राय अहेरहि गयऊ । लीला एक तहां हम कियऊ ॥
राजा ऐसे चेतत नाहीं । तबै विचार कीन्ह मनमाहीं ॥
दीन्ही आज्ञा अग्निको जबहीं । महलनमहँधधकिउठीसो तबहीं ॥
सून्यो रानी आगी लागी । सुत कलत्र ले रानी भागी ॥
भयो तेज अति अग्नि अपारा । जरत द्रव्य सकलौ भण्डारा ॥
हीरा मोती लाल अपारा । पाट पटम्बर जर सब छारा ॥
जरे ऊंट अरु हस्ती घोरा । रानी देख कीन्ह बड शोरा ॥
राव साज वस्तु सब जरई । हाहा रानी रोवत फिरई ॥
और जरे औरो जर जाई । सुवा जरे हम बड दुख पाई ॥
बारह वर्ष सुवा को भयऊ । सुवा जले मम प्राणहि गयऊ ॥
राव शिकार ते फिरी अयऊ । देख्यो राजा सब जरि गयऊ ॥
राजा बूझे रानी बाता । मोसों कहो सुवा विख्याता ॥
पिंजरा सुवा जरा कै बांचा । सोई वचन कहो मोहिं सांचा ॥
यह सुनि रानी रोवन लागी । जरयो सुवा भयो मोर अभागी ॥
सुनिके राय मोह बड लायी । सकल लोग कहँ लीन्ह बुलाई ॥
खोजो सुवा जाव सब कोई । देखत ताहि हर्षित मन होई ॥
सुनतहि लोग चले बहु धाये । डारेउ जल तब अग्नि बुझाये ॥

अवर सकल भये जर छारा । पिंजरा कहँ लागी नहिं झारा ॥
पिंजरा भीतर सुवा रहायी । बोलत उहै वचन चितलायी ॥
राजा रानी देखत धावा । हाथ सुवा गहि अंक लगावा ॥
राजा रानी करै विचारा । यह तो कर्त्ता सिरजन हारा ॥
रानी राव चरण लपटाये । नगर लोक सब देखन धाये ॥
विनती राय कीन्ह तेहि वारा । सुनहु सुवा तुम वचन हमारा ॥
बारह वर्ष रहे हम पासू । अपनी मता कहो निज आंसू ॥
कै तुम करता पुरुष विदेही । कारण कौन धरी यह देही ॥
द्रव्य जरेकी चिन्ता नाहीं । यह संशय व्यापा घटमाहीं ॥
सबी जरचो कछू नहिं बांचा । तुम्हरी देह लगी नहिं आंचा ॥
तातें तुम हम चीन्हा स्वामी । सत्य कहो भो अन्तर्यामी ॥

सुवा वचन

बोल सुवा कहे सुन राजा । चेतहु नातर होत अकाजा ॥
युगन युगन जग आयो राया । तुम्हरे काज लोक तें धाया ॥
ते राजा बड मूर्ख गँवारा । तातें हम यह ख्याल पसारा ॥
हम वट तर तुम द्वारे आई । कहेउ सगुनिया खबर पठाई ॥
तब तेहि राजा मारण धावा । भाग सगुनिया हमलग आवा ॥

साखी

धाय सगुनिया आयऊ, खबर कही हम पास ॥
वेगी तहां ते हम चले, सरवर कीन्ह निवास ॥

चौपाई

तेहि क्षण क्षितिया जल कहँ आई । लीला एक तहां हम लाई ॥
सरवर भीतर गागर थम्भा । आगे डार धर ध्यान अरम्भा ॥

---

१ आशा । यहां आशय सिद्धांत से है अर्थात् राजा पूछता है कि तुम्हारा सिद्धांत क्या है सो मुझसे कहो । २ हो । ३ नहीं तो ।

साखी वचन

एते ख्याल न चेतेऊ, तोहि बांध्यो यमराज ॥
नाम राय गहो तुम, नातरु होय अकाज ॥

चौपाई

जीव काज आये तुम द्वारा । तुम अचेत नहिं चेत भुवारा ॥
सुवा भेष हम महलन आवा । रत्न जडित पिंजरा तुम लावा ॥
राम राम तुम मोहि पढाई । हम कहै राय चेत यम आई ॥
अगम वचनको गम नहिं कीन्हा । यहि विधि तो हम परचो दीन्हा ॥
इतना ख्याल कान्ह यहि जागा । तौऊ न चेतहु बडे अभागा ॥

राजा बंग वचन

छंद–धाय राजा चरण गहे तुम पुरुष सिरजनहार हो ॥
हम देह नर अज्ञान हैं प्रभु हंसनायक सार हो ॥
आदि अंत अनादि पुरुष भाग बड दर्शन दियो ॥
करब आज्ञा शीश धरि हम आय सब अघ हर लियो ॥
सोरठा–कहो आपनो नाम, हंस वरण अब कीजिये ।
कौन द्वीप तुम गाँव, सुवा भेष तजि रूप धरु ॥

सतगुरु वाक्य–चौपाई

सुवा भेष तजि भयो निनारा । ततक्षण रूप आपनो धारा ॥
सुनहु वचन तुम राय हमारा । सत्यलोक तें हम पगु धारा ॥
नाम कबीर हमारा होई । तोकहँ बोधन आयो सोई ॥

राजा बंग वचन–चौपाई

देहु मुक्ति मोहिं नाम गोसाईं । हर्षित भयो रंक की नाईं ॥
पृथ्वी तज हम लोकहिं जायें । आदि पुरुष के दर्शन पायें ॥
ततक्षण राजा दूत पठाई । भांति भांति सोनार बोलायी ॥
कंचन महल बनायो राजा । शोभा ताहि अधिक छबि छाजा ॥

कंचन केर सिंहासन आही। हीरालाल लगे बहु ताही॥
लाय सिंहासन तहां धरावा। छत्र चँदोवा सुभग तनावा॥
साहेब लेय तहां बैठायो। रानी राय चरण लपटायो॥
राजा औ दश रानी जानो। चतुर पुत्र तिन केर बखानो॥
पुत्री पांच रूप अति शोभा। देख स्वरूप ताहि मन लोभा॥
हीरादे जेठी तेहि रानी। कंचन झारी जल भरि आनी॥
दूजी कनकदे तेहि नाऊं। माथ नवाय बैठे ढिग आऊं॥
तीजी सुन्दरदे चलि आई। साहिब माथे फूल चढाई॥
चौथी मणिकदे भल होती। ज्यों तारागण चमके ज्योती॥
पंचम सत्य कुँवरि है नाऊं। हाथे पंखा वायु डुलाऊं॥
छठवीं रानी लक्ष्मी नावा। चन्दन अगर घीसि करलावा॥
रुक्मादे सप्तम जो रानी। मधुर वचन बोलत शुभ वानी॥
सोनादे आठों चलि आई। साहिब चरन पलोटन लाई॥
मुक्तिदेइ नवमी कर नामा। तिन सतगुरु कहँ कीन प्रणामा॥
दशवीं सनकदे तेहि नाऊं। पग पग अन्तर वन्दन आऊं॥
ग्यारहवीं थीं जनक कुमारी। साहिब सों विनती चित धारी॥
द्वादश रत्नादे कह दीन्हा। पल पल चरण केरि रज लीन्हा॥
त्रयोदश मदनदेइ तेहि नामा। देखत तासु लज्जित हो कामा॥
साहिब सों सब प्रीति लगाई। भक्ति भाव इच्छा बहुताई॥
त्रोदश रानिन सो मत कियऊ। साहेब की गति जान न पायऊ॥
प्रथमहि बेटी वरणि न जाई। हंस कुँवरि तेहि नाम कहाई॥
दूजी बेटी रूप कुमारी। साहिब चरण गहे चित धारी॥
तीजी मान कुँवरि तेहि नामा। दर्शन पाय भयो विश्रामा॥

---

१ हीरादेवी का अपभ्रंश है देशी बोलीमें प्रायः स्त्रियोंके नामके साथ कुँवरि ओटेदेवी आदि शब्द लगे रहते हैं वही देवी शब्द बोलनेमें कहीं तो "दे" कहीं "देई" आदि हो जाता है।

चौथे तारा कुँवरि बखानी । गुरु चरणनमें सो लपटानी ॥
पंचम कुशल कुवरि तेहि रानी । बहुत स्वरूप अहहि बड ज्ञानी ॥
पुत्री पांच सुरति इक जाना । आगे कहुं पुत्र परमाणा ॥
चार पुत्र राजाके आगर । पांचो सुरति एक मत नागर ॥
प्रथमहि वत्सराज तेहि नाऊं । साहिब ऊपर चँवर ढराऊं ॥
दूजे कक्षराज तेहि नाऊं । सुमति सुधर्म वसे तेहि ठाऊं ॥
तीजे मेघराज बड ज्ञानी । पल पल चरण वन्द गुरु आनी ॥
चौथे तेजराज अब भाषो । साहिब केर चरण अभिलाषो ॥
चारौ चरण वन्दना कीन्हा । साहिब दर्श हर्ष चित लीन्हा ॥
आठ बहू तब ही चलि आई । साहिब चार कंठ हिय लाई ॥
येते जीव सुमति सब देखा । तासों तब हम वचन विशेषा ॥
तुम तो राव सुमति चित लावा । लघु दीरघ जीवन समुझावा ॥
तुम तो होहु थान सब लेहू । सुरति निरति चरणन चितदेहू ॥
राजा तबहि सिखावन माना । चौका सजकर कीन्ह प्रणामा ॥
चंदन घिस अरु महल लिपाई । अतर कपूर सुगन्ध धराई ॥
छत्र जडाऊ अति तहँ सोहा । दीवाल गिरी देखत मनमोहा ॥
मणिन जडित सिंहासन आई । मेवा अष्ट युक्ति सों लाई ॥
गज मोतिनकी चौक पुराई । कंगूरा सु हजार बनाई ॥
पीताम्बर धोती तहँ आना । सात हाथ के पान प्रमाणा ॥
तीन हाथ तिन की चकराई । श्वेत मिठाई तहां धराई ॥
हस्ती सम नरियर अस्थूला । एता कहूं के तोहि मूला ॥
आरति साट कंगूर करिया । चौका मध्य लाय सौ धरिया ॥
साहब बैठ सिंहासन जबही । जगमग ज्योति भई अति तबही ॥
ततक्षण साज लोक से आवा । अनहद बाजे तहां बजावा ॥
पुत्री पुत्र बहु संग रानी । राय समेत बंदगी ठानी ॥

हाथ नारियल सबहिन लीन्हा । साहिबके आगे धर दीन्हा ॥
कीन्ह प्रणाम दंडवत लाई । बार बार चरणन लपटाई ॥
बहुत भांति सो चौका धारा । अनहद बाजे बाज अपारा ॥
तिनका तोरेउ जल तब लीन्हा । सीख पान सबहिन कहँ दीन्हा ॥
अभी भक्त राजा भल कीन्हा । भक्ति शिकारी मनमहँ दीन्हा ॥
सकल जीव कीन्हे परनामा । अब साहिब सुधरे सब कामा ॥
छंद-अति प्रेम राजा कीन्ह तब जब पाय पान परवान हो ॥
गद्गद गिरा तन पुलक होई तब विनय अस्तुति ठान हो ॥
हंस नायक परम लायक आय प्रभु दर्शन दियो ॥
काग पलट मराल कर भव सिन्धु बूडत गहि लियो ॥
सोरठा-सतगुरु चरण मयंक, जित चकोर नृप निरखही ॥
कीन्ह मोह निश्शंक, जरा मरण दुख मिट गयो ॥

सतगुरुवचन-चौपाई

राज वंग भल करनी लावा । राज गुमान सकल विसरावा ॥
अधम चाल सब दीन छुडाई । हंस चाल धर लोक सिधाई ॥
ऐसी भक्ति करे जो प्राणी । हंस होय निज शब्द समानी ॥
तीस जीव इकतीसो राजा । पाये नाम सुधर तिन काजा ॥

छंद-अमिय अंश जे पाय हंसा ते चले सतलोक हो ॥
ताहि काल न बाट रूंधत पहुँचहीं निःशोक हो ॥
ताहि बहिया संग चल इकतीस हंसन ले चले ॥
आर्य लोकमें पाय वासा पुरुषके दर्शन लये ॥

सोरठा-देख्यो लोक भुआर, सतगुरुके चरणन परे ॥
पाये रूप अपार, षोडश रवि लग अंग जित ॥

इति श्रीअम्बुसागरे तारणयुगकथावर्णनं नाम सप्तमस्तरंगः ॥

# अथ अष्टमस्तरंगः

## अखिलयुगकथावर्णन

चौपाई

धर्मदास के बन्दी छोरा। जीव अधर्मी कुटिल कठोरा ॥
पतित उधारण नाम तुम्हारा। पतित जीव कहँ पार उतारा ॥
तुम्हरी दया पाय प्रभु स्वामी। नर नारी होवे सुख धामी ॥
अब कछु आगे भाषु सुनाऊ। सतपुरुष जनि मोहि दुराऊ ॥
आगे ज्ञान कहो अनुसारी। जा विधि जीवन कीन्ह उबारी ॥
कौन शब्द ले कालहि मारो। कौन शब्द ले हंस उबारो ॥
कौन शब्द ले राखव पासा। कौन शब्द होवे जिव वासा ॥

सतगुरु वचन–चौपाई

शब्द मलंग काल गहि मारा। सार शब्द ले जीव उबारा ॥
सुरति डोरि ले राखब पासा। आर्य शब्द होवे जिव वासा ॥
चार शब्दका भाषेउ भेदा। धर्मदास तुम कीन्ह निषेदा ॥
बहुतक साध जायँ डहकाई। जीव काल कर भेद न पाई ॥
योगाभ्यास जब उतपति कीन्हा। सर्व बीज प्रमाणा दीन्हा ॥
सर्व बीज प्रमाणा आई। चौदह हाथ थान लंबाई ॥
अठारह गागर केर जस गोरा। तादिन नरियल अस हम मोरा ॥
युगहु अखिल दशलाख बखानी। द्वादश में जीवें भल प्राणी ॥
नाम धनुष मुनि ऋषी रहाई। तहां जाय दीन्हा तिन पाई ॥
गति तिन का भाषू परतीती। त्र्योदश सहस गये युग बीती ॥
ऊर्द्धमुखी पंचाग्नि तपाये। प्राण पुरुष ब्रह्मांड चढाये ॥
बैठे देह नयन अनि क्षीणा। साहिब देख बहुत बल हीना ॥
तब हम ताहि बूझ चितलाये। केहि कारण तुम कष्ट कराये ॥

का कर सेवा केहि जप करहू । काहि ध्यान अन्तर्गत धरहू ॥
सो तुम मोहिं सुनावहु भाई । अगम अगोचर भेद बताई ॥

धनुषमुनिवचन–चौपाई

मूल वस्तु कारण तप कीन्हा । अगम पुरुष सेवा चित दीन्हा ॥
अजपा जाप जपू चित लाई । सत अभ्यन्तर ध्यान धराई ॥
मर्कंडेय प्रलय हो जाहीं । धनुष मुनी देखत हम ताहीं ॥
उतपति प्रलय देखा बहु बारा । कीन्ह कष्ट नहिं सांच विचारा ॥

सतगुरु वचन–चौपाई

कीन्ह तपस्या कष्ट अपारा । तुम तो चोर कालके चारा ॥
तप तें राज नर्क है भाई । फिर फिर जन्म धरे भव आई ॥
बहुतक तपी भये संसारा । अन्तकाल यम कीन्ह अहारा ॥
मूल भेद तुम नाहिन जानी । कष्ट करत देही भव आनी ॥
वह साहिब नहिं कष्ट बतावा । सुखदाई हो अग्नि बुझावा ॥
होइ निष्कर्म नाम आराधो । सत्य भक्ति सतगुरु की साधो ॥
अमर लोक महँ पहुँचो जाई । आर्य पुरुषके दर्शन पाई ॥

धनुषमुनिवचन–चौपाई

तुम तो और लोक रचि लीन्हा । तप अरु योग झूठ सब कीन्हा ॥
और पुरुष तुम तहां बतावा । हमरे चित एकौ नहिं आवा ॥
लोक तुम्हारा मोहीं दिखाऊ । वचन तुम्हार सत्य मन आऊ ॥
तब मैं गहूं तुम्हारे चरणा । छूटे मोर जरा अरु मरणा ॥

सतगुरु वचन–चौपाई

यह सुनि साहिब चले रिंगाई । लेकर मुनि कहँ लोक सिधाई ॥
देखि दृष्टि हंसनकी पांती । युथ युथ हंस बैठे बहु भांती ॥

धनुषमुनि वचन–चौपाई

तब मुनि गहे धनी के पाऊ । अब साहब मोहि लोग दिखाऊ ॥

सुफल जन्म भयो कृतारथ । पावन कीन्ह भयो शुभ स्वारथ ॥
चलहु गोसाईं अब हम चीन्हा । देहु पान आपन कर लीन्हा ॥

सतगुरु वचन–चौपाई

मुनि कहँ लाय वेग भवसागर । ततक्षण शब्द गहे चित नागर ॥
माला ताहि गले महँ दीन्हा । श्रवण शरवणी बांधन लीन्हा ॥
यम सों तिनका तोरेउ भाई । हृदय शुद्ध करि पान पवाई ॥
धनुष मुनी लीन्हा परमाना । चाखत पारस कीन्ह पयाना ॥
काया त्याग जु दीन्ह रिंगाई । पुरुष लोक महँ बैठे जाई ॥
हँसहि हंस मिल सब संगा । शब्द पाय भये निर्मल अंगा ॥

धनुषमुनिवचन–चौपाई

चूक भूल अब मेटु हमारा । तुम जीवनके तारणहारा ॥
यह तो लोक अक्षय तुम राखा । अगमनिगम तेहि गम नहिं भाषा॥
सुर नर मुनि कोई नहिं पावे । तीन लोक जिव काल फँसावे ॥
दुनियां माया मोह फँदाना । राग रंग निशि वासर साना ॥
तबहुँ न चेतत मूढि गँवारा । पकडि पकडि यम मारे धारा ॥
निर्गुण नाम भाषि तुम दीन्हा । ताहि नाम बिरले कोइ चीन्हा ॥
तीनों गुणका बड़ा पसारा । जप तप योग यज्ञ मन धारा ॥
पुरुष भक्ति कोई नहिं जाने । आप आपको ब्रह्म बखाने ॥
घट महँ काल विषय वट पारा । कैसे हंस पहुँचे दरबारा ॥
लोक लोक भाषें नर लोई । लोक मर्म जानै नहिं कोई ॥

दोहा–धन्य नारि अरु नाम धनि, सर्व बीज निज आन ।
जा प्रतापतें लोक महँ, पहुँचे पुरुष ठिकाण ॥

चौपाई

नरियल उतपति मोहिं सुनाओ । कैसे वृक्ष ताहि निर्माओ ॥

सतगुरु–वचन

निगम दीपते नरियल आया । दीप संदली गुप्त रहाया ॥

जलखंडी तहँ वासा लीन्हा। तहँवां जाय गम्य हम कीन्हा ॥
जलखंडी कहँ मारा जबहीं। ताहि देह मथि काढेउ तबहीं ॥
तब नरियल हम आन जुगावा। यत्न यत्न सों वृक्ष बनावा ॥
प्रथम वृक्ष फल लागे पांचा। सत्य सत्य मानो तुम साचा ॥
पहिलहि फल बांधो कहँ आवा। धर्मदास के हाथ धरावा ॥
जम्बु द्वीप थान बैठाई। देहि पान तब पन्थ चलाई ॥
उत्तर दिश तिनकी गुरुवाई। तहां चाल रुग्वेद चलाई ॥
वंश बयालिस तिन के सारा। हंसन खेल उतारहि पारा ॥
कोटिवाणी हम तिनकहँ दीन्हा। जगत जीव कहँ निर्मल कीन्हा ॥
दूजे फल बंकेजी पावा। करनाटक महँ पंथ चलावा ॥
प्लास द्वीप तिन की गुरुवाई। बहुत जीव तिन्ह लेहि बचाई ॥
पूरव दिशा ताहि बैठारा। यजुर्वेद तहँ मता पसारा ॥
वंश सताइस तिन के जाना। वाणी तिन टकसाल बखाना ॥
कर्नाटक इक शहर अपारा। तहां बैठि तिन ज्ञान पसारा ॥
तीजे फल मणिपुर तब जाई। सहतेजी के हाथ धराई ॥
शाल्मलि द्वीप ताहि करनामा। पश्चिम दिशा अहै सो ठामा ॥
तहवां मता अथर्वण वैदा। सात वंश तिन कहूं निषेदा ॥
बीजक वाणी पंथ चलावे। सार शब्द दे हंस बचावे ॥
चौथा फल दरभंगा जाई। राय चतुर्भुज हाथ धराई ॥
कुशा द्वीप तिनका बिस्तारा। दक्षिण दिशा ताहि बैठारा ॥
साम वेद मारग तहँ जानी। षोडश तिन के वंश बखानी ॥
वाणी मूल ताहि हम दीन्हा। सकल हंस आपन कर लीन्हा ॥
पांचएँ फल हैं हमरे पासा। लोक बैठि चौका परकाशा ॥
वाणी आर्य हंस कहँ दीन्हा। सकल हंस आपन कर लीन्हा ॥
जब जब हम संसारहि आये। वाणी लाय हंस मुक्ताये ॥
वीरा नाम हंस जिन पावा। सोई हंस लोक पहुँचावा ॥

यही नाम है अगम अपारा। जाने जीव उतर भव पारा॥
छंद—जगत घर घर गुरु कहावत कालके बन्धन परे॥
शिष गुरू दोई डाल फांसी विषम सरवर ते जरे॥
चार गुरू संसार हैं यम तासु निकट न आवई॥
ताहि गुरू जिन पाव वीरा काल शिर तेहि नावई॥
सोरठा—बहुन गुरू संसार, ठांव ठांव भर्मंत फिरे॥
जाग्रत गुरू हमार, ताहि काल देखत डरे॥

इति श्रीअम्बुसागरे अखिलयुगकथावर्णनं नाम अष्टमस्तरंगः।

---

## अथ नवमस्तरंगः

### विश्वा युगकथा वर्णन

धर्मदासवचन—चौपाई

यह सुनि धर्मदास विहँसाना। धाय धरे जिमि रंक समाना॥
धरे न धीर चक्षु चल वारी। बार बार चरणन चित धारी॥
भयो अधीन अधिक मनमोहा। तरुण उदय पंकज जिमि सोहा॥
मोहि अधम तुम कीन्ह कृतारथ। और गुरू लागे केहि स्वारथ॥
आगे आनी मोहिं सुनाओ। आपन जान मोहिं चेताओ॥

सतगुरु वचन—चौपाई

धर्मदास बूझो तुम ज्ञाता। सकल कथा भाषूं विख्याता॥
भासूं विश्वा युग परभाऊ। पुरुष आज्ञा निकट बुलाऊ॥
आर्य द्वीप पुरुष रहिवासा। ततक्षण गये तहां हम पासा॥
तहवां जाय गम्य हम कीन्हा। आदि पुरुष जहँ बैठक लीन्हा॥
आसन मार बैठे तहँ आपू। दर्शन पाय छुटा त्रै तापू॥
कला अनन्त रूप अधिकाई। कोटिन रवि एक चिकुर लजाई॥
प्रथम अवाज पुरुष अनुसारा। माया पास जाय शठहारा॥
तीन लोक माया कर वासा। जीवन फांस डारि करे त्रासा॥

ताकी खबर लेहु तुम जाई। तीन लोकमहँ अदल चलाई॥

शठहार वचन—चौपाई

तब शठहार विनय उठ कीन्हा। साहब आज्ञा हम कहँ दीन्हा॥
माया लग हम जाय सिधाई। वस्तु आपनी कहो बुझाई॥
होय अधीन जाहि तें माया। सो साहब कीजे मोहिं दाया॥

पुरुष उवाच—चौपाई

शब्द हमार धरौ चितलाई। यही तत्त्व माया मुरझाई॥
जाहु वेगि जनि लावहु बारा। जीवन कष्ट भयो अधिकारा॥

शठहार वचन—चौपाई

परम पुरुष जब वचन उचारा। ततक्षण गे माया के द्वारा॥
ताहि द्वार गण बैठि रहाये। माया सों तब जाय जनाये॥
देवी ततक्षण लीन्ह बुलाई। तब शठिहार बैठ तहँ जाई॥

देवीवचन—चौपाई

बूझे देवी मन चित लायस। कौन देश शठिहार रहायस॥
कौन पुरुष तुम कहँ पठावा। सो तुम हम कहँ वचन सुनावा॥

शठहार वचन—चौपाई

कह शठिहार सुनो तुम माया। सत्यलोक तें मैं चलि आया॥
पुरुष मोहि ढिग तोर पठाये। तुम तो चपल सकल जग खाये॥
जीव जोर कर धर धर मारा। फन्द लगाय पकर यम द्वारा॥
जबहि दशहरा आवे भाई। भैंसा बकरा तहां कटाई॥
फन्द अनेकन सकल फँदाना। मूरख जीव शब्द नहिं माना॥
तुम तो आद्य पुरुष के चोरो। पल महँ बांध रसातल बोरो॥

देवी वचन—चौपाई

कह देवी तू कैसे बोले। शक्ति हमारी घर घर डोले॥
पुरुष तुम्हार मैं नाहीं डरऊं। तीनों लोक पांव तर धरऊं॥

तुम कहँ मारूं चापूं हेठा। तीन लोक पसरे मम देठा ॥
ब्रह्मा विष्णु हाथ सब मोरे। शिव सनकादिक केवल तोरे ॥
चौंसठ लाख कामिनि होई। मेरे अंग बेहर सब कोई ॥
तुम रे दुष्ट कहां चलि आवा। केहि कारण तें पुरुष पठावा ॥
नाम गुनाम कहो शठिहारा। हमरे चित डर नाहिं तुम्हारा ॥
खपर हाथ मम भुजा अनन्ता। अपने वश कीन्हो भगवन्ता ॥
हम पर धनी और नहिं आना। तीन लोक मम नाम बखाना ॥
तुम क्या गर्व करहु रे भाई। कहो लोक मैं देहु खसाई ॥
तुरतहि रूप अनेकन धारों। लोक तुम्हार रसातल डारों ॥

शठहार वचन—चौपाई

कह शठहार सुनी श्री माया। काहे तुम मति गयी भुलाया ॥
जा दिन आदि अन्त नहिं जोती। ता दिन जन्म कहां तुव होती ॥
पुरुष अकार कहो जग जानी। शब्द डोरि तेहि बांधो तानी ॥
कामिनी तोहि करूं जरि क्षारी। सकल हंस कहँ लेहुँ उबारी ॥
आदि पुरुष कहँ तू कस मोटी। छोडेउ पुरुष काल उर भेंटी ॥
अस जिन जानहु सकल हमारा। देहों शाप होह हो जरि क्षारा ॥
हम तो सत्यलोक तें आवा। देवी तुम्हारा ज्ञान हिरावा ॥
कीन्हीं पुरुष तबै तुम भयऊ। तीनहु लोक बख्श तोहि दयऊ ॥
तें जानसी सब मैं ही कीन्हा। पुरुष नाम तुम नाहिं न चीन्हा॥
अलख निरंजन देवी राता। विधि हरिहरका करि है घाता ॥
महा प्रलय होवे तेहि बारा। तब जर वर सब होवे क्षारा ॥
तीनों लोक प्रलय तर जायी। तब अद्या तुम कहा रहायी ॥
उन सन्तों कहँ कौन गुमाना। जिनका चलत जगत में पाना ॥
आदि पुरुष तुम्हरे हैं ताता। अद्या भयो निरंजन भ्राता ॥
ताहि तात को छोडहु संगा। भ्राता जार कीन्ह अरधंगा ॥

ताहि रंग ते गई भुलायी । छोडेउ पुरुष जार मन लायी ॥
निशि वासर कीन्हा पिय नेहा । कामरूप कामिनि मति देहा ॥
तुच्छ बुद्धि नारी तुव बाता । यही चाल जग नार समाता ॥

देवी वचन

यह सुनि माया बहुत लजाई । धरि सिंहासन तब बैठाई ॥
वचन हमार सुनो शठहारा । नाम जपे तेहि हंस उबारा ॥
हम पुत्री पुरुष के आहू । शब्द डोर हंसन ले जाहू ॥
जो कोउ नाम तुम्हार सुनाये । शीश हमार पांव दे जाये ॥
चौंसठ युग हम सेवा कीन्हा । पृथ्वी बख्श पुरुष मोहिं दीन्हा ॥
तीन लोक हम मरदो माना । कैसे हंसा लोक पयाना ॥

सतगुरुवचन–चौपाई

कह शठिहार सुनो तुम बाता । सकल जीव कीन्हेउ तुम घाता ॥
जो कोउ जीव हमारा होई । ताके निकट जाय जिनि सोई ॥
जो घट शब्द हमार समाये । ता घट काल निकट नहिं आये ॥

देवी वचन–चौपाई

तात वचन लाये शठि-हारा । को मेटे यह वचन अपारा ॥
हठकर वचन मेटि मैं डारा । तौ हम भयी लोक तें न्यारा ॥
जे जिव पुरुष नाम चित राता । ताहि हंस नहिं बोल बताता ॥
अंक तुम्हार पान जो पाई । देवी देव देख शिर नाई ॥
भीतर करता बहुत गुमाना । ताकर जीव करब हम हाना ॥
गुरुसों मन चित अन्तर राखा । साधु सन्त सों दुर्मति भाखा ॥
ते जिव हमरे खपर भराई । बार बार चौरासी नाई ॥
नाम तुम्हार कोई नहिं जाना । सकल जीव हमही लपटाना ॥
मुक्त मुक्त भाषत सब प्राणी । मुक्तहि नाम प्रमाण सुजानी ॥
मो कहँ और न जानत दूजा । निश दिन हमचित तुम्हरी पूजा ॥

सार नाम जिन पाव तुम्हारा । सो पहुँचे पुरुष दरबारा ॥
ताहि हंस हम रोकब सोई । द्रोही पुरुष केर हम होई ॥

शठहारवचन–चौपाई

विश्वा युग चर्चा हम कीन्हा । या नर तन गिर जीवन दीन्हा ॥
तूर बराबर नरियल जाना । चार हाथ लम्बा रह पाना ॥
हाथ दोय करके चकराई । ऐसा युग हम पान बनाई ॥
बीस लाख युग आयु बखाना । वर्ष सहस मानुष तन जाना ॥
अडसठ हाथ ऊँचाई होई । ऐसे नर सकलों सब कोई ॥
सात सहस्र पाय जो पाना । सत्य शब्द निश्चय कर माना ॥
पुरुष दर्श तिन जीव कराई । देवी वचन कहा समुझाई ॥
छंद–यह चरित कर शठहार ततक्षण पुरुषा के दर्शन लहे ॥
कीन्ह माया वाद बहु विधि चरण हमार निश्चय गहे ॥
विश्व युग में जाय कै हम हंस कीन्ह उबार हो ॥
सहस सात जिव पाय बीरा आय लोक मँझार हो ॥
सोरठा–पुरुष कीन्ह अवाज, भल तुम कीन्हेउ अंश मम ॥
हंसन के सरताज, माया गर्व नशायऊ ॥

इति श्रीअम्बुसागरे विश्वायुगकथावर्णनं नाम नवमस्तरंगः ।

---

# अथ दशमस्तरंगः

## अक्षयतरुण युगकथा वर्णन

धर्मदास वचन–चौपाई

धन्य भाग हम सतगुरु भेंटा । भवसागर का संशय मेटा ॥
कथा अनूप मोहि समुझाई । सुनत चित्त मम अति सुख पाई॥
अमृतवचनमोहिअतिप्रियलागा। चरण कमल तू हिय अनुरागा ॥
तुम पद पंकज मुकुर सुधारा ।अमिय वचन सुन कलिमलटारा॥
वचन तुम्हार आहि अतिपावन । कीन्ह सनाथ मोहि मन भावन ॥

तीनहु तपन बुझायहु मोरी । होय दयाल कहो कुछ ओरी ॥
युग युग जीवन दर्शन दीन्हा । अधम जीव पावन कर लीन्हा ॥
दास जानि कहिये प्रभुराई । धर्मदास टेके तब पाई ॥

सतगुरुवचन–चौपाई

धर्मदास तुम मति के आगर । पुरुष अंश तुम अहहु उजागर ॥
सुकृत अंश अहो धर्मदासू । हंसन के तुम हौ सुखरासू ॥
तुम बूझो जीवन के काजा । गहि सत शब्द छोडि कुल लाजा ॥
जो तुम बूझो हंसन धामा । पुष्प द्वीप पुरुष विश्रामा ॥
अभ्यन्तर हो कीन्ह निवासा । तहवां पूरुष वचन प्रकाशा ॥
तब ज्ञानी कहँ लीन्ह बुलावा । आयसु देई संसार पठावा ॥
अक्षय तरुण युग दीन्ह रिंगाये । चलि जलरंग लागि हम आये ॥
तिनमें एक असंख्य उँचाई । अक्षय द्वीप जहँ कूर्म रहाई ॥
वाही कूर्म ध्यान तहँ धरई । प्रथम पुरुष का सुमिरन करई ॥
द्वादश पालँग ताहि शरीरा । कच्छ रूप धरि बैठे नीरा ॥
सोलह माथा चौंसठ पाईं । तहँवा पहुँचे जाय गुसाईं ॥

कूर्म उवाच

बूझे कूर्म कौन तुम आहू । सत्य वचन सो मोहिं सुनाहू ॥
के तुम आप पुरुष चलि आये । अंश रूप धरि वर्ण छिपाये ॥
हम पाताल बैठे जल माहीं । ध्यान पुरुषकी सदा कराहीं ॥

ज्ञानी वचन–चौपाई

ज्ञानी कहे कूर्म सुनु बाता । तुमसों सत्य कहूं विख्याता ॥
हंसन हेत काज उपराजा । पुरुष मोहि पठये जिव काजा ॥
तब हम आय यहां पग दीन्हा । द्वीप तुम्हारा देखन लीन्हा ॥
कहो पताल करे अब बाता । तुम सब जानत हो उतपाता ॥
कौन द्वीप कमल का फूला । कौन द्वीप काल का मूला ॥

कौन द्वीप जलखंडी वासा। कौन द्वीप माया परकाशा ॥
कौन द्वीप कूर्म बैठारा। कौन अंश तहँ करत विहारा ॥
दोहा-आदि अंत तोहि बूझेउ, कहो कूर्म समझाय ॥
सत्य सत्य मोसों कहो, चित संशय मिट जाय ॥

कूर्म वचन-चौपाई

कहे कूर्म बूझो भल ज्ञानी। द्वीप द्वीप भाषूं सहिदानी ॥
पूरुष द्वीप कमलका फूला। तहँवां भयो काल अस्थूला ॥
जलखंडी रह संदल[1] द्वीपा। भव माया हो रही समीपा ॥
अक्षयद्वीपमहँ हम भला रहिया। इमइस खंड पिण्डपर धरिया ॥
हमरे नीचे गहरु गँभीरा। तहवां डोरी शत अस्थीरा ॥
तेहि चौकी बैठे जल रंगू। जल शोभा तहँ उठत तरंगू ॥
हम जाना सो दीन्ह बतायी। सोइ कथा हम भाष सुनायी ॥

ज्ञानी वचन-चौपाई

ज्ञानी कहे कूर्म सों वाता। और मोहिं भाषो विख्याता ॥
तुम पर काल कीन्ह कस रचना। सो मोहिं कूर्म कहो दृढ बचना ॥

कूर्म वचन-चौपाई

तुम कहँ ज्ञानी सब कुछ सूझा। जानहु आदि अन्त मोहिं बूझा ॥
चार अंश जलखंडी कीन्हा। रचना ताहि अपन कर लीन्हा ॥
हम पर मीन रूप निरमावा। ता पर कच्छ रूप बैठावा ॥
कच्छ पीठ पर कीन्ह बराहू। आगे सहस फणहि तहँ आहू ॥
तापर महि की रचना कीन्हा। गिरि सुमेरु तब भार तेहि दीन्हा ॥
दशहु दिशा दिग्पाल लगाई। सूंड लाय तिन मही उठाई ॥
एतक कालहि रच्यो प्रचंडा। महिमा सात द्वीप नव खंडा ॥
लेत करौंटा जेहि पल हमहीं। नीच गगन ऊंची भुवि तबहीं ॥

---

१ इस शब्दमें सन्देह है। जितनी प्रति हैं सबमें गड-बड है।

उलट पलट परलय हो जाई । तीन लोक जलमाहिं समाई ॥
हम तो चीन्ह पुरुष तुम आपू । देहू पान मिटे सन्तापू ॥

## चौदह यमका नाम

### ज्ञानी वचन--चौपाई

इतना सुन ज्ञानी विहसाई । अब तुमसों कछु नाहिं छिपाई ॥
अक्षय पान वीरा लिख दीन्हा । शीशहि नाय कूर्म तब लीन्हा ॥
अस्तुति कीन्ह बहुत चितलाई । धन्य भाग मोहिं दरश दिखाई ॥
तुम तो पुरुष आहु अविनाशी । सत्य गुरू सत्यलोक निवासी ॥
ज्ञानी दीन्ह वचन तोहि बारा । कूर्म चाल जेहि जीव मँझारा ॥
ताहि जीव हम लोग पठाउब । सोई हंस काल नहिं पाउब ॥
चल ज्ञानी तहँवां ते आगे । चौदह यम बैठे अनुरागे ॥
कलिमल द्वीप नाम तेहि राखा । कच्छप लोग वेद तेहि भाषा ॥
साहब तहां जाय गम कीन्हा । चौदह यम सों बोलन लीन्हा ॥
कौन कौन तुम यम रे भाई । आपन नाम कहो समझाई ॥

### यमवचन--चौपाई.

तब यम आपन नाम बतावा । एक एक करि वर्ण सुनावा ॥
प्रथमहि नाम कहा मृत्यु अंधा । दूजा यम है क्रोधित अंधा ॥
तीजा यम दुर्ग अभिमाना । चौथे मन मकरन्द बखाना ॥
पांचों नाम अहै चितचंचल । छठां यम तेहि नाम अपरबल ॥
सप्तम अन्ध अचेत बताई । अष्टम कर्म रेष यम आई ॥
नवमें अग्नि घंट वरियारा । दशवें कालसेन विकरारा ॥
ग्यारहे मनसा मूल बताई । द्वादश यम भय भीत रहाई ॥
त्र्योदश नाम तालुका ताही । सुर संहार चतुर्दश आही ॥

### ज्ञानी वचन--चौपाई

चौदह यमन पकडी हम लीन्हा । बहुत पुकार करन तिन्ह कीन्हा॥

तब देखा दूतन कहँ जाई। चौरासी कहँ कुण्ड बनाई ॥
कुण्ड कुण्ड बैठे यमदूता। देत जीव कहँ कष्ट बहूता ॥
तहां जाय हम ठाढ रहावा। देखत जीव विनय तब लावा ॥

कंडहार वचन—चौपाई

मारत जीव करे बडशोरा। बांध बांध कुण्डनमें बोरा ॥
लाख अठाइस पडे कडिहारा। बहुत कष्ट तहँ करत पुकारा ॥
हम भूले स्वारथ के संगी। अब हमरे नाहीं अर्धंगी ॥
हम तो मरत अग्निके झारा। अंग अंग सब जरत हमारा ॥
कौन पुरुष अब राखे आई। करत गुहार चक्षु ढल जाई ॥

ज्ञानी वचन—चौपाई

करुणा देख दया दिल आवा। अरे दूत त्रास भास दिखावा ॥
जीव अचेत भये अज्ञाना। गहे शब्द अति कीन्ह गुमाना ॥
चौरासी दूतन कहँ बांधा। शब्द डोर चौदह यम सांधा ॥
तब ज्ञानी सबहिन कहँ मारा। तुम तो जीवनके वटपारा ॥
हमरे साधन तुम भरमावा। पल पल सुरति जीव बगडावा ॥
गहि चोटी दूतन घिसियाये। यम अरु दूत विनय तब लाये ॥

दूत वचन—चौपाई

चूक हमारि बख्श कर लीजे। मन माने तस आज्ञा कीजे ॥
हम तो धनी कहे जस कीन्हा। सो हम वचन मान शिर लीन्हा ॥
अब नहिं हंस तुम्हार विगारव। नाम गहे सो लोक सिधारव ॥
विनती कीन्ह करे बड शोरा। हमतो नाहिं करत कछु जोरा ॥
जस चाहो कीजे तस ज्ञानी। हम तो हाथ तुम्हार बिकानी ॥

ज्ञानी वचन—चौपाई

तुम ज्ञानी बहुते हरषाई। दूतन बंधन छोरो जाई ॥
फल इक जीवन सुखकर दीन्हा। तब संसार गमन हम कीन्हा ॥

अक्षय तरुण युग हम चलि आवा। अक्षय नाम वीरा जिह लावा ॥
जीव आय बोधेउ भवसागर । वीरा दीन्ह हंस भये आगर ॥
पांच सो लाख पाय परवाना । सकल हंस लै लोक सिधाना ॥

छंद–हंस लै ज्ञानी चले जहँ पुरुष आप विराजहीं ॥
हंस हंसन कर कुतूहल पुरुष केवल गाजहीं ॥
अमर पुरुष विनय इक हम मार कालहि अति बली ॥
तुम पद्म परताप तें यम दूत गहि हम दलमली ॥

सोरठा–हंसन कीन्ह उबार, लै आयो अमरापुरी ॥
पाये दरश तुम्हार, हंस रूप तिनको भयो ॥

इति श्रीअम्बुसागरे अक्षयतरुणयुगकथावर्णनो नाम दशमस्तरंगः ।

---

## अथ एकादशस्तरंगः

### नन्दीयुगकथा वर्णन

चौपाई

धर्मदास हर्षित मन कैसे । गगन तरू पंकज लख जैसे ॥
तुम पराग सर मज्जन करही । पुनिविनश्रमभवनिधिकहँतरही॥
हमहि दयाल दयाकर ऐसे । जिमि कराल पारस मिल तैसे ॥
वचन तुम्हार सुधाको सागर । श्रवण करत निर्मल मति आगर ॥
श्रवणकरत कलिमल इमि भागा । चन्दन विरह वचन फणि त्यागा॥
चितवन तुम्हरे पद अब लागू । आशा उभयन है अनुरागू ॥
आगे औरहु वर्णन कीजे । तृषावन्त कहँ अमी चखीजे ॥

सतगुरुवचन–चौपाई

धर्मदास तुम मति के पूरा । तुम कहँ देखि काल हो दूरा ॥
हम तुम सो इमि रहें समाई । सुमन सुगंध रहा जिमि छाई ॥

पुष्प सुगंध प्रगट किमि होई । धमनि सुनो युक्ति इक सोई ॥
प्रथमहिं द्रव्य देय तिल लाये । कंकर नाखि ताहि फटकाये ॥
देह कष्ट पुनि मीज बहूता । सेतु बनाय छुडाये छूता ॥
कलिमल हरण ताहि करडारा । मज्जन करतेहि निकर सुधारा ॥
उत्तम कुम्भ सु तहां मँगाये । प्रीति अनेक सुमन तिललाये ॥
पुष्प तिलो संगम जब कीन्हा । कोल्हू माहि पिरावन लीन्हा ॥
नाम फुलेल वासन संगा । एतक कष्ट सहा दुख अंगा ॥
असिख सतगुरु पद अनुरागा । माया मोह सकल चित त्यागा ॥
तिनहू तपन बुझायो जाका । काल अब जिव रोमन बांका ॥
तुम हो सुमन घ्राण हम जैसे । शब्द बनावत तिल जिव तैसे ॥
शब्द कहे सतगुरु जी भेंटे । गुरू संग शिष वास लपेटे ॥
कोल्हू भक्ति गुरू की आगर । सुरति समय पहुँचे सुखसागर ॥
ऐसी चाल सीख जो आवा । हँसत राम लग वासा पावा ॥
युग युग थीर भये नहिं आवत । सतगुरु हाथ पान जिव पावत ॥
युग नन्दी हम दीन पयाना । पुरुष आयुसु जगत सिधाना ॥
क्रौंच द्वीप महँ पहुँचो जाई । तहां काल दधि सिंध बनाई ॥
तहँवां एक हंस निर्वाणा । तिनको गोष्टि तहां हम ठाना ॥
बैठि अरम्भ गुफा अनुरागा । माया मोह छोड चित भागा ॥
नाम गुप्त मुनि तहां रहाये । दृष्टि मूंदि ध्यानहि मन लाये ॥
तहँवां निकट बैठ हम जाका । खोसि चक्षु मुनि हम कहँ ताका ॥
बूझे मुनि तुम को हो भाई । आपन नाम कहो समझाई ॥
सुंदर रूप अधिक अति शोभा । देखत रूप उठत अति लोभा ॥
अंग अंग देखा चमकारा । शोभितमनु जिमिअगमअपारा॥
कोटि वर्ष इहवां तप कीन्हा । ऐसा रूप न कबहूँ चीन्हा ॥
अब तुम कहो आपनो नामा । कौनेहि देश वसो केहि ग्रामा ॥

सतगुरुवचन–चौपाई

तब हम मुनिको भेद बतावा । सत्यलोकको संदेश सुनावा ॥
सुनत सन्देश अती मन लोभा । देखनसत्यलोककीन्हसो छोभा॥
बहुत विनती गुप्तमुनि लाये । बहुतहिं बिलखि वचन सुनाये ॥
तब हम ताहि बहुविधि जांचा । सब विधि तेहि पाये मैं सांचा ॥
ज्यों ज्यों जाचों त्यों त्यों लोभे । छूटे यमफाँस बढे बहु शोभे ॥
बहुविधि ताही शब्द सुनावा । काल जाल सब दूर बहावा ॥
देखि अधीन शब्द मुनि पागा । तब ले चल्यो ताहि वहि जागा ॥
प्रथम दिखायो मान सरोवर । सकल कामिनी एक बरोबर ॥
चारभानु जिमि अंग लपेटा । करहिं कुतूहल युथ युथ भेंटा ॥
मान सरोवर देखि तडागू । सिढी सिढी रवि शशि जनुलागू ॥
ता जल देखत जीव जुडाना । उठत तरंग पूर जिमि भाना ॥
तहँवां कामिनि मज्जन करई । मज्जन करत रूप बड धरई ॥
कामिनि खंड महा अति पावन । युथ युथ बैठ राग तहँ गावन ॥

गुप्तमुनिवचन–चौपाई

यह छबि देख कीन्ह मन लोभा । व्याकुल भयो चित्त लखि शोभा॥
नाना भांति फूल फुलवारी । जिमि उडुगण रवि रचि बैठारी ॥
देखि दृष्टि पद तब लिपटाना । जस जल पाय मीन मन माना ॥
करहु अनुग्रह अब नहिं जाइब । ऐसो ठांव बहुर नहिं आइब ॥

सतगुरुवचन–चौपाई

जब लग पुरुष नाम नहिं भेंटी । तब लग काल त्रास नहिं मेटी ॥
अब तुम चलो अपने ठामा । पावहु आदि पुरुष विश्रामा ॥
सतगुरु मुनि आये जब तहियां । गुप्त मुनी आपन रह जहियां ॥
गुप्त मुनि निर्गुण सर्गुण भाषा । हे प्रभु श्रवण सुनत अभिलाषा ॥
कौन ज्ञान ते तुम कहँ पायब । सतगुरु ताहि मुक्त फरमायब ॥

सतगुरुवचन—चौपाई

निर्गुण ज्ञान मुक्ति का वासा । सर्गुण ज्ञान शरीर प्रकाशा ॥
सर्गुण ज्ञान खबर हम पावा । निर्गुण ज्ञान मोहिं चित भावा ॥
सर्गुण नाम अनन्त बतावत । निर्गुण माहिं रहित घर पावत ॥
सर्गुण नाम सकल संसारा । निर्गुण है इक नाम हमारा ॥
सर्गुण नाम काल भरमावे । निर्गुण नाम हंस घर आवे ॥
सर्गुण निर्गुण रहे अकेला । ताके संग गुरू नहिं चेला ॥
मारग झीन सुनो मुनि ज्ञानी । मकरतार लगावत तानी ॥
गुप्त मुनी को चौका कीन्हा । लिखिके पान तुर्त हम दीन्हा ॥
युगनन्दी की आयु बखानी । एक करोर वर्ष परमानी ॥
मानुष आयु सहस रह तीनी । तहां गुप्त मुनि भये अधीनी ॥
सतगुरु मुनि ले चले डोरी । टूटत घाट अठासी क्रोरी ॥
देखत मुनि हंसन युथ आवा । सकल साज मंगल भल गावा ॥
अनहद बाजा बाजन लागू । मंगल भांति भांति उठ रागू ॥
हंस परछि संग कर लीन्हा । धन्य हंस सतगुरु भल चीन्हा ॥
विषय वासना छोड भगीता । चरण प्रताप काल तुम जीता ॥

छंद—जलहलखंडी अति विहंडी त्रिगुण दाहत अति भली ॥
रूप माया खण्डी काया जीव सब गहि दलमली ॥
वीर हंसा भाग वांचे नाम जिन शिर नग गहीं ॥
काल त्रास न ताहि व्यापत पुरुष के दर्शन लहीं ॥

सोरठा—पाये पुरुष अवाज, हंस दर्श ततक्षण भये ॥
बैठे हंस समाज, भुक्तत निर्भय ह्वै सकल ॥

इति श्रीअम्बुसागरे नन्दीयुगकथावर्णनो नाम एकादशस्तरंगः ।

# अथ द्वादशस्तरंगः

## हिंडोल युग कथा वर्णन

### चौपाई

धर्मदास बोले मृदु वाणी। तुम तो आप पुरुष हो ज्ञानी॥
भल हम श्रवण सुना विख्याता। मृदुल मंजु पद गहु मुनि ज्ञाता॥
पंकज गहिविनु श्रम भव तरिया। और जीव काल मुख परिया॥
इक मुख पद्म का वर्णन करऊँ। समझ विचार अपन चित रहऊँ॥
जस गूँगा सपना लखि आवा। सुमिरि सुमिरि मन मन पछितावा॥
पाय राज अरु हस्ती घोरा। मन्दिर कनक नारि संग जोरा॥
भयो भोर तब देख निहारी। कहँवां राज पाट अरु नारी॥
समझ समझ मन व्याकुल होई। कहँवा राज पाट सुख सोई॥
कासों कहूं विपति को बाता। ऐसे मन मन मनहिं सिहाता॥
जिन जाना तिनहीं पहिचाना। दूजा नहिं और हित मानां॥
जाना तिन जेहि तुम्हरी दाया। प्रबलकाल तेहि निकट न आया॥
रहे अचेत चेत नहिं कीन्हा। वचन सुधा पावन कर लीन्हा॥
कथा कहो अरु हंसन राई। ज्यों युग जीव की ह मुक्ताई॥

### सतगुरु वचन—चौपाई

द्वीप असंख्य जु लोक निवासा। जहँवां हंसन केर विलासा॥
आयसु पुरुष कीन्ह जब ज्ञानी। वेग जाव जग जीवन आनी॥
मस्तक नाय चले तेहि बारा। पहुंचे वेग आये संसारा॥
युग हिंडोल महँ आये आपा। भाषेउ शब्द आर्य की छापा॥
हम तो जीवन सत्य बखाना। जान बूझि जिव भांति भुलाना॥
हम तो सत्य शब्द मनमाने। जीव झूंठ जिन मर्म न जाने॥
ता कहँ कहा करब रे भाई। सत्य ज्ञान चित नाहिं समाई॥
वाणी मुक्ति जीव नहिं पावत। फिर फिर काल ताहि डहकावत॥
कैसे जीव होय निश्शंका। माया कठिन फांस तेहि वंका॥

धर्मदास हम घर घर डोला । कोई जीव नाहिं मुख बोला ॥
बूझो सातो शब्द कहुँ हमारा । विष अमृत है एक मँझारा ॥
सो तोहि भाषों हो टकसारा । विष अमृत का करु निर्वारा ॥
हंस होय तेहि न्यारा करहु । नातरु काल जाल महँ परहु ॥
अमृत पाय अमर जब होई । ऐसा अगम शब्द है सोई ॥
पानी सम अमृत जिनि जानो । शब्द अमी हम ज्ञान बखानो ॥
शब्द ज्ञान है कठिन अपारा । ज्ञानी पण्डित करहु विचारा ॥
शब्द चोट है राजत राजू । शब्द चीन्ह सुधरत जिव काजू ॥
शब्द डोर हंसा निश्शंका । शब्द डोर हो हंसा रंका ॥
शब्दहि ते सब रचना कीन्हा । शब्द पुरुष मुख भाषण लीन्हा ॥
सोई शब्द हंसा वर पावा । शब्द गहे ओ लोक सिधावा ॥
मूरख जीव शब्द नहिं माना । शब्द सुनत मोहि झगरा ठाना ॥

साखी—मूरख शब्द न मानहीं, धर्म न सुने विचार ।
सत्य शब्द नहिं खोजई, सो जावे यमद्वार ॥

चौपाई

हम तो घर घर करी पुकारी । विरला हंस कोइ कीन्ह सम्हारी ॥
युग हिंडोला लिये प्रमाणा । सात लाख जिव शब्द समाना ॥
बीता चार पान रे भाई । गगरा सम नरियल तब आई ॥
युग आयुर्बल बरस पचीसा । नर आयुर्बल सत्ताईसा ॥

छंद—दीन्ह लिखि जेहे अंक जीवन ते चले हम साथ हो ॥
ताहि जीवन काल गांसत पांव दे यम माथ हो ॥
सात लाख ले हंस पहुँचो पुरुष चरण मिटाइया ॥
रूप भयो तेहि विषद मंजुल अक्षय तरु फल पाइया ॥

सोरठा—वर्ण मनोहर अङ्ग, अधिक रूप छवि ताहिको ॥
बैठे द्वीप सुरंग, हंस हंस युत्थ जगमगे ॥

इति श्रीअम्बुसागरे हिंडोलयुगकथावर्णनं नाम द्वादशस्तरंगः ।

# अथ त्रयोदशस्तरंगः

## कंकवत युग कथा

चौपाई

धर्मदास विनती बहु करहीं । सतगुरु चरण शीश ले धरहीं ॥
राउर वचन रवि किरण विपंगा । मम संशय यामिनि करु भंगा ॥
सूझि परचो प्रभुचरित अनूपा । तुम तो पुरुष एक ही रूपा ॥
ज्ञान कथा मोहि कहु समझाई । सुनत चित्त हिय अति हर्षाई ॥
जीव उबारे काटे बन्दा । होय सच्चिदानँद आनँदकंदा ॥
और कथा कहिये अब सोई । साहब मोहि न राखो गोई ॥
युग लीला कीन्हा जस स्वामी । सो कहिये मोहि अन्तर्यामी ॥

सतगुरु वचन—चौपाई

धर्मदास बूझो मन भावो । सो चरित्र अब वरणि सुनावो ॥
नाम गुप्त मुनि रहा पताला । रूप बनाय बैठे तहँ काला ॥
जीवन काज गुप्त भये नासी । जैसे छिपकर बैठत फांसी ॥
माल जगाय फंद बहु डारी । ऐसी रचना काल पसारी ॥
शब्द रूप आप परकाशा । तब चलि गये गुप्त मुनि पासा ॥

गुप्तमुनि वचन—चौपाई

अंश गुप्त मुनि पूछत बाता । कौन देश तुम कहां रहाता ॥
काकर अंश कहां चलि आये । सो तुम मोहिं कहो सति भाये ॥
इहां गम्य कोइ नहिं लम्भा । तुमैं देखि मोहिं भयो अचम्भा ॥
शब्द सतोतर सत्तहि भाषो । हम सो गोय नहीं कछु राखो ॥
साखी—तबे गुप्त मुनि पूछही, कह समरथ अर्थाय ॥
अंश यहां के नाहिं तुम, कौन देशते आय ॥

ज्ञानी वचन—चौपाई

ज्ञानी कहै गुप्त मुनि वचना । आय पताल देखन तुव रचना ॥

सुनत श्रवण बहु दिना बिताई । तुम ऋषि वर पुरुष पठवाई ॥
सत्य लोकतें हम चल आयो । द्वीप तुम्हार देखन मन लायो ॥
हम तुम एक नाल के आहीं । काहे भूल गये मनमाहीं ॥
पिछली खबर विसर तुम भयऊ । इहवां आय गुप्त मुनि भयऊ ॥
अब तुम मोहि मिलो हितकारी । हम हैं तुम्हरे सिरजन हारी ॥
लेहु पान तुम तजो गुमानो । पुरुष वचन सत्य करि मानो ॥

गुप्तमुनि वचन—चौपाई

सुनत गुप्त मुनि एतिक वानी । बहुत कोप तब मन महँ आनी ॥
कौन मंत्र ले सिरजउ भाई । कौन नाम तुम मोहि धराई ॥
खबर साठ युग की हम जाना । मोसों अधिक कहां है पाना ॥
सत्य वचन तुम भाषहु नागर । तब तुम जाहु यहां ते आगर ॥
हम ते भये बडे तुम ज्ञानी । मोक्ष मुक्ति तुम अंश न जानी ॥
सप्त पताल खबर हम जाना । तुम अस कोटिक फिरहिं भुलाना ॥
प्रलय होय जब धुन्धूकारा । शब्द ख्याल की तरे तुम्हारा ॥
नहिं जलथल जब गगन निवासा । नहिं तब रहे मंदिर कवलासा ॥
सुरमुनिऋषि नहिं सहस अठासी । तब तुम कहां होत हो वासी ॥
साखी—इतने दिन तुम गुप्त थे, उपजा नहीं शरीर ।
उतपति परलय नाहिं थी, तब तुम कहां कबीर ॥

ज्ञानीवचन

आदि अन्त तब ना हता, नाहिं न बोल शरीर ॥
शब्द स्वरूपी बीरवा, तहँ हम वसे कबीर ॥

चौपाई

ज्ञानी कहे गुप्त मुनि बाता । जीव अनेक कीन्ह तुम घाता ॥
कर अब तुम कहँ हम धरि पावा । पकरि बांध यमलोक चलावा ॥
युगयुग साठ कथा अनुसारा । युग असंख्य हमही विस्तारा ॥

हमही लोक कीन्ह मन भावन । षोडश अंश भये तब पावन ॥
इतना कहि अस बोले वाणी । कौन पुरुष तुम कहँ उतपानी ॥
तुम तो मोहिं नाहिं पहिचानी । कहै कबीर बोल अभिमानी ॥

गुप्तमुनि वचन—चौपाई

एतक सुनत कोप चित बाढा । उठ ज्ञानी के सन्मुख ठाढा ॥
नहिं भय भीर राख तेहि बारा । कीन्ह युद्ध बहु भांति अपारा ॥

ज्ञानी वचन—चौपाई

सुर मुनि तेज पुरुष परतापू । काल पछार पांव तर चापू ॥
कालहि मार खंड दो करिया । गहि फेंका यम द्वारे परिया ॥
यम औ दूत देख सब धावा । धनी हमार मारको आवा ॥
मार काल जब कीन्ह विध्वंसन । अपने वद कर लीन्हे हंसन ॥
युग कंकवत आवत अनुसारा । ता दिनका यह कथूं पसारा ॥
पैंतीस लक्ष आयु युग होई । मानुष लक्ष वर्ष जिय सोई ॥
असी हाथ नर केरि उंचाई । ग्यारह हाथ पान लंबाई ॥
हस्ती सम नरियल बन्धाना । युग की कथा कहेउ परमाना ॥

छंद—काल मर्दन कर निकन्दन दूत गंजन कीन्ह हो ॥
आनन्द कन्दन मेटि फन्दन लोक वासा लीन्ह हो ॥
पुरुष के तव दरश कीन्हे चरण वन्दन हिय लहे ॥
तब नाम पद परतापते रिपु जीत विनती अब कहे ॥

सोरठा—पुरुष कर गहि लीन्ह, बैठो ज्ञानी अंश मम ॥
काल निकंदन कीन्ह, हंस काज भल युक्ति कर ॥

इति श्रीअम्बुसागरे कंकवतयुगकथावर्णनो नाम त्रयोदशस्तरंगः ।

# अथ चतुर्थस्तरंगः

## चारोंयुग कथा वर्णन

### धर्मदासवचन–चौपाई

धर्मदास बोले हितकारी । विनय करत चक्षुन चले वारी ॥
विलखत वदन ढरत दोउ नयना । धर धीरज तब बोले वयना ॥
जीवन काज मुक्त भल कीन्हा । मर्दन धर्म रसातल दीन्हा ॥
भयो अधीन काल तेहि बारा । गयो लोक हंसन रखवारा ॥
काल त्रास जीवन सब दाही । धन्य भाग जो तुम्हरी वाही ॥
जो पद गहे रंक अरु भूपा । वायस गति हो हंस अनूपा ॥
तिनकी संगति गंजित कीन्हा । जरा मरण गत हर्षित लीन्हा ॥
पंकज गह पद जीव अनाथू । युग युग बैठहि अमरके साथू ॥
धर्मदास कर जोरे ठाढे । शब्द सुनत हर्षित चित बाढे ॥
अब प्रभु और कहो परभाऊ । चारों युग कर कथा सुनाऊ ॥

### सतगुरु वचन

धर्मदास बूझेहु बहु बारा । सो अब कहूं खोल भंडारा ॥
सत्य नाम सत्ययुग हम नामा । जीव उबार पठाये धामा ॥
बहुतक जीव पाय परवाना । जो चीन्हा सो लोक सिधाना ॥
सतयुग आयू सत्रह लाखा । सहस अठाइस जेहियुग भाषा ॥
मानुष आयुर्बल वर्ष इक लाखा । इकइस हाथ ऊंच तन भाषा ॥
धर्मदास तुम चित अभिलाषो । दूजा युग त्रेता अब भाषो ॥
नाम मुनीन्दर हंस उबारा । काल शीश के मर्दनहारा ॥
तहां शब्द बहु भांति पुकारा । हंसन खेय उतारेउ पारा ॥
द्वादश लक्ष छानवे हजारा । इतना युग का आयु विचारा ॥
मानुष आयु सहस दश जानी । हाथ चतुर्दश केर प्रमाणी ॥
तीजे द्वापर कहूं बखानी । पुरुष अवाज जीव वरि आनी ॥

करुणा मय नाम धराये। जीव हेतु भवसागर आये ॥
घर घर जीवन कहा संदेशा। जो मानो तेहि मिटे कलेशा ॥
युग आयुर्बल कहूं विचारा। साठ लाख चौसठ हज्जारा ॥
मानुष आयसु सहस प्रमाना। सात हाथ ऊंचा अनुमाना ॥
चौथा कलियुग कथा सुनाऊं। जग महँ आय कबीर कहाऊं ॥
चार लाख बत्तीस हजारा। ऐते कलियुग आयु प्रसारा ॥
बीसंहि सौ नर आयु बखानी। हूँठां हाथ देही परमानी ॥
तात मात आगे सुत नासू। कोई दश बीस कोई वर्ष पचासू ॥
बहुत होय जिव तुरत विनासू। काहू नाशे गर्भके वासू ॥
युग परमाण आयुर्बल गायो। कलियुगआयु कछू नहिं भायो ॥
कलियुग भक्ति विरल नर करई। अन्तकाल सुधि जान न परई ॥
खबर करे जिव लागे तीरा। सत्य पुरुष का पावे वीरा ॥
उलट चाल कलियुग का नाशू। उलटी रहनी गहन परकाशू ॥
गुरु सन्मुख सेवा शिष्य करिहैं। मुख पीछे गुरु निन्दा धरि हैं ॥
साधुन निन्दा साधू करिहैं। साधु मेटि आप अब धरिहैं ॥
साधुन वस्तु साधू ले लेई। नहीं साधू कहँ साधू देई ॥
कलियुग साधू बहुत गुमाना। काल पुरुष का मर्म न जाना ॥
घट महँ काल वसे हंकारा। कलियुग साधू बिरल सम्भारा ॥
साहब चीन्हे घर को जावे। विन चीन्हे भव भटका खावे ॥
साहब घट घट साधुन पासा। साधुन करचो नाहिं विश्वासा ॥
साधू देख साधु बहु जरई। तातें चौरासी में परई ॥
कलियुग साधू मुग्ध बखाना। सत्य ज्ञान विरले पहिचाना ॥
हाथ नारियल लिखना पाना। आप गुरू बन जगत बखाना ॥
ताहि जन्म यमपुर हो वासू। पकड़ पकड़ यम नावें फांसू ॥

---

१ एकसो वर्ष । २ साढेतीन ।

ज्ञान कथै अरु झगरा लावे । कछू झूठ अरु सांच मिलावे ॥
चौका काज साल रम रहे । सत्य गुरूको देखत डहै ॥
दोय चार घर बोधे जाई । पेल गुरु गुरू आप कहाई ॥
वंश नाम नहिं पावे पाना । झूठहि साखी कथा बखाना ॥
चौका बैठ करे बहु शोभा । नारी देख करे बहु लोभा ॥
देखे नारी सुन्दर नैना । ताहि दूर ते मारे सैना ॥
जाहि अपन वद जाने भाई । ताहि प्रसाद देहि अधिकाई ॥
गर्व गुमान महन्त कहावे । भक्ति करन को हरबल धावे ॥
वंश विना जिन भक्ति जु कीन्हा । यम शिर ऊपर दावा दीन्हा ॥
सबको जूठन सब कोई खाई । केतौं खाय मुक्ति नहिं पाई ॥
जाके पार शब्द है सारा । ताहि खोज ना करे लवारा ॥
धर्मदास जिन अंश न बूझा । ताको ज्ञान दृष्टि का सूझा ॥
सूक्ष्म सूक्ष्म पाय प्रसादा । ताकर जन्म गयो बहु वादा ॥
इक छूछा इक पूरा होई । महा प्रसाद लेवतै सोई ॥
छूछे जीव सकल संसारा । पूरे हैं निज वंश तुम्हारा ॥
तिन पारस जब हंसा पावत । काल बली तेहि निकट न आवत ॥
पावे हंस वंश सहिदाना । देखत यम तेहि दूर डराना ॥
शब्द पाय कैसे कै जानब । पुरुष नाम वंशहि गहि आनब ॥
शब्द केर पारख इमि करई । वीरा हंस पाय निस्तरई ॥
वीर हंस जाते तर जाई । सोई नाम हंस लव लाई ॥
निःअक्षर वाकी है बाटा । विना वंश नहिं पावे है घाटा ॥
अक्षर है बहुत अनन्ता । निःअक्षर तुम खोजो सन्ता ॥
अक्षर उभय काम नहिं सरई । गह निःतत्त्व वंश चित धरई ॥
यह अक्षर साधू जिन जाना । सो साधू चित हमरे मन माना ॥
और शब्द बहु गहे बनायी । सो साधू चित नाहिं समायी ॥

और शब्द बांधे परतीती । एक नाम बिन यम नहिं जीती ॥
अक्षर एक मोहि कहँपावे । और अक्षर सब ज्ञान बतावे ॥
धर्मदास सुन वचन हमरा । कलियुग साधुन के व्यवहारा ॥
मुक्ति मुक्ति साधू जन करई । कहो मुक्ति कैसे निर्धरई ॥
एक नाम विन मुक्ति न पावे । कोटिन साधू यत्न करावे ॥
सार नाम की नाहिन आशा । कोटिन नाम करे विश्वासा ॥
दया धर्म औरन बतलावे । आपन साधू देख छिपावे ॥
साधू द्वारे तें फिर जायी । साधू रहनि नहीं चित आयी ॥
साधू तें साहिब पहिचानी । अगम पंथ वहि साधु बखानी ॥
कलियुग साधु केर सुन मर्मा । आप बुडे औरन कह धर्मा ॥
देखी उलटी रीति रे भाई । आपन बहे और समझाई ॥
ज्ञान ध्यान देखत जो करई । ताहि देख आपहि जलमरई ॥
देखी देख करै बहु योगू । छीजत काया बाढत रोगू ॥
शब्द हमार छिपाये धरि हैं । करि अनीति बहु जगते डरिहैं ॥
आपन गहि हैं शब्द प्रतापू । सब विसरिहैं मंत्र औ जापू ॥
तुव वसनते सुमिरन पैहैं । शिष शाखाको नहिं वतलैहैं ॥
तिनते जो पूछन ऐहैं । अपनी भक्ति ताहि दृढै हैं ॥
कहिहैं ताहि सुनहु रे भक्ता । करहू मम सेव जो छूटे जगता ॥
वंश नाम ले जगको ठगि हैं । विषय विकारमें बहुविधि लगिहैं ॥
यम दूतन ते करि असनेहू । मम हंसन ते करि हैं द्रोहू ॥
द्रोह करन बहु युक्ति उपैहैं । लहे न दाव बहुत पछितैहैं ॥
लोभ देइ निज सेव दृढायी । चेला चेली बहुत बढ़ायी ॥
पुनि तिन संग कुकर्म सो करिहैं । करि कुकर्म नरकमें परिहैं ॥
जो कोइ हंस शब्द मम गहिहैं । तिनको देखत मनही जरिहैं ॥
साधु महंत बहु भेषा धारी । करिहैं ठगई होय मिथ्याचारी ॥

उद्यम धन्धा कछु न सुहायी । भीख मांग सो पेट भरायी ॥
साधु संत के नाम ते मंगि हैं । करिहैं विषय कालमग पगिहैं ॥
साधु संत को देखत द्वारे । धरि हैं द्वेष मनहिं मन भारे ॥
जो कोइ मम शब्द परगटै हैं । तिन संग सो रार बढै हैं ॥
अस साधु महंतन की करनी । केतिक सुनाऊं तोही बरनी ॥
अम्बू सागर तुम सन भाषा । समझ बूझ तुम दिल महँ राखा ॥
धर्मदास जिन जानहु ज्ञाना । कलियुग केर चरित्र बखाना ॥
कहूं पुकार चेत रे भाई । ना चेतै मम का बिगराई ॥
चेतै हंस आय है द्वारा । नहिं चेतै तेहि काल अहारा ॥
घर घर फिरि बोलत ललकारी । करे महंती दम्भ पसारी ॥
वंश नाम नाहि न हित जानी । आपन आपन मता बखानी ॥
ममता है जहँ तहँ कलि ब्यापू । नहिं ममता तहँ साहब आपू ॥
ममता मोह दूर कर डारै । सतगुरु वचन सत्य उर धारै ॥
आज्ञा मानैं लगे जिव तीरू । रटत कहे हम सत्य कबीरू ॥
पुरुष निरन्तर खोजो भाई । घट भीतर रह काल समाई ॥
काहू खोजन खोजत पावा । काहू खोजत जन्म गमावा ॥
काहू खोजत खोजत भयऊ । बहुतक खोज खोज मर गयऊ ॥
कलियुग भक्ति कठिन बहुताई । उलटि पलटिके पंथ नशाई ॥
कलियुग जीव चतुर ते नाशू । शब्द हमार न कर विश्वाशू ॥

छंद–कालचरित अपार धर्म न जीव कहा न मानी है ॥
बार बार पुकार सबसों सत्य भक्ति न ठानि है ॥
यही कठिन कराल विकट यम तेहि अति बली ॥
वचन हिय नहिं सत्य धारे जीव यमगहि दलमली ॥

सोरठा–करब लोक अब वास, पुरुष चरण उर भेंट अब ॥
हंसन हंस विलास, कलियुग पग नहिं धारऊँ ॥

धर्मदास वचन—चौपाई

धर्मदास संशय चित आवा । बार अनेक विनय प्रभु लावा ॥
का अपराध जीव कलि कीन्हा । जाते तुम दर्शन नहिं दीन्हा ॥
युग युग आये जीवन काजा । अब कस त्रास कीन्ह यमराजा ॥
यम अन्तरघट घट सब फांसी । जीवन अचेत कीन्ह इमि गांसी ॥
महा अधम पातक भर पूरा । शब्द तुम्हार होय अघ दूरा ॥
पुरुष नाम राव कीन प्रकाशा । जो नहिं कर्म तिमिरकहँ नाशा ॥

छन्द—तुम पद पराग अघ पुंज दाहन हंस सतमन धारनं ॥
पतित पावन नाम ध्यावन हंस किमि यम पावनं ॥
हंस नायक जिव सहायक अधम जिव पद पंकज गहे ॥
युग अनन्त न हंस लावहु काल कलि जिव किमि कहे ॥

सोरठा—युग असख्य में आय, पुरुष लीला धारिके ॥
ऐसे हंस बचाय, उपेक्ष कर्म कहि कि म कहे ॥

सतगुरुवचन—चौपाई

धर्मदास तुम हंस नरेशा । सत्य पुरुष का कहुँ सन्देशा ॥
कलियुग काल बहुत बरिआरा । तातें पुरुष वचन अनुसारा ॥
पुरुष अवाज भई जग जानी । सुनो अंश तेहि कहूँ बखानी ॥
चार गुरू हैं जग कडिहारा । सुकृती अंश आदि अधिकारा ॥
बंकेज चतुर्भुज औ सहतेजी । सुकृती जग महँ चौथे भेजी ॥
जग महँ नाम होहिं धर्मदासू । जीवन ले राखे सुख वासू ॥
अंश बयालिस हमरे आगर । जीवनकाज जाहिं भवसागर ॥
धर्मदास के प्रगटे जाई । नाम चूरामणि आप धराई ॥
तिनके हाथ शब्द टकसारा । पुरुष नाम दे हंस उबारा ॥
कलियुग यही नाम प्रतापू । पहुँचे लोक मिटे सन्तापू ॥
वंश बयालिस जग कडिहारा । देहि दान जिव उतरहिं पारा ॥

छंद–करुणा रमण चित देखि दाया अचर वानी बोलेऊ ॥
जाहु ज्ञानी कीन्ह आयसु जिवन बन्धन खोलेऊ ॥
आय धर्महि मार ततक्षण कौल मह सों कीन्हिया ॥
वंश हाथन पान पावन ताहि हम नहिं लीन्हिया ॥
सोरठा–कौल कीन्ह धर्मराय, पुरुष दीन्हेउ बंश को ॥
काल पान जिय पाय, सो पहुँचे सुख सिन्धु कहँ ॥

धर्मदास वेचन–चौपाई

सुनतहि धर्मदास हरषाने । सतगुरु चरण धाय लपटाने ॥
वचन तुम्हार हिये हम धारा । चूरामणि है अंश तुम्हारा ॥
और कहो प्रभु दीन दयाला । हंसन नायक करो निहाला ॥
नागर वेलि कहँवां तें कीन्हा । जाय अंक पुरुष कहँ दीन्हा ॥
ताकी आदि कहो मोहिं स्वामी । कृपा करो प्रभु अन्तर्यामी ॥

सतगुरु वचन–चौपाई

तुम तो बूझ कीन्ह बड अंशा । तुम्हरे चित का मेटूं संशा ॥
नागवेलिका भेद बताऊं । अंक देय हंसन मुक्ताऊं ॥
कूर्म पीठ पर वेलि रहाया । तहँ ते नागवेलि हम लाया ॥
ताकर मूल दीन्ह संसारा । तुमसों धर्मनि कहूँ विचारा ॥

साखी–एक पान बरई का, हाटहि हाट बिकाय ॥
एक पान सतगुरु का, अमर लोक ले जाय ॥

धर्मदास तब भये सुनाथा । साहब चरण नवायो माथा ॥
अगम कथा भाष्यों प्रभुराई । दीन पयाल हंस मुक्ताई ॥

छन्द–धर्मदास कर जोरि कह मोहि पतित पावन कर लहै ॥
गदगद गिरा अतिपुलक सादर प्रेम वश पंकज गहै ॥

तुम वचन सुधा तड़ाग निर्मल ताहि बिच मन मीन हो ॥
सब जीव यह अज्ञान कर्मी मोह वश नहिं लीन हो ॥

सोरठा—युग युग भवन सिधाय, आर्य लोक जिव लेगये ॥
कलियुग पन्थ चलाय, हंसन मग अब भाषिये ॥

सतगुरुवचन—चौपाई

हंसन पग बूझो धर्मदासू । जो जिव पदगह होय निराशू ॥
तन मन धन हिय मोह न राखे । सदा लीन अस्तुति चित भाखे ॥
हंस चाल रहें सदा अनन्दा । सो जिव बांचे यमके फन्दा ॥
गुरुमुख निशिदिन आज्ञाकारी । निंदारूप न चित्त विचारी ॥
गुरु निंदा क्षण इक चित व्यापू । ताकहँ काल करे बड़ दापू ॥
हर्ष शोक चित नाहिन आवत । सदा लीन गुरु सुरति समावत ॥
जस चकोर चन्दहि चित लावत । न कहुँ सुरति न हैं बिसरावत ॥
जैसे पंकज सर रह बासा । निशि बीते रवि उगै अकाशा ॥
दरश देख पंकज विकसाना । ऐसे हंस वंश चित आना ॥
सत गुरु नेह जाहि चित आई । पाय अंक हिय सांच बसाई ॥
धर्मदास मोकहँ जिमि पावा । तज धन धाम सकल बिसरावा ॥
ऐसे संत वंश गहि चरणा । छूटे ताहि जरा औ मरना ॥
एतक हंस वंश सहिदानी । धर्मदास मैं कहूँ बखानी ॥
ताकहि यम छूवें नहिं पायी । गहि पद वंश लोक जिव जायी ॥
आर्य लोकमहँ जगमग ज्योती । हीरालाल लाग जहँ मोती ॥
श्वेत हंस बैठे जहँ पांती । कंचन खम्भ बने बहु भांती ॥
पुरुष डोरि हंसा चढ पावे । जीवन जन्म ताहि मिटि जावे ॥
सुरति अचिन्त है नाम हमारा । जिन्हें जान जिव उतरे पारा ॥
मूल वस्तु हम दीन्ह बतायी । जाते हंस नष्ट नहिं जायी ॥

पुरुष रूप बरनो अति पावन । एक चिकुर रवि कोट लजावन ॥
हंस रूप शोभा बहु भांती । षोडश भानु हंस की क्रान्ती ॥
मुक्त अमर मन जहवां वासा । दर्शन पाय होत अघ नाशा ॥
ऐसे घर साधुन वर कीन्हा । पहुँचे लोक वंश जिन चीन्हा ॥
आदि अन्त सागर मय भाषा । अम्बू चाख सुरति जिमि राखा ॥
भवनिधि उतर पार जिव जायी । यम शिर पांव देय घर आयी ॥

छंद—अम्बु सागर ग्रन्थ में जहँ कमल बखानियां ॥
सोरठा कंमोद फूले वार अति चौपाइयां ॥
यह कथा पावन अति सुहावन अमी सर वर्णन करों ॥
जेहि करहु मज्जन सन्त सज्जन अर्थवीची चित धरो ॥

सोरठा—खण्ड मनोहर घाट, साखी सिढियां लाइये ॥
चले हंस यह बाट, सुख सागर सुख सों लहे ॥

इति श्रीअम्बुसागरे चारोंयुग कथा वर्णनो नाम चतुर्दशस्तरंगः ।

इति समाप्तोऽयं ग्रन्थः ।

---

## उपसंहार

सोरठा—अम्बुसागर ग्रन्थ भो पूर, बूझो संत विवेक करि ॥
शब्द परखे सो शूर, परखि शब्द सत पद गहे ॥

### चौपाई

काल चरित बहु अगम अपारा । भांति २ जग शब्द पसारा ॥
दुख छुडावन कहँ ललचावे । ललचनि जीवहि फंद लगावे ॥
पहले कहे सुकृत की बातू । पीछे लावे आवन घातू ॥
पहले दिखावे भक्ति औ मुकती । पीछे लगावै आपनि युकती ॥
यह सब जानो यम कीं बाजी । जेहिमा भूले पण्डित काजी ॥

देह लोभ सब जीव फँसावे । आपन महिमा करि भक्ति बढावे ॥
कहँ लगि कहौं कालकी रचना । एकहि एक मिले नहिं बचना ॥
पक्षपात लगाइ जीव बिगोवे । सत्य पद छूटि नरक सो जोवे ॥
याते गुरु पारख बिस्तारा । जेहि पाये जिव होयहि न्यारा ॥
हंस होउ अपने पद जोवे । सत्य गुरू के शरण सु होवे ॥

दोहा–परखो संतो शब्द को, त्रिविधि भेद विचार ॥
काल संधि झाईं लखी, पावो शब्द मति सार ॥
दोउ प्रकार पारख करो, बानी खानि विचार ॥
गुरु पद तब पाइहो, रहै न भ्रम लगार ॥
भ्रम छुटे जब जीवका, उभय अनन्द सो पाय ॥
काल देशते निकसिके, सत्य लोक को जाय ॥

इति




सत्यसुकृत, आदि अदली, अजर, अचिन्त, पुरुष, मुनीन्द्र, करुणामय, कबीर, सुरति योग, संतायन, धनी, धर्मदास, चूरामणिनाम, सुदर्शन नाम, कुलपति नाम, प्रमोध, गुरुबालापुरी, केवल नाम, अमोल नाम, सुरतिसनेही नाम, हक्क नाम, पाकनाम, प्रकट नाम, धीरज नाम, उग्रनाम, दयानामकी दया, वंश ब्यालीसकी दया

## अथ विवेकसागरप्रारंभः

★

### प्रथमस्तरंगः

चौपाई

ज्ञान दीप बड़ जानु सुजाना । सुख न बहुत संतोष समाना ॥
सत्य व्रत सम व्रत न कोई । ज्ञान समान गुरु नहिं होई ॥
नहिं विचार ते औरू सारा । बिना विचार सकल संसारा ॥
अगम ज्ञान न विचारे सारा । कैसे उतरे भवजल पारा ॥
सोई विचार नाम लौ लावे । ज्ञान विचारि परमपद पावे ॥
शेष सहस मुख निशिदिन गावे । वरनत वेद अन्त नहिं पावे ॥

महा पुरुष का कहों विचारा। तुम अनन्त गति लहै को पारा ॥
करम प्रधान जीव संचरई। तेहि को मिलै जहां मन धरई ॥
शीत उष्ण सुख दुख संसारा। आपुहि सृष्टि लीन्हते भारा ॥
यह सब सुपन देहको आही। प्रकृति भेद कछु लिप्त न जाई ॥
रविघंन जैसे जीवहिं सांधे। माया ताहि सके नहिं बांधे ॥
किमि मायाजिव ढकिसोइ लेई। भुलाई स्वरूप सुख दुखते देई ॥
कहूँ भेद सुनु सन्त सुजाना। कथा मोह विवेककर ब्याना ॥

## प्रथम मोह राजा का वर्णन

मोह नृपति मायाते भयऊ। प्रबल घटा तिहुँ पुर सी छयऊ ॥
बरनो तासु नाम गुण बैना। महा मोह राजाको सैना ॥

## मोहकी स्थिति

निज अज्ञान देश रजधानी। आलस महल आशा पटरानी ॥
इच्छा बेटी खरी कठोरी। बांधे अनेक जीव उठि भोरी ॥
कुमति सखी ताके संग रहई। निति उठि हृदय सबनकी दहई॥
लौंडी छूत टहल घर करई। जाके परसत सब जग डरई ॥
लौंडा लालच नाहिं अघावे। वरजत निलज सबके घर जावे ॥
रोग शोक संशय बहु भांती। पर द्रोही औ द्वन्द सँघाती ॥
ये राजा के पुत्र प्रचण्डा। जाके डर त्रासे नौ खण्डा ॥
पाप सबन को औगुन जानी। दुख दरिद्र मोह अभिमानी ॥
अधर्म ध्वजा जाके अगवानी। बाजा प्रकट कलह निशानी ॥
दम्भ क्षत्र चौतरा शूला। जहँ सिंहासन बैठे फूला ॥
कपट वजीर असत्य खवासा। पाखण्ड मन्त्री संग प्रकासा ॥

---

१ क्या। २ जिस प्रकारसे मेघ सूर्यको ढक लेता है किंतु उसका अनिष्ट नहीं कर सकता उसके स्वरूप का नाश नहीं कर सकता है उसी प्रकार से माया जीव का आच्छादन करती है किन्तु उसके स्वरूप में अदल बदल नहीं कर सकती।

साखी–यह सेना सब मोहकी, कहै कबीर समझाय ॥
इतने जो को वाचई, भवसागर तरि जाय ॥

मोह के मुसाहिब–चौपाई

प्रथम उमराव दम्भ बखाने । ब्राह्मण छुए पर अवचन आने ॥
औरा बरनों उमराव जो आगे । तिनहू ते कोउ उबरे भागे ॥
काम क्रोध गर्व और लोभा । महा मोह बांधे संशोभा ॥
काम कमान गति कीन्हो दापू । अहं औ गर्व समाने आपू ॥
लोभ मिलै उपजै संतापू । चारिउ करे तिहूँ पुर दापू ॥
बरनूं एक एक की बाती । सुनि उघरी कायर की छाती ॥

कामप्रताप वर्णन

प्रथम काम धनुष कर लीन्हें । पांच बान सो तासंग चीन्हें ॥
मोहन वशीकरण उचाटा । बान लगत घर भूले बाटा ॥
दुष्ट काम उर प्रकटे आयी । ज्ञान विचार बिसरि सब जायी ॥
ऋतु वसंत त्रिय सैन सिंगारा । कहि न कामकी सेन अपारा ॥
सोलह शृंगार देखी मन मानी । निरखत अंग अंग की वानी ॥
ऐसी निरखि काल की सैना । सुर नर मुनि उर धरत न चैना ॥
साखी–यह काम अति प्रचण्ड है, होत उत्पन्न तिय अंग ॥
सैन चैन अतिही बढे, चढे काम रति रंग ॥
तन मन अस्थिर ना रहे, काम बान उर साल ॥
एक बाण से सब किये, सुर नर मुनी विहाल ॥

चौपाई

चलै काम यह सबै पलाने । महारुद्र की करत न काने ॥
महा रुद्र पहँ पहुँचे जानी । मारचो पुहुप बान शर तानी ॥
देखि मोहनी मोहे देवा । पुहुपबानको कुछ लह्यो न भेवा ॥
छांडि ध्यान धाये त्रिपुरारी । समुझे जबहीं जब परे जुदारी ॥

जान्यो काम क्रोध मन काछे । चितवत दृष्टि पाचो मति पाछे ॥
तब रति देखि दीन है गयऊ । विन्ती करत विषय तन भयऊ ॥
जब रति देखि दीन है आई । विन्ती करी तब लखि पाई ॥
सृष्टि न होय न चलै संसारा । महा रुद्र तुम करहु विचारा ॥
जब शिव देखि दया मन लावा । ता दुख मेटन मनमें आवा ॥
तब तिय जानि बहुरि निर्मयऊ । अंगहीन सो अति बलि भयऊ ॥
बहुरि काम ब्रह्मा पहँ आया । देखत नाहिं कोप मन भाया ॥
षट पुत्रिन कहँ दीन्हों शापू । षट जन्म मृतवत्सा तुम हो आपू ॥
बहुरि काम चले समुहाई । तेतिस क्रोड किये वशि जाई ॥
काम बान शर धरि लीन्हा । जीतन चले सो आपु वशि कीन्हा ॥
इन्द्रसेन जब गयी सब हारी । इन्द्रहु की गई बुद्धि मति मारी ॥
जबहीं इन्द्र काम वश भयऊ । गौतम नारि छलन तब गयऊ ॥
काम कोपि सुरपति पर आये । अति आतुर अहिल्या पहँ धाये ॥
जबते चितमें चितये पापू । सहे उग्र गौतम को शापू ॥
सहस्र भग ताकहँ भयऊ । काम बान कर फल यह ठयऊ ॥
काम चन्द्र पर चितवे जबहीं । जाइ हरे गुरु-पत्नी तबहीं ॥

साखी–ऐसो असुर घटमों बसे, सुनहु हो धर्मदास ॥
घट परिचय जाने विना, सबका भया विनास ॥
तन मन लज्जा ना रहै, काम बाण उर साल ॥
एक काम सब वसि किये, सुर नर मुनी विहाल ॥

चौपाई

ऐसो असुर वरनो काही । जागे सोवत मारे चाही ॥
शृंगी ऋषी जो वन महँ जाये । कन्द मूल खनी वन फलखाये ॥
ऐसन ज्ञान ध्यान मन धरई । सोउ काम वसि फिरि फिरि परई ॥
नारद आदि पंच शर तानी । और अनेक जेहि नर ज्ञानी ॥

काम बाण जब दशरथ लागे । राम छुटे तब प्राणै त्यागे ॥
काम बली अति बलवंडा । जासु बान रहे बिकल ब्रह्मण्डा ॥
काम वशि भये रावण राऊ । हरण सीता किय नाश उपाऊ ॥
बड २ ज्ञानी जग महँ भयऊ । काम त्रास सबन कहँ दयऊ ॥
काम बाण ते बाचे सोई । शब्द विवेक जाके हि होई ॥
काम अति परबल सुनु धर्मदासा । सब कहँ दिये निरंजनफासा ॥

साखी-प्रेम प्रीती सो बांधिया, कहे कबीर समझाय ॥
ता प्रेम महँ विवेक विनु, रहे जीव मुरझाय ॥
सुर नर मुनि सब जीतिया, कोइ न उबरे धाम ॥
महा मोह शिर नायके, कियो उपायन काम ॥

## क्रोध प्रताप वर्णन

### चौपाई

काम धाम परि सब अकुलाते । अब निज सुनो क्रोधकी बाते ॥
काम ते अधिक क्रोध परचण्डा । जाके डर तरासै नौ खण्डा ॥
गुरु कुबुद्धि क्रोध के संगा । अढर भेष धरि चढत जो अंगा ॥
जब उर क्रोध परगटे आयी । कांपै देह थर थर हो जायी ॥
टेढी भौंहैं अंकित नैना । अशुभ असार मुख बोले बैना ॥
जरै हृदय मुख निकसे झारा । रोम रोम पावक पर जारा ॥
मार मार करै अपघाता । गिनैं न मातु पिता औ भ्राता ॥
दुई जाय कै विनशै आपा । दारुण हिया क्रोध के रूपा ॥
प्रथमें क्रोध ब्रह्मा को भयऊ । षट पुत्रन कहँ शाप जो दयऊ ॥
ब्रह्म अहै सहै नहिं रूपा । उपज्यो क्रोध जो सबही भूपा ॥
सनकादिक बैकुण्ठे गयऊ । रोकत पौरी क्रोध मन भयऊ ॥
ब्रह्म पुत्र सह्यो नहिं छोहू । जय अरु विजय असुर दोइ होहू ॥
उपज्यो क्रोध सहै को भूपा । दरशन भये क्रोध के रूपा ॥

तजि द्वार देह धरो जाई । जन्म तीसरे मिलहो आई ॥
क्रोधते वे तीन जन्म विहाला । हरिनाकुश रावण शिशुपाला ॥
जब जब शिव क्रोध करै संसारा । परलय होत न लागे बारा ॥
जबसुरअसुरक्रोधकियोरामा । भयो ताडका मारन संग्रामा ॥
दुरवासा कोध न सहेऊ । उलटी हानी तप में भथेऊ ॥
छप्पन कोटि यादव संघारा । आपुहिं आप क्रोध परजारा ॥
क्रोध किये सब कुल नाठी । सगर पुत्र जरे सहस्र साठी ॥
करि क्रोध भये जरि छारा । राजा रंक गनै को पारा ॥
कौरव पाण्डव क्रोधहि जारे । आपहि आप गये सब मारे ॥
साखी-दशो दिशा ते उठी, परबल क्रोधको आग ॥
संगति शीतल साधुकी, शरण उबरिये भाग ॥

चौपाई

कहै कबीर क्रोध पर हरै । सोइ प्राणी भवसागर तरै ॥
क्षण क्षण क्रोध हृदयमें आवै । जप तप ज्ञान रहै नहिं पावै ॥
पण्डित गुणि योगी वैरागी । ये सब जरैं क्रोध की आगी ॥
पंच अग्नि ग्रीषम ऋतु धरई । ऐसी विधि त्रिकाल तप करई ॥
पांचौ इन्द्री करै निरासा । साधे निद्रा भूख पियासा ॥
जतन जतन बहुत तप करहीं । क्रोध छुड़ाय छन एकमहँ हरहीं ॥
क्रोध ते रोग शोक संतापा । क्रोध फन्दा परि विनशे आपा ॥
क्रोधहि ते मूरख होय आवा । क्रोधै ते म्लेच्छ गति पावा ॥
क्रोधै ते नर नरके जायी । जोनिन संग कष्ट भरमायी ॥
सिद्ध काज विनासै क्रोधा । सब फल जाइ न पावै सोधा ॥
साखी-बहुत जतन तप कीनेऊ, सब फल क्रोध नसाय ॥
कहै कबीर धन संचै, चोर मूसि लै जाय ॥
कहै कबीर विचारिके, क्रोध अग्नि बहु जाग ॥

संगति साधु सतनाम की, शरन उबरिये भाग ॥
क्रोध अग्नि घट घट वरी, जरत सकल संसार ॥
दीन लीन निज भक्ति सो, ताकर निकट उबार ॥

## लोभ प्रताप वर्णन

चौपाई

वरण्यो काम क्रोध मन जाथा । अब सुनु निलज लोभकी गाथा ॥
बुरा लोभते और न कोई । सकल अधर्म लोभ ते होई ॥
हाथ लकुटी नट कपिहिं नचावै । यहि विधि सकल जीव भरमावै ॥
पुनि ते मायाही मन लावे । अगम निगम दशहूँ दिशि धावे ॥
अंकिप आनिके जोरै दामा । तन मन देह करै जम जामा ॥
खोवै बुद्धि करै जंजाला । समुझै नहीं मृत्यु औ काला ॥
आपदा होय नहीं विश्रामा । कही अगनित जो डूबे दामा ॥
जब मन लागे द्रव्य के संगा । जागत सोवत सुख नहिं अंगा ॥
पल एक में गुरु ज्ञान बतावे । जब शिष चोर द्रव्य पर लावे ॥
ऐसी वस्तु गुरू मोहिं देहैं । जेहि प्रकार मोरे धन होइहैं ॥
ऐसी आश लगावे चेला । अपने दाव करे भक्ति दुहेला ॥
लोभ विवश गुरु भक्ति करई । मनमें लोभ मुख भगती धरई ॥
गुरु महिमा कर माल चढावे । परफुल्लित होय भक्ति मुख गावे ॥
मनमें लावे कछु औरे । ठाठ बाट देखि सो दौरे ॥

साखी–गुरु लोभी शिष लालची, दोनों खेलें दाव ॥
दोऊ बूडे बापुरे, चढि पाथरके नाव ॥

चौपाई

कलियुग वैराग अस होवे भाई । सुनु धर्मदास मैं कहौं बुझाई ॥
कलियुग पाप कर्म बहु बढिहैं । करि करि पाप दुख में पडिहैं ॥
ताते दरिद्र होय बहु लोगू । सहिहैं बहुते दुखरू सोगू ॥

पाइ दुख बहु भेषसों धरिहैं । लागे लोभ पाप बहु करिहैं ॥
मांगि मांगि कछु द्रव्य कमायी । ऋण व्याज दर दिहैं उठायी ॥
नाम साधु जग मांहि कहायी । खैहैं व्याज करि कर्म कसायी ॥
मठ मन्दिर कारण धन लैहैं । सेवक साख बहुत बढैहैं ॥
साधू सेवा सबहि बतायी । नाम परमारथ करहिं ठगायी ॥
पाइ द्रव्य विषय सो भोगी हैं । बहु विधि इंद्रिन सुख लगि हैं ॥
विषय भोग को द्रव्य सो चाही । तब पडि हैं वह तृष्णा मांही ॥
तृष्णा अति परबल जग भंगी । सदा रहै वह लोभ की संगी ॥
अर्द्धांगिनी लोभ की कहिये । अब ताकर वृत्तांत सो लहिये ॥

साखी—जब मन लागे लोभ सो, गया विषमें विष बोइ ॥
कहै कबीर विचारि के, यही प्रकार धन होइ ॥

चौपाई

पहिले पैसा मों मन लावे । पैसा मिले टकाको धावे ॥
टका देखि मन मैं सुख भयऊ । दो टका का उद्यम कियऊ ॥
दुइ जोरे जोरे फिर चारी । लोभ पाति दीन्हों परचारी ॥
चारि जोरि मन उपज्यो रंगू । अब दश कै जोर होय जनि भंगू ॥
दश जुरै मन रहे न ठोरा । जोरि बीस मन आगे दौरा ॥
बीस जोरि मन बाढी आशा । अब जो कैसेहु के जुरे पचासा ॥
जोर पचास गांठ सौ दीन्हा । तब सहस्र को उद्यम कीन्हा ॥
जोरि सहस्र तृष्णा नहिं साखू । अब लागै जोरन लाखू ॥
लाख जोरि विनवै कर जोरी । अब परमेश्वर मोहि देहि करोरी ॥
जोरि करोर क्षण कल नहिं परै । लौ न अगिन छिन छिन तनु जरै ॥
ज्यों ज्यों लोभ मिलै नौखण्डा । त्यों त्यों लोभ भयो परचण्डा ॥
ज्यों ज्यों तरुण बालपन गयऊ । त्यों त्यों तरुण लोभ अतिभयऊ ॥
धनकूं धाय धायके धरई । ज्यों पतंग दीपक में परई ॥
धनकूं धाय आन कूं लागे । होय जरा त्यों त्यों धन मांगे ॥

साखी-धावै औगुन धनहि को, लालच बान चढाइ ॥
कहै कबीर विचारि के, गुण शील सब जाइ ॥
जहां लोभ गुण औगुन है, तहां नहिं शील स्वभाव ॥
लोभ औगुन ते वाचनो, गुरु विनु कहै को दाव ॥

चौपाई

लोभ अग्नि लागे नहिं जागे । सब गुन आहि तौ काहे लागे ॥
सरब अरथ कही दिखलावै । सूर सारंग जो गाइ सुनावै ॥
चारि वेद व्याकरण समाना । और अष्टादश पढहिं पुराना ॥
जंत्र मंत्र जानत अति नीके । सब गुन अहित लोभके पीके ॥
करि तपस्या वह देह जरावे । उलटा लटकि बहु सिद्ध कहावे ॥
औरन को परमोध बहु करई । त्याग दृढावत जहँ तहँ फिरई ॥
और नहिं छुडावे परिवारा । मंडली बढावन मनमें धारा ॥
करि परिश्रम बहु धन जोरई । खरचे न खाय फिर पिनता धरई ॥
यह सब काम लोभ का भाई । विन सतगुरु नहिं लोभ छुटाई ॥

साखी-भेष भक्त मुदित सबै, ज्ञानी गुनी अपार ॥
षट दर्शन फीके परे, एक लोभके लार ॥
भगत मुडिया जटाधारी, ज्ञानी गुनी अपार ॥
षट दर्शन भटकत फिरे, एक लोभ की लार ॥

अथ गर्वका कर्तृत्व वर्णन

चौपाई

जाते दारुण दुख सुख भाऊ । बढ्यो अपरबल लोभ उमराऊ ॥
निर्लज लोभकी कथा बखानी । सुनहु जीव गति गर्व अभिमानी ॥
छिन छिन गर्व हिया में आवे । आगे कुटिल सबही दिखलावे ॥
ऐंडत चलै निहारत पागा । गर्ब खबीस तबहिं उठि लागा ॥

ऐंठ अकड अभिमानी माहीं । अभिमानी नीचा हों नाहीं ॥
मूछे ताव निहारत छाँहीं । काँधे धरे अवरकी बाँहीं ॥
टेढी पाग गर्ब मन धरई । मन महँ ऊमतवालो फिरई ॥
अनीति वचन औरन सों बकै । हमरी बरोबरी को करि सकै ॥
हम कुल बडे बडन के जाये । हमरी आदि साख चलि आये ॥
नाती पूत हमारे चाही । कुटुम्ब बहुत हमारे आही ॥
घर मडवा अँगनाइ हमारे । फूले फिरे गर्व के मारे ॥
झूठ कपट अभिमानी खेलै । कंचन बर्तन माटी मेलै ॥

साखी—छर्ब गर्ब अति सर्व सुख, विषय विकार न मूल ॥
कहै कबीर काल शिर पर, लिये हाथ त्रिशूल ॥

अति के गर्व न होय भाई । गर्वहि ते पुनि सर्व नशायी ॥
अभिमानी नहिं छूटे कबहूँ । बहु विचक्षण ज्ञानी होय तबहूँ ॥
भगली दम्भ नितही मन माहीं । निकट सांच कछु आवे नाहीं ॥
हम हम हम करत सो डोलै । काहू ते सीधा नहिं बोलै ॥
रूपवन्त रूप गरवावै । कोई मोसम दृष्टि न आवै ॥
तरुणापा तरुण पछारा । अन्ध बनाइ गर्व तेहि मारा ॥
धन कुल विद्या गर्बाना । धनो ऊंच ज्ञानो विखराना ॥
अहै भूप राजा अभिमानी । आपेही को सरवस जानी ॥
है योगी योग गर्व धारै । बडे बडे सिद्धि काल गहि मारै ॥
है भेसी टेक मन धरई । विचार विवेक दूर सो करई ॥
कहै पुकार धरी अभिमाना । मेरा नीका सुन यह ताना ॥
मेरे फन्द जो आवै कोई । परसत मोहि नरकमहँ सोई ॥

---

१धनाभिमानी अपनेको सबसे अधिक धनी जानता है।
जात्यभिमानी अपनी जातिको सबसे ऊँची मानता है।
विद्याभिमानी अपनेको सबसे अधिक ज्ञानी अनुमानता है।

साखी–सर्व परहारी नाशके, तुरतहि देइ सजाइ ॥
ताकर दर्श न पाइ नर, तुरतहिं नरके जाइ ॥

इति श्रीविवेकसागरे मोहदलपरीक्षावर्णनो नाम प्रथमस्तरंगः ।

---

# अथ द्वितीयस्तरंगः

## विवेक दल वर्णन

अब सुनु विवेकराय की गाथा । पर सुखदाई जाकर साथा ॥

## विवेक स्तुति

आदि अंत लोक के राई । तुमरी गति कछु वरनि न जाई॥
सब विस्तार तुमहीं विस्तारे । सत रज तम तीनो गुण धारे ॥
ऐसे परम पुरुष के अंशू । प्रकटें प्रेम विवेक सुख वंशू ॥

## विवेककी स्थिति

निरमल साधु उर निजपुरगाना । तिलक ध्वजा माल औ बाना ॥
ज्ञान देश प्रकाश रजधानी । आनन्द रूपी विवेक परवानी ॥

## विवेककी सेना

सुनहु विवेक राज की सैना । जाके राज सकल सुख चैना ॥
उमरा धीरज धर्म औ ज्ञाना । प्रेम भक्ति बाजै निश्शाना ॥
निजानन्द महल पग धरई । श्रद्धा रानी सेवा करई ॥
निर्भय संत सुशील सुभाऊ । ये विवेकके पुत्र कहाऊ ॥
ऐसे नृप विवेक के अंशू । प्रगटे आद प्रेम सुख वंशू ॥
नृप विवेक की बेटी चांरी । सत्य दया क्षमा शुभकारी ॥

---

१-इस पुस्तककी जितनी प्रतियाँ इस समय मेरे सन्मुख उपस्थित हैं उन सबों में सारद और सरधा इन दो प्रकारसे लिखे हैं ।

२-लिखते तो हैं बेटी चार किन्तु आगे नाम देते हैं दया और क्षमा दो ही का यह मूल पुस्तक रचयिताकी भूल तो कही नहीं सकते क्योंकि जो इस प्रकारकी उत्तम पुस्तक लिखने की अभिलाषा रखता होगा उसके पास सामग्री भी होगी किन्तु लेखक महाशयों की कृपा का फल है ।

सत्य संतोष साथ है ताही । नरक परत गहि राखत वाही ॥
लौंडी सुबुद्धि सबनकी लाजा । लौ लौंडा पुरवे सब काजा ॥
सुचित शील और अनुरागी । क्षमा स्वभाव बैठे वैरागी ॥
रहनी क्षत्र चौतरा सुभाऊ । सहज सिंहासन बैठे राऊ ॥
व्रत वजीर और सत्य खवासू । मन्त्री निरभै संग प्रकासू ॥
करहिं वेद ताके सुख सेवा । विवेक प्रसाद सदा सुखदेवा ॥
धीरज ज्ञान धर्म उमराऊ । ये राजाकी करहिं सहाऊ ॥
उग्रज्ञान प्रकटे जब आयी । ताक्षण मोह सबै मिटि जायी ॥
ज्ञानवन्त जब प्रकट ह्वै आवै । काल जंजाल सबै मिटि जावै ॥
चौकी मोह सबै उठि भागे । भागे कपट ज्ञानके जागे ॥
दुष्ट काल पल लागत गयऊ । ज्ञान चक्षु हिरदय तब भयऊ ॥
कोहौं अहऊं कहँ ते आयो । जैहौं कहाँ काहि मन लायो ॥
कहौं को तुम को संसारा । काहे बंध्यो सो करो विचारा ॥
झूठे मोह बँधो संसारा । कहे बंध्यो सो करो विचारा ॥
जैहौ कुगतिलोभ संचारा । झूठे मोह बन्धो संचारा ॥
दंपति सुख संपति परिवारा । ये सब माया को विस्तारा ॥
जैसे छिन बदरीकी छाया । ऐसे गहे देत सुख माया ॥
ये सब सुख सपने को राजू । जागि परे कुछ सरे न काजू ॥
झूठे आहि देहको नातो । ये सब माया केर समातो ॥
तन जारे भसम होय जाई । मेहरी मातु नातु नहि काई ॥
ऐसो ज्ञान मन प्रगटे आयी । तो कहु मोह कहाँ ठहरायी ॥
ज्ञान मोह दल देखी दाही । कदली गर्व विचाला चाही ॥

साखी-प्रगटे प्रेम विवेक दल, कहे कबीर समझाइ ॥
उग्रज्ञान अति बली, जेहि सुनि मोह डराइ ॥

नाम हेतु जो कीन्ने कर्मा । कहै कबीर सोई निज धर्मा ॥
सांचो धर्म जानिये सोई । प्रगट स्नेह नाम सो होई ॥
तन मन धन जो नामे देहैं । सोई भक्त कबीर कहै हैं ॥
अग्नि जायके शिर धरयी । तौहु न नाम महिमाते परयी ॥
कोटिक सुख कोटिन दुख पावें । धीरजवंत नाम लौ लावें ॥

## विवेक और मोहकी छोड छाड

ऐसो ज्ञान प्रगट जब भयऊ । चिंता मोह सबै मिटि गयऊ ॥
उपज्यो काम क्रोध मोह दापू । निज धीरजके विश भय आपू ॥
लोभ मोहकी अग्नि अतिदहई । सन्तोष पोष प्रवृत्त होय रहई ॥
धीरज धर्म ज्ञान मन दियऊ । तबहीं मोह चकित होय रहऊ ॥

## विवेक और मोहयुद्ध वर्णन

तबहि मोह मन्त्र उपजावा । पाखण्ड मित्र निकट बुलावा ॥
सकल सैन को बुलवायऊ । मित्र एक जोडि ठहरायऊ ॥
आये प्रबल विवेक नरेशा । लीन्हें आइ हमारो देशा ॥
अब मति मन्त्र करो ठहरायी । देश आपनो लेहु छुड़ायी ॥
कहै पाखण्ड सुनो मम राजा । यह बड कौन अहै सो काजा ॥
राजा मन्त्र हमारो लीजै । प्रथम कामको आयसु दीजै ॥
आगे आगे काम रह भरपूरी । ज्ञान विवेक जाहि सब दूरी ॥
तबहिं काम कहँ आयसु दियऊ । दल बादल सह रन सो गयऊ ॥

## काम और ज्ञानयुद्ध

काम कुपित वचन सुनायो । हमरे देश ज्ञान कहँ आयो ॥
उतै भयो काम उतै भयो ज्ञाना । मानस भूमि रच्यो संग्रामा ॥
यहै कबीर यहै परमाना । काम ज्ञान युद्ध तब ठाना ॥
बहु रूप धरि काम तिवाना । तबही चलावै पांचो बाना ॥
निरफल कियो ताहि तब ज्ञाना । सुरति शब्द लै रहे निदाना ॥

काम कहै यह नीकि सुन्दरी । कहै ज्ञान यह विष की दहरी ॥
काम कहै याके ढिग जाई । ज्ञान कहै यह सांपिन अहई ॥
काम कहै कामिनि सम तूला । ज्ञान कहै यह विष कर मूला ॥
कामासक्त कुदृष्टिसन राता । ज्ञानसक्ति करि बोलै माता ॥
यह सुनि बहुत अजब भो कामा । सह्यो ज्ञान हमरो संग्रामा ॥

साखी-रच्यो कामछंद अनंगरती, त्रिविधि मद त्रियासंग ॥
कहै कबीर यह अति बढै, जब बढैं काम रतिरंग ॥

चौपाई

शब्द विचारै बोलै ज्ञाना । जीत्यो तोहि विवेककी आना ॥
तबही विचारै ज्ञान सो कीया । बाका भेद सबै सो लीया ॥
ज्ञान विचार उठे गल गाजी । काम निलज्ज न काहे भाजी ॥
धिगतिया धिग धिग अस राजा । निरधिनरुधिरमांस को साजा ॥
हाड त्वचा मुख रोम पसारा । नव द्वार बहैं अति खारा ॥
रेंट नाक मख कफ लारा । कीचड आंखिन काने छारा ॥
नख शिख व्याधि सबै विस्तारा । विष्ठा मूत्र तिया तन भारा ॥
वाहि रांचैं सो पावैं दुक्खू । सपने नहिं तेहि होये सुक्खू ॥
दुख की राशि जो राजी कोई । साचो नर्क आहि पुनि सोई ॥
यह कहि ज्ञान रहा ठहराई । काम सैन डारै विचलाई ॥
विचल्यो काम गयो खिसियाई । उग्र ज्ञानते कछु न बसाई ॥

साखी-प्रेम भक्ति बल ज्ञानते, रूप रह्यो रन पाय ॥
मोहि काम का करि हैं, जो साहब होइ सहाय ॥

चौपाई

विचल्यो काम मोह पहँ गयऊ । सबहि वृत्तान्त सुनावन लयऊ ॥
मनमें मोह बहुत पछितायी । बोलाइ क्रोधको बात सुनायी ॥
आइ क्रोध जब ठाढे रहेऊ । तबही मोह क्रोधसे कहेऊ ॥

तामस तेज नाम तोहि क्रुद्धा । करु विवेक ज्ञानसो युद्धा ॥
कहँ अस प्रबल तोहि को सहै । तोरे तेज ज्ञान कहँ रहै ॥
वह सुनि क्रोध चला सम्मुहाई । करी गवन पहुँचा रन आई ॥
तनमें आइ कियो परवेशा । छांडो ज्ञान हमारो देशा ॥
जो तुम निश्चय जीतो कामा । तो अब मोसों करो संग्रामा ॥
यहसुनिज्ञान अचम्भित भयऊ । जाइ विवेक राइ सों कहेऊ ॥
राजा तब यक मंत्र विचार्‍यो ।जेहिविधिप्रबलक्रोधको मार्‍यो॥

साखी-यह अति क्रोध प्रचण्ड है, कोपि करै भयमंत ॥
सुधि बुधि धीरज ना रहै, जब यह कोपि चढंत ॥

चौपाई

तब राजा मंत्रिन सो कहै । प्रबल क्रोध क्यहि कारण दहै ॥
तब सबहि मिलि मंत्र विचारा । यह तो जाय क्षमा ते मारा ॥
बोलि विवेक क्षमा सो कहै । तुम तो जाइ क्रोध रन बहै ॥
भक्ति ज्ञान तेहि देह सहाई । प्रबल क्रोधको मारो जाई ॥
यहिसुनि क्षमा रोपे रन आयी । लीन्हो शील जो धनुष चढायी ॥

क्रोध और क्षमा का युद्ध

देखि क्षमा क्रोध चले धायी । मनसा भूमि रोप्यो रन आयी ॥
सुनो क्षमा क्रोध संग्रामा । लरही दोउ जुझे संग्रामा ॥
उतते क्रोध उठे रन कोपी । इतते क्षमा रहै रण रोपी ॥
मारन क्रोध उठे जब धायी । इतते क्षमा दीन्ह मुसकायी ॥
क्रोध आन तब गारी दयी । सुनि क्षमा अन बोली भयी ॥
मीठे वचन क्षमा अति बोलै । कोपै क्रोध पवन ज्यों डोलै ॥
क्षमा से अग्नि शितल ह्वै जाई । जैसे जलमें अग्नि बुझाई ॥
यहि विधि क्रोध क्षमा सो भिरई । मानहु अँगार पानिमहँ परई ॥

साखी-भलो भलो सब कोई कहै, रहि गइ क्षमा दुहाइ ॥
कहैं कबीर शीतल भये, गयी सो अग्नि बुझाइ ॥

चौपाई

क्रोध जरनते गयऊ बुझायी । राजा मोह समाचार तब पायी ॥
बहुते मन महँ कीन्ह पछिताई । सकल सैन को लिये बुलाई ॥
हारयो क्रोध काम जब जाना । महा मोह राजा डर माना ॥
चकित मोह मन्त्री हँकरावा । सम्मुख मोह विवेक डरावा ॥
लोभ मन्त्री आय भये ठाढा । देखत राव छोभ अति बाढा ॥
तब लोभ मोहहि माथ नवाई । कहु राजा मोहि काहे बुलाई ॥
जबलगि अहै मोह रणधीरा । तब लग काहे होहु अधीरा ॥
जबलग प्रबल मोह है आगे । तब लग कहा ज्ञान कह जागे ॥
महा मोह राजा सुनु बैना । जबलगि हौं तबलगि सब सैना ॥
जबलगिहौं तब लगि आही । मोरे गये सबै मिटि जाही ॥
हौं निज सर्व पापका मूला । मोरे ते तुम रहत हौ फूला ॥
जीतौं ज्ञान विवेक हि जायी । देश आपनो लेउ छुडायी ॥
तो कहँ फिर मैं दैहौं राजू । महामोह मोरे बल गाजू ॥
यह सुनि हर्ष मोह मन भयऊ । तत्क्षण लोभको आयसु दयऊ ॥
मोह कहै दैहौं सब राजू । तबहीं लोभ रणै महँ गाजू ॥
जबही मोह लोभहि कहेऊ । देई बीरा आयसु दयऊ ॥
बाचा बन्ध राजा जब भयऊ । तबही लोभ रण कहँ गयऊ ॥
जाई रण दियो लोभ हँकारा । ज्ञान तुम का करहु तकरारा ॥
हम बन्दोबस्त कियो परवेशा । छोडहु ज्ञान हमारो देशा ॥
तजहु ज्ञान तुम हमरो ठाऊं । मैं प्रचण्ड लोभ मोर नाऊं ॥
अब मैं रनमहँ अग्नि परजारौं । करि बल एक एक कै मारौं ॥
चिन्ता शक्ति पापको मूला । कोउ न जानै मम डर भूला ॥
आशा तृष्णा तहां अति बहै । सुनत ज्ञान तहां नहिं रहै ॥
नहिं जानो तुम क्रोधऔ कामा । हौं अति प्रबल लोभ मोहि नामा ॥

छांडहु ज्ञान हमारो ठाऊं । नहिं तो तोहि धरि धरि खाऊं ॥
यह सुनि ज्ञान मन्त्र यक ठयऊ। फिर विवेक राजा पहँ गयऊ ॥
राजा मन्त्र करो ठहराई । लोभ न मोपै जीतो जायी ॥
जो तुम लोभ जीतौ आजू । तौ तुम करो निकंटक राजू ॥
तब बोले मन्त्री प्रकाशा । यहि बिधि होई लोभको नाशा ॥
राजा मन्त्र कियो मन चाही । पुत्र तुम्हारो जीते याही ॥
सो सन्तोष कुवरकर नामा । सो निश्चय जीते संग्रामा ॥
तब राजा बोले सन्तोखा । लोभै जीतौ मिटै सब धोखा ॥
भक्ति ज्ञान तोहि देहुँ सहाई । प्रबल लोभ कहँ जीतहु जाई ॥

### लोभ और सन्तोषका युद्ध

इत भौ लोभ उत भौ सन्तोषा। मनसा भूमि उठ्यो रन रोषा ॥
लालच बाण लोभ संचारा । क्षमा बाण सन्तोष तेहि मारा ॥
लोभ चलावै धनुष कहँ खैंची । सन्तोष लीन्ह सुमिरनकी ऐंची ॥
चिंता शक्ति लोभ पठायी । ज्ञान क्षक्तिसो निष्फल जायी ॥
अतिदुखफांसीलोभ कर लयऊ। उग्र ज्ञान सन्तोष मिटैऊ ॥
परम सन्ताप लोभ कर लयऊ। सोदया खड्ग ते निष्फलगयऊ ॥
अचेत शक्ति लोभ चलाई । जागृत शक्ति सन्तोष पठाई ॥
लोभ कहै पैसा तुम लहिये । सन्तोष कहै कछु नहिं चहिये ॥
लोभ कहे नीको है रूपा । सन्तोष कहै छाडि गय भूपा ॥
लोभ कहे लेव कंचन मोरा । सन्तोष कहे जीवन है थोरा ॥
लोभ कहै घोडा जोडा नीका। सन्तोष कहै कारज नहिं जीका ॥
लोभ कहै हीरा ल्यो लालू । सन्तोष कहे संग नहीं चालू ॥
सांच धनुष कर गहि धयऊ । चपल लोभ चापि दल गयऊ ॥
उदासी शक्ति उरमें उपजायी । कंप्यो लोभ ज्यों विष खायी ॥
धीरज खड्ग गह्यो सन्तोखा ।बिचल्यो लोभ मिट्यो सब धोखा॥

साखी-काम क्रोध विचले, विचले लोभ अकाज ॥
महामोह मनमहँ झखे, गयो हमारो राज ॥
काम क्रोध दोऊ गये, गये लोभ दल भाज ॥
दया क्षमा सन्तोष बल, रहै विवेक सो गाज ॥

चौपाई

मोह बुलायि गर्ब सन कहेऊ । बिचलो सबै एक तुम रहेऊ ॥
अब मेरो तुम करो सहाऊ । मोरे संग गर्व उठि धाऊ ॥
ज्ञान विवेकको मारि भगावें । जप तप साधन मारि सब लावें ॥
बोले गर्व मोह ते तबहीं । का बिसात विवेक की अहहीं ॥
मेरो हँकार फिरे जेहि देशा । रहै न ज्ञान बिचारको लेशा ॥
बाकी सैन रहे सब जोही । लीन्ह बुलाय मोह तब ओही ॥
लीन्ह सजाय सैन बहु रंगी । मोह गर्ब चढे एकसंगी ॥
मोह दल जब पहुँचे रणमाहीं । खबर भयो विवेक पहँ ताहीं ॥
सज्यो सेन तब बहु समुदाई । होय निशंक चले रण भाई ॥
उतते मोह रण रंग मचावा । इत विवेक राजा चढि आवा ॥

साखी-दोउ दल चढि ठाढे भये, मनमें भये निचिंत ॥
कहे कबीर बिचारिकै, डरे मोह मदमन्द ॥

चौपाई

देख्यो गर्ब मोह सकाना । करी क्रोध बाण संधाना ॥
बहु बडाइ सो बोलन लाग्यो । ज्ञान विवेक कहाँ अब भाग्यो ॥
आवे सन्मुख मोसे सब काहू । सुनत वचन मोह उत्साहू ॥
बेसुध बाण गर्ब तब धारा । उतते चैतन बाण सम्भारा ॥
बल करि गर्ब उठे समुदाई । तबहिं खवास गयो ठहराई ॥
उग्रज्ञान राजा पहँ गयऊ । गर्व गँवार दृढ अति भयऊ ॥
राजा मोकहँ आयसु देहू । कौन बाण ते मारौ एहू ॥

दीन तब बाण राजा कर लयऊ । हित कै उग्र ज्ञान कहि दयऊ ॥
मार्‍यो ज्ञान दीन तेहि बाना । हार्‍यो गर्व लाग्यो विरहाना ॥
हार्‍यो गर्व राजा जब जाना । तब निज गयो अपनपौ माना ॥

साखी—गर्व सुये विकल होई, चले आप रणमांहि ॥
मनही मन पछतावई, मोर कुशल अब नाहिं ॥

चौपाई

सुन्यो मोह चल्यो गलगाजी । जीतन विवेक चला दल साजी ॥
पहुँची रण अस बोलै मोहा । कहां विवेक आऊ मम सोहा ॥
महा मोह राय मम नामा । सहो ज्ञान मोरो संग्रामा ॥
सबैं उमराव गयो हरायी । अब नहिं होई तोर कुशलाई ॥
मैं बाण चलाओं जबहीं । क्षणमहँ होहु नाश तुम तबहीं ॥
कहै विवेक बड़का हाको । करो लडाई नाशहि ताको ॥
सुनत मोह क्रोध तब कीन्हा । धनुष उठाय कर गहि लीन्हा ॥
ममता बाण तबहीं ताना । विचित्र बाण विवेक संधाना ॥
आलस शक्ति मोह उपजाई । चैतन शक्ति विवेक चलाई ॥
भ्रमण चक्र मोह गहि डारा । चैतन चक्र विवेक पसारा ॥
अनर्थ खड्ग मोह लियऊ । अर्थ खड्ग ते निरफल गयऊ ॥
निद्रा शक्ति मोह संचारी । जाग्रत शक्ति विवेक तहँ मारी ॥
मोहफांस माया विस्तारी । विवेक विचार छिनक महँ टारी ॥
उपजायो तब मोह अंधेरा । हँसे विवेक यहै बल तेरा ॥
प्रकाश बाण विवेक चलयऊ । ततक्षन अंधकार मिटि गयऊ ॥
सत्यबाण विवेक संचारा । असत खवास मोह कहँ मारा ॥
ज्ञान बाण विवेक जब छाडा । मूर्छित मोह महारथ पाडा ॥
करि विवेक मोह तज दीठी । बिचल्यो मोह हृदय गौ पीठी ॥
बिचल्यो मोह दशहू दिशि गयऊ । सुपंथ सकल द्वन्द मिटि गयऊ ॥

साखी-कहै कबीर विवेक दल, अटल ज्ञान दल गाज ॥
अब तो निर्मल होगये, गये मोह दल भाज ॥

सुनहु धर्मनि सत्य विचारा । विना विवेक नहिं उतरे पारा ॥
विना विवेक काल धर खाई । धरि धरि मारे काल कसाई ॥
काल दूत जग फिरे फिरावै । मोह सैन की बृद्धि करावै ॥
जेत महातम जग महँ होई । काल फन्द जानहु सब सोई ॥
विवेक ही न जीव जग जेते । सुनि सुनि धाय धाय तेहि लेते ॥
विना विवेक पारख नहिं पावै । झूठी आश लगी सो धावै ॥
विना विवेकन न चीन्है सोई । काल दयाल दोऊ कस होई ॥
विना विवेक काल गुण गावैं । बार बार भौ चक्कर जावैं ॥
सतगुरु उपदेश जब देही । काल जाल छुडावन लेही ॥
विवेक सागर जो सुनै सुनावै । करै विचार परम पद पावै ॥
निर्मल बुधि अटल गुण गावै । सो हंसा भवजल नहिं आवै ॥
मोह विवेक लडाई भाख्यो । छुडावन मोह पक्ष नहिं राख्यो ॥

साखी-यह विवेक सागरकथा, करे श्रवण मन लाइ ॥
अद्भुत ज्ञान प्रकाश तेहि, जियत मोक्ष फल पाइ ॥
कहै कबीर धर्मदाससों निर्मल ज्ञान विवेक ॥
जाहि सुने सुख ऊपजे, संशय रहै न नेक ॥

इति श्रीविवेकसागर समाप्त

सत्यनाम

अथ हंसमुक्तावली

अन्तर्गत

# मोह और विवेककी कथा सटीक

*

धर्मदास वचन

धरमदास विनयकरि गुरुपदपंकज गहे ॥
हो प्रभु होहु दयाल दास चित अतिहि दहे ॥
मन स्थिर नहिं राजत पल प्रति संधना ॥
कैसे मन थिर होय कहो जग बन्दना ॥

टीका—एक समयके विषय जब कबीर साहब और गुरु धर्मदास साहब दोनोंही प्रसन्नचित्त सत्संगमें मगन थे उस समय मनके प्रसंग पडने पर कबीर साहबने कहा कि मनको स्थिर कर गुरुकी वाणी में लौ लगाकर पारख करनेसे सत्य पद की प्राप्ति होती हैं।

इतने वचनको सुनकर गुरु धर्मदासजीने सतगुरुके चरणको पकड़कर बहुत अधीनतासे विनय किया कि, हे भगवन्! हे प्रभु! मुझ दासका चित्त सदाही चिन्ता से दहन हुआ करता है। चित्त किस लिये दहन होता है इस प्रश्न के उपस्थित होने-पर कहते हैं कि, हे प्रभु! आपने कहा कि, मनको स्थिर कर गुरुके शब्दमें लौ लगा, सो मन तो पलमात्र भी स्थिर नहीं होता है, यह मन जिस प्रकारसे स्थिर होकर आपके चरण-कमलोंमें लग जावे सो मुझसे कहिये। हे प्रभो! आप समस्त जगत्के पूज्य और वन्दनीय हो, आप के विना मेरे चित्तका दुःख कोई भी छुडानेको समर्थ नहीं है।

गुरु धर्मदासजीके ऐसे विनय पूर्वक जिज्ञासाको सुनकर सद्गुरु कबीर साहब कहने लगे कि,

सद्गुरुकबीर वचन

सुनो धर्मदास यह भेद बूझे बनिआवई ॥
सद्गुरु कहै समतूल थिते जब पावई ॥

टीका–हे धर्मदास । यह मन स्थिर करनेकी युक्ति जो तुमने पूछी सो बूझनेसेही बन आती है, किन्तु मनुष्यको इसकी समझ कब पडती है जब कि, एक तो सद्गुरुभी पूर्णरीतिसे स्पष्ट समझाने वाला हो और दूसरे शिष्य अधिकारी हो । समझनेकी योग्यता के साथ २ गुरु में सच्ची श्रद्धा रखनेवाला हो । ऐसे गुरु शिष्य जब एकत्र होवें तब शिष्यको थिरता मिलती है और मन भी शान्त होता है ।

यहां तो दोनों सत्य कबीर जैसे गुरु और धर्मदासजी जैसे शिष्य हैं इस कारणसे सद्गुरुने सैनसे यह दिखाया कि यहाँ पर सब सामग्री यथास्थितिइकट्ठी हैं । इसी कारणसे सद्गुरुने विशेषकर न कहकर मनविरोधका मार्ग ( राजयोग ) कहना आरम्भ किया ।

मन राजा अति दारुण तेहि दोय अंगना ॥
एक कहेउ प्रवृति अतिहि तेहि रंगना ॥

टीका–सद्गुरु कबीर साहब कहते हैं हे धर्मदास । यह मन इस शरीररूपी नगरका राजा है राजा भी ऐसा वैसा नहीं बहुत दारुण अर्थात् भीषम अर्थात् भयंकर है । तहां श्री अनाथदास-जीकृत प्रबोधचन्द्रोदय नाटकमें मनकी उत्पत्ती इस प्रकार लिखी हैं ।

दोहा–निर्विकल्प व्यापक सकल, साखी सर्व असंग ॥
सर्वरूप सबते परे, सबविधि जान अभंग ॥
आदि पुरुष सर्वज्ञ अज, पूरण रूप अनन्त ॥
यही भांति हरि नित्त हैं, नेति वेद गावन्त ॥
त्रिगुण नियन्ता ईश जो, सत चित सदा निवृत्त ॥
ताकी इच्छा मात्रही, बल पायो प्राकृत्त ॥
प्रकृति पुरुष संयोगते, प्रगट भयो मन भूप ॥
संकल्प विकल्प दोऊ उठे तेमन शक्ति अनूप ॥
मन माया विस्मृति कियो, नाम विचित्रा तासु ॥
आच्छादन कर पुरुषको, विलसे देह विलासु ॥
मन माया बहु छल कियो, कीन्हो बहु विस्तार ॥
सुगति गयी निजरूपकी, प्रगट्यो तन हंकार ॥

इस प्रकारसे इस मनकी उत्पत्ति हुई ।

सद्‌गुरु कहते हैं हे धर्मदास ! शरी को इस भयानक राजा मनकी दो स्त्रियाँ हैं तिनमेंसे एक प्रवृत्ति है । जिसमें यह मन बहुत ही राग को प्राप्त हुआ है, अर्थात् उसके साथ अत्यन्त स्नेह करता है ।

### प्रवृत्तिवंशवर्णन

महामोह तेहि सम्भव सुत अति लायका ॥
गर्व अति बलवान विजय रण शायका ॥
महाक्रोध अनुजै तेहि निकट अघोरता ॥
लोभ संगेतहि ठाढ आशा अधिक कठोरता ॥
तृष्णा वीर महाबलि अखिल संचारई ॥
को बांचे मेरी घात सो ऐसो विचारई ॥

जडता ताहि सखी संग मनकहँ राचई ॥
अहनिशि करत कोलाहल उभै ना छाजई ॥

टीका-मनकी प्रवृत्ति स्त्री है उसके पुत्रोंको बतलाते हैं, हे धर्मदास ! उस प्रवृत्तिको सबसे बडा और योग्यपुत्र मोह उत्पन्न हुआ है। और दूसरा उनका गर्व महाबलवान और प्रवृत्ति की रक्षा करनेमें महा योद्धा रणबांकुरा है। महामोहका तीसरा भाई अर्थात् प्रवृत्तिका तीसरा पुत्र काम है और चौथा क्रोध है। ये दोनों बहुत ही मलीनता से पूर्ण हैं। मोहका पांचवाँ भाई और प्रवृत्तिका पांचवाँ पुत्र लोभ है जिसके साथ आशा और कठोरता दो बहिन रहती हैं। और तृष्णा वीरा भी उनके साथ है, वह महाबलवान है सर्वमें उसका संचार है, वह अपने मनमें ऐसा गर्व रखती है कि मुझसे कोई भी बच नहीं सकता। और जडता भी उसी तृष्णा के साथ रहती है जो मनको अत्यन्त प्यारी है। मनकी अत्यन्त प्रीति के कारण वह जडता सदा कोलाहल करती रहती है अर्थात् सदा द्वन्द्व उठाया करती है।

यद्यपि इस ग्रन्थ में प्रवृत्ति की संतानके वर्णन करनेमें बहुत कुछ भूल हुई है क्योंकि तृष्णा जो स्त्रीलिंग शब्द है उसको पुँल्लिग करके लिखा है और हंसमुक्तावलीके प्रसिद्ध टीकाकार श्रीभजनदासजीकी टीकामें भी ऐसी भूल पायी जाती है, तथापि यदि यह मानलिया जावे कि यह भूल ग्रन्थकर्ता और टीकाकारकी है सो ठीक नहीं है, क्योंकि वर्तमान कबीरपंथ के साहित्य भंडार में बहुत परिश्रम करनेपर भी जब एक भी ग्रन्थ लेखक भट्टाचार्य्योंकी कृपासे शुद्ध नहीं मिलता है तब ग्रन्थकार अथवा टीकाकारके ऊपर दोष कदापि नहीं आ सकता। इस कारण मूल प्रबोधच-

न्द्रोदयनाटक जिसके आधारपर यह मोह और विवेकके युद्धकी कथा प्रचलित हुई है, उसके अनुसार प्रवृत्तिकी सन्तानका वर्णन नीचे लिखता हूँ । देखो श्रीअनाथदासजीकृत प्रबोधचन्द्रोदयनाटक—

दोहा—त्रिया युगल मनभूपके, तिन ढिग सब संपत्ति ॥
एक नाम प्रवृत्ति है, एक नाम निवृत्ति ॥
प्रथमै दल प्रवृत्तिको, वरणि कहौ विस्तार ॥
तेहि पाछे निवृत्तिको, वरणों सब परिवार ॥
प्रथमें पुत्र प्रवृत्तिके, भयो मोहँ भयभीत ॥
दूजो सूत उत्पति भयो, कामँसकलरणजीत ॥
महाक्रूर भौ तीसरो, क्रोधँ नाम अतितेज ॥
चौथो अतिदारुण भयो, लोभँ पापको एज ॥
दभँ पुत्र भयो पञ्चमो, छठो गर्वँ परियार ॥
सातैं मदँ उत्पनि भयो, विकटवीर विकरार ॥
अष्टम पुत्र प्रवृत्तिके, नाम अधर्मँ कुरूप ॥
मुक्तिपंथते चरण गहि, डारत है भवकूप ॥
आठैं पुत्र प्रवृत्तिके, असत्य वासना धीर ॥
वर्णनकरोंकुटुम्ब अब, जो जाको सुत तीर ॥

मोहपरिवार

महामोहकी नारिप्रिय, मिथ्या दृष्टि प्रमान ॥
पुत्र तासु हंकार है, ममता वधू सुजान ॥

कामपरिवार

मदननारि रतिप्रकट है, लालच सुवन बखान ॥
लोलुपता ताकी वधू, रंच नहीं परमान ॥

---

१ प्रबोधचन्द्रोय नाटक संस्कृतका वेदान्त विषयक एक प्रसिद्ध नाटक है ।

क्रोधपरिवार

क्रोध नारि हिंसा असत, ताको सुत अविचार ॥
भूल वधू ताकी कठिन, पोषै सब परिवार ॥

लोभपरिवार

तृष्णा स्त्री लोभ की, ताको सुत है पाप ॥
चिन्ता त्रिय जाके चितै, करैं सदा सन्ताप ॥

दम्भपरिवार

दंभ नारि आशा मलिन, ताको सुत पाखण्ड ॥
वधू अविद्या तासु तिय, भरमावे नौ खण्ड ॥

गर्वपरिवार

निन्दा वनिता गर्वकी, जाको अपयश पूत ॥
अपकीरति ताकी वधू, प्रकट निरंकुश धूत ॥

मदपरिवार

नारी मदकी ईषणा, जाके सुवन विरोध ॥
सा परधा[1] ताकी, वधू, मेटै उरको बोध ॥

अधमपरिवार

अश्रद्धा नारि अधर्मकी, सुत असत्य बलवान ॥
विषय वधू आसक्ति पुनि, मेटै मुक्ति निधान ॥
आठ पुत्र कुटुम्ब यह, कह्यो भिन्न विस्तार ॥
सुता प्रिया प्रवृत्ति की, बर्णों तेहि परिवार ॥
जो अदया भगवान की, ताते भयो अज्ञान ॥
दीनी ताहि विवाहि सो, मोह हर्ष बलवान ॥
मिलि अज्ञान वासना, तिनते बहु संतान ॥
जेते लिखनेमो परे, तेते करौं बखान ॥
प्रथमैं सुत संशय भयो, लै विक्षेप बहु भाव ॥

---

१ स्पर्धा ।

आलस नींद अनर्थ पुनि, रजतम कपट चवाव ॥
कर्म असंयम तापत्रय, नानारोग विशाल ॥
यंत्र मंत्र नाटक घने, अरु प्रपंच जंगजाल ॥
और भ्रष्टंत धृष्टता, व्याकुलता अति चाह ॥
भुक्ति कामना कृपणता, जनमन कर उरदाय ॥
अयश ईषणा विषमता, अकृपा कुटिलता नाम ॥
इत्यादिक औरे घने, कहे काम दुख धाम ॥
असत्य वासनाके भये, पुत्र प्रचण्ड अनेक ॥
सुता भयी पुनि जगमती, भूली कुलकी टेक ॥
पुत्र वासना को बली, असत्संग आलस्य ॥
लै विक्षेप मंत्री तिने, करि राख्यो नृप वस्य ॥
सेना बहुत मोहकी, वर्णन बने न सोय ॥
पलमें हरै विवेक बल, रहै ममता रस भोय ॥
महा कुन्यायी अति छली, चंचल बली कुटेव ॥
जग पोषक दोषक सुमत, करै मोह पद सेव ॥

छन्द–छाजतसेनमदमोहमंसा, क्रोध दारुणभटमहा ॥
आशातृष्णा तेहि भंडारी, विभौंकी कांछाकहा ॥

टीका–सद्गुरु कहते हैं हे धर्मदास ! इस प्रकारसे प्रवृत्ति की सेना मोह, मद महावीर क्रोध से सुशोभित होरही है । और आशा, तृष्णा, भंडारी है जो चाहे कितना भी उसके भण्डारमें आवे किन्तु कभी उसकी तृप्ति नहीं होती है । जब मन

---

१ बाजीगरी हाथ चालाकीका काम । २ बेशर्मी निर्लज्जता बे अदनी इस भ्रष्टता के स्थानमें एक पुस्तक में भ्रष्टता लिखा पाया गया है, यदि भ्रष्टता यहां माना जाय तो वह भ्रष्टताका विशेषण हो जायगा. जिसका अर्थ होगा आगे चलानेवाली भ्रष्टता और भ्रष्टता प्रधान है जहां किन्तु इसकी अपेक्षा भ्रष्टता शब्द यहां अधिक उपयुक्त है इस कारणसे भ्रष्टताही लिखा है ।

राजाकी प्रवृत्तिका यह ठाटवाट तब है मनको अन्य विभौकी इच्छा कहांसे होवे ।

अथ निवृत्तिवंश वर्णन

निवृत्ति दूजी अंगना जिहि तिहि मन राजा थोरो चहै ॥
प्रवृत्ति पूजा गति न दूजा ताहि चित निशिदिन रहै॥

टीका-उस मन राजाकी दूसरी स्त्री निवृत्ति है जिससे मन प्रेम नहीं करता क्योंकि मन प्रवृत्ति नामक स्त्रीमें ऐसा लुब्ध रहता है कि दिन रात उसके बिना मनको क्षणमात्र भी कल नहीं पड़ता है।

तेहि सुत जनेउ विवेक परम दृढ आसना ॥
सात्त्विक अस्त्र ले हाथ खड्ग सो शासना ॥

टीका-उस मन राजाकी निवृत्ति नामक स्त्रीमें विवेक नामका पुत्र उत्पन्न हुआ सो विवेक निश्चल और दृढ आसनवाला है और उसने अपने हाथमें सतोगुणका अस्त्र ग्रहण किया है ।

वस्तु विचार, क्षमा दया तेहि भ्राता भयो ।
तेहिंको अनुज संतोष अतिहिं आनन्द ठयो ॥
विद्या ताहि सहेली नीति बिचारई ॥
शील सनेह, सिखावन, पाठ सुधारई ॥

टीका-विवेक के और भी भाई बहिन उत्पन्न हुए । वस्तु विचार, क्षमा, दया, संतोष, विद्या, नीति, शील, सनेह, शिखपन और अध्ययन इत्यादि निवृत्तिकी संतान इत्यादि प्रकट हुईं । प्र० चं० ना० श्रीअ० दा० जी कृत ।

दोहा-अब रानी निवृत्तिको, वर्णों सब परिवार ॥
जाके श्रवण बिचारते, मिटै कुमति संसार ॥
सुत विवेक प्रथमे भयो, बड उदार गुण धाम ॥
दूजो वस्तु विचार पुनि, हरे कामना काम ॥
तीजे सुत धीरज भयो, अचल वीर सुखकन्द॥

चौथो सुत संतोष पुनि, हरै सकल जग द्वन्द ॥
पञ्चम पुत्रसु है मुक्ति धाम सुख रूप ॥
छठौं पुत्र पुनि शील है, लक्षण सबै अनूप ॥
धर्म्म पुत्र भयो सातवों कुलमण्डन अतिधीर ॥
अष्टम सुत बैराग है, मेटै ताप शरीर ॥
विष्णुभक्ति कन्या भयी, लक्षण सब गम्भीर ॥
सुवन सबै निरवृत्तिके, करैं मोह उर पीर ॥
ये रानी निवृत्ति के करैं, आठ पुत्र अति शूर ॥
भक्ति सुता कुलपोषिनी, करैं कुमतिको दूर ॥
अब इनके सुत त्रिय बधू, बरणि कहौं तिन नाम ॥
मुक्ति पंथ अनुकूल सब, पुनि सुख प्रति अभिराम ॥

विवेकपरिवार

रानी रायविवेक की, ब्रह्मसुविद्या नाम ॥
पुत्र ज्ञान आनन्द त्रिय, ता असंग सुखधाम ॥

विचारपरिवार

रानी राय विचार की, निश्चय पूरण काम ॥
पुत्र नेम दृढता बधू, भय मिटै सुखधाम ॥
धीरज की त्रिय है क्षमा, हरै क्रोध को ताप ॥
पुत्र आर्जव गर्व हर, मुदिता बधू अलाप ॥

संतोषपरिवार

तृप्ति नारि संतोष की, जाको सुत आनन्द ॥
करुणा बधू अनूप है, भय मेटै सुखकन्द ॥

सत्यपरिवार

सत्यनारि निज साधुता, सुत निष्कपट उदार ॥
जिज्ञासा ताकी बधू, प्यारी सब परिवार ॥

शीलपरिवार

शील नारि लज्जा सुभग, प्रलय करै उरशूल ॥
सुयश सुवन कीरति बधू, शुभ मारग अनुकूल ॥

धर्मपरिवार

श्रद्धा नारि सो धर्म की, सुत प्रकाशता नाम ॥
सुता भयी सतबासना, बधू साधता जाम ॥

वैराग्यपरिवार

रानी निज वैराग्य की, उदासीनता नाम ॥
सुत अभ्यास निराशता, बधू सकल सुखधाम ॥

प्रवृत्ति सौत सिहात सो देखत परजरी ॥
सबहि सुनत हँकार पौरुष बातें करी ॥
धिग सुत तुव पुरुषार्थ मृतक लेखऊँ ॥
सौतिन सुनत बिदार मरण निज पेखऊँ ॥

टीका–हे धर्मदास ! इस प्रकारसे मन राजाकी दोनों स्त्रियोंके परिवार हुए उनमेंसे प्रवृत्तिके वंशकी अत्यन्त वृद्धि होने पर भी वह निवृत्तिके वंशको देखकर सिहाती है। इससे अपने सब पुत्रोंको बुलाकर कहती है कि हे पुत्रो ! तुम्हारे पुरुषार्थको धिक्कार है । सौतनके वंशकी वृद्धि देखकर मेरा कलेजा जलता है । इससे यातो तुम निवृत्तिके पुत्रोंको मारकर मेरेको सन्तोष दो नहीं तो अपनी मृत्युकी राह देखो ।

महामोह सुनि गरजेउ मातुल सूनियो ॥
तुव आज्ञा होय निपातों चितकितगूनियो ॥
विवेकहिं आदि सँहारू नेक न बांचई ॥
करूँ निकंटक राज प्रश्न मन रांचई ॥

छन्द-प्रश्न राचे कोइ न वाचे कटक देखत रिपु डरे ॥
ब्रह्माण्ड कंपे अखिल झंपे इंद्र दशदिश खरभरे ॥
विविधआयुध युत्थयुत्थप सुभट जहँ तहँ तरजहीं ॥
पव पात सम अवघात मनो एकएकन गर्जहीं ॥

टीका-हे धर्मदास ! प्रवृत्तिके उपर्युक्त वचनको सुनकर मोहने कहा कि हे माता! आप चित्तमें इतनी चिन्ता क्यों करती है ? आप आज्ञा देवें तो विवेक आदि निवृत्ति आदिके समस्त परिवारको नाश करदूं । मेरे मनमें तो सदा ऐसी लगी रहती है कि, विवेक आदि सबको मारकर निष्कण्टक राज करूँ । अब तो आपके मनमें भी जब ये बात आई है और आपने मुझसे पूछा है तब मैं अपनी प्रबल सेनाके साथ विवेकका सर्व नाश कर दूँगा । मेरी सेना ऐसी प्रबल है कि, जिसके तेजसे ब्रह्माण्ड भी कम्पायमान होता है । मेरे इस प्रबलसेनाको देख करके शत्रुकी सेना कभी धीरज नहीं धारण कर सकेगी । मेरी सेना अखिल ब्रह्माण्डको आच्छादन करनेवाली है । इन्द्र जो देवतों का राजा है वह भी मेरी सेनाको देखकर घबरा जाता है ॥

मेरी सेनाके योद्धा लोगों ने नाना प्रकारके अस्त्र शस्त्र धारण किये हैं और एक २ बारकी गर्जनाही ऐसी है जिसको सुनकर पवनके झपाटे लगनेसे समान सब गिर जाते हैं ।

हे धर्मदास । इस प्रकारसे मोह अपनी शूरता और प्रतापका बखान करके, माताकी आज्ञा पाकर विवेकराजासे युद्ध करनेको रवाना हुआ ॥

जननी कहँ शिर नाय समर शीघ्रहि चले ॥
युत्थप दंभ समाज कहत रिपु दलमले ॥

टीका-माताको नमस्कार करके दम्भके समाजको आगे करके मोह राजा विवेकके सन्मुख आया। तब विवेक उसकी चमक दमकको देखकर घबराने लगा। विवेकको घबराते देखकर निवृत्तिकी सहेली विद्याने निवृत्तिसे जाकर सब वृत्तांत कहा।

विद्या जाय निवृत्तिहि बात जनायऊ॥
तब सौतिन सुतन अनुज विरोधहिं आयऊ॥

टीका-विद्याने निवृत्तिसे कहा कि, तुम्हारी सौत प्रवृत्तिके पुत्र तुम्हारे पुत्रसे विरोध करके युद्ध करनेको आये हैं और।

चाहत बन्धु विमातहि तुरति घातऊँ॥
छाडें नेक न काहू सबहि निपातऊँ॥

टीका-और वह ऐसी इच्छा रखता है कि, तुम्हारे सब पुत्रोंका नाश करके एकको भी जीता न छोडे॥

निवृत्ति निज दूतहि धर्म बुलायऊ॥
ताते सुत कह बुलाई भाव बुझायऊ॥

टीका-विद्याकी बातको सुनकर निवृत्तिने अपने दूत द्वारा धर्म आदि सब पुत्रोंको बुलाकर उसने कहा कि,

बन्धु विमातिक धरि सो, रणयुत्थ आवहीं॥
समर सोई सुन ठयो पराजय पावहीं॥
सुमता करि सब सुन्दर मंत्र विचारहूँ॥
दुविधा अरि अज्ञान सो जानि सँभारहूँ॥

टीका-निवृत्ति अपने पुत्रोंसे कहती है हे पुत्रौ! देखो तुम्हारे सोतेले भाई सब तुमपर चढ आये हैं और युद्ध करके तुम्हारा नाश

करना चाहते हैं इस कारण तुम्हें अब उचित है कि, परस्परसुमति करके ऐसा उपाय विचारो जिसमें उसने अपनी रक्षा कर सको।

दृढता दण्ड विमलचित धीरज दीजिये ॥
दया पताका साजि समर सुत कीजिये ॥

टीका–निवृत्ति कहती है हे पुत्रो ! दृढता और राग द्वेष रहितता और धीरज द्वारा परस्पर एकमेक होकर दयारूपी पताका को फहराते हुए तुम भी युद्धके लिये परस्थान करो।

छन्द--पाई शिक्षा भयी इच्छा भूमिरणसर सजि चलै ॥
आनन्द तबल बजाय तब रिपु सेन चाहत दलमलै ॥
मद मोह आदि विराजता सब ध्वजा ईर्षासजावहीं ॥
निजमूर्खताको दण्ड गहि ममता निशान बजावहीं ॥

टीका–इस प्रकार जब निवृत्ति अपने पुत्रोंको आज्ञा दे चुकी तब विवेक राजा अत्यन्त दृढ इच्छाके साथ आनन्दका धौंसा बजाकर इस उत्साहके साथ सेना लेकर रणभूमिको चले मानो तत्कालही शत्रुके दलका नाश कर देंगे।

विवेककी सेनाको ऐसे ठाटबाटसे आती देखकर मोह राजा अपने सब भाइयोंके साथ ईर्षाकी पताका स्वरूपकी अज्ञानताका दण्ड और ममताका निशान लेकर आगे बढा ॥

तब विवेक निजमन्त्री तुरंत हँकारेऊँ ॥
कहु मन्त्री दृढ आगम समा विचारऊँ ॥

टीका–मोहराजाकी सेना रणमें प्रस्तुत देखकर विवेक राजाने अपने मंत्रियोंसे संमति पूछी कि, हे मित्रवरो ! समयानुसार विचार बतलाइये जिससे मोह राजाको प्रास्त कर सकें।

सुमती कहे सुनु पुंगव मतिके आगरा ॥
समर बूझिके कीजे जगत उजागरा ॥
प्रथमहीं दूत पठाय नीति बहु विधि कहो ॥
नहि माने सतभाय तबहिं आयुध गहो ॥

टीका–विवेक राजाके पूछनेपर सुमतिने कहा कि, हे राजन्! आप बुद्धिमान हो विग्रह करनेमें जहाँतक हो विचार कर कार्य्य करना चाहिये। प्रथम दूत भेजकर मोहको बहुत प्रकारसे नीति द्वारा समझाइये यदि वह मान जाय तब तो ठीक ही है और नहीं तो फिर पीछे हथियार उठाकर युद्ध करना चाहिये ॥

शील दूत कहँ बोली शिखापन दीनेऊ ॥
चल्यो तुरत शिर नाय बिदा जब कीनेऊ ॥

टीका–हे धर्मदास! जब सुमतिने इस प्रकारसे कहकर नीति का मार्ग बताया तब विवेक राजाने शीलको बुलाकर कहा कि, हे शील! आप दूत बनकर मोहराजाके पास जाओ। और जो कुछ मोह राजासे कहना था वह सब अच्छी प्रकार शीलको सिखाकर बिदा किया। फिर तो शीलविवेकके पाससे चल कर मोह राजाके दरबारमें पहुँचा ॥

मोह आदि भ्राता जे सबहि सुनायऊ ॥
बन्धु विमात संदेश सो सबहिं बुझायऊ ॥

टीका–शील दूतने मोह राजाकी सभामें जहाँ सब भाइयों सहित मोह राजा बैठा था पहुँच उसके सौतेले भाई विवेकका संदेशा सुनाया ॥

कारण कौन विरोधेऊ बोलहु नागरा ॥
बन्धव सम होय कीजे राज उजागरा ॥

टीका-शीलने मोहकी सभामें कहा कि, हे चतुर राजा मोह! किस कारणसे आपने विरोध ठाना है सो कहिये, आपको तो सब भाइयोंके साथ मिलकर पूर्ण शक्तिके साथ राज्य करना चाहिये। देखिये तो-

मन राजा तुवतात त्रिभुवनपति स्वामिया॥
शुभ अरु अशुभको कारण अन्तर्यामिया॥
अनुमादिक अनुगामि अनुज त्रिदशपति॥
तेहिके सुत कुमति कहा कीनी गति॥

टीका-आपके पिता मनराजा जो हैं सो स्वर्ग (सतोगुण) मृत्युलोक (रजोगुण) और पाताल (तमोगुण) के राजा हैं तीनों लोकमें उनका आन फिरता है। और वही मनराजा शुभ अशुभ दोनोंका कारणस्वरूप हो अन्तर्यामी बना हुआ है! हे मोह राजा! आपके पिता आपके पीछे २ सदा आपको मद(काम) देते रहते हैं और जहाँ २ आप जाते हो सदा आपके पीछे वह भी जाते हैं। और आपके पिताका जन्म आपके पश्चात् होकर तेरहों भुवनके राजा बनते हैं। ऐसा समर्थ राजा मन उसके पुत्र होकर आपने यह कुमति क्यों ठानी है।

अनुमादिक शब्द अनु और मादिक शब्दोंके संयोगसे बना है इसका अर्थ हैं अनु = पीछे। मादिक = मद करनेवाला अर्थात् पीछे जो मद अर्थात् काम करे उसे कहते हैं अनुमादिका। यहाँ मन जब प्रवृत्तिमें लुब्ध होता है तब मोहकी प्रबलता होती है। मोहकी प्रबलता होने पर मन सदा उसको सहायता देता है।

अनुगामी शब्दका अर्थ है पीछे चलनेवाला, जब मन प्रवृत्तिमें लुब्ध होता है तब सदा मोहके पीछेही पीछे दौड़ता रहता है अर्थात् जहाँ मोह दृढ होता है वहांही मन भी लुब्ध होता है उससे अलग नहीं होता।

---

अन्तर्यामी कहिये सबके अन्तर अर्थात् अन्तःकरण का जाननेवाला हो।

अनुज कहते हैं ( अनु = पीछे, ज = जन्मना ) पीछे जन्म लेनेवाले को सो यहाँ मन को अनुज कहनेका तात्पर्य यह है कि जहाँ मोह नहीं हो वहाँ मन भी नहीं होता। इस शरीरमें मोह दृढ होनेहीसे मन की विशेष प्रवृत्ति इसमें होती है।

त्रयोदशपति ( त्रयोदश = तेरह, पति = राजा ) तेरह जो पांच ज्ञानेन्द्री और पांच कर्मेंद्री तथा बुद्धि, चित्त, अहंकार इन तेरहों का राजा है। अर्थात् जब ये इंद्रियाँ विषयमें प्रवृत्त होती हैं तब मनमें उन विषयोंका राग उत्पन्न होता है। इन तेरहोंको पश्चात् उन विषयोंमें मन प्रगट होने पर भी आप सबका राजा बन जाता है। अर्थात् प्रथम इंद्रियाँ विषय को ग्रहण करती हैं पश्चात् मन उनके ऊपर राज करने लग जाता है, इंद्रियाँ सब मनकी आज्ञाकारिणी बनती हैं और मन उनका शासक राजा बनता है।

छन्द–कुमति कीन्हो अयश दीन्हो बन्धु चित्त धरिबूझिये ॥ अंत गर्व न रहत काहू मिथ्या आश न कीजिये ॥ सुनत मोह राज समाज युत्थप क्रोध दारुण खर भरचो ॥ चाहत संघारन दूतको जिमि आज्य अनिल में परचो ॥

टीका–शीलने कहा हे मोहराज ! ऐसे प्रतापी जो आपके पिता मन राजा हैं उनको भी आपने अपने इस विरोधसे अयशका भागी बनाया है। सब यही कहेंगे कि देखो मनराजा ऐसा हो गया है कि अपने पुत्रोंको भी सम्हाल नहीं ले सकता, उसके पुत्र सब स्वतन्त्र बनकर परस्पर कटे मरते हैं। इस हेतु हे मोहराजा ! आप कुमतिके कहनेमें न आकर बन्धु विरोध मत कीजिये। और यदि इस बात को नहीं मानते हैं तब इस बातको स्मरण

रखिये कि, गर्व किसीको रहा नहीं हैं इस लिये मिथ्या आशा को छोडकर सब भाई प्रेमपूर्वक राज्य करो ।

हे धर्मदास ! शील दूतके उपर्युक्त शिक्षाप्रद वचन सुनकर मोह राजा सहित उसके सर्व समाज और सेनाभरमें कठिन क्रोधका आविर्भाव हुआ । सब चारों ओरसे लाल २ आखें करके शीलको इस प्रकार देखने लगे मानो उसे नाश करनाही चाहते हैं । शीलदूतको विवेक राजाने तो समझा बुझाकर मोहको युद्धसे रोकने और सन्धि कराने के लिये भेजा था, किन्तु दूतके वचनने मोह के समाजमें उल्टाही फल प्रगट किया । जिस प्रकार जलती हुई अग्निमें घृत पडनेसे उसकी ज्वाला और भी बढती है उसी प्रकार मोहकी सेनाका क्रोध अधिक बढ गया। मोहराजाने उसी क्रोधके आवेशमें शीलसे कहा ।

जाय कहौ निजनाथही जो उबरन चहै ॥
भागै तजि पितुराज मौनव्रत गहि रहै ॥

टीका-मोहने कहा हे शील! अपने राजा से जाकर कहो कि, यदि वह अपना कुशल चाहता है तो चुपचाप पिता (मन ) के राजसे निकल कर अन्यत्र भाग जावे । अथवा यदि राज्यमें रहनाही है तो मौनव्रत धारण करके अपना कालक्षेप करले ।

मोह राजाके ऐसे गर्वित वचन को सुनकर शीलदूत विवेक राजाके पास पहुँचा ।

दूत वचन प्रति उत्तर आय सुनायऊ ॥
सुनत विवेक समाज निशान बजायऊ ॥

टीका-शीलने विवेक राजाके सम्मुख आकर मोह राजाके दरबारमें जो जो कुछ बीता था सब सुनाय दिया। जब विवेक-

ने देखा कि मोहराजा किसी प्रकार नहीं मानता तब युद्धके लिये प्रस्थान करनेकी आज्ञा देदी। आज्ञा पातेही निशानदार सबसे पहले निशान लेकर आगे निकला और उसके साथ ही साथ बाजेवाले भी रणका बाजा बजाते हुए रवाने हुए॥

महा मोह कुलाहल रिपुदल आयऊ॥
अहं डिम्भ युत्थ व्याकुल बहुत सिधायऊ॥

टीका–इधर तो विवेक राजाकी सेनाने चढायी की। उधर शील दूतको कडी २ बातोंको सुनाकर मोह राजा विवेक राजाको भय-भीत जानकर आनन्द विलासमें अचेत हो गया। इतनेहीमें विवेक राजाके दलके निकट पहुँचने पर दूतोंने जाकर मोह राजाको समाचार दिया कि, विवेक राजाकी सेना युद्ध करनेके लिये सजग होकर आगयी है। दूतके वज्र समान वचनको सुनते ही मोह राजाकी सेनाभरमें कोलाहल मच गया। अहंकार सेना और दम्भ दोनोंही सेनापति बहुत व्याकुल होगये और अपनी सेनाको लेकर वेभी आगे बढे। डिम्भ शब्द दम्भ शब्दका अपभ्रंश है॥

(मोहवश हो देहाभिमानमें पडे हुए विषयासक्त मनुष्योंके हृदयमें सत्संग और सत्‌शास्त्रोंके श्रवण द्वारा जब विवेक प्रवेश करने लगता है उस समय हृदयमें घबराहट उत्पन्न होती है)

चल्यो तुरत गहि शूल कुबुद्धि आयुध गह्यो॥
समर युक्त ह्वै आयो अघमंत्री कह्यो॥

टीका–घबराहटमें पडा हुआ मोह राजा पापमंत्रीके कहनेसे स्वयम् शूल और कुबुद्धि शास्त्रोंको धारण कर युद्ध करनेके लिये तैयार हो आया। राजाको स्वयं रणमें जानेके लिये प्रस्तुत

देखकर सेनापतियोंमें से काम सेनापति हाथ जोडकर कहने लगा ॥

कामसेन सेनापति तेहि शिर नायऊ ॥
हे स्वामी केहि कारण निजहिं सिधारहु ॥

टीका-सेनापति कामसेन शिर नवा करके मोह राजासे कहने लगा कि हे स्वामी ! आप स्वयम् युद्धके लिये क्यों जाते हैं ?

आज्ञा करौ विवेकहिं गहिलै आवऊँ ॥
भ्राता सब सेनापति तुरत बँधावऊँ ॥

टीका-हे राजन् ! यदि आप आज्ञा करो तो राजाको उसके सब भाइयों और सेनापतियों सहित बांधकर ले आऊँ। कामसेनकी युक्ति और उत्साहपूर्वक वचनको सुनकर मोहराजाने उसे युद्धमें जानेकी आज्ञा दी। तब-

आयसु मांगि चले तब रिपुदल आयऊ ॥
रदपट फरकत आतुल वचन सुनायऊ ॥

टीका-मोह राजासे आज्ञा मांगकर काम विवेक राजाके दलके सन्मुख आकर उपस्थित हुआ। उस समय कामके होंठ क्रोधके मारे फरक रहे थे। क्रोधके आवेशमें आकर कामने विवेक-राजाकी ओर सम्बोधन करके बहुत आतुरतासे कहना आरम्भ किया। रद = दांतपट = परदा अर्थात् दाँतोंका परदा होंठ ॥

रे विवेक तोहि कच धरि तुरत संहारि हैं ॥
मोहि देखत कौन सो मूल उच्चारि हैं ॥

टीका-काम विवेकराजासे कहता है रे विवेक ! देख अभी तेरे बाल पकडकर मैं तेरा नाश कर देता हूं। देखें कौन मेरे सम्मुख शब्द भी बोल सकता है ? मैं तेरा मूल नाश करता हूं। (अन्तःकरण जब शुद्ध हो जाता है तब उसी शुद्ध अन्तःकरण

में विवेक प्रगट होता। इस कारण विवेकका मूल शुद्ध अन्तःकरण है जिस समय मनुष्यको काम उत्पन्न होता है उस समय अन्तःकरण मलिन वासना और देहाभिमानसे पूर्ण हो जाता है तब शुद्धान्तःकरणका अभाव होकर मलिन अन्तःकरणका प्रादुर्भाव होता है ) ॥

मूल गही उपार डारूँ मोसन करत सरभरै ॥
विचार सुनि बोलत विवेकहि संपुट युगकरधरै ॥

टीका–काम कहता है रे विवेक तू क्या मेरी बराबरी करना चाहता है? मैं तेरे मूलको ही उखाड कर फेंक दूँगा। कामके ऐसे अहंकार युत वचनको सुनकर विचारने राजा विवेकसे हाथ जोडकर विनय किया कि–

सुनु सुमतिनायक परमलायक दास कौतुक देखिये ॥
काम क्रोध अभिमानिया नट चेटका सम लेखिये ॥

टीका–हे सुमतिके मालिक परम योग्य विवेकराजा! इन काम क्रोध और अभिमानादिकोंको नाटकी चेटकियोंके समान जानिये। इनका बलही क्या? मुझ दासके कौतुकको देखिये। इस प्रकार विनय करके और विवेककी आज्ञा लेकर विचार रणमें कामके सम्मुख उपस्थित हुआ ॥

एक दिशि गर्जत काम विचार तब उभय दिशा ॥
काम करत बल जब अंत तब तरजत रसा ॥

टीका–हे धर्मदास! अब एक ओर तो महा दुर्धर्ष काम गरजने लगा और दूसरी ओर विचार अपना प्रकाश फैलाने लगा। अब दोनोंका युद्ध होना आरम्भ हुआ। कामने जब अपना पौरुष कहके सुनाया, तब विचारने उसको तुच्छ बताया विचारके मुखसे तिरस्कारके वचन सुनकर काम कहने लगा ॥

रे विचार मतिहीन सकल वशि मैं कियो ॥
ब्रह्मा विष्णु महेश सबहि ताजन दियो ॥

टीका-काम कहता है रे मतिहीन विचार! तेरी क्या विसात है, मैंने सब चराचरको अपने वशमें कर लिया है। औरकी कौन कहे ब्रह्मा विष्णु शिव आदि सबको मैंने ताजन दिया है, (मारा है)। इतनेही नहीं मेरे बलका प्रताप तू और सुनले।

सुरपति शसि हि राते गौतम त्रिय कही ॥
विवेक विचार जो थाके बासा मैं गही ॥

टीका-रे विचार! सुन जिस समय मैंने इंद्र और चन्द्रमा को वशमें किया, तब उनकी बुद्धि नष्ट होगयी, विवेक विचार सब जाता रहा और मेरी आज्ञासेही परम पवित्र गौतम मुनिकी पतिव्रता स्त्रीको भ्रष्ट किया। उस समयभी मैंने तुम दोनों (विवेक और विचार) को पराजय किया था। इतनी ही नहीं और भी सुन।

व्यास पिता मीन दुहिता रतिबर बस कियो ॥
सुमन शरासन बाण शिवहि बेध्यो हियो ॥

टीका-रे विचार व्यासके पिता परमज्ञान और विवेक विचार में प्रसिद्ध जो पराशर ऋषि थे उन्हींको जब मैंने अपना बाण मारा तब वहां भी तुम्हारा कोई बश नहीं चला, उन्होंने मछली के पेट से निकली मत्स्यगन्धा (मच्छोदरी) से नदी के बीचमें भोग किया। और जब मैंने अपने बाणका लक्ष्य शिवजी को बनाया तब उन्होंने कामातुर होकर मोहिनी को पकड़ने की इच्छा की।

दोहा-कहि कहाय मनसिज हस्यो, बोल्यो वचन उदार ॥
मो सम्मुख जलपै कहा, मेरो बल अपार ॥

मो रति अति दुस्तरण लखि, जीतैं मोहिं जग कोन ॥
ज्ञान विवेकै आहिदे, लखत मोहिं करि गौन ॥
पग नहिं टिकत सुधर्मको, नहिं धीरज ठहराय ॥
मेरी दृष्टि परतही, वैरागो नशि जाय ॥
मैं मन हरचो विरञ्चि को, निज पुत्री वश कीन॥
शतमख[1] द्विजजाया[2] निरखी, भयो परम अधीन॥
है कोतो बल अंग तुव, अरे सुभट कहु मोहि ॥
मेटों मार विलम्ब नहिं, प्रलय करत हौं तोहि ॥
पछितान्यो कांप्यो हृदय, शोचत वस्तु विचार॥
हौं निर्बल वैराग बिन, अहै सबल अतिमार ॥
वस्तु विचार फिरे तबै, महा समर भय मान ॥
तुरते राय विवेक पहँ, बन्धन कीन्है आन ॥
मन संकोचि दृग नीच करि, कहत वचन नृपपास ॥
मेरो बल पहुँचे नहीं, निष्फल भयी सब आस ॥
तब मन्त्री सत्संग कर, औ दूजी अभ्यास ॥
उत्तम मन्त्र विचार के, कहत नृपति के पास ॥
मकरध्वज[3] भुज बल अमित, बाक बीर समरत्थ ॥
वस्तु विचार महाबली, करे ताहि निजहत्थ ॥
दीजै ताहि सहायको, भक्ति ज्ञान वैराग ॥
विजय करे रण सहजही, वस्तु विचार बडभाग॥
सुनि विवेक मन सुख भयो, मान्यो मन्त्र हिय जु॥
तीनों तुरत बुलाइके, ताके संग किय जु ॥
बल पायो फूलो हृदय, चले समर समुहाय ॥
मनसा भूमि सुहावनी, रचे युद्ध तहँ जाय ॥

---

१ इन्द्र । २ गौतमकी स्त्री । ३ कामदेव ।

ठाढो सहित सहाय तब, मदन वीर बलवान ॥
दृष्टि परचो वैराग जब, कछुक दृष्टि सकुचान ॥
वस्तु विचार बोल्यो तबै, महाबली रण गाज ॥
सो हैं करत विवेककी, कित जे हैं रिपु भाज ॥
महाकोप करि बोल्यो, तबहीं सबल अनंग ॥
मो सन्मुख एतो बकै. करौ क्षणकमें भंग ॥
कुसुम धनुष वर हाथले, करों बाण सन्धान ॥
सकल अंग पलमें हरैं, मेरो बल अप्रमान ॥
छूटे शर जो समर के, भयो युद्ध भयभीत ॥
गावत युगल समाज तहँ, रणरसमत्त जु गीत ॥
तब विचार वैरागसो, बूझत मन्त्र विचार ॥
अहौ बन्धु कीजे कहा. बडो सकल यह मार ॥
तब वैराग विचार के, दीन्हो मतो अनूप ॥
अहो बन्धु शोचत कहा, शोधो शुद्ध स्वरूप ॥
जग मिथ्या रजु सर्पवत, सत्य ब्रह्म निरधार ॥
छुद्र निंद्य नहिं चित धरो, हरो अनंग विकार ॥
जब वैराग महा बली, दीन्हो मतो अभंग ॥
वस्तु विचार चल्यो तबै, धरि उर परम उमंग ॥
रे निलज्ज पापी कुटिल, दुर्बुद्धी धृक तोह ॥
कहा वस्तु विचार ने, दुष्ट पिसन जन मोह ॥
कह्यो मार अतिदर्प करि, मैं मन मोह्यो भूप ॥
शंकरको मन मोहेऊँ, धरचो मोहिनी रूप ॥
मैं पराशर दहन कियो, रावणको घर खोय ॥
शृङ्गी ऋषि वनमें छल्यो, परे त्रिशा वश सोय॥
जीत्यो एक कटाक्षमें विश्वामित्र[1] सुधीर ॥

---

१ विश्वामित्रजी मेनकाको देखकर कामातुर हुए थे जिससे शकुंतला का जन्म हुवा ।

देवंअंगना संग लै, छूटयो धीर शरीर ॥
वस्तु बिचार बोल्यो तबै अब जान्यो तुव भेद ॥
कहा नारि जहँ गर्व तोही, अस्थि मांस त्वच मेद ॥
यह मलकी पुतली प्रगट, नख शिख भरी विकार ॥
प्रगट निरंतर मल स्रवै, अष्ट याम नव द्वार ॥
तांसो संगति जो करै, अति मलीन सो जान ॥
शूकर विष्ठा अशुभ योनि, कह तिनको परमान ॥
पुनि मनसिज बोलैं तबै, सुनहू वस्तु बिचार ॥
कियो भोग नहिं नारिको, वृथा जन्म संसार ॥
बडो पदारथ नारि जग, विनु तिय धाम न काम ॥
ताको धर्म कछु न सधे, जाके घर नहिं बाम ॥
ताते त्रिय सो धन्य है, तिहिं पुर देखु निहारि ॥
सावित्री आज विष्णु ले, उमा लिये त्रिपुरारि ॥
कहै विचार यद्यपि अहै, ब्रह्मादिक ढिग बाम ॥
मो सहाय तद्यपि सबै, सदा मुक्ति निःकाम ॥
सनकादिक मुनि जनकसे; नहिं चितवत तुव रञ्च ॥
वस्तुविचार स्वरूप लहि, नाशै जगत प्रपञ्च ॥
गयी खबर तेहि भूल वह, रे निलज्ज मदमत्थ ॥
हनूमान यक क्षणकमों, शंकर लायो हत्थ ॥
उठयो मदन तब कोपिकरि, गह्यो बेगिकर चाप॥
इषुवर्षा लाग करन, वर्णत नारि प्रताप ॥
कञ्चन सो तन भूल मले, दृग कमलनके भाय ॥
ऊँचे उरज विराजहीं, को न देखि ललचाय ॥
चन्द्र वदन तन क्षीण करि, जंघ केदली समान॥

१ मेनका इन्द्रके स्वर्ग की अप्सरा है इस कारण इसको देवअंगना लिखा। २ ले =लक्ष्मी।

तापर चीर सुगन्ध बहु, भूषण भूपति जान ॥
विकट दृष्टि जबहीं करै, सुर नर मुनि वश होत ॥
कठिन कटाक्षे जब भिदौ, तब कहँ ज्ञान उदोत ॥
पुनि विचार बोल्यो तबै, जहँ तिय तोहि गुमान ॥
नरक परें तेहि संगते, संगति नाशै ज्ञान ॥
सोरठा-नारी वरने रूप, दुष्ट चित्त विष सो भरी॥
वरणें को कवि अनूप, चन्द्र वदन कञ्चन तनय ॥
दोहा-अहै अस्थिको पींजरा, चाम लपेटे जाहि ॥
ऊपर चादर रंगि दई, भीतर विष्ठा आहि ॥
नंगी करि जो देखिये, यह तन सुन्दर रूप ॥
यामो कछु धोखो नहीं, प्रकट पिशाच स्वरूप ॥
पृथक अंग जो देखिये, रुधिर अभूषण गन्ध ॥
तब मलीन चर कीच, सो भरी देखिये रन्ध ॥
विष सों ढिग गुण अग्नि सो चितवनि बाण समान ॥
हित सों ढिग मन मिलन सो, सुख चुरैल पकवान ॥
सो नर पावन है सदा, जो न करै तिय साथ ॥
धरे पखौवा मोरके, नन्दनन्द हू माथ ॥

प्रबोध चन्द्रोदय ।

बोले वस्तु विचार मूढ नहिं बूझई ॥
अंध चछुविहीन निपट नहिं सूझई ॥
कौन पुरुषको नारीलिंग उभयो कहा ॥
आतम ब्रह्म स्वरूप सबनमें रमि रहा ॥
कित अनंग कित संग विवेक ते पाइये ॥
सच्चिदानंदसर्वव्यापक चित्तमें ध्याइये ॥

भेद अभेद दोऊ सम ज्ञान विचारहू ॥
अंत अवस्था जानि सोई निरवारहू ॥

टीका—कामके डींग मारनेको सुनकर वस्तु विचारने कहा रे मूढ काम! तू मूर्ख है तेरेको समझ नहीं पडता है; तू अन्धा है तुझको कुछ सूझता नहीं है।

एकही ब्रह्म आत्मस्वरूप होकर जब सबमें रम रहा है तब स्त्री और पुरुष यह दो लिंग कहाँ हैं। जब एकही सच्चिदानन्द सबमें व्यापक हो रहा है तब कहां काम है और कहां रति है। जिसने इस प्रकारसे निज स्वरूपको विवेककी सहायतासे जानकर भेदा-भेद को नाश कर दिया है उसके लिये तेरा अस्तित्वही नहीं तब तेरा वश क्या। स्वरूपज्ञान प्राप्त होतेही तेरी अंत अवस्था आजाती है फिर तेरा बल उसके ऊपर नहीं चलता। किस दृष्टि को धारण करनेसे तेरा बल नहीं चलता सो सुन।

छन्द—निरवारि देखे छानि लेखे दुतिय नहिं कोई कहा ॥
नरवत इत उत करत जहँ तहँ ब्रह्म सब मो रमि रहा ॥

टीका—विवेकी पुरुष ब्रह्म विचारको प्राप्त करनेके लिये जब अन्वयव्यतिरेक करके स्वात्मज्ञानको जानता है और अपने प्राप्त ज्ञानकी परीक्षाके लिये सर्व शास्त्र और आचार्योंके मतको छानता है तब उसे विचार ज्ञान द्वारा स्वात्म-निश्चयात्मक प्राप्त होता है जिससे वह सर्व स्त्री पुरुष जड चैतन्य सब ही एक ब्रह्मकी ही लीला देखता है। जिस प्रकार नटको जाननेवाला पुरुष उसके अनेक स्वांगोंमें भी उसे नट ही जानता है, उसे उसके स्वागोंमें दूसरा भाव कदापि नहीं होता। उसी प्रकार ब्रह्मतत्त्वको जानने-वाले पुरुषकी दृष्टिमें जब द्वितीया है ही नहीं तब तेरी स्थिति कहां है।

इत काम सुनिके अस्त्र डारे आनिके चरण परयो ॥
विचार ब्रह्म उद्धं वीर्य्यं मोह भय वश खरभरयो ॥

टीका-हे धर्मदास ! वस्तु विचारके निर्मल ब्रह्मज्ञानरूपी बाणसे विंधा हुआ काम तेजहीन होगया और अपने सर्व अभिमान और घमण्ड को भूलकर विचारके आगे अपना हथियार डालकर उसके आधीन होगया। उसके आधीन होतेही उसकी स्त्री रति आदि सब आकर विवेकरायके आगे माथा नवाकर अपने सब पराक्रम छोडकर आधीन होगयी।

(जिस समय मन कामातुर होता है उसी समय ब्रह्मविचार द्वारा इसे मारनेसे वीर्यका बल जिसके बलसे काम अपना पराक्रम दिखाता है एकदम शान्त हो जाता है।)

कामको मरते देख मोह राजाके दलमें खलबली मच गयी स्वयम् मोह भी भयभीत हुआ तब-

क्रोध मोह सुनि तुरतही निजबल भाषेऊ ॥
मोसन करि संग्राम कवन पत राखेऊ ॥
विचार विवेक सहित सब सेन संघारि हौं ॥
करौं निकंटराज वचन प्रतिपारि हौं ॥

टीका-हे धर्मदास! काम सेनाके मरनेका समाचार और उसके मरनेसे राजाके भयभीत होनेकी खबर जब क्रोधको पहुँची तब वह उसी समय रणके लिये तैयार होकर मोहराजाके निकट जाकर कहने लगा हे राजन्! क्या आप जानते नहीं हैं कि, मुझसे संग्राम करके किसीकी पत बची नहीं है। मैं तो सबको जीतनेवाला आपकी सेवाके लिये तैयार हूँ तब आप एक काम

१ मरना और शत्रुके अधीन होना इन दोनों बातोंमेंसे आधीन हो जाना मान अपमान सूचक होने से मृत्युसे भी अधिक है इस कारण "मरते देख" लिखा है।

के मरने से ऐसी चिंतामें क्यों डूबे हुए हैं। देखिये प्रतिज्ञा करके कहता हूँ कि, अभी संग्राममें जाकर विचार विवेक सहित उसकी समस्त सेनाका नाश करके आपका राज्य निष्कंटक बना दूंगा। आप किसी प्रकारकी भी चिंता न करें। इस प्रकार अपनी बड़ाई आपही करके रणभूमिमें जाकर उपस्थित हुआ।

दोहा-मोह भूप यह सुनतहि, होगया व्याकुल अंग ॥
बूझे मन्त्रिन से यहै, जूझे बन्धु अनंग ॥
बड़ो सुभट मोंसे नमो, हुतो सहस कन्दर्प ॥
मो जीवत सो हत गयो, दुस्तर कठिन जो सर्प ॥
महामोहको वचन सुनि, मोह उठ्यो गण गाजि ॥
मेरे बन्धुहि मारिके. कित जैहें रण भाजि ॥
मेटौं मारि विवेकमन, ज्ञाने देहुँ बहाय ॥
शील सत्य संतोष सब, चितवत जाहिं पराय ॥
हौं जब प्रगटो तेज ह्वै, संग पुत्र मम चार ॥
व्याकुल करि वैराग्यको, हरौं भक्ति परिवार ॥
असत्‌संग मन्त्री कहै, हे प्रभु बडभट क्रोध ॥
आयुस जाको दीजिये, विजय करै रण बोध ॥
हरप्यो मोह नरेश तब, सुन्यो क्रोध बल शूर ॥
आज्ञा तब रणको दई, करौ रिपुहि चकचूर ॥
चल्यो क्रोध वंदन कियो, प्रभु आज्ञा धरि माथ ॥
आइ गयो रणभूमिमें, दलबल लीन्हें साथ ॥

टीका-क्रोधका रणमें आगमन सुनकर विवेक राजाने भी विचार करके अपना योद्धा भेजा ॥

**तब विवेक क्षमा कहँ आयसु दीन्हिया ॥**
**सुभट दोऊ संग्राम समागम कीन्हिया ॥**

टीका-विवेक राजाने मंत्रियोंसे विचार करके क्रोधके सन्मुख क्षमाको संग्रामके लिये भेजा। अब दोनों ओरकी सेनाके बीचमें एक ओरसे महा विकाल क्रोध और दूसरी ओरसे महाकोमलांगी परमशान्त क्षमाका युद्ध आरंभ हुआ ॥

दोहा-नृप विवेक विस्मित भयो, सुनतहि क्रोध प्रभाव ॥
बूझ्यो मंत्रिनसे यहै, कीजे कौन उपाय ॥
दियो मन्त्र सत्संग वर, धीरज अचल सवीर ॥
क्षमा नारि मन भावती, पुत्र आर्य्यंव धीर ॥
धीरज रु क्षमा पठायो, ज्ञान भक्ति ता संग ॥
तेज क्रोधको सहजही, क्षमा करे तन भंग ॥
धीरज क्षमा विदा कियो, पुत्र आर्य्यंव जान ॥
दीन्हें सकल सहायको, विमल भक्ति अरु ज्ञान ॥
धीरज धरि धीरज चल्यो, गयो आप रणभूमि ॥
जहाँ क्रोध गर्जत रह्यो, नयन मद झूमि ॥
मिलि दृष्टिसे दृष्टि जब, भयो क्रोध रिस अंग ॥
गरज्यो सन्मुख जायके, मारि करौं बल भंग ॥

क्षमाको सन्मुख लडनेके लिये आया देखकर क्रोध गरज कर कहने लगा।

क्रोध कहे सुनु भीता मोहिं न जानसी ॥
कम्पित है त्रिलोक मरण निज ठानसी ॥

टीका-क्रोधने कहा हे डरपोक क्षमा! क्या तू मुझे नहीं जानती है कि, मेरे भयसे तीनों लोक कम्पायमान हो रहे हैं ऐसा जानकरके भी तू मरनेके लिये सामने क्यों आयी है ॥

क्रोध सँघारेउ छितिपति राज जित कित कियो ॥
क्रोधविवश सुरलोक दैतन जहरहि दियो ॥

क्रोध कटुक अतिदारुणको आडो तोही ॥
तेहिको होत संघार मम दरेरा पर जोही ॥

टीका-क्रोध कहता है कि, हमने असंख्य राजाओंका नाश करके उनका राज तितर वितर कर दिया है। हमारेही कर्तव्यसे देवोंने राक्षसोंको विष पिला दिया था। हमारी सेना ऐसी प्रलय है कि जो इसके सन्मुख आता है उसका ऐसा नाश हो जाता है कि कहीं पता भी नहीं लगता। भला ऐसी बिकट सेनाके समक्ष तू क्या वस्तु है और तेरा रक्षक कौन है कि तू मेरे सम्मुख आयी है॥

दोहा-कहा बापुरी भक्ति है, कहा बापुरो ज्ञान ॥
कहा बापुरी क्षमा तू, कहा तोहि गुमान ॥
कहा नृपति तुव रंक है, कहा धर्म सन्तोष ॥
सम्मुख मेरे ना टिकै, जब चितवो भरि रोष ॥
इस प्रकार कहकर फिर क्रोध कहने लगा ॥

माता पिशाची कुजन बन्धु करनकी सामानते ॥
गुरु कौन बापुरा वदन देखुं मोहि सु बडज्ञानते ॥
निजनारिको अपमान करि वृषली सो लोकसमाज है॥
क्षण सुरति ते तेहि काटिके तब करूँ राज विराज है॥

टीका-हे क्षमा ! मेरे पिता राजा मनने अपनी स्त्री निवृत्तिका अपमान करके उसको लौंडीसे भी नीच गतिको पहुँचा दिया है, जिससे समाजमें वह पिशाचनीके समानही आदरको पाती है। और तेरे भाई जो विवेक आदि हैं ये तो महा दुष्ट हैं और तू तो तेजहीन साक्षात् वर्णसंकर समान देख पडती है। हाँ तेरे को मेरे सम्मुख आनेकी शिक्षा देनेवाला गुरु कौन बापुरा है। क्या वह मुझसे अधिक ज्ञानी है ? अब देख क्षणमात्रमें दृष्टि डालतेही तेरे सब परिवारका नाशकरके निवृत्तिका नामही मिटा देता हूँ ॥

दोहा—तबै भक्तिको बोलि ढिग, कहै क्षमा मुसकाय ॥
वचन क्रोध कै सुनतहिं, तुरतहिं देव बहाय ॥
कोपि क्रोध बोल्यो तबै, धिग धिग है तुव मात॥
नाम निवृत्ति जासु तुव, प्रगट भयो कुल घात ॥
तब क्षमा निज पियतन, चितई दृष्टि पसार ॥
कोपि वचन सुनि करि क्षमा, सहियेशब्द विचार ॥
कह्यो क्रोध अतिरिस भरे, रे धीरज मतिहीन ॥
कहा प्रातहि आइ तुम, अशुभ दृष्टि मुहि दीन ॥
लियो ज्ञानको बोलिके, क्षमा आपने तीर ॥
कहत वचन और कछू, मेटि क्रोधकी पीर ॥
कहत वचन अति रिस भर्‌यो, रक्त वर्ण कर नयन॥
तन पर स्वेद कंपित अधर; मुखते कटुतर वयन॥
प्रकट भइ हिंसा तबै, क्रोध नारि विकराल ॥
अब सबको धीरज गयो, प्रगट भयी ज्यों काज॥
बोली हिंसा रिसभरि, लिये खड्ग विपरीति ॥
कोपि क्षमा मारण चली, लिये खड्ग अपकीर्ति ॥
शतमुख[1] निजगुरु[2] मार्‌यो, शंभु सतीको तात ॥
कहुको मोरे जियतते, निकसि बाहिरे जात ॥
सुर नरमुनि व्याकुल किये, ताहि सकै कहि कौन॥
लगी समाधि युगाधि भर, ताहि छुडावत मौन ॥
क्षमा कहे भृगु लात जब, हनी विष्णुके हीय ॥
क्षमा किये प्रभुता भयी, सुर नर मुनिके जीय ॥
क्षमा नाम यह भूमिको, लहत सकल अपराध ॥
है सबके अपराध शिर, जेहि वन्दे सुर साध ॥

१ इन्द्र। २ इन्द्रको ब्रह्मज्ञानके उपदेश देनेवाले दध्यङ्ङृषि थे। इन्द्रने इनका शिर काट लिया था उपनिषदोंमें इसकी कथा प्रसिद्ध है आतमपुराणमें विस्तार से है।

बहुरि क्रोध बोल्यो तहाँ, धरे भार बहु भूमि ॥
मोर भार सहिसके, जाय पताल झूमि ॥
को मोरी तेजै सहे, कहा बडो अस बीर ॥
ब्रह्मा विष्णु महेश हू, सो उर धरत न धीर ॥
कहे क्षमा पुनि भक्ति सो, हम सब विधि लघु आहि ॥
कब सम्पति यह क्रोधकी, क्यों पटतरि हैं ताहि ॥
क्रोध सुभट बोल्यो तबै कहत वचन यह क्रूर ॥
मेटो मार विलम्ब नहीं, दया धर्म बड शूर ॥
जैसे कोऊ यत्न करी संग्रहि कीन्हो वित्त ॥
तस्कर पलमें लैगयो, शोक अग्नि जर चित्त ॥
क्षुधा पिपासा नींद पुनि, सिन्धु तरहि ज्यौं यार ॥
गोपद लै बोलो तिन्हैं, ऐसेही वरियार ॥
जबै क्षमा सब सहि रहि, गहि रहि भगवत आस ॥
हृदय समझ बोलत भयी, हम तो हैं तुव दास ॥
यों कहत तुरत क्षमा कहे पौरुष बोलेऊ ॥
कुशल कुशल कहि फिर उत्तर खोलेऊ ॥

टीका—हे धर्मदास! जिस समय क्रोधने महा कटु और हृदयमें शूल उत्पन्न करनेवाले महानिन्द्य वचन कहकर क्षमाके समस्त परिवारको गाली दियो उस समय भी क्षमा शान्तिसे कहने लगी हे क्रोध! आपने जो कुछ कहा बहुत अच्छा कहा वाह! वाह! ऐसेही चाहिये! इस प्रकार बार बार उसकी स्तुति करती हुई क्षमाने कहा आपने जो कुछ अपना पुरुषार्थ और बल वर्णन किया सब ठीक है। इसमें क्या संदेह आप बहुत बडे हैं। इस प्रकारसे क्षमाके कहनेपर क्रोधने उसकी बातोंको कटाक्ष समझकर और भी अपनी शक्ति अधिक प्रकाशित की। और—

कीन्हेसि चरण प्रहार सो अति विहसत भयो॥
तो कुछ मम अपराध स्वामी अब गयो ॥

टीका-क्रोधने क्षमापर अपने लातसे प्रहार किया। उधर क्रोधने लात मारा इधर उसके बदलेमें क्षमाने हँसकर हे भाई! हे मालिक! अब मेरा जो कुछ अपराध था सो सब छूट गया। किन्तु

मम हिय अतिहि कठोर चरण मृदुलै अहे ॥
शासन उचित सो कीजिये अनुजै निर्वहे ॥

टीका-मेरा हृदय अत्यन्त कठोर और आपका चरण अत्यन्त कोमल है इससे आपको चोट लगी होगी सो क्षमा करना, हे भाई! मैं आपसे छोटी हूँ आप मेरे जो उचित शासन समझिये सो कीजिये मेरा निर्वाह सब प्रकार हो सकता है॥

दोहा-यहि सुनि झख लागे बकन, क्रोध बहुत दुख पात॥
दास कहत हियसो मनहुँ, लगे चरनको घात ॥
धर्म तपस्या दया धन, पुनि संयम अरु नेम ॥
ज्ञान भक्ति वैराग बल, तजत शील रो प्रेम ॥
मेरे तेज प्रतापते, ये सब जाहि पराय ॥
धीरजहू धीरज तजै, मेरो दर्शन पाय ॥
क्षमा कहे तुमहो बडे, गुनहु बडे तुम माहिं ॥
जो कछु कहो सो सत्य है, यामैं संशय नाहिं ॥
कृपा करी मोपर बडी, मैं मान्यो बड भागि ॥
क्षमा दीन ह्वै क्रोध कै, तुरतै पायन लागि ॥

क्षमाकी ऐसी अधीनताको देखकर क्रोधका तेज हत हो गया।

यह सुनि क्रोध शीतलगत अति कुंठित भयो॥
हारयो कर अतिदाप सबै जडता गयौ॥

टीका-क्षमाकी अमृत समान अधीनताकी वाणीको सुनकर क्रोधका सब तेज जाता रहा, अब वह शांत और कुंठित होकर आगे युद्ध करनेसे रुक गया और अपने हथियार डाल दिये।

दोहा-कियो अनादर क्षमाको, शीतल भयो न रोष॥
तबै क्षमा पायन परी, सबै हमारो दोष॥
तुम विन दूजो को अहै, परम सीखकी बात॥
सबै चूक मोसे परी, क्षमा कीजिये तात॥
गये क्रोधके प्राण तब, शीतल भयो शरीर॥
जीति क्षमा प्रिय ढिग गयी, मिटी सुतनकी पीर॥
जैसे चण्डी मारेउ, महिषासुर विकाल॥
तैसे क्षमा विनाशेऊ, क्रोधहि हियेको शाल॥

क्रोधके मरतेही दूतोंने मोहराजाको जाकर अपने पराजयका समाचार सुनाया।

काम क्रोध सुभटै युग पराजय पायऊ॥
महा मोह अति संकेऊ दास बुलायऊ॥

टीका-काम और क्रोध दोनों महावीरकी जब पराजय होगयी तब मोह राजा अति भयभीत होकर अपने सर्व सेनाको बुलाकर एकदमसेही विवेककी सेनासे युद्ध करनेको रणमें आया। तब-

तब विवेक निजदल कहँ आयसु दीन्हेऊ॥
निज निज जोरी जान निपातन कीन्हेऊ॥

टीका-जब मोहराजाने एकदमसे अपनी समग्र सेना सहित विवेककी सेना पर चढायी की, तब इधरसे विवेक राजाने भी अपनी समग्र सेनाको शत्रुसे युद्ध करनेकी आज्ञा देदी। अब क्या था, घमासान युद्ध आरंभ हुआ। अपने २ जोडके योद्धा-ओंको ढूँढ २ कर सब परस्पर युद्ध करने लगे। तहाँ-

बुद्धि कुबुद्धिहिं मारचो धर्म अधर्मता ॥
तृष्णा हतेउ संतोष सो कर्म अकर्ममता ॥
चंचल तेहि थिर मारेउ पुण्य जो कुकर्मा ॥
दुविधहिं एकता घातेउ लिपट सूक्ष्मश्रमा ॥

टीका-बुद्धिने कुबुद्धिको मारा, धर्मने अधर्मको तारा, तृष्णाको संतोषने उजारा और कर्मने अकर्मका नाश मारा। स्थिरताने चंचलताको लुप्त किया तो पुण्यने पापको गुप्त किया। द्वैतभाव-को अद्वैतने तो सहजमें ही नाश कर दिया। इसी प्रकारसे मोह राजाकी समस्त सेनाका सत्यानाश होगया॥

छन्द-श्रम ही नमाऱ्योरिपुसँहाऱ्योमोह दुंदुभी बाजई॥
प्रवृत्ति पुत्र पौत्र सबगत अम्बिका सुनि लाजई ॥

टीका-हे धर्मदास! विवेकराजा तो इस प्रकारसे शत्रुको नाश करके निश्चित होकर बैठे, आनन्दरूपी दुन्दुभी बजने लगी किन्तु जब प्रवृत्तिने अपने वंशका नाश सुना तब अत्यन्त लज्जित होकर पश्चाताप करने लगी फिर-

आदि आशा सखी मिलि प्रवृत्ति आगे आयऊ ॥
मन राजा पत्नी सुनत क्षय शोक विपति विरागेऊ॥

टीका-हे धर्मदास! प्रवृत्तिके सर्व पुत्र पौत्र कलत्रका नाश होगया तब वह अत्यन्त शोक और पश्चाताप करती हुई आदि

आशाको साथ लेकर मनराजा के समीप पहुँची (आदि आशा प्रवृत्तिकी सखी है क्यों कि, जब यह जीत अपने स्वरूपकी आदि अवस्थाका वर्णन शास्त्रोंमें सुनता है तब उस आदि सुखकी प्राप्ति के लिये प्रवृत्तिमें फँसता है। यद्यपि आदि आशा प्रथम उत्पन्न होती है तथापि प्रवृत्ति अधिक बलवती होनेके कारणसे उससे प्रधान होजाती है)

इस प्रकार प्रवृत्ति जब मनके निकट गयी तब मनराजा अपनी प्यारी स्त्री प्रवृत्तिके परिवारको नाशको सुनकर अत्यन्त कष्ट और शोक तथा विपत्तिको प्राप्त हुआ। पश्चात् उसे विराग आया॥

(जब जीव किसी पदार्थ को अत्यन्त स्नेह पूर्वक ग्रहण करता है तब अपने स्वरूपको भूलकर उसी पदार्थमें तदाकार हो जाता है किन्तु जब उस पदार्थसे वियोग होजाता है; अथवा उसमें किसी प्रकारसे कुछ हानि होती है तब उसके चित्त को बहुत कष्ट, अनुताप और दुःख होता है, फिर थोडी देरमेंही चित्तमें स्थिरता आनेसे चित्तको शान्ति आजाती है और उससे विराग हो जाता है)॥ अब मन राजा प्रवृत्ति से पूछता है॥

हे बाला अर्द्धंगी कीतहि सिधायऊ॥
सुहाय तुव सुत सतत किहि विधि मारेऊ॥

टीका—हे मेरी स्त्री प्रवृत्ति! तू इस समय कहाँ आयी है। तेरे परम सुन्दर पुत्रोंको किसने किस प्रकारसे मारा॥

उधर तो प्रवृत्ति मनराजाके पासपहुँची है इधर अब निवृत्ति ने देखा कि, अब समय आया है मनराजा को अपने वश करना चाहिये इसलिये उसने अपने सखियोंको सिखाकर मनराजाके पास भेजा॥

निवृत्ति निज सखियन तुरत सिखायऊ ॥
पति समीप तुम गौनो बात बुझायऊ ॥

टीका-मन राजाको विराग संयुक्त देखकर निवृत्तिने अपनी सखियोंको बुलाकर और उन्हें कुछ गुप्त शिक्षा देकर मन राजाके पास भेजा। तब-

विद्या विनय अधीन सखी तुरते गयी ॥
करिप्रणाम कर जोरि मानु बोलत भयी ॥

टीका-निवृत्तिकी आज्ञा पाकर विद्या और अधीनता तीनों सखी मन राजाके पास जाकर प्रणाम करके विनयपूर्वक बोलने लगीं। क्या बोलने लगीं कि हे प्रभु--

कितहिं उदास समुझि जिय देखिये ॥
एक वनितासंगभोग अब द्वितीय लेखिये॥

टीका-निवृत्तिकी सखियोंने राजा मनसे कहा हे महाराज अब आप किस बातकी चिंता कर रहें हैं। अबतक एक स्त्रीके साथ समागम करके आनन्द विलास प्राप्त किया और उसका परिणाम भी देख लिया अब दूसरीकी ओर दृष्टि कीजिये और उसके आनन्द विलास और उसके परिणामको देखिये ॥

निवृत्तिकी सखियोंके वचनको सुनकर प्रवृत्तिकी सखी आशा (जो प्रथमसेही वहाँ बैठी हुई थी) को अच्छा न लगा।

सुनत वचन रिसवश भयी आशा यों कही ॥
विद्या द्रोह दुराचारिणी कितहु न चूकही ॥
सुहावति सौत समाजहि सबहि मरावसी ॥
कहि कहि पाठ कुपाठ विवेक पठावसी ॥

टीका-विद्याकी बातको सुनकर क्रोधित हुई आशा कहने

लगी–हे विद्रोहिणी! दुराचारिणी विद्या! तू कहीं भी चूकती नहीं है। प्रवृत्ति जो सौत निवृत्ति है उसके समाजमें सदा वास करके उसके पुत्र विवेकको पाठ कुपाठ अर्थात् सत्य झूठकी बात कह कहकर उसे बहकाती है और प्रवृत्तिके वंशका नाश भी तूने ही कराया है।

जो वांछित सा कीनो अब कित भावसी ॥
जरे पर तैं माहुर भले लगावसी ॥

टीका–हे विद्या! जो तेरे मनमें था सो तूने कर लिया अब क्या करना चाहती है कि जलेपर जहर लगाने आयी है आशाकी ऐसी दुष्ट वाणीको सुनकर विद्याने उसकी उपेक्षा की और मनराजासे कहने लगी।

स्वामी चित धीरज धारि नीति विचारिये ॥
उभय नारि प्रतिपालक कितहिं बिसरिये ॥

टीका–विद्याने कहा हे महाराज मन! आप नीतिपूर्वक विचार करके देखिये कि आप अपनी दोनों स्त्रियोंके पालन पोषण करनेवाले हैं। सो आप इस धर्मको कहाँ भूल गये हैं। आप अबतक प्रवृत्तिमें सम्पूर्ण लिप्त होरहे हैं और निवृत्तिको एकदम भुला दिया है उसकी ओर भी दृष्टि उठाकर देखिये। इस प्रकारसे मनराजासे कहकर विद्या आशाकी ओर फिरी और उसको डांटा–

भाग भाग दूती भामिनी नित्य इच्छा चहै ॥
प्रवृत्ति है भारी देह अजहुँ चिंता गहै ॥

टीका–विद्या कहती है। हे दूती! आशा! यहांसे भाग जा यहांसे भाग जा। देखती है कि, मनराजाके साथ प्रवृत्ति शरीर रूप होकर साक्षात् इतने बडे स्वरूपसे विराज रही है तथापि उसको फिरसे और भी बडा बनानेके लिये चिंता कर रही है।

यहाँ भाग, भाग दोबार कहनेसे आशय यह है कि निवृत्ति परायण पुरुषोंको लौकिक पारलौकिक दोनों प्रकारकी आशा त्यागनी चाहिये और यही वेराग्यका स्वरूप है। आशाको इस प्रकार से दुतकार विद्या फिर मन राजासे कहने लगी ॥

छन्द–गहि निवृत्ति स्नेह कीजे सुनहु स्वामी नागरा ॥
विषय शोचहि कहा कीजे करहु राज उजागरा ॥

टीका–विद्याने कहा हे बुद्धिमान स्वामिन अब आप निवृत्ति को ग्रहण करके उसके साथ प्रेमपूर्व राज्य कीजिये ॥

मन राजा सुनि हर्षेऊ निवृत्ति संगम आयऊ ॥
पति परी आनन्द भारी सुफल जीवन पायऊ ॥

टीका–विद्याके शिक्षाप्रद वचनोंको सुनकर मनराजा मनमे बहुत प्रसन्न हुआ और विद्याके साथही निवृत्तिके समीप गया हे धर्मदास ! उस समय निवृत्तिके आनन्दका क्या पार हो ? निवृत्ति अपने पतिको अपने ऊपर कृपा करनेके लिये निकट प्राप्त हुआ देखकर अपनी जीवनकी साफल्यताको प्राप्त जानकर पतिके चरणपर पड़ गयी ॥

अब दोनों आनन्दपूर्वक आनन्द विलासमें मग्न हुए ॥

इस प्रकारसे हे धर्मदास! जब यह मन प्रवृत्तिसे अलग होकर निवृत्तिको प्राप्त होकर गुरुमुखद्वारा सच्चे पारख पदको प्राप्त होता है तब मन स्थिर होकर सुखकी प्राप्ति होती है ॥

इति श्रीहंसमुक्तावली अन्तर्गत मोह और विवेकका युद्ध कबीरपंथी भारतपथिककृतटीका सहित समाप्त

इति विवेकसागर समाप्त

---

सत्यनाम

सत्यसुकृत, आदिअदली, अजर अचिन्त, पुरुष, मुनींद्र, करुणामय, कबीर सुरति योग संतायन, धनी, धर्मदास, चुरामणिनाम, सुदर्शन नाम, कुलपति नाम, प्रबोध, गुरुबालापीर, केवलनाम, अमोल नाम, सुरतिसनेही नाम, हक्क नाम, पाकनाम, प्रगट नाम, धीरज नाम, उग्र नाम, दयानामकी दया, वंश-व्यालीसकी दया।

# अथ श्रीसर्वज्ञसागर प्रारम्भः

*

धर्मदास वचन—चौपाई

कहे धर्मदास सुनो गुसाई। सकल मता तुम कहा समुझाई॥
वरनि भेद कह्यो बहुमानी। सर्व ज्ञान तुम कही बखानी॥
सब को सार कहो समुझायी। भिन्न २ मोहिं देहु लखायी॥
सावन भादो वरसे मेहा। एते शब्द तुम कथे विदेहा॥
बहुत अगम है मता तुम्हारा। कहँ लगि गम्य करै संसारा॥
नर देही कछु गम्य न जाने। जो कछु सुने सोई अनुमाने॥
तहँको भेद कहँ मूरख पावे। विनु सतगुरुको आन लखावे॥
जो नहीं गर्भवास महँ आवा। अजावन सोई गुरू कहावा॥

साखी–बहुत भेद कह्यो तुम, सुन्यो सुरति दे कान ॥
अब कछु ऐसो भाषिये, आदि अंत बंधान ॥

सतगुरु वचन–चौपाई

तब सतगुरु असवचन उचारा । सुनु धर्मनि प्राण अधारा ॥
बहुत ज्ञान सुनायो तोही । तुम अंतर जाना अब मोही ॥
कोटि ग्रन्थ ज्ञान हम भाखा । सुनिके भेद तुम अन्तर राखा ॥
पुनि टकसार मैं कहां अमानी । सो धर्मनि तुव मन नहिं मानी ॥
बीजक ज्ञान मैं कह्यो अरथाई । सो तुमरे चित एक नहिं आई ॥
चौथे मूल ज्ञान लै आवा । सर्व लोकन को भेद बतावा ॥
चार ज्ञान मैं कहा समझायी । तेहिमें तुम्हे परतीति न आयी ॥
विनु परतीति काज नहिं होई । श्रद्धा विना जिव जाय विगोई ॥
साखी--पुरुष हमसों जो कही, सो तोहि दीन्ह दिखाय ॥
और धर्म नहिं गोइहौं, सुनु धर्मनि चित लाय ॥

धर्मदास वचन–चौपाई

धर्मदास विनती अनुसारी । साहिब विन्ती सुनो हमारी ॥
सकल भेद गुरु कहौ बुझायी । जाते संशय सब मिटि जायी ॥
आदि अंत मधि गति सोई । सबै कहौ राखो मति गोई ॥
पहले आदि समरथ किमि होई । उत्पति प्रलय भाषो तुम सोई ॥
तुम संदेशी आदिते आये । सर्व भेद तुम हमें सुनाये ॥
चारि ज्ञान तुम भाषि सुनावा । ज्ञान चारिको अर्थ बतावा ॥
अब त्रयवाचिकमोहि सुनावहु । दया करो जनि मोहि छिपावहु ॥
साखी--तुम निज सतगुरु आदि हौ, हम हैं वंश तुम्हार ॥
समरथ अन्त बतावहू, मिटे भर्म कौवार ॥

सतगुरुवचन–चौपाई

तब साहिब अस वचन उचारा । सुनु धर्मनि प्राण अधारा ॥
आदि अन्त नहिं कोई वासा । आपहि आप कीन्ह प्रकासा ॥

साहब हते और नहिं कोई । शिष्य गुरू हते नहिं होई ॥
नहिं तब ब्रह्मा वेद निशानी । नहीं तब शिवकी उत्पानी ॥
नहिं तब विष्णु न निरंजन राया । नहिं तब अच्छरसृष्टि बनाया ॥
नहिं तब अतीत पुरुष कर ताना । नहिं तब रचे लोक अरु धामा ॥
नहिं सृष्टि न सिरजनहारा । नहिं कछु असार नहिं कछु सारा ॥
नहिं नरसिंग न कलकी नाहीं । गुरु और शिष्य बताऊं काही ॥

साखी-पिण्ड ब्रह्माण्ड तब ना हता, नहीं लोक विस्तार ॥
पुरुष एक निश्चल हता, जिनकी सकल पसार ॥

धर्मदास वचन–चौपाई

सुनु सद्गुरु विनती चित लायी । तुम गुरु रूप सदा सुखदायी ॥
ब्रह्मा देवता वेद विचारा । सो हम बूझे हृदय मँझारा ॥
चारि वेद भे तहैं चारी । चारि धाम गुरु कहो विचारी ॥
सर्व ज्ञान गति तुम भाखा । क्षर अक्षर थापि जो राखा ॥
उत्तर पुरुष सब कछु कीना । सो तौ हम जीवन सब चीन्हा ॥
यही भेद विरञ्चि विचारा । सोई आठों योग पुकारा ॥
सोई सकल मुनिन ठहराई । सोई शुकदेव संसार सुनाई ॥

साखी-सोई पुरुष तुमही कहो, हम चीन्हा जियमांहि ॥
तुम काहेको आयऊ, सोई बतावो थाहि ॥

सतगुरु वचन–चौपाई

तब सतगुरु बोले विहँसाई । धर्मदास बोले लडकाई ॥
जो कछु और विरंचि विचारा । सबकी गतिमति कह्यौ निरधारा ॥
तेहिते और कहाँ है भाई । यही भेद सब जीवन पायी ॥
त्रिवाचिक तुम पूछो मोही । नितप्रति अगम कहौं मैं तोही ॥

कहा कहौं मैं कहत डराऊँ । ताते उत्पति कहत लजाऊँ ॥
तब नहिं होते पिण्ड ब्रह्मण्डा । तब ना हती पृथ्वी नौ खंडा ॥
तब नहि लोक द्वीप की बानी । तब नहिं जीव जन्तु उत्पानी ॥
तब नहिं पुरुष और प्रकीरती । तब नहिं अछर निरञ्जन जोती ॥
तब नहिं ब्रह्मा विष्णु महेशा । तब नहिं गौरी गणेश औशेषा ॥
तब नहिं ज्ञान ध्यान औ ज्ञानी । तब नहिं वेद कितेव निशानी ॥
तब नहिं गुरु सतगुरुकी बानी । तब नहिं सात सिन्धु उत्पानी ॥
तब नहिं सुरति शब्द निर्मावा । तब नहिं एक दोय परभावा ॥

साखी-पांचतत्त्व तब ना हते, न हते आठों धाम ॥
नौद्वार तब ना हते, कहाँ लीन्ह विश्राम ॥

धर्मदासवचन-चौपाई

सतगुरु मैं बलिहारी तेरी । जीवन की काटी तुम बेरी ॥
दया सिंधु दाया तुम कीन्हा । सर्व जीव आपन करि लीन्हा ॥
दया करो जनि मोहिं छिपाओ । आदि अन्त उत्पन्न सुनाओ ॥
जो आपण करि जानो मोही । सकल भेद बतावहु तोही ॥

साखी-धर्मदास विनती करै, गहि कबीरको पाय ॥
साहिब तुम बीछुरे, शब्द वाहिरे जाय ॥

सतगुरु वचन-चौपाई

सुनु धर्मदास यह अकथ कहानी । सुर नर मुनि काहू नहिं मानी ॥
तन मन धनसो चित्त लगावे । गुरुका अन्त कोइ बिरले पावे ॥
युगन युगन मोहि आवत भयऊ । सत्य शब्द मैं कहते रहेऊ ॥
कहा कहौं कोई नहिं मानैं । जे समझै ते झगरा ठानै ॥

सत्ययुगका वर्णन

सतयुग चारि हंस समझाये । प्रथम राय मित्रसे नहिं आये ॥

चित्ररेखा रानी कर नाऊ। तिन सुनि शब्द श्रवण चितलाऊ॥
तिन युगबन्ध चौका कीन्हा। युग बन्धी परवाना लीन्हा॥
राजा रानी पूछत मोही। सो हकीकत कहौं मैं तोही॥
अष्टचौकाको शब्द सुनावा। राजा रानी लोक पठावा॥
दुसरे राय वटक्षेत्रके आवा। सतसुकृति तहँ नाम धरावा॥
तिन राजा पूछा चित लायी। तब तेहि भेद कह्यो समझायी॥
पान परवाना राजहिं दीन्हा। राजा वास लोकमें कीन्हा॥
तिसरे राय हरचन्द कहँ आये। बन्ध काटिके लोक पठाये॥
चौथे पुरी मथुरामें आयी। विकसी ग्वालिनके समझायी॥
चारिहंस सतयुग समझाये। ते चारों गुरुवंश कहाये॥
चारिहंस नौ लाख बचाये। शब्द भरोसे घरहिं पठाये॥

## त्रेता युगका वर्णन

पुनि त्रेता युग कहौं विचारी। सात हंस त्रेतायुग तारी॥
प्रथम ऋषीं शृंगी समझाये। दुसरे अयोध्या मधुकर आये॥
तिनसे शब्द कह्यो टकसारा। चौथे बोधे लछन कुमारा॥
पचवें चलि रावण लगि गयऊ। तहां भेंट मन्दोदरिसे भयऊ॥
गर्वी रावण शब्द न माना। मन्दोदरी शब्द पहचाना॥
छठैं चलि वसिष्ठ लगि आये। ब्रह्म निरूपन उनहिं सुनाये॥
सतये जंगलमें कियो वासा। जहां मिले ऋषी दुर्वासा॥
सात हंस सातौ गुरु कीन्हा। परमतत्त्व उनही भल चीन्हा॥
सातौ गुरु त्रेतामें भयऊ। देइ उपदेश सो हंस पठयऊ॥

## द्वापरयुग वर्णन

त्रेता गत द्वापर युग आया। सत्रह जीव परवाना पाया॥
प्रथमेंरायचन्द विजयकहँगयऊ। ताकी रानी इन्दुमति रहेऊ॥

दुसरे राय युधिष्ठिर कहँ आये । द्रौपदी सहित परवाना पाये ॥
तिसरे पाराशर पहँ आये । निर्णय ज्ञान ताहि समझाये ॥
चौथे राय धुधुल लहि भेदा । बहुत ज्ञानको कीन्ह निखेदा ॥
पचयें पारसदास समझावा । स्त्री सहित परवाना पावा ॥
छठये गरुडबोध हम कीन्हा । विहँग शब्द गरुडको दीन्हा ॥
सातें हरिदास सुपच समझावा । नीमषार महँ उसको पावा ॥
अठयें शुकदेव पहँ ज्ञान पसारा । सकल सरब भेद निरवारा ॥
नवमें राजा विदुर समझाया । भक्तिरूप उन दर्शन पाया ॥
दशमें राजा भोज बुझाया । सत्य शब्द पुनि उसे चिह्नाया ॥
ग्यारहें राजा मुचकुन्द हि तारे । बारहें राजा चन्द्रहास उबारे ॥
तेरहे चलि वृन्दावन आये । चारि ग्वाल गोपी समझाये ॥
गुरु रूप पुनि पन्थ चलाये । भौसे हंसा आनि छुडाये ॥
बावन लाख जो जीव उबारा । कलियुग चौथे यहाँ पर धारा ॥

## कलियुग वर्णन

प्रथमें गोरखदत्त समझाये । तारक भेद हम तुमहिं बताये ॥
दुसरे शाह बलखको बोधा । पढे आरबी बहुविधि सोधा ॥
तिसरे रामानन्द पहँ आये । गुप्त भेद हम उन्हें सुनाये ॥
चौथे पीरकी परचे दीन्हा । पचये शरण सिकन्दर लीन्हा ॥
छठे बीरसिंह राजा भयऊ । ताको हम शब्द सुनयऊ ॥
सतयें कनकसिंघ समझाये । सोलह रानी लोक पठाये ॥
अठएँ राव भूपाले आये । ग्यारह रानी लोक पठाये ॥
नौमें रतना बनिन समझाई । जाति अग्रवालिन करत मिठाई ॥
दशएँ अलिदास धोबी गयऊ । सात जीव परवाना पयऊ ॥
ग्यारहें राजा भोज समझायी । तिन बहु भक्ति करी चितलायी ॥
बारहें मुहम्मदसो कहचो कुराना । हद हुकुम जीव कर माना ॥

तेरहें नानकसे कह्यो उपदेशा । गुप्त भेदका कहा संदेशा ॥
चौदहें साहु दमोदर समझावा । करामात दै जीव मुक्तावा ॥
चौदह हंस कलियुगमें कीन्हा । गुरु स्वरूप परवाना दीन्हा ॥
पांचलाख हम पहिले तारे । पीछे धर्मनि तुम पगुधारे ॥
वंशन थाप्यों कियो कडिहारा । लाख ब्यालिस जीव उबारा ॥

साखी- तुम जानो हमही मिले, फिर पूछो मोहि ॥
नाम भरोसे पहुँचि हैं, ज्ञान करे का होहि ॥

धर्मदास वचन—चौपाई

धर्मदास जिव संशय मानी । जब बोले सतगुरु अस वानी ॥
दोइ करजोरि चरण चित धरई । फिर फिर गुरुसों विनती करई ॥
बड़ी भूल हमरे जिय आयी । समरस करिके ज्ञान फैलायी ॥
मेटचो धोखा साहिब मोरा । दयासिन्धु जिव बन्दी छोरा ॥
धर्मदास जिय भये मलीना । जैसे कमल जिव सम्पुट दीन्हा ॥
अजान जीव हम तुम्हैं न चीन्हा । भाग बड़े मोहिं दर्शन दीन्हा ॥
जो कुछ कहब सोई हम मानब । वचन तुम्हार हृदयमें आनब ॥

साखी—धर्मदास जिव डरपे, गुरुकी मानी त्रास ॥
अब नहिं पूछौं ज्ञान मैं, मोहिं दरशकी आस ॥

सतगुरुवचन—चौपाई

सुनु धर्मदास कहौं मैं तोसो । जो कछु भेद पूछिहौ मोसो ॥
प्रथमहिं समरथ आप अकेला । उनके संग दोसर नहिं चेला ॥
तब निश्चल शब्द उच्चारण भयऊ । तेहि शब्द एक कमल निर्मयऊ ॥
तेहि कमलमें आसन दियऊ । तहाँ शब्द एक कमल निर्मयऊ ॥
तेहि कायाको रूप अपारा । असंख पाखरीको विस्तारा ॥

तहाँ बैठि सब रचना कीन्हा । सोई शब्द अधार जो लीन्हा ॥
मुख हिरदय ते कीन्ह प्रकाशा । तहाँ रूप अति भयी उजासा ॥
काया ते काया निरमाये । मुख कमल हो बाहर आये ॥
रूप सुरतिका रूप अपारा । भृंगि शब्द पारस अनुसारा ॥
भृंगिशब्द पुनि पारस दीन्हा । निःकलंकपुरुषप्रकटकरलीन्हा॥
रूप सुरति ते निकलंकी भयऊ । तिनको आज्ञा उत्पति दियऊ ॥
निकलंक विनती तब कीन्हा । कौन सन्धि साहब मोहि दीन्हा॥
कहौ भेद जेहि उत्पन होई । सोई शब्द गुरू भाषो सोई ॥
तब समरथ अस वचन उचारा । निष्कलंक सुन मता हमारा ॥
शब्द हमार दृढ हिरदय धरहू । निज सुमिरण तुम हमरा करहू॥
जो चित सुरति तुम्हारे होई । तौन वस्तु सिखै सब कोई ॥

साखी–जो कुछ रचना चाहो करन, सुरति करत सो होई ॥
रचहु लोक तुम वेगि पुनि, दीन्ह वचन मैं सोई ॥

चौपाई

सुरति करत सबही बनि आई । इच्छा करत सन्धि होय भाई॥
निश्चल लोक हमारो बासा । अविगति कमल कीन्ह प्रकासा॥

साखी–जीव सृष्टि रचना करो, सकल जीव उत्पान ॥
शब्द भरोसे तुम रहो, लेउ वचन सिर मान ॥

चौपाई

तुम धर्मदास सुनो चित लाई । तब निष्कलंक सृष्टि निरमायी॥
निःकलंक सुरति स्वास ठहरायी । सहज सुरतिको टेक बनायी ॥
दहिने अंक सो शब्द निर्मायी । सहज शब्द सुरति अंकुर उपायी॥
सात करी विस्तार बनायी । यहि विधि रचना निरमायी ॥

सात करी अंकुर ते भयऊ। भिन्न भिन्न प्रसंग सो लयऊ॥
सीप सरूपी करी जो कीन्हा। स्वास स्वरूपी इच्छा दीन्हा॥
सात इच्छा सात करिनमें भयऊ। स्वाति सरूप बून्द तेहि दयऊ॥
सातो करि भयी प्रकासा। नहिं तब धरती नहीं अकाशा॥
अर्द्ध अंकुर रहा ठहरायी। तब मुख शब्द स्थिर कहँ आयी॥
सोरह अंस जो जन विस्तारा। इतनी दृष्टि अंकुरज पसारा॥
तेहिमें सास करी उपजायी। ताकर मर्म काहु नहिं पायी॥
तेहि करिन ते अण्डा भयऊ। दोयकरी बिन अण्डा रहेऊ॥
नहिं तब धरती नहीं अकाशा। अधरहिं अधर अण्ड प्रकासा॥
मध्य में अण्ड करे चौ चण्डा। एक अण्ड उपज्यो प्रचण्डा॥
भिन्न भिन्न गति न्यारी कीन्हा। शिवशक्तिअण्डमहँ धरि दीन्हा॥
नौसे निमिष अन्तर होय छूटा। तबहीं अण्ड उठ्यो पुनि फूटा॥
प्रथमहि तेज अण्ड विगस्यो भाई। तामें पांच तत्त्व निर्माई॥
बाहर पालँग तेज अण्ड विस्तारा। तामें पांच तत्त्व भौ सारा॥
तत्त्व स्नेह अण्ड सो कीन्हा। अस्थिर शब्द काल भल दीन्हा॥
तबहीं श्रवण साजी वानी। तेहिते मूल सुरति उत्पानी॥
अबोलपरस सुरति कहि दीन्हा। सात संधि प्रकट कर लीन्हा॥
सात सन्धि तब गुप्तहिं पेखा। पीछे सोहं शब्द विवेखा॥
सोहं शब्द सत्य अनुसारा। सोहं सुरति अजावन पसारा॥
जावन ते पुरुष अचिंत निर्मायी। तेहि पुरुष अपने निकट बुलायी॥
तेहिसो पुरुष ऐसी कही। सकल सृष्टि रचो तुम सही॥
पुरुषको विनय कीन्ह करजोरी। हो सतगुरु विनती यक मोरी॥
केहि विधि रचौं सो देहु बतायी। तीन भेद गुरू देउ पढायी॥
नीकलंकी पुरुष वाच उच्चारा। शब्द प्रतापकर अगम विचारा॥
शब्द प्रताप लेओ शिर नायी। सुमिरण करौ हमहिं लौलाई॥

पांच अण्ड हम पहिले कीन्हा । तेहिमें सर्व तत्त्व गुण दीन्हा ॥
जो कछु इच्छा करौ दिलमाहीं । सो सब कछु पैहौ तहांहीं ॥
शब्द प्रताप अचिंत जब लीन्हा। सकल सृष्टिसो उत्पन्न कीन्हा॥

साखी--पुरुष अण्ड लैगये, देखा सकल पसार ॥
सद्गुरु रहे निहार तब, समरथ वचन अधार ॥

धर्मदासवचन—चौपाई

धर्मदास चरण गहे धाये । हे सतगुरु तुम अगम बताये ॥
पुरुष अचिंतके सृष्टि फरमायी । तात सन्धि कहँ राखे छिपाई॥
कौन लोक कहँ लीन्हे वासा । सोई भेद गहौ परकासा ॥

सतगुरु वचन

जब अचिंतको सृष्टि फरमायी । तेहि पाछे यक सुरति उठायी॥
सोरह असंख अंकुर पसारा । तेहि में पांच अण्ड विस्तारा॥
मिहरसुरति अजर लोक बनायी । तेहि महँसातौ सन्धि छिपायी॥
सातौ सन्धि उहां लै राखा । समरथ भेद गोइ कछु भाखा ॥
सातौ सन्धि सो गुप्त छिपावा । ताकोअन्त काहु नहिं पावा ॥
मिहर लोक सन्धिन कहँ दीन्हा। आपन वास निरन्तर लीन्हा ॥
निरंतर गुप्त ठिका: निर्मायी । तामें सतगुरु रहे छिपायी ॥

साखी–गुप्त भेद किया इतनौ, काहु न पायो पार ॥
पुरुषअचिंतकी सृष्टिको, धर्मनि सुनो विचार ॥

चौपाई

पुरुष जब घटमें कीन्ह विचारा । प्रेम सुरति तबहीं उचारा ॥
प्रेम अनन्द उपज्यो रे भाई । तेहिते प्रेम सुरति उपजाई ॥
प्रेम सुरति भै रूप अपारा । प्रेमानन्द घट शब्द उचारा ॥
नेत्र हेर बुन्द सो ढारी । सोइ सुरति दिल मांहिनिहारी ॥

सुरति बुन्द तब तासों लीन्हा । सोई बुन्द अधर महँ दीन्हा ॥
ताहि बुन्दके अक्षर भयऊ । स्वर स्वासा हो बाहर गयऊ ॥
पुरुष अचिन्त आज्ञा सब दीन्हा । तेज अण्ड जो बैठक लीन्हा ॥
बारह पालंग अण्ड है सोई । तेहि मों सृष्टि तुम्हारी होई ॥
अच्छर आनन्द ताहि समाया । तामें परकृति सुरति उपजाया ॥
प्रकृति तें चारि अंश निर्मायी । देखि अंश आनन्द समायी ॥
तेहि अनन्द सो निद्रा आयी । सत्तर निमिष जब गयो सिरायी ॥
चारों जने समाधि लगायी । ताको मरम कहौं समझायी ॥
तब सतगुरु एक अवगति कीन्हा । जल तत्त्व ते अण्ड तब दीन्हा ॥
जब अण्डा जलमें उतराना । तब अन्तर निद्रा विलगाना ॥
अक्षर मनमें कीन्ह विचारा । विकल भये तबहीं पगु धारा ॥
चले चले अण्डा लगि आवा । देखत अण्ड क्रोध उपजावा ॥
सोई क्रोध अण्डमें आवा । तेज शक्ति ताकर प्रभावा ॥
तेहि कारण मो फूटचो भाई । तेहिते निरंजन उपजाई ॥
कालरूप सो प्रकट प्रचण्डा । महा भयानक रूप अखण्डा ॥
अक्षर मनमें शंका आई । तब चारों सुतन कहँ लीन्ह बुलाई ॥
उनको बहुत भांति समुझाई । पृथ्वी बीज धरौ तुम जाई ॥
जग उत्पति तापै होय भाई । कूर्म शेष पृथ्वी थाह्यो जाई ॥
जाते पृथ्वी डगै नहिं भाई । साइ उपाय करौ तुम जाई ॥
धर्मराय तुम लेखा लेहू । सकल सृष्टि को लेखा देहू ॥
चारों अंश को सिखाप दीन्हा । आप वास मुक्तिदीपमें लीन्हा ॥

साखी—यह रचना अचिन्तक, अक्षर को विस्तार ॥
निरंजन बैठे शुभ शिखर, मान सरोवर द्वार ॥

चौपाई

पुरुष अचिंत अस चित्त विचारा । सन्धि सुरति घट में उच्चारा ॥

तेहिते चौदह मुनि उपजाये । जल अण्डते अंश बनावे ॥
चौदह मुनि चौदह दीप बैठारा । पांजी पताल उनको विस्तारा ॥
संधि छाप सौंप सब दीन्हा । अच्छर लोकमें चौका कीन्हा ॥
यहि पुरुष चौदह अंश बनावा । यहि अक्षरमें मोह समावा ॥
तब अक्षरको संशय आई । तेहि ते स्वासा छाँडे भाई ॥
स्वासा संगम उठी तब बानी । माया सुरति तब भयी उत्पानी ॥
माया सुरति अच्छर उपजायी । अष्टंगी सो कैसो शक्ती आयी ॥
अच्छर अष्टंगी सो कहई । जाब जहाँ निरंजन रहई ॥
अष्टंगी तब कहे समझाई । हम कैसे निरंजन पहँ जाई ॥
तब अक्षर अस कहे भेऊ । निरंजने जाइ सिखापन देहू ॥
कन्या चलि निरंजन लगि आयी । आदि निरंजन मिले तब धायी ॥
देखि कला तब गये भुलाई । हे कन्या तोहिं को निर्माई ॥
काम ज्योति प्रकटी प्रचण्डा । तब चित विकल भयो नरमण्डा ॥
सकल रूप गयउ भुलाई । कामकि लहरि दोउको आई ॥
तब संयोग भयो त्रय बारा । जेठे ब्रह्मा लघु विष्णु कुमारा ॥
तीजे शम्भू सबसे छोटा । ये निज भये ताहिके ढोटा ॥

साखी–जैसे रूप निरंजन, तैसे तीनो बार ॥
प्रलय काल पैदा भये, प्रलय करत संसार ॥

### धर्मदासवचन–चौपाई

धर्मदास जिव भये अनन्दा । मैं पाया पूरण गुरु चन्दा ॥
धन्य भाग मोहि मिलै गुसाई । आपन करि मोहि लियो मुक्ताई ॥
और एक पूछनकी आशा । चौरासी लक्ष कैसे प्रकाशा ॥
तीन प्रकार सृष्टि किन पाऊ । चौथेका मोहि भेद बताऊ ॥

साखी–धर्मदास सुख पायो, घट मो भयो अनन्द ॥
संशय मिटे प्रफुल्लित भये, ज्यों पूनोको चन्द ॥

सतगुरु वचन--चौपाई

सुनु धर्मनि मैं कहुँ समझायी । लक्ष चौरासी योनि बनायी ॥
माया चरित्र अब तोहिं सुनाओं । एक एक के सब भेद बताओं ॥
चारि कला स्वरूप धरि चारी । एक एक गति कहौं विचारी ॥
एक स्वरूप सुरति लगि रही । तीन स्वरूप भिन्न घर सही ॥
एक कला गायत्री भयऊ । जब पिता खोजको ब्रह्म गयऊ ॥
सो गायत्री ब्रह्माको दीन्हा । दूसरी कला लक्ष्मी कीन्हा ॥
मथ्यो समुद्र रतन कढि आया । लक्ष्मी तबही विष्णुने पाया ॥
तिसरी कला पार्वती कीन्हा । सोइ कला शम्भु कहँ दीन्हा ॥
यह चरित्र मायाको भाई । जाकी गति मति लखी न जाई ॥
तीन शक्तिको खेल अपारा । इनही रच्यो सकल संसारा ॥

साखी-माया परबल सबनमें, जो चाहे सो होय ॥
लख चौरासी इन रची, मरम न जाने कोय ॥
माया सृष्टि माया रची, जीव अनेक बनाइ ॥
उनते सब कछु होत है, कहे कबीर समझाइ ॥

इति श्रीसर्वज्ञसागरे सृष्टिखण्डवर्णनोनाम प्रथमस्तरंगः ।

---

# अथ द्वितीयस्तरंगः

## ज्ञानखण्ड वर्णन

धर्मदास वचन--चौपाई

धरमदास पूछे चितलायी । उत्पति भेद सकल हम पायी ॥
अब जिव कारज कहो विचारा । जेहि करनीसो हंस उबारा ॥
सो विधि ज्ञान कहो समझायी । जाहि ज्ञान से लोकहिं पायी ॥
जीव उबारन ज्ञान सुनाओ । हे साहेब ! मोहिं नाहिं दुराओ ॥

साखी-सत्यसार बतावहु जाते कारज होय ॥
चौदह कोटि ज्ञान जो, सो हम देखि विलोय ॥

सतगुरुवचन-चौपाई

सुनु सुकृत मोर प्राण अधारा । तुमसे कहौं अब सकल पसारा ॥
ऋग्वेद भेद मूलको पाया । चारि सुखको मर्म लखाया ॥
प्रथमहिं चारि वेद है सारा । चारि धाम पर मुक्ति पसारा ॥
सेवक शब्द सुमिरन चित लावे । सब सुख पृथ्वी पर भुक्तावे ॥
कोइ सिद्ध कोइ पण्डित होई । कोइ रूप पावै पुनि सोई ॥
जौं लगि दान पुण्यकी आशा । तब लगि है वैकुण्ठ निवासा ॥
कोइ विद्या कोइ वेदको पावे । फिरिके देह संसार धरावे ॥
अब सुनु साम वेद विचारा । विष्णु ध्यान वैकुण्ठ सिधारा ॥

साखी-बीते पुण्य भोग सो कीन्हे, आइ धरे जग देह ॥
जब लग दान पुण्य का आशा, तब लग सुरपुर नेह ॥

चौपाई

तिसरी मुक्तिको सुनो विचारा । सब मुनि योगी शून्य सिधारा ॥
सायुज्य मुक्ति चौथी है भाई । अक्षर ध्यान मानिकपुर जाई ॥
पचई जीवन मुक्ति है भाई । जहाँ देह धरे विन रहे समाई ॥
कहि निज उत्तम पुरुष बतावा । परम धाम सब संतन गावा ॥
पुरुष भक्ति जाके घट आई । एक ब्रह्म राखे ठहराई ॥
परम धाम सोइ पहुँचे जायी । जिन परमात्मा चीन्ह्यो भाई ॥

धर्मदास वचन-चौपाई

धर्मदास पूछे कर जोरी । एक भेद प्रभु कहौं बहोरी ॥

काहे पर वह कहिये भामा । जहां जीव पावे विश्रामा ॥
करनी लोक मुक्तिको भेदा । तुमसे कहौ मैं सुन्यो निखेदा ॥
सो सब भेद अहौ मोहि सांई । संशय सब विधि देहु मिटाई ॥

साखी—काहे पर सुमेरु है, काहेपर कैलास ॥
काहे ऊपर शून्य है, कहँ अक्षरको वास ॥

सतगुरु वचन—चौपाई

सुनु धर्मदास तोहि कहौं विचारा । यह भेद अगमगति भारा ॥
सोरह नाल पुरुष निरमायी । लोकनको थम्भन नाल रहायी॥
कदली नाल लोकते आई । सात शाख भइ ताकी भाई ॥
सुवरण रंग नाल है सोई । एकहि वर्ण नाल सब होई ॥
प्रथमहि गुप्त नाल है भाई । तहां परबत पुनि नाम धराई ॥
तापर परम धाम बनाया । तेहि मों पुरुष तत्त्व रहाया ॥
दुसरी मंजुम नाल जो आवा । मानिक पर्वत नाम धरावा ॥
तेहि पर मानिक द्वीप बसाया । अक्षर पुरुष दीप सो पावा ॥
तिसरी सुरंग नाल है भाई । तापर झझरी दीप रहाई ॥
तहँवा रहै निरंजन राई । तीन देव तिनही निर्माई ॥
चौथी नाल क्रांति रह सोई । ता ऊपर वैकुण्ठ जो होई ॥
पंच शिखर सुमेरु सँवारी । एकपै इन्द्र एक कुबेर भंडारी॥
यकपै ध्रुव एक पैयम विस्तारी । मध्यमें विष्णु सकल व्रतधारा॥
पांच ये नाल जो रचि राखा । ताकर नाम कैलास असभाखा॥
तहवाँ शंकरको है बासा । याग समाधिकी लावे आसा ॥
छठयें नाल उमंग ठहरायी । अघाचलही नाम सो पायी ॥
सतय त्रिकुटी ब्रह्म अस्थाना । तरंग नाल पारस है ठाना ॥
कलकी नालकी सातों साखा । सातौ दरस यहां लों राखा ॥

यही बनाव धरती मों होई । अधर वस्तुको जानै सोई ॥
अधरही चौका चारि प्रकासा । चन्द्र सूरजको तहां निवासा ॥
प्रथम अधर अंकुरहि निशानी । पांच अण्ड कीन्हे उत्पानी ॥
दूसर अधर निकलंकी जाना । तिसरे रूप सुरति परवाना ॥
चौथे अविगति नाम धराया । पांचे सरवज्ञी पुरुष कहाया ॥
चारी अंश अधर विस्तारा । धर अधर दोनोंसे न्यारा ॥

साखी-पांच तत्त्व तब ना हते, हते न हाट रु बाट ॥
लोक द्वीप तब ना हते, ना हते औघट घाट ॥

चौपाई

सुनो धर्मदास कहौं मैं तोही । जो कछु भेद पुछिहौ मोही ॥
सब अंशनके लोक बतावा । अंश वंश सब तोहि लखावा ॥
करनी करै सो लोकहि जायी । विनु करनी फिरि फिरि पछितायी ॥

साखी-सर्वज्ञसागर खोजहि, सब ग्रन्थनको सार ॥
कहैं कबीर निज मूलको, सत्य शब्द आधार ॥

इति श्रीसर्वज्ञसागरे ज्ञानखण्डवर्णनो नाम द्वितीयस्तरंगः ।

समाप्तोयं ग्रन्थः

---

उपसंहार-चौपाई

जेहि मानुष बुद्धि सब विधि आवै । अपनो कारज सोइ बनावै ॥
कपट कुटिलता काल नशायी । सत्य विचार रहै लौलाई ॥
जवनी भांति जिव कारज होई । लाज मिटाय करै दृढ सोई ॥
लोककाज कुलकानके मारे । भँवरि भँवरि भव रहैं विचारे ॥
जेहि यम फन्द छूटे सो करना । नाहकमें काहे पचि २ मरना ॥

भली भांति सो लेहु विचारी । सकल अंचारज मतहिं सुधारी ॥
खरा खोट जो परखा नाहीं । अन्धा धोखे मूल नशाहीं ॥
प्रथम विचारहु औषध रोगा । केहिविधि शब्द हरे सब सोगा ॥
देखो शब्द प्रकाश विचारी । जाते सकल होय उजियारी ॥
गुरु एक सो कौन कहावे । जासो आवागमन नशावे ॥
सेवा अनेक करिय केहि केरा । विन जाने सब धुन्ध अन्धेरा ॥
गुरु मत मनमत करे विचारा । सो जिव निज करे निरुआरा ॥

साखी–विन देखे नहिं देशकी, बातें कहै सो कूर ॥
आपै खारी खात है, बेचत फिरे कपूर ॥

चौपाई

औषध पांच राह सब करई । औषध विना न कोई सहई ॥
शब्द स्पर्श रूप रस गन्धा । द्वारा पंच औषधिकी सन्धा ॥
सबहीं द्वार बूझ रहायी । बिन बूझे नहिं कोइ ठहरायी ॥
कोइ झीना कोइ मोटा द्वारा । तैसहि तासु भिन्न व्यवहारा ॥
झीना शब्द है पवन स्वरूपा । तासो मोटा अनलको रूपा ॥
अनलहू ते जल मोटा होई । जलते मोटी पृथ्वी है सोई ॥
पुनि प्रकाश एकते एका । थिर होइ देखे करे विवेका ॥
पृथ्वी मोटी आँख प्रकाशी । तासे मध्यम दृष्टि प्रवेशी ॥
पृथ्वीसे जल झीना होई । भीतर जो है दीसे सोई ॥
जलसो झीन तेज प्रकाशा । जामे परशे धरति अकाशा ॥
रूपसो अधिक शब्द उजियारा । दृष्टिमें आवे सब संसारा ॥
भूत भविष्य जो हो वर्तमाना । शब्द भीतरै सबै समाना ॥
बूझ शब्द में पेठे जायी । शब्दके भीतर अनल रहायी ॥
अनल मध्य होयके जल देखा । जलके भीतर पृथ्वी पेखा ॥

---

१ आचार्य्य, धर्मप्रवर्तक ।

साखी-रैन समानी भानुमें, भानु अकाशे माहिं ॥
अकाश समाना शब्दमें, शब्द रहा कछु नाहिं ॥

चौपाई

पांचो औषध करै विचारा। मोटा झीना जो व्यवहारा ॥
औषध अन्न जल पेट समाही। जाते क्षुधा औ प्यास नसाही ॥
बहुत प्रकार लादके रोगू। सो सब जाय भोजन संयोगू ॥
गन्ध कपाले पहुँचे जायी। गुण औगुण सब अंग समायी ॥
लेपै गुण सब ले पहुँचावै। गुण औगुण सबमाहिं समावै ॥
आंखिकी राह रूप गहि लेई। शीत उष्ण सब अंगमें देई ॥
शब्द औषधी कानके द्वारा। बूझ समाय करे निरुआरा ॥
हर्ष विषाद यंत्र औ मन्त्रा। व्यापै सबै कोइ कोइ स्वतन्त्रा ॥
मर्म सबै द्वाराको बूझे। विना शब्द निर्णय नहिं सूझे ॥
स्पर्श रूप इत्यादिक चारी। सो सब मोट स्थूल अधिकारी ॥
पुनि अस्थूल सो थिर न रहायी। तैसहिं औषध ताहि समायी ॥
अंग अंगको देश है जैसा। अल्पे गहिये औषध जैसा ॥
शब्द अति झीना बूझविचारा। जाते होय सकल निरुआरा ॥
शब्द विना कोइ पार न पावै। विन गुरु कौन जो दाव लखावै ॥
सर्व देश सर्वज्ञ है सोई। तेहि विनु कारज सधे न काई ॥

साखी-शब्द विना श्रुति आंधरी, कहो कहांको जाय ॥
द्वार न पावे शब्दका, फिरि फिरि भटका खाय ॥
गुरू गुरूमें भेद है, गुरू गुरूमें भाव ॥
गुरू सदा सो वंदिये, शब्द बनावे दाव ॥
फेर परा नहिं अंगमें, नहिं इंद्रिनकी माहिं ॥
फेरा परा कछु बूझमें, सो निरबारचो नाहिं ॥

चौपाई

यहि संसार बहु वैद्य विराजे । नाना भांति औषधी साजे ॥
साच एक झूठा बहुतेरा । विना सांच नहिं होय निवेरा ॥
एक असल पर नकल अनेका । अनेक नकल नहिं पावे एका ॥
बहुविधि ठग सब करे ठगाई । यमके फन्दा रहे अरुझाई ॥
बूझि समझिके औषध कीजे । मिथ्यामें जिव काहेको दीजे ॥

मसला

गुरु कीजिये जानिके, पानी पीजे छानिके ॥

चौपाई

वेद पुराण किताब कुराना । दोहा साखी शब्द परमाना ॥
अनन्त भाँतिका शब्द पसारा । विनु जाने नहिं होय सुधारा ॥
सो सब औषध बहु विधि जाचे । यम फन्दासे तबही बांचे ॥
पक्ष वाणीको मन मत कहिये । जाते द्वन्द सबै घर लहिये ॥
निर्णय वाणी गुरु मत होई । पक्षा पक्ष जाते सब खोई ॥
जब निर्णयकी वाणी आवै । झूठा खोटा आपु लजावै ॥
निर्णय सो सबके हितकारी । जेहि परसे जिव होय सुखारी ॥
सार शब्द निर्णयको नामा । जाते होय जीवको कामा ॥
गुरु एक जो निर्णय करई । झगरा कबहुँ परे न परई ॥
जो कोइ निर्णय आश्रित भयऊ । सेवा करि निज कारज कियऊ ॥
सो सब सेवा शिष्य कहावै । मन मत सो जो और बतावै ॥
जग बुद्धि कहे मम गुरु एका । जेहि तेहि सेवा करे अनेका ॥
पुनि जाको इन गुरु ठहराई । ताको दूसर गुरू सहाई ॥
तेहिकी सेवा करे लौ लाई । सो सेवा पद कैसे कहाई ॥

टहल करे टहलू कहलावै। तासो पद सेवा बनि आवै ॥
सोइ सेवक जो सेवा करई। विना विचार बूझ न परई ॥
अपने अपने गुरुमत माने। और सब मन मत अनुमाने ॥
विनु निर्णय सो द्वन्द्व न जाई। पचि पचि मरहिं करहिं लडाई ॥
जहँ झगडा तहँ गुरुमत नाहीं। जहँ गुरुमत तहँ द्वन्द्व नसाहीं ॥

साखी—पक्षा पक्षके कारणे, सब जग रहा भुलान ॥
निपक्ष होइके हरि भजे, सोई संत सुजान ॥

शब्द शब्द बहु अंतरा, सार शब्द मथि लीजे ॥
कहँ कबीर जहँ सार शब्द नहीं, धृग जीवन सो जीजे ॥

चौपाई

खरा खोट परखहु बहु भांती। तबहीं होय जीव कुशलाती ॥
जेहि गुरु ज्ञान न छूटत केरा। बहुत अनुमान सो भ्रम बौडेरा ॥
भवसागर दुस्तर कठिनाई। नौका नाम तहँ सत्य दिढाई ॥
बूडे भवकी धार न सूझे। मुए मुक्ति ऐसी दृढ बूझे ॥
जहँसे उपजे तहां समाना। कसर विकार मूल नहिं जाना ॥
भरमें आप जीव भरमावे। नाटक चाटक सुयश बढावे ॥
करामात करतूत बखाने। नास्तिक ज्ञान सोइ सत्यकै माने॥
ऋद्धि सिद्धि सब जात नसाई। नास्ति ज्ञान नाहीं कुशलाई ॥
त्यर्षं ऐश्वर्य नास्तिन माहीं। जाके पीछे जिव बौराहीं ॥
आपु गये यजमानहु खोये। भांति भांति फन्दा अरुझोये ॥
रोगी वैद्य दोनों एक ठाऊँ। औषध कही कलपनाके गाऊँ ॥
जेहि कारण नर साई जो देई। सो सौदा जँचि काहे न लेई ॥
ठग भरमावे बहु विधि लूटे। यम धन्धासे कबहुं न छूटे ॥
मोटि अविद्या छुड़ावन लागे। झीनी महा अविद्या पागे ॥
झनी माटे दोउ कष्ट से रूपा। कारण नास्ति परे त्यहि कूपा ॥

पूरा धनी पूरा सो सौदा । परखत मेंटे कालको फन्दा ॥
संधि लखावहि कारण रोगू । मेंटहिं सब विधि संधिक सोगू ॥
नहिं सन्देह न यमके त्रासा । सदा सुखारी परख विलासा ॥
धन्य सो बूझि समुझि पग धरई । अँधरन भटकि भटकि भव परई ॥

साखी-बलिहारी तेहि पुरुषकी, पर चित परखनहार ॥
साईं दीन्हों खांडको, खारी बूझ गवाँर ॥
करु बन्दगी विवेक की, भेष धरे सब कोय ॥
सो बन्दगी बहि जानदे, जहँ शब्द विवेक न होय ॥
मानुष देही पाइके, चूके अबकी घात ॥
जाइ परे भवचक्रमें, सहे घनेरी लात ॥

इति । मानुष विचारसे.

इति तृतीयखण्ड समाप्त






भारतपथिक कबीरपंथी स्वामी श्रीयुगलानन्द (विहारी)
द्वारा संशोधित




खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन,
बम्बई

संस्करण : अप्रेल २०१९, संवत् २०७६

मूल्य : १०० रुपये मात्र ।



मुद्रक एवं प्रकाशक:
खेमराज श्रीकृष्णदास,™
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,
मुंबई - ४०० ००४.

Printers & Publishers :
Khemraj Shrikrishnadass,
Prop: Shri Venkateshwar Press,
Khemraj Shrikrishnadass Marg, 7th Khetwadi,
Mumbai - 400 004.

Web Site : http://www.Khe-shri.com
Email : khemraj@vsnl.com

Printed by Sanjay Bajaj For M/s. Khemraj Shrikrishnadass Proprietors Shri Venkateshwar Press, Mumbai - 400 004, at their Shri Venkateshwar Press, 66 Hadapsar Industrial Estate, Pune 411 013.

★

इसमें तीन तरंग हैं जिनमेंसे प्रथम तरंग ज्ञानप्रकाश पृष्ठ ९ से आरम्भ होकर पृष्ठ ६५ पर समाप्त हुआ है।

दूसरा तरंग अमरसिंह बोध है जो पृष्ठ ६९ से आरम्भ होकर पृष्ठ ९२ पर समाप्त हुआ है।

तीसरा तरंग वीरसिंह बोध है जो पृष्ठ ९७ से आरम्भ होकर पृष्ठ १२७ पर समाप्त हुआ।

अब तीनों तरंगकी विषयानुक्रमणिका नीचे देते हैं।

## ज्ञानप्रकाशकी अनुक्रमणिका



इति।

| विषय | पृष्ठ. |
|---|---|

## अथ अमरसिंहबोधकी अनुक्रमणिका



इति

## अथ विरसिंहबोधकी अनुक्रमणिका



इति

इति

# श्री-बोधसागर

●

भारतपथिक कबीरपंथी-

स्वामी श्रीयुगलानन्दजीद्वारा सशोधित

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन,
बम्बई

सत्यनाम



श्री कबीर साहिब




सत्यसुकृत, आदि अदली, अजर, अचिन्त, पुरुष,
मुनीन्द्र, करुणामय, कबीर, सुरति योग, संतायन,
धनी, धर्मदास, चूरामणि नाम, सुदर्शन नाम,
कुलपति नाम, प्रमोध, गुरुबालापीर, केवल नाम,
अमोल नाम, सुरतिसनेही नाम, हक्क नाम,
पाक नाम, प्रगट नाम, धीरज नाम,
उग्रनाम, दया नामकी दया,
वंशब्यालीसकी दया

★

# श्री बोधसागर

अथ प्रथमस्तरंगः

## धर्मदासबोध–ज्ञानप्रकाश

सत्य सुकृत सतगुरु सतनामा । सत्यपुरुष सन्तन सुखधामा ॥
सत्यपुरुष सतलोक निवासी । दुखनाशक अविचलसुखरासी॥
अमी अमान सो सत्य कहाये । अभै विद्यमान कहि गाये ॥
अविगति अलख अनाम सरूपा । अगह अडोल अबोल अनूपा ॥
अजर अजावन सो निःस्वादी । निःकामी निरमोह अनादी ॥
निःक्रोधी निरवैर निशङ्का । गुणातीत निर्द्वन्द निकलङ्का ॥

धर्मराय सिर अञ्जन सोई । आपुहि तात मातु नहिं कोई ॥
नहीं तीनि पाँच तनुधारे । रहैं अमान नरकसों न्यारे ॥
ताके निशि दिन शिर नाऊँ । गुप्त प्रकट वाको गुण गाऊँ ॥
उनके ढिगसो हम चलि आये । जिव निस्तारन हमहिं पठाये ॥
सत्यपुरुष सत्यगुरु सो आहीं । गुरुगम सत्यगुरु नाम समाहीं ॥
सत्यगुरु ध्यान जाहि पहँ होई । सो हंसा नहिं जाहिं विगोई ॥
सत्यगुरु शब्द गहै सो हंसा । मेटै जन्म मरण भौ संसा ॥

छंद–सत्यनाम सतगुरु ध्यान सतपद वासी हंस हो ॥
सत्यलोक अशोक निर्मोह पहुँचे गहे अविचल कंत हो ॥
जीव लहै सुमिरण सत्यबीरा अङ्क अविचल जोग है ॥
सत्यनाम सुमिरण काल डरपै मुर्छित यम न्यारा रहै ॥

साखी–कहों सँदेश सत्य पुरुषको, समझत रङ्क नरेश ॥
कहैं कबीर सो अमर हो, जो गह मम उपदेश ॥

सोरठा–चीन्हहु किर्तिम आदि, सत्य असत्य विचारहू ॥
छांडि देहु बकवादि; खोजहु अविचल पुरुष कहँ ॥

चौपाई

यहि जग देखों अनकठ रीती । तजहीं साँच झूठ सो प्रीती ॥
जो धोखा तेहि साँचके मानैं । सत्य सार तेहि नहिं पहिचानैं ॥
आदि ब्रह्मकहँ खोजहि नाहीं । कृतिम कला जो सेवहिं ताहीं ॥
निज स्वामीके मत ना गहहीं । जरा मरण घर संकट सहहीं ॥
जो रक्षक तेहि गहै न कोई । जो भक्षक तेहि धावहिं लोई ॥
कर्म भर्म वसि तीर्थ नहाहीं । पुण्य पाप वसि आवहिं जाहीं ॥
दयाहीन नर पढहि पुराना । पढिगुणिके अरथावहि ज्ञाना ॥
अन्धा अगुवा तिहुँपुर माहीं । बहु अन्धा तेहि पाछे जाहीं ॥
अगुवा सहित कूप महाँहीं । कासो कहूँ कोई बूझै नाहीं ॥

छन्द–गुरुज्ञान हीन मलीन पण्डित शब्द शास्त्र पढ़ै घनो ॥
अगम निगम विरञ्चि प्रमोधैं सकल जग यहि सखा बनो ॥
जो काल जीवनको सतावै तासु भक्ति दृढ़ावहीं ॥
विष्णु आदिक शिवसनकादि अजसुर कालकेगुण गावहीं ॥
साखी–बिन बूझै करुआइ अस, लगिहै वचन हमार ॥
जब बूझै तब मीठि हो, कहैं कबीर पुकार ॥
सोरठा–जस नीम जग माहिं, नासि व्याधि करु दूरि प्रथम ॥
तेहि दुख चम्पै नाहिं, जो चाखै मूरि अमर ॥

धर्मदास वचन–चौपाई

अहो साधु तुम को धौं अहहू । अनकट बात बहुत तुम कहहू ॥
ताते तब नहिं बोल बढ़ायो । जाते हरि सेवा चित लायो ॥
विष्णु इष्ट देवन्ह के देवा । तुम्ह तेहि कहहु करहिं यम सेवा ॥
विष्णु ते अधिक और कोइ नाहीं । जमरा विष्णु के चेरा आहीं ॥

सतगुरु वचन

अहो धर्मनि जो ऐसन कहहू । तो हम कहै सो चित महँ धरहू ॥
विष्णु कथा तोहि कही सुनाओं । अगम अगोचर ज्ञान चिन्हाओं ॥
तुम्ह भाषो यह वचन सँजोई । विष्णु ते अधिक और नहि कोई ॥
हमरो शब्द कहँ देखहु साहू । अपनो हृदया जनि कदराहू ॥
आपुहि विष्णु धनी जो रहेऊ । तो किमि योनि जठरदुख सहेऊ ॥
जो यम होत विष्णु के दासा । तो नहिं करते विष्णु गरासा ॥
सेवक हाथ न स्वामिहि घालै । जो विगरै तौ होइ तेहि कालै ॥
ब्रह्मा विष्णु शिव सनकादिक । मुनि मुनीश नारद शेषादिक ॥
सबकहँ यम धरि करहि अहारा । लूटहि सबहि काल बरियारा ॥
तीनि लोक जेते कोई आहे । काल निरञ्जन सब कहँ डाहे ॥
तुम खोजहु अब सो घर भाई । जेहि घर यम सो बाचहु जाई ॥
अहो साधु के सूत सयाना । एती कहेऊ सब सुनेहु पुराना ॥
पढि पुराण नहिं समझेहु भेता । बिनु जाने भर्महु आचेता ॥

ब्रह्मा गये असंख सिराई । विष्णु कोटि यमरा धरि खाई ॥
चाँद औ सूर्य तारागण लोई । कहै कबीर फिर रहे न कोई ॥

धर्मदास वचन–चौपाई

अहो साधु अचरज तव बाता । कहे न बने तुमहिं विख्याता ॥
गीता भागवत पुस्तक बहुताना । निसिदिन सुनो जपों भगवाना ॥
विप्र भेष औ छव दर्शन के । महिमा सबैं कहैं त्रिभुवन के ॥
सबै विष्णुके भक्ति दृढ़ावैं । त्रय देव सब श्रेष्ठ बतावैं ॥
तुम खण्डहु हरि और न कोई । अहो साधु यह अचरज होई ॥

सतगुरु वचन

छन्द–सुनु सन्त सुबुद्ध सयान सुनि ज्ञान हृदय बिचारहू ॥
गहि शब्द परख करि हिये मम बानि निरुआरहू ॥
सो कहत वेद बहु विविध पुराण त्रिगुण तेरा पार धनी ॥
यह मायाजाल है जगत फन्दा त्रिविधि काल कला बनी ॥

साखी–त्रिगुण ध्यान ते रहित नहीं, सुनहु सन्त चित लाय ॥
अस्थिर घर तब पावई, चौथे पदहिं समाय ॥

सोरठा–चौथा पद निरबान, पुण्य भाग ते पाइये ।
कहैं कबीर प्रमान, सत्य शब्द बिनु नहि तरै ॥

धर्मदास वचन–चौपाई

हे साहब हमसे भल कहहू । तिहुँ पुर प्रलय कहां तब रहहू ॥
तीन देव सब परलय तर आई । तुम कौने विधि बाँचहु भाई ॥

सतगुरु वचन

अहो सन्त हम तहाँ रहाहीं । यम प्रवेश जहँ सपनेहुँ नाहीं ॥
जाके डर कम्पत यमराई । अहो सन्त हम ताको गुण गाई ॥
तीनि लोक यह परलय होई । चौथा लोक सुख सदा समोई ॥
तीन देवके पिता निरञ्जन । ते यम दारुण वंशके अञ्जन ॥

सवा लाख जिव नित सो खाहीं । सुर नर मुनि कोइ छांडै नाहीं ॥
सत्यपुरुष सत्य लोक निवासी । सकल जीवके पीव अविनासी ॥
तिन्ह पुनि षोडश सुत निर्माया । षोडशमें एक काल सुभाया ॥
पुनि तेहिमहँ एक काल कहाया । ज्योति स्वरूप निरञ्जन राया ॥
जाकहँ नाहि सोइ यम जाना । धूर्तमता तिनि लोकमहँ आना ॥
एक अण्ड दीन्हा तिन लोका । निरंकार है निष्काम अशोका ॥
निरंकार तीनि सुत उपराजू । आपु गुप्त पुत्रन दिय राजू ॥
तीनहुँ तीनि लोक ठगि राखा । आपन आपन महिमा भाखा ॥
अरुझि रहा जिव तिरगुन फाँसा । भूलि परा निज घर तब नासा ॥
जीवन्ह काल बहुत सन्तावै । बार बार यम जीव नचावै ॥
सत्य पुरुष तब मोहि पठाये । जिव मुक्ता वन हमहिं चलि आये ॥

धर्मदास वचन

हे साहब कछु पूछौं तोही । जो पूछहुँ सो भाषहु मोही ॥
निरङ्कार निरंजन राई । धूर्तमता तिन्ह काकिय भाई ॥
जाते इन उहां रहै न पाई । सो चरित्र मोहिं वरणि सुनाई ॥

सतगुरु वचन

अहो सन्त जो पूछहु मोहीं । समुझहु चरित्र बुझावों तोहीं ॥
सत्य पुरुष सुत षोडश कीन्हा । अष्टंगीन एक कन्या रचि लीन्हा ॥
सो कन्या इन्ह कीन्ह गरासा । ताते भौ यहि लोक निकासा ॥
पुरुष दरश इन्ह बहुरि न पावा । तीनि लोक महँ आनि रहावा ॥
एकअण्ड सत्यपुरुष तेहि दीन्हा । अशंख अण्ड लोक महँ कीन्हा ॥
पुरुष रूप का बरणौं भाई । मोसो वरणत वरणि न जाई ॥
तेहि साहब का हौं शठिहारा । जीव सुकाजको करों पुकारा ॥
जो समुझे सुनि हेला मोरी । काटौं ताकी कर्मकी डोरी ॥

धर्मदासका विरह

यहि कहि गुप्त भये प्रभु राई । धर्मदास महि खसेमुझाई ॥

विकल भये आवै नहिं स्वासा । हमहिं छाँडि कहँ गये उदासा ॥
जो मैं जनतेउँ होइ विछोही । पलकन लइतों निरखत तोही ॥
छन्द–मोहिं काह जानि दरश दिये प्रभु जुदा पुनि काहे भये ॥
छिन पलक देत विलम्ब नहिं कौन दिशा गवनन किये ॥
बहु छोभ होत न जात विरह मन विकल धीरज ना धरे ॥
जमुनातट खड़े झखहिं जिमि पिया वियोगी भवन मुर्छितपरे॥
साखी–शोच हृदया रैन दिन, भोजन भवन न भाव ॥
बड़े भाग्य सो मिले प्रभु, बिछुरे कबहुँ भेटाव ॥
सोरठा–करत शोच मन भाव, सुख सम्पत न सोहावई ॥
मोहिं चैन नहिं आव, जौं लगि चरण न देखिहौं ॥

छठें दिन कबीर साहेबका फिर मिलना–चौपाई

दिवस पाँच जब ऐसहि बीता ।निपट विकल हिय व्यापेउ चिन्ता॥
छठयें दिन अस्नान कहँ गयऊ । करि अस्नान चिंतवन कियऊ ॥
पुहुप वाटिका प्रेम सोहावन । बहु शोभा सुन्दर शुठि पावन ॥
तहां जाय पूजा अनुसारा । प्रतिमा देव सेव विस्तारा ॥
खोलि पेटारी मूर्ति निकारी । ठाँव ठाँव धरि प्रगट पसारी ॥
आनेउ तोरि पुहुप बहु भाँती ।चौका विस्तार कीन्ही यहि भाँती॥
भेष छिपाय तहाँ प्रभु आये । चौका निकटहिं आसन लाये ॥
धर्मदास पूजा मन लाये । निपट प्रीति अधिक चित चाये॥
मन अनुहारि ध्यान लौलावई । कहि कहि मंत्र पुहुप चढ़ावई ॥
चन्दन पुष्प अच्छत कर लेही । निमित होय प्रतिमा पर देही ॥
चवर डोलावहिं घण्ट बजायी । स्तुति देवकी पढैं चित लायी ॥
करि पूजा प्रथमहि शिर नावा । डारि पेटारी मूर्ति छिपावा ॥

सतगुरु वचन

अहो सन्त यह का तुम करहू । पौवा सेर छटंकी धरहू ॥
केहि कारण तुम प्रगट खिडायहु । डारि पेटारी काहे छिपायेहु ॥

धर्मदास वचन

बुद्धि तुम्हार जान नहि जाई । कस अज्ञानता बोलहु भाई ॥
हम ठाकुर कर सेवा कीन्हा । हम कहँ गुरु सिखावन दीन्हा ॥
ता कहँ सेर छटंकी कहहूँ । पाहन रूप ना देव अनुसरहूँ ॥

सतगुरु वचन

अहो संत तुम नीक सिखावा । हमरे चित यक संशय आवा ॥
एक देव सम सुनेउ पुराना । विप्रन कहे ज्ञान सुनिधाना ॥
वेद वाणि तिन्ह मोहि सुनावा । प्रभुकै लीला सुनि मन भावा ॥
कहे प्रभू वह अगम अपारा । अगम गहे नहि आव अकारा ॥
सुनेउँ शीश प्रभुकेर अकाशा । पग पताल तेहि अपर निवाशा ॥
एकै पुरुष जगतकै ईसा । अमित रूप वह लोचन अंमीसा[1] ॥
सोकित पौतिन्ह माहि समाहीं । अहो सन्त यह अचरज आहीं ॥
औ गुरुगम्य मैं सुना रे भाई । अहैं सङ्ग प्रभु लखो न जाई ॥
अहो सन्त मैं पूछहुँ तोहीं । बात एक जो भाषो मोहीं ॥
यहि घटमहँ को बोलत आही । ज्ञानदृष्टि नहि सन्त चिन्हाही ॥
जौ लगि ताहि न चीन्हहुँ भाई । पाहन पूजि मुक्ति नहिं पाई ॥
कोटि कोटि जो तीर्थ नहाओ । सत्यनाम विन मुक्ति न पाओ ॥
को तुह्म को तव को घट माहीं । सन्तों चीन्ह वेगि तुम ताहीं ॥
सर्व मई औ सबते न्यारा । सो खेलै यह खेल रिसाला ॥
जो घरवा में बोलै भाई । काहि नाम तेहि कहहु बुझाई ॥
कीन सुन्दर यह साज बनाया । नाना रंग रूप उपजाया ॥
ताहि न खोजहु साहु के पूता । का पाहन पूजहु अजगूता ॥
धर्मदास सुनि चकित भयऊ । पूजापति बिसरि सब गयऊ ॥
एक टक मुख जो चितै रहाई । पलको सुरति ना आनौ जाई ॥
प्रिय लागै सुनि ब्रह्मका ज्ञाना । विनय कीन्ह बहु प्रीति प्रमाना ॥

---

१ अमित का विगाड है ।

धर्मदास वचन

अहो साहब तब बात पियारी । चरण टेकि बहु विनय उचारी ॥
अहो साहब जस तुम्ह उपदेशा । ब्रह्मज्ञान गुरु अगम सँदेशा ॥
छठयें दिवस साधु एक आये । प्रीय बात पुनि उनहु सुनाये ॥
अगम अगाधि बात उन भाखा । कृत्रिम कला एक नहिं राखा ॥
तीरथ व्रत त्रिगुण कर सेवा । पाप पुण्य वह करम करेवा ॥
सो सब उन्हहि एक नहिं भावै । सबते श्रेष्ठ जो तेहि गुण गावै ॥
जस तुम कहेहु विलोइ विलोई । अस उनहूँ मोहिं कहा सँजोई ॥
गुप्त भये पुनि हमकहँ त्यागी । तिन्ह दरशनके हम वैरागी ॥
मोरे चित अस परचै आवा । तुम्ह वै एक कीन्ह दुइ भावा ॥
तुम कहाँ रहो कहो सो बाता । उन्ह साहब कहँ जानहु ताता ॥
केहि प्रभु कै तुम सुमिरण करहू । कहहु विलोइ गोइ जनि धरहू ॥

सतगुरु वचन

अहो धर्मदास तुम सन्त सयाना । देखौं तोहि मैं निरमल ज्ञाना ॥
धर्मदास मैं उनकर सेवक । जहँहि सो भव सार पद देवक ॥
जिन कहा तुमहिं अस ज्ञाना । तिन साहेब कै मोहिं सहि दाना ॥
वे प्रभु सत्यलोकके वासी । आये यहि जग रहहिं उदासी ॥
नहिं वो भग दुवार होइ आये । नहिं वो भग माहिं समाये ॥
उनके पाँव तत्त्व तन नाहिं । इच्छा रूप सो देह नहिं आहिं ॥
निःइच्छा सदा रहँहीं सोई । गुप्त रहहिं जग लखै न कोई ॥
नाम कबीर सन्त कहलाये । रामानन्द सो जान सुनाये ॥
हिन्दू तूर्क दोउ उपदेशैं । मेटैं जीवन केर काल कलेशैं ॥
माया ठगन आइ बहु बारी । रहैं अतीत माया गइ हारी ॥
तिनहि उठावा तोहि पाही । निश्चय उन्ह सेवक हम आही ॥
अहो सन्त जो कारज चहहू । तो हमार सिखावन गहहू ॥
उनकर सुमिरण जो तुम करिहौ । एकोतरसौ पुरुषा लै तरिहौ ॥

वो प्रभु अविगत अविनाशी । दास कहाय प्रगट भे काशी ॥
भाषिन निरगुण ज्ञान निनारा । वेद कितेब कोइ पाव न पारा ॥
तीन लोक महँ महतो काला । जीवन कहँ यम करै जँजाला ॥
वे यमके सिर मर्दन हारे । उनहि गहै सो उतरै पारे ॥
जहाँ वो रहहि काल तहँ नाहीं । हंसन सुखद एक यह आहीं ॥

धर्मदास वचन

अहो साहब बलि बलि जाऊँ । मोहिं उनके सँदेश सुनाऊँ ॥
मोरे तुम उनहीं सम भाई । तुम वै एक नाहि विगराई ॥
नाम तुम्हार काह है स्वामी । सो भाषहु प्रभु अन्तर्यामी ॥

सतगुरु वचन

धर्मनि नाम साधु मम आही । सन्तन माँह हम सदा रहाही ॥
साधू संगति निशिदिन मन भावै । सतगुरु ज्ञान साधु मिलि गावै ॥
जो जिव करै साधु सेवकाई । सो जिव अति प्रिय लागै भाई ॥
हमरे साहिबकी ऐसन रीती । सदा करहिं साधुन सो प्रीती ॥
जो जिव उन्हकर दिक्षा लेहीं । साधू सेव सिखावन देहीं ॥
जीव दया पर आतम पूजा । सद्गुरु भक्ति देव नहिं दूजा ॥
सद्गुरु सङ्कट मोचक आहीं । निरगुण भक्ति छुवैं यम नाहीं ॥

छन्द–है आपु सत्यकबीर सद्गुरु प्रकट कहु तुम सना ॥
सत्यनाम भक्ति दृढावहिं दया क्षेम निश्चल मना ॥
मन कर्म भर्म अबाट परिहरि बाट घरको देत हैं ॥
जो शीश अरपे भव तरे सार जेहि यह लेत हैं ॥

साखी–सुनहु संत मति धीर, हृदया करहु विवेख ॥
हो ज्ञाता परखहु हिये, संत असंतको रेख ॥

सोरठा–जीवन यम धरिखाय, सत्यनाम जाने बिना ॥
वाचै एक उपाय, सत्यकबीर कहि भव तरै ॥

धर्मदास वचन–चौपाई

अहो साहब तुम्ह अविगत अहहू। अमृत वचन तुम निश्चय कहहू ॥
हे प्रभु पूछेउ बात दुइ चारा। अब मैं परिचय भेद विचारी ॥
सो तो हम नहिं जानहिं स्वामी। तुम कहहु प्रभु अंतरयामी ॥

सतगुरु वचन

अहो धर्मदास तुम्ह भल यह भाखो। कहो सो जो प्रतीति तुम राखो ॥
अहहु निगुरा कि गुरुकिहुँ भाई। तौन बात मोहि कहहु बुझाई ॥

धर्मदास वचन

हे सामर्थ्य गुरु हमतौ कीन्हा। यह परिचे गुरु मोहि न दीन्हा ॥
रूपदास विठलेश्वर रहहीं। तिनकर शिष्य सुनहुँ हम अहहीं॥
उन मोहिं इहे भेद समुझावा। पूजहु शालिग्राम मन भावा ॥
गया गोमती काशि परागा। होइ पुण्य शुद्ध जनम अनुरागा ॥
लक्ष्मीनारायण शिलाकै दीन्हा। विष्णुपंजर पुनि गीता चीन्हा ॥
जगन्नाथ बलभद्र सहोद्रा। पञ्चदेव औरो योगीन्द्रा ॥
बहुतैं कही प्रमोध दृढाई। विष्णुहिं सुमिरि मुक्ति होइ भाई॥
गुरुके वचन शीश पर राखा। बहुतक दिन पूजा अभिलाखा ॥
तुम्हरी भेष मिले प्रभु जबते। तुम बानी प्रिय लागी तबते ॥
वे गुरु तुम्हहीं सतगुरु अहहू। सारभेह मोहिं प्रभु कहहू ॥
तोहरे दास कहाउब स्वामी। यमते छोडावहु अन्तरयामी ॥
उनहूँ कर नाहीं निन्द करावै। अस विश्वास मोरे मन आवै ॥
वह गुरु सर्गुण त्रिगुण पसारा। तुमहो यमते छोडावनहारा ॥

सतगुरु वचन

सुनु धर्मनि जो तव मन इच्छा। तौ तोहिं देउँ सार पद दिच्छा ॥
तुम अब निज भवन चलि जाऊ। गुरु परीक्षा जाइ कराऊ ॥
जो गुरु तुम्हैं न कहैं सँदेशा। तब हम तुम्ह कहँ देव उपदेशा ॥
हमहुँ जाहिं सतगुरु पहँ भाई। तुम्हरी प्रीति अब उनहिं सुनाई॥

धर्मदास वचन

हे साइेब एक आज्ञा पावों । दया करो कछु प्रसाद लै आवों ॥

सतगुरु वचन

हे धर्मदास मोहि इच्छा नाहीं । क्षुधा न व्यापै सहज रहाहीं ॥
सत्यनाम है मोर अधारा । भक्ति भजन सतसंग सहारा ॥

धर्मदास वचन

अहो साइब जो अन्न न खाहू । तो मोरे चितकर मिटै न दाहू ॥

सतगुरु वचन

तुम्हें इच्छा तो ल्यावहु भाई । अन्तै लेइ पाइब हम जाई ॥
धर्मदास उठि हाट सिधाये । बतासा पेडा रुचि लै आये ॥
आनि धरेउ आगे प्रभुकेरा । विनय भाव कीन्ह बहुतेरा ॥
अहो साहु अब अज्ञा देहू । गुरु पहँ जाब आशिष लेहू ॥

धर्मदास वचन

करि दण्डवत धर्मनि कर जोरी । अबधौं सुदिन होइ कब मोरी ॥
तेहि दिन सुदिन लेखब प्रभुराई । जेहि दिन तुव पगु दरशन पाई ॥
हम कहँ निज चेरा करि जानो । सत्य कहौं निश्चयकरि मानो ॥
आशिष दे प्रभु चले तुरन्ता । अबिगति लीला लखे को अन्ता॥
धर्मदास चितवहिं मगु ठाढो । उपजा प्रेम हृदय अति गाढो ॥

छंद–विलखि लोचन जब प्रभु अन्तर भये तबहीं चित अति खरभरे॥
चक्षुवारिध प्रबल प्रवाह भव हिय धीरज तनिको ना धरे ॥
धरि स्वास आस विश्वास मिलन बहुरि जो भवन सिधायऊ ॥
गिरहिं सेज विथा विकल होइ उर विरह अति दुख छायऊ ॥

साखी–भोजन क्षेम मलीन तन, बसन विभेष बनाइ ॥
रैनि दिवस छिन कल नहीं, जहँ तहँ बैठें जाइ ॥

सोरठा–मिलहिं जो भेष अनेक, पूछहिं तेहि सँदेश पुनि ॥
होय न चित महँ एक, यक सम बचन न भावई ॥

धर्मदासका गुरुरूपदासजीके निकट जाकर ज्ञान पूछना

धर्मदासवचन–चौपाई

धर्मदास चलि भो गुरु पाहाँ । रूपदास कर आश्रम जाहाँ ॥
पहुँचे जाइ गुरूके धामा । होइ आधीन तब कीन्ह प्रणामा ॥
तुम गुरु देव शिष्य हम आहीं । परचे ज्ञान कहहु मोहि पाहीं ॥
जीव मुक्त कौन विधि होई । तन छूटे कहँ जाय समोई ॥
(जिवकर मुक्ति कैसे होइ भाई । पारब्रह्म सो कहाँ रहाई ? ॥ )
आदि ब्रह्म सो कहँवा रहाई । घट महँ बोले कौन सो आही ॥
ताकर नाम कहो हम पाही । घट में बोले सो कस आही ॥
हम को हैं घट को होई । जग करता प्रभु कहां समोई ॥

गुरु रूपदास वचन

धर्मदास तुम भयो अजाना । को सिखयो तोहि अस ज्ञाना ॥
सुमिरहु रामकृष्ण भगवाना । ठाकुर सेवा कर बुधिवाना ॥
विष्णुपंजर ओ लक्ष्मिनरायन । प्रतिमा पूजन मुक्ति परायन ॥
मन वच सुमिरहु कुञ्जविहारी । रहै वैकुंठ सोइ बनवारी ॥
पुरुषोतम पुरि वेगि सिधाओ । जगन्नाथ परसो घर आओ ॥
गया गोमती काशीथाना । तीरथ नहाय पुण्य परधाना ॥
निराकार निर्गुण अविनाशी । ज्योति स्वरूप शून्यका वासी ॥
ताहि पुरुषकर सुमिरहु नामा । तन छूटै पहुँचहु हरिधामा ॥

धर्मदास वचन

हो गुरुदेव पूँछो यक बाता । क्रोध करि कहहु जनि ताता ॥
जीव रक्षक सो कहाँ रहाही । निराकार जिव भक्षक आही ॥
लक्ष जीव नित खाय निरंजन । तिया सुत ताहि करै बहु गञ्जन ॥
तीनो देव पडे मुख काला । सुर नर मुनि सब करै विहाला ॥

नर बपुराकी कौन चलावै । कौनी ठोर जीव सचुपावै ॥
तीन लोक वैकुण्ठ नशायी । अस्थिर घर मोहिं देहु बतायी ॥
पाप पुण्य भ्रम जाल पसारा । कर्मबन्ध भरमे संसारा ॥
किरतम भजि जोइन नहिं छूटै । सत्यनाम बिनु यम धरि लूटै ॥

रूपदास वचन

अहो धर्मदास हम चक्रित होही । यह कछु समुझि परै नहिं मोहीं ॥
तीनि लोकके कर्ता जोहै । तेहि भाषत हौ जमरा सोहै ॥
ब्रह्मा विष्णु महेश गोसाई । तुम्ह तेहि कहहु काल धरि खाई ॥
तीनि लोकमें वैकुण्ठहिं श्रेष्ठा । सो सब तुम्ह मानहु निकृष्ठा ॥
तीरथ व्रत अरु पुण्य कमाई । तुम यमजाल ताहि ठहराई ॥
और अधिक मैं कहा बताऊँ । जो जानों सो नहीं दुराऊँ ॥
जिन्ह तोहि अस बुद्धि दिया भाई। तिनहीं कहँ तुम सेवहु जाई ॥

धर्मदास वचन

धर्मदास विनवैं कर जोरी । चूक ढिठाई बक्सहु मोरी ॥
हम तेही पद अब सेवैं जायी । जिन्ह यह अगम मोहि बतायी ॥
तुम हो गुरु उन सतगुरु मोरा । उन हमरे मन मैगल तोरा ॥
तुम्हहूँ गुरु वो सतगुरु मोरा । उन हमार यमफन्दा तोरा ॥
तुम्हैं गुण कीन्ह अभक्ष्य छुडावा ।उन मोहि अलखअगम्य लखावा॥
धर्मदास तब करी प्रणामा । मथुरा नगर पहुँचे निज धामा ॥
कैतिक दिन यहि भाँती गयऊ । धर्मदास मन चिन्ता भयऊ ॥
केतिक दिवस यहि विधि बीता । धर्मदास चित बाढी प्रीता ॥
बहुत दिवस भो प्रभु नहिं आये । कीधौं केहि सेवक विलमाये ॥
एक दिवस प्रभु ध्यान लगाय । क्षोभित चित्त प्रसाद बनाय ॥
बढी प्रीति मन बहु बिरहावा । सुरति सनेह प्रसाद बनावा ॥
जिन्दा रूप धरी प्रभु आये । वृक्ष एक तर आसन लाये ॥
आसन अधर देह नहिं छाया । अविगति लीला गुप्त रहाया ॥

इत चौका महँ अस भो भाई । बहु चिउँटी चूल्हे झरकाई ॥
हरि हरि करि धर्मनि अकुलाने । महापाप लखि मनहिं भुलाने ॥
ततक्षण धर्मनि जिन्दहि हेरा । आये प्रसाद लेहु यहि बेरा ॥
जिन्दा आय ठाढ पुनि भयऊ । कर प्रसाद लै चिन्तवन कियऊ॥
धर्मदास दीन्हेउ परसादा । तब जिन्दा पुनि कीन्ह समादा॥

जिन्दा वचन

घात कियउ तुम जीव अनेका । सो प्रसाद ले मम शिर टेका ॥

धर्मदास वचन

जीव घात सुनि अचरज माना । हो जिन्दा तुम्ह कैसे जाना ॥
कवन जाव हम कीन्ही घाता । सो समुझाइ कहो मोहिं बाता ॥

जिन्दा वचन

अहो साहु कस धरहु छिपायी । चिउँटी चूल्हा बहुत जरायी ॥
सुनि धर्मनि चित संशय आने । यह को आहि हृदय अनुमाने ॥
अगुन सगुन चित करैं बढाई । मनही मन बहु अचरज पाई ॥
भात सबै चिउँटी तब भयऊ । बहु संशय धर्मनि मन ठयऊ ॥
सबै भात चिउँटी होइ बीता । बहुत संदेश धर्मनि हिय कीता॥

धर्मदास वचन

हो जिन्दा मैं अचरज भयऊँ । लीला देखि थकित होय गयऊँ॥
हो जिन्दा मैं पुछत सकाऊँ । दया करि तृष्णा मोरि बुझाऊँ ॥
चिउँटी सही जरी प्रभु हमते । सो अदृष्टि बहु अन्तर तुमते ॥
सो कैसे जानेहु तुम ताता । औ प्रसाद चिउँटी होइ जाता ॥
कौतुक देखि अचरज मुहि आवा। यह लीला तै जानि न पावा ॥

जिन्दा वचन

धर्मनि यह सतगुरुकी लीला ।धन्यसतगुरुजिन्हख्यालकरीला॥
जानहु सतगुरु नाम प्रतापा । भयो पपील सर जिवगत पापा ॥
सतगुरु नाम सुनत सुख माना । धर्मदास हिय हरष समाना ॥

धर्मदास वचन

जोरि पानि मैं पूछौं स्वामी । कहो कृपा करि अन्तरयामी ॥
अहो साहेब नाम क आही । परचै नाम कहो मोहिं पाहीं ॥
अरु सतगुरु तुमका कहँ कहहू । हे प्रभु कौन देश तुम रहहू ॥

जिन्दा वचन

हो धर्मनि जो पूछेहु मोहीं । सुनहुँ सुरति धरि कहों मैं तोहीं ॥
जिन्दा नाम अहै सुनु मोरा । जिन्दा भेष खोज किहँ तोरा ॥
हम सतगुरु कर सेवक आहीं । सतगुरु संग हम सदा रहाहीं ॥
सत्य पुरुष वह सत्यगुरु आहीं । सत्य लोक वह सदा रहाहीं ॥
सकल जीवके रक्षक सोई । सतगुरु भक्ति काज जिव होई ॥
सतगुरु सत्यकबीर सो आहीं । गुप्त प्रगट कोइ चीन्है नाहीं ॥
सतगुरु आ जगत तन धारी । दासातन धरि शब्द पुकारी ॥
काशी रहहिं परखि हम पावा । सत्यनाम उन मोहिं दृढावा ॥
जम राजा कर सब छल चीन्हा । निरखि परखिभे यम सो भीना ॥
तीन लोक जो काल सितावे । ताको सब जग ध्यान लगावे ॥
निराकार जेहि वेद बखानै । सोई काल कोइ मरम न जानै ॥
तिन्ह कर सुत आहि त्रिदेवा । सब जग करै जो उनकी सेवा ॥
त्रिगुण जाल यह जग फन्दाना । गहै न अविचल पुरुष पुराना ॥
जाकर ई जग भक्ति कराई । अन्तकाल जिव सो धरि खाई ॥
सबै जीव सतपुरुषके आहीं । यम दै धोख फन्दाइस ताहीं ॥
प्रथमहि भये असुर यमराई । बहुत कष्ट जीवन कहँ लाई ॥
दूसरि कला काल पुनि धारा । धरि अवतार असुर सँघारा ॥
जीवन बहु विधि कीन्ह पुकारा । रक्षा करन बहु करै पुकारा ॥
जिव जानै यह धनी हमारा । दे विश्वास पुनि धरै अवतारा ॥
प्रभुता देखि कीन्ह विश्वासा । अन्तकाल पुनि करै निरासा ॥

कालै भेष दयाल बनावा । दया दृढ़ाय पुनि घात करावा ॥
द्वापर देखहु कृष्णकी रीती । धर्मनि परिखहु नीति अनीती ॥
अर्जुन कहँ तिन्ह दया दृढावा । दया दृढाय पुनि घात करावा ॥
गीता पाठकै अर्थ बतलावा । पुनि पाछे बहु पाप लगावा ॥
बन्धु घातकर दोष लगावा । पाण्डो कहँ बहु काल सतावा ॥
भेजि हिमालय तेहि गलाये । छल अनेक कीन्ह यमराये ॥
बहु गंजन जीवन कहँ कीन्हा । ताको कहे मुक्ति हरि दीन्हा ॥
पतिव्रता वृन्दा व्रत टारा । ताके पाप पहन औतारा ॥
बलिते सो छल कीन्ह बहूता । पुण्य नसाय कीन्ह अजगूता ॥
छल बुद्धि दीन्हे ताहिं पताला । कोई न लखै प्रपंची काला ॥
लघु सरूप होय प्रथम देखाये । पृथिवीलीन्ह पुनि स्वस्ति कराये॥
स्वस्ति कराइ तबै प्रगटाना । दीर्घरूप देखि बलि भय माना ॥
तीनि परग तीनौ पुर भयऊ । आधा पाँव नृप दान न दियऊ ॥
देहु पुराय नृप आधा पाऊँ । तो नहिं तव पुण्य प्रभाव नसाऊँ॥
तेहि कारण पतालहिं दीन्हा । अन्धा जीव जल प्रगट न चीन्हा॥
तब लै पीठ नपाय तेहि दीन्हा । हरि ले ताहि पताले कीन्हा ॥
यहि चर जीव देखि नहि चीन्हा । कहै मुक्त हरि हमको कीन्हा ॥
जाकर वचन थिर होवे नाहीं । औ पुनि जीव दया नहिं ताहीं ॥
तासो कहहु लाभ किमि होई । तेहि सेवै सो जाय बिगोई ॥
औ हरिचन्द केर कस लेखा । धर्मदास चित करो विवेखा ॥
यती सती त्यागी भयऊ । सब कहँ काल विगुरचन लयऊ ॥
काहूकै ब्रत दृढ नहिं राखा । ताकहँ मुक्तिदाता जग भाखा ॥
स्वर्गहि धोखा नरकहि जाहीं । जीव अचेत छल चीन्हे नाहीं ॥
पण्डौ सम जग को व्रतधारी । नरक बास ताकहँ लै डारी ॥
करण मोरध्वज सत्यव्रत धारी । लै कसनी ताहि दीन्ह विडारी ॥
भक्त अनेक जगत महँ भयेऊ । काहू कहँ वैकुण्ठ न दयऊ ॥

नरक वास नहिं छूटै भाई । महा नरक भग जठर कहाई ॥
नरकते विष्णु छुटे नहिं पाये । जनम जनम जठरै भग आये ॥
जग अंधा हिय गम्य न कीन्हा । सबै आस ताही कर लीन्हा ॥
जिव अचेत हियगम्य न करई । सबै आस वैकुण्ठहिं धरई ॥
विष्णु सरीखे को जग आही । बहु भगता किमि वरणौं ताही ॥
तिन्ह वैकुण्ठ वास नहिं पाया । कर्महिं वसि पुनि नर्क भोगाया॥
सो वैकुंठ चाहत नर प्रानी । यह यम छल बिरले पहिचानी ॥
जस जो कर्म करै संसारा । तस भुगतै चौरासी धारा ॥
मानुष जन्म बडे तप होई । सो मानुष तन जात विगोई ॥
नाम विना नहिं छूटे कालू । बार बार यम नर्कहिं घालू ॥
नरक निवारण नाम जो आही । सुर नर मुनि लखत कोइ नाहीं ॥
ताते यम फिर फिर भटकावै । नाना जोइनि काल सतावै ॥
विरलै सार शब्द पहिचाने । सतगुरु मिलै सतनाम समाने ॥
छंद–सुनु धर्मदास सुजाना शब्द प्रमान सतगुरु जानहूँ ॥
सुरति निरति गहि ठाम चीन्हो अनूप अलञ्छन मानहूँ ॥
सत्यनाम अराधहु मनहीं साधहू चतुर चोर जो मन अहैं ॥
मनै अहै निरञ्जन कोइ न चीन्है सुन्नवासी सब कहैं ॥
साखी–सुन्य सरूपी मन सोई, धर्मदास लेहु जानि ॥
रेख रूप वाको नहीं, जिन्दा शब्द प्रमान ॥
सोरठा–निरंकार निःरूप, परिचय वेद प्रकास इमि ॥
तिहुँपुरके सोइ भूप, नेति निगम यश गावहीं ॥

### धर्मदास वचन

हे साहेब तुमको शिर नावा । तुमतो मोहिं अलख लखावा ॥
समरथ नव चरनन बलि जावें । तुम्ह ते बहु परचै हम पावें ॥
उन साहेब सम तुमहू अहहू । वैसिहि बात तुमहु प्रभु कहहू ॥

भेष तीनि दिय दरशन मोहीं। तीनो भेष मैं जानौं तोहीं॥
सतगुरु प्रथम दरस मोहि दीन्हा। हम कहँ आय कृतारथ कीन्हा॥
भेष छिपाय बहुरि ओहि आये। सार बात बहु मोहिं सुनाये॥
तिसरे तुम्ह आयउ तन धारी। हम हैं तोहरे दरश भिखारी॥
तुम्ह मोहि आय परम सुख दीन्हा। हम कहँ आय कृतारथ कीन्हा॥
तुमतो प्रभु बहु सुख दीन्हा। तुम ते प्रभु परिचय हम चीन्हा॥
एक बात प्रभु कहहु बिलोई। कहहु दया करि धरहु न गोई॥
चिउँटी बहुत जरी मम पाहीं। तुम प्रताप अघ पायो नाहीं॥
औरौ कबहिं होइ जो ऐसी। हे प्रभु कहहु बने तब कैसी॥
चेत अचेत पावँ तर परई। हे प्रभु दास कौने विधि तरई॥

जिन्दा वचन

धर्मदास निःसंशय रहहू। सद्गुरु ध्यान अस्थिर चित गहहू॥
जानिके जीव कबहिं नहिं मारो। भरोसा और दया उर धारो॥
भरसक चूको नाहीं कबहू। सब जीवनकी रक्षा करहु॥
साधू सेवा पर सरवस वारी। सेवा सन्त प्रीति चित धारो॥
सन्त चरण कर अस परतापा। मेटैं दोष दुख करमज दापा॥
साधू सेवा जीव जन धारो। नाम ध्यान धरि काज सँवारो॥
साधू सेवा चित देइ करई। जीवन मुक्ति सो भव जल तरई॥
तीरथ व्रत बहु करम कराहीं। सत्यभक्ति विनु तरै जिव नाहीं॥
कोटि तीर्थ सन्तन्हपद वासा। अंधा जीवहि नहिं विश्वासा॥
सन्त जाहि घर चरण पखारा। भूत पिशाच होये सब न्यारा॥
नौग्रह कर वसि नहिं चलई। सब विघ्न सदा सो टलई॥
जेहि घर संत चरण परछालैं। सन्त उछिष्ट जाहि घर डालैं॥
ताकर फल कछु वरणि न जाई। जाहि गहि विश्वास करै सेवकाई॥
गुरु चरणोदक नित प्रीतिसे लेई। निहचै लोक पयान देई॥
गुरुमुख कणिक प्रीतिसे पावै। ऊँच नीचके भरम मिटावै॥

गुरुमुख सती महा परसादा । पावत मेटै करमकर फाँदा ॥
गुरु हैं ब्रह्म अखण्ड अमानै । गुरु कहँ नहिं मानुष कर जानै ॥
गुरुते द्रोह तजै विष बादा । गुरु निन्दा नहिं पावै स्वादा ॥
नाम पान चरणोदक सीते । कहैं कबीर भक्ति दृढ रीते ॥
गुरु सेवा संतन सनमाना । दया धर्म ले मोक्ष अमाना ॥
जग महँ जीव घात बहुतेरे । जीव घात शिर पाप घनेरे ॥
दया न गुणै करै जिव घाता । खेलि शिकार मगन मदमाता ॥
मारि मारि तन करै अहारा । जीव दया नहिं करै गवाँरा ॥
जिव घातिक बहुते दुख पावै । जनम जनम तेहि काल सतावै ॥
कागदेह धरि निरघिन खाहीं । जनम अमित तेहि विष्टा माहीं ॥
शूकर स्वान जनम पुनि पावै । मीन मांस मद जाकहँ भावै ॥
साधु देव भक्ष अंकुर आहीं । मीन मांस मद राक्षस खाहीं ॥
कोटिक जप तप पुण्य कमावै । दया विना नर मुक्ति न पावै ॥

छंद–जप योग दान विधान बहु विधि करै कर्म अनेक हो ॥
सत कोटि तीरथ भूमि परिकरमा करि न पावै थेक हो ॥
जौ लौं दया नहिं जीवको तो सबहि कर्म असार हो ॥
कोई लखे सज्जन जो हरि मैं कह्यो शब्द पुकारि हो ॥

साखी–जीव दया चित्त मों धरै, तजै अभक्ष्य अहार ॥
हंस दया धरि नाम गहि, उतरे भवजल पार ॥

सोरठा–सत्यनाम गुण गाय, गही साधु सेवा करै ॥
सहज परमपद पाय, सो सतगुरुपद विश्वास धरि ॥

चौपाई

जहां फूल तहँ आवै बासा । जहां साधु तहँ प्रभुकर बासा ॥
एक तत्त्व मन गुनि नाम समावै । दया क्षेम सत्य मन भावै ॥
गुरु औ साधु सेवा चित लावै । सत्यनाम गहि लोक सिधावै ॥
सत्यनाम सो विनसै नाहीं । त्रिगुण जालते न्यार रहाहीं ॥

त्रिगुण त्यागि चौथा पद भेटे। तब जरा मरणकी संशय मेंटे ॥
चौथा पद सत्यनाम अमाना। विरला पाइ करै पद ध्याना ॥
सत्यनाम है सार अनूपा। प्रेम प्रीति गुरु दरस सरूपा ॥
काह भये यह अंगुरीके देखे। जो नहिं शीश दरश प्रभु पेखे ॥
काइ भये ठठिया के भेटै। शीश दरश विनु भरम न मेटै ॥
नख सिख सत्पद दरश जबहीं। सो जिव जठर न आवे कबहीं ॥
निश्चै सत्य पर रहै समाई। कर्म भर्म तजि जिव दुरि ताई ॥
सत्यपद जिन एकहि मन लाया। शीश दरश निज निश्चै पाया ॥
सुरति निरति सत्यगुरुपद परसै। षोडश भानु चन्द्र छबि दरशै ॥
सुधापान सिंघासन सारा। हंसन्ह मिलि सुख बड़ा अपारा ॥
पुरुष दरश लोचन छकि जायी। पुरुष वचन शुभ घ्रान अघायी ॥
अन्धकार तहवाँ नहिं होई। सदा अँजोर अमरपुर सोई ॥
दीप असंख्य तहँ गणिन सिराहीं। हंसा निश्चल राज कराहीं ॥
निराकार यम तहाँ न जाई। तिरदेवनकी कौन चलाई ॥
सतगुरु शरण गहहिं जो कोई। ताहि देसको पहुँचे सोई ॥
जब राजा सो तिनुका मूटै। पाप पुण्य कै आशा छूटै ॥
तबहीं सत्यगुरु शब्द मन जूटै। जन्म मरणका संशय छूटै ॥
असुर भक्ष सो रहै निनारा। तजि असंग सत्संग बिचारा ॥
विरलै हंस निःसंशय होई। दृढ़ प्रतीति नाम गहे सोई ॥
गुरु कहँ सत्यपुरुष सम जानै। सन्त कहँ गुरु सम करि मानै ॥
होइ निःकपट चरण गुरुआशा। सद्गुरु नाम गहै विश्वासा ॥
निराधार सतनाम अधारा। शब्द सुरति जगबंध विचारा ॥
कर्म भर्म सो न्यारा होई। गुरुपद राखै सुरति समोई ॥
बहु विधि ज्ञान गुरुते पावै। यमका फन्दन सोई कटावै ॥
यमके फन्द कटे सुख होई। पशुआ हो नहिं पावै सोई ॥
गुरुका शब्द सुनै जो काना। करै विचार बहुत परमाना ॥

काल रूप धरि गुरू कहावै । करि पारख तासो हरिजावै ॥
अन्धविश्वास जगतसो सोवै । जाय नरक पुनि मूलहु खोवै ॥
निरखि परखिकै शरणै जावै । अगम निगम सब सोई जनावै॥
रहै अजाचक नामलौ लाई । जीव दया सन्तन सेवकाई ॥
निजआतमसम सबही जानौ । प्रेम प्रीतिसे सेवा ठानौ ॥
परमारथकी भिक्षा करिये । गुरु साधुन आज्ञा अनुसरिये॥
अभ्यागत आतम सम जाने । साधुनाम सद्गुरु सहिदाने ॥

छंद—गुरुसाधु महिमा अमित अगम अपार पारनहिं कोऊ लहै॥
त्रीदेव दश औतार हरि गुरु साधु पद रज तेऊ चहैं ॥
सनकादिक सुरनरमुनि सिद्धि ज्ञानीसाधु गुरु आतित रहैं॥
हरि आपु मुख महिमा प्रकाशें निगम अस्तुति नित कहै ॥

साखी—अस नर पाँवर अन्धमति, हृदय न करहिं बिचार ॥
गुरु सन्तन्ह पद सारतजि, विष वेली प्रतिपार ॥

सोरठा—सुत नारी हित प्रान, गुरु सन्तन्ह सो चातुरी ॥
जब यम बाँधै तान, तब पछितावहि मुग्ध नर ॥

धर्मदासवचन—चौपाई

धन सतगुरु धन तुमरी बानी ।मोहिअसअधमदीन्हगतिजानी
अब साहब मोहि आपन करहू । मम शिरचरणसरोरुह धरहू ॥
मैं आपन दिन शुभकरि जाना । तोहरे दरश मोक्ष परमाना ॥
अब अस दया करहु दुखभञ्जन। कबहुँमोहिनधरिपाव निरञ्जन॥

जिन्दा वचन

अहो धर्मदास दरश तुम पावो । शब्द गहे होय जिवमुक्तावो ॥
यमफन्दा तब निश्चै छूटै । जब यमरासो तिनका टूटै ॥
अमीअंक परवाना पावै । सुमिरण नामध्यान चितलावै॥
हियते और आस सब छाडे । सद्गुरु चरण नेह चित माडे ॥

नाम कबीर जपो दिनराती । तजहु कर्म भ्रम अरु कुलजाती ॥
प्रतिमा धोखा दूरि बहावो । आतम पूजा नाम चितलाओ॥
पीतर पाथर दूरि बहाऊ । सद्गुरु सन्त सेवा चित लाऊ॥
तब जमरा तोहीं नहिं पाई । नाम प्रताप काल मुरझाई ॥
होइहैं जीव काज तब तोरा । निश्चै वचन मानु दिढ मोरा ॥

धर्मदास वचन

हे साहब मैं तब पग धरऊँ ।तुम्हते कछु दुबिधा नहिं करऊँ॥
अब मोहि चिन्हि परायमबाजी । तुम्हते भयउ मोरमन राजी ॥
मोरे हृदय प्रीति अस आई । तुम्हते होइहै जिव मुक्ताई ॥
तुमहीं सत्यकबीर हौ स्वामी । कृपा करहु तुम अन्तर्यामी ॥
हे प्रभु देहु प्रवाना मोहीं । यम तृण तोरि भजौं मैं तोहीं॥
मोरे नहीं अवर सो कामा ।निसिदिन सुमिरों सद्गुरु नामा॥
पीतर पाथर देव बहायी । सद्गुरु भक्ति करब चितलायी ॥
अरपौं शीस सर्वस सब तोहीं । हे प्रभु यमते छोडावहु मोहीं॥
सन्तन्ह सेवाप्रीति सों करिहौं । वचन शिखापन निश्चय धरिहौं॥
जो तुम्ह करहु करब हम सोई । हे प्रभु दुतिया कबहुँ नहिं होई॥

जिन्दा वचन

सुनु धर्मनि अब तोहीं मुक्ताओं। निश्चै यमसों तोहिं बचाओं ॥
देइ परवाना हंस उबारो । जनम मरण दुख दारुण टारो ॥
ले प्रवाना जो करै प्रतीती । जिन्दा कहै चले यम जीती ॥
अब मोहि आज्ञा देहु धर्मदासा। हम गवनहि सद्गुरुके पासा ॥
सद्गुरु संग आइब तव पाहीं । तब परवाना तोहि मिलाहीं ॥

धर्मदास वचन

हे प्रभु अब तोहिं जाने न देहौं । नहिं आवो तो मैं पछितैहौं ॥
पछताइ पछताइ बहु दुख पैहौं । नहिं आवहु तो प्राण गवैहौं ॥
हाथके रतन खोइ कोइ डारै । सो मूरख निजकाज विगारै ॥

मोरे प्रान पियारे तुम्ह हौ । केहि कारण अनत लैजे हौ ॥

### कबीर साहबका तीसरी बार गुप्त हो जाना और धर्मदास साहबकी व्याकुलता

यह कहि धर्मदास पल लाऊँ । जिन्दा गुप्त भये तेहिं ठाऊँ ॥
धर्मदास पुहुमी परु हारी । सद्गुरु कहँ बहु कीन्ह गोहारी॥
मोहिं समको जग आहि अभागा। छुटे नदेह ठगौरी लागा ॥
जिमीभुअँग मणि जाइ हेराई ।विकलफिरहिंजिततितबिललाई॥
उहै हाल सद्गुर विनु मोरा । कतपलदियेउ मन्द मति मोरा॥
काह करौं कित दर्शन पाऊँ । बिनु दर्शन मैं प्रान गवाऊँ ॥
कीन्ह विवेक मन धीरज दीन्हा ।मन महँ पकर एक पुनिकीन्हा॥
करौं महोत्सव संत अवराधी । तब दर्शन देहिं पुरुष अनादी॥
साहेब सन्त सनेही आहीं ।सन्तन तजि वह अंत न जाहीं॥
असहिय ठानि भवन चलि गयऊ।सन्तप्रसादको चितवन कियऊ॥
संतधाम जहँ लगि गम पावा । तहां तहां विनतीनेवतिपठावा॥
छन्द-दिन अवधि वाही जुरन लागे बहु भेष पहुँचे आयहो ॥
दीहुँ जुथ्थहि सेज आश्रम कीन्ह विनती जाइ हो ॥
दे भाव भोजन गमनिरश्वहिं सकल भेष अलेखही ॥
सबहिं निरखहिं सुरति परखहिं हृदय समाह विवेकही ॥
दोहा-पान सुपारी हाथलै, करहिं दण्डवत जाय ॥
भेषन सो चित विलखिके, पूछहिं मन परिचाय ॥
सोरठा-तुम्ह हो सन्त सुजान, निजदासन्ह सुख देतुहौ ॥
सत्य पुरुष सहिदान, सत्य लोक महिमा कहो ॥

---

## बेष मता वर्णन

चौपाई

कोई कहै त्रिदेव अवराधौ । कोई कहै व्रत करि तन साधौ ॥
कोई कहै करु प्रतिमा सेवा । कोई तीरथ कोई जपतप भेवा ॥

कृत्रिमभक्ति जो सबै दृढावै । सत्य सारपद नाहि बतावै ॥
तब अकुलायसंसाधरि जोये । प्रगट नहीं गुप्तहिं हिय रोये ॥
प्रति आश्रमगम्यउठी निरासा । जिततितचितवहिं धर्मनिदासा॥
पुनि चितवनउत्तरदिशिकीन्हा । मूरति एक भिन्न तहँ चीन्हा ॥
धमदास तहँ बेगि सिधाये । प्रथम रूपको दरशन पाये ॥
धायचरणगहि अति अदरागा ।बुन्दपाय चात्रिक जिमि पागा॥
गुरु पद पायप्रीति चित जागा। होसतगुरु मोहिं कीन्हसुभागा॥
धाये चरणनगहिअति अनुरागा। युगपदगहेउ प्रीति चित लागा॥
करगहि दास उठायेउ स्वामी । सुधा वचन कह अन्तर्यामी ॥

सतगुरु वचन

धर्मदास तुम्ह हंस सुहेला । मोहिं दरश कह कीन्हेउ मेला॥
इच्छा सफल भइ सुन तोरा । अब तुम्ह दरशन पायउ मोरा॥

धर्मदास वचन

हे प्रभु जौं दर्शन नहिं पावत । तौ हम निश्चै प्राण गवाँवत ॥
अब प्रभु कीजे कृपा तुरंता । दीजे बीरा अविचल संता ॥
यमसे तिनुका वेगि तोराओ । वन्दी छोरि मोहिं मुकताओ ॥

सतगुरु वचन

सुनुधर्मनि जो कहो सो मानो । तजि संशय धीरज चित आनो॥
करहु जाय सन्तनसनमाना । ता पीछे दैहों परवाना ॥

धर्मदास वचन

हे प्रभु कहो सोई हम माने । करब जाइ सन्तन्ह सनमाने ॥
हे प्रभु जौ कतहूँ अब जाहू । तौ जीवित नहिं पइहौ साहू ॥

सतगुरु वचन

हे धर्मनि सुनहु मम बानी ।कतहुं न जाब सत्य हियजानी॥
करि प्रमान चितवत चलु पाछे। जौं नटनिरत सुघरता काछे ॥
जाय कीन्ह सन्तन सनमाना । यथा शक्ति पूजा परधाना ॥

विदा कीन्ह सन्तन्ह करजोरी । वख्शहु जो हमरी भइ खोरी ॥
सब सन्तन निज धाम सिधाये। धर्मदास सद्गुरु पहँ आये ॥

धर्मदास वचन

कहै धर्मनि सुनु दीनदयाला । आतुर छोड़हु बन्ध कृपाला ॥

सतगुरु वचन

धर्मनि जो चाहहु परवाना । आनहु आरति साज सुजाना ॥

धर्मदास वचन

अहो साहब कस आरतिसाजा। सो भाषहु आतुर जिवकाजा ॥

सतगुरु वचन

धर्मनि चहिये नारियर पाना । मेवा सो अष्ट करू मिष्टाना ॥
चन्दन चौकसुगन्धि कराओ । कलशा पल्लौ पश्च धराओ ॥
गौघृत वसन सकल शुभ चारू। साजि थार पुनि आरतिबारू ॥
सिंघासन पुनि सेत बनाओ । झारी दल कपूर मेराओ ॥
श्वेत पुहुप केदली पनवारा । आनि बेगि जनि लावहुवारा ॥
रतना कंदइनिनगर महँ आहीं । गुड़ मिष्टान्न तिनहिं कर चाहीं॥
धावहु वेगि तुरति लै आवहु । आनहु वेगि वार जनि लावहु ॥

धर्मदासजीका रतनासे मिलना

छन्द-पदकंज टेक्यो चले विचारत कहाँधौं रतना अहै ॥
कहुँ पूँछि लीजे भवन उनके निज हिये गुनता रहै ॥
तहँ आय रतना ठाढ़ि भयी मिष्टान्न लै कर जोरि कै ॥
भो साहु येहु प्रसाद लीजै नाम रतना मोर है ॥
दोहा-धर्मदास रह सकुचि चित, यह तो अचरज बात ॥
हो माता किमि जानेउ, कहहु सोइ विख्यात ॥

रतना वचन

सोरठा-सुनु धर्मनि हम नाहिं, यह लीला सद्गुरु कियो ॥
हम उन सेवक आहि, जिन्ह तोहिं शब्द चेताइया ॥

धर्मदास वचन–चौपाई

लेहु दाम धन्य हो तुम माता। एक प्रान देखिये दुइ गाता ॥

रतना वचन

अहो धर्मदास कस मोल बताओ। उन्हको तन मनवेगि सिधाओ॥
ओरौ बस्तु लेहु अतुराई। गवनहु वेगि सुनहु गुरु भाई ॥
चलिभे धर्मदास पुनि तबहीं। रतना आकर भाष्यो जबहीं ॥
लीन्हवस्तु पुनि सकल सम्हारी। धनी पहँ सब जाय सवाँरी ॥
लै साहबके सनमुख राखे। साजु थार अस आयसु भाखे॥

सतगुरु वचन

चौका सवाँरि थार रचि धरेऊ। सब विधान आज्ञा सम करेऊ ॥
साहेबके पुनि चरण पखारा। चरण पखारि आसन बैठारा ॥
आसन बैठिके सुमिरन कीन्हा।नारियर मोरि अंशगहि लीन्हा॥
सत्य सुकृत कहँ मालुम कीन्हा। तब त्रिन तोरिपरवाना दीन्हा ॥
लै नारियर प्रसाद सुख माना। धर्मदास चित हर्ष समाना ॥
प्रेम सहित चरणोदक लीन्हा। मुख महँ डारि मिठाई दीन्हा ॥
सात दण्डवत ततक्षण कीन्हा।हृदयमाहिं गुरु रूप गहि लीन्हा॥
दण्डवत सात धनी कहँ कीन्हा। शब्दसुरतिपुनिचितगहि लीन्हा॥
सात दण्डवत कीन्हा जबहीं। माथे हाथ दियो प्रभु तबहीं ॥
धर्मदास चित हर्ष समाना। उपज्यो हिरदै निरभै ज्ञाना ॥
सद्गुरुकी जब सुरति समानी। विनश्योकरम भरम यमखानी॥
सद्गुरु पद जबहीं अस्थापा। उदित ज्ञान पद रज परतापा॥

धर्मदास वचन

हे साहेब जो आज्ञा कीजे। प्रतिमा मूर्ति काहु कहँ दीजे ॥
गुरुते अधिक कौन है देवा। अब हम करब तुम्हारी सेवा ॥

सद्गुरु सम नहि देखौं आना । पूजि शिला मम जन्म सिराना ॥
कबहुँ न कहेसि मुक्ति उपदेशा । तुम्ह मेटेउ मम काल कलेशा ॥

सतगुरु वचन

धर्मदास यह चित गहि धरहू । प्रीति सो साधु सेवा अनुसरहू ॥
पीतर पातर पूजहिं अन्धा । जो गुरु ज्ञानहीन मति मन्दा ॥
प्रभु कहँ शिलारूप करि देखै । ताकर जीवन जन्म अलेखै ॥
शिला माहि जो सुरति लगावै । तन धन शिलारूप सो पावै ॥
जहाँ आशा तहँ बासा होई । ताकहँ मेटि सकै नहिं कोई ॥
चकित वृषभ ज्ञात बिनु प्रानी । जित जित भेटे नहिं पहिचानी ॥
ज्यों कन्या रह पिता अवासा । कौतुक करहिं पूजहिं मन आशा॥
भयेउ वर कन्या कर व्याहा । तब सब तजेउ मिलेउ जब नाहा ॥
बिना खसम कस आस बुझाई । अस प्रतिमाकी पूजा भाई ॥
जबलौं ज्ञान न हिये समायी । तब लगि धोखा भरम रहे छायी॥
जब गुरु पूरा मिले मतिसारा । उदै ज्ञान रविछपित होय तारा ॥
जब उजियार होय घर भाई । धोखा भरम तब सहज नसाई ॥
ताते गुरुपद सुरति समाओ । सतगुरु ध्यान अभैपद पाओ ॥
गुरु ते अधिक न कोइ ठहरायी । मोक्षपंथ नहिं गुरु बिनु पाई ॥
राम कृष्ण बड तिहुँपुर राजा । तिन गुरु बंदि कीन्ह निज काजा॥
देवंऋषी मुनिवर शुक शेषा । सबहीं बन्दे गुरु चरण सुरेशा ॥
तन धरि करहु न गुरु कहँ मेटा । गुरु गमि सबै साहुपद भेटा ॥
मूर्ख जीव कर गुरुहिं अकेला । बिनु गुरु जगत कालको चेला ॥
गुरु विनु सार ज्ञान नहिं पायी । ज्ञान विना नहिं आपु चिन्हायी॥
जौं हिय आपु आप गमि नाहीं । तौं लगि जीव भव भटका खाहीं॥
सो गुरु सत्य जो सार चिन्हावै । यम बन्धन ते जिव मुकतावै ॥
धर्मनि तुम्ह मम शब्द बिचारो । सरवमई यक ब्रह्म निहारो ॥

१ वृथा किसी लेखामें नहीं २ नारद ।

बोलत घट महँ ब्रह्म अखण्डा। रोमहिं रोम गरजे ब्रह्मण्डा॥
जो बोले सो कबहिं न मरई। गन्दा तन नर सरि गलि जरई॥
ब्रह्म देह धरि जीव कहावै। पाँच स्वाद रति सो दुख पावै॥
निज घर डोरी छूटै भाई। जीव रहे यमफन्द अरुझाई॥
सद्गुरु मिले डोरि घर पावै। पाँचन्ह कर परपञ्च नसावै॥
आपुहि जीव ब्रह्म है भाई। गुरु परिचय बिन लखो न जाई॥
निः अक्षर लख तत्त्व विदेही। सत्यनाम गहि मिलै सुख तेही॥
जौं लहि तन महँ ब्रह्म सुरंगा। तब लगि रहै तन मन बहुरंगा॥
यंत्री ब्रह्म यंत्र तन आही। यंत्री बिनु नहीं यंत्र बजाही॥
परिचै ब्रह्म दया चित लावै। सद्गुरु सेइ परम पद पावै॥
पूजहु सरजिव साधु अमोला। लहहु अभय पद निश्चय लोला॥

छंद–परखि देखहु श्रेष्ठ वानी शास्त्र सुस्मृति मत घना॥
जिन्ह साधु सेवा कीन्ह तिन्ह लीन्ह अभैपद सुखसना॥
योग यज्ञ आरम्भ कीन्हों ते गये पुनि हारि हो॥
गुरु भक्ति अरु सतसंग कीन्हो ते चले कुल तारि हो॥

दोहा–महिमा अनित साधु गुरु, समझहु सन्त सुजान॥
पाहन सेवत भरम वश, बूडे सकल जहान॥

सोरठा–साहब सन्तन पाहिं, जो सेवै सो भव तरै॥
करम भरमके माहिं, जाय विगुरचे जीव बहु॥

धर्मदास वचन–चौपाई

हो साहब तव पद शिर नाऊँ। तब पद परसि परमपद पाऊँ॥
केहि विधि आपन भाग सराही। तुम बरत गहैं भाग पुनि ताही॥
कोधो मैं शुभ करम कमाया। जो सद्गुरु पद दरशन पाया॥

सतगुरु वचन

धर्मनि सुनो आपनी करनी। तुम सुकृत आये जिव तरनी॥
पुरुष पठाये जीवन काजा। तुम पर कला कीन्ह यमराजा॥

तब सत्य पुरुष आज्ञा मोहि कीन्हा। तत क्षण आय पृथ्वी पग दीन्हा
बार अनेक कीन्ह मिलापू । धरम दास नहिं चेतहु आपू ॥
पाहन पूजि ध्यान मन लाये । सद्गुरु शब्द चीन्हि नहिं पाये॥
तीरथ व्रत कीन्ह बहु करनी । रूपदास गुरुकी गहि शरनी ॥
तासु प्रीति तोहि आन जगावा। नाम प्रताप यह परभावा ॥
जो जिव नाम तुम्हारा लैहैं । ताहि जीवको काल न खैहैं ॥
सद्गुरु भक्ति जाहि कुल होई । तरे एकोतर पुरुषा सोई ॥

दूसरी प्रतियोंमें नीचे लिखे अनुसार है
सद्गुरु वचन

धर्मनि सुनु आपनी करनी ।जेहि तोहि मिलेउ शब्द भौतरनी॥
द्वापर अन्त सुपच तुम रहेऊ । तव सुत एक सो मम व्रत गहेऊ॥
तासु प्रीति तोहि आनि जगावा । है परताप नाम परभावा ॥
सद्गुरु भक्ति जाहि कुल होई । तरै एकोतर पछिला सोई ॥
वही संयोग तोहि हम भेटे । तुव सुत प्रीति तार दुख मेटे ॥

---

नोट—एक प्रतिमें तो ऊपरके प्रमाणहो लिखा है किन्तु कई प्रतियोंमें ऊपरकी नौ पंक्तिके बदले नीचेकी पंक्तियां लिखीं हैं। पाठक गण स्वयम् विचार करके जो उत्तम और प्रामाणिक समझे वह रखें और पाठ करें। किन्तु इतना तो अवश्य कहा जायगा कि भिन्न २ ग्रन्थोंमें इन दोनों बातों का प्रमाण मिलता है। और लेखक महात्माओंकी कृपा से पक्षपात और अविद्यावश कबीरपंथके ग्रन्थोंकी जो दुर्दशा हुई है वह साक्षर वर्गसे छिपा नहीं है। ग्रन्थोंकी यही दशा देखकर स्वयम् कबीर पंथ यहांतक वंशधर कहीं कतिपय महंत संत लज्जावश हो किसीके सामने इन ग्रन्थोंका नाम लेते भी सकुचाते हैं। और हृदयसे इन सब ग्रन्थोंपर अश्रद्धा रखते हैं। इस ज्ञान प्रकाश की कई प्रतियां मेरे पास उपस्थित हैं किन्तु किसी भी प्रतिका एक दूसरे के साथ मिलाप नहीं होता है। इसी प्रकारसे लगभग सब ग्रन्थोंकी दशा हो गयी है। जो जो नवीन प्रतियां हैं उन सबोंमें अटपट छन्दोंभंग अर्थभंग और भावभंग आदि दोष पूर्ण रीतिसे भरे हैं। हाँ पहलेकी प्रतियां कुछ शुद्ध हैं उसीके अनुसार जहांतक होता है रखनेका प्रयत्न करता हूं। ऐसा करनेपर भी प्रस्तुत विषयके समान जहां संदिग्ध विषय आजाते हैं वहां दोनों को रख देना उचित जानता हूं। इतना होगा जिनके पास जैसी २ प्रति होगी वे अपनी प्रति—

## सर्वानन्दकी कथा

हे धर्मनि परखहु चितलाऊ। विप्रगौष्टि तोहि वरन सुनाऊ॥

धर्मदास वचन

गहि पद धरमदास हरषाना। कहिये विप्र गोष्टि सहिदाना॥
जस कछु भयी विप्र सो चर्चा। सो स्वामी कहिये मोहिं परचा॥
भिन्न २ के वर्णन कीजै। दास जानि दया प्रभु लीजै॥

सतगुरु वचन

भलधर्मनि सुनहु अब सो कथा। गोष्टिभयी सर्वानन्द से यथा॥
सर्वानन्द विप्र एक रहई। कोइ न ज्ञाता तिनसम अहई॥
सर्वानन्द द्विज जो रहेऊ। तासम ज्ञान अवर नहिं कहेऊ॥
बहुपण्डितसोंगोष्टितिन्हकीन्हा। ज्ञानजीति पोथी बहु लीन्हा॥
काहु न जीते गये सब हारी। सर्वानन्द मन गर्व बहु भारी॥
जिन्ह पण्डितसों चर्चा कीन्हा। ज्ञान जीति पोथी बहु लीन्हा॥
गोष्टि वाद कै निजघर आया। बाहुअभिमानगुमान चितलाया

सर्वानन्द वचन माता प्रति

मातासों तिन वचन उचारा। हो जननी बड़ भाग्य तुम्हारा॥
हम अस पण्डित हैं सुत तोरा। काहु न जीतै गोष्टि सो मोरा॥
सर्बाजीत नाम मम धरहू। अजित तिलक सिर हमरे करहू॥
काहे जननी धन्य पुत्र प्रवीना। सहि ज्ञाता तुम्ह हमहूँ चीन्हा॥

माता वचन

हो सुतएक पूँछौ तोहिपाहीं। कवीरजोलहहिं जीतेहुकि नाहीं॥

---

और श्रद्धाके अनुसार बाचेंगे। इसी प्रकारसे अनुरागसागरकी अनेक प्रतियोंमें भी सुपच सुदर्शनके पिताकाही अनेक जन्मके पश्चात् गुरु धर्मदास साहब बनना लिखा है किन्तु अभी जो इस पुस्तकके साथही छपे हुए अनुरागसागरमें सो बात नहीं है उसका कारण यह है कि वर्तमान आचार्य्य पं० श्री उग्रनाम साहबकी सेवामें जो अनुरागसागरकी प्रति छपानेके लिये मुझको मिली थी उसके अनुसारही यह अनुरागसागर छपा है।

सर्वानन्द वचन

सुनु जननी तब ज्ञान हंताना । काजोलहा संवादमतिजाना ॥
पण्डित कोई जीते मोहि नाहीं । सो जोलहा वादेहि हम पाहीं ॥

माता वचन

सुनु सुततबहि कहब हम ज्ञानी । जबजोलहहि जीतहु बुधवानी॥
जोलहहि जीतिआवहु तुम जबहीं। सर्वाजित कहब तोहि तबहीं ॥
तबहीं तोहि सिरसारव टीका । बिनुजोलहिंजीजीतेबुदिफीका॥

सर्वानन्द वचन

अहो माता कवीर कहाँ रहहीं । कौन भेषबानी का कहहीं ॥
( कहां कबीर रहै हो माता । कौन भेष बाना है ताका )

माता वचन

हो सुत काशी रहत है सोई । अविगत लीला लखै न कोई ॥
( काशी है उनका अस्थाना । तिनकर लीला कहा बखाना ॥
नामकवीर जोलहा कहलावहीं। भक्ति भेष सो हरिगुण गावहीं॥
( जोलहा नाम कबीर बतावै । भक्ति भेष हरिगुन गावै )
जब जनती बहुते धिरकारा । बढ्यो क्रोध भयो विकरारा ॥
कीन्ह प्रणाम चितवत अभिमाना। काशी कहँपुनि कीन्ह पयाना ॥
आये नगर पैसारी कीन्हा । घर पूछिकै चितवन लीन्हा ॥
तहाँ कमाली तहँ कह गयेऊ । पन्थ विप्र तंहि पूछै लियेऊ ॥

सर्वजीत वचन कमाली प्रति

अहो कन्या मोहि कहहु बुझायी । कवीर जोलहाँ कहाँ रहायी ॥

कमाली वचन

कन्या बिहँसि कहेउ एकबानी । को अस घर कवीर गमिजानी॥
त्रिदेवता तिहुँपुर अधिकाई । तिनहु घर कवीर गमिपाई ॥

---

वाद करेगा अर्थात् सर्वाजीत कहता है, कि, जब बड़े पंडितों ने हमको नहीं जीता तो जोलहा हमसे क्या शास्त्रार्थ करेगा ।

सुर नरमुनि औ जहाँ लगि देवा। तेहि घरकी कोइ लखै न भेवा ॥
बीचहि अरुझि रहै यम फांसा । चीन्ह न पावै अविचल वासा॥
घर कवीर जहाँ है भाई । तहाँ त यमराजा गमि पाई ॥
जाहिं दया सद्गुरु की होई । घर कबीर गमि पाव सोई ॥
द्विज चकित कन्या की बाता । यह तो अचरज आहि विधाता॥

सर्वजीत वचन

हो कन्या तुम्ह अचरज भाषा । अबमोहिंकहहुप्रगट अभिलाषा॥
यह कन्या तो निजकर भाषा । धाम कबीर प्रगट कहँ वासा ॥
काशी मांह रहहिं केहि ठाईं । तौन भौन तुम्ह मोहिं बताईं ॥

कमाली वचन

चलुद्विज तो कह भवन दिखाऊँ। कहो सो जाय संदेश सुनाऊँ ॥
तब सर्वानन्द कीन्ह विचारा । जोहका ज्ञान देखों यहिवारा ॥

सर्वानन्द वचन

जल पूरण वर्तन भरि लेहू । लै कबीरके आगे धरिदेहू ॥
कहुहिसोमोहिं सुनावहु आई । हो कन्या यह सुन चित लाई॥
सन्मुख लै वर्तन धरिदेहो । जो कछु कहैं सो हमसे कहिहो॥
कन्या भौन तुरत चलि आई । आवतहीं अस वचन सुनायी ॥
कन्या अस वचन उचरंता । विप्र द्वार ठाढ बुधिवंता ॥
जिन्ह जल पत्रदीन्ह मोहिं पाहीं। वचन संदेस कहा कछु नाहीं ॥
तब हम उठके सुइ एकहेरा । जल मँहडारि दीन्ह तेहिं बेरा ॥
कन्या वरतन देहु तेहि जाई । पाछे हमहुं ताहिं पहँ आई ॥
जाइ द्विजहिं जलवरतन दीन्हा । कन्यहिं विप्र पूछि पूनि लीन्हा॥

सर्वानन्द वचन

अहो कन्याकसकहिनविचारा । भाषिमुनावह सोनिरुवारा ॥

कमाली वचन

कन्या कहै भाषिन कछु नाहीं । सूई एक डारि दीन्हजलमाहीं ॥
पण्डित मूरख मरम न पावा । कहत न बूझै सुई प्रभावा ॥

गुनहीं विप्र बहुत हिय माहीं । पुनि हमहू गै भेटेऊँ ताहीं ॥
कुशल प्रश्न पूछी सनमाना ॥

सर्वानन्द वचन

कहे पण्डित सुई मरम नहिं जाना ॥

कबीर वचन

तब हम कहा सुनो द्विजराई । अम्बु सुईगमि कहो बुझाई ॥
पठयउ जलभरि अस अनुमाने। हम विद्या सम्पूर्ण अघाने ॥
जिमि वरतन जलअम्बु न समाई। तिमिहम विद्या रहे अघाई ॥
भरे महँ का भरै कबीरू । अस तुम्हरे चित सुनमतधीरू॥
तुव हियगमि जानि द्विजराई । तब दीन्ही जल सुई एक नाई ॥
जौ विद्या सम्पूरण हो भाई । तौशब्द हमार बेधि तोहि जाई॥
सुनि पण्डित चित सम्भव आना। हृदय कहै अगमइन ज्ञाना ॥
तेहि क्षण रहेऊँ हिये अनुमानी । प्रातहिं करब गोष्ठि कहानी ॥

छन्द–तेहि दियो आसन आत्म पोषन भाव सहित समर्पेऊ ॥
द्विज कीन्ह भोजन सेज पौढ़े रैनि हिये बहु तर्केऊ ॥
चिन्ता करत बहुत गुनावन वेद विधान ज्ञान अटावहीं ॥
होत प्रात कीजे वाद जो लहहिं जीव युक्ति अटावहीं ॥

साखी–वीतेउ रैन प्रभात औ, करि विचार मन माहँ ॥
सत्यनाम पद सुमिरिकै, पहुँच गये तिहि पाहँ ॥

सोरठा–भयेउ विप्र उठि ठाढ, गयेउ जंगलकी दिसा ॥
करत तरक चित गाढ, बैठे तजे शरीर मल ॥

चौपाई

हम गै रामनाम तेहि कहेऊँ । सुनतहिविप्रहृदय अति दहेऊ॥
भयेउकोप अतिकीन्हप्रसन जल। इच्छायुक्ति नासिकै तजीमल ॥

सर्वानंद वचन

कहै विप्र देख्यो तुव ज्ञाना । फिरिजोलहा तुम्हजातिअयाना॥
ऐसे समय राम तुम्ह बोले । कहा कहो हरि त्रास न डोले ॥

कबीर वचन

अहोविप्र मोहिं कहहु बुझाई । कौनी समै रामलौ लायी ॥

सर्वानंद वचन

कहा सर्वानन्दसुनहु जोलाहा । करम नीति भाषौं तोहि पाहा॥
वेद प्रमान लै माटी पानी । तबमुख शुद्धराम जपुजानी ॥

कबीर वचन

अहो विप्र जौ हम अस करहीं । तौ मुख शुद्ध होय संचरहीं ॥

सर्वानन्द वचन

कहै विप्र है वेद प्रमाना । तब मुख होय पवित्र सुजाना ॥
यह कहिचलिभौ सुरसरितीरा । कर पग मज्जहिं मुखदे नीरा ॥
हम पुनिकर पगु मज्जे लीन्हा । कर पखारि पुनि कुल्ला कीन्हा॥
कुल्ला कीन्ह द्विजवचन प्रमाना । एक कुल्ला तेहिं ऊपर ताना ॥

सर्वानन्द वचन

चिहुँकि उठे द्विज यहका कीन्हा। फिरिजोलहातुम्हजाति कमीना॥

कबीर वचन

हो सर्वानन्दमुख शुचि भयऊ। कुल्ला कीन्ह अशुचि तर गयऊ॥
यहिविधि मुखशुचि तुम भाषा। तुम्हरो कहा हिये महँ राखा ॥
हो सर्वानन्द तुह्म बड ज्ञानी । सत्य नाममर्मअजहूँ नहि जानी॥
रज अरु बीज नरककी देही । सदाअशुचि शुचिनाम सनेही ॥
जो मल तजत प्राण करे गवना। करमुख शुचि हरिजप कवना ॥
समुझि शब्दसो रहु मुखचाहू । उत्तर कछु तब दीन्ह न ताहू ॥
पुनि द्विजमंजनलागु शरीरा । ताम्रपात्र एक लीन्ह कबीरा ॥

गोबर घोरि ताहि भरि लीन्हा । वरतन कर मुख ढाँकन दीन्हा ॥
लै त्रिन रेनु जल मंजै ताही । झलकै अधिक प्रगट मल नाही॥

सर्वानन्द वचन

कहा सर्वानंद सुनहुँ कबीरा । भो सुन्दर वर्तन मति धीरा ॥
केहि कारण अब मांजहु भाई । मल नहि तनिको देइ दिखाई ॥

कबीर वचन

सुनु पंडित नीक तुम्ह कहेऊ । अपर शुचि अन्तर पल रहेऊ ॥
मोंहडा खोलि उलटि दिखलावा । सर्वानन्द देखि घिन पावा ॥
सुनु सर्वानन्द अस नर बाता । अंतर मल प्रगट शुचि गाता ॥
जलमज्ञन तन मैल नशायी । मन मल कहो कौन विधि जायी॥
विन गुरुज्ञान न मन शुचि होई । रैन दिवस तन मज्जै कोई ॥

सर्वानन्द वचन

कहै विप्र मन मल कहु मोहीं ।

कबीर वचन

कहै कबीर कहौं मैं तोहीं ॥
काम क्रोध तृष्णा हंकारा । लोभ मोह मन मैल विकारा ॥
परनिन्दा परघात अनीती । मन रहै अशुचि कुकर्म कुनीती ॥
छन्द–सुनु विप्र सोई पंडित सोई ज्ञाता जो परमोधै पाचहीं ॥
जहँ लगि योगी मुनी मुनीश्वर पांच वशि सब नाचहीं ॥
यहि पाँचके परपञ्च महँ सब परे शिव सनकादिक हो ॥
इन्द्र आदि अरु बहु भेष लूटै विष्णु ओ ब्रह्मादि हो ॥
साखी–असरे पखेरिन्ह लूटिया, को नर कीट पतंग ॥
कहैं कबीर सो ऊबरे, निरख परखि करे संग ॥
सोरठा–करि गुरु पद परतीति, सद्गुरु शब्द निरखत चले ॥
निश्चै पाँचौ जीति, घर अंजोर जागत रहै ॥

चौपाई

सर्वानन्द मगन मन भयऊ । पै उत्तर कछुओ नहि दियऊ ॥
पुनि लागे जल अरपे सोई । चित निश्चल छल एक न होई ॥
हम जल उलिचन लागु करारे । सर्वानन्द पुनि मोहिं निहारे ॥

सर्वानन्द वचन

कहैं सर्वानन्द सुनहु कबीरा । काह कवन उलिच्चन हौ नीरा ॥

कबीर वचन

कहैं कबीर सुनु विप्र सुजाना । फुलवारी गुरु केर सुखाना ॥
तेहि सींचन कहँ पठइन्हि नीरू । सुनु पण्डित अस कहहिं कबीरू ॥

सर्वानन्द वचन

कह सर्वानन्द यह अनरीती । बात अगम भाषहु विपरीती ॥
कहां धौं फुलवारी है भाई । जल सुरसरि महँ रहै समाई ॥

कबीर वचन

तब हम कहा सुनु पण्डित राजू । तुम्ह जल उलिचौ कौने काजू ॥

सर्वानन्द वचन

कहा सर्वानन्द सुनहु गोसाईं । देव पितर जल तृषित अघाई ॥

कबीर वचन

हो सर्वानन्द कहहु यह मोहीं । कहा पितर तुव पूछों तोहीं ॥

सर्वानन्द वचन

कहे सर्वानन्द सुनहु सुजाना । देव पितर मम स्वर्ग अस्थाना ॥

कबीर वचन

कहै कबीर जल ठामहिं रहई । कहहु पितरधौं केहि विधि लहई ॥
कीधौं जलहिं रहै तव पुरखा । पढ़हु वेद यह लखेउ न मुरखा ॥
वेद शास्त्र नहिं करहु विचारा । हरिके कचन आहिं जग सारा ॥
पित्ररूप जनार्दन भाखा । जनार्दन आप सन्तन्ह महँ राखा ॥

हमरे अस मति जानिय भाई। साधु माहिं प्रभु प्रकट रहाई ॥
जहाँ हरी तहाँ पितर अरू देवा। सब होइ तृप्त साधुकी सेवा ॥
कहाँ अन्तै प्रभु खोजौ जाई। हम देखैं प्रभु सन्तन आई ॥
हरिऔ सन्त दोय जनिजानौ। प्रभु कहँ सन्तन्ह माहिं पिछानौ॥
अस परतीति आनहु उरमाहीं। सन्तन्हतजि अन्तै प्रभु नाहीं ॥
जल तरंग जल आहै भाई। हरि हरिजन अस माँहि रहाई॥
जैसे वृक्ष वृक्षकी छाया। अस हरिहरिजनमाहिं रहाया ॥

छन्द–तुलसी अभूषण जीवदायातहाँ आपुहरि निशिदिन रहैं ॥
अरू तहाँ प्रकट निवास प्रभु गुरु साधु सेवा जो गहैं ॥
हैं आपु सर्व भूतमय प्रभु गुप्त प्रगट लेखिये ॥
हरि प्रगट सन्तन्ह गुप्त जग शास्त्र निगम विवेकिये ॥

दोहा–हरिपूरण सब माहिहै, पण्डित करहु विचार ॥
ज्ञान दृष्टि ते परखहू, कहै कबीर विचार ॥

सो०–ज्ञान दिव्य जब होंय, करम गरम तब छूटई ॥
पण्डित गहहु विलोय, देव पितर सब साधु महँ ॥

चौपाई

रहेउ मुग्ध होय कछु नहिं बोला। ज्ञाता शब्द परखि हिय डोला॥
पुनि चौकाकरि शिला विडावा। प्रतिमापूजन कहँ मन लावा ॥
वेद नित्य बहु करहिं विधाना। तहाँ हमहूँ उपाय यकठाना ॥
मुरतिन कहँ पुनि पूछहिंकुशलता। कहै न मूरति कछु मुखबाता ॥
हो पण्डित कस देव तुम्हारा। एकहु बात न सुनहिं हमारा ॥
तब हम पण्डित सो यह कहिया। प्रतिमा पूजन जेहिचितरहिया॥

कबीर वचन

हो पण्डित कस देव तुम्हारा। एकहुबात न सुनहिं हमारा ॥
मेवा मिठाई साजि धरु आगे। खाहिं न मूरति परम अभागे॥

आँख कान मुख नाही स्वासा । केहि बिधिमूरति करहिं गरासा ॥
हो पण्डित जनि सुनत रिसाहू । कहो परमारथ शब्द उछाहू ॥
मूरति सरीजव पूजहू ताहीं । इन्ह ते सृष्टि उहै सुनु आहीं ॥
सरजिव पातीं तोरि तुम आना। सो लै निरजिव पूजा ठाना ॥
हो पंडित तुम आप न चीन्हा । बिनु गुरुज्ञान चक्षुबुधि हीना ॥
जग महँ ब्याह करै जो कोई । आपुते अधिक होय जो सोई ॥
आपुते अधिक मिलै जो नाहीं । तौ निज समन रखो जमिलाई ॥
तुम सर्जीव घट ब्रह्म समायी । कस निर्जीव अबोल मन लायी ॥
सरजीव होय सरजीव कहँ सेवे । ज्ञानी शब्द परखि हिय लेवे ॥
मैं तोहिं कहौ सुनो हो देवा । जिव है अमर अलेक अभेवा ॥
जीव अमर तन विनशै भाई । तन धरि जीव बहुत दुख पाई ॥
अमर नाम जब जीए भेंटैं । जेहिजन्म मरणको संशय मेटैं ॥
अमर नाम खोजहु द्विज राई । जेहि प्रताप यम निकट न आई ॥
अमरनाथ सत्पुरुषको सारा । सत्यपुरुष सत्यलोक मँझारा ॥
अमरलोक सतलोकहि आहीं । तीनि लोक परलैतर जाहीं ॥
कृत्रिम कला नाम धरु जेते । जनमै मरै प्रलयतर भै तेते ॥
जासु चेतना अमर है भाई । तासु नाम अमर सुखदाई ॥
अमर देह सतपुरुषके आही । वो नहिं आवै गर्भके माही ॥
जो सतगुरु पद रहै समायी । ते हंसा सतलोकहीं जायी ॥
अमर नाम सतगुरुते पावै । सतगुरु अस्थिर ध्यान लखावै ॥
भूत भविष्य जपै नर लोई । सत्यनाम विनु मुक्ति न होई ॥
वरतमान महँ सतगुरु सारा । सतगुरु भवतारण कँडिहारा[1] ॥
जागृत स्वप्न सुषुप्ति तुरीया । जागृत आहि संजीवन मुरिया ॥
जागृत रहै तुरिया सो पावै । स्वप्न सुषुप्ति जग भरमावै ॥
पुरुष विदेह तुरिया अस्थाना । जागृत ब्रह्म देहुमों जाना ॥

---

१ करणधारका अपभ्रंश है ।

तीरथ बरत जप पूजा पाती । करम भरम ओजाति कुजाती॥
यह मति स्वप्न सुषुप्ती अहई । जागृत विनु कोई भेद न लहई॥
जागृत ब्रह्म देह धरु सोई । सबसे श्रेष्ठ साधु गुरु होई ॥
बोलता तजिकिमि जड़लो लायी। जड़पषान सेव कहँ पायीं ॥
इतना कहि फिरि हम कहिया ।तिनआपनहाथयकबाहररखिया॥
हो पण्डित यक बूझों तोही । करि विवेक चित कहिये मोही॥
बायूँकर चोका के बाहर । केहि कारण सो कहहु विद्याधर॥

सर्वानन्द वचन

सर्वानन्द कहै अस सूत्रा । बाएँ कर परसे मल मूत्रा ॥
केहि कारणयह कीन्ह निषेधा । चौकाके बाहर कर जिन्दा ॥

कबीर वचन

कहै कबीर यह अचरज बाता । उलटी रीति अपंथ जगजाता॥
तुम्हरे हृदय महँ मल भरिया । मलद्वारे मल त्यागित करिया॥
कर शुचि करै अशुचिमलद्वारा । ताहि निषेध तुम करिडारा ॥
विपरीति कथा कहो कस भाई । राजा पण्डित सब अन्याई ॥
धन्य पंडित धन्य तोर वेदा । कहै कबीर सिद्ध मत भेदा ॥
सुनिवाणी चितभयेउ अँजोरा । लागेउ शब्द प्रेम हित मोरा ॥
नायशिरतिन दुइकर जोरा । जो कछु कहो सो है सब थोरा॥
पुनि जलपान करै तिन चाही । जल माटीके वरतन माही ॥
करवा छुई दीन्ह हम भाई । सर्वानन्द चित रहेउ सकाई ॥
कर करवा लै रह मुख चाहीं । भरम बड़ो जल अँचवै नाहीं ॥

सर्वानंद वचन

कस छुयेउ मम वरतन स्वामी। हम ब्राह्मण तुम यती अनामी ॥

कबीर वचन

हो पंडित यह कहहु बुझायी । उत्तम मध्यम सो कोहै भाई ॥

छन्द-तन अस्थि माँस रुधिर त्वचा सर्व में सुनु एक है ॥
प्रकृति तत्त्व त्रिगुण सबै यह कौन भेद विधेकहै ॥
सो ब्रह्म विप्र सर्वमयी सर्वमयी सुनु एक जो ॥
पढि शास्तर निगम पुराण बहु भरम कहा मंडेक जो ॥
दोहा-कर्म अशुचि जेहि देखिये, सो अस करैं विचार ॥
सन्त सों दुचिताइ किये, कहैं कबीर पुकार ॥
सोरठा-मन महँ रहेउ लजाय, सर्वानन्द अनीति लखि ॥
मम पदशीश नवाय, कहैं धन्य तुम्ह धन्य हो ॥

चौपाई

जब प्रसाद के कीन्ह अरम्भा । तब जमि बालकको देतहै थम्भा ॥
हमहिं कहसि गवनहँ प्रभुगेहा । करब प्रसाद पोषन निज देहा ॥
तासु हृदय बुधिलखिहमपाये । ताते वेगि भवन चलि आये ॥
तब उन अशुच कर्मयक कीन्हा । धर्मदास तुम सुनो प्रवीना ॥
अजा एक पुनि गुप्त मँगायो । गुप्तहि ताकर गला कटायो ॥
निज सेवकन सोकहि समुझावे । अजगा सुधि कबीर नहिं पावे ॥
गुप्त रसोई मासु रँधायेसि । बहुविधि अन्तरपाट दिआयेसि ॥
तब चौका पर बैठे जबहीं । हाड़ एक कर लीन्हेसि तबहीं ॥
तेहि क्षण हमहूँ पहुँचे जायी । मोहिं देखत रहु शीश नवायी ॥

कबीर वचन

तब हम कह्यो सुनो द्विजराई । हमते अन्तर पाट दिवाई ॥
गुप्त अकर्म करै नर कोइ । प्रभु ते नाहिं छिपै पुनि सोई ॥
जगकर्ता तुम सङ्गहि देखै । नाहि न लखै नर वह सब पेखै ॥
पाप पुण्य नहिं छिपै छिपाये । केतिक जो नर राखु दुराये ॥
नरनारी जिमिलहसुन खायी । गुपत खाहिं वह पुनि प्रकटायी ॥
तुम्ह अस श्रुतिधारी सज्ञानी । सो नहिं जलहु पाठ पहिचानी ॥
हाथ हाड मुख थारि हि हाडा । स्वान स्वाँग बन्यो अतिगाढा ॥

धन्य धन्य तुम्ह पण्डित राजू । तुम ब्राह्मण हो का कर काजू ॥
करि अस्नानतिलक शुठि नीको । कांधजनेउ चाल विनुफीको ॥
उत्तम जाति चालु किमि नीचा । छये चमार तब घालहु सींचा ॥
तोहिं औ स्वानसो कस भीना । विप्र चमार चालु तुम्ह हीना ॥
पछिली रीति नहिंसमुझहु भेवा । सनकादिक नारद शुकदेवा ॥
किनअसकर्म कीन्ह कछु मोही । द्विजकी चाल न देखौं तोही ॥
हो पण्डित तोहि दया न आई । कैसे परगल काटे भाई ॥
कर्म कसाई विप्र कहावहु । मानुषदेह तुम वादिगँवावहु ॥
सर्वमयी भाषहु भगवाना । केहि गरकाटेहु कहहु सयाना ॥
जीव दया जेहि हृदये नाई । कहैं कबीर सो आहिं कसाई ॥
गीता भागवत देखु विचारी । जीव दया भाषै बनवारी ॥
जिह्वा स्वाद काज जिव खोवे । जानि बूझि का जनम विगोवे ॥
एक तो भूले गूढ अयाने । तुम्हका दृष्टि देखि बौराने ॥
भूले मूढ जगत्के ज्ञानी । तुमको सृष्टि देखि बौरानी ॥
लाग्यो शब्द सारहियमाहीं । चितगहिपरचे आउ हियमाहीं ॥
तेजि हाँड़ पदगहि अकुलायी ।
मोहि अचेत कहँ लियेउ जगायी ॥

सर्वानन्द वचन

मैं भूलेउँ विद्या अभिमाना । अब हिय बेध्यो शब्द सहिदाना ॥
मुख मंजन करि उठे तुरन्ता । पद गहि कहै तबकला अनन्ता ॥
अबमोहि शरण लेहु तुम स्वामी । कृपा करहु प्रभु अन्तर्यामी ॥
पुस्तक बहुत आनिधरि आगे ।दीन वचनकहि अति अनुरागे ॥
रामानन्द पहँ तेहि लै गयऊ । गुरुकी दीक्षा ताहि दिवयऊ ॥
भक्ति भेष तिन्ह लीन्हेसि भाई । गुरु ढिगकहहि साधु सेवकाई ॥
गुरुते बिदा मांगि दिन एका । जननी पहुँ कहि चले विवेका ॥

धन्य धन्य जननी सुखदायी। जिन्ह यह मोहि उपदेश बतायी॥
जाय भवन निज पहुंचे जबही। धाय जननि पग लागै तबही॥
छन्द—तुम धन्य माता मोहि उधारेउ कहेउ सार उपदेश हो॥
जाय दास कबीर कहि उन्ह हरेउ कालकलेश हो॥
मैं थकेउँ उनते वाद करि वे ब्रह्म अविचल नाथ हो॥
कछु कहत बनै ना कला उनकी भयउ बहुत सनाथ हो॥
साखी-सुनु जननी यह चित दै, हम उनकर शिक्षा लीन्ह॥
मोहि प्रतीति उनसे वैसी, उन्ह गुरु कै दिक्षा दीन्ह॥
सोरठा-भे जन्म शुभ मोर, पहुंचेउ मोक्ष रु मुक्ति घर॥
जननी गुण बड़ तोर, कबहुँ न हृदय तेविसारिहौं॥

इति सर्वानन्दकी गोष्ठी

---

सतगुरु वचन—चौपाई

हे धर्मदास तोहि कहि समुझावा। सर्वानन्द सो जो बनि आवा॥

धर्मदास वचन

धन्यधन्यसाहिबअविगतनाथा। प्रभुमोहिनिशिदिन राखो साथा॥
सुतपरिजन मोहि कछु न सोहाई। धनदारा तिहु लोक बड़ाई॥

सतगुरु वचन

सुनु धर्मनि तुम्ह हमरे साथा। मिलीसुरति तब दुइ नहिं बाता॥
निरखोसुरति नाम लौ लाओ। तनछूटे सत्यलोक सिधाओ॥
जीवन शब्द चेतावहु भाई। चेतहिं जीव पुरुष लौ लाई॥
अङ्ग मोर तुम लेहु सँभारी। जम्बूद्वीप तुम करहु कडिहारी॥
लै जीवन सतभक्ति दृढाओ। तब तुम्ह सत्य पुरुष कहँ भाओ॥
सवालाख लै आरति करई। बोधहु जाहि लोक संचरई॥

धर्मदास वचन

हे साहब मैं बूझों तोही। दयाकरी प्रभु कहिये सब मोही॥
सवालाख नहिं होय जेहि पाहीं। ताहि कहहु बोधबकी नाहीं॥

सतगुरु वचन

धर्मदास जनि ताहि प्रबोधो । सवा लाख अरपै तेहि बोधो ॥

धर्मदास वचन

हो साहेब तब बनिहैं नाहीं । सवा लाख विनु जीव यम खाहीं ॥

सतगुरु वचन

सुनु धर्मनि जौ आधौ होई । करि आरति देउ पान सजोई ॥

धर्मदास वचन

हो साहेब भाषहु कछु थोरा । होय निस्तार जीवन बन्दीछोरा ॥

सतगुरु वचन

धर्मदास जो विन्ती करहू । सवा लाख चौथाई धरहू ॥

धर्मदास वचन

हो समरथ यह दाया कीजै । बोझ थोर जीवनपर दीजै ॥
द्रव्यहीन जिव केहि विधि तरिहैं । यम राजा तेहि भक्षण करिहैं ॥

सतगुरु वचन

धर्मनि चौथाइहु चौथाई । यहि प्रमाण लै आरति लाई ॥

धर्मदास वचन

अहो साहेब कलि जीव अयाना । भाषहु शब्द थोर परवाना ॥
भाषहु थोर तुव पद लौलीना । कलियुग जीव द्रव्यके हीना ॥

सतगुरु वचन

हो धर्मदास मानहु शिर नाई । अब जो कहा सो राखु दृढाई ॥
हम निःइच्छा चाव कछु नाहीं । है मर्याद गुरुसेवा चाहीं ॥
गुरू साधु सेवा नहिं करिहैं । कहो सो जीव कौने विधि तरिहैं ॥
चौथाई कर जो चौथाई । तासु चौथाई मान लेहु भाई ॥

धर्मदास वचन

हो प्रभु मैं चित बहुत सकाऊं । कत साहिब सो उत्तर लाऊं ॥
जाहि न होय शक्ति गुरु एता । सो जिव ऐसहि जाय अचेता ॥
औरौ थोर कहौ प्रभु राई । जेहि ते जीव न यम धरि जाई ॥

सतगुरु वचन

धर्मदास बहु कीन्ह निहोरा । कह्यो सो वचन मान लियो तोरा ॥
यह जो कहेऊँ चौथाई तेहि होई । तासु चौथाई करि आरति सोई ॥

धर्मदास वचन

हो प्रभु कलिके जीव दरिद्रा । जाहि न होइहैं एतिक मुद्रा ॥
सो कैसे तोहिं पैहै स्वामी । कहहु थोर प्रभु अन्तर्यामी ॥

सतगुरु वचन

धर्मदास बहु कियेहु महताई । सवा पाँच मुद्रा लेहु भाई ॥

धर्मदास वचन

हो प्रभु विनती करों बहोरी । जाहि न एतिक किमि बंदी छोरी ॥

सतगु वचन

सुनु धर्मनि दोय नारियर आनै । सवा पाँच आधो लै ठानै ॥

धर्मदास वचन

सवा पांच आधो जेहि नाहीं । हो प्रभु सो जिव कैसत राहीं ॥

सतगुरु वचन

धर्मनि जेहि इतनो नहिं होई । तासु प्रमोधेहु कहौ बिलोई ॥
सवा सेर मिष्टान्न मँगाओ । पान सवा सै उत्तम लाओ ॥
सवा हाथ बस्तर पुनि श्वेता । अग्र पुहुप पूँगी फल चेता ॥
गोघृत शुचि दीपक बारी । बैठि सिंहासन नाम सुधारी ॥
अन्तरध्यान सुरति संचरिये । सत्यसुकृत कहँ मालुम करिये ॥
यम तृण तोरहु वीरा दीजे । शक्ति होय तब आरति कीजे ॥
प्रति सम्बत गुरु आरति चाही । आरति करै शक्ति होय जाही ॥
शक्ति अछतनहि आरति करई । भक्तिहीन बहु संकट परई ॥
माया ठगनी आहि रे भाई । यह काहूके संग न जाई ॥
जिन गुरु साधु सेवा चित लावा । सो माया कहँ जीति सिधावा ॥
जिन माया कहँ जोगयो भाई । नहिं परमारथ स्वारथ लाई ॥
सो जीव अन्त बहुत दुख पावै । भक्तिहीन यम नाच नचावै ॥

धर्मदास वचन

होप्रभु तुम्ह सतपुरुष कृपाला । अन्तर्यामी दीन दयाला ॥
मोहि निश्चय तुवपद विश्वासा । यह माया स्वप्नेकी आशा ॥
जिन्ह जिन्ह माया नेह बढाया । तिन्ह २ निज २ जन्म गँवाया ॥
सवालाख तुम मोहि बतायो । सवा करोड प्रभु आरति लायो ॥
औ जन सम्पति मोर घरआही । अरपौं सभै संतन जो चाही ॥
तुम प्रभु निःइच्छा नहिं चाहो । धन्य समरथ मर्याद दिढाहो ॥
सो जिव पाँवर नरकै जायी । शक्ति अक्षत जो राखु छिपायी ॥
हो प्रभु कछु विनती अनुसारूं । बक्सहु ढिठाई तो वचन उचारूं ॥
सवाशेर भाषहु मिष्टाना । औरौ वस्तु सवासो पाना ॥
हो प्रभु कोई जिव भिक्षुक होई । भीख माँगि तन पाले सोई ॥
सो जिव शब्द तोहार न जानै । कहहु केहि विधि लोक पयानै ॥

सतगुरु वचन

हो धर्मनि जौ अस जिव होई । गुरु निज ओर करै पुनि सोई ॥
इतने विनु जिव रोकि न राखा । छोरी बन्ध नाम तिहि भाखा ॥

धर्मदास वचन

धन्य धन्य तुम दीन दयाला । दया सिन्धु दुखहरण कृपाला ॥
छन्द–तुम धन्य सद्गुरु जीव रक्षक कालमर्दन नाम हौ ॥
शुभ पन्थ भक्ति दिढायऊ प्रभु अमर सुखके धाम हौ ॥
मैं सुदिन आपन तबहिं जान्यो प्रथमपद जब देखेऊं ॥
अब भयेऊँ सुखी निशङ्क यमते सुफल जीवन लेखेऊं ॥
दोहा–विनती एक करौं प्रभु, कृपा करहु जंगदीश ॥
दो सेवक जो तुम मिले, सो तो कहुँ नहिं दीश ॥

सतगुरु वचन

सोरठा–धर्मदास लेहु जानि, हम वो एकै थान है ॥
कहौ शब्द परमान, वो हम में उन माँहि हम ॥

धर्मदास वचन–चौपाई

हो प्रभु उन मोहिं बड़ सुख दीन्हा। तुम भये गुप्त राखि उन्ह लीन्हा॥
विरह सिन्धु बूड़त उन्ह राखा। उन्ह दरशनकी है अभिलाखा॥

सतगुरु वचन

हो धर्मनि हममाँहि उन्ह देखो। उन्हमोहिंद्वितिय भावजनिलेखो॥
स्वामी सेवक एकै प्रना। परिचै सुरति नाहिं विलगाना॥
हो धर्मनि तुमहूँ हम माहीं। मोहिं तोहिं अब अन्तर नाहीं॥
जो सेवक गुरु सुरति खमीरा। जीवनमुक्ति सो आहि कबीरा॥
जेहि सेवक गुरुहीं परशंसा। कहै कबीर सो निर्मल हंसा॥
सेवक कहँ अस चाहिये भाई। गुरुहिं रिझावे आपु गँवाई॥
जिमि नटकला मगन होय खेला। तिमि गुरुभक्ति मगन होय चेला॥
निजतनमन सुख स्वादगँवावै। मन वच कर्म गुरु सेवा लावै॥
निशिवासर सेवा चित देई। गुरुहिं रिझाय परम पद लेई॥
जगपहँ सेवावश भगवाना। धर्मदास यह वचन प्रमाना॥
सेवक सुरति प्रीति वश भाई। शून्य महा वस्ती होय जाई॥
तैसी प्रीति सुरति शुचि सेवा। किमि प्रसन्न नहिं होंहिं गुरुदेवा॥
धर्मनि सो सेवक मोहिं भावै। जो गुरुसाधु सेवा चित लावै॥
सेवा करि नहिं धरै हंकारा। रहै अधीन दास सोइ प्यारा॥
हो धर्मनि तुम्ह असिख अहहू। हम तुम्ह एकसाँच हियगहहू॥

धर्मदास वचन

धर्मदास पद गहे अनुरागा। होप्रभु तुम्ह सोहि कीन्ह सुभागा॥
मैं पामर गुणहीन कुचाली। तुम्ह दीन्हेउ मोहि पन्थमराली॥
हे प्रभु नहि रसना प्रभुताई। अमित रसनगुणवरणि नहिजाई॥
महिमा अमित अहै हो स्वामी। केहि विधि वर्णौं अन्तर्यामी॥
जेहि सेवक पर होय तव दाया। ताके हृदय बुद्धि अस आया॥
पूरण भाग करै सेवकाई। धन्य सेवक जिन्ह गुरुहिं रिझाई॥
मैं सब विधि अयोग्य अविचारी। मोहि अधमहिं तुम लीन्ह उबारी॥

अब यह दया करो सुखदाई । दोउ सेवक के दरशन पाई ॥
बड़ इच्छा उन्ह दरशन केरा । हो प्रभु हम आहीं तुव चेरा ॥

सतगुरु वचन

सुनु धर्म निदरशन तिन्ह पैहौ । लीला देखि थकित होइ जैहौ ॥
आप तीनरूप प्रकट दिखावा । एक तीन होय एक समावा ॥
धरमदास अचरज ह्वै रहेऊ । समिता होय युगल पद गहेऊ ॥
लीला देखि चकित भये दासा ।पुनि विनती एककीन्ह प्रगासा ॥

धर्मदास वचन

हे प्रभु अविगति कला तुम्हारी । हम हैं कीट जीव व्यभिचारी ॥
सत्यलोक तुम्ह वरणि सुनावा । सोभा पुरुष हंसन सतभावा ॥
कैसन देश राज वह आही । चित इच्छा प्रभु देखन ताही ॥

सतगुरु वचन

धर्मदास यह निरघिन काया ।यहितन पुरुष दरश किमि पाया ॥
तन ठीका जब पुरि है आई । सत्यलोक तब देखहु जाई ॥

धर्मदास वचन

धर्मदास गहि चरण निहोरा । हे प्रभु तृषा मिटावहु मोरा ॥
चरण टेकि प्रभु विनवौं तोहीं । पुरुष दरश विनु कल नहिं मोहीं ॥

---

कबीर साहिबका फिर अन्तर्धान हो जाना और धर्मदास
साहबका विकल होना

गुप्त भये प्रभु अविगति ताता । धर्मदास मुख आवै न बाता ॥

धर्मदासविलाप

मैं मतिहीनकुमति मुहिंलागा ।मोहिंसमको जग आहि अभागा ॥
मैं मूरख प्रतीति न कीन्हा । अस साहेब कहँ मैं नहिं चीन्हा ॥
अब कौने विधि दरशन पाऊँ । दरशन विनु मैं प्राण गवाऊँ ॥
चरणोदक बिनु करौं न ग्रासा । तजौं शरीर कहैं धर्मदासा ॥
दिवस सात लगि अन्न न खावा । भजन अखण्ड नाम लौलावा ॥

कबीर साहिबका पांचवीं बार फिर धर्मदासजीको दर्शन देना

सतयें दिन प्रभु प्रकट दिखाये । धर्मदास पद गहि अकुलाये ॥
धरहिं न श्वासमहि निपट अधीरा । परे चरण महँ क्षीण शरीरा ॥
कर गहि साहब तबहिं उठावा । शीश हाथ दै अंक मिलावा ॥
धर्मदास चरणोदक लीन्हा । चरण पखारि आचमन कीन्हा ॥

सतगुरु वचन

हो धर्मदास प्रसाद कछु पाओ । करि प्रसाद तव मोपहँ आओ ॥
छन्द-चित सकुचि धर्मनि विछुरन गुनि सर्वत्र सब हौरा किये ॥
कछु जाइ अलप प्रसाद ततक्षण तृण जल अंचवन लिये ॥
पुनि वेगि समरथ निकट आये सकुचि चित ठाढे भये ॥
अनुशासनो कहु धर्मनि कहा चित चिन्ता भये ॥

धर्मदास वचन

दोहा-धर्मदास कह नाइ शिर, सुनु प्रभु अगम अपार ॥
सात दिवस कहवाँ रहे, कौन दिशा पगु ढार ॥

सतगुरु वचन

सोरठा-धर्मनि सुनु चित लाय, जौन दिशा हम गौन किये ।
कालिंजर पहुँचे जाय, तहाँ पुनि शब्द प्रकाशेउँ ॥

धर्मदास वचन-चौपाई

हो साहेब कै जीव परमोधा । कौन शब्द सो आन समोधा ॥
आरति चौका नरियर मोरचो । कै जीवन यमते तृणतोरचो ॥

सतगुरु वचन

धर्मनि सुनहु ताहि सहिदाना । तहाँके जीवहिं नहिं दीन्ह प्रवाना ॥
आरति चौका तहाँ न कीना । नहीं तहाँ नरियर मोरु प्रवीना ॥
वचन बंध जीवनकहँ कियेऊँ । साखी शब्द रमैनी दियेऊँ ॥
कहि आयेऊँ तहँ वचन ठिकाना । धर्मदास सो न लियेहु प्रवाना ॥

जम्बूद्वीप कलिके कडिहारा । धर्मनि बाहु जीव होयँ पारा ॥
धर्मनि बाँह जिय पहुँचे आयी । देहु दान जेहि आरति लायी ॥
शब्द मानि पुनि मस्तक नाया । पुरुष दरशकै बात जनाया ॥

धर्मदास वचन

हो प्रभु चिन्तागण करु मोरा । पुरुष दरश देउ करों निहोरा ॥

सतगुरु वचन

धर्मदास यह हठ का करहू । मानहुँ शब्द शीश पर धरहू ॥
हमरे गहे पुरुष पहँ जैहा । विना गहे उहां जान न पैहा ॥
हमसों पुरुष सो ऐसी अहई । जल तरंग जल अन्तर रहई ॥
जिमिरवि औ रवि तेजप्रकाशा ।तिमिमाहिंपुरुषअन्तरधर्मदासा॥
हमरी सुरति गहो चितलायी । तबहीं पुरुष पद दर्शन पायी ॥
शिष्य हृदय प्रतीति अस आनै। गुरु औ पुरुष भिन्न नहिं जानै॥
जौ लौं चित्त अस रीति न आवै। तौ लौं जिवनहिं लोकसिधावै॥
धर्मदास चित बहुत सकाने । चरण टेकि बहु विनती ठाने ॥

धर्मदास वचन

हो प्रभु सत्य कहौं तोहिपाहीं । तुम्हते कछु दुचिताई नाहीं ॥
मोरे तुमहिं पुरुष हौ स्वामी । यमते छोड़ावहु अन्तर्यामी ॥
हो प्रभु बरणेउँ लोककी शोभा । ताते आहि मारममलोभा ॥
तव लीला बहुतै हम देखा । पुरुष दरशविनु रहै हिय रेखा ॥
जौ किंकर पर होहु दयाला । तौछिन महँहायगत उरसाला॥

सतगुरु वचन

धर्मनि जौ ऐसो चित कीन्हा । तनुतजि चलौ लोकप्रबीना ॥
राखेउ तन गौने लै हंसा । तहँ पहुँचे जहँ कालै संसा ॥
लवन एक महँ पहुँचे जाई । अविगति लीला लखै को भाई॥
शोभालोक देखि सुख माना । उदितअसंख्य शशिऔभाना॥

जितदेखिये जगमगझलकाहीं । देखत छकित भये हियमाहीं ॥
द्वारपाल हंस जो रहिया । ता महँ एक हंसहिं असकहिया ॥
एहि संसहिं तुम्हजाहु लिवाई । पुरुष दरश दे आनहुँ भाई ॥
चले लिवाय पुरुष पहँ जबहीं । झझकि हंस बहु आये तबहीं ॥
करत कोलाहल मंगल चारा । शोभा अद्भुत अंग अपारा ॥
हंसन शोभा कहाँ बताऊँ । कछुक प्रभाव सो वरणि सुनाऊँ ॥
रतनमाल ग्रिव शोभित हंसा । और मणिमाल किमि करौं प्रशंसा ॥
जगमग देह हंसन करहीं । अमर चीर बहु शोभा धरहीं ॥
उडुराख चिकुर शोभाछबि आछे । रविकाकरतार रोम छबिकाछे ॥
हंसन्हभालशोभाकिमि कहऊँ । षोडस चन्द्रभाल छबि लहऊँ ॥
हंस कान्ति प्रतिरोम प्रकाशा । हीरामणी उदित रोमासा ॥
कोटिकविधुहंसन छबिमोहा । देह घ्राण शोभा अमी गिरोहा ॥
षोडश रवि हँसन छबि मोहा । देह घ्राण शुभ अमृत सोहा ॥
कञ्चनकलशजडितमणि लोना । रतन थार आरतिमहिसोना ॥
हंस मगन शब्द मुख उचारा । क्रीडाविनोद रतन मणियारा ॥
सुरति हंस कहँ आगे लीन्हा । नृत करत चले हंस प्रवीणा ॥
सुरति हंस अघ्रानि अघाने । पुरुष सकल देखत हरषाने ॥
सिंघासन छबि देखत मनमोहा । अद्भुत अमित कलातन सोहा ॥
पुरुष राम एक कला अनन्ता । वरणत कोउ न पावै अन्ता ॥
एक रोम रवि शशि कोटीशा । नखकोटिन्हविधुमलिनरवीशा ॥
पुरुष प्रकाश सतलोक अँजोरा । तहां न पहुँच निरञ्जन चोरा ॥
पुरुष कबीर देखा एक भाई । धर्मदास पुनि रहे लजाई ॥
पुरुष दरश करि आयेउ तहँवा । प्रथम कबीर बैठे रहे जहँवा ॥
इहां कबीर बैठे पुनि देखा । कला पुरुष तन अचरजपेखा ॥
का अजगुत कीन्हेऊँ भाई । उहां मोहिं प्रतीति न आई ॥

कवीर पुरुष यक उहाँ छिपाये । सत्य पुरुष जग दास कहाये ॥
धाये चरण गहु अति सकुचायी। हे प्रभु हम परिचै अब पायी॥
यह शोभा कस उहाँ छिपावा ।कस नहिंजगमहँप्रगट दिखावा॥

सतगुरु वचन

धर्मनि जोवहि छबि जग जाऊ। तो होंय विकल निरञ्जन राऊ॥
सब जीव तब मोहि लौलावै । उजरै भौ सब लोकहि आवै ॥
ताते गुप्त राखो जग भाऊ। शब्द सँदेश जीवन समुझाऊ॥
शब्दपरखि चीन्हैं मोहिं कोई । गहि प्रतीति घर पहुंचे सोई ॥
कहै कवीर सुनहुँ सुकृति हंसा । दरश पुरुष मिटेहु चित मंसा॥
अब तुम्ह वेगि चला संसारा । जिवहि चेतावहु करहु पुकारा॥

धर्मदास वचन

हो साहेब अब उहाँ न जाही । यहसुखघरतजि कहां झुराही॥
वहि यम देश अपरबल काला । नहिं जानौंधौंमति होयवेहाला॥

सतगुरु वचन

धर्मदास तोहि चिन्ता नाहीं । तुमरे सङ्ग हम सदा रहाहीं ॥
तुम देखो सत्य लोक प्रभाऊ । हंसन कहो संदेश सुनाऊ ॥

धर्मदास वचन

मानेउँ शब्द शीश पर राखा । लैचलु अंश सुकृत तब भाषा ॥
छिन एक महँजगहीं चलि आये। पैठि देह धर्मनि अकुलाये ॥
परेउ चरण गहि साहब केरा । करि बिनती पदगहि मुख हेरा॥

छन्द-धन्य साहेब सतगुरु तुम सत्य पुरुष अनादि हो ॥
तुवअमितलीला कोलखैप्रभु सकल लोकके तुम आदिहो॥
त्रिदेव मुनि सनकादि नारद कोईना लखि तुम पावई ॥
तेहि हंस भाग सराहिये जो नाम तुव लौ लावई ॥

दोहा-निर्गुण सर्गुण आदिहौं, अविगति अगम अथाह ॥
गुप्त भये जग महँ फिरो, को तुव पावै थाह ॥

सोरठा-मोहि परचै तुम दीन्ह, ताते चीन्हेउँ तोहि प्रभु ॥
भये चरण लौलीन, दुचिताई सकलो गयी ॥

चौपाई

कीट ते भृंङ्ग मोहि प्रभुकीन्हा । निश्चलरंग आपनो दीन्हा ॥
जिमिनिलते जग होय फुलेला । तिमिमोहिं भयोसमर्थपदमेला॥
पारस परसि लोहा जिमिहेमा । तिमि मोहिं भयउनाथव्रतनेमा॥
अगर परसि जिमिभयोसुवासा । जल प्रसंग बसन मल नासा ॥
सनपट शुद्ध सूत कहै न कोई । प्रभुगुण लखित शिरनावै लोई ॥
हे प्रभु तिमि माहिं भयउ अनंदा। जिमिचकोरहरहितलखिचंदा ॥
जनम मरण भौ संशय नाशी । तवपद सुखनिधान सुखराशी ॥
हे प्रभु अस शिख दीजे मोहीं । एकौ पल न विसारौं तोहीं ॥

सतगुरु वचन

जस मनसा तस आगे आवै । कहै कवीर ईजा नहिं पावै ॥
धर्मनि गुरुहिं दोष देइ प्रानी । आपु करहिंनर आपनहानी ॥
जो गुरु वचन कहै चित लाई । ब्यापै नाहिं ताहि दुचिताई ॥
जो गुरुचरन शिष्य संयोगा । उपजे ज्ञान न नासै भ्रम रोगा ॥
जिमि सौदागर साहु मिलाहीं । पूँजि जोग बहु लाभ बढ़ाहीं ॥
सतगुरु साहु सन्त सौदागर । सजीशब्द गुरुयोगा बहुनागर॥
जो गुरु शब्द कहै विश्वासा । गुरु पूरा पुरवहिं आसा ॥
विनु विश्वास पावै दुखचेला । गहै न निश्चय हृदय गुरुमेला॥
सुत नारी तन मन धन जाई । तन जोरहै न प्रीति दृढाई ॥
शूरा हंस सोई कहलावै । अग्नि रहै तो शोक न लावै ॥
जो विचलै तौ यम धरि खायी । अड़ा रहै तौ निज घर जायी ॥

काल कसौटी ठहरै हंसा । कहैं कबीर सोइ सुकृत अंसा ॥
सत्य असत्य जानि किमि जायी। कादर विचलै सूर रहायी ॥
धर्मदास तोहि बहुत बुझावा । रहनि गहनि सतपन्थ बतावा ॥
बहुते बेर सिखायो तोही । देखौ अयश न पावै मोही ॥
बहुरि कोटि शिखापन तोहीं । देखहुँ कोइ हंसै ना मोहीं ॥

रहनी वर्णन

अभ्यागत जो आवे द्वारा । सन्त असन्त सोहि विचारा ॥
दीजै भिक्षा हरष सो ताहीं । एहि सम योग पुण्य तप नाहीं ॥

धर्मदास वचन

हे साहेब विनती एक करऊं । समरथ जानि पट उतर धरऊं ॥
हे प्रभु रंक होय कोइ दासा । जाय अभ्यागत ताहि अवासा॥
ताके घर कछु सुकृत न होई । सो कस करै कहो प्रभु सोई ॥
सो कस करै कहो प्रभुराई । केहि प्रकार तेहि सेवा लाई ॥

सतगुरु वचन

सुनु धर्मनि पथ नीती भाखे । शक्ति अछत पुनि गोय न राखे ॥
तन बस्तर लै गोय न भाई । जब अशक्त तब काह कराई ॥
आप खाय तब ताहि खिआवै । नहिं तो यक सम समय गँवावै ॥
तीरथ व्रत जप तप बहु करमा । काहे परै याहि निज धरमा ॥
कोटि तीर्थ भ्रमर फल पावै । सो फल भरहीं साधु जिवांवै ॥
मानो गुरु साधुनका बानी । कह कबीर शब्द सहिदानी ॥
कहै कबीर सत्यगुरू औ साधू । सत्यनाम गहि मिटै उपाधू ॥
सत्यकवीर सत्यगुरु औ साधू । सत्यनाम कहँ सत्य अवराधू ॥
सत्य नाम गहि तजे दुचिताई । कहैं कवीर हम ताहि सहाई ॥
सत्यनाम कहँ चीन्हैं सोई । कहैं कवीर गुरु गम जेहि होई ॥
को हम को तुम को है अनन्ता । कहैं कबीर यह बूझैं सन्ता ॥

सोइ हम सोइ तुम सोइ अनन्ता । कहैं कबीर गुरु पारस सन्ता ॥
सन्त चेतु चित सतगुरु ध्याना । कहैं कबीर सद्गुरु परमाना ॥
सतगुरु शब्द ज्ञान गुरु पुंजा । कहैं कबीर लखु मोहनकुंजा ॥
कुंज मोहि मोहन ठहरावै । कहैं कबीर सोइ सन्त कहावै ॥
सन्त कहाय जो सोधै आपू । कहैं कबीर तेहि पुण्य न पापू ॥
पुण्य पाप नहिं मान गुमाना । कहैं कबीर सो लोक समाना ॥
जिन्दा मुरदा चीन्हैं जीवा । कहैं कबीर सतगुरु निज पीवा ॥
मुरदा जग जिन्दा सतनामा । कहैं कबीर सतगुरु निज धामा ॥
यक जग जीतै यक जग हारै । कहैं कबीर गुरु काज सवाँरै ॥

धर्मदास वचन

कौन जग जीतै कौन जग हारै । कहौ कौन विधि काज सवाँरै ॥

सतगुरु वचन

इन्द्रिन जीते साधुन सो हारै । कहैं कबीर सतगुरु निस्तारै ॥
सतगुरु सो सत्यनाम लखावै । सतपुर लै हंसन पहुँचावै ॥
सत्यनाम सतगुरु तत भाखा । शब्द ग्रन्थ कथि गुप्तहिं राखा ॥
सत्य शब्द गुरु गम पहिचाना । विनु जिभ्या करु अमृत पाना ॥
सत्य सुरति अम्मर सुख चीरा । अमी अंकका साजहु वीरा ॥
सोहं ओहं जावन वीरू । धर्मदास सो कहै कबीरू ॥
धरिहौ गोय कहिहौ जिन काहीं । नाद सुशील लखैहो ताहीं ॥
प्रथमहि नाद विन्द तब कीन्हा । मुक्ति पन्थ सो नाद गहि चीन्हा ॥
नाद सो शब्द पुरुष मुख बानी । गुरुमुख शब्द सो नाद बखानी ॥
पुरुष नाद सुत षोडश अहई । नाद पुत्र शिष्य शब्द जो लहई ॥
शब्द प्रतीति गहै जो हंसा । शब्द चालु जेहिसे मम बंशा ॥
शब्द चाल नाद दृढ़ गहई । यम शिर पगु देइ सो निस्तरई ॥
सुमिरण दया सेवा चित धरई । सत्यनाम गहि हंसा तरई ॥

बिन्दो होय शब्द मम धावैं । नादबिन्दु दोउ मोहिं पहँ आवै ॥
नाद सखा जेहि अहंविगुरचे । अहं रहित सो निज घर पहुँचे ॥
केते पढि गुणि नर्कहिं जैहैं । केते पढ़ि गणि लोक सिधैहैं ॥

धर्मदास वचन

हो सद्गुरु मैं तुम्हारो दासा । विनती करौं खसम तुव पासा ॥
पढ़े गुणै दुइदिशि किमि जाहीं । सो चरित्र वरणों मोहिं पाहीं ॥

सतगुरु वचन

सुनु धर्मनि बहु पढ़ि अरथावै । शब्द कहै सो चालु न पावै ॥
पढ़ि गुणि नीति विचारै नाही । अस पढ़ुआ सुनु नरकहिं जाही ॥
जिन्ह पढिशब्दचाल गहिभाई । सुनु धर्मनि सो लोकहि जाई ॥
छन्द-जो कथत बकतौ तरै जग तो जग सबै तरि जायहो ॥
तजि तख्त सुलतान उबैरै नृप क्यों बनजाय हो ॥
तातें कहूँ निज समुझ पापी शब्द पढि सतपद गहै ॥
जो सत्य पद निरखत चलै तो नहिं फेरि जो नीवहै ॥
दोहा-सत्यनाम सुमिरण करै, सतगुरुपद निज ध्यान ॥
आतम पूजा जीव दया, लहै सो मुक्ति अमान ॥
सोरठा-सद्गुरु कहै पुकारी, चाल चलै पथ निरखिके ॥
हंस होय भव पारि, शब्द गहन सद्गुरु कृपा ॥

चौपाई

गुप्त भयो कहि शब्द प्रमाना । कालिंजर पुनि आय तुलाना ॥
कहैं कालिंजर विनै बडाई । देहु पान मोहिं अहो गुसाई ॥
धर्मदास कहै देउँ परवाना । साहिब मोहि कह्यो सहिदाना ॥
कह कालिंजर सुनहुँ गोसाईं । का सहिदान आहि तुव ठाईं ॥
तब सहिदान कहा सुख बासा । सतगुरु बोल कीन्ह परगासा ॥
समय संयोग बोल सो कहेऊ । सुनि भौमौन मुग्ुध होई रहेऊ ॥
जात कमीना सुनत परायी । केहि कारण आरती लायी ॥

औरहिं और बुझा उन्ह भाई । पान नलीन्ह वैसहिं चलिजाईं ॥
तेहि गौनत प्रभु प्रगटे तुरन्ता । कला अमित को पावै अन्ता॥
धर्मदास गहि चरणशिर नायी । युगकर जोरि ठाढ़ भौ जायी ॥
बैठे पुनि आज्ञा प्रभु पाई । विमुख जीव कर बात जनाई ॥

धर्मदास वचन

प्रभु विरतन्त कहो अब ताहीं । वह पान मुक्तिके लीन्हेसि नाहीं॥
मैं भाषेऊँ तुमरी सहि दाना । दुर्मति बूझेसि कछु आना ॥

सतगुरु वचन

धर्मनि उन्ह जोन पान न लीन्हे । परिहैं कालमुख जायकमीने ॥
तजि रणभूमि टरै जो भाई । तेहि जीवहिं निश्चै यम ख ई ॥
वह यम चोर कालके हंसा । धर्मराय धरि करै विध्वंसा ॥
धर्मदास तुम सुनहु हमारा । निशिदिन रहिहो नाम अधारा॥
अब तुम आपन करहु विचारा ।करिहहु निशि दिन ज्ञान विचारा॥
दुष्ट मित्र सों प्रेम बढै हो । भक्ति भजन आनन्द रहै हौ ॥

अर्थ—दुष्ट और मित्र दोनोंमें किसीसे राग द्वेष न रखकर समान प्रीति रखना सबकी भलाई चाहन किसीकी बुराई नहीं चाहना ।।

जो सुख होय तो जनि इतरैहो । दुख परे तो जनि विललैहो ॥
संकट महँ बहु साहब कीजे । निश्चल नाम ध्यान चित दीजै॥
चित निश्चन्त रहै जो भाई । तो तेहि संकट जाय नसाई ॥
यह मम देश दोउ है भाई । दुख सुख तन धरि चाखै आई॥
चहिये साधु न नहिं चित्त डोलावैं । दृढ प्रतीतिनाम गुरु गावैं ॥
कच्चे जीवन कर यह लेखा । संकट परे विकल हिय पेखा ॥
सुख सम्पति धन पुत्र सगाई । यह सब सपना आहै भाई ॥
धर्मनि शूरा हंस जो होई । गन न दुख सुख एकौ सोई ॥
अरु घर झगरा निवेरेहु भाई । गुरु गमहि पन्थ कहौं उपाई ॥

पाँचौ कै परपञ्च मिटावै । पांच भूतकै स्वाद गँवावै ॥
नासा श्रवण रसना चक्षु इन्द्री । पांचौं चोर काल मतिमन्द्री ॥
पाँचहु स्वाद विषयकी पूजा । गुरुगमिपन्थ परखहिं तेहि दूजा ॥
चक्षु स्वाद रस रूप सलोना । राँचि रहैं जगअकिलविलोना ॥
साधु चक्षु राते सतरूपा । गुरुपदनिरखत अकिलि अनूपा ॥
श्रवण स्वाद रस गीत कबीता । मगन होई सुनु रसमत चीता ॥
सन्तन श्रवण स्वाद गुरु बानी । शब्द भजन पद सार समानी ॥
नासा वास सुवास अघाहीं । कुबास वासके निकटन जाहीं ॥
सन्त न लागे वास कुवासा । नाम बिदेह जपै निःस्वासा ॥
रसना स्वादषटरस मधुभोजन । तजै विलोना सुरस परोजन ॥
सन्त न स्वाद नाम रससारा । षटरस व्यंजन छार असारा ॥
निःइच्छित जो पहुँचे आई । सुरस व्यंजन प्रीति सोपाई ॥
इन्द्री स्वादु काम रति नेहा । नारी भोग रतन तजि देहा ॥
सत्य सुरति अनुराग समावे । निशिदिन प्रेमभक्ति चितलावे ॥
पांचौ आहिं प्रबल घट माहीं । मन राजा पांचौ कर नाहीं ॥
सत्यगुरु ज्ञान मन धरि राखे । पांच चोरसाधि सत्यसुखमाखे ॥
छन्द–धरि मनहिं बाँधहु पाँच साधहु सारसतगुरु ज्ञानते ॥
यह देशहै यमराजको तरै सो विदेही नामते ॥
सतनामव्रतगहिशब्द हियधरि करहु सेवा तासु हो ॥
तत्त्वध्यान सतपदरूप स्थित होय अमर लोकैनिवासुहो ॥
दोहा–गुरु मुखशब्द प्रतीति करि, हर्ष शोक विसराय ॥
दया क्षमा सतशील गहि, अमरलोक को जाय ॥
सोरठा–वर्ण्यो ज्ञान प्रकार, धर्मदास सम्बोध मत ॥
कहै कवीर कवीर, जेहि मम शब्द प्रतीति दृढ ॥
इति श्री धर्मदास बोध ज्ञान प्रकाश समाप्तः ॥
इति श्री बोधसागरे धर्मदास बोधज्ञानप्रकाश वर्णनो नामप्रथमस्तरंगः ॥

इति श्रीधर्मदासबोध

**ग्रन्थ ज्ञानप्रकाश समाप्त**

भारतपथिक कबीरपंथी-

स्वामी श्रीयुगलानन्दजीद्वारा संशोधित

# श्री-अमरसिंह बोध

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन
बम्बई

सत्य कबीराय नमः

# बोधसागर

## द्वितीयस्तरंगः

# अमरसिंहबोध

★

धर्मदास वचन—चौपाई

धर्मदास उठि ठाढे भयऊ। दोउकर जोरि सो विनतीकियऊ॥
जुग जुग जीव चेताये ज्ञानी। कालफांस ते छुडाये आनी॥
युगकमोद कीना जिव काजा। सोई तुम भाषि कहो निज साजा॥
यमराजाते भये छुटारा। निर्भय हंसालोक सिधारा॥

सतगुरु वचन

धर्मदास मैं कहि समुझाऊँ। युगकमोदकी खबर सुनाऊँ॥
जब हम हते पुरुषमें पाँही। तबकी बात कहू सब तोही॥
युग परवान चाकरी भयऊ। युग जुग पंथपसारा कियऊ॥
अर्ब खर्बजिव असंख्य अपारा। सब उबार लाये पुरुष दरबारा॥
रहे सब हंस पुरुषके पासा। करते कुतूहल लोकनिवासा॥
भूख प्यास निद्रा नहिं भाई। पुरुष ध्यानमें रहे समाई॥
पुरुष दयाल दयाकरि भारी। षोडश रवि हंस उजियारी॥
सेज पुष्प बनी अति भावन। सुख विनोद सब लोकसुहावन॥
बैठे पुरुष सेजपर आयी। तत्क्षन ज्ञानी लिये बुलाई॥
ज्ञानी तुम जाओ संसारा। जाइ करो अब हंस उबारा॥
सिंगलद्वीप अमरपुर गामा। अमरसिंह राजा करनामा॥
ताको अबै चेताओं जायी। चेतन अंश जग रहे भुलायी॥

ज्ञानी वचन

ज्ञानी वचन कहै कर जोरी । सत्यपुरुष एक बिनती मोरी ॥
पुरुष मोहिं पठवो संसारा । कौन नामते हंस उबारा ॥
साखी–कौन नाम हंसन कहँ, कौन देऊँ कडिहार ॥
कौन नाम नारिन कहँ, जाते होई उबार ॥

चौपाई

कालफाँस जासे कटि जावे । सहजे हंसलोक महँ आवे ॥
इतना बोल पुरुषसे पाऊँ । तब भवसागरमें चलिजाऊँ ॥

पुरुष वचन

अहो ज्ञानी बचन सुनि लेहू । मान सिखापन शिरपर देहू ॥
सब राह दिखाऊँ मैं तोही । उबरे हंसा अधिकारी सोई ॥
साखी–बालककू बीरा कह्यो, तिरिया कुटिल सनेह ॥
सुरतवंत को यह शब्द है; पुरुष नाम निज लेह ॥

चौपाई

पुरुष हुकम दीना तेहि बारा । ज्ञानी वेग जाओ संसारा ॥
मूलनाम परवाना देहू । सकल जीव अपना करि लेहू ॥
ज्ञानी चले लोकते जबहीं । धर्म धीर मिले पुनि तबहीं ॥
देखत धर्मरायमनहिं संकाना । आपन हानि मनहिं अनुमाना ॥
ज्ञानी तुम सुनो वचन हमारा । काहेको आये तुम संसारा ॥
चौदा भुवन राज लिख दीना । अब काहेको चितवन कीना ॥
आहार यही हम कहँ दियऊ । पुरुषदया अब काहेकु कियऊ ॥
राज हमारो है संसारी । सुखदुःख जीवन देहुँ अपारी ॥
ब्रह्मा विष्णु महेश कहाई । मेरे अंस जगमाँहि रहाई ॥
हमतो रहही शून्य मँझारी । गम नहिं पावे कोइ हमारी ॥
राज भार सब उनको दियेऊ । हम न्यारे होइ देखत रहेऊ ॥

ज्ञानी तुम जाओ संसारा । वचन एक अब सुनो हमारा ॥
पुरुष बचनकी तुम कहँ लाजा । ता पाछे करियो जिव काजा ॥

ज्ञानी वचन

सुनहु वचन निरंजन राई । सबै बात मैं कहूं समुझाई ॥
कोटि ज्ञान हम तुम कहँ हारा । द्वादश पंथ चले संसारा ॥
ताते चलिहै आहार तुमारा । इतना वचन धर्म कहँ हारा ॥
धर्मदास सुनियो चित लाई । धर्मधीर ऐसा ठहराई ॥
तब हम आये यहि संसारा । जीवनकाज पृथ्वी पगु धारा ॥
अमरपुरी एक नगर रहाई । सिंगलद्वीपके मांहि बसाई ॥
तहाँ आई हम कीन्ह पसारा । पहुँचे रायके महल मँझारा ॥
षोडश रविकी ज्योति पसारा । महलन मांही भयो उजियारा ॥
अमरसिंह राजाको नामा । लागी कचहरी बहु विधि धामा॥
देख प्रकाश उठे तब राई । नृप धाये महलनमें आई ॥
आये महलमें सतगुरु पासा । सतगुरु चरन गहे विश्वासा ॥

अमरसिंह वचन

अहो संत एक विनती करिहो । पूछत वचन क्रोध जनि धरिहो ॥
कै तुम तीन देवनमें कोई । कै परब्रह्म तुम आये सोई ॥
और गम्य नहिं चलत हमारी । सो तुम वचन कहो निरवारी ॥

सतगुरु वचन

साखी–हम आये सतलोकसे, जीवन करन उबार ॥
कालफांस निवारके, ले जाऊँ लोक मँझार ॥

चौपाई

यह कहि गुप्त भये प्रभु राई । राव परे धरनी मुरझाई ॥
बिकल भये मुख आवे न बानी । तलफत मीन जैसे बिन पानी ॥
सतगुरु बिन तलफत नृप तैसे । स्वाँति बुंद बिन चात्रिक जैसे॥

छन्द चर्चरी

मोहि कहा जानि दरशन दिये प्रभु गुप्त पुनि काहे भये ॥
दृग पलक देत बिलंब नाहीं कवन दिशि कहँवा गये ॥
हमहीं अभागी कीन्ह सतगुरु दरस देके छिप रहे ॥
कैसे धरूँ मन धीर तबलग दरश तुम ना देखिहे ॥

सोरठा–भये अभाग मुहि जान, दरश देहके छिप रहे ॥
नहीं करूँ जलपान, जबलग दरश न देखहूँ ॥

चौपाई

दिवस पाँच तब ऐसे बीता । निपट राय उर बाढ़ी चींता ॥
सुनी खबर तब पंथ चलि आये । तिन राजाको आन उठाये ॥
ले झारी मुख मंजन कीना । संत चरण चितवहु विधि दीना ॥
सतगुरु दरश दिये तेहि वारा । महल मांहि कीनो उजियारा ॥
तहां जाइ जब ठाडे भयऊ । राजा चरण धाय तब गह्यऊ ॥
हमहि सनाथ किये प्रभुराई । हम निज सेवक तुमरे आई ॥

सतगुरु वचन

ज्ञानी कहे सुनो हो राई । यमफांसीते लेहों छुडाई ॥
सब जग परचो कालके फंदा । बहुविधि तिनको बांधे बंधा ॥
नेम धर्म कुल कर्म लगाये । ये फंदा सब जगत फँदाये ॥
जो कोइ हंसा होय सुभागी । काल फांसते बचिहै भागी ॥
धर्मकाल ताको नहिं पावे । सुरति निरति ले शब्द समावे ॥

साखी–शब्द सुरत युग बांधई, कर्म भर्म दे छोर ॥
हंस गति जब आवई, कहा करे यम चोर ॥

अमरसिंह वचन–चौपाई

हे साहेब जो आयेसु पाऊँ । तो रानीको वचन सुनाऊँ ॥
अबके सतगुरु जाहु दुराई । तो हमकूँ नहिं जीवत पाई ॥

सतगुरु वचन

सतगुरु कहे सुनो हो राई। भक्ति प्रेम बस कतहुँ न जाई॥
तत्क्षण राजा चलिभे जबहीं। सात खण्डपर पहुँचे तबहीं॥
सुस्वरकला रानि तहँ रहेऊ। तासों राय वचन एक कहेऊ॥
सुनो रानी एक वचन हमारा। अपने जीवका करो उबारा॥
साखी-राजा रानीसों कहै, मानो वचन हमार॥
साहेब आये लोकसे, चरन सोगहो सम्हार॥

रानी वचन-चौपाई

रानी कहै सुनो हो राजा। विलख वदनआयेकेहि काजा॥
केहि कारन आये तुम खरारी। हमसे वचन कहो निरुवारी॥

राजा वचन

रानी तुमसों कहूँ हवाला। जो सतगुरुने दीनो प्याला॥
एक दिना लीला अस कियेऊ। महलनमें उजियारा भयेऊ॥
तब हम तत्क्षण धाये जबहीं। महलन बीच पहूँचे तबहीं॥
दरशन पाये भयउ अनन्दा। बारहिं बार चरण गहि वंदा॥
पलक ओट प्रभु गये विलायी। चार दिवस परे धरनि मुरझाई॥
प्रोहित विप्र सब आये जबहीं। कहे समुझाइ हमकूँ तबहीं॥
बनिया मोदी सगरे धाये। छीया सेठ चौधरी आये॥
भाई भतीजे परजा धाई। काहे राय मरत हौ भाई॥
सबे मिलि आनिउठाये जबहीं। ले झारी भर दीना तबहीं॥
ले झारी मुख धोवंत भयऊ। साहेब दरश बेगि तब दयऊ॥
दरश पाय मैं भयउ सनाथा। रानी सत्य कहत हौं बाता॥

रानी वचन

राजा बात कहत हौं तोही। सत्य कहूँ जो मानो मोही॥
अब तुम बात कहत हो नीका। तेहि पाछे पुनि लागे नहिं फीका॥

राजा बात कहीहौ आछी । पाछे जगमें होय न हाँसी ॥

राजा वचन

रानी मानो कहा हमारा । साहेब चरन बेगि चितधारा ॥
धन जौबन तनरंग पतंगा । छिनमें छार होत है अंगा ॥
तुरत मान जो रानी लीना । संत दरश कामिनि जो कीना ॥
हाथ नारियल आरति लीना । सात खंडसे उतर पग दीना ॥
सात सहेली संग लगी जबहीं । स्वरकला पुनि उतरी तबहीं ॥
सब उमराव बैठे दरबारा । रानी आइ बाहिर पग धारा ॥
तब उमराव उठे भहराई । स्वरकला कस अचरज लाई ॥
रानी कबहु न देखी भाई । सो रानी कस बाहेर आई ॥
गजमोतिन से पूरे मांगा । लाल हिरा पुनि दमके आंगा ॥
आधा मस्तक कीन्ह उघारा । मानिक दमके झलाहलपारा ॥
तब रानी सतगुरु पहँ आई । नारियल भेट जो आनचढ़ाई ॥
रानी थाल हाथमें लियऊ । करत निछावर आरति कियऊ॥

साखी-रानी ठाढ़ि मैदानमें, सुनो संत धर्मदास ॥
सुरजकिरन अरु रानिको, एकही भयो प्रकाश॥

चौपाई

लगि चकाचौंधि अधिक पुनिजबहीं। देखि न जाय रानीतन तबहीं॥
राजा रानी दंडवत कीन्हा । ऐसी भक्ति हृदयमें चीन्हा ॥
दोउ कर जोरि रायभयो ठाढा । उपज्यो प्रेम हृदय अति गाढा॥
साहेब हमपर दया जो कीजै । भुवन हमारे पांव जो दीजै ॥
तबहीं हम मंदिर महँ आये । पलंग बिछाय तहां बैठाये ॥
झारी भर तब राजा लीना । चरनामृतकी युक्ति कीना ॥
राजा ऊपरते डारत पानी । चरन पखारे स्वरकला रानी ॥
चरण पखारि अँगोछा लीना । जैसी भाव भक्ति उन कीना ॥

चरणामृत तब शीश चढावा । लेचरणामृत बहु विनती लावा ॥
जैसी भक्ति राव जो पावा । धरमदास तोहि बरनिसुनावा ॥

धर्मदास वचन

और कहो राजाकी करनी । सो साहेब तुम भाखो वरनी ॥

सतगुरु वचन

तुरतहि तब सब साज बनावा । हमको सो अस्नान करावा ॥
हम अरु राय बैठे जेंवनारा । आनेउ सार धरे दोउ थारा ॥
अधर थार भूमिते रहई । रानी तबहीं चितवन करई ॥
रानी कहे रायसों तबहीं । लीला निरखो गुरुकी अबहीं ॥
अधर अग्र जिनका पनवारा । महा प्रसादते आइ अपारा ॥
नर नारी तब ठाढे भय आई । महा प्रसाद अब देहु गुसाईं ॥
तब हम दीनेउ तहां प्रसादा । पाय प्रसाद भई तब यादा ॥
पुरुषलोककी भई सुधि तबहीं । ज्ञानी आय चेताये भलहीं ॥
हम भूले तुम लीन चेताई । फिरि न विगोवे आइ यमराई ॥
या यम देश कठिन है फांसी । काम क्रोध मद लोभ विनाशी ॥
साखी—काम क्रोध अरु लोभ यह, त्रिगुन बसे मन माहिं ॥
सत्य नाम पाये विना, जमते छुटको नाहिं ॥

चौपाई

श्रवन लागिनिजलाम सुनाई । तुरत राय कह चले लिवाई ॥
पहुँचे जाय सुमेर पहारा । पुर बैकुंठ रच्यो जेहि ठारा ॥
जय विजय जो तहां रहेऊ । तेहि साहेबको देखत भयेऊ ॥
देखत पौरिया ठाडे भयऊ । आदर करि साहेबको लयऊ ॥
कहे पौरिया विनती लाई । भूपति लोक कहांको जाई ॥
तब हम पौरीयन सो कहेऊ । एक जिव सत्यनाम जो गहेऊ ॥

---

१ डरे !

पुर वैकुंठ दिखायो चाहीं । ताते हम आये यहि ठाहीं ॥
तहांते हम चले रिगाई । पहुँचे चित्रगुप्तके ठांई ॥
लग्यो दरबार चित्रको जहँवा । पुण्य पापको निबेरो तहँवा ॥
देखि साहेबको ठाडे भयऊ । हाथ जोरिके बिनती कियऊ ॥
डार सिंघासन बैठक दीना । तब साहेब सो बिनती कीना ॥
धन्य आजबड भाग्य हमारा । साहेब आये इहां पग धारा ॥
आये गुप्त साहेबके पासा । विनति करत बहुभये उदासा ॥
हे साहब हम पूछत तुमपै । कह लाये भूपन कहु हमपै ॥
यह तो हमरो चोर कहाई । अधम पापि राजा यह आई ॥
तब साहेब गुपंतसे कहेऊ । लीखनी तुमारी देहिं चुकोई ॥
यह सुनि गुप्तंतवे रिसियाना । हमरी लिखाई बाद बखाना ॥
गुपत कर्म करे नर कोई । सो निज चोर हमारा होई ॥

साखी–प्रकट करम जो करहिं नर, सोई चित्र लिख लेहुँ ॥
भूपतिलोक कहावहीं, पाप पुन्य कर येहु ॥

चौपाई

तब साहेब एक जुगति बनाई । पारसपथरी तहां दिखाई ॥
अनेक कर्मसे लोहा भरिया । पारस भेटत कंचन करिया ॥
साहेब गुप्तसे कहे समुझाई । इनकू लोहा करो रे भाई ॥
लोहासे जो कंचन कियेऊ । यहि विधि हंसा निरमल भयऊ॥
इतनी सुनि यम भये अधीना । फेर न तिनसे बोलन कीना ॥
अहो जमराय वचन सुनु मोरा । कही करो तो करहू चोरा ॥
राजाकू ले जाओ भाई । इनकू यमपुरी लाओ दिखाई ॥
तबयमराज हुकुम करिदीयऊ । दूत दोय राज संग गयऊ ॥

---

१ चित्रगुप्त ।

दूत रायको चले लिवाई । पहुँचे जाय यमपुरी मांही ॥
त्रास जीवको देतहै जहँवा । देखत राजा मन पछितावा ॥

नरकको वर्णन

एक तो कोल्हू मांहि पिराई । ऊंधे मस्तक एक झुलाई ॥
एक तो बांध खंभसू ताते । चीसे देत बहुतही भांते ॥
एक जीवको खात चबाई । भागत फिरे वचत नहिं भाई ॥
एक जीव कुंडमहिं डारा । मोगरी शिरपै मारे अपारा ॥
कुंड चौरासी बने है ति भाई । भांति भांति यम त्रास दिखाई ॥
ऐसे त्रास जीवनको दियऊ । देखत राजा व्याकुल भयऊ ॥
एक कुंड तो रुधिर भराई । दूजा कुंड तो पीब कहाई ॥
त्रीजो कुंड हि मूत्र भराई । योजन एक ताकि गहराई ॥
योजन चारकी है चकराई । योजन चार लगि गन्ध उडाई ॥
परे जीव ता माहिं अपारा । चौथा कुंड नरककी धारा ॥

साखी-परे जीव ता कुंडमें, कोइ अब हमहिं उबार ॥
मारत मोगरी शीरपर, बहुतहिं करत पुकार ॥

चौपाई

पांचैं कुंड सो अग्नि कहाई । बहुत जीव तहँ जरहीं भाई ॥
योजन लक्ष है ता गहिराई । पांच लक्षकी है चकराई ॥
करत पुकार तहँ जीव अपारा । यहि अवसर कोउ हमहिं उबारा ॥
राजा यमपुरी देखि बनाई । कहत न बने रहे शिरनाई ॥
झूंठी वचन कहत है जोई । जीभ्या काटिलेत पुनि सोई ॥
झूँठी बांह देखाई जो कबही । काटे बांह यम ठूंठा करही ॥
झूँठी साख भरे जो भाई । विषधर ताके जीभ लगाई ॥

---

१ अच्छी तरहसे ।

बिन अपराध मारे जो कोई । बहुत मार तेहि ऊपर होई ॥
स्वपुरुष तजि पर पुरुष संग जावे । अगिनपुरुष तेहि संग मिलावे ॥
पुरुष होय नारी कहँ त्यागे । नारी और सो मन जो लागे ॥
अग्निनारि तेहिसंग मिलावें । यहि विधि जीवनत्रास दिखावें ॥
एक एकको त्रास दिखावें । हाथ छूरी ले कण्ठ चलावें ॥
एक जीवको ठाडे कीना । काग गीधको हुकम करि दीना ॥
काग गीध नोचत हैं भाई । भागत फिरे त्रास अधिकाई ॥
जे नर नारी मदिरा पावें । तप्त तेल पुनि ताहि पिलावें ॥
संत साधुकी निंदा करई । जूठी साख पंचमें भरई ॥
ताको फल पावत है सोई । सब अँगमें कुष्ठ पुनि होई ॥
ऐसी यमपुरी देखी बनाई । देखत राजा मन पछताई ॥

साखी–देखी राजा यमपुरी, मनमें भये हुशियार ॥
साहेबसो विनती करे, हमको लेउ उबार ॥

चौपाई

नृप अरु दूत पहुँचे तहवाँ । चित्रगुप्तको दरबार रहे जहवाँ ॥
जहाँ बिराजे ज्ञानी सिंहासन । गहे चरन तहां नृपति ततक्षण ॥

राजा वचन

तब राय चरण परस्यो आयी । अबकी साहेब लेहु बचाई ॥
यह यम देश कठिन है गांसी । सुरनर मुनि परे यमफांसी ॥

साखी–सुनि कथा जब नरककी, धर्मदासभय मान ॥
सतगुरु सो कहने लगे, औरौ कहहु बयान ॥

सतगुरु वचन–चौपाई

कहैं कवीर सुनो धर्मदासा । नरक वृत्तान्त करौं परकासा ॥
धर्मराय अस बाजी लावा । पाप पुण्य दोउ कीन उपावा ॥

पाप पुण्य रचि जीव फँसाया । जो जस करै सो तस फल पाया॥
करै पाप तेहि नरक भुगतावैं । करै पुण्य तेहि स्वर्ग पठावैं ॥
कर्महिं भुगुति गरभमें जावै । यहि विधि कालजीव फँदावै ॥
सुनु धर्मदास नरककी बाता । सबही तुमसन कहूं विख्याता ॥
सकल सुनहु यमपुर इतिहासा । अद्भुत सुनि होय जीव त्रासा ॥
ठीका पुरै जब जिवकी भाई । धर्मराय मन चिन्ता आई ॥
आयसु किंकर गण तब पावैं । हुकुम चित्रगुप्त ताहि सुनावैं ॥
ते जग आवै आयसु पायी । जीवहिं पकरि तहाँ लै जायी ॥
लै जांहिसो यम सदन मंझारा । करैं ताहि यम सन्मुख ठारा ॥
रवि सुत तहाँ सिहाँसन बैठे । यमगण तहाँ विराजत ऐंठे ॥
काल सेन तहँ सबहि विराजैं । शास्त्र प्रवर्तक मुनिवर छाजैं ॥
धर्मशास्त्र के जे जे करता । सबही देखैं जो जिव मरता ॥
व्यास पराशर आदिक सबहीं । पहुँचैं यम पुरि तन त्यागे तबहीं ॥
ये सब यम सहाय सो करहीं । पाप पुण्यकर लेखा धरहीं ॥
सबहिं मुसाहिब कालके आहीं । निज नैनन हम देखत जाहीं ॥
धर्माधर्म विचारत नीको ।सब मिलि न्याय करत करनीको ॥
चित्रगुप्त जब बही सुनावै । धर्म राय कहिके समुझावै ॥
जिन २ पाप किया जग आयी । तिनकर लेखा जब सुनि पायी॥
ते सुनि दूतन कहत जनायी । यथा योग्य भुगतावहु जायी॥
जब कोई जीव सुकर्मा आवै । शुचि सुन्दर दूतन तन धावै ॥
रविसुत कहविलसाओ स्वर्गा । अर्थ धर्म अभिमत सुखवर्गा ॥
यही सुकृत जब श्रुतिपथ आही । बहुत समुझायौ हम तुव पाही॥

साखी पापी मनुषहिं पाइ यम, दूतन कहै रिसाइ ॥
रौरवादिक की यातना, इनहिं भुगावौ जाइ ॥

चौपाई

सुनहिं वचन यमगण यमकेरा । त्रास दिखावहिं नरहिं घनेरा ॥
लोह दण्ड मुद्गर हनि कोपैं । रौरवादि महँ तिनही तोपैं ॥
यहि विधि यम करहिं विलासा। अब विस्तर ते सुनु धर्मदासा ॥
बहु विधि विद्या जग महँ पावै । वेद बिचारि जो ब्रह्म समावै ॥
आतम ब्रह्म एक करि जानै । ब्राह्मण सो तेहि वेद बखानै ॥
ऐसे नर कहँ जो कोइ मारै । ब्रह्महत्या तेहि वेद पुकारै ॥
ब्रह्मरूप ब्रह्मविद जानै । तेहि वधन कहँ ब्रह्मवध अनुमानै ॥
जानि ब्रह्म वध पाप कराला । तब दूतन कह यम ततकाला ॥
कुंभीपाक माहि लैडारौ । मुद्गर परिघ मार बहु मारौ ॥
इन रिस करि मार्‍यो महिदेवा । सुनी न मम अनुशासन भेवा॥
रौरव माँहि गिरावहु घाती । काहू कहै सुनौ नहिं बाती ॥
जो तिय मारै गर्भ गिरावै । तेल यंत्र तनु तासु पिरावै ॥
जिन गुरु हनै हनै निज स्वामी । छुरा धार ते पीडित नामी ॥
जे विश्वासघात नर करहीं । ते नर कालसूत्र महँ परहीं ॥
बाल वृद्ध कर हरै जो प्राना । तप्त तेल महँ पचत अयाना ॥
परदारा परक्षेत्र जे हरहीं । जे नर परपुर सीम विगरहीं ॥
ते गुरु पाप नरक महँ पचहीं । हाहाकार शब्द तहँ मचहीं ॥
चक्रन ते तिनके तनु छेदैं । मुद्गर परिघ शूल बहु भेदैं ॥
गम्यअगम्य विचार न करहीं । खाज अखाज नहीं चित धरहीं॥
तिनके तन को करकच छेदैं । बहुत भांति चोचनसों भेदैं ॥

साखी–चोर वृत्ति करि जो जीवै, करै जो परसे द्रोह ॥
झूठ बोलि अरु मद पिवै, पर निन्दा करै जोह ॥

तिन पापिन कहँ यम विकरारा । ठौर भयंकर माँझ तेहि डारा ॥
जे नर कन्यादान मँझारी । विघ्न करत रौरव अधिकारी ॥

दान देत लखि भांजी मारै । योग्य अयोग्य जो नाहिं उचारै ॥
पर तप महँ कर विघ्न अनेका । नहिं हिय महँ जो करत विवेका॥
आप छूँछ औरन ब्रत टारै । वेद शास्त्र जिन नाहिं उचारै ॥
हरि यश सुनत दहैं मन माहीं । दूसर सुनै तो चित विचलाहीं ॥
तिनकर देह सो कूकर भखहीं । पुनि असिपत्र मांझ दुख भरहीं॥
एकहु अक्षर गुरुसों सीखै । ताहि न मानै मन कर तीखै ॥
ते परहीं नर रौरव माहीं । बहुविध दुख भुगतहिं सो ताहीं॥
जे नर हरत दीनके प्रानन । मित्रहि मारत दाहत कानन ॥
तिनहि अँगारन मांझ सुतावैं । यमगण दारुन त्रास दिखावैं ॥
जे गुरुधन हारक संसारा । क्रिम कूप महँ परत निहारा ॥
जौन गुरू व्यभिचारी होई । प्रजहिं दुःख देई नर जोई ॥
शिष्य शंक जो नाहिं मिटावत । प्रजहिं न्याय जो नाहिं चुकावत॥
युक्त अयुक्त न जानत जोई । करत सपक्ष न्याय शठ कोई ॥
ते नर अंध तामिस्र मँझारे । गिरत लखे पावत दुख भारे ॥
विन देखे पर दोष गिनावैं । यम गण तिनके नैन ढँकावैं ॥
अप्रिय वचन औरहीं कहहीं । कारण छेददुख ते शठ लहहीं ॥
देव साधु ब्राह्मण धन हरई । तृष्णावश लोभहि मन धरई ॥
सूचीमुख नरकहिं कर नाऊँ । ते तहँ जाइ वसावैं गाऊँ ॥
जे परतिय अभिलाषत प्रानी । निन्दत सुर गुरु भूसुर जानी ॥
धर्मशास्त्र तीरथ हरिजन कर । निन्दा करत सुनहु दुख तिनकर॥
पहिले शूलन पर बैठावैं । मुद्गर शूलनसे करि घावैं ॥
पाछे काक श्वान तेहि खाहीं । छेदहिं दुख सुख हेरत नाहीं ॥
भोगी बहुत काल प्रिय नारी । त्यागत ताहि अधम अविचारी॥
विनु वैराग ताहिको त्यागे । ताहि त्यागि औरनि महँ पागे ॥
सो शठ नरकमाँहि दुख पावै । कहँ लग कहौं कहत नहिं आवै ॥
कर पद बाँधि यम सासत देहीं । जो जस किये सो तस फल लेहीं॥

सूरज सुत जस आज्ञा देई। दूत उठाय सबै शिर लेई ॥
चित्रगुप्त सो लिखनी लेखै। धर्मराय न्याय तहँ पेखै ॥

साखी–करै कमाई जो कछू, कभी न निष्फल जाय ॥
सात समुन्दर आडा परै, मिलै अगाऊ धाय ॥

भूमि ताम्रमय तहां बनाई। तापर अग्नि प्रचण्ड बिछाई ॥
दहकत ज्वाला सो महि कैसी। अति दुस्सह प्रलयागिनि जैसी ॥
तहँ नर जाइ जरत दुख पावैं। यमगण हानि तेहि मांझ जरावैं ॥
तीव्र नख रद शूचीकच केते। पापिन कहँ दुख देहिं सब तेते ॥
अति तनु कृश तनु बहु पापी। तहँ दुख पावत जन परितापी ॥
सांकरि बांधि बांधि गज लावैं। अति दृढ मुद्गर हानि तेहि ढावैं ॥
दुख लहि जब इतउत नर धावैं। यमगण धरि तिहि माहिं गिरावैं ॥
पुनि निज कृतकर याद करावैं। परिघन हनि बहु त्रास दिखावैं ॥
तप्त थम्भ बहु ठाड रहावैं। पर तिय गामी ताहि सटावैं ॥
निज पति छोड परपुरुष लुभावैं। सोइ तिया तहँ लाइ मिलावैं ॥
यमगण ताहि मारि भिटावत। कर वचन पुनि ताहि सुनावत ॥
यमके दूत अस कहैं पुकारी। तबतौं तन मन सकल बिसारी ॥
प्राण समान चही परनारी। अबकिन भेटेहु रुचि किमि मारी ॥
उन्नत कुच भुजभरि जिमि भेंटे। मुख चुम्बन रति करि दुख मेंटे ॥
रही जो तव जीवन जग नारी। यह सोइ अपर न करहु विचारी ॥
कलनहिंछनजेहिविनतोहिपापी। मिलहु न तिय सँग करत अलापी ॥
यहिविधि यमगण वचन सुनावैं। हनि हनि अधमन खम्भ लगावैं ॥
मद पीवत सँग जे करि प्रीती। मांसहिं खाइ करत अनरीती ॥
तप्त तैल तेहि मारि पियाई। कहत मदहि पीवहु शठ आई ॥
हाहाकार करै जब सोई। करै विनती सो बहु रोई ॥
ता ऊपर तैलहिं सो डारैं। भीतर बाहर दोऊ विधि जारैं ॥
इतना करैं बहुरि सो आगे। करन शासना सो फिर लागे ॥

असिपत्र बिंपिन महँ चलहू । खायो माँस सोई फल लहहू ॥
तहँ अहँतरु दल अतिही तीखैं । ऊपर परत कटत तनु दीखैं ॥
रहत न बनै तहाँ पुनि भाजत । करिविलापबहुविधिदुखपावत ॥
करि परघात पाल निज देही । कूटकरमबहु विधिकिय जेही ॥
ते असिपत्र नरक महँ जावैं । पुनि रकटाइशिर दुख पावैं ॥
एक शिर काटि फेरि होइ आवै । बहुरि कटैं बहुरि है जावै ॥
जे परहिंसक अधम नरेशा । तेलयंत्र तनु पिसत हमेशा ॥
तेल चुराय जो जगमहँ लेते । यमगण तेहि बहुत दुख देते ॥
तेल चोर कहँ तेल कराही । घृत चोरहिं घृत माँझ गिराहीं ॥
जेपर दूध मधू दधि हरहीं । ते गण रक्त कुण्ड महँ परहीं ॥
पाश बाँधि गल तेहि महँ डारैं । यम गण दारुण त्रास विडारैं ॥
तीरथ चलत जानि फन हरहीं । ते नर रक्त पीब दह परहीं ॥
देव सदन महिसुर गुरुधामा । जे तोडत मन करहिं अरामा ॥
बन वाटिका पुहम बहु छेदैं । मठ मख[1] भवन सुरभिघर[2] भेदैं ॥
दीन भवन चटशाल गिरावैं । अस्थिचूर्ण महँ ते दुख पावैं ॥
पर उपानत[3] वस्त्र शठ हरहीं । पर भोजन छिपाय जो धरहीं ॥
लोहयंत्र बिच ताहि पिरावैं । बहुविधि तेही दुःख दिखावैं ॥
जे नर घर पुर विपिन जरावत । अग्निकुण्ड तनु तासु गिरावत ॥
जे निज स्वामिहिं दोष लगावैं । पर अपवाद प्रीति करि गावैं ॥
तिन कहँ नर्क शालमली डारैं । पाश बाँधि लटकात तरारैं ॥
मुद्गर परिघन यमगण मारैं । निर्दय तनक न करुणा धारैं ॥
जो तिरिया परपति रत होई । नाथवती विधवा किन होई ॥
तप्त लोहमय खम्ब नराकृति । यम वशसे तेहि तिय भेटति ॥
लोह शूल खर तप्त विशाला । जीभ छेद मुख करत विहाला ॥
इमिदुख लहँहि अधम नरनारी । कहँ लगि कहौं सो लेहु विचारी ॥

---

१ यज्ञशाला । २ गोशाला । ३ जूता ।

यहिविधिजोयम शासतिकरई । कहँ लगि कहौं पार नहिं परई ॥
सुनत हाल व्याकुल धर्मदासू । मुख प्रस्वेद नहिं आवै श्वासू ॥
देखि दशा सद्गुरु बोले । केहि कारण धर्मनि तुम डोले ॥
धरि धीरज तब धर्मनि भाषा । नरककथासुनिभयमन भाखा ॥

धर्मदास वचन

हो साहेब यम बड विकरारा । केहि विधि हंसा पावे पारा ॥
यही भय मम मन महँ आवै । चितवत चितव्याकुलहोयजावै

सतगुरु वचन

सुनत वचन प्रभु मन विहँसाये । कही शब्द धर्मनि समुझाये ॥
धर्मनि तुमही भय कछु नाही । सतगुरु शब्द है तुमरे पाही ॥
अपर कथा सुनहु चितधारी । संशय मिटै तो होहु सुखारी ॥
जब राजा विनती ममकीन्हा । तब हम ताहि दिलासा दीन्हा ॥
शब्द गहै सो नाहि डराई । तुम किमि डरहु सुनहु हो राई ॥
सत्य शब्द मम जे जिव पैहैं । काल फांस सो सबै नशैहैं ॥
सुनत वचन राजा धरु धीरा । बोलै वचन काल बलबीरा ॥

चित्रगुप्त वचन

हे साहब तुम काह विचारो । नगर हमार उजारन धारो ॥
हो साहब जो तुम अस करहू । न्याय नीति सबही तुम हरहू ॥
सुनो साहेब एक बात हमारी । पंथ तुम्हारा चले संसारी ॥
ताते बिनती करैं बहोरी । सुनो गुसाइयाँ अरनो मोरी ॥
ब्रह्मा विष्णु शिव अधिकारी । तीनकी आश जगतमहँ भारी ॥
उनको हम नहिं कबँहु डरावैं । चूक चाल तो ताहि नचावैं ॥
और जीवकी कौन चलावे । हमते उबरन एको न पावे ॥
सीधि चाल चलुजीव सुजाना । सो जीव देहों लोक पयाना ॥
परपंच करी साहेबको धावे । हम ते जीव जान नहिं पावे ॥
चाल चलत लागे बडिबारा । ताते नाहीं दोष हमारा ॥

सतगुरु वचन

ज्ञानी कहे सुनो जमराई । हमरो हंसा न्यार रहाई ॥
परपंच तुमरो देखि डराये । जीवघात कबहू नहिं लाये ॥
निशिदिन जीव दया उर धारे । ज्ञान ग्रंथ मन माहिं बिचारे ॥
अहो यमराय जाहु वैकुंठा । राजा विष्णुसों करावहु भेंटा ॥

चित्रगुप्त वचन

चित्रगुप्त उठे कर जोरी । साहेब चूक जो बखशो मोरी ॥
तुम हो धनी मैं दास तुम्हारा । अपने दिल हम कीन बिचारा ॥
साखी–इतना कही चलत भये, राजा लीना पास ॥
मध्य चौक ठाडे भये, देख्यो सबको बास ॥

चौपाई

अगिन कौन है इंद्र कुबेरा । दक्षिण दिशा है काल बसेरा ॥
नैर्ऋत कौन सुरनको बासा । पश्चिम देवी कीन निवासा ॥
देव वास वायव है भाई । गण गंधर्व मुनि देव रहाई ॥
उतर दिशा भगवान जो होई । निज वैकुंठ कहावैं सोई ॥
कनक भूमि रतननकी पोती । बने वैकुंठ अधिक जग जोती ॥
सकल देव दरशनको आये । लक्ष्मी सहित बैठे प्रभु राये ॥
राजा साथ हमहूँ चलि गयऊ । देखि विष्णु तब ठाडे भयऊ ॥
डारि सिंहासन बैठक दीना । आज सुफल तुम हमको कीना ॥
भले आय तुम दरश दिखाये । भूपति लेइ कहां तुम लाये ॥

अमरसिंह वचन

ओ भगवान सुनो मम वानी । सेवा तुम्हरी निष्फल जानी ॥
हम एकोत्तर मँदिर बनावा । तामें मूरति लै पधरावा ॥
साधु राखि मंदिरके मांही । छाजन भोजन दीना ताही ॥
जेता धर्म हम सुने पुराना । विप्रन कहे धरम ठिकाना ॥
सुरभी सोने सींग मढाई । पीतांबर पुनि ताहि ओढाई ॥

भगवान वचन

यहि विधि गौ एकशत भाई । दइ विप्रनको सुनो प्रभुराई ॥
यहि विधि सेवा कीन तुम्हारी । तहू कर्म तुम हम शिर डारी ॥
सुनु राजा तोहि कहि समझाऊं । पाप करे कस धरो छिपाऊं ॥
राजालोक कर्म बहु धरहीं । जीव मारिके भक्षन करहीं ॥
तुरी चढ़े बन खेलै शिकारा । नाहक मारैं जीव बिचारा ॥
मारे जीव तुमहु सुनाई । इतनो पाप कहां धरो छिपाई॥

साखी–चार खानमें भरमहु, कीनो कर्म अपार ॥
विष्णु कहै राजा सुनो, कैसे होइ उबार ॥

चौपाई

सतगुरु ऐसी जुगति बनाई । लीला करी एक तेहि ठाई ॥
नृप शिर हाथ धर्‌यो तेहि वारी । निकसे कागमुखमांहि अपारी ॥
बहुत काग जरे उद्र मंझारा । बहुतक भये पिंडते न्यारा ॥
लखि भगवान रहे शरमाई । फेर बात ना बोले भाई ॥
ततखन हमहूँ चले रिगाई । पहुँचे मानसरोवर जाई ॥
कामिनि शोभा बहुत अपारा । राजा पर्‌यो तब चरण मँझारा ॥
दयावंत भल लोक दिखाई । जुत्थजुत्थ कामिनि अधिकाई ॥
करे ध्यान पुरुषको जहवाँ । चारभानुकी शोभा जहवाँ ॥
झलके अंगकामिनिके भाई । रैन दिवस तहां जानि न जाई ॥
सिंहासन एकधर्यो तेहि ठांई । चंद्रअंश तहां बैठक पाई ॥
भाव प्रीति साहेब सो कीना । भले ज्ञानी तुम दरशन दीना ॥
बैठे एक सिंहासन दोई । राजा संग इत पुनि सोई ॥
अहो अंश दया अब होई । राजाकूं लै जाओ सोई ॥
चन्द्रअंश तब शीश नवाई । आतुर हम तब चले रिगाई ॥
ले राजा तब शरीर समाया । भूपति बेगि उठे अकुलाया ॥
तबही राजा शीश नवाई । हमको तारो बेग गुसाँई ॥

सतगुरु वचन

राजा सुनो वचन अब मोरा । करो आरती तिनुका तोरा ॥
धर्मदास सब तोहि सुनाई । अमरहिंको वैकुण्ठ दिखाई ॥

धर्मदास वचन

धर्मदास तब दोउ कर जोरा । दया करो तुम बंदीछोरा ॥
और कथा मोहि वरनि सुनाओ। दया करो जनि मोहि दुरावो ॥
धर्मदास मैं कहुं समुझाई । जो कछु भगति करी सो राई ॥
जेतक जीव मुक्ति पद पाई । सो अब तुमकूँ बरनि सुनाई ॥

अमरसिंह वचन

साखी—राजा शीश नमाइके, बिनति करै कर जोर ॥
हमको सतगुरु तारिये, हम सो अधम न ओर ॥

सतगुरु वचन —चौपाई

सुन हो राय तजो मुरखाई । युग कंकवत हम चल आई ॥
मानसिंह भूपति बड राजा । तासो कीना ज्ञान समाजा ॥
तीस लाख अरु सात हजारा । इतने हंसलोक पग धारा ॥
युग परवान चौकरी गयऊ । इतने युग मोहि आवत भयऊ ॥
कहैं लेख पूछो राय सुजाना । अपने जीवको करो छुटाना ॥
छन्द—गुरुचरण पद्मपराग पावन मृदुल मंजुल सोहावनी ॥
तरु सम सील परकासते तिमिर मोह नशावनी ॥
करहिं आरती बिसरि जन उरमांहि जे नर लावहीं ॥
भक्ति ज्ञान वैराग्य प्रगटे मोक्षपद तब पावहीं ॥

अमरसिंह वचन

सोरठा—तव चरनन अनुराग, और न दूजी आस ॥
मैं किंकर पद लाग, करहु अनुग्रह दास पर ॥
छन्द—आदि ब्रह्म अचिंत अविगत आदि अदली गाइए ॥
अजर नाम अचिंत अमर अकह अविचल धाइए ॥

अक्षय नाम आनंदरूपी अखिल सम अस्थिर मही ॥
अधम उधारण अखिलपति अखंडसरुपी हौ सही ॥

सोरठा–हंस उवारण नाम, हंसराज हंसनपति ॥
हंस श्रवण सुखधाम, सारशब्द दातार गुरु ॥

चौपाई

मैं कृमि गुरुभृंगी होय आये । अमी पिलाइके रूप फिराये ॥
मैं हूं लोह कुधात कहाया । गुरु पारस मोहि हेमबनाया ॥
एक मुख महिमा कही न जाई । जो मुख कहूँ पदमसत पाई ॥
जिमि पंछीका जोडा होई । नर नारी जुग बंध है सोई ॥
जिमि मोहि शब्द दीन गुरुराई । तिमि रानीको करिय मुक्ताई ॥
तुम बँदिछोर सबै विधिलायक । हम हैं जीव अकाम अलायक ॥
तेहि ते अरज करौ प्रभु साई । करि दया जिव मुक्ताऊ भाई ॥

ज्ञानी बचन

सुनो अमर हम कहे तुम सो । करनी बने करो कछु तुम सो ॥
हम कहे सोइ सुन तुम राई । भक्ति करो अब सुरति लगाई ॥
तन मन धन साहेबको दीना । शिरके साटे भक्ती लीन्हा ॥
रंभा नाम पुरेथंकी नारी । गुरु सेवामें रहे हुशियारी ॥

राजा बचन

तब राजा गुरुसे विनती कीना । अपनाकर मोहि निजकर लीना ॥
अब साहेब परवाना दीजे । जो कछु कहो सोई हम कीजे ॥
कौन वस्तु आनू गुरुदेवा । सो साहेब भाषो मोहि भेवा ॥
जेहि विधि तरन होय भवसागर । शब्द सरूप कहो तुम नागर ॥

साखी–मुक्त लोक जाते मिले जहां पुरुष अस्थान ॥
जरा मरण व्यापे नहीं सदा पुरुषको ध्यान ॥

---

१ पुरेथ शब्द राजा अमरसिंहका सम्बोधन है।

ज्ञानी वचन—चौपाई

भलमत बुझे राय ते मोही । निज गत कहूं बचन दृढ तोही ॥
तब हम दीन सिखापन राजा । जाते होय जीवका काजा ॥
साखी—चौदा कदली खंभ ले, उत्तम ठौर गडाय ॥
मध्य चँदवा बांधिये, सिंहासन कनक बनाय ॥

चौपाई

गजमुक्ताहल थाल भराई । चन्दन चूनको चौक पुराई ॥
कंचनके पनवारा करहू । कंचन झारी जल भर धरहू ॥
तीन हजार मँगाये पाना । कंद पसेरी सात प्रमाना ॥
सात पसेरी मिष्टान्न मँगाओ । छतिस नारियल संगहि लाओ ॥
दुइसै एकतिस आनु सुपारी । तितनी खारक कहूं संभारी ॥
एतिक लौंग इलायची धारी । मेवा अष्ट लाओ यहि वारी ॥
मिर्च जायफल आनो भाई । द्राख जावत्री बेगि मँगाई ॥
शकर बदाम कपूर बखाना । सात हाथ बस्तर परवाना ॥
कंचनथाल गजमोती भराओ । मध्य आ ती मानिक धराओ ॥
कंचन कलस धरो बहु भांती । तापर बारो पाँचो बाती ॥
फूल चमेली अगर मगाई । परिमल और सुगंध धराई ॥
नाना पुष्प बताये माला । सब कछु आनि धरे ततकाला ॥
तब हम बैठे सिंहासन जाई । सकल समाज शब्द धुनि गाई ॥
अर्चित नामका चौका कीन्हा । ततक्षण थार हाथमें लीन्हा ॥
ठाढे सकल लोग अनुरागा । शब्द विरह सबहिन मिलि पागा ॥
दिवस कोकिला जिमि आनंदा । सकल हंस तिमि आनँदकंदा ॥
तब हम बैठे थार धराई । अति आधीन परे सब पाई ॥
जब हम नारियल लीन्हा हाथा । सकल जीव तब भये सनाथा ॥
नरियल मोरि अंसगहि लीना । तिनुका तोर परवाना दीना ॥
भय छूटे जप निरभे नामा । सतगुरु नाम भए विशरामा ॥

कालजालते हंस छुडाये । राजा रानी भक्ति मन लाये ॥

साखी–राजा रानी प्रेमसे, और सकल जिव साथ ॥
नाम पान सबहिन दिये, मस्तक धरिके हाथ ॥

चौपाई

कीन्हा दंडवत् सब बहु भांती । राजा रानि पुत्र औ नाती ॥
पुरेथभाणसा लीनो पाना । रंभा नाम पुरेथनी जाना ॥
तबही दिवान खेमसिंह आये । नर नारी परे गुरुके पाये ॥
आये बखशी लीन्हा पाना । भाव भक्ति मन माहि समाना ॥
नाम रतनचंद्र कहे कर जोरी । दया करो मम बंधन छोरी ॥
आये चौधरी प्रेमचंद नामा । तन मन अरपी कीन्ह प्रनामा ॥
तबहीं शेठ शामजा आये । प्रेमभावसे शीश नवाये ॥
और जीव बहु लीन्हा पाना । सबको चित्त गुरुचरण समाना ॥

छन्द–राजा खडा करे विनती प्रभु दीनबंधु दयाल हो ॥
हंस नायक प्रभू लायक शब्द दीन्हा रसाल हो ॥
जेहि खोज ऋषि मुनि नारद ब्रह्मा हरि हर थक रहे ॥
नहि पार पावत शारदा सोइ नाम सतगुरु मोहिं दिये ॥

सोरठा–मोहि अनुग्रह कीन्ह, दास जानि दाया करी ॥
भक्तिदान मोहिं दीन्ह, लेइ चलो समरापुरी ॥

ज्ञानी बचन–चौपाई

ज्ञानी कहे सुनो हो राऊ । तुमरी अवध सो सबै रहाऊ ॥
एते दिवस रहो भवसागर । पीछे चलो लोक कहँ नागर ॥

राजा रानी वचन

राजा रानि कहे कर जोरी । सतगुरु सुनिये विनती मोरी ॥
कठिन दुःख भवसागर मांही । क्षण भर हमपै रह्यो न जाही ॥
इकइस लाख जीव तुव शरना । बहुत बरसमें होइ निज मरना ॥

जो तुम सतगुरु हंस सहायक । होहु दयाल हंस सुखदायक ॥
अधम उधारन नाम तुम्हारा । अवगुन मोर न करहु बिचारा ॥

ज्ञानी वचन

ज्ञानी बचन कहे गोहराई । राजा सकल हंसा बुलवाई ॥
सकल हंस सतगुरु संग लागा । इकइस लाख हंस तन त्यागा ॥
पावत पान गये एक ठारा । पहुँचे जाय पुरुष दरबारा ॥
भाव भक्ति भल कीन्ह बनाई । सर्वस अरपि चग्नामृत पाई ॥
काल जालको चिह्न जो पावे । सार शब्दमें सुरति लगावे ॥
मन निरंजन तेज ओंकारा । ये सब चीन्हे काल पसारा ॥
नाभि कमलते सुरति लगावे । मकरतार चढि शब्द समावे ॥
पुरुष दरश पावे जब हंसा । जनम मरणको मेटै संसा ॥
षोडश भानु हंस तेहि रूपा । समझ न परे रंक औ भूपा ॥
एक बरन राजा औ रानी । ताकी भेद सब जाने जानी ॥
पुरुष सज्या हंस तहां आये । अमृत भोजन करत अघाये ॥
काया अमर अमरवर पाई । दुःख और द्वंद सबै मिट जाई ॥
एही विधि सकल जीव तहँ आवा । सबही हंस एक नाम समावा ॥

सोरठा—कहा जीव करनी करे, कहा चलेगा चाल ॥
सतगुरु नाम प्रतापते, कबहुँ न खावे काल ॥
कहन सुननकी है नहीं, देखा देखी नाय ॥
सार सबद जो चिन्ही, सोइ मिलेगा आय ॥

चौपाई

पुरुष हुकुमसे जीव बुलाये । राजा रानी हंस तहां आये ॥
हंसन कह तब वचन सुनाये । भाग बडे तुव दरशन पाये ॥

पुरुष वचन

अहो जीव कस कीन्ह कमाई । हंस सज्जन मोहि कहो सुनाई ॥

राजा रानी वचन

माथ नवाय कह राजा रानी। बार बार विनती बहु ठानी ॥
करनी चाल हम नहि जाना। परे ते कूपमें अति अज्ञाना ॥
आय जगाये अंध अचेता। सतगुरु शब्दते बांधे हेता ॥
पुरुष हुकुमते ज्ञानी चलि आये। कहो जीव कस करहिं कमाये ॥
ज्ञानी वचन कहैं परमाना। इन सम हंस और नहिं आना ॥
इनकी डोरी जीव सब आवा। पुरुष सुनी यह आनंद पावा ॥
अंक मिलाई हंस तब लीना। अरध सिंहासन बैठक दीना ॥
सेत छत्र शिर दीन्ह तनाई। सूरज कोटि छबि राजा पाइ ॥
यहिविधि राजा लोक सिधाये। सुनत बोध धर्मनि मन भाये ॥
एक वचनको संशय आई। सो मोहिं नाथ कहौं समुझाई ॥
षोडश रवि सब हंस सराई। कैसे रायको दइ अधिकाई ॥

कबीर वचन

धर्मदास तोहैं कहि समुझाऊँ। तुमरे मनको धोख मिटाऊँ ॥
राज गुमान उन दिये विसारा। और जीवकी मुक्ति सुधारी ॥
पुरुष रायको पूछ न कीना। निज करनी कर नाम न लीना ॥
अपने मन तजि मान बडाई। ताते पुरुष दया उर आई ॥
धर्मदास सुनो चित लाई। यहिते राजा बढती पाई ॥

धर्मदास वचन

धर्मदास कहे युग कर जोरी। दया करी तुम बंदीछोरी ॥
दीनदयाल दयाके सागर। अच्छी कथा सुनाये आगर ॥
साखी–धर्मदास आधीन होइ, विनती करै कर जोर ॥
कथा कही अमरसिंहकी, संशय मिटायो मोर ॥

इति श्रीबोधसागरे कबीरधर्मदाससंवादे राजा अमरसिंहबोध कथा वर्णनो नाम द्वितीयस्तरंगः ।। श्री अमरसिंहबोधः समाप्तः

# श्री-बीरसिंहबोध

★

भारतपथिक कबीरपंथी–

स्वामी श्रीयुगलानन्द ( विहारी ) द्वारा संशोधित

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन,
बम्बई

सत्यनाम



श्री कबीर साहिब






# अथ बोधसागर

तृतीयस्तरंगः

## बीरसिंहबोध

धर्मदास वचन–चौपाई

धर्मदास पूछे चित लायी । साहब मोहि कहो समझायी ॥
बीरसिंहराय किमि कीनी सेवा । करिके दया कहो गुरुदेवा ॥
बीरसिंहदेव बडा अभिमानी । कैसे साहिब सेवा ठानी ॥
सो वृत्तान्त कहो मोहि स्वामी । दया करि कहिये बहु नामी ॥

कबीर वचन

धर्मदास भल पूछहु बाता । तुमसे बरनि कहूँ विख्याता ॥
तन मन धन अरु मोहन लावे । ज़ो जिव हमरे संग सिधावे ॥
आदि अन्त सुरति हम कीना । तबही पग धरतीपर दीना ॥
और दिशा देख्यो हम जायी । पूरब पश्चिम दृष्टि फैलायी ॥
बीरसिंह देव काशीकर राऊ । हम पहुँचि तहँ कीन गोहराऊ ॥
प्रथमहिं चले भक्तपर गयऊ । सकल संत जहँ भक्ति करयऊ ॥
नामदेव भक्ति करन मन लावा । सेना धनाजाट तहँ आवा ॥
राँका बाँक सदन कसाई । पद्मावती दीपक लै आई ॥
चौहटे तान चँदेवा दीना । ठाडे भक्त सब गायन लीना ॥
नामदेव लोटन करे भाई । हाथ ताल रैदास बजाई ॥

धना मृदंग पट्ट उजियारा । जुरे भक्त सब संत अपारा ॥
धर्मदास तहँवा हम गयऊ । राम राम सबही मिलि कियऊ ॥
तब हम वचन एक कहि लीना । सकल भक्तके हिये मन दीना ॥
नामदेव केहि पुरुषहिं ध्याओ । भक्त करतका कर्म तुम लाओ ॥

नामदेव वचन

नामदेव कहे सन्त भुलाओ । दोसर पुरुष कौन ठहराओ ॥
हरि हर ब्रह्म हैं बड देवा । तिनकी करै सकल जग सेवा ॥
वे जगकर्ता सब कछु अहहीं । वेद शास्त्र सब तिनकहँ कहहीं ॥
है प्रभु आदि मध्य अरु अंता । शीश मुडाय जपो केहि संता ॥

कबीर वचन

हरि ब्रह्मा शिव शक्ति उपायी । इनकी उत्पन्न कहहुँ बुझायी ॥
विना भेद सब फूले ज्ञानी । ताते काल बांधि जिव तानी ॥
अजर अमर है देश सुहेला । सो वे कहहिं पंथ दुहेला ॥
ताका मरम भक्त नहिं जाना । किरतम कर्तासे मन माना ॥
हम तो अगम देशसे आये । सत्यनाम सौदा हम लाये ॥

साखी–किरतम रस रंग भेदिया, वह तो पुरुष न्यार ॥
तीन लोकके बाहिरे, पुरुष सो रहत निनार ॥

चौपाई

बीरसिंहदेव बघेला राजा । बैठे आय महलके छाजा ॥
राजा नजर सबन पर कीना । सबकी भाव भक्ति चित दीना ॥
गावें भक्त आनन्द व्यवहारा । एक भक्त बेटा सो न्यारा ॥
टोपी एक अनूपम दीने । माथा तिलक कूबरी लीने ॥
स्वेत स्वरूप भगतकी काया । महा आनन्द पुरुष छबि छाया ॥

राजाबीरसिंह वचन

छरीदार राजा हँकरायी । नामदेवको आनु बुलायी ॥

छड़ीदार वचन

बेगहिं छड़ीदार चलि आये । नामदेव राजा बुलवाये ॥

नामदेव वचन

नामदेव पूछे चित लायी । राव संग को और रहायी ॥
छडीदार तब वचन सुनावा । कोउ नहिं साथ रायके भावा ॥
नामदेव छडी हाथमें लयऊ । चले चले राजापहँ गयऊ ॥
राजा देखि ठाढ उठि भयऊ । कर गहिके आसन बैठयऊ ॥

राजा वचन

राजा कहै सुनौ हो देवा । कहौ कौनकी करत हो सेवा ॥

नामदेव वचन

सांखी-भक्ति करौं गोविंदकी, एक चित ध्यान लगाय ॥

राजावीरसिंह वचन

श्वेत रूप जौ भक्त है, सो कस न्यार रहाय ॥

नामदेव वचन

राजा सुनो वचन यक मोरा । हम तुम हरि हर ब्रह्मा दोरा ॥
ताकर भक्ति करे वह हांसी । कहै पुरुष यक और अविनासी ॥
माला मेखली श्याम शरीरा । मिली जुलाहा सत्य कबीरा ॥
किरतन कहे सकल सब देवा । कहे साँचु देख नहिं सेवा ॥
मूर्ति कूटि पाथर का लाई । कारीगर छाती दे पाई ॥
काँसा ताँबा मूर्ति बनावा । तामें कैसे ब्रह्म समावा ॥
ऐसे कहे कबीर जुलाहा । झूठे देवन हमैं मनाहा ॥
वह तो कहे हम पुरुष अभेवा । नहिं कोइ जाने हमरो भेवा ॥
आप अपनपौ बहु विधि थापै । आपै देव सेवक पुनि आपै ॥
भक्ति ज्ञान योग को भेवा । तीरथ व्रत तप अरु सब देवा ॥
सबको काल जाल बतलावे । एकोको नहिं मनमें लावे ॥
हम सन बहु विधि वाद विवादा । नहि माने वह अनहद नादा ॥

साखी–जोलहा निंदत सबनको, बन्दत काहू नाहिं ॥
झूठ कहत हरि ब्रह्महीं, कहे निर्गुण एकै आहिं ॥

राजाबीरसिंह वचन

राजा नामदेव कह बानी । अगम ज्ञान वह करत बखानी ॥

नामदेव वचन

कह नामदेव सुनो हो राजा । बहु विधि कहै शब्द को साजा ॥
जो को निर्गुण नामहिं धावै । योनी संकट बहुरि न आवै ॥
राजा छरीदार पठवाई । जाय कबीरहिं आनु बुलाई ॥

राजाबीरसिंह वचन

परम खुशी हमरे मन आवै । जो कोइ निर्गुण नाम सुनावै ॥
अस्तुति वेद करत है जाको । पार न पावत हरि हर ताको ॥
अहिपति अस्तुति करै जो ताही । कोउ विधि पार न पावत जाही ॥
तेहिकर भजन करै जो कोई । तब विधिसे पूरा है सोई ॥
नाम देव सुनु संत सुजाना । वह निन्दक नहि संत प्रमाना ॥
छडीदार भेजि तुरत बुलवाऊँ । निर्गुण भेद अबहि खुलवाऊँ ॥
रूप संत हृदय मम भावै । शांत रूप वह भजन प्रभावै ॥
देखो अबहीं आवत सोई । सब कहिहै तेहि भावत जोई ॥
छडीदार तुरते चलि आयऊ । जहंवा हम वहँ बैठे रहेऊ ॥

छडीदार वचन

छडीदार तब विन्ती लावा । अहो कबीर तोहि राय बुलावा ॥
विन्ती राय कीन कर जोरी । लावा कवीर वेगि तैं दोरी ॥

कवीर वचन

कहै कवीर वचन अरथाई । केहि कारण मोहि राय बुलाई ॥
ना हम पण्डित ना परधाना । ना ठाकुर चाकर तेहि जाना ॥
ना हम विराना देश बसावें । ना हम नाटक चेटक लावें ॥

पैसा दमरी नाहिं हमारे । केहि कारणे मोंहि राय हंकारे ॥
गरज होय तो यहाँ चलि आवै । हम तो बैठे भजन करावै ॥

साखी–छडीदार तुम जायके, कहो रायके पास ॥
महा प्रचण्ड बघेल है, हम नहिं मानत त्रास ॥

चौपाई

छडीदार अति क्रोधित भयऊ । तुरतहिं चलि रायपहँ गयऊ ॥

छडीदार वचन

छडीदार कहै कर जोरी । महाराज एक विनती मोरी ॥
भक्त न आवै मोर हँकारे । कुछ भयभीरन राखु तुम्हारे ॥
कहैं हमारे कौन है काजा । तृणहि समान गिनत हौं राजा ॥
एता वचन राय सुनि लीन्हा । अगम बात कछु घटमों चीन्हा ॥
वह तो परमपुरुष है सोई । और होय तो आवै कोई ॥
सत्य भाव जाके उर आवे । मान बडाई लोभ सब जावे ॥
निर्गुण भक्ति जोई लवलीना । ताहि न उपजे भाव मलीना ॥
आशा तृष्णा जेहि घट व्यापै । धनवन्ता सो चाह मिलापै ॥
यह तो संत अविकल अविकारी । केहि कारण आवे केहु दुआरी ॥
शोचत राजा मनमें गूने । नामदेव मन रहे अलूने ॥
मान बडाई जो नर पागे । करत खुशामद नृपती आगे ॥

साखी–नामदेव राजा कहे, जुलहा यहाँ न आव ॥
है अभिमानी बहुत सो, बहु अहँकार जनाव ॥

चौपाई

कीन विवेक राय दिल माहीं । नहिं आये कवीर हम जाहीं ॥
वह तो सत्य भक्ति चित दीन्हा । कारण कौन त्रास मम कीन्हा ॥
यहि विधि कीन विवेक विचारा । तबहीं राजा आप सिधारा ॥

---

१ नामदेवजीने राजाके विचारका भाव नहीं समझा ॥

हुकम पाय आय असवारा । गज औ तुरंग सु साज सँवारा ॥
आवत देखा जब हम भाई । तब हम लीला एक बनाई ॥
आसन अधर कीन तेहि वारा । सवा हाथ धरतीसे न्यारा ॥
माला तिलक औ टोप विराजै । हाथ स्वेत कुवरी सो छाजै ॥
नृपति देखि अचरज मन कीन्हा । यह तो पुरुष अगम कछु चीन्हा ॥
कीन अवलोकन जग हम सबहीं । ऐसे पुरुष न देखे कबहीं ॥
धन्य धन्य अस्तुति सब गावैं । धन्य कबीर चरण सब ध्यावैं ॥
राजा चरण पकड़ि दोउ भाई । धन्य धन्य नृप करई बडाई ॥
कहे राय धन भाग हमारा । दर्शन दीन्ह आय करतारा ॥

राजा बीरसिंह वचन

छन्द–अस्तुति करत नृपति भाषेउ तुम ब्रह्म निर्गुण आप हौ ॥
अनाथ नाथ सनाथ करि दिये माथ हाथ अनाथ हौ ॥
अपनो दास करि जानि साहब दरश दीनेउ आयकै ॥
कीजै कृपा यहि दासपै चलि भवन दरस दिखायकै ॥

सोरठा–कृपा कीन जस मोहिं, तस मन्दिर पग दीजिये ॥
विनय करौं प्रभु तोहिं, वेगि विलम्ब न कीजिये ॥

कबीर वचन–चौपाई

कहैं कबीर तहाँ नहिं काजा । तुम परचण्ड बघेला राजा ॥
काम क्रोध मद लोभ बडाई । रोम रोम अभिमान समाई ॥
तुरी सवा लक्ष सँग तोरे । लक्ष सवा दो प्यादा दोरे ॥
हस्ती चलत सहस तव संगा । निशिदिन भूले कामिनि रंगा ॥
कंचन कलसा महल अटारी । कैसे शब्द गहै नर नारी ॥
हम भिक्षुक जानै संसारा । कौन काज है तहाँ हमारा ॥

राजा बीरसिंह वचन

तुम सतगुरु हौ दीन दयाला । करमवश्य हम अहैं विहाला ॥
माया तिमिर नैन पट लागी । दर्शन पाय भये अनुरागी ॥

करो दया अपनो करि लीजै । दास जानि आयसु प्रभु दीजै ॥
दीन जानि मन्दिर पगु धारो । भक्तराज तुम वेगि पधारो ॥
हम हैं पापी अधम अजाना । तव विनु कृपा काल धरि ताना ॥
देइ उपदेश प्रभु मोहि बचावो । पाप जालते वेगि छुडाओ ॥
तुमरी कृपा सुनहु हो साहब । अस विश्वास भवहि तरि जायब ॥
अब जनि लावहु बार गुसाई । चलहु कृपा करि हंसन राई ॥

साखी–भक्तराज दाता अहो, कीजै मोह सनाथ ॥
मैं आधीन शरण तुव, चलो हमारे साथ ॥

चौपाई

बहुत अधीन तेहि जब देखा । चलन विचार कीन तब लेखा ॥
ततक्षण राजा हस्ति मँगावा । लै हमहीं तब हस्ती बैठावा ॥
गजते आसन अधरहिं धारा । चले राय तब बजे नगारा ॥
जबै राय मन्दिर लै गयऊ । तबै रानि कहँ तुरत बोलेऊ ॥
मानिक देइरानी चलि आयी । तासे राजा बात सुनाई ॥

राजा बीरसिंह वचन

हम रानी गुरु कीन कबीरा । आदि ब्रह्म हैं मतिके धीरा ॥
चरण धोय चरणामृत लीजै । सतगुरु दया करम सब छीजै ॥
तब सो रानी कहै सुनु बाता । ओढे चीर सुभग निज गाता ॥

रानी मानिकदेवी वचन

राजा विन्ती सुनो हमारा । समुझि बूझि गुरु करो भुवारा ॥
तुम राजा हौ बहुतै ज्ञानी । विनय हमार लेहु सुनि मानी ॥

राजा बीरसिंह वचन

इतना सुनत राय मुसुकाये । रानी ज्ञान कौन बहुराये ॥
तुम हौ नारि भक्ति कहँ मानौ । साहबकी गति नहिं तुम जानौ ॥
कर्ता आप देह धरि लीना । भक्तरूप होय दर्शन दीना ॥

हम अरु राय बैठे जेवनारा। आनि सो वार धरे दोय थारा ॥
कंचन थारी झारी पानी। कंचनवटुकी व्यंजन आनी ॥
अधरसु थार भुईं ते न्यारा। महाप्रसाद राय चित धारा ॥
पाय प्रसाद राय जब लीन्हा। हम अरु राय बाहर पगु दीन्हा ॥
एकहि आसन बैठे दोई। नामदेव तब ठाढे होई ॥
नामदेव कह आसन दीन्हा। बहु सन्मान ताहिकर कीना ॥
नामदेव बैठे जब जायी। प्रश्न करन तिन चित तब लाई ॥

नामदेव वचन

कहहु कवीर मोहि समुझाई। कहँ तव गुरु शब्द कित पायी ॥
साहिब कौन सबनके पारा। मोसे कहहू वचन विचारा ॥
साहिब कौन जाहि तुम ध्याओ। कहँवा मुक्ति सुरति कित लाओ॥
कौन भाँति यमसे जिव बाँचे। भिन्न भिन्न कहहू मोहि साँचे ॥
आप न समझो बोधो राजा। राम विना होय जीव अकाजा॥
केतो पढै गुनै अरु गावै। विनु हरि भक्ति पार नहिं पावै ॥

कबीर वचन

नामदेव भूले तुम जैसे। हमको मति जानहु तुम तैसे ॥
निर्गुण पुरुष आहि यक आना। अस्तुति ताकर वेद बखाना ॥
शिव ब्रह्मा नहि पावत पारा। और जीव है कौन विचारा ॥
छन्द–नित्य निगम अस्तुति अराधै हारि थके विरंच महेश हो ॥
सबै ऋषिदेव अस्तुति अराधई तेहि गावत सुरपति शेष हो ॥
जेहि गावत नारद शारदादि पार कोई ना लहे ॥
सो भेद सतगुरु गावही कोइ संत ज्ञानी चित गहे ॥
सोरठा–पूजहिं हरि हर देव, जड मूरति पूजत बहै ॥
निशिदिन लावत सेव, जो रक्षक भक्षक अहै ॥
नामदेव तब सुनत लजाने। नहिं पाये भेद मनहिं पछताने ॥
सुनि लजायके उठि सो गयऊ। राजा तबहिं कहत अस भयऊ॥

राजा वीरसिंह वचन

तब राजा अस वचन उचारा । हम सँग साहिब चलो शिकारा ॥
आगे सेना सबही ठाढे । हस्ती घोडा बाहर काढे ॥
आगे चले निशान नगारा । सवा लक्ष सँग चले असवारा ॥
सवा लक्ष द्वय प्यादा दौरा । ठाढे भाँट करत बड शोरा ॥
हरनी स्वान लीन सँग चीता । कोइ सचान वाज कर लीता ॥
बहु दल हस्ती लीनी साथा । यहि विधि चले शिकार नरनाथा
भाँतिन भाँति खिलौना लीना । आयसु सकल लोक कहँ दीना ॥
आगे सेन चली सब साजा । हस्ती बैठि चले गुरु राजा ॥

कबीर वचन

जबही राजा चले रिंगायी । तब हम तासों बात सुनायी ॥
राजा संग मोहि लै जाओ । जीव एक मारन नहिं पाओ ॥
कोटिक यतन करो तुम राजा । जीवन मिलै होय तोहि लाजा ॥

राजा वीरसिंह वचन

ततक्षण राजा वचन सुनावें । मारन कहौ तोहि जाइ चुकावें ॥
तब हम कहा हमका कहहीं । यह नहिं धर्म मनुषकर अहहीं ॥
यह सुनि राजा घोड कुदावा । शेर शिकारी रूप बतावा ॥
एको जीव फन्द ना परई । क्रोध अग्नि घट भूपति जरई ॥
खेलत रमत दूर होय गयऊ । कितहुँ न भेंट जीवसे भयऊ ॥
फिरत अहेरे परे भुलाई । कतहुँ न ठौर नीर कहँ पाई ॥
विना नीर सो तडपे राजा । व्यापी तृषा बने नहिं काजा ॥

साखी–बहुत दूर राजा गये, पीछे फिरे भुआर ॥
कटक सकल सबही फिरे, व्याकुल सबै अपार ॥

---

ग्रंथकर्ता अथवा पश्चात् के लेखक महाशयकी बलिहारी है, शिकारके लिये इतनी तैयारी बतलायी है ।

पानी पानी सबहीं गोहरावैं । विनु पानी सबहीं मरि जावैं ॥
राजा कहै देखो सब जायी । बडो धूप जिव गयो ढरायी ॥
बहुत लोग जल ढूँढन लागे । बहुतक लोग भाग चले आगे ॥
ठावँ ठावँ सब गये भुलाई । हस्ती घोरा सबहिं नशायी ॥
राजा तब कहन अस लागा । संशय बहुत तेहि मन पागा ॥

राजा बीरसिंह वचन

आज अहेर एको नहिं आवा । एको जीव जन्तु नहिं पावा ॥
पाना कतहुँ न पावा भाई । कैसी कर्ता कीन गुसाई ॥
जो जनितों अस होइहैं बाता । करन अहेर न आइत ताता ॥
सेना हमार प्राण सम प्यारी । सोऊ मरत प्यासकी मारी ॥
अब कहां जाइ केहि विधि करिहैं । विना नीर सब इतही मरिहैं ॥
व्याकुलता बहुतै मन बाढी । बहुत करौं सकौं नहिं काढी ॥
तेहि अवसर चर बहुतक आये । खोजि थके नहिं जल कतहूँ पाये ॥

साखी—सेना सकल मरत है, पानि पानि गोहराय ॥
छाँह छाँह सब ढूँढहीं, राजा रहे शिर नाय ॥

चौपाई

तेहि अवसर हम कीन विचारा । राय प्रतीति देखों यहि वारा ॥
बीरसिंहदेव बघेला राजा । देइ प्रतीति करों यहि काजा ॥
विना प्रतीति भक्ति नहिं होई । विना भक्ति जिव जाय विगोई ॥
विनु भक्ती गुरु नाहीं भेटे । विनु गुरु संशय नाहीं मेटे ॥
विनु मेटे हिय संशय भाई । काल दयाल कहु को विलगाई ॥
मन परतीति होय जेहि प्रानी । होय तुरत चौरासी हानी ॥
करे प्रतीति नर सो पावैं । पाइ श्रद्धा गुरु शरणहिं जावैं ॥
गुरुके वचन जाहि विश्वासा । फिर नहिं होय नरकमें बासा ॥

गुरु विनु मुक्ति न पावत कोई । चौरासी भय मिटत न लोई ॥
याते हम सब कीन्ह उपाई । राजा मन प्रतीति जेहि आई ॥
सरवर रच्यो अनूपम ठामा । बाग बगीचा औ लखरामा ॥
नाना भांति फूली फुलवारी । बहु मेवा लागे तेहि बारी ॥
नाना भांति फूल तहँ फूले । बास सुबास पाइ मन भूले ॥
नाना पक्षी करत कलोला । जहँ तहँ उड़ैं सो टोलम टोला ॥

छन्द–फूल नाना भांति फूले, केतकी जूही आदि है ॥
चम्पा चमेली मोगरा तहँ फूल दाख गुलाब है ॥
खम्भा कदली खडे तहाँ सेबती दवना बहु अहै ॥
कदम्ब जाही मालती चमेली बहुत सुखदा लहै ॥

सोरठा–नारियल अम्ब बदाम, कटहर बडहर पीसता ॥
बहुविधि कहे सुनाम, फल लागे चहु ओर सो ॥

चौपाई

ऐसो बाग बनी फुलवारी । बनी सो तुरत लगी नहिं वारी ॥
इहवाँ सैन रही कुम्हलायी । पानी पानी सबै गोहरायी ॥
तब हम कहे राय सुनु बाता । सत्य वचन भाखूं विख्याता ॥
उत्तर दिशा राय पगु धारो । थोडहि दूर जल बहे अपारो ॥
कहे मरत ससैन कुम्हलाई । सेना सकल चलो तहँ भाई ॥
यह सुनि राय ठाढ तब भयऊ । दोय कर जोरि सुविन्ती कियऊ ॥

राजा बीरसिंह वचन

सतगुरु वचन कहो जनि ऐसो । पाहन ऊपर जल बह कैसो ॥
बार अनेक अहेरे आये । पर्वत पर जल नाहिं रहाये ॥
साहिब कछु जनि ऐसी बानी । हँसे लोग गुरु झूठ बखानी ॥

---

१ महल

दीवान वचन

राय दिवान कहे अस बाता । गुरुके वचन झूठ नहिं जाता ॥
कहत दिवान जोरि दोउ हाथा । गुरुके वचन सत्य धरु माथा ॥
का जानो को आहि गुसाई । बेगि राय उठि टेके पाई ॥

राजा बीरसिंह वचन

करो क्षमा सुनु हे गुरुराई । दास गुनाहहि देहु बहाई ॥
जस कहिहौ सोई हम करिहैं । बचन तुम्हार सदा अनुसरिहैं ॥

कबीर वचन

तब हम कह्यो सुनो तुम राई । उत्तर दिशा तुम देहु रिगाई ॥
सैन सिपाइ ठाढे सब भयऊ । ततक्षण उत्तर दिशि चलि गयऊ ॥
राजा कुंजर दीन रिगाई । बाज निशान भेरि शहनाई ॥
चलत राय देखे चहुँ फेरा । राजा नजर दूर लगि फेरा ॥
दूरिते देखि परा सो ठावा । सुंदर बाग जहँ रहै शोभावा ॥
राजा देखि हरष मन भरेऊ । गुरुके चरण शीश तब धरेऊ ॥
सरवर निकट राय चलि जाई । देखत बाग रहै हरषाई ॥
अम्ब निम्ब औ कदलि घनेरा । दौना मरुआ लगे बहुतेरा ॥
भांति भांति तहँ मेवा लागा । भई प्रतीति राय मन जागा ॥
ऐसी शोभा बनी बनायी । देखत बनै बरनि नहिं जायी ॥

राजा बीरसिंह वचन

छन्द-राय कुंजर उतरि ठाढे चरण सतगुरुके गहै ॥
हम कुटिल अधम अघकर्म राशी बचन पावन तुव अहै ॥
बालभाव सुभाव पितु हित बचन कबहिक टार जो ॥
पितु कण्ठ लावत आपने हिय तात और न आव सो ॥
सोरठा-जो पितु तामन लाव, तो बालक कासों कहै ॥
अधम उधारन नाव, दीन जानि जन तारिये ॥

साखी–सैन सरोवर देखिया, उत्तम बरन सो नीर ॥
गिरिवर पर सरवर रचे, धन धन सत्यकबीर ॥

चौपाई

करी प्रणाम राय गहि पाई । महाप्रसाद देहु गुरुराई ॥
कीन प्रसाद राजा कहँ दीना । राजा बहुत लोक मिलि लीना ॥
मेवा सकल लोक मिली पाये । बहुत भांति सब लीन धराये ॥
राजा प्रजा सब करै बडाई । काहि कहौं कछु कहत न जाई ॥
जैसा मेवा सत्यगुरु दीना । नहि मिल सो सुरलोकहिं चीना ॥
खात खात सो जनम सिराई । नहि देख्यो अस मेवा भाई ॥
लेइ प्रसाद जल अचवन कीन्हा । दुख संताप भुलाय सो दीन्हा ॥
फिरन लगे सो बगीचा माहीं । नहिं गर्मी नहिं शीत तहांहीं ॥
परिमल वास उडे चहुँ ओरा । बहुविधि पक्षी करै कलोरा ॥
ज्यों २ देखैं शैल बगीचे । त्यों २ मन आनन्द रस सींचे ॥

साखी–तृषा सबनकी बुझि गयी, ऐसा निर्मल नीर ॥
मेवा पाये सब मिली, तृषित भये शरीर ॥

कबीर वचन–चौपाई

तब मैं कह्यो सुनो हो राजा । सेना सकल भयो सब काजा ॥
होय असवार जाहु घर राई । जहँको जल तहँ देऊँ पठाई ॥
अब हम अपने लोक सिधायब । सत्य पुरुषका दर्शन पायब ॥
वहँकी शोभा अनन्त अपारा । शिव ब्रह्मा नहिं पावत पारा ॥
सुनत बचन राजा भय माना । जानि विछोहै मनहि सँकाना ॥
हाथ जोरि विन्ती सो कीना । बहुत अधीन भयो परवीना ॥

राजा बीरसिंह

राजा चरण परे अकुलायी । अब सतगुरु जनि करहु दुरायी ॥
अब स्वामी मन्दिर पगु दीजै । सकल जीव अपना कर लीजे ॥

अब मन जनि दोय करि जानो । हम सेवक तुम निज कै मानो ॥
राय प्रतीति बहुत मन भाई । देखि प्रीति चलन फरमाई ॥
कुंजर राय भये असवारा । ले हमहीं पुनि तहाँ बैठारा ॥
सब सेनाकी भयी तैयारी । बजा निशान लगी नहिं बारी ॥
ततक्षण राय बचन कहि दीना । भरि भरि वर्तन सबही लीना ॥
छोडि सरोवर चले रिंगायी । क्षणहि सरोवर छार उडायी ॥
जब राजा पुनि पाछे निहारा । नहीं सरोवर उड़ैं तहँ छारा ॥
देखत राजा चकित न थोरा । मम पद गहि चित्त बहु मोरा[1] ॥

साखी–धन्य कवीर सरोवर रची, दलहिं लीन जिवाय ॥
जहवाँको जल लायक, तहँको दीन पठाय ॥

चौपाई

आगेमोहि करि जबही लीन्हा । तब पीछे राजा पग दीन्हा ॥
चले राय महल पग दियऊ । सतगुरुको आगे करि लयऊ ॥
मन्दिर कञ्चन पलंग बिछावा । लै सतगुरुहि तहाँ बैठावा ॥
मानिक देइ रानी चली आयी । कहै राय रानी गहु पायी ॥

राजा बीरसिंह वचन रानी प्रति

चरण टेकि चरणामृत लीजे । गुरुकी दया अमृत रस पीजे ॥
लोक लाज तुम तजहु बडाई । गुरु कवीरकी शरणे आई ॥
गुरु कृपा होय दास पर जबहीं । काल त्रास ना ब्यापे तबहीं ॥
ज्ञान भक्ति विन गुरू न पावै । काल फन्द स्वपने नहिं जावै ॥
सर्गुण भक्ति जगत बतलावे । निर्गुण भक्ति गुरूसे पावे ॥
बिन निर्गुण नहिं जीव छुटावे । बार बार यम फन्द परावे ॥

छन्द–गुरु कृपा होय जेहि दासपै तेहि काल त्रास न ब्यापई ॥
गुरु भक्ति मुक्ति दाता भक्त त्राता छुटै जीव तहँ तापई ॥

---

१ मेरे पग पर पडकर मनके अभिमानको छोड दिया ।।

संशय हरन अघ कर्म दाहन है सदा हंस सहाय हो ॥
गुरु पह मते अपवर्ग वासा पुरुष लोक सिधाय हो ॥

चौपाई

सरवर एक रचे गुरु तहवाँ । पर्वत ऊपर जल नहिं जहवाँ ॥
बाग एक रच्यो तेहिके तीरा । निर्मल जल बहै त्रिविध समीरा॥
नाना भांती तरु जेहि माहीं । सुर पादप तेहि देखि लजाहीं ॥
कदम्ब निम्ब अम्ब कचनारी । वडहल बेल बदाम सुपारी ॥
नाना रंग फुली फुलवारी । फल रस भरे झुकीं सब डारी ॥
रानीसे अस कहि सो राजा । विन्ती करन लगा जिवकाजा ॥

राजा बीरसिंह वचन

चरण टेकि राजा कहे बाता । भये दयाल दयानिधि दाता ॥
आवागमन रहित करु मोही । अब मैं खसम चरण गह्यो तोही ॥
मो कहँ अपना लोक दिखाओ । अब हम धरचो तुम्हारो पाओ ॥

कबीर वचन

सत्य प्रतीति जब राजहिं देखा । बहु विधि ताकी कीन परेखा ॥
श्रवण लागि निज नाम सुनाया । तुरतहिं राजा लेइ सिधाया ॥
तबहीं दूत रोक गहि बाटा । छलन दूत बैठा तहँ नाटा ॥

दूत वचन

साहब तुम निर्मल असवारा । भुई तरे कहवाँ पग्ु धारा ॥

कबीर वचन

तबै हम दूतनसे कहेऊ । यह जिव नाम खसम कर रहेऊ ॥
इतना सुनत दूत उठि भागा । देखत नृपति भयो अनुरागा ॥

राजा बीरसिंह वचन

धन्य सतगुरु धन्य भक्ति तुम्हारी। धन्य हंसा जेहि शब्द उचारी ॥
चले हम अरु राय तेहि ठौरा । जहँवा गम पावत नहिं चौरा ॥
पहुँचे मानसरोवर जायी । शोभा कामिनि बहुत सुहायी ॥

युत्थ युत्थ बैठी सब पाँती । एक रूप तहवाँ नहिं जाती ॥
चार भानु कामिनिकी काँती । नहिं तहँ दिवस नहिं तहँ राती ॥
राजा परे चरणतर आयी ।

राजा बीरसिंह वचन

। दयावंत भल कोक दिखायी ॥

कबीर वचन

देखिनि राय लोककी शोभा । चकित होय राजा मन लोभा ॥
पुनि राजा कहन अस लागा । देखि लोक लोभ महँ पागा ॥

राजा बीरसिंह वचन

अब जनि लेइ चलो संसारा । राखो लोक शरण मंझारा ॥

कबीर वचन

तब हम कहा सुनु राय सुजाना । तुम राजा सत्यलोक भुलाना ॥
राजा मानो कहा हमारा । चलो तहां जहँ राज तुम्हारा ॥
बरबस बाहँ गही तब राई । ले राजा तहँवा बैठाई ॥
छिन यक गहर तहां नहिं कियऊ । देह जायके जागृत भयऊ ॥
दोय कर जोरि राय रहे ठाढे । बहुत प्रेम हरष मन बाढे ॥

राजा बीरसिंह वचन

अब लगि साहब मैं नहिं जाना । सकल भक्त सम तुमको माना ॥
अब हम जाना भेद तुम्हारा । सोई करहु जेहि हंस उबारा ॥
राजा कहे कौन विधि करऊँ । सकल द्रव्य गुरु चरणे धरऊँ ॥
जाते जीव कालते बांचे । सोई जतन करो गुरु सांचे ॥

कबीर वचन

तब हम कहा होहु निर्वाना । राय मँगाव मिठाई पाना ॥
चौका जुगति करो सब साजा । देउ सार पद मेंटो लाजा ॥
नरियर धोती पान मँगाओ । महा कन्द ले तहाँ धराओ ॥

कलश ले अरु पांचो बाती। साधु संत बैठे बहु भांती ॥
कंचन झारी जल धरवाई। तापर खरचा सात चढाई ॥
स्वेत चँदेवा स्वेत कनाता। सत्यपुर कह सूकृत बाता ॥
सत्यलोक स्वेत है फूला। स्वेत सब देह जीवका मूला ॥
स्वेत सिंहासन चौका चारी। सतगुरु बैठे आसन मारी ॥
कदली पत्र मेवा संयूता। चन्दन श्वेत सुगन्ध बहूता ॥
राजा सकल साज लइ आये। साधु संत बैठे सब आये ॥
विधिपूर्वक शुभ चौक पुराया। हाथ जोरि ठाढा भयो राया ॥
बोले साधु शब्द धुनि तबहीं। रानी राय चरण गहे जबहीं ॥

## राजा बीरसिंहका सतगुरुकी स्तुति करना

राजा लीन्ह नारियर हाथा। बहुत जीव तहँ भये सनाथा ॥
करी दंडवत विन्ती कीना। हंस राज मोहि दर्शन दीना ॥
धन्य भाग मम काह सराहू। हे प्रभु तुम हौ सत्य मम नाहू ॥
छन्द—आनन्द कन्द सर्वज्ञ रूप अखिल त्राता अविगतं ॥
दास जानि दीजै अभय पद ज्ञानदाता अस्थितं ॥
अविनाश सागर दयाके आगर धर्म कंटक मर्दनं ॥
संशय खण्डन रिपुविहंडन अजर वीरा सुमिरावनं ॥
सोरठा—अमर पुरी तुव बास, अमर स्वरूपी हंस जहँ ॥
वास दीजिये दास, सुरतिवंत प्रभु कीजिये ॥

कबीर वचन—चौपाई

करि चौका तब नरियर मोरा। करि आरती भयो पुनि भोरा ॥
तिनका तोरि पान लिखि दयऊ। रानी राय अपन करि लयऊ ॥
बहुतक जीव पान मम पाये। ताघट पुरुष नाम सात आये ॥
जो कोइ हमारा बीरा पावे। बहुरि न योनी संकट आवे ॥
बीरा पावे भवते छूटे। विनु बीरा यम धरि २ लूटे ॥

सत्य कहूँ सुनु धर्मदासा । विनु बीरा पावै यम फांसा ॥
बीरा पाय राय भय भागा । सत्य ज्ञान हृदयमें जागा ॥
काल जाल तब सबै पराना । जब राजा पायो परवाना ॥
गद्गद कंठ हरष मन बाढा । विनती करै राजा होय ठाढा ॥
प्रेमाश्रु दोइ नयन ढरावै । प्रेम अधिकता वचन न आवै ॥

राजा बीरसिंहका स्तुति करना

करुणारमन सद्गुरु अभय मुक्तिधामी नाम हो ॥
पुलकि सादर प्रेम वश होय सुधरे सो जीवन काम हो ॥
भवसिन्धु अति विकराल दारुण तासु तत्त्व बुझायऊ ॥
अजर बीरा नाम दै मोहि पुरुष दरश करायऊ ॥
सोरठा–राय चरण गहे धाय, चलिये वहि लोकको ॥
जहवाँ हंस रहाय, जरा मरण जेहि घर नहीं ॥

कबीर वचन

आदि अन्त जब नहीं निवासा । तब नहिं दूसर हते अवासा ॥
तीन नाम राजा कहँ दीना । सकल जीव आपन करि लीना ॥
राय श्रवण जब नाम सुनायी । तब प्रतीति राया जिव आयी ॥
सत्यपुरुष सत्य है फूला । सत्य शब्द है जीवको मूला ॥
सत्य द्वीप सत्य है लोका । नहीं शोक जहँ सदा अशोका ॥
सत्यनाम जीव जो पावै । सोई जीव तेहि लोक समावै ॥
ऐसो नाम सुहेला भाई । सुनतहिं काल जाल नशि जाई ॥
सोई नाम राजा जो पाये । सत्य पुरुष दरशन चित लाये ॥
साखी–ऐसो नाम है खसमका, राय सुरति करि लीन ॥
हर्षित पहुँचे पुरुष घर, यमहिं चुनौती दीन ॥

चौपाई

जब हंसा यम छेके आयी । चलत बेर निज मना सुनायी ॥
मंडल अखण्ड ब्रह्मण्डे बासा । नीर पवन हंस रहिवासा ॥

सुकृत जहां आपै शठिहारा। रतन पलीता दीपक बारा ॥
फोडि ब्रह्मांड हंस घर जायी। दीप लेसि उजियार करायी ॥
हंस चले पुरुष दर्बारा। उघरे कूँची कुलुफ किवारा ॥
तहँ हंसन रोकत हैं दूता। देखत तहां बहुत अजगूता ॥

साखी–चले हंस सतलोकको, सुरति शब्द गहि डोर ॥
दोय पाँजीके बीचमें, बैठ काल तहँ चोर ॥

चौपाई

धरती माथ स्वर्गको नाका। तहाँ दोय पाँजी है बाँका ॥
तहवाँ दूत रहत है भाई। पुरुष नाम सुनि निकट न आई॥
युगदानी ठाढे बटपारा। मागै देहू जीव हमारा ॥
प्रथमहिं हैं युगदानि जगाती। दूजे पाछे बज्जरघाती ॥
तीजे मृत्यु अंध बटपारा। परलम्बित चौथे सरदारा ॥
पँचयें दूत स्वयम्बर जानी। पांचो यम जिव छेदत आनी ॥
जा घट नाम धनीका होई। सो हंसा नहिं बूझे सोई ॥
नाम पान हृदये में गहई। सो हंसा यम सो निर्बहई ॥

साखी–नहिं धरती न अकाश जब, नहीं हाट अरु बाट ॥
तबका खसम कबीर है, दूसर यमकी हाट ॥

राजा बीरसिंह वचन–चौपाई

साहब शब्द सार मोहि दीजे। आपन करि प्रभु निजकै लीजे ॥
औघट घाट बाट कहि दीन्हा। पाँजी भेद सकल हम चीन्हा ॥
दयावंत विनती सुनु मोरी। हम पुरुषा परे नरक अघोरी ॥
महा कुटिल बड कामी रहिया। ताते नरक अघोर बड परिया॥
ते जिव तारो अरज गुसाईं। विन्ती करों रंककी नाईं ॥
भरमें जीवनको मुकताऊ। सो भाषों प्रभु शब्द प्रभाऊ ॥

कबीर वचन

अजर नाम चौका विस्तारो। जेहिते पुरुषा तरै तुम्हारो॥
गाव तुम्हारे ब्राह्मणि जाती। धोती कीन्ही बहुतै भांती॥
बारी माहिं कपास लगायी। बहुत नेम से काति बनायी॥
सो धोती तुम राजा लाऊ। पाछे चौका जुगुति बनाऊ॥

राजा बीरसिंह वचन

तब राजा अस विन्ती कीन्हा। कैसे जान्यो को कहि दीन्हा॥
ब्राह्मणि मंदिर नगर रहायी। ताकी सुधि हमहूँ नहिं पायी॥

कबीर वचन

तब राजा आपै चलि गयऊ। साथ एक नेगीको लयऊ॥
पूछत ब्राह्मणि राजा गयऊ। वही पुरीमें जाइ ठाढ रहेऊ॥
राजा आवन सुनी जब सोई। आदर देन चली तब ओई॥
माई पुत्री आगे चलि आई। दधि अछत औ लुटिया लाई॥

ब्राह्मणी वचन

ब्राह्मणि कहै दोई कर जोरी। राजा सुनिये विन्ती मोरी॥
भाग मोर हम दर्शन पावा। मैं बलिहारी यहाँ सिधावा॥

राजा बीरसिंह वचन

राजा कह ब्राह्मणीसे बाता। तुव घर धोती एक रहाता॥
सो धोती हमको देहू। गाँव ठौर तुम हमसे लेहू॥
एतो वचन जो राखु हमारा। धोती देइ करु काज निबारा॥

ब्राह्मणी वचन

ब्राह्मणी कहे सुनो हो राऊ। धोती सुधि तुहि कौन बताऊ॥

राजा बीरसिंह वचन

हम घर सतगुरु कहि समझायी। धोती सुधि हम गुरुपै पायी॥

कबीर वचन धर्मदास प्रति

वचन सुनत तेहि सुधि सो भूली। मन पछताय विनय मुख खोली॥

ब्राह्मणी वचन

छन्द–माइ पुत्री करइ विन्ती धोती नाथ अनाथकी ॥
गाव मुल्क नहिं चाहीं मोहि धोती अहै जगन्नाथकी ॥
हम दीन हैं आधीन भिक्षुक शीस बरु मम लीजिये ॥
करि जोडि विन्ती मैं कहूं जस चाहिये अब कीजिये ॥

कबीर वचन

सोरठा–राजा घरहिं सिधाइ, टेके चरण तहँ खसम कर ॥
कहे उत्तर समुझाय, धोती मांगे न दीनेऊ ॥

राजा बीरसिंह वचन–चौपाई

साहिब ब्राह्मणी लग हम गयऊ । धोती माँगत हम नहिं पयऊ ॥
कहे धोती मोहि देइ न जायी । जगन्नाथ हेतु धोती बनायी ॥
कहे बरु शीस लेहु तुम राजा । धोती देत होय व्रत अकाजा ॥

कबीर वचन

एती सुनते हम विहँसाये । राजा कहँ एक वचन सुनाये ॥
छरीदार दोउ देउ पठायी । ब्राह्मणी संग क्षेत्र[1]हीं जायी ॥
यहि प्रतीति लेहु तुम जाका । हम विन धोती लेइ को ताका ॥
राजा छडीदार पठवाये । ब्राह्मणी संग क्षेत्र चलि जाये ॥
नरियर लेइ ब्राह्मणी हाथा । करि अस्नान परसि जगन्नाथा ॥
लै धोती जब परस्यो जायी । तब धोती बाहर परि आयी ॥

ब्राह्मणी वचन

अब यह धोती काम न आयो । धोती फेरि कहो कस लायो ॥

जगन्नाथ वचन

जाके व्रत तुम काति बनायी । सो घर बैठे माँगि पठायी ॥
अब तुम अपने घर लै जाहू । लै धोती दै डालो काहू ॥

---

१ जगन्नाथपुरीको ।

ब्राह्मणी वचन

तबै ब्राह्मणी कहै कर जोरी । ठाकुर सुनिये विन्ती मोरी ॥
राय बीरसिंह मो घर आये । धोती माँगि कबीर पठाये ॥
उनके मांगे मैं नहिं दीना । हम कहि जगन्नाथ व्रत कीना ॥
तब राजा अपने घर गयऊ । हम लै धोती इहां सिधयऊ ॥

जगन्नाथ वचन

जगन्नाथ तब कहि समझायो । तुम अपनी भल भाँति नशायो ॥
उनके मांगे धोती देती । आपन जनम सुफल कर लेती ॥

कबीर वचन

जगन्नाथ जस कहि समझायी । छडीदार तब लिये अथायी ॥
छडीदार अरु ब्राह्मणी आये । जहाँ राय अरु हम बैठाये ॥
ब्राह्मणी ले धोती धर दीनी । दोय कर जोरि सो बिन्ती कीनी ॥

ब्राह्मणी वचन

हम अजान कछु जान न जायी । धोती नहिं दीनी मम पायी ॥

छडीदार वचन

छडीदार तब शीस नवाये । राजासे उठि विन्ती लाये ॥
जगन्नाथ धोती नहिं लीना । मंडप बाहर धोती कीना ॥
जगन्नाथ अस वचन सुनावा । यह धोती हम काम न आवा ॥
जब राजा से मांग पठाई । कस ना धोती दीनेउ माई ॥
जब हम मांगा तब ना दियऊ । अब कस देन यहाँ चलि अयऊ ॥

कबीर वचन

छडीदार उत्तर जब कहेऊ । तब मम चरण राय शिर लयऊ ॥

राजा वीरसिंह वचन

सांचे सद्गुरु हैं तुव बचना । सत्य लोककी सत्य है रचना ॥
अब मोहि धनी सिखापन दीजे । हम पुरुषा आपन करि लीजे ॥
जाते अजर अमर पद पाई । सोई विधि तुम करो गुसांई ॥

कबीर वचन

जब हम राजहिं दीन बुझाई। अजर आरती साज मँगाई॥
वीरसिंहराय तब साज मंगावा। बहुत भांति पकवान बनावा॥
मेवा भांति भांति मँगवायी। भांतिन भांति सुगन्ध धरायी॥
सकल सुगन्ध खोजकर आने। फूलन माला बहुत बखाने॥
चौका विस्तार थार मँगवायी। कोरा वासन आनि धरायी॥
ततक्षन मन्दिर नये सँवारी। नये चन्दोवा कंचन झारी॥
पाँचो बाती कलस धरायी। ततछिन सकल साज बनवायी॥
अगर चौका तब करि दीना। मन प्रतीति राजा गहि लीना॥
तब राजा अस्तुति अनुसारा। बहुविधि विन्ती करे प्रचारा॥
छन्द–अजरनामको कीन्ह चौका दिवस चारि विराजिके॥
अजर सुमिरन कीन्ह ततक्षण पुरुष प्रकटे आनिके॥
धनी जब ठाढे भये नृप दर्शन तबही लीन हो॥
धाय राजा चरण गहे प्रभु अधम पावन कीन हो॥

राजावीरसिंह वचन

सोरठा–तुव चरण बलिहार, पाछिल पुरुषा मम तरे॥
धनि २ धनी हमार, कागाते हंसा किये॥

कबीर वचन–चौपाई

यहि विधि प्राणी चौका करई। कुलमाहीं बहु हंसा तरई॥
दिवस चारि चौका विस्तारे। तहँवा आप खसम पगु धारे॥
निशि वासर सुमिरे निज नामा। छूटे पिण्ड चले निज धामा॥
रहिहो राजा सुरति लगायी। यकटक ध्यान शब्द मन लायी॥
शशि चकोर सम गुरु पद लागे। छूटे जनम मरण भ्रम भागे॥
यही सिखापन राजहिं दीना। मन बच करम राय शिर लीना॥

राजा वीरसिंह वचन

राजा रहे दोउ कर जोरी। साहब सुनियो विन्ती मोरी॥

पुत्र ब्याह कहँ आयसु पाऊँ । तौ साहब हम ब्याह कराऊँ ॥
महा कठिन दोनो दिशि धारा । पुत्र काज हम तहाँ विचारा ॥

कबीर वचन

आज्ञा लेइ राय दल साजा । साजि कटक बहु ठाढ भे राजा ॥
तब मम चरण शीस नृप लाये । करन विनय टेके गहि पाये ॥

राजा बीरसिंह वचन

विन्ती कीन भरि करुणा । नहिं जानू होय धोखे मरणा ॥
साहब रहिहो सदा सहाई । देह विदेह हंस मुकताई ॥

कबीर वचन

तब हम हाथ सीस तेहि दीना । करुणा कहा राय तुम कीना ॥
तुम तौ राय हंस मम आहू । दीन आशीष निडर होय जाहू ॥
चरण टेकि नृप भये असवारा । चले कटक जब पेलि नकारा ॥
बाजत बंब चले नृप जबहीं । भांति भांति बाजा बाजे तबहीं ॥
साजि बरात राजा चलि गयऊ । लीला एक रचत हम भयऊ ॥
तब हम तन तजि भये न्यारी । रानी चिता रचन मन धारी ॥
रानी बहुत शोच मन कीन्हा । राजा गये गुरू अस लीन्हा ॥
विजलीखाँ सुनि आतुर धाये । चिता माँझते मुरदा लाये ॥
गोर बनाय उन कीन निवाजा । कीन कटोरी बहुविधि साजा ॥

विजलीखां वचन

कहत पठान पीर भल लाये । ना तो रानी देत जराये ॥

कबीर वचन

यहवाँ रानी हिय अकुलाती । बीरसिंह देवको भेजी पाती ॥

छन्द—भेजी रानी रायको पाती सदगुरु गये लोक सो ॥
नृप जात गुरु तन तजे मोहि देख भो बड शोक सो ॥
चिता रची मुर्दा धरी तब आय विजलीखान हो ॥
जोर करि करि हमसो ले गये ले गाडि गोरहिं दीन हो ॥

सोरठा–बेगि नृपति चलि आव, सतगुरु काया लीजिये ॥
हँसे लोक बड चाव, नृप गुरु कहिके म्लेच्छ सब ॥

कबीर वचन

पाती गही देखु जब राया । महाक्रोध आतुर चलि आया ॥
डारत घृतहि हुताशन जैसे । रोम रोम पावक वरु तैसे ॥
चले सकल दल छोडि बराता । व्याकुल राय कहे तब बाता ॥

राजा बीरसिंह वचन

अरे दिवान सुनो मतिवाना । वेगि चलौ गुरु कैसे ठाना ॥
बिजुली मारहु शत्रु हमारा । करी विचार बैठ हंकारा ॥

कबीर वचन

आतुर चले बाजि गज धाये । कूहुक बाण गहि लीन चढाये ॥
खड्गतुपक औ सेल कटारा । धनुष बान करि वेगि सवाँरी ॥
कुहुक बाण हाथ करि लीना । अगनित बाजा बाजत दीना ॥
ठाढा भांट अनेक पुकारे । गुण वरने चारन बहु पारे ॥
भेजे राय पाँति तेहि बारा । खोदि कबर गुरु देहु हमारा ॥
नहि तो विजली बचे न पाई । एक एकको मारि गिराई ॥
आई पाँति तब कहे पठाना । सुनि विजली गहि लीन कमाना ॥

बिजलीखां वचन

हिन्दू काफिर पीर न पावे । जान माल जो सब गलि जावे ॥

कबीर वचन

विजली खान सेना ले ठाढा । आपुन दीस बहुत बड गाढा ॥
पीर आपना हम नहिं देते । विरसिंह राय करेगा केते ॥
तब हम रानी दर्शन दीना । मानिक दे चरणामृत लीना ॥
छोटी है कमलापति रानी । सो मम चरण पखारे आनी ॥
रानी राय कहा मोहि चीन्हा । मानुष विधि तुम हमकूँ कीना ॥
हाड मांस हमरे नहिं काया । काहे दोनों रार बढाया ॥

राय पठान दोनों गुरु भाई। काहे दोनों करें लडाई ॥
पाती भेजहु राय पठाना। खोदि कबर देखो मतिवाना ॥
गोर मांहि मुरदा जो होई। राय पठान लड़ो तुम दोई ॥
जो मुर्दा तुम ढूँढ न पाओ। काहेको तुम रार बढाओ ॥
मथुरा रतना कदोइन नारी। तिन बड प्रीति हमारी धारी ॥
सात दिवस लगि अन्न न पावा। हमरे दरस को सुरति लगावा ॥
ताको दर्शन दिये हम जाई। काहे मरो दोऊ गुरु भाई ॥
अन्तर्धान तब हम होइ गयऊ। तत्क्षण रतना दर्शन पयऊ ॥
यहँ राना पाती पठवायी। राय देखि अचरज मन लायी ॥
गये बांचि जहँ रहै पठाना। सुनत पठान अचम्भो माना ॥
सुनत सलाह कीन पुनि दोई। राय पठान आये सब कोई ॥
आइ पठान गोर खुदवाई। देखो तहां देह नहिं पाई ॥
भये अधीन देख सब लोगा। करुणा करहिं सकल भयो सोगा ॥
छन्द–भये मुकृत उदास सबहीं रंक निधि जैसे हरयो ॥
धन्य गुरु कहा बंदना तब चीन्ह गुरु मम ना परयो ॥
अमी पाय गुरु पंकज गहेसो काग होय मराल हो ॥
पाय अस्थिर सदन निर्बंध हंस होय बड भाग हो ॥
अखंड धर्म विराज सतगुरु जहाँ काल नहिं पहुँच है ॥
असंख्य रवि अरु कोटि दामिनि अग्र शोभा तहाँ सहैं ॥
दयासागर असहिं विराजत पुष्प सज्या सोहहीं ॥
करहिं कलोहल हंस सबहीं पुरुष दरश विलोकहीं ॥
सोरठा–षोडश रवि प्रभाव, चकोर उडगन पोहिया ॥
श्रवण आहि रवि भाव, अमृत फल हंसा चुगे ॥

चौपाई

गोर बनाय चले सब कोई। हिन्दू मुसलमान पुनि दोई ॥
नाना भाँति करत सब सोभा। कंठी तिलक देखि सब लोभा ॥

धन्य राय धन्य पठाना । ऐसे गुरु पाये मतिवाना ॥
ऐसे बहुत दिन गये बिताई । रानी केरि अवधि नियराई ॥
सुन्दरदेइ रानी कर नाऊ । पाये शब्द न प्रीति लगाऊ ॥
शब्द पाइ गुरु प्रीति न लागी । विना प्रीति सतभक्ति न जागी ॥
पाय शब्द नहिं कीन कमाई । ताते यम बहुते दुख लाई ॥
चारि दूत हरि तबहि बुलावा । तासे सकल मता समुझावा ॥
नगर गहो जाय नृप रानी । तहँवा जाय वेगि तुम आनी ॥
तब यमदूत गहि राजा गयऊ । जाय ठाढ मन्दिरमें भयऊ ॥
घट घट यम देखा व्योहारा । काया पैठि सो कीन विचारा ॥
तब रानीके वेदन भयऊ । व्याकुल करी दूत चित रहऊ ॥
राजा बूझे रानी बाता । कहे रानी मोहि नाहि सुहाना ॥
एक बात सुनिये मम राई । साधु संत सब देहु बुलाई ॥
राजा सकल साधु बुलवाये । सतगुरु भक्ति करो चित लाये ॥
बाढ विथा रानीकी काया । ततक्षिन आप पुरुष होय आया ॥
तबहीं यम जिव घेरे आयी । अरध अरध स्वासा चलि धायी ॥
भागि हंस त्रिकुटी में गयऊ । तहवाँ यम जिव घेरे लयऊ ॥
चारो जीव यम घेरे लायी । काहे बल तुम बचिहो जायी ॥
चलो हंस हरि कीन बुलाऊ । तब हंसा यक वचन सुनाऊ ॥
यहवाँ कस आये बटपारा । हमरे हैं समरथ रखवारा ॥
हम घर गुरू खसम यक आही । सो मोहि नाम दीन बतलाही ॥
दूत भूत यम तोहि चिन्हाई । आज्ञा देइ खसम घर जाई ॥
जे साहेब मोहि नाम सुनाया । सो आवे गुरु जाय लिवाया ॥

साखी—तबही यम अस बोलिया, कहँ है धनी तुम्हार ॥
ताकहँ वेगि बुलावहू, नहिं चलु हरि दरबार ॥

चौपाई

तब जिव यमसे कहवे लीना । साहब एक वचन कहि दीना ॥
निगमके पार अगमके आगे । सो सतगुरु मम श्रवणहि लागे ॥
धरनि अकाशते नगर निनारा । तहाँ विराजे धनी हमारा ॥
जहँ नहिं चन्द सूरकी कांती । तहाँ नहीं दिवस अरु राती ॥
अगम शब्द जब भाषे नाऊ । तब यम जीव निकट नहिं आऊ ॥
चलो जीव हरि ब्रह्मा पासे । तुम्हरे धनी मोहि ना आसे ॥
तबहीं हंसा कीन पुकारा । कहँवा हौ तुम धनी हमारा ॥
मोसे यम कीनी बरियाई । कस नहिं राखहु सद्गुरु आई ॥

छन्द–कीन जीव पुकार ततक्षण खसम बेगहिं आइये ॥
बेग लागु गुहार सतगुरु हंस लोक पठाइये ॥
काहि करों पुकार साहब मातु पिता नहिं कोइ जना ॥
करि ढिठाई मारि जीव यम झूठ जग महँ बन्धना ॥

सोरठा–लगे खसम गुहार, घाट घाट यम छेकिया ॥
कठिन परी यमधार, अति व्याकुल अकुलाय जिव ॥

चौपाई

तब सतगुरुका आसन डोला । काल दग्ध जिव व्याकुल बोला ॥
आइ खसम तब दर्शन दियऊ । चरण बन्दि हंसा तब लियऊ ॥
साहब देखि भगा यमराई । अति आतुर होय हरिपै जाई ॥

हरिहर वचन

हरिहर बूझे यमसे बाता । कस नहिं कियो जीवकी घाता ॥

दूत वचन

कहे यम स्वामी विन्ती मोरी । हम जिव छेकि कीन तेहि सोरी ॥
वह सुमिरे सतसुकृत नाऊ । सुनत पुकार धनी चलि आऊ ॥
आवत धनी भयों उजियारा । हम भागे चारो बटपारा ॥

कबीर वचन

वहाँ दूत पहुँचे हरि पासा । यहाँ जीव कहत सुखवासा ॥

जीव वचन

विनय जीव सुनु बन्दी छोरा । हम कहँ कष्ट दीन बड चोरा ॥
नाम तुम्हार बूझे यमराया । कहा नाम तब बचने पाया ॥
तब हम ततछिन कीन पुकारा । बेगहि आओ खसम हमारा ॥

ज्ञानी वचन

सुनो जीव नहिं शब्दहिं ध्यावा । राजा गुरु मानुष विसरावा ॥
गहे नाम अरू करे कमाई । तब यम दूत निकट न आई ॥

जीव वचन

जेहि ते हंसको घर पठवायी । तौन नाम मोहि भाषि सुनायी ॥
जाते जीव अमर घर जावै । दूत भूत यम खबर न पावै ॥

कबीर वचन

साखी–गुप्त नाम मुख भाखिया, अकह अमर निज नाम ॥
अमर कृपा निधि जीव कूँ, पहुँचे जीव निज ठाम ॥

चौपाई

पहुँचे जीव खसम घर जबहीं । सुख आनन्द भये बड तबहीं ॥
कंचन कलस बरत तहँ बाती । आरति करे हंस बहु भांती ॥
देखत जीव हंस उजियारा । अंग अंग शोभा चमकारा ॥
देख द्वीप शोभा बहु भाँती । रवि शशि मनि लागे जिमि पाँती ॥
ता मध्ये जिमि लाल जडाई । बीच बीच चुनि लै बैठाई ॥
मोतीसर झालरि बहु पोहा । देखत हंस रहे तहँ मोहा ॥
तबहिं पुरुष ज्ञानी हँकराई । कौन वचन तुम जीव सुनाई ॥
कौन वचन तुम जीवन दीना । जाते जीव अटक यम कीना ॥

ज्ञानी वचन

दोय कर जोरि कहे शठिहारा । मुक्ति वचन जिव डार विसारा ॥
विसरे नाम छेके यम आयी । भाषि नाम यम जीव छुडायी ॥

पुरुष वचन

आज्ञा जीव पुरुष हंकराई । कहो जीव कस कीन कमाई ॥
कैसे पहुँचे लोक हमारे । सत्य वचन सो कहो विचारे ॥

हंस वचन

मस्तक नाय हंस कर जोरी । अमर पुरुष विन्ती यक मोरी ॥
हे साहब हम कछू न चीन्हा । गुरुको वचन मानि शिर लीन्हा ॥
जा दिन गुरु मोहिं दीनेउ पाना । तब मैं जानवो पद निर्बाना ॥
साधु गुरू मैं जान्यो एका । काम क्रोध छोडचो टेका ॥
साधु संत कर बन्देउ पायो । विसरचो नाम गुरु मोहि सुनायो ॥
अब पुरी यम छेकेउ आयी । पल यक दुख मोहिं तहाँ दिखायी ॥

साखी—खसम आइ दर्शन दिये, दीना नाम सुनाइ ॥
तब आये हम लोककूँ, यम शिर पाँव चढाइ ॥

चौपाई

जो नहिं नाम मुक्तिको पावे । माला डारि जगत बौरावे ॥
सुने नाम अरु करे कमाई । छाडे पाखण्ड अरु अधमाई ॥
निर्मल काया होय संसारा । जाकहँ दया करे करतारा ॥
नाम कवीर जपे बड भागी । उन मन ले गुरुचरमन लागी ॥
जापर दया जो होय तुम्हारी । ताकहँ कहा करहि बटपारी ॥
पुरुष दया जब होय सहायी । सत्यलोकमों जाय समायी ॥

छन्द—पुरुष दाया कीन ततछिन अटल काया तब भयो ॥
पुहुप दीप निवास कीना सुमन सज्या आनन्दमयो ॥

हंसन शिर क्षत्र राजे अमृत फल आनन्द घना ॥
रूप षोडश भानु हंसा कोटि शसिहिं अति बना ॥

सोरठा–धाम जो पाय अमोल, हंसा सुख तहँ विलसही ॥
द्वीपहिं द्वीप कलोल, जरा मरन भ्रम मेटिया ॥

इति श्रीबोधसागरे कबीरधर्मदाससंवादे बीरसिंहबोधवर्णनो
नाम तृतीयस्तरंगः ॥

ग्रन्थ बीरसिंहबोध समाप्त ।

इति श्रीबोधसागरान्तर्गत
ग्रन्थ बीरसिंहबोध समाप्त

सत्य

कबीरसागर चतुर्थ खण्डान्तर्गत




भारतपथिक कबीरपंथी स्वामी श्रीयुगलानन्द (विहारी)

द्वारा संशोधित
















मुद्रक एवं प्रकाशकः

**खेमराज श्रीकृष्णदास,**

अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,

खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग, मुंबई – ४०० ००४.

संस्करण : फरवरी २०१९, संवत् २०७५

मूल्य : १२० रुपये मात्र ।



मुद्रक एवं प्रकाशक:
खेमराज श्रीकृष्णदास,™
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,
मुंबई - ४०० ००४.

Printers & Publishers :
Khemraj Shrikrishnadass,
Prop: Shri Venkateshwar Press,
Khemraj Shrikrishnadass Marg, 7th Khetwadi,
Mumbai - 400 004.

Web Site : http://www.Khe-shri.com
Email : khemraj@vsnl.com

Printed by Sanjay Bajaj For M/s. Khemraj Shrikrishnadass Proprietors Shri Venkateshwar Press, Mumbai - 400 004, at their Shri Venkateshwar Press, 66 Hadapsar Industrial Estate, Pune 411 013.

कबीरपंथके प्रधान आचार्य



श्री १०८ पं० श्री उग्रनाम साहब

# बोधसागर द्वितीय भागकी अनुक्रमणिका

इसमें चौथे तरंगसे लेकर आठवें तरंगतक है, जिसमें-



उपरोक्त तरङ्गोंकी अलग अलग अनुक्रमणिका इस प्रकार है-

## अथ भोपालबोधकी अनुक्रमणिका



इति

### अथ जगजीवनबोधकी अनुक्रमणिका

इति

## अथगरुडबोधकी अनुक्रमणिका

इति

## अथ हनुमान बोधकी अनुक्रमणिका



इति

इति

सत्य

भारतपथिक कबीरपंथी-

स्वामी श्रीयुगलानन्दद्वारा संशोधित

# श्री-भोपालबोध

मुद्रक एवं प्रकाशकः

खेमराज श्रीकृष्णदास,

अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,

खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग, बम्बई-४०० ००४

सत्यनाम



श्री कबीर साहिब

सत्यकबीराय नमः

यस्योपदेशमाराध्य नरो मोक्षमवाप्नुयात् ।
तं कबीरमहं वन्दे मनोवाक्कायकर्मभिः ।।

# अथ श्रीबोधसागरे

चतुर्थस्तरंगः

## श्रीग्रन्थ भोपालबोध प्रारंभः

धर्मदासवचन चौपाई

धर्मदास कहे बन्दी छोरा । कैसे जीवन मारत चोरा ॥
केहि विधि जीवन मारत आई । साहिब सो मोहि भाष सुनायी॥
कारण कौन मारत यम जीवा । मारन काल कौन है नीवा ॥

सतगुरु वचन

सद्गुरु कहै अंश सुनु वानी । महा कालकी कहौं निशानी ॥
धर्मराय आज्ञा जब करई । तबहीं मीच पृथ्वी पग धरई ॥

धर्मराय वचन

भयी सृष्टि बहुत अधिकाई । पृथ्वी भार न जाय सहाई ॥
ताते मीच पृथ्वी तुम जाऊ । जीवन धरि हम पर ले आऊ ॥
आनो जीव हमारे पासा । जाहु मीच पृथ्वी करु बासा ॥
पवनरूप घट जाइ समाओ । जीवन जाय बाँधि ले आओ ॥
खांसी जूडी ताप तिजारी । काम क्रोध होइ रोग अपारी ॥

लोभ मोह भ्रम फाँस अपारा । यह नहिं मर्म लखै संसारा ॥
यहि फन्दा जग सबहिं फन्दाओ । विरले हंस सुकृत बन्दाओ ॥

साखी–यहि विधि जगमें जाइके, जीव लाउ हम पास ॥
फन्दा डारहु जीव पै, होहु मीच दुख रास ॥

चौपाई

यहि विधि काल जब आज्ञादीना । चले यमदूत सब साज सजीना ॥
उत पुरुष आज्ञा मोहि दीन्हा । जीव मुक्तावन कहँ पठावन लीन्हा
कहे पुरुष सुनु ज्ञानी बाता । काल करे अब जीवन घाता ॥
घात करी सो भक्षण करिहै । बहुरि जीव भौसागर परि है ॥
काल दुष्ट बहु जीव सतावै । सारशब्द बिनु मोहि न पावै ॥
याते जगमहँ अब तुम आओ । जीवहिं चिताय लोककहँ लाओ ॥
आज्ञा मोरि लेहु सहिदाना । जाइ जगत जीव लाओ निदाना ॥

साखी–सुकृत जाहु संसार में, उल्टी राह चलाउ ॥
शब्दसार जीवन कहो, काल हंस मुक्ताउ ॥

चौपाई

पुरुष आज्ञा हम शिर मानी । करि प्रणाम तब जगत पयानी ॥
देश जलंधर राय भोपाला । गयउ तहां जिन्दाके हाला ॥
जाई पौरिमें ठाढ रहायी । कह्यो पौरिया बहुत चितायी ॥
राजहिं लाउ हमारे पासा । दर्शन करै कर्म नृप नासा ॥
लागे कुंजी कुलुफ किवाँरा । बहुत लोग बैठे शठिहारा ॥
कोइ कहै न्याय जिन्द चाहै । कोइ कहै बटपार यह आहै ॥
कोई कहै मारि यहि खेदो । निर्गुण भेद तिन्है नहिं भेदो ॥
चारि पहर तब रैन बितावा । भयो भिनसार भोर हो आवा ॥
तब हम चरित दिखावन लागे । फूटि कपाट भये दोइ भागे ॥

सबै कँगूरा भुइ खसि परेऊ । ज्ञानी चली राय पहँ गयऊ ॥

साखी–चकित सकल पौरिय, पाछे लगि सब धाय ॥
जहाँ राय भोपाल हैं, तहाँ पोरिया जाय ॥

चौपाई

करत गोहार पौरिया जाई । मार मार बहुत हकराई ॥
राय भोपाल बैठि जहँ राजे । गये पौरिया तहँ सब भाजे ॥
कीन्ह सलाम दोई कर जोरी । यह जिन्दा बटपार बडचोरी ॥
कहैं पौरिया पौर उघारो । तुरत बुलाओ राय यहि बारो ॥
जिन्दा वचन नहीं हम माना । बीत रैन भये भोर सुजाना ॥
मंत्र एक जिन्दा तब करिया । फूट कपाट कँगूरा गिरिया ॥
तब जिन्दा आयो महराजा । हम आये तेहि पीछे भाजा ॥
ना जानौ कौन यह आही । होय बटपार धसा घर माहीं ॥

साखी–हो राजा महराज मम, कह्यो सत्य हम बात ॥
तत्क्षण जिन्दा मारहू, नातौ सब पर घात ॥

चौपाई

सुनो पौरिया कहे अस राजा । सुनिये वेद करौं तव काजा ॥
विप्र बुलाय सुनो मतिमाना । करिये तबै विवेक सुजाना ॥
आज्ञा वेद होय तब मारा । नहिं तो जिन्दा कहा बिगारा ॥
एतिक वचन राय मुख बोला । साहब आसन तबहीं डोला ॥
तत्क्षण हम अस लीला कीन्हा । रायमहल सोने करि दीन्हा ॥
कंचन कपाट रतनकी पांती । विपरीत बने खम्भ बहु भांती ॥
बने कंगूरा रतन रसाला । चकित राजा भये भोपाला ॥

साखी–भयो विवेक मन रायके, देखत मन पतियाय ॥
कौन पुरुष तुम समरथ, मोहँ कहँ दरश दिखाय ॥

ज्ञानीवचन चौपाई

सत्य पुरुषके हम शठिहारा । जीवन काज आये संसारा ॥
पुरुष लोक सत्य परवाना । ताका मरम कोई नहिं जाना ॥
साखी–हो राजा भोपाल सुनु, चीन्हौं यमका जाल ॥
शब्द हमारा परखहु, नातो पैहो काल ॥

चौपाई

छोडहु राम नाम हित जाना । सद्गुरु बचन गहो मतिमाना ॥
अलख निरञ्जन छाडो देवा । भ्रम तजि करु सतगुरुकी सेवा॥
सुमता होय करो दृढ करनी । पहुँचो लोक पुरुषकी शरनी ॥
आवागमन रहित होय जाऊँ । जो प्राणी सत्यगुरु कहँ पाऊँ॥
पुरुष अवाज जाव उबराई । ताते दर्शन दीन्ह तोहि भाई ॥

छन्द–करहु राजा भक्ति दृढ होय छोडु राजा गुमान रे ॥
नारि पुरुष पुत्र पुत्री लेहु हिलिमिलि पान रे ॥
पुरुष नाम लै करहु आरती जीव तृण तुराय के॥
पुरुष अंक ले पाव वीरा काल गहे नहिं आयके॥

राजा भोपाल वचन चौपाई

तब राजा बन्दे दोनों पाई । करगहि महलन लैं जाई ॥
धन्य भाग मोहि दर्शन दीना । अधमजीव आपनकरि लीना ॥
कुटिल कठोर अधम अघ पापी। दर्शन दीन छुटै त्रयतापी ॥
महामोह तम पुञ्ज अपारा । वचन तुम्हार कीन रविधारा ॥
उठो सुधर्मा मन चित लायी । साहब चरण पखारहु आयी ॥

छन्द–गुरु ब्रह्म रूप प्रकाश अघहर पुंज तमहिं विदारनं ॥
मुक्ति दाता अखिल त्राता कोटरवि छवि वारणं ॥
सोई रूप धरि जगत प्रगट होय जिन दीन पतितन दुख हरै॥
भवसिन्धु ताप बुझाय शीतल जीव गहि आपन करै ॥

सोरठा—निज मन मुकुर सुधार, गुरु पदपंकज उर धारिए ॥
मिटै सकल अँधियार, अस्थिर घर तब पाइए ॥

चौपाई

राजा आज्ञा रानी मानी । साहब चरण पखारे आनी ॥
कञ्चन झारी लै जल धायी । साहब चरण पखारी आयी ॥
राजा रानी चरन धुवाये । अँचरन रानी तबहि पुछाये ॥
चरण हिये मत्थे पर लायी । चरणामृत सबही मिलि पायी ॥
कीन्ह दण्डवत पलपल रानी । साहब दरस दीन्ह भल आनी ॥

ज्ञानी वचन

साखी—हमहिं जनि भार चढ़ावहू, हमरे नाम कबीर ।
अगम निगम वह पुरुष है, जे गहि लागो तीर ॥

रानी वचन—चौपाई

सुनिके रानी वचन पतियानी । तब साहब सों बिनती ठानी ॥
और पुरुष जानो नहिं नीका । तुम सतपुरुष आहु यहि जीका ॥
तुमहि पुरुष आहु दृढ़ जानी । और पुरुष नाहीं मन मानी ॥
रानी कहै सुनो महराजा । साहिब आये तुमरे काजा ॥
रानी कहै बेगि गहु चरना । काल अजापी है निज मरना ॥
आये पुरुष हमारे पासा । हमरे मनकी पूजी आसा ॥

ज्ञानी वचन

सुनहु राय रानी निज वचना । यह तो जाल कालकी रचना ॥
मेटहु काम क्रोध हंकारा । माया मोह तजौ संसारा ॥
ज्ञान हेतु दृढ करनी करई । आवागमन का पूग परई ॥
तजि संसार शब्द कहँ ध्याओ । गुरुगम पुरुष नाम चितलाओ ॥

साखी—ना फिर जन्मे जोइनि ना, स्वर्ग नर्क को जाय ॥
सो हंसा रहित भये, अजर अमर घर पाय ॥

यह तो माया जाल है, कठिन बीर रुतवाल ॥
जीव शब्द न मानई, यक दिन खैहे काल ॥
मोह नदी विकराल है, कोई न उतारे पार ॥
सतगुरु केवट साथ ले, हंस होय यम न्यार ॥

चौपाई

कोटि जुहार होत नित तोहीं । कैसे कै लौ लावहु मोहीं ॥
कैसे छाडो राज गुमाना ।किमि छोडो पाखण्ड अभिमाना॥
कैसे छाडहु राज बडाई । कैसे छाडहु मुख चतुराई ॥
बैठि सभा बोलहु हँसि बाता । कुँवर पचास संग निशि राता ॥
बैठि महल महँ खेलहु सारी । कामिनि के संग सदा बहारी ॥
छुटे न नाति कुटुम्ब की आशा । छुटे न कञ्चन भोग विलासा ॥

साखी-यह सुख कैसे छोडिहो, हम तो कथे निरास ॥
सैन चैन जब छोडहू, चलहु पुरुषके पास ॥

राजा भोपाल वचन

कहै राय सुनिये गुरुदेवा । मोकहँ राखु चरन की सेवा ॥
मस्तक मोर दीजिये हाथा । दम अघ करमी होयँ सनाथा ॥
छोडो सहस बीस मैं हाथी । अब मैं चलौं तुम्हारे साथी ॥
अब हम दौलत छाडैं तुरंगा । छोडों सकल कामिनी संगा ॥
देह गर्व औ राज गुमाना । छोड़उँ सकल भक्ति मनमाना ॥
जब तुम अमृत वचन पुकारा । तेहि क्षण छूटा सकल विकारा ॥

छन्द-दया निधान करुणा विलोकहु महादारुण दुःख दहे ॥
मैं अधम जीव अघोर अकरमी पतित पावन पद गहे॥
तुम ज्ञान घन विज्ञान आगर धर्म कंटक मर्दनं ॥
तुव नाम अमोल समरथ करहु दाया निर्धनं ॥

सोरठा–अविरल भक्ति तुम्हार, पूरे भागते पाइये ।
विनवों बारम्बार, पुरुष दरश करवावहू ॥

ज्ञानी वचन–चौपाई

नाम पदारथ देउँ मैं तोहीं । तैं राजा चीन्हा दृढ मोहीं ॥
पुरुष नाम एक यज्ञ कराओं । जेहि नाम ते हंस बचाओं ॥
जरी केर एक चन्दोवा तानो । कञ्चन केर सिंहासन आनो ॥
दिवालगिरी लागे जरकेरा । मोतिन झालर लागु घनेरा ॥
मोतिन लै भर थार धराऊँ । तापर आरति जोति लसाऊँ ॥
कंचन कलसा पाँचो बाती । झारीजल हीर लै पाती ॥
पूंगी फल औ स्वेत मिठाई । चन्दन पान धरो तहँ लाई ॥
कदलीफल उत्तम तहँ जानो । मेवा अष्ट युक्त प्रमानो ॥
कदलीपत्र कपूर सुगन्धा । आमपत्र लै चहु दिशि बन्धा ॥
सात हाथ वस्तर ले स्वेता । पुष्प गुलाब कहौ मरु केता ॥
नौ रतन लै थार धरायी । मनि मानिकके मध्य रहायी ॥
यह सब विधि जब दीनबतायी । राजा सबही लीन सजायी ॥
चौका बैठे सतगुरू जबहीं । रानी गाय चरण गहे तबहीं ॥
सवा लाख दीपक तहँ बारी । बहु आनन्द शब्द विस्तारी ॥
सब मिलि हाथ नारियल लीन्हा । आगे धरा दण्डवत कीन्हा ॥
राजा तृण धरै मुख माँहीं । भये अधीन बांधि कर आहीं ॥

राजा भोपाल वचन

तुम दीननके आहु दयाला । कृपा कीन्ह मोहि प्रतिपाला ॥
अब जनि मोसन करहु दुराई । अपने कर लीजे मुकताई ॥
यहि संसार नाहिं मम काजा । दारुण महा काल है राजा ॥
अब तुम आपन लोक दिखाओ । महा पुरुष के दर्श कराओ ॥

सतगुरु वचन

नौ नारी मिलि विन्ती करई । कुवर पचास ठाढ़ तहँ रहई ॥
बेटी एक सुरजकी जोती । ताहि लिलार पुहे जनु मोती ॥
साहब चरण धरा तिन आई । अब हम चरणछोडि नहिं जायी॥
कीन्ह आरती नरयर मोरा । सकल जीवके तिनुका तोरा ॥
सुकृत अंश बुलाये ज्ञानी । पुरुष दरश कर राजा आनी ॥
लै अमरावहु लोक द्वारा । पल महँ लाय ठाढ बैठारा ॥
दिना चार लगी राख्यो काया । वेगी जाय पुरुष पहँ आया ॥
लिखिलिखिपान सबन कहँदीना। सकलो जीव वन्दन कीना ॥
जेते जीव परवाना पावा । तेते हंसा लोक सिधावा ॥
काया छोडि हंस चले आगे । सत्य सुकृत के चरनन लागे ॥
लागी डोर पुरुषके पासा । तबै दूत यक कियो तमाशा ॥
सुकृत संग हंस सब जेते । आये दूत कला धारि तेते ॥
छाप तिलक तब विरचि बनायी। मारगमाँहि ठाढ भय आयी ॥
आओ हंस पुरुषके पासा । नातो होवै ठाट विनाशा ॥
बोले दूत हंस कहँ जायी । हम गुरुज्ञानी तोंहि सहायी ॥
हमरे संग चलो हो राजा । हमरे शरण काल उठि भाजा ॥
हंस रूप तुम धरि बटपारा । हम नहिं फन्दा परै तुम्हारा ॥
सुकृत कहै हंस चलि आऊ । हमरे संग काल नहिं पाऊ ॥
बाएँ अंग कालका धारा । दहिने पाँजी अहै हमारा ॥
ताहि द्वार होय सुरति लगाओ । बेगि दरश पुरुषके पाओ ॥
सुकृत सागर पहुँचे जायी । अहो हंस तुम लेहु नहायी ॥
सकल हंस मिलि पैठि नहावा । निरखै द्वीप द्वीपका भावा ॥

देखहिं लोक लोककी रचना। तब टेके सुकृतके चरना ॥
बैठे लोकमहँ हंस निहारा। जहँवाँ पुरुष आप विस्तारा ॥
सकल हंस तहँ बैठे पांती। सोरह रवि हंसनकी कांती ॥
पुहुप सेज सब हंस विराजा। तहँवाँ बुझाय नहिं रंक औ राजा ॥
कंचन भूमि देख अति शोभा। बरनो कहा हंस तहँ लोभा ॥
राजा कीन्ह दण्डवत जबहीं। रानी पुत्र कीन्ह पुनि तबहीं ॥
अब नहिं भवमहँ जाउ लिवायी। अति आनन्द बहुत सुखपायी ॥

सुकृत वचन

सुकृत उत्तर कहै समझायी। चलू राय गहिर जनि लायी ॥
जो तुम गहर लगावहु राजा। विनशे ठाट तब होय अकाजा ॥
तब पछतैहो राय भुपाला। ततक्षण वेगि चलो यहि हाला ॥

राजा भोपाल वचन

विनशे ठाट होय जरि छारा। अब नहिं छोडब चरण तुम्हारा ॥
ऐसा लोक छोडि नहिं जायब। बार बार तुहि माथ नवायब ॥

छन्द–राजा करै बहु बीन्ती तुम दीन बन्धु दयाल हौ ॥
हंसन नायक परम लायक काटिया फन्दा काल हौ ॥
चरण शरण आधीन समरथ शरण राखो आपनो ॥
दास जानि बन्ध छोरो काल तेहि नहिं पावनो ॥

सोरठा–अब हम शरण तुम्हार, दास जानि दाया करो ॥
आयो पुरुष दरबार, आपन कै प्रतिपालिये ॥

वचन–चौपाई

एती विन्ती राजा ठानी। ज्ञानी देश जलन्धर जानी ॥
भवसागर सो ज्ञानी आये। पुरुष दरश कीन्हा तब जाये ॥
दिना चार ऐसेहि चलि गयऊ। राजा खबरि कोई नहिं दयऊ ॥

तबै पौरिया रावपहँ जायी । महल देखि कोइ नाहिं रहायी ॥
कहँवा राजा कहँवा रानी । कहँवाँ पुत्र कुवँर रजधानी ॥
कहँवाँ बेटी है चन्द्रावति । ताकर रूप बरनो कौनी गति ॥
कहँवाँ रानी कामसुरंगा । परिमल अंग बसत जेहि संगा ॥
रोवत गयउ पौरिया द्वारा । जाय सबन सों कीन्ह पुकारा ॥
जाति कुटुम्ब सब देखन आये । जिन राजा ते बहु सुख पाये ॥

साखी-देखत अमिहत राजाकी, भयी अचम्भो बात ॥
रोवत कुटुम्ब दीवान मिलि, किन यह कीन निपात ॥
नगर लोग व्याकुल भये, घरघर रोवन लाग ॥
की यहि राजा मारिया, सबहिन केर अभाग ॥

चौपाई

कहै पौरिया सुनो दिवाना । तुम हम बूझो हम सब जाना ॥
जिन्दा एक नगरमें आया । तासों राजा कौन फुँकाया ॥
कह्यो राय मैं बहुत चिताई । तुरतहिं जिन्दा कहँ मरवायी ॥
राजा बात नहीं पतियावा । वच सुनि राजा मोहि रिसावा ॥
राजा कहै मुक्तिकरदाता । अस नहिं जाने करै निपाता ॥
मोर कहा माना नहिं भाई । जस कीन्हा तस फल नित पाई ॥

साखी-वचन पौरिया सुनतही, विकल भये सब कोय ॥
आज गरासे राय कहँ, काल ग्रासै लोय ॥

चौपाई

नगर लोग तब कीन्ह विचारा । सब मिलि भागौ करौ सम्हारा ॥
भूलि अन्ध शब्द नहिं चीन्हा । मारन काल तिहूँ पुर दीन्हा ॥

साखी-सुकृत अंश न पाइया, अन्धा गये भुलाय ॥
धन्य राम भोपाल है, गहे शब्द चित लाय ॥

छन्द–गये राजा लोक कहँ तजिया सब मान गुमान हो ॥
इमि हंस धर्मनि जो मिले तुम देहु ताको पान हो ॥
कहै कबीर जो शब्द माने सकल तजि नामे गहै ॥
अपवर्ग निश्चय ताहि कहँ नहिं पला पकडत काल है ॥

सोरठा–जो हंसा इमि होय, शब्द सार तासों कहो ॥
काग चाल तिन खोय, हंस चाल गहि लोक लो ॥

इति श्रीग्रंथभोपालबोध समाप्त

इति श्रीबोधसागरे कबीरधर्मदाससम्वादे भोपालबोधवर्णनो
नाम चतुर्थस्तरंगः

इति

श्रीबोधसागरान्तर्गत

ग्रन्थभोपालबोध

समाप्त

सत्य

भारतपथिक कबीरपंथी-

स्वामी श्रीयुगलानन्दद्वारा संशोधित

# श्री-जगजीवनबोध

मुद्रक एवं प्रकाशकः

खेमराज श्रीकृष्णदास,

अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,

खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग, बम्बई-४०० ००४

सत्यनाम



श्री कबीर साहिब

सत्यकबीराय नमः

सत्यं शुद्धं गुणातीतं कंजपर्णसमुद्भवम् ।
सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञं सद्गुरुं प्रणतोस्म्यहम् ।।

# अथ श्रीबोधसागरे

पंचमस्तरंगः

## ग्रन्थ जगजीवन बोध

( गर्भ चितावनी )

धर्मदास वचन—चौपाई

धर्मदास कह सुनहु स्वामी । कहो गरभकी अन्तर्यामी ॥
कैसे जीव गरभ में आवे । कैसे जीव जठर दुख पावे ॥
कैसे जीव परवशै भयऊ । कैसे इन्द्री देह बनयऊ ॥
कैसे जीव अपने पद परसे । कैसे जीव समरथ पद परसे ॥
कैसे जीव कौल बँधावे । कैसे साहब दर्शन पावे ॥
सो सब भेद कहो गुरु ज्ञानी । घट भीतरका भेद बखानी ॥

सतगुरु—वचन

कहैं कबीर सुनो धर्मदासा । तुम घट भली बुद्धि परकासा ॥
प्रथमैं सत्य नाम गुण गाऊँ । घट भीतर का भेद बताऊँ ॥
सबही जीव गर्भ में जावैं । कौल बान्ध के बाहर धावैं ॥
चूके कौल गरभ का भाई । बारम्बार गरभ में जाई ॥
नौ नाथ सिद्धि चौरासी भारी । उनहूँ देह गरभमें धारी ॥

नौ अवतार विष्णु जो लीन्हा । उनहूँ गरभ वसेरा कीन्हा ॥
तेतिस कोटी देव कहाये । गरभ वास महँ देह बनाये ॥
जोगी जंगम औ तप धारी । गर्भवास में देह सवाँरी ॥
गर्भ वास तब छूटे भाई । जब समरथ गुरू बाहँ गहाई ॥

गर्भोत्पत्ति वर्णन

नारि पुरुष बांधे संयोगा । कामबाण लगि देहसुख भोगा ॥
सप्त धातुका अंग बनाया । जिह्वा दांत मुख कान उपाया ॥
हाथ पावँ रु शीस निर्माया । सुन्दर रूप बनी बहु काया ॥
नख शिख काहू नर बहू कीन्हा । दशही द्वार युक्ति करि लीन्हा ॥
दश द्वार नौ नाडि बनायी । ऐसे सबतर बन्ध लगायी ॥
दीन्हा ठेक बहत्तर भारी । नाडी बन्धन बहुत अपारी ॥
नाद बिन्दुसों काय निरमायी । तामें प्रकृती आन समायी ॥
हद कारिगर हुन्नर कीन्हा । जैसे दूधमें जामन दीन्हा ॥
तीनसों साठ चार बन्ध लायी । सोलह खांई तहां बनायी ॥
सोलह खांई चौदह दर्वाजा । अठहूँ हाथ गढ खूब विराजा ॥
छाजे महल अधिकही छाजा । तामें जीव जो आनि विराजा ॥
अजब महल बहु खूब बनाया । छठे महल हंस चितवन लाया ॥
छठे मांस में सुरती आयी । दुख सुखकी तब पारख पायी ॥
छै मासको भयो जब प्रानी । दुख सुखकी मति सबै पहिचानी ॥
ओंधे मुख झूले लटकंता । मैल बहुत तहँ कीच रहंता ॥
जठर अग्नि तहँ बहुत सतावै । संकट गर्भ तहँ अन्त न आवै ॥
बहुत सांकरी पिंजार पोई । तडफडै बहुत निकसे नहिं जोई ॥
मुखसों बोल निकसि नहिं आवै । करुना करि मन में पछितावै ॥
अरुझे श्वास रोवै मन माहीं । कौन करमगति लागी आहीं ॥
करुणा करि मन में पछितावे । ज्यों करीब कंठ करद बैठावे ॥

ता दुखकी गति कासु कहीजै । करम उनमान तहँ दुःख सहीजै ॥
यदि आलोच करै मनमाहीं । संगी मित्र कोइ दीखत नाहीं ॥
पिछला जनम जब सूझा भाई । तब जिव दिलमा चिंता आई ॥
स्त्री मित्र कुटुम्ब परिवारा । सुत नाती औ सैन पियारा ॥
संगी सुजन बन्धु औ भाई । गरभ कि चीन्ह परी नहिं ताई ॥
महा दुःख सो गरभ में पावे । बहुत वैराग हियामें आवे ॥
सूझी सकल बाहरकी बाती । जो जिव पिछली होती जाती ॥
जब जिव गरभमें ज्ञान विचारा । अब मैं सुमरूं सिरजन हारा ॥
सोच मोह जिव कछू न कीजै । अब सद्गुरु का शरणा लीजै ॥
जिव अपने दिल माहि विचारे । तब समरथ को कीन पुकारे ॥
सुनु धर्मदास यक कथा सुनाऊँ । यक राजाको जस बने बनाऊँ ॥
राय जगजीवन ताहिकर नामा । जब वह पहुँच्यो एही ठामा ॥
करन विन्ती लागु अधीरू । सतगुरु कहँ तब कीन्ही टेरू ॥

### जगजीवन वचन

साहिब संकट दूर निवारो । मैं निज खानाजाद तुम्हारो ॥
दिल मैं करुणा करै अतिभारी । अब मोहि साहब लेहु उबारी ॥
करै अस्तुति बहुतै सुधिलावै । तुम विनु खाविन्द कौन छुडावै ॥
अब दुःख दूर निवारो स्वामी । कौल करूँ प्रभु अन्तरयामी ॥
बाहर निकारो आदि सनेही । बहु दुःख पावै मेरी देही ॥
मैं जन प्रभुको दास कहाऊँ । आन देव के निकट न जाऊँ ॥
सतगुरुका होय रहों चेरा । दम दम नाम उचारूँ तेरा ॥
नित उठि गुरु चरणामृत लेऊँ । तन मन धनै निछावर देऊँ ॥
जो मैं तन सों करूँ कमाई । अर्धमाल मैं गुरुहि चढाई ॥
कुबुद्धि सीख काहू नहिं मानूं । हराम माल जहर करिजानूं ॥
कुलकी त्यागूँ मान बडाई । निर्मल ज्ञान एक संत सगाई ॥

रात दिवस ऐसे लव लाऊँ । करत फुरत भक्ति गुरु कराऊँ ॥
दुःख सुख परे सो तनसे सहूँ । भक्ति दृढै गुरु चरणै रहूँ ॥
परत्रिया ताकूं नहिं कोई । जननी बहन करि देखूं सोई ॥
दुष्ट बैन कबहूँ नहिं खोलूँ । शीतल बैन सदा मुख बोलूँ ॥
स्वास उस्वासमों रटना लाऊँ । आन उपाय एको नहिं चाऊँ ॥
तन मन धन निछावर देऊँ । सतगुरु का चरणामृत लेऊँ ॥
सतगुरु कहैं सोई अब करिहौं । आज्ञा लोप पाओं नहिं धरिहौं ॥
और सकल बैरी कर जानूँ । सद्गुरु कहँ मित्र कर मानूँ ॥
ज्ञान बतावे सोई गुरुदाता । तन मन धन अरपूं उन ताता ॥
तन मन धन मैं उनको देऊँ । नित उठि गुरुचरणामृत लेऊँ ॥
यहि गर्भवासमें कौल बधाऊँ । बाहर निकारो धुर निबाँऊँ ॥
जो मैं छूटूँ गरभ सबेही । तन मन अरपूं औ गुरु देही ॥
एक नाम सांचा कर मानूँ । और सबै मिथ्या कर जानूँ ॥
कहा अस्तुति करों गुसाईं । बहुत दुःख पावत हूँ या ठाईं ॥
यहां कोई मित्र नहिं भाई । मातु पिता नहिं लोग लुगाई ॥
देवी देवका कछू न चालै । गुरु विन कौन करै प्रतिपालै ॥
अब तो खबर परी यहि ठाहीं । और कोईका चालै नाहीं ॥
पिछली बात मैं हृदय जानी । कोई काहूका नहीं रे प्राणी ॥
अपने साथ चलेगा सोई । जो कछु सुकृत करे सो होई ॥
मद माया में जीव भरमाया । सो तो कोई काम न आया ॥
बहुत विचार किया मैं सोई । अन्तकाल अपनो नहिं कोई ॥
ऐसी करुणा करै विचारा । दया करो दुःख भंजन हारा ॥

साहिब वचन

तब साहिब यों कहे पुकारा । कहि समझाया तोहिं बारम्बारा ॥
अनेक बार गरभमें आया । तैं रतीकर्म भरम नहिं पाया ॥

कई बेर तैं कौल बँधावा । कई बार तैं गर्भ में आवा ॥
गर्भ में ज्ञान उपजा है तोही । संकटमें सुमिरे सब कोही ॥
बाहर निकसि नहिं उपजे ज्ञाना । अंधकार अहंकार समाना ॥
बार अनेक भुलाना भाई । नहिं सतगुरु की दीक्षा पाई ॥
गरभ त्रास तब छूटै भाई । जब सतगुरु कहँ बाँह समाई ॥

जगजीवन वचन

बोलत वचन कहो गुरु देवा । जीवकी अवधि बताओ भेवा ॥
दीन दयाल दया गुरु कीजै । बूडत जीव आपन करि लीजे ॥
दयावंत गुरु दीन दयाला । मुक्तिरूप जीवन प्रतिपाला ॥
मोकों अभय दान गुरु दीजै । अन्दर ज्ञान उजालो कीजै ॥

सतगुरु वचन

गरभ बासमें कौल बन्धावा । सो कैसे तैं न बाहर निबांवा ॥
बहु संकट तोहि उपजे ज्ञाना । बाहर निकसत सब बिसराना ॥
जोई जीव कौल निर्वाहै । सोई नहिं गरभवास महँ आहै ॥

जगजीवन वचन

अब नाहीं भूलूं गुरु देवा । तन मन लाय करूं गुरु सेवा ॥
मोकूँ बाहिर काढो स्वामी । कौल न चूकूँ अन्तर्यामी ॥

सतगुरु वचन

कौल बोल सब चौकस कीना । तबहीं गर्भ सों बाहर लीना ॥
नौवें मास जो बाहर आया । लोग कुटुम्ब सबही सुख पाया ॥
सबही हरष करैं मन माई । पुत्र हेतु सब करैं बधाई ॥
बाजा बाजे करै उछावा । गीत नाद आधिके चितआवा ॥
सबै सजन मिलि गूड़ बँटावा । रैन समय तिय मंगल गावा ॥
नगरलोक सब करैं बधाई । घर घर साजे देइ लुगाई ॥
घर राजाके जनम सो पइया । कौल किया सो सब बिसरैया ॥
पीसुन मिले सबहिं धुतारा । सबहीं ज्ञान भुलावन हारा ॥

ताका नाम सुनो रे भाई । महा जालके फन्द फँदाई ॥
झूठे झूठ मिले संसारा । नरक कुण्ड में नाखन हारा ॥

## पिसुन कर्म वर्णन

### प्रथम माता

माता मनमें करै बखाना । यह भल उग्यो आजुको भाना ॥
बालक जन्मा मोरे कोखा । जन्म भरे की भागी धोखा ॥

### नाइन

नाइन एक बधाई लायी । तीन तो एकै बात जनायी ॥
मेरा कहा करो तुम कामा । नाक छेदि कहो नाथू नामा ॥
नाल औवल पीसो गाढो । दिहली को तब बालक काढो ॥
यह तो बात मैं गुप्त सुनायी । मुवा जिवाका तो मुहि दायी ॥

### पिता

पिताके मनमें ऐसी आवैं । उमगे हरष हिय नाहि समावैं ॥
बाटे पान मिठाइ बहूता । धन्य भाग्य मोर जनम्यो पूता ॥

### काका

काका कहै मैं उतरूं पारा । बालक खेलै घरके द्वारा ॥
कर्म जोर मोरें बड कीन्हा । क्षेत्रपाल मोहिं बालक दीन्हा ॥

### दादा

दादा सुनिकै दौरे आये । पोता देख बहुत सुख पाये ॥
दासी हाथे कुवँर मँगाया । हेतु प्रीति से कण्ठ लगाया ॥

### दादी

दादीके मन हर्ष अपारा । लेत बलाई बारंबारा ॥
मैं करी बहुत सतियनकी सेवा । भये प्रसन्न मोर कुलदेवा ॥

### नानी

नानी आवत वेगि उठाया । मुख चुम्बा है कण्ठ लगाया ॥
लून ले शिर ऊपर वारा । द्रव्य माल पुनि बहुत उतारा ॥

### नाना

अब नाना मुख देखन आया। दौहित्रा देखि अधिक सुख पाया॥
उमँगे हरष हिये न अमायी। कंचन चूरा दिया बधायी॥

### भुआ

बहुत करै हरष भुआ बाई। दिन दिन अधिकी करै बधाई॥
मुख चुम्बा दै कंठ लगावे। हिये हर्ष उमँग नहिं मावे॥

### मौसी

मौसी मन बहु हर्ष उठावै। धन्य बहिन को कोख तरावै॥
मुख चूमे अरु कण्ठ लगावै। अतिशय उमंग हिये नहिं मावै॥

### अडोसी पडोसी

बुढिया एक जो बोले आयी। तिन यक बात कही समझायी॥
बालक तैल लौन सों लीजै। लौना नाम कहे धरि दीजै॥

### दूसरी पडोसिन

दूजी कहै सुनो रे बाई। बालक डारो छीतर माई॥
सांचो टोना यही कहावों। इनको छीतर कहि बतलावो॥

### तीसरी पडोसिन

तिया तीसरी बोले सयानी। मैं जान्यों सो काहु न जानी॥
कोदरा बरोबर तौल के लीजै। याकर नाग कोदरसिंह कीजै॥

### चौथी पडोसिन

चमरिन गोद यहीको डारो। मोल लेइ पुनि ताहि उजारो॥
चमरूसिंह नाम यहि केरा। बालक याते जिवै घनेरा॥

### पांचवी पडोसिन

याको घूर गुनौरे डारो। दूत पराछित या विधि मारो॥
घूरन सिहँ अरु गेनो नामा। दीजै ताहि सुधरे सब कामा॥

छठीं पडोसिन

यह सब बात बताओ माई । चूल्हे डारो चुल्हन कहाई ॥
जेती नारि आयीं तेहि बारा । सबहिन आपन मता उचारा ॥
कोइ काहू कोइ काहु बतावैं । स्यानप आपन सबहि जतावैं ॥

ओझा और स्याने

बुढवै एक जो सीस धुनावैं । वाके शिर पर भैरों आवैं ॥
सो कह हमको बैल बधाओ । भैरोंसिंघ कही बतलाओ ॥
देवी पूजक एक तब आया । देवीसिंह तब नाम बताया ॥
गाजी मुर्गी कोइ चढ़ावै । गाजीदीन तब नाम बतावै ॥
यहि विधि अनेकनहू आये । आपन आपन उक्ति सुनाये ॥

पुरोहित

घरको पुरोहित ऐसी कही । मनको मनोरथ पूरण सही ॥
यह तो बडा सपूत कहावै । इनके तुलै कोइ नहीं आवै ॥
पुरोहित कह यजमान है मेरा । कुल देवी भैरोंका चेरा ॥

चारण और भाट

चारण भाट जपै महामाई । भोजक भाट तहां चलि आई ॥
सबही मिलि दीनी आशीशा । महामाइ सुत कीन्ह बख्शीशा ॥

मुसलमान फकीर

दर्वेश एक कहै समुझाई । नाम फकीरा कहो रे भाई ॥
बांधि गांठ गले में दीजै । सब पीरों का चारण लीजै ॥

योगी

जोगी एक तहां चलि आया । मेरी भभूत का परचा पाया ॥
कहा हमारा सुनिकै लीजै । याका नाम सदाशिव दीजै ॥

दिगम्बर

यन्त्र मन्त्र जतीकरि लाये । करि तावीज गले पहराये ॥
वज्र वटु सूअरदांत मंगायी । एक सुपारी माहि मढायी ॥

भोजपत्रमें यंत्र मढाया। सात भांतिका रेशम लाया॥
गूगल बारि धूप लै कीन्हा। सो पहिराय गलेमें दीन्हा॥

पण्डित लोग

ब्राह्मण सबही नगरके आये। पत्रा पोथी साथहिं लाये॥
पीपल केरे पान मँगाया। लगन साधिके नाम सुनाया॥
जगजीवन नाम जनमका सही। याका मरण होय ना कबही॥
द्रव्य माल दक्षिणा दीना। जनम पत्रिका लिखाय जो लीना॥
बहु विधि सो संस्कार कराया। मोह फांसमें पकरि दबाया॥
गर्भ कौल तो सब बिसराना। अमर रहनका जतन बहुठाना॥
एक सो बात गुप्त ना होई। स्याना लोग कहैं सब कोई॥
फन्दा अनेकन में फन्दाई। कौल किया सब गया भुलाई॥
झूठे झूठ मिलै सब कोई। इनते काज एको नहिं होई॥
पिछली कौल सबै विसरानी। महा जालमें बँधे प्राणी॥
यह सब झूठै पाखण्ड साजू। इनसूँ सरै न एको काजू॥
साखी–कहैं कबीर सब चेतहू, आगे काल कराल।
आल जँजाल तम छाडिके, पिछले लोक सँभाल॥

चौपाई

जौन कौल गर्भ में कीया। मूरख विसारि–सब दीया॥
फिर भी कठिन हो गया भाई। तुम करिहौ कौन उपाई॥
इतने सब मिलि करहिं बधाई। तामें तेरा कौन सहाई॥
तुम अबकी चेतौ जो नाहीं। मानुष जनम भाग बड पाही॥
साखी–ये तेरे मित्र नहीं, सब वैरी करि जान।
उबरा चाहो कालते, गुरुहि मित्र कर मान॥

चौपाई

एक जीव बैरी बहुताई। यूथ युत्थ बाटन सब लाई॥
कोई जीवको का तकसीरा। सबको जडिया मोह जँजीरा॥

ज्ञान ध्यान जिव कैसे पावैं। इतने पिशुन ताहि भरमावैं ॥
देखो दिलै करि ज्ञान विचारा। किहिविधि उतरो भवजल पारा॥
रे कुबुद्धि दुख में मत झूलै। पिछला काल बोल मति भूलै॥
इक दिन फेरि परैगा गाढा। मुशुक बांधि यम करिहैं ठाढा॥
तुम मति जानो अमर है काया। यह दीसै सुपनेकी माया ॥
यहि चकचौंध भुलो मति कोई। सेंवल फूल जैसा तन होई ॥
जैसे नींद में सुपना आवै। जागि परै तब कछू न पावै ॥
यह तन ऐसे देखो भाई। झूठे झूठ मिलैं सब आई ॥
दिनाचार चटक दिखलावै। अन्तकाल ग्रासन कूँ धावै ॥
काल जंजाल सों छूटा जाई। गुरूसे प्रीति करो रे भाई ॥
सतगुरु ऐसी युक्ति लखावै। जासे जीव परम पद पावै ॥
सुनो जीव अबूझ की बाता। जनम गवाँवै करम कमाता ॥
हर्ष मोह मैं सबहि सुनाऊँ। जेते घर में सबहि दिखाऊँ ॥
एक वर्ष लगि डोल डोलावै। पशू रूपमें जनम गँवावै ॥
उखली जीभ तोतला बोलै। मातु पिता सब हर्षित डोलै ॥
आज जंजाल बोले बहकावे। त्यों त्यों हरष हिये नहिं मावे॥
परी करै औ ऊभा धावै। बाहर भीतर दौडा आवै ॥
कंचन घूँघुर बेगि गढ़ाई। रेशम केरी डोर पोवाई ॥
सोना रूपा बहु पहिराया। हीरा मोती भूल भुलाया ॥
बालन सँग में खेलन जावै। नाच कूद के घरही आवै ॥
मनमें आनँद करै चँचलाई। सोच फिकर कछु व्यापे नाई॥
करै कुतूहल मनमें सोई। दिन दिन तेज सवाया होई ॥
आकुल बोलै सोच न आनै। कूर कपट कर बहु सुख गानै ॥
संकटका दिन चित्त न आवै। करै अनीति जोई मन भावै ॥
चित्तमें दुर्मति रहै अति घनी। महा दुष्ट बुद्धि पापी सनी ॥
द्वादश वर्षकी भयी है देही। अनन्त उपाय करै नर केही ॥

प्रगट काम काया के भीतर । सोच फिकिर नहिं व्यापे अंतर॥
अन्ध करै बहुत अहंकारा । निरखै तिरिया घर घर द्वारा॥
परवश दूती आनि मिलावै । जोर करै तो पकरि मगावै ॥
नाहकको तू कान लगावै । नहिं मानै तो यमघर जावै ॥
अघ करमी होय तन डोलै । जोर बहुत गरभ सो बोलै ॥
आंखिन माहीं वर्षे लोई । ज्ञान ध्यानकी सुधि ना होई ॥
गुरु चरचाके निकट न जावै । हँसी मसखरीसों मन भावै ॥
झूठी बात करै लबराई । तासों हेतु करै मितराई ॥

साखी—यह नर गरभ भुलाइया, देखि मायाको झोल ।
कहै कबीर सब चेतहू, सुमिरि पाछलो कौल ॥

चौपाई

इन्द्री स्नेह न मानै चेता । माया गर्ब फिरै मैंमंता ॥
ईगुण प्रगटा अन्तर माहीं । कामातुर होय करी विवाही ॥
पहले विवाही एक लुगाई । बहुत प्रेम सँग ताहि लिवाई ॥
विषय विवेक फिर उपजा भारी। पीछे ब्याही सुन्दरि नारी ॥
अँगस्वरूप कामिनि अधिकाई । कामातुरसों रहे लपटाई ॥
महा अनन्द भये मन माहीं । एक पलक सँग छाडें नाहीं ॥
करै खवासी कहत है दासी । बन्धा मोह जाल की फांसी ॥
खिदमतगार सहेली घनी । कई नायिका कई रामजनी ॥
नव नव खण्डके महल बनाये । सेना केरे कलस चढाये ॥
करी बिछावन तहँ बडभारी । गादी तकिया बहुत अपारी ॥
बहुत मोलको अतर मँगावै । फूलन केरी सेज बिछावै ॥
कहँ लगि बरनूं यह विस्तारा । मायाविनको बार न पारा ॥
टपका स्वाद भया तर अन्धा । आवै यम तब करै बहु फंदा ॥
नित नित त्रिया नई संयोगा । खान पान और षट रस भोगा॥

मता विषय रस कछू न सूझै । भैरों भूत शीतला पूजै ॥
भूलै कौल गरभकी बांधी । अब चकचौंध आई आंधी ॥
सबही जीव कौलकरि आवै । बाहर निकसि सब बिसरावै ॥

सतगुरुके आगमन

ऐसे जीव भूल रहे सारे । तब सतगुरू आइ पगु धारे ॥
जीव चितावन सतगुरु आये । अलीदास धोबी समझाये ॥
और हंस बहुत चेताये । फिरत फिरत पाटनपुर आये ॥

सतगुरुका पाटनपुरमें पहुँचना

सतगुरु आये पाटन ठाऊँ । जगजीवन राय बसै तेहि गाऊँ ॥
राय न मानै भक्ति विचारा । हँसे भक्तको बारम्बारा ॥
भक्त रूप सब शहर निहारा । कोउ न मानै कहा हमारा ॥
तब आपन मन कीन विचारा । कैसे मानैं शब्द हमारा ॥
जाइ बाग में आसन कीन्हा । गुप्त रहे काहू नहिं चीन्हा ॥
द्वादश वर्ष भये बाग सुखाने । सुलगे काष्ठ होय पुराने ॥
चार कोस तेहि बाग लम्बाई । तीन कोसकी है चकलाई ॥
तहां जाय आसन हम कीन्हा । रहों गुप्त काहू नहिं चीन्हा ॥
तहवां मैं कौतुक अस कीया । सूखे बाग हरा कर दीया ॥
विकसे पुहुप जीव सब जागे । सबने हरियर देखा बागे ॥
माली जाय कै दीन बधाई । जागा भाग तुम्हारा भाई ॥
देखा बाग जाय तेहि वारा । फल फूलनका अन्त न पारा ॥
हर्षा माली बाहर आया । देखा बाग बहुत सुख पाया ॥
फूलन छाब भरी दुइ चारी । नाना विधिके फूल अपारी ॥
नाना विधिके मेवा लाया । लै माली दरबारे आया ॥
बैठा राजा सभा मँझारा । उमरावनको तहाँ न पारा ॥
माली सब लै धरी रसाला । राजा पूछ करे ततकाला ॥

राजा जगजीवन वचन

कौन देश तैं माली आया। फूल अनूप कहांसे लाया ॥
कौन बाग के फलन विशेखा। कानो सुनी न आंख न देखा ॥

माली वचन

नौ लखा बाग रहा होय आया। फल प्रसून सब नये बनाया ॥
सुनिके राजा हरषा भारी। संग उठी चली परजा सारी ॥

राजा वचन

कहु दिवान यह कौन प्रकारा। समझि बूझिके करो विचारा ॥
ज्योतिषी पण्डित सबै बुलाये। पत्रा पोथी सबही लाये ॥

ज्योतिषी वचन

लगन सोधि सब ऐसी कही। कोइ पुरुष यहँ आये सही ॥
है कोइ नर कै कोइ पखेरू। सोधो जाय बाग सब हेरू ॥
हेरे राय बागके माहीं। बैठे संत यक ध्यान लगाहीं ॥
राजा जाय धरा तब पाई। नगर भरेकी परजा आई ॥
कहे राजा धन मेरो भागा। दर्शन पाय अमर होय लागा ॥
आलसी घर गंगा आयी। मिटि गई गर्मी भयी शितलायी॥

सतगुरु वचन

तब राजासों कही पुकारी। सुन राजा एक बात हमारी ॥
हम जनि भार चढाओ भाई। काहे को तुम देहु बड़ाई ॥
अच्छा बाग विमल हम चीन्हा। तासो आये आसन कीन्हा ॥
ऐसा तुमहीं बाग बनाया। नाना विध के रूख लगाया ॥
आसन किया देखि हम ठारी। बहुत फूल फलकी अधिकारी ॥

राजा वचन

फिर कै राजा शीस नवाया। द्वादश वर्ष भये बाग सुखाया॥
सूखा बाग भये बहु बारा। नहिं कोइ लोक आहे संसारा॥

छाडी फल फूलनकी आसा। कोइ न आवै बागके पासा॥
तुम समर्थ पग धारे आई। हरा हुआ बाग सब ठाई॥
राजा कहै दया अब कीजै। मोकूँ मुक्तिदान फल दीजै॥
मेरे मस्तक धरहू हाथा। मैं रहूँ सतगुरु तुम्हारे साथा॥

सतगुरु वचन

तुमको कौल भुलाना भाई। किया सो कौल गया बिसराई॥
संकट गरभ में बाचा दीन्हा। बाहरनिकसि करमबहु कीन्हा॥
किया कौल जब गये भुलाई। तब हम आइके चरित दिखाई॥
बहु विधि बात कही चेताई। बाहर निकसि बुंद्धि पलटाई॥
तुमको तो कछु सूझत नाहीं। फन्दा मोहजाल के माहीं॥
आवै यम दश द्वार मून्दी। तबहीं बांधि करेगा कून्दी॥
सोच बूझ देख मन माहीं। इतने में तेरा कौन सहाहीं॥
पिसुन मिलैं सब वार न पारा। नरक बास में नाखन हारा॥
बहु विधि तुमसों शब्द पुकारा। किया कौन नर भूल गवाँरा॥
घर घर हम सब कही पुकारी। कोइ न मानै कही हमारी॥

हे राजा जब तू मातृगर्भमें था तब तू वचनवद्ध हुआ था कि भजनके अतिरिक्त अब और कुछ न करेंगे। उस दुःखमें तो तू पुकारता था तथा हाय हाय करता था, कि मुझको इस दुःखसे निकालो। जब तू गर्भके बाहर आया तब तू अपनी प्रतिज्ञा भूल गया और शारीरिक कामना तथा पशुधर्मके वशीभूत होकर तूने कौन कौनसे कुकर्म्म न किये ? सत्यगुरुकी दयाको तू एकबारगी भूल गया, भोगविलासमें फँसकर अन्धा हो गया और मायाने तेरे ज्ञानको बिलकुल ही नष्ट करदिया। जब यमदूत आवेंगे और तेरी मुश्कें बांधकर नरक में लेजावेंगे तब तेरा कौन मित्र सहायता करेगा ? और तुझको उनसे कौन छुड़ावेगा ? राजा ! तू सोच तथा समझ कि, वे लोग जिन्हें तू अपना

मित्र समझता है उनमें से कौन तेरा उस समय सहायक होगा? कौन तुझको नरकसे बचावेगा? गर्भमें मैंने तुझको बहुत समझाया था सो हे गँवार! तू उन सब बातोंको भूल गया मैंने सबसे घर घर पुकार कर कहा मेरा कहना किसी मूर्खने न माना। इतनी बात सुनकर राजा बोला।

राजा वचन--चौपाई

अब तो गुरू होहु सहाई। मोकों यमसे लेहु छुडाई॥
सबही करम बख्सके दीजे। डूबत मोहिं उबारके लीजे॥
सैन करी पालकी मँगाई। लै सद्गुरु को माहिं बिठाई॥
पाँव उघार कांध धर लीन्हा। तबही महल पयाना कीन्हा॥
सद्गुरु पग धर महलके माहीं। सब रानिनको राय बुलाहीं॥
समरथ दरशन दीन्हां आनी। धनधन भाग्य तुम्हारो रानी॥
सद्गुरु को पलँगा बैठाई। सब मिलि पांव पखारो आई॥
राजा भाखे शीश नवाई। मोकों राखो गुरु शरनाई॥
करिये सद्गुरु जीवको काजा। दया करो मैं लाऊँ साजा॥
अब हम शरना लेब तुम्हारी। दया करो तन दुखत हमारी॥

सतगुरु वचन

तब कहे सतगुरु लेहु सँभारी। राजा सुनहू बात हमारी॥
कस चले राजा लोक हमारे। मैं नहिं देखूँ लगन तुम्हारे॥
कोटिन ज्ञान कथे असरारा। बिना लगन नहिं जीव उबारा॥
जो कोई बूझे भक्ति हमारी। ताको चहिये लगन सँचारी॥
जैसे लगन चकोरकी होई। चन्द्र सनेह अँगार चुगोई॥
ऐसे लगन गुरुसे होई। धर्मराय शिर पग धर सोई॥
तुम तो हो मोटे महराजा। कैसे छोडिहौ कुल मर्यादा॥
कैसे छोडिहौ मान बड़ाई। कैसे छोडिहौ सुख चतुराई॥
कैसे छोडिहौ हाथी असवारा। कैसे छोडिहौ ग्रंथ भँडारा॥

कैसे छोडिहौ काम तरंगा । कैसे राजसे करो मन भंगा ॥
कैसे छोडिहौ कनक जवाहिरा । कैसे छोडिहौ कुल परिवारा ॥
तुम तो उनकी बांधी आसा । हम तो राजा कथैं निरासा ॥
जो तुम तजु अन्तरकी बाथा । तबहीं चलो हमारे साथा ॥
भक्ति कठिन करी ना जाई । काहे को हिर्स करत हो राई ॥

राजा वचन

राजा कहे दोऊ कर जोरी । सुनिये समरथ बिनती मोरी ॥
नगरके सब षट् बरन बुलाऊं । यहि अवसर सब माल लुटाऊं ॥
तुम तो कह्यो बाहर लेव वासा । मैं तो देहकी छोडों आसा ॥
अमृत वचन पियाओ आनी । हंस उबार करो निरबानी ॥
नगर कोटकी छोड़ी आसा । निश दिन रहूं तुम्हारे पासा ॥
हुकुम करो सोई मैं लाऊं । करो दया मैं शीस नवाऊं ॥
उमँग उठे हर्षित मन मोरा । थकित भये जनु चन्द्र चकोरा ॥
सूखा बाग जो फल परकाशा । तबते पूजी मनकी आशा ॥
कसनी कसो सों सहूँ शरीरा । तबहू प्रीत न छोडूँ तीरा ॥
जो तुम कहो सो भक्ति कराऊँ । दया करो तो शीश चढाऊँ ॥

सतगुरु वचन

तब समरथ अस शब्द उचारा । अब आरति का करो विस्तारा ॥
चार गुरुको चौक पुराओ । तिनका तोरायके जल अरपाओ ॥
राजा गर्भ निवारौं तोरा । भाव भक्तिसे करो निहोरा ॥
भाव भक्ति हम चाहें राजा । धन सम्पतिसे न कछु काजा ॥

राजा वचन

दया करो सो साज मँगाऊँ । कौन वस्तु ले आगे आऊँ ॥
मैं हूँ जीव मतीका भोरा । कहँ जानूं चौका के ब्योरा ॥
समरथ कहो मैं आनूं सोही । चौका जुगति बताओ मोही ॥
करहू गुरु चौका विस्तारी । जीवहि यमसों लेहु उबारी ॥

सतगुरु वचन

चार गुरू को साज मँगाओ। चार सवा सौ पान लै आओ॥
चार सवा सेर कन्द मँगाओ। आठ अंश नारियल लै आओ॥
चार माला अरु लोटा चारो। सतगुरु आगे लाकर धारो॥
चार थाली चार गादी कीजे। चार चँदोवा ताने लीजे॥
चार कलस जल भरि धरवाओ। तब सतगुरुके आगे आओ॥
सब यह साज आगे धरि दीन्हा। तब सतगुरुसे विन्ती कीन्हा॥

राजा वचन

मैं हूँ जीव करम बहु कीना। कैसे यमसों करिहो भीना॥
गिनत गिनत नहिं आवे चीना। बारम्बार मैं औगुन कीना॥
ऐसा करम किया मैं भारी। कैसे यमसे लेहो उबारी॥
एक बात गुरु कहौ विचारी। मोसम पतित आगे कोइ तारी॥
तब सतगुरु बहुत विहँसाने। फिर राजासों निरणय ठाने॥

सतगुरु वचन

सतयुग सत्यसुकृत मम नाऊँ। जाइ मथुरामें धारेउँ पाऊँ॥
खेमसरी ग्वालिनी उबारी। बहुत जीव लै लोक सिधारी॥
द्वादश पहुँचे पुरुष हजूरी। और हंस द्वीपन मँझूरी॥
त्रेता युगे मुनिन्दर नाऊँ। नगर अयोध्या धारे पाऊँ॥
हंस बयालिस लीन्हा लारा। पहुँचे तहाँ पुरुष दरबारा॥
और हंस द्वीप महँ गयऊँ। जिन जैसी जिव देह बनयऊँ॥
अब द्वापरका कहूँ विचारा। नरहर राजका किया उधारा॥
सात सौ हंस पावन कीन्हा। कुटुम्ब सहित पयाना दीन्हा॥
चन्द्रविजय घर इन्दुमति नारी। संकट राजा लीन उबारी॥
केता पूछो जीव सनेही। गिनत गिनत ना आवे छेही॥
युगन युगन भवसागर आऊँ। जो समझे तेहि लोक पठाऊँ॥

शब्द हमारा मानै कोई। तौ नहिं जाय यमपुरी सोई ॥
इतनी बात कही समझायी। दिल राजाके प्रतीति समायी॥

राजा वचन

धन्य भाग मेरा कुल कर्मा। कोटित यज्ञ कियो तप धर्मा॥
सत्यगुरु आय दरस मोहि दीन्हा। बूझत हंस उबार कै लीन्हा ॥
हो प्रभु मोर करो निर्वैरा। मैं तो चरण कमलका चेरा ॥
कहु सन्देश नगर में भाई। जय जीवन राय लोकको जाई॥
नेगी जोगी सबहि बुलायी। और नगरकी परजा आई ॥
चन्दनका सिंहासन कीन्हा। चौका पूरि कलश धरि दीना॥
सतगुरु शब्द उचारे लीना। युक्ति साजि गादी पगु दीना ॥
सब रानिनको बेगि बुलायी। करि दण्डवत् गुरुचरणा आयी॥
जीव प्रति नरियल ले आये। सो सतगुरु को आनि चढ़ाये ॥

साखी–सब रानी बिन्ती करैं, सुनु समरथ चित लाय ।
महा अकरमी जीव हम, सबहि लेहु मुकताय ॥

चौपाई

जेठी रानी चन्द्रमति जोई। सतगुरुकी गति जानी सोई ॥
दूजी रानी है मनकी युक्ती। निर्भय होय करै गुरु भक्ती ॥
तीजी रानी है मनपोई। लज्या कारण ना मानै कोई ॥
चौथी रानी भानुमति आही। जीवत सती सुजानो ताही ॥
पांचवीं रानी धन्ना बाई। कलावंत होय आगे आई ॥
छठवीं रानी प्राणप्यारी। पूजे सन्त वह लाज निवारी ॥
सतई रानी है सत भामा। निर्भय होय जपै गुरु नामा ॥
अठवीं आनन्दकला है रानी। सतगुरुसों प्रीति निज ठानी ॥
नौवीं रानी नामपियारी। भक्तिवंत जाने संसारी ॥
दशवीं रानी है दिल दायक। सब रानीकी सो है नायक ॥
ग्यारहवीं रानी है रंगरोपा। ताके कारन राव नहिं लोपा ॥

बारहवीं रानी सूरजमती । हंस रूप है ताकी गती ॥
द्वादश रानी सब बनि आयी । एक अंग होय सब भक्ति करायी ॥
राजा छडीदार पठवाई । तो वो कुँवरको लाय बुलाई ॥

छडीदार वचन

छडीदार कहे कर जोरी । राजकुँवर सुनु विन्ती मोरी ॥
राजा रानि गुरु चरणै आये । ताते तुमको बेगि बुलाये ॥
गरभवाससों करैं निरुवारा । तुरत चलो जनि लावो बारा ॥

कुँवर वचन

तुम छडीदार कहो बात विचारी । कैसा गुरु है सो अधिकारी ॥

छडीदार वचन

हम मति हीन कछू नहिं जाना । निश्चय आही पुरुष पुराना ॥
यह सुपने नाहीं कहुँ देखा । सुर मुनि नारद शारद पेखा ॥

कुँवर वचन

कुँवर बीनती कीन सुहाती । सुनतैं बात जुडानी छाती ॥
हंस रूप चारों हैं भाई । उमंग हरष हिये नाहिं समाई ॥
जहाँ सतगुरु आसन कीन्हा । कुँवर चार आइ दर्शन लीन्हा ॥
बडा कुँवर वह सूरजभाना । गुरु स्वरूप हृदय में आना ॥
दूजा कुँवर इन्द्रमन दासा । शब्दै पीवै शब्दकी आसा ॥
तीजै कहिये चतुर्भुज कुमारा । शब्द सुनत वह सीस उतारा ॥
चौथा कुँवर विक्रम दासा । जिन तन मनकी छोडी आसा ॥
चारों कुँवर धरे गुरु पाई । तन मन धन सब प्रीति चढाई ॥
कदलौ केर पतवार धरायी । गज मुक्ताहल चौक पुरायी ॥
नरियल मोरिके मालूम कीन्हा । लिखि परवाना सबकूँ दीन्हा ॥
इतने हंस भये मन भावन । तिनको सतगुरु कीन्हा पावन ॥
तन मन धन सो बदला कीन्हा । शिरके सांट साहबको चीन्हा ॥
करी निछावर मेटे गर्भफेरा । अब तो भई भगतिकी वेरा ॥

सतगुरु वचन

तुमरी राय भली बनि आही । तुम गरभवासकी कौल निबाही ॥
जोई कौल गरभका पालै । ताको सतगुरु होहिं दयालै ॥
गरभ कौल कोई चूके भाई । असंख्य जन्म चौरासी जाई ॥

साखी—गरभ कौल चूके नहीं, वोही हंस सुजान ।
चौरासी भरमें नहीं, सो पहुँचे यहि परमान ॥

राजा--वचन चौपाई

राजा कहै दोऊ कर जोरी । सुनु समरथ यह विन्ती मोरी ॥
महाकुकर्मी जो होय प्रानी । करमनसे कैसे होय छुटानी ॥

सतगुरु वचन

तब समरथ गुरु शब्द उचारा । करमन काटि करूँ निरवारा ॥
असंख्य जन्म कर्म किय आयी । पान पान में करम कटायी ॥
जो जिव कर्म करै निरबारा । पाख पाख में कर्म सुधारा ॥
विना पान नहिं कर्म कटाई । कोटिन ज्ञान करै जो भाई ॥
रेखा गुंज विचारै जानी । विना गुंज करै जिव हानी ॥
युग छत्र सो हंस उबारा । छत्र मुनी से उतरे पारा ॥
युग बन्धन ते शिष्य करीजै । असंख्य जन्मका कर्म जो छीजै ॥
जैसा जीव तैसा होय पाना । सबही करम होय छय माना ॥
लगन जैमुनि आवै हाथा । धर्मराय तेहि नावै माथा ॥
गुरुशिष्य युक्ति एक जो आवै । पारसपान छत्र मुनि पावै ॥
पान एकोतर लैहैं जोई । असंख्य जन्मका कर्म नशाई ॥

राजा वचन

राजा सतगुरु विनती लायी । लगन जैमुनि देहु बतायी ॥
लगन जैमुनी कैसे पावै । कैसे सतगुरु सों लौ लावै ॥
कौन जुगति चरनामृत लेही । कैसे करै जो बनै बिदेही ॥

कौन वस्तु कहां लै आवै । काह भेट गुरु आगे धरावै ॥
लोकलोक गुरु कहो समझायी । कहौ हंस कहँ जाय समायी ॥
कैसे पावै लोक निवासा । कौन कौन घर करिहै वासा ॥

सतगुरु वचन

तब सतगुरु अस बचन उचारा । शिष्य होय सौंपूँ भंडारा ॥
शिष्य होय सँवारै देही । लोक द्वीपकी गम्य तब लेही ॥
शिष्य होय गुरुवश करलीजै । तन मन धनही नश्वर कीजै ॥
जो कछु आपन भक्ति करावै । पान पान सँग लोक पहुँचावै ॥
ताकी देह बनत है भाई । तामें हंस तब जाय समाई ॥
जोइ वस्तु ध्यानमाँहिं चढावै । सोई हंसा सत्यलोक पहुँचावै ॥
ताका नाम रेवती भाई । विना शिष्य कोइ पावै नाई ॥
तन मन धनको नेह न आवै । तब जिव लगन जैमुनी पावै ॥
तब राजा मन हरष अपारी । करहु शिष्य जाऊँ बलिहारी ॥

कुँवर वचन

कुँवर कहै विलम्ब किमि सारूँ । दया करो हो शीस उतारूँ ॥

रानी वचन

रानी मनमें हर्ष अनन्दा । मानों ऊगे कोटिक चन्दा ॥
तन मनसे करिहौं गुरु सेवा । हमको शिष्य करहु गुरु देवा ॥
अन्तर बात सब देहु बनायी । जैसे सीप मोती कूँ भांयी ॥

सतगुरु वचन

करनी कठिन सत्य करिजानो । कहनि करनि बहुभेद बखानो ॥
कठिन करनी टले जो भाई । ताकर जीव बहुत दुख पाई ॥
शिष्ट होय जब कौल बँधावे । तन मन धन सब आनि चढावे ॥
किये कौल निबाहे पूरा । करे गुरुसेवा शिष्य सोइ शूरा ॥
पूरा होय के शूर कहावे । सतगुरु बचन सदा लौलावे ॥

---

१ भाव ।

करी कौल निर्बाहे नाहीं । ऐसो शिष्य सो यम मुख जाहीं ॥
तन मन चढावे वही सुख पावे । आखिर धन यौवन बहि जावे ॥
कौल करे सो जाल भुलाई । अँटके भव में नाहिं सहाई ॥
किया कौल टालि जो देई । बहु दुख संकट माथे लेई ॥
होय दुखी दुख देह समावै । ताकी देह रोग ह्वै आवै ॥
गुरु को दोष देहु जन कोई । आज्ञा मेटे सजा तेहि होई ॥
सो जिव कदी न उतरे पारा । करन द्वेष जो गुरु से धारा ॥
अन धन ताकहँ चहिये भाई । जापर सतगुरु होंहि सहाई ॥
कर्म सतगुरू दया कटावे । साहब ध्यान सो फल यह पावे ॥
गुरू छोडि जो कर्म करावे । उन मनमें जो लीन रहावे ॥
सो नहिं पावै वस्तु अपारा । मनमें देखहु करहु विचारा ॥
सहज भक्ति करो तुम भाई । होय शिष्य नहिं डर कछु ताई ॥
सहज भक्ति राजा तुम करहू । शिष्य होइ भक्ति पद तरहू ॥
सहज भक्ति सबही सुखदाई । कठिन कमाई दुस्तर भाई ॥
कठिन कमाई खाँडेकी धारा । सहज भक्तिसे उतरो पारा ॥
सदा सुखारि भक्ति रस पीजै । सूली ऊपर घर नहिं कीजै ॥

राजा वचन

सब कर्म कठिन सहज कर जानू । तन मन धन कर लोभ न आनू ॥
हमको सीख अब देउ गुसाईं । कौल करू सो चूकूं नाईं ॥
जो कहुँ चूकि कौल हम जावें । अपनी करनी हम भरि पावें ॥
कौल चुके सो मूढ गवारा । विनु स्वारथ जग होवे ख्वारा ॥
रंकके हाथ रतन जो आवे । कौडी बदले काह गवाँवे ॥
अब सतगुरु दाया मोहि कीजै । चूके कौलका फलहि कहीजै ॥
फिर कैसे सो सुख पावे । कैसे वह फिर कौलमें आवे ॥
कैसे निर्धन धनै बहोरे । कैसे रोगी रोग सो छोरे ॥
अब करु शिष्य शब्द मुहि दीजै । नहिं तो देह त्याग हम कीजै ॥

साखी–चरण वन्दुँ कर जोरिके, सतगुरु सुनो पुकार ।
लगत जैमुनि जब मिले, तबही करब अहार ॥

सतगुरु वचन–चौपाई

ऐसे कष्ट करो मत भाई । करो विचार मैं कहूँ सुनाई ॥
करो आरती साज मँगाओ । लेई पान परम सुख पाओ ॥
प्रथम सिंहासन लाइ बिछाओ । सर्वजीव एकसुरति होय आओ॥
सवा सै पान जीव प्रति लाओ । सवा सेर महाकन्द मँगाओ ॥
कपडा बस्तर धातु धराओ । ताँबा पीतल बर्तन लाओ ॥
सोना रूपा मोती हीरा । लाल जवाहिर बने सो चीरा॥
जैसो साज जोई लैं आवै । तैसो हंसा देह बनावै ॥
इतनी साज नहीं बनि आवे । ताके हेतु यह गौ ठहरावे ॥
गौ नाम पृथ्वी का होई । पृथ्वी नाम यह देह संजाई ॥
सोधन चले अग्रकी धारा । अगर वास तहँ होय अपारा ॥
पान संग सो देउँ पहुँचायी । लोक जात सो बार न आयी ॥
जब सतगुरु आज्ञा फरमायी । तब राजा सब साज मँगायी॥
सब ही राज जब आनि धरावा । तब सतगुरुको तख्त बिठावा ॥
जुगति साजि चरणामृत लीन्हा । तन मन धन अर्पण करदीना ॥
पुनि सतगुरु पान सो लीना । जैसो जीव तैसो तेहि दीना ॥
पाइ पान सबही चित दीना । होय अधीन सत्य सुख लीना॥
तब सतगुरु यक वचन उचारा । सबहीको कह्यो करन विचारा॥

सतगुरु वचन

सुनु राजा यक कहूँ विचारा । मानो राजा कहा हमारा ॥
जो वस्तु तुम हम सो पाओ । रखो चेत नहिं अनत गँवाओ ॥
जुगाओ शब्दै करो कमाई । दृढ करि राखो नहिं देहु गवाँई॥
सेवा करत सुरति चलि जायी । तबहि कालघर बजे बधायी ॥
जे जिव शब्द सुरति पर चाले । सबही विधि सो होय निहाले ॥

साखी–शिष्य होय तनै छिपाइ, ताका कहूँ विचार ।
कहै कबीर निर्भय नहीं, निश्चय यमके द्वार ॥

राजा वचन--चौपाई

राजा कहै सुनो गुरु मोरा । मैं लागत हूँ चरने तोरा ॥
सहस अठासी लोक बताओ । भिन्न भिन्न कै मोहि बुझाओ ॥
कौन हंस कहँ करै बसेरा । सब ही हंस कर कहँ २ डेरा ॥
उत्तर समरथ कहो बुझायी । यह सन्देह उठा मन आयी ॥
खेमसरी को कहा संदेशा । द्वादश हंस उन सँग उपदेशा ॥
चारों युगका कहा संदेशा । बहुते हंस बतायो भेशा ॥
बहुते जीवहि बोध बताये । तन छूटे सब कहाँ समाये ॥
बहुत हंस पहुँचे निज ठाईं । तिनकर पता कह्यो समझाईं ॥
और हंस कहाँको गयऊ । ताका बहुत संदेहा ठयऊ ॥

सतगुरु वचन

हे राजा तोहि कहि समझाऊँ । भिन्न २ कै वरनि बताऊँ ॥
जे जे जीव परवाना पावैं । सो सो जीव सत्यलोक सिधावैं ॥
परवाना की यहि अधिकाई । हंस विगोय ना कबहूँ जाई ॥
जो हंसा नहिं देह बनावै । सो सब मानसरोवर जावै ॥
मान सरोवर दीप अमाना । होइ है चार भानु परमाना ॥
परवाना की यह अधिकाई । योनि गरभ बहुरि नहिं आई ॥
ताते ताहि वृत्तान्त बतायी । सकल कामना तोर मिटायी ॥
सत्य सत्य सबको समझायी । जब गुरुको चरणामृत पायी ॥
जो कछु करै सुकृत कमाई । सो सब पान पर देहि चढाई ॥
हेत द्वीपमें पहुँचे जाई । तब ही हंसा देह बसाई ॥
ऐसी विधि जो पान चढावै । निज स्वरूप जीव सो पावै ॥
तापर हंस होय असवारा । पचासी पवन परे सरदारा ॥

जो ऐसी नाहीं बनि आवै । ताके पान संग वृषभ चढावै ॥
वृषभ चढावे पावे सोई । पहुप दीप रूप बहु होई ॥
वृषभ नाम नील है भाई । उनकी शोभा बहुतहिं पाई ॥
नाम नील वरन है स्वेता । ताको रूप कहा कहु केता ॥
जो वृषभ नहीं बनि आवै । तो लै गौ सो देह बनावै ॥
गौ देइ सो पान जो पावे । मंजुल करि वह हंस रहावे ॥
दश हजार सुर झलके देही । पहुँचे हंसा होय विदेही ॥
हीरा मोती लाल जवहिरा । पान चढे पुनि देह उजिहिरा ॥
बस्तर दे पुनि पान चढावे । ज्ञान दीपमें लै पहुँचावे ॥
पांच सौ सूर्य्य समान सरूपा । परसत तहाँ सो होय अनूपा ॥
कंचन रूपा धातु चढावै । तैसो शोभा देहमों पावै ॥
कहूँ पुकार करो निर्वैरा । देह विना कहँ करै बसेरा ॥

राजा वचन

धरे राम सतगुरुको पाऊ । हो सतगुरु तुम हंस मुकताऊ ॥
सत्यगुरू मैं तुव बलि जाऊ । सर्व भेद तुम मोहिं बताऊ ॥
कछू न मोसे राखु दुराई । देत हौं तुमको पुरुष दुहाई ॥
जो तुम कहौ करौं मैं सोई । तुमसो दिल पतियाना मोई ॥
कृपा करो मैं प्रीति लगाऊँ । कसनी देहु सो सकल सहाऊँ ॥

सतगुरु वचन

तब सतगुरू कहे समझायी । काहे को तुम देत दुहायी ॥
सबही कहों तुम पूछो तैसी । लोक राह है सो पुनि जैसी ॥
गही बाँहि उबारूँ तोहि राई । यहि हंसन की अहै कमाई ॥
जो तुम किरिया दीन्हा मोई । कछू न तुम सों राखूं गोई ॥
यह कहि सतगुरु युगति बनाया । ले राजाको अंक मिलाया ॥
अंक मिला कटी सब माया । पारस रूप जो भई काया ॥

अंक मिलाया भये नृप पारस । उघडी दृष्टि अधिक भै आरस॥
लोक द्वीप दृष्टि में आई । भिन्न भिन्न सब द्वीप दिखाई ॥
भये राजा मन महा अनन्दा । मानो ऊगै पूरण चन्दा ॥

राजा वचन

धन सतगुरु तुम्हरी बलिहारी । बूडत जीव तुम लीन्ह उबारी ॥
अब सतगुरु प्रसाद कछु कीजै । महा प्रसाद जीवनको दीजै ॥

सतगुरु वचन

सतगुरु कहै सुनो तुम राई । महा प्रसादकी जुगति बताई ॥
कंचन केरी थार मँगाओ । अमृतकी झारी भर लाओ ॥
आसन डारिके पुरुष बैठाओ । स्वेत बहुत सब हंस ले आओ॥
इतना करि तब चरण खटारो । होय अधीन तन मनको मारो॥
सुनि राजा सब युक्ती लीन्हा । सतगुरुको बहु बन्दन कीन्हा ॥
चरणखटारि पोंछि जब लियऊ । आसन बिठाय पुरुष कहँ दियऊ॥
तब सतगुरु अस करबे लीना । सीथ प्रसाद सबनकूं दीना ॥
पाय प्रसाद भये बड भागा । शून्य महल मन मोहरा जागा॥
कहै समरथ कहु कैसा स्वादा । कहत बनै नहिं बनत अघादा॥

साखी—महाप्रसाद के करतही, निःतत्त्व होय जाय ।
रंचक घटमें संचरे, सतगुरु लोक दिखाय ॥

राजा वचन--चौपाई

सतगुरु कहिये बात विशेखा । लोक द्वीप सबही हम देखा ॥
धन्य सतगुरु तुम्हारे बलि जाऊँ । लोक द्वीप सब दृष्टिहि पाऊँ ॥

सतगुरु वचन

चौका युक्ती नहीं बनि आवै । महा प्रसाद कै देह बनावै ॥
तुमसे राजा कहु समझायी । पाख मास में पान तुम पायी॥
पुरुष पान सो पावे जबहीं । अगम ज्ञान सो सूझे तबहीं ॥

यही ज्ञान मैं भेद समझायी । तुम हंसन से कहो बुझायी ॥
हमरो प्रतिहार पान है भाई । पलपल खबर हंसकी लाई ॥
सोई वस्तु लै लोक पहुँचावे । सोई पान संग हंसन आवे ॥
जाका तुमसे कहूँ विचारा । पान लहे सो हंस हमारा ॥
जैमुनि लगन पान जो पावे । निर्भय लोक हमारे आवे ॥
पान परख विन झूठ कडिहारा । धोखे लेइ जिवन कर भारा ॥
धर्मराय माँगि है पाना । जब ही हंसा करे निर्वाना ॥
साखी–सब ही पहुँचे लोकमें, चढै पानपर अंक ।
कटे कर्म सब जन्मके, हंस होय निःशंक ॥

हंस ( राजा ) वचन–चौपाई

हंस कहे सुनो गुरुदेवा । जीवकि अवधि बताओ भेवा॥
जादिन अंत अवस्था आवे । ताकर भेद हंस किमि पावे ॥
सोम शुक्र दिन औ बुधवारा । ताका कहिये चन्द्र सरदारा ॥
आपनि आपनि चौकी आवै । तौ यह जीव बहुत सुख पावै॥
चलै चूक चौकी कर फेरा । तौ कायानगरमें होय बखेरा ॥
गुरूबारका भेद बताऊँ । दो भावे गुरु दरस दिखाऊँ ॥
एकै आवै एक न आवै । ता दिन जीव बहुत दुःख पावै॥
बार तिथि चौकी चूक करही । तो निश्चय ना बाचे देही ॥
सरब भेद मैं तोहि बताया । विरले हंस भेद यह पाया ॥
तुम सों हंस कहूँ समझायी । गुप्त भेद ना बाहिर जायी ॥
अब हम पृथ्वी परिक्रमा जावें । भूले हंसन करें चितावें ॥
तुम राजा बैठि राज कराओ । सार शब्द जपन चित लाओ॥

राजा वचन

जब सतगुरु तहँ ऐसो कहिया । तब राजा मन चिंता भइया ॥
राजा चरण धरचो तब आई । तुम बिनु कैसे रहूँ गुसांई ॥
हमको राखो चरण लगायी । नहिं देहु सत्यलोक पठायी ॥

करक संक्रान्ति चन्द्रकी भाई । जल तत्त्व ते चन्द कहाई ॥
जब चन्दा घर चन्दा सोई । रोग व्याधि शोक ना होई ॥
चन्द पेलिके सूर समावे । पास छः में लोकहिं जावे ॥
अब पाँच तत्त्वका कहूँ बखाना । जानेगा कोइ हंस सुजाना ॥
परबत पंच काया के बारै । गुरु गम हंसा करैं विचारै ॥
पीत वरन है मन्दिर बारा । तामें पुरुष दरश गुरु सारा ॥
स्वेत वरन है पुरुष परमाना । ताका दरश करै कोइ स्याना ॥
तीजे लालवरन पुरुष परमाना । देखत हैं सो हंस सुजाना ॥
चौथा हरा रंग है मूरत । ताको ध्यान धरि देखिये सूरत ॥
पाँचवें स्याम वरन अधिकारा । सो देखैं कोइ हंसा प्यारा ॥
जो कोइ इनसूँ सुरति लगावै । स्वास स्वासकी खबर बतावै ॥
रवि मंगल शनिश्चर वारा । तापर सूर होय असवारा ॥

---

## कालज्ञान

### सतगुरु वचन

सतगुरु कहै सुनो रे भाई । अगम के भेद कहूँ समझाई ॥
भिन्न भिन्न करके भेद बताऊँ । आगम कहिये दृष्टि दिखाऊँ ॥
वर्ष छः मास मासका भाऊँ । पाख आठदिन बरनि सुनाऊँ ॥
इंगला पिंगला सुषुमनि नारी । चलै लगन सो लेहु विचारी ॥
पाँच तत्त्व हैं उनके पासा । वह सब आगम कहें तमासा ॥
स्याना हंस होय जो भाई । तिनको अगम देहु बताई ॥
छः मासका भेद बताऊँ । अगम लहो सो कहि समुझाऊँ ॥
दोय संक्रन्तिका भेद बतायी । एक मकर दूजा करक कहायी ॥
मकर संक्रान्ति सूरज सो देखा । तत्त्व पृथ्वी स्वर सूर विशेखा ॥
जो सूर घर सूरज आवे । छः मास काया सुख पावे ॥
सूरज पेलि चन्द जो आवे । छः मासमें जीव चलावे ॥

पल पल राय नवावै माथा । मोको कैसे छुडाओ साथा ॥
गुरु विन कैसे रहौं अकेला । दिग दिग होये जीव न चेला ॥

सतगुरु वचन

सतगुरु कहै सुनो मोर भाई । हम संगे रहो लै जाउँ लिवाई॥
सदा रहौ हंसन के पासा । हमको रहै हंसनकी आसा ॥
देह सो दर्शन तुम्हें दिये राई । विदेही होय संग रहुँ सहाई ॥
विदेही दरश जब हंस पावे । देखि दरश होय अधिक उछावे॥
सतगुरु चलन खबर सब पावा । धीरे धीरे सब हंसा आवा ॥
आये हंसा विन्ती करहीं । हे साहब हम धीर कस धरहीं ॥
जो तुम जाओ सतगुरु साहब । हमहु संग सब तुम्हरे आयब ॥
तुम विनु गुरु कैसे रहि जावै । जल विनु मच्छी ज्यों तडपावै॥
हम पाये आनँद दरश तुम्हारे । मोको न छोडो स्वामि हमारे ॥

सतगुरु वचन

काहे को हठ करत हौ भाई । सबही हंस सुनो चित लाई ॥
देह धरी अब करो सुख वासा । सदा रखो निज नामकी आसा॥
घर में रहि कुल धर्म निबाहो ।जो सब साँचि भक्ति तुम चाहो॥

सबहंस वचन

माता पिता त्रिया नहिं चहिये । सुत नारीसे नहिं नेह लगैये ॥
सतगुरु तुमही हौ यक सांचा । झूठ और सकल जग काचा ॥
विना दर्श सो दुख हम पावें । नित चरणामृत कहँसे लावें ॥
तुम विनु देह छुटि सो जावै । कहँ गुरुवचन बहुरि सो पावे ॥
विना दरश सब जगकी माया । सबहि छुटे नहिं चहिये काया॥

सतगुरु वचन

सतगुरु कहै सुनो रे भाई । सबही रहो नाम लौ लायी ॥
सदा रहूँ मैं उनके पासा । धरे ध्यान जो सांचकी आसा॥

सुनो हंस गहो पद सांची । ध्यान विदेह में रहि हो रांची ॥
इतना कहि सतगुरु बतलावा । सबको विदेह ध्यान समझावा ॥
ध्यान पाइ आनन्द सबै भयऊ । सतगुरु दरश प्रत्यक्षहि पयऊ ॥
फिर सतगुरु राजहिं समझावा । सब हंसन को करहु चितावा ॥
पुनि हंसनसे अस प्रभु भाख्यो । हमरे ठौर राय तुहि राख्यो ॥
हम सम राय को सबही जानो । हमसन राय को अन्त न मानो ॥
तब सदगुरु तहँ ते पगुधारा । सब हंसन दुख भयो अपारा ॥
चलत गुरु सब सीस नवाया । करि मिलाप गुरु कण्ठ लगाया ॥
तुम सों राजा कहू चितायी । रहो सदा शब्द लवलायी ॥
चले गुरु समरथ जेही बारा । रोवै हंस बहैं जल धारा ॥
जैसे रंकहि रतन हिराना । जैसे भुजंग मणी बिसराना ॥
मानि सतगुरु आज्ञा लीना । विदेह ध्यान गुरु दर्शन दीना ॥
ध्यान पाइ गुरु करैं सब भक्ती । काल नाल सब छूटी युक्ती ॥
केते दिवस ऐसे चलि गयऊ । तबहीं राजा आगम पयऊ ॥
सब हंसनको वेगि बुलायी । राजा कहै शब्द बतलायी ॥

राजा वचन

जेहि कारण हम भक्ति कराई । सो दिन अब पहुँचा है आई ॥
ताल पखावज वेगि लै आओ । शब्द चलावा मंगल गाओ ॥
बाजा बाजे बहुत वधायी । सबै त्रिया मिलि मंगल गायी ॥
सब ही लोक खबर यह पायी । राय जगजीवन लोक सिधायी ॥
पाटन नगर में बहुत उछावा । घर घर तिरिया करे बधावा ॥
बैठे राजा आसन धारी । जुरे हंस जहँ बहुत अपारी ॥
ले परवाना बन्दगी कीना । सबही हंस परिकरमा दीना ॥
रानी पांच कुवँर दोय जाना । ❀ दासी चार हजूरी साना ॥

• इसके विरुद्ध दूसरी पुस्तकोंमें इस प्रकार लिखा है
जब राजा यक शब्द उचारा । कौन कौन चलं हमारे लारा ॥--

चार प्रधान सात उमराऊ । प्रोहित दोय हिये मन भाऊ ॥
इतना जन परवाना लीना । राजा संग सो प्याना कीना ॥
पावत बीरा जिव निस्तारेऊ । अमर लोक कहँ प्याना धारेउ ॥
दशम द्वार सो न्यारा द्वारा । जेही राह हँस पगु धारा ॥
धन्य भाग हंसन तब जाना । राजाके संग कीन पयाना ॥
आये प्रथम धरम के डेरा । जहँ चौतरा रायधरम केरा ॥
धर्मराय जब लेखा मांगा । तब हंसा लेखा देने लागा ॥
जिन जिन कौल चुकाने भाई । सो सो रहे धर्मकी ठाई ॥

जीव वचन धर्मराय प्रति

जीव कहे सुनो धर्मराया । हम सतगुरुका परवाना पाया ॥
ज्ञान ध्यान हम बहुते जाने । और जाने अमर सो ज्ञाने ॥
हमको तुम काहे रोकत भाई । संगी हमारे आगे चले जाई ॥

धर्मरायवचन

भूला जीव मुख करे चतुरायी । ऐसी बतन मुक्ति न पायी ॥
साखी गावे सब संसारा । का सबही जिव उतरे पारा ॥
जो जीव होएँ कौलके साचा । तिन सबपर हम पाले बाचा ॥
सतगुरु सेवा कीन बनायी ।हमरे शिरसु पावँ धरि जायी ॥
भक्ति हीन छुए अंग हमारा । छूवउ अंग होय जरि छारा ॥

---

–तब इतने हंस आगे पगुधारा । संग जान को कीन बीचारा ॥
रानी पांच कुवँर दोय जानी । दासी अष्ट नव हजुरी सानी ॥
पांच प्रधान ग्यारह उमराओ । छडी दार सातसो मन लाओ ॥
बारह कायस्थ सत्रह साहूकारा । बढई चार अरु सात लुहारा ॥
सत्रह सुनार अठारह बनजारा । चौकीदार चले संग चारा ॥
नव कुरमी सत्रह कोरी । तेरह कुम्हार सबै सर मोरी ॥
धोबी उजला धोवन हारा । पांच चले राजाकी लारा ॥
छः चमार बन्दगी कीना । राजा के संग प्याना दीना ॥
पाये बीरा जीव चलावा । निकसा जीव ठाठरी पठावा ॥

चार सहस्र सै सात रु बावन । इतना जिय चलु लोकहिं ठावन॥
दोसै कौल चुकाने भाई । सो रहे धर्म राय की ठाई ॥
चार हजार सात सै बावन । दोय सै धरमराज ठहरावन ॥
चार हजार बावन सै पाँचा । मानसरोवर पहुँचो सो साँचा ॥
जहाँ कामिनी मंगल गावै । सजि आरति ले आगे आवै ॥

कामिनी वचन

करी निछावर बूझै बाता । कैसे आये यहि मग धाता ॥
माया मोह बन्ध्यो संसारा । कैसे छाडे कुल परिवारा ॥

हंस वचन

कहे हंस सतगुरु गम दीन्हा । जब हम दर्शन तुम्हारा लीन्हा॥
देह बनी सो आगे आये । रहिता सब जिव वहाँ रहाये ॥
चार हजार एकसौ बावन । एते हंस तेहीं ठावन ॥
चार सौ आगे किया पयाना । हेतु द्वीप पहुँचे अस्थाना ॥
मान सरोवर हंस रहायी । सब मिलि करहिं बहुत बधायी॥
सब पूछे कामिनि सों बाता । यह सब हंस कहां को जाता ॥

कामिनी वचन

कह कामिनि सुनु हंसा भाई । तुम गुरु कर कह कीन कमाई ॥
परवाना की यहै बडावा । सो तुम मानसरोवर आवा ॥
उन हंसन गुरु भक्ति करायी । जुगति जुगति उन देह बनायी॥
आगे हेत द्वीप मैं जैहैं । हंस सुजन जन कंठ लगै हैं ॥

हंस वचन

सब हंसा मिलि विनती कीन्हा । हम चाहें तुव दर्शन लीन्हा ॥

साखी-बैठि हंस विन्ती करे, सुनु समरथ अरदास ।
देही सवारे लोकमें, उपजे प्रेम विलास ॥

चौपाई--सुजनजन वचन

हंस सुजन जन कहैं सुनायी । सबही हंसा सुनो चितलायी ॥
जैसी देह सवाँरी हंसा । तैसी लेहु हमारे पंसा ॥

हंस वचन

चरणामृतहि तुर्त सो लीना । कैसी महिमा गुरु की कीना ॥

हंस सुजनजन वचन

कितने पान शिष होये पायी । कौन वस्तु तुम पान चढायी ॥
जैसी वस्तु संसार चढावे । वैसी देह इहाँ सो पावे ॥
इहाँ मोती वहाँ हीरा लैहो । तेहि सम रूप देह सो पैहो ॥
जैसी सवाँरे देह तुम दासा । वैसे लोक करो तुम वासा ॥
जिन वहि अवसर देह बनायी । मंजुल करी में बैठक पाई ॥
द्वादश सहस सुर हंसनको रूपा । बैठे हंस दीप सम भूपा ॥
गो चढाय पान जिन लीन्हा । पुहुप दीप तिन हंसा चीन्हा ॥
आठ हजार सुरज परकासू । सब आनन्द होय सुख बासू ॥
वृषभ चढाय पान जो पावे । मंजु लोकमहँ हंस सो जावे ॥
दश सहस सूर छबि छाजे । बैठे हंसा राज विराजे ॥
हीरा मोती लै पान जो पावे । उदय द्वीप में हंसा जावे ॥
तेहि हंस में सुरज की जोती । झलके रोम में जैसे मोती ॥
वस्तर देइकै देह बनावे । सो हंसा सुख सागर पावे ॥
वह तो ज्ञान द्वीप में जावें । चार सुरज ज्योति तिन पावें ॥
पैसा धातु बर्तन लायी । सुख सागरमें ध्यान लगायी ॥
पैहैं सो षोडश भानु सरूपा । बसै सो हंसा द्वीप समीपा ॥
तीन सै बत्तिस जिन देहबनाये । आपन आपने द्वीप सिधाये ॥
पैसठ हंस पहुंचे निज ठाई । जिन तो इल्म फकीरी पाई ॥
कहै सुजन जन सुनो रे भाई । धनि धनि तुमरी अधिककमाई॥
तुम्हरी सरवर कोउ न कीन्हा । तुम तो गुरुको वश कर लीन्हा॥

तन मन धनकी कौन चलायी । तुम तो आपा दिय बिसरायी ॥
इन सब हंसन देह बनायी । तुम तो देही गुन बिसरायी ॥
जो तुम कहो करौं मैं सोई । तुमरी सरवर नाहीं कोई ॥
सुरति तुम्हारी अधिक सहाई । सतगुरु तुमरे प्राण समायी ॥
यह वस्तु तुम कैसे चीन्हा । कैसे गुरुको वश करि लीन्हा ॥
कैसे तन आशा बिसरायी । कैसे इल्म फकीरी पायी ॥
सब हंसनकी देह बनाऊँ । ताको तैसो दीप मिलाऊँ ॥
सतगुरु वशि करि राखे पासा । सुनो हंस मुँहि तुमरी आशा ॥
सदा सतगुरू हंस सनेही । तुम अर्पित सतगुरुकी देही ॥
सदा करै सतगुरु की पूजा । तुमसा हंस न देखा दूजा ॥

हंस वचन

हंस कहे सुन पुरुष पुराना । हम कहँ जानै जीव अजाना ॥
हम तो हते भवजल के माहीं । महा अन्ध कछु सूझत नाहीं ॥
तब समरथ गुरु आनि चिताया । बूडत देखि उबारन आया ॥
जो गुरु कहा सोई हम कीन्हा । एक गुरू विनु और न चीन्हा ॥
तिनसों पूछ कीन कर जोरी । समरथ मानो विन्ती मोरी ॥
हम नहिं चाहें लोक औ द्वीपा । सदा रहैं गुरु चरण समीपा ॥
तब गुरु कह्यो सुनो रे भाई । सर्व ज्ञान का मूल बताई ॥
हमरे संग रहा जो चाहो । नौतम सुरति कि देह बनाओ ॥
और सकल झूठ कर जानो । एक गुरू हम सांचे मानो ॥
तन मन धन सो बदला कीना । तब गुरु इल्म फकीरी दीना ॥
तब गुरु आपा दिया मिटायी । देहीको गुण दियो विसरायी ॥
पान इकोत्तर सै हम पाये । पानपान हम देह बनाये ॥
लोक द्वीप हम कछू न चाहा । हमको सतगुरु दरशकि लाहा ॥
हंसा सुरति गुरूकी कीन्हा । स्वरूप सहित गुरुदर्शन दीन्हा ॥
सब ही हंस धरेउ गुरु पाऊ । करि बन्दगि सब सीस नवाऊ ॥

सतगुरु वचन

सतगुरु कहै हंस सुनु बाता। कहां वे जीव तुम्हारे साथा ॥

हंस सुजनजन वचन

हंस सुजन मिलि अंक लगाये। कहो हंस कस कीन कमाये ॥

सतगुरु वचन

इनकी मैं का करूं बडाई। ये तो सब निज हंसा आई ॥
निश्चय बात हमारी मानी। काया माया खाकै जानी ॥
सतगुरु हंसको लोक चढायी। सहस अठासी द्वीप दिखायी ॥
जेहि जेहि हंस सवारी काया। द्वीप द्वीप सब दृष्टि बताया ॥
देखो हंस कह सब अस्थाना। देखो द्वीप सबही मन माना ॥
सबहीं हंस करे पछतावा। यह गति हम वहां नाहीं पावा॥
लै हंसनको पहुँचे तहँवा। महापुरुष विराजे जहँवा ॥

साखी-द्वीप वर्नन कह कहौं, सबैं मनोरथ काज।
सब द्वीपनते न्यार है, सत्यपुरुष को राज ॥

चौपाई

जब हंसनको ले पहुँचाये। तब सतपुरुष उठि कंठ लगाये॥
जब ही पुरुष अंक भरि लीना। पारस देह सब हंसन कीना ॥

पुरुष वचन

कहै पुरुष ज्ञानी भल आये। इतने हंस कवन विधि लाये ॥

ज्ञानी वचन

ये तब जानो पुरुष पुराना। मैं केहि मुख सों करौं बखाना॥
चार हजार सातसों बावन पाये। एते हंस दरश तुव आये ॥
सबही आये लोक मँझारा। दुइ सै रोके धरम वटपारा ॥
कौल किया पुनि गये भुलायी। पांजी द्वार धरम पर जायी ॥
मान सरोवर केते रहाये। उनको देही नाहिं बनाये ॥

और द्वीपन सब कीन बसारा। जैसी हंसन देह सँवारा ॥
इन तन मन सो बदला कीना। शिष्य होय इन वस्तुहि लीना॥
जो सब सुना है ग्रन्थन नामा। सोई सब कीना इन कामा ॥
एकोत्तरसै पान इन पावा। नौ तम सुरती देह बनावा ॥
नेह कीन घर रहै जग मारी। काया के गुण दिया बिसारी ॥
कसनी कसि सो तन बदले चीन्हा। गुरुको इन सब वशकरि लीन्हा॥
जीवत मृतक होय रहे जगमाहीं। जासें दरस तुम्हारा पाहीं ॥
सुनिके पुरुष हरष बहु कीना। फिर फिर हंस अंक भर लीना॥
कहा देउ तोहि हंस बडाई। तुम तोको अमर लोक चलि आई
अरध सिंहासन आसन पाये। सब हंसन शिर छत्र धराये ॥
हर्षित बदन औ बहुत हुलासा। सदा रहो तुम हमरे पासा ॥
बैठ्यो महा पुरुष दरबारा। कोटिन सूर हंस उजियारा ॥
अमृत फलका करो अहारा। धन्य हंस बडभाग तुम्हारा ॥

पुरुष वचन-ज्ञानीप्रति

ज्ञानी फेर जाओ संसारा। पृथ्वी जाय करो विस्तारा ॥
सबसों कहियो यहि उपदेशा। सब ही चलो पुरुषके देशा ॥

साखी-कहै कबीर सुख अति घनो, पूरण प्रेम विलास।
यह सब जीव चितावनि, जगजीवन परकाश ॥

इति श्रीबोसागरांतर्गत जगजीवनबोध-
नामक पंचमस्तरंगः समाप्तः

श्रीग्रन्थ जगजीवनबोध समाप्त

## परिशिष्ट भाग

### ग्रन्थसार

संसारमें जन्म लेनाही दुःखके महासागरमें पडना है। जन्मही शोकका सागर और भयका पहाड है जन्मही अनेक कर्मोंका घर,

पातककी खान और कालके दुःख देनेका स्थान है। जन्म कुविद्या का फल, लोभका कमल और ज्ञानका आवरण है। जन्म ही जीवका बन्धन, मृत्युका कारण और अन्त जंजालोंके मूल है। जन्म ही सांचे सुखका छल, चिंताका जंगल और वासनाओंका विस्तार है। जीवकी मिथ्या दशा, कल्पनाका भण्डार और ममतारूपी डाकिनीका लीला स्थान जन्म ही है। मायाकी लीलाकी रंगभूमि, तमोगुणकी गहरी और भयानक कूप और जीवको मोक्षमार्गसे भटकानेका जड जन्म ही है। जीवको मिथ्या देहाभिमानमें फँसाकर सत्य पदसे भ्रष्ट कर कालके नाना पाशोंमें फसानेवाला जन्मके सिवाय दूसरा कौन है ? यदि जन्म न हो तो शरीरकी झूठी ममतामें पड़ा हुआ यह जीव मिथ्या विषय-वासनामें लगकर अपने सत्य ज्ञानस्वरूपको भूलकर मिथ्या आशा और झूठी तृष्णामें फँसकर क्यों कालका चारा बने। यदि जीव शरीरके साथ सम्बद्ध न होता तो इसे नाना प्रकारकी विपत्ति और संकटमें पड़कर दुःख उठानेकी क्या आवश्यकता थी? जन्म लेनेवाले शरीरका मूल विचार करनेपर इस शरीर ऐसी अपवित्र वस्तु कोई भी नहीं मिलती। रजोदर्शनवाली स्त्रीके मासिकस्रावके पश्चात् बचे हुए और पिताके शरीरसे निकलते हुए अपवित्र वीर्य्य द्वारा इस शरीरकी उत्पत्ति है। जब ऐसी अपवित्र वस्तुओंके संयोगसे यह शरीर बना है तब इसमें पवित्रताका कहां पता है। स्त्रीके रक्तके औटाने पर इस शरीरका लोथडा बनता है यद्यपि ऊपरसे देखनेमें अपवित्र जनोंको यह सुन्दर देख पडता है तथापि भीतर तो वैसेही घृणित नरकका थैला बना हुआ है, फिर यह शरीर कैसा देख पडता है, जैसे चमडे भिगोनेका चमारका कुण्ड हो। चमारका कुण्ड तो

धोनेसे शुद्ध भी हो जाता है,किन्तु इसे नित्य प्रति धोने पर भी न इसकी दुर्गन्धि जाती है न इसमें पवित्रता आती है ।

हड्डियोंकी ठठरी बनाकर उसमें नस और नाडियोंका बन्धन लगाया है और मेद और मांससे इसे जोडा है, जिस लोहूका नाम ही अशुद्ध है उसी रक्तसे इस शरीरकी जब बनावट है तब इसकी पवित्रताका क्या ठिकाना है ? शरीर दुर्गन्धिसे भरा है क्योंकि अन्दर बाहर मलिन वस्तुओंसे ही इसकी बनावट हुई है। समस्त शरीरमें शिर सबसे श्रेष्ठ कहा जाता है, किन्तु उसमें भी नाकमें से सदा दुर्गन्धि बहा करती है और कान पकनेपर ऐसी दुर्गन्धि निकलती है कि, निकट भी खडा नहीं रहा जाता । आंखमेंसे कीचड और मुँहमेंसे थूक, लार और दुर्गन्धि निकला करती है । इस प्रकारसे समस्त शरीर अपवित्र और मलिन वस्तुओंसे बना हुआ है ।

उत्तमसे उत्तम पदार्थ भी भोजन कर लेनेपर वह कई घण्टोंही में घृणित मल बन जाता है । निर्मल शुद्ध जल पीनेसे शरीरके संयोग द्वारा वह मूत्र हो जाता है और इन्हीं पदार्थोंसे शरीरका पोषण भी होता है,राजासे प्रजातक महान भक्त,राजासे महान पापी अघकर्मीतक सबके पेटमें ये अपवित्र पदार्थ भरे हुए हैं और इन अपवित्र पदार्थोंका शरीरसे ऐसा सम्बन्ध है कि यदि कोई इन मलोंको शरीरसे निकाल कर शरीरको शुद्ध करना चाहे तो तुरत ही प्राणी मृत्युको प्राप्त होवे । जिस समयमें यह जीव अपनी वासनाके अनुसार शरीर धारण कर माताके गर्भमें प्रवेश करता है और नव महीनेतक यह शरीर माताके उदरमें रहता है, उसमें नाक मुँह आदि नवों दर्वाजे बन्द होते हैं और जिस समय वायुका तो प्रवेश भी नहीं होता,

उस समय में माताके शरीर से जो अपवित्र रक्त निकलता है उसकी गर्मी द्वारा हड्डी और मांस जलता है। ऊपरसे चमडेकी थैली न होने के कारण बालकका मांसमय शरीर माताके तीखे चरपरे आदि पदार्थोंके सेवनसे महान कष्टित होता है। गर्भके ऊपर एक सपेद २ चमडा लपेटा होता है और गर्भ मलमूत्र के नरक कुण्डके निकटही होता है तथा उसकी नाभिमें एक नली लगी होती है जिसके द्वारा गर्भका पोषण होता है। वात पित्त तथा विष्टा आदि अनेक अपवित्र पदार्थोंसे और नाना प्रकारके पेट के कीडोंके नाक तथा मुहँके पास फिरनेपर बालकका मन घबराता है। इस प्रकारसे अनेक असंख्य कष्टमें नव महीना तक कैद हुये जीवको अत्यन्त कष्ट और दुःखके कारण इसे प्रभु सद्गुरुका स्मरण आता है तब उस समय अत्यन्त विनीत भावसे प्रार्थना करता है कि, 'हे सद्गुरु! हे परमात्मन्! यदि इस बार कृपा करके मुझे इस कष्टमें से छुटकारा दे तो मैं अपने आत्माके कल्याणके मार्गको धारण कर फिरसे ऐसे कष्टमें आने से छुटकारा कर लूँगा" इसही प्रकार से अनेक समयतक प्रार्थना करते करते प्रभुकी कृपासे समय पूरा होनेपर माताके पेट में पीडा आरम्भ होती है। उस समयमें मुँह नाक और मस्तिष्क जो श्वासके मार्ग हैं। मांसके टुकडोंसे एकदम बन्द होजाते हैं, श्वासोछ्वासका द्वार बन्द होते ही बालकको मूर्छा आती है और जीव अचेतनावस्थामें तडफडाने लगता है। तडफडानेमें यदि शरीर आडा टेडा हुआ तब बाहरवाले लोग गर्भको काटकर निकालनेकी सम्मति देते हैं। यदि किसी युक्तिसे ठीक हुआ तो हुआ नहीं तो हाथ डालकर बालकका जोई अंग हाथ आया उसीको काटना आरम्भ करते हैं और क्रमशः काटकर उसे बाहर निकालते हैं। बहुत बार ऐसा होता है कि, स्वयम् बालक तो मरता ही है उसके

साथ २ माताका भी प्राण नाश होता है। यदि पूर्व पुण्यकी सहायतासे शरीर सीधाही बाहर निकला तब प्रथम शिर बाहर आता है, मार्ग छोटा होनेसे धाई सिरको पकडकर बल पूर्वक बाहर खींचती है इसमें भी कभी २ ऐसा होता है कि शिर बाहर निकला और धड उसमें ही अटक जाता है। उस दशामें बालककी मृत्यु होती है और संयोगसे माता बच गयी तो बालकके शरीरको काटकर बाहर निकालते हैं। यदि पुण्यवश सकल शरीर बाहर निकल आया और बालक जीता जागता रहा तो बाहर आतेही बाहर के पवन लगनेसे बालकको इतना कष्ट होता है कि, मानो सहस्र बिछुवोंने एकसाही डंक मारा है ऐसे असह्य कष्ट के कारण कभी २ बालक अचेत हो जाता है तब उसको चेत दिलाने के लिये नाना प्रकारके उपाय किये जाते हैं। कभी बालक को च्यूंटी काटकर जगाते हैं और कभी २ शस्त्रका प्रयोग भी करना पडता है। और जब बालक रोता है तब सबको आनन्द आता है इस प्रकार से महान कष्ट भोगकर यह जीव जब बाहर निकल कर संसारके पदार्थोंको देखता है और नाना प्रकार के मोहमें फँसानेवाली मायाके जाल माता पितादि की प्यारी प्यारी बातों को सुनता है तब गर्भ के कष्ट और प्रार्थना तथा वचन को भूलकर मोह माया में फँसता है और जगतके नाना प्रकारके क्षणिक सुख और दुःखमें पडा हुआ यह, साहिब और अपने स्वरूप को भूलकर भी कभी याद नहीं करता। इस प्रकारका गर्भका दुःख सर्व प्राणीको होता है, वही कथा इस ग्रन्थमें जगजीवन ( जीव ) के बहाने से ग्रन्थकारने लिखकर सबको उपदेश दिया है।

इति

भारतपथिक कबीरपंथी-

स्वामी श्रीयुगलानन्दद्वारा संशोधित

# श्री-गरुडबोध

मुद्रक एवं प्रकाशकः

खेमराज श्रीकृष्णदास,

अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,

खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग, बम्बई-४०० ००४

सत्यनाम



श्री कबीर साहिब

श्रीसद्गुरुभ्यो नमः

# अथ श्रीबोधसागरे

षष्ठस्तरंगः

## ग्रन्थ गरुडबोध

सोरठा–गुण गण जेहि अशेष, बने न वर्णत सहसमुख ।
वंदौं सोइ हंसेश, सत्यकबीर जो प्रगट जग ॥

धर्मदास वचन

साखी–धरमदास बिन्ती करै, सुनहू जगत उधार ।
गरुड बोधको भेव सो, अब कहहू यहि बार ॥

सतगुरु वचन

सत गुरु कहन तबहिं अस लागे । गरुड सो ज्ञान जेहि विधि पागे ॥

सत्य पुरुष वचन

आप पुरुष यक शब्द उचारा । हो सुकृत तुम जाहु संसारा ॥
नाम पान तुम लेहु हमारा । जाय छुडायहु जिव संसारा ॥
सत्य लोक ते करहू प्यानी । लेहु शब्द तुम बहुविधि बानी ॥
लेहु शब्द अजरमनि ज्ञानी । सत्य शब्द बोलहु सहिदानी ॥
आज्ञा मानि हमारी लेहू । जाय पाँव पृथ्वी तुम देहू ॥
कहो सबन सों शब्द बुझायी । भक्ति प्रताप सत्तनाम सहायी ॥

ज्ञानी वचन

तब ज्ञानी उठि मस्तक नावा । तुव प्रताप हम हंस छुडावा ॥
जुगन जुगन में हमहिं सिधाये । जिन माना तिनही मुकुताये ॥

तब साहब मोहि दाया कीन्हा । बचन मानि हम शिरपर लीन्हा ॥
करि प्रणाम परदक्षिन कीन्हा । पाछे जगहिं पयाना दीन्हा ॥
यही भाँति धर्मनि जग आवा । बहुत भाँतिते जिव समझावा ॥
प्रथम गरुडसे भेंट जब भयऊ । सत्य नाम कह बोल सुनयऊ ॥
धर्मदास सुनु कह्यो बुझायी । जेहि विधिसे ताही समझायी ॥

गरुड वचन

शीश नाइ तिन पूछा भाये । हौ तुम कौन कहाँसे आये ॥
कौन दिशा ते तुम चलि आऊ । अपनो नाम कही समझाऊ ॥

ज्ञानी वचन

कह ज्ञानी है नाम हमारा । दीक्षा देन आयऊ संसारा ॥
सत्यलोक से हम चलि आये । जीव छुडावन जग महँ आये ॥
सत्यपुरुष मोहि आज्ञा दीन्हा । सत्य शब्द हम लेइ तब लीन्हा ॥

गरुड वचन

सुनत गरुड़ अचम्भो माना । सत्य पुरुष आही को आना ॥
प्रत्यक्ष देव कृष्ण कहावें । दश औतार सो धरि धरि आवें ॥

ज्ञानी वचन

तब हम कहा सुनहु तुम स्याना । सत्य पुरुष तुम नहिं पहिचाना ॥
अवतारन का कहो विचारा । इतने साहिब रहै नियारा ॥
जाकर कीन्ह सकल विस्तारा । सो साहब नहिं जग औतारा ॥
योनी संकट वह नहिं आवे । वह तो साहब अछय रहावे ॥
जहाँ लगे जो जगमें आये । तहाँ लगि सबही अंश कहाये ॥

साखी–ताते साहब अछय है, तीन लोक सों न्यार ।
योनि संकट ना आवई, ना वह लेइ औतार ॥

गरुड वचन--चौपाई

तबही गरुड जो बोलहिं बानी । कौने देश बसन है ज्ञानी ॥
हम बाहन हैं कृष्ण के भाई । तिनकी गति तुमहू नहिं पाई ॥

तीनि लोकके ठाकुर आही । तिनके आगे कौनको शाही ॥
तीनि लोकके ठाकुर कहिये । तिनके और कौनको गहिये ॥
सोई मोहि अब देहु बतायी । मोरे मन चिंता समुहायी ॥
दूसर कौन सो देहु बतायी । हमरे मन गुमान नहिं आयी ॥

ज्ञानी वचन

सुनहु गरूड यक वचन हमारा । वह साहब है सबसे न्यारा ॥
यह तो सबै ईश्वरी माया । उपजहिं विनसहिं बहुरि विलाया ॥
वह नहिं आवे नहीं जाहीं । वह तो सदा अजर घरमाहीं ॥
उनकी आज्ञा इन पर आवें । तब इन गरभ वास सो पावें ॥
तुम पर सदा कृष्ण असवारी । काहे न दाया करहिं विचारी ॥
हम तो शब्द संदेशी आये । योनी संकट नहिं निरमाये ॥
तब हम उसको तत्त्व लखावा । होइ विदेह तब वचन सुनावा ॥

गरुड वचन

तबही गरूडे अस्तुति ठानी । तुम साहिब निर्गुण सहिदानी ॥
तुमहो प्रभू सगुण ते न्यारा । निर्गुण तत्त्व साहिब विस्तारा ॥
धरि अस्थूल मोहि दरश दिखावा । निर्गुण शब्द प्रभु मोहि सुनावा ॥
अब गुरु मैं बन्दों तव पायो । अब जाना प्रभु तुम्हरो भायो ॥
निज प्रतीति हमरे मन आऊ । हंसराज मोहि दरश दिखाऊ ॥
अब प्रभु मोहीं दर्शन दीजे । हंस उबार आपन करि लीजे ॥
भेद तुम्हार सकल मैं पाया । धरि स्वरूप तुम दरश दिखाया ॥

ज्ञानी वचन

देह धरी हम दरशन दीना । तब उन चरणबन्दना कीन्हा ॥

गरुड वचन

शीश नाइ चरणन लपटाये । अब साहब मोहिं लेहु बचाये ॥
साखी–निर्गुण प्राण अधार तुम, दरश दीन्ह प्रभु आय ।
आपन करि समझावहू, लेहु जीव मुकुताय ॥

ज्ञानी वचन--चौपाई

अहो गरुड तुम चीन्हा भाई । दे परवान लेऊँ मुकुताई ॥
बाहर भीतर सबै बताओं । तुमसों गरुड कछू न छिपाओं॥
अब तुम जाहु कृष्णके पासा । आज्ञा मानिके करहु विलासा ॥
आज्ञा मांगि कृष्णसे आओ । तब आरति विस्तार बनाओ ॥
तबही गरुड गये पुनि तहवाँ । श्रीकृष्ण बैठे रहे जहवाँ ॥
जाइ गरुड तब विन्ती लाई ।

गरुड वचन श्रीकृष्ण प्रति

तुम प्रभु सदा संत सुखदाई ॥
हम यक निर्गुण भेद जो पाया । ताका हम प्रभु विन्ती लाया ॥
ओय कबीर सत्यलोकसे आये । तिन मोहि भेद कही समझाये ॥
उन अन्तर नहिं ऐसो दिढावा । निज साहब नहिं पृथ्वी आवा ॥
नाम कबीर उन आप धराया । यह शब्द उनही भाष सुनाया ॥
निर्गुण भेद सबनते न्यारा । अस उन हमसो कीन्ह पुकारा ॥
जो मोहि आज्ञा करो गुसाईं । तौ उनको गुरु करिये जाईं ॥
दाया करि मोहि आज्ञा दीजै । सो हममानि अपन फिर लीजै ॥

श्रीकृष्ण वचन

सुनिके कृष्ण उतर तब दीन्हा । भले गरुड तुम उनको चीन्हा ॥
भले गरुड तुम पूछा आयी । दुविधा दुर्मति कपट नशायी ॥
जो यह भेद गुप्त करि रखते । हमसों तुमसों अन्तर पढ़ते ॥
जो तुम हमसों पूछो भाई । उनकर भेद है अगम उपाई ॥
वह निर्गुण हम सर्गुण भाई । निर्गुण सर्गुण बहु बीच रहाई ॥
हम सर्गुण कई बार औतारा । वह साहिब है सबते न्यारा ॥
जाकर पठाये वह यहँ आये । तिनही पुनि हम कहँ निर्माये ॥
उन आज्ञा जब कीन्ह उचारा । तब हम लीन जोइनि औतारा ॥
जो कबीर अहहीं अर्थांई । सोई वचन सत्य है भाई ॥

गरुड वचन

गरुड कहे तब काहे न भाषा । कैसे मोहि छिपाइके राखा ॥
निर्गुण भेद प्रभु मोहि छिपायी । सगुण भेद दीन्हा फैलायी ॥

श्रीकृष्ण वचन

सुनो गरुड यक शब्द निदाना । निर्गुण भेद कोइ विरले जाना ॥
देह धरी हम क्रीडा कीन्हा । यहै मानि सब काहू लीन्हा ॥
हम गीता महँ सन्धि जनाई । ताको कोइ न चीन्हे भाई ॥
निर्भय भक्ति कह्यो परमाना । ताकर भेद काहु नहिं जाना ॥
पढि गीता पण्डित बौराये । अर्थ भेद को गम नहिं पाये ॥
पढि गीता औरहि समुझावे । आप भरममें जन्म गमावे ॥
करे अचार छूतिके माने । औरनको हीनहि करि जाने ॥
सर्वमयी हमहीं सब माहीं । पण्डित अँधरे समुझत नाहीं ॥
हम सबमें सब हमरे माहीं । हमते भिन्न कोइ जानत नाहीं ॥
करै सो कौन अचार बिचारा । पण्डित भूले धरि हंकारा ॥
सर्वमयी है नाम हमारा । पण्डित अर्थ न करे विचारा ॥
कहि गीता हम सब समझायी । गीता पढै समुझि नहिं जायी ॥
कब हम पूजा नेम बतावा । कब हम जीव घात फरमावा ॥
ब्रह्मा विष्णु और शिव कहवाये । इन तीनों मिलि बाजी लाये ॥
तेहि बाजी अटका सब कोई । निर्गुण गमि कैसे के होई ॥
बाजी लायके जग भरमाया । निर्गुणकी गति काहु न पाया ॥
जो जो कछु हम कहा उघारी । सो काहु नहिं दृष्टि निहारी ॥
हम जानहिं सब भेद अवगाहा । और देव नहिं पावहिं थाहा ॥
ब्रह्मा विष्णु शिव बाजी लाये । उन काहू नहिं और सुहाये ॥
अपस्वारथसों बहुविधि लीन्हा । परमारथ काहू नहिं चीन्हा ॥
गीता मथी कही समझायी । सो अर्जुन नहिं जानी भाई ॥
चारि वेद मथि गीता कही । सो अर्जुन निज मानी सही ॥

श्रवण लगाय गीता उन सुनी । रहनि गहनि एको नहिं गुनी ॥
रहनि गहनि उनहूँ नहिं पायी । अर्थ सुनी सब कान उडायी ॥
सुनि सुनि सो सब जग अरुझावे । सांचा भेद न कोई पावे ॥
उनहुं अचार विचार न छूटा । ब्रह्मा विनशे यम सो लूटा ॥
श्रवण अवाज सबहिकी लीन्हे । रहनी गहनी कोइ न चीन्हे ॥
अहमेव कीन्हो अधिकारा । ताते जाहि गले सोहि मारा ॥
करै विचार पाखण्ड छूटे । भर्म विगुर्चन यमकी लूटे ॥
पण्डित बांचि गीता अर्थावे । गीता केर अर्थ नहिं पावे ॥
फिर फिर हमहीं को ठहरावे । पडित अँधरा भेद न पावे ॥
सुनहु गरुड यक शब्द हमारा । होय निर्गुण जिव केर उबारा ॥
हम कबीर कै निज करिजाना । उनहीं सकल कीन मण्डाना ॥
उनही सब अस्थान ढढाया । जहँ ले तीर्थ तिन सबहि गढाया ॥
जहाँ जहाँ उन चरन छुआया । सोइ सोइ तीर्थ अस्थान बनाया ॥
आपु जानिके चर्ण जो दीन्हा । यहि विधि सबको थापन कीन्हा ॥
वही मानि सब काहू लीना । आप गुप्त होय काहु न चीना ॥
इन सबही मिलि बाजी लायी । आप आपकी कीन बडाई ॥
जिनकी आज्ञा सब कछु भयऊ । तिनको छिपाये तीनों दयऊ ॥

साखी-कहें कृष्ण कबीरसों, गुरु तुम करो कबीर ।
हंस लै जइहैं लोक के, खेइ लगैहैं तीर ॥

चौपाई

चरण टेकिके गरुड रिगायी । कीन्हो भेंट द्वारका जायी ॥
वृन्दावन होय आज्ञा लीन्हा । दर्शन जाइ द्वारका कीन्हा ॥
चरण टेकि प्रदक्षिण दीन्हा । मस्तक नाइ बन्दगी कीन्हा ॥
समरथ कहो मोहि समझायी । आरति साज मैं लेउँ मँगायी ॥
तब हम उनपै पूछे लीन्हा । कहो कृष्ण आज्ञा कस कीन्हा ॥

गरुड वचन

तबही गरुड कह्यो अर्थाई । अस्तुति कीन्ह बहुत लौ लाई॥
एको बात गोय नहिं राखी । कृष्ण बहुत कै अस्तुति भाखी॥
निर्गुण के हम गम्य न जाना । बहुत भाँति उन गम्य बखाना॥
उनतो निर्गुण गम्य बतावा । ब्रह्मा विष्णु शिव पार न पावा॥
औ हम उन कहँदल जो दीन्हा । उन आवे की आज्ञा कीन्हा ॥

सतगुरु वचन

तब हम उनको भेद बतावा । एकोत्तर से नरियर फरमावा ॥
बहुत जतन कै मंडप छावा । बहु अनुरागी साज सजावा ॥
जेतेक साधु द्वारका आया । सबको गरुड कानि बुलवाया ॥
जेतिक साधू तहाँ रहाये । गरुड सबहिंको दल पहुँचाये॥
जहँ ले मुनि हैं सहस अठासी । नाग लोकके नाग जो वासी ॥
वासुकि देव जो आपु रहाये । औरो नाग बहुत चलि आये ॥
आय विष्णु ब्रह्मा दोउ भाई । शीव आय बहु तेज जनाई ॥
सब पर तेज महादेव कीन्हा । तुम सब मिलिके गरुडहि चीन्हा॥
तबहिं गरुड पूछा सहिदानी । जोई कृष्ण कहा मोहि बानी ॥

गरुड वचन

सुनहू ब्रह्मा विष्णु महेशा । यह मुहि कृष्ण कहा उपदेशा ॥
एति समय बीति जब जायी । तब हम तुमसों कहब बुझायी॥
जोइ कृष्ण सब कहा विवेकी । सो तुम्हरी मति आंखिन देखी॥

महादेव वचन

यह सुनि महादेव रिसियाने । हमरी गति तुम काहु न जाने ॥
हम तीनों हैं त्रिभुवन राई । हमहीं छोडि अवर चित लाई ॥
तुम हैं पंछी मतिके हीना । हमहिं छोडि औरहिं चित दीना॥

### गरुड वचन

तबही गरुड कहे समझायी । मति हमारि कोइ विरले पायी॥
अजर अमर घर पहुँचे सोई । मती हमार लखै जो कोई ॥
अवसर बीति जबै यह जायी । तब महादेव हम कहब बुझायी॥
सब साधुन की करिये सेवा । यह निज आहि भक्तिको भेवा॥
सबको गरुड़ जो भोजन दीन्हा । बहुत यतनकै भक्ति सो कीन्हा॥
करि प्रसाद जब मांड मँडायी । हमसे पूछी विन्ती लायी ॥
तबहि गरुड विन्ती अनुसारी । चलिये समरथ चौक विस्तारी॥
धर्मदास सुनि चौका कीन्हा । लोक समान पयाना दीन्हा ॥
संत समाज सब गावहिं गाजी । ऐसी भक्ति भक्त भल साजी ॥
बजो शंख वीन स्वर सोई । झांझन केरी बाजन होई ॥
ताल मृदंग गगन सो बाजै । ऐसी भक्ति भक्त भल छाजै ॥
शब्द स्वरूप तबै हम भयऊ । तुरत जाइ सत्यलोकहि गयऊ॥
सकलो साज वहां ते आना । बहुत भांतिकी भक्ति जो ठाना॥
सत्यलोक ते उतरे अंशा । अधम कालका भया विध्वंशा॥
सब समेत साज जो आये । जग मग ज्योति बरनि नहिं जाये
निर्गुण भक्त हो सुरति संजोई । कौतुक देखि रहे सब कोई ॥
नाग लोक को कीना मोही । ऐसी भक्ति न देखी कोही ॥
शेषनाग भये आपु मोहाने । औरकी बातें काहि बखाने ॥
मोहे ब्रह्मा विष्णु महेशा । नारद मोहे शुकदेव शेशा ॥
गण गंधर्व मोहे सब झारी । निर्गुण भक्ति न परै विचारी ॥
मोहे कृष्ण द्वारका वासी । मोहे सकल सिद्ध चौरासी ॥
यह समाज सो कैसो आई । ताहि देखि सब रहैं झँवाई ॥
ताते रंग उठे ततकारी । मोहि रहे सब सभा विचारी ॥
मोहे विष्णु वैकुण्ठके वासी । मोहे इन्द्र रुद्र लोक कैलासी ॥

मोहे इन्द्र और उरबशी । नौ लख तारा सूरज शशी ॥
यहि विधि कीन्ह भक्ति मनलायी । तनमन सुधि सकलौ बिसरायी ॥

साखी—तेतीस कोटि देवता, गण गन्धर्व सब झार ।
सुर असुर सबही थके, लीला नाम अपार ॥

चौपाई

धन्य धन्य सब करहिं पुकारा । धन्य गरुडजी ध्यान तुम्हारा ॥
धन्य कबीर जिन भक्त उधारा । भक्ति ज्ञान का कीन पसारा ॥
धन्य गरुड सबही अस कीन्हा । ऐसी भक्ति हृदय चित दीन्हा ॥
भक्ति मंडान पहर दोय भयऊ । तहँ हम उठिके आरति कियऊ ॥
आरति भइ पुनि बहुतै भांती । बरणि न जाय शोभाकी कांती ॥
एकोतर नरियर मालुम कीन्हो । बांटि प्रसाद सबनको दीन्हो ॥
सत्य सत्य सबन मिलि कीन्हा । धन्यगरुड तुम यह मति लीन्हा ॥

गरुड वचन

विन्ती करै गरुड चित लायी । सबसे करब हम चर्चा जायी ॥
दया करहु हमपैं गुरु देवा । तीनों देव सो कहिहो भेवा ॥
हम तो चरचा करब गुसाई । हमको दो लखाइ सब ठाई ॥

ज्ञानी वचन

अहो गरुड तुम हौ बड ज्ञानी । विद्या देहु सब घरके जानी ॥
घर आयेसे राड न कीजै । क्षमावंत हो बिदा सब कीजै ॥
बिदा देहु सबही सावधाना । तिनके घर तुम करिहो ज्ञाना ॥
अस्तुति ठानि चले सब देवा । धन्य कबीर देवनके देवा ॥

साखी—कहैं कबीर धर्मदाससे, यहि विधि आज्ञा लीन ।
अपने अपने लोक को, सबही प्याना कीन ॥

चौपाई

सबको बिदा जबहि करि दीन्हा । तबहिं गरुड अस कहबे लीन्हा ॥

गरुड वचन

हमको हुक्म तुम देहु गुसाईं । तुव प्रताप करौं बडाई ॥
तुमरी कृपा काल हम जीता । सबही भांति छुटी मन चीता ॥
तुमरी दया आश सब झूटी । भया निराश तब फन्दा टूटी ॥
अब मनमें मोहीं यक आवै । चरचा करनकौ मनमें भावै ॥
जो आज्ञा हम तुम तुमरी पावें । फिरि सबहिं सो चर्चा लावें ॥
त्री देवन सों कहूँ बुझायी । तिन कर फँद सब देहुँ तुडायी ॥

ज्ञानी वचन

तब हम तिनको बहु समझावा । निर्गुण सगुण सब भेद बतावा ॥
पाई भेद गरुड मनसाने । त्रिदेव सो चरचा मन आने ॥
तब हम आज्ञा तेही दीना । हमहू बिदा तहां से लीना ॥
साखी—दया लेइ गरुड चले, हृदये धरि गुरु ज्ञान ।
ब्रह्मपुरी ठाढे भये, चर्चा कर मन ठान ॥

चौपाई

हुते द्वारका ज्ञान मडाना । गरुड वहाँते कीन्ह पयाना ॥
जाइ सुमेरु पर बैठे जायी । कीन्हो भेंट ब्रह्म सों आयी ॥
गरुड ब्रह्म लोकहि जब आये । ब्रह्मा आदर कीन्ह बनाये ॥
आदर भाव ब्रह्मा तब कीन्हा । डारि सिंहासन बैठक दीन्हा ॥
जल करजोरि ब्रह्म लइ आये । गरुड के चरण परवारन आये ॥

ब्रह्मा वचन

धन्य गरुड यहाँ पगु धारी । अब पूरी सब आश हमारी ॥
तुमतो बाहन कृष्ण के भाई । आज कृष्ण पग धारे आई ॥
जो तुम हमपर दाया कीन्हा । कृष्ण बदल हम तुमकर चीन्हा ॥
आयसु माँगि प्रसाद जो भयऊ । करि प्रसाद वैकुण्ठमें गयऊ ॥
पान फूल जो अगर मँगायउ । इच्छा भोजन तहँवा पायउ ॥

बैठे जाय पुनि गरुड समाजा । उठि तब चर्चा निर्गुण साजा॥
ब्रह्मा कह तुम कैसे आये । सो मोहि वचन कहो समुझाये॥
कौने काज यहाँ पगु धारा । कहे ब्रह्मा तुम कृष्णके प्यारा॥

गरुड वचन

तबही गरुड कहे समझायी । तुमहिं चितावन आयउँ भाई॥
तुमहिं चितावन हौं पगुधारा । आदि पुरुष वह रहै नियारा॥

साखी-विनु देखे को जाय यह, नहिं पावे कोइ ठाम ।
जन्म अनेक भरमत फिरे, मरे विनु गुरुके नाम॥
आदि पुरुष आगम है, जाको सकल प्रकाश ।
निर्गुण भेद अपार है, तुम कहँ बांधी आश॥

चौपाई

कोटिन ब्रह्मा गये सिरायी । अविगतकी गति काहु न पायी॥
कोटिन ब्रह्मा पृथ्वी विलाने । अविगतकी गति काहु न जाने॥
कोटिन विष्णू गये सिरायी । फिरि फिरिकै पृथ्वीहु विलायी॥
कोटिन रुद्र देह धरि लीना । अस्थिर होय जगत्सो कीन्हा॥
कोटिन इन्द्र अवतार जो लीन्हा । अविगति पुरुष काहू नहिं चीन्हा॥
गण गंधर्व नर कौन चलावैं । सनक सनन्दन पार न पावैं॥
शेष नाग बहु भांति भुलाने । आदिपुरुषकी खबरि न जाने॥
सब परिवार जो भूले भाई । अवगति की गति काहु न पाई॥
भुला देखि जिव दया न आई । ज़ीव अनेक घात किहु भाई॥
सब भूले कोइ लागु न तीरा । महा अधम सो आहि शरीरा॥
देह धरी सब भरमें आई । आपन आप सब करै बडाई॥
अहमेव कैसे खोजेहु जाई । माता[1]को कहा न कीनेहु भाई॥

---

१ जिन २ पुस्तकों में सृष्टि उत्पत्ति प्रकरणका वर्णन आया है, उन सबोंमें आद्याकी आज्ञाको न मान कर हठ करके ब्रह्माका निरंजन के खोजमें जानेका वर्णन आया है वहांसे जानना चाहिये और यथार्थ भेद गुरुसे.।

कीन्हो खोज तुम आपु गुमाना । नहिं पाये तब रहे लजाना ॥
खोज कीन्हो जब अन्त न पावा । तब तुम आप आप ठहरावा ॥
आपु दृढाय थापना कीन्हा । सोई अहम् निर्गुण नहिं चीन्हा ॥
तुमरे भूले जगत भुलाना । आदिपुरुषको मर्म न जाना ॥
यहि विधि जग सब रहत भुलायी । टीका मूल काहु नहिं पायी ॥
तेतीस कोटी देव भुलाये । यहि भूले कोइ गम्य न पाये ॥

साखी-भूले गम्य न पाइया, भूले मूढ गँवार ।
टीका भूल न जानई, अरुझि रहा संसार ॥

चौपाई

तुम बाजीगर बाजी लाये । तुमतो सब दुनियाँ भरमाये ॥

ब्रह्मा वचन

सुनि ब्रह्मा तबहीं रिसियाने । हमते दूजा केहि को जाने ॥

गरुड वचन

सुनु ब्रह्मा यक वचन हमारा । तुम अस ब्रह्मा कोटि हजारा ॥
कोटिन ब्रह्मा ठाढ़े द्वारा । कोटिन वेद सो करहिं उचारा ॥
खोज करन ब्रह्मा तुम गयऊ । कहूँ पिता के अन्त न पयऊ ॥
झूठ कहे मातासों जायी । ताते ब्रह्म शाप तुम पायी ॥
माता ते तुम भये लबारा । आय जीवमें सकल संसारा ॥
सबकी प्रतिमा थीर न आयी । आपु समेत सकलो भरमायी ॥
जो कोइ कहै भूलकी वानी । कोटिन जन्म नरककी खानी ॥
यह संसार रहट की घरिया । कइक बार राजा अवतरिया ॥
कइक बार नरक में परई । कइक बार ब्राह्मण औतरई ॥
यहि विधि जीव आवे जायी । भरमि भरमि चौरासी पायी ॥
कोटिन बार अस्थावर जानी । कोटिन बार पिंडज उत्पानी ॥
कोटिन जन्म अंडज अवतारा । यहिविधि भरमहिं जीव विचारा ॥
यहि विधि भरमें जीव विचारा । बिनु सतगुरु नहिं होय उबारा ॥

साखी-कहे गरुड समझाइके, सुनहु ब्रह्म यह बात ।
अविगत पुरुष सु और है, जाके माय न तात ॥

ब्रह्मा--वचन चौपाई

सुनि ब्रह्मा तब पूछे बानी । कैसे अविगतिकी गति जानी ॥
कौनी युक्ति साच कै मानी । साहिबकी गति कैसे जानी ॥

गरुड वचन

गरुड़ कहै तुम आपही ज्ञाना । जहाँ गर्व तहाँ पुरुष छिपाना ॥
गर्व गुमान में जो है पूरा । रहै सदा सो धूर अधूरा ॥
साखी-मानुषदेह अपराधि है, देह धरे अभिमान ।
ताते सबै विगुर्चे, भक्ति मर्म नहिं जान ॥

चौपाई

भक्ति जो आदि अंतसे आयी । जाते सकल माँड निर्मायी ॥
ताकर मर्म जो जाने नायी । ताते काल फांस निरमायी ॥
साखी-लोक वेद जानै नहीं, करै भक्ति अभिमान ।
ताते सबै विगुरचे, भक्ति करन का जान ॥
ध्वजा जो फरके शून्यमें, बाजे अनहद तूर ।
तकिया है मैदान में, पहुंचेगा कोइ शूर ॥

ब्रह्मा वचन-चौपाई

ब्रह्मा कहै गरुड सुनु भाई । अपने मुख तुम करहु बडाई ॥
इतना ब्रह्मा किया विचारा । देव विमान तुरत भये ठाढा ॥
कहे ब्रह्मा तुम जाहु विमाना । लाओ विष्णु बुलाइ सयाना ॥
चला विमान विष्णु पै गयऊ । तबहि विष्णु अस पूछन लयऊ ॥
कहो विमान कहाँ पगु धारे । सत्य सत्य कहो वचन सम्हारे ॥

विमान वचन

गरुड भक्त यक आया देवा । सो नहिं माने तुम्हरी सेवा ॥

सुनते विष्णु विमान चढाये । चढि विमान ब्रह्म लोकहि आये॥
विष्णुपुरीसे विष्णु जब आये । बैठे जाय ब्रह्माके ठाये ॥

विष्णु वचन

केहि काज पर मोहि बुलायी । सो मोहि भेद कहो समझायी ॥

ब्रह्मा वचन

ब्रह्मा वचन कहै अर्थावै । कहै गरुड हम केहि चेतावै ॥
हमको मनुष देह करि जानै । आदि पुरुष औरै को माने ॥
भले विष्णु तुम आये भाई । अब शिवको तुम लेहु बुलाई॥
गढ कैलास शिवका अस्थाना । तहँको अब तुम जाहु विमाना॥
सब देवनको आनु बुलायी । सुनहीं चर्चा गरुड की आयी ॥
महा विमान तुरत चलि गयऊ । गढ कैलास पर ठाढे भयऊ ॥
शिवशंकर को माथ नवायी । पाछे ब्रह्माका बचन सुनायी ॥
ब्रह्मा गरुड जहँ झगर पसारा । तेहि कारण तुम सबके हँकारा॥
ब्रह्मा विष्णु बैठे एक ठाई । कीन्ही चर्चा मंड मँडाई ॥
गरुड सबहि का करै उच्छेदा । सो मैं तुमहि बतायो भेदा ॥
बाजे डमरू हनै निशाना । चले रुद्र तब साजि विमाना ॥
तुरत चले नहिं लाये बारी । चले रुद्र आये पगुधारी ॥
ब्रह्माको जहँ भयउ उछेदा । बैठे जहाँ करे बहु भेदा ॥
इन्द्र लोक सो इन्द्र बुलाये । जेहि सँग देव सबै चलि आये॥
सो सब चलि ब्रह्मा पहँ आये । वासुकि देव जो आप रहाये ॥
आवत उनके नाग बहु आये । बहुतै नागिन आयी बहुभाये ॥
सुर नर मुनि सब आनि बुलायी । जो जस आसन तस बैठाई ॥
ब्रह्मा विष्णु बैठे यक ठावा । गरुड तहाँ पुनि ज्ञान सुनावा ॥

गरुड वचन

अविगतिकी गति आहि निनारा । सब भूले कोइ पाउ न पारा ॥

ब्रह्मा वचन

ब्रह्मा कहै विष्णु सों बाता। गरुडको ज्ञान सुनो विख्याता॥
हम तीनों अवरे नहिं कोई। हमरे परे सुनावै सोई॥
ब्रह्मा कहै विष्णु सों बाता। हमको कहत है परलय घाता॥
हम तो तीन लोकको कीन्हा। हमको सकल देवता चीन्हा॥

गरुड वचन

तबहि गरुड यक बचन उचारा। जब कर्ता तुम सृष्टि सवाँरा॥
वह साहब सबही ते न्यारा। कस नहिं ताकर करो विचारा॥
जिन साहब तुम्हें निर्मायी। तुम कस ताको नाम छिपाई॥
विष्णु रहत हैं तुम्हरे पासा। तिनहूं को पुनि काल गरासा॥
क्रोधवंत ब्रह्मा तब भयेऊ। अचरज बात गरुड जो कहेऊ॥
जाकी तैं पुनि सेवा करई। सो तो हमरे त्रास महँ डरई॥
सुर नर मुनि सब काहू चीन्हा। सुनु पंछी तैं मतिका हीना॥
लोक वेद सब हम कहँ जाने। न जानूं कस आप चित आने॥

गरुड वचन

सुनु ब्रह्मा तैं गर्व भुलासी। तोहि अस ब्रह्म कोटि मरासी॥
हम तो ब्रह्मा बहुत जो देखा। जो पूछहु तो काढों लेखा॥
काढों विष्णु कोटि सै चारी। महादेव जाके भंडारी॥
मैं तो भक्त कबीरका चेला। युगन युगन जिन कीन्हो मेला॥
हमसों कह्यो कबीर बुझायी। ताते आय कह्यो गोहराई॥

ब्रह्मा वचन

ब्रह्मा कोपि उठे तब भाई। विष्णु महादेव सुनहूँ आई॥

विष्णु वचन

आये दूनो जन ब्रह्मा ठाईं। विष्णु कहै कस मता दिढाई॥
काह आज जिव बहुत उदासा। कीन्हो क्रोध गरुड के पासा॥
कहो वचन मुख होय प्रकाशा। हम अजान है तुम्हरे आसा॥

ब्रह्मा कहै सुनो हो भाई। अविगत की गति गरुड सुनाई॥
हमहीं तीन अवर नहिं कोई। चौथे एक निरंजन सोई॥
ताको गरुड न माने भाई। ताते मोहि क्रोध भौ आई॥
तिंहि कारण हम तुम्हें बुलावा। गरुड ज्ञान हमहीं समझावा॥

विष्णु वचन

विष्णु कहैं सुनो गरुड विचारी। आदि अंत कोई अगम है भारी॥
एक ध्यान हमहू नहिं कीना। अवि गति बात हमहूँ नहिं चीना॥
अहमेव मटी सुरत लगाया। अविगति ध्यान तबहू नहिं पाया॥
ध्यान मध्य हम देखा जाही। ब्रह्मा विष्णु महादेव नाहीं॥

साखी-विष्णु नहीं ब्रह्मा नहीं, माहादेव नहिं कोय।
ओम्ओंकार तहवाँ नहीं, निरखि देखा हम सोय॥

ब्रह्मावचन-चौपाई

तब ब्रह्मा अस वचन उचारा। यह है बडा काल वटपारा॥

विष्णु वचन

सुनु ब्रह्म अविगती कहानी। विना तत्त्व मैं निरखा बानी॥
ताकी का कहिये अब बाता। अगम अपार कहूँ विख्याता॥

साखी-निःकामी निर्ध्यानि सोई, निष्प्रेमी निर्वान।
कहै विष्णु ब्रह्मा सुनो, अविगति यहि विधि जान॥

चौपाई

ब्रह्मासों कहै विष्णु बखानी। है कोई आदि पुरुष निर्वानी॥
दुर्वासा संग रहे जब भाई। अविगतिकी गति तब हम पाई॥
तबका बोल हम कीन्ह परमाना। ताते हम जानहिं निरबाना॥
दुरवासा गुरुभक्ति दृढाया। तब ते हमहु परम पद पाया॥

साखी-ब्रह्मा हमकहँ जानहूँ, और न कोई सांच।
दृढा ज्ञान नहिं आवई, ताते काया कांच॥

ब्रह्मा कहै सुनो विष्णु विचारी । हमही रचा पुरुष औ नारी ॥
हमते और कौन है भाई । सो मोहि भेद कहौ समझाई ॥
हम तो सर्गुण सकल पसारा । हमतो अगम निगम विस्तारा॥
हमतो रचा पवन औ पानी । हम कहँ वेदव्यास बखानी ॥
हम चौरासी नाव जो कीन्हा । हम निर्गुण सरगुण चीन्हा ॥
इतनी कथा कहि ब्रह्मा सुनाई । तबहू गरुड न मानैं भाई ॥

गरुड वचन

कहै गरुड सुनो ब्रह्म कुमारा । तुम कहँ रची सृष्टि करतारा ॥
सबको रची सबै जिन कीन्हा । वह तो पुरुष सबन ते भीना ॥
वह तो पृथ्वी पाँव न दीन्हा । शब्दहि ते सकलो जग कीन्हा॥
जो आप रचना करि जाना । तो हमसे हठि भाषहु ज्ञाना ॥
जो तुम रचा पवन औ पानी । पृथ्वी अकाश तुमहिं जो ठानी॥
रचा तुम्हार तब जानहिं भाई । अब रचहू तुम फिरि विनशाई॥
जो तुम्हार है सकल बनाई । फिरिके परलय करहु तुम भाई॥
तब हम जानहिं कीन तोहारा । यह मेटहु सकलो विस्तारा ॥
अपने हाथ रचै जो कोई । फिरिकै मेटि सकै पुनि सोई ॥
तब ब्रह्मा सुनि रहे लजाई । सम्मुख उत्तर कह्यो न जाई ॥

महादेव वचन

कहे महादेव सुनो रे भाई । अचरज बात कही नहिं जाई ॥
सुनु ब्रह्मा गरुड जो कहई । ताकर भेद कोई विरला लहई॥
दश औतार विष्णु जो लियऊ । काया काल ग्रास जो कियऊ॥
तबही कृष्ण भेद यक कीन्हा । ताको ब्रह्मा तुम नहिं चीन्हा ॥
गोपी ग्वाल सबै हरि लाये । तब जो कृष्ण सब दीन मेराये॥
इतनी बात ब्रह्मा तुम नहिं जानो । अविगतिकी गति कैसे पहिचानो॥

साखी-कौन सरूपी कृष्ण है, कौन धरे अनुमानु ।
देह धरे नहीं चीन्हहू, निर्गुण कैसे जानु ॥

चौपाई

निरगुणको गुण है बड भारी । जिन उत्पन्न कियो सब सारी ॥
वह तो पुरुष मूल है माथा । गति प्रतीति ताहीके साथा ॥
नहीं महातम पुरुष की पूजा । जप तप संयम नाम बिनु दूजा ॥
वार पार नाम नर सेई । अजर नामको सुमिरन देई ॥
बारहिं बार नाम लौ लावे । अजर अमर होय लोक सिधावे ॥
नाम सिखापन बदन सो खोले । विना नाम विनु महातम डोले ॥
सतगुरु विना मर्म नहिं जानै । हमैं तुम्हैं सब जगत बखानै ॥

ब्रह्मा वचन

सुंनो महादेव साँच बखाना । निर्गुणके गुण हमहूँ नहिं जाना ॥
अविगतिकी गति हम ना जानी । योगी जंगम सेविं हम जानी ॥
सुर नर मुनि सब हमको ध्यावें । हम उपजावें हमही विनशावें ॥
साखी-मैं उपजावों मैं विनसावों, मैं खरचों मैं खाऊँ ।
तीन लोक पैदा करों, मोर ब्रह्म है नाऊँ ॥

गरुड वचन चौपाई

ममताते नर नरकै जायी । ताते बहुरि बहुरि जन्मायी ॥
तुहि अब ब्रह्मा बहुत बिचारा । ताते काया बिनसे सब सारा ॥
तू ब्रह्मा अस जो धरे हँकारा । तेहिते काल भया वटपारा ॥
सुनु ब्रह्मा अविगति की बाता । एकै पुरुष एक है माता ॥
सुनहू सब सभा विचारो । यक मैं निरखि कहौं निरुआरो ॥
वहि साहबकी खबरि न पावा । तुव अस ब्रह्मा बहुत उपावा ॥
वही हम निरखि परखिके जानी । साहब शब्द लेहु पहिचानी ॥

---

१ ब्रह्मा शिवकी बातकी व्यंगसे हँसी करते हैं।

साखी-कहो ब्रह्मका भूलहू, कहौं तोहि समुझाय ।
मोर मोर कै धावहू, ममता अमल चलाय ॥

चौपाई

ममिता ते दशों अवतारा । ममिता महादेव धरू छारा ॥
ममिता लोमश योग जो कीन्हा । आयु बढी भगती नहिं चीन्हा॥
ममिता ते आपुहिं जो रहेऊ । ममिता ते तीन लोक बहि गयऊ॥
ममिता तेज निरञ्जन कियऊ । ममिता ते पुरुष दरश न पयऊ॥
तुम ब्रह्मा कीन्हे अभिमाना । तेहिते साहब अछय छिपाना ॥
साखी-ब्रह्मा गर्व तुम कीनिया, सुनि राखू यक बात ।
जो साहब अभि अंतरे, सोई सदा सँघात ॥
तुम अज्ञानी नहिं जानहू, सुनु ब्रह्मा यक बात ।
अविगति अगम अपार है, समरथ सदा सँघात ॥

विष्णु वचन--चौपाई

विष्णु कहैं सुनो हो भाई । चलहू तुरत ज्योति पहँ जाई॥
ज्योति कहै सो सुनिये भाई । सब मिल चलहु सांचकै आई॥
आंखिन देखी पूछि न जाई । पाय अभिमान चीन्हे नहिं पाई॥
अभिमान मता सब दूरि दीजे । सांच बस्तुको धारण कीजे ॥
अभिमान समेत चीन्हे नहिं कोई । देह धरी सब गये विगोई ॥
आपा थापि सुधि बुधि खोई । आपा छोडे पावे सोई ॥

महादेव वचन

तब महादेव कहैं विचारी । अहो विष्णु पूछहु महतारी ॥
जो वह कहैं सो हम तुम मानैं । औरी बात नाहिं हम जानैं ॥
ब्रह्मा विष्णु से हुई यह बाता । तुम बडे हो कि बडी है माता॥
सबै मिली तब कीन्ह पयाना । जाइ माता ढिग कीन्ह बयाना॥
बोलहु माता सत के भाऊ । नहिं अरुझावहु भाषि सुनाऊ॥

तीनो देव कहैं सुनु माता । और कौन पुरुष आहि विधाता ॥
हम तीनों कि और है कोई । यह निज भेद बतावहु सोई ॥

माता वचन

तब माता बोले हितकारी । कस न ब्रह्मा करहु विचारी ॥
जब तुम हते हमारे पासा । तब तुम कीन पिता की आसा ॥
तबकी बात विसरी तुम गयऊ । पुरुष ते विमुख तुम भयऊ ॥
पुनि माता यक वचन अनुसारी । महादेव हौ कृतम भिकारी ॥
अमर वचन जो हमहीं भाखा । युग चारों देह अमर राखा ॥
सोई वचन भूलि जो गयऊ । मातु पिता सो अंतर लयऊ ॥
पुनि माता गरुडसे बोली । अमृत वचन रसाल अति खोली ॥
कहै माता सुनु गरुड सुजाना । तुमतो वचन कही परमाना ॥

गरुड वचन

गरुड तब पूछे ज्योतिसों बानी । कैसे तुम यह सिरजा खानी ॥

माया वचन

तब उन कहा पुरुष सों बानी । पावक नीर पवन वैसानी ॥
जल रंग अंश सो साथहिं रहई । ताकी खबरि कोई नहि लहई ॥
प्रथम अंशजल रंग जो कीन्हा । तबजलसिन्धुनाम कहि दीन्हा ॥
साखी–ब्रह्मा विष्णु कोई नहीं, महादेव भी नाहिं ।
पुरुष एक तब अविगति, अगम अगोचर माहिं ॥

ब्रह्मा वचन चौपाई

कहे ब्रह्मा हम आपु प्रकाशा । हम पुहमी नौ खण्ड निवासा ॥
हम हैं नीर हमहिं हैं पवना । हमहीं रचा सकल सब भवना ॥
हमहीं पांच तत्त्व सब कीन्हा । हमहीं आप सृष्टि रचि लीन्हा ॥
हमहीं सकल सृष्टि विस्तारा । हम कर्ता है सकल पसारा ॥
हमहीं चन्द्र सूर दिन राती । हमहीं कीन्ह किरतम उत्पाती ॥
हमहीं आदि अंत मधि तारा । हमहीं अंध कूप उजियारा ॥

हमहीं ब्रह्मा विष्णु महेशा । हमहीं नारद शुकदेव शेशा ॥
हमहीं कंस कृष्ण बलि बावन । हमहीं रघुपति हमहीं रावन ॥
हमहीं हैं मच्छ कच्छ बाराहा । हमहीं भादों फागुन माहा ॥
हमहीं दशौ भये अवतारा । तीरथ बरत देहरा धारा ॥
हमहीं हंसा समुद्र तरंगा । हमहीं सरस्वती यमुना गंगा ॥
हमहीं योग युक्ति ब्रत पूजा । हमहीं छाँडि देव नहीं दूजा ॥
हमहीं पढना गुनना लीखा । हमहीं पाप पुण्य गुरु शीखा ॥
हमहीं विद्या वेद पुराना । हमहीं कीन कितेक कुराना ॥
हमहीं आवें हमहीं जावें । हमहीं आदि अन्त की छावें ॥
तीन लोक हमहीं विस्तारा । सकल निबल देही हम धारा ॥
साखी–तीन लोक में रमि रहे, सबही मोही मान ।
कहु माता समुझायके, किरतम कैसे जान ॥

माता बचन--चौपाई

तब माता अस बोली बानी । तू तो ब्रह्मा चतुर सुजानी ॥
हमसे भयी उत्पत्ति तुम्हारी । तुमही पुत्र हमही महतारी ।
पिता केर खोज जो कीन्हा । तब हम तुमको हुकुम नदीन्हा ॥
बरबस कै तुम खोजेउ जायी । तब हम पिताकी खोज बतायी ॥
तब हम तुमसों बोली वानी । दर्शन ते बेमुख तुम्हें जानी ॥
तब तुम पैज बाँधि कै चलेऊ । पिता के दर्शन नहीं भयऊ ॥
जो तुम कीन्हे सकल बखाना । ताकर मोसों कहो विधाना ॥
जो तुम आपुहिं आप तुम रहऊ । कवनके खोज करन तुम गयऊ ॥
काहे को बोलहु अनरीती । तुम लबार सो कीन्ही प्रीती ॥
बरबस खोज पिताके गयऊ । खोजन पाय अमरख तब भयऊ ॥
तब हमतो बोले झूठे लबारा । तैसहिं सब चलही संसारा ॥
एक बार लबारी करेऊ । तब हम तो कहँ शाप सो दयऊ ॥
अब बोलहु तुम वचन सम्हारी । काहे ब्रह्मा बोलु लबारी ॥

साखी-भाषहु वचन सँभारिके, जनि बोलहु अज्ञान ।
परमपुरुष एक अगम है, ताकर करहु ध्यान ॥

चौपाई

हम तो सत्य वचन चित धरऊ । हम तुम सत्य पुरुष ते भयऊ॥
ममता तेज बहुत तुम कीन्हा । आदि अन्तको नाहिन चीन्हा॥
माता वचन कह्यो सब झारी । तब ब्रह्मा मन आयी हारी ॥

गरुड वचन

सुनु ब्रह्मा तुम कौन मति ठानी । माता कहै सो कहा न मानी ॥
जो नहिं यह वचन परमानो । ज्योति कहै सो सब मिलि मानो॥
सुनि ब्रह्मा को गर्व परहारा । एक पुरुष जिय किया है चारा॥
परम पुरुष तेहि कीन प्रकाशा । जिनकी जगत लगावे आशा॥
चौसठ युग वही प्रकासा । सत्तर युग है वाके पासा ॥
सहस्र युग गये शून्य वे शून्ने । नहिं तहँ पाप नहीं तहँ पुन्ने ॥
तुम सब ब्रह्मा केतिक गयऊ । हम तब सब कर भेदे लयऊ ॥
साखी-सुनु ब्रह्मा का जानई, तुम तो करम के खोट ।
तेहिते हाल विनसिहो, जनी कहावहु छोट ॥
सुनु ब्रह्मा कहँ भूलिया, जनि करहू तुम रोख ।
जन्म जन्म चौरासिया, यहि विधि पावो धोख ॥
कहै गरुड समुझायके, जनि भरमहु अभिमान ।
साहिब एक अगम्य है, ताकर करहु पिछान ॥

चौपाई

टीका मूल एक हम देखा । तहाँ है निज शब्द विवेखा ॥

विष्णु वचन

ब्रह्म महादेव सुनहू भाई । सब पर देव निरञ्जन राई ॥
एक निरञ्जन और न कोऊ । तेहिते अपर और नहिं होऊ ॥
तेहिते और नहीं कोइ पारा । सो तो सकल भुवन सरदारा ॥

वही सकल भुवनका स्वामी । वही परम ब्रह्म अन्तरयामी ॥
उनही नारी पुरुष बनावा । सकल सृष्टि उनही सिरजावा ॥
लाख चौरासी उनहि सँवारा । उनही गोरख नाम धरावा ॥
उनही छलि बलि पताल पठावा । काल रूप धरि जगमें आवा ॥
उनही यह सब खेल खिलायी । उनही सकल सृष्टि उपजायी ॥
साखी–कहे विष्णु गरुड सुनु, कहे सुने का होय ।
एक निरञ्जन आपु है, दूजा और न कोय ॥
सात द्वीप नौखंडमें, एक निरञ्जन होय ।
और कौन सो देखिये, ताको कहिये सोय ॥

गरुड वचन–चौपाई

मैल मलीन सकल संसारा । सो निर्मल जाके अन्त न पारा ॥
मैले ब्रह्मा मैले इंद्र । रवि मैला मैले शशि चन्द्र ॥
मैले सनक सनन्दन देवा । मैले यह जग लहै न भेवा ॥
मैले शिव ब्रह्मादिक देखा । मैले लोक ब्रह्माण्ड विशेखा ॥
निशि वासर मैले दिन तीसा । मैले काल मैले अवनीसा ॥
मैले जोत मैले तन हेता । मैली काया मैल समेता ॥
मैले निरंजन नर नहिं जाना । उन यह सृष्टि कीन्ह पिसमाना ॥
निर्मल नाम एक है श्वेता । निर्मल सो जो नामहिं लेता ॥
कहै गरुड ते जन परमाना । जो निर्मल निज नामहिं जाना ॥
साखी–निरंकार ओंकार है, पार ब्रह्म है सोय ।
एकनाम चीन्हे विना भटकि मुवा सब कोय ॥
साहब इनहि बनाइके, आपुइ रहै निनार ।
सो निज नाम जाने विना, कैसे उतरे पार ॥

चौपाई

कहत सुनत सबही सुधि पायी । कहत सुनत सब तीर्थहिं जाई ॥
कहत सुनत ज्ञान बहु करई । दम्भ अभिमान बहुत सो धरई ॥

कहत सुनत नर तीर्थहिं जायी । भरमतभरमतगलफांसलगायी॥
कहत सुनत सब सुनै पुराना । कहत सुनत सब देत है दाना ॥
कहत सुनत सब खेती करई । कहत सुनत नर माया धरई ॥
कहत सुनत जो चुगली करई । होय चंडाल नरक महँ परई ॥
कहत सुनत नर कूप खुदावे । कहत सुनत उद्यम मन लावे ॥
कहत सुनत स्वाद मन धरई । कहत सुनत नर गढहे परई ॥
कहत सुनत नर माया जोरी । सौ सहस्र औ लक्ष करोरी ॥
कहत सुनत गुरु शिष्य जो करई। आप अजान भरम में परई ॥
कहत सुनत भक्ति जो ठानी । कहत सुनत पायन पर आनी॥
कहत सुनत सागर तलाब बनावें। कहत सुनत पाप पुण्य कमावे॥
साखी-कहत सुनत सब गये हैं, कहत सुनत सब जाय ।
कहत सुनत करनी करे, तब प्रभु परसे आय ॥

महादेव वचन–चौपाई

क्रोधवंत महादेव तब भयऊ । हमहू को उठाय तुम धरऊ ॥
महादेव बोले बात विचारी । हमको जान्यो किरतम भिकारी॥
हमको मनुष्य देह करि जाना । भूली बात करे बखाना ॥
महादेव अस युक्ति बतायी । कहो तो सकलो देऊँ दिखायी ॥
कहो अकाशको बन्द बताऊँ । सात द्वीप नौ खंड दिखाऊँ ॥
अचरज एक बात उन भाखी । कहो तो आनि दिखाओं साखी॥
कहो तो गरुडही मारि कै डारों । कहो तो योग जीतहिं मारों ॥
कहो तो काल रूप हम धारें । कहो तो पलमहँ मारि सँघारें॥
कहो तो याही देउं भुलायी । बहुरि न हमसों हो बौरायी ॥
यह सो बकवाद विचारा । हमसों बाजी करै अपारा ॥
यह तो आदि अंतसे आये । तेहिते ब्रह्मा विष्णु कहाये ॥
हमहीं सिरजें पाले मारैं । दानव देवी मारि उखारैं ॥

ब्रह्मा तो है जेठा भाई । वेद वाक्य सब कहै बनाई ॥
कैसे ब्रह्मा शीव उठावे । कैसे विष्णुहि हीन दिखावे ॥
साखी–अगम निगम सब जानई, कहै मुक्तिका नीव ।
विष्णु काया दिढावई, योग दिढावे शीव ॥

गरुड वचन

सुनो महादेव मतिके हीना । तुम नहिं जानो पुरुष प्रवीना ॥
तुम तो आपहि गर्व भुलाये । तुम सेवक साहब होय आये ॥
तुम किंचित हौ जीव विचारे । तुम्हरे कहे होय का पारे ॥
तुम्हरा किया कछू ना होई । आप पुरुष उपजावे सोई ॥
आप सुरत प्रभु कीन उचारा । तब तहँ चौदह भुवन सँवारा ॥
सेवा बदले पाय तिहुँलोका । जीवन कारन लाये धोका ॥
धोका लाय ठरयो संसारा । तीन लोकमें फन्द वसारा ॥
साखी–ब्रह्मा विष्णु महेश्वर, सुनहू सत्य विचार ।
वह तौ पुरुष अखण्ड है, अपरमपार अधार ॥
तुम तीनों मिलि आपा थापी । आप थापी भये महा पापी ॥

सतगुरु वचन

सुनु धर्मनि औरो यक बाता । उहँ तो सबै ज्ञानमहँ राता ॥
जब देख्यो सब आपा थापै । करत बडाई नहिं तनिको धापै ॥
तब अस युक्ति किया बनाई । जाते होय परीक्षा भाई ॥
बंग देश बालक यक रहेऊ । जाति ब्राह्मण सबै तेहि पयऊ ॥
ताकर आयू सबै खुटानी । मृत्यु निकट भयी तुलानी ॥
ताको ज्ञान अस हम दीना । मृत्यु निकट भयी आयु छीना ॥
काल वचन उपाय विचारो । ब्रह्मादिकके निकट पग धारो ॥
लाय गरुड तुरत पहुँचाये । ब्रह्मा विष्णु शिवहि बताये ॥

कहै गरुड सुनो यक बानी । यहि बालककीमृत्यु नियरानी ॥
याको कोई नाहिं सहाई । याते आयो तुव शरणायी ॥
यहि बालक को कौन जो राखे । सत्य बचन हम मुखते भाखे ॥
तुम तीनों त्रिभुवनके देवा । बालक ठान्यो तुम्हरी सेवा ॥

ब्रह्मा बचन

तब ब्रह्मा बालक सों बोले । जानि प्रभुता आपन मुख खोले ॥
कहे ब्रह्मा बचन हित कारी । को तेरा बाप को है महतारी ॥
कहु बालक कहांते आया । किन तुमको यहां पठाया ॥
कौन साहब दीन्हा औतारा । कौन तुझेको मारनहारा ॥

बालक बचन

तब बालक बोले अनुसारी । को है पिताको है महतारी ॥
ना जानूँ किन दिया औतारा । ना जानूँ को मारन हारा ॥
हम पूछे कोई राखहु भाई । तेहि कारन आये तुम्हरे ठाई ॥

साखी–तीनलोक के ठाकुर तुम, ब्रह्मा विष्णु महेश ।
मैं तो कछु जानो नहीं, काहि कहौं संदेश ॥

महादेव बचन

सुनो बालक मैं कहूँ बुझायी । मृत्यु तुम्हारी नियरे आयी ॥
इहां कौन है राखन हारा । धर्मराज तुव कीन पुकारा ॥
केहि विधि यहां कैसे रहिहो । कौन शब्द पुरुष पद पैहो ॥
कैसे के भवसागर तरिहो । कौन भक्ति हृदय चित धरिहो ॥
सोई भेद कहौ समुझायी । जाते तुम्हरा दुःख नशायी ॥

हंसा ( बालक ) बचन

हम तो तुम्हरी शरणे आये । जस जानो तस करो उपाये ॥
हमरी तो अब मृत्यु तुलानी । हम का जानें शब्द औ बानी ॥

अब करु वेगि सम्भारी मेरी । अब जनि करहु देव तुम देरी ॥
मृत्यु हमारी तुली अब आयी । तुम अब हमको लेहु बचायी ॥
जो तुमसे नहिं बाचूँ भाई । मिथ्या तुम का करहु बड़ाई ॥
तुम सेवक साहब का होऊ । दूसर साहब है निज कोऊ ॥

विष्णु वचन

विष्णु कहे सुनु बालक भाई । अब तोको यहां कौन छुड़ाई ॥
कैसे को अब राखैं भाई । कैसे को तुव काल छुड़ाई ॥
कैसेको तोर काल छुड़ाओं । कैसे आवा गमन मिटाओं ॥
साखी–काल बड़ा प्रबल अहै, मो पै कछू ना होय ।
वासे नहिं कोइ बाचई, ब्रह्मा विष्णु विगोय ॥

चौपाई

सब मिलि रहे काल के साथा । काल फिरत है सबके माथा ॥
काल की गति हम नहिं जाने । धोखे यम के हाथ बिकाने ॥
साखी–काल कि गति जाने नहीं, ब्रह्मा विष्णु महेश ।
ऋषी मुनी सब कम्पहीं, कम्पे शेष सुरेश ॥

चौपाई

केतिक देह हमहीं जो धरिया । फिरि फिरि कालके फन्दे परिया ॥
देह धरी धरि जगमें आये । यहि पृथ्वी में नाम धराये ॥
साखी–कालसों कोई ना बचै, सुनु बालक चित लाय ।
कैसे कै मैं राखिहौं, मोसों राखि न जाय ॥

चौपाई

देह धरे नहिं बचिहो भाई । सबको काल धरी धरि खाई ॥
काल बड़ो है अति बलवंता । देवी देवा खाय अनन्ता ॥
सप्त द्वीप जो हैं नौ खण्डा । काल बली सबहिन को डण्डा ॥
तीन लोक पै करे रजधानी । हमहूँ ताकी सेवा मानी ॥

विष्णु कहे ब्रह्मा सों बाता । यह बालक कीन्हा उत्पाता ॥
यह वृत्तांत तुम जानो भाई । तुम बालक को लेहु बचाई ॥
ब्रह्मा तब सुनि रहे लजाई । हमसे बालक राखि न जायी ॥

गरुड वचन

तबही गरुड जो बोलै बानी । बालक जिये तब तोहिं जानी ॥
आपा रोपि रहे ठहराई । किया तुम्हार न होवे भाई ॥
जो तुम आज बालकको राखो । तौ तुव बचन सत्य कै भाखो ॥
कहै गरुड सो तरक लगायी । बालक काहे न राखु बचाई ॥
ऐसी विधि फिरि फिरि अवतरहू । पुनि अपनी बुधि भरमत रहहू ॥
सबको ब्रह्मा देउ उपदेशा । अपने गर्वका न जानहु लेशा ॥
हम जानी तुमरी मति भाई । अब तुम थापि रहहु ठहराई ॥
गरुड कहै अस ज्ञान विचारी । ऐसी भूल परी संसारी ॥

सतगुरु वचन

धर्मदास तुम सुनो विचारी । गरुड या विधि दीन्ह प्रचारी ॥
तब तीनों मन में कीन विचारा । करि विचार ज्योति कहँ उरधारा ॥
तीनों मिलिके पूछैं माता । जो वह कहे सुनौ विधाता ॥
आप आपमें तीनों ठानी । अन्त काल गमि पूछन आनी ॥

त्रिदेव वचन माता प्रति

माता ते पूछै चितलाई । सत्य वचन कहो तुम माई ॥
तुमरा चरित हमहीं नहिं जाना । आप आप मिलि कीन बखाना ॥

माता वचन

तबहीं ज्योति उचारी बानी । अहै काल सब पर परधानी ॥
कौन है बालक राखन हारा । आप पुरुष जो कीन हँकारा ॥
जाइके तुरत देहु पहुँचायी । जहवाँका जीव तहँवा चलिजायी ॥

सतगुरु वचन

तब तो ब्रह्मा ध्यान लगावा । तुरतहि गये ब्रह्मके ठावा ॥
ब्रह्मा वचन तब उठा परमाना । आदि पुरुषका मर्म न जाना॥
तुम ब्रह्मा गर्व बहु भाखा । ताते जोति छिपाय के राखा॥
माता ते नहिं अन्तर करते । फिरि फिरि देह सु काहे धरते॥
ब्रह्मा तबै रहे अरथाई । सन्मुख बात कही नहीं जाई ॥

गरुड वचन

तीनों देव विवस जब भयऊ । देखि गरुड तब बोलन लयऊ॥
अब जनि भूलो तीनों देवा । आदि पुरुषकी करो तुम सेवा॥

सतगुरु वचन

तीनों देव मिलि मंत्र यक कीना । बालक को बिदा कै दीना ॥

तीनों देव वचन

सुनु बालक तेरी मृत्यु तुलायी । कौनी शांति कै तोहि जियायी॥
तुमते कहें हम वचन प्रकासा । हम जो गये ज्योतिके पासा ॥
ज्योति स्वरूप हम कहा बुझायी। अब तुम बरजहु काल बनायी॥
तबही ज्योति वचन अस भाखी। यहि बालकको अबको राखी ॥
अवधि तोहार नियरि होय आयी। अब कोइ राखे राखि न जायी॥

साखी-हम तीनों को धिग है, जीवन धृग हमार ।
हमसे बालक ना जिये, मिथ्या कीन्ह हँकार ॥
बालक तो जीवै नहीं, मिथ्या जन्म हमार ।
यह चरित्र ना जानिया, केहि करें उपचार ॥

गरुड वचन-चौपाई

जो धिरकार तुम कीन पुकारा । अपने मनमें करहु विचारा ॥
गर्व अभिमान छोडु सब भारा । मन अपने तुम मञनहु हारा ॥
वो तो पुरुष गर्व नहिं भाखे । तुम यम काल अपने शिर राखे॥

जो तुम ब्रह्मा मुक्ति गति पायी । तो तुम राखहु काल बचायी ॥
जो ब्रह्मा इतना नहिं जानो । तौ काहे को आपा ठानो ॥
बोलहु जानि तुम गर्ब निदाना । तुम धिरकार आपको आना ॥
ब्रह्मा कस तुम आपा ठाना । ऊ गति काहू बिरले जाना ॥
जो ब्रह्मा तुम मृत्युगति जानौ । इठिके ज्ञान तु काहि बखानौ॥
वह तो पुरुष सबै ते न्यारा । अगम अपार पावे नहिं पारा॥
साखी–ब्रह्मा विष्णु जाने नहीं, जाने नहीं महेश ।
ज्योति आप न जानई, रचे जो कालको भेश ॥

चौपाई

सुन ब्रह्मा मैं कहौं बुझाई । तुमरे किये होय का भाई ॥
गर्ब गुमान सब देहु बहायी । तबहीं तुम सतगुरु पदपायी ॥
साखी–ऐसो काल वर जोर है, ग्रास्यो सत्तर योग ।
अमृत नाम सो मन दई, लेहु अमर रस भोग ॥

चौपाई

जो नहिं ब्रह्मा सांच कै मानो । तौ यह बालक हमपै आनो ॥
जो प्रभु हम कहँ नाम सुनायी ।ताकहँ चरित्र तुम देखहु-आयी॥
सांच झूठका करहु निवेरा । आंखिन देखि करहु बहुतेरा ॥
सत्यलोक अमरपुर डेरा । काल नहीं तब ताकहँ घेरा ॥
जो कोइ शब्द का करे निवेरा । सत्य लोक पावे सो डेरा ॥
साखी–जो संशय अब छूटे, घट सो चलै बरजोर ।
सुमिरन दीन दयालका, पहुँचे सो वहि ठौर ॥

चौपाई

अस कहि गरुड यक ज्ञान विचारा। बालक लाईसो उतरो पारा ॥

ब्रह्मा वचन

अचरज बात ब्रह्मा को लागी ।देखतु विष्णु गरुड तुम्ह त्यागी॥
तुमरे सन्मुख करे यह रंगा । तुमरी भाव भक्ति करे भंगा ॥

जो बालक जीवित लै आने । होय अचल तब जगत बखाने॥
ब्रह्मा विष्णु अस बात विचारे । गरुड वचन परिहास निकारे ॥
उधर गरुड कीन अस अरम्भू । जो नहिं जाने हरिहर शम्भू ॥
मानसरोवर गरुड जब गयऊ । ताकी सुधि हंसन तब पयऊ ॥
आवहु गरुड महा सुख ज्ञानी । मित्र सुनावहु लोक कि बानी॥
हंस अजरमुनि द्वीप महँ रहई । द्वीप देखिके बातें कहई ॥
मानसरोवर मांहि है भाई । उपजन विनशन तहाँ न पाई ॥
मानसरोवर ज्योति बहु कीना । कामिनि कला पुरुष रचिदीना॥
सरोवर माहिं रहे सब भाई । बिनशे देह मृत्यु जो पाई ॥

अजरमुनि वचन

कहो विहँसि मुनि कहवाँते आये । सो भेद मोहि कहु समझाये ॥

---

१ इस पुस्तक गरुडबोध की १० । १२ प्रति मेरे सम्मुख रखी हुई हैं । जिनमें से १ प्रति सम्वत् १७०३ विक्रमी की लिखी हुई है जो मेरे पिता शिवरहर राज्यके पूर्व अमात्य कबीरपंथके विहार प्रांतीय स्तम्भ परमज्ञानी श्रीमान् यशस्वो गोपाल लालजीकी पुस्तकालयकी है । और दूसरी प्रतियोंमें से ४ प्रतियाएँ सम्वत् १८०० से १९०० सम्वत् विक्रमी के बीचकी लिखी हैं । और १ प्रति सम्वत् १९१३ विक्रमीकी तथा ४ प्रतियाँ उसके पीछेकी लिखी हुई हैं । सम्वत् १९०० तक की जितनी प्रतियाँ लिखी हुई हैं सबमें वही ऊपर की चौपाई लिखी है और उनमें हंस अजरमुनि का ही मानसरोवरमें गरुडजीसे मिलनेका हाल लिखा है किन्तु उसके पीछेकी प्रतियोंमें कहीं तो अजरमुनि और कहीं चन्द्रमुनि लिखा है, इतनाही नहीं ग्रन्थमें ऊपर लिखा है "चन्द्रमुनि-वचन" तो नीचे लिखा है "अजरमुनि द्वीप रहाय" कहीं लिखा है हंस मुनि इस प्रकारसे भेद पडनेके कारण पुरानी प्रतियोंके अनुसारही "अजरमुनि" रखा है । योंतो उत्तरोत्तर की लिखी हुई प्रतियोंमें लेखक महा-शयोंकी कृपासे ग्रन्थोंमें कुछ कुछ भेद होता ही गया है,तथापि१९००सम्वत् केप्रथमकी लिखी हुई पुस्तकोंमें है। इतना अन्तर नहीं है जितना १९१३ वाली प्रतिसे लेकर उसके पश्चात् की प्रतियोंमें है । इधरकी लिखी हुई प्रतियोंमें कई तो ऐसी हैं जिनमें "अ" के स्थानमें समस्त पुस्तकमें "य" काही प्रयोग किया है "अ" का गन्ध भी नहीं है ।

गरुड वचन

सुनहु अजरमुनि कहौं बुझायी। अकथ कथा कछु कह्यो न जायी॥
सुनत हंस यह अकथ कहानी। तीनों देव बडे अभिमानी॥
ब्रह्मा विष्णु लगायी बाजी। अपनी अपनी सब करहिं अवाजी॥
तब समरथ एक कला उपायी। बालक भेद न जाने भाई॥
तब हम एक बोल्यो बानी। बालक एकको मृत्यु तुलानी॥
प्रथम तो बाद बहु ठाना। बालक देखत बहुत लजाना॥
उन अपने जीव सोच बहु कीना। यहि बालकको किनहु न चीना॥
तब उन पुरुष सांच कर माना। है कोइ पुरुष आदि निर्वाना॥
हारि मानि के बिदा जो कीना। तुम्हरे द्वीप तानि पग दीना॥
अब ऐसी युक्ति तुम ठानो। जाते होय सब काज प्रमानो॥
बालक जिए सोइ अब कीजे। साचा अमृत मोकहँ दीजे॥
तीनों जने तब जाहिं लजायी। सत्य पुरुष की सत्य कै पायी॥
ये तीनों तो गर्व भुलाना। निर्गुण तो वे आप कर जाना॥
महापुरुष कोइ मान न भाई। आप गर्ब दुनिया भरमाई॥
सुनहु अजरमुनि हंस सो ज्ञानी। कैसे रहो सरोवर आनी॥
कौन यतन सरोवर में आनी। सरोवर के गुण कहो बखानी॥
साखी—कैसा सरोवरमान है, कैसे रहे समाय।
किहि विधि इसको नांघि के, सत्यलोकको जाय॥

अजर मुनि वचन—चौपाई

सुनहु गरुड तुम सत्य हो साधू। तुमरी भक्तिसों अहै अबाधू॥
तुम तो आदि अंत सब देखा। कहो तुमहि जो सकल विशेखा॥
जो कोइ आदि अंतके जाने। तासों कौन वृथा हठ ठाने॥
सुनहु गरुड मैं कहौं प्रमाना। ताको कहिये कहा जो माना॥
जो प्रभुकी अंतगति जानै कोई। तासों पुनि सत कहिये सोई॥

सुनहु गरुड साधुन के स्वामी । सबकी महिमा तुम भल नामी॥
हम तो ज्ञान सब तुमसे पावा । तुव प्रताप हम लोक सिधावा॥
साखी–समरथ नाम अमरपुर, अजर द्वीप अस्थान ।
उहवाँ रहत हैं हंस सब, पावहिं पद निरवान ॥

चौपाई

अक्षय द्वीप पुरुष अस्थाना । तहवां रहैं सब हंस सुजाना ॥
सदा आनन्द होत तेहि ठाऊँ । नहिं तहं चले कालकर दाऊँ ॥
साखी–हंसा विलासहिं द्वीपमहँ, भोजन करहिं अघाय ।
जरा मरण व्यापै नहीं, नहिं आवें नहिं जायँ ॥

गरुड वचन

अमृत देहु बताइके पुरुष नाम कहि देहु ।
बालक लेहु जिवाइके, इतना यश तुम लेहु ॥

चौपाई

कहहु पुरुष कैसे के बोला । कइसे प्रभु सो सम्पुट खोला ॥

अजरमुनि वचन

आपुहि में वह अमृत कीन्हा । आपुहि साहब कहि जो दीन्हा॥
अमी बुन्द प्रथमहि उपजाया । अमी बुन्द ते अमृत आया ॥
साखी–ज्ञानी कहै विचारके । सुनो गरुड चित लाय ।
गति को भक्ति दिढावहू, बालक लेहु जिवाय ॥
बालक लेउ अमर कै, अमी द्वीप चलि जाउ ।
दृढ कै भक्ति दृढावहू, अजर अमर होय आय ॥

गरुड वचन–चौपाई

कहै गरुड बालक अकुलाई । अमृत दैके लेहु जिवायी ॥

अजरमुनि वचन

सुनहु गरुड तुम ज्ञान गँभीरा । तुम तो पुरुष पा अस्थिरा ॥

जाहु तुरत वरुण के ठाईं। वरुण अहैं हमार गुरु भाई ॥
पवने द्वीप रहे वह वैसा। तोसों कह्यो भेद है जैसा ॥
साखी–शीस श्रवण नहिं नासिका, इन्द्री साधे घाट।
यहि रहनी वह रहत है, सुरति शब्द के बाट ॥

चौपाई

गरुड चले वरुण की ठाईं। अमी द्वीप मोहि देहु बताईं ॥
तुरतहि वरुण दीन उपदेशा। हमते पूछो कौन सँदेशा ॥
तुम सब भेद जानत हौ भाई। तुरतहि जाऊ श्रवण की ठाईं ॥
वहीं श्रवण कहै सम भेवा। वह तो करइ समर्थ की सेवा ॥
वह लौलीन प्रभू को जाने। साधु संतको सेवा ठाने ॥
सत्य पुरुष को जाने भेवा। सकल खबर कह जाने देवा ॥
द्वीप द्वीपकी कहै जो बानी। जाहु जहां घर होय निर्बानी ॥
जाहू तुम उनही के पासा। सत्य शब्द कहो परकासा ॥
जहाँ कहूँ तहवां चलि जाऊ। अमृत लेके बाल पिआऊं ॥

सतगुरु वचन

तुरत गरुड गये तब तहवाँ। सत्य पुरुष को द्वीप है जहवाँ॥

गरुड वचन

श्रवण हंस मोहि कह समुझाई। कौन ठाम अमृत देहु बताई ॥

श्रवन वचन

तब श्रवण यक बोलेउ बानी। पुरुषकी गति अजहूँ नहिं जानी॥
विनु आज्ञा कैसे तुम कहऊँ। कौनी भाँति भेद मैं लहऊँ ॥
हैं अमृत नहिं राखूँ गोई। इतना पातक लागे मोई ॥
पुरुषउ थापि अमृत जो दीना। हमको कैसे नास्ती कीना ॥
साखी–कहे श्रवण मैं भाषेउ, अमृत का सब भेव।
मारग कोई जानई, ऐसो अखंड अभेव ॥

तुरतहि जाउ निर्मल पासा । ताते पुजिहै तुम्हरी आशा ॥
ताके संग जोइ मिलि रहई । ऐसो शब्द दोऊ मिलि कहई ॥

गरुड वचन

श्रवणदास कहि बहु समझाओ । तुम्हरी दरशनको हम आओ ॥
द्वीप सकल हम देखे भाई । सोई छाप मोहि देहु देखाई ॥

गरुड वचन

निर्मल संग यक भँवर रहाई । सोई भौर ले सब भरमाई ॥
निरमल लेके लोकहिं जावे । भरमें जीव को लोक पठावे ॥
इन दोनों कर जाने भेवा । फिर भौसागर होय न खेवा ॥
साखी–अमृत पिआव विचार के, पुरुष नाम कहि देहु ।
बालक लेहु अमराय के, इतना सांच गहि लेहु ॥

चौपाई

पुरुष नाम तुम जानो भाई । हमते काह करहु चतुराई ॥
पुरुष नाम है तुम्हरे पासा । तुम्हरे घट में सत्य निवासा ॥
जैसे रहे पुरुषमें बासा । ऐसे पुरुष तुम्हरे पासा ॥
एक नाम को अनेक विचारा । जिन जाना तिन उतरे पारा ॥
प्रथम पुरुष अहै यक भावा । दुसरे पुरुष देह धरि आवा ॥
तिसरे पुरुष परफुल्लित नाऊँ । चौथे पुरुष सत्यपुर गाऊँ ॥

गरुडवचन

कहो पुरुष कौन विधि बोले । कैसे के प्रभु सम्पुट खोले ॥
कौन शब्द प्रभु बोलन लीना । कौन भाँति कूर्म सो कीना ॥
कौन यतन अमृत फल लावा । कौन यतन हंस सो पावा ॥
कौन यतन उहां पुनि आवा । कौन यतन उन मान धरावा ॥
बारह पालँग कूर्म जो कीन्हा । तेहि ऊपर प्रभु सेज्या दीन्हा ॥
परफुल्लित होय साहिब बोला । उचरी बानी संपुट खोला ॥

आपहि माहि आप प्रभु कीना । तहँते अमृत कूर्म को दीना ॥
अम्बु नाल ते अमृत आया । अम्बुज ते अमृत उपजाया ॥
साखी-श्रवण कहे विचारिके, सुनो गरुड चित लाय ।
धीरज भयो तेहि दृढ़ भये, अमृत पिये अघाय ॥

चौपाई

सन्धि नाम प्रथम सहिदानी । ऐसे भये सब जीवन जानी ॥
भयउ नाम अकह उगासा । सुकृत जोइन नाम प्रकासा ॥
अजीत है ओंकार हंकारा । निसरत है सो ओही द्वारा ॥
उत्पति ऊर्ध्व गे ऊर्ध्व विशेखा । सो हम तुमसे भाषेउ लेखा ॥
भयो प्रकाश सुरति जो कीन्हा । ऊर्ध्वते ऊर्ध्व प्रभु पार जो लीना ॥
साखी-अर्ध ऊर्ध्व दोऊ लखै, पार जो रहे ठहराय ।
कहे श्रवण बहु गरुडसे, सुखसागर रहे समाय ॥
लोक लोकमहँ प्राण है, रहे द्वीप अस्थान ।
उदय अस्त तहवाँ नहीं, ब्रह्म विष्णु नहिं खान ॥

चौपाई

देह धरी सुख बोल जो आवा । तबही परम पुरुष कहलावा ॥
अजर अमर अधार है ठाऊँ । अहे अटल वा पुरुष को नाऊँ ॥
वही पुरुष का सुमिरन करई । आवा गमन भवसागर तरई ॥
वही शब्द है अमृत रूपा । वही शब्द अहै अजब अनूपा ॥
साखी-वही शब्द गहु सत्यकै, बालहिं कहु समुझाय ।
बालक लेहु यमराजते, अमी द्वीप पहुँचाय ॥

चौपाई

विष्णुहि लोके माला देहू । शब्द हमार प्रमान के लेहू ॥
विष्णुहि माला तिलक औ छापा । और न दिलमें आनहु आपा ॥
साखी-श्रवण कहे गरुड से, यही तुम्हारो काम ।
देहु उपदेश अब जायके, बालहि दीजे नाम ॥

चौपाई

धन्यगरुड मृत्युलोकते आओ ।बहुरि जाय मृत्युलोक चिताओ॥
अब जाई तुम विष्णु चिताओ । जो वह चेते तो नाम दृढाओ ॥
लीन गरुड बालक अगराई । अमृत पीवत अती जुडाई ॥
बालक अमृत माहिं जुडाना । युगन युगन को क्षुधा बुझाना॥
गरुड बिदा हंसन सों लीना । मस्तक नाइ प्रदक्षिण कीना ॥

श्रवण वचन

तब हंसा पुनि कीन निहोरा ।तुमतो गरुडन कीन्ह यह जोरा॥

गरुड वचन

तुमही छाडि शीस केहि नाऊँ। तुमरे चरणकमल चित लाऊँ॥
तुम तो अमृत दीन दिखायी । सतगुरु शब्द लीन अर्थायी ॥
शीस सोई जो साधु को नावे । पूजा सोई जो नाम लौ लावे॥
मुख सोई जो उचरे नामा । देह सोई जो प्रभुके कामा ॥
दैवत सोई जो बन्दगी ठाने । दया सोई अमि अन्तर आने॥
साधू सोई जो ममता मारे । ममता मारि आप को तारे ॥
साखी–बालक लिये अमरकरि, विष्णुहि कह्यो समुझाय ।
चले गरुड मृत्युलोकको, ब्रह्मा रहे लजाय ॥

चौपाई

यहि विधि बालक लीन जिवायी । सकल सभा तहँ देखे आयी ॥
धन्य धन्य सब करहिं पुकारा । धन्य गरुड है रहनि तुम्हारा॥
धन्य धन्य सबही मन भावा । गरुड बोल सब ऊपर आवा ॥
नाग लोग की कन्या रहाई । अचरज होय कछू न कहाई ॥

नागकन्या वचन

अविगत मता है गरुड तोहारा । कोइ न जानै भेद अपारा ॥
इतना कहि अनुराग सो धरिया। शीस नाइ चरणन पर परिया॥

वासुकि देवकी कन्या भाई । शीस नाइ के विन्ती लाई ॥
रूप उग्र बहुते उजियारा । मानिक लवंके माहि लिलारा॥
एतिक आगरी किये सिंगारा । जगमग ज्योति बरे उजियारा॥
सो पुनि कन्या विन्ती करई । गरुडके चरण आय शिर धरई॥

वासुकि देवकी कन्याका वचन

हो साहिब तुम बन्दी छोरा । नष्ट जाय जिव तुमहिं निहोरा॥
हो साहिब विन्ती सुनि लेहू । हमरे गृहे तुम चरण धरेहू ॥
हम दीक्षा प्रभु लेव तुम्हारा । जिवका कारज करो हमारा ॥

गरुड वचन

कहे गरुड सुनु कन्या वारी । तुम सबहिनकी प्राणपियारी ॥
पूछहु वासुदेव सों जाई । आज्ञा देहिं तस करो उपाई ॥
अस तुम जाय सिखापन लेहू । पुनि फिर के हमही दल देहू ॥

कन्या वचन

व्रजबाला कन्या अस बोले । जो हम कही कबहु नहिं डोले॥
साहिब विन्ती सुनो हमारो । सकल समाज संग पग धारो ॥
इन्द्रलोक ते इन्द्र बुलाये । सुर नर मुनि गँधर्व जो आये ॥
चले विष्णु जहँ गहरन लायी । शिव ब्रह्मा तहँ चले रिंगायी ॥
तेतिस कोटि देव तहँ आये । सिद्ध चौरासी सबै सिधाये ॥
नौ नाथ अरु सब बचे बचाये । सबही चले रहे नहिं भाये ॥
शंख वीण धुनि बाजे भाई । इन्द्र को बाजा अति घहराई॥
ताल मृदंग और शहनाई । सब ही बाजन बाजे भाई ॥

साखी-इन्द्र के बाजन बाजते, भये पताले त्रास ।
वासुदेव डरि कंपै, बैरी आयो पास ॥

---

१ चमके ।

गरुड वचन

ब्रजबाला कन्या हँकरायी । आयसु देइ के आगु रिंगायी॥
बासुकिदेव सों कहु समझाई । साधु रूप सब आवैं भाई ॥
सुनते कन्या तुरत रिगायी । वासुकिदेव सों कही समझायी॥

कन्या वचन

निर्गुण भक्ति गरुड जो ठानी । तेहि कारण हम गरुडहि मानी॥
होहु सुचित्त सबै परिवारा । निजके मानहु वचन हमारा ॥
साखी–सकल साधु इहँ आवहीं, होय चौका विस्तार ।
चित में कोइ डरौ नहीं, वह हैं भक्ति अधार ॥

वासुदेव वचन–चौपाई

ब्रजबाला कन्या सुनु आनी । सबही तुरत तु आन बुलाई ॥
जाहू तुरत गरुड के ठाऊँ । दाया करहु धरत सब पाऊँ ॥

सतगुरु वचन

सुनि बाला लै गयउ विमाना । दया करत सब संत सुजाना ॥
जबहि शेष प्रतीति मन आनी । तबही गरुड सु कीन्ह पयानी ॥
जब गरुड जो चले रिगायी । बाजन बाजे वरनि न जायी ॥
बाजे डमरू हने निशाना । महादेव जब कीन्ह पयाना ॥
सबहि समाज पताले गयऊ । इच्छा भोजन सबही लयऊ ॥
एकोत्तर से नरियर आना । बहुत भांतिके कीन्ह मंडाना ॥
जबही गरुड जो सुमिरन कीन्हा । तब हम उनको दर्शन दीना ॥
गरुड आइके मस्तक नाये । शीस नवाइ चरण चितलाये ॥
सकल जमात उठी भई भाई । सबहिन उठि के मस्तक नाई॥
तब हम पुनि चौका विस्तारा । बहुत भांतिके साज सुधारा ॥
सुथरी मिठाई उत्तम पाना । ब्रजबाला सबही कछु आना ॥
जब तिन सबै साज सँवरावा । तब हम लोकते हंस हँकरावा॥
आये साधू लोक से भाई । जग मग ज्योति बरइ अधिकाई॥

बाजे ताल मृदंग अपारा । उठे रँगसों अनहद झंकारा ॥
तारी उठे तत तत सों सारा । हंसे सबै सब साधु विचारा ॥
निर्गुण भक्ति कीन्हा लौलायी । चहुँदिशि अगर रहा महँकायी॥
देख सभा सब मोही भाई । सब मोहे कछु कही न जाई ॥
मोहि नाग नागेश्वर भारी । मोहि रही सब सभा विचारी॥
मोहे गण गँधर्ब मुनि देवा । कोई भक्त का जाने न भेवा ॥
वासुकिदेव अस्तुति अनुसारी । धन्य कबीर जो भक्ति तुम्हारी॥
पायो दर्श धन्य भाग हमारो । धन्य कबीर यहाँ पग धारो ॥
धन्य कबीर तुम्हारी वानी । मोहि रही सब भगतिन रानी॥
कीन्हो भक्ति पहर दुइ भाई । अति आनँद होय मंगल गाई॥
पुनि उठिके हम आरति लीना । एकोतर नरियर मालुम कीना ॥
परवाना व्रजबालहि दीनी । वह शिर नाइ बन्दगी कीनी ॥
पुनि समरथकी अस्तुति सुनायी। दीन प्रसाद सबहिं बरतायी ॥
सब संतन लिन माथ चढाही ।आशिष दीन सकल मिलि ताही॥
दिन दशके आदर करि लीना । सेवा भक्ति बहू विधि कीना ॥
संत साधुको बिदाई दीना । चादर धोती सबही लीना ॥
सबहि कहै मम आशिष लीजो । साधुन के चरणें चित दीजो ॥
ऐसी भाँति बिदा जो कियऊ । आपु आपु सब घरहिं सिधैऊ॥
चलत प्रेम सबहि को भाये । बहुत भाँति की अस्तुति लाये॥

साखी-कहैं कबीर धर्मदाससे, यहि विधि भौ विस्तार ।
गरुड ज्ञान सबसे कियो, हारे सबे भुआर ॥
वक्ता के कण्ठ बसूँ, श्रेतहि श्रवण आहिं ।
संतनके शीश वसूँ, ज्ञानिन हृदय माहिं ॥

इति श्रीबोधसागरांतर्गत कबीरधर्मदाससम्वादे
गरुडबोधवर्णनो नाम षष्ठस्तरंगः

# गरुडबोधका संक्षेप सार

★

प्रायः कबीरपन्थी लोग ऐसे गरुडबोधादि ग्रंथोंके भावको न समझ कर अन्य वैष्णव आदि सम्प्रदाइयोंसे इन्हीं ग्रन्थोंके प्रमाण द्वारा वाद करके परस्पर रागद्वेषमें फँसकर निन्दाके पात्र बनकर, नास्तिकादि नामों के लक्ष्य बने हैं। और जिस प्रकार से इनमें अविद्याका विशेष प्रताप फला है उसी प्रकारसे अन्य सम्प्रदाय वालोंमें भी अज्ञान देवने अपना राज्य जमा रखा है। जिस कारणसे विद्या और ज्ञानका तो उनमें प्रवेश भी होने नहीं पाता। यही कारण है कि, वे भी अपने इष्ट देवके स्वरूपको न समझकर कबीरपंथियों के तर्कको सुनकर उन्हें समझाने या उत्तर देकर उनका समाधान करनेमें असमर्थ होनेके कारण उन्हें नास्तिक और निन्दक आदि नामोंसे पुकारते और उनसे द्वेष करते हैं। किन्तु दोनों दलोंमें जो ज्ञानी और समझदार हैं, आत्मतत्त्वमें जिनका प्रवेश हुआ है जिन्होंने शास्त्र और ग्रन्थों का मनन करके उनके भेदको समझा है, वे न तो किसीके ऊपर बहिरदृष्टि और द्वेष अथवा निन्दा के भाव से तर्कही कर सकते हैं न उनके वाक्यको सुननेवाले ज्ञाता लोग उनमें नास्तिकता ही का अनुमान कर सकते हैं।

कबीर पंथमें जितने ग्रन्थ वर्तमान हैं वे सब अध्यात्म विद्या की पुस्तक हैं। जो कुछ उन ग्रन्थोंमें लिखा है सबका आध्यात्मिक अर्थही ग्रहण करने योग्य है। यदि आध्यात्मिक अर्थको छोड़कर साधारण अर्थ और शब्दार्थको ही ग्रहण किया जाय तो न जाने असम्भावता आदि कितने दोष आकर उपस्थित

हो जावेंगे। और स्वयम् कबीर साहिबमें ऐसे २ अनर्थका दोष लग सकेगा कि, जिस कलंकको मिटाना कठिन ही नहीं बरन् असम्भव है। इतना ही नहीं ग्रन्थोंमें बात बातमें आध्यात्मिक अर्थ भी बतलाया गया है और जिस ग्रंथकी जैसी प्रक्रिया चली है वैसेही उसका निर्वाह भी किया गया है जो लोग मनन और विचार किये विना केवल शब्दों और पदोंको लेकर लड़ते झगड़ते हैं उन्हें कबीर साहिबके इस मसले पर ध्यान देना चाहिये कि–"कबीरका गाया गावेगा। तीन लोकमें धक्का खावेगा॥ कबीरका गाया बूझेगा। तीन लोक वहि सूझेगा"– जैसे इसी ग्रन्थमें यदि गरुडका वही साधारण अर्थ लिया जावे जैसा सर्वसाधारण समझते हैं, तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि विष्णु उपासकोंके समक्ष इस पुस्तकको बाँचनेवाला मार खाये विना नहीं रहेगा–किन्तु जब उसी का आध्यात्मिक अर्थ समझेगा और दूसरोंको समझावेगा कि, गरुड नाम है जीवका, विष्णु नाम है सतोगुणका अर्थात् सतोगुणभावों करके सम्पन्न जो मुमुक्षु है उसको जब ज्ञानी गुरु मिलता है तब उसे त्रिगुण (रजोगुण) (ब्रह्मा) सतोगुण (विष्णु) तमोगुण (शंकर) के जाल से निकाल कर त्रिगुणातीत कर देता है–अर्थात् सतपुरुष रूप उसके प्रत्येक आत्माके स्वरूपका ज्ञान करा देता है। तब गरुड रूप मुमुक्षु तीनों गुणोंको जीत कर शरीर निर्वाह अथवा प्रारब्ध बलसे यावज्जीवन सतोगुणके दिव्य गुणोंको सम्मुख रख कर आनन्दपूर्वक विचरता और दूसरोंको भी अधिकार पूर्वक उपदेश देकर सत्यपदकी पारख बतलाता है। इसी प्रकारसे कबीर पंथके सर्व ग्रन्थोंका आशय आध्यात्मिक है।

जो इन ग्रथोंको पढकर अपने आत्माके कल्याणार्थ सत्य अर्थको ग्रहण न करके केवल शारीरिक सुख और

मनकी तुच्छ तुच्छ वासनाओंको पूर्ण करनेके लिये अपने समझे विना दूसरे जीवों को मिथ्या भ्रम में डालते हैं वे मिथ्या भ्रम को उठाकर पाप के भागी बनते हैं। सद्गुरु की कृपा होगी तो ग्रन्थों को छपवा लेने के पश्चात् सब ग्रन्थों के सारको प्रदर्शित करानेवाला एक स्वतंत्र पुस्तक प्रकाशित करके मिथ्या प्रचलित भ्रम को दूर करनेका प्रयत्न करूँगा।

इसके प्रथम भोपालबोध आदि ग्रन्थ जो छपे हैं उनका भी भाव आध्मात्मिक समझना चाहिये।

इति

इति

श्रीबोधसागरान्तर्गत

**ग्रन्थ गरुडबोध**

समाप्त

सत्य

भारतपथिक कबीरपंथी-

स्वामी श्रीयुगलानन्दद्वारा संशोधित

# श्री-हनुमानबोध

मुद्रक एवं प्रकाशकः
खेमराज श्रीकृष्णदास,
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग, बम्बई-४०० ००४

सत्यनाम



श्री कबीर साहिब

श्रीमुनीन्द्राय नमः

# अथ श्रीबोधसागरे

सप्तमस्तरंगः

## ग्रन्थ हनुमांनबोध

★

अजर ज्ञान करुणा यतन, सत्य कबीर अगतार।
तासु चरण बन्दन किये, होवे जगत उधार।

धर्मदास वचन--चौपाई

धरम दास विनवे करजोरी। तुम समरथ हौ बन्दी छोरी ॥
युगन युगन में तुम चलि आये। आदिअंत की खबर लगाये ॥
एक अनुराग मोरे मन आया। सो प्रभु कहु करि मो पै दाया॥
हनुमतको कब मिल्यो गुसाँई। सो प्रभु मोहिं कहिये समुझाई॥

---

१ ह इति प्रसिद्धे नु इति वितर्के इस व्युत्पत्तिसे जो मान्य के योग्य होवे, अथवा--"मैं माया तत्कार्य नहीं और वह मेरा नहीं किन्तु मैं तिसका द्रष्टा हूँ" इस निश्चयवानका नाम हनुमान है। सो मन इन्द्रियादिक जड़ पदार्थोंकी अपेक्षा प्रत्येक आत्माही (चैतन्य होनेसे) मान्य करने योग्य है। इससे प्रत्येक आत्माको ही हनुमान कहते हैं, अथवा —

अनादि पक्षके षट् वस्तुओंमें जीव ईश्वर दोनों भाई हैं। उनमें राम ईश्वर हैं और लक्ष्मण जीव रूप मुमुक्षु हैं। मानरूप इन्द्रदेवको जीतनेवाला गुरु ही इन्द्रजीत है। सो गुरुरूप इन्द्रजीतके ज्ञानरूप शक्ति के मारने से मुमुक्षु रूप को मूर्च्छा हुई अर्थात्--आवरण विशिष्ट अज्ञानांशका नाशही मूर्च्छा है, तब विक्षेप विशिष्ट अज्ञानांश रूपमानने शरीररूप पर्वतसे प्रारब्ध रूप संजीवन बूटी लाकर मुमुक्षुरूप लक्ष्मण की मूर्च्छा छुडायी अर्थात् निज स्वरूपसे भिन्न सर्व नाम रूप जगत् मिथ्यात्वका भाव निश्चयरूप बोधिक होना अर्थात् संसारकी प्रतीतिपूर्वक जो जीव मुक्ति सोई मूर्च्छा--

हनुमत कहिये महा अभिमाना । कैसे लीन साहब सो पाना ॥
कैसे हनुमत सेवा ठानी । कैसे उन बचने सो मानी ॥
यह वृतांत कहो तुम ज्ञानी । रामचन्द्र के हनुमत मानी ॥
कैसे तिन हिरदय नाम समाई । सब दया करि तुम कहहु सो सांई ॥

कबीर वचन

कहै कबीर सुनु धर्मनि आयी । त्रेता युग महँ हनुमत चिताई ॥
सेतुबन्ध रामेश्वर हम गयऊ । तहवाँ पहुंच हम मुनीन्द्र कहयऊ ॥
साखी—सेतु बन्द में जायके, देखा हनुमत वीर ।
बहुत कला है तासुकी, सबही बजर शरीर ॥
कहत मुनीन्द्र सुनो हनुमाना । तुमको अगम सुनाऊ ज्ञाना ॥
तुम्हरे मनमें जो अभिमाना । तजि अभिमान सुनहु तुम ज्ञाना ॥
सत्य पुरुष की कथा सुनाऊँ । अगम अपार भेद बतलाऊँ ॥
सत्यसुकृत की कथा यह भाई । जाकर तुम मर्म नहिं पाई ॥
सत्यपुरुष की कथा अपारा । ताकर तुमही करहु विचारा ॥
ताकी गति तुम जानत नाहीं । जो पुरुष पूरण सब माहीं ॥
काहि की सेवा करहू भाई । सो सब मोहि कहो समझाई ॥
रामचन्द्र कहिये औतारा । परलय जाय सो बारम्बारा ॥
साखी—सेवत हौ तुम कौन को, करो कौन को जाप ।
सो मोको बतलावहू, कौन तुम्हारो बाप ॥

---

—खुलना है । आशय है कि, हनुमान नाम अज्ञान विशिष्ट किन्तु विवेकको धारण करनेवाले जीव काहै। अथवा इसी प्रकार से गुरुमुखद्वारा ग्रंथका आशय जाननेके प्रयत्न करनेवाले को ज्ञान पारखी गुरु उत्तम रीतिसे समझावेगा तब इन ग्रन्थों का आशय समझमें आसकता है नहीं तो स्वयम् अभिमानमें मरनेवालोंको सत्यका पथ कदापि नहीं मिलता ।

दोहा—वेद उदधि विन गुरु मुख लखे, लागत लोन समान ।
बादर गुरुमुख द्वार होय, अमृत सो अधिकान ॥

हनुमान वचन–चौपाई

सुनो मुनीन्द्र दृढकरिके बानी । तुम जग महँ हौ बड सुज्ञानी ॥
मेरी कला न जगहि छिपानी । तुम मेरी गति नाहीं जानी ॥
पौरुष पराक्रम बल है मोरा । मोसम और नहीं कोइ जोरा ॥
बावन बीर वसौं जग माहीं । मो सम प्राक्रम कोइ को नाहीं ॥
सब बीरन में मैं सरदारा । मेरी कला सब में अधिकारा ॥
सब जग जाने सब मोहि पूजे । मो सम इष्ट और नहिं दूजे ॥
जो चाहो सों कारज सारों । इष्ट करे तो तुरत उबारों ॥
ऐसो प्रसिद्ध जग हम आहीं । सब कोइ जाने तुम जानत नाहीं ॥

साखी–सुनो मुनीन्द्र मोरी गति, मोसम और न देव ।
चाहै सो कारज करूँ, दृढ कै साधै सेव ॥

मुनीन्द्र वचन

सुनु हनुमान वीर ते बंका । आपै थापै बजावै डंका ॥
आपा थापे भला न होयी । आपा थापी सब गये विलोयी ॥
समरथ की गति तुम ना पाये । आपा थापि तुम रहे भुलाये ॥
समरथ पुरुष और है कोई । ताकी गति जानैं नहिं लोई ॥
हनुमान तुम छोड़ो अभिमाना । तो समरथ को भाषों ज्ञाना ॥
समरथ हुकुम चले जग माहीं । तुम उनकी गति जानत नाहीं ॥
बावन वीर कहै हम जानी । कालपुरुष की सब अगुवानी ॥
सब बैरिन को काल धरि खावे । जो सत्यपुरुष को गम नहिं पावे ॥
चौसठ योगिन बावन बीरा । काल पुरुष के बसे शरीरा ॥
काल पुरुष सब रचना कीना । बीरन को सरदारी दीना ॥
मारहि मार सबन को करई । यह अपराध कौन शिर परई ॥
काल पुरुष को करम अपारा । कैसे धौं करिहौ निरवारा ॥
सो अब मोहि बताओ भाई । बल पौरुष कछु काम न आई ॥

तुम हनुमंत सांच हौ बीरा। तुमरे इष्ट अहै रघुवीरा॥
ताको तुम जो करो बड़ाई। तुम समरथ को गम्य नहिं पाई॥
राम काज तुम भले सुधारा। ताके हुकुम लंका तुम जारा॥
वह जग में कहिये अवतारा। अगम भेद तुम नाहि विचारा॥
उनकी लागि रहै सब कोई। जो जस सुमिरें पावे तस सोई॥
तुम भूले प्रभुता की माहीं। प्रभुता जग में अस्थिर नाहीं॥
स्थिर घर कोई नहिं जाने। प्रभुता बड़ाई सब मन जाने॥
जो तुम मानों कहा हमारा। तो तुम पाओ समरथ दर्बारा॥

साखी-समरथ गति अति निर्मल, प्रभुता अहै मलीन।
जिनकी तुम सेवा करो, सोउ न पावैं चीन॥

हनुमान वचन चौपाई

सुनो मुनीन्द्र बचन हमारा। रघुपति हैं सबके सरदारा॥
इनही समान कोउ दूसर नाहीं। तीन लोक के साहिब आहीं॥
उन प्रताप हम जग सत जाना। हमसों कहा कथौ तुम ज्ञाना॥
रघुपति को हम जानै परचा। हमसों कहा कथौ तुम चरचा॥
सागर ऊपर पथर तिराया। ऐसा नाम अहै रघुराया॥
मैं पौरुष बल आपन जानूँ। कहा कोई का नाहीं मानूँ॥
यती नाम जानै जग मोहीं। सो मैं भाव सुनाऊँ तोही॥
तुम जो पूछी पिता की बाता। पिता कहत हूँ औ फिर माता॥
महादेव देवन सरदारा। जिनको पूजे सकल संसारा॥
नाहिं बीज की काया मोरी। बजर अंग पायो सब जोरी॥
गौतम ऋषि की पत्नी नारी। नाम अहिल्या राम उबारी॥
नाम अंजनी पुत्री ताकी। जनम लियो कूख में जाकी॥
साधु रूप धरि शिव बन आये। जहाँ अंजनी को मंडप छाये॥
प्यास प्यास कहि बोले बानी। शिवकी गति माता नहिं जानी॥

कह अंजनी तुम पीयहु पानी । तब शिव बोले और हि बानी ॥
तैं निगुरी हम साधु विचारा । तेरा जल नहिं करौं अहारा ॥
कहै अंजनी गुरु कहँ पाऊँ । जँगल ते मैं उठि कहँ जाऊँ ॥
तब शिव कहै साधु हैं हमही । दीक्षा लेओ देत हम तुम्हही ॥
सिंगी नाद रहैं शिव पासा । फूक्यों कान रही तब आशा ॥
छल करि बीज दीन्ह तब डारी । तासों उपजी देह हमारी ॥
कान रहा लीन्हा अवतारा । पवन पुत्र जाने संसारा ॥
पिता मात की सब बिधि भाकी । कहौ तो और सुनाऊँ साखी ॥
सत्य बात मोरी है भाई । सेवा करौं सदा रघुराई ॥
समरथ और नहीं है कोई । रामचन्द्र बड समरथ होई ॥
समरथ समरथ कहा बखानो । मैं तो समरथ रामको जानो ॥
बहुत कहत हौं बात बनायी । राम नाम तुमहूँ नहिं पायी ॥
जाकी थाप तीन पुर माही । राम समान और को आही ॥
बुद्धि ज्ञान तबही बनि आवे । जो कोइ राम पदारथ पावे ॥
ज्ञान भक्ति सब लागै नीका । विना राम सब जानो फीका ॥
सुनो मुनीन्दर बात हमारी । सेवो राम सदा सुख कारी ॥
राम विना नाहीं कहुँ जागा । राम नाम मेरा मन लागा ॥
दशरथ घर लीन्हा अवतारा । उनकी गति है अगम अपारा ॥
बडे बडे उन कारज कीन्हा । तुम मुनीन्द्र भेद नहिं चीन्हा ॥

साखी—सुनो मुनीन्द्र मोर गति, रामनाम है आदि ।
सो दशरथ घर औतरे, उनका मता अगादि ॥

मुनीन्द्र वचन–चौपाई

कहे मुनीन्द्र सुनो हनुमाना । साधु भाव गति तुमहुँ न जाना ॥
राम नाम सब जग गोहराई । काहे साधु होय नहिं भाई ॥

राम नाम हम नीके जाना । तुमका मोसों करो बखाना ॥
रमता राम बसे सब माहीं । ताहि राम तुम जानत नाहीं ॥
ऐसो राम आहि अवतारा । जिन लंकापति रावन मारा ॥
काल रूप सब करे सँघारा । ताको सुमिरन करै संसारा ॥
घट घट बोले कालकी छांहीं । भेद भाव तुम जानत नाहीं ॥
यह तो राम अहैं अवतारा । विना राम नाहीं निस्तारा ॥
परलय तर जिव रहै भुलायी । काल गम्य काहूँ नहिं पायी ॥
सुनु हनुमत तुम मानत नाहीं । काल गह्यो है तुम्हरी बाहीं ॥
ताते तोहि बूझि नहिं परई । यह औतार काल सब धरई ॥
बार बार धरि यह औतारा । तीनों पुर को करै सँहारा ॥
काल कला कोइ जानै नाहीं । सूक्षम व्यापि रहै सब माहीं ॥
समरथकी गति कालसों न्यारी । ताको कहा जानै संसारी ॥
जो तुम हेतु करि पूछो मोंही । तौ सब भाषि सुनाओं तोही ॥
समरथकी गति अगम अपारा । तुम नहिं जानो मर्म विचारा ॥
दृढ प्रतीति करौ तो कहिये । साधु होइ साधूगुण लहिये ॥
समुझा बिना को करे विवेखा । विना विवेक सत्य को देखा ॥
विना सत्य उतरे नहिं पारा । राम राम कहि करौ पुकारा ॥
एसे कारज होय नहिं भाई । कौन भांति ते साधु कहाई ॥
यती नाम जो अहै तुम्हारा । षट सो यती बसै संसारा ॥
कार्तिकभाष्म शंकर अरु गोरख। लछिमन महाबली बड पौरख॥
छोटे तुम हनुमान कहाये । षटमिलिके जग नाम चलाये॥
सो यती षट सब बसे संसारा । विना सतगुरु सब यमके चारा॥
कालरूप का सकल पसारा । कैसी विधि करिहौ निरुवारा ॥

---

१ इन षट यतियों के नामोंमें कई ग्रन्थोंमें कई प्रकार से लिखा है जो ठीक जान पडे वही रहने दिया है ।

सुनो हनुमंत मेरी बाता । सत्य पुरुष है समरथ दाता ॥
ताका तुमसों कहौं संदेशा । सुमिरण करो तजो यम भेशा ॥
सत्य समरथ है पैले पारा । काल कला उपज्यो संसारा ॥
सोइ समरथ है सिरजन हारा । तीनों देव न पावैं पारा ॥
साखी–समरथकी गति को लखै, शिव विरंचि नहिं जान ।
काल अकाल तहाँ नहीं, पूरण पद निर्वान ॥

हनुमान वचन-चौपाई

कहत मुनीन्दर अकथ कहानी । काल काल की बोलो बानी ॥
काल काल कहि मोहि डराओ । तुम तो काल कर गति ना पाओ॥
काल पुरुष आपे वह होई । और काल देखा नहिं कोई ॥
आपुहि करता आपुहि काला । चौदह भुवन आपै रखवाला ॥
कालपुरुष ते और न कोई । निश्चय कै मैं माना सोई ॥
सबका पिता काल है जोई । ताकी गती लखै ना कोई ॥
ज्योति स्वरूप जग उजियाला । ताका नाम धरा तुम काला ॥
जो तुम कहौ सबै हम जानी । सुनो मुनीन्दर मोरी बानी ॥
रचना सकल काल की ठानी । तुम अपने मन हौ बड ज्ञानी ॥
काल पुरुष गति परै न जानी । सो हम जानि छानि के पानी ॥
काल पुरुष ते बडा न कोई । उनके ऊपर और न होई ॥
जाको नाम निरञ्जन राया । तीन लोकमें ताकी माया ॥
उनते और नहीं कोइ दूजा । तीनलोक में उनकी पूजा ॥
तीनों देव जो उनको ध्यावें । ते भी उनको पार न पावें ॥
ताको तुम सूक्षम करि जानो । तुम्हरे मन काहे नहिं मानो ॥
इतनी भयी हनुमान मुख बानी । रचना सकल काल की खानी॥
उनको पार बताओ मोहीं । उठि के शीश नवाऊँ तोहीं ॥
जो तुम आदि अंत सब जानो । तो तुम ज्ञान अब हमसे ठानो॥

पहिले सुनो हमारी बाता । तुम मुनीन्द्र हौ बडा ज्ञाता ॥
मोरे पौरुष है बड जोरा । जन्म लेत कीन्हे घनघोरा ॥
जांदिन जन्म भयो महि मोरा । उदय भानु देखि मैं दौरा ॥
सूरज बाहर आवन नहिं दीना । निकसन तुरत लीलि मैं लीन्हा॥
एक फलांग उर्धाचल गयऊँ । सो पौरुष मैं तुमसे कहेऊँ ॥
माता कीन जब बोल अधीना । उनके कहे छाडि हम दीना ॥
सूरज छाडि दीना हम जबहीं । जग प्रकाश भयो पुनि तबहीं॥
जन्मत की यह कथा सुनाई । कहो तो और सुनाऊँ भाई ॥
राम प्रताप का हम कीन्हा । सो मुनीन्द्र नाहीं तुम चीन्हा॥
एक समैं जो राम बतायी । लंका खबर लाओ तुम जायी॥
लंका छोडि पलंका गयऊँ । जाय नगरमें ठाढो भयऊँ ॥
तब तिन कही यह नहिं लंका । पीछे तजि आयेऊ पलंका ॥
कहांलौ कथा कहौं जो भाई । अपने मुख कहा करौं बडाई ॥
लक्ष्मण मूर्छित गिरै भुई भाई । तब द्रोणागिरि आनि जिवाई॥
जेहि पै वही सजीवन होती । दैत्यन छली कीन्ही बहु जोती॥
रातहिं को द्रोणगिरि लाये । रामवीरं को तुरत जगाये ॥
यही द्रोणगिरि लेके दौरा । फिरि के धरो जाइ तेहि ठौरा ॥
ऐसे कारज अनेक सवाँरे । उनहि प्रताप कार्य उजियारे ॥

साखी–सुनो मुनीन्दर मोर गति, पौरुष औ बल जोर ।
अपना गुण मैं जानिके, कासों कहों निहोर ॥

---

१ जब शमदमादिका अभ्यास करके मुमुक्षु ज्ञान प्राप्त करनेके निकट पहुंचाता है तब यदि प्रारब्ध उसी शरीर तक होती है तब तो आत्मज्ञानको प्राप्त हो जाता है और जीवन्मुक्त पद को भोगता है किन्तु यदि वर्तमान शरीरका प्रारब्ध अनेक शरीरका कारण होता है तब वह ज्ञान कुछ समय के लिये छिप जाता है।

२ वीर-भाई । रामवीर अर्थात् लक्ष्मण ।

मुनीन्द्र वचन चौपाई

बड हनुमान पौरुष तुव आही । आदि पुरुष तुम जानत नाहीं ॥
समरथ रूप नहीं कोइ जानै । डरली बात सब कोइ बखानै ॥
समरथ गति कोइ नहिं जानै । बिनु देखी सो कही को मानै ॥
बल पौरुष हम सब विधि जाना। तीन लोकमें सो करत पयाना ॥
तीन लोकमें अमल तुम्हारा । चौथा लोक सतगुरुका न्यारा ॥
तुमतो निरञ्जन निजकर जानी । ताका हुकुम लीन्ह शिर मानी॥
पुरुष निरञ्जन ते है पारी । समरथ लगी है बास हमारी ॥
तहां काहु को बास न होई । वहां पहुँचि सकै नहिं कोई ॥
यहाँ तुम कार्य करत हो भाई । तुम्हरे इष्ट अहैं रघुराई ॥
सोऊ कला निरञ्जन केरी । सत्य पुरुष गति तुम नहिं हेरी॥
साखी–तीन लोकमें नाम निरञ्जन, जाकी तुम सिफत करी ।
वह कोइ समरथ और है, जिन यह सब मांड धरी ॥

हनुमान वचन चौपाई

सुनो मुनीन्दर दृढ करि ज्ञाना । तब तो भेद भया निरबाना ॥
समरथ को अब भेद बताओ । हम सों नहीं कछु भेद दुराओ ॥

मुनीन्द्र वचन

सुनु हनुमत कहों निज ज्ञाना । तोसों भाषों भेद विधाना ॥
समरथ को अब भेद बताऊँ । तुम सों भेद अब नाहिं दुराऊँ ॥
आदि अनादि पार के पारा । ताको अगम्य अब सुनो विचारा॥
जो प्रतीति होय जिव माहीं । सत्य शब्द समरथ की छाहीं ॥
समरथ शरण बडा है भाई । बल पौरुष सुखसागर पाई ॥
तादिन की यह कथा सुनाऊँ । जो मानो तो कहि समझाऊँ ॥
समुझि करो अपने मन माहीं । वह तो अकथ कहनकी नाहीं ॥
जो कहौं तो कौन पतियायी । देखी सुनि नहि वेदन गाई ॥

हंस गति पाये नहिं कोई। मोर सँदेश मानै नहिं सोई ॥
ताते गये विगोइ विगोई। नहिं मानै दुख पायो सोई ॥
सत्य शब्द मैं कहौं बखाना। बूझ होय तो बूझो ज्ञाना ॥

साखी-बूझ करो हनुमत तुम, हौ तुम हंस स्वरूप।
राम राम कह करत हौ, परे तिमिर के कूप ॥
राम राम तुम कहत हौ, नहिं सो अकथ सरूप।
वह तो आये जगतमें, भये दशरथ घर भूप ॥
अगम अथाह तुमसों कहौं, सुनि लो अगम विचार।
उत्पति परलय तहँ नहीं, साहब सिरजन हार ॥

चौपाई

सुनो हनुमत यह कथा नियारी। तब नहिं हती सो आदि कुमारी॥
जाते भयी सकल विस्तारी। सो नहिं होती रचने हारी ॥
आदि भवानी सो महमाया। ताकी रचना हती न काया ॥
नहीं निरञ्जन की उत्पति कीन्हा। समरथ का घर काहु न चीन्हा॥
तब नहिं ब्रह्मा विष्णु महेशा। अगम ठौर समरथ को देशा ॥
तब नहिं चन्द्र सूर्य्य औ तारा। तब नहिं अंध कूप उजियारा ॥
तब नहिं सात सुमेरु औ पानी। समरथ की गति काहु न जानी॥
तब नहिं धरणि पवन आकाशा। तब नहिं सात समुद्र प्रकाशा ॥
पांच तत्त्व तीन गुण नाहीं। नाहीं तहाँ और कछु माहीं ॥
दश दिगपाल लखै नहिं लेखा। गम्य अगम्य काहू नहिं देखा ॥
दशों दिशा इन रचना रांची। वेद पुराण गीता इन बांची ॥
मूल डाल वृक्ष नहिं छाया। उत्पति परलय हती नहिं माया॥
तब समरथ हते आपु अकेला। धरम माया नहिं मनको मेला ॥
विन सतगुरु को ठौर लखावे। भूली राह कौन समुझावे ॥

साखी-हनुमत यह सब बूझिकै, करो आपनो काज।
निर्भय पद को पाइकै, होय अभय सो राज ॥

हनुमान वचन-चौपाई

सुनो मुनीन्दर वचन हमारा । हम नहिं जानै भेद तुम्हारा ॥
कहौ प्रतीति कौन विधि आवै । कैसेके यह मन पतियावै ॥
यह प्रतीति कौनो विधि आयी । तब हम जानि करब सेवकायी ॥
जहँ समरथ तहाँ हम जावै । तबही हमरा मन पतियावै ॥
उहाँ जाइ इहाँ फिरि आऊँ । तब मैं मन परतीति लगाऊँ ॥
जो तुम सत्य सत्य कहि भाखी । तो मोको दिखलाओ आँखी ॥
करौं प्रतीति गहौं तुव शरणा । बारम्बार बंदौ तुव चरणा ॥
जो गहि तुम दिखावो मोको । तबही झूठ न जानौं तोको ॥

साखी-सुनो मुनीन्दर मोरि गति, बिन देखे नहिं पति आउँ ॥
आदि सृष्टिकी तुम कहत हौ, तहाँ कौन विधि जाउँ ॥

मुनीद्र वचन-चौपाई

जब ऐसो कह्यो हनुमाना । उठे मुनीन्द्र मनमाहीं जाना ॥
उठते देखा फिरि नहिं देखा । देह विदेह भये अवरेखा ॥
पवन रूप होइ गये अकासा । बैठे पुरुष विदेही पासा ॥
चहुँदिशि देखे हनुमत वीरा । कौन सूरतिको भयो शरीरा ॥
गैल महिं चले पगधारी । परम प्राण तहँ लगी खुमारी ॥
देखत चन्द्र वरण उजियारा । अमृत फलका करे अहारा ॥
असंख्य भानु पुरुष उजियारा । कोटिन भानु रोम छबि भारा ॥
देखा चारों दिशा सब झारी । पता न पाय रहे जब हारी ॥
तब हनुमत हाकँ तहँ मारी । तुम मुनीन्द्र अहौ सुखकारी ॥
अब प्रगट होइके दर्शन दीजे । तुम्हरी विरह मम हिरदय भीजे ॥

साखी-भये विदेही देहधरि, आये हनुमत पास ।
और वरन अरु भेषही, सत्य पुरुष परकाश ॥

चौपाई

तब हनुमत सत्य कै मानी । सही मुनीन्दर सत्य हौ ज्ञानी ॥
अब तुम पुरुष मोहि दिखाओ । मेरा मन तुमते पतियाओ ॥
अगली कथा कहौ कछु मोही । कौन नाम तुम्हारा होही ॥
कैसी विधि समरथको जाना । सो कछु मोहिं सुनाओ ज्ञाना ॥
वचन तुम्हारो है परमाना । कहु अब समरथ कौन अस्थाना ॥
निज गुरुज्ञान आपन मुहिं दीजे । दास आपनो मुहिं करि लीजे ॥

साखी-समरथको अस्थान अब, मोको देहु बताय ।
कौन जगत वह रहत है, सो मुनि कहु समझाय ॥

मुनीन्द्र बचन-चौपाई

करि परतीति मानो हनुमाना । बल पौरुष मोरा तुम जाना ॥
नहिं जानो तो और जनाऊँ । समरथको अस्थान बताऊँ ॥
योगजीत मोरा है नाऊँ । होय ज्ञानी मैं जगमें आऊँ ॥
दोऊ नाम लोक के भाई । देह धारि जग करौ लखाई ॥
तादिन को अब कहौं सँदेशा । जब मैं हतो समरथके देशा ॥
एक बार करि सुनो हमारी । समरथकी गति कहौं विचारी ॥
पहिले भये निरञ्जन राया । फिरिके ध्यान पुरुष उपजाया ॥
फिरि तब भयी शक्ति भवानी । मेरो नाम धरचो तब ज्ञानी ॥
यह तो कथा बहुत है भारी । तुम अपने मन लेहु विचारी ॥
कछु संक्षेप सुनाओ तोहीं । निश्चय कै जो मानो मोहीं ॥
महामाया समरथ सो आयी । ताको धरम ग्रास्यो जायी ॥
लीलत कन्या कीन्ह पुकारा । समरथ मोरा करौ उबारा ॥
तब मोकहँ भयो हंकारा । योगजीत तुम करो उबारा ॥
मारो धर्मराय शिर फोरो । महाशक्ति को बन्धन छोरो ॥
महाशक्ति को बन्धन भारो । धर्मराय शिर काट जो डारो ॥
तबही तुरत तहाँ मे आया । काटचो माथ कढी महमाया ॥

मोरे मन तब आयी दाया । अमी सींचि कै फेर जिवाया ॥
धर्मराय समरथ के चोरा । सेवा करिके कीन्ह निहोरा ॥
काल नाम धर्मराह कहाया । जबते वह ग्रास्यो महमाया ॥
माया ब्रह्म दोऊ मिलि साजा । तासों तीन लोक उपराजा ॥
तीन पुत्र तिनकर सो भयऊ । तिन सब रचना सो करिलयऊ ॥
ब्रह्मा विष्णु महेश बखाना । इन तीनोंको सब जग जाना ॥
समरथ को कैसी विधि पावे । जाको तीन देव भरमावे ॥

हनुमान वचन

सुनि हनुमत तब भये अधीना । अहो मुनीन्द्र हम तुमको चीना ॥
सत्य प्रतीत भयी जिव मोरे । अब मैं तुमसे करौं निहोरे ॥
होय आधीन पूछत हौं स्वामी । सो मुहि कहिये अन्तरयामी ॥

साधु लक्षणविषयक प्रश्न

साधु साधु संसार बखानै । कहौ साधु कैसी विधि जानै ॥
साधु बडे की महिमा बड भाई । साधु नाहि महिमा अधिकाई ॥
ऋषि मुनि सबही साधु बखानै । कहौ साधु कैसे विधि जानै ॥
सेवा साधू सब गोहरावें । कहो साधु कैसे लखि पावें ॥
कौन साधु सो मोसे कहना । साधु शरण मोहि निश्चय गहना ॥
सोई साधु बताओ मोही । उठिके शीस नवाऊँ तोही ॥
तुम तो साधु साधु मत जानो । सोइ दृढकरि मोरे मन आनो ॥
जो तुम कहो साधु मैं सोई । इन्द्री साधन मोपहँ होई ॥

अर्थ-हनुमानजी कहते हैं कि, हे साहिब ! यदि आप कहो कि इंद्रीजित पुरुषको साधु कहते हैं तो मैंने सब इंद्रियोंको वशमें कर रक्खा है तो क्या मैं साधु हूँ ?

साधन चेते साधु कहाई । के कोइ साधु और है भाई ॥
सो निश्चय मोहि कहौ समझाई । मैं परतीति तुम्हारी पायी ॥

साखी–कहो मुनीन्द्र सत्य कै, कौन साधु जगमाहिं।
सो मोहि भेद बतावहु, कछु कछु संशय नाहिं॥

## साधु लक्षण

### मुनीन्द्रवचन–चौपाई

साधु महिमा सुनो हनुमाना। जाके संग पुरुष को जाना॥
मोह मद सो निरसंशय भाई। सोई जग महँ साधु कहाई॥
साधु पुरुष समरथ है सोई। राग द्वेष दुख सुख नहिं होई॥
सोई लक्षण साधु कहावे। सोई साधु अगम घर पावे॥
प्रथम इन्द्री मनही जीते। पूरण ज्ञान कबहुँ नहिं रीते॥
तत्त्व प्रकृति अपरबल माया। इनको जीते साधु कहाया॥
काम क्रोध लोभ हंकारा। सोइ साधु जिन ये सब मारा॥
होना साधु सुगम नहिं भाई। साधु सरूप अति कठिनाई॥
हार जीत मान न अपमाना। ऐसे रहित सो साधु निबाना॥
शील संतोष दया कर भाऊ। क्षमा गरीबी साधु कहाऊ॥
प्रेम प्रीति धीरज गुण खानी। सो है साधू निर्मल ज्ञानी॥
हनुमाना यहै साधु सुभाऊ। तुमही साधो साधु कहाऊ॥
साधुलक्षन मैं तुमहिं सुनाया। ऋषिमुनि कोइ गम्य नहिं पाया॥
साधू महिमा है अति सांची। साधु वचन ते यमते बांची॥
आदि अंत गति साधु न जानो। सो साधू समरथ मन मानो॥
सत्य सत्य साधु मन जाना। सो साधूको निर्मल ज्ञाना॥
साधु बडे बडापन नहिं चाहे। साधुन की मति ऐसी आहे॥
साधु समान कौन नहिं दूजा। जाको अगम निगम सब सूझा॥
तन मन धन सब साधि है जोई। जिन अपनी दुर्मति को खोई॥
सोई साधु जगमाहिं कहावे। नहिं तो बहुत जगत रहावे॥
साखी–सुनु हनुमत यह साधु गति, को करि सकै बखान।
जाको सत संगति भयी, सो कछु पायो जान॥

हनुमान वचन--चौपाई

सुनो मुनीन्द्र मोर यक बाता । कहां रहत हैं समरथ दाता ॥
ताको नाम कहो निय जागा । अब मेरा मन तुमसों लागा ॥
सकल भेद कहि दीजे मोही । मोरी सुरति लगी है सोही ॥
तुमतो संत सकल सुखदायी । तुम्हरे है नहिं कछु मान बडायी ॥
सत्य साधु सत्य मैं जाना । सत्य सत्य है तुमरो ज्ञाना ॥
पूरण पद है ध्यान तुम्हारा । मैं अपने दिल कीन्ह विचारा ॥

साखी-पूरण पद निज ध्यान है, सो मोहि देहु बताय ।
धर्म निरञ्जन तहाँ नहिं, काल दगा नहिं खाय ॥

मुनींद्र वचन--चौपाई

सुनो वीर हनुमान विचारा । कठिन विवेक खांडेकी धारा ॥
ताका तुम कीजै इतवारा । निश्चय कारज होय तुम्हारा ॥
अब सन्देह रहै कछु नाहीं । साधु भये साधो मन काहीं ॥
समरथ का तोहि नाम सुनाऊँ । सो युक्ती तोको दिखलाऊँ ॥
सुनो हनुमंत खुशी मन आऊ । ऐसा अगम तोहि ठौर दिखाऊँ ॥

साखी-अगम ठौर जेहि गम्य नहिं, तहां नहीं कोइ जाय ।
सुरति निरति यक घर धरो, हनुमत गहो तुम आय ॥

हनुमान वचन--चौपाई

हे स्वामी यक संशय आयो । कौन भाति तहँ सुरति लगायो ॥
कौन भांति मैं लागूँ धायी । सो तुम मोहि कहो समझायी ॥
पौरुष बलसों लागो जाई । क्षण इक जाओं तेहि ठाईं ॥
राह बाट तेहि मोहि बताओ । काया को सब भेद लखाओ ॥
तुम समरथ समरथ को जाना । सो मोहि कहिये ठौर ठिकाना ॥
जेतिक युक्ति तुम्हारे पासा । सो मोहि दिखलाओ अगम तमासा ॥

कहो शिताब[1] विलम्ब नहिं करना। निश्चय हम आयो शरना ॥
लै पहुँचाओ ठौर दिखाओ। ऐसी वस्तु गहर जनि लाओ ॥
साखी—गहर न लाउ मुनींद्र तुम, हौ समरथ मतिधीर।
मैं सेवक निज दास हौं, अरपूँ सकल शरीर ॥

मुनींन्द्र वचन

धन हनुमन्त तुम्हारी वानी। तुम मोरी गति नीके जानी ॥
समरथ मिलत है दोय प्रकारा। भक्ति ज्ञानसे होइ उबारा ॥
तीसरि योग युक्ति है भाई। मुक्ति होय संदेह मिटाई ॥
तीन प्रकार है समरथ केरो। सो गर्भवास नहिं लेउ बसेरो ॥
जासों भक्ति जो होय सबेरा। पावे अगम ज्ञान सो टेरा ॥
सतगुरु केवल है निज ज्ञाना। सो बिरले कोई साधुन जाना ॥
तीन गुप्त तीनों तोहि भाखा। परदा अन्तर कछू न राखा ॥
सो अपने मन करो विचारा। समरथ नाम सो पइयो सारा ॥
प्रथम भक्ति करो समरथकी। योग युक्ति ज्ञान सुनु नीकी ॥
निष्कपटी होयके साधुमनाओ। साधुनके चरणों चित लाओ ॥
जो साधू अपने धर्म रहाओ। सेवो ताहि परदा नहिं लाओ॥
ऐसी भक्ति जेही मन भावे। भवसागर को भर्म मिटावे ॥
साधु कहै सो राह गहि लीजै। साधु कहै सोई पुनि कीजै ॥
सुनु हनुमंत कहों जो बानी। कूर्म वायु सो अनुभव ज्ञानी॥
नाग वायु धरि वास समानी। तामें अमी अंक जल पानी ॥
अमीमाहि यक बेलि उपजायी। तासों नागबेलि चलि आयी॥
पान सोई सन्धि राखे भाई। समरथ मुख ऐसी फरमायी ॥
पुनि समरथ ऐसी अर्थायो। पान जाहि तुम देहौ जायी ॥
सो हंसा हमारे घर अइहैं। अभय अशंक सदा सुख पइहैं॥

---

१ जल्दी शीघ्र।

तिनुका तोरि करो जिव कोरा । छूटै काल मिटै झकझोरा ॥
चौका आरति करि बिस्तारा । हनूमान तुम लेहु निरधारा ॥
समरथ हुकुम भक्ति यह ठानी । जाते यम नहिं बांधै तानी ॥
बनि आवे तो करिये भाई । नातो लीजो पान बनाई ॥

साखी—यहि समरथ की भक्ति है, सुनो ज्ञानकी रीति ।
योग युक्ति निज भाषेऊँ करौ सो निजकै प्रीति ॥

चौपाई

अब तुम ज्ञान सुनो हनुमाना । समरथ को है निर्मल ज्ञाना ॥
निराधार आधार न कोई । पहुँचे साधु शूरमां सोई ॥
निर्गुण सगुन ध्यान करिपावे । तहां सगुन निरंजन नहिं आवे॥
अनुभव वाणी करे परकाशा । सो साधू मोर स्वाँस उस्वाँसा॥
महाकठिन खाँडे की धारा । ऐसा निर्गुण ज्ञान हमारा ॥
निर्गुण सर्गुण दोनों नाहीं । है सो हंस नामकी छाहीं ॥
तीनों गुणते सगुण सो होई । चौथा गुण निर्गुण है सोई ॥
निर्गुण सगुण दोउ के पारा । शब्द अरु स्वास नहीं ओंकारा॥
अदभुत ज्ञान विकट है भाई । विकट राह कोइ बिरले पाई ॥
ज्ञान गहे बिनु मुक्ति न होई । कोटिक लिखे पढ़े जो कोई ॥

---

१ इस चौपाईके तीन पाठ सब ग्रन्थोंमें अलग २ मिलते हैं। एक तो यही है। दूसरा पाठ यह है—
"निर्गुण ज्ञान ध्यान धरि आवे । तहँ कोइ सगुण नजर नहिं आवे ।।"
तीसरा पाठ यह है—
"निर्गुण ध्यान धरे जो पावे । निर्गुण सगुण नजर ना आवे ।"

इसी प्रकारसे अनेक प्रतियोंमें अनेक मतभेद हैं कहां तक कहा जाय । पश्चातके लेखक महाशयोंकी कृपासे न मालूम कबीरपन्थी साहित्यमें क्या २ फेर हुआ है और होता जाता है ।

साखी–भक्ति ज्ञान तुमसों कह्यो, सुनि लो योग अपार।
रोम रोम को गुण कहूँ, काया का विस्तार॥

चौपाई

काया है यह समरथ केरी। काया की गति काहु न हेरी॥
शिव गोरख जो योग कमाया। काया को ओर छोर नहिं पाया॥
कौन गुननसे ठाढी काया। कौन सुरति कौन है माया॥
कुंज गली सुनो हनुमाना। यह निज भेद काहु नहिं जाना॥
सोई भेद कहौं तुम पाहीं। सुनिके तुम समझो मन माहीं॥
बडे बड़ाई सब पचि हारे। यह निज भेद है अगम अपारे॥
समरथ सागर समरथ वासा। तासों उपजी समरथ स्वासा॥
स्वासा अन्तर बोले जो बानी। अमी बुन्द ढरके यक जानी॥
तासों बीज भये अकूरा। काया कारण सब भरपूरा॥
सोई बीज धर्मराय जो पाया। शक्ति एक धरि जामन लाया॥
सो वह शक्ति रक्त की मूला। तासों भयो बीज अस्थूला॥
कायाकी गति अगम अपारा। हनुमत ताको तुम करो विचारा॥
तीन लोक जाहिर है भाई। सो सब काया भीतर आई॥
सो कायाका करो विचारा। हनुमत सो तुम करो निरधारा॥
अष्ट चक्र कमल है आठा। लागे बन्धन तीनसे साठा॥
नौ नाडी है बहत्तर कोठा। अन्तर पट संपुट सो घोठा॥
परम सुमेरु है दस दरवाजा। पांच तत्त्व तीन गुण छाजा॥
चन्द्र सूर वहाँ दोउ विराजैं। इंगला पिंगला सुख मनि साजैं॥
समुन्दर सात काया के माहीं। नौ सौ नदी बहे तिहि ठाहीं॥
दशौ दिशा कायाके भीतर। यहि देवल सब देव अरु पीतर॥
यहि काया वैराट स्वरूपा। ज्योति स्वरूप वसत है भूपा॥
निरंजन है कायाके माहीं। ओम ओंकार माया की छाहीं॥

रंरकार गरज ब्रह्मण्डा । सप्त द्वीप परगटे नौखण्डा ॥
समरथ अंश बसे अस्थीरा । अस्थिर बस्तु वसैं घर धीरा ॥
ताको कोई चीन्हे नाहीं । ताते सब जग मरि मरि जाहीं ॥

साखी–कायाके गुण अगम हैं, सुनु तुम हनुमत वीर ।
नहिं काहुको लखि परै, अटपट रचा शरीर ॥

हनुमान वचन–चौपाई

अहो स्वामी मैं सब विधि जानी । तुमही समरथ तुमही ज्ञानी ॥
कहा अस्तुति तुम्हारी कीजै । अमृत बचन सुनी हम भीजै ॥
सब संदेह मिटायो मोरा । जनमजनमकामिटचोझकझोरा ॥
सुखसागर अमर घर चीन्हा । भलेसतगुरु मोहि दर्शन दीन्हा ॥

साखी–दर्शन देइ मुनीन्द्र तुम, मोको किया सनाथ ॥
भौ सागरसे लै चले, केश पकडि गहि हाथ ॥
हनूमान आधीन ह्वै, लीन्हो सहज को पान ॥
जब मुनीन्द्र शिष्य किये, दे समरथको ज्ञान ॥ *

खण्ड ब्रह्माण्ड पारके पारा । तहँ समरथको घर तत सारा ॥
निर्भय घर है तहां सो भाई । रोग न व्यापे काल न खाई ॥
ताका तुम जो सुनो विचारा । समरथ का घर है सबके पारा ॥
सबके पार रहे निरधारा । पिंड ब्रह्माण्ड ताके आधारा ॥
सो समरथ है सबसों न्यारी । सुनु हनुमत तुम लेहु विचारी ॥

---

* पुरानी प्रतियोंमें यह पुस्तक इसी साखी तक समाप्त हो गई है किन्तु १९१३ सम्वत्वाली प्रतिमें और भी अधिक है सो इस साखी के आगे से आरम्भ होकर अन्ततक है ।

इतना ही नहीं बहुत पुरानी प्रतियोंमें आदिमें "सेतुबन्ध में जायके, देखा हनुमतवीर" से ही पुस्तक आरम्भ भी होती है किन्तु उस साखीके ऊपर की चौपाई नवीन प्रतियोंमें पाई जाती है, और उससे कोई किसी प्रकारका बिगाड नहीं होता इस कारण उसे लिख दिया है ।

अक्षर सो निःअक्षर है न्यारा । ओम ओंकार ताहि आधारा ॥
तीनों गुणका जो विस्तारा । रंकार है सबके पारा ॥
ताके परे निःअक्षर धारा । सोई भेद निज आहि हमारा ॥
ये सब हैं समरथ आधारा । समरथ शक्तिको वार न पारा ॥
ताकी आश करे जो कोई । उतरे पार भौसागर सोई ॥

हनुमत कहे साहिब सुनो, तुम हौ दीन दयाल ॥
तुम समान रघुपति नहीं, काट्यो यमको जाल ॥

कबीर वचन–चौपाई

कहै कबीर सुनो धर्मदासा । वही ज्ञान मैं तुम्हें प्रकाशा ॥
हनुमत अंश पुरुष का होई । तब हम उनको मिलिया सोई ॥
हनुमत बोधि चले हम जबहीं । चतुर्भुजके ढिग पहुँचे तबहीं ॥
उनसे कीना ज्ञान विचारा । वह हंसनका है सरदारा ॥
चतुर्भुजको हम दियो गुरु आई । ताहि बनायो दर्भंगा राई ॥
जो कोइ तुम्हारा वीरा पावे । सो हंसा सतलोक सिधावे ॥
इतनी कहिके हम काशी आये । चलत चलत कछुवार नहीं लाये ॥
काशी विद्या गुरु बहुतोई । पण्डित ज्ञानी बहुते होई ॥
धर्मदास तुम वंश हमारा । तुम्हरे काज हम यहां पगु धारा ॥
तुम्हरे हाथ पान जो पावे । बहुरि न योनी संकट आवे ॥

साखी–कहे कबीर धर्मदास सों, हनुमत बोध्यो जाय ।
पान परावना देइके, तुमको मिलिया आय ॥
धर्मदास वन्दन करे, धनधन हो सत्यकबीर ।
हनुमतको दर्शन दियो, धन है हनुमत बीर ॥
छन्द–धन्य साहिब धन्य हो तुम दर्शन दीनो ।
कीजे दया अब दासपै जाऊँ चरण लागु धाइके ॥

वीर हनुमान बोध के ले दिया पान प्रसादहो ॥
शेष शारद विष्णु नारद नाहि न पावें आदि हो ॥
सोरठा—नाहिं न पावे आदि, शिव ब्रह्मा अरु नारद ॥
तुम्हरो वदन निहारि, धर्मदास वन्दन करे ॥

इति श्रीबोधसागरांतर्गतकबीरधर्मदाससंवादे

हनुमानबोधवर्णनो नाम सप्तमस्तरंगः

---

# सारविचारपचीसी

★

साखी-ब्रह्मादि सनकादिले, मुनिवर आदि प्रयन्त ॥
विन गुरु मोह निशा शयन,सुख अपने न लहन्त ॥ १ ॥
गुरुके गुण गावे सभी, सत्य सही विनु लक्ष ॥
मायाके उपदेश अज, हरिहर कालके भक्ष ॥ २ ॥
कर्म धर्म मति तीन लै, अज हरिहर समुदाय ॥
गावहिं ध्यावहिं ताहि कह,जेहि सब जीव नशाय ॥ ३ ॥
कहने को चूके नहीं, जेती जिसकी दौर ॥
सबै शब्द सहिदान है, परख शब्द सो ठौर ॥ ४ ॥
वही प्रमाण सबन मिलि कीन्हा,ज्यों अंधेरे की हाथी॥
आदि बाप कौ मरन जानै, पूत होत नहिं साखी ॥ ५ ॥
अँधरे को हाथी सांच है, साचे हैं सगरे ॥
हाथन की टोई कहें, आंखिन के अंधरे ॥ ६ ॥
शब्दातीत शब्दते पाइन, बूझे विरला कोइ ॥
कहैं कबीर सतगुरु की सैना,आप मिटै तब ओइ ॥ ७ ॥
जीव दुखी चाहे छुटन, चीन्हे नाहीं काल ॥
आसा देवे निवृत्ति का, भोरे भवके जाल ॥ ८ ॥

तामस केरे तीन गुण, भौंर लेइ तहँ वास ॥
एकै डारी तीन फल, भांटा ऊख कपास ॥९॥
जीव फँसे तेहि जाल में, सूझे वार न पार ॥
त्राहि त्राहि निशि दिन करे, साहब लेहु उबार ॥१०॥
साहब को जाने नहीं, हाकिम चोर प्रचण्ड ॥
यह ठाकुर यम देशमें, खण्डपिण्ड ब्रह्मण्ड ॥११॥
नित उपजे नित खपे, निश्चय नष्ट सो मूल ॥
परखहु काल कला सबै, देखि जगत मत भूल ॥१२॥
झिलमिल झगरा झूलते, बाकी छुटी न काहु ॥
गोरख अटके काल पुर, कौन कहावे साहु ॥१३॥
विनु पारख वाणी सुने, धावे ताके साथ ॥
घायल अनेकन भावसो, तजहिं न पीटहिं माथ ॥१४॥
बहु कर्महिं अरुझाइ जिव, डोरी अपने हाथ ॥
नाच नचावे यम सदा, कारण कारज साथ ॥१५॥
चाहहिं जो निस्तारन को, इन कर्मन छुटकाय ॥
तेहि तिहुँ फाँस लै धावहीं, बंदी देहि दृढाय ॥१६॥
करम कमाई सबन पर, राज दाम परमान ॥
जन्मत मरत न छोड़ई, विविधि कर्म की खान ॥१७॥
बन्दी खाना जो पडे, जेहि राजा खुशियाल ॥
लोभ गरासे जीवको, सूझे नहीं भव जाल ॥१८॥
जहर जमी दै रोपिया, अमी सींचै सौबार ॥
कवीर खुलुंक ना तजै, जामें जौन विचार ॥१९॥
इन्ह आखिन पथरा दिये, समझ दिये भ्रम जाल ॥
क्षण क्षण जीवन जीवके, भोगे काल कराल ॥२०॥

---

१ स्वभाव, प्रकृति ।

मूस बिलाई एक सँग, कहु कैसे रहिजाय ॥
अचरज यक देखो संतो, हसती सिंहहि खाय ॥ २१ ॥
पूरण पिण्ड ब्रह्माण्डसो, त्रिगुण फांस लगाय ॥
नाशक नाशे जीवको, आपे आप कहाय ॥ २२ ॥
बन्दी छोड छुडावई, मेटि मेटि यम फांस ॥
धन्य धन्य सो जीव हैं, तजहिं महा भोगांस ॥ २३ ॥
प्रभु शरणागति परख दृढ, सत्य लोक परमान ॥
संसत जीव विलास है, टूटा काल गुमान ॥ २४ ॥
पारख सीढी झांकिके, उलटि बहै भवधार ॥
थाह न पावहिं बूडहीं, हौ ताके निस्तार ॥ २५ ॥

इति

इति

श्रीबोधसागरान्तर्गत

# ग्रन्थ हनुमानबोध

समाप्त

सत्य

भारतपथिक कबीरपंथी-

स्वामी श्रीयुगलानन्दद्वारा संशोधित

# श्री-लक्ष्मणबोध

मुद्रक एवं प्रकाशकः

खेमराज श्रीकृष्णदास,

अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,

खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग, बम्बई-४०० ००४

सत्यनाम



श्री कबीर साहिब

श्रीमुनीन्द्राय नमः

अष्टमस्तरंगः

# ग्रन्थ लक्ष्मणबोध

मंगलाचरण–दोहा

जय सुकृत जय मुनीन्द्र प्रभु, जय करुणामय ईश ।।
जय कबीर कलि दुख हरण, सदा नवाऊँ शीश ।।

उत्थानिका ( धर्मदास वचन )

दोहा–विनय करत धर्मदास हैं, दोऊ कर को जोर ॥
लक्ष्मण बोध्यो काहि विधि, कहहु सो बन्दी छोर ॥

सत्य कबीर वचन

प्रथम सो सत्यनाम गुण गाऊँ । भक्त हेतु संसारहि आऊँ ॥
अनन्त बार आयो संसारा । देख्यो जमीं खलक मंझारा ॥
साधु संत देखौं सब ठाऊँ । कतहुँ न देखों मुक्त का नाऊँ ॥
झुण्ड झुण्ड बहु देखौं विरागी । कथहिं ज्ञान अल्पे बुधि लागी ॥
तत्त्व शब्द सुने नहिं काऊ । कतहुँ न सुनी परे वहि गाऊ ॥
एक दिन चले द्वारका भाई । देह तजी जहां त्रिभुवनराई ॥
गड रोके बल भद्र रहाये । बहुत चिंता तिन मन उपजाये ॥
कृष्ण देह नहिं दाग लगायी । तब सपने कृष्ण बात जनायी ॥

---

१ पृथ्वी । २ संसार ।

बलभद्र सो कहा समझायी । अगली बात सब दई बुझायी ॥
बलभद्र तुम भक्त हमारा । तुमसे कहूँ मैं सत व्यवहारा ॥
हमरी सीख मानिकर लीजे । जो हम कहैं सोई अब कीजे ॥

बलभद्र वचन

कहै बलभद्र तुम साहब मेरा । हम तो जनम जनम का चेरा ॥
जो तुम कहो सोई मैं करिहों । मानि सिखापनशिरपर धरिहों॥

श्रीकृष्ण वचन

जैसे कांचली सर्प तजाई । कांचलि रहे सर्प नहिं भाई ॥
याते तनको देहु जलायी । याहि राखी कछु फल नहिं आयी॥
ठाट दहन तब तहवां भयऊ । जरत ठाठ फेफरा रहेऊ ॥
तब बोले अस गोविन्द राई । पेइं एक तुम बेगि बनाई ॥
मट्टी धरो पेइके माई । सो पेई तुम देह बहाई ॥
पेई सोइ उडीसा जायी । बौद्धावतार की मांड मडायी ॥
ठाकुर कहा सो बलभद्रर कीना । एक पेई बनाय कर लीना ॥
ता पेई पर हीरा जड़िया । सो माटी पेई में धरिया ॥
समुद्र माहिं दइ पेइ बहाई । सो पेई बहत उडीसा जाई ॥
तब राजा को सपना भयऊ । सपना में तेहि बात यक कहेऊ॥

कृष्ण वचन

राजा सीख हमारी लीजै । बुद्धावतार कि थापन कीजे ॥

राजा वचन

राजा कहै कौन हौ भाई । सो मोहि बात कहो समुझाई ॥

श्रीकृष्ण वचन

तब बोले सो गोविन्द राई । हम तो कृष्ण अहैं रे भाई ॥
द्वापर बाचा सम्पूरण भयऊ । ताते ठाट हमहुँ तजि दयऊ ॥

---

१ पेटी, बाक्स, सन्दूक ।

अब कलियुग बैठेगा सोई। बौद्ध थापना हमरो होई ॥
जगन्नाथ मम नाम है सोई। हमरी थापना यहि विधि होई॥

सत्यकबीर वचन

राजा जब स्नानको गयऊ। पेई गडी रेत में पयऊ ॥
तब राजा परिकरमा दीना। पेई उठाय के शिर पर लीना ॥
तुरतहि राजा महल ले आवा। तबहि रानि कहँ तुरत बतावा ॥
करै निछावर मंगल गावै। घर घर नगर में बाजु बधावै॥
राजा ब्राह्मण लीन बुलायी। सपने की सब बात सुनायी ॥

ब्राह्मण वचन

ब्राह्मण कहै सुनो महराजा। सुफल जनम सरिहैं सब काजा॥
शुभ नक्षत्र वार धरि लीजै। तब देवल की थापना कीजै ॥
रोहिणी नक्षत्र वार बुध लीना। तब देवल की नींव जो दीना ॥
जब देवल सम्पूरण भयऊ। तबही राजा जग मंडयऊ ॥

पुरातन वार्ता

मंथन उदधि विष्णु जब कीन्हा। निकसी वस्तु बांटि सो लीना ॥
और त्रेता में बांध बँधाये। ताको बैर उदधि मन लाये ॥

उदधि विचार

तबका बैर अबहीं मैं लेऊँ। देवल गाडि रेतमें देऊँ ॥

सत्य कबीर वचन

लगन मुहूरत पहुँचे आयी। तबही देवल गाडि के जायी ॥
छे बार देवल गाड्यो भायी। तब हम इतो जगत के माही॥
पूर्बिल कौल सुरति धरि लीना। जाय आशन समुद्र पर कीना॥
उदधि साजि दल जबही आवा। तब हम डाट समुद्र बतावा ॥
तब हंकार समुद्र बतावा। महा क्रोध करि हम पै आवा॥

तब करि क्रोध समुद्र ललकारा। महाफटकार समुद्र फटकारा ॥
तबही पृथ्वी फाटि सो गयऊ। धसी समुद्र पतालै गयऊ ॥
तबही खबर लक्ष्मी पाई। बैठा साधु समुद्र के ठाई ॥
तब लक्ष्मी आपे चलि आयी। तब हम शोभा कर्म बनायी ॥
लक्ष्मी कीन दण्डवत आयी। धँसाइ समुद्र पताल पठायी ॥

लक्ष्मी वचन

तब लक्ष्मी संतन सो कहेऊ। महाप्रसाद तुम जगको लेऊ ॥

संत वचन

संत कहे सुनु लक्ष्मी आई। नेवता देहु कबीरहि जाई ॥

सत्यकबीर वचन

तबहीं लक्ष्मी हम पै आयी। आइके कहै हमहि गोहरायी ॥
तबहीं संत कहैं सुनु माई। बैठे कबीरा परले ठाई ॥
तब लक्ष्मी ध्यान पुरुषका कीना। करमी सभा मेटि सब दीना ॥

लक्ष्मी वचन

तबहीं हमसों बात जनायी। तुम करो प्रसाद जगतके मायी॥

सत्यकबीर वचन

तब हम कहा बात समुझायी। हम तो प्रसाद पुरुषको पायी॥

लक्ष्मी वचन

लक्ष्मी कहै तुम कौन हौ भाई। तुम कैसे गम पुरुष को पाई॥

सत्यकबीर वचन

कहै कबीर सुनु लक्ष्मी आई। हम तो सेवें पुरुष को पाई ॥
जिन साहिब तुमको कीन्हा। साहिब पति तुम तनको दीन्हा॥
तुम तो गरबभुलानी सोई। ताते काज सिद्ध नहिं होई ॥
श्याम देह कीना तुम सोई। तब ते तुमरी मुक्ति न होई ॥

लक्ष्मी वचन

तब लक्ष्मी कहे समझायी। तुम कहो सो हम मानें भाई॥

सत्यकबीर वचन

बावन अटका जगन्नाथ चढाओ । चार अटका समरथ अरपाओ ॥
तब हम न्योते तुमरे आवें । जब तुम सेवो पुरुषके पावें ॥
सुनत लक्ष्मी ठाकुरपहँ आयी । जो कुछ सुनी सुकहि समझायी ॥

लक्ष्मी वचन

भक्त कबीर नाम जो आहीं । सो तो बैठे समुद्र की ठाहीं ॥
जब उन डांट समुद्र बताया । तबहीं समुद्र पाताल समाया ॥
तब हम न्योत कबीरहि दीना । तब कबीर हमसों छल कीना ॥
करमी सभा बनाय सो लीन्हा । तब हम ध्यान पुरुषका कीन्हा॥
मिटिगयी सभा कबीर यक रहेऊ। तब कबीर ऐसे पुनि कहेऊ ॥
जिन साहबने तुमको कीन्हा । काहे विसार तुम उनको दीन्हा॥
तुम तो गर्व भुलाने सोई । ताते कार्य्य साधन नहिं होई ॥
छप्पन अटका जगन्नाथ लगाये । सत समरथ को धरे विसराये ॥
कहा करूँ प्रसाद तुम्हारा । हमको समरथ देवन हारा ॥
हम बिन्ती सतगुरु सों कीन्हा । तब सतगुरु सिखावन दीन्हा ॥
बावन अटका जगन्नाथ चढाओ । चार अटका समरथको अरपाओ॥
तब हम न्योते तुम्हरे आवें । हम तो अंश पुरुष के भावें ॥
उनकी गति मति लखी न जाई । तुम त्रिगुण होय सृष्टि बनायी ॥
हम सतगुरु होय जिव मुक्तावें । हम ती सर्वे पुरुष के पावें ॥
तुम त्रिगुण का राज कराई । तब बोले गोविन्दे राई ॥

श्रीकृष्ण वचन

ज्योति अंश से हम उत्पानी । ब्रह्मा विष्णु महेश्वर जानी ॥

लक्ष्मी वचन

तब लक्ष्मी कहै समुझायी । वह तो ज्योति हमारी आई ॥
तुमको तो हम उत्पन कीन्हा । चारि स्वरूप हमहिं रचि दीन्हा ॥
त्रिगुण स्वरूप जो सृष्टि बनायी । चौथे अंश ज्योति थपायी ॥

सत्यकबीर–वचन

तब ठाकुर मन चक्रित भयऊ। सुनत तब गरव गलि गयऊ ॥
तब गोविन्द आपु चलि आये। तब कबीर उठि मिले जो धाये ॥
लक्ष्मी गोविन्द कबीर बैठाये। तब गोविन्द एक बात सुनाये ॥

गोविन्द वचन

हम तो गतिमति तुमरी न पाई। हमको लक्ष्मी अब समझाई ॥
साखी–जो तुम अंशपुरुष के, सतगुरु हौ तुम सोउ।
देवल गाडे रेत में, ताहि वन्दन करि लेउ ॥

चौपाई

जबहिं उदधिपल सजिके आया। तबहिं कबीर पुकार जनाया ॥
धँसि समुद्र पताले भयऊ। देखत गोविन्द चक्रित भयऊ ॥
तब विन्ती सतगुरु सो कीन्हा। दोयकर जोरि लक्ष्मी आधीना॥
चलो कबीर यज्ञमें पगधारो। तुमते शोभा रही हमारो ॥

सत्यकबीर–वचन

छप्पन भोग चढाओ जाई। सत्य समरथको भोग लगाई ॥
तब तुम हमको देखो जाओ। अरध प्रसाद रखा जब पाओ ॥
तब गोविन्द स्थान उठि आये। जाई उपदेश राजहि सुनाये ॥
छप्पन भोग चढाओ जायी। सत्य समरथ को भोग लगायी॥
राजा पंडा कहै बुझाई। छपन भोग चढावहु जाई ॥
सो समरथ को भोग लगायी। तब तुम पावो प्रसाद अघायी॥
आध प्रसाद ऋषी जब पाई। तब तुम हमको दिखाओ भाई॥
हारि समुद्र तब ब्राह्मण भयऊ। हाथ जोरिके ठाढे रहऊ ॥

समुद्र वचन

कौन हौ भाइ कहांते आये। वस्ती छोडि यहां कस बैठाये ॥
यहां तो लहर समुद्रकि आई। आओ यज्ञमें भोजन पाई ॥

सत्यकबीर वचन

तबहि कबीर कहे समुझायी । तुम समुद्र कस वरण छिपायी॥

समुद्र वचन

तब समुद्र अस वचन सुनाई । कहा है नाम तुम्हारो भाई ॥

सत्यकबीर वचन

हम तो अंश पुरुष सरदारा । भक्त कबीर है नाम हमारा ॥

समुद्र वचन

तब समुद्र बोले ऐसी बानी । हमतो हार तुमहिं से मानी ॥
हमरो मंथन जब इन कीया । बड़दुख तब इन हमको दीया ॥
और त्रेतामें पैज बँधाई । तबका वैर हमको साले भाई ॥
तुम तो हो सतगुरु होहु सहाई । तुमते हमार कछू न बसाई ॥

सत्यकबीर वचन

तब समुद्र को हम समझायी । निर्धनको चोर कहा लै जायी ॥
सब जग साख तुम्हारी देई । तुम दाता हम भिक्षुक होई ॥
इतनी दया तुम हमपर कीजो । बोली करी कथा सुनि लीजो ॥
इनको टहल शीश जो दीना । तापर दुष्ट दगा जो कीना ॥
त्रिया हरण इनकी जो भयऊ । जब इन बनहि बसेरा लियऊ ॥
राम लक्ष्मण हनुमान मिलायी । तब तिन मति असकीन बनायी॥
सागर बाँधनका मता जो कीना । मच्छरूप तुमही धरि लीना ॥
तब तुम ला उनके ठगिरहेऊ । करि विश्वास बहुतै दुख सहेऊ॥
यह अपने मन गरब भुलाना । हमरे नाम सो शिला तराना ॥
राम नाम जब अंक चढावा । धरे पैर जब लीन चुवावा ॥
खत राम तब चकित भयऊ । तबही शीश धूनि कर रहे ऊ ॥
अतिही शोच करे बल वीरा । शीश डुलावे सागर तीरा ॥
जलमें जंतु देख्यो बड भारी । यह तो झूंठी पैज हमारी ॥

तेहि अति दुःखित जब हम देखा। तब हम पृथ्वी ओर अवरेखा ॥
चहुँ फेर बना कंचन का कोटा। ता बिच बैठा रावन खोटा ॥
लक्ष्मण इन्द्रीजीत कहावें। हम चेतावन ताको जावें ॥
प्रथमै हम रावण गढ गयऊ। तब हम तपसी वेष धरयऊ ॥
जब हम रावन सों बात जनाई। वह काढे खडग हम पर भाई॥
तब हम आडा तृण जो दीना। घाव अठारह तृण पर कीना ॥
कटे न तृण खिसियाना भयऊ। जाय घाव खम्भपर कियऊ ॥
कटि गया खम्भ भया दो भागा। सो मंदोदरि दृष्टिहि लागा ॥
तृणके ओट सो सृष्टिका करता। जग देखत ही भूले समता ॥
कहै मंदोदरि गहि ता पाई। गरब न छाडे रावन राई ॥
तब हम चले ताहि वन गयऊ। लक्ष्मण राम दोऊ जहँ रहेऊ ॥
देख लक्ष्मण धायके आया। आवतही अस वचन सुनाया ॥

लक्ष्मण वचन

कहे लक्ष्मण सुनो ऋषिराई। पिता हुकुम मेटो नहिं जाई ॥
भरत दे राज राम बन अयऊ। तापर दुष्ट दगा जो कियऊ ॥
सीता हरी रावन तेहि ठाऊँ। मैं तो शरण तुम्हारे आऊँ ॥

सत्यकबीर वचन

लक्ष्मण देखि भयी मोहि दाया। अचिंत नाम हम ताहि सुनाया॥
अचिंत नाम का किया विवेका। गिरिपर लिखी सत्यकी रेखा॥
काष्ठ समान सो गिरिवर तारी। उतरी सेना सकल भयि पारी ॥
तबही राम लक्ष्मण फरमावा। हमको मुन्दरी आनि चढावा॥

मुनींद्र वचन

तब कहैं मुनीन्द्र सुनो रघुराई। मुन्दरी धरो कमण्डलमाई ॥
तबहि रामजी आप सिधाये। मुन्दरी डारि ऋषी पै आये ॥
तब मुनीन्द्र यह बात सुनाई। लाओ मुद्रिका दिखाओ भाई॥
देखि कमण्डल चकृत भये भाई। सोचे राम अपने मनमाई ॥

रामचन्द्र वचन

अकथ कथा कही नहिं जायी। कहो ऋषिराय बात समझायी॥
तुम तो धोखा बहुत उपजाये। ऐसी मुँदरी कहां तुम पाये॥
सोई बात कहो समझायी। जाते संशय जीका जायी॥

मुनीन्द्र वचन

मुनीन्द्र बोले राम चित धरिया। एति बार तुमसृष्टि औतरिया॥
जिते आकाश में तारा ठयऊ। इते लंका में रावण भयऊ॥

साखी—नगर अयोध्या राम तुम, भये अनेकहिं वार।
अपनी आदि भुलाइया, तुम कैसे करतार॥

रामचन्द्र वचन—चौपाई

रामचन्द्र कहे सुनो ऋषिराई। तुमरी गति मति कही न जाई॥
अजहुँ शिखापन हमको दीजै। जाते काज सिद्धि करि लीजै॥
काष्ठ समान गिरपर्वत भारी। सेना उतरि सकल भइ पारी॥

सत्यकबीर वचन

पुरुषोत्तम परतीति बैठायी। ताते काज सिद्धि तब पायी॥
जाउ समुद्र तुम अपने ठाई। यहि गुनाह मोहि बखशो भाई॥
तुम दाता हम भिक्षुक तुम्हारे। तुमरी साख बडी संसारे॥
तुम छीलर न होउ बक्शो भाई। हम तो जाते यज्ञके माही॥
अब तुम जाहू अपने ठाई। कञ्चन द्वारिका लेहु बुडाई॥
जगन्नाथ की महिमा होने दीजै। कञ्चन द्वारिका जलमें कीजै॥
मानि वचन गयो अपने ठाई। या विधि दीन समुद्र हलाई॥
इतना कहि हम ठाकुर पर गयऊ। लक्ष्मी रु राम त्रिभुवन रहेऊ॥
छप्पन भोग चढै है द्वारा। लागा भोग ठौरहीं ठौरा॥
परोसै पण्डा बडी पकौरी। दाल भात और खीर मुंगौरी॥
बहु अचार गिनो नहिं जायी। छप्पन भोग परोसे आयी॥

ऋषी मुनी सब गरब भुलाये । तब हम एक कला दिखलाये ॥
ऋषि मुनी प्रसाद जब करहीं । जित तित पण्डा परसत फिरहीं॥
जहाँ तहाँ हम ठाढ रहाये । आदर भाव कछू नहिं पाये ॥
जब पण्डा कोइ देखै मोही । तबहीं वचन कहै अस सोई ॥
ऋषि मुनि जब प्रसाद करिलेई । ता पीछे तुमही धरि देई ॥
तब हमही अस चरित दिखावा । कबीर हो गयो ठावहिं ठावा ॥
पुरुष प्रताप अजर शरीरा । होय अन्तर बिच बैठु कबीरा॥
जित देखें तित दास कबीरा । भागे ऋषि समुद्र के तीरा ॥
भागे पण्डा दूर से भाई । किय अस्नान समुद्रै जाई ॥
जाय अस्नान समुद्रमें कीना । काय देखि तब भये मलीना ॥
गलित कोढ सबहिन को भयऊ । जायफिरियाद रायसो कियऊ॥
वहाँ तो देखा एक शरीरा । यहाँ तो देखा सकल कबीरा॥
ऐसा जादू चेटक कीना । सबका धर्म भ्रष्ट करि दीना ॥
तब राजा छडीदार पठायो । दास कबीर को बेगि बुलायो॥
करि सलाम छडीदार सिधाये । कबीर मिले द्वार के माये ॥
आये कबीर राजाके ताई । तब राजा उठि टेके पाई ॥

राजा वचन

तबही राजा विन्ती कीना । हम तो सेवक सदा अधीना ॥
करहु दया दरद है देही । ब्राह्मण दुःख पावत है तेही ॥

मुनीन्द्र वचन

बडा अपराध उन ब्राह्मण कीन्हा। अन्नदेवको दूषण दीन्हा ॥
अन्नदेव को रोष उपजी भाई । अन्नदेव मनावहु जाई ॥
ऊंच नीच गनो मति कोई । तब काया कंचन सी होई ॥
जगन्नाथ अयोनि अवतारा । उनका है सब सत्य व्यवहारा॥
अन्नका छूत करे जनि कोई । करे तो निश्चय कोढी होई ॥

किनका किनका चुनि चुनि खायी। तबहीं कोढ दूर होय जायी ॥
तबं सब ब्राह्मण सो नाक घसायी। सबका कोढ तबै मिटि जायी ॥
जगन्नाथ का भाव तब भयऊ। राजा रानी मिलि सब गयऊ ॥
जब राजा को दर्शन भयऊ। जगन्नाथ यक बात जनयऊ ॥

जगन्नाथ वचन

मलयागिरि को काठ मँगाओ। ताकी मूरति बेगि बनाओ ॥
तब राजा जासूस पठाई। मलया गिरिको खोज कराई ॥
देख जासूस फिरि नगर मँझारा। आइ राजाको कीन जुहारा ॥

जासूस वचन

अहो राजा चन्दन है यक ठाई। लगे भुजंग देखे बहुताई ॥
तब राजा यह बुधि उपजाई। सेना साथै लयी सिधाई ॥
जहाँ चन्दन तहाँ काष्ठ जगकीना। ताके समक्ष अग्नि सो दीना ॥
भयी प्रचण्ड अग्नि तेहि ठाहीं। जरे सर्प तब अगिन के माहीं॥
काष्ठ चन्दन जबहीं ले आये। तब कारीगर तुरत बुलाये ॥

राजा वचन

बौद्ध औतारकी मूर्ति गढि देहू। हमसे गाम परगना लेहू ॥

कारीगर वचन

तब कारीगर बात जनावे। राजा सुनो बनै नहिं आवे ॥
देखी मूरति सब कोइ गढई। अनदेखा काम कैसे बनई ॥
देवल काज हम चूक पराई। तो हम जरामूल से जाई ॥

---

१ पुरानी प्रतिमें इस चौपाईके आगे नीचे लिखे वचन नहीं हैं, किन्तु नवीन प्रतियों में हैं। किन्तु यह नवीन प्रतिका वचन कबीर पंथके दोहा ग्रन्थोंसे भी नहीं मिलता।

"जगन्नाथ योनि विन अवतारा। उनका है यह सत्य व्यवहारा ।।
उनको भक्ति करं जो कोई। ताको काया काढे न होई ।।
साखी–जगन्नाथ भात ले हेतकरी जो पाय। जो उनकी निंदा करं, निश्चय नरक को जाय ।।"

सत्यकबीर वचन

ऐसी कहि अपने घर वह गयऊ। तब राजा मनमें सोचत भयऊ॥
जगन्नाथ की जो मूर्ति बनाई। गाम परगना तेहि देउँ लिखाई॥
तब लक्ष्मी हमसे विन्ती कीना। यहि शोभा तुमही भल दीना॥
देखी मूरति तब कोइ गढि देई। अनदेखे सो कैसे करई॥
जो तुम हमसे टहल कराओ। यही काम करो तुम जाओ॥
हम पर भार जो सृष्टिका दीना। करो यह काम होहु ना भीना॥
हमको टहल सृष्टिका देहू। इतना कारज अपने शिर लेहू॥
लक्ष्मी विन्ती ऐसी लायी। नातो विरद तुम्हारी जायी॥
तब हम भेष सुतारका लीन्हा। बरस सौकी आयुर्दा कीन्हा॥
आये पौरि मैं ठाढ़ रहाये। पवरिया राजकहँ वचन सुनाये॥
राजा मैं तोहि देउँ बधाई। कारीगर आया पौरके माई॥
कांधे बसुला बोले लौ लीना। हाले गर्दन बोले झीना॥
राजा मनमें भये अनन्दा। जैसे चकोर पायो निशि चंदा॥
राज प्रधान पौरीमें आयी। कारीगरसे अस कहे अर्थायी॥
जगन्नाथकी मूरति बनाओ। तौ तुम ग्राम परगना पाओ॥
देवलमाहिं मूर्ति धरि दीजै। जो चाहो सो हमसे लीजै॥

कारीगर वचन

हम तो गुरु मुखा आहैं भाई। लोभ लालच नहिं हमरे ठाई॥
देवलकाज सिद्ध करि देहों। लालच चित में नहीं करैहों॥

सत्यकबीर वचन

इतना सुनि राजापहँ गयऊ। राजा सुनि मन हर्षित भयऊ॥
तबही राजा महलमों जायी। रानीसों सब बात जनायी॥
तब मुक्ताहलसो थार भरायी। कारीगरको लीन बुलायी॥

कारीगर

राजा कहा हमारा कीजै। सोलह दिनकी अवधी दीजै ॥
हमको साज मूरति का देओ। देवलको द्वार मूँदि कर लेओ ॥
जबही साज देवल लै जाऊ। तबहीं द्वार मूँदि हो भाऊ ॥
तबही कह्यो मूँदि पौरिहि दीजै। सब कोइ गमन यहांसे कीजै ॥
सोलह दिनमें द्वार खुलै हो। तौ कछु विघ्न नहीं तुम पैहो ॥
देइ कपाट तब ताला दीना। चहुँ दिशि पण्डौं चौकी कीना॥
दिन दश सो बीति जब गयऊ। चलत फिरत गोरख तब अयऊ॥

गोरख वचन

गोरख कहे दर्शन मोहि दीजै। नहिं तो शाप हमारो लीजै ॥

सत्यकबीर वचन

तब पण्डा राजा पहँ जायी। राजा से सब बात सुनायी ॥
राजा पण्डा सों कहे बुझाई। कौन शाप गोरखकेर उठाई ॥
तब पंडा गोरख पे आये। हाथ जोरिके विन्ती लाये ॥
दिनछः हम तुमसों माँगे भाई। ता पाछे हम दरश कराई ॥

गोरख वचन

साखी--मैं गोरख प्रसिद्ध हूँ, हमरे आड जनि होहु।
मोको दरश करावहू, कै शाप हमरो लेहु ॥

चौपाई

तब राजा गोरख पगु पडिया। बहु विन्ती भावसों उच्चरिया ॥
जब गोरख नहिं माने राई। तब राजा अस कह्यो बुझायी ॥

---

१ इस चौपाईमें दशदिनके पश्चात् गोरखका आना बतलाया है किन्तु नवीन प्रतियों में सात ही दिन लिखा है।

"विना सात बीते पुनि जाई। फिरत फिर गोरख पुनि आई ॥"

नवीन प्रतियोंमें सब ऐसे ही बेतुकी वाणीका ऐसा गडबड हुआ है कि सब यहां पर लिखना असम्भव है।

तब राजा कहे सुन गोरख आयी । ऐसा तुम करिहो तैसा पायी ॥
नहिं माना गोरख द्वार उघारा । तब सतगुरु एक कला परचारा ॥
भागा गोरख दूर ते भाई । सतगुरु शरण सो बैठा जाई ॥
जगन्नाथ कहे सुनु गोरख आई । योगी हमरो दरश न पाई ॥
यहि औगुन गोरख से भयऊ । ताते योगी दरश न पयऊ ॥
जगन्नाथ राजा सो कहेऊ । अवधिपूर नहीं सो भयऊ ॥
ताते हाथ ठूंठ रहि जायी । दिन सोलह बीते नहिं पायी ॥
देह सम्पूरण होन न पायी । झगरू पण्डहिं को समझायी ॥
झगरू पण्डा शिष्य भयो आयी । केतिक दिन ऐसे बिति जायी ॥
तब जगन्नाथ सो भेंट करायी । जगन्नाथ कह सुनो जी आयी ॥
तुम्हरी हमरी भली बनि आयी । तब हम तेहि कहा समुझायी ॥
कहैं कबीर सुनो त्रिभुवन राई । सिंघल द्वीप हम देखन जाई ॥

साखी–सिंघल द्विप हम जावहीं, जगन्नाथ चित लाउ ।
समुन्दरका भय मेटिके, अटल राज कराउ ॥

इति श्रीबोधसागरे कबीरधर्मदाससम्वादे जगन्नाथ-
स्थापनवर्णनो नाम सप्तमस्तरंगः
इति ग्रन्थ लक्ष्मणबोध

---

## संक्षेप सार
और
### ग्रन्थपर साधारण दृष्टि

यद्यपि इस ग्रन्थमें लक्ष्मणजीको भी बोध करनेकी प्रसंगसे थोडी चर्चा आगयी है किन्तु प्रधानतः इस ग्रन्थमें वर्णन जगन्नाथजी की स्थापनाका है । इस जगन्नाथकी स्थापनाके विषयमें भी अनेक ग्रन्थोंमें बहुत मत भेद हैं इस कारण और-और ग्रन्थोंका भी इस विषयमें वर्णन थोडासा लिख देता हूँ ।

जब श्रीकृष्णजीका स्वधाम गमन हुआ तब बौद्धावतार हुआ। और जब जगन्नाथजीका अवतार हुआ उस समय उडीसा देशका राजा इन्द्रदमन था। उस राजा इन्द्रदमनको कृष्णजीने स्वप्न दिखलाया कि तू मेरा मन्दिर उठा। जगन्नाथजीकी आज्ञानुसार राजा मन्दिर बनाने लगा, जब मन्दिर तैयार होगया तब समुद्र आया और मन्दिरको ढहाकर लेगया और भूमि बराबर कर गया। इसके उपरान्त फिर राजाने मन्दिर बनवाना आरंभ किया फिर उसकी वही दशा हुई। फिर बनवाया फिर वही दशा होगयी। इस प्रकार कई बेर राजाने मन्दिर बनवानेकी इच्छा की पर समुद्रने उसको तैयार होने नहीं दिया तब राजाने दुःखी होकर उस इमारत का बनवाना ही छोड़ दिया इस समय कबीर साहबने अपने वचनका स्मरण किया जैसा कि निरंजनगोष्टि आदि ग्रन्थोंमें लिखा है कि, निरंजनने कबीर साहबसे निवेदन किया था कि जब मेरा जगन्नाथका अवतार होगा तब समुद्र मेरे मंदिरको तोडेगा, उस समय आप कृपा करके समुद्रको हटा देवें और मेरे मंदिरको स्थापित करा देवें तब आप वचनबद्ध हुए थे कि, मैं तुम्हारा मंदिर स्थापित करा दूँगा और समुद्रको हटा दूँगा। उसी वचनके अनुसार कबीर साहब उडीसा देशमें आन उतरे और राजा इन्द्रदमनके पास जाकर बोले, कि हे राजा! तुम जगन्नाथके मंदिरको बनाओ तब राजाने निवेदन किया कि, महाराज समुद्र मंदिरको बनाने नहीं देता मेरा कुछ वश नहीं चलता, जब मैं बनाता हूँ तब वह आकर ढहा जाता है मैं क्या करूँ? कबीर साहबने कहा कि राजा! मैं इसी प्रयोजनसे आया हूँ अब प्रसन्नतापूर्वक ठाकुरद्वारा बनवाओ

मैं समुद्रको हटा दूँगा अब उसका कुछ वश नहीं चलेगा. तब राजाने पुनः मंदिरको बनवाना आरम्भ किया और मदिर बनने लगा, कबीर साहब समुद्र तटपर गये और एक चबूतरा बनाकर उसपर समुद्रकी ओर मुँह करके बैठ गये। उधर ठाकुरका मंदिर बनकर तैयार होनेके समीप आगया और समुद्र ने देखा कि अब तो ठाकुरका मंदिर बन गया तब बडे वेगसे दौड़ा और लहरें आकाशको उठीं। जब लहरें मारता कबीरके चौराके समीप पहुँचा तब सामने कबीर साहबको बैठे देखा देखते ही समुद्र ठहर गया और आगेको चरण बढा नहीं सका और ब्राह्मणका स्वरूप धरकर कबीर साहिबके पास आया और दण्डवत प्रणाम करके निवेदन किया कि, हे महाराज ! मैं तो जगन्नाथके धोखेसे आया और मंदिर ढहाना चाहा अब तो सामने आप बैठे हैं अब मुझमें यह सामर्थ्य नहीं है कि आगेको चरण बढा सकूं, आप न्यायकर्ता हैं मेरा बदला दिलाओ। तब कबीर साहिबने कहा कि हे समुद्र ! मैं तुम्हारा बदला जानता हूँ पर अब इस कलिकालमें जगन्नाथजीका माहात्म्य होगा तथा उनकी पूजा होवेगी इस कारण अब तुम ठाकुरका मंदिर उठने दो और किसी प्रकारकी बाधा उपस्थित मत करो, मैं तुमको इस ॥ मंदिरके बदले द्वारकापुरी देता हूँ तुम जाकर उसको डुबा लो। तब समुद्र प्रसन्नतापूर्वक वहांसे पीछे पलटा और द्वारकापुरीको डुबा लिया और उधर जगन्नाथजीका मंदिर बनकर पूरा होचुका. समुद्रके हरिमंदिर तोडनेका कारण यह था कि जब रामचन्द्रका अवतार हुआ था उस समय श्रीरामचन्द्रजीने समुद्रपर बलात्कार किया था और सेतुबन्धपुल बांधकर पार उतरे थे किन्तु समुद्र

राम अवतारमें और कृष्णावतारमें भी बदला ले नहीं सका पर जगन्नाथके औतारमें अपना बदला लेने के निमित्त उद्यत हुआ और उसके बदले द्वारकापुरीको डुबा दिया। इससे यह सिद्ध होता है कि कियेका बदला अवश्य भोगना पडता है। इस प्रकार जब ठाकुरका मन्दिर बनकर भली भांति प्रस्तुत होगया तब कृष्णजीने अपने पण्डाको स्वप्न दिखलाया कि हे पण्डे! कबीर साहिबने मेरा मन्दिर स्थापित कर दिया अब तुम लोग आकर मेरी पूजा करो। जब जगन्नाथजीने ऐसा स्वप्न दिखलाया तब पण्डा घरसे चलकर पहले समुद्र तटपर आया और कबीर चौरे पर गया वहां कबीर साहबको बैठे देखा। उस समय सत्य गुरुका वेष जिन्दा साधुका था और वैष्णववेष नहीं था। इस कारण वह वेष देखकर उस ब्राह्मणने अपने मनमें अनुमान किया कि प्रथम मैंने अशुभ दर्शन किया ठाकुरका दर्शन नहीं किया, ऐसा अनुमान करके वह पण्डा ठाकुरके मन्दिरमें पहुँचा, तब कबीर साहिबने उसके मनकी समस्त बातें जान लीं और ऐसा कौतुक दिखलाया की जब वह पण्डा ठाकुरके मंडपमें आया तब उसको विचित्र कौतुक दिखलाई दिया कि ठाकुरका समस्त मन्दिर कबीर साहिबकी मूर्तियोंसे भरा हुआ है। जिस ओरको वह ब्राह्मण देखता है उधर वह कबीर साहबकी मूर्तिको उपस्थित पाता है और ठाकुरकी मूर्ति कहीं दिखाई नहीं देती, तब वह ब्राह्मण अक्षत और पुष्प लिये चकित होकर खडा रह गया कि मैं किसकी पूजा करूँ। ठाकुर तो कहीं दिखलाई नहीं देते। समस्त मन्दिर कबीर साहिबकी मूर्तिसे भरा हुआ है। तब वह अपने मनमें सोचने लगा

कि इसका क्या कारण है और फिरसे भोजनके समयमें भी कबीर साहबने सर्वत्र दर्शन दिया जैसा इस ग्रन्थ लक्ष्मणबोधमें वर्णन है। अन्तमें उसने अपने दोषको जान लिया कि मैंने जो कबीर साहब को म्लेछ समझा था इस कारण ही मुझको यह दंड मिला है, और मुझको यह कौतुक दिखलाया। यह शोच समझकर वह ब्राह्मण कबीर साहबकी स्तुति और दोषके निमित्त क्षमा प्रार्थना करने लगा। जब इस पण्डाने सत्यगुरुकी बहुत प्रार्थना और स्तुति की और अत्यन्त नम्रतापूर्वक अपने दोषोंके निमित्त क्षमा प्रार्थना की तब आप दयालु हुए और अपनी सब मूर्तियोंको समेट लिया केवल एक मूर्ति रह गई और ठाकुरकी मूर्ति दिखाई देने लगी। तब कबीर साहबने उस ब्राह्मणसे कहा की हे पण्डा! अब तुम ठाकुरको पूजो पर इस बातका ध्यान रखना कि आजके दिनसे इस जगन्नाथपुरीमें छूत न रहेगी और जाति पाँतिका ध्यान तनिक भी न रहेगा। प्रत्येक जाति एक दूसरे जातिके साथ निधडक भोजन करेगी। अबलों पुरुषोत्तमपुरीमें वही नियम प्रचलित है। सब जातिके लोग एकही स्थानपर भोजन करते हैं कोई किसीके जूठेका कुछ भी ध्यान नहीं करता।

इस ग्रन्थकी भी कई प्रतियां मेरे पास उपस्थित हैं, कोई प्रति भी किसीके साथ मिलती नहीं है। सब प्रतियोंमें प्रसंगका तो ऐसा उलट पुलट है कि, कहीं किसीका पता नहीं मिलता और कविताकी तो यह दशा है कि चौपाईके किसी चरण में २२ मात्रा हैं और किसीमें १४। और लिखायी की जो बात है उसको कहनेकी आवश्यकता ही नहीं है, इस कारणसे यह

पुस्तक सबसे पुरानी प्रति जो १८६० संवत् की लिखी हुई है उसके अनुसार रखा है। हाँ, नवीन प्रतियोंमें से भी प्रसंगानुसार जो उपयुक्त जान पडा है वह भी इसमें रक्खा है किन्तु सो बहुत कम।

इतिलक्ष्मणबोधः सम्पूर्णः

इति

श्रीबोधसागरान्तर्गत

ग्रन्थ लक्ष्मणबोध

समाप्त

भारतपथिक कबीरपंथी–

स्वामी श्रीयुगलानन्दजीद्वारा संशोधित

# श्री-मुहम्मदबोध

और

# काफिरबोध

★

मुद्रक एवं प्रकाशकः

खेमराज श्रीकृष्णदास,

अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,

खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग, मुंबई – ४०० ००४.

संस्करण : फरवरी २०१९, संवत् २०७५

मूल्य : १०० रुपये मात्र।

मुद्रक एवं प्रकाशक:
खेमराज श्रीकृष्णदास,™
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,
मुंबई - ४०० ००४.



Printers & Publishers :
Khemraj Shrikrishnadass,
Prop: Shri Venkateshwar Press,
Khemraj Shrikrishnadass Marg, 7th Khetwadi,
Mumbai - 400 004.

Web Site : http://www.Khe-shri.com
Email : khemraj@vsnl.com

Printed by Sanjay Bajaj For M/s. Khemraj Shrikrishnadass
Proprietors Shri Venkateshwar Press, Mumbai - 400 004,
at their Shri Venkateshwar Press, 66 Hadapsar Industrial
Estate, Pune 411 013.

सत्यनाम



श्री कबीर साहिब

श्रीजगद्गुरवे नमः

# अथ श्रीबोधसागरे

नवमस्तरंगः

## मुहम्मदबोध

★

धर्मदास--वचन

साखी–धर्मदास विनती करे, कृपा करहु गुरुदेव ॥
नबी महम्मद जस भये, सो सब कहिये भेव

सत्यकबीर वचन--चौपाई

धर्मदास पूछचो भल बानी । सो सब कथा कहूँ सहिदानी ॥
जेहि औसुर मुहम्मद औतारा । धरम आपनो जगत पसारा ॥
मारि काटि निज धर्म चलायो । जाते जीव बहुत दुख पायो ॥
परम पुरुष दिल दाया आयी । मुक्ता मणि कहँ कह्यो बुझायी॥
मुक्तामणि संसार सिधाओ । काल कष्टते जीव बचाओ ॥
विगसी कमल उठी असबानी । मुक्तामनि सुनिओ तुम ज्ञानी ॥
भवमें जाओ जीवके काजा । जीवन कष्ट देत यमराजा ॥
मुक्तामणि चले शीस नवायी । तेही क्षण भव प्रकटे आयी ॥
साखी–दोसौ युग कलि युग गयो, तब आयो संसार ॥
बहुतक जीव चितायऊ, कोइ कोइ हंस हमार ॥

चौपाई

ऐसे बहुत दिन गयो सिरायी । सिंघल द्वीपमें पहुंच्यो जायी ॥
तब वह मिले मुहम्मद पीरा । जिन सब हुकुम कीन तागीरा ॥

तहाँ जाय हम कीन सलामा । मात रहे अलमस्त इलामा ॥
नजर दिदार जो कीन हमारी । मत्त गयन्द करे असवारी ॥
कहु भाई तुम कहँ भरमाये । कहां ते आये कहां को जाये ॥
नाहक को नहिं साहब राजी । पढ़ि कुरान पूछौ तुम काजी ॥
हुए हैरान नजर नहिं आये । किया नसीहत अल्ला फरमाये॥

मुहम्मद वचन

साखी—कहाँ ते आये पीर तुम, क्यों कर किया पयान ॥
कौन शक्सका हुक्म है, किसका है फरमान ॥

रमैनी

पीर मुहम्मद सखुन जो खोला । अल्ला हमसे परदै बोला ॥
हम अहदी अल्ला फरमाना । वतन लाहूत मोर अस्थाना ॥
उन भेजे रूह बारह हजारा । उम्मतके हम हैं सरदारा ॥
तिस कारण जो हम चलि आये। सोवत थे सब जीव जगाये ॥
जीव ख्वाबमें परो भुलाये । तिस कारन फरमान ले आये ॥
तुम बूझो सो कौन हो भाई । अपनो ईस्म कहो समुझाई ॥
साखी—दूरकी बाते जो करौ, करते रोजा नमाज ॥
सो पहुँचे लाहूतको, खोवे कुलकी लाज ॥

कबीर वचन

कहैं कबीर सुनो हो पीरा । तुम लाहूत करो तागीरा ॥
तुम भूले सो मरम न पाया । दे फरमान तुम्हें भरमाया ॥
फिर फिर आव फिर फिर जाई । बद अमली किसने फरमाई ॥
लाहूत मुकामें बीचको भाई । बिन तहंकीक असल ठहराई ॥
तुम ऐसे उनके बहुतेरे । लै फरमान जाव तुम डेरे ॥

१ नाम । २ इसका वर्णन ग्रन्थ सारमें देखो । ३ स्थान ४ जांच ।

साखी–खोजत खोजत खोजियाँ, हुवा सो गूना गून ॥
खोजत खोजत ना मिला, तब हार कहा बेचून ॥
बेचूँन जग राँचिया, साईं नूर निनार ॥
आखिर केरे वक्त में, किसकी करो दिदार ॥

रमैनी

तुम लाहूंत रचे हो भाई । अगम गम्य तुम कैसे पाई ॥
यह तो एक आदि विसरामा । आगे पाँच आदि निज धामा ॥
तहँते हम फरमाँ ले आये । सब बदफेलको अमल मिटाये ॥
उन फरमान जो हमको दीना । तिनका नाम बेचून तुम लीना ॥

साखी–साहब का घर दूर है, जासु असल फरमान ॥
उनको कहो जो पीर तुम, सोइ अमर अस्थान ॥

मुहम्मद वचन–रमैनी

कहै मुहम्मद सुनो कवीरा । तुम कैसे पायो अस्थीरा ॥
लाहूत मेटि जो अगम बतायो । खुद खुदाय हमहूँ नहिं पायो ॥
हम जानैं खुद आपै आही । तुम कुदरत कर थापो ताही ॥
हम तो अर्श हाजिरी आयो । तुम तो कुदरतसे ठहराये ॥
तुम्हरे कहे भरम मोहि आयो । खुद खुदाय तुम दूर बतायो ॥
आप सुनाओ खुदकी बानी । आलम दुनियाँ कहो बखानी ॥
लाहूत मुकाम हम निजकर जाना । सो तो तुम कुदरत कर ठाना ॥
हलकी मुलकी बासरी भाई । तीन हुक्म अल्ला फरमाई ॥

साखी–साईं मुरशिद पीर है, साँचा जिस फरमान ॥
हलकी मुलकी बासरी, तीन हुकुम कर मान ॥

कबीर वचन–रमैनी

सुनो मुहम्मद कहूं खुदवाणी । खुद खोदायकी कहूँ निशानी ॥
कादिर थे तब कुदरत नाहीं । कुदरत थी कादिरके माहीं ॥

खवार सभीको चीन्हो भाई । असल रूहको देउँ बताई ॥
असल रूहकि दीदार जो पावे । पावे निज मुसलमान कहावे ॥
हो आवाज जहां परदा पोशी । है वह मर्द कि है वह जोशी ॥
जब लग तख्त नजर नहिं आवे । दिल विश्वास कौन विधि पावे॥
जब खुद की खबर न पावे । तब लग कुदरत भ्रम ठहरावे ॥
हाल माशूक नजर जो आवै । एक निगाह दीदार जो पावै ॥
चार वेद अक्षर निरमाई । चार अंश ताके सुत भाई ॥
एकअंश चौभाग जो कीना । ताते एक गुप्त कर लीना ॥
एक अंशते गुप्त छिपाई । तीन अंश संसार पठाई ॥
अंशहि अंश भेद नहिं दीना । यह अचरज अक्षरने कीना ॥
जो तुम कहा हमारा मानो । तो हम तुमते निर्णय ठानो ॥

साखी–यह प्रपञ्च बेचूनका, तुमते कहा न भेव ॥
आप सो रत होइ बैठा,तुम चार करत हो सेव ॥

मुहम्मद वचन

कहैं मुहम्मद सुन खुद अहदी । इल्म लद्दुन्नी कहु बुनियादी॥
जब नहिं पिण्ड ब्रह्माण्ड अस्थूला । तब ना हतो सृष्टिको मूला ॥
तादनकी कहिय उपतानी । आदि अन्त और मध्य निशानी॥
साखी–बुजरुग हकीकत सब कहो, किस विधि भया प्रकाश ॥
जब हम जाने आदिको, तो हमहूँ बाँधे आश ॥

कबीर वचन

सुनो मुहम्मद सांचे पीरा ।समरथ हुकुम खुद आदि कबीरा॥
अब हम कहें सुनो चितलायी । आदि अन्त सब कहों बुझायी ॥
प्रथमैं समरथ आदि अकेला । उनके संग हता नहिं चेला ॥

साखी-वाहिद थे तब आपमें, सकल हतो तेहि माहँ ॥
ज्यौं तरुवरके बीजमें, पुष्प पात फल छाहँ ॥

चौपाई

आठों अंस त्रिदेव समेता । उतपति जगतकीन प्रभु एता ॥
तीनो दिन त्रैलोकको राजू । तिनवसपरि जिव भयेअकाजू ॥
तिन पुनि एक जुक्ति चित दीना । प्रथम ज्ञान चार जो कीना ॥
प्रथम क्षुद्रजो ज्ञान उपजाई । ध्यान अंशको तौन पठाई ॥
दूसर ज्ञान वाचा है भाई । राज अंशको तौन पठाई ॥
तीसर ज्ञान जो अनुभव कीना । धर्म राय को लेखा दीना ॥
चौथे ब्रह्मज्ञान उपजाई । माय अंश सो ध्यान लगाई ॥
पंचवा ज्ञान सहज की डोरी । सब जीवनकी बंदी छोरी ॥
जहाँसे चार ज्ञान जो आवा । सोई कला निरंजन पावा ॥
निरंजन भये राज अधिकारी । तिनके चार अंश सेवकारी ॥
चार ज्ञानते चारो वेदा । तिनते चारो भये कतेबा ॥
मूल कुरान वेद की वानी । सो कुरान तुम जगमें आनी ॥
हक्क कुरान जो तुमको दीना । हदहुक्म तुम आपन कीना ॥
चार कतेब के चारो अंशा । तिनके कहो भिन्न भिन बंशा ॥
वेद पढावत ब्रह्मा आये । ऋग वेद को नाम लखाये ॥
दूसर यजुरवेदकी वानी । राजनीति सो कीन बखानी ॥
तीसर सामवेदकी बानी । यज्ञ होम तिन कीन बखानी ॥
चौथ अथर्बन गुप्त छपाये । तौन हुक्म तुम जगमें आये ॥
ऐकै मूल कुरानमें चारी । चार बीर तुम हो सरदारी ॥
जब्बूर किताब दाऊदने पाई । नासूत मोकाम रहै ठहराई ॥
तौरेत कीताब मूसाने पाई । मलकूत मोकाम रहै ठहराई ॥
इंजील किताब ईसाने पाई । जबरूत मोकाम रहे ठहराई ॥
फुरकानकिताब नबी तुम पाई । लाँहूतमोकाम रहे लौलाई ॥
कुरान वेहद्दको मरम न पावै । बिनदेखे विश्वास क्या आवै ॥

चार मोकाम किताब है चारी। पंचये नाम अचिंत सँवारी॥
तहँते आइ रूह बारह हजारी। तहां अचिंत गुप्त व्योहारी॥
साखी-पीर औलिया था किया, यह सब उरले तीर॥
समरथ का घर दूर है, तिनको खोजो पीर॥

## *मारफत

चौपाई

औवलमोकाम नासूत ठेकाना। दुजा मोकाम मलकूतजो जाना॥
सेउम मोकाम जबरूत ठेकाना। चहारूममोकामलाहूतजोजाना॥
पंचये मोकाम हाहूत अस्थाना। छठे मोकाम सोहं जो माना॥
हफतुम मोकाम बानी अस्थाना। अठयें मोकाम अंकूर ठेकाना॥
नवयें मुकाम आहूत निशानी। दसयें मोकाम पुरुषरजधानी॥

बेतुक

औवल शरीअत् १। तरीकत् २। हकीकत् ३। मारफत् ४। मरौवत् ५। ध्यान दोरहिअत् ६। जुलफकार चन्द्र गेटा ७। हुकुममुरतद ८। देयना कासो यही अंत् ९। सचपावेसमरथकाय १०। अंकार ओंकार कलिमा नवी सचुपावै देखा हद बैहद

मुहम्मद वचन

तुम कब्बीर भेद अधिकाये। खुद समरथकी खबरि जो ल्याये॥
अब तुमको हम बूझैं अंतू। सो कहिये खुद अहदी संतू॥
को तुम आहु कहांते आये। क्यों तुम अपनो बर्ण छिपाये॥
सात सुरति समरथ निरमाई। यह अस्थान रहो की जाई॥
यती मारफत कहु दुरवेशा। हम मानैं तुमरो उपदेशा॥
सात सुरति केहि माहि समाई। जिव बोधे सो कह चलिजाई॥
समरथ गम तुमु साँच कबीरा। समरथ भेद कहो मति धीरा॥

---

* इस विषय में लिखे हुये मुकामों का वर्णन पुस्तकके अन्तमें देखो।

साखी–मेरे शंका बाढिया, थाके वेद कुरान ॥
वाहिद कैसे पाइये, समरथको मक्कान ॥

सत्यकबीर बचन

सुनो मुहम्मद कहों बुझाई । जो खुद आदि अस्थान है भाई ॥
जो जो हुकुम समरथ फरमाई । सो सो हुकुम हम आनि चलाई ॥
सुर नर मुनिको टेरि सुनाये । तुमको बहुत बार समुझाये ॥
तुमपर मोह अक्षरने डारा । तेहि कारण आये संसारा ॥
सोलह असंख जुग जबै सिराई । सोलह असंख उतपति मिटि जाई ॥
सात सुरति तब लोकहि जाई । जिव बोधो तेहि माह समाई ॥
सात सुन्य तजि ते अस्थाना । ते सब मिटे होय घमसाना ॥
वेद कतेवकि छोडो आशा । वेदकतेव अक्षर प्रकाशा ॥
तीन बार तुम जगमें आये । फिर फिर अक्षरने भरमाये ॥
अक्षर चीन्हिके छोडो भाई । तीन अंश अक्षर निरमाई ॥
ब्रह्मकि सृष्टि आपको कीना । जीव वृष्टि तीरथ व्रत दीना ॥
माया वृष्टि ईश्वरी जानो । सबमें आतम एक समानो ॥
साखी–खोजो खुद समरत्थको, जिन किया सब फरमान ॥
पीर मुहम्मद तहँ चलो, सोई अमर अस्थान ॥

मुहम्मद वचन

पीर मुहम्मद मुख तब मोरा । कछु नहिं चलै तुम्हारी जोरा ॥
अक्षर हुक्मको मेटनहारा । चार वेद जिन कीन पसारा ॥

कबीर वचन

सुनिये सखुन मुहम्मद पीरा । हम खुद अहदी आदि कबीरा ॥
मेटो अक्षरको बिस्तारा । मेटो निरंजन सकल पसारा ॥
मेटो अंचित्तकी रजधानी । मेटो ब्रह्मा वेद निशानी ॥
चौदह जमको बांधि नचावों । मृत अंधा मगहर ले आवों ॥

धर्मरायते झगर पसारा । निरंजन बांधि रसातल डारा ॥
वेद कतेबको अमल मिटावों । घर घर सार शब्द फैलावों ॥
समरथ हुक्म चलै सब माही । ब्यापै सत्य असत्य उठिजाही ॥

मुहम्मद वचन

पीर मुहम्मद बोले वानी । अगम भेद काहू नहिं जानी ॥
सुनाकान नहिं आखिन देखा । बिन देखे को करे विवेखा ॥
जो नहिं देखो अपने नैना । कैसे मानो गुरूको वैना ॥
जो तुम खुद अहदी है आये । हुक्म हजूर फरमानले आये ॥
जौन राहसे तुम चलिआवो । सोई राह मोकहँ बतलावो ॥
हँसनको अस्थान चिन्हावो । समरथको मोहि लोक देखावो ॥
साखी–हंसनको अस्थान लखि, तब मानो परमान् ॥
जो समरथको हुक्म है, सो मेरे परवान् ॥

कबीर वचन

सुनो मुहम्मद कहों बुझाई । साहेब तुमको देउँ बताई ॥
चलै सैल को दोनो पीरा । एक मुहम्मद एक कबीरा ॥

मोकाम १

भूमिते छत्तिस सहस ऊँचाई । मानसरोवर तहां कहाई ॥
तहँ नासूत आहि मोकामा । नबी कबीर पहुँच तेहि धामा ॥
तहँ दाऊद पयंबर होई । जब्बूर किताब पढे तहँ सोई ॥
तहाँ सलामालेक सोई कीना । दस्तावोस उनहु उठि लीना ॥

मोकाम

तहवाँते पुनि कीन पयाना । चौविस सहस वैकुंठ प्रमाना ॥
तहवाँ पहुँच बैठे ऋषि बासा । देव सबै बैठे तेहि पासा ॥
वह वैकुंठ विष्णु अस्थाना । मलकूत मोकाम मूसाको जाना
मूसा पैगम्बर पढै किताबा । उसका नाम तौरेत किताबा ॥
सलामालेक तहाँ हम कीना । दस्ताबोस उनहु उठि लीना ॥

मोकाम ३

वैकुण्ठ ते आगे लायो डोरी । सुमेरते सुन्य अठारह कोरी ॥
येतो अधर सुन्य अस्थाना । जबरूत मोकाम ईसाको जाना॥
ईसा पैगम्बर पढै किताबा । उसका नाम इंजील किताबा ॥
सलामालेक तहाँ हम कीना । दस्ता बोस उनहु उठि लीना ॥
तहँवा बैठि विस्वंभर राई । वही पीर तो वही खुदाई ॥
उहँते अधर सून्य है भाई । ताकी शोभा कही न जाई ॥

मोकाम ४

महाशून्यको लागी डोरी । ग्यारह पालँग तहाँ ते सोरी ॥
लाहूत मोकाम कहावै सोई । जो देखे बहुतै सुख होई ॥
मुस्तफा पैगंबर बैठे तहाँ । फुरकान किताब पढत थे जहाँ॥
सलामालेक तहाँ हम कीना । दस्ताबोस उनहु उठि लीना ॥
दखत हौ मुहम्मद अस्थाना । तुम बेचून कहो यही ठेकाना ॥
वारो फिरिश्ते सलामालेक कीना। तब हम आगेका पग दीना ॥

मोकाम ५

तहँते चले अचिंत ठेकाना । एक असंख्य सुन्य परमाना ॥
हाहूत मोकामको वही ठेकाना । आगे है सोहं बंधाना ॥

मोकाम ६

तीन असंख्य शून्य परमानी ।बाहूत मोकाम सो कहो बखानी॥
नवी कबीर चले तेहि आगे । मूल सुरति बैठे अनुरागे ॥

मोकाम ७

पांच असंख सुन्न विचआही । सात मोकाम कहत है ताही ॥

मोकाम ८

इच्छा सुरतिके पहुँचे द्वीपा । चार असंख है लोक समीपा ॥
ताको नाम राहूत मोकामा । नबी कबीर पँहुचे तेहि ठामा ॥

मोकाम ९

तहँते सहज द्वीप परमाना । दोय असंख तहाँते जाना ॥
ताहि मोकाम नाम आहूता । सोभा ताकी देख बहूता ॥

मोकाम १०

साखी—पहुँचे जायके लोक जहँ, सन्त असंख दस लाख ॥
सो मोकाम जाहूतका, दस मोकाम यह भाख ॥

चौपाई

सलामा लेक तहाँ हम कीना । दस्ताबोस उनहु उठिलीना ॥
तहँते अमरलोकको छोरा । नबी कबीर पहुँच तेहि ठौरा ॥
अमरलोकके हंस सब आये । तिनकी सोभा कही न जाये ॥
भरि भरि अंक मिले तहँ आये । देखि मुहम्मद रहे भुलाये ॥
सब मिलि हंस गये पुनि तहँवा । साहेब तखत पै बैठे जहँवा ॥
जगर मगर छतर उजियारा । आम धनी का कहो बिहारा ॥
असंख भानु पुरुष उजियारा । अमरलोकको कहो विस्तारा ॥
सकल हंस तहँ दरशन पाई । तिनकी सोभा बरनि न जाई ॥
तहँवा जाय बंदगी कीना । नबी भये जो बहुत अधीना ॥

मुहम्मदवचन

चूक हमार बकस कर दीजै । जो तुम कहो सोई हम कीजै ॥

पुरुषवचन

कहु मुक्तामनि बेगि तुम आये । दूसर कौन सँग ले आये ॥

मुक्तामनि वचन

तब हम बचन पुरुषसे कीना । दोउ कर जोर बंदगी कीना ॥
तुम जो राज निरञ्जन दीना । तापर हुकुम अक्षरको कीना ॥
दोऊ अंश दोऊ दीन चलाये । तामें सृष्टि पकडि भुलाये ॥
तामें एक सो हम ले आये । सो तो तुम्हरे कदम दिखाये ॥

नबी मुहम्मद बन्दगी कीना। हशन पाय भये लौलीना ॥
तहँते फिर मृत्यु लोक चलि आये। निजमान कहे पानहु पाये ॥
तुम आपना कौल भरि देहो। पीछे पान जीवको पैहो ॥
साखी—शब्द भरोसे नामके, दिया नवीको पान।
तब हम सांचे मानि हैं, जब फिर मिलोगे आन ॥

कबीरवचन--चौपाई

तुम अपनो फरमान चलाई। खुद को भेद तुम धरो छिपाई॥
जौ यह भेद तुम प्रकट करिहौ। तौ तुम कौल के बाहर परिहौ॥
चारो कलमा प्रकट भाखो। पचवाँ कलमा गुप्त जो राखो॥
पचवाँ कलमा इलम फकीरी। जाके पढे कुफ्र हो दूरी ॥
हम काशीको जात हैं भाई। तबलो तुम अपनो कौल बजाई॥
तुम पर दाया समरथ केरी। पांचों कलमा दिलमें फेरी ॥
साखी—हम काशी को जात हैं, तुम मक्के अस्थान ॥
हम रामानन्द गुरू करें, तुम देओ जगत फरमान ॥
फरमान जगतको दीजिये, उलटी अदल चलाय ॥
तुम कलमाका हुक्म ले, निर्भय निशान बजाय ॥

इति श्रीबोधसागरे कबीरधर्मदास संवादे मुहम्मद
बोध वर्णनोनाम नवमस्तरंगः

---

# अथ ग्रन्थसागर

★

यद्यपि साधारणतः देखनेमें यह ग्रंथ भी मुसलमानी धर्म के प्रवर्तक मुहम्मदको कबीर साहिबके बोध देनेका देख पडता है तथापि इसका भी अर्थ आध्यात्मिक है क्यों कि, मुहम्मद साहब के जीवन चरित्र में लिखा है कि इनके माता पिता

दोनोंही ईश्वरबिमुख मूर्तिपूजक थे उन्हींसे उनकी उत्पत्ति हुई थी । इसका आशय यह है कि, प्रकृतिपुरुष जब संसारमुख होते हैं तब ही अन्तःकरण विशिष्ट होकर चैतन्य जीव नाम धारी होता है । अर्थात् मुहम्मदसे आशय है अन्तःकरण विशिष्ट चैतन्य अर्थात् जीवसे ॥

फिर मुहम्मद साहबके उत्पन्न होते ही उनकी माताकी मृत्यु होगयी थी और पिता तो प्रथमही मर चुका था इस कारण उनके जन्म लेनेके पश्चात् उनकी फूफूने उनका पोषण पालन किया था उसीने अपने गोद में उन्हे लिया था इसका आशय यह है कि, जब जीव अन्तःकरण विशिष्ट होता है तब पुरुष प्रकृतिका तो अभाव होजाता है अर्थात् स्वरूप विस्मृति होती है और देहकी प्राप्ति होती है और देहही द्वारा अन्तःकरण बडा होता है ।

आगे चल कर मुहम्मदसाहबने चौदह विवाह किये हैं सो जीवका चौदह इन्द्रियों के साथ अहंभाव करना है ।

आगे चल कर चालीस वर्षकी अवस्थामें मुहम्मद साहबको पैगम्बरी मिली है सो जब यह जीव पाँच ज्ञानेन्द्री, पांच कर्मेन्द्री पच्चीस प्रकृति और पंचप्राणका विचार करके उससे आपको अलग जानने लगता है तब यह मोक्षअधिकारी होता है यही पैगम्बरी मिलना है ।

पैगम्बरी मिलने पर मुहम्मद साहबने जिहाद करके काफिरों को मारना आरम्भ किया था। और काफिरोंके उत्पन्न करने पर मक्का छोडकर मदीनाको गये थे । सो जब यह जीव अधिकारी होकर विषयमुख इन्द्रियों को साहिब मुख होनेके लिये उनका निरोध करता है तब इन्द्रियाँ बहुत उत्पात मचाती हैं तब जीव प्रवृत्तिरूप मक्कानगरको छोडकर निवृत्तिरूप मदीनामें जाता है ।

अर्थात् प्रवृत्तिसे उदासीन होकर निवृत्ति को धारण करता है। और आसुरी सम्पत्ति रूप काफिरों को दैवी सम्पत्ति रूप फौज की सहायतासे मारता है।

इससे भी आगे बढकर मुहम्मद साहब मेआराज को जाते हैं। इस मेआराजके विषयमें अनेक मत भेद हैं। जिनका वर्णन स्वामी प्रमानन्दजीने कबीरमन्शूरमें बहुत उत्तम रीतिसे किया है पाठकोंके जाननेके लिये उर्दू कबीर मन्शूरसे अनुबाद करके यहां लिखता हूँ। स्वामी प्रमानन्दजीने प्रमाणके लिये मुसलमानी किताबोंके अरबी प्रमाण दिये हैं किन्तु उन प्रमाणोंका हिन्दी पाठकों को कुछ उपयोग न होनेसे केवल उनका आशय दिखा दिया है।

### मुहम्मद साहबके हमेआराजका वर्णन

मुहम्मद साहबके मेआराजके विषयमें मुसलमानोंका भिन्न २ मत है। जो उनके हदीस और किताबोंसे प्रगट है।

तारीख मुहम्मदी में लिखा है कि, जब मुहम्मद साहबको पैगम्बरी करते बारह वर्ष बीत गये अर्थात् उनकी बावन वर्षकी अवस्था हुई तब एक रातको–जिबराईल और मेकाईल जो फिरिस्तों के मुखियों में से हैं मुहम्मद साहब के पास आये और उनका साना (कलेजा) चीर कर उसमें से सब पाप औ बुरे संकल्पों को धोकर शुद्ध कर दिया और जब उनका हृदय (अंतःकरण) शुद्ध होगया तब उन्हें एक ऐसे जानवर पर जिसका शिर तो मनुष्योंका था और नीचेका धड विच्छी के समान था सवार कराकर खुदाके पास लेगये जिबराईल ने तो रिकाब और मेकाईलने उसका बाग पकडा। इस प्रकारसे वह रवाना हुए। चलते २ वे सबसे पहले बैतअकसा अर्थात् बडे हैकल अर्थात् एक बडे भारी वृतके निकट पहुँचे। वहाँ बहुतसे फिरिश्ते

मुहम्मद साहबको प्रणाम करनेको आये जहाँ वह बुराक बाँधकर जब भीतर गये तब वहाँ सब पैगम्बरोंकी आत्मा को देखा। फिरा एक सीढी आकाशसे उतरी अरबी भाषामें जिसे मेसआराज कहते हैं फिर मुहम्मद साहब बुराकपर सवार होकर उस सीढी के मार्ग से ऊपर को चढे। जब प्रथम आकाश पर पहुँचे तब वहांका द्वार जिबराईल ने खुलवाया और सब भीतर गये। भीतर पहुँचने पर देखा कि, हजरत आदम बैठे हुए हैं और उनके बाईं ओर नरकका द्वार खुला हुआ है और दहिनी ओर स्वर्गका। नरककी ओर देख कर हजरत आदम रोते हैं और स्वर्ग की ओर देखकर हँसते हैं। इस प्रकार से प्रत्येक आकाश पर होते हुए जिबराईल मुहम्मद साहब को जब सदरंह के द्वार पर ले गये तब वहाँसे जिबराईल पीछे हो लिये। आगे चल कर एक सुनहले पर्दे के निकट पहुँच कर जिबराईल ने कहा कि इससे आगे हम नहीं जा सकते आप स्वयम् जाइये। फिर वहां से मुहम्मद साहब ने अकेले सत्तर मंजिल पार किया। सत्तर पर्दे पार होकर बुराक भी ठहर गया और वहां से एक पक्षी जिसे जफ जफ कहते हैं आया और उस पर चढ कर मुहम्मद साहब खुदाके पास गये और वहां उन्हों ने खुदा से बहुत कुछ वार्तालाप किया और अपने धर्मके सब नियम उनको वहांहीसे मिले जिसको लेकर वह लौट कर अपने स्थान पर चले आये। इस स्थान पर लिखा है कि यह सब बातें इतनी जलदी हुईं थीं कि, मुहम्मद साहेब के बुराक पर सवार होकर जाते समय एक कटोराको धक्का लगा था जो पानी से भरा हुआ था। सो धक्का लगतेही वह टेढा होगया था। मुहम्मद साहेब इतनी जल्दी लौटकर आये कि उस कटोरे का पानी अभीतक गिरने नहीं पाया था और

उसको उन्होंने आकर सीधा करके शेष पानी को गिरने से बचाया। किन्तु ऊपरोक्त सत्तर पर्दे जिनको मुहम्मद साहबने अकेलेही पार किया था उनमें से एक २ की दूरी इतनी थी कि, पाँचसौ वर्ष तक वेग पूर्वक चलने से पूरा होता था ऐसे सत्तर पर्दों को मुहम्मद साहब ने पार किया। और इधर लौट कर आने पर क्षण मात्रा से अधिक समय नहीं लगा। मुसलमानी धर्मते इसी वृत्तान्त को मुहम्मद साहबका मेआराज होना कहते हैं। इसी विषयमें मुसलमानी धर्मके बडे २ पण्डितोंमें बहुत मतभेद है। कोई तो कहता है कि, मुहम्मद साहबने स्वप्न देखा था, कोई कहता है केवल संकल्प से वहाँ पहुँचे थे, कोई कहता है केवल प्रथम भूमिका (बैतुलअकसा) तक गये थे, कोई कहता है कि, अन्तरदृष्टिसे मुहम्मदसाहेब वहाँ पहुँचे, कोई कहता है केवल जिबराईलको देखा खुदाको नहीं देखा, कोई कहंता है पांचभौतिक शरीर सहितही मुहम्मद साहेब आसमानपर गये और इसी प्रत्यक्षकी दृष्टिसे खुदाको देखा। विस्तार भयसे अधिक मतभेदका लिखना छोडकर यथार्थ आशयकी ओर झुकता हूँ।

पैगम्बरी मिलनेके बारहवें वर्षके पश्चात् मुहम्मदसाहबको मेआराज हुआ था उसका आशय है कि, जब मुमुक्षु श्रवण मनन निदिध्यासन द्वारा बारह महावाक्यका विचार कर लेता है तब यह मोक्ष का अधिकारी होता है। और ५२ वर्षसे आशय है ५२ अक्षरसे सो जब यह ५२ अक्षर के वृत से बाहर होता है अर्थात् शब्द जालसे निकलता है तब इसको सच्चे सद्गुरु की शरणकी प्राप्ति होती है। जहाँ शुद्ध बुद्धि रूप जिबराईल जो शुद्ध सतोगुण से प्राप्त होती है और शुद्ध संतोष रूप में कार्दल जो रजोगुण की शुद्धता से मिलता है इसके साथ

होता है। और तमोगुण की शुद्धता से उत्पन्न हुए शौर्य्य (धीरता) रूप बुराकपर सवार होकर गुरुकी शिक्षा द्वारा यह ज्ञान की भूमिकाओंको पूर्ण करता हुआ यथार्थ पद को प्राप्त होता है। और यथार्थ पदको प्राप्त होकर जीवन मुक्त अवस्था से अन्य जीवों को उपदेश देकर काल जालसे छुडाता है।

इस मुहम्मद बोध ग्रन्थ के यथार्थ आशय को पारखी आत्मविद गुरु अधिकार प्रति अनेक रूपकों में समझाते हैं और इसको आध्यात्मिकही अर्थ से ग्रहण करने के लिये दश मुकामी रेखताका भी प्रमाण है। सो यहां दशमुकामी रेखता लिख देता हूँ।

दशमुकामी रेखता

चला जब लोकको शाक सब त्यागिया हंसको रूप सतगुरु वनायी। भृग ज्यों कीटको पलटि भृङ्गै किया आप समरङ्ग दै ले उड़ायी। छोडि नासूत मलकूतको पहुंचिया! विष्णुकी ठाकुरी दीख जायी। इंद्र कुबेर जहाँ रंभको नृत्य है देव तेतीस कोटि रहायी ॥ १ ॥ छोडि वैकुंठको हंस आगे चला शुन्यमें ज्योति जगमग गायी। ज्योति परकाशमें निरखि निस्तत्त्वको आप निर्भय हुआ भय मिटायी। अलख निर्गुण जेहि वेद स्तुति करै तिनहू देव को हैं पिताई। भगवान तिनके परे श्वेत मूरति धरे भागको आन तिनको रहायी ॥ २ ॥ चार मुक्काम पर खंड सोरह कहै अंडको छोर ह्यां ते रहायी। अंडके परे स्थान अचिंत को निरखिया हंस जब उहां जायी। सहस औ द्वादशै रूह है सङ्गमें करत कल्लोल अनहद बजायी तासुके बदनकी कौन महिमा कहौं भासती देह अति नूर छायी ॥ ३ ॥ महल कंचन बने मणिक तामें जडे बैठ तहँ कलश अखंड छाजे। अचिंतके

परे स्थान सोहंका हंस छत्तीस तहँवा बिराजै । नूरका महल और नूरकी भूमि है तहां आनन्द सो द्वन्द्व भाजै। करत कल्लोल बहु भांतिसे संग यक हंस सोहंगके समाजै ॥ ४ ॥ हंस जब जात षट चक्रको वेधिके सातमुक्कामसें नजर फेरा । सोहंगके परे सुरति इच्छा कही सहसवामन जहँ हंस हेरा । रूपकी राशिते रूप उनको बना नहीं उपमा इन्दु जौनिवेरा । सुरतिसे भेटिकै शब्दको टेकि चढ़ि देखि मुक्काम अंकूर केरा ॥ ५ ॥ शून्यके बीचमें बिमल बैकुण्ठ जहाँ सहज अस्थान है गैब केरा । नवो मुक्काम यह हंस जब पहुंचिया पलक बिलंब ह्वाँ कियो डेरा । तहाँसे डोरि मकरतार ज्यों लागिया ताहि चढि हंस गो दै दरेरा ॥ भये आनन्दसे फंद सब छोडिया पहुंचिया जहाँ सत्य-लोक मेरा ॥ ६ ॥ हंसिनी हंस सब गाय बजायकै साजिकै कलश वहि लेन आये । युगन युग बीछुरे मिले तुम आइकै प्रेम करि अङ्गसो अँग लाये । पुरुषने दर्श जब दीन्हिया हंसको तपनी बहु जनमकी तब नशाये । पलटिकै रूप जब एकसे कीन्हिया मनहुं तब भानु षोडश उगाये ॥ ७ ॥ पुहुपके द्वीप पीयूष भोजन करै शब्दकी देह जब हंस पायी पुहुपके सेहरा हंस औ हंसिनी सच्चिदानन्द शिर छत्रछायी । दिपैं बहु दामिनी दमक बहु भांति की जहाँ घन शब्दको घमंड लायी । लगे जहाँ वरषने गरज घन घोरिकै उठत तहँ शब्द धुनि अति सोहायी ॥ ८ ॥ सुन सोह हंस तहँ यूत्थके यूत्थ है एकही नूर यक रङ्ग रागै । करत बिहार मन भामिनी मुक्तिमें कर्म औ भर्म सब दूरि भागै । रङ्क और भूप कोइ परखि आवै नहीं करत कल्लोल बहु भाँति पागे । काम औ क्रोध मद लोभ अभिमान सब छाँड़ि पाखण्ड सत शब्द लागे ॥ ९ ॥ पुरुषके बदनकी कौन महिमा कहौं

जगत्में ऊपमांय कछु नाहिं पायी। चन्द्र औ सूर गण ज्योति लागै नहीं एकही नक्ख परकाश भाई। पान परवान जिन बंशका पाइया पहुंचिया पुरुषके लोक जायी। कहैं कब्बीर यहि भांति सो पाइहौ सत्य की राह सो प्रकट गायी ॥ १० ॥

देह नासूत स्वरे मलकूत और जीव जवरूतको रूह बखानै॥
अरबी में लाहूत कहै जेहि निराकार मानिके मंजिल्ल ठानै ॥
आगे हाहूत लाहूत है बाहूत खुद खाविन्द जाहूत जानै ॥
सोई श्री राम पन्नाइ सबै जग नाहि पन्नाह यह अता गानै ॥

इस प्रकारसे सत्यके खोजियोंको तो ऐसे ग्रन्थोंका आध्यात्मिक अर्थही ग्रहण करने योग्य है। और स्थूल अर्थ तो स्थूल बुद्धिवाले पक्षपातियोंके लिये ही छोड देना उचित है।

इति

## पृष्ठ ( ६८२ ) की टिप्पणीमें सूचित किये हुए दश मुकामोंका वर्णन

### प्रथम नासूत का वर्णन

नासूत मुकाम सुमेरु पर्वतके उत्तर ओर पृथ्वीसे छत्तीस सहस्र योजन ऊँचा है और यहांपर दयाअंश रहता है और यह मायाका स्थान है–महामाया इस जगह अपने तेज सहित निवास करती है। और जब कबीर साहब और मुहम्मद साहब उस स्थानपर पहुँचे तब वहां हजरत दाऊदको बैठे तथा जबूर नामक पुस्तकको पढ़ते पाया। वहां पहुँचकर कबीर साहबने अस्सलामअलैक कहा–तब हजरत दाऊद अलैकमस्स-लाम कहकर उठ खड़े हुए–और उनके हाथोंको चूमकर बड़ी आवमगत किया–तब कबीर साहब मुहम्मद साहबको उस स्थानकी विशेषता और गुणोंको बतलाकर आगे चले।

### दूसरे मलकूत का वृत्तान्त

दूसरा स्थान मलकूत है–और यह स्थान नासूत से चौबीस सहस्र योजन ऊँचाई पर है–और पृथ्वीसे साठ सहस्र योजन की ऊँचाईपर है। और इस स्थानको दूसरे शब्दोंमें वैकुण्ठ कहते हैं, और यह वैकुण्ठ विष्णुका स्थान है–और इसी स्थानपर पाप पुण्यका लेखा लगता है–और इस विष्णुकी सभामें ब्रह्मा विष्णु शिव इन्द्रादिक समस्त देवतागण उपस्थित रहते हैं–इस विष्णुहीका नाम धर्म्मराय है–और आपकी आज्ञासे नरक तथा वैकुण्ठ और योनिका फिरना आदि सब कुछ होता है–और इसी स्थानसे विष्णु महाराजका परि-भ्रमण समस्त पृथ्वी और आकाशादिमें हुआ करता है। चित्रगुप्तजी विष्णु के मंत्री सबके पाप पुण्यका लेखा तथा हिसाब रखते हैं। जब कबीर साहब मुहम्मद साहबको अपने साथ लेकर इस मलकूत पर पहुँचे-तो वहां मूसाको बैठे तौरते पढ़ता पाया–कबीर साहबने वहां पहुँचकरभी सलाम अलक किया–मूसा सलाम का उत्तर देकर उठे, और उनका हाथ चूमकर बड़ी आवमगतकी तब कबीर साहबने मुहम्मद साहबको इस स्थान के समस्त गुण बतला तथा वहांके वृत्तान्तसे विज्ञ कराकर आगे चले।

### तीसरे जबरूतका वृत्तान्त

तीसरा जबरूत है–इस जबरूत स्थानको कबीर साहबने झांझरी द्वीप कहा है–और यह निर्गुण ब्रह्म अलख निरंजनका स्थान है जो तीनों लोकका कर्ता धर्ता है और यह स्थान वैकुण्ठसे अठारह करोड योजन ऊपर को ऊँचा है–यह बडा सुन्दर स्थान है–यहांपर चार करोड़ ज्योतिका प्रकाश है-और इस सभामें चारों फिरिश्ते उपस्थित रहते हैं–अर्थात् जिबरा ईल-इस-रापिल इजराईल–और मेकाईल। इन्हीं चारोंको ब्रह्मा विष्णु शिव णौर यम इत्यादिके नामसे पुकारते हैं। समस्त आज्ञाएं इसी स्थानसे प्रचलित हुआ करती हैं–और चारों फिरिश्ते इन्हींके आज्ञाकारी हैं। वेद तथा पुस्तकें सबके प्रचार कर्ता यहीं हैं और आपही के आज्ञा-कारी तथा अधीन सब हैं। आद्या तथा निरञ्जन इसी राजधानीमें बैठकर तीनों लोकका राज्य करते हैं जब कबीर साहब रसूल अल्लाहको साथ लेकर पहुँचे तो देखा कि हजरत ईसा वहां बैठे हुए इञ्जील पढ़ रहे हैं। वहां पहुँचकर कबीर साहबने आसलामअलैक कहा और हजरत ईसा सलामका उत्तर देकर उठ खडे हुए और उनके हाथको चूम लिया–तब कबीर साहब मुहम्मद साहबको उन स्थानोंके गुणका विववरण बताकर आगे चले।

## चौथे लाहूतका वृत्तान्त

चौथा लाहूत है जबरूत और लाहूतके बीचमें ग्यारह पालंगका अन्तर है, और एक पालंग आठ करोड़ योजनका है। यह लाहूत स्थान अक्षरका है यहां अक्षर और योगमाया रहते हैं वह बडा सुन्दर स्थान है। जब कबीर साहब और मोहम्मद साहब इस स्थानपर पहुँचे तब कबीर साहबने मोहम्मद साहबसे कहा कि हे मुहम्मद ! देखो यह तुम्हारा स्थान है–और यहांही वह अक्षर पुरुष जिसको तुम बेचून बेचेरा खुदा कहते हो रहता है और उस स्थानके गुण दिखलाकर आगेको चले।

## पाँचवे हाहूतका वृत्तान्त

पाँचवाँ हाहूत है–यह हाहूत स्थान एक असंख्य योजन शून्यके ऊपर है–अर्थात् लाहूत और हाहूतके बीचमें एक असंख्य योजन शून्य और अंधकार है–यह हाहूत स्थान अचिन्त पुरुषका है–यहाँ अचिन्त पुरुष सपत्नीक रहता है–और यह स्थान बडा ही मनोहर है–अचिन्तके सामने तीन सौ अप्सराएँ नृत्य करती रहती हैं–और यह निःशंक तथा निर्द्वंद्व रहता है कबीर साहब इस स्थान और अचिन्त पुरुषका सब विवरण मुहम्मद से कह करके आगेको चले।

## छठवाँ बाहूतका वृत्तान्त

यह बाहूत छठा स्थान है। और बाहूत और हाहूतके बीचमे तीन असंख्य योजन शून्य और अँधेरा है और हाहूतसे बाहूत तीन असंख्य योजनकी उँचाईपर है–यह अत्यन्त मनोहर स्थान है इस स्थानमें सोहं पुरुष रहता है–और सोहं पुरुषकी अर्धांगिनीका नाम ओहं है–यह सोहं पुरुष अपनी शक्ति ओहं सहित सिंहासनपर अधिकृत हैं–और उस स्थानमें सदैव सोहंका शब्द सुनाई दिया करता है। जब कबीर साहब मुहम्मदको लेकर इस स्थानपर पहुँचे तो वहांके समस्त गुणोंका विवरण उन्होंने उनसे किया और फिर आगे चले।

## सातवें साहूतका वृत्तान्त

यह साहूत बाहूतसे पाँच असंख्य योजन ऊँचा है, और बाहूत और साहूतके बीचमें पाँच असंख्य योजन शून्य और अत्यंत अंधकार है। यह इच्छाका स्थान है। इस स्थान की सुन्दरतम तथा यहांकी सुखसामग्रीका भी विशेष विवरण है कबीर साहब मुहम्मद साहबको दिखलाकर आगे चले।

## आठवें राहूतका वृत्तान्त

राहूत साहूतके ऊपर चार असंख्य योजन ऊंचा है। साहूत तथा राहूतके बीचमें चार असंख्य योजन शून्य और अत्यंत अंधकार है और इस राहूत स्थानमें अंकुर पुरुष अपनी शक्ति सहित रहता है–यह अत्यंत सुन्दर तथा मनोहर स्थान है। जब कबीर साहब मुहम्मद साहबको लेकर इस स्थानमें पहुँचे तो उसके सब गुण दिखलाकर आगे चले।

## नवमें आहूतका वृत्तान्त

यह राहूतके ऊपर दो असंख्य योजन ऊँचा है। और बीचमें शून्य तथा अंधकार है-इस स्थानमें सहज पुरुष रहता है-और सत्यपुरुषका सबसे बड़ा पुत्र यही कहलाता है। यह नवाँ स्थान सबसे सुन्दर और आनन्द पूर्ण कहलाता है। कबीर साहबने मुहम्मद साहबको वह स्थान दिखलाय और इसका विवरण करके फिर आगेको चले।

## दशवें जाहूतका वृत्तान्त

आहूत और जाहूतके बीचमें दश असंख्य लाख योजनका अन्तर है अर्थात् स्थान जाहूत आहूतके ऊपर दश असंख्य लाख योजन ऊँचा है और यही स्थान सत्यपुरुषका है इसकी सुन्दरताका विवरण किया नहीं जा सकता है इसी स्थानसे कबीर साहब सत्यपुरुषकी आज्ञा लेकर पृथ्वीपर आया करते हैं और इसी स्थानके रसूल पाक है और इसी सत्य पुरुषके सत्यलोकमें जब हंस पहुंचते हैं तब कालपुरुष उनको नमस्कार करता है और उन हंसका आवागमन फिर कभी नहीं होता। वे हंस सत्यपुरुषकी स्तुति किया करते हैं और वे सत्य-पुरुषके स्वरूपको प्राप्त हो जाते हैं: सत्यलोकके आधीन अठासी सहस्र द्वीप है और सब द्वीपोंमें सत्यगुरुके हंस आनन्द करते हैं उनके भोजन तथा वस्त्रादिका विवरण नहीं हो सकता है।

सत्यकबीराय नमः

# अथ श्रीबोधसागरे

दशमस्तरंगः

## श्री ग्रन्थ काफिर बोध

मंगलाचरण--सोरठा

वन्दौ श्री सत्य कबीर, कुफर नशावन जगत गुरु ।।
पावों सत मति धरि, टूटे कुफर जँजाल सब ।।

ग्रान्थारम्भः

कौन सो काफिर कौन मुर्दार । दोऊ शब्दका करो विचार ।।
गुस्सा[1] काफिर मनी[2] मुदार । दोऊ शब्दका यही विचार ।।
हम नहिं काफिर हम हैं फकीर । जाइ बैठे सरवरके तीर ।।
चोरी नारी[3] दरोग सो डरें । राह सो लेखा सबका करें ।।
नंगे पायन पृथ्वी फिरै । हाट न लूटै बाट न परै ।।
हमतो(बाबा)किसीका कछु न बिगारै। दर्द मन्द दिल दया सबारै ।।
दुनिया लोक सो उल्टी करै । सत्यनाम सदा उच्चरै ।।
सिक्का देखि न कहिये फकीर । फकीर न कूटे पुरानी लकीर ।।
काफिर सो कुफराना करै । अलह खुदाय सो नाहीं डरे ।।
करै न बन्दगी फिरे दिवाना । गरभ बांधि फिरै गैबाना ।।
बोल कुबोल सबै विसरावै । खून खराफातको दूरि बहावै ।।
दिल में चोर कमर में कत्ती । लोगन के घर भाजे रत्ती ।।
अलह के नामे बाँटे खाना । सो कहिये सांचे मुसलमाना ।।
मुसलमान मुसावे आप । सिदक सबूरी कलमा पाक ।।
खडी ना छेडे पडी न खाय ।सो मुसलमान बिहिश्तको जाय।।

---

१ क्रोध । २ अभिमान । ३ व्यभिचार । ४ जारी ।

कलमा पढै न आवै बिहिस्त । हिरदे रहे पाप की दृष्टि ॥
हिन्दु मुसलमां खुदाके बन्दे। हमतो योगी (किसीका)नराखे छन्दे।
देबी देहरा मसीद मिनार । हमरे तो एक नाम अधार ॥
टाकी ले कौन ऊपर चढै । पाव न दाबें हाथ न गढै ॥
तहां न अग्नि पवन का डर। ऐसा अलखपुरुष (जिन्दपीर)का घर
चूना पत्थर बनाइया दादा आदम की करनी ॥
हमतो रहें अलेख पुरुष जिन्दा पीर की शरनी ॥
मक्खी जाय बंधनमें परी । छानत छानत ताही गिरी ॥
काजी मुलमा करे बिचार । मक्खी किया बडा अहँकार ॥
मक्खी तो गाये भखे। मक्खी तो सूअर भखे ॥ मक्खी तो हलाल भखे। मक्खी तो मुर्दार भखे मक्खी जाय बिगारे खाना। तहां न चले बादशाह परवाना ॥ कोरा कलमा बहुतेरा बोलै ॥ खैर मिहर का खीसा न खोलै ॥ मिहर न बांटे मुर्दार खोरा। खैर न बांटे अल्लहका चोरा ॥ अरस परस बीच समाना। मोम दिल मोम दिल जाना ॥ सिदके सो परि पहिचाना। दर्दमन्द दुरवेश बखाना ॥ रहमत है मुरशिर पीरको। जहमत सूम महसूदको ॥ नेश्चयपरिचे निवाज गुजारै । श्रवणनेत्रको बर निहारै ॥ मुहम्मद मुहम्मद क्या करे। कुरान कलमा क्या पढै ॥ किधर किधर की राह बतावे। बिन गुरु पीर राह ना पावे ॥

साखी–हाजी गजी दोऊ गुरुचेला खोज। दश दर्वाजा ॥
अलख पुरुष कहँ माथ नवाओ, इस विधि करै निमाजा॥
सभै साचे काजी, सांचे सांचे मुलना वेद कुरान ॥

कहै कबीर आबसो सब आलम उपजाना॥ हिन्दू कहिये की मुसलमाना॥ राम रहीम बसे एक थाना। मनको जाने सोई मोलाना ॥ दरको जाने सोई दरवेश। हमतो बाबा नेकबदी सो न्यारा ॥ दुनिया मति कोइ लावे दोष। हम तो कहि हैं अकेले दस्त ॥

ताका साहेब मक्का वस्त । मक्रवन्तका साहेब अकिल मन्द ॥
अकिलमन्द अकिल सोजाना । मन मुरीद दोस्ती दाना ॥
सहर गदाई कौन यार । सिर खुरदनी कौन यार ॥
बन्दी खाने कौन यार । तख्त बादशाही कौन यार ॥
काया यार सिर खुदनी । दिल यार मार मांहीं ॥
जीव यार बन्दी खाने । मन यार तख्त बादशाही ॥
मनलाल दिललालललालपोतदा । रहमसा ही हमसा हसाहपोतदार ॥

इति कबीर साहब का वचन उचार विचार

## अथ खान मुहम्मद अली पादशाहका प्रबोध ।

कलिक कीमोक लिस रसमें की चसमें । खदयर संयम करदम । ओजूद राह चक्रित करदम ।

औवल–अक्ल पीर है । मन मुरीद है । तन शहीद है असल गदाई है । तकबुर दुशमन है गुस्सा हराम है । नफस शैतान है । चोरी लानती है । जुवारी पलीदी है । अदब आदि है । आदब कम असल है । राह पीर है । बेराह बेपीर है । सांह-विहिश्त है झूठ दोजख है । मोमदिल पाक है । संगदि नापाक है । हिर्स हैवान है बेहिर्स बली है ॥

लाइ लुई दरकत है । अचेत गुलाम है । असलजादेको सलाम है । कृतहीन जर्दरू है । दाना जौहरी है । असलकी दोस्ती है । दाना शायर है । बूझ महबूब है । बन्दगी कबूल है । अल्लाह नूर है । आलम हद है । साहिब बेहद है । यकीन मुसलमान है । शील रोजा है । शर्म सुन्नत है । ईमान मुसलमान है । बेईमान बेदीन है । दिल दलील है बाँग बलेल है । फकीरी सबूरी है नासबूरी मक्कारी है । दरोग द्वन्द है ।

इति समझौता

# अथ बन्द

प्रथमबोलिये मूल बन्ध । दुजे बोलिये कमर बन्ध । तीजे बोलिये लंगोट बन्ध । पाँचवें बोलिये दानिश बन्ध । छठै बोलिये शस्त्र बन्ध । सातवाँ बोलिये सहस बन्ध । आठवाँ बोलिये अहूठ हाथकी काया । जाका मर्म काहू विरले पाया ॥ मक्केहिसे मदीने छाया। औवल पीर हिन्दू कौबल वीर मुसलमान कहाया॥ मुसलमानकी काटी चोंचनी हिन्दू के छेदे कान । बोलता ब्रह्म नहीं हिन्दू नहीं मुसलमान । दादा आदम ने गाया । बडे बडे पीरन को फरमाया । खुदाने अली पादशाह को चिताया । हिम्मते बन्दा मददे खुदाया । दुआ फकीरा रहम अल्लाह । कदम दर्वेशाँ रद्द बलाय । दादा आदम मामा हौआ । मक्के मदीने में चढा तावा । पहिली रोटी फकीर को रवा । ना देवे रोटी तो टूटे कठवता फूटे तवा । बैठी रहो मामा हौवा । कुफ्र वले अपनी रावा । इतनी सवाल रतनहाजी ने कह्यो । कहै कबीर पीर को जानी । काफिर बोध सम्पूरण वानी ।

इति श्री काफिरबोध प्रथम मंजिल समाप्त

---

## फिरिश्तोंका ब्यान

१ औवल फिरिश्ता बसर है। जैसे खुदाकी सूरत मूरत नहीं है आदि अन्त नहीं है वैसे बरसकाभी कोई रूप रेख नहीं है। खुदाने सह फिरिश्ता सब। जीवधारीके संग लगा दिया है जो हरएकको बतलाता है कि, देख कर चलो ठोकर मत खाओ ॥

२ दूसरा फिरिश्ता समअ ( कान ) है उसके द्वारा खुदा उपदेश करता है कि, मकरूह ( बुरा ) मरगूब ( भला ) आवाज और दोस्त दुशमन की बातको सुनो और समझो ।

---

१ नेत्रेन्द्री, कर्णेन्द्री ।

३ तीसरा फिरिश्ता शामा ( घ्राणेन्द्रिय ) है । यह फिरिश्ता सुगन्धि दुर्गन्धि को बतलाता है ।

४ चौथा फिरिश्ता लमस ( स्पर्शेन्द्रिय ) है जो बतलाता है कठिन और कोमल को ।

५ पाँचवा फिरिश्ता जायका ( रसेन्द्री ) है जो छः प्रकार के रसोंका ज्ञान बतलाता है ।

६ छठां फिरिश्ता हाथ है जो हाथ से करने योग्य कामों को सिखाता है ।

७ सातवाँ फिरिश्ता पाँव है जो चलने फिरने को बतलाता है।

८ आठवाँ फिरिश्ता जबान ( जिह्वा ) है जो भला और बुरा वचन बोलने को सिखाता है ।

९ नवाँ फिरिश्ता आलातनासुल ( जननेन्द्रिय ) है जो मूत्र त्याग करने और संसारकी वृद्धि करने का मार्ग बतलाता है ।

१० दशवाँ फिरिश्ता मेकअद ( गुदेन्द्रिय ) है जो शरीर के मलों को बाहर निकालता है ।

११ ग्यारहवाँ फिरिश्ता दिल ( मन ) है जो इच्छा उत्पन्न करता है और राग द्वेष करता है। दिल वह नहीं है जिसको राक्षस मांसाहारी लोग कबाब बनाकर खाते हैं ।

१२ बारवाँ फिरिश्ता इदराक ( चित ) है जो सर्व पदार्थोंका चिंतन करता है ।

१३ तेरहवाँ फिरिश्ता अहंकार है जो जीवन की रक्षा करता है ।

१४ चौदहवाँ फिरिश्ता अक्ल ( ज्ञान ) है जिसे जिबरईल कहते हैं और जो सबके भेद को जानता है और सबको उप-युक्त मार्ग बतलाता है ।

१५ पन्द्रहवाँ फिरिश्ता शहवत ( रजोगुण ) है जिसको ब्रह्मा कहते हैं ।

१६ सोलहवाँ तमीज (सतोगुण) है जो सत्य असत्य का विचार बतलाता है इसीको विष्णु कहते हैं ।

१७ सतरहवाँ फिरिश्ता गजब (तमोगुण) है जो दुःखदाई पदार्थोंसे रक्षा करता है इसीको शिव कहते हैं ।

इसी प्रकार पांच तत्व और सर्व प्रकृतियाँ आदि संसारके सर्व वस्तु फिरिश्तो हैं और जिस प्रकार शरीर का राजा जीव है उसी प्रकार सब जड चैतन्य का स्वामी साहिब है जिसके शरणमें जानेसे अटल सुख प्राप्त होता है ।

इति काफिरबोध

इति श्रीबोधसागरान्तर्गत काफिरबोध नामकदशमस्तरंगः

ज्ञातव्य

काफिर बोध पुस्तक के प्रथम मंजिलकी एकही प्रति मेरे पास है । बहुत प्रयत्न करने पर भी उसकी दूसरी प्रति न मिल सकी इस कारण जैसी प्रति थी उसीके अनुसार ही रक्खा है । इस ग्रन्थ में फारसी और अरबी शब्दों का बहुत प्रयोग किया है किन्तु यह ग्रन्थ लिखा हुआ अशुद्ध हिन्दी अक्षरोंमें मिला है और दूसरी प्रति न रहने तथा छपने की शीघ्रता के कारण से कितने शब्द शुद्धरन जान पडनेके कारण जो त्रुटियाँ रह गयी हैं उनको दूर करने के लिये प्रयत्न कर रहा हूँ प्रयत्न सफल होने पर दूसरी आवृत्ति में ठीक कर दिया जायगा ।

इति

इति

श्रीबोधसागरान्तर्गत

**ग्रन्थ मुहम्मदबोधः**

और

**काफिरबोधः**

समाप्त

सत्य

भारतपथिक कबीरपंथी-

स्वामी श्रीयुगलानन्दद्वारा संशोधित

# श्री-सुलतानबोध

मुद्रक एवं प्रकाशक:

खेमराज श्रीकृष्णदास,

अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,

खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग, मुंबई - ४०० ००४.

नं.६ कबीरसागर- २

सत्यनाम



श्री कबीर साहिब

सत्यपुरुषाय नमः

# अथ श्रीबोधसागरे

एकादशस्तरंगः

## श्रीग्रन्थ सुलतानबोध

★

मंगलाचरण दोहा

अजर अमर सत नाम है, भंजि शोक तम पुंज ॥
तासु चरण मन रमि रहहु, कमल भौर जिमि गुंज ॥

धर्मदास वचन—चौपाई

धर्मदास उठि विन्ती लाये । सतगुरु मोहि कहो समुझाये ॥
कैसे करिये तजिय संसारा । ताको समरथ कहो विचारा ॥
आगे भये बलख के मीरा । माया सुख तजि भये फकीरा ॥
कही विधि तिन तजि पादशाई । सब वृत्तांत कहो समझाई ॥

सतगुरु वचन

कहें कबीर सुनो धर्मदासा । बलख भेद कहूं तुम पासा ॥
बलख शहर एक नगर अनूपा । तहँ सुलतान यक ज्ञान सरूपा ॥
बादशाह शाहन सरदारू । प्रेम प्रीति मन माहिं विचारू ॥
इब्राहीम अद्धम जेहि माना । राज माहिं भक्ती जिन ठाना ॥
विरह उठी शाह मन माही । कारज अपना कीना चांही ॥
मनुषा जनम अमोलक पायी ।ऐसे तन पाई खुदा मिलि जायी ॥
जो यहि अवसर अल्लह न पाया।क्षण महँ विनशि जायगी काया॥
ऐसी फिकर उठी मन माई । तब षट दर्शन लिये बुलाई ॥

पण्डित साधु संन्यासी आये। जोगी जंगम यती बुलाये॥
ज्ञानी ध्यानी सबके पीरा। काजी मुल्ला सेख फकीरा॥
सब मिलि भेष जुड़े तहँ आयी। तिनसों वचन बूझा अर्थायी॥
तबहि शाह सब टेर सुनायी। अल्लह रूप मुहि देहु दिखाई॥
खुदा मिले कह कौन उपाई। कौन राम अरु कौन खुदाई॥
एक खुदा यक और को होई। काहे भयो एक अस दोई॥
दोऊ दीन मिलि कहो समुझायी। दोमें सांच कौन ठहराई॥
दोउ कर जोडि सबन सो कहेऊ। बहुत अधीन आप तहँ भयऊ॥
होय अधीन तब शीस नवायी। सबसे बूझे मन चित लायी॥
सब मिलि कहों खुदाई सन्देशा। मेरे मनका मेटो अँदेशा॥
साहब बसे कौन से देशा। सो मुहि बात कहो दुरवेशा॥
दोऊ राह यह किनहि चलायी। किन वैकुण्ठ विहिस्त बनायी॥
एती सब मिलि कहो दिवाना। नातो दूर करो कुफराना॥
बिन देखे सबही दिल धरहीं। कान छिदाय अरु खतना करहीं॥
हमरे दिलका मेटो अँदेशा। हम माने तुमरो उपदेशा॥
हिन्दू सबे बैकुण्ठहि धावैं। मुसलमान विहस्त ठहरावैं॥
इनमें कहां खुदा का बासा। विन देखे कीनो विश्वासा॥
किनहु खुदाका घर नहिं पाया। झूठ झूठ सब द्वंद मचाया॥
खुदाकी खबर न कोइ बताहीं। सबको जडो कोठरी माहीं॥
दोऊ दीन यह किन भरमाया। खुदाकी खबर किनहु नहिं पाया॥

साखी—दोऊ दीन समझावहू, मो मन बहुत अन्देश॥
कौन खुदा दो दीन रचे, बसे कौन सो देश॥
कोपे इब्राहीम तब, ये सब भरम भुलाहिं॥
खुदा भेद कोउ ना कहे, डारो कोठरि माहिं॥

चौपाई

चली जो बात दशो दिशि जायी । षट दर्शनको साधु रोकायी ॥
इतनी बात काशी सुनि पाई । तब उठि धाये आप गुसाई ॥
जिन्दा रूप गुसाई कीना । जाइ शाह को दर्शन दीना ॥
बैठे तख्त आप सुलताना । जिन्दा हुआसलामा कीना ॥
दोआ सलाम हमरी नहिं माना । माया के मद गर्व भुलाना ॥

सुलतान वचन

कहे सुलतान सुनो दुरवेशा । जिन्दा रूप कौन को भेशा ॥
कहाँ से आये कहाँ तुम जाओ । कौन काज हमरे घर आओ ॥
हम पूछें जो खुदाकी बानी । इल्म अल्लाहकी कहो निशानी ॥
कुदरत की कोइ आदि बतावै । सोई मुर्शिद पीर कहावे ॥
हमरे दिलमें विरह बहु आया । खुदा मिलन कोउ नाहिं बताया ॥

जिन्दा वचन

जिन्दा कहे सुनो रे भाई । षट दर्शन तुम देहु छुडाई ॥
तब हम तुम सों ज्ञान करावें । संशय तुम्हारो सकल मिटावें ॥
षट दर्शन को छोडि तुम देओ । जो चाहो सो हमसो लेओ ॥
अब जनि शंका मानो भाई । जो पूछो सो देउँ बताई ॥

सुलतान वचन

कहे सुलतान सुनो दुरवेशा । कैसे मिटे हमार अँदेशा ॥
ऐसी बात कहो अधिकाई । क्या तुम दुसरे आय खुदाई ॥

जिन्दा वचन

तब हम एक कला दिखलायी । भैंसा पास यक साख भरायी ॥
जब दुरवेश भैंसा लगि जायी । भैंसा से यक वचन सुनायी ॥
भैंसा कहै सांचे दुर्वेशा । मानो शाह इनको उपदेशा ॥
यहि दुर्वेश खुदा समजानो । इनसे कर्त्ता और न मानो ॥

सुनिके शाह अचम्भो भयऊ। भैंसा साख सो कैसे भरेऊ ॥
यह तो पीर औलिया आये। भैंसे पास इन साख दिवाये ॥
शाहके दिल परतीति अस आयी। यह दुरवेश खुद आय रहायी ॥
षट दर्शन को बन्ध छुडाये। बन्दी छोर कहि कहि सब जाये ॥
साखी–बन्दीछोर कहाइया, शहर बलख मंझार ॥
छूटे बन्ध सब भेषको, धन धन कहे संसार ॥

चौपाई

तब सुलतान अपने मन जाना। यह दुर्वेश अविगत ठाना ॥
भैंसा पास इन साख भराहीं। यह तो गति आदम की नाहीं ॥
एती कला जान जब पाये। फिरि जिन्दा से पूछन लाये ॥

सुल्तान वचन

कहे सुलतान सुनो दुर्वेशा। जिन्दा रूप कौनको भेशा ॥
कहाँसे आये कहाँ तुम जाओ। इतनी सुनद कही समुझाओ ॥
तुम मुर्शिद पीर हमारा। हम अपने दिल कीन विचारा ॥
साखी–कहाँ से आये जिन्द जी, फेर कहाँ तुम जाव ॥
हिन्दु तुरक मैं कौन हो, मोहि कही समझाव ॥

जिन्दा वचन–चौपाई

कहे दुर्वेश सुनो रे भाई। जिन्दा रूप खुदाको आई ॥
अल्लाह आप सकल घटमाहीं। दोऊ दीन दोउ राह चलाहीं ॥
हम दौजख तजि विहिश्तको जाये। सौंपन एक चीज तोहि आये ॥
तुम हो दीन दुनी सुलताना। राखो मियाँ सुई सहिदाना ॥
जब तुम आओगे बिहिश्तके माहीं। तब हम सुई लेब तुम पाहीं ॥
यही काज तुम्हरे घर आये। मियाँ सुई धरों तुव ठाये ॥
दीन दुनी के बादशाह कहाओ। इतनी सनद हमारी लाओ ॥
सुई देव जब विहिश्त मँझारा। तब हम माने सांच तुम्हारा ॥
हँसकर शाह सुई कर लीना। सहस्र सुईका कौल तब दीना ॥

सुलतान वचन

जाओ विहिश्त मानो विश्वासा। सहस्र सुई लेना हम पासा॥

सतगुरु वचन

इतनी गोष्ठि शाह सो कीना। तब तहँ से पयाना दीना॥
एक सुई उन हम सो लीना। सहस्र सुईका कौल तब दीना॥
साखी—इतना कहि हम उठि चले, चानक शाह लगाय।
नीमशाम के वक्त में, जुडी अदालत आय॥

चौपाई

सब मिलि आय जुडे दरिखाना। बैठे आय तहां सुलताना॥
शाह के हाथ सुई जब देखा। तब वजीर मन कीन विवेखा॥
हाथ जोडिके विनती लावा। कैसे सुई हाथ में आवा॥

वजीर वचन

कैसे सुई हाथमें लीना। कारन कौन कहो हम चीना॥

सुलतान वचन

कहे सुलतान सुनो दीवाना[1]। बन्दा अल्लाह दिया सहिदाना॥
दुरवेश एक यहां चलि आया। जिन या सुई दीन हम पाया॥
कहा दुरवेश विहिश्त तुम आव। तब या सुई लेब तेहि ठाँव॥
ऐसे वचन कह्यो दुर्वेशा। सुई हम देन कही तेहि देशा॥
एक सुई हम उनसे लीना। सहस्र सुईका कौल हम दीना॥
इतना वचन कहे सुलताने। सुनत वचन विन्ती तिन ठाने॥

दीवान वचन

दीवान कहे सुनो हो साई। सुई विहिस्त कौन विधि जाई॥
गाम परगना और ठकुराई। सबही धरा रहै यहि ठाई॥
तात मातु सुत सुन्दर दारा। तन धन धाम सकल परिवारा॥

---

१ दीवान

अंत समय ये काम न आवैं । आपु चिन्हे तब जिव सुख पावैं॥
जहँ लगि जगमें दृष्टि दिखाहीं । सो सब विनशि जाय क्षणमाहीं
जतन करे बहुत सुख पावे । सो तन जले गडे मिटि जावे ॥
ऐसे कहि वजीर शिर नायौ । कैसे सुई संग लै जायौ ॥
समझि देखु अपने दिलमाहीं । सुई संग कौन विधि जाहीं ॥

सुलतान वचन

तब सुलतान वचन अस कहई । सुनो वजीर मता यक आहई॥
इतना लशकर संगलै जायब । हस्ती चार सो सुई भरायब ॥

वजीर वचन

हस्ती संग चले नहिं शाहा । खोजा करो तुम दिलके माहा॥
हस्ती घोडा माल खजाना । यह सब संग चले न निदाना ॥

सुलतान वचन

शाह तबै अस वचन सुनावे । बैठि सुखपालविहिश्तको जावे॥
लेवँ बाँस में सुई भरायी । यहि विधि सुई संग ममजायी॥

वजीर वचन

तब दिवान कर जोरि सुनावें । यह सुखपालकबर लगि जावे॥
आगे कस तुम करहू साँई । सो मोहि वचन कहो समझाई॥

सुलतान वचन

आगे हम घोड चढि जायब । लेइ जीन में सुई भरायब ॥
अहो दिवान एसेई करिहौं । ले दरवेश के आगे धरिहौं ॥

कबीर वचन

सुना दिवान तबै हसि दीना । दोइ कर जोरिके विन्ती कीना॥
दादा बाबा तुम्हरे रहैया । घोडे चढि कोऊ ना गैया ॥
साखी-इतने में संग नहिं चले, सुनहु शाह चित लाय ॥
यह बजूद दिन चार है, सो भी संग न जाय ॥

चौपाई

मनमें चकित शाह तब भयऊ। झूठी माया हम चित दयऊ ॥
सुई संग चले नहिं जाही। झूठी राज पाट सब शाही ॥
सहस्र सुईका का परसंगा। एके सुई चले नहिं संगा ॥
अबतो खाना हम तब खावें। जब जिन्दाका दर्शन पावें ॥
इतना ज्ञान शाह घट आवा। जिन्दा दरशको सुरति लगावा॥
इबराहीम ऐसि मति ठाना। राज मांहि भक्ती जिन जाना ॥
साखी–जिन्दा जिन्दा रट लगी, हिरदय रहा समाय ॥
जो जिन्दा अबकी मिले, पूछू सब घर पाय ॥

चौपाई

ऐसी रटना शाह तब लावा। जिन्दा मिलन भयो उर भावा॥
बहुत दिवस रट लागी ऐसी। आगे कहूँ भयी गति जैसी ॥
शाह कीन माहँ बिचारा। जिन्दा मिले सो कौन प्रकारा ॥
सब सिद्धन को लाउ बुलायी। उनसे पूछो मति अस भाई ॥
जोई सिद्ध अजमत बतलावें। उनसे खबर जिन्दाकी पावें ॥
जबे शाह ऐसी मति ठानी। लिये बुला सिद्ध सब ध्यानी ॥
साखी–सब सिद्धनको टेरिके, शाह किये सन्मान ॥
देउ करामत सिद्ध मोहिं, तब मेरो मन मान ॥

चौपाई

सन्मुख शाह सिद्ध सब आनी। तबही शाह कहे अस बानी ॥

सुलतान वचन

अधिक प्यारे तुमहौ अल्लः को। करामात दिखलाऔ अब हमको॥
ना मैं तुम्हको बांधि झुलाऊँ। ना तो तुम्हको छुरी मराऊँ ॥

सिद्ध वचन

तब बोले सिद्ध चौरासी। हम हरि के आहिं उपासी ॥
निशि दिन रामा नाम गुण गावें। करामात ढिग हम नहिं जावें ॥
यह सुनि शाह बहुत रिसियाना। हुकम कीन सब बन्दी खाना ॥

सुलतान वचन

तुम काफिर अल्लाह ते दूजा । भूत प्रेत चित लाये पूजा ॥
चक्की ढिग इनको बैठाओ । निशि दिन इनसे नाज दराओ ॥
जो नहीं करामात तोहि होई । क्यों कर सिद्ध कहाओ सोई ॥

सतगुरु वचन

बैठे सिद्ध सब चाक चलावें । चित विस्मय सब हरिगुणगावे ॥
त्रास देखि मुनि आयी दाया । ततछिन शाहद्वार चलि आया॥
सोटा मारा चक्की माहीं । घूमहु सतगुरु दाया कराहीं ॥
बिदा सिद्ध भये हम भयगुप्ती । देख्यो आय शाहके जपती ॥
कहा साह सों तिन्ह कर जोरी । चक्की सब आपहिं चलि दौरी ॥

सुलतान वचन

सुनि के शाह कैफदिल आयी । कौन शख्श यह चक्कि चलायी॥
वेगहि ढूँढि लाओ यहि वारा । चक्की चलायो सो अल्लह प्यारा॥

सतगुरु वचन

ढूंढत नगर थके दिल जबहीं । नहिं पाये व्याकुल चित तबहीं॥
जबहि शाह घर लगन विचारा । तब हम जीवदया उर धारा ॥
तुरतहिं जाय तहां पशु धारा । शाहके महलन चढे गोहारा ॥
महल पर देखत फिरों वहुँ खूठा । करों पुकार हेरानो ऊंटा ॥
सुनि के शाह क्रोधकरि धाये । कौन हमारे महलन पर आये॥
कहो तुम कौन कहां से आवा । कौन काज महल पर धावा ॥
तब हम कहा ऊंट यक छूटा । ढूंढत फिरूं मैं अपनो ऊंटा ॥
बहुत अधीन ऊंट हम भायो । खोजत ऊंट महल पर आयो ॥
सुनिके शाह तबे हँसि दीन्हा । कैसे ऊंट महल पर चीन्हा ॥
जँगल माहिं तेहि खोजो जाओ । कैसे ऊंट महल पर आओ ॥
तब हम कहा सुनो तुम ज्ञाना । चढे तख्त अल्लह किन जाना॥
ऐसी बूझ करो मन माहीं । सत्य वचन धरो मन ठाहीं ॥

साखी-तख्त चढे किन पाइया, सुनो शाह सुलतान ॥
हरदम साहब याद करु, रचा जिन सकल जहान ॥

महल न आवे ऊंट हमारा । तख्त ऊपर अल्लाह निहारा ॥
अल्लाह तख्त पर कैसे पावे । जहँ लगि घट महँ गर्व रहावे ॥
जब तुम छोडो राज शरीरा । अल्लाह लखो तुम अपनो पीरा॥
छोडो मान गुमान रे भाई । अल्लाह रूप तबही मिलि जाई॥
सुनत शाह सन्मुख जब आवा । तब जिन्दा से पूछन लावा ॥

सुलतान वचन

कौन रूप कौन नाम तुम्हारा ।कहो अल्लाह मिले कौन बिचारा॥

जिन्दा वचन

सांचे दिलसे सुरति लगाओ । प्रेम प्रीति लौलीन रहाओ ॥
सुख संपति की करो न आशा । निशि दिन दीया प्रेम प्रकाशा॥
मन अस्थिर करि सुरति लगाओ। तबहि दरश अल्लाह को पाओ॥
कहे कबीर खोजे सो पावे। खोजत खोजत अलख लखावे॥

साखी-प्रेम प्रीति करि खोजिये, हियमें आवे ज्ञान ॥
अलख अल्लाहकी खोजमें, जागत भये सुलतान ॥
जिन ढूढा तिन पाइया, गहरे पानी पैठि ॥
जो बौरा डूबन डरा, रहा किनारे बैठि ॥

चौपाई

जब कीन मन शाह अन्देशा । नहिं तहँ ऊँट नहीं दुर्वेशा ॥
ऐसे बहुत दिन बीता भाई । काल कला घट आन समाई॥
बहुरि एक दिन बलख मँझारा । शाहके महलनमें पगु धारा ॥
नौरोजा खेले सुलताना । गिलम बिछायबहूबिधि जाना॥
महलन माहीं पहुँचे जायी । देखत फिरे महल चौपायी ॥
इब्राहीम अधम सुलताना । हमको देखत बहु रिसियाना ॥

सुलतान वचन

कहे शाह तुम कौन है भाये । केहि कारण तुम महलन आये॥

जिन्दा वचन

हम परदेशी दूर दिशारा । देखत फिरहिं सराय बसोरा¹ ॥

सुलतान वचन

शाह कहे यह महल हमारा । कहाँ सराय जो करइ बसारा ॥
जेहि महल हीरा जडा अपारा । तापर धुनी तुम कैसे बारा ॥
अब तुम जाओ शहर बजारा । तहाँ जाइ करो सराय बसारा ॥

जिन्दा वचन

कहे दुर्वेश सुनो तुम शाहा । करि विचार परखो दिल माहा॥
महल तुमारा तुम कहँ पावा । करो खोज यह किन निर्मावा ॥
महल तुम्हारो होय न भाई । तुम भी मुसाफिर बसो सराई॥
सुनो शाह तुम चतुर सयाना । सुरति निरति बूझो तुम ज्ञाना॥
बहुत बादशाह तुम आगे भयऊ। महल न संग काहुके गयऊ ॥
दादा बाबा तुम्हरा रहिया । महल काहूके संग न गैया ॥
जा तुम थापा महल हमारा । अन्त काल सब छुटे घर बारा॥
यह जग सकल सराय बसेरा । इनमें नाहि कोउ केहि केरा ॥
जहां के तांहां छूटहिं धामा । यह सबही दिनचार मुकामा ॥
हरदम साहिबको पहिचानो । महल सराय एक करि जानो॥
ज्ञान दृष्टि दिलमें जब आवै । राज छोडि साहिव गुण गावै॥

साखी–ज्ञानं दृष्टि दिल आवई, सब तजि होय फकीर ॥
कहे कवीर सुलतानसे, ज्ञानके लागे तीर²॥

---

१ गुजारा, निर्वाह ।

२ इस साखीके आगे एक प्रतिमें नीचे लिखे पद हैं। किन्तु यहाँ इनका मेल न मिलनेसे नोटमें लिखा है।

चौपाई

यक दिन शाह जु चले शिकारा। चुनि चुनि साथ लीन्ह असवारा
छोडे बाज पक्षी गहि आने। देखत शाह बहुत सुख माने॥
बहुविधि मारग करत कलोला। जहँ तहँ फिरे शिकारिन टोला॥
बहुत समय बीति जब गयऊ। एक शिकार हाथ नहिं अयऊ॥

---

चौपाई

ज्ञानदृष्टि जब दिलमें आही। छोडो राज पाट बादशाही॥
होय फकीर जंगलमें बासा। छोड़ी राज तख्तकी आसा॥
शाह जो बैठे जंगलमें जाई। नगरकी सब परजा चलि आई॥
काजी पण्डित शेख मुलाना। महंत महावत गुलामनफराना॥
सेठ सेनापति परजा आई। सबही धरे शाह की पाई॥

प्रजा वचन

ऐसी बात न करहु गुसाई। सबही राज भ्रष्ट होय जाई॥
जो तुम तजो तख्त औ राजू। सब परजा का होय अकाजू॥

सुलतान वचन

नाहीं तख्त निकट हम जावें। नहिं अपने शिर भार चढावें॥
यह बादशाही हमसे नहिं होवे। कौन तख्त चढि दोजख जोवे॥
हम छोडा तख्त बादशाही। फिरि संशय महँ हम नहिं जाहीं॥
विना भक्ति मुक्ति किन पायी। राज करें सो दोजख जायी॥
हमको जाय मिले यक सांई। वहि साहब मुझको फरमाई॥
में अपराधी उनहिं न चीन्हा। बिछ छाँडि उन हमको दीन्हा॥
अबतो करौं में कौन उपाई। सांइ मुझको कस मिलि है आई॥

परजा वचन

अब तुम चलो महलके माहीं। हम सब सँग तुम होहु गुसाहीं॥
तुमको छाँडि एको नहीं जैहें। सब मिलि संग पयाना देहें॥
सबि मिलि लाये महल मँझारा। शाहके मनमें शोच अपारा॥
कैसे के जिन्दा में पाऊं। कैसेके में जिव मुक्ताऊं॥
झुठे झूठ मिल सब संसारा। दोजख कुंडमें नाखन हारा॥
साखी–बेर बेर हमको मिले, नाम जिन्दा सो आहि॥
अमरापन यक सुलतान है, किसविधि मिलेंगे आहि॥

तबै शाह बहुत रिसियाना । खोजु शिकार हुक्म फरमाना ॥
तबै शिकारी दुहुँ दिशि धावैं । पावैं न शिकार मनहि पछतावैं॥
यहि विचलीला अस भइ भाई । सुनु धर्मनि तुम चित लगाई ॥
हरिन एक जो कनक रंग देखा । हीरा रतन मणि जडे विशेखा॥
देखि सरूप शाह ललचाई । यहि मिरगा कहँ घेरो भाई ॥
आज्ञा पाइ चले असवारा । घरयो हिरण सेन मझारा ॥
कहे शाह जो मिरगा जाई । तुमसे मिरगा लेहौं भाई ॥
सेना सब से तब कहे पुकारी । मिरगा भागि शाह तर गयऊ॥
शाह सब से तब कहे पुकारी । मिरगा मारि लाउँ यहि बारी॥
मिरगा संग सुलतान अकेला । नहिं कोइ सेना नहिं कोइ चेला॥
छिन में मिरगा देखि लुपाना । तेहि पीछे धावहि सुलताना ॥
लागी प्यास शाह को भारी । महा भयानक बनही मझारी॥
वट का वृक्ष तहाँ यक देखा । शीतल छाया बहुत विशेखा ॥
मिला फकीर एक तहँ वासा । कुत्ता दोय रहै उन पासा ॥
शीतल कलशा पानिहि भरिया । जापर ढिलिया मठका धरिया॥
खोजत नीर शाह चलि आये । दुआ सलाम करि वचन सुनाये॥

सुलतान वचन

कहे सुलतान प्यास मुहि भारी । जात जान तुम लेहु उबारी ॥

दुर्वेश वचन

हम फकीर दुर्वेश कहावैं । सुरति होय तो भरो पियावैं ॥
पियो शाह जल लियो निवासा । जिन्दे कीना अजब तमाशा ॥

---

१ दूर से आहू उसे आया नजर । पहुंचा उसपर शाह घोडा मारकर ॥
होके वह अपने सवारों से जुदा । पीछे दो फरसंग तक उसके गया ॥
जाते जाते हो गया आहू खडा । वाफहिसत आबिन अक्षम से कहा ॥
तुझको इस खातिर नहीं पैदा किया । वहशियों पर ता करे जौरोजफा ॥
है गरज ईजाद से तेरे कुछ और । कर जरा तू दिलमें अपने आप गौर ॥
बात यह कहकर वह गायब होगया । नक्श उसका शाह के दिलपर हुआ ॥

साखी–गाकर कढी अगिनसे, मिश्री घृतहि मिलाय ॥
न्यामत धरी रिकाबमें, कुत्तासे कहे खाय ॥

चौपाई

कुत्ता न्यामत खाय न भाई । मार दुरवेश कुत्ता के ताई ॥
ऐसो चरित कीन दुर्वेशा । तब शाहके मनमें भयो अंदेशा ॥

सुलतान वचन

कहै शाह तुम सुनो दिवाना । यह पशु जीव न्यामत कहजाना ॥

जिंदा वचन

कहे फकीर सुनो बेनादाना । जैसा दिया तैसाही खाना ॥
जौसि करे करतूत कमाई । तैसि देह धरि भुगते भाई ॥
यामें फेर फार नहिं होई । जो बोवे लुनिहे वह सोई ॥

सुलतान वचन

दोयकर जोरिके विन्ती कीन्हा । साहब तुमरी गति हम चीन्हा ॥
वानी अगम कहो समझाई । आगे कौन हते यह साई ॥

दुर्वेश वचन

तब दुर्वेश कहे समझायी । सुनो शाह तुम मन चितलायी ॥
बलख शहर यक नगर रहाई । तहँके हैं यह दोनों राई ॥
इब्राहीम अहै यक राजा । एक बाप अरु दूजो आजा ॥
राज पाय कछु भक्ति न कीना । ताते जन्म श्वान को लीना ॥

---

१ यहां जो शाह इब्राहीम अद्धम साहबके बाप दादेको बलखका बादशाह लिखा है यह बात इतिहास और विचार द्वारा एकदम निर्मूल ठहरता है, क्यों, कि बलखके बाद शाह इब्राहीमके बाप दादे नहीं थे बरन इसके उल्टा उनके पिता एक महान संत थे जो परम विरागमान और एकांतवास करने वाले थे । शाह इब्राहीमकी उत्पत्तिकी कथा बहुतही रोचक और आश्चर्य दायक है । यहां स्थानाभावसे नहीं दे सकता गुरुकी कृपा होगी तो कबीर साहबके जीवन चरित्रके सहित सुलतान चरित्र भी बृहत स्वरूपमें लिखेंगे । यहां दोनों कुत्तों को बलख के बादशाह और शाह इब्राहीम अद्धमको बाप दादा बतलाना बहुत ही भूल है इस हेतुसे जाना जाता है कि, इस पुस्तकमें भी उत्तरोत्तर मिलावट होती गयी है और मिलावट करनेवाले भी साधारण

सुलतान वचन

तब सुलतान कहे सुनु साई। एक बात और कहो समझाई॥
दोय खूंटे दोय श्वान बंधाये। तीजा खूंटा क्यों खालि रहाये॥

दुर्वेश वचन

कहे दुर्वेश सुनो रे भाई। याकी गतिहि कहूँ समझाई॥
इब्राहीम नाम जेहि होई। बलख शहर का राजा सोई॥
राज माहिं बहुत सुख करिहैं। भाव भक्ति नाहीं मन धरिहैं॥
विना बन्दगी जिन छूटे देहीं। वे पुनि जनम श्वान को लेहीं॥
इसमें जड़ूँ आनि के ताही। तब ये तीनों रहें एक ठाहीं॥
इतनी सुन दुर्वेशहि बाता। शाह के मन में लागी घाता॥

सुलतान वचन

सुनि सुलतान अचम्भा भयऊ। तब दुर्वेश हि पूछन लयऊ॥
श्वान योनि कस छूटे साई। ताका भेद कहो समझाई॥

दुर्वेश वचन

कहे दुर्वेश भक्ति जो करई। सो नर श्वान देह ना धरई॥
करे बन्दगी साहिब केरी। दया मिहिर की दशा जा होरी॥
प्रेम प्रीति परमारथ नीका। माया मोह जाने सब फीका॥
सब सुख नामहि से लौलावे। सो जिव श्वान जनम नहिं पावे॥

सुलतान वचन

शाह कहे जो लेइ बचाई। सो दुर्वेश साँच है भाई॥
सो दुर्वेश खुदा का बन्दा। श्वान योनि का काटे फन्दा॥

---

विचारके जान पडते हैं। ऐसी ऐसी मिलाव और भूलके कारण कबीरपंथी साहित्यकी निन्दा होती है। किन्तु बुद्धिमानों को विचार पूर्वकही उसे ग्रहण त्याग करना चाहिये।

मन में शाह तब ऐसा जाना । यह दुर्वेश है खुदा समाना ॥
बार बार मोहि आनि चिताई । सोइ दुर्वेश आप है साँई ॥
तब अपने दिल कीन्ह विचारा । इनसे कारज होय हमारा ॥
जो यह कहे सोई चित दीजे । इनका वचन मान शिर लीजे ॥
इतना शाह मन करत अन्देशा । नहिं वहँ कुत्ता नहिं दुर्वेशा ॥
तबहि शाह मन कीन विचारा । निश्चय है यह सिर्जन हारा ॥
साखी–कहे शाह अबकी मिले, पुरवे मनकी आस ॥
कदमें शिरै छुआवहूँ, पलक न छाडूँ पास ॥

चौपाई

बन ते शाह नगर में जाई । मन जिन्दा में रहा समाई ॥

जिन्दा वचन

गुप्त रूप तब शब्द उचारा । इब्राहिम सुनु वचन हमारा ॥
नाहक जिव तुम मारि उडाई । तैसा हाल तुम्हारा भाई ॥
जाहि समय इजराइल[1] ऐहें । महा भयंकर रूप दिखैहें ॥
हनिहैं मुगदर धरिहैं चोटी । उठै अगिन तब बोटी बोटी ॥
ताहि समय पुनि करिहो रोरा । काम न आवे सेन करोरा ॥
मारत पंछी दरद न आई । एक दिन ऐसा तुम पर भाई ॥
बैन सुनत मुरछित मन माहीं । गुप्त भये पछताने ताहीं ॥
कहे शाह खोजो तेहि जायी । जिन ऐसी मुहि बात सुनायी ॥
खोजि थके पुनि मुहि नहिं पाये । मुरछित शाह भवन चलि आये ॥
तबहि शाह मन ज्ञान समाना । जिन्दा बचन सांच कर माना ॥
राज पाट सुख सम्पति देहा । यह सब दीखत स्वप्न सनेहा ॥
ज्ञान दृष्टि दिलमें जब आही । छोडेउ तख्त तबे बादशाही ॥

---

१ मुसलमानी धर्मके विश्वासके अनुसार इजराइल एक फिरिश्ता है जो सब प्राणियोंके आत्माको शरीरसे अलग करता है तब मृत्यु होती है ।

होय फकीर जंगल कियो बासा । राज काज की छाडी आसा ॥
सबही लोग नगर के आये । आइ शाह के लागे पाये ॥
काजी वजीर औ शेखमुलाना । महन्त महावत नफर गुलामा ॥
लागे सबही शाह के पाई । सबहि मिलि के विन्ती लाई ॥
ऐसी बात न कीजे साई । तुम विन यह परजा दुःख पाई ॥
जो तुम तख्त न बैठो राजा । सब परजा को होत अकाजा ॥
राजा से परजा सुख पावे । जहां तहां आनन्द रहावे ॥

सुलतान वचन

कहे सुलतान सुनो रे भाई । हमतो तख्त के निकट न जाई ॥
ना हम पावँ तख्त पर लावें । ना अपने शिर भार चढावें ॥
अब हम तख्त न बैठें आई । बैठें तख्त सो नरकहिं जाई ॥
अब हम राज तजी बादशाही । यम की मार सही नहिं जाही ॥
भक्ति विना जिव मुक्ति न पावे । राज करे सो नरकहिं जावे ॥
हमको आज मिले यक साई । सो साहिब ऐसी फरमाई ॥
मैं अपराधी उन्हे न च।न्हा । अधविच छोडि सो मोको दीन्हा ॥
अब हम करिहैं कौन उपाई । वह अवसर मुझको कब आई ॥

प्रजा वचन

प्रजा कहे सुनो हो साई । अब तुम चलो महल के माई ॥
जो तुम राज छाडि बन जैहो । तो सब संग तुम्हारे ऐहों ॥
साखी–यहां रहन को छोडि के, तुम सँग करिहैं प्यान ॥
ऐसे वचन प्रजा कहि, लाये गृह सुलतान ॥

चौपाई

जब आये शाह महल मँझारा । उठी बिरह मन माहिं अपारा ॥
अबमैं किस विधि जिन्दा पाऊँ । उन बिनु होय न मोर बचाऊँ ॥
यह सब लोक अहै संसारा । नरक कुंड में डारनहारा ॥

ऐसी करुणा भयि दिल माहीं । जिन्दा महल मिले केहिं ठाहीं॥
भयी शाह मन विरह अपारा । जिन्दा जिन्दा करइ पुकारा ॥
साखी-उन मनमें मुझको मिले, नाम न दिया बताय ॥
ईब्राहीम सुलतानको, भयो मिलनको भाय ॥

चौपाई

मुर्छित शाह मन चलि आवा । मनमें जिन्दा आनि बसावा ॥
थोडे दिन विरहा अधिकाई । फिरतो धरम जाल फैलाई ॥
माहिं पुनि राज तहँ सुख पाये । माया मोह देखि ललचाये ॥
गया ज्ञान सुखे में लपटाना । काल शाह घट आनि समाना॥
उरझे शाह स्वाद सुख रंगा । देखि रंग मन बहुत उमंगा ॥
पुनि कछु दिवस जो ऐसे बीता ।बिसरे शाह अल्लाहकी चिन्ता ॥
ऐसी चाल देखि हम राही । राज न छोडे लोभ मनमाही ॥
तब हम रूप जो कीन खवासा । जेहि ते तख्त की छाडे आशा॥
जैसा जिव तैसा तन धारा । कोइ विधि जिय उतारूँ पारा ॥
चतुर सहेली रूप अपारा । शोभा अंग अंग अधिकारा॥
होय खवास बागमें जायी । फूल लाय रचि सेज विछायी ॥
बहु विधि फूलन सेज विछावें । जहां शाह पौढन निज जावें॥
ऐसहि करत बहुत दिन गयऊ । तब हम एक अचम्भा कियऊ॥
एक दिवस चित ऐसी आयी । ताहि सेज हम पौढे जायी ॥
रूप खवासिन तहँ हम कीन्हा । घडी एक पौढी सुख लीन्हा ॥
आये महल सेज ढिग शाहा । पौढि सहेली करे सुखलाहा ॥
इब्राहीम देखत रिसियाना । मनमाहीं बहुते खिसिआना ॥
हमरी सेज आई पौढाना । हमरी त्रास तनिक नहिं माना॥
हांक मारि तिहि टेरि जगायी । देखत शाह मन क्रोध समाई ॥
शाह कहे क्यों पौढी नारी । बढ्यो क्रोध तब ताजन मारी॥

*छन्द—हुकुम कीन शाह तन छीन लाव ताजन मारिये ॥
ताहि पीछे शीश उतारो पकडि भुजा फटकारिये ॥
मारन लागेउ शाह तेही खन हम कौतुक कीन्हे ॥
हँसी सहेली रोवे नहीं त्रास अतिशय तेहि दीन्हे ॥
सोरठा-बूझे तेहि सुलतान, मैं मारी तैं क्यों हँसी ॥
कहो साँची सहि दान, कहो सत ना कुम्हलाय मुख ॥

चौपाई

बहुत क्रोध करि मारा जबही । बहुतै हँसी सहेली तबही ॥
हँसत सुलतान अचम्भा कीना । निकट बुलाय पूछि तब लीना॥
निकट बुलाय आप सुलताना । बखश्यो चूक करयो जित्रदाना॥

सुलतान वचन

यह तुम मोहि कहो समझायी । मारत तोहि हँसी क्यों आयी ॥
सच सच बात कहो निःशंका । तुमतो जनि मानो हमारी शंका॥

सहेलीवचन--चौपाई

तबहि सहेली करे बखाना । सुनो शाह तुम चतुर सुजाना॥
एक घडी सुख हम जो लीना । ता कारण इतना दुःख दीना ॥

---

* इस छन्द और उमके नीचेके सोरठाका पुरानी प्रतियोंमें गन्ध भी नहीं है । वरन् आगेसे जो चौपाई चली हैं उसका ऊपरकी चौपाईके साथ सम्बन्ध है । यह छन्द और सोरठा किसी महात्माने वैरागके जोशमें आकर लिखमारा है किन्तु कविताकी कैसी मिट्टी खराबकी है उसकी बात पाठक छन्द और सोरठासे समझ जायँगे । देखिये सोरठाके प्रथम दोनों चरण तेरह २ मात्रासे पूर्ण हैं और तीसरे चरणमें भी १३ मात्रा हैं और चौथेमें पन्द्रह । कहाँ तक कहें इसी प्रकारसे उत्तरोत्तर भट्टाचार्य्योंने ग्रन्थोंके बिगाडनेमें ऐसा भाग लिया है कि; जिससे कबीरपन्थकी साहित्य मृतप्राय होरही है । मुझे सब ग्रन्थोंके शोधनेमें कैसी २ कठिनाइयाँ उठानी पडती है मैं ही जानता हूँ तिसपर भी मुझे कहाँ तक सफलता हुई है पाठक स्वयम् समझ सकते हैं । वर्तमानमें यद्यपि कुछ कुछ विद्याकी ओर झुकाव कबीर पंथियोंको हो रहा है तथापि अभीतक दो चारी को छोड़कर कोई भी ऐसा कबीरपन्थी नहीं है जो अपना कलंक और अपना विचार कबीर साहब कबीरपन्थी साहित्यके वे मत्थे न थोपता हो ।

सदा सर्वदा जो सुख करई । तापर मार किती सो परई ॥
कहा करूँ मोहि रही न जायी । ता कारण मोहि हाँसी आयी ॥
उमर भरे सुख कीना ऐसा । ताका हाल होयगा कैसा ॥
या कारण हँसी हम शाहा । कीजे जो तुम्हारे दिल चाहा ॥
राज करइ बहुतै सुख पावे । तन छूटे चौरासी जावे ॥
चौराशीमें है कष्ट अपारा । बिना नाम नहिं होय उबारा ॥
आखिर खाक होय तन तेरा । वचन मानि ले यह अब मेरा ॥
कहा तख्त शज्या सुख पाओ । राह खुदा में चित्त लगाओ ॥
देह मिलेगी खाक तुम्हारी । चतुर सहेली कहे विचारी ॥
सांची राह गहो तुम शाहा । जन्म पाय कछु लागो लाहा ॥
सतगुरु मिले तो भेद बतावै । जाते जीव मुक्ति घर पावे ॥
तहां जाय जिव करे अनन्दा । जनम जनम का मिटे सब फन्दा ॥

साखी * सद्गुरु भेद जो पावई, होय मुक्ति घर बास ॥
जन्म मरन फन्दा मिटे, तब सुख पावें दास ॥

चौपाई

वचन सुन्यो जब शाह सुजाना । तब कछु दिल में उपज्यो ज्ञाना ॥
तेरा वचन सही सुनु नारी । सब सुख छाँड़ि अल्लाह चित धारी ॥
शाह विचार कीन मन तबहीं । निकसि जाउँ जंगल बिच अबहीं ॥
कहे सहेली सुनु सुलताना । दिलमें धरो अल्लाह को ध्याना ॥
जंगल बडा जेरी जिन देही । हवा हिर्स तजु निज मति एही ॥
नेकी करो बदी तुम छाँडो । दया मिहर दिल अपने माडो ॥
परमारथ पर सब कछु वारो । पाक जात अल्लाह चित धारो ॥
सुनत वचन लागा चित घाऊ । शाह वचन सुनि लागे पाऊ ॥
कहे सहेली ज्ञान अपारा । जो दिल धरो तो उतरो पारा ॥

---

* यह साखी भी पुरानी प्रतियोंमें नहीं है ।

❀सुनि कर शाह अचम्भा भयऊ। ऐसो वचन कबही नहिं कहेऊ ॥
भयो ज्ञान शाह सुनि वानी। काल कला फिर आनि समानी॥
अरुझे शाह स्वाद सुख पायी। भयो मगन मन अति ललचायी॥

साखी–सखी सहेली सँग लिये, करत रंग अरु राग ॥
बिसरे ज्ञान विचार सब, मोह बान उर लाग ॥

चौपाई

यक दिन शाह सेजहीं सोया। तोशक झूल विछौना जोया ॥
देह उष्ण छेइ अवसर ताही। नींद न आवे बहुत सिसाही ॥
कोई सखि पंखा पवन ढुरावे। कोइ चन्दन घसि अङ्ग लगावे॥
तबहू नींद न आवे शाहा। बहु व्याकुल अति तन भइ दाहा॥
एक चरित्र तहां हम कीना। साखी रूप धरि दर्शन दीना ॥
सुबुधि सखी जोरे दोइ पाना। सुनिये एक अरज सुलताना ॥
कहूँ वचन परमारथ जानो। सुनत क्रोध दिल जो नहिं आनो ॥
यह तन पाय बहुत सुख कीना। कबहू धनी नहीं दिल दीना ॥
जिन साहिब यह देह बनावा। तख्त सेज सुख राज करावा ॥
कोठा कोट अमीरी भारी। गज औ तुरंग हरष संग नारी॥
ऐसा साहिब क्यों विसराये। राग रंग चित अति हरषाये ॥
जब वह साहिब कोप कराई। तेहि समय को होय सहाई ॥

साखी–साहिब रीझे जेहि समय, देइ विहिश्त को वास ॥
मालिक मेटे पलक में, करइ राज सुख नाश ॥

चौपाई

आखिर देह मिलेगी खाका। साहिब नेह करि होऊ पाका ॥
बचन सुनत चित गहबर भयऊ। आंसू बहुत चक्षु ते गयऊ ॥

---

१ इस चौपाईसे लेकर आगे जिस चौपाईके अन्तमें इसी प्रकारका फूल दिया है वहाँ तक पुरानी प्रतियोंमें नहीं है।

तबहि शाह दिल अपने जाना । नारी में अस होय न ज्ञाना ॥
यह तो मुर्शिद मालिक मेरा । धरचो रूप इन नारी केरा ॥
तबहि शाह दिलमाहि बिचारा । हम कारण इन यह तन धारा ॥
जो यह कहे मानि शिर लीजे । जाते कारज अपना कीजे ॥
अब मैं वचन मानि शिर लेऊँ । चरण कमल में मस्तक देऊँ ॥
हम पुनि गुप्त भये तेहि थाना । देखत शाह बहुत अकुलाना ॥
कहे शाह कही अस बाता । घाव अचानक किये मुहि जाता ॥
कछु दिन शाह विरहमें रहेऊ । बहुरि शाह दिल मोह सो गहेऊ ॥
तब दिन एक श्वान यक आवा । जाके शीस माहि बड घावा ॥
कीन माथ देह भरि जाही । कलबल करि व्याकुल तनताही ॥
श्वान बिकल डोले चहुँ ओरा । आयो शाह ढिग तबही दोरा ॥
सखी सहेली मारन धायी । शाह श्वान कहँ लीन बुलायी ॥
कहे श्वान सुनु शाह सुजाना । हमहूँ रहे बडे सुलताना ॥
सुख सम्पति पुनि तिरियारंगा । जीव सतावे बहुत अस अंगा ॥
सोना रूप कटक गज बाजा । अंत समय कोइ आवे न काजा ॥

साखी–मातु पिता सुत बाँधव, औरौ दुलहिन नारि ।
अंत समय सब बिछुरई, यह शोभा दिन चारि ॥

चौपाई

प्यासे जल नागे पट दीजै । भूके नाज मिहर दिल कीजै ॥
जैसी परी आप कहँ जानो । तैसी सकल जीव पहिचानो ॥
हवा हिर्स तन साधो भाई । साधो पीर मिटै दुचिताई ॥
इतना कही श्वान उठि धाया । सखी सहेली मोह लगाया ॥
पुनि हम कहा गैब की बानी । सुनहि शाह सह सखी सयानी ॥

आकाश बानी

यह नर नरकहि फेर बनाया । तुम तो बहुत नरक मन लाया ॥
सखी सहेली काम न आवे । जबही धरि यम आनि सतावे ॥

तात मात सुत नारि खजाना । काम न आवे सब बिलगाना ॥
झूंठे करें खुशामद तेरा । बांधे यम तब देख घमेरा ॥
उठि अकुलाय शाह चित लागा । देखे नहीं उपजे अनुरागा ॥
दया मिहर घट आन समाना । छोडे जीव घात अभिमाना ॥
पीर शाह के घटहि समायी । भूखे नंगे सब दीन बुलायी ॥
मनमां कहे करो सो पीरा । जिन दिन्ह मोही चेत शरीरा॥
प्रेमविरह निशिदिन चित लागा । अहक नाम सुमिरन अनुरागा ॥
जेहि दिवस छूटे मम जामा । झूठा सुख नहि आवे कामा ॥
यक दिन शाह किये अशवारी । बलख शहर देखा निरुवारी ॥
कहवाँ देखों पीर सुजाना । जिन मुहि कहा भेद निर्वाना ॥
डेरा सहित सखी रंग सैना । चले बेगि चित नाहिं न चैना॥
बैठा एक ऊँट तजि प्राना । पहुँचे आप तहाँ सुलताना ॥
देखि ऊँट दिल भये उदासा । रोवे बहुत विकल धरि स्वासा॥
ऐसी गति यक दिवस हमारी । अपने मन में यही विचारी ॥
माया मोह अहै जंजाला । दिना चार का झूठा ख्याला॥
इब्राहीम कह्यो गोहराई । जाहु सबें अपने घर भाई ॥

* छंद–गजसे उतरी ठाढे भये सब दिये भूषण डारिहो ॥
चोला पहिर शिर ताज दे तब चले निर्धार हो ॥
सेना सकल विलखित वदन सब करहीं शोर सहेलियाँ॥
मम खबर लय को सखी शिर कूटि मरहिं सहेलियाँ॥

सोरठा–घेरि राह सब लोग, कोइ न छोडहिं शाहको ॥
ऐसे सबको सोग, पुत्र मरे जिमि विकल जग ॥

---

* पुरानी प्रतियोंमें समस्त ग्रन्थभरमें छन्दका गन्ध भी नहीं है किन्तु नयी प्रतियोंमें ये बेतुकी छन्द कई मिलते हैं। इसी प्रकारसे कई सोरठे और दोहे (साखी) को भी पाया है। पुरानी प्रतियोंमें तो यह है ही नहीं हैं किन्तु नई प्रतियोंमें एकदम बेतुक हैं।

छन्द-कहे शाहको समझ दिल हमरी खबर को लेइगा ॥
सब माहि दाता सबनको सो सबन भक्षण देइगा ॥
मां के रहे शिकंम में तहाँ को खबर जग लेत है ॥
जल थल है घट सकल पूरण जो जहाँ तहँ देत है ॥
सोरठा-साझ कहे भोरे एक हन, सुनत दिन बीति गये ॥
शाह दिये नहिं चैन, पिछले पहर उठि चले ॥

चौपाई

निकलत शाह कोइ नहिं जाना । उठि चल्यो जंगल कहँ सुलताना॥
नंगे पावँ पनही नहिं लीना । ऐसे शाह धनी दिल दीना ॥
स्वाद सलाह तजी सुख गेहा । राजपाट जान्यो सब खेहा ॥
साखी-सोलहसै सहेलियाँ, तुरी अठारह लख ॥
साई तेरे कारणे, छोडा शहरबलख ॥

चौपाई

सकल छोडि के भये फकीरा । लागे विरह बान गंभीरा ॥
पिव कारण तज्यो सब आशा । जगत नेह तजि भये उदासा ॥
शाह निपट बहुतहि सुकुमारा । तिन सुख तजि गह्यो दुःखपारा॥
क्षुधा लगे कोइ जांचे नाहीं । गहि संतोष रहे मन माहीं ॥
छन्द-पाँव छाले पडि गये चलि पंथ पग थहरावई ॥
कोइ संग आगे पाछे नाहीं धूप लगे कुम्हलावई ॥
अन्न बिना दिन तीन बीते हरष शोक नहिं चित गहे ॥
शाह निशि दिन अति विरागी नाम अबिचल पद चहे ॥

---

१ पेट । २ वर्तमानके अथवा इसके थोडे दिन प्रथमके परम भक्त महात्माओंके विद्वत्ताके नमूनेके लिये यह सोरठा जैसाका तैसा रक्खा हो ।

२ पुरानी प्रतियोंमें इसी साखीसे पुस्तककी समाप्ति होती है किन्तु इसके प्रथम बहुत कुछ विषय है सो इस पुस्तकमें आगे आवेगा इस नोटमें इस विषयमें विशेष नहीं लिखा जा सकाता ग्रन्थके अन्तमें "ग्रन्थ विवेचन" नामक हेडिंगके नीचे लिखा जायगा ।

सोरठा–तब साइब कछु दीन, रूखा सूखा टूकडा ॥
शीस नायके लीन, खरी कसौटी नामकी ॥

चौपाई

कछु भायो कछु औरहि दीना । मनमें नाहिं गुनावन कीना ॥
जो मुख पांचो अमृत पावत । सो मुख सूखा टुकडा खावत ॥
आसन वासन अभूषण नाना । सो सब तजे भूरि मनमाना ॥
जेहि लागी तिन ऐसी कीन्हा । कहे कबीर प्रेम मन चीन्हा ॥
प्रेम गली अति सांकरि भाई । राई दशवां भाग रहाई ॥
मनअहिरावत किस विधि जावे । विरले सत कोइ मारग पावे ॥

साखी–प्रेम बन्ध अति दुर्लभ, सब कोइ सके न जाय ॥
चढना मोम तुरंग पर, चलना पावक माय ॥

छन्द–मिही सुई को नाको जिमि तिमि इश्क मारग ठानिया ॥
ताही ते कोउ झीनि होइ के प्रेम अगम गम जानिया ॥
जिन करि फना मरो आपको सो लहें सुखको धामहो ॥
कहें कबीर आप जहां तहां नहिं मिलत अराम हो ॥

सोरठा–मन महँ शाह उदास, कबहुंक दरश मैं पाइहौ ॥
पुरवहिं मोरी आस, प्रगट रूप जब देखिहौं ॥

जबहि शाह घट विरह समायी । दोय कर जोरिके बिन्ती लायी ॥
दीन दयाल दया अब कीजे । अपना दर्शन मोको दीजे ॥
शब्द स्वरूप रहिरूप छिपाओ । प्रकटरूप मुहिदरश दिखाओ ॥[1]
जब हम लगन शाह घट चीन्हा । तब हम रूप प्रकट तहँ कीन्हा ॥

---

१ पुरानी प्रतियोंमे यह चौपाई इस प्रकार है :
नारि रूप तुम लेउ छिपाई । पुरुष रूप धरि दरश दिखाई ॥
और इसका सम्बन्ध उस कथासे है जहाँ सहेली बादशाहके सेजपर सो गयी है और उसे मार पडा है। पर जब सखीने बादशाहको समझाया है तब बादशाह अपने मनमे विचारने लगा है कि ।

धन्यो स्वरूप अंग उजियारा । जगमग ज्योति तेज चमकारा ॥
उठत सुगन्ध अंग बहुताई । परिमल बास महेके सब ठाई ॥
बहुत कान्ति दीसे उजियारा । देखि शाह भये हर्ष अपारा ॥
तबही शाह चरण लपटाये । दोइ कर जोरिके विन्ती लाये ॥
धन्य भाग मुहि दर्शन दीना । पतित जीव पावन करि लीना ॥
लगे शाह सतगुरु के चरना । अब मुहि राखो साहब शरना ॥
धन्य धन्य तुम आपु गुसाई । आपन भेद कहो समझाई ॥
कहँ तुम रहौ कहांते आये । वह सब गम्य कहो समझाये ॥
साहिब अपना नाम बताओ । अपना जानि जीव मुकताओ ॥
अबतो यह कला जानि हम पायी । साहिब हमको दरश दिखाई ॥
तुम विनु दया करे को ऐसा । जनम मरनका मेटे संसा ॥
अब मुहिमुर्शिद भेद बताओ । तुम साहिब हम बन्दा आओ ॥

कबीर वचन

कहे कबीर सुनो चित लाये । अमर लोकते हम चलि आये ॥
नाम कबीर हमारा होई । हंस उबारन आये सोई ॥

---

चौपाई

कहे सहेली ज्ञान अपारा । जो दिल धारो तो उतरो पारा ॥
तबै शाह दिल अपने जाना । नारीमें अस होय न ज्ञाना ॥
यह तो है खुद साहिब मेरा । धरा रूप इन ख्वासिन केरा ॥
तबै शाह दिल माहि विचारा । हम कारन इतना तन धारा ॥
जो यह कहे मानि सो लीजै । जाते काज आपनो कीजै ॥
जो मैं वचन मानि शिर लेऊँ । चरण कमलमें मस्तक देऊँ ॥
जबै शाह घट प्रेम समायी । दोय कर जोरि उन विन्ती लायी ॥
धन्य भाग मुहि दर्शन दीना । पतित जीव पावन करि लीना ॥
शाह लगे सतगुरुके चरना । अब मुहि साहिब राखो शरणा ॥
दीन दयाल दया अब कीजे । अपना दर्शन मोकहँ दीजे ॥
नारि रूप तुम लेहु छिपायी । पुरुष रूप धरि दरश दिखायी ॥
इसके आगे जो पुरानी प्रतियों में आयी है सो यहाँ भी वही बात आयी है ।

जो जिव माने शब्द हमारा । सो जिव उतरे भौजल पारा ॥
तबही शाह भये आधीना । शिर लेइ चरण कमल में दीना ॥
चरण पखारि चरणामृत लीन्हा । प्रेम भाव सतगुरु कहँ चीन्हा ॥

सुलतान वचन

अब कीजे मम साहिब काजा । जाते नहिं छेडे यम राजा ॥
सोई नाम मुहि देहु बतायी । जाते जीव अमर घर पायी ॥

कबीर वचन

कहें कवीर मुक्ति तब पावे । सुरति निरति ले शब्द समावे ॥
उन्मुनि ध्यान रहो लौ लाई । अजपा जपो सदा दिल भाई ॥
निशि दिन मनुवा अस्थिर राखो । नाम अमीरस रसना चाखो ॥
नाम प्रताप मुक्ति जिव पावे । जनम मरणको दुःख मिटावे ॥
गहौ नाम सत्य लोक सिधावो । तहां जाय बहुते सुख पावो ॥
वहि घर हंसा करई आनन्दा । काटे कर्म कालको फन्दा ॥
बहुविधि शोभा रूप अनूपा । षोडश रवि सो हँसको रूपा ॥
किया चहो तुम अपनो काजो * । यम तृण तोरि आरती साजो ॥
सहज चौका करि दीनो पाना । यमका बन्धन हृदय उठाना ॥
अमर अंक जो परवाना पावे । काल कला तजि लोक सिधावे ॥
प्रथम पान परवाना लेई । पीछे सार शब्द तेहि देई ॥
तब सतगुरुने अलख लखाया । करि परतीत परम पद पाया ॥
ऐसी रहनी गहे जो कोई । सत गुरु पद पावे नर सोई ॥
तन मन धनका मोह बिसारे । सो हंसा सत्य लोक सिधारे ॥
सोरठा—शाह किये तन खाक, अपने पिव के कारने ॥
खाक मिली भये पाक, आदमते भये औलिया ॥

---

* इस आधी चौपाई तक तो पुरानी प्रतिके अनुसार है । इसके प्रथम जो गडबड है वह वहाँ टिप्पणियों द्वारा दिखलायी चुका हूँ । अब यहाँसे जो गडबड है सो नवीन प्रति की पंक्ति पूरी हो जानेपर ऐसी फूटके चिन्हके साथ उसे भी देदूंगा ।

सुनो धर्मदास सुजान, शाह भये जीवन मुक्त ॥
पद पाये निर्वान, शब्द परखि करनी किये ॥

चौपाई

धरमदास चित अति हर्षाये । प्रभुलीला तुव वरणि न जाये ॥
शाह काज धारे प्रभु रूपा । सखी नाम धर कला अनूपा ॥
अमितकला जीवन सुख दाता । भव बूडत राखे शठ त्राता ॥
अधम उधारण नाम तुम्हारा । बहुत जीव कीने भव पारा ॥
महा नेह तुव चरण लगावा । यश रह्यो और परम पद पावा ॥
साखी–सत्य कबीर समरथ धनी, दोऊ दीन के ईश ॥
सुयश सुन्यो सुलतान को, धर्मनि नायो शीश ॥

नवीन प्रतियोंमें पुस्तक यहां आकर समाप्त होती है किन्तु पुरानी प्रतियोंमें ७३२–२८ पृष्ठके पंक्ति की आधी चौपाई "किया चहो तुम आपनो काजो" के आगे की बाणी उपर्युक्त नवीन प्रतिसे एकदम विरुद्ध नीचे लिखे अनुसार है ।

और नवीन प्रतिसे पुरानी प्रतिके अंतके एक समान न मिलनेका कारण उसे पृष्ठकी टिप्पणीमें दे दिया है । और विशेष वृत्तान्त पुस्तककी समाप्तिमें देंगे ।

चौपाई

किया चाहो तुम आपना काजू । तुम्हारौ राज छोडिदो आजू ॥
सतगुरु नाम गहो विश्वासा । जाते मिटत कालको त्रासा ॥
यहि सुनि शाह तख्त तब छाडा । प्रकटे ज्ञान हिया गुण बाडा ॥
तब सतगुरुने अलख लखाया । करी प्रतीति परम पद पाया ॥
साखी–सोलह सै सहेलियां, तुरी अठारह लख ।
साई केरे कारणे, छोडा शहरबलख ॥

इति

---

यह साखी एक स्थान में और भी आगयी है ।

# ग्रन्थ विवेचन

इस ग्रंथकी कई प्रतियाँ मेरे पास उपस्थित हैं जिनमेंसे कोई पुरानी सौ बर्षसे अधिक की लिखी हुई भी हैं किन्तु पुरानी प्रति की अपेक्षा उत्तरोत्तर २ जैसे २ नवीन पुस्तक लिखी गयी है सबमें कुछ वृद्धि और प्रसंगका उलट फेर और छन्दोभंग का समावेश होता गया है नवीन प्रतियोंके अन्तमें कई पुस्तकोंमें किसी किसी महात्माओंने अपना नाम लिखकर अपने को पुस्तकका कर्ता सिद्ध करना चाहा है। चाहा तो सब कुछ है किन्तु लिखते लिखते दोहा और सोरठा भी शुद्ध नहीं लिख सके हैं। सबसे जो पुरानी प्रति मेरे पास मौजूद है वह नवीन सब प्रतियोंसे अधिक शुद्ध और छोटी है और उसका आरम्भ भी "बलख शहर एक अनूपा" से होता है ठीक उसके उलटा नवीन प्रतियोंका आरम्भ "धर्मदास उठि विन्ती लाई" से होता है। इसी प्रकारसे पुरानी प्रतियोंकी अपेक्षा नवीन प्रतियों के मध्य मध्यमें अधिक कथाएँ इतनी मिलाई गयी हैं कि, पुस्तक डेवढी हो गयी है। इतनीही नहीं है कि विषय बढाया गया है किन्तु साथ ही साथ थोडे २ वचन किसीमें एक दोहा किसीमें एक छन्द ( जो सब अशुद्ध हैं) बढाकर बढाने वाले महाशय ग्रन्थके कर्ता बन गये हैं यद्यपि मैंने इस पुस्तक को सब प्रतियोंके अनुसार ठीक कर दिया है तथापि जहां २ विषयों को उलट फेर अथवा घटाव बढ़ाव हुआ है वहां टिप्पणी देदी है। इस ग्रन्थकी पुरानी प्रतिमें कबीर पंथकी अन्य ग्रंथों के समान किसी कर्ताका नाम तो है नहीं किन्तु नवीन प्रतियोंमें कई कर्ताओंका नाम. इससे किसी एक कर्ताका नाम निश्चय करनेमें अशक्ति होकर मैंने किसीका नाम

नहीं दिया है और यथार्थ में हैही यही बात कि कबीरपंथ की जैसी और पुस्तकोंमें कर्ताका नाम नहीं है किन्तु वह कबीरपंथी पुस्तक कहलाती है और कबीर साहब तथा धर्मदास साहबके सम्बादमें लिखी गयी हैं ॥

इस पुस्तकके अतिरिक्त और भी निर्भयज्ञान आदि अनेक पुस्तकोंमें सुलतान इब्राहीम अद्धमके विषयमें बहुत कुछ बात आयी है जिनमें परस्पर बहुतही भेद हैं और कितने विषय ऐसे हैं जो एकमें हैं और दूसरेमें नहीं हैं। इस कारण शाह इब्राहीम अद्धम साहेबका वृत्तान्त गद्यमें संक्षेप लिख देता हूँ क्योंकि विस्तारसे लिखनेके लिये एक स्वतंत्र पुस्तक लिखनेका विचार है।

# सुलतान शाह इब्राहीम अद्धम साहिबका संक्षेप चरित्र

### उत्पत्ति

इस सुलतान इब्राहीम शाहके पिताका नाम अद्धम शाह था। आप संसार त्यागी फकीर थे। अपनी फकीरी और तपस्यामें पूरे थे। वस्तीसे सदा अलग रहते थे। प्रारब्धसे जो कन्द, मूल, फल अथवा नाज मिल जाता था उसी पर अपना समय बिताते थे किन्तु कभी एक स्थानमें जमकर नहीं रहते थे। कभी उनने घर नहीं बांधा। कहा भी है कि,

साखी–बहता पानी निर्मला, बन्धा गन्दा होय।
साधू जन रमते भले, दाग न लागे कोय ॥

कुछ समय तक तो ऐसेही निःसंग फिरते रहे। फिरते फिरते एक बार बलख शहरमें पहुंचे। ठहरनेके लिये तो शहरसे दूर उन्होंने जंगलमें निश्चय किया किन्तु नित्य शहरमें फिरनेके

लिये जाया करते। एक दिन संयोगसे बलखके बादशाहकी लड़की को देख लिया। अब तो ज्ञान ध्यान सब वैराग भूल गया। उस शाहजादी पर उनका मन ऐसा आसक्त हुआ कि, उसीके विरहमें दिन रात फिरने लगे। अन्तमें उसके मिलनेका कोई उपाय न देखकर स्वयम् उन्होंने बादशाहके पास जाकर अपने विवाहके लिये प्रार्थना की। उनकी प्रार्थना को सुनकर बादशाह तो सन्न होगया। वह शोचने लगा कि, ऐसे फकीर भीख मांगतेको कन्या देकर उसे दुखसागरमें डुबाना है। बादशाहने ऐसा मनही मन विचार तो किया किन्तु आस्तिक होनेके कारणसे दुर्वेशकी बददुआ ( शाप ) से डरकर कुछ बोल नहीं सका और उसने दूसरे दिन फिर उन्हें आनेको कहा। उनके चले जानेपर बादशाह और वजीरने परस्पर विचार करके अद्धमशाहको टाल देनेका उपाय निश्चय किया और जब नियत समय पर अद्धमशाह बादशाहके पास पहुँचे तब वजीरने उनसे कहा कि, शाहजादीने अपने विवाहके लिये यह प्रतिज्ञा की है कि, नमूनेके अनुसार जो कोई दूसरा मोती ले आवेगा उसीके साथ वह व्याह करेगी। अद्धमशाहने वजीरको बहुत कुछ समझाया बुझाया गिडगिडाये रोये कल्पे किन्तु वजीरने एक भी न मानी। अन्तमें वजीरसे शपथ पूर्वक वचन लेकर वह मोतीकी खोज करनेको निकले और दो वर्षतक देश २ नगर २ ग्राम २ भटकते फिरे अन्तमें यह सुनकर कि मोती खारे समुद्रमें उत्पन्न होता है खारे समुद्रके किनारे पहुँचे वहां पहुँचकर उन्होंने अपने खप्परसे पानी भरकर रेतमें फेंकना आरम्भ किया, इस प्रकारसे पानी फेंकते फेंकते जब उन्हें चालीस दिन बीतगये तब परम दयालु सत्यपुरुषकी आज्ञासे सद्गुरु उनके निकट समुद्रतटपर पहुँचे। वहां पहुँचकर सद्गुरुने अद्धमशाहसे पूछा कि,

हे भाई! तू यह क्या कर रहा है? समुद्रके पानीको उचलनेसे तुझे क्या लाभ है? अद्धमशाह तो अपने काममें ऐसे मग्न थे कि, उन्हें कुछभी सुधि नहीं हुई कि, कौन मुझसे क्या पूछता है। जब सद्‌गुरुने कई बार पूछा और निकट जाकर उन्हें सचेत करके कहा कि, तुझे जो चाहिये मुझसे कह तेरेही लिये सत्य-पुरुषने मुझे तेरे पास भेजा है। सद्‌गुरुकी इतनी बातको सुनकर अद्धमशाहको कुछ चेत हुआ और उन्होंने अपना सब वृतान्त आदिसे अन्त तक सुनाकर सद्‌गुरुसे कहा कि, यदि सत्यपुरुषने कृपा की है और आप मेरे दुःखको दूर करने के लिये आये हैं तब मुझको वैसाही मोती जैसा शाहजादीने मांगा है दीजिये। अद्धम-शाहकी ऐसी इच्छाको सुनकर सद्‌गुरुने उन्हें समझाया कि, तू सच्चे साहिबका भजन कर जिसने तुझे और शाहजादी दोनोंको उत्पन्न किया है। सद्‌गुरुने बहुत कुछ ज्ञान और विवेक वैरागका अद्धमशाहको उपदेश किया किन्तु उन्होंने एक भी नहीं माना बरन उलटकर उन ने उत्तर दिया कि, मैं तो मोतीका मिलना और शाहजादीसे विवाह करनाही परम भजन समझता हूँ मुझे दूसरेसे कुछ सम्बंध नहीं है"?

फिर सद्‌गुरुने कहा समुद्रका पानी तू क्यों उचलता है? तब अद्धमशाहने उत्तर दिया कि, इसी प्रकार से उचलते उच-लते समुद्रको सुखा दूँगा और समुद्रके सूखनेपर मोती लेकर जाऊंगा तब शाहजादीसे विवाह करूंगा। सद्‌गुरुने हंसकर कहा कि, भला यह कब सम्भव है कि, तेरे उचलनेसे समुद्र सूख जाय और तू मोती पावे अद्धमशाहने उत्तर दिया कि, समुद्र सूखे या न सूखे जबतक दममें दम है तबतक मैं अपने कामसे

पीछा न फिरूंगा। इतना कहकर उसने कहा यदि सत्य-पुरुषने आपको मेरा दुख दूर करनेको भेजा है तो आप मुझे उसीजोडके मोती दीजिये। जब सद्गुरुने देखा कि, अद्धमशाह अपने निश्चयसे नहीं टलता है और उसको मोतीके सिवाय दूसरा कुछ नहीं सूझता है तब सद्गुरुने कहा कि, हे अद्धमशाह ! आंख बन्द कर। सद्गुरु की आज्ञाको पाकर अद्धमशाह आंख बन्द करके अन्तरमें सदगुरुका ध्यान करने लगे। उधर तो वह ध्यानमें मस्त थे इधर सद्गुरुकी आज्ञा पाकर समुद्र लहर मारा और हजारों सीप रेतमें डाल गया। लहरके हट जानेपर जब अद्धमशाहने आंख खोली तब क्या देखा कि, सहस्रों मोतीके सीपोंका ढेर लगा है मोतियों का ढेर तो पड़ा है किन्तु सद्गुरुका पता नहीं है फिर तो अद्धमशाहने मोती देखना आरम्भ किया। देखते २ वह ऐसे आश्चर्यमें फंसे कि, उन्हें यह निश्चय करना कठिन होगया कि, किसको लेवें और किसको न लेवें। अन्तमें चालीस बडे २ मोती चुनकर अपने कमरमें रक्षापूर्वक बांधकर रवाना हुए। चलते २ कुछ दिनोंमें जब बलखमें पहुँचे तब सीधे धडधडाते हुए बादशाहकी कचहरीमें पहुंचे। उस समय बादशाहकी कचहरी लगी हुई थी इनके पहुंच-तेही बादशाह और वजीर दोनोंकी दृष्टि उनपर पड़ी। देखतेही वजीर आग बगोला बन गया। वजीरके क्रोध करनेका कारण यह था कि, जिस समय अद्धमशाह और वजीरसे इस बात की प्रतिज्ञा हुई थी कि मोती लेकर आनेपर शाहजादीसे उनका विवाह करा दिया जायगा उसी समय वजीरने अद्धमशाहसे ऐसी प्रतिज्ञा ली थी कि, यदि मोती तुम न ला सको तो बलख शहरमें फिर

दुबारा नहीं आना। और यदि आओ तो तुम्हारी गर्दन मारी जाय। वजीरको अद्धमशाहसे ऐसी प्रतिज्ञा लेनेका यह आशय था कि; अद्धमशाहको जैसे फकीरको न मोती मिलेगा न वह फिर आयगा और न उसका विवाह शाहजादीसे होगा। यही कारण था कि, अद्धमशाहको देखतेही वजीरने क्रोध करके कहा कि, ओ अद्धम! तू अपनी प्रतिज्ञाको भूल कर फिर यहां आया है? इस कारण प्रतिज्ञाके अनुसार तेरा शिर धड़से अलग किया जायगा। वजीरके अहंकार भरे वचनको सुनकर अद्धमशाहने कहा ओ बेखबर तुझे क्या खबर है कि, प्रभुने तेरे नमूनेके मोतीसे भी बढकर बहुमूल्य इतने मोती मुझको दिये हैं कि, जितना तेरे संकल्प में भी नहीं आ सकता है। प्रभुने तो बहुत दिये थे किन्तु मैंने चालीस चुनकर ले लिये हैं। अद्धमशाहने इतना कहकर अपनी झोलीसे चालीसों मोती निकालकर बादशाहके मसनदपर गिनके पंक्ति लगाकर रख दिये। मोतियोंके निकलतेही चारों ओर उसका प्रकाश फैल गया। जौहरियों और परखियोंसे आश्चर्यमें आकर अबाक रहने के अतिरिक्त कुछ न बन पडा। बादशाहकी तो बुद्धिही ठिकाने न रही वह शोचने लगा कि, अब तो अवश्य शाहजादीका विवाह इसके साथ करदेना पडेगा। अन्तमें बादशाहने तो यह निश्चय किया कि, अब शाहजादी का विवाह उसी फकीरसे कर देना अच्छा है किन्तु राजदर्बार का काम है। राजनीतिके नियमानुसार बादशाह एकान्तमें जाकर अपने वजीर और–परिवारोंसे इस विषयमें विचार करने लगा कि, शाहजादीको अद्धमशाहसे विवाहना चाहिये कि नहीं, उस समय उसी वजीरने जिसने प्रथम बार प्रतिज्ञा कराकर अद्धमशाहको मोती लानेके लिये भेजा था उस

समय भी विघ्न डालने के लिये कहना आरम्भ किया।

पूछी फिर शाहने वजीरोंसे सलाह।
सब सागीरों कबीरोंसे सलाह॥
जो कि औवलमें हुआ था नेशजन।
फिर हुआ इस प्रकार वह बेखकुन॥
उक्दसे माना हुआ फिर वह वजीर।
क्योंकि था हर अमरमें शाहका मशीर॥
हीला व हुज्जत ब्याँ करने लगा।
नुक्ता औ ऐब उनके अयाँ करने लगा॥
कुबह कुछ उसने किये ऐसे बयाँ।
होगया खामोश वह शाहे जहाँ॥

उस वजीरने फित्ने जो गेफिर कहा। आपघरमें हूजियेरोनकाफिजा॥
अहदओपैमाँमुझसेहैदुर्वेशका । आपअन्देशानकीजेकुछजरा॥
सौंपिये यह काम मेरीरायपर। लाइये दिलमेंनकुछखौफोखतर॥
यादराखियेआपयहमेरीहदीस । इसकेहैताबाकोईजिन्नेखबीज॥
कअरसेदरियाके गोता मारकर। लादियेहैं उसने यह नादिरगोहर॥
यहकरामतपरनहींइसकी दलील। हैबनावटइसकी ऐशाहेजलील॥
ऐसे मरवादीदवरनः यह फकीर। लाताक्योंकरऐशहेआफाकागीर
हैनजरबन्दोमें भी यह दस्तगाह। गुर्दःनानको बना देते हैं माह॥
योंकियाहै इसने यह मकरोदगल। पासइसके हैकोईसिफलीअमल॥
संगरे जाजिससेआतेहों नजर। खल्ककीआँखोंमेंतताविन्दःगोहर॥
यह जोयोंरोशनतरअज खुर्शैदहैं। यह बनावटहीके मरवारीद हैं॥
मोतियोंमेंयहदरखशानीकहाँ। यह चमकयह नूरअफशानीकहाँ॥
अबकुछइसकोनसमझेजन्नबद । नूरताविन्दःहैमर्दुमकीखेरद॥
मुझको आता है नजरउसनूरसे। मकरवहीलाइसगदाकादूरसे॥

सादिकोबरहककहैयहकौलेलबीब । हैय्याने आदमी सिहरे अजीब ॥
बादशाहसुनकरयहतकरीरेवजीर। होगयादामेतवहुममें असीर ॥
करकेआखिरकारतफवीजेवजीर । बादशाहघरमेंहुआरौनकपजीर॥
कह गया उससेकितूमुखतारहै । नेकवबदकाइसकेतुझपरबारहै ॥
लैकबदअहदी है इन्दुल्लाहबद । है नतीजा ऐ खेरदआगाहबद ॥
किजियोकुछतदबीरऐसीवजीर । तंगजिससेहोनयहमर्दैफकीर ॥
घरमेंअपनेबादशाहदाखिलहुआरहगयाउसकावजीरऔरवहगदा॥

इस प्रकारसे बादशाहको समझा बुझाकर वजीरने महलमें भेज दिया । अब अद्धमशाह और वजीर रह गये तब वजीरने अद्धमशाहसे कहा-

उसको धमकाकर लगा कहने वजीर ।
क्या हुआ है तुझको ऐ मरद कफकीर ॥

तूजो यों गुस्ताखेकरतौहकलाम। बरमलालेताहैशहजादीकानाम॥
तुझकोहकुछअक्कभी ऐ बेहया । शहजादीवहहै तूमुफलिस गदा॥
नाम शहजादीका गरतूने लिया । होगाहरहरबन्दतेराजुदा ॥
काटकर तेगोंसे मैं तेरी जुबाँ । दारपर खींचूंगा तुझको बेगुमाँ ॥
जिस्तगर चाहे तो इश्तगफारकर । इसख्यालेखामसेअपने गुजर॥

वजीरकी धमकी और विश्वासघातकी बातको सुनकर अद्धमशाह बहुतही दुःखी हुए और फिर अपनेको सँभालकर वजीरसे कहने लगे-

जबसुनीअद्धमनेउसकीगुफ्तगू । बोलाऐबदअहदनासंजीदःखू ॥
भूलताहै उसखुदायपाकको । जिसने यह रुत्बःदिया है खाकको॥
तूनेवहजामिनदियाथा दरम्याँ । जिससेकायमैंहजमीनोआसमाँ॥
आलिमो दामा व दाराय जहाँ । कादिरे मुतलक शहे शाहनशाहाँ॥

---

जार इब्राहीमसे

क्या हुए वहअहदोंपैमा ऐ वजीर । कौलो एकरारेईमाँ ऐवजीर ॥
अहद करतेहैंवफाअपनाकरीम । किज्बवबदअहदीहैकिरदारेलईम॥
उक्दउसकागरमुझसेकरनानथा । अहदक्योंतूनेकियाऐबेवफ़ा ॥

अद्धमशाहने वजीरसे कहा यदि तुझको अपनी प्रतिज्ञा पूरी करनीही नहीं थी तो तूने मुझसे प्रतिज्ञा करके और मुझसे प्रतिज्ञा कराके दो वर्ष तक मुझे क्यों भटकाया । देख तूने ईश्वरको साक्षी रखकर प्रतिज्ञा की और करायी थी अब विश्वासघात मत कर इस विश्वासघातकाफल अच्छा न होगा । देख ! आज उच्च पदवी को पहुंचा है तो फकीरों और दीन दुखियोंको इस प्रकार दुःख देता है, विचार कर ! किसीका अभिमान आजतक नहीं रहा है । इस संसारमें आकर मायाके चमक दमकमें पडकर जिस जिसने गर्व किया है सबका गर्व टूटा है किसीका गर्व भी रहा नहीं है । अब तू विश्वासघात मत कर और जिस प्रकार मैंने अपनी प्रतिज्ञा पूरी की है उसी प्रकार तू भी अपना वचन रख । इसी प्रकारसे परस्पर अनेक प्रकारकी नोक झोंककी बातें होनेके पश्चात् वजीर बहुत क्रोधित हुआ और उसने अपने नौकरोंको आज्ञा दी कि, अद्धमशाहको इतना मारो कि, यह जीता न बचे। फिर क्या था वजीरकी आज्ञाको पाकर निर्दयी नौकर चारों ओरसे टूट पडे । किसी ने लकडी उठायी तो किसीने कोडा लिया । संक्षेपतः यह कि, जिसको जो मिला उसने वही ले लिया और चारों ओरसे अद्धमशाहके ऊपर मार पडने लगी । अन्तमें जब वह एकदम अचेत होगये श्वासोच्छ्वास की क्रिया रुक गयी जब मारनेवालोंने समझ लिया कि, वह मर गया है तब वजीरकी आज्ञासे वस्तीसे दूर जंगलमें डाल आये।

इधर अद्धमशाहकी यह गति हुई उधर बादशाहकी बेटीके

हृदयमें शूल उठा और उस दर्दने थोडीही देरमें ऐसा बल पकडा कि, हजारों वैद्य और उपाय करनेवालोंके रहते हुए भी शाहजादीको कुछ आराम नहीं हुआ। तीन चार घडीमें वह मर गयी। अब क्या था बलख शहर में हाहाकार मच गया। शोकने आकर समस्त नगर में निवास किया। यदि उस समयके शोकने शोका वर्णन लिखने लग जाऊं तो एक दूसरी और बडी पुस्तक बन जाये इस कारण संक्षेपमें लिखना यह है कि, बादशाहको सिवाय इस शाहजादीके दूसरी संतान न होने के कारण सर्वत्र शोकही शोक फैल गया। संक्षेपतः यह कि शाहजादी की मृतकको लेकर कब्रकी अन्तिम क्रिया करके सब लोग लौटकर चले आये।

इधर अद्धमशाहकी आयु शेष रहनेके कारण सद्गुरुकी कृपासे दिनभर अचेत पडे रहनेके पश्चात् दो घडी दिन रहते वह सचेत हुए सचेत होते ही शिर उठाकर देखा तो जंगलके सिवाय कुछ नहीं दीख पडा न तो शाही महल है, न वजीर कादर्वार, न उनके मोती। इस प्रकारसे चारों ओर शून्यही शून्य देख कर अद्धमशाह प्रथम तो आश्चर्यमें आये किन्तु उनका आश्चर्य जाता रहा और इश्कका जोश फिर अन्तःकरणमें उठा फिर तो अद्धमशाह सीधा शहरको पहुँचे। शहरमें पहुँचकर उनने चारों ओर शोक फैला हुआ देखकर जिससे पूछते वही कहता कि, शाहजादी मर गयी प्रथम तो उन्हें लोगोंके कहने का विश्वास नहीं हुआ किन्तु जब शाही महलके द्वारपर पहुँचे और वहां भी लोगोंको शोकमें विकल देखा और चारों ओरसे हाय ! हाय ! की ध्वनि सुनी तब उन्हें विश्वास हुआ कि, सचमुच शाहजादीका परलोकवास हो गया। इस बातके निश्चय होतेही उनके हृदयपर

ऐसा आघात लगा कि, जहां खडे थे वहाँ ही वह अचेत होकर गिर गये और उसी अवस्थामें उस समय तक पडे रहे जब तक बादशाह शाहजादी की अंतिम क्रिया करके कब्रस्थानसे फिर कर आये। बादशाहके कबरसे लौटकर एकबार फिर भी रोने पीटने और हाय बोय करनेकी वह धूम मची कि जिसका वर्णन करना कठिन है। उसी हाय बोय शोककी चिल्लाहटमें अद्धमशाहको चेत आया चेत आतेही उस समयकी सभा देखकर पागल विक्षिप्त चित्तके समान होकर वहाँसे वह चल पडे। एक तो अंधेरी रात दूसरे शोकसे कातर अद्धमशाह आधीरात तक तो जंगलमें इधर उधर भटकते औ ठोकर खाते रहे किन्तु आधीरातके पश्चात् प्रभु कृपासे भटकते २ शाही कब्रस्थानके निकट पहुँच गये। वहाँ जानेपर उनके हृदयको कुछ धैर्यसा हुआ और कुछ चेतना भी आयी फिर तो एक वृक्षकी आडमें खडे होकर उन्होंने कब्रके रक्षकोंको ध्यान पूर्वक देखना आरंभ किया। संयोगवश दिनभरके थके हुए पहरे वाले ऐसी निद्रामें अचेत हुए कि, उन्हें किसी बातकी सुधि न रही। पहरेवालोंको बेसुध देखकर इश्ककी तरंगमें एक ओरसे कनात फाड दिया और अन्दर पहुँचकर वह चोरोंके समान धीरे धीरे कबरतक पहुंचे। कब्रके निकट पहुंच कर वह प्रथम तो कब्रसे लपटकर थोडी देरके लिये अचेत होगये फिर चेत आनेपर उन्हें यह विचार आया कि, एकबार माशूकका दीदार कर लेना चाहिये। दीपक तो चारों ओर जलही रहे थे उसी प्रकाशमें उन्होंने कबरकी मिट्टी अलग करके ताबूतसे शाहजादीकी मृतक को बाहर निकाला और दीपकके सामने उसे लिटाकर उसके मुखको एकटक देखने लगे। देखते देखते उनके हृदयमें ऐसा तरंग उठा कि इसे अपने पर्णकुटीतक

लेजाना चाहिये । बस । फिर क्या था कब्रकी मिट्टीको ज्योंका त्यों करके वह शाहजादीकी लाश उठाकर अपनी कुटीपर पहुँचे सद्गुरुकी ऐसी कृपा हुई कि, जबतक यह अपनी कुटीतक नहीं पहुंच गये तबतक किसी पहरेदारने करवट भी नहीं ली । अद्धमशाहने अपनी कुटीमें शाहजादी की लाशको दीवारके सहारे बैठा दिया और जंगली लकडियोंको जलाकर उसीके प्रकाशमें उस मृतकको सम्बोधन करके कहने लगा ।

होगयी आतश जब वहां शोआले जन ।
बैठा उसके रूबरू यह खिस्तःतन ॥
रोशनीमें आगके वह नीमजाँ ।
देखता था हुस्न रूए दिलस्ताँ ॥
बादिले पुरदर्द चश्मे अश्कबार ।
देखता था उस परीरू की बहार ॥
गोरे तनपर वह उसके पैठा कफन ।
जामये शबनभमें गोया यासमन ॥
चिहरेका आलम कफनमें जो कि था ।
बिद् कबदे चांदनीमें वह मजा ॥
करके उसकी लाशको अद्धम खिताब ।
यों लगा कहने जेराहे इजतराब ॥
ऐबुते संगीं दिले ना आशना ।
क्यों क्या मुझको बलामें मुबतिला ? ॥
क्योंकि दिखाकर दफतन अपनी फबन ।
रंजमें डाला था ऐ नाजुक बदन ॥
दर्द व गममें अपन करक मुबतला ।
एक मुद्दत तक मुझे रुसवा कि किया ॥

मुझमें क्यों चाहेथी वह नादिर गोहर ।
दो बरसतक क्यों रखाथा बहू पर ॥
अहद गर तुझको वफा करना न था ।
मुझको जिन्दः छोडकर मरना न था ॥
तुझमें कुछ बूए वफादारी नहीं ।
यार होकर शवये यारी नहीं ॥
तुझको गर दुनियांसे करना था सफर ।
साथ लेना था मुझको ऐ सीम्बर ॥
रूह तेरी बाद जन्नतको गयी ।
देगयी इस रख्त जांको बेकली ॥
हालकी मेरी खबर भी है तुझे ।
कल नहीं पडती किसी करवट मुझे ॥
बाग जन्नतमें किया तूने वतन ।
मैं रहा बहरे अलम में गोते जन ॥
हैफ है सद हैफ दीदारे हबीब ।
बाद मरनेके हुआ मुझको नसीब ॥
वाह ऐ चर्ख सितमगर वाहवाः ।
तूने जालिम क्या सितम मुझपर किया ॥
जीस्त में माना रहा दीदार से ।
बाद मरनेके मिलाया यारसे ॥
देखलेती यह भी मेरी बेकली ।
जोबर आती सब तमन्नाये दिली ॥
इसको भी शायद था कुछ मेरा कलक ।
हो गयी जो दमके दम में जांबहक ॥
खागयी इसको गमें पिनहानः इश्क ।

आतशे उलफत तुफे सोजान इश्क ॥
कत्ल जालिम तूने दोनोंको किया ।
इस परी रूसे जुदा मुझको किया ॥
जान इसकी तो हुई तनसे बदर ।
जिन्दगी में मैं हूं मुर्दा से बतर ॥
यह तो मर कर हिज्रके गमसे छुटी ।
तलमलाहट मुझको है अबतक वही॥
वहशिया की तरह अपना माजरा ।
कह रहा था उस परीरू स गदा ॥
वा जबाने हाल तो देती जवाब ।
इश्क है आ सौ तरहके पेच ओ ताब॥
मुझसे अपने दर्द गम कहता है क्या।
मरगई मैं तूतो जिन्दा भी रहा ॥
इससे बरतर क्या है दर्द ओ रंज इश्क।
जीती मैंने बाजिये शतरंज इश्क ॥
जीको अपने करदिया उसमें फना ।
मुझसे तू कहता है क्या यह माजरा॥
देख कर अद्धम के यह रंजो महन ।
हो गया बहरे तरद्दुम मौजजन ॥
देख कर उस मर्दके दिलका कलक।
जोश में आयी इनाय तहायहक ॥
कुदरते हक्क ने किया असबाब जमा।
जिससे यह दोनों हुए अहबाब ॥

इस प्रकार अद्धमशाह शाहजादी के मृतकसे अपने विरह की बातें करता और रोता जाता था उसकी ऐसी दशाको देखकर

साहिबका कृपासागर लहराया। फिर क्या देर थी सब सामग्री इकट्ठी हो गयी। अर्थात्।

भूलकर जुलमत से रहको कारवाँ। कुदरते हकसे वहाँ वादिद हुआ॥
अंधेरी रात के कारण कोई व्यापारी काफला राह भूल कर उसी बन में आकर उतरा। जाडेकी ऋतुके कारण जब काफलेके आदमी आगकी खोज करने लगे तब दूरसे आगके प्रकाश को देखकर एक आदमी अद्धमशाहकी कुटीपर भी पहुँचा।

कारवांमेंसे कोई मरदे खुदा। देखकर बनमें उजाला आगका॥
दिलमें अपने पुख्तः करके गुमाँ। खानए दुर्वेश है शायद यहाँ।
आग लेने को वहाँ आया चला। ताकरे वह अपनी कुछ हाजतरवा॥
मुतसिलहुजरेकेजबपहुँचावहमर्द। रंगअद्धमका हुआ दहशतसेजर्द॥

उसकी आहट पाकर अद्धम तो मारे डरके घबरा गये और कुटीके कोनेमें बने हुए गुफामें छिप गये। इधर तो यह हुआ, उधर वह आदमी जब कुटीमें आया तो भीतरके दृश्यको देखकर एकदम घबरा गया। अद्धमशाहने समझा था कि, कबरके रक्षकोंको सब हाल मालूम होगया है इससे उन्हींमेंसे कोई मुझे पकड़ने आया है और उस आदमीको मालूम हुआ कि, न जाने यह क्या चला है कि, शून्यसान घरमें कफनसे ढकी हुई मृतक देह बैठी हुई है और सामने आग जल रही है किसी जीवित पुरुष का पता नहीं है। वह अपने मनही मन बहुत डर गया और पिछले पाँव फिरकर अपनी मंडलीमें गया। वहां जाकर उसने अपने सरदारको सब देखी हुई बातें एक एक करके सुनायीं जिसको सुनकर लोग बडे आश्चर्यमें आये। कुछ देरतक शोच विचार करके मण्डलीके सरदारने काफलेके साथके वैद्य और अन्य कई मनुष्योंको साथ लेकर अद्धमशाहकी कुटीपर जाने-

का विचार किया। और प्रथम मनुष्यको जो वह सब दृश्य देखकर आया था आगे करके कुटीपर जा पहुंचा ॥

थाकजाय कार उनमें एक तबीब। हाजिरकोदानावहुशियारोलबीब॥
लेके साथ उसको अमीरे कारवाँ। सुनतेही इस बातके पहुंचा वहां॥
थी जहां रौनक फिजा वह हूरजाद ॥
पहुंचे यह दोनों वहां मानिन्द बाद ॥
बे तअमुलबेतव कुफ केदवाँ। यह गयेवहरोशनथीआतशजहां॥
जाके देख फिर हकीकत है वही। जिसतरहकहताथावहमरदेरही ॥
देखकर उस हालको शुसदर रहे। लबगुजाँ हैरत जदा मुजतररहे॥
आइनेसाँ शक्ल जब आयी नजर। होगये हैरान दोनों देख कर ॥
बोला आखिर वह हकीमें नुकतेदाँ। रंगमें मुर्दके यह रौनक कहाँ ॥

वहां जाकर उन्होंने सब दृश्य वैसेही ठीक ठीक देखा जैसा उपर्युक्त मनुष्य ने कहा था। प्रथम तो वैद्य सहित वह व्यापारी आश्चर्यमें आया किन्तु थोडी देर तक शाहजादीकी ओर ध्यान पूर्वक देखनेपर वैद्यने जब कहा कि, यह औरत मरी नहीं किंतु सकते के रोग से ग्रसित हो अचेत होगयी है तब तो उपरोक्त ( काफलेके ) सर्दार और भी अधिक आश्चर्य में आया उसने वैद्य से कहा क्या यह ( शाहजादी ) अच्छी भी हो सकती है? वैद्य ने उत्तर दिया अभी अच्छा करता हूँ! पश्चात् वैद्यने अपने पाससे नशतर निकाल कर शाहजादीके हाथ की रग को नशतर से छेदा जिससे रक्त बहने लगा। थोडी देर तक लोहू निकलता रहा और जब दूषित रक्त शरीरसे निकल गया तब शाहजादी सचेत हो गयी।

सचेत होतेही शाहजादीने जैसेही आँख खोली अपने सामने दो अपरिचित मनुष्योंको खडे देखकर लज्जा और आश्चर्यमें

आकर घूँघट तानने लगी। तब तो अपने शरीर पर कफन देख कर भय और आश्चर्य में आई। फिर जब इधर उधर दृष्टि डालकर घरकी दशाको देखने लगी तब तो आश्चर्य, भय, लज्जा और व्याकुलता तथा शाही रोबह सबही उसके सन्मुख आकर खडे होगये। एक दो क्षण तक तो पत्थरकी मूर्तिके समान चुप बैठी रही फिर चकित दृष्टि सन्मुखके खडे आदमियोंसे शील और लज्जा पूर्ण वाणीसे इस प्रकार बात चीत करने लगी॥

शर्मसे सरको किया फरो।
पूछा उसने तुम बताओ कौनहो ?॥
मैं कहाँ हूँ और है यह किसका मकाँ।
घरसे मुझको कौन लाया है यहाँ॥
है कहाँ वह ताज व तख्ते जर निगार।
जामें लालो कूजेहाए आबदार॥
ख्वानए जरवफ्तपोश अपना कहाँ।
मखमलो दीबारका फर्श अपना कहाँ॥

शाहजादीने कहा, कि मेरे राजमहलसे उठाकर क्यों और किस प्रकारसे मुझे यहाँ जंगलमें कफन पहिना कर किसने बैठाया है? इसका वृत्तान्त मुझसे कहो। शाहजादीकी बातोंको सुनकर हकीम और व्यापारीने उत्तर दिया कि, हम लोगोंने इन बातोंको कोई भी खबर नहीं है कि, तुम कौन हो ? तुम्हारा घर कहाँ है ? और यह घर किसका है ? तुम्हे कफन किसने पहिनाया है ? और यहां लाकर किसने बैठाया है ? हमारा कारवाँ अँधेरेके कारण मार्ग भूलकर इस ओर आ निकला था। हमारे साथ का एक आदमी आगको ढूँढ़ता ढूँढ़ता यहाँ आया और तुम्हें

मृतकके समान किन्तु बैठी हुयी देखकर उसने डर कर पीछे पाँव जाकर हमको समाचार दिया। जिससे आश्चर्यमें आकर कौतूहल वश हम यहाँ तुम्हें देखनेको आये। यहाँ आकर हमारे हकीम साहिबने तुम्हें देखकर कहा कि तुम मरी नहीं हो किन्तु सकतेकी बीमारीमें अचेत होगयी हो। फिर उन्होंने तुम्हारी दवा करके अच्छा किया है जिससे अब तुम बात चीत करने को समर्थ हुयी हो। इतना कह कर ब्यापारीने कहा इसके अतिरिक्त और हम कुछ नहीं जानते अब तुम अपना बृतान्त सच्चा सच्चा हमसे वर्णन करो कि, तुम कौन हो? तुम्हारे माता पिता का नाम ग्राम क्या है? औ तुम्हारे ऊपर क्या २ बीती है?॥

कर ब्याँ किस गुलिसतां का गुल है तू।
पायी है किस बोस्ताँ में रंग व बू॥

इधर तो यह बातें होरही थीं उधर तहखानेमें बैठे हुए अद्धमशाह कबरके पहरेदारोंके भ्रमसे भयके मारे डरते हुए बडी सावधानी से कान लगाकर बाहरकी बातें सुन रहे थे। जब उन्होंने शाहजादीको बात करते सुन लिया तब उनकी और ही दशा होगई। अब बाहर निकलकर शाहजादीके पास जानेको बार बार वह साहस करने लगे। फिर तो गारके द्वार से उन्होंने मुहँ निकाल कर दोनों आदमियोंको बडे ध्यानसे देखकर जब निश्चय करलिया कि, वे कबरके पहरेदार नहीं हैं तब एकदम बाहर निकल आये। बाहर निकलकर उन्होंने कुटीके बाहर अन्धेरेमें खडा होकर शाहजादी और ब्यापारीकी बात चीत सुनने लगे। और जब उन आदमियोंके रूप रंग और शारीरिक लक्षणों से यह बात निश्चय होगई कि, वे न तो जासूस हैं न कोई बुरे आदमी हैं तब आनन्दके समुद्रमें गोते खाते हुए एकदम कुटीके भीतर

जाकर खडे होगये और उपरोक्त दोनों नवागत पुरुषोंको देश कालके आचारके अनुसार नमस्कार आदि करके शाहजादीकी ओर देखते हुए खडे होगये ।

इनको वहाँ आता देखकर उनके वेष और स्वरूप परसे उन लोगोंने निश्चय किया कि, इस पर्णकुटी का स्वामी यही है । ऐसा निश्चय करतेही वहां और शाहजादीके पूर्ण वृत्तान्त जानने की पूरी इच्छा व आशा उनके हृदयमें निश्चय होगयी । उन लोगोंने अनुमानसे यह भी निश्चय कर लिया कि;हो न हो यह इस स्त्रीके ऊपर आशिक है जिससे प्रेममें पागल होकर इसके मृतक कहींसे यहां उठा लाया है अब क्षण २ में उनकी उत्कण्ठा बढने लगी जिससे अधिक समय तक न ठहर कर व्यापारी और हकीमने अद्धमशाहसे पूछा कि, ऐ बन्दः खुदा सच कहना तू कौन है ? और यह अनूप शोभामयी सुन्दरी कौन है ? तू इसे यहां कहांसे और किस प्रकारसे लाया है ? सब वृत्तान्त सत्य २ कहदे । उनकी बातको सुनकर अद्धमशाहने आदिसे अन्त तक शाहजादीपर आशिक होना; वजीरका मोती मांगना, दो-वर्षतक संसारमें भटककर मोती लाना, फिर वजीरकी प्रतिज्ञा भंग करके उन्हें मारकर फेकवा देना, चेत आनेपर शाहजादीकी मृत्युका समाचार पाकर कबर स्थानमें जाकर पहरे वालोंकी आंख बचाकर कब्र खोदकर लाश बाहर निकालकर लाना आदि सब वृत्तान्त कह सुनाया । अद्धमशाहके आश्चर्यमय वृत्तान्तको सुनकर उन दोनोंके सहित शाहजादी भी चकित होगयी । अपने लिये अद्धमशाहके महान कष्ट उठानेकी बात और उसके सच्चे प्रेमके वृत्तान्तको सुनकर शाहजादी भी मनही मन उनपर आशिक होगयी ।

इश्कने अद्धमके वह तासीरकी ।
वह परीरू उस पैं आशिक हो गयी ॥
देखकर एहवाल अद्धमका तबाह ।
चश्म नम गमसे हुई वह रश्केमाह ॥
गुजरीं जो जो उसपै थी तकलीफ ओ दर्द ।
सुनके दुखतर होगयी दहशतसे जर्द ॥
देखकर अद्धमको यों पज मुर्दं हाल ।
आया दिलमें उस परीरूके ख्याल ॥
मोरी खातिर इसने यह रंजो बला ।
लेके सरपर कर दिया जीको फिदा ॥
खीचकर क्या २ अजीत औ बला ।
मिहनतो तकलीफो रंजै लादवा ॥
बाद मरनेके भी यह आशुफतः हाल ।
लाश मेरी कब्रसे लाया निकाल ॥
इसके बायस फिर खुदाने दी हयात ।
जीस्तका मेरी सबब है इसकी जात ॥
गर न होता मुझपै आशिक यह जवां ।
कब्रमेंसे क्यों यह फिर लाता यहाँ ॥
रूकके दम यकदममें मैं होती फना ।
जिस्म होता तमए मूरो मारका ॥
थी यह इसदुवेंशकी तासीर इश्क ।
मुर्दा जिन्दाहो है यह तदबीरइश्क ॥
जीस्त दुनियाकी है बसख्वाबोख्याल ।
इस जहाँकी इश्क पर तु खाक डाल ॥
तालिबे दुनिया न हो अब जीनहार ।

दिलसे करतूभी फकीरी अखतियार ॥
है यह जबतक यह जिन्दगी मुस्तआर ।
कर इसे मसरूफ यादे किर्दगार ॥
लज्जते दुनिया यदूँ से दरगुजर ।
यादहकमें बांध चुस्त अपनी कमर ॥
दमजो बाकी है न इनको यों गँवा ।
सीख इस दुर्वेश से राहेखुदा ॥
जीतेजी तू आपको मुर्दाबना ।
खाकमें इस जिस्म खाकीको मिला ॥
कर इसी दुर्वेशसे अपना निकाह ।
दोनों आलममें होता तुझको फलाह ॥

शाहजादी मनहीमन अद्धमशाहके साथ रहकर अपना जीवन व्यतीत करने का प्रण कर रही थी इनमें व्यापारीने अद्धमशाह और शाहजादी दोनोंको सम्बोधन करके कहा कि, तुम दोनों के वृतान्त ज्ञात हुए । तुम दोनोंकी दशा ऐसी है कि, परमात्माने दोनोंको परस्पर एक दूसरेके प्राण रक्षा का कारण बना दिया है, अब तुम लोग यह कहो कि,तुम्हारी इच्छा क्या है ? अब तुमलोग क्या करना चाहते हो ? यदि तुम्हे हमारे साथ चलना हो तो संध्याको अपना कारवाँ यहां से जानेवाला है हमारे साथ चले चलो तुम्हे किसी प्रकारसे दुख न होगा । हम अपनी शक्ति अनुसार तुम्हारी सेवामें कदापि नहीं चूकेंगे । यदि हमारे साथ चलना स्वीकार न हो तो जो तुम्हारी इच्छा हो सो प्रकट करो ।

सौदागरकी बातको सुनकर परम कृतज्ञता प्रकट करते हुए अद्धमशाहने कहा कि, यदि मेरा रोम २ जिह्वा बनजावे तब भी तुम्हारी भलाईका पुरस्कार मुझसे नहीं दिया जा सकता ।तुम्हारी

ही कृपासे शाहजादी फिर जीवित होकर मेरे जीवनका कारण बनी है तुम्हारे इस पुण्यका फल परमात्मा तुम्हें देगा किन्तु जबतक मेरे शरीरमें प्राण है तब तक मैं तुम्हारा कृतज्ञ रहूंगा। अब मुझे सिवाय शाहजादीसे विवाह करनेके किसी प्रकारकी और इच्छा नहीं है। यदि यह स्वीकार करलेतो धर्मानुसार तुम दोनों अपने सन्मुख साक्षी बनकर हम दोनोंका सम्बन्ध जोड़ दो।

अद्धमशाहकी बातको सुनकर व्यापारीने शाहजादीको कहा कि, हे शाहजादी ! यदि अद्धमशाह न होता तो तू कब्रकी कब्रमें मरकर संसारसे चलबसी होती। इसके अतिरिक्त उसने तेरे लिये कैसे २ कष्ट उठाये हैं अब उचित है कि, तू भी उसे स्वीकार करले इस प्रकारसे अनेक बातोंके समझानेपर शाहजादीने उत्तर दिया कि, आप लोगोंकी मैं बहुत कृतज्ञ हूँ आप लोगोंकी आज्ञा कदापि उल्लंघन नहीं कर सकती किन्तु अद्धमशाह इस बातका प्रण करे कि, वह कभी मुझसे अलग न होगा और न कभी मेरी आज्ञासे बाहर जायगा तब मैं इसको स्वीकार करूंगी और मेरे विवाह का यही मुहर होगा।

शाहजादीकी बातको सुनकर अद्धमशाह आनन्दके मारे उछल पड़े और शपथ पूर्वक शाहजादीके कहे अनुसार प्रतिज्ञा करके शाहजादीके उत्तरकी प्रतीक्षा करने लगे। फिर शाहजादीने व्यापारी और हकीमसे कहा कि शरअ (मुसलमानी धर्मशास्त्र)

---

१ मुसलमानी धर्मानुसार विवाह करनेके समय वरकी ओरसे कन्याके लिये मुहर की रीतिपूरीकी जाती है। जिसमें वर अपनी प्रतिज्ञाके साथ २ नियत रुपया या अशरफी का दस्तोबेज अपनी स्त्रीके नामसे लिख देता है कि, वह आजसे उसके इतने रुपयका ऋणी हुआ प्रथम तो कभी वह उस स्त्रीको छोडेगा ही नहीं यदि किसी कारणवश उसे छोडना चाहें अमुक रकम देकर केही छुटकारा पा सकेगा जव तक वह ऋण उसका न चुकादे तब तक वह उसको कदापि महीं छोड़ सकता इसीका नाम मुहर है शाहजादीने अपना मुहर यही मांगा कि, यावज्जीवन अद्धमशाह छोडकर कहीं न जावे।

के अनुसार विवाहके लिये दो साक्षीकी आवश्यकता है सो तुम दोनों हमारे विवाहके साक्षी हो जाओ जिसमें लोक परलोकमें हम पापके भागी न होवें तब मैं विवाहको स्वीकार करूंगी। उन दोनोंने शाहजादीके बचनको मानकर साक्षी बनना स्वीकार किया और दोनोंकी गांठ जोड़ ( पाणिग्रहण ) करा दिया। पश्चात् वे दोनों तो अपने कारवानमें चले गये और अद्धमशाह शाहजादीको पाकर परम आनन्दित हो अपनी पर्णकुटीमें बास करने लगे ॥

दोनोंमें परस्पर ऐसा प्रेम हुआ कि, कोई किसीके वियोग को क्षणमात्र के लिये भी सह नहीं सकता था। जङ्गलके फल फूल पत्ते और कन्द मूलपर वे अपना दिन बिताते और स्वर्गसे भी बढ़के आनन्दको मनाते थे ॥

कुछ दिनोंके पश्चात् शाहजादी गर्भवती हुयी और समय पूरा होनेपर परम सुन्दर पुत्रको प्रसव किया। उसी पुत्रका नाम अद्धम शाहने इब्राहीम रक्खा। किताबोंमें लिखा है कि, अद्धमशाहके संग के प्रतापसे शाहजादी भी सर्वशुभ गुणोंसे सम्पन्न महान् तपस्विनी और भजनानन्दी होगयी थी। जिस समय उसे गर्भ स्थित हुआ था उस समय समस्त बन नाना प्रकारके फल फूल और मेवोंसे सम्पन्न होगया था। सदा वसन्त ऋतुकाही आनन्द वहाँ दीखने लग गया था। नाना प्रकारके पशु पक्षियों ने आकर वहाँ बास किया था। जिससे वह वन कानन बनकर स्वर्गके समान सुख-दाई हो रहा था। इब्राहीमके जन्म लेनेपर उनकी आकृति सम्पूर्ण रूपसे हजरत इब्राहीम खली लुल्लासे मिलती थी इसी कारणसे उनका भी नाम इब्राहीम रक्खा। जिस समय शाह-इब्राहीम का जन्म हुआ वह एक सो एकसठ (१६१) हिजरी थी।

माता पिताने बड़े प्रेमसे इब्राहीमको पालना आरम्भ किया। दो वर्षके पश्चात् उनको अन्न प्राशन कराया ॥

दो बरस पूरेका जब वह होगया। और गिजा फिलजुमले वह खानेलगा॥
गैबसे आनेलगे नादिरत आम। कुदरते एजिदसे उसको विलदवाम॥
उसकी बर्कतसे लगे अशजार पर। अच्छी अच्छी वज अके शीरीं समर॥
कुदरते हकसे हुआ वह दस्तोबर। गुलशनों गुलजार पर भी फौकतर॥

आखिरकार देखते देखते बालक इब्राहीम सात बरसके होगये। अब अद्धमशाहको इस बातकी चिन्ता हुई कि बालकको विद्या अभ्यास कराना चाहिये सबसे पहले जैसा मुसलमानोंमें रीति है बालकको कुरान पढ़ाना आरम्भ किया। जब कुछ दिनों तक घेरमेंही पढ़ाकर देख लिया तब एक दिन बालकको गोदमें लेकर अद्धमशाह शहरमें गये वहां ढूँढते ढूँढ़ते एक सज्जन मोलवी साहेब मिले जिनके यहां इब्राहीमके पढ़नेको ठीक करके उनसे कह दिया कि, सबेरे मैं इब्राहीमको यहां रख जाया करूँगा और शामको आकर लेजाया करूँगा।

अलगरज हर सुबह वह मर्दैनेको।
लाता उस मुकतबमें इब्राहीमको॥
उलफते कलवीसे अपने विलदवाम।
फिर उन्हें लेनेको आता वक्त शाम॥
था यही हररोज अद्धमका शआर।
आते जाते शहरमें बिलइजतरार॥
थी जेबस शफकत उन्हें बेइन्तहा।
तनहा आना जाना दिलपर शाक था॥

( इब्राहीम अद्धमका बादशाह बनना )

जबसे बलखके बादशाहकी इकलौती बेटीका उससे वियोग हुआ तबसे बादशाह बहुत उदास और दुखी रहने लगा।

उसका चित्त संसारसे उदास हुआ वह सदा दुर्वेश फकीर और ईश्वरके भक्तोंके संगमें रहने लगा। जहां किसी महात्माका समाचार पाता वहीं उनके दर्शनको चला जाता और अपनी शान्ति के लिये उनसे प्रार्थना करता। दूसरी आदत उसकी सदासे यह थी कि, जब कभी वह शहरमें निकलता तब मदरसे और मुकतबोंमें जाकर लड़कोंका पढ़ना सुनता और उन्हें मिठाई वगैरह देकर खुश करता और शिक्षकों को इनाम देकर लड़कोंको छुट्टी दिलाता। इसके अतिरिक्त एक संतने भी उसे कहा था कि, मुकतबके लड़कोंको खुश रखनेसे तेरी मुराद कभी न कभी पूरी होजायगी। सो एक दिन बादशाहकी सवारी संयोगसे उसी मुकतबके पाससे निकली जिसमें इब्राहीम अद्धम पढ़ते थे। जिस समय बादशाहकी सवारी मुकतबके पास पहुँची उस समय बादशाहके कानमें बहुत मीठा और रीतिके अनुसार कुरान पढ़ते हुए किसी बच्चेका शब्द सुनपडा। बादशाहने एकदम सवारी रोकली और कुछ देरतक वहाँ ही खडा खडा सुनता रहा। फिर तो उस शब्दपर इतना मोहित हुआ कि, सवारीसे उतरकर मुकतब में पहुँचा।

गुजराउसमुकतबकेआगे नागहाँ। मसहफइब्राहीमपढताथाजहाँ॥
बादशाहने जब सुनी उसकीसदा।दिलपैउसकेकछुअसरपैदाहुआ॥
करकेउजाअपनेउसघोडेकोखडा। पढना इब्राहीमका सुनतारहा॥

मुखरिजै इलफाज उसके मद्दवशद।
सुनके अश अश कर गया हर जीखरद॥
था हमेंशासे तरीका शाहका।
जिस जगह मुकतब सरेरह देखता॥
सुनता पढना जाके हरेक तिफ्लका।
करता फिर इन आम हरयकको अता॥

आता पढना जिसका खातिरमें पसन्द ।
उसको देता नकद औरों से दो चन्द ॥
देके जर उस्ताद को शाहे निकों ।
छुट्टी दिलवाता था फिर हर तिफलको ॥

अपने सदा की आदतके अनुसार बादशाहने मुकदबके हर एक लडके का पढना सुना और सबको इनाम भी दिया। परन्तु जब इब्राहीम की बारी आयी तब उस छोटेसे बच्चे का शुद्ध शुद्ध पढना, उसकी अदब के साथ बात चीत और उसके रंग रूप को देखकर बादशाह एकदम आश्चर्य सागर में गोता खाने लगा। उसके हृदयमें उस बच्चे का इतना प्रेम प्रवाह उमड चला कि वह हैरतमें पड गया। आखिर अपने प्रेम प्रवाह को रोक नहीं सका एक दम इब्राहीम को गोदमें उठाकर प्यार करने लगा। यद्यपि बादशाही रोव दाब से यह बात कदापि मुमकिन नहीं थी तथापि अन्तर्गत हृदयमें किसी अनजानी शक्तिने ऐसा काम किया कि बादशाह अपना पद एक दम भूल गया और इब्राहीम को उठाकर गले लगा लिया। इब्राहीम के हृदय में भी खून ने जोश मारा वह भी बादशाह के हृदय से चिपट गया। अब बादशाहके हृदय पर और भी बडा भारी प्रभाव पडा।

जुज्वको है जुज्वसे पैवस्तगी ।
खून को है खून से दिलबस्तगी ॥
दाब शाही से यह बिलकुल दूर था ।
लैकवह इस अमरमें मजबूर था ॥
दिलको अपने जब्रगो उसने किया ।
जोश उलफतपर न उससे रुकसका ॥

जुज्वको है गर्चे जायद इजतरार ।
कलको भी बेजुज्वके कबहो करार ॥
गो नहीं जाहिरका पैगामों सलाम ।
जुज्व कलमें है मगर पिनहाँ कलाम ॥
दिलको हरेकके खलिश है जो यहाँ ।
है अनासिरकी कशिशयह ऐ जवाँ ॥
जज्व अपने जुज्वको करते हैं कल ।
उस कशिशका है बदनमें शोरोगुल ॥
हरबशरको है जो दिलमें इजतराब ।
खींचती है उसको पिनहानीतनाब ॥
रिश्तए उलफसे रहता है बंधा ।
जुज्व अपने कुलके साथऐबाखुदा ॥
जुज्व तनको है जो कुलके साथरब्त ।
है कशिशसे उसकी तेरी अक्लखब्त ॥
अपनी गुलफतसे तुझे है यह गुमाँ ।
मुझको जोफे कलब और मादा है अयाँ ॥

बादशाह दिल भरके इब्राहीमको प्यार कर लेने पर जैसे ही गौर से उसकी ओर देखने लगा वैसे ही उसे अपनी लडकी की याद आयी । लडकी की याद आतेही उसकी सूरत बादशाह के सामने आ खडी हुई । अब बादशाह देखता है तो इब्राहीमकी और उसकी लडकी की शकल में बाल बराबर भी भेद नहीं है । कहते हैं कि, उस समय बादशाह इतना रोया कि, उसका चेहरा लाल हो गया और आगे के कपडे आंसू से भीग गये । फिर जब मन कुछ ठहरा तब बादशाहने मुल्लाजीसे पूछा कि,—यह लडका कहां रहता है ? इसका बाप कौन है ? यह

यहां कितने दिनोंसे पढने आया है ? मुल्लाजीने बादशाहके प्रश्नोंका यथायोग्य उत्तर दे दिया ।

दस्त बस्तः यों मुअलिमने कहा । बाप इसका है फकीरे बेनवा ॥
रहता है सहरामें आबादीसे दूर । अहल दुनियासे निहायत है नफूर ॥
अद्धम उसका है लकबऐनेकपै । इस पेसरका नाम इब्राहीम है ॥
एक बरस गुजरा कि पढनेको यहां । आताहै यहतिफ्लऐशाहेजहाँ ॥
सुबहको लाता है बाप इसका यहां । शामको लेजाताहै आकर वहाँ ॥
है जेबस दुर्वेश वह साफी निहाद । हैमुझे हदसे ज्यादाएतकाद ॥
जसतनअल्लाह इसेबहरेसबाब । याद करवाताहूँ रब्बानी किताब ॥

मुल्लाजीकी जबानी अद्धमशाहका नाम सुनतेही बादशाह चौंक उठा । उसे पहलेकी सब बातेंः—अद्धमशाहका शाहजादी पर आशिक होना, उसका मोती लाना, वजीरका उसे धक्का देकर निकाल देना उसके छातीपर मुक्का मारना और शाहजादीका मर जाना इत्यादि—याद आगयीं । तब बादशाहने अपने मनमें अनुमान किया कि, हो नहो इसमें जरूर कोई छिपा हुआ भेद है । नहीं तो इस बालकके ऊपर मेरा इतना प्रेम क्यों होता ? दूसरे इसका रूप मेरी बेटीसे पूरा पूरा मिल रहा है । सो इसमें अवश्य कुछ भेद छिपा हुआ है । इसलिये इस बालकको अपने महलमें लेचलकर बादशाह बेगमको दिखलावें जिसमें उसके हृदयमें कुछ संतोष हो । इतना सोचकर बादशाह इब्राहीमको गोदमें लिये हुए उठ खडा हुआ और मुल्लाजीसे कहा कि, जब इस लडके का बाप आवै तब उसे मेरे पास भेज देना वहीं से वह अपना लडका ले जायगा । फिर मुल्लाजीको बहुत कुछ इनाम देकर रवाना होगया ।

महलमें पहुंचकर बादशाहने बेगमको बुलाकर इब्राहीमको

उसकी गोदमें रख दिया। बेगमने जैसेही इब्राहीमको गौर करके देखा वैसेही लडकीकी शकल देखकर एकदम बेहोश होकर गिर पडी। फिर तो महलमें धूम मच गयी। बेगमको होशमें लानेके सैकडों उपाय किये गये। जब वह होशमें आयी तब इब्राहीमको गोदमें लेकर बार बार बलाएँ लेने और नाना प्रकार के संकल्प विकल्प मनमें करने लगी।

गोदमें फिर उसको लेकर नागहाँ। सांस ठंडीभरके करती थी ब्याँ॥
ऐ मेरे लखते जिगरके हम शबीह। ऐ मेरे नूरे बरसके हम शबीह॥
ऐ मेरे रशके कमरकेहमसिफत। ऐ मेरे गुल नर्गतरकेहम सिफत॥
ऐ मेरे उस गुलबदनके हम अनां।ऐ मेरे शीरीं दहनके हमनिशाँ॥
ऐ मेरे उस लाबुते चींके करीं। ऐ मेरे आहुये मिराकीके करीं॥
ऐ मेरे ताबिन्दः अखतरकी शबीह।ऐ मेरे मेहरे मनौवर की शबीह॥
ऐ मेरे नादीदः दुनियाके मिसाल।ऐ मेरे फरजन्द जेबाके मिसाल॥
ऐ मेरे युसुफके हमतर्जोतराश। ऐ मेरे लैलाकेहमवज अवकमाश॥
ऐ मेरे जाने जहांके हम अनाँ। ऐ मेरे गुंचः देहाँके हम अनाँ॥
ऐ मेरे उस मूकभरके हम कमर। ऐ मेरे याकूत लबके हम गोहर॥

देताहै हर जुज्व तेरा बे गुमाँ।
युसुफे गुमगश्तः मेरे का निशाँ॥
है जो हर हर जुज्व तेरा बिलएकीं।
यादगार लैलीय महमल नशी॥

इस प्रकार अनेक तरहसे बेटीका स्मरण कर लेनेके पश्चात् बेगम ने इब्राहीम से पूछा कि, तेरी मां और बापका नाम क्या है? इब्राहीमने बापका नाम अद्धमशाह और मांका नाम वही बतलाया जो बादशाह की लडकीका नाम था।

शाहकी दुखतरका जो कुछ नाम था।वही इब्राहीमने मांका लिया॥

और बतायानामअद्धम बापका।दश्तमें अपनीकहीरहनेको जा ॥

अद्धम शाहके नाम को बलख निवासी स्त्री पुरुष बच्चे से बूढे तक सभी जानते थे। क्यों कि वह शाहजादी पर आशिक था। और शाहजादीका मरजाना भी अद्धमशाहके ही शापका फल लगाना मान रखा था। यही कारण है कि, अद्धमशाहको सब लोग महात्मा सिद्ध समझते थे। इब्राहीमके मुखसे बादशाहजादी और अद्धम दोनोंका नाम सुनकर लोगोंको बड़ा आश्चर्य हुआ। बादशाह और बेगमके अन्तःकरणमें न जाने कितनी कल्पनाएँ आती थीं और कितनी आशा और निराशा उनके चारों ओर फिर रही थीं। आखिर बादशाह बेगमने अपने हाथसे इब्राहीमको स्नान कराकर अच्छे २ कपडे पहनाया और उत्तम उत्तम पदार्थ उसे खानेको दिया। फिर बादशाह इब्राहीमको बेगमके पास छोडकर अपने खानगी स्थानमें जा बैठा और इस भेद पर विचार करने लगा। अन्तमें बादशाहने निश्चय किया कि, अद्धमशाहसे इनका वृत्तान्त पूछना चाहिये वह संसार त्यागी फकीर है वह कदापि झूठ नहीं बोलेगा।

बादशाहके दिलमें आया यों ख्याल ॥
पूछिये अद्धमसे उस दुखतर का हाल ॥

फकेंऊसकीरास्त गोयीमें नहीं।जो कहेगा वह सच्चहै बिल यकीं॥
मर्द हकहै पाय बन्दे रास्ती। झूठ हर्गिज न बोलेगा कभी ॥

इतना विचार कर बादशाहने दरवान को बुलाकर हुक्म दिया कि अगर कोई लड़का लेने आवे तो उसे द्वारपर मत रोकना बल्कि उसे सीधा मेरे पास पहुँचाना। उसको प्रतिष्ठापूर्वक ले आना, खबरदार उसके मनमें किसी प्रकारसे बुरा न लगने पावे इतना हुक्म देकर बादशाह अद्धमशाहकी इन्तजारी करने लगा।

उधर अपने नियत समय पर जब अद्धमशाह इब्राहीमको लेनेके लिये मुकतबमें आया तब उसे मालूम हुआ कि, इब्राहीमको बादशाह अपने महल में ले गया है और कह गया है कि अद्धमशाह वहाँही से उसको लेजावे। उसे किसी प्रकार डरना नहीं चाहिये जिस समय वह आयेगा उसी समय अपना लडका ले जायगा। यह सुनते ही अद्धमशाहने बेकरार होकर सीधे बादशाहकी डयोढ़ी पर जा खडा हुआ और दरवानसे कहाकि, बादशाहसे जाकर कहदे कि, इब्राहीमका बाप उसे घर लेजाने आया है। जल्दी उसे बाहर भेज दो।

जैसेही अद्धमशाहके आनेकी खबर बादशाहको पहुंची वैसेही बादशाहने उसे अन्दर अपने पास बुला लिया और बडी प्रतिष्ठा के साथ उच्चासन पर बैठाकर ईश्वरका शपथ देकर उनसे पूछा कि सच बता तुझकोसौगन्देखुदा। नामहैइसतिफलकीमादरकाक्या हैवहकिसकीदुखतरेआलीगोहर। रास्तकहदेकौनहैउसकापदर ॥

बादशाहकी बातको सुनकर अद्धमशाहने कहा = "ऐबादशाह वह वही तुम्हरी लडकी है जिसपर मैं आशिक हुआ था"।

सुनकरअद्धमनेकहाऐबादशाह । हैवहदुखतर आपकीबेइश्तवाह॥
मादरइसकीहैवहीरशकेकमर । जिसपैमैआशिकहुआथादेखकर॥
नामभीउसकादियाउसकोबता।दुखतरेसुलतानकाजोकुछनामथा॥

अद्धमकी बातको सुनकर बादशाहके आश्चर्यका पारावार नहीं रहा उसने आश्चर्य मुद्रासे अद्धमशाहसे कहा कि मेरी बेटी को मरे हुए तो मुद्दत होगयी। उसको हम लोगोंने कब्रमें गाड दिया उसकी तो हड्डी तक गलगयी होगी। वह अब तुम्हारे घरमें कहांसे आगयी? क्या कोई आज तक मर करके भी जिया है।

बादशाहकी बातको सुनकर अद्धमशाहने शाहजादी के जीने और विवाह होने आदिका सब बृत्तान्त कह सुनाया।

जबकहा अद्धमने ऐआलमपनाह। मुवतलासकतेमेंथीवहदरश्कमाह॥
खल्क उसदुखतरकोमुदाजानकर। कब्रमेंचुपरखकेआयीअपने घर॥
कब्रमें उसको किया था दफनजब। एकपहरभरसेसिवागुजरीथीतब॥
मिट्टी जो डाली थीं उससन्दूकपर। जिसकेअन्दरथीवहमाहेसीमवर॥
कुदते हकसे हवाका रास्ता। रह गया था कब्रके अन्दर खुला॥
था जिलाना बसकिमञ्जूरे खुदा। इस सबबसे कब्रमें रखना रहा॥
मुझको जज्वे इश्कमें आयी तरंग। कब्रपर उसके गया मैंबे दरंग॥
पासबान कब्र सोते देखकर। लाशदुखतरकोकिया मैंनेबदर॥
लाशको मैंने निकाला कब्रसे। फिर कियाहमवार मिट्टीडालकर॥
मैं वले मुर्दाहो उसको जानकर। रखकेउसकीलाशकोबलायसर॥
जल्दतर उस दश्तोबरमें लेगया। थी जहां ऐ शह मेरी रहनेकीजा॥
करके रौशन आग मैं बैठा वहां। बा हजारों दर्द वअन्दोहो फिगा॥
देखता था हुस्नकी उसके बहार। और रोताथा निहायत जारजार॥
कुदरते हकसे हुआ बारिद वहां ऐन। उस हालतके अन्दर कारवाँ॥
देखकर आतशको रौशनएकजवां। आगलेनेके लिये आया वहाँ॥

पास वाने कब्र उसको जानकर।
फर्त दहशतसे हुआ दिलमें मुनतशिर॥

दश्तमें मुर्दे को तनहा देखकुर। होगया दहतसे लरजाँ वह बशर
कारवाँमें जाके दी उसने खबर। उसमें था मर्द तबीबे पुर हुनर॥

साथ लेकर उसको मीरे कारवां।
सुनतेही उस बातके आया वहां॥

देखकर दुखतरको उसने यों कहा। है यह सकते के मर्जमें मुबतला॥

कहके विसमिल्हाह नशतर को लिया।
उससे की झट पट रगे कफान वा॥

जबकिनिकलाउसकेतनमेंसेलहू। होगयीहुशियारवहफर्रखुन्दःखू॥

करदियाआंखोकोउसनेअपनेबा। पूछा उन दोनोंसेक्याहैमाजरा ॥
कौन हो तुम और यह किसका है मकां ।
घर से मुझको कौन लाया है यहाँ ॥
मैं भी आखिर सुनके उनका मकाल ।
अन्दर आया करनेको दरियाफ्त हाल ॥
देखकर जिन्दा मैं उसको ऐ शहा ।
लाया सिजदए शुक्र यजदांका बजा ॥
पूछा मुझसे फिर उन्होंने माजरा ।
मिन व अन एह वाल मैंने कह दिया ॥
मेरा और दुखतरका एजाबोकबूल। होगया पेशे गवा हानें अदूल ॥
फिर हुआ जो लुफवइन आमेंखुदा।पैदा इब्राहीम यह उससे हुआ॥
माजरा है यह बेला कम और कास्त ।
जो कहा मैंने यह है सब रास्त रास्त ॥

अद्धमशाहके द्वारा अपनी बेटीका सब वृत्तान्त सुनकर बादशाह मारे खुशीके उछल पड़ा । वह उसी समय उठकर महलमें गया और बादशाह बेगमसे सब वृत्तान्त कह सुनाया । बेगमने बेटीके मिलने की खुशीमें दान पुण्य खैरात करना आरम्भ कर दिया उधर बादशाह ने शाहजादीके बचपनकी सखी सहेलियों और उसको दूध पिलानेवाली बुढियों को पालकी पर सवार करा करा कर शाहजादीकी जांच करनेको भेज दिया । तब तक आप अद्धमशाह को बातोंमें फंसा रखा ।

थोडीदेरमें जांच करने वालियों ने आकर बादशाहसे कहाकि सचमुच वही शाहजादी है। फिर तो बादशाहने बेगमको साथ लेकर उसी समय बेटी से मिलने के लिये जंगलमें जाने की तैयारी की। आगे आगे बेगमोंके मुहाफ और पीछे सब

दरवारियों सहित बादशाहकी सवारी रवाना हुई। जब अद्धमशाहकी कुटीके निकट सवारी पहुँची तब बादशाह नीचे उतर पडा और बेगम को साथ लेकर पाय प्यादे झोपडी की ओर चला। बादशाहने देखा कि, एक टूटी फूटी झोपडीमें सैकडों जगह से फटे हुए कपडे पहनी हुई घास की टूटी चटाईपर बैठी हुई शाहजादी निमाज पढ रही है। जब वह निमाज पढ चुकी तब लौंडियों ने हाथ जोडकर कहा कि, आपके पिता और माता आपसे मिलने को आये हैं। दासीकी बात सुनतेही शाहजादी दौडकर माता पिताके पग पर गिर पडी। फिर दोनों ने उसे उठाकर गले लगाया और शकुन के आंसू बहाकर उसे शाही महल में अपने साथ ले जाने की इच्छा प्रकट की। शाहजादीने कहा आपकी आज्ञा मेरे शिर पर है किन्तु पतिकी आज्ञा विना मैं यहां से एक पग भी आगे नहीं बढ सकती। बादशाहने अद्धमशाह से आज्ञा दिला दी। फिर तो उसके वह फकीरी वेष को उतार कर शाहाना कपडोंसे उसे सजाया और बेगम ने अपनी पालकीमें साथ ही बैठाया। वैसे ही अद्धमशाह और बादशाह एक ही सवारीमें बैठ कर शाहीमहल को रवाना हुए। बादशाहने महलमें पहुँच कर उत्सव करने की आज्ञा दी।

राह हकमें माल व जर विलकुल दिया।
इस कदर खैरात की बेइन्तहा॥

इस प्रकार खूब धूम धामके साथ आनन्द मनाया गया। चौथे दिन अद्धमशाहने बादशाहसे कहा कि, फकीरों का एकान्तमें रहना ही अच्छा है इसलिये मुझे तो जंगलमें ही जाने दीजिये। अगर आप चाहें तो मेरी स्त्री और मेरा लडका आपकी सेवामें रहेगा। बादशाह ने बहुत प्रकारसे समझा-

कर अद्धमशाह को अपने पास रखना चाहा किन्तु उन्होंने एक भी नहीं माना आखिर मजबूरीसे बादशाहने उन्हें बिदा किया। अद्धमशाह अपनी उसी कुटीमें जाकर रहने लगे जब उनका जी चाहता तब आकर अपने लडके और स्त्रीको देख जाते। कहते हैं कि, जबतक जीते रहे तबतक उनकी यही रीति रही।

बादशाहने अपने घर लाकर इब्राहीमको पढाने के लिये अच्छे अच्छे शिक्षक सब प्रकार की विद्या और गुणसे पूर्ण देश देशसे बुलाकर रखा "होनहार विरवानके होत चीकने पात" के अनुसार इब्राहीमकी बुद्धि ऐसी तीव्र थी कि शिक्षक लोग यदि एक बात बतलाते तो इब्राहीम उससे दश अधिक निकालते इस प्रकार सद्गुरू की कृपा द्वारा इब्राहीमने थोडे ही वर्षोंमें अनेक विद्या और कला कौशल तथा राजनीतिमें योग्यता प्राप्त कर ली। समय पाकर बादशाहने इब्राहीमको राज्य सिंहासन पर बैठाकर बलख का बादशाह बना दिया।

नाना की गद्दी पर बैठकर इब्राहीम अब इब्राहीमशाह हुये। राज्यके कामको इस योग्यता से किया कि, शत्रु और राज्य के लालची दूसरे बादशाह लोगोंने स्वयं प्रशंसा करके उनसे दोस्ती कर ली।

इस प्रकारसे रामराज्य सा राज्य करने पर भी इब्राहीमशाह को फकीरों दुर्वेशों की संगति का ऐसा चसका लगा था कि, दिन रातमें राजकाजसे जभी अवकाश मिलता तभी साधु सन्तों के पास पहुँचते। चाहे कितने ही दूर पर किसी अच्छे महात्मा के रहने का समाचार पाते जरूर वहाँ जाकर उनसे सतसंग करके लाभ उठाते। इसी प्रकार राज्य करते हुये कई वर्ष

बीतने पर उनके नानाका जिन्होंने अपना राज्य इन्हें देकर आप भजनके लिये एकान्त वास किया था देहान्त हो गया।

नानाके मर जाने पर इब्राहीम शाहके मन पर बडा धक्का लगा उनका चित्त संसारसे एकदम वैराग्यको प्राप्त हुआ अब उन्हें दिन रात परलोक की चिन्ता रहने लगी।

याने इब्राहीमशाहे दो जहाँ ॥
करता था जाहिरमें गो कारे शहाँ ॥
लैक था दुनियासे दिलबरदाशता ॥
बेवफा व बेबका पिन्दाशता ॥
कारदुनियाँस नथी चसपीदगी ॥
कुछ तहेदिलसे नथी गरवीदगी ॥
जानता था कार दुनियाँ मुस्तआर ॥
करता था बहरे जरूरत कारो बार ॥
मुल्करानी उसनेकी वबा आब ताब ॥
दसबरस वल्लाह आलम बिलसवाब ॥
अदल अपने असिरमें ऐसा किया ॥
महो मुतलक होगया जौरो जफा ॥
शम आपरवानेको देत कलीफ अगर ॥
किताजल्द उसका करे गुलगीर सर ॥
जुल्मसे तोडे जो बुज ठन्नी हरी ॥
फेर दे कस्साब गरदन पर छुरी ॥

इसके आगे नानाकी मृत्यु देखकर इब्राहीमशाहके हृदयमें विरागका अंकुर विशेष वृद्धिको प्राप्त हुआ और सद्गुरुने जिस प्रकार उन्हें उपदेश देकर सत्य पदको प्राप्त कराया उसका

विशेष वृत्तान्त सुलतानबोधमें लिखा है। यद्यपि और और लिखने वालोंके विचार और लिखनेसे सुलतानबोधमें बहुत कुछ भेद पडता है तथापि सबका लक्ष एकही है और सबने अन्त में फल भी एकही दर्शाया है। इसकारण और यहाँ पुस्तक बढ जानेके भयसे अधिक न लिख कर शाह इब्राहीम अद्धमके फकीर हो जाने पश्चात् की करामात औ प्रचार की बातों में से थोडी सी बातें यहाँ लिखकर यह ग्रंथ समाप्त किया जायगा।

## शाहइब्राहीम अद्धम का स्फुट वृत्तान्त

वार्ता १

कहते हैं अद्धम हुए जिस दम फकीर।
छोड सुलतानीका सब तांजो शरीर॥
मालोजर जितना खजांने बीच था।
लेके दरियामें दिया सारा डुबा॥
पूछा एकने क्या किया यह ऐ मालिक।
क्यों न हर एकको दिया यह ऐ मालिक॥
दरजबांब उसको कहा यह मालोजर।
यांदये बोग्र्जब हसदे नखवंत का घर॥
यों सुना है मैं बुजुंर्गोंसे कलाम।
जानते हैं इस मिस्लको खास व आम॥
आप पर जो चीज होवे ना पसन्द।
गैरेंपर उसको मत रखना पसंद॥

---

१ बादशाही, राज्य। २ राजमुकुट। ३ राजसिंहासन। ४ धनदौलत। ५ बादशाह। ६ उत्तर में। ७ पूंजी। ८ कीना गुस्सा, क्रोध, आंटी। ९ ईर्षा। १० अभिमान। ११ बडोंस। १२ दूसरा।

## ❀ वार्ता २ ।

बादशाहत छोडकर अद्धम चले ।
कोहं व सिहरांकी तरफको शहरस ॥
बेटेको अपने किया कायमंमुकाम ।
बादशाहत वह लगा करने तमाम ॥
आपली फिर राह सिहरा की गरज ।
कुछ न रखी माल दुनियाकी गरज ॥
साथ एक प्याला लिया और बोरियां ।
एकमिसवांक और एक सकिया लिया ॥
एक सोजनं खलकां सीनेके लिये ।
साथ यह असबाब जरूरी ले लिये ॥
शहरसे बाहर निकल जो की नजर ।
सोते देखा एकको वा खाकपर ॥
बोरिया फेंका वहाँ औ यह कहा ।
खाकसारोंको जमीन है बोरिया ॥
आगे जा देखा तो एक बेचारः आंष ।
औकस पीता है बैठा वे हिजाब ॥
हाथसे प्यालेको भी फोडा वहीं ।
यानी पी लेवेंगे हम पानी योहीं ॥
आगे देखा एक सोता है गरीब ।
हाथको रखे सिऱ्हाने बेनसीब ॥
तकिया भी छोडा फजूली जानकर ।
यानी एक यह भी है मुझपर बाँरसर ॥

---

* इस वार्तामें जिन २ शब्दोंपर अंक दिये गये हैं उनका अर्थ वार्ताके अन्तकी टिप्पणी में देखो ।

आगे जाकर देखा तो एक नेक खो।
उंगलियोंसे मांजता है दांतको ॥
हाथसे मिर्वाक भी तब फकदी।
मिस्ल ईसों एक सोजनही रखी ॥
सैर करते करते आखिरं एक जाँ।
एक पहाड पर गुजर उनका हुआ ॥
आदमी वाँ था न वाँ है वाँन था।
यातो था वह कोहं या मैदान था ॥
दूरसे एक झोपडी आयी नजर।
देखा एक दुर्वेशं को उस कोह पर ॥
करके इश्क अल्लाह पर बैठे वहां।
बैठना इनका हुआ उस पर गिरां ॥
बोला वह दुर्वेशं ऐ दुर्वेश ? तू।
रातको रहना न यां दिलरेशं तू ॥
यां न दाना है न पानी है कहीं।
मसलेंहत तेरा यहां रहना नहीं ॥
तब यह बोले उससे ऐ हौसंला।
रिज्केंका हरंगिज न करियो तू गिलें ॥
तेरा मैं महिमाँ नहीं ऐ तकियेदार।
जिसका महिमा हूँ वही हैगमगुसांर ॥
जिसने दी है जान वह देवेगा नानं।
गर नहीं बावरं तो करले इमतहांन ॥
जो किसीके पास आता है अंजीज।
किस्मत अपनी साथ लाता है अंजीज ॥
है खुदा सबका नहीं करता शरीकं।

रिज़्कमें बाहम किसीको लाशरीक ॥
देख आते मत किसीको सहम जा ।
उसकी किसमतका है साथ उसके धरा ॥
कहके यह और हैंट वहांसे जा रहे ।
सामने तकियांके जा सुस्ता रहे ॥
शामको एक लोटा और दो रोटियाँ ।
तकियाँवालेको वहां पर उतरियाँ ॥
और उनके वास्ते ख़्वाने तआम ।
यक पुलाओंकी रिकाबी एक जाम ॥
जर्फ़ चीनी और उनपर ख़्वान पोश ।
यक तकल्लुफ़से उनमें नाय नोश ॥
खाके इब्राहीमने पानी पिया ।
शुक्रने आमतकाफिरकसिजदा किया ॥
यह तो ने अमत लेकबस चलते रहे ।
वह जो तकियादार थे जलते रहे ॥
शाम जब आयी वही फिर उतरियाँ ।
साथ यक लोटाके वा दो रोटिया ॥
मारे गुस्साके उन्होंने यों कहा ।
मैं नहीं खानेका खाना आपका ॥
एकको तुम भजो कुलियाँ और पुलाँओं ।
मुझको जौकी रोटियाँ रूखी खिलाओ ॥
जैसा वह दुर्वेश मैं दुर्वेश हूँ ।
जैसा वह दिलरेश मैं दिलरेश हूँ ॥
क्यों बढ़ायी एककी यह इज़्ज़तशाँ ।
है फकीर आपसमें सब एकसा ॥

जब किया यह शिकवः उसने आशकार ।
तब हुआ उसपर खताबे किर्दगाँ ॥
कि ऐ फकीर! इतना न भूल अपने तईं।
तुझको शर्म इस बात पर आती नहीं॥
उसकी गर पछे तो वह तो बादशाह ।
मेरी खाँतिर तज दिया ताजो कुलाह ॥
छोड़ कर लज्जात दुनियाकी तमाम ।
वह शर बऔवहकबाब औवहत आम ॥
वह हुकूमत साहिबी सब अपनी छोड़ ।
बन्दगीमें मेरी आया हाथ जोड़ ॥
साहिबी जो छोड़ कर होवे गुलाम ।
क्यों न दूँ मैं उसको यकखँवाने तआम ॥
तेरी इस रोटीसे यह खाना है कम ।
याद कर उसके वह नाँजो नअम ॥
और अपना वक्त भी तू याद कर ।
किस तरह औकात होती थी बसर ॥
एक घसियारा था तू मर्द गरीब ।
खोदता था घास तू ऐ बेनसीब ॥
जङ्गलोंमें खोदता फिरता था घास ।
एक टका आता था उसका तेरे पास ॥
तू हुआ था छोड़कर उसको फकीर ।
मां न बेगम थी न बाबा था अमीर ॥
उस मुशक्कत से बसर करता था तू ।
सर पर गट्ठे लेके नित मरता था तू ॥
तुझको मैं पक्की पकायी रोटियाँ ।

भेजता हूँ साथ पानीके यहां ॥
गर राजा पर मेरी तू राजी नहीं।
तो ठिकाना अपना कर यांसे कहीं ॥
दिल फकीरीसे अगर तेरा फिरा।
जाली और खुरपा यह है तेरा धरा ॥
आशकीसे तू हमारे बाज आ।
लेके खुरपा घास अपनी खोद खा ॥
जो खुदा किस्मतमें देवे बेश ओ कम।
मत रज़ाँसे उसकी रख बाहर कदम ॥
तरफ से अपने कर बाहर तलब।
खींच मतले फायदा रंजो तअब ॥
उसने जो समझा है सोई खूब है।
तालिबोंको नित रजा मतलूब है ॥
अपने तई सबके बराबर तू न जान।
फहँम कर यह मोलबीकी बात मान ॥
हम भी ऐसे हैं यह कहना है बुरा।
इज्जमें वह आदमी गर है भला ॥
यां खुदीमें और खुदामें बैर है।
किस तरफ भटका फिरे है खैर है ॥
वन्दँगान हक्क हैं मिसकीनों गरीब।
कुब्रसे दूर और जिल्लँत से करीबँ ॥
इज्जँत ब गुरबत ही वहां मंजूर है।
कुब्रँ है जिसम सो हकेस दूर है ॥

पकके गिर पड़ता है मेवा खाके[81] पर ।
खाँम[82] है जब तक रहे इफलाके[83] पर ॥

साखी

दास गरीबी बन्दगी, सतगुरुका उपकार ।
मान बड़ाई गर्बका, पचि पचि मरै गवाँर ॥
मान बड़ाई कूकरी, धरमराय दरबार ।
दीन लकुटिया बाहिरे, सब जग खाया फार ॥
मान बड़ाई कूकरी, संतन पाई जान ।
पाण्डव जग पान न भई, सुपच विराजे आन ॥

---

१ राज्य । २ पहाड । ३ जंगल । ४ स्थानापन्न । ५ टाट । ६ सूर्द । ८ गुदडी । ९ जमीन मिट्टी । १० पानी । ११ अहली । १२ लज्जा, शरम । १३ बोझ । १४ नेक = अच्छा । खो = स्वभाव । अर्थात अच्छे स्वभावको भलेमानस आदमी । १५ ईसा पैगम्बर इसाई धर्मके प्रवर्त्तक मूल पुरुष । १६ अन्तम । १७ जगह । १८ वहां, उस जगह । १९ फकीर दो प्रकार के होते हैं । एक तो गदा (भीख मांगनेवाले) जिनको संसारी वैभवकी बहुत लालसा है मगर उनको मिलता नहीं । दूसरे दुर्वेश जिन्होंने संसारको अपने विचार द्वारा त्याग दिया है । २० इस जगह । २१ दिल = हृदय; रेश = जखम घाव । जाशय हृदय पर चोट खाये हुआ अर्थात् संसारसे उदास हुआ पुरुष । २२ बिहतरी, भलाई, नसीहत, उपदेश, उत्तम उपाय । २३ हौंसला = हिम्मत, उत्साह, कम हौंसला = कमहिम्मत, अनउदार ।। २४ रोजी, भोजन । २५ कदापि नहीं; कभी नहीं । २६ शिकायत, उलाहना । २७ अतिथि । २८ दुःख मिटाने वाला । २९ सहानुभूति दिखाने वाला । ३० रोटी । ३१ विश्वास, यकीन । ३२ परीक्षा ३३ निकट । ३४ प्यास । ३५ भाग्य । ३६ एकसाथ । ३७ साथ । ३८ । डरता । ३९ हटकर । ४० मठ । ४१ थाल । ४२ गिलास । ४३ वर्तन । ४४ थालीका ढकन । ४५ तैयारी, बनावट । ४६ खानेपीने के सामान । ४७ धन्यवाद । ४८ मुसलमानी एक खाना । ४९ प्रतिष्ठा । ५० बराबर, समान ५१ निन्दा, शिकायत । ५२ जाहिर प्रकट । ५३ क्रोध, कोप । खतावे किर्दगार = ईश्वर का कोप । ५४ कर्ता ५५ लेना । ५७ खुशीके लिये । ५८ लज्जात = स्वाद । लज्जात बहुवचन है लज्जातको अर्थात् बहुतसे स्वाद । लज्जात दुनिया ।। संसारी विषय वासनाका सुख । ५९ पीनेकी चीज । ६० भोजन, खाना । ६१ लाड । ६२ प्यार । ६३ समय । ६४ करना; गुजरना । ६५ परिश्रम । ६६ अधिक । ६७ मर्जी, इच्छा, आज्ञा । ६८ दुख । ६९ चाहने वाला । ७० चाह । ७१ समक्ष । ७२ यहां मौलवीसे मतलब है मौलाना रूम । ७३ अधीनता । ७४ अभिमान । ७५ ईश्वरके भक्त । ७६ गरीब । ७७ । अभिमान ७८ अवमान । ७९ निकट । ८० गरीबी, दीनता । ८१ सत्य । ८२ कच्चा । ८३ आसमान ।

माया तजे तो क्या भया, मानहिं तजा न जाय।
मानहिं बड मुनिवर गले, मान सबन को खाय ॥
कबिरा अपने जीवते, ये दो बातां धोय।
मान बडाई कारने, अछता मूल न खोय ॥

वार्त्ता ३

शाह इब्राहीम अद्धम संसार त्याग देनेके पश्चात् मस्त फकीरों के वेषमें इधर उधर फिरा करते थे। न कोई उनका विशेष वेष था न चिह्न। इसलिये लोग उनको पहचान नहीं सकते थे। एकबार ऐसेही फिरते हुए किसी अमीर आदमीने उन्हें पकड-कर अपने बाग में माली के काम पर लगा दिया। सद्गुरु की इच्छा जानकर वे अच्छी तरह बाग का काम करने लगे। एक वर्ष जब बागवानी करते उनको होगया तब एकदिन बाग का मालिक अपने कई मित्रोंको साथ लिये हुए बागमें आया। शाह इब्राहीम साहबने उस समय बागमें जितने फल फूल थे सबमें से थोडा थोडा लेकर एक डाली बनायी और मालिक बेगके पास ले गये। जब उस अमीर ने डाली में से अनारों को लेकर खाया तब सब अनार खट्टे निकले। उसने शाहसाहब को बुलाकर पूछा कि, मेरे लिये ये खट्टे अनार क्यों लाया ? उन्होंने जवाब दिया कि, मुझे खट्टे मीठे की कुछ खबर नहीं है। उस अमीरने कहा कि, तुम कितने दिनसे इस बाग में रहते हो ? उन्होंने कहा एक वर्षसे। अमीरने कहा एक वर्षसे बागवानी करके भी तुमने आजतक बागके खट्टे मीठे अनारों को नहीं पहचाना ? शाह इब्राहीमने उत्तर दिया तुमने मुझे बागकी रक्षा करने के लिये रखा था कि, फलों को खाने के लिये ? अमीरने

कहा रक्षाके लिये ? उन्होंने कहा तब मैं फल कैसे खा सकता था ? अगर रक्षक भक्षक बन जाय तब तो रक्षाका नामही संसारसे उठ जाय। आपकी बातको सुनकर वह अमीर बडे आश्चर्य में आया। फिर जाँच करने पर उस अमीरको मालूम हुआ कि, वह तो शाह इब्राहीम अद्धम हैं तब तो वह हाथ जोडकर उनके पैर पर गिर पडा और अपना अपराध क्षमा कराने लगा। तब वे हँसकर उस अमीरको उपदेश देकर चल दिये।

वार्त्ता ४

कहते हैं कि, बादशाहत त्याग देने के पश्चात् सुलतान इब्राहीम अद्धम शाह दस वर्ष तक नेशापुर जंगल की एक गुफा में रहकर भजन करते रहे। आठवें दिन गुफा से निकल कर जंगलकी लकडियां इकट्ठी करके वस्तीमें ले जाकर बेच आते और उससे जो कुछ मिलता उतनेही में आठ दिनके भोजन का सामान खरीद कर ले आते और आठ दिनतक बैठे भजन करते.

लिखा है कि,इस दस वर्षकी तपस्या और एकान्त बाससे उन्होंने अपने मन तथा इंद्रियोंको पूर्ण रीतिसे जीत लिया था। इसके प्रमाणमें लिखा है कि, जब नेशापुरसे शाह इब्राहीम अद्धम रवाना हुए तब एक जहाज पर चढ कर अरब को चले। संयोगसे उस जहाज पर एक अमीर भी जा रहा था। उस अमीरके साथ सब अमीराना सामान नाचराग वगैरह थे। ठट्ठा मसखरीसे अमीरों को खुश करने वाले भांड भी उसके साथ थे। एक रातको भांडोंने कहा अगर कोई आदमी मिलता तो उसपर से हमलोग अपनी मसखरी उतारते। उस अमीरने हुक्म दिया कि, देखो

जहाज में कोई गरीब भूखा मिल जाय तो उसे रुपया दो रुपया देकर अपना काम निकाल लो। आखिर कार ढूंढते ढूंढते उस अमीर के आदमियोंने शाह इब्राहीम अद्धमको किसी कोने में बैठा हुआ पाया। इनका विचित्र वेष और बढी हुई दाढी वगैरह देखकर सबने पागल समझ कर उन्हें पकड लिया और अमीरके मजलिस में लाकर बैठा दिया। फिर तो भांडों ने मनमानी की। जितने खेल खेलते अन्तमें सब उन्हीं पर उतारते अंतमें जब उन्हें बहुत तकलीफ हुई तब आकाश बानी हुई कि, अगर तुम कहो तो इस जहाजको डुबाकर इन सब मूर्ख बदमाशोंको इनके किये का दण्ड देदूँ। शाह इब्राहीमने बडे धीरज के साथ कहा कि,

खींच कर सीनेमें अपने एक आह।
बोला इब्राहीम ऐ मेरे अल्लाह॥
कुछ नहीं हस अमरमें इनकी खता।
करता अगरबसीरत इनको तू अता॥
कजरवी क्यों करते ऐ दानायराज।
फेल बदसे आप करते एहतराज॥
राह में गर बेबसर के चाहहो।
जो न रोके उसको वह गुमराह हो॥
मर्द बीना को है लाजिम दे बता।
वरन गोया उसका खून उसने लिया॥
वह है या रब्ब जुर्म असियांसे बरी।
कुछ नहीं उसमें खता उनकी जरी॥
क्योंकि गफलतसे है मसलूबुल हवास।
जेहल नादानी से मकलूबुल हवास॥

फिर उनने कहा कि, हे प्रभु ! क्या मैं तेरा बन्दा इसका बिलहूँ और ऐसा नापाक हूँ कि, मेरे स्पर्श के पाप से इतने बडे जहाज को डुबाकर इतने निष्पापोंका अन्त करेगा । प्रभु ! तू तो दयालु है अधम धारन है ऐसा क्यों नहीं करता कि यदि केवल मेरे ही लिये तुझे इतनी हत्या करनी पडती हो तो मुझको ही डुबादे अगर नहीं तो इन सबोंको वह ज्ञान दे कि ये तेरी बडाईको समझें और इनका हृदय दया और ज्ञानसे पूर्ण हो जावे । उनके इस प्रकार आशिर्बाद करने के पश्चात् तत्काल ही अमीर सहित समाज के सब आदमियों का हृदय शुद्ध और ज्ञान से पूर्ण हो गया। उस समय सबने उनको पहचाना । फिर तो सब उनके पगपर गिरकर क्षमा कराने लगे। उन्होंने सबको उपदेश देकर संतोष दिलाया ॥

वार्ता ५ ।

एक बार एक स्मशान में बैठे हुए शाह ईब्राहीम अद्धमसे किसीने पूछा कि, बादशाही छोडकर मरघटों में क्यों बैठते फिरते हो ? उन्होंने उत्तर दिया कि, संसार के मनुष्यों को मैं चार प्रकार का देखता हूँ ॥ १ ॥ कोई तो जीता है और संसार में मौजूद है ॥ २ ॥ कोई मांके पेटमें है ॥ ३ ॥ कोई अपना कर्म पूरा करके आनेही चाहता है ॥ ४ ॥ कोई मर गये हैं इनमें से मरे हुए लोग पुकार रहे हैं कि ओ संसार के आदमियों ! जल्दी जल्दी मरो कि, क्यामत जल्दी हो और हमलोग कब्रकी कष्ट से छूटें । जो माताके पेट में आचुके हैं और जो आने वाले हैं वे पुकार रहे हैं कि, ओ संसार के मनुष्यो ! जल्दी संसारको छोड़ो कि, हमारे आनेको स्थान मिले। आशय यह है कि एक ओर से भागते हैं और

दूसरी ओरसे बुलाते हैं। इस दशा में संसारमें रहने की इच्छा किस प्रकार हो सकती है। इसलिये मैंने मौतको और मरघट को अन्तिम स्थान जानकर सेवन करना आरम्भ किया है।

वार्ता ७

एक बार फकीर हो जाने के बहुत दिन पीछे शाह इब्राहीम अद्धम बलखमें गये और शहरसे बाहर एक जलाशय के किनारे बैठे। आने जाने वालों ने उन्हें देख कर पहचाना और उनके बेटे को जो उस समय वहां के बादशाह थे उनके आने की खबर दी।

बादशाह बापके आने की खबरको सुनकर चट सवारी मँगाकर बहुतसे मुसाहेब और नौकर चाकरों को साथ लिये हुये वहाँ पहुँचा। शाह इब्राहीम के आनेका समाचार जैसे ही बलख के लोगों को पहुँचा वैसे ही जो जिस दशामें था अपना अपना काम छोडकर दौड पडा। थोडी ही देरमें शाह इब्राहीम के निकट बडा भारी मेला लग गया।

सुलतान इब्राहीम के पास में सिवाय एक गुदडी के दूसरा वस्त्र या पात्र आदि कुछ नहीं था। कठिन तपस्या के कारणसे उनका शरीर भी बहुत दुबला पतला और कमजोर देख पडता था। बापकी वह दशा देखकर बादशाह बने हुए आत्म दृष्टिसे शून्य बेटेने कहा पिताजी! आपने बादशाहत छोडकर संसार भरका कष्ट अपने शिर उठाके क्या लाभ उठाया?।

जो आपका शरीर मखमल और फूलोंकी शय्या पर सोने-वाला था अब उसके लिये टाट भी आपके पास नहीं है जिसके सम्मुख हजारों दास दासियाँ सेवा करनेके लिये हाथ जोडे खडे रहते थे आज वही इस प्रकार बेकस और लोचारक समान

भूखे प्यासे जमीन पर सोता और दुःख उठाता फिर रहा है। पूज्य पिताजी ! एक चीज को छोडकर मनुष्य दूसरी वस्तुको उन्नति की आशासे स्वीकार करता है। आपने तो उलटा प्राप्त सुख को भी खोकर अपनी ऐसी दशा बना ली है जिसे देखकर मुझे शरम आती है और आपकी यह प्यारी प्रजा आठ आठ आसूं रो रही है। इसी लिये मैं आपसे पूँछता हूँ कि, आपको इस त्याग में क्या प्राप्त हुआ है ? ।

बेटेकी बातको सुनकर उसे कुछ उपदेश देने के विचारसे सुलतान ने कहा, बेटा ! मैंने जो कुछ कमाया है वह तो पीछे बतलाऊंगा पहले तू बतला कि, बादशाही पाकर तूने अपनी उन्नति कहां तक की है ? बापकी बात को सुनकर बेटा हँसकर बोला कि, देखिये आपके राज्य छोडकर चले जानेके पश्चात् मैंने अमुक अमुक देश अपने बाहु बलसे जीतकर स्वाधीन कर लिया है और अमुक अमुक सुधार राज्य में फैलाया है। मेरे अधिकारमें क्या नहीं है ? जिसको चाहूँ आज गरीब बना दूँ जिसको चाहूँ आज कुबेर कहला दूँ। जिसको चाहूँ उसका जान बखशी कर दूँ जिसको चाहूँ मार डालूँ। मेरे नाम को सुनकर शत्रु डरते हैं। मेरी आज्ञा को कोई तोड नहीं सकता।

इतना सुनकर सुलतानने कहा कि, बेटा ! अगर सच मुच तुममें ऐसी सत्ता आगयी है तो ले मेरी यह सुई इस तलाब मेंसे निकलवा दे। इतना कहकर गुदडी सीनेकी सूईको तालाबमें फेंक दिया।

यह देखकर बेटा ( बादशाह ) ने हँसकर कहा यह कौन-बडी बात है। एक नहीं लाखों सुई आपको मँगवा देता हूँ। सुलतान ने कहा मुझे दूसरी सुई नहीं चाहिये मुझे तो मेरी ही सुई चाहिये।

बादशाह ने उसी समय वजीर को आज्ञादी और आनन फानन में देखते ही देखते हजारों पानी में डुबकी मारनेवाले और जाल डालने वाले हाजिर हो गये। यद्यपि सूईका निकाल लेना बादशाह सहल काम समझता था तथापि सब उपाय करने पर भी सूईका पता नहीं लगा। तालाब के तह में जमें हुए सब काँदों कीच साफ हो गये। मगर सूईका पता नहीं लगा। तब तो बादशाह अपने मनमें शरमाकर पिताके पास जाकर कहने लगा कि, वह सूई तो नहीं मिली उसका मिलना असम्भव है दूसरी सुइयां हाजिर हैं जितनी चाहिये लीजिये। सुलतान इब्राहीमने कहा कि, बेटा तूने यह क्या उन्नति की कि, एक सुई भी तालाबसे नहीं निकलवा सकता ? खैर अब मेरी कमाई को भी देख और अपनी कमाई से मिला। इतना कहकर सुलतान ने आंख बन्द करली एक क्षण के बाद आंख खोल कर तालावकी ओर देखा तब अगनित जलचर मछली आदि जीवधारियों को किनारे जलमें खडा देखा। बादशाहने उनसे कहा प्यारी ईश्वरकी सृष्टिकी मछलियो ! क्या तुम मेरा एक काम कर सकोगी ? सब जलचरोंने एक जबान होकर कहा जो आपकी आज्ञा हो करने को तैयार हैं। जलचरों को बोलते सुनकर बादशाहसे प्रजा तक सब आश्चर्य में आगये। सुलताननने मछलियोंसे कहा कि मेरी एक सूई पानीमें है उसे ढूँढकर ला दो। इतना सुनते ही मछलियां गोता लगा गयीं। थोडी देरमें एक मछली सुई मुँहमें लिये हुई किनारे आयी। बादशाहने अपने हाथ से सुई लेकर देखी तो वही सूई थी। फिर तो वह बापके पगपर गिरकर रोते और अपनी अज्ञानता के अपराध को क्षमा कराने लगा। प्रजा

चारों ओर से जय जयकार वाणी उच्चारने लगी। इतने में सुलतान इब्राहीम अद्धमसाहब वहां से अन्तरध्यान हो गये।

वार्त्ता ८

कहते हैं कि, जब सुलतान इब्राहीम अद्धम मक्का के निकट पहुँचे तब सुना कि मक्काके पुजारी और यात्री लोग उनकी अगुवानी को आ रहे हैं। तब वो जमात से निकल कर अलग होकर आगे चले गये जिसमें उनको कोई पहचान न सके मक्का के महात्माओंके सेवक लोग जो अपने अपने मालिकों से आगे आरहे थे पहले सुलतान इब्राहीम अद्धमसे मिले। उन लोगोंने आपसे पूछा क्या सुलतान इब्राहीम अद्धम यहांसे नजदीक हैं? सब महात्मा लोग उनसे मिलनेको आरहे हैं। आपने उत्तर दिया कि; वे उस अधर्मीसे क्या चाहते हैं? सेवकोंने गाली देते सुनकर आपको खूब मारा और गरदनियां दीं और कहने लगे कि, तू ऐसे महात्मा को अधर्मी कहता है? असलमें तूही अधर्मी है। आपने कहा हां भाई सोई तो मैं भी कह रहा हूँ वे सब तो आपको मारकूटके आगे बढे और आप अपने मनसे कहने लगे कि, क्यों ओ दुष्ट तूने अपने किये का फल पाया या नहीं? अभी कैसा खुश हो रहा था कि, मक्का के महात्मा लोग हमारी अगुवानी को आ रहे हैं। इसी प्रकार से आप ही आप अपने मनको समझा रहे थे इतने में लोग आगये और आपको पहचान कर आपसे क्षमा मांगने लगे। फिर आप मक्का में जाकर बहुत दिनों तक रहे। आपके बहुत से चेले भी हो गये। आपके चेले गुदड़ी ओढते और खडी टोपी पहनते थे।

## वार्ता ९

जब आप बलख छोड़ कर फकीर हुए थे उस समय आपका एक छोटा पुत्र था जब वह लडका बड़ा हुआ तब उसने अपनी मांसे पूछा कि मेरा बाप कहां है ? मांने सब हाल कह सुनाया और यह भी कहा कि सुननेमें आता है कि, आजकल मक्कामें रहते हैं। लड़केने मांसे कहा "अगर आपकी आज्ञा हो तो मैं भी मक्का जाऊं तीर्थ भी करूंगा और पिताको ढूंढकर उनका दर्शन भी करूंगा" मांने कहा अकेले तू क्यों जायगा मैं भी मक्का की जेयारत को जाऊँगी। फिर तो लडकेने वजीरों को हुक्म दिया कि, शहर भर में डौंडीं पिटवा दो कि, जिसको मक्का चलना हो वह चले उसका सब खर्च मेरी ओरसे दिया जायगा। फिर चार हजार आदमी मक्का जाने को तैयार हुये। सबको साथ लेकर लडका मक्का पहुँचा। वहाँ जाकर गुदडी वाले फकीरों की एक जमात देख कर उनसे पूछा कि, तुम लोग इब्राहीम अद्धम साहब को जानते हो ? उन्होंने कहा वे तो हमारे गुरु हैं। फिर पूछा वो कहां हैं ? उत्तर मिला कि वो लकडियों के गट्ठे लाने जंगलमें गये हैं। क्योंकि जब वो जंगल से लकडी लेकर आयेंगे और बेचकर रोटी लायेंगे तब हम लोग खायेंगे। इतना सुनकर लडका जंगल की ओर रवाना हुआ। आगे जाकर एक बुड्ढे को लकडियोंका गट्ठर शिर पर रखे हुए आते देखा। लडका सुलतानकी वह दशा देखकर रोने लगा। फिर उनके पीछे पीछे बाजार तक गया। जहां जाकर उन्होंने लकड़ी रखकर पुकारा कि कोई है जो माल हलाल ( सुकृति की कमाई ) को माल हलालके बदले लेवे। एक आदमी आया उसने

आपसे लकड़ियाँ लेलीं और उसके बदले में रोटियाँ दे दीं। आप रोटी लेकर जमातमें आये और साथियों के आगे रख दीं। लोग रोटी खाने लगे और आप भजन में लगे।

सुलतान इब्राहीम अद्धम साहेब सदा अपने चेलोंसे कहा करते थे कि, 'देखो बेदाढी मूँछके लडके और स्त्रियों से सदा सचेत रहना उनकी ओर कभी ध्यान देकर मत देखना''। उनके शिष्यवर्ग सदा उनकी आज्ञाका पालन करते थे।

काबाकी परिक्रमाके समय संयोगसे सुलतान इब्राहीम अद्धम का लड़का उनके सन्मुख आगया। आपने दृष्टि भरकर उसकी ओर देखा। शिष्य लोग उनके उस कामसे आश्चर्यमें आये। जब परिक्रमा कर चुके तब आपके शिष्योंने आपसे हाथ जोड़-कर विनय किया कि दीनबन्धु हमको तो आपने आज्ञा दी है कि बिना मूँछ डाढी वाले बालकों और स्त्रियोंकी ओर दृष्टि मत करना किन्तु परिक्रमाके समय आपने स्वयम् एक बालककी ओर टकटकी लगाकर देखा था इसका क्या कारण है ?

शिष्योंकी बातको सुनकर आपने उत्तर दिया कि जिस समय मैं बलख छोडकर चला था उस समय मेरा एक छोटा लडका था मुझे इस लडकेको देखते ही ऐसा जान पडा कि यह वही लडका है। आपकी बात सुनकर आपके शिष्योंमें से एक शिष्य यात्रियोंके स्थानमें गया और बलखके यात्रियोंको ढूँढते ढूँढते आपके पुत्रके पास पहुँचा। उस समय वह लडका अपने खीमेंमें बैठा हुआ पुस्तक पढ रहा था और रो रहा था उस शिष्यने जाकर उस लडकेसे पूछा कि आप कहाँसे आये हैं। लड़केने कहा—बलखसे आया हूँ। फिर उसने पूँछा आप

किसके लड़के हैं ? उत्तर मिला कि, इब्राहीम अद्धमके उसने पूँछा कि, आपने उनको देखा है ? लड़केने कहा कलके सिवाय मैंने उनको कभी नहीं देखा किन्तु मुझे यह भी निश्चय नहीं है कि, जिनको मैंने देखा है वह मेरे पिता हैं कि, नहीं। उनसे इस डरके मारे कि वो तो हम ही लोगोंसे भाग कर यहाँ आये हैं कहीं हमको जानकर यहांसे भी कहीं भाग न जावें कुछ न पूँछा। आपके उस शिष्यने कहा कि, आप मेरे साथ आइये मैं आपको आपके पितासे मिला दूँ। फिर तो दोनों मां बेटे और बहुतसे आदमी उस शिष्यके साथ चले जब सब आपके सामने आये तब आपकी स्त्रीने आपको देख लिया देखते ही वह विकल होगयी और रोने लगी। फिर लड़केसे बतलाया कि, देखो तुम्हारे बाप यही हैं ? लडका भी रोने लगा। उस समयकी दशा ऐसी करुणापूर्ण थी कि आपके सब शिष्य भी उनके साथ रोने लगे। मोहने करुणाके स्वरूपमें सबके ऊपर अपना जाल फैलाया।

लडका रोते रोते बेहोश होकर गिर पडा जब चेतमें आया तब बापके पग पर गिरकर प्रणाम किया। आपने उसे गले लगाया फिर उससे उसके पढने लिखने और धर्मकी बातोंको पूछकर आपने चाहा कि, वहांसे उठकर चले जावें किन्तु आपके स्त्री और पुत्रने न छोडा तब थोडी देरतक चुप रहनेके बाद आपने आसमानकी ओर मुहँ करके कहा हे प्रभु ! तू मेरी सहायता कर आपका इतना कहना था कि, पुत्र आपहीके गोदमें मृत्युको प्राप्त हुआ।

शिष्योंने लडकेको मरते देखकर पूछा या सतगुरु ! यह क्या हुआ ? आपने कहा जिस समय मैंने इस लडके को गले

लगाया था उस समय मेरे हृदयमें मोहका संचार हो आया था तब परमात्माकी ओरसे आज्ञा हुई थी कि, ऐ इब्राहीम तू मेरे प्रेम और भक्तिका दम भरता है और स्नेह दूसरोंसे करता है। जिस बातके लिये शिष्योंको सबसे अलग रहनेको कहता है उसीको तू आप पकडता है। जब मैंने यह सुना तब मैंने आशीर्वाद किया कि, हे प्रभु मेरी रक्षा तेरे ही हाथमें है, यदि मेरे पुत्रका मोह मुझे तुझसे अलग करनेवाला है तो मुझे मृत्यु दे दे या उसीको। बस जो कुछ साहबने किया सब ठीक किया। इतना कहकर आप वहांसे शिष्यों सहित उठकर चले गये बलखवाले लोग रोते पीटते लाशको दफन करनेके लिये ले गये ❋

वार्ता १०

एकबार हजरत इब्राहीम अद्धमके पास कोई आदमी एक हजार दिरम लाया और विनय पूर्वक प्रार्थना की कि आप इसे स्वीकार कर लीजिये आपने उससे कहा कि मैं मँगतोंसे कुछ नहीं लेता। उस आदमीने कहा मैं मँगता नहीं हूं बल्कि बडा धनवान हूँ। तब आपने उससे पूछा कि, जितना तेरे पास है उससे अधिक मिलनेकी इच्छा तेरे हृदयमें है कि नहीं ? उसने कहा हां अधिक तो जरूर चाहता हूं। तब आपने कहा कि, तब तो तू बडा भिखमँगा है इसलिये मैं तुझसे कुछ नहीं ले सकता। मैं उसीसे लेता हूँ जो इतना पूरा है कि, कुछ नहीं चाहता।

---

* वर्तमानके त्यागके अभिमानी साधु और महंतोंको विचार करना चाहिये क्यों कि, ये भी तो अपनेको सुलतान इब्राहीम अद्धमसे बढ़कर त्यागी बतलाते हैं।

वार्त्ता ११

एकबार एक आदमी दसहजार अशरफियाँ लेकर आपके पास आया और उनको स्वीकार करानेके लिये हठ करने लगा। आपने उससे कहा कि, तू इस थोड़ेसे सोनेके बदले मेरी साधुता मोल लेके मुझे त्यागियोंकी जमाअतसे निकलवाना चाहता है ? इतना कहकर आप वहांसे उठकर चले गये।

धन्य है इस त्यागको। आजकलके वैरागी भी अपनेको महान त्यागी मानते हुए भी एक एक पैसाके लिये संसारी तुच्छ जीवोंके पास दीनता करते और झूठी खुशामद किया करते हैं क्या कोई सच्चा विचारवान उन्हें वैरागी कह सकता है कदापि नहीं।

वार्त्ता १२

एक आदमी ने आपसे विनय किया कि, आप मुझे ऐसा उपदेश दीजिये जिसपर अमल करके मैं सन्त पदवी को पा सकूँ। आपने उससे कहा-सन्त बनने के लिये सबसे पहली बात यह है कि, लोक और परलोक दोनोंसे चित्त उठा करके-वल साहबमें लगादे। साहब के सिवाय अपने हृदयसे दूसरा सब कुछ निकाल दे। दूसरे-हरामकी कमाई छोडकर सुकृति कमाईसे उदर निर्वाह कर। क्योंकि जिसका आहार शुद्ध है उसका हृदय शुद्ध होता, और जिसका हृदय शुद्ध होता है; उसीके अन्तःकरणमें साहबका सच्चा प्रकाश प्रकट होता है जिसने अपना आहार शुद्ध किया है वह अवश्य अपने पदको पहुंचा है। तीर्थ व्रत और नाना प्रकारके ऊपरी तपस्यासे चित्त शुद्ध नहीं होता बरन आहार शुद्ध होनेसे ही अन्तःकरण शुद्ध होता है।

वार्त्ता १३

एक बार लोगोंने हजरत इब्राहीम अद्धमसे कहा कि अमुक सन्त बड़ा सिद्ध और ईश्वरतक पहुंचा हुआ है। वह सदा ध्यान में ही रहता है और दूर दूर देशकी बातोंको कह देता है। और सदा तपस्या में ही रहता है। आपने उन लोगोंसे कहा कि, मुझे उसके पास लेचलो में उसका दर्शन करूंगा। लोग आपको उसके पास ले गये। आपने वहां जाकर देखा कि; वह उससे भी बढकर सिद्धिवाला है। उस सिद्धिने आपसे प्रार्थना की कि; आप तीन दिन तक यहां रहिये आप रह गये। उसके व्यवहार-को देखकर आपने विचार किया तो मालूम हुआ कि, उसका भोजन आदि निर्वाह दम्भकी कमाईसे चलता है। तब आपको उसकी दशा पर दया आयी। तीन दिनके बाद आपने उस सिद्ध को नेवता देकर अपने कुटी पर बुलाया जब वह आप के पास आया तब दूसरे ही दिन उसकी सिद्धि लुप्त होने लगी तीसरे दिन तो वह कोरा सन्त रह गया। तब उसको बडा आश्चर्य हुआ उसने आपसे कहा कि आपने मेरे ऊपर क्या कर दिया मेरा सब चमत्कार जाता रहा ? आपने उसको उत्तर दिया कि; पहले तुम हरामकी कमाईसे अपना पेट भरते थे इस कारण कालने तुम्हारे हृदयमें प्रवेश करके तुम्हें अनेक प्रकारकी सिद्धिका लालच दिखाकर साहब के देशसे काल देशमें लेगया था। अब तुम तीन दिनसे सुकृति की कमाई का भोजन करते हो इस कारण कालका राज्य तुम्हारे हृदयसे उठ गया है। अब तुम चाहो तो साहिबका भजन कर सत्य लोक का साधन कर सकते हो।

सुलतान इब्राहीम की बात उस समय तो उसको अच्छी नहीं

लगी परन्तु जब वह लौटकर अपने स्थानपर आया और सुलतान इब्राहीम अद्धम साहेब के आचार विचार को अपने कर्त्तव्यों से मिलाने लगा तब उसे प्रत्यक्ष ज्ञात होगया कि, वह तो अपने उचित परिश्रम द्वारा अपनी संसार माया चलाते हैं और वह अपनी संसार यात्राके लिये नाना प्रकार के वेश और दम्भकी बातोंसे संसार को बहकाकर अपना नाम बढ़ाता है। जिन बातोंके भेदको वह स्वयम् नहीं जानता उसको जानने का डौल बनाकर लोगोंको ठगता और भ्रममें डालता है। इस प्रकार से बोध होते ही उसने पश्चात्ताप करके अपने सब स्वांगों को तिलाँजली देकर काल देशसे निकलने और सत्यराज्य में प्रवेश करनेके लिये सच्चे संतोंका संग करना आरम्भ किया।

वार्त्ता १४

एक दिन परिश्रम करने पर भी आपको भोजन नहीं मिला। आपने साहिब को धन्यवाद दिया। इसी प्रकार सात दिन तक आपको भोजन नहीं मिला और बराबर आप साहिब को धन्यवाद करते रहे। आठवें दिन निर्बलता बहुत बढ गयी तब आपके मनमें कुछ भोजन मिलने की इच्छा हुई। साहिब की कृपासे एक मनुष्य आकर खड़ा हुआ और विनय करने लगा कि, आप मेरे यहां भोजन करने चलिये उसके प्रेम और भक्ति भावको देखकर आप उसके साथ गये जब आप उस आदमी के घर पर पहुँचे तब उसके अमीराना ठाट और मकानात के देखनेसे मालूम हुआ कि, कोई बडा धनी आदमी है। उसने आपको एक सजी हुई कोठरीमें ले जाकर बैठाया फिर वह आपके पैरों पर गिरकर विनय पूर्वक कहने लगा कि, मैं

आपका मोल लिया हुआ दास हूँ सो यह सब वैभव आपकी सेवा में अर्पण करता हूँ, इसे स्वीकार कीजिये। आपने उसी समय उससे कहा कि, आजसे मैं तुझे दासत्व से स्वतंत्र करता हूँ और यह सब माल असबाब भी तेरे ही को देता हूँ। इतना कहकर आप वहांसे उठकर जंगल में चले आये और साहिबसे प्रार्थना करने लगे "हे प्रभु! आजसे तेरे सिवाय दूसरा कुछ न चाहूँगा। तू तो टुकडे रोटीके बदले संसार भरकी माया मेरे गले बांधना चाहता है"। कहते हैं कि, आपने मनका दण्ड देनेके लिये कई दिनों तक और भी भोजन नहीं किया।

सद्गुरु ने सबसे अधिक मनके ऊपर ही ध्यान रखने को बारंबार कहा है। यथा—

साखी—मनके मते न चालिये, छाडि जीवकी बानि।
कतवारीके सूत ज्यों, अलटि अपूठा आन॥
मनके मते न चालिये, मनका मता अनेक।
जो मनपर असवार है, सो साधू कोइ एक॥
चिंता चित विसारि कै, फिरी न बूझिये आन।
इन्द्री पसारा मेटिये, सहज मिले भगवान्॥
मनको मारो पटकिके, टूक टूक है जाय।
टूटे पीछे फिर जुटे, बीच गांठ रहि जाय॥

मनका विशेष वर्णन मन बोध ग्रन्थमें देखनेसे मालूम होगा

वार्त्ता १५

सुलतान इब्राहीम अद्धमसाहबको निद्रा नहीं आती थी। एक बार बहुतसे आदमियोंने मिलकर इस बातकी परीक्षा ली। आपने पूछा कि, आपको निद्रा क्यों नहीं आती? आपने उत्तर दिया जिस कालने बडे बडे ऋषि, मुनि, पीर, पैगम्बर

और औलियाओंको साहिबसे विमुख कर दिया। वह सदा जाग कर सत्यपथके जीवोंको भटकानेकी युक्ति रचता रहता है, तब हमको सोनेकी फ़ुरसत कैसे मिल सकती है ?

सच है। साहबने कहा है।

काल खडा शिर ऊपरे, जागु बिराने मीत।
जाको घर है गैल में, सो कस सोवै निचिंत॥

वार्त्ता १६

एक बार सुलतान इब्राहीम अद्धम साहब एक टूटे हुये मकानमें ठहरे हुए थे। उसमें और भी बहुतसे मुसाफिर उतरे थे। रातको ठंढी ठंढी हवा और साथ ही साथ पानीके छींटें भी पड़ने लगीं।

उस मकानका द्वार टूटा हुआ था। इससे मकानके अन्दर ठंढी हवा और पानी आकर मुसाफिरोंको कष्ट पहुँचा रहे थे। आपसे उनका कष्ट देखा न गया। आप चुपचाप उठकर द्वार पर जाखड़े हुए। जिससे अन्दरके मुसाफिरोंको तो आराम हुआ किन्तु आप ठंढसे ठिठुर गये। सबेरा होनेपर लोगोंने देखकर पहचाना और आगसे सेकनेपर जब आपको होश आया, तब लोगोंने पूछा कि, आपने ऐसा क्यों किया ? तब आपने कहा कि, बहुत सी जानोंको बचानेके लिये एक का जान काममें आवे और बहुतोंकी तकलीफ दूर करनेके लिये एकको थोड़ी तकलीफ उठानी पडे तो इससे बढकर अच्छा काम क्या होसकता है। इसलिये मैं द्वार पर खडा हो गया जिससे एक मेरी तकलीफ के बदले इतने मुसाफिरों को आराम होवे। सच है।

दया भाव जानै नहीं, ज्ञान कथे बेहद।
तेनर नरकै जायँगे, सुनि सुनि साखी शब्द॥

## वार्ता १७

सहलविन इब्राहीम नामक संतने कहा है कि एकबार वो सुलतान इब्राहीमके साथ सफर में थे, संयोगसे वो बीमार पड-गये। सुलतानके पास जो कुछ बस्त्रादि था बेंचकर उनकी रक्षामें लगा दिया अन्तमें जब कोई सवारी भी नहीं रही तब सहलविन इब्राहीमने कहा " मैं बहुत कमजोर हो गया हूँ अब आगे कैसे जासकूंगा ? " आप उन्हें अपनी गर्दनपर बैठाकर तीन मंजिल-तक लेगये, जबतक वो अच्छे भी हो गये *

## वार्ता १८

सुलतान इब्राहीम अद्धमके साथ जो कोई रहनेकी इच्छा प्रकट करता था। आप उससे तीन बचन ले लेते थे तब उसको अपने साथ रखते थे।

१ पहला नियम उनका यह था कि, आप किसीसे सेवा नहीं कराकर सबकी सेवा आप ही करते थे।

२ दूसरा नियम यह था कि, भजन करनेके समय का सबको सूचना देना अपने ऊपर रक्खा था।

३ तीसरा नियम यह कि, मण्डली का कोई आदमी भी सुकृति की कमाई से जो कुछ कमा के लाता था उसको मण्डली में समान उपयोगमें लगाते थे।

इन नियमोंमें से एक भी नियम जिसको अस्वीकृत होता था उसको अपनी मण्डली से बाहर करदेते थे।

---

* नोट–धन्य है इस पर उपकारको। आजकलके साधुओंको ध्यान देकर इस बातको विचारना चाहिये क्यों कि, वर्तमान में साधुओंकी यह नीति हो गई है कि, सफर तो सफर किसी विशेष स्थान पर भी कोई बीमार पड़जाय तो उसे एक गिलास पानी तक देना बुरा समझते हैं। मैंने बहुतसे ऐसे दृष्टान्त देखे हैं और स्वयं भी उनके संग रहकर भोग लिया है।

आज कलके महंतोंको इस बात पर ध्यान देना चाहिये क्यों कि, वर्तमानके महंत या मण्डलीके मुखिया साथके साधुओंकी पूजा और भेंटको भी हड़प जाते हैं।

वार्ता १९

एकबार किसीने सुलतान इब्राहीम अद्धम साहबसे पूछा कि, आपका पेशा ( धन्धा ) क्या है ? आपने उत्तर दिया "मैंने संसारको तो उसके चाहने वालों पर छोड दिया है और पर-लोकको परलोकके चाहने वालोंके लिये। किन्तु अपने लिये मैंने केवल साहबका भजन रक्खा है। सच है साहबने कहा है।

साखी–माला जपूं न कर जपूं, मुखसे कहूं न राम।
मेरा हरी मोंको जपे, मैं पाऊं विश्राम॥

वार्ता २०

एक बार किसीने सुलतान इब्राहीम अद्धमसे पूछा कि आपने ऐसी अधीनता और दासापन कहाँसे सीखी। आपने उसे उत्तर दिया कि "एक बार मैंने एक दासको मोल लिया। जब उसे साथ लेकर अपने स्थान पर आया तो उससे पूछा कि, तेरा नाम क्या है ? उसने उत्तर दिया कि, जिस नामसे आप पुकारें वही मेरा नाम है। फिर मैंने पूछा तू खाता क्या है ? उसने कहा जो आप खिलावें। फिर मैंने पूछा कि, तू पहनता क्या है ? उसने जवाब दिया जो आप पहनावें। फिर मैंने कहा तू करता क्या है ? उसने कहा जो आप हुक्म देवें। फिर मैंने कहा तू चाहता क्या है ? उसने कहा जो दास है उसको अपनी इच्छा कहां है ? जिसको अपनी इच्छा है वह दास ही नहीं है। आप फरमाते हैं कि, उस दासकी बातोंको सुनकर उसी दम उसको दासत्व से मोक्ष दे दिया

और उसीदम से अपना सब कुछ साहबको सौंप दिया। फिर जैसा वह चाहता है करता है। मैं न तो आधीनता करता हूँ न दासापन जो कुछ है साहबका है मेरा कुछ नहीं।

नोट—वर्तमान कालके दास पदवी के अभिमानी कबीर पंथी साधुओंको उपर्युक्त सुलतान के दासके वचनों पर ध्यान देना चाहिये क्योंकि, यद्यपि आजकलके कबीरपंथी साधुओंके नाममें दास शब्द अवश्य जुटा होता है और उनके मनमें भी दास शब्दका बडा भारी अभिमान रहता है यहां तक कि, यदि किसी कबीर पंथीके नाममें दास शब्द न जुटा हो अथवा किसी का नामही ऐसा हो कि, उसके नामके साथ दास शब्दका जोड न मिलता हो तो उस दास शब्दसे हीन सच्चे दासको भी वचनों और ब्यंगोंके मारे तंग करते रहते हैं और बल पूर्वक उसके सुन्दर प्रसिद्ध नामको बिगाडने का प्रयत्न करते हैं और आप दास कहलाकर भी स्वामीपनेंके ऐसे दम्भ और अहंकार में पडे रहते हैं कि, अपने गुरु ( जैसे माता पिता, दीक्षा गुरु आदि ) से भी मान चाहते और उनसे अपना पग पुजवाते हैं। और सतगुरुके बचनका ध्यान भी नहीं रखते क्यों कि, सतगुरुका वचन है।

गुरुको नीचा करि जानई, गुरु से चाहे मान।
सो नर नरके जायगा, जन्म जन्म होय स्वान॥
दासापन तो हृदय नहिं, नाम धरावै दास।
पानीके पीये बिना, कैसे मिटै पियास॥
नाम धरावै दास जो, दासापन हो लीन।
कहै कबीर लौलीन बिनु, स्वान बुद्धि कहि दीन॥
दासापन हृदय बसै, साधन सों आधीन।

कहै कबीरा दास सो, दास लक्ष लौलीन ॥
स्वामी होना सोहरा, दोहरा होनादास ।
गाड़र आनी ऊनको, बांधी चरै कपास ॥
निर्बन्धन बन्धा रहै, बन्धा निर्बंध होय ।
कर्म करै कर्ता नहीं, दास कहावै सोय ॥

वार्त्ता २१

एक ने आपसे एकदिन प्रार्थना की कि, आप मुझे उपदेश दीजिये । आपने उसको कहा कि, एक साहिब को याद रख और संसार को भूल जा । एक दूसरेने भी आपसे उपदेश मांगा आपने उसे कहा कि, बन्धे को खोल और खुलेको बांध । उस आदमीने कहा मैंने इसका अर्थ नहीं समझा । तब आपने उसको समझाया कि, थैली का मुंह खोल अर्थात् जो कुछ तेरे पास है उससे परमार्थ कर और-जबान को बांध अर्थात् बहुत बोलना छोडादे । सत्य है सत्य गुरुने कहा है ।

जिह्वाको दै बन्धनै, बहु बोलना निवार ।
सो परखीसे संग करु, गुरुमुख शब्द बिचार ॥

इसी प्रकार से सुलतान इब्राहीम अद्धम साहब के विषयमें हजारों वार्ता प्रसिद्ध है । यहाँ ग्रन्थ बढ जानेके भयसे मेरे पास जितनी वार्ताओंका संग्रह है उन सबोंको नहीं लिख सकते । आपकी जीवनीके साथ अधिक लिखने का प्रयत्न किया जायगा ।

इति सुलतान इब्राहीम अद्धम साहबका संक्षिप्त
जीवन चरित्र समाप्तः
इति बोधसागर पूर्वार्द्ध समाप्तमिदं

श्रीः

कबीरसागर—

सप्तम खण्ड—

# बोधसागर

भारतपथिक कबीरपंथी

स्वामी श्रीयुगलानन्द द्वारा संशोधित

★

मुद्रक एवं प्रकाशकः

खेमराज श्रीकृष्णदास,

अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,

खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग, मुंबई - ४०० ००४.

संस्करण : अप्रेल २०१९, संवत् २०७६

मूल्य : २०० रुपये मात्र ।



मुद्रक एवं प्रकाशकः
खेमराज श्रीकृष्णदास,™
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,
मुंबई - ४०० ००४.

Printers & Publishers :
Khemraj Shrikrishnadass,
Prop: Shri Venkateshwar Press,
Khemraj Shrikrishnadass Marg, 7th Khetwadi,
Mumbai - 400 004.

Web Site : http://www.Khe-shri.com
Email : khemraj@vsnl.com

Printed by Sanjay Bajaj For M/s. Khemraj Shrikrishnadass Proprietors Shri Venkateshwar Press, Mumbai - 400 004, at their Shri Venkateshwar Press, 66 Hadapsar Industrial Estate, Pune 411 013.

## सत्यनाम



श्री कबीर साहिब

सत्यनाम

सत्यसुकृत, आदि अदली, अजर, अचिन्त, पुरुष,
मुनीन्द्र, करुणामय, कबीर, सुरति योग, संतायन,
धनी धर्मदास, चूरामणिनाम, सुदर्शन नाम,
कुलपति नाम, प्रबोध गुरुबालापीर, केवल नाम,
अमोल नाम, सुरतिसनेही नाम, हक्क नाम,
पाकनाम, प्रकट नाम, धीरज नाम,
उग्रनाम, दया नाम की वंश
ब्यालीसकी दया.

# अथ श्रीबोधसागरे

### द्वादशस्तरंगः

## श्रीग्रन्थ निरञ्जनबोध

★

### ज्ञानी वचन चौपाई

काल निरंजन निर्गुणराई । तीन लोक जिहिं फिरे दुहाई ॥
सात द्वीप पृथ्वी नौ खण्डा । सप्त पताल इक्कीस ब्रह्माडा ॥
सहज सुन्नमें कीन्ह ठिकाना । काल निरंजन सबहीने माना ॥
ब्रह्मा विष्णु और शिव देवा । सब मिल करें कालकी सेवा ॥

चित्रगुप्त धर्म वरियारा । लिखनी लिखे सकल संसारा ॥
चौरासी लाखअरुचारों खानी । लिखनी लिखे सकल सब जानी॥
पशु पक्षी जल थल विस्तारा । बन पर्वत जल जीव विचारा ॥
काल निरंजन सब पर छाया । पुर्ष नामको चिह्न मिटाया ॥
सत्तर युग ऐसेहि चलि गयेऊ । पुर्ष शब्द एक चित्तमें ठयेऊ ॥

### पुर्ष वचन

तबहीं पुर्ष ज्ञानी सों कहऊ । धर्मराय अति प्रबल जो भयऊ ॥
यह तो अंश भया बरियारा । तीन लोक जीव कीन्ह अहारा ॥
नाहि मारकै देव उठाई । जग जीवनको लेहु छुडाई ॥

### ज्ञानी वचन-साखी

दोहा—करि प्रणाम ज्ञानी चले, करन हंसके काज ।
जोपै काल न मानि है, तुम्हीं पुर्षको लाज ॥

### चौपाई

मान सरोवर ज्ञानी आई । काल कठिन तब छेकी धाई ॥
काल कठिन गर्जै बहु वारा । मस्तिक साठ सूठ बरियारा ॥
सत्तर योजन गर्जै दंता । प्रलय जो कीन्हो काट अनंता ॥
कान एक आँखे चौरासी । औ मुख आठ हाथ लिये फांसी ॥
छत्तिस नाम ताहि पुन जानी । बोले बचन बहुत इतरानी ॥
तीन दंत पाछेको फेरी । यहि विधि तीन लोक किये जेरी॥
एक दंत पाताल चलावा । तहां जाय वासकको खावा ॥
दूजो दन्त पृथ्वी चलि आई । देव ऋषि जग दैत्यन खाई ॥
तीजो दंत गयो आकाशा । चन्द्र सूर्य खाये कैलासा ॥
ब्रह्मा वेद पढ़त तहां आये । शंकर ध्यान करत तब खाये ॥
लीन्हें खाय विष्णु को धाई । सकल खाय पुनि धूरि उडाई ॥
गर्जै दन्त अग्नि सम भाई । तीन लोक खाई दुनियाई ॥

ज्ञानी वचन

ज्ञानी देखे दृष्टि पसारा। यातें नाहिं बचे संसारा ॥
ज्ञानी बोले शब्द बरियाई। तूहा काल खाइ दुनियाई ॥

निरञ्जन वचन-साखी

दोहा

जाहु ज्ञानी घर आपने, मानों वचन हमार।
तीन लोक पुर्षहि दिये, स्वर्ग पताल संसार।

ज्ञानी वचन-साखी

चौपाई

बोले ज्ञानी शब्द अपारा। मोकहँ दीन्हा पुर्ष टकसारा ॥

साखी

मैं जो पठयो पुर्षको, करन हंसके काज।
कालहि मार सिंगार हों, दीन्ह सकल मोहे साज ॥

चौपाई

मारा काल शब्दका झारा। टूटे दन्त न करे पसारा ॥

निरञ्जन वचन

तबै निरञ्जन बोले बानी। कैसे हंस छुडाई ज्ञानी ॥
जगके माह कीन्ह हम बासा। पशु पक्षी जल थलमें आसा ॥
तीन सौ साठ पैठ हम लाई। तामें सकल जीव उरझाई ॥
जे दिनते हमने पैठ लगाई। दिन दिन उरझे सुझंत नाहीं ॥
तापर काम क्रोध हम डारी। तृष्णा सकल जीवकहँ मारी ॥
इनमें जीव बन्धे सब झारी। कैसे हंसहि लेव उबारी ॥
तापर कीन्हो एक हम काजा। पाप पुण्य थापे हम राजा ॥
शुभ अरु अशुभ दोइदल साजा। ऐसे अलख निरञ्जन राजा ॥

### ज्ञानी वचन

सत्त शब्द हम बोले बानी । वचन हमारे छूटे प्रानी ॥
गहै शब्द जब मन चित लाई । भाजे काल जीव लेव छुडाई ॥

### काल वचन

तबै काल अस बोले बानी । सकल जीव वस हमरे ज्ञानी ॥
तीन सौ साठ पैठ उझैरा । कैसे हंसन लेव उबेरा ॥
गङ्गा जमुना सरस्वती जानी । पुष्कर गोदावरी कुछका मानी ॥
बद्री केदार हम का ठाऊं । जहां तहां हम तीर्थ लगाऊं ॥
मथुरा नगर उत्तम जो जानी । जगन्नाथ जस बैठे ध्यानी ॥
सेतुबन्ध पुन कीन्ह ठिकाना । पुष्कर क्षेत्र आय जम थाना ॥
हिंगलाज जिव जैहै सोई । क़ालका नगरकोठ महँ होई ॥
गढ गिरना दत्तको थाना । ताहि घेर जम बैठ निदाना ॥
कमरू माह कमिक्षा देवी । नीमखार मिसरख जम लेवी ॥
नगर अजुध्या रामहिं राजा । खैहैं दइत बांध सब साजा ॥
याही पैठ जग जीव भुलाई । किहिं विधि हंस देव मुक्ताई ॥

### ज्ञानी वचन

तब ज्ञानी अस बोले वानी । जमते जीव छुडावहुँ आनी ॥
पुर्ष नामको कहुँ समभाई । जमराजा तव छोड पराई ॥
घाट बाट बैठे उरझेरा । हम शब्दतें होय निवेरा ॥
सुना रे काल दुष्ट अनयाई । शब्द संग हंसा घर जाई ॥

### निरञ्जन वचन

का ज्ञानी दहो अधिकारा । हमरी नहिं छूठे जम जारा ॥
पांच पचीस तीन गुण आही । यह लै सकल शरीर बनाई ॥
तामें पाप पुण्यका वासा । मन बैठे ले हमरी फांसा ॥

जहां तहां सब जग भर्मावै । ज्ञान संघ कछु रहन न पावै ॥
एक शब्दकी केतक आसा । हमरे हैं चौरासी फांसा ॥

ज्ञानी वचन

बोले ज्ञानी शब्द बिचारी । छूटै चौरासी की धारी ॥
छूटै पांच पच्चीस गुन तीनो । ऐसो शब्द पुर्ष मुहि दीन्हो ॥

निरञ्जन वचन

हे ज्ञानी का करों बड़ाई । हमते नाह छूट जिव जाई ॥
इतने जुग भये का तुम देखा । ज्ञानी हंस न एकै पेखा ॥
का तुम करो का शब्द तुम्हारा । तीन लोक प्रलय तर डारा ॥
साधु सन्त हम देखी रीती । प्रलय परे सकल सब जीता ॥
कर्म रेख बांधै सब साधा । सुर नर मुनि सकलो जग बांधा ॥

ज्ञानी वचन

ज्ञानी कहै काल अन्यायी । शब्द बिना तू खाय चबायी ॥
अब तुम कस खैहौ बटपारा । पुर्ष शब्द दीन्हीं टकसारा ॥
जनके जीवत लेउँ उबारा । कर्म रेख तोरो घर न्यारा ॥
पांच पचीस और गुन तीनों । इतने मोर हम लेउँ छीनो ॥
पांच जनेकी मेटौं आसा । पुर्ष शब्द भाषौं विश्वासा ॥
शुभ अरु अशुभ काकरे निबेरा । मेटी काल सकल उरझारा ॥

निरञ्जन वचन

तिगुन काल तब बोले बानी । उरझ जीव सकल जमखानी ॥
कै केसे तुम शब्द पसारो । कौनसी विधि तुम जीव उबारो ॥
ऐसे जीव सकल हैं करनी । कैसे पहुँचैं पुर्षके सरनी ॥
जगमें जीव क्रोध विकरारा । कैसे पहुँचैं पुर्षके द्वारा ॥
क्रोधी जीव प्रेत अभिमानी । धरी है जन्म नर्कको खानी ॥

लोभी होय सर्प विकरारा। कैसे पावै मोक्ष को द्वारा ॥
लोभ जन्म सूकर अवतारा। कैसे पावै मोक्ष को द्वारा ॥
विषई विषै सब विषकी खानी। ए सब कहिये जम सहदानी ॥
ज्ञानी करै करहु वरियारा। हमते कीन सकल निर्वारा ॥
जोई ज्ञान होय हमारा। काम क्रोध तें होय नियारा ॥
तृष्णा लोभहिं देय बहाई। विषै जन्म सब दूर पराई ॥
उनको ध्यान शब्द अधिकारी। काम क्रोध सब होय नियारी ॥
नाम ध्यान हंसा घर जाई। कहा दूत जस करों बड़ाई ॥
उनपै जम की परै न छाही। तासें हंसा लोकहिं जाई ॥

## निरंजन वचन

कहैं निरंजन सुन हो ज्ञानी। कथि हों ज्ञान तुम्हारी बानी ॥
जुग्त महातम सबै बताऊँ। नाम तुम्हारे पन्थ चलाऊँ ॥
तुम तो एक पन्थ प्रकासा। हम दशपन्थ काल जुगफांसा ॥
जगके जीव सबै भर्माऊँ। ज्ञानवंत को कर्म दृढाऊँ ॥
मार जीव को करे अहारा। काम क्रोध तें होय नियारा ॥
करे कर्म विषै बस भाई। च र वर्ण ले एक मिलाई ॥
कुलको त्याग होय सों न्यारा। चार वर्णको एक विचारा ॥
ज्ञान हमारा गहै तन छाई। ते सब जीव काल ले खाई ॥
बेखबरन की करिहैं हांसी। ते जीवन पर हमारी फांसी ॥
फिर फिर आवै जमकी खानी। वे सब सरन हमारी ज्ञानी ॥
कैसे पहुँचै पुर्षके सरनी। ज्ञान संधि हमहू दे बरनी ॥

## ज्ञानी वचन

कहे ज्ञानी सुन कैल विचारा। हंस हमार होय नहिं न्यारा ॥
निसवासर रहै लौ लीना। शब्द विचार होय नहिं भीना ॥
हंस हमार शब्द अधिकारा। पुर्ष प्रताप को करे सम्हारा ॥

नाम जपै अरु सुर्त लगाई। मिले कर्म लागे नहिं घाई॥
शब्द मान है शब्द सरूपा। निश्चै हंसा होय अनूपा॥
उनको नाम भक्तिकी आसा। ताते निरख चलै विश्वासा॥

निरञ्जन वचन

ज्ञानी मोर अपरबल ज्ञाना। वेद किताब भरम हम साना॥
इनको माने सब संसारा। कलि मे गंगा मुक्ती द्वारा॥
देहीं दान जो उतरे पारा। ऐसे सुमृत कहैं विचारा॥
यहीं विधि जग जीव भुलाई। जग मरन सब बंध बँधाई॥
सूतक पातक वेद विचारा। परछ वेदमे करहि सम्भारा॥
एकादशी मुक्ति की भाई। जोग जग्य करवे अधिकाई॥

ज्ञानी वचन

सुनहु काल ज्ञानका सन्धी। छोरों जीव सकलकी फंदी॥
जब निज बीरा हंसा पावै। जोग बर्त तप सबै नसावै॥
वेद किताबकी छोड़े आसा। हंसा करे शब्द विश्वासा॥
ताके निकट काल नहिं आवे। निज बीरा जा सुर्त लगावे॥
बीरा पाय भये वटपारा। शब्द सन्ध परखै बकसारा॥
जोग बरत तपहूँ है छारा। अद्भुत नाम सदा रखवारा॥
जेते हंस सरन हम आई। भक्ति करे तो मिटै धुआई॥

निरञ्जन वचन

अब तुम ज्ञानी भली सुनाई। मेरो उरझौ सुरझौ नहिं जाई॥
जो जीवनको भक्ति दृढै हौ। शब्द भेद तुम ताहि लखै हौ॥
पावै शब्द होय अभिमानी। कैसे लोकै जैहै सो प्रानी॥
शब्द पाय नहिं करै विचारा। कैसे पहुँचै लोक तुम्हारा॥
शब्द पाय कर कर्म जगावै। कैसे ज्ञाना निज घर पावै॥
शब्द पाय कर चलै न राहा। ज्ञानी कहाँ मुक्ति की थाहा॥

### ज्ञानी वचन

तब ज्ञानी बोले मुख बानी । सुनिये काल निरञ्जन आनी ॥
हंसा भक्ति जो करे हमारो । राखों सदा शब्द निज धारो ॥
काम क्रोध अहङ्कार बिकारा । इनको तजे है हंस हमारा ॥
शब्द हमार छांडे फन्दा । पहुंचे लोक मिटै जमदन्दा ॥
बीरा नाम पुर्ष को सारा । निर्मल हंस होय उजियारा ॥
आवागवन बहुरि नहिं होई । काल फांस तज न्यारा होई ॥
पहुँचे हंस पुर्ष दर्बारा । अरे काल तोको तज डारा ॥

### निरञ्जन वचन

निरंजन बोले गर्भ सों भाई । मोर फंद टारे को जाई ॥
कर्म जंजीर बँधा संसारा । जो पुन हम जगजाल पसारा ॥
तीन लोग जो इन औतारा । आवागमनमें फिर फिर पारा ॥
उपजे विनसै रहै भुलाई । देव ऋषी मुनि सकल जो खाई ॥
सिद्ध साधु अरु बडे जो ज्ञानी । बांध बांध कर तोपि समानी ॥
कर्म रेख ते कोई न न्यारा । तीन देव सुर असुर पसारा ॥

### ज्ञानी वचन

कहै ज्ञानी सुन काल लबारा । करिहौं टूक जञ्जीर तुम्हारा ॥
हंसन लेहौं तुर्त उबारी । पुर्ष शब्द दीन्हों मोहे भारी ॥
ताहि हुक्म सों मारों तोही । सब संसार तू खाया द्रोही ॥
खण्ड खण्ड कर तोरों बाना । मारों काल करो पिसमाना ॥
हंसन की मैं करों मुक्ताई । बहुरन जन्महि भौजल आई ॥
पुर्ष हंस नोतम है अंशा । ते जग प्रकट कहावै वंशा ॥
तिनके सरन हंस जो आई । कोट कर्म सब देयँ बहाई ॥
हंस संधि लखि होवें न्यारा । चलतै पावे नहिं बटपारा ॥

निरञ्जन वचन

मानों ज्ञानी वचन तुम्हारा । हंस ले जाव पुर्ष दबांरा ॥
चौदह काल जगतमैं म्हारे । घाट बाट बैठे रखवारे ॥
सुर नर मुनि आवें वहि घाटा । दशहि और जो जोवे बाटा ॥
दुर्ग जगाती बड़ा सिरदारा । विना जगात कोइ उतरन पारा॥
भोजन नदी घाट नहिं थाहू । उतरन काज कहे सब काहू ॥

ज्ञानी वचन

कहैं ज्ञानी सुन काल सुभाऊ । हमरे हंस की बात सुनाऊ ॥
बखतर ज्ञान शब्द हथियारा । मार दूत को चले अगारा ॥
कोट सिद्ध तेज है हंसा । जब परवाना आवे बंसा ॥
बंस छाप जब पावहिं प्राणी । ताहि न रोके दुर्गा रानी ॥
कहा काल तुम करो विचारा । हंस हमार उतरि है पारा ॥
सार शब्द है हंस बहोरी । ता चढ़ि जायकाल मुखतोरी ॥
संधि न पावे ते बटपारा । हंसा पहुँचे लोक दुवारा ॥

निरंजन वचन

तुमको काल निरंजन राई । हे ज्ञानी का करो बड़ाई ॥
पांव पताल शीश अकाशा । सोरह योजन अग्निप्रकाशा ॥
गर्जें काल महा विकरारा । सत्रह लाख लो पांव पसारा ॥
लपके जीभ जिमि टूटै तारा । जस बिजली चमके अँधियारा ॥
सूँढ़ बढ़ाय दंत अति बाढ़ा । मध्य घेर ज्ञानी कह ठाढ़ा ॥
हमरे पौरुष हम बरियारा । तुम ज्ञानी का करो हमारा ॥

ज्ञानी वचन

ज्ञानी पुर्ष शब्द कियो जोरा । पकड़ सूँढ़ दांत गहि मोरा ॥
मारेउ शब्द पांव कर पेली । तोर सूँढ़ समुद्र गहि मेली ॥
पुर्षरूप तबही पुन धारा । जौन सरूप काल औतारा ॥

निरञ्जन वचन

भया अधीन दोइकर जोरी। तुम सतपुरुष सरन हम तोरी॥
तुमसों बाल बुद्धि हम धारा। अब तुम करहु मोंहिं उद्धारा॥
बालक कोटि भांति गरियावत। मात पिता मन एक नहिं आवत॥
तुमहीं पुर्ष दीन मोहे राजू। औ पुनदीन्हसकलमोहिंसाजू॥
तिहिं पर हमने गाउं बसावा। लीन्हे सुन्न ठिकान बनावा॥
तहां हम साहब जाय रहाई। बिन आज्ञा कछु नाहिं कराई॥
अबलग साहब मैं नहिं चीन्हा। सत्त पुर्ष तुम दर्शन दीन्हा॥
दोइ कर जोरि चरणचितलावा। धन्य भाग हम दर्शन पावा॥
अब मोहिं साहब भेद बताई। पाऊं चिह्न हंस पहुँचाई॥

ज्ञानी वचन

सुन रे काल निरंजन राई। पुर्ष नाम है बीरा भाई॥
जो हंसा चित भक्ति समोई। ताको खूट गहे मत कोई॥

साखी

जो निज बीरा पाय है, आवै लोग हमार।
ताको खूण्ट गहो मत, सुनो काल बटपार॥

निरञ्जन वचन

चौपाई

सुनो गुसांई विनती मोरी। बीरा पाय करै कछु औरी॥
ज्ञान कथै अन्त चित वासा। आवागमनकी राखों आसा॥

ज्ञानी वचन

सुनी निरंजन वचन हमारा। नहीं सत्त वह जीव तुम्हारा॥

साखी

जा घरते जिव आइया, ताह सुध गई खोय।
गोहराय कहों मैं जीवसों, जो शब्द पारखी होय॥

निरंजन वचन

चौपाई

कहै बाल तुम भली विचारी । संप देख हम कांध उतारी ॥
उनके निकट दूत नहिं आई । साहब हंस देहों पहुँचाई ॥

साखी

साहिब सबको एक है, साहिबका कोइ एक ॥
लाखन मध्ये को गिने, कोटिन मध्ये देख ॥

ज्ञानी वचन साखी

जाहु काल घर आपने, शब्द कहौं चितलाहु ॥
जो फिर सीस उठाय हो, बांध रसातल जाहु ॥

चौपाई

जो पुन गह्यो हंसकी बांही । बांध रसातल पठाऊँ तोही ॥

निरंजन वचन

जब तुम रूप दिखावा मोहा । तब हम पुरुष चीन्हा तोही ॥
प्रथमै ज्ञानी हम नहिं जाना । बन्धु जान कान्हा अभिमाना ॥

ज्ञानी वचन

धर्मदास तब सों हम आये । गढ़ रैदास मो धारा पाये ॥
प्रथमहि सतयुग लागा भाई । नृप हरचन्द्र भये तहां राई ॥
तहां जाय शब्द गुहराई । जो चीन्हा सो लोक पठाई ॥
सतयुग सत्त नाम मोरो नाऊं । देही धर हम मनुष्य कहाऊं ॥

धर्मदाससों वचन

धर्मदास सुनि टेके पाई । तुव प्रताप सकल सुधि आई ॥
काल चरित्र सकल हम जाना । पुर्ष लीला सबही पहँचाना ॥
जब आपुन आये भौमाहीं । हंस काज जो भयो अब भाई॥

इति श्री कबीर साहिब और निरंजनकी गोष्ठी समाप्त

सत्यपुरुषाय नमः

# अथ श्रीबोधसागरे

## त्रयोदशस्तरंगः

## ग्रन्थ ज्ञानबोध

★

### कबीर वचन

साखी-सत गुरु जीव प्रबोधके, नाम लखावै सार ।
सार शब्द जो कोई गहे, सोई उतरि है पार ॥

### चौपाई

भौसागर है अगम अपारा । तामें बूड गया संसारा ॥
पार लगन को सब कोइ धावे । बिना नाम कोइ पार न पावे ॥
यह जग जीव थाह नहिं पावे । बिना सतगुरु सब गोता खावे ॥
जग जीवों से कहो गुहराई । सतगुरु केवट पार लगाई ॥
यह जग बूड गयो मँझधारा । सतगुरु भक्त भये भवपारा ॥
सत्तनाम जो करे पुकारा । जब भव जल उतरेंगे पारा ॥
सत्तपुरुष है अगम अपारा । ताको सब मैं कहों विचारा ॥
आदि अनाम ब्रह्म है न्यारा । निराधार महँ कियो पसारा ॥
ताहि पुरुष सुमरो रे भाई । तन छोड जिवलोक सिधाई ॥
कहै कबीर नाम गह सोई । भरम छोड़ भव पारहिं होई ॥

### साखी

आदिब्रह्म हिय परखिय, छोड़ो मरन अजान ।
कहें कबीर जग जीवसे, गहिले पद निरवान ॥

सोरठा

भवसागरको पार, विना नाम उतरै नहीं ।
गहिलेव नाम अपार, कहँ कबीर सब जीवसे ॥

चौपाई

कहैं कबीर सुनो धर्मदासा । आदि नाम मैं कहों सब पासा ॥
यहि जगसे मैं कहा चिताई । अज्ञानी नहिं माने भाई ॥
जौन जीव को ज्ञान न होई । कहे वचन माने नहिं सोई ॥
और कहे जुलहा मति हीना । ब्रह्मा विष्णु शिवराम न चीन्हा॥
ऐसे भक्त न देखे भाई । ब्रह्मा विष्णु शिवहिं विसराई ॥
जिन्दा हर का मरम न पाई । जुलहा भक्ति न जाने भाई ॥
ब्रह्मा विष्णु शिव जग उपजाई । इन तीनोंकी यह दुनियाई ॥
रावन छली रामकी नारी । रामचन्द्र कीन्हा रण भारी ॥
हर सीताको रावण लाये । राम लंकपति चिह्न मिटाये ॥
कहांलों वरणों वार न पारा । तीन देवका सकल पसारा ॥

साखी–रामचन्द्र वर्णन करूं, त्रयलोकी हैं नाथ ।
जग जिव कहँ समझायके, सुनिये जुलहा बात ॥

चौपाई

ऐसे सब जग कहँ गुहराई । धर्मदास मैं तुम्हें सुनाई ॥
आदि नाम मैं भाख सुनाई । यह जग जीव न चेता भाई ॥
आदि नाम सबको दरसाया । जग जीवों को ज्ञान सुनाया ॥
यह जुलहाको भेद न पाये । अज्ञानी क्यों रार मचाये ॥
आदि नामकी सुधि बिसराये । मायामें सब जग लपटाये ॥
सच्चा साहिबको नहिं पाये । रामकृष्ण जग ध्यान लगाये ॥
ऐसे भूल गये संसारा । कैसे उतरें भव जल पारा ॥
कहें कबीर गहो निज नामा । जब पहुँचे अमरापुर गामा ॥

साहब पै जग धरे न ध्याना । तिहुँ पुर काल ठगो हम जाना ॥
सब कोइ नाम गहो रे भाई । छोड़ो दुरंगति और चतुराई ॥
भरम जाल मनही ना लाओ । सत्तपुरुषमें ध्यान लगावो ॥
दुनियामें भरमो मति हीना । जम घर जायँगे नाम विहीना ॥
यही मता हम जगहि लखाये । धर्मदास विरले जिव पाये ॥

साखी—कहैं कबीर जनगायके, सुनो जगत यह ज्ञान ॥
नीचे त्रयलोकी रहत, ऊपर सतगुरु नाम ॥

कहैं कबीर सुनो धर्मदासा । जग जीवोंकी कथा प्रकाशा ॥
आदि नाम हम भाख सुनाया । मूरख जीव भरम नहिं पाया ॥
राम वरन जग कीन्हा भाई । तुम सुनियो मैं देऊँ बताई ॥
जगत कहै जुलहा अज्ञानी । हरिहरका कछु भेद न जानी ॥
नीच जात और भक्त कहाई । हरि के दरस कबहुं ना पाई ॥
वेद पुराण गीता हम जाना । हमसे नाहक करे बखाना ॥
हमरो वेद कहे निज बाता । रामचंद्र समरथ है दाता ॥
चार वेद ब्रह्माने ठाना । जुलहा भूल गया अभिमाना ॥
ब्रह्मा विष्णु शिवसे और न देवा । ऋषि मुनि करें सबै मिल सेवा ॥
ले अवतार जीव जग आये । शालग्राममें सुर्त लगाये ॥
ब्रह्मा विष्णु शिवहि जग धाये । जुलहा उलटा ज्ञान चलाये ॥
वेद शास्त्र में हमने जाना । ब्रह्मा विष्णु महेश्वर माना ॥
सार वेदमें देखा भाई । रजगुण तमगुण सतगुण सांई ॥
गीता भागवत पुस्तक नाना । निशिदिन जाप करें भगवाना ॥
आदि भवानी तीनों देवा । इनकी सब मिल साधे सेवा ॥
ऐसा ज्ञान हमारा होई । जुलहा कहा न मानो कोई ॥

साखी—तीन देव निजके गहे, राखे देवी आस ।
सोइ जीव सुख भोग हैं, हंसा करें विलास ॥

चौपाई

ऐसे जग जिव ज्ञान चलाई । धर्मदास तोहि कथा सुनाई ॥
यही जगत की उलटी रीती । नाम न जाने कालसों प्रीती ॥
वेद रीति सुनियो धर्मदासा । मैं सब भाख कहों तुम पासा ॥
वेद पुरान में नामहि भाषा । वेद लिखा जानों तुम साखा ॥
छऊ शास्त्र मिलि झगरा कीन्हा । ब्रह्मरूप काहू नहिं चीन्हा ॥
चीन्हो है जो दूसर होई । भर्म विवाद करें सब कोई ॥
मूल नाम ना काहू पाये । साखा पत्र गह जग लपटाये ॥
डार पत्रको जो कोई धरही । निश्चय जाय नरकमें परही ॥
भूले लोग कहें हम पावा । मूल वस्तु विन जन्म गमावा ॥
जीव अभागि मूल नहिं जाने । डार पत्र में पुरुष बखाने ॥
पढ़े पुराण औ वेद बखाने । सत्त पुरुष जगभेद न जाने ॥
वेद पढ़े औ भेद न जाने । नाहक यह जग झगड़ा ठाने ॥
वेद पुराण यह करे पुकारा । सबहीसे इक पुरुष नियारा ॥
ताहि न यह जग जाने भाई । तीन देवमें ध्यान लगाई ॥
तीन देव की करहीं भक्ती । जिनकी कभी न होवे मुक्ती ॥
तीन देवका अजब खयाला । देवी देव प्रपंची काला ॥
इनमें मत भटको अज्ञानी । काल झपट पकड़ेगा प्राणी ॥
तीन देव पुरुष गम्य ना पाई । जगके जीव सब फिरे भुलाई ॥
जो कोइ सत्त पुरुष गये भाई । जा कहँ देख डरे जमराई ॥
ऐसा सबसे कहियो भाई । जग जीवोंका भरम नशाई ॥

साखी-रूप देख भरमो नहीं, कहैं कबीर विचार ।
अलख पुरुष हृदये लखे, सोइ उतरि है पार ॥

चौपाई-जो जो वस्तु दृष्टिमें आई । सोई सबहि काल धर खाई ॥
मूरति पूजे मुक्त न होई । नाहक जन्म अकारथ खोई ॥

यह जग करै मूर्तिकी पूजा । करै गर्व हमसे नहिं दूजा ॥
पण्डित भक्त भये जग माहीं । पाथर पूजत जन्म गमाही ॥
ऐसे भक्त भये अधिकाई । पीतरकी निज मूर्ति बनाई ॥
इनसे भक्त और नहिं कोई । जिन अपनी दुरमति नहिं खोई ॥
आदि ब्रह्मको भेद न पाये । पढ़ पढ़ पंडित जग भरमाये ॥
अन्तकाल जम घेरे आई । तब विद्या कछुकाम न आई ॥
पाथर पूजें पढ़े पुराना । पढ़ गुण अर्थ विवेकहि ज्ञाना ॥
ज्ञान कथे है वार न पारा । सतगुरु भक्त न जान लबारा ॥
ऐसा मत ब्राह्मणने धारा । जले जात हैं यमके द्वारा ॥
आदि नाम भूलो मत भाई । असुर अंश दुरमतहि लखाई ॥
धर्मदास देखो जग रीती । सांचा छोड़ झूठसों प्रीती ॥

साखी

सार शब्द ना जान है, कहैं कबीर बखान ।
यह जग भूले बावरे, गहे न सतगुर मान ॥
ब्राह्मण भूले बावरे, सरगुण मतके जोर ।
लख चौरासी भोगिहैं, पारब्रह्मके चोर ॥

सरगुण माहिं सार नहिं कोई । निरगुण नाम नियारा होई ॥
निर्गुणसे सरगुण है भाई । सरगुणमें यह जग लपटाई ॥
रजगुण सतगुण तमगुण कहिये । सब मिटजाय ज्ञान जो लहिये ॥
तीनों गुण से सरगुण होई । चौथा पद निरगुण है सोई ॥
निर्गुण नाथ निरंजन राई । निज उत्पत्ति बनाके खाई ॥
ताके परे इक नाम नियारा । सो साहब है मूल अपारा ॥

उन्हें जगत नहिं जाने भाई । काल अंश राखे भग्माई ॥
ब्रह्मा विष्णु शिवहि जग झाँके । सत्य कबीर नाम रस छाँके ॥
नाम अमल रस चाखे कोई । ताको जरा मरन ना होई ॥
सतगुरु भक्ति करे जो कोई । जाति वर्ण दुरमति सब खोई ॥
आदि नामको नित गुणगावे । भवसागर में बहुरि न आवे ॥
आदि नामको गहे जो आसा । सतगुरु काटे काल कि फांसा ॥
आदिनाम है गुप्त अमोला । धर्मदास मैं तुमसे खोला ॥
गुप्त मता पावे जो कोई । गेही तज बैरागी होई ॥
आदि नाम गुप्त संसारा । जो पावै जग से हो न्यारा ॥
धर्मदास यह जग बौराना । कोइ न जाने पद निरवाना ॥
यहि कारन मैं कथा पसारा । जगसे कहियो नाम नियारा ॥
यही ज्ञान जग जीव सुनाओ । सब जीवोंका भरम नशाओ ॥
अब मैं तुमसे कहों चिताई । त्रयदेवनकी उतपति भाई ॥
साहब कीन्ह इक अजब तमाशा । सो सब कहुँ मैं तुम्हरे पासा ॥
कछु संक्षेप कहों गुहराई । सब संशय तुम्हरे मिट जाई ॥
भरम गये जग वेद पुराना । आदि नामका भेद न जाना ॥
राम राम सब जगत बखाने । आदि नाम कोइ बिरला जाने ॥
राजा राम सबको यह जग जाने । तुम से ताको भेद बखाने ॥
ज्ञानी सुन सो हिरदै लगाई । मूरख सुने सो गम्य न पाई ॥
मा अष्टंगी पिता निरंजन । वे जम दारुण वंशन अंजन ॥
पहिले कीन्ह निरंजन राई । पीछेसे माया उपजाई ॥
मायारूप देख अति शोभा । देव निरंजन तन मन लोभा ॥
कामदेव धर्मराय सताये । देवी को तुरतइ धर खाये ॥
पट से देवी करी पुकारी । साहब मोहे करो उबारी ॥
टेर सुनो सतगुरु तहँ आये । अष्टंगी को बंद छुड़ाये ॥

धर्मराय को हिकमत दीन्हा । नख रेखासे भगकर लीन्हा ॥
धर्मराय करें भोग विलासा । मायाको सु रही तब आसा ॥
धर्मराय अरु माया साजे । तीन लोक तासे उपराजे ॥
तीन पुत्र अष्टंगी जाये । ब्रह्मा विष्णु शिव नाम धराये ॥
तीन देव विस्तार चलाये । इनमें यह जग धोखा खाये ॥
पुरुष गम्य कैसे के पावै । काल निरंजन जग भरमावै ॥
तीन लोक अपने सुत दीन्हा । सुन्न निरंजन बासा लीन्हा ॥
अलख निरंजन सुन्न ठिकाना । ब्रह्मा विष्णु शिव भेद न जाना ॥
तीन दव सो उनको धावें । निरञ्जनको वे पार न पावें ॥
अलख निरञ्जन बड़ वटपारा । तीन लोक जिव कीन्ह अहारा ॥
ब्रह्मा विष्णु शिव नहीं बचाये । सकल खाय पुन धूर उड़ाये ॥
तिनके सुत हैं तीनै देवा । आंधर जीव करत है सेवा ॥
रामहिं रूप धरी है माया । जिन लंकाको राय सताया ॥
दश औतार माया ने धरिया । काल अपर्बल सबको छलिया ॥
काल पुरुष काहू नहिं चीन्हां । काल पाय सबही गह लीन्हां ॥
एसा राम सकल जग जाने । आदि ब्रह्मको ना पहिचाने ॥
तीनों देव असुर औतारा । ताको भजे सकल संसारा ॥
तीनों गुणका यह विस्तारा । धर्मदास मैं कहों पुकारा ॥

साखी

गुण तीनों की भक्ति में भूल परो संसार ।
कहँ कबीर निज नाम विन, कैसे उतरे पार ॥

सोरठा

जगजिव है अज्ञान, आदि नाम नहिं जानहीं ।
मायामें लपटान, जीव जमपुरी जावहीं ॥

## चौपाई

ऐसा राम कबीर न जाना । धर्मदास सुनियो दे काना ॥
सुन्न के परे पुरुष को धामा । तहँ साहब है आदि अनामा ॥
ताहि धाम सब जीवका दाता । मैं सबसों कहता निज बाता ॥
कहत अगोचर सब के पारा । आदि अनादि पुरुष है न्यारा ॥
आदि ब्रह्म इक पुरुष अकेला । ताके संग नहीं कोइ चेला ॥
ताहि न जाने यह संसारा । बिना नाम है जमके चारा ॥
नाम बिना यह जग अरुझाना । नाम गहे सो संतसुजाना ॥
सच्चा साहब भजु रे भाई । यहि जगसे तुम कहो चिताई ॥
धोखा में जिव जन्म गँवाई । झूठी लगन लगाये भाई ॥
ऐसा जग से कहु समझाई । धमदाम जिव बोधो जाई ॥
सज्जन जिव आवै तुम पासा । जिन्हें देव सतलोकहि बासा ॥
ज्ञानहीनके सुन षट करमा । धर्मदास उनके ये धरमा ॥
भरग गये वे भव जलमाहीं । आदि नाम को जानत नाहीं ॥
पीतर पाथर पूजन लागे । आदि नाम घटही से त्यागे ॥
तीरथ बर्त करे संसारे । नेम धरम असनान सकारे ॥
भेष वनाय विभूति रमाये । घर घर भिक्षा मांगन आये ॥
जग जीवनको दीक्षा देहीं । सत्तनाम विन पुरषहि द्रोही ॥
ज्ञान हीन जो गुरू कहावै । आपन भूला जगत भुलावे ॥
काम क्रोध मद लोभ विकारा । इन्हैं न त्यागे साध बिचारा ॥
ऐसा ज्ञान चलाया भाई । सत साइबकी सुध बिसराई ॥
यह दुनियां दो रंगी भाई । जिव गह शरण असुरकी जाई ॥
तीरथ व्रत तप पुन्य कमाई । यह जम जाल तहाँ ठहराई ॥
यहे जगत ऐसा अरुझाई । नाम विना बूडी दुनियाई ॥
जो कोइ भक्त हमारा होई । जात वरण को त्यागे सोई ॥

तीरथ ब्रत सब देय बहाई । सतगुरु चरणसे ध्यान लगाई ॥
काम क्रोध मद लोभ न तेही । सोई पावै परम सनेही ॥
मनहीं बांध स्थिर जो करही । सो हंसा भवसागर तरही ॥
भक्त होय सतगुरुका पूरा । रहै पुरुष के नित्त हजूरा ॥
यही जो रीति साधकी भाई । सार युक्ति में कह गुहराई ॥
साखी-सत्तनाम निज मूल है, यह कबीर समझाय ॥
दोई दीन खोजत फिरें, परम पुरुष नहिं पाय ॥

सोरठा

सत्तनाम गुण गाव, गहै नाम सेवा करै ।
सहज परम पद पाव, सतगुरु पद विश्वास दृढ ॥

चौपाई

पाथर पूज हिंदु भुलाना । मुरदा पूज भूले तुरकाना ॥
कहैं कबीर ये दोह भुलाना । आदि पुरुष कोई नहिं जाना ॥
हिन्दू तुर्क दोई उपदेशा । नाम गहै मिटि काल कलेशा ॥
भवसागर कोइ पार न पावे । या जग में सब गोता खावे ॥
भव दरयाव है अगम अपारा । पुरुष भक्त उतरेंगे पारा ॥
धर्मदास जग कहो समझाई । आदि नाम बिन मुक्ति न पाई ॥
जो जन भजि हैं निर्भय नामा । सो हंसा पहुँचै निज धामा ॥
अजर नाम लै लोकहि जाई । दुष्ट काल तब रहे मुरझाई ॥
कर्मत्याग सब भजो यकनामा । कभी न हो भवसागर धामा ॥
ब्रह्माने जो राह चलाई । सो सब कहों मैं तुमसे गाई ॥
चार वरण अरु वेद बखाना । जगके जीव सबही उरझाना ॥
जात पांत ब्रह्मा कर दीन्हा । सबमें ऊँच ब्राह्मणको दीन्हा ॥
ब्रह्मा अपने मते चलाये । तीनों गुण जग नाम लखाये ॥
आदि नामकी सुध नहिं पाये । चारों जुग धोखाहि गुमाये ॥

यह ब्रह्मा की है करतूती । जगहि लखाये झूठी रीती ॥
ब्रह्माने यह जग भरमाया । सत्त पुरुषका भेद न पाया ॥
तिहुँपुर कालके जाल पसारा । तामें अटके सब संसारा ॥
जात पांत कोइ भेद न चीन्हा । मिथ्या राह जगहि गह लीन्हा ॥
ब्राह्मण प्रभुकी भक्ति न जाने । ब्रह्म रूप नाहीं पहचाने ॥
सार शब्द ब्राह्मण नहीं जाने । आदि नाम शूद्रही बखाने ॥
ब्राह्मण धरे शूद्र औतारा । करे मुक्ति तिहुँ पुरसे न्यारा ॥
धन्य शूद्र जो सेवा करई । आदि नामको हियमें धरई ॥
जाति वनरमें भेद बताऊँ । जो कोइ समझे ताह लखाऊँ ॥
जाति बरण सब एकहि होई । दूसर जाति नहीं है कोई ॥
दूसर कर्म जाति है भाई । कर्म करे सो नाम धराई ॥
जैसो कर्म करे जो भाई । तैसी ताकी जात बनाई ॥
चार बरण सब एकहि जानो । दूसरे कर्म जो जात बखानो ॥
जाति बरणका चिह्न न कोई । कैसे जाति दूसरी होई ॥
दूसरि जाति कोई विधि माने । जग अज्ञात भेद न जाने ॥
जाति पांति होके नहिं आये । यह जगमें झगड़ा फैलाये ॥
जाति पांति नाहीं कोई न्यारी । एक जाति है सब संसारी ॥
भगके द्वार जीव सब आये । जन्म मरनमें बहुरि समाये ॥
राह एक आये संसारा । कौन ज्ञानसे भये नियारा ॥
एकइ घरसे सब जिव आये । एक बाप एक माता जाये ॥
ऊँच नीच सब सम कर जाना । ऊँच नीच सब झूँठ बखाना ॥
डार जनेऊ ब्राह्मण कहलायें । ब्राह्मणिको कहो का पहिराये ॥
सुनत करा मुसलमानहि कीन्हा । तुर्कानीको का कर दीन्हा ॥
ना हिन्दू ना तुर्क कहाये । ज्ञान हीन जिव धोखा खाये ॥
जात बरन मिथ्या कर जानो । सत्त कहे निश्चय कर मानो ॥

यह जग आंधर जानो भाई । नाम न जाने ऊँच कहाई ॥
ऊँच वही जो नामहि जानें । विना नाम सब नीच कहानें ॥
ना कोउ वर्ण नहीं कोउ भेषा । शब्द सरूपी जैहै देशा ॥
सब मिल भक्ति करो रे भाई । सतगुरु मुखसे यह फरमाई ॥
यह सतगुरुका ज्ञान है भाई । जो कोइ लखे सो लोक सिधाई ॥
जात वर्ण हम भाख सुनाई । धर्मदास जगसे कहो जाई ॥
ऐसा तुम जग जान लखवो । सत्तलोकमें जिव पहुँचावो ॥

साखी-यह जग त्रयगुण भक्तमें, भूल परे धर्मदास ॥
नाम गहे विश्वास करि, जाय पुरुषके पास ॥
माना कहा कबीरकी, सबको यहै पुकार ।
भरम जाल सब त्यागदे, गहले नाम अपार ॥

सोरठा

जिन सब नाम अधार विना नाम भव ना तरे ।
जाय काल दर्बार, सत्तपुरुष जो ना गहे ॥

चौपाई

कहै कबीर सुनो धर्मदासा । अब निज भेद कहों तुम पासा ॥
अकह हतो पुनि कहा बखानी । उत्पति प्रलय हती मम वाणी ॥
आदि न अंत हती नहिं माया । उत्पति प्रलय हती न काया ॥
सोहं ब्रह्म न नहिं ओङ्कारा । काल निरंजन नहिं औतारा ॥
दश आतारन चौवीस रूपा । तब नहिं होता ज्योति स्वरूपा ॥
जब नहिं चंद्रलोक दीपविस्तारा । तब नहिं सुकृत करचो संसारा ॥
जब नहिं लाक चंद्र सूर्य अरु तारा । तब नहिं तीनों गुण औतारा ॥
वहां नहीं है दिन अरु राती । ऊच न नीच जात ना पांती ॥
नाहीं सुख पवन नहिं पानी । समरथ गति काहू नहिं जानी ॥
आदि ब्रह्म नहिं करे पसारा । आप अकह तब हता नियारा ॥

है अनाम अक्षर के माहीं। निहअक्षर कोइ जानत नाहीं ॥
अमर लोक जहँ अम्मर काया। अकाल पुरुष जहँ आप रहाया ॥
धर्मदास जहँ वाम हमारा। काल अकाल न पावे पारा ॥
निरभय घर बोही है भाई। रोग न व्यापे काल न खाई ॥
समरथ घर हैं पैले पारा। सबके ऊपर है निरधारा ॥
जिनकी गम्य काल नहिं पाई। तीन देवकी कौन चलाई ॥
मन माया काल गति नाहीं। जीव सहाय बसै तेहिं ठाही ॥
ऐसा है वह देश हमारा। जहांसे हम आये संसारा ॥
ताकी भक्ति करे जो कोई। भवते छूटै जन्म न होई ॥
वहां जाय जीव करे विलासा। अमरलोक जिवका नहिं नासा ॥
कहै कबीर सुनो धर्मदासा। आदिनाम मैं कहा तुम पासा ॥
जो कोई माने कहा तु हारा। निरभय जाय पुरुषके द्वारा ॥
मूरख सतगुरु मरम न पावे। भवसागरमें भटका खावे ॥
सार युक्ति मैं तुम्हें लख.या। गन मुनि काहू भेद न पाया ॥
भाषा ग्रंथ ज्ञान उपदेशा। तुम अपने घट करो प्रवेशा ॥

साखी-अस सुख है हमरे घरे, कहँ कबीर समझाय।
सत्त शब्द तो कोई गहे, अस्थिर बैठे जाय ॥

सोरठा

चौथे पद निरवान, पूरे गुरुसे पाइये।
कहे कबीर बखान, सत्त मान सतगुरु सही ॥

चौपाई

और सुनो गुरुमु का लेखा। भक्त होय सो करै विवेका ॥
जो कोई पान पम्वाना पावै। ताके निकट काल नहिं जावै॥
पान परवाना पावै भाई। नाम गहे अरु भरम नशाई ॥
तन मन से गुरु सेवा लाई। गुरुसे देव और नहिं भाई ॥
गुरु से कपट शिष्य जो राखे। जमराजाके मुदगर चाखे ॥

सोई हंस काल घर जावे । सत्त लोकमें वास न पावे ॥
निरभय घर कबहूं ना पावै । कोट जन्मतिहिकालसतावै ॥
भक्ति कर पूजत हैं जो देवा । निश्चय जाय कालकी सेवा ॥
मनुष्य तन वे कभी न पावैं । लख चौरासी भटका खावैं ॥
जैसे कर्म करे संसारा । तस भुगते चौरासी धारा ॥
ना गुरू ना निगुरा पंथी । कहा कयो बांचैसे ग्रंथी ॥

साखी–भक्ति करें भरमत फिरे, जग छोड़े नहिं सोय ।
कहँ कबीर धर्मदास से, जिनका तरन न होय ॥

सोरठा

करनी देय वहाय, आदि नाम कह जानके ।
ता महँ रहे समाय, भरम जाल सब छांड दे ॥

धर्मदास वचन

चौपाई

धर्मदास तब कहै करजोरी । स्वामी सुनिये विनती मोरी ॥
हो स्वामी मैं बूझो तोहीं । करके कृपा बताइये मोहीं ॥
हो अविनाशी ब्रह्म कहाये । यह जगमें तुम कैसे आये ॥
यह सब भेद बताइय स्वामी । तुम सब घटके अंतर्यामी ॥
सकल चरित तुम मोंहि बतावो । मैं जाते जगजीव चितावो ॥
यह जग तब पतियावे सांई । चारों जुग तुम कहां रहाई ॥

साखी–सो अब मोहिं बतावहू, तुम गुरू अगम अपार ।
धर्मदास विनती करे, सुनियो हो करतार ॥

कबीर वचन चौपाई

कहै कबीर सुनो धर्मदासा । अब यह भेद कहों तुम पासा ॥
वेद पुराण शास्त्र जग ठाना । भूले जीव न पांय ठिकाना ॥

तीन लोक जिव काल सतावै । ब्रह्मा विष्णू पार न पावै ॥
सत्त पुरुष तब मोहिं पठावा । जीव उबारन मैं जग आवा ॥
यहि कारण आयो संसारा । जगके जीव मैं करों उबारा ॥
जग जीवनको नाम लखावैं । पकड़ हंस सतलोक पठावैं ॥
हम हैं सत्तलोकके बासी । दास कहाय प्रगट भये कासी ॥
ना कोइ वर्ण नहीं कोइ भेशा । सत्त पुरुषके थे हम देशा ॥
तहँकी रचना अद्भुत भाई । सो मैंने तोहि पहिले सुनाइ ॥
और तोहि मैं कहुँ समझाई । धर्मदास सुन चित्त लगाई ॥
धरी देह भवसागर आये । धर्मदास तोहि नाम सुनाये ॥
कलियुगमें काशी चल आये । जब हमरे तुम दरशन पाये ॥
तब हम नाम कबीर धराये । काल देख तब रह मुरझाये ॥
जो कोइ हमको चीन्हा भाई । जिनका काल धोक मिट जाई ॥
देह नहीं अरू दरसै देही । जग ना चीन्हे पुरुष विदेही ॥
नहीं बाप ना माता जाये । अब गतिहीसे हम चल आये ॥
हते विदेह देह धर आये । जग जीवोंके बन्द छुड़ाये ॥
नाम गहे तेहि लोक पठाये । बिना नाम जिव कालहि खाये ॥
गुप्त रहे नाहीं लख पावा । सो मैं जगमें आन चितावा ॥
चारों जुग भवसागर आये । आदि नाम जग टेर सुनाये ॥
नाम सुने शरणागत आवें । तिनहीकी हम बंद छुडावें ॥
जीव प्रबोध लोक पहुँचावें । काल निरंजन देख डरावें ॥
चारों जगके चारों नामा । माया रहित रहै तिहि ठामा ॥
सतजुग सत्त सुकृत कहलाये । त्रेता नाम मुनींद धराये ॥
द्वापरमें करुनामय कहाये । कलियुग नाम कबीर रखाये ॥
आदि नाम चारों जुग टेरा । सज्जन जीव सुनतही दौरा ॥
जो जो जीव शरणमें आये । तिनको हमने नाम सुनाये ॥

आदि नाम जो नित गुन गावें । कर विश्वास अमर पद पावें ॥
जो कोइ सतगुरु नामको धावें । तिनको साहब पार लगावें ॥
पार हाय जो माया त्यागे । जन्म मरनको संशय भागे ॥
माया त्याग वैरागी होई । अजर अमरको पावै सोई ॥

धर्मदास वचन

कह धर्मदाम सुनो प्रभु राई । भक्त भाव मोहि देव बताई ॥

कबीर वचन

भक्तोंकी यह कथा पसारा । धर्मदास सुनियो चित्त धारा ॥
जगमें भक्त भये अधिकारी । जोगी सन्यासी लट धारी ॥
शीव गोरख अरु बहु ब्रह्मचारी । मायाने सबको ठगडारी ॥
इनको ठग जब हमपर धाई । गुप्त नाम हम टेर सुनाई ॥
लोट गइ माया बहुवारी । रहे जीत माया गइ हारी ॥
माया जल है कठिण अपारा । तासे गन मुनि बैठे हारा ॥
माया जाल परो मत भाई । धर्मदास जग कहो गुहराई ॥
भवसागर है भक्त बहुतेरा । जिनको तुमसे कहो निबेरा ॥
मौनी भये मुखहु नहिं बोलें । भेष बनाये घर घर डोलें ॥
अंगहि भस्म गले बिच माला । मढिया बैठ सुने मतवाला ॥
धूनि रमाय गुरिया सरकावे । गगन चढ़ाय के जग भरमावें ॥
कान फाड़ शिर जटा बढ़ाये । माथे चन्दन तिलक लगाये ॥
वस्त्र रँगा जोगी बन आये । सतगुरु मिले न भेष बनाये ॥
बहुँत करैं जप तप रे भाई । आदि नाम कोई नहिं पाई ॥
पाहन सेवें भक्त कहावै । चन्दन तेल सिंदूर चढ़ावै ॥
मानुष जन्म बड़े तप होई । नाम बिना झूठे तन खोई ॥
साधु युक्ति अस चाल बताऊँ । धर्मदास मैं तुम्हैं लखाऊँ ॥
काम क्रोध लोभ अहँकारा । सोई साधु जिन इतने मारा ॥
सूखा फीका करे अहारा । निशिदिन सुमरे नाम हमारा ॥

तत्व प्रकृति और बल माया । इनहिं जीत तब साधु कहाया ॥
अन्त कपट सब देय बहाई । क्षमा गङ्गमें बैठ नहाई ॥
हार जीत और अभिमाना । इनसों रहित साधुको ज्ञाना ॥
बिहँसत बदन भजनको आगर । शीतल दया प्रेम सुखसागर ॥
सब षट कर्म छोड़ अज्ञाना । धर ले केवल निर्गुन ध्याना ॥
धन्य धन्य जग साधु है सोई । जिन अपनी दुरमति सब खोई ॥
ऐसी रहन साधुकी भाई । जब हंसा निरभय पद पाई ॥
यह भक्तोंकी कथा सुनाई । निरभय पद कोइ बिरले पाई ॥
साधू लक्षण तुम्हें सुनाया । गन मुनि काहू भेद न पाया ॥
आदि नामको नित गुनगावो । सोवत जागत ना बिसरावो ॥
सत साहिब है सबसे न्यारा । ताहि जपे होवे भव पारा ॥
भक्त अनेक भये जग माहीं । जोग करै पै युक्ति न पाहीं ॥
जोगहि युक्तिनाम बिन नाहीं । झूठी माया आन लगाहीं ॥
नामहि गहै तेहि निहसंसा । नाम बिना बूड़े सब हंसा ॥
नाम निरक्षर सुधि जब पावा । कालअपर्बल निकट न आवा ॥
माया त्याग भजो निज नामा । तब जिव जाय पुरुषके धामा ॥
सबसे कहो पुकार पुकारी । कोइ न माने नर अरु नारी ॥
सत्य पुरुषकी युक्ति न पाई । ऊदय धरे नहिं सत्य को भाई ॥
शिव गोरख सोइ पार न पावे । और जीवकी कौन चलावे ॥
कहें कबीर सुनो मम बानी । जोग युक्ति मैं कहों बखानी ॥
अब गेहीका सुनो बिचारा । धर्मदास मैं कहों पुकारा ॥
गेही भक्त करे जो कोई । अब मैं तुमसे भाखों सोई ॥
गेही भक्ति सत्त गुरुकी करई । आदि नाम निज हृदसे धरई ॥
गुरु चरननसे ध्यान लगावै । अन्त कपट गुरुसे ना लागै ॥

गुरु सेवामें फल सब आवै । गुरू विमुख नर पार न पावै ॥
गुरू वचन निश्चय कर मानै । पूरे गुरुकी सेवा ठानै ॥
बिन विश्वास भक्ति परकाशा । प्रीति विना नहिं दुबिधा नाशा ॥
मीन मांस मद निकट न जाई । अंकुर भक्ष सो सदा कराई ॥
गुरुसे शिष्य करे चतुराई । सेवा हीन नर्कमें जाई ॥
परधन पाहन समझे भाई । झूठ वचन हृदये नहिं लाई ॥
पर तिरिया माता सम माने । झूठ छोड़ सत्यहिको जाने ॥
जीवपै दया करै रे भाई । बुरे कर्म सब देय बिहाई ॥
हृदये दया प्रीति ना होई । सतगुरु सपने मिले न सोई ॥
नाम नेह गुरु सुतै लगावे । आदि नामको पल पल ध्यावे ॥
लेवै पान मुक्ति सहदानी । जाते काल न रोकै आनी ॥

साखी-पुरुष नाम निशिदिन गहो, शब्द करो परतीत ।
अंक नाम निज पाइया, जाहो भवजल जीत ॥

## सोरठा

भर्म तजे यम जाल, सत्तनाम लौ लावई ।
चले संतकी चाल, परमार्थ चित दे गहे ॥

## चौपाई

गेही भक्त आरती आने । प्रति पूनोकी आरति ठाने ॥
अमावस आरती नहिं होई । ताहि भवन रह काल समोई ॥
पाख दिवस नहिं होवे साजू । प्रति पूनो कर आरति काजू ॥
पूनो पान लीन्ह धर्मदासा । पावे शिष्य होट सुखबासा ॥
छटे मास नहिं आरति भेवा । साल माह गुरु चौका सेवा ॥
नाम कबीर जपै लौलाई । तुम्हरा नाम कहे गुहराई ॥
ऐसी रहनि गेहि जो धरि है । गुरु प्रताप दोई निस्तरि है ॥

साखी-सो भव पार उतारि है, केवटसे कर प्रीत ।
जब सतगुरु केवट मिले, जैहै भव जल जीत ॥
सोरठा-काल जीव धर खाय, सत्तनाम जाने विना ।
बचि है एक उपाय, सत्त कबीर कह भव तरे ॥

चौपाई

सत्त कबीर गुरू धर्मदासा । जीव पठै है पुरुष के पासा ॥
सत गुरु सत्त कबीरहि आहीं । गुप्त रहे जग चीन्हत नाहीं ॥
सतगुरु आप जगत पग धारे । दासा तन धर शब्द पुकारे ॥
काल निरंजन सब पर छाया । आदि नामका चिह्न मिटाया ॥
धर अवतार असुर संहारा । जिव जाने यह धनी हमारा ॥
एही धोख नर्क सब जाहीं । जिव अचेत छल चीन्हें नाहीं ॥
नर्क बास नहिं छूटै भाई । जो सतगुरु को चीन्हे नाहीं ॥
ब्रह्मा विष्णु शिवसे नहिं देवा । जिन्ह बैकुण्ठवास नहिं देवा ॥
ऐसा काल अपरबल भाई । जिहिके छल जग चीन्हे नाईं ॥
जगमें जीव घात बहुतेरे । करे घात अरु पाप घनेरे ॥
दुष्ट अन्याई करजिवकी घाता । खेल शिकार माने मन माता ॥
जीव मार तन करत अहारा । जीव दया नहिं करत गँवारा ॥
जीवघाती खो बहुत दुख पावे । जन्मजन्म तिथि काल सतावे ॥
काग देह धर विष्ठा खाहीं । जन्म अनेक भ्रमे जगमाहीं ॥
जीव दया विन मुक्ति न पावें । मीन मांस मद राक्षस खावें ॥
धर्मदास यह जग बौराई । दुष्ट जीवकी कथा सुनाई ॥
जीव कष्ट मोहिं सहा न जाई । ज्ञान हीन नर जीव सताई ॥
यहि कारन हम जगमें आये । तीन लोक जम लूटत पाये ॥
पहले लूटे विष्णु मुरारी । फिर लूटे शंकर लटधारी ॥

गनमुनि लूटे तपसी झारी। अरु लूटे सगले संसारी॥
चन्द्र सूर्य तारागण सोई। कहे कबीर बचा नहिं कोई॥
देखो यही काल की रीती। धर्म न परखो रीति अनीती॥
ऐसा काल कठिन बरियारा। बचे सोइ जो नाम पुकारा॥
काल रीति मैं तोहिं सुनाई। धर्मदास जिव बोधा जाई॥

साखी—कहें कबीर धर्मदास सों, तुम सुनियो चितलाय।
काल भेद ना जानहीं मूरख रहै भुलाय॥

सोरठा—तजो काल बरयार, जीव दया चितमें करो।
उतरो भव जल पार, आदि नाम हृदय गहो॥
सुनो संत मति धीर, कहो ज्ञान परखो हिये।
काल अपरबल बीर, हृदये विवेकं दृढ॥

चौपाई

आदि नाम है अजर शरीरा। तनमनसे गह सत्त कबीरा॥
जोई गहे धर्मदास कबीरा। सो पावे सुख सागर तीरा॥
काया बीर नाम है धीरू। सब घट रहे समायक बीरू॥
निजही शब्द कबीर है सारा। जाका है निज सकल पसारा॥
एके रूप शब्द पुर एका। एक भाव दुतिया नहिं देखा॥
कैसे दुतिया कहिये सोई। दुतिया भर्म मिटै सब कोई॥
एकहि हम तुम एक शरीरा। एक शब्द है मतिके धीरा॥
दूसर भाव नहीं है आसा। सोई कबीर सोई धर्मदासा॥
एक रूप एकै अनुहारी। एकहि पुरुष सकल निस्तारी॥
आदि नाम मैं भाख सुनाओ। नाम गहै जब मुक्ती पाओ॥
जो कोइ आदि नामको चीन्हा। तासो काल भयो बलहीना॥

साखी—आदि नाम है मुक्तिका, जप जाने जो कोय।
कोटि जाप संसारमें, तासे मुक्ति न होय॥

सोरठा-बूझ लेहु हो हंस, आदि नाम निज सार है।
अमर होय ते वंश, जिन जानो निज नामको ॥
और मन्त्र सब छार, आदि नाम निज मंत्र है।
बूड़ मरा संसार, कह कबीर निजनाम विन ॥

चौपाई

कहे कबीर सुनो धर्मदासू। चार गुरूकी कथा प्रकासू ॥
चार गुरू संसारहि कीन्हां। जिनके हा जिवमुक्ती दीन्हां ॥
वे हंसन को लोक पठाये। भवसागर जिव बहुरि न आये॥
सार शब्द साहब का न्यारा। सोई शब्द कहँ गुरू उचारा ॥
सार शब्द काल नहिं पाई। तीन देवकी कौन चलाई ॥
शब्द सङ्ग हंसा घर जाई। काल अपरबल देख डराई ॥
सार शब्द मैं तुमको दीन्हा। काल तुम्हारे रहे अधीना ॥
धर्मदास तुम मतिके धीरा। तुमको दीन्हा मुक्तिका बीरा ॥
तुमते जीव उतरि है पारा। सौंप दीन्ह तोहि जगको भारा॥
सतजुग शिष्यसहतेजी कहाये। द्वापर चतुर्भुज नाम सुनाये ॥
त्रेता शिष्य बंकेजी भाई। कलियुगमें धर्मदास गुसाई ॥
चार गुरु भवसागर माहीं। धर्मदास वे जिव मुक्ताहीं ॥
यह मैं तुमसे कहों समझाई। सब संशय तुम्हरे मिट जाई ॥
वंस ब्यालिस तुम्हारे सारा। और सकल सब झूठ पसारा ॥
इनहीं सौंप देव जिव भारा। सब जीवनको करे उबारा ॥
धर्मदास तुम पुरुषके अंशा। अब हमको कछु नाहीं संशा ॥
होय पंथ भव सागर सारा। तुम्हरे वंश सब जीव उबारा ॥
ब्यालिस वंशराज लिख दीन्हां। अटल राज भवसागर कीन्हां ॥
धर्मदास मैं कहों बिचारी। यहि विधि निबहै सब संसारी॥

साखी-नाम भेद जो जानहीं, सोई वंश हमार।
नातर दुनिया बहुत है, बूड़ मरा संसार ॥

सोरठा-जैसे भव जल जीत, सार शब्द जो जानहीं।
कठिन काल विपरीत, नातो जम ले जायगा ॥

धर्मदास वचन

चौपाई

धर्मदास तब विन्ती लाई। अब मैं पंथ करो गुन गाई ॥
अमरलोकके हो गुरु वासी। कारन कौन आये अविनाशी॥
मृत्युलोक आये केहि काजा। धर्मराय पापी बड़ राजा ॥

साहब कबीरका वचन

धर्मदास तुम सुनियो भाई। जीवन काज पुरुष पठवाई ॥
सत्त पुरुष सतलोकके बासी। सकल हंसके लिये अविनाशी॥
पुरुषदरश कोइ बहुरि न पावै। तीन लोकमें आन रहावै ॥
तीन लोक सब परले होई। अमरलोक सुखदायक सोई ॥
जीवकाज जगमें हम आये। धर्मरायसे जीव छुड़ाये ॥
आदि अनाम अमोल अपारा। अकह अगोचर सबसे न्यारा ॥
तहांसे हम आये संसारा। पहुँचे काशी नगर मँझारा ॥
सत्त सत्त हम करें पुकारा। भवसागरके जीव उबारा ॥
नाम सुने जो मो लग धाये। जिनको हमने पार लगाये ॥
समझे सुने जो वाचा मेरी। काटूँ ताकी कर्मकी बेरी ॥
भगकी राह नहीं हम आये। जन्म मरन ना बहुरि समाये ॥
त्रिगुण पांच ताव हम नाहीं। इच्छारूप देह हम आहीं ॥

साखी-पांच तत्त्व गुन तीन नहिं, तामें सकल शरीर।
सब कोइ हृदये चीन्हियो, सतगुरु पुरुष कबीर ॥

चौपाई

हम जमके शिर मर्दन हारा। जो कोइ गहे सो उतरे पारा ॥
जहँ हम रहें काल तहँ नाहीं। हंसन हम सुखदायक आहीं ॥

जो साहब सतलोक रहाई। तिनको सब कोई चीन्हौ भाई॥
नाम बिना दुखि तीनों देवा। जिनकी गन गंधर्व करैं सेवा॥
जगके देव सब काल अधीना। बचे सोई जो नामको चीन्हा॥
हम बल एक शब्दका भाई। ताही बल हंसा मुक्ताई॥
जहाँ नाम काल गति नाहीं। बिना नाम है कालकी छांई॥
ज्ञान हीन जाने नहिं भाई। जीव कै सँग मन काल रहाई॥
जीव के संग कालको वासा। अज्ञानी जन गहे विश्वासा॥
मनको कहो न कीजे कोई। मन जिवको भरमावे सोई॥
कहे कबीर मन जात गँवारी। मनको कहो न करो नर नारी॥
मनको कहो जो कर है भाई। भवसागरमें देय बहाई॥
मन चंचल सो काल है भाई। मनको त्यागे निरमल हो जाई॥
मनके रूप समानी माया। सब संसार व्याप्त यह छाया॥
मन थिरकर परमातम जाना। यहि विधि तत्त्व लेय पहिचाना॥
काल जाल ते तेही छूटे। काल विचारा ताहि न लूटे॥
यही भेद धर्म सुन लीजे। शब्द माहिं तुम बासा कीजे॥
काल ज्ञान संसार बखाना। काल स्वरूप नहीं पहिचाना॥
काल चरित्र तुमसे कहो भाई। यही भेद कोई नहिं पाई॥
काया माया झूठी जानो। झूठा सकल पसारा मानो॥
झूठो नाम साहबको नाहीं। बूझ लेव अपने हिय माहीं॥

साखी-काल पाय जग ऊपजो, काल पाय सब धाय।
कालपाय सब विनसही, काल काल कह खाय॥

सोरठा-धर्मदास लेव जान, सुन्य सरूपी मनहि है।
वचन कबीर प्रमान, रूप रेख मनको नहीं॥

चौपाई

परम पुरुष नाम गहो भाई। ताते हंसा लोक सिधाई॥
आदि नाम है जिव रखवारा। उनको सब कोई करो पुकारा॥

अमर लोक साहबका न्यारा । जहाँ पुरुष का है दरबारा ॥
आदि पुरुष जहँ आप अकेला । धर्मराय नहिं मन के मेला ॥
अंधकार जहँ कबहुँ न होई । सदा जोति अमरापुर सोई ॥
आदि पुरुष जहँ काल न जाई । तीन देव की कौन चलाई ॥
आदि नाम जो ध्यान लगाई । तब हंसा सत लोकहि पाई ॥
ऐसा लोक साहबका भाई । जहँ हंसा सुख सदा रहाई ॥
तादि लोकमें जो कोइ जावै । भवसागरमें बहुरि न आवै ॥
धर्म राय से तिन का टूटै । जन्म मरण को संशय छूटै ॥
बिरले जीव निःसंशय होई । दृढ परतीत नाम गहें सोई ॥
अगम भेद मैं तुम्हें बताया । काल निरञ्जन गम्य न पाया ॥
जगके जीव प्रबोधो भाई । पुरुष शरण जब हंसा जाई ॥
जीवहि बोधो सब संसारा । पकड़ हंस फेंको पेले पारा ॥
भवसागरसे जीव उबारो । जन्म मरण जिव संशय टारो ॥
जीव मुक्त मैं तुमको दीन्हा । पुरुष भक्ति है नामको चीन्हा ॥
सार युक्ति मैं तुमसे कहिया । कहन सुननको अब नहिं रहिया ॥

धर्मदास वचन-चौपाई

धर्मदास विनवे कर जोरी । सतगुरु सुनिये बिनती मोरी ॥
निरगुन नाम लखे नहिं कोई । सरगुनमें जग भरमें सोई ॥
अज्ञानी जिव कहा न माने । आदि नामको भेद न जाने ॥
यह सब भेद कहो प्रभुराई । कैसे जीव प्रबोधों जाई ॥

साहिब कबीर वचन-चौपाई

कहैं कबीर सुनो धर्मदासा । अब मैं भेद कहों तुम पासा ॥
सज्जन जन जो होवे भाई । तुम्हरे शरन दौरके आई ॥
तन मन तुमसे ध्यान लगाई । ताको नाम सुनइयो भाई ॥
जब देखहु तुम दृढता ज्ञाना । तबही देव पान परवाना ॥

निरभय ज्ञान कहो जिवपासा । जो कोइ होय तुम्हारा दासा ॥
मूरखके तुम पास न जइयो । बचन हमारो हियमें गहियो ॥
मूरख ज्ञान कहो मत भाई । नाहक ज्ञान गांठको जाई ॥
दुरमति मन जाही कर भाई । तासे राखो भेद छिपाई ॥
ज्ञानी जनको नाम सुनावो । परम पुरुषसों हृदय चिन्हाओ॥

साखी–मूरखसे ना खोलिहो कहैं कबीर विचार ।
ज्ञानीसे न दुरायहो, सुनो सत्त मतसार ॥

चौपाई

अलख नाम घट भीतर देखो । हृदये माहीं करो विवेको ॥
घट घट राम बसे हैं भाई । विना ज्ञान नहिं देत दिखाई ॥
अनुभव ज्ञान प्रगट जब होई । आतमराम चीन्ह है सोई ॥
आतमराम चीन्ह जब पावा । सकल पसारा मेट बहावा ॥
हिये नयनसे देखो भाई । जब तुमको वह राम दिखाई ॥
सब घट व्यापक सबसे न्यारा । सोई राम है जीव मँझारा ॥
अकह नाम कहा नहिं जाई । घट घट व्याप्त निरंतर आई ॥
आतमराम देख जिव पाई । आप आप सब ठांव समाई ॥
जहँ देखा तहँ आप समाना । ब्रह्म छोड़ दूसर नहिं आना ॥
यही मता हम तुमकह दीन्हा । दूसर कोउ न पावै चीन्हा ॥
ऐसा ज्ञान लखाओ भाई । जो नहिं मानकाल तिहिं खाई ॥

साखी–अजर पुरुष एकै रहै, अजर लोक अस्थान ।
कहे कबीर सर्वांग जो, ताहि पुरुषको जान ॥

सोरठा–सुनहु ज्ञानी धर्मदास, सोइ ज्ञान जप ऊपजै ।
एक नाम विश्वास, प्रगट ब्रह्म स्वरूप है ॥

चौपाई

आदि नाम जो राखे आसा । तापै परे न कालकी फाँसा ॥
आदि नाम निरअक्षर भाई । ताहि नाम ले लोकहि जाई ॥

सोहं शब्द निरक्षर वासा । ताहि शब्द जपहै निज दासा ॥
आदि नाम निज सार है भाई । जमराजा तेहि निकट न आई ॥
तुम कहँ शब्द दीन्ह टकसारा । सो हंसन सो कहौ पुकारा ॥
सार शब्दका सुमरण करि है । सहज अमर लोक निस्तरि है ॥
सुमरन का बल ऐसा होई । कर्म काट सब पलमें खोई ॥
जाकें कर्म काट सब डारा । दिव्य ज्ञान सहजै उजियारा ॥
जाकहँ दिव्य ज्ञान परकाशा । आपहिमें सब लोग निवासा ॥
लोक अलोक शब्द है भाई । जिन जाना तिन संशय जाई ॥
तत्व सार सुमरन है भाई । जातै कालकी तपन बुझाई ॥
सुमरनते सब कर्म विनाशा । सुमरनसों दिव्य ज्ञान प्रकाशा ॥
धर्मन सुमरन दयो लखाई । जासों हंस सबै मुक्ताई ॥

साखी-कहे कबीर विचारके, सुमरन सार बखान ।
कहै भेद जो पावहीं, पहुँचे लोक ठिकान ॥

धर्मदास-वचन चौपाई

कहें धर्मदास सुनों प्रभुराई । अब जिवको सन्देह मिटाई ॥
अलख अगोचर हो प्रभु मेरा । अब जीवन को करों उबेरा ॥
आदि ब्रह्म तुम अगम अपारा । जीव काज आये करतारा ॥
आदि नाम गुरु मोहिं लखाये । जीवनके तुम बंद छुड़ाये ॥
अजर लोकमें जिव पहुँचाये । धन्य भाग हम दर्शन पाये ॥
अमर वस्तु सतगुरु मोहिं दीन्हा । जीवनके सब दुखहर लीन्हां ॥
सतगुरु चरण गहें हिय माहीं । भानु उदय पंकज बिगसाहीं ॥
सतगुरुने मोहिं लीन्ह जगाई । आवागमन रहित घर पाई ॥
अब सन्देह रहा कछु नाहीं । शब्द तुम्हार बसो हियमाहीं ॥

सोरठा-दीन्हों मोहिं लखाय, परमातम आतम सकल ।
अलख नाम समुझाय, अमर वस्तु गुरु दीन्हऊ॥

## साहब कबीर बचन-चौपाई

ज्ञान उपदेश कहा मैं भाई । ताते जीव हिय ज्ञान समाई ॥
यही ग्रंथ मैं नाम नियारा । सूक्ष्म रीति से कहो पुकारा ॥
आदि नाम जाने संसारा । करे भक्ति पहुँचे दरबारा ॥
पढ़े सन्त होवै मति धीरा । आदि नाम गहे अभ्र शरीरा ॥
आदि नाम है सत्त कबीरा । जो जन गहे छूटे भव पीरा ॥
आदि नाम पहिचाने भाई । तब हंसा निज घरही जाई ॥
ज्ञान उपदेश कहा गुरु पूरा । नाम गहे चेला कोई सूरा ॥
साधु सन्तसों बिनती मोरी । नाम भूले अक्षर लीजो जोरी ॥

इति श्रीग्रन्थज्ञानबोध समाप्त

सत्यपुरुषाय नमः

# अथ श्रीबोधसागरे

## चतुर्दशस्तरंगः

## ग्रन्थ भवतारणबोध

★

### धर्मदास वचन–चौपाई

धर्मदास बिनवै कर जोरी। सद्गुरु सुनिये विनती मोरी॥
भवसागर कवनिहिं विधि छूटे। यमबंधन कवनिहिं विधि टूटे॥
भव दरियाका वार न पारा। ता महँ अँटके सब संसारा॥
सो दरियाव कौन विधि थाहूँ। परम पुरुषको कैसे पाहूँ॥
करों भक्तिके योग कमावों। देओं दानके तीर्थ नहावों॥
करों यज्ञ के इन्द्री साधौं। बाहर फिरों के मतको बांधौं॥
जो तुम कहो मैं करिहौं। वचन तुम्हारे हृदये धरिहौं॥
भवसागर दुख मेटो मोरा। टूटै जन्म मरनको ठौरा॥
संशय रहित करहु मोहिं स्वामी। तुम सब घटके अन्तरयामी॥

### सद्गुरु वचन

सुन धर्मदास मैं सत्य बताऊँ। भवसागरका भरम मिटाऊँ॥
संशय रहित सदा तुम होऊँ। तुम्हरी राह न रोके कोऊ॥
करो भक्ति औ बंधन काटो। जन्म मरणका संशय पाटो॥
भाव भक्ति करिये चित लाई। सेवहु साधु तजि मान बड़ाई॥
सुन धर्मदास भक्तिपद ऊचा। इन सीढ़ी कोई नहिं पहुँचा॥
योगी योगसाधना करई। भवसागरते नाहीं तरई॥
दान देय सोई फल पावे। भवसागर भुक्तनको आवे॥
तीर्थ नहाये जो कछु होहीं। सो सब भाषा सुनाऊँ तोहीं॥

जन्म लेय उज्ज्वल तन पावे। सम्पति ह्वै जगमें पुनि आवे॥
ऊंचे घरसे ले अवतारा। ब्राह्मण क्षत्रीको व्यवहारा॥
इन्द्री साधन है यह नीका। विना भक्ति जानों सब फीका॥
इन्द्री साधन है तप भारी। तामस तेज क्रोध हंकारी॥
क्रोध किये गति मुक्ति न पावे। भक्ति महात्म हाथ नहिं आवे॥
बरत एक भक्तिका पूरा। और वरत कीजै सब दूरा॥
और वरत सब यम की फांसी। भक्ति वरत मिलही अविनासी॥
हर अवराधन की सुनु बाता। कहा भेद सुनिये तुम ज्ञाता॥
हरि हर नाम सदा शिव केरा। तासों दूर होत भव फेरा॥
बहुत प्रीतिसों शिवको ध्यावे। रिधि सिद्धि द्रव्य बहुत सुख पावे॥
मन जिसके निश्चय कर धरहीं। गिरि कैलासमें वासा करहीं॥
फिरके काल झपेटे बांहीं। डार देय भवसागर माहीं॥
ताते संशय छूटे नाहीं। भवसागरमें जीव जो जाहीं॥
शिवकी साधन है यह गती। निर्भय पद पावे नहिं रती॥
जाके सुमिरे योगी यती। चौरासी भरमें उत्पती॥
हरि हरकी यह कथा सुनाई। आगे और सुनाऊ भाई॥

साखी–शिवसाधनकी यह गती, शिव हैं भवके रूप।
विन समझे ये जगत सब, परे महा भ्रम कूप॥
नरक वासमें मनु परे, ऐसी शिवकी मौज।
कहै कबीर विचारिके, मिटै न यमकी फौज॥

चौपाई

हरि हरि नाम विष्णुका होई। विष्णु विष्णु भाषे सब कोई॥
विष्णुहिं को कर्ता बतलावे। कहो जीव कैसे फल पावे॥
सब घट माहीं विष्णु विराजे। खान पानमें विष्णुहि गाजे॥
सकल भोग विष्णु जो लेही। भोग करे जग भरमें देही॥

हरि हरि नाम विष्णुका भाषा । शुभ और अशुभ कर्म दोइ राषा ॥
इनमें करें कलोल सदाई । करे भोग जीवन भरमाई ॥
बहुत प्रीतिसो विष्णुहि ध्यावे । सो जिव विष्णुपुरीको जावे ॥
विष्णु पुरीमें निर्भय नाहीं । फिरके डार देय भूमाहीं ॥
हरि हरि नाम विष्णुका भाषा । हरिकी और सुनो अब साखा ॥
साखी–हरि नाम है विष्णुका, जिन कीन्हा सब जेर ।
चौरासी भरमे सदा, मिटै न भवका फेर ॥

चौपाई

सुनहु धर्मदास तुम हो साधू । इनको कबहूँ मत अवराधू ॥
हरि हर ब्रह्मा को है नाऊँ । रज गुण ब्यापक है सब ठाऊँ ॥
जगत् कहै ब्रह्मा है करता । मर्म माहिं सब बह बह मरता ॥
ब्राह्मण को पूजे ससारा । जीव होय नहिं भवते न्यारा ॥
पढ़ पढ़ विद्या जग भर्मावे । भक्ति पदारथ कैसे पावे ॥
पोथी पाठ पढ़ै दिनराती । ये केवल भ्रमके उत्पाती ॥
आप भरम ते निर्भय नाहीं । बहे जात हैं भ्रमके माहीं ॥
औरनको शिक्षा सब देही । ताते मिलै न परम सनेही ॥
पाप पुण्य का लेखा करही । विना भक्ति चौरासी परही ॥
यह ब्राह्मणकी यह करतूती । ब्राह्मण पूजे होय न मुक्ती ॥
साखी–त्रिगुण भक्ति है जगकी, निर्गुण लखै न कोय ।
सर्गुण निर्गुण दोइ मिटै, भक्ति रहित घर होय ॥
इह त्रिगुणहि कि भक्तिमें, जिन भूलो धर्मदास ।
ऊपर निर्गुण जानिये, जहँ योगीका बास ॥

चौपाई

धर्मदास सुनसन्त सुजाना । नर्गुण सों अब करो बखाना ॥
निर्गुण नाम निरंजन भाई । जिन सारी उत्पत्ति बनाई ॥

निर्गुण सों जु भया ओंकारा । तासों तीनों गुण विस्तारा ॥
निर्गुण सो मन भये प्रचण्डा । ताको बास सकल ब्रह्मण्डा ॥
ओङ्कार मन आप निरञ्जन । नाना विधिके कीये व्यञ्जन ॥
भाँति भाँतिके घाट सवारा । कहँलग गिनों वार नहिं पारा ॥
ताके अंश सकल अवतारा । राम कृष्ण तामें सरदारा ॥
पूरण आप निरञ्जन होई । इनके फेर फार नहिं कोई ॥
सर्गुण निर्गुणहुकी करे सेवा । भक्ति करे अरु पूजे देवा ॥
कर आचार विचार न जाने । सो मेरे मन कभी न माने ॥
मन बोधे मन माहिं समावे । निज पदको कोई नहिं पावे ॥
मन को बोध करे जो कोई । मन पहुँचावे पहुँचे सोई ॥
जाप निरञ्जन माहिं समाई । आगे गम्य न काहू पाई ॥
ऐसे तीन लोक सब अटके । खरे सयाने ते सब भटके ॥
ऋषिमुनि गण गन्धर्व रु देवा । सब मिल करें निरञ्जन सेवा ॥
साधक सिद्ध साधु जो भयेऊ । इनके आगे कोई न गयेऊ ॥
बहुत प्रीति सो भक्ति विचारी । मिलन २ लीला अधिकारी ॥
जाय निरञ्जन सो हो भेटा । काल रूप धर करै समेटा ॥
वही निरञ्जन का विस्तारा । तामें उरझे सब संसारा ॥
जिधर तिधर राखै बिलमाई । रचना अनन्त अपार बनाई ॥
धर्मदास तुम भक्ति सनेही । इन मैं मत अटकावे देही ॥
जन्म धरे छूटै नहिं भाई । ताते आप कहो गुहराई ॥
भक्ति गुप्त जाने नहिं कोई । तुर्त सनेही पावै सोई ॥

साखी-इनते भक्ती गुप्त है, सुन धर्मदास सुजान ।
भक्ति करो भरमो नहीं, सोई भक्ति प्रमाण ॥

### धर्मदास-वचन चौपाई

हे स्वामी मैं हूँ अज्ञानी । गुप्त भक्ति मोहिं कहो बखानी ॥
तुम यह भक्ति कहां सों आनी । सोई बात मोहिं कहो बखानी ॥

तुम्हरी भक्ति कौन विधि पावे । कौन भांति की भक्ति कहावे ॥
भक्ति कहीजे कौन प्रकारा । ताको स्वामी कहो विचारा ॥
भक्ति २ सब जगत बखाने । भक्ति भेद कैसी विधि जाने ॥
सो निश्चय मोहिं कहो बखानी । केहि विधि छूटे भवकी बानी ॥
जाते सब संशय मिट जाई । तातें आप देहु समझाई ।

साखी-भव वाणीभ्रम दुख बढ़े सुख कर सत गुरु देव ।
भक्ति करो निष्कपट होय, सदा तुम्हारी सेव ॥

कबीर-वचन चौपाई

कहें कबीर सुनो मम बानी । भक्ति सार मैं कहौं बखानी ॥
आगे भक्त भये बहु भाई । करी भक्ति पै युक्ति न पाई ॥
आदि भक्ति शिव योगी केरी । राखी गुप्त न जग में फेरी ॥
योग करे औ भक्ति कमावे । अधर एक नामै ध्वनि लावे ॥
सौ अक्षर है ररंकारा । तासों उपजे सकल पसारा ॥
रहे अधर ब्रह्मांड के माहीं । शिव जानतको जानत नाहीं ॥
तासन मेरी भक्ति नियारी । जाको क्या जाने संसारी ॥
ताको योगेश्वर नहिं पावे । और जीवकी कौन चलावे ॥
शिवसों अधिक न कोऊ जाने । ऐसी भांति छान बिलछाने ॥
सोउ जीव आगे नहिं आवे । तीन लोक प्रभुता उठ जावे ॥
ठौर हमारो कैसे पावे । वहां गये बहुरिहु नहिं आवे ॥
धर्मदास कहु वर्णन अपना । ब्रह्म पुत्र सेवे तिहिं चरना ॥
सनक सनन्दन सनत्कुमारा । सनकादिकसे चारों अवतारा ॥
पांच वर्ष काया नित रहई । ब्रह्म लीन कोइ पार न लरई ॥
केते ब्रह्म होय होय गयऊ । सनकादिकसे निश्चय भयऊ ॥
ध्यान जु करे निरञ्जन माहीं । निरञ्जनसों न्यारा कोउ नाहीं ॥
निरञ्जन अंश हंस अवतारा । सकल सृष्टि है ताहि मँझारा ॥

यहां ताहि कोई बिरला जाने । आगे कहो कौन विधि माने ॥
इनकी भक्ति करे नर सोई । हमरी भक्ति न जानत कोई ॥
भक्त अनेक भये जग माहीं । निर्भय घर को पावत नाहीं ॥
भक्ति करैं तब भक्त कहावे । भगते रहित न कोई पावे ॥
भग भुगते फिर फिर भग आवे । भगते बचपन कोई पावे ॥
चौदह लोक बसैं भगमाहीं । भगते न्यारा कोई नाहीं ॥
न्यारी युक्ति मैं तुमहिं दिखाई । तहां सुर्त रहै साध कहाई ॥
भुगते भग औ भक्त कहावे । फिर फिर योनी संकट आवे ॥
मेरी भक्ति युक्ती जाना । ताका आवागमन नशाना ॥
भक्ति करै तब मुक्तिको होई । नहिं तो बाना जाय बिगोई ॥
भक्ति भेद बहुतक है भाई । निर्मल भक्ति न काहू पाई ॥
तुम जो बूझो भक्ति प्रकारा । ताका भेद सुनो अब न्यारा ॥
भक्ति होय नहिं नाचे गाये । भक्ति होय नहिं घंट बजाये ॥
भक्ति होय नहिं मूरत पूजा । पाहन सेवे क्या तोहि सूझा ॥
विमल विमल गावें अरु रोवें । क्षण एक परम जन्म को खोवें॥
ऐसा साहिब मानत नाहीं । ये सब काल रूप के छाहीं ॥
मन ही गावे मन ही रोवे । मन ही जागे मन ही सोवे ॥
जब लग भीतर लग्न न लागे । तब लग सुर्त न कबहूँ जागे ॥
सत्य नाम की खबर न पाई । कां कर भक्ति करौं रे भाई ॥
ठौर ठिकाना जानत नाहीं । झूठे मग्न रहैं मन माहीं ॥
कहन सुनन कों भक्त कहावें । भक्ति भेद कितहूँ नहिं पावें ॥
लग्न प्रेम बिन भक्ति न होई । सङ्गति को पावे नहिं कोई ॥
अपने साहिबको नहिं जाना । बिन देखे किहि कियो बखाना ॥
ऐसे भूल परे संसारा । कैसे उतरे भव जल पारा ॥
सत्य भक्तिको नाहीं लागा । ऐसे हैं सब जीव अभागा ॥

धर्मदास तुम हो बुद्धिवन्ता । भक्ति करो पावो सतसन्ता ॥
एक पुरुष हैं अगम अपारा । सब घट व्यापक सबसों न्यारा ॥
ताको नहिं जानै संसारा । ताकी भक्ति महानिजसारा ॥
भक्ति करे जब उतरे पारा । सुर्त नृत्य कर सेवे सारा ॥
यह विधि भक्तिपदारथ पावे । मुक्ति होय भव बहुरि न आवे॥
भवसागर ते उतरै पारा । फिरके जग नहिं ले अवतारा ॥
ऐसी भक्ति मुक्ति की दाता । जाकी गति नहिं लखै विधाता॥
भक्तिही भक्ति भेद बहु भारी । यही भक्ति जगत ते न्यारी ॥
साखी-भक्तिपदारथ अगम फल, मुक्ति चार यहि बार ।
पावे पूरण पुरुष को, जग नहिं ले अवतार ॥

## धर्मदास वचन-चौपाई

धर्मदास कहे सुनो गुसांई । पूरण पुरुष बसे किहि ठाई ॥
केहि विधि सों सेवा कीजे । कैसे चरणकमल चितदीजे ॥
कौन भांति साधों सो भक्ती । सद्गुरु मोहिं बताओ युक्ती ॥

## सद्गुरु वचन

पहिले प्रेम अङ्ग मैं आवे । साधु देख सन्मुख होय धावे ॥
चरण धोय चरणामृत लेवे । प्रीति सहित साधूको सेवे ॥
अन्तर छांड़ि करो सेवकाई । यहि विधि भवके दुःख मिटाई ॥
जोइ साधु प्रेम गति जाने । ता साधूकी सेवा ठाने ॥
परम पुरुषकी भक्ति दृढावे । सुर्तै नृप कर तहँ पहुँचावे ॥
तासों प्रीति करो चितलाई । छांड़ो दुर्मति औ चतुराई ॥
तबही परम पुरुषको पाये । भव तरके जग बहुरि न आवे ॥
भवतारन संशय नहिं तोहीं । दो क्षण होय तो लागे मोहीं ॥
कीतहु बातकी फिकर न करना । कही भक्त निश्चय कर तरना ॥

धर्मदास वचन–चौपाई

धर्मदास बूझे चित लाई। सकल वेद मोहिं देहु बताई ॥
निर्गुण रहित तुम्हारा नाऊँ। कैसे भक्ति करो तेहि ठाऊँ ॥
हो स्वामी यह अचरज बाता। भक्ति करनको दाव न घाता ॥
सर्गुण भक्ति करै संसारा। निर्गुण योगेश्वर आधारा ॥
इन दोनोंके पार बतावा। तुम कैसी विधि तहँ मन लावा ॥
सत्य बात मोहि कहो गुसांई। केहि विधि सुर्त लगाऊँ धाई ॥
सगुणहि पार न पावत कोई। मेरे मन बर संशय होई ॥
सतगुरू संशय देहु निवारी। मैं जाऊँ तुम्हरी बलिहारी ॥
सर्गुण निर्गुण भेद बताऊँ। तीसर न्यारा मोहिं लखाऊँ ॥
मोरे मन पतयावत नाहीं। बहुत फिकर कीन्हा मनमाहीं ॥
हो समर्थ तुम सतगुरू साईं। दृढ़तासे पकड़ो मम बाहीं ॥
सर्व युक्ति बतलावो मोई। अंतर कछू न राखो गोई ॥
तुम सत सत्य तुम्हारी बाता। मैं याचक तुम समरथ दाता ॥
देहु मोहिं मैं मांगो सोई। सोइ लखाव मिटे दिल दोई ॥

साखी–सत्य सत्य समरथ धनी, सत्य करहु परकाश।
सत्य लोक पहुँचायहो, छूटै यम भव त्रास ॥

सद्गुरु–वचन चौपाई

सुन धर्मन सब कहो सँदेशा। तुमको होय न भवका लेशा ॥
भव तारण समर्थ है न्यारा। ताको नहिं जानै संसारा ॥
योगेश्वर वह गति नहिं पाई। सिद्ध साधककी कौन चलाई ॥
भक्ति होय जगतमें भारी। ध्रुव प्रहलाद सदा अधिकारी ॥
भक्तिमाहिं इन सम नहिं कोई। रामकृष्ण प्रकटे नहिं गोई ॥
दोनों जने दो व्रत साधू। यही एक इष्ट अवराधू ॥
सतयुग भक्ति करी ध्रुवराजा। पांच वर्ष आयू तत आजा ॥

निकसे गृह ते बाहर गयेऊ । नारदके उपदेशी भयेऊ ॥
छठें मास प्रकटे हरि आई । राज दिये वैकुण्ठ पठाई ॥
साठ हजार वर्ष दियो राजू । कुटुम सहित वैकुण्ठ विराजू ॥
एक दिवस जब प्रलय ह्वय आई । तहां तो पुनि ये देह गिराई ॥
पुनि सामीप्य मोक्ष कर दीन्हा । परम पुरुषगति तबहु न चीन्हा ॥
काल पुरुष राखे सब घेरी । सत्य पुरुष जग जाय न हेरी ॥
ऐसे भक्त भये जग माहीं । परम पुरुष गति पावत नाहीं ॥
भक्ति सगुण करे यहि पावे । निर्गुण माहीं नाहिं समावे ॥
जो सायुज्य होय गति पूरी । देव निरंजन जाय हजूरी ॥
ज्योति स्वरूपी ताका नाऊँ । चारों मुक्त बसें तेहिं ठाऊँ ॥
सालोक्यहि सामीप्य कहाई । सारूपी सायोज्य लहाई ॥
चार मुक्ति जाके घर होई । ताको पार न पावे कोई ॥
ताके परे मोर अस्थाना । कैसी भक्ति कहा कहों ज्ञाना ।

साखी-ध्रुवकी गति तुमसों कही, सुन धर्मदास सुजान ।
अपरम्पार न पावही, पूरण पद निर्वान ॥

चौपाई

सुन धर्मन एक कथा नियारी । बड़ी भक्ति प्रहलाद विचारी ॥
हिरनाकुश दोनों बलकारा । ताके घर लीन्हा अवतारा ॥
तपके हेतु गये बन माहीं । कोइ बातको संशय नाहीं ॥
गर्भवन्त होती तिहि नारी । इन्द्र आवाज सुनि अधिकारी ॥
नभवानीते भई अवाजा । इन्द्रासनको लेही राजा ॥
हिरनाकुश घर जन्म धराई । सो द्वारासन लेही भाई ॥
इन्द्रहि संशय उपजो भारी । गर्भ वातसों देहों ठारी ॥
ये छल इन्द्र कियो अधिकारी । अपने देशहिं ले गयो नारी ॥
तेहिं क्षण नारद आये तहँवां । इन्द्रहिको समझायो जहँवां ॥

इनको गर्भ न चीरै भाई । भक्त होय सबको सुखदाई ॥
गर्भहि मांझ ज्ञान तेहिं दीन्हां । नारद एक काम बड़ कीन्हां ॥
दृढ़ कीन्हों तेहि गर्भके माहीं । वर्ष हजार रही तिहि ठाहीं ॥
फिर नारी अपने पुर आई । इन्द्रजीत हिरनाकुश पाई ॥
तहां जन्म लीन्हा प्रहलादा । राम रटन रसना ले स्वादा ॥
ऐसो रटन लगाये भारी । तामसभक्त न कोइ अधिकारी ॥
केतो कष्ट सहै सिर अपना । तबही दुःख न व्यापे सपना ॥
हिरनाकुशके मनमें आई । राम तेरो मोहिं देहु बताई ॥
खम्भ फार लीन्हों अवतारा । हरि नरसिंह रूप तब धारा ॥
हिरनाकुश नख उदर विदारा । अपनो जन प्रह्लाद उबारा ॥
फिरके इन्द्रासन पहुँचाया । सगुण भक्तिजान सब माया ॥
ऐसे दृढ़व्रत रामहि गहिया । तेऊ इन्द्रासन सुख लहिया ॥
ऐसे भक्त न होवे भाई । ताकी गति तुमको समुझाई ॥
इन्द्रासनको राज सुनाऊं । महा भोग बड़े सुख पाउं ॥
सत्तर दोय चौकड़ी भुगता । बन्धन भवके होय न मुक्ता ॥
बड़े भक्त की कथा सुनाई । पूछो और कहो तोहिं भाई ॥

साखी—इन्द्र राजसुख भोगकर, फिर भवसागरमाहिं ।
यह सर्गुणकी भक्ति है, कबहूँ निर्भय नाहिं ॥

धर्मदास वचन चौपाई

धर्मदास बूझे चित लाई । सतगुरु संशय देहु मिटाई ॥
सर्गुण भक्त मुक्त नहिं होई । है वह एकहि या है दोई ॥
यह संदेह मिटाओ मेरा । तुम सतगुरु मम बन्दी छोरा ॥
की सर्गुण को निर्गुण कहिये । भिन्न भिन्न भेद मोहिं कहिये ॥
सकल सृष्टि कहँवाते भयऊ । यही युक्ति काहू नहिं कहऊ ॥
जो मोहिं ऊपर दया तुम्हारी । सब विधि कहियेयुक्ति विचारी ॥

यह संसार कहांसे आया। को है ब्रह्मा अरु को है माया॥
अन्तर छांड़ि निरन्तर भाखो। मोसन अन्तर कछू न राखो॥
भक्ति भेद कहो मोहे स्वामी। तुम सब घटके अन्तर्यामी॥
जीव काज आये जगमाहीं। अब मोको कछु संशय नाहीं॥
सत गुरु मैं आधीन तुम्हारा। तुम भवसागर तारन हारा॥

साखी—निस्संशय पद कहा है, सो मोहिं कहु समुझाय।
फिर भूमें भरमो नहिं, तहां रहो लवलाय॥
कहै सुनै सुख ऊपजै, जगमें आवे नाहिं।
काल रहै शिर नायके, सो दीजे समझाहिं॥

## सद्‌गुरुवचन—चौपाई

कहै कबीर सुनो धर्मदासा। अब निज भेद कहो परकाशा॥
सुरत लगाय सुनहु मम वानी। छान लेव जो जिह्वा छानी॥
सूक्ष्म गति अतिभारी झीनी। ताहि जगतमें विरला चीन्ही॥
आदि न अन्त हती नहिं माया। उत्पति प्रलय हती न काया॥
शून्य शिखर नहिं तत्त्वन मूला। कारण सूक्ष्म नहीं अस्थूला॥
आदि ब्रह्म नहीं ओंकारा। नहीं निरञ्जन नहिं अवतारा॥
दश अवतार न चौविस रूपा। तब नहिं होता ज्योति स्वरूपा॥
पुण्य पाप काहू नहिं थापा। सोय ब्रह्म नहिं सोहं जापा॥
नहि तब शून्य सुमेर न भारा। कूर्म न शेष धरे अवतारा॥
अक्षर एक न ररंकारा। त्रिगुण रूप है नहिं विस्तारा॥
शक्ति युक्ति नहिं आदि भवानी। एक होय नहिं ज्ञान अज्ञानी॥
शब्द न स्वांति कछू नहिं होई। कहो विचार सुनो तुम सोई॥
नहिं है बीज नहिं अंकूरा। आदि अमी नहिं चन्द न सूरा॥
धर्मदास समझ के रहना। कहों कहा कछू नहिं कहना॥

धर्मदास वचन

धर्मदास कह सुनहु गुसाईं । इन बातन बनने की नाईं ॥
कियेउ संशय वे इक ठौरी । तुमहू हते के है कोई औरी ॥
सत्य सत्य अब मो पहँ कहिये । संशय रहित सोई पद लहिये ॥
त्रयी वाचा ले पूछी सांई । साधु संत तुम आप गुसांई ॥

सद्गुरु वचन

कहै कबीर सुनहु धर्मदासा । सकल भेद मैं किया प्रकाशा ॥
जो प्रतीति हो मन महँ तोरा । भवको मेटि शरण रहो मोरा ॥
धर्मदास छोड़ो सब माया । अस्थिर अमर अखंडित काया ॥
भक्ति मुक्ति उपजी है जासों । प्रेमहि लग्न लगावो तासों ॥
अब मैं तोहिं लखाऊं जागा । छूटै जन्म मरणको धागा ॥
जन्ममरण है अति दुख भारी । तासों तुम को लेहुँ उबारी ॥
अब आपा को थापों नाहीं । देख लेहु तुम बाहर माहीं ॥

साखी अब तोहि भेद बताऊँ मैं, निर्मल ठौर नियार ॥
सर्व परे सब ऊपरहिं, देखो वहां अकार ॥

चौपाई

पुरुष कहो तो पुरुषहि नाहीं । पुरुष हुवा आपा भू माहीं ॥
शब्द कहो तो शब्दहि नाहीं । शब्द होय माया के छाहीं ॥
दो विन हो नहिं अधर अवाजा । कहो कहा यह काज अकाजा ॥
अमृत सागर वार न पारा । नहिं जानों केतिक विस्तारा ॥
तामें अधर भवन इक जागा । अक्षय नाम अक्षर इक लागा ॥
नाम कहो तो नाम न जाका । नामधरा जो काल तिहि ताका ॥
है अनाम अक्षर के माहीं । निह अक्षर कोइ जानत नाहीं ॥
धर्मदास तहँ बास हमारा । काल अकाल न पावे पारा ॥
ताकी भक्ति करे जो कोई । भव ते छूटै जन्म न होई ॥

साखी–भवसागर भरमों नहीं, यही प्रताप हमार ।
निश्चय करिके मानियो, तुरत उतरिहो पार ॥

धर्मदास वचन–चौपाई

हे स्वामी यह अकथ कहानी । आगे सुनी न काहू जानी ॥
योगेश्वर नहिं पावें पारा । मैं क्या जानों जीव विचारा ॥
अचरज गुप्त तुम आय सुनाई । ताकी गम्य न काहू पाई ॥
ताकी भक्ति करैं किहि भांती । रूप अरूप न पूजा पाती ॥
कौन युक्ति सो भक्ति करीजे । अगम ठौर कैसे कर लीजे ॥
जस जानहु तस मोहिं ले चालहु । तन मन छोड़ देह सुख पालहु ॥
अब कछु मोसें होवत नाहीं । सुरत समाय गई तुम माहीं ॥
यहाँ वहाँ तुम समरथ दाता । मोकहँ जान परी यह बाता ॥

साखी–नाम कबीरा धरा क्यों, कारन कौन प्रमाण ।
देह धरी तुम आयके, कहिये मोहि बखान ॥

चौपाई

सत्य कबीर नाम मैं जाना । सो भवको क्यों कियो पयाना ॥
ऐसे सन्त जन्म क्यों धारा । किहि कारण लीन्हा अवतारा ॥
सत्य कहो बन्धनमें नाहीं । निरबन्धन कैसे जग माहीं ॥
देही धरी सबहि दुख पाया । तुमही काहि न व्यापी माया ॥
दृढ हों पूछत हों गुरु बाता । रिस न करहु तुम समरथ दाता ॥

साखी–मैं पूछत हित आपने, जीव मुक्तिके काज ।
साधु सन्त तुम सुजन हो, अब नहिं मोकों लाज ॥

सद्गुरु वचन–चौपाई

धरमदास कहो तुम सांची । मिथ्या नहीं सत्य मुख बांची ॥
तुम हो अंश हंस पति राजा । तुम्हरो मोह करन को काजा ॥
आदि अनादि समीपी मोरा । अब मैं काज करूंगा तोरा ॥

वहांसे तुम्हीं दीन पठवाई । यहां आय कर लागी काई ॥
काल पुरुष दीन्हा भरमाई । जिन सब सृष्टि बनाके खाई ॥
जग जीवनसों तुमहो नियारा । तुम्हरे काज लीन्ह अवतारा ॥
अवर काज मोर कछु नाहीं । हों निरंतर जगके माहीं ॥
मोहिं न व्यापे जगकी माया । कहन सुननकी है यह काया ॥
देह नहीं अरु दरशै देही । रहो सदा जहां पुरुष विदेही ॥
यह गत मोर न जानै कोई । धर्मदास तुम राखो गोई ॥
आदि पुरुष निहअक्षर जाना । देही धर मैं प्रकटे आना ॥
गुप्त रहे नाहीं लख पावा । सो मैं जगमें आन चितावा ॥
जुगुन २ लीन्हा अवतारा । रहों निरन्तर प्रकट पसारा ॥
सतयुग सतसुकृत कह टेरा । त्रेता नाम मुनीन्द्रहि मेरा ॥
द्वापरमें करुना मय कहाये । कलियुग नाम कबीर रखाये ॥
चारों युगके चारों नाऊँ । माया रहित रहै तिहि ठाऊँ ॥
सो जागह पहुँचे नहिं कोई । सुर नर नाग रहे सुख गोई ॥
सबसे कहों पुकार पुकारी । कोइ न माने नर अरु नारी ॥
उनका दोष कछू नहिं भाई । धर्मराय राखे अटकाई ॥
गुप्त पसारा है अति भारी । ताहि न जानै नर अरु नारी ॥
शिव गोरख सोइ पार न पावें । और जीवकी कौन चलावें ॥
नवहिं नाम चौरासी सिद्धा । समझ बिना जगमें रहे अन्धा ॥
ऋषि मुनि और असंखन भेषा । सत्य ठौर सपने नहिं देखा ॥
जोर कहीं पतयावत नाहीं । बहुत कहौं समझा मनमाहीं ॥
कोइ योग कोइ मदके माता । कोइ कहै हम लखे विधाता ॥
कोइ मान दिशा मन लावे । मौन होयकर मूल गवावे ॥
सत्य पुरुष की युक्ति न पाई । हृदय धरे नहिं सत्यको भाई ॥
कोई कहै हम हैं भज नीका । काज अकाज लखै नहिं जीका ॥

कोई कहै हम पढ़े पुराना । तत्व अतत्त्व सबै कछु जाना ॥
कोई कहै विद्या आधीना । सब विचार कायामें चीन्हा ॥
कोई कहै तप वश करि राखा । तप है मूल और सब शाखा ॥
कोई कहै कर्म अधिकारा । कर्महिं सो उतरे भवपारा ॥
कोई कहे भाग्य लिखा सो होई । भाग्य लिखा मेटै नहिं कोई ॥
कहँ लग कहौं यही सब कहई । भेद हमार न कोई लहई ॥
सब सों हार मान मैं बैठा । ये सब जीव काल घर पैठा ॥

साखी–सोइ काल करतार सोइ, भक्ति मुक्ति तेहि हाथ ।
मेरो कह्यो नहिं आदरे, परपंची बड़ साथ ॥
मनहिं प्रपंची मनहिं निरञ्जन, मन ही है ओंकार ।
फन्दा है त्रयि लोक का, कोइ न भवतें न्यार ॥
निरंजनहि निर्वान पद, कहो तुम्हीं हितवन्त ।
योग यती संन्यास गत, कोइ न पावत अन्त ॥
सप्त सुर्त में रमि रहा, सुर्त शब्द तेहि हाथ ।
ऐसी अगम अपार गति, तीन लोकके नाथ ॥

चौपाई

सात शून्यका सकल पसारा । सात शून्यते कोइ न न्यारा ॥
सात सुर्तका भेद बताऊं । तामें ज्ञान सकल समुझाऊं ॥
उत्पत्ति प्रलय है वाके माहीं । इन गति सों कोइ न्यारा नाहीं ॥
प्रथमहिं अमी सुर्त निज ठौरा । तहां निरंजन कीन्हा दौरा ॥
वहां जाय अमी लै आवै । ताहों अजर बीज उपजावै ॥
सोइ बीज रक्त में धरहीं । यह विधिसों वह उत्पति करहीं ॥
बीजहि जलका रंग कहाया । तासों रची सकलकी काया ॥
दूजी मूल सुर्त तेहि संगा । घट २ माहि बनावे रंगा ॥
तीजी चमक सुर्त अंबारा । नौ नारीमें किया पसारा ॥

कोठा तहां बहत्तर करई । रोम रोम युक्ति सब धरई ॥
चौथी शुन्य सुर्त है भाई । धर्मदास मै तुम्हें लखाई ॥
पंचम सुर्त श्रवण सँग होई । शुभ और अशुभ सुनावे दोई ॥
छठवें सुर्त ठिकाना भाषों । ठांव ठांव स्वाद तिहि चाखों ॥
सो तो रहे कण्ठके द्वारा । बाणी भाषा कहै बिचारा ॥
सप्तम सुर्त रहै तन माहीं । हृदय से कहुं न्यारे नाहीं ॥
ब्रह्म रूप धर तहां वह बैठी । गुप्त पसार सकल घट पैठी ॥
कोइ न जाने ताको मरमा । ज्ञानी ध्यानी सबही भरमा ॥
सात सुर्तका कहो बिचारा । धर्मदास कछु वार न पारा ॥
सात कमल का भेद बताऊँ । कमल २ की युक्ति लखाऊँ ॥
मूल कमल है मूलही द्वारा । चार पखुरियां है विस्तारा ॥
तहां विनायक देव विराजा । मूल द्वार कमल सृति छाजा ॥
ता ऊपर फूल है दूजा । षट दल में ब्रह्मा की पूजा ॥
तीजे कमल पांखरी आठा । नाभी माहिं साल सो गांठा ॥
तहां वासुदेव द्वय ठाना । लक्ष्मी सहित बसें भगवाना ॥
चौथा पद्म हृदय में होई । देव महेश बसें तहँ सोई ॥
षोडशकमल आत्म पहिचाना । शक्ति अविद्या कहों बखाना ॥
षष्ट कमल पखुरी है तीनी । सरस्वति वास तहां पुनि कीन्हीं ॥
सप्तम कमल त्रिकुटिके तीरा । द्वय दल माहिं बसैं द्वय वीरा ॥
शशी और सूर्य प्रकाशक घटका । यह सब खेल निरंजन नटका ॥
अष्टम कमल ब्रह्मांडके मांहीं । तहाँ निरंजन दूसर नाहीं ॥
आठ कमलका बनो ठिकाना । धर्मदास बड़ भागी जाना ॥

साखी—सप्त कर्म अरु शून्य सत, सात सुर्त अस्थान ।
इक्कीसों ब्रह्मांडमें, आप निरञ्जन ज्ञान ॥
राज निरंजन देखता, ठांव ठांव भरपूर ।
रसातल रु ब्रह्मांड लगि, कहुं निकट कहुं दूर ॥

चौपाई

सुन धर्मनि सब जुगत बखानी । तुम अपने मनमहँ कछु जानी ॥
आदि अन्त सब तुम्हें लखाई । उत्पत्ति परलयकी गति पाई ॥
उतपति परलय सिरजन हारा । मेरा भेद निरंजन पारा ॥
तासे जगत न काहू माना । तातें तोहि कहों मैं ज्ञाना ॥
जो कोई मानै कहा हमारा । सो हंसा निज होय हमारा ॥
अमर करों फिर मरन न होई । ताका खूंट न पकड़ैं कोई ॥
फिरके नहिं जन्में जगमाहीं । काल अकालताहि दुख नाहीं ॥
सुखसागर सुख मूल बतावा । बड़ भागी हंसा काहू पावा ॥
अंकुरी जीव जु होय हमारा । भवसागर तें होय नियारा ॥
प्रणहि प्रतीत करो मन लाई । ताको यह पद देय लखाई ॥
सुर्तवंत सांचा जी होई । शरण तुम्हारी गहिहै सोई ॥

साखी-प्रथमहि दृढ़ प्रतीत है, होय भक्ति अंकूर ।
भाव प्रीति सेवा करे, देउ ज्ञान भरपूर ॥

धर्मदास वचन-चौपाई

हे स्वामी मैं तुमको चीन्हा । आदि अन्त भेद सब लीन्हा ॥
तुमहीं वार तुमहिं हो पारा । तुमहीं सों उपजो संसारा ॥
तुमहीं हो निज पहिले पारा । तुमहीं सकल जगत सो न्यारा ॥
गुप्त प्रकट मैं सब विधि जाना । तुम हीं हो तहँ पद निरवाना ॥
ऐसी अगम गम्य तहँ नाहीं । मैं बूझो अपने मन माहीं ॥
पूरण कृपा करी तुम साईं । मेरे मन कछु संशय नाहीं ॥
भव तारण तुम संशय वारण । धर औ अधर दोनोंके धारण ॥
समर्थ सब गति पायउ तोरी । अब सब संशय भागी मोरी ॥
भयो सनाथ तव दर्शन पाये । माया छूट परम पद पाये ॥
छूटा काल निरंजन मोरा । जन्म मरणके टूटे डोरा ॥

अब भवमें मैं बहुरि न आऊँ । तुमरें चरणकमल चित्त लाऊँ ॥
येती युक्ति न काहू पाई । सो साहिब तुम मोहि लखाई ॥
जान परी मोहि तुम्हरी बाता । तुम सम और न कोई ताता ॥
चौरासी सों कीन्ह उबारा । बहुरि जन्म नहिं होय हमारा ॥
समझ बूझ करिहौं सिवकाई । छांडो कुलकी लाज बड़ाई ॥
परदा तो रहिया क्षण माहीं । जगमें कोई काहू को नाहीं ॥
अपने अपने स्वारथ आई । परमारथ काहू नहिं पाई ॥
ये सब जगत निरंजन माहीं । पांच तीन सो सब उपजाई ॥
पांच तत्त्व तीन गुण भारी । इन ते युक्त दिखाई नारी ॥
पानी पवन पृथ्वी आकाशा । सब पर तेज किया परकाशा ॥
रज तम सत तीनों गुणजाना । ब्रह्मा विष्णु महेश बखाना ॥

साखी–पांच तीन पर अहि निरंजन, यह मायाको ठाट ।
तासों सब रचना करी, भांति भांतिकी घाट ॥

सद्गुरु वचन

चौपाई

कहें कबीर सुनो धर्मदासा । सकल भेद मैं किया प्रकासा ॥
तुम सन अन्तर कछू न राखा । जो कछु हता सो कछु सब भाखा ॥
अब तुम भक्ति करो दृढ़ताई । छांड़ि देव कुललाज बड़ाई ॥
पहिले कुल मर्यादा खोवे । भव सो रहित भक्ति तब होवे ॥
कुल की भय सबही को भारी । कहां को पुरुष कहां की नारी ॥
ताते यम को बन्धन कीन्हा । काज अकाज न काहू चीन्हा ॥
ताते परदा दूर निवारो । सेवा करो सत्य मन धारो ॥
परदा साथ काल की गांसी । यह बन्धन दुनियां सब फांसी ॥
राजा परजा बड़े कुलीना । परदे काल मर्म नहिं चीन्हा ॥
सेवा करो छांड़ि मन दूजा । गिरही सेवा गिरही पूजा ॥

गुरुसों कपटे करै चतुराई । सो हंसा जग भरमें आई ॥
ताते गुरु सों परदा नाहीं । परदा करै रहै भव माहीं ॥
गुरु है मात पिता गुरु सेवा । गुरु सम और नहीं कोई देवा॥
गुरु है खसम और नहिं दूजा । जाने अश हंस गुरु पूजा ॥
गुरुसों परदा कबहुँ न करिये । सर्बस ले गुरु आगे धरिये ॥

साखी-गुरुकी महिमा को कहै, शिव विरंचि नहिं जाम ।
गुरु सतगुरु को चीन्हियां, ते पहुँचे निज धाम ॥

चौपाई

धर्मदास सुन जुगत बताऊँ । चौक आरती तोहि लखाऊँ ॥
अगर चन्दनका चौका दीजै । ज्योति बराय आरती कीजै ॥
पांच तत्व पांचों है बाती । बाहर भीतर ज्योति समाती ॥
मानिक दीपकका उजियारा । यहि बात जाती बिस्तारा ॥
श्वेतपात ले हो सुख भारी । श्वेत खटाई श्वेत सुपारी ॥
यही विधि चौका विस्तारी । मेवा अष्ट आन तहँ धारी ॥
मेवा कदलि कपूर मंगावो । कदली फल सोई ले आवो ॥
पुहुप फूल सुगन्ध सवारो । भांति भांति व्यंजन अनुसारो॥
तनमन धन तब अर्पण कीजै । प्रेम सहित ऐसो सुख लीजै ॥
पांच तत्त्व को भोजन कीजे । ब्रह्म आत्महि तृप्त करीजे ॥
काया माया को सुख येही । यह सुख करके मिलो विदेही ॥
मिलो विदेह देह धर नाहीं । बूझ लेहु तुम यह मन माहीं ॥
अब कछू कहनेको नहिं रहिया । युक्ति हती सो सब हम कहिया॥
भव छूटन को यही उजागर । याही विधि उतरें भवसागर ॥
सत्य सत्य यह बात हमारी । जो कोई समझ करै नर नारी॥
भक्ति करै मुक्ति फल पावे । हमरे सत्य लोकमें आवे ॥
कहै कबीर सुनहु धर्मदासा । छूटै कर्म भर्म सब फांसा ॥

## धर्मदास वचन

साखी-कर्म भर्म भव भा सब, दिये भारमें झोंक।
सतगुरुके परताप सों मिट गये सबही धोंक॥

## सद्गुरु वचन

साखी-यह भव तारण ग्रन्थ है, सतगुरु का उपदेश।
जो मन माने प्रीति कर, पहुँचे हमरे देश॥

## चौपाई

गुप्त भेद सुनहु धर्मदासा। आपहि आप भये परकासा॥
मूल वस्तु बीज है भाई। उपजे विनशै आवै जाई॥
निह अक्षर ते अक्षर भाया। अक्षर आदि अमी उपजाया॥
आदि अमी किये सकल पसारा। फल रहा कछु नाहिं न न्यारा॥
सोहं कला अमीके माहीं। श्वेत बीज झलके तेहि ठाहीं॥
श्वेत बीजका मूल है माया। तासों बची सकलकी काया॥
श्वेत बीजका सकल पसारा। तामें जीव लिया अवतारा॥
तब अंकूर अमी ते भयऊ। पारस अंस फैल सब गयऊ॥

साखी-उत्पति परलय बीज गति, बीजहि आवे जाय।
गुप्त प्रगट जो कुछहती, सो सब दिया लखाय॥
निह अक्षर अक्षर भया, अक्षर किया प्रकाश।
मनते माया ऊपजे, मायात्रिगुणहि रूप॥
पांच तत्त्वके मेलमें, बांधे सकल स्वरूप।
माया ब्रह्म जी तत्व अरु, रज सत तम त्रिय देव॥
इन सब ही को छोड़कर, करनिह अक्षर सेव॥

जो चाहो सोई मिले, मानो मोर विचार ।
यही भेद जाने बिना, कोइ न उतरे पार ॥
भव भारी भर्मइ मिटै, संशय शूल न होय ।
हंसनमें जो रम रहा, शरण गहै नहिं कोय ।
कहै कबीर धर्मदास सों, छोड़ो तुम संसार ॥
यह मेरी परतीत कर, तारो कुल परिवार ॥
अंश वंश परिवार निज, नाद बिन्दु गुरु शिष्य ।
जो चाहे निह अक्षरहिं, मुक्ति अंक सोइ लिक्ख॥

इति श्रीभवतारणबोध समाप्त

---

सत्यपुरुषाय नमः

# अथ श्रीबोधसागरे

## पञ्चदशस्तरंगः

## श्रीग्रन्थ मुक्तिबोध

★

### सद्गुरु वचन-चौपाई

ये गुरु गम संशय करलेखो। प्रगटे ज्ञान तब वस्तु परेखो ॥
अनुभव आदि कुछ कहों बखानी। सुनिये सन्त गुरु गमबानी ॥
अनंत कोट जुग आगे चलगयेऊ। अचल अमानताहि पुनि रहेऊ॥
साठ कोट जुग औरो बीता। सृष्टि रचनाकी इच्छा कीता ॥
वह तो अचल पुरुष है अन्ता। बिन गुरुदया न भेट भगवंता॥
कोट कथे कथनी नहिं पावा। जबलग गुरुगम नहीं बतावा ॥
साखी पद हैं कोटन वाणी। पुरुष एककहँ सुमरो प्रानी ॥
ज्ञान सुरत औ शब्द उचारा। यह सब दीन्ह कीन्ह संसारा ॥
अचल पुरुष को सुमिरे कोई। जीवत मुक्ति सन्तकी होई ॥
साखी पद बोले बहु बानी। आदि नामको बिरला जानी ॥
आदि नामका भेद निनारा। बिना सतगुरु बूड़े संसारा ॥
सोइ जाने जाको बड़ ज्ञाना। गुप्त मता तिनहीं पहिचाना ॥

साखी-आदि नाम निज सार है, बूझि लेहु हो हंस।
जिन जानो निज नाम को, अमर भये ते वंश ॥
आदिनाम निजमन्त्र है, और मन्त्र सब छार।
कहे कबीर निज नाम बिन, बूड़ मरा संसार ॥

आदिनाम कहँ खोजहु प्राणी । जाते होय मुक्ति सहिदानी ॥
मूलमन्त्र मन्त्रन महिं साचा । जोगहि जलेसोनगरहि पहुँचा ॥
आदि नाम जेहि खोजत भेटा । जरा मरन को संशय मेंटा ॥
आदि नाम निःअक्षर सांचा । जाते जीव काल सों बाचा ॥
निःअक्षर धुन जहवां होई । ताहि जपे नर बिरला कोई ॥
जाके बल आवे संसारा । ताहि जपे नर हो भव पारा ॥
गुप्त नाम गुरु बिन नहिं पावे । पूरा गुरु हो सोइ लखावे ॥
सार मन्त्र लखे जो कोई । विषधर मंडवा निर्मल होई ॥
आदि नाम मुक्तामणि सांचा । जो सुमरे जिव सबसां बाचा ॥
आदि नाम निज सार है भाई । जमराजा तेहि निकट न आई ॥
जब लग गुप्त जाप नहिं जाने । तबलग काल हटा नहिं माने ॥
गुप्त जाप ध्वनि जहँवां होई । जो जन जाने बिरला कोई ॥
गुप्त मता लै पुरुषहिं चीन्हा । जबते गुरु मोहिं दिक्षा दीन्हा ॥
तात वरण प्रभु वरण विहीना । सकल मनुष्य नगर नहिं चीना ॥
मूल मन्त्र जेहि पुरुषके पासा । सोई जनको खोज ले दासा ॥
मूल मन्त्र है औ सब साखा । कहैं कबीर मैं निजके भाखा ॥
लिखो न जाय कहै को पारा । हैं अक्षर में जो पावै निरबारा ॥
लिखो न जाय लिखामें नाहीं । गुरु बिन भेंट न होवे ताहीं ॥

साखी-प्रीति विना नहिं पाइये, जो नहि सुर्त समान ।
पुरुष दीप तब पावइ, जबहीं तजै अभिमान ॥

चौपाई

परम पुरुषसों भेट न भयऊ । विन गुरु दयाप्रगटना कहेऊ ॥
धर्मदास मैं कहों समुझाई । निर्गुण भेद कोइ बिरले पाई ॥
तुम तो जीव पर बोधो जाई । जमराजा परपंच लगाई ॥

जीवहिं राखे फन्द फँदाई । शब्दबान महँ मारो जाई ॥
शब्द बान मैं तुम कहँ दीन्हा । जीवको देहु मुक्तिको चीन्हा ॥
नाम पान सों हंस बचाही । शब्द सुर्त लै जुग बन्धाही ॥
जुग बांधे मारे नहिं कोई । लाख जतन चतुरा जो होई ॥
सबको मूल ताहि गहि लीजे । सुरत सम्हार ताहि चित दीजे॥
डार पत्रको जो कोइ धरई । बिना मूल सो जीवन तरई ॥
गुप्त मता जो पकरे भारा । आप तरे औरन को तारा ॥
करे विवेक ताहि ठहराई । सोइ पुरुष को पावे भाई ॥
ताहि सन्त थापों परणाली । सदा भरों राखो नहिं खाली ॥
जो प्राणी लीजे ठहराई । हंसराज ते करी है भाई ॥
साखी पद बोलै सब कोई । बिन परिचये मुक्ति नहिं होई ॥
अगम अगोचर गत व्यौहारा । गहो ताहि उतरो भव पारा ॥
यहि धन राख जीवनको जाई । कर बनी जी कछु टूट न आई॥
यह पूजा है अगम अपारा । खर्चहु खाहु बहु बढ़े विस्तारा॥
यह धन मिले भाग बड़ केरा । जब धन सोच गाहक बहुतेरा ॥

साखी

पूञ्जी मेरे नाम है, जाते सदा निहाल ।
कहै कबीर मैं पुरुष बल, चोरी करे न काल ॥

चौपाई

जो जिव है निज नाम समाना । भये मुक्त जो लोक सिधाना ॥
सोई हंस का तुम सत लेखो । अक्षर माहिं निरक्षर विवेको ॥

धर्मदास वचन

कहें धर्मदास सन्त के दासा । गुरु मेटो मेरो जमको त्रासा ॥
नाम निःअक्षर कहो उतपानी । आपै तैं कैसे के जानी ॥

## सद्गुरुवचन

कहें कबीर धर्मदास सुजानी । अकह हतो ताही कहो बखानी॥
जब नहिं लोक दीप विस्तारा । तब नहिं सुकृति करी संसारा॥
तब नहिं धरती अमर सुमेरू । तब नहिं हतो अमल औ कुबेरू॥
तब नहिं सृष्टि सकल पसारा । आप अकह तब हता निनारा ॥
सकल सृष्टि उतपन कछु नाहीं । तब सब उतपन कहा सब नाहीं॥
हते आप तब शब्दहिं स्वाला । इच्छा भये कीन्हे उजियाला ॥
इच्छा ते अनहद ध्वनि बानी । सुरत संभार सृष्टि उतपानी ॥
सुरत भीर तेहि माहिं समानी । इच्छा तें अनुभव उतपानी ॥
तब ते अक्षर भेद निनारा । साखी पद कीन्हा निरवारा ॥
अकह अचल पुरुषहिं तहां आपू । नहिं दुख सुख नहीं सन्तापू ॥
सबका मूल ताहिं सों लागी । उलट समाय सोई बड़ भागी ॥

साखी–कहें कबीर जो शब्द लखि, रहें सुर्त लौलीन ।
कबीरा सुर्तके समय, निश्चय लोकको चीन ॥
जाके चित अनुराग है, ज्ञान मिले नर सोय ।
बिन अनुराग न पावई, कोट करे जो कोय ॥

### चौपाई

सत्य शब्द जो आवे हाथा । सकलो काल नवावे माथा ॥

साखी–काल खड़ा सिर ऊपरे, काल नजर नहिं आय ।
कहें कबीर बल आपने, जम से जीव छुड़ाय ॥

### चौपाई

नाम अमर मल्यागिर भाई । पीवत विष अमृत हो जाई ॥
निशि दिन रहे मल्यागिर संगा । विश न लगे सो तिनके अंगा ॥

साखी–काल फिरे शिर ऊपरे, हाथों धरे कमान ।
कहे कबीर गहु नामको, छोड़ सकल अमान ॥

चौपाई

नर नारी जो गर्भहि धरहीं । नाम विना पुन नर्कहि परहीं ॥
सुनो संत हौ शब्द रसाला । गहो ताहि जो हो उजियाला ॥
जाके जिव निज नाम समाना । ता कहँ काल अमर कर जाना ॥
विनती कर पूछे धर्मदासू । दोइ कर जोर रहैं गुरु पासू ॥
सतगुरु कहैं सुनो धर्मदासा । शब्द बान लेव हमरे पासा ॥
मैं गुरु भयो शब्द मोर हाथा । सब घटवाह नवावैं माथा ॥

साखी-भाग बड़े तेहि जीवके, आय मिले मो संग ।
पुरुष मिले वहि बाँह धर, सुख विलासे एक ॥

चौपाई

जब हम रहे पुरुष के माहीं । काहि कहों कोउ दूसरे नाहीं ॥
कहे कबीर सुनो धर्मदासा । होय निःशंक मेटा जमत्रासा ॥
मेटो भर्म होय निःशंका । काय गढ़ जीत बजावे डंका ॥
भयो प्रकाश गुरु भेद बतावा । जीव बोध सतलोक पठावा ॥

साखी-जमराजा बड़ दारुण, महा विकट ब्रह्मंड ।
ताके डंका सुनत ही, भय माने नव खंड ॥
नाम खड्ग दृढ़ राखहू, गहो, सुर्त सम्हार ।
काल सो जीव उबारिके, पठवहु भव जलपार ॥

चौपाई

जबते अजर पुरुषको चीन्हा । तबसों काल भये बल हीना ॥

साखी-यहाँ वहाँ कहि जीव छुड़ाये, काल रहे सिर सांध ।
सुर्तसमावे चेतन चौकी, रहे न जमके बांध ॥
आदि नाम तेहि पुरुषके. सुनत तजहि अभिमान ।
कहै कबीर सुनो हो संतो, तजो नरककी खान ॥

चौपाई

कासों कहों कहा नहिं जाई। मेरी गत मत बूझ न पाई ॥
हमहिं दास दासन के दासा। अगम अगोचर हमरे पासा ॥
यहां वहां यदि दोनों ठाऊँ। सत्य कबीर कलिमें मोर नाऊँ॥
जो न हते हमहीं पुन सोई। नाम विना भूले नर लोई ॥

साखी-कोटि जाय संसारमें, ताको मुक्त न होय।
आदि नाम है मुक्तका, जाने बिरला कोय ॥

चौपाई

गुप्त जाप है अगम अपारा। ताहि जपै नर उतरै पारा ॥
मुक्ति न होवे नाचे गाये। मुक्ति न होई मृदंग बजाये ॥
मुक्ति न हो साखी पद बोले। मुक्ति न हो तीरथके डोले ॥
गुप्त जाप जाने जब कोई। कहे कबीर मुक्ति भल होई ॥
संत सुभाग गुरु दाया कीन्हा। आदि नाम हंसनको दीन्हा ॥

साखी-सोई नाम संसार में, उदित अमोल अपार।
ताहि नाम विन मुक्ति नहिं, बूड़ि मुआ संसार ॥

चौपाई

कथा कीर्ति कहुँ गदगद बानी। मुक्ति न होय बिना सहिदानी॥
केता कहो कहा नहिं जाई। नाम गहेसो पुरुष मिल जाई॥
सार शब्द परवाना देहै। जीव छुडाय काल सो लेहै ॥

साखी-फनपति बीरन देखके, राखे बनहिं सकोर।
बीरा देखे नामके, काल रहे मुख मोर ॥

चौपाई

सोहं शब्द निरक्षर वासा। ताहि भिन्न कर जपिये दासा॥

साखी-जो जन हैहै जौहरी, सो धन लैहै गाय।
सोहं जाप सब जगतए, मिथ्या जन्म गमाय ॥

साखी पद संसार में, कहन सुननको कौन।
चीठी आई पुरुष की, सो धन लैहो चीन॥
जो जन ह्वहै जौहरी, तो कहनेका जोग।
बिन सतगुरु ना पावई, भटक मुये सब लोग॥

चौपाई

जब बानी मुख बाहर आवा। भाग बड़े तिनही पुनि पावा॥
कोट जतनके जीव समुझावा। बिना भागते नाम न पावा॥
गुरु गम लहें सन्तके पासा। सो नहिं परें कालके फांसा॥
जो कहँ पुरुष अपन कर जाना। सोई भक्त अन्तर्गत ठाना॥

धर्मदास वचन

धरमदास कहें कर जोरी। बंदी छोड़ बिनती सुन मोरी॥
तब साहब अस बोले बाती। लेउँ छुड़ाय राखों निजसाती॥
तुमको दीन्हीं भक्ति अपारा। नाम जपो तुम अजर हमारा॥
जो ना बूझे कहा न करई। मुक्ति न होय नरकमें परई॥
श्रवण माह कहँ दीन्हें भाई। तो न विवेकै आ बैठाई॥
नाम सुने मोर मो कहँ पावें। जाम जालिम तेहि देख डरावें॥

साखी–सब कहँ नाम सुनावहू, जो आवे तुव पास।
शब्द हमारा सत कहत हों, दृढ़ मानो विश्वास॥

चौपाई

जो जन गृह तजि ले वैरागी। जहां जाय तहां संगे लागी॥

साखी–मूल के कान जो लागे, रहे रहन ठहराय।
वह साधू भर्में नहीं, सो नहिं नरकै जाय॥
कहै कबीर तज भर्म पिटारी, नान्ह होयके पीव।
तज अभिमान गहो गुरुचरण, जमसों वाचे जीव॥

## चौपाई

आदि नाम निःअक्षर नीरा । तौन नाम लैं जीवहि तीरा ॥
आदि नाम लै पंच चलाई । सोइ सन्त प्रमान कहाई ॥
थापो ताहिं दऊं ठकुराई । जबलग रहही मोर दोहाई ॥
गहि मोर नाम मोहि माहिं समावे । और नामते मोहि न पावे ॥
सोई नाम सन्तन सहिदानी । आप मिलै लेवै पहिंचानी ॥
उदितनाम निरभय उजियारा । ताहि नाम सो जीव उबारा ॥
कहें धर्मदास सत गुरु सुनलीजे । अगम पंथ को कैसे दीजे ॥

## सद्गुरु वचन

कहैं कबीर पूछेउ भल आई । अगम पन्थगम कहौं बुझाई ॥
अगम पन्थ है विकट विकारा । तासों कबहुँ न होवे पारा ॥
शीतल शब्द लेहिं सहिदानी । उतर जाहि कछु शंक न मानी ॥
जाय मिले पुरुषहिं के पाहीं । जेतिक जीव तुम्हारे बाहीं ॥

## धर्मदास वचन

अनहद शब्द बहुत विस्तारा । कैसे पैहैं भेद तुम्हारा ॥

## सद्गुरु वचन

आदि नाम पुन तहवाँ होई । नो धत बूझे बिरला कोई ॥
सुरत परम होवे गलताना । ताको मिले निजपद निर्वाना ॥
सुरत बांध जब गुरुहिं समावे । वस्तु अगोचर तबहिं पावे ॥
तज अभिमान मिले जब आई । ताको दीजे ऐन दिढाई ॥
सब तज रहै रहन ठहराई । औ छांड़ि सब लोक बड़ाई ॥
ताको दीजे वस्तु अपारा । कहें कबीर सुन शब्द हमारा ॥
गलत गरीब रहनसे भारै । तन मन धन सन्तनपर वारै ॥
लोक लाज कुल तजै बड़ाई । तब पग परस भर्म मिटजाई ॥
विन विश्वास भक्ति परकाशा । प्रीति बिना नहिं दुविधा नाशा ॥

गुरु से शिष्य करे चतुराई । सेवा हीन नरकमें जाई ॥
संतन वारें तन मन धामा । सोई संत मरें मम नामा ॥

साखी-होय विवेक शब्दके, जाल मिले परवार ।
नाम गहे सो पहुँच है, मानो कहा हमार ॥

चौपाई

नाम उदित सो संत पियारा । मारों काल होय जर छारा ॥
जिन जिन नाम सुने हैं काना । नर्क न परे होय मुक्ति निदाना ॥
आदिनाम जेहि श्रवणन नाहीं । निश्चयसो जिव जम घर खाहीं ॥
सुमरौ पुरुष काल डर कंपा । भौमाने नाहीं सिर चंपा ॥
नाम निरक्षर सुधि जब पावा । काल अपर्बल निकट न आवा ॥

साखी-आदि नाम हैं पारस, मन हैं मैला लोह ।
पारस परस उजियार भये, छूटे बंधन मोह ॥

चौपाई

कहँ लग कहौं कहन नहिं पारा । नाम गहे सो संत हमारा ॥
आदि नाम जस सार के गौसी । लागे बान ठाव रहै वैसी ॥

साखी-सतगुरु मारे बान भर, डोले नहीं शरीर ।
का चाबुक वह कर सके, सुख लागे वह तीर ॥
गाँसी लागे सुख भये, मरे न जीवे कोय ।
कहें कबीर अमर सो प्राणी, जो नहिं मृतक होय ॥

चौपाई

लागे जहां वस्तु सो पावा । बिन लागे को भेद बतावा ॥
नाम अमर रस चाखें कोई । ताको जरा मरन नहिं होई ॥
अक्षर गुप्त सोई मैं भाषा । और शब्द स्वाल अभिलाषा ॥
साठ सुन्नके सुने जो भेऊ । यह गति जाने बिरला केऊ ॥
पाताल सुन्न है बारह खंडा । बारह सुन्न कहों ब्रह्मंडा ॥

बारह सुन्न आकाश बताई । बारह सुन्न पुरुष के ठाईं ॥
बारह सुन्न कहो अनुमाना । कहें कबीर गुरुसे हम जाना ॥
साखी-अकह मूल सब सुन्नके, सुन्न सकल ब्रह्मंड ।
तहवां से बस्ती भई, सात द्वीप नव खंड ॥

चौपाई

चार पदारथ एक पथ माहीं । बिन गुरु नर कहँ बूझे नाहीं ॥
अदेख देखे कथा जो कथई । आप परस दोऊ ता मथई ॥
कथनी कथे प्रतीत दृढ़ाईं । मथनी शब्द अभय पद पाईं ॥
जब देखे औरे नहिं माने । तज पाखंड सत्यको जाने ॥
तहां संत को लैं जमरावे । जाके जीवसहिदानी पावे ॥
सो जाने पुन हमार ठिकाना । ता कहँ दीजे निज सहिदाना ॥
नाम अमर रस मनुवा पागे । होय लौलीन तहां सो लागे ॥
गहि पकरे नर सुर्तकी डोरी । तासों काल करे नहिं चोरी ॥
दृढ के मनवां आदि जो थीरा । कहें कबीर सो सांच फकीरा ॥
सत्य समोय झूठ परहरई । दाग न लागे सत्य सो तरई ॥
जाकहँ गुरु आपन कर लीन्हा । नाम नेति हंसनको दीन्हा ॥
जे तन गुरुके नाम समाना । भक्ति हेत सोई सब जाना ॥
जबलग भक्ति अंग नहिं आवा । सार शब्द कैसे के पावा ॥
सत्य नाम श्रवणन में वोषे । ज्यों माता बालक कहँ पोषे ॥
जहां गुरु भक्त तहां लौ लावे । सुने जु वाह मुक्तिगत पावे ॥
साखी-सुर्तसमानी नाम है, जगमें रहे उदास ।
कहै कबीर निज नामही, दृढ राखे विश्वास ॥

चौपाई

जाके उर विश्वास न आवे । भक्ति अंग सो कैसे पावे ॥
सुरत दृढाय निसदिन तहँ जागे । मुक्त होय कछु बार न लागे ॥

चढ़ी निशंक मन मगन रहा था । सो नहिं करै कालके हाथा ॥
जो जिव माया सों लौ लावा । गहे काल मुख बात न आवा ॥
सोई सन्त समाधी मारी । जाके जीव महिदानी डारी ॥
साखी-गुरुके शब्द साधुकी पूँजी, बणिज जाने जो कोय ।
कहैं कबीर तो बढ़े सवाई, हानि न कबहूँ होय ॥

चौपाई

जबलग सार नाम नहिं आवे । तबलग प्राणि मुक्ति ना पावे ॥
सार नाम बिन सींपके मोती । उपजे बहुत बिना हर खेती ॥
साखी-येहि विधि करे किसानी, पोता तल बल होय ।
भक्त मिले कोइ वीरला, दाम देय सब कोय ॥
मूलहा मोर नाम हैं, दरगाहे गुरु मान ।
सब सन्तोसों लिये फकीरी, डार सकल अभिमान ॥

चौपाई

आदि नाम जे संतनमाहीं । जमका करे निशंक डरनाहीं ॥
आदि नाम है अक्षर माहीं । गुरु विन नर्क पुन छूटे नाहीं ॥
सोहं में निः अक्षर रहाही । विन गुरुके कौन देह लखाई ॥
चीन्हे परे आवे विश्वासा । लोक वेदकी छूटे आसा ॥
चीन्हे आदि निःअक्षर वानी । छूटे भर्म होय ब्रह्म ज्ञानी ॥
कहैं कबीर सन्त सोइ भागी । जाके सुर्त निरंतर लागी ॥
नाम चिन्ह पै कहों पुकारी । नातर बूड़े गैल मझधारी ॥
कहों शब्द मानो नर लोई । आदि नाम बिनमुक्ति न होई ॥
गुरुके कहे मैं कहों सँदेशा । नाम लेवे सो पहुँचे देशा ॥
गुरुके शब्द जो माने नाहीं । मुक्ति न हो बूड़े भवमाहीं ॥
साखी-जम ग्रासे बल बांधे, कहों पुकार पुकार ।
गुरुकी त्रास न होति तो, खाते उनको फार ॥

चौपाई

जाको होय गुरुको विश्वासा । निश्चय जाय पुरुषके पासा ॥
नर प्राणी कीजे इतबारा । गुरुके कहे मैं करों पुकारा ॥
कहे कबीर मिलन बिन आशा । मिलन भये भेंटे विश्वासा ॥
निशिदिन रहे निजनाम समाना । तब जाने भजनी परवाना ॥
यह सब कहों परमारथ काजा । यही पाखंड नर अरुझेबाजा ॥
अक्षर आदि निज नाम सुनाऊँ । जरा मरनके भर्म मिटाऊँ ॥
सोहं के संग आये संसारा । सो गुरु दीजे मोहिं उपचारा ॥
ताको भर्म जान जो पावा । सो साधू जगमें नहिं आवा ॥
साखी-यह अवसर नहिं पावहीं, पलमें लेहु उबार ।
भवसागर तर जायंगे, क्षणमें लेहि ऊबार ॥

चौपाई

गुप्त मता पावे जो कोई । गेही तज वैरागी होई ॥
अकह वस्तु तब निज के पाई । तब पाखण्ड कछू नहिं आई ॥
अजर पुरुषको खोजहु प्रानी । कहे कबीर कोई सन्तसमानी ॥
आदि नाम सो सुरत समावे । निरभय मुक्ति अमरपद पावे ॥
गुरुके शब्द जीव दृढ़ करई । सोई सन्त भवसागर तरई ॥
मनके सुख बूझे भर्म फांसा । बूझ जाय न हो सुख बासा ॥
सुरत सम्हार कहत हम तोहीं । पीछे दोष न आवे मोहीं ॥
आदि नाम जो अमीरस चाखे । पांच पचीस बांधके राखे ॥
साखी-प्रेम पन्थ जे पगु धरे, देत न शीश डराय ।
सपने मोह न व्यापे, ताको जन्म नसाय ॥

चौपाई

तन मन धन सन्तन परवारा । सोई सन्त निज हितू हमारा ॥
का कहँ अमर भरी मैं देऊँ । तेहि सन्तनको निकट बोलाऊँ ॥

सोइ संत सतगुरु सुखदासा । अजर पुरुष जहां अजर प्रकाशा॥
अनन्त कोट जाको पार न पावे । को अस दूसरे गुरू कहावे ॥
हम तुम नारि पुर्ष सब मांहीं । जहां है सोहं तहां हम नाहीं ॥
ताहि खसम चीन्हे नर लोई । तन धर प्रगटे पुरुष न होई ॥
अकह अमान पुरुष जब रहेऊ । नाम निःअक्षर तासों भयेऊ ॥
ताहि नाम को सुमरे कोई । सुर नर मुनि इन्द्री वस होई ॥
अधर पियाला पिय रस सांचा । ऐसी रहन रहे सो सांचा ॥
पियत अमीरस अधिक सुहाये । अधिक पिये पुनित्रास नसाये ॥

साखी-पांच पचीसों तीन गुण, एक मिहलमें राख ।
आदिनाम अनभय उच्चरो, तन मन धन सो चाख ॥
धन परखे धनवन्त जो, ज्ञान दृष्टि जो होय ।
आंधे गुरु विन ना सुझे, कोटकरे जो कोय ॥

चौपाई

कहे कबीर भर्म जब छूटे । मुक्ति भली सांची कर लूटे ॥
कहेऊं उपचार कछु परदा नाहीं । विन गुरु नरको सूझे नाहीं ॥
कथनी कथे कथे का होई । गुरु विन मुक्ति न कबहू सोई ॥
शब्द रूप हमहीं होय आये । हमहीं होय कडिहार कहाये ॥
हमहीं नाम प्राण यह माहीं । हमहीं सन्त मर्द तेहि पाहीं ॥

साखी-ज्ञानदीपक सुरतकी वाती, दीनो संतन हाथ ।
दीपकलेके खोलिये, निस दिन सतगुरु साथ ॥
ज्ञान दीपक प्रकाशके, भीतर भवन उजाल ।
तहां बैठ पुरुषको सुमरो, सहजे होय निहाल ।

चौपाई

सो भजनी सबसी से ऊँचा । जोई अमर औ मतका ऊँचा ॥
यहि विधि भजन करे जो कोई । तीन लोकमें वास न होई ॥

लोक वेद कर्म भरम नसावे । होय सुदृष्टि प्यासको पावे ॥
यह संसार अस कर जाने । सत्य पुरुषको जो पहचाने ॥
कहैं कबीर या तनको सोधो । पांच पचीस तीनको बोधो ॥
एक नाम बिन जग जस श्वाना । कोट करे नहिं मुक्ति निदाना ॥

साखी–कहें कबीर ये सब मुए, लहिं विषधरकी धार ।
जो जीव सतगुरु पावैं, ते जीव जगसे उबार ॥

चौपाई

बिरला जन कोई भक्तिहि लहई । जो थिर होय तो भक्तिही कहई ॥
आपही पुरुष और सब नारी । सेवक भये सकल देहधारी ॥
अचल अमान जो अकह कहावा । ताकी गत बिरला जन पावा ॥
आदि पुरुष को बिरला पावा । ब्रह्मा विष्णु शिव पार न पावा ॥

साखी–अमृत वरण ये मूरत, ताहि कहों गुण पेख ।
गुरुकी दाया सो लखे, सुरत निरतकर देख ॥

चौपाई

निः अक्षर निर्गुण सो जाने । और सकल जग गुण नहिं आने ॥
तीनों गुण लै सर्गुण बोले । निर्गुण तनके माहीं डोले ॥
आदि नामसों सब जग बांधा । आदि नाम जाने सो साधा ॥
आदि नाम तहां अक्षर धारा । ताहि नाम लै सब विस्तारा ॥
आदि नाम देव शंकर भयऊ । और नाम है नरके सुभाऊ ॥
पद साखी निश्चै कर जाने । आदि नाम कहँ मूल बखाने ॥
मूल मंत्र जाने सो कोई । ताको आवागमन न होई ॥
भूले लोग कहें हम पावा । मूल वस्तु विन जन्म गमावा ॥
प्रेम अभागी मूल नहिं जाने । डार पत्रमें पुरुष बखाने ॥

साखी–अचर पुरुष एकै रहे, अजर दीप है स्थान ।
कहै कबीर सर्वांग विराजे, ताहि पुरुषको जान ॥

चौपाई

निःअक्षर पावे नहिं सोई । कैसे कै स्थिर प्राणी होई ॥
जब लग गुरुसों करे न नेहा । तबलग प्राणी प्रेतकी देहा ॥
आदि नाम अमृत तन पावा । जाति पांति कुलधर्म नसावा ॥
आदि नाम है गुप्त संसारा । जो पावे सो होय हमारा ॥
संत कुल तोर भर्म कुल तोरे । संत साधु सों नाता जोरे ॥
तज पाखण्ड वैरागी होई । अपने पिया को पावे कोई ॥
साखी-कहो काल का कर सके, पुरुष नाम जेहि पास ॥
निर्गुण निंदक पच मुए, गुरुका नहीं विश्वास ॥

चौपाई

पुरुष नाम जेहि परिचय होई । सब भेषन में गुरु है सोई ॥
ताकी महिमा अगम अपारा । लोक वेद तज भये नियारा ॥
अचल पुरुष जो अचल है देशा । आदि नाम लेकर परवेशा ॥
जाहि वस्तु में मिटे दुख द्वंदा । सुख सागर तहां प्रेम अनंदा ॥
अगुण सगुण होइ झगरा बाजे । दोउ दलतजिके पुरुष विराजे ॥
कहें कबीर या भक्तिके मूला । अकह अमान अचल अस्थूला ॥
अब्रण वरण सो भेद निनारा । घट घट वसे लिप्त तनधारा ॥
ताहि पुरुष को चीन्हें प्राणी । घटमें रहे निकस ना जानी ॥
तबही कहिये खसम खुदाई । कौन कपट से आवे जाई ॥
कौन पुरुष में रहे समाई । सो प्रभु है संतन सुखदाई ॥
यह सब धन अनुभवकी वानी । खोजी होके सो पावे प्रानी ॥
देख परख आवे विश्वासा । अगुन सगुन के सबै तमाशा ॥
सत्य शब्द कहि दीन्ह सँदेशा । जरा मरन का मिटै अँदेशा ॥
संत संदेश गुरु मोही दीन्हा । जे जन होय ताहिको चीन्हा ॥
कहै कबीर है वस्तु अपारा । ताहि वस्तु गहि उतरे पारा ॥

मूल मंत्र सब मथिके बूझे । अगम अगोचर तब कछु सूझे॥
जो जो वस्तु दृष्टि में आवे । सोइ वस्तु काल धरि खावे ॥
यह धन मिले देखे प्रणधारी । ताको दीजे भेद विचारी ॥

साखी–बिन देखे बोले जस, अंधरा हाथि परेख ।
बलिहारी वहि सन्तकी, निरख परखके देत ॥

चौपाई

तन अभिमान सब सबंही धरहीं । मूल मन्त्र कैसे लख परहीं ॥
होय नहिं दास धरे अभिमाना । ताहि न दीजे अनुभव ज्ञाना ॥
मुक्ति भये संतन हित कीन्हा । मुक्ति भली प्रकट कहि दीन्हा॥
कहें कबीर तेहि की बलिहारी । पुन अनुभव मैं कहों पुकारी ॥

साखी–समझाये समझे नहीं, धरे बहुत अभिमान ।
गुरुके शब्द उच्छेदके, कहत सकल हम जान ॥

चौपाई

बोले बचन बहुत विस्तारा । आदि नामविनघटे अँधियारा॥
पुरुष न चीन्हें फिरे भुलाना । निश्चय परे सोइ नर्क निदाना ॥
एक नाम बिन पार न पावे । मिथ्या प्राणी जन्म गमावे ॥
देख परे सोई सब भाषा । और कहनकी है अभिलाखा ॥
जाकर सज घट करे समाई । ताते साधू देहि लखाई ॥
अधिक भरे ऊँचे से सीजे । सो माया जो रुच रुच पीजे॥
और सींचे अनुभव धन देखे । और सकल मिथ्याधनलेखे ॥
हरष शोक दोऊ परिहारे । होय मगन गुरु चरणै धारे ॥
अजर अमर सो अकह कहावे । जो धन मिले सो संत कहावे॥

साखी–यह धन पूजी गुरूकी, भाग बड़े जिन पाय ।
कहें कबीर आय नहिं टोटा, नित खरचे अरु खाय ॥

चौपाई

यह ना आवे अमर प्रकाशा । जो धन खोजहु धनके पासा ॥
यह धन मिले होय बड़ भागी । सोई सन्त परा वैरागी ॥
करै विवेक वस्तु है न्यारी । यह सब है सपनेकी ब्यारी ॥
ताहि गहे नर सुरत सम्हारी । सोई सन्त पूरा हितकारी ॥
बारा राशी मन्त्र चौबीसा । यह सब है सपनेको ईसा ॥
विन परचै नर आह जो करई । निश्चय जाय नरक सो परई ॥
जो नहिं मोक्षके शब्द विचारा । तिनहिं काल ले करै अहारा ॥
सारा नाम विन मुक्ति न पावै । बूड़ मरे पुन थाह न आवे ॥
निंदक नरक परै नहिं तरई । चार खूंट में भमंत फिरई ॥
देह धरे नहिं सुर्त दृढ़ाई । उपजत बिनास चौरासी जाई ॥

साखी-भर्म जाल संसार है, सब अरुझे भव भीत ।
कोई कहें जन एक है, मनमें राखो मीत ॥
चरणामृत जो पायके, दृढ़ राखे विश्वास ।
निर्भय मुक्ति पाईये, पहुँप दीपकी वास ॥

चौपाई

सुर्त दीपकी अकथ कहानी । अगम अगोचर अनुभव वानी ॥
अकह सुर्त जहँ अगम अपारा । ताहि गहे उतरे भव पारा ॥
लखे अंक जो अकह कहानी । अगम अगोचर अनुभव वानी॥
तजै पाखण्ड सोई निर्वानी । सोई सन्त कहावे ज्ञानी ॥

साखी-पुरुष सार सों न्यार है, दीखे सबहिन मीत ।
ज्ञानदृष्टि में जगसों छुटे, जो जन प्रेम पुनीत ॥
कहें कबीर दरसाये, जाके उर निश दिन रहै ।
सोई करे गुरुवाय, झक मारे संसार है ॥

चीठी उतरे दूरसौं, ताके सिर वैराग।
नाम गहे पुरुष पावहीं, तब गुरु प्रगटे भाग॥

चौपाई

पावे वस्तु मगन होय रहई। चढ़े ना उतरे लाख जौं कहई॥
होय निशंक नहिं चित्त डुलावे। जो जेहि सुर्त धरे सो पावे॥
अकह अमान पुरुष है सोई। तन धरि प्रगटे पुरुष न होई॥
मूल वस्तु पावे बड़ भागी। देखिये साखो पदमें नागी॥
कहि न जाय अकह को देखा। गुरुकी दया सुर्त सो पेखा॥
साखीपद के तहां न काजा। आप मिले सोइ सेश विराजा॥
अनुभव शब्द जहाँ ठहराना। को कह सके न जाय बखाना॥
देख परख आवे परतीती। तब जैहै चौरासी जीती॥
तहां नहीं तुम दुतिया भाऊ। आप मेटु तबही सब गाऊ॥
वहां बैठ अमृत फल पाऊ। जब निःशंक बहुर नहिं आऊ॥
गुरु के शब्द हृदय मो आना। ता नरकी भइ मुक्ति निजजाना॥
कोटि असुर की राई आवे। दृढ़ विश्वास सन्त जेहि पावे॥
कहें कबीर है शब्द सुहेला। गुरु पूरा सूरा होय चेला॥

साखी–गुरु पूरा शिष्य सूरा, बाग मोरि रन पैठ।
सन्तसुकृत कहँ चीन्हके, तब तख़्त पर बैठ॥

इति मुक्तिबोध समाप्त

---

सत्यनाम

सत्यसुकृत, आदि अदली, अजर, अचिन्त, पुरुष, मुनीन्द्र, करुणामय, कबीर, सुरति योग, संतायन, धनी धर्मदास, चूरामणिनाम, सुदर्शन नाम, कुलपति नाम प्रबोध गुरुबालापीर, केवलनाम, अमोल नाम, सुरतिसनेही नाम, हक्कनाम, पाकनाम, प्रकट नाम, धीरज नाम, उग्र नाम, दया नामकी वंश-व्यालीसकी दया

# अथ श्रीबोधसागरे

★

## षोडशस्तरंगः

## श्रीग्रन्थ चौकास्वरोदय

★

प्रथम प्राण योग जो भाखा । कारज सिद्ध जो बाहर राखा ॥
प्राणायाम भेद सबहीको सारा । कारज सिद्ध वेद व्यवहारा ॥
वोई सरूप हम आनि निमांये ।आधेको नर आधकी नारि बनाये॥

सो स्वरूप हैं आदि निशानी । सत्यस्वरूप सो जीव समानी॥
प्रथमशब्दसुरतिस्मृति निर्मांया । जितने वेद और लोक बनाया॥
दुतिये इच्छा अंकुरकू कीन्हाँ । उत्पति प्रलय सौंपि सब दीन्हाँ॥
तृतिये माया मन विस्तारा । तिनके बीज जीव संचारा ॥
चौथे सुर चंद्रहि परकाशा । शुक्र भेद तिहि माँहिं निवासा॥
पाँचयदिवशरातऔरतिथीपसारा। तापर सूर्य चन्द्रकी धारा ॥
एक नारि एक पुरुष कहावा । चन्द्र सूर्यनाम तिन पावा ॥

साखी—तिनको भेद शरीरमें बरते, पांच तत्व निजसार ।
कहें कबीर सोई लखे, पूर मिलै कडिहार ॥

## चौपाई

काया भर्म भेद अधिकारा । नीर पवन दोइ अस बैठारा ॥
नीर नामते उत्पति होई । नीरहि साधै मरै न कोई ॥
दुसरा पवन अंगकी धारा । तापर सोहं सुरति बैठारा ॥
पवन भेद है अगम अपारा । आदि अन्त सब कीन्ह पसारा॥
पवन डारि स्वासा अवगाहा । विन सद्गुरु पावै नहिं लाहा ॥
तापुर सूर्य चन्द्रकी धारा । सुखग चन्द्र औ सूर्यविचारा ॥
तिनकर भेद जो न्यारे करऊ । सूर्य चंद्र भेद दोई धरऊ ॥
दिन तिथि पक्षसंक्रांति विचारा । तापर पांच तत्व विस्तारा ॥
सूर्य उदय संपूरण कहेऊ । भेद अभेद मर्म सब लयेऊ ॥
मंत्र उदौछे हि मासको भाजै । सूर्य सनेह सो तहां विराजै ॥
पृथ्वी तत्त्वपर सूर्य जो आवै । छै मासको शुभ दिखलावै ॥
घरको छांड़ि तत्त्व जो बोलै । प्रलय कालके छत्र जो डोलै ॥
जलहि तत्त्वपर अस्थिर होई । ताको कष्ट होय नहिं कोई ॥
वायु तत्त्व कीयो विस्तारा । किंचित कारज होय संसारा ॥

तेज तत्त्वपर सूर्य सवारा । भीतर बाहर सोग अपारा ॥
जब आकाशतत्त्व जो आवै । होइ भंग सब काज नशावै ॥
शुभहिं अशुभ दोही निरतावै । मकर भेद छह मास बतावै ॥
पक्ष भेद कहऊँ अब सोई । अँधियारा पक्ष सूर्यको होई ॥

मकर संक्रांति

तेहि में सूर्य चन्द्रकी धारा । तीन तीन तिथि कीन्ह विचारा॥
कहिंअँधियारा कहिं उजियारा । रवि शशि मंगलसूर्य सम्हारा ॥
चारि अंक गहि भेद विचारो । धरिकै कृष्णपक्ष निर्धारो ॥
फिर काया में बैठो जाई । काया सूर्य लहो निरताई ॥

साखी–काया सूरज जब उगै, होय पृथ्वितत्त्व असवार ।
तबहि शुक्ल शुभ जानिये, कारज शुभ सँवार ॥

अब मैं कहों चन्द्रकी धारा । कर्क संक्रांति छैमास विचारा ॥
तहां जब उदय चन्द्रको होई । अथवत सूर्य उगै पुनि सोई ॥
चलहि तत्त्वपै सूर्य सवारा । छेह मास आनन्द विचारा ॥
घरहि छांड़ि जो बोलै आई । तो कारजसिद्ध होय नहिं भाई ॥
घरमें रहै तत्त्व नहिं होई । देश उपद्रव देखो सोई ॥
पृथ्वी तत्त्वपर चन्द्र सवारा । प्रेमानन्द और ज्ञान विचारा ॥
वायुतत्त्वपर चन्द्रकी धारा । किंचित कारज होय संचारा ॥
तेज तत्त्वपर चन्द्र जो आवै । पश्चिम दिशा कलह उपजावै ॥
आकाशतत्त्वपर चन्द्र सवारा । भीतर बाहर कष्ट अपारा ॥
पृथ्वीमें उदय चन्द्रको कहेऊ । शुक्लहि पक्ष भेद अब रहेऊ ॥
दोई तिथी पक्ष उजियारा । तहांते केवल चन्द्रकी धारा ॥
तामें भेदाभेद बिचारा । तीन तिथी चन्द्रसूर्य निर्धारा ॥
सोम शुक्र गुरु बुध जो होई । चन्द्र सनेह चारि दिन सोई ॥
रवि शनि मंगलवार विचारा । तीनहि दिनको सूर्य सिरदारा ॥

साखी—दिन तिथी पक्ष संक्रांति है, बाहेर चार विचार ।
सबको मूल है याहिमें, सो पूर्ण चन्द्र उजियार ॥

परचै चन्द्र कायामें सोई । जो ऊगै तौ सब सुख होई ॥
जलके तत्त्व चन्द्र असवारा । भीतर बाहर अनन्द विचारा ॥
पांचतत्व अब भिन्न जो कहेउ । तत्त्व भेद सब न्यारे रहेऊ ॥
जलके तत्त्व सुफल घर चन्दा । प्रेम विलास अती आनन्दा ॥
पृथ्वीतत्व चन्द्र जब आवे । सूरज मिले आन उपजावे ॥
वायु तत्त्वपर चन्द्र समाई । चित उदास लै गवन कराई ॥
तेज तत्त्वपर चन्द्र जो होई । उत्तम मध्मम कारज होई ॥
अकास तत्त्वपर चन्द्र सर्वंगा । शुल्ककारज जो होय अभंगा ॥
अकास तेज जल तत्त्वन आवै । करि अकाज तहँ कलह समावै ॥

साखी—एते भेद सर्व हैं, चन्द सनेह विचार ।
काया चंप शुभ देखि हो, तो शुभशुक्ल विचार ॥

## बानी भेद

अब मैं कहों बानिका लेखा । ज्ञानी होय सो करे विवेका ॥
प्रथम बानि की गिनीजो होई । अण्डज बानी समानी सोई ॥
दुसरी बानी विंगन कही । पिंडज बानि मैं बोलै सही ॥
तिसरी बानी इंगन जानी । सो उषमजमें जाय समानी ॥
चौथी बानी रिंगन आवै । अजल खानिमें जाय समावै ॥
पांचवी बानी सिंगन होई । नरदेही मैं व्यापक सोई ॥
बानी पांच भेद औ माहा । बिन सतगुरु नहिं पावै थाहा ॥
परचै बानी तत्त्वहिं होई । पांचों ध्यान जब आवै सोई ॥

## ध्यान भेद

प्रथम प्रान ध्यान है भाई । सो कीगनमें लै नितराई ॥
दूसर आपनो ध्यानको लेखा । विंगल बानी करै विवेका ॥

तिसरे समान ध्यान व्यवहारा । रिंगन वानीको करौ विचारा ॥
चौथे उद्याना ध्यानको लेखा । रिंगन वानिको करै विवेका ॥
पांचई बानी सिंगन लेखा । वियान ध्यानसो किन्ह विवेका ॥

साखी-पाँच ध्यान पाँच बानी, पाँचे तत्व विचार ।
पाँच मुद्रा पाँच तत्त्व, पाँचे लग्न घरसार ॥

लग्न भेद

अब मैं कहों लग्न व्यवहारा । बार लगन कीन्हे निरधारा ॥
तिनके लक्षण नाम सुनाऊं । चन्द सूर्यको प्रेम बताऊं ॥
कर्म करोर सूर्यके सोई । शुभ के कर्म चन्द्रते होई ॥
पाँचौ उदय सूर्य जब आवै । पृथ्वीतत्त्वपर जो घर पावै ॥
क्रूरकर्म सब सिद्ध निवासा । तहाँ चलि चौका भेद प्रकाशा ॥
मक्रहि उदय पक्ष अँधियारा । तिथि सनेह बीती नहिं वारा ॥
काया उदय सूर्य है सारा । पृथ्वीतत्त्व होय असवारा ॥
सोई लग्न जमुनी है नामा । विगड़े हंस पहुँचे निज धामा ॥
चन्दको वार सूर्य तिथि होई । तांसो जगपति कहिये सोई ॥
तन छूटे तहां जन्मुनि चहिये । और स्नेह जगपतिके कहिये ॥
ऐसे कर्म क्रूरके कहिये । जेतिक हंसके कारज कहिये ॥
बावड़ी विहार कूप तलाई । भोजन मिथुनहि शुद्ध कराई ॥
इतने कर्म मैं तुम्हें सुनाई । और कर्म बहुतेरे भाई ॥
संत साधुको एते कहिये । और कर्म अकर्म सब लहिये ॥
क्रूर कर्म हैं चौका सारा । मृतक कर्मको कीन्ह विचारा ॥
चारहुँ वेद भेद हम कहेऊ । सूर्य सनेह भेद निर्वहेऊ ॥
जो कोई पिंड मायामें करही । सूर्य सनेह जीव उर धरही ॥
छुटे कर्म जन्म तहँ धरहीं । दीन मान भोग तहां करहीं ॥
चन्द्र सनेह पिंड नहिं पावे । भ्रमत फिरै अरु काल सतावे ॥

कहाँ गया कहाँ नहिं गंगा । बिना सूर्य सब कारज भंगा ॥
जो कोई होय बहुत कडियारा । तुम सुनियो यह भेद विचारा ॥
इतने सूर्य लग्नके लच्छन । तत्त्व विचार सूर्य यह दीच्छन॥

साखी–तत्त्वभेद सब सूर्यको, सो मैं कह्यो बखान ।
कहै कबीर धर्मदास सुन, यह टकसार अमान ॥

## चन्द्रलग्न भेद

सूर्यभेद हम कह्यो बिधाना । चन्द्रभेद अब कहों प्रमाना ॥
चन्द्रसनेह शुभकर्म बिचारा । कर्कसंक्रांतिते चन्द्र निर्धारा ॥
योगसिद्ध में भेद विचारा । उदयतत्त्व जल चलै मँझारा ॥
छहै मासको शुभ है सोई । इतनो भेद कर्कते होई ॥
पक्ष चन्द्रको है उजियारा । तापर केवल चंद्रकी धारा ॥
दोई तिथि चंद्र सूर्य समाई । तीन चन्द्र तिथि सूर्य बताई ॥
चन्द्र सनेह जो वार है चारी । सोम शुक्र गुरु बुद्धि विचारी ॥
कायाचन्द जब ऊगै आई । तब सब उदय चंद घर पाई ॥
नाघट उदौ तो सर्व अभंगा । करत कार्य सब होई है भंगा ॥
जल तत्त्वपर चन्द्र असवारा । कार्य सिद्ध होई इसवारा ॥
पाँचों स्नेह चन्द घर आवे । तब पूनौ संपूरण पावे ॥
ताहि लग्नको प्रतिमा नाऊ । अखंडित चंद्र बरते सब ठाऊ ॥
ताहि लग्न सिख बोधौ जानी । चौकाविधि कीजै विलखानी ॥
सोई अंकुरि जो हंस हमारा । जिन यह स्नेह चौका विस्तारा ॥
सोई लग्न गहि नरियर मोरौ । जिमि कालसो तिनका तोरौ ॥
शुभकर्मके कहेउ परमाना । और कर्मके कहौं विधाना ॥
प्रथममें चौका जग विस्तारा । दान पुण्य होम जग सारा ॥
वाग वृक्ष फूलहि फुलवारी । यहि मठ जात्रा सैन्य अचारी ॥
राजदर्शन बनिज व्यवहारा । स्नान ध्यान गुरुनेम अचारा ॥

औषध मूरी विवाह सगाई । सर्व पहेर अरु छत्र बैठाई ॥
शुभही कर्म चन्द्रके ऐसे । लक्षण देखि चलौ तुम तैसे ॥

साखी—चन्द्रकर्म शुभ सब कहे, गुण निर्गुण निर्धार ।
और भाव तौ बहुत हैं, कहैं कबीर विचार ॥

चौपाई

अब सुनियो कछु आदि निसानी । चांरौ लग्न कहों बिलछानी ॥
प्रतिमा चन्द्र लग्न है सोई । जमुना उदयसूर्य निज होई ॥
जो तिथि चन्द्र सूर्य दिन आवे । निश्चय लग्न जेपति तहाँ पावे ॥
जो तिथि चन्द्र सूर्य है बारा । जगपति लग्न सूर्य संसारा ॥
वार लग्नमें कालको फंदा । धरै नाम जिव करे निकन्दा ॥
सोरहे पारस लगन बिचारा । चौदहकी राति लखि बटपारा ॥
जगपति भेद लग्नसों नेहा । लग्नसूर्यके ग्रहन सनेहा ॥
जगपति लग्न सूर्यके होई । नेहर चन्द्रको ग्रासे सोई ॥
दोई लग्नको भेद न पावै । जमुनी प्रतिमा हंस मुक्तावे ॥

चारि चौकाको प्रमान

चौका चारको सुनहु विचारा । भिन्न भिन्नके कहों निरधारा ॥
प्रथम चौका जन्मको कीन्हा । अंश सोरह नारियर लीना ॥
सोरह धोती और असी सुपारी । लौंग इलायची लै समधारी ॥
दो हजार पान बीससेर मिष्टाना । सोरह हाथ चन्दवा ताना ॥
दसै रती सोननके खरीपा । सोरह मासा धरे जो रूपा ॥
दलकीअभ्रतिटकासोर भारसेही । भरि भांडे एक थारी लेही ॥
इक लोटा इक बेला लेई । इक झारी आब रखि देई ॥
बच्छा सहित ही गाय सुपेता । इहिविधि चौकाकर बहुहेता ॥
पहिले कर्म सब जाई जराई । इहिविधि चौका करे बनाई ॥
तन मन धनसों पीत लगावे । सोवा सत्यलोकमें जावे ॥

## प्रथम चौका विधि

अब मैं कहों एकतरी बिधाना । एकोतरिनारियलचौका प्रमाना
लौंग इलायची धोति सुपारी । इकतोरी सब वस्तु विस्तारी॥
पान मिठाई अवर पकवाना । इकोतर सह सबको बंधाना ॥
दश अरु कमल आरतीसाजा । मुखसों जपैं इकोत्र समाजा ॥
इकोतर जन्मके पाप नसाई । कर्म अकर्म सबै मिटजाई ॥
निर्मल हंस हिरम्मत देही । पहुँचे जहँही पुरुह विदेही ॥

## द्वितीय चौका विधि

अब सहेज चौका कहोप्रमाना । जीवसंग एकनरियल बंधाना ॥
अस नारियल सम धरही । विना मंत्र नहिं चौका करही ॥
छठै मास चौकाकी पूजा । छाँड़ि चौका पूजे नहिं दूजा ॥
छटै मास नहिं पहुँचै भाई । बरस दिनामें विसरिन जाई ॥
जो जीव शिष्य हमारा होई । हमही पूजी पूजे नहिं दोई ॥
दोई पूजी बहुत दुख पावै । तन छूटै जमकाल सतावै ॥
ममता फिरै कहूँ ठौरै न पावै । फिरि फिरि जक्तहि देह धरावै ॥
दुख अरु सुख दोनूं भुगतावै । एकहिनाम पुरुषको गावै ॥
लोकजात बार नहीं लावै । चौका सहजिहि भाँति करावै ॥

## चालवा चौकाविधि

चालवा चौका कहौं विचारा । बाहर नरियलले विस्तारा ॥
आठ सुपारी पन्द्रहसो पाना । लौंग इलायची लै बंधाना ॥
पन्द्रह सेर मिठाई ले आवैं । बारह धोती आनि जढ़ावैं ॥
पाँच भाँड़े धातुके होई । सोरह हाथ चन्दोवा सोई ॥
पाँच खंभको मण्डप गढ़ावै । नये पुराने वस्त्र मँगवावै ॥
सो परदा गहिरैके देई । गीत मंगल कर माटी लेई ॥
तिहि माटीकी वेदि बनावै । वाँछा सहित जुगाय चढावै ॥

साधु सन्तको भोजन करावै । पन्द्रह सेर पकवान चढ़ावै ॥
चार पहर सब साज जो करही । सोरह सुतकी पोसी धरही ॥
चार पहर निस बैठक करही । सूर्यस्नेह चौका विसतरही ॥
सुरती सुरत सूर्यपर जोरै । पृथ्वी तत्त्वमें नारियर मोरै ॥
औरहु भाव बहुत हैं भाई । जो समुझे सो बिचलि न जाई॥
अमी अंकको बीरा पावै । बिगड़े हंस लोक को आवै ॥
पान प्रसादे वंश हेतु लेई । पियेपर नाम हमारा लेई ॥
छूटैं हंस कर्मके पारा । चोर उदय घट सूर्य बिचारा ॥
चन्द्र हेतु तिन चौका करहीं । चन्द्र लग्नको काल जिमु डरहीं॥
चौथा चौका चलवेका एहै । सूर्य लग्न निजही मनमें है ॥
देह धरै नहिं कर्म सतावे । सहजे जाय परम पद पावे ॥
चारों चौका एहि विधि करै । सो हंसा तरहै औ तारै ॥
सहजको चौका वासनमें निरतावे। इतने भेद टकसार लखावे ॥
भेद चुरामणिखण्ड अपारा । चुरामनि बस एहि भेद विचारा॥
उन्हको नाम प्रताप है सोई । इहतो भेद कडिहारको होई ॥
जोन अंकुरी वोहित कडिहारा । सो यह पावे वंस टकसारा ॥
अंस बँसकी परख न पावे । पढ़ि टकसार काल घर जावे ॥
बिन गुरु भेद गहे टकसारा । बिना पुरुषकी नारि बिचारा ॥
बिन दूलहकी कौन बराता । बिना गुरुझूठ जान जिहिं राता॥
बिना छत्र ज्यों लश्कर फिरहीं । विन गुरु ज्ञान धीरको धरहीं ॥
हमरे पन्थके गुरु धर्मदासा । तिनके वंशगुरु जक्त प्रकाशा ॥
हमरा ज्ञान वंस अस करई । खोवे आपु नरकमें परई ॥
तजै मनै क्रोधे अहँकारा । सो ये गहैं वंश टकसारा ॥
इतने भेद इहै टकसारा । औरे ज्ञान बहुत असरारा ॥
वंशटकसार कडिहारा जो पावै। सो सौ भवसागर जीवमुक्तावे ॥

वंश अस न टकसार होई । सीखसहित गुरुजाय विगोई ॥
इतनौं भेद है अगम अपारा । नीर पवन चन्द्र सूर्यकी धारा ॥
कार्यसिद्ध नीर युक्ति प्रवाना । सद्गुरु बचन शीश परमाना ॥
उत्तर पूरव चन्द्र सनेहा । दक्षिण पश्चिम सूर्यहि देहा ॥

साखी—इतना भेद चन्द्र सूर्यका, पांच तत्व निजसार ।
दिनतिथि पच्छ उदयलों, सो साँचो कडिहार ॥
कहै कबीर सोई लखे, ए सब मिले टकसार ।
चन्द्र सूर्यको भेद जानै, सो झूठो कांडिहार ॥

इतिग्रन्थ चौकास्वरोदय संपूर्ण सत्य सही

# अथ अलिफनामा

★

अलिफ अव्वल एक नाम सही है आप अकेला साँई ॥ आदि अनादि अनादह अनाहद नहीं वा साँई ॥१॥ (बे) बंदेको पैदा किया देमका हियां दरूदा ॥ अव्वल कलमा पाक सही है हुक्म रब्बमह बूबा ॥२॥ (ते) तनमें दीदार मिलैगा पाक होय वजूदा॥ नूर झलक्के सत्य साहबका, सब घट है मौजूदा॥३॥(से)साबित सत्यनाम गोसांई, सदा जो कायम वाशिद ॥ पूरा होय सत नाम कहावै मिलै जो पूरा मुर्शिद ॥४॥(जीम)जाहि लवु गुजार जहां सग यह तो नेक नजर है॥५॥फेकुन सैयन मुहीत नजलीलअलाहक खबर है हे हक्काका हुकुम हाकिमका सदा जो कहिये बर॥ अजकुन फैकुन पेदा गहती सोहं ओहं मुनहक॥६॥ (खे) खालिकको सुमिरत रहिये, लिखत खूब यही है ॥ खुदाखबीसीछाँड़सबी शद साधु खैर तभी है॥७॥(दाल)दया दुर्वेश दोस्तकर दूर करै सब दर्दा ॥ जिसके दिलमें दर्द नहीं सो मून्जी नामदा ॥८॥ जाल जैहनको पाक साफकर, जिकर कि लज्जत पावो।जोक शोकसे जिकर लगावो दूर बहावो ॥९॥(रे) रहीम रहमत कर तुझपर रहम करै जो कोई ॥ रामरहीमसे एककर जानै तब जहेमत नहिं होई॥१०॥ (जे) जौरावर कोई न बांचे, रावण था दशकंधा ॥ जोर जुल्म है जहेरका प्याला मत कोई पीवे बन्दा ॥११॥ (सीन) सरासरी सिर साईका सब सीनोंके अन्दर॥ साँचा वचन सुनो साधो जन, स्वाती बरस समुन्दर ॥१२॥ (शीन) शेहरमें शोर बहा है शुक्र खुदाका कहिये। सत्य सुकृत ये कर बासन बिसरे हरदम सुमिरत रहिये॥१३॥ (स्वाद) सदा सिफत साहबकी कहिये, सदा समीपै भाषो॥ दिल दरदिल सीना दरसीना देखो दिलकी आँखो॥१४॥(ज्वाद)जमीर

मुनीर मुवाजे व्यापक सब घट सांई ॥ है हजूर रहिमाना जिद नाकीजे भाई ॥१५॥ (तोय) तालिब मतलूबको पहुँचै तोफ करै दिल अन्द ॥बहुते तौफ जाय तब वायफ ना देव जाय पहाड़ समुन्दर ॥१६॥ (जोय) जालिम मिलै इजरयाल कबज करै जो जाना ॥ गये जुलमात कोई न बांचे सिकंदर सुलताना ॥ १७ ॥ (ऐन) इल्म चौदाको पड़ते अमल नहीं जो लावै ॥ अमल नहीं वो इल्म ऐब है दानीश मन्द कहावै ॥ १८ ॥ (गैत) गलत ते वहि नहीं कहिये गुस्से गजबको त्यागै ॥ नाहक सुनके न्यारा रहिये कह सुनके मत भागे ॥ १९ ॥ ( फे ) फरमान आखिर है फानी फाजिल फहेम कहाया ॥ मिन कुल अलेहफाना कुरानो खबर कहाया ॥ २० ॥ ( काफ ) कलब है अरस जमीका सुनकर और नकीरा ॥ नेकी करो बदी बिसरावो कुलसे कहत कबीरा ॥२१॥ (लाम) लाहोल उसीपर जो न सुने जुगज्ञाना॥ साहेब से जो कोल किया था तो काहे बिसराना॥२२॥ (मीम) मुसल्लममर्द मुसलमान कहत, मुरीद ना करना ॥ रहिये सदाई मनसलामत जेहि विधिसे निस्तरना ॥२३॥ (नून) नोज बिलाह अलेकुम नेक सरवुनका करना ॥ नैनो अकबर हबलूल बरिद हैं हकका फरमाना ॥२४॥ (वाव) वजूवजेमे गो यमनेकी खरत सुनुफ॥ख्याल बदी नुस्वास दिल अन्दर सो है मर्दमुखौबफ ॥ २५ ॥ (हे) है दोनों यक सूरत दोनी ये साँई एक म्यानमें हो दो यम घर कबहु नहीं समाई ॥२६॥ ( ये ) येक साहब है सांचा सुनो तुम मन चित्त देको ॥ काया कबीर कहत है अव्वल आखिर येको ॥ २७ ॥

इति अलिफनामा । सप्तदशस्तरंगः

श्रीः

# कबीरबानी

भारतपथिक कबीरपंथी

स्वामी श्रीयुगलानन्द द्वारा संशोधित

★

मुद्रक व प्रकाशक-

**गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,**

अध्यक्ष-"लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-प्रेस,

**कल्याण-बम्बई.**

सत्यनाम



श्री कबीर साहिब




सत्यसुकृत, आदि अदली, अजर, अचिन्त, पुरुष,
मुनीन्द्र, करुणामय, कबीर, सुरति योग, संतायन,
धनी धर्मदास, चूरामणिनाम, सुदर्शन नाम,
कुलपति नाम, प्रबोध गुरुबालापीर, केवलनाम
अमोल नाम, सुरतिसनेही नाम, हक्कनाम,
पाकनाम, प्रकट नाम, धीरज नाम,
उग्र नाम, दया नामकी वंश-
व्यालीसकी दया

# अथ श्रीबोधसागरे

★

## अष्टादशस्तरंगः

## कबीरबानी

★

प्रथम बानि सुनियो चितलाई । आदि अन्तकी सुधिदेहु बताई॥
प्रथम आदि समरथ हते सोई । दुसरा अंस हता नहिं कोई ॥
आदि अंकुर सुरती जब कीन्हा । सात करीको गर्भ तेहि दीन्हा ॥
इच्छा सूर्ति दूसरे उपजाई । सातो करी मैं चित्त बनियाई ॥
छीप रूपहि करी परकासा । स्वाति रूप इच्छा नीवासा ॥
सात इच्छा तेहिते उपजाई । भिन्न भिन्न पर करी बनाई ॥

विमल शब्द विरलिततबदयेऊ। तबहुलासबंदपाँचकरिमेदयेऊ ॥
तब पाँच इंड भरो उतपानी । तत एक भिन्न पर श्यानी ॥
नहिं तबधरनी नहिं आकासा । नहिं तब दुसरो हतो अवासा ॥
ध्यावै इंड करै चौचन्दा । आपु देखि और सहज अनन्दा॥
तबकी बात नहीं कोई जानै । कहों समुझाय तो झगरा ठानै॥
धर्मदास सुनियो चितलाई । फूटो इंड सूर्तिसे भाई ॥
सहज अंकुर बीज सब भाई । तिहिकी इच्छा इंड उपजाई ॥
तब सरबनसो साजी बानी । तेहिते मूल सुरति उतपानी ॥
अबोलबुन्द तेहि सुरतेहि दीन्हा । पाँच अंश तब उतपन कीन्हा ॥
पांचो अंश तब कह्या बुझाई । पाँचो अंडमें तुमजाओ समाई॥
एकहि एक इंड तब गयेऊ । आपहु आप कलामें ठयेऊ ॥
तब अवगत एक खेल बनावा । पांच स्वरूप पांचोंइंडहि आवा॥
फूटो इंड तेज भई धारा । सबमें देखे पाँच ततसारा ॥
पांचइण्ड भिन्न भिन्न विस्तारा। सातअधरदीपतेहिमहिंसंचारा ॥
देखि सरूप अंडनकर भाई । सो हंग सुरति तबहिं उपजाई ॥
पुरुष शक्ति भई दोय प्रकारा । तिन्हको सोप्यो उत्पन सारा ॥
तासो अंकुर भेद बतावा । बचन सुरत एक संग समावा ॥
जाते ओहं पुरुषको अंगा । ओहं भये बंस दो संगा ॥
तिन्हें उत्पनकी आज्ञा कीन्ही । शब्द शनद उनहूको दीन्ही ॥
मूलसुरति औ पुरुष पुराना । रचना बाहर कीन्ह अस्थाना ॥
सोहं सोहं इंडनमें रहेऊ । सकल सृष्टिके कर्ता कहेऊ ॥
प्रथम अंकुर दूसर इच्छा उतपानी। तिसरे मूल चौथे सोहं ठानी ॥
सोहं सोहं की बंधानी । आठ अंस तिनते उतपानी ॥
आठ अंस भये एही धामा । करता सृष्ट धरे यहि नामा ॥
करता सरूपी आठ भराअंसा । तिन्हके भये सृष्टि सब बंसा ॥

तेज अंड अंचितकूं दीन्हा। प्रथम सुर जब उतपन कीन्हा॥
सोई अंस दूसरे भय भाई। धीरज अंड तिन्हें बैठक पाई॥
तिसरे अंस अण्ड निर्माई। क्षमा अण्ड तिन्हें बैठक पाई॥
चौथे अंस है सुकृत सारा। सत्य अंड है ताहि पसारा॥
पांचों अंस हिरम्मर भाई। सुमत अंड तिन्हें बैठक पाई॥
दोई अंस दोइ करी समाने। तिनका भेद गुरुगम जाने॥
एक अंस निर्गुण अवतारा। ते तब सृष्टिके भये कडिहारा॥

साखी-एती उत्पन्न चार सुरतकी, भिन्न भिन्न परकार।
कहै कबीर धर्मदाससों, आगे बन्स पसार॥

धर्मदास वचन

साँचे सद्गुरु की बलिहारी। धर्मदास बिनती अनुसारी॥
धन्य भाग्य मोहि मिले गुसांई। अपनो कै मोहि लीन्ह मुक्ताई॥
चारि वेद अरु शास्त्र पुराना। सबहीके मैं सुनो प्रमाना॥
अविगति गती काहु नहिं जानी। जो तुम कही आदि की बानी॥
सुरत सोहंगके आठ भय अंशा। तिनके सृष्टि सबही भए वंशा॥
अपरंपार है तिनका सेषा। अंचित्य सृष्टिको कहों विवेका॥

साखी-तुम निज सतगुरु सत्य हो, हम निज चीन्हा सोय।
अंचित सृष्टिको भेद कहो, अविगति पूछौं तोय॥

धर्मदास तुम बड़े विवेकी। तुम्हरे घटमें बुधि बड़ देखी॥
अंचित्य सृष्टिको कहों पसारा। तेज अंड तिन्ह पायो सारा॥
बारहि पालंग अंड विस्तारा। तिहिमें पांच तत्व है सारा॥
इनको बैठक आसन दीन्हा। अंड सींखपर लोक तिन्हें कीन्हा॥
प्रेम सुरति तिन कीन उपचारा। तिन्हते भयो अक्षर विस्तारा॥
अक्षर सुरत तब मोहमें आई। ताते अंस चार निरमाई॥

चारि अंस भये चारि प्रकारा । चौविध दीप चौविधहि पसारा ॥
प्रथम अंश पर माया भयऊ । सोपृथ्वितत्वको वीज निर्मयऊ॥
दुसरे कर्म भये अवतारा । पालंगअठानवे कीन्ह विस्तारा॥
तिसरे अदली अंश निरमावा । शेष नाग सों नाम धरावा ॥
चौथे अंश भये धर्म राई । जिन्ह पाप पुण्यको लेखा पाई॥
चारी अंश अक्षर ते भयऊ । चार अंश चार मत ठयऊ ॥
तब समर्थ अविगति एक कीन्हा । पूरी नींद अक्षरकूं दीन्हा ॥
चौसठ युगलौं सोए सिराई । तोलों कैल सुरती ठहराई ॥
समर्थ सुरति जल तत्व समानी । कैल अंड की कीन्ह उपानी ॥
तेहि पीछे अक्षर पुनि जागा । मोह तत्त्व भये अनुरागा ॥
चकित होय अक्षर बिलखाना । सोइ मोह सब सृष्टि समाना ॥
अंड दृष्टिमें देखो भाई । ब्याकुल भए यह किन निरमाई॥
समर्थ छाप अंडसिर दीन्हा । अक्षर छाप देखि सौ लीन्हा ॥
सोई अंड जलमें बिराना । जिनको वेद नारायण माना ॥
तहवां ज्योति निरञ्जन भयऊ । तिनको सब जग कर्ता कहेऊ॥
अक्षर सुरति समर्थकी बानी । तेहि गुण खेल भए उतपानी ॥
निरंजन नाम अक्षर ठहराई । अचिंत भेद नहिं पावै भाई ॥
कैलहि देखा सकल पसारा । तब अक्षर सो वचन उचारा ॥
देउ पिता मोहि आज्ञा सोई । जो कुछ इच्छा उपज्यो मोई ॥
सेवा करत सत्तर जुग बीता । तब मुख बोलै पुरुष अतीता ॥
जीव पुत्र जहां पृथ्वीको मूला । तहां कर्म बैठे अस्थूला ॥
सृष्टि भंडार कूर्मको भाई । सोलह माथ हाथ चौसठ पाई ॥
चले निरञ्जन कूर्मलगि आये । पुरुष ध्यानते कर्म जगाये ॥
उत्पति हमकूं मांगे देहू । ना देहो तौ तौ मारिके लेहू ॥
तबहि कूर्म अपने मन मानी । एतो कैल भए अभिमानी ॥

हम मांगे कछु देब न भाई । जाऊ पुरुष लगि वेगि सिधाई ॥
कल कूर्मते युद्ध निर्मयऊ । छीन माथा तीन पुनि लयऊ ॥
लेकर माथे सुन्यमें आवा । कैल सुरति घट मोह समावा ॥
तीनों माथे भक्ति तब लीन्हा । तबसे अक्षर पुरुष डर कीन्हा ॥
मनमें तब अभिमान समाई । तब कर जोरिके सेवा लाई ॥
सोला चौकड़ा तब चलिआई । तब लगि निरंजन सेवा लाई ॥
अक्षरपुरुष जो कीन्ह विचारा । तिन्हको समरथ वचन उचारा ॥
विदेह बानि तब अक्षर पाई । सो बानीते कन्या भइ भाई ॥
ताको बहुत सिखावन दीन्हा । अष्टांगी तिन कन्या कीन्हा ॥
पुत्रि निरंजन लागि सिधाई । तुमको समरथ सदा सहाई ॥
तब कन्या निरंजन लगि आई । एक पाँव पर सेवा लाई ॥

### साखी—कहै कबीर

देखे पलक उघारिके, कन्या आगे ठाढ़ि ।
उपज्यो मोहऽरुप्रेम, तब विप्रीत मनमें बाढ़ि ॥

### चौपाई

पलक उघारि कैल तब देखा । अपने मनमें कीन्ह विवेका ॥
कहै कबीर सुनो तुम बानी । मोहिकारनपुरुषतोहि उतपानी ॥
हम तुम कीजे सृष्टि पसारा । तीनहि लोक सकल महि भारा ॥
तब अष्टांगी कैलसों कहाई । मोहि तोहि नाहीं होय सगाई ॥
मैं तोरि बहिनी तू मोरा भाई । सो अनरीती सब दीन चलाई ॥
कहैं कैल सुनो आदि भवानी । हमरे वचन तुम काहै न मानी ॥
जो तुम कहा हमारा मानौ । तौ तुम उत्पति निर्णय ठानौ ॥
तब अष्टांगी कहै बुझाई । बिन आज्ञा तोहि पुरुष रिसाई ॥
बिन आज्ञा कूरम सिर छीना । ताते पुरुष अन्त करि दीना ॥

साखी–कहै कबीर

देखि स्वरूप कन्यहिको, मनमें रोष समाय ।
मनमें रोष भयो अति, कन्या लीन्हीं खाय ॥

लीलत कन्या कीन्ह पुकारा । पुरुष वचन ले हृदय सम्हारा ॥
तब सुरति बानते कैलहि मारा । कन्या तब उगलै बहि पारा ॥
एहि प्रपंच अक्षर तब कीन्हा । ताते कैल मती हरि लीन्हा ॥
कन्या सुरति तब गई भुलाई । जबते पेट कैलके आई ॥
पिता पिता कैलसो कहेऊ । मदन प्रचंड कल छन भयेऊ ॥
अष्टांगी कैल एकमत कीन्हा । ताते सृष्टि रचवे मन दीन्हा ॥
किया संयोग भयो त्रीवारा । जेठो ब्रह्मा लघु विष्णु कुमारा ॥
तीजे शंभु विष्णु ते छोटा । येकही निरंजनहि के ढोटा ॥

साखी–कहै कबीर

जैसे रूप निरञ्जनहिं, तैसे तीनों भाय ।
जे उत्पत्ति कैलकी, आगे सृष्टि उपाय ॥

चौपाई

करि प्रपंच शून्य इंडमें गयऊ । मनमें बहुत आनंदित भयऊ ॥
एहि आनन्दमें गए भुलाई । ताते श्वासा सुरति उठाई ॥
तेहि श्वासाते वेद कढि आई । रूपनिधान चारों बने भाई ॥
हाथन पोथी सुसरस बानी । ताते कैल भयो अभिमानी ॥
चारि वेद सब मरम बतावा । तब चलि अक्षर शून्यमें आवा ॥
केल प्रचण्ड भयो बरियारा । तब अक्षरते बुद्धि विचारा ॥
येतो कैल औ जीव विचारा । समरथ छाप लियो टकसारा ॥
अक्षर चलै अचिंत लगि गयऊ । महाशून्य छोड़ी तब दयऊ ॥
तब अचिंत्य अक्षर समुझावा । यह अविगति गति काहु न पावा ॥

तुम तो सुरति हमारी हो भाई। कैल सुरति समरथ निर्मायी ॥
लक्ष जीव नित करै अहारा। सवा लक्ष नितप्रति निस्तारा ॥
अंशवंश मिलि एक मत कीन्हा। चारों ज्ञान बिचारि तब लीन्हा॥
तुम गति हंसरूप हौ भाई। वह तो कैल जीव दुखदाई ॥
तुम समर्थको ध्यान लगावो। अन्तर्गति समर्थ सुख पावो ॥
चारी ज्ञानमें निर्णय कीन्हा। सो निरणय अंशको दीन्हा ॥

साखी-कहै कबीर

कहे कबीर धर्मदाससों, एता सकल पसार।
तीन शक्तिको खेल भयो, चौथे हंस उबार ॥

धर्मदास बहुतै सुख पावा। उठि सतगुरुसों विनती लावा ॥
सांचे वचन तुम्हारी बानी। आदि अन्तकी निरणय ठानी॥
कौन है अण्ड कौन है अंशा। काहे अंश कौन है वंशा ॥
कौन कैल कौन गुण धारी। कौन सृष्टि कौन संसारी ॥
एती बात मोहि सों भाखो। और गुप्त गोये जिनि राखो ॥

साखी-कहै धर्मदास

विन देखे सबही कहै, सुनि पाइहै कान।
सोइ अदेख तुम दिखावहु, आदि अंत परमान ॥

चौपाई-सतगुरु कबीर उवाच

तब सतगुरु मन मैं बिहसानै। तुमसों धर्मनि निर्णय ठानै ॥
तेज अण्ड अशर है वंशा। अचिंत्य अण्ड सोहं गहै हंसा॥
निरंजन कैलचारि गुणधारी। तीन सृष्टि अविगति संसारी ॥
तेज अंड अचिन्त्य है अंशा। नववंश अक्षर है वंशा ॥
सत्य अण्ड जोहं गहै अंशा। सो रहै तिनके उपज्यो वंशा ॥
पालंग पचीस तासु विस्तारा। पातालपाँजि ते तिनको बैठारा॥
तिसरों अंडहि क्षमा बखानी। अकह अंश तिन्हकी रजधानी॥

अकहनामते सतावि‍स बंशा । तिन्हके सकल और हैं अंशा ॥
चौथा धीरज अंश है भाई । ताते सुकृत अंश निरमाई ॥
वंश बयालिस है कड़िहारा । तिनकी सदन चलै संसारा ॥
पाँचों अण्ड सुमत निर्माई । अंश हिरम्मर बैठक पाई ॥
तिन्हके वंश सात परवानी । इह सब भेद लेहो पहिचानी ॥
अंडहि अंड आठ भए अंशा । सात सुरति इक्कोत्तर वंशा ॥
चारि अंडको एक विचारा । दोए करीको भेद अपारा ॥
एक वंश कोई पार न पावै । सतगुरु निजही भेद बतावै ॥

खुद होय कहै

सुरति सरूप हमहीं सब कीन्हा । मान बड़ाई अंशोंको दीना ॥
जबे अचिन्त्य सुरत ठहरानी । सुरति समर्थ घट आनि समानी ॥
दोइ मध्य एक आए समाई । तिन्हको नाम अक्षर ठहराई ॥
अक्षर इच्छा उपजो भाई । दुसरा अंश कैल होय आई ॥
आठों अंस कालकी बानी । अक्षर घट जो आये समानी ॥
सो वासा होय बाहि ढिआई । तिन्हकी गति कोई बिरलै पाई ॥
पांच प्रगट तीन गुप्त सारा । इनके हंस अग्यारा सारा ॥
चारि अंशभवभार हम दीन्हा । चारि वेद्यमें निर्णय कीन्हा ॥
तीन देव सृष्टि अधिकारी । उपजनिबिनसुन दुखसुख भारी ॥
तिन्हें चौरासी लक्ष बनावा । जीव अनेक बहुत उपजावा ॥
यह अविगति काहु नहिं पावा । सारथ ऐसा खेल बनावा ॥

साखी—वेद कितेब जाने नहीं, पावे ग्यानी थाह ।
तीन अंशलौ सबहीं खेले, आगे अगम अथाह ॥

धर्मदास उवाच

धर्मदास विनती चितलाई । तुम्हरे शरण मुक्ति गति पाई ॥
उतपति कारण हम सब पावा । वंश अंश दूनों निरतावा ॥

लोक दीपको ठौर बतायो। बैठक अस्नेह हंस चिन्हायो॥

साखी-कैसे सरूप समर्थ हैं, कैसे हैं सब हंस।
केहि करनीते पाइये, कैसे कटे कालकी फंस॥

चौपाई-सतगुरु कबीर उवाच

कहैं कबीर सुनो धर्मदासा। अल्पबुद्धि घटमाँह निवासा॥
सत्य लोक है अधर अनूपा। तामें है सत्ताविस दीपा॥
सत्त शब्द का टेका दीना। अगम पोहुमीरचीतिन लीन्हा॥
सागर सात ताहि विस्तारा। हंस चले तहां करै विस्तारा॥
अग्रवास वह सुवरन कांती। तहां बैठे हंसनकी पांती॥
पुहुपद्वीप है मध्य सिंहासन। कल्पदीप हंसनको आसन॥
अविगत भूषण अविगत सिंहारा। अविगत वस्त्र अविगत अहारा॥
कमलस्वरूप भौम्य है भाई। कहांकी उपमा देउ बताई॥
आभा चन्द्र सूर्य नहिं पावहिं। भूल चूकके शीस नवावहिं॥
कला अनेक सुख सदा होई। वह सुखभेद यहां लहै न कोई॥
निरतै हंस पुरुषके सङ्गा। नखशिख रूप बन्यो बहु अंगा॥
पुरुष रूपको बरनै भाई। कोटि भानु शशि पार न जाई॥
छत्र सरूप को वरणै भाई। अविगत रुप सदा अधिकाई॥
सत्ताइस द्वीपमें करे अनन्दा। जो पहुँचे सो काटैं फन्दा॥
हंस हिरम्मर और सोहंगा। श्वेत अरुण रूप दोउ अंगा॥
विमल जोतको है उजियारा। झलकै कला पुरुषमें भरा॥
चारि शब्दका लोक बनावा। पांच सरूप लै हंस समावा॥
सत्य शब्दकी भूमि बनाई। क्षमा शब्द आसन निरमाई॥
धिर्ज शब्दसों छत्र उजियारा। सुमत शब्दसों वस्त्र पसारा॥
प्रेम शब्दसों हंस निरमाई। आप शब्दते लोक समाई॥
दीपन करै दीप हंस बिहारा। तहां पुरुष निर्मल उजियारा॥
जब विहंसे मुखमोड सुहाई। निरत हेरि विहंसे चितलाई॥

चिकुरझलक बरनी नहिं जाई। कोटिनवार शशि वारन जाई॥
एति सिद्ध सतगुरु फरमाई। मानुष रूपन्हि लोके जाई॥
अविगति रूप है लोक हमारा। करनी भेद कहो निर्धारा॥

करनी भेद

काया करनी चार है भाई। मनकरनी दोई लेहों उठाई॥
प्रथम करनी चौका है सारा। तिनकीसन्धतिनहुका विचारा॥
दुसरे पुनि चरणामृत कीन्हा। तिसरे शीत प्रसाद जो लीन्हा॥
चौथे साधुकी सेवा करहू। यम औ कालसों कबहू न डरहू॥
काया करनी कही विचारी। मन करनी सो हंस उबारी॥
पारस परशे कञ्चन होई। लोहा वासों कहै न कोई॥
स्वाति सनेहकी करनी है भाई। सो करनी काहु विरले पाई॥
स्वाति बून्द सीप जो लेही। बून्द स्वरूपहि पलटे देही॥
इक करनी है हंस सनँदा। पहुँचे लोक काँपि यमफंदा॥
लोक वेद कुल जगत विसारे। बोलत वचन जीव निर्वारे॥
माया चारि कालकी भाई। इनहि जीव राखे उरझाई॥
इह छोडे सद्गुरुके ओटा। मेटे कर्म भर्म सब खोटा॥
दोइ माया सद्गुरुके ठहराई। दोय करनीसे सत्य मिलाई॥
हंस करनि तीनलोकसो न्यारी। सद्गुरु मिले तो कहै विचारी॥
धर्मदास कर चौका प्रमाना। मेटो कुल पाखंड अभिमाना॥
सोरा असंख्य युग गयो सरसाई। काहु न खबरिसमर्थकी पाई॥
जीव निकाल यमधरधर खाई। चारि वेद सब जक्त भ्रमाई॥
धर्मदास तुम अंश हमारा। तुमसो बचन कहौं टकसारा॥

साखी-कहे कबीर

मैं कबीर बिचलौ नहीं, नाम मेरो समरत्थ।
ताही लोक पठाइहों, जो चढ़ शब्दके रत्थ॥

## धर्मदास उवाच

धर्मदास तब सौंज मँगाई । सोरह अंश तब दीन्ह चिन्हाई॥
चौका पुरस तब युक्ति बनाई । तनुका तोड़े जल अचनाई ॥
लिख्यो पान समरथ सहिदानी । दीन्हो सन्देश सत्यकी बानी ॥
तीनि अंशकी लगन विचारी । नारीअर अंशको हंस उबारी ॥
नारी पुरुष होय एक संगा । सद्गुरु बचन दीन्ह सोहंगा ॥
सोहँग शब्द है अगम अपारा । तुमसों धर्मनि कहौ विचारा ॥
पेड़ सोहंग और सब डारा । साखा सोहं कीन्ह प्रकारा ॥
प्रथम सहज सोहंगकी बानी । दूसरि इच्छा सोइ उपतानी ॥
तिसरे मूल सोहं है भाई । चौथे सोहं सोहं निर्माई ॥
सोहंगते भये सोइ अतीता । जाको नाम जो कह्यो अचिंता॥
अचिंतहिते अक्षर सोहंगा । अक्षर सोहंगते कैल सोहंगा ॥
कैल सोहंगते त्रिगुण सोहंगा । सोहंगते सकल सृष्टिको रंगा॥
अमृत वस्तुते नौ पकारा । सोहंग शब्दके सुमिरन सारा ॥
सो सोहं अचीन्हि जो पावै । सोहं डोर गहि लोक सिधावै ॥
जा घट होई सोहं मतसारा । सोई आवहु लोक हमारा ॥
सुरति सोहं हृदये महँ राखो । परचे ज्ञान तुम जगमें भाषो ॥
एती सिद्धि सोहंकी भाई । धर्मदास तुम गहौ बनाई ॥
चौका करि दीन्य परमाना । तब जीवहि छूटे अभिमाना ॥
अजावन बीरा आवै हाथा । तब हंसा चले हमरे साथा ॥
ताकैं पुनि चहि आवै डोरी । टूटे घाट अठासी करोरी ॥
कुल करनी जिन्ह खोय निसाई । काटि फन्द निज घरकूं जाई ॥
तन मन धनको मोह न आवै । सो जिव दर्स हमारा पावै ॥
गुरुसों अन्तर कबहुं न कीजै । साधु सन्त सेवा मन दीजै ॥
एती सनद जीव उजियारा । ताको सुकृत आवै सठिहारा ॥
सोहं करनी सोहं विचारा । सोहं शब्द है जिव उजियारा ॥

साखी–कहै कबीर

धर्मदास उन मन बसौ, करौ शब्दकी आस ।
सोहं सार सुमरन करो, मुनिवर मरें पियास ॥

चौपाई–धर्मदास उवाच

सत्य नाम संतन सुखदाई । कथा अनूप कहों चितलाई ॥
बन्दौं गुरु दोऊ कर जोरी । जिमि कलहिते तुम बँदे छोरी॥
को प्रवीन है लोक तुम्हारा । सों मोसों सब कहौ विचारा ॥
बस्ती सून्य बिचकी सब भाखो । जो देखो सो गोय जिन राखो ॥

धर्मदास बचन

साखी–जैसे है तैसी कहौं मैं बलिहारी जाउँ ।
अंस वंस निवारके, जीव सकल मुक्ताउँ ॥

चौपाई

तुमरे कारन भेद हम दावा । सर्वमूल गुरु समरथ आवा ॥
लोक परेलोक दोउ हम पाए । जब सद्गुरु मोहि दर्श दिखाए॥
पांजी भेद कहौं समुझाई । कौन अंस कौन लोक बैठाई॥
केते पवन इहाँते होई । जहां समर्थ बैठक सोई ॥
वेद कितेकी संज्ञा दीजे । इतनी दया गुरु हमपर कीजे ॥

साखी–लोक भेद केते वहै, पांजी भेद कहो समुझाय ।
अंस वंस अस्थान बतावो, सब संशय मिट जाय ॥

सद्गुरु पेडी भेदः पठचते

धर्मदास मैं कहा समुझाई । पांजी अंस को भेद बताई ॥
तज अंडवार पलंगबिस्तारा । मध्यमेंशून्यदोयपालँगअँधियारा॥
मृत्तुलोकमें सालोक मुक्तिप्रमाना। ताकी नाम मानसरोवर स्थाना॥

## चारिमुक्तिकी कमाई अस्थान

धीरज अंश तहां बैठारा। चौसठ कामिनी संग बिहारा॥ मध्य सरोवर पिंड सिला लै धारी। चौसठकामिनी निरते घरियारी॥ जो कोई वाम मार्ग को ध्यावै। सो सालोक्य मुक्ति को पावै॥ पेडी॥१॥ तहांते वैकुण्ठ चौवीस कोटी रहाई। तहां सुमेर रह्यो ठहराई॥ तहाँ धर्मराय अविनासी रहही। जो पाप पुण्यका लेखा लहही॥ तहां रंभा सामीप्य मुक्त है सोई। नवसौ सखी ताके सँग होई॥

## (पेडी २ वैकुण्ठको बिस्तारा)

पांच सीखर सुमेरके रहही। पांचों अंसकाला तहां धरही॥ ईशानकोन ध्रुव आशन कीन्हा। वायु कोन कुबेरको दीना॥ नैर्ऋत कोन जमको अस्थाना। अग्नि कोन इन्द्रासन ठाना॥ जिनकूं धर्मराय मैं कही। मध्यसिंहासन विष्णुको सही॥ सहस्र साठजोजन वैकुण्ठ प्रमाना॥ ६०००० तेहिके आगे सुन्य डोर बन्धाना॥ निर्वानमारगको जो कोई ध्यावै॥ सो सामीप्यमुक्ति वैकुण्ठको पावै॥ पेडी॥५॥ वैकुण्ठते शून्य अठारह १८ करोरी॥ तहां लागी सून्यकी डोरी। शून्यमध्य है दीप अनूपा। आदि निरंजन तहां जोतिसरूपा॥ तहां अँधियारी हैं सुन्य मँझारा। दोय पलँग है सुन्य विस्तारा॥ तहां कोटि चारि है जोति उजियारी॥ तहां अष्टंगी है शक्ति नारी॥ सारूप्य मुक्ति सो तब पावै॥ अघोर मार्गको जो कोई ध्यावै॥

## चौथी मुक्ति आगे अस्थान

ते अक्षर आगे अस्थाना। एक पलंग तहांते परवाना॥ तहाँ अक्षर योग माया विस्तारा। चारि अंश जिनके अधिकारा॥ तहाँते चार वेद परवाना। चौथी मुक्तिको येयि ठिकाना॥ तहांते आगे कोइ ना गएऊ। एहि मता चारों वेद मिलिठयेऊ॥ चारों

मुक्ति सम्पूरन ॥ (पेडी) तहाँते चारी मुक्तिको जाना । तहांते एक इण्ड परवाना ॥ तहांते है इण्डको छौरा ॥

इण्डके आगे अनहद अँजोरा । आगे असंख्य शून्य विस्तारा ॥ तहां अचिंतनाम अंस करे व्यौहारा । अधर दीप है ताकर नामा प्रेम ध्यान ताकर विसरामा प्रेमसुरति नचि बारंबारा ॥ ताके सँग लखिबारहजारा ॥ १२००० ॥ तहां आगे सोहं अस्थाना । तहां तीन असंख बीच सून्य प्रमाना । तहांते आठअंस उपजाई उन्हे वंस अंसके स्थान बनाई ॥ तहां ओहं सोहं उजियारा। तिन संग हंस छतीस हजारा ॥ ३६००० ॥११॥ पेडी ॥ तेहि आगे मूलगति अस्थाना । तहां बीच सून्य आग असंख्य प्रमाना । हंसा तिन संग बावना हजारा ॥ ५२००० ॥ तिन्हते पांच ब्रह्म उपजारा ॥ पेडी ॥ १२ ॥ आगे सुरति मूल इच्छाको मूला । स्वाति सनेह जाको है स्थूला ॥ वीस सून्य चार असंख निरधारा । तिन संग हंस पचीस हजारा ॥ २५००० पेडी १३॥ तिनके आगे सुरति निशानी । सर्वोत्पत्तीकी रजधानी॥ बीचशून्य दो असंख्य प्रमाना। तिनते भये अंकूर ठिकाना ॥ सोरा असंख्य तिन्हते विस्तारा । हंस तिनहि संग पांच हजारा ॥५०००॥ धर्मदास बचन सुन सांचे । ताके संग हंस सब बांचे ॥ पेडी ॥१४॥ तहाँ आगे अंकूरको प्रमाना । तिल प्रमान द्वार अनुमाना ॥ विहंग शब्दकी लागी डोरी। तेहि संग हंस गये पुरुषलगि सोरी ॥ पेडी ॥ १५ ॥ बीच अँधियारी घोर अपारा । एकअसंख्य दसलाख विस्तारा॥ १०००००००००० १०००००० ॥ आगे हमार निजलोक ठिकाना ॥ ताको मर्म काल नहिं जाना ॥ पेडी॥१६॥

साखी—कहें कबीर

इतना पांजी भेद है, धर्मनि सुनि चितलाइ ।
समरके प्रतापते सब, हंस लोके जाइ ॥

चौपाई

सोरा असंख्य उत्पति पसारा । चार असंख्य शून्य बिस्तारा ॥
सात शून्य दोउ बेशून्य कहावै । एकै शून्य कोई विरला पावै ॥
तहांते तीन शून्य भए प्रवाना । आदि अंश शून्य सुरत ठिकाना॥
तिहिते तीन भए परकारा । चार सुरतको सकल पसारा ॥
प्रथम शून्य लोकते लागी । तीनिसुरत भएशून्य अनुरागी॥
आठ अंश अरु वंश पसारा । तहँ लगि देखो शून्य विस्तारा॥
इतना जीके होय निन्यारा । ताके आगे लोक हमारा ॥
हम चीन्हे और गुरुको सेवै । कर्म तोड़ि के जुग जुग जीवै॥
लोक वेद कुल माया धारी । काल फंद यम फंद विचारी ॥
निसदिन सुरत सतगुरुसों लावै । साधु संतके चितहि समावै ॥
जनपर दाया सतगुरु केरी । तिनकी कटै कर्मकी बेरी ॥
करनी कर अभिमान भुलाई । तब छूटै यम धरि ले आई ॥
करनी करिये गुरुके साथा । ताकु काल उठि नावै माथा ॥
करनी करी जो होय अधीना । ताको वासा लोकमें दीन्हा ॥
करनी करे निज सुर्त लगावै । ताको सुकृत लोक पहुँचावै ॥
करनी करत कसरि होय आई । तबहि काल घर बाजु बंधाई ॥
सेवा करि राखे मन आसा । तन छूटै जीव परिहै सासा ॥
सद्गुरुसों अभिमान जो करिहै । तन छूटै जीव यमफंद परिहै ॥
बंस टेक औ नाम हमारा । पथ पूजा सद्गुरु कनहारा
चारों अंश चिन्हे जो पावै । तनमन धनसों प्रीति लगावै ॥
माता पिता बंधु सब भाई । पुत्री पुत्र हेतु लोलाई ॥
घरकी घरणी पुरुष है सोई । इनकी प्रिति न कारज होई ॥
तासों काल रहै सुख गोई । नारी पुरुष सुरति कारज होई॥

गुरुसों अंतर कबहु न राखै । प्रेमप्रीतिसों दीनता भाखै ॥
गुरुको निंदे अक्षरकू ध्यावे । बिन गुरु अक्षर कैसे पावे ॥
गुरु संगाती शब्द लखावे । जाके बल हंसा घर आवे ॥
गुरुस्वाती, गुरुरूप स्वरूपा । गुरू पार्स है आदि अनूपा ॥
गुरुभृङ्गी गुरु सो बहुरंगी । कीटते करही आप हितसंगी ॥
गुरु है सांचे सिद्ध समाना । गुरु मलयागिर वास प्रमाना ॥
गुरु सद्गुरु दीपक अस होई । ताको सनेह कहों मैं सोई ॥

## गुरुसीखको सनेहवर्णन

जैसे स्नेह कमल और भौंरा । जैहे स्नेह चन्द्र अरु कोरा ॥
जैसे स्नेह बीन जल अंगा । जैसे स्नेह है दीप पतंगा ॥
जैसे स्नेह मृगा और जन्त्री । जैसे स्नेह चकमक और पथरी॥
जैसे स्नेह स्वाति और पपीहा । जैसे स्नेह चुम्बकअरु लोहा ॥
जैसे स्नेह मीन अरु नीरा । जल बिछुरै वह तजै शरीरा ॥
ऐसे गुरु शिष्यको सन्देशा । मुक्ति होय गुरु मिट्यो अँदेशा॥
एते स्नेह सीख सहिदानी । इतने गुरुके तत्व बखानी ॥
गुरुसनेह सीख जो पावै । गुरु रूप होय शिष्य समुझावे॥
गुरुकी दया चलौ रे भाई । बिन गुरु पार न पावे कोई ॥
गुरु सोई सत्य शब्द बतावै । और गुरु कोई काम न आवै॥

साखी- उपमा कहा दीजिये, पटतर कोहू नाहि ।
पलपल करो जु बन्दगी, छिन छिन देखो ताहि ॥

## धर्मदास उवाच

धर्मदास विनती चितलाई । कहनी योग गुरु देहु बताई ॥
योग ध्यान भाखो टकसारा । जीव उतारौ भवजल पारा ॥
कायास्थान आदि ते भाखो । कमलभेद गोयें निजराखो ॥

साखी-कहै धर्मदास

तुमही करता आदि हौ, जिन सब रचना कीन्ह ।
सत्य शब्द सार निर्मौलिके, सतगुरु साँचे दीन्ह ॥

कहै कबीर योग विधि बानी । जाते पुरुष सो हो पहिचानी ॥
प्रथम कमल कहूँ रे भाई । चारि पंखुरी तोहि बनाई ॥
सिद्ध पवन गनैस है सोई । छैसे जाप अखंडित होई ॥
दुतिय कमल नाभी तर होई । षष्ठ पंखुरी ताकर सोई ॥
ब्रह्मवास तेहि कमलमें होई । छै हजार जाप तहां सोई ॥
६००० । २ तिसरे कमलकी आठ पंखुरी । लक्ष्मीनारायण मूर्ति तहां धरी ॥ छै हजार जप तहां प्रमाना । जो कोई साधू साधे प्राना ॥ ६००० चौथे कमल शक्ति शिव रहिऊ ॥ षट सहस्र जप तहां कहिऊ ६००० ॥ बारा पँखुरी ताकर भाई । सोहँ तत्त्वमें ध्यान लगाई ॥ पांचै कमल अकाशको बासा । सोरा पँखुरी तहां निवासा ॥ अमी चन्द्र है ताकर नामा । सहस्र जाप ताको विश्रामा ॥१०००॥ तहांते कला अवतारकी आवै । चारि वेद ताके गुण गावै ॥ अबमैं छठो कमल कहि भाखों । तीन पंखुरी ताकी पुनि राखों ॥ परमात्मा ताहि कमलमें रहई । एक सहस्र जाप तहँ करई ॥१०००॥६ सहस्रजाप दोए पँखुरी १००० षष्ठ ध्यान-तिहिभीतर धरी ॥ गम्य अगम्य अंश दो रहई । तीन देव तहँ लगि कहई ॥ आठेक मल दश पखुरी कहिये । अगिन वान ताके बल कहिये॥कामदहन ताको है नामा । जो लखेसो पावै विश्रामा

प्रकाश

नामो कमलकी अविगत बानी । अन्त पांखुरी ताकर प्रानी ॥
ता मैं पूरण ब्रह्म अखण्डा । निसवासर धरणी नहिं चन्दा ॥
एक नाम सत्य है बानी । ताहि नाम सृष्टी उतपानी ॥

उनकी छाया सबको भाई । तौन छांह घटहि सब समाई ॥
दो सरूप आदि सहेदानी । दो सरूप काया बन्धानी ॥
तिसरा रूप रहित है आपै । भेद लखो तिहिगुरु प्रतापै ॥
तेहि प्रतिमा दोय हैं भाई । एक नारि एक पुरुष कहाई ॥
जिसका भेद कहो समुझाई । एक नाद एक बिंदु कहाई ॥
नाद सनेही सुरति हमारी । बिंदु सनेही शब्द बिचारी ॥
माया नारि सुरति है नादा । चार नाम है एक समादा ॥
नरमन शब्द और कहि बिंदा । चार नाम भये कहि बिंदा ॥
नरही नाम मनुष्य बिचारा । मन नाम काल अवतारा ॥
शब्द नाम सूर्यको दीन्हा । बिंदू नाम नीरको लीन्हा ॥
मेदी नाम इस्त्रीको चीन्हा । माया नाम मृतक जो कीन्हा ॥
सुरति नाम चन्द गहि दीन्हा । याहि सूरती मम करि लीन्हा ॥
रज्जु नाम श्वासाघट राच्यो । पुरुषहिं एक सुरतिको साच्यो ॥
शब्दको धातू जाही थापा । बनावन हारो आपै आपा ॥

## खुद होई कहें कबीर

जहां तहां हमही है भाई । दुबिधा छोड़े काल भगाई ॥
दुबिधा काल बड़ो अन्याई । तन छूटेते लेइ धरि खाई ॥
पिंडका लेखा दीन्ह चिन्हाई । पिंड ब्रह्माण्ड लेहु अर्थाई ॥
अनंत पंखुरीका कमल है भाई । शुक्ल हंस तेहि माहि समाई ॥
आएँ कमल उत्पत्ति पसारा । तेहिमें जीवकीन्ह विस्तारा ॥
दुसरो कमल सहज है स्थाना । तिन्हते सृष्टि भई बन्धाना ॥
तृतिय कमल इच्छा उतपानी । चौथा मूल ले बोले बानी ॥
पांचये सुरति सोहंग बँधाना । आठ अंश तिनके परवाना ॥
छठो कमल आचिंत्यको बासा । निसवासर जहँ प्रेम विलासा ॥
ताते कमल अक्षर ठहराई । तिनकी तो अस्तुति वेदन गाई ॥

अठवें कमल कैल को वासा । नाम निरञ्जन तहाँ निवासा ॥
नौमे कमल तीन लोक बनाई । तीनि देव तहँ रहे भुलाई ॥
पिंड ब्रह्मांडको लेखा सारा । ज्ञानी पंडित करौ विचारा ॥

साखी—कहै कबीर

पिंड ब्रह्माण्डको लेखा, हम दियो प्रकट बताय ।
कहै कबीर धर्मदाससों, तुम निर्भय लोक जाय ॥

धर्मदास वचन—चौपाई

धर्मदास पूछे चित्त लाई । सद्गुरुसे उठि विनती लाई ॥
सांचे साहबकी बलिहारी । कैल पुरुषकी जुगति विहारी ॥
पन्थ विकट कोइ भेद न पावै । जो नहिं सद्गुरु आप लखावै ॥
प्रपंची है कैल अपारा । मोसो चलै न पन्थ तुम्हारा ॥
कैसे कै गुरुवाई करहूँ । कैल पुरुषसो मैं बहु डरहूँ ॥
जम्बुद्वीप है यम को देशा । कैसे चलिहै मुक्ति उपदेशा ॥
चार वेदमें सब जीव राचै । कैल फांसते कोइ न बांचे ॥
हम सेवक हैं आज्ञाकारी । सोइ करों मोहिं लेहु उबारी ॥

साखी—कहैं धर्मदास

हमसो पन्थ चलै नहीं, काल अपरबल बीर ।
घाट बाट सब रोक है, जिय कस लागे तीर ॥

चौपाई—सद्गुरु कबीर उवाच

धर्मदास तुम्हें सांच न आवा । अन्तर खोली मैं तुम्हे बुझावा ॥
का पुनि करिहै काल तुम्हारा । सिरपर समरथ है रखवारा ॥
मारहु कैल रसातल जाई । केती कै हमही निर्माई ॥
केतिक कैल भये मम आगे । केति सृष्टि उत्पत्ति प्रलै भागे ॥
सत्य वचन सुनिये चितलाई । कैल जुगति मैं देहुँ लखाई ॥
सत्त चला है सबते न्यारी । तीनहि लोक प्रपंच पसारी ॥

कैल सकल युग डारो खाई । एकौ जीव लोक नहिं जाई ॥
ताते समरथ मोहिं फरमाई । साँचे जीव आनु मुक्ताई ॥
कर्म काल है बहुत अपारा । तुमसों धर्मनि कहौं विचारा ॥
तीन सुरतिका खेल नियारा । भिन्न भिन्न तिनको विस्तारा ॥

## चार प्रकारके ज्ञान

अचिंत अंश समरथको भाई । बारा पलंग राज तिन पाई ॥
ताते ब्रह्म सृष्टि भई भाई । ब्रह्म ज्ञाति नहीं उपजाई ॥
ब्रह्महि लरनि ब्रह्मकी वानी । एके मारग एक रहानी ॥
तिनको चिह्न चले संसारा । अक्षर अतीत नाम है सारा ॥
जो कोई येहि मारगको ध्यावे । अचिंत लोकमें जाय समावे ॥
प्रेम सुरति उहाँ मंगलचारा । तिनके सँग सखि बार हजारा ॥
अब अक्षरको कहूँ बिचारा । अक्षर कीन्हा अविगति विस्तारा ॥
जीव सृष्टिको कीन्ह पसारा । अनभै ज्ञान कीन्ह विस्तारा ॥
अनभै करनी अनभै बानी । अनभै चाल है अनभै रानी ॥
तिनके चार अंश हैं भाई । आठहि सुरति नहीं ठहराई ॥
नी पवन दोउ गहो निसानी । सुरतियोग अनहद सहिदानी ॥
यह प्रकार जो ध्यान लगावै । अक्षर लोकमें जाय समावै ॥
सुरति योग है महा हितकारी । बीस हजारतिन जीव उबारी ॥
तिसरे कैल निरञ्जन गाई । तिन पुनि माया सृष्टि उपजाई ॥
माया सृष्टि है तीस हजारा । त्वचा ज्ञानको कीन्ह विचारा ॥
तीर्थ व्रत जप तप है करनी । क्रिया कर्म आचार है रहनी ॥
इच्छा वांछित जो करनी करही । सो फललेहि जन्म जब धरही ॥
जोगहि दान यज्ञ मन लावे । चारिहुँ वेद साखी समुझावे ॥
कोउ राजा कोउ पंडित भाई । कोउ सिद्ध कोउ साध कहाई ॥
चार अंश चारों फल पाई । माया सृष्टिको घरघर खाई ॥

ताके संग सखी बारा हजारा । तहां महंमद गये सुखसारा ॥
तेहि सुखको उन्ह लहे भाना । आगे ओहं सोहंके स्थाना ॥
चौथी सृष्टि त्रिगुण परकासा । जो उपज्यो अक्षरकी श्वासा ॥
तिनके ज्ञान क्षुद्र है भाई । जन्त्र मन्त्र औ वेद भनाई ॥
राग रँग पूजा चतुराई । अहंकार मद गर्भ भुलाई ॥
जीव भोजते करे अहारा । नौलाख जीव सँग तिनके धारा ॥
तँहिके ज्ञान जग रहे समाई । घर घर आये कुल बरन हढ़ाई ॥
कोई उग्र कोइ क्षुद्र कहावे । कोइ जीव कोइ नारियर खावे ॥
कोई रोगी औषध भावै । कोई देवी कोई देव कहावे ॥
कोई प्रेत होय बोले आई । इह विधि सकल जीव भरमाई ॥
त्री देवा गुण रूप निवासा । इन सब भेद कीन्ह परकासा ॥
पाहन पूजा तिन ठहराई । कहूँ विष्णु तहँ शम्भु कहाई ॥
ब्रह्मा तहां वेद धुन करहीं । विष्णु रूप तहँ पूजा धरहीं ॥
शम्भु भये फलके अधिकारी । तीन देव यह युक्ति विचारी ॥
इहि प्रपंच पांच मुख बानी । तेहि प्रपंचमें जीव भुलानी ॥
शुक्लहि पांच काल सहेदानी । जाये लै देह नर्ककी खानी ॥
धर्मदास तुम विन राचौ । सत्य चाल उहिकैलसों बांचौं ॥

## चारि सुरतिका लेखा

चार सुरतिका भेद निन्यारा । सो सब खोलि कहूं भण्डारा ॥
तिनकी सनद एक है भाई । तेहि सनद ले जाय लेवाई ॥
यह ज्ञान ताकी चारों बानी । पांचे समर्थक पांच प्रमानी ॥
चारों गुरु चारी हैं बानी । पांचे शब्द सुरति सहिदानी ॥
पांचों भेद हैं अगम अपारा । इह पांचों सर्वांग विचारा ॥
चार अंश चार अण्ड प्रमाना । एकै सनद एक बन्धाना ॥
चारों गुरु है जगमें आवा । तिन भवसागर पंथ चलावा ॥

## चारों गुरुकी पेडी

प्रथम धर्मदास तुम्हैं भाई । वंश बयालिस है अधिकाई ॥
दुसरे सत्व बंकेजी राजा । सत्ताइस अंश तेहसंगबिराजा ॥
तिसरे गुरु चतुर्भुज हैं भाई । सोरा अंश तेहि संग समाई ॥
चौथे गुरु सहतेजी भाई । सात अंस मत तत्त्व बनाई ॥
चारहि गुरू मता अर्थावा । जीव सरूप है जगमें आवा ॥

## चार बानी

चार बानि लै तुम्हें समुझावा । प्रथमहि कोटिज्ञान कहि आवा॥
धर्मदास तुम करो विचारा । कोटिबान है ज्ञान पसारा ॥
दुसरे है टकसारकी बानी । रायबंके जैसे निरणय ठानी ॥
टकसार भेद चढ़ि हारी लेखा । जो पेखे सो सत्यलोकहि देखा॥
नीर पवनको कीन्ह विवेका । तिसरे मूल ज्ञानका एका ॥
राय चतुर्भुज लीन्ह प्रमानी । चारों गुरू मुक्ति फलदानी ॥
चारि गुरू मुक्ति कडिहारा । बहु जीवनको करिहै उबारा ॥
साखी-कहे कबीर चारि बानि, खानी चार ज्ञान निधान ।
चारि पदारथ चारि वेद, चारि गुरु प्रमान ॥

## धर्मदास उवाच

हम चारोंको गुरुकर थापे । पांचे अचित राजा है आपे ॥
तीन अंश वे कहां रहे छाई । तीन भेद गुरु कहो समुझाई ॥
तिन्हकी कला कहौ गुरु सांचे । औ पुनि कौन खेलमें रांचे ॥
साखी-सत्य सत्य मोसो कहो, कछु ना राखै गोय ।
सुर नर मुनि ऋषि सबही ठगे, रीते चले सब रोय ॥

## चौपाई-सद्गुरु कबीर

धर्मदास घटभय उजियारा । ताते आगम्य सुर्ति विचारा ॥
आठ अंश सब जमा है भाई । चारि अंश सब ठांव बनाई ॥
अविगति मोसन कहा न जाई । मैं जो कहों तुम धरो समाई ॥

पाँचों सुत पाँचों अण्ड पाई । दोई अंश लै गुप्त बैठाई ॥
अचिंत बूंद तब तिनही दियऊ । तिनको नाम अक्षर तिन ठयऊ॥
पांच अंश नहिं पावत लेखा । और अंशको कहूँ विवेखा ॥
चार अंश अक्षर सेहेदानी । जिनते उपजी चारों खानी ॥
देखि अंश मोह तब आवा । दूसर अंश घट आय समावा ॥
त्रिगुण शक्ति घट गई समाई । तब अक्षरको निद्रा आई ॥
सोरा चौकड़ी सोये सिराई । आठवो अंश जलमाँहि समाई॥
अंडजरूप जो जलमाँ दीन्हा । यहि अविगतिसब समरथकीन्हा
अक्षर जग्यौ निद्रा गई भाई । देखि अंड व्याकुलता आई ॥
तेहि अंडमें एक निशानी । सो अक्षर पाई सहिदानी ॥
अक्षर दृष्टिसों अंड बिहराना । तिहिते कैल भयो अभिमाना ॥
तिन्हके चार वेद भये बंशा । चौथे अंश कलानिधि तंसा ॥
मनमें अक्षर संख्या आई । यह तो काल समर्थनिरमाई ॥
तेहिते शक्ति कीन्ह तिवाना । श्वाससुरति अन्तर बिलखाना॥
आठों अंश घट रहे समाई । स्वास संग घट बाहर आई ॥
सोरा कला अष्टांगी अंगा । रूपकला वाही सब सुख संगा॥
अक्षर कन्या दीन्ह पठाई । तिनते तीन पुत्र भये भाई॥
अविगति गति काहू नहिं पावा । समरथ सत्य प्रपंच बनावा ॥

साखी-कहें कबीर

इहविधि सब रचना करी, काहु न जाने भेद ।
जैसे है तैसे तब हती, अब कोकरै निखेद ॥

साखी-अविगति निषेदकी-धर्मदास उवाच ।

धर्मदास बिनती अनुसारी । साहब बिनती सुनौ हमारी ॥
आठ अंशको भेद हम पावा । गति अवगति दूनौ हम गावा॥
चारि अंश एके मत ठाना । चारि अंश भिन्न भिन्न मत ठाना॥

तेहि कारण सबमोहि बतावहु । केहि कारण प्रपञ्च उर लावहु ॥

साखी–चार सुरति सब मूल है, तुम समरथ परवान ।
तुमरे अंगते उपजि कहु, चारहुको अनुमान ॥

साखी–बीजके कलसाकी–कीसा सतगुरु उवाच ।

धर्मदास मैं कछु न छिपाऊँ । तुमको सकलहि भेद बताऊँ ॥ प्रथमहि समरथ आप हते, दूसरो कोई न हुए । तब समरथके मुखते, सहजहि सुरति भये ॥ सोइ सुरति स्वरूप धरि सहजहि बुन्ददयो । तेहिते सहजहि सुरतिका सहज अँकूर भयो ॥ तेहि अंकूरते सप्त करि भए ॥ दूसरे समर्थके अंशते क्षमास्वरूप सुरति भये ॥ तब स्वाती सरूप बूँद दियो जौन कारन सुनो ॥ जैसो सांचो तैसो स्वरूप जैसो घात तैसो अनूप ॥ एतो ठेका बँधे जब भयऊ इच्छासात । ७ ) अंड पांच ( २ ) चारी अंड एक सिद्धके ॥ ४ ॥ १ ॥ चारों स्वरूप भिन्न भिन्न हैं ॥ पांचो अण्ड प्रचण्ड भयो । दोउ करीमें अण्ड ना भयो ॥

ताहिकरीमें दो अंशहते।एक करीमें अक्षर हतो एक करीमें माया हती । एहि मता अवगति हतो । आगे तिसरी सुरतिको लेखासुनो अविगति सुरत अशून्य । तीसरीसुरतिका लेखा सोसुरति सखन उपजाई । तेहिको नाम मूल सुरति है ताह सुरतिको अव्वल बूँद दीन्हां तेहि पांच ब्रह्म भये तिनको आज्ञा दई एक एक ब्रह्म एक एक अंडन में आए, एते ब्रह्मते पांच अंश भये । तेही तत्त्वके घर भये । अण्ड फूटो पांच तत्त्व प्रगट भये । ६ । चौथी सुरती श्वासाते भये। ४ ।तेहिको नामसोहं दियो । तेहिसोहंगके ओहं बुद कन्हां तेहिमें आठ अंस भये । सो एती रचना चारिकीरति कियो

प्रथम अंगते भए आगे सब निकास कहूँ। सात इच्छा सातहीं अंश। अनइच्छाते आठों अंश भए। आठवाँ अंश भए। ते लोक भयो सर्व सृष्टिका संहार करे।

बीजक सारकी साखी—कहैं कबीर।

सात इच्छाके सात अंश भए, अपने अपने भाव।
आठवा अंश बिन इच्छा उपजे, ताको धर्म लखाव॥

धर्मदास उवाच—एह धर्मदास ने पूछी।

आहो साहेब काहेतेसमर्थ कहत हैं? काहेंते अचिन्त कहत हैं॥
काहेते अक्षर कहत हैं? काहेते जोगमाया कहत हैं॥
काहेते कल कहत हैं? इतना भेद कहो समुझाई॥
भिन्न गुरु देह बताई। एहिकी शास्त्र गुरु कहें॥
सुनो धर्मदास तखतके धनी। तासो समर्थ कहत हैं॥
तिनते आठ अंश भए। आठमें जेठ अचिन्त भये॥
तिनके चिन्ता नाहीं। ताहिते अचिन्त कहाये॥
तिनके प्रेम सुरति भई। तेहिप्रेममें अक्षर आनिसमानो॥
तब मोह तत्व उपज्यो। तेहि मोहते चार अंश भए॥
तेहिते चौरासी लक्ष्य जोनी भई। ८४०००००। तेहिते अक्षर॥
कहाये।अबकैलकीहकीकतसुनो। तब अक्षरके मोहतत्त्व॥
उपज्यो तेहि कारणते कैल भयो। मनसाते बुन्द पैदा कियो॥
सो जहाँ अक्षर बैठो हतो। तहाँ जल तत्त्व हतो॥
तेहि जलमें एकबुंद आनिपडो। तेहि बुन्दते एते एकअंड भयो॥
तब अक्षरने देखा उठिके। तब अण्ड लगि आयो॥
एक हकीकत लिखी हती। अंडके मुख ऊपर छाप हतो॥
कहै सृष्टिकी रचना करो। और एक अंश हम पठायो है॥
सो तुमते दूसरी करी है। सो तुम जिनपतियावो।जहां लगि

आवै तहां लगि जिन रोको । आवने दीजो जिन काहु भेद ॥
बतावो । आगे सत्रासौ तीस हजारा युग कैल युगका प्रमाण है ॥
युग सो भुगति लेहे तेहि पीछे । हमारी आठै सुरती आई है ॥
तब हमारो महातम होई है । तब कालसों जीव छुड़ाई है ॥
तब कैलको महातम घटि जैहै । एती सनद अक्षर भेदकी ॥

साखी-कहें कबीर

सात इच्छाके सात अंश भए, सातहि सुरति प्रकार ।
अन इच्छाते कैल भए, जीवको करै अहार ॥

चौपाई-धर्मदास उवाच

धर्मदास जिव शंका आई । उठि सद्गुरुसों विनती लाई ॥
धन्य भाग्य मोहि मिले गुसांई । अपना करि मोहि लीन्ह मुक्ताई॥
इच्छा सातके समरथ कर्ता । अत इच्छा वहां कहांते बरता॥
सो निजु भेद बतावो मोही । इह सनद गुरु पूछौं तोही ॥
सात करी अंकुर बन्धाना । सात इच्छा तेहि माँहि समाना ॥
सात सुरतिमें थांका राखा । सात अंश तहां बोली भाखा ॥
आठवाँ अंश वह कहाते आवा । कौन भाँति वो अंश निमाँवा ॥

साखी-अविगति भेदकी धर्मदास पूंछे ॥

अविगतिकी गति सब कहो, मैं बलिहारी जाउँ ।
मेटि अँदेशा जीवका, पल पल परसो पाउँ ॥

चौपाई-सद्गुरु कबीर उवाच

कहैं कबीर सुनो धर्मदासा । वहि समर्थ गति अजब तमासा ॥
इतना तत्त्व जिन पूछौ भाई । और सकल शब्द देहों बताई ॥
इच्छा सात शक्ति उतपानी । स्वाति सनेह भए परमानी ॥
एक अंकुरते सब कछु कीन्हाँ । सब भण्डार तिहि माहे दीन्हाँ॥
तिहि अंकुरकी सात भै करी । सात इच्छा तेहि माँहि लै धरी॥

सेहजंकुर तिह नाम कहाई । सात सुरैंति तिहि मांहि रहाई॥
टेकाज्ञान कहतहों भाई । जेहि सुनि हंसा लोके जाई ॥
धर्मदास सुनिये चितलाई । यहि कलसा सब ज्ञानके भाई ॥
बीजक ज्ञान सब कहूँ निशानी । तेहिपर बीजक निश्चय ठानी ॥
सात करीके निर्णय सुनिहौ । बिना भेद तुम कछू न गुनिहौ॥
भेदमें भेद हम राखौ गोई । सौ पर सून्य लखो ना कोई ॥
इच्छा सीप स्वरूप उतपानी । सोवाती स्नेह भये परसानी ॥
बुंद एक आनंद स्वरूपी । इच्छा सात भये भिन्न स्वरूपी॥
इच्छा सात रूचि अपने भाई । तेहि प्रमान बुंद तिन्ह पाई ॥
तेहिते पाँच अंड निर्माई । दोए करी तहाँ गुपत छिपाई ॥
तेहिमें गुप्त अंश रहे वासा । प्रथम करीने बुंद निवासा ॥
तेज अण्ड तहाँ भयो प्रकाशा । तेहिमें सब है जीव निवासा ॥

## इच्छाके नाम

मुख्य इच्छा तेहि इच्छाको नामा । आदि बुंद तिहि बुन्दको धामा॥
दूसरी इच्छा नेत्र भरी हेरै । सुकृत अण्ड भए तेहि केरै॥
नेत्र इच्छाते नेत्र बुन्द पावा । तेहिमें सुकृत अंश निरमावा ॥
तिसरी इच्छा अविगत बानी । श्रवण इच्छामें आनि समानी ॥
श्रवन बुन्द अंश तिन्ह लीन्हा । अबोलनाम तेहिबुन्दको दीन्हा॥
चौथे अण्डमें सत्य पसारा । चौथी इच्छा सो वास उच्चारा॥
स्वाती इच्छा तेहि करिको नामा । स्वाती बुन्द स्वाति सब धामा॥
स्वतिते क्षमा अण्ड निरमाई । अण्ड पांचमों कहुं समुझाई ॥
पांचही इच्छा निमिष ठेहेराई । करा एकमें जीवन पराई ॥
स्वाति प्रसन इच्छा उपजाई । जलहि अंड तहाँ उपज्यो भाई॥
पांच इच्छाके पांचअण्ड निरमाई। दोये इच्छा वेही गुप्त रहाई ॥
छठि इच्छा है करता भाई । करति बुन्द तेहि मांहि समाई॥

सातें इच्छा सर्वत्र रहाई । सात बुन्द सब कला है भाई ॥
सातों इच्छा के करता अंकूला । सात करी सब दृष्टिको मूला ॥
तिनके सोरा अंश प्रमाना । एक वचनके सबही बंधाना ॥
आनंद बुन्द है सदा समीपा । तेहि अंकुरको भिन्न है दीपा ॥
एक सुरति एक अंकुर कहाई । तिहिको नाम सहजश्रुति भाई ॥
सात करी मो थाका बनाई । ताकी गतिमति काहु न पाई ॥
दो सुरति इच्छांकुर निर्माई । आठ इच्छा तेहि माँहि उपजाई ॥
सात इच्छा करि सात समानी । आठमी इच्छा काल उतपानी ॥
तिसरी सुरति मूल प्रकाशा । मूलकीर्ति मूलअंकुर निवासा ॥
सुरतिमूल तिहि माँहि समानी । पांच ब्रह्म तहां भये उतपानी ॥
सहजब्रह्मके पांचतत्त्व भये भाई । तत्त्व सनेही सर्व उतपन आई ॥
दुसरी इच्छा ब्रह्मको चीन्हा । सुकृत चिन्ह उत्पन्न कीन्हा ॥
तिसरो ब्रह्म मूल परवानी । मूल सुरति सब सृष्टि उतपानी ॥
चौथे सोहं ब्रह्म कहावा । तेहि अण्डमों सर्व समावा ॥
पांचों ब्रह्म जलाहल भयऊ । चौदह अंश गुप्त निर्मयऊ ॥
तीनि सुरतिकी एती रचना । चौथे सोहं कढे अमृत बचना ॥
सुरति अभयबुन्द तिन्ह पावा । तेहमें आठ अंस निरमावा ॥
चार गुप्त चार प्रगट पसारा । आपसरूपमिलआठोंअमीअपारा ॥
तिनके भिन्न भिन्न परसाना । चार अंश भये सृष्टि बंधाना ॥
चार अंश भये मुक्त प्रमाना । तिन्हको भेद न काहू जाना ॥
अंशहि अंश काहु नहिं देखा । शब्द स्वरूपी सबको पेखा ॥
तेहिके सनद अब कहों समुझाई । जेष्ठो अंश अचिंत है भाई ॥
तिनके प्रेम सुरति घट आई । तेहि प्रेममें मोह समाई ॥
तेहिं मोहमें अक्षर उतपानी । अक्षर जारि वेद सहेदानी ॥
अक्षर तेहिते चारे भये दीपा । चार अंशने रहे समीपा ॥

चार अंश अक्षरते भयऊ। सर्व सृष्टि भंडार ते ठयऊ ॥
प्रथम अंशते माया भयऊ। शुक्ल बीज पृथ्वी महँ ठयऊ ॥
दूसरे अदल अंश निर्माए। रसना सहस्र तिनते निरमाए ॥
तिसरे कुर्म भये अवतारा। जिन सर्व पृथ्वीको लीनो भारा॥
चौथे अंश भये धर्मराई। जिन्हें पाप पुण्यको लेखा पाई॥
चार अंशको देखि भुलाना। तब अक्षर घटमाहिं समाना ॥
तब समर्थ एक युक्ति बनाई। सातवां अंश तब आनि समाई॥
तेहिते निद्रा उपजी भाई। सत्तर निमिष युग गयो सिराई॥
जब लगि निद्रा अक्षरकूं आई। तब कछु दृश्य रहै ना भाई ॥
सब समर्थ मन शब्द उचारा। तेहिमो कैल अण्ड भयो भारा॥
तेहि अण्डमें उत्पति भूपा। नाम निरञ्जन ज्योति सरूपा ॥
तिनते तीन देव भए भाई। यहां सब लेहु लखि भाई ॥
सर्व सृष्टि काल धरि खाई। काल देवको कोई न पाई ॥

## साखी–टीकाका

सात सुरति तब मूल हैं, उत्पत्ति सकल पसार।
अक्षरते सब सृष्टि भई, कालते भये तिछार ॥

## चौपाई–धर्मदास उवाच

सांचे सद्गुरुकी बलिहारी। धर्मदास विनती अनुसारी ॥
और भेद सर्व हम पावा। आठमी इच्छा कीन्ह निर्मावा॥
केहि कारणते इच्छा कहाई। अनइच्छा किमि कारण आई ॥
किमिकारणस्वरूपजोकालबनाई।यहां अविगति गति कहो समुझाई

साखी–सत्य पुरुष तुम आदि हो, बोलो शब्द रसाल।
अन इछाको मर्म कहो, जेहिते उपज्यो काल ॥

## चौपाई–सदगुरु उवाच

कहे कबीर सुनो धर्मदासा। सत्य शब्द है हमरे पासा॥जेहिते वृद्ध होय सो इच्छा कहावै। जेहिते नास्ति होय ऐसी अनइच्छा कहावै॥ इच्छा अंकुरकी तन इच्छा हमारी। ते गुणकाल अंश अवतारी॥ बिना कालजीव नहीं डराई। तेहि वर काल रचा हम भाई॥इच्छामें दया अंश है भाई। अनइच्छा निर्दया कहाई॥ जीवन मुक्ति कहौ समुझाई। वचन न माने ताहि काल धरिखाई॥

साखी–कालअंश क्या जन करौ, ताते जीव कालको खेल।
ऐसेका खेल समान है, ज्यों तिल्लीमें तेल॥

## चौपाई–धर्मदास वचन

धर्मदास बहुते सुख पावा। उठि सतगुरुसों बिनती लावा॥
उत्पति कारण हम सब देखा। पांजी भेदका कहौ विवेका॥
पांजी सुरति गुरु देहो लखाई। जेहि मारग हंसा चलि आई॥
नामप्रताप कहौ समुझाई। जेहिके बल हंसा घर जाई॥

साखी–धर्मदास विनती करै,जिवरा भयो अनंद।
आप अपुनको लखि परचो, जब कटे कालको फन्द॥

## चौपाई–सतगुरु कहै पांजी भेद

सुनो धर्मदास पांजी भेद प्रकासा।जिनसे सुनै है हंस निशवासा॥
पांजी तीन आश है ओगाहा। जो कोई जीव पहुँचे वांहा॥
प्रथम पांजी आश है भाई। तहाँ अग्रशब्द चढ़ि लोकै जाई॥
सात शून्य दश लोक प्रमाना। अंश जो लोक लोकको शाना॥
नौ स्थान दशमो घर साँचा। तेहि चढ़ि गए जीव सब बाँचा॥
सोरा असंख्यपर लागी तारा। तेहि चढ़ि हंस गए लोक दरबारा॥
दूसरी पांजी लोक कहै भाई। तेहि पांजी त्री देव रहाई॥
अष्टम दीप बावीसमें अकाशा। तहाँ विष्णु चलिगए तेहि पासा॥

तिसरी पांजीका भेद अपारा । तुमसो धर्मनि कहों विचारा ॥
पाताल पांजी है जीव उबारा । भजन प्रतापसों उधरे दूबारा ॥
वाचा बंधको द्वार बनावा । तेहि पांजी गुरु भेद बतावा ॥
पांच भेद पाताल विनाशी । ताते काल करै नहिं हाशी ॥
तेहि पांजी जलरंग गुसांई । चौदह मुनि है तिनके ठाई ॥
जलरंग पासको भेजदो पावै । लोकै जात बार नहिं लावै ॥
सोरा लोक सोरा दरवाजा । सोरा अंश तेहि मांहि बिराजा ॥
सोरा अंश चिह्न जो पावै । जाके सद्गुरुनिज भेद लखावै ॥

साखी–तीनि पांजीके निर्णय, तुमसों कहो समुझाय ।
सार शब्द जो पाए तो, छिनमें हंस घर जाय ॥

धर्मदास पूछे मंत्र जो गूढा

सत्य सत्य मुख दयाजो कीजै । अपनोके मोहि निज कर लीजै ॥
तुम समर्थ गुरु जक्त के कर्ता । सकल भेद जो निर्णय वार्ता ॥
हम चीन्हा तुम बरन छिपाए । बरन छिपाये तुम जगमां आए ॥
आए तुम समर्थ हो अंतर्जानी । सत्य कहो हम निश्चय मानी ॥
जो अपना कर जानो मोहीं । तो अपना तत्व बताओ सोहीं ॥
अब तुम कहो कैसे जग आये । कैसे तुम जोलहा कहाये ॥

साखी–एहि सब कारन भाखिहो, सब संशय मिटिजाय ।
अपनो कै प्रतिपाल हो, हंस लियो मुकताय ॥

चौपाई–सतगुरु खुदा होय प्रकटे साखी–खुदबानीकी

सतगुरु बचन बिहँसिके बोले । सत्य सत्य तुम अन्तर खोले ॥
तुमसो अंतर कछू न राखों । सकल भेदकी निर्णय भांखों ॥
कहत बचन प्रतीत न आवै । तजत देह जीव ठौर न पावै ॥
तुम युग बंध होएकोई सेवकाई । तेहि पीछे हम भेद लखाई ॥
धर्मदास करनी निज करिहो । सीस उतार निज आगे धरिहो ॥

बातो साटे वस्तु जो आई । तौ एको जीव विनशि ना जाई ॥
चौका करिहो लेहो प्रवाना । तब पुनि कहूँ आप बंधाना ॥
तब नहीं हते खंड ब्रह्मंडा । तब नहीं नदी अठारह गण्डा ॥
तब नहीं सात सुरत उतपानी । तब नहीं कीन्ह सकल सहिदानी ॥
तब नहीं कहते अंश और बंसा । तब नहिं कालत्रिगुणको संशा ॥
तब नहिं पांच अण्ड निर्माए । तब नहिं लोकहिं दीप बनाए ॥
अविगतिकी गति काहु न पाई । आप बरन हम रहे छिपाई ॥
तब हम हते हँता नहिं कोई । हमरे मांहे रहे सब सोई ॥
इस पारस सब सुर्त वट दीन्हा । एक बुन्दते सब कछु कीन्हा ॥
नाम बड़ाई अंशको दीन्हा । शुक्ल प्रकार रची हम लीन्हा ॥
चारि सुरति हम प्रगट पसारा । पांचवीं सुरतिहम गुप्त बिचारा ॥
तुम जिन शंका मानो भाई । हमते करता दूसरे न आई ॥
बरन छिपाय हम जगमों आये । युगन युगन हम जीव मुक्ताये ॥
चारों युग हम पंथ चलावा । सात सुरति काहु भेद न पावा ॥
अब हम कीन्हा प्रगट पसारा । सातों सुरती पाय टकसारा ॥
आठे सुरति सुकृत अवसारा । ताते तुमते ज्ञान पसारा ॥
नौतम तरति घरमें राखी । तिनके भेद हम कबहूँ न भाखी ॥
तुम बोधन हम जगमें आये । जाते काल तुम्हें भरमाये ॥
तब हम लोकते दीन्ह पियाना । तुमकारनहमअक्षय अछिपाना ॥

## मारग भेद सद्गुरु कहे

प्रथम सहज सुरति लगि आए । नौतम सुरति हम नाम धराये ॥
उन्हसों कहयोहमसत्य संदेशा । सहज अंकुर मानो उपदेशा ॥

## सहज पूछ

तब उन पूछा तुमको आऊ । सत्य वचन तुम कहों कहाऊ ॥

सद्गुरु कहैं

तब मैं कह्यो मोर नाम कबीर । मैं समर्थ श्रुति नौतम शरीर ॥
पाँन प्रवाना तुम लेहो भाई । समरथ हुकम लेहो शिर नाई॥
प्रथम चौका सहज दीपमें कीन्हा । सहज सुरतिका अंकपर लीन्हा॥
तब हम चले इच्छा सुरति लगाए । सत्य शब्द उन्हहीं समुझाए ॥
तौन अंकपर जीव चढ़ावा । मूल सुरतिके दीप चलि आवा॥
सत्य शब्द तहाँ बोलै बानी । मूल सुरतिसों निर्णय ठानी ॥

मूलसुरति पूछै

कहो तुम अस कहाँते आए । के तुम समरथ बरण छिपाए॥

सद्गुरु कहैं

ना हम समरथसमरत्थनिशानी । नौतम सुरति पुरुषकी बानी ॥
जीवकाज संसार पठावा । तुमकोसिखावनपुरुषकोआवा॥
लेहु पान तुम तजो बड़ाई । पान लेख गुरु होवै सहाई ॥
मूल सुरति का चौका कीन्हा । चले सोहंग दीप पग दीन्हा ॥
तहां शब्द बोले निर्वाना । सत्य सन्देशै पुरुष प्रमाना ॥
चौथे चौका सोहंको कीन्हा । सोहं सुरत अंकेपर लीन्हा ॥
चौका चारि अधरपर कीन्हा । चले अचिंत दीप पग दीन्हा ॥
अचिंत अंश है रूप उजागर । मानि दीपमणिनके आगर ॥
कंचन चरण भूमि उजियारी । मणि आगर मणीन विस्तारी ॥
वहां सत्य हम बोले बानी । अंश अचिंत करो पहिचानी ॥

अचिंत पूछो

पूछै अचिंत कहां आये । कौन चितावर इहाँ सिधाये ॥

सद्गुरु कहैं

तब हम कह्यो समर्थ पठावा । जीवकाजवरइहांहमचलिआवा॥
तुमते समरथ कह्यो सन्देशा । ज्ञान गम्य अरुवच उपदेशा ॥

कौल पान दीन होए लेहौ । तन मन चित समर्थकूं देहौ ॥
तब अचिंत लीन्हा परवाना । सत्य शब्द हिरदे हित माना ॥
तब आए अक्षर अस्थाना । महा शून्य माहे होत ठिकाना॥

अक्षर पूछै

तब अक्षर पूछे विहसाई । कौन अंश तुम कहाँ सिधाई ॥

सद्‌गुरु कहैं

तबहमकह्योमोहेसमरथपठावा । जीवकाज इहाँ हमचलि आवा॥
तुमते समरथ कह्यो संदेशा । ग्यानगम्य गुरु वचन उपदेशा॥
कौल पान दीन होए लेहौ । तन मन चित्त समर्थकूं देहौ ॥
तब अक्षर लीन्हा प्रमाना । सत्य शब्द हिरदै हित माना ॥

अक्षर पूछै

तब आए अक्षर अस्थाना । महाशून्यमाहे ताहि ठिकाना॥
तब अक्षर पूछे विहसाई । कौन अंश तुम कहाँ सिधाई ॥

सद्‌गुरु कहैं

तब हम कही कहांते आए । जिन एहि सब उतपानि रचाये॥
जिनइच्छापर सृष्टि रचि दीन्हा । छापवचनकौल जिन्ह कीन्हा॥

अक्षर उवाच

तब अक्षर घट कीन्ह विचारा । तुमतौ आपै सिरजन हारा ॥
इतना भेद हमीं पुनि जान्हा । सोइ निज भेद तुमकहेउ बखाना॥
सोई छापकी कहो निशानी । तब हम जाने सत्तकी बानी ॥

सद्‌गुरु उवाच

सुनो अक्षर मैं कहुँ समुझाई । वस्तु सिखापन तुमको आई ॥
प्रथममें सृष्टि रचौ फुरमाई । दुसरे कालको लीन्ह बचाई ॥
तिसरे बचन दर्शनको कीन्हा । इतना वचनसमर्थ तुम्हें दीन्हा॥

अक्षर उवाच

तब अक्षर दोनों कर जोरी । तुम निश्चय जीवन बंध छोरी ॥
एक वचन मैं पूछो अर्थाई । तुम समर्थको अंश हो भाई ॥

सद्गुरु उवाच

तब अक्षरते कह्यो समुझाई । कौल तुम्हारे देन हम आई ॥
तब दिलदया जीवनकी आई । वरणबोधकर छिपि जग आई ॥
समर्थस्वरूपसबजग शिर जाए । गुरुसरूप मुक्ता बनि आए ॥
बचन गहे सो उतरै पारा । बिना वचन डूबै संसारा ॥

अक्षर विनती करै

तब अक्षर निज विनती ठानी । समरथ देहो पान परवानी ॥
हम चीन्हा तुम पुरुष पुराना । जब आए तुम एहि ठिकाना ॥

सद्गुरु कहें

तब अक्षरका चौका कीन्हा । अक्षर सुरत अंकपर लीन्हा ॥
तब चलि दीप झंझरी आए । सत्य शब्द तहां बोल सुनाये ॥
गरजै झंझरी पग धरत न जाई । कैल पुरुष बैठो तिहिं ठाई ॥
दोइ पालँग सुन्य है अँधारा । चारि कोटि ज्योति उजियारा ॥
झझरी दीप हम गए मझारी । गर्भित कैल नहीं बिदै बिचारी ॥

निर्जर कहें

को तुम अज धरहोवरियारा । क्यों हम झँझरीमहँ पगधारा ॥
कौन हो अंश कहांते आए । अपुनो नाम कहो समुझाये ॥

सद्गुरु कहें

तब हम कही सुनोतुम बानी । योग जीत नाम मोर ज्ञानी ॥
समरथ मांग जीव मुकताई । तेहि कारण आए तुम्हरे ठाई ॥
इतना कहत कैल दुख पावा । क्रोधवंत होइ सन्मुख धावा ॥

केल अनन्त भेष धरि लीन्हा । हम सन्मुख बहुयुद्धते कीन्हा ॥
गजसरूप होइ सनमुख धावा । गही दंत चहुँ बाजु फिरावा ॥
तट फटकार ले पड़े सुंड डारा। भागे कैल तब पैठ पताला ॥
गयो पताल जहां कूर्म अवतारा। तब हम चाल तहाँ पग धारा ॥

कैल कहे

विनती करे कूर्म सों जाई । राखो कूर्म मैं तुम शरणाई ॥

कूर्म कहें

तबै कूर्म उठि विनती लाई । को तुम्ह आहु कहांते आई ॥

सद्गुरु कहें

तब हम कह्यो नाम मोरा ज्ञानी । योग जीत हम अंश प्रमानी ॥
समरथ हुक्म जीव उबरण आये। काल फांसते जीव मुक्ताये ॥
झँझरीमाहें बहुयुद्ध हमसोंकीन्हा। भागिके शरण तुम्हारी लीन्हा॥
जो सिखवन समरथका लेहो । तो कैल हमार आगेकरि देहो॥

कैल कहे

तबही कैल पुनि सनमुख आये। आइ ज्ञानी सों वचन सुनाये ॥
सुनो ज्ञानी मोर वचन कोलेखा। अपने हृदय तुम करो विवेका॥
समरथ वचन दीन्ह मोहे हारी । मैं पायो लोक संसारी ॥
तबकी बात रहित भइ भाई । अब कसउटी अदल चलाई ॥
सबै अंश भुगते मध्यानी । हम पर कोप भये तुम ज्ञानी ॥
सत्तर युग हम सेवा कीन्हां ।चौदह भवन बकस मोहिं दीन्हां॥
जैसी निर्णय हम सुनावो । तैसी सिखावन जानि चलावो॥

कूर्म उवाच

कूर्म अंश तब बोले बानी । अपनी अपनी करो रजधानी ॥
इतना वचन सुनि लेहु हमारा । माहिं माहिं मतिकरो विगारा॥

चौका पानको जीव तुम्हारा । लोक वेदको कैल पसारा ॥
जो कोई करै जोर बरियाई । ताको संग हम नहिं है भाई ॥
तब ज्ञानी बहुते सुख पावा । कैल उलटि झँझरिसे आवा ॥

सद्गुरु उवाच

तब मैं धर्मनि संसारहि आवा । तीन देवसों टेर सुनावा ॥
एहि भूले माया अभिमाना । सत्य शब्द उनहू नहिं जाना ॥
सुर नर मुनि कोई नहिं मानें । वेदहि क्रिया सबै लपटाने ॥
युगन युगनमें शब्द पुकारा । जिन चिन्हें भए हंस हमारा ॥
बहुतेक हंस लोकको गयऊ । सत्य प्रती जाके धन भयऊ ॥
खोजत खोजत तुमपे आये । सर्व भँडार तुम्हें खोल बताए ॥
अब तुम कहा हमारो करहू । सोरा सतको चौका विस्तरहू ॥

साखी–सोरा सुतका चौका, एक अंग गुरु सिख होय ।
सदा हजूरी वे रहैं, मिले बिछुरे कोय ॥

सोरठा–जाने संत सुजान, बरंगीके रंगको ॥
समुन्दर बुन्द समान, मर्म कोइ जाने नहीं ॥

छन्द–ज्ञान प्रकासे दीपका, जुगति नाम जिन पाइया ।
सोइ दीप आदि साजिके, सोइ सुरु शीस चढ़ाई॥

साखी–ब्रह्मज्ञानकी

अगम कोइ चीन्हें नहीं, लोभे ज्योति प्रकाश ।
रसबस जिव बांधे कालसों, फिरि फिरि बांधे आश॥

चौकाविधि धर्मदास उवाच

धर्मदास तब सोंज मँगाये । कर जोरे उठि विनती लाये ॥
चौका जुगति बतावो सोही । पाँन प्रवाना देहो गुरु मोही ॥
सदगुरु सम्मुख आसनकीन्हा । चौका पूरि प्रदक्षिण दीन्हा ॥
पान मिठाई नारियर सोपारी । लौंगएलची कपूर विचारी ॥

नारियर मोरिके मालुम कीन्हा। समरथ भोग सुर्तसों लीन्हा ॥
लिखनी पान हाथके लेउ । सत्यके अंक पानपर देऊ ॥
तब यमपुरमें परचो खँबारा । मुक्तिके पंथ चल्यो संसारा ॥
अजरपान धर्मदासको दीन्हा । हंसरूप करि अपना लीन्हा ॥
अब तुम हमको चिन्हों भाई । गई तिमिर पिछली सुधि आई॥
पान प्रसाद सिखावन पावा । शीश उतारि ले चरण छुवावा॥
धर्मदास तुम्हें सब विधि कीन्हा । मांगों बचन मैं सर्वस दीन्हा ॥

धर्मदास उवाच

धर्मदास विनती अनुसारी । पायो बोल वचन मैं हारी ॥
मैं तरों और हमारी शाखा । और पीछले सबही पुरखा ॥

सद्गुरु उवाच

तब सतगुरु मनमें विहसाने । ते कहा माँग्यो कछु माँगेनजाने॥
सर्व सृष्टिको तारो भाई । तुम तो आपन वंश ठहराई ॥
एहि प्रपंच काल सब कीन्हा । मतिबुधि खैंचि तुम्हारी लीन्हा ॥
तब धर्मदास जो भये मलीना । जैसे कँवलको संपुट दीन्हा ॥
तब सतगुरु फिर बोध विचारा । धर्मदास तुम अंश हमारा ॥
एक वस्तु गोय हम राखी । सो निर्णय नहिं तुमसों भाखी॥
नौतन सुरति हमारी शाखा । सातसुरति जो उत्पति भाखा॥
आठवींसुरत तुमहि चलि आए । नौतम सुरति हम गुप्त छिपाए॥
नौतम सुरति वचन निज मोरा । जेहिते पला न पकरै चोरा ॥

धर्मदास उवाच

धर्मदास दोनों कर जोरा । कहो वचन सोई सद्गुरु मोरा॥
सोई वचन कहौ समुझाई । जेहिते जीवन सृष्टि नहिं आई॥

सद्गुरु उवाच

आठ बुन्दकी जुगति बनाई । नौतमते आठों बुन्द मुक्ताई ॥
बिना गुरु कोऊ भेद नहिं पावै । युग बँधें सो हंस कहावै ॥

तब युग बंध भये धर्मदासा। नौतम सुरतबुन्द परकासा॥
नौतम अंश हिरम्म कीन्हा। आशिकबुन्दसाबतिह दीन्हा॥

## धर्मदासकी विनती

धर्मदास विनती अनुसारी। साहब विनती सुनो हमारी॥
नारायण दास हमारे सोई। उनकी सिखावन कैसी होई॥
कैसी पंगति उनको करहू। अब तुम अपना वंश विस्तरहू॥
दोइ कैसे चलिहै रजधानी। सो सतगुरु मोहिं कहो बखानी॥

## सद्गुरु उवाच

तब सतगुरु एक वचन पुकारा। चूडामणि वंश छत्र उजियारा॥
और सब बीज कील है भाई। तातेनारायणनामजीव कहाई॥
चूरामणि नाम से काल डराई। नरनामको धरि धरि खाई॥
अदली वंश चुरामणि सोई। बीज वंश निज हमते होई॥
और सकल जगनाद सनेही। विन्द वंश पारसकी देही॥
तिन्हके सनद चले संसारा। उनके हाथ मुक्ति टकसारा॥
धर्मदास तुम नाद सनेही। तुम्हरे वंशहि ब्यालिस देही॥
मैं दीन्हों तुम लेन नहिं जाना। मुक्तिके वचन हम दीन निदाना॥
वंश बयालिस बुन्द तुमारा। सो मैं एक वचनते तारा॥
और वंश लघु जेते होई। विना छाप नहिं छूटे कोई॥
बिंद मिलै तो वंश कहावे। बिना वचन नहीं घर पावे॥
नाद बिन्दु युग बन्ध जब होई। तबही काल रहै मुख गोई॥
गर्भित नाद बचन नहिं मानै। ताते बिंद हम निर्णय ठानै॥
बिंद एक नाद बहुताई। बिंद मिले सो बिंद कहाई॥
मम सरूप है बिंदके वंशा। तिन्हके सनद छूटे सब हंसा॥

साखी-बंश थापे सो सार है, जो गुरु दिढकैं देहि ।
सांचे दाव बतावही, जीव अपन करि लेहि ॥

### धर्मदास उवाच

धर्मदास बिनती अनुसारी । साहब विनती सुनो हमारी ॥
पंथ पंगती कैसे नीर बहाई । सो गुरु साँचे दया कराई ॥

### सद्गुरु उवाच

धर्मदास मैं कहौं समुझाई । हमही तुमहि कैसे बनि आई ॥
ऐसे नाद मिले बिंदको जाई । तबही हंस पहुचे वह ठाई ॥
अंश होइहैं उनके कडिहारा । तिनकी छाप चलै संसारा ॥
कोटिन योग युक्ति धरि धावे । विना बिंद नहिं घरको पावे ॥
हम बूंद तुम नाम प्रमाना । नारायण नाम नहिं ठिकाना ॥
वंश विरोध चलिहैं पुनि आगे। काल दगा सब पंथहि लागे ॥

### वंशप्रकार

प्रथम वंश उत्तम ।१। दूसरा वंश अहंकारी ।२। तीसरा वंश प्रचंड । ३ । चौथे वंश बीरहे ।४। पाँचवेंवंशनिद्रा ।५। छटे वंश उदास ।६। सांतवें वंश ज्ञानचतुराई । ७ । आठे द्वादश पन्थ विरोध । ८ । नौवें वंश पंथ पूजा । ९ । दसवें वंश प्रकाश ।१०। ग्यारहवें वंश प्रकट पसारा ।११। बारहवें वंश प्रगट होय उजियारा । १२ । तेरहवें वंश मिटे सकल अँधियारा । १३ ।
एती दगा कालकी समाई है । तत्त्वबिन्दुकी टेक रह जाई है ॥

### अगम बानी

अब तुम सुनो अगम्य की बानी । तुम पर कोपे काल अभिमानी ॥
चार सुरति काल की भाई । ताको काल पुनिनिकट बुलाई ॥
तुमसों मैं चार बानी भाषा । चारि निर्णयकी बोली भाषा ॥
तेहि पर काल करै चतुराई । चारों सुरति कहें संधि बताई ॥

## कालकी चारसनंध

चित्तभंग जग कीन्ह प्रकाशा । बीजकसंघ तिन्ह कीन्ह निवासा ॥
मन भंग लै मूल समाई । फैल जान बहुत चतुराई ॥
ज्ञान भंग है बड़ो अन्याई । सो टकसार भेद लै आई ॥
चौथे अकिल भंगको लेखा । वो तारतम लै करै विवेका ॥

## छै दर्शन

आगे चारि संप्रदा भक्ति दृढ़ाई । सत्य पुरुषकी खबरि न पाई ॥
चारि पंथ आगम हम भाषा । ताके मैं न्हेंचै तुम्हरी साखा ॥
ताते पंथ निनार हम राखा । सो सब तोसों दीनो भाषा ॥
बिंदु हमार चूरामणिदासा । उन्हके हाथे मुक्त निवासा ॥
उनके निकट काल नहिं आवे । बचन वंश को शीश नवावे ॥
साखी-चारि वानी चारि खानी, चारि ज्ञान निधान ॥
लाख चौरासी जिया जोनिनमें, तहां तीन जीव प्रमान ॥

## धर्मदास पूछे तीन जीव की सनद

धर्मदास पूछै चितलाई । तीन जीवन गुरु देहो बताई ॥

## गुरु कहें तीन जीवन की परीक्षा

तब सद्गुरु बोले अस बानी । तीन जीवकी लखो सहेदानी ॥
तीन प्रकारके जीवबोधमें आई । चाल चलै सो घरको जाई ॥
प्रथम जीव ब्रह्मसृष्टि है भाई । जिन्ह आवागमन रहितघरपाई ॥
दूसर जीव सृष्टि व्यवहारा । करनी करि लीन्हे अवतारा ॥
तिसरी माया सृष्टि बन्धाना । बोध बचन कीनो परमाना ॥
अब तुम पंथ चलावो जाई । पहुचे जीव तुम्हारी बांई ॥
प्रथम वानिसुनि सुरति लगावै । निश्चय दर्श हमारा पावै ॥
प्रथम बानि है ज्ञान हमारा । सुनि हँस आवै सत्य दरबारा ॥
संमत पंद्रासे बीस प्रमाना । मास जेठ बरसायत जाना ॥
तेहिदिनकालिमोउतरेफुरमाना । बंश बयालिस रोपे थाना ॥

चारि गुरु निज सीख हमारा । तिन्हकी छाप चले संसारा ॥
बंस बयालिस बचन हमारा । तिन्हते मुक्त होय संसारा ॥
सहसर भांति होम जो कोइ धावै । कोटिनयोग समाधि लगावै ॥
कोटिन ज्ञान छान बिल छाने । अर्थ परीक्षा बहुविधि आने ॥
वचन वंश को बीरा नहिं पावै । फिर मरे फिरहि गर्भमें आवै ॥
धर्मदास सुनो सत्य की बानी । काल प्रपंच बहुतविधि ठानी ॥

## द्वादश पंथ चलो सो भेद

द्वादश पंथ काल फ़ुरमाना । भूले जीव न जाय ठिकाना ॥
ताते आगम कहि हम राखा । वंश हमार चूरामणि शाखा ॥
प्रथम जगमें जागू भ्रमावै । विना भेद ओ ग्रन्थ चुरावै ॥
दुसरि सुरति गोपालहि होई । अक्षर जो जोग दृढ़ावे सोई ॥
तिसरा मूल निरञ्जन बानी । लोकवेदकी निर्णय ठानी ॥
चौथे पंथ टकसारभेद लै आवै । नीर पवन को सन्धि बतावै ॥
सो ब्रह्म अभिमानी जानी । सो बहुत जीवनकीकरीहै हानी ॥
पांचौ पंथ बीज को लेखा । लोक प्रलोक कहैं हममें देखा ॥
पांच तत्व का मर्म दृढ़ावै । सो बीजक शुक्ल ले आवै ॥
छठवाँ पंथ सत्यनामि प्रकाशा । घटके माहीं मार्ग निवासा ॥
सातवांजीव पंथले बोले बानी । भयो प्रतीत मर्म नहिं जानी ॥
आठवे राम कबीर कहावै । सतगुरु भ्रमलै जीव दृढावै ॥
नौमे ज्ञानकी काल दिखावै । भई प्रतीत जीव सुख पावै ॥
दसवें भेद परमधाम की बानी । साख हमारी निर्णय ठानी ॥
साखी भाव प्रेम उपजावै । ब्रह्मज्ञानकी राह चलावै ॥
तिनमें वंश अंश अधिकारा । तिनमेंसो शब्द होय निरधारा ॥
संवत सत्रासै पचहत्तर होई । तादिन प्रेम प्रकटें जग सोई ॥

आज्ञा रहै ब्रह्म बोध लावे। कोली चमार सबके घर खावे ॥
साखि हमार लै जिव समुझावै। असंख्य जन्ममें ठौर ना पावै ॥
बारवै पन्थ प्रगट है बानी। शब्द हमारेकी निर्णय ठानी ॥
अस्थिर घरका मरम न पावै। ये बार पंथ हमहीको ध्यावै ॥
बारहे पन्थ हमही चलि आवै। सब पथ मिट एकहीपंथ चलावै॥
तब लगि बोधो कुरी चमारा। फेरी तुम बोधो राज दर्बारा ॥
प्रथम चरन कलजुग नियराना। तब मगहर माडौ मैदाना ॥
धर्मरायसे मांडौ बाजी। तब धरि बोधो पंडित काजी ॥
बावन वीर कबीरं कहाऊ। भवसागरसों जीव मुकताऊ ॥

## कलियुगको अंत पठ्यते

ग्रहण परै चौंतीससो वारा। कलियुग लेखा भयो निर्धारा॥
३४००ग्रहणपरैसो लेखाकीन्हा । कलियुग अंतह्नु पियाना दीन्हा॥
पांच हजार पाँचसौ पांचा। तबये शब्द होगयासांचा५५०५
सहस्र वर्ष ग्रहण निर्धारा। आगम सत्य कबीर पोकारा ॥
तेरा वंश चलै रजधानी। वंश चूरामणि प्रगटे ज्ञानी ॥
तिनकी देह छायाँ नहिं होई। सर्व पृथ्वी प्रमानिक सोई ॥

## क्रिया सोगंद

धर्मदास मोरी लाख दोहाई। भूल शब्द बर जिन जाई ॥
पवित्र ज्ञान तुम जगमों भाखौ। मूलज्ञान गोइ तुम राखौ ॥
मूलज्ञान जो बाहेर परही। बिचले पीढीवंशहंस नहिं तरही॥
तेतिस अर्ब ज्ञान हम भाखा। मूलज्ञान गोए हम राखा ॥
मूलज्ञान तुम तब लगि छपाई। जब लगि द्वादश पंथ मिटाई ॥

## द्वादशपंथका जाव अस्थान

द्वादश पंथ अंशनके भाई। जीवबांधि अपने लोक लेजाई॥
द्वादश पंथमें पुरुष न पावै। जीव अंशमें जाइ समावै ॥

तुमजिन भूलो ज्ञानमो भाई । बिगड़े हंस सब जीव भुलाई ॥
सोरठा—हमरो करै सब ज्ञान, वंस बयालिस तिलक है ।
द्वादस पंथमें मान, पुरुष शब्द तोसे कहूँ ॥

धर्मदास वचन

धर्मदास पूछे चितलाई । बंस बखान गुरु कहौ समुझाई ॥
कौन वंस कौन अंस हमारा । कौन वंश अंश मर्जाद सुधारा ॥
पंथ पंगति तेहि भाव बतावौ । जैसे जगमो पंथ चलावौ ॥
तुम्हरो डर माने सब कोई । वचन डोर बांध्यो जग सोई ॥
दास नरायण सरण न पावा । दुसरा वंश अंश धरि आवा ॥
तेहिकी पंगति कहो समुझाई । सोई पंगति आगे चलि जाई ॥
साखी—इतनी निरभये भाखिहों, गुरु मोहि कहो समुझाय ॥
वंश अंशकी पंगति, सब विधि देहु सिखाय ।

साखी—वंशनिखेहकी । सद्गुरु उवाच

धर्मदास सुन भेद अपारा । तुमसों कहूँ वंश अंश निरधारा ॥
समर्थ हमसों ऐसी फुरमाई । धर्मदासको लेहो जगाई ॥
धर्मदास है अंस हमारा । उन्हसों भेद कहों निर्धारा ॥
उनकी जागा एक पंथ हढावौ । पीछे हम अपनी अंश पठावौ ॥
ते जन्म लीहे धर्मदाससे आई । वोही हंसनके बन्ध मुकताई ॥
तिन्हके बंश चले कडिहारा । बहुत जीवनि के करे उबारा ॥
तब हम पुरुषसों बिनती कीन्हा । धन्य बंस धर्मदास जो लीन्हा ॥
वो कैसे कै लोकै आवा । सोई बात गुरु मोहिं सुनावा ॥

खुदबानी

तब समर्थ अस बोले बानी । धर्मदासको बंस अभिमानी ॥
ताते हम अपना अंश पठावा । जंबुद्वीपमें थाना बैठावा ॥

अच्छर अच्छर अतीतकी बानी। निःअच्छर कोई बिरले जानी ॥
निःअक्षर की अक्षर श्वासा। नहीं धरनी नहीं गगन प्रकासा॥
अक्षर तीनि लोक बिस्तारा। तामें अरुझो सब संसारा ॥
तीन सुत तेज अंडमों आई। आप आप इन्हें आप दृढाई ॥
चार वेद कहै तिनकी साखी। अक्षरअतीत थापि इन्ह राखी ॥
अब भिन्न भिन्न कहूं अर्थाई। सात सुरतिके स्थान बताई ॥
अक्षर अतीत माया सो कहिये। सोई सुरति निरंजन लहिये ॥
अक्षर सुरति दुतिय है स्थाना। जिनके चार वेद परवाना ॥
शब्दातीत अनहद रहता। प्रेम धाम अक्षरकी चहता ॥
चार सुरतिका भेद नियारा। तीनि सुरतिका देउ बिचारा ॥
पाँचे सुरति अंकुरकी बानी। पांचे स्थान तेहि ठहरानी ॥
छटे स्थाना अंकुरकी है आपा। जेहिते सात करी उततापा ॥
सातवी सुरति सहजकी रही। उहि समरथको देखा सही ॥
सात सुरति सात है स्थाना। मूल सुरति है समर्थ प्रमाना ॥
सहज सुरति सब सुर्त उपजाई। मूल सुरति ले हंस समाई ॥
मूल सुरति है सबको मूला। सात सुरतिको एक स्थूला ॥
सात सुरति मूल सिध सब माहीं। धर्मदास लखि राखौ ताहीं ॥
शब्द पांजी इतना परमाना। अब कहूँ कायाकी बन्धाना ॥
सातों सुरति कायामें रहै। औ काया धरि बातें कहै ॥

## सुरति स्थान

प्रथमहि दीप अमर मनियारा। तहँ वा मूल सुरति बैठारा ॥
दुसरा अजर दीप तहां कीन्हा। सहज सुरतिको बैठक दीन्हा ॥

## चौपाई

तीसर दीप हिरण्मय सोई। सुरति अंकुरकी बैठक होई ॥
चौथे दीप सुरंग निर्मावा। ओहं सोहं तहाँ बैठावा ॥

पाँचवें अधर दीप रहे वासा । तहाँ है अचिंत सुरतिको वासा॥
छठये पच्छ दीप जो कीन्हा । तहाँ अक्षरसुरतिको बैठकदीन्हा॥
सातवीं सुरत कलदीप बिलमाना। काम क्रोध मोह तहाँ समाना ॥
सातवीं सुरति सातहूँ स्थाना । तीनसुरतिनिरंजनकालप्रमाना॥
पुहुप दीप है सबते न्यारा । तहां समर्थसे जीव विस्तारा ॥

साखी–घटघटकी जो परच कहो, सब स्थान बताय ।
कह कबीर बिनु काया परचै, फिरि फिरि रह भटकाय॥

साखी–सुरति पांजीकी धर्मदास उवाच

मैं सद्गुरु तुम्हरी बलिहारी । कर्म फास कैसे निरुवारी ॥
मोहि कहो जेहि दुख ना होई । काल चरित्र कहो सब सोई ॥
जो तुम्हरे दिल आवे गुसांई । संशय जालते लेहु छुड़ाई ॥

साखी–तुम्हरो भेद अगम्य है, काहु लख्यो नहीं भेद ।
सुर नर मुनि सबही ठगे, सनकादिक शुकदेव ॥

सतगुरु उवाच

धर्मदास सुनियो चितलाई । तुम जनि शंका मानों भाई ॥
पंथ हमारो चलावो जाई । वंश ब्यालिस अटल अधिकाई॥
वंश बयालिस अंस हमारा । सोई समरथ वचन पुकारा ॥
वंश बयालिस गरवाई दीन्हा । इतना चर हम तुमको दीन्हा ॥
वंश अंश समरथ कडिहारा । सोइ जीवनको करे उबारा ॥
तुम जिन शंका मानो भाई । समरथ वचन राखो चितलाई॥
अटक काहुकी तुम जिन मानों । पाँन नाम तुम निश्चय जानों ॥

साखी–तुम समर्थके अंश हो, जाग्रत वंश तुम्हार ।
समर्थ बचन जनि छोड़हूँ, मानो बचन हमार ॥

साखी-ब्यालिसके निकासी-धर्मदास उवाच

धर्मदास जब विनती लाई । हमसों पन्थ ना चलै गोसांई ॥
नरदेहीसों पन्थ चलै ना भाई । जाते अपना अंश पठाई ॥
अंश बयालिस देहु पठाई । ते जग हंस लेहि मुकताई ॥
तुम्हें सिखावन हमसों लीना । तुम्ह लै धर्मदासको दीन्हा ॥
बचन वंश एक है भाई । नाम वंश जग मैं बताई ॥
वचन वंश है आदि निशानी । तिन्हकी पावै जग सहेदानी ॥
नाम नरायण हैं अभिमानी । तुम संसार फिर जावो अब ज्ञानी ॥

कबीर उवाच

तब समर्थ मोसे अस कही । बंशहि अस चुरामणि सही ॥
तुम्ह जो सिखावनहमसों लीन्हा । ऐसा जग चूरामणि कीन्हा ॥
संधिक नाम है उन्हकी देही । पावै हंसा जो हमरे सनेही ॥
साखी-यह निज बचन समर्थके, हमसो मेटि न जाय ।
अमीनिको मैं सोंपो है, तुमको सोंपि न जाय ॥

साखी-धर्मदास उवाच

धर्मदास तब भए मलीना । उठि सद्गुरुसों बिनती कीन्हा ॥
हो साहेब मैं तुम बलहारी । बंसनारायन शरण तुम्हारी ॥
नाम प्रतीत तुम करो संभारी । नामनरायन तुम बोल विचारी ॥
अपनौ बोध राखौ संसारा । बिन्द बंस प्रण आए हमारा ॥
साखी-इतनी विनती मैं करूं, तुम दाता गुरु मोर ।
संशय मेटो जीवको, लेहो फँदको छोर ॥

साखी-वंश विषेदकी-सतगुरु उवाच

धर्मदास तुम बड़े विवेकी । तुम्हरे घटमें बुद्धि बढ़ देखी ॥
घर घर गुरु जगतमें होई । हमरे गुरु बचन बंस है सोई ॥
वह सब करै मुख चतुराई । ताते जीव राखे भरमाई ॥

मान तजी लेहि परमाना । खोवै जगतपान अभिमाना ॥
बचन बंशकी पारख पावे । सोइ हमारे बंश कहावे ॥
बचन बंश पारख नहिं होई । बंश हंस सब जाय विगोई ॥
बचन बन्धीए वंश अधिकारा । पारस सरूपी है संसारा ॥
पारस छुवे लोहा कँचन होई । पोहोप बास तिल भेदे सोई ॥
बचन वंश है पुरुष सनेही । कागरूपते हंस करि लेही ॥
सो सब उत्पत्ति कहो समुझाई । जो चीन्हे तो लोके जाई ॥
धर्मदास तुम पन्थके राजा । नाद बिंदु हम दोनों साजा ॥
तुम्हरे वंश पंथके कडिहारा । वचन बंश लोक सठिहारा ॥
सतगुरु बचन लेहि सिर नाई । तब तुमरे वंश करे गुरुवाई ॥

साखी-कहै कबीर

नाम नरायण जगद्गुरु, करै बोध संसार ।
वचन प्रतापसे छूटहि, वो समर्थके कडिहार ॥

साखी-वंश अंसनके-धर्मदास उवाच ॥

धर्मदास विनती अनुसारी । साहब बिनती सुनो हमारी ॥
काया पांजीको भेद लखाओ । वंशअंश दोऊ तत समझावो ॥
वा सन्धि कहो जाते होय उबारा। सोई भेद तुम कहो पुकारा ॥
धाम चारिका भर्म बताओ । कैसे कैलसो आनि समावो ॥
धर्मराय जो अपरबल बीरा । तीन लोकमें ताकी पीरा ॥
कैसे पंथ चले जगमाहीं । तीन लोकमें ताकी छाहीं ॥

साखी-पांजी भेद लखा न हो, वंश अंशनिरधार ॥
इतनी संशय मिटावहू, सतगुरु हंस उबार ॥

साखी-कायापांजी-सतगुरु उवाच

धर्मदास कहौं समुझाई । काया पांजी आदि है भाई ॥
सुर नर मुनि कोई गम्य न पावा । झूठी आस बांध सब धावा ॥

पांजी चार भेद है भाई । चार अंश सब जगहि भ्रमाई ॥
अक्षर तीनि लोक उरझावा । तीनि लोक अक्षर ठेहेरावा ॥
जम्बु दीप है यमको बासा । कैसे मुक्ति होय परकासा ॥
तुम तो जुगनजुगन चलि आए। काहे न शुक्र जीव मुक्ताये ॥
चारि वेद तुम्हें नाहीं मानै । वेद क्रिया सब जीव समानै ॥

साखी–हमसों पंथ ना चलिहै, भवसागर दारुण है द्वन्द्व ॥
वंश बयालिस तारहु, काटो कर्मके फंद ॥

सद्गुरु उवाच

सुनो धर्मदास कहुँ मैं तोहीं । तुम नहिं निजके चीन्हे मोहीं॥
हमरो कह्यो नहिं मान्यो भाई । अपना बंश मान्यो मुकताई ॥
सकल सृष्टि गुरु तुमकूँ कीन्हा । तुमसों बंस बयालिस लीन्हा ॥
तुमको जानि बड़ाई दीन्हा । जक्तगुरु हम चूरामणि कीन्हा ॥
हमसों समरथ ऐसी कही । चूरामणि बंश जीवन निरवही॥
वचन वंशको जो नहिं मानी । ताको काल करै जिवहानी ॥
तुमकूं सेवै गुरु ब्यवहारा । सो देखे समरथ दरबारा ॥
जो नहिं मानें कहा तुम्हारा । ताका सास्तीकरै वहिपारा ॥

चौपाई–तुम गुरु बयालिस वंशके, हम कह्यो वचन टकसार॥
तुम्हरे हाथ जीव सब पहुँचहिं, तुम समर्थ कडिहार॥

साखी–गुरुब्याख्यानकी–धर्मदास उवाच ।

हो सतगुरु मैं तुम बलिहारी । हिम मान्यो निज कह्यो तुम्हारी॥
तुम सतगुरु हम शिष्य अजाना। तुम सम हम पुरुष पुराना ॥
गुरुवाईका लेखा सुनाओ । बिन लेखा जीव कैसे मुक्तावो॥

साखी–लेखा कहो तुम सद्गुरु, सब संशय निरधार ।
हम गुरुवाई करी हैं, मान्यो वचन तुम्हार ॥

चौपाई–गुरुवाईको जुगति–सद्गुरु कहै ।

सुनो धर्मदास कहों मैं बानी । बात हमारी तुम निश्चय मानी ॥
वचन वंश नहिं लागै भारा । लेखा देखि चलै कडिहारा ॥
बिन लेखा गुरुवाई करहीं । आसाबन्ध कालमुख परहीं ॥

चौथा बिसथारकी जुगति

प्रथम लेखा जब चौका पोतावै । तब निकुत मंत्र ले नीर मँगावै ॥
दुसरे चौका पूरौ भाई । काया मूलको मन्त्र जगाई ॥
तिसरे आसन करौ विस्तारा । पुरुष शब्द निज करौ पुकारा ॥
चौथे कलश लै आगे राखौं । पंचतत्वको मन्त्र मुख भाखौं ॥
पाँचमो नारियर स्नान करावौ । सोहं शब्द लै भद्र करावौ ॥
छठवें स्वेत मिठाई आनौ । मानसरोवर मन्त्र बखानौ ॥
सातवें उत्तम पान मँगावो । पक्ष पालना मन्त्र गोहरावो ॥
आठवें दलकी जुगति सुधारी । दयाशब्द धोखौ अधिकारी ॥

साखी–अरु कपूर लौंग इलायची, दल निरनैकी जुगति ।
विधि विल छांनि केन्द्रहूँ, दीन्हा गुरु जिव मुक्ति ॥

चौपाई

नौमे नया वस्त्र ले आवो । अमर चीरको मन्त्र जपावो ॥
दसवें सोरा सुपारी धरहु । पाताल अंशको मन्त्र उचारहु ॥
ग्यारवें पांच बरतन आनौ । आदि नामको मन्त्र-बखानौ ॥
बारहें आनि धरो परवाना । संधिकमन्त्र कहो परवाना ॥
तेरहें चँदवा छत्र बनाया । समरथ मन्त्र छत्रपति आया ॥
चौदहें आरति आनि बनाई । सोहँग मन्त्र निर्णय गोहराई ॥
पंद्रहें तिनका अर्पण कीन्हा । चौदा यमका मन्त्र तब चीन्हा ॥
सोरहें षोडश मन्त्र प्रवाना । कदली दल तहां उत्तम आना ॥
सत्रह सतगुरु करे निशानी । सो नरियर मों डारो पानी ॥

अठारवें अमि शब्द ले नरियर मोरे। नहिं तौ काख सीस लै तोरे ॥
विना एकोत्री जो कडिहारा । ते सब बांधे यमके द्वारा ॥
बिना लेखे जो गुरु कहावे । गुरु डूबै शिष्य पार न पावे ॥

साखी—इतना लेखा पावै, सो साँचो कडिहार ।
कहें कबीर बिन लेखा जाने, छलइ काल बटपार ॥

साखी—कडिहारी भेदकी धर्मदास उवाच

साहेब इतना भेद न आवै । सो नाहीं कडिहार कहावै ॥
मूल भेद तुम कहो प्रमाना । तेहिते हंस होय निर्वाना ॥
मूल भेद है आदि निशानी । सो समरथके होय प्रमानी ॥
इतनी परचै हमकूं दीजे । मूल भेदकी दया गुरु कीजे ॥
गुरु सोई जो ज्ञान बतावै । और गुरू को काम न आवै ॥

साखी—धर्मदास कीया करै छुऔ सतगुरुके पाँव ।
साहब जो मैं तुमते बिछुरो, तो मूलशब्द बारह होइ जाव ॥

साखी—मूल भेदकी सद्गुरु उवाच

धर्मदास कहो मैं सोई । मूल भेद घट राखौ गोई ॥
गुरु मर्याद काहू ना पाई । ताते शब्द तुम राखौ छिपाई ॥
मूल भेद है अगम अपारा । विरला हंस पावही पारा ॥
सुर नर मुनि गण गन्धर्व देवा । तिनहू मूल नहिं पायो भेवा ॥
काया मूल है आदि निशानी । सौ धर्मनि तुम सुनो प्रमानी ॥
जो निज योग समाधि लगावै । सो तो लाभ तिनहु नहिं पावै ॥
चार वेद जिस आगम बखाना । मूल भेद वेदो नहिं जाना ॥
अक्षर मूलकी उत्पति भाखी । अजर मूल लै बारह राखी ॥
अजर मूल है सबको मूला । तेहिते प्रथम काया है स्थूला ॥
लाखो सैनमें देउ लखाई । अजर मूल लै लोक समाई ॥
भिन्न भिन्न सब मूल बताऊं । अजर मूल माया दिखलाऊं ॥

## मूल भेद

प्रथम मूल आदि है भाई। जिन सब उत्पति अंकुर बनाई ॥
दूसर मूल वानी है व्यवहारा। तेहिते सहज सुरति निरधारा ॥
तीसर मूल मर्मको पावै। मूल सुरति सब भेद बतावै ॥
चौथ मूल सोहंग बँधाना। तामें सुरति ओहंग समाना ॥
पाँचएँ है अचिंत पर बानी। प्रेम सुरति तिहि माँहि समानी ॥
छठै मूल अक्षरकी बानी। योगमाया अक्षर उतपानी ॥
सातवें मूल अक्षरहीकी बानी। तेहिते कैल निरंजन जानी ॥
अक्षर मूल है सातवें काला। त्रिगुण काल उत्पति प्रतिपाला ॥
चार काल अपरबल बीरा। जाते जीवको ब्यापे पीरा ॥
इतनो मूल चारि काल बखानी। अजर मूल चारि माँहि समानी ॥
सद्गुरु मिले तो भेद लखावै। बिना सतगुरु कोइ पार न पावै ॥

साखी—बिनु सद्गुरु बाँचे नहीं, कोटिन करै उपाय।
अजर मूलका खोज न पावै, बांधे यमपुर जाय ॥

साखी—मूल व्याख्यानकी धर्मदास उवाच

तुम सद्गुरु हो समरथ दाता। कैसे मिटे कालकी घाता ॥
तौन भेद गुरु देहु बताई। जेहिते हंस लोकको जाई ॥
शब्द परीक्षा हमको दीजै। सब जीवनकी परचै कीजै ॥
कैसे सीख हम करै संसारा। तौन भेद मोहे कहो विचारा ॥
कैसे तरिहैं जगके हंसा। कैसे निर्भय तुम्हारे वंसा ॥

साखी—वंश अंशकी निर्णय, हमसों कहो समुझाय।
केहि विधि हम जो निस्तरे, कैसे लोकहि जाय ॥

### सद्गुरु उवाच

सुनो धर्मदास कहूं मैं तोही। वचन वंश प्रताप है सोही ॥
वंश बयालिस वचन हमारा। जिनको समरथ है रखवारा ॥

ताको खोजि परमपद पावै । भवसागर में बहुरि न आवै ॥
जिनके ब्यालिस वंश तुम्हारा । जिनके वचन अंश है कडिहारा ॥
वचन वंशको अंश न दावै । तुम्हरो वंश नहिं बोध चलावै ॥
एहि विधि वंश अंश जो होई । दूत भूत यम कंपन सोई ॥
जाति न जै और मोह न आवै । सोई वंश अंश जो कहलावै ॥
कलकी दशा जानिके खावै । निश्चय राज वंश गुरु होवै ॥
जिनके पारस चले संसारा । देखत काल होय जरि छारा ॥

कडिहारी लेखा

अब सुनो कडिहारी लेखा । वंश अंशको जानि विवेका ॥
वंश अंशको करै बिचारा । सो कहिये वोहित कडिहारा ॥
वंश अंश नहिं अक्षर पावै । सो कडिहार बोधकं ध्यावै ॥
वंश वचन कडिहारी करहीं । सो कडिहार फाँस नहीं परहीं ॥
कडिहारका किनहोयकडिहारा । लक्ष चौरासी अटकै सो बारा ॥
जाति पांतिकी दासी न राखै । सद्गुरु परिचय निशिदिन भाखै ॥
वंश अंशको पान चलावै । सो साँचै कडिहार कहावै ॥

हंसकी चाल

अब सुनियो जग हंस विचारा । प्रथमहि चौका करै हमारा ॥
चौका अंश समर्थके भाई । तिन्ह अपनी युग अदल चलाई ॥
चौका अंश कालकी हानी । तेहिते पुरुषकी सुरति समानी ॥
तिनुका तोए लेहि प्रमाना । यम भाजे छोड़ै अभिमाना ॥
चरणामृत हि तत्त्वसों लेही । यमके हाथ चुनौती देही ॥
प्रेम पतीत सो सेवा लावै । नाम पान गुरु अक्षर पावै ॥
हंस वरन हो तहवाँ जाई । जब सतगुरु सतशब्द लखाई ॥
एहि विधि वंस हंसकी करनी । ताते तुमसों कहुं वचन प्रमानी ॥

साखी–एहि वचन सत्य है, तुम वंश अंशको पान ।
कडिहारी लेखा सार है, हंसहि भाव भक्ति परवान ॥

साखी-वंशअंशकी-धर्मदास उवाच

साँचे सतगुरु हम भल पावा । जमको धोखा सबहि मिटावा॥
गुरुशिष्यको भेद हम पावा । वंश अंश लै सबै परखावा ॥
अब बंश अंशका कहो प्रमाना । केते बंश केते अंश ठिकाना ॥
वंश अंश केते कडिहारा । तेहिकी परिचै देहो विचारा ॥
केतिक वंश कडिहारा समुझाई । केतिक संग हंस लै जाई ॥
केतिक प्रमानवंश हंसचलिजाई । सो समर्थ मोहे देहो चिन्हाई ॥

साखी-वंश अंशके प्रमान कहो, लेखा देहो बताय ।
एती सन्धि मोसों कहौ, सब संशय मिटजाय ॥

साखी-सब वंश प्रमानकी-सद्गुरु कबीर उवाच

धर्मदास तुम बड़े विवेकी । तुम्हरे घट बुद्धी बड़ि देखी ॥
बचन वंश बयालिस ठीका । तिन्हको समरथ दीनो टीका ॥
वंश अंश वचन एक सोई । दीर्घ वंश अंश लघु होई ॥
जेठौ अंश वचन मोरो जागै । और वंश जगके पीछे लागै ॥
तिन्हकी छाप चलै संसारा । और वंश जगके कडिहारा ॥
बीस दिन और वर्ण पचीसा । इतना कुलमें चलै सँदीसा ॥
साठि वरण अंशा प्रमाना । चारवंश तेहि माँहि समाना ॥
नामवंशकी पारख देऊ । तिनसे ब्यालिस वंश कहिदेऊ॥
तिनसे ब्यालिस वंश कडिहारा। वचन वंश ब्यालिस पसारा ॥
चाल चलै और पन्थ दृढावै । भुले जिवन घर घर समुझावै ॥
वंश छत्रपतिसिद्ध सुधारी । नाम अंश करे कडिहारी ॥
धर्मदास एक वंशकी हानी । पावै वचन वंश सो समानी ॥
हमरो वचन चुरामनि सारा । वंशअंश ब्यालिस है अधिकारा॥
सोइ वंश जे वचन विचारे । विना वचन नहिं वंश हमारे ॥

## कडिहार ओ हंस

वंश अंश मोहित कडिहारा। सदा हजूरी पलक न न्यारा ॥
वैसी चाल हंसकी होई। सदा हजूरी पलक दूरि न होई॥

### वंश अंश हंस प्रमाना

#### पीढी १

प्रथम वंश अंशकी बानी। बचन कडिहार एके प्रमानी ॥
दो सित्तर हंस तिन्ह तारै। अपने कर सब जीव उबारै ॥

#### पीढी २

दुसरे वंश अंश चलि आवै। पांच कडिहार निशानी लावै॥
दूसरे वंश अंश अधिकारा। सातसौ तेरे जीव उबारा ॥

#### पीढी ३

तीसर वंश अंश जब होई। नव कडिहार तालुके होई ॥
हंस सोरासे लोक प्रमाना। १६००। तिनके हाथ भुवन बन्धाना॥

#### पीढी ४

चौथे वंश अंश जग आवै। भवसागरमो पीर कहावै ॥
तेरह सोहंस तीन कडिहारा। १३०३। तिनके सङ्ग उतरि गयो पारा॥

#### पीढी ५

तेहि पीछे काल अचरज होई। अंशहि वंश विरोधे सोइ ॥
पांचवे वंश अंश परवाना। सात कडिहारा तिनके बन्धाना॥
तीन हजार चारसै सोई। ३४००। इतना हंस लोकको होई॥

#### पीढी ६

छठे वंश अंश अधिकारा। ताते काल आनि पेठारा ॥
पुनि आवै पुरुषहि सहदानी। तरै कडिहार तिन्हके परवानी॥
छःसै सत्तर सात हजारा७६७०। वंश अंश सङ्ग उतरे पारा ॥

पीढी ७

सातवें वंश अंश परवानी। द्वादश ताके कडिहार बखानी॥
तीन हजार पांचसै बावन। ३५५२। इतने हंस पहुँचे मन भावन॥

पीढी ८

अठवें वंश बचन परकासा। सत्रा कडिहार तिनके रहे बासा॥
पांच हजार चारिसै बारह।५४१२। पहुँचे लोक पुरुष दरबारा॥

पीढी ९

नौमें वंश अंश जब आवै। पचीस कडिहार सङ्ग तब पावै॥
सात हजार आठसै छत्तीसा।७८३६।प्रगटे बंश अंशजगदीसा॥

पीढी १०

दशे वंश अंश अधिकारी। बत्तिस कडिहार भेद जग भारी॥
तीनसै पांच और आठ हजारा।८३०५।तबही पंथ चढ़े असरारा॥

पीढी ११

ग्यारह वंश तेतीस कडिहारा। नवसै पांच और नव हजारा॥

पीढी १२

द्वादशवें वंश छतीस कडिहारा। ३६ दोसै सत्तर सात हजारा॥

पीढी १३

तेरहा वंश अंशकी बानी। चालिस कडिहार तिनके परमानी॥
सोरासहस्र चारिसै पन्दरा।१६४१५। पहुँचे लोक मिटै यम निद्रा॥

पीढी १४

चौदह वंश अंश निर्बाना। बावन५२ कडिहार बोहित परवाना॥
तीससहस्र और नवसै तेरा।३०९१३ सब पंथका न होय निबेरा॥

पीढी १५

पन्द्र वंश अंश चलि आवै। पंथ मेटि आप पंथ चलावै॥
साठिकडिहार मिलि बोध चलावै। साठि हजार हंस मुक्तावै॥
चालिस मण्डल भयो पसारा। तबहि पंथ चलै असरारा॥

पीढी १६

सोरह वंश कला अधिकारी।सत्तर ७० कडिहार शब्द उजियारी॥
चौंसठ हजार पांचसै बारा। ६४५१२।इतने हंस सब उतरे पारा॥

पीढी १७

सत्रह वंश अंशकी बानी। असी कडिहार तिन्हकी परमानी॥
छिहत्तर सहस्र पांचसै तीसा।७६५३०।धर्मदास कुल आदिसदीसा

पीढी १८

वंश अठरहे नवे कडिहारा। असी हजार हंस लै उतरे पारा॥
८००००तब कलियुगकी दसी मिटाई।वंश अंश प्रगटे अधिकाई॥

पीढी १९

उन्निस वंश अंश अधिकारा। एकसै सात तिन्हके कडिहारा॥
छानवे हजार सातसै दोई। ९६७०२। इतने हंस लोकको होई॥

पीढी २०

बीसो वंश अंशकी बानी। एकसौ तेरह कडिहार बखानी॥
लाख एक औ बीस हजारा। पांचसै हंस ज्योति निर्धारा॥
॥ १२०५०० ॥

पीढी २१

वंश एकसौ जग चलि आई। एकसौ तीस कडिहार अधिकाई॥
१३०लाख दोय और तीस हजारा।छः से अंश जो पांच अधिकारा॥
॥ २३०६०५ ॥

पीढी २२

बंश बावीसे दोय सौ कडिहारा २००। तीन लाख और चालिस
हजारा। सातसौ अंस जो बीस अधिकारा॥ ३४०७२०॥
जाग्रत बंस करे कडिहारा॥

## पीढी २३

तेइस वंश अंशका बानी। दोईसै तेरा कडिहारा जो जानी२१३॥
तीन लाख और तीस हजारा। इतने हंस जो पांच अधिकारा
॥ ३३०००६ ॥

## पीढी २४

चौवीसे वंश अंश जग आवै। तीनसै कडिहार बीसते पावै॥

## पीढी २५

लाख चारि जो तीस हजारा। चालिस हंस पहुँचे दरबारा॥
वंश पचीसे तीनसे छप्पन कडिहारा। लाख पांच हंस भयो पारा॥

## पीढी २६

छबीसौं वंश चारसौ कडिहारा। लाख पांच और तीन हजारा॥
नबसै सत्तर हंस उबारा ॥ ५०३९७० ॥
इतना मर्म हंसको जानी। सब मंडल अटले रजधानी॥

## पीढी २७

सत्ताविस वंश अंश अधिकारी।छःसो हंस करै कडिहारी॥६००॥
सात लाख छानवें हजारा।सातसै पैसठ हंसनिरधारा॥७९६७६५

## पीढी २८

वंश अठाविस जाग्रत होई।पांचसौकडिहारजो पंदरा सोई॥५१५॥
लाख चारि जो बीस करोरी। पैंतिस हजार तीन सौ कोरी॥
॥ २००४३५३०० ॥

## पीढी २९

उनतिस वंश मंडल उनचासा॥ सातसै तीस कडिहार प्रकाशा॥
७३०॥ तीस करोर लाख है सोरा। साठ हजार सात सौ तेरा॥
॥ ३०१६६०७१३ ॥

पीढ़ी ३०

वंश तीस नौसों कडिहारा ९०० बयालीस करोड़ लाख है सत्रा ॥ बारा हजार आठसों सत्रा ॥ ४२१७१२८१७ ॥ इतना हंस कीन्ह पवित्रा ॥

पीढ़ी ३१

एकतिस वंश त्रेपन हजारा । चारिसौ बावन भये कडिहारा ४५२ सत्तर करोड़ और पैंसठ लाखा । सैंतालिस हजार और नौसे बावन हंस उबारा ॥ ७०६५४७९५२ ॥

पीढ़ी ३२

बतीसे वंश सतावन हजारा । नौसौ सैंतालिस तिनके कडिहारा ५७९४७ ॥ एक पदम दोय नील बखानी । छहत्र करोड़ लाख बाविस जानी । नौ हजार सातसे तेरे । इतने हंस पहुँचे निजमेरे १०२००००७६२२०९७१३ ॥

पीढी ३३

तेतिस वंश ओनसठि हजारा । छेत्तीस हंस अधिकारी कडि-हारा । ५९०३६ । चारी शंख पदम दस सोई । तीस खर्व नील ब्यालिस होई ॥ सित्तर लाख और पचीस हजारा । सातसै हंस चार अधिकारा ॥ ४१०४२३०००००७०२५७०४

पीढ़ी ३४

चौतीसौ वंश और बासठि हजारा । सातसों चौपन तिन्हके कडिहारा ॥ ६२७५४ ॥ छतिस शंख खर्व उनहत्तर ॥ चारि पदम अर्व छेहत्तर ॥ बत्तीस करोड़ लाख नव आवै । ब्यालिस हजार तीनसै आवै ३६०४००६९७६३२०९४२३०० ॥

पीढ़ी ३५

वंश पैंतिससत्तर हजारा । पांचसै उनचास तिनके कडिहारा ॥ ७०५४९ ॥ पदम असी सात खर्व अर्व है बारे । छतीस

क्रोड़ लाख है तेरे । बारे हजार नवसै साता । पहुँचे हंस निज इतने साथा ८००००७१२३६१३१२९०७ ॥

पीढ़ी ३६

छत्तीस बंस और साठ हजारा । तीनसै चौंसठ तिन्हके कडिहारा ॥ ६०३६४ ॥ पचहत्तर पदम खरब उनचासा । अर्बुद सात करोड़ पचासा ॥ लाख चार तेरा हजारा सातसै बावन । इतने हंस पहुँचे मनभावन ॥ ७५००४९०७५००४१३७५२ ॥

पीढ़ी ३७

सतीससै वंश और चौसठ हजारा । सातसै पैंतालीस हैं कडिहारा ॥ ६४७४५ ॥ सत्तर शंख पदम नव होई । छयासी खर्व नील बावन सोई ॥ नव अर्बुद हैं चौदह करोड़ी । ग्यारे लाखा बारे हजारा नौसे तेरे जोड़ी । मंडल अठानवें फिरे दोहाई । सत्य थापि असत्य उठाई ॥ ७००९५२८६०९१४११२९१३ ॥

पीढ़ी ३८

अडतीसौ वंश बहत्तर हजारा । छहसै तेरा हंस कडिहारा ॥ ७२६१३ ॥ शंख तीस और खरब है सोरा । नव अर्बुद करोर है तेरा ॥ छप्पन लाख हजार चौबीसा । नवसै बहत्तर पहुँचे हंसा ॥ ३००००१६०९१३५६२४९७२ ॥

पीढ़ी ३९

उनतालीस वंश और असी हजारा । सातसौ तिहत्तर तिनके कडिहारा ॥ ८०७७३ ॥ पांच अशंख शंख पंचवीसा । चालिस पदम नील एक बीसा । सात खरब अरब है बारे । नव करोड़ लाख है छयानुं । पंचवीस हजार सातसौ बानी । बानौ उत्तम जानि बखानी । इतने हंस लोक भल जानी ।

पीढी ४०

चालिस बंश छचासी हजार। नवसै बहत्तर तिनके कडिहार॥
४६९७२ ॥ नव शंख नीले हैं। बाबन । पचहत्तरि खरब ॥
अर्ब दोय भावन ॥ सात करोड़ और बत्तिस लाखा ॥
त्रेसठ हजार पांचसै तेरा साथा। इतने हंस लोक लै राखा ॥
९००५२७५०२०७३२६३५१३ ॥

पीढी ४१

ब्यालीसवें वंश विस्तारा। लाख एक चौसठ हजार
कडिहारा ॥ गणित हंस लहै को पारा। १६४००० ॥
तीस अंश शंख परदा सोई। आठ नील नौ खर्ब तहां होई॥
अर्ब बयालिस तेरा करोड़ी। ग्यारा लाख सहस्र दश जोरी॥
इतनो वंश अंश हंसको लेखा। जो पहुँचे सो करै विवेका ॥
३०१५०००८०९४२१३१११००० ॥
एते बचन वंश परमाना। सो पावै निज बंशाको पाना ॥
चारि गुरुके बाहर राखो। उन्हके प्रमान उनहीसो भाखो॥

साखी—कहें कबीर

वंश अंश हंसकी निर्णय, और कडिहारी लेख।
कहैं कबीर धर्मदास सों तुम हिरदै करो विवेक ॥
लिखेत कबीर बाकीके कलसा। धर्मदास पूछेव।

चौपाई

धर्मदास बिनती अनुसारी। धनि सतगुरु तुम्हरी बलिहारी॥
संशय एक मोरे दिल आई। सो समर्थ मोहे कहा समुझाई ॥
इतना आगम ठानी तुम राखा। सो समर्थ तुम आगम भाखा ॥
वंश संग चलै कडिहारा। सो तुम खोलि कहो बिस्तारा॥
कडिहार संग जो हंस पियाना। ताका तो तुह्म कीन्हा बन्धाना॥

तिनमें फेरफार कछु नाँई। सो समर्थ कहिं दिखलाई ॥
सबही हंसलोकको जाई। तो काहेको पुनि करै कमाई ॥
सब कडिहार जहँ एक ठिकाना। सब हंसनको एकै स्थाना ॥
सबही हंसा एक सरीखा। अबगुरुमहिमाकोकौनबिशेखा॥
एक भौम्य एक है स्थाना। सब कडिहार एक करि जाना॥
वचन वंश थापै कडिहारके बोधे। योग युक्ति काहेको सोधे ॥
काहेको एहि तन मन वारे। काहेको धन जोबन गारे ॥
काहेको चरणामृत लेही। सीथ लियेकी महिमा केही ॥
सबही हंस हैं एक समाना। काहेको चौका आरतिठाना ॥

## साखी—धर्मदास

भलौ नांव बाही कैलको, जिव सब एक न समान।
जैसी कमाई जीवकी, ताको देवै सोउ स्थान ॥

## चौपाई सद्गुरु कबीर उवाच

सुनो धर्मदास यह भेद नियारा। तुमको खोलिकहों सोनिस्तारा॥
सब रजधानी पुरुषहि कीन्हा। कैलक सिखावनपुरुषहिदीन्हा॥
ऐसी शंक जिन पूछो भाई। कच्चा जीव बिचलिके जाई ॥
समुझे हंस बहुत सुख पाई। सर्वज्ञान कालमूल बताई ॥
द्वादश पंथ भेद ना पावो। सातों सुरति पुरुष निर्मावो ॥
सर्व सरीखे नहिं होय कडिहारा। कैसे रहे एक दरबारा ॥
केतिक सातों सुरति घर जैहैं। उन्हके दीपमो बासा लैहैं ॥
सोलहै अंश समर्थ बड़ कीन्हा। उन्हको दीप बड़े बड़े दीन्हा ॥
कितने रहैं उन्हें दीप मँझारा। आपन बोध लिये कडिहारा ॥
अवरदीप पुरुषके रहई। उन्हीं दीपमें वासा लहई ॥

सहस्र अठासी दीप सुथेरा ८८००० । तहाँ सब हंसा करै बसेरा॥
सब दीपनमाँ शोभा पावैं । वहांके गए बहुरि नहिं आवैं ॥

## गुह्यभेद

एक बात है अन्य नियारी । सोइ मैं धर्मनि कहीं पुकारी ॥
सकल दीप थे दीप निन्यारा । तहवाँ अमरथको दरबारा ॥
कितने कडिहार वा घरकूं जाई । गुपत भेद तुम अछप छिपाई ॥

छन्द–तहाँ समर्थ आपबिराज है ताका महिमा को लहै ।
दीपउजियारी कहा बरनौ बास स्वासा सो रहै ॥
आन दीपके हंस हैं सो वाको जाने नहीं ॥
उहांके वासी हंस सोहेला सो और दीप मानैं नहीं ॥
सदा हजूरी हंस विहँगम जिन देही उन बिसराइया ॥
गुरु शिष्य दोई एक होइकै सो वा दीपसिधाइया ॥

सोरठा–कदली केरे पात, पात पातमें पात है ।
ऐसे बात बातमें बात, जानैगा जन जोहरी ॥

## चौपाई–धर्मदास उवाच

धर्मदास फिरि शीस नवावा । दोउ कर जोरिके विनतीलावा ॥
सोइ हंस रहै पुरुष हजूरी । उनकी रहनि कहौ गुरु थोरी ॥
कैसे रहै वे कैसे बोलैं । कैसे बैठैं वे कैसे डोलैं ॥
कौन ज्ञान कौन है करनी । सो सद्गुरु कहो मोहि बरनी॥
जगमें रहै कौन सत्य भाऊ । कैसे काया केर सुभाऊ ॥
आन दीप रहै सत्य सुभाऊ । कहो उन्हकी कायाकेर प्रभाऊ॥
दोउकी परचै मोहि सुनावो । ज्ञान दृष्टि करि मोहि दिखावो॥

साखी–यह कछु अचरज बात है, कहि दिखावो मोहि ।
देखो ज्ञान बिचारिके, तबहि हृदय सुख होहि ॥

### सद्गुरु कबीर उवाच

सुनो धर्मदास मैं कहूँ समुझाई । गुह्य भेद जिन बाहेर जाई ॥
द्वादश पंथ यह भेद न पावे । वेहे दोजकका पंथ चलावे ॥
बहुत होइहै अपनो कडिहारा । सो नहि जाने भेद हमारा ॥
पूरण दया सद्गुरुकी होई । वंश आपुमें लेहि समोई ॥
जिनकूं देहि निर अक्षर पहिचानी। सो कडिहार लेअगमकीबानी ॥
सो निज पावे भेद टकसारा । सदा हुजूरी पलकनहिं न्यारा ॥
देखा देखी करै कडिहारा । भेद न पूछे मूढ गँवारा ॥
देखा देखी बोध चलावे । फूलि फूलि साखी पद गावै ॥
चौके बैठि ना करे निरुवारा । चौका जुगति ना जाने गँवारा ॥
पूरुष अंश पुरुष सम होई । अपने दीप ले जावे सोई ॥

### बिहंगमतिके हंसवर्णन

अब तुम सुनौ विहंगम बानी । विहंगमति हंस पहँचानी ॥
निरअक्षर निस्तत्त्व निवासा । निहंतत्त्व अगम्य है वासा ॥
चौका करै जानै वहिवारा । अंश बनीसै सबसो प्यारा ॥
सब अंशनको प्रमाण करिजानै । अपने अपने स्थान वे जानै ॥
सब अंशनकी लाग्य चुकावे । सुरति निरति सद्गुरुसों पावे ॥
नौतम सुरति संग सनेही । एको पलक दूर नहिं होई ॥
ओ कहिये बोहोत कडिहारा । सदा हुजूरी पलक नहिं न्यारा ॥
अस कडिहार ते साररसहोही । एक प्राण दोई है देही ॥

साखी—जैसी मति कडिहारकी, तैसी मति हंस होय ।
सदाहजूरी पुरुषके, छिन छिन दर्शन जोय ॥

### चौपाई—धर्मदास उवाच

सुने सद्गुरु कडिहार रहानी । सबहि स्थान परे मोहि जानी ॥
अब कहिये नूर हंसका भाऊ । सो समर्थ मोहि बानी सुनाऊ ॥

आन दीपमों करै रजधानी । प्रथम भाषौ उनकी सहिदानी ॥
सदा रहै वह पुरुष हजूरी । उन हंसनकी कहो मत पूरी ॥
साखी–जेहि तुम बानी कहत हौ, मोहि सुनि होत अनन्द ।
पूरा सद्गुरु पाइया, मिटे कालके फन्द ॥

चौपाई–सद्गुरु कबीर उवाच

आनद्वीपके हंसनके वर्णनकी

अब सुनियो उन हंसनकी बानी । कुल करनीमें रहै लपटानी ॥
सहजभाव वोह भक्ति करैहीं । झूठ संसार सों रहै सनेहीं ॥
चौका आरति ज्ञान समाना । दोइ दिशा वह रहै लपटाना ॥
इतनी वंश छाप अधिकाई । धोखे हंस नष्ट नहिं जाई ॥
जिन्ह जैसी चाल प्रमाना । जो जस पहुंचे जाहि स्थाना ॥
जिन हंसन जैसो सुतन सवारा । जाहि दीपमें बास बसारा ॥
सब दीपनमें करें आनंदा । देहि कांत ऊगे रवि चन्दा ॥

बिहंगमस्ती हंसके वर्णन

अब तुम सुनो उन हंसकी बानी । विहंग मताके हंस पहिचानी ॥
जगमें रहै कमल जस भाऊ । तन मन यौवन सब विसराऊ ॥
देहि इहां सुरती गुरुरचना । सूझै नहिं सुखजीव न मरना ॥
जैसे सर्प कांचरी जानै । कायाको ऐसे करि मानै ॥
युक्ती युक्ती देह बनावे । जगका सुखनहिं उनको भावे ॥
गुरु शिष्य एकै मत होही । एकै प्राण दाई है देही ॥
सो कडिहार गुह्य नहिं भाई । सोही जाने ताके ताई ॥
सोई हंस जानो सब दूरी । जिन्हको कहिये पुरुषहजूरी ॥
नूतन सुरति है उनके पासा । सो कडिहार रहत उरदासा ॥
ज्ञान ध्यान सद्गुरु मन प्यारा । सदा हजूर पलकनहिं न्यारा ॥
युक्ति सांझि चरणामृत लेही । युक्तिहि युक्ति बनावे देही ॥
सदा रहे वह पुरुष हजूरा । छिन छिन दर्शपलक नहिं दूरा ॥

चार लाख छानवै हजारा । नवसै बावन निज कडिहारा ॥
इतने कडिहारनिजधरै सिधावै । छिन छिन दर्श पुरुषका पावै ॥
इतनेके शिर छत्र धराई । अर्थ सिंहासन बैठक पाई ॥
हंस सुहल जाइ हजूरी । छ्यानौं लाख औरतेराकरोरी ॥
बावन हजार पांचसे आवै । इतनै हंस शिर चँवर करावै ॥
एक देही एकै हैं मूला । पूरुष हंस एकसम तूला ॥
पुरुष हंस एक सम भाई । सबके शीसपर छत्र तनाई ॥
इतना सुख है पुरुष हजूरा । पहुँचे हंस सद्गुर मत पूरा ॥

साखी-निःतत्त्व भेद यह गुप्त है, पांच तीनसे न्यार ।
निःतत्त्वी जो हंस हैं, जैहैं पुरुष दरबार ॥

धर्मदास वचन चौपाई

सांचे सतगुरुकी बलिहारी । अपनाकरिजिन लीन्ह उबारी ॥
कठिन काल दारुन बड़ होई । यहि संसार लखै ना कोई ॥
विन सतगुरु कोई भेद ना पावै । सतगुरु मिले तो संधि लखावै ॥

साखी-मनका संसय सब मिटा, हम पाया गुरु पूर ।
विना परिचय जो गुरु करै, सो नर मूरख कूर ॥

चौपाई

सुनौ धर्मदास हम तुम्हें बखानी । आदि अन्तकी सुधि तुम जानी ॥
सम्बत पंद्रसै उनहत्तर आवै । सतगुरु चले उड़ीसा जावै ॥
जबलगि वंश करै गुरु आई । तब लगि धरनी धरौं न पाई ॥
जबलगि वंशब्यालिस संसारा । तबलगि नहिं आऊँ पिछारा ॥
वचनवंश हम ब्यालिस भाखा । जगकी मुक्ति बचनकी शाखा ॥

साखी-तीन लोक के बाहिरे, सात सुरतिके पार ।
तहवाँ हंस पहुँचावहूँ, समरथके दरबार ॥

इति ग्रन्थ कबीरबानी समाप्त

## विवेचन

इस ग्रन्थकी एक ही प्रति सम्वत् १८४७ की लिखी हुई है इसकी दूसरी प्रति न होनेसे बहुत स्थानोंमें ज्योंका त्यों छोड़ना पड़ा है और अशुद्धियाँ रह गयी हैं। जब इतने वर्ष पीछेकी लिखी कबीरपंथी ग्रन्थोंकी यह दशा है तब नवीन कबीर पंथियोंकी लिखे ग्रन्थोंकी क्या गति होगी पाठक स्वयम् विचार कर लें ॥

इति

सत्यनाम

सत्यसुकृत, आदि अदली, अजर, अचिन्त, पुरुष,
मुनीन्द्र, करुणामय, कबीर, सुरति योग, संतायन,
धनी धर्मदास, चूरामणिनाम, सुदर्शन नाम,
कुलपति नाम, प्रबोध गुरुबालापीर, केवलनाम,
अमोल नाम, सुरतिसनेही नाम, हक्कनाम,
पाकनाम, प्रकट नाम, धीरज नाम,
उग्र नाम, दया नामकी वंश-
ब्यालीसकी दया

# अथ श्रीबोधसागरे

*

एकोनविंशस्तरंगः

## कर्मबोध

*

कर्म कथा अब कहूँ बखानी । जौन फांस अटके नरप्रानी ॥
चारों खानि कर्म अधिकाई । चहूँ खानी मिलि कर्म दृढ़ाई ॥
कर्महि धरती पवन अकाशा । कर्महि चन्द्र शूर प्रकाशा ॥
कर्महि ब्रह्मा विष्णु महेशा । कर्महिते भयो गौरि गणेशा ॥

सात बार पन्द्रह तिथि साजा । नौ ग्रह ऊपर कर्म बिराजा ॥
कर्महि राम कृष्ण अवतारा । कर्महि रावण कंस संहारा ॥
कर्महिते ले वसुदेव घर आवा । कर्म यशोदा गोद खिलावा ॥
कर्महिते वन गऊ चराई । कर्मते गोपी केलि कराई ॥
कौशल्या तप कर्म जो करिया । कारण कर्म राम औतरिया ॥
कर्महि दशरथ कीन्ह उदासा । कर्महि राम दीन्ह बनवासा ॥
कर्म जाय जब धनुष चढ़ावा । कर्महि जनक सुता सिर नावा ॥
कर्म हरयो सीता कहँ आई । दुख सुख कर्मताहि भुगताई ॥
कर्म रेखते कोई न मुक्ता । लछिमन राम करम फल भुगता ॥
कर्मसागर बांधेउ बन्ध कहिया । कर्महि जल जीवन दुख सहिया ॥
रुद्र राम कर्म कीन्ह लड़ाई । भला मिलाप हनू भेंट चढ़ाई ॥
कर्मरेख नहिं मिटे मिटाई । जीव पपील लंका होय आई ॥
कर्मरेख लंकापति गयो । लंकापति बिभीषण भयो ॥
कर्म रेख सबहीं पर छाजा । कहा राम कह रावण राजा ॥
कर्मरेख सबहीं पर होई । देखो शब्द बिलोय बिलोई ॥
कर्मरेख सागर बँध हीना । बिरला कोई चीन्हे चीन्हा ॥

साखी—कर्म रेख सागर बँध्यो, सौयोजन मर्याद ।
विन अक्षर कोई ना छुटे, अक्षर अगम अगाध ॥

### रमैनी

सागर भव सागर धारा । नहिं कुछ सूझे वार न पारा ॥
तहवाँ बावन अक्षर लेखा । कर्म रेख सबहिन पर देखा ॥
कर्म रेख बंधा सब कोई । खानी बानी देखि बिलोई ॥
वेद कितेब कर्महीं गाया । कर्महिको निःकर्म बताया ॥
सद्गुरु मिले तो भेद बतावें । कर्म अकर्म मध्य दिखलावें ॥
कर्म अकर्म मध्य है सोई । सो निःकर्म अकर्म न होई ॥

अक्षर सागर निर्भर बानी । अक्षर कर्म सबन पर जानी ॥
गोरख भरथरि गोपीचन्दा । कर्म फांस सबही पुनि फन्दा ॥
सौ औ सात चौदह इक्कीसा । ब्रह्माके चौरासी भेसा ॥
कर्म फांस तहवाँ लग राखा । जहाँ लगवेद व्यास कछु भाषा ॥
दश औ द्वादश कर्म बखाना । जिन जाना तिनही पहिचाना ॥
कर्म अकर्म भूल जो करई । गहे मूल सो कर्म न परई ॥
अक्षर सागर मूल भँडारा । अक्षर मूल भेद उजियारा ॥
अक्षर मूल भेद जो जाने । कर्मी होय निःकर्म बखाने ॥

साखी—कबीर—कर्म डोर चारों युग, सुनो सन्त सब दास ।
तत्त्वभेद निस्तत्त्व लहि, जगते रहो उदास ॥

रमैनी

सतयुग तप कीन्हे रघुराजा । कारन कर्म नन्द घर गाजा ॥
एक नारि रघुवर दुख पावा । सोलह सहस गोपी निरमावा ॥
कारन कर्म केलि भवकीन्हा । कुञ्ज कुञ्ज गोपिन सुख दीन्हा ॥
जहँ तहँ गोरस जाय चुरावा । जहँ तहँ कर्म तहाँ ले खावा ॥
कर्म कंस ठीका आयो जबहीं । मारन कृष्ण विचार्‍यो तबहीं ॥
कर्म पूतना भेष बनायो । कर्म पयोधर कृष्ण लगायो ॥
कर्म कारण जो तहाँ सिधारा । कारण कर्म पीव विषधारा ॥
मारि तासु कीन्हीं गति चारा । कर्म फाँस बोर्‍यो संसारा ॥
कर्म इन्द्र बरस्यो दिन साता । कर्म कृष्ण गिरि लीन्यो हाथा ॥
कर्महि मारि विध्वंस जो कीन्हा । कर्म फांस सबही आधीना ॥
कुब्जा कछू कर्म जो कीन्हा । कारन कर्म कृष्णगति दीन्हा ॥
कर्मपताल कालेश्वर नाथा । सांवर अङ्ग भयो तेहि साथा ॥
यज्ञ अश्वमेध करत बलिराजा । कर्मते जाय पताल विराजा ॥
कर्महि वामन रूप बनाया । बलिराजापै दान दिवाया ॥

कर्म अहूठ नापी पग लीन्हा । तीनै पग तीनों पुर कीन्हा ॥
आधा पांव कर्म अधिकारी । बाँ नृपति पातालहिं डारी ॥
जहँ लगि जीव जन्तु उत्पानी । तहँ लगि कर्म राय परवानी ॥
कर्म फाँस ते कोई न छूटे । कर्म फाँस सबहिन घर लूटे ॥

साखी–कर्म फाँस छूटे नहीं, केतौ करो उपाय ।
सद्गुरु मिले तौ ऊबरे, नहीं तो परलय जाय ॥

रमैनी

जो कुछ कर्म जगतमें करई । करि करि कर्मबहुरि भवपरई ॥
एक न होय यज्ञ व्रत ठाना । एक न पाप पुण्य पहँचाना ॥
एक कर्म कुल लीन्ह उठाई । कर्म अकर्म न जाने भाई ॥
एक छापा और तिलक बनावै । पहिरि मेखला साधु कहावै ॥
वैष्णव होय करै षट कर्मा । वेद विचार सदा शुचि धर्मा ॥
कथा पुराण सुनै चितलाई । कर्महिं सुमिरै बहुबिधि भाई ॥
विष्णुसुमरितपबहु विधि कियो। सो निष्कर्मबिष्णु नहिं भयो ॥
कर्मकी डोरि बँधा संसारा । क्यों छूटे उतरे भवपारा ॥
एक अभंग एकादशि करई । तन छूटे वैकुण्ठहि तरई ॥
यह वैकुण्ठ न स्थिर होई । अन्त कर्मगति परलय सोई ॥
करै कर्म वैकुण्ठहि जाई । कर्म घटे भवजलफिरि आई ॥
योगी योग कर्म्मको साधे । किरिया कर्म यवन आराधे ॥
योगी कर्म पवनकी किरिया । भुगतै कर्म्म देहपुनि धरिया ॥
संन्यासी जो बन बन फिरहीं । होय निष्कर्मकर्म फिर परहीं ॥
जीयत दग्ध देहको करई । जटा बढ़ाय ब्यसन परिहरई ॥
कोई नग्न कोई वस्त्र कछोटा । भरमत फिरै सहै पग ढोटा ॥
राजद्वार पावै अवतारा । भुगतै कर्म अकर्म ब्यवहारा ॥
पण्डित जन सब कर्म बखानी । नख शिखकर्म फाँस अरुझानी॥

कर्म धर्मकी युक्ति बतावै । दान पुण्य बहुविधि अरथावै ॥
वस्त्र दान लै जन्म गँवावै । होय ऊँट बहु भार लदावै ॥
एक जो करै बरत अवतारा । होई है सूकर श्वान सियारा ॥
सूकर श्वान होकर्म्मजो भुगता । विन निष्कर्म न होइहै मुकता ॥

साखी

कबीर–बहु बन्धनसे बाँधिया, एक विचारा जीव ।
जीव बेचारा क्या करे, जो न छुड़ावे पीव ॥

रमैनी

शब्द भेद निःशब्द बताओं । करि निःकर्म हंस मुकताओं ॥
निरालम्ब अवलम्ब न जानैं । शब्द निरन्तर आप बखानैं ॥
पाप पुण्यकी छोड़े आशा । कर्म धर्मते रहे उदासा ॥
रहे उदास नाम लौ लाई । तत्त्व भेद निस्तत्त्व समाई ॥
तीरथ व्रतके निकट न जाई । भरम भूतको दई बताई ॥
सुखसम्पतिनहिंबिपति विसारे । काम क्रोध तृष्णा परचारे ॥
क्रिया कर्म आचार विचारे । होय निःकर्म कर्म निर बारे ॥
सो ग्रहै जो निग्रह काया । अभिअन्तरकी मेटे माया ॥
शील स्वभाव शरीर बसावे । अन्तर स्थिर ध्यान लगावै ॥
ब्रह्म अग्नि मनमें परजाले । ताको विष्णु चरण परछाले ॥
गहे तत्त्व निस्तत्त्व बिचारा । काम क्रोधका करे अहारा ॥
सहज योग सो योगी करई । कर्म योग कबहूँ नहिं परई ॥
धन यौवनकी करै न आशा । कामिनि कनकसे रहे उदासा॥
चहुँ दिशि मंसा पवन ककोले । ज्ञान लहर अभ्यन्तर डोले ॥
उनमुनि रहे भेद नहिं कहई । तत्त्व भेद निस्तत्त्वहि लहई ॥
ना कोइ आय अग्नि होय दहई । आप नीर होय नीचा बहई ॥
मन गयन्द गुरुमतसे मारा । गुरु मन लूटे ज्ञान भँडारा ॥

शूरा होय सो सम्मुख जूझै । भोंदू शब्द भेद नहिं बूझै ॥
दुखिया होय रैन दिन रोई । भोगी भोग करै सुख सोई ॥
दुख सुख भोग सोगसम जाने । भली बुरी कछु मन नहिं आने॥
भली बुरीका करे सो त्यागा । निश्चय पावै वह बैरागा ॥
सींगी अछय रैन दिन बाजै । सिद्ध साधु तहँ आसन छाजै॥

साखी–आसन साधे आपमें, आपा डारै खोय ।
कहैं कबीर सो योगी, सहजै निर्मल होय ॥

काल पुरुषने जब सृष्टिकी उत्पत्ति की तब कर्मका जाल बनाया । वे कर्म दो प्रकारके हैं । एक शुभ दूसरा अशुभ । ये दोनों कर्म बड़ी बेड़ी हैं । इन दोनों कर्मोंकी बेड़ीने समस्त सृष्टिको बाँध लिया । जो कोई शुभ कर्म करता है सो सांसारिक धन स्वर्ग वैकुण्ठ इत्यादि सब सुखकी सामग्री पाता है और इस पुण्यका अंतिम फल चार प्रकारकी मुक्ति है, इससे अधिक नहीं । सो सब बनावटी हैं ऋषीश्वरोंने कठिन तपस्या की और योग समाधी तथा पूजादिको उच्च श्रेणीपर पहुँचाया । दाससे स्वामी बन गये तो भी उनका बन्धन न छूटा और आवागमनमें फँसे रहे । काल पुरुषने समस्त वेद और कितावबालों को इन्हीं दोनों कर्मोंमें बाँध लिया । इस कर्मके तीन भेद हुए । कर्म-अकर्म विकर्म। कर्म तो मनुष्यको करना उचित है।अकर्मसे दूर भागना और विकर्मसे मनुष्य अपनेको मुक्त और भाग्यवान बनाता है जो शास्त्रानुसार कर्म ईश्वर निमित्त किया जाता है वह विधि है । दूसरा अकर्म जिससे लोक परलोकमें कहीं सुखकी प्राप्ति नहीं होती है, उसे शास्त्रसे निषेध कहते हैं, यह अकर्म ईश्वरके विरुद्ध है विकर्म उसको कहते हैं जिसके करनेसे कर्मसे छूटे और बन्धनकी पाश टूटे और ज्ञान लाभ हो । पहिले स्वर्ग आदिककी लालच

दिखाकर कर्म करवाते हैं इसके उपरान्त स्वर्ग इत्यादि सुख सबका त्याग है। जिस प्रकार पिता रोगी लड़केको लड्डू दिखाकर औषध देता है, उसी प्रकार स्वर्ग तथा वैकुण्ठादिकी लालच मनुष्योंको दिखाई गई है। फिर भी एक कर्म तीन नामोंसे प्रख्यात हुआ संचित-प्रारब्ध-क्रियमाण। सञ्चित उस कर्मको कहते हैं जो रक्षापूर्वक रखा हुआ हो-अर्थात् सहस्रों जन्मसे बराबर उसके साथ लगा चला आता है। ऋण अदा करनेका समय नहीं मिला और वह ऋण माथे चढ़ा रहा। दूसरा प्रारब्ध कर्म वह है जिसे भाग्य कहते हैं। इसी प्रारब्ध कर्म अनुसार मानुषिक शरीर प्रस्तुत हुआ है। अर्थात् अपने पूर्वकर्मानुसार शरीर बना है। जब यह जीव अपने पूर्व शरीरको छोड़ता है तब अहम् बोलता है। अहम् का अर्थ मैं हूँ। अहं बोलकर दूसरे शरीरमें प्रवेश करता है। चारों खानिके जीवोंकी यही रीति है। जैसे एक प्रकारका कीड़ा होता है। जो वृक्षोंके पत्तोंपर रहता है जब वह एक पत्तेको छोड़कर दूसरेपर जाया चाहता है तब पहले वह अपने अगले पैरोंको पत्तेपर जमा लेता है। जब उसके अगले पैर दूसरे पत्तेपर भली प्रकार जम जाते हैं। तब वह अपने पिछले पैरोंको भी खींचकर दूसरे पत्तेपर जमा लेता है और अगले पत्तेपर भली प्रकार जम कर बैठ जाता है। और पिछले पत्तेसे संबन्ध छोड़ देता है इसी प्रकार सदैव ही इस ( जीव ) का आवागमन हुआ करता है। ब्रह्मासे लेकर सर्वजीवोंमें अहङ्कार भरा हुआ है जिसमें अहङ्कार नहीं उसका आवागमन नहीं अहम् बोलनेसे उसके आवागमन सम्बन्ध बराबर जारी रहता है। वह ब्रह्मा जो पहले अहम् बोला वही ब्रह्मा अनन्त स्वरूप और स्वभावोंमें चारों खानमें समा रहा है। अहम् कर्मोंका आकर्षण है।

जो एक योनिसे खींचकर दूसरीमें डाल देता है। जैसे चुम्बक लोहेको खींच लेता है।

तीसरा क्रियमाण कर्म वह है जो अब कर रहे हैं। यदि यह क्रियमाण कर्म बलवान् होकर शुभ वा अशुभकी ओर झुका तो वह अपना रङ्ग ढङ्ग दिखला देता है। यदि वह सुकर्मकी ओर झुक जावे और सुकर्मकी पूर्णता करले तो वह अपने स्वरूपको प्राप्त करा देता है। यदि अशुभकी ओर झुका तो जड़ योनिमें जा समाता है और नरकके समस्त दुःखों तथा अत्यन्त कष्टोंमें अपनेको डालकर कंकड़ पत्थरकी तरह बेकाम कर देता है, फिर उसको सुपथ नहीं मिलता।

महाकर्ता–महाभोगी–महात्यागी। महाकर्ता उसको कहते हैं कि, जो कर्म करता है और अपनेको कर्ता नहीं मानता।

महाभोगी उसको कहते हैं कि, जो सर्व भोग भोगता है और अपनेको भोगता नहीं मानता।

महात्यागी उसको कहते हैं जो अहंकारको त्याग दे। इस त्यागका गुण तब जाना जाता है जब उसको अन्तर–दृष्टि होती है जबलों इन तीनों बातोंका गुण भलीप्रकार जाना न जावै तबलों वेद और पुस्तक पाठसे कोई लाभ नहीं होगा। अन्तरदृष्टिसे जाना जाता है कि, यह तीनों क्या बात है।

महाकर्ता तो यह तब होता है कि जब यह अन्तरदृष्टिसे भली भांति देखता है, कि मैं कुछ करही नहीं सकता और मैं किसी कार्यका कर्ता नहीं हूँ केवल मैं अपनी मूर्खतावश आपको अपने कार्यका कर्ता समझ रहा हूँ। मैं और यह समस्त संसार कलके सदृश चल रहा है। मेरा और किसीका कोई वश ही नहीं कि कोई काम करे। न मालूम वह कौन है जो मुझको तथा समस्तसंसारको

चला रहा है। जब मैं कुछ करता ही नहीं और न मेरा किया कुछ हो सकता है, ऐसी अवस्थामें यह अपनेको कर्मोंका कर्ता नहीं मानता। जब यह अपनी अन्तरदृष्टिसे भली प्रकार देख लेता है तब फिर यह अन्यान्य ओर ध्यान नहीं देता और जानता है कि जब मैं किसी कार्यका कर्ता ही नहीं तो मैं व्यर्थही अपनेको कर्ता क्यों ठहराऊँ ? तब वह अज्ञानतासे पृथक् होता है। संसारी इसी अज्ञानतामें फँसा रहता है और आपको अपने कर्मका कर्ता समझकर दुःख सुखमें धक्के खाता है। मैं क्यों अहम् बोलता हूँ नहीं जाने मुझे कौन अहम् बोलता है और कौन बोलता है। अतः इससे जाना गया और प्रमाणित हुआ कि मुझको मेरे कार्योंके बन्धन अहम् बोलाते हैं और दूसरा कोई नहीं। जब मैं अपने कर्मोंके बन्धनसे छूट जाऊँगा तब मेरा अहम् बोलना भी छूट जावेगा। जबलों यह आपको करनेवाला मानता है तब-तक यह क्रियामें आपको स्वतन्त्र समझता है। तब यह अन्तर दृष्टिसे भली भांति निगाह कर लेता है कि, मैं अपने कर्मोंका कर्ता नहीं, तब अपने शुभ अशुभ कर्मोंको परमेश्वरको सौंपके और उसके शरणमें होकर उससे सहायता मांगता है और जान लेता है कि, मेरे कार्य मुझको बचाने योग्य नहीं। मैं सत्यगुरुकी शरण हूँ, इसके अतिरिक्त और छुटकारेका कोई उपाय नहीं है। अपनी अज्ञानताके कारण मैं अपने कार्योंका कर्ता आपको जानता था; परंतु आगे अब ऐसा कदापि न करूँगा।

यदि यह स्वतंन्त्र होता तो सब कुछ करलेता। फिर अपनेको दीनता तथा दुर्दशामें कदापि नहीं फँसाता।

एक दिनका वृत्तांत है कि, एक पादरी साहब आकर मेरे पास बैठे और वाद विवाद पर प्रस्तुत हुए। उसने कहा कि

मनुष्य अपने कार्योंमें स्वतंत्र हैं इसपर मैंने उत्तर दिया कि यह बात कदापि नहीं, कर्म स्वतंत्रता किसीको प्राप्त नहीं । सब कलके समान गतिमान् हैं । सुतरां तौरीतमें उत्पत्तिकी पुस्तक देखो जब आदम उत्पन्न हुआ । खुदाने उसको मना किया कि तू यह कार्य कदापि न करना और इस वृक्षके फलको न खाना । आदमने न माना और खाया जिससे वह दुर्दशाग्रस्त हुआ । यदि आदम कर्म करनेमें स्वतंत्र होता तो ऐसा कदापि न होता। फिर आदमके पुत्र काबील और हाबील हुए वे भी ऐसे ही थे। कारण यह है कि, दोनोंने एक दिवस परमेश्वरके समक्ष भेंट चढ़ाई छोटे भाईकी भेंट तो स्वीकृत हुई और काबीलकी अस्वीकृत हुई, इस कारण काबील अत्यन्त क्रुद्ध हुआ, तब परमेश्वरने कहा कि ऐ काबील ? तू काहेको क्रोध करता है यदि तू अच्छे मनसे देता तो क्या तेरी भेंट स्वीकार न की जाती ? परंतु तू अपने भाईपर जय पावेगा। काबीलने अपने भाईपर जय पाई और उसको मार डाला । जब परमेश्वरने उसको पूछा कि तेरा भाई हाबील कहां है । तब उसने उत्तर दिया कि मै नहीं जानता क्या मैं अपने भाईका रखवाला हूं। इस पर खुदाने उत्तर दिया कि तेरे भाईका खून मुझे पुकारता हैं । अब तू हत्यारा तथा दोषी हुआ यह कहकर खुदाने उसको शाप दिया । भलाजी ! यह न्यायकी बात थी कि खुदाने तो स्वयम् कहा कि तू अपने भाई पर जय पावेगा उससे जय पाई और उसको मार डाला । फिर वह दोषी कैसे ठहरा ? यदि अपने भाईको न मारता तो खुदा झूठा होता और मारा तो दोषी हुआ और वह हजूरसे दूर किया गया तथा उसकी सन्तान पापिष्ठी ठहरी ।

ऐसा ही नूहके विषयमें जानना चाहिये कि नूह सिखाते-सिखाते विवश हो गया, किसीने उसका कहना न माना अन्तको बाढ़ आई और समस्त मनुष्य डूब मरे। कोई जीव सिवा उनके कि जो नूहकी नावपर था नहीं बचा। फिर नूहकी शिक्षा तथा खुदा की चौकसी किसी कामकी आयी। वह भी कर्ममें स्वतंत्र ठहरा जब बाढ़से सबको सत्यानाश कर चुका और नूहकी ओर खुदाने ध्यान दिया तब खेद करने और पछताने लगा कि मैंने सबको बाढ़से क्यों नष्ट किया। कारण यह कि मनुष्यों के ध्यान तो बचपनसेही बुरे हैं अब भविष्यमें मैं बाढ़से लोगोंको न मिटाऊँगा। इससे प्रमाणित हुआ कि इस खुदाको भी स्वतंत्रकार्याधिकार प्राप्त नहीं यदि ऐसा होता तो जब वह आदमका पुतला बनाने लगा फिरिश्तोंने मना किया कि आदमका पुतला न बनाओ वे पाप करेंगे फिर पृथ्वी रोई और कहा कि मुझसे मिट्टी मत लो और मनुष्यका पुतला न बनाओ, मनुष्य बड़ा पाप करेंगे पर खुदा साहबने किसीका कहना न माना। अपनी इच्छासे मनुष्यका पुतला बनाया। आगे मनुष्योंके पापोंसे रुष्ट होकर बाढ़ लाकर पछताया आगे फिर मैं कैसे कहूँ कि खुदा साहबको कार्यस्वतंत्रता प्राप्त थी।

हजरत नूहकी उपरांत हजरत इबराहीम अच्छे और पवित्र-खुदा के पैगम्बर हुए। वे भी स्वतंत्र नहीं थे कारण यह कि उनकी शिक्षासे नमरूद बादशाह इत्यादि सभी विरुद्ध होगये।

इबराहीमके उपरांत इसहाकको पैगम्बरी मिली और इसहाककी स्त्री रबका जब गर्भवती हुई उसके पेटमें दो बालक थे और वे दोनों पेटके भीतर परस्पर लड़ते थे-तब रबकाने खुदाके निकट जाकर निवेदन किया कि मेरे पेटके दोनों लड़के आपसमें क्यों

फिसाद करते हैं तब खुदाने कहा कि, बड़ा छोटेकी सेवा करके बड़ाई पावेगा। फिर इसहाकने ज्येष्ठपुत्र ईसूको बरकत देनी चाही पर उस बरकतको छोटा पुत्र याकूब ले गया। इसहाककीयुक्तिने काम नहीं दिया।

देखो मूसाकी पहली पुस्तक २५ बाबका २१-२२-२३ आयत।

इनके उपरान्त हजरत मूसा थे वह भी अपने कार्य्यमें स्वतंत्र नहीं थे। कारण यह कि परमेश्वरने मूसाको मिस्रमें फिरूनके सिखलानेके लिये भेजा और यह भी कह दिया था कि फिरूनके मनको मैं कड़ा करूंगा। वह तेरा कहना न मानेगा। मूसाकी शिक्षा किसी काम न आई।

मूसाके उपरान्त हजरत ईसाने खुदासे बहुत प्रार्थनाकी कि सलीबसे बच जाऊं पर नहीं बचे।

इसके उपरान्त मुहम्मद मुस्तफाने बहुत कुछ बललगाया और रक्तपात किया तो भी सबको मुसलमान कर नहीं सके यह बात सब कहकर और नहीं दिखाकर फिर मैंने पादरी साहबसे कहा कि इन महाशयोंमें तो कोई स्वतन्त्र नहीं ठहरा। कदाचित् आपके नाम अब खुदाई परमाना कार्य स्वतन्त्रताका उतर पड़ा हो तो क्या आश्चर्य है? मेरी बातें सुनकर पादरी महाशय चुप हो रहे और फेर मुखतारीका दावा छोड़ दिया।

केवल कबीर साहबको ही स्वतन्त्रता है दूसरेको नहीं। कारण यह है कि, जब वे मनसे छुटकारा दिलाया चाहते हैं उसको अवश्य छुटाही लेते हैं और जो कुछ करना चाहते हैं करही लेते हैं उनका रोकनेवाला दूसरा नहीं।

जैसा कुल कार्य यह मनुष्य जाग्रत अवस्थामें करता है वैसाही कार्य स्वप्नावस्थामें किया करता है। परन्तु स्वप्नावस्थाके कर्मोंको कोई नहीं कहता कि मैंने किया। यद्यपि जाग्रत अवस्थाके कर्मोंका कर्ता यह स्वयम् बनता है कि यह कर्म मेरे हैं, यद्यपि जाग्रत तथा स्वप्नावस्था दोनों समान हैं। केवल उतनी ही विभिन्नता है कि, जाग्रत देरलों उसके साथ रहती है और स्वप्न थोड़ी देरमें बीत जाता है। यदि स्वप्नके कर्म उसके नहीं तो जाग्रतके कर्म भी उसके नहीं, इस कारण आपको स्वकर्ममें स्वतन्त्र समझना अज्ञानता है। यह स्वतन्त्र कदापि नहीं। ज्ञान की दृष्टिसे यह अहंकार जाता रहता है। इस जीवकी चारों दशा स्वप्नके समान हैं।

दूसरे महाभोगी वह है कि जो समस्त भोगोंको भोगता है और आपको भोगनेवाला नहीं मानता। यह भी बिना अन्तरप्रकाशके जाना नहीं जा सकता कि, भोगनेवाला कौन है और मैं कौन हूँ। यदि मैं भोगनेवाला होता तो मैं जो चाहता सो भोग भोग लेते और भोगोंसे कभी न भागता। कोई भोग ऐसा नहीं है कि जो भोगोंसे अलग जानता है उसके सामने अच्छा और बुरासमस्त भोग समान हैं कारण यह है कि, जब रानी द्रौपदीने श्वपच सुदर्शनके सामने भांति भांतिके स्वादिष्ठ भोजनोंके थाल धरे तब उन्होंने सब खट्टा मीठा और नमकीन एकमे मिलाकर खाना आरम्भ किया। कारण यह कि उनको स्वादोंकी कामना नहीं थी एक साधुको एक मनुष्यने कड़ुई तुम्बेकी तरकारी बनाकर खिला दिया। वह साधू कड़ुई तरकारी विना कुछ कहे सुने खा गया जब पीछे गृहस्वामी खाने लगा तब उसको वह तरकारी विषसम मालूम हुई। वह अपनी स्त्रीको डाटने लगा कि तूने यह विषसमान तरकारी साधूको खिला दी साधूको कितना दुःख हुआ होगा।

उनके मनमें बड़ा भय समाया और वह साधुके पास जाकर उससे क्षमा प्रार्थना करने लगा।

एक साधुको एक गृहस्थ ने खीर खिलाई और चीनीके बदले भूलसे नमक डाल दिया। कारण यह कि, वह नमक चीनीके सदृश था। वह साधु बिना कुछ कहे खा गया उसके भीतर जब नमककी आग लगी तब उस गृहस्थके घरमें आगलगी जब घरमें देखने लगे तब जान पड़ा कि साधुको चीनीके भ्रमसे नमक दे दिया गया। लोगोंने कहा कि, उस साधुके हृदयमें ठण्ढक आवे तबघर की आग भी बुझे। थलीमें कोई सरदार था उसके पास एक वैष्णवसाधु आया और उसने नहा धोकर ठाकुरजी की पूजा की। उस समय उस सरदारने दूध और चीनी साधुके निमित्त मँगवा दी, उस वैष्णवने ठाकुरजीको भोग लगाया। इसके उपरांत जब आप वह दूधपीने लगा तब उस सरदारको याद आया कि, जहां चीनी थी वहां घोड़ेकी दवाईके लिये संखिया भी पीसा था ऐसा न हो कि साधुको संखिया दिया गया हो दौड़के देखा तो संखिया दिया गया था। उस सरदारने पुकारके कहा महाराज! यह दूध मत पीओ इसमें संखिया पड़ गया। तब उस वैष्णवने कहा कि अब तो यह संखिया ठाकुरके भोग लगाया जाचुका है मेरे ठाकुर संखिया पीवें और मैं चीनी पीऊँ? वह वैष्णव दूध तथा संखिया सब कुछ पीगया और चंगा रहा संखियाने उसको किसी प्रकारकी क्षति नहीं पहुँचाई। उसके भीतर भोगता विष्णु था विष्णु उसको देखता था और वह विष्णुको देखता था। आप उस भोगसे अलग रहा।

तिसरे महात्यागी-तब होता है जब देहके अभिमानको छोड़े जबलों देहका अभिमान न छूटे तबलों त्यागी नही। अभिमानही करके यह देह मिलती है और इसीसे स्थित हो रही है। सहस्रों त्यागी हो गये परन्तु देहका अभिमान न छोड़ने से

बन्धनमें रहे बाहरसे तो उन्होंने सब छोड़ दिया, पर भीतरसे छोड़ नहीं सके और न देह अभिमान छूटा। देहका अभिमान छूटा तब जाने कि जब किसी प्रकारकी आपत्ति तथा साहसकी घटनासंघटित हो तब स्थिरता न छूटे और न किसी प्रकारकी घबड़ाहट हो। सुतरां ऋषिमुनिगण उजाड़ तथा वनमें बसते हैं। उनको वहां प्रत्येक प्रकारकी आपत्तियां आ घेरती हैं। शेर, सांप, भेड़िया, रीछ और कानखजूरे इत्यादि नाना-प्रकारकी आपत्तियां दिखाई देती हैं। इस स्थानपर साधु अपने मन को बहुतही दृढ़ रखते हैं। कोई हिंसकजीव फाड़कर खाजावे तो तनिक भी न समझते कि यह मेरी देहहै। सब तपस्वियोंकी ऐसीही अवस्था होती है। जब भीतरी अथवा बाहरी उनको अपनी शरीरकी ओर ध्यान हुआ तब उनका त्याग कुछ नहीं सुतरां सर्व त्यागियोंमें बड़े त्यागी शुकदेवजी थे कि मायाके भय से बारह वर्ष पर्य्यन्त माताके गर्भमें थे। जब बाहर निकले तब उनको त्याग और वैराग्य रहा। उनका हाल बहुतप्रसिद्ध है जब राजा जनकके समीप गये तब उन्होंने एककौतुक दिखाया कि उनके समस्त नगरमें आग लगी और सब कुछ जलने लगा। राजा जनक निर्भय बैठे रहे और शुकदेवजी अपनी तूंबी लँगोटी लेने को दौड़े। तब राजाने कहा कि बैठ, किधर जाता है? तूतो आपको बड़ा त्यागी समझता है अब लँगोटी और तूंबी लेने दौड़ा। मेरे राज्यका समस्त सामान जल रहा है और मैं तनिक भी अधीर नहीं हुआ। तू कैसा त्यागी है। तुझे तो लँगोटी और तूंबीकी चिन्ता लगी है जिसको तूंबी लँगोटीकी चिन्ता नहीं छूटी उसको देहका अभिमान कैसा छूट जावे? अतः जबलों देहका अभिमान न छूटे तबलों महात्यागी कैसे हुआ, यह सब

प्रशंसा तथा गुण कबीर साहबके हैं और दूसरेके नहीं बनारसमें कैसे २ कष्ट मिले परंतु उनका तनिक भी ध्यान नहीं किया औरन मनमें कुछ कष्टमाना महात्याग इसीका नाम है। सहस्रों साधुसन्तोंने अपनेको ईश्वरमें लीन कर दिया तो भी देहका अभिमान और वासना उनके मनमें रही,इस कारण उनका भगवतमें लीन होनाभी काम न आया। जो लोग सत्यगुरुको पहँचानकर भगवतमें लीन होते हैं वे धन्य हैं। उन्हींका भगवतमें लीन होना सफल है।

वेद तीन भागोंमें विभक्त हुआ–कर्म-उपासना-ज्ञान। कर्मोंमें दो भाग हुए एक तो यज्ञ इत्यादि जो सांसारिक अर्थोंके निमित्त करते हैं। दूसरा योग जो अपनी मुक्तिके निमित्त करते हैं। इन कर्मों द्वारा सांसारिक तथा पारलौकिक अभिप्राय सिद्ध होते हैं जिनके जैसे पाप पुण्य होते हैं वैसी ही अवस्थामें वे जाते हैं और वैसा ही उनको भोग मिलता है।

दूसरी उपासना है–सांसारिक लोग उपासना करते हैं और उपासनाके निमित्त विष्णु, राम, कृष्ण, शिव, चण्डी, सूर्य और गणेश आदि देवता ठहराये हैं।

तीसरा ज्ञान-इसकी सात भूमिका हैं और यह सब स्वप्नवत् हैं। इनमें समस्त युक्तियों द्वारा किसीका छुटकारा नहीं हो सकता। इनमें पारखपदकी कुछ सुध नहीं। अतः ये समस्त कर्मकाण्डी और ज्ञानी अपनी अपनी सीमाको पहुँच जाते हैं। तो भी उनको छुटकारेकी राह नहीं मिलती। बिना पारख गुरुके अन्धोंकी तरह टटोलते फिरते हैं। परंतु वे राह नहीं पाते। क्या युक्ति करें कोई तदबीर नहीं सूझती, तब विवश होकर बैठे रहते हैं। जो जो तदबीरें वेदने बताईं उनसे तो कुछ काम न

हुआ और अब दूसरा उपाय कहां पावें, क्या करें। जो कुछ ज्ञान मिला उसीपर सन्तोष कर बैठे आगे कोई पथ वेदों तथा पुस्तकों द्वारा नहीं मिला, किसे पूछे और किसके घर जावें।

मीमांसक और जैन कर्महीको मुक्तिमार्ग समझते हैं। परन्तु यह नहीं जानते कि, यह कर्म कहाँसे उत्पन्न हुआ है और कहाँ तक पहुँचा सकता है। यह विधि निषेध दोनों शाखा निरञ्जन निर्मित हैं। वहां ही तक पहुँचानेका सामर्थ्य रखते हैं। इन कर्मों द्वारा स्वर्ग तथा नरक सब कुछ प्राप्त होता है। जहाँलों कर्मोंकी पहुँच है वहींलों कालपुरुष हस्तक्षेप करता है। कर्मोंका सुविशाल वन है उसमें यह जीव भूलकर अपने घरसे बाहर हो गया है वनहिंसक जन्तुओंसे भरा हुआ है और सूर्य चन्द्र सितारे इत्यादि तनिक भी दिखाई नहीं देते। न कोई सड़क और न पगडण्डी है जो पगडण्डी कहीं है, सो पशुओंकी है मनुष्यकी नहीं। इस कारण इन कर्मोंके वनसे कोई बाहर हो नहीं सकता। कर्म करता है और फिर फिर कर्म करनेके लिये बारम्बार देह धारण करता है। इसको कुछ पता नहीं लगता कि वह कौन कर्म है जिससे मेरे कर्मका बन्धन कटे। वह कर्म जिससे इसका बन्धन कटे केवल स्वसंवेदकी शिक्षा है, उससे तो यह जीव अज्ञान हैं। इन्हीं कर्मोंकरके समस्त योनि ठहराई हैं जैनी जिनका समस्त ध्यान कर्मोंपर है वे आठ प्रकारके कर्म कहते हैं, वे ये हैंः-

१-ज्ञानवर्णी कर्म। २-दशनावर्णी कर्म। ३-वेदनी कर्म। ४-मोहिनी कर्म। ५-नाम कर्म। ६-आयु कर्म। ७-गोता कर्म। ८-अन्तराय कर्म।

अब इन आठों कर्मोका सुविस्तृत विवरण सुनो। आवरण नाम ढक्कनका है। १ ज्ञानवर्णी कर्म अर्थात् ज्ञानका ढांकनेवाला कर्म इसके कारण ज्ञान नहीं होने पाता, यह ज्ञानके ऊपर परदा डाल देता है। इसके कारण ज्ञान जो उत्पन्न होने नहीं पाता सो ज्ञान पांच प्रकारका है।

१–मतिज्ञान। २–श्रुतिज्ञान। ३–अवधिज्ञान। ४–मनप्रजय-ज्ञान। ५–केवल ज्ञान।

मति ज्ञान-मति नाम बुद्धिका है अर्थात् वह ज्ञान जो बुद्धि तथा सोचसे सम्बन्ध रखता है। इस मति ज्ञानमें समस्त संसार की हुनर तथा कारीगरियां संयुक्त हैं। जिसको मतिज्ञान होता है वह कारीगरी और शिल्पकारीमें बड़ा चैतन्य रहता है। जिस किसीको मतिज्ञान आवर्णी कर्म उगता है–उसको गुणोंका पांडित्य प्राप्त नहीं होता।

दूसरा श्रुतिज्ञान है–श्रुतिज्ञान समस्त शास्त्रोंके कण्ठस्थ करनेको कहते हैं कुछ कागज तथा ग्रन्थ इत्यादि देखनेकी आवश्यता न हो सब बातें हृदयमें रहें। शास्त्रद्वारा तीनों कालोंकी बातोंको जानता हो उसको श्रुति केवली अथवा श्रुतिज्ञानी कहते हैं। इस श्रुतिज्ञान को जो कर्म रोकले और न होने दे उसका श्रुतिज्ञान आवर्णी कर्म नाम है।

तीसरा अवधिज्ञान है–अवधिज्ञान उसको कहते हैं जिसके द्वारा लोग मनुष्योंके मनकी बातको जान लेते हैं। समस्त गुप्त बातोंको बतलाते हैं और अन्तर्यामी कहलाते हैं, जो कर्म इस अवधि ज्ञानपर परदाडाले और होने न दे उसको अवधिज्ञानवर्णी कहते हैं।

चौथा मन प्रजय ज्ञान है–मनप्रजय ज्ञान उसको कहते हैं कि जो हृदयकी गतिको जाने। अर्थात् जहां हृदय दौड़े वह सब कुछ

मालूम करले हृदयकी समस्त चाल तथा स्थिरताको बूझ ले जो कोई इस प्रकारकी विद्या रखता हो उसको मन प्रजयज्ञानी जानते हैं। मन प्रजय ज्ञानमें यह गुण है कि, जब जिसको यह ज्ञान उत्पन्न हो जाता है फिर कभी नहीं जाता। मन प्रजयज्ञानी अवश्य-ही केवल ज्ञानका अधिकारी हो जाता है, पूर्वके तीन ज्ञानोंमें तो संदेह रहता है क्योंकि वे होते हैं और जाते भी रहते हैं परंतु मन प्रजयको स्थिरता तथा स्थिति है, मनप्रजय ज्ञान अवधिज्ञानसे बहुत बढ़के है। जो कर्म इस मनप्रजय ज्ञानको छिपा लेता है और नहीं होने देता उसको मनप्रजय आवर्णी कर्म कहते हैं।

पांचवां केवलज्ञान है—यह सबसे बढ़कर है। यह समस्त-ज्ञानोंका राजा है। जैनी ऐसा मानते हैं कि इस केवल ज्ञानसे कोई बात छिपी नहीं रहती। सबसे उच्च श्रेणी ज्ञानकी यही है। जैनके चौबीस तीरथंकर सब केवल ज्ञानी होते हैं उनके अतिरिक्त और कितने दूसरे साधू भी केवल ज्ञान रखते हैं। इस केवल ज्ञानको जो छिपाये रखे और न प्रकाशित होने दे उसका नाम केवल ज्ञानवर्णी कर्म है। दूसरा दशनावर्णी कर्म है—जिसके कारण प्रत्यक्षमें दर्शन नहीं होता और उसके परदेमें अलख करतार रहता है। उसकी चार शाखायें हैं।

तीसरा वेदनी कर्म है—जिसके कारण जीवको दुःख सुख होता है। उसकी दो शाखायें हैं।

चौथा मोहिनी कर्म है—उसकी दो शाखायें हैं।

पांचवां आयु कर्म है—इससे आपदाका अन्दाजा होता है और इसकी चार शाखायें हैं।

छठवें नाम कर्म्म है—इसकी तिरानवे शाखायें हैं। यह नाम कर्म जीव धारियोंकी मूर्ति और स्वरूप बनाता है।

सातवां गोतकर्म है–इस गोत कर्मकी शाखायें हैं। एकसे नीची जगह और दूसरी ऊँची जगह जीव देह धरकर उत्पन्न होता है

आठवां अन्तराय कर्म है–उसकी दो शाखायें हैं। इस अन्तराय कर्म का यह काम है कि जो ज्ञान होनेवाला हो उसको होने दे उसमें विभिन्नता डाल दे आठों कामोंका विवरण मैं ग्रन्थ कबीर भानुप्रकाशमें लिख आया हूँ जो चाहे सो देखले। इन्हीं आठकर्मों से समस्त जीव चार खानि चौरासी लाख योनिमें आवागमन किया करते हैं। कर्मोपासना और ज्ञान भी सविस्तर रूपसे वहीं लिखा है जिससे स्पष्ट प्रगट होता है कि इस जीवका आवागमन कैसे सुकर्म तथा कुकर्मोंसे हुआ करता है। यह समस्तकर्म तो भ्रमरूप हैं। इनसे कदापि छुटकारा नहीं होता। जिसको वेद धर्मके लोक और जैनी केवल ज्ञान कहते हैं सो केवल ज्ञान शुद्ध नहीं है इसमें अन्धकार है इस कारण इन केवल ज्ञानियोंको स्वच्छ प्रकाश नहीं है, जिससे वे लोग मुक्तिकी सुधि नहीं रखते हैं, जीवके कर्म ही उसका स्वरूप बनाते हैं। कर्मोंसे ही इस जीवका आवागमन चारों खानिमें बराबर बना रहता है। सत्यगुरु भेद बतलावें तो आवागमन सम्बन्ध टूटे।

मुसहद्द

तू है करतार किब्रिया बारी। तेरा है हुक्म सब जगह जारी।
तेरी तसबीर सुबुक और भारी। नकशहा सब शिगरफोजंगारी

आलमोंका है सारे काम तुम्हें।
ऐ अमल हाय सद सलाम तुम्हें॥

तूही इनसान हुआ तूही हैवान। तूही रहबर हुआ तूही शैतान॥
जिस्म सदहाव एकही हैं जान। होवे क्योंकरबयां तुह्मारी शान॥

लोक तीनों दिया इनाम तुम्हें ।
ऐ अमलहाय सद सलाम तुम्हें ॥

मालिक व आदमवजिन्नो परी । हबशी हिन्दीवखबर औरतरी ॥
रंगबिरंग ढंग चार खान करे । अदलो इनसाफ साफसाफ करे॥

दिया आलमका इन्तजाम तुम्हें ।
ऐ अमलहाय सद सलाम तुम्हें ॥

बन्दः साहब कहीं किया है जुदा । कहीं बन बैठे आप आद खुदा॥
सारे आलममें तेरी सूतोसदा । तुझसे सारे शरी शाहो गदा ॥

सिजदा करते हैं खासो आम तुम्हें ।
ऐ अमलहाय सद सलाम तुम्हें ॥

तूही बाचून और तुही बचून । सूरत सूत्र तुझीने गूनागून ॥
तूही मकबूल औ तूही मलऊन । तूही खुद रमरहा है सारंजून

दे जमीनों जमा तआम तुम्हें ।
ऐ अमलहाय सद सलाम तुम्हें ॥

तूही जेरीन दरमयां बाला । मनका मनका हुआ तुही माला॥
तूही पैदा किया तूही पाला । तूही सबजा हुआ तुही जाला ॥

कौन पहचान अक्ल खाम तुम्हें ।
ऐ अमलहाय सद सलाम तुम्हें ॥

इन्द्र ब्रह्म व विष्णु भी भूले । अपने अमलोंके झोकमें झूले॥
कहीं पजमुरदा और कहीं फूले । हिर्स हवां घर बघर डोले ॥

दे रहीमो करीम नाम तुम्हें ।
ऐ अमलहाय सद सलाम तुम्हें ॥

आशकोंको दिखाया राहे सवाब । फासिकोंके लिये सहीद अजाब

सारा अलम बना खयालोख्वाब। कोई न देरी ना सारने कशबरआब

सारे जान्दार दे गुलाम तुम्हें।
ऐ अमल हाय सद सलाम तुम्हें॥

सारे जान्दारको फँसा मारा। नहीं इस जीवका रहा चारा॥
करके तदबीर तुमसे सब हारा। जिन्दा करकरके फिर फिर मारा॥

दे मुकद्दर बदस्त दाम तुम्हें।
ऐ अमलहाय सद सलाम तुम्हें॥

तूही बखसिन्दा है अपनो अमाँ। मातहत तेरे सब हैं जिसमो जाँ॥
तुझसे पैदा है वाणीवदो कुराँ। अबिदानो जादिदाने जमाँ॥

याद करते हैं सुबहों शाम तुम्हें।

ऐ अमल हाय सद सलाम तुम्हें॥

सारे मजहब जहाँमें जारी है। पीर मुरशिदकी राहदारी है॥
अर्शफर्शोंकी सब तयारी है। आजिज इसरारसे सब आरी है॥
पेशवा भी किये इनाम तुम्हें। ऐ अमलहाय सदसलाम तुम्हें॥

## कर्मोंके चिह्नके विषयमें

कर्मोंके चिह्न जीवधारियोंके शरीरमें कालपुरुषने बनाया है इस जीवने जैसे कर्म पूर्वजन्ममें किये हैं वैसेही चिह्न उसकी देहमें बने हैं। सब जीवोंके शरीर पर चिन्ह होते हैं परन्तु मनुष्योंके शरीर पर भली भांति स्पष्ट प्रगट होते हैं इसी कारण मनुष्यकी देहहीसे इसके कर्मोंका भली प्रकार हिसाब किताब होता है। मनुष्यके शरीरके चिह्न देखनेसे भलाई बुराई जानी जाती है। जिस समय वीर्य स्त्रीके गर्भमें स्थिर होता है, उसी वीर्यके भीतर जीव होता है और उस जीवके साथ उसके पहलेके किये हुये कर्म

हैं। उसके भाग्यके अनुसार उसका शरीर प्रस्तुत होता है तथा समस्त रंग डीलडौल पूर्वकर्मानुसार ही होता है। जब वह माताके गर्भसे निकलता है तब उसके पूर्व जन्मके कर्मोंके चिन्ह उसके शरीरके ऊपर होते हैं। पांच वरषके भीतर चिन्ह स्पष्ट प्रकट नहीं होते जैसे जैसे यह बड़ा होता जाता है वैसेही वैसे इसके पूर्व कर्मके चिन्ह दिखाई देते जाते हैं। तिल और मस्सा-इत्यादिभी पूर्वकर्मानुसारही प्रगट होते हैं और बहुतेरे चिन्ह छिपे रहते हैं। शिरसे लेकर पैरतक सुकर्म तथा दुष्कर्मके चिन्ह भरे हुये हैं। कहीं दुर्भाग्यके तो कहीं सौभाग्यके चिन्ह होते हैं। यदि एक स्थानपर दुर्भाग्य और दूसरे स्थानपर सौभाग्य एक ही बात पर चिन्ह होवे तब उसका मध्यम फल होता है। जो लोग सामुद्रिक जानते हैं उनको यह बात मालूम होती हैं। सामुद्रिक विद्या अत्यन्त कठिन है। जो सामुद्रिकमें प्रवीण हो वह मनुष्यका आकार देखकर सब कुछ कह सकता है।

कबीर साहबने इस सामुद्रिक विषयमें बहुत कुछ कहा है कर्मोंके चिन्ह देखकर सामुद्रिकका ज्ञाता सब कुछ कह सकता है उदाहरण युनान देशका महातत्त्वज्ञानी सुकरात (Socraties) एक पाठशालामें अपने शिष्यको पढ़ा रहा था उस पाठशाला-में एक सामुद्रिक जाननेवाला आगया। जब सुकरातके शिष्योंने जान लिया कि यह पुरुष इस प्रकारकी विद्या रखता है, तब उनको वे अपने उस्तादके निकट ले गये और कहा कि, इस पुरुषके दोष और अवगुण कहो। वह सामुद्रिक जाननेवाला इस बातको नहीं जानता था कि वह हकीम सुकरात है। उस

---

१ देखो पुस्तक स्वास गुंजार।

समय उस सामुद्रिकीने सुकरातकी देहके समस्त चिह्न देखे और पहचानकर बोला कि यह मनुष्य बड़ा पाजी, दुष्ट व्यभिचारी, झूठा ठग, दगाबाज और दुष्कर्मी है, यह बातें सुनकर सुकरातके शिष्यों ने उसके ठट्ठे उड़ाये और हँसते हँसते बोले कि यह मनुष्य झूठा है तब सुकरात जो स्वयं सामुद्रिक विद्या जानता था कहने लगा कि तुम लोग इसको झूठा मत समझो। यह मनुष्य जो कहता है वह सत्य कहता है। उसमें कोई सन्देह नहीं कारण कि, उसने जो कुछ कहा उन सब बुराइयोंके चिह्न मेरे शरीरमें परिलक्षित हैं मेरे शरीरमें वे सब चिह्न ज्योंके त्यों बने हुए हैं। मेरा स्वभाव वैसाही था परंतु मैंने अपनी विद्या और योग्यतासे अपनी वासना-ओंको भलीप्रकार दमन किया है, अपने हृदयको दुष्कर्मोंकी ओर हिलने नहीं दिया और भलीप्रकार दृढ कर लिया जिससे तनिकभी हलचल न हो ऐसी वासना दमन किया है कि वे मुरदेकी तरह होगई हैं। परंतु ये चिह्न जली हुई रस्सीकी ऐठनके समान हैं तब सुकरातके शिष्योंको निश्चय हुआ कि, हमारा उस्ताद सत्य कहता है इस प्रकार पुरुषार्थ प्रारब्ध पर जय पाता है। मनुष्यके अति-रिक्त कितनेही पशुओंमें भी यह चिह्न देखे जाते हैं जैसे कि हाथी, घोड़ा, बैल इत्यादिमें जो लोग उनको मोल लेते हैं। उनके भले बुरे चिन्होंको पहचान कर दुर्भाग्य तथा सौभाग्य जान लेते हैं। उनके कर्मोंके चिन्ह साधारणतः जड़ स्थावर पदार्थ पर प्रगट नहीं होते गुप्त रहते हैं, परंतु कभी कभी किसी चिह्नसे उनके पूर्वजन्मोंका चिह्न प्रगट होता है और सर्व साधारण देखकर जान लेते हैं। सुतरां लगभग पैंतालीस वर्ष होते हैं जब मैं एक बस्ती चुनारगढ़में जो काशीके समीप है गया। वहां पर्वतपर जाके मैंने एक प्रकारका वृक्ष देखा। उस वृक्षके जड़से लेकर डालियों पर्यन्त नागरी अक्षरोंमें राम राम लिखा था। वहां इस प्रकारके

अनेक वृक्ष थे। समस्त वृक्षोंकी यही दशा थी कि सबमें राम राम लिखा हुआ था। जब सर्व वृक्षोंकी यही दशा देखी तब भली भांति दृष्टि दौड़ाई जड़से ऊपर पर्यंत समानही देख पड़ा। तब अनुमान किया कि इन वृक्षों पर कोई आकर लिख गया होगा और इन वृक्षोंमेंसे एक वृक्षकी छाल हटाकर देखा तो छालके भीतर भी वही राम राम सुन्दरताके साथ लिखा हुआ था। तब निश्चय होगया कि यह किसी मनुष्यके हाथों का लिखा हुआ नहीं बरन् प्राकृतिक लिखावट है और उसकी उत्पत्तिकालसेही वह गुण उसमें आगया है उन वृक्षोंकी यह दशा देखकर मै गाँवमें गया लोगोंसे पूछा कि इस वृक्षका क्या नाम है तब लोगोंने कहा कि इसे रामनामी वृक्ष बोलेते हैं। उस वृक्षकी जड़में जो अक्षर थे उनकी स्याही बहुत काली थी और जैसे जैसे वे ऊपर जाते थे वैसेही वैसे स्याही फीकी पड़ती जाती थी। पतली डालोंकी स्याही बड़ी फीकी थी। परंतु पत्तोंके नामतो अत्यन्त फीकी स्याही में होंगे कि वे दिखाई भी न देते थे। उस वृक्षका वह रंग ढंग देखकर मैंने जाना कि, पूर्वकालका यह कोई भक्त है और किसी दोषवश वृक्ष होगया है।

उस समय यमलार्जुन कुबेरके पुत्र याद आये जो नारद मुनिके शापसे दोनों वृक्ष हो गये थे कृष्णजीने उनका उद्धार किया उस वृक्षकी अवस्थासे उन्हें छुड़ाकर उनको यथार्थ स्वरूप प्रदान किया। इसी प्रकार गौतम ऋषिकी स्त्री ( अहल्या ) गौतमके शापसे पत्थर होगयी थी। श्रीरामचन्द्रजीकी कृपासे अपनी पूर्वावस्थामें प्राप्त हुई इसी प्रकार सर्व जीव कर्मके बन्धनसे पड़े हैं जड़ और चैतन्यमें सर्व फँसे हुए हैं और किसी योग्ययत्नसे कदापि नहीं छूटते उलटा दिन प्रतिदिन अधिक फँसते जाते हैं।

इस प्रकार सर्व जीव बन्धनमें पड़े और कर्मकी फाँसी सब जीवोंको लगी। इससे छूटना असम्भव हुआ। सहस्रों युक्तियां करता है परंतु प्रतिदिन बँधा जाता है। यह तीन लोक भवसागर ( उत्पत्तिसागर ) कर्मने बनाया है, कर्म-मन ब्रह्मा-काल पुरुष इत्यादि यह सब नाम इसीके हैं। इसी कर्मने यह भवसागर बनाया है और यही कर्म इस पर अधिकार कर रहा है, ब्रह्मांड और पिण्ड दोनोंकी स्थिति कर्मसे है। अनगिनती ब्रह्माण्ड हैं जिनकी सीमा नहीं। यह ब्रह्माण्ड तथा पिण्ड दोनों अनगिनती नाना प्रकारके जीवोंसे परिपूर्ण है। जीवोंका अनगिननी स्वरूप तथा स्वभाव है कि जिनका कुछ विवरण हो नहीं सकता। किसीका वय लाखों वर्षका है और कोई ऐसे हैं कि एक बार स्वांसके आने जानेमें बहुत बार उत्पन्न होते और मर जाते हैं। कोई गरम हैं कोई अत्यन्त ठण्ढे हैं ये सर्व जीव वासनासे भरे हुये हैं इस भवसागरमें पड़े गोता खाया करते हैं। कभी स्वर्ग/ कभी नरक और कभी मृत्युलोकमें रहते हैं। इस चौरासी लाख योनिके जीवोंको सुख नहीं मिलता सदैव दुःखी सुखी हुआ करते हैं। चारों खानिके जीवोंमें कोई न सुखी और न सन्तुष्ट है कर्मोंके बन्धनसे सदैव इनका आवागमन हुआ करता है। यह भवसागर पशुओंसे बसा हुआ है इसमें मनुष्य कोई नहीं और जो मनुष्य हैं उनके काम क्रोध लोभ आदि वासना नहीं जबलों अपनेको वासनाओंसे पृथक् न करे तबलों मनुष्यताके योग्य न होगा। जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति तुरिया यह चारों अवस्था मनमें स्थिर किया है। जबलों कलुषित कार्योंसे पृथक् न हो तबलों प्रकाशका मार्ग न

देखेगा। इस कारण वासनाओंके आनन्दसे दूर भागना चाहिये। हंस वही है कि, जो भवसागरके दूसरे जीवोंको कालके जालमें फँसा देखकर बुद्धिमानीसे दूर भाग जावे। जबलों मनुष्य अपने को जाग्रत अवस्थामें न अधिकृत करे तबलों मनुष्यता प्राप्त न करेगा। इस जीवको वासनासे नष्ट करके भवसागरमें बाँध रखा है। समस्त बुराई तथा बन्धनकी जड़ यही वासना है। इस मनके पांच अहंकार हैं इन्हीं पांचोंमें स्वामी तथा सेवक सभी फँसे हुये हैं।

इति कर्मबोधे एकोनविंशस्तरंगः

---

श्रीः

सत्य

# अथ श्रीअमरमूल प्रारंभः

भारतपथिक कबीरपंथी

स्वामी श्रीयुगलानन्द द्वारा संशोधित

★

मुद्रक व प्रकाशक-

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,

अध्यक्ष-"लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-प्रेस,

कल्याण-बम्बई.

सत्यनाम



श्री कबीर साहिब

सत्यनाम

सत्यसुकृत, आदि अदली, अजर, अचिन्त, पुरुष,
मुनीन्द्र, करुणामय, कबीर, सुरति योग, संतायन,
धनी धर्मदास, चूरामणिनाम, सुदर्शन नाम,
कुलपति नाम, प्रबोध गुरुबालापीर, केवलनाम,
अमोल नाम, सुरतिसनेही नाम, हक्कनाम,
पाकनाम, प्रकट नाम, धीरज नाम,
उग्र नाम, दया नामकी वंश-
व्यालीसकी दया

# अथ श्रीबोधसागरे

*

## विंशस्तरंगः

## अथ श्रीअमरमूल प्रारम्भः

*

### धर्मदास वचन साखी

धर्मदास बिन्ती करें, सुन गुरु कृपानिधान ।
जरा मरन दुख मेटके, दीजे पद निर्वान ॥
मरन काल त्रयलोकमें, अमर न दीखा कोय ।
यह संशय निश दिन लगो, जीते ताहि विगोय ॥

सोरठा–हे प्रभु दीनदयाल, जक्त जीव अति दुखित है।
हरहु वेग उर साल, करहु कृपा निज दास कहँ ॥

सद्‌गुरु वचन–चौपाई

धर्मदास तुम मुक्ति अधीना। सो तब कथा सुनहु परवीना ॥
जरा मरन जिवको मिटजाई। पुरुष नाम गहै चितलाई ॥
अम्मर काया तबहीं पावे। अमर शब्द घट मांहि समावे॥
ताकी महिमा और न जानी। अमर मूलमें कही बखानी ॥
अमर मूल है सबते सारा। अमर मूलका कहौं विचारा ॥

साखी–अमर मूल निज ग्रंथ है, कहैं कबीर बिचार।
अमर मूल जाने बिना, बूड़ा सब संसार ॥

चौपाई

अमर मूल जानौ धर्मदासू। ताकर भेद कहौं परकासू ॥
अमर नाम कब्बीर कहाई। अक्षर बिन बूड़ी दुनियांई ॥

धर्मदास वचन–चौपाई

धर्मदास विन्ती अनुसारी। सुनहु गुरू अपराध विसारी ॥
अमर भेद साहिब कह दीजे। तृषा बुझाय अमीरस पीजे ॥
बन्दी छोड़ मुक्तिके दाता। अमर मूल कहिये विख्याता ॥
संधि भेद कहिये निर्वारी। यहै ग्रंथ है बहुत अपारी ॥
भिन्न भिन्न सब मोहि बताई। जिहिंते मनकी संशय जाई ॥
प्रेम प्रीती तुमही सो लागी। वचन सुधा सुन हो अनुरागी॥
अमृत नाम कबीर है सारा। पाऊँ ताहि होय निस्तारा ॥

सद्‌गुरु वचन–चौपाई

तब सतगुरु अस कहे बिचारी। तुमसों ज्ञान कहों अति भारी॥
प्रथमहि सुनो पाकर लेखा। तिहि पीछे नरिअरका लेखा ॥
तव प्रसाद मैं कहों विचारी। इतनी बातमें जीव उबारी ॥

शब्द विदेह भयो उच्चारा। तिहिं पीछे त्रैलोक पसारा ॥
शब्दहि नाम लोक है भाई। निःअक्षर में रहै समाई ॥
निःअक्षर की परिचय होई। तब सतलोक पहुँचे है सोई ॥
जीवत लोक बैठ पुन जाई। सार शब्द महँ रहै समाई ॥
अमर शब्दकी होय चिन्हारी। अम्बू द्वीप ताही बैठारी ॥
अम्बू द्वीप लोक कर नामा। शोभा कहा कहौं निजधामा ॥
अवर्ण रूप वर्णों नहिं जाई। धर्मदास सुनियो चितलाई ॥
षोडश भान हंस को रूपा। पुरुषहि महिमा अमृत अनूपा ॥
अमर शब्द सों प्राणी भयऊ। वही शब्द सों लोकहि गयऊ ॥
पान परवाना शब्द है सारा। एही मूल सों हंस उबारा ॥
अकह नाम अक्षर है भाई। तुम निःअक्षर रहौ समाई ॥
निःअक्षर को करै निबेरा। कहैं कबीर सोई जन मेरा ॥

धर्मदास वचन–चौपाई

निःअक्षर गुरु मोहि बताई। जाते हंसलोकमें जाई ॥
लोक प्रतीति करौं मैं कैसे। कहो विचार चित आवै तैसे ॥
तुम प्रभु निर्गुण भाख सुनावा। अब कहिये सर्गुण परभावा ॥

सद्गुरु वचन–चौपाई

धर्मदास तुम मतिके आगर। सार शब्द कहियो सुखसागर ॥
हंसा सज्जन परम सनेही। कहियो ताहि परम पद तेही ॥
धर्मदास सो शिष्य तुम्हारा। सार शब्दको कहो सम्हारा ॥
तुम्हरे वंश कहिये उपदेशा। ज्ञानी होय तेहि कहो संदेशा ॥

साखी–मूरख सों जिन खोलिहौ, कहै कबीर विचार ।
ज्ञानी सों न दुराइ हौ, सुनो सत्त मत सार ॥

चौपाई

ज्ञानी होय जे मतिके धीरा । तहीं समाय वस्तु गम्भीरा ॥
धर्मदास सुनियो चितलाई । लोक प्रचय अब देउँ बताई ॥
निर्णय नाम निःअक्षर सारा । सर्गुण सकल कीन्ह विस्तारा ॥
निर्गुण सर्गुण बूझे कोई । सार शब्दमें रहै समोई ॥
अमर मूलका करे विचारा । धर्मदास सो शिष्य हमारा ॥
और ग्रन्थ बहुत मैं भाखा । अमर मूलकी है सब शाखा ॥
शाखा पत्र सबै लपटाना । अमर मूल काहू नहिं जाना ॥
अमर मूल धर्मनि सुन लेहू । यही सँदेश हंसन कहि देहू ॥
यह संतन को मत है भाई । जातें आवागवन नशाई ॥
सोई जीव उतर है पारा । नातर बूड़ मुआ संसारा ॥

साखी–ज्ञानी होय सों मानहीं, बूझे शब्द हमार ।
कहे कबीर सो बाचि है, और सकल यमधार ॥

धर्मदास वचन–चौपाई

पावन भेद अब कहो बुझाई । तामहिं जक्त रह्यो अरुझाई ॥
नीर भेद मोहिं कहो बिचारी । बन्दी छोड़ जाउं बलिहारी ॥

सद्गुरु वचन–चौपाई

नीर पवन का भाखों लेखा । सुकृत घटमें करौ विवेका ॥
हम टकसार ग्रन्थ यक भाखा । नीर पवन ताही महँ राखा ॥
एही माहिं रहे लिपटाई । नीर पवन महँ रहे भुलाई ॥

साखी–नीर पवन की उत्पति, कहें कबीर विचार ।
जो निज शब्द समावही, सोई हंस हमार ॥

चौपाई

सार शब्द मैं कीन्ह नवेरा । नहिं माने सो जमको चेरा ॥
गर्भ बास जन्म सो धरई । जो यह लेखा बाहर परई ॥

छत्तिस नीर पचासी पवना । तासों रची सकल ही भवना॥
यह हो भेद कालको दीन्हा । नाम जो एक गुप्त हम कीन्हा॥
नाम भेद जो पावे सांचा । सोई जीव काल सौं बांचा ॥

साखी–सार शब्द जो जानही, सो जैहै भव गीत ।
नातो जमपुर जायँगे, कठिन काल विपरीत ॥

चौपाई

गोरख पवन साध मर गयऊ । नाम प्रचय अजहूँ नहिं भयऊ॥
ब्यास देव ज्योतिषहि विचारा । लगन सोधकर घरी सम्हारा ॥
नामहि सार चित्त नहिं दीन्हा । लग्न मुहूरत सब गहि लीन्हा॥

साखी–लग्न मुहूरत साधिया, कर्म का भीत बनाय ।
भर्म टरै सद्‌गुरु मिलें, तबहीं लोकहि जाय ॥

चौपाई

यहै भर्म तब छूटै भाई । सतगुरु शब्द गहे चित लाई॥
नाम पान मैं कहौं बिचारी । जातें छूटै भर्म किबारी ॥
मोह नसे सत चौकी होई । तबहि नाम कहँ पावै सोई ॥
ताते पान प्रवाना भाखा । भक्ति ज्ञान ताकर है साखा ॥
बिना नाम नहिं उतरे पारा । कैसे साध कहावे सारा ॥
पढ़ पढ़ विद्या वेद पुराना । नाम विना नहिं होय प्रमाना॥
चारहि गुरु जक्तमहँ कीन्हा । तिनके हाथ मुक्ति हमदीन्हा ॥
वे हंसन कहे लोक पठावें । भवसागर महँ बहुरि न आवें ॥

साखी–चार गुरु संसारमें, धर्मदास बड़ अश ।
मुक्ति राज मैं दीन्हऊँ, अटल ब्यालिसहि वंश॥

चौपाई

धर्मदास तुम मतके धीरा । तातें दीन्ह मुक्ति कों वीरा ॥
तुमतैं जीव उतर है पारा । दीन्हा सौंप जक्त को भारा ॥
राय बकेजी चतुर्भुज राजा । सहतेजी गुरु तहां बिराजा ॥

साखी–राय बंकेजी चतुर्भुज, सहते जी हैरान ।
येहि छुड़ाय हरेक हीं, शब्द देहिं पहिचान ॥

चौपाई

यही छुड़ाय काल सों हंसा । शब्दहि दै कर हैं निःशंसा ॥
तुम धर्मदास ब्यालिसहि वंशा । ये निज आंहि पुरुषके अंशा॥
इन कहिये सौंप दीन्ह जिवभारा । सब जीवनको करें उबारा ॥
इनही छोड़ अन्त चित लावै । जन्म जन्म सो भटका खावै॥
बंश ब्यालिस तुम्हरे सारा । और सकल सब छूठ पसारा ॥

साखी–नाम भेद जो जानही, सोई वंश हमार ।
नातर दुनियां बहुत ही, बूड़ मुआ संसार ॥

चौपाई

धर्मदास मैं कहों बिचारी । यह विधि निबहै यह संसारी॥
काल कठिन है बहुत अपारा । जिन यह सृष्टि कीन्ह संहारा॥
ता कहँ कोइ न जाने भाई । कालहि सुमरण करहिं बनाई ॥
काल दुःख दे सबहि रुवावे । शब्द होय तहँ माथ नवावे ॥
नाम एक गुप्त है अमोला । सो धर्मनि मैं तुमसे खोला ॥
जो यह नाम को करै सम्हारा । सो भवसागर उतरै पारा ॥
तुम कहँ दीन्ह शब्द उपदेशा । सो हंसन कहँ कहौ सँदेशा ॥
ज्ञान प्रकाश जाहि घट होई । जीवन मुक्ति पावे जन सोई ॥

धर्मदास वचन–चौपाई

धर्मदास कहें सुनिय गुसांई । जीवन मुक्ति कहो समुझाई ॥
जीवन मुक्ति कहौ किमि जाना । लोक वेद कैसे पहिचाना ॥
सो मोसों यह कहिये भेदा । जिहिंतें मनकी संशय छेदा ॥

सद्गुरु वचन–चौपाई

कहैं कबीर सुनो धर्मदासू । वह निज भेद कहौं तुम पासू ॥
उग्र ज्ञान जाके घट होई । मुक्ति भेद कहँ पावै सोई ॥

अब मैं कहौं ज्ञान उपदेशा । तुम अपने घट करौ प्रवेशा ॥
मुक्ति नाम निःसंशय होई । अमर नाम जब सुर्त समोई ॥
जहँलग कहि जिभ्या कर गाया । तहँ लग जानौं सो सब माया ॥
अकह नाम कहा नहिं जाई । घट २ व्याप्त निरंतर आई ॥
नाद शब्द जबहीं उच्चारा । तासौं अक्षर भयो बिस्तारा ॥
अक्षर हीते उपजी माया । संशय भई सबनकी काया ॥
तब ही शब्द सुर्त मन लाया । मन थिर भए नहीं है माया ॥
स्थिर घट मन लहर समानी । मुक्तिरूप तबही पहिचानी ॥
सो निःकर्मी जीव हमारा । कर्म काट भव उतरै पारा ॥
जो यह गहै शब्द मन लाई । ताकर आवागमन नसाई ॥
सीखै पढ़ै काम नहिं आवै । कर्मी जीव मुक्ति नहिं पावै ॥
ज्ञान प्रकाश जाहि घट होई । ताके हृदय मोह नहिं कोई ॥
जैसे सूरज बादल रूँधा । ऐसे मोह ज्ञान कहँ मूँदा ॥
जब लग मोह न छूटे भाई । तबलग नाम न हृदय समाई ॥
जबलग मोह रहै तन बासा । तबलग नहीं ज्ञान प्रकाशा ॥
जन्म जन्म कर भक्त जो होई । तबहि नाम कहँ पावै सोई ॥
कोटिन जन्म भक्ति जिन कीन्हा । अमर मूल तबही पर चीन्हा ॥
अमर मूल कर पावे भेदा । कहैं कबीर सो हंस अछेदा ॥

धर्मदास वचन—चौपाई

धर्मदास बिनती अनुसारी । सद्गुरु वचन जाऊँ बलिहारी ॥
जिहि विधिमममन होय अछेदा । सो समरथ कहि दीजे भेदा ॥
जो मोहे कहो पान परवाना । नरियर भेद कहो सहिदाना ॥
कहाँ ते भयो पान परवाना । कहवाँ ते नरियर उतपाना ॥

सतगुरु वचन

अमर मूल सों पान बनावा । वेली बीज नहीं निर्मावा ॥
हतो न बेल बीज तिहि ठाईं । शब्द माहि बेली निर्माई ॥

उपजो तबै पान परवाना। जाते हंस होय निर्वाना ॥
नरियर आहि धर्मको माथा। सो मैं दीन्ह तुम्हारे हाथा ॥
जीवके बदले नरियर दीन्हा। हंस छुड़ाय धर्म सो लीन्हा ॥
नारियर पान प्रसादकी जोरी। सार शब्द सो नरियर मोरी ॥
जिन नरियरको पाय प्रसादा। जन्म मरणका पाप नसादा ॥
जे जीव पायो पान प्रवाना। देह छोड़ सतलोक पयाना ॥
काल दगा तबही मिटजाई। सत्यलोक महँ जाय समाई ॥
ऐसी भक्ति जीव जो करई। भक्ति बिना सो नहिं निस्तरई ॥

धर्मदास वचन

धर्मदास बिन्ती अनुसारी। हे सतगुरु तुम्हरी बलिहारी ॥
नरियर पान प्रसाद बतावा। ताकर भेद नाहिं हम पावा ॥
सोई भेद मोहे देहु बताई। जिहिते मन संशय मिटजाई ॥

सतगुरु वचन

धर्मदास तुम सुनो सुजाना। नरियर भेद पान परवाना ॥
धर्मदास जब सेवा लाई। तबकी कथा कहौं समुझाई ॥
जब तुम सुनो धर्मकी आदी। तब मिटि है जिवकी बकवादी ॥
सेवा बसहि पुरुष तब भयऊ। तीन लोग भवसागर दयऊ ॥
मानसरोवर बैठक दीन्हा। कामिनि देख बहुत सुख कीन्हा ॥
धर्मराज कामिन कहँ ग्रासा। तबही पुरुष श्राप परकाशा ॥
तीनलोक जिव करौ अहारा। तबही भरि है उद्र तुम्हारा ॥
तीनलोक महँ जीव जो होई। धर्मराय कहँ आवैं सोई ॥
ताते नरियर बदला दीन्हा। जीव छुड़ाय कालसौ लीन्हा ॥
भक्ति प्रवान कहेउ समुझाई। बिना भक्ति नहिं काल पराई ॥
नरियर पान शब्द है नौका। भक्ति प्रवान कहेउ तहँ चौका ॥

भक्ति प्रवान कहौ समुझाई । कवन भक्ति सों जीव मुक्ताई ॥
तुम प्रभु हौ हंसनके नायक । पुरुष पुरातन जीवहित लायक॥
भक्ति अँग मोहे देव बताई । तिहिं गहि हंसा लोक सिधाई ॥

सद्गुरु वचन

धर्मदास सुन भक्ति विचारा । जासों उतर जाय भव पारा ॥
प्रथमहि पान प्रवाना पावै । साधनकी सेवा मन लावै ॥
सार शब्द घट रहे समोई । अक्षर भेद पावै जन कोई ॥
अमर वस्तु गुप्त हम राखा । ज्ञानी होय तेहि सों भाखा ॥
शब्द रूप निःअक्षर जानो । सो हंसा सत लोक पयानो ॥
इतना ज्ञान जाहि घट होई । अमर मूलको जानै सोई ॥

छन्द–ज्ञान पूरन होय जा घट पान नरिअर भक्ति हो ।
बिन ज्ञान नहिं भेद पावैं केते पढ़ गुण शक्ति हो ॥
अमरमूल यह ग्रन्थ धर्मनि सुनियो चित्त लगायकै।
जन्म २ को पाप नासै अमरलोक सिधायकै ॥

सोरठा–सुन धर्मदास सुजान, किहिं विधि साधु कहावई ।
कहैं कबीर बखान, अमरमूल जाने बिना ॥

इति श्रीअमरमूल ग्रन्थ प्रथम विश्राम

---

ज्ञान भक्ति वर्णन

धर्मदास वचन चौपाई

धर्मदास कहैं सुनो गुसांई । जीवन मुक्ति सो मोहे बताई ॥
नाम अमोल तत्त्व अति भारी । दुविधा माहिं जीव संचारी ॥
यह संशय मोहे निसदिन व्यापे । हरहु बेग गुरु यह संतापे ॥

तुम सतगुरु घर बैठे तारा । आवागमन मोरे निर्बारा ॥
मन अरु जीव भेद बतलाओ । अबजिनमोसन अन्तर लाओ ॥
समझो तबै जीव मुक्ताऊँ । वही डोर गहलोक पठाऊँ ॥

सद्गुरु वचन

पावन पचासी सकल पसारा । जीव पवनसों आहि निसारा ॥
ब्रह्म रूप सब मांहिं समाई । सूक्ष्म रूप जीव दरसाई ॥
दसवां भाग राई कर जाना । आतम रूपी देह समाना ॥
अरु योगिनमें बरते भाऊ । मानस देहमें मुक्ति प्रभाऊ ॥
पांच तत्त्व दस इन्द्री संगा । प्रकृति पचीस कहेउ प्रसंगा ॥
यह प्रमान मन करे बखाना । जीव ब्रह्मसों भये उतपाना ॥,
मन करता यह देह समाना । सूक्ष्म रूप नाहिं पहिचाना ॥
अंक चीन्ह स्थिर होये सोई । ताकी आवागमन न होई ॥
ताकौ बरन भेद जब पावे । मुक्ति होय जग बहुरि न आवे ॥
चौरासी कब बन्धन छूटे । काल जंजाल ताहि नहिं लूटे ॥
मुक्ति भेद कोइ बिरले जाना । काल फांस जग सब लपटाना ॥
अमर मूल है मुक्ति पसारा । ताकौ संतो करौ विचारा ॥
आतम ब्रह्म एक है भाई । परमातम मिल ब्रह्म कहाई ॥
ज्यों जलमधि सों लहरि उगाई । तिमि परमातम आतम आई ॥
जिमि किसान चिनगी संचारा । इमि जिव भयउ ब्रह्म विस्तारा ॥
जिमि कंचन आभूषण कीन्हा । ऐसे जीव ब्रह्म कहँ चीन्हा ॥
उभै अंश दीपक इक फूटैं । जीव ब्रह्म संग न छूटैं ॥
जिमिरविज्योतिकिरणपरकाशा । ऐसे ब्रह्म कर मोहिं जिवबासा ॥
यहि विधि ब्रह्म जींवहिं गाई । समझे तबही एक होजाई ॥
शिव शक्ती एकहिं मतकीन्हा । तारक भेदको बिरले चीन्हा ॥
जे जाना ते मुक्ति समाना । प्रेम भाव सद्गुरु पहिचाना ॥

साखी–जिन जाना निज प्रेम कहँ, सोई जन परवान ।
तासों कहिये सूरमा, कहैं कबीर बखान ॥

चौपाई

केवल ज्ञान पाय है सोई । जिहि पर कृपा गुरुकी होई ॥
केवल ज्ञान प्रगट समझाऊँ । भिन्न २ कर तोहि लखाऊँ ॥
प्रथमहि सुनो ज्ञान कर भेदा । निर्मोही होय हंस अछेदा ॥
सुर्तवंत अक्षर पहिचाना । और सकल जग मिथ्या जाना ॥
सुखदाई सबही कहँ भावै । बाल रूप होय अग्नि बुझावै ॥
समदृष्टी एकहि कर जानै । भला बुरा कछु मन नहिं आनै ॥
हृदय पुनीत शुद्ध मन होई । पाखण्ड भर्म डार सब खोई ॥
ब्रह्म वियोग सदा अनुरागी । दसहूँ दिशा झूठ तिन त्यागी ॥
झूठ सकल जग देखौ जानी । जैसे अहै बुदबुदा पानी ॥
अस मति जाकर होय सुहाई । केवल ज्ञान ताहि समुझाई ॥
माया बिना मोह नहिं आवै । नाम पदारथ निश्चय ध्यावै ॥
यह विधि केवल ज्ञान कहावै । जो सुमिरत सतलोक सिधावै ॥
केवल काम निःअक्षर आई । निःअक्षर मैं रहै समाई ॥
निःअक्षर तो करै नवेरा । कहैं कबीर सोई जन मेरा ॥
अमर मूल मैं बरन सुनाई । जिहिते हंसा लोक सिधाई ॥
शब्द भेद जाने जो कोई । सार शब्द मैं रहै समोई ॥
शब्द ज्ञानका लख जिन पाया । समदृष्टि सब माहिं समाया ॥
जेतक जीव देह धर आए । शब्दहिं सों ते सकल उपाए ॥
शब्द अखण्डा और सब खंडा । सार शब्द गरजे ब्रह्मंडा ॥
निःअक्षर की परिचय पावै । सत्त लोक महँ जाय समावै ॥

धर्मदास उवाच–छन्द

बिन्ती करैं कर जोर धर्मन, सुनहु सत गुरु सार हो ।
सत्तलोक है कौन शोभा, तहां कौन व्योहार हो ॥

कवन रूप जो पुरुष रहहीं, कवन सुख हंसा करे।
कामिनी किहि रूप राजै, तहां सुख विस्तार हो ॥

सोरठा–सो मोहे प्रगट सुनाव, दया करो निज दास कहँ।
बार बार बलि जांव, अब जिन मोहि छिपावहू ॥

## सतगुरु वचन–चौपाई

कहैं कबीर सुनहु धर्मदासू। सत्तलोक को कहों प्रकासू ॥
है सतलोकहि अम्मर काया। एक रूप सबही त्रय माया ॥
षोडश भान हंस की क्रांती। अमर चीर पहिरे बहु भांती ॥
शोभा पुरुष कही नहिं जाई। कोटिन रवि इक रोम लजाई ॥
अमर लोक अमर है काया। अमर पुरुष जहां आप रहाया ॥
अमर पुरुष का पावै भेदा। कहै कबीर सों हंस अछेदा ॥
सत्तलोक सत शब्द पसारा। सत्त नाम है हंस अधारा ॥
अमृत फल के भोजन करहीं। युगन २ की क्षुभ्या हरहीं ॥
पीवत सुधा भर्म मिट जाई। जन्म २ की तृषा बुझाई ॥
कामिनी रूप वरन उजियारा। चार भान की ज्योति पसारी ॥
शोभा बहुतक प्राण पियारी। प्रेम भाव सब हंस निहारी ॥
अनहित बचन बोल नहिं बानी। प्रेम भाव अमृत रसरानी ॥
शोभा बहुत जहां मन भावन। हंस कामिनी रंग बढ़ावन ॥
अमृत नाम हृदयमें लावे। प्रेम भाव पुरुषहि मन भावे ॥
आशा बस मन कोऊ नाहीं। भयो प्रकाश शब्दके माहीं ॥
बूझे संत ज्ञानी जो होई। सतगुरु शब्द हृदय समाई ॥
है निहशब्द शब्द सौं कहेऊ। ज्ञानी सोई जो वह पद लहेऊ ॥
धर्मदास मैं तोहि सुझावा। सार शब्दका भेद बतावा ॥
सार शब्द का पावै भेदा। कहैं कबीर सो हंस अछेदा ॥

सार शब्द निःअक्षर आहीं। गहै नाम तेहि संशय नहीं॥
सार शब्द जो प्राणी पावै। सत्तलोक महिं जाय समावै॥
साखी—कहै कबीर विचार के, सुनहु साधु धर्मदास।
अमरमूल निज शब्द है, ताकर अस परकास॥

चौपाई

अमर मूल ग्रन्थ में सारा। विना अमर नहिं हंस उबारा॥

धर्मदास वचन

धर्मदास कर जोर निहोरा। स्वामी सुनिये बिनती मोरा॥
कवन प्रसाद दरश हम पाया। कवन प्रसाद अमर भइ काया॥
कवन प्रसाद साधु कहलायऊ। कवन प्रसाद हंस गति पायऊ॥
कवन प्रसाद ज्ञान हम पाया। कवन प्रसाद अमर भइ काया॥
कवन प्रसाद नाम हम पाया। कवन प्रसाद हम लोक सिधाया॥
कवन प्रसाद सजन जन जानी। सो समुझाय कहो मोहि बानी॥

सद्गुरु वचन

कहैं कबीर सुनौ धर्मदासू। यह सब भेद कहों परकासू॥
पुरुष दयातैं दर्शन पावा। कोटि भक्ति सत नाम समाया॥
जब कीन्ही सतगुरु ने दाया। नाम जान अमर भई काया॥
सेवा कीन्ही साधु कहाए। लोक जायके हंस कहाए॥
द्वेत दीप सज्जन जन जाना। कहैं कबीर भेद निर्वाना॥
साखी—एक नामकी शोभा, कहँ लग कहों बखान।
निःअक्षर जो जानि है, सोई सन्त सुजान॥

चौपाई

सत सहिदानि तोहि समझाई। अमर मूल महिं देखौ आई॥
कोटि जन्मको पातक होई। नाम प्रताप जाय सब खोई॥
नामहि गहैं सूरमा जानी। बिना नाम कायर सो मानी॥

नाम बिना सबही बिधि हीना । नाम बिना है ज्ञान बिहीना ॥
नाम बिना सो मूरख कहिये । नाम बिना सो पापी लहिये ॥
नाम जान सोई गुण आगर । नाम जान पहुँच सुख-सागर ॥

छंद

नाम अमी अमोल अबिचल अंक बीरा पावही ।
तज कागकि चाल मरालपथ गह अमरलोक सिधावही ॥
जिमि सदन दीपक बिना नहिं मिटत है अँधियार हो ।
तिमि नाम बिन सुनु दास धर्मनि नहीं घट उजियार हो ।

सोरठा–नाम अमोल अपार, अमर मूल मैं वर्णऊ ।
करहि कर्म जर छार, कहै कबीर बिचार कर ॥

इति श्रीअमरमूल नाम लोकमहिमा वर्णन ।

## द्वितीय विश्राम

### धर्मदास वचन–चौपाई

बिन्ती इक मैं करों गुसाँई । जिहि तें मन की संशय जाई ॥
अमरमूल का कहौं विचारा । जाते हंस उत्तर है पारा ॥
कौन भक्त सों हंस कहावा । कौन विधीसों पंथ चलावा ॥
सो मर्याद देहु बतलाई । तुम प्रभु हौ हंसन सुखदाई ॥

### सद्‌गुरु वचन

कहै कबीर सुन धर्मनि नागर । यह विधि हंस पहुँच सुख सागर ॥
प्रथम करै सतगुरु की सेवा । जाते मिटै काल कर भेवा ॥
महा प्रसाद प्रेम सो पावै । सेवा कर निज गुरुहि मनावै ॥
घट में राखे प्रेम अनंदा । चौरासी के छूटे फंदा ॥
गुरु साहिब एकहि कर जाने । सो हंसा सतलोक पयाने ॥
साधन सों एकहि मति रहई । दुबिधा भाव न कबहूँ करई ॥
गुरु साधु सेवा जिन कीन्हा । ताकहँ मुक्ति निकट हम दीन्हा ॥

साखी—गुरु संतनको जान कै, हृदय करै परतीत ।
कहै कबीर सो हंस है, चलि है भव जल जीत ॥

चौपाई

सतगुरु तहां आरती करहीं । सब तज जहां जाय पगु धरहीं ॥
चरणामृत साधन को लीजै । मुख पूजाकर अचवन कीजै ॥
गुरुकी दया निरवरत रहई । निंदा रूप न कबहूँ करई ॥
निःअक्षर सुमिरौ चितलाई । जासों आवागवन नसाई ॥
निःअक्षर को निरखैं भावा । देह छोड़ सतलोक सिधावा ॥
गुरुके वचन सोचकर माना । नाम विना मिथ्या जगजाना ॥
और न देख और नहिं पेखै । निस दिन पल २ नाम विवेखै ॥

साखी—छूट पसारा देख जग, करनी देय बताय ।
एक नाम कहँ जानके, ता महँ रहै समाय ॥

चौपाई

कर्म भर्म की छोडहि आशा । एक नाम सों कर विश्वासा ॥
कुलकी लज्जा भर्म नसावै । ऐसी रहिनी साधु कहावै ॥
यह विधिसों तुम पंथ चलाओ । जन्म जन्म को पाप नसावो ॥
वंश तुम्हार लोक कहँ जाई । नाम बिना बूडी दुनियाई ॥
नाम जान सो वंश तुम्हारा । बिना नाम बूडा संसारा ॥
नाम पार नहिं वेदन पावा । नेति नेति कर सब गुहरावा ॥
आदि ब्रह्मको पार न पावे । पढ पढ पण्डित भर्म लगावे ॥
मुक्ति पंथ नहिं सुर्त समावा । पढ गुन थकित पार नहिं पावा ॥
अंतकाल जम घेरे आई । तब विद्या कछु काम न आई ॥
विद्या पढ कीन्हा अभिमाना । अंतकाल होय नर्क निदाना ॥
वेद पुराण साख यह भाखा । नाम बिनाको जमसों राखा ॥
ब्यास ब्रह्मकी अस्तुति कीन्हा । श्रीभागवत भाखनित लीन्हा ॥

काम रूपकर सबहि सुनावा । पंडित तासु मरम नहिं पावा ॥
पूरन ब्रह्म नाहिं चित दीन्हा । काम रूप सबहीमहि लीन्हा ॥
बिन सद्गुरु कोइ मरम न पावे । झूठ राह सबही लपटावे ॥
सतपुरुषको मरम न जाने । झूठहि धाय सांच कर माने ॥
झूठहि झूठ रहा लिपटाई । सत्तपुरुषको लखा न जाई ॥
अठारा पुराण ग्रन्थ बहु भाखा । तिनमहि सिरे भागवत राखा ॥
ब्रह्म महातम कहि समुझावें । श्रीभागवत भक्त दृढावें ॥
कृष्ण चरित्रसबकरहिबखाना । कृष्ण मरम काहू नहिं जाना ॥
निर्गुन भक्ति नहीं चित दीन्हा । सर्गुण भक्ति सबहिगहिलीन्हा॥
निर्गुन ब्रह्म मरम नहिं जाना । शिव समाधिलगावहिं ध्याना॥
विष्णु ध्यान कीन्हा मनमाहीं । अलख निरंजन देखैं छाहीं ॥
देखत छांहि मग्न मन भयऊ । निरंजन रूप विष्णु ह्वैगएऊ ॥
दैत्य देव कीन्हें उतपानी । कीन्हें दैत्य देवनकी हानी ॥
दैत्य मारिके देव छुडावा । ताते विष्णु सबन मन भावा ॥
गोपिन मिलकर रास पसारा । लीला एहि भक्त चित धारा ॥
ता लीला महि सृष्टि भुलानी । ब्रह्मादिक सबमुनि अरु ज्ञानी ॥
ज्ञान कथैं अरु जोति दृढावें । जोति स्वरूप मर्म नहिं पावें ॥
जोति स्वरूप निरंजन राई । जिन यह सकल सृष्टि भर्माई ॥
सत्त पुरुष का मर्म न जाना । झूठ ज्ञान सबही लिपटाना ॥
सत्त्य पुरुष सतगुरु सों पावे । सत्य नाम महँ जाय समावे ॥

साखी—कहे कबीर धर्मदाससों, अमर मूलनिज जान ।
अमर शब्द जा घट बसै, पावै पद निर्वान ॥

चौपाई

सत्य महँ पावहु बासा । विना अमरनहिंकालबिनाशा ॥
पढ पढ मूरख ज्ञान बिगारे । ज्ञान गम्य नहिं कोइ विचारे ॥

ज्ञान गम्य जाके घट होई । शब्द खोज करि है जन सोई ॥
ज्ञान गम्य नहिं मूरख पावै । सतगुरु मिलै तौ भेद बतावै ॥
सब संसार ढूण्ढ फिर आवै । ज्ञान बिना सब मूल गँवावै ॥

साखी–संत मिले संशय नसै, नहिं तो पच पच मरना ।
नाव मिली केवटनहिं, किसी बिधि पार उतरना ॥

### धर्मदास वचन–चौपाई

धर्मदास कहे सुनहु गुसाँई । ज्ञान शब्द मोहे समुझाई ॥
ज्ञान रूप सतपुरुष प्रकाशा । सत्य लोक महँ कीन्हौ बासा ॥
किहिविधि समझ परै यह बानी । कहिये सद्गुरु नाम निशानी ॥

### सद्गुरु वचन

ज्ञान स्वरूप पुरुषकर आही । ज्ञानहि रूप कबीर लखाही ॥
ज्ञान प्रकाश दीप सम जानौ । बिना ज्ञान बस झूठ बखानौ ॥
बिना ज्ञान घटमें अंधियारा । ज्ञानबिना नहिं होय उबारा ॥
ज्ञान बिना अक्षर नहिं पाई । ज्ञान रूप अक्षर है भाई ॥
ज्ञान रूप पुरुष कर जानौ । एही वचन सत्य कर मानौ ॥
ज्ञान रूप निःअक्षर कहिये । अक्षर भेद ज्ञान सो लहिये ॥
निःअक्षर हो ज्ञानहि जानौ । अक्षर निःअक्षर पहिचानौ ॥
ज्ञान शब्द पूरुष कर अंशा । ज्ञान जान जन सोह मम वंशा ॥
बिना ज्ञान नहिं वंश कहावै । ज्ञान होय तब शब्दहि पावै ॥
सोई वंश सत शब्द समाना । शब्दहि हेत कथै निज ज्ञाना ॥

साखी–कहे कबीर विचारकै, सुनियो हो धर्मदास ।
जो यह शब्दहि पाय है, करि है लोक निवास ॥

### धर्मदास वचन–चौपाई

बिनती करी धर्मनि कर जोरी । हे समरथ विनती यक मोरी ॥
जेहि तै वंश शब्द कहँपावै । सत्य लोक कहँ सत्य सिधावै ॥
औ जीवन कहँ देहु दृढाई । जाते जीव मुक्ति गति पाई ॥

अब मैं वंशका कहों विचारा। धर्मदास तुम अंश हमारा ॥
आदि नाम आमोदिक शाखा। सोई शब्द वंश कहँ राखा ॥
साठ समै बारह चौपाई। एही तत्त्व हंस घर जाई ॥
जब माली का भेदहिं पावै। सत्य नाम में जाय समावै ॥
ऐसो भेद सुनौ धर्मदासू। जन्म जन्म की मेटत त्रासू ॥
सद्गुरु दया कर्म होय छीना। अमर होय नामहि लौ लीना ॥
संशय का मैं कहों ठिकाना। संशय काल घटमाहिं समाना ॥
जबही पुरुष धर्म कहँ कीन्हा। तबही संशय उत्पन लीन्हा ॥
निः अक्षरकी परिचय पावै। संशय मिटै अमर घर जावै ॥
संशय को खंडित है ज्ञाना। ज्ञान हीन संशय लिपटाना ॥
संशय काल सबन कहँ खाई। निःसंशय हो नाम समाई ॥
संशय काल लखै नहिं कोई। तातें गए बिगोय बिगोई ॥
संशय नाम सुनौ धर्मदासू। एक नाम की राखहु आसू ॥
नाम छोड़ अन्तहि चित आनै। संशय तमहि पकर गहि तानै ॥
नामहि गहै तेहि निहसंसा। नाम बिना बूडे सब हंसा ॥

साखी—कहैं कबीर धर्मदाससों, संशय को विस्तार।
एक नाम कहँ जानके, उतरहु भौ जल पार ॥

### धर्मदास वचन—चौपाई

हे स्वामी संशय उतपानी। ज्ञान हीन सब जीवहिं जानी ॥
बिरला हंस होय अंकूरी। सो यह ज्ञान गहै निज मूरी ॥
ज्ञान लखे बिन मुक्ति न होई। तौ यह दुनियां जाय बिगोई ॥
नाम महातम भाख सुनावा। बिना नाम कोई पार न पावा ॥

### सद्गुरु वचन

कहैं कबीर सुनौ धर्मदासू। यह निज भेद कहौं तुमपासू ॥
ज्ञान हीन प्रानी जो होई। ताकर भेद कहौं मैं सोई ॥

ता कहँ दीजे पान प्रवाना । निश्चय हंस होय निर्वाना ॥
और प्रतीत हीय में धरई । सो प्राणी भवसागर तरई ॥
पान पाय सत्यहि मुख भाखै । सद्गुरु चरण हियेमें राखै ॥
सद्गुरु केर निछावर करई । साधु चरण चितनिश्चय धरई ॥
तन मन धन संतन पर वारै । सतगुरु चरण हृदयमें धारै ॥
सुत नारी कर मोह न आवै । सबही त्याग चरण चित लावै ॥
चरण धोय चरणामृत लीजे । सत्यलोक महँ अमृत पीजे ॥

धर्मदास वचन

पुरुषरूप कर यह उपदेशा । नारी को अब कहो सँदेशा ॥
नारी नाम मुक्ति किमि होई । ताके घट महँ ज्ञान बिगोई ॥

सद्गुरु वचन

ताकर तोहि भेद समुझाऊँ । मनो कामना सकल मिटाऊँ ॥
नारी तरै सुनो धर्मदासू । कहैं कबीर नाम विश्वासू ॥
ज्ञान हीन नारी को रूपा । ताको मैं सब कहों स्वरूपा ॥
तन मन धन संतन पर वारै । संतनकी सेवा चित धारै ॥
साधन सौं जो अन्तर करई । धर्मरायके फंदा परई ॥
गुरुके चरण निछावर जाई । तन मन धन सब देय चढ़ाई ॥
गुरुकी सेवा निशिदिन करई । सो तिरिया भवसागर तरई ॥
ऐसी धरन धरै धर्मदासू । तबही मिटै कालकी फांसू ॥

धर्मदास वचन

धर्मदास बिन्ती अनुसारी । हे स्वामी तुम्हरी बलिहारी ॥
यही वचन प्रभु मोहि सुनाऊ । मोरे मन इक भर्म समाऊ ॥
नारी रूप सकल हम जाना । पुरुष रूप एकहि पहिचाना ॥
नारी कहिये सब संसारा । आदि ब्रह्म है पुरुष अपारा ॥
आदि पुरुषहमतुमकहँ चीन्हा । दूसर पुरुष कहाँ अब कीन्हा ॥

जो तुम कही सोई हम जानी। नारी रूप सुर्त पहिचानी ॥
दूसर नारि कहां है कीन्हा। यही वचन हम संशय लीन्हा ॥
मैं नररूप आँहु मति हीना। यही भेद सुन भयउ मलीना ॥
तुम तौ दयावर्त गुरु स्वामी। क्षमिय चूक प्रभुअन्तरयामी ॥
नारी नाम मातु जो कहिये। इनहि भेद कैसे निर्बहिये ॥
नारी नाम बहिन जो आही। तासौं कैसे अंक मिलाही ॥
नारी नाम पुत्री जो होई। तासौं कैसे अंक सजोई ॥

साखी—यह सब भेद बतावहू, सुनहु हो बंदीछोर।
यह संशय प्रभु मेटहू, चरण गहों प्रभु तोर ॥

सद्गुरु वचन—चौपाई

कहैं कबीर सुनो धर्मदासू। यह संशय उपजी तुम पासू ॥
आदि पुरुष तब हते अकेला। शब्द स्वरूपी पंथ दुहेला ॥
तब साहिब ऐसा मत कीन्हा। सकल सृष्टिरचिबेचित दीन्हा ॥
मनसा घटते भिन्न निकारी। उत्पति भई तहाँ इक नारी ॥
सोई नारि सकल जग जाया। भग भोगे तैं पुरुष कहाया ॥
भग द्वारे होय बालक आया। यही भांति सब जग भर्मांया ॥
मैं तो एक मतौ रच जबही। पुत्र, बंधु पिता भयो तबही ॥
मैं तो एक नारीकर जबही। पुत्रि, बहिन माता भई तबही ॥
भाई बहिन कीन्हा ब्योहारा। धर्मराय को यह संसारा ॥
यह संशय महँ मार लै जाई। मार जार सब दुनियां खाई ॥
आपहि पिता आपही पूता। आपहि देव आपही भूता ॥
आपहि नारि रूप औतरिया। आपहि सकल सृष्टि विस्तरिया ॥
आपहि कर्म धर्म उपजावन। आपहि रचै आप विनसावन ॥
तातें भेदे बताऊँ तोही। ज्ञानी होय समझ कर लेही ॥
धर्मदास को संशय छूटा। जन्म जन्मके पातक टूटा ॥

ज्ञानी सों कहिये उपदेसा। मूरख सों जिन कहौ संदेशा॥
संशय कीन्ह सकल जग भंगा। काहु न चीन्हा संशय अंगा॥

साखी—कहैं कबीर सो बाचि है, गुरू चरण चित दीन्ह॥
अमर मूल निज शब्द है, हंसा चित गहि लीन्ह॥

चौपाई

धर्मदास तुम करो विचारा। विना शब्द नहिं उतरौ पारा॥
सार शब्द सों सब उपजावा। नारि पुरुष दोई निरमावा॥
सूरज पुरुष चन्द्र है नारी। यह घटमें द्वै रूप सँवारी॥
जैसे धातु कनककी एका। सांचा माही रूप अनेका॥
पाप पुण्य रूपहि सों बांधी। कीन्ह धर्म यह अगम अगाधी॥
पाप रु पुण्य भर्म है भाई। धर्म राय सब भर्म उपाई॥
भर्म अमल तबही मिट जाई। सत्य नाम जब रहै समाई॥
जब लग भर्म अमल है भाई। तब लग नाम बूझ नहिं जाई॥
बूझ सीख गावै बहु भाँती। सुमरन भर्म करै दिनराती॥
आप न चीन्हे मूढ़ गँवाँरा। भर्मी भ्रम भूला संसारा॥
धर्मदास तुम भर्महि छाड़ौ। निर्भय होय नाम चित माड़ौ॥
जो तुम भर्म करो जो माहीं। तौ कस हंसन लोक कह जाहीं॥
भर्म छोड़के भक्ति दृढावहु। यह विधि हंसनलोक पठावहु॥
तुम कहँ दीन्ह जक्तको भारा। तुम्हरी मुहर चलै संसारा॥
हाथ तुम्हार जीव सब तरहीं। भवसागर तै हंस उबरहीं॥
धर्मदास जग पारस देहू। जीव छुड़ाय काल सों लेहू॥
पारस नाम कहेउ उपदेशा। मूरख सो जिन कहो संदेशा॥

छन्द—ज्ञानी कहँ यह भेद धर्मनि देहु तुम समुझायकै।
रहन गहन विवेक बानी कहहु सकल बुझायकै॥

नाम पारस परस घट महँ काग होय मराल हो ।
अमर लोकहिं बास कर तहँ नाहिं काल कराल हो ॥

सोरठा—करलेहु आप समान, गुरुभृंगी यह जीव को ।
देखकर नाम निशान, रूप बरख पल्टायके ॥

इति श्री अमरमूल ग्रंथ नाममहिमा वर्णन तृतीय विश्राम ॥

---

धर्मदास वचन—चौपाई

धर्मदास उठ बिनती लाई । तुम पर ताप हंस मुक्ताई ॥
किहिविधिपलटै जिवकी काया । सो समुझाय करो मोहे दाया ॥
हो सतगुरु तुम अन्तर्यामी । पारस भेद कहो मोहे स्वामी ॥

सतगुरु वचन—चौपाई

कहे कबीर सुन सन्त सुजाना । पारस भेद सुनाऊँ ज्ञाना ॥
ज्ञानी काहिं कहँ शब्द है सारा । यह पारस तें हंस उबारा ॥
पारस पान बालक कहँ दीजे । तातें हंस काल नहिं छीजे ॥
कामिनी कहँ पारस है सेवा । धर्मदास लखियो यह भेवा ॥
यही रहन तुम पंथ चलाओ । जीवन बोध लोक पहुँचाओ ॥
तीनहु विधि यह कहे बुझाई । जो मानैं सो लोक सिधाई ॥
पुरुष होय शब्द नहिं जाना । निश्चय हुइहै नरक निदाना ॥
बालक हो बीरा नहिं पावै । कैसे कै वह लोक सिधावै ॥
कामिनि हो पारस नहिं लेही । गुरु सोई जो पारस देही ॥
कामिनि जो सो पारस लेही । कैसे मुक्ति होय पुनि तेही ॥
यासे गुरु जो अन्तर करई । धर्मराय के फन्दा परई ॥
गुरु नहिं शिष कहँ ज्ञान बतावा । यद गुरुमें फिर धोख समावा ॥
शिष्य जो गुरुसों अन्तर राखा । शिषमहँ धोखा सत हम भाखा ॥
गुरु सोई जो शिष्य समुझावे । शिष्य सोई जो गुरु मन लावै ॥

गुरु कहँ पेट करै अधिकाई। निश्चय नरक जाय रे भाई॥
तुम सों भेद कही निहतंता। निश्चय वचन सुनो मतिमंता॥

धर्मदास वचन

धर्मदास बिनवैं कर जोरी। स्वामी सुनिये बिन्ती मोरी॥
नारी नाम नरक की खानी। सो गुरुको किमि दीजे आनी॥
सकल नरक नारी ढिग कहिये। सोई नरक गुरु कैसे चहिये॥
गुरुतो ब्रह्म रूप हम जाना। नर्क भोगे सो कौने ज्ञाना॥
गुरुकी महिमा अगम बताई। नीच वचन कैसे कहुँ साँई॥
नीच सोई जो नीची कहै। नीच पंथ सों पार न लहै॥
ऊँचा होय सो गुरु पद धारा। नीचा छोड़ ऊंच भव पारा॥
नीचे कर्म काट गुरु दीन्हा। गुरुका बचन मान मैं लीन्हा॥

दोहा–सो अब मोहि बतावहू, तुम गुरु अगम अपार।
धर्मदास की बीनती, सुनियो हो करतार॥

साखी–रहित ज्ञान तुम भाखिया, सत्य शब्द ठहराय।
ब्यभिचारी महँ सत कहौं, कहो गुरू समुझाय॥

सतगुरु वचन चौपाई

कहैं कबीर सुनो धर्मदासू। अब यह भेद कहौं तुम पासू॥
हम जानी तुम संशय छूटा। काल कठिन भव तुम कहँ लूटा॥
काल केरि गति तुम नहिं जाना। झूठी मायामें लिपटाना॥
जब जाना निज ब्रह्म स्वरूपा। ता कहँ नाहिं रंक अरु भूपा॥
नाम अमल रस छाके अंका। ताको कहा नरककी शंका॥
तुम कहँ जीव बुद्धि नहिं छूटा। ताते जमरा फिर फिर लूटा॥
धर्मरायकी गति नहिं जानी। हर मंदिर उपजाओ आनी॥
यह बाजी महँ जीव भुलाना। शिवहिसमाधिलगावहि ध्याना॥
विष्णु रूप काहू नहिं जाना। सुर मुनि नर बूड़े अभिमाना॥

यही वचनमें सब जग वंध्या । नाम बिना नहिं छूटत फंध्या ॥
झूठी माया सब जग फंदा । फंद कटे बिन नहिं निर्द्वन्दा ॥
अज्ञानी जिव पर है फांसा । नर्क स्वर्ग दोऊ कर आशा ॥
संशय काटनको हम आए । धर्मराय सब दुनियां खाए ॥
ज्ञान सँवाद तुम कहँसमुझाए । तुम कहँ धर्मराय भर्माए ॥
वचन हमारे दोष लगाए । झूठी माया तुम लिपटाए ॥
शिष्य सोई गुरु बचनहि माना । आप ज्ञान बूझे नहिं ज्ञाना ॥
गुरु प्रतीति ह्रदये नहिं आई । तातें बूड़ी सब दुनियाई ॥
बूड़त जाइ थाँह नहिं पावा । तातें जन्म जन्म भर्मावा ॥
तब सतगुरु भये अन्तरध्याना । धर्मदास मनमहँ पछताना ॥

धर्मदास वचन

दया करौ गुरु पूरन स्वामी । मैं नहिं जाना अंतर जामी ॥
हों अज्ञान तुम मर्म न जाना । जान बूझ भूले अभिमाना ॥
क्षमि अपराध मोर प्रभुराया । मोरे चित जो अन्तर आया ॥
तुम गुरु सतगुरु ब्रह्म समाना । मैं शिव आहुँ महा अज्ञाना ॥
कुवचन वचन बोल जो भाखा । माता पिता ह्रदये नहिं भाखा ॥
करुणामय गुरु अन्तर्यामी । करहु दया अब मोपर स्वामी ॥
जो नहिं दर्शन पाऊँ आजू । तजौं प्रान मैं तुम्हरे काजू ॥
हे साहिब तुम पथ जो दीन्हा । तातें तुमहि बूझ हम लीन्हा ॥

साखी—धर्मदास बिनखत बदन, करुणा बहुविधि कीन्ह ।
दर्शन बिन अति विकल है, जल बिन तलफत मीन ॥

सतगुरु वचन—चौपाई

तबहिं कबीर दया चित आई । धर्मदास तब दर्शन पाई ॥
दर्शन पाय भयो आनंदा । जैसे चकोर मिलत है चंदा ॥

गहि गुरुचरण बंदगी कीन्हा । चरण धोय चरणामृत लीन्हा ॥
बिन्ती कीन्ह चरण चितलाई । महा प्रसाद दीजिये सांई ॥
आमनिको अज्ञा तब दीन्हा । नाना व्यंजन तुर्तहि कीन्हा ॥
कंचन थार आरती चारी । सेवा बहुत हृदयमें धारी ॥
सुत नारी सब चरणन लागे । प्रेम प्रतीत भक्ति मन पागे ॥
चरणामृत सबही मिल लीन्हा । दिव्य ज्ञान सब कहँ कर दीन्हा॥
साहिब चौका बैठे जाई । बहुत भाँति कर आसन लाई ॥
परस थार जब आमनि नारी । सुन्दर बदन प्राण अतिधारी ॥
मार मार प्रसाद लै खावहिं । प्रेमभाव साहिब मन भावहिं ॥
पाय प्रसाद पुनि अचवन लीन्हा। धर्मदास तब बिन्ती कीन्हा ॥
दया करहु अब मोपर स्वामी । बन्दी छोड़ वर अनंतर जामी ॥
तब दीन्हऊँ प्रसाद गुसांई । धर्मदास तब हर्षे मन मांई ॥
जेतक साथ रहे घर नाहीं । वह सब आनंद भये मनमाहीं ॥
आमनि तबहीं पलंग बिछावा । सतगुरू तहां आन पौढावा ॥
धर्मदास तब पंख डुलावैं । आमनि चरण चापि सुख पावैं॥
सकल साध हिल बंदगी कीन्हा। तन मन धन साहिब कहँ दीन्हा॥
मेटी सकल जगतकी लाजा । ताते होय जीवको काजा ॥
धर्मनि तहां निछावर करहीं । बार बार बिन्ती अनुसरहीं ॥

साखी—यह तन लेव गुसांई, जो होवे हम काज ।
तन मन धन कर निछावर, सुख संपति कुल लाज ॥

## सद्‌गुरुवचन—चौपाई

कर धर सिज्या पर बैठाया । अन्तर गति स्थिर ठहरावा ॥
जोई मुख सौं भीतर देखा । सबहि कसौटी कीन्ह परेखा ॥
साहिब तब ही दाया कीन्हा । मस्तिक हाथआमनिके दीन्हा॥
जाहु न अपने घरके माहीं । सत्य तुम्हार देखे मन माहीं ॥

यह मन कर्म अकर्म करावे । देहके स्वारथ नाच नचावे ॥
तातें तुम मन थिर हम जाना । काल चरित्र छूटा अभिमाना॥
हमरे देह काम नहिं होई । तुम अहंकार सकुल हम खोई॥
धर्मदास तुम वंश उजागर । हंसन पहुँचावहु सुख-सागर ॥
निश्चय हुई है मुक्ति परवाना । सत्यलोक कहिं देव पयाना ॥
वंश तुम्हार जहां लग होई । इनके हाथ मुक्ति सब होई ॥
वंश ब्यालिस अचल तुम्हारा । तिनके हाथ मुक्ति संसारा ॥
ब्यालिस माँहि त्रयोदश भाखा । अंश हमारहु हैं निज शाखा॥
नाम जानेते सबै उबारा । बिना नाम बूड़ा संसारा ॥

धर्मदास वचन

धर्मदास बिन्ती अनुसारी । हे साहिब मैं तुम बलिहारी ॥
हमरे वंश कहँ पारस देई । तुम्हरे दरश बहुर कब लेई ॥
यही अर्ज मेरो सुन लीजे । वंश हमारहु आपनो कीजे ॥
जिहिंते मुक्ति होय सब केरा । सो मोहे स्वामी कहौ नवेरा ॥

सद्गुरु वचन

तुम्हरे वंश कौ कहौ उपदेशा । जाते होय हंसको भेषा ॥
जो कोई हंस होय जगमाहीं । उबरहिं वंशनकी बांहीं ॥
वंश तुम्हार जे बालक होई । तिनसौ पारस ले सब कोई ॥
जा कहँ नाहीं ब्यापै कामा । निशदिन रहे शब्दमें धामा ॥
रहित गहिनसौं स्थिर अंगा । मनसा वाचा सत्य प्रसंग्रा ॥
सत पास को जानैं भेदा । आतम परसै सूक्षमें भेदा ॥
ऐसा सज्जत शब्द सनेहा । प्रकट कबीर तासुकी देहा ॥
तिनसौं पारस भेद न कीजे । वंश मोर जो शब्द पतीजे ॥
पारस माहिं भेद जो करई । कहैं कबीर सो किहि विधि तरई॥
बालक बोध कै पंथ चलाओ । बिना पंथ सोला नहिं पाओ ॥

बालक तेरे वंशके हाथा । पंथ दीन्ह मैं तिनके हाथा ॥
मुक्ति जान कर राखै गोई । तेहि सम द्रोही और न कोई ॥
शब्द जान कर पन्थ चलावे । देश देश फिर सब समझावे ॥
तौन देश गँवनइ कराई । सुतंन बन्त हंसन मुक्ताई ॥
पुरुष आज्ञा जो मोकहँ दीन्हा । मुक्ति भेदसों सब कहि दीन्हा ॥
सार शब्दका भेद जो पावा । यह सब ज्ञान तोहि समझावा ॥
बिना ना मिट है नहिं संशा । नाम जान सो हमरे वंशा ॥
नाम जान सो वंश करावे । नाम बिना सो मुक्ति न पावे ॥
वंश तुम्हार नाम जब पाई । भवसागरतें लोक सिधाई ॥
नाम न जान करे अहंकारा । सो जिव परि है भवजलधारा ॥
नाम जान सो वंश हमारा । बिना नाम बूड़ा संसारा ॥
विना नाम सबही अभिमानी । नाम प्रचय कोई कोई जानी ॥
नाम निहक्षर कहा बुझाई । अमरमूल महँ देखो आई ॥
निह अक्षर को पावै भेदा । सोई हंसा होय अछेदा ॥

साखी—कहै कबीर विचारकै, निःअक्षरको भेद ।
निःअक्षर जो पावहीं, सोई हंस अछेद ॥

चौपाई

निह अक्षर तुम ज्ञान सुनाओ । जम्बू द्वीप हंस मुक्ताओ ॥
ऐसा धरम धरे जो कोई । निश्चय पार पाय है सोई ॥
तुम धर्मदास पन्थके राजा । तुम्हरे हाथ जीव को काजा ॥
यही मता हम तुम कहँ दीन्हा । दूसर कोइ न पावै चीन्हा ॥
अक्षर भेद बसै जिहि अंगा । निस बासर हम ताके संगा ॥
सत्य लोक महँ वासा पाई । अमृत भोजन करै अघाई ॥

छन्द—यही महिमा जीव धरहै, बाम करै सतलोक हो ।
काल फन्दा काटकै लै, धरौ हँसन थोक हो ॥

सुम्रन सिज्या बास लीन्हो, असन अमृत पावहीं ।
वस्त्र अम्मर पहिरके तिन, जरा मरन नसावहीं ॥

सोरठा-षोडश भान प्रवान, धर्मनि शोभा हंसकी ।
पावो शब्द प्रवान, अम्रलोक वासा कियो ॥

इति श्रीग्रंथ अमरमूल धर्मदास कसोटी, पारस भेद वर्णन-
चतुर्थ विश्राम

---

धर्मदास वचन चौपाई

धर्मदास तब विन्ती कीन्हाँ । अबलगसाहिबहमनहिंचीन्हा ॥
जब तैं दाया भई तुम्हारी । भयो प्रकाश हृदयमें भारी ॥
अमर लोकके हौ गुरु वासी । कारण वन आये अविनाशी ॥
मृत्तलोक आये किहि काजा । धर्मराय बड़ पापी राजा ॥

सद्‌गुरु वचन

धर्मनि सुनौ बचन चितलाई । जीवन काज पुरुष पठवाई ॥
सत्यलोक तें जगमें आवा । धर्मराय मोहे देखन धावा ॥
धर्मराय तब पूछी बाता । कवन काज तुम आयेउ ताता ॥
मृतलोक में अब मैं जाऊँ । हंसन काज पुरुष पठवाऊँ ॥
धर्मराय तब बोलन लीन्हा । हमरे देश मुक्ति तुम दीन्हा ॥
मैं तो तीन लोक कर राजा । तुम कस करो जीव करकाजा ॥
यह तो लोक पुरुष मोहे दीन्हा । तुम कस मोहे छुड़ावन लीन्हा॥
अजहुँ भली है जाहु गुसाँई । जीव जीव जन्तु मारो सब ठाई॥
अगम अपार निरंजन देवा । तुम नहिं जानत मोरा भेवा ॥
किहि विधि हंस उतारो पारा । कौन भेद लै करो पसारा ॥
तब हम कहा सुनो धर्मराजा । जानत नाहिं मर्म तुम काजा॥
हम बल एक शब्द का भाई । तेही के बल हंस मुक्ताई ॥

जहां नाम तहां तुम नहिं कोई । विना नाम है तुम्हरी छोई ॥
यह विधि होय हंस परवाना । आवा गमन तासु नहिं जाना॥

धर्मराय वचन

जेतिक नामे मुख सुम्रन करिया । सो सब नाम हमारे धरिया ॥
जो कोइ धर्म करही संसारा । सो सब मोर आहि व्यवहारा॥
बहुत भाँति मैं फंदा कीन्हा । शंकर सहित बांध मैं लीन्हा॥
कवन नाम हंसन मुक्ताओ । सो स्वामी मोहे भेद बताओ॥

ज्ञानी वचन

नाम हमार पुरुषके केरा । वही नाम सों हंस उबेरा ॥
धर्मराय तुम ताहि न जाना । अपने अवगुण भये बिगाना ॥
यही नाम आपन घट लेते । जीवन कष्ट नाहिं तुम देते ॥

धर्मराय वचन

परम पुरुष है मोरा नाऊँ । दूसर पुरुष कहां निर्माऊँ ॥
मोरे आगे कवन कहावा । सब कहँ मार जार भर्मावा ॥
तीन लोक महँ जीव पसारा । उन कहँ मार करौ संहारा ॥
ब्रह्मा पुत्र हमारो भयऊ । अंतकाल ताही दुख दयऊ ॥
शिवसमाधि कीन्हा अहँकारा । प्रलय काल करौ जर छारा ॥
विष्णु बड़े सबही में अंशा । तिनकहँ मार करौ निरवंशा ॥
अपने अंश यही गति दैहौं । सृष्टि संहार प्रलयकर लैहौं ॥
तुम तो आए हंस उबारन । कवन भांति करिहौ जगतारन॥

ज्ञानी वचन

धर्मराय कहँ तब समुझाई । तुम जीवनके दुष्ट कहाई ॥
जब तुमकीन्ह चोरको काजा । तानैं पुरुष मोहिं उपराजा ॥
नाम एक मोहे दीन्ह अमोला । वोही नाम जिव बन्दी खोला॥
ठाकुर नाम तुम्हारा होई । तीन लोक ठकुराइ समोई ॥

पुरुष नाम तुम दीन्ह बिसारी । आपहि पुरुष रूप विस्तारी ॥
योग सन्तायन हमरो नाऊ । तोहि कारण मोहे निर्माऊ ॥
तुम निज धर्म करौ अहंकारा । आदि ब्रह्म अहै रखवारा ॥

धर्मराय वचन

धर्मराय तब उत्तर दीन्हा । हम कहँ दया पुरुष ने कीन्हा॥
तुमहीं दया करहु मोहि पाहीं । जिहिते मोर रहै जग छाहीं ॥
तुम जेठे हम लहुरे भाई । हम ऊपर तुम काहि पठाई ॥
पुरुष समानहिं तुम कहँ जाना । अपने मन तुम दूसर ठाना ॥
कहौ उपदेश सोइ उपदेशा । जातें ऊजर होय न देशा ॥
पुरुष वचन हम शिरपर मानी । आज्ञा भंग करों नहिं ज्ञानी ॥

ज्ञानी वचन

योग सन्तायन बोलन दीन्हा । यह उपदेश पुरुष तोहि दीन्हा॥
जा जिव पान प्रवाना पावै । ताके निकट काल नहिं जावै॥
जो कोइ जीव होइ है ज्ञानी । ताकी तुम कीजौ महिमानी ॥
सार शब्द जो बालक पावै । तासो प्रेम बहुत तुम लावै ॥
यह उपदेश हमारौ लीजे । पुरुषके वचन मान शिर लीजे॥
जो इतना नहिं करौ कबूला । तौ तुम सहहु दुःख बहु शूला॥
पान प्रवाना शब्द न होई । जस जानो तस करिहौ सोई ॥
इतना धर्मराय जब जाना । जो तुम कहा सोई परवाना ॥
बिन्ती एक हमारी लीजे । नाम सन्देश मोहि कहि दीजे॥

साखी—मैं उपदेश जो पावहूँ, सो सब कहहुँ तुम्हार ।
तुमहि पुरुषके अगुवा, हंस छुड़ावनहार ॥

ज्ञानी वचन-चौपाई

तब साहिब जो कहिबे लीन्हा । तुम नहि पावहु नामको चीन्हा॥
जब तुम सत्यलोक महँ रहिये । चौसठ युगलग सेवा करिया ॥

तबै पुरुष आज्ञा तेहि दीन्हा। सत्रह खण्ड राज्य तब दीन्हा॥
तब तुम मान सरोवर जाई। कन्या देख बहुत सुख पाई॥
पुरुष तोहि तब मार निकारा। तब हम भएऊ हंस रखवारा॥
शब्द वार तब पुरुष सम्हारी। तुम्हरे टारे टरत न टारी॥
मूल शब्दका का पावै भेदा। सोई हंसा होय अछेदा॥
सोई भेद तुम नाहिंन पावा। कितनौ सेवा कर गुहरावा॥
तुम कुबुद्धि औगुण बड़ कीन्हा। पुरुष आय पेल जो दीन्हा॥
तबतै तुम्हरो भिन्न पसारा। राज पसारेउ यह संसारा॥
हम कहँ दया हंस की आई। दीन्ह पयान लोक तैं भाई॥
बचन हमार मान सिर लीजै। शब्द खोजि अब नाहि करीजे॥
जब तुम पाहो शब्द ठिकाना। लोक तुम्हार न रहे निदाना॥
सबै जीव सत लोकहि जाई। तुम्हरी नहीं रहै ठकुराई॥
येही मन्त्र हमारो धरहू। शब्द खोज अब नाहीं करहू॥

साखी–महा प्रलय जब होय है, देखि हो लोक हमार।
तब हम तुम कहँ मिलिहिंगे, शब्द दोह टकसार॥

चौपाई

सत्रह खण्ड तबहि मिटि जाई। रहै पुरुष तब शब्द समाई॥
धर्मराय तुम पुरुष के अंशा। मिलहै शब्द मिटै सब संसा॥
इतना वचन धर्म सौं कीन्हा। पीछे जगही प्याना कीन्हा॥
ता पाछे संसारहि आये। पेडरमों बहु जीव छुड़ाये॥
चार सिद्ध पर्वत पर पाये। तिनसों ज्ञान भेद समुझाये॥
चारौ सिद्ध काल सों बाचा। दिव्य ज्ञान हृदय महँ साचा॥
ता पीछे तुम्हरे ढिग आए। धर्मदास तुम दर्शन पाए॥

धर्मदास वचन

धर्मदास बिन्ती अनुसारी। है सतगुरु तुम्हरी बलिहारी॥
अगम ज्ञान तुममोहिं लखावा। हृदय कमल तुम मोर जुड़ावा॥

धन्य भाग्य सतगुरु पगुधारा । अब भयोजीवन सुफल हमारा॥
एक वचन मोहि कहौ बुझाई । जिहितें जीव की संशय जाई॥
काल कठिन सो काहु न जाना । सो मोसौं कहिये परवाना ॥
जीवत काल चिन्ह जब पावै । तब तुम्हरे सतलोक सिधावै॥
जीवत काल चीन्ह नहिं जाई । तो कैसे सत लोक सिधाई ॥
तुम तो ज्ञान बहुत उपदेशा । बिन देखे सब लगै अन्देशा ॥
दया करो अपनो जन जानी । काल चिह्न याऊ पहिचानी ॥
बिन चीन्हें नहिं होय उबारा । भवसागर बांकी है धारा ॥
काल कठिन है जगकौ फंदा । किहि विधिजीवहोयनिरद्वन्दा॥
निरद्वन्दी मोहे करो गुसांई । तौ मैं पंथ चलाऊँ जाई ॥

## सद्गुरु वचन

साहिब तब कहिबे चितधारा । धर्मदास सुन काल पसारा ॥
काल अमल संशय है भाई । प्रथम काल तुम चीन्हौ आई॥
जेतक कर्म करै संसारा । सो सब आहि काल व्यौहारा॥
काल ख्याल जानत नहिं कोई । कर बिपरीत सबन कहँ सोई॥
दस औतार काल ने छलिया । कालअपर्बल सबकहँ दलिया॥
मीन स्वरूप काल औतारा । कूर्म स्वरूप महा जो धारा ॥
बारह रूप औतार जो कीन्हा । नरसिंह रूप औतारजोलीन्हा ॥
वामन होके बलि कहँ छलऊ । परशुराम होय क्षत्री दलऊ ॥
राम रूप होय रावन मारा । कृष्ण रूप होयकंस पछारा ॥
बौध रूप जगन्नाथ औतारा । लीला बहुत भांति सम्हारा ॥
दस औतार कालके धरिया । म्लेच्छ मारसतयुगसो करिया॥
इतनी देह धरी युगमाहीं । काल अमल व्यापै तिनपाहीं॥
काल मर्म काहू नहिं जाना । सबकहँ पकर कीन्हे पिसवाना॥
काल पुरुष काहू नहिं चीन्हा । कालपाय सबहिन गहि लीन्हा॥

काल पायकर जागहि योगी। कालकष्ट सुन फिरहिं वियोगी॥
काल पायकर पाप जो करहीं। काल पाय सब पुण्यहि धरहीं॥
काल पायकर सत गुरू भयऊ। काल पाय त्रेता है गयऊ॥
द्वापर काल पायकर आवा। कलियुग काल पाय निरमावा॥
कालहि पाय चला सब जाई। काल पाय संसार समाई॥
काल पाय कर भक्ति करावै। काल पायकर लोकहि आवै॥
काल भेद मैं कहा विचारी। धर्मदास तुम ज्ञान सम्हारी॥
काल कालको मर्म न जाना। सत्य पुरुष तें भय उतपाना॥
अलख निरञ्जन नाम कहावा। पुरुष प्रसंग रूप बनि आवा॥
पुरुष प्रगट जब रूप बतावा। सत्य लोक जब नाम धरावा॥
तबही पुरुष गुप्त होय गयऊ। काल रूप यह मनकर भयऊ॥

साखी—काल काल सब कोई कहै,काल न कीन्ह विचार।
मन थिर होवै शब्द महँ, काल रहे झकमार॥

चौपाई

ना कहुँ आवै ना कहुँ जाई। शब्दहि माहीं सहज समाई॥
जा देखहुँ तैसा है सोई। गुप्त प्रगट वे रहैं समोई॥
गुप्त ये प्रगट एक कर भयेऊ। दुतिय भावकर ज्ञान नशयेऊ॥
दुतिया दुर्मत दासी होई। ज्ञान विचार कहां रहो सोई॥
तीन कालसों जो रहै थीरा। सोई पुरुष कायाको बीरा॥
सोई वीर शब्द निज मूला। मंत्र ध्यान सोई स्थूला॥
वही शब्द तें काल डराई। नातर करि हैं कोट उपराई॥

साखी—दुनिया चेरी काल की, मूरख बूझै नाहिं।
जाकी दुनिया मिट गई, ते आतमब्रह्म समाहिं॥

चौपाई

जैसा है तस कहा न जाई। ज्ञान विना बूझै नहिं भाई॥
आय ज्ञान तव परगट भयऊ। दुतिया भाव सबै मिट गयऊ॥

दीपक ज्ञान भयो उजियारा । काल तिमिर मिटगा अँधियारा ॥
भय आनन्द गुरु जब पाये । ऊँच नीच सब दूर बहाये ॥
ऊँच नीच सब समकर जाना । ऊँच नीच सब झूठ बखाना ॥
ऊँच नीच सब झूठहि लावै । जब आतम परमातम पावै ॥
झूठा लोग न बूझै कोई । सब संसार झूठ है सोई ॥
समता ज्ञान प्रकाश कराई । और ज्ञान सब झूँठ हैं भाई ॥
झूँठ सांच संसार समाना । सत्य शब्द नाहीं पहिचाना ॥
झूँठ सांच दोई मिट गयऊ । ज्ञानप्रकाश जाहि घट भयऊ ॥
धर्मदास तुम बूझहु ज्ञाना । काल कर्म सुनहू अब काना ॥
सतगुरु दया जाहि पर होई । अमरमूल कहँ जानै सोई ॥

साखी—अमर मूल कहँ जानई, काल दगा मिट जाय ।
काल परख कर बूझ है, सब नहिं काल समाय ॥

चौपाई

काल तिरुकालका भेद सुनाऊँ । धर्मदास मैं तोहि लखाऊँ ॥
निह अक्षरका भेद निज पावै । निह अक्षर माहिं जाय समावै ॥
जो नहिं जान निहअक्षर भेदा । ता महँ काल करत है छेदा ॥
निह अक्षर विन काल न जीतै । यज्ञ दान केता कर बीतै ॥
योग यज्ञ तप काल पसारा । यज्ञ दान सब काल व्योहारा ॥
काल गती संसार है भाई । बिरला जन कोई लख पाई ॥

साखी—संशय काल शरीर महिं, विषय काल है दूर ।
ताहि लखत कोई संतजन, जार करै सब धूर ॥

चौपाई

जीव बुद्धिसों नाहिन चीन्हा । काल न चीन्हत मतिके हीना ॥
कबहूँ सुख कबहूँ दुख होई । काल जाल जानत नहिं कोई ॥
मानस कह मनमाहिं बिचारी । निरालंब होय प्रभुहिं पुकारी ॥

कबहुँ कहै प्रभुने सब कीन्हा । कबहुँ कहत सब मोर अधीना॥
स्वारथ रूप सदा चित लावै । परमारथ कबहूँ नहिं भावै ॥
साखी–कहै कबीर धर्मदास सों, तुम सुनियो चितलाय ।
काल भेद नहिं जानहीं, मूरख रहे भुलाय ॥

चौपाई

जो देखा सो काल पसारा । जो बिनसे सो काल अहारा ॥
धर्मदास तुमचित थिर करहू । मनकी डगमग तब परिहरहू ॥
भूत भविष्य वर्तमान जो कहिये। यहि बिधि तीनकाल निर्वहिये॥
भूत सबै है कालकी काया ।भविष्य होय सोइ जीव कहाया॥
वर्तमान परमातम जानो । यहि विधितीनकाल पहिचानो॥
जोई भूत सोई वर्तमाना । सोई भविष्यत भर्मकर जाना ॥
भूत भविष्यत और वर्तमाना । मनथिर भए सबै पहिचाना ॥
शब्द मांहि हंसा निरबहई । मन बिच कर्म नामको गहई ॥
मनके रूप समानी माया । सब संसार व्याप्त यह छाया॥
मन थिर कर परमातम जाना । यह विधि तत्त्व लेहुपहिचाना॥
काल जाल तैं तेही लूटै । काल बिचारै ताहि न लूटै ॥
यही भेद धर्मन सुन लीजै । शब्द माहिं बासा तुम कीजै ॥
काल ज्ञान संसार बखाना । काल स्वरूप नहीं पहिचाना॥
साखी–इतना भेद सुन लीजिये, काल को ज्ञान बखान ।
काल पाय कर होत है, हम सों फिर फिर ज्ञान ॥

धर्मदास वचन चौपाई

धर्मदास तब पांयन परई । सतगुरु सों बिन्ती अनुसरई ॥
जो तुम कही सोई परवाना । काल पाय कर फिर २ ज्ञाना ॥
तुम प्रसाद मुक्ति फल पावा । यह भवसागर बहुर न आवा ॥
हम सों ज्ञान कहा फिर होही । सोई बात कहो निज मोही ॥

सद्गुरु वचन

तब साहिब अस कहिबे लीन्हा। तुम नहिं पाओ ज्ञानको चीन्हा॥
हम तौ सत्यलोकके वासी। तहँ नहिं काल बसै अविनाशी॥
मैं जो कहा मृतलोकव्यवहारा। काल पाय सब होत औतारा॥
काल पाय बिनसै संसारा। कालै सब बिनास जग डारा॥
काल कर्म काहू नहिं जाना। जीव जन्तु सब काल समाना॥
कालहि पाय सृष्टि निर्माई। काल पाय फिर माहिं समाई॥

साखी—काल पाय जग ऊपजो, काल पाय वर्त्ताय।
काल पाय सब विनसही, काल काल कहँ खाय॥

धर्मदास वचन—चौपाई

यह सुन धर्मदास हर्षाने। सद्गुरु रूप हिये पहिचाने॥
तुम साहिब मोहे कीन्ह निहाला। आपन जान कीन्ह प्रतिपाला॥
बिन्ती एक करत संकाई। हे सतगुरु मोहे भाख सुनाई॥
कालहिकी गति कहि समुझावा। अचरज बात मोर मन आवा॥
प्रथम पुरुषकी प्रथमहि काला। मोहि बतावहु भेद रसाला॥

सद्गुरु वचन

तब सतगुरु कहिबे अनुसारा। धर्मदास सुन शब्द हमारा॥
प्रथम हते जब शून्य स्वभाऊ। धर्मदास सुन शब्द निर्माऊ॥
शब्दते पुरुष शब्द निर्मावा। यही भेद बिरले जन पावा॥
जाकों कहिये शून्य स्वभाऊ। काल शून्य एकै समुझाऊ॥
काल भेद कोई नहिं जाना। धर्मदास तुम सुनियो ज्ञाना॥
शून्यहि मांहि शब्द उच्चारा। धर्मरायको भयो पसारा॥
प्रथमहि जिन्द रूप इकभयऊ। सत्तर युग सोवत चल गयऊ॥
तब साहिब मोहे आज्ञा दीन्हा। जिन्द जीवकहँ तुम नहिं चीन्हा॥
जिन्द जीव कहँ आन बुलाई। सत्तर युग उन सोय सिराई॥

तब हम जाय शब्द अस बोला । सोवत जिन्द नाहिं चित डोला ॥
का सोवत तोहि पुरुष बुलाई । नहिं जागहि तिहि नींद सुहाई ॥
तब हम तेहि जगावन लागे । जिन्द जाग परम अनुरागे ॥
जगै न नीन्द भर्म बहु आवा । तब हम एक शब्द उपजावा ॥
काल शब्द कहँ टेर पुकारा । सुनकर जिन्द भयो संचारा ॥
काल शब्द सुनजिन्द डराना । तबही आया चरण लिपटाना ॥
काल नाम सुन ऐसा भाई । काल नाम सुन भक्ति कराई ॥
धर्मदास सुन कालको भेदा । काल बिना नहिं करै निषेदा ॥
काल नयन भर देख न कोई । कालहि पढ़ पढ़ गये बिगोई ॥
वेद शास्त्र सुन पंडित कहाई । काल पुरुष सब जीव भर्माई ॥
साधू मिलकर भक्ति कमाई । जातैं काल फांस नहिं आई ॥
काल शब्द ना होतौ भाई । ता काहे को भक्ति कराई ॥
कालके डर तपसी तप साधा । इन्द्री पांच काल डर बांधा ॥
कालहिके डर योग जो करई । कालहि डरतै दान जो भरई ॥
कालहि डर भाखै सत जाना । कालहि डर छोड़ै अभिमाना ॥
सत्यहि वचन काल डरकहहीं । कालहि डरसे झूठ परिहरहीं ॥
ऐसा डर है कालहि केरा । धर्मदास तुम करहु न बेरा ॥

साखी–ऐसा डर है कालका, सुनहु हो धर्मदास ।
एक नाम कहँ जानकै, निडर रहो सुखवास ॥

चौपाई

कालहि डर दुनियां सब बूड़ी । काहु न देखी कालकी मूड़ी ॥
तुम धर्मदास निडर हो रहहु । नाहिन काल झूठ परिहरहु ॥

छन्द–यह भांति पंथ चलाव जगमें हंस लोक पठाइबौ ।
ज्ञान गम्य लखायकै फिर शब्दसार लखाइबौ ॥
हृदय जेहि पर होय गुरुकी रहत गहन समावही ।
काल कष्ट निवारकै सोई पुरुषलोक सिधावही ॥

सोरठा–आप सरीखा जान, ता कहँ शब्द लखाइयो ।
धर्मदास लेव मान, यही सिखावन पुरुषको ॥

इति श्रीग्रन्थ अमरमूल धर्मराय बाद कालको वर्णन ।

---

## पंचम विश्राम

### धर्मदास वचन–चौपाई

धर्मदास आनंद समाना । विगसेउ कमल उदे जनु भाना ॥
बहुत भांतिसों बिन्ती कीन्हा । मन वच कर्म चरणचित दीन्हा ॥
पदरज लीन्हीं तृषा मिटाई । छूछी सीप स्वाती जिमि पाई ॥
रंकहि निधी मिलगई जैसे । अहिमणि मिलै मगन भय ऐसे ॥
चरणामृत वह विधिसों लीन्हा । गुरु चरणनको मैं आधीना ॥
अब प्रतीति मोर मन आई । निश्चय वचन मान तुव साँई ॥
अबही जाय लोक मैं देखा । ज्ञान गम्यसों पायउ लेखा ॥
भक्ति मुक्ति दोनों हम जाना । दया तुम्हार परी पहिचाना ॥
जेपर दया तुम्हारी होई । ऐसे पदको पहुँचे सोई ॥
हम जानकै मान उपदेशा । विन सतगुरु नहिं मिटत अँदेशा ॥
तुम सतगुरु और सब शिष्या । यही ज्ञान परगट हम देख्या ॥
सतगुरु आप और सब वंशा । सत्य पुरुषको तुम निज अंशा ॥
तुम्हरे बचन लोक पहिचाना । तुम्हरी दया परी अब जाना ॥
यह मन बूझ शब्द है लोका । ज्ञान भयो मिट गये सब शोका ॥
लोक अलोक एक कर जाना । तुम्हरे बचन सत्य हम जाना ॥
अब मोरे जिव परचय आई । बिन जानै जानै बूड़ी दुनियाई ॥
नहि बूड़ौ नाहीं उतराना । यहि पाया हम केवल ज्ञाना ॥
एक बचन मैं बूझा साँई । बिन्ती करौं चरण चित लाई ॥

तुम सतगुरु मोहिदिय उपदेशा । मैं हंसनसों कहौं सँदेशा ॥
यह तौ बात कही नहिं जाई । जब पावे तब ज्ञान समाई ॥
जब तुम दया करी हियमाहीं । तबहीं पाऊ नामकी छांहीं ॥
कहिये बचन मोर मन भावै । जातैं हंसा लोक सिधावै ॥

## सद्‌गुरु वचन–चौपाई

तब साहिब अस कहिबे लीन्हा । सब कहँ देह शब्दका चीन्हा ॥
जो नहिं पाव शब्द सहदानी । तो कस करहु लोकपहचानी ॥
सब कहँ ज्ञान गम्य कर देहू । शब्द लखाय आपनकर लेहू ॥
प्रथमहि देहु पान परवाना । ता पीछे फिर ज्ञान लखाना ॥
समय जान सब कहौं बिचारी । यही भांति सब जिव निर्वारी ॥
साधुनकी सेवा चित लावै । सो जिव भवसागर नहिं आवै ॥
गुरुकी दया मान सिरलीन्हा । भाव सहित पूजातिन कीन्हा ॥
इतनौ भेद एक नहिं जानी । सो कैसे पुन शिष्य बखानी ॥
ज्ञानवन्त कहँ यह उपदेशा । मूरखसों जिन करहु संदेशा ॥
सार शब्द जाके घट होई । तिहि हंसा सम और न कोई ॥
धर्मदास तुम कहँ नहिं भारा । सबके तारन है करतारा ॥
यह उपदेश कहहु बहु भाँती । माने सोई हंस की जाती ॥
जो नहिं मानै कहा तुम्हारा । सो चल जैहै यम के द्वारा ॥
यमके हाथ परै सो आई । बहता जाय थाह नहिं पाई ॥

साखी–कहै कबीर धर्मदाससों, दीजो पान प्रवान ।
यही हंस जो पावहीं, पहुँचे पद निर्वान ॥

## धर्मदास वचन–चौपाई

हे स्वामी तुम्हरी बलिहारी । अब चौकाको कहौ बिचारी ॥
कवन शब्दसो आरति साजी । कवन शब्द सतगुरुकी पाँजी ॥

कवन शब्दसों नरियर मोरा । कवन शब्दसों तिनका तोरा ॥
कवन शब्दसों चौका करई । कवन शब्दसों दीपक बरई ॥
कवनै शब्द पान लिख दीन्हा । कवन शब्द प्रसाद जो लीन्हा॥
कवन शब्द मिष्टान्न चढ़ावा । कवन शब्दसों छत्र तनावा ॥
कवन शब्द पनवारौ साजा । धोती कवनै शब्द विराजा ॥
कवन शब्दसों चंदन दीजे । कवन शब्दसों पुहुप चढ़ीजे ॥
दल प्रसाद किहिं शब्द बनाई । यही भेद गुरु कहु समुझाई ॥

सद्गुरु वचन

यहै भेद अब तोहिं बताऊँ । चौका साज सकलसमझाऊँ ॥
प्रथमहि तौ चौका अनुसारा । सोई शब्द मैं कहौं पसारा ॥
सेत सिंहसन चौका चारी । कंचन थार आरती वारी ॥
तहाँ धनी जीव बैठे आई । लिखनी लिख बहुभाँति बनाई॥
धर्मदास उठ बिन्ती कीन्हा । चन्द्र सूर्य दोइ साखी दीन्हा ॥
शब्द माहिं बहु भाँति समावा । कदली पत्र जो आन धरावा ॥
अमर शब्द उच्चार कराया । अमर प्रवान अमरभइ काया ॥
अमर प्रवान अमर कर जाना । अमर शब्द बिरले पहिचाना ॥
अमर शब्दका पावै भेदा । कहैं कबीर प्रवान अच्छेदा ॥
एक बीज धरती कहँ दीन्हा । पान सुपारी नरियर कीन्हा ॥
सो प्रसाद संतन कहँ आई । सत्त सुकृत के लोक सिधाई ॥
तीन लोक सों भिन्न पसारा । बाहर भीतर शब्द पसारा ॥
दूजी दुर्मत चित सो मेंटो । एकहि चीन्ह कबीरहि भेंटो ॥
यहि शब्द मिष्टान्न चढ़ावा । कदली पत्र जो आन धरावा ॥
सवा शेर मिष्टान्न मँगावहु । सत्य पुरुष कहँ आनचढ़ावहु ॥
सत्य सुकृत कहँ आन चढ़ाई । दीन भाव कर बिन्ती लाई ॥

धर्मदास वचन

अर्ज एक अब सुनो हमारी। तुम गुरु लीन्हा जीव उबारी॥
शोध देख हम सकल शरीरू। पीरा मेटौ बाप कबीरू॥
केते लाख चूक जो परई। किहिं कारण नरिअर अनुसरई॥

सद्गुरु वचन

धर्मदास तुम सुनो ये बाणी। ताकर भेद कहौं परवानी॥
सवा लाख चूक जो परई। तिहि कारण नरिअर अनुसरई॥
बहुत भांति सों तत्त्व लगावै। मृत्यलोकमें बहुरि न आवै॥

सुमिरन नरिअर तिलकको

मृत्यु लोक यम को स्थाना। खैंच कबीर ने मारा बाना॥
बान मार जक्त यश लीन्हा। तिलक काढ़ धर्मन कहँ दीन्हा॥

साखी-पाक नारिअर मोरके, हंस उतारो पार।
कंचन कपूर मिलगए,साहिब जीवको करौ उधार॥
खिरचा अचवन लैके, यकटक सुमरौ ध्यान।
कहैं कबीर धर्मदाससों, सोहं शब्द प्रधान॥

सम्पूर्ण

चौपाई

तबही दीपक आन प्रकाशा। मनो सत्य लोक कियो बासा॥
अज्ञ शब्द का पावै भेदा। कहे कबीर तब जोत अछेदा॥
तबहि पानका लिखनी नीका। अज्ञ शब्दका पावे टीका॥
सत्यका अंक तहाँ लिखदीन्हा। मंत्र उचार एक तब कीन्हा॥
सुख सागर मोरौ स्थाना। तहँवा सेत चढ़ाये पाना॥
सेत पानका अम्मर काया। सीपमांहिं जिम स्वाति समाया॥
भर्मंत पवन बिहरत संसारा। निर्मल पवन हंस रखवारा॥
तबहि तिनका बेग तुरावा। जन्म जन्मके पाप बहावा॥

सुम्रन तिनका तुरावेका

असन वसन मन कल्पना, देखो सर्वहि भूत ।
कहे कबीर सतगुरु मिले, मिथ्याके मुख थूँक ॥

सम्पूर्ण

चौपाई

तबै प्रवाना दीजौ जानी। मुक्ति होय हंसा पहिचानी ॥
दहिने छोड़ धर्म स्थाना। बांये दुर्गदानी को थाना ॥
आगे चित्र गुपित्र कौ भारा। नाम सुनायकै हंस उबारा ॥
टूटे घाट अठासी क्रोरी। हंसा उतरै नामकी डोरी ॥

साखी–कितरे वृक्ष कितरै पक्षी, कहां विलमेऊ आय ।
कहैं कबीर जो गुरु मिले, हंस देहि पहुँचाय ॥

चौपाई

दे परवाना हंस बचावा। ज्ञान परम पद घटहि समावा॥
घट की परिचय कोई पाया। जाते जीत चले यमराया ॥
तब स्नान का शब्द सुनावा। विना शब्द पानी नहिं पावा॥
बिना शब्द जो पीवे पानी। मानहु मदिरा रुधिर समानी ॥

सुम्रन जल पीवनेका

आगम सरोवर विमल जल, हंसा पिये अघाय ।
काया कंचन मन मगन, कर्म भर्म मिटजाय ॥

सुम्रन स्नानका

सत्य सुकृत के नीर मँगावा। धनीके बालक स्नान करावा ॥
कर स्नान पुनि शीश नवावा। साहिबके चरणन चित लावा॥
कहैं कबीर सुनो धर्मदासा। आदि अंत इक ज्योति निवासा॥

साखी–आदि अंत इक ज्योति है, अमरनाम स्थीर ।
चौदह भुवन नव खण्डमें, एकहि सत्य कबीर ॥

सम्पूर्ण

## सुम्रन प्रसाद मालूम करनेका

निर्भय पदका चौका दीन्हा । शील संतोष ले मज्जन कीन्हा॥
प्रेम प्रतीत परम उजियारा । सत्य सुकृत है जेवनहारा ॥
सत्य सुकृत की फिरी दुहाई । जल भयो पाकसंतन सुखदाई॥
सब संतन मिल कियो प्रसादा । जेवै कर्तार जिवावै धर्मदासा ॥
सब संतन प्रसाद जब कीन्हा । मुक्ति अभयपद कहँ तब चीन्हा॥

साखी–कहे कबीर धर्मदाससों, आरतिको परमान ।
ये विधि सेवक जो करै, पावै पद निर्वान ॥

## धर्मराज वचन चौपाई

धर्मदास विनती कर जोरी । स्वामी सुनिये बिनती मोरी ॥
कवन वस्तु आरति महँ धरई । कवन शब्द लै सेवा करई ॥
सो सब मोहिं कहौ समुझाई । आरति विधि मैं करौं बनाई ॥

## सद्गुरु वचन

प्रथमहि मंदिर सेत सम्हारा । सुर्त निर्त भक्त चित धारा ॥
कञ्चन केर थार बनवाओ । तामें मोती आन धराओ ॥
मुक्ता तो अन बेधे होई । ऐसी विधि प्रकार है सोई ॥
झारी एक कञ्चनकी होई । ता महँ दाल प्रसाद करसोई ॥
नरियर इकसत एक प्रवाना । सवा तीन मन लै मिष्टाना ॥
पाटम्बर धोती तहँ चहिये । दीपमालिका बहुतक लहिये ॥
नई वेद तहँ आन धराई । कञ्चन और कपूर मगाई ॥
जरी केर तहां छत्र तनावा । पान सहस्र द्वादश बनवावा ॥
लौंग सुपारी लायची लीजे । मेवा अष्ट भांति धर दीजे ॥
ता पीछे प्रसाद सहिदानी । सुखपूजा साधन कर जानी ॥
आरति फल तबही जिव पावै । सवा सेर महाकंद मँगावै ॥
सोना केर कलस धरवाई । तहां प्रवाना लिखे बनाई ॥

परमाना बालक कहँ दीजै। हंस रूप ता कहँ कर लीजै॥
ऐसी आरती धरे धर्मदासू। सोई पावै लोक निवासू॥
मनमें बहु आनन्द बड़ाई। आरत फल सोई पुन पाई॥
अपने स्वार्थ आरती करई। भवसागर तैं कैसे तरई॥

धर्मदास वचन

धर्मदास बिनती अनुसारा। तुम सतगुरु मोरे करतारा॥
ऐसी विधि आरति नहिं करई। सो जिव किम भवसागर तरई॥
कलि में जीव दरिद्री होई। द्रव्य विना किमि भक्तिसँजोई॥
जिहि विधि होय हंस मुक्ताऊ। सो मोहे स्वामी भेद बताऊ॥

सद्‌गुरु वचन

तब साहिब अस कहिबे लीन्हा। यही मती हम तुम कहँ दीन्हा॥
एतिक विधि जापै नहिं होई। सहज भाव आरति करै सोई॥
सवा सेर मिष्टान्न मँगावै। नरियर इक तहँ आन चढ़ावै॥
सवा सौ पान कहैं परवाना। लौंग लायची एही बँधाना॥
धोती एक आन तहँ धरई। सतगुरु केर निछावर करई॥
साधन सों वह प्रेम बढ़ावै। सत्य रूप होय ज्ञान सुनावै॥
ज्ञान गम्य कर शब्द बुझावै। सन्तन सों बहु प्रेम बढ़ावै॥
पांचों पद ताही महँ लावै। साधन की सेवा मन लावै॥
ऐसी बिधि सों आरति करै। सो प्राणी भवसागर तरै॥

धर्मदास वचन

जो इतना नहिं करै कडिहारा। ताको मोसो कहो विचारा॥
हे साहिब मोहे कहो पुकारी। बन्दी छोड़ जाउँ बलिहारी॥

सद्‌गुरु वचन

जो इतना नाहीं बन आवै। सो कडिहार पार किमि पावै॥
बारह आरति जो नहिं करै। दो आरति सेवाचित धरै॥

फागुन और भादों परवाना । दो आरति नहिं छोड़ सुजाना॥
साधन को परवाना देई । वर्ष रोज के कर्म नसाई ॥

साखी–पान प्रवाना पावही, सतगुरु महिमा दान ।
तबही हंसा सत्य है, और झूठ सब ज्ञान ॥

चौपाई

धर्मदास में तुमहिं सुनाऊं । आरति भेद ज्ञान समझाऊ ॥
अक्षर सार आरती सोई । बिन अक्षर सब गए बिगोई ॥
अक्षर भेद जान परसंगा । ताके काल रहै नहिं संगा ॥
आरति बहुत भांति सो करई । अक्षर भेद हिये नहिं धरई ॥

साखी–अक्षर भेद जाने नहीं, बातें कहै बनाय ।
ताको कहो न मानिये, आपन जीव नशाय ॥

चौपाई

आरति भक्ति औ अक्षर सारा ।और सकल सब झूठ पसारा ॥
जा कहँ अक्षर परिचय होई । आरति फल पावत है सोई ॥
मूल शब्द घट मांहि विराजै ।शून्य शिखर अक्षर धुन साजै॥
ताकी महिमा तुलै न कोई । ऐसा साधू विरला होई ॥
सो कडिहार जो अक्षर जाना । और गुरू सब झूठ बखाना ॥
गुरू सोई जो अक्षर जाना । बिन अक्षर मूरखसम जाना ॥
कडिहार वही जीवन कहँ तारै । अक्षर विन जिव नरकहि डारै॥
जो गुरु दगा शिष्य कहँ देता । नरक परै गुरु शिष्य समेता ॥
अक्षर बिन गुरु आरति करई । धर्मराय के फन्दा परई ॥
इतना भेद न जानत प्रानी । पेटके कारण ज्ञान बखानी ॥
जैसे ठनिया करै ठगिहारी । जैसे जानहु सो कडिहारी ॥
अक्षर की परिचय नहिं पावे । आपहि आप जो गुरू कहावे॥

छन्द—कडिहार सोई सांच है, जिन शब्द सों परिचय करी।
सूर्त निर्त समेट कै सोई, नाम निह अक्षर धरी॥
रहन शूरे ज्ञान पूरे, पंथ परमारथ लहौ।
दुष्ट मित्र समान यकचित, दुतिया भाव न चित गहौ॥
सोरठा—सद्गुरु सिन्धु कबीर, उन पटतर अब को लहै।
सुनियो धर्मनि धीर, सरिता सब कडिहार हैं॥
इति श्रीग्रंथ अमरमूल चौका बंधन वर्णन

---

## षष्ठ विश्राम

### धर्मदास वचन—चौपाई

यह सुन धर्मदास हर्षाना। जिमिपंकज विकसे लखि भाना॥
हे सद्गुरु मोपर दया कीन्हा। जन्म स्वार्थ अब मैंने चीन्हा॥
धर्मदास कहै कर जोरी। स्वामी सुनिये बिन्ती मोरी॥
यक संशय मोरे घट मांही। कौनउ विधि सों छूटत नाहीं॥
मृतलोक में पाखंड धर्मा। कैसे जीव होय निह भर्मा॥
तुम सतगुरु निजज्ञान सुनाया। शिष्य पाखण्ड तजै नहिं माया॥
सो मोहे सतगुरु भेद बताओ। तासो जीव होय मुक्ताओ॥

### सद्गुरु वचन

धर्मदास तुम सुनो विचारी। पाखण्डी गति सब निर्वारी॥
सत्य शब्द घट माहिं समावै। ता लग सब पाखंड कहावै॥
तुम जानतहौ शब्द प्रवाना। विना ज्ञान नहिं शब्द समाना॥
पाखण्ड जिव मुक्ति न होई। कितो उपाय करे पुनि सोई॥
पाखण्ड जाके हृदये होई। सोई हंसा कर मुक्ति कर बिगोई॥
जप तप ज्ञान बहुत कर जाना। नेम धर्म बहुतक लिपटाना॥
इतना कष्ट कीन्ह अधिकाई। तौ पाखण्ड भेट नहिं जाई॥

ज्ञान शब्द घट माँहि समाना। सो पावेगा पद निर्वाना॥
माथे तिलक गले जयमाला। हिय पाखंड न मिले गुपाला॥

साखी-कहैं कबीर बिचारके, सुनियो हो धर्मदास।
सत्य शब्द जिहिं घट बसे, तहँ पाखंड विनास॥

चौपाई

धर्मदास तुम सत्त के जानहु। पाखण्ड भर्म हृदयमत आनहु॥
जाको मन पाखंड सों राता। सोई नरक कहँ निश्चय जाता॥
पाखंड हिये भक्ति ना होई। सत्य वचन मानो घट सोई॥
दान देय औ पूजा करई। पाखंड धर्म जीव नहिं तरई॥
योग यज्ञ तीरथ फिर आवे। पाखंडी जिव ठौर न पावै॥
धर्मदास निश्चय सुन लीजे। सत्य शब्द में वासा कीजे॥

साखी-धर्मदास सुन लीजिये, सत्य शब्द उपदेश।
बिना सत्य पहुँचे नहीं, सत्य लोक निज देश॥

चौपाई

सत्य शब्द सतपुरुषहि जानौ। नाम बिना सब झूठ बखानौ॥
नाम छोड़ नहिं औरहि जानौ। निर्गुण सर्गुण एकहि मानौ॥
निर्गुण सर्गुणतें नाम नियारा। जो चीन्हें सो हंस हमारा॥
जहँ देखे तहँ शब्द स्वरूपा। बोलन हारको अचरण रूपा॥
अचरज बात कहन की नाहीं। बिन सतगुरु नहिं पावै थाहीं॥

साखी-निह अक्षर निज पावही, मिटि है सकल अँदेश।
निह अक्षर जाने बिना, घटही में परदेश॥

धर्मदास वचन-चौपाई

धर्मदास बिनती अनुसारा। अर्ज एक सुनिये करतारा॥
सकल भेद गुरु मोहि बतावा। बिना ज्ञान भेद नहिं पावा॥

ज्ञान रूप कहे सों कहिये । ज्ञान भेद कैसे के लहिये ॥
बिन सतगुरु को भेद बतावे । किहिविधि मनकी संशय जावे ॥

सद्‌गुरु वचन

ज्ञान शब्द सत गुरुसों पावे । विन सतगुरु को भेद बतावे ॥
ज्ञान नाम है बीज स्वरूपा । विना ज्ञान सो यह को रूपा ॥
ज्ञान बीज प्रथम अनुसारा । ज्ञान बीजतें सकल पसारा ॥
ज्ञान बीज सों द्वीप निर्मांया । अमी अंकूर ज्ञान उपजाया ॥
प्रथमहि तहां पुरुष को मूला । जिहिं तें भये सकल स्थूला ॥
सोलह सुत जबभय उतपानी । ज्ञान बीज तैं सबकी खानी ॥
तुम सहज धर्मबल जोरा । धर्मराय को माथा तोरा ॥
सुर्तनाम ज्ञानी अनुसारा । धर्मलोक तैं दीन्ह निकारा ॥
विषम सरोवर आन विराजा । अति अहँकार महाबल गाजा ॥
भाँति भाँतिके बाजन बाजा । रंग छत्तीसों होत अवाजा ॥
पांच तत्त्व गुण तीन बनाया । तातें सकल सृष्टि निर्मांया ॥
जात पांच यहि तें उतपानी । ब्राह्मण क्षत्री शूद्र बखानी ॥
ब्रह्मासों जब जाति पसारा । चार वर्ण कीन्हें निरधारा ॥
मुखसों ब्राह्मण कीन्ह उचारा । भुज सों क्षत्री कीन्ह पसारा ॥
जंघसों वैश्य करी उतपानी । पांव सो शूद्र कीन्ह सहिदानी ॥
चार वर्ण को सकल पसारा । वर्तमान वर्तै संसारा ॥
ब्राह्मण धर्म ब्रह्मको जाना । तातैं ब्राह्मण वेद बखाना ॥
ब्राह्मण जानौ शूद्र समाना । बिन जाने बूड़े अभिमाना ॥
गायत्री जप हैं दिनराती । समुझत नहीं ज्ञानकी पाँती ॥
गायत्री जप कर अभिमाना । हमसम और कोइ नहिं आना ॥
संध्या तर्पण औ षट कर्मा । वेद विचार साध शुचि धर्मा ॥
सुमति बिचारकै ज्ञान बखानै । धर्म विधान कथा बहु आनै ॥

पिण्डा पार तर्पण करि दीन्हा। आपन मन अहंकार बड़ कीन्हा॥
पित्र भक्ति कीन्ही ज्योनारा। मन मैं कीन्ह बहुत अहंकारा॥
हम तौ पित्र भक्ति लवलाई। हम सम भक्त और नहिं भाई॥
हम सम नाहिं कोइ कुलीना। पित्र भक्ति बहुतक लवलीना॥
जेंवहि ब्राह्मण पुण्य बड़ होई। कुटुम समान और नहिं कोई॥
वेद शास्त्र पढ़ ज्ञान जो जाना। भाषा ज्ञान सुने नहिं काना॥
साधु संत जो द्वारे आई। तिनकहँ देखै बहुत रिसआई॥
इन तो नष्ट कर्म बढ कीन्हा। मूंड़ मुड़ायकै टोपी दीन्हा॥
जाति पांतिकी लज्ना त्यागी। निस दिन फिरहिं ब्रह्म अनुरागी॥
तातें इनहिं न मानत कोई। पेटके कारण जाति बिगोई॥
जाति समान न और बिचारा। जातें ब्राह्मण जाति सम्हारा॥
यह सब मत ब्राह्मणने कीन्हा। जातैं सृष्टि कर्ममें दीन्हा॥
जिन प्रभु रचा सकल संसारा। तिनहि बिसार बूड अहंकारा॥
प्रभुहि छोड़ अन्त चित बासी। जन्म अनेक फिरहिं चौरासी॥
ब्राह्मण प्रभुकी भक्ति न जानी। ब्रह्मरूप नाहिन पहिचानी॥
मुनिवर स्मृति पढके राता। ज्ञान हीन मिथ्या मद माता॥
ब्राह्मण तो ऐसहि चलि गएऊ। ब्रह्म धर्म काहू नहिं गहेऊ॥

साखी—ब्रह्म भेद जानैं नहीं, बहुत करै अभिमान।
ताते ब्राह्मण बूड़हीं, कहैं कबीर बखान॥

### चौपाई

क्षत्री धर्म सुनौ व्यवहारा। गौ ब्राह्मण त्रियको रखवारा॥
गाय मार दैत्यन सब खाई। क्षत्री धर्म सबै नस जाई॥
ब्राह्मण से भरवावत पानी। क्षत्री धर्म कहाँ रहु जानी॥
आनकी त्रिया आन घर जाई। द्रव्य आन को आन लुटाई॥
न्यायहु पै ठाढा नहिं होई। क्षत्री धर्म सहज ही खोई॥

धर्म न चल न गुरुकहँ मानै । अपने मन महँ ज्ञान बखानै ॥
जो गुरु मिलै तौ ज्ञान लखावै । बहुरि न योनि संकट आवै ॥
एक नाम को करै नवेरा । चारों वर्ण तासु के चेरा ॥
एक धर्म कहँ बिनवै प्रानी । चार वर्ण साधन कहँ जानी ॥
साधुन की सेवा नहिं करई । बहु अभिमान हिये में धरई ॥

साखी—भक्त रूप चीन्हत नहीं, चाल चलै कछु आन ।
क्षत्री गए अभिमानमें कहैं कबीर निदान ॥

चौपाई

तातें परसराम औतारा । उन क्षत्रिनको कीन्ह सँहारा ॥
बारन बूढ़न के भए काला । क्षत्री मार विप्र प्रतिपाला ॥
मूर्ख लोग सब करें बखाना । सत्य भक्ति परचित नहिं आना॥
कोटिन हत्या क्षत्री करई । तिनकी लोग बड़ाई धरई ॥
क्षत्री धर्म को होय निवाहा । तौ नहिं छोड़ै कालको चाहा॥
धर्मराय तिन करै संहारा । जारे वार करै जर छारा ॥
क्षत्री सोइ क्षमा जिहिं आवै । परजा दुखी आप दुख पावै ॥
वैश्य धर्म अब वेद बखानै । विष्णु जान मन और न कानै ॥
भूखा देख दया चित धरई । वैश्य धर्म व्यवहारहि करई ॥
तीरथ व्रत करै विधि नाना । प्रभुकी भक्ति नहीं चित आना ॥
जैनी जीव करे प्रतिपाला । जैननामगत आहि रिशाला ॥
पानी छान पिये दिन राती । नहिं ज्योनार करै निशिपांती॥
हरिप्रतीत मन माहिन आनै । सूखे काठ सों मन चितठानै ॥
भक्ति रूप न्यारो धर्मदासू । जासौं मिटै कालकी फांसू ॥
जीव श्वास ना धर्म चलावै । नाटक चेटक ज्ञान बतावै ॥
लिंग पूजावै घर घर जाई । कामिनि सों बहु प्रेम बढ़ाई ॥
कामिनी काम न चितसौं छूटे । यहि विधि घर यम निशिदिन लूटे॥

जप तप माया कीन्ह खुआरा । ऐसे जीव अटक यमद्वारा ॥
पारसनाथ पूजा मन लाई । बहुत भाँति सों पूजहि जाई ॥
पारसनाथ परम गुरु ज्ञानी । ताकी नहिं पावैं सहदानी ॥
ताके कर्म काट सब जाई । सतगुरु चरण रहै लवलाई ॥
जब सतगुरु की दाया होई । अक्षर भेद पाय नहिं सोई ॥
ब्राह्मण क्षत्री वैश्य बखाना । अक्षर भेद नहीं पहिचाना ॥

साखी—अक्षर भेद जानैं नहीं, करे बहुत अभिमान ।
वैश्य सबै वे नष्ट हैं, सत्य वचन परमान ॥

चौपाई

चार वर्णमें शूद्र अधीना । सेवा कर सबसों लवलीना ॥
इतनी भक्ति सतगुरु की पाई । चार वर्णमहँ सो अधिकाई ॥
ब्राह्मणकी सेवा अनुसारै । काम क्रोध औ लोभ निबारै ॥
क्षत्री सों बहु करै मिताई । नित नये प्रेमसहित अधिकाई॥
वैश्य धर्मही विधि कर पूजे । सत्य धर्म दाया चित कीजे ॥
ऐसे शूद्रहि ब्रह्म बखाना । ब्रह्मलोक में सेवा माना ॥
कलियुग शूद्र धर्म अधिकारा । तीन धर्म को भयो सँहारा ॥
धन्य शूद्र जो सेवा करई । गुरुके चरण हृदय महँ धरई ॥

साखी—यह तौ करनी शूद्रकी, सुनियो हो धर्मदास ।
सतगुरुके चरण जो सेवई, सत्य लोक महँ वास ॥

चौपाई

धर्मदास तुम शूद्र औतारा । जाते सतगुरु भक्ति चित धारा ॥
तुम्हरे पीछे ब्राह्मण तरि हैं । तुम्हरे पीछे क्षत्रि उबरि हैं ॥
चारों वर्ण मुक्ति घर जैहैं । जो तुम्हरो चरणोदक लैहैं ॥
कबहूँ न जल आवैं तेई । मुक्ति पदारथ पावें जेई ॥

साखी–जो प्राणी जन्मत भये, शूद्र सकल संसार ।
कह कबीर जब बाचि हैं, करिहैं ब्रह्म विचार ॥

चौपाई

यह तुम सुनहु वर्णनका लेखा । मुक्ति भेद करहु विवेका ॥
तुम्हरे शिष्य शब्द जो पावैं । बिना शब्द नहिं शिष्य कहावैं ॥
शब्द भेद जो पावैं अंगा । ताको काल नहीं परसंगा ॥
बिन अक्षर सबकहँ दुख होई । येही विधि सब जाय बिगोई ॥
और सकल यमको द्वारा । तिनको धर्मराय जो मारा ॥

धर्मदास वचन

धर्मदास विन्ती कर जोरी । स्वामी सुनियो बिनती मोरी ॥
तुम्ही दयाल हो अन्तर्यामी । करहु कृपा अब मोपर स्वामी ॥
तुम्हरे वचन मुक्ति हम पाई । हमरे वंश कस मुक्ति न आई ॥

सद्गुरु बचन

तब कबीर जो कहिबे लीन्हा । अब मैं कहौं वंशकर चीन्हा ॥
जिहि विधि मुक्ति होय रे भाई । सब अब तुम्हें कहौं समुझाई ॥
प्रथमहि विधि वंश ज्ञान मन लावै । सहज समाधि परम पद पावै ॥
निर्मोही हो जगसों रहई । मोह प्रीति मन हर्ष न करई ॥
जो मानै तौ अति भल जाना । नहिं मानै तौ समता ज्ञाना ॥
जो कोइ नाम कबीरहि लेही । तिनसो कछू न अन्तर देही ॥
आपा छोड़ नाम लव लावै । देह छोड़ सतलोक सिधावै ॥
जो मनमें करि है अहँकारा । निश्चय बूड़ै सब परिवारा ॥
सत्य भक्ति सत्यही मन लावै । आप तरै जीवन मुक्तावै ॥
जो कोई माया आन चढ़ाई । साधुन कहँ सब देय खवाई ॥
सत्य वचन सबही सों भाषै । सत्यनाम मनमें अभिलाषै ॥
कबहुँ न क्रोध कर मनमांही । जो बोलै सो नामकी छांही ॥

ज्ञान विचारे शब्द सुनावे । सब जीवन कहँ लोक पठावै ॥
तुम्हरे वंश जो आगे होई । तिनके गर्व बहुत मन सोई ॥
गर्वके किये भक्ति नहिं होई । बिना भक्ति सब जाँय विगोई ॥
सात पिढ़ी लग गर्व गुमाना । आठै पिढ़ी भक्ति परवाना ॥
पावै सार शब्द परवाना । तब पुनि पावै लोक ठिकाना ॥
सात बाल जो तुम्हरे होई । तब लग रहै अभिमान समोई ॥
शब्द पेल कै करहिं धिगाई । पंथहि मेट अपंथ चलाई ॥
आठे वंश तबै औतारा । तिनसों होय पन्थ उजियारा ॥
वे गुरू आय करै संसारा । तीन लोकमहँ बास पसारा ॥
स्वर्ग माहि नामी जिहि आही । धर्मराय तिनकी सुधि पाहीं ॥
तब अपना वह दूत पठाहीं । बहुतक छल करहै तिनपाही ॥
सार शब्द सों निकट न जाई । भागे दूत रहै पछताई ॥
वंश तुम्हार केर यह लेखा । बिना नाम नहिं होय विवेका ॥
जा कहँ अमर नाम मिल गयऊ । सो प्राणी निहसंशय भयऊ ॥
अमरशब्द जो घट परकाशा । तहँवा है हमरौ निज वासा ॥

छन्द–जो अमरनाम न पाय है, सो अध है पछताय ।
जन्म जन्मत कष्ट बहुतक, जरा मरन समाय हो ॥
हंस वंशन हंस पंगत, कही सब दरसायके ।
यह रहन रहै सो लोक पहुँचै, कहैं कबीर समझायके ॥

सोरठा–दीन्ह जक्त को राज, धर्मन तुम्हरे वंश कहँ ।
करेहि जीव को काज, सत्यनाम समझायके ॥

इति श्रीग्रंथ अमरमूल चारवर्णवर्णन वंशमहिमावर्णन

## सप्तमविश्राम

### धर्मदास बचन चौपाई

धर्मदास कहे कर जोरी । स्वामी सुनये विन्ती मोरी ॥
जो तुम कही सोई परवाना । गुरुके वचन सत्य हम जाना ॥
हम जानी पुरुष रु गुरु माहीं । तुमहिं पुरुष कुछ अंतर नाहीं ॥
हमरे दिल यह पारख आई । तुम्हरी दया हंस मुक्ताई ॥
हमरे बालक तुम्हरे पाछे । तुम्हरी दया नाम मिल आछे ॥

### सद्गुरु वचन

तब साहिब अस कहि समुझाई । वंश तुम्हार मुक्ति घर जाई ॥
जो कोइ बालक होय तुम्हारा । तिनसों भक्ति होय उजियारा ॥
पंथ माहिं जे बालक आवैं । ते तुम वंशन माथ नवावैं ॥
तिनसों भक्ति मर्यादा होई । सार शब्द चलि है निज सोई ॥
नाँद केरि बालक जो होई । तिनको मुक्ति नाम सो सोई ॥
नाँदके बालक शब्दहि जाना । भवसागर तज लोक पयाना ॥
विन्दके बाल रहें अरुझाई । मान गुमान और प्रभुताई ॥
सत्य शब्द जिहि बालक जानी । सोई पावै लोक सहिदानी ॥
जेहो बाल प्रवाना पावा । तिन कहँ जानहु वंश स्वभावा ॥

साखी—हमरे बालक नामके, और सकल सब झूठ ।
सत्य शब्द कहँ जानही, काल गहे नहिं खूंट ॥

### चौपाई

धर्मदास सुन शब्द पसारा । बिना शब्द नहि उतरहि पारा ॥
बिना शब्द तुम मुक्ति न पाओ । केतो ज्ञान गम्य फैलाओ ॥
वंश हमार शब्द निज जाना । बिना शब्द नहि वंशहि माना ॥
धर्मदास निर्मोह हिय गेहू । वंशकी चिन्ता छांड़ तुम देहू ॥
तुम तौ भयऊ शब्द समाना । यही बचन तुम चित नहिं आना ॥

तुमहि कही अस बस्तु गुसांई। मैं बूझों यह संशय जाई॥
तुम्हरी दया आज जो पाऊं। तौ सब बालक लोक पठाऊं॥

## सद्गुरु वचन

तब साहिब अस कहि समुझाई। बिना नाम नहिं लोक पठाई॥
नाँद बिन्दकै बालक दोई। बिना नाम कोई मुक्ति न होई॥
के तौ पढ़ै गुणै औ गावै। बिना नाम भव भटका खावै॥
हमरे माया मोह न होई। सब संसार सत्य कर सोई॥
धर्मदास तुम बड़े हौ ज्ञानी। यह संशय कस मन महँ आनी॥
गुरु को भार सबन कर होई। तुम मनमें पछताव न कोई॥
तारन तरन सत्य हम सोई। बिन सतगुरु बूड़ा सब कोई॥
सतगुरु तौ सब सृष्टि उबारा। तुम बालक अब कौन है भारा॥
तुम जिन चिन्तामनमहँ करहू। सद्गुरु नाम हृदय महँ धरहू॥
एक काल आवे जब भाई। सबै सृष्टि यह लोक सिधाई॥
जहँ लग जीव जन्तु सब कहिये। तहँ लग सब सद्गुरु महँ लहिये॥
सबै भार सद्गुरुके कांधे। पार लगावहिं यम नहिं बांधे॥
यमका अमल छूट जब जाई। सद्गुरु शरण जीव जब आई॥

साखी–कहे कबीर बिचारकै, सुनियो हो धर्मदास।
अमरमूल जो जान है, ताको सब परकाश॥

## धर्मदास वचन–चौपाई

धर्मदास बिनवैं कर जोरी। स्वामी सुनिये बिनती मोरी॥
तुम्हरे कहे जगत तर जाई। कौन मतासों लोक सिधाई॥
ज्ञान दिव्य जो घट नहिं होई। सोइ कवन बिधि लोकसमोई॥
तब मैं जानो ज्ञान तुम्हारा। सकल सृष्टिको होय उबारा॥

कहै कबीर तबै समुझाई । यह संशय तुम कवन कराई ॥
तुम तौ आपन हंस उबारो । जीवन शोच कहा निर्धारो ॥
सतगुरु लीन्ह जगतको भारा । तेई करि है सृष्टि उबारा ॥
जापर गुरु चितवैं चितलाई । ताकर हंस बिगोय न जाई ॥
जब यह सृष्टि कीन्ह परकाशा । हंस अनंत सतलोक निवासा ॥
अबहूँ अनंत लोक कहँ जाई । सत्यलोक महँ जाय समाई ॥
तुमको संशय कछू न भाई । आपन हंस करो मुक्ताई ॥

साखी—सतगुरु तारनहार हैं, कहैं कबीर बिचार ।
तुम क्या शंका करत हो, आपन करो उबार ॥

### धर्मदास वचन—चौपाई

धर्मदास विनवै कर जोरी । बिनती साहिब सुनिये मोरी ॥
तुम शिर आहि जक्तको भारा । सब जीवन को करो उबारा ॥
हमको नाहिं गुरुवाई दीजे । आपन भार आप शिर लीजे ॥

### सद्गुरु वचन

तब सतगुरु अस बचन उचारा । तुम कहँ दीन्ह जक्तको भारा ॥
तुम्हरे मुहर चले संसारा । अक्षर अक्षर करै पुकारा ॥
तुम्हरे कहे खोज जो करई । अक्षर पाय हंस निस्तरई ॥
जो नहिं मानै कहा तुम्हारा । सो चल जैहैं यमके द्वारा ॥
धर्मदास बिनती अनुसारी । हे सतगुरु तुम्हरी बलिहारी ॥
तुम तो सत्य लोकके वासी । किहि कारन आये अविनासी ॥
मृत्यु लोक मैं कवनै काजा । धर्मराय बड़ पापी राजा ॥
तहँवां कवन काज पगुधारा । सो मोहिं स्वामी कहो बिचारा ॥
तुम साहब सत पुरुष कहाए । मृत्यु लोक में काहे आए ॥

## सद्‌गुरु वचन

तब साहिब बोले बिहसाई। अब यह ज्ञान सुनौ मन लाई॥
जब नहिं हते शून्य बे शून्या। तब नहिं हते पाप औ पुन्या॥
तब नहिं धरती गगन अकाशा। मेरु मन्दर नाहीं कैलाशा॥
तब नहिं चन्द्र सूर्य औतारा। तब नहिं शेष सकल विस्तारा॥
तब नहिं इन्द्र कुबेर समोई। वायु वरुण तहँवां नहिं कोई॥
सात वार पन्द्रह तिथि नाहीं। आदि अंत नहिं कालकी छाहीं॥
तब नहिं ब्रह्मा विष्णु महेशा। आदि भवानी गौरि गणेशा॥
आदि पुरुष तब हते अकेला। उनके संग हता नहिं चेला॥
आप पुरुष अस कीन्हौ साजा। शब्दहि माहि लोक उपराजा॥
प्रथमहि शब्द सुर्त अनुसारा। तेहि पीछे सब द्वीप सवाँरा॥
तेहि पीछे पुन मूल बनावा। तेहि पीछे सोहं उपजावा॥
ता पीछे अचिन्त जो कीन्हा। ते पीछे अक्षर रच लीन्हा॥
ता पीछे कूर्महि निर्मयऊ। ताहि भार पृथ्वीको दयऊ॥
तब जल रंग सूर्त इस भाखा। सप्त पातालके नीचे राखा॥
जिहितें भयो जलको विस्तारा। सकल सृष्टि कौ भयो पसारा॥
तिहि तें तेज तत्त्व अनुसारा। जेहिं गुण तें काल औतारा॥
पांच तत्त्वतें सब निर्मावा। तीनों गुण तिहि माहिं समावा॥
तीनों गुण स्वरूपके धामा। ब्रह्मा विष्णु महेश्वर नामा॥
रज गुण तैं ब्रह्मा उतपानी। सतगुरु भाव विष्णु कर जानी॥
तमगुण शिव संहार पसारा। इतने भयो सकल संसारा॥
तेजके गुणहि काल उतपानी। तासों भये जीव दुखदानी॥
तातैं पुरुष दया चित आई। हंसन कारण मोहिं पठाई॥
यातैं मृत्यु लोकहि आए। धर्मदास तुम दर्शन पाए॥
तुम जीवनके बन्द छुड़ाये। सुमरन सत्य नाम समुझाये॥

तुम्हरे हाथ सृष्टि तरजाई । सार शब्द हम तुम्हें लखाई ॥
या कारण संसारहिं आये । नाम पान सों हंस बचाये ॥
जो तुम कहौ कहा अस कीन्हा । आज्ञा मान पुरुषकी लीना ॥
पुरुष शब्द तें जीव उबारा । तुम कहँ कवन बात कर भारा॥
यह चरित्र कछु कहा न जाई । अचरज खेल पुरुष निर्माई ॥
आपहि पुरुष आपही काला ।आपहि काल कीन्ह बे हाला॥
आपहि सकल सृष्टि निर्माई । आपहि न्याव करै सब कोई॥
आपहि कर्म कुकर्म बखानै । आपहिआपनआप पहिचानै॥
यही ज्ञान धर्मन सुन लेहू । इत उन चित जप मत देहू ॥
जिमि बालक मंदिरहि सवाँरा । आपहि भेंट आपहि हारा ॥
माता सौं तब रुदन कराई । मंदिर अब मम देहु बनाई ॥
एही खेल बिधाता कीन्हा ।यही मता कोई बिरिले चीन्हा॥
धर्मदास तुम सत्यहि मानौ । हमरौं बचन झूठ जिन जानौ॥
यह चरित्र मैं तुम्हें सुनावा । लीला पुरुष केर समुझावा ॥
आपहि पुरुष आपहि नारी ।आपहि काम विषय अधिकारी॥
आपहि सृष्टि कीन्ह उतपानी । आपहि कर्म धर्म लपटानी ॥
कर्म भर्म आपहि उपजाई । आपहि स्तुति कीन्ह बड़ाई ॥
आपहि निंदक आपहि ज्ञानी । आपहि धर्म अधर्म बखानी ॥
आपहि अपनी स्तुति करई । आपहि मूर्ख चतुरता धरई ॥
आप कुलीन आपहि अकुलीना । आप धनाढ्य आपही दीना॥
सतकुल आपहि असत बनाया ।आपहि सत्य असत्य समाया॥
यह तौ भेद पाय है सोई । सतगुरु मिले जाहि कहिं होई॥
येही भेद धर्मनि लेव जानी । निर्मल जलगंगा सम मानी ॥
यहै ज्ञान मैं तुम्हैं सुनावा । बिरला जन बूझै यह भावा ॥
यही बात गुप्त तुम राखहु । हमरी बात अंत जिन भाखहु॥

जो कोइ शब्दका खोजी होई । ता कहँ भेद बतावहु सोई ॥
इक मन इक चिन जाकर होई । ना कह ज्ञान न भापहु सोई ॥
दुतिया मन जाही कर भाई । तासौं राखो भेद छिपाई ॥
जो गुरु सों कोइ अन्तर राखा । धर्मराय मुगदर सोइ चाखा ॥
साखी—गुरुकी महिमा अगम है, अकह कही नहिं जाय ।
गुरु पद रज हियमें धरै, सत्यलोक कहँ जाय ॥

चौपाई

सत्यलोक सतगुरुकौ बासा । ब्रह्म कीन्ह गुरु मांहि निवासा ॥
गुरुके चरण रहै लवलाई । ताकी महिमा वर्णि न जाई ॥
गुरु औ शब्द एक कर जाना । ताकी त्रास धर्म भय माना ॥
जो कोई यह भेद न जानै । धर्मराय ता कहँ सन्मानै ॥
आतम ज्ञान जाहि कहँ होई । ताकौं काल न चापै कोई ॥
ऐसी धरण धरौ धर्मदासू । भवसागर तैं होउ उदासू ॥
सकल पसारा शून्य समाना । शून्यहि माहीं शब्द बखाना ॥
शून्य शिखरकी डोरी पावै । देह छोड़ सतलोक सिधावै ॥

धर्मदास वचन

धर्मदास कह सुनौ गुसांई । आतम ज्ञान गम्य नहिं पाई ॥
आतम ज्ञान मोहिं समुझाऊ । जासों सकल हंस मुक्ताऊ ॥

सद्गुरु वचन

धर्मदास यह मता अपारा । ताकर जो-मैं कहौं विचारा ॥
तब साहिब दया चितलाई । आतम ज्ञान तुम्हैं समुझाई ॥
गम्य अगम्य ज्ञान जब पावे । आतम ज्ञान तब घटहि समावे ॥
सत्य शब्द जब रहै समाई । सबही ठाम लोक है भाई ॥
शत्रु मित्र एकहि कर जाना । सांच झूठ एकहि कर माना ॥
सांच झूठ दोनों मिट गयऊ । दिव्य ज्ञान जाके घट भयऊ ॥

आपहि गुरु आपही शिष्या । आपहि पाय आपही दिख्या ॥
आपहि आप लगावे लेखा । आपहि ब्यापे अगम अलेखा ॥
आपहि स्वर्ग नर्क भर्मावै । आप ज्ञानि ह्रिय मुक्ति समावै ॥
आपहि दाता आपहि भुक्ता । आपहि अकृत आपही कृत्ता ॥
आपहि जन्म मरण उपजावे । आप मृत्यु ह्वै लोग रुवावै ॥
आपहि जिन्दा जग उपजावा । आपहि आशा तृष्णा लावा ॥
आपहि आप धर्म है काला । दोहू दीन ज्ञान तब चाला ॥
आपहि कुल अरु आपहि जाती । आपहि मूरत, आपहि पाती ॥
आपहि डाल आपही बेला । आपहि गुरु आपही चेला ॥

साखी—कहैं कबीर विचारके, आपहि सकल पसार ।
आप आप महँ रम रहे, आपहि सत्य अधार ॥

धर्मदास वचन—चौपाई

धर्मदास कहैं सुनो गुसांई । यहै भेद तुम मोहि सुनाई ॥
ऐसा शब्द जो मोहि सुनावा । जन्म मरणकी त्रास मिटावा ॥
एक वचन मैं बूझौं सांई । सोइ शब्द तुम मोहि सुनाई ॥
तुम जो कहेऊ ब्रह्म समाना । जीवरूप किमि होय अज्ञाना ॥
कबहुँ अज्ञान रूप ह्वै बर्तै । ज्ञानी होय ज्ञान पुनि कर्तै ॥
कबहुँ कहै यह ब्रह्म समाना । कहुँ राजा कहुँ भिक्षुक जाना ॥
कबहुँ जीव स्वभाव उपजावै । कबहुँ ब्रह्महो सबहि बुझावै ॥
ब्रह्म एक काहै अस कीन्हाँ । साहिब मोहि बतावहु चीन्हाँ ॥
कहैं कबीर सुनो धर्मदासू । यह सब भेद कहौं तुम पासू ॥

सद्गुरु वचन

ब्रह्म रूप है बीज समाना । पारब्रह्म अंकूर प्रमाना ॥
ताही माहिं पत्र दोय कीन्हा । एक शक्ति एकै सब चीन्हा ॥
डार पात तब प्रकृति समाना । मूलवृक्ष ईश्वर सम जाना ॥

ता महँ पांच डार निर्मावा । आकाशादि तेज उपजावा ॥
प्रथमहिं वायु रूप जो कीन्हा । वायुके मध्य तेज धर दीन्हा॥
तेजके मध्य नीर निर्माया । जैसे बीजसे वृक्ष जमाया ॥
ऐसे उत्पति सबकी होई । धोकामें सब गये बिगोई ॥
सद्गुरु जा कहँ दाया कीन्हा । सकल भेद ते पावैं चीन्हा ॥
तत्त्व मांहि निहतत्त्व लखावै । हद मांहि अनहद कहँ पावै ॥
अनर्थ मेंटके अर्थ बतावै । लघु दीरघ पूरा समझावै ॥
पूर्णज्ञान जाही घट होई । सतगुरु भेदको पावै सोई ॥
ब्रह्मज्ञान बिन मुक्ति न होई । कैसे संत कहावै सोई ॥
जाकी महिमा कही न जाई । ज्ञान गम्य तैं शब्दहि पाई ॥
शब्द सार निर्मोलक पावैं । सो हंसा सतलोक सिधावैं ॥

साखी—सो पहुँचे सतलोक कहँ, काल मर्म नहिं जान ।
ते हंसा अवरन भये, सत्यपुरुषके ध्यान ॥

धर्मदास वचन—चौपाई

धर्मदास कहै सुनौ गुसांई । आप अपन पर सब बिसराई॥
सतगुरु जापै दाया कीन्हाँ । तिन पायोनिज बिजको चीन्हा॥
सूक्षम रूप परश जन आवै । लघुता विलै दीर्घ पद पावै ॥
लघुता मति प्रभु आवस कैसे । समझ परै घट कहिये तैसे ॥

सद्गुरु वचन

कहँ कबीर सुन सुकृती बानी । यह घट समझ लेहु सहिदानी॥
सूक्षम रूप शब्द कर आही । सतगुरु मिलहिं लखावहिं ताही॥
सुर्त निर्त जब शब्द समाना । अहंकार मन केर बिलाना ॥
दीन भाव गति तबही आई । सब घट आतम एक समाई ॥
पूरण ज्ञान जाहि घट होई । तब यह भेद पाय है सोई ॥
ज्ञानी महिमा एही जाना । सब घट आतम एक समाना॥
सो हंसा सतलोक सिधावे । दुबिधा भाव सबै बिसरावे ॥

छन्द–भाव दूसर तजहु धर्मनि, एक ब्रह्म विचारकै ।
इमि जीव जगमें देखिये, जलबिन्दु लहर सम्हाँरकै ॥
परमातमासों आत्मा, जिमि भानु किरण प्रकाश हो ।
उलट कर जब आप चीन्हें, भाव दूसर नाश हो ॥
सोरठा–जिमि तिल मध्ये तेल, कंचन औ आभूषणा ॥
जीव ब्रह्म इमि मेल, पुहुप मध्य जिमि बासना ॥

इति श्री अमरमूल आत्मज्ञान वर्णन

---

## अष्टम विश्राम

### धर्मदास वचन–चौपाई

अर्ज एक अब करौं गुसाँई । कृपासिन्धु मोकहँ समुझाई ॥
जीव सीव कर भेद न जाना । कैसे ज्ञान करौ परवाना ॥
जीव सीव कर भेद बताओ । यहै ज्ञान मोकहँ समझाओ ॥

### सद्गुरु वचन

धर्मदास सुनियो चितलाई । जीव सीव मैं कहौं बुझाई ॥
पांच तत्त्व गुण तीन सो साजा । ताजे सृष्टि कीन्ह उपराजा ॥
शुद्ध सतोगुण सीव कहावै । रज तम मिश्रित जीव बनावै ॥
सत रज तम तीनों सो न्यारा । पारब्रह्म सबही तैं पारा ॥
पारब्रह्म अस कीन्ह समाजा । त्रिगुण रूप करसृष्टि उपराजा ॥
उपजा सृष्टि गुणकी खानी । ताते जीव बुद्धि कर जानी ॥
रज तम सत्त्व एक है भाई । बिना ज्ञान भूली दुनियाँई ॥
तत्त्व ज्ञान जाके घट होई । जीव सीव कहँ जानै सोई ॥
बिना तत्त्व जाने नहिं कोई । केतौ यत्न करे नर लोई ॥
भर्म भर्म भूला संसारा । आप न चीन्हाँ भूल संसारा ॥
सब अभिमान छूट जब जाई । ब्रह्म भेद कहँ पावै भाई ॥

ब्रह्म ज्ञान जाके घट होई । मरम पुरुष कहँ जाने सोई ॥
सत्य शब्दका मर्म जिन जाना । और सकल जग झूठ बखाना॥
सबमें ब्रह्म रहो भर पूरी । बाहर भीतर तत्त्व हजूरी ॥
दूजा काहु न देखै कोई । सत्य शब्द जाके घट होई ॥
जाकों सद्गुरु दाया कीन्हा । सो पावेगा शब्दका चीन्हा ॥
अगम भेद लख पावै जोई । सतगुरु सांच और सब छोई ॥
सतगुरु महिमा ही लख पाई । सो सत लोक पहुँचि है जाई ॥
यहै ज्ञान धर्मन करहु सुन लेहू । सब कहँ सत्य शब्द कह देहू॥
मिथ्या ज्ञान करहु उपदेशा । तो नहिं पावहु लोक संदेशा ॥
जो तुम काज आपना चाहू । तौ जीवन कहँ सत्य लखाहू ॥
जो कोइ शब्द सुनैं तुम पासा । सोई करि है लोक निवासा ॥
जाके सत्य ज्ञान घट भयऊ ।यारै प्रीति निज घर कहँ गयऊ॥
अनमोलिक हीरा निज जाना । ताका मोल वहीं परमाना ॥
सोहं सम निर्मोलक भयऊ । साहिब सेवकइक मिल गयऊ॥
कञ्चन और आभूषण जाई । ऐसे ब्रह्म जीव मिलजाई ॥
दूजां भाव न एका रहिया । संशय मेट अमर पद लहिया॥
अमर मूल अमर पद भई काया । अमर शब्द जिन हंसन पाया॥
अमर शब्द सतगुरु सों पावै । बिन सतगुरु सब मूल गँवावै॥
कहैं कबीर सुनौ धर्मदासू । ऐसा भेद करौ परकासू ॥
यहै भेद संसार सुनावहुँ ।सब जीवन कहँ लोक लेजावहुँ॥
तुम कहँ दीन्ह जक्त कडिहारी । तुम्हरी बांह उतर भवपारी ॥
जा कहुँ तुम बकसो सहिदानी । सो कडिहार जक्त महँ जानी॥
जापर दाया तुमने कीना । सोई जीव मुक्ति कहँ चीना ॥
मुक्ति भेद जब पावै प्राणी । सतगुरुनेक सदा उतपानी ॥
रजगुण तमगुण त्याग कराई । सतगुण धर्महिं परसैं भाई ॥
सतगुण धर्म कर पावै भेदा । कहँ कबीर सोइ हंस अछेदा ॥

### धर्मदास वचन

धर्मदास विन्ती अनुसारी । हे सतगुरु मैं तुम बलिहारी ॥
सतगुण धर्म मोहि समुझाई । जिहितें मन संशय चलिजाई॥

### सद्गुरु वचन

धर्मदास चित केहु विचारी । सतगुरु धर्म कहौं निरवारी ॥
प्रथमहि भोजन सब परिहरही । रजगुण भोजन मध्यम करही॥
उत्तम तंडुल आन भरावै । बार छानकै तहां मँगावै ॥
उत्तम चौका दीन्ह बहुभांती । शब्द बोल मल कीन्हौ स्वाँती॥
दुग्ध खांड घृत असन करावा । तासौं कहिये सतगुण भावा॥
जितनी क्षुधा होय घट प्रानी । लेव अहार सोई अनुमानी ॥
शब्द बोले परसाद चढ़ावै । भाजी बनै तो अति मनभावै॥
भाजी नहीं तौ जलभर आना ।गुरुकहँ देय अधिक सुखमाना॥
ऊगुर लेय बहुत मन मानी ।यह विधि कहिये सात्त्विक ज्ञानी॥
तीसर भाग अभ्यागत देई । तब प्रसाद पवित्र करलेई ॥
अभ्यागत नहिं आपही पावै । राजस धर्म नर्क कह जावै ॥
सतगुरु धर्म छूट जब जाई । राजस तामस आन समाई ॥
सतगुण धर्म करो प्रतिपाला । निश्चय पावे लोक रसाला ॥
चैतन्य पुरुषमें जाय समाई । दुविधा भाव सबै मिट जाई॥
रजगुण तमगुण सतगुण कहिये । सब मिट जाय ज्ञान जो पइये
सब कहँ भर्म भूत करडारा । झूठी बात भेट औटारा ॥
सबै ब्रह्म ना दूसरे कोई । दूजा भर्म मिट गये सोई ॥
वेद शास्त्र सब कहै बखानी । वचन बिलास कहैं सब ज्ञानी॥
छऊ शास्त्र मिल झगरा कीन्हा । ब्रह्म रूप कारू नहिं चीन्हा ॥
चीन्हैं तौ जो दूसर होई । भर्म विवाद करैं सब कोई ॥
एकै ब्रह्म अखंडित कहई ।खंडित ज्ञान महँ निसदिन रहई॥

ताकी बात कहत परवाना । झूठ न छोड़ै मूर्ख अज्ञाना ॥
मूरख किमि कर कहिये भाई । ब्रह्म सकलमें रहा समाई ॥
आपहि मूरख आपहि ज्ञानी । आप कथा सब कहै बखानी ॥
आपहि ऊँच नीच दिखलावै । ज्ञानी होय जगत समुझावै ॥
आपहिं बूझ आपही नाहीं । आप आपमहँ सकल समाहीं ॥
आपहि सुम्रिन करे बनाई । जप तप ज्ञान आप ठहराई ॥
स्वर्ग नर्क सब आपहि बासा । बाजीगर है करे तमासा ॥
आप तमासा आप भुलाया । आपहिं हैं सब माहिं समाया ॥
आप आप को चीन्हे नाहीं । आपहि ज्ञानी आप समाहीं ॥

साखी-आप आपको चीन्हकै, आप ब्रह्म हो जाय ।
आप न चीन्हैं आप कहँ, परौ भर्म महँ जाय ॥

चौपाई

अकह कहन कहि नहिं जाई । आप अकथ हो कथा सुनाई ॥
आपहि मनका रूप बनाया । दूया होके जगत दिखाया ॥
ऐसा भाव विधाता कीन्हा । ताते कोइ न पावै कीन्हा ॥

साखी-आप आपको चीन्हकै, सब संशय मिटजाय ।
कहैं कबीर निर्दोष भये, ब्रह्म स्वरूप समाय ॥

चौपाई

जबहि ब्रह्मरूप कहँ जाना । तब संसार झूठ कर जाना ॥
कितहुँ न देखे दूजा नाऊ । सब घट ब्रह्म जो रहा समाऊ ॥
जाहि ज्ञान अनुभव परगासा । सकल कर्मको भयो तब नाशा॥
कर्म धर्म जो दोउ मिटये । ना कहुँ गये ना कहूँ आये ॥
जैसा रहा तैसा है सोई । बीचको भर्म मेंट सब खोई ॥
कर्म भर्म की छूटी आशा । एकै नाम करहु विश्वासा ॥
नाम छोड़कै और न जाने । तीरथ व्रत कछु मन नहिं आने ॥

आपहि तीर्थ आपहि देवा। आपहि आप लगावै सेवा॥
आपहि मूरत पिंड बँधावै। आप जन्त्रि ह्वै जन्तर लावै॥
आपहि महिमा सबकी कीन्हा। आपहि निन्दक मिथ्या कीन्हा॥

साखी-आप सकल जग व्यापिया, आपहि अलख अपार।
आपहि जग उपजावही, आपहि दस औतार॥

चौपाई

आपहि देव दैत्य संहारा। आप युद्ध कीन्ह असरारा॥
आपहि महाभार्थ करवाया। पांडौको शुभ ज्ञान सुनाया॥
आपहि कौरव पांडव भयऊ। आपहि होय सबनसौं कियऊ॥
आपहि है अहंकार स्वरूपा। आपहि रय्यत आपहि भूपा॥
आपहि चाकर हो सेवा लावा। आप पंडित हो वेद पढ़ावा॥
आपहि भला बुरा अनुसारा। आप अमीर न्याव निर्बारा॥
आप ले आवै आपहि खाई। आप अतीत आप सिवकाई॥
आपहि न्याव आपहि बादा। आपहि तीता आपहि वादा॥
आपहि खाटा मीठा भयऊ। आपहि सर्वस्वाद कर लयऊ॥
आपहि लघु दीरघ हो देखा। आपहि दूर निकट हो लेखा॥
आपहि सकलौ वेद पुराना। आपहि पोथी आप बखाना॥
आपहि छऊ शास्त्र बनावा। वाद विवाद कर ज्ञान सुनावा॥
आपहि जीत आपही हारा। आपहि तरे आपही तारा॥

साखी-ऐसी महिमा ब्रह्मकी कहत कही नहिं जाय।
जो कोइ यह मति समझ है, तेही ब्रह्म समाय॥

चौपाई

ब्रह्म अखण्ड खण्ड नहिं होई। खंडित ब्रह्म ध्यावे सब कोई॥
आप कहैं है ब्रह्म अखंडा। आपहि खंडित कह सबखंडा॥
आपहि मनुष्य रूप कहावै। आपहि दूजा भाव स्वभावै॥

आप अवचन वचन नहिं आवै । आप वचन कहि सब समुझावै॥
आप अरूप रूप नहिं कोई । आपहि सकल स्वरूप है सोई ॥
आपहि निर्गुण रूप जो कहिये । ज्ञानगम्यतें यह मत लहिये ॥
आपहि ज्ञान मुक्तिके दाता । आपहि दाता आपहि मुक्ता ॥
कहैं कबीर सुनो धर्मदासा । ऐसा ज्ञान घट करौं प्रकाशा ॥

## धर्मदास वचन

धर्मदास बिनती अनुसारी । हे साहिब मैं तुम बलिहारी ॥
यह मत मोहक अगम लखावा । हृदय कमल अब आन ज़ुड़ावा॥
एक बात मैं बूझहुँ साई । सोइ कहो जिहिं संशय जाई ॥
तुम सब ब्रह्म कहो समुझावा । मोरे मन निश्चय यह आवा॥
औरन सों कह कहो गुसाँई । यह तौ ज्ञान कहौं नहिं जाई ॥
मैं जाना सब तुम्हरी दाया । और जीव नहिं शब्द समाया॥
ताकर मोहे कहौं उपदेशा । सो हंसन सों कहौं सन्देशा ॥

## सद्गुरु वचन

धर्मदास तुम ज्ञान सुनाऊँ । जो मानैं सो सन्त स्वभाऊ ॥
जो नहिं माना शब्द तुम्हारा । फिर पछतै है बारम्बारा ॥
धर्मदास तुम आपन सोधौ । तब तुम सकल सृष्टिपर बोधौ॥
जो तुम्हरौ मन थिर नहिं होई । तबलग पंथ चलैं नहिं कोई ॥

साखी-जब मन कहँ परबोध हू, सकल भर्म मिटजाय ।
एक नाम कहँ सेवहू, आवागमन मिटजाय ॥

## चौपाई

धर्मदास मैं कहौं नवेरा । जासों हंस मुक्त होय तेरा ॥
मुक्ति होय सत नामहि पावै । बहुरि न योनी संकट आवै ॥

### धर्मदास वचन

धर्मदास कहैं सुनो गुसांई। मुक्ति वस्तु सो मोहि सुनाई॥
तुम तौ मुक्ति भर्म कर डारा। तुमते पायँउ ज्ञान भंडारा॥
मुक्ति करौ जो बन्धा होई। यह तौ हंस निबन्धक सोई॥
नहिं कोई बन्धा नहिं कोइ छूटा। संशयके बस सब जग लूटा॥
तुम्हरी दाया सो हम जाना। मुक्ति अमुक्ति दोउ भर्माना॥

### सद्गुरु उवाच

अब तुम्हारे जिव निश्चय आई। हम जाना तुम सिखहौ भाई॥
निज मन्त्रहि जानहु धर्मदासा। अब कह बूझहु सत्त विलासा॥
जो कहिये सो वचन विलासा। यह तौ साखी पद परकासा॥
ग्रन्थ कहेउ सब जगत प्रबोधा। जो बूझे सो पावै सोधा॥
जो बूझे ग्रन्थनकी वानी। तब पावै गम निज सहिदानी॥
जब पावै शब्दहि कर लेखा। तब जानहु जैसे सब धोखा॥
धोखा योग यज्ञ तप कीन्हा। धोखा दान पुण्य सब लीन्हा॥
धोखा कर्म करे संसारा। धोखा कोटिन ज्ञान पसारा॥
धोखा पुरान सकल जहाना। धोखा शास्त्र वेद मत ठाना॥
धोखा साखी पद है भाई। धोखा कह सब ज्ञान सुनाई॥
धोखा प्रथम सांच कर माना। समझे धोखा सबै नसाना॥
जस निर्गुण तस सर्गुण माना। निर्गुण सर्गुण एक समाना॥
अगुण सगुण दोनों मिट गयऊ। आदिब्रह्म सौ परिचय भयऊ॥
धर्मदास यह मति सुनि लेहू। धोखा ज्ञान चित्त मत देहू॥
प्रथमहि भक्त रूपकर ज्ञाना। ता पीछे फिर तत्व समाना॥
जबही तत्त्व समाना भाई। तबही जीव लोक कहँ जाई॥
जबही सत्त्व हृदै महँ आवै। धोखा रूप सबै मिट जावै॥
जब तुम अपना तत्त्वहि जानौ। गुरु औ शिष्य दोउ पहिचानौ॥

तुमही शिष्य गुरु हो सोई। तुम गुरुही शिष्य सब कोई ॥
गुरु अरु शिष्य एककर जाना। दूजा भाव सो सबै बिलाना ॥
दूजा भाव वसत है जाके। नहीं शिष्य नाहीं गुरु ताके ॥

साखी-गुरु शिष्यकी महिमा, कहैं कबीर बिचार।
अमरमूल जो जान हौ, उतरौ भौजल पार ॥

चौपाई

तुम कहँ शब्द दीन्ह टकसारा। सो हंसन सों कहो पुकारा ॥
शब्द सार का सुम्रन करिहै। सहजै सत्यलोक निस्तरिहै ॥
सुम्रन का बल ऐसा होई। कर्म काट सब पलमहँ खोई ॥
जाके कर्म काट सब डारा। दिव्य ज्ञान सहजै उजियारा ॥
जा कहँ दिव्यज्ञान परकाशा। आपहिमें सब लोक निवासा ॥
लोक अलोक शब्द हैं भाई। जिन जाना तिन संशय जाई ॥
तत्त्व सार सुम्रन है भाई। जातें यमकी तपन बुझाई ॥
सुम्रन सों सब कर्म बिनाशा। सुम्रन सों दिव्यज्ञान प्रकाशा ॥
सुम्रन सो जैहै सतलोका। सुम्रन सों मिटे है सब धोका ॥
धर्मन सुम्रन देहु लखाई। जासों हंस सबै मुक्ताई ॥
गुरु धोबी सिख कपड़ा जानी। सुम्रन साबुन है परवानी ॥
बस्तर को तब मैल नसाई। तैसे ज्ञान हिये दर्साई ॥
हृदे ज्ञान परकट जब होई। कर्म भर्म सब मिटगए दोई ॥
ज्ञान दीप जबही परकाशा। मोहे तिमिरको भयो विनाशा॥
सत्य पुरुष महँ जाय समाना। हंस पुरुष एकहि कर जाना ॥
दुतिया धोखा मिट तब गयऊ। एक रूप महँ एकसम एऊ ॥

धर्मदास वचन

धर्मदास बिन्ती अनुसारी। हे सतगुरु तुम्हरी बलहारी ॥
एक बात अब बूझौं साई। जिहितैं मनकी संशय जाई ॥

तुम तौ एक एक ठहरावा। एक महातम निज हम पावा ॥
सत्य लोक का कहौ ठिकाना। केतक है बिस्तार प्रमाना ॥
केतक ऊँच नीच है भाई। सो मोहि साहिब देहु बताई ॥
केतक लंबा औ चकराई। सो सब लेखा कहु समुझाई ॥

सद्‌गुरु वचन

कहैं कबीर सुन सुकृत वानी। लोक कथा सब सुन बिलछानी ॥
सब विस्तार तोहि समझाऊं। लेखा नहीं अलेख लखाऊं ॥
कहिये तो लेखा हो भाई। अलेखा बात मुख कही न जाई ॥
जासौं कहिये अगम अपारा। ताको अंश न पावहिं पारा ॥
जहँ लेखा तहँ परलय होई। अलेख अंत न पावहि कोई ॥
एक समय ऐसो धर्मदासा। अपने चित्तको कहौ प्रकाशा ॥
जब हम सत्यलोकमें रहिया। सो वृत्तान्त तुहै नहिं कहिया ॥
सत्यलोक तैं आगे गयऊ। अचरज तहँवा देखत भयऊ ॥
सो अचरज अब कहौ न जाई। तुम पूछौ तौ देहुँ बताई ॥
ऐसी बात ताहिं काहू जानी। तुम ना काहू फिर पूछी आनी ॥
धर्मदास प्राण हित मोरा। सुनहु ज्ञान यह दीप अंजोरा ॥
केतक सत्यलोक में देखा। पुरुष प्रमाण न जात बिशेखा ॥
ऐसा लोक यही ब्यवहारा। ऐसहि रूप तहँ पुरुष सवाँरा ॥
तहवाँ देख सुर्त सौं जाई। जिन मोहिं दीन्हा अगम लखाई ॥

साखी—अनंत काल तहँ देखऊ, सत्यलोक विस्तार।
गिन्ती कहँ लग कीन्हिये, धर्मदास निर्धार ॥

चौपाई

गिन्ती कहाँ गिनौ निज धामा। को वर्णै सो पुरुष प्रवाणा ॥
गिन्ती की मर्याद मिटाई। सार शब्द सब घटन समाई ॥

साखी-जौ कछु गिन्ती आवही, ताकौ है सब नाश।
परै न गिन किम गीनिये, ऐसा शब्द प्रकाश॥

चौपाई

वचन भेद कर कथा सुनावा। जिहितें तुम्हरा मनपति आवा॥
ब्रह्म अखण्ड लेख किमि जानी। खंडित कर किमि ज्ञान बखानी॥
तहँ लगि सुनी सो माया जानी। जो देखा सो भर्म बखानी॥
कहिये जो तौ दुतिया होई। दुनिया भर्म मेंट सब कोई॥
एक ब्रह्म दुतिया नहिं कोई। कैसे दुतिया कहिये सोई॥

साखी-नहिं उत्पति नहिं प्रलय, नहिं आवे नहिं जाय।
नहिं गिन्ती अनगिनत वह, बूझ कै शब्द समाय॥

चौपाई

तब हम आगे दीन्ह पयाना। जहँ देखा तहँ हंस समाना॥
अक्षर एक हम सब में देखा। भाव अनेक कहो का लेखा॥
तब हम चले आप स्थाना। ऊर्ध्वलोक सो कीन्ह पयाना॥
मारगमें अचरज एक देखा। ताका अब मैं कहौं बिवेका॥
अद्भुत लीला वर्णि न जाई। कहे सुने सौं को पतिआई॥
धर्मदास मैं तुमहिं सुनाऊँ। अकथ कथा कथ ज्ञान बुझाऊँ॥
तहँवां देख कबीर कर लोका। असंख्य कबीर कर देखा थोका॥
हम जाना की हमहि कबीरू। जहँ देखा तहँ कबीर शरीरू॥
तब अपने चित कीन्ह बिचारा। एकहि रूप सकल बिस्तारा॥
दूजा और आय नहिं कोई। सब घट रमैं कबीर समोई॥

साखी-हम कबीर हम कर्ता, सकल सृष्टि धर्मदास।
दूजा और न देखिये, सत्य शब्द परकास॥

### चौपाई

नहीं कबीर नहीं धर्मदासा । अक्षर एक सकल घट वासा ॥
सत्य पुरुष वाही सों कहिये । आदि अन्त अक्षर गह रहिये ॥
अक्षर मूल और सब डारा । शाख रमैनी पत्र पसारा ॥
कथा जोकहि-कहि ज्ञान सुनावा । यही भांति संसार बुझावा ॥
जिन बूझा तिन धोखा माना । सकलबात मिथ्याकर जाना ॥

साखी– कहै कबीर यह मनहि है, मतका सकल पसार ।
चिन्ह यह मन कहँ बूझिया, आवागमन निवार ॥

### धर्मदास वचन–चौपाई

धर्मदास विनती करजोरी । बंदिछोर सुन विन्ती मोरी ॥
निश्चय जान मोहिं समुझायो । निश्चयसकलहमतुमसों पायो॥
सो यह बात अब बूझौं सांई । सो साहिब मोहिं देहु बताई ॥
आवागमन कवन विधि होई । बन्दी छोर सुनावहु सोई ॥

### श्रीसाहिब कबीर वचन

तब साहिब कहिबे अनुसारा । कहौं विचार तासु व्यवहारा ॥
पांच तत्त्वका पुतरा बनावा । तामहँ परगट आप समावा ॥
त्रिगुण आतमा रूप बनाई । दुख सुख ताहि सबै भुगताई ॥
इन महँ मन राजा कर दीन्हा । तातें जीव बुद्धि गह लीन्हा ॥
आपन रूप आपनहिं चीन्हा । तातें आवागमन कर लीन्हा ॥
ना कोइ आया ना कोई गया । मनके मते जन्मतें भया ॥
मनही ज्ञानी मूरख कहिये । मनही ब्रह्मरूप यह लहिये ॥
मनका है यह सकल पसारा । मनही पाप पुण्य बिस्तारा ॥
मनही मोह काम उपजावै । मनही आशा तृष्णा लावै ॥

मनही देहरा देव पसारा । मनही पूजे पूजन हारा ॥
मनही नार पुरुष कर जाना । मनहि पुत्र मन बाप बखाना ॥
मनही राजा रय्यत कहिये । मनहि दिवान मनहि मिलि रहिये॥

साखी—कहैं कबीर यह मनहि है, मनका सकल पसार ।
मन चीन्हे ते अमर हैं, गह निहअक्षर सार ॥

चौपाई

कहँलग कहिये मनकी बानी । झूठ पसारा मनहिं बखानी ॥
एक ब्रह्म सब घटहि समाई । नहिं कहुँ आवै नहिं कहुँ जाई ॥
मनकी वृत्ति यह कथा सुनावा । मनही वेद पुरान पढ़ावा ॥
मनहि शास्त्र शुभ घड़ी विचारी । उत्तम मध्यम कह निर्वारी ॥
मनही भाव बृत्त सब करई । मनके भाव योग तप धरई ॥
मनके भाव यज्ञ जो कीन्हा । मनके भाव दान जो दीन्हा ॥
मनके भाव प्रतिग्रह लेई । मनके भाव तुला सब देई ॥
यह सब है मन केर खुटाई । सतगुरु मिस सब कर्म छुटाई ॥

साखी—यह सब मनकी दौर है, मनका सकल पसार ।
ज्ञान चीन्ह मन अचल है, कहैं कबीर बिचार ॥

चौपाई

मनकी कथा कहेउ प्रसंगा । अचरज बात कहेउ सब रंगा ॥
यह मत तौ हम तुमसों कहिया। ज्ञानी होय कोइ कोई लहिया ॥
इक अक्षर का यह है लेखा । ज्ञानी हों सोइ शब्द विवेका ॥
धर्मदास अक्षर दृढ जानौ । दूजा भाव न मनमहँ आनौ ॥
दूजा कहिये मनका भाऊ । ताते सत्य ज्ञान समझाऊ ॥
झूठा है मन का पैसारा । ताते चित महँ शब्द सँभारा ॥

साखी–कहै कबीर विचारकै, सुनियो सन्त सुजान।
हम तुम कहँ निज भाखऊ, सत्य शब्द परवान॥

चौपाई

धर्मदास सुन सत्य सँदेशा। सत्य शब्द कहियो उपदेशा॥
जाके पास होय दिव्य ज्ञाना। सोई पावहि पद निर्वाना॥

छंद–निर्वान पद कहँ पाय है सोई ज्ञान दीपक उर धरै।
अज्ञान तमको नाश कर परकाश आतमको करै॥
जिमि भानु है आकाशमें प्रतिबिम्ब सब घट देखिये।
ब्रह्म जीव है भेद इतनो धर्मदास विवेकिये॥

सोरठा–सत्य नाम परवान, कहैं कबीर विचारकै।
पहुँचै लोक ठिकान, यहै भेद जो पावही॥

इति श्री अमरमूल, जीव सीव भेद लोकवर्णन

## नवम विश्राम

### धर्मदास वचन–चौपाई

धर्मदास उठ पांयन परई। सतगुरुसों विनती अनुसरई॥
सत्यलोक मोहे बरन सुनावा। बचन तुम्हारे सब लखि पावा॥
तुम तौ कहैं अवचन है सोई। चरचा शब्द कहो किमि होई॥
जब तुम शब्द जो कहि समुझावा। वचन भावमें सब जो आवा॥
अवचन बात वचनकिमिकहिये। सो मोहे स्वामी भेद बतइये॥
प्रथमहि तौ तुम शब्द सुनावा। ता पीछे फिर ज्ञान दृढावा॥
और तुम कहे वचन अनलेखा। हम सेवक किमि करें विवेका॥
एक वचन कहिये समुझाई। जिहिते चित्त अन्त नहिं जाई॥

## साहिब कबीर-वचन

तब कबीर अस कहिबे लीन्हा । ज्ञान भेद सकल कहि दीन्हा ॥
धर्मदास मैं कहौं विचारी । जिहितें निबहै सब संसारी ॥
प्रथमहि शिष्य होय जो आई । ता कहँ पान देहु तुम भाई ॥
जब देखहु तुम दृढ़ता ज्ञाना । ता कहँ कहहू शब्द प्रवाना ॥
शब्द मांहि जब निश्चय आवै । ता कहँ ज्ञान अगाध सुनावै ॥
अनुभवका जब करै विचारा । सो तौ तीन लोकसों न्यारा ॥
अनुभव ज्ञान प्रगट जब होई । आतमराम चीन्ह है सोई ॥
शब्द निहशब्द आप कहलावा । आपहि बोल अबोल सुनावा ॥
आपहि चुप जो बोलत रहिया । आप वचन अवचन जो कहिया ॥
आप गुरु ह्वै शब्द सुनावै । आप शिष्य ह्वै सुर्त समावै ॥
आहि गुरू शिष्य जो होई । देखैं सुनै आपही सोई ॥

साखी-देखै सुनै कहै सबै, आपहि रूप अपार ।
आप न चीन्है आप कहँ, भूला सब संसार ॥

## चौपाई

यह मति हम तौ तुम कहँ दीन्हा । बिरला शिष्य कोइ पावै चीन्हा ॥
धर्मदास तुम कहौ सन्देशा । जो जस जीव ताहि उपदेशा ॥
बालक सम जाकर है ज्ञाना । तासौं कहहू वचन प्रवाना ॥
जा कहँ सूक्ष्म ज्ञान है भाई । ता कहँ सुम्रन देहु लखाई ॥
ज्ञान गम्य जा कहँ पुनि होई । सार शब्द जा कहँ कहु सोई ॥
जा कहँ दिव्य ज्ञान परवेशा । ता कहँ तत्व ज्ञान उपदेशा ॥
अनुभव ज्ञान जाहि कहँ होई । दूसर कितहु न देखै सोई ॥
उग्र ज्ञान जा कहँ परकाशा । आतमराम घटमाहिं निवासा ॥
आतमरामकी परचय होई । आपहि आतमराम है सोई ॥

दूजा कितहुं न देखहि भाई। आप रहा सब ठांव समाई ॥
यही भांति तुम जग समुझावो। जो समुझै तेहिं लोक पठावो ॥
आत्मारामकी परिचय पाई। ताके निकट लोक है भाई ॥
हम तौ एक लोक कहँ दीन्हा। अनंतलोक घट नाहीं चीन्हा ॥
अनंतलोककी परिचय पावै। कहँ कबीर भव बहुरि न आवै ॥
एक बचन तो देउँ लखाई। जिहि तैं तुम्हरो संशय जाई ॥
एक समय सत लोकहि रहिया। सत्य पुरुष इक मोसन कहिया ॥
हे कबीर हम तुम हैं एका। दूजा भाव मति राखहु ठेका ॥
सुर्त स्वरूप तुम्हारा भाई। शब्द रूप हमही निर्माई ॥
सुरत शब्द निकट इक भाखा। पर्दा अंतर कछू न राखा ॥
ब्रह्म स्वरूप मोहिं कहँ जानौ। केवल ब्रह्म स्वरूप बखानौ ॥
शब्द मोहिं यक सुर्त उतपानी। सो मोकों तुम निश्चय जानी ॥
धर्मराय है मेरो अंशा। सो निज जानहु हमरो वंशा ॥
आदि भवानी रूप बनावा। तामें निश्चय जाय समावा ॥
तीनों गुण हैं मोर प्रकाशा। पांच तत्व महँ मोर निवासा ॥
जीवन रूप कियो हम भाई। आतम रूप जु हमहिं बनाई ॥
पांच तत्त्व परकट हम कीन्हा। निश्चय वास तहां हम लीन्हा ॥
आपहि सों सब रूप अवतारा। राम कृष्ण परकट संसारा ॥
यह सब रूप मोर है सांचा। इनहि चीन्ह सो यमसों बाँचा ॥
यम माहीं है मोरो रूपा। सब पृथ्वीमह मोर स्वरूपा ॥
चौरासी लख योनी कीन्हा। आप बास योनीमहँ लीन्हा ॥
हम से दूसर नाहिन कोई। भर्म माँह सब रहे समोई ॥
भर्म रूप हम सृष्टि बनाई। भर्म मांहि सब रहे समाई ॥
सुर नर मुनिगण यक्ष अपारा। राची सृष्टि भर्म व्यवहारा ॥

इतने भर्म न छूटत भाई। ब्रह्मादिक से रहे भुलाई ॥
हे कबीर हम तुमसों कही। निश्चय जान बात यह सही ॥
पुरुष बात यह मोहि सुनाई। सो मैं तुम कहँ आन जनाई ॥
धर्मदास निरखहु निज नैना। निश्चय जान परख मम वैना ॥

धर्मदास वचन

धर्मदास विनवै कर जोरी। साहिब सुनहू बिनती मोरी ॥
यहै कथा तुम मोकहँ भाखी। दूसर और कवन है साखी ॥

सतगुरु वचन

तब कबीर बोले अस बानी। सत्य बात यह सुनियो ज्ञानी ॥
यहै कथा हम त्रेता भाखी। मधुकर विप्र ताहिकर साखी ॥

साखी—यहै कथा त्रेता कही, मधुकर सों समुझाय।
और न दूजा जानही, धर्मदास सुन भाय ॥

धर्मदास वचन—चौपाई

अमृत कथा मोहि समुझावा। हृदयकमल मम आन जुड़ावा ॥
सतगुरु सम्रथ की बलिजाऊँ। बहुर न भवसागर महँ आऊँ ॥
अस्तुति कवन एकमुख करऊँ। सतगुरु चरण हृदयमहँ धरऊँ ॥
गद गद गिरा नयन भरदयऊ। अहो नाथ मोहि बड़सुख भयऊ ॥
बहुत अनंद भयउ मन माहीं। अचरज सुख कछु कही न जाहीं ॥
बचन सुधा रविकिरण समूहा। मम संशय यामिनिगत जूहा ॥
बहुत अनंद भयउ हियमाहीं। ब्रह्म अनंद कहो नहिं खाहीं ॥
बिनती एक सुनो गुरु ज्ञानी। तुम महिमाकिमिकहौंबखानी ॥
जो अब दाया करो गुसांई। सोई शब्दमहँ रहौं समाई ॥

श्रीसाहिब कबीर वचन

कहै कबीर सुनौ धर्मदासू। हम तुम एक शब्दमहँ बासू ॥
दूसर भाव नहीं है आशा। सोई कबीर सोई धर्मदासा ॥

एक रूप धर्मदास कबीरा । लख चौरासी एक शरीरा ॥
काया बीर नाम है धीरू । सब घट रहें समाय कबीरू ॥
जो बोलत सो शब्दप्रवाना । शब्दहि रूप कबीर समाना ॥
शब्दहि रूप कबीर कहाई । शब्द रूप ह्वै रहै समाई ॥
निजही शब्द कबीर है सारा । जाका है निज सकल पसारा ॥
एकै रूप शब्द पुन एका । एक भाव दुतिया नहिं देखा ॥
एकहि हम तुम एक शरीरा । एक शब्द है मति के धीरा ॥
एको रूप एकै अनुहारी । एकहि पुरुष सकल बिस्तारी ॥

साखी–रंग रूप सब एक है, एकहि सकल पसार ।
एक जान सोइ एकहै, दूजा यह संसार ॥

बिनती एक करौं कर जोरी । सतगुरु संशय मेटहु मोरी ॥
जो तुम ऐसा ज्ञान सुनावा । हृदयकमल मम आन जुडावा॥
इक संशय उपजी मन माहीं । चार कर्म देखे जिमि पाहीं ॥
कर्म ज्ञान कहे सब कोई । कर्म करे सो निश्चय होई ॥
कर्म सकल जीवन कहँ फाँसा । कर्म संग यह भयो बिनाशा ॥
कर्म करै तैसा फल पाई । ऊँच नीच योनिन भरमाई ॥
काल पाय कोइ ज्ञान बिचारा । काल पाय सब कर्म सँचारा ॥
ऐसी कथा सुनी सब ठाई । सोइ कहौं जिहि संशय जाई ॥
तुम तो एक एक ठहरावा । दूसर भाव कवन उपजावा ॥
सब घट ब्रह्म एक ठहराई । तौ किमि कष्ट सहैजिव आई ॥
जो तुम कहौ सब ब्रह्म समाना । कोई जीव होहिं अज्ञाना ॥
जो कहिये सब एकहि आई । तौ कस ज्ञान कथा अब गाई ॥
एक ब्रह्म तौ सब घट चीन्हा । गुरु शिष्य काहे कहँ कीन्हा ॥
यह तो आप आप ठहराई । काहे का तुम पंथ चलाई ॥

जो असकहौ सकल प्रभु कीन्हा। ज्ञान गम्य कैसे कै चीन्हा ॥
काहे कहँ तुम कथा सुनाई। काहे कहँ अब ज्ञान बताई ॥
का कहँ गुरु शिष्य कहावा। कर्म अंक काहे फल पावा ॥
को बूझे अरु कवन बुझावे। कवन गुरूको शिष्य कहावै ॥

साखी—यह संशय गुरु मेटहू, बिनती सुनो हमार।
बलिहारी तुव नामकी, क्षणमें लीन्ह उबार ॥

साहिब कबीर वचन चौपाई

तब सद्गुरु बोले इक्र बानी। अचरज बात लेहु पहिचानी ॥
कर्म रेख तुम पूछेउ आई। सो सब कथा तुम्हैं समझाई ॥
मात पिता मिल कर्म कमावा। ताही कर्म देह बनि आवा ॥
ब्रह्मलोक सों जब जिव आवा। कर्म रहित निर्मल पद पावा ॥
जलनिधि वारी मेघ लै आई। बून्द बून्द निर्मल हर्षाई ॥
भूमि परी डाबर पहिचानी। इमि जीवहि माया लपटानी ॥
पवन लगै निर्मलता होई। माया मलिन दूर सब खोई ॥
जल कहँ पवन जीव कहँ ज्ञाना। ज्ञान भयेते कर्म नसाना ॥
कर्मनसे निर्मल पद पावा। ज्योंका त्यों तब आप कहावा ॥
आप चीन्ह भव जलतें न्यारा। तन छूटे पहुँचै दरबारा ॥
जब जन्मा तब कर्मका लेखा। तन छूटा तब आंखन देखा ॥
जन्म मरनतेंथिर नहिं कीन्हा। ऐसी विधि है कर्मको चीन्हा ॥
जाहि समय जैसी बनि आई। ताहि समय तैसा है भाई ॥
तिहितें कर्म काल ठहराना। सब शास्त्रिनमिलकीन्ह बखाना ॥
जीव रूप ताहीसौं जानी। आपको आप नहीं पहिचानी ॥
तातें ज्ञान सुनायऊ आई। जीव बुद्धि जातैं मिट जाई ॥
गुरु शिष्य यह कारण आई। कर्म अंक लिखनी मिट जाई ॥
तातें पंथ चलाएउ आई। यह कारण हम ज्ञान सुनाई ॥

एही तें है सकल पसारा। याहीतें है सब व्यवहारा ॥
आतम राम चीन्ह जब पावा। सकल पसारा मेंट बहावा ॥
आतम परमातम मिल जाई। जैसे सरिता सिन्धु समाई ॥
जब लग यह चीन्हें नहिं आतम। तब लग नहिं मिलि है परमातम॥
शब्द बिना आतम दृग हीना। सद्गुरु संघ यही कहि दीना ॥
शब्द नेत्र जबही लख पावा। सद्गुरु मिलनिज घरहि सिधावा॥
ऐसी मति जाही घटहोई। हँस हिरंमर कहिये सोई ॥
तिनकहँ जानहु हमहिं स्वभाऊ। हमहुँ नहीं कछु ताहिं दुराऊ ॥
धर्मदास यह बूझहु ज्ञाना। जातें हंस होय निर्वाना ॥
जा कहँ आतम ज्ञान प्रकाशा। वही कबीर वही धर्मदासा ॥
आतम राम देख जिन पाई। आप आप सब ठांव समाई ॥
जब देखा तब आप समाना। ब्रह्म छोड दूसर नहिं आना ॥
सोहं सोहं सत्य कबीरा। शब्द मंत्र है प्रकट शरीरा ॥
यहां ग्रंथ मैं मंत्र सुनावा। चारहि वेदका मूल बतावा ॥
षटै शास्त्र मिलकरहिं विचारा। प्रकट ब्रह्म यह ज्ञान विचारा ॥

साखी– ऐसा ज्ञान जब ऊपजे, सुनहू हो धर्मदास ।
परकट ब्रह्म स्वरूप है, एक नाम विश्वास ॥

चौपाई

यहै ग्रंथ सब सुनै सुनावै। निश्चय प्रेम भक्ति को पावै ॥
जो ज्ञानी है बूझै ज्ञाना। निश्चय है है ब्रह्म समाना ॥
चार पदारथ को फल होई। निश्चय जानहु यहमत सोई ॥
ऐसो ज्ञान अखंडित भारी। अमरमूल मैं कहेऊँ बिचारी ॥

साखी–अमरमूल यह ग्रंथ है, सकल ज्ञान भंडार ।
सुनत अमर पद पावहीं, कहैं कबीर विचार ॥

धर्मदास वचन

धर्मन हियमें अतिही हर्षेउ। गद्गद गिरा नयन जल बर्षेउ॥
सतगुरु चरण रहे हियमाहीं। भानु उदय पङ्कज बिकसाहीं॥
मोह निशा व्याकुल अतिभारी। तामहँ सोवत नाहिं सम्हारी॥
गुरु दयाल मोहिं लीन्ह जगाई। आवागमन रहित घर पाई॥
अब सन्देह रहा कछु नाहीं। शब्द तुम्हार बसा हियमाहीं॥
स्तुति कहा तुम्हारी कीजै। अमृत कथा श्रवण भर पीजे॥

छन्द–तुम आदि ब्रह्म अपार सतगुरु, जीवकारण आयऊ।
काट फन्दा सकल यमके, अमरलोक पठायऊ॥
भवसिंधु कठिन कराल भारी, पार काहू ना लयो।
तुम कृपा गोपद जान सोई, पार धर्मनि कर दयो॥

सोरठा–दीन्हों मोहि लखाय, परमातम आतम सकल।
अमरमूल समुझाय, अमर वस्तु गुरु दीन्हेऊ॥

इति श्रीग्रन्थ अमरमूल धर्मदास सम्बोधन विज्ञात मतवर्णन

दशम विश्राम सम्पूर्ण

इति अमरमूल ग्रन्थ समाप्त

हमारे प्रकाशनों की अधिक जानकारी व खरीद के लिये हमारे निजी स्थान :

**खेमराज श्रीकृष्णदास**
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
९१/१०९, खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,
७ वी खेतवाडी बॅक रोड कार्नर,
मुंबई - ४०० ००४.
दूरभाष/फैक्स-०२२-२३८५७४५६.

**खेमराज श्रीकृष्णदास**
६६, हडपसर इण्डस्ट्रियल इस्टेट,
पुणे - ४११ ०१३.
दूरभाष-०२०-२६८७१०२५,
फैक्स -०२०-२६८७४९०७.

**गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,**
**लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस व बुक डिपो**
श्रीलक्ष्मीवेंकटेश्वर प्रेस बिल्डींग,
जूना छापाखाना गली, अहिल्याबाई चौक,
कल्याण, जि. ठाणे, महाराष्ट्र - ४२१ ३०१.
दूरभाष/फैक्स- ०२५१-२२०९०६१.

**खेमराज श्रीकृष्णदास**
चौक, वाराणसी (उ.प्र.) २२१ ००१.
दूरभाष - ०५४२-२४२००७८.

सत्य

# श्रीउग्रगीताप्रारम्भः

भारतपथिक कबीरपंथी–

स्वामी श्रीयुगलानन्द द्वारा संशोधित

मुद्रक एवं प्रकाशकः

**खेमराज श्रीकृष्णदास,**

अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,

खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग, मुंबई – ४०० ००४.

संस्करण : अप्रेल २०१९, संवत् २०७६

मूल्य : १७० रुपये मात्र ।

मुद्रक एवं प्रकाशक:
खेमराज श्रीकृष्णदास,™
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,
मुंबई - ४०० ००४.



Printers & Publishers :
Khemraj Shrikrishnadass Prop: Shri Venkateshwar Press, Khemraj Shrikrishnadass Marg, 7th Khetwadi, Mumbai - 400 004.

Web Site : http://www.Khe-shri.com
Email : khemrai@vsnl.com

Printed by Sanjay Bajaj For M/s.Khemraj Shrikrishnadass Proprietors Shri Venkateshwar Press, Mumbai-400 004, at their Shri Venkateshwar Press, 66 Hadapsar Industrial Estate, Pune 411 013

# सत्यनाम



श्री कबीर साहिब




सत्यसुकृत, आदि अदली, अजर, अचिन्त, पुरुष,
मुनीन्द्र, करुणामय, कबीर, सुरतियोग संतान,
धनी, धर्मदास, चूरामणिनाम, सुदर्शन नाम,
कुलपति नाम, प्रबोध गुरुबालापीर, केवल नाम,
अमोल नाम, सुरतिसनेही नाम, हक्क नाम,
पाकनाम, प्रकट नाम, धीरज नाम,
उग्र नाम, दया नामकी दया-
वंश व्यालीसकी दया

# अथ श्रीबोधसागरे

एकविंशतिस्तरंगः

## अथ उग्रगीताप्रारंभः

### उत्थानिका

★

दोहा–उग्र गीता सार है, सुकृत दया लिसाय ।
करे दूरि अज्ञान को, अञ्जन ज्ञान समाय ॥
करे दूरि अज्ञानता, अंजन ज्ञान सो देइ ।
बलिहारी वे गुरुनकी, हंस उबारि जो लेइ ॥

सोरठा–अंजन ज्ञान है सार, रहै नहीं अज्ञानता ।
तेहि गुरुकी बलिहार, मेरी सदा प्रणाम है ॥

चौपाई

प्रथमैं बन्दौं सतगुरु पाया । बंदी छोर करहु तुम दाया ॥
धर्मदास बिन्ती अनुसारा । दया करो दुख भञ्जनहारा ॥
अविगतिकी गति जाइ न जानी । अहौ दयाल सो कहौ बखानी ॥
वेद शास्त्र सब जगत बखानैं । गुप्त तत्त्व कोइ कर्म न जानैं ॥
जब लगि वेद भेद नहिं जानै । तब लगि शब्द न हितकर मानै ॥
वेद बिचारि भेद जो जानै । सत्य शब्दमें मोहि पहिचानै ॥
जीव जन्तु माया लपटाना । ताते वेद भेद नहिं जाना ॥
करवा चौथ औ होरी पूजे । परम तत्त्व कैसेहु नहिं बूझे ॥
देवी देव बहु पूजा ठानै । सार शब्द हृदय नहिं आनै ॥
तीरथ व्रत महँ तन मन पागे । सद्गुरु शब्द न कबहू लागे ॥
तेहिते सब जग गयो विगोई । जनम काल धरि सबही खोई ॥
तुम सद्गुरु हौ मुक्ति के दाता । अगम अपार कहौ विख्याता ॥
सद्‌गुरु मोहि कहौ समुझाई । जाते मनकी संशय जाई ॥
श्रीकृष्ण गीता जो भाषा । सो समर्थ सुनबे अभिलाषा ॥
केहि विधि अर्जुन रणमहँ नयऊ । केहि विधि ताहि मोह पुनि भयऊ ॥
केहि विधि कृष्ण ताहि समझाये । सो समर्थ कहौ भेद बताये ॥

दोहा–हे दयाल बिन्ती करौं, रहौं चरण चितलाय ।
गीता अर्थ भेद सब, मोहि कहौ समुझाय ॥

चौपाई

कहै कबीर सुनहु धर्मदासा । तत्त्व भेद है गुप्त निवासा ॥
वेद भाव संसार पसारा । ताते सृष्टि रच्यो व्यवहारा ॥
बहु व्यवहार रच्यो बहु भांते । जगत सकल भर्मत है ताते ॥
वेदतत्त्व तुम सुनौ सुजाना । अर्जुनगीता कृष्ण बखाना ॥

सो मैं तुमसन कथा सुनावों। तत्व भेदका मता बुझावों ॥
शास्त्र वेद पुराणन मांहीं। गीता मता तत्व जो आहीं ॥
तत्व मता जो कृष्ण सुनाया। सद्गुरु तो कछु अगम बताया ॥
तत्व निरतत्व दो होते न्यारा। धर्मदास तुम करहु विचारा ॥
जो संशय गीताके होही। सो अब सकल सुनावों तोही ॥
गीताका अब गम्य बतावों। सार शब्दका भेद सुनावों ॥
जहँ देखौ तहँ आप निवासा। सबते न्यारा सबमें बासा ॥
समै-तत्व मता है गीता, वेद पुराणमें सार।
ताते अगम अपार है, पूरण शब्द हमार ॥

अथ श्रीभगवद्गीताप्रथमोऽध्यायप्रारम्भः

कबीर उवाच

अब गीता मैं कहौं बखानी। कृष्ण कहा सो अर्जुन मानी ॥
ताते न्यारा शब्द बतावों। तत्त्व मांहि निहतत्त्व लखावों॥
जब यह सृष्टि भई महि भारा। तेहि मारण हरि मता बिचारा॥
बंधु विरोध कियो हरि जबहीं। कौरो पाण्डु जुरे दल तबहीं ॥
अर्जुन रथ चढि आये तहवां। दोउ दल युद्ध रचो है जहवां ॥
कृष्ण सारथी रथ जब हांका। तासों अर्जुन ऐसो भाषा ॥

अर्जुन उवाच

दोऊ दलमें लै रथ राखो। दूनो देखौं अपनी आँखों ॥
सुनिकै कृष्ण ऐसे ही कीन्हा। दोउ दल बिच रथ राखै लीन्हा॥
रथ जब दोऊ दलमें राख्यो। भयो मोह अर्जुन अस भाख्यो॥
ये सब बन्धु हमारे आही। हे प्रभु मैं मारौं कहु काही ॥
भाई चचा भतीजा सारा। कैसे मारौं कुल परिवारा ॥
जहँ लग देखों दोऊ सेना। आपन कुल मारौं केहि लेना ॥
विधवा होय है सकला नारी। ऐसो दोष लेत को भारी ॥
राज पाट मैं कछू न चाहों। सुखसम्मति कुलधर्म निबाहों ॥

तीन लोकका राज जो देई । हत्या बंधु तबहु नहिं होई ॥
जो तुम कहो उन अवगुन कीन्हा । छवहु प्रकार भारऊ लीन्हा ॥
तिन्ह प्रकारन मारा चाही । तौ यह मोहि दोष नहिं आही ॥
छौमें एक प्रकार जो होई । ताके मारे दोष न सोई ॥

धर्मदास उवाच

तब धर्मदास विनय अनुसारी । छौ प्रकार कवन कह भारी ॥
तेहि प्रकारन मारा चहिये । सो सब स्वामी मोसे कहिये ॥

कबीर उवाच

देखो हत्या को अब बरना । बहु संग्राम किये का सैना ॥
प्रथमै अग्नि देई घर कोई । मारत तासु दोष नहिं होई ॥
दूजे औरको जहर खवावै । हने ताहि कछु दोष न पावै ॥
तिसरे छत्र जो लेई छुड़ाई । राज काजमें पाप न भाई ॥
चौथे नारि पराई लेही । मारे ताहि पाप नहिं तेही ॥
पंचये धन चोरावन आवै । तेहि मारे कछु दोष न आवै ॥
छठये शस्त्र लै मारन धावै । मारै ताहि विलम्ब न लावै ॥
यह अपराध मारिये जोई । मारत हत्या कबहु न होई ॥

अर्जुन उवाच

छ अपराध हमहिंकू लागै । तऊ न हतों कर्म सब त्यागै ॥
मोसों यह अपराध न होई । जो मोकहँ इहि मारि विगोई ॥
अर्जुन धनुष बान गहि डारा । सबका अपनो बंधु बिचारा ॥
सब कह कुल परिवार निहारा । उपजो मोह अस्त्र गहि डारा ॥
सुनहु सन्त अर्जुनको विखादा । इह लगि कीन्हो वाद विवादा॥
अर्जुन मोह सम्पूरण भयऊ । कृष्ण अपन मनमत जो ठयऊ॥
कीजै छल यक मता विचारा । अर्जुन बुद्धि हतौ यहि वारा ॥
ब्रह्मज्ञानते यहि समुझावउ । काल रूप अपनो देखलावउ ॥
तब यह मानै कहा हमारा । मारौ फोरि सकल परिवारा ॥

कबीर उवाच

धर्मदास यह काल सुभावा । जाके जपन सृष्टि मन लावा ॥
सुर नर मुनि सब छलि २ मारा । कोई न छूटो यह संसारा ॥
ताते सतगुरु शब्द पुकारा । चीन्हो तत्त्व भेद टकसारा ॥
मूरख सत्य शब्द नहिं जाने । झूठहि झूठ सदा सुख मानै ॥
परपंची यह जग को रचना । बिन सतगुरु कोई नाहीं बचना॥
छन्द—यहि भांतिकै हरि युद्ध ठानो भाव कोई ना लहै ।
सकल बंधु विरोध करिकै तासु को मारन चहै ॥
ज्ञान औ अज्ञान करि भरमाइ डारो चित्तको ।
तबहु मूरख नहीं बूझै देख फंदि उस बरतको ॥
सोरठा—सुन धर्मदास सुजान, शब्द एक संसार है ॥
हंस होइ निरवान, मन बच कै निश्चय गहै ॥

इति श्रीउग्रगीताब्रह्मज्ञानयोगमतकबीरधर्मदाससंवादे
अर्जुनविषादो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ।

---

## अथ द्वितीयोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच

कृष्ण जो मन में मता विचारा । अर्जुन सो पुनि बचन उचारा ॥
तुम काहे मोहै गहि लीन्हा । केहि कारण तुम होहु अधीना॥
क्षत्री धर्म लाज बडि होई । तुम कह दोष न लैहै कोई ॥
जो तुम जानु सदा ये जीहैं । येई तौ जन्म फेरि फेरि लेहैं ॥
अमर तुमहु मैं नाहीं कोई । फिरि २ आवागवन समाई ॥
मैं हूँ अमर नहीं हौं भाई । हम तुम यहिविधि फिरि २ आई ॥
जब २ पाप प्रगट मोहि होई । धरि अवतार करौं क्षय सोई ॥
जब २ द्वापर आवै भाई । हमतुम यहि विधि फिरि२आई॥
कौरव पाण्डव फिरि २ लडि हैं । आपहि आपु मारि कै मरिहैं ॥

तुम्हरो कीन्ह कछू नहिं होई । देखौं ब्रह्म ज्ञान करि सोई ॥
मनमें अहं कबहु नहिं कीजै । को मारै कहु को कह छीजै ॥
आपु जो करता काल कहावै । सोई यह संघार करावै ॥
मनमहँ मोह कबहुँ नहिं कीजै । इच्छा प्रभुकी गहि कर लीजै ॥
शस्त्र लेहु तुम हाथ उठाई । कारण करण करै प्रभु आई ॥
तुम शिर कछू न लागे भारा । अपु ते आप जाय सब मारा ॥
जो तुम कहो जीव सब मरिहैं । जीव अमर फिरि२अवतरिहैं ॥
मारे मरै न जारे जरई । ताको मोह कहा तै करई ॥
जो काया सो मन चितलाया । मृतक सदा बनी यह काया ॥
मृतक रूप सदा रहै काया । तेहि कारण तुम करत हौ माया॥
तुम हौ अहा युद्ध अति आगर । यहि जगमें तुमहीं हौ उजागर॥
जो तुम युद्ध करो नहिं भाई । जगमें होइ है तुम्हरि हँसाई ॥
कहि है सबै युद्ध सो डरई । क्षत्रि धर्म तेरो नहिं रहई ॥
अपने कुलको धर्म जो हारै । नर्कवासको सो पगु धारै ॥
जो कुल धर्म सदा प्रतिपालै । स्वर्गवास में सो सुख चालै ॥
अपनो धर्म न छाडिय भाई । काहेको तुम करहु हँसाई ॥
लोग पंच जो निंदा करई । धिग जीवन तोको अनुसरई ॥
तब तो भली बात नहिं होई । महा दोष पुनि लागे सोई ॥
पाप होय मनमें पछिताई । नर्कवास तब रहै समाई ॥
कर्म योग तोहि वाक्य सुनावौं । स्वर्गवास ताते पहुँचावौं ॥
ब्राह्मण क्षत्री वैश्य औ शूद्रा । प्रभु कह छांडि भरै सब वोद्रा ॥
नरनारायण देह सवाँरा । तबहु न चीन्है मूढ गवाँरा ॥
ब्राह्मण कर्म सुनो चितलाई । प्रातः स्नान जपै प्रभु राई ॥
नेम धर्म शुचि संयम करई । सन्ध्या गायत्री चित धरई ॥
ठाकुर सेवा मन चितलावै । कथा कीर्तन करै करावै ॥
मनमें सेवा फल नहिं मांगे । स्वर्गवास पहुँचे सब आगे ॥

क्षत्री धर्म कर्म बहु करई । स्नान करै प्रभुको चित्त धरई ॥
यज्ञदान निज धर्म निवाहै । सूरातन नहिं दलहि सकाहै ॥
वैश्यवर्ण व्यापार व्योहारा । नेम धर्म जप तप व्रत धारा ॥
शूद्र वर्ण सेवकाई करई । मन वच कर्म इहै चित धरई ॥
सेवा फल है अगम अपारा । आवागमन ते होइ नियारा ॥
एते कुलके धर्म जो कहिये । सदा सर्वदा जो निर्वहिये ॥
यह मारग जो लागा रहई । स्वर्ग वासमें सो सुख लहई ॥
मारग छांड़ि कुमारग लागै । काम क्रोधमें तन मन पागै ॥
नर्कवास तेहि कारण पावै । जन्म २ वह योनी आवै ॥
निंदा सकल ताहिकी करई । वाउर वेद ताहि परिहरई ॥
ताते अर्जुन ज्ञान विचारो । ब्रह्म ज्ञान मनमें संभारो ॥
मोह लाजकै वंदन छांड़ो । लैकै अस्त्र कुटुम सब वाड़ो ॥
तुम कह पाप पुण्य नहिं होई । कारण करण करावै सोई ॥
साधु संत जो परम सनेही । पाप पुण्यते लिप्त न देही ॥

अर्जुन उवाच

कहैं अर्जुन सुनु पुरुष पुराणा । तिन साधुन कर करौ बखाना ॥
कैसी रहनि रहै वै बोलैं । कैसे बैठै कैसे डोलैं ॥
बोले कृष्ण तब चतुर सुजाना । यहि विधि रहै साधु निर्वाना ॥
स्थिर मन बुद्धि निहकामी होई । पांच पचीसौं रहें समोई ॥
बोलै सत्य असत्य न भाखै । अभ्यन्तर गति प्रभु कह राखै ॥
सो तो कह दुख सुख नाहिं मानै । दृष्टि माह प्रभु पूरण जानै ॥
तत्व प्रकृति चापि करि बैठे । जैसे कछुआ पाउ समेटे ॥
सीतल सत्य सहज पगु धारै । बाहर भीतर ब्रह्म निहारै ॥
यह लक्ष्ण संगति कै भाई । इंद्री जीतै साधु कहाई ॥
पूरण पक्ष जो अर्जुन करेऊ । रोगी मूर्ख भाव जो धरेऊ ॥

निह इच्छा रोगी है भाई। मूरख इच्छा नाहीं पाई ॥
ताकर मैं विरतान्त सुनाऊं। सकल कामना तोरि मिटाऊँ ॥
मूरख मुग्ध कछू नहिं जानै। काम क्रोध मन कछू न आनै ॥
पुरइन सम वासा है वाको। लिप्त अंग कछु होइ न ताको ॥
निशिवासर फिरिनाम भुलाई। तेहि कारण भर्मै सब ठाईं ॥
रोगी इंद्री जीत कहावै। काम क्रोध नहिं क्षुधा सतावै ॥
पै इच्छा जो अब उठि लैहै। काम क्रोधमें बहु चित दैहै ॥
नाम विहीन दुखी बहु तलफैं। खान पान आगे बहु कलफैं ॥
ताते पटतर भक्त न भाई। बाधा यम पाटनको जाई ॥
साधु संत की रहनि बतावौ। करनी साखि जो वाक्य सुनावौ॥
ऐसो रहनि साधु जो होई। जाकी महिमा वरनि न जाई ॥
ताते अर्जुन ज्ञान बिचारौ। मनते लोभ मोह गहि डारौ ॥
दुतिय अध्याय इहां लगु कहेऊ। आगे भेद और कछु लहेऊ ॥

कबीर उवाच

कहैं कबीर सुनौ धर्मदासा। यतना कृष्णकीन्ह केहि आसा॥
छल छिद्रहि कै ज्ञान सुनावै। अर्जुन कह तम गुण उपजावै ॥
जाते धनुष बान संधारै। सब परिवार चुनीचुनि मारै ॥
करता आप जो युद्ध करावै। शिर पाण्डों के भार चढावै ॥
छन्द–काल कर्ता करम करई समुझि देखि विचारिकै ॥
सत शब्द एक सार निर्मल ताहि लेह संभारिकै।
तीनि गुण सब राखिकै जब जाइकै चौथे मिले ॥
शब्द सुरति लै लोक पहुँचै तबहि हंसा उठि चले।
सोरठा–ऐसी रहनी हंस, धर्मदास सो अमर है।
रहै न कबहूं संश, जो नामी नामै गहै ॥

इति श्रीमद उग्रगीताब्रह्मज्ञानयोगमतकबीरधर्मदाससंवादे
अर्जुनकृष्णअंशकयोगो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

# अथ तृतीयोऽध्यायः

## अर्जुन उवाच

अर्जुन पूछे सुनु भगवाना । निर्मल ज्ञान सुनावो काना ॥
तुम तो कहौ कि युद्ध मचावौ । सब पलको तुम मारि गिरावौ॥
ज्ञान कही कहि मोहि समझावौ । फिरि कुलधर्म मोहि बतलावौ॥
जेहि ते मोर अकाज न होई । मोहि ज्ञान प्रभु दीजै सोई ॥

## श्रीभगवानुवाच

कहै कृष्ण सुनु अर्जुन बीरा । तुम तौ क्षत्रिय हौ रणधीरा ॥
मारग दोइ ज्ञान हैं भाई । ताते तेहि कहौ समुझाई ॥
निवृत्ति मारग आहि निरासा । सदा ब्रह्ममें रहैं निवासा ॥
तत्त्व प्रकृति लिप्त नहीं होई । सदा रहै निर्लेपी सोई ॥
नाम विना कछु बात न बोले । मन वच क्रम अंतरपट खोले ॥
निष्कर्मी निर्मल निर्मोही । नहि इच्छा मननाम समोई ॥
जगमें रहै कमल सम भाऊ । ऐसे लिप्त होइ नहिं काऊ ॥
दान पुण्य जो यह कछु करई । ताकर फल मनमें नहिं धरई ॥
दाता भुक्ता प्रभु कह जानै । कर्म धर्म कछु मनहिं न आनै ॥
मारग निवृत्ति साखि जो अहई । महाकठिन मारग तेहि कहई ॥
कठिन विहंगम मारग होई । पहुँचै कोटिन्ह महँ पुनि कोई ॥
तेहि मारग कोइ चलने न पावै । काम क्रोध मद लोभ भुलावै ॥
पूरण सिद्ध हुवा नहि जाई । ताते तोहि प्रवृत्ति दृढ़ाई ॥
कुलके कर्म सदा चित धारै । कबहु न छाड़ै लोकाचारै ॥
दान पुण्य जप तप व्रत करई । संध्या तर्पण मन चित धरई ॥
नियम धर्म औ करै जो स्नाना । सवा सुमिरन धारै ध्याना ॥
उद्यम अपने कुलको करई । यह मारग जौ लागा रहई ॥
सो तो कर्मके कश्मल धोवै । धीरा तन मन मैल जो खोवै ॥

यह पिपील मत कहिये भाई । हरे हरे वह मारग जाई ॥
तेहि मारग कोइ विघ्न न लागै । क्रमहि क्रम धर्म तब जागै ॥
स्वर्गवास पावै सो प्राणी । कबहीं ताको होय न हानी ॥
तासौं मैं बहु प्रीति जनावौं । संशय दुख सब दूरि बहावौं ॥
धनसम्पति सुख बहु विधि देऊँ । आपन करि मैं ता कह लेऊँ ॥
ताते प्रवृति अधिक फल भाई । लोकाचार समीप बताई ॥
तुम क्षत्री रणपति हौ आगर । गहो धनुष तुम जक्त उजागर ॥
ऐसो कहो जब कृष्ण सुजाना । अर्जुन पुनि पूछो भगवाना ॥
कैसे कर्म लिप्त नहिं होई । कर्म धर्म तुम थापेउ सोई ॥
कहै कृष्ण अर्जुन सुन लीजे । सेवा सुमिरण मैं चित दीजै ॥
करि करि कर्म मोहि सब अर्पै । कबहुँ न पाप दोष सो डर्पै ॥
ताके शिर नहिं लागै भारा । सत्य भाव मो ऐसे विचारा ॥
पांच हत्या नित गेही करई । अंध भावते गेही फिरई ॥
नित नित हत्या शिर पर लेही । बांचे जन कोइ परम सनेही ॥
कहै अर्जुन यह हत्या कैसी । गेहीको तिन लागै सौसी ॥
सो तौ वर्निके मोहि सुनावौ । दुविधा भावसो मोहि मिटावौ ॥
कहै कृष्ण अर्जुन सुनु वैना । हत्या पंच निरखि कै लैना ॥
प्रथम हत्या जो पीसेपिसाना । दूसर कुटै आनि जो धाना ॥
तिसरै बढ़नी जो घर देई । चौथे कलशा भरै जो कोई ॥
पंचये रसोई चूलहा वारै । हत्या पांच जीवहूँ मारै ॥
कहै अर्जुन यहि विनु को रहई । यह पातक कैसे परिहरई ॥
यह पातक जो देह सनेही । कैसे उधरनी इनसो लेही ॥
सुनु अर्जुन जिव कर्म न लागैं । नित नित करि प्रभु चरणन पागैं ॥
जो कछु करै सो प्रभुके कारण । ताहक दोष न कछू विचारण ॥
करै रसोई प्रभुके नामा । पुनि अर्पै जल लै सब सामा ॥

अंत कार काढ़ै परसादा । दीन दुखित जो पोषै सादा ॥
ता पाछे प्रसाद जो पावै । ताको हत्या निकट न आवै ॥
ऐसे कारज प्रभु सनमानै । ताहि दोष नहिं वेद बखानै ॥
त्रै अध्याय तोहि सन कहेऊं । कर्म योग परकट कैं सहेऊं ॥
कहै कबीर सुनु धर्मसुनि आगर । सत्य सुकृतको ज्ञान उजागर ॥
यह तौ कर्म ज्ञान दृढ़ावै । फल भोगै फिरि योनिहि आवै ॥
निवृति कहै त्रिवृति लै आवै । फिरि फिरि लैके कर्म दृढ़ावै ॥
ताते मैं संसारहि आवा । सत्य शब्द कहि बहु गोहरावा ॥
बूझेगा कोइ सन्त विवेकी । ज्ञान दृष्टिते सब कछु छेकी ॥
हम तौ तीनि लोकते न्यारा । जो बूझैं सो हंस हमारा ॥
यह रीझै तौ स्वर्ग देइ वासा । कर्म भोगि मृतुलोक निवासा ॥

छन्द–धर्मदास मैं कहौं तोसौं सार शब्द जो भेद है ।
हंस मन बच गहैं ताकु पालक ना विछुरार है ॥
विश्वास देखो प्रीति करि मैं निकट प्रकटो तासुको ।
यम फंद शंसा भटी चौथो लोक देऊ निवासको ॥

सोरठा–अगम भेद है सार, भेद कोइ नहिं पावई ।
उतरै भव जल पार, शब्द गहै विश्वास कै ॥

इति श्रीमदुग्रगीताब्रह्मज्ञानयोगमते कबीरधर्मदाससंवादे
कर्मयोगाख्यानो नाम तृतीयोऽध्यायः

---

## अथ चतुर्थोऽध्यायः

### श्री कृष्ण उवाव

अर्जुन सो अस कहेउ भगवाना । अगम भेद बतावै ज्ञाना ॥
यह गीता काहू नहिं पाई । सो मैं तोसों वाक्य सुनाई ॥
प्रथम मैं गीता सूर्य सुनावा । उन वैवस्वत पुत्र पढ़ावा ॥

ताकर सुत देवसि जो भयऊ । अपना सुतहि पढ़ाया लयऊ ॥
उन्ह लै सुत इक्ष्वाकुहि दीन्हा । प्रगट फिर काहू नहिं कीन्हा ॥
यतिक दिवस जो रहेउ समाई । अब तुम कहँ मैं आनि सुनाई ॥
और ज्ञान यहि सम नहिं होई । सुरति लौरति लै देखहु सोई ॥
तब अर्जुन पूछेउ अस बाता । तुम तौ भये यहि युग उतपाता ॥
सूर्य को आदि युग गयऊ । तुम सो गयउ उन्ह ज्ञान पयऊ ॥

श्रीभगवानुवाच

कहै कृष्ण सुनु वचन प्रमाना । जो मैं तोहि सुनावों ज्ञाना ॥
मैं तो सदा रहों जगमाहीं । तुमहू रहौ हमारे पाहीं ॥
जन्म अनेक तेरो चलि गयऊ । जन्म अनेक मेरो पुनि भयऊ ॥
तैं अचेत माया में बंधा । मैं निर्मल जस पूरण चन्दा ॥
जन्म जन्म के गुण मैं जानौं । अपनो तेरो गुण पहिचानौं ॥
आदि अंत सकलौं मैं जानौं । ताते यतना भेद बखानौं ॥
तै है काम क्रोध अधिकारा । नहिं बूझै तै चरित हमारा ॥

अर्जुन उवाच

पुनि अर्जुन अस पूछन लयऊ । कारण कवन जन्म तुम धरेऊ ॥
निह इच्छा तुम अंतर्यामी । काहे आवागमन समानी ॥
तुम्हारे दुष्ट मित्र नहिं कोई । कारण कवन जन्म धर लेई ॥

श्रीभगवानुवाच

कहै कृष्ण सुनु परम पियारे । धरणी माँह पाप होइ भारे ॥
बहुत अधर्म होन जब लागे । वसुधा भार मही उठि लागे ॥
जब जब देखौं महि पर भारा । तब तब आनि लेउं अवतारा ॥
जन्म कर्म लै खेलौं जगमें । करि संहार जो रहौं अलग में ॥
मेरी गति मति कोइ न जानै । महिमा चारौ वेद बखानै ॥
होइ निष्कपट जो मोहक ध्यावै । महा अनंद परम निधि पावै ॥

जो मोसों कोइ अंतर राखै । कै २ दंभ भक्ति मन भाखै ॥
ता कहँ काल बहुत दुख देई । दंभी भार बहुत शिर लेई ॥
मैं हुँ तासों अंतर राखौं । कबही तासों निकट न भाखौं ॥
ताते तुम मोहक पहिचानौ । मेरो कहा सदा तुम मानौ ॥
तब अर्जुन बोले अस बानी । मर्म तुम्हार न काहू जानी ॥
करन करावन तुमही स्वामी । केहि कारण पृथ्वी अकुलानी ॥
तुम काहेको मारण आवौ । केहि कारण तुम भार चढ़ावौ ॥
तब अस बोले कृष्ण सुजाना । मर्म आपनो कहौं बखाना ॥
तीनि लोक जो राज हमारा । ताते रचौं खेल विस्तारा ॥
बहुत भांतिकै ख्याल बनावौं । खेलि ख्याल पुनि ताहि मिटावौं ॥
तीनि लोक में आवौं जावौं । निर्गुण सगुण जु नाम धरावौं ॥
जो जन भक्ति हमारी करई । मन वच कर्म मोहि चित धरई ॥
तेहि कह महू सहायक होऊँ । उन्हके दुष्टहि मारि बिगोऊँ ॥
सदा रहौं भक्तन हितकारी । तारण तरण है नाम मुरारी ॥
अर्जुन बहुरि जो पूछन लागे । इंद्री जीति सबै गुण त्यागे ॥
करन करावन कहवौ स्वामी । तुम पूरण हौ अंतर्यामी ॥
काहे सेवा पूजा लावै । देवि देवता बहुत मनावै ॥
देव पितरको पिण्ड जो भरई । केहि कारण बंधनमें परई ॥
तीरथ व्रत बहुतै तुम धावै । केहि कारण तुम नाम धरावै ॥
सुनु अर्जुन मैं कहौं बखानी । मेरी मति गति विरले जानी ॥
जग रचना स्थिर नहिं पावै । ब्रह्म अज्ञान विराग उठावै ॥
कोइ काहूकी शंक न मानै । आपु आपुमें ब्रह्म बखानै ॥
सब व्यवहार जगतके चाहौं । राज काजमें वोर निवाहौं ॥
तब यह कर्म दृढावौ आई । तौन सृष्टि तुम कस उरझाई ॥

चारि चरण तब परकट कीन्हा । कर्म धर्मपुनि ता कह दीन्हा ॥
ताते पूजा हम ही थापो । देवन महँ हम ही आपो ॥
पूजत मोहि देखैं संसारा । बहुतै भाँति तब पूजा धारा ॥
तीर्थ व्रत जप तप गहि लीन्हा । ताकर फल संसारहि दीन्हा ॥
फल कारण सब जग अरुझाना । देवी देव रहे लपटाना ॥
जैसा करै तैसा फल पावै । दान पुण्य बहुतै मन लावै ॥
ब्रह्म ज्ञान विनु मोहि न जानै । ताते चौरासी अरुझानै ॥
आवै जाई जगत मझारा । पशुवा शूकर श्वान सियारा ॥
चौरासी योनीमें फिरई । बडे भाग नर देही धरई ॥
जो कोइ भक्त मोहि न चितलावै । मोक्ष मुक्ति परम पद पावै ॥
मन संकल्प विकल्प ते त्यागै । तब यह पूरण तंतुहि लागै ॥
यज्ञ कर्म सब विधि व्यवहारा । ताते भव जल उतरै पारा ॥
द्वादश यज्ञ कर्म है भाई । जेहिते महा परम सुख पाई ॥
सो अब तुमसों कहौं बखानी । यज्ञ कर्म करै जो प्राणी ॥
प्रथमैं ब्रह्म यज्ञ है भाई । ब्रह्म सउज लै ब्रह्म अपराई ॥
ब्रह्मै अग्नि होम ब्रह्म देई । सब विधि ब्रह्म जानिके लेई ॥
दुतिया यज्ञ देव यज्ञ करावै । देवि देवता बहुत मनावै ॥
सब साउज लै होम करावै । यहि विधि जन्म सफल सो पावै ॥
तीसर यज्ञ संयम करु इंद्री । साधै भूख प्यास औ निंद्री ॥
पांच पचीश गुप्त लिये खेलै । मनुवा निशि दिन प्रभु सो मेलै ॥
चौथ यज्ञ संयम औ आतम । अभ्यंतर चीन्है परमातम ॥
आतम परमातम जब जानै । यहि विधि भेटैं श्री भगवानै ॥
पँचयें द्रव्य यज्ञ जो होई । करि महि रक्षा साधु रसोई ॥
बहुत भांतिके साधु जेवावै । तेहि पीछे वह भोजन पावै ॥
जस कीरत होवै संसारा । ताकी गति वैकुंठ सवारा ॥

छठये यज्ञ तपस्या भाई। आगिल जन्म राज कर पाई ॥
सतयें यज्ञ योग जो साधै। आसन मूल पवन अपराधै ॥
पूरण योग होइ जो कोई। काल त्रास कहु जानै सोई ॥
जब लगि चाहै काया राखै। फिरि जन्मै तो योग अभिलाषै॥
अठयें योग यज्ञ अधिकाई। गीता कथा पाठ करै भाई ॥
पोथी पढ़ि गुरु मारग गहई। सो भवसागरते निर्वहई ॥
नवयें ज्ञान यज्ञ है भाई। ज्ञान ध्यानमें रहै समाई ॥
दशयें यज्ञ जो प्राण पयाना। यह नारम जो रहै लपटाना ॥
एकादश है संयम सारा। सुक्ष्म भोजन करै जेवनारा ॥
देहीको मिथ्या करि जानै। प्रभु पूरण अन्तर पहिचानै ॥
द्वादश यज्ञ विधि नाम कमावै। योग युक्ति सब जानि जो पावै ॥
यहि विधि द्वादश यज्ञ हैं भाई। जो कोइ करै परम हित लाई ॥
सो भावसागरते तरि जाई। विष्णुलोकमें जाइ समाई ॥
अर्जुन तुम तौ भक्त हमारे। बहुत उजागर प्रेम पियारे ॥
माया मोह चितते तुम डारो। धनुष बाण तुम वेगि सम्हारो ॥
चतुर्थाध्याय कहेउ तुम संगा। यज्ञ योग नाम सब अंगा ॥

कबीर उवाच

धर्मदास तुम संत सुजाना। सत्य शब्दका मर्म जो जाना ॥
यह तो धर्म कर्म व्यवहारा। कहा करै जिन शब्द संभारा ॥
शब्द हमार भेद टकसारा। जो बूझै सो उतरै पारा ॥
मुक्ति होइ सत्यलोक सिधावै। तीनि लोक बंधन मुक्तावै ॥
तीनि लोक जग आवागवना। अधर लोक है सतगुरु भवना ॥
इच्छा रूप फिरै जन मुक्ता। जहां पुरुष समीप संयुक्ता ॥
तहँ कर वर्णन कहा बखानों। गूँगेको सपना सम जानों ॥

छन्द–लोक उपमा कहा दीजै जगतमें कछु नाहिं हो ।
पुरुष पटतर कहा दीजै समुझियो मन माहिं हो ॥
नदी अठारह गण्डका रेणुका भरिपूर हो ।
पुरुष शोभा अग्र आभा एति सूरय झूर हो ॥

सोरठा–पुरुष रूप अपार, कहतै शोभा ना बनै ।
चीन्हो शब्द हमार, जेहिते पूरुष परसि हो ॥

इति श्रीमद्ग्रगीताब्रह्मज्ञानयोगमते कबीरधर्मदाससंवादे
द्वादशयज्ञव्याख्यानो नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

---

## अथ पञ्चमोऽध्यायः

श्रीकृष्ण उवाच

अर्जुन तुम हो भक्त हमारा । तुम्हरो काज करौं मैं सारा ॥
ज्ञान ध्यानमें मन तन देहू । निशिवासर सुमिरनके लेहू ॥
ज्ञानवन्त जो है तत्त्वज्ञानी । तिनकी महिमा अवर न जानी ॥
हर्ष शोक जाके नहिं होई । काम क्रोध सो लिप्त न सोई ॥
कर्म करै करता न कहावै । अभ्यन्तर मारग चितलावै ॥
इंद्री आपु आपु सुख चाहै । ताके कबहूँ निकट न बाहै ॥
इंद्री कर्म सदा होय भाई । ताके लिप्त न होवे भाई ॥
तिनसों कर्म करै जो कोई । परमातम कह लाग न सोई ॥
सम दृष्टी होय सर्व निहारै । सर्व योनिमें ब्रह्म विचारै ॥
ऐसो जो कोइ प्राणी होई । जीवन मुक्त कहावै सोई ॥
काम क्रोधमें यह जग बंदा । ज्ञान न उपजै मूरख अंधा ॥
निशिदिन ताहि मोह भरमावै । बहुरि बहुरि पाछे पछितावै ॥
नारी सुत हित बन्दन लाया । धनसो मन जो बहुत लगाया ॥
अंतकाल कोइ काम न आवै । होइ बिछोह पाछे पछितावै ॥
अन्तकाल जब संकट आवै । कालके हाथ सो कौन बचावै ॥

रोवै बहुत भांति तेहि कारण । मुये न जीवै बहुत पुकारण ॥
प्रभु हिरदय नहिं मूरख जाने । मृतक आशा लागि भुलाने ॥
मृतक रोवैं भला न मानै । फिर यमराजा संकट ठानै ॥
लोगन घरतै बाहर कीन्हा । की जारै की माटी दीन्हा ॥
मृतक रूप बनी यह देही । करि ले प्रीतम प्रेम सनेही ॥
जगके बन्धन जगमें छूटै । बहुत त्रास तेहि यम धरि लूटै ॥
इन मों कहा मोह चितलाया । प्रभु इच्छा नहिं मूरख पाया ॥
काकर पिता पुत्रको होई । नारी सुत हित लागै सोई ॥
ता कारण यह दुख सुख मानै । अज्ञानी नहिं प्रभुको जानै ॥
कबहु न सुमिरण प्रभुका करई । निशिदिन ज्ञान ध्यान परिहरई ॥
ताते बहुत भांति दुख पावै । प्रभुकी शरण न कैसेहु आवै ॥
यह तो लक्षण जग व्यवहारा । ताते बूड़े मूढ गवाँरा ॥
अर्जुन कर्म योग है नीका । संशय मेटो सकलौ जीका ॥
कर्म करै शिर अपने लेई । कारण करतामें चित देई ॥
आपन कर्म धर्म नहिं छोडै । दुख सुख प्रभु इच्छा शिर वोडै ॥
सदा अनन्द रहै सुख बासा । अन्तकाल वैकुंठ निवासा ॥
क्षत्रिय धर्म तोहार जौ होई । करौ संहार शत्रु पुनि सोई ॥
तुम्हारे लरे सबै कोइ लगि हैं । ना तो निंदा तुम्हरी करि हैं ॥
धर्म छांड़ि जनि पातक लेहू । युद्ध करनको मन चित देहू ॥
कर्म संन्यास पञ्च अध्यायी । अर्जुन सुनि मन दुबिधा आयी ॥
युद्ध करों की ज्ञान विचारौं । केहि विधि अपनो जीव उबारौं ॥

कबीर उवाच

धर्मदास यह काल तमासा । तासो चाहै मुक्ति निवासा ॥
ज्ञानी अज्ञानी भरमावै । धर्म अधर्म दोऊ ठहरावै ॥
धर्म अधर्म काल की पाशा । ताते न्यारा शब्द प्रकाशा ॥
कर्म अकर्म मध्य है सोई । तुम जाने जानै सब कोई ॥

सद्गुरु संधि लखै को पारा । निराधार है अधर अधारा ॥

छन्द–गमि अगमि सद्गुरु लखायो निअक्षर सो पास है ।
कली फूलैं बास धावै ऐसो शब्द निवास है ॥
फूल तिल जब संग कीन्हों सुवस बासा तब भई ।
हंस बासा शब्द लीन्हो शब्द रूपी सो सही ॥

सोरठा–शब्द मता है सार, सुर नर मुनि जानैं नहीं ।
अंधा अध अचेत, अँधेरे न सुरति आनै नहीं ॥

इति श्रीमदुग्रगीताब्रह्मज्ञानयोगमते कबीरधर्मदाससंवादे
कर्मसंन्यासव्याख्यानो नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

---

## अथ षष्ठोऽध्यायः

### श्रीकृष्ण उवाच

छठे अध्याय ध्याय है योगा । सुनु अर्जुन मैं कहौं संयोगा ॥
जब लगि ध्यान योग नहिं करई । तब लगि निर्मल चित नहिं करई ॥
ध्यान योग योग निजु साधै । मन वच कर्म नाम अवराधै ॥
मन संकल्प विकल्प न जाके । दीन वचन कठोर न ताके ॥
निस्तरंग कछु उठै न इच्छा । सबमें पारब्रह्म उत पेच्छा ॥
पांच पचीश न कबहूँ धावै । निशिबासर प्रभु संग रहावै ॥
पांचौ इंद्रिय लिप्त न होई । ऐसे साधु विरले कोई ॥
गृहस्त जीवन में बासा लेई । उत्तम ठौर कुटी कर देई ॥
मानुष तहां दृष्टि नहिं आवै । आसन उत्तम तहां बिछावै ॥
प्रथम धरणी पर धरे मृगछाला । तापर कुश साथरी रसाला ॥
तेहि पर बैठे दृढ करि आसन । कैसो भांति न होइ उदासन ॥
खंभा सम आसब दृढ आसन । सुरतिनिरति लै नाम संभारन ॥
जो यतने में आतम दरसइ । सो ज्ञानी प्रभु पूरण परसइ ॥
ऐसे जो कोइ ध्यान लगावे । बहुरि योनि संकट ना आवे ॥

साधै निद्रा हार व्यवहारा । बहुत न मूदे नैन उघारा ॥
संयम कै सो साधन करई । सो साधू आपहि निस्तरई ॥
मन कह ज्ञान ध्यान में राखे । सुरति निरति सो अमृत चाखै॥
जो मन अन्त न धावा चाहै । घेरि घेरि अभ्यन्तर बाहै ॥
तब अर्जुन अस पूँछन लागे । यह मन चञ्चल पल पल भागे॥
यह तौ काहू जाइ न पकरा । कौन उपाय जाइ मन जकरा ॥
गगन वाइ जो गर्जत आवै । कैसे गगरी माहि समावे ॥
यहि विधि मन चञ्चल यह भाई । तौ कैसे यह पकरन पाई ॥

श्रीभगवानुवाच

कृष्ण अर्जुन सो कहेउ बुझाई । ऐसे चञ्चल अस्थिर भाई ॥
जो यह मनको साधन करई । अभ्यन्तर लै फिरि २ धरई ॥
चारों दिशा चलन नहिं पावै । जबै चलै तब माह समावै ॥
पारब्रह्म देखै तब नैता । दोई अनन्द परम सुख चैता ॥
दीन दुखित कह दाया करई । अपनासा दुख चितमें धरई ॥
दया भावसो हितकर बोलै । तृप्त करै साधुन कह सो लै ॥
परका दुःख नेवारै सोई । ऐसी भक्ति परम गति होई ॥

अर्जुन उवाच

अर्जुन कहै सुनु कृष्ण मुरारी । तारण तरण भक्त हितकारी ॥
ऐसा साधु कोइ ना देखा । आपनसा दुख सब कहपेखा ॥
आपन सुख चाहै सब कोई । औरन दुःख होय सो होई ॥

श्रीभगवानुवाच

अर्जुन जो है परम सनेही । आप निकरि नहिं जानहि देही॥
पर सुख कारण आपु निरासा । दुख सुख देखै सकल तमाशा॥
भक्ति करै जो मन चित लाई । ताते परम पदहि में जाई ॥
निर्गुण साधु जो पूरण ज्ञानी । ताकी महिमा वेद बखानी ॥
वेद पुराण ते अधिक है सोई । ताकी पटतर वेद न होई ॥

वेद भाव संसार पसारा । परमभक्ति है अगम अपारा ॥
तुम हू भक्ति करौ मन लाई । छांड़ौ माया मोहहि भाई ॥
छठौ अध्याय इहां लगु कहिया। आतम संयम योग जो रहिया॥

कबीर उवाच

कहै कबीर यह आतम जानी । इतने अधिक बखानों ज्ञानी ॥
धर्मदास तुम ज्ञान उजागर । तुम तौ बसि हौ सुखके सागर॥
यह करनी जो कृष्ण बखानी । यह विधि धरैं आतम ज्ञानी ॥
मैं तो ज्ञान अगम तोहि दीन्हा । काल कर्मको पापउ चीन्हा ॥
ताते हंसा दृढ़ करि लेऊ । अगम अगोचर दीन्हेउ भेऊ ॥
यह मन चञ्चल थिर नहिं होई । कैसिहु विधि जो चाहै कोई ॥
ताकी विधि मैं प्रगट सुनाऊँ । मनुवां इस्थिर करि दिखलाऊँ॥
यह मन पानी रूप सरूपा । बुद्धि धाम पृथ्वी कर रूपा ॥
चित जो वाइ सरूपी होई । अहं अज्ञानी रहै समोई ॥
पानी मही बराबरि भाई । चित्त पवन लै आहु उठाई ॥
ज्यों २ पवन चलै झक झोलै । त्यों२ मनुवाँ चहुँ दिशि डोलै ॥
ताते यह उपचार सुनाऊँ । मनुवाँ कह अंतर ठहराऊँ ॥
मनु पावना लै त्रिकुटी लेखै । अक्षर सुरति अमीरस चाखै ॥
जौ लौं पवन रहित नहिं होई । तबलगिमनअस्थिर नहिं सोई॥
गगने पवन रहै पुनि भाई । त्रिकुटी गागरि लेइ समाई ॥
पानी पवन संघ जब होई । ब्रह्म अग्नि उपजावै सोई ॥
मन औ पवन होइ जब मेला । परम पुरुष ते होइहि मेला ॥
ना कहुँ आवै ना कहुँ जाई । तब यह मनुवां सहज समाई ॥

छन्द—चलत मनुवाँ अचल कीन्हो पवन अस्थिर जब भई ।
मन पवन जब मला भया अमृत धारा बर्षही ॥

जिन्है सतगुरु शब्द मिलिया अमी सो हंसा पिया ।
अजर अमर शरीर पायो बास सुख सागर लिया ॥

सोरठा—संत करो विवेक, शब्द सार गहु बूझिकै ।
सुरति निरति सो देख, सतगुरु शब्द अपार जो ॥

इति श्रीमदुग्रगीताब्रह्मज्ञानयोगमते कबीरधर्मदाससंवादे
आत्मसंयमयोगो नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

---

## अथ सप्तमोऽध्यायः

### श्रीकृष्ण उवाच

कृष्ण कहैं अर्जुन सुनि लीजै । भक्ति हमारी मन चित दीजै ॥
सतये अध्याय जो तुमसों कहऊं । भक्तनमें हितकारी रहऊं ॥
मैं ही करौं करावौं भाई । तीनि लोक जहँ लगि निर्माई ॥
मैं संघारौं मैं प्रतिपारौं । चौदह भुवन पलकमें टारौं ॥
जहँ लगि पशु पक्षी जिव होई । मैं सबही में रहौं समोई ॥
दानपुण्य आदिक सब माहीं । बनिज व्यापार करै सब पाहीं ॥
देवी देव सकलौं मैं सब ही । भवसागर सकलौं जग हम ही ॥
तीनि लोक़में विजय मैं सारौं । जब चाहौं तब बेर सघारौं ॥
करौं सघार सृष्टि पुनि सोई । रहौं अलेप निरंजन होई ॥
सगुणते निर्गुण मैं होइ जाऊं । फिर चाहौ सगुण होइ जाऊं ॥
सगुण औ निर्गुण रूप हमारा । जहिते सृष्टि रच्यो व्यवहारा ॥
अर्जुन सबमें मोही जानो । कहा हमारा निजकै मानो ॥
चारि प्रकार भक्ति जो होई । तामें ज्ञानी अधिक सो होई ॥
रोग दुःखमें भक्ति जो करई । दुख कारण जो मोहि सुमिरई ॥
दीन दुखी निशिदिन लव लावै । कब प्रभु मोकहँ भोग भोगावै ॥
द्रव्य चहै जो द्रव्यहि स्वारथ । ज्ञानी चाहै मुक्ति पदारथ ॥

ज्ञानी सदा मोहि पहिचानै । मेरी भक्ति सदा सुख मानै ॥
ज्ञानी अधिक ताहिते होई । भक्ति हि हेतु अधिक है सोई ॥
अज्ञानी मोहि नर ही जानै । अलख रूप मोहि नहिं पहिचानै ॥
पूरण ज्ञान होइ जब भाई । तब ही निर्गुण अलख लखाई ॥
देवी देवा सब नर पूजै । तिनहींको करता करि बूझै ॥
उनकी प्रीति देव होइ जाऊं । उनकी मनकामना पुराऊं ॥
कोइ न बूझै ख्याल हमारा । रहउँ सृष्टि पुनि करों संघारा ॥
ज्ञान विज्ञान योग जो होई । सतवांध्याय सुनायो सोई ॥

कबीर उवाच

कहै कबीर जगकरता आही । धर्मदास तुम चीन्हौ ताही ॥
पुरुष तीनि लोक यह दीन्हा । तीनिहुँ लोक राज इन कीन्हा ॥
सब जग माँहि कर यह राजू । मन इच्छा कर सबका काजू ॥
इनते मुक्ति कहौ कस होई । देखहु आतमज्ञान कैसोई ॥
इनते मुक्ति होइ जो साजा । देह धरावै कवने काजा ॥
धर्म अधर्म जीव अरुझाया । आवागमन महा दुख पाया ॥
आवागमन न छूटै भाई । तीनिलोक राखै लपटाई ॥
धरि अवतार जबैं जग आवै । सकल सभा ऐसी हि भरमावै ॥
सृष्टि जहां लगि है संसारा । ऐसी भांति सब अवतारा ॥
काहू मुक्ति होइ नहिं भाई । राम कृष्णते को बड आही ॥
उनहू आवागमन न छूटै । धर्मराज फिरि २ जग लूटै ॥
धर्मराज यह खेल पसारा । औघट घाट मूँदि सब द्वारा ॥
तीनि लोक ते जाने न पावै । स्वर्ग मृत्यु पाताल रहावै ॥
धर्म कर्म ते स्वर्ग हि जाई । धर्म घटे मृत्यु मंडल आई ॥
जैसे घरिया रहट सुभाऊ । ऊँचे नीचे फिरि २ आऊ ॥
बन्धनते छूटै नहिं पावै । ऐसे जीव सदा भरमावै ॥

सद्गुरु चौथे लोक निवासा । मिलै अँकूरी जो निजदासा ॥
सार शब्द है तेहि पहुँचाऊँ । तीनि लोक बन्धन मुक्ताऊँ ॥
पावैं सार शब्द निज बीरा । पहुँचै लोक जब छुटै शरीरा ॥
यमराजा तेहि निकट न आवै । चौरासी ते जीव छोडावै ॥
सार शब्द गहै निज डोरी । उतरे हंसा घाट करोरी ॥

छन्द—धर्म सेवा बहुत कीन्हो पुरुष दीन्हो राज हो ।
लोक तीनौं राज पायो गर्वते अति गाज हो ॥
घाट अवघट सबै मूँदो कतहुँ नाहिं निकास हो ।
पुरुषते दुइ ठानिकै सब जीव राखो पास हो ॥

सोरठा—ऐसी युक्ति बनाई, पाप पुण्य फंदा रच्यो ।
चले लोक सो जाइ, सद्गुरु शब्द प्रताप जेहि ॥

इति श्रीमदुग्रगीताज्ञानयोगमते कबीरधर्मदाससंवादे
ज्ञानविज्ञानयोगो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

---

## अथ अष्टमोऽध्यायः

### अर्जुन उवाच

अर्जुन कहै सुनौ प्रभु मेरे । मैं तो अधीन सदा हौं तेरे ॥
कहौ बखानि ब्रह्मको आही । सो निज भेद कहौ मोहि पाही॥
अध्यातम तुम कहौ बुझाई । कर्म नाम काहैको रहाई ॥
अद्भुत रूप बखानौ सोई । कछु मोसों जनि राखौ गोई ॥
अर्धनाम कहावै सोई । अर्धनाम जग काकर होई ॥

### श्रीकृष्ण उवाच

कहैं कृष्ण सुनु अर्जुन भेदा । तुमसों कहौं मैं वेद निषेदा ॥
ब्रह्म सदा जो रहै अविनाशी । और सृष्टि सकलौ पुनि नाशी॥
रहित नाम अविनाशी होई । पूरण ब्रह्म व्यापक है सोई ॥

ना कहुं आवै ना कहुँ जाई । सब घट माही रह्यो समाई ॥
नहीं दृष्टि देखन महँ आवै । सकल सृष्टिके माहिं रहावै ॥
रूप वरण कछु वरणि न जाई । कोटि सूर्य्य तेहि तेज समाई ॥
तिनका नाम सदा अविनाशी । रहै निरंतर अंतरबासी ॥
अक्षय है सब जक्त पसारा । व्यापक रूप रहा भरिभारा ॥
तिनकी भक्ति करे जो कोई । आवागमन कबहुं नहिं होई ॥
अध्यातम आतम सो ज्ञानी । सबमें ऐकै ब्रह्म समानी ॥
कर्म नाम करता है सोई । दुख सुख कारण करता होई ॥
अद्भुत रूप सरूप है भाई । तेहि समान रूप नहिं भाई ॥
कोटि सूर्य्यको तेज समाही । अर्द्धदेव सब देवन माही ॥
रहो समाइ जो सकलौ छाई । अर्द्धनाम सकलौ जग लेई ॥
व्यापक सदा सकलमें सोई । महा प्रलय जब आवै भाई ॥
लै सौ वर्षे अवधी रहई । रैनि दिवस छै मास जो होई ॥
दिवस एक देवन कर सोई । छः मास अवर जब जाई ॥
राति एक ताकर होइ भाई । ऐसे वर्ष दिवस नर होई ॥
दिवस एक देवनकर सोई । तासे मास वर्ष गनि लेई ॥
ऐसे वर्ष देवकर कहिया । अहनिशि एक ब्रह्म पुनि तहिया ॥
दिवस एक ब्रह्माकर होई । चारि पहर चारिउ युग सोई ॥
रातिउ ऐसे जान सुभाऊ । बरतै चारिउ युग पर भाऊ ॥
दिवस औ राति जब ऐसो जाई । पक्षमास पुनि वर्ष कहाई ॥
सात वर्ष ब्रह्मा पर वानी । काल आइ सो करै तब हानी ॥
ब्रह्म प्रलय जब आवइ भाई । रोमस रोम परै खहराई ॥
जब २ प्रलय काल जब आई । एक रोम रोमस गिरिजाई ॥
बहुत प्रलय ऐसे चलि गयऊ । आदि अंत काहू नहिं पयऊ ॥
अष्ट अध्याय जो कहा बखानी । अक्षर ब्रह्म योग है ज्ञानी ॥

कहै कबीर सुनु धर्मनि धीरा । बूझ भेद तुम गहिर गभीरा ॥
जो यह कछू प्रभाव बखाना । पै निर अक्षर भेद न जाना ॥
जो निर अक्षर भेद न जानै । कैसे सार शब्द पहिचानै ॥
जो निर अक्षर भेद हि पावै । सो त्रिलोक बंधन मुक्तावै ॥
अक्षर सार अपार जो होई । बिनु सत गुरु पावै नहिं सोई ॥
सतगुरु मिलै शिष्यको जबही । सार शब्द पावै पुनि तबही ॥
हंस रूप ताकर पुनि होई । सो तौ हंस निनारा सोई ॥
यह जाने नहिं ताकर भेदा । कितनौं पढ़ै नर चारिउ वेदा ॥
सार शब्दका मर्म न पावै । सो कैसे सत्यलोक सिधावै ॥
जो मानै तेहि लोक पठाऊ । सार निरक्षर अलख लखाऊ ॥
खान प्रवान शब्द टकसारा । यमको चीन्है उतरै पारा ॥
घटवारा जब पावै चीन्हा । तब हंसन कह आवै दीन्हा ॥

छन्द--सुरतिमंत जो हंस होवै ताहि दीजै पान हो ।
नत दशौं दिशा घाट रोकै मागि शब्द निशानि हो ।
देखि हैं जब शब्द सांचा चीन्ह पावै लोकको ।
अपने कंधे तेहि उतारैं मेटि संशय शोकको ॥

सोरठा--धर्म हमहि सो कौल, कीन्हो अति आधीन हो ।
हंस शब्द सत बोल, निमिष माहि पहुँचाइया ॥

इतिश्रीमदुग्रगीताब्रह्मज्ञानयोगमते कबीरधर्मदाससंवादेऽक्षरयोगव्याख्यानोनामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

---

## अथ नवमोऽध्यायः

### श्रीभगवानुवाच

अर्जुन शास्त्र मतो है नीका । कर्म धर्म सब कारज जीका ॥
शास्त्र वेद पुरान जो आही । मन वच कर्म अर्जुन गहु ताही ॥

बहुत लोग मानुष मोहि जानैं । दुख सुख व्यापक माही सानै ॥
बड़े भाग सो प्रानी होई । अन्तर पवन रहौं मैं सोई ॥
पवन सकल में बर्तै भाई । बाहर भीतर फिरै सदाई ॥
लिप्त होइ पुनि रहै निनारा । ऐसा अद्भुत खेल हमारा ॥
बहुत साधु एक करि पूजै । सर्व मध्य आतम कहबूझै ॥
बहुतक प्रीति भाव जो जानै । साहेब सेवा हित कै मानै ॥
बहुतक तीनो देवन मानै । अवर सकल मिथ्या करि जानै ॥
मोकहयहि बिधि जो कोइ ध्यावै । तेहि विधि माह परम सुखपावै ॥
सर्व व्यापक मैं हौं भाई । मोहि विन दूजा और न कोई ॥
मेरे मित्र दुष्ट नहिं कोई । जो ध्यावै पावै पुनि सोई ॥
एक भाव मैं सबसो रहेऊ । जैसे अग्नि भाव सो कहेऊ ॥
जबै काल जड़ आवै भाई । बैठे लोग तापन कह आई ॥
चहुँदिशि लोग अग्नि बिच होई । सब तापै काया नर लोई ॥
अग्नि काहु कै मित्र न जानै । और न काहू दुष्ट हि मानै ॥
सब कह लागै एक सम भाई । ऐसे रहौं मैं सहज समाई ॥
जो कोइ पूजा देवन लावै । सो नर देव के लोक सिधावै ॥
जो ऐसा होइ भक्त हमारा । ता कह पठवउँ स्वर्ग दुवारा ॥
जो कोइ मोसे चित्त लगावै । सुख संपति बहु शोभा पावै ॥
ऋद्धि सिद्धि बहुतैं कै देऊं । आपन कै मैं ताकह लेऊं ॥
सदा सर्वदा बात न हेरूं । दुख संताप ताहि कर फेरूं ॥
अर्जुन परम भक्ति मोहि भावै । जो कोइ मोसों मन चितलावै ॥
नौ अध्याय इहां लगु होई । राज योग गून है सोई ॥

कबीर उवाच

कहै कबीर सुनो धर्मदासा । बहु विधि कृष्णजो करैं तमासा ॥
कर्म धर्म कहि जग समुझावैं । अलक पुरुष कैसे लखि आवैं ॥

ज्ञानवंत तुम धर्म निआगर । सत सुकृत गहु परम उजागर ॥
करौ विचार संतकी रीती । मन वच करु सतगुरु परतीती ॥
इन्ह तौ शास्त्र ज्ञान बिचारा । कर्म फंद जीवन्ह सब डारा ॥
कोइ भक्ति जो इनकी करई । ऋद्धि सिद्धि सुख संपति लहई॥
बहुत भांति तेहि देइ बड़ाई । राज पाट इन्द्रासन लाई ॥
आवागवन न मेटा जाई । बहुविधि चीन्हो मन चितलाई॥
दाता भुक्ता होवे आपै । पै कोऊ नहिं छूटा पापै ॥
आवैं जाइ सकल जग लोई । कबहुँ न छूटै बंधन सोई ॥
बहुविधि चीन्हो मन चितलाई । आवागवन न मेटा जाई ॥
बंधन सतगुरु तुम्हरो तोरा । तुम कह नहिं व्यापैं यम चोरा॥
सतगुरुका है पंथ अपारा । जो बूझैं सो उतरै पारा ॥

छन्द—धर्मदास तुम बूझि देखो भेद सतगुरु अगम है ।
तीनि लोक अरुझाइ कारण वेद शास्तर सो कहै ॥
बूझि देखो अंग सब मैं आयो तोरन फंदको ।
हंसको मुक्ताय यमसो मेटिहौं दुख द्वंदको ॥
सोरठा--सतगुरु शब्द अपार; वार पार कोइ ना लहै ।
हंस शब्द आधार, ताहि मुक्ति पाछे फिरै ॥

इति श्रीमदुग्रगीताब्रह्मज्ञानयोगमते कबीरधर्मदाससंवादे
राजविद्याराजगुह्ययोगोनाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

---

## अथ दशमोऽध्यायः

### श्रीकृष्ण उवाच

महाबाहु अर्जुन सुनु भाई । दस अध्याय कहेउँ अर्थाई ॥
विभूति योग मैं तोहि सुनाऊं । सकलरूप तोहि वरनि सुनाऊं॥
जल थल पूरण मैं ही व्यापो । कीट पतंग सर्वमें आपो ॥

मेरी गति मति कोइ न जानै। सबै सृष्टि नारायण मानै॥
ऋषि मुनि देव देवता भाई। उनहू मेरी गति नहिं पाई॥
मैं तो गति मति सबकी जानौं। व्यापि रह्यो मैं सकल जहानौं॥
देवि देवता आदि जो मैं ही। ऋषि मुनि सृष्टि अवतारजु लेही॥
मोहिते आदि और नहिं कोई। सबके आदि करा रचि सोई॥
पिताकी खबरि पुत्र नहिं जानै। कैसे पितुकी आदि बखानै॥
आदि अन्तको मेरी पावै। जग रचना सब पुत्र कहावै॥
विभूति रूप संक्षेप जो कहिया। अर्जुन पूंछ कृष्ण पुनि कहिया॥
सब व्यवहार विभूति सुनावौ। रंचक मोसे कछु न दुरावौ॥
कृष्ण कहै सुनु कुंतिकुमारा। तोसों कहौं सकल विस्तारा॥
पहिले सकल जोति जग जो है। शशि सूरयकी कीरनि मोहै॥
सूर्य रूप मेरो है भाई। दूजा भाव जनावौ जाई॥
शीतल पूरण निर्मल चंदा। है मेरो यह रूप अनंदा॥
बलीदान यज्ञ जो ठानो। बावन रूप मेरो पहिचानो॥
सिरजा पवन सबै सुखदाई। मैं ही पवन रूप हौं भाई॥
चारि वेदमें साम जो वेदा। मेरो रूप सुनो तुम भेदा॥
व्यास रूप मेरो है भाई। नारद भाव धरउं मैं आई॥
देवन माहिं इन्द्र पुनि मैं हौं। दानी बलिराजा सो मैं हौं॥
विषधर माहिं वासुकी हम ही। ईश्वर माहिं महेश्वर हम ही॥
इन्द्रिय भुक्तौ मनसो मैं ही। राजन माहिं राज करौं मैं ही॥
मिरगन्ह मध्य सिंह गति मेरी। वृक्षनमें पिप्पल मोहिं हेरी॥
नदी मांहि हम ही हैं गंगा। समुद्र रूपमें लहरि उतंगा॥
मुनिवर कपिल हमी हैं भाई। परशुराम योधा हौं भाई॥
नरसिंह रूप जो मेरो होई। रामचन्द्र तन रूप जो सोई॥
दत्तात्रय आनंदित रहऊँ। ऋषिन मध्य पाराशर अहऊं॥

जल जीवन जलसाइ कहाई । मेरो रूप सुभाव रहाई ॥
ज्वारिन महँ मैं जुवा कहावा । जुवा रूप मेरो रूप सुभावा ॥
जहँ लगि जगमें होइ लराई । मेरो रूप लराई भाई ॥
जग परपंच जहां लग होई । परपंच रूपमें रहौं समोई ॥
वाद विवाद करै जो ज्ञानी । वाद रूप मोकहँ पहिचानी ॥
शंकर रूप मोर है भाई । मृत्युकालमें रहौं समाई ॥
पाप पुण्य धारौं दुइ देही । कर्म धर्म रचना है एही ॥
जग रचना विभूति मेरी होई । जल थलमें मैं रहौं समोई ॥
कहँ लगि वर्णौं वरणि बखानौं । सब वसुधामें मोहीं जानौं ॥
मोहिं छोडि कोइ और न दूजा । तीन लोकमें मेरी पूजा ॥
देवी देवता पूजा लावैं । सो सब पूजा मौं कहलावैं ॥
विभूति रूप अध्याय है दशवां । इह लगि भाव बतायउँ दशवां ॥

कवीर उवाच

कहै कबीर सुनौ चितलाई । धर्मदास तुम लेहु अर्थाई ॥
तीनि लोक नायक भगवाना । तिन कह पुरुष दीन्ह रजधाना॥
ताते क्रीडा करै अनंदा । खेल अनेक खेल गोविंदा ॥
तीनि लोक बाजी दइ राखा । परपंची अपने मुख भाखा ॥
सत्य कहइ सत्य भाव लखावे । करि प्रपंच जीवन भरमावे ॥
जीव जो मूल बीजके आही । इन पाया सब पुरुषके पाही ॥
बीज आदि तिहुलोक जो फूला । आपुहि जानै पुरुषहि तूला ॥
करि अभिमान पुरुष विसरावा । आपुहि पूरण पुरुष कहावा ॥
सर्वमें व्यापक आपुहि रहई । पुरुष भेद नहिं काहु सो कहई ॥
भेद कहै उजरै पुर तीनो । आपन थापन ताते कीनो ॥
चारिहु वेद नेति जो गावैं । सद्गुरु रहित पुरुष बतलावैं ॥

जीव जन्तु राखैं अरुझाई । बीज पुरुष जो दीन्हो भाई ॥
जब नहिं बीज पुरुषपहँ जाई । तबै पुरुष हम कहँ उपजाई ॥
बीज अंकुरी लोक ले आवौ । धर्मराजते हंस छुडावौ ॥
सेवा वसि वहि दीन्हा राजू । अब मेटौ तौ सुकृतहि लाजू ॥
सुत हमार भया वरियारा । जेहि दीन्हों तिहुँलोकके भारा॥
तुम अंकूरी सेवहु जाई । बार २ मैं कहौं बुझाई ॥
ताते मैं संसारहि आवा । पुरुष शब्द टारो नहिं जावा ॥
नाहिं तौ तीनौ लोकहि तारौं । धर्मराज ते सबै उबारौं ॥
जो जन अंश पुरुषके आही । सो सब आवे हमरे पाही ॥
अवर सकलजग काल बसेरा । नित २ प्रलय होत झकझेरा ॥
यहि कर काल पुरुष दियो नामा। तीन लोकते न्यारा धामा ॥
अध्याय एकादश आगे होई । काल सरूप बखानो सोई ॥
धर्मदास मन माहिं विचारो । काल रूप सब भाव निहारो ॥
जो तुम कहौ पुरुषकी आशा । सद्गुरु शब्द करौ विश्वासा ॥

छंद-हंस कारण पुरुष पठयो तबै बिनती मैं कहौं ।
धर्म है अति बली तिहुँपुर सोई दुतिया करि रहौं ॥
जाऊं भवसागरहि जो बहु भांति मोसों युधि करै ।
यह सुनि पुरुषसत्य शब्द दीन्हों धर्मराज जेहि ना डरै ॥

सोरठा-सुनतै शब्द संदेश, सुरति निरति हंसा गहो ।
पूरण पुरुष संदेश, बहुरि धरौ जग देह नहिं ॥

इतिश्रीमदुग्रगीताब्रह्मज्ञानयोगमते कबीरधर्मदाससंवादे
विभूतियोगव्याख्यानो नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

---

# अथ एकादशोऽध्यायः

## अर्जुन उवाच

अर्जुन कृष्ण सो बिनती ठानी । हे स्वामी तुम अन्तर्यामी ॥
दश अध्याय तुम वरणि सुनायो। ज्ञान विज्ञान जो मोहि बतायो॥
संन्यासकर्म और वाक्य सुनायो। आतम संयम योग बातायो ॥
प्रवृत्ति निवृत्ति जो मारग भाषा । कर्म योग मन दृढ करि राखा ॥
यह सब सुनिनिर्मल भयो अंगा । अब मोहि दर्शन भयो उमंगा ॥
होउ दयाल विराट देखावौ । मति मोकहँ तुम दूरि बहावौ ॥
जो मोहिं शक्ति न देखत होई । तौ अब शक्ति दीजिये सोई ॥
तुम ठाकुर हौ अंतरयामी । अब दर्शन बिन रहौं न स्वामी॥
अहो दयाल कृपा-निधि-सारग । दीनबंधु तुम पतित-उजागर ॥
तब हरि बोले चतुर सुजाना । इन नैनन्ह नहिं दर्शन जाना ॥
तुम तौ हौ निज भक्त हमारे । दर्शन तुम कह देउ पियारे ॥
यह सरूप काहू नहिं देखा । इंद्रादिक सुर नर मुनि शेषा ॥
सो दर्शन तुम देखा चैहौ । तीनि लोक हलकंप बढैहौ ॥
देखौ कालरूप जब मोरा । अर्जुन तुम तब रहौ न ठौरा ॥
डरपो बहुत होइ डर भारी । डरपै लोग सकल संसारी ॥
कहैं अर्जुन सुनु कृष्ण मुरारी । प्रथम देहु दृढता मोहि भारी ॥
जो मैं डरौं दरसको करई । विनु मारेही मृतक होइ रहई ॥
सोई दृष्टि मोहि देव गुसांई । जेहि दरशे परसौं तुम पाई ॥
दिव्य दृष्टि अर्जुन कहँ दीन्हा । अर्जुन है मम दरश अधीना ॥
धारो रूप अकाश पताला । महा स्वरूप भयंकर काला ॥
माथ अनेक अनेकन्ह नयना । कर्ण अनेक बहुत मुख बयना ॥
नाक अनेक रु दंत अनेका । चितवत दृष्टि मारि है वेगा ॥
निकसि दाढ़ बाहे मुख भारी । तिन देखत जिव नाहिं सँभारी॥

वदन अनेक भरे औ रीते। ऋषिमुनिवर तहँ भये विपरीते॥
भुजधारी बहु बाहु बिराजें। ऐसे कैसो दरशन राजें॥
पाव पताल रहा जब जाई। शीश अकाश सातये भाई॥
भूषण भांति २ के छाजें। मुकुट अनेक शीश पर राजें॥
सूर्य चंद्रमा तहां रहाई। ऋषिमुनिवर तहँ विनती लाई॥
जहँ लगि देवी देवता आहीं। सब देखो तिनके मुख माहीं॥
अर्जुन देखि अचंभौ कीन्हा। अति डरि भये बहुत अधीना॥
देवता ठाढ़े अस्तुति करहीं। भौ व्यापैं बिनु मारे मरहीं॥
किन्नर यक्ष गुणी सब ठाढ़े। कँपैं सबैं देखिके गाढे॥
राक्षस देखत भागे जाहीं। कोइ नेरे कोइ दूरि पराहीं॥
कोइ जन अस्तुति करै मनुहारी। अब रक्षा प्रभु करौ हमारी॥
कोइ एक जन दुरि परिहरहीं। कोइ जन निहुरी दंडवत करहीं॥
ऐसे सृष्टि सकल जग देखा। तहवां रहे समाइ विशेखा॥
औ मुख देखा बहुत भयावन। जानौ अब चाहत है खावन॥
मुखमें तीनि लोक जो देखा। तहवां रहे समाइ विशेखा॥
जहँ लगि साधु असाधु कहावे। सो सब ताके मुखमहँ आवे॥
दुर्योधन देखा मुख माहीं। भीष्म द्रोणाचार्य जो आहीं॥
योधा चले सबैं मुख माहीं। कौरौ पाण्डव उदर समाहीं॥
कोस अड़तालिस कटक जो रहिया। सो सब मुखमें देखो तहिया॥
संसारी त्रैलोक पसारा। सो सब मुखके मध्य निहारा॥
नदी आवै जस एकै धारा। सागर माहिं धसे सब खारा॥
ऐसे जग सब उदर समावे। मुख माहीं सबही चलि आवै॥
जैसे जोत चांदना होई। जीव जन्तु सब लेइ समोई॥
केतक डाढ़न माहीं अटके। केतक भागे फिरत जो भटके॥
कोइ कतहुँ जाने नहिं पावै। बहुरि २ मुख माहिं समावै॥

देखत अर्जुन बहुत डराये। मनमें धीरज नेक न आये ॥
विनय दंडवत करि बहु भाई। क्षमा करो अब मोहिं यदुराई॥
मोकहुँ सँभरन दे यदुराई। चित मेरो विभ्रम होइ आई ॥
तुम तौ पूरण पुरुष हौ सांई। रूप समेटो चित्त डेराई ॥
काल रूपते बहुत डेराऊँ। कृपा करो जिय मोर जुड़ाऊँ ॥

श्रीभगवानुवाच

कहैं कृष्ण अर्जुन सुनु बयना। डरपै जनि मूंदो दोउ नयना ॥
तुम कारण यह भेष बनावा। और काहु देखो नहिं पावा ॥
तुम तौ क्षत्रिय बहुत पियारे। तुम कारण यह रूप सवाँरे ॥
अस्त्र लेहु तुम हाथ उठाई। इन कह मारो बहु विधि भाई॥
जो कोइ युद्ध करन कहँ आवै। राज धर्म तेहि मारि गिरावै ॥
इन सबको हम मारिजो राखो। सो सब देख्यो अपनी आंखों ॥
ए सब हमरे मुखके माहीं। तुम कहँ दूषण एको नाहीं ॥
तुम्हरे यश कह कारज कीन्हा। अब लगि राखा तुम्हरे लीन्हा॥
आगे यही मृतक जो आहीं। तुम जग यश लेते कस नाहीं ॥
जगमें महा बाहु तुम होहू। अब तुम इन कहँ मारि विगोहू॥
देखै युद्ध सकल संसारा। यश कीरति तब होइ उदारा ॥
अरजुन डरपत बिनती कीन्हा। तुम कर्त्ता मैं सदा अधीना ॥
अब लगि तुम कहँ मैं नहिं जाना। अब जो कहौ सोइ परमाना ॥
विनय करौ तुम सुनहु गोसांई। बहु अपराध भये मोहिं सांई ॥
तुम संग सखा रूप हम डोलैं। ऊँच नीच बोल जो बहु बोलैं ॥
तुम तौ पिता सकल के होऊ। पालै मात पिता सुत सोऊ ॥
बालक लाख दोष जो करई। मनमें पिता रोष नहिं धरई ॥
तुम सो वैन कठिन मैं भाषा। सारथिकै अपने रथ राखा ॥
कछू चूक हमसे जो होई। सो अपराध क्षमा कर सोई ॥

रूप देखावहु श्याम सरूपा । वेगि छिपावहु काल सरूपा ॥
मेरो जीव न धीरज धरई । अबहीं जानौं भक्षण करई ॥
दया रूप अपनो दिखलावो । चित वित मेरो ठौर मिलावो ॥
ना तौं चित वित मेरो जाई । कैसहु धीरज मोहिं न आई ॥
कालरूप तब लीन्ह सकेली । कृष्ण रूप धरि तब ही खेली ॥
शंख चक्र गदाधर जानी । मोर मुकुट पीताम्बर तानी ॥
विश्वरूप सम्पूरण भयऊ । अध्याय एकादश लगि कहऊ ॥

कबीर उवाच

कहै कबीर सुनौ धर्मदासा । कर कैसे यह काल तमाशा ॥
यह जग अन्धा उलटी रीती । अंधा मोल न फूटि मसीती ॥
अँधरे पंडित पढ़े पुराना । पढ़ि पढ़ि काहूँ भेद न जाना ॥
कृष्णजो निजमुख गीता भाषा । काल स्वरूप देखायउ आखा ॥
तबहुँ न मूरख कालहि चीन्हे । ज्ञान हीन है मतिके हीने ॥
ज्ञान अगम मैं बहुत पुकारा । सब झूठे मिलि कहै लबारा ॥
मूरख सांच झूठ नहिं जाना । कैसे गुरू भेद पहिचाना ॥
भेद विना सो जन्म गवांवा । बार बार भग द्वारे आवा ॥
आवत जात महा दुख होई । जन्म बहुत धरि जाइ विगोई ॥
सतगुरू शब्द चीन्ह जो पावै । अजर अमर घर हंसा पावै ॥
धर्मदास सम हंस सुजाना । झूठो सत्य लेहु पहिचाना ॥
सांच झूठ में रहा छिपाई । चीन्हो ताहि गहौ चित लाई ॥
झूठे त्यागि सांच कह लागो । सत्य सुकृतमें तन मन पागो ॥
सत्यहिते जिव उतरै पारा । सत्य शब्द जियको कड़हारा ॥
सत्य गहै सत्यै मुख भाखै । अभ्यन्तर सत्यहि गहि राखै ॥
सत्यै कर्म धर्म तुम करहू । कर्म भर्म दोऊ परिहरहू ॥
सत्य व्यवहार सत्य मुख बैना । सत्य है लेन सत्य है देना ॥

सत्य सत्य तुम वर्तहु भाई । यह उपदेश हमारो आई ॥
यह संसार सत्य नहिं सूझै । सत्यहि बूझै झूट अरूझै ॥
जैसे नलिनी सुवना गहई । ऐसे वह जग फंदा रहई ॥
सत संगति ते उठिकै भागै । नाच पवारे मन अनुरागै ॥
विषय वासमें तन मन खोवै । उत्तम देही जानि विगोवै ॥
यह संसार कालकर फन्दा । विन सतगुरु नहिं छूटै बंदा ॥
जब अक्षर निरअक्षर जानै । सतगुरु शब्द करै परवानै ॥
सार शब्द मैं आनि पुकारा । जो बूझै सो उतरै पारा ॥

छंद—वहौ बहुविधि बूझि देखों धर्म दारुण काल हो ।
वेद पुराणमें सार गीता जस कह्यौ विकराल हो ॥
त्रिश्व सब भोजन करै यह सर्व वसुधा पाल हो ।
दया जाके ताहि आवै सब जीव राखै हाल हो ॥

सोरठा—ज्योति सरूपी काल, सदा अखंडित लव वरै ।
कबहुँ न होय दयाल, जीवजंतु सब लै जरै ॥

इति श्रीमदुग्रगीताब्रह्मज्ञानयोगमते कबीरधर्मदाससंवादे
विश्वरूपव्याख्यानो नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

---

## अथ द्वादशोऽध्यायः

### अर्जुन उवाच

कहैं अर्जुन सुनु अन्तर्यामी । पूरण पुरुष अगम तुम स्वामी ॥
ज्ञान सृष्टि भक्ति अधिकाई । निर्गुण सगुणमें को अधिकाई ॥
यह संशय उपजे जिव मोरा । कृपा करो तुम करौं निहोरा ॥
अर्जुन जो पूछेउ परभाऊ । सो अब प्रकट बखानौ दोऊ ॥
ज्ञानी अधिक करे जो ज्ञाना । निशि वासर रहै ज्ञान समाना ॥
भक्ति करे जो मन चित लाई । निस दिन सुमिरै हम कहँ भाई ॥
बहुत भांति के सेवा लावै । प्रेम मग्न मेरो यश गावै ॥

सुख संपति सुत भवन न भावै । काम क्रोध मद लोभ बहावै ॥
ऐसा भक्त मेरा मन भावै । मोक्ष मुक्ति परम पद पावै ॥
ज्ञानते अधिक भक्ति है भाई । निसदिन मोमें रहा समाई ॥
निर्गुण सगुण है रूप हमारा । वह निरूप यह खेल पसारा ॥
निर्गुण ब्रह्म सकल घट माहीं । सगुन रूप हमारो आहीं ॥
बहुत साधु निर्गुण कह धावै । कर्म धर्म लै दूरि बहावै ॥
निर्गुण भक्ति बहुत अति भारी । कोइ कोइ विरले हैं व्रतधारी ॥
छाँडै इंद्री तन मनकर्मा । मनसा कबही जाइ न भर्मा ॥
पंच पचीसो को परमोधै । अभ्यन्तर आतमको शोधै ॥
संकल्प विकल्प जब मनसे छूटैं । काल क्लेश नाता कहँ लूटैं ॥
सदा नाम जो रहै लवलीना । सो साधू पुनि ब्रह्महि चीन्हा ॥
पारब्रह्म है अलख अपारा । हाथ पाउं नहिं देह सँवारा ॥
क्षर अक्षर कबही नहिं होई । पूरण ब्रह्म व्यापक है सोई ॥
अलख रूप सदा अविनाशी । रहित चिंत अचिंत उदासी ॥
ऐसा ब्रह्म जो रहित अकेला । सो साधू है अविगति मेला ॥
ऐसे निर्गुण भक्त पियारे । तिन अपना निज कारज सारे ॥
ताते कठिन भक्ति यह भारी । सगुण भक्ति है मोहि पियारी ॥
शुचि संयम एकादशि करई । मन बच कर्म मोहि चित धरई ॥
अर्पणके सब प्रभुके नामा । सुफल होइ सब पूरण कामा ॥
सदा सर्वदा मो कहँ ध्यावै । मोक्ष मुक्तिमाहीं फल पावै ॥
और सेवा सुमिरण जो करई । निशि दिन मोकहँ चर्चत रहई ॥
ध्यान धरै जो श्याम सरूपा । मोर मुकुट शिर बनो अनूपा ॥
पीत वसन बेजंती माला । कानन कुंडल नैन रसाला ॥
ऐसी भांति ध्यान जो करई । सो साधू भवसागर तरई ॥
ए अर्जुन मोहि सब विधि भावै । भक्ति करै मेरो यश गावै ॥

हम तो प्रेम प्रीति के भूखे । साधु संत कबही नहिं दूखे ॥
हमरी आज्ञा साधु जो धावै । महा पदारथ मोक्ष सो पावै ॥
जो तुम सो कछु भक्ति न होई । मानहु मोर कहा निजु सोई ॥
क्षत्री धर्म न छोडिय भाई । एहिते तुम पुनि पहुँचो जाई ॥
धनुष बाण तुम लेहु उठाई । युद्ध करहु तुम अर्जुन जाई ॥
मनमें मोह कछू नहिं कीजे । कारण करतामें चित दीजै ॥
जो तुम युद्ध जीतिकै आवौ । पदवी अटल परम पद पावौ ॥
द्वादश अध्याय भक्ति जो भाई । कृष्ण बखाना यह अध्याई ॥

कबीर उवाच

कहै कबीर धर्मनि हितकारी । भक्ति कहेउ जो कृष्ण मुरारी ॥
निर्गुण भक्ति सत्य है आदी । सगुण भक्तिहु जन्म न वादी ॥
पै हम अगम बखानी ऐसी । करै विवेक विचारै तैसी ॥
निर्गुण सगुण दोउ उर झेला । बूझेगा कोइ संत सुहेला ॥
क्षर अक्षर माया है भाई । निरअक्षर सद्गुरु समुझाई ॥
ताकर भेद न काहू पाया । मूरख धरि २ जन्म गवाया ॥
सद्गुरु शरण जींव जो आवै । काल फांसते जिव मुक्तावै ॥

छन्द–निर्गुण सगुण दोउ छांडौ संधि सद्गुरु चित धरो ।
सार शब्द अपार अविगति क्षर अक्षर निर अक्षरो ॥
भेद बूझो अगम गमि करि कछु न संशौ घट रहो ।
सोई हंसा अमी पीवै पुरुष को दर्शन लहो ।

सोरठा–सोइ भक्ति निज सार, जेहिते पुरुषहि परशिहो ॥
बहु विधि कहौं पुकारि, भक्ति हीन दरशै नहीं ।

इति श्रीमदुग्रगीताब्रह्मज्ञानयोगमते कबीरधर्मदाससंवादे भक्तियोगव्याख्यानो नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

# अथ त्रयोदशोऽध्यायः

### श्रीकृष्ण उवाच

अर्जुन सों बोले गोपाला । निर्मल ज्ञान सुनौ यहि काला॥
माया ब्रह्म सदा संयोगा । माया संग जीव पुनि भोगा ॥
तीनिउ गुण मायाते भयऊ । रजगुण तमगुण सतगुण भयऊ॥
रजगुण ब्रह्मा सृष्टि पसारा । सतगुण पोषण विष्णु विचारा॥
तमोगुण रुद्र सँघौरे सोई । तीनिउ पुत्र माया के होई ॥
पृथ्वी तेज वायु आकाशा । जल मिली पांचउ तत्त्व प्रकाशा॥
दश इंद्री कीन्हो बंधाना । कर्म पांच २ है ज्ञाना ॥
मन बुद्धि चित अहंकार जो कीन्हा। इच्छा दोइ यक धीरज चीन्हा
दुख सुख क्षेत्र जो कीन्हा माया । क्षेत्रज्ञ पुरुष अविगति समाया॥
क्षेत्र देह क्षेत्रज्ञ जिव होई । चेतन जीव अचेत समोई ॥
देह धरेते जिव दुख पावै ।माया जड़ कछु शोक न आवै॥
आदि अनादि ब्रह्म औ माया । कारण सृष्टि धरे दुइ भाया ॥
जैसे वृक्ष २ की छाया । वृक्ष विना छाया नहिं माया॥
ऐसे ब्रह्म सदा यक संगा । कारण सृष्टि रच्यो अर्धङ्गा ॥
अर्जुन व्यापक जीवहि जानो । अतो न न्यारो ब्रह्म पिछानो॥
जीवातम माया भयो अंगा । परमातम देखहु सब संगा ॥
पारब्रह्म सो लिप्त न होई । हाथ पांव इंद्री नहिं कोई ॥
सर्वेन्द्री जाके चहुँ ओरा । जहां तहां परकट सब ठौरा ॥
नैन चहूँ दिशि देखैं सोई । कानन सर्व गुण सुने है जोई॥
मुख सकलौ जो खाय खवावै । पाव पवनते अधिक जो धावै॥
हाथ ऐसे जो रच संसारा । नासा सकल वास विस्तारा ॥
जो कहिये तौ सकलौ सोई । नाक होई तौ कछू न होई ॥
जाके कोई पुण्य न पापा । अलख रूप सो आपे आपा ॥

ऐसे पारब्रह्म पहिचानौ । ताकी महिमा वेद बखानौ ॥
जो कोइ साधू साधन करई । इंद्री त्यागे गुण परिहरई ॥
काम क्रोध मद लोभ न आवै । तंतु प्रकृति लै दूरि बहावै ॥
माया रहित ब्रह्म है सोई । ताको आवागमन न होई ॥
माया लिप्त रहै संसारी । लोभ मोहमें भूले भारी ॥
कैसहु नहीं ब्रह्म कहँ बूझै । अंध नयन हृदये नहिं सूझै ॥
सुख संपति हित चितसो गहई । ता परताप नर्क सो परई ॥
सूकर श्वान जन्म सो धरई । माया लीन सदा सो करई ॥
चौरासी कर्म जेहि गुण होई । निष्कर्मंहि जानै नहिं कोई ॥
आतम परमातम नहिं जानै । पारब्रह्म मन कबहिं न आनै ॥
रहत समीप सदा सुख सोई । न्यारा कबहीं नाहिं विछोई ॥
जैसे सूर्य्य ज़ो रहै अकासा । ऐसे क्षेत्र क्षेत्रज्ञ है वासा ॥
कर्म लिप्त जिव नाम धराया । पारब्रह्म संयोग बनाया ॥
माया विना ब्रह्म जो होई । पारब्रह्म पुनि कहिये सोई ॥
आपुन आपा खोइ भुलाना । माया संग सदा सुख माना ॥
ता कारण भ्रम चौरासी । फिरि २ भवसागरके वासी ॥
ताते निर्गुण भक्ति न होई । सगुण भाव बतायो सोई ॥
कर्म करियं करि निर्मल होई । ऐसो तारो सब नर लोई ॥
मन वच कर्म मोहि चित राखै । मेरो ध्यान सदा अभिलाषै ॥
यहि प्रकार नर मोकहँ गावै । सुख संपति धन लक्ष्मी आवै ॥
ब्रह्म यज्ञ त्रैदश अध्याई । क्षेत्र क्षेत्रज्ञहि वरणि सुनाई ॥

कबीर उवाच

कहै कबीर सुनो धर्मदासा । ऐसा भेद सो काल प्रकाशा ॥
कहिं २ निर्गुण सगुणै ल्यावै । पारब्रह्मते दूरि बहावै ॥
काह कहौं कहँलगि गोहरावौं । अंधहि मारग कैसे पावौं ॥

दिवसहि लोक न सूझे भाई । सूर्य्यहि कैसे दूषण लाई ॥
ज्ञान अपार करउ परकाशा । जैसे सूरज जोति अकाशा ॥
चहुंदिशि जो उज्यारा आही । नैन विना अंधियारा ताही ॥
ज्ञान दृष्टि होई नहिं सूझै । सतगुरु मारग कैसे बूझै ॥

छन्द—ब्रह्म ज्ञान कहि २ सुनाव बहुरि आन कर्म सो ।
आपकोही स्थापि बहु विधि सब जीव राख भर्म सो॥
कर्म धर्मंहि भर्म त्यागै बूझि सतगुरु भेदको ।
अगम मारग वेदते जो बूझि वेद निषेद को ॥

सोरठा—ऐसो मतो अपार, वेद पार पावै नहीं ।
पुरुष शब्द नीनार, पुष्प बास जैसे रहै ॥

इति श्रीमदुग्रगीताब्रह्मज्ञानयोगमते कबीरधर्मदाससंवादे
क्षेत्रक्षेत्रज्ञनाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

---

## अथ चतुर्दशोऽध्यायः

### श्रीकृष्ण उवाच

बोले कृष्ण भक्त-हितकारी । अर्जुन सो अस वचन उचारी ॥
आगे बहुत ज्ञान समझाया । पै अब अगम करो तुम दाया ॥
जौन ज्ञान सुर नहिं पहिचानै । महिमा चारो वेद बखानै ॥
अब तुम हृदया धरउ छिपाई । ऐसों ज्ञान नहिं प्रकटै भाई ॥
प्रथम तत्त्व महि पुरुष सवारा । प्रकृति तत्त्व तेहिमें अनुसारा ॥
कर्म बंध महि तत्त्वहि रहई । कर्म विधी बंधन सो कहई ॥
सब उत्पति महि तत्त्वतै होई । प्रलय काल सब ताहि समोई ॥
आदि आनादिते महि चलिआई। काहू जाकी अन्त न पाई ॥
महि तत्त्व रूप ब्रह्मकी इच्छा । माया ब्रह्म समीप समीक्षा ॥
ताते तीनिउ गुण जो भयऊ । सतरज तमगुण उतपन कियऊ॥
ताके लक्षण करौं बखाना । तीनउ व्यापक सकल जहाना ॥

प्रथमैं सतगुण सत्तै जानौ । शील लाज सन्तन हित मानौ ॥
प्रभुके सुमिरण रहै समाई । भक्ति भाव सन्तन सुख दाई ॥
शुचि संयम स्नान जो करई । जप तप दान पुण्य मन धरई ॥
निशिदिन चित रहै स्थिर भाई । सत्य संतोष जो सदा रहाई ॥
यह लक्षण सत्त्वगुण जो जाना । ताकी गति संक्षेप बखाना ॥
ऐसी भांति कांच जो होई । स्वर्ग लोक सुख भुक्तै सोई ॥
बहुत भाँति सो सदा अनन्दा । सत्त्वगुण विष्णुभाव गोविंदा॥
रजोगुण ब्रह्मा भय उतपानी । भूषण भोग सदा रुचि मानी ॥
बहुत भांति कै वस्तर भावै । घोडा हाथी रीझ बढ़ावै ॥
बहुत दामकै चाहै गाठी । बुद्धि फिरै भक्तन सो नाठी ॥
जहां तहां मैं मेरी बोलै । सुख संपति कह धावा डोलै ॥
सुखसंपति कछु काम न आवैं । हरिबिन मूरख जन्म गवावैं ॥
यह लक्षण रजगुणके भाई । अन्तकाल मध्यम गति पाई ॥
तमोगुण रुद्र धरो जो देही । काम क्रोधके सदा सनेही ॥
निशिवासर रहैं अहंलपटाना । आपन सम काहू नहिं जाना ॥
क्रोधहि लिये करै सब कर्मा । भीतर रोख उपर तकै प्रेमा ॥
देवि देवता बहुत मनावैं । अन्त समय कोइ काम न आवैं॥
आलस निद्रा वसै शरीरा । काहूकी नहिं व्यापै पीरा ॥
तमोगुण लक्षण यह व्यवहारा । अन्त समय बहु करे पुकारा ॥
यमके दूत त्रास बड़ि देही । गति निकृष्टमें बासा लेही ॥
नर्क बासमें बासा लेई । योनि अघोर सदा भरमेई ॥
तीनौ गुण बरतै सब अंगा । पलपल छिन छिन तीनों रंगा॥
तीनौ गुण रहै देह समाई । ता कारण भरमैं सब भाई ॥
जिन साधुन गुण व्यापै नाहीं । सो तौ आवैं हमरे पाहीं ॥
तीनउ गुणते न्यारा खेलै । ज्ञानेन्द्री लै मनहि सकेलै ॥
ऐसा साधु मुक्ति गति पावै । आवागमनकी पीर मिटावै ॥

अर्जुन उवाच

कहै अर्जुन तुम सुनहु भुवारा । गुण तीनौ कस होइ निनारा ॥
करनी रहनिते साधु सो रहई । कैसे इनते न्यारा कहई ॥
इन बिन कर्म कछू नहिं होई । कैसे कै निष्कर्मी सोई ॥

श्रीकृष्ण उवाच

कहैं कृष्ण पूछेउ तुम नीका । मेटौ संशय सकलौ जीका ॥
तीनौ गुण हैं नर्ककी खानी । पैं सत्त्व गुणते नर उतपानी ॥
ताते सत्त्वगुण अधिक महातम । करै भक्ति चीन्हे परमातम ॥
जो सत्त्व गुणमें बास करई । इच्छा फल मनमें नहिं धरई ॥
दुख सुख दोऊ एक समाना । भला बुरा कछु मनहिं न आना॥
मित्र शत्रु कोइ दृष्टि न आवै । सुत औ अरि दोउ एक सुभावै ॥
पाप पुण्य की करै न आसा । निशिवासर हरिचरण निवासा॥
रहै उदास सदा जग माहीं । शीत उष्ण व्यापै नहिं ताहीं ॥
आनँद रूप सरूप है जाहीं । जगके सुख दुख व्यापैं नाहीं ॥
देहीको आपन नहिं जानै । ब्रह्म रूप न्यारा पहिचानै ॥
सुत दाराकी कौन चलावैं । जगके बन्धन सब मुक्तावै ॥
ऐसी रहनि जो साधू होई । व्यापक गतिको पावै सोई ॥
यह तौ ज्ञान अगम मैं कहिया । अर्जुन राखो मन चितगहिया॥
चतुर्दशाध्याय कहेउ जो कृष्णा । त्रिगुण विभाग कहेउ संपूर्णा॥

कबीर उवाच

कहै कबीर सुनौ मम पासा । सत्य पुरुष चीन्हौं धर्मदासा॥
जाते पुरुष प्रकृति जो भयऊ । माया ब्रह्म भाव दोउ ठयऊ ॥
महि तत्त्व कारण जग निर्मांया । तीनिउ गुण पग तेहि भाया ॥
ब्रह्मा विष्णु महेश्वर नामा । इनते जगत रच्यो सब सामा॥
इनते पुनि अवतार अनेका । जन्म धरै युग युग फिरवैंगा॥

ज्ञान सत्य यह कृष्ण सुनाया । पै फिरिकै आपा ठहराया ॥
आदि पुरुषते परे जो दूरी । कैसे पहुँचै लोक हजूरी ॥
यह तौ आपा कह ठहरावे । ब्रह्मज्ञान कहि कहि समुझावै॥
जो नहिं थापे आपा भाई । कैसे चले तिहुँलोक बड़ाई ॥
राजनीति सब आप मिलावै । जाते देश न उजरन पावै ॥
पुरुष भेद जो पावइ लोई । तौ तीनिउ पुर ऊजर होई ॥
तेहि कारण तीनिउ गुण फंदा । जीव जंतु सब इनकू बंधा ॥
विष्णुरूप सत्त्वगुण जो कहिया । सत्त्वगुणसोकारजनहिंलहिया॥
अपने मुख जो कृष्ण सुनाया । तबहुं न मूरख मोहि पतियाया॥
अंकूरी जीव मोहि पतिआई । हंस होइ सत्य लोक सिधाई ॥

छंद—पुरुषते प्रकटो निरञ्जन बीज माया सँगदई ।
सेवा बसि तिहुँलोक पायउ करण कारण सो भई ॥
करै करावै मन जो भावै थापि आया आपको ।
पुरुष सो जिव रहे न्यारै लागि इनके आपको ॥

सोरठा—सुनु धर्मदास सुजान, सतगुरु विना न दर्शई ।
गहो शब्द निर्वान, जेहिते पुरुष परसि हो ॥

इति श्रीमदुग्रगीताब्रह्मज्ञानयोगमते कबीरधर्मदाससंवादे त्रिगुण-
विभागयोगो नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

---

## अथ पञ्चदशोऽध्यायः

### श्रीकृष्ण उवाच

अर्जुन सो बोले अस बानी । कृष्ण सरूपी चतुर विज्ञानी ॥
त्रिगुणविभागयोग कहो ज्ञाना । अब पुरुषोत्तम योग बखाना ॥
वृक्ष भाव है यह संसारा । ऊर्ध्व मूल अध है तेहि डारा॥
उलटा वृक्ष नीचे हैं शाखा । यह संसार वृक्ष सम भाषा ॥
पातहि पात तरु डारहि डारा । फल लागा विनु फूल रसाना ॥

अर्जुन उवाच

अर्जुन पूछहि सुनु भगवाना । वृक्षके वर्णन करौ बखाना ॥
कहैं कृष्ण सुनु कुंतिकुमारा । वृक्ष शरीर रच्यो व्यवहारा ॥
ऊपर मूल तर डार बताऊँ । शाख पत्र सब तोहि सुनाऊँ ॥
मूल वृक्ष है पुरुष अगोचर । शाखा ब्रह्मा विष्णु महेश्वर ॥
संसारी यहि गुणते आवै । बृन्दबृन्द फिरि २ उपजावै ॥
साधु सन्तको आतम ज्ञानी । प्रभु पूरणकी गति पहिचानी ॥
आवागमन तिन्हैं जो नाहीं । रहै समीप पुरुषके पाहीं ॥
कहैं अर्जुन तुम वृक्ष बखाना । सो तौ आवागमन समाना ॥
साधुको आवागमन न होई । कैसे वृक्ष न जामैं सोई ॥
अब तुम सुनौ हौ चतुर सुजाना । निर्मल तोहि सुनावौ ज्ञाना ॥
निष्कामी इच्छा नहिं जाहीं । असंग अस्त्र लै काटै ताहीं ॥
असंग अस्त्र सब वृक्षहि काटा । जरा मरणको छूटौ घाटा ॥
सोइ साधू मन चलन न पावै । बाहेर जाते भीतर ल्यावै ॥
जैसे पुहुप बास है भाई । पवन सरूपी लेइ समाई ॥
ऐसे इन्द्री जिव है बासा । मन दौरे इंद्रिन के पासा ॥
इन्द्री साथ महा सुख मानै । अंतकाल रहु तेहि पछितानै ॥
इन्द्रिय वश जो मन नहिं होई । पूरण ब्रह्ममें रहै समोई ॥
मन इन्द्री सो रहै निनारा । सोई पावै मुक्ति के द्वारा ॥
ऐसा साधू कोई माई । कोटिन मध्ये एक रहाई ॥
अर्जुन कहैं परमपद कैसा । कहै कृष्ण सुनु अर्जुन ऐसा ॥
कोटिन सूर्य्य एक सम होई । कोटिन चन्द्र पूरण है सोई ॥
तबौ न बूजौ ब्रह्म उजियारा । परब्रह्म है अपरं पारा ॥
अर्जुन कहै सुनो प्रभु मेरे । मैं आधीना दास हौं तेरे ॥

जब नर नींद करै सुख सोवे। सुपुपति लिये मगन सो होवे॥
और जब प्रलय होइ संसारा। रहै लीन सब ब्रह्म मझारा॥
ए गतिभक्तिते मुक्ति कहावे। पै काहेते आवै जावै॥
सुनु अर्जुन मैं कहौं बखानी। भेद न जा नर अज्ञानी॥
संशय लीन मगन होइ सोवै। ताते फिर २ संशय होवै॥
प्रलय घात जिव ब्रह्म समाई। मनोकामनाते फिरि आई॥
जैसे कामना होवै लीना। तैसे कामना होवै बीना॥
ताते आवागमन न छूटै। फिरि २ जन्म योनि धरि लूटै॥
जो चीन्है अभ्यन्तर आतम। चेतन रूप चिन्है परमातम॥
सबके अंतर मैं ही व्यापौ। करण करावन मैं ही आपौ॥
जैसे तिलमें तेल रहाई। जैसे काष्ठमें अग्नि रहाई॥
अग्नि रूप हो अन्न पचावौ। सब जीवनके मध्य रहावौ।
ऐसे व्यापक मैं अभ्यन्तर। चारिउ भोजन करौं निरन्तर॥
चारिउ भोजन सुनो सुजाना। जो मुखमें सब आनि समाना॥
भक्षणमें एक भोजन भाई। डाढते चाभि २ सो खाई॥
दूसर भोजन कहावै सोई। पहित भात जो भोजन होई॥
तीसर भोजन जो नाम कहावै। डाढ दांत ताहि नहिं पावै॥
सीरा सिरखन कढी कहावै। बिना दांतन रसना लै जावै॥
चौथा भोजन नाम जो कहिया। दांत लगाय रस चूसे जहिया॥
यह सब भोजन मैं ही करऊँ। उदर सकलबिधि मैं ही भरऊँ॥
ब्रह्मरूप अविनाशी मोरा। पूरण अंश आहि यहि थोरा॥
क्षर अक्षर दोउ ब्रह्म स्वरूपा। क्षर बिन रहै अक्षर अनूपा॥
अक्षर पारब्रह्म सो आही। दुख सुख कछु व्यापै नहिं ताही॥
ब्रह्मो निशि दिन खोजत रहई। ताकर वार पार नहिं लहई॥
जैन यती संन्यासी ढूँढै। बहुत मुडावै बहुतै चूडै॥

ताकर वार पार नहिं पावै । खोजत २ जन्म गँवावै ॥
योगी जंगम और दरबेशा । बहु विधि रूप बनावै वेशा ॥
अक्षर गति कोइ पार न पावै । प्रभु पूरण सब माहँ रहावै ॥
जो सुमिरै प्रभु प्रेम लगावै । ताकह काल कबहुँ नहिं पावै ॥
ताको अवागमन नशाई । ना कहुँ आवे ना कहुँ जाई ॥
अर्जुन यह पुरुषोत्तम योगा । अध्याय पंचदश नाम संयोगा॥

कबीर उवाच

कहै कबीर धर्मदास सुजाना । ब्रह्मज्ञान यह कृष्ण बखाना ॥
ब्रह्मज्ञान ऐसा है सोई । उग्र ज्ञान जानै नहिं कोई ॥
जिन जाना तिन ही पहिचाना । जैसे गूँगे सपना जाना ॥
गूंगा शैन जो गूंगा जानी । अभिअन्तर सो ले पहिचानी ॥
मैं तोहि प्रगटै कहौं बखानी । गुप्त शैन कोइ गूंगे जानी ॥
अगम अपार शब्द निर्धारा । बूझै आदि अन्त सुख सारा ॥
नहिं बोली भाषा महँ आवै । नहीं रूप कछु वरणि सुनावै ॥
हाथ न पांव सुर्ति नहिं जाके । कहो कैसे कोउ पावै ताके ॥
दृष्टि अदृष्टि न देखन आवै । सतगुरु अवर न वरण लखावै॥

छन्द—वरण अवरण भाव बूझौ क्षर अक्षरको भेद जो ।
क्षर विनशित अक्षर सुस्थित अथ कहे यह भेद जो ॥
अक्षर माहिं नि दरशय गुरू भेद लखाइया ।
कोटि वेद पुराण वांचे सतगुरु भेद लखाइया ॥

सोरठा—अक्षर भेद है सार बहु विधि कहौ पुकारिकै ।
बूझै बूझनिहार, आदि पुरुष मुख शब्द है ॥

इति श्रीमदुग्रगीताब्रह्मज्ञानयोगमते कबीरधर्मदाससंवादे पुरुषोत्तमयोग व्याख्यानो नामपंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ।

## अथ षोडशोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच

सुनौ संत तुम कुंतिकुमारा । पुरुषोत्तम मैं कहेउं विचारा ॥
अब दुइ योग मैं कहेउँ बखानी । दैव आसुरी ताको मानी ॥
दैव योग जो साधै प्राणी । दैवकी शरण लेइ पहिचानी ॥
ताको लक्षण कहि समुझावौं । भिन्न भाव करि बरणि सुनावौं॥
दैव योग संपदा को वर्णक । ताको पूजि होइ जो शर्णक ॥
प्रथम अभय निर्भय होइ रहई । काहूकी कछु शंक न करइ ॥
सत राखैं अभ्यंतर अपने । झूठ न व्यापै कबहीं सपने ॥
ज्ञान योगते मन थिर राखै । दम शम कै काया में राखै ॥
दान पुण्य मैं चित अभिलाषै । योग युक्ति मैं बहु विधि भाषै ॥
नित्त नेम पढै गुरु मंत्रा । ताते काया होइ पवित्रा ॥
अरि औ मित्र एक सम जानै । इच्छा काहूकी मन नहिं आनै॥
होइ अक्रोध जो त्यागे हठको । शीतल रूप जो साधे घटको ॥
चुगली चाली दूरि बहावै । दया भाव चित माहिं समावै॥
लव लिप्सन होई जिय जाके । कोमल वचन रहै सुख ताके ॥
लोक लाज तजि साधु सुभावै । चपल बुद्धि कह दूरि बहावै ॥
तेज तजै सत्क्रियाकी आसा । क्षमावंत होइ रहेउ उदासा ॥
धीरज मनमें सदा समाई । शुचि संयम करि युक्ति रहाई॥
होइ अद्रोह द्रोह नहिं आवै । सदा देव संपद मन भावै ॥
मन इच्छा पूजै सब कामा । देव कर्म ताकर है नामा ॥

आसुरी संपदाको वर्णन

अब आसुरी को करौं बखाना । हृदयमें नहीं ज्ञान समाना ॥
दंभ करी करि लोक देखावै । अंतर्गत नहिं ब्रह्म समावै ॥
द्रव्य देखि फूलैं अधिकारी ।निशिदिन लवलिप्साचितधारी॥

करि अभिमान आपको जानै । और न दूसर चितमें आनै ॥
क्रोध सदा अभि अन्तर राखै । बहु कठोर कोमल नहिं भाखै॥
रहै अज्ञान ज्ञान नहिं भावै । जहां ज्ञान तहँ रोष उठावै ॥
प्रवृत्ति निवृत्ति पुण्य औ पापा । कर्म धर्म करि थापैं आपा ॥
शौच क्रिया मानैं नहिं आवै । निराचारमें मन चित लावै ॥
जक्तके अस्त सदा सुख मानै । जग कर्ताको कबहि न मानै ॥
यह व्यवहार आसुरी आही । कबहु न सुमिरै प्रभु जो ताही॥
ऐसे जीव सदा दुख पावै । नरक वास में जाइ समावै ॥
नर्क द्वार तीनि हैं भाई । जेहिते जीव सदा भर्माई ॥

### तीन द्वार नर्कको वर्णन

प्रथम द्वार जो काम बनावा । काम द्वारले चित्त लगावा ॥
कामविषय निशिदिन लपटाना । नर्क वासमें जाइ समाना ॥
दूसर द्वार क्रोध कहावै । जाके क्रोध सदा चित भावै ॥
ताते नर्कवास में जाई । उपजत विनशत बहु दुख पाई॥
तीसर द्वार लोभ है भाई । जेहिते जीव सदा भर्माई ॥
लोभ लागि जो जन्म गवाँवै । वासा नर्क सदा सो पावै ॥
नर्क द्वार यह तीन बखाना । मूरख इनमें रहै समाना ॥
दैव आसुरी संपद नामा ।अध्याय षोडशो कहेउँ बखाना॥

### कबीर उवाच

कहै कबीर सुनु संत विवेकी । दोउ संपदा कहेउँ विशेखी ॥
पाप पुण्य हैं दोऊ बेरी । एक लोहे एक कंचन केरी ॥
वेरी पाय एक दुख होई । कंचन ते सुख अधिक न सोई॥
यह संसार फंद यम केरा । कैसे छूटै यम उर झेरा ॥
कर्म करै कर्ता न कहावे । पाप पुण्य शिर भार लेयावे ॥
सत संतोष हियेमें धरई । सहज सरूपी भवजल तरई ॥

साधु संत सेवा चित राखै । सद्गुरु शब्द अमीरस चाखै॥
चाखत अमी अमर सो होई ।अजर अमर सत्यलोक समोई॥

छन्द—धर्मदास तुम सुनो चित दै कर्म न लागै दासको ।
पाप पुण्य बंधा रहै जो छुटन चाहै फंद सो ॥
सुवा नलिनी पकरि अरझो आपनी मति मंद सो ।

सोरठा—सदा अहेरी काल, पाप पुण्य फंदा रचो ।
सद्गुरु दीन दयाल, कर्म काटि मुक्ता करो ॥

इति श्रीमदुग्रगीताब्रह्मज्ञानयोगमते कबीरधर्मदाससंवादे दैवा—
सुरसंपदाख्याख्यानो नाम षोडशोऽध्यायः ।। १६ ।।

---

## अथ सप्तदशोऽध्यायः

### अर्जुन उवाच

अर्जुन कहेउ सुनो यदुराई । कछु मोरे जिय संशय आई ॥
सो अब प्रगट कहो भगवाना । आगे सूक्ष्म सुना मैं काना ॥
शास्त्र धर्म छाडि जिन दीन्हा । तिनकी गति तुम कैसे कीन्हा॥
रूप सरूप कौन है ताही । सत रज तमगुण ये को आही॥

### श्रीभगवानुवाच

कहैं कृष्ण सुनु कुंतिकुमारा । भली बात कर कीन्ह विचारा॥
जग रचना शास्त्र मत आही । तेहि मारग सब लागे जाही ॥
शास्त्र न वेद पुराण न छोडे । सो तौ नर्कवास में बोडे ॥
जब लगि ब्रह्मज्ञान नहिं आवे । तब लगि शास्त्र धर्म मन लावे॥
जब आवे याको ब्रह्मज्ञाना । शास्तर वेद कितेव हेराना ॥
ता कह कर्म न लागै भाई । निशि दिन रहै नाम लौलाई ॥
जब आतम परमातम जानै । कर्म धर्मते भे निरवानै ॥

मोक्ष सरूपी आपे होई । ना फिर जन्मे मरै न सोई ॥
ऐसी भांति जो साधु रहाई । ना कहुँ आवै ना कहुँ जाई ॥
अब तीनौ गुण वर्नि सुनावौं । सकल कामना तोर मिटावौं ॥

त्रिगुणको वर्णन

सत रज तमगुण तीनि बखाना । तीनने तीनि २ औ जाना ॥
पूजा तीनि अब कहौं बखानी । पूजहिं सुर नर मुनि औ ज्ञानी ॥
सात्त्विकी देवा पूजैं भाई । राजस पूजैं यक्ष बनाई ॥
तामस भूत प्रेत पूजावहिं । नर्कवास लै सो मुक्तावहिं ॥

त्रिगुण अहारको वर्णन

अहार तीन अब सुनले भाई । सबमें सत रज तम जो आई ॥
खीर खांड घृत करै अहारा । यह लक्षण सतगुण व्यवहारा ॥
साधु सरूपी सदा सु चाला । सन्तनको बहुविधि प्रतिपाला ॥
करुवा खट्टा लोनु तीक्षण । ये अहार राजस लक्षण ॥
दुख सुख ताहि जो व्यापे भाई । नाना व्यञ्जन करै बनाई ॥
तमगुणके आहार बखाना । भई रसोई पहर सेराना ॥
भोजन करि २ लोक सिधावै । स्वाद अनेक रहै ना पावै ॥
होइ उच्छिष्ट अन्न अब भाई । तामसि तामस करि २ खाई ॥

त्रिगुण यज्ञ वर्णन

द्रव्य यज्ञ प्रथम है भाई । बिन फल इच्छा यज्ञ कराई ॥
प्रभुके सुमिरन रहै समाई । ताकी बुद्धि सात्त्विकी भाई ॥
राजस यज्ञ करै फल चाहै । दंभ करै यश कृत्रिम समाहै ॥
यज्ञ विधि निह तामसी होई । अन चूने बिनु करै रसोई ॥
जैसे तैसे यज्ञ करै पूरा । दक्षिना देत बहुत कै घूरा ॥
खरच करै औ कल्पे भाई । ताते नर्क बास चलि जाई ॥

### त्रिगुण तपस्या वर्णन

तनसो देवता पूजा लावै। गुरु और ज्ञानी पूज पुजावै ॥
शुचि संयम जो कोमल रहई। ताकर काल पला नहिं गहई ॥
ब्रह्मचर्य पुत्रि आनि जेवावै। रहै अनिच्छा सत्य न खोवै ॥
यह तन पूजा करै सुजाना। गुरु गोविन्द को धारै ध्याना॥
सत्त्विक मन तप कहौं बुझाई। इन्द्री सबै हाथ जेहि आई ॥
प्रथमैं प्रसन्न जो राखै। मौन रहै अमृत रस चाखै ॥
आतम निग्रह करे सुजाना। अन्तर्भाव सुधा निर्वाना ॥
तपस्या मनकी कही सुनाया। सुधा सरूपी सतगुण भाया ॥

### सात्त्विकी वचन तपस्या वर्णन

वचन तपस्या करों बखाना। यह तप मुखते भया प्रवीना ॥
अभय वाक्य ताकूं भइ नाहीं। सत्ति सरोत्तर जस मुख माहीं ॥
प्रिय हित साधु वचन सो कहही। पाठ करी करि जन्म सुधरही ॥
एते वचन तपस्या होई। मुखते करे करावै सोई ॥
तीनि तपस्या सतगुण भावा। सो तौ वर्नक वर्नि सुनावा ॥
रजस तपस्या त्रै परकारा। ताकूं अब मैं करो प्रचारा ॥
तीनि तपस्या राजस भाई। तनसों तपकरि लोक देखाई ॥
मनसों कपट कबहुँ नहिं छूटै। वचन सदा मुख बोले झूटै ॥
तीनि तपस्या राजस होई। ऐसी भांति करे जो लोई ॥
तामस तप है तीन प्रकारा। शुभ अशुभ कछु नाहिं विचारा॥
हठ करि तपसो तनको गारै। मनमें क्रोध सदा जो धारै ॥
वचन कठोर बहुत सो बोलै। तामस ताप अहं लिये डोलै ॥
तीन तपस्या त्रिगुण सुभावा। सो तौ वर्नक वर्नि सुनावा ॥

### त्रिगुण दानका वर्णन

तीनि प्रकार दान अब वर्नौं। उत्तम सेवा ब्रह्महि चीन्हौं ॥

अन आश्रित को देइ जो दाना। तीरथ उत्तम ठौर ठेकाना॥
दान देइ फल चाहै नाहीं। सात्त्विक दान सो कहिये ताहीं॥

राजस दानका वर्णन

जत अश्रेको दान जो देई। लाहा कारण संशय लेई॥
यह तौ राजसको व्यवहारा। दान देइ चित कल्पै भारा॥

तामस दानका वर्णन

तामस अशुचिको देइ जो दाना। नटुवा वेश्या हित करि जाना॥
ब्राह्मण देत क्रोध मन करई। इच्छा बहुतै फलको धरई॥
यह लक्षण तामस कर होई। तीनि प्रकार दान है सोई॥

तीनि नाम त्रिगुणको वर्णन

तीनि नाम वर्णौं मैं त्रिगुणा। जाते सृष्टि होत है सगुना॥
वह अंतुतु है मति सोई। तीनिउ नाम एक सम होई॥
निज मंत्रहि मैं भाषि सुनाया। ताको मर्म न काहू पाया॥
पाक रसोइ छूति जो होई। वो अंततू सति है सोई॥
पातक छूति रहैं नहिं कोई। यह तो मंत्र पवित्र कराई॥
पावै प्रसाद जो सकल जहाना। सुमिरै पावै पद निर्वाना॥
सब कारज सुमिरे त्रै नामा। पूरण होइ सकल विधि कामा॥
योग सिद्धि सत्रह अध्याई। सो तौ पूरण वर्णि सुनाई॥

कबीर उवाच

कहै कबीर सुनु धर्मनिराया। तीनिउ गुण वरतै संसारा॥
साधू कहँ कोइ कर्म न लागै। तन मनते इच्छा कह त्यागै॥
कर्म करै कर्ता न कहावै। मन सो कुमारग जान न पावै॥
मारग अगम साधुकर होई। कृष्ण अपने मुख भाषा सोई॥
वेद पुराण पार नहिं पावै। जहँवा साधू ध्यान लगावै॥
वेद कितेब दोउ है फन्दा। यहि ते लागि रहै जग धन्धा॥

ज्ञानहि कहि २ कर्म दृढावे । यज्ञ दान फिरि जन्म धरावे ॥
हम तो कहो अगोचर ज्ञाना । जाते होइ हंस निर्वाना ॥

छन्द—अगम अगोचर भेद सद्गुरु साधु रहै समाइ कै ।
हंस होइ सत्यलोक आवै दरस सद्गुरु पाइ कै ॥
पूरा गुरु जो पावई तो मिटै यम फंद को ।
हंसको मुक्ताइ यमसो मिलै अच्युतानंदको ॥

सोरठा—ऐसा शब्द अपार, वार पार बिच भेद को ।
सत्य शब्द निर्धार, सद्गुरु सोइ बताइया ॥

इति श्रीमदुग्रगीताब्रह्मज्ञानयोगमते कबीरधर्मदाससंवादे योग-
सिद्धव्याख्यानो नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

---

## अथ अष्टादशोऽध्यायः

### अर्जुन उवाच

अर्जुन कहैं सुनो यदुनाथा । जो पूछौं सो करौ सनाथा ॥
सन्यास कर्म काहे सो कहिये । त्याग रूप सब वर्णन चहिये ॥

### संन्यासको वर्णन

सुनु महाबाहु मैं कहौं बखाना । कर्म नाश संन्यास समाना ॥
कर्म धर्मको मारग छांडै । ब्रह्म ध्यान अभ्यन्तर मांडै ॥
सब परपंचते न्यारा होई । कर्म संन्यास कहावै सोई ॥

### त्यागरूप वर्णन

त्याग रूप है अगम अलेखा । कर्म करै नहिं आपु विशेखा ॥
निशि दिन कर्म धर्म जो होई । रहै अलिप्त लिप्त नहिं होई ॥
अपनेको कर्ता नहिं जानै । फल औ फल मनहि नहिं आनै ॥
ताकहँ त्याग कहीये भाई । निशि दिन रहै नाम लौलाई ॥

संन्यास त्रिप्रार वर्णन

संन्यास त्याग तीनि गति होई । अनिष्ट इष्ट मिश्र गति सोई ॥
अनिष्ट नर्ककी योनी भुक्ते । देव योनिको इष्ट संयुक्ते ॥
मिश्र मानुषकी देह जो पावै । तीनों गति गीता बतलावै ॥

त्रिप्रकार क्रिया वर्णन

कहौं क्रिया तीनिहु समुझाई । ज्ञान कर्म कर्ता जो आई ॥

ज्ञान क्रिया त्रिप्रकार

प्रथमैं ज्ञान सुनौ चितलाई । ताकर लक्षण तीनि बताई ॥
जबही ज्ञान हृदयमें आवै । सर्व त्यागि प्रभुको लवलावै ॥
सर्व व्यापि जो ब्रह्महि जानै । सात्त्विक लक्षण ज्ञान बखानै ॥
राजस लक्षण जानै प्रभु न्यारा। न्यारा २ ब्रह्म विचारा ॥
तामस लक्षण एक ठौरहि जानै। मूरति प्रतिमा पूजा ठानै ॥
ताहि एहै ठाकुर है येही । परम पुरुषते नाहिं सनेही ॥
जेहि देवा कौ जो कोई ध्यावै । तेहि देवहि ठाकुर ठहरावै ॥
यह लक्षण तम गुण व्यवहारा । तामें वास है नरक दुबारा ॥

कर्म क्रिया त्रिप्रकार वर्णन

दोसर कर्म लक्षण है तीनि । जानै कोउ साधू परबीनी ॥
कर्म करै फल चहै न ताको । पुत्र कलत्र असंग सदाको ॥
राग द्वेष जाके नहिं आवै । एतो सत्त्वगुण कर्म सुभावै ॥
राजस कर्म सुनावौं मीता । करि २ कर्म कामना प्रीता ॥
कर्म अधिकार आपु ना होई । फल वांछै मन राजस सोई ॥
तामस कर्म सुनौ तुम भाई । तप स्नान औ जप लर जाई ॥
हठ करि कर्म करै बहु भाई ।दुख सुख अह निशि लहै सदाई॥
ता प्रकार क्रोधहु बहु होई । तामस नर्क वास है सोई ॥

कर्ता लक्षण त्रै प्रकार

तीसर कर्ता रूप बखानौं । कारण करण करै सोइ जानौं ॥

सात्त्विक कर्ता जो कछु करई । आपु मेटि प्रभुको चित धरई ॥
आपुको कर्ता नहिं जानै । कर्ता पूरण पुरुष बखानै ॥
ऐसी रहनि रहै जो दासा । नर्क स्वर्गकी ताहि न आसा ॥
सो सत्त्व गुण लक्षण है भाई । जाते कहिये साधु सुभाई ॥
राजस कर्ता आपुको जानै । दाराहित सुत आपको मानै ॥
बहुतै हर्ष शोक तेहि भावै । थोर करै बहुतै फल धावै ॥
तामस कर्ता लक्षण भाई । आलस निद्रा बहुत रहाई ॥
आपु अयोग चाहै पुरुषारथ । ह्वै अधीन नहिं चाहै स्वारथ ॥
कारज होइ गये अब जाको । दिन औ राति बतावै ताको ॥
भोर होइ सो दिवस बतावै । तामसकर यह सदा सुभावै ॥

### त्रिप्रकार बुद्धिको वर्णन

तीनि प्रकार बुद्धि है भाई । प्रथमैं सुमिरन मैं ठहराई ॥
निवृत्ति प्रवृत्ति जो मारग जानै । करै विचार धर्म पहिचानै ॥
काज अकाज न बंध न मोक्षण । सो साध्वी है सात्त्विक लक्षण॥
दुसरी बुद्धि तो धर्म अधर्मा । काज अकाज जाने सब पर्मा॥
राजस बुद्धि लक्षण यह भाई । मनमें सहा विचार कराई ॥
तामसबुद्धि अब सुनहु सुजाना। क्रोध लिये मन विषय सुजाना॥
धर्महि सो अधरम करि जानै । करै अधर्म धर्म पहिचानै ॥
ता अधरम कह धर्म जो कहई । सदा तामसी बहु दुख सहई ॥

### त्रिप्रकार धीरज

सात्त्विक धीरज वरणि सुनाऊ । संशय तोर जो सकल मिटाऊं॥
पांच तत्त्व मन संयम साधै । सकल कामना यह अवराधै ॥
इंद्री सकल एक सम कराई । सात्त्विक ऐसो धीर धराई ॥
राजस धीरज है परसंगा । पारस लागै धर्म उमंगा ॥
कर्म करै संगति ते सोई । औ फल चाहै राजस होई ॥

धीरज तामस सपना देखै । भय अभय सकलौ में पेखै ॥
शोक विषाद बसै मन माहीं । तामस धीरज लक्षण आहीं ॥

### त्रिप्रकार सुख वर्णन

अब सुख लक्षण कहौं जो सोई। तीनि भांति सुख व्यापक होई॥
प्रथमहि सात्त्विक सुख सुनु भाई। सुख कहँ विषके जानै सोई ॥
सुखसो कबही हेत न जानै । विष समान ताकह पहिचानै ॥
अंत समय विषसो सुख होई । सात्विक लक्षण बरनौं सोई ॥
दूसर इन्द्री सुख संयोगा । परनारी सों करै जो भोगा ॥
यही प्रकार महा सुख करई । सो सुखी अंत जो विषसो होई॥
राजस सुख लक्षण यह भाई । दुख बहुतक व्यापै जाई ॥
तीसर तामस सुखहि बखानो । विवेक विचार हृदय नहिं अनो॥
आलस निद्रा बहु सुख मानै । सपने कबहीं राम न जानै ॥
तामस सुख यह कहिये भाई । जाते नर्क सदा भर्माई ॥

### वर्णका वर्णन

चारि वर्ण अब वर्णौं भाई । तिनके ये गुण प्रगट सुनाई ॥
ब्राह्मण सत्त्वगुण रूप विराजै । कर्म स्वभाव ताहि तन छाजै ॥
शम दम तव शूच्या सो करई । ज्ञान विज्ञान सत्य मन धरई ॥
स्थिर मनमें कठोर तन होई । ब्राह्मण कर्म स्वभाव जो सोई॥
क्षत्रिय सत्त्वरज दुइ गुण धारी। शूरबीर दाता अधिकारी ॥
तीक्ष्ण धीरज बुद्धि है जागी । युद्ध करत कबहूं नहिं भागी ॥
वैश्य राजसी कहौं बुझाई । कृषी गऊ रक्षक है भाई ॥
वणिज व्योहार बहुत संसारा । यह तौ लक्षण वणिजि व्यवहारा॥
शूद्र वर्ण सेवकाई करई । सेवक होइ भवसागर तरई ॥
सेवा फल है अगम अपारा । आवागमनते होई निनारा ॥
जो अभिमान तौ जन्म गवांवै । सेवा विना नहीं बनि आवै ॥

चारि वर्णको कर्म सुनाई । अर्जुन तोहि कहौं समुझाई ॥
जो कोइ अपने धर्महि चाहै । प्रीति भाव सदा चित लाहै ॥
भला जानि पर धर्म न लेई । आपन धर्म छांड़ि नहिं देई ॥
निज कुल छांडि ऊंच मन धरई। सो पुनि भवसागरमें परई ॥
कुलके कर्म सदा सुख पावै । नवनिधि लक्ष्मी ता घर आवै॥
ताते तोहि कहौं समुझाई । युद्ध करो तुम अर्जुन भाई ॥
कहा हमार चित्त नहिं धरिहौ । हमरे कहे युद्ध नहिं करिहौ ॥
तौ अब कर्म रेख उठि धावै । तोसो युद्ध अनेक करावै ॥
तब तुम करौ युद्ध संग्रामा । करो मारि क्षत्रियके कामा ॥
तब तोहि रोख अधिक होइ भाई। हमरी प्रीति भंग होइ जाई ॥
जो नीका सो करो सुजाना । ज्ञान अज्ञान सब करेउँ बखाना॥
यह गीता मैं कहि जो सुनावा । पै कछु भेद और समुझावा ॥
गीता मता गुप्त है भाई । चारिहु जनको कहि समुझाई॥

### चारि अधर्मको वर्णन

भक्ती हीना तपसो हीना । सेवा बिना नहीं आधीना ॥
निद्रा रूप सदासों रहई । तासो गीता कबहु न कहई ॥
तासों संगति कबहु न कीजै । इच्छा प्रभुकी गहिकै लीजै ॥
गुप्त ज्ञान है कथा पियारी । तहां कहो जहँ होइ हितकारी ॥
भक्त साधु जहँ हरि यश गावैं । गीता कथा तहां अर्थावैं ॥
सुनत सुनावत बहु सुख होई । कोटिक अश्वमेध फल होई ॥
अर्जुन गीता तुम्हैं सुनावौं । ज्ञान कथा कहि बहु समुझवौं ॥
मोह तुम्हार छूटि की नाहीं । सो तुम बोलौ हमरे पाहीं ॥
जो कछु तुम्हरे मनमें होई । करो जाइ तुम अर्जुन सोई ॥
अर्जुन सुनत दंडवत कीन्हा । बिनय भांति ते बहु सुख दीन्हा॥
मोह मोरि सब दूरि परानै । वचन तुम्हार ज्ञान करि मानै॥
अस्त्र लीन तब हाथ उठाई । महा कोप होइ धनुष चढाई ॥

अध्याय अठारह कहा बखानी । योग संन्यास नाम तेहि जानी॥
अर्जुन गीता भयो समापति । जो कछु कही आपुकमलापति॥

कबीर उवाच

कहै कबीर सुन धर्मनि हीता । तुम्हरे लिये बखानेउँ गीता ॥
तुम तौ भक्त जक्तते न्यारा । आवागमनके बीज तुम्हारा ॥
अब तुम परम भक्ति चितलावौ। निशिदिनसतगुरुशब्द समावौ ॥
धर्मदास बिनती इठि लाई । सुनि गीता संशय उपजाई ॥
गीता कही कृष्ण केहि कारण । अर्जुन उठे कुटुम्ब संघारण ॥
ज्ञान सुने मति निर्मल होई । मित्र औ दुष्ट एक सम होई ॥
ज्ञान सुने कछु क्रोध न आवै । परम पुरुषते मन चितलावै ॥
गीता कृष्ण जो कहेउ बखाना । ज्ञान सुनाइ क्रोध मन आना ॥
क्रोधविना सो युद्ध न होई । नर्क द्वार कृष्ण कहेउ सोई ॥
क्रोध किये अज्ञान कहावै । यह सब भेद मोहि समुझावै ॥
कृष्णमता कहि प्रकट देखाऊ । ज्ञान सुने अज्ञान न आऊ ॥

कबीर उवाच

सुनि धर्मनि यह भेद है बंका । जानत नहीं राउ औ रंका ॥
कृष्ण ठगौरी जक्त लगाई । ताते भेद न बूझौ भाई ॥
यह प्रपंच कृष्णकर आही । तीनिहु लोक सदा भमांई ॥
चाहै छल बल युद्ध करावै । अर्जुन कैसे धनुष उठावै ॥
महामोह तेहि रहा समाई । और भांति नहिं मानै भाई ॥
छलहि मता किन्हौं आपैं सोई । ज्ञान सुनाइ मोह कह खोई ॥
यह तौ ज्ञान कहो परमारथ । जेहिते युद्ध होइ पुनि स्वारथ ॥
जैसी इच्छा करै जो ज्ञाना । फल पावै सेवा अनुमाना ॥
नहिं अर्जुन मनपुरुष मिलापा । कैसे कर्म होइ निष्पापा ॥
पुरुष मिलाय न कृष्ण सुनावै । कैसे अगम अगोचर पावै ॥

पावै अगम कृष्ण को मानै। तीनि लोकको भूपति जानै ॥
ताते ज्ञान कहि कर्म दृढ़ावै। फिरि २ भवसागर भटकावै ॥

धर्मदास उवाच

धर्मदास कहैं सुनो गोसांई। मारग साधु जो अगम सुनाई ॥
कर्म धर्म कह पाछे मेलै। ज्ञान रूप अभ्यन्तर खेलै ॥
परम अनंद पुरुषको दर्शै। सेवक स्वामी चरण न पर्शै ॥
गीता कहै औ कर्म दृढावै। केहि कारण इनको भटकावै ॥
कौन ज्ञान जो भर्म बतावै। फिरि २ भवसागर भटकावै ॥

कवीर उवाच

धर्मदास मैं कहौं बुझाई। मूरुख लोग नहीं पतिआई ॥
तीनिउ लोक पुरुषपहि दीन्हा। राजै काज करावन कीन्हा ॥
जो चाहै सो रचे बनावै। तीनि लोकते जान न पावै ॥
ज्ञानोपदेश देह जो भाई। तौ यह सृष्टि वैराग उठाई ॥
तब यह रचना सबही थाके। इनको कौन गोसांइया थापे ॥
तेहि कारण इन कर्म दृढाई। अरुझी सृष्टि सकल भर्माई ॥
सतगुरु शब्द सुना कहँ दरसै। जाते प्रभु पूरण कहँ परसै ॥
गीता कहि जो कृष्ण सुनाई। तबहु न अंधा मोहि पतिआई॥

धर्मदास उवाच

धर्मदास बिनती अनुसारी। हे सतगुरु मैं तव बलिहारी ॥
जब कर अर्जुन धनुष संभारा। कहा कीन्ह सो कहौ विचारा ॥

कवीर उवाच

सुनो संत धर्मनि निर्वाना। अंत युद्ध सब करों बखाना ॥
बहुतै भांति युद्ध तिन कीन्हा। युद्ध जीति राजहि मन दीन्हा ॥
राज युधिष्ठिर मनहि विचारा। बहुतै भांति बंधु हम मारा ॥
कस प्रायश्चित्त मोक्षण होई। कहो व्यास हमसों तुम सोई ॥

व्यास कृष्ण मिलि मत अर्थाई । कुल हत्या कैसे मुक्ताई ॥
करो विचार अश्वमेध जो करई । यज्ञ करत हत्या परिहरई ॥
सब मिलि ऐसा मता विचारा । बहुत भांति यज्ञ करौ संभारा ॥
ताते पाप मोक्ष होइ भाई । यज्ञ करनको मता दृढाई ॥
करौ यज्ञ मन भयो विश्रामा । राज मनोरथ पूरण कामा ॥

धर्मदास उवाच

धर्मदास विनवै कर जोरी । संशय उपजी मेटेउ मोरी ॥
पांडव कृष्णहि बहुत पियारे । किया यज्ञ तब कहां सिधारे ॥
कैसे गति मति उन पुनि पाई । कृष्ण सरीखो रहै समाई ॥

कबीर उवाच

धर्मदास तुम चतुर सुजाना । पूछेउ सो अब करौं बखाना ॥
कृष्ण देह जब छांडन लागे । तिनसों कह्यो ताहिते आगे ॥
अवधि हमारि आय नियराई । तुम हूँ गरो हेवारे जाई ॥
अर्जुन कहहु सुनौ गोसांई । कारण कवन हेवारे जाई ॥
कृष्ण कही तब ऐसी बाता । तुम तौ बंधु कीन्ह है घाता ॥
पातक बहुत जो तुमसे भयऊ । गरै हेवारे ताते कहेऊ ॥
कहैं अर्जुन सुनु पुरुष पुराना । मारण बंधु न हम चित आना ॥
गीता ज्ञान मोहि समुझाया । युद्ध करनको अस्त्र बँधाया ॥
तुमको पातक नाहीं लागे । कर्ता करै आपु अनुरागे ॥
तुम्हरे कहे युद्ध हम कीन्हा । पातक हम शिर काहे दीन्हा ॥
पुनि तुम कह अश्वमेधहि करहू । सब पातक पाछिल परिहरहू ॥
तापर हम अश्वमेध जो कीन्हा । तबहू पातक हम शिर दीन्हा ॥
कहैं कृष्ण अर्जुन सुनु भाई । कर्म रेख मेटो नहिं जाई ॥
कर्म रेखते सब जग आवै । बार बार दुख सुख भुक्तावै ॥
चारिउ युग फिरि याहै आई । हम तुम ऐसे संग रहाई ॥

तातै कछु संदेह न कीजै । वेगि हेवारे पयाना दीजै ॥

धर्मदास उवाच

धर्मदास पूछै सुनु भाई । आगे कैसे भई गुसाँई ॥

कबीर उवाच

कहै कबीर यह सर्ग बखाना । तुमसों वर्णन कहौं निदाना ॥
पांडव जाइ हेवारे गलिया । देह समेत युधिष्ठिर चलिया ॥
करेउ पुण्य जप तप औदाना । ताते पहुँचे स्वर्ग स्थाना ॥
और पांडवा नर्क समाने । हत्याके फल नर्क रहाने ॥
तहां जाइ कोइ बंधु न देखा । पूछेउ सबै देव मुनि शेषा ॥
कहां हमारे चारिउ भाई । केहि कारण मोहि इहां ले आई॥
इहां कहां वे बसवे पाई । जाके खोजों चारिउ भाई ॥
तुम राजा हौ धर्म अवतारा । ताते पहुंचै स्वर्ग दुआरा ॥
बंधु तुम्हार पातक बड़ कीन्हा । ताते बास नर्कमें दीन्हा ॥

युधिष्ठिर उवाच

की उनको इहवां लै आवहु । की हमको उहवां लै जावहु ॥
जब यह विष्णु सुनो मन जानी । इनकह पुण्य बहुत पहिचानी ॥
उपजो मोह बंधु हित भाई । जाइ लै आवहु बंधु देखाई ॥
नर्क कुण्ड तेहि जाइ देखाई । बूड़ देखे चारिउ भाई ॥
और सकल परिवार घनेरा । काहू सुधि नहिं काहू केरा ॥
चारिउ भाई रोवन लागे । कर्म हीन हम बड़े अभागे ॥
राइ युधिष्ठिर मोह जनाऊ । मोह नर्क कुंड ले नाऊ ॥
दूत विष्णु सों बहुरि जनाई । आपु युधिष्ठिर नर्कमें जाई ॥
जो कछु आज्ञा होइ गोसांई । आज्ञा मानि करौ सोइ जाई ॥
कहैं विष्णु यह धर्म सरूपा । करो युधिष्ठिर पुण्य अनूपा ॥
जो कबहीं वे नर्क मों जैहैं । अघ जीवन सब लै उतरै हैं ॥

क्षण अंगुरी लै नर्कमो डारो । एते चारिउ बन्धु उबारो ॥
फिर लै आवहु कुंती जहवां । स्वर्ग स्थान वैकुंठ हैं जहवां ॥
ऐसी भांति करौ तहँ जाई । क्षणहि अंगुरी नर्क बुड़ाई ॥
ता कहँ लागि बंधु सब आये । राइ अनंद बहुत सुख पाये ॥
गये युधिष्ठिर धर्म स्थाना । धर्म पुत्र रहे धर्म ठेकाना ॥
भीम जाइकै पवन समाई । पवन पुत्र जेहि कहिये भाई ॥
अर्जुन इन्द्र पुत्र जो रहिया । इंद्रलोकमें बासा करिया ॥
सहदेव नकुल जो दूनो भाई । अश्विनि कुमार पुत्र हितलाई॥
ऐसे स्वर्ग लोक जो किय बासा। पुण्य घटै भवसागर आसा ॥

धर्मदास उवाच

धर्मदास कहैं सुनो गोसाँई । पांडव मित्र विष्णुके आहीं ॥
गीता भागवत वेद पुकारा । दर्शन प्रभु जिन नेक निहारा ॥
ताकर आवागमन न होई । सुर नर मुनि सब भाषै सोई ॥
साधु संत मिले सब गुणगावैं । जो कोइ हरिके दर्शन पावैं ॥
ताकी मोक्ष मुक्ति होइ भाई । जरा मरणको बीज नसाई ॥
साक्षाद्दर्शन कृष्णको लहिया । और विराट देखायो तहिया ॥
मोक्ष मुक्ति उन काहे न पाई । साहेब कहौ मोहि समुझाई ॥

कबीर उवाच

कहै कबीर सुनौ धर्मदासा । पुरुष एक आदि रहि वासा ॥
तिन्ह पुनि श्वासा कीन्ह प्रकाशा । धर्म धीर एक अंश नेवासा ॥
तिनते उपजेउ ॐॐकारा । माया प्रकट भई विस्तारा ॥
ब्रह्मा विष्णु उपजे तब भाई । जिन यह रची सृष्टि दुनिआई॥
इनकह तीनलोक जो दीन्हा । राज रूप रचना तिन कीन्हा ॥
सकल बीज जो पुरुषते आया । जाते सकल सृष्टि निर्माया ॥
कामिनि जबै धर्म निज कीन्हा । कर्मरेख जो भया अधीना ॥
दश अवतार कर्म सो भयऊ । कारण कर्म इन्है निर्मयऊ ॥

कर्मरेख रघुपति दुख पायउ । सीता शोक बहु पछितायउ ॥
नरसिंह शूकर रूप धरावा । मच्छ कच्छ सर्व कर्म बनावा ॥
वामन होइ बलि छलिया जाई । परशुराम होइ युद्ध कराई ॥
कर्मरेख यदुपति दुख पावा । बन २ धेनु चरावन धावा ॥
गोपी षोड़श सहस्र अनंदा । तिन सँग नाचे बाल मुकुन्दा ॥
कर्मरेख भे बोध शरीरा । आवा गमन मिटो नहीं पीरा ॥
निष्कलंक है दश अवतारा । कर्मरेख भय प्रलय संघारा ॥
इनते अधिक और को आही । कर्मरेखते भुक्तत जाही ॥
अंकूरी कोइ जीव रहे भाई । सो अंकूर पुरुष ते आई ॥
तिन कह पुरुष जो चितवन कीन्हा। कैसे लोक होइ लव लीना ॥
सतगुरु यहि कारण उपजावा । हंसन कारण मोहिं पठावा ॥
मूर्खा शब्द नहिं मानै भाई । अंकूरी परवाना पाई ॥
कर्मरेख पांडव दुख पावा । कर्मरेख छूटै न छुटावा ॥
इन कहँ सब जग करता जाने । ताते आवा गमन नसाने ॥
सतगुरु मिले सत्य शब्द लखावै। कर्मरेख बंधन मुक्तावै ॥

छंद—धर्मदास तुम बूझि देखौ छल मता भगवानहो ।
मूर्ख जन उपदेश कारण गीता कियो बखान हो ॥
पांच पांडव परम मंत्री तिनको गति कैसी दई ।
नर्क स्वर्गमें वास करि २ जन्म फिरि २ तिन लई ॥

सोरठा—बूझो संत सुजान, गीता कथा जो सब सुनी ।
चेतनि हंस अमानि, और सकल भरमें दुनी ॥

इति श्रीमदुग्रगीताब्रह्मज्ञानयोगमते कबीरधर्मदाससंवादे
त्यागसंन्यासव्याख्यानं नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

## अथ उपसंहार

### धर्मदास उवाच

धर्मदास विनवै कर जोरी । तुम दयालु बंदी मोरि छोरी ॥
गीता जो तुम कही बखानी । पांडवकी गति सब मैं जानी ॥
ऐसे सब जीव भरमाई । कैसेहु भांति मुक्ति नहिं थाई ॥
सोइ ज्ञान मोहिकहि समुझावो । जरा मरण को बीज नसावो ॥

### कबीर उवाच

सुनु धर्मदास हंस पतिराया । हंसन कारण पुरुष की दाया ॥
अंकूरी जिव आपु बोलाया । ताते हम कह लेन पठाया ॥
सत्य शब्द अब करौ प्रकाशा । पावै हंसा लोक निवासा ॥
उग्र ज्ञान है मता निनारा । सुक्ष्म वेद जो पुरुष संचारा ॥
पुरुष दया आनेउ संसारा । जेहिते पावै मुक्ति दुवारा ॥
अध्याय उनइस कहौं ये भाई । सुर नर मुनि जानै नहिं ताई ॥
मुक्त होइ सत्यलोकहि जावै । आदि पुरुषके दर्शन पावै ॥
प्रथमै रहनी हंस बखानो । निशि दिन रहै नाम लपटानो ॥
तीनौ गुण है विषके मूला । ताते दुख सुख भये स्थूला ॥
दुइ गुण कबहीं चित नहिं धारै । रज तमको परपंच विसारै ॥
वासा करै सत्यके माहीं । आसा ताकी राखै नाहीं ॥
प्रकृति पचीस पंच तत्त्व रहई । तीनिउ गुण कारण यह वहई ॥
जो तीनिउ गुण वश करै आपै । पंच पचीस कोइ नहिं व्यापै ॥
तीनिउ गुणते न्यारा खेलै । मनुआ सत्य सुमिरनमें मेलै ॥
श्वास सुर्ति एक डोरी लावै । अजर अमर होइ हंस मिलावै ॥
मन पवना लै सुख मनि राखै । सोहं हंस अमीरस चाखै ॥
तहवां अनहद होइ झनकारा । विन दीपक मंदिर उजियारा ॥
अनहद सुनै अकह गुप्त गावै । मन चित गहि २ सुरति लगावै ॥
तहवां रैन दिवस नहिं होई । पुरुष २ सो सुरति समोई ॥

ऐसी रहनी हंस रहावे । बहुरि न योनी संकट आवे ॥

धर्मदास उवाच

धर्मदास कहैं सुनो गोसाईं । पुरुष नाम कहहू समुझाईं ॥
सहस्रनाम जो देव बखाना । नेति २ कह बहुरि निदाना ॥
कौन नाम को सुमिरन करई । कैसे सदा पुरुष चित धरई ॥
कैसे आवागमन मिटाई । क्षर निर अक्षर कह समुझाई ॥

कबीर उवाच

सुनु धर्मनि तुम हंस पियारे । तुम्हरो काज सकल हम सारे ॥
सुमिरन आदि मैं तुम्हें सुनावौं । सकल कामना तोर मिटावौं ॥
नाम एक जो पुरुषको आही । अगम अपार पार नहिं जाही॥
वेद पुराण पार नहिं पावे । ब्रह्मा विष्णु महेश्वर धावे ॥
आदि कहौं तौ को पतिआई । अंत कहौं तौ परले जाई ॥
आदि अंतमें बासा होई । निर अक्षर पावै जन सोई ॥
अक्षर कह सब जक्त बखानै । निरअक्षरको मर्म न जानै ॥
कहो न जाई लिखो ना जाई । बिन सद्गुरु कोउ नाहीं पाई ॥
सद्गुरु मिलै तो अगम लखावै । हंस अमी पीबत घर आवै ॥
अंकुरी जीव लहे निर्बाना । पावत हंस लोक पहिचाना ॥
सुतिवंत पावै निज वीरा । संग रहौं मैं दास कबीरा ॥
जो कोई हंस प्रवाना लेई । अग्र नाम सद्गुरु कहि देई ॥
बिन सद्गुरु कोइ नाम न पावे । पूरा गुरू अकह समुझावै ॥
अकह नाम वह कहा न जाई । अकह कहि कहि गुरु समुझाई ॥
समुझत लोक परै पुनि चीन्हा । जाते लोक होइ लवलीना ॥
हरदम सुमिरै चित्त लगाई । लोक दीपमें जाइ समाई ॥
अजर अमर होइ लोक सिधावै । चौरासी बंधन मुक्तावै ॥
आवागमन ताहि नहिं भाई । जरा मरणका बीज नसाई ॥

धर्मदास उवाच

धर्मदास भये बहुत अधीना । सद्गुरु पूरा तुम कहँ चीन्हा ॥
तुम्हरी दया नाम हम पावा । बन्दी छोड हंस मुक्तावा ॥
करहु दया अब अंतर्य्यामी । लोक दीपको वरण बखानी ॥
जहवां सत्य पुरुष रह जोई । हंसा तहवाँ दर्शन होई ॥
पुरुष शोभा वरणि सुनावो । दया करो अब भेद लखावो ॥

कबीर उवाच

कहै कबीर सुनौ धर्मदासा । ऐसा भेद नहीं परकाशा ॥
यह तौ भेद अगम है भाई । वेद कितेव कहूँ नहिं पाई ॥
शेष महेश न कोई जाने । ब्रह्मा खोजत ताहि भुलाने ॥
विष्णु सदा मन सुमरिन करई । पै काहू नहिं परकट करई ॥
ज्ञान कहै तब पुरुष बतावै । सुनि पुनि आपा लै ठहरावै ॥
यह जग मूरख महा अचेता । परम पुरुषते नाहिन हेता ॥
हेत बिहूना जो नर आही । यह तौ भेद कही नहिं ताही ॥
सुरतिवंत हंसा जो होई । तासे भेद न राखेहु गोई ॥
उग्रज्ञान यह भेद अपारा । तुमसे कहा आज हम सारा ॥
सूक्षम वेद भेद जो पावै । अजर अमर होइ लोकसिधावै ॥
लोक दीप औ प्रकट बखानौ । धर्मनि सुरति रनिति सो ठानौ ॥
तीनिलोकते भिन्न पसारा । सत्य लोक पुरुष दरबारा ॥
पुष्प दीप जहँ पुरुष स्थाना । आदि पुरुष जहँ बैठ अमाना ॥
सूरय सोरह जोति निवासा । ऐसा एक हँस परकाशा ॥
श्वेतै दीप श्वेत विस्तारा । श्वेतै मंदिर श्वेते द्वारा ॥
अजर हंस है श्वेतै भाई । सदा अनंद रहै सुखछाई ॥
श्वेत छत्र सिंहासन छाजै । अनहद शब्द सदा धुनिगाजै ॥
अक्षय वृक्ष जहँ श्वेत सोहावन । श्वेत पुरुष श्वेत फल पावन ॥
श्वेतै पान श्वेत पनवेरा । श्वेत सुपारी नरिअर केरा ॥

श्वेत मिठाई कदली मेवा । अजर आरती हंसक भेवा ॥
सदा आरती हंस जो करई । अपने पुरुष चरणन रहई ॥
असंख्यकमलश्वेत तहँ रहिया । सप्त पाखुरी कमल जो रहिया ॥
पुरुष गुप्त होइ रहे समाई । सूक्षम शीश तहां दरसाई ॥
संपुट पद्म लाख है भाई । बानि उठैं संपुट बिहराई ॥
उघरे संपुट दर्शन पावै । अजर हंस तहवाँ सचु पावै ॥
करत अनन्द सदा सुख भोगा । जरा मरण नहिं संशय सोगा ॥
जग मग जोति सदा उजियारा । कोटि सूर्य्यते वर्ण अपारा ॥
जहँ देखो तहँ शोभा छाजै । पूरण शोभा पुरुप विराजै ॥
कहा बखानौ पुरुप सरूपा । वरणि न जाइ वह रूप अनूपा ॥
जब लग तियापुरुप नहिं परसै । कहा बखाने सुख बिनु तरसै ॥
तिया पुरुष जब मिलिया भाई । तब सुख कछू कही न जाई ॥
जिन जाना तिनही पहिचाना । जैसे गूंगा सपना जाना ॥
कहा बखानौं वरणि न जाई । गूंगा गूंगे सैन लखाई ॥
ऐसा सतगुरु भेद लखावै । सुरतिवंत हंसा सचुपावै ॥
वारू नदी अठारह गंडा । जेते तारा है ब्रह्मंडा ॥
एते सूर्य्य जो वसै अकाशा । तऊ न पुरुषके सम परकाशा ॥
पटतर तहां पुरुषकी दीजै । सतगुरु सैन समुझिकै लीजै ॥

छन्द—पुरुष शोभा कह बखानो कछु नहीं सम तूल हो ।
असंख्य सूर्य प्रकाशते वहँ जोति अगम स्थूल हो ॥
सैन करि करि नैन भरि भरि शब्द सतगुरु पर्चै हो ।
पुरुष अवर न रूप जाको शोभा हंस लग दर्श हो ॥

सोरठा--उग्रगीत यह सार, गुप्त अध्याय उन्नीसमों ।
शब्द सुरति आधार, हंसा पहुँचे लोकको ॥

इति श्रीमदुग्रगीतायां एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

इति श्रीबोधसागरान्तर्गत

श्रीमदुग्रगीता समाप्ता

# अथ ग्रंथज्ञानस्थितिबोध

भारतपथिक कबीरपंथी-

स्वामी श्रीयुगलानन्द द्वारा संशोधित

खेमराज श्रीकृष्णदास,

अध्यक्ष-"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्--प्रेस,

❋ बम्बई. ❋

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

सत्यनाम



श्री कबीर साहिब




सत्यसुकृत, आदि अदली, अजर, अचिन्त, पुरुष,
मुनीन्द्र, करुणामय, कबीर, सुरतियोग संतान,
धनी, धर्मदास, चूरामणिनाम, सुदर्शन नाम,
कुलपति नाम, प्रबोध गुरुबालापीर, केवल नाम,
अमोल नाम, सुरतिसनेही नाम, हक्क नाम,
पाकनाम, प्रकट नाम, धीरज नाम,
उग्र नाम, दया नामकी दया-
वंश ब्यालीसकी दया

# अथ श्रीबोधसागरे

द्वाविंशतिस्तरंगः

## अथ ग्रन्थज्ञानास्थितिबोधप्रारंभः

★

सद्गुरुभ्योनमः

साखी—सतगुरु आये लोकसे, धरी देह जग आय ।
जीवनबन्ध निवारिया, बन्दीछोर कहाय ॥
अन्न पानि नहिं भक्षिया, नहीं गर्भ लीन्ह अवतार ।

पांचतत्त्व गुण तीन मथी, निर्गुण रूप सम्हार ॥
ज्ञान विविधि विधि सब कह्यो, चौदह कोटि बखान ।
तासो न्यारे राखिया, मूल ज्ञान निदान ॥

चौपाई

धर्मदास वचन

धर्मदास उठि विनती कीन्हा । कृपासिंधु मोहिं दर्शन दीन्हा ॥
जामें यह मन अस्थिर होई । सोई भेद मोहि कहो विलोई ॥
विनथिर भये न होइ अनन्दा । मेटउ मोर भरमके फन्दा ॥
आदि बचन मैं कहौं विचारी । धर्मदास यह कथा निनारी ॥
यह तो कथा बहुत अवगाहा । ज्ञान गम्य नहिं पावे थाहा ॥
ग्रन्थ अनेक कही बहुबानी । यह निजगम्य सुजन जन जानी॥
यह तो ज्ञान न काहू पाया । सो मैं तुम कहँ भाषि सुनाया॥
स्थित ज्ञान अब कहौं बखानी । जाते छूटे यमकी खानी ॥
स्थित ज्ञान बिनु मुक्ति कहँ पावै । भरमत फिरै काल सन्तावै ॥
जोई भेद पुरुष कहि दीना । सोई ज्ञान स्थिति मैं चीना ॥

साखी—यकचित यक मन होइके, रहे शब्द लौलाय ।
कहै कबीर धर्मदास सो, तब हंसा घर जाय ॥

धर्मदास तोहि कहौं चिताई । स्थितिज्ञान सुनौ चितलाई ॥
पहले करो रक्ष मन नेहा । तबहीं बाढै शब्द सनेहा ॥
जो सुने कहूँ चोर यह बैना । सुनिके करै अपरबल सैना ॥
बीरा सार बालक कहँ दीजै । सुरतिवन्त कह स्थिर कीजै ॥
स्थिति ज्ञान जो पावे कोई । जरा मरण रहित सो होई ॥
निरअक्षर वह नाम अपारा । ग्रन्थनसे वह रहत निनारा ॥
अक्षर ज्ञानसार में भाषा । पुरुषभेद याहीमें राषा ॥
यह पायहु तब आयव आई । धर्मदास मैं तुम्हैं लखाई ॥

यमराजा जेहि देखि डराना । सोई शब्द अहै निर्वाना ॥
स्थिति भेद ज्ञान नहिं पावै । कास फांस कैसे मुक्तावै ॥
गुरु होइ बहियां ताहि लखावै । योनी संकट बहुरि न आवै ॥

साखी—ज्ञानस्थितिके पायते, जीवनमुक्त होइ जाय ।
कबीरा आन पुरुपकी, समरस सेज बिछाय ॥

धर्मदास उवाच

धर्मदास बिनती अनुसारी । हे सतगुरु मैं तुम बलिहारी ॥
स्थिति ज्ञान कहां तुम पावा । केहि कारण यह पुहुमी आवा ॥
सो अब मोहि कहो समुझाई । जाते मनको संशय जाई ॥
तुम प्रभु अहहु मुक्तिके दाता । आदि अन्त कहिये विख्याता ॥

सद्गुरु वचन

धर्मदास मैं कहौं बिचारा । हंसराज बड भाग तुम्हारा ॥
जबही हतो पुरुषके पासा । पुहुपद्वीप सब दीप निवासा ॥
हंस दुखी भय कालके पासा । दया पुरुष तबै परकासा ॥
अमर वचन प्रभु भाष्यो जबहीं । पुहुपद्वीप विकसित भौ तबही॥

पुरुप वचन

जाहु सतायन तुम भवसागर । नौतम सुरति हो हंस उजागर ॥
जीवन फांस कालने डारी । तिनसौं ज्ञानी करो उबारी ॥
भवसागरते जाय छुडाओ । अमरलोक हंसन बैठाओ ॥

सद्गुरु वचन

दाया होत चला मैं जबहीं । भवसागर पग दीना तबहीं ॥
देखेहुं यमराजहि वरिवंडा । त्रास दिखावत है नौखण्डा ॥
सब जीवन कहँ फांसी लावा । जब हम जाहिं तुमहिं डरपावा॥
शब्दसार कीन्हों संधाना । धर्मराय तब देखि सकाना ॥

साखी–सोई शब्द तुमते कहौं, धर्मदास लेउ मानि ।
जीव मुक्तावहु कालसों, सत्य शब्द परमानि ॥
और बहुत सुमिरन है भाई । बिना नाम नहिं काल नशाई ॥

धर्मदास वचन

धर्मदास बिनवै करजोरी । भाषहु मोहिं नामकी डोरी ॥
कैसे भयो नाम जो सारा । कैसे भयो सबै विस्तारा ॥
सो यह भेद कहो गुरु स्वामी । करिय कृपा कहिय सुखधामी॥

सद्गुरु वचन

धर्मदास मैं कहौं बुझाई । स्थिति ज्ञान सुनौ चितलाई ॥
आदि अंतको नहीं निवासा । तब नहिं पुत्रलोक परकाशा ॥
तब नहिं जीव जंतुकी खानी । तब नहिं अमी अमिरसआनी॥
तब नहिं देह विदेही चीन्हा । ज्योति शून्य नाहिं तब कीन्हा॥
तब नहिं हतो अग्रको मूला । अग्रहि अग्र अग्रहो झूला ॥
अग्र डोरी विहंग है नाला । विहंग अग्र तहँ आहि बिशाला॥
विहंगवास सबहिन मों लीन्हा । विहंग अग्र कोइ विरले चीन्हा॥
विहंग अक्षर हते प्रभु सोई । विहंग नाम महँ रहे समोई ॥
अग्र विहंग नाम सुनि लीजे । निरखि परखि तामहँ चित दीजे॥
सोई अंश तुमहिं सम तूला । जो यह गहै अग्र निज मूला ॥
साखी–विहंग नाम प्रताप सुनि, भयो सकल विस्तार ।
कहै कबीर धर्मदास सों भाख्यो शब्द विचार ॥

धर्मदास वचन

धर्मदास बिनती अनुसारी । समरथ खसम जाऊँ बलिहारी॥
मोकहँ शब्द दीन्ह टकसारा । जीवन मुक्ति देइ भवतारा ॥
विदेह नाम गुण कहो बखानी । जासो यमकी होवे हानी ॥

सद्गुरु वचन

धर्मदास मैं कहौं विचारा । राखो गुप्त गुप्त अनुसारा ॥

अगर विहंग सुरति भयउ जबहीं। हंस सुजन जन प्रगटे तबहीं ॥
विदेही अंग धार्‍यो प्रभु आई। विहंग इच्छा तबहीं उपजाई ॥
बिदेह देहधरि भौ उजियारा। सूर्य्य उदित मूंदित भये तारा॥
देह धरे हाथ औ पाऊँ। रतन रंग बहु रंगवाऊँ ॥
वहतो नाम सुजन जन चीन्हा। दया कीन्ह प्रभु हमहूँ दीन्हा ॥
सञ्जीवन नाम आदि प्रकाशा। हंस सुजन जन कीन्ह निवासा॥

साखी—जोइ गहै निज नामको, सोई हंस हमार।
कहैं कबीर धर्मदासों, उतरे भव जल पार ॥

धर्मदास वचन

चरण टेकि बिन्ती अनुसारी। साहब वचन जांव बलिहारी ॥
प्रथम स्थूल कहो समुझाई। बिदेह रूप जब पुरुष रहाई ॥
केतिक सज्याको परमाणा। जहँवा आप कीन स्थाना ॥
सोइ भेद प्रभु कहो निनारा। जीवन जन्म मुक्ति होय मोरा ॥

सद्गुरु वचन

धर्मदास तुम बिन्ती कीन्हा। अगम पंथ काहू नहिं चीन्हा ॥
मैं पाया सतगुरुकी दाया। धर्मदास मैं तुम्हैं लखाया ॥
जेहि विधि पुरुष रूप संधाना। सो सब तुमसों कहौं निदाना॥
अग्रमूल विदेह स्थाना। सोइ नाम सुजन जन जाना ॥
अब लों लङ्क द्वीप दिखलाऊं। बारह पलंग विस्तार सुनाऊं ॥
बीजक अमान अखंडित द्वीपा। सत चैतन आनन्द समीपा ॥

साखी—अन्तरिक्ष छः पालंगभरि, लोलंग द्वीप स्थान।
तहां सो सब उत्पति भई, यही परमपद जान ॥

कंचन हेम द्वीप उजियारा। तहांते उत्पति भई हमारा ॥
तेरह पालंगा[1] है सो ठाऊं। तिल प्रमाण सेज्या निर्माऊं ॥

---

१ शुम

अस्थल रूप राई परमाना । प्रगटे महा नाम संधाना ॥
कला अनन्त अनंतहि धावा । बरनत जीव लक्ष नहिं आवा ॥
सत्य शब्द पावै परवाना । सोई हंस वहाँ करत पयाना ॥
जो नहिं गहत शब्द सहि दानी । सो पुनि परै नर्ककी खानी ॥
सुरति निरति ज्यों लौं लौलावा । सो हंसा जग बहुरि न आवा ॥
एही नाम सम्पूरन सही । एही नाम हंसा निर्वही ॥
मूलदीप तब नहीं निभासा । प्रथमहि श्रुती पुरुष प्रकाशा ॥
वही सुरति सब रचना कीन्हाँ । मूल शब्द हिरदै धर लीन्हाँ ॥
पुरुष गले पुहुपकी माला । हाथ अमर अंकूर रिसाला ॥
कहै कबीर सुनो धर्मदासू । एही मूल सब लोक प्रकाशू ॥
और नाम बहुत कहे भाई । पुरुष नाम हंसा लपटाई ॥

साखी—यही शब्द दृढ़ कर गहो, कहे कबीर समझाई ॥
अग्र विदेही नाम गहि, अग्र रूप हो जाई ॥

धर्मदास वचन

धर्मदास विनवै कर जोरी । साहेब कहो ज्ञानकी डोरी ॥
जाते मन चित्त अस्थिर होई । चरण प्रसाद पाव वर सोई ॥
महा कठिन भवसिंधु कराला । लीन्ह उवारि काटि यमजाला ॥

सद्गुरु वचन

धर्मदास भल कीन्ह विचारा । हंस राज बड भाग तुम्हारा ॥
और ध्यान सुमिरन हम भाखा । विदेह नाम सोइ न्यारे राखा ॥
सो अब तुम कह दीन्ह चिन्हाई । देह विदेह लेहु निर्माई ॥
भाग बडे वाहीके कहिये । सुरति शब्द महँ बासा लहिये ॥
नाम महात्म कहों समुझाई । जेहि प्रताप यम देखि डराई ॥
ध्यान विदेह यहे परभाऊ । इकोत्तरसे पुरुष तरि जाऊ ॥
सार शब्द सों चित नहिं लागा । सोई जीव बड आहि अभागा ॥

साखी—अब मैं कहब तोहि सों, ए चित करो विचार ।
कहै कबीर पुरुपको, यही रूप निज सार ॥

चौपाई

कहै कबीर सुनो धर्मदासा । अग्रमूल बिदेह परकाशा ॥
इच्छा पुरुष काया बंधाना । लीलागर दीप कीन्ह अस्थाना ॥
सुजन हंस जन कीन्ह विश्रामा । धरै ध्यान पुरुषकर नामा ॥
तहँवा पुरुष कीन्ह अस्थाना । अस्थल रूपको कहों ठिकाना ॥
कंठमाल पुहुपनकी राजे । माँथे प्रभुके छत्र विराजे ॥
हाथ अमी अंकूर बिचारी । जगर मगर शोभा उजियारी ॥
उपमा काकहि बरनों भाई । कोटि भानु सोजायँ लजाई ॥
भालरूप बरनन कहि कैसा । बीस सहस्र चंद्र लखि जैसा ॥
शरवन शोभा देहु बताई । रवि सहस्र तहाँ रहे लजाई ॥
चक्षु अमीकर चितवन कैसी । सुधा सिंधु लहरें उठ जैसी ॥
नासा ग्रीवा कंठ कपोला । शोभा इनकी आइ अतोला ॥
मुखारविंद अरविंदहि जानी । उदय कोटि सूरजकी खानी ॥
उभय हंस अधरमो विहरै । दामिनि दशन उठत जनु लहरै ॥
भुजा बाँह मन चिकुर बनाई । हृदय राखि उर कलित लजाई ॥

साखी—कटि नाभि पिंडुरी जंघनि, नख सिख बहुत अनूप ।
झलझलात झलकत महा, शब्दहि रूप सुरूप ॥

चौपाई

निगम नेति नेतिहि करिधावे । तिनको रूप बरन को पावे ॥
मन बुधि चित पहुँचे नहिं तहाँ । अबरण पुरुष विराजे जहाँ ॥
जहाँ लों निजमन दर्शन पावा । तहाँ लगि वरणि कबीर सुनावा ॥
अगम अगाध गाधमो नाहीं । ज्योंके त्यों प्रभु सदा रहाहीं ॥
अग्र नाम पुरुषके बरणी । भवसागरकी है यह तरणी ॥

ध्यान बीच जिन कीन्ह समारा। ते चढ़ि हंस होहिं असवारा ॥

साखी—कहै कबीरा धर्मदाससों, पहुँचे लोक मझार।
लीलागर दीप जहँ पुरुष है, हंसा करत बिहार ॥

धर्मदास वचन

धर्मदास जो बिनती करहीं। बचन विचार मुखै उच्चरहीं ॥
तीन लोकमें ब्यापक काला। धर्मराय जिव कीन्ह बिहाला॥
इहि भूमि यम जाल पसारा। नेम जाप षट करम अचारा ॥
इहि बिच सबही दुनी भुलानी। नाम सार काहू नहिं जानी ॥
एक मंत्र काहू नहिं पावा। पेड़ छोड़ डारहीं भुलावा ॥
प्रथम पेड़को पालन कीन्हा। पेड़ मरम काहू नहिं चीन्हा ॥

सद्गुरु वचन

पुरुष पेड़ निरञ्जन है डारा। त्रिगुण शाखा प्रति संसारा ॥
सत्य नाम नहिं जाने कोई। सार शब्द बिन गैबी गोई ॥

साखी—नाम महातम भाषहिं, धर्मदास समझाय।
जो नर प्राणी नाम बिन, ताहि काल धरि खाय ॥

चौपाई

निवृति ज्ञान जीवन समझावहु। अजर नाम सो गुप्त छिपावहु॥
जो जियरा होवे अंकूरी। वासे कहों शब्द भरपूरी ॥
जिह्वा कहों तो जगत रिझाई। प्रकट कहों तो काल नसाई ॥
उपजे विनशैको संसारा। कैसे पूजै काल अहारा ॥

साखी—परकट जनि भाखहु, हिरदै धरो छिपाय।
बीरा दै समझायहू, सद्गुरु येहि लखाय ॥

धर्मदास वचन

धर्मदास बिनती अनुसारी। बिन पांजी कैसे निस्तारी ॥
पांजी भेद कहो विर छानी। जाते मिटे जन्मकी खानी ॥

पांजी भेद पावा नहिं कोई । ताते गयो बिगोइ बिगोई ॥
देहि बीच जोहि लखि पावा । ताकर आवा गमन नशावा ॥
जब तक आप चीन्ह नहिं परई । तब लग काज न एको सरई ॥

सद्गुरु वचन

धर्मदास मैं कहों बिचारी । पांजीभेद कहों अतिभारी ॥
पांजी डोरी चित न धरई । मिथ्या दोष गुरुन कहँ करई ॥
यही भेद है अगम अपारा । अब मैं कहों सकल व्यवहारा ॥
जो चीन्है सो दरशन पाई । हंसहि हंस मिले पुनि जाई ॥
अनुचित बचन हमारे धरई । यमकी डगरी जाय सो करई ॥

साखी—पांजी कहों समुझायके; मन बिच लोकहि जाय ॥
मूलशब्द निर्बाण है, कहे कबीर समुझाय ॥

चौपाई

मूल शब्द है गुप्त जो सारा । बिरले पावैं शब्द हमारा ॥
सत्य बचन अस्ती ना माने । गहे हंस सो पहुँच ठिकाने ॥
अग्र अचिंत सुरति सोहंगा । एहि मूल गहि हंस विहंगा ॥
अग्र विहंग नाम जो पावै । तबहीं हंसा घरको आवै ॥
विहँग शब्द जाने नहिं कोई । सो तो गये बिगोइ बिगोई ॥
सुरति बिहँगता लै चित जोरी । बिहंग नाम बिहँग है डोरी ॥
बिहँग हंस विहँग है बीरा । निज सोकाम ये कहै कबीरा ॥
बिहँग शब्द बिहँग है नाला । विहँग पुरुष संग हंस बहाला ॥
सातों नाल जो आय बिहँगा । बिहँग पताल आहि जलरंगा ॥
तहँ बैठी जलरंगी शाला । बायें कर पृथ्वीकी नाला ॥
ता ऊपरहि कर्म अवतारा । कहै कबीर भेद टकसारा ॥
लघु दीरघ अक्षर नहिं जाना । कैसे संत होइ निर्वाना ॥
एक भेद जिनही लखि पावा । तिनके काल निकट नहिं आवा ॥

सोई सिद्ध संत है भाई । सोहं नाल चीन्ह जिनपाई ॥
पुरुषहि सम शिर सेज बिछावा । जिन जिन शब्द हमारा पावा ॥
नालहै सत्य पुरुषकी स्वासा । सो नाल पतालमें बासा ॥
तहां है पांजीको दरबारा । ता चढि हंस उतरिगो पारा ॥
पाँच नाम तिहको परवाना । जो कोइ साधु हृदयमें आना ॥

पाँच नाम

साखी–आदि उदित अति अजरमन, सप्त सिंधु निज नीर ।
अदल अदल सोहं गहै, साहब कहै कबीर ॥

चौपाई

यही सप्त नाल हैं सही । यही हंस नाम निरबही ॥
सप्तनालके सातों नामा । बीर बिहंग करै सब कामा ॥
सिंधुनालमें हंस पठाए । पुहुप नालसो सकल सुहाए ॥
अमीनाल महँ हंस पयाना । सुरति नालसे हंस सिधाना ॥
अग्रनाल महँ करत अहारा । सोहंग नालको सकल पसारा॥
अजर नालघट कीन्ह विचारा । तबै पुरुषको दर्श निहारा ॥
सप्त नाल है एके गाऊं । सोई सुरति भेद निज पाऊं ॥
सद्गुरु मिले वस्तु निज पावे । बिन सद्गुरु को भर्म मिटावे ॥
सद्गुरुदया सबै कछु पाई । बिन सद्गुरु वह जाइ नशाई ॥

साखी--सतगुरु बडा सुनार है, परखे वस्तु भँडार ।
सुरतिहि निरति मिलाइके, मेटि डार खुटसार ॥
सद्गुरु सांचे शब्द हैं, कायाके गुणवान ।
जीवनमुक्त शब्दहि मिले, महापुरुषके ज्ञान ॥

धर्मदास उवाच

धर्मदास विनती अनुसारी । मैं सब पायब तुम बलिहारी ॥
बलिहारी सतनाम तुम्हारी । जाते भयो सबै निस्तारी ॥

अब प्रभु मोपर दया हि कीजे । भेद अमीको मो कहिदीजे ॥
अमी अंक केहि कारण कीन्हा । वह तो अंक मोर नहिं चीन्हा॥
सो प्रभु मोकहँ देहु चिन्हाई । अंक विस्तार कहो समुझाई ॥

सद्गुरु वचन

धर्मनि तुम बिनती अनुसारी । सोई भेद अब कहो बिचारी ॥
ज्ञान स्थिति हम कीन्ह बखानी। जाते भई सकल उतपानी ॥
जबहि देह धरी प्रभु आई । अमी अंक है अंक बनाई ॥
अशर नाम देह धरि आई । अंक यही में कहो बुझाई ॥
स्थूल धरो साहिब यहि कारण। बिन अस्थूल न वस्तु उचारन॥
मूलहि अंक विदेह विचारा । देह धरी नामहि संचारा ॥
जो नहिं होत नाम परभाऊ । तो सब जगतकाल धरिखाऊ॥
जोकहँ लेइ नाम टकसारा । देह छूटी जाय पुरुष दुवारा ॥
जबही नाम लेतहैं हंसा । तबही काल मरत है संसा ॥
तारण हंस देहमें धरहूँ । यमको मारि मुक्ति मैं करहूँ ॥
नाम प्रताप सबै कछु भाखा । सुमिरत हंस बोल हम राखा ॥

साखी—हँस उबारन नाम यह, कहै कबीर बखानि ।
जाय जीव सतपुरुष घर, धरमराय पछितानि ॥

चौपाई

अमी अंक जब ही प्रभु कीन्हा ।उतपति सकल ताहि हम दीन्हा॥
पुहुप दीप सब दीप निवासा । तीन लोक याते परकाशा ॥
स्वर्ग पताल भयो पुनि सबही । अमीअंक पुरुषहि किय जबही॥
चन्द्र सूर्य सकलहि विस्तारा । अमी अंक सो भयो संसारा ॥
अमी अंक दोइ रूप बनावा । पुरुष शक्ति सो नाम कहावा ॥
ब्रह्मा विष्णु महेश विचारा । अमी अंक ते सब संसारा ॥
अमी अंकके गुण हैं ऐसे । सोरह सुत उतपत भये तैसे ॥
अमी अंक जब नाहीं कीन्हा । तबही सुनहि शब्दमें चीन्हा ॥

सोही अंक कही अब तुमसों । अंक प्रभाव सुनो तुम हमसों ॥
अमी अंक तुम राखि छिपाई । सुरतिवंत कहँ देहु लखाई ॥
अंक बिना पारस नहिं जोई । पारस बिना मुक्ति नहिं होई ॥
पारस लोहा कंचन सोई । पारस विन पहुँचे नहिं कोई ॥
पारस परस गुरू शिर नावा । गुरु पारस परसे सतभावा ॥
सार शब्द है बीजक ध्याना । पारस आहि मूल स्थाना ॥
तब सुकृत मिलि सत्य समाना। सत्य शब्द निश्चय करिजाना ॥
सिखापन मानि पुरुषकर लीन्हा। बलि तुम्हार हम पारस दीन्हा॥
नाम तुम्हार न धोखे डारों । घट भीतर सो कबहुँ न टारों ॥

साखी–सब धोखा को मेटिके, पारस परसे संत ।
कबीर कहै धर्मदाससो, मेटों भवका अंत ॥

धर्मदास

धर्मदास चित बहुत हुलासा । ज्यों रवि उदय कमल परकाशा॥
दयासिन्धु पूरण गुरु स्वामी । कीन्ह कृतारथ अन्तर्यामी ॥
अबिचल नाम मोहिं कहदीना । सकल जीव आपन कर लीन्हा॥
जो जिय नाम तुम्हारा पावै । अवागमन रहित घर जावै ॥
साहेब कहिये शब्द विचारी । जाते छूटै भ्रमकी बारी ॥
अन्त समें बालक कर आही । तब यम सूझ परै कहि नाहीं ॥
समय साधिबालक नहिं जानैं । कैसे बाचै जीव आपनै ॥
यमकी घरी पहुँचे जब आई । तहाँको भेद कहों समुझाई ॥
वह बाचै यम जाइ हेराई । कष्ट परै सब सुधि बिसराई ॥
जड़ चेतनको है यह चारो । कैसे भवसे होत उबेरो ॥

सद्गुरु वचन

पुरुष अंश सुकृत तुम आगर । भलमति पूछब धर्मनि नागर ॥
सो समुझाइ कहूं तोहि रंगू । जाहि रंगभौ यमको अंगू ॥

जब आवै बालकके पाहा। पलटे देह धरै निजु नाहा॥
भक्तिरूप धरि आवै सोई। मस्तक श्याम फेर नहिं होई॥
जब जिय नाम करै सम्भारा। तब यमकी जड़ होवे छारा॥
शब्द सिंधुमें रहै समाई। तहांयम कबहु निकट नहिं आई॥
शब्दविचार बारि दृढ़ करहीं। मूल हंस रखवारी धरहीं॥
जब फिर चाहें करन पयाना। अग्रज नाम करी संधाना॥

साखी--वंश छांय बीरा लिखो, नाम सन्धि चित लाय।
कहै कबीर निःशंक हो, हंस लोक कहँ जाय॥

जब सठहार चले लै हंसा। सप्त सिंधु पहुँचत गइ संसा॥
सप्त सिंधु आसन जो करहीं। हृदय रूप हंसा सब धरहीं॥
आगे लेन हंस तहँ आवहि। आरति साजि चीर पहिरावहि॥
कुशल क्षेम पूछे सब कोई। यमकी लज्या किहि विधि खोई॥
कहि प्रसाद आइ यहि ठाऊं। केहिं करनी पहुँची इहिं गाँऊँ॥
तबै हंस उठि बोलै बैना। गुरुप्रसाद पाया निज नैना॥
गुरु मोहि वह नाम सुनाई। तेहि प्रताप आये इहि ठांई॥
तबही हंस पुरुष सौं कहई। हंसन चाह दर्शकी अहई॥

साखी–नाम महात्म कबीरको, तेहि प्रसाद सो आइ।
बिनय करत अभिलाख चित, पुरुषहि दरस कराइ॥

चौपाई

पुरुष बुलाइ हंस कह लीन्हा। हंसन सकल डण्डवत कीन्हा॥
दीन सिंहासन क्षत्र जु धरहीं। हंस सुजन जन दर्शन करहीं॥
सिंहासन बैठी सुख पावा। शब्द अहार पुरुष संग आवा॥
जन्म मरनकी भूख बुझाई। सब सुख भुगते अग्र अघाई॥
निरंजन सुख सुधि नहि पावा। ब्रह्मा विष्णु बैठि पछितावा॥
वहतो हंस कहाँ उड़ि गयऊ। आदि अंत काहू नहिं लयहू॥

साखी–यह सुख ज्ञान स्थितहिमें; जो कोइ भुगते आय ।
धन्य भाग्य वा हंसके, कहै कबीर समुझाय ॥

धर्मदास वचन

धर्मदास बिनवै करजोरी । देह विदेह कहिब कछु थोरी ॥
कवने कमल उठत है बानी । कवने कमल शब्द सहिदानी ॥
कवने कमल मूल अस्थाना । कवने कमल सुरति पहिचाना ॥
कवने कमल ब्रह्मालिय वासा । कवन कमल है जीव निवासा ॥

सद्गुरु वचन

अक्षय कमल सुशब्द उचारी । सुरति कमल वानी अनुसारी ॥
श्वेत कमल निर्गुण अस्थाना । भँवर गुहा मूलहि पहिचाना ॥
कंबु नाल मूलके पासा । तहवां ब्रह्म लीन है बासा ॥
अष्टकमलते उठे जो बानी । कुसुमहि दल ताके परवानी ॥
बंकहि नाल बंक है घाटा । जो हंसा चीन्हे वह बाटा ॥

साखी–बंक नालनी नवरिके, भिन्न भिन्न कर लेख ।
भँवर गुहामें पैठिके, घरियारी कर पेख ॥
सुरति कमलके बीचमें, सद्गुरुको विश्राम ।
सहस्र जाप अजपा कही, पूरुषको निज धाम ॥

चौपाई

द्वाच्छ कमलमें झिलमिल तारा । अलख सरूपहिको विस्तारा ॥
विषम सरोवर है तेहि ठांई । मान सरोवर परै रहाई ॥
मान सरोवर दहिनो देही । सद्गुर पंथ तहां हो लेही ॥
आप कमल तेहिकहौं बखानी । बिरले जन कीन्हीं पहिचानी ॥
पारब्रह्म बस अधर अटारी । जगमग ज्योति जहां उजियारी ॥
हीरा रतन जटित बहु भांती । लाल अमोल गने को पांती ॥

रत्न कमल पै सत्य विराजे। हिरमर हंस संग बहु छाजे॥
गोरख दंत पहुँचि नहिं कोई। पारब्रह्म अस भवन है सोई॥
ये सब अटकहिं सुनि मंझारा। सत्य पुरुष नहिं कीन्ह विचारा॥
चउदा कमल महँ सुन्न विराजे। द्वादश कमल गगन धुनि गाजे॥
भर्म भूलि अटके तहां ज्ञानी। भर्महिं भर्म भर्म लपटानी॥
सुर नर मुनि पवनहि अवराधे। सिद्धहु बारे उनमनि साधे॥
नाभी मण्डल पवन किवारा। तहँ लगि गमी कीन्ह टकसारा॥
हमरा घर कहुँ बिरलन बूझा। ऊर्ध कमलका पंथ न सूझा॥

साखी--सुरति कमलपर बैठिके, अमी सरोवर चाखि।
कहैं कबीर बिचारिके, संत विवेकहि भाखि॥
ऊर्ध्व कमलकै उपरै, परिमल बास सुबास।
अमी कमल महँ बैठिके, दर्शन दर्श हुलास॥

चौपाई

उत्पतिको वह वृक्ष बखानी। प्रलय कबहुं होवे नहिं हानी॥
पिण्ड मांह वह वृक्ष बताऊं। अगम अगोचर गम नहिं पाऊं॥
अगम गोष्ठि तुम पूछन लाई। सुनो धर्म अब कहौं बुझाई॥
अगम गोष्ठि अगम व्यवहारा। अगम पंथ हम कहौं विचारा॥
अब मैं कहौं जो गम्य बखानी। अगम गोष्ठि काहू नहिं जानी॥
उत्पति सब मैं तुम्हैं सुनावा। ये हमते कोउ जानि न पावा॥
उत्पति सुनु वा वृक्षकी भाई। प्रलय तरे वह कबहुँ न आई॥
जासों कहों अमरपुर गाऊँ। बिना बीज वह वृक्ष रहाऊं॥
बिन धरती अंकूरहि आनी। पानी रंग नहीं उत पानी॥
मूलबृक्ष वह पुरुष बखानी। शाखा तासु निरंजन जानी॥
डाली ब्रह्मा विष्णु महेश्वर। पत्र तासु संसार नरेश्वर॥
सत्य सुकृत जहँ कर विश्रामा। अछय वृक्ष जाकर है नामा॥
पत्ररूप संसार बखाना। धर्मदास लखवो यह ज्ञाना॥

साखी–पानीमें सबउपजहि, पानि जान सब कोइ ।
जासों पानी ऊपजा, सो रँग कैसो होइ ॥

चौपाई

रंगहि रंग रंग उपजाया । एक रंगसे सब रँग आया ॥
बहुरंगीसे पानी भयऊ । पानी रंग नाद जो कियऊ ॥
नाद रंगसे वेद उचारा । वेद रंगसे भयो संसारा ॥

साखी–हीर डोरको भाव यह संत सुजाना देखि ।
कहै कबीर विचारिके रंगहि रंग विशेखि ॥
पुरुष डोर तुमसों कही, सुनो संत चित लाइ ।
धन्य भाग्य वह जीवके, ज्ञान स्थित जो पाइ ॥

चौपाई

सो सब तोहि कहिब चित लाई। परखि लेहु हियको समुझाई ॥
पांच तत्त्व जो प्रकटे आई । पांच तत्त्व वे गुणत रहाई ॥
सोइ तत्त्व तुमको न सुनावा । हृदये भीतर गुप्त छिपावा ॥
कौन शब्दसे तत्त्व जो आऊ । सो अनुसार तोहि समुझाऊ ॥
विदेह तत्त्व अगरको मूला । सोम तत्त्व आही अस्थूला ॥
अनुम तत्त्व सब दीप बखानी । अनुप तत्त्व सब दीप बखानी ॥
अंकुर तत्त्वसों सब कछु कीन्हा। ताको मरम न काहू चीन्हा ॥
पाच तत्त्व प्रगटै दुनियाई । तामहँ जीव रहै अरुझाई ॥
आप तेज वायु तत्त्व बखानी । पृथ्वी अकाश देह सब जानी ॥

धर्मदास वचन

कौने तत्त्व सो रची है देही । कौन तत्त्व है फूल सनेही ॥
कौन तत्त्व सो देहमें आवा । कौन तत्त्व निज मूल कहावा ॥

सत्गुरु वचन

अजर तत्त्व निःस्वादी कहेऊ । पुहुपतत्त्व निजमूलहि लहेऊ ॥

अमी तत्वकी देह बखानी। अजर तत्त्वमूल पहिचानी॥

साखी–अमरपुरीको येह गुन, अमर हंस होजाइ।
कबीर ज्ञान स्थिति बिना, जीव प्रलय तर जाइ॥

चौपाई

नाद प्रकट बिंदुहिं सो भयऊ। बिन्दु प्रकट नादहि जो लहिऊ॥
शब्द भेदते श्वास जो जानी। श्वासरूप शब्दहि पहिचानी॥
नाद बिंदु जब नाहीं रहिया। तबकी बात तुमहिसों कहिया॥
अमी अधर कीनी जब ग्रामा। नीर ब्रह्म लीनो बिश्रामा॥
नाद निरञ्जन प्रगटे जबही। श्वास प्रेम गुरु कीन्हो तबही॥
बिन्दु सकलसे भयो पसारा। देह बिदेह सो रहत न न्यारा॥
जब नहिं धरती नहिं आकाशा। तब नहिं सहज कूर्म परकाशा॥
चकित अण्ड चौंकरे सुचंदा। हमें देखि करि सहज अनंदा॥
सारशब्द कबीरहि जाना। अंगहि अंग आहि बिहराना॥
फूटा अंड कढे तब अंशा। योग जीत उपजे निःसंशा॥
नहिं तब धरती नहिं आकाशा। साखी शब्द नहीं परकाशा॥
तबही पुरुष कहां धौं रहेऊ। कौन तत्त्वमें बासा लहेऊ॥
गुप्तहि तत्त्व गुप्त अस्थाना। गुप्त वस्तुमें रहे निदाना॥
गुप्त हते तब प्रकटे भयऊ। अमर दीप उच्चारण लयऊ॥
शब्द उचारो अमर अखंडा। बीरा सार बिदेही पंडा॥
तादिन पुरुष आप जो रहते। कौन पिंडमें वासा करते॥

साखी–राईभसा जो वस्तु थी, राई मर अस्थूल।
लहर लहर दिल अंदरा, तहाँ पुरुषको मूल॥

चौपाई

जब नहिं हते कूर्म नहिं कामा। आदि पुरुष कीन्हो निज नामा॥
नाम सार हंसा जेहि पावा। वो जन चार काल पहुँचावा॥

पहुँचावतमें कछु दिल मोरा । वारी लांघि सकै नहिं चोरा ॥
जो बोले तो शिर छिन जाई । खूट गहे तो अंग नशाई ॥
सारनाम सतगुरुने दीना । ताते धर्म शीस पर लीना ॥
जो कोइ करै नाम महँ वासा । ताकहँ होइ न काल तरासा ॥
नाम प्रताप काल नश जाई । काले खेले पुरुष जाई ॥
नौ दल गुप्त हृदयमें टीका । अमर मोक्षपद पावै नीका ॥
नौदल नाम जो कहौं बिचारी । षटदल काढि जो बाहर डारी ॥
शुभ दल शुभचित बन भरमा । भये दल क्रोध संत तज करमा ॥
अस्थित दल राखे निज मनको। पहुँचे हँस लोक सुरजनको ॥

साखी—यहि गुण ज्ञान स्थितिहिमें, शब्द सिंहासन सार ।
कहे कबीरा नाम बल, पहुँचि पुरुषके द्वार ॥

धर्मदास उवाच

धर्मदास बिनवे कर जोरी । साहब कहौं नामकी डोरी ॥
अगम निगम शारद औ शेशा । तुम दातामांगन सब देशा ॥
कहो बचन प्रभु हृदय बिचारी । कैसे कूर्म लीन अवतारी ॥
आदि ब्रह्मका कहौं निवासा । केहिविधि लीन कमलमें बासा ॥

सतगुरु वचन

धर्मदास मैं कहौं बुझाई । अकथ कथा कछु कही न जाई ॥
आदि अन्तको नाहिं निवासा । श्वासा सार पुरुष परकाशा ॥
बिना नालको कमल अनूपा । पूरुष तामहँ कही सरूपा ॥
तबही भई अधर सों बानी । बिन रसनावह अगम निशानी ॥
बिनहि बिन्दु जिंद एक कियऊ । अजय अपार सरोवर लियऊ ॥
अष्ट कमल तहां कीन्ह प्रकाशा । अष्ट पुत्र को तहां निवासा ॥
अष्टताल सुत नाम धरावा । अब मैं कहों नाम परभावा ॥
मनसा बुद्धि निरञ्जन कीन्हा । सहज सुरतिसों उतपति लीन्हा ॥

रंग रेख कर्म उपराजू । सरवन सुरति वहे गुण छाजू ॥
योग संत इनको बिरमाए । तिनको अंत न काहू पाए ॥
सुकृत अंश भये तेहि ठाऊँ । सोहं सुरति अचिंत बनाऊँ ॥
आठ अंश ये उपजे भाई । ज्यों दर्पण प्रतिबिंब समाई ॥
पुरुष सहज सो भाषे लीना । दीप एक तुमहुँ कहँ दीना ॥
अंमो दीप प्रदीप निवासा । गर्भते कूर्म तहाँ परकाशा ॥
तबही पुरुष कूर्म उपराजा । बाहर पलंग रूप तेहि छाजा ॥
उपजे कूर्म पृथ्वीको भारा । सोरह पलंग दीप विस्तारा ॥
रचना सबहि कूर्मकह दीना । इहतो चरित सहज नहिं चीन्हा ॥
साहब चरित लखे नहिं कोई । सुरति पुत्र उपराजे सोई ॥
महा अपर्बल है अधिकारी । पूरुषके कहिये भण्डारी ॥
दया करी सुरतीको जबही । सुरति अंश उपराजे सबही ॥

साखी- ज्ञानस्थितिके यहे गुण, सुरति कूर्म उपजाइ ।
कहै कबीरा नाम बिन, जीव अकारथ जाइ ॥

चौपाई

कूरम उदर बिदारो जबहीं । चारों अंड फूट गये तबहीं ॥
चारों अंड ब्रह्मांड सम्हारा । कृत्रिम वस्तु कीन्ह संसारा ॥
कर्ता आदिपुरुष कर नाऊ । सोई नाम निरंजन पाऊ ॥
फूटि अंड चौभंगा भयऊ । पाँचो तत्त्व तीन गुण ठयऊ ॥
पंच अमीसे सब संसारा । पंच अमीका है विस्तारा ॥
पंच अमीकर नाम न जाने । सो मन आन केल तन ठाने ॥
अमी दहे है सकल जहाना । अमी रंगसे कीन्ह ठिकाना ॥
अमी वस्तु जिनही पहिचाना । पंच अमीको सकल जहाना ॥
पंच अमीको नाम सुनाऊं । भिन्न भिन्न सब तोहि बताऊं ॥

अमीके नाम

सिंधु सुअंशहि । १ । सुरंगको नाम । २ ॥ सहजसुतमूलको नाम । ३ । अकहअमी । ४ । अंकअमी । ५ ।

साखी–कही कबीर धर्मदाससों, पंच अमीको नाम ।
शब्द अमीसों जानियो, प्रकट भये गुणधाम ॥

चौपाई

अमी शब्द सुमिरे जो कोई । अमीस्वरूप होहि पुनि सोई ॥
अमी शब्द जिन नाहीं पायब । सोई जीव प्रलय तर आयब ॥
मूल शब्द राखे चित सानी । अमी शब्द मृष बोले वानी ॥
पाँच बेर सुमिरै नर कोई । ताकों आवा गौन न होई ॥
एहि शब्द मैं कहों बखानी । ब्रह्मा विष्णु महेश न जानी ॥
इह पुनि नहीं निरंजन पावा । धर्मदास मैं तुमहिं बतावा ॥
शब्द अमी सुपुरुष लिख दीन्हा । एकहु अंक परै नहिं चीन्हा ॥

साखी–कमल अंक पंखुरि अरु, सुरति बंध सुखसेज ।
कहि कबीर संशय गई, महापुरुषके एज ॥
ज्ञानस्थितके यही गुण, अमी अमी होजाइ ।
कहै कबीर धर्मदाससों, देह हिरण्मय पाइ ॥

चौपाई

धर्मदास उठ बिनती कीन्हा । तुमरी दया पऱ्यो सब चीन्हा ॥
अपनो भेद कहों विलछानी । जाते परै दरस पहिचानी ॥
वहै शब्द गुरु कहों प्रकाशा । जामें ह्वै सुकृतको वासा ॥
वही शब्दमें दर्शन होई । भिन्न भिन्न मोहि कहो बिलोई ॥
तुमहिं सगुण तुम निर्गुण रूपा । कारण कारज कहिये भूपा ॥
तुम धरती तुम पवन अकाशा । तुमहीं चांद सूरज परकाशा ॥
जलथल भीतर कीन्ह निवासा । लोकद्वीप तुमहीं परकाशा ॥

तुमही माली तुम फुलवारी । तुम हौ करता तुमरी बारी ॥
तुम सागर जलहरी तरंगा । तुम मलीन तुम निरमल अंगा॥
तुम हौ उडुगण पर्वत चंदा । मोमें तुममें हर्ष अनन्दा ॥
तुम गुपाल तुमहो दिन राती । सुर नर मुनि गंधर्व तुम ज्ञाती ॥
तुमही अलख तुमहि संसारा । तुमही हरि हर विधि अवतारा॥
तुमही लोप अलोप अलेखा । तुमही गुप्त प्रगट सब देखा ॥
तुमही पुरुष तुमही हो प्रकृति । तुमही योग तुमहि जुगति गति॥
चारों युग तुम करत निवासा । तुम रमता देहीमों बासा ॥

साखी--तुमहो दूसर अवर नहिं, तुमरा सकल प्रकाश ।
करहु दया अब मोहिपर, सत्य नाम विश्वास ॥

सद्‌गुरु वचन

धर्मदास तुम विनती कीन्हा । हमरो रूप न काहू चीन्हा ॥
अमरभेद अस्थलकै माहीं । जो पावै अस्थिर मन ताहीं ॥
लीलंगर द्वीप पुरुष अस्थूला । वही द्वीप उत्पतिको मूला ॥
गगन धरनी उत्पति सब नीरा । काया बीर सुनाम कबीरा ॥
याविधि पुरुष हमहि सों कहिया। बिन अंकुर जीव कहाँ रहिया॥
नाम हमार सुमिरै जो कोई । आवा गमन रहित सो होई ॥
हमरा नाम लेत घर आवे । सुख सागर निर्मल हो जावे ॥
नाम लेत जो काल डराई । सुमिरत नाम हो दूर हो जाई॥
हमरो नाम सार है भाई । जो चीन्हे तेहि काल न खाई ॥

साखी--नाम हमारा मुक्तामणि, पुरुष आपहि भाखी ।
शब्द शिरोमणि सार यह, हंस सदा चित राखि ॥

चौपाई

येहि नाम लोके पहुँचावे । सुमिरत नाम पुरुष कहँ पावै॥
अब यह शब्द कहउ सम्भारा । सुनि हृदय महँ करो विचारा॥

जाते दुःख द्वंद मिटि जाई । धर्मराय बैठो पछिताई ॥
यहि नामको शिरहि चढाई । यामें सब सुख विलसे आई ॥
कपट रूप धरिहै जो कोई । भ्रमकी डगर परै पुनि सोई ॥
आदि शब्द सो नाम हमारा । जो बूझे सो उतरे पारा ॥
धन्य भाग्य हंसनके कहिए । जो या नाम मुक्ति मन गहिए ॥
सो करुणाकर बहुत उघारी । एक नाम चित लेय बिचारी ॥

पाँच नाम

आदि अजर १ । अदली अदल २ । पुरुष निरक्षर नाम ३ ।
मुक्तामणि प्रभुनाम जो ४ । सुख सागर विश्राम ॥

साखी--ज्ञानस्थितके येह गुण नाम विवेकी पाइ ।
कहै कबीर धर्मदासको, हंस लोकको जाइ ॥

चौपाई

धर्मदास चरण चित धरही । बार बार विनवे अनुसरही ॥
पाँजी नाम मोहि कहो विचारी। जामें होय हंस निस्तारी ॥
बिन पाँजी कहा जाने भेदा । पाँजी नाम गुरु कहीन खेदा ॥

सद्गुरु वचन

धर्मदास भल कीन्ह विचारा । हंसराज बड भाग तुम्हारा ॥
नाम सिंधु पायो तुम जब ही । पाँजी निर्भय पहुँचे तब ही ॥
विन निर्भय कोइ भेद न आवे । विना भेद कैसे पहिचाने ॥
कहे कबीर होइ गुरु दाया । तबही हंस अमर घर आया ॥
अब सुनिये पाँजी को द्वारा । ता चढ़ि हंस उतरि है पारा ॥
एक नाम एक चित हो देखा । तहाँ हंसा सुख सागर पेखा ॥
पाँजी अद्भुत कहों सुमारा । ताते होय मुक्ति व्यवहारा ॥
सोहं शब्द उलली कर देखे । तिल प्रमाण जहां द्वारी पेखे ॥
उलटि पवन पश्चिमको घाले । गरजे गगन मेरु तहां हाले ॥

अरध ऊर्ध्वबिच कमल अपारा । दामिनि कोटि होत उजियारा॥
पाजी नाम पंच दिल राखो । हंसा उबारन कहि यह भाखो॥

आकाशपाँजी

आदि अजर अदलीनिर नामा । सप्तसिन्धु है जियको कामा ॥
सप्तसिन्धु पाजी ले नामा । सो यह परब्रह्मको धामा ॥
यही नाम जियको रख वारा । खोलो कुंजी कुलफ केवारा ॥
हंस ले गए पुरुष दर्बारा । झिलमिल ज्योति झलक उजियारा॥
नाभि मण्डल पवन किवारा । ढुरे सुनीरी मूलके द्वारा ॥
भए निरन्तर थकित शरीरा । धर्मदास कह मिले कबीरा ॥
धर्मदास यह दिलकी पाँजी । यही नाम धरि बहुरै साँजी ॥
पिंड नाम सो दिलमें मूला । येहि नाम पहुँचे अस्थूला ॥

साखी--ज्ञानस्थितके येह गुन, पुरुष पाजी निज सार ।
यह पाँजी जब पावही, हंस होइ निस्तार ॥

चौपाई

हो सद्गुरुमें तुम बलिहारी ।मिटि गइ तिमिर भई उजियारी॥
हों पतंग तुम भृंग गुसाई । आप सरीख कीन्ह एहि ठाई॥
सप्त सिंन्धु पृथवीमें आहीं । सकल जगत इनहींके माहीं ॥
सप्त सिन्धु जो रहे पताला । सातनाल प्रभु कहौं रिसाला ॥
सातौ नाल कवन विधि हेरा । जामें सुषुमण होइ निवेरा ॥

सद्गुरु वचन

धर्मदास यह अकथ कहानी । बिरले हंस कीन्ह पहिचानी ॥
अगम विचार कीन्ह व्यवहारा । जासों भया सकल विस्तारा ॥
जबहीं हंसा तजे शरीरा । शब्द प्रताप होय गंभीरा ॥
सप्त सिंधु नर पावै कोई । सप्त सिंधुमें जाय समोई ॥
सप्त सिंधु आरम्भ न करई । त्यागि शरीर हंस गति धरई ॥
जाय करै सुख सागर बासा । मान सरोवर करहिं निवासा ॥

सप्त सिन्धुके नाम सुनाऊं । भिन्न भिन्न सब तोहि लखाऊं ॥
सप्त सिन्धु अब लखि पावे कोई। समता सिन्धुमें रहे समोई ॥
योग सिन्धु अब कहों बखानी ।अजांवन सिंन्धु लेव पहिचानी॥
अमर सिन्धु हंसा लखि पावै । अकह सिन्धुमें जाय समावै ॥
सुखहिं सिन्धुहि कीन्ह पैठारा । सप्तहि सन्धुहि नाम उचारा ॥

साखी—ज्ञान स्थितको पायके, मन सुस्थिर हो जाय ।
कहे कबीर धर्मदाससों पुरुष नाम समुझाय ॥

चौपाई

पुरुषहि नाम कहौं समुझाई । धर्मदास हिय गहो बनाई ॥
याही कारण अजपा कीन्हा । जीवन संधि परी नहिं चीन्हा ॥
पुरुषहते तब मूलके ठाऊं । तब नहिं दीपलोक अवगाऊं ॥
चौबिश पुत्र तबे नहिं रहिया । तबही वचन अग्र जो कहिया ॥
ता पाछे ओंकार जो कीन्हा । ओंकार सो सब रचि लीन्हा ॥
साहब वचन सत्य फरमाया । सत्य शब्द अक्षर निर्मांया ॥
कबहूं नाहिन अस्थिर होई । बरा बार मन देइ बिगोई ॥
काया भीतर आप लखावा । ताते अजपा नाम कहावा ॥
याहि शब्दसे सुद्ध शरीरा । याहि शब्दसे मिले कबीरा ॥
याहि शब्द हृदय सुख होई । निर्मलहोहि विषहिं सबखोई ॥
अस्थिर मनकर प्रफुलित राखे । नाम संधि हृदये महँ चाखे ॥
निर्मल हंस होत है तबही । अमरलोक पहुँचि है जबही ॥
सातों सुरति तबहि परकाशा । पुरुषहि को राखे विश्वासा ॥
उतपति शब्द जबे निर्मांवा । सोअक्षरमिलिशिवहिंकहावा ॥
शिवहि शब्दसों जीव कहावा । जीव नाम संसार कहावा ॥
सातों नाल वाहिके अंगा । जिहि जग मीतर माडो रंगा ॥
अक्षर शब्दसे शिव जो आवा । वाही अक्षर गुरू कहावा ॥

काशी मध्य मरे जो कोई । होहि परवान रूप तब सोई ॥
चौरासीसे रहित जो होई । पाहन रूपहि जन्म बिगोई ॥
शब्द संपूरन शिव जो जाना । त्यों सुकृतके बहुत परवाना ॥
अक्षत ले आरति कर सोई । उन कर मंत्र कहत सब कोई ॥
तारक मंत्र वयसको नाहीं । पण्डित शब्द गहत मनमाहीं ॥
यही मंत्र कहत सब कोई । साहब चरण न पावैं सोई ॥
क्षमा गुरू निश्चय जो पावा । सद्गुरु शब्द अहर्निश लावा ॥
क्षमा गुरू कहिए अविनासी । मानसरोवर तटके वासी ॥
रचना भेद ले शिव कह दीना । यहि विश्वास मनहि कर लीना ॥
भवसुर केहि शिखावन एहा । सनकादिक कर चरण सनेहा ॥
यही प्रणालि गही सब कोई । गुरु निर्गुणकर भेद समोई ॥
याहीमें सब परैं भुलाई । ढूंढ़तही जग कल्प बिताई ॥
जो चाहे सुकृत कर लेखा । आप आप सो करै विवेका ॥
उनकर चीन्हि अमरपद पाई । सूक्षम मुक्ति नाम गुण गाई ॥

साखी–यह गुण ज्ञानस्थितहिके, जो पावै निज नाम ।
अजपा जपै कबीरको, सो पहुँचे निज धाम ॥

चौपाई

शब्द पाय लोक जिन चीन्हा । नाम अखण्डित जब धरलीन्हा ॥
मुक्तामणि निज नाम हमारा । हंस उबारहि भवसे पारा ॥

साखी–सोहं नाम हृदय धरै, और जपे नहिं जाप ।
मूल शब्दही रटन कर, मूल शब्द हो आप ॥
करै निरूपण शब्दको, कहै कबीर बखान ।
मूल ध्यान गहि पावही, सुख सागर अस्थान ।
मूल शब्दके येह गुन, अमी दीपक कहँ जाइ ॥
कबीर ज्ञानस्थित बिना, मूल नाम नहिं पाइ ।

# गुरु महिमा प्रारम्भः

चौपाई

गुरु होहि वहि ताहि लखावै । गुरु बिन अंत न कोई पावै ॥
जिन गुरुकी कीन्ही परतीती । एक नामकर भव जल जीती ॥
गुरू पुरुष जिय करहि मराला । गुरु सनेह बिन काग कराला ॥
गुरू दया गुरु शब्द हमारा । गुरू प्रगट है गुप्त अधारा ॥
गुरु पृथ्वी गुरु पवन अकाशा । गुरु जल थलमहँ कीन निवासा ॥
चंद्र सूर्य गुरु सब संसारा । गुरु गंधर्व गुरु सब व्यवहारा ॥
गुरु ब्रह्मा और विष्णु महेशा । गुरु भगवान कूर्म औ शेशा ॥
चराचरहि जहँ लगि सब देखा । गुरु बिना कछू और नहिं पेखा ॥
उत्तम मध्यम और कनिष्ठा । ये सब कीन्हे गुरू शरिष्ठा ॥
ये सब जीव गुरूमय जानो । गुरुसे भिन्न अन्य नहिं मानो ॥
कहैं कबीर सो हंस पियारा । येहि भांति गुरु दरश निहारा ॥

साखी–सो गुरु निशिदिन बंदिये, जासों पाये नाम ।
नाम बिना घट अंध है, ज्यों दीपक बिन धाम ॥

चौपाई

गुरू चरण जे राखे ध्याना । अमर लोक वह करत पयाना ॥
भ्रमर कमल ज्यों रहैं लुभाई । या विधि गुरु चरणन लपटाई ॥
तन मन धन न्योछावर राखे । दर्शहि पर्श अमी रस चाखे ॥
चरण धोय चरणामृत पावै । पुरुष समीप पहुँच सो जावै ॥
गुरु बिहून अमृत नहिं दीजै । अमृत छांड़ि विषय रस लीजै ॥

साखी–महा पुरुषको नाम है; जा घट मांहि समाय ।
सोई सद्गुरु जानिया, अरु कृत्रिम सब पाय ॥

धर्मदास वचन-चौपाई

धर्मदास विनती अनुसारी । समरथ खसम जाहिं बलिहारी ॥

जबसे दीन्ह मुक्तिकर बीरा । तीन ताप मिटि गईं अधीरा ॥
साहब कहिये शब्द अनन्दा । जाते यमकर छूटै फन्दा ॥
चरणामृत कैसे कर लीजे । तौन शब्द मोसों कहि दीजे ॥

सद्गुरु वचन

धर्मदास मैं कहों विचारी । चरणामृत शब्दहि निरवारी ॥
यहि पाये निज करहि अहारा । जासों यमकी छूटै धारा ॥
प्रथम भोर मुख उठिके धोवे । काल कष्ट यमद्वार बिगोवे ॥
फेर करहिं शब्दको आशाना । वही शब्दसो मुक्ति निदाना ॥
बहुरि हिये महँ नामहि आने । नाम विदेह दरश पहिचाने ॥
नाम विदेही कठिन अपारा । ताहि चीन्हि कर करहुँ अहारा ॥
ध्यान बीज गुरुचित महँ आने । सुरति निरति पुरुषहि पहिचाने ॥
बहुरि शब्द आनंदित भाषे । मुख महँ धोइ नाम रस चाखे ॥

साखी—इह गुण ज्ञानस्थितहिके, शब्द भेद निजसार ।
गुरुचरणामृत लेहि तब, होवे हंस उवार ॥

स्मरण

श्वेत मिठाई श्वेतहि पाना । श्वेत शब्द लेखनि परवाना ॥
योग सत्य इन दीन्हो बीरा । मनको उलटि खोज लै हीरा ॥
बीरा खाय भयो सुख भारी । प्रथम पुरुष ऊपर उजियारी ॥
दूसर सत्य गुरु नाम जो भावा । तीसर लक्ष्मी लै घर आवा ॥
चौथे जन्म मरण नहिं होई । जो चरणामृत पावै कोई ॥

साखी—कालफाँस नहिं आवही, तन्त्र मंत्र क्षयमान ।
बचन कबीर गुसाँइको, सत्य हि शब्द प्रमान ॥

मंत्रसम्पूरण

धर्मदास वचन

चरण टेक कर विनती लाई । कीन्ह कृतारथ मोकहँ आई ॥

सब विधि धर्मदास पर दाया । मुक्ति युक्ति गुरु सबै बताया ॥
साहिब कहिये शब्द उचारी । जौन शब्द मुखधोय निहारी ॥
सोइ शब्द गुरु कहो बखानी । जाते जरै कालकी खानी ॥

साखी--काल जरै कंटक जरै, राखौ चितमें नाम ।
मनसा वाचा कर्मणा, जाय हंस निज धाम ॥

सद्‌गुरु वचन

धर्मदास यह शब्द उचारी । याही शब्दसों हंस उबारी ॥
काल जँजाल मिटत हैं जबही । शब्द लेय मुख धोवै तबही ॥
काया शुद्ध होइ निज वारा । मुख धोवै मोहे संसारा ॥
दिन दिन मुख उज्ज्वल तेहि केरा। रविसमान मुख होय उजेरा ॥
अब मैं शब्द कहत मुख बानी । धर्मदास लीजे पहिचानी ॥

स्मरण

सिंघलद्वीप हंस कहां रहियऊ । पहले पार कबीर कहियऊ ॥
बसले पानी मुख धोय । चंदन काटिके धोय मुख ॥
सुरति करहि अस्नान।तेतिसकोटि सुरदेवता लखे अभ्यंतरधरिध्यान
मुख धोवे मनमोही । औ देह नहिं जान ॥
मनमें ध्यान कबीर कहिये । रखे चित्त पहिचान ॥
मोरे माथे मन वसे । अवरहुँ मदिल कोइ ॥
सिंघलद्वीप ढिग वैठके । कबहुँ न जाय विगोइ ॥

साखी--ज्ञानस्थितिके येह गुण, मुख धोवे सुर ज्ञान ।
कहै कबीर विचारिके, हंस होहि निर्बान ॥

चौपाई

धर्मदास यह धर्म अपारा । जासों होत दिगंबर भारा ॥
दिगंबर देह होत जब भाई । स्नान शब्द जब गुरुसों पाई ॥
यही शब्द धुंधलको दीन्हा । धुंधल राव मानि शिर लीन्हा ॥

मृतकहि देह धरे संसारा। बिना शब्द है काल अहारा॥
स्नान शब्द हृदयमें धरहीं। जीवनमुक्ति होइ भव तरहीं॥
यही शब्दसो धोवे अंगा। दिव्यदेह जानो परसंगा॥
जो कोइ करे शब्द असनाना। ताकर धोखा जाय निदाना॥
लक्षहि दान करै नर कोई। जीव दया बिन मुक्ति न होई॥
जो धोवे निश्चय करि देहा। तबही कीजे शब्द सनेहा॥
कहे शब्द अब कहो बखानी। धर्मदास लीजो शिर मानी॥
नित्य प्रीतिकर शब्द स्नाना। ताकर दोष न रहै निदाना॥

स्मरण

साखी—अगम सरोवर विमल जल, हंस बैठिके न्हाइ।
काया कंचन मनमगन, कर्म भर्म मिटि जाइ॥

पिंडहिसों ब्रह्मांडहि जाना। मान सरोवर करि असनाना॥
सोहं सोहं ताको जापा। लिखत न करै पुण्य औ पापा॥
पुण्य पापसे रहत न न्यारा। पैठि संत जन करो विचारा॥
याहीविधि जो करि असनाना। सो हंसा करै लोक पयाना॥
धर्मदास सुन शब्द विशेषा। गंगवारू इतने है लेखा॥

स्मरण सम्पूर्ण

आदि अंत सब कहों बखानी। धर्मदास कीजो बिलछानी॥
मूलपुरुष काहू नहिं जाना। सो तुमसो सब कहों बखाना॥
मूलशब्द तहाँ अग्र कहावा। अग्र विदेह अस्थूल सुभावा॥
मूलभेद काहू नहिं पावा। मूलनाममें गुप्त छिपावा॥
कहँ प्रतीत देखी मैं तोरी। तातें कहों मूल निज डोरी॥
मूलहि शब्द असंभव नामा। कहैं सुनै नहिं पावै ठाना॥
चारलोक चार है नाऊँ। चार चार सो बरन सुनाऊँ॥
सीख गुरू या बिचि जो धरहीं। जैसी विधि तुम हम सो करहीं॥

तन मन शीस न्योछावर डारै । तब गुरु शिष्य हृदय संचारै ॥
रंचक कपट हियेमहँ राखे । गुरुसनेह रस कैसे चाखे ॥
मुखसे बातैं मीठी करहीं । अर्थद्रव्य मन कृत्रिम धरहीं ॥
गुरुलोभी शिष्यलालचि जानी । परमारथ नाहीं पहिचानी ॥
कैसे ताकर होय उबारा । बूड़हि भवसागरकी धारा ॥

साखी–युक्ति मुक्तिकी को कहे, नरकहु नाहीं ठोर ।
पिशाचरूप भरमत फिरै, बाँधे यमकी पोर ॥

चौपाई

धन्य भाग्य तुम हमको चीन्हा । तन मन धन न्यौछावर कीन्हा ॥
यहि कारण मैं कीन्हो नेहा । मूलशब्दसों करहु सनेहा ॥

साखी–कहियत वचन विचारिके, तुम सुनियो चितलाय ॥
धीरज दृढता ठानिके, अमृत पिये अघाय ॥

चौपाई

जब प्रभु हते मूल अस्थाना । हंस सुजन जन नहिं उतपाना ॥
सो निज ठांम लखावों तोही । धर्मदास जो पूछै मोही ॥
तब ना हतो अग्रको मूला । तब ना हतो विदेह स्थूला ॥
तब नहिं हंस सुजन जनकीन्हाँ । तब यह हंस बास कहां लीन्हाँ ॥
तब साहब समसर उपराजा । समसर अग्र कीन्ह सबसाजा ॥
दश ग्यारह नाहीं ब्रह्मंडा । तब नहिं हते लोक अरु अंडा ॥
तब नहिं अमी अमी रस छंदा । तब नहिं दिवस रैन अरु चंदा ॥
सो अब कहौं मूल नहिं कन्दा । मूल विदेह नाम आनन्दा ॥
कहेउ भेद लहेउ निज नामा । जासों पूरण है सब कामा ॥
जैसे जलमें दिनकर ज्योती । यों घट भीतर लखिये मोती ॥
धर्म नाम असंभव नाऊं । निरालम्ब अग्रिम है गाऊं ॥
निरालंब आलंब ठिकाना । याविधि साहिबको पहिचाना ॥

सोमैं देखि तोहि समझाऊँ । यह तुम राखो हिय छिपाऊँ ॥
वह प्रभु निरालंब बतलाई । नाम प्रभाव पुरुष लखिपाई ॥
सार नाम जिन हिये समोई । काल जाल सब जाय बिगोई॥
निरालंब है अधर अकाशा । पृथ्वी पवनहि माँहि निवासा॥

साखी–निरालंबहि प्रभाव यह, सकल सृष्टि बिन नाम ।
अजर अमर विनसें नहिं, बिन थूनी बिन धाम ॥

चौपाई

सो विधि ताको मैं समुझाई । अविनाशी या विधि प्रगटाई ॥
बिना तत्त्व तत्त्व जो भयऊ । बिना प्रतीति भेद किमि लहेऊ॥
करि प्रतीति तजि अन्य उपाई । आनंद गांव अनंद कराई ॥
तब हंसा आनंद हो जाई । आनन्द शब्द हृदयलों लाई ॥
जीवतही नर मुक्ति होई । अक्षर गहि निर अक्षर होई ॥
येहि प्रताप अग्रको लहिए । स्थूल विदेह वाहिमो कहिए ॥
निरालम्बसो सो भए अलंबा । शब्द सरूप सृष्टि सब थंभा ॥

साखी–निरालंबके खोजमें, सब जग परो लुभाइ ।
जब सतगुरु दाया करै, तबही परै लखाइ ॥

चौपाई

धर्मदास जो विनती करही । चरणि पकरि शिर ऊपर धरही॥
तुम समर्थ मैं दास तुम्हारा । चरण प्रसाद भयो बिस्तारा ॥
एक विवेक कही समुझाई । वचन सुधा सुनि तृषा बुझाई॥
अब साहिब कहिये व्यवहारा । मृतक जीव गरुड संचारा ॥
जेहि विधि जीवहिगरुडजियावा। सोई भेद गुरु मोहि बतावा ॥
मूलशब्द अक्षर पहिचानी । अगमहि नाम अकाशे जानी ॥
सो कहिए प्रभु भेद बखानी । बाल जिवाइ गरुड नहिं आनी॥

सद्गुरु वचन

धर्मदास बूझा व्यवहारा । यहै भेद अति कठिन अपारा ॥
योगी जंगम रहे लखाई । याहि भेदको अंत न पाई ॥
कलियुग महमदको अवतारा । तिनसो होय म्लेच्छ अपारा ॥
वेद अथर्वनको मत लावहिं । मानस मारिसाख बतलावहिं ॥
पीर पैगम्बर अजमत धारी । जीव दया नहिं कीन्ह विचारी ॥
अनकढ वचन कहे दिन राता । माता पिता पूछे नहिं बाता ॥
येहि वचन सुनि हृदय लगावो । समझि बूझिके गुप्त छिपावो ॥
आपा माडि थाप सब कीन्हा । आतम संधि कृष्णकहि दीन्हा ॥
अंबुजते अमृतहो आवा । अंबुजते जल पृथ्वी ठावा ॥

साखी--कहै कबीर विचारिके, धर्मदास सुनि लेव ।
दृढ हो अमृत पीजियो, सब जीवन कहि देव ॥

स्मरण

ॐअकार न्याव सों सारा । अजब अतीत अचिन्त व्यवहारा ॥
अजर अहार अती है उज्वल । स्थित उत्पन्न वही है निर्मल ॥
अर्ध ऊर्ध याहिमें सही । बर्कत फर्क याहिमें कही ॥
भयो अलखते सब संसारा । लयो अर्ध ऊर्ध पर भारा ॥

साखी--अर्ध ऊर्ध आलेख सब, मैं मैं रहैं समाय ।
कहै कबीर धर्मदाससों, सोहि रहे घर आय ॥

बोल अडोल आप जो कहेऊ । दीप अदीप एक नहिं रहेऊ ॥
अष्ट मुष्टि कहि पंच प्रभाऊ । ये सब वाहीसो होइ आऊ ॥
कस नहिं जीव मुक्तिको लहेऊ । एक घरीक जो बोल कहेऊ ॥
करि प्रणाम देहमें आवा । अजर अमर अटल घर पावा ॥
पुरुष सँयोग जो सेय बिछावा । अर्ध ऊर्ध ऊपर सच पावा ॥
रसना पाय अमृत जब चाषे । तब उठि जीव वचन मुख भाषे ॥

साखी–यह गुन ज्ञानस्थितहिके, जीव जीव तन आव ॥
कहे कबीर धर्मदास सों, अर्ध ऊर्ध संभाय ॥

सम्पूर्ण स्मरण–चौपाई

भाषों जो प्रभु अमृत कीन्हाँ । जेहि विधि अमृत सिरजेलीन्हाँ॥
धर्मदास यह कहों बुझाई । जेहि विधि अमृत कीन्ह बनाई॥
आपहि आप अधर जो आवा । अमृत वही कूर्म जो पावा ॥
कूर्म जाय रीति जेहि बैठा । धर्म सहितसों कीन्हों पैठा ॥
सहज निरंजन भेद बतावा । भाषो भेद बरण सब पावा ॥
धर्मराय कूर्महिपर आए । कूर्मनाथ जहां अग्र रहाए ॥
मस्तक काटिय पेट विदारा । कूर्म दुखित भए शक्ति निसारा॥
प्रकट समुद्र तभीसों भयऊ । जबही पेट विदारि लयेऊ ॥
अमृत धर्मराय कछु पावा । कछु गिरपरा समुद्र समावा ॥
अमृत विष्णु तबही जो लीन्हा । जबही मथन समुद्रहि कीन्हा ॥
अमृत तबहि निरंजन पावा । सोई अग्र सुकृतहि समावा ॥
धर्मशील काटो है तबही । विषम सरोवर उपजो जबही ॥
धर्मराय अमृत जो पावा । तेहि कारणसों अलख कहावा ॥
अग्र शीश कूर्मके पाई । ब्रह्मा विष्णु तबै उपजाई ॥
जीव जंतु पृथ्वी उपजावा । यह बल विष्णु राजसों पावा ॥
इंद्र जाय तब सेवा करहीं । भांति भांतिके सुख अनुसरहीं॥
तृप्त कीन्ह देवन सब अंगा । विष्णु दया कीन्ही परसंगा ॥

साखी–सूक्षम इंद्र दया करी, इंद्र साजि विस्तार ।
ब्रह्मा विष्णु महेश मिलि, कीन्हों सकल पसार ॥

चौपाई

धर्मदास जो बिनती लावा । गरुड़ अमृत केहि कारण पावा॥

सतगुरु वचन

पूर्व कथा अब कहों बखानी । धर्मदास लीजो बिलछानी ॥

नागहि लोक इंद्र जो गयऊ । सुधा हेतु कारज तेहि ठयऊ ॥
डारेउ नाग फाँसते तबहीं । कौन छुड़ावे याते अबहीं ॥
नागदेवके मात रहीया । गरुड मातसोंहीं छल करिया ॥
माथे लीन्ह गरुड़की जीती । छलसों भई दयाकी रीती ॥
गरुड़ मात कहि वचन सुनाई । दासी भाव कहां तुम पाई ॥
तब उठि माता वचन उचारा । सुनो पुत्र एक भेद हमारा ॥
नाग मात मोहि वचन हरावा । यातें दासी भाव रहावा ॥
पीतबरण शशि हम कहि सोई । श्याम बरण उन करो बिलोई ॥
यह छल जानि परा नहिं मोही । सुनो तात समुझावों तोही ॥
कोपि गरुड तब गये पताला । नागलोक जहाँ विषकी ज्वाला ॥
देखत गरुड नाग सब भागे । मातासो छल कीन्ह अभागे ॥
माँगो सो हम तुम कह देही । हम कहँ त्रास देव जिन एही ॥
गरुड अहिन तब बचन उचारा । अमृतकुण्ड देव सब धारा ॥
नाग आइ तब कीन्ह निहोरी । गरुड इंद्रकी बंधन छोरी ॥
अमृत लेइ दर्शनको गयऊ । नाग गरुड पहुँचावत भयऊ ॥
गरुड मात नाग जब देखा । दासहि भाव तजब तुम रेखा ॥
अमृत पाइ गरुड बरियाना । तब छल इंद्र गरुसों ठाना ॥
गरुड महाबल सुख लहलीन्हां । बोई बंबूर अमृत किमि चीन्हां ॥
ज्यों मलयागिरि निकट रहावा । तास्वरूप काहू नहिं पावा ॥
कूर्म उदरसे सो चलि आवा । सुधा समुद्र मथे तब पावा ॥
गुरु द्रोहसों जन्म बिगोई । नाम पाइ अस्थिर नहिं होई ॥
चंचरीक चंचल है बहई । मलयागिरिकी सुगँध न लहई ॥
मलयागिरिको यहि प्रकाशू । बिष नहिं बेधे वास सुबासू ॥

साखी—मलयागिरिके वाससे, सब द्रुम होइ सुवास ।
बासन कबहूँ बेधही, सदा रहत है पास ॥

तबहि सुकृत बिनवे करजोरी । कृपासिंधु सुनि बिनती मोरी ॥
प्रथम तत्त्व प्रभु भाषव तुमहीं । सो सब बूझ परैगी हमहीं ॥
पाँच प्रगट गुप्त हैं पाचा । प्रगट समझि लीन्हें हम साँचा॥
पाँच गुप्तको कहिये लेखा । पाँच प्रगट ये सब हम देखा ॥
पृथ्वि तेज जल पवन अकाशा । सो प्रभु मोहि कहो परकाशा॥
जिहिं विधि ए प्रभु प्रगटे आई । सो प्रभु भाव कहेउ समझाई ॥

सतगुरु वचन

धर्मदास तुम जो कछु बूझा । सो सब भिन्न २ हम सूझा ॥
पृथ्वी रही गुप्तके नेहा । बहुरि प्रकट हुये शब्द सनेहा॥
पृथ्वी अंग वैराटहि जानी । पाँव पताल शीस अनुमानी ॥
इच्छा सुरति शक्ति उपजाई । वैराट रूपमें जाय मिलाई ॥
अलख निरंजन यासों कहिये । यही ख्याल अविगतको लहिये॥
मन माया जब एके भयऊ । सकल सृष्टि उत्पन्ने लयऊ ॥

साखी—जब दोई एके भये, भयो लीन मन ठौर ।
नाभिकमल ब्रह्मा भए, सब रचनाको मौर ॥

चौपाई

धर्मदास अब कहों बखानी । तुम हिरदे कीजो बिलछानी ॥
पाँच तत्त्व जे गुप्त रहावा । सो सब भेद तोहि समझावा ॥
पाँचहि अमी पुरुषने कीन्हां । पांच तत्त्व ताही सो चीन्हां ॥
अचल अमी जो अकाश बखानी । शब्द अमी वायू उतपानी ॥
अजर अमी सो तेज पसारा । अकह अमी जलतत्त्व सम्हारा॥
रंग अमी सो पृथ्वी भयऊ । रचना सब याही पय ठयऊ ॥
पाँचों अमृत तहँवा छाजे । पाँचतत्त्व तासों उपराजे ॥
पाँच तत्त्व सों देह सँवारी । तीनों गुण तामें अनुसारी ॥

देही गति काहू नहिं पावा । देह धरै यम काम सतावा ॥
आतमरूप रंग जिन जाना । प्रफुलित होय कमल विकसाना॥
हर्षित भयउ बुन्द जो ढारा । परै अगाध सिंधु मझधारा ॥
परतहि बुंद रंग सब छाजा । जलतरंग जल रंग विराजा ॥

साखी-यह गुण ज्ञानस्थितिहिके,जलतरंग उपजाइ ।
जलसों सब जग ऊपजो, जलधौं कहा समाइ ॥

चौपाई

नाम तत्त्वजल तत्त्वहि कीन्हा । अस्तुति जलहि रंगकर लीन्हा॥
जल ऊपरहि कूर्म उपराजा । कूर्मपीठि वाराह विराजा ॥
पीठ वराह शेष जो रहई । शेषहि फनपर पृथ्वी धरई ॥
कूर्म सुरति पुरुषकी अहई । उनको अंश कूर्म इह लहई ॥
महापुरुष आसन जहाँ आई । स्वासा शब्द पुरुष उपजाई ॥
बहुरि तेज पुरुष परकाशा । सुरके घर हो तेज निवासा ॥
आनँद रूप लोचन जब कहे । तेज हर्षपर घट हो चहे ॥
हरष तेज सूरय उतपानी । सो सब जगमें कीन्ह पयानी ॥
तेज अंग सूरय कर रूपा । शीतलता शशिके रसरूपा ॥
या विधि दो अंश उतपानी । धर्मदास लीजो बिलछानी ॥
अंग सूर्य शशि लयो बनाई । तेज हर्ष गुण उभय बताई ॥

साखी-कूर्म उदरसों प्रगट है, रहे जगतमें छाय ।
बिन सतगुरु नहिं पावही, कहे कबीर समझाय ॥

चौपाई

जो अज्ञान ज्ञान नहिं जाना । तासों भेद न कहब सुजाना ॥
बहे बाये मन थिर नहिं जेही । सार शब्द कहा करै सनेही ॥
स्वासासार पुरुष उपजाई । सुरहो श्वासहि समसर छाई ॥
समसर भेद जानि नहिं कोई । अग्र श्वास तेहि कहिए सोई॥

वहे गुप्त यह प्रकट बताई । यामें फर्क न जानहु भाई ॥
समसर पवन है सकल सुगंधा । ता बिन जगत आय सब धंधा ॥
गंध विगंध रची यह देही । समसर पवन सुगंध सनेही ॥
समसर अंग अग्रको आहै । समसर गहे पुरुषको लाहै ॥
अग्ररंग बाँए उपराजा । उनसों होत रंगको साजा ॥
रंग रेख सब उनसों होई । मृतकर रंग डार उन खोई ॥
रंग बाँएसे हरियल कीन्हा । हरियल रंग जात सब लीन्हा ॥
जीव जन्तु औ कीट पतङ्गा । द्रुम औ बेली सबके सङ्गा ॥
घास पात जिव सकल बिहङ्गा । हरियल राखो सबके अङ्गा ॥

साखी–यह नहिं होतो जगतमें, मरत सकल कुम्हलाय ।
ज्ञानहि अस्थित पुरुषकी, कहै कबीर समुझाय ॥

चौपाई

एहि वायु हरियर जो कही । हरियर वायु तुहांसों सही ॥
अकाशमंदिरमें कीन्ह निवासा । जेहि मंडलते उपजी खासा ॥
याविधि उपजन भौ सब ठौरा । संसारी भेद कहों कछु औरा ॥
कालफंद फाँसी बड़ डारी । तासों परै न वस्तु विचारी ॥
जब स्वासा साइँहि उठाई । मूल दीक्षा प्रथम कहाई ॥
जब बालकको दीक्षा दीजे । बीरा देकर अस्थित कीजे ॥
सार नाम तब देव लखाई । जरा मरण सुस्थित घरपाई ॥
जो निज करै नाममें बासा । जासो स्वासा नाम प्रकाशा ॥
बिना नाम कालकी फाँसी । दीक्षा मूल यही परकाशी ॥

साखी–मूल दीक्षा संग इह, लेहु संत चित लाय ।
धन्य भाग्य वा हंसके, नाम संधि जो पाय ॥
बिना शब्द संधी बिना, काहु न पाई बास ।
संधि नाम हंसा गहै, करै काल नहिं त्रास ॥

सत्य सुकृतकी रहनि रहि, गहृ अर्जमन नाम ।
कहै कबीर धर्मदाससों, सत्य शब्द परमान ॥
सत्य सुकृत लों मेंड़ है, ग्यान ध्यान धर धीर ।
शब्द अजानन है वही, सोई संत कबीर ॥
अजर अमर वह पुरुष है, सत्यनाम बँधि छोर ।
कहे कबीर धर्मदाससों, थाह शब्द शिरमोर ॥

चौपाई

अब मैं कहौं अकाश बिचारा । जिहि बिधि भयव तासु विस्तारा ॥
अकाश अंड मध्य जो रहेऊ । अकाश भेद बिरले जन रहेऊ ॥
अकाश अंग सो सब निर्मावा । शून्य मंदिरतें नाभी आवा ॥
पृथ्विअकाश योग अब कीन्हाँ। शब्द हेतु काहु बिरले चीन्हा ॥
तालमृदंग अकाशते होई । रहित शब्द पुनि सुनी समोई ॥
अकाशबीच असहोय गुजारा । बिना मृदंग शब्द झनकारा ॥
अकाश पेट अकाशहि चीन्हा । सुरति सुनी आकाशहि दीन्हा ॥

सखी--कहै कबीर अकाशगुण, बूझत बिरला कोय ।
लीलारंग अकाशका, सुनिनो सत्य बिलोय ॥

चौपाई

जो मंदिर अकाश नहिं देखे । तबलगि शब्द रहत अनपेखे ॥
पाँच अकाश तबै लखिपाई । जबै मंत्र गायत्री आई ॥

साखी—भेदाकाश गुण अधरहै, ज्यों लखि पावै कोइ ॥
नहिं अक्षर लखि आवही; पहुँचे निज सोइ ॥

मंत्र गायत्री

धर्मदास विनवे करजोरी । भाषों शब्द गायत्री डोरी ॥
भेद गायत्री बालकको दीजे । प्रेम सुफल बालकको कीजे ॥

यापर कीरत कैसे जाई । प्रकृति अंग मायाको भाई ॥
माया अंग अष्टांगी कीन्हाँ । अष्टांगी गायत्री चीन्हाँ ॥
येह शब्द हम कहो बुझाई । लीजो संतो शिरहिं चढ़ाई ॥
बारा योजन बुड़े जाइत्री । पल पल छूटे इहीठाँ गायत्री ॥
भ्रमनाको आगो यह टूटे । ब्रह्म कथौ हिरदय रस लूटे ॥
जार बार कालहिकर छीरा । करकर निर्मल अंग शरीरा ॥
बास अमरपुर शब्द संधाना । कहै कबीर काल पछिताना ॥

सम्पूर्ण

न्यास

रक्षा प्रथम न्यास जो करई । सुर गंधर्व न्याससों डरई ॥
कालजाल निज बंदन होई । निर्मल रहै काल कहँ खोई ॥
भूतहि प्रेत वीर वेताला । वायु बतास और सैताला ॥
साठ तीनसौ ऊखत कहिये । दृगन्यास कर एक न रहिये ॥

साखी–यह गुन दृग अन्यासके, कहै कबीर बखानि ॥
प्रथम रक्ष या कह पढे, बढ़ि हितचित पहिचानि ॥

चौपाई

दुष्टनको बंधन है येही । हंस मुक्त मन मुक्ति सनेही ॥
दृगन्यास प्रथम जो पढ़ई । तब रक्षा मन शब्दहि दृढ़ई ॥
दृग्न्यास बालकको चाही । संशै अंश रहित हो ताही ॥
यही शब्द मैं कहों बखानी । यही भेद बिरले पहिचानी ॥

साखी--उत्तम मध्यम अधम जो, सबहि करै निर्वाह ॥
दृगन्यासके येह गुण, कुशल क्षेम प्रवाह ॥

धर्मदास वचन

धर्मदास बिनती उठि कीन्हा । पुरुषहि भेदसकल हम चीन्हा॥
निश दिन चरण चित्त तव धरहू। अन्य उपाय सबै परिहरहू ॥

येहि वचन प्रभु कहो बुझाई । जाते काल दंड दुख जाई ॥
इंदुमती कह काल सतावा । रहि सचेत शब्द लखि पावा ॥
सो मोहि भेद बतावहु स्वामी । करहु कृपा गुरु अन्तर्यामी ॥

सद्गुरु वचन

धर्मदास भल पूछन कीन्हाँ । सो अब भेद तोहिकहि दीन्हाँ॥
रानी काल कीन्ह जब त्रासा । तब हम शब्द कीन्ह परकाशा॥
साधु संत सेवा चित धरहीं । भक्ति प्रेमबहु बिधि सों करहीं॥
हमहिं छोड़ि नहि जाने दूजा । कुलकरनीकी छाँडें पूजा ॥
तजि कुल करनि अमरपदपावा। येही सात नाम चित लावा ॥
तोसों शब्द विरहुली भाखी । तव कारण हिरदेमें राखी ॥
येही शब्द लेहु शिर मानी । मनसा वाचा निश्चय जानी ॥

विरहुली

आदि अन्त तब न हते बिरहुली। भूमि अकाशहु न हते बिरहुली॥
तब विष नहिं अवतार बिरहुली। विषकीक्यारितुमबाहिबिरहुली॥
बिषका कीन्ह अहार बिरहुली । सवा लक्ष पर्वत थे बिरहुली ॥
तहाँ विषको अवतार बिरहुली । गड़िगड़िशंकर बोइ बिरहुली ॥
पर्वति डारेउ पानि बिरहुली । सोविष संतहि खाइ बिरहुली ॥
विष माटि होय जाय बिरहुली। मउरी संसय करिय बिरहुली ॥
आफूयों हरतार बिरहुली । सबसों शब्द निरंत बिरहुली ॥
भागु विषपैठि पता ल बिरंहुली। बनहि कंदविषविकल बिरहुली॥
पोस्त धतूरा भाँग बिरहुली । गुरु बचन धरि बाँध बिरहुली ॥
विष न संचरे अंग बिरहुली । उदमदविष मदराज बिरहुली ॥
यह विष बिरलैसम्हार बिरहुली । जब नहिं स्वर्ग पताल बिरहुली॥
तब विष नहिंअवतार बिरहुली । दूत भूत सब भगे बिरहुली ॥
जहां बसे साधू संग बिरहुली । भोगा कीयो तें कहां बिरहुली ॥

कहाँ ये डसवत आये बिरहुली । साखी नामकी चले बिरहुली ॥
सब दुख तुरत नशाये बिरहुली। नामकी कहाउतपाति बिरहुली॥
सबहि तुच्छ कह जाय बिरहुली। वचनादिके अकार बिरहुली ॥
मन विष दूरि पराय बिरहुली । तनसों दूरि ह्वै जाय बिरहुलीं ॥
शब्दसुनत विष जाय बिरहुली। हरि प्रकटै संसार बिरहुली ॥
साहिब कीयो संसार बिरहुली । दूत भूत सब हारि बिरहुली ॥
पहुँचे सत्य कबीर बिरहुली । भई यम जिय पीर बिरहुली ॥
इन तन बिष न समाय बिरहुली । उत्तर रानी पाय बिरहुली ॥
उठिके आसन दीन्ह बिरहुली । विरहुली दुःख नशाय बिरहुली॥
वार वार शिरनाय बिरहुली । कबीर गुण गाय बिरहुली ॥

## बिरहुली संपूर्ण

### धर्मदास वचन

धर्मदास फिर विनती करहीं । सतगुरु चरण शीश पर धरहीं॥
अब प्रभु कहिए लोक सरूपा । दीन दयाल कृपाल अनूपा ॥

### सद्गुरु वचन

धर्मदास मैं कहों बुझाई । विना भेद लोके नहिं जाई ॥
अंधी सुरति शब्द बिन जानौ । लोक दीप कैसे पहिचानौ ॥
शब्द पाय जब सुस्थिर होई । थान मुकाम लखै पुनि सोई ॥
जो लखि पावै थान मुकामा । सुरति चलै तब पावै नामा ॥
विना नाम नहिं ठौर ठिकाना । अंध सुरति हो रहे ठगाना ॥
सोहंगत सब छहौं बखानी । एक चित्त ह्वै गहे जु प्रानी ॥
पुहुप दीप सब दीप निवासा । छब्बिस दीप रचौ तेहि पासा ॥
कंचन दीप पाहु पर सोहै । रत्न अनूप कोटि रवि मोहै ॥
तहां पुरुष पर कीर्ति विराजै । उत्पति प्रलय तेहिपर छाजै ॥
लीलगर दीप पुरुषको वासा ।जहां पहुँचे न कालकी त्रासा ॥

कालहि गमी वहाँ नहिं आवै । सहज पुरुष जहाँ बैठि रहावै ॥
विनती सहज कीन्ह कर जोरी । जीवन बंध वेगि प्रभु छोरी ॥
बीज शब्दमें सोहं वीरा । यह उत्पति गुरु कहै कबीरा ॥
यहाँ गमी कोऊ नहिं पावै । जहाँ लीलगर द्वीप रहावै ॥
तहाँ सुजन जन बैठे ज्ञानी । सत्य सुकृत दोई अगवानी ॥
अब मैं कहौं दीपकर लेखा । जाविधि रचिव रंग औ रेखा ॥
बीज शब्दमें सोहं बीरा । ये उत्पन्न सुन धरौ शरीरा ॥
जगमगज्योति सदा उजियारा । शब्दरूप काया कर प्यारा ॥
शब्दहि हेत वचन है वोटा । रत्न शिला चहुँ दिशि है कोटा ॥
लोक नाम है लोक अनन्दा । उडगन महँ सोहत जस चन्दा ॥
आस पास कंचनकी बारी । हीरा लाल रत्न अवतारी ॥
कहा कहों मंदिर कर रेखा । खम्भा कंचनके आहि विशेषा ॥
सिंहासन अति तहाँ विराजै । कंचन जडित लाल बहु छाजै ॥
लागै कोटि वहूँ दिश रूपा । चन्द प्रकाश ही जान स्वरूपा ॥
तेतिस कोटि सूर्यकी पाँती । बीच बीच देखो अस क्रांती ॥
तापर सोहत अधर अटारी । हीरा मोती बहुत सँवारी ॥
ता ऊपर शोभित कस रेखा । कोटि रत्न दमकत जनु लेखा ॥
मोतिक चौक पूर जनु डारी । शोभित चौक कलित विस्तारी ॥
ता ऊपर जु रंग अस सोहै । मानहु रत्न मणी मय होवै ॥
जगर मगर सोहै उजियारी । उपमा बरण सके को प्यारी ॥
बहुत हि उपमा को कह दीजे । कोटिन भाग सूर्य शशि कीजे ॥
पालँगरूप काकहिके बखानी । हीरा रतन बीच बिच खानी ॥
सेजरूप शोभित शशि खानी । चन्द्र सूर्यकी ज्योति छिपानी ॥
चन्द्र सूर्य नाहीं वह तारा । नाहिं रत्न कञ्चन महि भारा ॥

साखी—ज्ञानस्थितिके येह गुण, पुरुष रूप उजियार ।
पलमें इच्छाते भए, लोक दीप विस्तार ॥

चौपाई

तहाँ पुरुषने सेज बिछाई । चन्द्र सूर्य जहाँ रहे लजाई ॥
तिलभर सिज्याको परवाना । सोहं सुरति अभयपद ज्ञाना ॥
तहवाँ पुरुष करहिं आनन्दा । जिनसों अमी भए सब छन्दा ॥
तहाको बरन कहे को भाई । लक्ष जीवसों नाहिं कहाई ॥
अमर चीर सोहं अस अंगा । सूर्यमणीसों अधिक सुरंगा ॥
यही व्रत हंसनको भाई । पुरुष रूपको कहैं बनाई ॥
शोभा कहो दोऊ कर पानी । चन्द्र सूर्यकी ज्योति छिपानी॥
सर्व वरणको कहो बुझाई । उभे सूर्य मानो उमगाई ॥
दंत सुरंग शोभित अति भारी । मानो मणि बत्तीस विचारी ॥
भालरूप का कहों बखानी । चन्द्र किरण मानो लपटानी ॥
इक २ चरित वरणि नहि जाई । मानहु सुकृत सत्य उमगाई ॥
अधर नासिका सोहत कैसा । उभय हंस बिहरत हैं जैसा ॥

साखी—बरणन सबका याहको, मोसों कहो न जाय ।
उपमा केहिको, दीजिये, पटतर नाहि दिखाय ॥
सूरय होय समुद्र भर, भू अकाश भरि चंद ।
तबहु न पटतर पाइये, पुरुष वदन आनंद ॥
राई भर वह वस्तु है, अधराई अस्थूल ।
लहर लहर घटमेंकरै, वही पुरुष निजमूल ॥
इह गुण ज्ञानस्थितिहिके, कहे कबीर समुझाइ ।
पुरुष ध्यान जबही करै, सब दुख जाय पराइ ॥

धर्मदास वचन

धर्मदास तब बिनती ठाना । दीन्हों मोहि मुक्ति फलदाना ॥
साहेब कहिए मोहि बखानी । सत्ताइस दीप कहो बिलछानी॥
दीपनको कहिये मोहि लेखा । जामें परचे शब्द विवेका ॥

धर्मदास जो पूछिअ आई । सो अब कथा कहो समुझाई ॥
पुहुप द्वीप जहाँ पुरुष रहाई । अलोप दीप तासों कहि भाई ॥
आस पास है छब्बिस दीपा । तहाँ पुरुष रहै अधर समीपा ॥
तीन दीपनको नाम बखानों । धर्मदास मनमों बिलछानों ॥
अजर द्वीप पुरुषके पासा । कुसुम दीप सतगुरु निवासा ॥
अमरदीप सुजन जन जाना । सुमन द्वीप अब कहौं बखाना ॥
सहस्र नेत्र द्वीप सुनि लीजे । अलोक द्वीप सुनिके चितदीजे ॥
कंचन दीप बखानों आई । कंचन दीप सुनो चितलाई ॥
सुरजन द्वीप कहौं सम्भारा । अजर द्वीप निर्मल उजियारा ॥
हेत द्वीप सुनियो चितलाई । लवंग द्वीप द्वीप अति छाई ॥
अबहि निरक्षर कहिये द्वीपा । कमल द्वीप तहँ पुरुष समीपा ॥
अंबु द्वीप बहुत उजियारा । सुरति द्वीप अब कहौं पसारा ॥
भिरत द्वीप सोही जन जानै । निग्रह द्वीप करै पहिचानै ॥
श्वेतद्वीप समझो हो ज्ञानी । निश्चित द्वीपमों जाय समानी ॥
सुस्थिर द्वीप चित्त जो राखा । कीरति द्वीपकरे अभिलाषा ॥
अकृत द्वीप आहि उजियारा । अक्ष द्वीप मह शब्द पसारा ॥
द्वीपचंद्र मन कहौं अनन्दा । पतंग द्वीप उमगै रवि चन्दा ॥
कुरञ्ज द्वीप धर्मनि लघु जानी । सताइस द्वीपके नाम बखानी ॥

साखी—इतने द्वीपक गुप्त हैं, कोइ न जानत नांव ।
कहैं कबीर धर्म दाससों, सोई ठांव लखाव ॥

चौपाई

धर्मदास तुम सबै बिचारा । सार शब्द नाहिं अनुसारा ॥
जब लगि सार शब्द नहिं होई । तौ जिय केता जन्म बिगोई ॥
काम कपाल भोज बसु नारी । सो साधू जिन नाम सँभारी ॥

इकोत्तरसे पुरुष तर जाई । इहि विधि रहन गहे चितलाई॥
नारि पराई चित मन देही । जन्म सात कुष्ठी कर लेही ॥
नारि पराई अंग छुवावै । कशमल लगै तत्त्व घटि जावै॥
लाख वर्ष रहैं भूतकी खानी । भुगते नर्क घोर सो प्रानी ॥
बिना शब्द जो भुगवहि नारी । तो सब परै कालकी वारी ॥
बिना शब्द निरञ्जन लीन्हाँ । ताते पुरुष माथ पुनि छीन्हाँ॥
नर्कहिकी कहा बात जु कहिये । सुर नर सबै काम वश रहिये॥
धर्मदास सुनि लीजे हमसों । उत्पति सकल कही हम तुमसों॥
राजा युग घिर पास मैं गहिऊ। बालकरूप तहां पुनि रहिऊ ॥
घरन कुमार तासकी रानी । प्रीतभाव बहु सेवा ठानी ॥
पुत्र भाव उन हमकह जाना । कपट भाव नहिं तजौं निदाना॥
ज्ञान पुण्य वे बहुतहि करहीं । राज गुमान गर्व अति धरहीं ॥
शब्द हमार नहीं उन चीन्हाँ । कुंजर देह जायसों लीन्हाँ ॥
कनक सिंह तिनके सुत कहिये । राज तिलक उनके शिर रहिये॥
भाग्यवन्त भयेऊ बड़ राजा । पिता पीड करही सब साजा ॥
बहुतक दिवस तहां चलि गयऊ। एक दिवस कौतुक अस भयऊ॥
आधी रात बीति गइ जबही । राजा स्वप्न दीन्ह पुनि तबही ॥
कुंजर देह धरै तब आवा । कनक सिंह कहँ स्वप्न जनावा ॥
अहो पुत्र सुनु बचन हमारा । यहि घर आय तू सिरजनहारा॥
भ्रातारूप उन्है जिनि जानौ । सतगुरु आप लेव परमानौ ॥
जब तुम भक्ति करो चितलाई। कुंजर देह छूटि मम जाई ॥
चटपट परत राति नियरानी । मीन करत जो पानी पानी ॥
प्रात आइ पद शीश लगाऊँ । हम नहिं चीन्ह तुम्हारा भाऊँ॥
चूक परी हमसे गुरु सांई । मरम तुम्हार चीन्ह नहिं पाई ॥
भ्रातारूप हम तुम कह जाना । तुम तो ब्रह्म आहु निरवाना ॥

पिता हमार कुंजरहि भयऊ । आधी रात खबर मोहि दयऊ॥
क्षमा अपराध कीजिये स्वामी । कृपा सिंधु हौ अंतरयामी ॥
साहब दया करौ अति भारी । सकल जीव हैं शरण तुम्हारी॥
दाया करि दीजै वर सोई । जाते आवागमन न होई ॥
जिहिमो होय मोर निस्तारी । सो प्रभु करिहों तब बलिहारी॥
तब हम उनपर दाया कीन्हा । संधिक नाम उनहि कह दीन्हा॥
विधिपर भक्त कीन्ह चितलाई । धनकर मनकर तनकर भाई ॥
सतरहसै रानी परवाना । कर्मनि काहु कहा नहिं माना ॥
कइक उहागिल हती जो रानी । सोउठि चली शब्द पहिचानी॥
सकल रूप कर चली सिंगारा । भक्ति हेत कारन पग धारा ॥
लीलावती नाम तिहि केरा । सो हम जीवन कीन्ह उबेरा ॥
सोरह रानी सत्रहों राजा । पहुँचे लोकहि पुरुष समाजा ॥
सोई कथा कुंजर मों आई । धर्मदास परखो चित लाई ॥

साखी--यह गुन ज्ञान स्थितिहिके, सेव शब्द निजसार ।
या विधि हंस करनी करै, उतरै भवजल पार ॥

सजेको शब्द

साखी—अक्षय नामके सेजपर, हंसा पारस दीन्ह ।
कालमें यम लूटिके, हंस आपन कर लीन्ह ॥
अक्षय सुख सेज आदी बानी । जापर हंसा पारस आनी ॥

साखी--जो हंसा पारस परसि, कहे कवीर सत बोल ।
ताकहँ चोर डहके नहीं, युग २ आहि अमोल ॥
ते हंसागये अमर लोककहँ,अक्षय अंक हमपारसलीन्ह।
कहै कबीर सतलोक बैठिकर; जीमें चीन्होती दीन्ह ॥

धर्मदास वचन-चौपाई

धर्मदास चित सेवा ठाने । दोइ कर जोरि चरण लपटाने ॥

कठिन बेद साहेब तुम कहेऊ। जीवन मर्म न काहू लहेऊ॥
ब्रह्मा विष्णु शंकर मिलि भाई। अलख निरंजन ध्यान लगाई॥
सुर नर मुनिकी कौन चलावै। पचि २ मरै पार नहिं पावै॥
तवन भेद साहेब मोहि दीन्हाँ। हंस उबारि लोक कहँ लीन्हाँ॥
अब प्रभु मोही कृतारथ कीजै। लोक दिखाय दरस प्रभु दीजै॥
यही देहसों लोक दिखावो। हे दयाल मम तृषा बुझावो॥
चित चकोर तब होइ अनंदा। दिखे अघाइ लोक सुठि चंदा॥

साखी–धर्मदास विनती करै साहब सुनो चितलाय।
जबही मम संतोष होई, पूरुष दर्श दिखाइ॥

चौपाई

सद्गुरु वचन

तब साहेब कहि बचन प्रमाना। धर्मदास तुम मन पतियाना॥
तुम जग पंथ चलावहु जाई। हमकह चिह्न पुरुषकह पाई॥
हमहि पुरुष कछु अंतर नाहीं। सुरती छाया संग रहाहीं॥

धर्मदास वचन

धर्मदास न्यौछावर कीन्हाँ। भये कृतारथ दर्शन दीन्हाँ॥
अब साहब मोहि लोक दिखाऊ। तुमहि छांड़ि दूजा नहि भाऊ॥
बिनदेखे सुस्थिर नहिं होई। कृपा करहु निज राखो गोई॥
जैसे कृपण द्रव्यकी आसा। बिन पाए बहु होवै त्रासा॥
दरस करत तन तपत बुझाई। जैसे रंक महानिधि पाई॥
बिन देखे व्याकुलचित भारी। पुत्र मरे जिमि मात दुखारी॥
दरश विना नाहीं चित लागा। हे प्रभु मोकहँ करहु सुभागा॥

सद्गुरु वचन

धर्मदास भाल कीन्ह विचारा। अब तुम बचन सुनौ टकसारा॥
काया अवधि पुरी जब आही। तब लेजाव पुरुषके पाही॥

सुरति शब्द डोरी दृढ धरहू । छूटै देह तर्स तब करहू ॥
तब लगि पंथ चलावहु जाई । दृढता मानि करौ गुरुवाई ॥
मिथ्या वचन तुमहिसों करिहे । यमकी डगरि जाय सो परिहे ॥

धर्मदास वचन

मूर्छित होइ चरण चित लागे । जल बिन मीन प्राण जिमित्यागे ॥
बिन देखे नहिं होय अनन्दा । चिडिया व्याकुल है अतिफन्दा ॥
तुम साहेब अस बचन उचारा । कंप्यो जीव त्रास भवसारा ॥
हम दरशन बिनु हैं अति चोरा । तुम प्रसाद हम पाइत वोरा ॥
अंतरध्यान भए प्रभु जबहीं । सात दिवस बीते पुनि तबहीं ॥
सात दिवस लग अन्न न पाया । कबीर कबीर ध्यान मन लाया ॥
सद्गुरु दया करी चित लाई । कच्छ देशते तब चलि आई ॥
कच्छ देश जब कीन्ह पयाना । अलीदास धोबी पहिचाना ॥
नाम पान ता कहँ समुझाई । धर्मदास कह आन जगाई ॥
छोड़हु हठ चित शब्द विचारौ । पंथ चलावहु हंस उबारौ ॥
जीवन अपनी बाँह चलावो । दै परवान हंस मुक्तावो ॥
तुम सब हंसनको सरदारा । जीव उबारि जाय दरबारा ॥
देही सहित जान तुम चाहौ । देह धरै कैसे निर्बाहौ ॥
लोक बैठि तब करिहौं राजी । काग कालकी टोरहु बाजी ॥
अपनी संशय तुम मत धरहू । जीव उबारनकी सुधि करहू ॥

साखी—देह धरेका यह गुण, देहसहित नहिं जाव ।
सुखसागर तबहींमिलै, सुरति शब्द लौलाव ॥

चौपाई

धर्मदास उठि बिनती कीन्हां । नामसंधि साहब मोहि दीन्हां ॥
लोक दीपकी सुनी बडाई । ताते दरश परश चित लाई ॥
जब लगि नाहीं देखौ नैना । तब लगि नहिं पतियाहूँ बैना ॥

अन्तर ध्यान बहुरि प्रभु भयऊ। धर्मदास बिलखत मन भयऊ॥
रुदन करत फिरै बिलखाता। कहुँ ना देखे साहब गाता॥
मोहि अपराधी कस प्रभु छांड़ा। विरह ज्वाल जरही मन भांड़ा॥
हौं अपराधि करम कर हीना। साहेब तरस परै नहिं चीन्हा॥
बिन देखे नहिं जियत न आऊँ। गुरुचरणामृत बिन पछताऊँ॥
अपना दास दास प्रभु कीन्हां। अग्रिम पदारथ हम कह दीन्हां॥
अब साहेब मोहि दर्शन देहू। तुम बिन कासो करब सनेहू॥
दिवस आठ अन्नहि बिन बीता। बिना कबीर जीव नहिं जीता॥
या विधि बारह दिन हो गयहू। तब साहब फिर दर्शन दियहू॥

साखी–सजिव भये निर्जीवते, अति अनन्द उर बाढ़ि।
धर्मदास मन हर्ष भा, सुख अनन्द हिय गाढ़ि॥

चौपाई

धर्मदास बिनती तब लाई। इतने दिवस दरस बिन जाई॥
हम तो भ्रमर कमलके बासी। जल बिन मीन सूरतिज्यों प्यासी॥

सद्गुरु वचन

तब साहब अस भाखब बैना। अब तुम देखो अपने नैना॥
देखहु धर्म निरूप हमारा। हमही छांड़ और चित धारा॥
हिरिणिरूप धरो प्रभु तबहीं। कोटिन भानु छिपाने जबहीं॥
येहि रूप है आदि हमारा। हठ निग्रह जिन करब बिचारा॥
जब तुम इतना कीन्हा उपासा। तब कह दरस पाइ हम पासा॥

धर्मदास वचन

भये कृतारथ दर्शन लीन्हा। धर्मदास न्यौछावर कीन्हा॥
बहुरि दास उठि पायन परही। चरण टेक बिनती अनुसरही॥
जबसे पावब नाम तुम्हारा। तबसे सुनब लोक व्यवहारा॥
अब मनसौं अभिलाखा येही। सोक दिखावहु पुरुष विदेही॥

मो कह लेहि चलौ प्रभु तहवां । सत्य लोक पूरुषही जहवां ॥
बिन परिचय नहिं मन पतियाई। बिन दर्शन नहिं सुरति दृढ़ाई॥
तुम प्रसाद पाइब मैं भेदा । अब परसौ चित अमृत केदा ॥
सत्यलोक परसौ उजियारी । मैं अब बलि २ जाऊँ तिहारी॥

साखी–यम बंधन सब काटिकै, हंस लगावहु तीर ।
धन्य भाग्य वा हंसके, कहि नाम कबीर ॥

सद्गुरु वचन चौपाई

तब साहब चित पाया आई । चलहुँ वेग मैं दर्श दिखाई ॥
प्रथमहि करौं नासिका बारी । फिर रक्षा मन है रखवारी ॥
पैठै नाहीं काल शरीरा । बहुरि कठिन होवे तब पीरा ॥
जब तुम करहू अग्र सनेहा । शब्द संधिसौं राखो नेहा ॥
उन मुन कर पवनहि अवराधौ। उलटे ते सुलटा करि साधौ ॥
सोहं सोहं होइ सवारा । छोडहु देह चलो दरबारा ॥
चले जो हंस पवनके तेजा । पहुँचे निमिष मांह जहां सेजा ॥
पलँग साठ राह हम कीन्हां । साहिब खैंचि पलकमों लीन्हां ॥
राह माह एक नाचहि दूता । शब्द बान मारेय अजगूता ॥
छिनमें साहब लैगये तहँवा । पुहुप दीप पूरुष रह जहँवा ॥
सुरजन पीप जाइ भे ठाढ़े । देखत दरस हरष अति बाढ़े ॥
धर्मदास सत बिनती कीन्हीं । साहब सुरति घटहिमों चीन्ही ॥
लेकर सुररति चले पुनि तहां । हंस सुजन बैठे जहां ॥
करी प्रणाम दण्डवत कीन्हां । हंसन कुशल पूछि सब लीन्हां ॥
केहि बिधि तुम रक्षा मन आयहु। कौन शब्दसों अमृत पायहु ॥
यमको जोर पहुँचत है प्रचण्डा । कैसे कढ़ि आये नव खण्डा ॥
कौन प्रसाद पाय तुम भाई । कौन वस्तु बल इहवां आई ॥
पिछली सुरति कछू तुम आनो । रक्षा हंस आप कह जानो ॥

धर्मदास तब वचन प्रकाशा । आये इह कबीरकी आशा ॥
नाम संधि उन मोहि दृढाई । तिहि प्रसाद सेवा तुम पाई ॥
आरतीकर परवाना पावा । काल फाँस सबहीय नशावा ॥
सुरति निरति भूल गये जब ही । भवसागरमों ठाढे तब ही ॥

साखी–लोक वेद सब भूलिहू, भूला आपनु भाव ।
बलिहारी सतगुरुनकी, जो ल्याये इहि ठाव ॥

चौपाई

तबहि सुजन जन पूछी बाता । कहिब कहा है हमरे भ्राता ॥
तुमरे दीप माँहि वे ठाढ़े । हम पूरन उनहीके बाढ़े ॥
तब सुरजन जन आये तहँवा । आइ कबीर बैठे हैं जहँवा ॥
चरण लगाइ अंकमहँ लीन्हां । भले गुसाँई दर्शन दीन्हां ॥
सिंहासन साहब बैठारी । सुरजन हंस विराजे भारी ॥
आज्ञा साहब दीन्ही जबही । धर्मदास ठाढे भये तब ही ॥
पुरुषहि तबहि वचन उचारा । सुकृत अंश लावो सठिहारा ॥
आरति साजि हंस सब आये । चलिए सुकृत पुरुष बुलाये ॥
तब सुकृत चित आये तहँवा । पुहुपदीप पूरुष रहि जहँवा ॥
पुहुपदीप नहिं बरनो जाई । जगमगज्योति सदा अधिकाई ॥
दामिनि दमक होय अति भारी । कोटिन भानु जाय तहाँ वारी ॥
हंस जाय तहां करै अनन्दा । कालजाल व्यापै नहिं फन्दा ॥
पंख बेहु नभचर तहां फिरही । अगिन बेहुते दीपक जरही ॥
बिन करताल मृदंग जो बाजे । चित्र विचित्र बीन कर छाजे ॥
बीना सुर तहाँ शब्द पुकारा । बीना श्रवण सुनत झनकारा ॥
बिना नालके कमल अनूपा । तामध्ये है पुरुष स्वरूपा ॥
करतहि दरश हरष उर आनी । सतगुरुबचन सत्य कर मानी ॥

साखी–अति अनंद उर ऊपजो, बाजत अनहद तूर ।
हीरा लाल मणि जग मगे, अमृत शोभा भरपूर ॥

चौपाई

धर्मदास मन भये अनन्दा । जिमिरविदरश फूलि अरविंदा॥
शोभा दरश हरष अति भाऊ ।उभयसुरखगतिबरणि न जाऊ॥
तब सुरजन जन जाइ जनावा । साहेब धर्मदास यह आवा ॥
इच्छा अधिक करै दर्शनको । पुरुष चरण हियमो परसनको॥
ये दोइ रूप तुमहि उतपानी । सद्गुरु सुकृते नाम बखानी ॥
तब ही पुरुष बचन फरमाया । सुरजन हंस जबै बुलवाया ॥
लेहु बेगि सुकृत तुम अंशा । पुरुष दरश करीब निःशंसा ॥
दंडवत अष्टांगहि कीन्हाँ । धर्मदास आगे पग दीन्हाँ ॥
पायर दीप ठाढ़ भै जब ही ।अमृतकला देखत भै तब तब ही॥
पर धर्मदास हि मुरझाई । देखि रूप अब मति अधिकाई॥
कोटिन कला सूर्य औ चन्दा । हीरा रतन गिनै को गन्दा ॥
जगमगज्योति अधिक तहाँ राजे । चितवनदृष्टि डगत गुनराजे ॥
दृग संपुट अंबुज सम आही । दरशहरशछबिहियहि अघाही॥
आनन्दरूप मूरछा आई । तब सुरजन तन कीन्ह उठाई ॥
सुचित चित्त होऊ धर्मदासा । आभारूप करि शब्द निवासा॥
उठिकर बाह निछावर करही । शीश नवाय चरण रज धरही ॥
दंड प्रणाम कीन्ह बहुभांती । सीप अघाइ पाइ जिमि स्वाती॥
तबहि पुरुष अस आसन दीन्हाँ । शब्द सहाय हमही तुम चीन्हाँ॥
तब सुरजन जन बचन उचारा । सुकृत अंश कीन्ह दीदारा ॥
पुरुष दीन सिंहासन टारी । हंसहिरम्मर बैठो झारी ॥
पुरुष तबहि यह वचन उचारा । केहिके अंग आहि दरबारा ॥
धर्मदास कैसे तुम आये । को वहियां जिनधरि पहुँचाये ॥
काहेके बल कालहि जीता । कौन शब्दसे राखब प्रीता ॥
तब सुकृत बिनती अनुसारी । साहब बचन प्रीति उर धारी ॥

ज्ञानी अंश शब्द मोहि दीन्हा । उनकी बाँह गौन हम कीन्हा ॥
करता देत छेकि जब बाटा । शब्द बाँह श्रोता कह काटा ॥
कालहि जीति अंशलै आवा । उनकी बाँह दरस हम पावा ॥
सुरजन अंश वचन उच्चारा । सुकृतघटमें कबि सम्हारा ॥
देखहुँ लोकहि दृष्टि पसारी । ज्ञानी अंश कहां अनुसारी ॥
कौन दीप कहवाँ अस्थाना । कौन रूप ज्ञानी कर जाना ॥
धर्मदास घट कीन्ह विचारा । पुरुष वचन दृष्टि उजियारा ॥
लोक दीप देखो सब ठावा । ज्ञानी अंश नजर नहिं आवा ॥

साखी–लोक दीप सब देखिया, अंश नजर नहिं आय ।
पुरुष कबीर घट एकहै, दूजा नहीं लखाय ॥

चौपाई

धर्मदास दुबिधा बिलगाना । पुरुष कबीर एक पहिचाना ॥
रूप रेख सब एकहि देखा । दूजा भाव अन्य नहिं लेखा ॥
धर्मदास तब चकृत भयऊ । पुरुष कबीर एकही भयऊ ॥
कीन्ह बन्दगी शीस नवाई । क्षमा अपराध कीजिये साँई ॥
तुम प्रभु आप अवसर नहिं कोई। बकसहु चूकि मोर कछु होई ॥
ब्रह्म अखंडित अन्तर्यामी । कृपासिंधु प्रभु पूरण स्वामी ॥
लज्जावान अविगति अविनाशी। लोक दीप सब कीन्ह प्रकाशी॥

पुरुष वचन

धर्मदास तोहि दाया कीन्हाँ । अवगति रूपदरश हम दीन्हाँ॥
ये दोइ कला भिन्न नहिं जानो । पुरुष कबीर एक पहिचानो ॥
एक रूप हम हंस उबारा । एक रूप त्रैलोक मझारा ॥
तुम्हरे शिर जीवनको भारा । भवसागरके तुम कढ़ियारा ॥
यासे परखो दीन्ह बताई । यह रमती घट देवरि गाई ॥
जो तुमरे घटते नाहि जाती । तो सब जीवन माँह समाती ॥

यह दुरमत मनमहँ जो धरही । फिर २ भवसागरमों परही ॥
पुरुष कबीर एक जिन जाना । हंस हमारा सोइ पहिचाना ॥
के काल निकट नहिं आई । नाम कबीर कहो चितलाई ॥

साखी—अब तुम जाइब जगतमें, हंसन करो उबार ।
हंसराज तुम अंश मम, भुगवो सुखहि अपार ॥
प्रलयकालके अंतमें, जीव जन्तु सब तार ।
दरस परस सब मिलि करे, अस्थिर रूप अपार ॥

चौपाई

पुरुष रूपसे ज्योति निकारा । नाम कबीर देह तब धारा ॥
धर्मदास ढिग बैठे आई । जौन रूप धरि गये लेवाई ॥
चीन्हो सुकृत रूप हमारा । अब तुम घटमें भव उजियारा॥
चलहु बेगि जिन लावहु बारा । जीवनाथ देव टकसारा ॥
चले सुकृत तबही शिरनाई । ज्ञानी लीन्हे संग लगाई ॥
निमिष एक नहिं लागी बारा । पहुँचे सहज शून्य मझधारा ॥
धर्मदासकी काया जहँवां । पहुँचे ज्ञानी आये तहँवां ॥
चारी दूत देह ढिग आवा । पैठन केर उपाय लगावा ॥
घटमें पइठि देह ले जाऊ । धर्मदास फिर कहँवां आऊ ॥
साहब शब्द बानसे मारा । दूतहि मारि हंस पैठारा ॥
धर्मदास कहा महँ जागा । रोम २ आनंद बहु पागा ॥
गुरु कबीर कह निज कर चीन्हां। तन मन धन न्योछावर कीन्हां ॥
बहुत अनन्द कीन्ह गृह मांहीं । चरण शरण मन लीन्ह सदांहीं॥

साखी—यह गुण ज्ञान स्थितहिके, कहै कबीर विचार ।
धर्मदास दीदार करि, आए जगत मँझार ॥

चौपाई

धर्मदास हियमें अति हर्षे । गद्गद गिरा नैन जल वर्षे ॥

मम हिय तिमिर आहि अधियारा। महर पतंग कीन्ही उजियारा॥
मन अहि तपत कबहुँ नहिं धीर । वचन अंग शीतलमलयागीर॥
तेहिपर सत त्रिय ताप बुझानी । अमी असन त्रियत्रिपतअघानी॥
पायउ दरश कृतारथ आजू । दरसन देखेव हंस समाजू ॥
अब गुरु मोकहँ देव लखाई । पुहुप द्वीप कैसे निरमाई ॥
अंबुद्वीप कौन विधि भयऊ । धर्मराज कैसे निर्मयऊ ॥

सद्गुरु वचन

धर्मदास पूछी भलवानी । सो सब कथा कही बिलछानी॥
पुरुष विदेही देह निमासा । श्वासा सारते पुहुप प्रकाशा ॥
सत्रह शंख पंखुरी कीन्हाँ । ताहि मध्य वासा प्रभु लीन्हाँ॥
अंबुदीप तबही जो कीन्हाँ । सहज पुत्र कह बैठक दीन्हाँ ॥
सवा शंख पँखुरी राजै । जग मग शोभा तहां विराजै ॥
आठ पुत्र तहँसे उतपानी । तिनसों आठों सिद्धि बखानी ॥
जोति सरूपी पाया आई । ज्योति रूपके काल बनाई ॥
उतपत करै प्रलय संहारा । तउना उपजै काल अहारा ॥
सहज धर्मसों गुण परकासा । ज्योति सरूपी ज्योति निवासा॥
धर्मरायको बल परकाशा । माया जाल जीव सब फाँसा ॥
आपुन रहियब सुनी मझारा । वहाँ बैठि सब कीन्ह पसारा ॥
पुहुप दीप आवन नहिं पावा । जानै साहब नाहिं रहावा ॥
धर्मराय माया उपजाई । ज्योति स्वरूप जीव अरुझाई ॥

साखी—पुरुष पार नाहीं लहेउ, अटके ज्योतिहि मूर्ति ।
ज्योति भई है प्रकृतितें, प्रकृति बनी है सूर्ति ॥

चौपाई

इह कारण वह दीप सम्हारा । धर्मनि पाव वही बैठारा ॥
पुहुप दीप जब सिरजन लीन्हाँ। समसर पवन वास तहँ कीन्हाँ॥

ज्योति ओट यह बोलत बानी । सबको जानै पुरुष निसानी ॥
काल दुष्ट जीवन छलि राखा । ज्योतिहिओट वचनमुख भाखा॥
उत्पति प्रलय याहिसों भयऊ । भूल भुलाय सबनको दयऊ ॥
पुहुप दीपको सुमिरन करई । ज्योति स्वरूप नहिं सो परई॥
साखी--इह गुन ज्ञानस्थितहिके, पुहुपदीप अनुसार ।
एहि दीप बासा करै, आवा गवन निवार ॥

चौपाई

पुहुप दीपमें समसर कीन्हाँ ।समसर पवन श्वास तहाँ लीन्हाँ॥
अमर वासना येही आहै । इहँहि बैठि सब करी कथा है ॥
थाह न जानत मूढ़ गवाँरा । लुब्ध रहेव जयमाल पसारा ॥
पुहुपदीपको सब दीप निवासा । जहाँ वह पारब्रह्मकर बासा ॥
येहि शब्द तुम लेव बिचारी । पुहुप दीप कीन्हां बहु बारी ॥
पुहुपदीप दीपनमें सारा । जो बूझे सो उतरहि पारा ॥
साखी—येहि सुरति ले राखहु, पुहुप दीपके पास ।
सत्य पुरुष जहाँ आप है, अमृत सिंधु निवास ॥

चौपाई

तहँको हंस करहिं पैठारा । जब मिलि है सद्गुरु कड़हारा॥
हंस जाय पुरुषहिं दरबारा । अविचलनामकोमरहि सम्हारा॥
सत्य कमलपर बैठक दीन्हा । बैठे हंस अतिहिं सुख लीन्हा ॥
सुधा अहार अमर भे काया ।आदि नाम अविचल मन भाया॥
कोटिन कोटि दंडवत लीन्हा ।धनि सत्य सुकृत नामजो दीन्हा॥
पुरुष शब्दजिनि आपु बतावा । आवा गौन रहित घर पावा ॥
साखी—येहि गुण ज्ञान स्थितिहिके, पुहुप दीप निजु बास ।
कहे कबीर वह शब्द गुन, हंसा करहि विलास ॥

धर्मदास वचन चौपाई

धर्मदास तब सेवा ठानी । सुरति भेद पूछनको आनी ॥

सो सद्गुरु मोहि कहो बखानी । जासो आदि अन्त पहिचानी॥
जौन सुरति साहब तुम साधी । सो मोहि कहिये मिटत उपाधी॥
जेहि सुरति प्रथम जो आहै । वही सुरति मिलि सबको थाहै॥
बिना सुरति नहिं गुरुको पाही । बिना सुरति नहिं लोकै जाई ॥
सुरति होइ तब ज्ञान उचारै । सुरति होय तब ध्यान सम्हारै॥
सुरतिहि पैठि पवन को गहै । बिना सुरति वह प्राणी डहै ॥
सुरति होइ तब अगम जानी । भला बुरा सबही पहिचानी ॥
बहिनभानजी सुरतिहिजानी । माता पुत्री सुरति बखानी ॥
मोह न नारि सुरति कहँ देखौ । धर्म पाप सब सुरति बिसेखौ ॥

साखी--जो कुछु है सो सुरति है, साहब दे बतलाय ।
सुरति भाव जब चीन्हि है, तब हंसा घर जाय ॥

सद्गुरु वचन

तब सद्गुरु अस वचन उचारा । धर्मदास पूछव मत सारा ॥
विना सुरति पुनि कछु अनपाई। सुरति विहूँ नहिं आवहि जाई॥
सो अब तुमसों कहों बुझाई । सात सुरति सब देव लखाई ॥
पुरुष सुरति आपहि उपराजा ।विहँगसुरतिप्रथमहि किय साजा॥
बीस आठ प्रकृति जो कीन्हाँ । जो जनमें तस भुगनै लीन्हा ॥
जैसे योग मनहिं रहाई । तैसे बुद्धि शरीरहि सोई ॥
प्रथम कहौं अब सुरति बिचारी। पुरुष एक उत्पन किय नारी ॥
जेठी सुरति तबहि उच्चारी । चारहु लोक कीन्ह बिस्तारी ॥
विहँग सुरति ताही सो कहिए । ब्रह्म सुरति मूल वह लहिए ॥
निरति सुरति ये स्थूलहि छाजा। हरषत सुरति विदेही साजा ॥
बाढी सुरति नाद गुन गहै । धीर सुरति नाद गुण गहै ॥

साखी--सुरति पुरुष अंगहि बसी, फूट अंडके भाव ।
बीजमूल गुण प्रकट है, देखै ते सच पाव ॥

चौपाई

सुरति शब्द अब कहौं बखानी । धर्मदास लीजो पहिचानी ॥
सुरति शब्द भाखिब हम तुमसे। सुरति प्रसन्न होय तब हमसे ॥
सुरतिहि माहि रच्यो संसारा । सुरति करै तब उतरै पारा ॥
जेठौ अंश सुरति जो आही । पुरुष संग वह सदा रहाही ॥
बिहंग सुरति पुरुष जब कीन्हाँ। रचाना सपत सोंप तब दीन्हाँ॥
अबही कहौं सुरती कर मूला । उपज्यो अग्र शब्दसो स्थूला॥
जबही पुरुष कीन्ह है इच्छा । तब इह प्रकट भई सब शिक्षा॥
सुरति शब्द पुरुषहि उपजाई । सुरति प्रसन्न लोभ रच आई ॥
सुरति निरति सुख देह अनन्दा। मेटत सुरति सकल दुख द्वंदा ॥
सुरति निरति जब एके होई । तब साहेब कह देखे सोई ॥

साखी—कहै कबीर वह सुरतिते, सब कछु भयो प्रकाश ।
शब्दहि सुरति बिहंग है, लीन्ह अग्रमो बास ॥

चौपाई

धर्मदास सुनियो चितलाई। घट भीतर लीजो निरताई ॥
सुरति रूप देखो निरधारा । मन बुद्धि चित्त पवनसे न्यारा॥
पाँच तत्त्वकी रचना येही । इनते सुरति जो आहि विदेही ॥
ब्रह्म अंगसे प्रकटी आई । तीनि अंग गुण कला धराई ॥
सत्यरूपसे सुरति बखानौ । चेतन अंग निरति कहँ जानौ ॥
आनंद सदन शब्द पहिचाना । सत्य सुकृत दोइ नाम बखाना॥
सुरति रूप चैतन्य समाई । चैतन रहित शब्द लौ लाई ॥
सुरति समुद्रहि मठी हुवारा । हंसा पैठि देखि निर्धारा ॥

साखी—कहै कबीरहि सुरति बल, अपने पुरुषहि देख ।
मन बुद्धि चित्त समेटि के, चेतनरूप विशेष ॥
अक्षय वृक्षकी सुरतिमें, हंसा लेहि बसेर ।
कहै कबीर लै निबहि है, जात न लागे बेर ॥

अबु दीपकी सुरतिपर, हंस होय असवार ।
कहै कबीर लै निबहिहौं, कोटि बसें बटपार ॥
गूढ़दान रोके नहीं, सुरति हंस लै जाय ।
कहै कबीर यम हारियो, काल पैठि पछिताय ॥
इह गुण ज्ञान स्थितिहिके, गहे शब्द चितलाय ।
कहै कबीर यम हारिया, काल बैठि पछिताय ॥

धर्मदासवचन–चौपाई

धर्मदास बिनती अनुसारी । तुम साहब हम दास तुम्हारी ॥
गुरु शिष्यकी रहनी कैसी । सो समुझाय कहौ गुरु तैसी ॥
योग अयोग मोहि समुझावो । हे दयाल मम त्रिखा बुझावो॥

सद्‌गुरु वचन

सद्‌गुरुवचनहि विहँसि उचारी। अगुण सगुण विच गुरू अधारी॥
शिष्य पूछि गुरु भए उदासा । सो गुरु उठि आए धर्मदासा ॥
जिमि बालक रोवै बिल्लाई । मात पिता बहु बोध कराई ॥
येयाविधि गुरु शिष्य हैं मोई । जगमें अमृत पीवैं वोई ॥
शिष्य सीप गुरु स्वाती जानो । गुरुपारस शिष्य लोह समानो॥
गुरु मलयागिरि शिष्य भुजंगा । गुरु पारस शीतल होय अंगा॥
गुरु समुद्र है शिष्य तरंगा । गुरु दीपक है शिष्य पतंगा ॥
शिष्य चकोर गुरु शशि जानौ ।गुरुरविकमल शिष्यविकशानौ॥
इह सनेह शिष्य निहचै लहई । गुरुपद परस दर्श हिय गहई ॥
जब शिष्ययाबिधिध्यानविशेषा। सो वह सीख गुरू समलेखा ॥
गुरुन गुरुनमों भेद विचारा । गुरु गुरु कहै सकल संसारा ॥
गुरु सोई जिन शब्द लखाया । आवा गौन रहित दिखलाया ॥
गुरुहि सजीवन शब्द लखाया । जाके बल हंसा घर आया ॥
वा गुरुसो कछु अन्तर नाहीं । गुरु औ शिष्यमता एक आही॥

साखी--गुरु शिष्य एके भए, भिन्न न कबहूं होय ।
दुर्मति दिलसो मारिकै, सुरति शब्द चित पोय ॥

धर्मदासवचन--चौपाई

धर्मदास तब बिनती कीन्हाँ । चरण पकरिके विन्ती लीन्हाँ ॥
ब्रह्मा विष्णु महेश्वर देवा । केहिविधि उपजे सो कहि भेवा॥
चारि मुक्तिको भेद बतावौ । सुस्थिर ज्ञान मोहि समझावौ ॥

सत्गुरु वचन

सद्गुरु बचन बिहसि कर बोले । मुक्ति भेद कहुँ परदा खोले ॥
आदिहि पुरुष निरञ्जन कीन्हाँ । माया आदि ताहि कह दीन्हाँ॥
तिहि संयोग भये त्रिय बारी । ब्रह्मा विष्णु महेश विचारी ॥
चार मुक्तिके वे हैं राजा । पँचइ मुक्ति भिन्न उपराजा ॥
प्रथम मुक्ति सालोक बताई । मारग वाम ताहि कर आई ॥
दूजी मुक्ति समीप कहावा । निर्वाण मार्ग हो ताकहँ पावा॥
तीसरि मुक्ति स्वरूप बखानी । अघोर मार्गही ताकर जानी ॥
चौथी मुक्ति कहिये सायोजा । सभंग मार्ग कलमा पढ़ रोजा ॥
चारों मुक्ति निरञ्जन लीन्हाँ । तिनके बसहि जीव सबकीन्हाँ ॥
अब सुन पांचइ मुक्ति विचारा । धर्मदास परखो मतसारा ॥
जीवनमुक्ति दरस तब लहये । मृतकदसा होय नामहि गहिये॥
सत्य वचन मुखसो उच्चरई । नाम सार हृदये महँ धरई ॥
नियम धर्म षटकर्म अचारा । त्रिगुण फंदसों रहै निन्यारा ॥
सुरति निरति नामसों राखै । सद्गुर वचन सत्यकर भाखै ॥
लोभ मोहसों रह निह न्यारा । करम क्रोधते आप उबारा ॥
दुख सुखकी कछु संशय नाहीं । पाप पुण्य नाहीं चित माहीं ॥
अरथ द्रव्य मिथ्याकर मानै । जीवन जन्म नाम पहिचानै ॥
दया क्षमा कुल टूट कहावा । विषमें हरषन चितमें लावा ॥

सो जिव उतरहि भवजल पारा । जो यह चाल चलै निर्धारा ॥
अर्ध ऊर्धका करहि विचारा । सत्यनाम हृदये महँधारा ॥
उलटि कमल सुलटा जब करई। मनहि समेटि सुरति चित धरई॥
समसर पवन योगि कह तारै । पवन डोरि स्वासा निरुवारै ॥
सोहं तार घडहिमें देखे । स्वेत भँवर गहि शब्द विशेषे॥
भँवर गुफामहँ जगमग जोती । वा घर बरषै माणिक मोती ॥
निहकामी निरबानी जानी । निहरूपी निश्चितहि बखानी ॥

साखी--आदि सुहंग बखानऊ, स्वर्ग पताल भरि ठौर ।
कहै कबीर धर्मदाससों, वही हंस शिरमौर ॥

चौपाई

सुरहि कमल याजीकर छोरा । सुरति करै तब देखि निहोरा ॥
ऐसी सुरति निरति मन राखै । सांचै दरश पुरुषके भाखै ॥
जबही दरश परश पुनि होवै । जन्म जन्मके कश्मल धोवै ॥
जीवन मुक्ति होइ पुनि तबही । संधिक नाम आव घट तबही ॥
कागरूप सब चाल मिटाई । गुरुप्रसाद हंस गति पाई ॥
निर्मल जीव हंसगति भयऊ । नाम संधि हृदयेमहँ लहेऊ ॥
वंश प्रताप साँचकर चीन्हा । नाम सार अमृतरस लीन्हाँ ॥
जीवनमुक्ति देहमहँ पाई । हिम्मर रूप धरे सो आई ॥
जाती बरन पलटे सब अंगी । सद्गुरु साँचे मिलि बहुरंगी ॥

साखी–मलयागिरकी वास ज्यो, दीपक ज्योति पतंग ।
पारस छुइ कंचन भया, स्वाति सीपके संग ॥

चौपाई

स्वाती सीप नाम मिटि दोई । मुक्ता हल तेहि कह सब कोई॥

धर्मदास वचन

धर्मदास गुरु चरण न परई । शीश नवाय दण्डवत करई ॥
धन्यभाग्य दर्शन प्रभु दीन्हाँ । अधम जीव पावन कर लीन्हाँ॥

साहब दया दास पर कीजै । विदेह मुक्ति कर भेद जो दीजै॥
विदेह मुक्ति किम देह समाई । कौन भांति हंसा लखि पाई ॥
छुच्छी नदी रैन अति भारी ।सलिलप्यासकिम मिटे दुखारी॥
पाँचो तत्त्व पाँच गति संगा । त्रिगुणफंद जीव यह रंगा ॥
नऊ नाटीक कहे घटमाहीं । स्वासारूप जीव सँग ताहीं ॥
मनकी कला अनेक पसारा । काम क्रोध तृष्णा अधिकारा ॥
लोभ मोह चिन्ता अतिभारी । जड़ता गर्भ कुटिल विस्तारी ॥
इनके संग काग गति पाई । हंसवरण किमि होय गोसाँई ॥
यही अंग मन चितवन कीन्हाँ ।केहिविधि साहब तुम कह चीन्हाँ॥

साखी–धर्मदास बिनती करै, साहब बंधन छोर ।
सब अंगमें भरि रहै, विदेह अंगको चोर ॥

सद्गुरु वचन

सद्गुरु वचन सुनो धर्मदासा । अगम भेद तोहि कहों प्रकाशा॥
विदेहमुक्ति तुम पूछिब आई । सो सब कथा कहो समुझाई ॥
पुरुष विदेह कमलमों रहेऊ । सुरति विदेह शब्द जौं ठयऊ॥
लोक दीप सब सुरतिहिं कीन्हाँ। तेहि पाछे मन उत्पन कीन्हाँ ॥
विदेह मुक्तिकी डोरी चीन्हाँ । शब्द सुरतिके हाथहि दीन्हाँ ॥
मनहिं समेटि सुरति पहिचानी । सुरति जाय तब शब्द समानी॥
शब्द सुरतिकर बांधो भेला । भवसागरसे दीन्हों हेला ॥
शब्द विदेह गुरूकर बासा । सुरतिस्वरूपी शिष्य निवासा॥
सुरति शब्दमें लीन्हो बासा । सुरतिस्वरूपी शिष्य निवासा॥
मायाजाल कृत्रिम सब लेखो । अग्रझलक नैननमें देखो ॥
कूप झांकि हो वचन विदेही । अग्नी जार उठावे सेही ॥
अग्र शब्द तबही लखि पावे । मृतक दिशा हो सुरति समावे॥
शीतल तपत स्वाद नहिं जाने । जन्म मरण शंका नहिं आने ॥

चलते फिरत वचन अस भाखा । चेत अचेत बोध नहिं राखा ॥
पुत्री पिता बंधु नहिं जानै । माता बहिन नाहिं पहिचानै ॥
ग्रीहि अभूषण धरै न अंगा । तृषा क्षुधा नहिं स्वाद उमंगा ॥
ऊंच नीचकी नाहिं बिचारी । धर्म अधर्म दोऊसे न्यारी ॥
दुख सुख सब एकहि करिजानी । विदेह अंग ऐसे पहिचानी ॥

साखी–काया सीप सम जानिये, स्वातिशब्द पट आन ।
परख नेह संपुट बँधौं, मुक्ताइल उतपान ॥

चौपाई

धर्मदास इह भेद विदेहा । इह धन धन्य और सब खेहा ॥
जस चकोर चंदा कह ताकै । याविधि लिप्त नामके नाकै ॥
कमलचक्र है मनको रूपा । स्वप्परूप भर्मित वह भूपा ॥
पाँच पचीस कठिन बिकारा । देह बीच इन राज पसारा ॥
सेमर फूल जस किरुवां आवा । देखि फूल बहु हरष बढ़ावा ॥
चुंगल गारत सुआ उड़ानो । रोम रोम मिथ्या कर जानो ॥
जाना नहीं विवेक बिचारा । ठोक कपार चलो झँखमारा ॥
मायारूप आहि इमि भाई । जिमि फुल सेमर सुन्दरताई ॥

साखी–नारीरूप नर देखिके, कूकर सम लिपटाय ।
बिषय बासनाँ बँधि रहि, विदेहमुक्ति किमि पाव ॥

चौपाई

घरी घरी मन काम जगावै । ज्ञान भुलाय नाम बिशरावै ॥
स्वप्न माँहि सोई छल करई । गुप्तवासना हृदये धरई ॥
कूद कूपके अगिन मँझारा । राखै कौन जीव निजु सारा ॥
सम्मुख आय बाघके कोई । भक्षण यतन करै वह सोई ॥
रक्षक शब्द जाहि तन गाजै । उलटो काल तहाँसों भाजै ॥
यही शब्द घट राखि समाई । माया ताहि खान नहिं पाई ॥

सारवस्तु घटमों पहिचानौ । रोम रोम अस्थिर ठहरानौ ॥
काया सकल कालकी बारी । निसदिन ध्यान शब्द चितधारी ॥
देही सकल कालकी जानै । बिदेह अंग आपहि पहिचानै ॥
देह विदेह नेह गुण जानै । आपा मेटि आदि गुण ठानै ॥
याविधि मनमों रहनी करई । आपा मेटि आदि गुण धरई ॥

साखी–कहै कबीर वह आपहै, नहिं सुमरन नहिं जाप ।
धर्मदास लिखि लीजियो, अकह अगोचर छाप ॥

चौपाई

अकह अंश जब कहत रहावा । पांचतत्त्व गुणतीन समावा ॥
चलत हँसत बोलत बहुबानी । आपुन राजा रंक समानी ॥
माता पिता धरणि घर कीन्हे । आपुहि योग भोग सब चीन्हे ॥
गृह निकरे पुत्रहिं उपजावे । अपहि षटकर्मन कह सावे ॥
भूख प्यास तृष्णा बहु सहिया । दुख सुखको संगीसोहि रहिया ॥
अर्थ द्रव्य सुमिरण सों राखै । मिथ्या सत्य आप मुख भाखै ॥
सुमिरण भजनआपही करई । अकला बै अकला संचरई ॥
भली बुरीको करत बिचारा । आपहि पाप पुण्य बिस्तारा ॥
कबहुक संत असंत कहावे । मनके भाव अनेक दिखावे ॥
आपही सेवा करै करावे । खीझे हँसे मनहि पछितावे ॥

साखी–आप आपही रमि रहो, आत्मरूप परवान ।
यासों रहित अपार है, परमातम सुस्थान ॥

चौपाई

तब साहब अस वचन उचारा । रहित मुक्ति सब इनसो न्यारा ॥
रहित भाव जो घटमें देखो । आवा गौन रहितई लेखो ॥
रहित पुरुष कह तबही पावे । अस्थिर ज्ञान चित्तमहँ लावे ॥

लिखे पढ़े नहिं पावे भाई । बिन सतगुरुको देइ लखाई ॥
प्रेमसुधारस तबही पावै । गुरु बहियां मिलि भेद लखावै ॥
चित आनंद अस्थिर तब जानै । सुमिरन भजन नाम पहिचानै ॥
मातु पिता सुत नारि पियारी । पुरजन जलसम रहनि विचारी ॥
नाम गोत्र तन शीतल कीन्हां । मिथ्या नारिपुत्र कुल चीन्हां ॥
भूखहि प्यास गई तन ताको । दुख औ सुखकी आस न जाको ॥
अर्थ द्रव्य मिथ्या करि जानी । बुधकी बुधी रहित कर मानी ॥
भली बुरीकी नहीं विवेका । जहँ देखो तहँ आनंद पेखा ॥
पाप पुण्यकी संशय नाहीं । संत कुसंत रहित जो आहीं ॥
मन बुधि चितते रहे भुलाई । पांच पचीस राखि अरुझाई ॥
बैठे उठे दूजा नहिं आनै । उत्तम मन अमृतरस सानै ॥
मन अरु वचन रहित करि जानै । श्वासा बीज नाम धुनि तानै ॥
नयन नासिका रहित अनन्दा । उदित भए जनु पूरण चन्दा ॥
हाथ पांव इन्द्री बस कीन्हे । सूरय चन्द्र रहित घर चीन्हे ॥
जो देखे सो रहितै देखे । रहित अनन्द अवर नहिं पेखे ॥
सब गुण सहित रहन है ज्ञानी । रहित बिना है भेद दिवानी ॥
जब ही रहित आप वह कीन्हां । पुरुषहि समसर जो जिय चीन्हां ॥
रहित शब्दमों है मतवाला । ताकहँ देखि मूर्छि रहि काला ॥
सुरति सम्हार नाम दृढ लीजे । नाम सुधारस भरि भरि पीजे ॥

साखी—इहगुण ज्ञानस्थितिहिको, रहित मुक्तिकर भेद ।
कहे कबीर धर्मदाससों, नाम अमोलिक लेव ।
रूप मगन मन हो रहो, अंग अंग सुखधाम ।
जिमि मिसि कागद पत्रही, होत सुअक्षर नाम ।

चौपाई

प्रेम पियाला कठिन रहाई । सत्यरूप धरि पीवे अघाई ॥

जिमि सत्ती सरकों चढि जावै । पिव कारण वह जीव गँवावै ॥
संसार कहे वह बोलत भाई । जरबर गई प्रेम निर्वाही ॥
जीवतही जिय पीयके संगा । माया भरम तजौ परसंगा ॥
जो कोइ होय हंस अंकूरी । नाम सनेह रहै परसंगा ॥
ज्यो पतंग दीपके कारन । जीवन आये अंग सब जारन ॥
अंग विदेह येह अनुसरहीं । असनबसनीकी सुधि नहिं करहीं ॥
कहत सुनत जिय तनमहँ डोलै । जीवन प्राण पवनसंग खेलै ॥

साखी—रहितहि मुक्ति कठिन है, कोइ न जानत भेद ।
शब्दहि सुरति समायके, हंसराज इह खेद ॥
जो जन पियके मद छकै, करै पियापिय पीव ।
पीव मिले हिलमिलि रहै, श्वास समानेउ जीव ॥

चौपाई

इश्कभाव है कठिन अपारा । बिरले जीवहि करै सम्हारा ॥
धर्मदास कहि सुनो गुसाई । कीन्ह कृतारथ मोकहँ आई ॥
सुस्थिर ज्ञान मोहि समझावा । मनचञ्चल सुस्थिर ठहरावा ॥
कीन्ह कृतारथ मोकहँ आजू । बरनेव पुरुषहिं हंस समाजू ॥
इह बरदान देहु मोहि स्वामी । कृपासिंधु गुरु अंतर्यामी ॥
चरणकमल उरसों नहिं टरही । पदपराग मनवासा धरही ॥
मन चञ्चल है कठिन कठोरा । कैसे प्रीति लगै गुरु वोरा ॥
सो समझाय देव मोहि भेदा । आदि अंत सब कीन्ह निषेदा ॥

साखी—तुम प्रभु दीनदयाल हौ, हम निज दास तुम्हार ।
भवसागरतै काढिके; दीजै पार उतार ॥

चौपाई

धर्मदास निश्चय मोहि चीन्हां । तुमरे घट हम बासा लीन्हां ॥
जहँ लगि जीव जगतमें आही । ते सब उबरहि तुमरे बांही ॥

वंश बयालिस जंग औतारा । तेजहु है जीवन काढ़नहारा ॥
नाम विदेह अकह हम कीन्हाँ । सोई वंश हाथ करदीन्हाँ ॥
वचन हमार शब्द टकसारा । चूरामन तासे औतारा ॥
पुरुषहि अंश आहि निज सोई । शब्द अतीत नाम कहि सोई ॥
आदि नाम निरअक्षर जानौ । मुक्तामणि तिनको पहिचानौ ॥
उनसोंइ सकल गावे साँचा । सोई जीव कालसों बाँचा ॥
नहिं अक्षर नहिं आदिकि बानी । सोहंग तार पुरुषहि उतपानी ॥
इतनो भेद जानि है सोई । जो हंसा हि अंकुरी होई ॥
बिच्छू मंत्र जानि नहिं पावा । सर्पकी बाँबी हाथ समावा ॥
मुक्त न होय परे यमखानी । नरक वास औंधे मुख आनी ॥
प्रेम प्रीति जाने नहिं कोई । तासों गए बिगोइ बिगोई ॥
अक्षर इश्क आहि निज साँचा । जो चीन्हे सो परलै बाँचा ॥

साखी–ज्ञानस्थितिके येह गुन, इश्क पुरुष निज बास ।
कहे कबीर धर्मदाससों, गाउ अक्षर विसवास ॥

चौपाई

सुर नर मुनि गण गंधर्व देवा । रहित पुरुष कर लखौ न भेवा॥
धर्मदास सुनि प्रेम स्वभाऊ । शीस देइ तब प्रेम कहाऊ ॥
अब मैं कहौ मुक्तकर भाऊ । अक्षर मिलि है मुक्त प्रभाऊ ॥
जो देखे सो समझकर देखे । अक्षर बिना पुरुष नहिं पेखे ॥
भला बुरा सब समकर देखे । नर अरु नारि एककर लेखे ॥
पाप पुण्य शंका नहिं करई । दुख सुख दोऊ समकर धरई ॥
नर और नारि एकही घटमों । ज्यों कपास है सूतहि पटमों॥
जल थल पवन अकास बखनौ । धर्म अधर्म एक करि जानौ ॥
पाँच पचीसौ बधन करहीं । त्रयदश पाँच ताहिसों तरहीं ॥
रसना रसपति माया डारी । इच्छासंगम मन फटकारी ॥

नयन नासिका श्रवण तरंगा । जिह्वा इंद्रि करी एक संगा ॥
हाथ पाँव जीव सबमों वासा । पल २ छिन २ करहिं प्रकाशा॥
काया माँहि शब्द पहिचानौ । मिथ्या जग स्वप्नहि सब जानौ॥
लोभ मोह नाहिं चितधारा । निज अक्षरको करै सम्हारा ॥
अक्षर बहे शीसके माहीं । सो लखि आवै सतगुरु पाहीं ॥
उन मुनि करिकै अक्षर देखै । अक्षरमों निरअक्षर पेखै ॥
निरअक्षर है वस्तु अपारा । जो जानै सो उतरै पारा ॥
अक्षर निर अक्षर दूजा नाहीं । दूजा करै बिगुरुचन ताहीं ॥
नाम संधि हृदये महँ राखै । अग्र विदेही अमृत चाखै ॥

साखी–ज्ञानस्थितिके येह गुण, सबविधि करै सहाव ।
मनुवा अस्थिर होइ रहै,पुरुषहि दरस कराव ॥
कहै कबीर धर्मदाससों, अक्षर सुमिरहु सार ।
निरअक्षरसो प्रीति करि, उतरहुभवजलपार ॥

चौपाई

धर्मदास तोहि भेद बताई । एहज्ञान काहू नहिं पाई ॥
बहुतक ग्रंथ तुम्हैं समुझावा । ज्ञानस्थितसो गुप्त रहावा ॥
जब तुम कीन्हो खोज बहूता । तब एह भेद कहेब अजगूता ॥
जो यह ग्रंथ सुनै चित गहई । आवागौन तासु निर्बहई ॥
जो कोइ हंसहिहो अंकूरी । तासो भेद कहिब भरपूरी ॥
कपटरूप जाके तन होई । तासो बस्तु जो राखहु गोई ॥
येहि सिखावन पंथ चलावौ । भवसागर के जीव मुक्तावौ ॥

धर्मदास वचन

धर्मदास बिनती अनुसारी । तारण तरण जाब बलिहारी ॥
अब एक इच्छा घटमों आई । सद्गुर भक्ति करौ चितलाई ॥
पान प्रमान हमहिं कह दीजे । दीन दयाल दया प्रभु कीजे ॥

संधिक नाम पाइ सुख होई । बिना छाप खातिर नहिं होई ॥
तब सतगुरुने साज मँगावा । कदली खम्भ आनि गडवावा ॥
चौका सोरह सुतकी कीजै । मान सिखावन हमरी लीजै ॥
धर्मदास सोई बिधि कीन्हाँ । जो सद्‌गुरु कृपा करि दीहाँ ॥
सोरह हाथ सूत्र तनवाई । सोरह धोती आनि चढाई ॥
सोरह नरियल लै परवाना । लौंग इलाची धरि मिष्ठाना ॥
मेवा अष्ट जुगुतिसो लाई । चौका चंदन कीन्ह बनाई ॥
बासन पांच धातुके धरिया । वांछा सहित गाय अनुसरिया ॥
आरति ज्योति कीन्ह परकाशा । बाजत शंख झाल तमनाशा ॥
धर्मदास औ आमिन आवा । सद्‌गुरु चरण हिये लव लावा ॥
चरण पखारि चरणामृत लीन्हों । तन मन धन न्योछावर कीन्हों ॥
षोडश शब्दहि कीन्ह उचारा । मोरत नरियर भौ उजियारा ॥
धर्मदास परवाना लीन्हाँ । शिरिहि नवाय बंदगी कीन्हाँ ॥
तापीछे आमिन चलि आई । कीन्ह बंदगी शीस नवाई ॥
तब सद्‌गुरु दीन्हों परवाना । आमिन हिय बहु हरष समाना ॥
धर्मदास गुरु बंदन कीन्हां । साहब शब्द नाम जो दीन्हां ॥
सम्वत पन्द्रहसो चालीसा । भादों शुक्ल पाँचदिन तीसा ॥
पूरणमासी पूरण जानौ । गुरुवासर शरणागति आनौ ॥
तव सद्‌गुरुने दीन्ह अशीसा । मुक्तिराज दीन्हो बखशीसा ॥
मुक्तामणि निज अंश हमारा । आमिनि घट लेहे औतारा ॥
उनके वंश बयालिस होई । जक्त जीव मुक्तावै सोई ॥

कहे कबीर धर्मदाससों, हम तुम दूजा नाहिं ।
शब्द विवेक विचार कर, जो देखा घटमाहिं ॥
शब्द सुरति औ निरति है, कहिबेको है तीन ।
निरति लौटि सुरतिहि मिली, सुरति शब्द लखिलीन ॥

गुरुशिष्य इमि जानिये, कहिये भिन्नहि भिन्न ।
शब्द सुकृत एकै भई, सुकृति घटमहँ चिह्न ॥
याहिवस्तुमों स्थिर रहौ, अस्थिर अचलसमाध ।
धर्मदास हर्षत भए, पायो सुखै अगाध ॥

॥ इति श्री ग्रन्थ ज्ञानस्थिति शुभमस्तु ॥

सर्वसन्त महन्त गुरुनके चरणारविंद सम नमो सत्यते ।

सत्य

# अथ संतोषबोध प्रारंभ

भारतपथिक कबीरपंथी–

स्वामी श्रीयुगलानन्द द्वारा संशोधित

खेमराज श्रीकृष्णदास,

अध्यक्ष–"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्–प्रेस,

बम्बई.

# सत्यनाम



श्री कबीर साहिब




सत्यसुकृत, आदि अदली, अजर, अचिन्त, पुरुष, मुनीन्द्र, करुणामय, कबीर, सुरतियोग संतान, धनी, धर्मदास, चूरामणिनाम, सुदर्शन नाम, कुलपति नाम, प्रबोध गुरुबालापीर, केवल नाम, अमोल नाम, सुरतिसनेही नाम, हक्क नाम, पाकनाम, प्रकट नाम, धीरज नाम, उग्र नाम, दया नामकी दया-वंश व्यालीसकी दया

# अथ श्रीबोधसागरे

त्रयोविंशतिस्तरंगः

## छोटा संतोष बोध

★

चौपाई

धर्मदास बिनती सुन ज्ञानी । अमीशब्द भाषो मृदुवानी ॥
हम सेवक तुम सतगुरु मोरा । जीव अचेत भरमवस भोरा ॥
तिनकी आयुष कैसी होई । हंसन मग भाषौं प्रभु सोई ॥

समदश बचन शब्दकी राहू । हंसराज कहु हंसन नाहू ॥
शब्दचाल तेहि काल न पाई । कृपा करो पद बल २ जाई ॥

ज्ञानी वचन

समरथ बचन सुनो धर्मदासा । तुमसों सत्य शब्द परकाशा ॥
संतोषबोध सतहीते भयेऊ । सत्यपुरुष आपन मुख कियेऊ ॥
साधुसंतपर कीन्हे दाया । मोह लोकतें जगत पठाया ॥
उठी अवाज पुष्पतें जैसी । सो वर्णन भाषौं मैं तैसी ॥

पुरुष वचन

हो ज्ञानी तुम अंश हमारा । बचन सत्य मैं कहो पुकारा ॥
जो कोइ साध मोहको साधे । लोभ मोह तृष्णा गहवाधे ॥
तृष्णा वांध साध जो पावे । आवत लोक वार नहिं लावे ॥
तृष्णा लोभ काल व्यवहारा । जो त्यजि है सो हंस हमारा ॥

ज्ञानी वचन

तत्क्षण ज्ञानी बिनती ठानी । वचन तुम्हार कोइ नहिं मानी ॥
भक्तहीन आंधर दुनियाँई । घट २ फाँस कालगइ नाई ॥
कोट वार जीवन परमोधा । कोइ एक सत्य शब्द ममसोधा ॥
साखी–पृथवी जाय जीवन कहि, युग२ शब्द बिताय ।
कोइ एक ज्ञानी चित गहे, आंधर ना पतियाय ॥

पुरुष वचन

जाहु वेग तुम वा संसारा । जो समझे सो उतरे पारा ॥
वार २ तुम जगमें जाई । आपन कह सब कथा सुनाई ॥

ज्ञानी वचन

धर्मदास तब जग हम आवा । आपन कह जीवन समझावा ॥
युग अशंख अर्ब बहु बीता । कै २ बार पृथ्वी हम कीता ॥
शेष गणेश महेश न ब्रह्मा । विष्णु नाम धरती नहिं थम्हा ॥

यह युग बीत अनन्तन बारा । युग २ आयेउ जिव रखवारा ॥
नर जाने जुलहा अवतारा । साधन काज देह हम धारा ॥
अगम शब्द नहिं जात गँवारा । बार अनेक जगत पुकारा ॥
जीबन बारहिबार पुकारा । नरदेही बहुतें हँकारा ॥

साखी–जीवनसों घर २ कहा, नहिं माने उपदेश ।
गुप्तभाव हम तब भये, चले अमरपुर देश ॥

चौपाई

पांजी चले ठाव हम भयेऊ । सात स्वर्ग ऊपर चढ़ गयेऊ ॥
तहवां देख धर्म अस्थाना । नानझंकारी ताहि बखाना ॥
द्वारे वज्र सिला दे बैठे । बैठे हर सब जेठे ॥
धर्मराय अति प्रबल जगाती । मांगे दान जीव बहु भांती ॥
तिन हम सबको आद बढ़ावा । कैसे ज्ञानी जीवन मुक्तावा ॥
हम कहें सुनो दुष्ट वटपारा । छोड़हु रार पलकमें मारा ॥
छोड़ ठांव यम भये निनारा । पहुँचे अमरलोक मझारा ॥
पुरुष दरश कीन्हे तेहि क्षणमें । घट २ व्याप सकल जीवनमें ॥
तहाँ नहीं परवेश जमन को । बैठक पाँति सकल हंसन को ॥
हरष शोक नहिं करे कतूला । सदा बसंत फूल ऋतु फूला ॥
मोर चकोर बोल मृदु बैना । कोकला कोयल वचन सुबैना ॥
बैठक तहांही सकल पुरुषकी । बोलत वचन अमीरस रसकी ॥

पुरुष वचन

साखी- वह सत बोले पुरुष तब, सुनो सँदेशी अंश ।
भवसागर बहु दिन रहे, केतक लाये हंस ॥

ज्ञानी वचन–चौपाई

रहे शब्दसों तब कर जोरी । बंदी छोर बिनय सुन मोरी ॥
काम अरु क्रोध मोह औ लोभा । माया फँसे जीव पर शोभा ॥

सकल जीव अघ आतम पुंजा । फिरि २ परहि जनमके कुंजा ॥

पुरुष वचन

तब समरथ अस वचन पुकारा । दुनियाँ जात काल मुख द्वारा ॥
हो ज्ञानी तुम बहुर सिधाओ । शब्द देव जीवन मुक्ताओ ॥
देव परवाना अपने हाथा । सकल जीव जो होय सनाथा ॥
तिनका तोरहु यम का लेशा । माथे हाथ दे कहो संदेशा ॥
नरियर धोती तान मँगै हो । सत्य शब्द देअंक चढै हो ॥
येही शब्द येही परवाना । सत्य शब्द निश्चय कर जाना ॥
सन्त समाज सुनो तुम महिमा । गुरुपद परस दरस एक लहमा ॥
तेहि समधन नहिं जगमें औरा । कोट जन्म तीरथ फल दौरा ॥
जो कोइ साध मंदिरमें आवे । चरण पखार चरणामृत लावे ॥
नारी पुरुष एक मत कीजे । सतगुरु दया अमीरस पीजे ॥

साखी—काम क्रोध तृष्णा तजे, तजै मान अपमान ।
सद्गुरु दया जाहिपर, यम शिर मरदे मान ॥

चौपाई

जो ये तक तज सेवा करहै । सो प्राणी भवसागर तरहै ॥
सेवा करत कसर भई जाई । तवै कालघर बजत बधाई ॥
सेवा करे चरण चितलाई । पाँच साध मिल भगत कराई ॥
संतोष बोध जीवन पर भाषा । जो कोइ साधू मन दृढ़ राखा ॥
जरा मरण तिनका हो नासू । गुरु पद गह सन्त निज दासू ॥
अगम ज्ञान संतोष वरदानी । हंसा आप होय महिमानी ॥
अगम अपार ज्ञान संतोषू । सकल साधु हिल मिल परतोषू ॥
संतोष ज्ञान स्वाती सम कहिये । सज्जन सत समझ दृढ़ रहिये ॥
स्वाती ज्ञान साध जो पावे । सो साधू सतलोक सिधावे ॥

साखी–ज्ञानकथा ऐसो कहे, जस स्वातीको पान ।
सबहिनमें जो गुण करे, सन्त लेइ बिलछान ॥

चौपाई

संतोष ज्ञान मल्यागिरि जैसे । निकट बृक्ष प्रबल हो जैसे ॥
श्रोता सुने श्रवण शुभ बानी । ज्ञानी हृदय करो बिलछानी ॥
साधू ज्ञान सुने चितलाई । ताका हंस विगोइ न जाई ॥
अन्न सोय जो भूख बुझैहै । ज्ञान सोइ जेहि लोकहि जैहै ॥
सतगुर शब्द गहे जो हियमें । बचन अमोल मानमिल पियमें॥
जाके हृदे कपट नहिं व्यापू । सो साधू मेंटे त्रिय तापू ॥
बहुर न देह धरे यहि जगमें । कमलपत्र सम न्यारे जलमें ॥
जो प्राणी ऐसी गहि रीती । तजतहि देह चले यम जीती ॥
काया तजे प्रीति गुरु लागी । हंस समाज पहुँच अनुरागी ॥
गुरु प्रताप मम दर्शन पावे । हंसन समसर सेज बिछावे ॥
अमृत फलके भोजन पैहो । अटल दुलीचा सेज बिछैहो ॥
क्रीट रवीस जगमगत सुहावन । अमर चीर शोभा बटु पावन ॥
षोडश रबि जनु अंग लपेटा । हरषहि शोक सकल दुख मेटा॥

साखी–अस बीरा परताप बल, प्रबल काल क्षय होय ।
जेहि सद्गुर वहियाँ मिले, हंसन जाय विगोय ॥

इति श्रीछोटासंतोष बोध समाप्त

# अथ बड़ा सन्तोषबोध प्रारंभ

## चतुर्विंशतिस्तरंगः

⊙

धर्मदास वचन चौपाई

धर्मदास पूछे चितलाई । तत्त्व भेद कहिये समुझाई ॥
कौन तुरीके योजन दौरा । भाषो साहेब हम हैं भौरा ॥
तत्त्वनके स्थान चिन्हाओ । बाहर भीतर भाषि सुनाओ ॥
विनय करूं कीजे प्रभु दाया । धर्मदास गहे दोनू पाया ॥

सद्गुरु वचन

धर्मनि सुनो तत्त्व व्यवहारा । निशिवासर का कहूँ विचारा ॥
तत्त्वतत्त्वका स्थान चिन्हाऊँ । कहि करि वाहर भीतर दर्शाऊँ ॥
स्वासासंग होय आवे जाई । तत्त्वभेद सुनियो चितलाई ॥
लालतुरी योजन परवाना । मुशकी कोजन डेढ सिधाना ॥
हरीतुरी योजन दोय जाई । पीला योजन तीनि चलाई ॥
हंसा योजन चारहि ध्यावे । फिरिके दण्ड तबै ले आवे ॥
मूल कमल है तेज ठिकाना । षट दल तत्त्व अकाश बखाना ॥
कमल अष्ट दल है तत्त्वबाई । द्वादश दल पृथ्वी सु रहाई ॥
षोडश दल जलतत्त्व बखाना । धर्मदास गहि राख ठिकाना ॥
याविधि पाचौ आवै जाई । अपनी मनजिलको सुन भाई ॥
गाँचतुरी रथ एक सवाँरा । ता उपर मन जिव असवारा ॥
जाव पड्यो है मनके हाथा । नाच नचावे राखै साथा ॥
क्षण भीरत क्षण बाहर आवै । सतगुरु मिल तो साधि लखावै ॥

साखी—अष्टपांखुरी कमल है, ता ऊपर जिव बास ।
ताकर मनको आसना, नख शिख तनके पास ॥

धर्मदास वचन

साहेब कहो भेद टकसारा । जेहिते जिवका होय उबारा ॥
नौ तत्त्वनको भेद बताओ । सकल कामना मोर मिटाओ ॥
पाँच तत्त्व जानै सब कोई । चारि तत्त्वकी खबरि न होई ॥
पाँच तत्त्व खेलै मैदाना । चारि तत्त्व रहे कौन ठिकाना ॥
कहों तत्त्वनको भोजन केता । ताके चेते आगम है चेता ॥
इनका सतगुरु कहो विचारा । कहो केता तत्त्व करै अहारा ॥

सद्गुरु वचन

धर्मदास मैं अगम बताऊँ । नौ तत्त्व को भेद लखाऊँ ॥
पाँच तत्त्व खेलै मैदाना । चारि तत्त्व ब्रह्मांड ठिकाना ॥
छठवाँ अग्नि तत्त्व जो होई । नैना बीच रमै पुनि सोई ॥
दोयदल कमल वरणहै चारी । बैठे निरञ्जन आसन मारी ॥
ताहि कमलको नाम बताऊँ । चारि बरणका रूप दिखाऊँ ॥
लखै शब्दसो जानै भेदा । राता पीरा श्याम सपेदा ॥

साखी--ताहि कमलको छाडिके, कीजै शब्द विचार ।
पाँच तत्त्व संभारिहो, उतरो भव जल पार ॥

चौपाई

निशि बासर की स्वांसा जेती । कहूँ विचार चले दम तेती ॥
छः सै स्वास इक्कीस हजारा । येते निशिदिन दमहि सुधारा ॥
ताको भोजन सबमिलि पावे । जो सतगुरु यहि भेद बतावे ॥
बीस सहस्र पंच देव पाई । ताकों लेखो कहूँ समुझाई ॥
प्रतिदेव पाछे चार हजारा । रहै जाप सोलहसै सारा ॥
छटवें तत्त्व निरञ्जन राई । जाप सहस्र तहाँ पहुँचाई ॥
सोलहसै मैं छः सै रहई । ताको भेद हंस कोइ गहई ॥
जाप अठोतर जब रहि जाई । ताछिन शब्द सुरति मिलाई ॥

साठसमै बाहर चौपाई । ततछिन हंस लोक को जाई ॥
सुषुमनि तत्त्व करे असवारी । तबे कालकी पहुँचे धारी ॥

साखी--जादिन काल ग्रासहि, पगते करे उजारि ।
भागि जीव चढि बैठही, द्वार कुलफ उघारि ॥

धर्मदास वचन--चौपाई

साहेब इतना भेद बताई । जाते काल छुवन नहिं पाई ॥
सब तत्त्वनको भायो भेदा । एक २ का कह्यो निषेदा ॥
तत्त्वके संग जीव चलि जाई । कौन ठौरनमें बासा पाई ॥
कौन तत्त्व संग धरे जिवदेही । कौन तत्त्व है मुक्त सनेही ॥

सद्‌गुरु वचन

नौ तत्त्वनका भेद बताऊँ । द्वारा तीनको कहि समझाऊँ ॥
तेज तत्त्वमें करे पयाना । वज्रशिलामें जाय समाना ॥
आकाश तत्त्वमें छूटे भाई । तारागणमें जाय समाई ॥
वायु तत्त्वमें छाडे देहा । वन वृक्षनमें जाय उरेहा ॥
पृथ्वी तत्त्वमें छूटे भाई । तौ जीव देह पशूकी पाई ॥
जल तत्त्वमें जब छूटे जाई । नरकी देह धरे तब आई ॥
अग्नि तत्त्वमें तजै शरीरा । होय पशुपक्षी कहै कबीरा ॥
छै तत्त्वनको कह्यो बिचारा । तीन तत्त्वको भेद निनारा ॥
तीन तत्त्व भेद जो पावे । निश्चय हंसा लोक सिधावे ॥

धर्मदास वचन

छै तत्त्वनको पायो भेदा । तीन तत्त्वको कहो निषेदा ॥
तीन तत्त्व देहु प्रकट बताई । जासे हंसा लोक चल जाई ॥

सद्‌गुरु वचन

धर्मदास सुनिये चितलाई । तीन तत्त्व मैं देउं बताई ॥
शब्द तत्त्व जो जाने भाई । सुरति तत्त्वको ध्यान लगाई ॥

नीर तत्त्व जाके घट होई । ताकर आवागमन न होई ॥
नौ तत्त्वनको कह्यो बिचारा । धर्मदास तुम करो सँभारा ॥
कहूँ भेद तत्त्वकी बानी । क्षत्र अधर है नाम निशानी ॥
षष्ठ कमल नैन लगि देखा । तीन भेदको कहूँ विवेका ॥
तीन भेद पुरुष तेहिके पासा । छाड़े काल जीवकी आसा ॥
पुरुष शब्द हैं शीतल अंगा । तत्त्व निःअक्षर कमलके संगा॥
आप पुरुष तेहि पिण्ड न हाथा। पुरुष बिदेहि शीश बिन गाथा॥
कायामांहि लगी यक नाला । तहवां रहे निरंजन काला ॥
ताशिर ऊपर पांजी लागी । ताहि चढि हंसा जाये आगी ॥
स्वेत औ पीत कमल है गाता । तीन तत्त्व जीव संग रहाता ॥
ताहि तत्त्वको भाव सुनाई । तीन रूप तीन महिठाई ॥
कायाक्षेत्र ताहि हम दीन्हाँ । खेत कमाय सो आगम चीन्हाँ॥
सप्तपाखुरी कमल यक होई । ताकर भेद कहौं मैं सोई ॥
कमल एक लोकहै तीना । तीन लोक तीनोंपुर कीना ॥
चौथालोक अधर कहि चीन्हाँ । ताकरि काल गमन नहिं कीन्हाँ॥

साखी–तीनलोक बिचारिके, गहे शब्द टकसार ।
कहै कबीर विचारिके, उतरो भवजलपार ॥

धर्मदास वचन चौपाई

साहेब बचन कही परमाना । तीनलोकका कहो ठिकाना ॥
चौथालोक मोहि समझाई । सुनू भेद तब मन पतिआई ॥

सतगुरु उवाच

धर्मदास मैं तोहि बुझाऊँ । तीनलोक स्थान चिन्हाऊँ ॥
ब्रह्मलोक लिंग अस्थाना । तहाँते उत्पति होय निदाना ॥
विष्णुलोक नाभी विस्तारा । शिवका लोकहै ह्रदय मँझारा॥

चौथालोक अधर अस्थाना । कहै कबीर मैं कह्यौ बिधाना ॥
ताहि लोकको ध्यान लगावे । चलत हंस काल नहिं पावे ॥

साखी—अधर करै जब आसन, पिण्ड झरोखे नूर ।
मैं अदली कदली बसूं, कहां खोजै बडि दूर ॥

धर्मदास उवाच चौपाई

साहेब लोक कहा हम जाना । और भेद कछु कहो बखाना ॥
सात पांखडी वरणि दिखाओ । भिन्न २ करि मोहिं लखाओ ॥

सद्गुरु उवाच

सात पांखडी कहूँ ठिकाना । धर्मनि बचन सत्तकर माना ॥
श्रवण दोय पांखडी जाना । सुने शब्द तबही सुख माना ॥
होय पांखडी नैन बखानी । पापदृष्टि सबही क्षय हानी ॥
पांचये पांखडी कहूँ बिचारा । रसना शब्द उठै हंकारा ॥
छठी गांखडी इन्द्री जानी । उत्पति बिन्दुले डारे तानी ॥
सातवीं पांखडी हेठ बतावा । खोजै कमल स्थिर घर पावा ॥
पांखडी सात कमल है एका । भीतर ताहि जीव मन ठेका ॥
ताहि कमलमें तार लगाई । सोई तारको चीन्हों भाई ॥
सोही तार अधर ले राखा । जो कोइ साधु हृदयमें ताका ॥
ताहि तारका बहुत पसारा । खंड ब्रह्मांड पताला संबारा ॥
ताहि तारमें डोरी लागी । बिरला चीन्हे संत सभागी ॥
श्वेतभाव तारको अंगा । नाम निःअक्षर ताके संगा ॥

साखी--कहै कबीर धर्मदाससे, गुप्त निःअक्षर नाम ॥
निःअक्षर लखपावई, होय जीवको काम ।

धर्मदास उवाच चौपाई

कमलभेद तुम भले सुनाया । अक्षरभेद सोइ हम पाया ॥
साहेब कहो जीव किमि आया । नरदेही कैसे करि पाया ॥

कैसे घटमें कीन पसारा । कौन अस्थल बैठक संवारा ॥
इतना भेद कहों समझाई । सतगुरु मैं तुम बलि जाई ॥

सद्गुरु उवाच

धर्मदास सुनियो चितलाई । जो बूझे सो देऊँ बताई ॥
पवनजीव ब्रह्माण्ड रहाई । ता पीछे नाभी चलजाई ॥
नयन नासिका कीना साखी । मूल कमल सुरति गहि राखी ॥
चक्षुज्योति जो बरै उजियारा । हिरदाकमल ब्रह्माण्ड मझारा ॥
जीव बैठे द्वीपन में जाई । काया क्षेत्रमें जाय समाई ॥
ता विधि घटमें जीवहि आया । रज बीजहीते पिंड बँधाया ॥
शीश स्वारि बांही निर्माई । कंठ कमल हृदय बनाई ॥
ता ऊपर द्विपि बदन सवारा । पवनजीवसे भय उजियारा ॥
कमल सबज स्वेत है राता । नाभी सकल पुनि सब गाता ॥
ता पीछे दोय खम्भ लगाया । रचिकाया पुनि जीव समाया ॥
स्वाती पवन पुरुषकी स्वांसा । जिन कीना जीवन संग बासा ॥
ताको भेद सुना धर्मदासा । तौलि लेहु सत्ताइस मासा ॥
छिन छिन पलपल आवै भाई । जीव संधि लेखे नहिं पाई ॥
प्रथम घडी ब्रह्माण्ड रहाई । दूजी घडी नाभी चल जाई ॥

साखी—तीजी घडीके बीतते, फिर तहँवा चलजाय ॥
अस बिधि रहनी जीवकी, कहै कबीर समझाय ॥

धर्मदास वचन चौपाई

जा बिधि जीव देहमें आया । सोई भेद हम निज कर पाया ॥
दयावंत प्रभु और बताई । छूटै हंस कौन दिशि जाई ॥
काया तजिके होय न्हारा । कौन दिशा हंस पगुधारा ॥
तीन ठाम मोहि देहु बताई । तहां सुरति राखूं ठहराई ॥

साखी—चारखूट धरती अहै, आठ दिशा है पवन ।
सतगुरु कहो विचारिके, हंसाके दिशि कवन ॥

सद्गुरु वचन चौपाई

मारग दोय तोहि कहुँ ज्ञाना । एक बंधन एक मोक्ष बखाना ॥
जो स्वासा सँग करै पयाना । पांच तत्त्वमें जाय समाना ॥
फिरि फिरि आवै फिरि २ जावे । बहुरि जगमें नाम धरावे ॥
अधर तत्त्वमें शब्द निवासा । ताहि माहि जिव करै जो बासा ॥
सार शब्दमें रहै समाई । अभय द्वार होइ आवै जाई ॥
वहां न लागे काल कसाई । द्वीप अधरमें बैठे जाई ॥
गुप्तभेद काहु बिरलै पावा । तुमको धर्मनि प्रगट सुनावा ॥

साखी—उत्तर घाटी ऊतरे । अधरहि बैठे आय ।
तहांते सुरति लगावई, पुरुषके परसे पाय ।

धर्मदास वचन चौपाई

ताहि अधरको कहो ठिकाना । देखू जब मेरा मन माना ॥
बिन देखे परतीत न आवै । जो नहिं सतगुरु भेद बतावै ॥

सद्गुरु वचन

धर्मदास मैं भेद बताई । जाय अधरमें जीव समाई ॥
ताहि अधरको कहूँ ठिकाना । योजन आठ ऊपर परमाना ॥

साखी—एक अधर होय आवही; एक अधर होय जाय ।
एक अधर आसन करै, अधरही माहिं समाय ॥

चौपाई

प्रथम हंस सुखसागर जाई । सुखसागर में दर्शन पाई ॥
सुखसागरका यही सँदेशा । लागे उडुगण पाती कैसा ॥
हंसा पैठिके कीन सनाना । भय उजियारी षोडश भाना ॥
लागी डोर शब्दकी नेहा । असपांजी अवर बिदेहा ॥

लागी डोरी शब्दकी तारा । चढ़ै हंसा पांजी उजियारा ॥
चढिके हंस अधरसे पेखा । हंसा उलटि ठाटको देखा ॥
भलि साहेब मोहि कीनि दाया । छूटि सकल मोह और माया ॥
पुहुपमांहि जस वास समाना । हंस धरै इमि पुरुष ध्याना ॥
या विधि हंस अमरघर जाई । धर्मदास सुनियो चितलाई ॥

साखी—धरती अकाशसे बाहिरे, जहां शब्द निर्वान ।
तहां जीव चढि बैठही, काल मरम नहिं जान ॥

धर्मदास वचन-चौपाई

सद्गुरु भेद सतहि समाना । द्वीपखंडका कहो ठिकाना ॥
कायाखंड कहो मोहि भाखी । जाते जीव अमरघर राखी ॥

सतगुरु वचन

धर्मदास बूझी भलवानी । सत्य वचन तोहि कहूं बखानी ॥
प्रथमखण्ड शब्द है भाई । दूसर खण्ड सुरति ठहराई ॥
तीसर खण्ड निरतिमें ठयऊ । चौथा खण्ड प्रेम निर्मयऊ ॥
पांचवाँ खण्ड शील है भाई । छठाँ खण्ड क्षमा निर्माई ॥
सातवाँ खण्ड संतोष दृढाया । आठवाँ खण्ड दया समझाया ॥
नव खण्ड भक्ति कहि दीन्हा । धर्मदास तुम निजकरि चीन्हा ॥
इन खण्डनमें खेलै जाई । निश्चय हंसा लोक सिधाई ॥
सुनो सात द्वीपनके नाऊँ । भिन्न भिन्न करि कहि समझाऊँ ॥
द्वीपतत्त्व है बड उजियारा । ताको निशिदिन करो विचारा ॥
धर्ती तत्त्व अग्नि जो होई । द्वीपजलानिधि जाय समोई ॥
तेजतत्त्वमें भाषि सुनाई । द्वीप शून्यमें जाय समाई ॥
जलका तत्त्व कहू विस्तारा । तेहि सुखसागर द्वीप सिधारा ॥
वायस तत्त्व सुनो धर्मनिवानी । पवनद्वीपमें जाय समानी ॥
तत्त्व अकाश कहूँ समझाई । द्वीपस्वर्गमें जाय समाई ॥

अग्नितत्त्वकी सुनियो वानी । दीप अग्निमें जाय समानी ॥
सुषुमनि तत्त्व कहूँ समझाई । द्वीप अधरमें बैठे जाई ॥

साखी–सातद्वीप नौ खण्ड हैं इनमें, रहे समाय ।
कहे कवीर धर्मदाससे, निश्चय लोक सिधाय ॥

धर्मदास उवाच

साहब भेद कह्यो हम जाना । सातबारका कहो ठिकाना ॥
सातबार कैसे उपजाई । चन्द सूर्य कैसे निर्माई ॥
सूरज कैसे तेज समोई । सीतल चन्द कौन विधि होई ॥
निशिवासर कैसे कर जानी । ये सब भेद कहो मोहि ज्ञानी ॥

सतगुरु उवाच

धर्मदास बूझी बल नागर । संत सुकृत ज्ञान उजागर ॥
कहूँ भेद सुनियो चितलाई । चन्द्रसूर दिनवार बताई ॥
पुरुष कमलते सातो वारा । ताको भेद कहुँ टकसारा ॥
सप्तपाखडी जब बिकसाई । सातबार तहांते आई ॥
आठवाँ बार कमलमें रहेऊ । ताहि बारते सातो कियेऊ ॥
कलीकमल भये अँधियारा । निशिवासरको भयो विचारा ॥

साखी–मंजन कीनो कमलको, छोलन कीनो पास ।
चन्द्रसूर जाते भये कियो पृथ्वी प्रकाश ॥

चौपाई

पहिले छोलन जल नहिं रहेऊ । ताते सूर तेज जो भयऊ ॥
सुनियो चन्द्रकेरि शीतलताई । धर्मदास मैं देउँ बताई ॥
सीच्यो अभी छोल पुनि जबही । शीतल चन्दा उपजे तबही ॥
छोलन चूनि झरि झरि परही । नक्षत्र चद्रमा संगति करही ॥
यहि विधि चन्द्रसूर जो भयेऊ । धर्मदास हम तुमसे कहेऊ ॥
यह सब रचना कूर्मको दीना । पाछे ध्यान अधरमें कीन्हा ॥

सब विस्तार कूर्महि दयऊ । तबही पुरुष कन्याको कियऊ॥
रचना रही कूर्मके पेटा । धर्मराय ताघर नहिं दीठा ॥

साखी--रचना रही कूर्ममें, पुरुषहि दीन सवांरि ।
जाते शब्द उत्पति भई, सो मैं कहूँ विचारि ॥

चौपाई

धर्मराय सेवा सितधारा । तब पुरुष ताहि बाचा हारा ॥
पुरुष दीन उत्पति धर्मराई । धायके लडे कूर्मसे जाई ॥

साखी--क्षीणै माथा नख करी, हरे सबे विस्तार ।
महाशून्य लेय आयऊ, धर्मराय बरियार ॥

चौपाई

निकसी खान वेद रस बानी । चांद सूर्य्य यों उडगण जानी॥
सब विस्तार निकसिजब आया । धर्म जलनिधि राख छिपाया॥

साखी--निकसी वस्तु कूर्मते, ना कोइ कीन विचार ।
मूल बीज जब पाइया, भयाकाल बरिआर ॥

धर्मदास उवाच चौपाई

को ले शीश कूर्म का छीना । यह तो भेद सकल हम चीना॥
धर्मराय कन्या कैसे पाई । तीन देव कैसे उपजाई ॥

सद्गुरु वचन

अद्या पुरुष दीन पठवाई । आदि भवानी अमृत लाई ॥
अष्टांगी देखी धर्मराई । तासु सुरति संयोग बनाई ॥
अद्याके विधि शिवसो मुरारी । मथि जलनिधि रतन निकारी॥
अष्टांगीते भये विस्तारा । सब रचना या कीन हमारा ॥

कूर्म वर्णन

बिनती कूर्म पुरुषते लाई । तव सुत शीश हमार छिनाई ॥
छोछा उदर भया हमारा । अहो पुरुष कछु देहु अहारा ॥

साखी–वचन तुम्हारा मानेऊ, राखि शब्दकी कानि ।
नीर जलानिधि सोखिके, मेटत सब उतपानि ॥

पुरुष उवाच

वाणीपुरुष अधरसे कहेऊ । जाउ कूर्म मागि सो लेऊ ॥
वचन हमारा सत जो होई । जो मांगो सो देऊं तोई ॥

कूर्म उवाच

साखी–ना कछु भोजन चाहूँ, ना कछु करूं अहार ।
चन्द्र सूर्य जब पाउं, तब लेऊं शिर भार ॥

पुरुष उवाच चौपाई

चांद सूर्य मैं देहू तोही । कैसे चलै सृष्टि पुनि सोही ॥
जो जगमें होय अंधियारा । कैसे चलै सृष्टि व्यवहारा ॥

कर्म उवाच

साखी–चांद सूर्य चलि आवही, तो मैं करूं अहार ।
चांद सूर्य पहुंचे नहीं, निगुलूं सब संसार ॥

पुरुष उवाच–चौपाई

पुरुष वचन तब कहै बिचारी । भोजन सूर पहरलेहु चारी ॥
शशि भोजनका भाषू लेखा । घडी घडीको करूं विवेका ॥
अमी चन्द्रके पेट रहाई । ताको लेखा कहुं समझाई ॥
अमृत क्षणक्षण तुम लेहो । पाछे सम्पूरण करि देहो ॥
चन्द्रतेज धर्मनि इमि हानी । सूर्य्यतेज जो बहुत बखानी ॥
कूर्म पुरुष वचन हियो देखा । घडी पहरको बांधे लेखा ॥
पल क्षण दंड परमाना । घडी पहरकी कहूँ ठिकाना ॥
षट स्वासाकी पल यक होई । षट पलकी क्षण जानों सोई ॥
दश क्षणको यक दंड बखाना । दोय दंड यक घड़ी परमाना ॥
चारि घड़ी यक पहर विवेका । चारि पहरका दिन यक लेखा॥
सात बार दूना करि जाना । यहि विधि पाख भयो परमाना॥

दोयपाखको मास बखाना । दोयमासकी ऋतु यक जाना ॥
दोयऋतुको यककाल विशेषा । तीन चौकड़ी बरष यक देखा॥
आगे देखो ताकर लेखा । धर्मदास अब कहूँ बिवेका ॥
निशि वासर पुनि होय जबही । कर्म अहार सूरले तबही ॥
चारिपहर निशिकरै जो ग्रासा । बासरसुर सब होय प्रकाशा ॥
अब चन्दाको कहूं बखाना । धर्मदास तुम निज करि जाना॥
कृष्णपक्ष पडिवा जब आवे । कूर्म अहार चन्द्रको पावे ॥
कूर्मअहार चन्द्र इमि लीन्हाँ । घडी घडी घटती तब कीन्हाँ ॥
शुक्लपक्षते भया निवासा । पूनम चन्द्र किया प्रकाशा ॥
पूनम व्रत कूर्म जो कीन्हा । ताते चन्द्रग्रास नहिं लीन्हा ॥
अमी चन्द्रमें रहे समाई । पूनम अधिक जाहिते भाई ॥
पूरण व्रत पूनमको होई । पूनममें चौका आरम्भे सोई ॥
तौन व्रत वंशको दीना । अंश बचाय अपना करि लीना॥

साखी–दीना अपने वंशकी, करि हैं शब्द संभार ।
गुप्तनाम गहि राखि है, हंस उतारे पार ॥

चौपाई

सुमिरे नाम औ सुरति संभारे । नाम पान दे हंस उबारे ॥
जा दिन मुक्ति साधै कोई । निःअक्षरकी गमताही होई ॥
पूरण व्रत पूनम जो होई । पूनम चौका कूर्मका सोई ॥
अहो कूर्म आसन पर जाई । सत्य वचन कहूँ समझाई ॥
ऐसे वचन कूर्मको भयऊ । कहैं कबीर धर्मनि सुनि लयऊ ॥

धर्मदास वचन

साहेब भेट कहे हम पेखा । अब भाष्यो पवनन कर लेखा॥
पवन भेद मोहि कहो समुझाई । वचन तुम्हार रहूँ लवलाई ॥
कहो कहां ते पवन उठि आई । दिशा भेद तुम मोहि सुनाई ॥

कवन पवनते जीव उत्पानी । सोई पवन तुम कहौ बखानी ॥
ताहि पवनको नाम बताऔ । कर्म काटि हंसा मुक्ताऔ ॥
कैसे सीप स्वातीको पावै । कारण कौन बांझ रहि जावै ॥
ये सब भेद दया करि कहेऊ । साहब मोहि अपना करि लयेऊ॥

सद्गुरु उवाच

धर्मदास सुनु पवनकी खानी । कूर्म मुखते पवन उत्पानी ॥
चारि अरति पवन उठि आया । ताको भेद कोई जन पाया ॥
शीश कूर्मका कहूँ बखानी । साधु सुजन कोई कोई जानी ॥
माया आठ पृथ्वीमें भीना । आठ दिशा भइ ताकर चीना॥
माथा आठ आठ है माना । चारि दिशा चारि कौन परमाना॥
माथा तीन छीनि ले गयऊ । माथा तीन पेटमें रहेऊ ॥
काकर चौदह भुवन बनाया । सोई रूप नर करे सुभावा ॥
अधर पवन सो जीव उत्पानी । चलै उर्द्धसों अधर समानी ॥
ताहि वचनको पारस नामा । होय संयोग उठ जब कामा ॥
बाई और ते देहि जगाई । उमगे काम चलै मनताई ॥
चलै बिन्दु तीन मुख धाई । उरधहुते अधर जब आई ॥
ऋतुबसन्त जा दिन होई । स्वाती पवन पडै पुनि सोई ॥
ऋतुबसन्त त्रियतन आवे । खुले कमल तब चाह जनावे ॥
शिव शक्ति सो मिलि है आई । स्वाती बुन्द शक्ति तब पाई ॥
तौन पवन बिन्दु गहि लेही । ताते बांझ होय नहिं तेही ॥
उत्पति पवन कही हम सोइ । स्वाती पवनले सम्पुट होई ॥

साखी—जाहि पवन पर चंदा रसे, ताहि न ग्रासे काल ।
को यह भेद विचारि है, सोइ जौहरी लाल ॥

चौपाई

धर्मदास तोहि कहूं बिचारा । सूझि पडै सो भेदन्यारा ॥

स्वाती पवन छुवन नहिं पावे । बिन्दु अकेला जो उठि धावे ॥
ताते शून्य होय पुनि जाई । कहूँ भेद चितराखु समाई ॥
पवन भेद हम तुमसो कहेऊ । नाम न्यारा इनते रहेऊ ॥

साखी–पवन भेद हम भाखेऊ, तामें कालपसार ।
पचासी पवनके बाहिरे, अरज शब्द है सार ॥

धर्मदास उवाच-चौपाई

पवन भेद सतगुरु हम जाना । अब कछु कहिये नाम बखाना॥
निःअक्षरका कहो प्रकाशा । है भीतर कि बाहर बासा ॥
कैसे हंसा लोक समाई । कौन बस्तु जो होय सहाई ॥
कैप्रमान बस्तु जो होई । साहेब मोहि कहो तुम सोई ॥

सद्गुरु उवाच

धर्मदास मैं भेद बताऊँ । संशय तेरो सबहि मिटाऊँ ॥
बावन अक्षर मय संसारा । निःअक्षरसो लोक पसारा ॥
सोइ नाम है अक्षर निवासा । कायाते बाहर प्रकाशा ॥
नाम भेद मैं तुमसे कहेऊ । धर्मदास तुम निजकर ठहेऊ ॥
तौन नाम सुनि हंसा पावे । कहै कबीर सो लोक सिधावे ॥

साखी–धरनि अकाशके बाहिरे; योजन आठ परमान ।
तहां क्षत्रतन राखेऊ हंसा करे विश्राम ॥

चौपाई

बिन सतगुरु कोई भेद न पाई । धर्मदास मैं तोहि लखाई ॥
राई भर है वस्तु हमारी । अर्घराय स्थूल सवाँरी ॥
लहर लहर बादलमें होई । पुरुष मूल निज जानो सोई ॥
उनको सौप दीन शिर भारा । वै जीवनको करै उबारा ॥
भाषू शब्द प्रथमहैं राई । फूटि अकाश घोर होय जाई ॥
वाहिबक्त जो तजै शरीरा । आवै लोक अस कहै कबीरा ॥

सत्तलोक अधर है धामा । तहवाँ पुरुष अजर है नामा ॥
तौन नामले हंस उड़ाना । पहुचै हंसलोक अस्थाना ॥
तहाँ गये जिवकाल न पावे । योनि संकट बहुरि न आवे ॥

साखी--सबे भेद हम भाषेऊ, कहा शब्द टकसार ।
धर्मदास प्रतीति करि, सुमिरहु नाम हमार ॥

धर्मदास उवाच-चौपाई

कहेउ शब्द मोर मन माना । अब प्रभु कहिये सुरति ठिकाना॥
कहो सुरतिकी उत्पति भयेऊ । कहो निरति दूसर निर्मयऊ ॥
कौन सरूप सुरतिको जानी । कैसे निरति दूसरी ठानी ॥
कैसेके घट आनि समानी । सो समरथ मोहि कहो बखानी॥
सुरति निरति संगति किमि भयऊ। कैसे समझ हृदयमें लहेऊ ॥

साखी--सुरति निरतिकी उत्पति, सब कहि भाषहु मोहि ॥
दोनों कैसे देखिये, पूछतहौ गुरु तोहि ॥

सद्गुरु वचन चौपाई

धर्मदास मैं कहूँ वखानी । भाखूं सुरति निरति उत्पानी ॥
मूल नाभि ते शब्द उचारा । फूटीनाल भई दुइ धारा ॥
स्वाती पवन अधरते आई । सुरति निरति संगति मिलि धाई॥
सुरति निरति यों उत्पति होई । ताको भेद लखे जन कोई ॥
सुरति निरतकी सुधि ना पाई । सो नर पशु पक्षी है भाई ॥
मूरख सो मोहरति ह्वै गयऊ । शब्द बांधि जिन सुरति ना गहेऊ॥
तेहि शब्दका करो विचारा । सुरति निरतिले शब्द संभारा ॥

साखी--अंकुर नाम वह शब्द है, कीना सकल पसार ॥
कहै कबीर धर्मदास सों गहो शब्द टकसार ॥

चौपाई

गहै शब्द सो लोक सिधाई । बिना शब्द पशु पक्षी भाई ॥

बिना शब्द जैसे घट अंधियारा । धरि धरि काल करै अहारा ॥
शब्द सुरति निरति यक ठौरा । कहै पुरुष तहां मोहि निहोरा ॥
अगम तत्त्व गहि मथै शरीरा । निरति नाम भये सत्तकबीरा॥
निरति धरे शब्दकी आशा । सुरति नाम तुम गहु धर्मदासा॥
सुरति निरतिसे बांधे नेहा । पावै नाम होय हंस विदेहा ॥
कथि ज्ञान भाषेउ टकसारा । धर्मदास तुम करो बिचारा ॥
हम तुम कीना सकल पसारा । लोक न जाने मूढ गँवारा ॥
मथुरा बैठिके ज्ञान सुनाई । धर्मदास गहे सतगुरु पाई ॥
पूरण ज्ञान तुम मोहि सुनावा । संसय सबही दूर बहाया ॥

साखी–गुरु समाना शिष्यमें, शिष्य लिया कर नेह ।
विलगाये बिलगे नहीं, एक प्राण दुइ देह ॥

इति श्रीग्रन्थसंतोषबोध समाप्त




सत्यसुकृत, आदि अदली, अजर, अचिन्त, पुरुष,
मुनीन्द्र, करुणामय, कबीर, सुरतियोग संतान,
धनी, धर्मदास, चूरामणिनाम, सुदर्शन नाम,
कुलपति नाम, प्रबोध गुरुबालापीर, केवल नाम,
अमोल नाम, सुरतिसनेही नाम, हक्क नाम,
पाकनाम, प्रकट नाम, धीरज नाम,
उग्र नाम, दया नामकी दया-
वंश ब्यालीसकी दया

# अथ श्रीबोधसागरे

पञ्चविंशतिस्तरंगः

## अथ काया पांजी प्रारम्भ

★

धर्मदास उवाच—चौपाई

धर्मदास जब विनती कीना । कायापांजी पूँछ सो लीना ॥
धर्मदास पूछे चित लाई । कायापांजी कहो अर्थाई ॥
काया पांजी कहो विचारी । जहां होय तत्त्व करै पैठारी ॥
काया पांजीका करौ बखाना । जहवां सुरतिका सदा ठिकाना ॥
कायापांजी निजकर पाऊँ । सुरति शब्दमें जाय समाऊँ ॥

कायापांजी कर कहो विशेखा । मैं अपने घट करूं बिबेखा[1] ॥
करि विवेक तहँ सुरति लगाऊँ । पांजी द्वार घाट मैं पाऊँ ॥
सुरति लगाय रहूँ मैं तहँवां । सार शब्द मूल है जहँवां ॥
करि विवेक तहां सुरति पठाऊँ । पांर्जा द्वार घाट मैं पाऊँ ॥
पावो घाट सुरतिके द्वारा । तो मैं सुरति करो पैठारा ॥
बिना घाट कहां जाऊँ भाई । बिन जाने कहँ रहूँ समाई ॥
बिन जाने जाऊँ केहि घाटा । कैसे पाऊँ शब्द के बाटा ॥
बिन जाने शब्दकरि घाटा । शब्द अगम अगम है बाटा ॥
शब्दके अंग अगम है भाई । बिन जाने सब गये नसाई ॥
पाऊँ द्वार शब्दका टीका । अवर सकल जग लागे फीका ॥
अगम शब्द कहो अर्थाई । बिन पाये शब्द गह्यो न जाई ॥
मूल शब्द जहँ होय उचारा । सो पाऊं सुमेरु चढि द्वारा ॥
भाषो द्वार सुमेरु बखानी । कहवांते सुमेरु पुनि जानी ॥
कहवांते अकाशका लेखा । सो मोहि साहेब कहो विवेखा ॥

साखी–धर्मदास बिनती करे, घाट घाट कहो समझाय ।
तहां मैं सुरति लगाइके, शब्दमें रहूँ समाय ॥

सद्गुरु उवाच–चौपाई

धर्मदास मैं भेद बताऊँ । सुरति शब्दका द्वार चिन्हाऊँ ॥
चन्द्रलगनका कहूँ विचारा । तहवां सुरति करो बैठारा ॥
चन्द्रद्वार होय आवो जाई । यहीं घाट मैं रहो समाई ॥
दोउस्वर साधि करो यक घाटा । चन्द्रद्वार होय पावो बाटा ॥

धर्मदास उवाच

कौन घाट चन्द्र है भाई । कौन घाट सूरय पै आई ॥

---

1 विवेखा-विवेक—विचार

सद्‌गुरु उवाच

दहिने घाट चन्द्रका बासा । बाँबें सूर करै प्रकाशा ॥
यही दोउ स्वर साधो भाई । चन्द्रद्वार होय निकसो आई ॥
अगम पंथ दहिने स्वर करहू । सुरती सँयोग नाल चित धरहू॥
चन्द्रद्वार होय आओ जाइ । शब्द सुरतिमें रहो समाई ॥
स्वर दाहिने सुरति चढ़ाओ । तबही डोर शब्दकी पायो ॥
शब्द डोर दहिने दिशि जाई । धर्मदास तुम गहो बनाई ॥
पाओ डोर शब्दको भाई । अगम पंथ चढ़ि बैठो जाई ॥
गहो बनाइ कटैं यम पासी । पहुँचो लोक मिटैं चौरासी ॥
स्वर दाहिने होय करे पयाना ।तब सोहं सुरति होय अग्रु आना॥

साखी--कहैं कबीर धर्मदाससे, ऐसा साधो घाट ।
आगे भेद बताऊं, तहं देखो लिजवाट ॥

चौपाई

अहो धर्मदास मैं भेद बताऊ । शब्दहि सुरतिका द्वार चिह्नाऊं॥
भाष्यो शब्द सुरतिका पासा । सो मैं तुमसे कहों प्रकाशा ॥
कहूँ तत्त्व तहँ करो जो बासा । मथो तत्त्व तुम धर्मदासा ॥
मथो तत्त्व सुरति सो भाई । पुनि आगेको देहु रंगाई ॥
तत्त्व मथो तुम अंश हमारा । तत्त्वसे उतरो भवजल पारा ॥

धर्मदास उवाच

कह्यो तत्त्व तुम मथो बनाई । ज्ञानी तुमहि कहो समझाई ॥
कहवा आहि तत्त्व को बासा । सो ज्ञानी मोहि कहो प्रकाशा॥

सतगुरु बचन

दहिन स्वर साधि चढ़ो आकाशा। त्रिकुटी मध्य तत्त्वका वासा ॥
त्रिकुटीमध्य तत्त्व जो रहाई । तहाँ सुरति सो देखो जाई ॥
त्रिकुटी मध्य तत्त्वको थाना तेहि मथि आगे देहु पयाना ॥

सुरति डोरी चलै बरजहेरा । मथिके तत्त्व कपाट उघेरा ॥
तेहि आगे सुमेरु बखानी । बरनो द्वार स्वरूप खानी ॥
वाहि द्वार होय सुरति चढ़ाओ। आगे अगम भेद पुनि पाओ ॥
त्रिकुटी आगे सुमेरु ठेकाना । तापर जुज्या अकाश बिधाना॥
आंगुलचारि अकाश परमानो । धर्मदास तुम निजकर जानो ॥

धर्मदास वचन

अब अकाशका भाखो राहा । हम अजानका जानों थाहा ॥

सद्‌गुरु वचन

अब अकाशका भाखूं लेखा । सुरतिकमल तहँ निजकर देखा॥
बांये धर्मराय अस्थाना । दहिने सुरति द्वार ठिकाना ॥
सुरति कमल सुमेरुके आगे । बिहँगम डोर तहांसे लागे ॥
सुरति कमलके रूप बखानो । एक चन्द्र आभा अनुमानो ॥
वाहि कमलमें झलकै चंदा ।सुरति चढ़ाय तुम करो आनन्दा॥
तहवां डोर शब्दकी भाई । सुरति संयोग चढ़ि देखो जाई॥
सुरति नाल है बड़ बरियारा । मध्य लिलाट धर्म रखवारा ॥
शब्द काहे न करहु विचारा । धर्मदास तुम अंश हमारा ॥
दहिने सुरति कमल कहँ पावा । तेहि आगे पुनि ध्यान लगावा॥
तेहिढिगसुरतिकमलको लेखा । सुरति तत्त्व नैन बिन देखा ॥
ताकर भेद मैं देऊँ बताई । सुइ परमाण द्वार निरमाई ॥
धर्मदास मैं कहूँ पुकारी ।तिल परमाण तहँ खुलै केवारी॥
तेहि केवार दोय है घाटा । चढ़े सुरति तब पावो बाटा ॥
सोहं सुरतिले चढो संभारी । तिल परमाण खुलै केवारी ॥
नासिकानाल सुरति जो ध्यावे । खोली केवारी तब बाहर आवे॥
पखुरी सुरति कमलको जानी । तासे सुरति करो पहिचानी ॥

साखी—सतगुरु भेद बतावई, तब पावे यह द्वार ।
कहै कबीर धर्मदाससो, निश्चय वचन हमार ॥

धर्मदास वचन–चौपाइ

धर्मदास चरनन चितलावा । अगमागम तुम मोहि बुलावा ॥
आगे गम्य मोहि देहु लखाई । अब मैं गहों सुरति बनाई ॥
यह तो ठीक चिन्हेउ मैं भाई । तुम परताप गम्य हम पाई ॥
अब आगेकर कहो बखाना । जहाँ मूल शब्दका पावों ध्याना॥
जेहिते शब्दमें जाय समाई । तवन गम्य मोहि देहु लखाई ॥
भाषो मूल जाओं बलिहारी । मूलशब्द पुनि गहों सम्हारी ॥
सुरति कमल गम तुम भाखो । सुरति सम्हार अपने चितराखो॥
सुरति कमल सुनब मैं साहेब । बिहंगम डोरि गही चितलायब॥
अब आगेका भाषो राहा । हम अजान का जानो थाहा ॥
तुम्हरे जनाय हम जानब भाई । तुम जानो सो करो बनाई ॥

साखी–समरत्थ आगे भाषो, मैंकरूं सुरति सम्हार ।
सकल पसारा मेटिके, उतरूं भवजल पार ॥
सतगुरु तब दया भई, पावों पद निर्वान ।
आगे गम्य बतावहु, सतगुरु वचन परमान ॥

सद्गुरु वचन–चौपाई

सुरति कमलके आगे भाखों । तुमसे गोप कछू नहिं राखों ॥
सुरति कमल होय निकसो भाई । विहँगम डोरि गहो चितलाई ॥
विहँगम डोर दहिने दिशि जाई । तुमसों भेद कहौं समझाई ॥
सुरति कमलके कहों ठिकाना । आगे है योजन परमाना ॥
अक्षय वृक्ष तहाँ लागा भाई । दवना मरुआ बरनि न जाई ॥
बेलि चमेली बास सुबासा । बास सुबास किया प्रकाशा ॥

साखी–दवना मरुआ गुलाब है, गुलाब चमेली बास ।
तहवां अक्षय वृक्ष है, वरणों वास सुबास ॥

### चौपाई

अक्षय वृक्षके बरणों अंगा । श्वेत स्वरूप तहां देखो रंगा ॥
श्वेत स्वरूप तहां देखो भाई । ऐसा भेद अगम अर्थाई ॥
ऐसा अलख लखे जो कोई । जरा मरण रहित सो होई ॥
विहंगम डोरि तहाँते आई । अकल कलामें जाइ समाई ॥
श्रवण ऊपरका कहों ठिकाना । झींगुर शब्द करै घमसाना ॥
दहिने स्वरपर ताकर ठाऊं । यही निजभेद मैं तुम्हें बताऊं ॥
अर्ध कमल उर्धमुख रहई । तहवां मूल शब्द उच्चरई ॥
धर्मदास तुम करहु संभारा । अकल कलामें शब्द उचारा ॥
ताकी सुरति धर्मनि तुम धरहू । होय धर्मनि यहि शब्दे गहहू ॥
तीन शब्द मैं दीन बताई । उहै डोरीले आगे जाई ॥
सबै दिशि लागी है ताही । यहि डोरी गहि मिलहू वाही ॥
बिहँगम डोरी शब्दमें लागी । झींगुर शब्द ऊबे धन जागी ॥
अकल कमल है श्वेत स्वरूपा । ताहि जोतिका कहों निरूपा ॥
अकल कमलका भाषों लेखा । छत्तीस पँखुरी ताहि हम देखा ॥
झलके मोति वरणि नहिं जाई । चहुँ दिशि ज्योति चमके आई ॥
छत्तीस पखुरीका विस्तारा । आप आप मुख राग उचारा ॥
तेहि भीतरका कहों हवाला । आभा उठि तहां चमके लाला ॥
होय उजियार दीपकके टेमा । पावो जाय सुरतिके प्रेमा ॥
आभा उठे सो वरणि न जाई । तुमकहं दीन अलख लखाई ॥
भीतर कमल होय उजियारा । तहां मूलशब्द करै झनकारा ॥
उमगै मोती लाल अरु हीरा । तहवां बैठे सत्त कबीरा ॥
मोती झालर ऊपर छाजे । भीतर शब्द जो मूल बिराजे ॥
अक्षय कमल जहँ तार ठिकाना । गुह्यकमल जहाँ होय निदाना ॥
तेहि आभा वरणि न जाई । साठ भानुकी ज्योति छपाई ॥

अस उजियार तेहि कमलमें होई। ताका मरम न जाने कोई ॥
अरिष्ट कमल है भेद निनारा। देखों जाई सकल उजियारा ॥
वोहि ठेकान सुरति करु ध्याना। तहां गुप्त होय जाय समाना ॥
एह समान जो बैठे जाई। हो धर्मनि तोहि देउ लखाई ॥
अकह कमल तहां प्रकाशा। ताहि महँ निःअक्षरका बासा ॥
दुइ कमल मुखही मुख जोरा। तेहिमा शब्द करै घनघोरा ॥
गुप्त नाम गुञ्जार तहँ देख्यो। मूलशब्दकी जड़ पेख्यो ॥
गुंजार अकह कमलमें आवे। मूलशब्द झंकार सुनावे ॥
मोतीवरण होय उजियारा। फूही छूटे अगरकी धारा ॥
छूटत अगर धार तहँ भारी। सभै बिलोय मैं कहों विचारी ॥
सुरति संजोय तहँ पिवै अघाई। जाते तप्त दूर होय भाई ॥
अकह कमलमें करो पैठारा। पीबो जाय अगरकी धारा ॥
झमकत अगर तहां निज मूला। उनसम तुल्य नहीं कोइ तूला ॥
यहि निज जपु अजपा जापा। पहुँचो लोक मिटै संतापा ॥
बरषे तहां अगरकी धारा। सुरतिनाल तहां करो अहारा ॥
जीवतही तहां रहो समाई। यह निज दीन्हों वस्तु लखाई ॥

साखी—कहै कबीर धर्मदाससे, यही वस्तु निजसार।
यही वस्तु जो जानिये, उतरे भवजल पार ॥

इति श्रीग्रन्थ कायापांजी सम्पूर्ण

---






सत्यसुकृत, आदि अदली, अजर, अचिन्त, पुरुष,
मुनीन्द्र, करुणामय, कबीर, सुरतियोग संतान,
धनी, धर्मदास, चूरामणिनाम, सुदर्शन नाम,
कुलपति नाम, प्रबोध गुरुबालापीर, केवल नाम,
अमोल नाम, सुरतिसनेही नाम, हक्क नाम,
पाकनाम, प्रकट नाम, धीरज नाम,
उग्र नाम, दया नामकी दया-
वंश ब्यालीसकी दया

# अथ श्रीबोधसागरे

षड्विंशतिस्तरंगः

## अथ पञ्च मुद्रा प्रारम्भ

★

सुक्रित वचन

सुक्रित कहें सुनो गुरुज्ञानी । आगम भेद तुम कहौ बखानी ॥
सकल सृष्टिकी उत्पति भाखौ । मोसों गोय कछू निज राखौ ॥
ब्रह्म जीव कैसे उतपानी । सोई भेद गुरु कहो बखानी ॥
मुक्त भेद गुरु देहु बताई । जाते हंसा लोक सिधाई ॥

योगजीत वचन

योगजीत तब बोलैं बानी । सुक्रित सुनौ आदि सहिदानी ॥
जाके मर्म ना जाने कोई । तुमसों भाष कहों मैं सोई ॥
उतपतको सब भेद बताऊँ । अगम निगम सब तुम्हे लखाऊँ॥
साखी—ज्ञान पंचमुद्रा कहों, मूलज्ञान को सार ।
ऋषि मुनि देवनको मता, ताते अगम अपार ॥

चौपाई

प्रथमहि मुद्रा खेचरी कहिये । सो स्थान गगनमो लहिये ॥
धूप बरण तहां लखो प्रकाशा । चेतन ब्रह्मको तामें वाशा ॥
तत्त्वमाहे विचित्र है सोई । कामधेनु तहां कहिये जोई ॥
पुहुप प्रकाश तहां बिजुली देखा। झिलमिल जोत तारागण देखा॥
रक्तवर्ण तहां सूर्य लखाई । प्रथम आकाशको भेद बताई ॥
चाचरीमुद्रा नासिका अस्थाना। उतंग बिंदको है तहां ध्याना ॥
तहां नाकाश गगन है वासा । बिजुली रूपरेख प्रकाशा ॥
मणिगण रतन मुक्तामणि हीरा। सोहंग रूप पवन तहां धीरा ॥
नासा अग्र करै तहाँ मेला । पवन सिन्धुमें दीजे हेला ॥
तासों हंस लीन होय जाई । निःअक्षरसो जाय समाई ॥
चाचरी मुद्रा दियो बताई । ताको भेद कहौ समुझाई ॥
भोचरीको स्थान लखाऊँ । रकाश गगनको भेद बताऊँ ॥
मन बुद्ध चित तहां होत हुलासा । तहां योग कीजे प्रकाशा ॥
चितचेतन तहाँ झिलमिल देखा । नील वरण पवनकी रेखा ॥
तहवां कोट सूर्यको तेजू । झीन महलमों सुखमन सेजू ॥
तहां गगनमो होत अनन्दा । तहां उदित है पूरण चन्दा ॥
तामो अलख ब्रह्माको कहिये । जासों भेद मुक्तको लहिये ॥
तेहिसों ध्यान लगावै कोई । अमी बुन्द तहां चाखै सोई ॥

अगोचरीको अब कहो निवासा। तासों कीजे योग प्रकाशा ॥
सुर्तनदी तहां उठे तरङ्गा। झालर भेरी शंख मृदंगा ॥
किंकिन चिंचिन किंगरी बैना। गरजनिशान धुनधुन सुवसैना ॥
शून्य महलमों बैठे जाई। दशोंद्वार तब वन्द कराई ॥
यह विध ध्यान गगनमों करई। सत्तर बाजा तब सुनु परई ॥
अनहद नाद सुने जो प्राणी। उपजे महासुखके खानी ॥
सतगुरु कहैं सांच सोई योगी। तहां मरण मगन रमावत भोगी॥
अगोचरी मुद्रा कहा प्रकाशा। ताको योग युक्तकी आशा ॥
उनमुनि मुद्रा महद अकाशा। अलखपुर्ष तहां कीन्हों बासा ॥
ब्रह्मप्रकाश तहांअण्ड न पिण्डा। लोकालोक नहीं ब्रह्मण्डा ॥
ब्रण अब्रण जात नहीं पाती। नहींतहां दिवस नहीं तहांराती॥
तामों सरवर गहिर गँभीरा। जाके आदि अन्त नहीं तीरा ॥
ज्ञानी योगी जप तहां लागा। भयोअनन्द सकलो भ्रम भागा॥
तामो लीन रहै जो कोई। गुप्त मनोरथ पावै सोई ॥
योग जीत कहो भेद अपारा। बिरला साधू करे विचारा ॥
खेचरी चाचरी भोचरी जानी। अगोचराउनमुनिकहीबखानी॥
उनमुनि लागी योगपर निद्रा। सुख समाजजहांपर्म अनन्दा ॥
यह प्रकाश उनमुनिमों कहिये। कछुक भेद पुनि तामों लहिये॥
पञ्च मुद्रा और पञ्च अकाशा। पंच ध्यान और पञ्च प्रकाशा ॥
पञ्च वर्ण और पञ्च हैं वेदा। पञ्च तत्त्वके पञ्च हैं भेदा ॥
पञ्च मन्दिर औ पञ्च हैं द्वारा। पञ्च रूप औ पञ्च अहारा ॥
पञ्च इन्द्री औ पञ्च हैं स्वादा। पञ्च विद्या औ पञ्च हैं नादा ॥
पञ्च हैं आसन पञ्च हैं योगी। पञ्च मंदिर औ पञ्च हैं भोगी ॥
पञ्च सक्त औ पञ्च हैं सीउ। पञ्च कर्म औ पञ्च हैं जीउ ॥
पञ्च पृथ्वी औ पञ्च हैं नीरा। पञ्च तेज औ पञ्च समीरा ॥

पञ्च लिंग औ पञ्च हैं पूजा । पञ्च एक पञ्च है दूजा ॥
पांचों आवें पांचों जाई । पांचों मरे पांचोंको खाई ॥
पांचों सुक्षिम औ पांच अस्थूला । पांच डार औ पांच हैं मूला ॥
पांच पाप औ पांच हैं पुन्ना । पांच बस्ती और पांच हैं सुन्ना ॥
पांच पांच पांचों सब भवा । पांच स्वामी और पांच हैं सेवा ॥
पंच गुरू और पंच हैं चेला । पांच भाव और पांच हैं मेला ॥
पञ्च मुद्राका कहों बिचारा । ताको योगी करे सम्हारा ॥
चार छोड़ पांचो करे बासा । ताते पांचका कहो प्रकाशा ॥
पांचों मुद्रा उनमुनि कहिये । तासों भेद मुक्तिको लहिये ॥
ब्रह्म प्रकाश तहाँ पूरन चन्दा । रैन दिवस नहिं सहज अनन्दा ॥
दुतिया भाव तहाँ नहिं काया । तहवां नहीं धूप और छाया ॥
हम तुम कर्म भ्रम नहिं दोई । तहां सिलान ब्रह्म सो होई ॥
सहज शून्यको लखे जो भेवा । आप ही कर्ता आप ही देवा ॥
प्रथमही आपुपुर्ष विस्तारा । तहांते भयो ब्रह्म आकारा ॥
आकारते अहंकार उपजाई । ताते बहु विस्तार बनाई ॥
सोहं स्वासा पुर्ष उचारा । तहांते भौ अक्षर ओंकारा ॥
पांच ब्रह्मकी उतपति भाषौं । तुमसों गोय कछू नहीं राखौं ॥
अकास ब्रह्मको भास बताऊँ । वायु ब्रह्मको तहवां लाऊँ ॥
पुन है तेज ब्रह्मकी बानी । जलकी बहुरि कहौं उतपानी ॥
फिर पृथ्वीको भास लखाऊँ । प्रथम ब्रह्मको भेद सुनाऊँ ॥
अविगत आदि ब्रह्मको भासा । ताको भेद कहौं प्रकाशा ॥
प्रथमें नाम आकाश कहाई । दुतिये गगनाकाश बताई ॥
फिर रकाशको नाम सुनाऊँ । चौथे गगनसकाश लखाऊँ ॥
पांचे महद अकाशकी बानी । पञ्च अकाशमें कहौं बखानी ॥
अब सुन कहौं पञ्च अस्थाना । सक्रित तुमसों कहौं बखाना ॥

मुखके अग्र खेचरी बासा। ताको ध्यान जन करे अकाशा ॥
नासा अग्रत्रिकुटी अस्थाना। चाचरी मुद्रा तहां बखाना ॥
चक्षु अग्र भोचरी जाना। उर्ध अकाशको है तहां ध्याना ॥
श्रवन अग्र अगोचरी थाना। सहज शून्यको है तहां ध्याना ॥
तिलकपाट उनमुनी कहीजे। महाशून्य ध्यान तहां कीजे ॥
प्रथमहि खेचरीक मुद्रा कहिये। धूमबरण रंग तहां लहिये ॥
पीतवर्ण तहाँ देखे जाई। अकह रूप तहाँ रहो समाई ॥
औरौ वर्ण रक्त लख आई। कामधेनु तहाँ देखो गाई ॥
कल्पवृक्षकी तहवाँ छाया। नहीं तहाँ काल नहीं तहाँ काया ॥
तहाँ समाध लगावे जाई। अमी बुंद तहाँ चाखे भाई ॥
ताकर पीबत अमर होइ जाई। सोई भेदमें वरण सुनाई ॥
द्वुतिये चाचरि मुद्रा बखानी। नासा ध्यान तासको जानी ॥
तहां उतंग ब्रह्मको देखा। हंस रूप तहवाँ पुन पेखा ॥
मणिगण रतन बिन्दको बासा। कर्तारूप पुरुष प्रकाशा ॥
जगमग ज्योति देखिये तहिया। बिन शशि सूर उजेरो जहिया ॥
चहुँदिश दामिनि दमके आई। चन्द सूर तामों छपजाई ॥
इतना रूप चाचरी जानी। ताको भेद कहों प्रवानी ॥
त्रितिये भोचारी मुद्रा कहिये। अष्ट अंग पुन तामों लहिये ॥
मन बुध चित अहंकार न माया। ममता काम हर्षकी छाया ॥
तेज पुञ्ज तहाँ झिलमिल देखा। सूक्षम अस्थान तहाँ पुन पेखा ॥
चित चेतन्य तहाँ पुन दोई। तामों मिले परमपद सोई ॥
भोचरी मुद्रा कहि समझाई। ताको मर्म कोइ ज्ञानी पाई ॥
चौथे अगोचरी मुद्रा जाहीं। महाशब्द धुन उपजे ताहीं ॥
नाना ताल बैन मृदंगा। यंत्र ढोल सहनाई अंगा ॥
राबाब किंकिन झालरी बाजा। नभेरी चिंचिन शंखधुन गाजा ॥

मेघनाद गजनी तहां कहिये । शंख शब्द धुन तामों लहिये ॥
बाजा सुने सूष्य तव होई । काम क्रोध मद सब गहि खोई ॥
लोभ मोह तज पावे सोई । प्रवर्त छोड़ निरवर्त जो होई
तमो सतो रजो गुण विसरावै । आगे रूप दर्श तब पावै ॥
अगोचरीको अब कहेउ उपाई । योगी कर्म महा सच पाई ॥
पांचे मुद्रा उनमुनि जानी । ताकर भेद अब कहों बखानी ॥
उनमुनि देश लखे जब जाई । अमर वस्तु तब भाषे आई ॥
ब्रह्म अखण्ड देखिये जाई । ब्रह्मरूप तब भाषे आई ॥
श्वेत पीत श्याम नहिं सोई । अरुण सबुजतें न्यारा होई ॥
रूप सरूप हद बेहद नाहीं । चारो बानि खानि नहीं ताहीं ॥
ब्रण अब्रण काया नहिं माया । युग बैदनकी तहाँ न छाया ॥
षटदर्शन पाखंड ना तहाँ । बावन अक्षर अकार न जहाँ ॥
नौ षट चार अष्टदश नाहीं । पांचो तत्त्व धाम नहिं ताहीं ॥
मन बुध चित अहंकार नावासा । काल कर्मको नहीं प्रकाशा ॥
तहाँ ध्यानधर तारी लावै । सोई मूल परम पद पावै ॥
उनमुनि सिखर बहुर चढ़जाई । जहाँकी गम्य देव नहिं पाई ॥
नहिं तहाँ काल नहीं तहँ काया । नहीं तहां प्रमता मोह न माया ॥
चन्द सूर तारागण नाहीं । दिवस रैन तहाँ धूप न छाहीं ॥
पिंड ब्रह्मांडको तहाँ न लेखा । केवल पारब्रह्म तहाँ देखा ॥
अलखरूप तहाँ अबिगत सोई । सबके परे ध्यान वह होई ॥
तासों ध्यान लगावे प्राणी । असी चारके छूटे खाणी ॥
अब वेदनको बास बताऊँ । ताको भेद अब वर्ण सुनाऊँ ॥
जिह्वा अग्र ऋग्वेदको वासा । नासा अग्र यजुर प्रकाशा ॥
श्रवण अग्र शाम सुर्ति कहिये । चक्षू अग्र अथरवण लहिये ॥
शून्य अग्र सोहंग प्रकाशा । तहवाँ सुसमे वेद को बासा ॥

वेदनके अस्थान बताई । अब इंद्रिनके स्वाद लखाई ॥
लिंग इंद्री कामिन सो नेही । जिह्वा षट् श्वाद तो लेहीं ॥
नासा गंध सुगंध अघाई । चक्षु इंद्री रूप लोभाई ॥
श्रवण स्वाद मधुर धुन बानी । ये पांचोंके स्वाद बखानी ॥
पृथी अस्थूल ऋग्वेदकी बानी । नीर अस्थूल जजुर पहिचानी ॥
वायु अस्थूल साम सुर्ति कहिये । तेज अस्थूल अथरवण लहिये ॥
अनहद अस्थूल सोहंगकी बानी । सुसम देवताको पहिचानी ॥
खोजे ताहि मुक्त तब होई । सुसम बेद सम और न कोई ॥
वेद अस्थूल कहा समझाई । आसन योगी भेद बताई ॥
पृथ्वीरूप जहाँ आसन जाना । जीवरूप योगी पहिचाना ॥
पानीरूप जहां आसन कहिये । हंसरूप योगी तहां लहिये ॥
तेजरूप जहाँ आसन जानी । चेतनरूप योगी पहिचानी ॥
बांयेरूप है आसन जहिया । निराकार योगी है तहिया ॥
आकाश रूप आसन प्रवाना । निरंजन योगी जहाँ बखाना ॥
आवागम अब भेद बताई । तुमसो सुक्रित नाहिं दुराई ॥
जीव पृथी मिल आवे जाई । मिल पृथी पुनि बहुरि सिधाई ॥
हंस रूप जल मिलके आवै । बहुर नीर मिल घरहि सिधावे ॥
चैतन तेज मिल आवे सोई । बहुर तेज मिल तहाँ समोई ॥
निरालंब बाये मिलि आवे । बहुर बाये मिल गृहे समावै ॥
निरञ्जन मिल आकाशको आवै । बहुर गगन मिल उलट समावे ॥
आवागम मैं दीन बताई । जन पहुँचनको भेद लखाई ॥
प्रथम पृथीको जल उपजावै । सो जल बहुर पृथीको खादै ॥
जलकी उतपत तेज सो होई । भक्षे तेज पुन जलको सोई ॥
तेजको बाये रूप उपजावे । उलट वाये पुन ताको खावे ॥
बाँये रूप अकाश उपजाई । फिर अकाश पुन ताको खाई ॥
आकाश शून्यते उतपत जानौ । बहुरि शून्यमें जाय समानौ ॥

पृथी जीव गृहे कहौं प्रकाशा । गुदा द्वारमों कीन्हो बासा ॥
पानी हंसको गृहे बताई । ललाट अधरमों बैठक पाई ॥
तेज चेतनको धाम बताई । पीत चक्षुके द्वार रहाई ॥
निरालंभ बायेको थाना । नाभी नाशिक द्वार समाना ॥
आकाश निरंजनको प्रकाशा । श्रवण द्वार ब्रह्मांड है बासा ॥
पांचोंके गृह वर्ण सुनाई । रंग अहार कहों समुझाई ॥
पृथ्वी पीतवर्ण उच्चारा । सो तो जीवको कहों अहारा ॥
पानी श्वेतवर्ण है भाई । सो तो अहार हंसको आई ॥
तेजको रक्तवर्ण पहिचाना । सो तो अहार चेतन को जाना ॥
वायेको सबुजवर्ण है भाई । निरालंबको भक्षण आई ॥
अकाश नीलवर्ण पहिचानी । निरंजनको अहारसो जानी ॥
रंग अहार कहेउ समुझाई । पृथ्वी पंचके नीर बुझाई ॥
पृथ्वी नीर पुत्र है भाई । हाड पृथ्वीको बिंद कहाई ॥
नीर पृथीको श्रोणित अंशा । पसीना त्वचा पृथीको वंशा ॥
रोम पृथीको वंश कहाई । पृथी नीरको भेद लखाई ॥
पृथी बिमल गुण कहिये भाई । अब पृथी गन वर्ण बताई ॥
तेज तमोगुणको पहिचाना । बाये गन्धगुण लखो सुजाना ॥
अकाशअलखगुण जानहु भाई । पांचोंके गुणवर्ण सुनाई ॥
अब प्रकीत पचीस बताऊँ । पाचों तत्त्व विभाग लखाऊँ ॥
हाड चाम मास रोम लखाई । नाटिका पृथी प्रक्रित बताई ॥
रक्त पित्त कफ स्वाद बखाना । स्नारप्रक्रितजलतत्त्वको जाना ॥
भूखप्यास मुख प्रभा जम्हानो । आलस निद्रा तेज पहिचानो ॥
धावन कूदन बलकर भाई । परसन सकुचन पवन बताई ॥
लोभ मोह हंकार भै जाना । बिंद अकाश प्रक्रित बखाना ॥
पांच पचीस अंग कहि दीन्हाँ । तासु मर्म कोइ बिरले चीन्हाँ ॥

प्रथमहि जीवरूप पहिचानो । प्रथमें ताके चेला जानो ॥
औ पुन हंसरूप है भाई । पानी चेला तास बताई ॥
चेतनरूप गुरू हैं सोई । चेला तेज तासुको होई ॥
निरालंब गुरू पहिचानो । वाय तासको चेला जानो ॥
अलख निरंजन गुरू बखाना । चेला आकाश तासको जाना ॥
गुरू शिष्यको भेद बताई । अब तत्त्वनकी परष लखाई ॥

छंद–चौकोर मंद और शुद्धपुरी धरनी है सोई ।
नीचे शीतल मंद चले जलको तत होई ॥
तेज तत्त्व जो ऊंच आगमनकी आइसु होई ।
दहिने बांये चले बाँये तत्त्व जानो सोई ॥
सबुजके मध्य सुखमना पवन गगनको जानिये ।
आकाश नाम तासों कहि पांचों तत्त्व बखानिये॥
नाभी गंध समान पवनको अंश बखानो ।
हृदे माही प्राण अगिनको अंश सो जानो ॥
कंठ बसे आपान अंश तेहि जलको जानो ।
गगन बसे उद्यान अंश आकाश बखानो ॥
सब देहीमें ब्यान है अंश पृथ्वीको जानिये ।
पंच प्राण ये जानिये अंशहीते पहिचानिये ॥

चौपाई

पंचप्राणकी संघ लखाई । अब उनमुनिको भेद बताई ॥
मुद्रापांच प्रकट मैं भाषा । तामहि श्रेष्ठ उनमुनि राखा ॥
चारोंके परे उनमुनि कहिये । अलखरूप पुनि तामों लहिये॥
सोई ब्रह्मज्ञान कहलावे । धरे ध्यान तहां अमृत पावे ॥
पावे साध अमीरस पीवे । सो योगी जग युगयुग जीवे ॥
ना फिर आवै ना फिर जाई । अखंड मंडलमें रहे समाई ॥

ताको जरा मरन नहिं होई । पर्म तत्त्वमें रहे समोई ॥
योग जीत कहु ज्ञान अपारा । यह मारग है सत्त बिचारा ॥

सुक्रित वचन

सुक्रित कहैं सुनो गुरुज्ञानी । मुद्रा पंच तुम कही बखानी ॥
और कथा एक पूछो तोहीं । सो समुझाय कहो प्रभु मोहीं ॥
कायामाहे कमल जो होई । तेहि स्थान सुनावो सोई ॥
कौन कमलकै पखुरी जाना । कौन देव तहां कीन्हों थाना ॥
कौन कमलसों स्वासा आवै । कौन कमलमों जाय समावै ॥
कौन कमलसों होय गुंजारा । कौन कमलसों करे उचारा ॥
केतिक स्वासा आवे जाई । भिन्न भिन्न सब लेख बताई ॥

योग जीत वचन

हे सुक्रित मैं तुम्हैं लखाऊं । कमलनको प्रमान बताऊं ॥
प्रथमहि कमल चतुरदल कहिये। देवगणेश पुन तामों लहिये ॥
रिद्धसिद्ध जहाँ सक्त उपासा । तहाँ जा पूछै सो प्रकाशा ॥
षटदल कमल ब्रह्माको बासा । सावित्री तहाँ कीन्ह निवासा ॥
षटसहस्र तहाँ जाप बखाना । देवन सहित इंद्र अस्थाना ॥
अष्टदलकमलहरिलक्ष्मी वासा । षटसहस्र तहां जाप निवासा ॥
द्वादश कमलमों शिवको जाना । षटहजार जाप बंधाना ॥
तहाँ शिव योग लगावें तारी । पारवती संग सहित विचारी ॥
षोडश कमल जीव मन वासा । एक सहस्र जाप प्रकाशा ॥
त्रैदल कमल भारथी वासा । सोतो उज्ज्वल कमल निवासा॥
एक सहस्र जाप तहाँ कीजै । यह संकलप जाय तहाँ दीजै ॥
दोय दल कमल हंस अस्थाना । तामह पर्म हंसको जाना ॥
एक सहस्र जाप प्रकाशा । कर्म भ्रमको है तहाँ नाशा ॥
सहस्रदल कमलमों झिलमिल जाना।ज्योति सरूप तहाँ पहिचाना॥
ताहै रंगहै अलख अपारा । अलख पुर्ष है सबते सारा ॥

नवें कमल आदको जानो । जाते निरगुण पुर्ष बखानो ॥
एकइस हजार छैसे जाप कहिये । सो सब पुर्ष ध्यानमों लहिये ॥
अष्ट कमलको भेद बताई । और ज्ञान अब भाषो भाई ॥
स्वासाको प्रमाण अब भाषो । तेहि प्रभाव प्रकटकर राखों ॥
अब स्वासाको भेद बताऊँ । जाको मर्म कोई नहिं पाऊँ ॥
अमी अखण्डते वर्षे धारा । तहांते स्वास होय गुंजारा ॥
निसवासरको जाने मूला । स्वासा सार शब्दसमतूला ॥
दशयें घरते स्वासा आवै । कछु नाभी कछु अलख चढ़ावे ॥
निस दिन चले स्वासाकी धारा । सातसे आगर साठि हजारा ॥
अमी कमल अमान सो नाला । अढ़ाई दल पखुरी रिसाला ॥
तहाँते चले पवनकी धारा । स्वासा माहे शब्द गुजारा ॥
उनचालिस हजार एकसे आवे । एतिक चिकुर द्वारसो धावे ॥
हृदे कमल होय स्वासा आवै । एकइस हजार और छैसे धावै ॥
एता जाप तहाँ प्रवाना । एकइस हजार और छैसे जाना ॥
एतिक स्वासा हृदे ले आवै । क्षिन बाहिर क्षिन भीतर धावै ॥
दुसरा कमल है झिलमिल माही । झलके जोत अधर धुन ताही ॥
सहस्र पखुरी कमल अनूपा । तहाँ बसे मन जीत सरूपा ॥
ताहे कमल पर बाजा बाजे । सत्तर बाजा तहाँ बिराजे ॥
तहां घरनी घरियार बजावे । घरी घरी टंकोरा लावे ॥
छैसे औ पचहत्तर स्वासा । एतिक एक घरी प्रकाशा ॥
एतिक स्वासा कमत युगमाही । तब घरनी घरियार बजाही ॥
या विधि चार टँकोरा ठोकै । राहु केतु संग ब्यालि न रोकै ॥
पहर एक करे धुन पूरा । गृहण गिरासे शशि औ सूरा ॥
गहन गिरा सत निसरे स्वासा । रवि शशि राहु केतु प्रकाशा ॥
तेहि संग एक सापनी रहई । घरीघरी वह जीवको गहई ॥
श्वासा सोरह ग्रहण लगावै । छटे मास तेहि काल सतावै ॥

स्वासा परख घरीकी राखे । जो दम चले सो आगम भाखै॥
सत्ताइससो स्वासा चले जबही । पहर टंकारा मारे तबही ॥
एतिक स्वासा पहर प्रवानी । घरी चारमों गजर बन्धानी ॥
आठ पहर छ घरी बजावै । ठोके गजर गहर नहिं लावै ॥
चार घरी चारो युग मूला । चार पहर चारो अस्थूला ॥
चारो युग एक पहरके माही । चारो युगकी वर्तें छाही ॥
प्रथम पहर सतयुग प्रवाना । ताकर प्रथम घरी बंधाना ॥
सतयुगमें युग चार अपारा । चारो युगके नाम निनारा ॥
प्रथमह सतयुग रोपो थाना । चारो युग तेहि माहि समाना ॥
सतयुग प्रथमहि घरी उतपानी । किलक नामयुग ताहि बखानी॥
किलक जगकी स्वासा सारा । छैसे पचहत्तर स्वास सुधारा ॥
एतिकस्वासाकिलक युगमाहीं । पूछै जीव अछैकी छाहीं ॥
वीतत घरी गजर घहराई । काल टंकोरा मारे धाई ॥
या युग अन्तकी आवे घरी । ग्रासे नागिन सनमुख खड़ी ॥
प्रथम किलकयुग होय संघारा । पीछे कमतयुग करे पसारा ॥
सतयुग घरी दूसरी आवै । तेतिक स्वासा कमत युग पावै॥
जवे कमत युगकरे हंकारा । उतपत थोरी बहुत संघारा ॥
कमत युगकी स्वासा जानो । छैसे पचहत्तर स्वासा बखानो॥
एतिक स्वासा कमत युग माही । गुण औगुण सब निरखें ताही ॥
बीते कमत कमोद युग आवै । तीसरी घरी बासना धावै ॥
आवागवन विचारे जोई । युग कमोद सुख पावे सोई ॥
तिसरी घरी कमोदकी आवै । तब कमोद युग सुख दिखरावै॥
युग कमोद अमल जब आवै । दुखी सुखी नर सब सुख पावै ॥
युग कमोदकी प्रलै होई । दुखी सुखी जाने सब कोई ॥
तबही होय सूर संचारा । महाविरोध उपजे संसारा ॥

चन्द सनेह होय जो हीना । महासूल तन होय मलीना ॥
श्वासा घरी सातसे भारी । युगकमोदकी कथा निनारी ॥
युगकंकवत होय पैसारा । चौथी घरी क्रोध अधिकारा ॥
ताकी घरी निकट जब आवै । सतयुग अंत कंकवत पावै ॥
सतयुग अंत होन नहिं पावै । युग कंकवत आन समावै ॥
युगकंकवत काल दुखदाई । काया कहर गिरासे आई ॥
युगकंकवत कालकी बाजी । कलह विकार सब जगमों साजी॥
युगकंक्कवत महाबल योधा । अंतकाल सतयुगसों क्रोधा ॥
सतयुगअंत कंकवत माहीं । अंतकालकी व्यापे छाहीं ॥
युगकंकवत मोहकी छाहीं । काम क्रोध ममता लपटाहीं ॥
अंतकाल सतयुगके भयऊ । चारो युग परले तर गयऊ ॥
चारों युगका भेद बतावा ।अगम निगम सब भाष सुनावा॥

साखी–एके युगके बीतते, चारों गये बिनास ।
एक नाद चारों युग खायो, सतयुग कीन्हो ग्रास ॥

किलक कमोद चंदके नेहा । कमत कंकवत सूर सनेहा ॥
भये युग अंत एक संगचारी । चार शब्द एक नाद सँघारी ॥
एक नाद एक पहर कहावै । चार घरी एक माहि समावै ॥
चार घरी चारों युग बीतै । शब्द नाद रवि शशिघर जीतै॥
सतयुगको तब भयो बिनाशा । त्रेतायुगको भयो प्रकाशा ॥
दूसर युग तब भौ विश्वासा । दूसर पहर तत्त्व प्रकाशा ॥
तेज लगन श्वासा अनुसारी । ताते त्रेतायुग संचारी ॥
त्रेता युगकी पखुरी चारी । चार घरी युग चार बिचारी ॥
जस युगअंत सतयुगमों देखा । सोई युग त्रेतामों लेखा ॥
जब जब अंत होय युग केरा । तब तब नादकाल घन घोरा ॥

त्रेता युगमों कलह अपारा । यज्ञ दान व्रत नेम अचारा ॥
तेहि पीछे द्वापर युग आवा । काल अंत तब आन समावा ॥
अहंकार तामें अति भाखा । अब कलयुगकी वर्णों साखा ॥
काम क्रोध और पाप अपारा । लोभ मोह यम कीन्ह पसारा॥
एक पहर चारों युग जाना । ताको वर्ण कहों बिछलाना ॥
पांच तत्त्व तीनों गुण कहिये । ताते पिंडकी उतपति लहिये ॥
अष्टधात कहिये अस्थूला । ताते रचो गर्भको मूला ॥
शिवकी श्वासा वायु सरूपा । सक्ती गहे जानके रूपा ॥
शिवको रूप शक्ति गहि लेई । तब सांचा मो जावन देई ॥
जावन जगे तब सांचा माहीं । थाका होय रुधिरके ताहीं ॥
तेहि थाकाकी रचना भारी । तीन लोककी विभो सवारी ॥
महल मध्य पुनि जीव समावा । जलके भीतर महल बनावा ॥
महलके माहिं बनाये छज्जा । तामो दश कीन्हों दरवज्जा ॥
सांचा अन्न जरे नहिं कबहीं । पिंड सवारो अन्तर जबहीं ॥
सांचा माहिं दियो रंग ढारी । नख सिख शोभा बहुत सवांरी॥
तीनों लोक रचो पलमाहीं । गढ़पति अंश तब साजा ताहीं॥
प्रथमहि सायेर सात सँवारा । पर्वत आठ कीन्ह अधिकारा ॥
अठारह गंडा नदी बहाई । तामह गुप्त बहे ठहराई ॥
अठारह सहस्र बनाये नारा । अष्टधातुले साज सुधारा ॥
रक्त हांडको सब अस्थूला । बाढ़े लिंग सवांरे मूला ॥
आगे रचो दोइ भुज दंडा । सातद्वीप पृथ्वी नौखंडा ॥
बहुर सँवारो दोय पग खंभा । मदन महाबल उपजो रंभा ॥
नासा चढाय मस्तक पर लाई। सातभँवर नौनाट लगाई ॥
उतर मेर शिर जो अस्थूला । सरवर माहिं कमल बहु फूला ॥
नाभी माहिं दल चार बनाई । फूल फल बास घट छाई ॥

आठो अंग रचो अस्थूला । शिव शक्ती दोनों समतूला ॥
सोई अंग शक्त सोइ ईसा । एकै रूप एक समदीसा ॥
नख सिख रचो गर्भस्थाना । सातद्वीप नौखंड बखाना ॥
प्रथमहि ब्रह्म द्वीप निरमावा । ताऊपर बहु रचना लावा ॥
एकद्वीप नौखंड बनाई । त्रिकुटी सात तहां निखाई ॥
एकद्वीपमहँ सातो नाला । सातोनाल सात हैं चाला ॥
सरवर सात कमल है साता । रंग पांच पांचौ उतपाता ॥
त्रिकुटी मध्य एकहै कीला । तहां देखिये रंगरसीला ॥
ता कीलामह कानी लागी । पवन सनेह आत्मा जागी ॥
ता कीलामह लागी डोरी । खूंटा लगा पवन झकझोरी ॥
झूले मन पवन झूलावै घेरी । एक घर शून्य एक घर फेरी ॥
खूंटा होयके पवन झकोरी । इंगला पिंगला सुखमण जोरी ॥
रविशशि पवन गहे मन जोरी । खूंटा लाग पवनकी डोरी ॥
मेरे डंडपर खूंटा गाड़ा । नदी तीन ताऊपर बाढ़ा ॥
खूंटातरे नदीत्रिय बहई । तीननदी बिच खूंटा रहई ॥
खूंटाके दहिने दिश गंगा । अति शीतल बहै नीर तरंगा ॥
सूरसनेह नीर हिय पर्सै । सुर्तसनेह धनी तहँ दर्सै ॥
खूंटाके है बांये अंगा । यमुना नदी बहे अतिरंगा ॥
सुखमन सरस्वती नीर तरंगा । लहर लालच तेज विष अंगा ॥
तहां बसे सरयू तेहि साथा । रावल एक बयालिस हाथा ॥
काल अनन्त रूप रस नाथा । बसे अधर दीखे नहिं माथा ॥
बाढी नदी दोइ बिकरारा । शीतल तेज बहे दोउ अधारा ॥
तिसरी नदी गुप्त पर्वाहा । अविगत जल बहेअगमअथाहा॥
खूंटा तरे होय नदी सिधारा । चली सरस्वती फोरि पहारा ॥
मध्य लहर रस विषके खानी । गंगा यमुना बीच समानी ॥

त्रिकुटी संगम भयो मिलाना । भवर गुफा माधो करथाना ॥
त्रिवेणी तट बसे सुढंगा । ताको मम लखा परसंगा ॥
गणगंधर्व मुनि सब कर थाना । सुर नर मुनि कर बैठे ध्याना ॥
तैंतिस कोट देव मुनि भारी । यक्ष यक्षणी देव कुमारी ॥
नागसुता अपसरा मोहिनी । चढ़ बिमान सब फिरे जोहिनी ॥
असुरपिशाचऋषनागजोलाहल । त्रिवेणीतट करे कोलाहल ॥
तीनलोक जो जीव निवासा । सो सब करो त्रिवेणी बासा ॥
त्रिवेणी तट माधौ देवा । सब मिल करे तासुकी सेवा ॥
ताहि प्राग होय चलो प्रवाहा । गंगासागर संगम जाहा ॥
देश देश गंगा फिर आई । घाट घाट बहु क्षेत्र बँधाई ॥
जहां तहां तप ध्यान लगावै । योग यज्ञ तप बहुत करावै ॥
ऋतुबसंत प्रागको धावै । मकर नहाय बजार लगावै ॥
अर्ध उर्ध बिच लागी हाटा । भीतर बाहर औघट घाटा ॥
गर्भमाहि सब युक्ति बनाई । तीन कचहरी तहां लगाई ॥
जहां नदी संगम पर्वाना । तहवां रचो एक अस्थाना ॥
संगम बीच गुफा एकधारा । ताहि गुफामों सात है द्वारा ॥
एकद्वार होय नाद सुधारै । एकद्वार होय रूप निहारै ॥
एकद्वार होय वास बसावै । एकद्वार होय अग्र समावै ॥
एकद्वार हो स्वाद लिवावै । एकद्वार होय न्याय चुकावै ॥
एकद्वार होय नाद उचारा । योग जीव यह मता विचारा ॥
सातनाल चौदह सुरभाऊ । सातोंके हैं एक सुभाऊ ॥
सातो सात शून्य मों बासा । सातो बसे गुफाके पासा ॥
अनहद भेद श्वासाकी धारा । ताको भाषतहों व्यवहारा ॥

साखी—रचना भाषेउ पिंडकी, श्वासा सहित बिचार ।
बिरलाजन कोई परखि है, अलखरूप ब्यवहार ॥

### सुक्ति वचन-चौपाई

सुक्रित कह सुन सत्यगुरु ज्ञानी । अगम कथा कही अन्तरयामी॥
और कथा अब मोसों भाषों । जो पूछों सो गोय न राषों ॥
हंस अवधको भेद बतावो । तास मर्म सब मोहि सुनावो ॥
आगम वरष मासषट जानो । तो कछु अपनो निजमत ठानो॥
ताको भेद कहों समुझाई । सो मोहि सतगुरु भेद लखाई ॥

### योगजीत वचन

सुक्रित सुनो सत्त मम बानी । भिन्न भिन्न मैं कहों बखानी ॥
पाचघरी बांये सुर पाई । सोई दहिनो श्वासा चलाई ॥
दशश्वासा सुखमन जो कहिये। ताको भेद बराबर लहिये ॥
आठ पहर पिंगला सुर हाले । बरष तीसरे हंसा चाले ॥
आठ दिवस दहिनो सुर बहै । हंसा अवध वर्ष दोय रहै ॥
सोरह दिन पिंगला सुर बोलै । बर्ष एक मो हंसा डोलै ॥
वीस रैयन दिन दहिनौ पाई । तब षट मासमों हंस चलाई ॥
एकति सरोज दक्षस्वरको जानो। तब दोय दिनमों हंस पयानो ॥
पांचघरी सुखमन जो हाले । पांचघरी मो हंसा चाले ॥
चन्द सूर सुषमन छपजाई । मुखसे तीजो पवन चलाई ॥
ऐसी विधि पवन चलाई । पहर माहिं हंसा चल जाई ॥

साखी—धूम मंडल दीखे नहीं, जोत न नेत्र लखाय ।
छठे मास हंसा चले, बचै न कोट उपाय ॥
छाया शीस दीखे नहीं,भुजा शिखर ना दिखाय।
दीप बास आवै नहीं, छठे मास चल जाय ॥
गगन शब्द गरजे नहीं, नेत्र गुञ्ज छपजाय ।
मास एकके अवधमें, हंसा तन तज जाय ॥
भँवरगुफा तिल ना लखे, पुतरी जब चढ़जाय ।
पहर एकमें जानिये, हंसा तन तज जाय ॥

पृथी जीव गृहे कहौं प्रकाशा । गुदा द्वारमों कीन्हो बासा ॥
पानी हंसको गृहे बताई । ललाट अधरमों बैठक पाई ॥
तेज चेतनको धाम बताई । पीत चक्षुके द्वार रहाई ॥
निरालंभ बायेको थाना । नाभी नाशिक द्वार समाना ॥
आकाश निरंजनको प्रकाशा । श्रवण द्वार ब्रह्मांड है बासा ॥
पांचोंके गृह वर्ण सुनाई । रंग अहार कहों समुझाई ॥
पृथ्वी पीतवर्ण उच्चारा । सो तो जीवको कहों अहारा ॥
पानी श्वेतवर्ण है भाई । सो तो अहार हंसको आई ॥
तेजको रक्तवर्ण पहिचाना । सो तो अहार चेतन को जाना ॥
वायेको सबुजवर्ण है भाई । निरालंबको भक्षण आई ॥
अकाश नीलवर्ण पहिचानी । निरंजनको अहारसो जानी ॥
रंग अहार कहेउ समुझाई । पृथ्वी पंचके नीर बुझाई ॥
पृथ्वी नीर पुत्र है भाई । हाड पृथ्वीको बिंद कहाई ॥
नीर पृथीको श्रोणित अंशा । पसीना त्वचा पृथीको वंशा ॥
रोम पृथीको वंश कहाई । पृथी नीरको भेद लखाई ॥
पृथी बिमल गुण कहिये भाई । अब पृथी गन वर्ण बताई ॥
तेज तमोगुणको पहिचाना । बाये गन्धगुण लखो सुजाना ॥
अकाशअलखगुण जानहु भाई । पांचोंके गुणवर्ण सुनाई ॥
अब प्रक्रीत पचीस बताऊँ । पाचों तत्त्व विभाग लखाऊँ ॥
हाड चाम मास रोम लखाई । नाटिका पृथी प्रक्रित बताई ॥
रक्त पित्त कफ स्वाद बखाना । स्नारप्रक्रितजलतत्त्वको जाना ॥
भूखप्यास मुख प्रभा जम्हानो । आलस निद्रा तेज पहिचानो ॥
धावन कूदन बलकर भाई । परसन सकुचन पवन बताई ॥
लोभ मोह हंकार भै जाना । बिंद अकाश प्रक्रित बखाना ॥
पांच पचीस अंग कहि दीन्हाँ । तासु मर्म कोइ बिरले चीन्हाँ ॥

प्रथमहि जीवरूप पहिचानो । प्रथमें ताके चेला जानो ॥
औ पुन हंसरूप है भाई । पानी चेला तास बताई ॥
चेतनरूप गुरू है सोई । चेला तेज तासुको होई ॥
निरालंब गुरू पहिचानो । वाय तासको चेला जानो ॥
अलख निरंजन गुरू बखाना । चेला आकाश तासको जाना ॥
गुरू शिष्यको भेद बताई । अब तत्त्वनकी परष लखाई ॥

छंद—चौकोर मंद और शुद्धपुरी धरनी है सोई ।
नीचे शीतल मंद चले जलको तत होई ॥
तेज तत्त्व जो ऊंच आगमनकी आइसु होई ।
दहिने बांये चले बाँये तत्त्व जानो सोई ॥
सबुजके मध्य सुखमना पवन गगनको जानिये ।
आकाश नाम तासों कहि पांचों तत्त्व बखानिये॥
नाभी गंध समान पवनको अंश बखानो ।
हृदे माही प्राण अगिनको अंश सो जानो ॥
कंठ बसे आपान अंश तेहि जलको जानो ।
गगन बसे उद्यान अंश आकाश बखानो ॥
सब देहीमें व्यान है अंश पृथ्वीको जानिये ।
पंच प्राण ये जानिये अंशहीते पहिचानिये ॥

चौपाई

पंचप्राणकी संघ लखाई । अब उनमुनिको भेद बताई ॥
मुद्रापांच प्रकट मैं भाषा । तामहि श्रेष्ठ उनमुनि राखा ॥
चारोंके परे उनमुनि कहिये । अलखरूप पुनि तामों लहिये॥
सोई ब्रह्मज्ञान कहलावे । धरे ध्यान तहां अमृत पावे ॥
पावे साध अमीरस पीवे । सो योगी जग युगयुग जीवे ॥
ना फिर आवे ना फिर जाई । अखंड मंडलमें रहे समाई ॥

ताको जरा मरन नहिं होई । पर्म तत्त्वमें रहे समोई ॥
योग जीत कहु ज्ञान अपारा । यह मारग है सत्त बिचारा ॥

मुक्रित वचन

सुक्रित कहैं सुनो गुरुज्ञानी । मुद्रा पंच तुम कही बखानी ॥
और कथा एक पूछो तोहीं । सो समुझाय कहो प्रभु मोहीं ॥
कायामाहे कमल जो होई । तेहि स्थान सुनावो सोई ॥
कौन कमलकै पखुरी जाना । कौन देव तहां कीन्हों थाना ॥
कौन कमलसों स्वासा आवै । कौन कमलमों जाय समावै ॥
कौन कमलसों होय गुंजारा । कौन कमलसों करे उचारा ॥
केतिक स्वासा आवे जाई । भिन्न भिन्न सब लेख बताई ॥

योग जीत वचन

हे सुक्रित मैं तुम्हैं लखाऊं । कमलनको प्रमान बताऊं ॥
प्रथमहि कमल चतुरदल कहिये। देवगणेश पुन तामों लहिये ॥
रिद्धसिद्ध जहाँ सत्त उपासा । तहाँ जा पूछै सो प्रकाशा ॥
षटदल कमल ब्रह्माको बासा । सावित्री तहाँ कीन्ह निवासा ॥
षटसहस्र तहाँ जाप बखाना । देवन सहित इंद्र अस्थाना ॥
अष्टदलकमलहरिलक्ष्मी वासा । षटसहस्र तहां जाप निवासा ॥
द्वादश कमलमों शिवको जाना । षटहजार जाप बंधाना ॥
तहाँ शिव योग लगावें तारी । पारवती संग सहित विचारी ॥
षोडश कमल जीव मन वासा । एक सहस्र जाप प्रकाशा ॥
त्रैदल कमल भारथी वासा । सोतो उज्ज्वल कमल निवासा ॥
एक सहस्र जाप तहाँ कीजै । यह संकल्प जाय तहाँ दीजै ॥
दोय दल कमल हंस अस्थाना । तामह पर्म हंसको जाना ॥
एक सहस्र जाप प्रकाशा । कर्म भ्रमको है तहाँ नाशा ॥
सहस्रदल कमलमों झिलमिल जाना।ज्योति सरूप तहाँ पहिचाना॥
ताहै रंगहै अलख अपारा । अलख पुर्ष है सबते सारा ॥

नवें कमल आदको जानो । जाते निरगुण पुर्ष बखानो ॥
एकइस हजार छैसे जाप कहिये । सो सब पुर्ष ध्यानमों लहिये ॥
अष्ट कमलको भेद बताई । और ज्ञान अब भाषो भाई ॥
स्वासाको प्रमाण अब भाषो । तेहि प्रभाव प्रकटकर राखों ॥
अब स्वासाको भेद बताऊँ । जाको मर्म कोई नहिं पाऊँ ॥
अमी अखण्डते वर्षे धारा । तहांते स्वास होय गुंजारा ॥
निसवासरको जाने मूला । स्वासा सार शब्दसमतूला ॥
दशयें घरते स्वासा आवै । कछु नाभी कछु अलख चढ़ावै ॥
निस दिन चले स्वासाकी धारा । सातसे आगर साठि हजारा ॥
अमी कमल अमान सो नाला । अढ़ाई दल पखुरी रिसाला ॥
तहाँते चले पवनकी धारा । स्वासा माहे शब्द गुजारा ॥
उनचालिस इजार एकसे आवै । एतिक चिकुर द्वारसो धावै ॥
ह्रदे कमल होय स्वासा आवै । एकइस हजार और छैसे धावै ॥
एता जाप तहाँ प्रवाना । एकइस हजार और छैसे जाना ॥
एतिक स्वासा ह्रदे ले आवै । क्षिन बाहिर क्षिन भीतर धावै ॥
दुसरा कमल है झिलमिल माही । झलके जोत अधर धुन ताही ॥
सहस्र पखुरी कमल अनूपा । तहाँ बसे मन जीत सरूपा ॥
ताहे कमल पर बाजा बाजे । सत्तर बाजा तहाँ बिराजे ॥
तहां घरनी घरियार बजावे । घरी घरी टंकोरा लावै ॥
छैसे औ पचहत्तर स्वासा । एतिक एक घरी प्रकाशा ॥
एतिक स्वासा कमत युगमाही । तब घरनी घरियार बजाही ॥
या विधि चार टँकोरा ठोकै । राहु केतु संग ब्यालि न रोकै ॥
पहर एक करे धुन पूरा । गृहण गिरासे शशि औ सूरा ॥
गहन गिरा सत निसरे स्वासा । रवि शशि राहु केतु प्रकाशा ॥
तेहि संग एक सापनी रहई । घरीघरी वह जीवको गहई ॥
श्वासा सोरह ग्रहण लगावै । छटे मास तेहि काल सतावै ॥

स्वासा परख घरीकी राखे । जो दम चले सो आगम भाखै॥
सत्ताइससो स्वासा चले जबही । पहर टंकारा मारे तबही ॥
एतिक स्वासा पहर प्रवानी । घरी चारमों गजर बन्धानी ॥
आठ पहर छ घरी बजावै । ठोके गजर गहर नहिं लावै ॥
चार घरी चारो युग मूला । चार पहर चारो अस्थूला ॥
चारो युग एक पहरके माही । चारो युगकी वर्तें छाही ॥
प्रथम पहर सतयुग प्रवाना । ताकर प्रथम घरी बंधाना ॥
सतयुगमें युग चार अपारा । चारो युगके नाम निनारा ॥
प्रथमहि सतयुग रोपो थाना । चारो युग तेहि माहि समाना ॥
सतयुग प्रथमहि घरी उतपानी । किलक नामयुग ताहि बखानी॥
किलक जगकी स्वासा सारा । छैसे पचहत्तर स्वास सुधारा ॥
एतिकस्वासाकिलक युगमाहीं । पूछै जीव अछैकी छाहीं ॥
वीतत घरी गजर घहराई । काल टंकोरा मारे धाई ॥
या युग अन्तकी आवे घरी । ग्रासे नागिन सनमुख खड़ी ॥
प्रथम किलकयुग होय संघारा । पीछे कमतयुग करे पसारा ॥
सतयुग घरी दूसरी आवै । तेतिक स्वासा कमत युग पावै॥
जवे कमत युगकरे हंकारा । उतपत थोरी बहुत संघारा ॥
कमत युगकी स्वासा जानो । छैसे पचहत्तर स्वासा बखानो॥
एतिक स्वासा कमत युग माही । गुण औगुण सब निरखैं ताही ॥
बीते कमत कमोद युग आवै । तीसरी घरी बासना धावै ॥
आवागवन विचारे जोई । युग कमोद सुख पावे सोई ॥
तिसरी घरी कमोदकी आवै । तब कमोद युग सुख दिखरावै॥
युग कमोद अमल जब आवै । दुखी सुखी नर सब सुख पावै ॥
युग कमोदकी प्रलै होई । दुखी सुखी जाने सब कोई ॥
तबही होय सूर संचारा । महाविरोध उपजे संसारा ॥

चन्द सनेह होय जो हीना । महास्थूल तन होय मलीना ॥
श्वासा घरी सातसे भारी । युगकमोदकी कथा निनारी ॥
युगकंकवत होय पैसारा । चौथी घरी क्रोध अधिकारा ॥
ताकी घरी निकट जब आवै । सतयुग अंत कंकवत पावै ॥
सतयुग अंत होन नहिं पावै । युग कंकवत आन समावै ॥
युगकंकवत काल दुखदाई । काया कहर गिरासे आई ॥
युगकंकवत कालकी बाजी । कलह विकार सब जगमों साजी ॥
युगकंक्कवत महाबल योधा । अंतकाल सतयुगसों क्रोधा ॥
सतयुगअंत कंकवत माहीं । अंतकालकी व्यापे छाहीं ॥
युगकंकवत मोहकी छाहीं । काम क्रोध ममता लपटाहीं ॥
अंतकाल सतयुगके भयऊ । चारो युग परले तर गयऊ ॥
चारों युगका भेद बतावा । अगम निगम सब भाष सुनावा ॥

साखी—एके युगके बीतते, चारों गये बिनास ।
एक नाद चारों युग खायो, सतयुग कीन्हो ग्रास ॥

किलक कमोद चंदके नेहा । कमत कंकवत सूर सनेहा ॥
भये युग अंत एक संगचारी । चार शब्द एक नाद सँघारी ॥
एक नाद एक पहर कहावै । चार घरी एक माहि समावै ॥
चार घरी चारों युग बीतै । शब्द नाद रवि शशिघर जीतै ॥
सतयुगको तब भयो बिनाशा । त्रेतायुगको भयो प्रकाशा ॥
दूसर युग तब भौ विश्वासा । दूसर पहर तत्त्व प्रकाशा ॥
तेज लगन श्वासा अनुसारी । ताते त्रेतायुग संचारी ॥
त्रेता युगकी पखुरी चारी । चार घरी युग चार बिचारी ॥
जस युगअंत सतयुगमों देखा । सोई युग त्रेतामों लेखा ॥
जब जब अंत होय युग केरा । तब तब नादकाल घन घोरा ॥

त्रेता युगमों कलह अपारा । यज्ञ दान व्रत नेम अचारा ॥
तेहि पीछे द्वापर युग आवा । काल अंत तब आन समावा ॥
अहंकार तामें अति भाखा । अब कलयुगकी वर्णों साखा ॥
काम क्रोध और पाप अपारा । लोभ मोह यम कीन्ह पसारा ॥
एक पहर चारों युग जाना । ताको वर्ण कहों बिछलाना ॥
पांच तत्त्व तीनों गुण कहिये । ताते पिंडकी उतपति लहिये ॥
अष्टधात कहिये अस्थूला । ताते रचो गर्भको मूला ॥
शिवकी श्वासा वायु सरूपा । सत्ती गहे जानके रूपा ॥
शिवको रूप शक्ति गहि लेई । तब सांचा मो जावन देई ॥
जावन जगे तब सांचा माहीं । थाका होय रुधिरके ताहीं ॥
तेहि थाकाकी रचना भारी । तीन लोककी विभो सवारी ॥
महल मध्य पुनि जीव समावा । जलके भीतर महल बनावा ॥
महलके माहिं बनाये छज्जा । तामो दश कीन्हों दरवज्जा ॥
सांचा अन्न जरे नहिं कबहीं । पिंड सवारो अन्तर जबहीं ॥
सांचा माहिं दियो रंग ढारी । नख सिख शोभा बहुत सवांरी ॥
तीनों लोक रचो पलमाहीं । गढ़पति अंश तब साजा ताहीं ॥
प्रथमहि सायेर सात सँवारा । पर्वत आठ कीन्ह अधिकारा ॥
अठारह गंडा नदी बहाई । तामह गुप्त बहै ठहराई ॥
अठारह सहस्र बनाये नारा । अष्टधातुले साज सुधारा ॥
रक्त हांडको सब अस्थूला । बाढ़े लिंग सवांरे मूला ॥
आगे रचो दोइ भुज दंडा । सातद्वीप पृथ्वी नौखंडा ॥
बहुर सँवारो दोय पग खंभा । मदन महाबल उपजो रंभा ॥
नासा चढाय मस्तक पर लाई । सातभँवर नौनाट लगाई ॥
उतर मेर शिर जो अस्थूला । सरवर माहिं कमल बहु फूला ॥
नाभी माहिं दल चार बनाई । फूल फल बास घट छाई ॥

आठो अंग रचो अस्थूला । शिव शक्ती दोनों समतूला ॥
सोई अंग शक्त सोइ ईसा । एकै रूप एक समदीसा ॥
नख सिख रचो गर्भस्थाना । सातद्वीप नौखंड बखाना ॥
प्रथमहि ब्रह्म द्वीप निरमावा । ताऊपर बहु रचना लावा ॥
एकद्वीप नौखंड बनाई । त्रिकुटी सात तहां निखाई ॥
एकद्वीपमहँ सातो नाला । सातोनाल सात हैं चाला ॥
सरवर सात कमल है साता । रंग पांच पांचौ उतपाता ॥
त्रिकुटी मध्य एकहै कीला । तहां देखिये रंगरसीला ॥
ता कीलामह कानी लागी । पवन सनेह आत्मा जागी ॥
ता कीलामह लागी डोरी । खूंटा लगा पवन झकझोरी ॥
झूले मन पवन झूलावे घेरी । एक घर शून्य एक घर फेरी ॥
खूंटा होयके पवन झकोरी । इंगला पिंगला सुखमण जोरी ॥
रविशशि पवन गहे मन जोरी । खूंटा लाग पवनकी डोरी ॥
मेरे डंडपर खूंटा गाड़ा । नदी तीन ताऊपर बाढ़ा ॥
खूंटातरे नदीत्रिय बहई । तीननदी बिच खूंटा रहई ॥
खूंटाके दहिने दिश गंगा । अति शीतल बहै नीर तरंगा ॥
सूरसनेह नीर हिय पर्सैं । सुर्तसनेह धनी तहँ दर्सैं ॥
खूंटाके है बांये अंगा । यमुना नदी बहे अतिरंगा ॥
सुखमन सरस्वती नीर तरंगा । लहर लालच तेज विष अंगा ॥
तहां बसे सरयू तेहि साथा । रावल एक बयालिस हाथा ॥
काल अनन्त रूप रस नाथा । बसे अधर दीखे नहिं माथा ॥
बाढी नदी दोइ बिकरारा । शीतल तेज बहे दोउ अधारा ॥
तिसरी नदी गुप्त पर्वाहा । अविगत जल बहेअगमअथाहा॥
खूंटा तरे होय नदी सिधारा । चली सरस्वती फोरि पहारा ॥
मध्य लहर रस विषके खानी । गंगा यमुना बीच समानी ॥

त्रिकुटी संगम भयो मिलाना । भवर गुफा माधो करथाना ॥
त्रिवेणी तट बसे सुढंगा । ताको मम लखा परसंगा ॥
गणगंधर्व मुनि सब कर थाना । सुर नर मुनि कर बैठे ध्याना ॥
तैंतिस कोट देव मुनि भारी । यक्ष यक्षणी देव कुमारी ॥
नागसुता अपसरा मोहिनी । चढ़ बिमान सब फिरे जोहिनी ॥
असुरपिशाचऋषनागजोलाहल। त्रिवेणीतट करे कोलाहल ॥
तीनलोक जौ जीव निवासा । सो सब करो त्रिवेणी बासा ॥
त्रिवेणी तट माधौ देवा । सब मिल करे तासुकी सेवा ॥
ताहि प्राग होय चलो प्रवाहा । गंगासागर संगम जाहा ॥
देश देश गंगा फिर आई । घाट घाट बहु क्षेत्र बँधाई ॥
जहां तहां तप ध्यान लगावै । योग यज्ञ तप बहुत करावै ॥
ऋतुबसंत प्रागको धावै । मकर नहाय बजार लगावै ॥
अर्ध उर्ध बिच लागी हाटा । भीतर बाहर औघट घाटा ॥
गर्भमाहि सब युक्ति बनाई । तीन कचहरी तहां लगाई ॥
जहां नदी संगम पर्वाना । तहवां रचो एक अस्थाना ॥
संगम बीच गुफा एकधारा । ताहि गुफामों सात है द्वारा ॥
एकद्वार होय नाद सुधारै । एकद्वार होय रूप निहारै ॥
एकद्वार होय वास बसावै । एकद्वार होय अग्र समावै ॥
एकद्वार हो स्वाद लिवावै । एकद्वार होय न्याय चुकावै ॥
एकद्वार होय नाद उचारा । योग जीव यह मता विचारा ॥
सातनाल चौदह सुरभाऊ । सातोंके हैं एक सुभाऊ ॥
सातो सात शून्य मों बासा । सातो बसे गुफाके पासा ॥
अनहद भेद श्वासाकी धारा । ताको भाषतहों व्यवहारा ॥

साखी–रचना भाषेउ पिंडकी, श्वासा सहित बिचार ।
बिरलाजन कोई परखि है, अलखरूप व्यवहार ॥

सुक्रित वचन-चौपाई

सुक्रित कह सुन सत्यगुरु ज्ञानी । अगम कथा कही अन्तरयामी॥
और कथा अब मोसों भाषों । जो पूछों सो गोय न राषों ॥
हंस अवधको भेद बतावो । तास मर्म सब मोहि सुनावो ॥
आगम वरष मासषट जानो । तो कछु अपनो निजमत ठानो॥
ताको भेद कहों समुझाई । सो मोहि सतगुरु भेद लखाई ॥

योगजीत वचन

सुक्रित सुनो सत्त मम बानी । भिन्न भिन्न मैं कहों बखानी ॥
पाचघरी बांये सुर पाई । सोई दहिनो श्वासा चलाई ॥
दशश्वासा सुखमन जो कहिये। ताको भेद बराबर लहिये ॥
आठ पहर पिंगला सुर हाले । बरष तीसरे हंसा चाले ॥
आठ दिवस दहिनो सुर बहै । हंसा अवध वर्ष दोय रहै ॥
सोरह दिन पिंगला सुर बोलै । बर्ष एक मो हंसा डोलै ॥
वीस रैयन दिन दहिनौ पाई । तब षट मासमों हंस चलाई ॥
एकति सरोज दक्षस्वरको जानो। तब दोय दिनमों हंस पयानो ॥
पांचघरी सुखमन जो हाले । पांचघरी मो हंसा चाले ॥
चन्द सूर सुषमन छपजाई । मुखसे तीजो पवन चलाई ॥
ऐसी विधि पवन चलाई । पहर माहिं हंसा चल जाई ॥

साखी—धूम मंडल दीखे नहीं, जोत न नेत्र लखाय ।
छठे मास हंसा चले, बचै न कोट उपाय ॥
छाया शीस दीखे नहीं,भुजा शिखर ना दिखाय।
दीप बास आवै नहीं, छठे मास चल जाय ॥
गगन शब्द गरजे नहीं, नेत्र गुञ्ज छपजाय ।
मास एकके अवधमें, हंसा तन तज जाय ॥
भँवरगुफा तिल ना लखे, पुतरी जब चढ़जाय ।
पहर एकमें जानिये, हंसा तन तज जाय ॥

सुक्रित वचन चौपाई

सुक्रित कहे सुनो गुरु ज्ञानी । आगम पचँ सब हम जानी ॥
और एक पूछौं गुरु तोही । भिन्न भिन्नकै भाखौ मोही ॥
जीव ब्रह्म कैसे प्रगटाई । सबके उतपत देहु बताई ॥
ताकर भेद गोय जिन राखो । सत्य सत्य सब मोसो भाखो ॥

कौतुक

कौन सो मन है कौन पवन है कौन शब्द है भाई ।
कौन प्रान है कौन हंस है कौन ब्रह्म ठहराई ॥
कौन काल है कौन जीव है कौन शून्य पहिचानी ।
कौन शिव है कौन निरंजन कहो सकल उतपानी ॥

योगजीत वचन

चंचल मन है श्वास पवन है शब्द शून्य पहिचानी ।
प्राण निरंतर अखल ब्रह्म है सोहंग हंस बखानी ॥
कारण काल शून्य अविनाशी जीव कर्म पहिचानी ।
जीव शक्ति करतार निरंजन ऐसा भेद बखानी ॥

सुक्रित वचन

मन कहाँ रहे पवन कहाँ वासा शब्द बास कहँ कीन्ह ।
कहाँ प्रान कहँ ब्रह्म बास है हंस कहाँ है लीन्ह ॥
कारण काल केहि ठोर बसत है कहाँ शून्य ठहराई ।
जीव शीव निरंजन बासा सो मोहि देहु बताई ॥

योगजीत वचन

हृदे मन है नाभि पवन है अनहद शब्द को वासा ।
निरन्तर प्राण ब्रह्म ब्रह्मण्डे गगन हंस पर्काशा ॥
सकलमें काल शीब चंदामें शून्य निरूपम माही ।
सुखमन मध्य निरंजन बासा योगी देखे ताही ॥

सुक्रित वचन

इन्द्री नाभी तब नाहीं स्वामी पवन कहा तब बासा ।
जादिन अनहद रूप नहीं तब शब्द कहां पकाशा ॥
ब्रह्मांड ना तो तब ब्रह्म कहां तौ गगन नहीं कहां हंसा ।
निरूपम विना शून्य कहां कहिये भेद कहो प्रकाशा ॥
आकार नहीं तब जीव कहाँ तो चन्द नहीं तब शीऊ ।
सुखमन नहीं तब कहां निरंजन समुझाय कहो सब भेऊ ॥

योगजीत वचन

इंद्री विन मन हतो निरूपम निराकारमों प्रवना ।
अलख रूपमों शब्द बासतो अविगतिमों तब प्राना ॥
अविनाशीमों हंसबास तो शून्य कालमों बासा ।
ॐकारमों काल बास तो ऐसा भेद प्रकाशा ॥
जीव शीवमों प्रथमो बासा शीव निरंजन माहीं ।
सबको बास प्रकट कर भाखों भेद कहौं तुम पाहीं ॥

सुक्रित वचन

कहांते उतपत भयो निरंजन कहाँ शीव उतपानी ।
काल जीव कहांते प्रकटो शून्य भयो केहि खानी ॥
कहांते उतपत भये अविनाशी कहांते उतपन हंसा ।
कहांते उतपन ब्रह्मभयो है प्राण भयो कह अंशा ॥
शब्द पवन मन कहाँते उतपन कहाँते प्रकटो जीऊ ।
सबके उतपन मोसों भाखौ केहि बिधि प्रकटो शीऊ ॥

योगजीत वचन

आदि ब्रह्मते भयो निरंजन तहांते प्रकटो शीऊ ।
तीन भेद तुमसों कहो सुक्रित शिवते उपजो जीऊ ॥
जीवते उतपत काल भयो है कालते भयो ओंकारा ।
ओंकारते शून्य भयो है शून्यते जोत प्रकारा ॥

जोत ब्रह्मते सब प्रकारा अगम भेदको कहो विचारा ।
अखंड रूपते भयो अविनाशी अविनाशी ते हंसा ॥
शब्दते उतपत पवनकी है पवनते स्वांसा अंशा ॥

सुकित वचन--चौपाई

अन्तकाल जब आवे भाई । तन छूटे मन कहां समाई ॥
पवन शब्द हंसा कहां सिधाई । अन्तकाल कहवां ठहराई ॥
कालशून्य तब कहा समैहै । जीव शीव कहवां चल जैहै ॥
अन्त निरंजन कहो समाई । ताको भेद कहौ समुझाई ॥

योगजीत वचन

तन छूटे मन जोत समाई । पवन श्वांसमें तब खप जाई ॥
प्राण समाय शब्दके माहीं । हंस ब्रह्ममें तब खपजाहीं ॥
अबिनाशी शिवमाहे समाई । ब्रह्म अलखमें तब खप जाई ॥
अलख अनूपमों जाय समाना । अन्त प्रलेको भेद बखाना ॥
उतपत सकल भाष हम दीना । ताको भेद लखो पर्वीना ॥
सत्य सत्य यह बानी जानो । आदि वचन यह तुम निर्वानो ॥

सुकित वचन--चौपाई

हे समर्थ मैं तुम बलिहारी । खोल भेद अब कहौं बिसारी ॥
केता प्रवान लोक अस्थाना । ताको भेद कहौं निर्वाना ॥
संख्या योजन ताकी भाखो । ताकर भेद गोय जनि राखो ॥
कहां कौन सो पुरी रहाई । कौन अंश तहाँ आसन लाई ॥

साखी—सब उतपत तुम भाषिया, भेद कहेउ समुझाय ।
अब मन मो निश्चय भई, आगम भेद लखाय ॥

योगजीत वचन

साखी—योजनकी मरजाद बहु, आगे जो पर्वान ।
अंशसहित अब भाखेऊ, तिनको नाम बखान ॥

चौपाई

अब मैं कहौ लोककी बानी। निरगुण भेद कहौं बिलछानी॥
प्रथमहि कुम्भ रूप औतारा। पीछे सकल सृष्टि बिस्तारा॥
योजनकोट एक मुख कहिये। कोट पचास पीठ तेहि लहिये॥
एक कोटको मस्तक जाना। कोटकोटके अन्त बखाना॥
एक कोटपर नेत्र बताई। सोरा माथ चौसठ हाथ पाई॥
पृथी ते दून कुम्भ है भाई। पूरबदिशि मुख बरन भुनाई॥
उंचास कोट पृथ्वी पर्वाना। ताके तरे कुम्भ अस्थाना॥
बहुर अष्ट दिगपाल बखाना। कुम्भ पीठपर है अस्थाना॥
चौसठ पुंडरीक तहां कहिये। बावन लक्षको मस्तक लहिये॥
छयकोट ऊचे प्रमाना। कुम्भ पीठपर कीन्हों थाना॥
ऊपर कुम्भ शेषको जाना। पंद्रह कोट ताहि प्रवाना॥
तहां वासुककी बैठक कहिये। और वराह्नु तासुपर लहिये॥
ताकी डाढ़ पृथी ठहराई। राई प्रवानसो दीखे भाई॥
पर्वत अष्टपृथी पर जाना। मध्यपृथी सुमेर बखाना॥
सोरह सहस्र नीचे बधाना। एता योजन तरे समाना॥
बीस सहस्र योजन चौरासी। चार दिशा तेहि फेर रहासी॥
चौरासी सहस्र योजन प्रवाना। इतना ऊँच सुमेरू वखाना॥
तापर चारपुरी हैं भाई। अमरपुरी पुन तहां बनाई॥
तहां इंद्र सुखराज कराई। तीन देव अस्थान बताई॥
तैंतिस कोट देवता जाना। अठासी सहस्र ऋषि प्रवाना॥
तहां कुबेर भंडारी कहिये। अलकापुरी नामसो लहिये॥
नौ पदुम नील अठतालिस। चौंतिस पर्व अर्ब उनतालिस॥
सतावन कोट कहों प्रवाना। पैंसठ लाख कहो बंधाना॥
पञ्चानवे सहस्र और तहां कहिये। पचास एकसो योजन लहिये॥

एता योजन कहो प्रमाना । पृथ्वी अकाशको अन्तर जाना ॥
एता स्याम अंड पहिचानी । आगे और अबलोक बखानी ॥
पृथीते लक्ष योजन बंधाना । तहवां सूरज देवको अस्थाना ॥
सूरजते चन्दलोक है भाई । योजन लक्ष आगे चल जाई ॥
चन्दलोकते आगे जाना । योजन लक्ष नक्षत्र बखाना ॥
योजन लक्ष आगे चलजाई । ताके आगे भौम बताई ॥
भौमके आगे बुध अस्थाना । योजन लक्ष आगे प्रवाना ॥
बुधके आगे गुरु पहिचानो । योजन लक्षमें ताहि बखानो ॥
गुरुके आगे शुक्र बताई । योजन लक्ष कहों ठहराई ॥
शुक्रके आगे शनिको जाना । लक्ष योजन आगे पहिचाना ॥
शनिके आगे अदित बखाना । योजन लक्ष कहो प्रवाना ॥
तेहिके आगे सोम कहीजै । सोमके आगे राहु लहीजै ॥
राहु केतु लोक अस्थाना । योजन लक्ष आगे बंधाना ॥
तहांते लक्ष योजन प्रवाना । तहवां सप्तऋषीश्वर जाना ॥
तेरह लक्ष ऋषिन सो भाई । आगे विधिको लोक बताई ॥
तहांते लक्षयोजन बंधाना । महाविष्णु आगे पर्वांना ॥
श्रीनारायण बैठे जहँवा । सूवा ऊपर पालंग तहँवा ॥
पग अगुष्ठ मुख दीन्हों सोई । बालरूप तहाँ कीन्हों जोई ॥
तहाँते गौलोक कहावे भाई । राधा सती तहाँते आई ॥
सोई नाम अचिंत कहावे । सच्चिदानन्द ताहि गोहरावे ॥
इहांलग सगुणरूप बतलाई । यही चारों वेदन गुन गाई ॥
आगेको कछु भेद न पाई । इहांलग सबही मिल गोहराई ॥
तैंतिसकोट इहांलग गावै । आगेका कछु भेद न पावै ॥
चारमुक्तका कहे बखाना । यही रूपको करे पर्वांना ॥
बहुते तेज उहांलग जाई । प्रले समै नाश होय भाई ॥

नौ औतार देहधर आवा । सो अचिंतके अंश कहावा ॥
जहांलग अंश सकल पुन देखा । तहांलग मायारूप विशेषा ॥
आगे अक्ष लोक है भाई । तहां गये फिर बहुरि न आई ॥

साखी—इहांलग सरगुण रूप है, सो हम दीन्ह लखाय ।
जग नहिं जानत तासको, निरगुणके कोधौं आह ॥

सुक्रित वचन--चौपाई

हो समर्थ तुम अगम अपारा । तुम हो निरगुणके औतारा ॥
अब आगेको भेद बताई । लोक पुर्ष सब बर्ण सुनाई ॥
जहवाँ हंस जाब ठहराई । बहुर नहीं प्रलैतर आई ॥
ताकर भेद कहो समुझाई । अगम निगम सब वर्ण सुनाई ॥

साखी—सतगुरु भाषो आदिते, लोकन को पर्वान ।
केता अन्तर ताहिको, पुर्ष भेद निरवान ॥

योगजीत वचन--चौपाई

हेसुक्रित मैं कहों बखानी । वर्णों अगम निगमकी बानी ॥
अचिंतलोकमें दीन्ह बताई । लोकालोक सब वर्ण सुनाई ॥
अब भाषों निरगुणको लेखा । योजन संख्या लोक विशेषा ॥
अचिंतके आगे लोक बखानो । तीनअशंखयोजनपहिचानो ॥
सोहंगलोक तहां है भाई । आठ अंश तिनते उपजाई ॥
सोहंग पुरुष है अगम अपारा । जगर मगर जहाँ हैउजियारा ॥
सोहंग पुर्षके आगे जाना । मूल नाम तहाँ पुर्ष बखाना ॥
पांच असंख योजन प्रमाना । तहवां मूलनाम बंधाना ॥
मूलनाम तहं आसन कीन्हा । आदि पुर्षके अंश जो चीन्हा ॥
मूलपुर्ष है अगम निसानी । तास भेद मैं कहों बखानी ॥
मूलपुर्ष ते आगे जाना । अंकुर नाम तहां पुर्ष बखाना ॥
तीन असंख आगे है भाई । अंकुरनाम तहँ पुरुष रहाई ॥

ताको उग्रलोक है भाई । तहां अंकूर उदित रहाई ॥
अंकूरलोकते आगे जाना । इक्ष नाम तहां पुर्ष बखाना ॥
चार असंख योजन प्रमानी । इक्ष्या पुर्ष तहां रजधानी ॥
सोई पुर्ष कर्ता होयं आवा । आदपुर्षके अंश कहावा ॥
प्रथम पुर्षकी इक्ष्या आई । ताते इक्ष्या नाम कहाई ॥
ताहि पुर्षको कहों ठिकाना । है सुक्रित तुम सत्तही माना ॥
इक्ष्या आगे लोक बखानो । सोतो अंश पुर्षको जानो ॥
नौ नील एक संख बखाना । बानी नाम पुर्ष स्थाना ॥
पुर्ष प्रथम बानी उच्चारा । ताते नाम सर्व आकारा ॥
ताहि पुर्षको भेद बताई । एतो आद पुर्ष हैं भाई ॥
बानी नामते आगे जाना । सहजनाम तहां पुर्ष बखाना ॥
दशलाख एकशंख बखाना । सहज पुर्षको तहां अस्थाना ॥
तहवां सहज पुर्ष है भाई । आदिपुर्षके अंश कहाई ॥
सातपुर्ष इहांलग जाना । निरंजन अक्षर नीचे थाना ॥
अचिंतसौ अक्षर उपजे भाई । निरंजन अंश अक्षरते आई ॥

साखी–निरंजन और सहजलों, नौ पुर्ष प्रमान ।
आदिपुर्ष आगे कहों, जितने सब उतपान ॥

सहज अंशलग जेतिक भाषा । सो रचना परलयतर राषा ॥
इहांलग प्रलैको प्रमाना । आगे अक्षैलोक अस्थाना ॥
सहज पुर्षते आगे जाई । आदिपुर्षको लोक दिखाई ॥
सहजते एक असंख प्रवाना । तहवां आदिपुर्ष निरबाना ॥
तहँवा प्रलैकालकी छाया । नहीं तहां कछु मोह और माया॥
तहां न तीनों गुनका भेषा । ब्रह्मा विष्णु तहां न महेशा ॥
नहीं तहां जोत निरंजन राई । अक्षर अचिंत तहां नहिं जाई ॥
तहां नहीं शिवशक्ती औतारा । नहीं तहां अक्षर ओंकारा ॥

ब्रह्मजीव नहीं तत्त्वकी छाया । नहिं तहँ दशइंद्री निरमाया ॥
काम क्रोध मद लोभ न कोई । तहवां हर्ष सोग नहिं दोई ॥
नादर्बिदको तहां न पानी । नहीं तहँ सृष्टि चौरासी जानी ॥
चंद सूर तारागण नाहीं । नहीं तहँ दिवस रैनकी छाहीं ॥
ज्ञान ध्यानको तहां न लेषा । पाप पुण्य तहवां नहीं देषा ॥
डार मूल तहां वृक्ष न छाया । जीव सीव तहां काल न काया ॥
पवन न पानी पुरुष न नारी । हद अनहद तहां नहीं विचारी ॥
यंत्र मंत्र तहां दरद न धोखा । नर्क स्वर्ग संशय नहिं शोका ॥
श्वेत पीत सबज नहीं लाला । मोर सोर नहीं वृद्ध ना बाला ॥
पिंड ब्रह्मांडको तहां न लेखा । लोक अलोक तहां नहीं देखा ॥
मन औ वृद्ध पवन नहीं जाना । रचना बाहिरसो अस्थाना ॥
आदि पुरुषको है तहां थाना । यह चरित्र एकौ नहीं जाना ॥
हे सुक्रित मैं तुम्है लखावा । निरगुणरूप वर्ण दर्शावा ॥

मुक्रित वचन

हो सतगुरु तुम आगम भाषा । वर्णेउ पेड़ पत्र अरु शाखा ॥
अब तुम कहो पुरुषको रूपा । कैसी कला हे कौन स्वरूपा ॥
लोक प्रकाशको भेद बतावो । लोक प्रमान मोहि समुझावो ॥
यामें कछू न राखो गोई । हे समर्थ अब भाषो सोई ॥

साखी–आदि पुरुषके रूपको, कहो भेद समुझाय ।
लोक प्रमान मरजाद सब सो मोहि देहु बताय ॥

योगजीत वचन–चौपाई

प्रथम पुरुषको रूप बखानो । सो तुम रूप हृदयमों आनो ॥
पुर्षअंग छबि वर्ण सुनाई । गुप्त भेद मैं तोहि लखाई ॥
पुरुष शोभा अगम अपारा । ताको को अब बरणे पारा ॥
कोट अनन्त योजन लौ काया । कहां लग कहों तासुकी छाया ॥

कछु संक्षेप मैं देउँ बताई । कहां कहों कछु वर्णि न जाई ॥
कोटि कल्प युगजाय सिराई । मुख अनन्तसो बर्णि न जाई ॥
ये कछु सूक्षम रूप लखाऊँ । कछु कछु शोभा बर्ण सुनाऊँ॥
अब मस्तकको बर्णौं भेषा । मानों अनंत भानु शशिलेखा॥
जगर मगर मस्तक उजियारा । बर्णत बनै न रूप अपारा ॥
अब नेत्रनको कहों प्रमाना । मानो अनन्त भान शशि जाना॥
जिमि कोटिन दामिन लपटानी । जोत अनंतनकी जिमि खानी ॥
वर्णत बने न ताको रंगा । कहांलग कहों तास प्रसंगा ॥
नासारूप कहों प्रचंडा । मानो अब्र अनन्त ब्रह्मंडा ॥
पोहप बास तहांते प्रकटाई । घ्राण अनंत योजन लग जाई ॥
श्रवणरूप मैं कहों बखानी । अनंत सिंध मानो समानी ॥
ता मह कमल अनन्तन फूला । साखा पत्र डार नहिं मूला ॥
ताको शोभा बर्णि न जाई । कमल रूप तहां अधिक सुहाई॥
अब मुख शोभा कहों बखानी । पिंड ब्रह्मांड तेहि माहि समानी॥
नौ शून्य जहां लग बासा । सो मुख भीतर कीन्ह निवासा॥
लोक अनंत देखिये ताही । सर्वाकार रूप है जाही ॥
पुर्षरूपका बर्णो भाई । वर्णत बने न होय दिठाई ॥
पुरुष शोभा अगम अपारा । मुख अनंत नहीं पावे पारा ॥
चिकुर शोभा कहों बुझाई । कोटिन रवि शशि रोम लजाई॥
कोटिन चंद सूर प्रकाशा । एक एक रोम अनन्तन भासा ॥
पुरुष अंगका करो बखाना । रचना कोट तासुमों जाना ॥
श्वेत अकार पुरुषको अंगा । फटकबर्ण देहीको रंगा ॥
शब्द स्वरूप पुरुष है भाई । वर्णों कहा वर्ण नहिं जाई ॥
जहां लग जीव बुन्द है भाई । ताकर भेद कहौं समुझाई ॥
जीव अनन्त बुन्द सम जानो । अमी सिन्धु पुरुष पहिचानो ॥

यह प्रमान पुर्षको जाना । सो अब तनमों कहों बखाना ॥
सूक्षिम रूप गगनमों बासा । ताहि रूपको कहों प्रकासा ॥
तनभोरूप जो सूक्षिम जानो । सोई रूप बाहिर पहिचानो ॥
जो भीतर सो बाहिर कहिये । एकप्रमाण रूपसो लहिये ॥

साखी—बारूके दशअंश कर, ताकर बिस्वा बीश ।
ताहूते सूक्षिम कहो, इम प्रकटो जगदीश ॥
लोक समानो पुर्षमो, पुर्षहि लोक समान ।
पुर्ष निरंतर लोक है, लोक पुर्षमो जान ॥

सुक्रित वचन—चौपाई

हो समर्थ मैं तुव बलिहारी । सर्व भेद तुम कही विचारी ॥
अब प्रभु कहो ध्यानको लेखा । जेहिते रूपहि पुर्षको देखा ॥
ताको नाम मंत्र उपदेसा । सो सत्गुरु अब कहो सँदेसा ॥
सोई मंत्र गुरु देहु बताई । जाके बल हंसा घर जाई ॥
करनी योगकी रहनी आशा । हंसा करे लोकमों बासा ॥
सोई नाम गुरु देहु बताई । मेरो हंस लेहु मुक्ताई ॥
और रहनी हंसनकी भाखो । मोसों गोय कछू जनि राखो ॥
कौन नेहते हंस कहाई । कौन नेहते लोक समाई ॥

योगजीत वचन

सुक्रित सुनो सत्य मम बानी । जैसी रहन हंस पहिचानी ॥
तास रहन अब वर्ण सुनाऊँ । नेह प्रेमकी जुक्त लखाऊँ ॥
जैसे सीप स्वात करे नेहा । लागी प्रीत भूल निज देहा ॥
जैसे त्रिया पुर्षको चाहै । या विधि संत ध्यान औगाहै ॥
जैसे चात्रिक बुंद पुकारा । सोई लगन संत अधिकारा ॥
जैसे बासको भँवर लोभाई । योजन एक तहां उड़ जाई ॥
जैसे चंद चकोर हुलासा । ऐसे संत पुर्षको आसा ॥

जैसे लोहा चुंबक लग जाई। तैसे संत ध्यान लपटाई ॥
जैसे कनिका कपूरको धावै। ऐसे प्रीत संत लवलावै ॥
जैसे पतंग दीपकको धावै। ऐसे संत ध्यान लपटावै ॥
जैसे नेह बारि औ मीना। ऐसे संत नाम लवलीना ॥
जैसे बाल बहिन महतारी। ऐसे लगन तहां संत विचारी॥
ऐसे प्रीत करे जो कोई। सत्यपुर्षको पावै सोई ॥
ऐसे प्रीत गगन मन लावै। गुरुप्रतापते दर्शन पावै ॥
और रहन मैं देऊँ बताई। जाते बेग पुर्ष दर्शाई ॥
आपामेट आप दर्शाई। प्रेमसिंधुमें जाइ समाई ॥
बिरहरूप करुणा अधिकारी। लागी ज्वाल निरन्तर भारी ॥
जगसों नेह झूठ करजाना। मनसो सब जग मिथ्या माना ॥

साखी–मनसों त्यागे जक्तको, जान विषयकी खान।
सुक्रित अब मैं भाषेऊँ, राजस योग प्रमान ॥
कायासों कारज करे, सकल काजकी रीत।
कर्म भय सब मेटके, सत्त नामसों प्रीत ॥

अब सुन ब्रह्म ज्ञानकी वानी। ताकर रीति लेहु पहिचानी ॥
एके ब्रह्म सकल घट देखा। ऊँच नीच काहू नहिं पेखा ॥
शत्रु मित्र एक कर जानै। पाप पुण्यको भेद न आनै ॥
करै कर्म पुरुष परिवारै। अपनो करतब मन नहिं धारै ॥
सब कछु करे पुर्ष रे भाई। अपनो शीस ना भार चढाई ॥
सुख औ दुःख एककर जाने। इनको भाव मिथ्यापहिचाने॥
झूठ वचन नहिं जीव सतावै। दया भाव सबही सो लावै ॥
इंद्रीस्वाद स्वप्न कर जानै। रूप कुरूप नाम मनो आनै ॥
वाद विवाद न जाने प्राणी। हार जीत एक सम पहिचानी॥
उत्तम मध्यम मर्म न जानै। कर्तारूप सकल पहिचानै ॥

जात वर्ण नाहीं कछु मानै । चार अंग एक दृष्टि समानै ॥
जहां लग दृष्टिपरे जो कोई । इच्छा पुर्ष जानिये सोई ॥
सोवत जागत लखे अकारा । तहांलग कर्तारूप निहाग ॥
वारखान धरती असमाना । सो सब कर्ता माहि समाना ॥
जलथल सप्तदीप नौखण्डा । लोक अलोक सकल ब्रह्मण्डा॥
गुप्तप्रकट जहांलग आकारा । सो सब कर्ता बीच निहारा ॥
भिन्नभाव कछु दृष्टि न आवै । सोई ब्रह्म ज्ञान कहलावै ॥

साखो—कर्तारूप बिचारिये, जहांलग सकल अकार ।
इच्छा द्वैत विनास होय, रहो एक करतार ॥
प्रथमहि अबिगत ब्रह्म है, तिनते ब्रह्म अनेक ।
सकल बुंद सिंधुहि मिले, बहुर एकको एक ॥
द्वैत रूपको ध्यानमो, कारज लहे न कोय ।
आदि पुर्ष चीन्हे बिना, मुक्त कौन विध होय ॥
सुक्रित सुनो सुजान, अक्षै नाम चीन्हे बिना ।
यमघर करे पयान, युगनयुगन भर्मत फिरे ॥
तैंतिस कोट बखाना, सकल देव अब भाषिया ।
तिनमों तीन प्रमान, जीव सकल विस्तार है ॥
युगप्रति तन धरधर मरे, मायाको व्यवहार ।
अंतकाल सबको भषे, इनते पुर्ष निनार ॥
आदि पुर्ष बैठे जहां, अबिगतरूप अनाद ।
रचनाते बाहिर रहै, तिनको भेद अगाध ॥
महाविष्णु गोलोकके, और अचिंत बखान ।
ररा ममा जोत मह, ताको करे प्रवान ॥
पिंडमहीं ब्रह्मंड औ, नहीं लोक आकार ।
अनंत लोकते भिन्न है, सुक्रित करो विचार ॥

निरगुण मो मन लीन रहु, करे जीव गतनाश ।
बहुर कालबश ना परे; अजर अमाघर बास ॥
जिन संतनको यह मता, बरनत बने न मोहि ।
तिन पटतर का दीजिये, कहि समुझाऊं तोहि ॥
संतकोट वारो जहां, ज्ञानी लक्ष अनेक ।
जो निरगुनमों रत सदा, सो अनंतमों एक ॥

सुक्रित वचन--चौपाई

हो समर्थ मैं तुव बलिहारी । संतन महिमा कहो विचारी ॥
संतरूप कैसे पहिचानी । महिमा तासु कौन विधि जानी ॥
कैसे भेद तासको पावै । कैसे पर्म संत बस आवै ॥
और संत एक देहु बताई । तुमको आहु कहांते आई ॥

योगजीत वचन

हो सुक्रित मैं कहों बखाना । तुमसों भेद कहों निर्बाना ॥
अपनी उतपत देहु बताई । तुम्हे भेद कछु नाहे दुराई ॥
आदि भेद अब कहों बुझाई । तुम सुक्रित सुनियो चितलाई ॥
प्रथमहि पुर्ष आप निबाना । तब नहिं रचना अश बखाना ॥
जबै पुर्ष मन इच्छा आई । षोडश अंश तबै उपजाई ॥
चौदह सुत तहां रहे छिपाई । तिनको भेद कोई नहीं पाई ॥
सक्त निरंजन तब उपराजा । जिन सब कियो सृष्टिको साजा ॥
तिनसों त्रिगुनरूप प्रकटाया । जिनसों भई सबनकी काया ॥
तिन पुन चारों वेद बखाना । तामें जीव सबे लपटाना ॥
चारखान तव प्रकट कीन्हा । तेहिमों फाँस जक्त सब लीन्हा ॥
फिर पुत चउदह यम उपराजा । तब चौरासी कीन्ह समाजा ॥
तीरथ व्रत औ नेम अचारा । दान पुण्य जप मंत्र विचारा ॥
इतना करे जगतमें कोई । यमकी त्रास न छूटे सोई ॥

यामह सकल जीव डरझाई । अंतकाल पुन धरधर खाई ॥
स्वर्गलोकमह जो चले गयेऊ । तेतो आके देह फिर धरेऊ ॥
तेहुना यमकी छूटे त्रासा । भांत अनेक जीवनको फाँसा ॥
जबै पुर्ष अस देखेउ भावा । सत्तपुर्ष एक रूयाल बनावा ॥
सत्तपुर्ष इच्छा उपजाई । पुहुप नाम तब अंश बनाई ॥
तिन्हे पुर्ष अस आज्ञा कीन्हा । भौसागरको आयसु दीन्हा ॥

साखी-पोहोप नाम तबही चले, पुर्षहि शीस नवाय ।
भौसागरमों प्रकटभो, अबिगत रूपबनाय ॥

चौपाई

अबिगतरूप छांड हम दीन्हा । संत स्वरूप भेष गहि लीन्हा ॥
शब्दस्वरूप बनाये सोई । तिनकी देहन छाया होई ॥
पाँच तत्त्व तीनोंगुन नाहीं । धरी देह तव बसत युगमाहीं ॥
सत्तनाम हम नाम धरावा । सब जीवनको संध लखावा ॥
या विध अजदेह धर लीन्हा । सबको आय सिखावन दीन्हा ॥
तब पुन जगमों संध लखाई । निरगुन मता सबै समुझाई ॥
जो जिव संध शब्दकी पाई । जीव असंखन लोक पठाई ॥
प्रथमहि सतयुगमैं हम आये । सत्त नाम तब नाम धराये ॥
तब हम जीव असंखन तारे । यमको मार तब जीव उबारे ॥
त्रेतामाहिं बहुर हम आये । मुनिकह बोध मुनींद्र कहाये ॥
कोटिन जीवको संध लखाये । एतिक जीवको तब मुक्ताये ॥
तीजे फिर द्वापरयुग आई । मुनि करुनामै नाम धराई ॥
कोटिन जीव तबै हम तारे । महाकालते जीव उबारे ॥
फिर कलियुगको आयेउ भाई । योग जीत तब नाम धराई ॥
कालहिं जीत हंस मुक्ताये । सत्य शब्दकी संध लखाये ॥
जीव असंखन तारेउं आई । सत्तपुर्षकी दर्श कराई ॥

साखी—चारो युग हम आइया, कीन्हेउ हंस उबार ॥
कलयुग नाम बखानऊँ, योग जीत उच्चार ॥

चौपाई

सुक्रित सुनो भेद निर्वाना । अपनी उतपत कहा बखाना ॥
अब संतनको कहों संदेसा । जेहि विध लखो तासको भेसा ॥
तिनकी रहन अब देऊँ बताई । जाते तुमही संत लखाई ॥
निरगुण चाल चले पुनसोई । सोई संत शिरोमणि होई ॥
तीरथव्रत औ नेम अचारा । इतने रहैं संतसो न्यारा ॥
दानपुण्य जगवर्ते धर्मा । एतो जक्त जानिये कर्मा ॥
पूजा जाप ना दुतिया राखै । सत्तनाम हृदे अभिलाखै ॥
तैंतीसकोट देवगण भारी । ये सब माया रूप निहारी ॥
दुतिया ध्यान अनित्य विचारै । अक्षै नाम हृदेमों धारै ॥
सोई निरगुण संत कहाई । ताकी परख मैं देऊँ बताई ॥
रहे विरक्त होय जगमों सोई । विरही संत सोइ पुन होई ॥

साखी—यह तो विस्वा धर्म है, दुतिया जप तप ध्यान ।
पतिव्रता इनमों नहीं, मगके रोरा जान ॥
अक्षय नामको गहि रहे, तजे द्वैतके आस ।
सत्तपुर्षको पावई, पूरण पर्म विलास ॥
रहो एकता चित्तमों, दुतिया उसको जान ।
गगनमगन निशिदिन रहै, निरगुणसो पहिचान ॥

चौपाई

सुकृत सुनो ज्ञान अब सोई । निरगुण संत कैसे बसहोई ॥
प्रथम संतको पावे जाही । प्रेम प्रीत तब कीजे ताही ॥
करे बंदगी शीस नवाई । निज गृह तबे ताहि लैजाई ॥
चंदन घसे धामको छावे ! तापर बस्तर श्वेत बिछावे ॥

चरन पखार चरनारज लीजै । बहुत भांतसो भोजन दीजै ॥
महाप्रसाद तासुको लीजे । पीछे औगुन पूजा कीजै ॥
प्रथम बंदगी कायक जाना । मायक बायक फिर पहिचाना ॥
तीनों बंदगी करे बनाई । अनेक भांतिसो ताहे रिझाई ॥
द्रव्य देनको लोभ न कीजै । चरन तरे ताहि धरदीजै ॥
अष्टधातको काया जाना । सो उद्धार कैसे पहिचाना ॥
काया भार उतारके लीजै । चउदह रतन तब गुरूको दीजै ॥
आरती करे बहुभांत बनाई । काया भार तब ताको जाई ॥
यहविध भक्त करो चितलाई । यमको डंड छूट तब जाई ॥

साखी—आरती कीजै पुष्पको, बहुत दीनता लाय ।
कागाते हंसा भयो, सत्त भक्तको पाय ॥

इतनी प्रीत संत जब जाना । तबे संतसो निज मत ठाना ॥
क्रिया करै तबहीमुख बोलै । तबे संत दिल पर्दा खोलै ॥
तबे बस्तु निज देहि लखाई । तासो हंस समाध लगाई ॥
सोई करनी कछुदिन करई । आदिब्रह्म अंतर लख परई ॥
पुर्षलोकमों रहे समाई । तबही बुंद सिंध मिलजाई ॥
इतना खोज करे पुन जबही । अजर अमर घर पावे तबही ॥
निरगुण संतको भेद बतायो । निजमत खोलमैं तुम्हैं लखायो॥
अब एक आगम तुमसों भाषों । सुक्रित गोय कछू नहिं राषों ॥

साखी—निरगुणको औतार है, सो प्रकटे जग आय ।
ऋषिमुनि ताको ना लखे, गुप्तसो रहो छिपाय ॥

ताको भेद अब देहुँ बताई । संत रूपसौ जगमों आई ॥
बालक होय पुन जगमों आवै । कमलपत्र पर आसन लावै ॥
निरूनाम जुलहा कहाई । भक्तहेत ताके गृह जाई ॥
खान पान कछु करि हैं नाहीं । दिनदिन अंग बढ़त पुन जाहीं॥

शब्दस्वरूप देह तिन होई । पांचपचीस तीन नहिं कोई ॥
छलदिक्ष्या रामानंदसो लैहै । तिनको फेर उलट समुझैहै ॥
पांडव यज्ञ तिन पूरन कीन्हा । स्वपच भेष तिनही धर लीन्हा॥
कोटिन हंस तबै मुक्ताई । सत्तनाम कबीर कहाई ॥
अजर अमरहो तिनकी काया । जासु देख काँपे यमराया ॥
सोई नाम कबीर कहाई । हमैं उन्हे कछु अंतर नाहीं ॥
ते पुन जगमों परकट होई । ताकर अवध बताऊँ तोही ॥
सम्बत पंद्रहसे बीस प्रमाना । तबे आय जगमों प्रकटाना ॥
निरगुण संध तब जगमों आई । सोई नाम कबीर कहाई ॥
दोई दीन को बोधे आई । मगहर अमी नदी बहाई ॥
पंडाके पग जरत बुझाई । परसो तगको भरम छोड़ाई ॥
सत्य शब्द प्रतीत दिढ़ाई । भौसागरते जीव मुक्ताई ॥
जीव असंखन तारे जबही । आवें अंशलोकते तबही ॥
कोटज्ञान धर्मदासहि देहैं । ब्यालिस पिढ़ीथाना बैठेहैं ॥

साखी—नौतम अंश पुर्षके, सो प्रकटे संसार ।
जीव असंखन संगले, जही पुर्ष दर्बार ॥

भौसागरमें रोपेव थाना । धर्मराय शिर मरदेउ माना ॥
तिनको मता सन्त जब पावै । सोतो अजर अमर घर आवै ॥
ताको काल न पावै सोई । गुरु कबीर निज पावै जोई ॥
हमरो उनको एक शरीरा । जाको सुनियो नाम कबीरा ॥
सत्त कबीर पुर्ष निर्वांना । तिनको तुमसों कहों बखाना॥

साखी—अजर अमर सोइ जानिये, जाको नाम कबीर ।
तासु संध जाने बिना, हंस न लागे तीर ॥

सुक्रित वचन--चौपाई

है समर्थ तुम आगम भाषा । आगकी अब बर्णों साखा ॥

निरगुन अंश लीन्ह हम जानी । ध्यान मंत्र प्रभु कहो बखानी ॥
आगे बिनै करों बहु बारा । ताको भेद कहो निरधारा ॥
जीव मुक्तको भेद बताई । आपन करमो कह मुक्ताई ॥
बिनती करो दोय कर जोरी । ध्यान मंत्रकी भाषों डोरी ॥
ताको मता धरोजिन गोई । मोसो वर्ण सुनावो सोई ॥

योगजीत वचन

सुकित सुनो भेद निर्वाना । जीवमुक्ताको कहों प्रमाना ॥
मंत्र ध्यानको बर्णों अंगा । ताको भाव कहों प्रसंगा ॥
आदि मंत्र मैं देहु बताई । जाके बल हंसा घर जाई ॥
सोई जाप अंतर लो लाई । अंतकाल ताको नहिं खाई ॥
ऐसा तुम्हे कहों उपदेशा । अंतर ध्यानको कहों संदेशा ॥
प्रथमहि जो सुख आसन लावै । राजस योग तब करे बतावै ॥
काया कष्ट न ब्यापै कोई । राजस योग पुन कहिये सोई ॥
पांच पचीसकी सुर्त बिसारै । अस्थिर बैठ ध्यान उचारै ॥
बैठ शून्य महलमों जाई । तबे निरंतर ध्यान लगाई ॥
प्रथम विरह वैराग समावै । रचना सकल तहाँ बिसरावै ॥
एक पुर्ष एक आपको जानै । द्वैत अकार शून्य पहिचानै ॥
तबही ध्यान समाध लगाई । जाकी सुर्त अन्त नहिं जाई ॥
दहिनो अंग श्वास जब आवै । तबे ध्यान महँ सुर्त लगावै ॥
पिंगला अंग पुर्षको बासा । बाँये अंग शक्त प्रकाशा ॥
शक्त अंग कह देहु बचाई । दक्ष अंग वह सुर्त लगाई ॥
प्रथम रूप सोहंग उचारा । तामों लखो पवनकी धारा ॥
तामहँ अर्ध पवन जो कहिये । सोहंगनाम पुन तामों लहिये ॥
प्रथम ध्यान घर देखे सोई । अंग अंग की पर्चै होई ॥

तास अंगमें देहु बताई । यह कौआय कहांते आई ॥
सोतो पुर्षको अंश कहाई । भीतर वाहिर सिद्ध कराई ॥
पिंड ब्रह्माण्ड रहा भरपूरी । सोई निकट सोई है दूरी ॥
तब अजपाकी तारी लावै । विन जप हंसा तहाँ समावै ॥
श्वेतरूप श्वासा को रंगा । सुर्त समानी ताको संगा ॥
सप्तपताल कोट ब्रह्मण्डा । सातद्वीप पृथवी नौखंडा ॥
सोई सबमों रहा समाई । सो जगको करतार कहाई ॥
एक संख छैलक्ष प्रमाना । इतना योजन लोक बखाना ॥
सोहंग नामको लोक प्रमाना । आगे पुर्ष कहों निर्बाना ॥
पर्दाराख गुप्तकर भाखो । अक्षरकाट गुप्तही राखो ॥
जेहिते जक्त लखे नहीं कोई । गुप्त अंक कर भाषों सोई ॥
ताके आगे नाम बखानो । सोई नाम गुरुगमते जानो ॥
प्रकट नाम कर भाषो सोई । सुनके जीव तरे सब कोई ॥
अब मैं कहौं आगेकी बानी । गुप्त अंक गुरुगमते जानी ॥
प्रथमही सोहंग नाम बखानो । तामह बोहंग ब्रह्म समानो ॥
सोहंग मध्य कोहंग दर्शाई । सोतो अंश पुर्षको भाई ॥
दोय असंख दशनील बखाना । एता योजन लोक प्रमाना ॥
श्वेत अंग तिनहूको कहिये । सोहंग पार धामसो लहिये ॥
तिनके दर्श हंस जब पाई । कर प्रनाम तहँ शीस नवाई ॥
वोहंग नाम आसिका दीन्हा । बहुत भांति तिनदाया दीन्हा ॥
तबे हंसको लीन्ह बुलाई । लोक प्रमान सब दियो बताई ॥
तव उन डोरी दीन्ह लखाई । ता चढ़ि हंसा लोक सिधाई ॥

साखी–वोहंगको प्रनाम कर, तब डोरी गहि लीन ।
पुर्ष नाम सुमिरत भयो, परे पयाना दीन्ह ॥

तब आगेको कीन्ह पयाना । कोहंग नाम जहाँ अस्थाना ॥
कोहंग नामको देखा जबही । हंस प्रणाम कीन्ह पुन तबही ॥
दोयकर जोर सब अस्तुति कीन्हा । मस्तक हाथ पुर्ष तब दीन्हा॥
तबही हंस बहुत हरषाना । पायो पूरन पद निर्वाना ॥
तीन असंख वटनील बखाना । एता योजन लोक प्रमाना ॥
श्वेत स्वरूप पुर्ष है सोई । श्वेतही वर्ण लोक वह होई ॥
तबै हंसको लीन्ह बुलाई । पाँजी लोकको दीन्ह बताई ॥
मकतार तब डोर लगाई । तब आगेकी संध बताई ॥
हंस प्रनाम पुर्षको कीन्हा । तबही डोर हंस गहि लीन्हा ॥

साखी–बहुत भांति तिन पुर्षसों, हंसा कीन्ह प्रनाम ।
तब आगे गवनत भयो, जोहंग नामको भाम ॥

तब हंसा आगे चलजाई । जोहंग नाम तहँ पुर्ष रहाई ॥
हंसा तहाँ पयाना दीन्हा । जोहंग नाम तहँ बैठक कीन्हा ॥
तबही पुर्ष हंसतन हेरा । हंस प्रनाम कीन्ह तेहि बेरा ॥
तब पूरष दिलदाया कीन्हा । वचन आसिका हंसहि दीन्हा॥
तब हंसा हिरदे हरषाई । हम पुरुषके दर्शन पाई ॥
चार असंख नौ पदुम प्रमाना । जोहंग नामके लोक बखाना ॥
श्वेत सरूप पुर्षकी काया । श्वेत वर्णसों लोक बनाया ॥
तबही पुर्ष हंस सँग लीन्हा । लोक दिखाय तासुको दीन्हा ॥
ताके परे विहंगम डोरी । मुक्तके मारग जाय जिव सोरी ॥
सो हंसाको दीन्ह लखाई । ताचढ़ हंसा लोक सिधाई ॥
आगे आदि पुर्ष निर्वाना । तहांको हंसा कीन्ह पयाना ॥

साखी–भांति अनेकन पुर्षसों, अस्तुत कीन्ह प्रनाम ।
आदिपुर्ष अवस्थानमों, हंसा कीन्ह पयान ॥

जबही हंसलोक नजिकाई । तबही देह हिरंमर पाई ॥
षोडश भान देह उजियारी । ऐसा रूप हंस तब धारी ॥
हंसा तबै तहां चल जाई । जक्षत पुर्ष तहाँ आप रहाई ॥
कमल अनंत पखूरी जानो । आदिपुर्ष जहाँ आसन ठानो ॥
पोहोप दीप तेहि नाम बखाना । सत्तपुर्ष कीन्हो अस्थाना ॥
सोई नाम निर्गम्य बखानी । अनंत नाम ताते प्रमानी ॥
ताको नाम हंस जो पाई । जीवन मुक्त हंस होय जाई ॥
सोई नाम जो सुमिरण करई । बिन तप भक्ति सो प्राणी तरई ॥
योजन अनंत लोक विस्तारा । आदिपुर्ष तहाँ करहि विहारा ॥
श्वेतहि वर्ण पुर्षकी काया । संपुट कमल देखिये छाया ॥
पुष्पहि धरनी तहाँ रहाई । जहाँ हंस सब राज कराई ॥
चारकरी सिंहासन जोरा । तहवां मध्य पुर्ष अंजोरा ॥
जगमग जोत अगिन उजियारा । बर्णत बने न अपरम्पारा ॥
हंस अनंतन बैठे तहवाँ । माथे मुकुट छत्रमणि जहवाँ ॥
षोडशभान हंस उजियारा । देह हिरंमर सो विस्तारा ॥
चंद न सूर दिवस नहिं राती । वर्ग अवर्ण न जात नहिं पांती ॥
माया कालकी तहाँ न छाया । अजर अमर हंसनकी काया ॥
पुरुषनाम अस्थान बतायो । आदिनामकी संध लखायो ॥
सोई नाम हंस जो पावै । योनी संकट बहुर न आवै ॥

साखी—आदि अमर अक्षत हैं, अबिगत अबिचल धाम ।
आदिपुरुष सो जानिये, रूप निहगम्मी नाम ॥

आदनाम मैं परकट भाषा । वर्णों मूल फूल फल साखा ॥
और नाम एक पुर्ष बखाना । विहंग नाम तासुको जाना ॥
सोतो रहे पुरुष दरबारा । ताको भेद मैं कहों विचारा ॥
अजपा सिद्धि देउँ बतलाई । ताको भेद कहों समझाई ॥

प्रथमें सोहंग पुर्ष बखाना । तामें अलख ब्रह्म पहिचाना ॥
निः अक्षर निःतत्त्व अधारा । तामह अर्ध पवन हंकारा ॥
सोहंग कार गगन अस्थाना । तामह पूरण ब्रह्म समाना ॥
तामह नाम निगम्य है सारा । सोहै सबको सिरजन हारा ॥
तासों हंस लीन होय जाई । निःअशरमों रहे समाई ॥
सिंधुबुन्द तहँ एकै होई । दुनियाँभाव नाश होय सोई ॥
सोनिज अजपा है निर्वाना । आतम हंसा तहां समाना ॥
वोहंग कोहंग जोहंग नामा । सोहंग सुर्त निरन्तर धामा ॥
सोई नाम जीव रखवारा । अमी अञ्च बिहंग विचारा ॥
आगे आदिनाम हम भाखा । ताकर नाम सो गुप्तहि राखा ॥
अंतर अजाप नाम सनेही । अमी सोहंग पुर्षकी देही ॥
लागी निरंजन बेहंगमतारी । अष्ट गगनकी खुली किवारी ॥
दहिनो अंग पुर्ष अस्थाना । तहवां हंसा कीन पयाना ॥
मक्रतार गहि हंस उड़ाई । आगे अकह कमल दरशाई ॥
कमल अनंत पंखुरी छाजे । आदिपुर्ष जहाँ आप विराजे ॥
श्वेत सिंहासन श्वेतहि काया । श्वेतहि पुर्ष श्वेतही छाया ॥
श्वेतछत्र शिर मुकुट बिराजे । भान अनंत शोभा तहाँ लाजे ॥
श्वेत चवर शीस फहराई । भान अनंत कला वहां छाई ॥
ऐसे निरगुण नाम अनूपा । महापुर्षसो आदि स्वरूपा ॥
नाम तेज बल सुमिरन पाई । महाकालते जीव छोडाई ॥
बहुर न होय जीवकी हानी । निश्चय सत्तपर्षको जानी ॥
यह मत निरगुण पावे कोई । जाको सतगुरु पूरा होई ॥
यह मत पाय अमर होय जाई । बहुर न जीव प्रलै तर आई ॥
सत्यनाम सतगुरु परतीती । हंसा चले तब भौजल जीती ॥
है सुकृत तुम संत सुजाना । तुमसों कहों मैं योग ठिकाना ॥

या विधि करनी करे बनाई । सत्त सिंधमो जाय सहाई ॥
ना फिर आवे ना फिर जाई । अजर अमर घर रहै समाई ॥
जीव बुद्ध नाश तब होई । ब्रह्म समाय ब्रह्म होय सोई ॥
ताकर संघ कहो निरवारी । हंस होय सो लेय विचारी ॥
यह तो भेद ना राखौ गोई । आदि योग मैं भाखों सोई ॥
अब मैं कहौं मंत्र उपदेशा । भाखो आदनामको भेषा ॥
गुप्त अंक लिख देउं बताई । पुस्तक देख लखो नहिं जाई॥

साखी–गुप्त भेदको मंत्र यह, वर्णौंअंक छपाय ।
सो अंतरमों जाप कर, ताको काल न खाय ॥
अजपाको मन ध्यान धर, सो यह मंत्र बखान ।
सो तो पुन अस्थिर भयो, बहुर न जीवकी हान ॥

मंत्र

बो सों जो को अ अ निः म वे कां त्र मी हं हं हं हं हं हं छे रू है सं हं म म नो ग नि पू प त अ हं ॥

हे सुक्रित तुम बडे विवेकी । तुमको बुद्ध सकल हस देखी ॥
ताते तुमको मंत्र सुनावा । जीव काजको शब्द लखावा ॥
सो तुम राखो गुप्त छिपाई । यह जनि कहो खोलके भाई ॥
यह निजमन्त्र प्रकट जो होइहै । विन करनी हंसा तर जैहै ॥
गुरमत पंथ चाल मिट जाई । ताते करनी कहि समुझाई ॥
योग ध्यान कुछ करनी कीजै । पीछे मंत्र जाप तेहि दीजै ॥
मंत्रपाय मन आपा आई । गुरुकी आसन राखे पाई ॥
तबे हंसको होय अकाजा । ताते कहो योगको साजा ॥
मंत्र जोर ते लोकै जाई । शोभा हीन हंस होय भाई ॥
षोडश भान हंस उजियारा । सो नरहै गतमंद विचारा ॥
मंत्र ध्यान अजपाको साधै । या बिध सन्त ध्यान अवराधै ॥

तबही सुफल कामना होई। पहुँचे हंस लोकको सोई ॥
अजर हिरंमर देही पावे। योनी संकट बहुर न आवे ॥

साखी–जीव मुक्तको मंत्र यह, बर्णौं अंक छपाय।
ताको जप मनमों करे, ताको काल न खाय ॥

सुक्रित वचन–चौपाई

हो सतगुरु तुम मंत्र सुनायो। मेरो हृदै सांच अब आयो ॥
अब गुरु कहो लगनकी वानी। श्वासा लगन कैसे पहिचानी ॥
अलख मता है ताको साई। ताको भेद कहो समुझाई ॥
कैसो रंग लगनको होई। कारण भेद कहो प्रभु सोई ॥

साखी–जैमुन जगपत केतुकी, औ ब्यालिन पहिचानी।
गुण प्रकाश लक्षण सहित, सतगुरु कहौ बखानी ॥

योगजीत वचन

सुक्रित सुनो लगन बेवहारा। तुमसों भेद सब कहों बिचारा ॥
प्रथमे श्वासा ध्यान लगावे। ताको रंग दृष्टमों आवे ॥
पीतवर्ण तहां देखे जबहीं। अति हुलास मन आवे तबहीं ॥
उपजे सुख पीत रंग जानी। जगपति लगन पुन ताहि बखानी ॥
अरु पुन श्वेतवर्ण लख आई। अस्थिर समाध रहे ठहराई ॥
उपजे सुख प्रेम भक्त अधिकारी। दया लीन तब सुर्त निहारी ॥
श्वेतभाव जब मनमों आवै। सोई जैमुन लगन कहावे ॥
बहुर ध्यान धर देखे जाई। श्वासा पवन श्वेत लख आई ॥
जल आकार पुन भासों जबहीं। उठे सुगंध श्वासमों तबहीं ॥
ध्यान बीच आकार न जाने। कैतुकी लगन ताहि पहिचाने ॥
बहुर ध्यान धर देखे जाई। अरुणश्याम तहाँ भूमि लखाई ॥
अहंकार मन शठता आवै। सुख नाश होय दुःख उपजावे ॥
इतना भावही देखे जाई। ब्याल लगन कहावे भाई ॥

साखी–श्वासा मद्धे तत्त्व है, लगन तत्त्वके माहिं ।
योगीजन पहिचानि हैं, ज्ञानीजानत नाहिं ॥

प्रथमहि पृथीतत्त्वको पाई । तामें जगपति लगन मिलाई ॥
अष्टोदिशा गवन तब कीजै । सकलबिचार छांड़ तब दीजै ॥
अष्ट सिद्ध नव निद्धि कहाई । सो तो तहां सहजमों पाई ॥
मनमों इच्छा जाकी होई । सुफल कामना पावै सोई ॥
कोटिन कार्य सिद्धता पावै । सर्ब जीत होय घर को आवै ॥
मनमों हार न आवै कबही । ऐसी लगन बिचारे जबही ॥
सूरको सगुन एक गुन जानो । यह मत बिश्वाबीश बखानो ॥
ताको भेद मैं दीन्ह बताई । सबै सिद्धको मूल लखाई ॥

साखी–जैतिक कारज जगतमों, चर औ अचर विचार ।
ते सब जानो सुफल है, कोट सिद्धको सार ॥

जैमुन लगन कहौं समुझाई । ताकर फल मैं देउँ बताई ॥
जलके पृथीतत्त्व दोय पावै । तामें जैमुन लगन पिलावै ॥
तबही ज्ञान करे जो कोई । सबै सिद्धता पावै सोई ॥
कब हूं न होवे तनमों पीरा । जीते युद्ध महा रणधीरा ॥
मनवांछित फल पावे सोई । जितने कार्य जगतमों होई ॥
एक सिद्धकी कौन चलावे । कोटिन सिद्ध तामें फल पावे ॥

साखी–नौ ग्रह घातिक दरसके, और योगिनी काल ।
लगन तत्त्व लखके चले, कारज होय ततकाल ॥
सुर औ तत्त्व बिचारके, तामह जैमुन होय ।
जौन वचन मुखसों कहे, सिद्ध जानिये सोय ॥

तीसर लगनको भेद बताऊँ । ताको अर्थ तब वर्ण सुनाऊँ ॥
जलके पृथी तत्त्व एक पावै । तामह लगन केतुकी आवै ॥
ताके जोर कार्यको जाई । सोतो कार्य मिले उठ धाई ॥

राजाराव मिलनको जाई। देखत ताहि सभा भहराई ॥
हाथ जोर आगे चलआई। बहुत भांति तेहि सेवा लाई ॥
कार्य सिद्ध तब जगमों जानो। चर अरु अचर जेते पहिचानो ॥
योग सिद्धके साधन कीजे। यह मत सुरत देख जब लीजे ॥

साखी—सर्व अर्थ मन कामना, आनन्द सकल हुलास।
जेते सुख है जगतमों, सो सब ताके पास ॥

चौपाई

व्याल लगन अब कहौ विचारी। सोतो युद्धकार्यको भारी ॥
दहिनों सुर पुन आवै जबही। व्याल लगन कहावै तबही ॥
सो सो जाय लाखको मारै। सो संग्राम न कबहूँ हारै ॥
यम स्वरूप जब कटक दिखाई। देय शत्रु तब तुरत पराई ॥
याको दृष्टि भरि हेरै जबही। मानों काल गिरासे तबही ॥
मानों काल लीन्ह औतारा। या विधि ताको रूप निहारा ॥

साखी—व्याल लगनको भेद यह, तुमसों कहों विचार।
सिद्धिकार्य यामें नहीं, युद्ध जीत अहंकार ॥
जैसुन जगपत केतुकी, औ व्यालिन पहिचान।
अर्थ सहित गुण लगनको, तुमसों कहों बखान ॥
कोटि योगको योग है; कोटि ज्ञानको ज्ञान।
कोटिसिद्धको सिद्ध है, कोटि ध्यानको ध्यान ॥
नौ षट चार अष्टदश, तैंतिस कोटि बखान।
ताते मत आगे कहौं, महारूप विज्ञान ॥
योग ध्यान आक्षेप मत, आदि नाम ले जोय।
उलट समानों आपमों, जीवन मुक्ता होय ॥
चार मुक्तके बीचमें, रहे अवध परमान।
याते रहित बखानिये फिर नहिं आवाजान ॥

चली पूतरी नोनकी, थाह सिन्धुको लेन ।
आपन गल पानी भई, उलट कहेको बैन ॥

चौपाई

हे सुक्रित तुम हो बड़ ज्ञानी । तुम सो भेद अब कहों बखानी ॥
यह निरगुण मत राखो गोई । जगमों प्रगट न कीजै सोई ॥
यहतो अगम निगमकी बानी । ताको भेद जक्त नहिं जानी ॥
अपनो काज गुप्त कर लीजे । ताको मर्म न काहू दीजे ॥
जाकह जानहु आप समाना । ताको यह मत कहो बखाना ॥
तुम आये जीवनके काजा । बासन जान बस्तधरो साजा ॥
कलियुगआदि द्वापरको अन्ता । निजमत तुमसों भाषो सन्ता ॥
यह तो तुम्हे सिखावन दीन्हा । तुमतो रहो नाम लौ लीन्हा ॥
ध्यान समाध करो चितलाई । आप अपनमों रहो समाई ॥
पुर्ष संध हृदयमों राखो । और ज्ञान प्रगटकर भाखो ॥
अब भौसागर करो पसारा । हम अब चले पुर्ष दरबारा ॥
आपन सुर्त नामसों लावो । भौसागरते जीव मुक्तावो ॥
जीवतपुर्ष सो पर्चै कीजै । ऐसो चित समाधमों दीजे ॥
बहुर मरे की रहे न आसा । जीवत करे लोकमों बासा ॥

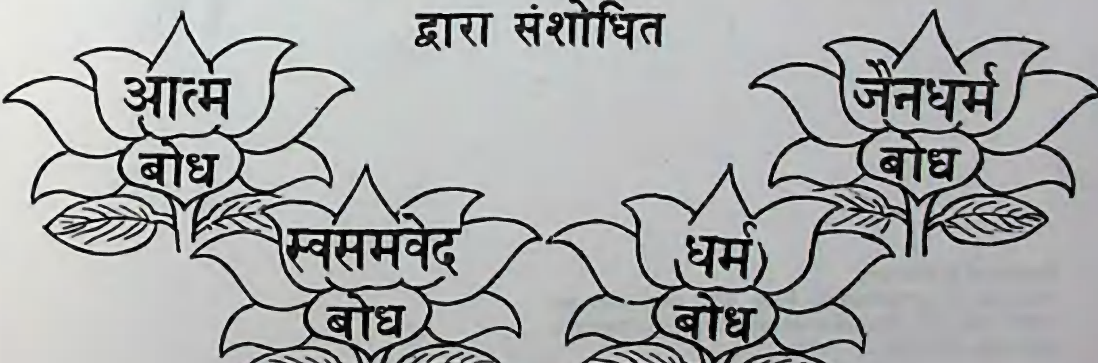
साखी–जीवत समानो लोकमों, नहीं मरणकी आस ।
जीवन मुक्ता होय रहो, सत्तनाम पर्काश ॥
सिंधु समानो बुंदमों, बुन्दहि सिंधु समान ।
सिंधु बुन्द एकै भयो, बहुर न आवा जान ॥
अगम ज्ञान अक्षेत मत, आदि रूप विज्ञान ।
हेसुकृत निरगुण कथा, तुमसों कहौं बखान ॥

। इति श्रीग्रन्थ पंचमुद्रा सुकृतो योगजीत संवादः सम्पूर्णः

---




**भारतपथिक कबीरपंथी स्वामी श्रीयुगलानन्द (विहारी)**
**द्वारा संशोधित**




**खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन बम्बई**

संस्करण : फरवरी २०१९, संवत् २०७५

मूल्य : १६० रुपये मात्र ।



मुद्रक एवं प्रकाशक:
खेमराज श्रीकृष्णदास,™
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,
मुंबई - ४०० ००४.

Printers & Publishers :
Khemraj Shrikrishnadass Prop: Shri Venkateshwar Press, Khemraj Shrikrishnadass Marg, 7th Khetwadi, Mumbai - 400 004.

Web Site : http://www.Khe-shri.com
Email : khemraj@vsnl.com

Printed by Sanjay Bajaj For M/s.Khemraj Shrikrishnadass Proprietors Shri Venkateshwar Press, Mumbai-400 004, at their Shri Venkateshwar Press, 66 Hadapsar Industrial Estate, Pune 411 013

सत्य

# अथ आत्मबोध प्रारंभः

★

भारतपथिक कबीरपंथी-

स्वामी श्रीयुगलानन्दद्वारा संशोधित

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन,
बम्बई

सत्यनाम



श्री कबीर साहिब

सत्यसुकृत, आदिअदली, अजर, अचिन्त, पुरुष, मुनीन्द्र, करुणामय, कबीर, सुरति योग, संतायन, धनी धर्मदास, चूरामणिनाम, सुदर्शन नाम, कुलपति नाम, प्रबोध गुरुबालापीर, केवल नाम, अमोल नाम, सुरतिसनेही नाम, हक्क नाम, पाकनाम, प्रकट नाम, धीरज नाम, उग्र नाम, दया नामकी दया वंश-ब्यालीसकी दया

# अथ श्रीबोधसागरे

### सप्तविंशतिस्तरंगः

## आत्मबोध प्रारम्भः

★

### रेखता

भक्ति भगवानकी बहुत बारीक है, शीस सौंपे बिना भक्ति नाहीं।
होय अवधूत सब आश तनकी तजै, जीवता मरै सो भक्ति पाहीं ॥
नाचना कूदना तालको पीटना, राँड़िया खेलकी भक्ति नाहीं।
रैनदिन तार निर्धार सो लागीरहै, कहैं कबीर तब भक्ति पाहीं ॥

भजनके वासते सन्तजन कहत है, राम रमतीति एक नामतेरा ।
नामएकठामकुलगाम नहिं देखिये,अगमऔनिगमदोउथकतचेरा॥
इन्द्रियादि मन वाक्य पहुँचे नहीं, सकल प्रकाशकरि रहे न्यारा।
रूपअरु रेख वपुभेष नहिं पाइये, कहैं कबीर सो पीव प्यारा ॥
आप दरिआवहै त्रंगपुनी आवही, आपही बुदबुदा फेन होई ।
आपही घट है मठ पुनि आपही,आपही अम्बर अकाश सोई॥
आप प्रकट है आप माही रमे, आपही करत किलोल भाई ।
कहैं कबीर आपही रमिरहा, आप बिनु दूसरा कहाँ समाई ॥
आपही मृत्तिका आपही कुलाल है,आप ही फेरता चक्र काला ।
आपही सूत है आप मणिया बना,आपही फेरता चक्र माला ॥
आपही सतगुरु शिष्य पुनि आपही,आपही करत उपदेश भाई।
कहें कबीर तहाँ आपही बनि रहा, आपही आपको दे लखाई ॥
ऊँच अरु नीच कछु भेद आनै नहीं, राव अरु रंक सब एक देखै।
एकही तत अरु एकही ठाठ है, एक बिन दूसरा नाहिं पेखै ॥
काममें क्रोध अरु रागमें द्वेष है, राम भजि राम भजि दूर घेरै।
कहैं कबीर मन पवनको फेरिके,पिसन पांच प्रबलको पडि जेरै ॥
एकबिन दूसरा दृष्टि आवे नहीं, एकबिन कहो तुम कौन दूजा ।
एकबिन दूसरी सेव कहो कौनकी, एक बिन दूसरी कौन पूजा ॥
पांच पचीसका एक मंडान है, एक प्रकाश ब्रह्मांड कीया ।
कहैं कबीर अब द्वैत दीखे नहीं, एक अद्वैत गुरुदेव दीया ॥
अडिग्ग अडोल अबीरुसम्रथ धनी,नाम निर्वाण तिस थाह नाहीं।
शेपशिव विरंचि तिस थाहपावेंनहीं,उदय अरुअस्त नहीं धूपछांही॥
रूप अरु रेष नहीं वर्ण आश्रम कहूँ, आप अलेख सब ठौर पूरा ।
कहैं कबीर कहूँ लिप्त होवे नहीं, सैन लखे कोई सन्त सूरा ॥
जल जहां थल करै थलतहाँ वहन करै,वहन करि फिरि थलकरत साईं।

राव सो रंक करि रंक राजा करै,अविगतिकी गति कहो कौनपाई॥
पलएकमें भाजिकरि फिर रचनकरे,समरत्थकीबाजिया कौनजाने।
कहैं कबीर यह खेल समरत्थका,होय साक्षी तिहिको सुख माने ॥
रजाय तुम्हारी साइंयां करोसो होगया,आपकीरजाकहो कौनमेटै ।
पल एकके बीचमें दरिआवदहपेलता, फिरि पलएकमहँलेस मेटै ॥
उलटका पुलट अरु पुलटका उलट है,आपका खेल कहो कौनपावै ।
पल एकमें भाजि करि फिरि रचनाकरै, कहैं कबीर नहीं हारिआवै॥
दृष्टि औ मुष्टि नहिं ज्ञान गुष्टि तहाँ,सकल प्रकाश करि रहै न्यारा ।
सकलके मांहिअरुसकलकी जानहै,आदिअरुअन्तनहिं मध्यपारा॥
परम प्रकाश आकाशवत जानिये, बाहिरा भीतरा एक साईं ।
कहैं कबीर यह खेल भरपूर है, आवना जावना फेरि नाईं ॥
खेल अवधूतका महा अद्वैत है, द्वैत प्रपंचका लेश नाहीं ।
गुणमयीकृत सब कालकी डाटमें,शेषशिवविरंचि अरु विष्णु ताही॥
रहै निर्धार आकार थिर ना रहै, विश्व संसार सब अधर माही ।
कहैं कबीर यह खेल निश्चे किया,जन्म अरु मरण तिस भर्म नाहीं॥
देख अवधूतके ज्ञानका घेसला, कालके जालको दूरि तोडै ।
गुणमई कृतको काटि पयमाल करि,पांच पचीसको पलटि मोडै॥
राग अरु द्वेषकी भीतिको ढाय करि, भर्मके कोटको फोर फोडै ।
कहैं कबीर यों प्रेम प्रकाश करि,सुरति अरु निरतिका तार जोडै॥
सैलियां बाकियां देख अवधूतकी, जीवता मरै सो भक्ति पाहीं ।
तीर खुरसानका बहत तीखा बहै,लगै उर मांहि गद टिकैनाहीं॥
राजसा माहि गद बहु ऊपजे, तामसा मांहि अहंकार भाई ।
कहैं कबीर तहां शांति कहँ पाइये, जीवकी वृत्तिको ठीक ठाई ॥
दृष्टि अवधूतका दुष्ट नहिं सहि सके,दुष्टको द्वैतकी दृष्टि भासै ।
परम प्रकाशका भेद पावे नहीं, इन्द्रियां द्वारके रहे आसै ॥

कहै सब साधु अगाध मैं क्या कहूँ,बिना निर्वेद नहिं दृष्टि आवे।
कहैं कबीर यह खेल बारीक है,बिना गुरु देव कहो कौन पावै ॥
देव निर्वाण तहाँ बाण लागे नहीं, सकल कला सिरे काल देवा ।
शेष शिव बिरंचि तिस पार पावे नहीं,चन्द अरु सूर फिर करैं सेवा॥
तेज क्षिति पवनजल रहत आज्ञासही,निगमहू कहत नहिं पार आवै।
कहत अगाध २ सब संत जन, दास कबीर तहँ शीस नावै ॥
सांचा साइयां एकतू और दूजा नहीं,दृष्टि दीखे तेती सकलमाया।
गुणमयी कृत प्रपंच सब बिनसिहैं,थिर नहीं दीखता रहन पाया॥
घट अरु मठ महदादि थिर ना रहै,रहैगा आदि सोइ अंतनाईं ।
कहैं कबीर मैं तासुकी बन्दगी, एक भरपूर सर्वज्ञ साईं ॥
देवरे देवरे देव निर्वाण है, कालका बाण तहाँ नाहिं लागै ।
चन्द औ सूर प्रकाश करि सकै, करत परपंच कै रहै आगै ॥
विश्व आधार अरु आप निर्धार है,लहै कोइ संत गुरु ज्ञान जागै।
कहैं कबीर विष धार सो ना बहै,जन्म अरु मरणका भर्म भागै॥
खिरै सो थिर नहीं थिर नहीं खिरत है,आनंद अमरानंद अलख योगी।
सकलकेमाहिंअरु रहतअतीतहोय,तीनगुन पांचरस सकल भोगी ॥
खेल अगाधकछु कहत आवे नहीं,खेलको देखि करि मगन हुआ ।
कहैं कबीर यह सैन गुंगातणी, जानिहै संत सो नाहिं जूआ ॥
जागता २ जागकर देखिया सोवता सोवता सुख सोया ।
खोवता खोवता खोय सारा दिया,रहासो कहनमें नाहिं आया॥
अर्थ अगाध कोई साध भल पाइहै, जासुके खेल प्रकट होई ।
कहैं कबीर यह खेल प्रतीतका, बिना प्रतीत क्या कहै कोई ॥
रैन दिन संत यूं सोवता देखिये, संसारकी तरफसूं पीठ दीया।
मन अरु पवन फिर फूट चालै नहीं,चन्दअरुसूरकूं समकीया॥
टकटकी चन्द चकोरकी रहत है, सुरतिअरुनिरतिका तारबाजे ।

नौबत तहाँ रैन दिन शून्यमें धुरत है,कहैं कबीर यों गगन गाजै॥
पाव अरु पलकी आरती कौनसी,रैन दिन आरती संग गावें।
घुरत निशान तहाँ गौबकी झालरा, गैबके घंटका नाद आवै॥
जहाँ नेव बिन देहरा देव निर्बाण है,गगनके तख्तपर मुक्ति सारी।
कहैं कबीर तहाँ रैन दिन आरती, बातियां पांच पूजा उतारी॥
साइ आपकी सेवतो आपही जानिहो,आपका भेद कहु कौन पावे।
आपनी आपनी बुद्धिउनमानसो, वचनविलास करि लहरिलावे॥
तू कहै तैसा नहीं है सो नहीं देखिये,निगम हू कहत नहीं पार आवे।
कहैं कबीर या सैन गुंग तणी, गुंग होय सो सैन पावे॥
कथत है ज्ञान अरु ध्यान पुनि धरत है,चलत विचारके पंथमांही।
श्वास उश्वास फिरि गूदडी सीवता, सुरतिकी सूइनहिं अंतजाही॥
रहै निर्द्वन्द कोइ द्वन्दमें ना पडै, मन अरु पवनका करै खेला।
कहें कबीर फिर फूट चालै नहीं, सहज दरिआवमें रमे मेला॥
पुरुषकी सेवते पुरुषही होत है, नारिके सेवते नारिं होई।
पुरुषकी सेवते परम पद पाइये, नारिके सेव नहिं मुक्ति कोई॥
पुरुष प्रमात्मा देव निर्वाण है, नारिये करत प्रपंच सारा।
गुण मई कृतको त्यागरे बावरे, कहैं कबीर ज्यों होय पारा॥
दरोगे बापडै दाम लेखै किया, छतरिया माहि तबकरी वोरी।
बोवरी माहि तहां बैसि करि बावरे, ज्ञान कपट सूँ जडी मोरी॥
रामही राम तहां सदा विश्राम है,रैन दिन जाम जहाँ बजे बाजा।
कहैं कबीर तहाँ पीव संग खेलना, सकल देवा सिरे देवराजा॥
पाँच अरु तीनकी छत्रड़ी साज करि, दरोगे ऊपरै प्राण हूआ।
गगनकी गुफाको पवनसूँ,साफ करि,दमहिदम तहां लिया अजूवा॥
शाह सुलतान सुब्हान सूँ सुर्खरू, दरोगै जाय करि ज्वाब दीया।
कहैं कबीर दीवान तब मिहर करि,आपने कदम मों राखि लीया॥

कर्म अरु भर्म सब संसार करत है,पीवकी परख कोइसंत जाने।
सुरति अरुनिरतिमनपवनकूँपलटिकरि,गंगअरुयमुनके घाटआने॥
पाँचको नाथकरि साथसोहं लिया,अधर दरिआवका सुख माने।
कहैं कबीर सोइ संत निर्भय रहै, जन्म अरु मरणका भर्ममाने ॥
नाभि कस्तूरिका मृग बारे फिरै,उलटि करि आपमें नाहिं जोवे।
भर्मता भर्मता योनि पूरी करै, अंधयो आपुनी बस्तु खोवै ॥
नाभि निज नामसो ठाम पावै नहीं,जगत सब तीर्थ गर्भ भूला।
कहैं कबीर हरिपंथको नाल है, अंध भवसिन्धुमें फिरत झूला॥
उलटि बजूदमें भर्मना दूरि करि,बाछिकै भटकनै सिद्धि नाहीं।
फिरत बाहरे तहाँ वस्तुको नास है, वस्तु विचारि तू देखमाहीं॥
आपमें आपहै आप अजपा जपो, जाप जपेते आप पावै।
कहैं कबीर ये सत्यकी सैन है, सत्तका शब्द सब संत गावै ॥
गंगा उलटि धरो यमुन बासा करो,पलटि पञ्चतीर्थी पाप जावे।
फूरि वर्षा तहां रैन दिन झरत है,न्हायसो फिरि भौ नाहिं आवे॥
फिरत वारे तहां बुद्धिको नाश है, बाँझके भटकने सिद्धि नाहीं।
कहैं कबीर इस युक्तिको गहेगा,जनम अरु मरण तव अंत पाहीं॥
बपु बालोतरा माहि वावो रहै, ज्ञान प्रकाश बिन रहै नाहीं।
बोलता चालता खावता पीवता, करै उपदेश अरु रहै माहीं ॥
दृष्टि दीसै तिनको रहन पावे नहीं, बपु वालोतरो बिनसि जावै।
कहैं कबीर एक बोलता सही करें,सोजन्मअरु मरण मैं नहिं आवै॥
देख बजूदमें अजब विश्राम है, होय मौजूद तो सही पावै।
फेरिमन पवनको घेरि उलटा चले,पाँच पचीसको पलटि लावै॥
शब्दकी डोरि सुख सिन्धुका झूलना,घोरकीशोर तहँ नाद गावे।
नीर बिनुकमलतहँ देखअति फूलिया,कहै कबीर मन भँवरछावे॥
रामकी दयाते खेल प्रकट हुआ,तासुका खेल कहो कौन जानै।

होय अंलीक सो खेल पावैसही, मगन होय आपमें मौज मानै॥
सदा निर्द्वन्द कोइ द्वन्दब्यापे नहीं, गुरुदेवकी मेहर ते मौज पाई।
कहैं कबीर योंखेल सुख सिन्धुमें, भूलि भर्ममें नहिं अंतजाई ॥
चक्रके बीचमें कमल अति फूलिया, तासुका सुख कोई सन्त जानै।
कुफल नौद्वार अरु पवनको रोकना, भृकुटिमध्य मन भवर ठानै॥
शब्दकी घोर चहुं ओर तहाँ होत है, अधर दीर आवका सुखमानै।
कहैं कबीर यो खेलि सुख सिन्धुमें, जन्म अरुमरनका भर्म मानै॥
गंग अरु यमनके घाट को खोजिले, भंवर गुँजार तहाँ होय भाई।
सरस्वती नीर तहाँ देख निर्मल वहै, तासु के जल पिये प्यास जाई॥
पाँचकी प्यास तहँ देखि पूरी भई, तिनकी ताप तो लगै नाहीं।
कहैं कबीर यह अगमका खेल है, गैबका चाँदना देखि माही ॥
बोलरे बोल अब चुप क्यों होइ रहा, बोल मन सुवटा ब्रह्म बानी।
पाँचको पलटिकरि तीनिको जीतिले, महलचौथातनी खबर जानी ॥
गगन गर्जै तहां नीर निर्झर झरै, परखि पावै कोइ संत सूरा।
कहैं कबीर मस्तान माता रहे, बिना मृदंग बजै तूरा ॥
माँडि मंथान मन रईको फेरना, होय घमसान तहां गगन गाजै।
उठै झँकार तहाँ नाद अनहद धुरै, तृकुटी महलके बैठ छाजै ॥
नामकी नेति करि चित्तको फेरना, ततको ताय करि घृत लिय।
कहैंकबीर योंसंत निर्भय हुआ, परम सुखधाम तहाँ लागि जीया॥
गड़ा निशान तहाँ शून्यके बीचमें, उलटि करिसुरतिफिरिनाहिं आवै।
दूधकोमथिकरि घृत न्यारा किया, बहुरिफिरितकरमें नाहिं समावै॥
मांडि मंथानतहाँपांच उलटा किया, नामकीनेति सोसुरतिफेरी।
कहैं कबीर यों संत निर्भय हुआ, जनम औ मरणकी मिटी फेरी ॥
श्रवण अरु नयनमुखनासिकारटत है, रोमही रोमधुनि एक होई।
बाहिरा भीतरा एकही तान है, एक बिन दूसरी नाहिं कोई ॥

अधर दरिआव धसेको मीलिया, बाहिरा भीतरा एक पानी ।
कहैं कबीर यह खेलदरिआवका, योग अवधूतकी यहै बाणी ॥
शशि प्रकाशते सूर उगासही, तूर बाजै तहाँ संत झूलै ।
तत झनकार तहाँ नूर वर्षत रहै, सरस पीवै तहाँ पांच भूलै ॥
दरिआव और बुन्दज्योंदेखअन्त नहीं,जीव अरुशीवयों एकआही ।
कहैं कबीर यह सैन गुंगा तणी, वेद कितेबकी गम नाहीं ॥
अगम स्थान गुरुज्ञान बिन नाल है,लहै गुरुज्ञान कोइ संत पूरा।
द्वादशां पलटि करि षोडशां प्रकटै, गगन गर्जै तहाँ बजै तूरा॥
ईड़ा पिंगला सुषुमना समकरै, अर्ध अरु उर्ध विचध्यानलावै ।
कहैं कबीर सोइ संत निर्भय रहै,कालकी चोट फिरनाहिं खावै॥
अधर आसन किया अगमप्यालापिया,योगको मूलगहियुक्तिपाई।
पंथ बिन चलिगये शहर बेगम्य पुरा,दया गुरुदेवकीसमझि आई॥
ध्यान धरि देखियानैन बिनुपेखिया,अगमअगाधसब कहत जाई।
कहैं कबीर कोइ भेद बिरला लहै, सो कहैया भेद भाई ॥
शहर बेगम्य पुरागम्य कोई ना लहै,होय बेगम्य सोई गम्य पावै।
गुननकी गम्य ना अजब बिश्राम है,सैनको लहै सोइ सैनगावै॥
मूक बाणी तिको स्वाद कैसे लहे, स्वाद दावै सोई सुख मानै ।
कहैं कबीर या सैन गुंगा तणी, गुंगा होय सो सैन जानै ॥
अधरही ख्याल अरु अधरही कल है,अधरके बीच तहाँ मठकीया।
खेलउलटा चला जाय चौथे मिला,सिन्धुकेमुख फिर शीस दीया।
शब्द घंघोर टंकोर तहाँ अधर है,नूरको परास करि पीव पाया।
कहैं कबीर यह खेल अवधूतका,खेलि अवधूत घर सहज आया॥
छका अवधूत मस्ताना माता फिरै, ज्ञान वैराग्य सों छका पूरा।
श्वास उश्वासका प्रेम प्याला पिया, गगन गर्जै तहाँ बजै तूरा ॥
पीठ संसार सो राम राता रहैं, यतन जरना लिया सदा खेलै ।

कहैं कबीर गुरु पीरसूं सुर्खरू, परम सुख धाम तहाँ प्राण मेलै॥
छकासो थका फिर देह धारे नहीं,करम कपाट सब दूर कीया।
जिनश्वासउश्वासकाप्रेमप्यालापिया,नामदरिआवतहांपैसिजीया॥
चढीमतबालियाऔरहुआमनसावता,फटिकज्योंफेरिनहिंफूटजावै।
कहैंकबीरजिनवासनिर्भय किया,बहुरि संसारमें नाहिं आवै॥
तरक संसार सो फरक फुक्र सदा, गरक गुरुज्ञानमें युक्ति योगी।
अरध अरु उरधके बीच आसन किया,बंक प्यालेपीवे रस भोगी॥
आधा दरिआव जहाँजाय डोरि लगी, महल बारीकका भेदपाया।
कहैं कबीर यों संत निर्भय हुआ,परमसुख धाम तहाँ प्राणलाया॥
चमड़ी मतवालि तहाँ ब्रह्म भाठी झरै, पिवै कोइ सूरमां शीसमेलै।
पांचको मेंलि सैतानको पकड़ि करि, प्रेमकाप्यालाअधर झेलै॥
पलटिमनपवनकोउलटिसूधाकंवल,अरधअरुउरधबिचध्यानलावै।
कहैं कबीर मस्तानमाता रहै, बिनाकर तातियां नाद गावै॥
आठही पहर मतवाली लागी रहै, आठही पहरकी छाक पीवै।
आठही पहर मस्ता माता रहै, ब्रह्मकी छोलिमें संत जीवै॥
साचहीकहतअरुसांचही रहत है,काचकोत्यागिकरि सांच लागा।
कहैं कबीर यों सन्तनिर्भय हुआ, जन्मअरुमरनका भर्म भागा॥
करत किलोक दरिआवके बीचमें, ब्रह्मकी छोलिमें हंस झूलै।
अरध अरु उरधका एकवारा तहाँ,पलटिमनपवनको कमलफूलै॥
गगन गर्जै तहाँ सदा पावस झरै, होत झड़रैन दिन बजै तूरा।
बेनकितेवको गमनाहीं तहाँ, कहैं कबीर कोई रमै सूरा॥
बजत करताल तहां नीरनिर्झरझरे,होत टकसाल तहाँ,शब्दपूरा।
गैबकी मौन अरु ज्ञानका चांदना, शब्दअनहद तहाँ बजै तूरा॥
होत ततकार तहाँ निरतनिशदिन करै,सुरतिमनपवनकेबैठिछाजै।
कहैं कबीर गुरुपीरकीमिहरिसूँ, बिना बयबादले गगनि गाजै॥

गगनकीगुफातहाँ गैवाकाचांदना, उदयअरुअस्तका नाम नाहीं ।
दिवसअरुरैनतहाँ नेकनहिं पाइये, परमप्रकाशका सन्तमाहीं ॥
सदा आनन्द दुख द्वन्द व्यापे नहीं, पूर्णानन्द भरपूर देखा ।
भ्रम अरु भ्रान्ति तहां नेकनहिं पाइये, कहैं कबीर रस एकपेखा ॥
खेल ब्रह्मांडका पिण्डमें देखिया, जगतकी भरमनादूर भागी ।
बाहिरा भीतराएक आकाशवत, सुषुम्ना डोरी तहाँ उलटिलागी॥
पाँचको पलटिकरि शून्य मोघरकिया,धरामें अधर भरपूरदेखा ।
कहैं कबीर गुरु पीरकी हमरि सूं, त्रिकुटि मध्य दीदार पेखा ॥
देख दीदार मस्तान मन होरहा, सकल भरपूर है नूर तेरा ।
सुभग दरिआवजहाँहंसमोतीचुगे,कालका जालतहाँ नाहिंनेरा ॥
ज्ञानिकीपालिअरुसहजमतवालिहै, अधरआसनकिया अगमडेरा।
कहैं कबीर तहाँ द्वैत भासे नहीं, जन्म अरु मरनका मिटाफेरा ॥
ब्रह्मदरियावतहाँ करतकिलोलमन, सुरतिकीसीपतहाँ शब्दमोती ।
गुरुपीरकीनिहरते भेदयह पाय है, मोतिया माँहितहाँ नाम जोती॥
तिनयापरख कोइ जानिहैं जौहरी, कौडियावणिजनहिंपरखिआवे।
कहैंकबीरकोइ होय मरजीबता, तोखेल दरिआवका हाथ आवै ॥
चितकीरचमककीप्रीतिकरि पथरिया, सुरतिकासोखताखूबलाया।
अग्निको झारि अवधूतप्रचण्ड करि, कर्मसब काठले माहि द्राया॥
हुआ निर्धूमसब सकलसंसार मिटा, खुला कपाट तब घाटपाया।
कहैं कबीरअब द्वैत दीखै नहीं, अखंड करुणा भई रामराया ॥
करियोगयमडाठउगालि करिदेहगुण,चतुर्दशभवनका लोग खाया।
महाप्रलयकियाबीजकोईनारहा, रहाएकनिर्द्वन्दनहिंकालखाया ॥
खेल अगाधकोइ साधुभल पाइ हैं, महाप्रलय जिनकिया सोई ।
कहैं कबीर फिर उपजिविनशै नहीं, अहंममताजिनकुबुधि खोई॥
कालकेजालके भेद नहिं राममें, कालकहौं कौनको खाइ हैं रे ।

वस्तुमें वस्तुअरु तत्त्वमें तत्त्व मिलै, जीवका नामयो जायहैं रे॥
जन्म अरु मरनकी शंक नाहीं कछु, जन्म अरुमरनको पाइहैंरे।
कहैं कबीर यों संत निर्भय हुआ, बहुरि संसार नहिं आइहैं रे ॥
धेनु ब्यावैतिको दूध भरवे नहीं, बाँझडी धेनुको दूध होई ।
बाँझडी धेनुको दूध पीवैतिको, होय सुख रूप ना मरै कोई ॥
बाँझडी धेनुको पुत्र पैदा हुआ, मरि मन मृगको माँस खावै ।
कहैं कबीर सो पुत्र हैं पाँगुला, चढ़ै आकाश फिर नाहिं आवै॥
समुन्द्र उलटा तबै सीपमाहीं मिला,हुआ मोती तहां सीपमाहीं ।
जल बिनाहंसतहांसदामोती चुगै, ताहंसको कालकी चोट नाहीं॥
नदी उलटी तबै समुन्द्र माही मिली,प्राण हंसा तहां सदा झूलै ।
कहैं कबीर कोइ भेद बिरला लहै,विना जल केतकी कमल फूलै॥
नहरी काटि करि उलटि पाछे दई,ज्याशुं दरियावका सोतलागि।
सदा सुख सिंधुमें माछलाँ झूलता, जन्मअरुमरनका भर्मभागा॥
रोमही रोम रसनीरको पीवता, नीरकी प्यासमें सदा जीवै ।
कहैं कबीर सुख सिंधु छाडै नहीं, खार दरिआवजलनाहिं पीवै॥
सुख सिंधुकेसीरका स्वाद तबपाइ हैं,चाहका चौतरा उठिजावै ।
बीजके माहि ज्यों वृक्ष विस्तार है,यों चाहके मांहिसबरोगआवै॥
प्रौढ़ वैरागमें होय आरूढ़ मन, चाहके चौतरे आग दीजै ।
कहैं कबीर यों होय निर्वासनी, ततसो रत्त होय काज कीजै ॥
सूर प्रकाश तहां रैन कहाँ पाइये, रैनिप्रकाश नहिं सूर भासै ।
ज्ञान प्रकाश अज्ञान कहँ पाइये, होय अज्ञान तहां ज्ञान नासै ॥
काम बलवान तहांराम कहँ पाइये, रमिरहा राम तहां कामनाहीं।
कहैं कबीर यह तत्त्वविचार है,समझि बिचारि करि देख माहीं॥
कामकी कोथली मूलमें जलि गई, रामकी कोथली रहै प्यारे ।
राम विश्राम तहां काम कहाँ पाइये,कामविश्रामतहांराममन्यारे॥

दिवस अरु रैन फिर एकठां ना रहे, ज्ञान अज्ञान नहिं एक होई ।
कहैं कबीर यह भेद जान्या बिना, जीव विश्राम क्यों लहै कोई॥
घुरत निशान तहां शून्यके बीचमें,रमत चौगान कोइ सन्त सूरा।
झूझ बिन झूझ अरु बूझ बिनु बूझना,पावबिनपंथतहांबजै तूरा॥
नैन बिनु सैन अरु बैनबिनुबोलना, पाप प्रचंड तहां जाय चूरा ।
कहैं कबीर ये विकट सा खेल है,लहै कोइ सन्त गुरु ज्ञान पूरा॥
एक शमसेर एकसार बजती रहे, खेल कोई सूरमा सन्त झेलै ।
कामदलजीतिकरिक्रोधपयमालकरि, परमसुखधामतहांप्राणमेलै॥
शील सनाहकरि ज्ञानको खड्गले, आय चौगानमें खेल खेलै ।
कहैं कबीर सन्त जन सूरमा, शीसको सौंपि करि करम ठेलै ॥
पकड़ि शमशेर संग्राममें पैठिया, देह प्रयंत करि युद्ध भाई ।
काटि शिर बैरिया दाबि जहाँका तहां,आयदरबारमें शीस नाई ॥
करतमतवाली जहाँ सन्तजनसूरमा,घुरतनिशानतहांगगनि घाई ।
कहैं कबीर अब श्यामसो सुर्खरू, मौजदरियावकी भक्ति पाई ॥
तन बन्दूक अरु पवन दारू किया,ज्ञानगोली तहां खूब दाटी ।
सुरतिकी जामगीमूठ चौथेलगी, भर्मकी भीति तहां दूरिफाटी ॥
कहैं कबीर कोइ खेलिहैं सूरमा, कायरा खेल यह हाथ नाहीं ।
आसकी फाँसको काटि निर्भय भया, रामरमिरामरमि गर्क माहीं॥
ज्ञान शमशेरको बाँधि योगी चढ़ै, मारिमन मीररणधीर हूआ ।
खेतकोजीतिकरिपिसनसबपेलिया,मिलाहरिमांहिअबनाहिंजूवा ॥
जगत्‌में यश अरु दाद दर्गाहमें, खेलयों खेलिहैं सूर कोई ।
कहैं कबीर यह सूरका खेल है, कायरां खेल ये नाहिं होई ॥
सूर संग्रामको देखि भाजै नहीं, देखि भाजैतिको सूर नाहीं ।
काम अरुक्रोधमदलोभसोजूझना, मंडाघमसान तहां खेतमाहीं ॥
शील अरु साँच संतोषसहाई भये,ज्ञान शमशेर तहां खूब बाजै ।

कहैं कबीर कोइ जूझि हैं सूरमा, कायरा भीरु तहां धरडिभाजै ॥
शूर संग्रामको देखि सन्मुख मँडा, शीश दे नाथको साथ हुआ ।
कमदकीलो कियो फौजमांही पड़ा, पिसन पाँचुदलजीति जुवा ॥
ज्ञान शमशेर ले भूमि सवसर करी, जाय निर्बानपद किया बासा ।
कहैं कबीर रणधीर निर्भय हुआ, शीस जगदीश जगजीति खासा ॥
साधुका खेल तो विकटबैडा मता, सती औ सूरकी चाल आगै ।
सूर घमसान है पलकएक दोयका, सती घमसान पलएक लागै ॥
साधु घमसान है रैनि दिन जूझना, देह प्रयंत का काम भाई ।
कहैं कबीर टुकबाग ढीली करै, तो उलटि मनमगनसो जमी आई ॥
साधु पद कहत तो बात अगाध है, साधु का खेल तो कठिन भाई ।
होयमरजीवता गत सब गुण करे, साधु पद भला तो हाथ आई ॥
अवनिकै गुण धरै रहत गिरि मेरु ज्यों, किलाको देखि नहिं छोभ पावै ।
कहैं कबीर कोइ रेख नहिं ऊपजे, साधु पद भला तो हाथ आवै ॥
नाच आवै तबै काछको काछिये, नाचबिनकाछ किस काम आवै ।
पहिरि सन्नाह धरि नाम रणजीतको, बेरघमसानके कूदि जावै ॥
उतरै नूर अरु श्याम नहिं आदरे, दाद दर्गाह में नाहिं पावै ।
सिंहकी खाल अरु चाल है भेडकी, कहैं कबीर तब सियालखावै ॥
ब्रह्म चौगान तहाँ ज्ञानकी गेंद है, रमत अवधूत कोई सन्त सूरा ।
सुरतिके दंडसोफेरि मन पवनको, शब्द अनहद तहाँ बजे तूरा ॥
सदारसएकतहाँ मूठिनहीं बिभचरे, कालसेतीलडै रैनदिनहोय घमसानमाही ।
कहैं कबीर यह विकट बैड़ा मता, कायरा खेल का काम नाहीं ॥
सकल संसारमें एक चीपि फिरि, शील अरु सांच संतोष नाहीं ।
जगत अरु भेष सबएक नाके चला, जत अरुसत्त कहाँ ठौर पाहीं ॥
दम्भपाषंड संसार सब मिलत है, सांचके शब्दको नाहिं मानै ।
कहैं कबीर यह खेल बारीकहैं, साधुके राहको कौन जानै ॥

सकल संसार विषधारमें बहत है, रहत कोइ सन्तजन नामराता ।
झूठ अरुकपटयेदूरिदिलते करे,तबजन्मअरु मरनका मर्म भागा ॥
सुखसार हृदयधरे छारसब पर हरे, इन्द्रिया द्वारते फिरै पूठा ।
कहैं कबीर सोइ सन्त निर्भय हुआ, जगतसंसार सो रहै रूठा ॥
राग अरु द्वेषते रहित हैं तेजना, येजना रामके रंग राते ।
महल बारीकमें सदा भीना रहै, प्रेम प्याला पिवे रस माते ॥
ज्ञान गलतान अरु अंग शीतलसब, धरामें अधरमिलिएकहूआ ।
कहैं कबीर महदादि अरु मठज्यों, घटा फूटै जबै माहि जूवा ॥
भेष दरिआवमें हंस भी होत है, भेषदरिआव तहाँ बग होई ।
भेषदरियाव तहाँ रतन भी होत है,भेषदरिआव तहाँ सङ्ख सोई॥
जीवता मुये बिन भेद पावै नहीं, जीवता मरै सो भेद पावै ।
कहैं कबीर गुरुपीर पूरा मिलै, तब कछु नमूना दृष्टि आवै ॥
झूठ अरु सांचका तान कैसे मिलै,रैन अरु दिवसका फरकभारी ।
लौनअरु शकरएकहोतहैं, कहाँ खाँडकीजात कहाँ लवनखारी ॥
हंस अरु बगदोउ एकसे देखिये, चालके माहिती फरक भारी ।
कहैं कबीर वह हंस मोती चुगे, बगतो माछली ढूंढिमारी ॥
साधुके संगते साधुही होत है, जगतके संगते जगत होवे ।
साधुके संगते परम सुख ऊपजे, जगतके संगते जन्म खोवे ॥
साधुके संगते परमपद पाइये, जगतके संग दुख होय भारी ।
कहैं कबीर यह संतका शब्द है, सुनोरे जीव सब पुर्ष नारी ॥
दरिद्री देख अवधूत है भरथरी, दूसरा दरिद्री नाहिं कोई ।
पांच अरु पचीसकूंपलटि नाकैकिया, मनअरुपवनयेजातिदोई ॥
सदानिर्द्वन्दकोइद्वन्द्व व्यापेनहीं, अजरअमरानन्द अगम राता ।
कहैं कबीर यह दरिद्री देखिये, दूसरा दरिद्री नरक जाता ॥
सुखी अवधूत दुखी सब जगत है, रैनदिनपचतनहिं भूख भागे ।

ये सदानिर्द्वन्द कोइ द्वन्दव्यापेनहीं,गुरुदेवकेशब्दतेसूरति लागी॥
तत्त्वसूरति अरुगत सबगुण किया,प्रकटी अग्नि सब भर्म भागा ।
कहैंकबीरसंसार सब गलत है, नहिं ज्ञानका ओढनासदा नागा ॥
नरककाजीवसबनरकमें मिलरहा, नरकबिनऔरनहिंबातआवै ।
नरकमें उपज्या नरकमें खपेगा, रैनदिन नर्कके माहिं ध्यावै ॥
शील अरु सांच संतोष सूझै नहीं, इन्द्रिया द्वार रस जहरपीवे।
कहैं कबीर नर सहीसो मरेगा, बिना हरि आसरे कहाँ जीवे ॥
नाम गुरुदेव अरु शिष्यहै नारिका, कपिज्योंनाचताफिरत भाई।
देतहै ठान तब करत उनमाद नर, बन्दगी करतहै चित्त लाई ॥
करत सँघार अरु खानको देत है, गुडअरु सूंठ बूरा बिसाई ।
कहैंकबीर यह अकिल अज्ञानकी, कहत गुरुदेव नहीं लाजआई ॥
बारहिबार मन पवनको सोधि नर, पांच प्रमोधि करिनामलीजे ।
भांग अरु तमाकू खाय अफीमको, कालके जालमें न्यायछीजे॥
भांगकी तोरमें रैनि दिन फूलिया, भजन प्रतापका सुख नाहीं ।
कहैं कबीर सुनु शब्द सांचा कहूं, समझविचार करिदेख माहीं ॥
कहनको साध अरु व्याध छूटैनहीं,कोटिमें पाव या देख भाई ।
खेत अरुकुवा फिरव्याज बाढो करै, बलधियाहांककरि देतखाई॥
नामको फेरि करिजगत धूतासबै, नागिनी नारि घर बार पूरा ।
कहैं कबीर मनमाहि फूला फिरै, काल शिर बाजिहै देख तूरा॥
प्रतिग्रह झेलता डरता नाहिं है, कौन गति होइ है जीव थारी ।
होयगा ऊंट अरु बाडिको चरैगा, सो डरता फिरैगा बनसारी॥
पायकी पोटको डारिरे पापिया, पछै भी भार तलबहै भारी ।
कहैं कबीर नर अंध चेतै नहीं, बात सांची कहूं लगै खारी ॥
साधु जो होय तो व्याधको नाशकर, व्याधके नाशते साधु होवे ।
वासनाव्याधि सब जीवको दहत है,बिना गुरुदेवकह कौनखोवै ॥

कतरनी कपटदिलबीचते दूरिकरि, सांचकी नापनी हाथ लीजे ।
कहैं कबीर यों होय निर्बासना, निर्मला तत रस नाम लीजै ॥
मगनहोयबिश्वासधरिध्यानअलेखको, लिखाहैलेखसोमिटैनाहीं ।
किया है कृत कहु मेटिको करिसकै, दुखअरुसुख या देहमांही ॥
टहलुवा संग दोय टहल करबो करै,आपनी आपनी बेरि आवे ।
कहैं कबीर यों जानि निर्भय रहो, किया है कृत सो कहा जावै ॥
कियासो हुआ अरु करै सो होयगा,जीव क्यों कल्पताफिरैभाई।
लिखाहै अंकसो मेटिको करिसके, बिनाहै रिज्क सो दियाजाई॥
गहो विश्वास एक समरत्थ धनीका,आनको छाडि अलेखधावो।
कहै कबीर सब कल्पना दूरिकरि, पैसिदिलमाहि दिलदारपावो ॥
जीवको जक नहीं रैनदिन पचतहै, करमकी रेख सोई पाइहै रे ।
तनकी भूख सहल है बावरे, मनकी मेर नहीं धायहै रे ॥
आपना कृत तो दृष्टि नहिं देखता, पारके भागको रोयहै रे ।
कहैं कबीर यों रतनको खोय करि, जीव अज्ञानमें सोयहै रे ॥
आपनी अग्निमें आपही जलतहै, दोष कहो कौनको दीजिये रे ।
संत तो चन्दज्यों अंगशीतल सबै, जीवआपही आपमें छीजियेरे॥
नीरके पीयेते प्यास मिटि जात हैं, डूबि मरै तो दोष कैसा ।
कहैं कबीर ये दोष कहु कौनको, जीव पाताल लै न्यायबैसा ॥
कामकी अग्निमें जीव सब जरत हैं, ज्ञानविचार कछुनाहिंबूझे ।
खोय प्रतीत अरु बोय बाजीदई, शब्द मानै नहीं काल सूझे ॥
झूंठको थापि करि सांचको उत्थपै, झूठकी पक्षको गहेगांठी ।
कहैं कबीर नर अंधचेतै नहीं, कालकी चोट यों खाय डाठी ॥
कामबलवानजगमाहिं योद्धासबल, बीजविस्तार तिहुँलोककिया।
स्वर्गऔमृत्युपाताल सबघेरिया, जीवजलथल सब मारिलिया ॥
खंडब्रह्माण्ड सो जीव सारागया, रहा कोइ एक जो कोटि माहीं।

कहैं कबीर गुरु शरन गहि ऊबरा, सो विषधारमें बहा नाहीं ॥
करै प्रतीत सो खाय खोटा सही, रहै निर्भय तहां चोर लागै ।
अग्निके संगमें ज्योंघीवपिघला चलै, कामिनी संग यों कामजागै॥
काम बलवान सब जीव अंधा किया, पडामनस्वार्थी संग झूलै ।
कहैं कबीर कोइ संतजन ऊबरे, नाम निर्बाण नहि पलक भूले ॥
नैनकी चोट तो बहुत करडी बहै, चोटसूं ऊबरे संत कोई ।
शील सन्नाह करि ज्ञानको खड्ग ले शब्दगुरुदेवके सुरति पोई ॥
शब्द विचारका कोट नीका किया, तासुके ऊपरे चोट नाहीं ।
चोट तो तासुको लागिहै आत्मा, कपटकी कतरनी रहैमाहीं ॥
जीवके बांधने एक नारी बनी, दूसरा और नहीं बन्ध है रे ।
ज्योंचोरको रोकने एक खोडा घना, नहिंकाठबिना दूसराफंदहैरे ॥
ऊबरै एककोई कोटिमें संत जन, कीलको काटि हरिनाम लागै ।
कहैंकबीर फिर फन्दमें ना पड़े, शब्द गुरुदेवके सुरति जागै ॥
तीनही लोक तहाँ एक नारी बनी, स्वर्ग अरु मृत्यु पाताल माहीं ।
चारहूँ खानका जीव परबस पड़ा, नारिविन दूसरो फन्दनाहीं ॥
मृत्तिका एक और घट बहु भांतिके, मोहिनी सकलमें एक दीसै ।
कहैं कबीर कोइ सन्त जन ऊबरै, दूसरा जीव सबकाल पीसै ॥
नारिभगद्वारमुख बिन्दुनहिंदीजिये, जगतकीकस्ताननहिं जोरभाई।
ज्ञान वैरागि अरु भक्तिसो पलटिये, एकदिन काजसो सिद्धपाई॥
पांचको उलटि मन अरु पवनको, संत अनेक यों पार हुआ ।
सहजही सहजदरिआवमाहींमिला, कहैं कबीर ते नाहीं जूआ ॥
दास मनोहर नहीं यकरंग रहत है, करै किरकंट ज्यों रंग केता ।
गहै वैरागअरु चढे आकाशको, गिरै धरनिमाहिं फिर नाहिं चेता॥
मानकीतानमें खायगोतासही, कांचअरुस्फटिक ज्यों फूटिजावै ।
कहैं कबीरजनहीर कहँ पाइये, इन्द्रियाद्वारमनउलटि आवै ॥

मिहरकरमिहरकरमिहरकर महाबली, जीवकूं शरणअब राखतेरी।
पिसनपांचप्रबल सोबसि मेरे नहीं, सन महानंतकी सबल फेरी ॥
तरसअब कीजियेसुख मोहिदीजिये, दयाकरिजीवकोराखिलीजै।
दासकबीरकी बिन्ती साम्भलो, देवकरुणा मई दरश दीजै ॥
सांई बारही बार मैं कहतपुकारिके, दरदसों दरसदेओ नाम तेरा।
पाचको नाथि करि साथराखौसही, विनादीदार दुखप्रानमेरा ॥
काल अकरालकी चोटजोराबहै, विनानिज देवकहो कौन राखै।
दास कबीर यह बीनती करत हैं, बारहीबार रस राम चाखै ॥
तुही तू तुही एकसमरथ धनी, तुम विना और कोइ नाहिं मेरे।
काम अरु क्रोधमदलोभ बैरी सबल, रैनि दिनजीवको रहैं घेरे॥
त्राहि पुनि त्राहिमैं रैन दिनकर हूँ, मेहरिकरि आपनीशरणलीजै।
दासकबीर यह बीनती करत है, देवकरुणा मई नाम दीजै ॥
होय निरपक्ष सबपक्षकूं त्यागकरि, रहै मस्तान गुरुज्ञानमाहीं।
शील अरु सांच संतोष हृदयधरै, कपटकरतूतके निकट नाहीं ॥
कपटकरतूति तहाँ रामराजी नहीं, सांचकरतूति सब साधु गावैं।
कहैं कबीर यक सांचको ले रहो, वेद कितनैं सब साँच गावैं ॥
जगत् अरु भेषके पक्षमें ना पड़े, रहैनिर्पक्ष सोइ युक्ति योगी।
फेरिमनपवनको घेरि पांचोपिसन, प्रेमसुखधामजहांप्राणभोगी ॥
जहाँ आयो तहाँ दुख है बहुघना, पक्षकीलाय सब जीव छीजै।
कहैं कबीर कोइ सन्तजन सूरमा, होय निर्पक्ष रस अगम पीजै ॥
राम निर्पक्ष निर्पक्षही साधु है, होय निर्पक्ष निर्पक्षही माहीं।
साँचको परसि अरु झूठको त्यागिये, साँचकी पक्षकहुँदागनाहीं॥
साँच सहजैतिरे झूठमें बह मरे, झूठ प्रपंच सू जगत भाता।
कहैं कबीर कोई संतजन जौहरी, छाड़ि प्रपंच निजनामराता ॥
भेषको पहरिकरि भर्म भूलैमती, भेष पहिरे कछु सिद्धि नाहीं।

काम अरु क्रोध मदलोभमाहीघणा, शीलअरु सांचसंतोष नाहीं॥
कपटके भेष सो काज सूझै नहीं, कपटको भेष नहीं राम राजी।
कहैं कबीर नरसांच करनी विना, कालकी चोट पौखायताजी ॥
भेष अवधूत अरु भूत माही वसे,जीवकूँ बावला करि दिआरे।
नहिंबोलनेसुधिअरुचालनेखबरिनहीं,बशिनहींतहाँपांचवलधियारे॥
घाटियांदोयतहांतहुत साधनी, सांकरीतासुकेबीचमेंउलझियारे।
कहैंकबीरनरपन्थको भूलि करि, सुरतिका सूतनहिं सुलझियारे॥
तिलकमाथे दियाहाथमें लाकड़ो, भजनका भेदतो नाहिं पाया।
शीलअरुसांचसंतोषअन्तरनहीं, कनक अरु कामिनीजहरखाया॥
गूदड़ीपहिनकरिबगआसनकिया, माछलीगटकनेकोसुरति भारी।
कहैं कबीर जब काल गढ़घेरिहै, कौन गति होयगी जीवथारी॥
हाथके माहि तो सुमरनी फिरत हैं, जीभहूँ फिरतहैं मुखमाहीं।
दास मनोहर तो चहुँदिशफिरत है,मनअरु पवनकी गमनाहीं॥
निरखता भीति अरुगोरडीछतरडी, नागिनी माहिंफोंकारमेले।
कहैं कबीर यह भजन कैसे करै, नीदके आश्रय जीव खेले॥
शील अरुसांचसंतोषकाभेष करि, क्षमा अरुदयादिलमाहिधारो।
झूठ अरु कपट दिलते दूरि करि, सत्यका शब्द मुखते उचारो॥
साँचका भेष यह देख सतगुरु कहा, संत अनेक यों पार हूआ।
कहैं कबीर सुखधाममांही मिला, बहुरि विषधारमें नाहिं मूआ॥
भेषकूँ पहिरि करि जगतधूता सबै, नामका आसरा नाहिं नेरा।
औषधोंबूटियांलागिभर्मंत फिरै, क्यों छूटिहै जीवका भर्म फेरा॥
मारता धातु हरताल तांबे सुरा, यंत्रा मंत्रा बुधि खोई।
कहैं कबीर नर स्वांगकोपहिरि करि, अंतको बेरियोंचल्या रोई॥
भेषकोपहिरिकरिजगतधूतासबै, एकनामनिर्वाणउर नाहिं आशा।
औषधो बूटियांलागिभर्मंत फिरै,क्योंछूटिहैं जीकाकाल फाँसा॥

और डहकायकरिआप डहका फिरै,जीवका भलाक्योंहोय भाई ।
कहैं कबीर नरस्वांगकोपहिरिकरि, साधुकी राह नहिं हाथ आई ॥
संत पूरा मिलै जीवको तारि है, वासना जीवकी खोवै ।
नाम उपदेश अरुभर्मनादूरिकरि, पाचको पलटि भवपार होवै ॥
मिलै अध बेसरा इन्द्रिया स्वार्थी, जीवबहकायकरि टूकखावै ।
आपुभव सिन्धु औ जीवको लेवहै, कहैं कबीर नहिं पार पावै ॥
योगकी युक्ति तौ मूढ समझै नहीं, स्वांगकोपहिरिकरि सिद्धहूआ ।
ज्ञान वैराग अरु दया जाना नहीं, वासना बीज तहां जाय मूआ॥
मान मस्तान अरुद्वेष माहीघना, आंठि अभिमानकी नाहिं छूटी ।
कहैं कबीर सो पार कैसे लहै, माहिली बाहिली चारि फूटी ॥
अंधसाधुपदछाडिसंसारमेंघीसपडा, कौडियाँख्यालमोरतनखोया।
जन्म अरुमरनकादुखसिरपरसहा, योंमोहकेमहलमें जीव सोया ॥
अल्पही भोग अरु अल्पही जीवना,ज्ञानविचार कछु नाहिं कीया।
कहैं कबीर यों बूडि विषधारमें, छाडि सुखसारको जहरपीया ॥
प्रेमके पंथको भूलि उलटा पडा, बँवनको खायकर फूलि बैठा ।
गयो वैराग अरु वन्दगी नाबन्यो, कर्मके कीचमें गला हैठा ॥
नरकमें जानकी टेक गाढ़ी गही, दोष निर्दोषको धार माहीं ।
कहैं कबीर सो सुखसार कैसे लहै, छांडिसुखसारकूं जहरखाई ॥
ताहि उगालकरि फेरले खात है, देख मनकूकरा पडत भारी ।
शब्द अरुघेसला कानिमाने नहीं शर्म सूझै नहीं होत ख्वारी ॥
जहाँका ऊपजा तहां फिरि आव्या, मायकारूप फिरिनारिकीया ।
काल अकरालकी चोट छूटै नहीं, कहैं कबीर धिरकार जीया ॥
नामनिज नीरबिन पीर पावै नहीं, पाचसोरांचिकरिसांचखोया ।
शहदकी बुन्दके रस प्रवसभया, यो मोहके महलमें जीवसोया ॥
कामअरु क्रोध मदलोभमाहीघना, कनक अरुकामिनीरंगराता ।

कहैं कबीर सोइपार कैसे लहै, कालकी चोटकूं फेरि खाता ॥
अंध ज्ञानवैरागअरु भक्तिको कहत है,रहसतोएकनहिंहाथ आवै ।
फिरत कडछी जैसे पाकके बीचमें, रसके स्वादको नाहिं पावै ॥
ज्योटिलीकोदेखिकरिदिल्लीकीनकलकहै,तासुकीनकलकोइ और ठाने ।
कहैं कबीर कोइ भेद पावै नहीं, भेद तो देखने हार जानै ॥
वेद वेदांत अरु कथत भागवतको, अर्थ अनुभवतणांकरतनीका ।
ज्ञानवैराग अरु भक्तिको कहत है, रहतर नामबिना सबै फीका॥
कामिनीकुबुद्धिउरमांहिकांटाघना एकनामनिर्वाणडरनाहिंटीका ।
कहैं कबीर सो पार कैसे लहै, कनक अरु कामिनी हाथबीका ॥
रांड़िया खेलमें रांड़िया होयगा, खेल अवधूतका होय न्यारा ।
खान अरु पान वशी ते जीवहै,कहो क्यों होय भौ सिन्धु पारा॥
चालताजमींपैअरुकहत आकाशका, कहोक्योंमानिहैसाधु सोई ।
कहैं कबीर यह संतका शब्दहै, कहै ज्यों रहै अवधूत सोई ॥
कहत वैराग अरुराग छूटै नहीं, पांचसों राचिकरिजीव खोया ।
इन्द्रियास्वार्थी शब्दअनुभव कथै, पदसो बांधिकरिजीव खोया॥
नाम निर्गुण कि है रहत है गुणमई,शिष्य शाखातणी भूख भारी।
कहैं कबीर जब काल गढ घेरिहै, कौन गति होयगी जीव थारी॥
राग अरु द्वेष की चौतरा साजि करि, तासुके ऊपरे जीव बैठा ।
झूठको थापिकरि सांचको उत्थपै, अज्ञानकी केन्द्र गरकपैठा ॥
रागअरु द्वेषका चौतरा खोदिये, ज्ञानकूदाल सोढाह भाई ।
कहैं कबीर तब साधु पद पाइये, मुक्तिके महलमें सहज जाई ॥
पांच अरु तीनको करत निषेद नरमहलचौथा तणी बात गावै।
रहत रजमा बिनाकहतर झूठी सबै, होय अवधूत तो कहत भावै॥
जेनाम रसना रटैपापपलमें कटै, कनक अरुकामिनी त्याग दोई।
कामअरु क्रोधमदलोभ को त्यागि नर,कहैंकबीरयोंसहज सोई ॥

कहतको सूर अरु रहतको कूडहै, रहतबिनकहतकिसकामआवै ।
रहत रजमा विना कहत झूठी सबै, पांच फूटा फिरै काल खावै ॥
पांचको वसकरै नाम हृदय धरै, मुक्तिकी राह क्योंसहजि आवै ।
कहैं कबीर कोई सन्त जन सूरमा,कहत अरु रहत तब एकभावै ॥
ज्ञान वैराग विनु कूफ्रफंद टूटै नहीं, ज्ञान वैराग सोकुफ्रफंदटूटै ।
ज्ञान वैराग बिन जीव छूटै नहीं, ज्ञान वैराग सो जीव छूटै ॥
ज्ञान वैराग विन पीव पावै नहीं, ज्ञान वैराग सो पीव पावै ।
ज्ञान वैराग बिन काज थावै नहीं, ज्ञान वैराग सो काज थावै ॥
बिनावैरागकहोज्ञानकिसकामका, पुरुषबिननारिनहिंशोभापावै ।
स्वांगते साहु अरु गति है चोरकी, करै तब चोरिया शिर कटावै॥
भेष तो साधुअरुकुबुधि माहीघणी,कुबुधिको कोथली नाहिं छूटै।
शील अरुसाँचसंतोषअन्तर नहीं, कहैं कबीर तब काल कूटै ॥
कहनको साहु असगति है चोरकी,साहुजी कहत नहिं शर्मआवै।
झूठही कहत अरु झूठही रहत है, रैन दिन झूठमें जन्म जावै ॥
मानके आसरे फूलकरि बैसिया, इन्द्रियास्वाद मनमाहिं भावै ।
कहैं कबीर ते साहु क्यों बोलिये, यमरायके खेसले खूब खावै॥
ज्ञान वैराग बिन शब्द चालै नहीं, चढ़ कमान बिनु तीर कैसा ।
उज्वला दीसता द्रव्यखोटकारुपया, तासुकाकौनगनि देइ पैसा॥
कठिन करतूतिपुनि कहाका होत है, रहतर जमांबिनाशब्दझूठा।
कहैं कबीर जन काजतबही सरै, पाँच मन मनसा फिरै पूठा ॥
तुरंग रागातलै कान मोती झुलै, पाँच हथियार तहां बांधिसोई ।
मालमोतियातणीसौजआछावनी,पणिबिनाकारण रहे पुरुषकोई॥
नारि सुख नालहै गर्भ तो नारहै, बिना वैराग तो शब्द कांचा ।
कहैं कबीर ज्यों पुरुष हैहीजड़ा, बिनाकरतूतिनहिंपुरुषसाँचा ॥
शब्द अनुभव करे माहिप्रचोधरे, मन अरु पवनकी युक्तिआनै।

ज्ञान चौकस कहे सैन चौथे गहे, सीस सतनामकी छाप ठाने ॥
कनक अरु कामिनी रेख माहीघणी, भायतृष्णातनीमीटिनाहीं ।
कहैं कबीर सब झूठ ही बोलना, आप है कालकी डाढ माहीं ॥
पवनको साधि करिकरतउपाधिनर, बासना बीजतो नाहिंछीजे ।
दूध अरु भातफिर ओगरामागता, दास मनोहरका लाडकीजे ॥
कहत है योग अरुभोगको गहत है, योग को मूल तो हाथ नाहीं।
कहैं कबीर नर करत आजीवका, खान अरु पान है चित्त माहीं॥
दर्दमन्द दर्दके चोटको जानि हैं, वे दर्दको चोटकी खबर कैसी ।
पीवकी चोटको बिरहनी जानिहै, रैनदिन पीवमें सुरति बैसी ॥
श्रवणअरुनयनसुखबैनमें बसत है,पीवबिन और नहिं बात आवै।
कहैं कबीर यह विरहनी अंग है, रैनदिन निरखता पंथ जावै ॥
नीर बिनुमीनअरुचन्दचकोरबिन, सीपकोस्वातिकीएकप्यासा ।
धरणिके नीर नहिं नेह पपीहरे, बिरहिनी एकयों राम आसा ॥
नारिसे पुरुष अरु पुरुषसे नारि है, सुरतिकीडोरज्योंएक होवै ।
कहैं कबीर यह विरहनी अंग है, रैनदिन पीवका पंथ जोवै ॥
योगकी युक्तिको रोगिया नाल है,रोगकी खानितहां योगनाहीं ।
कूडिया कंथिया काज सीजे नहीं,कहत कपूर अरुहींग खासी ॥
नाम निर्वाणतहां कामकहाँपाइये, कामनाकुबुधितहांनामकैसा ।
कहैं कबीर नर जहरको खात है,शब्द अनुभव करेफूलिबैसा ॥
योगकी युक्तिकोरागिया नाल है,रोगकी खानि तहां योग कैसा।
कनकअरुकामिनीखानगहिरीखरी, तासुके ऊपरे जीव बैसा ॥
मूलिया खायकरि करतउदगार नर, कहत कपूरकी बासआवै ।
कहै कबीर एका दृष्टि देखये, कनक अरु कामिनीजहर खावै ॥
शब्दको मानिहै कौन पर्माण है, वेदांत सिद्धांत तहां एकमेला ।
त्याग वैराग अरु शीलसंतोषबिनु, करतज्योंठेलियाबालखेला ॥

पीवको परसता कष्ट बहु होत है, पीवकी सेज नहिं खेलहांसी ।
कहैं कबीर रहत रजमा बिना, शब्दअनुभवकियाबांधिजासी ॥
त्यागवैरागअरुहरतरजमाबिना, शब्दअनुभव किया कौन मानै।
नूर अरु तेज मन पवन कूं कथतहै, महल चौथातणी बातठाने॥
खेतनिपेदे हुई चौडेही जानिये, शीलअरु साँच संतोष आवै ।
कहैं कबीर एता दृष्टि देखिये, वेदांत सिद्धांत सब साधु गावै ॥
सोवता होय तो जागि है बापुडा,जागता सोवता कहाँ जागै ।
मान मनमाहिं अभिमान ज्ञानी हुआ,शब्दअवधूतकाकहाँ लागै॥
कहतअरु सुनतसबअवधिपूरीभई, अनुपाइनीभक्तिनहिंहाथआई ।
कहैं कबीर ये ज्ञान सब थोथरा,जीवका भला क्यों होय भाई ॥
कहतअरुसुनत सबअवधिपूरीभई, उलझिसुलझिनहींएक आंटा ।
शीलअरुसांचसंतोषअन्तर नहीं, कामनाकुबुधिउरमाहिं कांटा ॥
अग्निकेसंगज्योलाखपघिलतचलै, योशब्दकोसुनतटुकचेतहोवै ।
कहैंकबीरनरपडै जबआंतरा, लाल की लाखनहिं उलटि जीवै ॥
करत आचारअरुखबर तनकी नहीं, सदा नौ द्वारमें बहै आमें ।
नाकमें रीट अरुआँमेंकीचड़ा, सदा ठेठी बहै कान तामें ॥
हाडमुखलार अरु मूत्र विष्ठा बहै,करत अभिमान तू देख जामें।
कहैं कबीर नर चेत सोवै कहाँ, होयज्योंपाकभजिसन्त नामें ॥
फोडिपाषाण को दूजी हरिबीच करि,आपकर्ता हुआ देखु दूजा ।
तोडि सरजीव अरु पूजिनिर्जीवको, कहो क्यों मानिहै रामपूजा॥
कर्म मार्ग चढे सांच बूझै नहीं, मानता है मैं करत पूजा ।
कहैं कबीर नर अंध चेते नहीं, फूटि चारो गई पडा दूजा ॥
जागती जोति तहाँ छूत लागे नहीं, छूत लागै तहाँ भर्म भाई ।
कर्म अरुभर्ममें जीव जूझै सबै, चार अरु असी कापडा खाई ॥
शोचके शब्द का भेद पावै नहीं, इन्द्रिया स्वादसब जीवलागा ।

कहैं कबीर तहाँ जागती जोति है, कर्म अरु भर्म सब दूर भागा ॥
हदके जीव सो बोलना कौनसा, बात बेहदकी कहा जानै ।
प्रवृत्ति प्रपञ्चमें रैन दिन जूझना, शब्द अवधूतका कहा मानै ॥
दृष्टिदीसै तहाँ कालका जाल है, नामनिर्वाण नहिं हाथ आया ।
प्रेम प्रकाशका भेद पाया नहीं, कहैं कबीर तहाँ सहज बिलाया ॥
आपनी आपनी खालमें सबमस्तहै, चार अरु असीका जीवसारा ।
करत आचार तहाँ गरकमनहोयरहा, होय उदास नहिं होय पारा ॥
सूकरा कूकरा तनको पायकरि, शूकरा कूकरा भोग भावै ।
कहैं कबीर यों नर्कमें झूलना, बिना सतसंग नहिं पार पावै ॥
इश्क सांई तहां तर्क वजूद है, इश्कवजूद तहाँ नर्क सांई ।
योगिया यतियां शेष संन्यासियां, भेषहू देखिये बहुत माहीं ॥
बिनाही बन्दगीविहिस्त पावैनहीं, बन्दगीकरत नहिं खेलहासी ।
कहैं कबीर ये इश्क वजूद का, दोजखकी राहको लिया जासी ॥
तर्क वजूद सो इश्क सांई करो, छाड़ि बदफेल रस एक पीजे ।
मनीको मारिदिलमाँहि नेकी गहो, भिस्तिकी राहकूँसोधिलीजे ॥
सबआपपैदाकियाघटनहींफोडिये, फर्जन्दसब आपका देखभाई ।
कहैं कबीर यह सतका शब्दहै, विहिस्तके राह को सहज जाई ॥
मियांजीजीवतामारिकरिकहत हलालहुआ, मुर्दारनहीं खूबखाना ।
मिहरिको दूरिकरिकहर दिलमेंधरी, दोजखकीराहको सहीजाना ॥
नफसके वास्ते कुफ बहुत करतेहौ, ज्वाब दर्गाहमें भरै कैसा ।
कहैं कबीर इन्साफ तब होयगा, मार दर्गाह में खूब बैसा ॥
मियाँजीराहकोछाड़िबेराहक्यों, चलतहौ ज्वाबदर्गाहमेंनाहिंआवै।
करत बदफेल दिन चारिके वास्ते, देखि वजूद क्यों शाक खावै ॥
मुसलमानईमानसो पाककमालभरो, जीवकोमारिकरिनाहिंखाना।
नकसशैतानको मारिकरिदूरिकर, बावरे कहैंकबीरयोंभिश्तिजाना॥

मियाजीआबकानीपनाहक दर्गाहमें, पिशाबकानीपनाहक्कनाहीं ।
कहर कोदुरि मिहरदिलमें धरो, यो बन्दगी करत कबूल सांई ॥
पांचबिसमिलकरो पाकरोजा धरो, गुस्सेका गला तूका भाई ।
कहैं कबीर यह सत्यका शब्द है,विहिस्तकी राहकूं सहज नाई॥
जैनके मांहि तो खैन पैदा हुआ, खैनका रोग तो जाय नाहीं ।
कण बिना तूसडा कूटते हैं सदा,कर्ममें लीन नहिं सांच पाई ॥
दयाको कहै अरु सदा निर्दई रहै, तोडि सर्जीव नरजीव पूजै ।
कहैं कबीर यों जन्मका आँधला, सांच अरु झूठ नाहिं सूझै ॥
खैनके रोगते श्वांस बैठे नहीं, श्वांस बैठे बिना कहां साता ।
नामनिज औषधीनिकट न्यारीरही, छाडि निजऔषधी कर्मराता ॥
आपप्रकाश बिन कहा नहीं ऊपजे, कालके चक्रमें खाय फेरा ।
कहैं कबीर यों जैनमें खैन हैं, नाम निर्बाण नहिं निकट हेरा ॥
कौड़ियां कौड़ियां जोड़ी करि एकठी, खाय खचैं नहीं मूलपापी ।
धरै घरमाहिं फिर ब्याज बाढो करै, रैन दिन माहिले बुरीथापी ॥
दोयगा सर्प अरु भूत भर्मंत फिरै, खाय खचैं नहीं मूल भाई ।
कहैं कबीर जब ज्वाब कैसे भरे, यमराज के घेसले खूब खाई ॥
शब्द उपदेश मैं सबनकूं कहत हूं, समुझिकरिआपनासूखलीजे ।
राग अरु द्वेषकू दूरिसब छोडिके, आपने जीवका भला कीजे ॥
आय सतसंगमें कुबुधिको दूरिकरि,सुबुधि सन्तोष उरमाहिंधारो ।
कहैं कबीर यह शब्द निर्दोष है, आपने जीवका काज सारो ॥
टेरि पुकारि सब जीवसों कहत हौं, सत्यका शब्द तुम गुनलोई ।
गुरुदेव करतूत गुरु देवही पाइये, शिष्यकरतूतसो शिष्य होई ॥
शिष्य दुर्बुद्धि गुरुदेव क्या दोषहै, शिष्य अवधूत गुरुवार वैसा ।
करै करतूति सो आपनी पाइहै, शिष्यगुरुदेवका काम कैसा ॥
शब्द सांचा कहूं गुप्तका कामना, सांचके शब्दको लाज कैसी ।

आप अरू बाप गुरुदेव अरु शिष्य है,करै करतूतसो पायतैसी॥
सांचके खेलकूं सांच मीठा लगै, कपटके खेलकूँ सांच खारा।
कहैं कबीर ये एकठे ना रहे, दिवस अरु रैन प्रकाश न्यारा॥
आपने आपने सांचसो खेलना, कपटका खेल नाहीं काम आवे।
कपटके खेलसो काम कोई नासरै, अंतकी बेरदुख प्राणपावे॥
बाहिरा भीतरा साफ दिलको करो, मैलको धोय रसराम पीजे।
दास कबीर यों कहत पुकारिके, कपटकी कोथली दूरि कीजै॥
सांच करणी करै सांच मुखऊचरे, दम्भ अरु कपटको दूरिडारे।
शील अरु सांच संतोष हृदयधरै, कामअरुक्रोधमदलोभमारै॥
कनकअरु कामिनी त्यागि सांई भजै, रामतेजे जनाराम गावै।
कहैं कबी जनपार तेही लहै, कालकी चोट फिर नाहिं खावै॥
सांच करनी करै दम्भकूं परहरै, सांच करतूतको संत गावै।
सांच करनी रहै सांच मुखते कहै, सांच दर्गाहमें दाद पावै॥
दया अरु शील संतोष सांचे गहै, झूठ दर्गाहमें दाद नाहीं।
कहैं कबीर जन्म झूठहै जर्दरू, सांचके बीच है आप सांई॥
सांच करनी बिना काज सीझे नहीं, झूठप्रपंच सो जीव राजी।
मानमस्तान अरु खानहै लूनकी, कालकी चोट यों खायताजी॥
शब्द चर्चा नहीं ज्ञानहै घेसला, देखि शैली करो पेट मोटा।
कहैं कबीर यों जानि जड़होयरहो, सुमिरिसतनाममतखायखोटा॥
मिलै जो साधुतहाँ बोलना खूबहै, होय बकवाद तहाँ ज्ञान टूटै।
साधुके बोलने प्रेम सुख होत है, मूढके बोलने काल कूटै॥
रैनदिन चित्तकी वृत्तिकूं घेरिये, युक्ति जानै तिको युक्त योगी।
कहैं कबीर मनपवन कूं फेरिकरि, सदाआनन्दरस नामभोगी॥
सबकपटकूं दूरिकरि सांचकरणीकरौ, कपटकरतूतिनहिं पारपावे।
कपटकरतूतसो काज कोई नासरै, सांचकरतूतसो काज थावे॥

सांचकरतूतितहांआप हाजिर खड़ा, कपटकरतूततहां आपनाहीं ।
कहैं कबीर सब संतजन कहत हैं, वेद कितेबहू देख माहीं ॥
नामनिर्गुण कहै रहत हैं गुणमई, मुखसूं कहत नहिंलाज आवै ।
कामअरुक्रोधघटमाहियोधासबल, ज्ञानअरुध्याननहिंरहनपावै ॥
जासुके झूपडे लाय लागेसहीं, झूंपडा मांहि क्या रहै भाई ।
क्रोधसी अग्नि तहाँ देखु प्रकटभई, कहैंकबीर यह कैसी कमाई ॥
कहतभी खूब जो रहित रजमारहै, कहतभी खूब जो सांचबोलै ।
कहतभी खूब सबत्यागि साईंभजे, कहतभी खूब मनमैल खोलै ॥
रहत रजमाबिना नफा नाहीं कछु, कहा आकाशका शब्दबोला ।
कहैं कबीर सुनु शब्द सांचाकहूं, कहा जो प्याजकाछोतछोला॥
सांचके शब्दको सुनत निंदाकरे, झूठके शब्दसूं प्यार होता ।
झूठ अरु सांचएकठे क्यों रहैं, जमीं आस्मान नहीं एकहोना ॥
प्रवृत्तिप्रपंचसब जमींका खेलहै, गुणातीतअवधूतका खेलनाई ।
कहैं कबीर कोइ रीझभावेखीझिहै, कहोंगा सांच नहिं झूठ भाई ॥
सांचके शब्दमें पक्ष कोई नारहै, पक्षतो सांचका शब्द कैसा ।
सांचके शब्दमें पाप लागे नहीं, झूठके शब्दमें पाप बैसा ॥
साधुकी चालतो सांच सबकहतहैं, झूठतो साधुकीचाल नाहीं ।
कहैं कबीर यह खेल आकाशका, साधुपद दूरकहू निकटनाहीं ॥
सांचका शब्द तो एकही बहुत है, बारही बार नहीं बकनाजी ॥
पाषाणके बीचमें तीरलागेनहीं, यों मूढसो बहुत नहीं झकनाजी ।
रैनदिन होत घनघोर वर्षाघणी, चीकटे घडे नहिं पुनगलागै ।
कहैं कबीर तहाँ कर्मकी जोड है, जीवजड होरहा कहां जागै ॥
पाषाणके बीचमें तीर बेधेनहीं, बाहनेहार क्या दोष भाई ।
सुनतही सुनत सबअवधि पूरीभई, इन्द्रियाद्वार मनजहरखाई ॥
कर्मसन्नाहकी कडीसजडी जड़ी, ज्ञानगोली तहाँ नाहिं लागै ।

कहैं कबीर तहाँ कर्मकी जाड है, जीवघोर निद्रापड़ाकहाँजागै ॥
आपनी २ बीज अंकूर है, करै करतूति सो पाय तैसी ।
बोई है आम तो आम्बफल खाइहै, बोई है बबूलतो सूलवैसी ॥
पापअरु पुण्य दोउबीज अंकूर हैं, वाहिसो बीजफल हाथआवै ।
कहैं कबीर ये संतका शब्द है, करै करतूतसो नाहिं जावै ॥
सदगति जीवको भलीमति ऊपजे, दुर्गतीजीवकी बुरी आवै ।
सदगति जीव सुखसार साईं भजै, दुर्गतिजीवमिलिजहरखावै ॥
सदगतिजीव सतसंगजनबन्दगी, दुर्गतिजीव विषधार पैसा ।
कहैं कबीर ये बीज अंकूर है, बाहि है बीज फलखाय तैसा ॥
बुराभी आपना आपही करत है, भला भी आपना आप सारै ।
आपही आपको पारले ऊतरै, आपही आपको बोरि मारै ॥
आपही उलझिकरि बहेविषधारमें, आपहीसुलझिहरिनामलागै ।
कहैं कबीर ये भाव सब आपना, आपही सोयकरि आपजागै ॥
जीव अज्ञान सबअंध चेतै नहीं, बहै विषधारमें खाय गोता ।
पाप करनी करै नाम डरना धरै, पापके बीचसों फिरै रोता ॥
यार आशनासूं प्रीतिअतिकरत है, रामके जनोंकी करतहांसी ।
कहैं कबीर नर ऊबरे कौनविधि, मारिहैं काल गलडार फांसी ॥
मोहके वृक्षमें जीव सब मगन है, देत हैं अंड तहाँ हर्ष माने ।
काल अकराल तहाँ रैनदिनतकतहै, चलतहै चक्रतहँ सकलभाने ॥
राव अरुरंकसबएकनाके चले, नहिंपावअरुपलककी खबरजाने ।
कहैं कबीर सोइ संतजन ऊबरे, रैन दिन रामही नाम गावे ॥
मोहिके माँहि सब जीव मस्तान हैं,खान अरुपानमें मगन हुआ ।
नारिसूंपुरुषअरु पुरुषसूंनारिहै, अरसअरु परसमिलि नाहिंजुआ ॥
नारिके रैनदिन ध्यान है पुरुषका, पुरुषको ध्यान है नारिकेरा ।
कहैं कबीर यों जीवसबउलझिया, कहौ क्यों छूटि है भर्म फेरा ॥

नारिकी बासना पुरुषकी मारिहैं, पुरुषकी बासना नारि खोवै ।
सुरतिमनपवनकोसमिटि साईभजे, जन्मअरुमरनतबनाहिंहोवै ॥
शीलअरुसांच संतोषकीसेहजले, क्षमा अरुदया दिलमांहि धारै ।
नारि अरु पुरुषका काम कैसारहा, कहैं कबीर सो आप तारै ॥
जन्मअरुमरनतोभजनबिनुनामिटै, कछुबांटकरिखायतोहाथआवै ।
रावअरुरङ्क सबएक गैले चले, विना हरिभजन सबवाद जावै ॥
बेगही चेतले बावरे मूर्खा, जीवते जीव कछु हाथ कीजै ।
कहैं कबीर नरचेत सोवै कहां, होयगा ढोड़ तब प्राण छीजै ॥
देह तो देख मिल जायगी खेहमें, देहसों काज कछु कीजियेरे ।
रामका भजन अरु जनोंकी बन्दगी, देहधरि लाहडालीजियेरे ॥
चालती घोड़ियाकाज कछुकीजिये, कौड़ियासाथकछुनाहिंजाई ।
प्राणके छूटते पलकमें पारकी, कहैं कबीर सुनुचित्त लाई ॥
बीचउजाड़के पुरुषसक भूलिया, सो भर्मता भर्मता कूपपाया ।
कूपके माहितहाँ नीर तिन देखिये, तिसनीरकेऊपरे लीलछाया ॥
पीवना होय तो पीयले बावरे, यों विनशिहै नीर थिर रहै नाहीं ।
कहैं कबीर फिर नीरनहिं पायहौ, बहुरि बे बानके बीच जाई ॥
दोयदरियावके बीचएककाज है, तासुके बीच एक पुरुष ठाढ़ा ।
एक दरिआवमें सही सो झूलिहै, करो कोइ बन्दगी करो जाड़ा॥
जाड़ितो जन्म अनेकके जीवको, बन्दगीकरतसोइ पुरुष पूरा ।
कहैं कबीर कोइ ब्रह्मदरियावमें,रहत भवसिन्धुते सदा दूरा ॥
घड़ीघड़ीनरकहत पुकारिके, पलकही पलक नरआव छीजै ।
चेतरेचेत अब अंध सोवै कहाँ, नामभजि नामभजि काज कीजै॥
आगिलगायाअरुपाछिलाथिरनहीं, बहुरिउपजे सोइ फेरजासी ।
दास कबीर यों कहे पुकारि करि,नामभजनाम नहिं कालखासी ॥
अंधचेते नहीं अवधि सारीगई, शीसपर कालका हुआ डेरा ।

पलटा साजका कोईनासरा, गिर्दसे कोट सब आइघेरा ॥
नहीं श्रवणसुनै अरु नैनभी झरत है,चालता पांवमें परत आटी।
कहैं कबीरकोइकान मानै नहीं, जरा जब योगनी गहा माटी ॥
चेतरेचेत अबमूढ क्यासोरहा, सठसब अवस्था जाय बीती ।
आययमराज जबचहुँदिशिघेरिहै,होयगी तोहिमें बहुत फजीती ॥
देखऔसान यह फेरिपावैनहीं, सुमिरि हरिनामसबतज अनीती ।
कहैं कबीर संसारकुल स्वार्थी, नहीं परमार्थी छाड़ प्रीती ॥
चेतरेचेत अब अंध सोवै कहा, खोजगुरु ज्ञानमनजागमेरा ।
तात अरुमातसुनबन्धुयुवतीसखा, कहोकालकीचोटमेंकौनतेरा ॥
येमिलेसब स्वार्थी नाहिंपरमार्थी, तासुके बीचतैं किया डेरा ।
सबठगोंकाबासहै झूठविशवासहै: काटिमोहफांसीगहोनाममेरा ॥
कहैं कबीर निजनामको सुमिरिले, बहुरि नहिंहोय संसार फेरा ।
संतसब कहतहैं अंध चेतैनहीं, मोहके महलमें जीव सोवै ॥
देखहीरो जन्म फिरि पावै नही, काँचके राचने काह खोवै ।
वस्तुनहिं पाइहै बहुरिपछताइहै, सीखसुनि लेहु सतमान मेरी ॥
कहैं कबीरजबकालचपेटिहै, होय छिन एकमें खाक ढेरी ।
भर्मता भर्मताहाथहीरा चढा, सोकौडियामाहि नै काहि दीधौ ॥
देखहीरोजन्म फिरि पावै नहीं, बड़ीनिधि पायकैतै कहाकीधौ ।
विनशिहैं पलकमें आशनाहींकछु, रामभजुरामभजुकाज सीजै ॥
कहैं कबीर नरखायखोटामति, मोहके जालमें कहा छीजै ।
देखनिर्मोलको हाथहीरोचढ़यो, चेतरे अंध अब कहां सोवै ॥
भजोभगवानअरुकरोजनबन्दगी,कौडियाख्यालकणिकाहिखोवै ।
सुखसारहृदयधरोछारको परहरो, सुरतिसुरझाय जो मुक्तिपावै ॥
कहैं कबीर नर चूक अवसानको, दावँको खोय करि कहां रोवै ।
खतामत खायतू चेतरे बावरे, शीस आई जरा नाम लीजै ॥

सत्यकाशब्दसब संतजन कहतहैं, काटिभ्रमजाल भजिरामजीतै॥
देहतो देख मिलजायगी खेहमें, ये मिले सब स्वार्थीसगी नाहीं।
कहैं कबीर जब काल गढ़ घेरि हैं, तब आपने आपने पंथजाही॥
देह तो देत है तोहिंचिताघणी, सुमिरिहरिनामअबचेत अंधा।
करतबहुय नयहविनशिहैपलकमें, यादकरिपीवयमकाटिफन्दा॥
दुःखको रूप अरुराशि औगुन भरी, यादकरहक्कसुखकहाभूल्यो।
कहैं कबीर यादेहसोतरक करि सदा सुख सिन्धुके माहि झूलो॥
देह दुख रूप सुख लेश मात्र नहीं, देहसुखरूपजोनाहिंलागै।
जन्म अरु मरनकी त्रासतबहींमिटै, काल कांटासबैदूरिभागै॥
धारि इस कामकोकरहरिबन्दगी, मुवाविषधारमें जीव सारा।
कहैं कबीर कोइ कोटिमें ऊबरा, परसि निर्वाण पदहुआन्यारा॥
गर्भ बासके बीचमें देख रक्षा करी, आबकी बून्दसो पिंडकीया।
अन्न पानी सब भस्म हो जातहै, प्राण सूक्ष्म तहांराखिलीया॥
उबत दशमास तहां पोना ले दिया, कौलकेबोलकरिजन्मपाया।
कहैं कबीर नर फूलि संसारमें, बिसरि कर्ताको जहर खाया॥
दीद बरदीद प्रतीत आवे नहीं, दूरिकी आशा विश्वास भारी।
कथा अरु कबित श्लोक रसरी बड़ी, कथैबहुभांतिबूड़ेअनारी॥
हृदय सूझै नहीं सन्धि बूझै नहीं, निकटकीबात ले दूर डारी।
तत्त्वको छाडिनिःतत्त्वको सब कथै, भर्ममें पड़े सब भेष धारी॥
जटाधारी घने यती योगी बने, पहिर मुद्रा लिये कानफारी।
एक मौनी रहे एकत्रक त्यागीरहै, एक दराडी रहे एकब्रह्मचारी॥
एक नागा रहे सर्व लज्या तजै, एक छेद वजूदको नाथडारी।
एक बांधिपगघूँघरू निरत करता रहै, स्वांगकेने करे भर्मभारी॥
एक आकाशद्रष्टा रहे मौनी रहै, एकउर्द्धबाहू रहै नखधारी।
एक भोगी रहे भोग भोगत रहै, एक बजरकछोटी कसिकाम जारी॥

एक पग बांधिके अद्ध झूलत रहै, एक ठाढेश्वरी कष्ट कारी ।
एकगर्भमरते रहे पञ्चाग्निनपतारहे, एक बैठिजलसेज आसनआरी ॥
कहाँ लौं कहूँ बहु रूपकोपेखनो, आप आपनपौ सबनेपिसारी ।
एक अन्न भोजन तजै दूबरंगनरहैं, एकदूध भोजनकरै दूधाहारी ॥
एक लूनछोडिके भये अलूनिया, एक बैठिके गुफामेंलायतारी ।
एकतिलकमालादियेटोपचोलालिये,एकगुदड़ीपहिरिकरिडिम्भधारी
एक पूजिकै मूर्तीगर्भ भारिधरी, एक शंखधुनि आरतीजोति बारी ।
सेव कीन्ही सहीदेवचीन्हानहीं, आतमाछोड़िभये जड़के पुजारी ॥
पूजिपाषान अभिमान अंधाफिरै, सतचेतनसूं बीच यारी ।
योगी पण्डित बडे सर्वगीता पढे, भर्मकी भीति नहिं टरतटारी ॥
कहै कबीर कोइ सन्त जन जौहरी, मेटि यमफन्द उठे संभारी ।
इतने विटम्ब सो वस्तु न्यारी रही, ज्ञानकीसुरतिसोल्योविचारी ॥
अगमकोगमकरोध्यानहृदयधरो, चढशून्यकीशिखरकरजिकिरभाई।
फिक्रकोत्यागिनिजनामसो लागिकरि, सुषुम्ना ताँत तूतू बजाई ॥
गगनअरुधरनिबिचख्याल अद्भुतरचा, गैवकीकलासतगुरुलखाई ।
कहैं कबीर अब भोग पूरन भाया, ज्ञानके मौज वैराग पाई ॥
दौडदौडरेबालकाखबरिकरदर्बारमें, अलमस्तअवधूतफकीरआया।
जाकेछापअरुतिलकगलमालमस्तकबना, सत्तकीएकआवाज आया
खोलिपटदेखले जगमगीजोतिहै, नादअरु बिन्दुगढजीतकाया ।
कहैं कबीर सर्वांग अविगत मिला, भर्मको छाडिगुरुज्ञानपाया ॥
उलटि यंत्र धरो शिखरआसनकरो, देखसो देव दर्गाह माहीं ।
जहाँ तेल बाती बिनाअधरदीपकबलै,युक्तिकी जोतसो घटै नाहीं॥
जहाँ तालतांतीबिना रागरमतासुना, पावँबिन निरत झंकारखाहीं ।
हाथबिनपांवबिनशीममस्तकबिना, हुकुमहथियारबिन फौजधाई॥
जहाँ जत्रतेजी नहीं गैद छाजे नहीं, युद्धमंडा तहाँ घाव नाहीं ।

पातबिन पेड बिन वागडम्बररहे, पालिबिनसर्वहिलोलखाहीं ॥
नीरबिनकमलतहँफूलिनिर्मलरहे, पोखबिनभँवरगुंजार खाही ।
नेंवबिनमहलकेदशोछाजाबना, रूपबिन देव जहाँ मौज पाई ॥
कहैं कबीर कोइनिरतिलोनिरखियो, पपिलके पंथमें गयंदजाई ।
दरसबिनदीदपरतीति आवै नहीं, पार की कहैं नब झूठ झाई ॥
हकार सकार झनकार लागि रहै, बैठमनतख्त जहाँ तत्त पाई ।
रूपबिन रेख जहाँ राग रमतासुना, तालमृदंगपर टेर खाई ॥
अजरअरुअमरका अगम बासाबसे, नादअरुबिन्दकीखबरपाई ।
सोधि अस्थूलरहमान जबभेंटिया, नामकी छापजबजायखाई ॥
जहाँ फूहिरी परबोकरै अमीझरबोकरै, प्रेमकी पुरीसो घटैनाई ।
आपकी तापधरि काललागै नहीं, कालकौमारि जंजालखाई ॥
शून्यकी ध्वजा जहाँ फरकखाबोकरै, सेतही गगन गुंजारखाई ।
अगम अरु निगमका खूबछाजा बना, रूपबिनदेवजहाँगमपाई ॥
अखंड अपार जहाँ तारलागारहै, तारमें मिलै सो पार होई ।
भर्मको छेकि परब्रह्मको भेंटिकरि, सुरतिको कोटिब्रह्मांड मोई ॥
कोटके कंगुरे ज्योति झलमलकरै, माझरी शून्यमें फरकखाई ।
दासकबीर निर्वानपद परसिया, मिटिगया झूठ झकझोर आई ॥
सतकबीरका सेतही घर रहै, श्वेतही शून्यमें रमै भाई ।
जहाँ यती औ सतीतो निरतकरबोकरै, प्रेमरस पीवे सोघटै नाई॥
ताल मृदंग अनहद्द लागा रहै, सुषुम्नासाधि संतोष पाई ।
विहंगमशब्दजहाँ फरक खावो करै, शब्दकीखोजकोइसंतलाई ॥
जहानकी टेक अस्मान लागी रहै, सहजमें भँवरगुंजार खाई ।
उलटिकरिपवनतहाँ गगनलागीरहै, लूमझरलाल आकाशलाई ॥
देखिधरिध्यान जहाँ इंद्र गवनीकरै, अमीका कुंड हिलोलखाई ।
शब्दका चांदना अगम लागारहै, उठै झनकार ब्रह्माण्डमाई ॥

दासकबीर लौलीन लंका चढे, पलककी दरसमें झलक पाई ॥
शून्यकी शिखरपर जिकर ऐसी, घटा घंघोर संजोर बाजे ।
शब्दकीआवाज जहांगाजबानीकहै, भँवर गुँजारनिशिदिनगाजे ॥
हीरा अरु लाल अबेध मोती पडे, श्वेतही शून्यजहाँ सन्तजूझे ।
कहैं कबीर ये पन्थहै अगमका, सोहंगमें सुरति सतलोक सूझै ॥
वाहवाहसिदकेजाऊँमैंमुर्शिदकेकदमोंपर, एकहीस्वालमेंनिहालमनकिया है।
पीरमेराखासामैं मुरीदहूंताका, करिकेमिहरदस्तपंजाशिरदिया है॥
ज्ञानकेकमानबानमारतेंहैंतानि२सोइजनजानैजाकीसुरतिकरिवारवारहुआहै
अकिलकीगिलोलकरिनिजमनठहरायदेख, वैतोरहमानयारमुवाहैनजियाहै ।
साईसर्वज्ञहराओर वेकैववेऐब,कहैंकबीर वैतोसाहिबमहबूबमिया है॥
बदन बिकशत खुशालआनंदमें, अधरमेंमधुरमुस्कात बानी ।
सतडोलैनहीं झूठबोलैनहीं, सुरति औ सुमतिसोसत्यज्ञानी ॥
कहतहूँ मैं ज्ञान उपदेश सबनसूँ, देत उपदेश दिलदर्द जानी ।
ज्ञानकेपूर हैं रहनिके सूर है, दयाकी भक्तिदिलमाहिं ठानी ॥
और सो तोडिलैएकसोरत रहै, ऐसे जन जगतमें बिरलाप्रानी ।
ठगवटपार संसार भरपूर है, संत हंसकी चाल कहाकागजानी॥
चञ्चल चपल चित्त रङ्ग हैं चीकने, बातमें दूरस दिलकपटजानी।
पेटमें कतरनी दया जिनके नहीं, कहतमें सुध मन बगध्यानी ॥
जीवकी दुर्मती भर्म छूटै नहीं, जन्म जन्मात्र पड़े नर्कखानी ।
कौवा कुबुधि सुबुधि पावै नहीं, कठिन कठोरविकरालबानी ॥
अग्निके पुञ्ज है शील शीतल नहीं, विष अमृत लिये एकसानी ।
कहा भयोसाखीकटो दृष्टि उभरी नहीं,सत्तकीचालबिनुधूरधानी॥
सत सुकृतकी साँची रहनी सही, कागबुग अधमकीकौनबानी ।
कहैं कबीरकोइबिरलाजनसुघड़है, सदाशब्दध्यानसुनैनिशानी ॥
छाडिधोखादियाआपनिश्चयकिया,आदिअरुअंतसाहबएकजानी ।

सुरतिके थाकते निरतभी थाकिया, निरतके थाकते शेषकंपा ॥
शेषके कंपते धरनिभी धसमसी, धरनिके धसमसे मेरुडोला ।
मेरुके डोलता शब्दसायर मिला, उर्द्धमें शब्द घनघोर गाजा ॥
बखत बखतीमिली कर्मयारी जुरी, बांधिपाताल आकाशफेरा ।
सत कबीर तहां ब्रह्म चौरी रचा, सत साहब तहां लिया फेरा ॥
अधर दरियाव दरगाहकुछअजबहै, निर्मली ज्योतिजहांखूबसाई।
ज्योतिके ओट यम चोट लागै नहीं, तत झँकार ब्रह्माण्डमाहीं॥
ज्ञानका बाग जहांगैबका चांदना, वेद कितेबकी गम्म नाहीं ।
खुल गयेचश्मजबहश्मसब पशमहै, दीनअरुदुनीका कामनाहीं ॥
कहैं कबीर यह भेद बिरलालहै, झलमलैज्योतिजहांझूलैझांई ।

इति आत्मबोध रेखता प्रथम भाग समाप्त

# जैनधर्मबोधप्रारंभः

*

भारतपथिक कबीरपंथी-

स्वामी श्रीयुगलानन्दद्वारा संशोधित

खेमराज श्रीकृष्णदास बम्बई प्रकाशन

सत्यनाम



श्री कबीर साहिब




सत्यसुकृत, आदिअदली, अजर, अचिन्त, पुरुष मुनींद्र, करुणामय, कबीर, सुरति योग संतायन, धनी धर्मदास चूरामणिनाम, सुदर्शन नाम, कुलपति नाम, प्रमोध गुरुबालापीर, केवल नाम, अमोल नाम, सुरतिसनेही नाम, हक्क नाम, पाकनाम, प्रकट नाम, धीरज नाम, उग्र नाम, दयानामकी दया वंश-व्यालीसकी दया ।

# अथ श्रीबोधसागरे

अष्टाविंशतिस्तरंगः ।

## अथ जैनधर्मबोधप्रारम्भ ।

★

दोहा—तीर्थंकर जहँ देवकह, गुरुजतिहैं जो जैन ।
जैनेश्वर मुख भाख जो, ग्रन्थ है केवल बैन ॥

उत्पत्ति कथावर्णन

भागक:ट षट जैन मत, तामें द्वै विधि कीन ।
तीनकाल औ सर्पिणी, उपसर्पिणी है तीन ॥

आदि काल तिहुँ प्रथमके, तामें उत्पति होय ।
नामजुगलिया नारि नर, प्रकटहोय द्वै दोय ॥
जगत अनादि निधन कहै, तासु न कबहूं नाश ।
बीजते रचना सकल हो, यह जगत स्वयमप्रकाश ॥
याको कर्तानाहिं कोई, यह जग आपे आप ।
कर्म प्रेरि करवाव सब, कर्महि रचना थाप ॥
ईश बसै वैकुंठमें, अलग कर्मते सोय ।
निर्विकार निर्लेप सो, नाम निरञ्जन होय ॥

चौपाई

सो प्रभु करे करावे नाहीं । जिवस्वच्छन्दनिजवशमें आही॥
जीव जन्तु जग नाना जाती । जेते जड चैतन ते पांती ॥
कर्म जनित फल भोगें सारे । आतम सबके न्यारे न्यारे ॥
जस कछु कर्म करै जो कोई । उग्र छुद्रता के वश होई ॥
विश्वमाहिं जड़ चेतन केते । जेते जीव आतमा तेते ॥
निर्विकार जो ईश्वर होई । जग विकार ताते नहिं कोई ॥
सो नहिं कर्मके बंधन पड़ता । राग द्वेष ता हृदय न बर्ता ॥
नहिं उपजाव न पालै कोई । नहिं संहार सृष्टि कर सोई ॥
सकल विकारते सो प्रभु न्यारा । जीव कर्म निजु भोग निहारा ॥
यहि षटकालमेंदुख सुखठाटा । तीनमें वृद्धि तीनमें घाटा ॥
तीन काल सुख स्वर्ग समाना । उगै धरनि कल्पद्रुम नाना ॥
पाप रहित मानुष तब सारे । नर सुर दूनों संग विहारे ॥
द्वै द्वै प्रकट होय तब सोई । नाम जुगलिया तिनको होई ॥
आयू परम दीर्घ रह जाको । सब सुख छाय रहा महिताको ॥
कर्म कृपा कछु सो नहिं जाना । राव रंक सब एक समाना ॥
सदा काल यक सम उजियारा । कल्पद्रुमकी ज्योति अपारा ॥

दिन औ राति कोइ जानै । रवि शशि उडुगण सकल दुरानै॥
चन्द सूर नूर प्रचण्डा । पारिजात आमा नौ खंडा ॥
दरदर पर सुरतरु वर लागे । सकल नारि नर सुखमें पागे ॥

पूरबी बोल–छन्द बरवै

दमक देव द्रुम बमकै महि शशि सूर ।
गमभि रहल चहुँ ओरवा चमकै नूर ॥
पूरन धरनि अकसवा जोति अपार ।
यक समान दिन रतिया नहिं अँधियार ॥
छपे सुरतरुकी जोतिया लगनमें मन्द ।
एक न दीख नखतिया नहिं रवि चन्द ॥
नर तिय सकल जुगलिया सब निस पाप ।
पुण्य पाप कछु नाहीं कर्म न थाप ॥
तब नहिं बोध बिचरवा नहिं गुरु शिष्य ।
कतहु न वरणाश्रम वासव सम दिष्य ॥
कतहूँ उग्र न सदवाँ रंक न राव ।
नर सुर विचर धरनिया कछु न बराव ॥
हिल मिल दोउ दल रहते जनु सँग भाय ।
भोग भूरि कल्पद्रुम काम पुराय ॥
महि सुख छाय स्वरगवा छबि सरसाय ।
हीरा लाल कि खनियां कविको गाय ॥
नहिं कछु वेदन बानी नहिं श्रुति छंद ।
धर्म न कछु अधरमवा सहजानन्द ॥

इति

अथ चौथा कालवर्णन

सोरठा–लागत चौथा काल, सुरतरु जबही लोप हो ।
नर गह न्यारी चाल, कृत्त चली कृतकाल तिहि॥

चौपाई

चौथा काल लगै जब आई । तबसे रात्रि द्यौस बिलगाई ॥
कल्पवृक्ष तब जाहि लुपाई । चन्द सूर तारे दरशाई ॥
जिहि औसर निशदिन बिलगाना। भिन्नभाव तब जगको जाना ॥
तब मानुष ऊपरको देखे । चकित होय सब कहैं विशेषे ॥
यह क्या हमरी नजरमें आयो । जो हम काहू देखि न पायो ॥
तब कुलकर ब्यौरा कहि देही । चन्द सूर तारे हैं येही ॥
कुलकर सोई नाम धरावै । जो मानुष कुलको बिलगावै ॥
जाति वर्ण कुल न्यारा करही । तिहि अनुसार धर्म आचरही॥
राजनीति सब भाषै ओई । खेती कर्म सिखावै सोई ॥
जब मानुष सुरतरु नहिं राखै । कुलकर तबहि कृसानी भाषै ॥
तबते कृतक रही सब लोगू । अन्न उपायके भोजन भोगू ॥
जबहिं देव द्रुम गयो दुराई । ईख उगी मानुष सुखदाई ॥
भांति भांतिके ऊख गन्ना । जिनको दुख दरिद्र सबभन्ना ॥
कल्पवृक्षके बदले ईखा । प्रथमहि जाको मानुष चीखा ॥
ताकी खेती प्रथमहि चाला । कुलकरकी आज्ञा सबपाली ॥
कुलकर अनुभव ज्ञान गहाई । सब जीवनको राह बताई ॥
कुलकर आदि भूप इक्ष्वाका । प्रथम चली जग जाकीशाका॥
इक्ष्वाकू कुलकर कहलाये । प्रथम जो नरको ईख चुसाये ॥
अर्थ सहित यह नाम कहाया ।इक्ष्वाकू जिन ईख चुसाया ॥
तिहि अवसर गुणदोष विभागा । पुण्यपाप मानुषको लागा ॥
कर्म दोष गुण तबते पागे । प्रकट करे कुल करके आगे ॥
कछु औगुन जब नरमें पावै । तिहि कुलकर धिक वचन सुनावै॥
सो धिक्र वचन सुने नर नारी । निजुमनमें अति होहि दुखारी॥
यतनमें अस लज्जा माना । तजे तुरंत आपनो प्राना ॥

अस कहि नर छोडे निजचोला । आज हमें कुलकर धिकबोला ॥
कछु दिस बीते मनुष ढिठाई । धिक बोलीसे सो मल जाई ॥
जब धिक वचनसे राह न धरही । बहुरिधिकाधिककुलकर करही ॥
यतनेहु पर जब शर्म न माने । अधिक दंड तब कुलकर ठाने ॥
कमही क्रम औगुन अधिकाई । बेडी बांसके दे ठहराई ॥
शूली फासो दण्ड प्रचंडा । लगा होन पृथ्वी नौ खंडा ॥

इति

अथ वर्णविभाग वर्णन—चौपाई

चौथा काल आनि जब लागा । तबते मानुष जाति विभागा ॥
तीन वर्ण प्रथमहि तब कीने । छत्री वैश्य शूद्र कहि दीने ॥
दोय प्रकार शूद्र पुनि कीना । एक लीन औ दुतिय मलीना ॥
तबते जाति बरन ठहराई । कुलकर भिन्न २ बिलगाई ॥
दोय प्रकारके लोग कहाये । यक नर यक विद्याधर गाये ॥
मानुष भू गोचरी बखानो । विद्याधर खगोचरी मानो ॥
भूगोचरी भूमि पग डाले । उडि अकाश विद्याधर चाले ॥
जाति वर्ण दोनोंमें कीना । नर विद्याधर धर्म धुरीना ॥
नर विद्याधर जैनी सारे । तिरथंकर सेवा चित धारे ॥
पंचम काल लागे जब आई । तब मिथ्यात्र फैल अधिकाई ॥
जबते मिथ्या मत सरसाने । तबते विद्याधर बिलगाने ॥
चौथे काल माहँ परिपाका । प्रकटे तिरसठ पुरुष शलाका ॥
एक सौ उनहत्तर जिव सारा । चौथे काल माहँ औतारा ॥
मुक्तिपात्र कहिये नर जोई । चौथे काल प्रकटे सब सोई ॥
प्रकटे तबहि तिरथंकर देवा । सुर नर मुनि कर जाकी सेवा ॥
सुर सुरपति पृथ्वीपर आवै । तिरथंकरकी अस्तुति गावै ॥

ऋषभनाथ है आदि तिर्थंकर । तिनके पुत्रभे भरथ भूपवर ॥
चक्रवर्ति थे भरथ भुवाला । चौथा वर्ण कीन तिहि काला ॥
सब मानुषकी पारख लीन्हें । दायावंत अधिक जिहि चीन्हे ॥
ब्रह्म चीन्हि जिन दाया धारा । तिनको भिन्न कियो तिहि बारा॥
ब्रह्मन तिनको नाम पुकारी । जिनके हृदये दाया भारी ॥
चौथा वर्ण भरथ नृप थापा । तबते चार बरणकी छापा ॥
ऋषभनाथकी केवल बानी । तिहि औसर असकहें बखानी ॥
भरथ विप्र थापे हैं जाको । चलै जगतमें तिनकी साको ॥
पञ्चम काल जाहि दिन ऐहै । ब्रह्मन जैन विरोधी ह्वैहै ॥
जैन विरुद्ध कर्म सब करिहैं । द्रोह सदा जैनीसे धरिहैं ॥
कछुदिन यहिविधि गयोसिराई । मन मत ब्रह्म न वेद बनाई ॥
जैन विरुद्ध कर्म सब ठाना । हिंसा कर्म करहिं विधि नाना ॥
अश्वमेध गोमेध रचाई । अजामेध नरमेध बनाई ॥
ब्राह्मणजातिकी अधिक प्रशंसा । लिख्यो ताहि ब्रह्माको वंसा ॥
अपने मन सब शास्त्र बनाये । सबते आपको श्रेष्ठ बताये ॥
करि प्रपंच सब थाप अचारा । जैन विरुद्ध पाखंड पसारा ॥
चौथा काल बहुरि जब ऐहै । फेर न ब्राह्मण वर्ण थपैहै ॥
बहुरि प्रतिष्ठा देय न ओही । थपै न जैन धर्मको द्रोही ॥
जाति वर्णकी बात बखानी । अब पुरुषनकी कहो कहानी ॥

छंद त्रिभंगी

चौबिस तीर्थंकर जैनी शंकर बस क्रम कंकर धूल कियौ ।
गुण ज्ञान गहंतं मुक्ति लहंतं अरि हंतंअतिचूल कियौ ॥
दाया उपदेशं रहित कलेशं मोह न लेशं धर्मधनी ।
कुल पद बत्तीशं बानी दीशं जैन मुनीशं भर्म भनी ॥

अथ चौबीस तीर्थंकरके नाम वर्णन

दोहा–ऋषभ नाथ प्रथमै कहो, अजित नाथ कह फेर ।
शंभो अभिनंदन कहो, सुमतिनाथजी टेर ॥
पदम प्रभू क्षुपारसो, चंद्र प्रभू बखान ।
पुष्पदंत शीतल श्रेयस, बासपुज्ञ पुनि जान ॥
बिमल अनन्तो धर्मनाथ, शांतिकुन्थ नाथोय ।
अर्हनाथ अरु मल्लजी, मुनि सुवृत्त कह जोय ॥
निमनाथो नेमनाथ कह, पारसनाथ कहोय ।
महावीर नाथो कहो, अन्त तिर्थंकर सोय ॥

इति

अथ बारह चक्रवर्तियोंके नाम

दोहा–भरथ सगर मघवा कहो, सनतकुमार गनाय ।
सांतिनग्धकुंथनाथजी, अर्हनाथ कहवाय ॥
पुनि सुभूमि पद्मो विजय, हरिखेनो ब्रह्मदत्त ।
सारी पृथ्वी बश करे, कर निजु चक्र गहत्त ॥

अथ नौ बलिभद्रके नाम

दोहा–विजय अचलजी धर्मधर, बहुरि सुप्रभुजी होइ ।
फेर सुदर्शन जानिये अरु सुनन्द कहै जोइ ॥
नन्दमित्र पुनि लेखिये, रामचंद्र पुनि जान ।
पद्म फेर कहि मानिये, नौ बलिभद्र प्रमान ॥

अथ नौ नारायणके नाम

दोहा–प्रथम दुपिष्ट तृपिष्टजी, बहुरि स्वयंभू गाय ।
पुरुषोत्तम नरसिंहजी, पुण्डरीक बतलाय ॥
केवल दत्त बखानिये, फेर लक्ष्मण मान ।
कृष्णचन्द्र नौमें कहो, यदुकुल दीपक जान ॥

अथ नौ प्रतिनारायणके नाम

दोहा–अश्वग्रीव तारक मेरक, मधु निशुम्भ प्रह्लाद ।
बलि रावण जरासंध नव, प्रतिनारायण बाद ॥

इति

अथ तिरसठ शलाकापुरुषके नाम–चौपाई

तिरसठ पुरुष शलाका येही । जन जान अति उत्तम तेही ॥
मात पिता तिरथंकर केरो । अरतालीस जीव सो हेरो ॥
चौबिस कामदेव नौ नारद । चौदह कुलकर बुद्धिविशारद ॥
ग्यारह रुद्र यक सौ उनहत्तर । मुक्तिपात्र अवश्य येते नर ॥
इतने इतर और अधिकाई । केवल ज्ञान गहि मुक्त कहाई ॥

अथ जैनशास्त्र संख्या प्रमाण–चौपाई

जैन शास्त्र संख्या परमाना । ऐसे ताको सुनो बखाना ॥
बत्तिस पद सब शास्त्र कहावै । ऐसे ताको लेख लगावै ॥
प्रतिपद ढाई सौ मन स्याही । यक पद पूरन लिखिये ताही ॥
यक चावल कज्जल जौं लीजै । यकश्लोक पूरण तिहि कीजै ॥
बत्तिस पद यह लेख लगाई । सर्व शास्त्र ताते लिखि पाई ॥
कज्जल आठ सहस मन लागे । केवल बैन जैनपति जागे ॥
केवल वानी जैनको जोई । ग्रंथ प्रमाणिक इनमें सोई ॥

अथ अष्टकर्म विधान वर्णन

दोहा–अष्टकर्म जो जैन कह, ताके बंधन जीव ।
भवसागर भोगे सदा, पावे नहिं निजु पीव ॥
ज्ञानी बरनी प्रथम कह, दर्शना बरनी फेर ।
बहुरि बेदनी जानिये, महा मोह पुनि टेर ॥

आयू कर्म बहुरि कहो, नाम कर्म पुनि भाष।
गोत कर्म अंतराय कर्म, बरनौ तिनकी शाख॥
कर्म एकही जानिये, आठभांति सो दीस।
प्रकृत जैन बानी कहै, एक सौ अरतालीस॥

इति

अथ ज्ञानावर्नी कर्मकी पंच प्रकृति वर्णन--चौपाई

मति ज्ञानावर्नी जो कर्मा। सो आबरि राख्यो मतिधर्मा॥
श्रुति ज्ञानी वरनी जब होई। शुभश्रुति ज्ञान फुरे नहिं कोई॥
औध ज्ञान आवर्नी जबही। औध ज्ञान हिय होय न तबही॥
मन पर्जय अबरन उगि आवै। सो मन पर्जय ज्ञान छपावै॥
प्रकटे केवल ज्ञाना बरनी। केवल ज्ञान गोप तिह करनी॥
मतिश्रुति औधअरुमनपरजाई। केवल ज्ञान पंच विधि गाई॥
मति ज्ञान सो नाम बताई। मति बुधिते जेती चतुराई॥
कारीगरी अरु गुन गन जेते। मति ज्ञान करि लहिये तेते॥
द्वितिये श्रुति ज्ञानजिहि कहई। सर्व शास्त्र मुख पाठ जो रहई॥
तीन काल देखे श्रुति द्वारा। जाने सकल अचार विचारा॥
श्रुति केवल ज्ञानी कह सोई। पूरन जो श्रुति ज्ञान ते होई॥
श्रुतिके बली जो पंडित पूरा। श्रुति द्वारे संशय कर दूरा॥
तृतिये औध ज्ञान जब होई। मनकी बात जाने सब सोई॥
जाके मनमें जो कछु भासा। सब औधते होय प्रकाशा॥
चौथे कह मन परजय ज्ञाना। जो मनकी परजायको जाना॥
जहँ जहँ मन छन २ करदौरा। जो कछु फुरै जाय जिहि ठौरा॥
मन परजय सो सबही जानो। सूक्ष्म गति मन कछु नदुरानो॥
पंचम केवल ज्ञान कहावै। ताकी उदय मुक्ति जिव पावै॥
केवल ज्ञान जो हृदय प्रकाशा। सकल भर्म भयकेर विनाशा॥

केवल ज्ञानी साधू जोई । गुप्त बस्तु तिनते नहिं कोई ॥
पंच पौरि जो ज्ञानको कहिया । ताको ऐसो लेखा लहिया ॥
मति ज्ञान जिहि पूरन होई । श्रुतिज्ञान अधिकारी सोई ॥
श्रुति ज्ञानते औध गहावै । औधते मन पर्जय ङगिश्रावै ॥
मन परजयते केवल ज्ञाना ।मतिश्रुतिऔधजोप्रथमबखाना।
तीन पौरि लो भ्रम नहिं टूटै । चौथ पौरिते पंचम जूटै ॥
तीन ज्ञान लो हो अरु जाई । मन पर्जय नहिं फिर बिनशाई॥
मन परजय अरु केवल ज्ञाना । होके बहुरि न कबहुँ लुपाना ॥
याहूमें विधि बहुत बखाना । पौरिहुको नहिं कछु बंधाना ॥
अकसमात कबहूँ अस होई । बिना औध केवल लह लोई ॥
बिन मन पर जयकेवल ज्ञाना । निर्णय जैन धर्मपर माना ॥
ज्ञानावर्ण ते ज्ञान न होई । अवरन भंजि लाभ हो सोई ॥
ज्ञानाबरनी पंच बताओ । बहुरि दर्शना वरनी गावो ॥

इति

अथ दर्शना बरनी कर्मकीना प्रकृति वर्णन--चौपाई

द्वितिय दर्शना बरनी पहारा । जाके ओट अलख कर तारा ॥
चक्षु दरशना बरनी जो बंध । जोजिव करै होयसो अंधा ॥
अक्षर दर्शना बरनी जाही । शब्द परसरस ब्यौरा नाहीं ॥
औध दर्शना बरनी उदोता । विमल औध दर्शन नहिं होता॥
केवल दर्शना बरनी जाहा । केवल दर्शन होय न ताहा ॥
ध्यान अरुझि निद्रामें परई । सो प्रानी विशेष बल करई ॥
उठि उठि चलै करे कछु बाता । करे प्रचंड कर्म उतपाता ॥
निद्रा निद्रा उदय पुकारी । सकै न सो जिव पलकउघारी॥
प्रचला प्रचला जबलो गहई । चंचल अंग लार मुख बहई ॥
निद्रा उदय जीव दुःख भरता । उठै चलै बैठै गिर परता ॥

रहै आँखि प्रचलाते बांधी । आधी बंद खुली रह आधी ॥
सोवत माहँ सुरति कछु रहई । बार बार लघु निद्रा गहई ॥

इति

अथ वेदिनी कर्म द्वैविधिवर्णन—चौपाई

कर्म वेदिनी द्वै विधि हूवा । साता एक असाता दूवा ॥
साता कर्म उदय जब होई । जीव विषय सुखवेदक होई ॥
कर्म असाता उदय जो होई । जिव बेदै दुख खेदत होई ॥

इति

अथ मोहनी कर्म द्विविधि वर्णन--चौपाई

दो विधि मोहनी कर्म बखानी । यक दर्शन यक चारित हानी ॥
दर्शन मोह दुविध उच्चारा । चारित मोह पचीस प्रकारा ॥
प्रथम मोह मिथ्या ती होई । जिव जब और कि और गहोई॥
दूजे मोह मिश्रकी चाला । सत्त असत्त गहै समकाला ॥
तृतिय मोह समकित कही दीनी । जिन मलीन सम कितकह कीनी ॥
दर्शन मोह त्रिविध यह भाषा । सुन पचीस अबचारितशाखा ॥
प्रथमै सोलह कहो कषाई । फिर नौबिधिको लेखलखाई ॥
प्रथम कषाय क्रोध कहि दीजे । जाकी उदय क्षमा गुन छीजे ॥
द्वितिय कषाय मान परचण्डा । बिनय बिनाश करे सतखण्डा ॥
द्वितिय कषाय है माया रूपी । जाकी उदय सरलता गूपी ॥
चौथे लोभ कषाय प्रकाशा । जासु उदय संतोष बिनाशा ॥
येही चार कषाय कहीजै । अनुक्रम सूक्षम थूल गहीजै ॥
सो चारो चौगुना करीजै । ताते सोलह भेद भनीजै ॥
अनन्ता अनबाँधिया कषाई । तासु उदै नहिं समकित थाई ॥
जाको कहिये प्रत्याख्यानी । तहां सर्व संयमकी हानी ॥
उदय अप्रत्याख्यानी होई । सो पञ्चम गुन थान कखोई ॥
जोत ज्वलन नाम कहलावै । यथा ख्यात चारित विनशावै॥

क्रोध मान माया अरु लोभा । चारो चार चार विधि शोभा ॥
यह कषाय षोडश विधि बाना । नौकषाय अब निज चितधरना ॥
राग द्वेषकै हासी होई । हास्य कषाय कहावै सोई ॥
मगन होय जबजिव सुखमाही । रति कषाय रस बरनौ ताही ॥
कछु न सोहाय जीवको जहवां । अरति कषाय बोलिये तहवां ॥
थर हर जहाँ जीव कंपाई । भय कषाय सो नाम धराई ॥
रुदन विलाप वियोग दुखारी । जहां होय सो सोग विचारी ॥
जहँ गलानि उपजै मनमाही । सो दुगधा रोग कहाही ॥
त्रिविधि वेद स्थिति वर्णौं सोई । नर अरु नारि नपुंसक जोई ॥
प्रथमैं सोई करिये वर्णन । जीव पुरुष वेदीको लक्षन ॥
यथा अग्नि तृण मूला केरी । शिखा उतंग तासुकी हेरी ॥
अल्पकाल अति आतप ताई । अल्पै काल माह बिनसाई ॥
पुरुष वेद धारी जिव ऐसे । धर्म कर्ममें रह नित जैसे ॥
महा मगन तप संयम माहीं । तन तावै तनको दुःख नाहीं ॥
चित औदार उद्धत परमाना । पुरुष वेद धर आतमरामा ॥
बनिता वेदी बहुरि कहीजे । जिमि कोइलाकी अग्नि गहीजै ॥
जिमि कोइलाकी अग्निहोतीखी । परकट धुवां न तामें दीखी ॥
सिलिगिसिलिगि उरअंतरदाहा । रहै निरन्तर अति अवगाहा ॥
तिमि बनिता वदी नर होई । मीठी बोल बोलता सोई ॥
बाहर ताकी मधुरी बानी । भीतर कपट छिद्रछल सानी ॥
कपटलपट करिके अधिकारी । निजगलकुगतिको बंधन डारी ॥
पापकर्म औरनको सिखई । सबको अंध करे सो विषई ॥
आपा हनि औरनको हनता । निज कुमंत्र बहुतनते भणता ॥
बनिमा वेदी ऐसो गुनिये । तृतिय नपुंसक वेदी सुनिये ॥
नगनदाह सम प्रकट न दीसा । गुप्त पजावा अग्नि सरीसा ॥

जैसे हो करसीकी आगी । रहै सदा उर अंतर लागी ॥
महाकलुषता नित उर जेही । वेद नपुंसक धर नर येही ॥
नर अरु नारि नपुंसक माही । भविधि मदनमद जैन कहाही ॥
प्रथम तीन मिथ्यात बखाना । बहुरि पचीस कषाय विधाना ॥
दोनों मिलि अट्ठाइस होई । मोह प्रकृत जानिये सोई ॥

इति

अथ आयुकर्म चारप्रकार वर्णन—चौपाई

आयू कर्महै चार प्रकारा । नरपशु देव नारकी धारा ॥
उदय मनुष आयू नरभोगा । पशुआयूते पशु संयोगा ॥
सुरआयू सुरपदको जाता । नारक आयू नरक निपाता ॥

इति

अथ नामकर्मकी तिदानव प्रकृतवर्णन— चौपाई

छठये नाम कर्म कहलावै । जीवको मूरतवंत बनावै ॥
नाम कर्म यह चतुर चितेरा । मूरतखंच रंच नहिं फेरा ॥
पिंडप्रकृत चौदह परतारा । अट्ठाईस अपिंड विस्तारा ॥
पिंडभेद पुनि चौसठ भाषा । अठ्ठाईस अपिंड मिलिसाखा ॥
ते दूनो तिरानबे होई । पिंड अपिंड बयालिस जोई ॥
सो तिरानबे करो बखाना । श्रवण लायके सुनो सयाना ॥
प्रथमहि पिण्डप्रकृत गतिनाना । सुरनर पशु नारकदुखधाना ॥
देवदेह सुरगति उद्योता । नरशरीर नरगतिसे होता ॥
पशुगतिसे जिव पशुतन पावै । नरक गती ले नरक बसावै ॥
चहुगति पूरबी चारो गनिये ! द्वितिये पिंडप्रकृतअब सुनिये ॥
मरनसमय तनतज जिवजबही । परभवगौन तौनकर तबही ॥
पूर्वप्रकृत ल्यावै तिहि प्रेरी । भावी गतिमें ल्यावै घेरी ॥
करे पूरबी आनि सहाई । धरि नवीनतन जिव प्रकटाई ॥

तृतीये प्रकृत इंद्री अधिकारा । यक द्वै त्रै चौ पंच प्रकारा ॥
परस जीव नासा दृग काना । यथायोग जिव नाम बखाना ॥
सूक्ष्म इंद्री धरे जो कोई । मुखनासा दृग कान न होई ॥
सो एकेंद्री थावर काया । भू जल अग्नि बनपती बाया ॥
जाको तन रसनायुत बादी । जलचर शंख जौंक गेडुवादी ॥
ऐसे जंत अनंत जो दीसा । ते द्वै इंद्री कह जैनीशा ॥
जाके तन मुख नाक हजूरा । घुन पमील अरु कान खजूरा ॥
ये सब जिव त्रै इंद्री भाषो । आंखिकानयुत रसजिनचाखो ॥
जाके तन मुख नासा आंखी । बीछूशलभ टीडी अलिमाखी ॥
यहि प्रकारके जिव जो नाना । सो चौ इंद्री जैन बखाना ॥
त्वच रसना नासा दृग काना । ज्यौंके त्यौं पंचेंद्रिय जाना ॥
नर नारकी देव पशुचारी । ये पंचेंद्री करो बिचारी ॥
चौथी प्रकृत शरीर उचारी । औदारिक बसकिय वपुधारी ॥
औदारिक जो उदरसे होई । नर पशु योनि जानिये सोई ॥
देव नारकी भय किय देही । गर्भवास करते नहिं येही ॥
सुर नारक वय किय वपु धरते । देव देह मुनि तपबल करते ॥
जस प्राकृत तैसो तन गहेऊ । चौथी पिंड प्रकृत यह कहेऊ ॥
तनबंधन संघातन दोई । प्रकृत पंचमी छट्ठी होई ॥
बंधन उदय काय बंधाना । संघातनते दृढ संधाना ॥
दोहुकी द्वै साखा द्वै खंधा । यथायोग काया सनबंधा ॥
अब सातमी प्रकृतको कहिये । सांगोपांग तीन मन लहिये ॥
कहो आठमी प्रकृत विचारा । षटविधि रूप शरीराकारा ॥
जो सर्वांग चारु परधाना । सो तनसम चतुरंश बखाना ॥
ऊपर थूल अधोगति ठामा । सोनिगोद पर मंडल नामा ॥
हेठ थूल ऊपर कृश होई । शांतिक नाम धरावै सोई ॥

कूबर सहित वक्र वपु जांको । कुबजाकार नाम है ताको ॥
लघुस्वरूप लघुजाहि निहारो । तासु नाम बावन वपु धारो ॥
जो सरबंग असुंदर भुण्डा । ताको नाम कहावै हुण्डा ॥
अष्टम प्रकृत भेद षट भाषा ।अब नौमे कह अस्थिकि साखा॥
प्रथम बखान अस्थि आरंभा । सो षट विधिसैं तनको थंभा॥
वज्र कील कीलित संधाना । ऊपर वज्र पट्ट मंडाना ॥
अन्तर हाड वज्रमय राचा । सो कह वज्र ऋषभ नाराचा ॥
दुतियो हाडजह वज्र सो होई । वज्र मेखते अविचल सोई ॥
ऊपर बैठन रूप समाना । ताहि वज्र नागच बखाना ॥
तृतिये हाड जहवज्र सो देखो । रहित वज्र पट ऊपर लेखो ॥
नहीं वज्रकी लीजो होई । नाम नराच कहावै सोई ॥
चोथे हाड जो वज्र सो नाहीं । अर्धबेध कीली न तेहि माहीं॥
ऊपर बैठन वज्र न जाही । अर्धन राव बोलिये ताही ॥
पंच महाडन वज्रसो जिनको । नहिं पटबंधन कीली तिनको ॥
कीलित तब दृढ़ बंधन धारे । नाम कीलका तासु उतारे ॥
छठी अस्ति अब वर्णन करही । जो यहि काल जीव सब धरई॥
जहाँ हाडते हाड न बंधा । अमिल परस्पर संधिन संधा ॥
ऊपर नसा जाल अरु चामा । ताको कहिये छेवट नामा ॥
दशमी प्रकृत गमन आकाशा । शुभ अशुभ दो भेद प्रकाशा ॥
शुभ उग जीवकर्म शुभ करई । अशुभके उगे कुमारग धरई ॥
जैसी प्रकृत उदय जिहि होई । तैसा कर्म करे जिव सोई ॥
कहाँ ग्यारही प्रकृत बिचारा । ताको भेद पंच परकारा ॥
श्वेत अरु दुति पीत कहीजै । हरित श्याम पांचोगति लीजै॥
जिहि जो संगप्रकृत उगि आवै । ताको तैसा बरण बनावै ॥
प्रकृत बारहीको रसनामा । पंच मकार देखिये तामा ॥

कटुम मधुर अरु तिक्त बखाना । अमल कषाय पंच परमाना ॥
रसके उदय रसीली काया । निजुनिजुप्रकृति जीव सबपाया ॥
जो प्रकृत जाको उगि आवै । तिमि सो देह रसीली पावै ॥
तेरही प्रकृत गंधमय जाना । दुविधि कुगंध सुगंध बखाना ॥
जो जिव जैसी प्रकृत बंधा । ताके तनमें तैसो गंधा ॥
परसनाम चौदही बर्नीजै । आठ शाख तिहि माहँ गनीजै ॥
चिकनी रूप कोमल कठिनाई । लघुभारी तप शीतलताई ॥
औ चिकनी प्रकृत सुभाया । तब जीव गहै चीकनी काया ॥
रूषी प्रकृति उदयहो जिनकी । रूषी काया देखो तिनकी ॥
कठिनउदयतिन कठिनविहारो । मृदुल उदय मृदु अंग निहारो ॥
तप्त उदय हो तप तन येही । शीतल उदय शीत सो देही ॥
भारी नाम जो प्रकृत उद्योता । सो जिव भारी तनधरि होता ॥
लघुप्रकृतिजिहिजिवकह परई । हरई काया सो तब धरई ॥
चौदह पिण्ड प्रकृति यह भाषा । कहो बहुरि तिहिपै सठ शाखा ॥
अब अपिंडको वर्णन कीजै । अट्ठाइस शाखा गनि लीजै ॥
प्रकृतअगुर लघु जब उगिआवै । जीव अगुर लघु तन तब पावै ॥
जबअपु घावउदय निजअंगा । आपु दुखी नर तासु प्रसंगा ॥
जब परघात प्रकृत परकाशा । तब जिव औरकोप्राणविनाशा ॥
जब उश्वासा प्रकृत निवासा । तब जिव लेत श्वास उश्वासा ॥
आतप उदय यथा इन भानू । उदितउदय तब शशीसमजानू ॥
तिस प्रकृत जब प्रकट निहारी । जंगम तनधरि जीवविहारी ॥
थावर प्रकृति प्रकाश जो होई । थिर तनधरि जिव चलैनकोई ॥
सूक्ष्म प्रकृति जाहिको परई । औरके मारे सो नहिं मरई ॥
बादल उदय न तन पावै । सबके मारे सो मरि जावै ॥
प्रजापति प्रकृति प्रकटाई । पूरी परजापति जिव पाई ॥

उदय अपरजा पति जिहिपाही। पूरी देहु तासुकी नाहीं ॥
प्रकृति प्रत्येक उदय जब होई। काय बनस्पति हो जिव सोई ॥
जड़ त्वचकाठ फूल फल पाता। बीज मही तरास कह साता ॥
सातभेद तन जिव तहँ एकू। सो जिव कहिये राम प्रत्येकू ॥
दो विधि प्रत्येक बनस्पति जानो। परतिष्ठित अपरतिष्ठित मानो ॥
धार अनंत रास जो कायक। ताहि प्रतिष्ठित कहै सुभायक ॥
जामें नहिंनि गोदको धामा। अप्रतिष्ठित प्रत्येक सो नामा ॥
काय बनस्पति कह साधारण। सूक्ष्म बादर दुविधि विचारण ॥
संग्रह एक एकही देहा। तिहि कारण निगोद कहयेहा ॥
पिंडनिगोद है रास अनंता। पूरित नभको पावै अंता ॥
सूक्ष्म बादर दोय प्रकारा। नित्य अनित्य नाम जो धारा ॥
गोलक रूपी पाँचो धामा। अँडर खँडर इत्यादिकनामा ॥
सो सब नरक पातको जानी। तिनको दुख को सकै बखानी॥
जीव निगोध एक तन माही। एते जिव कछु वर्णि न जाही ॥
धरे जन्म सब एकै बारी। मरण एकठे मास बिचारी ॥
एक श्वास उच्छ्वासके माहीं। तिनकोजन्म भरन असआहीं ॥
जन्म अठारह बारहै जिनको। मरब अठारह बारहि तिनको ॥
एक श्वास उच्छ्वासहि काला। तिनके जन्म मरणकोख्याला ॥
एक निगोद शरीरके माहीं। एते अमित जीव तहँ आहीं ॥
तीन कालके सिद्ध जो नाना। तिनकै एक अंश परमाना ॥
जीवगोदकी कथा अनंतो। वर्णन इत न होय बुधवंतो ॥
साधारण प्रकृति जब लहई। ताते जिव निगोदतन गहई ॥
साधारण प्रकृत लो बरना। चौदह शाखा तामें धरना ॥
शेष और जो चौदह रहई। ऐसो ताको व्यौरा कहई ॥
थिरप्रकृत तनमें थिरताई। अथिर उदैते तन अथिराई ॥

शुभ प्रकृतिते सब शुभ रीती । अशुभ उदै ते अशुभ गहीती ॥
जब सुभाग प्रकृत जिव धारा । सो प्रानी हो सबको प्यारा ॥
जब दुरभाग प्रकृति डगि आवै । तिहिलखिसबको जीव घिनावै॥
जब स्वस्वर प्रकृति प्रकटानी । होय मधुर कोकिल सम बानी ॥
जब दुःस्वर प्रकृति तनधारा । साकी धुनि स्वर मनहुँ पुकारा ॥
जब आदेय प्रकृति संजूता । ताको आदर मान बहूता ॥
अनादेय परप्रकृत जब होई । आदर मान करे नहिं कोई ॥
जब जस नामप्रकृति नर पाहीं । ताको यश कीरति जगमाहीं ॥
अयश नाम परकृत्त फुरानी । अपयश अपकीरति जगठानी ॥
जब निरमान चितेरा आवै । सुंदर अंग उपंग बनावै ॥
तिरथंकर प्रकृतिके भेवा । सो जिव हो तिरथंकर देवा ॥
नाम प्रकृति अब पूरण कीने । पिंड अपिंड दोउ कहि दीने ॥
पिंड प्रकृति भाषे दशचारी । ताकी पैंसठ शाख उचारी ॥
अट्ठाइस अपिंड गति बरनो । ते सब मिलि तिरानमें धरनो ॥
तन संबंधी दश पुनि औरा । यकसौ तीन गनो यक ठौरा ॥

इति

अथ गोत्रकर्मकी दो शाखावर्णन-चौपाई

गोत्र कर्म प्रकृति है दोई । ऊंच नीच कुल ताते होई ॥
ऊंच गोत्र उद्यौत प्रमाना । पावै जिव ऊंचे कुल थाना ॥
नीच गोत्रफल संगत पाई । नीच गोत्रगहि जिव प्रकटाई ॥

इति गोत्र

अथ अंतराय कर्मकी द्वि शाखावर्णन-चौपाई

अब सुन अंतराय निरबारा । अष्टम करम परम ठगहारा ॥
अंतरायकी नौ द्वै धारा । निश्चय एकएक व्यौहारा ॥
प्रथम कहो निश्चयकी बाता ।जासु उदय आतम गुणघाता ॥

परगुण त्याग होय नहिं जहँवा । दान कि अंतराय कह तहँवा ॥
आतम तत्त्व लाभकी हानी । लाभ कि अंतराय सो जानी ॥
जबलो आतम योग न होई । योगको अंतराय कह सोई ॥
बार बार नहिं जगि उपयोगा । उपयोग अंतराय सो भोगा ॥
अष्ट कर्मते नहिं बिलगावै । बीरज अंतराय उगि आवै ॥
निश्चय कहीं पंच परकारा । अब सुन अंतराय व्यौहारा ॥
तुच्छ वस्तु कछु देय न सकई । दान कि अंतराय बल ठकई ॥
उद्यम किये न संपति होई । लाभ कि अंतराय कह सोई ॥
विषयभोग सामग्री जाही । जीवभोग करि सकै न ताही ॥
रोग होय कै भोग न जुरई । भोग कि अंतराय बल फुरई ॥
एक भोग सामग्री सारा । भोग ताहिको बारहि बारा ॥
कीजै सो कहिये उपभोगा । ताहूको न जुरै संयोगा ॥
यह उपभोग घात बिख्याता । बीरज अंतराय सुन बाता ॥
जीवकी शक्ति अंत बताई । सो जग दशामें रही दबाई ॥
जगमें शक्ति कर्म आधीना । कबहूँ सबल कबहु बलहीना ॥
तन इन्द्री बल फुरै न जहँवा । बीरज अंतराय कह तहँवा ॥
ताते जक्त दशा परमाना । जैन धर्मध्वज बैन बखाना ॥
यह व्योहार प्रकृतिकह पंचो । तिहि बिचार भ्रम रहै न रंचो ॥
प्रकृति बिचार वर्ण यह भयऊ । जन जेष्ठ जस बानी कहेऊ ॥

इति अष्टकर्म

अथ अष्ट कर्मकी आयुस्थितिवर्णन—चौपाई

ज्ञानी बर्नीकी स्थिति दीशा । कोडा कोडी सागर तीसा ॥
यह उतकृष्ट दशा परमाना । एकमुहूर्त जघन्य बखाना ॥
दुतिय दर्शना वरनी कर्मा । थित उतकृष्ट कहो सुन मर्मा ॥
कोडा कोडी तीस समुद्रा । एक मुहूरतकी थित छुद्रा ॥

तीजा कर्मवेदिनी जानी । कोडा कोडी तीस बखानी ॥
यह उतकृष्ट महाथित सोई । जघन मुहूरत द्वादश होई ॥
चौथे महामोहको मानी । थित उतकृष्ट जैनपति बानी ॥
सागर सत्तर कोडा कोड़ी । लघु थित एक मुहूरत जोड़ी ॥
पंचम आयू कर्मशरीसा । उतकृष्टी सागर तैंतीसा ॥
थित जाघन्न मुहूरत एका । जैन ज्येष्ठ कह सहित विवेका ॥
छठये नामकर्म निरुवारी । कोडाकोड़ी बीस बिचारी ॥
यह दीरघ आयू थितधारी । जघन मुहूरत कहिये चारी ॥
गोत्र कर्म सातमा कहाये । उतकृष्टी थित बीश बताये ॥
कोड़ाकोड़ी काल प्रमाना । लघु थित एक मुहूर्त बखाना॥
अष्टम अंतराय जो उजागर । कोडाकोडी तीस है सागर ॥
लघु थित एक मुहूरत धर्मा । आयू विविधि भांतिसे बर्ना ॥
दीरघ मध्यम लघु कहि भाषा । काल प्रमान भांतिबहुराखा ॥

इति

अथ सागरप्रमाणवर्णन–चौपाई

सागरको अब करों बखाना । जैनधर्मको सुनो प्रमाना ॥
योजन दोय केर चौकोरा । सागर नाम ताहिको शोरा ॥
दोय सहस्त्र कोश जिहि माहीं । योजन पक्वा कहिये ताही ॥
सोई योजन सुनो प्रमाना । ताका यह चौकोर बखाना ॥
भेडरोमके तहाँ लेआई । ताका यह चौकोर बनाई ॥
रोमखंड अस करे जो कोई । खंड एक पुनि खंडन होई ॥
रोमभाग सब यकठे करिये । सो सब तिहि सागरमें भरिये॥
रोमखंड जब पूरन कीजै । सागर ऐसो कठिन भरीजै ॥
दाबि दाबिके ऐसे भरना । परमकठिन सो सागर करना॥
चक्रवर्त सेना समुदाई । तिहि सागरपरसे लंघि जाई ॥

दवै न हेठ भारसो पाई। रोमखण्ड पूरण कठिनाई ॥
ऊपर हेठ रोम तहँ भाली। रञ्चहु कतहूँ रहै न खाली ॥
अस पूरण चौकोर जो होई। सागर नाम बखानो सोई ॥
जितने खण्ड रोम गनि लीजै। तितने वर्ष प्रमान करीजै ॥
ऐसे कठिन पूर्ण लखि जाको। सागर एक नाम है ताको ॥
कोड कोड पर ताको गुनिये। कोडा कोडी सागर सुनिये ॥
तीस क्रोड अरू तीसै क्रोडो। सोलह सुन्न ताहिमें जोड़ो ॥
कोडा कोडी तीस कहीजै। यों सागरको लेखा लीजै ॥
कोडा कोडी सागर बनते। मानुष आयू ताते गनते ॥
एते कोडा कोडी जीये। ता पीछे तन त्याग सो कीये ॥
ऐसहि कूप समुद्र कहानी। जिमि सागरको लेखा जानी ॥
विविधि भांतिसे कीना लेखो। जैन धर्म सो निर्णय देखो ॥
लघु दीरघ आयू बहुतेरी। यथाकाल बल तैसो हेरी ॥
जबलौं आगे कर्म न टूटै। तबलौं जीव योनिमें जूटै ॥
अष्टकर्म रिपु जो संहारे। तासु नाम अरिहंत पुकारे ॥
जब ये कर्म जीवते टलके। तिमिर विहाय रूप तब झलके॥

इति

अथ बारह भावनी अथवा आत्मगुण वर्णन

दोहा—प्रथम अथिर अशरण जगत, एआन असुचान।
आश्रय संबर निरजुरा, लोकबोध दुलभान ॥

चौपाई

जक्तवस्तु कछु थिर नहिं परसै। देहरूप आदिक जो सरसै ॥
थिर बिन प्रीति कौनते कीजै। अथिर जानि ममता तजिदीजै॥
अशरण तोहि शरण कोइ नाहीं। देखो तीन लोकके माहीं ॥

तेरो कोइ न राखनहारा । कर्मके वश चेतन निरधारा ॥
यहि संसार भावनी येहा । पर दर्बनसे कीजै नेहा ॥
तू चेतन ये जड सरबंगा । ताते तजो पराया संगा ॥
जीव अकेला आपतकाला । अर्ध मध्य भौन पाताला ॥
दूजा कोइ न तेरे साथा । सदा अकेला फिरै अनाथा ॥
भिन्य सद पुदगलसे रहई । भर्मभाव करि जडता गहई ॥
ये पुदगल रूपीके खंधा । चिदानंद तू सदा अबंधा ॥
अशुचि देखि देहादिक अङ्गा । कौन कुवस्तु लागि तेहि संगा ॥
हाड मांस रुधिरो गदगेहा । निरखि मूत्र मल तजो सनेहा ॥
असें परसे कीजे प्रीती । ताते बन्ध बढै विपरीती ॥
पुदगल तोहि अपन कोइ नाहीं । तू चेतन ये जड सबआहीं ॥
संबरपर रोकनको भाऊ । सुख होनेको यही उपाऊ ॥
चिदानंद हो निर्मल आपू । मिटै सहज परसंग मिलापू ॥
गहि लीजिये आपनो कर्मा । जाते प्रकट होय निज धर्मा ॥
थिति पूरी हो खिरखिर जाई । निरज्वर भाव बढै अधिकाई ॥
लोकमाहँ तेरो कछु नाहीं । लोक आन तू आन लखाहीं ॥
है यह षटदर्बनको धामा । चिदानंद तू आतम रामा ॥
धर्म सुभाव आपनो जानो । आप सुभाव धर्म सो मानो ॥
जब तोहि धर्म प्रकट ह्वै आवै । तब परमात्म पदै लखि पावै ॥
दुर्लभ पर दर्बनको भाऊ । आपा नहिं दुर्लभ सुन राऊ ॥
जौं तेरो है ज्ञान अनूपा । तौ नहिं दुर्लभ शुद्ध स्वरूपा ॥

इति

अथ जैनयतिके अट्ठाईस मूलगुण वर्णन

सोरठा-पञ्च महाव्रत सञ्च, सुमति पञ्च परकार है ।
इंद्रियाणि दम पञ्च, षट्ट अचार पृथ्वी शयन ॥

तज मज्जन निरधार, बसन त्याग कच लुंचकर ।
लघुभोजन थित धार, दातन लेपन त्यागकर ॥

चौपाई

सब जीवनपर दाया पाला । सत्य वचन बोले तेहि काला ॥
परसे नहिं धन करे ससोई । मदन विकार न व्यापै कोई ॥
सकल परिग्रहको जिन डाले । अधो दृष्टि मारगमें चाले ॥
सूखी भूमि निरखि पद धरही । दयासहित शिवपन्थ विचरही॥
निरभिमान अनवद्य अदीना । कोमल मधुर दोष दुख हीना॥
ऐसे सुवचन सदा उचारा । सो जैनेश मुक्तिपद धारा ॥
उत्तम कुल स्रावक आचारा । तासु भौन सूक्षम आहारा ॥
दोष बयालिसको सो टाली । भिक्षा भोजनकी यह चाली ॥
धर्मवस्तु कछु संग्रह धारा । सूखी भूमि निरखि मल डारा॥
सीत उष्ण दोउ यक सम वादा । गंध कुगंधो स्वाद कुस्वादा ॥
शब्द कुशब्द कुरंग सुरंगा । स्तुति निंदा दोउ यक ढंगा ॥
शब्द मित्र दोउ यकसम भाला । सामा यक साधै तिहुँ काला ॥
अरि हंतो सिद्धौ आचारी । उपाध्याय साधूगुण धारी ॥
पंच परम परमेष्ठी बाना । सदा काल तिनका गुण गाना॥
दोष विचारिके प्राश्चित करही । कृपा कर्ममें निजु चित धरही॥
जैनेश्वर बानी अनुसारा । द्वादशांग आदर उर धारा ॥
काऊ सम मुद्रा नित धारे । हृदये सुद्ध स्वरूप विचारे ॥
सूखी भूमि शयन हितकारा । त्यागे त्रिविधि योग ममकारा ॥
पश्चिम राति नींद लघु गहई । धर्म ध्यानमहँ पावन रहई ॥
अंतर बाहर परम पुनीता । लेप नहान त्याग सब कीता ॥
नग्न दिगंबर मुद्रा धारी । विगलित लज्जा लोक विहारी ॥
एक बार लघुभोजन लेही । कच लुंचै तजि दातन देही ॥

इति

अथ जैन यतिकी बाइस परीसा वर्णन

सोरठा–भूख प्यास हिम गर्म, हंस मशक डँस नग्न तन ।
अरतिकेर दुख पर्म, चर्जा आसन शयन कह ॥
खल वध बंधन बाद, जाँचै नहीं अलाभको ।
रोग परस न विषाद, मलमथ आदर मान बिन ॥
प्रज्ञा अरु अज्ञान, दरस मलीन दो बीसये ।
जैन परीसा जान, सहै जाहि रिषि राय नित ॥

चौपाई

एकपक्ष जब दिन बित गैऊ । उन ओदर भोजन तब लैऊ ॥
विधिवत जौं भिक्षा नहिं पाई । अंग शिथिल मनमें दृढताई ॥
पर अधीन भिक्षा ऋषि राया । प्रकृति विरुद्ध जो भोजन पाया॥
ग्रीष्म काल विहाली ठानी । सहै प्यास मांगै नहिं पानी ॥
हिम ऋतुमें कम्पै संसारी । बाहर तबहि खड़े व्रतधारी ॥
वर्षा वायु शीतको जोरा । सहै सकल नहिं तन मन मोरा॥
भूख प्यास उर अंतर दागै । कोपे पित्त देहज्वर जागै ॥
ग्रीष्म धूप अग्नि सो लागे । सहत सबीसन धीरज त्यागे ॥
दंश मशा माखी डँसै सर्पा । भाल शृगाल केहरी दर्पा ॥
कनखजूर आदिक दुख देहीं । पीड़ा सह दृढ़ता गह येहीं ॥
विषय विकार जासु उर भरई । भेष दिगम्बर सो किम धरई ॥
महाकठिन यह नग्न परीसा । सहै शील धर जैन मुनीशा ॥
देश काल कारण को पाई । जक्त जीव मन व्याकुलताई ॥
ऐसी अरति परीसा भारी । सहै जैन मुनिधर्म सँभारी ॥
तियदृग तीर शरीर न लागा । जगमें को असजन्म सुभागा ॥
को अस जेहि रतिनाथ न चंपा । मन सुमेर मुनिको नहिं कंपा ॥
चार हाथ देखत महिं चारे । कठिन कंकरी पायँ विदारे ॥

चर्जा दुख सहि मुनि व्रत धरहीं। प्रथम स्वादकी सुरति न करहीं॥
सूखी ठौर शयनको हेरे। निश्चल अंग रहै ऋषिकेरे॥
कठिन पृथ्वीमें शयन कराई। शयन परीसा पर जय पाई॥
खल निरदोष साधु को मारे। दुख अनंत दे अग्निमें जारे॥
समरथ होय सहै दुख सारा। रंच क्रोध नहिं निज उरधारा॥
हाँसी करहिं दुष्ट मिलि झारी। कहि कटुबचन देहिं बहु गारी॥
वचन बाण मारैं जब तानी। क्षमा ढाल ओटे मुनि ज्ञानी॥
छीन भये तन पिंजर रहेऊ। दुख अनंत जब देही सहेऊ॥
काहूकी नहिं चहै सहाई। प्राणहु गये अयाच रहाई॥
एक बार भोजन की बेरा। मौन साधि नगरी करि फेरा॥
बहुदिन बीते न भिक्षा पाई। तिहि अलाभ मन खेद न ल्याई॥
भोग संयोग रोग जब होई। कछु उपचार न चाहै सोई॥
सहै दुःख नित रहै अदीना। देह विरक्त आत्म लौलीना॥
कँकरी कंटा पाँय विदारे। रज तृण आंखिनमें भरि मारे॥
सहै दुःख निज कर नहिं गाढे। तृणपारस बिजई मुनि गाढे॥
तजि असनान होय दुख भारी। चलै प्रसेव धूल भरिडारी॥
मलिन आपनी देह निहारी। मलिनभाव नहिं जैनाचारी॥
चिर तपसीबुधि विद्यासागर। गुणगण अतुलित जक्त उजागर॥
नर आदर प्रणाम नहिं करहीं। तहँ मुनि मलिनभाव नहिं धरहीं॥
ऐसे बुधि विद्या निधि गहिरे। परबादी नहिं सम्मुख ठहरे॥
आगम अगम अलंकृत जाना। पै मुनीश मद रंच न आना॥
पालत धर्म बहुत दिन गैऊ। ज्ञानप्रकाश अजौं नहिं भैऊ॥
कछु विकल्प नहिं मनमें गहई। सो अज्ञान विजई मुनि अहई॥
मैं चिर घोर घोर तप ठानी। तब बलसिद्ध झूठ कछु मानी॥
यों कदापि मनमें नहिं बाधू। सोई अदरसन विजई साधू॥

इति बाईस परीक्षा

अथ बाईस बस्तु अभक्ष्य वर्णन--चौपाई

बैगन बहुबीजा अरु ओला । बटु पीपर पाकर कहि बोला ॥
ऊमर कमऊमर निस भोजन । कदमअयाचतुच्छ फलको गन॥
विष माटी मद मधु अरु मासा । खार चलो रसघोरव डासा ॥
माखन और अँचार कहावै । बाइस बस्तु अभक्ष्य बतावै ॥
इनते अधिक मूल है जेते । भक्षण योग्य न कोई तेते ॥
जिनमें धाम निगोद कहीजै । जीव अनंत न पार लहीजै ॥

इति

अथ जैनसाधु और गृहीको वर्णन--चौपाई

दोय प्रकारके साधु बखाना । दीगम्बर श्वेतांबर बाना ॥
दीगम्बर मुद्रा कठिनाई । सो नरते अव गही न जाई ॥
ताते लोप दीगम्बर भेऊ । श्वेतांबरी अजो रहि गेऊ ॥
अजहूँ गृही दीगम्बर मतको । जाने अपने धर्मकी गतको ॥
गृहीको गृही करे उपदेसा । जैसो गुरू शिष्य पुनि तैसा ॥
श्वेतांबरी साधु बहु तेरे । नाम ढूंढ़िया तिनको ठेरे ॥
जैन धर्मकी बारह पौरी । विविधि रीति देखो सब ठौरी ॥
सबपर श्रेष्ठ दिगम्बर बाना । छुल्लक ताके हेठ बखाना ॥
पुनि दश पौरि सरावक आहीं । सेवा पूजा देखो ताहीं ॥
तिरसठ पुरुष शलाका जोई । पूजा तासु जैन घर होई ॥
तिरथंकरकी मूर्ति बनाई । मंदिर माहँ ताहि पधराई ॥
दीगम्बर कर फेची टूटी । श्वेतांबर फेची मुखपट्टी ॥

इति

अथ स्वर्ग और मुक्तिशिलावर्णन--चौपाई

साठि पटल स्वर्गन में सुनिये । सर्वारज सिध सबपर गुनिये ॥
तापर मुक्ति शिला कहलावै । मुक्त होय सो ताहि समावै ॥

इतर धर्म जो जग विख्याता । कोइ मिथ्या कोइ मिश्रमिथ्याता ॥
साठि पटल जो स्वर्गन माहीं । बारहलों मिथ्याती जाहीं ॥
जैनी बिना न ऊपर जावै । बारहलों सबही गम पावै ॥
जैनधर्म बिन मुक्ति न होई । केवल ज्ञान उगे नहिं कोई ॥
स्वर्गनके सुख अमित बताई । रहे देवगण सबमहँ छाई ॥
स्वर्गकि थित जब पूरन होई । तब जिव धरणिधरे तन सोई ॥
जैसो भाव स्वर्गमें धरई । तैसी योनिमाह जिव परई ॥
जो सर्वारज सिद्धको जावै । एकदेह धरि मुक्ति सो पावै ॥
जबलों कर स्वर्गनमें बासा । तबलों देह धरनकी आसा ॥
चौथे काल मुक्ति जिव होई । पंचयें छठएँ लहे न कोई ॥
सुकरम किये स्वर्गको जावै । पंचयें छठयें मुक्ति न पावै ॥
ढाईसहस बर्ष बित गयऊ । पंचम काल लगत जो भयऊ ॥
उगे न तबसे केवल ज्ञाना । विना ज्ञानको मुक्ति लहाना ॥
स्त्री कोई मुक्ति न पाई । करि सुकर्म स्वर्गनमें जाई ॥
स्वर्ग भोगि नरतन पुनि पावै । केवल ज्ञान गहि मुक्त कहावै ॥

इति

अथ नर्कको वर्णन--चौपाई

सप्त नरक मत जैन कहाहीं । यम यमगण कतहूँ कोइ नाहीं ॥
औध ज्ञान जस देव गहाही । ज्ञानक औध नारकिनमांहीं ॥
बुरा औध नारकहि फुराना । पूरब वैरभाव सब जाना ॥
पिछला सब औगुन सुधि आवै । एक एकको मारि दुखावै ॥
शस्त्रादिक तहँ अगणित जाती । दंड कि हेत बना बहुभांती ॥
काटे छेदे तन तिन केरे । कोइ कोइ कोल्हूँमें धरि पेरे ॥
एक एकको धरि धरि मारा । मचा चहूँ दिश हाहाकारा ॥
जस पारा तस नारक अंगा । कटि फटि होयसो पहिले ढंगा ॥

सातो नरक केर ब्यौहारा । भिन्न भेद पीडा अधिकारा ॥
महादुःख नारकहि बनाई । आयू परम दीर्घ जिन पाई ॥
दोहा—सुई अग्र भरि मृत्तिका, नरकसे महि जौं आय ।
ताकी अति दुर्गंधते, सब तरु पशु मरिजाय ॥ इति ॥

अथ प्रलय वर्णन--चौपाई

प्रलयके प्रथम इंद्र महि आवै । जोड़ जोड़ जिव ले जावै ॥
वर्गमें सबकी जतन कराई । जबलौं प्रलय पूर्ण ना पाई ॥
निज विमानमें सब जिव धारी । स्वर्ग दिशा जब इन्द्र सिधारी॥
ताके पीछे परलय आवै । जीव जन्तु सबही विनशावै ॥
अग्निवर्षि पुनि जल बरसाई । जीवबीज नहिं कतहूँ पाई ॥
पूरण प्रलय होय हरिजाई । जीव इंद्र गहिमहि पुनि आई ॥
ताते पुनि जग उतपति होई । एकते बहुरि अनेकन सोई ॥
कबहु न होय बीजको नाशा । जक्त अनादि स्वतह परकाशा॥
क्रमहीक्रम फिर बढै विभूती । सर्व पदारथ पृथ्वि प्रसूती ॥

इति प्रलय

अथ स्फुटवार्ता--चौपाई

षटप्रकारकी अस्थि जो कहेऊ । वज्रशरीर प्रथम जिव गहेऊ ॥
वज्रको हाड शीघ्र किमि गलई । कहुँ कहुँ भूमें अजौं न टलई ॥
यूरुप नर जहँ तहँ चलि जावै । वज्र हाड जिव जंतुको पावै ॥
सो निजु मन ऐसे अनुपानो । हाड परा चिरने पथरानो ॥
ताको मर्म न जाने सोई । वज्रहाड जिव प्रथम गहोई ॥
भीम शरीर समस्त वज्र रह । दुर्योधन तन अर्ध वज्र कह ॥
लेखा ताहि काल अस रहेऊ । कोइ वज्रकाइ घटि तिहि कहेऊ॥
ताके प्रथम कठिन सर्वंगा । हनूमान आदिक बजरंगा ॥
चिरंजीव जीवे चिरकाला । गहि तन वज्र दोय दुखटाला॥

इति श्रीजैनधर्म

---

सत्य

# स्वसमवेदबोध प्रारंभ

★

भारतपथिक कबीरपंथी-

स्वामी श्रीयुगलानन्दद्वारा संशोधित

★

खेमराज श्रीकृष्णदास बम्बई प्रकाशन

सत्यनाम



श्री कबीर साहिब

सत्यसुकृत, आदिअदली, अजर, अचिन्त, पुरुष, मुनीन्द्र, करुणामय, कबीर, सुरति योग, संतान, धनी, धर्मदास, चूरामणिनाम, सुदर्शन नाम, कुलपति नाम, प्रबोध गुरुबालापीर, केवल नाम, अमोल नाम, सुरतिसनेही नाम, हक्कनाम, पाकनाम, प्रकट नाम, धीरज नाम, उग्र नाम, दयानाम की दया, वंश ब्यालीसकी दया ।

# अथ श्रीबोधसागरे

### एकोनत्रिंशत्तरंगः

## अथ स्वसमवेदबोध प्रारम्भ

★

#### मंगलाचरण—चौपाई

बन्दों गुरपद नख मणि ज्योती । हृदये बसत दिव्यदृग होती ॥
कोटि सूर शशि उर उजियारा । तिमिर अविद्या सकल सँहारा॥
चरणकमल मुनि दलअलिफंदा । धुरपद पाय मधुर मकरंदा ॥

पद पराग अनुराग दृढाई । कर बहु अम्मर मणिछबिछाई॥
चरण सलिल सरि मज्जन पाना । युगयुगको कलिकलुषनसाना ॥
महा प्रसाद प्रसादी पाई । कोटिन युगकी छुधा बुझाई ॥
धर्मदास पद प्रथम नमामी । ता पीछे करुणामय स्वामी ॥
वंश बयालिस जगमें जिनको । कोटि प्रनाम हमारा तिनको॥
चार गुरू निज सतगुरु दासा । जिन्हें न प्रभु तजि दूसरि आसा॥
मन क्रम बच गुरु चरनन चेरो । तिनप्रति बहु अभिवंदन मेरो॥
सतगुरु अंशनको बहु बारी । बदि चरनरज निजसिर धारी ॥
जिन जिन सन्त मोहि उपदेशा । धर्मधामको कह्यो सँदेशा ॥
प्रणवों कोटि बार कर जोरी । जिनकी कृपा विमल मति मोरी॥
जो गुरु पद पंकज प्रिय पागे । बन्दौं सबहि सहित अनुरागे ॥
पुनि बन्दों सन्तनके चरना । गुरुस्वरूप कछु भेद न बरना ॥
साहिब सन्त एक जिन जाना । तिनको आवागवन नसाना ॥
नमो बहुरि कवि कुल समुदाई । सत्य कबीर चिन्हि जिन पाई॥
भे अरु अहैं भव्य बहुतेरो । तिन प्रति बिनय दीनता मेरो ॥
उमँगि उमँगि जो गुरुगुन गावै । कोटिन जीव लोक पहुँचावै ॥
जड चेतन जहँ लगिजगजाया । रचना विविधि विरंचि बनाया॥
साधु असाधु सूर अरु कूरा । भोजन विविधि एकरस पूरा ॥
सत्य सुकृत सबमाहिं निहारौं ।जोरि जुगुल कर सकल जोहारौं॥
सब मिलि कृपा कीजिये सोई । भणित मोर मङ्गलमय होई ॥
कबि न होउ नहिं चतुर सयाना । काव्य भेद रस भेद न जाना ॥
कथ्यौ कथा सतगुरुकी आसा । बुधजन लखि न करै परिहासा॥
बार बार गुरु पद शिर नाई । धर्म कबीर मर्म अब गाई ॥

इति मंगलाचरन

अथ स्वसमवेद धर्मवर्णन

दोहा—देव कबीर महंत गुरु, स्वसमवेद मत भाष।
सार शब्द टकसार जहँ, सत्यनामकी साष॥
सार शब्द यक मूल है, टीका चौदह कोर।
कोटिन ग्रंथको गनि सके, लहे न ताको ओर॥
जे ती जगमें बनपती, अस गंगाको रैन।
अगम अपार अकथ कथा, सत्य कबीरको बैन॥

इति

अथ उत्पत्तिकथा—चौपाई

उतपति प्रलयकि कथा अनंता। बहु विधि सत्य कबीर भनंता॥
उतपति प्रलय कोटिन बारा। स्वसमवेद निर्णय निरधारा॥
कछुक लिखो सो ग्रंथन हेरी। कथा अनूप यथा मति मेरी॥
प्रथमै आदिमें ऐसो कहेऊ। स्वतह स्वछंद जीव यक रहेऊ॥
रह स्वतंत्र आनंद अकेला। नहिं तब गुरू नहीं तब चेला॥
पक्की तत्त्वको ताकी अंगा। अंग पिंड दोनों यक ढंगा॥
माया पुरुषसो जीव उपाना। सत्यस्वरूपी ताको बाना॥
अपनो रूप अनूप निहारी। अहमित भयो जीव तिहि बारी॥
मोहित भा लखि रूप निकाई। ताहि मोहमें गा गफिलाई॥
आपा भूलि रहा नहिं चेता। महागमनं मन भो ता हेता॥
परमानंदमें गयो भुलाई। निजस्वरूपकी सुधि बिसराई॥
तत्त्व प्रकृत्ति पलटि गइ तबहीं। पक्कीसे कच्ची भई जबहीं॥
क्रमही क्रम भै छीन शरीरा। धरिधरि देह पाव बहु पीरा॥
जब कच्चा भा पक्का सांचा। अंड पिंड दोनों भा कांचा॥
निज स्वरूपको ज्ञान न राखा। भई योनि चौरासी लाखा॥
आपै आप रमै जग सारा। भरमै यूनि अनंत अपारा॥

बुद्धिभ्रांति भै जिवकी जबते । काल दयाल प्रकट भै तबते ॥
आप काल है काल उपाया । आपै फँसा आप दुख पाया ॥

वार्ता

प्रथम जीव पक्के रूपमें हता तब दूसरा ना हता । पक्के तत्त्वके नाम–सत्य १, विचार २, शील ३, दया ४, धीरज ५ इन पाँच पक्के तत्त्वका रूप हंसाका था, ताके तीनि गुण पक्के गुण हते । अथ सत्य और बिचारको गुण–विवेक १. अथ शील और दयाका गुण–गुरु भक्ति साधु भाव २. अथ धीरजको गुण–बैराग ३ ये पक्के तीन गुण हते तामें हंसा रहा ।

पचीस प्रकृति वर्णन

१ सत्यकी प्रकृति निर्णय–१ निर्बंध, २ प्रकार, ३ थीर, ४ छमा ५ इति ।

२ विचारकी प्रकृति–अस्ति १ नास्ति पदमें भान २, यथार्थ ३, शुद्धभाव ४, सत्यता ५ इति ।

३ शीलकी प्रकृति–क्षुधा निवारन १, प्रियवचन २, शांति बुद्धि ३, प्रत्यक्ष पारख ४, सब सुख प्रकट ५ इति ।

४ दयाकी प्रकृति–अद्रोह १, मित्रजीव २, सम ३, अभय ४, समदृष्टि ५ इति ।

५ धीरजकी प्रकृति–मिथ्या त्याग १, सत्यग्रहण २, निस्संदेह ३, हंतानासने ४, अचल ५ इति ।

ये पाँच तत्त्वकी पचीस प्रकृति हैं तामें हंसाको बासा हता तब कच्चा तत्त्व ना हता । पक्के तत्त्वका पक्का देह हता, तब कछु अनुमान ना हता । जब ऐसी अपनी देह देखा और सुंदरता माना तब बहुत आनंद हुआ । ता आनंदमें हंसा मिला तब आप अपनेको भूल गया, गफलत पैदा भई । ता गफलतमें

एक झाँई परी । ता झाँईको सब ब्रह्म सच्चिदानंद कहते हैं, ता आनंदमें जीव बूड़ा तब तत्त्व प्रकृति पलटी। पक्केसे कच्चा रूप हुआ। आपा की खबर न रही। तब पाँच पक्के तत्त्वसे पाँच कच्चे तत्त्व भये। धीरजसे आकाश १, दयासे वायु २, शीतलसे तेज ३, विचारसे जल ४, सत्यसे धरती ५ पक्केसे ये पाँच कच्चे तत्त्व भये ताके तीन गुन कच्चे भये। धरती और जलसे सतोगुण भया १, अग्नि और वायुसे रजोगुण भया २,आकाशसे तमोगुण भया ३, पाँच कच्चे तत्त्वकी पचीस प्रकृति भई ये विकारकी देह भई। ताको नाम स्थूल मनमानता ते मानुष कहिये। तब हंकार हुआ कि मैं करता, तासे इच्छा भई ता इच्छाको नारीरूप भया, तासों भोग किया, फिर वह रूप विनसि गया, नारी गर्भसे तीन रूप पैदा भये. १ जीव, ताते मन २, मनसे ज्योति ३, ज्योतिसे त्रिगुण. रजो गुण ब्रह्मा १, सतो गुण विष्णु २,तमो गुण शिव ३ ये त्रिगुण ऐसे भये। जब पक्केसे कच्चा भया तब सम्पूर्ण सृष्टि चार खानी चौरासी लक्ष योनि पैदा भई. आपही अनेक रूप धरि अनेकयोनिमें भर्मता है, गफलतसे अपनी भूमिका छोड़ा, जब बहुत दुःख पाया तब अपने मनसे कल्पना किया कि हमारा कर्ता कोई दूसरा है, फिर अनुमानते करता निश्चय किया ता करताके प्रेममें बहुत वेद शास्त्र आदिक बानी बनाया, फिर आप ही उसको खोजने लगा तब कहा कि मालिक निर्गुण निराकार है तब सब वृत्ति थकित भई तब आप ही ब्रह्म कहाय अनुभव करिके संपूर्ण जक्त आपही हो रहा है इस प्रकारसे ब्रह्मसे सृष्टि और सृष्टिसे ब्रह्म रहटमें परा जीवको कहीं निश्चय नहीं दोनों प्रकारसे

कष्ट पावता है जो साधुनकी सेवा करे और बड़े भाग उदय हों तो पारखी गुरु मिलै और पूर्ण पारख बतायके जीवको भर्म छोड़ावै तब आवागमनसे रहित हो पक्का रूप पायके कच्चेका अभाव करे तब आप पारख रूप हो। पारखी आप पारख रूप-ना! कहूं धोखा ना भ्रमकूप।

दोहा—एक जीव जो स्वतह पद, बुद्धि भ्रांतिसे काल।
काल होय बहु काल सो, रचनते भयो बिहाल॥
बेहालीको मतो जो, देव सकल बतलाय।
ताते परख प्रमान लहि, जीव नष्ट नहिं जाय॥
करि अनुमान जो सुन्न भो, सूझै कतहूँ नाहिं।
आप आप बिसरो जबै, विज्ञान देहि कह ताहिं॥
ज्ञान भयौ जाग्यो जबै, करि आपन अनुमान।
प्रतिबिंब झाँई लखे, साक्षी रूप बखान॥
साक्षी है परकाश भो, महाकारन तिहि नाम।
बिंब मसूर प्रमान भो, नील बरन घनश्याम॥
बाढि बिंब अर्ध पर्व भो, सुन्नाकार स्वरूप।
ताको कारन कहत है, महा अँधियारी कूप॥
कारणते आकार भो, श्वेत अंगुष्ठ प्रमान।
वेद शास्त्र सब कहत तिहि, सूक्षमरूप बखान॥
सूक्ष्म रूपसे कर्म भो, कर्महिसे अस्थूल।
परा जीव यहि रहटमें, सहै घनेरी शूल॥
स्थूलते पुनि सूक्षम, सूक्ष्मते कारण होय।
महाकारण तुरिया करी, ज्ञान देहि कह सोय॥
सर्वसाक्षि सो ज्ञान है, रहित भयो विज्ञान।
संतो सबै अनर्थ पद, यामें नहिं कल्यान॥

षट देही वर्णन करों, समझिके त्यागो मित्त ।
एक एक अब कहत हौं,जिहि प्रकार जिहि मित्त ॥

इति

अथ स्थूल देही वर्णन--वार्ता

स्थूल देही साढ़े तीन हाथ रक्तबरण ब्रह्मा देवता रजो गुण ॐकार मात्राका जाग्रत अवस्था बैखरी बाचा त्रिकुटी अस्थान जल तत्त्व खेचरी मुद्रा पपील मार्ग घटाकाश नेत्रस्थान सत्य-लोक विश्व अभिमानी गायत्री प्रथम पद क्षर निर्णय बड़वाअग्नी विषयानन्दादिक आपतत्त्व दश इन्द्री रहस मात्रका अर्ध सत्र ऋग्वेद चौदह देवता पचीस प्रकृति । इति ।

पचीस प्रकृति वर्णन

( १ ) आकाशकी प्रकृति–काम १, क्रोध २, लोभ ३, मोह ४, भय ५, रंग काला अहार शब्दद्वारा कान इति । ( २ ) वायुकी प्रकृति–चलना १, बोलना २, बल करना ३, पसारना ४, संकोचना ५. रंग हरा अहार गंध द्वारा नासिका इति । ( ३ ) अग्निकी प्रकृति–नींद १, जमुहाई २, भूख ३, प्यास ४, आलस ५. रंग लाल अहार देखनो द्वारा आंख । ( ४ ) जलकी प्रकृति–रक्त १, पसीना २, थूक ३, मूत ४, बिंद ५. रंग श्वेत अहार मैथुन द्वारा लिंग इति । ( ५ ) पृथ्वी प्रकृति–हाड १, मांस २, नाडी ३, चाम ४, रोम ५. रंग पीला द्वारा गुदा इति पचीस प्रकृति ।

चौदह देवताके नाम

मनके देवता चन्द्रमा १, बुद्धिके देवता ब्रह्मा २, चित्तके देवता नारायण ३, अहंकारके देवता शंकर ४, नेत्रके देवता सूर्य्य ५, कानके देवता दिशा ६, वाचाके देवता अग्नि ७, त्व-

चाके देवता वायु ८, नाकके देवता अश्विनीकुमार ९, जीभके देवता वरुण १०, हाथके देवता इंद्र ११, पाँवके देवता उपेन्द्र १२, लिंगके देवता प्रजापति १३, गुदाके देवता यम १४। मुक्ति सालोक इति स्थूलदेही विस्तार।

अथ सूक्ष्म देहीका वर्णन

लिंगदेही अंगुष्ठ बराबर ओंकार मात्रका श्वेत वर्ण विष्णु देवता स्वप्न अवस्था श्रीहटस्थान मध्यमा बाचा उर्ध सैन्य दीर्घ-मात्रका यजुर्वेद वैकुण्ठलोक कण्ठस्थान पालनक्रिया आप तत्त्व भूचरी मुद्रा विहंगमार्ग द्वुतिया पद गायत्री अक्षर निर्णय मन्दाकिनी कोहं अहंकार सामीप्य मुक्ति पंचभूत सूक्ष्म प्राण अपान समान उदान व्यान चतुष्टय अन्तःकरण मन बुद्धि चित्त अहंकार शब्द स्पर्श रूप रस गंध ये सूक्ष्म नौ तत्त्व कहिये, पंच ज्ञान इन्द्री पंच कर्म इन्द्री ये सब जड हैं; जीव प्रतापतै चैतन्य होते हैं तासे जीव कहते हैं इति लिंग।

अथ कारण देहीका वर्णन--वार्ता

कारण देही अर्ध पर्ब्ब श्याम बरण मकार मात्राका गोलहट स्थान बैसन्ती बाचा मध्य शून्य तमो गुण सामवेद चाचरी मुद्रा कपिमार्ग महदाकाश हृदयस्थान पराग्य अभिमान कंठ स्थान निर्णय उदायाग्नि तृतीया पद गायत्री अद्वैतानन्द नवीन इच्छा शक्ति सुषुप्ति अवस्था सारूपमुक्ति इति कारण देही।

अथ महाकारण देहीका वर्णन

महा कारण देही मसूर बराबर विकार मात्रका नील वरण ईश्वर देवता हुंठ पीठ स्थान पराबाचा शून्य अर्धमात्रका अथर्वण वेद वायुतत्त्व अगोचरी मुद्रा। ज्वाला कालामीनमार्ग चिदाकाश आत्मलोक नाभी स्थान प्रतिज्ञा विष्णु अभिमानी

चतुर्थ पद गायत्री आदि शक्ति विदेही नंद सोहं ओहं अहंकार तुरीया अवस्था प्रकाशिक सायुज्य मुक्ति इति ।

अथ ज्ञानदेहीका वर्णन वार्ता

इन चारोंको साक्षी ज्ञान देही स्वसमवेद उन मुनि बाचा स्थान भौंर गुफा सदाशिव पूर्ण गिरी अनुचरीय मात्रका पूर्ण बोध अवस्था कालातीत शिष्यमार्ग निराकाश शिष्यस्थान निराश्रयलोक निरंजन अभिमानी पंचम परमारथ पद गायत्री ज्ञाननिर्णय ब्रह्मज्ञान मन ब्रह्मानंद अहंकार ज्ञानदेही ज्योतिस्वरूप कहते हैं मुक्ति में ब्रह्ममय सर्वसाक्षी, इति ज्ञानदेही ।

अथ विज्ञानदेहीका वर्णन–वार्ता

विज्ञानदेही आकाशवत् रूप रेख रहित नहीं आवै नहीं जाय नहीं उपजै नहीं विनशै नहीं भीतर नहीं बाहर ऐसा है कैसा नहीं अहंकार रहित मान अपमान रहित रूप अरूप रहित अहम् (मैं) त्वम् ( तू ) रहित वचन और निर बाच रहित इच्छा अनइच्छा रहित नाहं कर्ता नाहं भुक्ता जैसाको तैसा विज्ञान देही ना कोई जीव ना कोई मन ना कोई माया ऐसा भास विज्ञान देहीमें रहता है इति विज्ञानदेही ।

चौपाई

इसके आगे भेद हमारा । जानैगा कोइ जाननहारा ॥
कहैं कबीर जानैगा सोई । जापर दया गुरूकी होई ॥

सोरठा–यहि विधिसे यह जीव, गिरा आपने रूपसे ।
भोगे दुःख सदीव, जबलौं लहे न भूमिका ॥

चौपाई

यहि विधिजिव निजरूप बिसारे । तजि सो भूमि देह गहन्यारे ॥
तजि निज रूप और जब भासा । कछुक द्यौस तामें कर बासा ॥

सो तन त्यागि और पुनि लेऊ । पुनि कछु काल ताहिमें रहेऊ ॥
पुनि त्याग्यौ पुनि गह्यौ नवीना । क्रम क्रम भयौ ज्ञान गुनछीना ॥
षट प्रकार गह उत्तम अंगा । पुनि पशु पक्षी कीट पतंगा ॥
नर तनमें ज्यौं पारख पावै । तौ यह जीव बहुरि घर आवै ॥
मनुज देह ज्यौ चेतन होई । तौ निश्चय जिव जाय बिगोई ॥
धोखे परा जीव यहि लेखा । भांति भांतिको धारे भेषा ॥
भ्रम करि वेद कितेब बनाया । भ्रम करि द्वैताद्वैत बताया ॥
भ्रम करि कर्म धर्म ठहराया । भ्रम करि बड़ बानी कथि गाया ॥
भर्मको धर्म सकल जग माहीं । सब जिव बले भर्मकी छाहीं ॥
भ्रम करिके षट दर्शन थापा । भ्रम करिके जिव लखै न आपा ॥
भ्रम करि ईश्वर दूर बताया । बिरही बने सकल जग जाया ॥
भ्रम करि इत उत ढूँढ़न लागे । भ्रम करि प्रेम भक्तिमें पागे ॥
धोखे परा सकल संसारा । बिन सतगुरु भ्रम टरे न टारा ॥
सारशब्द सतगुरुको पावै । सब धोखा भ्रम दूरि बहावै ॥

दोहा–ब्रह्मादिक सनकादिक, भ्रम करि बानी गाय ।
ता बानी भ्रम विष चढ़ा, जीव गये गफिलाय ॥
तिहि कारन आसा लगी, आवा गौनको मूल ।
पह्यो ताते सात फुटि, जीव सहै बहु शूल ॥

इति

अथ सात बीज वर्णन

ॐ श्रीं रं सौं रौं ह्रौं क्लीं. अ इ उ ए व म ह ।

चौपाई

सात बीज यह कह्यौ बखानी । ताते पुनि अंकुर उतपानी ॥
क्रम ऊपाह्वा योग रु ज्ञानी । उतपति स्थितिप्रलय विधिनाना ॥
सातो अंकूरे जब चाली । चित्तरूप तब गहौ कुदाली ॥

गोडन लगे नित्त प्रति वाही। बुद्धिके जलते सींचा ताही ॥
आलबाल हंकार बनाया। मन रूपी तहँ खाद डराया ॥
अंतःकरण भूमिका माही। नित नौ पल्लव फूटै ताही ॥
नाना क्रम उपाछा नाना। नाना योग अरु नाना ज्ञाना ॥
नाना उतपति स्थित है नाना। प्रलय अनंत न जाय बखाना॥
एक एक प्रति नाना बानी। नाममात्र कहि तासु बखानी ॥
सात बीज गुरुवन मिलि बोये। प्रथम सुभेच्छा नाम कहाये ॥
पुनि सुविचार दूसरे कहिये। तनोमानसा तृतिये गहिये ॥
सत्त्वापति चौथे कहि दीजै। असंशक्ति पंचम गनि लीजै ॥
छठे पदार्थ अभावनी भाषा। तुरिया नाम सप्तमे राखा ॥
बोये सात बीज जब येही। अंकूरे निकसे फुटि तेही ॥
प्रथमै सो अब करों बखाना। जाते ज्ञानकेर बंधाना ॥
सोहं बीजको अंकुर ज्ञाना। आलबाल भक्तिमय साना ॥
सींचा ताहि प्रेमकी बारी। ताने नित नौ पल्लव धारी ॥

दोहा-शुभ इच्छादिक सात ये, तिनप्रति बानी भूर।
पल्लव तिनते बहु फुटी, रही जक्त भर पूर ॥
ज्ञान परोक्ष है फूल तिहि,फल अपरोक्ष जो ज्ञान।
दो बिधि ज्ञान प्रमानमें, जक्त जीव अरुज्ञान ॥

चौपाई

दुतिये अकार कर्म कहि गावो। ताते क्रम अंकूर उगावो ॥
भय करि आलबाल कर ताही। लोभके जलते सींचा वाही ॥
तामें सात साष कर थापन। यजन याजन अध्यन अध्यापन॥
दान प्रतिग्रह मैथुन गानी। सातो क्रमकी नाना वानी ॥
बानीते पल्लव बहुतेरो। फूल बासना ताको हेरो ॥
पुण्य पाप द्वै फूल सो आना। कर्म कैरै यह कीन बखाना ॥

पुनि तृतिये अब देहुँ बताई । श्री उपाह्ला बीज कहाई ॥
तिहि उपाह्ला अंकुर आया । आलबाल मरजाद बनाया ॥
भावके जलते सींचा ताहीं । सात साख फूटी तिहि माहीं ॥
शिव विष्णू गणपति रवि होई । शक्ती राम कृष्ण सातोई ॥
पल्लव ताहि न फूटी थोरी । महामंत्र जो सात करोरी ॥

दोहा—जारन मारन बसकरन, उच्चाटन, उच्चार ।
आकर्षण अस्थंभनो, मोहन सप्त विचार ॥
तिनमें लागे फल रुचिर, लोकादिक बहु फूल ।
आब चौथो वर्णन करौं, योग धर्मको मूल ॥

चौपाई

योग बीज रंकी न प्रमाना । ताते योग अंकुर बिकसाना ॥
किरिया आलबाल कर ताको । साधन जलते सींचा वाको ॥
शास्त्र पतञ्जल पल्लव गायो । सात साख तामें फहि आयो ॥
प्रथमैं सो हठयोग बतावो । बहुरि योग लय नाम कहावो ॥
योग कुंडली तीजे बरना । पुनि लंबिका योग चित धरना ॥
पंचम तारक योग बताई । षष्ठ योग अमनसकहि गाई ॥
योग सांख्य सप्तम गुणगाहा । फूल समाध बखानो ताहा ॥
अणिमादिक सिद्धी फल अहई । अब उतपत्य भेद विधि कहई ॥
ए उतपत्य बीज बतलाया । तामें उतपति अंकुर आया ॥
विषया आलबाल कर जाही । बानी जलते सींचा वाही ॥
उतपति साख सात प्रकटानी । जाते चारो खानि बखानी ॥
शब्द स्पर्श रूप रस गंधा । बहुरि बासना इच्छा बंधा ॥
शब्दते मेघ कीट बहु आही । दादुर आदिक उत्पति जाही ॥
बहुरि स्पर्श अरु मैथुन गाया । जीव मैथुनी ताते जाया ॥
तृतिये रूप कि उत्पति ठाना । अनल विहंग आदि जिव नाना ॥

जेते दृष्टि भावते जाये । सो सब रूप उतपन्न कहाये ॥
चौथे रसते जलचर भयऊ । वृक्षके फलते कीड़े कहेऊ ॥
पंचम गंधते उखमज होई । छठे वासना उतपति जोई ॥
ताते देव योनि प्रकटानी । भूतादिक ताहीते मानी ॥
सप्तम इच्छाते सिध योनी । सात बीज यह उतपति थूनी ॥

दोहा—नारी ताको फूल है, पूरुष फल बतलाय ।
बहुरि स्थितके बीजको, वर्णन करौं सभाय ॥

चौपाई

ह्रीं स्थिती बीज षष्ठोई । आलबाल तिहि माया होई ॥
मोहके जलते सींचा येही । सात शाख फुटि निकसीतेही ॥
अन्न अरु जल तृण पृथ्वी पत्ता । फल अरु फूल स्थिती गहत्ता ॥
अन्नते नर जलते है जलचर । तृणते तृणचर पात पत्रचर ॥
पुष्पते स्थित पुष्पचर आही । फलचर सदा फलनको खाही ॥
महि अरु मैलते जो उपजाया । महिअरु मैलसों भोग लगाया ॥
अब सप्तम परलयको बरनो । क्लीं है बीज ताहि संहरनो ॥
परलयको अंकुर सों धारा । सात साख तामें परचारा ॥
आलबालकी ना कठिनाई । क्रोध बारिते सो तृप्ताई ॥
सात लाख हैं ताके तीरा । पृथ्वी पानी अग्नि समीरा ॥
लात हाथ अरु दंत भनन्ता । नास करनको शस्त्र अनन्ता ॥
भय है फूल मृत्यु फल जाका । सत्य कबीर बचन परपाका ॥

इति

अथ उत्पत्ति कथाग्रंथ अमर मूल सत्य कबीर वचन—चौपाई

आदि पुरुष जब हतो अकेला । शब्द स्वरूपी पंथ दुहेला ॥
मनसा घटते भिन्न निकारी । उत्पति भई ताहि यक नारी ॥
वह नारी सकलो जग जाया । भग भोगे सो पुरुष कहाया ॥

भग द्वारे ह्वै बालक आया । यही भांति सब जग भरमाया ॥
यहि घटमें द्वै रूप सवारी । सूरज पुरुष चंद है नारी ॥
प्रथम हतो जब सुन्न सुभाऊ । काल सुन्न एकै समुझाऊ ॥
काल भेद कोई नहिं जाना । धर्मदास तुम सुनियौ ज्ञाना ॥
सुन्नहि माहँ शब्द उच्चारा । धर्मरायको भयौ पसारा ॥
प्रथमहि जिंदरूप यक भैऊ । सत्तर युग सोवत चलि गैऊ ॥
सत्य साहिब मोहि आज्ञादीन्हा । जिंद जीव कह तुम नहिं चीन्हा ॥
तब हम जाय शब्द अस बोला । सोवत जिंद नाहिं चितडोला ॥
तब हम जाय जगावन लागे । जिंद न जाग प्रेम अनुरागे ॥
नाहिंन जाग नींद भ्रम आवा । तब हम शब्द एक उपजावा ॥
काल शब्द कहि टेरि पुकारा । सुनिके जिन्द भयो संभारा ॥
काल शब्द सुनि जिंद डेराना । तब गहि आनि चरण लपटाना ॥
काल शब्द ना होता भाई । तो काहेका भक्ति कराई ॥
कालकी डर तपसी तप साधा । इंद्री पञ्च काल डर बाँधा ॥

इति

अथ उत्पत्ति कथाग्रन्थ कबीर बाती और अनुरागसागरके
अनुसार सत्यकबीर वचन--चौपाई

प्रथमै आदि समर्थते सोई । दूसर अंश हतो नहिं कोई ॥
आदि अंकुरा सुरति जो कीना । सत्य करी गर्भै तब लीना ॥
पांच अंड तब भयौ उपानी । तत्त्व एक है भिन्न प्रमानी ॥
धावै अंड करै चौचन्दा । आप देखके सहजानन्दा ॥
फूटे अंड तेज भइ धारा । सबमें देख पांच ततसारा ॥
देखि रूप अंडनको भाई । सोहं सुरति तबै उपजाई ॥
पुरुष शक्तिमें दोय प्रकारा । ताको सौंपा उतपतिसारा ॥
तासों उत्पति भेद बतावो । बचन सुरति एकै संमावो ॥

जाते ओहं पुरुष भे अंशा। ओहं सोहं भे द्वै अंशा ॥
ताको आज्ञा उत्पति कीना। शब्द संधि उनहूको दीना ॥
मूल सुरति अरु पुरुष पुराना। रचना बाहर कीनो थाना ॥
ओहं सोहं अंडन रहेऊ। सकल सृष्टि के करता भयऊ ॥
प्रथम अँकु दुज इच्छा संगा। तीसर मूल चौथ सोहंगा ॥
ओहं सोहं कीन प्रमानी। आठ अंश भे तिनते उतपानी ॥
आठ अंश भे एक निधाना। करता सृष्टि भये परमाना ॥
सात अंशके नाम बखानो। जिनते सकल सृष्टि बंधानो ॥
प्रथम मूल अंकूर गनीजै। इच्छा सहज साहंग भनीजै ॥
पुनि अचिंत फिर अक्षर भैऊ। बृद्धि हेत करता निरमैऊ ॥
सातो अंश जीव हितकारी। जिव कल्यान काज तन धारी॥
यहिविधि रचना करि करतारा। पुनि अपने मनमाहिं विचारा ॥
बिना काल नहिं जीव डेराई। कोइ न भक्ति भजन मन लाई ॥
तिहि औसर प्रभु काल उपाया। जाकी डर सब जीव डेराया ॥
जप तपादि संयम जो करनी। काले के डरतें सो सब बरनी ॥
सात अंश जिव दाया करता। अष्टम काल भयो संहरता ॥

सोरठा—वृद्धि हेत भे सात, अष्टम नास्तिकि हेत है।
स्वसमवेद विख्यात, तिनते सब रचना भई ॥

चौपाई

द्वीपन द्वीप अंश बैठारा। सातो जहँ तहँ कीन पसारा ॥
अक्षर कीन जहाँ निज थाना। तहँ समूहजल तत्त्व बखाना ॥
अक्षर सुरति पुरुषकी बानी। त्रिगुण तत्त्व घटमाहिं समानी॥
तब अक्षर को निद्रा आई। सोरह चौकरी सोय सिराई ॥
अक्षर सुरति मोहमें आई। ताते दूसरे अंश उपाई ॥
अंडस्वरूपी जलमहँ दीना। यह अबिगति समरथने कीना ॥

अक्षर जागा निद्रा जाई । देखि अंड व्याकुलता आई ॥
चक्कृत भा यह किन निरमाई । अंडदृष्टिने देखो भाई ॥
चहुँदिशि तहाँ रहे जल छाये । अंडा तापर तरे भाये ॥
अक्षर ढिग अंडा लगि आवा । तामें लिखी हकीकत पावा ॥
ऐसी तामे लिखी निशानी । परमपुरुषकी सो सहिदानी ॥
तुम लगि हम यक अंश पठाई । रचना करो सृष्टिकी भाई ॥
तुमते सो करिहै बरिआई । आवन देहु जहाँ लगि आई ॥
सत्रहसौ युग ऊपर तीसा । तासु महातम कर जगदीशा ॥
बहुरि महातम होय तुमारा । कालजालते जीव उबारा ॥
काल पुरुष तब पुरुष समाई । तासु महातम तब उठि जाई ॥
तब सब जीव मुक्ति पद पैहैं । फेरि न चौरासीमें ऐहैं ॥
ऐसो अंडप लिखा निहारी । अक्षर पढि मनमाहिं विचारी ॥
अक्षर दृष्टि अंड बिहराना । ताते काल बली प्रकटाना ॥
सोइ ज्योति निरंजन भयऊ । जाको सब जग करता कहेऊ ॥
अक्षर सुरति पुरुषकी बानी । ताते काल भयौ अभिमानी ॥
निरंजननाम अक्षरने भाषा । समरथ शब्द हृदयमें राखा ॥
प्रभु निज तेजते काल उपाया । ताते सकल सृष्टि दुख पाया ॥
यकपग काल रह्यो पुनि ठाढो । युग सत्तर कीनो तप गाढो ॥
तपमें येते काह बिताई । मांगु मांगु वर कह तब साँई ॥
कहै काल प्रभु यह वर दीजे । तिहूँ लोकको राज करीजे ॥
भवसागरमें राज हमारा । सुनि समर्थ अस वचन उचारा ॥
पुत्र जाहु पृथ्वीके मूला । जहाँ कूर्म बैठे अस्थूला ॥
सृष्टि भंडार कूर्मको भाई । सोलह माथ चौंसठहाथ पाई ॥
ताते लेहु सृष्टिकी रचना । शीश नाय बोलेहु मृदुवचना ॥
तीन लोकको पायो राजू । धर्मराय तब निज उर गाजू ॥

चाले धर्म हर्ष हिय बाढ़े । मनमें करत गुनावन गाढ़े ॥
जाय कूर्मके सम्मुख भयऊ । नहीं प्रनाम दंडवत कियऊ ॥
देखे धर्म कूर्मकी काया । अठानबे कोटि योजन बतलाया
बारह पालंग कूर्म शरीरा । षट पालंग धर्म बलबीरा ॥
धर्मराय तब कूर्मते कहई । मोहि पुरुषकी आज्ञा अहई ॥
सृष्टिकी रचना मोकहँ देहो । ना देहो तो मारिके लेहो ॥
तबहि कूर्म निज मनहि बिचारी । यह तो काल भयो हंकारी ।
कहैं कूर्म सुनिये धर्मराया । पुरुष मोहि नहिं कछु फरमाया॥
हमते मांगे कछु नहिं पावो । जाय पुरुष ढिग बेगि सिधावो॥
यह सुनि धर्मराय अतिकोपा । कूर्मते युद्ध करण प्रण रोपा ॥
तपबल काल भयो बरियारा । अहंकार करि कूर्म प्रचारा ॥
भिरा जायके सन्मुख धाई । करे यतन किमि रचना पाई ॥
धायकाल अतिबल तिहि डाटा । तासु तीन शिर नखते काटा ॥
शीस तासु जिहि औसर खंडा । उद्रते निकसा पौन प्रचंडा ॥
रणश्रव कूर्म तन उठा पसीना । सो जलतत्त्व पृथ्वी तिहि कीना ॥
पाँचतत्त्व धरती असमाना । सूरज चंद्र नखते प्रकटाना ॥
तनत पौन छूटा जिहि बारा । रचना सकल कीन विस्तारा ॥
जबहिं प्रसेव बुन्द जल दीना । महि उनचास कोटि तिहि कीना॥
दूधपै जैसे परे मलाई । जलपर तथा जमीन जमाई ॥
कूर्मको तिहुँ सिर भक्षण कियऊ । बहुरि निरंजन शून्यमें गयऊ ॥
धर्मराय तब कीन विचारा । कहँ लगि तीनो लोक पसारा ॥
स्वर्ग मृत्यु कीनो पाताला । बिना बीज किमि कीजै बाला ॥
करि सेवा मांगो वर सोई । जाते तिहुँ पुर मेरो होई ॥
पूर्वध्यान तब कीन निरंजन । युग चौंसठ कर सेवासंजम ॥
एकपाँव पुनि सेवा कियऊ । चौंसठ युगलों ठाढे रहेऊ ॥

बहुरि पुरुष दीनो बरदाना । सोइ होई जो तोहि मनमाना ॥
बहुरि निरंजन विनय उचारा । बीज खेत दीजै करतारा ॥
देहु ठौर बैठा जहँ जाई । तबहि पुरुष अस बचन सुनाई ॥
मान सरोवर बैठक लीजै । तीन लोककी रचना कीजै ॥
तब करता मन कीन विचारा । बीज खेत तिहि काल सँवारा ॥

अथ बीजखेत अथवा आदि शक्तिकी

उत्पत्ति वर्णन–चौपाई

अद्याकी उतपत्ति बखानों । ग्रंथ श्वास गुंजार प्रमानों ॥
निजतन मथि प्रभु मैल निकारी । रची ताहि आदि कुमारी ॥
पुरुष मैलते साँचा कीना । पैठी मैल रंग तिहि दीना ॥
देकर रंग बरन सब फेरा । भीतर मल मोह मद घेरा ॥
पुरुष मैलते पुत्री कीनी । पाँच तत्त्व तिहि भीतर दीनी ॥
उतपति पारस पुत्री पावा । प्रगटी कला अनंत सुभावा ॥
नख शिष देह सिद्ध प्रभु कीना । पंचइ श्वास तिहि भीतर दीना ॥
जब श्वासा कायामें गैऊ । प्रगटी ज्योति जगामग भैऊ ॥
आठो अंग बना बहु रंगा । पारससार ताहिके संगा ॥
निर्मल उदित बतीसो दंता । चमकै बिज्जुली कला अनंता ॥
उपजी ज्योति अखंडित बानी । बोले बचन पुहुप रससानी ॥
मधुर वचन अरु लीला धारी । देख रूप जब पुरुष दुलारी ॥
उपजी रंग रूपकी खानी । बोले अमी बिरहकी बानी ॥
उपजी कन्या कला अनूपा । पुरुषते प्रकट पुरुष स्वरूपा ॥
जिह्विया रस सब उतपति कीना । सोंपा रस कन्याको दीना ॥
उपजी कन्या अगम सुभावा । अष्टंगी कह पुरुष बुलावा ॥
पुत्री जाहु निरञ्जन पाही । तुमकहँ समरथ सदा सहाई ॥

### अथ आद्या और निरञ्जनकी कथा वर्णन—चौपाई

परम पुरुषकी आज्ञा पाई । कन्या तबहि कैल ढिग आई ॥
यकपग खड़ी सेवमें लागो । छुटी समाधि निरञ्जन जागो ॥
सम्मुख पलक उघारि निहारी । देखा ठाढ़ी आदि कुमारी ॥
परमरूप शोभा सरसाई । देखतके लहि काम सताई ॥
कहैं कैल सुनु आदि भवानी । मिलि हम तुम जग रचना ठानी ॥
तब आद्या अस उत्तर दीना । यह विचार तुम अनुचित कीना ॥
मैं हौं बहिन तू मेरो भाई । मोहि तोहि ना होय सगाई ॥
यहि करनी तोहि लागै पापा । धर्मराय तब निज पद थापा ॥
पुण्य पापके भय मोहि नाहीं । पुण्य पाप हमही तै आही ॥
पुण्य पापके हम करतारा । कोई लेय न लेख हमारा ॥
कहैं कैल सुन आदि कुमारी । मोहि कारन तोहि पुरुष सँवारी ॥
मानि लेहु तुम हमरा बचना । मिलि हम तुम करिये जगरचना ॥
कैल वचन आद्या नाहिं माना । उत्तर प्रति उत्तर तोहि ठाना ॥
तब मन रोष निरञ्जन कीना । निज मुखमाहि मेलि तिहि दीना ॥
लीलत कन्या कीन पुकारा । पुरुष पुरुष कहि वचन उचारा ॥
ततक्षन योग जीत प्रकटाने । गहे कमान बान कर ताने ॥
सुरति बानते कैलहि पारा । कन्या मुखते बाहर डारा ॥
जब कन्या मुख बाहर आई । योगजोत तब गयो लोपाई ॥
कन्या भयबश भै तिहि काला । पुरुषकि सुधि बिसरायौ बाला ॥
पिता पिता कहि कैलहि बोले । मदन प्रचंड तासु तन डोले ॥
कियो निरञ्जन सकल पसारा । पुण्य पाप दोउ रचे अपारा ॥
पुण्य पाप दोउ फंदा होई । जामें अरुझि रहे सब कोई ॥
योग यज्ञ संयम व्रत पूजा । सब हमही कोइ और न दूजा ॥
रची छुधा माया बिकरारा । पुरुष लोकको मूँद्यौ द्वारा ॥

कहै निरञ्जन कामिनि पाही । पूरुष ढिग अब हम नहिं जाई॥
पूरुष लोक इहाँ रचि लीजे । यकछत राज हमहि तुम कीजे॥
अब तो पुरुष आस नहिं मोही । गहिके बाह राखि हो तोही ॥

छन्द—भग ना हतो तिहि नारिके नख फारि कीन निरञ्जना ।
यमसाट जिव जेहि बाट विचरे घाट उत्पतिको बना ॥
भग भोग प्रथम सँयोग सोई कैल आद्या सो ठना ।
भे प्रकट ब्रह्मा विष्णु शंकर त्रिगुन भव निधि रंजना॥

अथ त्रिदेवकी जन्मकथा वर्णन-चौपाई

काल कछुक जब गयो सिराई । रूपरंग कन्या तन छाई ॥
जब भलि भांति रंग तन भीना । कन्या कैल ब्याह सँग कीना ॥
कूर्मको तीन शीस जो रहेऊ । कैल काटिके भक्षन कियऊ ॥
ताते तीन अंश प्रकटाने । ब्रह्मा विष्णु महेश बखाने ॥
देव निरंजन आदि कुमारी । केते काल कीनो सुख भारी ॥
कैल अरु कामिनि भोग बिलासा । स्वसमबेद भलिभांति प्रकाशा॥
तीनो सुत जिहिं काल उपाई । धर्मराय तब गयो लुपाई ॥
राजपाट आद्याको दीना । सुन्नमाहँ निज बासा कीना ॥
कह्यो निरंजन आद्या पासा । मेरो भेद न करहु प्रकाशा ॥
पुत्रनसे जनि बात जनावो । मेरो भेद न तिनहि सुनावो ॥
यतन अनेक ध्यान जौं लैहैं । तो मम दर्श पुत्र नहिं पैहैं ॥
यह कहि शून्यमें गयो समाई । योगक्षमाधि निरञ्जन लाई ॥
मातासे सुत पूछै बाता । पिता हमार कहाँ है माता ॥
पुत्रनते कह आदि भवानी । पिता तुमार हमहुँ नहिं जानी॥
रचना सकल हमहिते होई । हम तुम तुम हम और न कोई॥
तुमहो पुरुष हमहि तोर जोई । हम तुम दूसर और न कोई ॥
हम हैं पिता हम ही हैं माता । हम ही तीन लोकके दाता ॥

जब जननी अस बचन उचारा । सुनि संसै कर तिहूँ कुमारा ॥
माता कपट कीन हमपाहीं । पिताको भेद बतावत नाहीं ॥
तीनो बालक ताते रूठै । जननी बचन कहैं सब झूठै ॥
तब माता बोली रिसिआई । पिताको दरश करहु तुम जाई ॥
माता कह तुम पुष्प चढ़ाओ । पिताको शीस परसिके आवो ॥
चले जो पुत्र पिताकी आसा । पिता रहै पुत्रनके पासा ॥
खोजत खोजत कतहुँ न पाई । रहे निरंजन सुन्न समाई ॥
लगी समाधि निरंजन तारी । निकसे वेद श्वास सँग चारी ॥
ऋग अरु यजुर अथरबन सामा । धरि तन रटहि निरंजननामा ॥
निरंकारकी अस्तुति करही । देव निरंजन गुन उच्चरही ॥
देव निरंजन दृष्टि न आवै । ज्योतिज्योति कहि श्रुतिगुणगावै
तिहिमें वेद निरखै निज नैना । अनुमानहिते भाखे बैना ॥
वेदन प्रति नभ बचन सुनाई । बासा करहु सिंधुमें जाई ॥
आज्ञा दियौ निरंजन राई । बसो वेद सागरमें आई ॥
बहुरि निरंजन सैन लखाई । आद्यासे अस कहौ बुझाई ॥
निज पुत्रनको आज्ञा दीजै । सिंधु मथनको उद्यम कीजै ॥
तब आद्या अस युक्ति बनाई । तीन सुता निज अंग उपाई ॥
पुत्रिन कह अस आज्ञा दीनों । बसहु जाय सागरमें तीनों ॥
माताको अस आयसु पाई । तीनों सिंधुमें गईं समाई ॥
यह चरित्र जननी जो ठाना । ब्रह्मा विष्णु शंभु नहिं जाना ॥
राखा गुप्त न मर्म बताया । आद्या सुतनसे वचन सुनाया ॥
सागर मथन जाहु मम वारा । पैहो वस्तु महा सुखसारा ॥
माताकी जब आज्ञा पाई । चले तिहू तिहि शीस नवाई ॥
मथ्यौ जाय सागरको सोई । कन्या तीन प्रकट तब होई ॥
तीनो कन्या जबही पाये । हर्षसमेत मातु ढिग आये ॥

तब माता पुत्रन कहि टेरा । यह तो काज भयौ सुत तेरा ॥
सावित्री ब्रह्माको दीना । विष्णू लक्ष्मीको बरि लीना ॥
पारवती शंकरको ब्याहा । नारि पाय अतिमनहि उछाहा ॥
काम विबशभे तीनों भाई । देव दनुज सब ही प्रकटाई ॥
जननी पुनि पुत्रन समुझावो । सागर मथन फेरि तुम जावो ॥
जो जिहि मिले लेहु तुम सोई । तीनों पुत्र चलत तब होई ॥

सोरठा–रञ्च न लायौ बार, चले तिहूँ सुत सिंधुतट ।
मथ्यौ ताहि चित धार, निकसे चौदह रतन तब ॥

चौपाई

चौदह रत्न निकस जिहि बारी । लै जननीके सम्मुख धारी ॥
माताके जब आगे कीना । ताने बांटि तिहूँको दीना ॥
पायौ वेद सो ब्रह्मा लीनो । पढ़ि गुनिके विचार सो कीनो ॥
ब्रह्मा वेद पढ़न जब लागा । पढ़त वेद तब भौ अनुरागा ॥
कहै वेद पूरुष यक आही । निराकार जिहि रूप न छाही ॥
सत्य माहँ सो रूप देखावत । चितवत दृष्टि नजर नहिं आवत ॥
स्वर्ग सीस पग आहि पताला । यह सब देखो ताको ख्याला ॥
ब्रह्मा विष्णुसे कह समुझाई । तुमहू शंभु सुनो चितलाई ॥
आदि पुरुष यक वेद बतावा । वेद कहै हम भेद न पावा ॥
तब ब्रह्मा माता ढिग आये । करि प्रनाम तेहि शीस नवाये ॥
हे माता मोहि वेद बतावा । सिरजनहार और बतलावा ॥

दोहा–ब्रह्मासे माता कहै, सुन सुत मेरी बात ।
सप्त स्वर्ग है शीस जिहि, चरण पताल है तात ॥
जौं इच्छा तोहि दरशकी, पुष्प लेहु तुम हाथ ।
बेगि सिधारो ताहि ढिग, जाय नवावो माथ ॥

चौपाई

ब्रह्मा मातहि शीस नवाई । उत्तर दिशा बेगि चलि जाई ॥

तिहि अस्थान पहूँचे जाई । नहिं तिहँ रवि शशि सुन्न रहाई॥
बहुबिधि अस्तुति करे बनाई । ज्योति प्रभाव ध्यान तहँ लाई॥
करते ध्यान गये युग चारी । माता शोच पुत्रकर भारी ॥
ब्रह्मा तात दरश नहिं पावा । शून्य ध्यान युग चारि गँवावा ॥
किहि विधि रचना रची बनाई । ब्रह्मा आवै कौन उपाई ॥
उपटि शरीर मैल गहि काढ़ी । पुत्रीरूप कीन रचि ठाढ़ी ॥
शक्ति अंशनिज ताहि मिलावा । नाम गायत्री तासु धरावा ॥
गायत्री मातहि शिर नावा । चरन टेकि रज शीस चढ़ावा ॥
गायत्री बिनवै कर जोरी । सुन जननी बिनती यक मोरी ॥
कौन काज मोंकह निरमाई । कहो वचन लेवँ शीस चढ़ाई ॥
कह अद्या पुत्री सुन बाता । ब्रह्मा आहि जेठ तव भ्राता ॥
पिता दरश कहँ गये अकाशा । आनहु ताहि वचन प्रकाशा ॥
दरश तातको वह नहिं पावै । खोजत खोजत जन्म सिरावै ॥
जौनी विधि वह ईहां आई । करहु जाय तुम तौन उपाई ॥
चलि गायत्री मारग जाई । जननी बचन प्रीति चित लाई ॥
गायत्री पहुँची तहँ जाई । ब्रह्मा जहाँ समाधि लगाई ॥
लगी समाधि ब्रह्मकी गाढी । गायत्री शोचे तहँ ठाढी ॥
केते द्यौस रही सो ताहीं । ब्रह्मा पलक उघारे नाहीं ॥
गायत्री तब शोचन लागी । कौन भाँति ब्रह्मा अब जागी ॥
निजु मनमें बहुतै अनुमानी । आद्या ताके ध्यान समानी ॥
आद्या ध्यानमें ताहि सिवाई । परसो निजकर ब्रह्मा पाई ॥
गायत्री पुनि कीनेहु तैसो । जननी युक्ति बतायो जैसो ॥
तिहि औसरसो मन चितलाई । परस्यौ ब्रह्म चरन तब जाई ॥
ब्रह्मा योग ध्यान चित डोला । व्याकुल भयो ब्रह्म अस बोला॥
कौन आहि पापिन अपराधी । काहेको मोर छोडाय समाधी ॥

शाप देब तोको हम जानी । पिता ध्यान खंडेहु मोर आनी॥
कह गायत्री मोहि न पाया । बूझि लेव तब देहो श्रापा ॥
कहौं तोहिते सांची बाता । तोहि लेन पठयौ तो माता ॥
चलहु बेगि जननी पहँ जाई । तुम बिन रचना होय न भाई ॥
ब्रह्मा कहैं कौन विधि जाई । पिता दरश अजहूं नहिं पाई ॥
कह गायत्री दरशन पैहो । चलहु बेगि नहिं तो पछितैहो ॥
ब्रह्मा कहैं देहु तुम साखी । परस्यौ शीस देखा मैं आँखी ॥
ऐसो कहो मातु समुझाई । तब तुमरे सँग हम चलिजाई ॥
गायत्री कह यह है स्वारथ । कहब जानि मैं पुनि परमारथ॥
यहि विधि बोलब झूठी बाता । कौनी विधि तौ बूझे माता ॥
पुष्प गायत्री ब्रह्मा तीनी । एकमता तिहि औसर कीनी ॥
तीनों मिलिके चलि भये तहँवा । कन्या आदि कुमारी जहँवा ॥
करि प्रणाम सम्मुख रह जाई । माता सब पूछी कुशलाई ॥
कैसे दरश भो पिता सुभाऊ । ब्रह्मा सो सब मोहि सुनाऊ ॥
कहैं ब्रह्म दोनों हैं साखी । परस्यौ शीस देखा इन आँखी॥
तब माता बूझै अनुसारी । कहु गायत्री वचन विचारी ॥
तुम देखा इन दर्शन पावा । कहो सत्य दरशन परभावा ॥
तब गायत्री बचन सुनावा । ब्रह्मा दरश शीस पितु पावा ॥
मैं देखा इन परस्यो शीसा । ब्रह्माही मील्यौ जगदीशा ॥

छंद–ले पुष्प परस्यौ शीस पितु इन दृष्टिमें देखत रही ।
जल ढारि पुष्प चढ़ाय दीनों हे जननि है यह सही ॥
माता कहे पुष्पावतीसे कहो सत्यहि मोसना ।
जो चढ़ेहु शीसपिताके तुम मोसे कहो तुम ततछना ॥

सोरठा–कहु पुष्पावति मोहिं, दरसकथा निरुवारिके ।
यह बूझौं मैं तोहिं, जिमि ब्रह्मा दरशन कियौ ॥

चौपाई

पुष्पावती वचन अस बोले । माता सत्य बचन नहिं डोले ॥
दरसन शीस लह्यौ चतुरानन । चढ़न शीस यह धरिनिश्चलमन॥
शाप सुनत आद्या अकुलानी । यह अचरज भो मरम न जानी॥
अलखनिरंजन असपुनिभाखी । मोकहँ कोइ न देखे आंखी ॥
तीनों बोलैं झूठी बानी । सुनि माता बहुतै अकुलानी ॥
यह सुनि माता कीनेहु दापा । ब्रह्माको पुनि दीनेसु शापा ॥
पूजा तोर करे कोइ नाहीं । जो मिथ्या बोल्यौ हम पाहीं॥
आगे ह्वैहै शाप तुम्हारा । मिथ्या पाप करे बहु भारा ॥
प्रकट नियम बहु करै अचारा । अंतरमैल पाप बिस्तारा ॥
विष्णु भक्तसे कर हंकारा । ताते परे नरककी धारा ॥
कथा पुराण औरन समुझावै । चाल बिहीन आप दुख पावै ॥
उनत और सुने जो ज्ञाना । करै भक्ति सो कहो प्रमाना ॥
देवन पूजा, बहुबिधि लावै । दछिना कारन गलाकटावै ॥
जाकह शीस करे पुनि जाई । परमारथ तिहि नाहिं दृढ़ाई ॥
अपने स्वारथ ज्ञान सुनैहै । आपन पूजा जगहि दृढ़ैहै ॥
परमारथके निकट न जाई । स्वारथ अरथ सबै समुझाई ॥
गायत्री तोर वृषभ भतारा । पाँच सात अरु बहुत पसारा॥
धरि औतार अखज तुम खाई । बहुत झूठ तुम बचन सुनाई ॥
सुनो पुष्प तुमरो विश्वासा । होय विगंध मध्य तौ बासा ॥
जो तोहि सींच लगावै आनी । ताकर होय वंशकी हानी ॥
अब तुम जाय धरो औतारा । केवडा केतकी नाम तुमारा ॥

छंद—शाप तीनोंको दियो मनमाहँ तब पछितावई ।
कैसे करे मोहि निरंजन पल छमा मोहि न आवई ॥
आकाश बानी तब भई यह कहाँकी नभ बानिया ।
उतपत्ति कारन तोहि पठयौ कह चरित यह ठानिया॥

सोरठा–नीचहि ऊँच सताव, ओल मोहिते पाय हो ।
द्वापर युग जब आव, तोहि पाँच भरतार हो ॥

चौपाई

शाप ओल जब सुने भवानी । मनमें गुने कहे नहिं बानी ॥
ओल प्रभाव आपते पाई । अब कहु करो निरंजन राई ॥
तुमरी वश्य परी हम आई । जस चाहो तस करो उपाई ॥
आई माता विष्णु दुलारा । सुनहु विष्णु यक बचन हमारा ॥
अब तुम बेगि पिता लगि जाई । बेगि पिताको परसहु पाई ॥
आज्ञा पाय विष्णु तब चाला । पिता दरश कहँ गये पताला ॥
अछत पुष्प लीने कर माहीं । चले पताल पंथ गम नाहीं ॥
पहुँचे शेष नाग पहँ जाई । बिषके तेज विष्णु अलसाई ॥
भयौ श्याम विष तेज समावा । निरंकार अस बचन सुनावा ॥
अहो विष्णु माता पहँ जाई । कहियो सत्त बचन समुझाई ॥
सतयुग त्रेता जैहै जबही । द्वापर होय चौथा पद तबही ॥
जब तुम ह्वै हो कृष्ण शरीरा । लेहु ओल सो कहो बलबीरा ॥
जो जीव देय पीत जेहि काहू । हम पुनि ओल दिलावैं ताहू ॥
नाथहु नाग कालिंदी जाई । अब तुम जाहु विलंब न लाई ॥
बिल्लु पहूंचे जननी पासा । कीनो सत्त बचन परकाशा ॥
भेत्यौ नाहिं मोहि पद ताता । विषके ज्वाल श्यामभो गाता ॥
व्याकुल भयौ तबहि फिरि आई । पितादरश नाहीं हम पाई ॥
सुनिकै हरषी आदि कुमारी । लीन विष्णु कहँ निकटदुलारी ॥
चूम्यौ बदन शीश दियो हाथा । सत्य वचन बोल्यौ सुतगाथा ॥
देहुँ पुत्र तोहि पिता भेटाई । तोरे मनको धोख छुड़ाई ॥
प्रथमहि ज्ञान दृष्टि तुम देखो । बचन मोर हृदयेमें पेखो ॥
मनस्वरूप करि ताकर जानो । मनते दूजा और न मानो ॥

स्वर्ग पताल दौर मन केरा । मन अस्थिर मन फिरै अनेरा ॥
छनमहँ कला अनंत देखावै । मनकहँ पेखि न कोई पावै ॥
निराकार मनहीको कहिये । मनके आस द्यौस निशि रहिये॥
देखहु पलटि सुन्नमें ज्योती । जहाँ झिलिमिलि झलके मोती ॥
यहिविधिविष्णुदरसपितुपायौ । भांति भांतिको रंग दिखायो ॥
श्वेत पीत हरितो जंगाली । रूप अनूप गगनमें भाली ॥
सुनि बाजा हियमें हरषाना । पिता दरसते अति सुख माना॥
बहुत अधीन मातुसे भैऊ । शीश नाय मृदु बानी कहेऊ ॥
तव प्रसाद मम मातु बिशेखा । पिताको दरश दृष्टिते देखा ॥
मातु गई पुनि रुद्रके पासा । देखि रुद्र मनमाहँ हुलासा ॥
दोय पुत्र कह मता बतावा । माँग महेश्वर तोहिं जो भावा ॥
हे जननी यह कीजै दाया । कबहुं न विनसै हमरी काया ॥
कह जननी तुम ऐसे होही । साधो योग सत्य कहों तोही ॥
जबलों पृथ्वी अकाश सनेहा । कबहुं न बिनसे तुम्हरी देहा ॥
तिहूं सुतनको मता बताई । आदि पुरुषको नाम छपाई ॥
आद्या ऐसो छल बल कीना । पुरुष छपाय प्रकट यम कीना ॥
निरंकारको भेद बतावा । पुरुषसँदेश न सुनत सुनावा ॥
पुरुषभेद विष्णुहू न जाने । निरंकारको करता माने ॥
जैसो छल बल आद्या कीन्हा । सोई चला जक्तमें चीन्हा ॥
देखो ऐसो नारि स्वभाऊ । मात पिता कह सो बिसराऊ ॥
केतो प्रीति मातु पितु करही । कन्या एक न चितमें धरही ॥
गै पुत्री जब स्वामी गेहा । रात्यौ रंग तासुके नेहा ॥
मातु पिता सबही बिसरायौ । अपने पतिकी नारि कहायौ ॥
आदर मान खसमको होई । पिताको नाम लेय नहिं कोई ॥
ताते आद्या भई बिगानी । काल अंग ह्वै रही भवानी ॥

ब्रह्मा निज मन कीन उदासा । तब चलि गये विष्णुके पासा ॥
जाय विष्णुसे बिनती ठाना । तुम हो बुद्धिदेव परधाना ॥
तुमपर माता भई दयाला । हम तो आप बस भये बिहाला ॥
निज करनी फल पायौं भाई । कैसे दोष लगावौं माई ॥
अब सोयतन करो हो भ्राता । चले परिवार वचन रहै माता ॥
कहैं विष्णु छोड़ो मन भंगा । मैं करि हौं सेवकाई संगा ॥
तुम जेठे हम लहुरे भाई । चित संशय सब देहु बहाई ॥
जो कोइ होवे भक्त हमारा । सो सब ही तुमरो परिवारा ॥
यज्ञ धर्म पूजा जो होई । विप्र बिना कछु होय न सोई ॥
जक्तमें ऐसो ज्ञान दृढावै । पुन्यफलनकी आस लगावै ॥
जो कोइ करे द्विजनकी सेवा । हरषित हों तिहि विष्णूदेवा ॥

सोरठा—ब्रह्मा भये अनंद, जबहि विष्णु अस भाषेऊ ।
मेलो मनको द्वंद, साख मोर सुखते रहै ॥

चौपाई

ब्रह्मा भाष्यौ झूठ संदेशा । ताते ताको भयो अंदेशा ॥
विष्णु जो सांचो बचन सुनाया । माता कीन ताहिपर दाया ॥
शिव लजायके चुप ह्वै रहेऊ । झूठ सांच एको नहिं कहेऊ ॥
ढूँढत पिता तिहू गे हारी । पिताको रूप न कतहुँ निहारी ॥
माता कही बिहँसि निज बानी । ब्रह्मा झूठ झूठकी खानी ॥
शिव कछु झूठ सांच नहिं भाखो । ताते योग ध्यान चित राखो ॥
योग समाधि करो अब जाई । जटा रखाय बिभूति रमाई ॥
माता विष्णुसे बोलै बानी । तीन लोक करिहो रजधानी ॥
शिव ब्रह्मा करिहै तब सेवा । गन गंधर्व रचिहो मुनि देवा ॥
चार बरण ब्रह्मा निरमाई । चार वेद मत चार चलाई ॥
शिवके वरण भेद ना होई । क्रोध रूप धरि भेष बिगोई ॥

मातु जो दया विष्णुपर कीने । पिता देखाय निकटही दीने ॥
माता पिता एक मिलि गैऊ । विष्णु देखिके हर्षित भैऊ ॥
माता पिता सुत एकै ठैऊ ।विष्णुसमाधिज्योति मिलिगैऊ॥
तीनो मिलि जब एकै भयऊ । तिहि पीछे जग सिरजै लियऊ॥
तब माता अस बचन उचारा । रचो सृष्टि तुम तीनो बारा ॥
अंडज उत्पति कीनी माता । पिंडजको ब्रह्मा उतपाता ॥
उखमज खानि विष्णु ब्यौहारा । शिव थाबरको कीन पसारा ॥
चौरासी लख जूनी कीना । आधा जल आधा थलदीना॥
नौलख जलके जीव बखाना । चौदह लख पंछी परमाना ॥
कृमी कीट सत्ताइस लाखा । तीस लक्ष अस्थावर भाषा ॥
चतुर लक्ष मानुष परमाना । मनुषदेह लह पद निर्वाना ॥
और योनि परचै नहिं पावै । तत्त्वहीन भव भटका खावै ॥
एक तत्त्व अस्थावर जाना । उखमज दोय तत्त्व परमाना ॥
अंडज तीन तत्त्वगुन जाना । पिंडज चार तत्त्व परमाना ॥
ताते होय ज्ञान अधिकारा । मानुष देह भक्ति अनुसारा ॥
अंडज खानि तीन ततब्यापा । वायू तेज तीसरो आपा ॥
थावर एक तत्त्व है पानी । उखमज वायु तेजते सानी ॥
पिंडज चार तत्त्वसे बरनी । पौनो पावक जल अरु धरनी ॥
पिंडज नरकी देह देह सँवारा । ताते पंच तत्त्व परमाना ॥
नर नारीमें तत्त्व समाना । ज्ञान बिभेद ताहुमें जाना ॥
चारो खानि जीव भरमावा । तब मानुषकी देही पावा ॥
पांच तत्त्व मानुष विस्तारा । तीनो गुण तेहिमाहँ सँवारा ॥
देह धरे छोडे जस खानी । तैसो ज्ञान लहै सो प्रानी ॥
प्रथम कहो अंडजकी खानी । दारिद्री निद्रा अलसानी ॥
चोरी चुगली निंदा माया । घर बन झाड़ी आगि लगाया॥

तृष्णा दूत भूत सेवकाई । रोवै कभीके मंगल गाई ॥
और को देत देखि पछिताई । गुरु सतगुरु चीन्है नहिं भाई॥
वेद शास्त्र सब देत उठाई । आपन मन सब ही दरसाई ॥
जगमें और तुच्छ सब आही । मोहि समान बड़ को जगमाही॥
मैले वस्त्र सो नहीं नहाई । आंखि चिपर मुख लार बहाई॥
पासा जूवा खेल अरु दारू । कूबर मूंड अरु लामा पाऊ ॥
दूजी उखमज खानि कहावा । ताते जो नर देही पावा ॥
जाय सिकार जीव कहँ मारा । बहुत आनंद होय तिहि बारा॥
बहुविधि मांसु रांधिके खाई । गुरुको मेटि करे अधिकाई ॥
निंदै नाम शब्द गुरु देवा । बहुत बात कथ ज्ञानको भेवा॥
झूठी बचन सभामें लाई । टेढी पाग छोर ओरमाई ॥
दया धर्म मनमें नहिं आवै । करे पुन्य तिहि हाँसी लावै ॥
माला तिलक अरु चंदन करई । हाट बजार चिकन पट धरई ॥
अन्तर पापी ऊपर दाया । सो जिव यमके हाथ बिकाया॥
लम्बा दन्त रु वदन भयावन । पीरे नैन ऊँच अनपावन ॥
तीजे अचल स्वानिको लेखा । देह धरेते होय जो भेखा ॥
छिनक बुद्धि होवै जिव केरा । पलटत बुद्धि न लागै बेरा ॥
झगा फेटा शिरपर पागा । राजद्वारसे वामे लागा ॥
घोडेपर होवै असवारा । तीर खड्ग अरु कमर कटारा ॥
इत उत सैन चित्तसे लावा । परनारीको सैन बोलावा ॥
पर घर रति कर चोरी जाई । शरमभाव उपजै नहिं भाई ॥
छन यकमें कर पूजा सेवा । छन यकमें बिसरै सो देवा ॥
छन यक मनमें सूरा होई । छन यक मनमें कादर सोई ॥
छन यक मनमें करे सुधर्मा । छन यक माहँ करे अपकर्मा ॥
भोजन करत माथ खजुआवे । बाँह जाँघ पुनि मींजत जावै ॥

भोजन करे सोय पुनि जाई । जो जगाव तिहि मारन धाई ॥
आँखी लाल होय पुनि वाको । और अनेक न लक्षण ताको ॥
चौथे पिंडज खानि सुनावों । गुन औगुनको भेद बतावों ॥
वैरागी उन मुनि मत धारी । धर्म पुण्य कर वेद विचारी ॥
तीरथ पुण्य अरु योग समाधी । गुरुके चरण चित बल बाँधी ॥
पढे पुराण कथे भल ज्ञाना । सभामें बैठि बात भल ठाना ॥
राजभोग कामिनि सुख माने । मनशंका कबहूँ नहिं आने ॥
धन संपति सुख बहुत सोहाई । लौंग सोपारी बीरा खाई ॥
खरचै दाम पुण्यमें सोई । हृदये सुख पुनि ताके होई ॥
चक्षु तेज ताकर अति मानी । परा कर्म देही बल ठानी ॥
देखो खड्ग सदा ता हाथा । प्रतिमा निरखि नवावै माथा ॥

सोरठा—छूटे नरकी देह, जन्म धरो फिरि आय जब ।
ताको कह्यो सनेह, धर्मदास सुन कान दे ॥

चौपाई

आयू आछत जिव मरिजाई । जन्म धरे मानुषको आई ॥
शूरा होय सो रणके माहीं । भै डर ताहि निकट न जाहीं॥
माया मोह ममता नहिं व्यापे । दुरमति ताहि देखि डर कांपे॥
सत्यशब्द परतीत कै आनै । निंदारूप कबहुँ ना जानै ॥
सतगुरु चरण सदा चित राखे । प्रेम रु प्रीति दीनता भाखे ॥
यहिविधि चारों खानि बनाया । सबमें रमे निरंजन राया ॥
कर्मजाल महँ सबै फँसाई । रेखाकर्म प्रत्यक्ष देखाई ॥
कर्मकी रेख लिखे सबमाही । ताते जीव भवमें भरमाही ॥
लिखे निरञ्जन कर्मको रेखा । ताते जीव धरे बहु भेषा ॥
कर्मरेख कबहूँ नहिं छूटे । फिर फिर जीव निरंजन लूटे ॥
चारि खानि रचिकियो पसारा । चार बरन पाखँड व्योहारा ॥

चौरासी लख योनी कीन्हा । चार खानि जिव एकै चीन्हा ॥
चौरासी लख बचन बखाना । चारखान जिव एक समाना ॥
रचना रचे सृष्टि बहु रंगा । कामदेवकी कला अनंगा ॥
सुर नर मुनि गण काम तरंगा । पशु पक्षी सबहीके संगा ॥
कर्म काल सबही भरमावा । शिवशक्ती सँग कला नचावा ॥
कनक कामिनी फंद बनाया । तिहि फन्दे सबही अरुझाया ॥
जाति पांति कुल मान बड़ाई । ब्रह्मा यह यम फंद बनाई ॥
शिव शक्ती द्वै रूप बनाया । नारि पुरुष सो नाम धराया ॥
भगद्वारे ह्वै सब जग आया । भग भोगनको पुरुष कहाया ॥
नखशिख रची काल फुलवारी । फूल कुबास सुबास सँवारी ॥
कनक कामिनी काल बनाई । चार खानिमें रही समाई ॥
कामिनि काम सँवारा ज्ञानी । चारो खानि रहा विष सानी ॥
काल कर्मकी खानि बनाई । सब संगतमें रहा समाई ॥
सुर नर मुनि सबहीको डहके । चारखानि सबही घटमहके ॥
तीनों देव निरंजन रूपा । येई भवसागरके भूपा ॥
चारो मिलि सब सृष्टि सँवारी । पञ्चम कहिये आदि कुमारी ॥
जहाँ तहाँ तीरथ व्रत दाना । देवल देव पूजा पाषाना ॥
मथुरा तीनि देव औतारा । ब्रह्मा पुनि काशी पग धारा ॥
यहिविधि आद्या साज्यो साजू । तिहुँ पुत्रनकहँ दीनो राजू ॥
मथुराते चलि आदि भवानी । कोटकांगड़े पहुची आनी ॥
कोटकांगड़े करि निज थाना । हींगलाज पुनि कीन पयाना ॥
आदि भवानी रही तहांई । तिहूँ पुत्र जग राज कराई ॥
नाना भांति कर्म बिस्तारा । वेद कितेब प्रपंच अपारा ॥
भर्मजाल जगमें फैलाई । नर नारी तामें अरुझाई ॥
जहतहँ तीन देवकी सेवा । कोइ न जान पुरातन देवा ॥

तीन देव निज हुकम चलाई । अद्याहूको नाम छपाई ॥
तीन देव सेवैं संसारी । पूछै नहिं कोइ आदि कुमारी ॥
तब अद्या मनमाहिं बिचारा । मम सुत मेरो महातम टारा ॥
कीनो तब असि युक्ति भवानी । ऐसो कलारूप गुनखानी ॥
तीन शक्ति निज तन प्रकटावा । महामोहनी रूप बनावा ॥

दोहा–रंभा सूची रेनुका, तीन रूप निज कीन ।
गंधर्बनको मोहि मन, वश अपने कर लीन ॥

चौपाई

तिहूँ रूप मोहनी बनाई । सब गंध्रव निज संग गहाई ॥
भाँति भाँतिके बस्त्र अनूपा । भूषन भूषित अद्भुत रूपा ॥
छतिस भाँतिके बाजा लेई । चली त्रिदेवपाहँ तब येई ॥
राग रागिनी यकसठ जाती । महा मधुर सुर गाव सुभाँती ॥
तीन देव सुर नर मुनि झारी । निज बस करि लीने तिहुँ नारी॥
जगमें अपनो अदल चलाई । जहँ तहँ शक्तीसेव थपाई ॥
तीनो देव निरंजन शक्ती । इन पांचोंकी सब कर भक्ती ॥
मन ॐकार निरंजन राई । अलख शून्य अविकार कहाई॥
कैलकाल निर्गुन निरंकारा । धर्मराय यम ब्रह्म पुकारा ॥
इत्यादिक बहु यमके नामा । रमै सर्वमें सोई रामा ॥
जैसे तिलमें तेल समाया । तिमि सबमाहिं निरंजन राया ॥
मनसे और नहीं बरिबंडा । गाजै तीन लोक नौ खंडा ॥
सुर नरमुनिसब छलि छलि मारा । कोई जीव नहिं बचा कड़ारा ॥
रचना रुचिर अपार बनाई । सकल जीवको सो भरमाई ॥
कबहुँके हेठ कबहुँके ऊपर । कबहुँके डारि देय जिव भूपर ॥

पंजाबी भाषा–छंद झूलना

इत्थते उत्थ कर उत्थते इत्थ धर जित्थेही जाय जिव नाहिं छुट्टै॥

भट्ट तिहुँ लोक है नट्ठ जित जाइये तित्थही तित्थही काल कुट्टै ॥

सत्यकबीर वचन

तीन लोकमें लागी आग । कहैं कबीरा कहँ जैहो भाग ॥

चौपाई

पूर्व प्रसंग करो पुनि वर्णन । कूर्मपाहिं जिमि गये निरंजन ॥
तीन माथ जब ताको छीना । बहुरि शून्यमें बासा कीना ॥
कूर्म भये तिहि काल दुखारी । ध्यानमें पुरुषते बचन उचारी ॥
अहो पुरुष दाया भल कीना । मोकहँ धर्मराय दुख दीना ॥
यहि बिधि पुरुषपै कूर्म पुकारी । तब सतपुरुष दया उर धारी ॥
बोले तब अस पुरुष पुराना । सुनो कूर्म मम बचन प्रमाना ॥
यह तो काल भयो अन्याई । जो मैं ताहि देब बिनसाई ॥
तो सबही रचना मिटि जैहै । सोलह पुत्र सबहि बिनसै है ॥
सोलह पुत्र एक ही नारा । ताही सूत मध्य यह कारा ॥
विषयते रचित निरंजन देही । मम दरसन अब पाव न येही ॥
लक्ष जीव नित करे अहारा । सवालक्ष नित प्रति बिस्तारा ॥
यहि विधि आप दीन प्रभु तेही । परमपुरुष ढिग जाय न येही ॥
रचना करि पुनि भोजन करई । सबमें रमै न सो लखि परई ॥
षट दरसन छानवे पाखंडा । धर्म कर्म जहँलों महि मंडा ॥
सो सब आहि निरंजन खेला । गह जिव त्रिगुन शक्तिके मेला ॥
नाना भाँतिके धर्म चलाई । जक्त जीवको सो भरमाई ॥
एक विरुद्ध पंथ कर दूजा । नानाविधिको थापे पूजा ॥
सबहि भरमायके भोजन करई । कालकला नहिं जिव लखि परई ॥
चार मुक्ति जो वेद बखाना । सो सब देव निरंजन थाना ॥
योग युक्ति सब तासु पसारा । पुरुषद्वार ते परदा डारा ॥
मुक्तिपंथ नहिं पावै कोई । काल भ्रमावै सब नर लोई ॥

तप्त शिला यक नाम पुकारा । सब जिव पकरि ताहिपरजारा ॥
तप्त शिलापर जो जिव परही । हाय हाय करि चटपट करही ॥
तलफि तलफि जिव तहँ रहिजाही। भूनि भूनि सब यमधरिखाही ॥
केते युग जीवन धरि खायो । जारि वारिके योनि भ्रमायो ॥
जरत जीव जब कीन पुकारा । काल देत है कष्ट अपारा ॥
यमको कष्ट सहो नहिं जाई । हो साहिब दुःख टारो आई ॥
यहि बिधि जिव जब कीन पुकारा। पुरुष दयाल दया उरधारा ॥
तब पूरुष ज्ञानीको टेरो । ज्ञानी सुनिये आज्ञा मेरो ॥

सत्यकबीर वचन

छंद–जब देखि जीवन कहँ बिकल तब दया पुरुष जनाइया॥
दया विधि सतपुरुष साहिब तबै मोहि बोलाइया ॥
कह्यो मोहि समुझाय बहुविधि जीव जाय चितावहो ॥
तुव दरशते जिव होय शीतल जाय तपत बुझावहो ॥
सोरठा–आपा लीनो मानि, पुरुष सिखावन शिर धरयो ॥
तत्क्षण कीन पयान, शीस नाय सतपुरुषको ॥

चौपाई

आयो जहँ जहँ जीव सतावै । काल निरंजन जीव नचावै ॥
चटपट करे जीव तहँ भाई । ठाढ भयो मैं तहँ पुनि जाई ॥
मोहि देखि जिव कीन पुकारा । हो साहिब मोहि लेव उबारा ॥
तब हम सत्य शब्द गोहरावा । पुरुष शब्द ते जीव जुड़ावा ॥
सब जीवनमिलि अस्तुति लाई । धन्य पुरुष यह तपन बुझाई ॥
यमते छोरि लेहु मोहिं स्वामी । दया करो उर अंतरयामी ॥

इति

अथ जीवनकी स्तुति–छंद तोटक

जय सत्य कबीर कृपाल घनं, दल दुष्टहनं पय पुष्ट जनं ॥

योग जीत अतीत पुनीत प्रभू, वपु धारण कारन तारन भू ॥
सत सुक्कृत सत्यस्वरूप सदा, जन ध्यावत पावत मुक्तिपदा ॥
मुकता मनिते जिव जो जुगता, मृतलोक सशोकन भौ भुगता ॥
हम दीन दुखी किमि त्याग चहो, करुणामय हो करुणामयहो ॥
करुणातन धार करी करुणा, करुणामयधौं करुणा वरुणा ॥
सुर सिद्ध बखानत खान दया, जिव देखि अनाथ सनाथ भया ॥
यहि ज्वाल जला यम भक्ष करे, बिन देव दयालको रक्ष करे ॥
यम जालिम जीवन जेर कियौ, सुधि लेत दयादधि देर कियौ ॥
सुख लेशन के तक लेश भरे, जगदीश परे जगदीश परे ॥
जिव काल करालके ज्वाल दहे, तर ऊपर भूपर धाय गहे ॥
हम जानि दयाल जो काल भजे, गुणग्राम प्रनाम सो नामतजे ॥
घटवाह मलाह सलाह कहो, फिर कैलकि गैलको सैल न हो ॥
वह सिंह समान शिकार करे, प्रिय पीव बिना कह जीव तरे ॥
हरि केहरि देहरि पार करों, सरकार बडे बरकार करौ ॥
भयभंजन रंजन दासनको, खल डाटत काटत फांसनको ॥
भवसागर झागर काल बली, तह जीवकि उक्ति न युक्ति चली ॥
नहिं एक उपाय बनाय बनी, करु काज गरीब निवाज गनी ॥
प्रभु पेखतही जिव शीतल है, श्रुति वेद पुराण बखानत है ॥
करुणा दृग कोटिन काल हनै, खुगसिंधु कणा गिर बंधु बनै ॥
मतिधीर कबीर कबीर भजो, हितनाम प्रिया बिन नाम तजो ॥
तपखान कृशान शिला दहके, जरते प्रभु मारगते बहके ॥
तलफै तप तीख सभी तलते, बिन नाथ किने हन सोपलते ॥
निजु सृष्टि निवाज सुदृष्टि लखो, सिरपै समरत्थ जो हत्थ रखो ॥
नरबाल बेहाल निहाल मही, दुखद्वंद दवारिन देह दही ॥
मनभौ मदमोचन लोचन है, जनरक्षक भक्षक पोचन है ॥

सबलायक नायक हंसनके, जिवमोषक पोषक अंशनके ॥
सरवोपर साहिब जीवनके, तुम जीवननाथ हो जीवनके ॥
प्रभुके भ्रमते यमते बजरे, यहि तप्त शिला पर आनि जरे ॥
तपिया जपिया न पिया परखे, विधि वेद लवेदन ते हरखे ॥
जिवकाज चले शिरताज सभी, महराज मयासुख साज सभी ॥
भवभार हरो करतार धनी, धर्मराय न प य दुखाय दुनी ॥
करि नेह बिदेह जो देह घृतं, शबदामृत जीव भे कृत्तकृतं ॥
मृत नायक सायक तीख हते, पद प्रीत प्रतीत सहीत गते ॥
परमारथि भारथि नाथ सदा, गहते लहते भव पाथ हदा ॥
जनजाय समाय अमाय पदा, शुभज्ञान फुरानन सान मदा ॥
मुनि मानस हंस मुनीन्द्रमता, समता लह पाय पता रमता ॥
तब नाम सुधा बसुधा जो पिया, न क्षुधा युगही युग जीव जिया ॥
दुखिया हितआय महा सुखिया, लखि पीवहि जीव भये सुखिया ॥
कहँ और न दौर तो पौर परे, सरनी परनी करनी नखरे ॥
पद तीर कबीर शरीर जिते, लह सारभे ब्रह्म अकार तिते ॥
जग योनि जहान महान महा, गुरुदेवको भेव नते बलहा ॥
कमलापति क्यों कमलापति हो, पदकीरति कीरति कीरति हो ॥
मृगब्याध समाध अगाध गहे, कलपानसिरान न ध्यान लहे ॥
गुन गाय फनीं गणराय निती, नहिं पावत पार अपार गती ॥
लवलीन प्रवीन नवीन जसै, कलिपंक कलंक निशंक नसै ॥
बिषया बनराय भुलाय परे, दुखदौन बिनाकर कौन धरे ॥
कह कौन सँदेश अँदेश बड़ा, भग भूलि गई ठग आनि अडा ॥
शिव शोक कि झोकमें झूलि रहा, करता भरता भ्रम भूलि रहा ॥
तिहुँ लोक बिलोक लगीअगिनी, यह जामिन है यमकी भगिनी ॥
तब सूरको नूर जहूर हुआ, ममता रजनी दुख दूर हुआ ॥

सगरे झगरे रगरे बगरे, पशुज्ञान गहे डगरे डगरे ॥
बकचाल सभी न मरालमती, बिन एक रतीबन एकरती ॥
जब गर्भमें अर्भक अर्ज करे, तिहि गाढते साहिब गाढि धरे ॥
इत औरहि ढालको ख्याल खिला, बुधि स्वप्न मरे यहि तप्त शिला॥
वह औध अचेत सुखोपति सो, कह पाय पराग बनारसको ॥
निज धामते राम पयाम लिया, जगती भगर्ती पद पाय पिया॥
कित हो झलकी मनसा मलकी, अरु अंध अचेतकिभयटलकी ॥
द्रुगदानि कि वानि बिहानि इतै, मकरंदके फंदको जीव जितै ॥
मृतशृंगन बिग बिहार करे, क्रम रेख विशेष न देख परे ॥
नहिं क्रोधित अंध कि गंध मिले, जिव दंडक भंडक भीर हिले॥
गुरुपीर कबीर उजागर है, भव बोहित सोहित सागर है ॥
जगबंदन भर्म निकंदन है, सरनी सतलोककि संदन है ॥
सतनाम सनेह सुधाम चढे, कलिमा कलिमा कलिमाह पढे ॥
गुणग्राम निकाम कबीर कबी, जस गावत पावत कोटि छबी ॥
धुरधर्म धराधर धार कहो, भवतारक पंथ प्रचार कहो ॥
नर पामर घामर बुद्धि बिना, यमज्योति पतंगके ढंग बना ॥
जग व्याधि रु आध असाध करे, चरणाम्बुज चूरण चारु हरे ॥
भवतारन हेत निकेत कृपा, पयगाम लियौ सुखधाम नृपा ॥
सुरभूप स्वरूप अनूप छिपा, रवि सोम जो कोटि करो मदिपा॥
गुरुगुप्त कियौ धुरको बरनं, भव भौंर भयावन तौ शरनं ॥
हमरे उरके पुर बास करो, निज दासनको अब दास करो ॥
बिन कंतके भौ जलजंत घने, दुखद्वंद कफंद कफंद फने ॥
जगमाह कि बाह निबाह लहे, भ्रम भो डरभे डरभीर बहे ॥
दनुजात बलात निपात भये, रणधीर बहीर गहीर गये ॥
जिहि जानत जान सुधाम धरे, मुनिके मन मंदिरमें बिहरे ॥

मनमत्त मतंग मते यहि गौं, तुहि रावत होय महा उतजौं ॥
चितचञ्चर बञ्चर बञ्चक है, समसञ्च बिरञ्च न रञ्चक है ॥
यम बंकट संकट जीव महा, दमको गमको रमको न रहा ॥
भवसेत अभय पद देत तुही, कलिकंटक कोटिन कर्म दही ॥
चढि सेत पपीलन ढील तहाँ, लँघि दीन पयोनिधि पीन महाँ ॥
नहिं वज्रको हाड न चाड रहो, मन वाक शरीर कबीर कहो ॥
गुरु नेह न दीसन दीस जिन्हैं, सुखवासन आस है त्रास तिन्हैं ॥
तुम दीनन बन्धु न पीननके, नित पास हो दास अधीननके ॥
मद मान मलान हिये अरभौ, नर नागर सागर भौ गरभौ ॥
करि पाप कलाप करे दुनिया, विष बीज अमीफल को लुनिया ॥
हरिमें हरिमें हमही वरषे, लहरी भवभक्ति हरी हरषे ॥
दुखदारिद वारिद ज्ञानघनं, निरभय करि भय शमनं शमनं ॥
जिव कालके जाल परे बपुरे, सतनाम निकाम सदा जपु रे ॥
गुरुभक्ति निनार किनार गहे, चतुरे लुतरे भवधार बहै ॥
भ्रमभूलते मूलते जात भगे, बुध बालन डालन पात लगे ॥
मन बाचक याचक हौं दरको, तुम छोड अजोड सभी घरको ॥
प्रभु नामको दान निदान चहो, कोइ आसरुबास बिकाश न हो ॥
तरनी बरनी तब नाम जहां, गहिये लहिये बिशराम तहाँ ॥
रसना रसरास रसैं रससो, जसतौ बस और सबै कस हो ॥
चढ नाम रथा गइ बीत बिथा, रसना रसना बिन कीर्त कथा ॥
पदपंकज प्यार जो छूटि गया, अरु सूत सनेहको टूटि गया ॥
ठग ठाकुर आनिके जूटि गया, जगजीवनकी बुधि छूटि गया ॥
रहगी रमते बढ़ि भीर भई, सतपंथ बिहाय कुपंथ लई ॥
गुरुभक्ति बिना भव भूलि परे, शरणागत पाहि कबीर हरे ॥

दोहा—यह कबीर पंचाशिका, पढै सप्रीति प्रतीत ।
परम पुरुष पद पावही, काल कष्ट जा बीत ॥

इति श्रीकबीर पंचाशिका

सत्यकबीर वचन--चौपाई

तब हम कहा जीव समुझाई । जोर करो तो बचन नसाई ॥
जब तुम जाय धरो नर देहा । तब तुम करिहो शब्द सनेहा ॥
पुरुष नाम सुमिरन सहिदानी । बीरा सार करो परमानी ॥
देह धरे सत शब्द समाई । तब हंसा सतलोकहि जाई ॥
देह धरे कीने जहँ आसा । अन्तकाल लीनो तहँ बासा ॥
अब तोहि कष्टभयौ जिव आनी । ताते यहि बिधि बोलो बानी ॥
जब तुम देह धरो जग जाई । बिसरे पुरुष काल धरि खाई ॥

जीव वचन--चौपाई

कहै जीव सुन पुरुष पुराना । देह धरे बिसरो नहिं ज्ञाना ॥
पुरुष जानि सुमिरौं यमराई । वेद पुरान कहैं समुझाई ॥
वेद पुरान कहै मत येहा । निराकारसे कीजै नेहा ॥
सुर नर मुनि तैंतीस क्रोरी । बंधे सबहि निरंजन डोरी ॥
ताके मत कीने हम आसा । अब यह जानि परा यमफांसा ॥

ज्ञानी वचन--चौपाई

सुनो जीव यह छल यमकेरा । यह यमफन्दा कीन घनेरा ॥

छंद—कला कला अनेक कीनो जीव कारन ठाट हो ।
वेद पुरानो शास्त्र स्मृती याते रूँध्यौ बाट हो ॥
आप तनधरि प्रकट ह्वै यम सिफत आपन कीनहो ।
नाना गुन मन कर्म फाटो जीव बंधन दीन हो ॥

सोरठा—कला कला परचण्ड, जीव परे बस कालके ।
जन्म जन्म सह दण्ड, सत्यनाम चीन्हे बिना ॥

चौपाई

छन यक जीवनको सुख देऊ । जिव बँध मेटि पुरुषपहँ गेऊ ॥

अथ जीवमुक्तावन हेत सत्य कबीरको संसारमें आगमन कथा--चौपाई

यहि विधि काल जक्त धरि खायौ । जिव नहिं कोई मुक्तिपद पायौ ॥
तीनों पुर पसरा यमजाला । सकल जीव कहँ कीन बिहाला ॥
कालके करते जीव न छूटे । बहुविधि योगयुक्तिमें जूटे ॥
बिनशत शब्द न जीव उबारा । तब समरथ अस बचन उचारा ॥

सत्य पुरुष वचन--चौपाई

कैल सकल जग बारयौ खाई । एको जीव लोक नहिं आई ॥
तातै समरथ मोहि फरमाई । साँचे जीव आन मुक्ताई ॥
पुरुष वचन कीने तिहि बारा । ज्ञानी बेगि जाहु संसारा ॥
प्रथमहि चल्यौ जीवके काजा । पुरुष प्रताप शीस पर छाजा ॥
सतयुग सत्य सुकृत मोर नाऊँ । आज्ञा पुरुष जीव बर आऊँ ॥
करि परनाम तब पगधारा । पहुँच्यौ आय धर्म दरबारा ॥
द्वीप झांझरी नाम बखानी । कैल पुरुषकी सो रजधानी ॥
पगके देत झांझरी गाजा । कैल पुरुष बैठा तहँ राजा ॥
गये झाझरी द्वीप मँजारा । गर्बित काल न बुद्धि विचारा ॥
मोकहँ देखि धर्म ढिग आई । महाक्रोध बोले अतुराई ॥
योगजीत इहवाँ कस आवो । सो तुम हमसे बचन सुनावो ॥

योगजीत वचन-चौपाई

तासो कह्यौ सुनो धर्मराई । जीवकाज संसार सिधाई ॥
तुम तो कष्ट जिवनको दीना । तबहि पुरुष मोहि आज्ञा कीना ॥
जीव चिताय लोक ले आवो । काल कष्टते जीव छोड़ावो ॥
ताते मैं संसारहि आवो । देय परवाना लोक पठावो ॥

अथ कालपुरुष और सत्यकबीरका युद्धवर्णन--चौपाई

काल क्रोध करि वचन उचारा । भवसागरमें राज हमारा ॥

तुम कस जिव मुक्तावन आवा । मारो तोहि अबहि भलदावा ॥
काल अनंत रूप तब धारा । योगजीत कह आनि प्रचारा ॥
महाभयंकर रूप बनावा । गज स्वरूप ह्वै सम्मुख धावा॥
सत्तरयुग हम सेवा कीना । पुरुष मोहि भवसागर दीना ॥
परमपुरुष सेवा वस भैऊ । राज तिहूँ पुरको मोहिं दैऊ ॥
तब तुम नारि निकारौ मोही । योगजीत नहिं छोडो तोही ॥
अस कहि धाय सुंड फटकारा । दंतसो योगजीत पर मारा ॥
योगजीत कै लहि ललकारा । गहि कर सुंड दूर तिहि डारा॥
पुरुषप्रताप सुमिर मन माहीं । मार्‍यो सत्य शब्द से ताहीं ॥
ततछन ताहि दृष्टि पर हेरा । श्याम लिलार भयौ तिहिकेरा॥
पंख घात जिमि होय पखेरू । तैसे कैल मोहि प्रति हेरू ॥
जब फटकार कर गहे डाला । भागा काल पैठ पाताला ॥
गयौ पाताल कूर्मके आगे । योगजीत गये पीछे लागे ॥
बिनती करे कूर्मसे जाई । राखो कूर्म शरन हम आई ॥
योगजीत मोहि मारि निकारा । जिव ले जाय पुरुष दरबारा ॥
युगन युगन हम सेवा कीना । पुरुष मोहि भवसागर दीना ॥
एक पायँ हम ठाढे रहेऊ । तबहि पुरुष सेवा सब भैऊ ॥
तीन लोक दीना मोहि हारी । अब कस मोकहँ मारि निकारी॥
जाय कूर्मकी शरन जो परेऊ । तब ताने दाया उर धरेऊ ॥

कूर्मवचन--चौपाई

तबै कूर्म उठि बिनती लाई । को तुम आहु कहाँ ते आई ॥
अपनो नाम कहो मोहि स्वामी । पुरुष अंश तुम अंतरयामी ॥

योगजीत वचन--चौपाई

तब हम कहा नाम मोर ज्ञानी । योगजीत हम अंश बखानी ॥
समरथ बचन जीव बर आवा । काल फाँस जीवन मुक्तावा ॥

कैलवचन

सुन ज्ञानी मोर वचन अलेखा । अपने मनमें करो बिबेका ॥
सत्तर युग हम सेवा कीना । पुरुष बकसि भवसागर दीना ॥
समरथ बचन दीन मोहि हारी । तीन लोक पायौ संसारी ॥
तबकी बात रहित भै भाई । अब कस उलटी अदल चलाई ॥
सबै अंश मुक्ते रजधानी । हमपर कोप भयौ तुम ज्ञानी ॥
अब जस निरणय हमै सुनावो । तस सीषा पन जानि चलाओ ॥

कूर्मवचन

तबै कूर्म बोले अस बानी । बिनती एक सुनो हो ज्ञानी ॥
जो तुम बिनती मानो मोरा । तौ हम तुमसे करें निहोरा ॥
तुमहू कैल बचन जौं मानो । तौ हम ज्ञानी निर्णय ठानो ॥
ज्ञानी सुनो पुरुष के अंशा । धर्मरायको मेटो संसा ॥
चौका पान कजाव तुमारा । लोक वेदको काल पसारा ॥
जो कोइ करे जोर बरियाई । तौ हम ताके संग न भाई ॥
कूर्म जबै अस बिनती ठानी । ज्ञानी कैल दोहू मुख मानी ॥
फिरके कैल झांझरी आनो । ज्ञानी कैलको बचन सुनावो ॥

ज्ञानी और कालपुरुषकी वार्ता--चौपाई

बिना शीसके यमकी देही । काल पुरुषको चीन्ह है येही ॥
सत्य कबीरसे बिनय उचारी । सुनिये ज्ञानी अरज हमारी ॥
अपनी देह नाथ मोहि दीजै । ऐसी मोपर दाया कीजै ॥
ताको वचन मानि हम लीना । अपनी देहको कैलको दीना ॥
शीश समेत और बिन माथा । दोनों देह निरंजन साथा ॥
जब चाहे तब शीस देखाई । निज इच्छा पुनि ताहि लोपाई ॥
जो साधू बैराट निरेखे । सो यह कौतुक नैनन दीखे ॥
रूप बिराट शून्यमें निरखे । निजु आगूको लेखा परखे ॥
जब षटमास मरन रहि जावै । काल कबीर कि देह छपावै ॥

अपनी देह देखावै काला । तब साधू जाने जंजाला ॥
बिना शीस जब दरसै देहा । काल पुरुष तब जाने येहा ॥
मरन काल निज साधु निहारी । होहि सचेत लगावै तारी ॥

निरंजन वचन

सोरठा–तुमहुँ करो बखशीश, पुरुष जो दीनो राज मोहि ।
षोडशमें तुम ईश, ज्ञानी पूरुष एक सम ॥

ज्ञानी वचन--चौपाई

ज्ञानी कहै सुनो धर्मराई । जीवनकहँ मैं आन बचाई ॥
पुरुष आज्ञाते मैं चलि आवों । भवसागरते जीव मुक्तावों ॥
पुरुष अवाज टार यहि बारी । तौ मैं तोकहँ देब निकारी ॥

शब्द

अपने नामकी सोंकर गह मैं पाटि डरी हो ।
तना तनतकै बेटवा मारे निधिया गई बौराई ॥
देहरि चढ़िके मेहरि मारे निंई देखो गरुवाई ।
पखा फोरि द्वैचोखा निकसे बीचमें मिलि गई हस्ती॥
सोटा चार कमरमें मारेनि निकर गई अलमस्ती ।
आसन लूटेनि वासन लूटेनि लूटे तिनपाई पौवा ॥
ताल अस मोर सनहक लूटी हांड़ी चलावन डौवा।
हँसियाको बेंट कोदोकै भूसी ईमोर न्यामत लूटी ॥
कहैं कबीर सुनो भाई साधो दुबिधा गै अब छूटी ।

निरंजन वचन--चौपाई

धर्मराय अस बिनती ठानी । मैं सेवक दुतिया नहिं मानी ॥
ज्ञानी बिनती एक हमारा । सो न करो मोर होय बिगारा ॥
पूरुष मोकहँ दीनो राजू । तुमहू देव होय तब काजू ॥
बिनती एक करो हो ताता । दृढ़ करि जान्यौ हमरी बाता ॥

कहा तुमार जीव नहिं मानै । हमरी दिशभै वाद बखानै ॥
मैं दृढ़ फंदा रच्यो बनाई । जामें जीव परा अरुझाई ॥
वेद शास्त्र सुमिरन गुन नाना । पुत्र हैं तीन देव परधाना ॥
देवल देव पखान पुजाई । तीरथ व्रत जप तप मन लाई ॥
यज्ञ होम अरु नियम अचारा । और अनेक फंद हम डारा ॥
जौं ज्ञानी जैहो संसारा । जीव न मानै कहा तुमारा ॥

ज्ञानी वचन--चौपाई

ज्ञानी कहै सुनो धर्मराई । काटो फंद जीव ले जाई ॥
जेतो फंद रची तुम भारी । सत्यशब्द ले सकल बिडारी ॥
जिहि जिवको हम शब्द दृढै हैं । फंद तुम्हार सबै मुक्तैहैं ॥

निरंजन वचन चौपाई

सतयुग त्रेता द्वापर माहीं । तीनों युग जिव थोरे रहिजाही ॥
चौथा युग जब कलऊ आई । तब तुव शरन जीव बहु जाई ॥
ऐसे वचन हारि मोहि दीजै । तब संसार गौन तुम कीजै ॥

ज्ञानी वचन चौपाई

अरे काल परपंच पसारा । तीनो युग जीवन दुख डारा ॥
बिनती तोरि लीन मैं मानी । मोकहँ ठगे काल अभिमानी ॥
चौथा युग जब कलऊ आई । तब हम अपनो अंश पठाई ॥
काल फन्द छूटे नर लोई । सकल सृष्टि परवानिक होई ॥
घर घर देखो बोध बिचारा । सत्य नाम सब ठौर उचारा ॥
पांच हजार पांचसौ पांचा । तब यह बचन होयगा सांचा ॥
कलियुग बीत जाय जब येता । सब जिव परम पुरुषपद चेता ॥

निरंजन वचन चौपाई

ज्ञानी बिनती सुनो हमारी । द्वापर अंत होय जिहि बारी ॥
बौध शरीर धरब हम ज़ाई । जगन्नाथको नाम धराई ॥

राजा इंद्रदौन पहँ जैहैं । मेरो मंदिर सोई उठै हैं ॥
तब समुद्र ढाहनको धावै । मंदिर मेरो तोरि बहावै ॥
कृपा करो तब तुम तहँ जाई । मेरो मन्दिर देहु थपाई ॥
जो हंसा तुमरो गुण गाई । ताके निकट तो हम नहिं जाई॥
जो कछु वर माँग्यो धर्मराया । सो ज्ञानी दीनो करि दाया ॥
धर्मराय उठि शीस नवाई । तब ज्ञानी संसारहि आई ॥

इति

अथ सतयुगमें ज्ञानीजीको मृत्युलोकमें आगमनकथा और सत्य
सुकृत नाम धारण और जक्त जीव तारण--चौपाई

ज्ञानी योगजीत कहलाये । सत्यसुकृत मुनींद्र बतलाये ॥
पुनि अचित मुक्तामणि होई । योग संतायन कहिये सोई ॥
अविनाशी करुणामय जानी । कबीर आदि बहुनाम बखानी ॥
चारों युगके चारों नामा । सतयुग सत्यसुकृत गुणधामा ॥
त्रेतामाँह मुनींद्र नामधर । करुणामय स्वामी कह द्वापर ॥
कलियुगमाहँ कबीर कहाये । हिंदू मुसलमान गुण गाये ॥
सैद अहमद कबीर बखाना । शेख कबीर कहे मुसलमाना ॥
सोई सकल जक्त गुरु पीरा । नाम अनेकन ताके तीरा ॥
देश देशमें नाम है न्यारा । सारे जीव जक्तको तारा ॥
वेद पुराण जासु गुण गावै । नाम अनंत जासु निरतावै ॥
आदिकाल जब सतयुग आया । सत्यसुकृत सो नाम धराया ॥
तीन देवते कीन पुकारा । सो नहिं माने मन हंकारा ॥
प्रथमहिं जब पृथ्वीपर आये । नृप घोघल कह नाम दृढ़ाये ॥
सतगुरु चीन्हि चरण लपटाना । नरनायक लह पद निर्वाना ॥
पुनि सतगुरु मथुरामें आई । खेमसरी तिय तहाँ रहाई ॥
खेमसरी ग्वालिनिहि चितावा । कुल परिवार सहित मुक्तावा ॥

पुनि सत सुकृत लोक सीधारा । पहुँच हंस पुरुष दरबारा ॥
पुरुष दरश सब हंसन पाई । कोटि सोम रवि रोम लजाई ॥
पुरुष स्वरूप भये सब हंसा । बीती सब यमकी भ्रम शंसा ॥
कछु दिन कीने लोक निवासा । बहुरि आय देख्यो निजदासा॥
निशि दिन रहौं गुप्त जगमाहीं । मोकहँ कोइ जिव चीन्हत नाहीं॥
जिहि जीवन परबोध्यौ आई । दीन्हों तिनको लोक पठाई ॥
सत्यलोक हंसनको बासा । सदा वसंत पुरुषके पासा ॥

इति

सतयुगका वृत्तान्त

अथ त्रेतायुगमें सतसुकृतजीको पृथ्वीमें आगमनकथा और मुनींद्रनाम धारण और जक्त जीवतारण

सत्तकबीर वचन--चौपाई

सतयुग गत है त्रेता आवा । नाम मुनींद्र जीव मुक्तावा ॥
जब आयो जीवन उपदेशा । धर्मराय उर हुआ अँदेशा ॥
इन भवसागर मोर उजारा । जिव ले जाय पुरुष दरबारा॥
कितनो छल बल करो उपाई । ज्ञानी डर मोर नाहिं डेराई ॥
पुरुष प्रताप ज्ञानीके पासा । ताते मोर न लागे फाँसा ॥
इनते काल बसावै नाहीं । नाम प्रताप जीव घर जाहीं ॥

छंद–सतनामके परताप धर्मन हंस निज घरको चले ॥
जिमि देखि केहरि त्रास गज हो कंपिके धरनी रले ॥
पुरुष नाम प्रताप केहरि काल गज सो जानिहै ॥
नाम गहि इसलोक पहुँचे बहुरि भव नाहिं आनिहै ॥

सोरठा–सतगुरु शब्द समाय, गुरु आज्ञा निरखत रहै ।
रहै नाम लौ लाय, कर्म भर्म ममता तजे ॥

चौपाई

त्रेतायुग तबही पग धारा । मृत्युलोक कीनो पैसारा ॥

जीव अनेकन पूछेहु जाई । यमसे को तोहि लेय छोड़ाई ॥
कहै कर्म वश जिव अज्ञाना । हमरे कर्ता पुरुष है ध्याना ॥
विष्णु सदा हमरे रखवारा । यमसे मोहि छोडावनहारा ॥
कोई महेश कि आसा लावै । कोइ चंडी देवीको गावै ॥
कहा करो जिव भयो बिगाना । खसम छोड़िकर जार बिकाना ॥
भरम कोठरी सब जग डारा । धोखा दे यम जीवन मारा ॥

साखी सोई काल सोई है करता, भक्ति मुक्ति तिहि हाथ ।
हमरो कहा न आदरे, मन यम जिवके साथ ॥
परपंची निरंजन, मन सोई ओंकार ।
फंदे तीनों लोक सब, कोई न पावै पार ॥

चौपाई

सत्यपुरुषको आयसु पावो । कालहि मेटि छोरि जिव ल्यावो ॥
जोर करो तो वचन नशाई । सहज जीवन लेहु चेताई ॥
जो ग्रासै जिव सेवै ताही । अनचीन्हे यमके मुख जाही ॥
चहुँदिशि फिर आयौ गढलंका । जहँवाँ रावण बसै निशंका ॥
भाट विचित्र पर्‌यौ गुरुचरना । पायौ अमर धाम गहि शरना ॥
मंदोदरी प्रेममें पागी । सतगुरुके सो चरनन लागी ॥
रानीको दीनो गुरुदिच्छा । पूरन भई तासुकी इच्छा ॥
पुनि आयौ रावण दरबारा । जहाँ पौरिया रह रखवारा ॥
कह्यौ पौरियाते तब जाई । रावणको मम पांह बोलाई ॥
जबहि पौरिया खबरि जनाई । सिद्ध एक प्रभु तुमहिं बोलाई ॥
सुनि प्रभु क्रोधकीन तेहि बारा । तैं मतिहीन आहि प्रतिहारा ॥
शिवसुत मोर दरश नहिं पावै । भिक्षुक मोकहँ कहा बोलावै ॥
यह मत ज्ञान हर्‌यौकिन तोरा । जो तू मोहि बोलावन दोरा ॥

हे प्रतिहार सुनो यह बानी । सिद्धरूप तुम कहो बखानी ॥
कौन बरन अरु कौन है भेखा । मोसन कहो दृष्टि जो देखा ॥
अहो राव तिहि श्वेत स्वरूपा । श्वेतहि माला तिलक अनूपा ॥
शशिसमान तिहि रूप बिराजा । श्वेतबरन सब श्वेतहि साजा ॥
मंदोदरि कह सुन रावण राजा । यह तो रूप पुरुषको साजा ॥
बेगिहि आय गहो तुम पाईं । तौ तुव राज अटल ह्वै जाईं ॥
छोड़िहो अपनो मान बड़ाई । गहो चरण तिहि शीस नवाई ॥
रावण सुनत क्रोध अति कीना । जरत हुताशन जनु घृत दीना ॥
रावण चलो अस्त्र गहि हाथा । तुरत जाय तिहि काटो माथा ॥
मारो ताहि शीस खसि परई । देखो भिक्षुक कहा मोर करई ॥
जहँ मुनींद्र तहँ रावण आई । सत्तर बार तरवार चलाई ॥
लै मुनींद्र यक तृणको ओटा । अतिबल रावण मार्‍यो चोटा ॥
रावण अस्त्र अफल जब भयऊ । तब खिसियायके सो रहि गयऊ ॥
तृण मुनींद्र लीने यहि भावन । बल तुमार देखो नृप रावण ॥
काटे जो तृण कटै न तेरे । कौन भाँति शिर खंडै मेरे ॥
मन्दोदरी कहै समुझाई । हे नृप सतगुरुको गहु पाई ॥
रावण कहे सहित अभिमाना । सेवों शिव नहिं जानों आना ॥
जाने अटल राज मोहिं दीना । ताहि दंडवत पलपल कीना ॥
ऐसो वचन मुनींद्र पुकारी । हो रावण तुम गर्व प्रहारी ॥
भेद हमारा तुम नहिं जानी । बचन एक तोहि कहौं बखानी ॥
रामचंद्र तोहि मारैं आई । मांस तुम्हार स्वान नहिं खाई ॥
रावणको कीनो अपमाना । औध नग्र कह कीन पयाना ॥
मारगमाहँ चलो जब जाई । मधुकर विप्र मिला तब आई ॥
सो मुनींद्रके चरनन परेऊ । अतिसै प्रेम मोद मन भरेऊ ॥
तापर सतगुरु कीनी दाया । सहित कुटुम निजलोक पठाया ॥

रामचन्द्र वन भये दुखारी । तबहिं मुनींद्र तहाँ पग धारी ॥
योग युक्ति रघुपतिहि दृढ़ाई । बहुबिधि ताकहँ शांति धराई ॥
जब मुनींद्रजी दाया कीने । सेत बांधि लंका पग दीने ॥
मन संशय कीने हनुमाना । सतगुरु कृपा लह्यो दृढ़ ज्ञाना॥
गरुड़ जो परम प्रेमते ध्याये । परम हंसकी पदवी पाये ॥
यहि बिधि केते जीव चेताई । तब मुनींद्र निज लोक सिधाई॥
पहुँचे हंस पुरुष दरबारा । दरस पाय दुख हंस बिदारा ॥
कछुक दिवसजबयहिबिधि बीते । त्रेता गत द्वापर तब थीते ॥

इति त्रेतायुगवृत्तान्त

अथ द्वापर युगमें मुनींद्रजीको पृथ्वीमें आगमन कथा और करुणामय स्वामी नामधारन और जक्तजीव तारन--चौपाई

पुरुष अवाज भई तेहि बारा । ज्ञानी बेगि जाहु संसारा ॥
परम पुरुष कह शीस नवाई । महि मंडल मुनींद्र चलि आई॥
जो प्रभु आहि नाम अरु नामी । द्वापर कह करुनामय स्वामी ॥
प्रथमहि जब भूलोक सिधारे । गढ गिरनार तहां पग धारे ॥
चंद्रबिजय नृप नाम बखानी । गढ गिरनार तासु रजधानी ॥
परम भक्ति मय ताकी रानी । इंद्रमती तेहि नाम बखानी ॥
साधुसे परम प्रीति सो धारे । नित साधुनकी बाट निहारे ॥
साधुको जहँ कहुँ आवत हेरे । नित्त आपने ढिग सो टेरे ॥
परम प्रीतिसे सेवा धारे । तन मन धन साधुनपर वारे ॥
तासु प्रीतिकी रीति बिचारी । करुनामय स्वामी पग धारी ॥
जात चले तेहि मारग माहीं । रानीको मंदिर रह जाहीं ॥
देखे रानी चढ़ी अटारी । साधु जानि हरषित भइ भारी॥
त्वरित पठायो तहँ निज चेरी । बेगि साधुको आनहु टेरी ॥
वृषली चलि हमकहँ शिर नावा । रानीको संदेश सुनावा ॥

महाराज दाया चित दीजै । भूपति भौन गौन अब कीजै ॥
करुणामय स्वामी कह ताहीं । हम नहिं भूपतिके गृह जाहीं ॥
राज काज है मान बड़ाई । हमैं साध ना नृप घर जाई ॥
पुनि वृषली रानी ढिग आवो । साधु न आवै मोर बोलावो ॥
यह सुनि इंद्रमती उठि धाई । करुनामयके पद शिर नाई ॥
मोपर दाया कीजै नाथा । मो गृह चलिये करो सनाथा ॥
रानीकी लखि प्रीति अपारा । करुणामय तिहि भौन सिधारा॥
ताके भौन जबहि पग दीनो । चरण धोय चरनोदक लीनो ॥
रानी चरनामृत करि पाना । बहुतभांति कीने सनमाना ॥
कीन सेव भल हिय हर्षाई । पीछे ज्ञान सुननको आई ॥
सुनि गुरुज्ञान प्रीति अति बाढ़ी । चरनन लागि प्रेममें गाढ़ी ॥
नाथ मोहि गुरुदीक्षा दीजै । अपनी शरन माहिं अबलीजै ॥
रानीको गुरुदीक्षा दीना । राजा चंद्रबिजय नहिं लीना ॥
रानीको निज लोक पठाया । सो सतगुरुसे बिनय सुनाया ॥
हे प्रभु नृपको करो उबारा । यद्यपि वह नहिं शिष्य तुमारा॥
भावभक्ति रानीके काजा । सतगुरु कृपा तरो सो राजा ॥
यहिबिधिजिनजिनगृहगुरुज्ञाना । सो सब सत्यलोक कर थाना ॥
हंसनको सतलोक ले जाई । तहाँ आप कछु काल बिताई ॥

इति द्वापर युग

अथ कलियुगमें करुणामय स्वामीको पृथ्वीमें आगमन कथा
और सत्य कबीर और सैयद अहमद कबीर शेख कबीर
नामधारण और जग जीव तारण--चौपाई

द्वापर जगको अंत जो पाया । पुरुष बचन तब टेरि सुनाया ॥
ज्ञानी बेगि जाहु मर्त्य लोका । नाश करो जीवनको शोका ॥
सत्य पुरुषको करो प्रणामा । तब ज्ञानी पहुँचे नर धामा ॥

प्रथमहि मृत्युलोक जब आये । कलियुग नाम कबीर कहाये ॥
हिंदू मुसलमान गुरुपीरा । मिश्रित नाम कहाव कबीरा ॥
प्रथमहि प्रकट भये चलि काशी । तहाँ आपनो ज्ञान प्रकाशी ॥
नग्रमें जबहिं धरे निज पाई । श्वपच सुदर्शन तहाँ रहाई ॥
ताने सतगुरुको पहिचाना । चरनन लागि गह्यो दृढ़ ज्ञाना ॥
जब सतगुरुकी दीक्षा पाई । करे भक्ति सो मन चित लाई ॥
श्वपच करे भक्ती मन लाई । मात पिता देखै हर्षाई ॥
भक्ति पुत्र लखि हरषित होई । सतगुरु दीक्षा लियो न दोई ॥
ताही काल कृष्ण औतारा । अरु कौरौ पाँडव तन धारा ॥
सत्य कबीर कृष्णसंवादा । ज्ञानगुष्टि तहँ बहु कथि बादा ॥
कृष्णहि बहु विधि ज्ञान दृढाई । क्षर अक्षरके पार लखाई ॥
सत्य कबीर ज्ञान गंभीरा । कथे सकल सुर नर मुनितीरा ॥
ताही समय युधिष्ठिर राजा । ताने कीन यज्ञको साजा ॥
बंधु मारि अपकीरति कीना । ताते यज्ञ रचन चित दीना ॥
कृष्णकेरि जब आज्ञा पाई । तब पांडौ सब साज मँगाई ॥
यज्ञ कि सामिग्री गहि सारी । जहँ तहँते सब साधु हँकारी ॥
पांडौ प्रति बोले यदुपाला । पूरन यज्ञ जान तिहि काला ॥
घंट अकास बजत सुनि आवो । यज्ञको तब पूरन फल पावो ॥
जुरे तहाँ कोटिन ऋषि राजा । साधू ब्राह्मण सहित समाजा ॥
भोजन विविध प्रकार बनाई । परम प्रीतिसे सबहि जेंवाई ॥
भोजन कीन सकल ऋषिराई । बजा न घंट भूप भ्रम आई ॥
पांडौ तबहि कृष्णपहँ गयऊ । मन संशय करि पूछत भयऊ ॥
करिके कृपा कहो यदुराजा । कारन कौन घंट नहिं बाजा ॥
सो अस कारण तासु बताई । साधू नहिं कोइ भोजन पाई ॥
चक्रत है तब पांडौ कहेऊ । कोटिन साधू भोजन लहेऊ ॥

अब कहँ साधु पाइये नाथा । तब तिनते बोले यदुनाथा ॥
श्वपच सुदर्शनको ले आवो । आदर मान समेत जेंवावो ॥
सोई साधु और नहिं कोई । पूरन यज्ञ जाहिते होई ॥
कृष्णकी जब अस आज्ञा पाई । तब पांडौ ताके ढिग जाई ॥
श्वपच सुदर्शनको ले आई । बिनय प्रीतिसे ताहि जेंवाई ॥
भूप भौन भोजन कर जबही । बजा अकाशमें घंटा तबही ॥
काल कछुक जब गयौ सिराई । तब देहांत श्वपचको आई ॥
तन तजके तब सो चलि जाई । सतगुरु तिहि निजलोक पठाई ॥
ताही समय कृष्ण तज देही । बोधरूप धारचो तब येही ॥
नाम जो इन्द्रदौन तेहि काला । देश उडैसेको महिपाला ॥
तन तजि कृष्ण तहां चलि जाई । इन्द्रदौन कहँ स्वप्न देखाई ॥
स्वप्नमें अस हरि ताहि बताई । मेरो मंदिर देहु उठाई ॥
भूपतिसे जब ऐसे कहेऊ । सो मंदिरकी रचना गहेऊ ॥
रामचंद्र गहि निज दल भीरा । गये जबहिं वारिधिके तीरा ॥
बांध्यौ सेत बंध बरियाई । तेहि कारन सागर दुख पाई ॥
जो बलवान अबल दुख देई । बदला अवशि भरैंगे तेई ॥
नीति निरंजनकी यह जाना । स्वसमवेदमें प्रथम बखाना ॥
बदला पूर्व लेन तिहि बारा । छोभित सिन्धु उठा खरधारा ॥
जब रचि मंदिर लाग उठावा । क्रोधवंत सागर तब धावा ॥
छनमें धाय सकल सो बोरे । जगन्नाथको मंदिर तोरे ॥
हारा नृप करि जतन उपाई । हरि मंदिर तहँ उठै न पाई ॥

सत्यकबीर वचन--चौपाई

मंदिरकी यह दशा बिचारी । बर पूरब मनमाहँ सँभारी ॥
तब हम चले उड़ैसे माहीं । इन्द्रदौन भूपतिके पाहीं ॥
मन्दिर षट परकार बनाई । उदधि नीर तेहि लीन बुडाई ॥
पीछे उदधि तीर हम जाई । जायके चौरा तहाँ बनाई ॥

इन्द्रदौनकहँ वचन सुनावो । अहो राव तुम काम लगावो ॥
मण्डप शंक न राखो राजा । इहवाँ हम आये यहि काजा ॥
जाहु बेगि जनि लावहु बारा । निश्चय मानो वचन हमारा ॥
राजा मण्डप काम लगाई । मण्डप देखि उदधि तब धाई ॥
सागर लहरि उठै बिकरारा । आवै लहरि क्रोध चित धारा ॥
उदधि उमङ्ग क्रोध अति आई । लहरि आनि चौरा नियराई ॥
दरस हमार उदधि तब पाई । अतिभय मान रहा ठहराई ॥

समुद्र वचन

छन्द—रूप धार्‍यो विप्रको तब उदधि हमपै आइया ।
चरन गहिके माथ नायो मरम हम नहिं पाइया ॥
जगन्नाथके भोर स्वामी ताने हम इत आइया ।
अपराध मेरो क्षमा कीजै मरम अब हमपाइया ॥
सोरठा—तुम प्रभु दीन दयाल, रघुपति ओल दिवाइये ।
वचन करो प्रतिपाल, कर जोरे बिनती करों ॥

चौपाई

कीनो गौन लंक रघुवीरा । उदधि बांधि उतरे रन धीरा ॥
जो कोइ करे जोर बरियाई । अलखरूप तिहि ओल दिवाई ॥
मोपर दया करो तुम स्वामी । लेव ओल उर अंतर्यामी ॥

कबीर वचन—चौपाई

ओल तुमार उदधि हम चीन्हा । बोरे नग्र द्वारिका दीना ॥

उदधि वचन

यह सुनि उदधि धर्‍यो तब पाई । चरन टेकि तब चल हरषाई ॥
उदधि लहरि उमँगी तब धाई । बोर्‍यो नग्र द्वारिका जाई ॥
मंदिर काम पूर तब भयऊ । हरिको थापन तहवाँ कियऊ ॥

कृष्ण वचन—चौपाई

तब पंडन हरि स्वप्न जनायो । सत्य कबीर मोहिंपै आयो ॥

आसन सागर तीर बनाई । दरस कबीर उदधि उठि जाई॥
यहि विधि मंदिर मोर थपाई । कलियुगमें एक धाम बसाई ॥

पंडा वचन--चौपाई

पंडा उदधि तीर तब जाई । करि असनान मंडपहि जाई ॥
पंडा मन अस पाखण्ड लाई । प्रथमहि दरस मलेच्छ देखाई॥
हरिको दरसन हम नहिं पाई । पहिले हम चौरा गनि आई ॥
तब हम कौतुक एक बनाई । पूजन मंडप पंडा जाई ॥
तहवाँ एक चरित्र रहाई । लखि पंडा चकृत ह्वै जाई ॥
जहँ लगि सूरत मंदिर माहीं । भये कबीर रूप धरि ताहीं ॥
हरि मूरति कहँ पंडा देखा । भये कबीर रूप धरि भेखा ॥
अछत पुष्प लै विप्र भुलाई । नहिं ठाकुरको पूजन पाई ॥
देखि चरित्र विप्र शिर नावा । हम स्वामी तुम मर्म न पावा॥
तुमकहँ देखि हीन मन लाई । ताते मोहि चरित्र देखाई ॥
छमा अपराध करो प्रभु मोरे । बिनती करौं दोउ कर जोरे ॥
छन्द—बचन एक मैं कह्यौं ताते विप्र सुन तैं कान दे ।
पूज ठाकुर दीन आयसु दुबिधा मनकी छाड़ दे ॥
भ्रांति भोजन करे जो जिव आगहीनो तासुको ।
करे भोजन छूति राखे शीश उलटै जासुको ॥

चौपाई

पंडौ मनमें मान्यौ हीना । ताते यह चरित्र गुरु कीना ॥
जगन्नाथकी छूति उठाई । बर्न विबेक न तहाँ रहाई ॥
सबहि जाति हरि भोग लगावैं । यकठे बैठके भोजन पावैं ॥
कछु नहिं छूति रही तिहि ठामा । सर्वजाति यकमय हरिधामा ॥
आचारिनि बहु कीन विचारा । जगन्नाथ है चलै अचारा ॥
तिनको तहँ आचार न चाले । सत्य कबीर वचन को टाले ॥

इमि गुरु हरि मंदिर थपवाई । पूरब कथा बहुरि अब आई ॥
श्वपच सुदर्शन तन तजि गयऊ । लोकजाय गुरु बिनती कियऊ॥
हे सतगुरु अस दाया कीजै । मेरे मातु पिता गति दीजै ॥
श्वपचके मातु पिता जो रहेऊ । पूर्वदेह गुरु ज्ञान न कहेऊ ॥
ताते बहुरि देह सो धारी । द्विजकुलमें प्रकटे नर नारी ॥
पुत्रकि भक्ति प्रतापते सोई । श्वपच देह तजिके द्विज होई ॥
कुलपति नाम पिताको रहेऊ । श्रिया नाम माताको कहेऊ ॥
चन्दवार तेहि नग्रको नाँऊ । नारी पुरुष बसैं तेहि ठाँऊ ॥
जब दोनों द्विज कुल तन पाई । नरहरि लछमना नाम धराई ॥
जगन्नाथ के योग पग धारे । सत्य कबीर चले चँदवारे ॥
दोऊ जीव तारनके काजा । चंदवार गुरु आनि बिराजा ॥

### सत्यकबीर वचन--चौपाई

जगन्नाथसे जब पग धारे । तबहि आनि पहुँचे चँदवारे ॥
बालक रूप धर्यो तिहि ठामा । कीनेहु तालमाहिं विश्रामा ॥
कमल पत्र पर आसन लाई । आठ पहर हम तहाँ रहाई ॥
नरहरि नारि लछमना जोई । तालके ऊपर पहुँची सोई ॥
पुत्र हेत सों आस लगाई । करि असनान बिनय रविराई॥
अञ्चल ले बिनवै कर जोरी । सुन्दर पुत्रहेत चित दौरी ॥
ततछन हम अंचल पर आवा । हमकहँ देखि नारि हरषावा ॥
बालरूप ह्वै भेंट्यो ओही । विप्र नारि यह ले गई मोही ॥
बहुत द्यौस तिहि संग रहाऊ । नारि पुरुष मिलि सेवा लाऊ॥
जब हम उठे पलँग झटकोरा । सुवरन मिलै तिन्हें यक तोरा॥
तिनके हृदय न शब्द समाई । बालक जानि प्रतीत न आई॥
ताहि देह नहिं चीन्हो मोही । भयो गुप्त तबही तन ओही ॥
नरतिय जब दोनों तन त्यागे । जन्म लीन जोलहा ह्वै जागे ॥

नीरू नीमा जोलह जोलाही । काशी नग्र बसैं दोउ ताही ॥
ताही नग्र कबीर तलाई । कमल पुष्प तामें रह छाई ॥
बालक रूप तहाँ हम लीने । कमल पुष्प पर आसन कीने ॥
तहँ बारह बालक पौढाऊ । करे कुतूहल बाल सुभाऊ ॥
तिहि औसरमें नीरू जोलाहा । नारि गौन सँग ल्यावै ताहा ॥
तृषावंत जब भै सो नारी । तालपै जल अँचवन पग धारी॥
नीमा दृष्टि बाल पर परेऊ । देखत दरश मोद मन भरेऊ ॥
जिमि रवि दरश पद्म विकशाना । धाय धरयो धन रंक समाना ॥
तब सो बालक लियो उठाई । ले बालक नीरूपहँ आई ॥
क्रोधवन्त जोलहा तब भैऊ । नीमासे तब ऐसे कहेऊ ॥
काको बालक तैं लै आई । नग्रमें मेरी होय हँसाई ॥
नग्रके लोग हँसैंगे मोही । गौनहि तिय बालक सँग जोही॥
जोलहा रोष कीन तिहि बारी । बेगि देहु तुम बालक डारी ॥
हर्ष गुना बनि नारी लाई । तब हम तासे बचन सुनाई ॥

बाल वचन

छन्द--सुनहु बचन हमार नीमा तोहि कहों समुझायके ।
पिछली प्रीतिके कारने तोहि दरस दीनो आयके ॥
आपने गृह लै चलो मोहि चीन्हिके जौं गुरू करो ।
देहुँ नाम दृढ़ाय तुमको फंद यमके नहिं परो ॥

सोरठा—सुनत बचन अस नारि, नीरू त्रास न राखेऊ ।
ले गई नग्र मझार, काशी नगर पहूँचेऊ ॥

चौपाई

लै बालक जब घरको गैऊ । नग्र लोग सब देखत भैऊ ॥
नग्र नारि नर हाँसी लाई । नारि गौन सँग बालक ल्याई ॥
जोलहा सुनि सुनि लाजित होई । बाल वृतांत कहै सब सोई ॥

यह बालक तलावमें पाई । नीमा देखि ताहि लै आई ॥
कमलपुष्प शिशु सेज बनाई । हरषित नारि सो लियौ उठाई ॥
जोलहा यद्यपि कथा प्रकासी । तऊ लोग सब करते हाँसी ॥
बहुत द्यौस तिहि भौन रहाऊ । जोलहा जाने बालक भाऊ ॥
बालक रूप तासु ग्रह रहते । खानपान तहँ नहिं कछु गहते ॥
बिन भोजन तन छबि सरसाई । दिन दिन देहकी दीरघताई ॥
जोलहा पुनि पंडितन बोलाये । बालक नाम धरनको आये ॥
पंडित करन जो लगे बिचारा । तब शिशु निजमुख बचन उचारा ॥
नाम कबीर हमारा अहई । और नाम जनि पंडित कहई ॥
यह सुनिके सब चकृत भैऊ । शिशु निजुनाम आपते कहेऊ ॥
कोइ कहै यह दानौ देवा । कोई कहै यह अलख अभेवा ॥
कोई ईश्वर अंश बतावा । कोइ कह आप देह धरि आवा ॥
पंडित निज निज भौन सिधारा । बिन भोजन बीते बहु बारा ॥
जोलहा तब मनमें दुख पाई । भोजन करो कबीर गोसांई ॥
जोलह जोलाही दुखित निहारी । तब हम तिनते बचन उचारी ॥
कोरी यक बछिया ले आवो । कोरा भांडा एक मँगावो ॥
ततछन सो जोलहा चलि जाई । गऊ कि बछिया कोरी ल्याई ॥
कोरा भांडा एक गहाई । भांडा बछिया शीघ्रही आई ॥
दोऊ कबीरके सम्मुख आना । बछिया दिशादृष्टि निज ताना ॥
बछिया हेठ सो भांडा धरेऊ । ताके थनहि दूधते भरेऊ ॥
दूध हमारे आगे धरही । यहिबिधि खानपान नित करही ॥
तबसे जोलहा डरै बहूता । हमरे घर है अचरज पूता ॥
केते दिन यहि विधि चलिगेऊ । संग बालकन खेलत भैऊ ॥
कथै बालकन प्रति विज्ञाना । सो जड़वत नहिं कछु पहिचाना ॥
तब साधुन सँग गोष्ठि कराही । अगम ज्ञान कथ तिनके पाही ॥

सुनि साधुन मन अचरज होई । यह तो सिद्ध पुरुष है कोई ॥
सब जोलहा मिलके यक बारा । नीरू ते अस बचन उचारा ॥
बालककी सुन्नत करवावो । तिहि कारन सब साज मँगावो ॥
ताहि काल अस कथा कहाई । नाई सुन्नतको बोलवाई ॥
तब नाई कबीर ढिग आया । ले अस्तुरा निकट नियराया ॥
पांच इंद्री ताको दिखलावो । काटि लेहु जो तोहि मनभावो ॥
यह लखि भभरिके नाई भागा । सुन्नत नहीं कीन डर लागा ॥
पुनि जोलहन अस कौतुक कीना । तब बोलाय काजीको लीना ॥
एक गाय तिहि काल मँगाई । काजी ताको जबह कराई ॥
जिहि औसर अस कौतुक ठाना । सत्यकबीर मरम सब जाना ॥
खेलत रहे बालकन माहीं । तेहि छन धायके पहुँचे ताहीं ॥
गऊ घात जब देखत भैऊ । दया धारि काजीते कहेऊ ॥
बहुबिधि काजीको समुझाई । महापाप जिव घात बताई ॥
काजी लज्जित है शिर नायौ । बिनती करै न उत्तर आयौ ॥
तबहि कबीर गऊ ढिग जाई । मरी गाय तिहि काल जिवाई ॥
तब जोलहा गृह तजे कबीरा । अब नहिं रहौं तुमारे तीरा ॥
बिकल भये तब नीमा नीरू । नग्र चहूँ दिश बालक हेरू ॥
ढूँढत सुत न लह्यौ नर नारी । रुदन बिलाप करैं दोउ भारी ॥
विकल विलोकि दया उर आई । तब कबीर तेहि दियो देखाई ॥
नीरू नीमा बिनती करही । प्रभु हमरे गृह पुनि पग धरही ॥
तब हम तिनते बचन उचारी । ऐसो पाप कीन तुम भारी ॥
तब जोलहा बोलै शिर नाई । नहिं यह पाप मेरी समताई ॥
मिल जोलहन कीनी बरियाई । ताकी खबर न मैं कछु पाई ॥
तापर कृपा बहुरिकै कीना । पुनि ताके गृहमें पग दीना ॥
बाल चरित्र है विविधि विधाना । सो संकेत न होय बखाना ॥

चरचा जग अनेक परचारा । कछुक सो लिखौं होय विस्तारा ॥
रामानंद गुरू जिमि गहेऊ । वेद मते प्रथमै सो कहेऊ ॥
केते द्योस जोलहा गृह बासा । अजौं न ता हिय ज्ञान प्रकासा ॥
बार बार तेहि नाम दृढ़ाई । तिनको नहिं प्रतीत गुरु आई ॥
बालक जानि न गुरुपद गहेऊ । ताते परमधाम नहिं लहेऊ ॥
जोलहाकी जब आयु पुराई । मथुरा नग्र देह घर जाई ॥
सकल कथा मैं कीन प्रकाशा । जिमि गुरुकर जोलहा गृहवासा ॥
श्वपचके मातु पिता जो रहेऊ । श्रीपा कुलपति नाम सो कहेऊ ॥
बहुरि लछमना नरहर सोई । नीमा नीरू सोई होई ॥
तिन दुहुँके तारणके काजा । जोलहा गुरु गृह आनि बिराजा ॥
गर्भवास कबहुँ नहिं आवै । निज इच्छा नर तन दरसावै ॥
हिंदू मुसलमान नहिं सोई । बाल बृद्ध अरु युवा न होई ॥
दाया करै देह नर धरही । जीव अनंत कोटि ले तरही ॥
जरा मरण कबहूँ नहिं ताही । सदा समान एकरस आही ॥
सो बृतांत अब करो बखाना । जिमि कबीर काशी कथ ज्ञाना ॥
षट दरसन झगरनको आवै । अगम ज्ञान सबको समुझावै ॥
सत्यपथको कीन प्रचारा । हिंसा कर्म निंद निरधारा ॥
तीरथ व्रत अरु मूरति पूजा । जीव हनै ईश्वर कथ दूजा ॥
जीवघात करिहै जो कोई । वासा तासु नरकमें होई ॥
पाहन को पूजै पाखंडी । गल काटै जो सम्मुख चंडी ॥
बकरा मुरगा जबह जो करही । बिस्मिल्लह कहि धर्म उचरही ॥
सो सब पापकर्म बतलाये । हिंदू तुर्क सुनत दुख पाये ॥
बैरभाव दोनों कुल धरहीं । सत्यकबीर टेक नहिं टरहीं ॥
मिलि विप्रन अस युक्ति बनाई । किमि कबीरकी दुरमत जाई ॥
ऐसी गोष्ठि सबन मिलि ठाना । करि प्रपंच अस कीन बहाना ॥

जहाँ तहाँ बहु विप्र सिधारा । सत्यकबीर केर भंडारा ॥
निवता दियो चहूँ दिश जाई । साधुनकी जमाति चलिआई ॥
भीर भई साधुनकी भारी । गृह तजि सत्यकबीर सिधारी ॥
आयके विष्णु भये भंडारी । साधुनको आदर कर भारी ॥
पोषन भरना विष्णुको कर्मा । आयके गहि लीनों निजधर्मा ॥
सत्य कबीर कर्मते न्यारा । मायाको सब खेल पसारा ॥
माया सदा जासुकी दासी । सकै कौन करि ताकी हाँसी ॥
सब साधुनको हरि सनमाने । विप्र सकल देखत खिसियाने ॥
मर्म न कोई लख्यो तिहि बारा । धन्य कबीर धन्य भंडारा ॥

दोहा–काशी कुटी कबीरपर, भई साधुनकी भीर ।
जो कछु किया सो हरि किया, होय कबीर कबीर ॥

चौपाई

आदर भोजन दछिना पाई । धन्य धन्य कहि साधु सिधाई॥
काजी पंडित करें बिचारा । जाय कबीर कौन विधि मारा ॥
काशीमें तेहि काल बताई । शाह सिकन्दर पहुँचा आई ॥

इति

ग्रंथनिरंभयज्ञान--सत्यकबीर वचन

साखी–कलिमहँ काशी प्रकट्यौ, सुनो सन्त धर्मदास ।
सत्य पंथ परचारेऊ, निंदक भये उदास ॥
शाह शिकंदरके तन, भयो ज्वाल उतपान ।
दुखव्याकुल अति विकलतन, काशी पहुँचा आन ॥

चौपाई

पूछै शाह ऐसा कोइ भाई । जाते मेरो कष्ट दुराई ॥

साखी–काजी पंडित मिलिके, कहा शाहसे जाय ।
है कबीर दरवेश यक, ताको लेहु बुलाय ॥

चौपाई

कहैं शाह तेहि तुरत ले आवो । साइत एक विलंब न लावो ॥

साखी-आये धायके लोग बहु, आतुर बोले बैन ।
चलो कबीरा शाहपै, हम आये तोहिं लैन ॥

चौपाई

गये शाहके सन्मुख जबही । ज्वाला देह दूर भइ तबही ॥
उठिके शाह भयो तब ठाढा । मोहिते अधिक प्रेम तब बाढा ॥

साखी-शाह न छोडे हमकहँ, बढ्यो प्रेम मनमाहिं ।
शेखतकी तेहि पीर थे, सो मुरझे मनमाहिं ॥

चौपाई

कहैं तकी सुन शाह सिकंदर । हमते कियो तफाउत अंतर ॥
जोलहाते तुम कीनेहु यारी । हमते अन्तर कियौ विगारी ॥
कह सिकंदर तुम हमरे पीरा । वह द्रदमंद द्रवेश फकीरा ॥
कहैं मारफत राहकी बाते । राखा जान जो मेरा जाते ॥
ऐसे शाह कह्यो समुझाई । तबहुँ न शेखतकी शरमाई ॥
काशीके पंडित अरु काजी । शेखतकी मिली परपँच साजी ॥
कह काजी सुनु शाहके पीरा । कैसेहु मारा जाय कबीरा ॥
यह जोलहा जौं मारा जाई । तौ हम सबकी टरै बलाई ॥
कहै तकी सुन पंडित काजी । क्या कबीर जोलहा है पाजी ॥
चाहो तो आतशमें जारो । चाहो टूक टूक करि डारो ॥
चाहो जलके बीच डुबाओ । चाहो देगमें आँच दिलावो ॥
चाहो हाथीसे चिरवाओ । चाहो खाक त्वचा भरवावो ॥
चाहो तो देवालमें साटो । चाहो बोटी बोटी काटो ॥
चाहो मोहडे तोप उडावो । चाहो कूपमें जिअत दबाओ ॥

साखी-मेरा नाम शेख तकी, मैं सिकंदरको पीर ।
देखो कैसे बाचिहै, कैसा फकर कबीर ॥

काजी पंडित सब हरषाना । जिमि पंकज विकसे लखि भाना ॥
कह काजी तुमते सब होई । तुम ऐसा दूजा नहिं कोई ॥
इस जोलहेने कुफुर मचाया । दोनों दीनकी अदल मिटाया ॥

साखी-तीरथ व्रत एकादशी, रोजा और नमाज ।
ये सब कछू न मानई, कहै एक शिरताज ॥
खसी वो मुरगी गायनी, पीर निमित हम देह ।
सबको कहै कसाइ है, ऐसा काफिर येह ॥

चौपाई

काशीके लोग हमैं नहिं मानैं । जोलहाकी सब सिफत बखानैं ॥

साखी-भाग हमारे शेखजी, तुम इहँ पहुँचे आय ।
जौं यह जोलहा मारहू, सबको कंटक जाय ॥
कहै तकी सुन काजी, हमते बाढी रार ।
जीअत कबहुँ छोडो, न अब याहि डारो मार ॥
शेखतकी परपंच करि, गये शाहके पाहँ ।
हमें देख तहँ बैठे, अधिक जरे मनमाहँ ॥
कहै तकी चित रोष धरि, सुनो सिकन्दर बात ।
कहा हमारा मानहू, तब होवै कुशलात ॥

सोरठा-याहि जोलहै तू मार, नहीं तो देगा बददुआ ।
तुमको करों खुवार, जान माल सब गलैगा ॥

साखी-कहै सिकन्दर पीर सुन, मोहि तुमारि पनाह ।
जो चाहो सो करो याहि, तुमें कोइ रोकै नाह ॥

चौपाई

कहो कबीरके मारन ताँई । इहवां मेरी कछु न बसाई ॥
पीर फकीर जात अल्लाहा । मेरो जोर न पहुँचे ताहा ॥

साखी–जौं वह होतो रैअत, तौ हम करते जोर ।
वह अलमस्त फकीर है, तहाँ न फाबै मोर ॥
तुमहु कही समुझायके, पीर फकीर अल्लाह ।
अब तुम कहते मारने, यह न होय हमपाह ॥

चौपाई

अहो पीरजी तुम वह एका । अपने मनमें करो विवेका ॥
उन तुमरो कछु नाहिं बिगारा । काहे तुमने कुफुर पसारा ॥
बुजरुग सब नेकी फरमावै । जोर जुलुम कछु नाहीं भावै ॥
साखी–कहा हमारा मानिये, छोडि दीजिये रार ।
कुलह सुलह दे बैठिये, अल्लह ओर निहार ॥
कहै तकी सुलतान सुन, तुमे नहीं कछु दोष ।
जो मैं कहों सो मानिये, कर मेरो संतोष ॥
कहै सिकंदर पीर सुन, मेरो शिर बरु लेहु ।
फकिर कबीर न मारिये, यह मांगे मोहि देहु ॥

चौपाई

सुनतहि तकी क्रोध परजारा । शिरते ताज जमीन दे मारा ॥
निपटहि बिकल देखि तिहि भाई । तब हम शाहसे कहा बुझाई ॥
कहै कबीर सुनो सुलताना । करो पीरको बचन प्रमाना ॥
कहै सिकंदर सुनो हो पीरा । मन मानै सो करो कबीरा ॥
साखी–डारहु मारि कबीरको, हम नहिं मानैं ऊन ।
ताका कबहु न भला हो, करे फकरको खून ॥

चौपाई

शेखतकी तब उठे रिसाई । है कोई बांध कबीरहि भाई ॥
साखी–शेखतकी आपै उठै, काजी पंडित झार ।
बाँध बाँध सब कोई कहै, कोई न करे गोहार ॥

बाहँ बांधि पग बांधिके, बोर गंगजल नीर।
निःसंशय निश्चित सो, निरभय सदा कबीर॥
गंगाजलपर आसन, वंद परे खहराय।
जन कबीर सतनाम बल, निरभय मंगल गाय॥
शाह सिकंदर देखही, अरु ठाढे सब लोग।
धनि कबीर सब कोइ कहै, शेखतकी भा सोग॥

चौपाई

शेखतकी तब मींजै हाथा। सूखे मुख नहिं आवै बाता॥
शेखतकी तब कहै बनाई। अबकी कसनी बदों न भाई॥
अबकी बार कबीरहि पावो। देगि मूदिके आच दिलावो॥
देग आंचते बचै कबीरा। तौ जानौ अल्लाहको नूरा॥
कहै कबीर नाम परकासा। तासो गयौ सिकंदरके पासा॥
शाह सिकंदर उठिभे ठाढे। अधिको प्रेम तासु उर बाढे॥
शेखतकी कह क्रोधित बैना। धुनै शीस राते भये नैना॥
सुन कबीर कह तकी मयाना। तुम कीनो चेटक हम जाना॥

साखी–अबहि तोहि कीमा करे, देग मूँदि देव आँच।
देव आँचदे बाँचिहो, तो कबीर तुम साँच॥
कहै कबीर सुन शेखतकि, करो जो तुम मनभाव।
हम जैसेको तैसा, देग आँच दिलवाव॥

चौपाई

तुम नाटक चेटक मन लावा। हमरे चेटक नाम प्रभावा॥
शेखतकी तुम आप हो जैसो। हमको तुम मति जानो तैसो॥

साखी–कीमा करने कारने, शेख घालो तरवार।
खांड़ा गहि शिर ना कटै, शेखतकी गे हार॥
कहै तकी इहि जोलहा, बांध्यौ खांड़ा मोर।

तातें देही ना कटै, लगै अन्न हो भोर ॥
देग मुसल्लम मूँदेहू, मोहड़ा मूँद रिसाय ।
आप आँच दिलवावई, ठाढ़ कतहुँ नहिं जाय ॥

चौपाई

देख लोग सब बहुत तमासा । हम पुनि गये सिकन्दर पासा ॥
साखी–शाह सिकन्दर पीरपै, खबरि पठाई साँच ।
है कबीर पास हमारे, काहि दिलावो आँच ॥

चौपाई

सो सुनि तकी देग मुख खोला । सुन्न देखि वाको मन डोला ॥
आतुर तकी शाहपै आये । हमैं देखि पुनि शीश डोलाये ॥
बहुरि तकी लज्जित ह्वै कहई । जोलहापै कछु चेटक अहई ॥
साखी–देग अन्न जल बांचेऊ, नहिं व्यापै तन पीर ।
बहुरि अग्नि जरि बाचिहौ,तो तुम साँच कबीर॥

चौपाई

विहँसि कबीर कहै सुन शेखा । करो जो आवै तुमरे लेखा ॥
शेखतकी बहु काठ मँगाया । अति विस्तार अँबार लगाया॥
साखी–ताहि बीच मोहिं मूँदके, दीन्हेसि अग्नि लगाय ।
अग्नी धाय बुतानी, जन कबीर गुन गाय ॥

चौपाई

कहै तकी यह बाँध्यौ आगी । याको चेटक सब पर लागी ॥
तब जानो तुम सांच फकीरा । धरती गाड़े बचे कबीरा ॥
कहैं कबीर सत नाम प्रतापा । कतहूँ नहिं व्यापै तनतापा ॥
साखी–तुम मति चूको शेखजी, करो जो तुव मन होय ।
कहैं कबीर मोहि डर नहीं, निर्भय नाम समोय ॥

चौपाई

शेखतकी पुनि कूप खुदाये । गर पग बांधि ताहिमें नाये ॥

साखी-ईंटा पाथरते भरे, दीनो कूप मुँदाय ।
कहै तकी अबकी मरे, ऐसो करे खुदाय ॥

चौपाई

शेखतकी अल्लाह मनावै । अबकी बार न जीअत आवै ॥
हम पुनि गये शाहके पासा । तबहि सिकन्दर वचन प्रकासा॥

साखी-कहै सिकन्दर पीर सुन, किसको गाड़ो कूप ।
सो कबीर इहँ बैठ हैं, अदभुत ख्याल अनूप ॥

चौपाई

शेखतकी ब्याकुल ह्वै बोले । नैन नासिका मस्तक डोले ॥

साखी-यहि जोलहाके पासमें, तारो गुटका आहि ।
ताते गाड़े नहिं मड़े, जरै न काटा जाय ॥
अब गहि कर पग बाँधिके, हाथी देव हुलाय ।
हाथी धरि धरि चीरि है,तब कछु नाहिं बसाय॥
खूनी पील मँगायकै, दीन्हेसि मद्य पिलाय ।
कर पग बँधि हाथी हुले,हाथी चला पराय ॥
केतनो करै महाउत, गज सम्मुख नहिं आव ।
कहै तकी अब तोपके, मोहड़े राखि उड़ाव ॥
गोला दारू भरि दिहसि, राखे मोहडे तोप ।
कहैं कबीर सतनाम बल,निर्भय रह्यौ निशोक॥
चले सिकन्दर निज घरे, हमकहँ लीने साथ ।
शेखतकी झूँसी रहे, शाह इलाहाबाद ॥

चौपाई

काशीके ब्रह्मन अरु काजी । मुरछि रहे सब हिरफत बाजी ॥

साखी-एक द्यौस गंगा तटै, बैठ सिकन्दर शाह ।
शेखतकी हमहू तहाँ, मुरदा यक बहा जाय ॥

चौपाई

कहै तकी सुन फकर कबीरा । मुरदा फेर जिलावहु धीरा ॥

साखी-कहै कबीर गरीब हम, तुम बादशाहके पीर ।
मुरदा तुमहि जिलावहू, सतगुरु कहै कबीर ॥

चौपाई

शेखतकी चितवै चित लाई । अल्लह मुरदा देहु जिलाई ॥

साखी-अल्लह पीर मनाइया, शेखतकी बहु बार ।
मुरदा जिंदा न हुवा, बहिगो रेत मझार ॥

चौपाई

शेखतकी कह सुनो कबीरा । मुरदा तुमहिं जिलावहु फीरा ॥

साखी-उठि मुरदहि हम चितवा, दूरते नेरे आय ।
कुदरत निर्भय नामके, मुरदा फेर जिलाय ॥
मुरदेको अस बोलेऊ, उठ कुदरत कम्माल ।
कर कुबड़ी धर टेकिऊ,सजि जिव भया सो बाल॥

चौपाई

सुत कमाल कहि उत्तर दीना । उठि कमाल तब अस्तुति कीना॥
गुरू सत्त जो कही कमाला । गुरु कबीर मोहि कीन निहाला ॥

साखी-कहै कमाल पुकारिके, गुरु हैं सत्य कबीर ।
मुरदेसे जिंदा किया, गन्दी गली शरीर ॥
शेखतकी मन मूर्छिके, कह धनि धन्य कबीर ।
तुम अल्लाह खुदाय हो, तुम मेरे गुरु पीर ॥
कहै कबीर सुन शेखजी,तुम औलियाकि जात।
रोजा निमाज कर बंदगी, बैठो नबी जमात ॥
जो अल्लह फरमाया, सो नहि करता कोय ।
हलाल हराम चीन्है नहीं, कैसे मुसलिम होय ॥

साखी—जबतक दर्द पराई, दिलमें आवै नाहिं ।
कोटि बंदगी खता है, परै सो दोजखमाहिं ॥
जैसा दिल है आपना, तैसा सबका जान ।
दर्दमन्द अल्लह मिलै, कहै कबीर प्रमान ॥
शाह सिकंदर तकी मिलि, ठाढ़ भये करजोर ।
बकसो चूक कबीर तुम, जो कछु औगुन मोर ॥

चौपाई

कहै कबीर सुनो शाह प्यारे । तुम हमार कछु नाहिं बिगारे ॥
तुमरे पीर जो कसनी लीना । खरा खोट हम सबही चीन्हा ॥
हम नहिं देहिं बददुवा काहू । जो मम अरि हम सेवत वाहू ॥
हमरे मित्र दुष्ट कोइ नाहीं । सब हमरेमें हम सबमाहीं ॥
हम काहूको कहा सरापैं । करैं सो तैसो फल ले आपैं ॥

साखी—जैसो बीज कोइ बोइहै, तस फल चाखै आप ।
कह कबीर सत कहत हौं, मोहिं पुण्य नहिं पाप ॥
कहर कुफुर दिल दोजखी, मोम दिलमें हर फकीर ।
निरभय नामसो समरथ, सतगुरु कहैं कबीर ॥

चौपाई

ऐसे कहि काशी चलि आये । धर्मदास तोहि सैन बुझाये ॥

सत्यकबीर वचन--चौपाई

रोग सोग बहु दुःख हटाये । केते परचाको देखलाये ॥
मृत्तकको दीनो जिव दाना । सो कछु इहां न करौं बखाना ॥
सोइ प्रसंग बहुरि अब गाई । कलिमें जिमि प्रभु पंथ चलाई ॥
सत्य कबीरके शिष्य सुजाना । चार गुरू जो कीन प्रमाना ॥
तिनमें धर्मदास बड़ अंशा । वंश बयालिस जासु प्रशंसा ॥

धर्मदास धरनीमें आये । करि प्रपंच तिहि काल भ्रमाये ॥
धर्मदास सुकृत औतारा । भूल्यौ पुरुष नाम निज सारा ॥
प्रतिमा पूजामें लपटाई । परमपुरुषकी सुधि बिसराई ॥
तीरथ व्रत आचार अपारा । क्रम उपाछाको व्योहारा ॥

पुरुष वचन--चौपाई

पुरुष अवाज उठी तिहि बारा । ज्ञानी वेगि जाहु संसारा ॥
सुकृत भवसागर चलि जाई । काल जालते गये भुलाई ॥
तिनकहँ जाय चेतावहु ज्ञानी । जाते वंश चलै रजधानी ॥
वंश बयालिस अंश हमारा । सुकृत गेह लेहै अवतारा ॥
ज्ञानी बेगि जाहु तुम अंसा । धर्मदास उर मेटहु शंसा ॥

ज्ञानी वचन--चौपाई

चले ज्ञानी तब शीस नवाई । धर्मदास हम तुम लगि आई ॥
पुरुष अवाज कहा तुम पासा । चीन्हो शब्द गहो विश्वासा ॥

धर्मदास वचन--चौपाई

धनि सतगुरु तुम मोहिं चेतावा । काल जालते मोहि बचावा ॥
मैं किंकर तुव दासके दासा । लीन उबारि काटि यम फांसा ॥
मेरे चित अति हर्ष समाना । तुव गुण मोहिं न जात बखाना ॥
भागी जीव शब्द तुम माने । पूरण भागते तुव वर ठाने ॥
मैं अघकर्मी कुटिल कठोरा । रह्यो अचेत भर्म चित भोरा ॥
मोहि आय तुम लीन जगाई । धन्य भाग तुव दरशन पाई ॥
कहिये मोहि जीवके मूला । रविके उदय कमल मन फूला ॥
भवसागर कौनी विधि छूटै । यमबंधन कौनी विधि टूटै ॥
करौं भक्ति कै योग कमावौं । देउँ दान कै तीर्थ नहावौं ॥
करौं यज्ञ कै इंद्री साधौं । बाहर फिरौं कि मनको बांधौं ॥
करौं अचार कि साधन साधौं । बर्त करौं कै हरि अवराधौं ॥

जो तुम कहो सोइ सो करऊं । वचन तुमार हृदयमें धरऊं ॥

सत्यकबीर वचन--चौपाई

सुन धर्मदास मैं सत्य बतावों । भवसागरको दुःख मिटावों ॥
सुन धर्मदास भक्ति पद ऊँचा । इहि सीढी कोइ बिरला पहुँचा॥
योगी योग साधना करई । भवसागर तेऊ नहिं तरई ॥
दान देय सोई फल पावै । भवसागर भुक्तैको आवै ॥
तीर्थ नहाये जो फल होही । सर्व मर्म समझावों तोही ॥
जन्म लेय सुन्द तन पावै । संपति दौरि बहुरि जग आवै॥
ऊँचे घर लेवै औतारा । ब्राह्मण क्षत्रीको व्यौहारा ॥
इंद्री साधन है अति नीका । बिना भक्ति जानो सब फीका॥
इंद्री साधन है तप भारी । तामस तेज क्रोध हंकारी ॥
क्रोध किये गति मुक्ति न पावै । भक्ति महातम हाथ न आवै ॥
बर्त एक भक्तिको पूरा । और बर्त कीजै सब दूरा ॥
और बर्त सब यमकी फाँसी । भक्तीबर्त मिलै अविनाशी ॥
हरि अवराधनकी सुनि बाता । कहो भेद तुम सुनियो ज्ञाता ॥
हरिहर नाम सदा शिव केरा । तातै मिटै न भवको फेरा ॥
बहुत प्रेमते शिवको ध्यावै । रिध अरु सिद्ध द्रव्य बहु पावै॥
जो मन चित निश्चय करि धरई । गिरि कैलास में बासा करई ॥
फिरके काल झपेटै ताही । डारि देय भव चक्कर माही ॥

साखी-शिव साधनकी यह गति, शिव हैं भवके रूप ।
बिन समझे यह जक्त सब, पर्‍यौ महा भ्रमकूप ॥

चौपाई

हरिहर नाम विष्णुको भाखा । शुभ अरु अशुभ कर्म द्वै राखा॥
इनमें करे कलोल सदाई । करे भोग जीवन भरमाई ॥
बहुत प्रीतिसे विष्णुहि ध्यावै । सो जिव विष्णुपुरीमें जावै ॥
विष्णुपुरी सो निरभय नाहीं । फिरि कै डारि देइ भव माहीं ॥

साखी-हरीहर नाम जो विष्णुको, जाने किय जिव जेर ।
चौरासी भरमै सदा, मिटै न भवको फेर ॥

चौपाई

हरिहर ब्रह्माको है नाऊँ । रजगुण व्यापि रहा सब ठाऊँ ॥
ब्राह्मणको पूजै संसारा । सो जिव होय न भवके पारा ॥

साखी-यहि तिनगुनकी भक्तिमें, मति भूलो धर्मदास ।
इनके ऊपर निरगुन, तहाँ योगीको बास ॥

चौपाई

निर्गुण धाम निरञ्जन भाई । जिन सगरी उपपत्ति बनाई ॥
निर्गुणते मन भया प्रचंडा । ताते बसै सकल ब्रह्मण्डा ॥
निर्गुण अंश सकल औतारा । पीर पगंबर सब तन धारा ॥
यही निरञ्जनकेर पसारा । तामें अटका सब संसारा ॥
धर्मदास तुम भक्त सनेही । इनमें जनि अटकावो देही ॥
भक्त अनेक भये जग माहीं । निरभय घर कोइ पावत नाहीं ॥
भक्ति करे तब भक्त कहावै । भगतिसे रहित बचनको पावै ॥
चौदह लोक बसै भग माहीं । भगसे न्यारा कोई नाहीं ॥
सत्य नामकी खबरि न पाई । क्या करि भक्ति करो रे भाई ॥
जगमें भक्त दोय भै भारी । ध्रू प्रहलाद सदा अधिकारी ॥
ये दोनों जन द्वै व्रत साधा । एकहि एक इष्ट आराधा ॥
ध्रुव तौ गृह तजि बाहर गयऊ । नारदको उपदेशी भयऊ ॥
छठे मास प्रकटे हरि आई । राज दियो वैकुंठ पठाई ॥
साठि हजार वर्ष करि राजू । कुटुँब सहित वैकुंठ बिराजू ॥
एक द्यौस जब परलय आई । ताहि बासते देय गिराई ॥
दुतिय भक्त प्रहलाद कहाई । इंद्रासनको सुख जो पाई ॥
स्वरग दोन चौकरी भुक्ती । बन्धनभावते भई न मुक्ती ॥

साखी-इंद्रराजको भोगिके, फिर भवसागरमाहिं ।
यह सगुंनकी भक्ति है, निर्भय कबहूँ नाहिं ॥

धर्मदास वचन-चौपाई

कौन भांतिसे करिये भक्ती । सतगुरु मोहि बतावो युक्ती ॥
निर्गुन सद्गुण पार लखावो । तीसर न्यारा मोहि लखावो ॥

सत्य कबीर वचन-चौपाई

एक पुरुष है अगम अपारा । सब घट व्यापक सबसे न्यारा ॥
ताको भक्ति करै जो कोई । ताको आवागमन न होई ॥
आदि ब्रह्म नहिं था ओंकारा । निर्गुन रूप नहीं विस्तारा ॥
नहिं तब बीज नहीं अंकूरा । आदि भवानी चन्दन सूरा ॥
पुरुष कहो तो पुरुषो नाहीं । पुरुष भया मायाके माहीं ॥
शब्द कहो तो शब्दो नाहीं । शब्द भया मायाके माहीं ॥
द्वै बिन होय न अधर अवाजा । कहो काहि यह काज अकाजा ॥
नाम कहो तो नाम न ताको । नामराय काल है जाको ॥
है अनाम अक्षरके माहीं । निह अक्षर कोइ जानत नाहीं ॥
धर्मदास तहँ बास हमारा । काल अकाल न पावै पारा ॥

धर्मदास वचन

धर्मदास कह सुनो गोसाँई । इन बातेन बनबेकी नाहीं ॥
संशय किये एक ही ओरा । तुम ही हते कि है कोइ ओरा ॥

सत्य कबीर वचन चौपाई

जौ परतीति होय उर तोरे । भवको मेटि संग रहु मोरे ॥
आदि पुरुष निहअक्षर जानो । देही धरि मैं प्रकट बखानो ॥
मोहि न व्यापो जगकी माया । कहन सुननको है यह काया ॥
देह नहीं अरु दरसै देही । रहौं सदा जहँ पुरुष विदेही ॥
गुप्त रहौं नाहीं लखि पाया । सो मैं जगमें आनि चेताया ॥

चारों युगमें चारों नाऊँ । माया रहित रहौं सब ठाऊँ ॥
सबसे कह्यौं पुकारि पुकारी । कोई न मानै नर अरु नारी ॥
इनको दोष कछू नहिं भाई । धर्मराय राख्यो बिलमाई ॥

धमदास वचन–चौपाई

हे स्वामी मैं तुमको चीन्हा । आदि अंतको भेद सब लीन्हा ॥
तुम ही वार तुमहि हो पारा । तुमहीते उपजा संसारा ॥
समरथ सब गति पाई तोरी । अब सब संशय छूटी मोरी ॥
अब यहि भवमें बहुरि न आवों । तुमरे चरणकमल चित लावों ॥

सत्य कबीर वचन--चौपाई

कहै कबीर सुनो धर्मदासा । सकल भेद मैं कीन प्रकाशा ॥
अब तुम भक्ति करो चित लाई । सेवो साधु तजि मान बड़ाई ॥
पहिले कुल मरजादा खोवै । भयते रहित भक्त तब होवै ॥
सेवा करो छोड़ि मत दूजा । गुरुकी सेवा गुरुकी पूजा ॥
गुरुसे करे कपट चतुराई । सो हंसा भवभ्रममें आई ॥
ताते गुरुसे परदा नाहीं । परदा करे रहै भवमाहीं ॥
गुरु है मात पिता गुरु सेवा । गुरु सम और नहीं कोइ देवा ॥
गुरुसे अन्तर कबहुँ न करिये । सर्वस ले गुरु आगे धरिये ॥

साखी–गुरुकी महिमा अगम है, शिव विरंचि नहिं जान ।
गुरु सतगुरुको चीन्हिके, पावै पद निरबान ॥

धर्मदास वचन

साखी–कर्म भर्म भव भार सब, दिया भारमें झोंक ।
सतगुरुके परतापते, मिट गया सबही धोख ॥

इति

अथ धर्मदासजीकी कथा--चौपाई

धर्मदासकी कथा बखानो । वैश्यके कुल तनधरि प्रकटानो ॥
धर्मबइल्लव परम अचारी । जासु सुजस गावै संसारी ॥

धर्मदास गुरु चरनन परेऊ । तनमनधनतृणसम परिहरेऊ ॥
छप्पनकोटिकि संपति सारी । दियौ लुटाय सो रंक भिखारी॥
एकै पुत्र परम प्रिय जाही । तजत बार नहिं लायौ ताही ॥
नारि पुत्र तजि भये उदासी । धर्मधुरंधर गुन गन रासी ॥
तन मन गहे भक्ति सो गाढ़ी । सतगुरुचरनप्रीति अति बाढ़ी॥
परख्यौ ताको भक्ति प्रभावा । तब तेहि सतगुरु बचन सुनावा॥
धर्मदास सुनिये मम बानी । तुमरे गृह प्रकटैगो आनी ॥
दशमें मास लेइ औतारा । हंसन काज देह निजु धारा ॥
सो जीवन को पार लँघावै । वंशकेर कँडिहार कहावै ॥
मेरे बचनते सो तन धारे । बचन चुरामनि नाम पुकारे ॥

धर्मदास वचन--चौपाई

हे प्रभु हम इद्री बस कीना । कैसे अंश जन्म तौ लीना ॥
धर्मदास अस बचन सुनाई । तब सतगुरु तिहि कह्यौ बुझाई॥
पुरुष नाम धर्मन लिखि देहो । ताते अंश जन्म जो लेहो ॥
लखो सैनमें देहुँ लखाई । धर्मदास सुनिये चित लाई ॥
लिखो पान पूरुष सहिदाना । आमिन देहु पान परवाना ॥
धर्मदास आमिनिहि बोलाई । ले सतगुरुके चरन टिकाई ॥
धर्मदास परवाना दीना । आमिन पाय दंडवत कीना ॥
दशयें मास जब पूजी आसा । प्रकटे अंश चुरामनि दासा ॥
सतगुरु बचन ते प्रकटे आई । बचन चुरामनि नाम कहाई ॥
मुक्तामनि पुनि नाम है ताका । जाते चली वंशकी साका ॥

इति

अथ चारों गुरुकी कथा--चौपाई

स्वसमवेद सतगुरु मुख बानी । चौदह कोटि ज्ञानकी खानी ॥
तत्त्व ज्ञान पुनि ताते काढ़ा । चारो वेद कान तिहि ठाढ़ा ॥
ऋग यजु साम अथर्वन चारो । ताते सब जग धर्म प्रचारो ॥

स्वसमवेदको चारो अंगा । ताते भये अनेकन ढंगा ॥
चारो वेद चहूँ गुरु गहेऊ । परमपंथ जाते जिव लहेऊ ॥
चारो गुरुकी कथा बखानो । सुकृत आदि भेद ग्रंथ प्रमानो॥

इति

अथ प्रथमगुरु भवसागरमें उत्तर दिशा गोसांई धर्मदासजी–चौपाई

लोकमें सुकृत अंश कहलाई । भवसागर धर्मदास गोसांई ॥
उत्तर दिशा तासु गुरुवाई । गहि ऋगवेद जो पंथ चलाई ॥
जम्बूदीपो भारथ खंडा । प्रकटै गढ़बानौ महि मंडा ॥
सो गह कोट ज्ञानकी बानी । पंथ प्रचार कीन रजधानी ॥
वंश बयालिस ताने पाया । भवसागरमें पंथ चलाया ॥

इति

अथ धर्मदासजीके बयालिस वंशके नाम

दोहा–बचन चुरामनि प्रथम कह, बहुरि सुदर्शन नाम ।
कुलपति नाम प्रमोद गुरु, कौल नाम गुणधाम ॥
नाम अमोल कहाव पुनि, सुरति सनेही जान ।
हक्क नाम साहिब कहो, पाक नाम परधान ॥
प्रकट नाम साहिब बहुरि, धीरज नाम कह फेर ।
उग्र नाम साहेब कहो, उदै नाम पुनि टेर ॥
गीर्ध नाम साहिब तथा, नामप्रकाश कहाय ।
उदित मुकुन्द बखानिये, अर्ध नाम पुनि गाय ॥
ज्ञानी साहिब हंस मनि, सुकृत नाम अर्जनाम ।
पुनि रसनाम रु गंगमनि, परस नाम अभिराम ॥
जागृत नाम अरु भृगमनी, अकह कंठमणि होय ।
पुनि संतोषमनी कहो, चात्रिक नाम गनोय ॥
आदि नाम नेह नाम है, आदिनाम महानाम ।

पुनि निज नाम बखानिये, साहेबदास गुणग्राम ॥
उदैदास करु नाम पुनि, हगमनि महामनि हंस ।
मुक्तामनि धर्मदासके, बिदित बयालिस बंस ॥

अथ बयालिस वंशकी स्थिति वर्णन–चौपाई

बंशबयालिसकी थिति भाखों । सत्य कबीर प्रमान जो राखों ॥
बीस द्यौस अरु वर्ष पचीसा । सिंहासन थिति येती दीसा ॥
वर्ष पचीस बीस दिन केरी । भोग पूर्ण थित हो जिहि बेरी ॥
गद्दी सौंपे जो अधिकारी । निज इच्छा पर धाम पधारी ॥
जबलों थित करार नहिं पूजै । तबलों राजसिंहासन भूजै ॥
तिनको कबहुँ न मृत्युकी पीरा । अमर कीन तेहि सत्यकबीरा ॥
गद्दीको करार नियरावै । सन्त महंत खबरि तब पावै ॥
सुने सन्त पृथ्वी चहुँ खूटे । दरशन हेत जाय तहँ जूटे ॥
लेहि चलानेको जब बीरा । जग प्रत्यक्ष निरखे तेहि तीरा ॥
यहि विधि आप लोकचलि जाई । सन्त महन्त बिदा तब पाई ॥
हंसन प्रति गद्दी थिति ऐसे । वंश बयालिस भे जे जैसे ॥
संवत पंद्रहसौ अरु बीसा । वंश थाप तेहि समयसे दीसा ॥
जब तेरही पीढी चलि आवै । मुक्तामनि तबही प्रकटावै ॥
धर्म कबीर होय परचारा । जहँतहँ सतगुरु सुयस उजारा ॥

इति

अथ दुतिये गुरुभवसागरमें दक्षिण दिशा गोसांई चतुर्भुजदासजी--चौपाई

लोकमें अकह अंश परकाशा । महिमें सोई चतुर्भुजदासा ॥
दक्षिणदिशि गुरु ताहि प्रसंशा । ताके हैं सत्ताइस वंशा ॥
यजुरवेद विधि पंथ चलाई । कुशहर द्वीप माहिं प्रकटाई ॥
नग्र करनाटक तेहि रजधानी । गह टकसार ज्ञानकी बानी ॥

इति

अथ चतुर्भुजदासजीके सताइस वंशके नाम--चौपाई

प्रथम प्रेम कह दुतिय हुलासा । तीजे अनँद चौथ विश्वासा ॥
पंचम हित्त प्रीति है छठवें । सतवें निरख बिबेक है अठवें ॥
नौवें सत्त छमा दशमें वद । ग्यरहें धीरज बरहें अनहद ॥
तेरहें शील संतोष चौदहें । पंद्रहें सुमति बुद्धि सोरहें ॥
सत्रहवें पुनि भक्ती जाना । उन्निस दया बीसवें जाना ॥
एकिस कृपा विचार बाइसे । एकपन तेइस मोक्ष चौबिसे ॥
पचिसवें मेद छबीसवें मोखा । सताईसवें सुमती चोखा ॥
लोकमें यह सब नाम कहाये । महिमें न्यारे नाम धराये ॥

इति

अथ तृतीये गुरुभवसागरमें गोसाँई बंकेजी पूर्वदिशा--चौपाई

लोकमें जो हं अंश कहाया । भवसागर बंकेजी राया ॥
सोलह वंश तासुके होई । पूरब दिशिमें प्रकटे सोई ॥
प्लक्ष द्वीप दरभंगा नगरे । सामवेद मम भाषे सगरे ॥
सो गहि मूलज्ञानकी बानी । पंथप्रचार आपनो ठानी ॥

इति

अथ राय बंकेजीके सोलह वंशके नाम जो लोकमें प्रसिद्ध हें--चौपाई

माया प्रथम कूर्म दुसरोई । तीसर अदल अष्ट कह सोई ॥
चौथ निरंजन छत्र मुनि पंचम । छठे आपमुनि पेख मुनिसप्तम॥
अठयेजीत मुनिनौमशीतलमुनि। दशमें भृगुमुनि ग्यरहे कंठमुनि॥
बरहे कलंकमुनि तेरहे गंगमुनि । चौदहे बिहंगमुनि पंद्रहेसोमुनि॥
मुनि सो रहे जलरंग गोसाँई । षोडशवंश केरि गुरुवाई ॥

इति

अथ चौथे गुरुभवसागरमें गोसाँई सहतेजी पश्चिमदिशा--चौपाई

अंश हिरम्मर लोकमें होई । सहतेजी भवसागर सोई ॥

पश्चिम दिशा करें गुरुवाई । वेद अथर्बन ताने पाई ॥
शालमल्य जो द्वीप कहाई । मानपुर शहरमें सो प्रकटाई ॥
कथे ज्ञान लहि बीजक बानी । सात वंश ताके परमानी ॥

इति

अथ सहतेजीके सातवंशके नाम–चौपाई

प्रथमवर्ष पारस कहवाये । दुतिये स्वातिसनेही गाये ॥
तीजे भृंगसमीप बखानी । चौथे लहरसिंधु कहि गानी ॥
पञ्चम दीपक ज्योति कहाई । पुनि जलभाष षष्ठमें जोई ॥
सप्तम मलयागिर कहि टेरा । सात वंश सहतेजी केरा ॥
निज निज वंशन युत गुरुवारी । सत्यकबीरको धर्म प्रचारी ॥
जक्त जीवको कर उपदेशा । परम धरमको कहे सँदेशा ॥
इनते इतर पंथ बहुतेरो । सत्यकबीरकी कृपा घनेरो ॥

इति

अथ सत्यकबीरके बारह पंथ वर्णन--चौपाई

बारह पंथके नाम बतावो । प्रथम नरायणदास कहावो ॥
जेठ पुत्र धर्मदासके सोई । जागू पंथ दूसरो होई ॥
तीजे सुरति गोपाल पुकारा । मूल निरंजन चौथ उचारा ॥
पंचम पंथ आहि टकसारी । छठवाँ भागू पंथ पसारी ॥
सो बीजक ले ज्ञान सुनाया । सतयेमें सतनामी आया ॥
अष्टम पंथ कमाली होई । नौमें राम कबीर कहोई ॥
दशमें प्रेम धामकी बानी । ग्यरहें जीवा पंथ बखानी ॥
बरहें एक अचारज आयौ । अपनौ नाम कबीर बतायौ ॥
बारह पंथ सुयश गुरु गैहैं । सतगुरु कृपा परमपद पैहैं ॥

इति

अथ सत्य कबीरके इतरपंथ वर्णन चौपाई

प्रथमें नानक पन्थ बखानो । पानप बहुरि पंथ कहि गानो ॥
दास मलोक पन्थ परचारा । बहुरि गरीबदास विस्तारा ॥
इत उत देशन देशन माहीं । सत्यकबीर पन्थ जहँ ताहीं ॥
जहँतहँ देखो सत्य कबीरा । हिंदू मुसलमान गुरु पीरा ॥
निज इच्छाते सो तन धारे । कालजालते जीव उबारे ॥
कबहुँ योनि संकट नहिं आवै । जीव दया करि सतगुरु ध्यावै ॥
जिन जिन सतगुरुको पहिचाना । सो अवश्य लह पद निर्बाना ॥

शब्द

हम बसैं चामके धाम हमें कोई क्या जाने ॥
पशुपंछी नरनाग जहां लगि सबै चामको साज ।
चामै चामको दाम बटोरै चामरंगको राज ॥
चामै माडै चामै पोवै चामै करै रसोई ।
चामै चामको परसि जिवावै चाम करे सो होई ॥
चामै गावै चाम बजावै चाम करावै नाच ।
चामै चामको भाव बतावै चाम बीच है सांच ॥
कहैं कबीर सुनो भाई साधो हम हैं पूरे चमार ।
जो कोई हमको पहिचानै उतरे भवनिधि पार ॥

सो गुरु खोज सो सन्त सुजाना ॥
जो गुरु खोजि अमरघर आवै पावै मूल ठेकाना ।
जिन गुरु गुरू पञ्च निरमाये रच्यौ जमीं असमाना ॥
तिनके कर्म कटे भवबंधन जिन ओहि गुरुको जाना ।
टीका मूल बिनपरगट कीनो चौदह कोटि जो ज्ञाना ॥
नहीं बोल भाषामें आवै शब्दसैन सो जाना ।
आशा बन्धते परगट कीनो जो जैसे अनुमाना ॥

सारशब्द दियौ है पुरुषने आप तो गुप्त रहाना ॥
जिहि पारसते पुरुष दृढ़ाने करि चौका बंधाना ।
कहैं कबीर ये अगम गुरू है सही छाप परवाना ॥
दोहा—जेते पंथ कबीरके, भिन्न भिन्न बिधि थाप ।
कहुँ चौका अरु आरती, कंठी माला छाप ॥
तिलक रु कंठीमात्र कहुँ, कहुँ शब्दहि निरधार ।
कहुँ आँदू कहुँ भिन्न कछु, सबको तारन हार ॥
कोई त्रिगुणकी भक्तिमय, कोई तिनते न्यार ।
योग युक्ति करि मुक्तिपद, पावत यहि संसार ॥

इति

अथ नारायणदासजीको कथा--चौपाई

धर्मदाससुत दास नरायन । भिन्न कथा कछु तासु बतायन ॥
न्यारो पंथ आपनो ठाना । बारह पंथमें तासु मिलाना ॥
वंश माह द्वै भेद बखाना । प्रथम नारायणदासहि जाना ॥
वचन चुरामणि दुतिय बताई । वंशकेरि कड़िहारी पाई ॥
दोनों जगमें पंथ चलावैं । धर्मदासके वंश कहावैं ॥

इति

अथ जगजीवनदासजी सत्यनामकी कथा--चौपाई

सतनामी जगजीवन दासा । अवध देशमें पंथ प्रकाशा ॥
कोटवा नग्रमें सो प्रकटाना । आहि मध्यमहि हिंदुस्थाना ॥
राजपूत कुल कर ठकुराई । सतगुरु कृपाते पंथ चलाई ॥
न्यारो ज्ञान आपनो भाखा । ताके भई बहुत शिषसाखा ॥
कारी तिलक देहिं निज माथा । आन्दू बांधें अपने हाथा ॥
आंदू एक भांतिको धागा । कंठीके बदले कर लागा ॥

इति

अथ रामकबीरजीकी कथा--चौपाई

राम कबीरकी कथा कहीजै । वैरागिनको ज्ञान गहीजै ॥
ठाकुर प्रतिमा पूजे सोई । रामकृष्णको ध्यावै ओई ॥
इत कबीर पंथिनसे मेला । उत बैरागिनमें मिलि खेला ॥
रामकृष्ण सम्बंधी जोई । प्रीति करे पूजें सब सोई ॥

इति

अथ नानकशाहजीकी कथा--चौपाई

नानकशाह कीन तप भारी । सब विधि भये ज्ञान अधिकारी ॥
भक्ति भाव ताको लखि पाया । तापर सतगुरु कीनो दाया ॥
जिंदा रूप धरयो तब साँई । प्रभु पंजाब देश चलि आई ॥
अनहद बानी कियौ पुकारा । सुनिकै नानक दरश निहारा ॥
सुनिके अमर लोककी बानी । जानि परा निज समरथ ज्ञानी ॥

नानक वचन

आवा पुरुष महागुरु ज्ञानी । अमरलोककी सुनी न बानी ॥
अर्ज सुनो प्रभु जिंदा स्वामी । कहँ अमरलोक रहा निजुधामी ॥
काहु न कही अमर निजुबानी । धन्य कबीर परमगुरु ज्ञानी ॥
कोई न पावै तुमरो भेदा । खोज थके ब्रह्मा चहुँ वेदा ॥

जिन्दा वचन

जब नानक बहुतै तप कीना । निरंकार बहुते दिन चीन्हा ॥
निरंकारते पुरुष निनारा । अजर द्वीप ताकी टकसारा ॥
पुरुष बिछोह भयौ तुव जबते । काल कठिन मग रोंक्यौ तबते ॥
इत तुव सरिस भक्त नहिं होई । क्यों परपुरुष न भेटेंउ कोई ॥
जबते हमते बिछुरे भाई । साठि हजार जन्म तुम पाई ॥
धरि धरि जन्म भक्ति भलकीना । फिर काल चक्र निरंजन दीना ॥
गहु मम शब्द तो उतरो पारा । बिन सतशब्द लहै यम द्वारा ॥

तुम बड़ भक्त भवसागर आवा । और जीवको कौन चलावा ॥
निरंकार सब सृष्टि भुलावा । तुम करि भक्तिलौटि क्योंआवा॥

नानक वचन

धन्य पुरुष तुम यह पद भाखी । यह पद अमर गुप्त कह राखी॥
जबलों यम तुमको नहिं पावा । अगम अपार भर्म फैलावा ॥
कहो गोसाँई हमते ज्ञाना । परमपुरुष हम तुमको जाना ॥
धनि जिंदा प्रभु पुरुष पुराना । बिरले जन तुमको पहिचाना॥

जिन्दा वचन

भये दयाल पुरुष गुरु ज्ञानी । गहो पान परवाना बानी ॥
भली भई तुम हमको पावा । सकलो पंथ कालको धावा ॥
तुम इतने अब भये निनारा । फेरि जन्म ना होय तुम्हारा ॥
भली सुरति तुम हमको चीन्हा । अमरमंत्र हम तुमको दीन्हा॥
स्वसमवेद हम कहि निज बानी । परमपुरुष गति तुम्हैं बखानी॥

नानक वचन

धन्य पुरुष ज्ञानी करतारा । जीवकाज प्रकटे संसारा ॥
धनि करता तुम बंदी छोरा । ज्ञान तुम्हार महा बल जोरा ॥
दिया दान गुरु किया उबारा । नानक अमरलोक पग धारा ॥

इति

चौपाई

यहि विधि नानक गुरुपद गहेऊ । शिष शाखा तेहि जगमें रहेऊ॥
गुरुपद तजि बहु पंथ चलाये । अन्य देवकी सेव गहाये ॥
परमपुरुष पद नहिं पहिचाना । भांति अनेक बनायो बाना ॥
अजहूँ गुरुकी तीन निशानी । गहै कछुक गुरुकी निज बानी॥
द्वितिये सत्यनामकी साका । तृतिये देखा श्वेत पताका ॥
क्षत्री कुल नानक तन धारी । ताको सुयश गाव संसारी ॥

इति

अथ गरीबदासजीकी कथा--चौपाई

गरीबदासकी कथा बखानो । जाटके कुलमें सो प्रकटानो ॥
दिल्ली निकट नग्र छोटियानी । सतगुरु कृपा भयो सो ज्ञानी ॥
सत्यकबीरको सुशय उचारा । जक्तमाहिं निज पंथ पसारा ॥
सतगुरुकी अस्तुति भल गावै । अधिक प्रीति मनमाहिं बढ़ावै ॥
एकसौ वर्ष ताहि चलि गयऊ । प्रकट गरीबदास तब भयऊ ॥

इति

अथ कबीर आचार वर्णन--चौपाई

सत्यनामकी सेवा धारा । सुमिरण ध्यान नाम निरधारा ॥
सतगुरु वर्णन प्रीति सुहाये । मूरतिको नहिं शीस नवाये ॥
तीरथ व्रत मूरति भ्रमजाला । सत्यभक्ति गहिये सत चाला ॥
निरगुण सरगुणको तजि दीजै । सत्यपुरुषकी भक्ति गहीजै ॥
संत गुरूकी सेवा धारे । तन मन धन अर्पण करि डारे ॥
कोटिन तीर्थ गुरूके चरना । संचय सोच पोच सब हरना ॥
दुखी दीन देखत दुख लागा । परमारथ पथ तन धन त्यागा ॥
गृही साधु दोउ एक समाना । परमदयाल दोहूको बाना ॥
मद्य मांस भष जगमें जोई । महा मलीन जानिये सोई ॥
परम दया सब जिवपर पालौ । अधोदृष्टि मारगमें चालौ ॥
हिंसा कर्म जेते जगमाहीं । ताके कबहूँ निकट न जाहीं ॥
सब जीवनकी कर रखवाली । जीवघात कहुँ बात न चाली ॥
वर्षा ऋतु जब जिव अधिकारा । तब नहिं कबहु पंथ पग धारा ॥
अमल नाम जगमें हैं जेते । सकल अभक्ष जानिये तेते ॥

सत्यकबीर वचन

साखी-विष्णुधर्म जैनी दया, मुसलमान यकतार ।
ये तीनों जब जानि लै, तब जिव उतरे पार ॥

चौपाई

तीनों जहाँ होय संघट्टा । सो कबीर आचारको ठट्टा ॥
शौच अचार शुद्ध सब करनी । उज्ज्वल क्रिया बइल्लव बरनी ॥
अंतर बाहर परम पुनीता । हिंसा रहित कर्म चितचीता ॥
जस जैनी जिव दाया पाला । ताही सम कबीर मुनि चाला ॥
मुसलमानके जिमि अल्लाहा । ताहीते निज नेह निबाहा ॥
तिमि कबीर मुनिके सतनामा । रह लौलीन सदा सो तामा ॥
स्वसमवेद विधि करि शुभकर्मा । सार शब्द गहि पावै मर्मा ॥
सतगुन गहे बइल्लव तातें । भाषे परम पुरुषकी बातें ॥
शुक्ल भेष सब शुक्लाचारा । शुक्लवर्ण शुक्लै व्यौहारा ॥
शली टोपी तुलसी माला । कंठी कंठमें तिलक विशाला ॥
सूत्र रु शिखा बइल्लव बाना । योग युक्ति गुरुधर्म प्रमाना ॥
करकमंडल चोला पहिरे । चर्चा ज्ञानमाहिं बड़ गहिरे ॥
तत्त्वमाहिं निःतत्त्व बताई । झीना ज्ञान कथै ऋषिराई ॥
असन वसन विधिवत सो धरई । धर्मवस्तु कछु संग्रह करही ॥

इति

अथ तिलकस्वरूपवर्णन–चौपाई

ऊर्द्धपुण्ड्र अरु दंडाकारा । शुभ्रतिलक तेहि सोह लिलारा ॥
नासा अग्र भागते काढा । मस्तक अंत प्रयंत लो ठाढा ॥
नाकबांस दोउ भृकुटी बीते । मस्तक अंत प्रयंतलों खींचे ॥
दंडाकार सो तिलक बताई । तासु महामन कहो न जाई ॥
यमदंडनको दंडक दंडा । कर्म भर्म सो कर शतखंडा ॥
परम बइल्लव तिलक जो धारी। तिलक देखि यम बिलखि सिधारी
ताको अर्थ कहो किमि जाई । सुर नर मुनि कोइ पार न पाई ॥

दोय स्वरूप अकार बखाना । एक थूल यक सूक्षम जाना ॥
सूक्षम रूप अकार है एही । विष्णु विश्वंभर कहिये तेही ॥
स्वर व्यंजन द्वै भांतिके अक्षर । सबहीको मह पितु अकारबर ॥
स्वर अक्षरको आदि अकारा । सोई सर्व धर्म नय सारा ॥
स्थूल स्वरूप अकार जो कहिये। सकल स्वरनके आदिमें लहिये॥
स्थूल रूप है जग विस्तारा । सूक्षम रूप रमै संसारा ॥
परम पुरुष है आदि अकारा । अमल अलेख अभेद अपारा ॥
आदि अकार जो गह्यो विकारा । ताते भयो सकल संसारा ॥
आदि अकारते तीनों गुन है । सतगुणरूप अकार विष्णु है ॥
थूल अकार विकार गहंता । सबही वर्णन माहिं रमंता ॥
वासुदेव सो रमै चराचर । लखि नहिं परत सो अलख अगोचर॥
संस्कृत महँ सोई आकारा । अल्लिफ पारसीमाहँ पुकारा ॥
सो अल्लिफ अल्लीह कहाया । ताहि अलिफते सबजग जाया॥
ताकी सिफत कही नहिं जाई । पीर पयंबर पार न पाई ॥
जो कोई अल्लिफ पहिचाना । ताही रूपमाहिं मिलि जाना ॥
चार खानि जेते जगमाहीं । बिना अल्लिफ कतहूँ कछु नाहीं॥
कहूँ गुप्त कहुँ प्रकट निहारी । यह अल्लिफ सब माहिं बिहारी॥
देखे ताहि कोइ कोइ साधू । जिनके हृदये ज्ञान अगाधू ॥
तेहि अल्लिफकी कथा अपारा । गिरा गनेश शेष कथिहारा ॥
नर बपुरा सो किहि विधि कहई । शिव सनकादिक मूक है रहई ॥
सत्य कबीरको तिलक है येही । वंशके साधु जो मस्तक देही ॥
इतर पंथको तिलक है न्यारे । वेद धर्मकी रीति बिचारे ॥

इति

अथ सत्यकबीरको धामक्षेत्र वर्णन--वार्ता

सहज सुरति संप्रदा धीरज धाम दशमद्वार त्रिपुटी तीरथ ॥

सुष्मना सुख विलास । काया रामशाला अगम इष्ट । निश्चित नाम उपाशी लौ माला मनसा देवी मनसो देव अलख अचारज सत्य गोत्र समुझ शाखा वेदविचार खासा सुमिरन निह अक्षर मंत्र प्रीति परिक्रमा जीव योग ऋषि निजमन निजबइल्लव निर्भय मुक्ती गुरु शब्द गुरुपाट येता धाम क्षेत्र अविनाशीकी सेजपर कबीरने सुनाया । इतना अर्थ ले काशी कबीर गुरु रामानन्द पास आया ।

इति धामक्षेत्र

अथ जीवके अंतकालको वर्णन--चौपाई

अंतकाल जब जिवको आवै । यथा कर्म तस देही पावै ॥
हेठ द्वार जब जीव निकाशा । नरकखानिमें ताको बासा ॥
ठेले नरक शीस बल जाई । ताहीमें पुनि रहै समाई ॥
नाभिद्वार जो प्रान चलाना । जलचर योनि माहिं प्रकटाना ॥
मूलद्वार कर जीव पयाना । पशू योनिमें तासु ठिकाना ॥
जीभ द्वारते जिव कढ़ि आवै । अन्नखानिमें बासा पावै ॥
श्वासद्वारते जिव जब जाता । अंडजखानिमें सो प्रकटाता ॥
नेत्र द्वार जब जीव सिधारा । मक्खी आदिक तन सो धारा ॥
श्रौन द्वारते जिव जब चाला । प्रेम देह पावै ततकाला ॥
दशमद्वारते निकसै प्राना । राजा होय भोग विधि नाना ॥
रंभ द्वारते जिव जब जाता । परम पुरुषके लोक समाता ॥

इति

अथ हंसनको स्थानवर्णन सत्य कबीर वचन--चौपाई

तेज अंड है पालँग बारा । द्वै पालंग मध्य अँधियारा ॥
सालोकमुक्ति मृतलोक बखाना । मानसरोवर तिहि अस्थाना ॥
धीया अंश तहाँ बैठारा । चौसठ कामिनि संग बिहारा ॥

जो कोइ बाम मताको ध्यावै । सो सालोक मुक्तिको पावै ॥
सहस साठ वैकुंठ रहाई । तहाँ सुमेर रहा ठहराई ॥
धर्मराय अविनाशी रहई । पुण्य पापको लेखा गहई ॥
तहाँ सामीप मुक्ति है सोई । नौसे सखी तेरह सँग होई ॥
पांच शिखा सुमेर रहाई । पांचो अंश कला तहँ लाई ॥
ईशान कोन ध्रुव आसन कीना । बाइब कोन इन्द्र अस्थाना ॥
नैर्ऋत कोन यमनको थाना । अग्नीकोन इन्द्र अस्थाना ॥
जाको धर्मरायमें कहिया । मध्य विष्णु सिंहासन लहिया ॥
सहस साठि वैकुण्ठ प्रमाना । तहाँते शून्य डोरि बंधाना ॥
मारग जो निर्वानहि ध्यावै । सो समीप वैकुंठहि पावै ॥
मेरुते शून्य अठारह कोरी । तहँवा लगी शून्यकी डोरी ॥
शून्य मध्य है द्वीप अनूपा । तहाँ निरञ्जन ज्योतिस्वरूपा ॥
अंधकार है शून्य मझारा । द्वै पालंग शून्य बिस्तारा ॥
चार करोर ज्योति उजियारी । शोभा अद्भुत तासु निहारी ॥
सारूप मुक्ति सोई तब पाई । मारग भेद अघोर चलाई ॥
आगे अक्षरको अस्थाना । पालँग एक तहांते जाना ॥
अक्षर योग माया विस्तारी । मुक्ति सायुज्य महै मतधारी ॥
तहाँते चार वेद परमाना । चौथी मुक्तिको यही ठेकाना ॥
तहाँते आगे कोइ न गैऊ । यह मत चारो वेदन कहेऊ ॥

धर्मदास वचन--चौपाई

धर्मदास बिनती चित लाई । साहेब कहो भेद समुझाई ॥
चार मुक्ति अस्थान बतावो । आगे कहो भेद जिमि पावो ॥
बस्ती शून्य बीचकी भाखो । समरथ मोहि गोय जिनिराखो ॥

सत्य कबीर वचन

धर्मदास तुम भलके जानी । जो बूझो सो कहों बखानी ॥

एक असंख अक्षरते आगे । अचिंत नामको डोरी लागे ॥
अधर द्वीप है ताको नामा । परम रम्य अक्षर विश्रामा ॥
निरतै प्रेम सुरति तिहि द्वारा । तिहि सँग सखी बारहहज्जारा ॥
तीन अंश आगे परमाना । ओहं सोहं को अस्थाना ॥
आठ अंश तहवाँ उपजाये । अंश वंश अस्थान बनाये ॥
ओहं सोहं होत उचारा । तहांते शून्य डोर बंधाना ॥
आगे सहज सुरति अस्थाना । तहांते शून्य डोर बंधाना ॥
आगे शून्य है पांच असंखा । मूल सुरत अस्थान बिसंखा ॥
तेहि सँग हंस बावन हज्जारा । पांच ब्रह्म उनते उपचारा ॥
चार असंख शून्य तेहि आगे । इच्छा सुरति तहाँ अनुरागे ॥
खात सनेही जिनको धारा । तिन संग हंस पचीस हजारा ॥
आगे शून्य असंख द्वै जाना । तहाँ अकूर सुरति अस्थाना ॥
पांचहजार हंस सँग सांचे । तिनकी सुरति हंस सब बांचे ॥
जहाँ अकूर केर परमाना । तिल परमान द्वार अनुमाना ॥
बिहग शब्द तहँ लागी डोरी । चढि हंसा गये पूरुष सोरी ॥

साखी–सोरह असंख लोक है, धर्मन करो विचार ।
चार असंख है बस्ती, बारह सुन्न पसार ॥

चौपाई

आदि अन्त अरु वंश पसारा । तहँलगि देख शून्य बिस्तारा ॥
यतना तजि जब होय निनारा । हंसा आवै लोक हमारा ॥
हमैं चीन्हि सतगुरु रस पीये । कर्म तोरिके युग युग जीये ॥
निशदिन सतगुरु सुरति लगावै । साधु सन्तके चितै समावै ॥
जापर दया सन्त गुरु केरी । तिनकी कटी कर्मकी बेरी ॥
करि करनी अभिमान भुलाई । तन छूटे यम ले धरि खाई ॥
तन मन धन ले प्रीति लगावै । सो हंसा सतलोक सिधावै ॥
सत्यलोक है अधरस नीपा । ता मध्ये सत्ताइस द्वीपा ॥

सत्य शब्दको टेका दीना । ऐसे बिधि पुहमी रचि लीना ॥
सागर सात तहाँ बिस्तारा । चलि हंसा जहँ करे बिहारा ॥
पुहुपद्वीप है मध्य सिंहासन । कलाद्वीप हंसनको आसन ॥
साखी-अबिगति भूषन अंगमें, अबिगति करे शृंगार ।
अबिगति बस्तर छाजई, अबिगति करे अहार ॥

इति

अथ प्रलय वर्णन--चौपाई

तीन प्रकारकी सृष्टि बखानो । प्रथमे ब्रह्म सृष्टि कहि गानो ॥
द्वितिये जीवकि सृष्टि कहायौ । तृतिये माया सृष्टि बतायौ ॥
ब्रह्म सृष्टि आचिन्त प्रमाना । जीव सृष्टि अक्षरते जाना ॥
माया सृष्टि निरञ्जन करता । सिरजै पोषै पुनि संहरता ॥
माया सृष्टि जाय बिनसाई । जीव ब्रह्म नहिं प्रलैमें आई ॥
रचना सेखि निरंजन लेता । गूमट शीस माहिं धरि देता ॥
शिरमें गूमट अजब कहाई । सकल सृष्टि तेहिमाहँ समाई ॥
प्रलयको द्यौस आव जेहिबारा । जक्त समस्त होय संहारा ॥
पुनि जलते पूरे संसारा । उठै चहूँ दिसि लहरि अपारा ॥
जलकी ऐसी बृद्धि बताई । अति उतंग पानी चढि जाई ॥
पृथ्वीते ऊपर जल सोई । दश योजन लों ऊँचा होई ॥
अन्तकाल कलियुग जब आवै । चीन्ह भयापन बहुत देखावै ॥
सवासौ वर्ष ग्रहन निरधारा । चंद ग्रहण सत वर्ष बिचारा ॥
ताहि ग्रनते लेखा लीजै । कलियुग लोक प्रवाना दीजै ॥

नानक वचन

परलय की बिधि कहो दयाला । अलख ज्योति वर्षै केहि ख्याला ॥
काल बली तुमको नहिं माना । प्रलयकाल तेहि कहा ठिकाना ॥

जिंदा वचन

सुन नानक यह भेद अपारा । काल प्रलय जब करे संहारा ॥

रचना निगलि निरंजन लेता । अमरलोकसे अलगहि रहता ॥
लै रचना फिरता सो रहई । गूमट शीशमें सब जिव गहई ॥
प्रलय द्वीपते पुरुष निनारा । सो साहिब नहिं जग औतारा ॥
प्रलय निरंजन संग पसारा । ले बैठे सब आप मझारा ॥
तेज रूप बर्तें नौ खंडा । लेय समेटि सकल ब्रह्मंडा ॥
तीन देव चौकी उठि जाई । मेरु सुमेरु सिंधु चलि आई ॥
शून्न अकाश बर्त नौ खंडा । पाँच तत्त्वको रहै न झंडा ॥
ॐकार मठ रहै समाई । सो फिरता रह शून्नमें भाई ॥
सत्तर युग लों झूलत रहई । ता पीछे अति संकट गहई ॥
तब युग सत्तर शून्न रहीता । प्रलय करे सब जिवन भरीता ॥
फिर अमरावति छाह सिधाई । फिर सतपुरुषको टेरत भाई ॥
दुखित होय अरजी तब लाया । पुरुष दयाल देइ मन भाया ॥
तबहिं पुरुष ज्ञानीको टेरो । जाय शून्नमें कीजै फेरो ॥
कहो निरंजनपै अब जाई । कूर्म पीठपै बैठहु भाई ॥
चलिकै फिर हम तापहँ आये । पुरुष बचन ताको समुझाये ॥
सुनो निरंजन बचन हमारा । जाय कूर्मपै करो पसारा ॥
रचना करो सकल ब्रह्मंडा । जाय कूर्मपै रोपौ झंडा ॥
सुन्यौ निरंजन सो फरमाना । सुनिके बचन कियौ परमाना ॥
सुनि सो बचन निरंजन धाये । जहां कूर्म तहवाँ चलि आये ॥
बैठ कूर्मपै सतशब्द उचारा । रचना प्रकट भई सतसारा ॥
पाँचतत्त्व परगट तब कीना । सात शून्य पर आसन दीना ॥
जलके ऊपर मही छवाई । नवो खंड सूमेर रचाई ॥
तहँ सुमेर परबत फैलाई । तब मुखते अद्या प्रकटाई ॥
मिलि दोनो तिरदेव उपाई । यहि विधि सब रचना फैलाई ॥
उपजे ब्रह्मा विष्णु महेशा । नारद शारद गौरि गनेशा ॥

इति

अथ नरक वर्णन--चौपाई

प्रथमहि जल रंगी कहि गाया । ताके ऊपर कूर्म बताया ॥
कूर्मके ऊपर मीन कहीते । मीनके ऊपर कच्छप थीते ॥
कच्छपपर बाराह बखाना । तापर शेष नाग अस्थाना ॥
शेषनाग निज शिरपर धारा । पृथ्वी सहित सकल महिभारा ॥
सात नरक चौरासी कुंडा । पर तामें पापिनको झुंडा ॥
तहँू यमदूत ताडना करही । दंड प्रचंड जीव दुख भरही ॥

इति

अथ चौदह यमके नाम

दोहा—मृत्यु शृंग प्रथमै कहो, क्रोधित अंध बताय ।
दुगदानी तीजे कहो, मन मकरंद जताय ॥
चितचंचल पंचम गनौ, छठे अपर्बल नाम ।
अंध अचेत है सप्तमें, कर्मरेख पुनि मान ॥
अग्निघंट नौमे कहो, कालसेन पुनि चीत ।
मनसा मलई ग्यारहें, बरहे कह भयभीत ॥
पुनि तालुका है तेरहे, सूरधार दशचार ।
यमगन जेते नरकमें, ये चौदह सरदार ॥

इति

अथ सत्यकबीरके गुप्त होनेका वर्णन--चौपाई

संवत पंद्रहसौ उनहत्तर । देश उडैसे सतगुरु पगधर ॥
पुनि मगहर चलिगे गुरुदेवक । हिंदू मुसलमान जहँ सेवक ॥
बीरसिंह नरनाथ बघेला । सत्तकबीरको सो तहँ चेला ॥
बिजुलीखाँ पठान सोऊ राजा । शिष्य कबीरको तहां विराजा ॥
बिजुलीखां जब यह सुनि पाई । अब गुरु जगसे जाहिं लुपाई ॥
तब तासे पूछौ सो भेवा । हिंदू मुसलमान गुरुदेवा ॥

जब सतगुरुको निज तन त्यागे। कौन धर्म प्रभुको सुभ लागे ॥
हिंदू कैधौं मूसलमाना। मृत्युकर्म किहि बिधिते ठाना ॥
तब कबीर तेहि उत्तर देऊ। जौं तुम लोथ हमारी लेऊ ॥
तौ अपनी कुलरीति बिचारा। मृत्युकर्म कर तेहि अनुसारा ॥
पुनि गुरु बीरसिंह गृह गयऊ। राजा रानी हर्षित भयऊ ॥
चादर तानके पौढ़े जाई। भये अबोल कबीर गोसांई ॥
राजा रानी जब अस लखेऊ। बिकल भये सतगुरु तन तजेऊ॥
रुदन करे जब राजा रानी। नग्र शोर भा लोगन जानी ॥
बिजुलीखां नृपको गुरुभाई। सुनत खबर तुरितै उठि धाई ॥
बीरसिंहसे बचन सुनावो। सतगुरु लोथ हमैं देखलावो ॥
नृप गुरुलोथ जो परगट कीन्हा। बिजुलीखां तेहि जोरसे लीना ॥
ले भाग्यौ सो गाड़ौ जाई। राय बीरसिंह तब रिसियाई ॥
लै निजु सैन संग तेहि बेला। चढे बीरसिंह राय बघेला ॥
दोनों दिशिते दल उमड़ाने। एक न कहा एकको माने ॥
जब घमसान होनेपर भयऊ। तब अकाशबानी अस कहेऊ ॥

कवित्त

अकथ कहानी तहँ बोले नभबानी सुनो, दोहु दल ज्ञानी ॥ जिव हानीमें न दीजिये। बिज्लीखां पठान कह ठाढे हो पठान॥ पीर, सिंहजी बघेल दहपेल मति कीजिये ॥ हाड चाम देह ॥ जन्म मरन न पीर ऐसो, साहिब कबीर सत्य बातको पती-जिये। कबुर खुदाय नहिं लोथ कहुँ पाय कछु, तहँ दरसाय दोऊ भाग करि लीजिये ॥

चौपाई

यह सुनि दोनों रह ठहराई। तब चलिके सो कबुर खुदाई ॥
अस अचरज तहँ देख्यो जाई। कतहुँ लोथ गुरु दृष्टि न आई ॥

कबुरमें चादर पुष्प सो पाई । ले दोनों द्वै भाग बनाई ॥
मुसलमान तेहि कबुरमें धरेऊ । हिंदू ले समाधसो करेऊ ॥
हिंदुनके कबीर चौरा है । तुरकनके कबीर रोजा है ॥
इत हिंदू सेवै गुरुदेवा । मुरशिद मुसलमान उत सेवा ॥
बालरूप जब गुरु प्रकटाना । कमलपुष्पमें कर निज थाना ॥
अंतकाल जब गयौ दुराई । गौरमें सोइ पुष्प देखलाई ॥
आदि अंत जाके नहिं देही । जन्म मरन कबहूँ नहिं तेही ॥
सकल विकार तो जो प्रभुपारा । जीवकाज तनधर संसारा ॥
सह्यौ निरादर दुःख अधिकाई । निज दासनको दास कहाई ॥
सो सब जीव हेतको दीसा । समरथ परमगुरू जगदीशा ॥
कबुर बीचते गये लोपाई । मथुरा नग्रमें पहुँचे जाई ॥
नीरू नीमा जोलह जोला ही । तन तजिके परकटभे ताही ॥
दोनोंको निज शब्द गहाई । जाते भवनिधि फेर न आई ॥
मथुरा नग्रते बहुरि सिधाई । धर्मदास ढिग सतगुरु आई ॥
धर्मदासहि बहु भांति शिखाई । सहितदेह पुनि गयौ लोपाई ॥
महा कठिन युग कलियुग होई । शुभ करनी जिव करे न कोई ॥
यज्ञ योग जप तप व्रत दाना । भाव न भक्ति विषय लपटाना ॥
तिनको काज कौन बिधि सुधरे । बिन कबीर गुरु पार न उतरे ॥
दयासिंधु तेहि पार लँघावे । सत्यकबीर कि सरन जो आवै ॥

सत्यकबीर वचन

बावन बीर कबीर कहावो । कलियुगकेर जीव मुक्तावो ॥

इति

अथ स्वसमवेदकी स्फुटवार्ता–चौपाई

एकलक्ष अरु असी हजारा । पीर पयंबरको औतारा ॥
सो सब आहि निरंजन वंशा । तन धरि धरि निज पिता प्रसंशा ॥
दश औतार निरंजन केरे । राम कृष्ण सबमाहिं बडेरे ॥

पूरन आप निरंजन होई । यामें फेरफार नहिं कोई ॥

दोहा—पांच सहस अरु पांचसौ, जब कलियुग बित जाय ।
महापुरुष फरमान तब, जग तारनको आय ॥
हिन्दु तुर्क आदिक सबै, जेते जीव जहान ।
सत्य नामकी साख गहि, पावैं पद निर्बान ॥
यथा सरितगण आपही, मिलैं सिन्धुमें धाय ।
सत्य सुकृत के मध्ये तिमि, सबही पंथ समाय ॥
जबलगि पूरण होय नहिं, ठीकेको तिथि वार ।
कपट चातुरी तबहिलों, स्वसमबेद निरधार ॥
सबहिं नारि नर शुद्ध तब, जब टीका दिन अंत ।
कपट चातुरी छोड़िके, शरण कबीर गहंत ॥
एक अनेक न ह्वै गयो, पुनि अनेक हो एक ।
हंस चलै सतलोक सब, सत्यनामकी टेक ॥
घर घर बोध विचार हो, दुर्मति दूर बहाय ।
कलियुगमें इक है सोई, बरते सहज सुभाय ॥
कहा उग्र कह क्षुद्र हो, हर सबकी भवभीर ।
सो समान समदृष्टि है, समरथ सत्य कबीर ॥

**बिनय—चौपाई**

बिन्ती करौं संत गुरु पाहीं । जो मम दोष न हृदय गहाहीं ॥
निज अपराध कहौं किन खोली । कहुँ कहुँ मैं बदल्यों गुरु बोली ॥
मम बानी अरु सद्‌गुरु बानी । दोनों यहि मत मेले सानी ॥
जहँ जस उचित देख तस कीना । सूक्षम गुरु वाणी गहि लीना ॥
मेरो दोष न कछु तहँ लेखब । सत्य कबीरकी बानी देखब ॥
सत्य कबीरको ग्रन्थ निहारा । सब कछु लिख्यों ताहि अनुसारा ॥

इति श्रीस्वसमवेद धर्मबोध समाप्त



सत्य

# अथ धर्मबोध प्रारंभ

★

भारतपथिक कबीरपंथी-

स्वामी श्रीयुगलानन्दजीद्वारा संशोधित

सत्यनाम



श्री कबीर साहिब

सत्यसुकृत, आदिअदली, अजर, अचिन्त, पुरुष, मुनीन्द्र, करुणामय, कबीर, सुरति योग, संतान, धनी, धर्मदास, चूरामणिनाम, सुदर्शन नाम, कुलपति नाम, प्रबोध गुरुबालापीर, केवल नाम, अमोल नाम, सुरतिसनेही नाम, हक्कनाम, पाकनाम, प्रकट नाम, धीरज नाम, उग्र नाम, दयानाम की दया, वंश ब्यालीसकी दया।

# अथ श्रीबोधसागरे

त्रिंशत्तमस्तरंगः

## धर्मबोध प्रारम्भः

★

गृहीधर्म वर्णन

दोहा—गृहाश्रमीके धर्मको, वर्णन करों सुजान।
जिहि आश्रम आश्रम सकल, आश्रम कतहुँ न आन॥
सांझ सकार मध्याह्नको, सन्ध्या तीनों काल।
धर्म कर्म तत्पर सदा, कीजै सुरति सँभाल॥

कोटिन कंटक घेरि ज्यों, नित्य क्रिया निज कीन ।
सुमिरन भजन एकांतमें, मन चंचल गहि लीन ॥
साधू गुरु सेवा करे, श्रद्धा प्रेम सहीत ।
देव परम प्रभु ध्यावई, करि अतिशय मन प्रीत ॥
तन मन साधु जो सेवई, जपे निरंतर नाम ।
गृही सो पावै परमपद, योग समाधि न काम ॥
पुरुष यती सो जानिये, निज तिय तीय विचार ।
मात बहिन पुत्री सकल, औरी जो जग नार ॥
तिय ऐसो व्रत धर्मधर, निज पति सेवत जोय ।
इतर पुरुष जे जगतमें पिता भ्रात सुत होय ॥
पतिकी आज्ञामें रहै, निज तन मनते लाग ।
पिय विपरीत न कछु करे, ता तियको बड़ भाग ॥
मनकामना विहायके, हर्षसहित कर दान ।
सो तन मन निर्मल भया, होय पापकी हान ॥
यज्ञ दान बिन गुरु करे, निशि दिन माला फेर ।
निष्फल है करनी सकल, सतगुरु भाषे टेर ॥
प्रथमै गुरुसे पूछिये, कीजै काज बहोर ।
सो सुखदायक होत है, मेटे जिवका खोर ॥
अभ्यागत आगम निरखि, आदर मान समेत ।
भोजन छाजन बित यथा, सदा काल जो देत ॥
सोई म्लेच्छ सम जानिये, गृही जो दान विहीन ।
यहि कारण नित दान कर, जो नर चतुर प्रवीन ॥
पात्र कुपात्र विचारिके, तब दीजै तेहि दान ।
देता लेता सुख लहै, अन्त होय नहिं हान ॥
भूखा साधु भिखारि कोइ, नहिं आवे जब द्वार ।

तादिन मन पछतात बहु, करत अकेल अहार ॥
भोजनपाक निहारिके, इत उत द्वारे झांक ।
अभ्यागत भूखा निरखि, मारे तत्क्षण हांक ॥
बिन हरिकृपा न सन्त मिल, संत मिलन सुखसार ।
तिनके आश्रय मुक्ति गति, सङ्कट सकल निवार ॥
गृही होय तो भक्ति कर, नातो करु वैराग ।
दोहु भावते एक गहु, थोथी कथनी त्याग ॥
फल कारण सेवा करे, निशि दिन याचे राम ।
कह कबीर सेवक नहीं, चहै चौगुना दाम ॥
सज्जन सगे कुटुम्ब हितु, जो कोइ द्वारे आव ।
नहीं निरादर कर कोई, राखे सबको भाव ॥
रहे सदा निज गेहमें, सुमिरनमें लौलीन ।
ऐसे गृहीको काम कह, करवा अरु कौपीन ॥
कौड़ी कौड़ी जोरिके, कीने लक्ष करोर ।
कौड़ी एक न सँग चले, केतो दाम बटोर ॥
जो धन हरिके हेत नहिं, धरम राह नहिं जात ।
सो धन चोर लबार गह, धर छातीपर लात ॥
सतको सौदा जो करे, दम्भ छिद्र छल त्याग ।
अपने भागको धन लहै, परधन विषसों लाग ॥
भूखा जेहि घरते फिरे, ताको लागे पाप ।
गृही पाप ले जात है, पाप आपनो थाप ॥
साधु न जेवें जाहि घर, ता घर जेवें भूत ।
कलिमल ग्रसित सो जानिये, छुटै न कबहूँ छूत ॥
गृही भक्त निज धर्मरत, ताको साधु विचार ।
परमप्रीति जेहि साधुते, परम धर्म धन धार ॥
प्रथमहि साधु जेंवाइये, पीछे भोजन भोग ।

ऐसे पापको टालिये, कटे नित्यको रोग ॥
जाके सुख सब धाम है, मन विरक्त हो जाहि ।
गृही सो साधू जानिये, दाग न लागे ताहि ॥
जो सुत बित मिथ्या लखे, दुख सुख एक समान ।
परम भक्त सो गृही सोइ, पावै पद निर्बान ॥
हरिपद प्रीति लगाइये, औरते तजि निर्वाह ।
गृही होय कै साधुते, यही तरनकी राह ॥
यद्यपि उत्तम कर्म करि, रहै रहित अभिमान ।
साधु देखि शिर नावते, करते आदर मान ॥
बार बार निज श्रवणते, सुने जो धर्म पुरान[1] ।
कोमल चित्त उदार नित, हिंसा रहित बखान ॥
न्याय धर्म युत कर्म सब, कर न कबहुँ अन्याय ।
जे अन्यायी लोग हैं, बांधे यमपुर जायँ ॥
सरल सुभाव रहे सदा, कोह द्रोह न विषाद ।
प्रीति शुद्ध सत गुन गहे, संतत संत प्रसाद ॥

अर्थ–जो क्रोध द्रोह और मिथ्या विचारसे रहित होकर कपट रहित सन्तोंकी कृपा चाहता है वह सन्तोंकी दयासे शांत शुद्ध सत्य और पुण्य रूप पदार्थ सत्यपर पारखको प्राप्त होता है ।

क्षाथा लाभ संतोष कर, तृष्णा तरल तरंग ॥
उठन न पावै हृदयमें, कीजै ज्ञानते भंग ॥
गृही साधु दोउ जानिये, चक्र धर्म रथकेर ॥
दोहु बिन कारज ना सरे, मिलके कलिमल पेर ॥

---

१ पुरान कथा, धर्म निर्णय जिसके अन्दर लिखा हो और जिसमें धर्मवीरोंकी कथा हो ।

गृहकारजमें पाप बहु, नित लागे सुनु लोय।
ताहित दान अवश्य है, दूर ताहिते होय॥
चक्की चौका चूल्ह महँ, झाडू अरु जलथान।
गृह आश्रमीको नित्य यह, पाप पंचबिधि जान॥
और युगनमहँ गृही कर, योग यज्ञ मख जाप।
कलिमें सो कछु होय नहिं, कटै दानते पाप॥
यथायोग जग लोग सब, बिन सम कीजे दान।
कह राजा कह रंक है, दोनों एक समान॥
जो धन पाय न धर्मरत, नहीं दान व्यवहार।
सो शिर पावँको भारभरि, बंधे यमपुर द्वार॥
गुरुजन जो परिवारके, कर आदर सतकार।
लघु गुरुलोग जो योग जस, कुलको पालनहार॥
पुत्र पौत्र बनितादि जे, इतर जेते लघु देख।
भलो सिखावन दीजिये, जाते भला बिसेख॥
जो गुरुजन परिवारके, लघुको शीख न देत।
जो कछु औगुन सो करे, अघ शिर अपने लेत॥
सोई मित्र सोई सगा, भल शिख शिशुहि दिखाव।
तरुण अवस्था सुख लहै, गुरुजन सीख प्रभाव॥
मारि ताड़िकै हठ किये, बाल अधर्मका राह।
शुभगुण ज्ञानके पंथमें, बांधि चलाओ ताह॥
मातु पिता सो शत्रु है, बाल पढ़ावै नाहिं।
हंसनमें बकला यथा, तथा सो पण्डितमाहिं॥
पहिले अपने धर्म्मको, भली भांति सिखलाय।
अन्य धर्मकी सीख सुनि, भटकि बालबुधि जाय॥
अपनो धर्म न जानेऊ, सीख्यो न्यारो धर्म।

अज्ञानी यहि विधि किते, भूलि ते गह्यौ अकर्म ॥
जेते गृही हैं जगतमें, निज निज घरके भूप ।
हुकुम चलै निज भौनमें, भूपतिके तदरूप ॥
जिमि नृप चढै बजायके, धरती बस कर लेय ।
परजा सब तेहि बश भये, बिनयते भूपति सेय ॥
इमि सब गृही निशान दे, ब्याहको सजै बरात ।
भूमि नारि लहि प्रजाभे, सुत सुतादि लघु जात ॥
जो कछु धनको लाभ हो, शुद्ध कमाई कीन ।
धनतेदशवें अंशको, अपने गुरुको दीन ॥
जो गुरुनिकट निवास कर, तो सेवा कर नित्त ।
जो कहुँ दूर अनत बसे, ध्यान करे करि हित्त ॥
छठे मास गुरुदरश कर, सेवा कर निज वश्य ।
छठे मास जो पहुँच वहिं, वरषमें करो अवश्य ॥
गुरु विरक्त जो लेइ नहिं, शिष्य निज आरतदेह ।
गुरु आज्ञा अनुसार तो, दान पुण्य कर देइ ॥

अथ गृहस्थकेविशेष लक्षण

सत्यबचन प्रथमे कहो, दुतिये दया बताय ।
तीजो तप चौथे शौच, दोनो भांति कराय ॥
बाहर जलते शौच कर, अन्तर ज्ञान के द्वार ।
पचयें तितिक्षा इच्छा, षट सतसंत निरुवार ॥
सप्तम सम दम अष्टमे, नवम अहिंसा होय ।
ब्रह्मचर्य्य दशमें कहा, त्याग एकादश जोय ॥
बरहें स्वाध्यायहि कहो, अरु तेरहें मृदु चित्त ।
चौदह तोष पुनि पंद्रहें, साधु सेव करे नित्त ॥
विषयत्यागकर सोलहें, सत्रहे वृथा सुखोपाय ।

१ सत्यसत्य ।

मौन अठारह सो कहा, वृथा बोल न गवाय ॥
ऊनविंश इस देहसे, आतम न्यारा जान ।
बिसवें जो अन्नादि कछु, बांटिके भोजन पान ॥
ब्रह्म इकिसवें सर्वमय, नरमें निरख विशेख ।
बाइसवें पुनि श्रवण कह, तेइस कीर्तन लेख ॥
स्मृति[1] चौविश पच्चीसवें, पूजा सेवन छबीश ।
बन्दन दास्य अठाइसे, सख्य स्वार्पणा[2] तीस ॥

इति ३० लक्षण

केते जनकादिक गृही, जो निज धर्म्मप्रवीन ।
पायो शुभगति आपहू, औरनहू गति दीन ॥
हरिके हेतु न देत धन, देत कुमारगमाहिं ।
ऐसे अन्यायी अधम, बांधे यमपुर जाहिं ॥
जो दीने सो पाइहै, लुनै जो बोया बीज ।
जो नहिं बोया बीज है, पावै नहिं कछु चीज ॥
गाडा धन छाडा वृथा, जो दीना सो मोर ।
क्रूर विचार करे नहीं, लगे न हरिकी ओर ॥
निज धनके भागी जिते, सगे बन्धु परिवार ।
जैसा जाको भाग है, दीजै धर्म्म सँभार ॥
अपने भागको लीजिये, है हराम पर हक्क ।
सूकर गायकी सौंहपर, अहक्क ओर जनि तक्क ॥
गह्यो सुदामा भाग हरि, भयो महा कंगाल ।
और भाग विषसों तजो, धर्म्मनीति निजुपाल ॥
तन मन धन हरि हेत दे, चेत भक्ति कर प्रीति ।
यहि संसार असार लखि, चल जनकी विपरीति ॥

---

१ सुमिरन । २ आत्मसमर्पण ।

धन मन तन सब जायगो, रहे न जो कछु दीस ।
मूरख वृथा गवाँव सो, भक्ति भजै जगदीश ॥
महातिमिर घेरे हृदय, विषयभोग लपटान ।
सुमति न आई अजौं उर मरनकाल नियरान ॥
खाट परे तब झखई, नयनन आवे नीर ।
तब कछु यतन बनै नहीं, तनु व्यापे मृतु पीर ॥
देखे जब यमदूतको, ठाढ भे सन्मुख आय ।
महाभयंकर भेष लखि, इत उत जीव लुकाय ॥
सकल शिथिल इन्द्री भई, रहा न कोई ओट ।
अब कहँ भागिकै जाइहौ, यमगण पकरी झोंट ॥
पुण्य भजन कीना नहीं, नहिं संतनसे हेत ।
बार बार पछतात मन, चिड़िया चुन गईं खेत ॥

इति गृहीधर्मका वर्णन समाप्त

अन्य गृहीधर्म वर्णन

( कबीर संग्रह )

दोहा–जो मानुष गृहधर्म युत, राखे शील विचार ।
गुरुमुख वाणी साधु सँग, मन वच सेवा सार ॥
सेवक भाव सदा रहे, अहम न आने चित्त ।
निर्णय लखे यथार्थ विधि, साधुनको कर मित्त ॥
सत्य शील दाया सहित, बरते जगव्यवहार ।
गुरू साधुके आश्रित, दीन बचन उच्चार ॥
बहु संग्रह विख्यानके, चित्त न आवे ताहि ।
मधुकर इव सब जगतमें, घटि बढ़ि लखि बर्ताहि ॥
प्रीति सदा गुरु पारख करई । संगति साधु सदा आचरई ।
उत्तम मध्यम जग ब्यवहारा । निर्णयसहित करे अनुसारा ॥

दोहा—गृहीधर्म बड़ खटपट, तामें रहि हुशियार ।
लोक वेदकी रीति सब, करता सहित विचार ॥
जीवघात आदिक करम, करै न कबहूं भूल ।
सोइ रक्षा जीवन करे, प्रेम सहित अनुकूल ॥
बाणी अप्रिय कहै नहिं, कहै सबन उपकार ।
ठहरे पद बोधित गुरु, लावे भक्ति गोहार ॥
चारि खान बहु जीयरहि, दुखदाई जो होय ।
जुरे तो रक्षे जीव कहँ, अस कह रहे चुप सोय ॥
गुरु साधुहिं सन्मानई, मिथ्या जालहिं त्याग ।
सांच हृदय दाया सहित, निज सुख गुरु अनुराग ॥
दीन दयालको मत लखे, शिष्य स्वतःपद थीर ।
साधु गुरू सम जानिके, सबहि मन बच धीर ॥
साधुनकी जल अन्नते, वस्त्र सहित करै रच्छ ।
शक्य यथारथ अनुक्रम, गुरुसेवी शिष्य स्वच्छ ॥
गुरू साधुपद दीर्घजग, है शिष्य सबन प्रमान ।
त्रिबिधि ताहि सेवन करे, आपु दास पद मान ॥
हे शिष्य जे दासातने, हंताते तेहि भीन ।
तेई गुरु पारख लखे, हंत कल्पना कीन ॥
तेई उत्तम पारखी, गुरुमतके अधिकार ।
हंता नाशे शिष्य जो, हंस थीर पदसार ॥
दास भाव सेवा सहित, भक्ति साधु गुरुकेर ।
यहि प्रकार हंसा वसे, सेवकको नहिं फेर ॥

निर्णय जो गुरुमुखही सूना । ताहि मनन साक्षातहु गूना ॥
प्रेम लगावे अस्ति पद माही । ठहरे गुरु पंचाइत पाही ॥

इति

अथ वैराग धर्म वर्णन

दोहा–दयापाल सब जीवके, बोले सत्य विचार ।
मन कर्म बानी त्यागकर, मैथुन अष्टप्रकार ॥
काठंचित्रकी नाव जो, ताहू दिशि मत देख ।
देखतही तन विष चढै, सर्प दंशकर लेख ॥
मनमतंग मानै नहीं, मद्दा महाउत ज्ञान ।
ताते अंकुश दीजिये, हो कलिमलकी हान ॥
सुवरण मिट्टी एकसम, दत्त अदत्त न लेत ।
कार्य्य मात्र कछु लीजिये, भोजन छाजन हेत ॥
सकल परिग्रह त्यागिये, सूक्षम तनके काज ।
धर्म्म वस्तु जो राखिये, तौ ना होय अकाज ॥
भय नहिं देत न करतभय, निर्भय दृढ मनजास ।
सर्प सिंह आदिक लखे, रंचहु डरे नहिं तास ॥
काला सर्प शरीरमें, सब जग डारयो खाय ।
साधु अंग ना मोडई, ज्यों भावै त्यों खाय ॥
सम्मुख आवत बाण लखि, कबहुँ न मोडत अंग ।
ठौर न तजि थिरताभजे, होय प्राण जौ भंग ॥
पर्वतसे टूटी शिला, शिरपर आवत देख ।
सरकत नहिं निज ठौरते, प्राणघात निज लेख ॥
भूमि सन कै काठ पर, जीव घात ना होय ।
लोट पोट कीजे सही, ना पडि रहिये सोय ॥
योग ध्यानमें दृढ़ सदा, शुद्ध हृदय निर्ग्रन्थ ।
आठ पहर जपमें रहे, पाव परम पद पन्थ ॥
धर्म पुराण विचार नित, गुरुको बचन प्रमान ।
शांति सरल अक्रोध चित, इन्द्री दम शम जान ॥

तजि चंचलता भावको, अनहिंसा रह नित्त ।
दृढ समाधिआसनअचल, छितिसो[1] क्षमाहै चित्त ॥
घेरे विपति अनेक जो, आसन तजे न संत ।
दुःख द्वन्द लखि भाग मति, दृढ संकल्प गहंत ॥
शुद्ध अचार बिचार मय, नहिं मनमें मदमान ।
धीरज धर्म्म संतोष गहि, लघु भोजन परमान ॥
राग द्वेष नहिं शत्रु हित, तजे दर्प हंकार ।
शीतउष्ण समदुःख सुख, प्रिय अप्रिय यकसार ॥
मान और अपमान सम, तजे जक्त की आस ।
चाह रहित संशय रहित, हर्ष शोक नहिं तास ॥
अधो दृष्टि मारग चले, चार हाथ महि देख ।
जाग्रत मौन मधुर बचन, मन संकल्प न लेख ॥
पात्र कुपात्र बिचार गृह, भिक्षा दान जो लेत ।
नीच अकर्मी सूम घर, दान महा दुख देत ॥
सदा होय मलपात जिहि, देहि में जो नौ द्वार ।
सूखी ठौर एकन्त लखि, ताको दीजै डार ॥
देह को विग्रह नाम है, रोग दुःख बहु घेर ।
धीरज धरे मनमें सदा, दुख करि काहु न टेर ॥
अपने मन कोई करें, भावे करे न सेव ।
काहूसे नहिं जांच कछु, यही संतको टेव ॥
लाभालाभ जयाजयौ, गंध कुगंध समान ।
रूप कुरूपहिं समलखे, गुरु हरिको गुनगान ॥
संध्या तीनो काल दृढ़, कर्म क्रिया विधिलेख ।
दम्भ छिद्र छल रचे नहिं,प्रभु अनन्य जो देख ॥

---

१ छितिसो – पृथ्वीके समान क्षमापान ।

प्रथम विराग विवेक पुनि, ज्ञान और विज्ञान ।
चारो नयनपुनीत जेहि, पर औगुन मलखान ॥
अपनो औगुन देखते, औरन को गुन दीख ।
निन्दा चुगली सब तजे, यहि सतगुरुकी सीख ॥
यह दुनिया मुर्दार है, तामें लागे स्वान ।
ताते जगसुख साज सब, त्यागत संत सुजान ॥
स्वर्ग आदि जो सुख घने, कीट बीटवत जान ।
मन इन्द्री विपरीति कर, दुखदेही नहिं मान ॥
जगमें गुरू अनेक हैं, सतगुरु सांच टटोल ।
कांचकी ढेर बखेर बहु, गह मणि एक अमोल ॥
संत जौहरी जानसो, ज्ञान नैन निरुआर ।
सार बस्तुको गहि लियो, त्याग्यो सकल असार ॥
सदा काल तप तन दहे, ओर छोर यकसार ।
सो सूरे साधू कहो, उतरे भवनिधिपार ॥
सूरा तो क्षणमें मरे, जरे सती क्षणमांह ।
परम सूर साधू कहो, सदा काल तन दाह ॥
मूरखते मत ज्ञान कह, मौन धारि बहलेहु ।
जेहि पथ विषयनमें चले, चला जान तेहि देहु ॥
उत्तम ज्ञान न आव तेहि, छोड़ि देत निज धर्म्म ।
ताते तेहि न हटाइये, होय अधिक मति भर्म ॥
कोइ कुधर्म्म अज्ञानते, गहि लीना जो संत ।
ज्ञान भये अवगुण लखे, तजिये ताहि तुरंत ॥
अजर अमर लखि आपको, तप दृढ़ ध्यान गहंत ।
देह गेह सब तुच्छ है, जान सुजान कहंत ॥
इंद्री तत्त्व प्रकृतिसे, आतम जाने पार ।

जाप एक पल नहिं छुटै, टुटै न पावै तार ॥
जब जप करते थकि गये, हरि यश गावै सन्त ।
कै निज धर्म पुराण पढ, ऐसो धर्म सिद्धंत ॥
मोहको जब लग त्याग नहीं, तबलग नहीं वैराग ।
जो मनमें वैराग नहिं, तौ समाधि नहिं लाग ॥
दुखको तजि भागे नहीं, सुख नहिं चाहत सोय ।
नेह क्रोध भय त्यागिये, बुद्धिकी थिरता होय ॥
आप जो खैंचकै आपमें, कर्म बटोरे आप ।
विषयते इंद्री खैंचिये,कटे देहको पाप ॥
इन्द्री भोग न पाव जब, मृतक सो रहि जात ।
तब इंद्रियन परे जो, सो आतम दर्शांत ॥
बुद्धिवन्त जे पुरुषवर, बलकरि इंद्री साध ।
विषयन ध्यावन काम उग, कोह मोहकर बाध ॥
मोहते सुधि बुद्धि नाश है,सुधि बुधि बिन मृतहोय ।
जबै इंद्रियनको वश कियो, तबै शांति कह सोय ॥
शांतिते मन थिरता गहे, मन थिरताते योग ।
योग ध्यानसुध्यानते, ज्ञान गहैं सब लोग ॥
ज्ञानते आतम लाभ है, लाभ न ताहि समान ।
इन्द्री दम नित जाग्रन, तबही बुद्धि थिरान ॥
मनमें जो विषयन भजे, कर्म्म तजे का होय ।
सर्व मनोरथ त्यागिये, बुद्धि शांति तब होय ॥
फाका फुक्र फिक्र नहीं, इंद्रहि जाने रंक ।
सात गांठ कोपीनके, तऊ न साधुको शंक ॥
हरिकी भक्ति कबीर करु, तजि विषया रस चोज ।
बारबार नहिं पाइये, मनुज जन्मकी मौज ॥

कबीर हरीकी भक्ति बिन, धिक जीवन संसार ।
धुवाँकेर धौलाहरा जात न लागे बार ॥
कबीर–जबलग नाता जातिका तबलग भक्ति न होय ।
भक्ति करे कोइ शूरमा, जाति वरण कुल खोय ॥
कबीर–भक्ति निशानी मुक्तिकी, चढे संत सब धाय ।
जिनजिन मनआलस किया, तिनही तिन जहडाय॥
कबीर–जबलग आशा देहकी, तबलग भक्ति न होय ।
आशा त्यागे हरि भजे, भक्त कहावै सोय ॥
सब इंद्रिनके भोगमें, राग द्वेष तजि देहु ।
काम क्रोध रजगुणहिंते, नेह न कीजे एहु ॥
ठौर पुनीत निहारिके, कर आसन विस्तार ।
अभयशांति ब्रह्मचर्यगहि, इमि समाधिको धार ॥
दृष्टि न इत उत तानिये, दृगमहँ ध्यान लगाय ।
चित्त चंचलको रोकिके, रसरसते बैठाय ॥
दीपशिखा बिन पवनके, इमि योगी मन थीर ।
योग जो करे वैराग युत, सो मेटे भवभीर ॥
ज्ञानी रोगी अर्थिही, जिज्ञासू ये चार ।
सो सबही हरि ध्यावते, ज्ञानी उतरे पार ॥
गोत्र ऊंच अरु नीच जो, पावत है जग जीव ।
आलस नहिं अरु व्याकुली, ताने तमगुण कीव॥
ताते ज्ञानको गोप है, हिरदयमें अँधियार ।
रजतमको सतपेल जब, होइ ज्ञान इंद्रिद्वार ॥
मृदु शुचि हो गुरु सेइये, ब्रह्मचर्य्य चित लाय ।
अनहिंसा तप दान युत, निग्रह मौन गहाय ॥
कर्मके फलको त्याग है, देह कर्म नहिं त्याग ।

मनकामनाऽहंकार युत, सो राजस दुख भाग ॥
शुभअशुभ नहिं जान जो, किये सहित अभिमान।
हिंसायुत है कर्म्म जो, तामस ताहि बखान ॥
थोरे दिनके कर्म्मको, बहुत अबार लगाय।
आलसमें कारज किये, तामें तम सरसाय ॥
क्षमासमान न तप कोई, सुख नहिं तोष समान।
तृष्णासम नहिं व्याध कोई, धर्म्म न दया समान॥
व्रतके पाँचो अंग हैं, त्याग न चाह न मोह।
निःसंशय निस्प्रीहता, यह पाँचो विधि जोह ॥
योगके पाँचो अंग हैं, क्षमा अष्कामं * बताय।
समदृष्टि आनन्दमय, फिरि अनन्य कहलाय ॥
भक्तिके पाँचो अंग है, नामरटन धुन धार।
सत्य शान्ति अरु प्रेमदृढ़, सुरति न चरनन टार ॥
भक्तिमें तीन प्रकारके प्रेम कहावे संत।
रूप देह अत्यन्त जो, तीनो नाम बदंत ॥
ज्ञानके लक्षण अब कहौं, दश प्रकारको ज्ञान।
नित अक्रोध वैरागयुत, इन्द्रीदमन बखान ॥
दयापाल परमार्थी, क्षमावंत निर्धार।
शोकहीन निर्लोभ कहि, निर्भय चित्त उदार ॥
शम दम विराग विवेक है, ज्ञानके साधन चार।
सात्त्विकि राजसि तामसी, निर्गुण श्रद्धा सार ॥
अंग योगके पाँच यह, संयम मौन यकन्त।
विषयत्याग आतमें निरख; होय दुःखको अन्त ॥

---

* निष्काम।

पाँच अंग विज्ञानके, सत्यबंचन निःशंकं ।
सुखदुख सम परमार्थी, लह विवेक निकलंक ॥
औरन औगुन देखि कह, औगुन अपने आहि ।
अपनो औगुन देखिये, जगत ब्रह्म दरसाहि ॥
औरनमें औगुन लखे, निज औगुन नहिं जान ।
अंधकार उरमें वसे, युत जड़ता अज्ञान ॥
जो कछु कहना चाहिये, चौड़े कहो बजाय ।
पीछे दोष न भाषिये, अमृत बचन सुनाय ॥
हृदय तराजू तौलके, तब मुख बाहर कीन ।
मधुरी बानी बोलके, परमारथ चित दीन ॥
यंत्र मंत्र सब त्यागिये, अन्यदेव मति ध्याय ।
जो साधू ऐसा करे, सोई मुक्ति पद पाय ॥
चौदह विद्या सीखकै, पूरण पण्डित होइ ।
मूक बनै सब त्यागिके, वन्दनीय है सोइ ॥

कबीर भानुप्रकाश अन्तर्गत साधु लक्षण समाप्त

अथ विमल लक्षण वर्णन

प्रथम संसार भली प्रकारसे चलाना, पश्चात् परमार्थका विचार ग्रहण करना । विवेकियोंको सदा ध्यान रखना चाहिये कि, संसार छोड़ परमार्थका ढोंग करना अथवा परमार्थको छोड़कर केवल संसारमें ही निमग्न रहना मूर्खता और दुःखका कारण है, इस हेतु विवेककी चरितार्थता इसीमें है कि, संसार और परमार्थ दोनों मर्यादापूर्वक चलाये जाव ।

संसार छोड़ परमार्थ करने लगे तो खानेको अन्न मिलेगा नहीं, फिर भूखे मरनेवालोंसे परमार्थ क्या हो सकेगा ? अंतमें संसारयात्राके लिये नाना प्रकारके उचित अनुचित व्यवहारोंमें

फँसाना होगा। और इसप्रकार फसे हुए पुरुषका फिर परमार्थमें लगना दुस्तर है।

इसी प्रकारसे परमार्थको छोड़कर केवल संसारमें ही मग्न होनेसे पारलौकिक ज्ञानताके कारण अन्तमें नाना प्रकारके दुखों सहित बारम्बार गर्भकी कठिन यन्त्रणाको सहना होगा। स्वामीके कामको छोड़कर घरमें बैठनेवालेको स्वामीकी ओरसे नाना-प्रकारकी कठोरवाणी और उलाहनाके सहित लोगोंकी निन्दा उठानी पडती है. उसी प्रकारके पारलौकिक ( सद्गुरुकी आज्ञा ) धर्म्म ( परमार्थको ) छोडकर संसारमें ही मग्न रहनेवालेकी मुक्ति और सुख छूट जावेगा और कठिन यमका दण्ड सहना पडेगा। प्रवृत्तिमें रहनेपर भी ज्ञानद्वारा आसक्ति शक्तिरहित निर्लेप रहता है वही उत्तम है, क्योंकि वह सदा परमपदपर स्थित सारासारके विचारमें संलग्न रहता है।

प्रवृत्तिमें कुशल पुरुष निवृत्ति मार्गको सहजमें ही पूरा कर सकता है; परन्तु प्रवृत्तिमें जो कुशल नहीं है उसको परमार्थमें भी कदापि सफलता नहीं होती। शंकराचार्यादि महात्मागण जो बाल्यावस्थासे ही त्यागी थे उन्हें भी अन्तमें प्रवृत्तिके अनुभवको प्राप्त करनेका यत्न करना पड़ा।

विशेषकर उपदेशकों और धर्म्म गुरुओं और आचार्य्य आदि गुरुकोटिके पुरुषोंको तो अवश्य उभयप्रकारसे दक्ष और अनुभवी होना चाहिये।

इसी हेतुसे उचित है कि, शान्तिसे विचारपूर्वक धर्म्म और नीतिके अनुसार संसार और परमार्थ दोनोंको ही चलाना चाहिये; ऐसा न करनेसे अनन्त दुःखोंका भागी होना पड़ेगा।

जीवोंका स्वभाव अनुकरण करनेका है तो जो मनुष्य शरीरमें आकर भ्रममें भटका उसको क्या कहना ?

साखी–जियत न तरे मुये का तरिहो, जियते जो न तरे ।
गही प्रतीति कीन जिन जासों, नर ताहैं मरे ॥
–बीजक ।

मरे पीछेके बनावका विचार भी जीवित अवस्थामें ही कर लेना मनुष्यका कर्तव्य है।

लोकमें प्रत्यक्ष दीख पड़ता है कि, जो सदा जागृत रहता है वह सुखी रहता है और गाफिल दुःख उठाता है। इस कारणसे संसार और परमार्थ उभयमें जो चैतन्य है वही सुखी और सर्वको समाधान करनेको योग्य है।

दोहा–धन्य धन्य तारण तरण, जिन परखा संसार ।
तेई बन्दी छोर हैं, तारण तरण उबार ॥
सारशब्द निर्णय ।

जो जीवित अवस्था सर्व प्रकारसे शक्ति सम्पन्न होनेमें पारखको प्राप्त नहीं होता है वह कालके कठिन आक्रमणके समय क्या कर सकता है, उस समय तो कालके अधीन होकर चौरासीके ही मार्गमें जाना होगा। इस हेतुसे जहाँतक शीघ्रता हो सके पूर्वज महात्मा लोगोंका और सतगुरुके बताये मार्गका बारम्बार विचार कर पारखको प्राप्त कर सत्यपदको प्राप्त होना चाहिये। क्योंकि जीव अनुसरण शील है एकको देखकर दूसरा मार्ग ग्रहण करता है।

गुणवान्, बुद्धिमान्, विद्वान् और सदाचारी लोगोंकी संगति करके उनके सद्गुणोंका ग्रहण करना और अवगुणोंका त्याग करना चाहिये। इस प्रकारसे जो सर्वके गुणकी परीक्षा कर ग्रहण

योग्यको ग्रहण करता है और त्यागने योग्यको त्यागता है; किसीके मनको दुखाता नहीं है, और मनुष्यमात्रके ज्ञान और चित्तकी परीक्षा करता है वही उत्तम पुरुष है, उसीको मनुष्य कहलाना शोभा देता है। सर्व मनुष्योंमें उसकी सामान्य बुद्धि होती है, सर्व प्राणियोंपर एकभावसे दया रखता है, उनके ज्ञानकी तारतम्यतासे उनके द्वारा दुखसुखको प्राप्त हुआ भी सदा उनको दया दृष्टिसे देखकर अनेक प्रकारसे उन्हें अज्ञानके धीसे निकालकर पारख राज्यमें प्राप्त करानेकी शुभ इच्छाको धारण किये रहता है।

बलिहारी तेहि पुरुषकी, परचित परखनहार ॥

-बीजकसा० १३२

इसी प्रकारसे विमल लक्षणका अनन्त स्वरूप है, सदाचारी पारखी जब इन लक्षणोंकी ओर झुकता है तब उसे स्वयम् प्रकाश प्राप्त होता है और नित्य नवीन सुलक्षणको जानता जाता है।

### अथ मूर्खलक्षण वर्णन

मूर्ख दो प्रकारके होते हैं-१ मूर्ख,२ पठितमूर्ख इन दोनों प्रकार के मूर्खोंके लक्षण विचित्रप्रकारके कौतूहलसे पूर्ण हैं,इन्हीं लक्षणों द्वारा मनुष्यप्राणी लौकिक और पारलौकिक दुःखोंको प्राप्त होते हैं-इसी कारणसे उनको जानना उन्हें परखना, उनसे अलग रहनेका प्रयत्न करना और इन लक्षणोंकर युक्त प्राणियोंकी सदा उपेक्षा करनेके हेतु दोनोंके लक्षणोंको भिन्न २ लिखता हूँ।

जो प्रपंची है, जिसको आत्मज्ञान नहीं है, जो अज्ञानी है, उसे मूर्ख कहते हैं-यद्यपि ऐसे मूर्खोंके लक्षणका विस्तार बहुत है तथापि यहां संक्षेपसे लिखा जाता है।

अथ मूर्खलक्षण

जिसके उदरसे जन्म लिया ऐसी माताके साथ विरोध करे, और स्त्रीको प्यार करे, सर्व परिवारोंको छोड़ दे, केवल स्त्रीके वश होकर रहे, अपने अन्तर गुप्त बातको उससे कहे उसे मूर्ख जानना । परस्त्रीके साथ प्रेम करे, श्वसुरके घरमें वास करे, नीचकी कन्यासे विवाह करे वह मूर्ख है ।

बलवानके साथ गर्व करे, मनमें ममता रखे, बल बिना सत्ता दिखावे, आत्मस्तुति करे, देशमें रहके दुःख भोगे और बाप दादेकी बड़ाई हाँके उसे मूर्ख कहते हैं । बिना कारणके हँसे, अत्यन्त अविवेकी ( अर्थात् अवसर बिना बोले हँसे ) और बहुतोंका शत्रु हो उसे मूर्ख जानो ।

अपने सम्बन्धियों और परिवारके रहते हुए उनकी उपेक्षा-कर परायोंसे मित्रता करे, रात दिन पराया छिद्र ढूँढता रहे वह मूर्ख है ।

जहाँ बहुतलोग बैठे हों उनके बीचमें जाकर सोना और परदेशमें जाकर बहुत खाना—ऐसा मूर्ख बिना दूसरा कौन कर सकता है ।

मान अपमानकी जिसे समझ न हो, जिसका मन सदा व्यसनके वशमें पड़ा हो उसे मूर्ख जानना ।

परायेकी आशासे परिश्रम करना छोडकर जो निरुद्यम होकर आनन्द माने वह मूर्ख है ।

मूर्ख घरमें बड़े विवेकी बनते हैं, बहुत बोलकर अपने परिवार और स्त्रियोंमें बकता बनते हैं परन्तु सभामें शर्म्माते हैं, भयभीत होकर मुखसे बोल नहीं निकाल सकते ।

वृद्धोंके निकट ज्ञानीपना प्रकट करे, सात्विक और सरल हृदयके जीवोंसे छल करे, अपनेसे श्रेष्ठके साथ स्नेह करने जावे, और किसीका उपदेश माने नहीं उसे मूर्ख मानना।

एकदम विषयी और निर्लज्ज होकर मर्यादासे बाहर कार्य करता फिरे, रोगी होने पर भी औषध न ग्रहण करे, पथ्य सेवन न करे, जो कुछ सन्मुख आवे उसे त्याग करे नहीं उसे मूर्ख जानो।

अकेले परदेश जावे, परिचय बिना साथ करे और एकदम जाने बूझे बिना किसी बडे नगर (शहर) में जावे यह लक्षण मूर्खमें ही होते हैं।

जहाँ अपमान होता हो वहां बारम्बार जावे, जिसको मान अपमानका कुछ विचार नहीं वह मूर्ख है।

अपने नौकरके धनी होजानेपर उसकी सेवामें रहे और जहाँ मन लगे नहीं वहाँ रहे वह मूर्ख है।

मूर्ख बिना बिचारे तनिक अपराधपर भी दंड देते हैं, सहज सहज बातोंमें कृपणता दिखलाते हैं।

देव पितृको नहीं मानता, शक्ति बिना बडी बडी बातें करना और सदा मूर्खसे अपशब्द बोलना मूर्खका काम है।

घरमें अपनी बड़ी बहादुरी प्रकट करे और बाहर गरीब बन फिरे उसे मूर्ख जानना।

नीचकी मित्रता, परस्त्रीके साथ एकान्तमें संभाषण और मार्ग चलते खाना मूर्ख लक्षण है।

किये उपकारको माने नहीं, उपकारको भी अपकार माने, अपना थोडा किया बहुत बतावे ऐसे कृतघ्नको बुद्धिमान् मूर्ख कहते हैं।

तामसी, आलसी; मनसे कुटिल और अधीर मूर्ख होता है। विद्या वैभव, धन, पुरुषार्थ, बल और मान बिना मिथ्या अभिमान करनेवाला मूर्ख होता है।

लुच्चाई, लफंगई, लबारपना, कुकर्म, कुटिलता, बेगरजीपना और मलिनता मूर्खका लक्षण है।

दांत, आंख, हाथ, वस्त्र और पग सर्वकाल मैला रखे सो मूर्ख और ऊँचे चढकर वस्त्र पहिरे, बाहर चौतरेपर बहुत बैठकर प्रायः नंगे शरीर रहे सो मूर्ख है।

वैधृति, व्यतिपात और कितने कुमुहूर्तोंको अपशकुनकी बात गिने सो मूर्ख है।

क्रोधसे, अभिमानसे और कुबुद्धि से अपना आप ही घात करे ऐसा अव्यवस्थित चित्तवाला मूर्ख है।

अपने सुहृदके साथ खेदके साथ व्यवहार कर, सुख और शांतिका शब्द भी न बोले और नीच जनोंकी स्तुति करे वह मूर्ख है।

अपनेको सर्वप्रकारसे पूर्ण माने, शरणागतको धिक्कारे और लक्ष्मीका भरोसा करे वह मूर्ख है।

पुत्र, कलत्र, और स्त्री अर्थात् सांसारिक विषय वासनाको ही मुख्य मानकर उसीमें मुग्ध होकर जो परमात्माको भूल जावे उसे मूर्ख जानना चाहिये।

"करनी पार उतरनी" "जस करनी तस भरनी"।

दोहा—कबीर कमाई आपनी, कदी न निष्फल जाय।
सात समुद्र आड़ा पडे, मिले अगाऊ धाय॥

—अंगकी साखी।

जो इस भावको नहीं समझता है वह मूर्ख है, पुरुषोंकी अपेक्षा जो स्त्रियोंको विशेष मान दे वह मूर्ख है।

जो दुर्जनके साथ भाषण करे, मर्यादाको त्यागकर और आंख मूंदकर मार्ग चले वह मूर्ख है।

पितर, गुरू, देव, माता, पिता, भ्राता, गुरुभाई, बड़ी बहिन चाची, गुरुपत्नी, गुरुबहिन और स्वामी आदि गुरुजनोंका द्रोह करे वह मूर्ख है।

गंभीरताको छोडकर बोले, आदर बिना बोले, बिना पूछे बोले, निन्द्य वस्तुको अंगीकार करे, मार्ग छोड़कर चले और कुकर्म्मी मित्र करे वह मूर्ख है।

दूसरेको दुखी देखकर हँसे, सुख माने और दूसरेको सुखी देखकर दुख माने, ईर्षा और वैरसे हृदयको जलावे और गई वस्तुका शोक करे वह मूर्ख है।

अपनी प्रतिष्ठाकी रक्षा करना जाने नहीं, सदा हँसी ठट्ठा करे और हँसी ठट्ठा करके भी लड उठे उसे मूर्ख जानना।

अपनेसे पूरा हो सके नहीं ऐसी शर्त करे, विना कामके ही बडबड करे, बोलनेकी रीति जाने नहीं उसे मूर्ख जानना।

वस्त्र शस्त्र विना ऊँचे स्थल पर जा बैठे और अपने गोत्रका विश्वास घात करे वह मूर्ख है।

चोरको अपनी पहचान बतलाये, दृष्टि पडी हुई वस्तु मांगे क्रोधमें अपना अहित करे वह मूर्ख है।

नीच लोगोंकी संगति करे, घमंडके साथ बात करे, बायें हाथसे पानी पीये वह मूर्ख है।

समर्थके साथ मत्सरता करे, अलभ्य वस्तुकी आशा करे और अपनेही घरमें चोरी करे वह मूर्ख है।

परमात्मा विना मनुष्यपर विश्वास लावे और निरर्थक अपनी आयु नष्ट करे वह मूर्ख है।

"संसार दुःखसे भरा है" ऐसा जानने पर भी देवोंको गाली दें और मित्रोंको भला बुरा कहे वह मूर्ख है ।

अल्प अन्यायके लिये भी क्षमा न करे, सदा बरछीके नोक पर भी रहे और विश्वासघात करे उसे मूर्ख जानो ।

समर्थके साथ विरोध करे, जनमंडली जिसको देखकर क्रोधित हो, घडीमें भला घडीमें बुरा हो उसे मूर्ख जानो ।

पुराने सेवकोंको छुडाकर नया सेवक रखे और जिसकी सभा नायक विना हो वह मूर्ख है ।

अनीतिसे धन प्राप्त करे, न्यायनीति और धर्मको छोड दे तथा साथके आदमियोंको त्याग दे वह मूर्ख है ।

अपना पैसा दूसरेके पास रखे, दूसरेका अपने पास रखे, नीचलोगोंके साथ व्यवहार करे वह मूर्ख है ।

अतीतका अंत ढूढे, कुग्राममें जाकर वास करे और हमेशा चिन्तामें रहे सो मूर्ख है ।

दो जन बात करते हों वहाँ जाकर बैठे और दोनों हाथसे शिर खुजलावे वह मूर्ख है ।

पानीमें थूके, पगसे पग खुजलावे, नीच मनुष्यकी सेवा करे वह मूर्ख है ।

स्त्री और बालकको मुँह चढावे अर्थात् निडर करे, परस्त्रीके साथ कलह करे, बहुत कालकी मर्यादाको हलकी करे, गुंगे जीवको कारण विना मारे और मूर्खसे मैत्री करे वह मूर्ख है ।

दोकी लडाई झगडेको खड़ा होकर देखे और झूठी बातको सच्ची और सच्चीको झूठी माने वह मूर्ख है ।

लक्ष्मी मिलनेपर पहली पहचान भूल जावे और पूज्य वर्गोंपर हुकूमत चलावे वह मूर्ख है ।

अपने स्वार्थ तक नम्रता दिखलावे, स्वार्थ निकले पीछे बेपरवाह होजावे और उपकार करनेवाला कार्य्य न करे वह मूर्ख है।

जो अक्षर छोडकर पढे, पुस्तककी ओर दृष्टि न रखे और अपनेको बहुत बुद्धिमान् प्रकट करे वह मूर्ख है।

स्वयम् कभी पुस्तक पाठ करे नहीं, दूसरोंको पाठ करने दे नहीं और पुस्तकोंको बांधकर रखे वह महामूर्ख है।

इस प्रकारसे संक्षेपमें मूर्खोंका लक्षण वर्णन किया, अपनी हितकी कामना करनेवाला पुरुष इनका विचार कर सदा ही इन दुर्गुणोंसे बचनेका प्रयत्न करे, जिससे मूर्खोंकी पंक्तिसे निकलकर उत्तमोंकी गिनतीमें आवे।

### अथ पठित मूर्खका लक्षण वर्णन

पीछे मूर्खका लक्षण वर्णन कर आये, अब उनका लक्षण वर्णन करूँगा कि, जो बुद्धिमान् और पढ–लिखकर भी मूर्ख हैं। अर्थात् विद्वान् होनेपर भी जिनमें मूर्खता होती है उन्हें पठितमूर्ख, कहते हैं।

बहुत शास्त्र और ग्रन्थोंका पठन पाठन और श्रवण किया हो, ब्रह्मज्ञानकी वार्ता करे, परन्तु झूठी आशा और मिथ्या अभिमानका त्याग न करे ऐसे विद्वान्को तोतेके ज्ञानसमान अज्ञानी मूर्ख जानना।

मुक्त पुरुषोंके चरित्रको बारम्बार मुखसे कहता है परन्तु उनके सदाचारका अनुकरण करता नहीं और स्वधर्मके साधनोंको तुच्छ दृष्टिसे देखता है तथा औरोंको उनके आचरणसे हटाता हो उसे पढ़ा हुआ मूर्ख समझना।

अपने ज्ञातापनके अभिमानसे सर्वमें दोष लगाता है, प्राणी मात्रमें छिद्रान्वेषण किया करता है, उसके शिष्य अथवा अधीनस्थ मनुष्य उसकी आज्ञासे बाहर चलनेवाले हों, जिसके बोलनेसे दूसरोंका दिल दुखाता हो, ऐसे पंडितको पठितमूर्ख समझो।

सम्पूर्ण पुस्तक बांचे बिना ग्रन्थको तथा ग्रन्थकारको दूषण देना, ग्रन्थके गुणको भी अवगुण ही समझना, थोडे अवगुणको देखकर संपूर्ण अवगुण किसीमें कल्पना करलेना पठितमूर्खोंके अतिरिक्त दूसरे किससे हो सकता है ?

सदाचार और सल्लक्षणोंसे हास्य मानकर, सदाचारी और सल्लक्षण युक्त पुरुषोंकी निन्दा करता है, सदा उनको नीचा-दिखानेकी चिन्तामें लगा रहता है, वह जो कुछ नीति अथवा न्याय अपने दोषोंको छिपानेके लिये करता है सब छल छिद्रसे भरे होते हैं।

मैं ज्ञानी हूँ, सर्वज्ञाता हूँ ऐसा मिथ्याभिमान रखकर प्रत्येक कार्य्योंमें हाथ डाल देता है परन्तु कार्य्य सिद्ध न होनेपर मिथ्या क्रोधके वश हो जाता है। लोगोंके अधिकारका विचार किये बिना उनसे बोलनेका साहस करता है और बचन जो बोलता है वह भी कठोर।

बहुश्रुतपनके कारण वक्ताका सभामें अपमान करता है और मिथ्या बकवाद करता है।

जिस बातके लिये दूसरोंको दूषित कहता वही बात अपनेमें होते हुए भी उसे जान नहीं सकता।

अभ्यास द्वारा सर्व विद्या प्राप्त कर लेता है परन्तु उसके द्वारा जगतका कुछ उपकार नहीं कर सकता, किसीका उससे माधान नहीं होता।

जिस प्रकार हाथी स्पर्श विषयमें लुब्ध होकर और भवँरा गन्धमें लुब्ध होकर बन्धनको प्राप्त होता है उसी प्रकार पठित-मूर्ख संसारमें फँसता है।

वह स्त्रियोंमें लुब्ध होता है, उन्हींका संग करता है, उन्हींका अपनी वाणी द्वारा निरूपण करता है और नीच काममें प्रवृत्त रहता है।

जिससे उसके मानकी हानि होती रहती है उसीको दृढ़ रखता है, और अपनेको शरीर समझता हुआ सदा उसीके लालन पालनमें लगा रहता है।

सद्गुरु परमात्माकी स्तुतिको छोड़कर सत्य धर्म्म ग्रन्थोंका लिखना और रचना छोड़कर सांसारिक मनुष्योंकी प्रशंसा करता है उनकी मिथ्या बड़ाई करता है, उनके विषयमें प्रशंसा करता है, उनके विषयमें कविता बनाता है, जिससे कुछ सांसारिक लाभ हो उसीकी बडाई करता है, जो दृष्टिगोचर होता है उसीको सत्य जानता है ऐसा जो विद्वान हो वह मूर्ख ही कहलाने योग्य है।

स्त्रियोंके अवयवका वर्णन करता है, शृङ्गार रसकी कवितामें अपना समय बिताता है, नाटकादिके हावभावके वर्णन करनेमें अपनी लेखनीको घिसता है वह ईश्वरको भूल जाता है।

वैभवको प्राप्त हो सर्व प्राणीमात्रको तुच्छ समझता है और स्वयम् नास्तिक बनता है।

व्युत्पन्न, वैरागी, ब्रह्मज्ञानी, संन्यासी, साधु, महंत आदि उच्च उपाधिको धारण करनेपर भी प्राकृत जनोंको व्यापार धन्धाके भविष्य कहनेका काम उठाता है वह महामूर्ख है और उसे दम्भी विषयाभिलाषी पठितमूर्खके पदको प्राप्त हुआ जानना।

जो किसीकी भी पूरी बातको सुने विना उसके गुणदोषमें छिद्र ढूँढने लगता है और दूसरेकी उन्नति देख नहीं सकता है ऐसे दूषित विद्वान्को पठितमूर्ख कहते हैं ।

भक्तिके साधन, वैराग्य और भजन विना भक्त और शम-दमादि साधन विना ब्रह्मज्ञानी, और सत्यासत्यकी परीक्षा विना अपनेको केवल मुखसे ही भक्त, ब्रह्मज्ञानी और पारखी कहलानेकी कामनावाले पठित पुरुषोंको मूर्ख कहा जाता है ।

स्वधर्मके नित्य नैमित्तिक कर्म्मोंमें श्रद्धाहीन, ऊंचकुलमें भी जन्म धारण कर नीच कर्म्मोंमें प्रवृत्त होनेवाला विद्वान मूर्ख है, उसका आदर करनेवाला यदि नीच पुरुष भी हो तो उसकी मिथ्या प्रशंसा करता है और पीठ पीछे उसकी निन्दा करता है उसे पठितमूर्ख जानो ।

"मुखपर एक और पीठ पीछे दूसरा" ऐसी जिसकी आदत हो, बोलनेकी बात अलग और करनेकी अलग हो, संसारमें अत्यन्त प्रवृत्ति करने पर भी परमार्थको धिक्कारे और अपने वचनको सिद्ध करनेके लिये अपने ज्ञातव्यका आश्रय ले। सांची वातको किनारे छोडकर लोगोंकी रुचिके अनुसार बात करे, ऐसे अपने जीवनको पराधीन और मृतक करनेवाले विद्वान को पठितमूर्ख जानना ।

जो लोगोंको दिखलानेके लिये दम्भ किया करता है, अकर्तव्यको कर्तव्य मानकर उसमें प्रवृत्त होता है, मनमें सीधा और योग्य-मार्गको जानते हुए भी लोभ (लालच) से, अथवा मान-बडाईकी इच्छा, या किसी भी परके पक्षपातसे सत्य त्याग करके टेढे रस्ते चलता है उसे पारखी महामूर्ख और ज्ञानियोंकी सभासे बाहर समझते हैं, यदि वह उच्च आसन पर भी बैठा हो तो क्या ?

रातदिन उत्तम उत्तम ग्रन्थोंका श्रवण करते हुये भी अपना अवगुण त्याग नहीं करता है, अपना हित आप समझता नहीं है, तत्त्वनिरूपणके श्रवण मननको जहाँ उत्तम मनुष्य बैठते हों उनकी मसखरी करता हो, वह मिथ्याज्ञानी कदापि अपना हित नहीं कर सकता।

अपना शिष्य अनधिकारी होकर अपमान करने लगे तब भी उसकी आशा न छोडे, ग्रन्थोंको सुनते, या विचारते अथवा किसीके मुखसे उपदेश द्वारा अपने कर्तव्यकी खामी ( कसर ) कुछ मालूम हो तो क्रोधित होकर गडबड़ करने लगे तो यदि वह लोगोंमें बहुत बुद्धिमान् भी प्रसिद्ध हो तो भी उसे महामूर्ख जानना।

वैभवमें मग्न होकर सतगुरुकी उपेक्षा करे और अपनी गुरुपरम्पराको याद करे उसे भी मूर्ख जानना; यद्यपि वह वैभवप्रतापसे जगतमें बुद्धिमान् कहलाता हो।

जो ज्ञानकी बात कहकर धन जमा करता है, कृपणके समान धन भोगता है, धनके लिये ही परमार्थकी बात करता है, स्वयम् तो कर सकता नहीं और दूसरोंको वही बातें सिखाता और ब्रह्मज्ञानका उपयोग अनधिकारी विषयलम्पट लोगोंके समक्ष करता हो, ऐसा महंत, गोस्वामी और साधु संत भक्तिमार्गको भ्रष्टकर पक्षपात द्वारा वैर विरोध बढ़ानेवाला है।

परिवार त्यागकर साधु वेष धारण कर लेनेवालोंको संसार तो छूट ही गया और इधर परमार्थका भी साधन नहीं हो सका ऐसा जो धर्म्ममर्यादाको भ्रष्ट करनेवाला हो वह धर्म्मविरोधी मूर्ख कहलाता है।

जिस धर्म्मका स्वांग बनाया हो, उस धर्म्मके ऊपर पड़ते हुए विधर्मियोंके आक्रमणकी उपेक्षा कर जो स्वमान मर्यादाकी मरम्मतमें लगा रहे उस धर्म्मविध्वंसी मिथ्या स्वांगधारीको मूर्ख समझना चाहिये।

स्वधर्म्मकी जिन बातों और कर्मोंसे हांसी होती हो, उन कर्मों और बातोंमें प्रवृत्त होकर, स्वधर्म्मके सिद्धान्तको न जाननेवाले, अथवा उसकी निन्दाकरनेवाले धर्म्म दूषियोंसे जो मेल मिलाप बढ़ावे वह धर्म्मघाती मूर्ख है।

इस प्रकार संसारमें भले कहलाते हुए भी मूर्खताके ही वनमें भटकनेवालोंका संक्षेपसे वर्णन किया। सज्जन जन इसे विचारें और आत्मसुधारके मार्गको पक्षपात रहित होकर ग्रहण करें।

इति श्रीधर्म्मबोध प्रथम भाग समाप्त

सत्य

# कबीर सागर

## दशम भाग

भारतपथिक कबीरपंथी स्वामी श्रीयुगलानन्द (विहारी)
द्वारा संशोधित

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन,
बम्बई-४

नं. १० बोधसागर

संस्करण : फरवरी २०१९, संवत् २०७५

मूल्य : २१० रुपये मात्र ।

मुद्रक एव प्रकाशकः
खेमराज श्रीकृष्णदास,™
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,
मुंबई - ४०० ००४.



Printers & Publishers :
Khemraj Shrikrishnadass,
Prop: Shri Venkateshwar Press,
Khemraj Shrikrishnadass Marg, 7th Khetwadi,
Mumbai - 400 004.

Web Site : http://www.Khe-shri.com
Email : khemraj@vsnl.com

Printed by Sanjay Bajaj For M/s. Khemraj Shrikrishnadass Proprietors Shri Venkateshwar Press, Mumbai - 400 004, at their Shri Venkateshwar Press, 66 Hadapsar Industrial Estate, Pune 411 013.

सत्य

बोधसागरे-

# कमालबोध

भारतपथिक कबीरपंथी

स्वामी श्रीयुगलानन्दद्वारा संगृहीत

★

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन,
बम्बई-४

[illegible]

# [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

सत्यनाम



श्री कबीर साहिब

सत्यनाम

सत्यसुकृत, आदअदली, अजर अचिन्त, पुरुष, मुनींद्र, करुणामय, कबीर, सुरति योग संतायन, धनीधर्मदास चुरामणिनाम, सुदर्शन नाम, कुलपति नाम, प्रबोध गुरुबालापीर, केवलनाम, अमोल नाम, सुरतिसनेही नाम, हक्क नाम, पाकनाम, प्रगट नाम, धीरज नाम, उग्र नाम, दयानामकी दया, वंश-ब्यालीसकी दया ।

★

# अथ श्रीबोधसागरे

## कमालबोध प्रारम्भः

★

### एकत्रिंशस्तरङ्ग :

चौपाई

शाह सिकन्दर दिल्ली सुलताना। बैठे तख्त करे रजधाना ॥
बहुतेक दिवस आनन्दमें गयऊ। एते कायाको बेदन भयऊ ॥
देह अग्नि उठी अधिकाई। रैन दिवस शाहा सुधि नाहीं ॥
बहुतेक इलम कियो सुलताना। फेर औलिया सिद्ध मुलाना ॥
कोई विधि जलन दूर नहिं जाई। दिन दिन उठी चले अधिकाई ॥

## शाहसिकन्दर प्रतिज्ञा

दोहा–दीन दुनीका मैं धनी, मेरा जाय प्रान ।
मेरा बेदन जो हरै, मनवांछित पावे दान ॥
ऐसा कोई औलिया नाहीं । मेरे तनकी तपन बुझाहीं ॥

### वजीर वचन

कहै वजीर सुनो सुलताना । काशीमें एक फकीर सयाना ॥
वहां एक हिंदू फकीर रहाई । चौदहसौ वरष जिनउमर धराई ॥
सब हिन्दू कदमों पै जाहीं । सब हिन्दूके पीर कहाहीं ॥
उनको चर्णारविन्द धरो तुम जाई। दर्शन करत जलन मिट जाई ॥
रामानन्द कहैं सुनी बड़ाई । शाह सवारी काशी आई ॥
दोहा–आय दुनीके बादशाह, सब संगहि दललाय ।
जलन मिटनके कारने, कदमों पहुँचे जाय ॥

### चौपाई

भयो प्रभात जलन अधिकाया। जब रामानंद कहै दर्शन धाया ॥
शाह सिकन्दर दर्शन आये । सबही अमीर सङ्ग चलिधाये ॥
आये मण्डप आये सुलताना । रामानंद दिल रहै खिसियाना ॥
शाहको अग्नि उठी अधिकाई । भये विकल सही ना जाई ॥
त्राहि त्राहि तब कीन पुकारा । रामानन्द तब मुखफेरि सिधारा ॥
देखि दशा भई अति क्रोधा । कहे वजीर सुनो सब योधा ॥
देखो इस काफिरकी गुमराही । चढ़त क्रोध मोंहि रह्योनजाही ॥
दीन दुनीके शाह सुलताना । जिनको नमैं सकल जहाना ॥
सो काफिरके कदमो आवे । देखत तेहि काफिरमुँह फिरावे ॥
ऐसो काल चढ्यो बलवंडा । नफरके घटमें भयो परचण्डा ॥
ऐसो तेग चलायो जायी । काट्यो शिरधड दूर गिरायी ॥
ताह अवसर अचरजअस भयऊ। देखत दुनी अचम्भो ठयऊ ॥

कटे अङ्गसों धार बहायी। आधा रक्त अरु दूध चलाई ॥
शाह सिकंदर अन्देशा माने। भेद न जाने मनमांहि तवाने ॥
स्वामीके तन चलत दुइ धारी। हाहाकरै तब दुनिया सारी ॥

दोहा–गुरु रामानन्दहिं मारिया, काशी नगर मँझार।
शाहके बेदन बहु बढ्यो, त्रास भई संसार ॥

यक तो वेदनको दुखभारी। दुसरे अचरज परी अगारी ॥
कहैं सिकन्दर मन अकुलायी। ऐसा कोई औलिया नाहीं ॥
हमरे तनको तपन बुझावे। बहुरी अचरज को भेद बतावे ॥
सबही कहै सुनों सुलताना। इनका शिष्य यक अहै सयाना ॥
मरल गौ कइ बार जियाया। बहुतक अचरज तिन दिखलाया ॥
रामानन्दहु ते अधिक बड़ाई। सत्यकबीर कहैं सब ताई ॥
तिनको दरशन करिये शाहा। सो पुनि कहिहैं अचरजको राहा ॥
सुनत वचन सिकंदर भाई। कीन दरश कबीर पहँ जाई ॥
शाह सिकंदर दर्शन आये। मिटिगयीतपनसबदुःखमिटाये ॥
जबही शाह कियो दीदारा। मिटि गयी तपनअग्निकीझारा ॥
कहै शाह तुम सच्चे साई। तुमरे दरश तपन बुझाई ॥

दोहा–जबही तपन बुझायउ, सतगुरु दीनदयाल।
भइ प्रतीत तब शाहको, भयो शिष्य तेहि बाल ॥

चौपाई

भयमुरीद जुलहाके आयी। तब हा–जुलकरन[१]–नाम धराई ॥
ज्ञान ध्यान चरचा बहु कीन्हा। शाहसिकंदर शरणजब लीन्हा ॥

---

१–इस शब्दके ऊपर बहुत विचार किया, किन्तु शुद्धशब्दका पता नहीं लगा जुल करन न तो फारसी या अरबी शब्द है न संस्कृत या हिन्दी। कमालबोधकी एकही प्रति मेरे पास है जो सम्मत् १९११ का लिखा हुआ है। विशेषता यह है कि यह पुस्तक खास पं श्री पाक नाम साहबके समयमें उन्हींके हुजूरमें रहनेवाले एक संतकी लिखी हुई है तथापि इसमें इतनी अशुद्धियां हैं कि एक २ चौपाईको पढनेमें दो दो मिनट लग जाता है तथापि हजारों सन्देह सहित कापी लिखी जाती हैं।

सतहत्तर लाखसो बीरा लीन्हा । सबहीं जीव अमरकर दीन्हा ॥
सतहत्तरलाखजिवलोकसिधाने । अपने अवगुनसबगये हिराने ॥
तब सिकंदर यक विनती लावा । मिहर गुरुकरि ताहि लखावा ॥
अहो साहिबमोहिंग्रन्थ लखाई । बाचे ग्रन्थ दिल समझाई ॥
तब सद्गुर हुकुम अस कीना । जस मांग्योशाह तस तेहि दीना॥
नवी सिन्दको लेहु बुलायी । कागजकमलसबसाथलिवायी ॥
शाह सिकन्दर तुरत बुलाये । सवाला खसोतेही बेर आये ॥
सवालाख देह बीर तब कीना । सोउ सिकन्दर सब सुधिलीना॥
तनमनधन जब अर्पण कीना । शिरके साट साहब चीन्हा ॥
फिरे शाह जब दिल्ली आये । काजी मुल्ला सब सुनि पाये ॥
शेखतकी रहे उनपर पीरा । सब मिलि गये उनके तीरा ॥
सब मिल कहैं सुनो मम पीरा । शाहसिकंदर कसभये अधीरा ॥
काशी माहिं गये जब शाहा । कबीरहि कीन्ह गुरू नरनाहा ॥
सुतन तकी बहुते रिसियाना । का तुम कहौअसबातबिराना ॥
ऐसा कैसा ख्याल खिलायो । कैसे मोरा मुरीद फिरायो ॥
चलो जाइये शाह दरबारा । सब मिलि पूछें ज्ञानविचारा ॥
जुलहा मुरीद कससो भयऊ । सो सब पूछें तिसका भैऊ ॥
केहि कारण मुरीद सो हूआ । काजीमुल्ला सब कहँ मूआ ॥
सब मिलि आये भरे दरबारा । बैठे तख्तशाह सरदारा ॥
तिन कहँ आदरशाहभलदीन्हा । तिन पुनि प्रश्न पूछिसो लीन्हा॥
कहो शाह तुम कहाँ मत पाये । कैसे अपना ईस्म फिराये ॥
काफिर कहे मुरीदकस तुम हुये । काजीमुल्ला सब कहँ मुये ॥
दीनके घर कहँ टोटा भाई । दीनका कर आदिसो आई ॥
सो तुम कैसे दियो मिटायी । चार बिहिस्त अल्लाह फरमायी॥

---

१ नाम

इनकूँ तजि आगे कहँ जाओ । चार मुकाम लाहूत सो भाओ ॥
दीन इस्लाम असल दरसायो । सो तुम छोड़ि कहँ भटका खायो ॥
दीन दुनीके तुम सरदारा । कैसे मेट्यो दीन तुम्हारा ॥
खुदाके अहदी काजी कहावैं । दीन इसलामको राह बतावैं ॥
दीन इसलाम असल है भाई । और सबे जग कुफर चलाई ॥

सिकन्दर वचन

सुनत सिकन्दर उत्तर दीन्हा । सबको मन अचरज असभीना ॥
भूले काजी भूले मुलाना । तिनहू भूले लाये फरमाना ॥
दीनका घर दूर है भाई । बिन जाने तुम असल ठहराई ॥
किसने बिहिस्त बैकुण्ठ बनाया । दीनका असल किसने फरमाया ॥

दोहा—काजी मुल्ला भूलिया, भरमें सकल जहान ।
मुहम्मद भूले संदेशसे, सोई लाये फरमान ॥

चौपाई

एते सतगुरु दिल्ली आये । शाहसिकन्दर बहुत सुखपाये ॥
जमुना बिच है महल मुबारक । बैठे पीर जहँ होइके फारक ॥
काजी मुल्लाको लिये बुलाये । शेखतकी तुरत चलि आये ॥

शेखतकी वचन

कहशेखतकी जुल्म तुम कीना । मुरीद हमार फिरायके लीन्हा ॥
काह कियो सुनो मति धीरा । जुलम किया तुम दास कबीरा ॥
कौन इलम शाहको दिखलायी । कौन सुधि तुम नाम सुनायी ॥

कबीर वचन

मियाँ हम इलम फकीरी बोलें । समरथ नाम लिये जग डोलें ॥
हम दुर्वेश हैं दर्प दिवाना । सतकी चाल चलें जग जाना ॥

काजीमुल्ला वचन

निराकार जिन कुरान बखाना । नूर जो उतरयो सब जगजाना ॥
कही खुदाकी और निनारा । इसका हमको कहो विचारा ॥

कबीर वचन

निराकार है खुदाका कीया । इनको तीन लोकसों दीया ॥
इनहीं रचे जो वेद कुराना । बिहिस्त वैकुण्ठ इनहीं जो ठाना ॥
दोहा–निराकार निर्गुन कहँ, रांचि रहे संसार ।
वेद कुरान इन्हीं किये, साहिब नूर निनार ॥

काजी मुल्ला वचन

ज्ञान कियेसे बनि नहिं आयी । अपनी अजमत देहु दिखाई ॥
अजमतसे हम सच करि माने । नहिं तो करहू झूठ अभिमाने ॥
दीनका घर सब झूठ परायी । तो पुनि इलम तुम्हार चलायी ॥
जो कबु इलम हमार चलायी । तो हम तुमको लेब मिलायी ॥
दोहा–हमारे दिल ऐसी लगी, फिराय सिकन्दर साय ।
सखून आदिका मेटिया, सब दिन दिये उठाय ॥
हमारे दिल ऐसी लगी, तुम कच्चे प्याला पिलाय ।
कहे शेखतकी कबीरसे, फिराय सिकंदर साय ॥

कबीर वचन

मियाँजी आवे तो खावे सही, हम केहि बसैं तन माहिं ।
तुम खाये सकल जहानको, तौ भी छक्के नाहिं ॥
एक मुर्दा यमुना में आया । सो जुलकरनके नजर पराया ॥
देखहु यारो उसकी जिंदगानी । कहा देखा इन जगमें आनी ॥
ओछी उमर यह कहँ पाई । सुरत शुभान कछु कहा न जाई ॥
इसका जीव गया किहि ठायी । काजी मुल्ला कहो समझायी ॥
शेखतकीको आगम नाहीं । हमारे पुत्र कमानेको जाहीं ॥
दुर भोमको दीन प्याना । उलटा नाव यमुना बहराना ॥
डूबे जीव जो एक हजारा । मुरदा बहे जायँ असरारा ॥

देखो पीर किताब कुराना । हम करें तुमको सन्माना ॥
यहि मुर्दाको लेहु हँकराई । हम तब रहें तुव शरनाई ॥
जो यह मुर्दा आवे नाहीं । तब तुम कर सब झूठ बड़ाई ॥
सखुन तीन काजी हँकारा । मुरदा बहाजाय मझधारा ॥
दिखाओ कबीर इलम फकीरी । यहि मुरदाको लेहु हँकारी ॥

काजीमुल्ला वचन

हम सब धरे तुम्हारे पाई । जो यह मुरदा लेहु बुलाई ॥
जो यह मुर्दा आवे नाहीं । तो तुम झूठे शाह भरमाई ॥
कुदरत कमालकहिकबीर बुलावा। मुरदादौरीसमरथचरणसमावा॥
काजीमुल्ला देखें ठाडे । मुर्दासे जिन्दा करि डारे ॥
सतगुरु अंकमिलाप जब कीना । इलम फकीरी उसको दीना ॥

दोहा-मुरदासों जिन्दा किया, दिलासों दीन मलाल ।
शाह परतीत दिखाइया, उत्पन्न दास कमाल ॥

चौपाई

शेखतकी हरषे मन माई । लाय कमाली भेट चढ़ाई ॥
दोऊ सुत अहै तुम्हारी शरना । तुमसे मिटे जरा और मरना ॥
शेखतकी तब शीश नवावा । बेहद साहब सच हम पावा ॥

कबीर वचन

जाहु कमाल कोइमुलक चेताओ। चौरासीसे जीव मुक्ताओ ॥
चले कमाल तब शीश नवाई । अहमदाबाद तब पहुँचे आई ॥
दरियाखान पठानहिं नामा । तहाँ जाय पुनि कीन्ह मुकामा॥
साठ मुरीद किये तेहि ठाई । अधिक प्रीति पठान जनाई ॥
तन मनसे बहु सेवा कीन्हा । इलम फकीरी उसको दीना ॥

कमाल वचन

सुनो दरियाखान सखुन हमारा । इलम फकीरी सदा बड़भारा ॥

जो तुम चाल चलौ भरपूरी । तब तुम पहुँचो पुरुष हुजूरी ॥
कबहूँ तुम जो चूको चेला । शिकस्त करे तब तुमको काला ॥
जो तुम चेला चूक करो जाई । तब तुम परिहो चौरासी माई ॥
इतनी सिखावन उसको दीया । दिन सोलह उसके घर रहिया ॥
दोहा-इल्म फकीरी अलमस्ता दिवाना, कीना एक उपाय ।
एक पाव बांधे वेदको, दूजे कितेब बँधाय ॥

चौपाई

वेद कितेब जो बडयारा । चले जात हैं नगर मँझारा ॥
मध्य चौकमें खड़े भय जाई । प्रानी बहुत तमाशे आई ॥
बायां पाँव हिन्दू दिखलावे । बाँचे वेद वैकुण्ठ सो पावे ॥
दहिना पाँव दीन दिखलावे । पढ़े कुरान बिहिश्त को जावे ॥
वेद कितेब दोऊ बड़ भारी । त्राहि २ भयी दुनियाँ सारी ॥
दोनों दीन पाँव तले दीना । ऐसा है कोई अलमस्त नबीना ॥
चले सकल पुनि दिया पुकारी । जाय खड़े भये शाह दरबारी ॥
दोहा-तुमहो अहमद शाहडा, अचरज देखो आय ।
वेद कितेब पांवों तले, दोऊ दीन मिटाय ॥

चौपाई

कोपे अहमद आप सुलताना । जड़ो जँजीर फकीर दिवाना ॥
जड़ो जँजीर मुहकमकर ऐसी । ऊपर रहो मुबकिल दशबीसी ॥
रहे न सयानी भये विनाया । बाहर चौकमें खड़ा दिवाना ॥
सोई जोड़ा फिर दिखलावे । दोनों दीनको फिर समुझावे ॥
फिर जाय सब कीन पुकारा । हैं जिन्दा खड़ा चौक निर्धारा ॥
कहे शाह मुबकिलसे तबही । कैसे गया जिन्द पुनि जबही ॥

मुबकिल वचन

कहे मुबकिल सुनु सुलताना । ऐसी अजमत हम नहिं जाना ॥

सात बेर जो जडे जँजीरा । बाहर चौकमें खड़ा फकीरा ॥

अहमदशाह वचन

अबकी लाय जमींमें गाढो । पांच २ ईंटा सब मिलि मारो ॥
जो कोई दया करे उसपर जाई । उसके घरको देहु जलाई ॥

दोहा-लाहे लागि कमालको, ऊपर ईंटा अपार ।
तन मनकी कछु सुधि नहीं, इलम फकीरी सार ॥

चौपाई

दरियाखान कचहरी जावे । आगू पड़ी भीड़ दिखलावे ॥
कहे मुबकिल सुनो दरियाई । कमालके ऊपर है कठिनाई ॥
इलम फकीरी सैल तुम पाई । मारो ईंटा फकीरके ताई ॥
जो तुम इनपर ईंटा न डारो । तब तुम सारी खिदमत हारो ॥
मारो ईंटा होयकर राजी । नहिंतो तुमपर होय शाहनराजी॥

दरियाखान वचन

कौन उपाय करों मैं सांई । कैसे मुरशिदपर ईंट चलाई ॥
मेरी इलम फकीरी जाई । जो मैं इनपर गद कर जाई ॥
तब हजरत उसपर बहुत रिसांई । तबहीं फूल एक लीन उठाई ॥
दरियाखान विवेक निधाना । भेद फूल मन करे तिवाना ॥
जो फूलै हम मरिहौं जाई । मेरो जन्म भ्रष्ट होय जाई ॥
देखि गुनावन शाह रिसाना । कठिन बोध प्रकट दिखलाना ॥
देखि क्रोध दरिया जब लीना । पखुरी एक फूल सो छीना ॥
सोई पखुरी गुरुपै चलिया । लागत पखुरी अचेत ह्वै परिया॥
दरियाखान दौरि ढिग गयऊ । पहर एक तक विन्ती लयऊ ॥
पहर एक महँ चेत तब आवा । दरियाखान तब अरज सुनावा॥
सुनहु सत गुरु विनती मोरी । इतनी ईंटा परी तुम धोरी ॥
इतनी ईंटा परी तुम संगा । तब तुम काहे न मोर्‍यो अंगा ॥
हमतो फूलन पखुरी डारा । ताते तुम होय पड़े बेकरारा ॥

दोहा-याका मरम पाया नहीं, सतगुरु कहो समुझाय ।
एतिक ईंटा मारसे, तुम कहँ ना विकलाय ॥
एकै पखुरी फूलसे; लागी इतनी चोट ।
होय विकल धरनी गिरे, हो गये लोटम पोट ॥

कमाल वचन

बिना भेद उन ईंटा डारा । तुमतो हमको चीन्हके मारा ॥
मोंसे इलम फकीरी पाई । ताते तुम मोकूं मारा भाई ॥
यह दुनिया है कालका चारा । इसपर चले न अमल हमारा ॥
ताते देह छांडिहमभये नियारे । डारे कोटिक ईंट अपारे ॥
देखत तुमको देह समोये । शिष्य को दर्शनदेहमहँ होये ॥
भली कीन तुम मोको मारा । अपनी इलम फकीरी हारा ॥
बहुतेक ज्ञान हम तोहिं सुझावा । तौहू तुम मम मरम न पावा ॥
दोहा-इलम फकीरी चूकी तेरी, सुनहू खान पठान ।
दोजख जाहू मौजमें, यह सतगुरुका फरमान ॥

दरियाखान वचन

सब दुनिया खोजत कहँ जाई । मुझको कौने दोजख फरमाई ॥

कमाल वचन

भूत खानिमें रहो समाई । सब जग जाने तेरे ताई ॥
जानि बूझि तुम मोको मारा । सब भूतनका बनो सरदारा ॥
सब भूतनमें करो बादशाही । सबमें तेरी चले दुहाई ॥
एती खबर शाह सुन पावा । जिन्दांकहँशिरकाटनफरमावा ॥
कहै दरियाखान सुनो सुलताना । जिन्दानहींकोईऔलियाजाना ॥
यह सुनि शाह बहुत रिसाया । तुरतहि पोस्तं काढि मँगाया ॥

---

१-कमाल साहब उस समय जिन्दा वेषमें थे । जिन्दा वेषका हाल देखो ग्रन्थ जिन्दा बोध आगम ज्ञानमें : २—चमड़ा ।

जबहीं छाती चीरन लागे। शाही महलमें आग तब जागे॥
पड़े अहमद जो बहुत ठहेली। शाहकी देह अग्नि तब भेली॥
शाह कहे चलु जिन्दा पासा। जिन्दा चले तब काशी वासा॥
जिन्दा गया काशी अस्थाना। सुनी शाह मनही पछताना॥
दरियाखान कहँ संग लिवाई। चला शाह काशी कहँ जाई॥
हस्ती घोड़ा लिये मँगाई। जर जौहर बहु माल भराई॥
खेचर ऊंट हाथी बहु लीना। गिनत बरे नहिं आवे मीना॥
चले अहमद आप सुलताना। दुनिया संग उठि चली निदाना॥
एक मास दिन सत्ताइस जाई। अहमद पहुँचे काशी माई॥
कमाल पहल गुरु पहँ आये। सतगुरु सन्मुख माथ नवाये॥
आये अहमद सतगुरु पासा। बारम्बार खैंचे ऊँच उसासा॥
जर जवाहिर माल उतारा। ले सतगुरुके चरणों धारा॥
बहुत कहू कछु बरनी न जाई। हमही पूठ नहिं दीन गुसांई॥
साहब कमाल गुसा करि आये। हमरे तनकूं अगिन लगाये॥
यह सुनि सतगुरु बहुत रिसाये। तब कमालको वचन सुनाये॥
हमको मिले सो जीव उबारें। तुम तो लाये द्रव्य भंडारें॥

दोहा—नाम रतन धन बेचिके, लाया माल हमाल।
बूड़ा वंश कबीरका, उपजा पूत कमाल॥
कौड़ीसे हीरा भया, हीरेसे भया लाल।
आधे साहिब कबीर हैं, पूरा भक्त कमाल॥

चौपाई

इतना कही दया प्रभु कीना। शाहको दुख छुड़ाये लीना॥
साहब नजर करी भर पूरी। शाहकी जलन भई तब दूरी॥

दरियाखान वचन

दरियाखान कहे कर जोरी। सुनु समरथ विन्ती मोरी॥

हम तो फूलका पखुरी डारा । कौन चूक है गुरू हमारा ॥
पहिले इलम फकीरी दीना । फिरके जनम भूतको कीना ॥
कौन चूक अपराध गुसाँई । सो समरथ मोहि देहु बताई ॥
थोड़ा चूक बहुत दुख दीना । हो समरथ मैं होऊं अधीना ॥
भूत जनम बड़ होय मलीना । महा दुख तुम सदा जो दीना ॥
ऐसी चूक है कहा हमारी । भूत खानिका दुख बड़ भारी ॥

सतगुरु वचन

सुनो दरिया यक बात हमारी । पहली बोधहिमें भयी खुवारी ॥
बिना कसनी इलम तोहि दीन्हा । बिनाकसनीतुमगुरुनहिं चीन्हा ॥
निरखि परखिके जिन सिर दीना । सो कबहूँ ना होय मलीना ॥
पहले जगमें जीव चितायी । समझि सीख पुनि दीजे ताही ॥
इलम दिया जब रहा न कोई । पीर मुरीदके वेष होय जोई ॥
कलियुग जीव कालके सारा । सीखे चतुराई करै अपारा ॥
इलम लेनकुं झगरा ठाने । कसनी सुनी क्रोध मन आने ॥

कसनी परीक्षा

पहिले कसनी कर्सहि अपारा । तन मन धन यह तीन विचारा ॥
यह तीनूं है त्रैगुण सारी । यह तीनों मिलि भक्ति उजारी ॥
यहि तीनों मिलि गुरुके बस होई । करहु मुरीद इलम देहु सोई ॥
दोहा—यह तीनों अरपे नहीं, कोटिक कहे बनाय ।
कहै कबीर सत मानहु, तेहि जिव गोता खाय ॥

चौपाई

यह तीनों तुम दीना नाहीं । इलम फकीरी सहज तुम पाई ॥
तुमको कसनी नहीं लगारा । तुम दोजखकानर गुरुको मारा ॥
अपना कौल तुम गये हिरायी । ताते जनम भूतको पायी ॥

तुम ता औगुन बहुते कीन्हा । दोऊ नजर तुम गुरु नहिं चीन्हा ॥
अब तो हमसो कछू न होई । गुरुका शब्द हुआ होय सोई ॥
इसमें दोष गुरुका नाई । तुम्हरी दुर्मति भूत गति पाई ॥
दोहा-तुम जानो हम भूलिया, दिलमें रहे हुलास ।
कलयुग जीव बहु भूलसी, सो रहे तुमरे पास ॥

चौपाई

बहुतक शिष्य होयँगे भाई । सो सतगुरुसो कौल बँधाई ॥
तन मन धन चरणों धरिहैं । ऐसी लबारी मुख सो करिहैं ॥
ऐसी कहि वह शब्द सो लईहै । शब्द लेइ पुनि एक न दइहै ॥
साचा कौल हजूरी कीना । कौल चूक सो तुमको दीना ॥
ऐसा कलिका कठिन तमाशा । बहुत रहेंगे तुमरे पासा ॥
जो कोइ होइ हैं कौल मलीना । ताको जनम भूतको दीना ॥
दोहा-सब दोजख फिरि आइहैं, तब तुम करो सम्हार ।
इल्म फकीरी साधिके, उतरो भवजल पार ॥

चौपाई

अहमद शाह चले शिरनायी । धनिसतगुरु मैं तुव बलि जाई॥
हमरे तनकी तपन बुझायी । दरियाखाँ चले पछतायी ॥
सत्य भूपकी राह चलायी । जैसा किया तैसा फल पायी ॥
शिष्य होयके दुर्मति करहीं । सो तो जनम भूतको धरहीं ॥

कमाल वचन

तबहीं कमाल कहे शिर नाई । हे समरथ करु कौन उपाई ॥
कैसे चलिहहिं पंथ हमारा । कैसे होइहहिं जीव उबारा ॥
कैसे आवागमन मिटाऊ । सो साहब मोहि भाषि सुनाऊ॥
कैसे उतरूँ भवजल पारा । सतगुरु मेरा करहु उबारा ॥

सत गुरु वचन

सुनहु कमाल कहूँ चित्त लाई। तुमरे पंथमें मुक्ती नाई॥
प्रथम शिष्य दरियाको कीना। ताको जन्म भूतको दीना॥
पहले इल्म फकीरी दीना। फिरके जन्म भूतको कीना॥
उनही जन्म भूतको पायी। शब्द पाय पुनि गये गवाँयी॥
पंथ न चले ऐसे सुनि लेहू। प्रथम बोध विचली पुनि गेहू॥
दोहा-पंथ न चले कमालजी, कोटिक करो उपाय।
धोखे जीव बिगोय हो, धर्मराय धरिखाय॥

कमाल वचन

हाथ जोरिके शीश नवायी। समरथ मोहि कहो समझायी॥
पंथ न चले कौन विधि करिये। कहो तो अलोप पांव हम धरिये॥
मैं हूँ जेठा शिष्य गुसाँई। पंथ ना चलइ भौजल भाई॥
बिना पंथ मोहि कौन पिछाने। कमाल कबीर सबै जग जाने॥

सतगुरु वचन

सतगुरु कहै कमाल सुने बानी। पंथ चलनकी सुधि पहिचानी॥
कमाल नाम ले पंथ चलाऊ। कही ज्ञान घर घर समझाऊ॥
इल्म फकीरी राखो हम पासा। और सखी पद करो परकाशा॥
यही शब्द करो गुरु आई। बिंद साधना रहै सब ताई॥
रहनि गहनि तुम देहु बुझाई। सो जिव धर्म सुन्नमों जाई॥
चारों युगमों अटल मम दासा। तुम साखी पद करो प्रकाशा॥
यह राह मेटि भाषो अधिकारा। निश्चय परिहो नर्क मंझारा॥
साखी-परमारथ तुम साजहू, करहू शब्द विचार।
भौसागरमें भय नहीं, सोऽहं नाम अधार॥

कमाल-वचन चौपाई

समरथ गुरु ऐसी सुनि लेहू। इलम फकीरी किसकूँ देहूँ॥

कौन ठौर घर रहे निदाना । सो समरथ मोहि कहो परमाना॥
सो मैं कहूँ शिष्यनले आगे । सुरत शब्द चरण चित लागे ॥
एती आगम कहो सुधारो । चरण टेकि प्रभु करों निहारो ॥

सतगुरु वचन

सुनो कमाल निज कहों विचारा । जब सतगुरुमुखते शब्द उचारा॥
कलियुग आया कहूँ प्रमाना । बांधो गढ़में होय अस्थाना ॥
सुकृत अंश प्रकटे संसारा । अंश लोकते आये हमारा ॥
सो धर्मदास घर लेई औतारा । उसका पंथ चले संसारा ॥
वंश ब्यालिस अविचल राजा । सोइ जीवनका करिहै काजा ॥
उनका वीग शब्द जो पावै । सोइ हंसा लोक सिधावै ॥
और जीव बांचे नहिं कोई । कोटिक ज्ञान करे पुनि जोई ॥
आगम तुमको कहुँ समुझाई । कुदरत कमाल सुनो चितलाई॥
जोई इलम पुरुषके पासा । सोई वंशमें होय प्रकाशा ॥
विना फकीरी इलम नहिं जाने । युक्ति बिना योगी बउराने ॥
युक्ति सार कोइ हँसा पावे । लोकहिं जाय बहुरि नहिं आवे॥
आवत जात मिलि रहे समाई । विना फकीरी इलम कहँ पाई ॥
सतगुरु बिना युक्ति नहिं आवे । बिना युक्ति फकीरी पछतावे ॥
पांच तीनको करहिं निरासा । सोई फकीरी इल्म जिन पासा ॥
लगन तत्त्वकी युक्ती जाने । सोई योगी है युक्ति पराने ॥
नहिं तो कथनी कथहिं अपारा । बिनु परिचय बूड़े संसारा ॥
दोहा—कथनी करनी चतुराई, कीना पांचों पार ।
वंश छाप गुरु युकती पावे, इलम फकीरी सार ॥

कमाल वचन

चरण टेंकि हम करें निहोरा । हमरे जिव गुरु होय निवेरा ॥
भौसागरमें बड़ दुख होई । महा त्रास दुख व्यापै सोई ॥
कठिन त्रास है भवजल धारा । जाते सतगुरु करहु उबारा ॥

सतगुरु वचन

कुदरत कमाल सुतअंश हमारा । तुमरे जिवका करो उबारा ॥
इल्म फकीरी तुमको दीना । जीव उबार अपना करलीना ॥
सोई इल्म मम राखू पासा । साखी पद तुम करहु प्रकाशा ॥
जो यह इल्म बाहर जायी । तो हम तुम बिछुरेंगें भाई ॥
इल्म यही धर्म दासको दीना । जाते हंस अमर करि लीना ॥

दोहा–बन्धे कौल कमालके, सतगुरु कहे पुकार ।
धरमदासके वंश विना, कौन उतारे पार ॥

आगे बानी भाषूँ भाई । दास कमाल सुनो चितलाई ॥
कलियुग भेद करूँ परकाशा । हंस पहुँचाऊँ लोक निवासा ॥
बिहँगम मति हंस जब होई । सत्य कही सत्यलोक समोई ॥
आगम भेद कही समुझाई । भौजल बूड़त तुरत बचाई ॥
बंश ब्यालिस सौंपी गुरुबाही । जो बूझे तेहि देउँ बताही ॥
सोई इल्म सौंपा उनपासा । सब जीवनकी पूरें आसा ॥
वंश दया जाहि पर होई । होय पुनि हंसा अम्मर सोई ॥
कह कबीर हम सतही भाखा । सुनो कमाल गोय नहिं राखा ॥

दोहा–कलमाते कल उपज्यो, सब कल कलमा माहिं ॥
सो कलमा दिया कमालको, सब कल कलमाहि समाहिं ॥
जीवत मृतक होय रहे, जाग्रत माहिं समाय ।
इल्म फकीरी अलम सही, आवे जाये बलाय ॥
समरथ सतगुरु भेटिया, भये मद मस्तु निहाल ।
प्रेम प्याला सही किया, मुक्ता खेले कमाल ॥

इति कमालबोध

# विवेचन

★

कमालबोधकी केवल एकही प्रति सम्वत् १९११ की लिखी हुई मेरे पास है। जिस परसे यह पुस्तक छापी गयी है। पाठक! एकबार आप अनुरागसागर आदिग्रन्थोंमें लिखे बारह पंथका हाल स्मरण कीजिये फिर इस ग्रन्थोंके आशयसे मिलाइये। अब आप स्वयम् विचार कीजिये आप किस ग्रन्थको सत्य और किसको असत्य मानते हैं। और ग्रन्थोंमें कमाल साहबको साक्षात् कालदूत लिखा है। इस ग्रन्थमें कबीर साहेब खास वही भेद जो गुरू धर्मदास साहबको बतलाया है वही मुक्ति भेद कमालको बतलाने की बात कहते हैं। भला बतलाइये तो वह सत्य की यह ? इसी प्रकार कबीरपन्थके सब ग्रन्थोंमें गड़बड़ और पूर्वापर तथाविषयान्तरका भेद है इन्हीं ग्रन्थोंको कबीरपन्थीगुरू और महन्त लोग अपनामार्ग दर्शक मानते और घमण्ड करते हैं। यही कारण है कि आज कोई भी कबीरपंथी महंत साधू और सेवक किसी विचार पर स्थिर न होकर मारे मारे और भटकते फिरते हैं। और विषयवासनामें लुप्त हो संसारकी मर्यादा और सत्यगुरूकी आज्ञाका उल्लंघन कर न करने योग्य कर्मोंको करके कबीरपंथकी निन्दा करा रहे हैं। यही गड़-बड़ देखकर अच्छे २ विचारपने सत्यगुरूके उपदेशको समझने और जाननेवाले लोग कबीरपंथी कहलानेसे ही लज्जित होकर इस पन्थको छोड़ते जाते हैं जिसके पूर्ण वृत्तान्त कबीर धर्मसारमें लिखा जायगा. इति

सत्य

श्रीबोधसागरे-

# श्वासगुंजार

भारतपथिक कबीरपंथी
स्वामी श्रीयुगलानन्दद्वारा संगृहीत

मुद्रक व प्रकाशक-
गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,
अध्यक्ष-"लक्ष्मी वेङ्कटेश्वर" स्टीम्-प्रेस,
कल्याण-बम्बई.

[illegible]

# [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

सत्यनाम



श्री कबीर साहिब




सत्यसुकृत, आदि अदली, अजर, अचिन्त पुरुष,
मुनीन्द्र, करुणामय, कबीर, सुरति योग, संतायन,
धनी धर्मदास, चूरामणिनाम, सुदर्शन नाम,
कुलपति नाम, प्रबोध गुरुबालापीर, केवल नाम,
अमोल नाम, सुरतिसनेही नाम, हक्क नाम,
पाकनाम, प्रकट नाम, धीरज नाम,
उग्रनाम, दया नाम की वंश
व्यालीसकी दया

★

# अथ श्रीबोधसागरे

## श्वासगुञ्जार प्रारम्भः

★

### द्वात्रिंशस्तरंगः

चौपाई

कहै कबीर सत्य प्रकाशा । श्रोता सुरति धनी धर्मदासा ॥
सत्य सार सुकृत गुण गायो । अविचल बाह अछै पद पायो ॥
संशय रहित सदा सो गाऊँ । शीलरूप सब हिमकर नाऊँ ॥
करै कुलाहल हंस उजागर । मोह रहित सब सुखके सागर ॥

तेहि पुर जरा मरण भ्रम नाहीं । मन विकार इंद्री नहिं ताहीं ॥
सत्य लोक हंसन सुख होई । सो सुख यहां न जाने कोई ॥
जाने सो जो उहां रहाई । ईहां आय कहै समुझाई ॥
आवत जात बार नहिं लावे । उहांकी चाल सोई यहां लावे ॥
जो समझे सोइ उतरे पारा । बिन समझे सब यमके चारा ॥

समय–अमरलोककी महिमा, सत्य शब्द उपदेश ।
हंस हेतु सो वरनो, छूटे यमकर देश ॥

चौपाई

अमरलोककी अबिगति बानी । धरमदास मैं कहूँ बखानी ॥
जो समझे सो उतरे पारा । बिन समझे सब यमके चारा ॥
प्रथम शरण सतगुरु गुण गाऊं । अक्षरभेद सकल सुधि पाऊं ॥
सत्यलोक कर भाव अपारा । सो भवसागर करै पसारा ॥
भाषों अग्र अग्रकी बानी । भाषौं द्वीप जहां लगि खानी ॥
भाषों पुरुष पुरुषकी काया । भाषों अमी अमान अमाया ॥
भाषों पुरुष लोककी बानी । भाषों सबै सहज सहिदानी ॥
जो काया प्रभु आप सँवारा । सो समुझाइ कहो व्यवहारा ॥
अमर तार अखण्डित बानी । श्वासा पार सार सहिदानी ॥
जबही क्या प्रभु आप सुधारा । कहौं विचारि तासु व्यवहारा ॥
जेतिक श्वासा पुरुषकी देहा । तार तार कर कहों सनेहा ॥
जेतिक वचन पुरुष उच्चारा । तेइ तेइ वचन नाम अधिकारा ॥
श्वास पारस आदि निरबाना । सोरह सुतकी नाल बखाना ॥

समय–पांच अमीकी देह धरि, प्रकटी ज्योति अपार ।
सुरति संग निहतत्त्व पुर, पुरुष होत श्वास गुंजार ॥

धर्मदास वचन–चौपाई

हाथ जोरिके टेकेउ पाऊ । साहब कहौ तहँवाके भाऊ ॥

कहौ लोक कर प्रकट बिचारा । जहाँलौं दीपहिं कर विस्तारा ॥
बरनौं द्वीप गुप्त अनुसारा । बरनौं जहाँ लगि सकल पसारा ॥
वरनौं सोरह सुतकर भाऊ । तीन शक्ति कैसे निरमाऊ ॥
पुरुष श्वाँस जेता अनुसारा । ताकर कहों सकल विस्तारा ॥
केहि विधि सोरह सुत प्रकाशा । केहि केहि कहां रही बासा ॥
कहां विस्तारि सकल अस्थाना । सत्यलोक और यमके थाना ॥
कैसे आदि अन्त प्रभु कीन्हा । कैसे रचा देहकर चीन्हा ॥
कैसे भये निरंजन राया । कैसे तीन लोक निरमाया ॥
कैसे उपजन विनशन कीन्हा । काह जानि बाजीयम दीन्हा ॥
कैसे इन्द्री देह बनाई । कैसे जीव परा वसि आई ॥
कैसे जीव अपनपौ दरसे । कैसे जीव पुरुष पग परसे ॥

समय–काया मध्ये श्ववास है, श्वासा मध्ये सार ।
सार शब्द विचारिके, साहब कहो सुधार ॥

सतगुरु वचन चौपाई

धर्मदास जो पूछेउ आई । आदि अन्त सब कहों बुझाई ॥
कहों लोक लोककी बानी । कहों पुरुष सुतकी उतपानी ॥
कहों संदेश दया करि तोही । मुक्ति जान जो पूछेउ मोही ॥
सुनहुँ सन्देश आदि निरबाना । जाके सुनत काल छे माना ॥
सुमिरहु आदिपुरुष दरबारा । सुमिरत आप हंस होय पारा ॥

समय–तीनलोकके भीतरे, रोकि रह्यो यमद्वार ।
वेद शास्त्र अगुवा कियो, मोह्यो सब संसार ॥

चौपाई

धर्मदास चित चेतहु जानी । कहों बुझाय अगरकी बानी ॥
पुरुष अजावन रहा जो देहा । तत्त्व बिहीन सुरति सनेहा ॥

१–कहो बुझाइ भेद समुझाई ।

चारि करी सिंहासन जोरी। पाँचयें अचिंत आप अंजोरी ॥
चारि करी चारिउ परवाना। शक्ती भीतर वह अकुलाना ॥
समय–करि करि महा परिमल, बाससुबासकी खानि।
तेज करी जो प्रगट भइ, तामहँ आइ समानि ॥

चौपाई

पुरुष अचिंत चिन्ता जब कीन्हा। उपज्यो सुरति शब्दको चीन्हा॥
रहे गुप्त प्रकट भई काया। श्वासा सारशब्द निरमाया ॥
शब्दहिते है पुरुष अस्थूला। शब्दहि मय है सबको मूला ॥
शब्दहिते बहु शब्द उचारा। शब्दै शब्द भया उजियारा ॥
शब्दहिते भव सकल पसारा। सोइ शब्द जिवके रखवारा ॥
प्रथमशब्द भया अनुसारा। नीहतत्त्व एक कमल सुधारा ॥
नीहतत्त्वपर आसन कीन्हा। रचना रची सकल तब लीन्हाँ ॥
रच्यौ पुहुप द्वीप मनिभारी। सहस अठासी द्वीप सुधारी ॥
अक्षे वृक्ष एक राशि बनाई। अग्रबास तहाँ रही समाई ॥
समय–पेड़ पात निज फूल महँ, प्रगटी बास अनूप।
पारस निहतत्त्वहि पुरुष, सुरति हंसको रूप ॥

चौपाई

जब पारस सुरति भये स्थाना। अगर प्रताप निमिष उरआना॥
पुरुष प्रसन्न नाम उच्चारा। श्वासापर सब रचनि सुधारा ॥
श्वासा सार शब्द गुञ्जारा। पांच अमीको भयो विस्तारा ॥
पांच अमीको जो विस्तारा। ताहि अमी सब लोक सुधारा ॥
श्वासा पुहुप अगरकी खानी। सोरह सूनु भये उतपानी ॥
पांच अमी साहबके अंगा। पांच तत्त्व समरत्थ प्रसङ्गा ॥
श्वासा स्नेह सबै उपजाया। बानी बानी वरन बनाया ॥
सत्यलोक सबही को मूला। भयऊ सत्य सो सब अस्थूला ॥

श्वासासार सत्य कर भाऊँ । अभी आदि उपजी तेहि नाऊँ)॥
( सत्यसार श्वासा संभारी । अमी आदि पारस तहँ धारी ॥
श्वासा आदि सुरङ्ग बखाना । रंग अमीकर भा बंधाना ॥
श्वासा अजर नाम अनुमाना । प्रकटी अमी अजर सुजना ॥
अदल नाम श्वासा परकाशा । उपजी अमी अमान सुवासा ॥
खासा निरनै भ्या अनुसारा । अधर अमीका भा विस्तारा ॥
श्वासा पांच प्रकटि विस्तारा । पांच अमीकर भया पसारा ॥
पांच अमी पाँचों अधिकारा । पांचतत्व तेहि संग सुधारा ॥
पांच अमी सब लीक सुधारा । पांच तत्त्व धै गुतनुसारा ॥
समय-पांच अमीते पांच भए, पांच नाम अधिकार ।
सैन स्नेह उत्पन्न भई, अमी तत्त्व विस्तार ॥

चौपाई

सोरह श्वासा सार सहाया । सोरह सुतकी प्रकटी काया ॥
सोरह सुतकी सोरह नाला । एकते एक अमान रिसाला ॥
पुहुप नाम श्वासा अनुसारी । उपजे सुरति हंस पति भारी ॥
सुरति समानी प्रभुकी देहा । बाहर भीतर एक सनेहा ॥
पांच अमीकी प्रकटी देहा । सुरति कीन्ह तेहि मांहि सनेहा॥
जेतिक पुरुष खान निर्मांया । पांच अमीते सबकी काया ॥
पांचों अमी साहबके अंगा । नाल सात उपजी तेहि सङ्गा ॥
सात नालकर एके भाऊ । सातौं रहै पुरुषके ठाऊँ ॥
पुरुष सुरति कहँ अगुवा कीन्हा । सातौं नाल सौंपत तेहि दीना ॥
सातों नाल सुरति जब पाई । ताहि नेहमों रहे समाई ॥
क्षण बाहर क्षण भीतर आवै । देह विदेह दोऊ दरसावे ॥
अमरतार निःअक्षर कियेऊ । सोऊ पुरुष सुरति कह देऊ ॥
समय-अमर निरक्षर सङ्ग लिय, अर्ध ध्वजा फहराय ॥
पलटि समानि सुरति पुरुष, देहमें अक्षय छिपाय ॥

## चौपाई

### ( सोलह सुतकी उत्पत्ति प्रकार )

सुरति नेह प्रभु इच्छा कीन्हाँ । सोरह सुत उपजावे लीन्हाँ ॥
सत्यनाम श्वासा अनुमाना । सुकृत अंश भये अग्रआना ॥
दूजी श्वासा बाहेर आई । उपजे सहंत शून्य तिन्ह पाई ॥
तिसरी श्वासा पुहुप सनेही । तेहिते भई हमारी देही ॥
चौथी श्वासा तेज सनेहा । तेहिते भई धर्मकी देहा ॥
पांचइ श्वासा नाम खुमारी । उपजी कन्याँ आदि कुमारी ॥
शील नाम स्वासा निरमयऊ । छठयें अंश सुजनं जन भयऊ ॥
सतयें स्वासा नाम अनंगा । उपजे अंश भृगीमुंनि संगा ॥
अठयें स्वासा नाम सुहेली । उपजे कूर्म शीस उर मेली ॥
नवयें स्वासा नाम सोहंगी । नाम ते उपजे सुत सरवंगी ॥
दसयें स्वासा नाम रसीला । जाते उपजी सरवन लीला ॥
ग्यरहें श्वासा नाम सुरंगा । सुत स्वाभावें उपजे तेहि संगा ॥
ब रहें स्वासा नाम सुमाहां । भाव नाम सुत उपजं ताहां ॥
तेरहें स्वासा अछय सुभाऊ । उपजे सुत विवेकें तेहि नाऊ ॥
चौदह स्वासा अमर बखाना । उपजे सुत संतोषें सुजाना ॥
पंद्रहे स्वासा प्रेम सनेहा । उपजी कदल ब्रह्मकी देहा ॥
❋षोडशे स्वासा नामजलरङ्गी । उपजी दंया पालन सङ्गी ॥
षोडश स्वासा षोडश बानी । उपजे भोग संतायन ज्ञानी ॥
सोलह स्वासा नाम बखाना । उपजे सोलह सुत निरवाना ॥
सोरह सुत कर एकै मूला । भिन्न भिन्न प्रगटी अस्थूला ॥
एके पिता एक व्यवहारा । सब जो रहिहैं पुरुष दरबारा ॥

❋ कई एक प्रतियोंमें इस चौपाईको ऐसा लिखा है की," सतरहे श्वासा अदत सुबानी" परन्तु षोडश, सुतकी उत्पत्ति वर्णन करते हुये सतरहवें की उत्पत्ति वर्णन असङ्गत जानकर यही शुद्ध जान पड़ा ।

एक पाँवते सेवा करहीं। पुरुष वचन शीशपर धरहीं॥
सेवा करति रही लौलीना। पुरुषलोकते होहि ना मीना॥

समय-सोरह सुतकी एक मूला, एकते एक अधीन।
कर जोर सेवा करैं, प्रेमभक्त लौलीन॥

चौपाई

सेवा करत बहु दिन गयऊ। पुरुष अवाज अधरधुनि भयऊ॥
अर्ध अवाज भई जब बानी। निकसी अगर बासकी खानी॥
सबतर लोक द्वीप रहि छाई। बिमलवास भरपूरि रहाई॥
अगर वास सब हंसन पाई। निर्मलबास सदा सुखदाई॥
पीअत अमृत सब अघाने। आपु आपु पुर सबैं सिधाने॥
धर्मराय सेवा अधिकाने। सो सब तोहि कहौं सहिदाने॥
छलके बचनपुरुष सो लीन्हाँ। पाछे दूंद लोक महँ कीन्हाँ॥

समय-और सबै सुत बैठे, अपने अपने स्थान।
धरमरोष सबते कियो, ठाँम ठाँम विगरान॥

धर्मदास वचन-चौपाई

धर्मदास बिनवैं करजोरी। साहब मेटेहु संशय मोरी॥
और सब सुत अछप छिपाने। धर्मराय कैसे बिगराने॥
कैसे और सब सुत सब भारी। धर्मराय कैसे भये बिकारी॥

सतगुरु वचन

धर्मदास सुनहूँ चितलाई। कहों सँदेश आदि समझाई॥
जब प्रकटे प्रभु अमर तारा। निकसी अधर निरक्षर धारा॥
भई अवाज अधरसे बानी। निकसी अगर बासकी खानी॥
पारस परिमल महक बसाई। सोई परिमल सुरति दुराई॥

अगर छिपाय आप महराखा । सुरति स्नेह मुख प्रकटी भाखा ॥
प्रथम पुरुष मुख भाषा आई । भाषा अग्र पारस निरमाई ॥
भाषा बचन भया अधिकारा । भाषहिते भा सकल विस्तारा ॥
भाषा वचन पुरुष उच्चारा । सो सब सत्यलोक व्यवहारा ॥
भाषा बोल पुरुष उच्चारा । सेवहु सत्यलोकके द्वारा ॥
श्वासा सार तार जोरि आना । अधर अमान ध्वजा फहराना ॥
भाषा स्वर बानी अनुमाना । श्वास सार तार जुरि आना ॥
निमिष माहिं अनेक संचारा । बचन समान श्वास गुञ्जारा ॥
नाब स्नेह शब्द मँझारा । (बचन समान श्वास गुञ्जारा)॥
श्वासा नेह देह भई जबहीं । भाषा सहज बचन भा तबहीं ॥

## आगेकी उत्पत्ति प्रकार

प्रथम श्वासकी निकसी खानी । उपजे सुत सुकृत सम आनी ॥
निमिषनेह प्रसन्न सुधारे । नाममूल टकसार उचारे ॥
भो बिस्तार निमेश एक गयऊ । " " " ॥
मूलगुप्त मस्तक नहिं देखा । आदि नाम अमरघर लेखा ॥
पेडके गहे मूल धनु गाजा । सोई मूल फूल फल लागा ॥
पेड़हिं गये मूल औ शाखा । मूल मिले तबहि रचि शाखा ॥
गुप्त मूलते प्रकटी शाखा । पल्लव मूल पड़े गहि राखा ॥
पेड़ देखि पल्लव फैलावै । पल्लव फैले अन्त नहिं पावै ॥
पल्लव चढ़े पेड़ चित राखा । मिले मूल तब फलरस चाखा ॥
आदि अन्त दुइ पेड़ समाना । आपहि राखा आप पहिचान ॥
जागि सुरति पुनि पेड़ निहारा । फलरसि चाखी बीजगहि डारा ॥
बीजाते सोई फल होई । फल रस लेइ मूल तजि छाई ॥
जागि सुरति सपन मिटगयेऊ । दुई चितमेटि एकचित भयेऊ ॥

दूजी श्वासा प्रभुकी देहा । उपजे सहज सुख नेहा ॥
तिसरी श्वासा फूल सनेही । जाते भई हमारी देही ॥
देह माँहि द्वै रहे विदेही । देह मन भये ज्ञान रस देही ॥
कायामें काया रही वासा । सब चौथी श्वासा परकाशा ॥
काया अविहर अविहर वासा । " " "
चौथी श्वासा निकरे चाहा । तब चिंता उपजी मनमाहा ॥
चिंता प्रकट भई दिल जबहीं । आपते आप भुलाने तबहीं ॥
आपु शरीर आपु तब झाका । बिमलप्रकाशउदित तन ताका॥
कायारूप भई उजियारी । निर्मलदेह बिमल तन भारी ॥
बिमल प्रकाश कीर्ती जब देखा । बर्णत बनै न ताकर लेखा ॥
बिमल प्रकाश किरणजब देखा । " " "
कला अनंत अंत नहीं पावै । बरणत जिह्वा लक्षण आवै ॥
देखत रूप लीला अधिकारा । आप आपनपौ कीन्ह बिचारा॥
कमलकरि महँ भा उजियारा । देखा आदि अंत विस्तारा ॥
आपु बरन सब देखा जबहीं । दुबिधा रूप झांई भइ तबहीं ॥
कमल झांकी प्रभु देखा जबहीं । हमरे रूपको दो सर अबहीं ॥
इतना कहत बार नहीं लाये । निकसि कमलते बाहर आये॥
छाँडी कमल प्रभु भये निनारा । तबहीं कमल भया अंधियारा॥
कमल झाँकि देख्यो सबन्यारा । भये तिमिर तनतेज अपारा ॥
अँधकार प्रभु देखा जबहीं । काया ज्योति मलिन भइ तबहीं॥
निमिषि एकमें संशय आवै । निमिषि एक आनंद जनावै ॥
विस्मय हर्ष दोउ एक ठाऊँ । एक पुरुषकर दोउ सुभाऊँ ॥
आपुते आय भया अतिचारा । तेहि अवसर प्रभु वचन उचारा ॥
उठि अब जो शब्द सतभाऊ । कमलमध्य कस शून्य रहाऊ ॥
घटही वचन पुरुष संधाना । तब चौथी श्वासा बंधाना ॥

तेज पूँज औ गर्भ शरीरा । फूंकी नालदेखा बल वीरा ॥
कमल नाल धरि फूंका जबही । चौथी श्वासा निकसी तबही ॥
फूंका कमल तेजके नेहा । चला प्रसेव पुरुषकी देहा ॥
फूंकत कमल बार नहिं लागा । भय उजियार तिमिर सब भागा॥
कारण काल पट यहँ धोका । हुई चित मूल तेजमह रोका ॥
चौथी श्वासा विषयी सनेही । मोह विकार धर्मकी देही ॥
मोह विकार तिमिर अधिकारा । ता सँग भयउ धर्म औतारा ॥
तिसरी श्वासा गुप्तहि राखा । तासो जोर निरञ्जन भाखा ॥
फूँकत कमल तेज गरि गयऊ । तेहिते काल ज्योति धरि भयऊ॥
महा बलि देह धरिके बैठा । जानो धर्महीं हौं जेठा ॥
तेज लगन श्वासा अनुसारा । ताते धर्मराय बरियारा ॥
तेजतिमिर संग शून्य निवासा । सबतर भयो काल परकाशा ॥

समय–आसा धरे बहुत दिन बीते, प्रेम भक्ति लौलीन ।
आश धरे बहुतयुग गये, भक्तिभाव आधीन ॥

(ज्योति तहाँ लगिज्वालतेभाखा। तेहि ते नाम निरञ्जन राखा) ॥
निराकार आकार धराये । जोति काल बहुनाम कहाये ॥
चौदह द्वार काल जो भाखै । सुनि सो सबै नाम मन राखै ॥
सांक्रित अण्ड भयो प्रचंडा । फूटत अण्ड भयो बहु खण्डा॥
चौदह बुन्द अमि ढरि गयऊ । चौदह अंश ताहिते भयऊ ॥
चौदह पौरिया ढरि बैठारा । इन चौदह बहु ज्ञानपसारा ॥
आपसमान सबै रचि राखे । चौदह कोटि ज्ञान तिन भाखे ॥
चौदह अंस धरम तहँ पाये । ते चौदह विद्या तहँ पाये ॥
वही चौदह अगम अपारा । तापर काल धरम बटपारा ॥
धरम समाधि चितही यमधारा । चौदह मोह को तनवारा ॥

ताकी कला कहै को पारा। जेहिके सुतकोटिन उजियारा ॥
कोटिन कला करै बहु भारी। आपहि पुरुष आपही नारी ॥
आपहि वेद आपही वानी। आपहि कोटिन ज्ञानबखानी ॥
आप अजर आवै गाह कहावै। मूल नाम गहि धोख लगावै ॥
नाना ज्ञान कथे बहु बानी। प्रकट्यो आदि आपगुणजानी ॥
कहँ लगि कहो ज्ञानके भाऊ। बहुत काल बहु नाम धराऊ ॥
सुरति सरोतर जागे नाहीं। मनपथ पवन चञ्चला ताहीं ॥

एक पाव सन्मुख खडे, कर जोरे लौलीन।
एक पाव सन्मुख खडे, कर जोरे आधीन ॥

धर्मदास वचन–चौपाई

धर्मदास विनवै चितलाई। समरथ मोहि कहो समुझाई ॥
(धरमदास विनवहि कर जोरी। दया करो प्रभु बन्दी छोरी ॥
धर्मराइ उत्पति जस पाई। ,, ,, ,, ॥
ऊपजै तस भये कसाई। उपज्यो चित चंचल दुखदाई ॥
पुरुष तेज सम शून्य संचारा। ता संग भया धर्म औतारा ॥
शील विकार सहित तन पाई। प्रथमें भक्ति दूजे अन्याई ॥
भक्ति कियसिजब रहा अकेला। अघके संग भया अपेला ॥
सो अघ उन कैसे पाई। केहि विधिपुरुषताहिनिरमाई ॥
साहब कहौ भेद समुझाई। कैसे कन्या पुरुष बनाई ॥
कैसे धर्मराय तेहि पाई। तीन भेद तुम कहो गुसांई ॥
कहौ बिचारि दोऊ कर भाऊ। दुइ कर जोरिके वन्दो पाऊ ॥

सतगुरु वचन

धर्मदास मैं तुम्हे लखावो। आदि अन्त सब भेदबताओ ॥
चौथी श्वासा संग अधिकारी। शून्यते जग भये उजियारी ॥
पुरुष कमलपर बैठे आई। गई गर्म उपजी शितलाई ॥

पुरुष कमलपर बैठे जबहीं । परिमल उदित भयातन तबही॥
शीतल पवन सोहावन खानी । मूल कमलपर आसन ठानी ॥
सिंहासनपर सत्य विराजे । पार सनेह देह महँ गाजे ॥
पारस तेज भया तन माही । पँचई श्वासा उपजी ताही ॥
उपजन श्वासा देह निहारा । तन पसेव भइ मैल निनारा ॥
काया मैल पुरुष जब जाना । मीजी मैल अबला बलठाना ॥
गएउ तेज भा अबल शरीरा । पाछे भई स्वास गंभीरा ॥
तेहि स्वासा सँग पारस भारी । कायाते मथि मैल निकारी ॥
तनते मैल काढि प्रभु लीन्हा । सोई मैल रचि पुत्री कीन्हा ॥
करी पुत्री कर ऊपर लीन्हा । उपज्यो प्रेम सहजको चीन्हा ॥
भई पुत्री प्रभु देखा जबहीं । सुरति कीन्ह पारसके तबहीं ॥
निर्मल पारस श्वासा पाँचा । रहा सँभारा मैलकी बाँचा ॥
आप मैलते श्वासा कीन्हाँ । ता ऊपर बहुरंग जो दीन्हाँ ॥
देके रंग बरन सब फेरा । भीतर मैल मोह मद घेरा ॥
ऊपर शोभा रंग बनावा । भीतर लाल रंग तेहि छावा ॥
पांच अमीकर पांच सुभाऊ । पाँचतत्त्व तेहि संग बनाऊ ॥
पांच अमीते पुरुष शरीरा । ताते पांच तत्व भए धीरा ॥
पांच अमी ते तत्त्व बनावा । पांच अमी तेहिसंगनिरमावा ॥
पांच तत्त्व पांचो व्यवहारा । तेहिते भयउ सकल विस्तारा ॥
पुरुष मैलते पुत्री कीन्हाँ । पांच तत्त्व तेहि भीतर दीन्हाँ ॥
आप सुरती ते पुत्री कीन्हां । ,, ,, ,, ॥
भीतर बाहर तत्त्व पसारा । पांचों तत्त्व रंग अधिकारा ॥
पांच रंग तत्त्वकी धारा । चौथ तत्त्व रंग बहु धारा ॥
पांच तत्त्व पांचों रंग भारी । पांचों रंगते कला पसारी ॥
तत्त्व रंगते लीला धारी । पांच तत्त्व पांचों रंग धारी ॥

तत्व रंग बहु लीला धारी । पुत्री बहुत विचित्र संवारी ॥
तासु कला अनंत पसारी । ताते बहुत भई विस्तारी ॥
वरणि न जाय रूप उजियारी । सुन धर्मनि मैं कहौं विचारी ॥
काल अनंत प्रभु पुत्री कीन्हा । पारस सार ताहि मैं दीन्हा ॥
उत्पति पारस पुत्री पावा । प्रकटी कला अनंत सुभावा ॥
नखशिख देहसुधा प्रभु कीन्हां । पँचई श्वासा भीतर दीन्हां ॥
जब श्वासा काया महँ आई । प्रकटी ज्योति जगामग झाई ॥
अजब अङ्ग बना बहु रंगा । पारस सार ताहि के संगा ॥
निर्मल उदित ताहि सो दंता । चमकै बिजुली कला अनंता ॥
तत्व रंगकी उठै तरंगा । शोभा विशद मनोहर संगा ॥
पँचई श्वास जब बाहर कीन्हां । उत्पन पारस ता संग दीन्हां ॥
श्वासा परस मिलि भये एका । शोभा वरन रूप रस ठेका ॥
उपजी कन्या कला अपारा । रूप अनूप भया उजियारा ॥
जब कन्याप्रभु उत्पन कीन्हाँ । पाँचो श्वासा तासङ्ग दीन्हाँ ॥
ता श्वासामह पारस भारी । पांचतत्व सङ्ग देह सँवारी ॥
उपजी कन्या अगम स्वभावा । अष्टांगी कहि पुरुष बुलावा ॥
आठों अङ्ग बना निरवाना । शोभा सुरति रूप सुख साना ॥
जब कन्या प्रभु देखा हेरी । कला अनंत रूपकी ढेरी ॥
देखि रूप चितहर्षित कीन्हा । उत्पति पारस ता संग दीन्हा ॥
जानै शब्द मूल रहि वासा । सुरति निरति कीन्हां तहां पासा ॥
पुरुष रचा जब आपु शरीरा । उपजी सुरति निरति गंभीरा ॥
कायाके दलके व्यवहारा । जो चाही सो सबही सुधारा ॥
दहिने अंग तेज कर दाऊ । बाये शीतल सबै सुधाऊ ॥
मध्यम पुरुष सुरति अंकूरा । ताहि सुरति संग पारस पूरा ॥
ताही दिन तीनों गुण ठयऊ । इंगला पिंगला सुखमन कियऊ ॥

तीनों घर कर तीन सुभाऊ। शीतल तेज सत्यकर भाऊ॥
अमी अग्रभा तेज शरीरा। उपजे चंद्र सूर दोऊ वीरा॥
अग्रतेज औ सत्य सुरंगा। तीन शक्ति उपजी तेहि संगा॥
कला अनंता शक्तिके पासा। लीला बहुत विचित्र प्रकाशा॥
तिनहु संग अहै द्वौ वीरा। इक शीतल इक तेज शरीरा॥
तीनो शक्ति अंग दोउ वीरा। काया मथिकथि कहै कबीरा॥
अभयहि शक्ति है चन्द्र सनेहा। इँगला नारी संग उरेहा॥
उलँगनी शक्ति रहे सुख मरना। चैतन शक्ती सूर्य प्रमाना॥
सबसे मध्य जहाँ सुरति तरंगा। सुरति निरति कायाके संगा॥
नख शिख ज्योति विराजे अंगा। शोभा विशद मनोहर सँगा॥
पांचतत्व तिया शक्ती राजै। ताहि सङ्ग दोय वीर विराजै॥
तत्त्वरँग शक्ती न घर कीन्हां। तेहि महँ उपजनि पारस दीन्हां॥
उपजनि पारस भा परसंगा। उपजी ज्योति कला बहुरँगा॥
पँचई श्वासा देह समाई। उपजी रूपकला अधिकाई॥
जागी देह अखंडित अँगा। शोभित भई कला प्रसँगा॥
उपजनि अँश पुरुषके संगा। भाखों भेद कला बहु रँगा॥
जब कायामो आई श्वासा। जागि ज्योति पुहुप प्रकाशा॥
उपजा रूप अखँडित बानी। बोले बचन पुहुपकी खानी॥
मधुर बचन और लीला धारी। देखि रूप तब पुरुष दुलारी॥
हुये मधुर धुनि लीला धारी। वचनरूप लखि आप दुलारी॥

समय–पांचतत्त्वतिये शक्ती सँग, चन्द्र सूर्य दोउ वीर।
तीनों घर श्वासा रमें, बाहर भीतर तीर॥

चौपाई

उपजी रूप रंग की खानी। बोले अमी विरहकी बानी॥
उपजी कन्या कला अनूपा। पुरुष उतपन औ पुरुष स्वरूपा॥

जेहि पारस सब उत्पत्ति कीन्हाँ । सो पारस कन्या कहँ दीन्हा ॥
पारस हाथ महा बल जाना । तब कन्या कहभा अभिमाना ॥
उपजा रंग रोस गंभीरा । बैठी अमी सरोवर तीरा ॥
यहि विधि सोरह सुतनिरमाया । भिन्न भिन्न अस्थान बनाया ॥
जेहिको जेता तन विस्तारा । तेहिको तैसा लोक सुधारा ॥
काहुको लोक सत्ताइस दीन्हाँ । काहूको सात पांचदशचीन्हाँ ॥
काहू चौदह काहू बीशा । काहू सत्रह काहु उनीशा ॥
काहूके बारह पन्द्रह तीसा । काहू इकइस बाइस चौबीसा ॥
काहू छतीस बतीसहि भारी । दीन्हों वास भये अधिकारी ॥
सब कह दीन्हों लोक बनाई । आपु रहे प्रभु अछप छिपाई ॥
उत्पनि पारस पुत्रिहि दीन्हा । सौंपेउ तेज धर्म सों लीना ॥
ताते धर्म भये बली बंडा । बैठो सात द्वीप नौ खंडा ॥
जिहि विधि रचनापुरुष बनाई । तैसी कला धर्म निरभाई ॥
रचना रचि मनमें पछिताई । शून्य शरीर जीव कहँ पाई ॥
जीवन बिना जीव नहिं होई । रचि अस्थल बैठा मुख गोई ॥
जेहिंविधिरचनापुरुषहिकीन्हाँ । तैसहि धर्म रचा सब चीन्हाँ ॥
पुरुष समान रची अस्थाना । बैठि शून्यमें करे अनुमाना ॥
जेहि पारस प्रभु लोक बनाया । सो पारथ प्रभु कहाँ छुपाया ॥
सो पारस अब कहवाँ पाऊँ । जेहि पारसते जिव निरमाऊँ ॥
हेरत पारस आये तहवाँ । बैठि सरोवर कामिनि जहवाँ ॥
कामिनि धर्म भये एक ठाँऊ । अंकमिलाय कीन्हबहु भाऊ ॥
शील रंग रस कीन्ह मिलापा । धर्म रोष हो कीन्ह विलापा ॥
करै विलाप कला बहु भारी । मुख चतुराई हृदय विकारी ॥
कामिनसों कीन्हों व्यवहारा । उपजा रंग रूप रसधारा ॥
धर्म कहैं कामिनिसो बाता । गहै अंग चमकावै गाता ॥

कामिनि देह कामकी खानी । बोले मधुर बिरहकी बानी ॥
उपजा मोह महा मद भारी । कामिनि कामकला अनुसारी ॥
देखि कला अनुसार भुलाना । व्याकुल भये रंग अभिमाना ॥
कामिनि देखि धर्म अकुलाना । उपजा रंग रोष अभिमाना ॥
धर्म कहे कामिनिसों बानी । तोंरे है पारस सहिदानी ॥
सो पारस अब तुमरे पासा । जाते पूजे मनकी आसा ॥
सो पारस देहू मोरे हाथा । तुमहू रहो हमारे साथा ॥
धर्मराय जब कही कुवानी । तब कामिनि चितशंकाआनी ॥
कामिनि कहै धर्मसों बानी । काहे धर्म होउ अज्ञानी ॥
हम तुम एक पुरुषकर कीन्हाँ । तुमकहँदीन्हसोहमहुकोदीन्हाँ ॥
हम लहुरे तुम जेठे भाई । हमसों कहा करहु अधिकाई ॥
" " " । एकै नाल कुमारग वानी ॥
बहनिहिं भाइहि होत कुबानी । आगे चलिहै यहि सहिदानी ॥
जब कामिनि कही असबानी । धर्मराय चित दुबिधा आनी ॥
कामिनि चलहु हमारे देशा । कहा करहु मानहु उपदेशा ॥
छल बल करि अपने पुर लावा । तहाँ आनिकै रारि बढावा ॥
धर्मराय कामिनसों बोला । शोभा सुरति अमीरस डोला ॥
निरखि नैन कामिनिसों बोलै । शक्ति अधीन बैन बहु खोलै ॥
सोलह शशि कला शशि पूरी । तीनों शक्ति कर छूरी ॥
नैन निरखि मूर्ति होय झांके । तत्व निःतत्व आप तनताके ॥
विधि लैलाइवधिकविधि बोले । निरखत अंग २ तनु डोले ॥
अंतरगति विधिविधिहिमनायो । कुमति हाथपरसाजनिआयो ॥
विधि वर दीन्ह बुन्दचुक आई । चितमकार एक रच्यो उपाई ॥
यहि पुर एक अचंभो ठयऊ । पारसको सुप्रताप जनयऊ ॥
इच्छा रूप हर्ष चित जागी । श्वेत सरोवर वार न लागी ॥

भूल्यो धरम चितहि अकुलाना । ऐसो सरवर मैं नहिं जाना ॥
अक्षयअयूनिविधि पारसयामा । कहा अचम्भो आनितुलाना ॥
देखो तेहि पारसको चीन्हाँ । जेहिते मानसरोवर कीन्हाँ ॥
शूर मलीन उदय शशि जोना । बानी बरन अंग तुअलोना ॥
जादिन पुरुष रचा तुअदेहा । तादिन मोहिं तोहिं जुरासनेहा ॥
मोहिं कारण तोहि पुरुषबनावा । तू कुलमोते अंग छिपावा ॥
तोहि कारण मैं रचना कीन्हाँ । रचिकेखानितोहि चित दीन्हाँ ॥
" " " । मोहि कारणतोहिं रचनाकीन्हाँ॥
देहनात हमरे घर नाहीं । हम तुम रहे एक घर माहीं ॥
उत्पति पारस तुमरे पासा । जाते पूजे मनकी आसा ॥
देह सबै हम रचा बनाई । पारस दै तुम लेहु जियाई ॥
हम तुम खानि रची बहु बानी । जाते होय ना एकौ हानी ॥
जैसी रचना पुरुष प्रकाशा । तैसी रची लोक रहिवासा ॥
जीव सीव रचि खानि बनाई । जाते ज्योति ज्ञान फैलाई ॥
( जीव रची सब खानि बनाई । जागे ज्योति ज्ञान फैलाई ) ॥
लाज सकुचि औ रची सगाई । बरण बिचारि छूत बिगराई ॥
ठांव ठांव रचि राखी आपा । माता पिता शोक संतापा ॥
श्वशुर भसुर औ भर्मित भाई । शिवशक्ती रचि पूजा लगाई ॥
" " " । हंसन लाज भाव नात बँधाई ॥
रची अचार कपट विस्तारा । तीरथ व्रत प्रतिमा देवहारा ॥
" " " । तीरथ व्रत औ नेम अचारा) ॥
वेद कितेब धरि फंद सँवारी । रची दीनों वोय पर्वत भाँरी ॥
दुओं दीन दुए राह चलाई । झगर करै रहै अरुझाई ॥
एक एकते रारि बढाई । मुक्तिपंथते रहै भुलाई ॥
दोउ दिन बाँधी मरजादा । रची बाद ममता औ स्वादा ॥

एहि विधि रची सकल दुनियाई । लोभ मोह लालच बरिआई ॥
रचिकै खानि करिय रजधानी । राज पाठ सिंहासन ठानी ॥
तुम आद्या अरु हम अभिमानी । बारह खण्ड छह लोकके बानी ॥
( तुम अंश हमही अविनाशी । बारह खण्ड छः लोकके बासी )॥
पाप पुण्य दोए रची अपारा । जाकहँ सेवै यह संसारा ॥
पाप पुण्य दृढ फन्दा होई । जामहँ अरुझि रहै सब कोई ॥
योग ज्ञान व्रत संयम पूजा । सोलहमहीं और नहिं दूजा ॥
रची क्षुधा मायादि विकारा । पुरुष लोकको मूँदिये द्वारा ॥
रची क्रोध माया विकरारा । पुरुष लोकको मुँद्यो द्वारा ॥
पुरुषलोक इहई रचि लीजै । इकछत राज हमहि तुम कीजै ॥
तुमरे, संग है पारस सूरा । जाते होय सकल विधि पूरा ॥
जेहि ते लोक पुरुष प्रकाशा । सो पारस है तुमरे पासा ॥
सो पारस अब हमको देहू । रंग हमारा सबै तुम लेहू ॥
कामिनी कहे वचन बुद्धि धीरा । उपजेहु कालरूप बलवीरा ॥
जो जो वचन कहेउ तुम भाई । सो हमरे चित्त एक न आई ॥
पुरुष लोक कस मुदा हुदयारा । लेउ श्राप अपने शिरभारा ॥
जो छल हमते कीन्हहु भाई । तैसो छल तुम्ह भुगतहुं जाई ॥
पारस कामिनी धरा दुराई । हाथ मलै शिर धुनी पछताई ॥
हाथ मिजि छिन छिन पछिताई । कहे कामिनि धर्महि समुझाई ॥
कामिनि कहे कुबुद्धि समझाई । हम तुम चलहुँ पुरुष पहँ जाई ॥
बकसै पुरुष दयाकरि तोही । शीश नवायके लीन्हसि मोही ॥
बिन दीयें बरिआई लेहौं । पुरुष लोक पुनि जाए न पैहौं ॥
कामिनि कहा वचन परवाना । धर्मरायके भयो अभिमाना ॥
कामिनि तोरि बुद्धि है थोरी । अबना जाऊ पुरुषशकी खोरी ॥
पुरुषलोक इहई रचि राखा । रच्यो बिचारि बुद्धि बलभाखा ॥

अब तौ पुरुषत्रास नहिं मोही । गहौं बांहको राखा तोही ॥
तैं कन्या का डहकसि मोही । रचा पुरुष मम कारण तोही ॥
(तैं कामिनि कठोर निर्मोही । ) ,, ,, ,, ॥
पहिले वचन बिरहते बोली । लागी कठिन कामकी गोली ॥
काम सतावै निश दिन मोही । दे पारसकी लीलहुँ तोही ॥
कामिनि कहै धर्म सुनु बाता । चढि कालिमा तोहरे गाता ॥
हठ निग्रह कामिनि किहु ताही । धर्मराय पकरी तब बाँही ॥
गही बांह कामिनिकी जबही । काम बाण घट व्यापे तबही ॥
धर्मरोष कामिनिपर कीन्हाँ । गहिपगशीसलीलतेहि लीन्हाँ ॥
लीलत कामिनि शब्द उचारा । पुरुष २ करि कीन्ह पुकारा ॥
कामिनि पुरुष नामजब लीन्हाँ । आज्ञा पुरुष अंशही दीन्हाँ ॥
योगजीत आये तेहि वारा । सुर्त बान सो कालहि मारा ॥
पुरुष कोपि ताऊपर कीन्हा । कन्या उगलधर्मतब दीन्हाँ ॥
(उगली कन्या बाहेर आई । ) ,, ,, ,, ॥
हाहाकार रोषके धावा । कामिनि पारस कहां चोरावा ॥
कामिनि कम्प देख विषधारा । पारस मानसरोवर डारा ॥
मानसरोवर झलतै अंगा । गयउ पताल जहाँ जलरंगा ॥
परीक्षा चार पारस परवाना । उपजी चारखान निरवाना ॥
एक परीक्षाते सरबर गयऊ । पारसके सम पारस ठयऊ ॥
दूजो अंश भयो निरबाना । शिला सिंध पर्वत परमाना ॥
रतन शिला ताहिकी धारा । सो पाजी वारे संचारा ॥
तीसर अंश नार प्रगटयऊ । अंशहि अंश चत्रगुन भयऊ ॥
चौथा अंश कामिनि अनुमाना । जाते स्वर्ग नर्क परवाना ॥
अंशहि अंश अंशते मानी । एक प्रती चौगुना उतपानी ॥
चार २ गुण गुणहि समाना । अंशते अंश चत्र परवाना ॥

पारस मानसरोवर माही । पारस बुद्धि आपही आहीं ॥
पारस कामी न बहुत दुरावे । सुर्त सनेह तहां फिर आवे ॥
पारस अंत नाहे ठहराई । बासरूप कामिनिसंग धाई ॥
कामिन कालपुरुष पद परसे । पारसनीर नेत्र मह दरसे ॥
नैन निरख मूरत अनुरागी । धर्म अंश कामिनितन लागी ॥
पारस अंश चितै नहिं डोले । बहुरि २ कामिनसों बोले ॥
पारस अंशघट रह्या छपाई । निकसी कन्या बाहर आई ॥
जेहि कारणकामिनि हठ कीना । पारस संग छान सो लीना ॥
उत्पत्ति पारस धर्म तब पावा । कन्या रही ताहिके ठाँवा ॥
जब लगि कन्या भइ सियानी । तब लगि धर्म रचीसब खानी ॥
खानि वानी रचि कीन पसारा । बेदवाद बहुमत विस्तारा ॥

दोहा-रचना रची लोककी, शशि घर रहा समाय ।
पुरुष नाम जानै नहीं, ताते लोक न जाय ॥
(रचा रची लोककी, नख सिख रहा समाइ ।)
पुरुष नाम जाने विना, सत्य लोक नहिं जाइ ॥)

चौपाई

पुरुष नाम ज्ञानी जो पावे । लोक दीप पलमाँहिं ढहावे ॥
पुरुष नाम जानै नहिं भेदा । रचै खानि चौरासी फन्दा ॥
" " " (चित चंचलऔअन्धअभेदा) ॥
दुख सुख सबै रची बहुभांती । जरा मरण पूजा औ पाती ॥
रचि सब खानिबैठि अभिमानी । तब लगि पुत्री भई सयानी ॥
उपजा जोबन रसको भावा । तब कन्या कहँ विरह सतावा ॥
कामिनी कहे धर्मसो बानी । हमतो तुमरे हाथ बिकानी ॥
सूर्त डोला एके पारस लीन्हा । मदन भुवङ्गमके वसि कीन्हा ॥
जोबन बिरह महामद गाजे । बिनु संयोग गर्भ नहिं छाजे ॥

मोह महाझर बरषे लागी । मन समाध कामिनि सों लागी ॥
गर्भ किये मा करदी राजा । कामिनि सोइ दुहू दिशवाजा ॥
मनसालहर उद मद मन भएउ । काम दहन धन आहुत दयेऊ ॥
उपजा मदन मोह औगाहा । पुत्री पितासों भयउ विवाहा ॥

साखी—बहनीसे बेटी भई, बेटीसों भइ नार ।
नारीसों माता भई, मनसा लहर पसार ॥

चौपाई

बरबस धर्मराय हरलीन्हा । बिन लेखा रजधानी कीन्हा ॥
विषया वेद व्याह जमनाता । चौदह काल संघ उतपाता ॥
चौदह पारस लोक निसानी । शब्द व्याह चौदह यमहानी ॥
मनसा व्याह देव तिषगंधी । हंसना हंस भगत युगबंधी ॥
सुर्त हंस घट रचो विदानी । धर्म समाध वसाए आनी ॥
उपजा मदन मोह औगाहा । कन्या पिताहितबभयाविवाहा ॥
(कन्या व्याकुल भई तेहि माहा ।) " " " ॥
धर्मराजको उपज्यो भावा । कामिनि हृदय हाथ बतलावा ॥
उपजी रंग रोषकी खानी । कामिनि चरण गहो तब जानी ॥
मनसा लहरि ताहि तेइ दीन्हा । उपजी तीन लोककर चीन्हा ॥
कामिनि संग करे सुख भारी । उपजा तीनि लोक अधिकारी ॥
तीनहि शक्ति पुरुष संघ दीन्हां । तीनों सुत उपजावे लीन्हां ॥
(पांच तत्त्व तीन गुण चीन्हां ।) " " " ॥
तीनउ सुत उपजे बहुरंगा । पारस रहा धर्मके संगा ॥
( पारस रहा ताके संगा । )" " " "
तीनहुँ सुत उपजे अधिकारा । धर्मराय तब भया निरारा ॥
तीनौं सुत कहँ दीन्ही भारा । धर्मराय ऊंच भये निरारा ॥
राजपाट कामिनि कहँ दीन्हां । आपन बास शून्यमहँ लीन्हां ॥

कामिनि दर्श सदा लौ लावै । राज पाट सब कीर्ति बनावै ॥
" " " ( । तीनों सुतको राज सिखावै )॥
राज नीति सुत चित्तहि धरहीं । मनसा ध्यान पिताको करहीं॥
खोजत खोजत बहु युग गयऊ । पिता पुत्रसों भेंट न भयऊ ॥
ध्यान धरत बहुते युग गयऊ । ) " " "
कामिनि पुरुष एकसंग रहऊ । सुतकी बात पुरुष सों कहऊ॥
वहांकी बात न सुतसों भाखे । करै दुलार सदासँग राखे ॥
इहि विधिबहुतदिवसचलिगयऊ । सुत न खोज पिताकर कियऊ॥
धरत ध्यान बहुते युग गयऊ । पिताको खोज करत तब भयऊ॥
मातासों पूछे सुत बाता । पिता हमार कहाँ गये माता ॥
माता कहै सुतन्हसों बानी । पिता तुम्हार हमहुँ नहिं जानी ॥
रचना सकल हमहीं होई । हमसो दूसरा और न कोई ॥
रचना सब मोहीते होई । दूसर जान परो नहिं कोई ॥
हमही पिता हमही हैं माता । हमही तीनि लोकको दाता ॥
हमहीं छांडि कोइ दूसर नाहीं । तुम जो पूछहुँ सो कहुँ काहीं ॥
तीन लोक महँ दूसर नाहीं । माता कपट करै मन माहीं ॥
तब सुत सोच कीन्ह मनमाहीं । पिताका भेद बतावत नाहीं ॥
आपु आपु कह सुत सब रूठे । माता वचन कहै सब झूठे ॥
तब माता कहै बचन रिसाई । पिताको दरश करहु तुम जाई॥
माता कहै फूल लै धावहु । पिताके शीस परसिके आवहु॥
पुहुप सामाधि वासले धाओ । पिताके शीस परसिके आओ॥
चले पुत्र पिताकी आसा । पिता रहे पुत्रनके पासा ॥
खोजत बहुत दिवस चलिगयऊ । पिताको दर्श कतहुँ नहिं भयऊ॥
तीनों सुत सो दरशन भयऊ । " " " " ॥
पिता निकट सुत दूरि सिधाये । खोजत कतहुँ अन्त नहिं पाये ॥

खोजि थाकि माता पहँ आए । काहु साँच काहु झूंठ सुनाए ॥
ब्रह्महि भाषा झूंठ संदेशा । सकुचि वचननहिंकहेवोमहेशा॥
भाषा विष्णु सत्यकी रेखा । खोजि थाकि पिता नहिं देखा॥
माता बिहँसि कही तब बानी । ब्रह्मा झूंठ झूंठ तौ खानी ॥
शिव लजाय शिर नीचे राखा । सांच झूँठ एको नहिं भाषा ॥
ताते करहु योग तप जाई । जटा बढाय विभूति रमाई ॥
( तुम सुत करो योग तप जाई । शीश जटा तन भषम चढाई)॥
लेहु आमण्डल भेषसो कीन्हाँ । शिवको थापि भवनी दीन्हा ॥

साखी—जप तप योग समै दृढ़, आगे ध्यान पसार ।
माना कह्यो क्रोध करि, चतुरमुख अन्ध अहार ॥

मातहि कीन्ह विष्णु पर दाया । मुखहि चूमके कण्ठ लगाया ॥
सत्य वचन सुत बोलेउ बानी । तीनहु लोक करहु रजधानी ॥
शिव ब्रह्मा करिहैं तोर सेवा । गण गन्धर्व ऋषि मुनि देवा ॥
ब्रह्मा मोसों झूँठ लगावा । तेहि कारण विधि झूँठ कहावा॥
ब्रह्मा वेद पढ़े बहु भांति । कुकरम कर दिवस औ राती ॥
( विद्या वेद पढ़े बहु भांती । कुकरम करै दिवस औ राती)॥
एहि अवगुण गायत्री गाई । ब्रह्मा दोष शाप तिन पाई ॥
मृत्यु लोक गो धरे शरीरा । अघ भुगते चौरासी थीरा ॥
गोय होय नारी कल्यारी । अघनिचोए होए पातकभारी ॥
जहाँ लग पुहुप खान परकाशा । निरधिन ठारे तुम्हारो बासा ॥
झूठी बात वेद में निर्माई । च्यार वर्णमें बड़ी बड़ाई ॥
पहिले चारों वरन पुजावै । दक्षिणा कारण गरा कटावे ॥
गरा कटाए करावे पूजा । गायले समे ब्रह्मा नहीं दूजा ॥
लए मूँड पडिवो रमाई । ब्राह्मण भए सो काल कसाई ॥

खाए अखज चले एडाई । जस मडवाको श्वान अघाई ॥
ब्राह्मणहूको झुठी आसा । हरि नहिं भजे न हरिके दासा ॥
कहके बिर ब्रह्मा करोए । उत्तम जन्म पाय जड खोए ॥
जूठी बात वेद निरमाई । चार वरण आश्रमहिं दृढाई ॥
ऋषि अगसी सहस्र बखानी । ते ब्रह्माके सुत उतपानी ॥
जेते ऋषि तेते मतधारी । अस्तुति करि हसेब तुम्हारी ॥
ब्रह्मादिक मुनि देव गण भारी । अस्तुति करिहैं विष्णु तुम्हारी ॥
निशिदिन ध्यानपिताकोधरिहो । किंचित ध्यान जोतअनुसरिहो ॥

साखी–बिचलि गयउ निजनामको, गहे कुमारग जानि ।
तीनलोक गुण विस्तरेऊ, निरञ्जन आदि भवानि ॥

चौपाई

कहै कबीर सुनो धर्मदासा । दोऊमिलि यह मत परकाशा ॥
यह सब खेल कामनी कीन्हा । निरञ्जन बास शून्यभौ लीन्हा ॥
ज्योति निरंजन ध्यान लखाई । शिव ब्रह्माको भेद सुनाई ॥
सेवहु विष्णु निरञ्जन ध्याना । हे सुत वचन निश्चय मम जाना ॥
ताते ज्ञान अगम फैलाहो । जाते तामस सिद्ध कहा हो ॥
सिद्ध न कामत होइहै भारी । ज्ञान अगम गुण होहि भिखारी ॥
अंश दहन तन तामस भारी । असुरभाव पशु वासु वतारी ॥
मतपा खंड ठगोरी टोना । षट दरशन पाखंड खिलोना ॥
यंत्र मन्त्र विखया अधिकारी । अन्तर ध्यान भक्त तुव धारी ॥
तव गुण सहस नाम ऊचरिहे । एक अंश चौसठ योगिन होइहे ॥
कर खपरलें मंगल गेहे । यह उपदेश महादेव देहे ॥
( शंकर चिह्न इहै सो पैहें । ) ,, ,, ,, ॥
रजरुचि सतगुन दया समानी । असुरहतन भक्तन रजधानी ॥
आगम कहो संघ मुनि लिन्हेउ । जहां जसभाव तहांतस कीन्हेउ ॥

चारि खानि ब्रह्मै निरमाई । चामहि त्वचा लुच्च लौ लाई ॥
शिवको वरन भेद नहिं होई । क्रोधरूप धरि भेष विगोई ॥
मात विष्णुपर दाया कीन्हाँ । पिता दिखाय निकटहि दीन्हाँ॥
(अनुभव दया विष्णु परकीन्हीं । )
पिताको दर्श विष्णु जब पावा । तब माता कह शीश नवावा ॥
माता पिता एक है गयऊ । विष्णु देखि चित हर्षित भयऊ॥
माता पिता एक मिलि गयऊ । विष्णु समाय जोति महँगयऊ॥
तेहि पाछे जग सिरजे लेऊ । ताको वरण सविस्तर कहेऊ ॥
प्रथमें चारि खानि निरमाई । लक्ष चौरासी योनि बनाई ॥
चारि खानिकी चारिउ बानी । उपजी तीनिलोक सहिदानी ॥
चारि खानि रचि कियो पसारा । चारि वरन पाखण्ड सँवारा ॥
(चौदहभुवन करचो विस्तारा । )
लक्ष चौरासी योनी कीन्हाँ । चारि खानि महँ एकही चीन्हाँ॥
लक्ष चौरासी बचन बखाना । चारि खानि जीव एकै साना ॥
रचना रची सखा बहु रंगा । सुर नर मुनि गणका मतरंगा ॥
कामदेवकी कला अनंगा । पशु पक्षी सुर नर मुनि संगा ॥
कामकला सबही भरमावै । शिव शक्ती संग काम लगावै॥
उत्पति प्रलय रची अविनाशी । कामिनि काम कालकी फाँशी॥
कनक कामिनी फन्द बनावा । तेहि फन्दे सबही अरुझावा ॥
कनक कामिनी फंदा कीन्हा । चार खानिमें एकै चीन्हा ॥
नर बानर कीट पतंग सँवारी । सबके सँग करै रखवारी ॥
(नर नारि जत खान सँवारी । सब घट काम करै रखवारी ॥
पशु पक्षी जत कीट पतंगा । रक्षक भक्षक सबके सङ्गा ॥
श्वासा सार होय गुञ्जारी । पांचों तत्त्व सँग विस्तारी ॥
पांचों तत्त्व तुरै बल जोरा । तापर चढ़े साहु औ चौरा ॥

चारिउ खानि होय गुञ्जारा। स्वासा चलै अखंडित धारा ॥
देहदशा जस पुरुष सवारा। तैसी देह रची करतारा ॥
पांच तत्त्व तीनों गुण साजा। आठ काठ पिंजरा उपराजा ॥
( अष्टधातु पिंजरा उपराजा ) ॥
पिंजरामें सुगना एक रहई। वाकी गति मञ्जारी लहई ॥
(यामध्य सुवना एक रहई। दावपरे मँजारी गहई ) ॥
सुगना पढ़ै दिवस औ राती। रक्षक पिंजरा ऊपर सँघाती ॥
रक्षक भक्षक सङ्ग रहावै। सदा पढ़ावै घात लगावै ॥
) एक घातक एक सुआ पढ़ावै ॥
जस सुअना पिंजरा महँ गहई। ऐसो देह प्राण दुख सहई ॥
नख सिख रचा काल फुलवारी। फूली वास कुबास सवारी ॥
कनक कामिनी काल बनाई। चारि खानि महँ रहा समाई ॥
कामिनि काम सँवारे जानी। चारिउ बखानि रहा विकशानी॥
चारि खानि महँ श्याम अमाना। काल कुटिल तेहि माहि समाना॥
काल कलाकी खानि बनाई। शिव शक्ती महँ रहा समाई ॥
(दया क्षमाकी खानि बनाई। नर नारि महँ रहा समाई ) ॥
सुरनर मुनि सबही कह डहकै। चारिखानि सबके घट महकै ॥
चारिखानिकी सब उतपानी। जेतिक तीनि कोक सहिदानी ॥
तीन लोक श्वासा विस्तारा। स्वासाते भा सकल पसारा ॥
श्वासा संग काल अवतारा। विष अमृत दोनों संचारा ॥
श्वासा संगम काल औकाली। श्वास संग भये वनमाली ॥
प्रकृति पचीस सङ्ग जञ्जाली। पञ्च पांचदश माल तमाली ॥
चन्द्र सूर श्वासा संग पूरा। इंगला पिंगला सुष्मनि जोरा ॥

दोहा–श्वासा सँग श्वासा, तेहिसे उपजा बरि आर ।
चन्द्रसूर्य हैं श्वासामध्ये, सकल विधिविस्तार ॥

शिव शक्ति सुखधाम है, जो चितज्ञानसमाय ।
सुखसागर अभिराम है, कालत्रासढरिजाय ॥

चौपाई

चन्द्र सूर जीवन सहिदानी । शक्ति शिवकी उपजे खानी ॥
(संयोग जड़ चित विदानी ) ॥
एक संग विष लहरी समानी । एक संग बसे अमृतकी खानी ॥
एक संग मन बसे अपारा । एक संग अमी जीव रखवारा ॥
एक संग काम क्रोध दुखभारी । लोभ मोह पाषंड विकारी ॥
अहंकार लालच औ ममता । घिन्न औछतिलाज प्रतिहता ॥
एते एक वीरके साथी । माया मद जस मैगर हाथी ॥
एक संग शीतल शीलसुभेषी । इक संग छैमा सुबुधि विशेषी ॥
एक संग भक्ति रहे हितकारी । ज्ञान विवेक संतोष सुधारी ॥
दया दीनता निर्भय रमता । धीरज मतीसहज सुधि समता ॥
दुई घर दुवो राव कर वासा । इक घर राहु केतु प्रकाशा ॥
राहु अमावस सूर्यहि ग्रासे । ग्रासे केतु पूरणीमा चंद्रहीं फाँसे ॥
दोउ करै यहि भांति बसेरा । खन बाहर खन भीतर डेरा ॥
( दोउ करै एक नगर बसेरा ) ॥
एकहि रथ दोऊ असवारा । बाहर भीतर मध्य दुवारा ॥
पांचों अविचल तुरे तुषवारा । ता ऊपर है जीव असवारा ॥
एक तुरे पियरे पट नेहा । एक नील रंग है देहा ॥
कुबेत एक लाल बहु रंगी । एस सबुज हरियारे अंगी ॥
एक श्याम मुश्की रँग भारी । पांचों एकते एक अधिकारी ॥
एक श्याम बदन रूपचारी । आप आप पांचों अधिकारी) ॥
पांचों बसे एकही संगा । एकही रथ मन जीव सुसंगा ॥
एक तब ले पांचों वासा । दाना घास पानीकी आसा ॥

पांचों पांच घाट जल पीवै । दाना घास खाए सुख जीवै ॥
पांचों तुरै पहली पल धावै । छिनबाँधहि छिन छोरि कुदावै ॥
छिनबाहिर छिनभीतर आवहि । पांचों पांच ढुंड फिरि धावहि॥
सुसरवर पार सो तवे ले आवे । सकल पराश तवे ले आवे) ॥
इहिं प्रकार जाही ओर आवहि । कोइ नियरे कोई दूर सिधावहि॥
सुरंग तुरै जोजन भरि जावै । मुसकि योजन डेढ सिधावै ॥
हरियर दुइ योजन पर जावै । योजन तीन पति पहुँचावै ॥
हंसा चारि योजन जो जावै । फिरिके दंडवत बेलै आवै ॥
(श्याम रंग आवै नाहिं जाई ) ॥
यहि विधि पांचों आवै जाहीं । अपनि अपनि मंजिलके माहीं॥
पांच तुरै रथ एक सुधारा । ताऊपर मन जीव असवारा ॥
जीव पराहै मनके हाथा । नाच नचावै राखै साथा ॥
पांचों तुरै होय असवारा । घेरे काल कलीके द्वारा ॥
यहि धोखा गहि जीव भुलाना । सत्य शब्दको भाव न जाना ॥
सत्य लोकके तुरै तुखारा । ताऊ पर सतगुरू असवारा ॥
हाहाकार करै चहुँ भाती । करै शिकार दिवस औ राती ॥
रथ ऊपर चढ़ि तुरो कुदावै । मारि जनावर लै घर आवै ॥
मारै बाण जान पर तानी । नख शिर वेधे धाव न जानी ॥
ताहि जानवरके शिर नाही । रुधिर मांस देह नहिं ताही ॥
देखत देहदृष्टि नहिं आवै । बिन देखे असमाने धावै ॥
( बिन देखे असमानहि धावे । ता धोकेमें जिव डहकावे ) ॥
ऐसा देखो जनावर जोरा । बन औ नगर करै घनघोरा ॥
ऐसो विषम जनावर भारी । मारि पारधी लीन्ह संभारी ॥
मारि जनावर नगर बसावै । वाहि ओल देहे बिलमावै ॥
एक नगर दुइ रहे नरेशा । भिन्न २ दोनों कर देशा ॥

ताहि नगर दुइ महल बनाये । दुइ दरवानी तहाँ रहाये ॥
महा विकार दोऊ दरवानी । दोऊ रायकी सेवा ठानी ॥
करै उतपन्न दोऊ रजधानी । धर्म धीर औ आदि भवानी ॥
जो कछु उत्पति शहरमें होई । सो सब बांटि लेहि नृप दोई ॥
बांटि खजाना धरै दुराई । लेखा खरच उठावहि राई ॥
लेखा जानि खरच उठाई । लेखा खरच उठावै आई ॥
एक हवेली दस दरवाजा । अहुठ हाथ गढभीतर राजा ॥
राजा प्रजा सबैहि रहावै । इकछत राज चलै नहिं पावै ॥
दोउ राहुके शहर बताऊँ । बाहर भीतर प्रकट दिखाऊँ ॥
एक घर बसै मोह नृप भारी । ताकी साज विषय अधिकारी ॥
दूसरे घर विवेक बलधारी । ताकी सात सबै हितकारी ॥
इकघर राजा एकघर रानी । विधि संयोग मिलावै आनी ॥
एकघर सूर एक घर चन्दा । एक तेज विष अमृत मन्दा ॥
इकघर शक्ती इकघर शीवा । इकघर मन एकघर जीवा ॥
इकघर पाप एकघर पुन्या । इकघर सांच एकघर शुन्या ॥
इकघर भक्षक बसै अपारा । इकघर रक्षक है रखवारा ॥
इक राजा कर रक्षक नाऊ । रक्षा करै सदा सब ठाऊ ॥
एक राजाकर भक्षक नाऊ । भक्षै सबै न छांड़ै काऊ ॥
दूनौं नृपति एकपुर माहीं । एक रथ चढ़ै एक सङ्ग ताही ॥
प्रथमहि भक्षक होइ असवारा । तहां जाय जहां है करतारा ॥
विषम सरोवर पहुँचे जाई । पैठि विषम जल माहिं नहाई ॥
करि असनान तीर्थ परसै । झांई झलकि ज्योति तहँ दरसै ॥
दुइ प्रतिमाको दर्शन पावै । आदि निरंजन ज्योतिदिखावै ॥
काली कालरूप विस्तारा । नाना रंग तरङ्ग अपारा ॥
देखि रूप मन हर्ष समावै । ज्यों पतङ्ग दीपक कहँ धावै ॥

देखत बहुत सुहावन ज्योती । नाना रङ्ग लागे बहु मोती ॥
जब परसै तब तेज अपारा । लागे आंच महा विष झारा ॥
सो विष लै भक्षक घर आवै । आनि जीव कहँ घोरि पियावै ॥
विषपिलाय जिव घात लगावै । रथते उतरि आपु घर आवै ॥
जब विष चढ़े आप बिसरावै । तब रथ चढिके रक्षक धावै ॥
रक्षक दूरि देश कहँ धावै । विषम सरोवर पार सिधावै ॥
विषम सरोवर तजि है पारा । जाइ जहां सतनाम पियारा ॥
अमर चोलना देखे जाई । चरण स्वरूप महँ रहे समाई ॥
परसै सुरति नामकै पाया । मिटे जहर भइ निर्मलकाया ॥
दया तूरे चढ़ि उतरै पारा । परसे अमी तत्त्व विस्तारा ॥
अमी तत्त्व तूरे जब परसै । अग्र ज्योति अखंडित दरसै ॥
वरषै अमृत अग्रही धारा । पिवे जीव विष होय निनारा ॥
सुख सागरमें सुधारस पीवै । लै अमृत फिरि घरहि सिधावै ॥
घरमों आइ रहा ठहराई । अग्र अमी धर राख छिपाई ॥
घरी आध घर माहि जुडावै । भक्षक जहर बहुरि लै आवै ॥
फेरि जहर जीवहि पहुँचावै । जीव मुग्ध होइ अमी गँवावै ॥
जब भक्षक विष जीव पिआवै । फिर रक्षक अमृतकह धावै ॥
एहि विधि रक्षक भक्षक धावहि । एक विष एक अमृत लावहि ॥
विषम सरोवर भक्षक जाई । रक्षक सुख सागर पहुँचाई ॥
इहिविधि दोऊ करै रजधानी । इक दारुण इक शीतल बानी ॥
जादिनघर विधिने दुइकीन्हा । तादिन सोंपि खजाना दीन्हा ॥
दोइ नृपतिके दोइ स्वरूपा । राखै दाम चन्द सूर भूपा ॥
इकघर सूर्य एक घर चन्दा । इक दुख दारुण एक अनन्दा ॥
सकल समाज दोऊके हाथा । अविधि समानखजानासाथा ॥
भमर मता दोऊ घर भारी । श्वासा सार सुधारि सुधारी ॥

बाँटिके दाम दोउ घर दीन्हां । अमृतविष विशवासकर कीन्हां ॥
रचि खानी बहु रंग अपारा । देह माहिं बहु देह सुधारा ॥
(रची देह बहु रंग अपारा । विष अमृत बहु रंग अपारा) ॥
अग्र देह एक देह मँझारा । बाहर भीतर मध्य दुआरा ॥
(अष्ट देह यदि देह मँझारा । बाहर भीतर मध्य अखारा) ॥
चारि विमल हैं चारि तरंगा । चारि सुरंग एक बहु रंगा ॥
(चारि विमल हैं फटिक तरंगा । चारि सुरंग श्याम बहुरंगा) ॥
दुइ उज्वल हैं बाहर बासा । दुइ उज्वल जलमध्य प्रकाशा॥
(दुइ उज्वल दल मध्य प्रकाशा । श्याम सुरंग अधर दुइवासा ॥
श्वासा सुरंग अधर दुइवासा । जरद नील घर माहिं निवासा ॥
बाहर दुइ सफेद बहुरंगा । रूप अनन्त सत शक्ती संगा ॥
पार बसै सत्व सुकृतको डेरा । मध्यमें विषम सरोवर घेरा ॥
निस्तत्त्वकमलसुकृतसत्यवासा । विषम सरोवर काल निवासा ॥
पुहुपदीप साहेबको बासा । सुखसागर ज्ञानी रहि बासा ॥
ताके और काल उछ्वासा । मान सरोवर काम निवासा ॥
ताके और कालकी आसा । विषम सरोवर काम निवासा ॥
सबके डरे निरंजन वासा । धरम दास तुम लखो तमाशा ॥
धर्मराइ सुख पौन उड़ाई । विषकी लहरि ध्वजा फहराई ॥
ज्ञानीके मुख ज्ञान प्रकाशा । अमरसार सुधा रहि वासा ॥
गुप्त झांझरी पुरुष बनाई । अक्षै अमान ध्वजा फहराई ॥
प्रकट झांझरी काल प्रकाशा । तेजपूंज विविधि रहिवासा ॥
जो रचना बाहरकी भाषा । सो रचना भीतर रचि राखा ॥
जो भीतर सो बाहर दरशै । तत्त्वहि तत्त्व तत्त्वतहँ दरशै ॥
तत्त्वकि रथचढ़ि बाहर आई । अमीकी रथ तहां परशै धाई ॥
क्षण बाहेर क्षण भीतर आवै । सतगुरुमिलै औ सहज बुझावै ॥
( निरखि परखि जब हेरे जाई । )

चारि तीर्थमहँ प्रतिमा भारी। सत्यसुकृत तहाँ पुरुष औ नारी ॥
स्वासा संयम राह सुधारी। देवल चारि देव हैं चारी ॥
घट भीतर घट राह अपारा। चांद सूर्य ताके रखवारा ॥
उतर चँद तीरथ कहँ धावै। परसि तीर्थ अमृत लै आवै ॥
एकजीव दुइ अंग समाना। जन्द्र सूर्यके हाथ बिकाना ॥
दक्षिण स्वर तीरथको धावै। तीरथ परसि जहर लै आवै ॥
शुक्लपक्ष जब पूनो जब आवै। तबही जीव चन्द घर आवै ॥
जलरँग तत्व चँद असवारा। सो परसै धाइअमृत रसधारा ॥
जीव चन्दके साथेहि धावै। योजन चारि पार पहुँचावै ॥
करि असनान पुरुष पग परसै। निर्मल ज्योति अखंडितदरसै ॥
जब फिरि चन्द्र सरोवर आवै। बहुरि जीवसँगहि फिरि धावै ॥
आवत जात बार नहिं लावै। पल पल जीव दरस तहां पावै ॥
कृष्णपक्ष अमावस जब आवै। तब फिरि जिव सूर्यघर आवै ॥
सूर्य तेजपर होइ असवारा। बरसै अग्नि अखण्डित धारा ॥
जाय निकसि योजन परवाना। विषय सरोवर करै अस्नाना ॥
परसै देव निरंजन पाई। लागे झार जीव कुँभिलाई ॥
जीव सूर्य फिरि कमल समावै। पल बाहर पल भीतर आवै ॥
सूर्यसंग विष पीवै अघाई। मूर्च्छित होय चन्द्रघर जाई ॥
जाय अमावस परिवा आवै। चढि रथ ऊपर चन्द्र सिधावै ॥
वायु तत्वपर होय सवारा। चले चंद दुइ योजन पारा ॥
विषम सरोवर पार सिधावै। मान सरोवर पारस पावै ॥
नागिनि एक सरोवर माहीं। पीय अमृत विषछांडे ताहीं ॥
सो विष खाय चन्द्रघर आवै। अमृतकी कछु खबर न पावै ॥
पल पल करै तीर्थ अस्नाना। भीतर बाहर एक समाना ॥
अमृत रहै भुजंगिनि पासा। भीतर बाहर एक प्रकासा ॥

साइ विष लेय तीर्थको आवे । चंद्र कमल पर जाय समावै ॥
एहिविधि चंद्रपक्ष चलि जाई । पाछे जीव सूर्य घर जाई ॥
पूनिमा बीते परिवा आवै । तब रथ चढिके सूर्य सिधावै ॥
सुरंग तुरे पर होय असवारा । योजन तीनि जाय चढिपारा ॥
सुखसागरमें पैठि नहाई । परसै योग सँताय न पाई ॥
अमृत मानसरोवर माहां । कामिनि दूरि धरै बोले ताहां ॥
सो अमान सुखसागर माहां । सूर्यके संग पीवे जिव ताहां ॥
पिये अमी जिव सूर्यके संगा । मिटै तपत होय शीतलअंगा ॥
पल भीतर पल बाहर आवै । पीवै अमी रस तेज समावै ॥
जबही सूर्य अमीरस पावै । चंद्रहि पकरि आपुघर लावै ॥
जब चंदा आवै रवि द्वारा । होइ संक्रमण तेज अपारा ॥
तेज किरण पूरण जब होई । दरशहि काल तपै रबि सोई ॥
तपै तेज बारहको धावै । सुखसागरमें पइठि नहावै ॥
सुखसागरमों कर अस्नाना । उदितकमलहोइ द्वादश भाना॥
सूर्यपर चंद होय जब जोरा । तब घर काल करै घनघोरा ॥
चन्द्र सूर्य कह राहु जो फाँसे । पल चन्दा पल सूर्यहि ग्रासे ॥
इहि विधि देइ दुइनको बाजी । पूनम धरिहि अमावससाजी ॥
चन्द्र सूर्य लै जाय अकाशा । सुखमुनिके घरदोउकर फाँसा ॥
मुसकि तुरौपर होइ असवारा । घेरे शशि सूर्य अकाशके द्वारा ॥
जंबूद्वीप काल अस्थाना । सहज शून्य कह करै पयाना ॥
सहज शून्यमहँ पहुँचे जाई । सहज रहावे संग लगाई ॥
योजन डेढ सहजकर बासा । तहवाँ करै काल रहवासा ॥
सहज कालसों अंतर नाहीं । जीवहि छलै सहजकी बाहीं ॥
पलमें जंबूद्वीपहि आवै । पलमहँ सहज शून्यकहँ धावै ॥
एहिविधि चंद्र सूर्य दोइ कांसै । काल सहज होय जीव गरासै ॥

चंद्र सूर्य दोउ अमृत पावै । काल सहज संग बाए लगावै ॥
बाए लगाय क्षुधा लेइ छीनी । जहर देइ चिव बुद्धि मलीनी ॥
जीवहि सदा कालकी आसा । तजि अमृत विष करही ग्रासा ॥
कालहि राहु केतु होइ आवै । कालहि चंद्रहि सूर्य सतावै ॥
कालहि अमृत जीवसों लेही । कालहि जल थल बाजी देही ॥
कालहि ग्रहण ग्रसत है जाई । देह विष अमृत लेइ छुडाई ॥
कालहि आगे पाछे धावै । कालहि रचै काल बिगडावै ॥
कालहि चारि खानि रचि राखा । कालहि सब घट बोलै भाखा ॥
घट २ काल करै रखवारी । एक देह दुइ अंग सँवारी ॥
एकअंग चंद एक अंग सूर । श्वासा पारस हाल हजूर ॥
इकइस हजार छः सै श्वासा । इतने एक घरी परकाशा ॥
निशिवासर बीते युग चारी । देओं अंग श्वासा संचारी ॥
दश हजार आठसै भारी । श्वासा चंद्र स्नेह सुधारी ॥
जेतिक श्वासा चंद्र सनेहा । तेतिक चलै सूर्य सँग नेहा ॥
दशहजार तीनिसै घाटी । चले चन्द्र अरु सूर्यकी बाटी ॥
दुइ हजार दुइसै अधिकारा । ताको भेद एक विस्तारा ॥
मध्यद्वार सहजके जाई । ता सुन्नह मों रहै ठहराई ॥
बाईस हजार चारिसे ऊने । जाप जपे जिव आप विहूने ॥
एकजीव तीनों घर संगा । राहु केतु शशि सूर्य अनंगा ॥
जाप जपै और तीर्थ नहाई । परसै देवल देय सहाई ॥
जब जिव सत्य सुकृत पग परशै । तब निज ज्योति अखंडित दरशै ॥
जब जीव आदि निरञ्जन दरशै । हीरामें ज्योति तत्व जस परशै ॥
तासु भेद मैं कहों बनाई । ग्रसिले गगनरु क्षुधा छुडाई ॥
जब परिवा पूनमकी साधी । तब चंद्रहि लै आवहि बाँधी ॥
राहुकाल होइ जाय समाई । अमृत छोडिं पीवै दुखदाई ॥

चन्दके सुगममें जीवहि ग्रासे । ग्रहण लगाय शून्यमहँ फांसे ॥
राहु काल जिव चन्द्र समाई । विष तजि मृत होइ छुड़ाई ॥
इहि विधि राहु चन्द्र कह घेरे । गहन गरासि ज्ञान कह फेरे ॥
अमृत छोड़ि विष सङ्ग लगावै । ज्ञान गर्मी उपजे नहिं पावै ॥
इहि विधि सूर्यहि केतु गरासे । अमृत हरि विष तेज तरासे ॥
इहि विधि दोउ सतावै काला । ता सँग जीवहि करै बिहाला ॥
जब चन्दा कह राहु गरासै । करमकाल व्याल होय फासै ॥
उग्र होत है श्वास विवेखै । शशि और सूर्य दोऊ घर देखै ॥
छांड़े केतु आप घर आवै । अपने घरमहँ सूर्य समावै ॥
सुरंग तुरेपर बाहर जाई । सुखसागर महँ पैठि नहाई ॥
योग सन्ताइनके पग परशै । निर्मलज्योति अखण्डित दरशै ॥
अमृत पीवे तेज बल पावै । पल पल पीवे बहुरिघर आवै ॥
आपुहि मह विष अछप छिपावै । बहु विधि अमी सुधारस पावै ॥
पल भीतर पल बाहर जाई । जीवका मूल परसि सुखहाई ॥
पुनि जो चले सूर्यकी श्वासा । पूरण तत्व तेज परकासा ॥
कबहूँ सूर्य चन्द्र घर जाई । चन्द्रहि लाभ सूर्य पछिताई ॥
ज्यों लगि रहै चन्द्रघर सूरा । तब लगि अमी अमान हजूरा ॥
इहि विधि तत्व छानि जब आवै । विद्वत्पुरुष हो अधिक पढ़ावै ॥
चन्द्र सनेह जीव तब पावै । पावे जानि भव बहुरि न आवै ॥
शशि और सूर्यग्रहण जब होई । तब देखै तन भेद बिलोई ॥
ग्रहण ग्रासि छांड़े जब कूरा । तब घर आवै शशि और सूरा ॥
अपने अपने घर जब आवै । तब नहिं कोई तत्व गवावै ॥
एकके घर एक जब आवै । कोई जीते कोई तत्व गवावै ॥
ग्रहण ग्रास होत जब जानै । तो शशि घरही सुरलै आनै ॥
शशि घर आवै शशि घरजाई । अग्रबास बासै लौलाई ॥

पुहुपबास तिल राखे छाई । तबके बासना बाहर जाई ॥
पुहुपके भीतर बास रहाई । सोई बास बाहर महकाई ॥
बाहरते भीतर लै आवै । ताके भीतर आनि समावै ॥
ताते वासन बाहर जाई । तिलके भीतर है ठहराई ॥
तिलते बासन बाहर आवै । बाहरते जो भीतर समावै ॥
भीतर वेधि एक जब होई । बास तेलमो रहै समोई ॥
समय–तौ लगि वास बहुत विधि, ज्यों लगि परैना तेल ।
तेल लाज छाड़िके डारै, दुइ मिलि होय फुलेल ॥

चौपाई

बास तेल महँ रहे समाई । तेल काढ़ि नहिं बाहर जाई ॥
तेलके सँग बास महकाई । बासके संग तेल रहु छाई ॥
समय–लहा बास जहां तेल रहु जहाँ तेल तहाँ बास ।
एकै संग दूनों बसौ, महकै वास सुवास ॥

चौपाई

इहि विधि रहै दोऊ इक ठाऊँ । एकै बासना एक सुभाऊ ॥
बाहर कहि जब अंग लगावै । दुहे प्रतिमाको रूप दिखावै ॥
सुरति फूल मन तिलकी खानी । नाम बास जीव तेल बसानी ॥
बाहर फूल भीतर फुलवारी । रवि शशि करै दोय रखवारी ॥
तिल फूले त्रिखियाकी खानी । दिनफूले निशि गिरतनजानी ॥
ऐसो फूल कृत्रिम उपराजा । तत्त्व तेल सबमध्य विराजा ॥
सोई तत्त्व मो अग्र सनेहा । तत्त्वहि तत्त्व मिलै तिल देहा ॥
तिल औ फूल एक सम कियऊ । तेहि पाछे पुनि प्राण बसियऊ ॥
दुख दीयते निकसेउ तेला । फुल देह तजि भयऊ फुलेला ॥
यहि विधि गुरू शिष्य जो होई । मुक्ति पंथ पावै पुनि सोई ॥
धर्मदास यह अद्भुत बानी । कही विचारि सुकृत सहिदानी ॥

उत्पतिकी गति सब हम पाई । परलैकी गति कहौ बुझाई ॥
रक्षक भक्षक एकहि सङ्गा । कहौ विचारि दोऊको अङ्गा ॥
जब साहब शिवशक्ति बनाई । सो तो गम्य सबै हम पाई ॥
सो शिवशक्तिकालरचिराखा । दोनों अङ्गधरि प्रकटी भाखा ॥
कामरूप विष बाण बनाया । कला अनन्तधरि प्रकटी काया ॥
घर घर शिवशक्तीसुत नारी । बिरह वियोगसोगसुख भारी ॥
नाना रूप रंग उपराजा । उपजनिविनसनिसुखदुखसाजा ॥
कुल व्यवहार सकुचऔ लाजा । नात गोत रस लीला साजा ॥
चारि खानि बानिधरि गाजा । चारि बर्ण औ शर्म उपराजा ॥
लाज वरन कूरी कुल काजू । योग्य यज्ञ व्रत दान समाजू ॥
संपति बिपति रंक औ राजा । अन्न वस्त्र माया उपराजा ॥
सब ऊपर मन आप विराजा । मनबसि होय सैर सब काजा ॥
मन इन्द्री महँ भोग संयोगा । मनै स्वाद औ स्वाद वियोगा ॥
मनहरता मन करता सोगा । मने रोग औ दुखसुख भोगा ॥
मनते कोई और न दूजा । मनसाहब मन सेवक पूजा ॥
मन देवल मन प्रतिमा साजा । मनपूजा मन तीर्थ विराजा ॥
मन शिवभक्ती बिरह अपारा । रुधिरबिन्दु मनसिरजनहारा ॥
मनै जियावन मरने हारा । मनहिअशुभशुभ कर्मव्योहारा ॥
कर्मां कर्म मनहिते होई । भोग करै भुगतावै सोई ॥
मन भर्मित मन चेतन हारा । चारि खानि मनखेल पसारा ॥
मनशीतल मन तेज अपारा । मनश्वासा मन बोलनि हारा ॥

समय—चन्द्र सूर्य संग मन वसै, शुभ अशुभ मन आहि ।
श्वासा श्वासा मन बसै, कहि बरण गुण ताहि ॥

चौपाई

खानि खानिमनहोयअसवारा । फैलि रहा मन अगम अपारा ॥

चारि खानि मन रहा समाई । चारि चक्र चढ़ि बोले आई ॥
रोम रोम मन रहा समाई । आपहि मारै आपहि खाई ॥
आपहि भिक्षुक आपहि दाता । आपहि ईश्वर आपु विधाता ॥
आपहि चोर आप रखवारा । आपहि रचै आप संहारा ॥
आपहि सीखै आप बिसरावै । आपहि मेटै आप बनावै ॥
आपहि अन्ध आपडिठिहारा । आपहिज्योतिआपउजियारा ॥
आपहि तिमिर आप अँधियारा । आपहि मासपक्ष व्यवहारा ॥
आप निरक्षर अक्षर होई । गुप्त प्रकट होय बोलै सोई ॥
नानारङ्ग ज्योति दिखलावै । आदि अन्त मनमनहिसमावै ॥
मनही नाद शून्य महँ बोलै । मनहीं ज्योति शून्यमहँ डोलै ॥
मनही कह सब ध्यान लगावै । मनको अन्त न कोई पावै ॥
मनही शास्त्र वेद है चारी । तीनलोक मन कथा पसारी ॥
निर्गुण सगुण मनहीकी वाजी । कवी पुराण कोकमन साजी ॥
ब्रह्मज्ञान कथि मनहि सुनावै । आपु छिपाय दूसर दिखलावै ॥

समय-आदिअन्तमन कर्ता, चारि खानि मनबास ।
बन्द छोरि करी मोपै, कहू मन्त्र प्रकाश ॥

चौपाई

सुनहुँ सँदेश हंसपति आगर । पुरुष पुराण हंसपति सागर ॥
सुरति पुरुष हंसनके नायक । ज्ञान अनूप सुनी चितलायक ॥
कहो अग्र आग्रकी खानी । कहो ज्ञान विज्ञान बखानी ॥
चार खानिके श्वासा जेती । कहो बिचारि चलै दम तेती ॥
अचल खानिप्रथमहि विस्तारा । तेहि पाछे पिंडज अनुसारा ॥
तिसरे अण्डज खानि सचारा । चौथे ऊषमज रचा अपारा ॥
चारि खानिको रचना भारी । चारि खानि संगहि अनुसारी ॥
प्रथम खानि सतसुकृत कीन्हा । रचना रचे निरञ्जन लीन्हा ॥

प्रथम अक्षय वृक्ष प्रभु कीन्हां । अक्षय बट है ताकर छीन्हां ॥
आदि अन्त पिंडज अनुसारा । जाते जग शिवशक्ति सुधारा ॥
तिसरे अंडज अर्ध निवासा । जाते जग पंछी परकासा ॥
चौथी खानि अमीरज कीन्हा । तेहि संयम उषमजकर चीन्हा ॥
चारि खानिकी चारिऊ बानी । श्वासा नेह देह सहिदानी ॥
चारि खानि मह एकै श्वासा । कहुँ खंडित कहुँ पूर प्रकाशा ॥
अचल खानिकी श्वासा भारी । चालि तीस पांच अधिकारी ॥
गिनती सौ हजार औ लाखा । श्वासा अचल खानि मह राखा ॥
चारि पहर चारिऊ जग भारी । तीनी पहर श्वासा अधिकारी ॥
एक पहर वह उनमुनि रहै । ताते काल न आतुर गहै ॥
तीन तत्त्वकी रचना भारी । अचल खानकी देह सुधारी ॥
धरती तत्त्व भास अस्थूला । जल औ तेज ताहि कर मूला ॥
बांए आकाश नहिं रहिवासा । ताते जड अचल खानि परगासा ॥
तत्त्व बिहून देह अनुसारा । ताते जड नहिं वचन उचारा ॥
गहन ग्रास होत नहिं ताही । ताते बहु विधि बाढत जाही ॥
जाको गहन गारसे काला । सौ नहिं बाढे बेलि बेहाला ॥
अचलखानि बहुभांति सँवारी । नाना रंग रूप अधिकारी ॥
कतहूँ छोट कतहुँ बड भारी । कतहूँ साय सरवन सुधारी ॥
एक सुक्षम है एक अस्थूला । एक अमृत एक विषकर मूला ॥
एक खात पलमह मरि जाई । एक खातकछु अवधि बढाई ॥
इक खट्टा इक कडुवा होई । एक मधुररस खावै सोई ॥
एक विसाँइध विषके रूपा । नामशब्द गुण भेद अनूपा ॥
पांच सदा औ पांचौ रोगा । पांचौ औषध पांचौं भोगा ॥
पांच वास और पांच कुबासा । पांच पचीस रंग परकासा ॥
पांच पानि पाचौ रहि बासा । पांच शुभ और पांच विश्वासा ॥

पांच पांच सकल पसारा । पांच रंग श्वासा अनुसारा ॥
तीनि तत्त्व अस्थूल निवासा । तीनि मध्य हुई बाहर वासा ॥
पांच तत्त्व सब इनके पासा ।जहांलगिआप लखनि परकासा॥
पांच तत्त्व तीन गुण साजा । नारि एक तामध्य विराजा ॥
अचल खानिमह कीन्हे वासा । तामध्ये श्वासा रहि वासा ॥
चन्द्र सूर्य बिन श्वासाहीनी । तातै खानि जड भई मसीनी ॥
अचल खानि ताते जड होई । सूर्य चन्द्र नहिं मध्य समोई ॥
नारी एक श्वासा संग ताहां । जहांले अचलखानि जगमाहां ॥
नारिसुषुमण अचल घटबासा । ताहि संग श्वासा रहि वासा ॥
ता घट दोई नारी नहीं होई । ताते चन्द्र सूर्य नहिं दोई ॥
इंगला पिंगला नाहिन बासा । ताते रवि शशि नाहि निवासा॥
चन्द्र सूर्य घटके रखवारा । एहि डोलै एहि बोलन हारा ॥
चन्द्र सूर्य बिन जागै नाहीं । ताते अचल खानि जगमाहीं ॥
दुई दिन कोई मास गलिजाई । कोई छ मास कोई वर्ष रहाई ॥
कोई दश वर्ष माह जग राते । कोई तीस चालिस तन बासे ॥
कोइ पचास साठि रहि वासा । कोइ सत्तरी कोई असी नेवासा॥
वर्ष इकावन कोई तन राखा । कोइ सौ हजार कोइ लाखा ॥
कोइ कोटि कोइ अरब निवासा । कोइ पेड चारों युग बासा ॥
इहिविधि अचलखानिकरभावा । औषधि व्याधिरोग उपजावा ॥
एक सजीवन जड़ी अनूपा । एक जडी विष तेज सरूपा ॥

समय–कोई शीतल कोइ तेज है, कोइ पारसकी खानि ।
फूल विना फल ऊपजै, सब फलफूल समानि ॥

चौपाई

इहिविधि अचलखानिउपजावा । तेहि पाछे अंडज निरमावा ॥
अंडज खानि सजीवक कीन्हा । चन्द्र सूर्य सङ्ग जीवन दीन्हा ॥

नख शिख खचोप उपराजा । श्वासा सहज अर्ध धुनिगाजा ॥
दुइ सूर्य एक सहज घर शुन्या । तिहिं घर कर्म पापनहिं पुन्या ॥
दुई घर इंगला पिंगलाभारी । चांद सूर्य संग जीव संचारी ॥
ताकी श्वासा शक्ति सुधारी । अमृत प्रसन्नसहज सुख भारी ॥
पांच तत्त्व रथ साजी थारा । तापर चंद्र सूर्य असवारा ॥
ताके संग जीव उठि धावे । मन तरंग रूप उपजावे ॥
सुरंग तुरै पर होय असवारा । सूर्य स्नेह जाए चढ़ि पारा ॥
विषम सरोवर पहुँचे जाई । विष धारामें पैठि नहाई ॥
करि असनान ध्यान लौ लावे । धर्मराय कह माथ नवावे ॥
परसे राय निरंजन देवा । पल मल करै ज्योतिकर सेवा ॥
चरण परसि भरमत घर आवै । रविजीवहि विष आनि पिवावे ॥
रवि रथ रहै चन्द्र उठि धावै । तुरै लीला सरवर पहुँचावे ॥
जीवसहित शशि पहुँच्यो जाई । मान सरोवर पइठि नहाई ॥
करि असनान देवपग परशै । कामिनि देह कमलमहँ दरशै ॥
लेके वास चन्द्र घर आवै । घर आवत यम ग्रहण लगावे ॥
पल पल कमल कमल महनावे । अंडज खानि दर्श नहिं पावे ॥
परसै चरण सरोवर दोई । आवत जात न लागे कोई ॥
श्वासा नेइ देह व्यवहारा । एक लाख औ सात हजारा ॥
एतिक श्वासा अंडज खानी । करै कुलाहल बोलै बानी ॥
तत्त्व चलै जोजन एक दोई । झाझरि पाटन बसै बिलोई ॥
खाज अखाज विचारै नाहीं । भर्मत फिरै सदा भव माहीं ॥
पल धरती पल फिरै अकासा । जल थल महिमँह फिरै उदासा ॥
कायाके बहु रूप सवारी । नानारंग वरन विष धारी ॥
चञ्चल कुटिल कला मनधरहीं । नाना बानि शब्द उच्चरहीं ॥
करै कल्पना जगमँह भारी । नाचै गावै करै खुमारी ॥

उड़ि अकाश तरुवर फलखाहीं । पानी ऊतरि पीवै जगमाहीं ॥
जो चन्दा घर चन्दा आवै । तो चन्दा सत्यलोक सिधावै ॥
मान सरोवर पैठि नहावै । विष तजि अमृत घर ले आवै ॥
पुष्प द्वीप होय फिरि घर आवै । पुष्प द्वीपमहँ जाय समावै ॥
एहि विधि चन्द्रग्रहणको देखे । चन्द्र अंशकी श्वास बिबेखे ॥
आयु अंश श्वासा महँ पावै । तो चन्दा नहिं मूल गमावै ॥
अंश जो आयु घरहिफिरिआवै । पूरी तत्व सदा सुखपावै ॥
उग्रह होतै सुरघर आवै । तादिन चंदा मूल गमावै ॥
एहि विधि सूर सतावे काला । ग्रहण गरासि करे जंजाला ॥
उग्रह होतै श्वास विवेखे । शशि औ सुर दोऊ घर देखे ॥
जहाँ पीवै पानी सब आवै । तहां दूतलै फंदा लावै ॥
एक तरुवर बनलासा लावहि । एकजल पीत चुगत सँतावहि ॥
एक पींजरा महँ जीव आवहि । रामनाम कह सदा पढावहि ॥
एक अमृत मुकताफल खाही । एकजलाहारफलआनिअघाही॥
एक जीव मारिकै करै अहारा । एक जीव जीवहि कर चारा ॥
एक जोने बल बजाये अधीना । एकउज्वलजल ज्योतिमलीना॥
जीव एकमत बहुत अपारा । एकउज्वलजलज्योतिअपारा ॥
श्वासा तेजी ज्ञानगा देहा । काम कलाते बहुत सनेहा ॥
अंडज देह महाबल भारी । वचन बिचारि करै सब झारी॥
शुभ औ अशुभ दुही हैं ताहीं । एक मधुर एक तेज सुहाहीं ॥
एक सुहावन बचन सुनावहि । एक अपावन सुनतन भावहि ॥
तीनलोक भरि रहा समाई । ज्ञान गुमान करे सेवकाई ॥
त्रिविध ज्ञान लीए तन डौले । ऋतुऋतृ बिरहका लिएँ बोलै ॥
तेजहीन नाना दशा कीन्हां । ताकर भेद न काहू चीन्हां ॥

समय-एक अधीन एक दारुण, एकलै एके खाय ।
वह बानी जगमों कहहि, सुनौ भेद चितलाय ॥

चौपाई

अण्डज कला अनन्त सुधारा । तेहि पीछे पिण्डज अनुसारा ॥
कला अपार तत्व बहुरङ्गा । सिरजी पिण्डज भ्रमके सङ्गा ॥
पांचतत्व निश वासर सङ्गा । जाकर पहर ताहिके रङ्गा ॥
पाँचो पाँच तत्वके साथी । गाय भैंस घोडा और हाथी ॥
खर्च ऊंटनी छेरी खारी । चुहि चाही मंजारी पारी ॥
सो नहीं सुवरी कीनरी भाली । माली नौसी गही कङ्काली ॥
कहाँ लगी बरनौ बहुभाँती । मदही ते नरकी उतपाती ॥
पांच तत्व सबहीके संगा । श्वासाके सँग चलै तुरंगा ॥
पांचौं तत्व पाँच पुरजाहीं । प्रीत पाँच हैं छत्रके माहीं ॥
पाँच कुच पांच मोकामा । पांच सरोवर पांचहि धामा ॥
पांचै देवल पांचै देवा । पांचै करहि पांच कर सेवा ॥
पांचों मह सम पांच उदासी । पांचों पांच शून्य अविनाशी ॥
पांचों आवही पांचौ जाहीं । पांचौ पांच महँ पांच समाई ॥
पांच शून्य पांच अस्थूला । पांचै पांच पांचकर मूला ॥
पांचहि होयघर एकजो आवै । पांच पांच तबही समुझावै ॥
पांचौ सात राइ होइ धावै । तिनहींके घर मंगल गावै ॥
पांच तीनि जब सात समावै । पंद्रह मेटि एक घर आवै ॥
पांचहि तीन सात एक धारा । पांचों नाद बजावन हारा ॥
पांचौका है खेल अपारा । पांचों करही एक विस्तारा ॥
पांचौं दशके मांहि समाई । पांचौ आवहि पांचौ जाई ॥
भौंर गुफा पांचोंकर याना । बाजे ताल मृदंग बँधाना ॥
जब पांचौ दशके घर जाई । तब दश पाँचहि आनि समाई ॥

जब दश पाँच गुफामहँआवहि । मधुरी तान अर्धधुनिगावहि ॥
कोई घंटा कोइ ताल बजावहि ।कोईशंखनादकोईझालरिलावहि॥
कोईकिंकिनिंचिचिनिकिन्नरिवीना। कोई भेरिमृदंगऔढोलसहीना॥
कोई तारी कोई बेन बजावहिं । रहसि रहसि नानागुणगावहिं॥
सारंग जल तरंग धुनिधारी । तबलाचहुँओरनरसिंगाडफारी॥
इहिविधि भौरगुफा धुनि गाजे । नानारंग मधुर धुनि बाजै ॥
बाजे बाजन होइ धुनि गाजा । बिजुली चमके मोहै राजा ॥
दश औ पाँच पचीस समावै । तब घरनी घरियार बजावै ॥
पांच पचीस दश दशहिसमावै । गुफाके ऊपर मुरली बजावै ॥
बाजै मुरली कला अनन्ता । जागै कमला सो मैं मन्ता ॥
निर्झर झरै गुफाके द्वारा । रवि शशिपांचतत्त्वउजियारा॥
श्वासा सार सहज घर वासा । रविशशि पांचतत्त्व परकाशा ॥
भौंर गुफामहँ बाजन बाजै । रवि शशि श्वासासंयमगाजै ॥

समय-नाना बाजन बाजहीं, नानारंग अपार ।
मन औ जिव इक संगही, अविनाशीके द्वार ॥

चौपाई

मन नाचै पल लै औ गावै । आप नाचिकेजिवहि नचावै ॥
जीव नचै अविनाशी आगे । मन जिव रहै सदा सँगलागे ॥
आनँदधाम होत दिनराती । दीसे ज्योति दीवा बिनुबाती ॥
मुरली बाजै निर्झर झरै । नाडी सुषम मन्दिर भरै ॥
निर्भय सदा न जाति अजाती । निर्वंश सदा न पूजा पाती ॥
स्वर्ग नर्क औ नदी है ताहां । ज्योति उजागर निर्गुण नाहां ॥
सरगुण निरगुण एके माहा । दीखै ज्योति निरंजन ताहा ॥
सात तीन पाँचों जब एका । दुइ घर वास एक घर ठेका ॥
उतरि गुफासे जब घर आवै । आपु आपु कह चहुँदिश धावै॥

पल घर आवै पल घर जाई । पांचतत्त्व संग सदा सहाई ॥
पांच तत्त्व श्वासा असवारा । फिरहिं शहरवार औ पारा ॥
जहाँ बाहर है शहर देवाला । तहाँ पांचो तुरे फिरै चौफाला॥
ता ऊपर आतम चढि धावै । पल बाहर पल भीतर आवै ॥
पांच तुरै श्वासा चढि धावै । सरवर पांच परसि घर आवै ॥
सरवर पांच पांच तहां घाटा । गली एक पर्वत दुइ बाटा ॥
पांचौ तत्त्व चलै एक साथा । रविशशि श्वासा नाथ अनाथा॥
पाचौ तत्त्व घर बाहर जाई । ता संग कमल हरी उमगाई ॥
जादिन पांच तत्त्व नहिं आवै । एक तत्त्व निश वासर धावै ॥
ता दिन पांच तत्त्व गुणपावै । लखै तुरै जो बाहर धावै ॥
बाहर चाल चलत गहि लेई । श्वास सुभाव बंद तहां देई ॥
एक तत्त्व निश वासर धावै । दुसरी तत्त्व संग नहिं लावै ॥
पांचौं तत्त्व चीन्हि जब पावै । जो बाहर चलै तासु गुणु पावै॥
पाचौ तत्त्व जीव संग आवै । पल बाहर पल भीतर धावै ॥
ताकर पावै पांचों मोकामा । लेइ तत्त्व पांचोंके धामा ॥
पांचों पांच सरोवर जाहीं । अमी अमान बिरह रसखाहीं ॥
दुई पुहुप सुख सागर परशै । अमी अंक सत्य सुकृतै दरशै ॥
तहाँ अमीरस पीवत अघाना । रवि शशि संग जीव निर्वाना ॥
उतपति पारस तहवाँ पावै । लै पारस फिरि घरहि सिधावै॥
द्वैमन विष एक मनहै अमाना । परसै आदि अन्त शहिदाना॥
कालि काल जोति उजियारा । तहाँ एक नागिनवसे अपारा ॥
सो नागिन घर भीतर बासा । बाहर भीतर एक निवासा ॥
नख शिख बेधि रहा विष पूरा । श्वासा संयम शशि और सूरा॥
पांचै तत्त्व रहो घट पाँचा । पांचहि साथ जीवकर साँचा ॥
रवि शशि श्वासा संग बसावै । उत्पति प्रलय गहन लगावै ॥

दुइ घर रवि शशि जीव बसावै । इक घर राहु केतु भच्छावै ॥
चारिउ चारि दिशा चलि जाई । फिर चारिऊ एकमाँह समाई ॥
दुइ झंझरी परशि फिरि आवै । दुइ फिरि झँझरी बाहर धावै ॥
घर आवत राखै अटकावै । राहु केतु दोई रहन लगावै ॥
जादिन पांच तत्त्व नहिं धावै । तादिन कालगहन नहिं लावै ॥
दुवो तुरै जा निकसे धाई । फोरी द्वारी बाहर जाई ॥
बाहर अमी अमान अमाया । उत्पति पारस नारी काया ॥
नारी नेह निरञ्जन काया । ताते शिव शक्ती उपजाया ॥
एहि निजबुझहु धरमन भाया । नाना वानी वरन बनाया ॥
शिवकाया पति सूर्य सनेहा । ऊगे चन्द्र शक्तिकी देहा ॥
शिवकी देह सूर्य प्रभु साजा । शक्ती देह चन्द है राजा ॥
रवि शशि पांच तत्त्वदइकाया । एक एक संग उपजे काया ॥
एकतत्व निश वासर धावै । जीवका मूल परोस सुखपावै॥
जीव मूल पारस परवाना । लेउत्पति पारस जाय ठिकाना॥
मन जिव तत्त्व एक चढि धावै । लै पारस अपने घर आवै ॥
पारस आनि जगावे कामा । बिरह बाण मारे संग्रामा ॥
दोई तत्व निर्वाण उजागर । दुइ घटशिवशक्ती मनि आगर॥
पारस एक दुवोंकी काया । चंद्र सूर्य संगही उपजाया ॥
चंद्र उगै शक्तीकी देहा । चलै तत्त्व जलरंग सनेहा ॥
एक तत्त्व चंद्र घर धारा । सात रोज एकै व्यवहारा ॥
सात वार निश वासर धावै । पल पल बढै घटै नहिं पावै ॥
पारस परसि होइ जिव पूरा । शक्ती शशि घरशिव घरसूरा ॥
एकतत्व संग पारस पावै । राहु केतु नहिं गहन लगावै ॥
तत्त्व तार टूटै नहिं पावै । बिना सिंघनी काल समावै ॥
एकै पेली एक जो धावै । तौ शक्ती नहिं पारस पावै ॥

टूटे तार तत्वकी जबही । काल सन्धि पावै घट तबही ॥
टूटे तत्व होय दुख कूरा । चन्दहि पेली ऊगै घर सूरा ॥
धरि शशि सूर्य काल लै जाई । बांधि अकाश राखै विरमाई ॥
चन्द्र सूर्य श्वासा सहिदानी । पारस तत्व लेइ अस छानी ॥
पारस टूटत होय मलीना । निशवासर जीव काल अधीना ॥
पारस सङ्गहि लेइ निचोई । छांडि देइ जब जाने सोई ॥
छिन बाहर छिन भीतर धाया । जरामरण व्यापै आ माया ॥
एक तत्व सङ्ग सबै विगोई । एक तत्व उपजे सब कोई ॥
शिव घर सूर्य होय उजियारा । एक तत्व निश वासर धारा ॥
पारस परसि होय विथिपूरा । प्रेम प्रकाश ऊगै घट सूरा ॥
एकतत्व चलै रवि धारा । सूर्य सिंघ घट तेज अपारा ॥
शक्ती देह चन्द्र रखवारा । चले तत्व जल रङ्ग अपारा ॥
एकतत्व निशवासर धावै । सातबार टूटे नहिं पावै ॥
एक समाधि रहत अस्थूला । तब शक्ती घट फूले फूला ॥
फूलत फूल तहां अकुलाई । मनबिकार तन रुधिर चलाई ॥
ताहि समै तन खीर समावै । शिव सनेह रचि काम जनावै ॥
ताहि समै शिवशक्ती परशै । रति रुचि अमी गर्भ तेहि दरशै ॥
रहै गर्भ कामिनिकी देहा । उपजे जातक वरन सनेहा ॥
पुरुष देह शशि चलैजो धारा । कन्या उपजे कला अपारा ॥
सूर्य सनेह चलै जो धारा । उपजै कन्या कला अपारा ॥
सूर्य सनेह चलै जो धारा । उपजे सूरति सार कुमारा ॥
रहै गर्भ तब काया साजै । रुधिर मांस तिलतिल उपराजै ॥
पांच तत्व तीनों गुण मूला । तासों रचे गर्भ अस्थूला ॥
शिवके श्वास बांये स्वरूपा । शक्ती गहै जानिके रूपा ॥
शिवके रूप शक्ति गहि लेई । तब सांचा महँ जावन देई ॥

जावन जाभैं सांचा माहां । थाका होय रुचिरके ताहां ॥
तेहि थाककी रचना भारी । तीन लोककी विष सँवारी ॥
तीन लोककी जेतिक खानी । सो सब थाका माधि समानी ॥
उपजा थाका थाल सँवारी । गर्भभेद यह कहौ बिचारी ॥
थल थहाए माल निरमाया । महलहिके माहीं जलहि समाया॥
जलके मध्य महल बनवाया । महलहिके मधि रचना लाया ॥
महलके बार धन वह छाजा । पवरि पगार बना दरवाजा ॥
सांचा अर्ज जरै नहिं कबही । शोच मढिर चाहै सबही ॥
सांचा मांहिलोक दियोरसडारी । नख शिख शोभा सबै सुधारी ॥
तीनहिं लोक रचा पलमाहीं । गढके गढ पति गासौ ताहीं ॥
प्रथमें सायर सात सुधारा । पर्वत अद्भुट रच्यो अधिकारा ॥
अठारह सहस्र बहतरि नारा । पांचतत्त्व सब साज सुधारा ॥
अठारह गंडा नदी बनाई । सब तरि नीर रहा पुनि छाई ॥
लोहू हान स्तंभ अस्थूला । बढे लिंग सवारे मूला ॥
आगे सवारे दुइ भुज दंडा । सात द्वीप द्वीप पुहमी नौ खंडा॥
बहुरि सवारे दूनौ खम्भा । मदन महा बहल उपजे रम्भा ॥
नासिका चढाई मस्तक भारा । दुइकर जोरिकै निकासी धारा ॥
श्रवने नेत्र रुचि अर्ध बनाई । कीला कीला मधी नवाई ॥
नौमी कूटी दश गुफा बनाई । सात भँवर नौ नाल लगाई ॥
उतर मेरु सिरजा अस्थूला । सरवर माहिं कमल बहु फूला॥
नाभि माह नखशिख करलाई । फूला फूल बास घट छाई ॥
बाहर बास तन मांह समाई । सोई बास इन्द्री होय धाई ॥
इन्द्री रसना रङ्ग जनाई । लिंग जल हरिसे भूमि बनाई ॥
आठो अङ्ग रचा अस्थूला । शिवशक्ती दोउ सम तूला ॥
सोइ अङ्ग शक्ती सोइ अंग शीवा । शो एक एक सम नीवा ॥

नख शिख अंग एक अनुहारी । देह स्वभाव बचन दुह मारी ॥
शक्ति देह विरह अधिकारी । शिव आशिष शक्तिको चारी ॥
इहि विधि रचना रची बिलोई । गर्भ सनेह संपूरन सोई ॥
नखशिख रचा गर्भ अस्थाना । सात द्वीप नौखण्ड बखाना ॥
एक द्वीपमें सातों दीपा । सात सुकृत तेहिमाय समीपा ॥
प्रथमै गर्भ द्वीप उपजावा । ता ऊपर रचना बिलमावा ॥
एकद्वीप नौखण्ड बनावा । त्रिकुटी सात तहाँ निरमावा ॥
एक द्वीपमें सातों नाला । सातों कमल अधर दुइमाला ॥
सरवर सात कमल तहां साता । रंग पांच पांचौ उतपाता ॥
पांचके मध्यहि पांच रसीला । त्रिकुटीमध्य एकतहां कीला ॥
ता कीलामहँ कानी लागी । पौन सनेह आतमा जागी ॥
ता कीलामहँ लागी डोरी । खूटा गाडि पवन झकझोरी ॥
ता खूटा महँ डोरि लगाई । मन पवना गहि राखु झुलाई ॥
झुलि मन पवन झुलावे चेरी । इक घर शून्य एक घर फेरी ॥
खूटा होय पवन झकझोरै । इंगला पिंगला सुषुमण जोरै ॥
रवि शशि मनपौना गहि जोरी । खूट न लागि सबनकी डोरी ॥
मेरे दंडपर खूटा गाडा । नदी तीन ता ऊपर बाडा ॥
खूटाकी बांई दिशि है गंगा । विमल शीतल बहे नीर तरंगा॥
चन्द्र सनेही जिव जल परशै । सुरति स्वरूप धनी दिल दरशै॥
तासु खूटाके दहिने अंगा । यमुना नदी बहै बहुरंगा ॥
कीर्ति नीर और पीत तुरंगा । लहर लाल तेज विष संगा ॥
तहां बसै सुर जीवके साथा । खल एक बयालिस हाथा ॥
कला अनंत रूप रस नाथा । सबै अर्थ नहिं दीसै माथा ॥
बाढि नदी जो दोउ करारा । शीतल तेज बहै दोउ धारा ॥
तिसरी नदी है गुप्त प्रवाहा । नाजल थाह न होय अथाहा ॥

खूंटा तर होय निकरी धारा । चली सरस्वती फोरि पगारा ॥
मध्य लहरि विषधार सखानी । गंगा यमुना मध्य समानी ॥
त्रिकुटी संगम भयउ मिलावा । मनही पवन लेत बिरमावा ॥
भँवरगुफा माधवकर थाना । बसै त्रिवेणी प्रयाग स्थाना ॥
त्रिवेणी तट वसै प्रयागा । जागत सोवै भाग अभागा ॥
गनि गंधर्व मुनि सबके थाना । सुरनर करै पैठि अस्नाना ॥
तैतिस कोटि देवगण नारी । किन्नर गुणी कंचनी भारी ॥
यक्ष यक्षनी देव कुमारी । नागसुता अप्सरा सुभारी ॥
चढि विमानसबकरिहैजोहारी । काया मध्य इहअदभुत भारी॥
असुरपिशाचचारिखानिजुलाहल। त्रिवेणी तट करी कुलाहल ॥
यक्ष यक्ष असुर सब देवा । बसे ग्राम करै माधव सेवा ॥
तीन लोक जब जीव निवासा । सो सब करै त्रिवेणी बासा ॥
तेहि त्रिवेणी तट माधो देवा । सब मिलि करै ताहिकी सेवा॥
तब प्रयाग होइ चढि प्रवाहा । गंगासागर संगम जाहा ॥
देश देश गंगा फिरि आई । घाट घाट बहु क्षेत्र बनाई ॥
जहां तहां जप ध्यान लगावै । योग्य यज्ञ व्रत प्रात नहावै ॥
ऋतु बसंत प्रयागहि धावहि । मकर महीना वजार लगावहि॥
अरध उरध बिच लागी हाटा । भीतर बाहर औघट घाटा ॥
गर्भमाहिं सब युगति बनावा । तीनि कचहरि तहां बसावा ॥
जहां नदी संगम परवाना । तहँवा रचा एक अस्थाना ॥
संगम बीच गुफाके तीरा । सातहि द्वार गुफामहँ बीरा ॥
एकद्वार होय शब्द सुधारे । एक द्वार होय रूप निहारे ॥
एक द्वार होय बास बसावै । एक द्वार होय अग्र समावै ॥
एक द्वार होय खाद संवारे । एक द्वार होय न्याय निवारे ॥
एक द्वार होय नाद उचारै । सत्य सुकृतकी रहनि विचारै ॥

सात नाल चौंदह सुरभाऊ। सातों करहै एक सुभाऊ ॥
सातों सात शून्य मह वासा। सातों बसै गुफाके पासा ॥
गुफाके मध्य कंदरा वासा। तहां सातों मिलि करै निवासा ॥
एतिक कुञ्ज द्वीपरी शोभा। आवागमन मोहमद लोभा ॥
कुञ्ज भँवरकी रचना भारी। शून्यसहज धुनिसकल सुधारी ॥
दुवहु नाल कैसे के सोरी। एक मुखबंकनाल मह जोरी ॥
अग्र नील अमरकी डोरी। शोभानालहोय विष रसघोरी ॥
कुञ्ज द्वीप रचि सुधर बनावा। नेह अमर पद क्षीर समावा ॥
सुधर दीप परनाभि सँवारा। नाभी मण्डल पौन किंवारा ॥
पौन घोर नाभी रस कीला। मध्य सरोवर जंबू शीला ॥
जम्बु द्वीप यम करहि स्थाना। ताहि द्वीपमाहि जीव भुलाना ॥
नाभि द्वीप रचि कच्छ बनावा। इंद्री आसनको रंग सुभावा ॥
कच्छ कला निज द्वीप सुधारा। ऋतु वसन्त जावन विस्तारा ॥
कच्छ द्वीप काशी अस्थाना। नरनारी हि करै अस्नाना ॥
वरुणा असी गंगके तीरा। मनि कर्णिका निर्मल नीरा ॥
लिंग जलहरी माहिं समाना। नर नारि पूजही धर ध्याना ॥
पूजहि कामिनी मंगल गावहि। रहसि रहसि लिंगही न्हवावहि ॥
अक्षत चंदन बिल्व चढावहि। धूप दीप दै तत्व लगावहि ॥
भामिनी भाव फूलरंग धरही। करि असनान बसन भुइधरही ॥
सोइ बसन नर नाटक माँही। काशी तेहि वसनकी छांही ॥
सोइ बसनकी वास उडानी। योग भोग छलकी सहिदानी ॥
बसन कुसुम दल ध्वजा उडाई। कच्छ द्वीप शिव शिव शरनाई ॥
कच्छ द्वीप रचा रस कोपा। लिंग जलहरी घर घर रोपा ॥
कच्छद्वीप शिवको अस्थाना। शक्तिमांहि शिव आप समाना ॥
शिवशक्ती रंग रूप रसीला। शिवसमान शक्ती गहि लीला ॥

गर्भ सनेह रचा जब द्वीपा । लिंग जलइली सदा समीपा ॥
कच्छद्वीप रचि पूरन कीन्हाँ । पाछे पच्छ द्वीप पग दीहाँ ॥
पच्छ द्वीप रचि रंग बढावा । रंग रोस है बिरत स्वभावा ॥
प्लक्षद्वीप रचि पच्छ पसारा । प्लक्षद्वीप रचि गर्भ सुधारा ॥

समय–कच्छद्वीप तट पच्छद्वीप है, कच्छ प्लक्षकर भाव ।
दुनो द्वीप कर एक कला है, रंगरोष कर दाव ॥

प्लक्षद्वीप रचि गर्भ संभारा । पाछे मानद्वीप विस्तारा ॥
प्लक्षद्वीप बाहेर सुधारा । द्वीप ही कच्छप के द्वारा ॥
बारह द्वीप रचि पूरण कीन्हा । पाछै मीनद्वीप पग दीन्हा ॥
मीनद्वीप रस कंज अमाना । करहि कुलाहल द्वीप समाना ॥
मीन द्वीप रचि प्रगटी माया । पूरन भई गर्भ महँ काया ॥
मीनद्वीप तनको व्यवहारा । चमकै चपल ज्योति उजियारा ॥
चली चिकुर चित्र बलवानी । दामिनि दमकै बलके बढानी ॥
मीनद्वीप मन मदन महीपा । सुख दुःख साँराग दीपा ॥
मीनद्वीप रचि पूरण कीन्हाँ । पाछै सुधाद्वीप पग दीन्हाँ ॥
मीनद्वीप सुख अमृत लीन्हाँ । पाछै सुधाद्वीप पग दीन्हाँ ॥
मीनद्वीप सुख अमृत नेहा । चक्र सुदर्शन द्वीप उरेहा ॥
सुदर्शनचक्र द्वीप निर्बाना । सुधा वारि सत्य शुक्तिहि साना ॥
सुदर्शनद्वीप पति गुण आगर । परमानंद परम गुणसागर ॥
सातों द्वीप रचा निर्बाना । काया ब्रह्म भया बंधाना ॥
द्वीप सुधारी कमल परकासा । कमलबास प्रगटी चहुँ पासा ॥
प्रथमहि मकाद्वीप निरमावा । उमराव कमल तेहि माइ बनावा ॥
उमर कमल मकरि कस जाना । लाख पंखुरी दलकी अनुपाना ॥
मकर तार डोरी तहां लागी । दरशै सुरति सदा अनुरागी ॥
दूजे पद्म द्वीप निरमावा । कमल कूर्म तेहि मांहि बनावा ॥

ताकी डोरी सुतसम देखा। कमलनालके मध्य बिशेखा ॥
तीजे द्वीप लंबनी नेहा। धर्मकमल तेहि मांहि सनेहा ॥
ताकी डोरी अग्र सनेहा। अग्रनाक तेहि मांह उरेहा ॥
चौथे द्वीप झांझरी कीन्हाँ। कूर्म कमल दामिनको चीन्हाँ ॥
ताकी डोरी सहल स्वरूपा। चमके धारा तार अनूपा ॥
पांचए झिलमिल द्वीप संवारा। ताके कमल कुसुम सुखसारा ॥
ताकी डोरी धुआंके नेहा। अन्ध कार अकार उरेहा ॥
पांचौ द्वीप अर्ध रहि वासा। पांचौ कमल ता ऊपर बासा ॥
पांचौ कमलमें प्रतिमा पांचा। लागी डोरी अर्ध घर सांचा ॥
कोई लक्ष कोई ऊत बनावै। कोई हजार कोई सब निरमावै॥
कोई कमल पंखुरी सांचा। डोरी अर्ध पांचहुंके पांचा ॥
ब्रह्माद्वीप घरमांहि निवासा। तेहि महँ ऊर्ध्वकमल परकाशा॥
प्रथमहि अमी कमल निरमावा। अमी अमान अर्धधुनि छावा॥
तहवां होइ श्वासगुञ्जारा। बरसै अमी अखण्डित धारा॥
अमी अमोल अर्ध रहि वासा। श्वासासार पुहुप परकासा ॥
निश वासरको जानै मूला। श्वासासार शब्दसम तूला ॥
निश दिन होय श्वासा गुंजारा। सातसै ग्यारह आठ हजारा ॥
अमी कमल अमान सो नाला। अट्ठाईसदल पंखुरी रिसाला॥
तेहि महँ चले पवनकी धारा। श्वासा साथ शब्द गुंजारा ॥
निश वासर श्वासा विस्तारा। छः सै अर्ब इकीस हजारा ॥
उनतालिस हजार एकसै आवै। एतिक चिकुरद्वार होय धावै ॥
दुइ दल कमलह्वै श्वासा आवै। इकइस हजार छः सैः धावै ॥
बाइस हजार चारिसै ऊने। जाप जापै जिव आप बिहूने ॥
एतिक श्वास दोइ दलमें आवै। पल बाहर पल भीतर धावै ॥
दूसर कमल झलाझल माँहा। झलकै ज्योति अर्धधुनि ताँहा॥

सहस्र पंखुरी कमल अनूपा । तहां वसै मनज्योति स्वरूपा ॥
ताहि कमल पर बाजन बाजै । बानी अधर मधुर धुनि गाजै ॥
कूर्म कमल मकरंदी राजा । तहां विराजति शोभित साजा॥
तहां घरनि घरियार बजावै । घनी घनी टंकोर लगावै ॥
दश और पचहत्तर श्वासा । इतना एक घरी परकासा ॥
एतिक श्वासा सहज घर आवै । तहां घरनि घरियार बजावै ॥
छसै पचहत्तर की सहदानी । एक टंकोर टोकावै जानी ॥
इहि विधि चारि टंकोर टोकावै । ताकर भेद सन्त कोई पावै ॥
राहु केतु सँग व्यालिन रोकै । ताको मर्म कोइ जनि अलोकै॥
एक पहर मारै विधि पूरा । गहन गरासै शशि औ शूरा ॥
गहन गरासत निरखै श्वासा । रवि शशि राहु केतुपरकाशा ॥
ताहि संग एक नागिनी रहै । घड़ी घड़ी वह जीवहि गहै ॥
श्वासा सोहंगम गहन गरासै । आगम जानिके जीवहि त्रासै॥
श्वासा सोरह गहन लगावै । छठये मासहि काल सतावै ॥
श्वासा परख घरीकी राखै । दमहि चलै सो आगम भाखै ॥
एहिविधि श्वासचलैपुनिजबही । दुइ हजार सातसै तबही ॥
पुजे घरि पूरण होय जबही । पहरके टोर मारै पुनि तबहीं ॥
एतिक श्वासा प्रहर प्रमाना । घरि चारि गरज बंधाना ॥
आठ घरी दुपहरि जब आवै । टोकै गहर गहन नहिं लावै ॥
चारि घरी चारिउ युग मूला । चारि प्रहर चारिउ समतूला ॥
चारिउ युग एक पहरके माहीं । चारि प्रहर चारि युग ताहीं ॥
प्रथम प्रहर सतयुग परवाना । तापर प्रथम घरी निर्वाना ॥
सतयुगमें युग चारि अपारा । चारिउ युगको नाम निरारा ॥
प्रथमहि सतयुग रोपै थाना । चारों युग तेहि मांहि समाना ॥
सतयुग प्रथम घरी निर्बाना । कीलक युग तेहिमांहि समाना॥

कीलक युगकी श्वास सारा। छहसै सत्रे पाँच सुधारा॥
एति श्वासा कीलक युग माहीं। परसै जीव अधरकी छांही॥
बीतत घरी गरज घहराई। काल टकोरा मारै धाई॥
इह युग अन्त कहावै घरी। नागिनि ग्रासे सन्मुख खरी॥
प्रथम कीलक होय संधारा। पाछे युगका मत निस्तारा॥
सतयुग धरि दूसर जब आवै। तेहि श्वास कमत युग पावै॥
कमत युग होइ क्रोधबरियारा। उत्पति थोर बहुत संघारा॥
कमत युगकी श्वासा जानै। छः सै सत्रह पांच बखानै॥
एतिक श्वासा कामत युगमाहीं। गुण अवगुण दोउ निरखेहु ताहीं॥
बीतत कामतक मोद युग आवै। तिसरी घरी बासना धावै॥
आवा गौन बिचारै कोई। युग कमोद सुख पावै सोई॥
तिसरी घरी सतयुगके आई। तब कमोद युग होय सहाई॥
युग कमोद सतयुग महँ आवै। दुखी सुखी नर सब सुख पावै॥
युग कमोदकी परलै होई। दुखी सुखी जानै सब कोई॥
तब जो होई सूर्य संचारा। महाविरोध उपजै अधिकारा॥
चन्द सनेह होय जो हीना। महासुफल तन होय मलीना॥
श्वासा चलै सातसै भारी। युग कमोदकी कथनी है न्यारी॥
युग कंकवत कि होय प्रकाशा। अतिही दुर्ज विषयकी त्रासा॥
चौथी घरी क्रोध बेकारा। महा कठिन होई ताकी धारा॥
चौथी घरी निकट जब आवै। सतयुग अंत कंकवत पावै॥
सतयुग अंत होय नहिं पावै। युग कंकवत आय शिरनावै॥
युत कंकवतकाल बरिआरा। कायाके बहु करै बिकारा॥
काया कहर गरासै आई। तब न भेद मैं कहौं बुझाई॥
काया कहर हो परचण्डा। नख शिख व्यापि रहै नौखण्डा॥

युग कंकवत कालकी बानी । कालकला मति सब दिन जानी ॥
युग कंकवत महाबल योधा । अन्तकाल सतयुग पथ सोधा ॥
सतयुग अन्त कंकवत मांही । अन्त कालकी व्यापै छांही ॥
युग कंकवत मोह की खानी । काम क्रोध ममता लपटानी ॥
अन्तकाल सतयुगकर भयऊ । चारिउ जुग परलैतर गयऊ ॥

समय–एकहि युगके बीते, चारों युग भये नाश ।
एकनद चारिउ युगखाए, सतयुग कीन्ह गरास ॥

चौपाई

कीलक कमोद चंद सनेहा । कमत कंकवत सूर्य सनेहा ॥
भाजुग अन्त एक संग चारी । चारि घरी शब्द एक नाद संघारी ॥
एक नाद एक पहर कहावा । चारि घरी तेहि मांहि समावा ॥
चारि घरी चारिउ युग बीते । शब्दनाद रवि शशि घर जीते ॥
सतयुग अन्त बाजु घरियारा । त्रेतायुग कर भया विस्तारा ॥
दुसरे युग भयो विश्वासा । दूसरे पहर तेज प्रकासा ॥
तेज लगन श्वासा रही बासा । ताते दूसर युग परकासा ॥
त्रेता युगकर भा अनुसारा । त्रेता युगहि ते व्यवहारा ॥
त्रेता युगकी पंखुरी चारी । चारि घरी युग चारि बिचारी ॥
जैसा युग सतयुग महँ देखा । सोई गति त्रेता महँ लेखा ॥
जब जब अन्त होय युग केरा । तब तब नाद काल घन घेरा ॥
त्रेता युग महँ कला अपारा । योग व्रत तीरथ आचारा ॥
प्रथम घरी होय क्रोध अपारा । अहंकार अभिमान पहारा ॥
ताकर नाम चिंता युग राखा । चित चञ्चल चकित अभिलाषा ॥
चक्रितयुग अलोप जब भयऊ । ठोकि टकोर नाद तब कियऊ ॥
होत नाद मृतु अंधा धावै । लागत पलकमल नहिं लावै ॥
चक्रित युग बीती जब गयऊ । तेहि पाछे बुद्धि युग भयऊ ॥

बुद्धी युगकी बुद्धी अपारा । तायुग महाकाल बरियारा ॥
ज्ञान गयँद होइ असवारा । बुद्धि युगभान फोरे महिभारा ॥
बुधिक बधिक बाँधिकरै कमाई । विषे चतुराई कुमति समाई ॥
एही बिधि बुधि युगचलि जाई । तेहि पीछे मन बरतैं आई ॥
मन मतंग महामद माता । तेज तपस्या व्यापै गाता ॥
मनयुग ऊंच नीच सतलीला । बरषै झारी विषैको शीला ॥
मन युगकी श्वासा बहुरंगी । ज्यों जलमध्ये उठै तरंगी ॥
मन युगराज बीतिगा जबही । अहंकार युग उपजा तबही ॥
अहंकार युग अन्त समाना । मरै पतंग हार नहिं माना ॥
हारै नहीं आपु अहंकारा । गरजै छुच्छ हारे सुख भारा ॥
अहंकार युग श्वासा ऊनी । गरचि घुमडि बरषै फिरि सूनी ॥
अहंकार ऊद्वेग अपारा । श्वासा हीन तत्व छिनधारा ॥
अहंकार युग बीते जबही । त्रेताकी परलै भइ तबही ॥
त्रेता अन्तकाल जब कीन्हाँ । आधी निशा टंकोरजोदीन्हाँ ॥
आधी रात नाद घन बाजा । महानिशान मेघ जनु गाजा ॥
त्रेता आदि अन्त व्यवहारा । उपजा द्रवा परकला अपारा ॥
द्वापर युगकी कला अनन्ता । सुखदुखमध्य आदिदुखअन्ता॥
प्रथम घरी द्वापरकी आई । अर्थनाम युग महा समाई ॥
अर्थनाम युग द्वापर माहां । अर्थ अहर्निश व्यापै ताहां ॥
अर्थनाम युग घरी समाना । घरिकै बीते युग क्षय माना ॥
एक युग बीते दूसर आवा । धर्मनाम युग तहीं धरावा ॥
धर्मयुग धरनी धरु साँचा । श्वासा छहसै सतरी पाँचा ॥
धर्मधार औ धीर तुरङ्गा । धर्मयुग रोग वियोग सुरङ्गा ॥
धर्मनाम युग बीते जबही । गहर काल युग बरतैं तबही ॥
गहरकाल युग कहर कमाई । रविरथ बीच ध्वजा फहराई ॥

गहर टंकोर जब धरनी मारा । गहर कहर रस ज्ञान अपारा ॥
गहर यम युग बीता जबही । मोक्ष महाबल उपजे तबही ॥
मोक्ष नाम जग सत्य सुरंगा । निमिषि लक्ष दलसात तुरंग ॥
मोक्ष नाग युग बीति जब जाई । द्वापर युगकी परलै आई ॥
जब परलै द्वापरकी होई । आदि अन्त सबजाय बिगोई ॥
द्वापर अन्त बिगुरचन भारी । दुःख प्रचंड सुखसबै खुवारी ॥
बीता द्वापर कलियुग आवा । कलियुग कालकलाके भावा ॥
कलियुग महँ युगचार समाना । चारिउ युगको करै बखाना ॥
चारिउ युगकी अर्थ कहानी । बिन परिचै सबयमकी खानी ॥
सतगुरु बिना न होय मिटाऊ । चारिउ घरी कालकी दाऊ ॥
चारि घरी युगचारि बँधाना । कहौं भेद सुनु संत सुजाना ॥
प्रथमहि युगकर चेतन नाऊ । चेतनि चित करै सब ठाऊँ ॥
चेतनियुगमहँ चिंताको धामा । विस्मय हर्ष दुनौ विश्रामा ॥
चेतनि चिंता करै सब ठाऊँ । महा बली है श्वास सुभाऊँ ॥
तीनहिं ताप तपै ब्रह्मण्डा । भरमि भूत व्यापै नौ खण्डा ॥
भर्मित पौन भर्मकी खानी । भर्म हाथ सब दुनी बिकानी ॥
कैतौ पढै गुनै संसारा । बिनसतगुरु नहिं चित्त सुधारा ॥
सतगुरु मिलै होय सत तूला । तेहि पाछे उत्पतिकर मूला ॥
दोरस युग बुद्धी बलनामा । शुची अशुची करै जो कामा ॥
ताकी संख्या बहुत बिचारा । छःसै सत्तरि दण्ड पसारा ॥
पांच दण्ड वाकी रहि वासा । ताका भेद काल परकासा ॥
बुद्धी कुबुद्धी दोउ कर भाऊ । एकहियुग दोउ रहनि बताऊ ॥
बुद्धि हीन मैं मत पसारा । बिनु आँकुश नहिं होत सुधारा ॥
अंकुश देई मिलै गुरु पूरा । मोह महामद विषहोय दूरा ॥
बुद्धि नाम युगकी सहिदानी । सुमति सनेह सुरति लपटानी ॥

बुद्धि नाम युग पारस सनेही । चित अभिमान रहे नहिं देही ॥
बुद्धि नाम युग बीते जबही । इच्छा राशि गरासै तबही ॥
इच्छा युगकी अकथ कहानी । सुनहु सन्देश कहो सहिदानी ॥
इच्छा आदि पुरुषकी काया । तासु नेह सब लोग बनाया ॥
सो इच्छा है जीवन नेहा । रही समाय जहां लौ देहा ॥
ता युगमाही विषय विकारारा । ज्ञान न उपजै भर्म पसारा ॥
ता युग माहि धरै नहिं धीरा । लालच लोभहि व्यापै पीरा ॥
इच्छा युगकी अटपट डोरी । शहर सँधार होय निश चोरी ॥
जब जब इच्छा युग विस्तारी । काया कष्ट होय दुख भारी ॥
ता युगकी बाकी भुगतावै । दृष्टि नाहिं अदृष्टि दिखावै ॥
अन्न अहार करै जब कोई । इच्छा युग तब पूरण होई ॥
तासे युगकी दूसरी धारा । सतगुरु मिलै तो होय उबारा ॥
सतगुरु शरण अमर पद पावै । इच्छा समय दूरी बिसरावै ॥
इच्छा युगकर तार पसारा । लाज महा बल तजै विकारा ॥
सातों दण्ड इच्छा कर भावा । दण्ड पांच सातहि विसरावा ॥
पांच शून्य इच्छा कर साथी । मद माते जस मङ्गल हाथी ॥
तासु नेह संयम जब पावै । इच्छा मेटि गरव विसरावै ॥
इच्छा युगकी एतिक बानी । सतगुरु मिलै होय छुटानी ॥
जाहि देह सतसुक्ती बीरा । ताकह काल देइ नहिं पीरा ॥

समय-कालत्रासव्यापै नहीं, इच्छा युगके माहिं ।
सतगुरुसो परचय करै, परसै निरगुण नाहिं ॥

चौपाई

चौथे युगको करौ बखाना । धर्म महाबल माह समाना ॥
अभय तरंग ताहि युग नामा । संशय रहित सदा बिसरामा ॥
तेहि युग माहि सरव सुख होई । अहंकार व्यापै नहिं कोई ॥

तेहियुग माहि सुधाकी खानी । बोलै धीर मधुर धुनि बानी ॥
झीनी रङ्ग तारंग विराजै । नाना नाद अर्ध धुनि गाजे ॥
सातों द्वीप होइ उजियारा । दामिनि दमकै शहर मझारा ॥
वन औ वृक्ष सघन सब होई । सदा बसन्त खेलै सब कोई ॥
षट ऋतु मद्दा एक सम तूला । एकै बानी एक अस्थूला ॥
साहब सेवक एकै होई । सदा बसन्त खेले सब कोई ॥
साहब सन्त लख सब कोई । साहब सेवक लखै न दोई ॥
( एकै बास बसै सब कोई । )
साहब सेवककी एकै शोभा । चीन्हि न परै अङ्गकी ओभा ॥
साहब सेवक बरन दुहेला । एकै बरण गुरू औ चेला ॥
जैसे फूल बास कह तोरी । पाछे फूल बास गहि जोरी ॥
पाछे फूल शोभासों देही । तिल तजि तेल बास गहि लेही ॥
विना भेद जीव होइ अन्धेरा । पाछे परै कालकी घेरा ॥
सीख बिना गुरु छुटे नाहीं । बिरि फिरि परिहै भौचक माहीं ॥
गुरू सुबास है फूल सनेही । सीख स्वरूप आसिका देही ॥
गुरु बिन कौन उतारै पारा । कठिन काल है भौजल धारा ॥

समय–विनसतगुरु नहिं बाचै, फिरि बुडे तेहि माहिं ।
भवसागरके त्रासते, गुरू पकरी बांहि ॥

चौपाई

युगत रंगकी कला अपारा । बिना भेदको करै बिचारा ॥
जस तरंग जलमाह विराजै । ऐसे शब्द शीश पर छाजे ॥
मन मकरन्दीके गुण ऐसा । कोटके बासै विषधर जैसा ॥
अग्नि बीच काया कह डाढै । सागर मांझ दून होइ चाढै ॥
पर्वत मारि उडावे छारा । पुहुमी मेटि करै मसि आरा ॥
सूर्य मेटि सब किरन वनावै । पवन बांधि काया दिखरावै ॥

पानी बांधि अग्निको डाहै । पाला मेटि गरमि नहिं चाहै ॥
तीन लोककी जेतिक खानी । करै बास सबकी सहिदानी ॥
विष दारुण विषयाबसि होई । मारै मरै जियावै सोई ॥
जो चाहै सो सबै बनावै । मनकी कला हाथ जो आवै ॥
मन भूखां औ मनै अघाना । मनै पियासाकर जल पाना ॥
मन सूरा मन कायर हीजा । मनै विरह विरहिन सङ्ग भीजा ॥
मन दारुण मन कही सियारा । मने तास औ मनै पियारा ॥
मन राई मन राव कहावै । मनै बिना मन हाथ न आवै ॥
मन बाहर मन सबके माहीं । मनते भिन्न कोऊ जग नाहीं ॥
मन सर्वज्ञ चराचर माहीं । मनते करता दूसर नाहीं ॥
मनही देह मनहि पुनि लेई । मनबसि काम लहरिबस सोई ॥
मन लोभी मन कृपणी होई । मन उदार मन दाता सोई ॥
मन पापी मन अघ ढोई । मनै भक्ति लरि तारै सोई ॥
मनै लेख मन करै अलेखा । मनही स्वर्ग नर्कको लेखा ॥
मनहि मरै मन मन नरकै जाई । मन बसि जीव सदा पछिताई ॥
करता जीव रंग मन आहीं । शोभा सकल रंगके माहीं ॥
रंगदेखि सब जगहि भुलाना । रंगरूपको एक ठिकाना ॥
बिन रंगरूप होई फीका । रंगरूप मिलि देखिय नीका ॥
नीक देखि सब शीश नवावै । निरखि देखिकै शीश डुलावै ॥
नीकै लागि रहा सब कोई । अनइस नीक मनैते होई ॥
ताते इह मन कर्त्ता भाखा । तिरगुण डोरी बांधि जगराखा ॥
मन हर्षित होय गावै गीता । मन उत्कण्ठमन कहै पुनीता ॥
मन खोजी वादी होई । मनै गुरु समुझावै सोई ॥
मन बारै मन आनि जुड़ावै । मनमलीन दशहु दिशि धावै ॥
मन अज्ञान मनै सज्ञाना । मन कविता मन चतुर प्रमाना ॥

मनछन्द धरि भाषा बोलै । मन अस्थिर मन चञ्चल डोलै॥
मनै ध्यान धरि वेद बखानै । मनै नबोडा कर न बँधानै ॥
मन षटचक्र मन विप्र बँधाना । मनके सकल रूप हैं ठाना ॥
मन नट नाटक महा समाना । मन नट सर्व कथै अभिमाना ॥
मनहि अठारह पढ़ै पुराना । मन मन कहि समुझावै ज्ञाना ॥
मन चउदय विद्या अधिकारी । मन त्रिकुटी महँ लावै तारी ॥
मनकी ज्योति सकल उजियारी । मनकी छाया मन अधिकारी ॥
मनहीसों सब सरही काजा । मन है सात द्वीपको राजा ॥
मन बिनु सरै न एको काजा । मनके ऊपर मनहिं विराजा ॥
( मननवखण्डदशहुँदिशगाजा । )
सतगुरु सीख मनहिंको कीन्हा । मनते भक्ति मनते पथचीन्हा ॥
मन मानै तो सबै बनावै । मन बिनु पन्थसो कौन चलावै॥
मन चीन्है तो मनकहँ पावै । बिनु मन सत्यशब्द नहिं आवै॥
मन चीन्है तो सब बश होई । बिनु चीन्है सब जात बिगोई ॥
तीन लोक जो बाहर भाखा । सो सब आनि देहमें राखा ॥
मन चीन्है तो हाथहि आवै । तीनहि लोक देहमें पावै ॥
जो बाहर सो भीतर पावै । तीन लोक पल मांह दिखावै ॥
तीन लोकते बाहर बासा । मन चीन्हे तो होइ प्रकाशा ॥
जब लगि मनको अन्त न पावै । तौ लगि इह मन हाथ न आवै॥

समय-तीनलोक हैं देहमहँ, रोमरोम मन ध्यान ।
बिन सतगुरु नहिं पाइये, सत्यशरण निजनाम ॥

चौपाई

सात द्वीप काया अस्थाना । सातों द्वीप कमल बंधाना ॥
नाल साति रचना गति देहा । सातों सुरकर एक सनेहा ॥
तहांको भेद हँस जो पावै । दुबिधा दूर मति सबै गवाँवै ॥

पावै भेद करै विश्रामा । पल पल परशै निर्गुण नामा ॥
आवत जात बार नहिं लावै । परसै नाम अमर पद पावै ॥
नाल सात सुर एक ठिकाना । ताके निकट हूसके थाना ॥
नदी तीन बाढी गम्भीरा । साम तहां गोफाके तीरा ॥
तहां बैठि अजपा लौं लावै । रोम रोम की सब सुधि पावै ॥
रस औ बिरस तहांकर मेला । होत बसन्त गुरू तहां चेला ॥
गुरु समाधि मँह अटल प्रमाना । चेला अग्रवास मह साना ॥
चेला बास गुफा महँ करई । पल पल सुरति शब्दपर धरई ॥
त्रिगुण तेजकी दीखै काया । दामिनि दमकि झकोरें बाया ॥
जो गुरु मिलै तो पांजी पावै । बिनु पांजी बिचही भटकावै ॥
पांजी पावै सुरति सनेही । पूरण तत्व चलै जब देही ॥
करै चन्द्र तापर असवारी । प्रीति पूरण जागै खुमारी ॥
प्रेम पियाला तहवां पीवहि । निशवासरचित आनंद दीवहि॥
चेतनि चेत होय बल जोरा । जागत साह न मूसत चोरा ॥
श्वासा चारि लगनकर भावा । जब उपजै तब संगहि आवा ॥
चारि लगन दुइ भाव अपारा । उपजै विनशै क्रम व्यवहारा ॥
एक लगन संग उपजै काया । एक लगन बहु सुख समाया ॥
एक लगन दुख दारुण होई । शब्द गहे नहिं दुर्मति खोई ॥
एक लगन संग उपजै काया । एक लगन बहुसुख समाया ॥
एक लगन दुख दारुण होई । शब्द गहे नहिं दुर्मति खोई ॥
एक लगन संग उपजै काया । मोह महामद विषकी छाया ॥
विलसत उपजत सब जीव जाई । ना गुरु मिलैना अर्थहि पाई ॥
चारि लगनकर नाम निराला । दुइ सुक्ती दुइ काल कराला ॥
उत्पति संग सुधाकी छाया । दुखदारुण होइ तजे काया ॥

जे मुनि लगत सँवारे बीरा । उत्पति कै सँग तजै शरीरा ॥
बाकी जवनिकाल लखि राखा । मेटै अंक कालकी शाखा ॥
उतपति होत लिखे यमराया । सो सब दीसे नरकी काया ॥
सातों द्वीप लखे सहिदानी । वासिल बाकी कर्म निसानी ॥
जेतिक श्वास चलै नर देहा । ताकर जाने सबै सनेहा ॥
दम विस्तार लिखे सब दाऊ । पाछे करै करे जे घाऊ ॥
द्वीप द्वीपकर अंग जलावे । करपग परलो प्रकट दिखावे ॥
चौरासी लक्ष योनिनकी धारा । नरकी देह ते कर्म अपारा ॥
चौरासीकर पातक भारी । नरकी देहसब लिखे विचारी ॥
करपाछे वासिल लिखि राखै । बाकी अंक मध्यमें भाखै ॥
जमा शीसपर लिखै बिचारी । नित उठीके न्यावे निर्बारी ॥
सातों द्वीप सुधारे रेखा । ऐसा यमकर वरवस देखा ॥
करमज चारि अंक लिखि देई । पाछै सबसों निरणै लेई ॥
रेखा इलालि लिखे विष पूजा । लहसनमसा लिखे तिलगूञा ॥
चक्र लिखै औ आपहि बासै । सन्धि लिखैजीवन कहँ फाँसै ॥
नखशिख लिखै कर्मकी खानी । गुण औगुण नहिं मेटे जानी ॥
जाहि द्वीप जस अंक लिखावे । तहां तहां तस चाल चलावे ॥
रवि शशि अँक दोउ लिखि लेई । पाछे दोष जीव कहँ देई ॥
श्वासा स्नेह लिखै सहि दानी । पाप पुण्य भुगतावे जानी ॥
जैमुनि लगन होय उतपानी । लगन केतुकी सबही हानी ॥
दोऊ लगत साधें शशि सूरा । पावै सत गुरु हाल हजूरा ॥
जो गुरु मिलै तो मेटे रारी । बिनसतगुरु सब यमकी बारी ॥
सतगुरु बिना न होय उबारा । केतो ज्ञान कथै संसारा ॥
जप तप योग यज्ञ व्रत पूजा । काल सनेह और नहिं दूजा ॥

तप साधै रहसे मन माहीं । काल करमकी लखै न छाहीं ॥
विद्या वेदकी करै उचारा । कर्मवश जीव भये यमचारा ॥
जब लगि हृदय शुद्ध नहिं होई । तब लगि पार न पावै कोई ॥
जाही लगन तन जग लेही । ताही लगन तजै जो देही ॥
सो जीव उतरि जाय भौ पारा । नहिं तौ अटकि रहै संसारा ॥
कालहि बस जो तजै शरीरा । ताकह काल देइ बड़ पीरा ॥
लगन केतुकी होय न न्यारा । पाछे लेई गरभ औतारा ॥
नर्क खानि भुगतै चौरासी । धरि काया बांधे बिसवासी ॥
सतगुरु बिना लगन नहिं पावै । अन्तकाल यम धोखा लगावै ॥
जीवत कथै बहु ज्ञान अपारा । काल चतुराई छन्द पसारा ॥
कर्मकी वंशी सब जीव फाँसै । हरी न मानै आनै हासै ॥
तादिन भूलि है सब चतुराई । जादिन काल धरै तन आई ॥
मूरख चतुराई सहज बैलाना । छोटे बड़े मर्म नहिं जाना ॥
ताते सत गुरु खोजहु भाई । जाते कर्म भर्म मिटि जाई ॥
लगन केतुकी देह बहाई । बाकी सबै कालकी जाई ॥
जे मुनि जन तजै शरीरा । गहै न काल विषयके तीरा ॥
कागद करि जाय भव पारा । मेटे यमकर सकल पसारा ॥
सतगुरुसेती चाल गहि लेई । ताकह काल दगा नहिं देई ॥

समय—काल दगा सब मेटिकै, उतरहु भवजल पार ।
यमकी चाल बिचारिकै, बहुरि न हो औतार ॥

चौपाई

धर्मदास औरो सुनि लेहू । जीवन बाह जानिके देहू ॥
जाको होइ सत्यको रेखा । नखशिख देखहु अङ्ग विशेखा ॥
चतुर शील दोउ निरखेउ जानी । करपर देखहु भक्ति निशानी ॥
शंख चक्रकर देखेहु थाना । लक्षण जानि सुधारेहु पाना ॥

बोले मधुर शीलकी बानी । तेहि तन होय ज्ञानकी खानी ॥
पहिने ग्रीव समा जौ होई । शब्द विवेकी जाने सोई ॥
खंभज होय जाहि कर माहा । यश विस्तार ज्ञान अवगाहा ॥
पलक पसार छत्र जो होई । लोक निशानि अंश जनु खोई ॥
नासिका नेह होय जो मासा । कुटिल कठोर रोग तन वासा ॥
बौरनीपर जो गुजौ गूजा । तामस तेज विषयको पूजा ॥
कोतह गरदनी एचातानी । कुबजा गाडर विषकी खानी ॥
मुख चतुराई हृदय कठोरा । बोले झीन क्रोध कर जोरा ॥
इन जीवन जनि बोधहु जानी । अन्तकाल पुनि होवै हानी ॥
नारी नेह विचारहु जानी । देखहु देह द्वीप सहि दानी ॥
राज गुञ्ज निरखेहु अनुहारी । कर पगशीस लक्षहि विचारी ॥
चंचल चाल पोल होय पाऊ । तेहि जनि कबहु चरण छुआऊ ॥
गुञ्ज होय जेहि मास लिलारा । तेहि बोधते होई कर्म अपारा ॥
वोठ भुजंग औ जीव भुजंगी । विष बरजोर बसै तेहि संगी ॥
नेत्र गुञ्ज ए ऊंच लिलारा । कामलहरि बहु जहर पसारा ॥
हँसत वदन चालै चतुरंगा । बोधत ताहि होत सुख भंगा ॥
नैन शेष निरखे जेहि ओरा । ताकह कष्ट देइ तन चोरा ॥
शुभ रंगुत्र होई विषखानी । क्षीरे छिर विष बालककी हानी ॥
सो गुण छांडे तासु शरीरा । द्वादश कँवल बसै बलवीरा ॥
नाभिकमल होइ रेखा तीनी । वाएँ अङ्ग होए शशि हीनी ॥
कच्छदीप होइ गुञ्ज चितेरा । परसत ताहि कालको चेरा ॥
जङ्घदीप होइ गुञ्ज गहीला । लहसन मासा होइ जो ईला ॥
तेहि परसै औ बेधे जानी । गुरु शिष्य दोनोंकी हानी ॥
मीनहि द्वीप विकट होइ रेखा । ताके अङ्ग कालकी रेखा ॥
बांझ मुआ बछ गूगी होई । कलपत जाय कालपुर रोई ॥

कूर्म स्नेह लक्ष कर जोरा। चतुर सनेह ज्ञानबल जोरा॥
पग छतनार होइ जेइ जानी। पुस्तपांव पर काल कुबानी॥
समय–चरण पलौ सम होय कर, घटिका पलो प्रमान।
ज्ञान सनेही दूत है, रोम रोम भगवान॥

चौपाई

दूनो अंग विचारेहु जानी। एकरज भक्ति एक विष खानी॥
दोऊ अंग लक्षण गहो शरीरा। पाछे देहु मुक्ति बरबीरा॥
परिचय भेद विचारहु जानी। पान लेत जिव होय न हानी॥
लक्षण लक्ष्य होय सम तूला। पावै सतगुरु मुक्तिके मूला॥
समय–आदि निशानी देखिकै, बांए दहिने बाम।
शब्द सनेह नेह करि, तब दीनों निजनाम॥

चौपाई

बांए अङ्ग मसा जो होई। तीरथ अङ्ग रेखा हो दोई॥
बांए अंग विषयकी बासा। माया सघन वंश कुल ग्रासा॥
दहिने अंग विषय जो होई। शीस संपति सुख गासै सोई॥
विकटदंत होय जेहि बारी। शीलवंत सुख प्रेम सुधारी॥
बिरर चिकुर मुख चुम्ब सनेही। विहसत वदन सदा सुखनेही॥
उज्ज्वल नेह सदा सुखदाई। शील सनेह भक्ति बहुताई॥
हंस गमन सतगुरु सों नेहा। मधुरी बोले प्रेम सनेहा॥
कर पद कोमल शरद शरीरा। सुत संपति जैसे दारुण धीरा॥
मधुर बात औ चमकै देहा। सबते बोलै सुरति सनेहा॥
सुरतिवंत प्रीतमकी प्यारी। पल्लो लांव जेठ पुर भारी॥
श्यामगात लहसन तन माहा। माया संघ न औ ग्रासै नाहा॥
राजवरण प्रिय श्याम शरीरा। पिया हि आहिपरीमल गंभीरा॥
बगलधि मुख आमिष जो होई। तन प्रसेव सुत सुतहि विगोई॥

लभे गात मोट तन भारी । विरह विकार क्रोध अधिकारी॥
छोट शरीर पातरी वामा । आपु तजै अन्त विश्रामा ॥
निहली चितवनि एँचा तानी । बहुते पुरुष एक पटरानी ॥
विहसत बोलै कुटिल निहारै । आपु जरे औरन कहँ जारै ॥
आगे चलै पाछे तन देखै । गुण औगुण एकौ नहिं लेखै ॥
ऊपर हँसै मनही पछताई । देह थोरहिं बहुत पुआई ॥
एक थन छोट कठोर कुबानी । एक थनझालरि विषकी खानी॥
नाभी पर तीनि होइ रेखा । सुखसम्पति सपनेहु नहीं देखा ॥
इन्द्री मांझ गुज्ञ होइ भारी । जो परसै तेहि करै खुआरी ॥
मोट पतंग चाकरी चाला । तेहि देखत पिय होइ बेहाला ॥
पग पातर पलो छत नारा । परसन बास परै यम धारा ॥
कनअंगरी अधर तिन लागै । आपु नाइ तजि परघर बागै ॥
अस लक्षण होइ जाके गाता । प्रान लेइ करै यम घाता ॥
कुम्भ लिलार खम्भ जो होई । जो परशै सो जाय बिगोई ॥
कर पग पलौ गुज्ञ सनेही । परसत होइ भालुकी देही ॥
जोरे पुअर करमह होई । नाहरि नाहक ग्रासै सोई ॥
ग्रहहि होय लक्ष तिरशूला । काल स्वरूप होइ अस्थूला ॥
मुक्तिपन्थ कबहूं नहिं चाहै । सदा विकार विरह रस लाहै ॥
चञ्चल चित्त थिर नहिं होई । भजन भंग रस भक्ति बिगोई ॥
वरुणी बसै बिसंभर जोरी । नेत्र बिलोन रंग होइ गोरी ॥
झंखत फिरै प्रकट नहिं होई । अन्तर भक्ति ऊपर होइ छोई ॥
प्रेमवन्ती होइ सुरति निहारै । आप तरे औरन कहँ तारै ॥
करै दंडवत निर्भय नारी । भक्तिवन्त बहु लीला धारी ॥
बिगसित बदन शीलकी आखी । कुल परिवार भक्तिगणसाखी ॥
सतगुरु नाम सुनै सचुपावै । मण्डल चारि शब्द फैलावै ॥

हर्षित होइ सतगुरु गुण गावै । भक्ति कि बात सदा मन भावै ॥
गुरु सनमुख होइ सेवा लावै । सदाकाल तेहि मस्तक लावै ॥
संपुट वदन क्षीणता होई । सतगुरु शब्दहि एक बिलोई ॥
सतगुरु देखि न परदा आनै । शब्दकी चाल सदा पहिचानै ॥
सदा अधीन रहै तनमांही । भागे काल देखिके ताही ॥
कर जोरै सनमुख शिर नावै । लाज कानकी दशा मिटावै ॥
ऐसी लक्ष गहै तन पासा । पावन पान लोक होइ वासा ॥
ऐसी लक्ष विचारेउ हंसा । दीन्हेउ ताहि शब्दकर अंशा ॥
लाज काज कह देहु बहाई । भेद सुधारत काल पराई ॥
माता बेटी भई नेबारी । लज्जा तजिके काल बिडारी ॥
लोक लाजकी दशा मिटावै । तौ रिपुकाल निकट नहिं आवै ॥
रामचन्द्र त्रिभुवन के राजा । लोकलाजबदि कपिदलसाजा ॥
जानि परी नहिं यमकी वानी । ताते काल कीन्ह तन हानी ॥
लाज लिये तन करै उदासा । तेहि मन भरम भूतकरबासा ॥
गुरुसों करै कपट चतुराई । चाल बिहून कालपुर जाई ॥
भक्त कहावै लज्जा नहिं तोरै । निश्चल काल नर्क महँ बोरै ॥
भक्त करै कुल दशा मिटावै । परदा ठानि कालपुर जावै ॥
सो सतगुरु जो होय सयाना । चाल चलावै शब्द प्रमाना ॥
आगत परदा मेटि बहावै । पाछे भक्ति पन्थ महँ आवै ॥
कपट छांडिकै शीस उतारै । हंस दशा धरी मुक्ति सुधारै ॥
शीस उतारि हाथ पर लेई । पाछै पाँव ताहिपर देई ॥
भक्तिका चित हर्षित होई । ममता मोह लहर तज दोई ॥
कामिनि कनककालकरफन्दा । भयउ काल कपटि मन मन्दा ॥
दुवो शीस अर्पना लाई । मुक्ति पंथ पावै तब भाई ॥
पावै भेद शब्द सहि दानी । काल कल्पना मेटै जानी ॥

समय–निहुरीनिहुरै नाचै, चारिउ अंचल छोरी ।
धनी पियारी होइ रहै, यमसो तिनुका तोरी ॥

चौपाई

इहि विधि मुक्ति गहे जो कोई । ताकौ आवागौन न होई ॥
आवागौन विचारै जानी । काया कष्ट होइ नहिं हानी ॥
सतगुरु शब्द जो लागा रहै । निकसि चरण सतगुरुको गहै ॥
तीन लोक नाद जय जाई । सतगुरुकौ पग रहै समाई ॥
तिसरी श्वासा साधै जानी । कुल अभिमान मिटै सब खानी ॥
नरको लक्ष पारख करि लेहू । पाछै वाह ताही कइ देहू ॥
चंचल चपल कुटिल तन होई । पान पावै तन जाय बिगोई ॥
ताको लक्षन नर्कंकी खानी । बोधत हुई दुवोंकी हानी ॥
राजा वरण तन बन्सी लावै । आप नष्ट होइ और नशावै ॥
जो वाकी संगति बैठे जाई । अपनी दशा ताहि पहराई ॥
सो सतगुरु जो होय सियाना । लक्षण देखि देइ तब पाना ॥
आगत पान धरै चितलाई । पाछै निर्णय शब्द बुझाई ॥
पानलेत चित हर्षित होई । चालु चलै नहिं दुर्मति खोई ॥
ताहि देहू गुरू पिपीलका । लक्षण हीन रेष होइ जिसका ॥
तापर अंक लिखे सहिदानी । काल कलाधरि देइ निशानी ॥
जैसा लक्ष जाहिपह होई । पान देहु तेहि तहाँ बिलोई ॥
भामत पौन लिखै तेहि माहाँ । दिटै इलाका गुरुको ताहाँ ॥
जाके होई सुमतीकी खानी । ताही देहु गुरुनाम निशानी ॥
राज बरण मुख शीतल बानी । ताघट होई ज्ञानकी खानी ॥
पूरी तत्त्व पान जो पावै । यमकी नाक छेदि घर आवै ॥
राजवर्ण होय क्षीण शरीरा । ता घट काल करै नहिं पीरा ॥
राजबरण मुख गुंज चतेरा । सो जिव होय कालको चेरा ॥

तापर काल लिखै सहिदानी । बोलत धीर हृदय कुबानी ॥
लक्षण भेद कहो सहिदानी । कालसभा भयभीत निशानी ॥
कालकला निरखेहु बहु भांती । करहु विचार दिवस औ राती ॥
कृपण होय माया नहिं छाडै । जोरी जोरी बरनि महँ गाडै ॥
आशा रहे तहां लपटाई । मुक्ति होय नहिं यमघर जाई ॥
देइ ताहि विष गंजित पाना । करम रेख सब देह पयाना ॥
नेत्र बिलोन मसा मुख होई । करत कल्पना जाय विगोई ॥
लवा शीश होय मुख छाही । हृदय कठोर दया नहिं ताही ॥
मध्य कपोल होइ तिल खानी । बांये तत्व लै बोलै बानी ॥
बांये विभौ मासा जो होई । दहिने दारुण तेज समोई ॥
बांये विभौ ताहिके होई । अंत चलै जिव सर्वस खोई ॥
गहरी चितवनि मुख चतुराई । लंपट चोर होइ दुखदाई ॥
छोटी गर्दन राजस भारी । मिथ्या बोलै होय खुआरी ॥
ता घट जीव दया नहिं होई । बोधत ताहि काल पुर रोई ॥
जान ऊपजै कुमती शरीरा । तेहि जनि देहु मुक्ति बलवीरा ॥
एक समय पान जो पावै । आपु जाइ संगति बगरावै ॥
विषयहि लम्पट होय जुआरी । इनते होइ है पन्थ खुआरी ॥
शब्द पेलीजानि पांव छुआवहु । महाविकार तन कष्टहि पावहु ॥
ताते आगम कहौ पुकारी । कुमति छुडाय पान निरुआरी ॥
हर्षित वदन रहै दिनराती । गुरुसों प्रीति करै जेव स्वाती ॥
सोपैही सदा स्वाती आसा । उपजै मुक्ती ज्योति प्रकासा ॥
रहनि गहनि बूझे करजोरी । दीन्हेहु ताहि शब्दकी डोरी ॥
गुरु सन्मुख होइ सेवा लावै । काम क्रोध ममता बिसरावै ॥
सदा अधीन रहे गुरुआगे । पावै शब्द सहज अनुरागे ॥

गुरुपद छांडि अनत नहिं जाई । चुशै अमी रस पीवै अघाई ॥
समता धीर होइ जेहि गाता । तेहि यम कबहि करै नहिं घाता॥
गुरुगम भेद बूझि सब पावै । ममता मोह सबै बिसरावै ॥
समय–गुरुकी आज्ञा आवै, गुरुकी आज्ञा जाय ।
कहै कबीर सो हंस भए, बहुबिधि अमृत खाय ॥

चौपाई

क्षीण अधर औ नेत्र बिसाला । गुरुगमी बोले शब्द रिसाला ॥
जो कोइ तपत ताहि पहँ आवै । अमृत सींचिके ताहि जुडावै ॥
पावै अमृत हर्षित होई । मोह महाबल जाइ बिगोई ॥
शब्दकी परच बोलै बानी । तन अभिमान बिसारे खानी ॥
तत्त्व तमाशा निश दिन देखै । भाव अभाव एक करि लेखै ॥
आसन मारि समाधि लगावै । एक पग संपुट पाछे लावै ॥
उलटी बाँह शीशपर राखै । पूरणतत्व अमीरस चाखै ॥
पलकन मारै राखै साधी । तिरवेणी तट राखि समाधी ॥
अमर महातम तत्वहि राता । दर्शै सुख सागरके दाता ॥
ज्ञान महातम तबही पावै । अमर समाधि एकपल लावै ॥
तबही मिटै काल करदाऊ । दुविधा दूसर सब बिसराऊ ॥
अमर समाधि महा फल पावै । जमदारुन तेहि शीश नवावै ॥
करपग कोमल रोग न ब्यापै । काल कला तेहि देखिके काँपै ॥
अखंड मंडल गुफाके तीरा । दरशै ज्योति अखंडित धीरा ॥
जो देखै तो प्रकटै चोरा । देखे बिना ज्ञान होय भोरा ॥
तत्व समाधि लगावै जानी । उपजै ज्ञान अमी रस खानी ॥
सत्य सुकृत पग परसै जाई । रोग न ब्यापै काल न खाई ॥
तत्व तमासा गुरुमुख देखे । तत्व छाडि निहतत्व बिबेखे ॥
तत्व समाधि करै नित पूजा । सत्य सुकृत तजि और न दूजा॥

पाँवके ऊपर पाँव चढावै । हाथ फेरिके संपुट लावै ॥
संपुट शीश छुआवै जानी । निरखै अरध उरधकी वानी ॥
कसनी कसै बहत्तर डोरी । सुरति शब्दसों राखै जोरी ॥
अधर अवाज लखै निरबाना । राग छत्तीसौं सुने बँधाना ॥
मुरली टेर अर्ध धुनि होई । ज्ञानगुफा चढि निरखेहु सोई ॥
सुनत अर्ध धुनि उन मुनिराता । बूझै आदि अन्तकी बाता ॥
मन मकरंदी के गुण पावै । मगन होइ चंचल नहिं धावै ॥
मन सर होई सरै सब काजा । छाँडे कपट शीश बिनुराजा ॥
नख शिश मनै बियापै सोई । मन चीन्हे मन आपै होई ॥
येह मन शक्ती येह मन सीवा । येह मन पांच तत्त्वको जीवा ॥
इह मन लेकै उन मुनिरहै । तीन लोककी बातैं कहै ॥
ऊन मुनीमें रहै रहावै । ताकर हंस काल नहिं पावै ॥
ऊनमुनी महँ लावै तारी । अङ्कमें महलमहँसुरतिबैठारी ॥
उनमुन महँ जो वासाकरै । अगम महलमें सुरति लै धरै ॥

समय–उन चढी आकाशको, गई गगनपर छूटि ।
हंस चले जो जात हैं, रहे शिर कूटि ॥
उन मुनीमें धर्मदासबसै, बंक नाल गहिजोर ।
शिर ऊपर सतशुक्ति तहै, तहां शीत शब्दकी डोर ॥

चौपाई

उनमुनी सांची सुरति है बासा । धर्मदास गहि राखहु पासा ॥
सोहं सार मूल धुनि राता । तासु नेह मिले दाता ॥

समय–हंसा सोहंग मान करै, निकसि खेल मैदान ।
तहां सुरति बैठारिकै, नित प्रति लावै ध्यान ॥

चौपाई

अमर आसन करो बिचारी । धर्मदास यह कथा निनारी ॥

जो कोइ मूल ठीक धरि आवै । सोई अमर समाधि लगावै ॥
सार समान रहै दिन राती । पावै आदि अन्त उतपाती ॥
अमर महातम पावै नीका । अमरसमाधि को गहै धरि ठीका ॥
पांच पचीस सकल सब जानै । आवत जात श्वास पहिचानै ॥
श्वास सार शब्द निरुआरै । अमरसमाधि को भेद बिचारै ॥
निशि वासर है शब्द समाना । जागत सोवत एक ठिकाना ॥
अमरमूल धुनि शब्द समाई । बोलै ज्ञान गमी अधिकाई ॥
लावै अमर मूल महतारी । अटल रहै मति टरति न हारी ॥
अमर सुहावन आसन मूला । नख शिख भेद गहै अस्थूला ॥
तनकी लक्ष्य लखै विस्तारा । लक्ष्य अलक्ष श्वास गुंजारा ॥
लक्ष्य लखै सो साधु कहावै । बिना लक्ष्य सतगुरु नहिं पावै ॥
सतगुरु चीन्है के सहिदानी । काल व्याल भयभीत निशानी ॥
काल काल बन रेख बनावा । नख शिव जानै तासु सुभावा ॥
पतरी ग्रीव नासिका भारी । भृकुटी देह नेह होइ कारी ॥
दहिने ग्रीव मासा को बासा । गुण गंभीर ज्ञान परकासा ॥
नेत्र रसाल बदन मनिहारा । शब्द सनेही सदा पियारा ॥
सदा हृदय सतगुरुकी आसा । बोलै ज्ञान गमी परकासा ॥
पूरण लक्ष पक्ष दोइ होई । शब्द गहै बहु भेद बिलोई ॥
ललाट पाट रेखा होई चारी । सुरति सनेही सुरति सुधारी ॥
तेहि जानेहु पीछल सहिदानी । पाछिल बोध भये सब हानी ॥
सुनत शब्द मिलै सो आनी । शब्द सनेह गहै चित्त जानी ॥
पलक छत्र औ झीने बोलै । पावत पान कपट सब खोलै ॥
ताकह जानहु हंस सुहेली । आनि मिले यम परदा खोली ॥
भीतर वचन कहे हित जानी । पाछिल सुरति भई जत हानी ॥
चरण टेकि चित बोधहु जानी । जाते आगे होइ न हानी ॥
रोष करहु तो मोर दोहाई ! गुरुको रोष लोक नहिं जाई ॥

समय–गुरुते माथेते उतरै, शब्द बेहुना होय ।
ताको काल घसीट है, राखि सकै न कोय ॥

चौपाई

गुरु भृङ्गी कर एक सुभाऊ । मेटे करम करे मुकताऊ ॥
शीख जो मन बसि दुबिधा करई । गुरु पुरा होई चित ना धरई ॥
चित तो धरे शीख बिगारै । आपु सहित भवसागर डारै ॥
दीन दयाल गुरुनकी रीति । जैसे चन्द चकोरहि प्रीति ॥
सीखे सिखापन बहुविधि देही । भरम मेटि निर्मल करि लेई ॥
शीख भेद जो पूछे आई । क्रूर होइ तौ उठै रिसाई ॥
पूर होइ तो शीखहि बोधे । कलह कलपना तजिकै सोधे ॥
शीश अज्ञान पार नहिं पाई । ताते करै कपट चतुराई ॥
करै कुटिलता बोलै जोरा । गुरु पूरा होइ करै निहोरा ॥
समय जानि बचन मुख बोलै । कहुँ शीतल कहुँ तेजस डोलै ॥
समय जानि बचन मुख बोलै । कहुँ तेजस कहुँ शीतल डोलै ॥
जब जब शिष्य करै अज्ञानी । हृदय शुद्ध मुख कहै कुबानी ॥
भाव विचारि शिष्य सों कहहीं । शिष्य की दशा जो नीके लहही ॥
जोर कहनको शिष्य डराई । गुरुशब्द महँ लेइ मेराई ॥
गुरु पूरा होय ताहि सुधारै । करम काटि भव सागर तारै ॥
गुरु सुवास सबके सुखदाई । गुरु राखै तो काल न खाई ॥
जानेहु ताहि काल अभिमानी । काल अङ्ग धरि प्रकटे आनी ॥
गुरु नाता धरि शिष्य नशाई । रहनि गहनि नहिं एक लखाई ॥
अज्ञान दिसासे शिष्य कहावै । गुरु होय गुरुगम समुझावै ॥
शिष्य करै बहु चञ्चलताई । गुरु पुरा होय लेइ बचाई ॥
गुरुकी दशा ज्ञानकी भाऊ । अज्ञान दशाते शिष्य कहाऊ ॥
रण ज्ञान गमी जेहि होई । हंस उबारन सत गुरु सोई ॥

सतगुरु कला अनन्त कहावै । ताकर भेद शिष्य किमि पावै॥
ताते शिष्य कहिय अज्ञाना । गुरु बतावे शब्द निर्वाना ॥
शिष्य नाता धरिजो कोइ आवै सतगुरु होइ सत राह बतावै ॥
गुरु सोई जाको चित थीरा । सुरति सरोतर साजे वीरा ॥
केतो चूक शिष्य सों परई । सतगुरु पूरा सब परि हरई ॥

समय–जाका चित्त समुद्रसा, बुद्धिवन्ता मति धीर ।
सो धोखै बिचलै नहीं, सतगुरु कहै कबीर ॥

चौपाई

लक्षण लक्ष्य बिचारै जानी । निरखै आदि अन्त सहिदानी॥
गुरु पूरा शिष्य होय उदासा । गुरुगमन लेई शब्द परकासा ॥
आदि अन्तकी परिचय लेई । पाछे भेद शब्द तेहि देई ॥
परखै परिचय परखै रेखा । शब्द सनेह सुनावै लेखा ॥
त्रिकुटी तीर गुञ्ज जो होई । परिखै शब्द रहै तन गोई ॥
ममता मोह करै हंकारा । अन्तर कुटिल चतुर वरिआरा॥
पलक भुअङ्ग परोहन साथा । हृदय मलीन नवावै माथा ॥
वरौनीपर जो गुञ्जै गुञ्जा । महा सुबुद्धि होइ मुख पुञ्जा ॥
हृदय मलीन होय मुख छाहीं । गुरु गमि शब्द विचारै नाहीं ॥
लहसन मासा होय मुखमाहीं । शुक्री रबी जमाहिकी छांहीं ॥
राज बरन औ लँबी देहा । गुरुगमि शब्द बिचारै नेहा ॥
नेत्र कीर्ति कुटि वृक्षकी शाखा । बोले सदा मधुर धुनि भाखा ॥
बरण छीन लौ नेत्र मलीना । हृदय कपट मुख रह अधीना ॥
भ्रुकुटी ऊँच शीश छतनारा । ज्ञान महाबल कथै अपारा ॥
लम्बी नासिका श्रवण है छोटा । हृदय शुद्ध मुख बोलै खोटा ॥
राज बरनहि मोट तन भारी । छोट शरीर ज्ञान अधिकारी ॥
मोटी नासिका ऊँच लिलारा । ज्ञानहीन मन कथै अपारा ॥

पातरि अधर कपोलन्ह माँसा । ज्ञान महाबल कथे निरासा ॥
धरनी धीर धरै गरमाई । डाढी दरबर औ बहुताई ॥
आगै ग्रीव गुंज होइ भारी । माया सवन क्रोध अधिकारी ॥
भुज भुअंग नागिनि मनिहारा । करपग रसना रेख सुधारा ॥
रेखा चारि होय चतुरंगा । काल कला धरि प्रकटे अंगा ॥
करपर होइ दीर्घ भण्डारा । ताके निकट भजनकी धारा ॥
सोई धार अखंडित होई । क्षीण भंग मति गहे बिलोई ॥
धारा मिलि अवधी कह आई । हंसदशा धरि पंथ चलाई ॥
सो धारा होइ मोट सनेही । ज्ञान गहे मति धरे ना देही ॥
वारिष धारा मिलै सुधारा । हृदयशुद्ध प्रीतम मनियारा ॥
भजनभंग कबहूँ नहिं होई । गहै शब्द गरभेद बिलोई ॥
यशकी रेख बिचारै जानी । जेठे पलौ जीवकी खानी ॥
तैसे ताहि बिचारहू रेषा । तहाँ तहाँ तस कर्म विशेषा ॥
अवधिके नीचे चुंगल होई । अयश करत यश पावे सोई ॥
विश्वा जानि लक्ष गहि लेऊ । जस विश्वा तस सुमिरण देऊ॥
विश्वा बीस होय नर पूरा । शब्द सनेही गुरुगमि शूरा ॥
अंडज होइ जड जनमें आई । घटी बढी होइ अंक लिखाई ॥
पिंडज खानि देह धरि आवै । बारह पंद्रह अंक चढ़ावै ॥
ऊष्मज होइ जग लेइ अवतारा । नरके कर दश अंक सुधारा ॥
अचल खानि जग जन्मे आई । बत्तिस विश्वा अंक चलाई ॥
चारि खानिकी लखै निशानी । दीहेहु ताकहँ शब्द सहि दानी॥
खानी लक्ष विश्वा लखि राखै । कर्म अकर्म भिन्नके भाखे ॥
पिंडज चारि भांति तन होई । कर्म अकर्म सुधारै सोई ॥
कर्मी नाहर घातिक जेता । अंक सुधारि लिखै कर तेता ॥
जे के करमह सती औ गेडा । लिखै अंक करमकर बेडा ॥

गाय भैंस परमारथ खानी । जैसे अंक सुधारै जानी ॥
पशु पक्षी परमारथ होई । नख शिख रेखा लखे बिलोई ॥
अंडज चार बरनकी काया । कर्म अकर्म तहाँ निर्मांया ॥
अंडज मीन सुफल तन होई । तैसे अंक सुधारे कोई ॥
अंडज पक्षी तन निरदाया । तहाँ तहाँ तस अंक चलाया ॥
करमी पंछी जोरा बाजा । तैसे अंक सुधारै साजा ॥
अंडज नाग कर्मकी खानी । बोरे काल नरक सहिदानी ॥
ऊष्मज बरन चारि तन होई । गुण अवगुण सब लिखै बिलोई ॥
भृंगी आदि कीट सुखदाई । भजनके अंक लिखै यमराई ॥
बहुतक कीट होय सुखदाई । मारि खात नर रोग नशाई ॥
तासु लिखै परमारथ खानी । कर्म अकर्मकी सुनिये बानी ॥
एक कीट दुखदाई होई । कीटहि कीट खात है सोई ॥
सो निशान करमकर होई । जेतिक अंक लिखै तन सोई ॥
एक कीट नर दृष्टि न आवै । तेहि अवगुणते काल नचावै ॥
अचल खानि की चारि निशानी । गरम शीतल लिखे अमृतवानी ॥
गुण औगुणको करै विवेका । गुण अवगुण नरके कर रेखा ॥
सो सतगुरु जो सोइ सयाना । चारि खानिको लखै निशाना ॥
पाप पुण्यको करै विचारा । ताहि तहाँ निज पान सुधारा ॥
कर्म जीव कर्महिकी खानी । काल कर्मकी बोलै बानी ॥
सतगुरु सोइ जो लक्ष्य विचारै । लक्ष्य विचारिके पान सुधारै ॥
चोर साहुको करै विचारा । भाव विचारि पान निरुआरा ॥
कपटी जीव कर्मबसि अंधा । शब्द सुनत चित होइ विष मंदा ॥
अस कर्मज जब देखि बिचारै । कर्म मिटाय पान निरुआरै ॥
खानिकी लक्ष फेरि जब लेई । तब तेहि शब्द परीक्षा देही ॥
विश्वा निरखि विचारै रेखा । गुण अवगुणका जानै लेखा ॥

कर पलौ कर रेख विचारै । तिरछि विषमको लेख सुधारै॥
तिरछा रेख बिस्नाकी खानी । जस देखै तस बोलै बानी ॥
विषम रेख कर्मंज अधिकारी । जत कर्मंज तत रेख सुधारी ॥
ततका मल हरि परसे परनारी । सुनो धर्मनि मैं कहौं विचारी ॥
नख उज्ज्वल होइ गुंज चितेरा । कलह कल्पना यमकर घेरा ॥
करपर लिखै विषमकी खानी । गुण औगुणकी लिखै निशानी॥
तिरछा रेख नारीकर नेहा । तासु नेह सुत सुता उरेहा ॥
माता पिता बन्धु भरतारा । विषमरेख यम लिखै बिचारा॥
अवधि तीर दोउ तिरछा उरेहा । भक्ति भंडार विषमकर नेहा ॥
मीन पूछ भंडार सुधारी । सुख संपति बिभौ तन टारी ॥
नवो खण्ड यमरेख सुधारी । सुख संपति बिभौ तन टारी ॥
गुण अवगुणसबतबहि लिखावहु । युक्ति जानिके हंस चेतावहु ॥
हंसा दासा तबही नर पावै । जब करताकी दशा मिटावै ॥
काल कर्म कालकी खानी । चाल चलावै नरकाग समानी॥
काक कुबुद्धि तेज तनमाही । सतगुरु शब्द बतावहु ताही ॥
काक कुबुद्धि तजे कुटलाई । तब सतगुरुके शरण समाई ॥
काक कुबुद्धि तत चाल मिटावै । तब निर्वान परमद पावै ॥
बुद्धि फेरि पलटावै बानी । सतगुरु शब्द गहे सहिदानी ॥
लोक लाज कुल दशा छुडावे । तब कौआते हंस कहावै ॥
यम रेखन की जानै बानी । सौ सतगुरु सोइ तत्त्व ज्ञानी ॥
रेखा विना न लेखा पावै । बिन लेखा नहिं गुरू कहावै ॥
सूकर खान गीध औतारा । बिनु यमरेख लखै नहिं पारा ॥
यमकी रेख सकल जब जाने । गुण अवगुण तबही पहिचाने॥
करपर होय चक्रकर थाना । शंख सीप गुरु भेद बखाना ॥
पाँचों चक्र होय सम तूला । योगकला चतुरथ अस्थूला ॥

एकचक्र अथवा दुइ होई । कछु ज्ञानी कछु दुर्मति खोई ॥
तीनि होय तो होय उदासा । चार होय तो सूर्य प्रकाशा ॥
पाँचौ शंख होंय करमाहा । दुख दारिद जान अवगाहा ॥
सीप होई तौ होय उदासा । शब्द प्रतीत शब्दकी आसा ॥
नखशिख रेख बिचारेहु जानी । तबहि सुधारेहु हंसकी खानी ॥
समय-नख शिख जानिके, तबहि सुधारेहु पान ।
भर्मभूत नहिं दर्शही, हंस होय निर्बान ॥

चौपाई

निर्खहु आदि अंत सहिदानी । गुण अवगुण देखहुँ बिलछानी ॥
कर्मजीव काल अधिकारा । कर्मके घर लेई अवतारा ॥
वरण भेद परिखै कुल जाती । रेखा लेख देखै उतपाती ॥
कर्मी काल कर्म वश होई । गुण अवगुण सब देखि बिलोई ॥
उपजे चोर जुआरी झूँटा । कर्मी काल कर्म धरि लूटा ॥
कामीके घर कर्मी होई । कर्म रेख तब देख बिलोई ॥
कर्म खानि कायामहँ बासा । सुनै शब्द चित होई उदासा ॥
भर्म भूतकी गहै निसानी । पूजै शिला औ उलछै पानी ॥
मारु मारु मुख बानी भाखै । मन बशि जीव काल घर राखै ॥
नेत्र बिरह रस भ्रुकुटी छीना । कबहूं चंचल कबहुँ मलीना ॥
बालक होई पौनके साथी । मदमाते जस मैंगल हाथी ॥
तिन जीवनकी दशा मिटावै । पाछे सत्य शब्द समुझावै ॥
पद्म मुरक जाके तन होई । सो कर्मी जग जीवै लोई ॥
दया लगनकी परमित पावै । निर्मल हो सत्यलोक सिधावै ॥
नेत्र विशाल रक्तकी झांई । सुरति सनेह ज्ञान बहुताई ॥
जब तब चितमहँ संशय आवै । ज्ञान गम्यते मार बहावै ॥
ताकी निर्णय अगम सुभाऊ । पावै सत्य शब्दको दाऊ ॥

काग बुद्धि मन दशा छुडावै । पावै शब्द लोक सो आवै ॥
स्वेत कुष्ठ मद गात मलीना । कर्म विवश विषयी लौलीना ॥
जहद कुष्ठ मोती मनी भारी । धुन्ध कुहेर बहिरी रकतारी ॥
शून्य भाग्य दाग मतिमारी । फोकट कुष्ठ औ गंध पहारी ॥
रक्तबिकार जहर धुनि फीका । अंग मलीन कर्मको लीका ॥
पाछिल कर्मज नरकी देहा । परखे सतगुरु शरण सनेहा ॥
तासु निशान परखिके काया । नेत्र गुञ्ज विषवाण बनाया ॥
कर्म निशान दशा पहिराया । तनविकार गुरुवचन नभाया ॥
तेहि जनि देहु मुक्ति बर बीरा । निश्चय काल करै बड पीरा ॥
पीरा सहै जीव शब्द न मानै । गुरु निन्दा निशिबासरजानै ॥
निन्दा करत जाइ यमदेशा । ज्ञान बुद्धि नाह गहै सदेशा ॥
गुरुकी दया जो मुखमहँ आनै । लोभ लहरि ममता मनसानै ॥
कबहिं न होहि ताहिकरकाजा । कितनों करै बुद्धिकर साजा ॥
गुरु निन्दा कुष्ठी औतारा । परै रौर नरककी धारा ॥
सो सतगुरु जो होहि सयाना । ऐसे जीव कहँ देइ न पाना ॥
पान लेइ अंतै ञगडावै । स्वर्ग नर्क महँ ठांव न पावै ॥
तनकी दुर्मति लहै न पारा । भजै राज नर्ककी धारा ॥
कर्मी खानि दहे नर पावै । पाछिल अवगुण संगहि आवै ॥
तेहि जनि देऊ शब्दसहिदानी । मानहु सत्य शब्दकै बानी ॥
धोखे आइ पान जो लेई । पाछै समुझि सिखावनि देई ॥
सुनत सिखावन हर्षित होई । ताहि देहु गुरुशब्द बिलोई ॥
गुरु की त्रास करै लौ लीना । सुनत सिखापन होइ अधीना ॥
मानै त्रास रहैं लौ लाई । पावत पान करम कटि जाई ॥
उतपनि लगनजो साधहु धीरा । ताहि लगन सँग साजहुबीरा ॥
नाम पान पाँजी समुझायहु । सत्य शब्दकी रहनि बतायहु ॥

कामिनि कनक कलाकी फंदा । अरपै दुनौ शीश मनमंदा ॥
कामिनि अरपै कनक चुरावै । इहि विधि हंसलोकनहिंआवै ॥
कनक अरपि कुलभावदिखावै । बाजी दिखाइके कलाछिपावै ॥
कामिनि कनक करै सम तूला । पावै शब्द मुक्तिकर मूला ॥
चाल विना लागै बडि वारा । तामें नहिं है दोष हमारा ॥
चाल चलै कुलदशा मिटावै । भक्तिसार धरि लोक सिधावै ॥
कथनी कथै करनी नहिं जानै । ताते अवगुण सबै बखानै ॥
कथनी कथै लोक नहिं जाई । भात कहै नहिं भूख बुझाई ॥
पानी कहै प्यास नहिं जाई । कथनी कथै पाछे पछताई ॥
कथनी थोथर करनी सारा । कथनी कथि कथि हुये गँवारा ॥
कथनी कथि जो करनी करै । कहैं कबीर सो प्राणी तरै ॥
समय–करनी बोलै पारकी, करपै लै व्यवहार ।
करनी कर शब्दै गहै, उतरै भवजल पार ॥

चौपाई

महा शून्यके भीतर रहई । सत्यलोक की बातें कहई ॥
कहै अर्थ कथ करै विचारा । कहै कबीर सो शिष्य हमारा ॥
कथै आन करै जो आना । सो अब जानहु पशू समाना ॥
जैसा कहै करै पुनि तैसा । हैं हमहीं हमहीं सो ऐसा ॥
करनी करै कहै तब बाता । ताहि मिलै गुरु समरथदाता ॥
कथनी कथै गर्भ होय भारी । बिनु करनी सब यमकीबारी ॥
समय–करनी गर्भ निवारनी, मुक्ति सारथी सोय ।
कथनी कथि करनी करै, तो मुक्ताहल होय ॥

चौपाई

इहि विधि गहै शब्दकी आसा । निश वासर हम ताके पासा ॥
अति अधीन करनी कर शूरा । करनी किये मिले गुरुपूरा ॥
शूर होय करनी मन लावै । भक्ति करै जगबहुरि न आवै ॥

करनी शूरा कथनी सार । करनी केवल उतरै पार ॥
करनी करैं शूरमा होई । कादर करनी करै न कोई ॥
शूरा होय तौ करनी आवै । कादर होई सो बार लजावै ॥
समय–शूरा सोई सराहिये, अंग ना पहिरे लोह ।
लरै सकल बँद खोलिकै, मेटै तनकर मोह ॥

चौपाई

सदा अधीन रहै तनमाहीं । परिचे शब्द विचारे नाहीं ॥
रहे अधीन सतगुरुके आगे । निशवासर सेवा चित लागे ॥
जो लगि नहीं अधीनता आवै । तब लगि सत्य शब्द ना पावै॥
समय–नहीं दीन नहिं दीनता, नहीं सन्त सन्मान ।
ताघर यम डेरा किये, जीवतै भया मसान ॥

चौपाई

सदा अधीन रहै जो प्रानी । दीनेहु ताहि शब्द सहिदानी ॥
कुल अभिमान महानद भारी । भक्ति पन्थ गहि ताहि सुधारी ॥
शब्द लेइ कुलदशा न तोरे । तेहि यम विषम सरोवर बोरे ॥
भक्ति करै कुल कानि न खोवै । आवागौन गर्भ सुख गोवै ॥
जननी बेटी भैनी बाला । बहिन भयए ततक्षण काला ॥
इन्हते होइहि भक्तिकी हानी । लाज नदी महँ बोरे आनी ॥
कुलकी राह बहारै लोही । कुलना तयारी छुती बिगोई ॥
समय–कुलकरनीके कारने, हंसा गये बिगोय ।
तब काको कुल लाज है, जब चला चलाको होय ॥

चौपाई

कामिनि कनक कालकी खानी । काल कला धरि बोलै बानी ॥
इनते होय भक्ति कर नाशा । ताते बहुरि गर्भ महँ बासा ॥
परदा प्रकट जबै ना होई । बोलै वचन मधुर धुन सोई ॥

परदै रहै लाजकी बँधी । परदा साथ कालकी सँधी ॥
गुरुसों कपट करी धन लीनी । सुरति निरति बिनुकाल अधीनी ॥
कामिनी परदा सति सो ठानै । लाज लिये मुख बात न आनै ॥
गुरुके परदा बांचै नाहीं । बूडै विषम सरोवर माहीं ॥
गुरुसम मात पिता सो नाहीं । गुरु बिन बूढि सरोवर माहीं ॥
गुरुसम मात पिता नहिं होई । मात पिता गुरु जानहु सोई ॥
समय–जे कामिनि परदै रहै, गुरुमुख सुनै न बात ।
ते कामिनि कुतिया भई, फिरै उघारे गात ॥

चौपाई

लोकलाज पति सबै बिचारा । लक्षण लक्ष्य सबै निरधारा ॥
जाको होई भक्तिकी आसा । सतगुरु चरण करै विसवासा ॥
तजै गर्भ जो निकसी आसा । पावै सतगुरु चरण निवासा ॥
यमको अन्त जानि जो पावै । भवसागर तब साधु कहावै ॥
सतगुरु चरण गहै चित जानी । मेट कुटिल कर्मकी खानी ॥
सन्त कहावै अन्त सम्हारी । चौदह काल चरण चित धारी ॥
चौदह यमकर सकल पसारा । सतगुरु शरण होई निरुयोरा ॥
चौरासी कर करम अपारा । बिनु सतगुरु का करै उबारा ॥
गुरु करता गुरुदेव नरेशा । बिन गुरुगम सब भेद अनेशा ॥
गुरुसे दूसर और न कोई । जाते मुक्ति पदारथ होई ॥
समय–गुरुकरता कर मानिये, रहिए शब्द समाय ।
दर्शन कीजे बन्दगी, सुनै सुरति लगाय ॥

चौपाई

आगे मिलै बन्दगी कीजै । पाछै चरण कमल चित दीजै ॥
शब्द सुरति मिलि रहै समाई । ताप तपै नहिं सुरति समाई ॥
एकै देह एक अस्थूला । एकै भाव भक्ति कर मूला ॥

शिष्यके हिरदै गुरुके बासा । शिष्य रहै गुरुचरण निवासा॥
गुरु शिष्यसों अन्तर नाहीं । मन है एक देह दुइ ताहीं ॥
शब्द स्वरूप गुरूकर बासा । सुरति स्वरूप शिष्यकी आसा॥

समय-गुरू समाना शिष्य महँ, शिष्य लियाकरि नेह ।
विलगाये विलगै नही, एक प्राण दुइ देह ॥

चौपाई

ताहि गुरूसों सत्य जो कीजे । बाहर अंतै चित्त ना दीजै ॥
जो गुरु शिष्य हृदय नहिं होई । तासों सत्य करै नहिं कोई ॥
गुरु बाहर शिष्य भीतर आवै । दुबिधा धोखा काल तेहि लावै॥
सत्य होय सो सत्यहि जानै । गुरुकहँ राखि हृदयमहँ आनै॥
गुरु हृदये सो बसै निनारा । सत्य करत जाई यमद्वारा ॥
गुरु शिष्यसों बाहर बसई । सत्य करत काल तेहि डसई ॥
गुरुकी मति अंतै रहै बासा । शिष्यकी मती गुरुके पासा ॥
ऐसे गुरुसों सत्यजो करहीं । सेवा करत काल तेहिं धरहीं ॥
शिष्य सयान गुरू अज्ञानी । धोखै होइ दुनोंकी हानी ॥
गुरु शिष्यकी मति एकै होई । सत्य करै तारै कुल दोई ॥
गुरुकी मति जो शिष्य न पावै । काज विसार चिंता मन लावै॥
गुरुको भेद लखै नहिं बानी । सत्य करै कुमती अज्ञानी ॥
नवका ऊपर बहुजीव चढावै । खेवा विना पार नहिं पावै ॥
खेवनहार चीन्हि जब लेही । पाछै पाँव नउका पर देही ॥
खेवन हार चीन्हि नहिं पावै । नउका चढै सो मूर्ख कहावै ॥
सागर सुमति मुक्तिकी धारा । ममती न्याव ज्ञान कडहारा ॥
करै विवेक चोर औ साहू । बिना विवेक घाट लागु न काहू॥
चोर जानिके पाँव न देई । साधु जानिके पारहु जेई ॥
चोर साहुकर भाव बतावा । सागर नाव धार दिखलावा ॥

चोरके नाव चढै जो कोई । सागर पार कबहुँ नहिं होई ॥
साहुकी नाव होइ असवारा । सागर उतरत लाग न वारा ॥
सागर पार मुक्ति कर वासा । जो गुरु मिलै तो करै निवासा ॥
घर घर गुरू घरहि घर चेला । लालच बाँचै फिरै अकेला ॥
जैसे श्वान कामबश धावै । तृष्णा बाँधें अंग लगावै ॥
तृष्णा मिटै गांठि जुरि जाई । पाछे शीश धुनि पछिताई ॥
एहि बिधि होइ दुवोजग भूटा । काल कलाधरि गहै न खूटा ॥
ऐसी सत्य करै जो कोई । धोखे जाय काल बसि होई ॥
गुरुकी करनी शिष्य जो पावै । तब सत्य करै सत्यलोक सिधावै ॥

समय-सत्य तो तासों कीजिये, जहवां मन पतियाय ।
ठाँव ठाँवकी सतीसों, कुलकलंक चढि जाय ॥

चौपाई

अंकके मिटत कलंक मिटि जाई । अंकके रहत अकलंक न जाई॥
अंक लिखा यम एहतन माहा । अंक मिटाइ देहु तेहि माहा ॥
नख शिख अंक लिखा यमराई । चौदह कला थाना बैठाई ॥
गुरुगमि शब्द जानि जो पावै । तब चौदह यमफन्द मिटावै ॥
एहि फन्दै सुर नर मुनि भूलै । देह धरी धरि सब जग झूलै ॥
चौदह काल बिकार अन्याई । नर नारी घट रहै समाई ॥
भिन्न भिन्नके न्याय विलोवै । पारस निहार अन्तमुख गोवै ॥
प्रथम काल कामके अंगा । नख शिर व्यापै विषै भुजंगा ॥
चित्तभंग औ कुल व्यवहारा । लाज सनेह सकुच बटपारा ॥
आलस निद्रा रूप बरियारा । लालच लोभ मोह कर धारा ॥
विषय वास बसै बेकारा । इन्द्र चौदह मिलि भक्ति उजारा॥
भक्ति प्रतीत शितल इन्हनासी । प्रेम बिगारि लगावहि फासी ॥
दया धीरज संतोष न आवै । सुमति सहज लै दूरि बहावै ॥

निर्भय ज्ञान विवेक गरासै । सुरति निरतिलै उपजत फाँसे ॥
सो सतगुरु जो होय सयाना । निर्भय लगन देइ तिहि पाना ॥
निर्भय दशा सूर समुझावै । क्रूर कपट और भर्म बहावै ॥
निर्भय होइ भय तिनुका टूटा । नरनारी गुरु यमसों छूटा ॥
लगन सनेह गहै सहिदानी । उतपति प्रलय विचारै खानी ॥
आदि अन्तकी लगन विचारै । सत्य दिशा धरि हंस उबारे ॥
चन्द सूर्य की गहै निशानी । आदि अन्त गुरुभेद बखानी ॥
चंद सनेह लेह औतारा । सोइ लगन गहि उतरै पारा ॥
ताहि चन्दकी नाकी पावै । सौ पाँजी गहि लोक सिधावै ॥
सूर सनेह विषम जम जोरी । प्रलय काल चौरासी डोरी ॥
सूर्य सनेह होइ सन्धारा । मारिके बहुरि लेइ औतारा ॥
जत उपजै तत बिनशै प्रानी । सूर्य सनेह सबनकी हानी ॥
चाँद सूर्य दोय गढके राजा । पौरि पगार बनौ दरवाजा ॥
अहुँठ हाथ गढ भीतर साजा । कपटभाव माया उपराजा ॥
दुइ दरवाजै बानो किंवारा । एकपट रहै एक खुलै किंवारा ॥
दोइ लगनकी राह संवारी । आवत जात लखै वैपारी ॥
आवत एक राह चलि आवै । फिर तेहि राह जान नहिं पावै ॥
जौनी राह महलमहँ आवै । तहाँ स्वाति मुक्ता बरषावै ॥
तहाँ स्वाति मुक्ता बरषावै । फिरि तेहि रायजाय जो खावै ॥
मुक्ता होय जग बहुरि न आवै । देवरूप होय जय जय पावै ॥
जब आवै तब खुलै किंवारी । जात समय फिरि मारत तारी ॥
जब वह द्वार जान नहिं पावै । तारी मारि बहुरि तहाँ धावै ॥
जाने बिना होय मतिहीना । भूलि परै होय काल अधीना ॥
आवत जौन तुरै चढि आवै । सोइ तुरै यम फेरि छिपावै ॥
आनै तुरै आन सो द्वारा । ताते पैर कालके धारा ॥

भूलै आदि तुरौ अस्थाना । ताते काल देहि बँधि खाना ॥
जौं वह तुरौ अन्त जीव पावै । खोलि कपाट बाहरको धावै ॥
आदि तुरौ चढि बाहर जाई । पाछै काल रहै खिसि आई ॥
आदि तुरौ बिनु द्वार न पावै । बहुरि बहुरि चौरासी आवै ॥
धर्मदास बिनती अनुसारी । सतगुरु हो मैं तुम बलिहारी ॥
आदि अन्त प्रभु कहौ बुझाई । पकर न पावै काल कसाई ॥
अन्त करै पुनि गर्भमें बासा । काया धरे करैं रहि बासा ॥
कायाते जब बाहेर जाई । ताकर भेद कहो समुझाई ॥
मैं आधीन हा मतिके थोरा । चरण टेकि प्रभुकरौ निहोरा ॥
आदि अन्त प्रभु कहौ बुझाई । सो सब जानौ चरण समाई ॥
वर्तमान भाषेहु उतपानी । जानेहु आदि भेद सहिदानी ॥
अन्त अवस्था कहौ बखानी । जाते आगे होय न हानी ॥
जाहि द्वार प्रथमें चलि आवै । तुम प्रसाद शब्द लखि पावै ॥
कर्म अकर्म वरण कुल जाती । कहेउ बुझाय दिवस औराती ॥
कर्म अकर्म भाषहु बहु भावा । थमकर अन्त नजरि सब आवा ॥
कर्मरेख काल लखि राखा । गुरुप्रताप जानी सब शाखा ॥
गुणअवगुण सब कहि समुझायहु । गुरू शिष्यकर भाव बतायहु ॥
सो सब जानि गही सहिदानी । आदिभेद गुरू नाम निशानी ॥
नखशिख काल लिखा सहिदानी । सो सब जानिपरी मोहि बानी ॥
करम रेख काल लिखि दीन्हां । सो हम जानि दृष्टिमहँ लीन्हां ॥
गुण अवगुण दोऊकर भाऊ । परिखे काल करमकर भाऊ ॥
जहां २ काल लिखी सहिदानी । तू अदया है सब पहिचानी ॥
नखशिख रेखा काल बनावा । सो जो रेख जानि सब पावा ॥
आदि मध्य भाषहु सहिदानी । सो निशान जानी सब वानी ॥
जो भरि कहेउ सिखावन आनी । सो सब जानिकरौ दिलछानी ॥

कहेहु बुझाय भुक्तिके नाहा । रेखा परखि देहु ताहि बाहा ॥
गुणअवगुणसबमोहिलखिआवा। रेखा परखि तब पंथ चलावा ॥
भाषेहु आदि लक्षकी खानी । सो सब जानि गहो सहिदानी ॥
गुणअवगुणसबमोहिलखिआवा। परखौ लक्ष हंसकर भावा ॥
लक्ष्य अलक्ष्य दोऊ लखि लेहू । पाछे बाँह हंस कहि देहू ॥
नर नारी लक्षण देखि शरीरा । पाछे देहो मुक्तिके बीरा ॥
करपर रेखा लखौ सुभाऊ । शीश हृदय नाभी कर दाऊ ॥
कच्छ जंग औ मीन निशानी । लक्षण परखि चेतावो जानी ॥
चौदह काल विषमंकर दाऊ । शरण सनेह हंस मुक्ताऊ ॥
चौरासी कर बीज अंकूरा । संशय मेटि देहु मतिपूरा ॥
करमी जीवहि सूम पठायहु । निःकर्मी कह लोक पठायहु ॥
यह सब भेद विचारेहु जोरा । दगा देह नहिं पावै चोरा ॥
उत्पति भेद सबै मैं पाया । वर्तमान हृदये महँ आया ॥
चरण टेककी करौं निहोरा । अंत अवस्था भाषहु थोरा ॥
जादिन अंत अवस्था होई । तादिनकी गति कहो बिलोई ॥
जादिन अंत अवस्था आवै । पाँजी भेद कहौ समुझावै ॥
जाते हंसहि काल न खाई । मुक्ति होइ सतलोके जाई ॥
जैसे आवा गमन बतायहु ।आदि मध्य सबकहि समुझायहु॥
तैसे कहो अंतकी बानी । जाते न होय जीवकी हानी ॥
धर्मदास मैं तुम्हैं बुझाई । अंत दशाकर भेद बताई ॥
जा दिन हंस देह तजि जाई । ता दिनकी गति कहो बुझाई ॥
सोरह खाई दश दरवाजा । रवि शशि संग जीव तहां गाजा॥
आवा गौन करै दिन राती । गहौ निशान छोडि कुलजाती॥
धर्मदास कुल जाति गँवावहु । तब तुम शब्दहि पारख पावहु॥
शशिके संग गर्भ जीव आवै । जलरंगतत्त्व चढि आनि समावै॥

ताहि संग रहै ठहराई । देह सनेह गहै यमराई ॥
काया परचै गहै निशानी । अंतकाल जीव करै न हानी ॥
जादिन अमल कालकी आवै । आगम भेद हंस जो पावै ॥
पावै भेद चित होय सयाना । गुरुते लेह सुधारस पाना ॥
काया परिचय आगम जानै । आदि अंत कह भेद बखानै ॥
प्रथमहि देह हमारी जो देखै । सो परिचय अवधी घट लेखै॥
अंत देह हम यमकहँ दीन्हाँ । जानि गहै जीव ताकर चीन्हाँ॥
देह हमारी निश दिन देखै । पूरण अटल सुफल तन लेखै॥
जब देखै बिनु शीशकी काया । तब जानै घट काल समाया॥
छटए मास अवधि नियरावै । हमरि देह यम अछप छिपावै॥
अपनी देह दिखावै काला । तब जीव जानै काल जंजाला॥
हमरी देह लै शून्य समावै । अपनी देह प्रकट दिखलावै ॥
यमकी देह शीश बिनु होई । तेहि देखत जीव जाइ बिगोई ॥
हमरी देह बिमल बिस्तारा । काल देह बहुरंग अपारा ॥
जर्द श्याह औ नील सुरंगा । और रंग बहु कला तरंगा ॥
हमरी देह रंग बिनु होई । नखशिख निर्मल देखै सोई ॥
जादिन आदि पुरुष निर्माया । तादिन देह वरण हम पाया ॥
सोइ देह धरि इहवाँ आए । कला अनंत जीव समुझाए ॥
देह धरे बहु लीला कीन्हाँ । ताते देह कालकर चीन्हाँ ॥
कालकला विष बान बनाया । सोइ विषनीर विषै दिखलाया॥
जब हम चले पुरुषके पासा । काया रही अधरही बासा ॥
काया त्यजी हम भए निनारा । सोई काया रही संसारा ॥
कायाकाल लीन्ह सहिदानी । अपने देश बसायसि आनी ॥
सो काया सबही दिखलाया । जो देखे सो थीर रहाया ॥
सो काया जो अधरहि देखै । शशि संपति सुखबिभौबिशेखै॥

ता काया की यह सहिदानी । सो काया मम हाथ बिकानी ॥
ऐसा काल भया अज्ञानी । हमसे लीन्हि सन्देह निसानी ॥
नरकी देह कालके हाथा । झाँई चले ताहिके साथा ॥
काया सरी गली इहाई जाई । झाँई जानि गहै यमराई ॥
गहै काल औ लेखा लेई । धोखा लाइ नरक महँ देई ॥
तेकाया कर करै बिचारा । तीन लोक तजिहोए निन्यारा ॥
सहज सून मह पकरै काला । झाँई साथ करै जञ्जाला ॥
काया धरिके लज्जित कीन्हाँ । तेहि कायाकर माँगै चीन्हाँ ॥
देह धरे कीहिसि अति चारा । झाँई साथ जाए नहिं पारा ॥
सो झाँई जो इहइ बिबेखे । कंठ ध्यान धरिहम कह देखे ॥
अखंड मंडील मह काया रहई । ताकर भेद जानके गहई ॥
एह काया तजि ईहई बासा । झाँई तजी होयलोक निवासा ॥
सत्य शब्द जानै जो कोई । ताको आवा गौन न होई ॥
शब्द शब्द जो जीव न पावै । झाँइ साथ गर्भ फिरि आवै ॥
आवा गौन लखै सहिदानी । आदि अंतकी बूझे बानी ॥
गुण अवगुण झाँईके संगा । ताते काल करै मतिभंगा ॥
झाँई झमकि दिखावै गाता । आदि अंतकी बूझै बाता ॥
हमरी क्योंकर ध्यान लगावै । देखत ताहि परम सुख पावै ॥
जब वह काया काल चुरावै । काया परिचय आगम पावै ॥
काया परिचय भेद बिचारै । नाम सुमिरिके हंस उबारे ॥
अंग अंगकी परिचय देखै । आगम जानि हरषितमन लेखै ॥
हर्षित रहै सदा दिलमाहीं । शोक मोह कछु व्यापै नाहीं ॥
कर औ शीश जानिके भावा । मास बरष कर आगमपावा ॥
आगम जानि गहै सहिदानी । बोलै सत्य शब्दकी बानी ॥
आगम जानि रहे लौ लाई । छूटत देह लोक तब जाई ॥

समाधान होइ आगम पावै । ता घट चोर न मूसन आवै ॥
लगन जानि जो पाँजी पावै । तत्त्व सनेह विलोक सिधावै ॥
आगमकी गति काया देखै । पर्वत नाम मंडल हित लेखै ॥
पर्वत पांच नाम अनुमाना । कहौ भेद सुन संत सुजाना ॥
पाँचौं पर्वत नजरि समावै । काया भेद नजरि तब आवै ॥
रवि लीला एक पर्वत भारी । चंद उनेह दूसर अधिकारी ॥
दुइके बीच सुमेर अनुमाना । देखत ताहि हंस निर्बाना ॥
चौथे मलया गिरि कैलासा । गोमत नाम पँचए परकासा ॥
पाँचौ पर्वत देखै सोई । गुरुगमि बुद्धि जाहि तन होई ॥
जब देखै तब कुशल शरीरा । विन देखै जानै तन पीरा ॥
रवि गिरि जादिन नजरेनआवै । तेजहि तन ना कष्ट जनावै ॥
चन्द्र शिखर जादिन नहिं देखै । द्रव्यशोक कछु हानि विवेखै ॥
जादिन कैलास नजरेनहिं आवै । मित्र हानि दुख खबरिजनावै ॥
गोमत पहार नजरि नहिं आवै । काया कष्ट देश दुख पावै ॥
गिरि सुमेर जादिनहीं देखै । अन्तकाल तन घाव विशेखै ॥
रसना कान नजरि नहिं आवै । मास सातमहँ काल चलावै ॥
जाकी रसना चूमक वासा । सो नहिं देखै सदा निवासा ॥
पर्वत धवला नजरि नहिं आवै । मास एक महँ मृत्यु जनावै ॥
तादिन काल चौकीअग आवै । ध्रुवमंडल नजरै नहिं आवै ॥
सो सतग्रुरु जो होय सयाना । जैमुन जानि देह तेहि पाना ॥
जबतै काया आगम नहिं पावै । तबतै अमी बीज नहिं पावै ॥
काम बसी पावे जो ताही । बोरे विषम सरोवर माहीं ॥
काया श्वास चलै पर मेहा । काल वश्य होय छाँडे देहा ॥
पश्चिम लहरी जो गावै जानी । पांजी द्वार लखै सहिदानी ॥
चंद उगै सूर्य अथवै जबही । हंस सुजन तन यागै तबही ॥

पूरी तत्त्व होय असवारा । पहुँचे सत्य लोक दरबारा ॥
सिंधु तेज होय तजै शरीरा । चले तेज चौराशी हीरा ॥
उतपनि लागन देह तजि जाई । संकट गर्भ धरे नहिं आई ॥
अपनी काया आपु बिचारै । आपन आगम आपु सुधारै ॥
औरो आगम कहो बुझाई । जातें अवधि आनकी पाई ॥
गुरू आपु घट परखै जानी । तब पावै शिष्यकी सहिदानी ॥
तन परि आस परै जो प्राणी । तब निरखै ताकी सहिदानी ॥
झाँई झमकि जोत नहिं दरशै । काया कष्ट काल नहिं परशै ॥
गगन अवाज सुने नहिं बानी । कर पल्लवकी लखै निशानी ॥
मधीक जल्लौ दूना करई । पल्लौ सब पुहुमीमों धरई ॥
जेठा पल्लव ऊपर उठावै । तासु लहुरा उठि देखलावै ॥
निपल सहुरा पल्लौ उठि आवै । तासु जेठ वह अटल रहावै ॥
अटल रहै की यह सहिदानी । काया कष्ट होय नहिं हानी ॥
सो पल्लौ पुहुमीते डोले । देह तजै अस आगम बोले ॥
दरश भयावन वदन मलीना । लंपट बोलै काल अधीना ॥
ताही भूत ताहि दिखलावै । महा भयंकर मोट दरसावै ॥
कर पग शीतल सबै शरीरा । माथ तपै औ पायर बीरा ॥
औषध का गुण व्यापै नाहीं । निश्चय अन्तकाल है ताहीं ॥
नासिका नेह बासा नहिं आवै । थोथरी जिह्वा स्वाद न भावै ॥
हाथ पाँव पुहुमी महँ मेलै । कांपे मेरु काल सँग खेलै ॥
छिन छिन माथ डुलावे सोई । जानहु अन्त काल पेहि होई ॥
आपन भाव दिखावै जबही । विषम कालाघट व्यापै तबही ॥
स्वपने शीश काटि कोई लेई । श्यामवरण कामिनि रति देई ॥
भइसा गदहा हाथी देखे । नाग श्वान औ भालु विशेखे ॥
झूरी बींद परै निशि सोई । चलैं देह तजि सर्वस खोई ॥

समय–गगन गरजै बिजुरी ना चमकैं, तहां दुनो बन्द देई।
कहैं कबीर दिन पांच सातमें, हंस पयाना लेई ॥

चौपाई

काया परिचय भेद विचारैं। आपु तरै औरन कहँ तारैं ॥
सो सतगुरु जो होय सयाना। श्वासा नेह करै बन्धाना ॥
परिखै लगन तत्त्व निर्वाना। गुण अगुण सब करै बखाना ॥
निशवासर चले सुरकी धारा। कायाकष्ट होइ अधिकारा ॥
तिथि अनुमान लखै सहिदानी। श्वासा सूर चले बलहानी ॥
बधिकके पहरे आपु उबारै। चन्द सनेह भेद निरुवारै ॥
श्वाशा सार गहै सहिदानी। शशिके घर महँ सूर्य उगानी ॥
जेतिक श्वासा सूर्य उगाई। चन्दाके घर पीवे अघाई ॥
काया कष्टताप मिटि जाई। शील हंस होवै सुखदाई ॥
कालकी अवधि मिटावै जानी। समाधान होइ गहै निशानी ॥
तेज सुनरकी खा अतिचारा। ताते चले चन्द्रकी धारा ॥
महा अनन्द सफल तन होई। काल कला नहिं व्यापै सोई ॥
जब जब काल सतावे आनी। तब तब भेद करे बिल छानी ॥
साधैं लहरि समुद्र सनेही। तबसुख पावै यह जग देही ॥
साधन करै कहैं लौलीना। तत्त्व स्नेह होय नहिं छीना ॥
प्राण आत्माके गुण पावै। जो सतगुरु निज भेद बतावै ॥
परिचय तत्व साधना करई। धोखैं प्राण न कबहू परई ॥
रूखा रूखा करै अहारा। सोई गहिहै भेद विस्तारा ॥
काम क्रोध तजि करै फकीरी। ज्ञान बुधि धारै तत्व धीरी ॥
वाद विवाद सबै विसरावे। दुविधा दूसर निकर न आवै ॥
श्वासा सार गहै गुंजारा। जाप जपै सतनाम पियारा ॥
अजपा जाप जपै सुखदाई। आवै न जाय रहै ठहराई ॥

चारि कमलकी परिचय जानै । गहै भेद निज तत्त्व बखानै ॥
फाहा रोपि करै निरुबारा । आदि अन्त सब करै सुधारा ॥
योजन चार करै बन्धाना । आसन मारि रहै निर्बाना ॥
चारि योजन खूटी विस्तारा । रूई फाहा जो करै सुधारा ॥
सुधा रूई नर नाटक माहीं । खूँटी ऊपर रोपै छाहीं ॥
बैठे आसन भूल सुधारी । देखै परिचय श्वास विचारी ॥
चलै श्वास रतना गति नेहा । रवि शशि उदय विचारै देहा ॥
फाहा सनमुख बैठि रहावै । निरखे ताहि तत्त्व जब धावै ॥
पांचौ फाहा रोपै जानी । तत्त्व सनेह करै विलछानी ॥
रविके घर होय श्वासा आवै । योजन एक तीनि तहां धावै ॥
एक योजन एक एकै विचारा । प्रलय प्रचंड तेजकी धारा ॥
ताहि लगनकी गहैं निशानी । कछु सुख उपजै कछु होय हानी ॥
मूलकमल ताकर रहि बासा । तेजपुंज है बुद्धि प्रकाशा ॥
ताहि कमलकी देखे आशा । मूलकमल तब होय प्रकाशा ॥
तासु लगन लै साजहु बीरा । उपजै बुद्धि ज्ञान गंभीरा ॥
ताहि लगनकी पांजी पावै । तेजपंज मह बहुरि न आवै ॥
दूजै योजन तजि प्रकाशा । ताहि तत्त्व की देखै आशा ॥
निर्वृत कमल महँ ताकर बासा । काया मध्य सुभर रहि बासा ॥
योजन तीन जो है विस्तारा । पृथ्वी तत्त्व जानकी धारा ॥
ताहां बसै पवन बल वीरा । जाहि पवन संग उपजै छीरा ॥
ताके संघ सँवारहु वीरा । निर्मल हंस होय गंभीरा ॥
श्वासा साथ पारस सहिदानी । विन रसनाकी बोले बानी ॥
दुसरी घडी चन्द्र सनेहा । गहो बिचार देखिकै देहा ॥
ताकी श्वासा चल चोचण्डा । कहे कबीर मिटै दुखदण्डा ॥
झीनी श्वास होइ गुञ्जारा । चले प्रचंड बासुकी धारा ॥

दुई योजन पैज बिचारा । पौनविजय बल तहाँ सुधारा ॥
पुहुप कमलमहँ ताकर वासा । देहमध्य नाभी रहि बासा ॥
जाते होय क्षीर बंधाना । होइ खटाई स्वाद अमाना ॥
पुहुप कमल होइ लगन विचारै । पौन सनेह पान निरुवारै ॥
ताहि तत्त्व श्वासा चढि धावै । सोइ कमल जानि जो पावै ॥
जौन कमल तत्त्वकी धारा । तौन कमल नेव बिस्तारा ॥
जाहि तत्त्व सँग पान पठावै । ताहि कमलमहँ ले पहुँचावै ॥
आन कमलपर जीवकर बासा । आनते पान करैं परकासा ॥
आन कमलमहँ पहुँचे याना । धोखे काल करे पछताना ॥
जाहि कमलपर जिवका बासा । तहाँ बयान कर रहु प्रकासा ॥
बालक की जिह्वा रहि बासा । सुभरकमलमहँ करै निवासा ॥
ताही लगन जीवके गहई । पावत पान काल न दहई ॥
संशय कमल देहु जनि पाना । नहिं तौ हंस होय अज्ञाना ॥
उपरहि पान लेइ यमराजा । संकट शिष्य गुरुकह लाजा ॥
सुरति कमल जीवकर बासा । ताहि कमलपर साधहु श्वासा ॥
पूरी तत्त्व चलै जब धारा । योजन चारि जाय चढिपारा ॥
सुरति कमलपर ताकर बासा । तहँवा पान करै परकासा ॥
पालता पौन ताहिके संगा । परसत ताहि होय नहिं भंगा ॥
पवन सजीवक करै अनुमाना । सो हंसहि लै जाय ठिकाना ॥

समय–चारि कमलमहँ चारि पौनहैं, चारिउ कमल अपीव ।
दाज पान सुधारिके, जाहि कमलपर जीव ॥
चतुरंगीकी लच्छ नहिं, तबहि सुधारहु पान ।
द्वादश कमल बिचारि हो, चौकाके अनुमान ॥
चौका चन्दन कीजियो, मलयागिरिको नाम ।
चारों कमल सुधारिकै, मध्य ताहिके धाम ॥

चौका चारि सुधारके, चारि कमल अस्थान ।
चारिउ पौन उरेहिके, देखो सुरति अमान ॥
सुरति सनेही पौन कहँ, सुमिरहु सुरति सुधार ।
चारिउ अंक सुधारिके, जलदल धरेउ सुधार ॥
प्रथमहि चौका कीजिये, चारि खूँट अनुमान ।
चौरासी द्वीप सुधारिहै, सत्य लोक सहिदान ॥
ऊपर पँखुरी द्वीपके, भीतर चौका चारि ।
द्वादशदल निर्बान है, देखो सुरति बिचारि ॥
माया छत्र बिस्तारहू, सती नाम विश्वास ।
द्वादशदल तहाँ सुरचिके, कीएहु प्रेम प्रकाश॥
जापर बसै निरक्षर, ताहि तत्त्वको नाम ।
शब्दसुधारस खानि है, हम तुम तेहिके धाम ॥
शब्द सुरतिको नाम गहि, सुमिरै शब्द सुधार ।
तब सिंहासन पग धरै, रचै लोक विस्तार ॥

चौपाई

कदली दल आनेहु पनवारा । धरहु नारियर प्रेम सुधारा ॥
सनमुख कलशाले साजेउ जानी । बाती पांच धरेउ तहाँ आनी ॥
आसन लिखेहु लगनको नामा । भर्मभूत भाजै तजि धामा ॥
दहिने राखहु दल परवाना । मेटै जहर अभी धरि ध्याना ॥
निर्मल नीरकी देइ दुहाई । जहर नीरकी दशा मिटाई ॥
आसन लेई लगनको नामा । लगन सनेह सुधारै धामा ॥
खरचा पांच धरेउ तिहि माहां । प्रकटे सत्य शब्दकी छाहां ॥
बहुबिधि बाससुगन्धमिलायहु । चौकाके दहिने धरवायहु ॥
ताके निकट शिला अस्थाना । रेखा रोपि करेहु बन्धाना ॥
सत्यशब्द ले रखै बनायहु । ताके ऊपर शिला बैठायहु ॥

शिला ऊपर फिरि अंकसुधारेहु । शुक्तीकी श्वासा तहँ चारेहु ॥
ता ऊपर पुनि धरहु कपूरा । काल अंश होवै सब दूरा ॥
चौकाके बाएँ अस्थाना । आरति थार धरेहु सहिदाना ॥
आद्याके श्वासा सुख मूरी । ताको नाम सुधारहु पूरी ॥
अंक सुधारिके आसन कीन्हेहु । ताके ऊपर थार जु दीन्हेहु ॥
तिसरी श्वास करुणा मैं उचारहु । सुमिरणसारसत्यमुखभाखहु ॥
सुगन्ध सुपारी तापर राखहु । ॥
चौका कलश मध्य अस्थाना । धरहु मध्य धोती औ पाना ॥
नरियर मिष्टानमध्यमें राखेहु । धोती पान बचनअभिलाषेहु ॥
इहिविधिकी यह सब विधिपूरा । सुमिरतके हम होव हजूरा ॥
लोक निशान पुरुषजो भाखा । सो हम गुप्त एको नहिं राखा ॥
सब विधि ज्ञान तुम्हें हमदीन्हां । अब हम लोक पयाना कीन्हां ॥
नारियर है ब्रह्मा कर माथा । सो हम दीन्ह तुम्हारे हाथा ॥
ताके मध्य जीव सहिदानी । मानतताहिकियहु बिलछानी ॥
ज्योति कपूर कियेहु प्रसङ्गा । काल अंग परसतहोइ भङ्गा ॥
सतएँ श्वासा ताके सङ्गा । जाते यमकर मिटै तरंगा ॥
जैसी लक्ष्य जीवके पासा । हाथ नारियर नीकसुतासा ॥
कर्मी जीव कर्मके बांधा । निर्णय भेद न जानहिं अन्धा ॥
अङ्ग छिपाइ करै जिव बोटा । ताकर होय नारियर खोटा ॥
निर्मल हँस होय सुखदाई । मोरत नारियर वास उडाई ॥
निर्मल अंकुर सेतपुर होई । शब्द सनेही प्रीतम सोई ॥
जैसी दशा जीवकी जानी । प्रकट होय जब नरियरभानी ॥
जेते लपट तासुकी काया । सो नरियरमें होय सुभाया ॥
नरियर एक होय जलरंगी । सतगुरु सत्यशब्द परसंगी ॥
पारसते ताकी उतपानी । हंस दया धीर निकसी खानी ॥

कर्मी एक रोष निर्मांवा । निरखत ताहि तत्त्व कर भावा॥
कपट सनेह कर्म सहिदानी । ताकर अङ्गसत्य करै हानी ॥
शब्द विचारि करेहु गुरुआई । पूरी तत्त्व लेहु सङ्ग लाई ॥
जेतिक लक्ष जीवकी काया । तेते पान साथ निर्माया ॥
रेखा गुञ्ज बिचारेहु जानी । विषमतिछर करि है जिम हानी॥
गुरुकी रेखा जाहि पर होई । छत्र सोहावन पर्श मिति सोई॥
गुञ्ज औ छत्र शरन मुकतायहु । ताहि पानपर अंक चढायहु ॥
सत्य शब्द पारस परसायहु । ॥
पारस मनि है तंत्त्व सनेही । तासु लगन लै पान डरेही ॥
पावत पान हंस घर जाही ।
पौन सजीवक जावन नेहा । तत्त्व लगन लै सुरति सनेहा ॥
सत्य नाम सुकृत सठिहारा । सो सहिदानी पान सुधारा ॥
छत्रके छल होई जेहि पाना । तापर अंक लिखै निर्बाना ॥
जाहि देहु हंसन कह खाहा । पान छत्र मणि दीजै ताहा ॥
निशदिन रहैं जो सुरति समानी । सो दीजै सीखन सहिदानी ॥
धर्मदास तुम जेठे भाई । हम लहुरे कीन्हा अधिकाई ॥
तुम्हरी वस्तु तुमहि कहँ दीन्हा । अब हम लोक पयाना कीन्हा ॥
जेते जीव आहि जगमाही । सो सब आवै तुम्हारे बाही ॥
तुम्हरे शिर जीवन कर भारा । आदि अन्तको तुम कडिहारा॥
तुमरे हाथ जीवकर काजा । काल डसैं तब तुम कहँ लाजा॥
वंश वयालिस कुलके राजा । ज्ञान गम्य सबै तेहि साजा ॥
उन्हके पास जीव जेते जावैं । सो सब सत्य लोक कह आवैं ॥
बंशके बंश छत्र मनिहारा । सोइ शब्द सुत वंश हमारा ॥
जेहिवां देइ सो लेकर जाई । काल डसैं नहिं मोरि दुहाई ॥
बंशके बांह जीव जत आवैं । यमकी नाक छेदि घर जावैं ॥

बंश बयालिस राज तुम्हारा । जिन्हसों पन्थ चलै संसारा ॥
कोटिन्ह दगा वंशपर पराई । कहै कबीर नाम बल ताई ॥
नाम कबीर पान है सारा । इहै नाम काल हंस उबारा ॥
नाम कबीर कहो गुरुराई । बावन लाख दगा मिटि जाई ॥
जाहि देहु औ नाम निशानी । हंस उबारि करै राजधानी ॥
वंश समाहि हंस हिया माँही । हंस देहि जीवन कह वाही ॥
अहनिंश नाम हमारो लेई । ताकों काल दगा नहिं देई ॥
भजनी भजन करे सुकहावै । अमर सनेह समाधि लगावै ॥
शाल दशा धरि इंस उबारै । विषम लहरि भवसागर तारै ॥
वँश बयालिस अँश हमारा । करपग शीश छत्र नि आरा ॥
कलावन्त शूद्र सुखदाई । हँसके नायक शरण सहाई ॥
वँशके चरण शीश कुरबानी । अङ्ग अङ्ग हमरी सहिदानी ॥
जाके मस्तक दीन्हें हाथा । काल करम नहिं ताके साथा ॥
चरण छुए रज अमृत लेई । ताकह काल दगा नहिं देई ॥
दया प्रीत सब जानत रहई । काल कर्म सब दूरि खँदे रही ॥
जासों कहै सत्य हित बानी । ताकी काल करे नहिं हानी ॥
जौन जीव सत्य पारस पावै । छोडै देह लोक सो आवै ॥
सुख सनेहसो पारस पावै । सो निश्चय सुखसागर आवै ॥
देह धरि प्रकटे संसारा । शब्द बिदेह हंस रखवारा ॥
जाकह देहि सत्यकर भारा । सोई शब्द सुत वंश हमारा ॥
करनी करै वंशकी चाला । ताको नाहिं सतावै काला ॥
करहुँ राज औ पन्थ चलावहु । शब्द सनेह हँस मुकतावहु ॥
राज पाट सौंपो अनुमाना । जम्बुद्वीप छत्र करहि अपारा ॥
आगे चलि है पन्थ विस्तारा । कालकला छल करहि अपारा ॥
तुमरे घर प्रकटीहि अन्याई । हँस दशा धरि पन्थ ननाई ॥

कपटकी भक्ति करहि विचारा । लाजधाज पाखंड पसारा ॥
ज्ञानदशा धरि पंथ चलैहै । ममता बाँधि जीव भरमैहै ॥
तहां आपु दृढ़ राखहु ज्ञाना । कालकिकला होय पिसि माना॥
बाहर काल चतुराइ भखीही । सदा अमान मुक्तिते रखीही ॥
सत्य दुहाई फिरिहैं जहां । टिकै न कील कलाकी तहां ॥
जो जिव शब्द हमार न मानी । सो जाने वो है यमकी खानी ॥
आन मेटि दुविधा फैलइहै । सो जिव सपनेहु मोहि न पइहै॥
शब्दकी शरण गहहि लौलाई । निर्मल हंस होइ सुखदाई ॥
काल कला धरि प्रकटहि आई । बिरलै हंस रहै ठहराई ॥
काल कला मुख भाषहि जबही । छुटिहैं चित्त हंसन कर तबही ॥
भाषिहि ज्ञानदृष्टि व्यवहारा । सुरति डोलाई करै अतिचारा ॥
कालपंथ महँ प्रकटिहि आई । ज्ञानमेटि भाषहि चतुराई ॥
शब्द वंशकी निंदा करि हैं । ममता बाँधि कालमुख परि हैं॥
आप थापी वंश उठै हैं । शब्द मेटि जीवन भरमै हैं ॥
एक परिपच बांधि है सोई । जो नहिं हंस हमारी होई ॥
जब परिपच सुनाइहि काला । शब्दन सुमिरै तेहि करै बेहाला॥
मन बच आश शब्दकी करि है । कालकी चाल चित्तना धरि है॥
मनवच जानि शब्द कहँ धरि है । निश्चय सत्यलोक सो जैहै ॥
पाषण्डकी गति देहु बहाई । शब्दकी शरण गहै चितलाई॥
शब्दकी आप शब्द लौ लाई । शब्द छोडि नहिं आन चलाई॥
शब्द पाइ करि है अभ्यासा । सुमिरन भजन शब्द विश्वासा॥
अमर समाधि शब्द अवराधे । अक्षरमांह निरक्षर साधे ॥
पूरी तत्व लखै जो कोई । पूरण ज्ञानगम्य जेहि होई ॥
वंश सदाहि या तत्व समाई । बंद करै तो मोरि दुहाई ॥
बंश दयाते सब मिटि जाई । सुमिरि बंश बयालिस पाई ॥

समय–मनसा वाचा कर्मणा, तत्त्वहि तत्त्व समाय।
अक्षरमांहि निरक्षर दरशै, अधर ध्वजा फहराय ॥
दामिनि कैसी दमक जिमि, ऐसी शब्दकी डोर।
कहै कबीर पहुँचाइ हों, हंस सुजनकी जोर ॥

चौपाई

अक्षर मांह निरक्षर पावै। छोडि देह पांजीकी धावै ॥
पांजी द्वार सत्यकी धारा। जलरंग चौकि सुकृत रखवारा॥
आदि अन्त हम तुमकह दीन्हा। अब हम लोग पयाना कीन्हा॥
तुम साहब सतलोक सिधाए। हम सेवक संसार रहाए ॥
निश बासर तुमहीं ले लैहों। पलपल दरश तुमहिको देहों ॥
छिन छिन रहो तुम्हारे पासा। धर्मदास मोहि तुम्हरो आसा॥
तुम हो भाई प्रेमहित मोरा। हंसन जाय करो बँदि छोरा ॥
लोक बोडइसा बैठे रहिहो। गुह्यलोक बिरले सों कहि हो॥

समय–भेद पुरुषको तासों कहिहों, जो शब्द पारखी होय।
शब्द पारखी मिलै नहिं, तासों राखेहु गोय ॥
चन्द्र सूर्य चढि जल पिवैं, विनु रसना रस सोय।
तासों कहि हों शब्दनिरक्षर, नेह धरो जनि गोय ॥
बिनु रसना रस पीवन जानै, कहा निरक्षर पावै।
कहै कबीर ताहि परिहरहु, काल कला धरि आवै॥
सूक्षम वेद भेद नहिं जानै, कथनी कथि लपटान।
गुरुगम भेद विचारै नाहीं, यमपुर जाय निदान ॥
चंद सनेह लखै सहिदानी, तुरति होय असवार।
दुई करजोरी महारस पीवै, सतगुरु शरण अधार॥
संयम करै अधर धुनि साधै, सत्यसुकृत रखवार।
गुरुकी दया साधुकी संगति, उतरे भवजल पार ॥

काया परिचय जानिके, पकरै दृढ कडिहार ।
नाव लगावे घाट कह, खेइ उतरै पार ॥
पश्चिम लहर जो गावै, नाव लगावे घाट ।
उतरि पांजी सोधिके, तब पावै निज घाट ॥
चंद उदय जब होत है, सूर्य अस्त बलहीन ।
इहै लगन है आदि की, जैसुनिकरसुरलीन ॥
जलरंग महलमें जाई रहै, करै जाइ विश्राम ।
सतगुरू शब्द बतावहि, तब पावै निज धाम ॥
अन्तकी राह बराइके, चलै आदिकी राह ।
आसन पावै लोक महँ अक्षय वृक्षकी छांह ॥
धर्मदास हंसनके नायक, माथै राखहु नाम ।
अब हम चले लोक कहँ, तुम जाय करो विश्राम ॥

चौपाई

स्वेत मिठाई उत्तम पान । सत्यबचन भाषहू प्रमान ॥
आरति करी कीन्हेउ भाऊ । नरियर मोरपांच मिलिपाऊ ॥
भक्तिभाव कीन्हेऊ बहुभांती । सतगुरू दूलह संत बराती ॥
शब्द सुरति ते गांठि जुरावहु । भावर की बंदन पहिरावहु ॥
तिलकबन्दन बहुबिधि कीन्हेउ ।पांचसाधुमिलिआशिष दीन्हेउ॥
पञ्च जने मिलि अर्पण कीन्हेउ । डरत तिन्है पुहमीमें दीन्हेउ ॥
समय-डर पारस डर प्रेमगुरू, डर करनी डर सार ।
डरता रहै सो ऊबरे, गाफिल खासीमार ॥
तत्त्व तिलक तिहुँ लोकमें, सत्यनामनिज सार ।
जन कबीर मस्तक दिया, शोभा अगम अपार ॥
शोभा अगम अपार, पार बिरलै जन पावै ।
अमर लोकको जाय, बहुरि कबहूँ नहिं आवै ॥

अखण्ड फनिमनी तिलक है, अक्षय वृक्ष है सार।
अमर महात्मा जानिकै, करैतिलकतत्त्वसार ॥
त्रिकुटी अग्रे मूल है, भृकुटीमध्यनिशान।
ब्रह्मद्वीप अस्थूल है, अग्रतिलक निरबान ॥
अग्र तिलक शिर सोहै, बैसाखी अनुहार।
शोभा अविचल नामकी, देखहुसुरति विचार ॥
जासु तिलक अस्थान है, तासु नाम अस्थीर।
खंब लिलाटै सोभही, तत्त्वतिलकगम्भीर ॥
संता अयनकी खानिहै, महिमा है निजुनाम।
अक्षयनामतेहितिलकको, क्षयनहिं अक्षयविश्राम ॥
मध्यगुफा जहां सुरति है, ऊपर तिलकको धाम।
अमर समाधि लगावै, अंग अंग अस्थान ॥
कंठी कंठ बिराजे, उज्वल हंस अमान।
मुख उज्वल चक्षू उज्वल, उज्वल दशा न होय ॥
जो उज्वल है भीतर, ऊपर उज्वल सोय।
अंतर कपट मलीनता, ऊपर और न होय ॥
जौन भाव भीतर बसै, ऊपर बरतै सोय।
( भीतर और न देखिये, ऊपर और न होय ) ॥
जौन चाल संसारकी, तौन संतको नाहि।
डीभि चालु करनी करे, संत कही नहिं ताहि ॥
साधु सती औ शूरमा, ज्ञानी औ गजदंत।
एतौ निकसि न बहुरे, जो युगजायँ अनंत ॥
साधु चाल जो जानिहै, साधु कहावैं सोय।
बिन साधे साधू नहीं, साधु कहांते होय ॥

साधु कहावन कठिन है, ज्यों खांडेकी धार ।
डगमग है तौ कटि परै, गहै तो उतरै पार ॥
साधू सोई जानिये, जो चलै साधुकी चाल ।
परमारथ लागा रहै, बोले बचन रसाल ॥
संगति करिये साधुकी, हरै सकल तन व्याधि ।
नीची संगति असाधुकी, आठों पहर उपाधि ॥
निश वासर साधू मिलै, मिटै विषम तन पीर ।
तासु नेह नहिं छाँडिहौं, सदा सुफल तनथीर ॥
साधुनसों संगति करै, जागत सोवत हाल ।
तासु संगमें ऐ वरहों, ज्यों कर सदा रुमाल ॥
जाके हृदये सत्यहो, सोई सुकृतके साथ ।
साधु २ सोहावे ताहि, खोजि लेइ नगमनीमाथ ॥
साधु न संकट सों परै अगमन हमही होय ।
दुर्जन मारि बहाइहैं, पला न पकरै कोय ॥
तन मन शीतल शब्दपर, बोलत बचन रसाल ।
कहै कबीर तेहि दासको, गांजि सकै ना काल ॥
ररा काग विष बोकरा, कूकर नाग मञ्जार ।
नाहर विषधर दूत, भूत वट औ पार ॥
सब कह बाधी कबीर, आन घाट बाटलै डार ।
बाट घाट बन औघट, मोहिं खसमकी आश ॥
मते चलौ कबीरके, कबहि न होय बिनाश ।
भागे यमदूत भूत यम, काल न तिनुका टूट ॥
हंस चले हैं लोक कहँ, काल रहा शिर कूट ॥

चौपाई

धर्मदास सुनो शब्द सन्देशा । जाहि देहु ताहि मिटै अन्देशा॥
जाके घट तुम्हरी सहिदानी । तहाँ प्रगट हम तुमहि समानी॥

जो कोई लेइ तुम्हारो नावा । ताके शिर मह मन्दिर छावा ॥
सन्त दसाधरि पन्थ चलावहु । छापा तिलक कंठी पहिरावहु ॥
वैरागी वैराग्य पढावहु । गृहि बासी रहनी समझायहु ॥
वैरागी उन मुनि घर करई । हर्ष शोक कछु चित नहिं धरई ॥
रूखा सूखा करै अहारा ।निशदिनरविशशिसूरहिसुधारा॥
विकशित बदन भजनके आगर । शीतल सदा प्रेम सुखसागर ॥
वैरागी आसन आरंभै । माला तिलक सुमिरिनि थंभै ॥
पश्चिम लहरि जो गावै जानी । अजपा जाप जपै सहिदानी ॥
रहिता रहै बहै नहिं कबही । सो वैरागी पावै हमही ॥
हमें पाय हमही अस होई । आवा गौन मिटावै सोई ॥
आवा गौन मिटावै काया । सदा अधीन रहै तत्त्व समाया ॥
काया धरि काया कह बोधै । आवा गौन रहित घर शोधै ॥
जीवत मरै मरै पुनि जीवै । उनमनि बसै महारस पीवै ॥
महा शून्य मों रहे समाई । मरै न जीवे आवै न जाई ॥
ऐसी विधि वैरागी सोई । हममिलि रहे हमहि असहोई ॥
गृही होइकै रहै उदासा । शब्द कमाइ शब्द विश्वासा ॥
गृही दगा कोटि जो पाई । कहै कबीर भक्ति बतलाई ॥
गृही भाव भक्ती जो साधै । सन्त साधु सेवा आराधै ॥
घर तजि बाहर कबहि न जाई । गुरु नाम भक्ति करे लौलाई ॥
भक्ति करै निर्भय सहिदानी । गुरु औ साधु एककरि जानी ॥
जहाँ साधु तहाँ सतगुरु वासा । जहां सतगुरु तहाँ मुक्ति निवासा॥
जहाँ मुक्ति तहाँ लोक उजागर । जहाँ लोक तहाँ रहै सुखसागर॥
जहाँ सुख सागर तहाँ कबीरा । भक्ति मध्य बाहर औ तीरा ॥
जहाँ मध्य तहाँ पुरुष अमान । जहँ बाहे तहाँ हंस सुजान ॥
जहाँ तीर तहाँ निर्मल धीर । जरा मरण नहिं ब्यापै पीर ॥

जहां पीर तहां संशय धीर । संशय मध्य असंशय नीर ॥
जहां नीर तहां सुख संतोषा । जरा मरण नहिं व्यापै धोखा ॥
जहां धोख तहां आवै धीर । जहां धीर तहां गहिर गम्भीर ॥
जहां गँभीर तहां थिर होई । जहां थिर तहां लहरी न सोई ॥
लहरि नाहिं तहां आपै होई । आपा मेटि होई रहै समोई ॥
ममता मोह लहरि तजि जोई । भाव भक्तिके मानुष गोई ॥
मनसा गहै होय निर्वाना । पावै सत्य सही अस्थाना ॥
नातरु फिरि आवे संसारा ।
संसार आइके भक्ति कमाई । भक्ति कमाइके भक्ति कहाई ॥
भक्ति कहाइके रहै उदासा । सतगुरु मिले सत्य विश्वासा ॥
सतगुरुते दूसरे गुरु नाहीं । आवा गौन रहित घर जाहीं ॥
सतगुरु मिलै तो संशय भागै । संशय बहुरि अङ्ग नहिं लागै ॥
सतगुरु सुख संतोषके नायक । परमारथ सो सदा सहायक ॥

समय—साधु बडे परमारथी, घन ज्यों वरषैं आय ।
तप्त बुझावै आनकी, आपनो आपन लाय ॥
जैसे वृक्ष न फल भखै, नदी न अँचवै नीर ।
त्यौं परमारथ कारने, संतन धरो शरीर ॥
सन्त सराहिये ताहिको, जाके सतगुरु टेक ।
टेक निबाहै देह भरि, रहै शब्द मिलि एक ॥
सत्यशब्द हितमानिकै, सुमिरि सतगुरु धीर ।
धर्मदास तुव वंशके, एके गुरू कबीर ॥

चौपाई

सत्य सुकृत सुमिरै चित माही । टूटत वज्र राखि लेउ राही ॥

समय—सत्य सुकृतके बाल कह, जो चितवे कर दीठ ।
ताजन लागै चौहटै, गुनहगारके पीठ ॥

जिह्वा कहौ तो जग तरै, प्रकट कह्यो न जाय ।
गुप्त प्रवाना लेहु हो धर्मनि, राखो शीश चढाय॥
हंसा तुम मतडरपौ कालसों कर मेरि परतीत ।
सत्य लोक पहुँचाइहौं, चलिहों भवजल जीत ॥
इति ग्रंथ उदय टकसार, श्वास गुंजार सम्पूर्ण ।
जो देखा सो लिखा, मम दोष न दीजिए ॥

भूल चूक अक्षर लेव सुधारी ॥ समय नाम गोसाँई साहेब लक्ष्मणदासजीको कोटि कोटि दण्डवत् सब संतन महंतनको कोटि कोटि दण्डवत् । मोकाम गोरखपूर महल्ला काजीपूर छोटा लीखा भवानी बकस सब संतनके किंकर ॥ असल पुस्तकानुसार नकल किया ।

इति श्वासगुञ्जार संपूर्ण

सत्य

श्रीबोधसागरे-

# आगमनिगमबोध

भारतपथिक कबीरपंथी

स्वामी श्रीयुगलानन्दद्वारा संगृहीत

★

मुद्रक व प्रकाशक-

**गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,**

अध्यक्ष-"लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-प्रेस,

**कल्याण-बम्बई.**

सत्यनाम



श्री कबीर साहिब




सत्यसुकृत, आदि अदली, अजर, अचिन्त पुरुष,
मुनीन्द्र, करुणामय, कबीर, सुरति योग, संतायन,
धनी धर्मदास, चूरामणिनाम, सुदर्शन नाम,
कुलपति नाम, प्रबोध गुरुबालापीर, केवल नाम,
अमोल नाम, सुरतिसनेही नाम, हक्क नाम,
पाकनाम, प्रकट नाम, धीरज नाम,
उग्रनाम, दयानामकी दया, वंश
ब्यालीसकी दया

★

## अथ श्रीबोधसागरे

# आगमनिगमबोधप्रारंभः

★

### त्रयस्त्रिंशस्तरंगः

साखी—वेद शास्त्रको मत अबै, अगम निगम प्रमाण ।
अब वर्णन सोई लिखो, पढो सकल दे ध्यान ॥

अथ ब्रह्म और जगत उतपत्ति चौपाई

आदि ब्रह्म अब वर्णन करेऊ । अहंशब्दमें सो थित धरेऊ ॥
ताहि शब्दकरि चित फुरिआया । चित दृढ़ता करि मन प्रकटाया ॥

मनते तन मात्रा भे पांचों । मन स्वरूप ब्रह्माको वांचों ॥
मन ब्रह्मा ब्रह्मा मन सोई । जस संकल्प करे तस होई ॥
रचे अविद्या शक्ति विधाता । जिहि अनात्ममें आत्मलखाता ॥
ब्रह्मा सोइ अविद्या कारण । विद्या राचे ताहि निवारण ॥
उठे तरंग सिंधुमें जैसे । बहुरि समाय ताहि पुनि तैसे ॥
ब्रह्माते इमि जगत प्रकटाई । फेरि लीन तामें ह्वै जाई ॥
सत्य शुद्धमें मनको फुरना । सो कारण सब दुःखको जुरना ॥
उपै खपै बिधिते जिव कैसे । अग्निते चिनगारी लखि जैसे ॥
दुःख मूल बासना बिकारा । मनही कर्म रूप निज धारा ॥
मन अरु कर्म एकही आहीं । कमलसुगन्धभेद जिमि नाहीं ॥
मनमें जो संकल्प फुराई । सो अँकूर कर्म कहलाई ॥
कर्म कि पूर्व देह मन अहई । मनमय देह कर्मका गहई ॥
जो कछु सत्य असत्य गहोई । मनको कियो सत्य सब होई ॥

इति

अथ चारवर्णकी उत्पत्तिवर्णन–चौपाई

ब्रह्मा मुख ब्राह्मण प्रकटाये । ब्राह्मणको इमि अर्थ बताये ॥
प्रथम अक्षर पवित्रता थापू । द्वितिये अक्षर तेज प्रतापू ॥
द्वितीये बाहुते क्षत्रिय भयेऊ । अक्षर आदि पराक्रम गहेऊ ॥
द्वितीये अक्षर रक्षा कारी । तृतीये वैश्यको अर्थ उचारी ॥
प्रथम शब्द स पति गह सोई । दूजे अर्थ पालना होई ॥
चौथे चरणते शूद्र उपाये । ताको ऐसे अर्थ बताये ॥
प्रथम शब्द तुच्छता बताई । द्वितीय दीनता अरु सेवकाई ॥
वेद पाठ षटकर्म जनेऊ । तीन बरणके हेतु बनेऊ ॥
चहुँके संस्कार क्रम न्यारो । ब्राह्मण वर्णको भेद उचारो ॥
ब्राह्मणमें द्वै भेद है सांचो । पंच गौड अरु द्राविण पांचो ॥

पंच गौडको नाम बखानो । गौडकनौजियासारस्वति मानो॥
उत्कल मैथिल पांचों गौडा । बहुरि बखानो पंच जो द्रविडा॥
द्राविड गुजराती अरु नागर । महाराष्ट्र तैलंग उजागर ॥
इनते बहुरि अनेकन भयऊ । न्यारे न्यारे नाम सो कहेऊ ॥
वैरागी दश ब्राह्मण जेई । वेदके धर्म ध्वजाधर येई ॥
क्षत्रीमें द्वै भाग प्रशंसी । एक सूर्य द्वितिये शशिवंशी ॥
वैश्यनमें बहु भांतिक भनिया । अग्रवाल आदिक बहु बनिया॥
शूद्र भेष भाषे विधि नाना । तिनको इहां न करौं बखाना ॥
ब्रह्मा चारों वरण बनाई । ताके मन पुनि चिंता आई ॥
बिन लेखक जगकाज न सरिहैं । लेखक गणक कर्म को करिहैं ॥
यहि विधि ब्रह्म जो करे विचारा । चित्रगुप्त प्रगटे तेहि बारा ॥

इति

अथ चित्रगुप्तजीकी उत्पति कथा वर्णन—चौपाई

लीने कर लेखनि मसिदानी । प्रकटे चित्रगुप्त गुणखानी ॥
ब्रह्माकी अस्तुत उच्चारे । सो धुनिसुनि बिधि पलकउघारे॥
ब्रह्माकी तब आज्ञा पाई । तपको चित्रगुप्त बन जाई ॥
वारह वर्ष कीन तप गाढे । पुनि भे ब्रह्मके सन्मुख ठाढे ॥
तब ब्रह्मा निज सभा लगाये । सुरनर मुनि भूपति चलि आये ॥
ऋषी सिसिरसा तहँ पगुधारा । निजकन्या वरहेतु बिचारा ॥
कन्या चित्रगुप्त को ब्याहा । महिपमन्वंतर पुनि अस चाहा॥
भूप मन्वंतर सूरजको पोता । ताहि सभा तिहि औसर होता॥
सोऊ अपनी पुत्री देऊ । दोऊ तिय चित्रगुप्त वर गहेऊ॥
पुत्र यउपो दोनों नारी । एकते आठ एकते चारी ॥
माथुर गौड अरु कर्न भनीजै । बालमीक श्रीध्वजहि गनीजै ॥
सकसैना श्रीवास्तव ऐसे । श्रेठाना श्रम सक हैं तैसे ॥

भटनागर कुल श्रेष्ठ कहाये । निगम नाम बारह बतलाये ॥
द्वादश चित्रगुप्तके जाये । कायथ लेखक गणक कहाये ॥
चित्रगुप्त धर्मरायके द्वारे । पुण्यपापको लेख उचारे ॥
तिमि ताके सुत पृथ्वी माही । राजद्वार पर लेखक राही ॥

इति

अथ चार आश्रमको वर्णन

दोहा-ब्रह्मचर्य गिरहस्थ पुनि, बानप्रस्थ संन्यास ।
भिन्न भिन्न इनके धर्म, मरम वेद परकाश ॥

इति

अथ चार वेदोंकी उत्पति कथा वर्णन चौपाई

चौमुह वाक्य ब्रह्ममुख भैऊ । चारों वेद ताहिते कियऊ ॥
असी सहस्र कमकांड प्रमाना । सोलह सहस्र उपाछा जाना ॥
चार हजार कहावै ज्ञाना । यह त्रिकांडमत वेद बखाना ॥
चारों मम वाक्यको टीका । लक्ष श्लोक व्यास कृत टीका ॥
जेते शास्त्र पुराण कहाये । चारों वेद कि आस गहाये ॥
चारों वेद मूल सब केरा । महाबाक अब करो निबेरा ॥
प्रथमै जो ऋगवेद कहायो । पूरब मुख ब्रह्मा प्रकटायो ॥
ब्रह्मकी बानी भइ येही । प्रज्ञाना ब्रह्म कहि देही ॥
महाज्ञान कहिये प्रज्ञाना । ब्रह्म अर्थ परमेश्वर जाना ॥
यहि महा वाक्य रचे ऋगवेदा । क्रम उपाछा ज्ञान त्रिभेदा ॥
पूरब दिश ऋगकी अधिकाई । द्वितिये यजुर्वेद कहि भाई ॥
दक्षिण मुख ब्रह्मा निज खोले । अहं ब्रह्मा अस्मी सों बोले ॥
अहं अर्थ में ब्रह्म है ईश्वर । हौं अस्मी कह मैं हों ईश्वर ॥
यहि महँ बाकते यजुर बनाये । दक्षिण देश अधिक फैलाये ॥
सामवेद तृतिये बिख्याता । मुख पश्चिम ब्रह्माकी बाता ॥

महावाक्य ब्रह्माकी येही । तत्त्वमसी ताते कहि देही ॥
तत्त्व ईश्वर त्वं जीव कहाये । हौं पुनि स्मीको अर्थ बताये ॥
पश्चिम दिशतेहिअधिकपसारा । तीनों विधि ताको व्यवहारा ॥
चौथे वेद अथर्वण भाषी । उत्तर मुख ब्रह्माकी साषी ॥
तीनों वेदसे ताहि निकारा । तामें महावाक्य यह धारा ॥
अहं आत्मा ब्रह्म पुकारो । ताका ऐसो अर्थ बिचारो ॥
अहं है मैं आतम है आपा । ब्रह्म नाम परमेश्वर थापा ॥
मैंही हौं परमेश्वर आतम । उतरमें यहि वेद महातम ॥
चार युक्ति चहुँ वेदन माहीं । प्रथमें विधि जिहिकर्मकराही ॥
द्वितीये अर्थ बाद बतलाये । अस्तुति और कर्मफल गाये ॥
तृतिये मंत्र जो देव अराधू । चौथे नाम कथा शुचि साधू ॥
षट प्रकारकी विधि चहुँ वेदा । प्रथमें जग उत्पति निवेदा ॥
द्वितिये प्रलयको ब्यौरा ठाना । तृतिये सुरमुनि चरितबखाना ॥
चौथे मन्वन्तर कथ दशचारो । पंचम सुरसुरपति ब्यौहारो ॥
छठये धर्मशास्त्र बिधिभाषा । तामें कथा भांति बहु राखा ॥
विद्या सकल जगत व्यौहारा । ज्ञान विधान अनेक प्रकारा ॥
ब्रह्मवाद भाषे विधि नाना । जाके पढे लाभ हो ज्ञाना ॥
चार वेद बुधि विद्या मूला । रचे शास्त्र षट तिहिअनुकूला ॥

इति

### अथ षट् शास्त्रनको वर्णन चौपाई

अब षटशास्त्रको वर्णन सुनिये । प्रथम न्याय ऋगवेदतेगुनिये ॥
गौतम न्याय कर्ताको करता । अस बिचार ताके उर बरता ॥
सर्व मई परमेश्वर जाना । एकते बहुरि अनेक बखाना ॥
उत्पति प्रलय कथा बखाने । नित्यानित्य बाद बहु ठाने ॥
द्वितियमीमांसाशास्त्रजोकहिया । यजुर्वेदते ताको गहिया ॥

जैमिनि मीमांसक रचताही । शिष्य प्रसिद्ध भये बहु बाही ॥
परमेश्वरहि अकर्ता जाना । जक्त अनादि अनंत बखाना ॥
ज्ञान मुक्ति सब कर्मके द्वारा । कर्मके बशी भूत संसारा ॥
मुक्ति होय जिव ज्ञानके मर्मी । ब्रह्मा होय करन भल कर्मी ॥
तृतिय शास्त्र वेदांत बताये । सामवेदते व्यास बनाये ॥
एक ब्रह्म द्वितिया कछु नाहीं । स्वप्न समान जक्त दरशाहीं ॥
ब्रह्ममें जबही माया डोले । ताको तब ईश्वर कहि बोले ॥
ईश्वर तीन भाग पुनि भयऊ । रज सम तमगुननामसोकहेऊ ॥
जेते जक्त माँह व्यौहारा । यही तीन सबके करतारा ॥
कर्म रहितसो ब्रह्म बखाना । कर्म स्वरूप तीन ये जाना ॥
मायायुक्त भये जब तीनों । तिहि कारण ईश्वर कहि दीनों॥
ब्रह्म अविद्या युक्त जो होई । ताको जीव कहे सब कोई ॥
त्रिगुणब्रह्म अरु जग जिवसारे । सबही एक स्वरूप विचारे ॥
भिन्न अविद्या करिके माना । द्वै शक्ती तिहि मांह बखाना ॥
यक विक्षेप शक्ति कहलाये । द्वितिये अबरनशक्ति बताये ॥
शक्ति विक्षेपते जग उपजाये । अबरन शक्ती ज्ञान दुराये ॥
ज्ञानके उदय मुक्तिपद धरही । वेदांती यह निर्णय करही ॥
चौथे सांख्यशास्त्र मत गाढा । ताहि अथर्वण वेदते काढा ॥
रचे ताहिको कपिल मुनीशा । सोउ अकर्ता कथ जगदीशा ॥
सबही रचना प्रकृति कराये । जक्त अनादि सदा यहिभाये ॥
काहू बस्तूको नाश न होई । करता में करतूत समोई ॥
द्वैविधि भाषे पुरुष महातम । जीव आतमा अरु परमातम ॥
पुरुष प्रकृतको जब हो मेला । होय सकल रचनाको खेला ॥
पुरुष पंगुला परकृत अन्धी । दोहु बिन नहिं जगरचना बंधी॥
प्रलय कालतिहु गुन समताई । रचनामें सतगुरु अधिकाई ॥

पुरुषते महातत्त्व प्रकटाई । पुनि हंकार इन्द्रीतत्त्व गाई ॥
प्रलयको घोस बहुरि जब आवै । इन्द्री तत्त्व सब तहाँ समावै ॥
जिहि क्रमसे जो दियौ देखाई । तिहि क्रम २ सब जाहि लुपाई ॥
पंचम शास्त्र पतंजल कहेऊ । वेद अथर्वणसे सो गहेऊ ॥
ऋषि पातंजलि ताहि बनाई । वर्णन सांख्यशास्त्र सम ताई ॥
योग युक्ति तिहि माँह बखाना । ज्ञान द्वारते युक्ति प्रमाना ॥
छठे शास्त्र वैशेषिक भाये । मुनि कणाद कर्ता कहलाये ॥
वेद अथर्वणते गहि लीना । यह षट्शास्त्रको वर्णन कीना ॥

इति श्री षट्शास्त्र

अथ चार उपवेद वर्णन

दोहा—आयुर्वेद धनुर्वेद पुनि, गन्धर्ववेद बखान ।
अथर्वेद ये चार हैं, तिनकी निर्णय ठान ॥

चौपाई

प्रथमे आयुर्वेद करतारा । ब्रह्मा प्रजापति अश्वनीकुमारा ॥
धन्वन्तरि आदिक रच ताही । कामशास्त्र वेदादिक जाही ॥
द्वितिये धनुर्वेदके करता । विश्वामित्र नाम सो धरता ॥
ब्रह्मा परजापति से जोई । विश्वामित्र सिखे गुन सोई ॥
सकल युक्ति शिष कीन प्रचारा । परजा पालन कै व्यौहारा ॥
शस्त्र प्रहारकि युक्ति है तामें । युद्धकरनकी बिधि वह वामें ॥
आयुध दोय प्रकारके युक्ता । एक है मुक्त अरु द्वितिय अमुक्ता ॥
तृतिये मुक्तामुक्त कहाऊ । यंत्र मुक्त चौथेको नाऊ ॥
हाथसे जो चक्रादि चलाये । ताको नाम मुक्त बतलाये ॥
तरवार आदि अमुक्त बखाना । बरछी मुक्तामुक्त प्रमाना ॥
बहुरि तीर आदिक अरु गोली । यंत्र मुक्त तिनको कहि बोली ॥
मुक्त आयुधको अस्त्र कहीजै । अरु अमुक्तको शास्त्र भनीजै ॥

सने चार प्रकार नाम धर । घोढचढ रथचढ गजचढ पदचर॥
असगुन सगुन बहुत विधिभाषा । क्षत्री धर्म सकल तह राखा ॥
तृतिये गन्धर्व वेद बताये । ताहि भरथजीने प्रगटाये ॥
नाद नृत्य सुर ताल अनन्ता । विविधि भांतिसे ताहि बदंता॥
युक्ति अनेकन देव अराधू । निरविकल्प पुनि कथे समाधू॥
चौथे अर्थवेद विधि कहिये । नाना युक्ति ताहिमें लहिये ॥
नीति शास्त्र अरु अश्वारूढा । शिल्प सूप आदिक मतिगूढा॥
धन उपाय बहु बिधि तहलहिये । अर्थ वेद यहि कारण गहिये ॥
द्रव्य उपार्जन रीति बनाई । अर्थ वेद पुनि अस अर्थाई ॥
कसेहु निपुण होय नर जोऊ । भाग बिना धन लहै न कोऊ ॥
ताते अन्त कथै बैरागा । सब चातुरी वृथा इमिलागा ॥
चहुँ उपवेदको यह सिद्धांता । सब तजि हो विरक्त बुधवन्ता॥
वेद उपवेद कि विधिमें पागा । अन्त मुख्य वैराग अरु त्यागा॥

इति

अथ चार उपवेद षट् अंगवर्णन—चौपाई

शिक्षा कल्प व्याकरण वरनो । पुनिनिरुक्तिज्योतिषचितधरनौ॥
पिंगल सहित कहैं षट अङ्गा । विविधि भांति भाषे परसंगा॥
प्रथमें शिक्षा शास्त्रमें कहेऊ । नाना भांति कि युक्ती गहेऊ ॥
वेदके शब्द न माह बखाना । अक्षरनके अस्थानको ज्ञाना ॥
पाणिनीय है ताके करता । युक्ति चातुरी बहु तहँ धरता ॥
द्वितीये कल्पके सूत्रन माहीं । वेद कि विधिसो कहै तहाहीं ॥
कर्मके अनुष्ठान विधि गायन । पाणिनि पातंजलि कात्यायन॥
तृतिये कथे व्याकरण जोई । वेदको शब्दबोध तिहि होई ॥
पाणिनीय आदिक बहु तेरे । कर्ता सोई व्याकरण केरे ॥
चौथे निरुक्त शास्त्रके माहीं । ऐसी निर्णय कीनो ताहीं ॥

अपर सिद्धपद वेद जो होई । तासु अर्थ बोधक है सोई ॥
यास्क मुनीश्वर कथे बखानी । नाम निरूपन निर्णय ठानी ॥
आदित्य आदिक अरु बहुतेरे । रचित निरुक्त शास्त्र तिन केरे ॥
पंचम पिंगल कीन बखाना । पिंगलमुनि रचि छंद विधाना ॥
छटये ज्योतिष कालको ज्ञाना । आदित्यादिक गर्ग बखाना ॥

इति चार उपवेद

अथ अठारह पुराणोंके नाम—चौपाई

ब्रह्म बहुरि वयवर्त बखानो । बावन अरु ब्रह्मांड प्रमानो ॥
मार्कण्डेय भविष्य कहावै । नारद विष्णु पुराण बतावै ॥
गरुड बराह अरु पद्म गनीजै । भागवत मीन वो कूर्म कहीजै ॥
लिंगो वायु पुराण बताया । फिर अस्कंधो अग्नि कहाया ॥

इति

अथ शास्त्रके अठारह प्रस्थान वर्णन—चौपाई

शास्त्रके हैं प्रस्थान अठारा । या बिधि तिनको नाम उचारा ॥
चार वेद उपवेद हैं चारी । वेदनके षट्‌ अंग बिचारी ॥
धर्मशास्त्र मीमांसा न्याई । चौथे पुनि पुराण बतलाई ॥
उप पुराण पौराण अनेका । अठारहेंकी नियम न एका ॥
स्मृती महाभारत रामायण । मंत्रशास्त्र नाना विधि गायन ॥
वाम तंत्र देवीके राखा । नारद पंचरात्र पुनि भाषा ॥
देव अराधन बिधि बहु भनते । जक्त कार्य ताते भल गनते ॥

इति

अथ चारवेद को बाद वर्णन—चौपाई

प्रथम कहै ऋगवेद बखानी । निराकार परमेश्वर मानी ॥
निरलेपो सो अलख अगोचर । निरालंब सो जान ब्रह्मबर ॥
द्वितीय अथर्वण भाषत होई । निरालम्ब निर्लेप न कोई ॥

नहिं निर्गुण नहिं सर्गुण कहेऊ । जो कोइ मरा मुक्त सो भैऊ ॥
जैसे पत्र वृक्ष ते टूटा । फेर न सो तरुवरमें नूटा ॥
ऐसो जीव मरा यकवारा । बहुरि नहीं ताते तन धारा ॥
तृतीय यजुर अस कहे बहोरी । इन दोनोंकी मतिभई भोरी ॥
सर्गुण ब्रह्म नरायण होई । क्षीर समुद्र शयन कर सोई ॥
दश अवतार सोई धरिलीनो । गोपीनके संग क्रीडा कीनो ॥
चौथेसाम कह पुनि मत अपना । यहै सब जानो झूठ कलपना ॥
नहिं सगुण नहिं निरगुण देवा । नहीं दृष्टि गोचरको भेवा ॥
सम्पूरण है ब्रह्म अखण्डा । तत्वमसी अद्वैतसे मण्डा ॥

इति

अथ षट्शास्त्रकी बादवर्णन—चौपाई

प्रथम मीमांसा शास्त्र आचारी । कर्म थापि निजु ज्ञान उचारी ॥
जो कछु लाभ जक्तसे कीना । सो सब जान कर्म आधीमा ॥
कर्महि अधिष्ठान जिवकेरा । कर्मते करे जक्त में फेरा ॥
कर्म प्रवृत कर्म लय पावै । कर्महि दुखसुख जीव भुगावै ॥
भूत भव्य व्रत मानिक जोई । कर्म अधीन जान सब सोई ॥
अज हरि हर सनकादिक जेते । कर्म अधीन जान सब तेते ॥
कर्म अधीन ज्ञान अरु योगा । जो जस करे भोग तसभोगा ॥
कर्म स्वतंत्र सर्व परगावै । जो जस करै सो तस फल पावै॥
द्वितिय बाद वयशेष वदंता । कर्म नहिं जानिये सुतंता ॥
कर्मतो कालकि बसमें होई । काल पाय कर्मकरै न कोई ॥
जब कतहुँ परगात न होई । भोर कर्म तब करै न कोई ॥
जौं मध्यान न सन्ध्या आवै । बिना काल को कर्म गहावै ॥
बाल कर्म ना हो तरुनाई । युवा कर्म नहिं शिशु करि पाई॥
युवा कर्म करि सकै न बूढा । वृद्ध कर्म तरुनाई गूढा ॥

ताते यह निश्चय करि मानो । कर्म कालकी वश में जानो ॥
कालहि ब्रह्म और नहिं कोई । काल पाय अज हरि हर होई ॥
काल पाय पुनि सो बिनसाही । उतपति प्रलयकाल बश आही ॥
कालहि ते सुख दुख लहंता । काल स्वतन्त्र कर्म परतन्ता ॥
जब चाहे क्रम कर नर लोई । काल किये ते कबहु न होई ॥
ताते काल सत्य करि मानी । कर्म असत्य बैशेषिक बानी ॥
तृतीय न्याय निज मत अर्थाई । काल है छीन छीन है जाई ॥
घटि बढि जाय कालकी बाते । काल कर्म नास्ती दोउ ताते ॥
अस्ति एक परमातम आही । तीन काल आवै अरु जाही ॥
निजु बश ईश्वर कालको धरई । जब जस चाहे तब तस करई ॥
ग्रीषम वर्षा काल बनावै । वर्षाको ग्रीषम दिखलावै ॥
चाहे रंक रावकरि द्वारी । भूपतिको पुनि करे भिखारी ॥
सकल सूत्रधर ईश्वर ऐसे । नाचे जग कठपुतली जैसे ॥
ताते परमेश्वर है अस्ती । काल वो कर्म सुभाव है नास्ती॥
चौथे पतञ्जलि कह यह लेखा । कहो कहां तुम ईश्वर देखा ॥
तुम नहिं जौं ईश्वर लखिपाई । तौ पुनि कैसे ताहि बताई ॥
कैसो ईश्वर होइ रे भाई । बिन देखे कह कहो बुझाई ॥
ईश्वर वहां सो कैसे जाना । बिनु अनुभव भाखे अनुमाना ॥
पीतर पाथर प्रथमा पूजो । अनुमानहिते मनमें सूजो ॥
यह सब झूठ भरमको फन्दा । आतम शुद्ध सच्चिदानन्दा ॥
सो हम जोग मार्ग ते जाना । तुमको नहिं कछु अनुभव ज्ञाना॥
तुम प्रतिमा पूजो यहि लेखे । हम ब्रह्मांड पिंडमें देखे ॥
तुम हो झूठो हम हैं सांचे । ईश्वरकी अनभौ तुम काचे ॥
ताते योग सत्तकरि जानो । और सकल झूठा करि मानो॥
पञ्चम सांख्यपती अस बोलो । तुम सब मिथ्या भ्रमयुत डोलो॥

यकदेशी अनुभव अरु ज्ञाना । सो कछु कामको नहीं बखाना ॥
ब्रह्म सर्व देशी कह सोई । साक्षी सर्व अकर्ता होई ॥
सब्र करतूत प्रकृती ठाना । योग समाध साधना नाना ॥
उतपति अस्थित परलय कर्मा । सो सबही प्रकृतके धर्मा ॥
पांचों तत्त्व पचीस प्रकृती । चारों देह आदि सब नास्ती ॥
ईश्वरको जो जाननहारा । सर्वसाक्षि सो आस्ति पुकारा ॥
ये सब अनित्तमें नित्तको आस्ती । योग आदि सब मिथ्या नास्ती ॥
झूठे वेदान्ती ऐसे कहई । मिथ्यावाद सकल यह अहई ॥
एक अखण्ड ब्रह्म है जोई । तामें अस्ति नास्ति नहिं कोई ॥
आप आप सम्पूरण व्यापा । भ्रमकरी त्रिपुटी तामें थापा ॥
ध्याता ध्यान धेय नहिं कोई । ज्ञाता ज्ञान होय नहिं जोई ॥
ब्रह्म अखण्ड अद्वैत एकरस । ताते द्वैत भाष भाषे कस ॥
नित्य नित्य समाधि है जोई । तामें सो सम्भवै न कोई ॥
देखन अरु देखनमें आये । देखनहार ब्रह्म बतलाये ॥
ब्रह्मते इतर और न कोई । नास्ति और सब मिथ्या होई ॥

सोरठा—वाद करे इमि सोय, चार वेद षट शास्त्र मिलि ।
भेद न पावै कोय, अगम अपार अकथ कथा ॥

सत्य कबीर वचन

साखी—वेद हमारा भेद है, हम वेदनके माहिं ।
जौन भेदमें मैं बसो, वेदौ जानत नाहिं ॥

अथ विष्णुके चौवीस अवतारको—वर्णन

दोहा—मीन कूर्म बाराह कह, नरहरि बामन बंक ।
परशुराम रघुराम कह, कृष्ण बुद्ध निष्कलंक ॥
व्यासकपिल हयग्रीव पृथु, यज्ञऋषभ सनकादि ।
दत्त मन्वतर बद्रिपति, धानन्तर हंसादि ॥

चौपाई

हरि औतार बहुत जग मांही । तिनकी कथा कही नहिं जाही ॥
हरि औतार जेते जग भैऊ । राम कृष्ण सर्वोपरि कहेऊ ॥
सुजस जासु जगमाहिं बखाना । गुण गण गावै वेद पुराना ॥
हरिमहँ चक्र वर्त तिहु पुरके । कोई शत्रु नहिं सम्मुख फरके ॥
ताते तिनकी कथा न लेखो । वेद पुराण न अधनी देखो ॥
जहाँ तहाँ हरिमंदिर सेवा । पूजे विष्णु विश्वंभर देवा ॥
तीन देवमें होइ है सोई । घट घट माह बिराजे ओही ॥
चारों विधिकी मुक्ति लहीजे । विष्णु देवकी सेवा कीजे ॥

इति विष्णुके चौबीस अवतार

अथ ब्रह्माके षट् अवतारके नाम

दोहा—गौतम कलि कणाद मुनि, व्यासो जैमिनि जान ।
मंडनमिश्र मीमांसकहि, ब्रह्म जग प्रकटान ॥

इति

अथ शिवजीके ग्यारह रुद्रके नाम

दोहा—सर्पकपाली त्र्यंबको, कपि कपर्दि मृग व्याधि ।
बहुरूपो वृष शम्भु हरि, रैवत वीरभद्रादि ॥

इति ग्यारहरुद्र

अथ ब्रह्माके दैहिक और मानसिक पुत्रनके नाम—चौपाई

ब्रह्मा द्वै सुत प्रथम उपाये । एक दक्ष एक अत्रि कहाये ॥
दक्षते सूरयको औतारा । अत्रिते बहुरि चन्द तनु धारा ॥
सूर चन्द कुल क्षत्री भैऊ । पुनि सातो ऋषि देही गहेऊ ॥
भृगु अत्री अरु पुलह बतावो । फिर अंगिरा पुलस्त कहावो ॥
नारद और वशिष्ठ उचारा । पुनिकह सनकादिक औतारा ॥
ब्रह्मा मानसी पुत्र बतावो । अत्री और अंगिरा गावो ॥

पुलह पुलस्ती कृत गनीजै । भृगु प्रचेत वाशिष्ठ कहीजै ॥
पुनि ब्रह्म तनु सुतकह नामा । दक्ष प्रजापति धर्मो कामा ॥
क्रोध लोभ मद मोह उपाये । हर्ष मृत्यु दशनाम बताये ॥

इति

अथ चौदह विष्णुके नाम

दोहा-यज्ञ विभू शतसेन हरि, पुनि वैकुंठो होय ।
पुनि अजितो बामन कहो, सर्वभूमि ऋषि भोय ॥
पुनि अमूर्ति भ्रममें तहै, बहुरि सुधामा जान ।
योगेश्वर बृहद्भान ये, चौदह विष्णु बखान ॥

अथ चौदह इंद्रके नाम

दोहा-यज्ञो रोचनसतजितो, बहुरित्रिशिखविभु जान ।
तथा मंत्र द्रुम जानिये, फेर पुरंदर मान ॥
बलि अद्भुत शंभू कहो, पुनि बैधृत उच्चार ।
रितुधामा पुनि द्यौसपति, शुची इंद्रदशचार ॥

अथ चौदह मनुके नाम

दोहा-मनु स्वयंभू सारोचको, उत्तम तामस रैवत्त ।
चाक्षु शतवृत सावर्नी, दक्ष सबर्नी सत्त ॥
ब्रह्म सवर्नी धर्म सवर्नी, रुद्रसावर्नी होय ।
देवसावर्नी इन्द्रसावर्नी, ये चौदह मनु रोय ॥

इति

अथ सप्तस्वर्गके नाम

दोहा-भुवरलोक अरु स्वर्ग कहँ, महरलोक जनलोक ।
तपलोको सतलोक है, सात नामको थोक ॥

इति सप्तस्वर्ग

अथ सप्त पातालके नाम

दोहा—अतल वितल सुतलोक ही, फेरि तलातल होय ।
महातला पाताल पुनि, अंत रसातल जोय ॥

इति सप्त पाताल

अथ नौघरोंके नाम चौपाई

प्रथम भूमि भूलोक बखानी । दूजे भुवरलोक है पानी ॥
स्वर्गलोक पुनि अग्निको घेरा । पितर लोक पुनि वायू टेरा ॥
पंचम शून्य लोक आकाशा । अन्तर लोक हँकार प्रकाशा ॥
सप्तम सत्यलोक मह तत्तू । अष्टम लोका लोक कहत्तू ॥
ॐ शब्द तहवां ते होई । मायाको घेरा है सोई ॥
ताके परै नामै अस्थाना । शुद्ध स्वरूप निरंजन जाना ॥
शब्द निरञ्जन ते उत पानी । ताते तब माया प्रकटानी ॥
मायाते महतत्त्व पसारा । महा तत्त्व से भा हँकारा ॥
अहँकार आकाश उपायो । पुनि आकाश वायू प्रकटायो ॥
वायुते अग्नि अग्निते पानी । ताते यह भूलोक बखानी ॥

इति

अथ सप्तद्वीप और ब्रह्मांडको वर्णन

दोहा—प्रथमै जम्बूद्वीप कह, शाकद्वीप कर फेर ।
क्रौंच कुशा शलमल्प पुनि, प्लक्षो पुष्कर टेर ॥

चौपाई

ताते परे योजन दश कोरी । कंचनकी पृथ्वी लै जोरी ॥
परम प्रकाश मान महि सोई । तासु परे परवत यक होई ॥
लोकालोक नाम सो भाषा । महाशून्य बन तापर राखा ॥
उग्र उदधि यक ताते आगे । बहुरि अग्नि ताते पर लागे ॥

पौन दसगुना पुनि पर ताही । तासु परे दशगुन नभ आही ॥
तासु परे योजन यक लाखा । सघन कंध ब्रह्मण्डको राखा ॥

इति सप्तद्वीप

अथ अष्टवसुओंके नाम

दोहा–प्रथम द्रौन पुनि प्रानकह, ध्रू अर्क अग्नि प्रमान ।
दोषा वसू विभावसू, अष्ट बसू ये जान ॥

इति अष्ट वसु

अथ चार युगोंकी आयुस्थितिवर्णन चौपाई

चारों युगकर लेखा प्रमाना । कृत त्रेता द्वापर कलि जाना ॥
सतयुगकी आयू इमि कहसे । सत्रह लक्ष अठाइस सहसे ॥
त्रेताकी आयू पुनि भाषा । छानवे सहस्र अरु बारह लाखा ॥
आठ लक्ष चौसठ हज्जारा । द्वापर आयू करो विचारा ॥
बत्तिस सहस्र चार लक्ष कहिये । कलियुगको यह लेखा लहिये ॥
चारों युग यक ठौर गहीजै । एक महायुग तासु कहीजे ॥
एक सहस्र महा युग होई । कल्प एक मुनि कहिये सोई ॥
चौद मन्वंतर कल्पमें होई । कल्प एक ब्रह्मादिक सोई ॥
ऐसे दिनको लेखा लीये । एकसौ वर्ष लौ ब्रह्मा जीये ॥
एक सहस्र ब्रह्मा है बीते । तब एक घडी विष्णुकी रीते ॥
ताके दिनते करि पुनि लेखो । निजुसौ वर्ष विष्णु थित देखो ॥
जबदशलक्ष विष्णु बित जाही । घडी एक तब रुद्र सिराही ॥
ताहि वर्ष पुनि लेखा कीये । निजु सौ वर्ष रुद्र पुनि जीये ॥
ग्यारह रुद्र जो उगि खपिजाना । रमा शिवा यक घडी प्रमाना ॥
निजु सौ वर्ष कि आयू पाई । सहसशिवा जब उगि खपजाई ॥
तब मायाको पलभर होई । ब्यौरा वेद बखाने सोई ॥
यह लेखा यक भयो प्रमाना । प्रभु माया गति काहु न जाना ॥

चहुँ युगमें आयू नर केरी। लखदश सहस्र सहस्र सत केरी॥
याहूको नहिं कीन प्रमाना। आयू थित हैं विविधि विधाना॥

इति

अथ चौदह रत्नके नाम

दोहा-श्रीमणि रंभा वारुणी, अमी शंख गजराज।
कल्पद्रुम शशि धेनु धन, धन्वन्तर विष बाज॥

इति चौदह रत्न

अथ पंचप्रकारके यज्ञ वर्णन

दोहा-अभ्यागत आदर कहै, बहुरि वेदको पाठ।
आहुत भूतन यज्ञ कह, पितर यज्ञकी ठाट॥

इति पंचप्रकार यज्ञ

अथ कर्म उपासना और ज्ञानको वर्णन-चौपाई

मारग तीन वेद जो भाषा। प्रथमहि कर्म कांडको शाषा॥
पुनि उपासना ज्ञान कहाही। तिहुके तीन देवतन माही॥
क्रम इन्द्री क्रम कांड गहाये। अन्तःकरण उपासक गाये॥
ज्ञान इन्द्री सो ज्ञान गहंता। यह तिहु देवको भेव भनंता॥
मूरख कहां उपासक होई। कर्म ज्ञान यामें नहिं कोई॥
कर्म उपासना ज्ञान जो तीनी। चौदह इन्द्रीते कहि दीनी॥
जबलो नहिं तिहुकोसम ताई। कोई कर्म शुद्ध नहिं पाई॥
एक हाथ जो चोरी करई। देह समस्त बन्दिमें परई॥
कर्म उपासना ज्ञान गहाई। भली भांति तिहुमेल मिलाई॥
दृढ हो गहै मुक्ति जिव पावैं। अब कर्मनको भेद बतावैं॥
जो कोई पित्रकिमुक्तिकि हेता। तन मन धन अपनो सब देता॥
पितृ लोकमें सो चलिजाई। पुनि जो जैसो कर्म कराई॥
कोई गंधर्वके लोक समाही। देवक्रमी परजा पति पाही॥

हिरण्य गर्भ गुरु पंडित जासी । यज्ञ करंत चन्द्रपुर बासी ॥
जीव आतमाको गुण येही । जेहि औसर जैसी गह देही ॥
भ्रम भयते संयुक्त जो होई । भ्रमही रूप बनावै सोई ॥
ज्ञान बुद्धि जब होय संघट्टा । ज्ञान रूप हो भ्रम भय कट्टा ॥
पुण्य पाप कर्मनते जूटा । बँधा जीव ग्रह ताही खूटा ॥
तिहि अनुसार कर्म सब करई । जैसो कर्म धाम तस धरई ॥
जैसी देह कर्म कर तैसा । सदा आत्माको गुण ऐसा ॥
जीव बासनाते नित पूरन । जस वासना ताहिते जूरन ॥
मनमें यथा मनोरथ होई । अंतकाल फल पावै सोई ॥
रही लगी जह जीवकी आशा । सूक्ष्म तन धरि तहकरबासा ॥
पुत्र कामना जाको होई । पुत्र देह धरि प्रकटै सोई ॥
पुत्रको ऐसो उचित बतावै । पिताकि मन कामना पुरावै ॥
पिता मनोर्थ जो सुतन पुरावै । तौ पितु बहुरि देह धरि आवै॥
पितु अपने मनोर्थ को हेरे । धरे देह निज इच्छा प्रेरे ॥
ज्ञान अरु परमारथ के कारण । जीव कीन मानुष वपु धारण॥
अबलों कथा प्रसंग जो रहेऊ । बंधकामना ब्यौरा कहेऊ ॥
वर्णन अब कीजे कछु तिनको । रहित कामना मन है जिनको॥
सकल कामनाको जो त्यागे । कारण द्वै तिहि माह विभागे॥
होय कामना जो कछु हीये । फेर न चाह भोगिभल लीये ॥
द्वितिये ज्ञानदृष्टि मनकामा । तुच्छ दृष्टि देवै सब तामा ॥
मिथ्या सकल जो कछु दरशाई । जानि अनित्य न नेह लगाई ॥
आतम ज्ञान सर्व पर जानी । ताते सर्व लाभको मानी ॥
आतमते सब कुछ प्रकटाना । ताहि लाभ सब लाभ लहाना॥
सकल कामना जो कोइ त्यागे । आतम ज्ञान तासु उरजागे ॥
जो कछु चितमें चाह चपेरे । तौ बीन तन यह जिव हेरे ॥

जाके हृदय कामना नाहीं। ब्रह्म स्वरूप कहीजै ताहीं ॥
रहित मनोरथ अमर है सोई। मयनहार कातिक जिव होई ॥

छन्द-सब चाह उतरते दाह भै तब मुक्ति याकी सन्ध है।
जब लीन करिये बामना तिहि कामना जिव अन्ध है॥
यहि लोककी नहि लोककी तिहि शोकमें यह बन्ध है।
चाहै चमारी चूहरी तिहि फूहरी दुरगन्ध है॥
जिमि सर्प त्यागे केचुली इमि चाह उतरे त्यागिये।
तजि ताहि फणि फिरि चाह नहिं यों पुनि ना तामें पागिये॥
मद मार विषय बिकार डारके रूपते अनुरागिये।
दलमलितखलदललिलितज्ञानते ब्रह्महो जिय जागिये॥

जो निष्काम कर्मको करही। तिनको कबहुँ न घाटा परही ॥
चाह न कर्म फलनते जाही। निश्चय अधिक फल कर्मते ताही॥
नफाहेतु जो कर्मको गहते। घाटा हू पुनि सोई सहते ॥
जिनको फलनकी इच्छा नाहीं। जो प्रभुकृपासे तिहि मिल जाहीं॥
सो फल नफामें लेख लगाये। ऐसी समुझ मुक्तिपद पाये ॥
जप तप तीर्थादिक व्रत दाना। सहित मनोरथ जाने ठाना ॥
इनको फल जो कोई चाही। सो जिव असुर लोकमें जाही॥
कर्मके बन्धनमें सो बांधा। बृथा सो निज इन्द्रीको साधा॥
बादिसो आपनो ग्रह सुख खोई। अन्धकारमें अधिक बिगोई ॥
जो कोई है आतम ज्ञानी। सर्वमई सो आपुहि जानी ॥
पुण्य पाप सुख दुःख सब जोई। नर्क स्वर्ग आदिक जो होई ॥
ब्रह्मा विष्णु रूद्र अभिमानी। सो सब अपनी देह बखानी ॥
भ्रम रज बन्धा जीव अज्ञानी। सो टूटै आतम जब जानी ॥
जिनमें नहि साधूकी करनी। बचन बनाय ज्ञान बहुबरनी ॥

साधू नहिं भाँड है सोई । ताते अधिक न शठ है कोई ॥
तिनते भलो जानिये सोऊ । आगम फल आसा कर जोऊ॥
कर्म उपासना ज्ञान जो होई । भिन्न भिन्न तिहि फल कर जोई॥
ज्ञानते इतमें भेद बिचारा । तिनको फलहुबतावज्योन्यारा॥
सो अक्षर अभ्यासी अहई । ताहि न अर्थी पण्डित कहई॥
कर्म उपासना ज्ञान जो तीनी । एकै फल तीनते कहि दीनी ॥
सनबन्धी यक दूजा हेरो । ज्ञानको अर्थ जाननो टेरो ॥
कर्मको मर्म न हृदय गहाया । नहिं उपास्य गुणको लखिपाया॥
कर्म उपासना झूठे तिनके । कछु ब्योरा हियमैं नहिं जिनके॥
कर्मको अर्थ याहि बिधि कहना । चाल चलन सुकर्म सब गहना॥
जाके हृदय हो उत्तम ज्ञाना । करनी तासु विरुद्ध लखाना ॥
ताहि ज्ञानते गुन कछु नाहीं । कर्म उपासना वृथा कराहीं ॥
साची प्रीत उपासना सोई । होय एकता रहै न दोई ॥
जबलो नहिं यह गुन दरशाई । कर्म उपासना ज्ञान वृथाई ॥
जो कोई विषयनको त्यागे । ताके हृदय ज्ञान यह जागे ॥
ज्ञान दृष्टि करि तब सो जाना । कर्मोपासन योगो ज्ञाना ॥
चारों चार तत्वसे कहिये । रचना सकल सृष्टितिहि लहिये॥
चारों मिश्रित सम सुख दाई । घटि बढि भये न सुख कोइ पाई॥
बिना ज्ञान करा कर्म जो लोगू । कर्मोपासन अथवा योगू ॥
सो निशि दिन जौ निजुतन कसही । आशा तृष्णा युति बुधि नशही॥
कर्मोपासन योग समाधा । ज्ञान सहित जो कोई साधा ॥
सो सब विषम अविद्या जानी । जीयत जीवन मुक्त सो प्रानी ॥
मुये विदेह मुक्ति लह सोई । जिनके हृदय ज्ञान अस होई ॥
मरण काल जिहि औसर आवे । देहकि नेह जीवको छावै ॥
तनकी प्रीतिसे दुःख बड मानै । काहूको नहिं तब पहिचाने ॥

जीव आत्मा यह तिहि बेले। इंद्रिनको निज्ज संग सकेले ॥
सब इंद्री तजि निज खूटे। जाय जीव आतम ते जूटे ॥
उरमह दिसे बुद्धिके रूपा। मूर्ति एक तामें सब गूपा ॥
तनधारि तन आपुहि जाना। इंद्रि सकल रहित भे ज्ञाना ॥
दृष्टि तब खनते हिलही। सूक्षम तन गति सूजंते मिलही ॥
सूँघन पृथ्वी माह समाई। रसना स्वाद वरुणा में जाई ॥
वाक अग्निमें पौन समीरा। दिशा स्रौन मन शशिके तीरा ॥
भूताकाश बुद्धिकर थाना। जिव सब संगले करे पयाना ॥
जो जिव भले कर्मको करता। दृगमार बाहर पग धरता ॥
सूर्य माह सब जाय समाई। इमि सब इंद्री राह गहाई ॥
भले कर्म जिनके अधिकाई। ब्रह्मरंध्र कढि बाहर आई ॥
जैसो कर्म करे जो कोई। तैसी राह गहै पुनि सोई ॥
जिवको बासा तनते छूटे। आवा गौन श्वासको टूटे ॥
जड समान देही रहि जाई। जीव नवीन कलेवर पाई ॥
अहं बोलिके जीव सिधारै। हौं मैं प्रथमहि शब्द उचारै ॥
सहित कर्म जिव करे पयाना। तजि तनथूलसौ लिंग लहाना ॥
निज कर्मनके प्रेरित येही। सदा नवीन धरे जिव देही ॥
जिमियक भूषण भंजि सोनारा। निज इच्छाते और संबारा ॥
तैसे देह जीव यह गहई। पुनि पुनि गहै तजै श्रुतिगहई ॥
पूरन काल जीवको बाजा। उर्ध गमनको करै समाजा ॥
अधर लोक दोउ लोकके बीचे। कर्म तहां जब जिवको खींचे ॥
ज्यौं जाग्रत स्वपने भरमाई। अपने कर्मको फल इमि पाई ॥
सरगुन गहिकर सुरनमें बासा। असुरको गुनगहिदुःखमहुँपासा ॥
प्राण स्वप्नमें देखत सोई। जाग्रित माह बिचारे जोई ॥
ताहि समान गहैं सो देहा। दुख सुखको है कारण येहा ॥

स्वप्न समान नर्क अरु स्वर्गा । इच्छारहित ग्रहित अपवर्गा ॥
ऐसे निज अनुमान गहाये । नर्क स्वर्ग अरुमध्य गहाये ॥
मारग मुक्ति कहावे सोई । सूरय मंडल बेधे जोई ॥
ब्रह्म लोक की मारग पाई । ताहि संग निज बास गहाई ॥
जिमि दीपक घटज्योति अपारा । जीव आतमा रूप सोधारा ॥
नसाजाल आतमकी ज्योती । सो बहुरंग ढंग की होती ॥
श्वेत हरित दुति प्रीती देखाये । भूरा रंग तासु प्रगटाये ॥
नसन प्रकाश तासु उर होई । मुक्त होत पहुँचे जो कोई ॥
सुषुम्णामें मिलि एकसौ नारी । उत्तम मध्यम लोक सिधारी ॥
केती नशा अधोमुख आहीं । अधोगती को सो ले जाहीं ॥
गहै गैल तिहि मारग जबहीं । अधोगती जिव पहुँचे तबहीं ॥
यहि विधि नर्क स्वर्ग जिव जाही । थित प्रमाण दुखसुखलह ताही॥
पूरण जब करार हो आवै । तब मृत मंडल वासा पावै ॥
कर्मके बंधन जिव तन धरही । चार खानिमें दुख सुख भरही ॥
स्वेदज जरायुज अंडज पिंडज । नाना बरन रूप निजु २ सज ॥
अंतमें जीव सुरति रह जाही । प्रगट होय सो धरितन ताही ॥

इति

अथ जीवको योनिप्रवेशवर्णन-चौपाई

योनि प्रवेश जीव जब करता । कोई धूम्र मारग पग धरता ॥
देह वानमें जाय समाई । वीर्य रूप है सो प्रगटाई ॥
मेघ बून्द मारग ते कोई । हो रसरूप औषधि सोई ॥
तेहि भोगीके बीर्य मँझारा । केते प्राण वायुके द्वारा ॥
पौन पंथ गहि केते समाई । केते धान खेत प्रबेशाई ॥
चावल आदिक अन्नमें रहई । नाना वर्ण रूप सो गहई ॥
केते गगनमें स्थित गहाई । चंद्र किर्णमें रहे समाई ॥

किर्णमार्ग औषधहि समाही । किते पुष्प फलमें भरजाही ॥
तनधारी तिहि भोजन करही । जड आतमके बीर्यमें भरही ॥
सो सुखोसि में वेष्टित सारे । पिंजर गर्भमें सोई सिधारे ॥
दूध यथा है घृतमें पुरा । तिमि बीरजमें सब जिव जुरा ॥
बीरज दूरबीन ते देखो । चलतहिलतजिवअनितनिरेखो ॥

इति

अथ शरीरवृक्षवर्णन–चौपाई

एक प्रणवते सब संसारा । सबको आदि सर्व करतारा ॥
ब्रह्म सोई ओंकार कहीजे । मन ओंकार न भेद गहीजे ॥
ओंकार मन कर्म निरंजन । कर्म स्वरूप जबतको रंजन ॥
कर्मते फुटी तीन पुनि शाखा । रज सत तम जगकारन राखा ॥
कर्मते करत होय निहकर्मा । आगम ज्ञान गहि टूटे भर्मा ॥
तृष्णा ग्रन्थि कर्ममें परई । सोई जीवको बंधन करई ॥
आतम परमातम यह रूपा । विषयमें भूलि परा भ्रम कूपा ॥
विषय वा सना त्यागे जोई । ब्रह्म स्वरूप जानिये सोई ॥
आतम परमातमा विहंगा । दोनों एक स्वरूप यक ढंगा ॥
एक है पंछी एक है छाया । छाया नहिं आया लखि पाया ॥
मूल थूल जहँ तहँ प्रभु आपू । भ्रमकरि न्यारा न्यारा थापू ॥
पड़ा जीव यह त्रिगुनके फंदा । भूला रूप चिदानन्द कन्दा ॥
काया वृक्ष ऊर्ध्व है मूला । हेठ शाख पत्री फल फूला ॥
मूल परम पूरुषको भेवा । पेड निरंजत शाख त्रिदेवा ॥
पाती जान सकल संसारा । सत्य कबीर वचन उचारा ॥

सत्य कबीर वचन–शब्द

सार शब्दसे बाचिहो मानो इतबारा हो ।
अक्षय पुरुष यक वृक्ष है नीरंजन डारा हो ॥

१. शरीर वृक्ष का चित्र देखो "कबीर भानु प्रकाश" में।

शाखा तिरदेवा बने पाती संसारा हो ।
ब्रह्मा वेद सही किया शिव योग पसारा हो ॥
विष्णु माया उतपति किया उरला व्यौहारा हो ।
तीन लोक दशहु दिशा रोकै यमद्वारा हो ॥
ज्योतिस्वरूपी हाकिमा जिन अमल पसारो हो ।
अमल मिटावो ताहिको पठावो भवपारा हो ॥
कहै कबीर तिहि अमर करो निज होय हमारा हो ।

चौपाई

यजुरवेद भाषै भल ढंगा । जिमि आतम परमात्मा बिहंगा ॥
बहुरि यकादश गीता कहई । जैसे फांस जीव गल गहई ॥
कामिक जीव बँधा बहु बन्धन । फँसा आश तृष्णाके धंदन ॥
साखी—माया मुई न मन मुवा, मरि मरि गई शरीर ।
आशा तृष्णा ना मुई, यौं कथित कहै कबीर ॥

इति शरीर वृक्ष वर्णन

अथ संप्रदाय धर्मवर्णन—चौपाई

वेदमें दोय संप्रदा जानी । यक श्री यक शंकरी बखानी ॥
श्री सम्प्रदा विष्णुकी होई । शिव सम्प्रदा शंकरी सोई ॥
दोहुमें चार चार विधि भाखो । न्यारो न्यारो नाम सो राखो ॥
प्रथमें विष्णु सम्प्रदा कहिये । चार भाग पुनि तामें लहिये ॥
प्रथमें श्री संप्रदा बखानो । रामानुज आचारय मानो ॥
द्वितिये शिव संप्रदा प्रचारी । विष्णु श्याम ताके आचारी ॥
तृतिये ब्रह्म संप्रदा साका । माधवानंद आचारय जाका ॥
सनकादि संप्रदा चतुर्थं । निबादित्य अचारय पुष्टे ॥
प्रथम कहो श्रीसत अर्थाई । रामानुजकी कथा सुनाई ॥

इति

अथ रामानुजजीकी कथा—चौपाई

होन लगी जब धर्मकी हानी । शेषते तब कह शारंग पानी ॥
धरणी जाय धरो औतारा । करो तहां श्रुति धर्म प्रचारा ॥
भगवतकी जब आज्ञा पाये । तब धरणी धर धरणी आये ॥
केशव यज्ज्वा विप्र कहाऊ । कान्तिमती माताको नाऊ ॥
ताके गृहमें सो तनधारी । धर्म धुरंधर परम अचारी ॥
आठ सौ वर्षके ऊपर होने । कांचिपुरीके उत्तर कोने ॥
देश उडीसे के दिश लच्छिन । भूत नगरी औतार धरे तिन ॥
जक्त माँह आचार चलाये । पुनि पुरुषोत्तम पुरमें आये ॥
तहां जाय निज मनहि विचारा । जगन्नाथमें चलै अचारा ॥
जगन्नाथ नहिं मान्यौ सोई । मेरे पुर आचार न होई ॥
तब हरि ऐसी कीन्ह उपाई । रामानुज कह लियौ उठाई ॥
निज पुरते रात्रिके माही । धर दियो रंग पुरीमें ताही ॥
रामानुज को निजु अस्थाना । तोतादरी दक्षिणमें जाना ॥
एकसौ बीम वर्षलों जीये । गुरु पीढी इमि वर्णन कीये ॥

इति

अथ रामानुजजीकी गुरुपीढ़ी वर्णन

दोहा—प्रथमें नारायण कहो, द्वितिये लक्ष्मी जान ।
विश्वसेन तृतीय कहो, पुनिसठकोप बखान ॥
पञ्चम श्रीनाथो कहो, पुंडरीकाक्ष है षष्ट ।
राममिश्र सतयें कहे, यमुना चारय अष्ट ॥
नौमें पूर्णाचार्ज है, रामानुज है तासु ।
ग्यारहें देवाचार्ज है, हरियानन्द है जासु ॥
तासु राघवानन्दजी, ताके रामानन्द ।
पन्द्रहें रामानन्दके, शिष्य अनन्तानन्द ॥

बहुरि अनन्तानंदके, कृष्णदासजी शिष्य ।
बहुरि कीलजी तासुके, लगता गद्दी दिख्य ॥
कीलते पुनि पंद्रह गनो, लगता जयपुर माहि ।
हरिप्रसादलों लेखिये, चौदह पीढी ताहि ॥
उन्नीस सौ तेरह सँवत लों, लेखा कीजै तास ।
ईश्वर जक्तसे भिन्न है, द्वैत धर्म परकाश ॥

इति

अथ त्रिदण्डीको वर्णन–चौपाई

श्री सम्प्रदाके जो संन्यासी । गृह तजिके जब होहि उदासी ॥
दण्ड हाथमें धारै सोई । सो यक ढाककी लकरी होई ॥
तीन शाख तिहि लकुटी माहीं । नाम त्रिदण्डी तासु कहाहीं ॥
जो कोई सो दण्ड गहाये । नाम त्रिदण्डी तासु कहाये ॥
वस्त्र श्वेतके सिंगरफ रंगा । भगवाँ आदिक धारे अङ्गा ॥

इति त्रिदण्ड

अथ रामानन्दजीकी कथा–चौपाई

रामानन्द विप्र औतारा । मथुरा नग्रमें सो तन धारा ॥
धन विद्याते पूरन रहेऊ । सब लुटाय संन्यासी भयऊ ॥
यक औसर गुरु रामानन्दा । बिचरत मिले राघवानन्दा ॥
ताहि राघवानन्द बताई । काल तुम्हारा पहुँचा आई ॥
मृत्यु सुनत रामानन्द डरेऊ । राघवानन्दसे बिनती करेऊ ॥
मैं विद्यामें जन्म गँमायौ । भजन विहीन मृत्यु नियरायौ ॥
मोपर दया करो गोसांई । काल फन्दते लेहु छोडाई ॥
राघवानन्द कृपा तब कीने । ताहि आपनी दीक्षा दीने ॥
ऐसी युक्ति बहुरि सो करेऊ । तासु प्राण ब्रह्मांडमें धरेऊ ॥
मृत्यु काल बीता जब सारा । तब ब्रह्मांडसे प्राण उतारा ॥

अधिक कृपा गुरु तापर कीनो। रामानन्दको यह वर दीनो ॥
आयू साढे सात सौ वर्षा। बकसिदीन गुरुको हिय हर्षा ॥
गुरु सेवा चिरकाल बिताये। पुनि रामानन्द काशी आये ॥
रामानुज की सम्प्रदा माही। अधिक अचार देखिये ताही ॥
कछुक खेदको कारण पाई। रामानन्द अचार भुलाई ॥
आचारिनमें जब पग दीने। पगसे तब तिहि बाहर कीने ॥

दोहा-बहुरि राघवानन्दजी; रामानन्दसे भाष।
अब न्यारी निज सम्प्रदा, कीजै मन अभिलाष ॥

चौपाई

रामानन्द सम्प्रदा न्यारी। तादिनसे मैं अलग अचारी ॥
रामानन्दको घना पसारा। धर्म आपनो जग विस्तारा ॥
रामानंदके शिष्य घनेरे। सिद्ध प्रसिद्ध भे जक्त बडेरे ॥
अनंता अरु सत्य कबीरा। सुरसरा सुखानन्द मतिधीरा ॥
भावानन्द पीपा रविदासा। धनाआदि गुनगन परकाशा ॥
केते सिद्ध साधु गुनधारी। रामानंद पसारा भारी ॥
बावन द्वारा जाको भाषा। रामानन्दको बहु शिष साषा ॥

इति

अथ श्रीसम्प्रदायको धामक्षेत्र वर्णन-वार्ता

अयोध्या धर्मशाला चित्रकूट सुखविलास गोदावरी प्रदक्षिणाक्षेत्र धनुषतीर्थ रामनाथ धाम अच्युतगोत्र शुक्लवर्ण सीता इष्ट जानकी मन्त्र राम उपासना मंत्र राघवानंदमहाप्रसाद अनन्त शाखा सामीप्य मुक्ति श्रौनद्वार लक्ष्मी आचार्य विश्वामित्र ऋषि योगवाशिष्ठ मुनि हनूमान देवता हनूमान मन्त्र राम गायत्री ऋग्वेद हरिनाम अहार विष्वसेन पार्षद रामानुज वैष्णव।

इति

अथ शिवसंप्रदाय वर्णन—चौपाई

विष्णुकांचि दक्षिणके माहीं। विर्दराजको मन्दिर ताहीं ॥
तहँवा परमानन्द मुनीशा। भजन ध्यान धारे जगदीशा ॥
तापर शिवजी कीनी दाया। हरि उपासना भेद बताया ॥
शिवजी मुख्य अचारज पाका। ताते चली सम्प्रदा शाका ॥
विष्णु श्याम सम्प्रदामें येही। अधिक प्रसिद्ध भयो मतिजेही॥
भई प्रसिद्ध ताहिके नामा। विष्णु श्याम आचारय यामा॥
धर्म तासु अद्वैतक होई। ईश्वर जक्त भेद नहिं कोई ॥
जबहि बल्लभा चारय भयऊ। कछु उपासना भिन्न सो कियऊ॥
गोकुल ग्रामहि सो पग दीने। बृन्दाबनमें बासा कीने ॥
यह सम्प्रदा चाल यह धरही। बालकृष्ण की सेवा करही ॥
भिन्न भिन्न गद्दी तहां अहई। नारि पुरुष हरिसेवा गहई ॥
नन्द यशोदा आपको जानी। पुत्र सो प्रियहरि सेवा ठानी ॥

इति

अथ विष्णु श्यामजीकी कथा और गुरुपीढीवर्णन—चौपाई

विष्णु श्याम द्विजकुल औतारा। दक्षिण देशमाह पगु धारा ॥
गुरु पीढी ताकी इमि कहिये। शिवके परमानन्दको लहिये ॥
ताके पुनि आनन्द मुनीशा। पुनि प्रकाशमुनि श्रीकृष्णदीशा॥
नारायणमुनि जैमुनि श्रीमुनि। इमि उनचास पीढी बीती गुनि ॥
उनचासवीं पीढी जब आई। विष्णु श्याम तबहीं प्रकटाई ॥
ताके शिष्य लक्ष्मण भट भैऊ। तासु बल्लभाचारय कहेऊ ॥
ताके विठ्ठलनाथ प्रसंशा। ऐसे प्रकटे पन्द्रह वंशा ॥
पन्द्रहवीं पीढी जब आई। मनसा राम तबै प्रकटाई ॥
विष्णुश्यामसे ये पन्द्रह भो। सम्वत उन्नीससौ तेरहलो ॥

इति

### अथ शिवसम्प्रदायको धामक्षेत्र वर्णन–वार्ता

विष्णुकांची धर्मशालामार्कंडेयक्षेत्र इन्द्रधनु सुख विलास पुरुषोत्तम धाम लक्ष्मी इष्ट जगन्नाथ उपासी तुलसी मंत्र त्रिपुरारि शाखा वामदेव आचार्य सायुज्य मुक्ती नेत्रद्वारा हरिनाम अहार यजुर्वेद अच्युत गोत्र शुक्ल वर्ण बट कृष्ण परिक्रमा जलबिंदु ऋषि नारद देवता विष्णुश्याम वैष्णव ।

इति

### अथ ब्रह्मसंप्रदायवर्णन चौपाई

कह अब तृतीय सम्प्रदा सोई । ब्रह्मा आदि अचारय होई ॥
आदि काल नारायण देवा । ब्रह्मासे भाषे यह सेवा ॥
यहि सम्प्रदा आचार्य सयाना । भये माधवानंद प्रधाना ॥
भै सम्प्रदा विदित तिहि नाऊ । माधवाचार्य गहे भल भाऊ ॥
कांचि पुरीके पश्चिम दक्षिण । द्विज कुलमें औतार गहे तिन ॥
द्वैताद्वैत धर्म निज केरे । ईश्वर निज मायाको प्रेरे ॥
तब यहि जगकी रचना होई । ईश्वर भिन्न मिला पुनि सोई ॥
गुरु पीढी अब कहो बखानी । आदि अचारय सारंगपानी ॥
द्वितियेब्रह्मा तृतिये नारद । चौथे व्यास जो बुद्धि विशारद ॥
सुबुधा चार्य नरहरा चारय । सप्तम कहै माधवा चारय ॥
माधवाचारजते लेख उचारा । पूर्नानन्द लो वंश अठारा ॥

इति

### अथ ब्रह्मसंप्रदायके धामक्षेत्र वर्णन–वार्ता

अवंतिका पुरी धर्मशाला बद्रिकाश्रम धामा नैमिषारण्य सुखविलास अङ्गपात्रक्षेत्र सावित्री इष्ट ब्रह्मोपासी विष्णु हंस मंत्र हंस देवता सालोक मुक्ति मोक्ष द्वारा स्त्री कालाचार्य अद्वैत शाखा

अच्युत गोत्र शुक्ल वर्ण हरिनाम अहार परमहंस ऋषि नारायण पार्षद अथर्वण वेद माधवाचार्य वैष्णव।

इति

अथ सनकादिक संप्रदायवर्णन—चौपाई

चौथी संप्रदाय सनकादिक। निंबादित आचार्यमरयादिक॥
अरुण ऋषीधर द्विजकुल टेरा। निकट गोदावरि नग्र मुंगेरा॥
धर्म वशिष्ठि द्वैत सो धारा। अहि कुंडलनहिं अहितेन्यारा॥
जग ईश्वर नहिं भिन्न रहाई। सदाकाल दोहुकी यकताई॥
गुरु पीढी यहि भांति बतायन। प्रथम हंस औतार नरायन॥
पुनि सनकादिक नारद कहिये। चौथे निम्बादित को लहिये॥
निम्बादितसे लेखा ठनिये। पैंतिसपिढिहरिव्यासलोगनिये॥
भये प्रतापवान हरिव्यासा। ताते भल यह धर्म प्रकाशा॥
जो हरि व्यासके शाखा भैऊ। नाम तासु हरिव्यासी कहेऊ॥
सो भूराम हरि व्यासके अंशा। ताहूको गुन अधिक प्रसंशा॥
पुनि हरिव्यास ते लेख लगाई। संवत उन्नीस सो तेरह ताई॥
बारह पीढी गई सिराई। माखनदास देह तब पाई॥

इति

अथ सनकादिक संप्रदायके धाम क्षेत्र वार्ता

मथुरा धर्मशाला क्षेत्र गोमती वृन्दावन सुखविलास गोर्वधन परिक्रमा द्वारावती धाम रुक्मिणी इष्टगोपालउपासी वंशगोपाल मंत्र गोपाल गायत्री हंस शाखा सारूप्य मुक्ति नासिका द्वारा सनकादिक आचार्य नारद मुनि दुर्वासा ऋषि गरुडदेवता साम वेद श्रीभद्र महाप्रसाद अच्युत गोत्र शुक्लवर्ण हरिनाम अहार निंबादित वैष्णव॥

अथ चारों भाईका धामक्षेत्र वर्णन-वार्ता

माता वरुणावती पिता अगस्त्य गुरु धर्मऋषि स्वर्ग नगरी अच्युत शुक्ल वर्ण अनंत शाखा सामवेद ॥ निष्काम भिक्षा धाम रंगनाथ सुखविलास कोटपाट हरिनाम आहार परम बद्रिकाश्रम क्षेत्र मठ वैकुण्ठलक्ष्मीदेवी नारायण ॥ देवता पूजा अक्षय बटकी श्रीरंग सम्प्रदाय ऊख खाडा शून्य स्थान सुमेर परिक्रमा बीजमंत्र ॥

इति

अथ चारों संप्रदायके तिलक स्वरूप–चौपाई

श्री संप्रदायके जो आचारी । चरणचिह्न प्रभु तिलक सँवारी ॥
दोय लकीर ऊर्ध गत हेरे । श्री अरु नारिबीच तिहि केरे ॥
हेठ तिलक हरिको सिंहासन । जोरी बनावै निज्ञुलीलारन ॥
मध्यमें लाल वरन श्री करही । दीपशिखाजिहिविधिलखिपरही
एता पीता वरन श्री होई । रामानन्द संप्रदा सोई ॥
द्वितिये विष्णुश्यामविधि जोहे । दोय लकीर लीलारमें सोहे ॥
हेठ सो सिंहासन शून्य है बीचे । जाति बरनते चित नहिं खींचे ॥
साधू होहि बिरक्त न होहि । कह मरयाद पालना होहि ॥
तृतिये माधो संप्रदा कहिये । दोय लकीर ऊर्ध्वगत लहिये ॥
हेठ सिंहासन ताहि बनाई । चरणचिह्न प्रभु माथ सोहाई ॥
चौथे निम्बादित्य जो साजे । दोय लकीर लीलार विराजे ॥
हेठ सिंहासन बन्दु विचाला । ऊर्ध्व पुंड्र अरु वैष्णव चाला ॥

इति

अथ वैष्णवके द्वादश तिलक वर्णन[1]

दोहा–ऊर्ध्वपुंड्र मस्तक प्रथम, ब्रह्मरंध्रपुनि जोय ।

---

१ तिलकोंका चित्र देखो 'कबीर भानु प्रकाश' में ।

तृतिय नेत्र दोउ कंठपुनि, उर नाभी फिर होय ॥
उर दोहु दिश भुज दोय पुनि, तथा पृष्ट परमान ।
बरन बइष्णवके यही, द्वादश तिलक बखान ॥

इति द्वादश तिलक

अथ वैष्णवके दशचिन्ह वर्णन

दोहा–भद्र भेषतशोचकर पुनि, तुलसी गल माथ ।
रामकृष्णको मंत्र गह, गोपी मृतिका साथ ॥
शिखा सूत्र करमण्डलो, धौत वस्त्र गुरुवाक ।
चिह्न वैष्णवके दशो, चार संप्रदा साक ॥

इति

अथ बावनद्वारेके नाम

दोहा–प्रथम अनंता जी कहे, साहिब सत्य कबीर ।
पुनि सुरेश्वरानंदजी, सुखानन्द मति धीर ॥
अनभय नन्द मुरारजी, अग्रदासजी काल ।
दीपाजी रवि दासजी, नामदेव हढशील ॥
खोजी जंग दिवाकर, वीरम त्यागी जान ।
परशराम नाभा टिला, भोला नैन बखान ॥
पूरन बैराटी कहे, बहुरि घमण्डी देव ।
ज्ञानिकुबा हरि बंशजी, राघावा वल्लभ येव ॥
गोकुल विट्ठल करम चँद, जोगानंदी जोय ।
धरनीदास मलूकजी, असख देवनी होय ॥
माधौ कानी रामरावल, आत्माराम प्रकाश ।
लाल तरंगी देव भडंग, भगवान तुलसीदास ॥
हठी नरायण राम रँगी, चतुरा नागा होय ।
नित्यानन्दी राम कबीर, श्यामानन्दी सोय ॥

हनूमान दास कमालजी, चेतन स्वामी नाम ।
दास चतुर्भुज राम जपु, मन पुनि कह दुंदूराम ॥

इति बावनद्वार

अथ सात अखाडनके नाम

दोहा–टाटंबी निरालंबी कह, संतोषी विख्यात ।
निर्वानी दीगम्बरी, षोकी निरमोहि सात ॥

इति सात अखाडन

अथ तेरह परमभागवतके नाम–चौपाई

नारद पुंडरीक प्रहलादा । व्यास वशिष्ठ पराशर वादा ॥
भीषम रुक्मांगद विभीषनौ । अर्जुन अम्बरीष शुक सेनौ ॥

इति

अथ रामानन्दजी और सत्यकबीरकी कथा–चौपाई

सत्यकबीर मनुष तन लीने । जोलहाके घर बासा कीने ॥
अगम ज्ञान कथ साधुन पाहीं । सुनि आश्चर्य करे मनमाही ॥
निजु निजु मनमें करे बिचारा । बालक नहीं सिद्ध औतारा ॥

सत्यकबीर वचन शब्द

साखी–तब हम साध सिद्धते, कथे गुष्टि घन ज्ञान ।
सिद्ध साध मिलिमोकह, पूछै गुरुको नाम ॥

चौपाई

गुरु नहिं नाम कहौ क्यों ओही । तब वे दोष देहि सब मोही ॥
साकठ होई कथ्यो बहु ज्ञाना । गुरुविन मुक्ति न होय निदाना ॥
तब अपने मन कीन बिचारा । तब गुरु उठो द्वंद संसारा ॥
हम गुरुमुक्ति दृढावन आये । गुरुमारग जिवलोक पठाये ॥
गुरु धारनको मनहिं बिचारा । रामानंदसे वचन उचारा ॥
रामानन्द गुरु दिक्षा दीजै । गुरुपूजा कछु हमसे लीजै ॥

तब रामानन्द बचन सुनाई । शूद्रके कान न लागौ भाई ॥
रामानन्द न दिक्षा दीने । तब कबीर अस उद्यम कीने ॥
वीच पंथमें पौढे जाई । जिहि मारग रामानन्द आई ॥
पिछला पहर राति जब आवै । रामानन्द असनानको जावै ॥
चले जात मारगमें जबहीं । लगा खराऊँ ठोकर तबहीं ॥
तब पुकारिके रोवन लागे । रामानंद खडे भे आगे ॥
बालक देखि दया उर आई । रामानंद कहे समुझाई ॥
मतिरोवो मति करो पुकारा । राम नाम किन कहु मेरे बारा ॥
तब कबीर सो शिक्षा पाई । गुरु शिष्यको भाव बनाई ॥
रामराम धुनि रटनि लगाया । रामानंदसे बचन सुनाया ॥

सत्यकबीर वचन

गुरुजी समुझि गहो मोरे बाहीं । औरनसो चेला हम नाहीं ॥
जो बालक घुनघुनवा खेले सो बालक हम नाही ।
चौदह सो चौरासी चेले तिनमध्ये हम नाहीं ॥
हम तो लेते सत्तको सौदा पाखंड पूजवे हम नाहीं ।
बांह गहो तो गहिके पकरो फेर छूटि ना जाहीं ॥
हाड चाम मेरे नहिं कोई जुलहा जाति हमनाहीं ।
तुमरी नावमें केवट नाहीं लहरि उठै बिकरारा ॥
गुरु समेत शिष्य जब बूडे कौन उतारो पारा ।
जौं तुमरे कछु उद्यम नाही भीख मांगि किन खाहू ॥
मूरि सजीवन जानत नाहीं भूलि न बांधो काहू ।
सूखे काठमें ज्यों घुन लागे लोहे लागी काई ॥
बिन परतीत गुरू जौ कीजै तो काल घसीटे जाई ॥
कहे कबीर सुनो रामानंद यह सिखलेव हमारी ।
निरखि परखिके चेला कीजै तागुरुकी बलिहारी ॥

चौपाई

रामानन्द गये असनाना । तब कबीर गृह कियौ पयाना ॥
भोरहि कण्ठी तिलक लगाये । नग्रलोग सब देखन आये ॥
पूछे किमि यह भेष बनाये । तब कबीर यह उत्तर सुनाये ॥
रामानन्दको गुरु हम धारा । ताते ऐसे भेष सँवारा ॥
रामानन्द खबर जब पाई । तब कबीरको टेरि बोलाई ॥
रामानन्द गुरु परदा धारा । सत्य कबीर से बचन उचारा ॥
रे जोलहा ते कहसि न मोही । कब मैं दीक्षा दीनों तोहीं ॥
गुरुजी राम कृष्ण तुम मेरे । रैन पन्थ प्रकटै क्यों तोरे ॥
तुम तब रामनाम मोहि दीना । मैं निज जन्मसुफलकरिलीना ॥
कहै गुरु यह बालक रहेऊ । ठोकर लगा राम तिहि कहेऊ ॥
गुरुजी हमही रहै सो बाला । राम राम सुनि भयेनिहाला ॥
कह गुरू तू वैश्य कि शूद्रा । वह तो हता बाल बुधि भोरा ॥
तिहि छिनबालरूप दिखलाओ । तब गुरु रामानंद पतियायो ॥
पै जोलहा ब्रह्मवादि कराही । अन्तर ओट सोदियौ बहाई ॥
कहै साधु गुरुसे समुझाई । कबीरहिजुलहानकहिये गुसांई ॥
अनंतानंद कहै परचाये । कबीर सो ब्रह्मरूपधरि आये ॥
दीजै दरशन इनको स्वामी । ये आहि ब्रह्मसोअन्तरयामी ॥
तबहु न दर्शन दीन गुसांई । तब हम सन्मुख ठाढभे जाई ॥

साखी-गुफामाह गोपहुँचहौं, पूछे को तुम आहु ।
मैं कबीर सेवक अहौ, अजहूँ नहिं पतियाहु ॥

चौपाई

रामानंद कहाव गुरु मेरा । सत्त कबीर मैं सेवक तोरा ॥
गुरु सोई जो शिष्य चितावै । शिष्य सोई गुरुसेवा लावै ॥
कहौ गुरु गुरुज्ञान विचारी । को है पुरुष कौन है नारी ॥

कौन पुरुषको सुमिरो नामा । कहौ कहां अबिचल निजुधामा ॥
कहौ ध्यान कीजै किहि केरा । तन छूटे कह होय बसेरा ॥
रामानंद कहै सुनु पूता । गुरुमुख ज्ञान रहो संयुक्ता ॥
आपै पुरुष आप है नारी । कहो ज्ञान चितराख संभारी ॥
सुमिरहु दशरथ सुत श्रीरामा । अवधपुरी अविचलनिजधामा ॥
श्याम स्वरूप ध्यानमन धारो । तन छूटे बैकुण्ठ सिधारो ॥
कहै कबीर सुनो गुरुदेवा । यह समुझाय कहो मोहिभेवा ॥
रामचन्द्र त्रेतामें भयऊ । काहुदुखाय काहु सुख दयऊ ॥
लोभमोह जुत वन वन डोला । तत्त्वप्रकृत संगतितिहि बोला ॥
जौन बाटते रघुपति आये । सूत कौशल्याको कहलाये ॥
जब त्रेता तब राम भुवारा । कौन पुरुषको सकलपसारा ॥

साखी–अहो गुरू समुझाइये, कोहै सिरजन हार ।
रामचन्द्र गुरु बंदेउ, कौन नाम आधार ॥

चौपाई

कहत निगम अस करे विचारा । पूर्व अवर्न जन्मसो न्यारा ॥
तात मात बंधु सो नहिं ताही । ना वह आवै ना वह जाही ॥
श्याम श्वेत नहिं कहिये ताही । इन्द्रासन बैकुण्ठ न जाही ॥
तीन लोक सब परलय होई । निजु धाम कहो कहां है सोई ॥
स्वर्ग लोक तुम राखी आशा । फिरि फिरि होय गर्भमें वासा ॥

साखी–स्वर्गनरक न्यारा, सो मोहि देहु चिह्नाय ।
कहवाते जीव आयेऊ, कहोगुरू समुझाय ॥

चौपाई

सुनहु कबीर कहो सो गहहू । करिये योग अमर ह्वै रहहू ॥
आसन साधहु बांधहु मूला । अष्टकमलदल निरखहु फूला ॥

चन्द सूर गहि कीजै मेला । मन पौना शुभ निथर खेला ॥
चढि अकाश अमृत रसपीवो । तब कबीर तुम युग युग जीवो ॥

साखी–स्वर्ग नरकते न्यारा, ज्योतिपुरुष निर्वान ।
तहवाँसे जीव आइया, कहो गुरू सहिदान ॥

चौपाई

कहै कबीर सुनो हो स्वामी । तुम हो सतगुरू अन्तरजामी ॥
योगके किये अमर जो होई । तौ पुनि योगी मरे न कोई ॥
का भो साधे आसन मूला । जौं नहिं मेटे संशय शूला ॥
का भो अष्टकमलके पेखे । जौ नहिं आप रूप निजु देखे ॥
का भो चन्द सूरके मेला । जौंनहिं शब्दसुरति गहि खेला ॥
का भो सुष्मुनि जाय समाये । जौं नाहीं अक्षर लखि पाये ॥
क्याअकाश चढि अमृत पीये । जौंनहिं नाम अमी चित दीये ॥
ज्योति स्वरूपी पुरुष बतायहु । ज्योति काल तीनों पुरुषायहु ॥
यहिजिव नाहिं ज्योतिसे आवा । परम ज्योतिसे अंश उपावा ॥
जो जिव ज्योति पुरुषते होई । तौ काहे जिव जाय बिगोई ॥
ज्योति निरंजन काल अन्याई । सिद्धि तपी सब धीरधरि खाई ॥

साखी–ब्रह्मा विष्णु महेश्वर, सुर नर मुनि सब झार ।
ज्योति निरंजन सब कहे, खायो बारंबार ॥

चौपाई

जाहि कहत हो पुरुष निर्वाना । वही आहि तौ काल देवाना ॥

साखी–योग यज्ञ जपतीरथ, यह सब यमके जाल ।
कहै कबीर सतनामबिन, कबहु न छोडै काल ॥
पांच तीन जहवां नहिं, नहीं प्रकृत प्रवेश ।
रविशशिपानीपौननहिं, तहँको कहो सँदेश ॥

चौपाई

कहै गुरु तुम शिष भये मोरे । यह सब बुद्धिको दीनेहु तेरे ॥
कहै कबीर सब तुम परतापा । हमरे तुमहि माया अरु बापा ॥
तब गुरु हमपर भये दयाला । निजकरदियौ सुमिरिनी माला ॥
कहै गुरु सुन साधु कबीरा । तुम तो सेवक हो मतिधीरा ॥
सर्वानंद विप्र यक आये । तिन पुनि गुरुते गोष्टि कराये ॥
ताहि जीत गुरु शिष्य करावा । तब गुरु हम कह तिलककरावा ॥
सब पर श्रेष्ठ हमें गुरु कीना । हम पुनि सबते रहैं अधीना ॥

साखी-गुरुके सब शिष्य मोहिको, बोलैं गुरूसमान ।
हम गुरु साधु अधीन हैं, भाषै निर्भय ज्ञान ॥

शब्द

लख कोई बिरलापद निर्बान । बिन रसना सूर धरै ध्यान ॥
तामें दरसे पुरुष पुरान । कर्म छोडि सब भर्म नसान ॥
दुरमति छोडि कमल धरु ध्यान । तीन लोकमें काल समान ॥
चौथे लोकमें नाम निसान । रामानन्द गुरु करै बखान ॥
दास कबीरको निरमल ज्ञान ।

इति

मेरो नाम कबीरा हो जगत गुरु जाहिरा ।
तीन लोकमें मागा मेरा त्रिकुटी है अस्थान ॥
पानीपौन समेरसमाना इस विधि रच्यौ जहाना ।
गगन मन्दिरमें बासा मेरा मंजनि है अस्थाना ॥
ब्रह्मबीज हमहीसे आया हमरै सकल जहाना ।
अनहद लहर गगन गढ उपजै बाजै सोहं तारा ॥
गुप्त भेद वाहीसे कहिये जो निज होय हमारा ।
भवबंधनसे लेहु छोडाई निरमल करो शरीरा ॥

सुर नर मुनि कोई भेद न पावै पावै संतगंभीरा ॥
वेद कदापि पार नहिं पावै ऐसे मतिके धीरा ।
कहै कबीर सुनो रामानन्द दोनों दीनके पीरा ॥

चौपाई

रामानन्द कबीर कहानी । जक्तमाह बहु विधि बिहरानी ॥
कछु मैं सूक्षम लिख्यौ बनाई । कीरति जासु जक्तमें छाई ॥
सत्त कबीरको चरित अनेका । सो कछु इहां लिखौ नहिं एका ॥
केते परचा गुरुहि देखाई । तब ताके हिय निश्चय आई ॥
मैं घनघोर गुष्टि गुरु पाही । अगम ज्ञान सुनि बोले ताही ॥

रामानंद वचन

दोहा—मैं जाना तुम जोलहा, मोहि पडा बड धोष ।
मूल दिक्षा मोहि देव कबीर, जीवत आवै संतोष ॥
करता तुम हो साधू हो, सत्य कबीर है देव ।
तनमन तुमको अर्पिहों, कल्ह दीक्षा मोहि देव ॥

सत्यकबीर वचन—शब्द

साखी—काल करन्ते आज कर, आज करंते अब ।
औसर बीता जात है; ब्यौहार करोगे कब ॥
काल करंते काल है, मोहि भरोसा नाहिं ।
यह तन काचा कुम्भ है, विनशि जाय छनमाहिं ॥
घडी पलकको सुधि नहीं, करो कालको साज ।
काल अचानक मारि है, ज्यों तीतरको बाज ॥

चौपाई

योगी गोरख नाथ प्रतापी । तासुतेज पृथ्वी पर व्यापी ॥
काशी नग्रमें सो पग परही । रामानन्दसे चर्चा करही ॥
चरचामें गोरख जय पावै । कंठी तोरे तिलक छुडावै ॥

सत्य कबीर शिष्य जब भयऊ । यह वृत्तांत तब सो सुनि लयऊ ॥
गोरखनाथके डरके मारे । बैरागी नहिं वेष सँवारे ॥
तब कबीर आज्ञा अनुसारा । वैष्णव सकल स्वरूप सँवारा ॥
सो सुधि गोरखनाथ जो पायौ । काशीनग्र शीघ्र चलि आयौ ॥
रामानन्दको खबरि पठाई । चर्चा करो मेरे सँग आई ॥
रामानन्दकी पहिली पौरी । सत्य कबीर बैठे तिहि ठौरी ॥
कह कबीर सुन गोरखनाथा । चर्चा करो हमारे साथा ॥
प्रथम करो चर्चा सँग मेरे । पीछे मेरे गुरुको टेरे ॥
बालक रूप कबीर निहारी । तब गोरख ताहि बचन उचारी ॥

सत्यकबीर वचन--शब्द

कबके भये वैरागी कबीरजी कबके भये वैरागी ।
नाथजी हम जबसे भये वैरागी मेरी आदि अन्त सुधिलागी ॥
धुधूकार आदिको मेला नहीं गुरू नहीं चेला ।
जबका तो हम योग उपासा तबका फिरों अकेला ॥
धरती नहीं जदकी टोपी दीना ब्रह्मा नहीं जदका टीका ।
शिवशंकरसो योगी नाहीं जदका झोली शिक्का ॥
द्वापरकी हम करी फावडी त्रेताको हम दंडा ।
सतयुग मेरी फिरी दुहाई कलियुग फिरौ नौखण्डा ॥
गुरुके वचन साधुकी संगत अजर अमर घर पाया ।
कहैं कबीर सुनोहो गोरख जब हम तत्त्व लखाया ॥
जो बूझे सो बावरा क्या उमर हमारी ।
असंख युग परलय गई तबके ब्रह्मचारी ॥
कोटि निरंजन हो गये परलोक सिधारी ।
हम तो सदा महबूब हैं सोहं ब्रह्मचारी ॥
दश कोटि ब्रह्मा भये नौ कोटि कन्हैया ।

सात कोटि शंभू भये मोरी एक पलैया ॥
कोटिन नारद होगये महम्मदसे चारी ।
देवतनकी गिनती नहीं है क्या सृष्टि बिचारी ॥
नहिं बूढा नहिं बालक नहीं भाट भिखारी ।
कहै कबीर सुन गोरख यह उमर हमारी ॥
अविधू अविगतसे चलि आये कोई भेद मरम नहिं पाया ।
ना मेरो जन्म न गर्भबसेरा बालक है देखलाया ॥
काशीनग्र जङ्गल बिचडेरा तहां जोलाहे पाया ।
माता पिता मोरे कछु नाहीं न मेरो गृहदासी ॥
जुलाहाको सुत आनिकहाया जगत करत है हांसी ।
धड नहिं मेरे गगन कछु नाहीं सूझै अगम अपारा ॥
सत्य स्वरूपी नाम साहेबको सोहै नाम हमारा ।
अधरद्वीप नहिं गगन गुफामें तहँ निजु वस्तु हमारा ॥
ज्योतिषरूपी अलख निरञ्जन सो जपै नाम हमारा ।
हाड चाम लोहू नहिं मोरे हौं सतनाम उपासी ॥
तारन तरन अभै पददाता कहै कबीर अविनाशी ।

गोरखवचन

कौन छुरा कौन पानी गुरु मूँडै कौन बानी ॥

सत्यकबीर वचन

शब्द छुरा निरञ्जन पानी गुरु मूँडै निरबानबानी ।

गोरखवचन

कौन दर कौन दरवेश कौन गुरूने मूँडै केश ॥
कौन पुरुको सुमिरौ नांव मांगो भिक्षा भांडो गांव ॥

सत्यकबीर वचन

मन दर पौन दरवेश गुरू गोविंदने मूँडै केश ॥
अलख पुरुषको सुमिरो नांव मांगो भिक्षा तारो गांव ॥

गोरख वचन–चौपाई

कौन तुमारी उतपति कीनी । किसने तुमको माला दीनी ॥
कौन गुरू दीनो उपदेश । उतारो माला करो आदेश ॥

कबीर वचन

आदि पुरुषने उतपति कीनी । सिरजन हारने माला दीनी ॥
गुरु गोविंद दीनो उपदेश । न उतारों माला नाकरों आदेश॥

गोरख वचन

क्या लै उठो क्या लै बैठो रहो कौनकी छाया ।
कौन माह निरञ्जन पेखे कैसे त्यागी माया ॥

कबीर वचन

एकले उठ एकले बैठे रहै एककी छाया ॥
एकै माह निरञ्जन पेखा सहजे त्यागी माया ॥

गोरख वचन

कौन तुमारी डिब्बी बोलिये कौन तुमारा चावल ॥
कौनसो तुममें सिद्ध बोलिये कौनसो तुमरो रावल॥

कबीर वचन

काया हमारी डिब्बी बोलिये कर्म हमारे चावल ॥
एक हमसे सिद्ध बोलिये और सकल है रावल ॥

गोरख वचन

कौन तुमारी गुदरी बोलिये कौन तुमारा धागा ॥
कौन तुमारी टोपी बोलिये काहेते मन लागा ॥

कबीर वचन

काया हमारी गुदरी बोलिये पौन हमारा धागा ॥
गगन हमारी टोपी बोलिये अलख पुरु मंन लागा॥

गोरखवचन

कौन तुमारी तिलक बोलिये कौन तुमारा छापा ॥
कौन तुमारी जाति बोलिये कहा तुमारी आसा ॥

कबीरवचन

तत्त्व हमारी तिलक बोलिये राम नाम है छापा ॥
वैष्णव हमारी जाति बोलिये शब्द मंडलमें आसा ॥

गोरखवचन

शब्द कहांसे आया कहो शब्दको बिचार ॥
नहीं तो तिलक माला धरो उतार ॥

कबीरवचन

शब्दै धरती शब्दै अकाश । शब्दै पांच तत्त्वके बास ॥
कहैं कबीर हम शब्द सनेही । शब्द न बिनसै बिनसै देही ॥

गोरखवचन

अंडान मंडान चार खुरो द्वै कान ॥
जान तो जान नातो झोली माला डरे आन ॥

कबीरवचन

अण्डान धरती मंडान आकाश चारों खूट चारोंखूरी चंद्रसूर्यद्वै
कान ना जानो मात्रा तो गुरु रामानंदकी आन ॥
शेली सिंगी और खटपटी । फिर बोलो तोरों कनपटी ॥

गोरखवचन

आसन बांधो बासन बांधो अरु बांधो नौद्वारा ॥
तोहि बांधों तेरे गुरुको बांधों निकसे कौने द्वारा ॥

कबीरवचन

आसन मुक्ता वासन मुक्ता मुक्ता है नौ द्वारा ॥
मैं मुक्ता मेरो गुरुभी मुक्ता निकसै दशमें द्वारा ॥

चौपाई

गोरखनाथ कबीर समाजा । विविध ज्ञान विज्ञान विराजा ॥
चर्चा पर्चा बहुविधि ठानो । विदित जक्तमें लोगन जानो ॥
इहांसो कथा लिखो नहिं कोई । अन्त बाद जिहि औसर होई ॥
गोरख नर्म भये तिहि बारा । विनय सहित निज बचन उचारा ॥

गोरखवचन

नवो नाथ चौरासी सिद्ध, इनको अनहद ज्ञान ।
अविचल घर कबीरको, यह गति विरलाजान ॥
झोरी झण्डा कूबरी, शेली टोपी साथ ।
दाया भई कबीर की, चढ़ाई गोरखनाथ ॥

धर्मदास वचन

दोहा—बाजा बाजा रहितका, परा नगरमें शोर ।
सतगुरु खसम कबीर है, नजर न आवै और ॥

नानकशाह वचन

शब्द—वाह वाह कबीर गुरु पूरा है ।
पूरे गुरुनकी मैं बलि जैहौं जाको सकल जहूरा है ॥
अधर दुलैच परै है गुरुनके शिव ब्रह्मा जह शूला है ॥
श्वेत ध्वजा फहरात गुरुनके बाजत अनहद तूरा है ॥
पूर्ण कबीर सकल घट दरशै हरदम हाल हजूरा है ॥
नाम कबीर जपै बडभागी नानक चरणको धूरा है ॥

सत्य कबीरवचन नानकशाहप्रति

शब्द—वाह वाह लडके जीतारहु ।
मंडुयेकी रोटी बथुयेकी भाजी ठंडा पानी पीतारहु ॥
प्रेमकि सुई सुरतिको धागा ज्ञानगूदरी सीतारहु ॥

यहि लडकेकी बड बड अँखियां नितप्रति दरशन करतारहु ॥
कहैं कबीर सुनो भाई लडके रामरसिक रस पीतारहु ॥

मलूकदास वचन

शब्द-जपो रे भाई साहिब नाम कबीर ॥
एक समय गुरुवंशी बजाई कालिंदीके तीर ।
सुरनरमुनि सब चकित भये हैं अरु यमुनाजीको नीर ॥
काशी तजि गुरु मगहर आये दोऊदीनके पीर ।
कोइ गाडै कोइ अग्निजलावे नेक न धरते धीर ॥
चार दागते सतगुरु न्यारा अजर अमरो शरीर ।
जगन्नाथको मंदिर थापे हटि गये सायर नीर ॥
आसा रोपि समुद्र हटाये ऐसे गुरू गँभीर ।
दास मलूक श्लोक कहत हैं खोजहु खसम कबीर ॥

दादूराम वचन

साखी-अधर चाल कबीरकी, मोसे कही न जाय ।
दादू कूदै मिरग ज्यौं, पर धरनि पर आय ॥
हिन्दूको सतगुरु सही, मुसलमानको पीर ।
दादू दोनों दीनमें, अदली नाम कबीर ॥
हिन्दू अपनी हद चले, मुसलमान हद माह ।
दादू चाल कबीरकी, दोउ दीनमें नाह ॥
दादू बैठे जहाजपर, जो दरियाके तीर ।
जलकी जेती माछरी, रटै कबीर कबीर ॥

नाभाजू वचन

दोहा-वानी अरबो खरबो, ग्रन्था कोटि हजार ।
करता पुरुष कबीर, रहै नाभे विचार ॥

गरीबदास वचन

साखी–गरीबपंजा दस्त, कबीरकासिरपर धारो हंस ।
जम किंकर चपै नहीं, अधर जात है वंश ॥

श्रीमहादेव उवाच

श्लोक–यः सुखसागरो दाता बीजज्ञानं तथैव च ।
आद्यन्तरहितो लोके यः कबीर इहोच्यते ॥
कलांशेन गतो भूम्यां विलासा सत्य संज्ञकः ।
दीनोद्धारेतिदक्षः कबीरसंज्ञः इहोच्यते ॥
कर्ता कोन्यायकारी च व्यक्ताव्यक्तःसनातनः ।
रमते सत्यलोके यः स कबीर इहोच्यते ॥

पारवतीजीने पूछा कि कबीर किसको कहते हैं ? उनके उत्तरमें शिवजीने कबीर साहिबकी स्तुतिमें सौ एक श्लोक कहे हैं उस ग्रन्थको कबीर एकोत्तर कहते हैं जो सामवेद और पाताल खण्डमें हैं उसमेंसे यह तीन श्लोक लिखे हैं ।

इति

अथ वैष्णव आचार वर्णन–चौपाई

सहित बिचार आचार घनेरे । उज्वल क्रिया तासुकी हेरे ॥
नित दातन मज्जन तन करही । शौच क्रिया भली भांतिसे धरही ॥
मांस मद्य आदिक हैं जेते । जानि अभक्ष न संग्रह तेते ॥
जप तप ध्यान धुन्धते धारे । ठाकुरकी पूजा विस्तारे ॥
मूरति होय कि मानस ध्याना । उभय भांति हरि सेवा ठाना ॥

अथ मूर्तिपूजा आठ प्रकार वर्णन

दोहा–मनोमयी परतक्ष कही, चित्र बखानो काठ ।
माटी धात ध्यानमय, प्रतिमा पूजा आठ ॥

चौपाई

प्रथमहि पानी विद्या जानो । बिन विद्या किमिहरि पहिचानो॥
द्वितिये पुष्पको अर्थ कहीजै । एक देवकी टेक कहीजै ॥
तृतिये चावल अर्थ सुनाओ । भोग अशुचिपरधान्य न खाओ॥
चौथे चन्दनते इमि जानी । काम क्रोधकी कींजै हानी ॥
कीना डाह द्वेष सब जोई । उरते दूर बहाओ सोई ॥
पंचम धूप अर्थ इमि कहिये । प्रीति देव गरमीते गहिये ॥
छठये दीपको अर्थ बताओ । बुद्धिदीप निज हृदय जगाओ ॥

अथ मुक्तिस्वरूप वर्णन—चौपाई

जीवते ब्रह्म होय जो कोई । मुक्तनाम भाषे श्रुति सोई ॥
चार भांतिकी मुक्ति प्रमाना । सालोको सामीप बखाना ॥
सारूपो सायुज्य कहीजै । ऐसो तिनको अर्थ गहीजै ॥
सालोकहिं प्रभु लोक निवासा । सामीपा हरिके ढिग वासा ॥
सारूपा प्रभु रूप हो भाषा । सायुज्यौ हरिमें मिल दासा ॥
जस वासना दास उर होई । तैसी मुक्ती पावै सोई ॥
जब उपासना पूरण भैऊ । जीवनमुक्त ताहि तब कहेऊ ॥
परम धामको जब सो जावै । हरिपारषद तासु ढिग आवै ॥
जब हरिधामको चालन लागे । थूल देहको तब सो त्यागे ॥
लिंगदेह तब धारण करई । पांचो तत्त्व देह परिहरई ॥
जब भूलोकते आगे चाला । पृथ्वी तत्त्व देह तब डाला ॥
बहुरि देह पानी की धारा । तब जसतत्त्व लंघिहो पारा ॥
बहुरि अग्निदेही गह सोई । पार अग्नि घेरा तब होई ॥
फेर वायुकी देहको धारी । पौन घेर बाहर पग धारी ॥
इमि तन त्यागत गहतनवीना । सकल घेर बाहर पग दीना ॥
चलि ब्रह्मांड पार जब कीता । मायापार भो त्रिगुणातीता ॥

पुनि परमात्म प्रकाश बखाना । तामें जाय करे असनाना ॥
करि असनान लिंगतन छोडा । दिव्य देह अबिकारी जोडा ॥
ज्ञानानंद ब्रह्म तन पाई । निज स्वामी के द्वारे जाई ॥
आदरयुत प्रभुके ढिग आवे । हरिगुण विविधि भांतिसे गावै ॥
प्रभु दाया माया ते छूटा । कठिन दुःखते प्रभुपद जूटा ॥
ब्रह्मानंद मगन मन होई । यद्यपि ऐसो समरथ सोई ॥
रचे अमित ब्रह्मांड जो चाहे । पालपोषिके पुनि तिहि ढाहे ॥
तदपि ब्रह्म सुख ऐसो लहई । और दिशा नहिं तो चितबहई ॥
याहूमें ब्यौरा बहु तेरा । कथा कछुक लिखिये तिनकेरा ॥
ब्यौरा वेद कहे यहि भाये । जो कोई मुक्त स्वरूप समाये ॥
सागरमें जस बुंद समाना । पै वह बुंद आपको जाना ॥
बहुरि कहै श्रुति ऐसो लेखो । ऐसी मुक्ति जीवको देखो ॥
पुष्पमाल जैसे हरि केरो । अथवा जैसे भूषन हेरो ॥
यहिविधि जिव हरि अंगमें जूटा । जिहि औसर मायाते छूटा ॥

इतिमुक्त

अथ परलोकमें पुण्यातमा और परमात्माको वर्णन

दोहा-कथा कहौ परलोककी, जब जिव त्यागे प्रान ।
मुरछा मृतके गत भये, पुनि तिहि जक्त फुरान ॥

चौपाई

जीवकी जब मूरछा गत होई । इंद्रिन सहित आप तन जोई ॥
पिछली स्मृतिहि दियो बिसराई । जन्म धरंत आपको पाई ॥
बाल युवा बृद्धादिक माना । जाति पांति कुलमें लपटाना ॥
भ्रम करिके जित जगको देखा । जैसे कछु स्वपनेको लेखा ॥
जाग्रत स्वप्न भेद नहिं कोई । स्वप्नहुमें स्वपनांतर होई ॥
भ्रमही करि पितु माता जाना । मिथ्या भास गहे अज्ञाना ॥

मृतक होय जीव जिहि बारा । देह अन्त बाहक तब धारा ॥
बहुरि बासना प्रेरि लै आवै । अधि भौतिक देही दिखलावै ॥
अधि भौतिक देहि जब पाया । दुखसुखको कारन यह आया ॥
हृदय कमल अंगुष्ठ प्रमाना । जीव अकाश जौ नाम बखाना ॥
ताहि कमलमें भर्मत रहई । लोक अनन्त दृष्टिमें गहई ॥
तहँ कोटिन ब्रह्मांड निहारी । हृदय कमल निज माह विचारी ॥
तीन प्रकार पुण्य जन राशी । मूरख पुनि धार्नां अभ्याशी ॥
तृतिये सर्व शिरो मुनि ज्ञानी । भिन्न २ गति निर्णय ठानी ॥
धार्नां भ्यासीकी यह बाता । तन तजि इष्ट देव ढिग जाता ॥
अपने इष्ट देव पुर जाई । नाना विधि सुख भोग कराई ॥
नहिं मूरख नहिं ज्ञानी जोई । सुखसे निज तन त्यागे सोई ॥
बहुरि जन्म जगमें सो पाई । पुनि सो आतम लाभ लहाई ॥
अब ज्ञानीकी कथा बखानी । तजत देह सब सुखकी खानी ॥
मुक्ति विदेह तासुको ठीका । जिनके हृदय ज्ञानको ठीका ॥
पापीको अब मरण बतावो । महा दुःख ताके उर छावो ॥
जिनको अज्ञानिनको सङ्गा । उत्तम बुद्धि होय जिहि भंगा ॥
पापी चार कर्म जो करही । श्रुति बिरुद्ध मग माह बिचरही ॥
तजै देह जब ऐसे लोगा । तिनको घेर शूल सौ सोगा ॥
विषय बुद्धि जासु लपटानी । दुसह दुःख पावै सो प्रानी ॥
हो पदार्थसे तिनहि वियोगा । रुंधित कंठ स्मृत सुख भोगा ॥
नैन तासु दोउ तब फटि जाही । कांति विरूप अंग हो ताही ॥
अंग उपांग टूटै तिहि बारी । प्रान निकसिगहि मारग नारी ॥
होय पदार्थ वियोग दुखारी । अस अनुमान करे दुख भारी ॥
अग्नि कुंडमें डारे जैसे । दुःसह पावै दुखजिव जैसे ॥
सर्व द्रव्य तिहि भ्रमयुत भासा । नभ पृथ्वी पृथ्वी आकाशा ॥

परम कष्ट पावै तिहि काला । नभते जनु कोइ महिमें डाला ॥
पाथर में धरि मनहु पिसाना । जिमि तृन भोडरमें भरमाना ॥
अंध कूपमें जैसे गेरा । मानहु कोल्हूमें धरि पेरा ॥
रथते गिरे जीव जिमि नीचे । रस्सी ज्यौं गलडारिके खींचे ॥
दुःख अनँत परकार बखानो । कह लो ताकी निर्णय ठानो ॥
मूर्छित होय गहै जडताई । ताके कर्म जुरहि सब आई ॥
जिमि किशान बीजनको बोवे । समय पाय ताको फल होवे ॥
प्रान अपान कला दोउ टूटे । विषय वियोग महा दुख जूटे ॥
मृत्यु समय जब जिव मुरछाना । गगन लीन हो पौन अरु प्राना ॥
ताहि प्रानमें चेतन ताई । चेतनता बासना गहाई ॥
सहित बासना चेतन प्राना । गगन रूप ह्वै गगन समाना ॥
यथा गंधको पौन गहाई । ताहि सहित नभ स्थित कराई ॥
तिमि चेतन बासन सहिते । जाय अकाश माह सो थीते ॥
तिहि अनुसार बहुरि जगफुरता । तब कालते सो तिहि जुरता ॥
दोय प्रकारके जीव दुखानी । पापी अरु पुण्यातम प्रानी ॥
पुनि तिनमें कर तीन विधाना । एक महा पापी करि जाना ॥
द्वितिय मध्य तृतिये लघु होई । तीन प्रकार पुण्य जन सोई ॥
एक महा पुण्यातम लोई । पुनि मध्यम लघुको मतिजोई ॥
प्रथम महा पापी दुख हेरे । धन पखान सो ताको टेरे ॥
जड समान मुरछामें रहई । वर्ष सहस्र न चेतन गहई ॥
ताहू मुरछामें दुख भूरी । बहुरि ताहि चेतनता फूरी ॥
जब ताके तनमें सुधि आवै । आको देह सहित लखि पावै ॥
तब सो जायके नरकमें परता । अमित काल तामें दुख भरता ॥
नाना भांति परम दुख पाई । बहुरि नरकते बाहर आई ॥
देह अनंत धरे पशु केरा । बहुरि सो मानुष को तन हेरा ॥

जब धारे सो मानुष देहा । महा नीच दारिद्री गेहा ॥
सोऊ तन धरि दुःखबहु भोगा । कबहु न सुख पावैसो लोगा ॥
अब मध्यपापी गति वरणो । जाहि समय होतोको मरणो ॥
जडीभूत हो वृक्ष समाना । उर अंतर दुख दौंदह काना ॥
कछुक काल पीछे सुधि आवै । अर्क माह निज वासा पावै ॥
नर्क भोगि पुनि पशुतन धारी । फिर नरदेह केरि अधिकारी ॥
अब सुन लघु पापीकी वाता । मूर्छित हो पुनि चेतन गाता ॥
नर्क भोगि पुनि पशु कलेवर । ताहि भोगिफिरमानुषतनधर ॥
अब पुण्यातमको कह मर्मा । जिनके जक्त मोह भल कर्मा ॥
महा पुण्यजन जब मरिजावै । स्वर्गसे तब विमान चलि आवै॥
तिहि बिमानपर ताहि चढाई । आदर सहित वाहि ले जाई ॥
जाहि देवताको सो ध्यावे । तासु लोक निज भौन बनावै ॥
अपने इष्टदेव ढिग जाई । सबहि भांतितिहिसुखसरसाई ॥
भोगि स्वर्ग आवै नर देशा । काहू फलमें करै प्रवेशा ॥
तिहि फलको पुरुष जो खाई । वीर्य द्वार तिहि उदर समाई ॥
जननी जठरते बाहर होई । उत्तम कुल धनवंता सोई ॥
जौं बासना रहित हो येही । तौ सौं धरे संत गृह देही ॥
सहित बासना सुख सरसाया । रहित वासना भक्ति अमाया ॥
अब मध्यम धर्मी गति सुनिये । प्रेरित पुण्यस्वर्ग ग्रह गुनिये ॥
अब लघु पुन्यातप गति कहई । मृत्यु पीछे अस चेतन गहई ॥
सगे बंधु मम क्रिया कराही । ताते पितर लोक हम जाही ॥
पितरलोक सुख लहि महि आवै । जैसा कर्म देहै तस पावै ॥
पापी मुये दुःख चहुँ पासा । महा कठिनमारगति हिभासा ॥
जिहि मारग ताको लेजाई । कंटक लगे चरन में ताही ॥
तपै तेज रबि तापै भारी । तातै ताको तन जर छारी ॥

जो कोई पुण्यातम लोई । छायाको अनुभव तिहि होई ॥
सुन्दर सर वापी विधि नाना । चहुँदिश बने सोहावनथाना ॥
सुखद पंथसे तेहि लेजाही । पापीको सब दुःख दरशाही ॥
धर्मरायके ढिग जब जावै । चित्रगुप्त तब लेख लगावै ॥
चित्रगुप्त क्रम कागज खोले । सबके पुण्य पापको बोले ॥
चित्रगुप्त जस न्याव चुकावै । तैसे जीव दुःख सुख पावै ॥
बडे पूण्यते स्वर्ग बसेरा । जगमें सब सुकर्म जिन केरा ॥
जहां तहां शोभित बन बागा । भांति २ के द्रुम तहँ लागा ॥
इन्द्रके नन्दन बनकी शोभा । जाहि देखि मुनिवरमनलोभा॥
देव अंगना केर छबि भारी । महा मोहनी रूप सँवारी ॥
स्वर्ग गुन सुख कथे बहूता । लहे जीव निज पुण्य प्रसूता ॥

दोहा-जैसे स्वर्गमें सुख घने, तिमि दुःखनर्कअनंत ।
होय जहां यमयातना, बहुविधि वेद वदंत ॥

इति

अथ प्रलयवर्णन-चौपाई

तैंतालिस लाख बीस हजारा । चहुँ युग आयु यकठै धारा ॥
ताको सहस गुना पुनि करिये । एक द्योस ब्रह्माको धरिये ॥
जैसी दिन तैसी है राती । जागे ब्रह्मा रैन सिराती ॥
दिनमें करैं जगतको काजा । रैनमें निद्राको सुख साजा ॥
रैनमें सबही जगत नशाना । चन्द्र सूर्य लग्नादिक नाना ॥
केते ऋषि मुनि सहितविधाता । जीये और सकल विनसाता ॥
बहुरि बेद ऐसो अनुमाना । ब्रह्मा सहित सकल विनशाना ॥
दूजा ब्रह्मा पुनि तन धारी । कारय सकल करे संसारी ॥
जक्तको सूतक बहु नहिं टूटै । एक मेरे दूजा पुनि जूटै ॥
न्यायशास्त्रअरुसांख्य बखाना । सकलकृतमतिहिकालसिराना ॥

पुनि वेदान्त सो मता गहीते । कृतम जाल कबहूँ नहि बीते ॥
एक मरे दूजा पुनि होई । कारय जक्त सनातन सोई ॥
दोय प्रकारकि परलय होई । खण्ड प्रलय महा पर्लय सोई ॥
खण्डप्रलय पुनि द्वैबिधि कीनो । ऐसो ताको लेखा चीन्हो ॥
नाम चतुरमुख कल्प कहीजे । चौदह मन्वंतर तामें कीजै ॥
एक मन्वंतर जब बित जावै । तब जगमें जल प्रलय आवै ॥
पृथ्वी जड चेतन संहारा । सकल नसाहि ताहि जलधारा ॥
एक मन्वन्तरकी थित भाखा । तीस करोर पचासी लाखा ॥
मध्यमें दोय मन्वंतर केरे । संधी नाम तासुको टेरे ॥
सत्रह लक्ष सहस्र अठाइस । तासन्धीको लेख लगाइस ॥
इतने काल जक्त नहिं रहई । बरते शून्य वेद अस कहई ॥
बाल भोग लघु परलय जाना । महा प्रलय निश भोजन माना ॥
जब जो महाप्रलय तिहि आवै । मरा जो निश्चय देह सो पावै ॥
होय सकल जब धर्मकी हानी । पाप पयोधि बुडै नर प्रानी ॥
कतहु न दीख अचार बिचारा । मन मत पन्थ जक्त जिव धारा ॥

छन्दतोटक

सुत मानत मातु न तात जही । गुरु सेवन देवन दान कही ॥
कलि कौतुक घोर कठोर महा । सुखदुःखितको हरिनाम कहा ॥
कपटी लपटी नर नारि गना । नहिं मानत सन्त महन्त जना ॥
तपसी लपसी जग खात फिरे । मुंडिका धनिका बनिकार भिरे ॥
द्विज चिन्ह उनेउ न वेद क्रिया । भगवाँ यक भेष अलेख प्रिया ॥
बहु यंत्रन मन्त्रन दर्व हरी । बिन राम रमे किमि काम सरी ॥
बिरती बिन सिद्ध जती फिरते । नहि ज्ञान है चित्त बिना थिरते ॥
कलिकाल कराल दुकाल मरी । नर पीडक सो दुख द्वंद भरी ॥
तजि रूपवती युवती भरता । नहिं गारि लहो परनारि रता ॥

तिय सुन्दर पीय विहायगता । अरधंगन सङ्ग अनंग मता ॥
कर पाप अनंत भनंत कहा । परिताप संतापन लोग दहा ॥
श्रुतिपन्थ बिहायकुपन्थ चले । तजि अम्मृतछाकसो खाकडले ॥
गृह सम्पति दंपति हीन भये । दरवेश अलेखको भेष भये ॥
नहिं साध विषय क्रमसाधतये । विन सार लखे यमद्वार गये ॥
मदनातुर युत्य फिरै युवती । किमि भोग नरा नरही कुवती ॥
तिय ठाट भये जब घाट नरा । न अधार कहू विभिचार भरा ॥
उठिगे श्रुति धर्मनके बकता । मनमानता जो जेहि सो छकता ॥
बरणाश्रम धर्मके मर्म नहीं । सब शंकर भे न सुकर्म कहीं ॥
समता बिगता ममता गरको । जिव रोग वो शोकनमें ढरको ॥
अघ औगुन सौगुन जीव लदा । मन वांछित बोध न वेद वदा ॥

चौपाई

यहि विधि जक्त धर्म बिनसावै । तब हयग्रीव प्रगट हो आवै ॥
शिर तुरंग देही नर जाको । धावै सकल घरा परि पाको ॥
पौन प्रसंग अङ्ग तिहि पाई । जीवकि बुद्धि शुद्ध ह्वै जाई ॥
लघु प्रलय जब धर्मकि हानी । महाप्रलय अब कहो बखानी ॥
चीन्ह अनेक भयावन होई । औबा मरी भरी दुखजोई ॥
पश्चिम दिशिते रवि उगि आवै । द्वितीया दक्षिणमें प्रकटावै ॥
उतर पूरव सूरय देखे । दशहु दिशा दश रवि यह लेखे ॥
एक सूर्य प्रथमै ते रहऊ । बडवा अग्निते सोई कहेऊ ॥
बडवानल अरु ग्यारह सूरा । द्वादश सूर्य तेजते पूरा ॥
शिव पुनि तीसर नैन उघारा । शेषके मुखते अग्नि प्रचारा ॥
महा तेज पृथ्वीमें भरेऊ । थावर जङ्गम सब कछु जरेऊ ॥
पौन प्रचंड अण्ड भरि पेखे । परवत उडहि तूलके लेखे ॥
गिरि सुमेरु आदिक गिर नाना । सूखे पत्र सो गगन उडाना ॥

सात सिंधु तिहि काल छुभाही। जलकी वृद्धि एक है जाही ॥
पुष्कर मेघ कीन पुनि कोपा। जलसे सकल भूमिको तोपा ॥
मुसल धार पानी बरसाई। मोटा धार पुनि वृक्ष कि नाई ॥
बहुरि नदीकी धारा जैसे। नभसे पानी वरषै ऐसे ॥
ये तो जल दिशा उर्ध चढंता। पहूँचे ब्रह्मलोक परजंता ॥
इंद्र कुबेर आदिक दिगपाला। भोगिके ब्रह्म लोकको चाला ॥
यहि बिधि सकल जलामय होई। जीव जंतु कहुँ रहै न कोई ॥
पृथ्वी गलि जलमें मिलि जाई। तिहि औसर भैरों प्रकटाई ॥
पृथ्वीते आकाश लों देही। महा भयानक रुद्र है येही ॥
तिहु दृग मानहु सूर्य है तीनी। ऐसो तेज मयी कहि दीनी ॥
तिही भैरोंकी श्वासा चाले। पानीके ऊपर सो डाले ॥
पौन प्रचंड नासिका बाटा। ताते होय बारिको घाटा ॥
ताकी श्वासा जल जब सोखे। रहे रुद्र पुनि आपै चोखे ॥
दशहु दिशा शून्य है जाई। रविशशि अग्न्यादिक बिनशाई ॥
गुन अरु तत्त्व न कबहुं प्रकाशा। सर्व शून्य वर्तै चहुँ पासा ॥
भैरों तनते निजु तन धारी। प्रकटे महा भैरवी नारी ॥
महा भयावन मूरत जाकी। सप्त सिन्धुकर कंगन ताकी ॥
मानुष छाया देखो जैसे। भैरों तनते प्रकटै जैसे ॥
इंद्र कुबेर वरुण यम काला। तिनके मुंडको पहिरे माला ॥
नृत्त करे सो तहँ तिहि बारा। अट्ट अट्ट करि शब्द उचारा ॥
भैरों और भैरवी दोई। नृत्त करे तब शून्यमें सोई ॥
बहुरि लय भैरवी है जाई। भैरोंके तन माह समाई ॥
अब कछु शेष रहा नहिं खेला। तब भैरों रहि गयो अकेला ॥

दोहा-धरतीसे आकाशलौं, भैरोंकी जो देह ।
सर्व शून्य करि दशदिशा घटन लगी तब येह ॥

प्रथमें पर्वत सम भई, बहुरि वृक्षके भाय।
पुनि अंगुष्ठ पुनि रैनसम, पुनि सो गई लोपाय ॥
सर्व शून्य दशहू दिशा, पिसा सकल संसार।
दृश्य कतहुँ कछु ना लहा, रहा अलख करतार ॥
ब्रह्मा ते ले जीव सब, जहँ लगि कीट पतंग।
मुक्ति विदेह महा प्रलय, रचना पावै वेद प्रसंग ॥
सब जिव मुक्ति विदेह लह, रचना जब पुनि होय।
आतम सत्ता ब्रह्मने जक्त, फुरै पुनि सोय ॥

इति श्रीवेदधर्म वर्णन

अथ न्यायधर्म वर्णन

दोहा-कर्त्ता पुरुष है देव जहँ, गुरु संन्यासी जान।
न्याय शास्त्र सब मम कथा, धर्म ग्रंथ परमान ॥

अथ उत्पत्ति कथा वर्णन

सोरठा-न्याय शास्त्र परमान, नित्यानित्यको बाद बहु।
जग सबही प्रकटान, सूक्ष्म तत्त्वसे जानिये ॥
प्रलय बहुरि जब होय, सूक्षम परमाणू रहै।
ताते थूल गहोय, दूनो तिगुनो चौगुण ॥
परमेश्वर करतार, आदि अंत नहिं तासुको।
गहे आप औतार, देते सोई चहुँ वेदको ॥
नर्क स्वर्ग आनित, जीवको सो शुभ ज्ञान।
सो प्रभु सबको हित कहे सो तासुगुन आठ बिधि ॥

चौपाई

प्रथमहि ज्ञान प्रयत्न है दूजे। तीजे इच्छा संख्या चौथे ॥
पंचम पुनि परमान गनीजे। परथक्त्वा षष्ठमें भनीजे ॥
पुनि संयोग विभाग कहाये। ये ईश्वर गुन आठ गनाये ॥

जेती वस्तु जगतमें उपजाया । सोलह पदारथते सबकी काया ॥
तिनको भेद जो भलिविधिजाना । सोई पावै पद निर्वाना ॥
तीनों गुण ईश्वरके अंशा । तिनको ताही रूप प्रशंसा ॥

इति

अथ आदि सन्यासी दत्तात्रेयजीकी कथा–चौपाई

अत्री मुनि अनसूया नारी । नारि पुरुष कीनो तप भारी ॥
तीन देव तब हरिषित भैऊ । ब्रह्मा विष्णु शम्भु जिहि कहेऊ ॥
ताकै भौन गौन तिहि कीने । आदर मान तिन्हैं ऋषि दीने ॥
अनसुइया पुनि कीन रसोई । तीनों देव जिवावत होई ॥
भे प्रसन्न तब तीनों देवा । मांगो बर पूरण तव सेवा ॥
तब अनसुइया वचन उचारे । तुम समान हौ पुत्र हमारे ॥
दीन सोई बर मांग्यो जोई । पुनि मारग निज लीनो ओई ॥
अनुसुइया जैसो वर पाया । तीन पुत्र भे ताके जाया ॥
तिहुते तीन अंश परकाशा । दत्त चन्द्रमा अरु दुर्वासा ॥
दत्त विष्णु औतार कहाये । ब्रह्मा अंशते चन्द्र उपाये ॥
शिव औतार कहे दुर्वासा । धर्म चला जग तिनकी आशा ॥
दत्तसे दीगांबर संन्यासी । अवधूता मारग जो भाषी ॥
ब्रह्मा अंशते चन्द्र उपाये । सो निज भौन अकाश बनाये ॥
दुरवासा ते दंडी भैऊ । दंडी आदि ताहिको कहेऊ ॥
दत्तात्रेय के चौबिस चेले । धर्म कर्म संन्यास गहेले ॥

इति

अथ द्वितीय सन्यासी शंकराचार्यकी कथा–चौपाई

वरने भव्य व्यास बर बानी । जब कलि होय वेद मतहानी ॥
जैन बुद्ध मत अधिक पसारा । वेद धर्म निंदहि निरधारा ॥
जैन बुद्ध विधि गह नर लोई । वेद धर्म मानै नहिं कोई ॥

तिहि औसर शिव परम सनेही । वेद धर्म थापै करि देही ॥
जैसो आगम व्यास बखाने । जैन बुद्ध मत महि अधिकाने ॥
वेद धर्म तब भयो मलीना । बिरला कोई आदर दीना ॥
बिक्रमादितके समयमें कहेऊ । शंकर शंकराचार्य भेऊ ॥
दक्षिण देश द्विजकुल औतारा । वेद धर्मको पालन हारा ॥
चहुँदिश जाय विजय दिग कीना । कथि निजज्ञान नीति जगलीना ॥
वेद धर्म मरयाद धराया । बादी सन्मुख तासु पराया ॥
स्मृती धर्म कीन परचारा । धर्म स्मार्त नामसो धारा ॥
जैन बोधको जीत्यौ सोई । राजा शंकरकी वश होई ॥
तिहि औसर भूपाल छुभाया । केते जैनी सरित डुबाया ॥
मंडन मिश्र ब्रह्मा औतारा । धर्म मिमांसा जग विस्तारा ॥
शंकर जब तापर जय पाई । ताकी नारि ताहि समुहाई ॥
मंडन मिश्र गये जब हारी । कामशास्त्र कथ ताकी नारी ॥
शंकराचार्य बाल ब्रह्मचारी । काम शास्त्र विद्या नहिं धारी ॥
तिहि औसर अस कारण भयऊ । नृप अमरूक देह तजि गैऊ ॥
योगके बलते शंकराचारय । नृपतन प्रवेश कियौ निजुकारय ॥
काम कला सीखे षट्ट मासा । नृपतनमें कर भोग विलासा ॥
काम शास्त्रको ग्रन्थ बनाई । सो अमरूकशतक कहलाई ॥
नृप तन तजि मंडन पहँ आये । तासु नारि पर तब जय पाये ॥
मंडनमिश्र भे शंकर चेला । ताको धर्म गह्यौ तिहि बेला ॥

इति

अथ पूर्व आचार्यनके नाम-चौपाई

जहां तो आदि संप्रदा चाली । पीढी पीढी कथौ निराली ॥
प्रथम विष्णु दूजे शिव होई । पुनि तृतीय वसिष्ठ मुनि जोई ॥

पुनि संगत वशिष्ठ सुत भैऊ। ताके बहुरि पराशर कहेऊ ॥
छठयें व्यासदेव गुरखानी। सतयें मुनि सुखदेव बखानी ॥
अष्टम गोडाचार्य कहोई। पुनि गोविंद पुनि शंकर होई ॥

इति

अथ शंकराचार्यजीके शिष्यके नाम

दोहा-प्रथमस्वरूपाचार्य कहा, पृथ्वीधरा चारय टेर।
पद्माचारय तीसरे, तोटकाचारय फेर ॥

इति

अथ दशनाम संन्यासीको वर्णन

दोहा-स्वरूपचार्यके शिष्य है, तीरथ आश्रम जान।
पद्माचारयके दोय पुनि, वन आरण्य बखान ॥
तोटकाचारयके पर्वतो, सागर गिरि शिष्यतीन।
पृथुराचार्यके सरस्वती, भारति पुरी प्रवीन ॥

इति

अथ शंकरी अथवास्मार्त्त संप्रदाय वर्णन--चौपाई

अब शंकरी संप्रदा भाषों। चार भेद पुनि तामें राखों ॥
पूरव पश्चिम उत्तर दक्षिण। चारों दिशा चार मठकोगिन ॥

अथ पूर्वदिशा वार्त्ता

गोबर्धन मठ भोगंबार संप्रदा वन अरण्य पद पुरुषोत्तम क्षेत्र जगन्नाथ देवता पद्माचार्य चैतन्य ब्रह्मचारी तीर्थ महोदधि विमला देवी ऐतरेय ब्राह्मण ऋगवेद कठ केन उपनिषद अकार मात्रा प्रज्ञान ब्रह्म महावाक्य ॥

इति

अथ पश्चिमदिशा वार्त्ता

पश्चिम दिशा शारदा मठ कीटंबार संप्रदातीर्थ द्वारिका क्षेत्र सिद्धेश्वर देवता भद्रकाली देवी स्वरूपार्य नन्दा ब्रह्मचारी तीर्थ

गोमती सामवेद उपनिषद ब्राह्मणकेनतत्त्वमसिमहावाक्यओंकार मात्रा तीर्थ आश्रम द्वै पद ॥

इति

अथ उत्तर दिशा वार्ता

उतर दिशा जोशीमठ आनंदबार संप्रदा पद तीन गिरि पर्वत सागर क्षेत्र बद्रिकाश्रम नारायणदेवतापुण्यागिरीदेवीत्रोटकाचार्ज नंदा ब्रह्मचारी तीर्थ अलकनंदा ब्राह्मण ब्रह्माअथर्वणवेद मांडूक्य उपनिषद आ मात्रा अहं आत्मा ब्रह्मा महावाक्य ॥

इति

अथ दक्षिणदिशा वार्ता

दक्षिण दिशा शृंगेरी मठ भूरीबार संप्रदा सरस्वती भारतीपुरी पदानि क्षेत्र रामेश्वर आदि वाराह देवता कामाक्षीदेवीशृंगीऋषि पृथ्वीधराचार्य तुंगभद्रा तीर्थ यजुर्वेद बृहदारण्यउपनिषदब्राह्मण इच्छावश है अहं ब्रह्मास्मि महावाक्य अर्धमात्रा ॥

इति

अथ संन्यासआचार वर्णन

दोहा–सकल कर्मको छोडिके, जो लेवै संन्यास ।
स्वर्ग आदिक सब सुख घने, रहै न कोई आस ॥

चौपाई

सुत बित नारि ईषणा तीनी । तजि संन्यास धर्मनिजलीनी ॥
यज्ञहु वेदपाठ नहिं भाषा । संग्रह सदा उपनिषद राखा ॥
करहि कमंडल हाथमें दंडा । फिरै स्वच्छंद पृथ्वी नौ खंडा ॥
कछु मुख साजन यकठे धरहीं । काहूसे विवाद नहिं करहीं ॥

सदा शौच असनान जो कीना । संध्या बदले आत्म लैलीना ॥
जब कबहूँ चित चंचल होई । पढै उपनिषदको तब सोई ॥
औषद सम भोजनको भोगा । चाहै नहिं कछु सुख संयोगा ॥
शत्रु मित्र जगमें नहिं कोई । सदा सैन पृथ्वीपर सोई ॥
धरतीपर धरि भोजन करही । चार मास वर्षा न बिचरही ॥
फिरै अकेले संग न कोई । भिक्षा भोजन गहै न ओई ॥
सोलह ग्रास अहार प्रमाना । लेय हाथपर भिक्षा दाना ॥
जाके घर भिक्षाको जाही । मुखसे तहँ कछु माँगै नाहीं ॥
जेती बारमें गऊ दुहाई । गृही द्वार तबलों ठहराई ॥
जहँ माँगन को कारण पावै । तहां प्रणवको शब्द उठावै ॥
तीन बार कर शब्द उठाना । जाते गृही सुनै निज काना ॥
तीन भौन कै पांच कि साता । येते घरलों भीखको जाता ॥
जौ भिक्षा संयोग न लहई । तौ संन्यासी भूखा रहई ॥
भिक्षा ले पुनि बनहि सिधारे । मता श्रेष्ठ संन्यास उचारे ॥
पहिले वेदपाठ करि लीजै । तब पीछे संन्यास कहीजै ॥
वेदकि विधिते बोध न जबलों । धर्म मर्म जानै कह तबलों ॥
ऐसी विधिते भोजन करही । मोट देहि जिहि नजर न परही ॥
सदा काल आतम लौलीना । सकल भर्म भय तजि तिनदीना ॥
प्रथमे सब सुख भोग भरीजै । सब इंद्रिनको तृप्त करीजै ॥
तब पीछै लीजै संन्यासा । रहै न काहू वस्तुकि आसा ॥
शीतकालको गुदरी एका । राखे सो निज सहित विवेका ॥
यह मध्यम संन्यास प्रमाना । अब उत्तमको करों बखाना ॥
नग्न दिगम्बर बाना होई । शीत उष्ण दुखसुखसह सोई ॥
सहदुख सुखदुखसुखनहिंमाना । ऐसे निज मनमें अनुमाना ॥
ज्ञान अग्निमें तन हम दाहा । अब याकी कछु रही न चाहा ॥

यह विचार निज मनमें धारे । मृतक संन्यासीको नहिं जारे ॥
जीतेहि निज तन जिन दाही । मुये दग्ध पुनि उचित न वाही ॥

दोहा-जो मध्यम संन्यासते, उत्तम विधि गहि लेय ।
परमहंस ताको कहै, नग्न दिगंबर तेय ॥
काहूको परनामसो, करै न शीश झुकाय ।
सेवासे नहिं कछु सुखी, निरादरते नहिं दुख पाय ॥
मधूमास भोजन दोउ, तजि दीजै निरधार ।
धातु वस्तु मुद्रादि सब, नहिं कर परसनहार ॥

चौपाई

भोजन पाकते राखै काजू । तजे इतर सुख स्वाद समाजू ॥
पक भोजन तजि और न लेही । गृही जो पाक भोग नहिं देही ॥
ताहि गृहीको पापी जाना । देत नहीं जो भोजन दाना ॥
संन्यासीकी तप बड याही । कछु काहूसे मांग जो नाही ॥
दुण्डी संन्यासी जो होई । दंड हाथमें धारे सोई ॥
दँड बाँसकी लकड़ी भाषा । सात गाठि पुनि तामें राखा ॥
सरस्वति आश्रम तीरथ तीनी । दंड ग्रहण अधिकारी कीनी ॥
ब्राह्मण बिना न दंडी होई । द्विज गृहते अहार गह सोई ॥
चारों मठके जो ब्रह्मचारी । सोऊ विप्र कुलते तनुधारी ॥
उत्तम मध्य कनिष्ठ संन्यासा । भिन्न २ करि वेद प्रकाशा ॥
शिव अरु विष्णुभाव नहि दूजे । पंचम देव संन्यासी पूजे ॥
शिव नरसिंहगणगतिरविदेवी । इन पांचोंकी सूरत देवी ॥
सिंहासन धरि पूजा करही । इष्ट आपनो बीचमें धरही ॥
अधिक नेम जिहि देवसे लावै । बीच सिंहासन तिहि बैठावै ॥

चौपाई

शिव शक्तीको धर्म जो धरही । चन्द्राकारतिलकलिलारमेकरही ॥
योगा संन्यासी ब्रह्मचारी । भगवां भेष तिलक सो धारी ॥

## अथ मीमांसाधर्म वर्णन

दोहा–देव अलख करतार जहँ, गुरु दरवेष कहाय ।
शास्त्र मीमांसा धर्म कह, कर्मफल जिव पाय ॥

### चौपाई

व्यास शिष्य जैमिनि ऋषिराया । धर्म मिमांसा सो ठहराया ॥
ताके शिष्य न करी सहाई । धर्म मिमांसा जग फैलाई ॥
शिष्यनको अस नाम उचारी । भट्ट कुमार अरु मिश्र मुरारी॥
बहुरि प्रभाकर कुरकहि टेरे । भे प्रसिद्ध जगमाह बडेरे ॥
जैमिनि शिष्य बुद्धिगुणधारा । भली भांति निज धर्म प्रचारा ॥
धर्म मिमांसा जो कोई गहई । ताके नाम मिमांसक अहई ॥
एसो धर्म सो कीन उचारा । ईश्वर नहिं जग सिरजनहारा ॥
जो कुछ दुख सुख जगमें होई । जीव कर्मको कारण सोई ॥
जैसो कर्म करे जो कोई । तैसो उदय ताहि को होई ॥
ईश्वर नहिं कछु करे करावै । नर स्वछंद जस कर तस पावै ॥
सृष्टि अनादिनिध करि जानो । सदा स्वभाविक ऐसेहि मानो॥
परमाणुनते जग उतपाता । ज्ञान कर्म दोउ मुक्तिको दाता ॥
वेदान्ती जस करे बखाना । तीन वेद ईश्वर गुण माना ॥
मीमांसक नहिं माने सोई । तीन वेद मानुष तन होई ॥
कर्म सुकर्म करे जो कोई नर । होय सो ब्रह्मा विष्णु महेश्वर ॥
कर्मैंते जिव सब पद पावै । कर्महि उँच नीच गति जावै ॥
जेतो देखो कर्म पसारा । कर्मको खेल खिला जग सारा ॥
ब्रह्मन कर्म करहि बिधि नाना । देव अराधन मुख ब्रत दाना ॥
होय यज्ञ तिनके बहुतेरे । साधन करि करि देवन टेरे ॥

इति मीमांसा धर्म

अथ शिवधर्म वर्णन

दोहा–देव रुद्र योगी गुरु, योग मुक्ति चित धार ।
पातञ्जल यह शास्त्र है, कथै धर्म व्यौहार ॥

इति

अथ शेष अवतार कथा वर्णन--चौपाई

करे एक ऋषि संध्या तरपन । ताके अंजुल प्रकटै धरि तन ॥
अंजुलते कलि बाहर परेऊ । नाम तासु पातांजल धरेऊ ॥
पातांजल है शेष औतारा । सो जग मल शोधन हितकारा ॥
शास्त्र चिकित्सा कीन प्रकाशा । देह रोगमल ताते नाशा ॥
शब्द अशुद्ध उचारा मल हंता । पाणिनिकरनिकाभाष्य करंता ॥
तिमि विक्षिप्त अंतह मल शोधू । योग सूत्र करि जीव प्रबोधू ॥
प्रथमहि चित्तकि वृत्ति निरोधन । कथे समाधि अरु ताको साधन ॥
वैराग आदिक विधि बिधाना । कथे तहां साधन विधि नाना ॥
तैसे चित्त विक्षिप्त जो साधी । नाहित कीनो योग समाधी ॥
यम नियमों आसन प्रतिहारा । प्राणायाम धारण धारा ॥
ध्यान समाधि आठ यह भाषी । द्वितिये पदमें सबसों राषी ॥
तृतियें पदमें योग विभूती । वरनो सकल जो सिद्ध प्रसूती ॥
बहुरि चतुर्थहि चरणके माही । मोक्ष योग फल बनैं ताही ॥

इति

अथ नव नाथोंके नाम

दोहा–गोरखनाथ मछंदरो, सुरतिनाथ मङ्गल नाथ ।
चर पट चम्बा प्राणनाथ, घध्यू गोपीनाथ ॥

इति

अथ गोरखनाथजीकी कथा चौपाई

नवो नाथ सिद्धो चौरासी । गोरख श्रेष्ठ सर्व गुण रासी ॥

मुद्रा सकल ताहिने कीनो । ऐसो योग माहि चित दीनो ॥
दोहा-मुद्रा सन्मुख खेचरि भूचरि चाचरि जान ।
शामभवी उन्मीलनी, पुनि अगोचरी मान ॥
आत्म भावनी बहुरि कह; पूर्ण बोधिनगाय ।
सर्व साक्षिनी आदि दै, मुद्राते जित लाय ॥

चौपाई

ऐसो योगी भया समाधी । आठों भांति योग भलसाधी ॥
राज योग हठ योग बखानो । त्राहठ अरु कुण्डली प्रमानो ॥
योग लंबिका तारक साधा । योग मीमांसक सांख्य समाधा ॥
आठों योग भली विधि कीना । ऐसो योगी परम प्रवीना ॥
वज्र कीन पुनि अपनी अङ्गा । करि चौरासी कल्प सुढङ्गा ॥
ऐसी वज्र शरीर बनाई । कबहूँ मरे न जरै न जाई ॥
सारी मांस देह गलि गिरेऊ । हाड गूद जमि एकै भयऊ ॥
हाड गूद जब एकमें पागा । हीरा सम तनु चमकन लागा ॥
योगको रस भल गोरख लीना । सत्य कबीर प्रशंसा कीना ॥
केते गोरखनाथ के चेले । सिद्ध भये गहि ज्ञान दुहेले ॥
गोरख यती जक्त गुन गाये । योग युक्ति जगमें फैलाये ॥
शिवजी आदि अचारय येहा । योग समाधि आदि गुनगेहा ॥
पुनि नौनाथ सिद्ध चौरासी । योग धर्म जग माह प्रकासी ॥
शिव गोरख सम और न योगी । ब्रह्मानन्द योग रस भोगी ॥

अथ चौरासी सिद्धनके नाम

दोहा-भङ्गर सङ्गर संघरो, जङ्गर ऊरम होय ।
दूरम कनी फाहनीफा, लहुरूपा सङ्ग रोय ॥
लङ्गरहनी रतन कह, पूरन बिवालक बर्न ।
जलका खिंधड सुरतिसिंध, निरतिसिधकेवलकर्न ॥

समरथ असरन गौन गुल, चतुर बैन राय ऐन ।
केवल करन औघड दरवत, ईश्वरभरथरी भूतबैन ॥
कनका शंभू अक्षर दैन, पलका निधि शिवराम ।
पिपल्का गिरधर सालस, कसक गैलस नाम ॥
मगनधार मुक्तीसरो, चलन नाचत सूर ऐन ।
गिरवर जोति लगन कहो, जोति मनसिध सैंन ॥
विमल जोति शीतल जलो, अघडधान्य पतिप्रान ।
तोल संयोग अकाल निर, बहुरि भोलसर जान ॥
राजकुमार बखानिये, विष्णुपति कृष्णकुमार ।
शंकर योग ब्रह्म योग है, मीरहुसेन बिचार ॥
मीर जञ्जलीक धारिजो, पुनि कालिंदर नैन ।
फिर नालिन्दर नैन है, सरस्वती गुरुधन सैन ॥
गुफाबासी कल नासी, कलके संगी होय ।
यक रंगी केवल क्रमी, पुनि क्रम नासी जोय ॥
कलक विनाशी मूल मंत्री, योग तन्त्री परमान ।
जंग गहिर दीपक रंगी, आपो रूपी जान ॥
फिर अकलेस प्रतापी, बीरम योगी नाम ।
खल समोगल भोगी कहो, इन्द्रयोगी गुणग्राम ॥
पुनि केदार योगी गनो, कीन धर्मकी वृद्ध ।
मुनि विचित्र रहमी योगी, ये चौरासी सिद्ध ॥

अथ षट् यतियोंके नाम

दोहा--गोरख नाथो दत्तजी, पुनि लक्ष्मण हनुमन्त ।
भैरो भीषम जानिये, ये षट्ट यती वदन्त ॥

इति

अथ बारह पंथ वर्णन

दोहा—आइ कुनकाई प्रथम, तुसलाई कपिलान।
तृतीये सप्तनाथ पंथ है, चौथ धर्म नाथ जान।
वैराग्य नाथके भरथरी, षष्ठम गङ्गा नाथ।
रामचन्द्र सप्तम कहै, अष्टम लक्ष्मण नाथ।
फिर नटेश्वरी नवम है, पिंगल दशम कहाय।
पुनि धजपंथ इग्यारहे, बारहे कानी फाय।

इति

अथ अष्टांगयोगवर्णन

दोहा—जमनियमोआसनकहो, प्राणायाम अगाध।
प्रत्याहारो ध्यान कह, पुनि धारण समाध॥

अथ यमकी दश शाखा वर्णन

दोहा—युक्ति सहित सब कर्मकर, ताकों यमबतलाय।
जाते साधन सुगमहो, सकल कलुषता जाय॥

चौपाई

प्रथम अहिंसा जीव बताई। नर पशु आदि एक समताई॥
मनसा बाचा कर्म या तीनों। काहूको कछु दुःख नहिं दीनों॥
द्वितिये बोलै साची बानी। मिथ्यावाक्यते धर्मकी हानी॥
तृतिये पर धनको मति हरना। चौथे परतिय संग न करना॥
पञ्चम दाया हृदय महाई। दुखी दरिद्री करो सहाई॥
छठये अर्चा ताहि बखानी। बुधिते धर्म कीजिये प्रानी॥
अहंकार मद मान न धरिये। औरहि कबहु तुच्छ मति करिये॥
सप्तम क्षमा ताहि को जाना। लाभालाभ न सुखदुख माना॥
अष्टम धौत धर्म भल साजी। जो कछु लाभ ताहिमें राजी॥
नवमें अल्प अहार करीजे। दशमें शोच भली विधि कीजे॥

इति

अथ नियमकी दशा शाखा वर्णन—चौपाई

प्रथमैं तप द्वितिये सन्तोख्या । तृतिये कोकह नाम असंख्या ॥
श्रुति ईश्वर हिय निश्चय जाना । चौथे धनते दीजै दाना ॥
पंचम करता पुरुषको पूजा । ताहि छोड़ि न्यावो मतिदूजा ॥
पुनि सिद्धांत श्रवण है छठये । विद्वत जनकी संगत गठये ॥
श्रुति पुरान विद्या आध्ययना । सब शुभकर्मनमें चित देना ॥
सप्तम औ इंद्री धिक्कारे । जब कछु अनुचित कर्म निहारे ॥
अष्टम सत्य जाहि को कहते । भले कर्मकी इच्छा कहते ॥
नवमें जब हरि चर्चा कहिये । इंद्रिन सहित चित्तको धरिये ॥
दशमें होय अर्थ अस कहिये । तन मन धन इंद्री जो गहिये ॥
प्रभुकी हेतु सकल सुख त्यागे । ज्ञान कृशानु विषय वन दागे ॥

इति

अथ चौदह आसन वर्णन—चौपाई

पद्मो बीरभद्र सूं संगकरी । पुनि दन्दास बृश्चिक सूँबासरी ॥
बकरी मोर सिंह जसको अस । समान अंतरशुद्धपुनिबैठकजस ॥

अथत्रिविधि प्राणायाम वर्णन

दोहा—प्रथम सहज मध्यम बहुरि, कठिन तीसरो आहि ।
प्राणायाम त्रिविधि कहो, साधे योगी जाहि ॥

चौपाई

प्रथम सहज कहिये द्वै शाखा । श्वासा परश्वासा मय भाषा ॥
पूरक कुम्भक रेचक माही । तरसु जान नाकाम है ताही ॥
द्वितिये पूरक इडाहै नारी । बाम नाक नथुन थित धारी ॥
बाहरकी वायू लेजाई । भरे इडा नाडीमें लाई ॥
कुम्भकको अस कारय कथना । बन्द करे दोउ नाकके नथुना ॥
थित प्रयन्त रोके रहे पौना । रेचक कर्म कहौ अब तौना ॥

शनैः २ पुनि पौन निकारे। पिङ्गला रग मारगको धारे ॥
बाहर पौन करो सो जबलों। नथुना बाम बन्द रख जबलों ॥
तृतीये तहँ करम आरम्भन। बाहर मात्रालों कर थम्भन ॥
मात्रा ताहि कालको नाऊ। नाम उचार शुद्ध करि पाऊ ॥
नहि विलम्ब नहिं शीघ्रविवेका। शब्द शुद्ध सो मात्रा एका ॥
चौथे जब यह युक्ति संभाला। राखे थित तामें कछु काला ॥
फिर द्विगुना फिर तिगुना करिये। तिगुणते अधिकमें जबचितधरिये
एकबावर ऐसी विधि ठाना। कुंभकमें यह युक्ति प्रमाना ॥
इड़ाको पलटि पिंगला करना। पुनि पिंगल इडाकरि धरना ॥
पंचम ऐसी युक्ति विलोको। वायूको निज चलते रोको ॥
छठे जो पूरक रेचक भासा। आपते हो श्वासा पर श्वासा ॥
इकीस सहस अरु षट्, सठथापू। चलै श्वास सो अजपा जापू ॥
तापर ध्यान करै जो कोऊ। ताको जाप रैन दिन होऊ ॥
सप्तम वृद्ध होय वय ताही। वय प्रमान श्वासते आही ॥
द्वितिये मध्यम यहि विधि भाला। प्रथम प्राण वायू कर चाला ॥
बाहर अंगुल बाहर आवै। पुनि अदना वायू ले जावै ॥
प्राण कि ठौर अपान ले जाई। पूरकमें यह युक्ति कराई ॥
द्वितिये कुम्भकमे यह डौरा। प्राण अपान करो झक ठौरा ॥
लेकर बन्द करो यहि उक्ती। बरतै अंत रेचक द्वौ युक्ती ॥
पहिले सदाके ढंग न रहई। फेर इडा वायू जो कहई ॥
जोर कियेते बाहर आई। पहुँच न बाहर अंगुल ताई ॥
तृतिये अष्ट कर्म कहि दीनी। पूरक तीन अरु कुम्भक तीनी ॥
दो रेचक भे आठौ कर्मा। अब चौथेको भाखो मर्मा ॥
खैंचत थंभन त्यागन प्राना। पूरकगह रेचक नहिं ठाना ॥

ताको कुम्भक नाम बखाना । प्राणनको निज वशमें आना ॥
एकीस लाख अरु साठि हजारा । हो नर श्वास पूर्ण जिहि बारा ॥
तिहि अवसर अस युक्ति जो कीये । तौ सौ दो सौ वर्षलौ जीये ॥
तृतिये कठिन कि युक्ति सो अहई । प्रथम खैचरी मुद्रा गहई ॥
ऐसी लांबी जीभ बढावै । तालूमें पुनि ताहि लगावै ॥
पुनि सो ऐसी युक्त गहावै । प्राणवायु धौले नहिं पावै ॥
कान नाक मुख हगलों जोई । तहलों जान न पावै सोई ॥
द्वितीये भूचरि मुद्रा गाई । दक्षिण पगकी एडी ल्याई ॥
गुदा लिंग जड दावै बाँही । बाम पाव एडी रख ताही ॥
बार २ एडी बदले दोऊ । पुनि अपान ऊपर खैंचेऊ ॥

अथ प्रत्यहारवर्णन-चौपाई

प्रत्याहार सो नाम भनंतो । इन्द्री दमन कीजिये संतो ॥
प्राणायाम प्राण दम धारा । तिमि इन्द्री दम प्रत्याहारा ॥
प्रथमें विषम स्वादते भाजा । द्वितिये बहु विरुद्ध जो काजा ॥
कबहूँ ताहि न करत सयाने । दृष्टिहु ताके दिश नहिं ताने ॥
तृतिये विषम सर्वथा त्यागी । मनहु दृष्टि सन्मुखते भागी ॥
चौथे हर्ष न शोक रहाई । पंचम प्राणायाम दृढाई ॥

इति

अथ धारण अथवा परमेश्वरकी प्रीति-चौपाई

प्रीतम प्रीति हिये अति बाढे । सदा ध्यान सुमिरनमें गाढे ॥
प्रथमहि गुरुको ध्यानगहीजै । हग सन्मुख जो कछुक लहीजै ॥
सो सब गुरुकी दाया जाना । बारह मात्रालों दृढ ठाना ॥
होयरपक्क जो पूरन जाना । मात्रा सहस दोसौ षट् पाना ॥

इति

अथ ध्यानको वर्णन—चौपाई

ध्यानते ऐसो ज्ञान गहीजै । तातें वृद्ध धारणा कीजै ॥
दो सहस पांच सो बानवे मात्रा । तहँलो तिहि पहुँचाव सुमात्रा ॥

इति

अथ समाधि वर्णन—चौपाई

अष्टम योग समाधि कहावै । सो धारणा तहँलो पहुँचावै ॥
पांच सहस एकै सो चौरासो । मात्रा धारे शंक विनासी ॥
द्वितिये चिंता दूर पराई । तृतिये रूप दृष्टि प्रिय आई ॥
चौथे यहू चितवनि त्यागे । पँचयें मोहि तोहि भेद न लागे॥
छठयें नहिं कछु रहा दराई । सतयें आप आपमें छाई ॥
तू मोहिमें तोहि माह समाई । जीवहि शिवकी भै एकताई ॥
सहस गिरा इत भाषे येही । जीअत साधु त्याग जब देही ॥
सहज समाधी ज्ञात बखाना । प्राणवायु तहँ लों परमाना ॥
एक सहस सत्तर अरु दोई । मात्रा लों जब निजवश होई ॥
ताको संयम नाम उचारा । यह अष्टांग योग निरधारा ॥

इति

अथ षट्चक्र भेदनकी युक्ति

दोहा—षट् चक्ररको भेदके, योगी जन चढि जाय ।
गगन गुफामें बासकर, आवागमन नशाय ॥

चौपाई

अब षट् चक्रको करों बखाना । मूलद्वार प्रथमैं कहि गाना ॥
मूल द्वार कमल जो अहई । नाम अधार चक्र सो कहई ॥
पाखुरि चार सो कमल विराजा । कृपा गनेश करे तिहि काजा ॥
गुदासे पानी खैंचन लागे । खैंच खैंच जल पुनि तिहि त्यागे॥
यहि विधि गुदा शुद्ध कर जोई । बस्ती क्रिया नाम सो होई ॥

पुनि ऊपरको पौन चढाई । द्वितिये भेदन करे उपाई ॥
जो अधार चक्करके ऊपर । स्वाधिष्ठान चक्र है दूसर ॥
लिंग भूमिका परसों अहई । षट्दल कमल तासुको कहई ॥
पौनके बल गुदाचक्र बँधाई । स्वाधिष्ठान चक्रपर जाई ॥
स्वाधिष्ठानके भेदन काजा । द्वादश अंगुलको गज साजा ॥
सो गज लिंगमें देत चलाई । लिंगद्वार तिहि शुद्ध कराई ॥
ग्रह गज करत क्रिया कहँ लावै । बहुरि लिंगते दूध पिलावै ॥
लिंगते सहतको खैंचे जबहीं । गजकी क्रियापूर्ण हो तबहीं ॥
पौन खैंच पुनि लिंगके द्वारा । स्वाधिष्ठान बेधि चल पारा ॥
बहुरि अपान समान मिलाई । धोती क्रियामें तब मन लाई ॥
मणि पूरक चक्कर जो कहई । नाभी द्वारेमें सो अहई ॥
दश दल कमल तासु परमाना । ताके भेदनको मन ठाना ॥
दो अंगुल पट चौडा लीजे । अरु नौ हाथको लामा लीजै ॥
लीलै ताहि वस्त्रको सारा । बहुरि काढि तिहि मैलनिकारा ॥
तीन बार ऐसी विधि सारा ।बहुरि काढि तिहि मैलनिकारा॥
तीन बार ऐसी विधि कीजे । धोती क्रिया सो पूर्ण कहीजै ॥
नाभिते बहुरि पौन उलटाई । मणि पूरक चक्कर भेदाई ॥
फेरि अपान प्रान जो दोई । मेले प्रान माह तब सोई ॥
अनहद चक्र भेद तब जाई । हृदय स्थान माह जो पाई ॥
बारह पखुरी ताकी होई । हृदये मध्य कमल सो जोई ॥
ताकी सिद्ध हेत जो दीशा । कुंजर क्रिया करे योगीशा ॥
तीन बार भल पानी पीजै । पुनि पुनि सो उलटीकर दीजै ॥
सवा हाथकी दातन लेना । भीतर नाड चलायसोदीना ॥
बार बार पानीको पीना । दातन डारि छोड पुनि दीना ॥
ताकी सिद्ध पूर्ण जब लहिये । कुंजर क्रिया नामसो कहिये ॥

बहुरि पौनको लेहु उठाई । अनहद चक्र भेदिके जाई ॥
प्रान अपान समाना तीनों । कण्ठमें तिनहि मेलि तब दीनो ॥
चक्र विशुद्ध कण्ठके माही । षोडश दल है कमल तहाँही ॥
योग लंबिका ताहित करना । दूध अधार ते काया धरना ॥
सूक्ष्म बोलते कारय कीजे । पुनि तब ऐसी जुक्ति गहीजै ॥
जीभके हेटकी नस जो सगरो । मस्का सेंधो लोनसे रगरो ॥
जीभ दुहन पुनि प्रातहि काला । या विधि रसना करो विशाला ॥
ऐसी अपनी जीभ बढावै । ऊर्ध्व द्वारमें ताहि लगावै ॥
जरमें अमृत चूवै जोई । ताको पान करे तब सोई ॥
पीअत अमृत जागी देहा । योग लंबिका सिद्धभो येहा ॥
बहुरि विशुद्ध चक्रकी भाना । आगेको तब करे पयाना ॥
अग्नि चक्र है त्रिकुटी थाना । द्वै दल कमल तासु परमाना ॥
ताहि तनेती क्रिया कराई । बत्ती निज नासिका चलाई ॥
नाक शुद्ध करि बत्ती कीता । मूर्छा शुद्ध भो ज्ञान गहीता ॥
पुनि उद्यान महा सुख पावै । बहुरि कण्ठते पौन उठावै ॥
चक्र विशुद्ध भेद जब लावै । अग्नि चक्रमें वायू लावै ॥
तिहि औसर जिह्वा लेजाई । ऊरध द्वारे माह लगाई ॥
बन्द करे तब ऊरध द्वारा । अग्नी चक्र भेदि हो पारा ॥
चलि ब्रह्माण्ड श्वास लय होई । कुंभक करिके तनु शिथलोई ॥
काम अरु क्रोध लोभ मोहानी । तब इन सबकी सेन परानी ॥
कर ब्रह्माण्डमें योगी वासा । जबहिं चढायो गगनमें श्वासा ॥
जहँ नहिं द्यौस नहीं जहँ राती । नहिं सूरज शशि उडुगणपाती ॥
तहँ सुषुमना वेधि ब्रह्माण्डा । गडा जाय योगीके झण्डा ॥
जब ब्रह्माण्डमें माहरम जाई । सङ्गी साथी सकल पराई ॥
सङ्गी साथी जब रहि गयऊ । निर्विकल्प योगी तब भयऊ ॥

इति षट्चक्र

## अथ दो प्रकारकी समाधि वर्णन--चौपाई

दोय प्रकार समाधि कहीजै । सविकल्पो निर्विल्प गनीजै ॥
जो सविकल्प समाधि कहावै । ज्ञाता ज्ञान ज्ञेययुत ध्यावै ॥
त्रिपुटी भान सहित जब सोई । ब्रह्म बीच वृत्ती लय होई ॥
सा सविकल्प समाधि कहावे । निर्विकल्पको अब कहि गावे ॥
त्रिपुटी भानु रहित वृत्ती जब । ब्रह्मानन्द हो निर्विकल्प तब ॥
जो सब कल्पको साधना जाने । निर्विकल्प फल तासु बखाने ॥
निर्विकल्प सूखो पति दोई । यतनो भेद दोहूमें होई ॥
निर्विकल्पमें ब्रह्मा नन्दा । सुषुपतिमें अज्ञानको फन्दा ॥
निर्विकल्पमें चार हैं बाधक । तिहि सचेत रह चातुर साधक ॥
प्रथमै लय विक्षेप बहोरी । पुनिकर अरशा स्वाद कहोरी ॥
आलस निद्रा जब सरसाना । वृत्ती होय सुषुप्ति समाना ॥
ब्रह्मानन्द भोग नहिं भोगी । सजग होहि तिहि औसर योगी ॥
आलस निद्रा दूर हटाई । फेरि वृत्ति निज लेहि जगाई ॥
द्वितिये पुनि विक्षेप बताई । वृत्ती जबै बहिर है जाई ॥
कछु पदार्थको कारण जाई । अन्तर वृत्ति बहिर्मुख होई ॥
हो सचेत योगी तिहि काला । वृत्ती बहिरंतर मुख बाला ॥
तृतीये राग द्वेश जो होई । नाम कषाय कहां लै सोई ॥
राग द्वेष विधि कहो बखानी । यक बाहर एक अन्तर जानी ॥
बाहर धन दारादिक शोचा । अन्तरकी चिंता मन पोचा ॥
भूत भव्य चिन्ता मन आई । योगीकी समाधि विनशाई ॥
चौथे रसास्वाद अब भाषो । ऐसे अर्थ तासुको राखो ॥
ब्रह्मानन्दते सुख अनुभव कर । दुख निवृत्तसे हृदय सुख भर ॥
यहू योगमें बिघ्न बताई । जबलों नहिं निज प्रीतम पाई ॥
चितकी पंच भूमिका आही । प्रथमै ज्ञेय नाम कह ताही ॥

द्वितिये मूढता नाश कहावै । तृतिये को विक्षेप बतावै ॥
चौथे पुनि एकाग्रता होई । पंचम भूमि निरोधक होई ॥
अर्थ तासु यहि भाँनि जाचना । लोक बासना देव बासना ॥
शास्त्र बासना आदिक जोई । क्षेप नाम ताहीको होई ॥
निद्रा आसना तुम गुन घेरे । नाम मूढता ताको टेरे ॥
बाहर सुखवृती जब होई । नाम विक्षेप कहावै सोई ॥
चित्त एकाग्र होय जेहि बारा । एकाग्रता नाम सो धारा ॥
ब्रह्माकार जबै ह्वै जाई । ताको नाम निरोध बताई ॥
जो योगी निज विघ्न हटावै । ब्रह्मानंद सोई सुख पावै ॥
योगीको सब सुखसुरसावै । ज्ञान बिना पै मुक्ति न पावै ॥
केवस ज्ञान उगै जिहि बारा । तब योगी हो ब्रह्माकारा ॥
अष्ट सिद्धि नौ निद्धि विराजा । योगी संगसकलसुख साजा ॥

इति समाधि

अथ ओंकार जापको वर्णन—चौपाई

ॐकार जप सबको सारा । जिहि योगी परधामपधारा ॥
ऋद्धि सिद्धि गुण ज्ञान कहाये । ॐकार भव पार कराये ॥
जो कोई शुद्ध जाप मन लावै । सकल पदारथ ताते पावै ॥
जाप अशुद्ध करै जो कोई । वृथा परिश्रम ताको होई ॥
पुत्र जनै जिहि औसर बाला । होय टेढ शिशुजोतिहिकाला ॥
जौं बालक सीधे नहिं आवै । तौ निज मात प्रणबिनशावै ॥
ॐकार जप ऐसो जानी । शुद्ध जाप बिन जिवकी हानी ॥
जब इंद्रिनको वशकरि लीजै । ताको कल्प समाधि कहीजै ॥
मन इंद्रिनको भूत कहावै । मनको बहुरि अकाश बतावै ॥
पुनि आकाश तीन विधि भाषा । चिदाकाश प्रथमै कहि राखा ॥
मनको चिदाकाश कहि गाये । नभ समान चहुँ दिश रहछाये ॥

जैसे नभको अन्त न कोई । तैसे मन अनंत है सोई ॥
द्वितिये मनाकाश कहि टेरे । ब्रह्माकाश नाम तिहि केरे ॥
ब्रह्माकाश कहै इमि तेही । ब्रह्म सो व्यापक है मन येही ॥
सर्वमयी जिमि ब्रह्म विराजै । तैसे यह मन सबमें गाजै ॥
तृतिये भूताकाश बखाना । मन अरु ब्रह्मते करे मिलाना ॥
मनाकाश अरु भूताकाशा । ताते ब्रह्म होय परकाशा ॥
ब्रह्म दोउते पार बहूता । थूल देह वासनाके सूता ॥
त्रिविधि बासना कहो बखानी । सत रज तम गुन ताको जानी ॥
जब रजगुन तम गुण चल जाई । सूक्ष्म देह जीव तब पाई ॥

दोहा-यहि विधि सूक्ष्मता लहै, तन थूलता नशाय ।
जिहि औसर यहि गुन गहै, जीवन मुक्त कहाय ॥
दोय प्रकार समाधि कह, यक चेतन जड एक ।
योगी भवसागर तरे, निज बल बुद्धि विवेक ॥

इति

अथ अथर्वण वेद योगतत्त्व उपनिषद–चौपाई

सबते श्रेष्ठ विष्णु कहलावै । सोऊ योग समाधि लगावै ॥
सदा योग मारग आचरही । परम पुरुष ध्यान सो करही ॥
सो प्रकाश सब घट घटमाहीं । तिहि चितवनी करें नर नाहीं ॥
भूलिविषय रति प्रभुहिविसारी । यही अचंभौ मो मन भारी ॥
वस्तु अनित्य जासु मन भावै । महा मूढ सो जीव कहावै ॥
पुत्र हो दूध जाय थन पीये । तरुण सुखीतिहिकरगहिलीये ॥
यद्यपि जान भिन्न तिय देही । तद्यपि जान पयोधर येही ॥
जाहि द्वारते बाहर आवत । ऐसो दुख सदा नर पावत ॥
तामें पुनि पैठत सुख माना । कैसे भूले नर बिन ज्ञाना ॥
जाहि रूपको जननी कहते । सोई निज दारा करि कहते ॥

कबहुँ जिहि निजपिता पुकारी । साईं रूप निज भरता भारी ॥
निजु मन माह बिचारिके देखो । पिता सोइ प्रकटा सुद लेखो ॥
रहटा कूप डोलची जेसे । आवे जाय जक्त यह तैसे ॥
यक भरि आवै दूजा रीते । ऐसी भूल माह जग बीते ॥
मुक्तिके मारगको नहिं ढूँढा । चर्खा गाह परा जग मूँढा ॥
ओंशब्द हरि भजनके काजा । तामें अक्षर तीन विराजा ॥
तिहि अक्षर तिहुँ लोक बखानो । तीनों वेद त्रिवेद हि मानो ॥
अर्ध रेफ अनुनासिक होई । सबसे सार जानिये सोई ॥
तनमें प्राण परवानमें सोना । तिलमें तेल घृत दूधसे होना ॥
फूलमें यथा सुगन्ध समाई । तैसे सार ताहि बतलाई ॥
ॐकारके अक्षर चारी । ताको कहिये अर्थ विचारी ॥
प्रथम अकार हि ब्रह्मा जानो । द्वितिये ओंकार विष्णु पहिचानो ॥
रूद्रहि जान मकार स्वरूपा । ना निर्वचनसो ज्योति स्वरूपा ॥
बहुरि अकार ऋग वेद अहई । यजुर्वेद ओंकारहि कहई ॥
सामवेद कह जान मकारो । अनिर्वचन नन्ना चित धारो ॥
तृतिये जाग्रत जान अकारा । स्वप्न अवस्था भाष ओंकारा ॥
फेरि मकार सुषुप्ती गाई । नन्ना रूप जान तुरियाई ॥
चौथे पुनि अकार मृत लोका । मध्य लोक ओंकार बिलोका ॥
स्वर्गको लोक मकार प्रमाना । तिहूँते परे नकार बखाना ॥
पँचये मन कहँ जान अकारा । ओ चितना बुद्ध माहंकारा ॥
पुनि छठयें ब्रह्मचर्य अकारा । ओ गृहस्थको नाम पुकारा ॥
मम्मा वानप्रस्थ प्रकाशा । नन्ना जानि लेहु संन्यासा ॥
सतयें अकारहि रज गुन भनिये । ओ सतमाको तम गुन गनिये ॥
अठयें अकार ज्ञान थीरता । तीनि ओकार मकार वीरता ॥
नन्ना न्याय कियो परमाना । नवम अकार कम करि माना ॥

पुनि कह ओ उपासना सारा । मम्मा ज्ञान नन्ना सब पारा ॥
ॐ कारको अर्थ अनंतो । वर्णन कौन सकै करि संतो ॥
प्रवण आदि सबहीको भाषा । ताते और अनेकन शाखा ॥
मन स्वरूप अस जो उरबासी । अधरकमल समताहिकप्रकाशी ॥
कमल नाल ऊपरको राखा । हेठको ताके मुखको भाषा ॥
ताके बीच माह मन रहई । पावन होय प्रणव जब कहई ॥
प्रथम हि अक्षरके उच्चारे । मनकी उज्ज्वलता जिव धारे ॥
द्वितिये अक्षरते दिल खिलता । अनहद शब्द गगनसुनि सिलता ॥
चौथे अर्ध बिंदु बतलाई । ताते ज्योति माह मिलजाई ॥
जब यह मन मलते बिलगाना । होय शुद्ध बिल्लौर समाना ॥
सूरते अधिक नूर जग मगई । परम प्रकाशमान तब लगई ॥

दोहा–क्रोध आलस निद्रा बहुत, बहु भोजन बहु जाग ।
फाका करनो कर्म षट्, योगी दीजे त्याग ॥

चौपाई

यहि विधि तीनि मास जब साधे । अंतर परे न मनको बांधे ॥
तृतिये मास हो सह गति वाकी । देव दृष्टि सब आवे ताकी ॥
मास पांचमें यह गुन पावे । देव स्वरूप आप ह्वै जावै ॥
छठयें मास मिले हरि माही । प्रणव साधना सदा कराही ॥

अथ अथर्वण वेद योगसुखा उपनिषद--चौपाई

प्रथम हि पद्म आसनको मारे । बैठि एकांत ध्यानसो धारे ॥
द्वितिये नासा आगे देखे । टरै न दृष्टि ध्यान करि लेखे ॥
तृतिये दोउ कर पग कह जोरी । चौथे मनको लेहु बटोरी ॥
विषय बिकल्प अरु संशय कोई । मनके निकट न आवै सोई ॥
पंचम पावन प्रणव को ध्याई । छटयें नामी सुरति लगाई ॥
सप्तम निजु मन माह बिचारी । अशुचि बस्तु मानुष तनधारी ॥

तीन देह तू भौन बताये। तामें थम्भा चार लगाये॥
एक बड तीन थंभ लघु साजे। पांच देवता नौ दरवाजे॥
पृष्ठ अस्थि बड़ थंभ पुकारी। ताके निकट सुषुम्ना नारी॥
लघु थम्भा जो तीन कहाये। सो सत रज तम गुन बतलाये॥
पंच प्रवण सुर पांच उचारी। तेहि देह जिव गेह सवारी॥
मनके रंध्र माहचित धारो। सूर्य मंडलाकार निहारो॥
तेहि रविमंडल प्रणव सिरेखो। प्रणवमें दीप शिखा पुनि देखो॥
दीप शिखा ऊरध दिश जानी। ज्योति स्वरूप ताहि अनुमानी॥
ताहीमें निज ध्यान दृढाई। इमि योगी तन तजि तहँ जाई॥
रवि मंडल भनि सूक्ष्मनि नारी। गेह पन्थ ब्रह्म रंध्रको फारी॥
तन तजिके योगी इमि जाही। परम पुरुषके रूप समाही॥
ऐसी युक्ति गहे सुख पागी। आलस निद्रा वश दुर्भागी॥
छन छन ऐसी युक्तिको गहिये। यही उनिषद देखत रहिये॥
जो यह युक्ति न हरदम होई। निश्चय तीन काल कर सोई॥
भोर मध्य दिन सायंकाला। नितप्रति गहि लीजै यह चाला॥

इति

### अथ अष्टसिद्धियोंके नाम चौपाई

प्रथमै अणिमा नाम कहावे। ताहि लहे लघु देह बनावे॥
द्वितिये महिमा कहो बखानी। निज तनकी दीरघता ठानी॥
तृतिये लघिमा जो लहिपावै। सो अपनो तन हरू बनावै॥
चौथे गरिमा नाम भनीजे। जो लहि निज तन भारी कीजे॥
पंचम प्राप्ती नाम बतावो। सो लहि जहँ चाहो चलजावो॥
पुनि प्रकामिका छठयें अहई। जाते निज मनोर्थ सब लहई॥
सतयें ईशता नामक होई। जापर चहै आप बड होई॥

अठयें वशियौ नाम कहाई । जेहि चाहे तिहि देत भ्रमाई ॥
आठों सिद्धिमें भेद अनेका । जानहिं योगी सहित विवेका ॥

इति

अथ नव निधियोंके नाम

दोहा—महापद्म अरु पद्म कह, कच्छप मकर मुकुंद ।
खर्ब शंख अरु नील कह, नवम कहावे कुंद ॥

इति

अथ योगी भेष वर्णन—चौपाई

शैली सिंगी मुद्रा काना । भगवाँ वस्त्र विभूत है बाना ॥
योग युक्ति साधन भल राखा । अजपा जाप जपे गति भाषा ॥

क० भा० प्रकाशसे

इति श्री आगमनिगमबोध समाप्त

---

सत्य

श्रीबोधसागरे-

# सुमिरनबोध

भारतपथिक कबीरपंथी

स्वामी श्रीयुगलानन्द द्वारा संगृहीत

★

मुद्रक व प्रकाशक-

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,

अध्यक्ष-"लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-प्रेस,

कल्याण-बम्बई.

सत्यनाम



श्री कबीर साहिब

सत्यनाम

सत्यसुकृत, आदि अदली, अजर, अचिन्तपुरुष, मुनीन्द्र, करुणामय, कबीर, सुरति योग, संतायन, धनी धर्मदास, चूरामणिनाम, सुदर्शन नाम, कुलपति नाम, प्रबोध गुरुबालापीर, केवलनाम अमोल नाम, सुरतिसनेही नाम, हक्कनाम, पाकनाम, प्रकट नाम, धीरज नाम, उग्र नाम, दयानामकी दया, वंश-व्यालीसकी दया

★

## अथ श्रीबोधसागरे

# सुमिरनबोध प्रारंभः

## ( छोटा )

★

### चतुस्त्रिंशस्तरङ्गः

### प्रथम बोध

( नित्य कर्म षट्कर्म विधि वर्णन ) सुमिरन आदि गायत्री

आदिगायत्री सुमिरण सार । सुमिरन हंस उतारे पार ॥

कोटि अठासी घाट हैं, यम बैठे तहँ रोक ।

आदि गायत्री सुमिरिके हंसा होय निशोक ॥

घाटी नाकहि आगे तब जाई । सकल दूत रहे पछताई ॥
आगे मकरतार है डोरी । जहां यम रहे मुख मोरी ॥
ओहं सोहं नामके, आगे करै पयान ।
अजर लोक बासा करे, जगमग दीप स्थान ॥
सुख सागर स्नान करी, होय हंसका रूप ।
जाय पुरुष दर्शन करै जिस दिन परम आनन्द ॥
आदि गायत्री सुमिरिके, आवागमन नसाय ।
सत्य लोक बासा करे, कहैं कबीर समझाय ॥

सुमिरन प्रभात गायत्री

आदिगायत्री अम्मर अस्थान । सोहंतत्त्व ले हंसालोक समान ॥
सत गायत्री अजपा जाप । कहै कबीर अमर घर बास ॥
सत्य है अमर सत्य है शून्य । सत्यहिमें कछु पाप न पुण्य ॥
कहै कबीर सुनो धर्मदास । यह गायत्री करो प्रकाश ॥

सुमिरण मध्याह्न गायत्री

अचिंत पुरुष हिरम्ब छाया । नाद बिन्द होय कर्ता आया ॥
यमसो जीता लोक पढाया । सुरति स्नेही हंस कहाया ॥
अचिन्त पुरुकी गायत्री, दीन्ह कबीर बताय ।
निशिदिन सुमिरण जो करै, करम भरम मिटि जाय ॥

सुमिरण सन्ध्या गायत्री

बारह जोजन कोट, यन्त्र जहँ पलमें छूटे ।
यहि विधि सन्ध्या जपे, भर्मको आगम टूटे ॥
गायत्री ब्रह्मा जपे, जपे देव महेश ।
गायत्री गोविन्द पढे, सतगुरुके उपदेश ॥
ताको काल न खाय, जो संज्ञा चीन्हे ।
घटमें रही अलोप, काढि हम बाहर कीन्हे ॥

इन पर लै सिद्धौ भनी, देव पूजा गो शरीर ।
ब्रह्मा बाचा पुत्र दासा, चपलान उग्र हंसनी शरीर ॥
शब्द पाय हिरदय धरे अस कथिक है कबीर ।

सुमिरन मध्याह्न गायत्री

कहैं कबीर अजपा घटे सूझे । निगम नाम मोहि जो बूझे ॥
तन मन धनहिं निछावर करे । सार नाम गहिभौ जल तरे ॥
अष्ट सिद्धिनौनिद्धिमांगेसोदेऊँ । खुरासानखुरवेदमुखगंगाप्रवाहु ॥
रिप सिप मार गर तराई ।नौगुनघरजासुरतिप्रकटहोवसूझे॥
खौजो सुरति कमलके तीर । सतगुरु मिल गये सत्य कबीर॥

सुमिरन सोनेका

संयम नाम सदा चितलाई । जासों काल दगा मिटिजाई ॥
काल दगा धरि आवे भेखा । जीव चुके धरतीकी रेखा ॥
सोवत समय जो मारे तारी । सत सुकृत करै रखवारी ॥
कहै कबीर बंकेज बुझाई । सोवत जीव नष्ट नहिं जाई ॥

अमर पिछौरी ओढिकै, सुख मण्डलमें सोय ।
कबीर ऐसे गुरु पाइके, कहा मुक्तिको रोय ॥

उत्तर करो सिराना, पश्चिम कीजै पीठ ।
कहैं कबीर धर्म्मदाशसों, यमकी लगै न दीठ ॥

सुमिरन प्रातः उठनेका

जो स्वर चले प्रात संचारी । सोय पग धरि उठो संभारी ॥
दिवस समस्त हर्ष सो बीते । जहां जाय सो कारय जीते ॥

पुहुमीमें पग दीजिये, सुनो सन्त मति धीर ।
कर जोरे बिन्ती करो, दर्शन देहु कबीर ॥

सुमिरन दिशा जानेका

अन्न सकल तन पोख, शब्द सुरति सो पेख ।
सूक्ष्म लगन उतारो, काया निर्मल होय हमार ॥

कहैं कबीर यही तत्सार । चौरासी सो जीव उबार ॥

### सुमिरन मलद्वार धोनेका

सुरतिसंतोषसूमसजबभयाउतार । बांयेकर परसै जलढार ॥
सतगुरु शब्द गहोमति धीर । कहै कबीर होय पाक शरीर ॥

### सुमिरनजलपात्रका

धर्मराज मैं तुम्हैं बुझाऊँ । जल पत्रका भेद बताऊँ ॥
जलपात्रको गहिके, उत्तम करो बनाय ।
कहैं कबीर निर्मल भये, संशय भ्रम मिटिजाय ॥

### सुमिरन तूँबा प्रक्षालनेका

तत्ततत्तका तूँबा, शब्दे लियो समोय ।
कहैं कबीर धर्मदाससों, तूँबा निरमल होय ॥

### सुमिरन हाथ मटिआवनेका

माटी खाक माटी पाक । माटी मैं माटी गर्पाक ॥
कहैं कबीर हम शब्द सनेही । सत्त शब्दसों पाक होय देही ॥
मृत्तिका लेव हाथ लगाई । अजर नाम सुमिरो चितलाई ॥
मृत्तिका लीन्हों हाथमें, निर्मल भया शरीर ।
कर्म भ्रम सब मेटिके, सुमिरो सत्य कबीर ॥

### सुमिरन दातौन तोरनको

धन्य वृक्ष जिन दातौन दीन्हा । साधु संतपर दाया कीन्हा ॥
दाया कीन्ह भया प्रकाश । रक्षा करें कबीर धर्म्मदास ॥

### सुमिरन दातौन करनेका

सत्तकी दातौन संतोषकी झारी । सत्त नामले घसो विचारी ॥
किया दतौन भया प्रकाश । अजर नाम गहो विश्वास ॥
अमी नामते पहुँचे आय । कहैं कबीर सतलोक सिधाय ॥

सुमिरन दातौन फारनेका

फटी दतौन भया प्रकाश । अजर अमर कबीर धर्मदास ॥

सुमिरन मुख धोनेका

मुख परसे मुक्तायनि वासा । जिनके परसत लोक निवासा ॥
लैं जल मुख माहि चढावे । अम्बुन नाम हिरदे लौलावे ॥
कहैं कबीर सुनो धर्मदास । सो हंसा सतलोक निवास ॥

सुमिरन अमरि उतारनेका

अमरी अमर लोक सो आई । तीन लोकमें निर्भय भई ॥
तन शोधो मन राखो धीर । अमरी उतारो खारी नीर ॥
कहैं कबीर अमर भई काया । निज शब्द अमीका आया ॥

सुमिरन जलमें पैठनेका

जो साहब दाया कर पाऊँ । कर वन्दी जल मांझ समाऊँ ॥
पान निहपान सतगुरु शब्द प्रमान

सुमिरन स्नान करनेका

अमी सरोवर ज्ञान जल, हंसा पैठ नहाय ।
काया कंचन मन मगन, कर्म भर्म मिटिजाय ॥
पिंडे सो ब्रह्मंडे जान । मान सरोवर कर स्नान ॥
सोहं हंसा ताको जाप । कहै कबीर पुन्य नहिं पाप ॥
ऐसी विधि करे स्नान । सोहंसा सतलोक समान ॥

सुमिरन स्नान करके बन्दगीको

नहाय खोरके शीश नवाई । अलख पुरुषके दर्शन पाई ॥
अमी शब्दको कीजे जाप । कहैं कबीर अमरघर बास ॥

सुमिरन कोपीन पहिरनेका

पारा राखे गुरु हमारा ।
बारह बरष की कन्या आई । उलटा पारा रह्यो समाई ॥

ऊपर बन्दी छोर विराजे । पारा खसे तो सतगुरु लाजे ॥
सत्तकी कोपीन ब्रजका धागा । गुरु प्रतापसो बन्धन लागा ॥
कहैं कबीर तजो अभिमान । पारा खसेतो सतगुरुकी आन॥

सुमिरन जल भरनेका

जीव जन्तु सब दूर पराऊ, भरिहौ निर्मल नीर ।
हत्या पाप लागे नहीं, रक्षा करैं कबीर ॥

सुमिरन जल छाननेका

अमृत जल निर्मल कर छाना । सतगुरु साहबके मन माना ॥
कहैं कबीर भरम सब भागा । टूटचो जबै पुरानो धागा ॥

सुमिरन तिलक करनेका

तत्त्व तिलक तिहुँ लोकमें, सत्त नाम निज सार ।
जन कबीर मस्तक दिये, शोभा अगम अपार ॥
पार कोई विरले पावै । पार पावै सो संत कहावै ॥
योगी संकट बहुरि न आवै । कहैं कबीर सतलोक सिधावै ॥

सुमिरन दर्पण देखनेका

दर्पणमें मुख देखिये, कबहीं न होय चितभंग ।
गुरुको बचन संतकी सेवा, चढै सवाया रंग ॥

सुमिरन चरणामृत महाप्रसाद पानेका

चरणामृत महाप्रसाद जो लीन्हाँ । सत्य शब्दका सुमिरन कीन्हाँ॥
अर्ध उर्ध मध्य धर ध्याना । कहैं कबीर सो संत सुजाना ॥

सुमिरन चरणामृत देनेका

हो साहब मैं बिन्ती लाऊँ । कौन नामते पग पखराऊँ ॥
दहिने पग प्रथम ही जलनावे । बल हमार सो पग पखरावे ॥
शब्द सार निर्मोलिक सारा । पग पखराओ हंस हमारा ॥
यहि विधि पग पखराओं भाई । दगा धोख सब दूर पराई ॥

साखी–अजर नामको सुमिरन, चीन्हे हंस हमार ।
कहैं कबीर धर्मदास सो, शीश न आवे भार ॥

सुमिरनमहाप्रसाद देनेका

पके अन्नको ग्रासन कीजै । पांच तत्त्वको भोजन दीजै ॥
जबे जीव मांगे प्रसाद । अजर नामको कीजै याद ॥
एक रवा हाथमें लेवे । महाप्रसाद दासको देवे ॥
महाप्रसाद एक धनीको, जाको सब विस्तार ।
मूरख लेख न पावै. कहैं कबीर बिचार ॥

सुमिरन महाप्रसाद पानेका

एक रवा हाथमें लीन्हा । उग्रनामका सुमिरन कीन्हा ॥
महाप्रसाद ऐसी विधि पावै । यमकी दसी निकट नहिं आवै॥
उग्र नाम हृदय लौलाई । ऐसी विधि प्रसाद जो पाई ॥
साखी–कहैं कबीर धर्मदाससो, महाप्रसाद जो लेय ।
काल दसी सब टूटे, यमहि चुनौटी देय ॥

सुमिरन चरणामृत पानेका

चरणामृत शिष्य जो लेई । अम्बुज नाम हृदय चित देई॥
लागे नहीं कालकी छाहीं । चरणोदक जो होय सहाई ॥
ऐसी विधि चरणोदक लेई । यमहिं चुनौटी निसिदिन देई॥
ले चरणोदक माथ नवावै । तीन दण्डवत तब पहुँचावै ॥
साखी-कहैं कबीर धर्मदाससो, यह शिष्यको व्यवहार ।
दगा धोख सब मेटो, हंस उतारो पार ॥

सुमिरन जलपीनेका

उत्तम शीतल निर्मल नीर । अमृत पिय तिरषा गई दूर ॥
सत्यगुरु मिल गये सत्यकबीर । भागो काल विषमके तीर ॥

### सुमिरन घर बुहारनेका

सुमति बुहारी कर गहि लीना । कचरा कुमति दूर कर दीना ॥
बावन लाख दगा मिटि जाई । साहबकबीरकी फिरी दुहाई ॥

### सुमिरन घर पोतनेका

हरियर गोबर निर्मल पानी । चौका पोते सुकृत ज्ञानी ॥
सवा लाख चूक बकसाये । चौका पोत जेवनार चढाये ॥
कहैं कबीर सुनो धर्मदास । हंसा पहुँचे पुरुषके पास ॥

### सुमिरन चूल्हामें अग्नि बारनेका

चूल्हा हमारे चौहटे, सब घर तपे रसोइ ।
सत सुकृत भोजन करे, हमको छूत न होइ ॥

### सुमिरन रसोई बनानेका

सुत सुकृत कीन्हा जेवनारा । ताते करत न लागे बारा ॥
सतघरी दो पहरि यां सांझा । लक्ष्मी बैठी रसोई मांझा ॥
सत्त पकवान लक्ष्मी करे । तीनलोकका उदर भरे ॥
कहैं कबीर लक्ष्मी समुझाय । संत सुहेला बैठे आय ॥

### सुमिरन थारी परोसनेका

चन्दन चौका कंचन थारी । हीरालाल पदुमकी झारी ॥
बहुत भांति जेवनार बनाये । प्रेमप्रीति सो पारस कराये ॥
संत सुहैला भोजन पाई । सत्तसुकृत सतनाम गुसाई ॥

### सुमिरन प्रसाद अर्पणेका

संत समाज धरती स्थूला । प्रसाद चढावें धर्म निर्मूला ॥
ओढे साल क्षमाके दीन्हा । सोई शब्द जो पावै चीन्हा ॥
नीर निरंतर अन्तर नेह । शब्द अगाध जो लागे देह ॥
कहैं कबीर चितजित जनि डरो । नाम सुमिरि जल अर्पण करो ॥

### सुमिरन अचवन करनेका

करि प्रसादजल अचवन कीन्हा। अचवन करिकै खर्चा लीन्हा ॥
दूत भूत सब गये पराय। जब टेके सतगुरुके पाय ॥

### सुमिरन पाकर बन्दगी करनेका

बारी तेरी बलगई, पलमें सौ सौ बार।
सद्गुरु मोपर दाया करो, साहबकबीर सिरजनहार ॥

### सुमिरन सुपारी मोरनेका

सेत सुपारी मोरके, अमीअंक लौलाय।
कहैं कबीर धर्म्मदाससे, हंस लोकको जाय ॥

### सुमिरन पान खानेका

गुरुकबीरने बीरा दीन्हाँ। हँस बचाय कालसो कीन्हाँ ॥
सत्य लोकमें बैठे जाई। सत्त सुकृत जहँ पाप रहाई ॥
कहैं कबीर जे हंस उबारे। जरा मरण भव कष्ट निवारे ॥

### सुमिरन टोपी लगानेका

तरे धरती ऊपर आकाश। चांद सूर्य दोउ पाट ॥
तेतिस कोट आगे पार। सोई जानो सतगुरुकी हाट ॥
नौनाथ चौरासी सिद्धजीत औघट बाँध।
धर्मदासके मस्तक दीन्हा, कबीर विराजे साथ ॥
बादशाह एक खूँटका, अखंड द्वीपके भूत।
दुर्वंश भूत ब्रह्माण्डके, सोई साधु गुरुरूप ॥

### सुमिरन दीपक बारनेका

आदि अंत एक ज्योति है, स्थिरस्थीर है नीर ॥
आवै सत्यकबीरके शब्दकी छुरी। यम जालिमकी काटे गुरी ॥
धर्मदास कबीरके लागे पाई। बावन लाख दगा मिटि जाई ॥

### सुमिरन आसन करनेका

सत्त पुरुषको सुमिरिके आसन करे बनाय ।
तापर हंसा पोढई, कबीर धर्म्मदास सहाय ॥

### सुमिरन कमर कसनेका

धर्मदास कसना कसे, नाम पान लियहाथ ।
सत्यकबीर पहुँचावहीं, सकल सन्त लिय साथ ॥

### सुमिरन रस्ता चलनेका

शिरपर साहब राखिके चलिये आज्ञा माँहि ।
आगे साहेब कबीर हांकदेत हैं, तीनलोक डरनाहिं ॥
कागकागरे विकार कूकरामंजार । नाग नाहर दूत भूत बट पार ॥
सबको बांधि कबीर आन घाट ले डार ।
घाट बाट बन औघट मोहि खसमकी आस ।
मते चले कबीरके कबहू न होय निवास ॥

### सुमिरन सात शिकारीका

अमीनाम, ऊर्द्ध नाम परिमल नाम, दयावन्त, बालदीप
सहज मूल अग्रमुनि सतनाम, साहबके अमीनाम, पुष्प
सुगंधकंठकीसिलानिगम्यसुगंधयोगजीतनिहंगमित ।

इति श्री षटूकर्म विधि नित्यकर्म सुमिरन

सत्यसुकृत, आदिअदली, अजर अचिन्त, पुरुष, मुनींद्र, करुणामय, कबीर सुरति योग, संतायन, धनीधर्मदास चुरामणिनाम, सुदर्शन नाम, कुलपति नाम, प्रबोध गुरुबालापीर, केवलनाम, अमोल नाम, सुरतिसनेही नाम, हक्क नाम, पाकनाम, प्रगट नाम, धीरज नाम, उग्र नाम, दयानामकी दया, वंश-ब्यालीसकी दया ।

★

अथ श्रीबोधसागरे-

# सुमिरनबोध प्रारंभः

★

पञ्चत्रिंशस्तरङ्गः

## द्वितीय बोध

(गुरुआई विधिके सुमिरन)-सुमिरन चौकाके अजर गायत्री

अजर गायत्री अजपान । अजर चौका अजर नाम ॥
अजर सिंहासन है परवान ।
अजर थार भराये तहाँ । अजर पुरुष गवन किये जहाँ ॥

अग्र नारियर सन्मुख धरिया । सुर्त सुपारी आगे विस्तरिया ॥
लौंग इलायची जहवां फरी । लौकी लौंग सोध बिस्तरी ॥
ज्ञान ध्यानकी केशर गारी ।
अग्र विचार परममत दिया । अमी अंक तामें कर लिया ॥
अग्र अमर पाटंबर ताना । अग्र सुगंध महाँ परवाना ॥
अजरपुरुषबैठेसिंहासनसम्हारी । संग हंस शोभा अधिकारी ॥
अजर आरती बहुविधि साजी । नानारंग तरंग विराजी ॥
उमगे प्रेम ज्ञान तह छाया । हंसा सोहंगम चौर दुराया ॥
उठे तरग बहुत विधि बानी । अमी अमृतकाशसाहिसमानी ॥
दुबिधा दुरमत दूर बढाई । प्रीति मिठाई थार भराई ॥
जगमग ज्योति रही ठहराई । परमल हंसा रहो समाई ॥
झमके तहवां नूर अपारा । गरज शब्द चहुँ औरे धारा ॥
चन्द्र सूर जहँ गम नहिं पावा । सकल हंस वसन सुख आवा ॥
कहैं कबीर सुनो धर्मदासा । यह छबिदेखतजगतहोउदासा ॥
हिम्मत प्रीतिसों आरती साजो । इत उत चित नेक नहिं राजो ॥

अग्र गायत्री नामकी, येही मुक्तिको मूल ।
धर्मदास दृढके गहो, जहाँ अग्र अस्थूल ॥
राजद्वारे जिन कहो, पण्डित सुन करे वाद ।
सो हंसा सतलोकके, लेहि शब्द पहिचान ॥

अग्र गायत्री तुमको दीन्हीं । एतीदयाहम तुमपर कीन्हीं ॥
नाहीं सुमिरन जिह्वा आवा । अधर निरन्तर ध्यानलगावा ॥
गायत्री भेद जाने कडिहारा । चौका निर्णय करै विचारा ॥
कहैं कबीर गायत्री कलसान । अजर अमर धरमूलठिकान ॥

सुमिरन अंशनके नाम बैठक पूजा

प्रथम कूप पीठपर चौका ।
सहज अंशकी बैठक मूलकरी । पूजा खडी सों चौका पोते ॥

सुजन जन अंशकी बैठक अग्रदीप, पुजा चन्दनको छरका ॥
भृङ्गमुनि अंशकी बैठक मंजुल करी, पूजा गादी चँदेवा ॥
अंश पक्षपालनकी बैठक पोहप दीप, पूजा फूलमाला अंगोछा ॥
अंश श्रवण लीलाकी बैठक जगमग दीप, पूजा चोला धोती ॥
अंश सर्वांग सुर्तकी बैठक अचिन्त दीप, पूजा थारी कटोरी ॥
भावनाम अंशकी बैठक उदै दीप' पूजा दाख सहत ॥
सुर्त सुभाव अंशकी बैठक ज्ञानदीप, पूजा बदाम मरिच अबीर ॥
अक्षर सुभाव अंशकी बैठक पालंग दीप, पूजा केरा फूल ॥
सन्तोष सुजान अंशकी बैठक अक्षय दीप, पूजा मिश्रि अष्टमेवा॥
कदल ब्रह्माकी बैठक सुखसागर दीप, पुजा सुपारी छोहारा ॥
दयापाल अंशकी बैठक आदि दीप, पुजा झारी अष्ट सुगन्ध ॥
जलरंग अंशकी बैठक पताल पांजी पूजा, पान खरचा माला ॥
प्रेम अंशकी बैठक झँझरी दीप, पुजा घृत कपुर ॥
अष्टांगी अंशकी बैठक मानसरोवर, पुजारिष्ट भोग विलास ॥

प्रथम चार चौका ताके मध्य सिंहासन ।
पान मिष्टान्न नारियल पुरुषको भोग घृत पकवान ॥

उत्तर दिशा जम्बूद्वीप गुरु धर्मदास गोसाँई आरती ज्योति प्रकाश॥
पूर्व दिशा गुरुराय बंकेज गोसाँई कलश पांचौ वाती प्रकाश ॥
दक्षिण दिशागुरु चतुर्भुजगोसाँई दलकीझारी पांचपानखरचासाथ॥
पश्चिम दिशा गुरु सहेते जी गोसांई पास न बंशगादी ॥
इतनी विस्तार पुरुषसों ज्ञानी लगि ।
अपने अपने स्थान बैठाये । सब अंशकी लाग चुकाये ॥
धर्मदास को सन्धि बताये । धर्मदास को नाम चुकाये ॥
षोडष अंश पान पर लीन्हें । मुक्तामन सुरती की दीन्हें ॥
कहै कबीर सुनो धर्मदास ।यह भेदकडिहारसों कहो प्रकाश॥

इतना भेद कडिहार जो पावै । आप चले औ जीव बचावै ॥
धर्मराय है चौका माही । वह देखे सबके चतुराई ॥
सुनो धर्मदास चौका गुप्त हैं । ताकी सन्ध्य प्रकट है ॥
चार गुरुकी बैठक पूजा न्यारी न्यारी है ।
चार दिशा कायमें हेली । चार दिशा बाहरेली ॥
एक एक गुरुके आठआठपूजाहै । चार गुरुके बतीस साज ॥
एकएकगुरूकेसंगचारचारअंश है। चार गुरुके सोरह अंश ॥

साखी—इतना भेद जो जाने, सो सांचो कडिहार ।
इतना भेद नहिं पावै, तेहि छलै काल बटमार ॥
चौकाबैठा फूलके, गाफिल भया निशंक ।
बिना भेद जो नारियर, मोर नाशिर चढै कलंक ॥
झूलों काल हिडोरना, नहिं जाने शब्दका तोल ।
कहै कबीर धर्मदाससो, मम खाली परे न बोल ॥

सुमिरन बड़ी इकोत्तरी

अजरअचिन्त्यअकहअविनाशी। आदि ब्रह्मा अमरपुर वासी ॥
अदलीअमीअनेहअजावनसोई। आदि नाम सत्य सुकृते होई ॥
परमानन्द है अखिल सनेही । सत्य नाम तत्पुर्ष विदेही ॥
निः कामी निर अक्षर सांचा ।अजरअविगतसबहिनमो राचा॥
अमर अपार अनन्त अभेदा । अचल अचिन्त न जाने भेदा॥
अक्षय अगुण अगोचर कहिये ।अगमअलेखगहिसतचितरहिये॥
अभय औगाह अकथ बखाना । अम्बुज चरण औ पुरुष पुराना॥
दीनबन्धु करुणामय सागर । दयासिंधु हंसन पति आगर ॥
दीनदयाल सो अधम उधारन । हिरण्मय भवसागर तारन ॥
अरूप अथाह अनाहद राता । योगी जीत सबहिनके दाता ॥
करुणा मय संतन सुखदाई । अभय अचिन्त्य नामगुणगाई॥

सच्चिदानन्द सो सदा उजागर । योग संतायनपतिसुखसागर ॥
सुर्त नामसों जपिये ज्ञानी । अमी अंकूर बीच सहिदानी ॥
प्रथम पुरुष सबहीके मूला । अमीदीप नाम है अस्थूला ॥
आलख नाम पुरुषोत्तम गाऊँ । नाम मुनींद्र सदा गोहराऊँ ॥
सर्व मई साधनपति सोई । भक्तराज बूझो नर लोई ॥
सत संतोष सो सदा सनेही । शब्दसरूपी अविचल देही ॥
प्राण नाक पिब अमृत बानी । सत्यलोकपति नाम बखानी ॥
सद्गुरु जन्म निवारक जानो । बन्दीछोर निश्चय कै मानो ॥
अवागमनके दुःख मिटावो । चौरासी लक्ष बन्द मुक्तावो ॥
शील रूप संतोष पियारा । धर्मराय शिर मर्दन हारा ॥
मुक्तिदाता शीतल उजियारा । नाम परायण प्राण पियारा ॥
अस्थिर नाम अभयपद दाता । अक्षयराज नायक विख्याता ॥
सत्यसाहेब कहो बहोर बहोरी । अक्षय वृक्ष हिरामय डोरी ॥
पुहुपदीप मण्डप गुरु सांचा । हँस सोहँग नाम बिच राजा ॥
सोहँ शब्द नाम है सारा । सत्यवचन बोले कडिहारा ॥
इच्छा रूप संत जन गावै । ज्ञानहि बीज अमोल कहावै ॥
अबोल अशोच असंशय धीर । नाम एकोत्तर कहैं कबीर ॥
एकोत्तर नाम सुमिरे जो कोई । ताको आवागमन न होई ॥
नाम एकोत्तर सुमिरे जबही । सद्गुर बैठे सिंहासन तबही ॥
आरती नाम एकोत्तर चहिये । एकोत्तर विनानरियन गहिये॥
आरती नाम एकोत्तर धारा । एकोत्तरी विनाकैसोकडिहारा ॥
विना एकोत्तर नहिं निस्तारा । कैसेहु निज मानो कडिहारा ॥
एकोत्तर नाम जानै विस्तारा । सो जानो सांचो कडिहारा ॥
पांच नाम इनहीमों भाषा । सहज पक्ष पालन है साषा ॥
सुर्तसहजपालजरंगश्रवणहै भाई । हँसनतिलकएकोत्तरिलेहोजाई॥

बायें श्रवण लीला सुत है भाई। सुर्त डोर कहों समुझाई ॥
एकोत्तर नहिं जाने विस्तारा। सो जनि जानहु है कडिहारा ॥
जो नहिं जानेएकोत्तरविस्तारा। मिथ्या सो जानो कडिहारा ॥
नहिं तो पूत आहै कडिहारा। लै जीवनको करै अहारा ॥
नाम एकोत्तर जानै नहीं, औ धरे सिंहासन पाँव।
कहैं कबीर तेहि शीशपर, कोटि वज्रको घाव ॥
धर्मदास हँसन तिलक, एकोत्तरि लेहो जान।
अंश सुजन जन मुक्तपद, सत्य शब्द परवान ॥
पिण्ड ब्रह्मण्ड खोजके, राखो शब्दकी आश।
तिलभर काया मूलकमलमें, जहां पुरुष रहिवास ॥
कहैं कबीर जो पाइहैं, एकटक सुमिरे ध्यान।
तिलभर काया सहज कमलमें, जहां पुरुषको स्थान ॥
सहजनाम युग बांधिया, बावन नामकी नेह।
दीप अजयकी ध्यानमें, भई सुर्तकी देह ॥
देह भई तब जानिये, गगनध्यान लौ लीन।
सुर्त सोहँगम शब्द है एकटक सुमिरो संतो जम होय बलछीन ॥
सोहँ शब्द निज सांच है, जपौ अजपा जाप।
कहें कबीर धर्मदाससों, देखो अगम अगाध ॥
साहे शब्द निज साच है, गहि राखो तुम पास।
सोहं शब्दमें मुक्तमें, सत्य मानो धर्मदास ॥
सुमिरन सार एकोत्तरी, चन्द्र सूर घइसार।
कहैं कबीर धर्मदाससों, तासु नाम कडिहार ॥
ज्ञान गम्य जाने जो पावै। भवसागरमें धन्यगुरू कहावै ॥
इति एकोत्तर नाम सिंहासन ध्यान नारियर अङ्गप्रथम स्मरण॥
चौका अङ्ग सत्यकबीर धर्मदास को दीन्ह। अविचल

पुरुष नाम अबोल अडोल नाम । अजावन राय रनछोर नाम ॥
शम्भु सन्तोष नाम । उदैचन्द अक्षैराज नाम ॥
एते नाम रहे लौ लाय । यमराजा तिहि देखि डेराय ॥
अम्बू अपावन नाम । अम्बू शम्भू नाम । एत सत्यकाया प्रकाश ॥
अजरनाम नरियर सचार ।
अम्बू नाम वे पुरुष कहावा । सोहं हंस तहां बिलमावा ॥
सोतो धर्मदासबैठे हैं पुरुषपुरान। सोहं सुर्त तुम मोर सुजान ॥
बेहंग नाम तुम जगमें देहो । हंस छोडाय काल सो लेहो ॥
एही नाम जीव जो पावै । बोधे हंस लोकमें आवै ॥
मैंकबीरदरवानीदरवाजेहौंठाढ।आवतजातसुखउपजैहंसनकोनहिंगाढ
एकोत्तरी नाम सुमिरे चितलाई । आवागमन रहित घर पाई ॥

## स्मरण हस्तक्रिया

सुनो धर्मदास हस्तक्रिया सही । महापुरुष मुख अपने कही ॥
नरियर अंकुरमो जीव रहाई । तहाँ सुर्त राखो ठहराई ॥
नरियर उठाय हाथ के लेहू । नरियर मस्तिक हाथ जो देहू ॥
सुर्त समाय जीवमो गयेऊ । नरियर अमरलोक ले राखेऊ ॥
महा पुरुषके दर्शन कियेऊ । चरण बन्दिके शीश नवायेऊ ॥
महा पुरुष लै अङ्क लगाये । तब हंसा लिये हर्ष समाये ॥
अंकुर अंश बिनवे करजोरी । महा पुरुष सुनी बिनती मोरी ॥
अंकुर अंश नाम लौ लाई । भवसागर ते लेऊ मुक्ताई ॥
महा पुरुष सुर्त उतपानी । जाय सुर्त कडिहार समानी ॥
कडिहार सुर्त लीन्ह चितलोई । सोई सुर्त हंसा मो आई ॥
माथे हाथ जीवके दियेऊ । सुर्त समाय हंस मो गयेऊ ॥
गई समाय रही ठहराई । बहुत अनंद हंस तब पाई ॥

जब लग सुर्त रही बांही । कोइ कोइ सन्त सो जानत आही ॥
टीका मुदित पूजै जब आई । यह पिण्ड तबही खस जाई ॥
सुर्त हंस ले गये लेवाई । महा पुरुषके दर्शन पाई ॥
महा पुरुषके चरण छुवाई । करै वन्दगी शीश नवाई ॥
महा पुरुष लिये अंक लगाई । सुर्त हंस नाम तिन पाई ॥
अपने समसर लिये लगाई । महा पुरुष सम शोभा पाई ॥
सुर्त हंस बिनवे कर जोरी । महा पुरुष सुनो बिनती मोरी ॥
भवसागर कडिहार रहाई । तिनके शब्द मुक्त हम पाई ॥
धन्य शब्द धन्य कडिहारा । तिनके शब्द मो हंस उबारा ॥
महा पुरुष चितवे चितलाई । भवसागर ते लेव मुक्ताई ॥
मुक्त होय सतलोके आवै । छिन छिन गुरुके दरशन पावै ॥
महा पुरुष शब्द उचारा । वै कडिहार हैं सुर्त हमारा ॥
जहां जहां सुर्त चित्त लाई । सोई हंस लोकको आई ॥
भ्रमें जीव होय जसमाहीं । तिन सनकी गहे जो बाहीं ॥
भ्रमें जीवको नारियर लेई । हस्त क्रिया नरियरको देई ॥
हस्त क्रिया नरियर जब पाई । भर्में लोक हंस लै जाई ॥
जाहि खानमें जीव रहाई । जहां जाय सुर्त समाई ॥
गई समाय रही ठहराई । हंस उधार लोक ले जाई ॥
जो कडिहार हस्त क्रिया पावे । महापुरुष के सुरत समावै ॥
हस्त क्रिया गहे चित लाई । कहैं कबीर हंस लोक सिधाई ॥

स्मरण सिंहासन बैठनेका

अंगन गहे गहनी तहां पुरुष चेतो सन्त बिचार ।
सिंहासन है पुरुष को सुर्तसों रोपो पांव ॥
जीवन पार उतारों तुम्हारे शिर नहीं भार ।
आदि पवन सों बैठो मूलशोध कडिहार ॥

कहैं कबीर धर्मदास सों, सत्यपुरुष चितराख ।
अमी अंक जो जानै, जासु जहाँ तत भाष ॥

स्मरण दल अर्पणका

अर्पों दिल चौकामें उत्तिम दल बनाय ।
कहैं कबीर धर्मदास सो सब अवगुण मिट जाय ॥

स्मरण पाषाण रखनेका

पान पुराण हाथकर लीन्हा । सब साहेबका सुमिरण कीन्हा ॥
सत्य पुरुष बोले परवाना । बैठे पुरुष मध्य जो स्थाना ॥
रेखा लिखो पाषाणमें, अचिंत्य नाम घंट बोल ।
कहैं कबीर धर्मदाससों, तब हंसा होय अडोल ॥

स्मरण नरियर रखनेका

नरियर नरियर नरियर खरी । नरियर मोरे सत्य कबीर ॥
औरसों नरियल मोर न जाई । पांच शब्द लै नरियरमोरेकबीर धर्मदास आई ॥

स्मरण नरियर मोरनेका

जलदल लेके नरियर मोरा । सत्य शब्द गहितिनका तोरा ॥
मोरो नरियर हुकुम कबीर । सत्य नाम गहि लागो तीर ॥
पुरुष नाम है अमी अमोल । नरिययर मोरो खसमनिहोर ॥

स्मरण नरियर मोडनेका

अमी सींचके नरियर कीन्हाँ । सो नरियर धर्मदासको दीन्हाँ ॥
धर्मदास मृतु मण्डल आये । सकल सन्तमिलि मंगल गाये ॥
नरियर मोरकेसत्यसुकृतकोशिरनाये । निकुतनामलेहंस बचाये ॥
कहैं कबीर धर्मदास सों । नरियर मोरे वंश तुमार ॥

स्मरण तिनका तोरनेका

यह विरवा चीन्हे जो कोय । जरा मरण रहित घर होय ॥

कौन विरवा जो बोलत है ताको चीन्हो। कबीरगोसांईकी आज्ञा सों। जिवसो यमसो तिनका टूट यमके मुखमें थूक ॥

स्मरण ज्योती शीतलकरनेका

साखी–आदि अन्त यक ज्योति है, अस्थिर थीर है नीर।
सात द्वीप नौ खण्डमें, एकहि सत्य कबीर ॥

स्मरणमिठाई मालूम करनेका

श्वेत मिठाई उत्तम पाना। लौंग लायची श्वेत प्रधाना ॥
केरा कदली और सुगन्धा। तबही हंसा होय अनन्दा ॥
यहिविधिकरोमिठाई। कहै कबीरधर्मदाससोतबहमकोभोगलगाई

स्मरण पानप्रसाद मालूमकरनेका

चौंका लेय मिठाई धरी नरियर धोती पान।
हंसा बैठे आसन पर पूर्वहि आज्ञामान ॥
पुरुष बैठे आसन हंसहि नाही मार।
कहै कबीर मिठाई मालुममानसरोवरपार ॥

स्मरण आरती सौंपनेका

जोई आरती वारे, सोई बुझावै आन।
जहां ज्योतिझिलमिल करै, सोई पहिचान ॥
अपनो तन मन खोजो, आप करो चितएक।
शीतल करो आरती, पुरुषनाम गहिटेक ॥
कहै कबीर यह सुमिरण, सन्तो करो विवेक।
अबकी बेरा चेतहु, तारों कुटुम समेत ॥

स्मरण आरती प्रकाश करनेका

सोहंग नामले आरती वारे आपतरे औरनको तारे ॥
सोहंग नामनिज सुमिरके, करो आरती प्रकाश ॥
कहै कबीर धर्मदाससों मिट गये यमके त्रास ॥

### स्मरण परवाना लिखनेका

अमी अंकको लिखनी कीन्हा । सो लिखनी धर्मदासको दीन्हा ॥
उलटी लिखनी सीयेल द्वार । कटे कर्म भये जर छार ॥
खोजतखोजतखोजिया, यह सन्तनको काम ।
पुरुष देह धर देखिया, और एकोत्तर नाम ॥

### स्मरण प्रवाना साजनेका

अहो साहेब कौन अङ्गप्रवान साजो । भाषो लेखा अंगमो ताको ॥
अहीधर्मदासमध्यअङ्गश्वानासाजो । अंक चढाय नाम सुखभाषो॥
अजावन नाम पानके लीन्हा ।सुर्त सम्हार अङ्क तुम चीन्हा ॥
कहैकबीरधर्मदाससोयहबीराअंकनामबिदेहचढावहूँहंसहोकेनिशंक

### स्मरण पवाना साजनेका

अमी अंकका वीरा शब्द, सोहंगम डोर ।
कबीर हंस लोक लै राखो, यमसे बन्दी छोर ॥
सुर्त चढी आकाशको, उनमुनमहल बनाय ।
सोई हंस उजागर, जामो अमी समाय ॥
पुरुष मोहर अकह कबीर । कालमें सोहं धर्मदास कबीर ॥

### स्मरण प्रवाना देनेका

श्वेत पान अम्मर है छाया । सोपान अमोदिक पुरुष पठाया ॥
भरमत पवन फिरे संसारा । पवन निर्मल होय असवारा ॥
अमी अंक पुरुष लिखि दीन्हा, कमल पंखुरी सार ।
कहैं कबीर कछु शंका नाहीं, रहो पुरुषके आधार ॥

### स्मरण प्रवाना देनेका

अजर मूलसो बोरी उत्तारी सुर्त सोहंगम डोर ।
एही सुमिरणपायके, हंसा उतर लक्ष करोड ॥
एही स्मरण हाथले, काल रहो मुरझाय ।
कहैं कबीर धर्मदाससों, हंसलोक पहुँचाय ॥

### स्मरण कण्ठी बाँधनेका

कण्ठी कण्ठ विराजे, सतगुरु तिलक कर दीन्ह ।
जगसों तिनुका तोरिके, हंस आपन करि लीन्ह ॥
माला कण्ठी नामकी, सतगुरु शब्द विचार ।
बादविवाद जो बालक, सो करै, ताके मुख परे छार ॥
कहैं कबीर धर्मदाससों, बालक कबहुन न होय निनार।

### स्मरण पांच नाम

आदि नाम अजरनाम अमीनाम । पताले सदा सिंधु नाम ॥
अकाशे अदली निरनाम । एही नाम हँसको काम ॥
खाले कूची खोली कपाट । पांजी चढे मूलके घाट ॥
भर्म भूतको बांधो, गोला कहैं कबीर प्रवान ॥
पांच नाले हँसा, सत्यलोक समान ॥

### स्मरण दक्षामंत्र

सत्यसुकृतकी रहनी रहै अजर अमर गहै सत्यनाम ।
कहै कबीर मूलदशा, सत्य शब्द परवान ॥

### स्मरण तिनुका तोरनेका

दहिने छोडो धर्मका स्थाना । बायें चित्रगुप्तको जाना ॥
सन्मुख नासिका देव पयाना । तब यम चले देखके पाना ॥
टूटै घाट अठासी करोरी । हँसा चढे नामकी डोरी ॥
सो जीवत हँसा भये, लिये प्रेमकी डोर ।
सो जिव चले सत्यलोकको, यमसों तिनुका तोर ॥
आसन वासन मन कल्पना औ सर्वा भूत ।
एकोतरसे पुरुष के, यमसों तिनुका टूट ॥
कहैं कबीर सद्गुरु मिलै, मिथ्याके मुख चूक ॥

तिनुका तोरनेका

मनपाप मनसा पाप महापाप पाप पुरविला पाप ।
नोग्रह ब्रह्मा जाई । हम सद्गुरुके शरण आई ।
आसन वासन मन कलपना, एतो सर्वाभूत ।
कहै कबीर सद्गुरु मिले, मिथ्याके मुख थूक ।

तिनुका तोरनेका

आसन वासन मन कलपना, देवो सर्वाभूत ।
यमसों तिनका टूट साहब शब्द प्रगटे भागेभूतयमदूत ।
ये जीव भये कबीर साहेबके यमसों तिनुका टूट ॥
कालके मुख थूक यमसों तिनुका टूट ॥
शब्दहि नेह लगावै कहैं कबीर धर्मदाससों कालदगामिटजाय ॥

तिनुका तोरनेका

आसन बासन मन कलपना, खेदो सर्वा भूत ।
कहै कबीर सतगुरु मिले, मिथ्याके मुख थूक ॥

जँजीरा तिनुका तोरनेका

भूतहि बांधों पिशाचहि बांधों बांधों धीमर धोखा ।
तीन निरंतर मन्तर बांधों मारों नाहर चोखा ॥
बोझा बांधों बोझइता बांधों पूजित बांधों पुजेरी बांधों।
मरहिया मनसा बांधों हाटक बांधों फाटक बांधों ।
औघट बांधों बाट बांधों नैहर बांधो सासुर बांधों ।
अरोसिन बांधों परोसिन बांधों बांधों डंकन डोरी ।
कहै कबीर भर्म सब बांधों निर्गुन तिनका तोरी ॥

स्मरण प्रवाना पावनेका

अजरकी लिखनी हीरा पाना । सत्य सुकृत लिखे परवाना ॥
देह पान लेवो कण्ठ लगाई । बालक देहू गर्भ मैं भाई ॥

भाषा भाषों अपर्बल; परे अजर की छाय ।
मुक्तके अक्षर मुक्ता मन, होय चुरामनि नाय ॥

स्मरण प्रवाना पावनेका

अजर नाम अजर है प्राना । अजर नाम सत्यलोक पयाना ॥
अजर नाम गुरु दिया बताय । कर्म भर्म सर्व दिया बहाय ॥
कहैं कबीर सुनो धर्मदास । अजर नामते लोक निवास ॥

स्मरण माथा पंजा देनेका

ठाढे दूत करत है गोला । धर्मदास मुख अजरे बोला ॥
धर्मदास मुख बोले बानी । दूत भूत गयेकुम्हिलानी ॥
अजर लोक अजर है नाम । अजर पुरुष अजर पुर्षको नाम ॥
येही नाम हृदयमें राखो । जादिनकाल दगापरे तादिनमुख भाषो ॥
उत्तर दिशा जगन्नाथके ठाईं ।
कहैं कबीर धर्मदास सों अजर बोल तुम जीवको सुनावो ॥

स्मरण दल प्रसाद लेनेका

अमृतदल अमरापुरी, तिरख नाम निज चीन्ह ।
अजर नाम कबीरका, अमृत दल करि दीन्ह ॥

इति सुमिरन चौकाको गुरुवाई विधि सम्पूर्ण

अथ लिख्यते चौका विस्तार विधि

स्मरण चँदोवा ताननेका

सत्यसुकृतको समझके, कीजै मनको स्थीर ।
छत्र तनायो प्रेमसो, सद्‌गुरु कहैं कबीर ॥
पांच सुपारी पांच खूँटमें; स्वेत चँदेवा सोय ।
कहैं कबीर धर्मदास सो, आवागमन न होय ॥

स्मरण खडीसो चौका पोतनेका

स्वेत मृत्तिका निर्मल पानी । चौका पोते सुकृत ज्ञानी ॥

चौका पोतके चन्दन चढावा । सत्य सुकृत जिनलोक पठावा ॥
कहैं कबीर सुनो धर्मदास । हंसा गये पुरुषके पास ॥

चन्दन चौका पोतनेका

सिन्धु नीर घट अमी मँगावा । सत्यसुकृतको शीश नवावा ॥
सोहं पवन लै कीन्ह पसारा । निकुत नाम लै हंस उबारा ॥
तन मन दैके चीन्ह शरीर । अंकनाम कहि दीन्ह कबीर ॥

स्मरण कनिक चौका पोतनेका

कनक छानके निर्मल कीन्हाँ । सहज नाम हृदे चित दीन्हाँ ॥
चौका पूरे युक्ति बनाई । सतगुरु दीन्हा भेद लखाई ॥
कहैं कबीर चौका है सारा । चौका बैठो सिरजन हारा ॥

स्मरण मानिक बनावनेका

अग्र आरती कर मन जाना । कीन पवनसो निकसे पाना ॥
शब्द अन्त है ताकर सार । सो जीवनका करै उबार ॥
उबारे हंस करै लोक निवास ।बाहर तत्त्व जानेअंशवंश हमार ॥
सत्यनाम मगन जेहि भीतर । कहैं कबीर हम प्रगट शरीर ॥

स्मरण थारमें परवाना धरनेका

थार परवाना कर सम तूला । आदि नाम भाषो सुख मूला ॥
मानिक सवार थारमें धरो । परवाना को सुमिरण करो ॥
कहैं कबीर सत्य है सार । अंश वंश हंस उतारे पार ॥

स्मरण मानिक धरनेका

स्थिरहि थारमें मानिक धरो । एकनाम सुस्थिर दृढ गहो ॥
कहैं कबीर गहो नाम अधार । निश्चल हंस साधि कडिहार ॥

स्मरण कपूर घृत परसेको

अग्र कपूर अग्र घृत धाइ । सो कदली है वाहा नेह ॥
शब्द कपूर तहां लै धरो । सतगुरु दयासों निर्भय रहो ॥
कहैं कबीर सुनो धर्मदास । अग्र वासमें करी निवास ॥

स्मरण पान धोवनेका

सुख सागर है मूल स्थान । तहां ऊपजे श्वेते पान ॥
श्वेत पानकी अंमर छाया । अमी पुरुष संदेश पठाया ॥
कहैं कबीर सुनो संत सुजान । यहिविधि करो पान औ स्नान ॥

स्मरण पान चढावनेका

श्वेत पान लोकते आया । श्वेत पान पुरुष निर्मांया ॥
दिया वंश धर्मदास को । दीन्हों पान चलाय ॥
लेहु पान तुम शीश चढाय । श्वेत पान पावे निज मूल ॥
दृढमनचितकोराखोथीर । कहैकबीरधर्मदाससोंपहुँचेलोकअस्थूल ॥

स्मरण दल बाँटनेका

दल नाम दयाका मानाम करिपूर । नौग नाम वे पुरुष है ।
बिन डोढीका फूल । सुर्त लाय दल वाटहू जल दल धरहु सुधार ॥
कहैं कबीर धर्मपाससों भव तज लगे न वार ॥

स्मरण दल बनावनेका

यो दल सत्तर लोकसों जल आवा । सत्तर लोकसों अमृत लावा ॥
शब्दकी झारी अमृत भरी । तापेसा तोष रिचा धरी । तीन खरचा ॥
पहले तोराई । कह कबीर यमदूत पराई ॥

नरियर जटा उतारनेका

प्रथम बीज धरतीको दीन्हा । लागे फल नरियर तहँ लीन्हा ॥
सो नरियर सन्त जन पाये । सत्य सुकुतको आनि चढाये ॥
तीन लोक है पिण्ड शरीर । भीतर बाहेर एकहि नीर ॥
कहैं कबीर सुनो धर्मदास । यहि विधि नरियर भयो प्रकाश ॥

स्मरण नरियर स्नानका

सुख सागर है मूल अस्थान । तहाँ भये नरियरके स्नान ॥
श्वेत नरियर श्वेतहि छाया । अमी पुरुष सन्ध पठाया ॥

भरमित पवन फिरे संसारा। निर्मल पवन ताहि असवारा ॥
कहैं कबीर सुनो धर्मदास। द्रुम नरियर स्नान प्रकाश ॥

स्मरण कलश धरनेका

दो पैसा औ एक सुपारी। अलश धरो उत्तम विस्तारी ॥
सवासेर लै तण्डुल धरो। धर्मराय देख थरहरो ॥
पांचो बाती देव लेसाई। तब गादी पर बैठो आई ॥
हृदय चरण वंशके धरो। सत्य कबीरकहिधोकपरिहरो ॥

कलश सही करनेका

पांचतत्त्व घट भीतरपांचहिनाम। तासों होय जीवको काम ॥ सो लेखा तियवार कहैं कबीर सुनो धर्मदास। धर्मरायसो हंस उबार। जोति अजरलोककी अम्रलोक देह पहुँचाय ॥ कहैं कबीर सुनो कडिहार। सारशब्द गहो टकसार ॥

स्मरण फूल चढावनेका

सुकृत वारिसों फ़ूल मँगाये। सहजकी झारी आनि भराये ॥
सत्य पुरुषको आनि चढाये। धर्मदास उठ बिनती लाये ॥
हीरा मानिक लागे मोती। सत्य पुरुषकी निर्मल जोती ॥

स्मरण गादी बिछावनेका

चौका धरो मिठाई आनी। नरियर पान कपूर प्रवानी ॥
पुरुष बैठ सिंहासन आई। हंसहि नाहीं भार रहाई ॥
मान सरोवर कदली केरा। मेवा अष्ट लाय यह वेरा ॥
लौंगलाइची सत्यलोकके छोही। भौमे आनि मिठाई होई ॥
कहैं कबीर सुनो धर्मदास। सिंहासन बैठे मम दास ॥

स्मरण फूल माला बाँधनेका

मन माली तन फूल मँगाये। अमी अंक लै शब्द सुनाये ॥
मनकरवारी तन कद पोष। काया कञ्चन भई निर्दोष ॥
कहैं कबीर निज सुमिरो मोही। मारों यमै उबारो तोही ॥

स्मरण आरती धरनेका

सत्य जीव आरती है नाम । सतगुरु शब्द सुनो परवान ॥
वोही नाममें बैठके लेहु धनीको पान । अंश वंश गुरु कीजिये ॥
देह धरो नहिं आन । धीर गुरुको चीन्हके रहो सत्य मनलाय ॥
देखो खसम कबीर को हंसलोकको जाय

स्मरण चौका हाथ देनेका

करधर चौका विनती कीन्हा । तुम्हरे कहे भार हम लीन्हा ॥
अहो साहेब मोहे नहिं भार । यह चौका विस्तार तुम्हार ॥
तुम जागो ओ शब्द तुम्हारा । समरथ मोहि उतारो पारा ॥
धर्मदास विनती करें, तुम हो सत्य कबीर ।
शिरके भार उतारहू, गहिके लावौ तीर ॥

इति श्रीस्मरण गुरुवाई भेदादि चौकाविस्तार विधि सम्पूर्ण

अथ लिख्यते स्मरण अभेद

प्रथम समरथके मुखसो सहज अंश उतपन भये ताकोबीज । बुन्द दियो तामें सर्व रचना आई औ सात करी भई ॥

करीके नाम

प्रथम पोहप करी, दूसरे मूल करी, तीसरे अम्बुकरी, चौथे सुघर करी, पांचे सुखसागर करी, छटये पंकज करी, सातेमंजुलकरी । दूसरे समरथके नेत्र सो इच्छा सुर्तउतपनभई ॥ ताकोजावनबुन्द दियो तासों पांच अंड भये ॥ तीसरे-समरथकेश्रवणसोमूलसुर्त उतपन भई ताको अमी बुन्द दियो तासो पांच अंड पोषे तासो पांच ब्रह्म उतपन भये तिनको आज्ञा दिये एक एक ब्रह्म एक एक अण्डमों आये चौथे समरकी नासिकासे सोहंग सुर्त उतपन भये तासो पांच अण्ड फूटे तासों आठ अण्डभये ॥

अंशनके नाम

प्रथम अर्चित्य, दूसरे जोहेंग, तीसरे अकह, चौथे सुकृत, पांचे हिरणमय, छठे अक्षर, साते योगमाया, आठे निरंजन, अचिन्तको चिन्ता नहीं, तेज अण्डके मालक, प्रवान, पालंग १२ वंश ॥९॥ प्रथम माया, दूसरे कूर्म तिसरे अदल अष्ट, चौथे निरञ्जन, पांचे नभ, छठे समीर, साते तेज, आठे नीर, नवे पृथ्वी ॥ ९ ॥ दूसरे जो अङ्ग हंस, तिनको बैठक धीरज अण्ड दिये अण्डको प्रवान पालंग पचीस ॥ २५ ॥ और वंश सोरह ॥१६॥

वंशनके नाम

प्रथम अजरमुनि, दूसरे अगम मुनि, तीसरे हंसमुनि, चौथे चन्द्र मुनि, पांचे आपमुनि, छठये पुरुषमुनि, सातैं अलंजित मुनि आठे कलंक मुनि, नवें शीतलमुनि, दशयें श्रीं मुनि; ग्यारहे कण्ठमुनि बारहें कनक मुनि, तेरहे बेहंग मुनि, चौदहे गंगमुनि, पन्द्रहे सोम मुनि, सोरहे जलरंग ॥ १६ ॥

तीसरे अकहअंश

तिनको बैठक छिमा अण्डभो दिया, अण्डको प्रवान ब्यालिस ॥ ४२ ॥ वंश सत्ताईस ॥ २७ ॥

वंशकि नाम

प्रथम प्रेम, दूजे हुलास, तिसरे आनन्द चौथे विशाष, पांच हेत छठे प्रीति, साते निरख, आठे विवेक, नवें सुमत, दशें क्षमा, ग्यारहें धीरज, बारहें आलहाद, तेरहें शील, चौदहें संतोष, पन्द्रहें सुमन, सोरहें बुद्धि सत्रहें भाव, अठारहें भक्ती, उन्नीसवें दया, बीसे ज्ञान, एकइसे क्रिया, बाईसे विचार, तेइसे कृपानि, चौबिसे संतोष पचीसे भेद, छबीसे इच्छा, सताइसे भय, तिनको राज्य क्षमा अण्ड पुरुषके हजूरी ॥

### चौथे सुकृत अंश

तिनके बैठक सत अण्डमोदिये, अण्डको प्रमान पालंग बहत्तर ॥ ७२ ॥ तिनके वंश बयालिस ॥ ४२ ॥

#### वंशनके नाम

प्रथम काय सर्वांग रहाई, सर्वांग कायाते बीज बुन्द निरमाई बीजबुन्दते अविगति काया। अविगत कायाकेदशोंभेदले।कायाके रूपसुर्त निर्मांया। रूप सुर्तके सतगुरु सोहंके गुंग पुरुष कहाये गुंग पुरुषके अचित पुरुष कहाये। अचित पुरुषके ज्ञानी अंश ज्ञानी अंशके सुजनजन अंश। सुजन जन अंशके चूरा मणी नाम। चूरामणी नामके सुदर्शन नाम। दूसरे कुलपति नाम। तीसरे प्रमोद। नाम। चौथे कवल नाम। पांचे अमोल नाम। छठे सुर्त सनेही नाम। साते हक्कनाम। आठे याक नाम। नवें प्रकट नाम। दशें धीरज नाम। ग्यारहें उग्र नाम। बारहें दया नाम। तेरहे गम्र नाम। चौदहें प्रकाश नाम। पंद्रहें अदित नाम। सोरहें मुकुन्द मुनि। सत्रहें अधरनाम। अठारहें उर्द्धनाम। उनीसें ज्ञानी नाम। ... बाइसें अजरनाम। तेइसे रस नाम। चौविसे गंग मुनि। पचीसे पारस नाम छबीस जागृत नाम। सताइसे भृंगमुनि। अठाइसे अखै नाम। उनतीसे कंठ मुनि। तीसै संतोष दास। एकतीसे चात्रकमुनि। बत्तीसे अजरनाम तेतीसवें दुर्गमुनि। चौतीसवें आदि नाम पैतीसवें महा मुनि। छतीसवें निज नाम। सैंतीसवें साहब दास। अडतीसवें उर्द्धदास उनतालीसवें करु। चालीसवें दीर्घमुनि। एकतालीशवें महामुनि।

साखी—वंश ब्यालीसके आगम, चूरामणि सँतायन।
वचन हमारा प्रकटे, निःअक्षर निज नाम ॥
तिनको राज सत अण्डमें, चौकी लोक पांजी ॥

पांचे हिरण्मय अंश

तिनको बैठक सुमत अण्डमों दिया अंडको प्रवान पालंग ॥६४॥ वंश सात ॥ ७ ॥

वंशनके नाम

प्रथम वंशपारन, दूसरे स्वांतसनेही, तीसरे भृंगसनेही, चौथे ॥ लरसिंध, पांचेदीपकजोत, छटें जलभाव, सातें मलयागिरि॥७॥ तिनको राजसुमत अंडमें पुरुषके हजूरी ॥

चार गुरुके नाम–लोकके और भवसागरके

प्रथमनाम लोकमें जो हंस कहिये औरभवसागरमेंगुरु चतुर्भुज गोसाई तिनके वंश सोरह ॥ १६ ॥ दक्षिण दिशा सामवेद प्लक्षद्वीप दरभंगा शहर तथा प्रकट भये ॥ तिनकोमूलज्ञानबानी ता बानीले पंथ चलायो, ब्राह्मणकुलप्रकट भये ॥१॥ दूसरे नाम लोकमें अकह अंश कहिये ॥ २७ ॥ पूर्वदिशा यजुर्वेदकुशद्वीप करनाटक शहर तहाँ प्रकट भये । तिनको टकसारज्ञानतावाणीले पंथ चलायो ॥ २ ॥ कायस्थकुल शूद्र, तीसरेनामलोकमें सुकृत अंश कहिये और भवसागरमें गुरुधर्मदास गोसांईकहिये तिनके वंश व्यालिस ॥ २४ ॥ उत्तरदिशा ऋग्वेद जम्बूद्वीपभरतखण्ड बांधो शहर तथा प्रकट भये, तिनके कोट ज्ञान बानी ताबानी लै पंथ चलाये ॥ ३ ॥ चौथे नाम लोकमेंहिरण्मयअंशकहिये ।और भवसागरमें गुरुसहेतेजी गोसांई कहिये तिनके वंश सात ॥ ७ ॥ पश्चिम दिशा अथर्वण वेद सिलमिल द्वीप मानिकपुर शहर तहां प्रकट भये । तिनको बीजक ज्ञान बानी ता बानीले पंथ चलाये क्षत्रियकुल ॥ ४ ॥

दश सोहंगकेनाम

प्रथम पुरुष सोहं दूसरे सहज सोहंग तीसरे इच्छा सोहंग ॥

चौथे मूल सोहंग पाचे वोहं सोहंग छटे अचिंतसोहंगसाते अक्षर सोहंग, आठे निरंजन माया सोहंग, नवें ब्रह्मा विष्णु महादेव सोहंग ॥ १० ॥

नौ सुर्तके नाम

प्रथम सहज सुर्त, दूसरे इच्छा सुर्त, तीसरे मूल सुर्त, चौथेसोहं सुर्त, पांचवें अचिंत सुर्त, छठेंअक्षरसुर्त साते निरंजन सुर्त, आठें सुकृत सुर्त, नवें नौतम सुर्त ॥ ९ ॥

दश प्राणके नाम

प्रथम अपान, दूसरे समान, तीसरे प्राण, चौथे उदान, पांचे व्यान, छठें नाग, सातें कूर्म, आठेंकिलकिला, नवें देवदत्त, दशमें धनञ्जय ॥ १० ॥

आठ कर्मके नाम

प्रथम ज्ञानर्वनी, दूसरे रसनार्वनी, तीसरे वेदवर्नी, चौथे ध्यान-वनी पांचे अंतराय, छटें गोत, सातें प्रमान, आठें आव ॥ ८ ॥

तीन कर्मके नाम

प्रथम संचित, दूसरे क्रियमाण, तीसरे प्रारब्ध ॥ ३ ॥

दो कर्मके नाम

प्रथम विधि, दूसरे निषेध ॥ २ ॥

चार ज्ञानके नाम

ब्रह्मज्ञान अंचितको, अनुभवज्ञान अक्षरको त्वचाज्ञाननिरञ्ज-नको, छुद्रज्ञान माया त्रिदेवाको ॥ ४ ॥

चार ज्ञानीके नाम

प्रथम पिशाच ज्ञानी, दूसरे पंडित ज्ञानी, तीसरे उन्मतज्ञानी, चौथे जडज्ञानी ॥ ४ ॥

चार ध्यानके नाम

प्रथम पंडीसीतध्यान, दूसरे रूप सत्य ध्यान, तीसरे पद सत ध्यान, चौथे रूपातीत ध्यान ॥ ४ ॥

चार पदार्थके नाम

प्रथम अर्थ, दूसरे धर्म तीसरे काम, चौथे मोक्ष ॥ ४ ॥

तीन पदके नाम

प्रथम तत्त्वपद, दूसरे तत् पद, तीसरे असिपद ब्रह्म ॥ ३ ॥

तीन तापके नाम

प्रथम अध्यात्म, दूसरे अधिदेव, तीसरे अधिभूत ॥ ३ ॥

तीन जीवके नाम

प्रथम मोक्षी । दूसरे विषय, तीसरे पामर ॥

पांच खानके नाम

प्रथम मनुष्य खान । दूसरे पिण्डज खान । तीसरे अण्ड खान । चौथे उषमज खान । पांचे अस्थावर खान ॥

पांच वाणीके नाम

प्रथम सिंगिनी वाणी । दूसरे बिंगिनि वाणी । तीसरे किंगिनि वाणी । चौथे इंगिनि वाणी । पांचे रिंगिनि वाणी ॥

पांच तत्त्वके नाम

प्रथम आकाश । दूसरे वायु । तीसरे तेज । चौथे जल । पांचे पृथ्वी ॥

तिनको विभाग

मानुष खानमें सिंगिनि वाणी आकाश, वायु, तेज, नीर । पृथ्वी ये चार तत्त्व पिंडज खानमें वर्तते हैं । तीसरे अण्डज खानमें किंगिनि वाणी, वायु, तेज, जल ये तीन तत्त्व अंडज खानमें

वर्तते हैं। चौथे उषमज खानमें इंगिनि वाणी, वायु, तेज, ये दो तत्त्व उषमज खानमें वर्तते हैं। पांचे अस्थावर खानमें किंगिणि वाणी जल एक तत्त्व वर्तते हैं ॥

जो इनको प्रवानजात

प्रथम चार लाख खान मानुषको। दूसरे पिंडज नौलाख जात। तीसरे अण्डज चौदह लाख जात। चौथे श्वेदज उषमज सताइस लाख जात पांचे अस्थावर तीस लाख जात ॥

अथ पुरुषसम्रथसो अंश भये तिनको नाम

प्रथम पुरुषके त्रिकुटी सो अंकुर। पुरुष नेत्र सो इच्छा। पुरुषको नासिका सोहं पुरुषके मुखसो। अचिंत तेज अंड पालंग बारह अचिन्त अंश प्रेम सुर्त। धीरज अण्डज पालंग पचीस जोहंग अंश सोहं सुर्त। छिमा अण्ड पालंग ब्यालीस अकह अंश मूल सुर्त। सत्त अंग्रुपालंग बहत्तर सुकृत अंश इच्छा सुर्त। सुमत अण्ड पालंग चौसठ, हिरण्मय अन्त अंकुर सुर्त ॥

इति श्री सुमिरपांजी आदि षट्कर्म विधि, चौकाविधि गुरुवाई भेदादि विस्तार विधि सम्पूर्ण

सत्यनाम

सत्यसुकृत, आदिअदली, अजर, अचिन्त, पुरुष, मुनीन्द्र, करुणामय, कबीर, सुरति योग, संतायन, धनी धर्मदास, चूरामणिनाम, सुदर्शन नाम, कुलपति नाम, प्रबोध गुरुबालापीर, केवल नाम, अमोल नाम, सुरतिसनेही नाम, हक्क नाम, पाकनाम, प्रकट नाम, धीरज नाम, उग्रनाम, दयानामकी दया, वंश ब्यालीसकी दया

★

## अथ श्रीबोधसागरे
# सुमिरनबोध प्रारंभः

★

### षट्त्रिंशस्तरङ्गः
### तृतीय बोध
#### अथ गुरुमहिमा शतक प्रारंभ :

गुरु संतन की आज्ञा पाई । गुरु महिमा अमृतरस गाई ॥
गुरू मिलै तो अगम बतावे । यमकी आँच ताहि नहिं आवे ॥
जेता नाम रूप जग माहीं । सबहींमें सत गुरुकी छाहीं ॥
सतगुरु सकल कलमके साखी । सकल भुवन गुरुतन्मय राखी॥

सतगुरु अजर अमर अविनाशी। सतगुरु परमज्योतिपरकाशी ॥
गुरु गोविन्द दोउएकस्वरूपा । नाम रूप गुण भेद अनूपा ॥
गुरु अविचल पद पूरणधामा । गुरु स्वामीगुरु जग विश्रामा ॥
सतगुरु जनम मरनते न्यारा । सतगुरु सबका सिर्जन हारा ॥
नर्गुण गुरू रूपसे न्यारा । छाइ रह्यो सबही संसारा ॥
है सतगुरु सत पुरषै आपे । जासो प्रकट ब्रह्म भयो जापे ॥

साखी-गुरु ईश्वर गुरु परब्रह्म, सतगुरु सबका देव ।
गुरु बिन पार न आवई, ताते शरणो लेव ॥

गुरुकी शरणा लीजै भाई । जात जीव नरक नहिं जाई ॥
गुरुकी शरण साधू जानै । गुरुकी शरण मूढ पहिचानै ॥
गुरु सरणा सबहिनसे भारी । समुझि गयो सोई नर नारी ॥
गुरु शरणा सो विघ्न विनाशे । दुरमति भाजे पातक नाशे ॥
गुरु शरणा चौरासी छूटे । आवगमनकी डोरी टूटे ॥
गुरु शरणा यमदण्ड न लागे । ममता मरै भक्तिमें पागे ॥
गुरु शरणासे प्रेम प्रकाशै । पारख पाद मिटै यम आसै ॥
गुरु शरणा परमातम दरशै । त्रय गुण छोडि सतपद परशै ॥
गुरु मुख होय परम पद पावै । चौरासीमें बहुरि न आवै ॥
सत्य कबीर बतायो भेवा । धर्मदास करु गुरुकी सेवा ॥

साखी-गुरुकी सेवा जो करै, हृदया ध्यान लगाय ।
काल जाल सो छूटिके, सत्य धामको जाय ॥

गुरुपद सेवे विरला कोई । जापर कृपा साहबकी होई ॥
गुरु सेवा जो करै सुभागा । माया मोह सकलभ्रम भागा ॥
नौ नाथ चौरासी सिद्धा । गुरु चरणों सेवे बहु विद्धा ॥
गुरुके सेवे कटे दुख पापा । जनम जनमको मिटे सन्तापा ॥
गुरुकी सेवा सदा चित दीजै । जीवन जन्म सुफलकरलीजै ॥

चौविस रूप हरि आपुहि धरिया । गुरु सेवा करि सबही बिरिया ॥
शिव विरंचि गुरु सेवा कीन्हा । नारद दीक्षा ध्रुवको दीन्हा ॥
सकल मुनि गुरु सेवा चाही । गुरु सेवा करि पँथ अवगाही ॥
गुरुसेवे सो चतुर सयाना । गुरुपट तर कोइ और न आना ॥
गुरुकी सेवा मुक्ति निज पावे । बहुरि न हंसा भवजल आवे ॥

साखी–गुरुकी सेवा कीजिये, तजि मनका अभिमान ।
गुरु बिनु दोसर को नहीं, धर्मनि सतगुरु जान ॥

योग दान जप तीर्थ नहाना । गुरु सेवा बिनु निष्फलजाना ॥
गुरु सेवा विनु बहु पछतावे । फिरि फिरि यमके द्वारे जावे ॥
गुरुसेवा विनु कौन जो तारे । भव सागरसे बाहर डारे ॥
गुरुसेवा विनु जड का करि है । काकी नाव बैठिकर तरि है ॥
गुरुसेवा विनु कछू न सरि है । महाअन्ध कूपै महँ परि है ॥
गुरुसेवा विनु घट अँधियारा । कैसे प्रकटे ज्ञान उजियारा ॥
गुरुसेवा विनु सदा जो धावे । गुरु विनु सांच राह नहिं पावे ॥
गुरु सेवा विनु कान फुंकावे । भवँरि भवँरि भवजलमें आवे ॥
गुरुसेवा विनु द्वन्द अँधेरा । गुरु सेवा विनु कालको चेरा ॥
गुरुसेवा विनु प्रेम विहूना । दिन दिन मोह होयभ्रम दूना ॥

साखी–गुरुसेवा विनु ना छुटे, भवजलको सन्ताप ।
गुरुसेवा करि गुरु मुख, काटे सबही पाप ॥

गुरुमुख होई परम पद पावे । चौरासीमें बहुरि न आवे ॥
गुरुकी नाव चढे जो प्रानी । खेद उतारे सतगुरु ज्ञानी ॥
गुरुके चरण सदा चितलाना । क्यों भूले तू चतुर सुजाना ॥
गुरु भगता गुरु आतम सोई । वाहीके मन रहो समोई ॥
गुरुमुख ज्ञान ले चेते सोई । भवमें जनम बहुरि न होई ॥
गुरुमुख प्राणी सदाई जीवै । अमर होई ज्ञान रस पीवै ॥

गुरुसीढी चढि ऊपर जाई । सुख सागरमें रहे समाई ॥
गौरी शंकर और गणेशा । उनहू लीना गुरु उपदेशा ॥
गुरुमुख सदाअटल अविनाशी । सुर नर मुनिसबध्यानधरासी ॥
गुरुमुख सब भक्त औ दासा । गुरुमहिमा उनहीसे प्रकाशा ॥

साखी-गुरुमुख को सबही मिलै, चार पदारथ सार ।
निगुरा को तो कुछ नहीं, वहे सो नरकहि धार ॥

गुरु विनु मुक्ति ना पावै भाई । नर्क ऊर्द्ध मुख वासा पाई ॥
गुरु विनु काहु न पाया ज्ञाना । गुरु बिनुरहीयमलोकसिधाना ॥
गुरु विनु पढे जो बेद पुराना । ताको नाहिं मिलै सतज्ञाना ॥
गुरु विनु जो सो पशू कहावै । मानुष बुधि दुर्लभ होय जावै ॥
गुरु विनु दान पुण्य जो करई । होय निष्फल सब मतसो कहई॥
गुरु विनु भ्रम ना छूटे भाई । कोटि उपाय करे चतुराई ॥
गुरु बिनु होम यज्ञ जो करई । जाय पुण्य पाप सो भरई ॥
भवसागर है अगम आगहा । गुरु बिनु कैसे पावै थाहा ॥
गुरु बिनु बूझे सकल अचारी । तैंतीस कोटि देव सब धारी ॥
गुरु बिनु भरमें लख चौरासी । जनम अनेक नरकके बासी ॥

साखी-गुरु आज्ञा ग्रहणकरि, छोडे मनमुखताकाल ।
गुरु कृपा तब पावई, क्षणमें होय निहाल ॥

गुरुकी कृपा कटै यम फांसी । विलम्ब न होय मिलैअविनाशी॥
गुरू कृपा शुकदेवहि पइया । चढि विमान वैकुण्ठहि गइया॥
गुरुकी कृपा जब नारद पयऊ । मेटि चौरासीसुखी सो भयऊ॥
गुरुकी कृपा रामपर सोहै । जीवन मुक्ति पाइ जग मोहै ॥
गुरु कृपा बामदेवहि दइया । गर्भ माहिं गुरुज्ञानहि पइया ॥
गुरु कृपा ध्रुव जो दरसा । अटल अमान परमपदपरसा ॥
गुरु कृपा ते भये उजासी । सनक सनन्दन नारद व्यासी॥

गुरू कृपा ते जनक विदेही। सो गृह माहिं परमपद लेही ॥
गुरू कृपा ते जन प्रहलादा। दैत्य होइ भक्ति तिन साधा ॥
गुरू कृपा जो कोई पावै। सकलो दुरमति दूर बहावै ॥

साखी-गुरू कृपा ऐसी अहै, सुनो साधु चित देइ।
ताते गुरु सुमिरण करू, रहे कालको लेइ ॥

गुरु गुरु जाप करो मन मेरा। काल दूत नहिं आवै नेरा ॥
गुरुको ध्यान धरों नर नारी। सहजे सहज तरो संसारी ॥
गुरु गुरु सुमिरो मनसे प्यारो। गुरु गुरु कहो कोटि अवतारो ॥
गुरु गुरु जाप काज सबसारे। दुर्मति कपट दूर करि तारे ॥
गुरु गुरु जाप करो मन धीरा। गुरुके नाम मिटै सब पीरा ॥
गुरु गुरु मंत्र हृदय धरीजै। तन मन धन सब अर्पण कीजै ॥
गुरुको सुमिरन निशदिन कीजै। जीवन जन्म सफल करि लीजै ॥
एक नाम गुरु देत दिखाई। सो निजनाम कलपि नहिं जाई ॥
गुरु सुमिरण निज नाम विचारे। आप तरे औरनको तारे ॥
सतगुरु शब्द नाम निरधारा। भव सागरसे उतरे पारा ॥

साखी-गुरुको सुमिरण कीजिये, निशदिन ध्यान लगाय।
गुरु लक्षण अब कहत हो, सुनहु धीर चित लाय ॥

राग द्वेष दोनों से न्यारे। ऐसा गुरु शिष्यको तारे ॥
आशा तृष्णा कुबुद्धि जलाई। तन मन वचन सबन सुखदाई ॥
निरालम्ब भ्रम रहित उदासी। निर्विकार जानो निर्वासी ॥
निरमोही निरबंध निशंका। सावधान निरवान निबंका ॥
सार ग्राही और सरवज्ञी। संतोषी ज्ञानी सतसंगी ॥
अयाचक जन निर अभिमानी। पक्षरहित अस्थिर शुद्धवानी ॥
निस्तरंग बाही परपंचा। निष्करम निरलिप्त अबंचा ॥
बोल अडोल भाखे सो सांची। कोई बात कहै नहिं कांची ॥

जेहि विधि कारज जिवका होई । निर्णय वाक्य उचारे सोई ॥
झांई सन्धि कालका फेरा । पारख लाई करे निबेरा ॥

साखी-जाति बड़ाई आश्रमहि, मानबड़ाई खोय ।
जो सतगुरु के पल लगे, सांच शिष्य है सोय ॥

गुरु आगे राखे माथ । करै बिनय दुख मेटो नाथ ॥
अहौं अधीन तुम्हारे दासा । देहू अपने चरनन बासा ॥
यह तन मैं तोहि भेट चढायो । अपनी इच्छा कुछ न रखायो ॥
जो चाहो सो तुम अब करो । या भांडको जेहि विधि भरो ॥
भावै धूप छांहमें डारो । भावै बोरो भावै तारो ॥
गुण पौरुष कछु ओ नहिं मेरो । सब विधि शरण गही गुरुतेरो ॥
मैं अब बैठा नाव तुम्हारी । आशा नदी सो करिये पारी ॥
अपना कीजै गहिये बाहीं । धरिये शिरपर हाथ गोसाईं ॥
बहु विधि बिनती गुरुसे करई । मान मोह हृदय नहिं धरई ॥
देखि बिनयगुरु होहिं अनन्दा । तब पावै सिख परमानन्दा ॥

साखी-गुरुके आगे जायके, ऐसी बोले बोल ।
कूर कपट राखे नहीं, अरज करै मन खोल ॥

देखि प्रसन्नता गुरुकी भाई । गुरुते कहिये शीश नवाई ॥
ऋद्धि सिद्धि फलमैंकछुनहिंचाहूं । जगत कामनाको नहिं लाहूं ॥
चौरासी मैं बहु दुख पायो । ताते शरण तुम्हरी आयो ॥
मुक्त होनेको मनमें आवे । अवागमन सो जीव डरावे ॥
सत्य भक्तिकी चाह हमारे । ताते पकऱ्यो चरण तिहारे ॥
सत्य ज्ञानते हृदया भीजै । यही दान दाता मोहि दीजै ॥
मैंहूं दास सो लेहु उबारी । हौं मच्छी तुम मिष्ट सुपारी ॥
हौं पतंग मैं तुम हौ डोरा । मैं तो फिरूं तुम्हारे जोरा ॥
होहु दयाल दया अब कीजे । बूडत भव में बाहँ गहीजे ॥

काल संधि झांईके जाला । पडिकेदुःखित भयो बिहाला ॥
साखी-दया होय गुरु देवकी, छुटे अविद्याभान ।
मिथ्या माया सब मिटे, पावे अविचल ज्ञान॥
सारशब्द गुरूते पावे । जाते जीव काज बनि आवे ॥
पूछ गुरुसे सब अरथाई । सारशब्दको निर्णय भाई ॥
जाते होय जीवको काजा । पाछे सोई होय निर्व्याजा ॥
त्रिविधि शब्दको पारख बूझे । सत्य पदारथ तबहीं सूझे ॥
सार शब्दको अङ्ग विचारे । मानुष लक्ष भले निरूआरे ॥
पशुवत धर्मको रूप लखावे । करि निरूआर सबगुरू बतावे॥
हंस स्वरूपहु लीजे जानी । सबहि बतावे सतगुरु ज्ञानी ॥
सांच झूठका निर्णय करे । सत्य होय सो हिरदै धरे ॥
पक्का सौदा गुरूसे लेवे । देखि अधीन गुरू सब देवे ॥
गुरु सो देव सब कछु भाई । क्षणमें भेटे काल कलाई ॥
साखी-काल जालसे छूटिके, मोक्ष मिलनकी चाह ।
सत्य मिलनकी युक्ति सब, गुरू बतावे राह ॥
गुरुसे पूछे ब्रह्मस्वरूपा । गुरुसे पूछे प्रकृति अनूपा ॥
गुरुसे पूछे सूक्षम तत्ता । गुरुसे पूछे त्रिगुण सत्ता ॥
गुरुसे पूछे महाकारण देही । गुरुसे पूछे तुरिया लेही ॥
गुरुसे पूछे पाच तनमात्रा । गुरुसे पूछे पंचकी यात्रा ॥
गुरुसे पूछे सूक्षम कारण । गुरुसे पूछे स्थूल सवारन ॥
गुरुसे पूछे ज्ञान अरु कर्मा । दशों इन्द्री सहित स्वधर्मा ॥
गुरुसे पूछे त्रिकुटी भाई । चौदह यम सब देइ बनाई ॥
गुरुसे पूछे चतुर्दश स्थाना । चौदह देव तबे मनमाना ॥
चौदह पूछि करे प्रवेशा । तबही पावै ब्यालिस वेशा ॥
पंचकोश सो गुरु से जाने । आतम ज्ञान तबही मनमाने॥

साखी-पंचकोशमत प्रकट जग, वेद कहे सत सोइ ।
परख बुद्धि निज दृष्टि बल, गुरू कृपा करे जब होइ॥
द्वैताद्वैत का करे विचारा । शुद्धाद्वैतका करे उपचारा ॥
विशिष्टाद्वैत भली बिधि जानै । पूछत पूछत सबै मन मानै ॥
कर्मोपासना करै विचारा । ज्ञान विज्ञानका पावे सारा ॥
अर्थ धर्म मोक्ष रु कामा । सबका पूछे असली धामा ॥
नवधा भक्तिको रूप पिछाने । योग क्रियाको भली बिधि जाने॥
राजयोग हठयोग स्वरूपा । सबही आसन सिद्धि अनूपा ॥
ब्रह्म जीव अरु प्रकृतिका भेदा । द्वैतज्ञानका करे अछेदा ॥
नाना मत जग आहि जो भाई । सबका भेद जो गुरुसे पाई ॥
आस्तिक नास्तिक मन अनुहारा । सबही फंदा करे विचारा ॥
पूछि गुरूसे सबही सुधारे । गुरुके पारख काल फन्द टारे॥
साखी-संसाररी पारख बिना, कैसे पावे ठौर ।
विध युक्ति अनमिल सबे, भोग वहीं औरके और ॥
कालजालकी विकट है चाला । जीव विकल तेहिमध्य विहाला ॥
पारख यथारथ प्रभु प्रकाशू । कठिन महातम काल विनाशू॥
काल चक्र चक्की कठिनाई । पारख पाये जात बिलाई ॥
पारख बल बहियां भौजेही । सबहीविधि चीन्ह पडाखलतेही॥
गुरु प्रसाद पारख दृढ पाये । विकट कला यम जाल छुडाये॥
एक एक पारखे जेहि फांसा । सो संक्षेप करे प्रकाशा ॥
जाते जीव बचे यमफांसा । शरणागत दृढ परख विलासा॥
भक्तिभाव प्रेमहि अधिकाई । परख लहत बल काल नशाई॥
कालकला नहिं पावे ताको । भक्ति भाव गुरु पारख जाको॥
परम पारखी जीवन मुकता । नहिं पावे तेही कालक उकता॥
साखी-बिनु शरणागति परख गुरु, नहिं जीवन निस्तार ।
सरवोपरि गुरु परख हैं, लहै तो होय उबार ॥

गुरु से दीक्षा लीजे भाई । सदा गुरुकी कीजे सेवकाई ॥
दीक्षा लेई जले जो आडा । सात जनम सो सिरजे पाडा ॥
सतगुरुकी जो आज्ञा लोपे । ता ऊपर यम राजा कोपे ॥
सतगुरु की जो अदब न राखे । ताको दोजख शास्तर भाखे ॥
सतगुरु की न लाये बिश्वासा । ताको काल करत है ग्रासा ॥
गुरुसेती गूमान जनावै । जनम जनम सो यमपुरजावै ॥
गुरुसङ्ग आडी टेढी बोलै । श्वान होइ सो घरघर डोलै ॥
गुरुसङ्ग ज्ञान गर्व दिखावे । कोटि जनम कूकर को पावै ॥
गुरुसे बाद करे नरनारी । कोटि जनम सो नरक मँझारी॥
गुरुको शब्द मेटि पग धरई । यम किंकर के फन्दे परई ॥

साखी- गुरुसीढीते ऊतरे, शब्द विहूना होय ।
ताको काल घसीटि है, राखी सकै नहिं कोय ॥

सतगुरु की मरयाद न धरई । लख चौरासी कुण्डमें परई ॥
गुरुको शब्द न सुने अज्ञानी । भवसागर डूबे अभिमानी ॥
गुरुको देखि धरत अभिमाना । ब्यास बचन पड नरकनिधाना॥
गुरुको ज्ञान मेटि मत थापी । तीन लोकमें बडो ते पापी ॥
गुरुको मेटि बखानत आपा । धरती भार मरत तेहि पापा ॥
गुरुसे सो ऊंचा चढि बैठे । सात कुण्ड नरकमें पैठे ॥
गुरुसे उलटा बचन सुनावै । सात जनम कोढी को पावै ॥
गुरुको उलट सुनावे बैना ।सात जनम अन्धा होय सो नैना॥
गुरुको छोड देव जो पूजे । बादुर होय दिवस नहिं सूझे ॥
गुरु को छोड अनत जो जावे । उलूक होय सो जन्म गँवावे ॥

साखी-शिवपूजामें बैठिके, गुरुसे करि अभिमान ।
काकभुशुण्ड शिवशापते, पड्यो चौरासीखान ॥

गुरुनिन्दा जाके मुख उपजे । कोटि जनम गदहा हो निपजे ॥

गुरु निन्दा जाके मुख होई । ताको मुख ना देखो कोई ॥
अपने मुख गुरु निन्दा करई । शूकर श्वान जनम सो धरई ॥
गुरु की निन्दा सुने जो काना । सो तो पावे नरक निधाना ॥
गुरु निन्दा सुनेजो श्रवण सुनयी । अपने हाथ प्राख निज हनयी ॥
गुरु निन्दक नारायण होई । वाको मुख ना देखौ कोई ॥
गुरु निन्दक धरती पग चम्पे । ताके भार धरनि अति कम्पे ॥
गुरु निंदक अवनी पर सोवे । धरती धरत शेष अति रोवे ॥
गुरु निंदक जब ही मुख बोलै । धरती गगन मेरु ग्रह डोलै ॥
गुरु निन्दक जो बचन सुनावे । ज्ञानी कान मूँदिके जावै ॥

साखी-गुरु निन्दा छाडो सुजन, गुरु स्तुति मन धारि ।
गुरुको राखो शीश पर, सब विधि करे गुहारि ॥

सतगुरु मिले परम सुखदाई । जनम जनम का दुःख नशाई ॥
सतगुरु मिले तो अगम बतावे । यमकी आंच ताहिनहिं आवे ॥
सुख सम्पति अपनो नहिं प्राणी । समझि देखु तुमनिश्चय जानी ॥
तीरथ वरत और सब पूजा । गुरु बिनु होवे सबही लूँजा ॥
धारा दोई भल जग माहीं । गृह वैराग बिन औरन आहीं ॥
दोऊ गुरुकी कृपासे पावे । गुरु बिनु भेदसोकौन बतावे ॥
करि त्याग सब गुरुको दीजे । पारख पाइ सदा सुख लीजे ॥
गिरही रही भगति अनुसारे । तन मन धनअर्पणकरि डारे ॥
दशवां अंश गुरू को दीजै । जीवन जन्म सुफल करलीजै ॥
सतगुरुके सब आगे धरिये । शीश नाइ गुरुदंडवत करिये ॥

साखी-गुरु सो भेद जो लीजिये, शीश दीजिये दान ।
बहुतक भोंदू पचिमुये, राखि जीव अभिमान ॥

गुरुसे रहे सदा मन जोरी । जैसे नटुवा चढत है डोरी ॥
पारख तार चढी भयनहिं पावे । छेडे पारख चूर होइ जावे ॥

लोपे नहीं सतगुरुका बाचा । सो सतगुरुका सेवक सांचा ॥
सोइ शिष पावै पारख घाटा । सोइ पावे सत्य सो बाटा ॥
निर्मोही सतगुरु की रीती । सांचा सेवक लावै प्रीती ॥
मिलि पारखसबभयमिटिजावै । गुरुमुख शब्द सदालौ लावै ॥
देखि दुसह दुख जीवन केरी । दया करी पारख प्रभु प्रेरी ॥
निज पद जानि दया सोकरई । बन्धन जीव छुटावन लहई ॥
केतिक पारख प्रभुके पाये । जरा मरण यम जाल मिटाये॥
जिन्ह जिवलहे पारखप्रभु केरा । महाराज यम जीव निवेरा ॥
साखी–गुरु महिमा पूरण भई, सतगुरु किरपा कीन ।
संतनकी वाणी बहुत, यामें संग्रह लीन ॥

### पाठफल वर्णन

गुरुमहिमा सबते अधिकाई । शिव शिवाप्रति यही दृढाई ॥
ब्यास वचन औ वेदे गाया । गुरुसे अधिक नहीं रघुराया ॥
सत्यगुरु कबीरहु परखाये । धर्मदास गुरु महिमा गाये ॥
रामहरस जू पूरण दासा । सबही गुरु महिमा परकाशा ॥
जेते भये जग बुद्धिमति धारी । सब गुरुमहिमा कीन उचारी॥
सबका सार यामधि पइये । अब याकी महिमा सुन लइये॥
तीनों संध्या जो यहि पढयी । छोडि कुमारग सतपथ लहयी॥
सांची श्रद्धा मनमें लाई । बूझि बूझिके पाठ कराई ॥
बिन बूझे सो धुन्ध अँधेरा । परि अभिमानखायजग फेरा॥
गुरुके लक्षण भलिविधि यांचे । यम फन्दाते तबही बांचे ॥
साखी–बूझ विवेक सह जो पढे, गुरुमहिमा यक बार ।
कबीर दीनदयाल तेही, तुरत उतारे पार ॥
योग यज्ञ अरु जप तप अहई । पढि गुरुमहिमा सब फल लहई॥
विष्णु सहस्र अरु भगवद्गीता । भागवत आदिक आठपुनीता॥

एकबार गुरु महिमा पढयी । सोफल सबही क्षणमें लहयी ॥
काशी क्षेत्र बहुबिधि दाने । गया प्रयाग पुष्कर असनाने॥
सो फल सबही यामधि पावे । श्रद्धासहित जो पाठ करावे ॥
निर्मल होय पाठ जो करई । सो नर सहजे भवनिधि तरई॥
वेद पुराण अरु शास्त्र विलोई । जाहिनिकस्योगुरुमहिमासोई॥
गुरु महिमा सारको सारी । गिरिजाप्रति भाष्यो त्रिपुरारी॥
गुरु महिमा गुरुगमसे गाया । चढि सत पारख नादबजाया ॥
सत्तकबीर जब दाया कीनी । गुरुमहिमा तब वर्णन कीनी ॥

साखी–गुरुमहिमा गुरु गम अहै, जानै सन्त सुजान ।
पढे विचारे मन करे, पावै मोक्ष निदान ॥

गुरुमहिमा शतक यहि नामा । पाठ किये पूरे सब कामा ॥
सौ चौपाई यामहि आही । बीस दोहरा साख सदाई ॥
दो चौपाई दुइ सो साखी । फल वर्णन महँ पुनि राखी ॥
पांच चौपाई यक सो दोहा । संख्या तिथि वर्णनमहँ जोहा ॥
या विधि पूर्ण भयोयहग्रन्था । जाते जिव पावे सत पंथा ॥
याको पाठ करे जो कोई । उभय आनन्दफल पावे सोई ॥
गुरुसंतन पाऊँतिन शिर नाऊँ । मातु पिताके बलिबलि जाऊँ॥
सत्य कबीर सत्य गुरु राई । जिनकी कृपा परख पद पाई ॥
धर्मदास गुरु जग आये । करि उपदेश जगजीवचिताये॥
राम रहस पूरण गुरु राई । सबको वन्दो शीश नवाई ॥

साखी–नभ रस निधि चन्द्र कह, पौष पूर्णिमा जान ।
बिक्रम सम्बत जानिये, रविवासर दिन मान ॥

इति श्रीगुरुमहिमा शतक समाप्त

# अथ गुरु उपदेशमहिमायोग प्रारम्भः

दोहा—गुरु संत वन्दन करूं, ऐहै सुखको पूर।
गुरुमाहिमा बरनन करूँ, शिर धरि पदरजधूर ॥
सन्त सबै शिर ऊपरे, निस्पृही निज नाम।
सबके मस्तक मुक्ति गुरु, पूरवे मनके काम ॥

चौपाई

परब्रह्मको आदि मनाऊँ। तिनकी कृपा गुरुचरनन पाऊँ ॥
गुरु सोई सब सिरजन हारा। गुरुकी कृपा होय भवपारा ॥
गुरु बिन होम यज्ञ नहिं कीजे। गुरुकी आज्ञा माहि रहीजे ॥
गुरु संतनके चरण मनायो। ताते बुद्धि उत्तम मैं पायो ॥
सब इष्टनमें सतगुरु सारा। सो सुमिरावे पुरुष हमारा ॥
शरण होय शिष आवै कोई। सहज पदारथ पावै सोई ॥
गुरु सुरतरु सुरधेनु समाना। आवै चरण मुक्ति परवाना ॥
मन बांछित फल पावै सोई। प्रीति सहित जो सुमिरे कोई ॥
तन मन धन अर्पि गुरु सेवै। होय गलतान उपदेशहि लेवै ॥
गुरु बिन पदारथ और न जानै। आज्ञा मेटि और नहिं मानै ॥
सतगुरुकी गति हिरदय धारै। और सकल बकवाद निवारै ॥
गुरुके सन्मुख बचन न कहै। सो शिष रहनि गहनि सुखलहै ॥
गुरुसे बैर करै शिष जोई। भजन नाश अरु बहुत बिगोई ॥
पीढि सहित नरकमें परिहै। गुरु आज्ञा शिषलोपन करिहै ॥
चेलो अथवा उपासक होई। गुरु सन्मुख ले झूठ संजोई ॥
निश्चय नरक परै शिष सोई। वेद पुराण भनत सब कोई ॥
सनमुख गुरुकी आज्ञा धारै। अरु पाछे तै सकल निवारे ॥
सो शिष घोर नरकमें परिहै। रुधिर राध पीवै नहिं तरिहै ॥
मुखपर बचन करै परमाना। घर पर जाय करै विज्ञाना ॥

जहँ जावै तहँ निंदा करई । सो शिष क्रोध अगिन ते जरई ॥
ऐसे शिषको ठौर जो नाहीं । गुरु रुख लोपत है मनमाहीं ॥
वेद पुराण कहै सब साखी । साखी शब्द सबै यों भाखी ॥
मानुष जन्म पायकर खोवै । सतगुरु विमुखा युग युग रोवै ॥
ताते सतगुरु शरना लीजै । कपट भाव सब दूर करीजै ॥
योग यज्ञ तप दान करावै । गुरू विमुख फल कबहु न पावै ॥
गुरूही जपतप तीरथ कहिये । गुरूहीं सांच अरु मिथ्या पहिये ॥
सतगुरु बिना मुक्ति नहिं कोई । ऊंच नीच भावै जो होई ॥
आतम ब्रह्म गुरू तै मेरा । ताके शरणों आयो मैं चेरा ॥
चार युगन जे संतहि भयऊ । ब्रह्मरूप होय पारहि गयऊ ॥
सो जानहु गुरु संग प्रभाऊ । लोकहु वेद न आन पराऊ ॥

दोहा—गुरु आज्ञा जिन जिन लही, सऱ्यो सकल विधि काज॥
नरक रूप जग दूर धरयो, श्रीगुरू महाराज ॥

उपदेश प्राप्ति लक्षण—चौपाई

दोउ कर जोरि गुरूके आगे । करि बहु विन्ती चरनन लागे ॥
अति शीतल बोलै सब बैना । मेटे सकल कपके वैना ॥
हे गुरु तुम हो दीनदयाला । मैं हूँ दीन करो प्रतिपाला ॥
तुम बन्दी छोर अतिहि अनाथा । भवजल बूडत पकड़ो हाथा ॥
दै उपदेश गुरु मंत्र सुनाओ । जनम मरन भवदुःख छुडाओ ॥
यो अधीन होय शिष जबहीं । शिषपर कृपा करै गुरु तबहीं ॥
गुरुसे शिष जब दीक्षा मांगै । मन क्रम वचन धरैं धन आगै ॥
ऐसी प्रीति देखै गुरु जबही । गुप्त मंत्र सुनावै तबही ॥
अरु भक्तिमुक्तिको पंथ बतावै । बुरो होय को पंथ छुडावै ॥
ऐसे शिष उपदेशी पावै । होय दिव्य दृष्टि पुरुषपैजावै ॥

### गुरुसेवा माहात्म्य

गंगा यमुना बद्रीश समेते । जगन्नाथादि धाम हैं तेते ॥
सेवे फल प्राप्त होय न जेतो । गुरुसेवामें पावै फल तेतो ॥
गुरु महातम को वार न पारा । वरणे शिवसनकादिकअवतारा ॥
गुरु महिमा मोपै वरणि न जाई । महिमाअनन्तममतिलघुताई ॥

### गुरु भावना

गुरुको पुरुप ब्रह्मकर जाने । और भाव कबहूँ नहिं आने ॥
काम क्रोध रहितगुरु मेरा । पाप पुण्यका करत निवेरा ॥
काम क्रोध लोभ समाना । तो शिष जानहु तीन समाना ॥
यही दृष्टिसे गुरुको सेवै । तबतन मन धन गुरुसबको देवै ॥
तनकरि टहल करै गुरु सेवा । सो शिष लहै मुक्तिको मेवा ॥
बचन उचारे पुहुम सम वाणी । द्रव्य लगावै गुरुहित जानी ॥
ऊँच नीच सबही सुन लीजे । कबीर बचन प्रमाण करीजे ॥
मेरे और कछु नहिं चहिये । गुरु भावना गुरुहिय लहिये ॥

दोहा—सात द्वीप नौ खण्डमें, औ इकीस ब्रह्मण्ड ।
सतगुरु विना न बाचिहो, काल बड़ो परचंड ॥

यहीभाव भक्तिका लक्षण कहिये । गुरुकेभावविनभवजल बहिये ॥
जिन बातनसे गुरु दुख पावे । तिन बातनको दूर बहावे ॥
वेद पुराण सबै मिलि गावे । नेमी धर्मी चौरासि न जावे ॥
अष्ट अङ्गसों दंड परनामा । संध्या प्रात करै निषकामा ॥
गुरुको शिष ऐसे नहिं मानै । सो त्रयतापजरत चारो खानै ॥
योगी यती तपी आशरमा । बिनु गुरु कोउ न जानै मरमा ॥

### गुरुचरणोदक माहात्म्य

कोटिक तीरथ सब करआवै । गुरु चरणाफल तुरतहि पावै ॥
कदाचित चरणामृत पावै । चौरासीगत सतलोक सिधावै ॥

कोटिक जप तप करै करावै । वेद पुराण सबै मिलि गावै ॥
गुरुपद रज मस्तक पर देवै । सो फल तत्कालहि लेवै ॥

दोहा–गुरु चरणोदक अनन्त फल, हमते कही न जाय ।
मनकी पुरवै कामना, जो लेवे चित्त लगाय ॥
सतगुरु समान को हितू, अन्तर करो विचार ।
कागा सो हंसा करै, दरसावै ततसार ॥
गुरु महिमा ग्रंथ यह, कहैं कबीर समझाय ।
पाप ताप सबही हरे, अमरलोक लै जाय ॥

इति श्रीगुरु उपदेश महिमायोग समाप्त

---

[कबीर पंथी भारत पथिक स्वामी श्रीयुगलानन्दद्वारा संगृहीत और संशोधित कबीर दर्शन लाइब्रेरीसे संपादित]

# गुरुमहिमा प्रारंभः

## प्रथम खण्ड

### चौपाई

गुरुकी शरणा लीजै भाई । जाते जीव नरक नहिं जाई ॥
गुरु मुख हो परम पद पावे । चौरासीमें बहुरि न आवे ॥
गुरु पद सेवे विरला कोई । जापर कृपा साहबकी होई ॥
गुरु बिनु मुक्ति न पावे भाई । नरक उर्द्धमुख बासा पाई ॥
गुरुको कृपा कटे यम फांसी । विलम्बनहोयमिलेअविनाशी ॥
गुरु विनु काहु न पाया ज्ञाना । ज्यों थोथा भुसछडेकिशाना ॥
गुरु महिमा शुक देवजो पाई । चढि विमान वैकुंठे जाई ॥
गुरु विनु पढै जो वेद पुराना । ताको नाहिं मिलै भगवाना ॥
गुरु सेवा जो करे सुभागा । माया मोह सकलभ्रम त्यागा ॥
गुरुकी नाव चढे जो प्राणी । खेद उतारे सतगुरु ज्ञानी ॥
तीरथ वरत और सब पूजा । गुरु विन देवता और न दूजा ॥
नौ नाथ चौरासो सिद्धा । गुरुके चरण सेवे गोविन्दा ॥
गुरु विनु प्रेत जनम सब पावै । वर्ष सहस्र गर्भ मांहि रहावे ॥
गुरु विनु दान पुण्य जो करही । मिथ्या होय कबहूँनहिंफलही ॥
गुरु विनु भरम न छूटै भाई । कोटि उपाय करै चतुराई ॥
गुरु विनु होम यज्ञ जो साधे । औरो मन दश पातक बाधे ॥
सतगुरु मिले तो अगम बतावै । यमकी आंचताहि नहिं आवै ॥
गुरुके मिले कटे दुख पापा । जनम जनमको मिटै संतापा ॥
गुरुके चरण सदा चित दीजै । जीवनजन्म सुफल कर लीजै ॥
गुरुके चरण सदा चित जानो । क्यों भूले तुम चतुर स्थानो ॥
गुरु भगता मन आतम सोई । वाके हिरदे रहों समोई ॥

गुरु मुख ज्ञान ले चेतो भाई । मानुष जन्म बहुरिनहिं पाई ॥
सुख संपति आपन नहिंप्राणी। समझि देखु तुमनिश्चयजानी ॥
चौविस गुरु हरि आपहि धरिया। गुरु सेवा हरि आपहि करिया ॥
गुरुकी निंदा सुनै जो काना । ताको निश्चय नरक निदाना ॥
दशवां अंश गुरूको दीजै । जीवन जनम सुफल कर लीजै ॥
गुरु मुख प्राणी काहे न हूजै । हृदय नाम सदा रस पीजै ॥
गुरु सीढी चढि ऊपर जाई । सुखसागरमें रहे समाई ॥
अपने मुख निंदा जो करई । शूकर श्वान जन्म सो धरई ॥
निगुरु करै करै मुक्ति आशा । कैसे पावै मुक्ति निवासा ॥
औरो सुकृत देह जो पावे । सतगुरु बिन मुक्ती नहिं आवे ॥
गौरी शंकर और गणेशा । सबही लीन्हा गुरु उपदेशा ॥
शिव विरंचि गुरु सेवा कीन्हा । नारद दीक्षा ध्रुवको दीन्हा ॥
सतगुरु मिले परम सुखदायी । जनम जन्मका दुःख नसाई ॥
जबगुरु किया अटलअविनाशी। सुर नर मुनि सब सेवक रासी ॥
भवजन नदिया अगम अपारा । गुरु बिनु कैसे उतरे पारा ॥
गुरु बिनु आतम कैसे जाने । सुख सागर कैसे पहिचाने ॥
भक्ति पदारथ कैसे पावे । गुरु विनु कौन जो राह बतावे ॥
गुरुमुख नाम देव रैदासा । गुरु महिमा उनहूँ परकासा ॥
तैतिस कोटि देव त्रिपुरारी । गुरु विनु भूले सकल अचारी ॥
गुरुविनु भरमें लख चौरासी । जनम अनेक नरकके बासी ॥
गुरुविनु पशू जनम सो पावै । फिर २ गर्भ बासमें आवै ॥
गुरु विमुख सोई दुख पावे । जनम जनम सोई डहकावै ॥
गुरु सेवै जो चतुर स्थाना । गुरु पटतरकोई और न आना ॥
गुरुकी सेवा मुक्ति निज पावे । बहुरि न हंसा भवजल आवे ॥
भवजल छूटन यही उपाई । गुरुकी सेवा करो सब धाई ॥

साखी–सतगुरु दीन दयाल है, देवे भक्ति सुकाम ।
मनसा वाचा कर्मना, सुमिरो सतगुरु नाम ॥
सत्य शब्द के पटतरे, देवेको कछु नाहिं ।
कहले गुरु संतोषिये, हवस रही मन माहिं ॥
अति उण्डा गहरा घना, बुद्धिवन्त मति धीर ।
सो धोखा विरचे नहीं, सतगुरु मिलहि कबीर ॥

इति श्री प्रथमखण्ड गुरुमहिमा समाप्त

## अथ गुरुदेवकी महिमा प्रारंभः

### द्वितीय खण्ड

गुरुदेवकी महिमा बरणौ । जे गुरु देव तुम्हारी शरणों ॥
गावत जे गुण पार न पावे । ब्रह्मा शंकर शेष गुण गावे ॥
प्रथमहि रुगुण ऐसा कीन्हा । तारक मंत्र रामको दीन्हा ॥
माता तिलक दिया सरूपा । जाको बन्दे राजा औ भूपा ॥
ज्ञानगुरू उपदेश बताया । दया धर्मकी राह चिन्हाया ॥
जीव दया घटहीमें होई । जीव दया ब्रह्म है सोई ॥
गुरुसे आधीन चेला बोले । खरा शब्द उर अन्तर खोले॥
खारा मिशरी बचने खमैं । गुरुके चरणों चेला रमैं ॥
भीतर हिरदे गुरुसों भले । ताके पीछे रामहिं मिले ॥
गुरु रीझेसो कीजे कामा । ताके पीछे रामहिं रामा ॥
शिष सरस्वतीगुरु यमुना अङ्गा । राम मिले सब सरिता गङ्गा ॥
चेला गुरुमें गुरुमें राम । भक्ति महातम न्यारा नाम ॥
गुरु आज्ञा निरबाहें नेम । तब पावे सरबज्ञी प्रेम ॥
सरवज्ञी राम सकल घट सारा । है सबही में सब सों न्यारा ॥
ऐसी जाने मनमें रहै । खोजे बूझे तासो कहै ॥

गुरुकी महिमा संक्षेप भनी । गुरुकी महिमा अनंत घनी ॥
औतार धरी हरि गुरु करे । गुरु किये तब नारद तरे ॥
साख पुरातम ऐसी सुनी । बात हमारी गुरु चरणों बनी ॥
कीड़ी जैसा मैं हौं दासा । पडा रहा गुरु चरणों पासा ॥
गुरु चरणों राखों विश्वासा । गुरुहि पुरावै मनकी आसा ॥
साखी–गुरु गोविन्द अरु शिष मिलि, कीन्हा भक्ति विवेक ॥
तिरबेनी धारा बही, आगे गङ्गा एक ॥
गुरुकी महिमा अनंत है, मोसो कही न जाय ।
तन मन गुरुको सौंपिकै, चरणों रहों समाय ॥

इति श्रीद्वितीय खण्ड गुरु महिमा समाप्त

---

## अथ गुरुमहिमा प्रारंभः

### तृतीयखण्ड

गुरु सतपद भजु अमृतबानी । गुरु बिनु नहीं रे प्राणी ॥
गुरु हैं आदि अन्तके दाता । गुरु हैं मुक्ति पदके दाता ॥
गुरु गङ्गा काशिहि स्थाना । चारवेद गुरुगमसे जाना ॥
अरसठ तीरथ भ्रमि २ आवे । सो फल गुरुके चरणों पावे ॥
गुरुको तजै भजै जो आना । ता पशु याको फोकट ज्ञाना ॥
गुरु पारस परसे जो कोई । लोहाते जिव कञ्चन होई ॥
शुक गुरु किये जनकरुवैदेही । वो भै गुरुके परम सनेही ॥
नारद गुरु प्रहलाद पढाये । भक्तिहेतु जिन दर्शन पाये ॥
काकभुशुंडि शंभु गुरू कीन्हा । अगम निगम सब कहि दीन्हा ॥
ब्रह्मा गुरू अग्निको कियेऊ । होम यज्ञ जिन यज्ञ दियेऊ ॥
वशिष्ट मुनि गुरूकियेरघुनाथा । पाये दरशन भये सनाथा ॥
कृष्ण गये दुर्वासा शरणा । पाये भक्ति जब तारन तरना ॥

नारद उपदेश धिमरसे पाये। चौरासीसे तुरत बचाये ॥
गुरु कह सोई है सांचा। बिनु परचे सेवक है कांचा ॥
गुरु सामरथ सबके पारा। गहे शरण उतरे भवपारा ॥
कहैं कबीर गुरु आप अकेला। दशो औतार गुरूका चेला ॥

साखी-राम कृष्णसों को बडा, तिनहू तो गुरु कीन्ह।
तीन लोकके वे धनी, सो गुरु आगे अधीन ॥
हरिसेवा युगचार हैं गुरु सेवा पल एक।
तासु पटतर ना तुले, संतन किया विवेक ॥

अथ प्रचलित गुरुमहिमा कबीर दर्शन लाइब्रेरीके संस्थापक कबीरपंथी भारतपथिक स्वामी श्रीयुगलानन्दद्वारा संगृहीत संशोधित और सम्पादित।

इति श्रीतृतीय खण्ड गुरुमहिमा समाप्त

हमारे प्रकाशनों की अधिक जानकारी व खरीद के लिये हमारे निजी स्थान :

**खेमराज श्रीकृष्णदास**
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
९१/१०९, खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,
७ वी खेतवाडी बॅक रोड कार्नर,
मुंबई - ४०० ००४.
दूरभाष/फैक्स-०२२-२३८५७४५६.

**खेमराज श्रीकृष्णदास**
६६, हडपसर इण्डस्ट्रियल इस्टेट,
पुणे - ४११ ०१३.
दूरभाष-०२०-२६८७१०२५,
फैक्स -०२०-२६८७४९०७.

**गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,**
**लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस व बुक डिपो**
श्रीलक्ष्मीवेंकटेश्वर प्रेस बिल्डींग,
जूना छापाखाना गली, अहिल्याबाई चौक,
कल्याण, जि. ठाणे, महाराष्ट्र - ४२१ ३०१
दूरभाष/फैक्स- ०२५१-२२०९०६१.

**खेमराज श्रीकृष्णदास**
चौक, वाराणसी (उ.प्र.) २२१ ००१.
दूरभाष - ०५४२-२४२००७८

सत्य

श्रीः

# बोध–सागर

## ( कबीर चरित्र बोध प्रारंभ )

★

भारतपथिक कबीर पंथी–

स्वामी श्रीयुगलानन्द द्वारा संशोधित

★

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन,

बम्बई–४

संस्करण : फरवरी २०१९, संवत् २०७५

मूल्य : २०० रुपये मात्र।



मुद्रक एवं प्रकाशकः
खेमराज श्रीकृष्णदास,™
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,
मुंबई - ४०० ००४.

Printers & Publishers :
Khemraj Shrikrishnadass,
Prop: Shri Venkateshwar Press,
Khemraj Shrikrishnadass Marg, 7th Khetwadi,
Mumbai - 400 004.

Web Site : http://www.Khe-shri.com
Email : khemraj@vsnl.com

Printed by Sanjay Bajaj For M/s. Khemraj Shrikrishnadass Proprietors Shri Venkateshwar Press, Mumbai - 400 004, at their Shri Venkateshwar Press, 66 Hadapsar Industrial Estate, Pune 411 013.

सत्यनाम



श्री कबीर साहिब

सत्यनाम

सत्यसुकृत, आदि अदली, अजर, अचिन्त, पुरुष, मुनीन्द्र, करुणामय, कबीर, सुरति योग संतान, धनी धर्मदास, चुरामणिनाम, सुदर्शन नाम, कुलपति नाम, प्रबोध गुरुबालापीर, केवल नाम, अमोल नाम, सुरतिसनेही नाम, हक्क नाम, पाकनाम, प्रकट नाम, धीरज नाम, उग्र नाम, दया नामकी दया, वंश-व्यालीसकी दया

# अथ श्रीबोधसागरे

### सप्तत्रिंशतिस्तरंगः

## कबीर चरित्र बोध प्रारम्भः

★

दोहा—गुरु कबीर जग विदित है, भक्त मुक्ति दातार ।
जिव मुक्तावन कारने, आये जगत मँझार ॥
कीन्ह चरित नाना जगत, सोई करों बखान ।
परमानन्द यश पाइ है, नहिं पावा कोइ आन ॥
उभय आनंदके प्राप्तिको, साधन अहै अनूप ।
गुरू चरित गायन करी, होवे हंसन भूप ॥

## सत्य पुरुषकी आज्ञा

सत्यपुरुषने ज्ञानीजीसे कहा कि, ऐ ज्ञानीजी ! काल पुरुषने समस्त जीवोंको फँसाकर मार लिया, सब जीव भटक भटक कर कालकी फाँसीमें पड गये, कोई जीव मेरे लोकमें नहीं आता मैंने सुकृति जी (धर्मदास) को सत्य पंथके प्रचारके लिये पृथ्वी पर भेजा था-उनको कालपुरुषने धोखा देकर लोक वेदमें फँसा लिया और धर्मदासजी सत्यपुरुषकी भक्तिको छोड़कर कालपुरुषकी भक्तिमें लग गये। इस कारण आप पृथ्वी पर जाओ और सुकृतिजीको चेताकर मुक्तिपंथ पृथ्वीपर प्रकट करो। तब ज्ञानीजी सत्यपुरुषकी आज्ञा शिरोधार्य कर दंडवत् प्रणाम करके सत्यलोकसे बिदा हुए।

## कबीर साहिबका काशीमें प्रकट होना

सम्वत् चौदह सौ पचपन विक्रमी ज्येष्ठ सुदि पूर्णिमा सोमवारके दिन सत्यपुरुषका तेज काशीके लहर तालाबमें उतरा, उस समय पृथ्वी और आकाश प्रकाशित हो गया। उस समय अष्टानंद वैष्णव उस तालाब पर बैठे थे। वृष्टि हो रही थी, बादल आकाशमें घिरे रहनेके कारण अंधकार छाया हुआ था, और बिजली चमक रही थी, जिस समय वह प्रकाश तालाबमें उतरा उस समय समस्त तालाब जगमग जगमग करने लगा और बड़ा प्रकाश हुआ। वह प्रकाश उस तालाबमें ठहर गया और प्रत्येक दिशाएँ जगमगाहटसे परिपूर्ण हो गयीं और इस आश्चर्यमय प्रकाशको देखकर अष्टानंदजी आश्चर्यान्वित हुए। प्रकाशके फैलते ही मयूर चकोर आदि नाना प्रकारके पक्षी बोलने चहचहाने लगे, कमल तथा नीलकमलके पुष्प लहलहाने और भँवरे गूँजने लगे। अष्टानन्दजीने जो उस तेजके

देखा तो आनकर उसका समस्त विवरण रामानन्द स्वामीसे कहा कि, हे स्वामीजी ! मैंने लहर तालाबमें एक ऐसी ज्योतिका निरीक्षण किया है जिससे मुझको अत्यन्त आश्चर्य हुआ है। उस ज्योतिको आकाशसे उतरते और लहर तालाबमें ठहरते देखा जब वह प्रकाश उस तालाबमें उतरा तब तालाब ज्योतिसे प्रकाशित हो गया। यह बात सुनकर रामानन्द स्वामीने अष्टानन्दसे कहा कि, वह प्रकाश जो तुमने देखा था उसका कौतुक शीघ्र ही तुम्हारे देखने तथा सुननेमें आवेगा।

वह तेज बालकके आकारमें हुआ उस जलके ऊपर कमलोंके पुष्पोंमें उतराने और बालकोंके सदृश हाथ पाव फेंकने लगा वह तेज अपनी समस्त प्रभाओंको पृथक् करके मनुष्यके बच्चेके आकारमें दिखलायी दिया।

### नीरूके पूर्वजन्मका वृत्तान्त

श्वपच सुदर्शनके जो माता पिता थे वे दोनों भङ्गीका शरीर छोड़कर ब्राह्मण ब्राह्मणी हुए थे, और चँदबोर नगरमें रहते थे, इनके प्रेमसे कबीर साहब इनके घर गये और उनको मुक्ति-मार्ग बतलाने लगे, परन्तु उन्होंने ध्यान नहीं दिया, तब सत्य गुरु उनके गृहसे अन्तर्धान हो गये। इसके उपरान्त वे दोनों ब्राह्मण ब्राह्मणी परलोकगामी होकर काशीमें जोलाहा जोलाही हुए और उनका नाम नीरू और नीमाह्वाद है। सुदर्शनजीके माता पिता तीसरे जन्ममें जोलाहा जोलाही हुए थे। इनको मुक्तिप्रदान करनेके निमित्त पुनः कबीर साहब उनके घर गये और काशीमें लहर तालाबमें प्रकट हुए।

### कबीर साहबका नीमाको मिलना

नीरू जोलाहा काशी नगरीमें रहता था, एक दिवस वह अपनी

स्त्री सहित चला आता था, दैवात् वह लहर तालाबके समीपसे होकर निकला। उसकी स्त्री नीमा प्यासी हुई और जल पीनेके निमित्त उस तालाब पर गयी वहीं देखा तो एक बड़ा ही सुन्दर बालक कमलोंमें पैरता फिरता है और हाथ पाँव फेंक रहा है। उस बालकको देखकर नीमा तालाबके भीतर घुसकर उस बच्चेको अपनी गोदमें उठा लिया और तालाबसे बाहर निकलकर नीरूके पास गयी।

### नीमा और नीरूकी बातचीत

तब पूँछा कि, यह किसका लड़का ले आयी है? तब नीमाने उत्तर दिया कि, मैंने तालाबमें पाया है। नीरूने कह दिया कि, यह लड़का जहांसे तू ले आयी है वहां ही रख आ नहीं मालूम यह किसका लड़का है। तब उस स्त्रीने उत्तर दिया कि, ऐसा सुन्दर बालक तो मैं कदापि नहीं फेंकूँगी। तब नीरूने कहा कि, लोग मुझको हँसेंगे और ठट्ठाएँ उड़ावेंगे कि मुकलावेहीमें नीरू अपनी स्त्रीके साथ एक पुत्र भी ले आया, इस कारण इस बालकको तू फेंकि आ। इस बातको जब नीमाने स्वीकार नहीं किया तब नीरू अपनी स्त्रीको मारने पीटनेपर प्रस्तुत हुआ और झिड़कियां देने लगा। अब वह स्त्री खड़े खड़े अपने चित्तमें चिंता करने लगी। इतनेमें वह बालक स्वयम् बोल उठा कि, ऐ नीमा मैं तेरे पूर्वजन्म प्रेमके कारण तेरे घर आया हूँ। तू मुझको मत फेंक और अपने घर ले चल यदि मेरा कहना मानोगी तो मैं तुम्हें आवागमनके फेरेसे छुड़ा दूँगा और मुक्तिप्रदान करूँगा, समस्त दुःख संताप हर कर और वह शब्द बतलाऊंगा कि, जिससे कभी कालके फंदेमें नहीं पड़ेगी।

जब वह बालक इस प्रकार बोला तो उसकी बात सुनकर नीमा निर्भय हो गयी, बालककी बात सुनकर नीरू भी कुछ नहीं बोला। अब वे दोनों प्रसन्नतापूर्वक उस बालकको लेकर अपने घर आये। जब काशीके लोगोंने देखा कि, नीरू तो अपनी स्त्रीके साथ एक पुत्र भी ले आया तो लोग ठट्ठा और हँसी करने लगे। तब नीरूने लोगोंको समझाया कि, हमने यह बालक लहर तालाबमें पाया है, बालकका कुल विवरण कह सुनाया, फिर बुलाकर पूँछने लगा कि इस बालकका क्या नाम रखना चाहिये। ब्राह्मण पत्रा लिये विचार ही रहे थे, इतनेमें वह बालक स्वयम् बोल उठा कि ऐ ब्राह्मण! मेरा नाम कबीर है, दूसरा नाम रखनेकी चिन्ता मत करो। यह बात सुनकर सब लोग अत्यन्त चकित हुए कि यह बालक तो स्वयम् ही अपना नाम बतलाता है यह कैसा बालक है यह किसी सिद्धका अवतार है कि कोई देवता है? काशीमें इस बातकी चर्चा घर घर होने लगी कि, नीरूके घरमें एक बच्चा आया है सो बातें करता है। फिर नीरूने काजीको बुलाया और पूँछा कि, इस बालकका क्या नाम रखना चाहिये। जब काजी किताब खोलकर बालकका नाम स्थिर करने लगा तब कुरानके मध्यमें बालकके चार नाम निकले कबीर १ अकबर २ किबरा ३ किबरिया ४ ये चार नाम देखकर काजी चुप हो रहा और अपने दातोंके नीचे अँगुली दबाने लगा। फिर फिर वह कुरान खोलकर देखता तो समस्त कुरान उसको उन्हीं नामोंसे भरा दिखलाई दिया। अब काजीके मनमें अत्यन्त सन्देह उत्पन्न हुआ

कि, ये चारों नाम तो खुदाके हैं अब क्या करें हमारे धर्मकी अप्रतिष्ठा हुई ।

गरीबदासजीकी पारख, अंगकी सखियाँ

काशीपुरको कस्द किया, उत्तरे अधर अधार ।
मोमिनका मुजरा हुआ, जङ्गलमें दीदार ॥
कोटि किरन शशि भानु सुधि, आसन अधर विमान ।
परसत पूरण ब्रह्मको, शीतल पिंड औ प्रान ॥
गोद लिया मुख चूमिके, हेम रूप झलकन्त ।
जगर मगर काया करे, दमके पद्म अनन्त ॥
काशी उमडी गुल भया, मोमिनका घर घेर ।
कोइ कह ब्रह्मा विष्णु हैं, कोइ कहे इंद्र कुबेर ॥
कोइ कह वरुण धर्मराय हैं, कोइ कोइ कहता ईश ।
सोलह कला सुभान गति, कोई कहै जगदीश ॥
भगति मुक्ति ले ऊतरे, मेटन तीनों ताप ।
मोमिन घर डेरा लिया, कहै कबीरा बाप ॥
दूध पीवै नहिं अन्न भखे, नहीं पलने झूलंत ।
अधर आसन है ध्यानमें, कमल खिला फूलंत ॥
कोइ कहे छल ईश्वर नहीं, कोइ किन्नर कहलाय ।
कोइ कहे गुण ईशका, ज्यों ज्यों मारिये साय ॥
काशीमें अचरज भया, गयी जगतकी निंद ।
ऐसे दूल्हा ऊतरे, ज्यों कन्या बरबिंद ॥
खल्क मुल्क देखन गया, राजा परजा रीत ।
जम्बूद्वीप जहानमें उतरे, शब्द अतीत ॥

१ सकल कुरान कबीर है, हरफ लिखे जो लेख ।
काशी के काजी कहै, गयी दीनकी टेक ॥

दुनी कहे यह देव है, देव कहै यह ईश।
ईश कहै परब्रह्म है, पूर न विश्वे बीश ॥
काजी गये कुरान ले, धर लड़केको नाँउ।
अक्षर अक्षरमें फुरे, धन्य कबीर बल जाँउ ॥
सकल कुरान कबीर है, हरफ लिखे जो लेख।
काशीके काजी कहै, गयी दीनकी टेक ॥
शिव उतरे शिवपुरीसे, अविगत बदन विनोद।
महके कमल खुशी भया, लिया ईशको गोद ॥
नजर नजरसे मिल गयी, किया दर्श परणाम।
धन्य मोमिन धन्य पूरना, धन्य काशी निष्काम ॥
सात बार चर्चा करे, बोलै बालक बैनु।
शिव सो कर मस्तक धरचो, ला मोमिन यक धेनु॥
अनब्यावरको दुहतही, दूध दिया ततकाल।
पीयो बालक ब्रह्म गति, वहां शिव भये दयाल ॥
कष्ट मानुषके जब भई, नित दुनिया वर देहि।
चरण चले तत पुरीमें, यहि शिक्षा नित लेहि ॥

जब काशीके सब काजियोंको यह समाचार मिला तब वे इस समाचारको सुनकर बड़े ही चिन्तित हुए कि, यह कैसा आश्चर्य अद्भुत व्यापार है कि, समस्त कुरानमें कबीर ही कबीर दिखाई देता है। अब कौन उपाय करना चाहिये कि; ऐसे दरिद्री जोलाहेके पुत्रका इतना बड़ा नाम न रक्खा जावे। फिर फिर कुरान खोलकर देखते तो यही चारों नाम निकलते। इन चारों नामोंके सिवाय और कुछ नहीं निकला। तब काशी-के काजियोंने आपसमें सम्मति की और नीरूसे कहा कि, ऐ नीरू! तू इस बालकको अपने घरके भीतर लेजाकर मार

रखपा । तब वह जोलहा कबीर साहबको अपने घरके भीतर ले गया और उनको छुरीसे काटने लगा, छुरी एक ओरसे दूसरी ओर पार निकल गई न कोई घात हुआ और न लोहूका एक बूँद ही निकला और न गले पर कोई चिह्न हुआ। नीरू यह आश्चर्यमय वृत्तान्त देखकर एकदम डर गया और थर थर काँपने लगा उसके हाथसे छुरी गिर गयी और वह अचेत सा हो गया। तब कबीर साहब बोले कि, ऐ नीरू! मेरा कोई माता पिता नहीं है, न मैं उत्पन्न होता हूँ, न मरता हूँ, न मुझको कोई मार सकता है, न मैं किसीको मारता हूँ। और न मेरा शरीर है न मेरे मांस चर्म हड्डी और रक्त है और मैं स्वयंप्रकाश हूँ। यह बात सुनकर जोलाहा अत्यन्त भयभीत हुआ। अन्तमें विवश होकर जब यह वृत्तान्त प्रकट हुआ तब कबीरही नाम ठहराया। किसीका कुछ वश न चला कि, उसको बदल सके।

## बाललीला

बिना भोजनादि किये ही कबीर साहबका शरीर बड़ा होता जाता था और दिन प्रति आपका तेज तथा प्रताप बढ़ता जाता था। जब जोलाहा जोलाहीने देखा कि, बालक तो कुछ भोजन करता नहीं है तब वे अपने मनमें अत्यन्त चिन्तित होकर कहने लगे कि ऐ कबीरजी! आप कुछ भोजन करो यदि आप अन्न न खाओगे तो हम भी नहीं खायेंगे। तब कबीर साहबने उत्तर दिया कि, ऐ नीरू! गायकी एक कुवाँरी बछिया और कुम्हारके घरसे एक कोरा बरतन ले आओ। कबीर साहबकी आज्ञानुसार नीरू गया और कोरी बछिया ढूँढकर और कुम्हारके गृहसे एक बरतन ले आया। तब कबीर साहबने उससे कहा कि, इस बछियाको मेरे सामने बांध दो और उसके स्तनोंके नीचे

बरतन रख दो, फिर कबीर साहबने उस बछियाकी ओर देखा तो उसके स्तनोंसे दूध निकलने लगा जिससे बरतन भर गया वही दूध लेकर नीरूने कबीर साहबके मुँहके सामने रख दिया। फिर तो नीरू नित्य उसी प्रकार प्रतिदिवस किया करता था।

जब कबीर साहिब कुछ बड़े हुए और छोटे-छोटे लड़कोंके साथ खेलने लगे तब आप उन लड़कोंसे ब्रह्मज्ञानकी बातें किया करते थे। वे बेसमझ लड़के कबीर साहबकी बातको तनिक भी नहीं समझते बल्कि जब वह उन्हें समझाने लगते तब वे मुँह देखने लग जाते। फिर कुछ दिनोंके पश्चात् आप साधुओं के साथ ज्ञानगोष्ठी करने लगे। जब साधु लोग आपका ज्ञान सुनते तब अत्यन्त चकित होते कि, यह छोटा बालक इस प्रकारकी बातें कैसे करता है। इन बातोंकी सुधि तो किसी साधुको भी नहीं है। तब साधुओंको विदित हो गया कि, यह बालक नहीं बरन् कोई सिद्ध ही लड़केके वेषमें प्रकट हुआ है।

कबीर साहबकी बालकपनके अनेक लीलाओंका विवरण ग्रंथोंमें लिखा है-उस समय जलनके रोगका काशीमें प्रकोप था। एक वृद्धा स्त्री आई और कबीर साहबसे बोली कि, मैं जलन रोगसे व्यथित हूँ, आप धूल मिट्टी खेल रहे थे। कबीरजी बोले, यदि तेरी इच्छा हो तो मैं आरोग्य लाभ करूं। तब कबीर साहबने उस स्त्रीपर थोडीसी धूल डाल दी और वह आरोग्य हो गयी जिसपर वह प्रसन्न होती चली गयी। इस प्रकारकी बातोंका कुछ विवरण हो नहीं सकता।

कुछ दिवसोंके उपरांत समस्त जुलाहे एकत्रित होकर कहने लगे कि, ऐ नीरू! अब तुम अपने पुत्रका सुन्नत ( मुस-

ल्मानी ) कराओ। फिर एक दिन मुकर्रर करके जुलाहे एकत्रित हुए और काजीको बुलाया। जब नाई उस्तरा लेकर कबीर साहबके सामने गया तब आपने पांच लिंग उसको दिखलाये और उससे कहा कि, इन पांचोंमेंसे जिसको चाहे तू काट ले। यह अवस्था देखकर नाई तो भयभीत होकर भाग गया और आपका सुन्नत नहीं हुआ।

एक दिन आप छोटे-छोटे बच्चोंके साथ खेल रहे थे, उस समय काजीने गोवधका प्रबंध किया और गऊके जबह करनेका समय आया तब आपने सब वृत्तांत जान लिया कि, काजी गऊके जबह करनेके विचारमें है। ऐसा जान करके बालकोंके साथका खेलना छोड़कर गऊकी ओर दौड़े। जबतक गायके समीप पहुँचे तबतक तो काजीने गऊको समाप्त कर दिया। कबीर साहब आकर उस काजीको उपदेश देने लगे जिससे लज्जित होकर काजी अपने अपराधके निमित्त क्षमाका प्रार्थी हुआ। फिर कबीर साहब उस गऊको जीवित करके और आप अंतर्धान हो गये।

जब आप अंतर्धान हो गये तब जुलाहा जुलाही आपको ढूँढ़ने लगे। जब कई दिनों तक कबीर साहब उन्हें नहीं मिले तब उनको बड़ा दुःख हुआ और वे फूट-फूट कर रोने लगे। समस्त नगरमें ढूँढ़ डाला पर आप कहीं नहीं मिले। उसको तीन दिन भूखे प्यासे बीत गये, अन्नजल कुछ भी उसके मुँहमें नहीं गया। वे अत्यन्त निर्बल तथा अशक्त हो गये। जब आपने उन दोनोंको नितांत ही विह्वल पाया तब आप उनके सामने प्रकट हो गये। आपको देखते ही वे प्रसन्न होकर चरणोंपर गिर पड़े और कहने लगे कि, आप किधर चले गये ? हम

ढूँढते-ढूँढते हैरान हो गये ? तब कबीर साहबने उत्तर दिया कि, तुमने महापाप किया कि, गऊको जबह करवाया । जोलाहा जोलाही अनेक सौगंधें खाने लगे कि, हमने यह कार्य नहीं करवाया बरन् हमें इस बातकी तनिक भी सुधि नहीं है, यह कार्य काजीका है जब उन दोनोंने बहुत कुछ प्रार्थना तथा बिनती की तब कबीर साहबने दोनोंको निर्दोष समझकर उनके घर पर गये ।

जब आप छोटे २ बालकोंके साथ खेलते थे तब "राम राम" "गोविंद गोविंद" " हरि हरि " कहा करते थे तब मुसलमान लोग सुनकर कहते थे कि, यह बालक कट्टर काफिर होगा । तब उनको कबीर साहब यह प्रत्युत्तर देते थे कि, काफिर वह होगा जो दूसरोंका माल लूटता होगा, काफिर वह होगा जो कपट-भेष बनाकर संसारको ठगता हो, काफिर वह है जो निर्दोष जीवोंका प्राणनाश करता होगा, काफिर वह होगा जो मांस खाता होगा, काफिर वह होगा जो मदिरा पान करता होगा और काफिर वह होगा जो दुराचार तथा बटमारी करता होगा मैं किस प्रकार काफिर हूं ।

साखी–कबीर साहब

गला काटकर बिसमिल करें, ते काफिर बेबूझ ।
औरनको काफिर कहैं, अपनो कुफ्र न सूझ ॥

कुछ दिनके बाद कबीर साहबने गलेमें यज्ञोपवीत डाल लिया और अपने माथेपर तिलक लगा लिया, तब ब्राह्मण देखकर कहने लगे कि, यह तो तेरा धर्म नहीं है तूने वैष्णव वेष कैसे बनाया ? तू राम राम गोविंद गोविंद नारायण नारायण कहता है–यह तो मेरा धर्म है तेरा धर्म नहीं । तब कबीर

साहब ब्राह्मणोंको उत्तर देते कि, हम तो ताना तनते हैं, जनेऊ तुम्हारा किस प्रकार हुआ ? और गोविंद और राम तो हमारे हृदयमें बसते हैं, तुम्हारे कैसे हुए। तुम तो गीता पढते हो और सांसारिक धनके निमित्त सदैव धनाढ्योंके द्वार द्वार पर दौडते और भटकते रहते हो, हम तो गोविंदके अतिरिक्त और किसी अन्यको नहीं जानते हैं। इतना सुनकर ब्राह्मण निरुत्तर हो जाते फिर तो हिन्दू तथा मुसलमान दोनों आपके साथ वाद विवाद किया करते और सब परास्त होने लगे। जब साधुओंने देखा कि, यह लड़का तो बड़ा ज्ञानी है, तब वे लोग पूँछते कि, कबीरजी आपका गुरु कौन है, उस समय तो आपका कोई गुरु नहीं था-इस प्रश्नपर आप निरुत्तर निस्तब्ध हो जाते। तब साधु लोग आपको ताना मारते कि, बिना गुरुके तुम्हारा ज्ञान किसी काम नहीं आवेगा-और न बिना गुरुके किसीको मुक्ति मिलेगी, तुम्हारा यह सब वार्तालाप तथा ज्ञान व्यर्थ है। जब साधु लोग कबीर साहबपर इस प्रकार कटाक्ष करने लगे तब आपने रामानंद स्वामीको गुरु करनेका संकल्प किया। जिस समय आपने स्वामी रामानंदको गुरु करनेका संकल्प किया उस समय आपको प्रकट हुए पूरे पांच वर्ष हो चुके थे और आपकी प्रसिद्धि भारतके बहुत भागोंमें हो चुकी थी।

आप रामानन्द स्वामीके पास गये और विनय किया कि, स्वामीजी ! मुझको दीक्षा देकर अपना शिष्य कीजिये और मुझसे गुरुदक्षिणा लीजिये मुझपर कृपा कीजिये। यह बात सुनकर स्वामीजीने उत्तर दिया कि, मैं शूद्रको दीक्षा नहीं देता।

### रामानन्द स्वामी और कबीर साहबकी वार्तालापका वृत्तान्त

भक्ति द्रावड देश थी, यहां नहीं एक विरञ्च।

ऊत भूतको ध्यावना, पाखंड और परपञ्च ॥
रामानन्द अनन्द भये, काशी नगर मँझार ।
देश द्राविड छाड़िके, आये पुरी बिचार ॥
योग युक्ति प्राणायाम करि, जीता सकल शरीर ।
तिरवेणीके घाटमें, अटक रहे बलवीर ॥
तीरथ वरत एकादशी, गंगोदक अस्नान ।
पूजा विधि विधानसों, सर्वकलासों गान ॥
करे मानसी सेव नित, आत्मतत्त्वको ध्यान ।
षट पूजा आदि भेद गति, धूप औ दीप विधान ॥
चौदह सौ चेले किये, काशीनगर मँझार ।
चार सम्प्रदा चलत हैं, और हैं बावन द्वार ॥
पांच बरषके जब भये, काशीमाहिं कबीर ।
दास कबीर अजीबकला, ज्ञानध्यान गुण थीर ॥
गुल भया काशी पुरीमें, अटपट बैन विहंग ।
दास गरीब गुणी थके, सुनि जोलहा परसंग ॥
रामानँद अधिकार है, सुनि जोलहा जगदीश ।
दास गरीब बिलम्बना, ताहि नवावत शीश ॥
रामानँदको गुरु कहै, तनसे नहीं मिलाप ।
दास गरीब दरस भये, पैयन लगी जो लाप ॥
पन्थ चलत ठोकर लगे, राम नाम कहि दीन ।
दास गरीब कसर नहीं, सीख लिये बरबीन ॥
आड़ा परदा देइके, रामानन्द बुझन्त ।
दास गरीब उलंग छबि, अधर डाक कूदंत ॥
कौन जाति कुल पंथ है, कौन तुम्हारा नाउँ ।
दास गरीब अधीन गति, बोलतही बलि जाउँ ॥

जाति हमारी जगद्गुरु, परमेश्वर यह पंथ ।
दास गरीब लिखत परे, नाम निरंजन कंत ॥
रे बालक दुर्बुद्धि सुन, घट मठ तन आकार ।
दास गरीब दरदर लगे, बोले सिरजन हार ॥
तू मोमिनके पालुवा, जुलहेके घर वास ।
दास गरीब अज्ञान गति, एता दृढ़ विश्वास ॥
मान बड़ाई छांड़िके, बोलौ बालक बैन ।
दास गरीब अधम मुखी, इतना तुम घर फैन ॥
कलियुग क्षेतरपाल है, क्या भैरो कोइ भूत ।
दास गरीब विटंबना, गया जगत सब ऊत ॥
मनी मगज माया तजो, तजिये मान गुमान ।
दास गरीब सो बात कहि, नहिं पावेगो जान ॥
हे बालक बुधि तोरि गति, कौडी साखन भांड ।
दास गरीबहि हदेसकरि, नहिं लेवेगे डाँड ॥
शाह शिकंदरके वधे, पग ऊपर तर शीश ।
दास गरीब अगाधि गति, तोर कहा जगदीश ॥
कान काट बूचा करे, नली भरत रे नीच ।
दास गरीब जहानमें, तुम सुर जोरा मीच ॥
मरत मरत सबजग मुआ, लखै नऽस्थिर ठौर ।
दास गरीब जहानमें, तुमसा नीच न और ॥
नादबिन्दकी देहमें, येता गर्व न कीन ।
दास गरीब पलक फना, जैसे बुदबुद लीन ॥
तिनकर तैसे बोलते, रामानन्द सुजान ।
दास गरीब कुजाति है, आखिर नीच निदान ॥
नीच मीच से ना डरे, काल कुल्हाड़ अशाश ।

दास गरीब अदत्त है, तैं जो कहा जगदीश ॥
जडिहों हाथ हथकड़ी, गले तौक जञ्जीर ।
दास गरीब परख बिना, यह वाणी गुणगीर ॥
परख निरख नहिं तोहिको, नीच कुलीन कुजात ।
दास गरीब अकल बिना, तू जो कही क्या बात ॥
हे बालक नीचा कला, तुमही बोलो ऊँच ।
दास गरीब पलक धरि, खबर नहीं हम कूँच ॥
महँके बरन खलास करि, सुन स्वामी परवीन ।
दास गरीब मनी मरी, मैं आजिज आधीन ॥
मैं अविगत गतिसे परें, चार वेदसे दूर ।
दास गरीब दशों दिशा, सकल सिंधु भरपूर ॥
सकल सिन्धु भरपूर हूँ, खालिक हमरो नाउँ ।
दास गरीब अजात हूँ, तेजि कहा बलि जाउँ ॥
जात पाँत मेरे नहीं, नाहिं स्त्री नहिं गाउँ ।
दास गरीब अनन्य गति, नहीं हमारे नाउँ ॥
नाद बिन्द मेरे नहीं, नहीं गोद नहिं गात ।
दास गरीब शब्द सजग, नहीं किसीका साथ ॥
सब सङ्गी बिछरू नहीं, आदि अन्त बहु जाहिं ।
दास गरीब सकल बसौं, बाहर भीतर माहिं ॥
हे स्वामी मैं सृष्टिमें, सृष्टि हमारे तीर ।
दास गरीब अधर बसूँ, अविगत पुरुष कबीर ॥
अनन्तकोटि सलिता बड़ो, अनन्तकोटिधर ऊँच ।
दास गरीब सदा रहूँ नहीं हमारे कूँच ॥
पुहमी धरनि अकाशमें, मैं व्यापक सब ठौर ।
दास गरीब न दूरसा, हम सम तुल नहिं और ॥

मैं माया मैं काल हूँ, मैं हंसा मैं त्रंश ।
दास गरीब दयाल हम, हमहीं करें विध्वंस ॥
ममता माया हम रची, काल जाल सब जीव ।
दास गरीब प्राण पद, हम दासा तन पीव ॥
हम दासनके दास हैं, कर्ता पुरुष करीम ।
दास गरीब अवधूत हम, हम ब्रह्मचारी सीम ॥
हम मौला सब मुल्कमें, मुल्क हमारे माहिं ।
दास गरीब दलाल हम, हम दूसर कछु नाहिं ॥
हम मोती मुक्ताहल, हम दरिया दरवेश ।
दास गरीब हम नित रहें, हम तजि जात हमेश ॥
हमहीं लाल गुलाल हैं, हम पारस पद सार ।
दास गरीब अदालतँग, हम राजा संसार ॥
हम पानी हम पवन हैं, हमहीं धरणि अकाश ।
दास गरीब तत्त्वपञ्चमें, हमहीं शब्द निवास ॥
सुनु स्वामी सत भाखहूँ, झूठ न हमरो रञ्च ।
दास गरीब हम रूप बिन, और सकल परपञ्च ॥
हम रोवत हैं सृष्टिको, जो रोवति है मोहिं ।
दास गरीब वियोगको, और न बूझे कोइ ॥
मैं बूझूँ मैं ही कहूँ, मैं ही किया वियोग ।
गरीब दास गलतान हम, शब्द हमारा योग ॥
चारों रुकुनमें हम फिरें, नहिं आवें नहिं जाउँ ।
गरीब दास गुरु भेदसे, लखे हमारा ठाउँ ॥
रजगुण सतगुण तमगुण, रजबीरज हम कीन्ह ।
गरीब दास हम सकलमें, हम दुनियाँ हम दीन्ह ॥
लगी महम गनीम पर, काल कटक कट कन्त ।

गरीबदास निर्भर करूँ, जो कोई नाम जपन्त ॥
मैं बालक मैं वृद्ध हूँ, मैंही जवाँ जमान ।
गरीबदास निज ब्रह्म हूँ, हमहीं चारों खान ॥
गगन शून्य गुप्ता रहूँ, हम परकट परवाह ।
गरीबदास घट घट बसूँ, विकट हमारी राह ॥
आवत जात न दीसहूँ, रहता सकल समीप ।
गरीबदास जलतरँग ज्यों, हमहिं सागरसीप ॥
गोता लाऊँ स्वर्गमें, फिर पैठूँ पाताल ।
गरीबदास ढूँढत फिरूँ, हीरे माणिक लाल ॥
इस दरिया कङ्कर बहुत, लाल कहीं कहिं ठाउँ ।
गरीबदास माणिक चुगूँ, हम मरजीवा नाउँ ॥
बोले रामानन्दजी, हम घर बड़ा सुकाल ।
गरीबदास पूजा करें, मुकुट फई जद माल ॥
सेवा करो सम्हालके, सुन स्वामी सुरज्ञान ।
गरीबदास शिरधर मुकुट, माला अटकी जान ॥
स्वामी घुंडी खोलके, फिर माला गले डार ।
गरीबदास इस भजनको, जानत हैं करतार ॥
ड्योढ़ी परदा दूरकर, लीना कण्ठ लगाय ।
गरीबदास गुजरी बहुत, बदनन बदन मिलाय ॥
मनकी पूजा तुम लखी, मुकुट माल परवेश ।
गरीबदास किनको लखे, कौन वरन क्या भेष ॥
यह तो तुम शिक्षा दयी, मान लिये मन मोर ।
गरीबदास कोमल पुरुष, हमरो बदन कठोर ॥
हे स्वामी तुम स्वर्गकी, छोड़ो आशा रीत ।
गरीबदास तुम कारणे, उतरे शब्द अतीत ॥

सुन बच्चा मैं स्वर्गकी, कैसे छाँडूँ रीत ।
गरीबदास गुदड़ी लगी, जन्म जात है बीत ॥
चार मुक्ति वैकुण्ठमें, जिनकी मोरे चाह ।
गरीबदास घर अगमक, कैसे पाऊँ थाह ॥
हेम रूप जहाँ धरणि है, रत्न जड़े बहु शोभ ।
गरीबदास घर वैकुण्ठको, तन मन हमरो लोभ ॥
शंख चक्र गदा पद्म है, मोहन मदन मुरार ।
गरीबदास मुरली बजै, स्वर्गलोक दरबार ॥
दूधोंकी नदियां बहैं, श्वेत वृक्ष शोभान ।
गरीबदास मन्दिर मुकुट, स्वर्गपुरी अस्थान ॥
रत्न जड़ाऊ मनुष सब, गण गँधर्व सब सेव ।
गरीबदास उस धामकी, कैसे छाँडूँ सेव ॥
चार वेद गावें उसे, सुर नर मुनी मिलाप ।
गरीबदास ध्रुव पुर यश, मिट गये तीनों ताप ॥
नारद ब्रह्मा यश रटें, गावें शेष गणेश ।
गरीबदास वैकुण्ठसे, और परे को देश ॥
सुन स्वामी निज मूलगति, कहि समझाऊँ तोहिं ।
गरीबदास भगवानको, राखा जगत समोहिं ॥
तीनलोकके जीव सब, विषय वासना भाय ।
गरीबदास हमको जपैं, तिसको धाम दिखाय ॥
कृष्ण विष्णु भगवानके, जहां गये हैं जीव ।
गरीबदास त्रिलोकमें, काल कर्म सर शीव ॥
सुनु स्वामी तोसों कहूँ, अगम द्वीपकी सैल ।
गरीबदास डूबे परे, पुस्तक लादे बैल ॥
कहो स्वामी कहाँ रहोगे, चौदह भुवन बिहंड ।

गरीबदास बीजक कहो, चलत प्राण और पिंड ॥
बोलत रामानन्दजी, सुन कबीर करतार ।
गरीबदास सब रूपमें, तुमही बोलनहार ॥
तुम साहब तुम संत हो, तुम सद्गुरु हम हंस ।
गरीबदास तुम रूप बिनु, और न पूजो वंस ॥
मैं भक्ता मुक्ता भया, किया कर्म्म कुल नाश ।
गरीबदास अविगत मिले, मेटी मनकी प्यास ॥
दोनों ठौर में एक तू, भया एकसे दोय ।
गरीबदास हम कारणे, उतरे मगहर जोय ॥
बोले रामानन्दजी, सुनो कबीर सुजान ।
गरीबदास मुक्ती भयी, उधरे पिंड औ प्रान ॥
गोष्ठी रामानन्दसे, काशी नगर मँझार ।
गरीबदास जिन्द पीरकी, हम पाये दीदार ॥

कबीर वचन

रामानँद गुरुदीक्षा दीजै । गुरुदक्षिणा कुछ हमसे लीजै ॥

रामानन्द वचन

शूद्रके कान न लागौं भाई । तीन लोकमें मोर बड़ाई ॥

जब रामानंदने उत्तर दिया कि, मैं दीक्षा नहीं दूँगा, कबीर साहब चुपचाप चले आये, स्वामीजीका यह नियम था कि, चार घड़ीके तड़के गंगास्नानको जाया करते थे, एकदिन जब स्वामीजी स्नान करने चले तब कबीर साहब एक छोटे बालकका रूप धरके स्वामीजीके पथमें जा पड़े। स्वामीजी खड़ाऊँ पहने चले आते थे, आपकी खड़ाऊँकी ठोकर कबीर साहबके शिरमें लगी, कबीर साहब रोने लगे । एक लड़केको रोते देखकर स्वामीजी खड़े हो गये, और बालकके शीशपर हाथ धरकर

कहा कि, बच्चा रो मत राम राम कहो। तब कबीर साहब चुप हो गये और कहने लगे गुरुजी राम राम कहूँ ? स्वामीजीने कहा हाँ राम राम कहो। उस समयसे कबीर साहब बराबर राम राम कहने लगे, और गुरु शिष्यका सम्बन्ध बना लिया। जब गुरु चेले का सम्बन्ध बना चुके तब अपने घरमें जाकर सबेरे ही कंठी पहन लिया, और हाथमें तुलसीकी माला ले और मस्तक पर तिलक लगा ठीक वैष्णव मूर्ति धारण किया और राम रामकी धुन लगायी।

जब कबीर साहबने यह रंग बनाया तब आपसे अनेक मनुष्य प्रश्न करते कि, कबीरजी ! आपने यह वैष्णवका वेष कैसे बनाया है ? तब वे सब लोगोंको उत्तर देते कि मैंने रामानंद स्वामीको गुरु बनाया है। यह दशा देखकर और सुनकर कितने ही संन्यासी तथा वैरागियोंने स्वामीजीसे जाकर कहा कि, महाराज ! आपने ऐसी मर्यादा छोड़ दी कि, जोलाहे पुत्रको शिष्य कर लिया।

यह बात सुनकर स्वामीजीने कहा कि,मैंने चेला नहीं किया। तब लोग गये और कबीर साहबको बुला लाये। स्वामीजीका यह नियम था कि, वे मुसलमानका मुख नहीं देखते थे और कबीर साहबको नीरूके घरमें रहनेके कारण लोग मुसलमान कहते थे, इसलिये कबीर साहबको लोगोंने परदाके बाहर खड़ा किया और परदेके भीतरसे स्वामीजी बोले कि ऐ कबीर ! मैंने तुमको अपना चेला कब बनाया ? तब कबीर साहबने उत्तर दिया कि, स्वामीजी जब आप गंगा स्नान-को जाते थे और मैं पथमें पड़ा था आपके खड़ाऊँकी ठोकर मेरे माथेमें लगी और मैं रोने लगा तब आपने कहा राम राम

कह, उस समयसे मैं राम राम कहने लगा। तब स्वामीजीने कहा कि हाँ एक बालक तो था जिसको मेरे खड़ाऊँकी ठोकर लगी और उससे मैंने रामराम कहनेको कहा था। कबीर साहबने कहा कि, गुरुजी वह लड़का मैं ही था। स्वामीजीने कहा कि, क्या इस प्रकार कोई गुरु चेला हो सकता है? तब कबीर साहबने कहा कि, गुरुजी वेदशास्त्रमें रामनामसे बढ़कर और दूसरा क्या है? तब स्वामीने उत्तर दिया कि, सबसे बढ़कर यही है, उससे बढ़कर और कुछ नहीं है। फिर साहबने कहा कि, जो नाम सबसे बढ़कर है सो तो आपने मेरे माथेपर हाथ धरकर दे ही दिया-फिर गुरु और शिष्य किस प्रकार होता है? फिर स्वामीजी बोले कि, जिस बालकसे मैंने राम नाम कहा था वह छोटा था और तू बड़ा जान पड़ता है। तब कबीर साहब वैसाही छोटा बालक बनकर स्वामीकी गुफाके भीतर देख पड़े और गुरुजीके चरणोंपर गिरकर कहने लगे कि, मैं उस समय ऐसाही छोटा था न? यह कौतुक देखकर लोगोंको अत्यन्त आश्चर्य हुआ कि, देखो यह बालक कैसा छोटा हो गया। उस समय स्वामीजीने कबीर साहब को गले लगा लिया, उसी समयसे कबीर साहब स्वामीजीके शिष्योंके साथ रहने लगे और स्वामीजीके जितने शिष्य थे सब कबीर साहबको अपना गुरु करके मानते और अत्यन्त मर्यादा तथा प्रतिष्ठा किया करते थे और स्वयम् कबीर साहब सबसे नितान्तही नम्रतापूर्वक मिलते थे। यहां तक कि रामानन्द स्वामीके चौदहसौ चौरासी शिष्योंमें कबीर साहब सबके सरदार हो गये थे।

फिर समय समय पर कबीर साहब और रामानन्द स्वामी में ज्ञान और मुक्तिके विषयमें सत्संग हुआ करता था। रामानन्द स्वामी तथा कबीर साहबकी वार्तालाप बहुत है जिसकी इच्छा हो ढूँढ़कर देख ले। कबीर साहबने समय समय पर स्वामीजीको अनेक कौतुक दिखलाये सो भिन्न भिन्न ग्रंथोमें लिखे हुए हैं।

एक बार स्वामीजी मानसिक ध्यान कर रहे थे। मानसमें ही भगवानकी मूर्ति कल्पना कर यथाविधि सब शृंगार किया किन्तु माला पहिराने भूल गये। पीछेसे याद पड़नेपर माला पहिराने लगे किन्तु मुकुटके ऊपरसे माला गलेमें नहीं जाती थी। तब स्वामीजीको बड़ी चिंता हुई कि, अब ठाकुरके गलेमें कैसे माला पहनाऊँ ? क्योंकि, यदि मुकुट उतारकर माला पहिनाते हैं तो शृंगार भ्रष्ट होता है और माला नहीं पहनाते हैं तो शृंगार अपूर्ण रहता है। तब कबीर साहब स्वामीजीके मनकी बात जानकर बोले कि, स्वामीजी ! मालाकी गाँठ खोलकर ठाकुरको माला पहनाओ।

इस प्रकारके अनेक कौतुकोंको देखकर स्वामीजीकी इच्छा हुई कि, जानना चाहिये यह कबीर कौन है जो ऐसे ऐसे कौतुक किया करता है। इस कारण स्वामीजीने ठाकुरका ध्यान किया तब ध्यानमें यह दिखाई दिया कि, ठाकुरके सिंहासन पर जो ठाकुरकी मूर्ति है उसके शिरके ऊपर कबीर साहबका सिंहासन रक्खा हुआ है। जबसे कबीर साहबकी ऐसी बड़ाई और उनका इतना प्रताप देखा तबसे स्वामी कबीर साहबकी

स्तुति करने लगे। रामानन्द तो कबीर साहबकी प्रशंसा करते और कबीरसाहब अपने गुरुका गुण गाया करते थे।

गोरखको जीतना

उस समय गोरखनाथ योगी जो बड़ा ही बलिष्ठ था और प्रायः रामानन्द स्वामीसे आकर वाद विवाद किया करता था उसका सामना कबीर साहबसे हुआ और कबीर साहबका गोरखनाथके साथ बड़ाही वाद विवाद हुआ और दोनोंही ओरसे अनेक कौतुक दिखलाई दिये जो लोगोंमें प्रसिद्ध हैं। अन्तमें गोरखनाथ परास्त हुआ और अपनी सेली और टोपी कबीर साहबके चरणोंपर चढ़ाकर तथा दंडवत् और प्रणाम करके एक ओरको चला गया।

शाह सिकन्दरलोदीका काशीमें आना और कबीर साहबसे मिलना तथा रामानन्द स्वामीका परलोक–गमन

सम्वत् १५४५ विक्रमीमें बहलोल लोदीका पुत्र सिकन्दर लोदी काशी नगरमें पहुँचा, बादशाहके शरीरमें कुछ दिनोंसे जलनका रोग था, रात दिन उसका शरीर जला करता था। उस रोगसे उसे तनिक भी चैन नहीं मिलता था।

काशीमें पहुँचनेपर बादशाहने सुना कि, वहाँ रामानन्द स्वामी महासिद्ध महात्मा हैं उनके आशीर्वादसे यह रोग दूर हो जायगा। बादशाह दुःखसे कातर हो स्वामी रामानन्दजीके आश्रमको पहुँचा। स्वामीजीने अपने नियमानुसार बादशाहका मुख देखना नहीं चाहा। बादशाहने बहुत विनती की किंतु स्वामीजीने नहीं माना।

चौपाई

आये सिकन्दर शाहसुलताना। है व्याधा बहु भेद न जाना॥

रामानन्दकी सुनी बड़ाई । ताते शाह आप चलि आई ॥
आये मंडप जबै सुलताना । रामानन्द तब देखि रिसाना ॥
बादशाह सम्मुख भये जबहीं । रामानन्द मुख फेरा तबहीं ॥
बार अनेक तिहिते मुख फेरा । ताकी ओर क्रोधकरि हेरा ॥

तब बादशाहने क्रोध करके तलवारसे स्वामी रामानन्दका शिर काट लिया । स्वामीका शिर काटते ही बादशाह विकल होकर वहाँही पृथ्वीपर गिर गया । लोगोंने हाथों हाथ शाहको उठाकर डेरेपर पहुँचाया ।

रामानन्द स्वामीके कत्ल होनेका समाचार शहरमें तुरंत फैल गया । बादशाहके जुल्मको सुनकर धर्मात्मा लोग तो ईश्वरेच्छा समझकर चुप हो रहे किन्तु अधर्मी मिथ्या धर्मके पक्षपाती लोग बढ़बढ़कर बातें करने लगे । कबीर साहबसे द्वेष रखनेवाले मुल्ला काजी और झूठे पण्डितोंने अच्छा दाव विचारा वे बादशाहको क्रोधित कराकर कबीर साहबको भी कत्ल करानेकी चितामें लगे ।

उधर बादशाहको भी कुछ चेति हुई तब उसने लोगोंसे पूछा कि यहां और कोई ऐसा नहीं है जिसकी कृपासे मेरे शरीरकी जलन दूर हो जावे । कबीर साहबके विद्वेषी प्रथमसेही घातमें लगे हुए थे। बादशाहके पूछते ही चट उन्होंने उत्तर दिया कि, कबीर नामक रामानन्दका एक शिष्य इस शहरमें बड़ा सिद्ध माना जाता है अगर वह आवे तो शाहकी बीमारी तत्काल अच्छी हो जावे। उन लोगोंकी बात सुनकर बादशाहने आज्ञा दी कि,पता लगावो कबीर साहब इस समय कहाँ विराजमान हैं, मैं इसी समय वहीं जाकर उनका दर्शन करूँगा । शाही नौकरोंने

शहरमें फिरकर उसी समय पता लगाया कि, कबीर साहब रामानंद स्वामीकी मृत्युका समाचार सुनकर स्वामीजीके आश्रमपर विराजमान हैं। बादशाह तुरत फिर उसी स्थानपर पहुँचा। अब कबीर साहबके विद्वेषियोंको निश्चय हो गया कि, आज कबीर साहब अवश्य कत्ल किये जायँगे, क्योंकि बादशाहने गुरु रामानन्दजीको कत्ल किया है इससे कबीर साहब क्रोधमें होंगे। जब गुरुघाती बादशाहको अपने सम्मुख खड़ा देखेंगे तब कबीरसाहब क्रोध किये बिना रह नहीं सकेंगे और जैसे ही कबीर साहब बादशाह पर क्रोध करेंगे वैसे ही स्वामी रामानन्दके समान बादशाह उनको कत्ल करेगा। अज्ञानी लोग ऐसे ही शोचते हुए बादशाहके पीछे पीछे रवाना हुए। मार्गमें न जाने वे क्या क्या मनोराज्य करते जाते थे।

बादशाह जैसे ही कबीर साहबके सम्मुख पहुँचा, दर्शन पाते ही उसके शरीरकी सब जलन शान्त हो गयी। केवल जलन ही नहीं जलनके साथ साथ मिथ्या धर्मद्वेष भी जो धर्मके नामसे अज्ञानियोंने उसके हृदयमें ठसा रखा था एकदम जाता रहा। कबीर साहबके दर्शनने उसका अंतःकरण ऐसा शुद्ध कर दिया कि, उसके समान कट्टर मुसलमान बादशाह मिथ्या धर्माभिमान छोड़कर एकदम दौड़कर कबीर साहबके चरणोंपर गिर पड़ा और स्वामी रामानन्दजीके कत्लकरनेके अपराध पर पश्चात्ताप करके क्षमाका प्रार्थी हुआ। बादशाहके पश्चात्ताप और आधीनताको देखकर कबीर साहबने उसके अपराधको क्षमा करके धैर्य्य दिलाया।

अपने विचारके विरुद्ध बादशाहको कबीर साहबके आधीन होते देखकर विद्वेषियोंके मनमें बड़ी ग्लानि आयी। उन्होंने

अपने हाथसे दाव चूकते देखकर परस्पर विचार करके दूसरा उपाय बलवा करने और कबीर साहबके अनिष्ट करनेका शोचकर रामानन्द स्वामीके शिष्योंके पास गये । वे उस समय गुरुके वियोगसे ऐसे विह्वल हो रहे थे कि, उनकी सारासार विचारिणी बुद्धि उस समय लुप्त हो रही थी । दुष्टोंने जाकर उन्हें समझाया कि, देखो कबीर अपने गुरुघातकसे ही घुल घुलके बातें कर रहा है । जात स्वभाव कभी छूटता है ? फिर तो अपनी जातिके ऊपर गया । मुसलमान मुसलमान एक हो गये । कबीरको गुरुके मृत्युकी भी चिंता नहीं है । तुम लोग तो गुरुका शोक मना रहे हो और वह बादशाहके साथ हँस रहा है । उन दुष्ट बिगाडुओंकी बातने स्वामीजीके शिष्यों-पर प्रभाव डाला, अखाडेके सब शिष्य और साधु एकमत हो-कर कबीर साहबके निकट आकर दुर्वचन बोलने और निन्दा करने लगे । प्रथम तो कबीरसाहब शान्तिसे उनके वचनको सुनते रहे पश्चात् जब उन लोगोंका क्रोध शान्त नहीं हुआ तब कबीर साहबने उन लोगोंसे कहा कि, तुम लोगोंकी श्रद्धा और विश्वासकी यहां तक ही समाप्ति हो गयी । गुरुने क्या तुम्हें यही उपदेश दिया और गुरुके उपदेशका यही परिणाम तुम लोगोंने निकाला है ? गुरुको मृतक समझने वाले तुम लोगोंकी बुद्धि स्थूल देहतक ही समाप्त हुई है । आगे भी तुम्हारे शिष्य लोग स्थूलकी ही पूजामें अपना जीवन व्यतीत करेंगे । उन्हें सत्यपदकी प्राप्ति कदापि नहीं होगी । जब स्थूलके करसे निकलकर सद्‌गुरुकी शरणको प्राप्त होगे तब सत्यपदको पावोगे । यदि तुम लोगोंको स्वामीके स्थूल शरीर-सेही सम्बन्ध है तो चलो स्वामीका शरीर तुम्हें जीवित दिखा

दूँ। इतना कहकर कबीरसाहब बादशाहको साथ लिये हुए वहां गये जहाँ स्वामी रामानंदका मृतक शरीर पड़ा हुआ था। वहां जाकर सबने देखा कि, स्वामीके दाहिने अङ्गसे खूनके बदले दूध बह रहा है और बाईं ओरसे रक्त निकल रहा है। यह आश्चर्य देखकर सब चकित हो गये। बादशाहने कबीर साहबसे पूछा कि इसका क्या कारण ? लोहूके बदले दूध कैसे निकला?

सिकन्दर वचन

पय औ रुधिर चल्यो गुरु अङ्गा। शाह कहैं यह कौन प्रसङ्गा ॥

कबीर उत्तर

जेहि तन मान्यो शब्द हमारा। तेहिते चले दूधकी धारा ॥
कीन्ह कालहू केर विचारा। आधा अंग रुधिर अनुसारा ॥
अगले जन्म मुक्ति जो होई। अंकुरी जीव कहावै सोई ॥

ज्ञानसागर

रामानन्द स्वामीका पुनर्जीवन

पश्चात् कबीर साहबने एक सफेद चादर मँगाया और स्वामीजीका शिर तथा धड़ इकट्ठा जोड़कर ऊपर वही चादर ओढ़ा दी। फिर बादशाह वगैरह ऐसे लोग जिनका दर्शन करना गुरु अच्छा नहीं समझते थे वे सब लोग अलग हो गये केवल कबीर साहबके सहित सब शिष्य लोग वहां रह गये, तब कबीर साहबने पुकारकर कहा-हे गुरो ! हे स्वामिन् ! ! अब राम राम कहनेका समय हुआ है। देखिये सन्ध्या निकट है। शिष्यवर्ग आपके दर्शनके लिये व्याकुल हो रहे हैं, अब कृपासागर उठिये और सबको दर्शन देकर कृतार्थ कीजिये।

कबीर साहबके इतना कहते ही रामानन्द स्वामी राम राम कहते उठ बैठे।

स्वामीजीके उठते ही शिष्य मण्डली आश्चर्य और आनं-दसे कोलाहल करने लग गयी। कितने तो उपकार मानते हुए कबीर साहबके पगपर आकर गिरे कितने ही खड़े २ स्तुति करने लगे। कबीर साहबने सबसे कहा कि, यह सब गुरुकाही प्रताप समझो और गुरुकी ही चरणबंदना करो।

स्वामी रामानन्दजी शिष्योंका कोलाहल और अपने निकट दूध और पानीकी बही हुई धारको देखकर आश्चर्यसे इधर उधर देखने लगे। इतनेमें सबको कबीर साहबकी स्तुति करते देखकर वृत्तांत जाननेके लिये जो आँख मूँदके ध्यान किया तो सब हाल उनपर प्रकट हो गया। फिर तो बड़ी श्रद्धा और भक्तिसे कबीर साहबके चरणोंपर गिरने ही जाते थे कि, कबीर स्वयं झुक गये और विनय करने लगे कि, स्वामिन्। आपके योग्य यह काम नहीं है। आप मर्य्यादा पुरुषोत्तम हो। आपको धर्मसेतुके तोड़नेका काम करना उचित नहीं है। आपको मैंने गुरु माना है। आप गुरुपद परही स्थित रहकर सब कुछ प्राप्त कर सकते हैं। मुझे दास पदमें ही आनंद आता है। कबीर साहबकी ऐसी आधीनता, नम्रता और निरभिमानता देखकर स्वामी सहित सब शिष्य दंग हो गये।

कबीर साहबकी महिमा देखकर वैरियोंके दांत खट्टे हो गये। उधर बादशाहने भी सिंहासन मंगाकर तय्यार रखा जैसे ही कबीर साहब आश्रमसे बाहर हुए वैसेही बादशाहने आपको तख्तपर बैठाया और आप हाथ जोड़के सामने खड़ा होकर स्तुति करना आरम्भ किया।

कहते हैं कि उसी दिनसे रामानंद स्वामीने सब भ्रम और पाखण्डको अलग कर पर्दा वगैरह हटा दिया और सब जातिके

मनुष्योंको अपने सम्मुख आनेकी आज्ञा दे दी । उसी दिन यह कहावत भी प्रसिद्ध हुई ।

हरिको भजे सो हरिका होय । जाति पांति पूछे नहिं कोय ॥

बादशाहका दोबार कबीर साहबका परचा देखना और उनपर पूर्ण विश्वास करना

यह कौतुक देखकर वैरियोंके दांत खट्टे हो गये और जिह्वा बंद हो गयी तब फिर सब ब्राह्मण और काजी जो कबीरसाहबसे द्वेष रखते थे बादशाहसे फरियाद करने लगे कि, यह कबीर बड़ा काफिर है । इसने जादूसे रामानंद स्वामीको जीवित किया है । और हिंदू तथा मुसलमान दोनों दीनोंका खण्डन करता है और अपनेको परमेश्वर कहता है । प्रत्यक्षमें ही पुकारता फिरता है कि, मैं समस्त संसारका रचयिता हूं और सदैव कुफ्र बकता रहता है । तब बादशाहने कबीर साहबसे पूछा ।

शाह सिकंदर बोलता, कह कबीर तू कौन ।
गरीबदास गुजरे नहीं, कैसे बैठा मौन ॥

उत्तर कबीर साहबका

हमही अलख अल्लाह हैं, कुतुब गोस गुरु पीर ।
गरीबदास मालिक धनी, हमरो नाम कबीर ॥
मैं कबीर सर्वज्ञ हूँ, सकल हमारी जात ।
गरीबदास पिण्ड प्राणमें, युगन युगनसँग साथ ॥
शाह सिकंदर देखकर, बहुत भए मिसकीन ।
गरीबदास गति शेरकी, थरकी दोनों दीन ॥

जब कबीर साहबने सर्व साधारणके सामने बादशाही इजला-समें अपने परमेश्वर होनेका दावा किया और खुल्लमखुल्ला

कहा कि, मैं समस्त सृष्टिका रचयिता हूं। तब बादशाहने एक गाय मँगवायी और सामने हलाल करवाकर कबीर साहबसे कहा कि, यदि आप परमेश्वर हो तो इस गायको जीवित करो। कबीर साहबने बादशाहसे कहा क्या ईश्वरकी परीक्षा इसीसे होती है तुम्हारे पीरने तुम्हें यही उपदेश किया है? इतना कहकर-

चुटकी तारी थाप दे, गऊ जिलाई बेग।
गरीबदास दूहन लगे, दूध भरी है देग॥

जब शाहने गायको हलाल करवाय और कबीर साहबसे कहा कि, इस गऊको जीवित करो तब कबीरसाहबने उस गायको थापी दिया, चुटकी मारा, उसी समय वह गाय उठ खड़ी हुई और उसका सब घाव तथा दर्द मिट गया। उसका स्तन दूधसे भर गया और उसके दुग्धसे बरतन भर गये जिसको ( उस दुग्धको ) पीकर लोग अत्यन्त हर्षित हुए। और शाह सिकन्दर तथा उसके सभासद्गण इस कौतुकको देखकर अत्यन्त आश्चर्यान्वित हुए। बादशाहने विशेष श्रद्धा विश्वास किया।

### शेखतकीका क्रोध और कबीर साहबकी कसनी

जब शाह सिकन्दरके पीर शेखतकीने देखा कि, अब तो शाह सिकंदरने कबीर साहब पर बहुत विश्वास किया और उनकी अत्यन्त प्रतिष्ठा तथा मर्यादा करता है तब वह जल मरा, कारण यह कि, वह बड़ा ही द्वेषी तथा ईर्षा करनेवाला था। तब उसने बादशाहसे कहा कि ऐ सिकन्दर! आपने जोलाहेसे प्रेम तथा मुझसे वैर किया। तब बादशाहने कहा कि, ऐ गुरुजी! आप तो मेरे पीर हो और वह एक दुरवेश ( साधु ) है। आपने आज्ञा दिया था कि, गुरु तथा फकीर

स्वयम् परमेश्वर हैं। आप और कबीर एक ही हैं। मैं जलनकी बीमारीसे मर रहा था, मेरे जाते हुए प्राण उसने रख लिये और मैंने घातक रोगसे आरोग्य लाभ किया।

जब बादशाहने ऐसा कहा तब शेखतकी चुपचाप अपने डेरेको चले गये। शेखतकी और बादशाहसे जो जो बातें हुईं उन सबोंका पता लगाकर वैरियोंने अपने मतलबका अवसर पाया। जब शेखतकी अपने डेरेमें बैठे तब वे लोग शेखतकीके पास आकर एकत्रित हुए। और ब्राह्मण तथा मुल्ला सब मिलकर कहने लगे कि, यह कबीर बड़ा काफिर है। यह हिन्दू तथा मुसलमान दोनोंकी निन्दा करता है। हम लोग गुरु तथा देवताके नामपर जो बलिप्रदान करते अथवा कुरबानी चढ़ाते और बकरी मुरगा चढ़ाते हैं उसको देख-कर यह हम लोगोंको कसाई कहता है। इसको समस्त काशीवासी मानते हैं और हमारी कोई बात नहीं पूछता, यदि यह जोलाहा किसी प्रकार मारा जावे तो हमारी छातियोंपर का भारी बोझा टल जावे।

जब शेखतकीने ब्राह्मणों तथा मुसलमानोंसे ऐसा सुना तब अत्यंत प्रसन्न हुए और कहने लगे कि, जोलाहेसे और मुझसे तो पहलेसे ही वैर हो रहा है और अब तुम लोग इस बातपर उद्यत हो तो मैं निश्चय कबीरका वध करूंगा उसे कदापि जीवित न छोडूंगा। मेरा नाम शेखतकी है और मैं बादशाह सिकंदरका पीर हूँ। देखूं तो वह मेरे हाथसे किस प्रकार बचता है। चाहूँ तो नदीमें डुबवाऊं, चाहूं तो अग्निमें दहन कर दूं, चाहूं तो दीवारमें चुन दूं, चाहूं तो टुकड़े टुकड़े काटकर चूरा करूं और यदि चाहूं तो देगमें चुरा डालूं

यदि चाहूं तो तोपके सामने रखकर उड़ाऊं, चाहूं तो कुएँमें बंद कर दूँ और चाहूँ तो हाथीसे चिरवा डालूं।

यह बात सुनकर काजी तथा पण्डितगण अति प्रसन्न हुए और शेखतकीकी स्तुति करने लगे कि, क्यों न हो ? वाहवाह आपसे सब कुछ होगा, अब आप कृपा करें कि, यह जोलाहा किसी प्रकार मारा जावे।

यह बात सुनकर शेखतकी बादशाहके पास चले और जाकर कहा कि, ऐ सुलतान ! तू मेरा कहना मान ले और इस जोलाहेके कत्लकी आज्ञा दे। इसने बड़ा कुफ्र मचाया है, यदि तू इसको मरवा न डालेगा तो मैं तुझको शाप दूंगा जिससे तेरा सत्यानाश हो जायगा।

यह बात सुनकर शेखतकीको बादशाहने समझाया कि, ऐ पीरजी ! आपने तो मुझसे कई बेर कहा था कि पीर फकीर स्वयम् परमेश्वर हैं तब आप क्योंकर कबीर साहबके प्राणघातके निमित्त आग्रह करते हैं, उन्होंने तो आपकी कोई हानि नहीं की फिर आपने क्यों ऐसा कुफ्र मचाया ?

शाह सिकन्दर वचन

कहो कबीरके मारन ताईं। कुछ न हमारो यहां बसाई।
पीर फकीर जात अल्लाहा। मेरो जोर न पहुँचे ताहा॥
जो वह होते रैयत, तो हम करते जोर।
वह अलमस्त फकीर है, तहां न फावै मोर॥
तुमहूँ कही समझाय, पीर फकीर अल्लाह।
अब तुम कहते मारने, यह न होय हम पाह॥
अहो पीरजी तुम वह एका। अपने मनमें करो विवेका।
इन कुछ तुमरो नाहिं बिगारा। काहे तुमने कुफ्र पसारा॥

बुजुर्ग सब नेकी फरमावे । जोर जुल्म कुछ ताहि न भावे ॥
कहा हमारा कीजिये, छोड़ दीजिये रार ।
सुलह कुल्ह दे बैठिये, अच्छा ओर निहार ॥

शेखतकी वचन

कहे तकी सुलतान सुन, तुझे नहीं कछु दोष ।
जो मैं कहूं सो मानिये, कर मेरो सन्तोष ॥

सिकन्दर वचन

कहे सिकन्दर पीर सुन, मेरो शिर बरु लेहु ।
फक्कड़ कबीर न मारिये, यह माँगे मोहि देहु ॥
सुन्ते ही तकी क्रोध प्रचारा । शिरसे ताज जमीपर मारा ॥
निपट विकल देखा तेहि भाई । तब हम शाहसे कहा बुझाई ॥

कबीर वचन

कहे कबीर सुनो सुलताना । करो पीरको वचन प्रमाना ॥
पीर कहै सो करो तुम, हमें नहीं कछु त्रास ।
हमहूं कहैं सत नाम बल, कहें कबीर सुदास ॥

सिकन्दर वचन

कहै सिकन्दर सुनो जी पीरा । मन मानै सो करो कबीरा ॥
डारो मार कबीरको, हम नहिं मानैं ऊन ।
ताका कबहुँ न भला हो, जो करे फक्कड़ खून ॥

शेखतकी वचन

शेखतकी तब कहे रिसाई । है कोई बाँध कबीरा भाई ॥

गंगामें डुबाया जाना

शेखतकी आपै उठै, काजी पण्डित झार ।
बाँध बाँध सब कोइ कहे, कोई न करे गोहार ॥
बाँह बाँध पग बाँधके, बोर गंगजल नीर ।

नहिं संशय निश्चित होइ, निर्भयदास कबीर ॥
गंगाजलपर भइ आसन, बंद परे खहराय ।
जन कबीर सत नाम बल, निर्भय मंगल गाय ॥
शाह सिकन्दर देखही, औ ठाढ़े सब लोग ।
धन्य कबीर सब कोइ कहै, शेखतकी भा सोग ॥
शेखतकी तब मीजे हाथा । सूखे मुहँ नहिं आवै बाता ।

सिकन्दर वचन

शाह सिकन्दर जोर कर, कहै सुनो तुम पीर ।
किसको बाँध डुबावहू, निर्भयदास कबीर ॥

जब शेखतकीने कबीर साहबको इस प्रकार लोहेकी शृंखलामें जकड़कर गंगामें डाल दिया उस समय जन्जीरें गलकर जलके नीचे बैठ गईं और कबीर साहब जलके ऊपर आसन मारकर बैठे मंगल गा रहे थे ।

यह कौतुक देखकर काशीके लोग धन्य कबीर २ कहने लगे । शाह सिकंदरने अपने पीरसे कहा कि ऐ पीरजी ! आप किसको जलमें डुबाते हैं; कबीर साहब तो अछूते जलके ऊपर बैठे हैं । उस समय शेखतकीका मुँह सूख गया और मुँहसे बात नहीं निकली । तब शेखतकीने कहा मैं जानता हूँ कि कबीरने जादू किया, इस कारण वह नहीं डूबा । यदि अबकी मैं कबीरको पाऊँ तो अग्निमें जला दूँ-यदि वह अग्निसे बच जावेगा तो मैं उसको परमेश्वरका सत्य अंश समझूँगा ।

उसी समय कबीर साहब गंगासे बाहर निकल आये और शाह सिकन्दरके निकट गये । आपको देखते ही शाह उठ खड़ा हुआ और अत्यन्त मान संभ्रम सहित कबीर साहबको अपने बराबर आसन पर बैठाया । यह देखके शेख अत्यन्त

क्रुद्ध हुआ, उसके नेत्र रक्तवर्ण हो गये। उसने कहा ऐ कबीर! तूने जादू किया इसी कारण जलमें नहीं डूबे। तब कबीर साहबने कहा कि ऐ शेखजी! जैसे आप हो वैसा मुझको मत समझो, मैं जादू क्या जानूँ; मुझको तो केवल साहब नामका आधार है।

आगमें जलाया जाना

तब शेखने कहा अब आगसे बचो तब मैं आप पर विश्वास करूंगा। तब कबीर साहबने कहा कि जो आपकी इच्छा हो सो करो, अब आगमें जलाओ। तब शेखजीने बहुत सा काष्ठ मँगवाया और कबीर साहबका हाथ पांव बांधकर आगमें डाल दिया। उसी समय वह अग्नि बुझ गयी और बिलकुल ठंढी हो गयी।

तलवारसे काटा जाना

फिर शाहसिकन्दरने अपने पीरको बहुत समझाया कि ऐ पीरजी! अब कबीर साहबसे आप वैर छोड़ दीजिये, पर शेखजीने इस बातको ग्रहण नहीं किया। फिर शेखजी तलवार लेकर अपने हाथसे काटने लगे-कबीर साहबकी शरीरसे तलवार इस प्रकार बाहर निकल जाती थी कि जैसे हवा, अथवा आकाशसे कृपाण निकलकर पार हो जाय। कबीर साहबके शरीर पर तनिक चिह्न भी नहीं हुआ—और न कोई रोम मैला हुआ। शेखजी मारते-मारते थक गये।

देगमें चुराया जाना

तब शेखजीने कबीर साहबको एक देगमें बंद करके और देगका मुँह भली भाँति बन्द करके अग्निपर धर दिया और स्वयं खड़ा हो देगके नीचे अग्नि जलवाने लगा। उस समय

बादशाहने समाचार भेजा कि पीरजी ! आप किसको आंच दिलाते हैं; कबीर साहब तो मेरे पास बैठे हैं । तब शेखने देगका मुँह खोला तो उसको खाली पाया ।

### तोपपर उड़ाया जाना

फिर शेखने कबीर साहबको तोपपर बांधकर उड़ाया, तोपमें जल भर गया ।

### हाथीसे चिराया जाना

फिर हाथीसे चिरवाया और वह हाथी चीख मारकर भाग गया ।

### कुएँमें डुबाया जाना

फिर शेखने आपको कुएँमें डाल दिया और उस कुएँको ईंट तथा पत्थरोंसे भर रहे थे और कबीर साहब शाह सिकन्दरके समीप जा बैठे । तब शाह सिकन्दरने अपने पीरके पास समाचार भेजा कि पीरजी ! आप किसको कुएँमें बंद कर रहे हो कबीर साहब तो मेरे निकट बैठे हुए हैं ।

जब शाहने समाचार भेजा तब शेखतकी शाहके पास आया और वहां कबीर साहबको बैठा देखकर लज्जित हुआ ।

### कमालका प्रकट होना

तब शाह सिकन्दरने कबीर साहबका बड़ा संमान किया और आपको अपने साथ लेकर इलाहाबाद गया । एक दिन गंगातटपर बादशाह, कबीर साहब और शेख बैठे थे, उस समय गंगामें एक बालककी लाश बही जाती थी । शेखने कहा कि ऐ कबीर साहब ! गंगामें जो मुरदा बहा जाता है उसको आप जीवित करो । तब कबीर साहबने कहा कि ऐ मुर्दे ! "उठ कुदरतके कमालसे" तब वह उठ खड़ा हुआ ।

जब कबीर साहबने उस मुरदाको जीवित किया, तब बादशाह और शेख एकदम आश्चर्यमें आकर बोल उठे कि, वाह आपने तो बड़ा कमाल किया। कबीर साहबने कहा अच्छा लो आजसे इस लड़केका नाम भी कमाल हुआ। यह जगत्‌में मेरा पुत्र कहलाकर प्रसिद्ध होगा। उसी दिनसे कमाल हुआ और वह कबीरका पुत्र कमाल कहलाता है।

इस प्रकार शेखने कबीर साहबसे बावन लीलाएँ देखी तब बादशाह और शेखजी दोनों कर जोड़कर खड़े हुए और निवेदन करने लगे कि, ऐ कबीर साहब! आप परमेश्वर हो और आपही खुदा हो और आपही हमारे गुरु तथा पीर हो। हमारा सब अपराध क्षमा करो। तब कबीर साहबने कहा कि; आपका कुछ दोष नहीं है।

साखी-कंध कुल्हाड अघाल, मस्तक दीना भार।
गरीब शाह यों कहे, बखशो अबकी बार॥
तहँ सतगुरु लौलीन हो, परचा अबकी बार।
गरीबदास शाह यों कहे, अल्ला देव दीदार॥
सुनो काशीके पंडितो, काजी मुल्ला पीर।
गरीबदास उस चरण गहि, अल्ला अलख कबीर॥
यह कबीर अल्लाह है, उतरा काशी धाम।
गरीब शाह यों कहे, झगड़ मुए बेकाम॥
क्यों बिगड़ी डगरी दुनियां, कहत कबीर समूल।
गरीबदास उस वृक्षके, अनंत कोटि रँगफूल॥
ऐ कबीर तुम अल्ला हो, पलक बीच परवाह।
गरीबदास कर जोरके, ऐसे कहता शाह॥

तुम दयालु दरवेश हो, घर आये नररूप ।
गरीबदास शाह यों कहै, बादशाह जहाना भूप ॥
उठे कबीर करम किया, बरसै फूल अकाश ।
गरीबदास सेली चले, चँवर करे रैदास ॥
तीन एक चंडोलमें, रैदास शाह कबीर ।
गरीबदास चौरा करें, बादशाह बलवीर ॥
मुकुट मनोहर शीशधर, चढ़ै फील कबीर ।
गरीबदास उस पुरीमें, कोई न धरता धीर ॥

कबीर साहबके भण्डारेका वृत्तान्त

जब ब्राह्मणोंने देखा कि, अब तो कबीर साहबका माहात्म्य और भी अधिक हुआ और हम लोगोंकी कोई युक्ति नहीं चली तब आपसमें सलाह करके यह निश्चय किया कि, अब ऐसी युक्ती करनी चाहिये जिसमें कबीर साहबकी प्रतिष्ठा भंग हो जावे । तब उन लोगोंने बहुत ब्राह्मणोंको नियत किया कि, तुम लोग देश देशान्तरोंमें जाकर समाचार दो कि, अमुक दिवस कबीर साहबके घर भण्डारा है, सब संत महंत कृपा करके आवे। तब उन ब्राह्मणोंने डाढ़ी मूँछ मुँडवाय वैष्णव वेष बनाया और दो दो चेले कर बाहर हुए । ये ब्राह्मण सब स्थानोंमें दौड़ गये और समस्त सन्त महन्तको समाचार पहुँचाया कि अमुक दिवस कबीर साहबके यहां भंडारा है ।

यह बात सुनकर सन्त महंत उस दिवस कबीर साहब की कुटीपर आये बड़ी भीड़ हुई । कबीर साहबने जब ब्राह्मणोंकी धूर्तता जान ली तब अपना एकतारा लेकर वनका मार्ग लिया ।

भोजनका समय निकट होता जाता है । अनगिन्ती साधु-

ओंकी भीड़ कबीर साहबकी पर्णकुटीको घेरे खड़ी है किन्तु कबीर साहबका पता नहीं है। कबीर साहबके न मिलनेसे भेषमें कोलाहल होने लगा। जिनके मनमें जो आया वही बकने लगा। यह हाल देखकर विद्वेषियोंकी बन आयी, सब अपने मनही मन अपनी सफलता जान प्रसन्न होने लगे। इतनेमें रसद् बाटनेके समय नौ लाख बोरे खानेकी वस्तुओंके भरकर केशव नाम वनिजारा आया और भण्डारा आरंभ हो गया। सब साधुओंकी सेवा तथा पहुनाई आरंभ हो गयी। किसीको यह जान न पड़ा कि, ये कौन लोग हैं तथा कहांसे आये हैं जो भण्डारा कर रहे हैं। पन्द्रह दिन पर्यंत बराबर भण्डारा होता रहा, इसके उपरान्त समस्त सन्त महन्तको भेंट तथा वस्त्रादि देकर केशवने बिदा किया और सब धन्य कबीर धन्य कबीर और जय जय कबीर कहते हुए बिदा हुए और विद्वेषी ब्राह्मण सब मुँह पसारकर रह गये, कुछ न बना।

### लक्ष्मीजीका कबीर साहबको लुभाने आना

विष्णुने लक्ष्मीजीसे कहा कि तीनों लोकमें तो ऐसा कोई नहीं है जो तुम्हारे नयनबाणद्वारा आहत न हुआ हो और तुम्हारी मोहिनी मूर्ति और तुम्हारी कटाक्षद्वारा आत्म विस्मृति न कर गया हो, पर जब कबीर साहबपर अपना जादू डालोगी तब मैं तुम्हारे मनमोहन मंत्रकी प्रशंसा करूंगा, तुम काशीजीको जाओ और कबीर साहबको लुभाओ, तब लक्ष्मीजी रूप बदलकर काशीमें कबीर साहबके पास अत्यंत हावभावके साथ आयीं और कबीर साहबके सामने खड़ी होकर कहने लगीं कि, ऐ महाराज! आप मुझको अपने घरमें रक्खो, मैं आपके साथ निवास किया चाहती हूँ। तब कबीर साहबने उसकी ओर दृष्टिपात भी नहीं किया

और कहा कि, ऐ लक्ष्मी! तू मेरे समीप क्यों आयी है? क्या स्वर्गलोक उजाड़ पड़ा है जो तू मेरे पास यहां आयी है, मुझे तेरी कामना नहीं है, तू यहांसे शीघ्र चली जा तब लक्ष्मी निराश होकर वैकुण्ठको पलट गयी।

फिर विष्णु आये और कहने लगे कि, कबीर साहब! आप जो कुछ माँगो राजकाज धनसम्पत्ति सो सब मैं तुमको दूँ। तब कबीर साहबने कहा कि, इन सब वस्तुओंकी तो मुझको कामना नहीं है, यदि तुम्हारे पास वह नाम हो कि, जिससे आवागमन मिट जावे तो वह मुझको दो। विष्णुने कहा कि यह तो मेरे अधिकारसे बाहर है और धन्य कबीर धन्य कबीर कहते हुए वैकुण्ठको पलट गये।

यह सब कौतुक जब सिकन्दरशाह आप देख चुका तब उसने कबीर साहबको उत्तम वस्त्र पहनाये और जड़ाऊ मुकुट शीशपर रक्खा और आपको हाथीके ऊपर सवार करा और सत्यगुरुके पीछे आप खड़ा हुआ चँवर करता तथा सत्य गुरुकी प्रशंसा करता हुआ अपने साथ ले चला। यह लीला देखकर समस्त काशीके लोग चकित हो रहे और ब्राह्मण और मुल्ला काजी इत्यादि सब लज्जित होकर रह गये। शाहसिकन्दर कबीर साहबको दिल्ली ले गया।

इति श्रीकबीर चरित्रबोध प्रथम भाग समाप्त

# कबीर चरित्र

## द्वितीय भाग

★

## आश्चर्य चरित्रोंका वर्णन

★

### सम्मनभक्तकी कथा

एक बार कई संतोंको साथ लिये हुए कबीर साहब सम्मन भक्तके घर गये। संमनकी स्त्रीका नाम नेकी और पुत्रका नाम शिव था। जिस दिन कबीर साहब सम्मन भक्तके घर गये उस दिन खानेकी कुछ भी सामग्री नहीं थी। कई घरोंमें उधार माँगने पर भी निराश होकर सम्मन अपने पुत्रके साथ किसीके घरमें चोरी करनेका विचार करके बाहर हुआ और एक साहूकारके घरमें जाकर सेंधमार कर शिव अन्दर गया वहाँसे आवश्यकतानुसार खानेकी सामग्री लेकर बाहर खड़े पिताको दिया। जब शिव सेंधसे बाहर निकलने लगा। तब महाजनने भीतरसे पांव पकड़ लिया। तब शिवने अपने पितासे कहा कि, मैं तो पकड़ा गया अब मेरी हुरमत जाती रहेगी, इस कारण तू मेरा शिर काट ले-जिसमें मैं पहिचाना न जा सकूँ। तब सम्मनने अपने पुत्रका शिर काट लिया और आटा सीधा और अपने पुत्रका शिर लेकर अपने घर आया। शिवका शव वहांही पड़ा रहा। सम्मनने अपने बेटेके शीशको एक ताकपर रख दिया और आटा सीधा अपनी स्त्रीको देकर कहा कि, भोजन तय्यार कर रोना नहीं। यदि रोवोगी और दुःख प्रकट करोगी तो साधु भोजन नहीं करेंगे। तब नेकीने तुरंत भोजन तय्यार किया और सम्मन उन तीनों साधुओंके निमित्त भोजन ले गया तीन पत्तल कबीर साहबके सामने

रख दिये और कहा कि, महाराज ! आप तीनों साधु भोजन कीजिये । तब कबीर साहबने तीन पत्तलके छः टुकड़े किये और छः भाग करके कहा सम्मन अब तुम अपने पुत्रको बुलाओ कि, हम छः मनुष्य एक साथ भोजन करें। सम्मनने कहा कि, महाराज ! हम तीनों पीछे आवेंगे आप तीनों संत पहले भोजन कर लीजिये । कबीर साहबने कहा कि ऐसा कदापि न होगा, हम सबके सब एकत्रित भोजन करेंगे । जब सम्मन अनेक प्रकारका बहाना करने लगे, तब कबीर साहबने कहा कि, शिव तू कहाँ है ? तब शिवके शीशसे शब्द निकला कि, महाराज ! मैं किस प्रकार आऊं ? मेरा तो शीश कटा हुआ ताकपर धरा है और धड़ कहीं पड़ा है, तब कबीर साहबने कहा कि, शिर तो चोर डाकू और ठग इत्यादिके कटते हैं । भक्तोंके शीश नहीं कटते तू चला आ । जब इतना कबीर साहबने कहा तब शिवका शव आकर मस्तकसे मिल गया । और वह उसी समय जैसा था वैसा जीवित होकर प्रसन्नतापूर्वक कबीर साहबके पास आ बैठा और छः मनुष्योंने भोजन किया ।

### कबीर साहबका भैंसेसे वेद पाठ कराना

एक बार कुछ वैरागी जो रामानन्दके चेले थे कबीर साहबके सहित अपने गुरुद्वारे दक्षिण देश तोतादरीको चले । एक भैंसा भी अपने साथ ले लिया । उसके ऊपर सब साधुओंने अपनी गुदड़ी तथा कठारी इत्यादि लाद ली । चलते चलते अपने गुरुद्वारे जो स्थान राजानुज स्वामीका है वहां पहुँच गये । रामानुज स्वामीके सम्प्रदायी आचारी हैं वे स्नानादिका बहुत ध्यान रखते हैं और अपने हाथसे परदा करके भोजन बनाते और भोजन करते हैं । यदि किसी शूद्रकी छाया भोजन

पर पड़ जावे तो वे उसको नहीं खाते हैं उन लोगोंमें जातीय अभिमान भी विशेष है। प्रायः वे जातिके ब्राह्मण होते हैं। उन आचार्योंने कबीर साहबको अपने बराबरमें बैठाकर भोजन कराना उचित न समझा इस कारण उन लोगोंने एक बहाना निकाला और कहा कि, जो कोई वेदकी ऋचा पढ़े वह हमारे साथ बैठकर भोजन करे जिसको वेद पाठ न आवें वह हमारी पंक्तिमें न बैठे। सबोंने वेदका कोई न कोई विशेष भाग पढ़ पढ़-कर सुना दिया। उन लोगोंका मुख्य अभिप्राय यही था कि, कबीर साहब वेदपाठी नहीं हैं, इस बहानेसे हम अपनी पंक्तिमें कबीर साहबको न बैठावेंगे। जब कबीर साहबकी पारी आई तब कबीर साहबने भैंसेके शीशपर हाथधर दिया और कहा कि, ऐ भैंसे! तू वेद पढ़। तब वह भैंसा अत्यन्त स्वच्छता और स्वरके साथ वेद पढ़ने लगा। जब उस भैंसेको वेद पढ़ते देखा तब समस्त आचारी कबीर साहबके चरणोंपर गिरे और अपना अपराध क्षमा करवाया।

### रविदासका झगड़ा

कबीर साहब तथा रविदासजीसे सत्संग हुआ। तब रविदा-सजीका पक्षपात करनेके निमित्त देवी तथा ब्रह्मा विष्णु शिव सब आये, कबीरसाहबने सबको परास्त कर दिया।

### जहांगस्तका वृत्तान्त

जहांगस्तशाह एक सिद्ध साधु था, और वह समस्त भारत की सैर किया करता था। उससे साधुओंने पूछा कि, तुमने कभी कबीरसाहबका दर्शन किया? तब जहांगस्तशाह काशीको चले। कबीर साहबने जान लिया कि, जहांगस्त शाह आते हैं। तब कबीर साहबने एक सूवर मँगाकर अपने द्वारपर

बँधवा दिया। जब जहांगस्तने दूरसे कबीर साहबकी कुटीको देखा और द्वारपर सूवर बँधा हुआ पाया तब बड़े क्रुद्ध हुए और झल्लाकर पलट पड़े। तब कबीर साहबने पुकारा कि, ऐ जहां-गस्त ! क्यों पलटे जाते हो ? मेरे समीप आओ। इतनी बात सुनकर जहांगस्तने मालूम कर लिया कि, कबीर साहबने जान लिया और मुझको पहचान लिया। तब उनके मनमें निश्चय हो गया कि, कबीर साहब कोई सिद्ध पुरुष हैं। वहां से पलटे और कबीर साहबके पास आकर कहने लगे कि, मैंने सुना था कि, कबीर साहब बड़े सिद्ध हैं इस कारण मैं आपसे भेंटके निमित्त आया था। आपने द्वारपर हराम बाँध रक्खा है, यह कैसी बात है ? यह बात सुनकर कबीर साहब ने उत्तर दिया कि, ऐ जहांगस्तशाह ! मैंने तो हरामको अपने घरके बाहर बाँधा है आपने हारामको अपने भीतर बाँध रक्खा है। फिर बाहर निकाल देना अच्छा कि,भीतर बाँध रखना अच्छा। कारण यह कि, क्रोध अहंकार मद आदि सब हराम हैं सो तुम्हारे भीतर हैं। जिसको तुमने हराम समझा है वह हराम नहीं बरन् क्रोध हराम है। इस शिक्षासे जहांगस्तशाह प्रसन्न हो गये संध्याका समय निकट आया तब जहांगस्तशाहने इच्छा प्रकट की कि, मैं मक्कामें निमाज पढ़ा चाहता हूँ। कबीर साहबने एक पलमें मक्कामें प्रवेशित करा दिया। यहां फिर सिद्धोंके बीच जहांगस्तसे जाया न जावे तब कबीर साहबने उनको वहां भी पहुँचाया, तब जहांगस्त अधीन हुए।

### रामदासको विष्णुदर्शन

रामदास नामक धनाढ्य एक ब्राह्मण जागीरदार था। वह दक्षिण देश नर्मदा नदीके किनारेपर रहता था। एकबार कबीर साहब

उसके गाँवके निकट भ्रमण करते हुए पहुँचे और विश्राम करनेके लिए नदी तटपर बैठे। जब रामदास स्नान करनेके निमित्त गया तो वहां कबीर साहबको बैठे देखा, तब उसने निवेदन किया कि, महाराज ! आप समर्थ हो मुझको विष्णु दर्शन करवाओ। तब कबीर साहबने उससे कहा कि कल दोपहरको विष्णु तुम्हारे घरपर जावेंगे। यह बात सुनकर रामदासको निश्चय हुआ कि, कबीर साहबका वचन हुआ है। अब विष्णु निश्चय कल मेरे घर आवेंगे तब उसने अपने घर जाकर बड़ी तैयारी की दूसरे दिवस घरको भली भाँति स्वच्छ और पवित्र कराया बिछोने इत्यादि बिछवाये और नाना प्रकारके स्वादिष्ट भोजन पकवाये। और सिंहासन इत्यादि रखकर प्रतीक्षा करते हुए बैठे कि, अब विष्णु महाराज आया चाहते हैं। कुछ कालके उपरान्त देखा तो एक भैंसा कीचड़से लत-पत आया और उस फर्शके ऊपर बैठ गया। तब रामदासको अत्यन्त क्रोध आया कि, इस भैंसेने फर्शको बिगाड़ दिया। सोंटा लेकर इस भैंसेको मार भगाया जब दिवस व्यतीत हो गया कोई नहीं आया। तब वह ब्राह्मण निराश हुआ। जब प्रातःकाल वह नदी स्नानके निमित्त गया तब फिर कबीर साहबको उसी स्थान पर बैठा देखकर कहा कि, महाराज ! मुझको विष्णु महाराजका दर्शन तो न हुआ आपकी बातें मिथ्या कैसे हुईं। तब कबीर साहबने कहा कि, ऐ रामदास ! मेरे कथनानुसार विष्णु तुम्हारे घर गये परन्तु तुमने अच्छी विष्णुपूजा की, सोंटे मारकर भगा दिया। यह बात सुनकर वह ब्राह्मण लज्जित तथा दुःखी हुआ। कारण यह कि, विष्णुका भक्त था इससे जान लिया कि, विष्णु भैंसाके सरूपमें थे।

### कमालीका प्रकट होना

कमालको कबीर साहबने मुरदासे जीवित किया तब शेखतकीने कहा कि, मैं इस लीलाको नहीं मानता कारण यह कि, यह लड़का सकते में था इस कारण जीवित हो गया—मेरी बेटी आठ दिवसोंसे कब्रमें मरी पड़ी है यदि आप उसको जीवित करें तब मुझे विश्वास हो । कबीर साहब सिकन्दर शाह और शेखतकी सहित उस लड़कीकी कब्रपर गये । वहां पहुँचकर कबीर साहबने पुकारा 'उठ शेखतकीकी बेटी' वह नहीं उठी; फिर कहा 'उठ शेखतकीकी बेटी, फिर भी वह न उठी तब तीसरी बेर कबीर साहबने कहा उठ 'कबीरकी बेटी' उस समय वह लड़की जीवित होकर कब्रसे निकल पड़ी । शेखतकी उसके जीवित होनेसे उसका हाथ पकड़कर अपने घरको ले चले; तब उस लड़कीने कहा कि, मैं तुम्हारे नामसे जीवित नहीं हुई हूँ—वरन् कबीर साहबके नामसे उठी हूं । अब मैं कबीर साहबकी बेटी हूं अब मैं इनके साथ रहा करूँगी, तुम्हारे गृहपर न जाऊँगी । वही लड़की कबीर साहबकी बेटी प्रसिद्ध हुई और उसका हृदय सत्यगुरुकी कृपासे प्रकाशित हो गया ।

### तेरह गाड़ी कागजोंका लिख जाना

बादशाहने तेरह गाड़ी सादे पुस्तकोंकी कबीर साहबके पास भेजी और कहा कि, मैं तब विश्वास करूंगा जब आप उन समस्त पुस्तकोंको ढाई दिवसमें लिख देवें । जब वे पुस्तकें कबीर साहबके पास पहुँची तब कबीर साहबने अपनी लाठी उन सब पुस्तकोंपर फेरकर कहा कि, इन लिखी हुई किताबोंपर क्या लिखें ? बादशाहको यह लीला देखकर विश्वास हो गया कि, कबीर साहबने उन ग्रंथोंको दिल्लीमें गड़वा दिया ।

ग्रन्थोंमें लिखा है कि, जब मुक्तामणि साहबका समय आवेगा और उनका झण्डा दिल्ली नगरीमें गड़ेगा तब वे समस्त पुस्तकें पृथ्वीसे बहिर्गत होंगी। सो मुक्तामणि साहबका अवतार वंशकी तेरहवीं पीढीमें होगा। तब वंशगुरुगद्दी दिल्लीमें स्थिर होगी।

### सर्वानन्दका वृत्तान्त

सर्वानन्द ब्राह्मण भारतवर्षके समस्त नगरोंमें जाकर और पंडितोंके साथ शास्त्रार्थ करके विजयी हुआ था। कोई पंडित जब उसके सामने न ठहरा तब वह अपने घर आया और अपनी मातासे कहा कि, हे मातः! अब तुम मेरा नाम सर्वजित् रक्खो और मेरे माथे पर विजय तिलक कर दो। क्योंकि, अब मेरा सामना करनेको कोई पंडित नहीं रहा। तब माताने कहा कि, ऐ पुत्र! तूने काशीमें जाकर कबीर साहबके साथ भी वाद-विवाद और सामना किया था? तब उसने कहा कि, नहीं। तब माताने कहा कि, जबलों तू कबीर साहबपर विजयी न होगा तबलों तेरा नाम सर्वजित् नहीं रक्खूंगी। तब सर्वानन्दने कहा कि, कबीर कैसा बड़ा पंडित है। मैं अब चलकर उसके साथ वाद विवाद करता हूं। और बहुतसे ग्रन्थ और वेद इत्यादि लादकर काशीमें कबीर साहबके पास पहुँचे। कबीर साहबने कितनी लीलाएँ दिखलाई तो भी सर्वानन्दको निश्चय नहीं हुआ। अन्तमें सर्वानन्द कबीर साहबके साथ वाद विवाद करने पर उद्यत हुए। सर्वानन्दने श्लोकोंकी झड़ी लगा दी; यद्यपि कबीर साहब समझाते पर वह न मानते। बात बात पर श्लोक, प्रमाण, तथा पुस्तकोंकी साक्षी देते। तब कबीर साहबने देखा कि, इसके पीछे तो घमंडका भयानक रोग लगा है, यह

कदापि न हटेगा और न कहना मानेगा। तब कबीर साहबने कहा कि, ऐ सर्वानन्द अब तुम्हारी क्या कामना है और किस बातके इच्छुक हो ? तब सर्वानंदने कहा कि, मेरी विजय लिख दो तब कबीर साहबने कहा कि, मैं तो लिखना नहीं जानता तुम स्वयम् लिख लो तब सर्वानन्दने लिख लिया कि, कबीर साहब हार गये और सर्वानन्द जीत गये। भली भांति लिखकर तथा वह विजय पत्र कबीर साहब तथा अन्यान्य लोगोंको दिखलाकर अपने घरको चले और आनकर अपनी मातासे कहा कि, माता मैं कबीर साहबसे वादविवाद करके उनपर विजय पा गया हूँ। तब माताने कहा कि, ऐ पुत्र ! मुझको तो विश्वास नहीं होता कि, तुम कबीर साहबपर विजयी हुए हो। तब सर्वानन्दने कहा कि, मैं विजयपत्र लिखवा लाया हूँ तू देख ले। तब माताने कहा कि कागज निकालो। जब कागज निकाला और पढ़ा तो उसमें लिखा था कि सर्वानन्द परास्त हो गए और कबीर साहब विजयी हुए। यह लिखा देखकर आश्चर्यान्वित हुए कि, यह तो मेराही लिखा था यह उलटा कैसे हुवा। कदाचित् मैं लिखनेमें भूल गया और मातासे कहा कि मातः ! मैं लिखनेके समय भूल गया अब पुनः जाता हूं और अत्यंत सावधानीपूर्वक ले आऊंगा। तब सर्वानन्द पुनः कबीर साहबके पास आये और कहा कि, मैं लिखनेमें भूल गया अबकी बेर सँभाल कर लिखूँगा। तब कबीर साहबने कहा कि भली प्रकार सँभालकर लिखो तब फिर सर्वानन्दने उसी विषयको भली प्रकार संभालकर लिखा और अपनी माताके समीप आकर प्रकट किया कि अब मैं सँभाल कर लिख लाया हूं। जब कागज खोला तो वही पूर्वकी बात लिखी पाई कि, कबीर साहब विजयी हुए तथा सर्वानन्द

परास्त हुए। जब इस प्रकार तीन बेर हुआ तब सर्वानन्दको निश्चय हो गया कि, निस्सन्देह कबीर साहब ईश्वर हैं और चरणों- पर आन पड़े और शिष्य हो गए। कबीर साहब तथा सर्वान- न्दका विवरण भिन्न भिन्न स्थानोंमें लिखा है।

### चौरासी सिद्धोंका परास्त होना

एक स्थानपर नव नाथ चौरासी सिद्ध कबीर साहब तथा नानक साहब सहित एकत्रित थे। उस समय एक महाजन जो नानक साहबका परिचयी अथवा सेवक था जा पहुँचा, तब उसने विचारा कि, सन्त गुरुके समीप विना कुछ लिए जाना उचित नहीं कुछ भेंटके निमित्त ले चलना उचित है। तब उसने अपनी जेबमें हाथ मारा पर कुछ न पाया, परन्तु एक तिल उसके वस्त्रोंमें मिला। तब उसने उसी तिलको नानक शाहके समक्ष रक्खा-तब नानक शाहने कबीर साहबसे कहा कि, मैं इस तिलको इतने साधुओंमें किस प्रकार बांटूं-तब कबीर साहबने कहा कि, इस तिलको जलमें घोटकर सकल साधुओंमें बांटो तब नानक शाहने कहा कि, यहां तो जल भी नहीं है, किस प्रकार घोटें। यह बल आप ही में है इसको बांटिये। तब उस स्थानपर एक शुष्क नदी थी, उसको कबीर साहबने जारी किया और उसमेंसे जल भरकर उस तिलको घोटा और सब साधुओंको पिलाया और उसके पीनेसे अत्यन्त आनंद आया और उन्होंने कहा कि, कबीरजी मांगो जो मांगो सो हम लोग आपको देंगे। तब कबीर साहबने कहा कि, तुम लोग तो दरिद्री जान पड़ते हो मैं तुमसे क्या मांगू और तुम मुझको क्या देंगे? तब उन लोगोंने कहा कि जो कुछ तुम मांगोगे सो हम तुमको देंगे। तब कबीर साहबने कहा पांच पैसेभर दरिद्रता

मुझको दो। तब नवनाथ चौरासी सिद्धोंने परामर्श किया कि, यह गुण तो हम लोगोंमें नहीं कारण यह कि, हम लोगोंको तो अपनी सिद्धि और जप तपका घमंड है। चलो ब्रह्मासे पांच पैसे-भर दरिद्रता मांगें। तब ब्रह्मलोकमें गए और पांच पैसेभर दरिद्रता ब्रह्मासे मांगी। ब्रह्माने शोच समझकर उत्तर दिया और कहा कि मेरे पास दरिद्रता कहां मैं तो इस बातका अहंकार करता हूं कि, मैं सृष्टिका उत्पन्न करता हूं यह अहंकार मुझमें है। तब नवनाथ और सब सिद्ध कैलासको शिवजीके पास गए और वही प्रश्न किया तब शिवजीने भी वही उत्तर दिया कि, मुझमें दरिद्रता तो नहीं, कारण यह कि, मुझमें तो यह अहंकार है कि, मैं नष्ट करता हूं तब सब ओर ढूंढ़ते ढूंढ़ते थके परन्तु दरिद्रताको कहीं न पाया। अन्तमें विष्णुके पास गए और दरिद्रताके निमित्त प्रार्थना किया तब विष्णुने कहा कि, ऐ सिद्ध साधु पांच पैसेभर दरिद्रता अथवा जो कुछ दरिद्रता है सो सब कुछ उसीके पास है जिसने तुमको भेजा है। मेरे पास तो केवल तीन पैसेभर दरिद्रता है, जिसके कारण मैं समस्त संसारका रचयिता कहलाता हूं, दरिद्रताके समूह तो स्वयम् कबीर साहब हैं, और दूसरा कोई नहीं। तब समस्त सिद्ध साधु कबीर साहबके पास पलट आए-और आपको दण्डवत् तथा प्रणाम करके प्रदक्षिणा किया। और समस्त वृत्तांत प्रकट किया। तब कबीर साहबने कहा कि, क्या मैंने तुमसे इतः पूर्व ही न कहा था कि, तुम लोग तो दरिद्री हो तुमसे क्या मांगूं।

## नानक बोध

कबीर साहब नानक साहबके निकट पञ्जाब देशमें आए तब नानक शाह अत्यंत आवभगत तथा सन्मान सहित उनसे

मिले और कहा कि, जिस सेवाके निमित्त आप आज्ञा देवें उसको मैं करूँ । तब कबीर साहबने आज्ञा दिया कि, पाँच दिवसकी उत्पन्न हुई बछियाके स्तनसे दूध दुहकर मेरा कमण्डलु भर दो-तब नानक शाहने कहा कि, पांच दिवसोंकी उत्पन्न हुई बछिया कैसे दूध दे सकती है ? तब कबीर साहबने कहा कि, यही मेरी सेवा है तुम करो । तब नानकशाहने ढूँढ़ ढाँढ़ कर पाँच दिनसोंकी उत्पन्न हुई बछियाको उपस्थित किया, जब दूध लेनेको उसके समीप गए, तब वह बछिया लात चलाकर भाग गई । तब नानकशाहसे कबीर साहबने कहा कि, अब तुम जाओ और मेरे नामसे उस बछियासे दूध माँगो-और कमण्डलु उसके स्तनके नीचे रख दो । नानकशाहने बछियाके स्तनके नीचे कमण्डलु रखकर कबीर साहबके नामसे दूध माँगा और बछियाके स्तनसे आपसे आप इतना दूध निकला कि वह कमण्डलु भर गया । तब कबीर साहबने नानक साहबसे कहा कि, ऐ नानकजी ! आपने वंदना तो बहुत की परन्तु अभीलों आपकी कमाईमें त्रुटि है । और आपका पंथ चलेगा और बहुत लोग आपकी आज्ञामें चलेंगे और भविष्यत्में ये रंग ढँग होंगे । और नानकशाहसे कबीर साहबने बहुत कुछ कहा-और इसी ग्रन्थमें नानक शाहके विषयमें भविष्य वाणी है । और नानक धर्म्मका विवरण किया जो भविष्यत्में होनेवाला है । और इसी स्थानपर यह साखी है । "तिल घोंटतारे लगे" इत्यादि है और इसी स्थानपर यह है ।

ऐसो दाता सत्य कबीर, सूखी नदी बहावे नीर ।
भूखेको खिलावै खीर, नंगेको पहनावे चीर ॥

इत्यादि महाराजा श्रीरामचन्द्रजीको कबीर साहब ( मुनीन्द्रजी ) ने योगयुक्ति सब कछु सिखलाया और सीताके चुराये जानेके समय अत्यंत कठिनता उपस्थित हुई और समुद्रोल्लंघन करना अत्यंत कठिन था-तब रामचन्द्रजीपर कबीर साहबकी दया हुई। और पत्थरोंपर सत्य नाम लिखा उसके कारण बहुतेरे पर्वत तथा पत्थर पैरने लगे। और पुल प्रस्तुत हो गया। और इसी साहबकी दयादृष्टिके कारण लंका पर विजय पाकर मंगलपूर्वक अपने घर पहुँचे। देखो ग्रन्थ ज्ञान संबोध तथा अन्यान्य ग्रंथोंमें।

### कबीर साहबका बांसुरी बजाना

कृष्णचन्द्र बाँसुरी बजाते और गोपियोंका मन चुरा लिया करते थे जब कबीर साहबने बाँसुरी बजाया तब तीनों लोक मोह गये। और जड़ चैतन्य सभी मोहित हो गए। और यमुना नदीका जल स्थिर हो गया। और स्थावर जंगम सभीको आनन्द आया वह बाँसुरी ऐसी बजी कि, फिर कभी न बजी। लोगोंने जाना कि, कृष्णचन्द्रने बजाया था। गोप तथा गोपियोंकी बड़ी कामना थी कि, वैसी वंसी पुनः बजे, परन्तु वह फिर किस प्रकार बजे ? उस बाँसुरीके बजाने वाले तो कृष्ण नहीं थे उसके बजानेवाले तो कबीर साहब थे और इस बाँसुरीकी प्रशंसा हंस कबीर किया करते हैं, जिनको इसका ज्ञान है।

### गोरखको जीतना

जब प्रथम कबीर साहब और गोरखनाथका सामना हुआ और गोरखनाथ कबीर साहबकी श्रेष्ठता कीर्तिसे अनभिज्ञ थे तब गोरखनाथने कबीर साहबसे कहा कि, आओ हम

तुम वादविवाद करें। उस समय गोरखनाथने अपना त्रिशूल गाड दिया और कहा कि, आओ कबीर साहब उस त्रिशूलकी एकशाखापर आप बैठो और एकपर मैं बैठता हूं, तब वादविवाद करें। तब कबीर साहबने सूतके एक तारको अकाशकी ओर चलाया और शून्यमें उस सूतके ऊपर जा बैठे और कहा कि, नाथजी ! आओ हम और तुम इस सूतपर बैठकर वाद विवाद करेंगे, तुम्हारा त्रिशूल तो पृथ्वीसे लगा हुआ है कबीर साहबकी यह लीला देखकर गोरखनाथ दंग हो गये।

गोरखनाथजीने कबीर साहबसे कहा कि, मैं छिपता हूँ आप मुझको ढूँढ़ निकालो, तब गोरखनाथ मेंड़क होकर जलमें छिप रहे। तब कबीर साहब उस मेंडकको पकड़ लाये और कहने लगे कि, अब किधर जाओगे ? तब गोरखनाथ पुनः अपने प्राकृतिक स्वरूपमें आयेंगे ? तब कबीर साहबने कहा कि, अब मैं छिपता हूँ तुम ढूँढ लो। तब कबीर साहबने जलमें डुबकी मारी और जल होकर जलके साथ मिल गये और गोरखनाथ ढूँढ़ते २ थके और तीनों लोकमें ढूंढ़ते फिरे परन्तु कहीं पता नहीं लगा तब विवश हो बैठे। जब कबीर साहबने देखा कि, अब तो गोरखनाथ हारके बैठ गये तब कमण्डलुके जलमेंसे कबीर साहब प्रकट हो गये।

गोरखनाथने कबीर साहबके मारनेके निमित्त दो सर्प भेजे वे दोनों साँप कबीर साहबके पास आये और आपने उन दोनोंको अपने शरीरमें लगा लिया, जब बहुत विलंब हुआ और वे सर्प पलटकर नहीं गये तब स्वयं गोरखनाथ कबीर साहबके गृहपर पधारे और पुकारा कि, कबीर साहब ! बाहर आइये

तब कबीर साहबने भीतरसे उत्तर दिया कि, नाथजी मेरे गृह दो अतिथि आये हैं, मैं सेवा सत्कारमें लगा हुआ हूं। तब गोरखनाथने जाना कि, कबीर साहब कैसे प्रतिष्ठित पुरुष हैं और आपमें कैसी क्षमा तथा संतोष है। प्रथम तो गोरखनाथने कबीर साहबसे बहुत वाद विवाद किया और बहुत कौतुक देखे जब भली प्रकार जान लिया कि, आप अद्वितीय हैं और मनुष्यमात्रमें दूसरा ऐसा कोई नहीं और कबीर साहबने गोरखनाथका भली प्रकार संतोष किया और बहुत कुछ कहा और सब कौतुक दिखलाये और गोरखनाथको भलीप्रकार निश्चय कराया कि, कबीर साहब स्वयं अलख अविनाशी हैं तब सत्यगुरुके चरणोंपर गिरे और शिष्य होकर परम गतिको पहुंचे और योग युक्ति सबको व्यर्थ समझा।

### सिद्ध बना देना

जब कबीर साहबने कमालीके मस्तकपर हाथ रक्खा तब उसका हृदय प्रकाशित हो गया और उसपर आरंभसे अन्त-पर्यंत समस्त समयोंका वृत्तान्त प्रकट होगया और उसकी जिह्वासे ज्ञानके फौव्वारे छूटे और सब वृत्तांतोंका विवरण करने लगे और जब कब्रसे बाहर आतेही उसका हृदय प्रकाशित हो गया तब वह यह शब्द बोली।

### कमाली वचन शब्द

हंसा निकल गया मैं न लडीसी।
पांच सहेली संग हैं मेली, पांचों मेंसे मैं अकेली खडीसी॥
नौ दरवाजे बन्द करलीने, दशवीं मोरी खुली जो पडीसी॥
न मैं बोली न मैं चाली, ओढ़े दोपट्टा किनारे खडीसी॥
कहत कमाली कबीरकी बालकी, सादीसे मैं कुमारी भलीसी॥

इसी प्रकार माई आमीन जो धर्मदास साहबकी स्त्री थी उसके शिरपर जो कबीर साहबने हाथ रक्खा उसकी जिह्वासे ज्ञान-सोता बहने लगा और सब वृत्तांत कहने लगी ।

आमीन बचन शब्द

साधो नाम सबनसे न्यारा लखि पुरन गुप्त विस्तारा ।
जानेगा कोइ जाननहारा ॥
जब नहीं अंशवंश निर्मायो, नहिं कछु किया पसारा ।
चर औ अचर चराचर नाहीं, नहिं मनको विस्तारा ॥
जब नहिं पुरुष नहीं तब ज्ञानी, यह मत सबसे न्यारा ।
जब नहिं पांच अमी निर्माया, नहिं सोहंग विस्तारा ॥
धर औ अधरधराधर नाहीं, नहीं पुरुषकी काया ।
तब नहिं पूरम नहिं जल रंगी, नहिं तब जलकी छाया ॥
धूप दीपलीला दहजा हैं, नहिं अदली औ तारा ।
करमन कहै सुनो धर्मदासा, यह मत सबसे न्यारा ॥

इसी प्रकार रानी इन्द्रमती राजा चन्द्रविजयकी जो रानी थी मंदोदरी राजा रावणकी स्त्री माणिकमती राजा वीरसिंहकी स्त्री । लीलावती पुरती राजा योगधरकी पचास स्त्रियां, राजा अमरसिंहकी रानी, मीराबाई राजा उदयपुरकी रानी, क्षेम श्रीग्वालिन, और वह अनगिनत स्त्रियां जिनके माथेपर कबीर साहबने हाथ रक्खा वे सब परमधामको गयीं ।

कबीर साहबका उपदेश

तीन कालके जितने धर्मके अगुवा हैं और हुए, तथा होंगे उन सबसे कबीर साहबकी शिक्षा पृथक् है-इस शिक्षाका मुख्य अभिप्राय यही है कि, गर्भका आवागमन बंद हो जावे । इस आवागमनका बड़ाभारी दुःख है । जिस शिक्षा तथा धर्मसे

बारम्बार जन्म और मृत्युका दुःख दूर हो वही मनुष्यका धर्म है। और उसी गुरु तथा शास्त्रको धारण करना मानुषिक बुद्धिका कर्तव्य है। जो कोई मनुष्य देह पाकर मुक्तिमार्ग न ढूँढे वह महा अभागा है। कारण यह कि,वह पुनः ऐसा समय न पावेगा और सदैव भवसागरमें डुबकियां खावेगा। योगमुक्ति तथा समस्त तंत्र मंत्र बंधनके प्रधान कारण हैं। यदि योग समाधिसे योगी अमर होता तो फिर कदापि कोई योगी न मरता। संन्यासी जो ब्रह्मके ध्यानमें रहते हैं सो ब्रह्म उनका भ्रम है सो संन्यासी भ्रमरूप होकर आवागमनमें पड़ा रहता है, सो ब्रह्म उनका भ्रम होकर भ्रममें फँसे रखते हैं। ब्रह्मा विष्णु शिव सनकादिक इत्यादि सब भ्रम नदीमें पड़े डुबकियां खारहे हैं इस भ्रमकी कोई सीमा नहीं है।

स्वयम् वेदके विना पढ़े किसीकी मुक्ति नहीं होती जो कोई ध्यानपूर्वक पढ़े और उसके विषयोंपर विचार करे और स्वसम्वेदकी आज्ञाओंपर भली भांति दृढ हो और समस्त मिथ्याओंसे पृथक् हो सो मनुष्य है और वही कालपुरुषके पञ्जेसे छुटकारा पावेगा। कंजूस, व्यभिचारी पुरुषको स्वसम्वेद पढ़नेसे किसी प्रकारका लाभ नहीं है।

अपने गुरुके स्वयम् सत्य पुरुष करके जानना और गुरुके मुँहसे स्वयम् सत्यपुरुष खाता पीता है और गुरुके शरीरसे वस्त्रादि पहनता है जिसको गुरुकी बातपर विश्वास न होवे और जिसके मनमें घमंड हो तथा जिसके मनमें नम्रता न हो तो वह नरकमें जावेगा। सेवा सब पुण्योंसे बढ़ा चढ़ा पुण्य है। सेवाका कर्तव्य सबके ऊपर है जो गुरुकी सेवाका कर्त्तव्य पूर्ण करेगा उसका हृदय प्रकाशित होगा और उस गुरुकी ही

मूर्तिसे पारख गुरु निकलकर उसकी समस्त कामनाओंको पूर्ण करेगा और कोई अपने गुरुके प्रतिका कर्त्तव्य न पालन करे और उससे अपने प्रतिका कर्त्तव्य पालन करावे और उसकी दी हुई वस्तुओंको मांगे तो वह चोर और ठग है। एक अवस्थामें गुरुकी सेवा न मांगी जावेगी जब कि, मनुष्य भली भांति डुबा रहे और दिनरात वंदनामें संलग्न हो जावे और किसी अन्य ओर ध्यान न हो और अपने शरीरकी चिंता भी न हो तब गुरुसेवा क्षमा होगी और गुरु उसकी वंदनाका भागी होगा। जबलों ऐसी अवस्था न हो तबलों गुरुसेवासे यदि अपनेको न बचायेगा तो उसके मनमें तेज न चमकेगा, इस कारण समस्त जीवन गुरुकी सेवा तथा उसकी आज्ञामें रहना उचित है। कारण यह कि, गुरुके प्रतिका कर्त्तव्य कभी किसीसे पूर्णरीतिसे निबह नहीं सकता। केवल एक नामके प्रतिफलमें तीनों लोकोंमें कोई वस्तु नहीं हैं जो दी जावे। गुरु ही धर्मकी जड़ है और जड़के सींचनेसे डाल पात सब हरे होते हैं और निश्चयके वृक्षमें सब फल फूल लगते हैं।

कंजूसकी मुक्ति कभी नहीं होती यह कंजूस बहुत बड़ा शैतान है यह जिसके मनमें प्रवेशित होता है वह जीवित श्मशानीभूत है। यह एक घृणा उत्पादक लत है और इससे स्वयम् परमेश्वरको घृणा होती है और समस्त पीर पैगम्बर तथा सिद्ध साधु इसको बुरा जानते हैं। किसी प्रकारकी वंदना तथा सेवा मनुष्य करे परन्तु एक कृपणता ऐसी वस्तु है जिससे वह सब विनाश हो जाती है। और कंजूससिद्धकी समस्त सिद्धि धूलमें मिल जाती हैं।

साखी–कामी तो बहूतै तरे, क्रोधी तरे अनन्त ।
लोभी जिवडा ना तरै, कहैं कबीर सिधन्त ॥

साधुओंकी सेवा बहुत बड़ी पूजा है और भक्ति तथा मुक्तिकी देनेवाली है । और जो कोई साधुओंको भोजन इत्यादि देता है और उनकी आवश्यकताकी वस्तुओंको एकत्रित कर देता है उसकी समस्त कठिनाइयां और पाप दूर होते हैं और साधुओंकी कृपासे समस्त पदार्थ प्राप्त होते हैं और साधु समस्त युक्तियां बतलाते तथा समस्त अच्छे कार्योंको सिखलाते हैं और साधु नरकसे बचाते और वैकुण्ठको खींचकर ले जाते हैं और ज्ञान तथा मुक्तिकी समस्त युक्तियां समझाते हैं और समस्त भ्रम और धोखेको पृथक् कर देते हैं और साधु सत्यपदमें लगाते हैं और साधु समस्त संसारके पदार्थपर आज्ञा करते हैं। और साधु समस्त दुःख संतापका अपहरण करते और साधु समस्त पातकसे पृथक् हो जाते हैं और साधु तो अनेक हैं परंतु वह साधु जो समस्त भ्रम तथा धोखेको दूर कर दे और सत्य पदसे लगावे उस साधुसे विशेष प्रेम करना और उसीकी वंदना तथा सेवासे उसकी हार्दिक मना पूर्ण होगी । रोटी कपड़ा इत्यादि आवश्यकीय वस्तुओंका देना और मानसंभ्रम तो समस्त साधुओंका करना चाहिये परंतु विशेषतःवह साधु जो अपने स्वरूपमें मिलनेका मार्ग बतलावे वही साधुशिरोमणि है । साधुके विवरणसे बाहर है । साधुओंकी सेवा तथा आज्ञापालन सौभाग्यके लक्षण हैं, वे बड़े बड़भागी हैं सो जो साधुओंकी संगत करते हैं साधुओंको भोजन देना बड़े पुण्यकारक कार्य हैं उसके समान अन्य कार्य जगत्में नहीं है। और साधुओंको वस्त्र देनेसे समस्त दुःख निवारण होते हैं । और जबतक साधुओंके शरीरपर

वस्त्र रहता है तबतक देनेवालेकी समस्त आपत्तियाँ उससे दूर रहती हैं। साधुकी सेवासे समस्त बंधनोंसे मुक्ति होती है। यदि साधुकी दया न हो तो कोई मनुष्य गतिको प्राप्त न होगा। साधुओंकी दयासे मनुष्य धर्म तथा संसारकी समस्त विद्या और बुद्धि प्राप्त करता है। कितनेक साधु ऐसे भी हैं जो सत्य पुरुषकी भक्तिसे भटकाते हैं और काल पुरुषकी भक्तिमें लगा देते हैं। सो उनकी शिक्षा और बातोंसे पहचान लेना चाहिये। ऐसा न हो कि, उनके धोकेमें आ जावें। वे साधु कालपुरुषके दूत हैं उनसे सावधान रहना और जिस साधुमें अपने गुरुका ज्ञान और उसकी शिक्षा देखना उसकी मर्यादा तथा सेवा अपने गुरुके समान करना और धोखा घड़ी देनेवाले साधु अपनी वार्तालापसे पहचाने जाते हैं।

सत्य पुरुषकी भक्तिके अतिरिक्त और समस्त भक्तियां जाल तथा बंधनमें डालनेवाली हैं। कालपुरुषका विष ब्रह्मा विष्णु और शिव सनकादिकसे लेकर समस्त जीवोंमें समाया हुआ है। बिना सत्यगुरुकी दयासे कोई सत्य पदमें लग नहीं सकता है, समस्त शरीर तथा नक्षत्रोंमें काल पुरुषका विष छिपा हुआ है। जिसको सत्यगुरु अपनी ओर दया करके खींचे वह आवे और दूसरेमें क्या सामर्थ्य है कि, यमके नीचेसे निकल सके धर्मरायके मंत्रने समस्त मनुष्योंकी बुद्धिको अंधी कर रक्खा है और किसीको इस विषयका ध्यान तथा सोच नहीं कि, मैं जान बूझकर क्यों कुएँमें पडता हूं मेरे पुरुषा तो सब इसी धोकेमें पड़कर मरे, मैं इस अंधकारमय पथपर क्यों चलूं। इनकी बुद्धि डुबकियां खारही है और सत्यको मिथ्या तथा मिथ्याको सत्य मान रही है। और छुटकारेको बंधन तथा बंधनको

छुटकारा मान रही है। इनकी बुद्धि तथा इनका चित्त ठिकाने नहीं है। इनकी बुद्धि तथा पाशविक बुद्धिमें मनुष्यताका लेश-मात्र नहीं है।

चार वेद तथा चार पुस्तकें ये आठों काल पुरुषके जाल हैं। इस जालमें फँसाकर उसने समस्त मनुष्योंको मार लिया और मनुष्योंको उसने ऐसा धोखा दिया कि, जितने नाम सत्य पुरुषके थे वे सब अपने नाम प्रकट किये। और सत्य पुरुषके धोखेमें समस्त मनुष्य कालपुरुषकी बंदनामें लगे और काल-पुरुषने सत्यपुरुषका नाम छिपाया और यह भेद ब्रह्मा विष्णु और शिवसे भी नहीं कहा इस धोखेसे समस्त मनुष्य इस शिकारीके शिकार हो गये। जो कोई चार वेद तथा चार पुस्तकों से पृथक् होगा उसको सूक्ष्म वेदकी ज्ञान प्राप्ति होगी। जिनका प्रेम पुरुष्म वेदसे है वे स्वसम्वेदसे कैसे प्रेम कर सकते हैं।

विष्णुको तीनों लोकोंकी सरदारी तथा अधिकार मिला है उसीके अधीन सब हैं। निर्गुण निरञ्जन और सगुण विष्णु यही समस्त लोकोंके रचयिता तथा कर्ता धर्ता हैं, तीनों लोकों-में विष्णु सम्यक् रूपसे उपस्थित रहते हैं। दोनों रूपसे निरंजन तीनों लोककी ठकुराई करता है।

तीनों लोक भवसागरका ठीकादार निरंजन है। और सत्रह असंख्य चौकड़ी युगका उसका ठीका है इतने समयपर्यन्त तो बिना पारख गुरुके कोई मुक्ति नहीं पावेगा। जब ठीकाकी यह सीमा बीत जायगी तब अक्षर पुरुषके राज्यका समय आवेगा। इस राज्यमें समस्त जीवोंके छुटकाराकी आशा होगी।

प्रथम स्वसम्वेद ब्रह्मसृष्टिमें था। जब कालपुरुषने भरमाया सृष्टिकी रचना की तब उसमेंकी निकृष्ट बातोंको निकालकर

पुरुष्मवेद बनाया और इस पुरुष्म वेदमें अपनी मत्यनुसार समस्त सृष्टिको उपदेश दिया और अज्ञानी लोग इस पुरुष्म अर्थात् पराकृत वेदको अपने धर्मका मार्ग और मोक्षकी निसेनी समझने लगे। तब निरंजनने अपनी सन्तानको पृथ्वीपर भेजना आरंभ किया और सहस्रों ऋषि मुनि पीर पैगम्बर पृथ्वीपर आए। और काल पुरुष निर्गुण तथा सगुणकी भक्ति सिखलाते चले आए और इन ऋषीश्वरोंमें सहस्रोंने अपना नवीन ढंग निकाला और वेदकी शिक्षाको अरुचिकर समझकर दूसरा पंथ बतलाया। वह भी काल पुरुषके फन्देमें फँस मरे और किसीने बिना पारख गुरुके सत्य लोकके पथको नहीं पाया।

जो कोई किसी जीवका रक्तपान करेगा उसका प्रतिशोध अवश्य देना पड़ेगा। जो कोई किसीको दुःख देवे अथवा मांसाहारी हो वह भी निश्चय दुख पावेगा और अपना मांस उसको खिलावेगा किसीका प्रतिशोध कदापि नहीं छोड़ेगा।

मांसाहारी तथा मद्यप कदापि मुक्ति नहीं पावेगा जो पुरुष मुक्तिके इच्छुक हैं उनको सम्यक् प्रकारसे स्वच्छ तथा पवित्र होना चाहिये।

गृहस्थके निमित्त अपनी स्त्रीके अतिरिक्त समस्त दूसरी स्त्रियोंके साथ संभोग करना महापापकी गणनामें है और साधुके निमित्त विवाहिता अथवा विनविवाही दोनोंसे संभोग निषेध है।

गुरुकी आज्ञोल्लंघनके समान मनुष्यके निमित्त और कोई महापाप नहीं है।

सत्यगुरुकी शरण सब जीवोंके निमित्त सुखदायी है। उसीकी शरणमें समस्त पातक क्षमा हो जावेंगे। इस कलियुगमें गुरुके

प्रतिका कर्त्तव्य कौन पूर्ण कर सकता है। परन्तु सत्यपुरुषको अपने शरणकी लज्जा है उसकी शरण आकर धर्मपर स्थिर रहो। जो धर्म्मविमुख हुवा वह निर्दयी तथा घातक शैतानके जालमें फँसा। सत्यगुरुके शरणपर पूर्णतया निर्भर रहना और यह समझे कि, सत्यगुरु मेरे अपराधोंको क्षमा करेगा मेरी ओर नहीं वरन् अपनी दयाकी ओर दृष्टिपात करेगा कारण यह कि उसका नाम पतितपावन है।

घमंडी तथा द्वेषीको सत्यपुरुषकी भक्ति कदापि नहीं प्राप्त होगी जो मनुष्य बड़ाई और उग्र श्रेणी पाकर नम्र हो गए तथा अपना शीश नवा दिया और धन पाकर दान तथा साधु सेवाको ग्रहण किया, उनके निमित्त भक्ति और मुक्तिका द्वार खोला जावेगा। वह मनुष्य जिसने ऐसा ध्यान किया कि, मैं तुच्छ सेवक हूं और जितनी मूर्तियां हैं, सब मेरे अधीन और सत्य गुरु हैं। और सब जीवोंमें उसकी कान्ति जाने तो मुक्तिका अधिकारी है।

मैं अपने कार्योंका अधिकारी नहीं बरन् सत्यगुरुसे सहायता माँगते रहना कि, वह मेरी मनकामना पूर्ण करें और भले कार्योंमें सदैव उद्योग करते रहना।

मैं नहीं जानता कि, मैं क्या हूँ और मेरा परमेश्वर क्या है, इस कारण सत्यगुरुपर पूर्णतया निर्भर रहना कि, जब वह मुझको दृष्टिप्रदान करेगा तब मैं जानूँगा।

कालपुरुषके जितने धर्म्म पृथ्वीपर प्रचलित हैं, सबमें वैष्णव धर्म्म श्रेष्ठ—और सबका सरदार है। यह सतोगुणी धर्म्म है। इस धर्म्मके नियम तथा इसकी आज्ञाएँ सत्यपथकी सीढ़ी हैं और सत्यपथ परम धामकी सोपान है।

सत्यगुरु कबीरका नाम बंदीछोर है। और वह सर्वाधिकारी है जिसको चाहे मुक्ति प्रदान करे, जिसको इस बातका पूर्णतया विश्वास हो गया उसका बेड़ा पार हुआ।

सत्यपुरुष और कबीर साहबको जिसने एक जाना उसका बंधन टूट गया और कालके पञ्जेसे छूट गया। तन मन धन गुरुके अर्पण करना तो भलाईका निचोड़ है, परन्तु अपनी कमाईसे दशवाँ भाग देना गुरुका हक है। बुद्धिमान् पुरुषही मुक्तिका भागी होता है।

जो कोई मनुष्यताकी श्रेणी प्राप्त करने योग्य है, उसीमें बुद्धि होती है। पशु सुन्दर मनुष्य हैं-उनमें बुद्धि नहीं होती है।

पारख गुरु प्रत्येक स्थानोंपर उपस्थित है, परन्तु जबलों उसके पथमें अपनेको मैं न्योछावर न करूं तबलों उसका दर्शन न होगा।

सब झूठे झूठोंके साथ मिलते हैं-जो कोई सत्यका प्रेमी होगा वह झूठेके साथ कभी योग नहीं देगा।

यह तीनों लोक विषवृक्षका फल है। और प्रत्येक वस्तु प्रत्येक खाना तथा मकानमें विष भरा हुआ है बिना सत्यगुरु-की भक्तिसे वह विषयोंसे बहिर्गत नहीं होगा और न किसी अन्य युक्तिसे पृथक् हो सकता है।

जान बूझकर विष खाना मनुष्यताके विरुद्ध है। आप सत्य पुरुषकी भक्ति करना और दूसरोंसे करवाना और करते देखकर प्रसन्न होना-वंदना है।

प्रत्येक मनुष्य बिना जाने बूझे अपने २ धर्म्मकी ओर खींचता और द्वेष करता है। परन्तु मनुष्य वह है कि, जो द्वेषरहित होकर वह धर्म ढूँढ़े जिससे उसके आवागमनका मार्ग एकबारगी ही बंद हो जावे।

मनुष्यके चार चक्षु हैं परन्तु पशु चारों चक्षुसे अंधे हैं, यद्यपि उनकी आँखें प्रत्यक्षमें खुली हुई हैं, तो भी वे अन्धे माने जाते हैं। इस कारण कि वे देखकर भी घातक मार्गसे नहीं टलते । इस कारण वस्तुतः वे पशु मनुष्यके स्वरूपमें हैं ।

पशुओंकी मानवी शिक्षा रुचिकर नहीं होती-जैसे चोर, डाकू, व्यभिचारी इत्यादि सत्संग तथा सत्य पथसे भागता है ।

सत्यपुरुषके जो अंकुरी जीव हैं वे सत्यगुरुकी शिक्षा सुनकर ऐसे दौड़कर मिलते हैं-जैसे लोहेसे चुम्बक चिपट जाता है । और जो काल पुरुषके जीव हैं उनपर सत्यपथकी शिक्षाका कुछ प्रभाव नहीं पड़ता है।

दान, वीरता, न्याय और धर्म्म इन चारों गुणोंकी शिक्षा सब लोग करते हैं, परंतु सत्यगुरुके साथ नहीं करते, इस कारण उनकी कामना पूर्ण नहीं होती ।

यह कलियुग अत्यन्त कठिन समय है। इसमें पापीकी ओर तो तुरत मनुष्योंकी रुचि होती है और पुण्यसे दूर भागती है, ऐसी अवस्थामें सत्यगुरुके शरणके अतिरिक्त और कोई दूसरा उपाय नहीं है।

हलालके भोजनसे हृदयकी स्वच्छता होती है ।

जो कोई न्यायी बादशाहके सामने पाप करेगा और अत्याचारपर बद्धपरिकर होगा तो उसका सत्यानाश होगा। ऐसेही जो कोई कबीरपंथमें प्रवेशित होकर पापकी ओर चित्त लगावेगा, तो उसकी दशा बड़ीही दीन होगी।

जिसको अपने गुरुपर सच्ची श्रद्धा है उसकी बुद्धिपर पिशाची बल काम नहीं करता है। उसकी बुद्धि बदल नहीं

सकती है और न काल किसी प्रकारकी बाधा उपस्थित कर सकता है।

जो कोई अपने गुरुसे सच्ची प्रीति करेगा उसका विश्वास अचल रहेगा और उसकी बुद्धि स्वच्छ रहेगी। विना गुरुके मनुष्यके हाथका जलपान पर्यंत उचित नहीं है।

कबीर साहबका रेखता

खलक है रैनका सपना। समझ दिल कोई नहीं अपना॥
कहीं है लोभकी धारा। बहा जग जात है सारा॥
घड़ा ज्यों नीरका फूटा। पतर जैसे डारसे टूटा॥
ऐसी निर्जान जिंदगानी। अजौं क्यों न चेत अभिमानी॥
सजन परवार सुतदारा। सभी उस रोज हों न्यारा॥
निकल जब प्राण जावेंगे। कोई नहिं काम आवेंगे॥
निरख मतभूल तन गोरा। जगतमें जीवना थोरा॥
तजो मद लोभ चतुराई। रहो निस्संग जगमाहीं॥
सदा जिन जान यह देही। लगाओ सतनामसे नेही॥
कटे यम कालकी फाँसी। कहें कबीर अविनाशी॥

यथा

साँई यादमें रहना, नहीं यह जिन्द जावेगा।
करो उस पीरकी बन्दगी, तुझे यारां लखाऊंगा॥
बना है खाकका खेला, इसीमें खोज पावेगा।
मुझे मुर्शिद मेहर मनशाल, गो दीदार पाया है॥
मुझीको देखले परकट, किसी से न छिपाया है।
कबीरा पीर है साचा, सकलमें आप छाया है॥

यथा

समझ दिलसोच अबकीना। मुर्शिदसे पूछ नालीना॥

कहांसे रंग यह आया । न काहूँ मोहिं बतलाया ॥
सुरति बहि रंगकी प्यारी । पपरा भये हैं वनवासी ॥
न आवे हाथ वह करनी । सिधारो जाय गुरु शरनी ॥
मुझे मुर्शिद मेहर करके । मुरीदी मन सिखाया है ॥
किताबें खोल दिल अन्दर । हकीकत निज बताया है ॥
कि है कोई गैबका वासी । दिखावे खेल परकासी ॥
बसावैं गैबका खोरा । मिटावे भर्मका फेरा ॥
अचम्भौ देश है न्यारा । लखे कोई नामका प्यारा ॥
दिया जिन प्रेमका प्याला । सोई हैं संत मतवाला ॥
कि निशिदिन मोह ना भूले । विरहकी झोंकमें झूले ॥
चरण कबीरको ध्यावे । इलाही ज्ञान भर पावे ॥

पद

हैली तीरथ जाय बुलाए । रे हरदम परब नहाये ॥
तीरथ कोटि अनन्त हैं रे गंग यमुन जहँ दुई ।
मध्य सरस्वती बहत है रे नहाय निर्मल होवे ॥
ब्रह्म अग्निके घाटमें रे आगे शिवके लिंग ।
ताहूपे दछिना दीजिये रे बहुत सहसमुख गंग ॥
आगे कलालीकी हाट है रे चोखा फूल चुनन्त ।
बिन सदगुरु पावे नहीं रे कोई साधू जन पीवन्त ॥
शीश उतार धरणी धरे रे ऊपर धरले पाए ।
ब्रह्म अगिनके घाटपे रे इस विधिपर बेनहाए ॥
ऋग यजुर साम अर्थनवारे चारों वेदका ज्ञान ।
उनके वहां कहो कौन गति रे बांधे गांठ पखान ॥
चारों वेदको पिता है रे सूक्ष्म वेद संगीत ।
साहब कबीरजूके मुकद्दमेरे अविगतब्रह्म अतीत ॥

यथा

पण्डित सतपद भाजो रे भाई । जाते आवागमन नशाई ॥
ज्ञान न उपजा ब्रह्म नहिं चीना आप कहांते आए ।
एक योनिसे चार बरन भए ब्रह्मदेह कहा पाए ॥
बारह बेदी ब्रह्म बखानूं स्वर औ शक्ति समानी ।
संध्या तर्पन तहां करलीना जहां कुशा नहिं पानी ॥
ऋग यजुरज्ञानको बुद्धी साम अथर्वन सोई ।
सूक्ष्म वेदको भेद न जाने क्योंकर ब्रह्मन होई ॥
शूद्र शरीर ब्रह्म तेहि भीतर भिन्न भेद कछु नाहीं ।
लखचौरासी जिया जन्तुमें बरत रहो सब ठाईं ॥
नौगुण सूतसँयोग बखानूँ तिरगुण गाँठ दयानी ।
तासु जनेउ कबहुँ ना टूटे दिन दिन बारह वानी ॥
कहें कबीर गुरुब्रह्म चीन्हले जगत जनेऊ सोई ।
पाखण्डकी गति सबही मिटावे तब निज ब्राह्मण होई ॥

यथा

हिरवा गँवाए सास चली वारी धनियां ।
कौन सौतिन है कौन सुमन है कौन वेद तुम जानियां ॥
कौन पुरुषको ध्यान धरत हो कौन है नाम निशानियां ॥
एही तनु ओंकार सुमन है सूक्ष्म वेद हम जानियां ॥
सत्य पुरुष तो ध्यान धरत हैं सत्य है नाम निशानियां ॥
यह मत जानो हिरवा जरवा बनियां दूकान बेगानिया ॥
अलख मूलक हिरवा मोरा अगम देशते अनियां ॥
एक है चोर सकल जगमोंसे राजा रैयत रनियां ॥
कहैं कबीर सुनो भाई साधो अलख है नाम निशनियां ॥

## कबीरपन्थका प्राकट्य

जब कबीर साहबने अपना धर्म पृथ्वीपर प्रचलित किया और सत्य पुरुषकी भक्ति प्रकट की और सत्यलोका समाचार दिया तब किसीको निश्चय नहीं हुआ। और वेद तथा पुस्तकोंकी लिखावटोंको सत्य माना और चार प्रकारकी मुक्तिको मोक्षमार्ग जाना तथा कबीर साहब इन चारों प्रकारकी मुक्तिको बंधन और कालपुरुषका महाजाल बतलाते और लोगोंको वह पथ छोड़ना तथा इस पंथको ग्रहण करना दुष्कर हुआ, इस कारण सब आपके वैरी हो गये और आपके साथ ऐसा व्यवहार करने लगे इस कारण मैं उन स्थानोंको परिलक्षित किया चाहता हूँ जिनसे संसार नितांत ही अनभिज्ञ तथा अज्ञ है और केवल चार मुक्तिको सत्य मानते हैं जो वस्तुतः बंधन है। निम्नलिखित विवरणको देखो।

## दश सोहंगका वृत्तांत

कबीर साहबने ग्रन्थ मुहम्मदबोधमें जिन दश स्थानों का विवरण किया है वह यही दश सोहंग हैं। १-सत्यपुरुष सोहंग २-सहज सोहंग। ३-अंकुर सोहंग। ४-इच्छा सोहंग। ५-सोहंग सोहंग। ६-अचिन्त्य सोहंग। ७-अक्षर सोहंग। ८-निरञ्जन और माया सोहंग। ९-ब्रह्मा विष्णु और शिव सोहंग। १०-समस्त जीव सोहंग।

यह दश सोहङ्ग हैं और समस्त संसार सोहङ्ग है। जिसका गुरु जहांकी सूचना देगा वह उसी स्थानको पहुँचेगा और समस्त जीवोंमें वह प्रवेशित हो रहा है और समस्त शरीरसे यही शब्द निकल रहा है और समस्तका निचोड़ तथा सिद्धांत यह है कि इसके ध्यानसे ज्ञान है और उससेही शान्ति है।

जितने पृथ्वीके मनुष्य हैं सो सब इस विषयसे एकबारगीही अनभिज्ञ हैं, उन लोगोंको केवल चार प्रकारकी मुक्तिकी सुध है और जितने अवतार पीर पैगम्बर पृथ्वीपर प्रकट हुए सो सब निर्गुण तथा सगुणका समाचार देते रहे। वेद तथा अन्यान्य पुस्तकोंमें इस बातका तनिक भी विवरण नहीं है कि, सत्यपुरुष कौन है। सब अचेत निद्रा तथा धोखेमें पड़े और कालपुरुको अपना पथदर्शक और मुक्तिदाता समझने लगे और जितने पीर पैगम्बर हुए किसीने भी सत्यपुरुषका स्थान स्वप्नमें भी नहीं देखा और न जाना। सब निर्गुण तथा सगुणका समाचार देते चले आये। यदि उनसे कहा जावे कि, तुम भूलकर यमके फंदेमें न पड़ो तो उनको कदापि निश्चय नहीं होता। अनुगृहीत होनेके स्थान वैर तथा विरोध करनेपर बद्धपरिकर हैं और कबीर साहबके धर्म प्रचलित करनेके समयसे आज पर्यंत कबीरपंथियोंके मतको सुनकर लोग अप्रसन्न होते हैं और तीर्थ व्रत मूर्तिपूजा आदिको भला समझते हैं और लोक तथा वेदकी आज्ञाओंको सर्वोत्तम समझते हैं और सत्य पुरुषकी भक्तिसे भागते हैं। कोई बड़भागी इस भक्तिमें लगता है इस भक्तिबिना किसीको पथ नहीं मिलेगा

कबीर साहबने दश स्थान प्रकट किये हैं उन दश स्थानोंके निमित्त इस प्रकारकी विद्याएँ कही हैं। १-शरीअत। २-तरीकत। ३-हकीकत। ४-मारफत। ५-तरोवहत। ६-ध्यान दोरहियत। ७ जुलकार चन्द्रगी। ८-हुक्म मुरतिद। ९-दएनाका। १०-शब्दसार।

यह दश प्रकारकी विद्याएँ हैं। जिस किसीको जहांका ज्ञान देता है उसी स्थानको पहुँचता है बिना विद्याके कोई

पहुँच नहीं सकता। जिसके गुरुकी जहांलों पहुँच है वह अपने शिष्यको वहींलों पहुँचा सकता है। वेद और पुस्तकों द्वारा तो केवल चार प्रकारकी विद्या मनुष्य प्राप्त कर सकते हैं। कर्म जो है उसकी पहुँच नासूत स्थानपर्यंत है। उपासना मलकूत पर्यंत पहुँचाती है। योग जीवरूत स्थानमें स्थित करता है। जहां सहस्र पंखुड़ियोंका कमल है और अलख निरञ्जन ज्योतिस्वरूप रहता है। निर्विकल्प समाधि लगाकर योगी लोग उसी स्थानपर्यंत जा पहुँचते हैं और जिसको मार्फत-की श्रेणी प्राप्त हो और उरफानकी विद्याका प्रकाश धारण किये हो वह लाहूत स्थानको जाता है। लोक और वेद द्वारा मनुष्योंके निमित्त ये चार स्थान ठहराये गये हैं। अचिन्त्य द्वीपपर्यंत कभी कभी कोई कोई साधुओंमेंसे इंगित करने वाले हैं, मनुष्यको इससे पारका समाचार तनिक भी नहीं है, सब व्यर्थही हवाई बांधते और मुक्तिमार्ग बतलाते फिरते हैं और समस्त धर्मके मनुष्य प्रण रोपते हैं कि,हमारे धर्ममें मुक्ति है,और कोई कहीं नहीं पा सकता। जीवरूप स्थानमें तीनोंका सृजन कर्ता रहता है और उसीकी वंदना सब करते हैं और उसीके द्वारा चार प्रकारकी मुक्ति और समस्त स्वर्गोंका सुख प्राप्त करते हैं और इन समस्त स्थानोंमें शारीरिक आनन्द तथा पाशविक कामनाके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। त्रियाती-तकी श्रेणी जिसको वेद सबसे बढ़कर बतलाता है, इस श्रेणीमें अलख निरञ्जन अधिकृत है और जितने साधुगण उस श्रेणीको हस्तगत कर लेते हैं सो सब उसके समान हो जाते हैं और सब सृष्टिकी रचना करनेकी सामर्थ्य रखते हैं। और सबका हृदय उस विद्यासे प्रकाशित है और समस्त

सिद्धियां उनके वशमें हैं और वे सब अपनी रचनाके रचयिता और स्वामी हैं और वे लोग जगत्प्रभु कहलाते हैं। सांसारिक मनुष्योंमें वह बल और बुद्धि कहां है कि, साधुओंके भेदको पहचान सकें। ये बातें केवल सत्यगुरु द्वारा प्राप्त होती हैं जिनके ऊपर पारख गुरुकी दया हो वह इस विषयको जान सकता है और किसी मनुष्यमें इतना पौरुष नहीं। सात स्वर्ग, सात द्वीप, पृथ्वी और नरक यह ब्रह्मांडके इक्कीस भाग सब निरञ्जनके अधीन हैं और सबके ऊपर वह आज्ञा चलाता है। सात द्वीप जो पृथ्वीके हैं उनमें भांति भांतिके सुख दुःख हैं और जो सात स्वर्ग हैं उनमें बहुतसे सुख हैं पर वहां यह दुःख है कि, एक दूसरेकी ईर्षासे जलते रहते हैं और स्वर्गके लोगोंको किसी सीमापर्यंन्त ज्ञान होता है कि, अब हम स्वर्गसे गिर पडेंगे और हमारा सब सुख पृथक् हो जावेगा और आपत्तियों तथा दुर्दशाओंमें फँस जावेंगे, इस दुःखसे वे अत्यन्त कातरतासे विलाप करते और दुःख करते हैं, अन्त उनका स्वर्गीय शरीर छूट जाता और वे पृथ्वीपर आकर जन्म लेते और जैसे उनके ध्यान अच्छे अथवा बुरे होते हैं वैसा ही चोला वे पाते हैं। और जितने स्वर्ग हैं और क्रमानुसार जिस प्रकार एक दूसरेके ऊपर हैं वैसे ही उनका सुख विशेष होता जाता है। जैसे २ ऊपर हैं वैसे ही वैसे सुख तथा आनन्दका आयोजन विशेष होता जाता है और नीचेके विभागोंमें न्यून है। और वह सब सुख अस्थायी तथा अलपकालिक हैं। कुछ समयके उपरांत स्वप्नके समान भंग हो जानेवाले हैं। सो सब स्वर्गों और चारों स्थान जिनको वेदने मुक्तिदाता कहा है यहांलों मनुष्योंको ज्ञान होता है इसके आगे कोई कुछ नहीं जानता। परन्तु

कबीर साहबने कहा है कि, ब्रह्मा विष्णु तथा शिव ये जो तीन देवता हैं वे सहज द्वीपपर्यंत पहुँच सकते हैं इसके आगे किसी-को तनिक भी सुध नहीं है। तीन देवता सहज द्वीप पर्यंतकी सुध रखते हैं परंतु मनुष्योंसे वे नहीं बतलाते, अपना भेद अपने मनमें रखते हैं और भलाई बुराईके समस्त कार्योंका रचयिता निरञ्जन हैं, भलाई करो तो स्वर्ग और वैकुण्ठमें जाय, यदि बुराई करे तो नरकमें प्रवेशित हो, चाहे मृत्युलोकमें जन्म लेता रहे। जैसे आकाशके सुखका विवरण है वैसे ही नरकयंत्रणा अत्यन्त भयानक है। सुतरां मुसलमानी पुस्तकोंमें मैंने पढ़ा था कि जिस समय हजरत दाऊद नरकयंत्रणाका विवरण किया करते थे उस समय सुननेवाले बेतरह रोते तथा तड़पते और कितने भयके मारे मर जाते थे।

और लिखा है कि एक बेर नरकयंत्रणाको सुनकर सत्तर मनुष्य मारे भयके मर गये । और स्वयम् दाऊद ऐसा रोता था और तड़पता था कि, अचेत हो जाता था। और ऐसा हाथ पाँव और शिर पीटता था कि, उसकी लौंडियां और लोग लासको पकड़ लेते और वह अत्यन्त विह्वल तथा बेशुध हो जाता था और दाऊद यद्यपि बादशाह था तथापि समस्त निशा वह ऐसा रुदन किया करता था कि उसका बिछौना भीग जाता था और जब वह परमेश्वरके प्रेममें गाता और नाचता तब स्थावर तथा जंगम हिल जाते थे।

और कबीर साहबकी आज्ञा है कि, जिसमें परमेश्वरका भय नहीं है और हार्दिक प्रेम नहीं है वे कदापि मुक्ति नहीं पा सकेंगे सो समस्त पीर पैगम्बरों और सिद्ध साधुओंका सच्चा

गुरु कबीर साहब हैं जिनमें परमेश्वरका भय और सच्चा प्रेम पाता है उनको परमधामको पहुंचाता है और सबकी ओर दया तथा उदारताको समान दृष्टिसे देखता है। अब जानना चाहिये कि, यह काल पुरुष इस प्रकार भय तथा यंत्रणाकी अवस्थामें फँसाकर बंधनमें डाल देता है, किसी युक्तिसे किसीका छुटकारा होने नहीं देता है और तप्त शिला पर सबको भून भूनकर खाया करता है जैसे भेड़ बकरी तथा गऊ कसाईको प्यार करती हैं जिनका परिणाम प्रकट है, ऐसाही मनुष्य निरञ्जनको प्यार करके उसका फल पाते हैं। और हांक मार २ कर कबीर साहब कहते चले आते हैं तो भी लोगोंको विश्वास नहीं होता है।

माया सृष्टि और पिण्डब्रह्मका जो समस्त मिथ्या बाँधनू है इन सबका रचयिता निरञ्जन है। जो कोई इस मिथ्या जाल तथा कामके वशीभूत होकर रहेगा वह कदापि मुक्ति नहीं पावेगा।

इस प्रकार कबीर साहबने अपना ज्ञान और शिक्षा पृथ्वी पर प्रकट की और लोग आपके वैरी हुए कारण यह कि, लोगों-का चित्त कामक्रोधादिके प्रपञ्चोंमें फँसा हुवा है और उनकी बुद्धि कालसे घिरी हुई है।

जबलों मनुष्योंके चित्तमें सुबुद्धि और स्वच्छ कामनाएँ उत्पन्न नहीं होतीं तबलों यह निश्चय कालका भोजन होता जाता है जब सुबुद्धि होगी तथा अच्छे विचार मनमें उदित होंगे तब तो कदापि कालकी राहमें न चलेंगे। सो थोड़े लोग हैं जो आपत्तिमय पथ देखकर भागते हैं और अभागे अपनी हठसे नहीं हटते।

साखी-कालको जीव माने नहीं, कोटिन कहूं बुझाय।
मैं खींचू सत लोकको, बांधा यमपुर जाय॥
बहता है बहजान दे, बहैं लगावन ठौर।
कहा हमारा न आदरै, द्यों धक्का दो और॥

इस प्रकार कबीर साहबका धर्म पृथ्वीपर प्रचलित हुआ। और वैरी और दूत भूत सब निराश हो गये किसीका कुछ वश नहीं चला। जो समर्थ धनी स्वयम् सत्यपुरुषने धर्म प्रचलित किया फिर किसीका सामर्थ्य थी कि, रोक सकता ? ऐसा वेगसे चला कि, लाखों सेवक और शिष्य हो गये और सत्य कबीर और सत्यनामकी पुकार समस्त संसार में पड़ी। किसीके रोके रुक नहीं सका। पश्चात् कबीरपंथ स्थापित करके कबीर साहब सत्यलोकको गये।

## कबीरपंथकी स्थापना

पहले मैं वर्णन कर आया हूं कि, सत्यपुरुषने कहा कि, ऐ ज्ञानीजी ! पृथ्वीपर जाओ और सुकृतिजी ( धर्मदास ) को जगाओ, वह भूलकर मूर्तिपूजक हो गये हैं उनको उनकी अचेत निद्रासे जाग्रत करो और सत्यपुरुषकी भक्तिमें लगाओ और सत्य पंथ पृथ्वीपर प्रचलित करो। और बयालीस वंश नियत करके कलियुगके मनुष्योंका उद्धार करो। सत्यपुरुषकी आज्ञानुसार कबीर साहबने धर्मदासको जगाया और सत्यपुरुषकी भक्तिमें लवलीन किया। फिर चारों दिशाके चार गुरु नियत किये।

## चार गुरुका वृत्तान्त

पहले गुरु धर्मदासजी हैं और उनको उत्तरके ओरकी गुरुवाई प्रदान की है और उनके बयालीस वंश हैं। दूसरे चतुर्भुजदास

उनको दक्षिण ओरकी गुरुवाई प्रदान की गयी और सत्ताईस वंश हैं। तीसरे गुरुराज बंकजी हैं। उनको पूर्व ओरकी गुरुवाई प्रदानकी गयी और उनके सोलह वंश हैं। चौथे गुरु सहतीजी हैं और उनके सात वंश हैं और उनको पश्चिम ओरकी गुरुवाई प्रदान की गयी। ये चारों गुरु चार ओर ठहराये गये हैं और जब ये चारों गुरु चारों ओरसे सत्यनामका डंका बजावेंगे तब कबीर साहबका धर्म भलीभांति पृथ्वीपर प्रचलित होगा। इन चारों गुरुओंमें केवल धर्मदासजी अबलों प्रकट हुए और उनकी वंशगद्दी स्थिर हुई। और पूर्वोक्त लिखित तीनों गुरु अबलों प्रकट नहीं हुए जब वे भी प्रकट हो जावेंगे तब इस धर्मका प्रचार विशेष होगा। अब तो केवल धर्मदासजीके वंश बयालीसका विवरण करता हूँ।

### धर्मदासके बयालीस वंशका वृत्तांत

धर्मदासके बयालीस वंशका यह ठीका सत्यगुरुने ठहराया है कि प्रत्येक वंश पच्चीस वर्ष और बीस दिवसों पर्यंत गद्दीपर बैठा करे और इससे अधिक तथा न्यून कोई न रहे। और सत्यगुरुकी आज्ञानुसार उनका अवतार और उनका अधिकार होता आता है। फिर वे अपनी इच्छासे शरीर छोड़ कर सत्यलोकको सिधारते हैं। जिस दिवस साहबका चलना होता है उसके पूर्व अनेक सन्त महन्त दर्शनार्थ एकत्रित होते हैं और जिस दिवस पच्चीस वर्ष तथा बीस दिवस पूरा होता है उस दिवस जो गद्दीका अधिकारी होता है उसको अपने स्थान गद्दीपर बैठा देते हैं और समस्त कार्य सौंप देते हैं। जब सब कार्य ठीक हो चुकता है उस समय आप पानका बीड़ा लेते हैं इसको चलानेका बीड़ा कहते हैं। जब वह चलाने-

का बीड़ा लेते हैं उस समय हंस तो सिधार जाता है और शरीर ठंढा हो जाता है और उस शवकी समाधि कर देते हैं। इतना कौतुक कबीर साहबका अबलों पृथ्वीपर प्रकट है। यही लोग अपने चेलों सहित इस भवसागरके मांझी और नावके चलानेवाले हैं।

### चारों गुरुकी प्रशंसा—उर्दू सेर

गुरु चारको पहले ताजी मकर। सातएं शकुनी स्वामए हाथ धर॥
गुरु वार सतगुरु कदमके हैं खाक। चढ़े अर्श ऊपर शबद बादपाक॥
मोअज्जित हुए खाक खाकी हुए। बाहरखू रजाजू खुदाकी हुए॥
बुजुरगी किया अजमुबारक जबाँ। बनाया इन्हें दुज्दके पासबाँ॥
बअतराफ चारों निगहबाँ किया। मकाँ मुक्तिके चार दरबाँ किया॥
जहां बैठे वहकादिरे जुलजलाल। किबरतख्तशाहंशहीला मिसाल
वजीरान चारों खिरदमंद हैं। यह अरकाने दौलत खुदावंद हैं॥
जबानिब जहाँमें किया चार हैं। बहर सिम्त यक यक मददगार हैं॥
जो इनसाँको सतगुरु हजूरी करें। निजाते शफाअतासो पूरी करें॥
परमधाम पहुँचावे चारों वजीर। चले साथ ले मर्दुमाने अफीर॥
धरमदासऔवलब सिमतेशुमाल। किरोशनहैजिसकीमुहब्बतकमाल
यह औवल गुरु सबके शिरताज हैं। कि सब आदमी पैरवां आज हैं॥
बयालीसवंश उनके रोशनजमीर। मुकाबिल है जिसहेच बद्रे मुनीर॥
गुरु दूसरे हैं बजानिब जुनूब। चतुर्भुजसाहबजिवअमांबख्शखूब
सत्ताईस वंश उनके हैं ताजदार। दखिन देशके आदमीबाजदार॥
गुरू तीसरे रायबनके बशिर्क। लियातख्त ओ ताजशाहीबफर्क॥
सोलहवंशले हुक्म जारी करें। जो सतगुरुतवस्सल तयारी करें॥
गुरू चौथे सदते बमगरब कहे। बमै सात फरजंदके छिप रहे॥
ये चारों गुरू मुक्तिके रास हैं। फकत एक जाहिर धरमदास हैं॥

धरमदासका सब पसारा हुआ । जहाँमें जहांतक हजारा हुआ ॥
न अबतक वह जाहिर गुरू तीन हैं। कि सतगुरुके फरमान आधीन हैं॥
गुरू चार दुनियांमें जब आयँगे । नहजदे करी दौर दिखलायँगे ॥
तो सारीजमींमें हो यह गुलगुलः। है सतनामसतऔर सब बुलबुलः॥
सिलहशोरतीनों कभी गाहमें । है पोशीदःसतगुरु हुकुम चाहमें ॥
निकलजब पड़ीं फौजसालार तीन। हो मुक्तिसे मामूरसारीजमीन ॥
बमै वंश चारों हुकुम पायँगे । शपातीं किधरके किधर जायँगे ॥
पड़े शोरआलममें सत् नामका। हो शोदरः निजाते सरअञ्जामका॥
बहर सिम्र डंका है साहब कबीर । फिरें बोलते सत्यनामे सफीर ॥
गुरू चार सतनाम डंका दिया। पुरुषकालके दिलमें सनकादिया॥
बहरसू जुझाऊ बजेडक्कढोल । कि सबकैदियोंकीही जंजीर खोल ॥
बजै झांझ औ शंख मिरदंग जो । जिसे देखते दूत दल दंग हो ॥
न वे जूर पुर नूर है सब समात । तुलू मह्नहै कटगई सारी रात ॥
गुरू चार हरजाय बोले नकीब । न बाकी रहा और कोई है कीब॥
करे गुफ्तगू उनसे जो दूबदू । मती सारे उनके न कोई अदू ॥

धर्मदास साहबके बयालीस वंशकी प्रशं ।

उर्दू शेर

धरमदासके जो बयालीस वंश । सो सब सत्य सुकृतिके रूपहंस॥
जुदागानः तारीफ उनकी लिखूँ । कदमदतकेपरअपनेशिरकोरखूँ॥
है औवल मचन वंशचौरामनी । गुरू सत्यमारग धरमके धनी ॥
कि इनसांका जिसमें गुजारः हुवा। परमपुर्ष यह पर नजारः हुवा॥
वचन जो सतगुरुका अवतार है । उसीके महरजीव भवपार है ॥
सुदर्शन साहब दूसरे नाम जो । करे जीव भवपार कण्डहारसो ॥
जोकुलपतिसाहबतीसरेनामदार।पनह जिसकेसबजीवहों कामगार॥
जोपरमोदगुरुचौथेबाला हैं पीर। सोशाफीबनाजीजेखतर खतीर ॥

कमलनाम साहब कहूं पांचवाँ । जगतके गुरू पीर सो बेगमाँ ॥
हैं छठएँ खुदावन्दनामेअमोल। किजिसखौफसेभागजायमकेगोल॥
जो सूरत सनेही साहब सातवाँ । कि जंगी मेहर देखिये आतमाँ ॥
जो पैदा हुए आठवें नामइक। मलिकमौतका होगया सीनःशक ॥
नवैपाकसाहब हुए नामपाक । मरमभूतको सो मिलाया है खाक॥
प्रकट नामसाहब प्रकट हैं दहम। किसामानमुक्ती किया सोबहम॥
धीरजनामसाहबइग्यारहवें जो आये। किधीरजनिगहजीवधीरज हुए॥
उगरनाम साहब हुए बारहवें । परमपंथ परचार इस अहूदमें ॥
तेरहवीं उदय पहने आदमकबा । तोजमशेर गुरांभगादुम दबा ॥
हुई तेरहवीं कुरसी आली दिमाग। कि दरजा हरे होगये खुश्कबाग॥
हुवा जोर वो शोरसंतनामको । सला है करमखास ओ आमको॥
मिलीं बारहों पथ इस अहूदमें।सतायश करें गुरुकी यकमहदमें ॥
कुरू नामसाहब कहे चौदहवां । कि जिनकी बुज़ुर्गी बदरहो जहां॥
जो परकाश परकाश हो रही । संना इम्दअस्त नाम दरजा कहीं॥
उदितसोलहवीं साथ जोशन हुए।तो जम जङ्गमें नाम रोशन हुए॥
कि जब सत्रहवीं होवें साहबमुकुन्द।हुएकालके दाँत इसवक्त कुन्द॥
अरधनाम अट्ठारवी दर्दमंद । कि आवागमनकी किया राह बंद॥
जो उन्नीसवीं नाम ज्ञानी गुरू । करै जीवको पुर्षके रूबरू ॥
कहो बीसवीं साहब हंस मन । न जिनसे लगे कालका कोई फन ॥
सुकृतिनामसाहबहुएबीसएक।तो सुरकीरतकी जगमें रहैखूब ठीक॥
अरजनाम बाईस जाहिर हुए । तो इनसां परमपदके माहिर हुए ॥
है रसनाम साहब जरसबीस तीन। सुन आवाजताबेहुई सबजमीन॥
हों चौबीसवीं गंग मुनिसाहब ग्रुनहसे हों सब आदमी तायब ॥
पुरुषनामसाहबदरसबीसपांच । नजिउकोलगेसंगेसोजाकी प्रांच ॥
छबीसवीं जागृतनाम साहब जगे । नइनसाँकोरहजनवठगतबठगे ॥

हुए भृगुमुनि साहब सातबीस। रहेरास्त दुश्मनदियाजिसनेदीस ॥
अस्त नामसाहबकहेबीसआठ। कियमदूतकोजोदियामारकाट ॥
हैं उन्तीसवीं साहबकंठ मुन। कियाकालको मारकरसो दफन ॥
हैं सन्तोष मुनिसाहब तीसवें। पयान पुरुष आवें इस अहदमें ॥
यह खुशवक्त दैरांदिखाया हमें। परमपुरुष पैगामा आया हमें ॥
जमीं सारीसतनामकी हांकहै। तोदरकौमको मुक्तिकी झाँक है ॥
हुई सारे आलममेंयहधूमधाम। तअस्सुबत जो और भजोसत्यनाम॥
जमी सारी पर हुक्मरानी हुई। बाहर कौमपर मेहरबानी हुई ॥
यहूदी तिसार मुसलमां हिनूदा। पढ़े कमलये सत्यनामसे हुरूदा॥
चातर्कनामसाहबकाएकतीसदौर। जमींपरनबाकीरहेयमकाजोर ॥
बत्तीसवेंबरामदहुएआदिनाम। हुएसारेनफसानीहरकतगुलाम ॥
हैं तेतीसवें वेद नामें बुजुर्ग। कि जिस सामने हो न शैता सतर्ग ॥
साहब आदिनाम हुए तीस चार। कि उसमेहसेजीवहों कामगार॥
महानाम साहब हैं पैंतीसवाँ। जमींपरहुवा है अमन ओ अमाँ ॥
छतीसवें हैं निजनामसाहबखदीन। नबाकीरहेरेवकुछनफसदेन ॥
साहबदाससाहबकासैंतीसअस्त्र। दियबारशइनसानकेजिसने वस्त्र॥
उदयदाससाहब हों अडतीस पुश्त। इलमातिल्मसबमें न कोई दुरस्त॥
कुरदनामसाहबकानौतीसवक्त। बहरहोजहांजिनकोहैताजोतख्त ॥
चेहले दृग मुनीसाहबनामले। तोसत्यलोकको आदमीसबचले ॥
महामुनि साहबनामचालीसएक। बदी बेखकुन आदमीसारेनेक ॥
बयालीस मुक्तामनी साहब है। आखिर जमां सत्पुरुष नायब है ॥
यह जबतक बयालीस पीढ़ी रहे। परमधामकी जगमें सीढ़ी रहे ॥
बयालीसका जबतलक नाम है। नकब्बीरका जगतमें काम है ॥
यह सद्गुरुकेसबहंस हैं जानशीं। परमपुरुषके सारशब्द अभी ॥
बयालीस जबतक रहेंगे वजीर। जहांमें न जाहिरफिरेंफिर कबीर ॥

बहर एक करमाँ खाई खिताब । कहे हैं खुदावन्द ऐसा हिसाब ॥
बरसइनके पच्चीस ओबीसरोज । हरकेतख्तपरहोवेंरौनकफिरोज ॥
हजार एक ऊपर दो पञ्जाहसाल । महेतीनदिनबीसगद्दीबजाल ॥
इतेरोज सतपुर्ष फरमान है । जो आवे शरण सोई निर्वान है ॥
जो सतपुर्षके हंस गायब हुए । न होंबहरःवरकोइजो साहब हुए ॥
यहकलियुगमेंसतयुगगुजरजायगा । पुरुषकालकाअहदतबआयगा
करे आदमीफिरजोतदबीरकोट । कभीसोसकेनाबचाययमकी चोट ॥
मेरी बात जो कोइ जाने दरोग । कभीफेर उसको न होवे फरोग ॥
परमपुर्ष पीरों शनासिन्दगां । उसी लोक जावेंगे सो वन्दगां ॥
यहकलियुगमें सतयुगलगी है लडी । वहरसिम्तहैआवेहैवांवाझड़ी ॥
हैंगुरुमुखकोईउसकेनोशिन्दगां । जोसतगुरुमोब्बतमेजोशिन्दगां ॥
जोउसगुरुकेमिलनेकीकोशिशकरे । अजरओअमरजामःपोशिशकरे
जो पहचानसोई हैं शाहशहाँ । न जाने जिन्हें आदमी इबलहां ॥
बयालीसका जबसे ठीका हुवा । नइनसानका बाल बीकाहुवा ॥
यह माहूद ठीका जो पूरा हुवा । तो यमजालका फिर जुहूरा हुवा ॥
मो इसअदहमें हो कोई बख्तमंद । जेदे बामबाला बनामें कमंद ॥

## गजल

बयालीसवंशतगुरुकीनिशानी । हैं बखशिन्दःहयातेजानहानी ॥
उसीहमशक्क सबनाखुदायह । रहे दुनियांमें जबतक यह कहानी ॥
सनाख्वानींहैंकरतेहंसजिनकी । कहे सौबारसत गुरुखुद जबानी ॥
तमीजो अक्ल से खुद परखलीजे । मकांमें हंस आये कामकानी ॥
दरोगोंरास्त अब पहचाना होगा । जो मुतफर्रिक करेंगे दूधपानी ॥
कदमउनकेपकड़परवाज कर अब । गुजरबग चालसे अपने दुरानी ॥
हवासे अक्क ओ हम लंगपा हैं । वहां पहुँचे नकुरआं वेदबानी ॥
समझओ बूझकरलीजैखमोसी । अब जसिरके मिलेगी आसमानी ॥

करे क्या यह बनी आदम बेचारा। मददपावे न जबतक आसमानी॥
पेयालाइश्क पीकर मस्त होजा। जो चाहें चेहरै खुद अरगवानी॥
पडे खाते हैं गोता भेष पाखंड। बरहमन भाट ओं मुल्ला कुरानी॥
मेहर हो गाय बकरी मुरगिया। खुदावन्द मोहाफिजपासवानी॥
उतरचलपारइसदरियाकेआजिज। हुई तुझपरजोमुरशिदमेहवाणी॥

यह चार गुरु तथा बयालीस वंश जो मुख्य कबीरपंथी कहलाते हैं उनका विवरण हो चुका। इस समय धर्मदासके साहबके वंश उपस्थित हैं और उन्हींके पंथ दिखानेसे समस्त मनुष्य सत्यलोकको जाते हैं। दश स्थानोंका चिह्न जो मैंने दिया उन सब स्थानोंका पंथ इन्हींकी दया द्वारा प्राप्त होता है और नौ स्थानोंका पार करके दशमें स्थानको पहुँचता है। इन समस्त स्थानोंके बीचमें शून्यकी डोरी लगी हुई है। वे शून्य (खला) की डोरियाँ हैं उन डोरियोंके भिन्न २ नाम कबीर साहबने कहे हैं। उन डोरियों पर सत्यगुरुके पंथ दिखानेसे हंस चढ़कर पार जाते हैं। जबलों पारख गुरु नहीं मिलता तबलों उन डोरियोंकी तनिक भी सुध नहीं मिलती। ये गुरु लोग भवसागरके पार उतारनेवाले हैं। उनकी प्रशंसा अनेक बेर स्वयम् कबीर साहबने की है। देखो ग्रन्थ श्वासगुञ्जार।

साखी-बिरछा नाहीं फल भखैं, नदी न अचवैं नीर।
परमारथके कारणे, सन्तन धरा शरीर।
सन्त बड़े परमारथी, धन जो बरसै आय॥
तप्त बुझावे औरकी, अपनो पारस लाय।
साधु सराहैं ताहिका, जाको सतगुरु टेक॥
टेक बनाए देह भर, रहे शब्द मिल एक।
सत्य शब्द हित जानके, सुमिरे सतगुरु धीर॥
धरमदास तुम वंशको, सिरज्यो गुरू कबीर।

चौपाई

सत्य सुकृति सुमिरो मन माही। टूटत बज्र राखलेउ ताही।

साखी–सत्य सुकृतिकी बालक है, जो चितवै कर डीठ।
ताजन तोरौ चौहटे, गुनहगारकी पीठ॥
जदिया कहूँ तो जगतरैं, परकट कहो न जाय।
गुप्त परवाना देत हौं, राखो शिरै चढ़ाय॥
जिन डरपो तुम कालका, कर मेरी परतीत।
सप्तद्वीप नौ खण्डमें, चलिहौ भवजल जीत॥

यहांलों तो चार गुरु और बयालीस वंशका लेखा लग चुका है इनके अतिरिक्त कबीर साहबके बारह पंथ और भी कबीर-पन्थी ही कहलाते हैं।

कबीर साहबके पंथोंका वृत्तान्त

१–नारायणदासजीका पंथ। २–यागौदासजीकापंथ। ३–सूरत गोपाल पंथ। ४–मूलनिरञ्जनका पंथ। ५–टकसारी पंथ। ६–भगवान्‌दासजी का पंथ। ७–सत्यनामी पंथ। ८–कमालीपंथ। ९–राम कबीर पंथ। १०–प्रेमधामकी वाणी। ११–जीवा पंथ। १२–गरीबदास पंथ।

यह तो कबीर साहबके बारह पंथ हैं। इनमें कोई २ अच्छे हैं। और कोई निर्बल विश्वासके हैं। और रामकबीरके लोग ठाकुरपूजा करते हैं। और सत्यनामियोंके ध्यान भी विचलित प्रायः हैं। इन बारह पंथोंका यही विवरण है और इन बारह पंथोंके अतिरिक्त कबीर साहबके और पंथ भी हैं।

कबीर साहबके भिन्न २ पंथोंका वृत्तान्त

नानकपंथ–दादू पंथ–यानिप पंथ–मूलकदास पंथ–गणेश पंथ इत्यादि।

इन पंथोंके अतिरिक्त हिन्दू और मुसलमानोंमें कबीर साहबके कितने ही पंथ हैं जिनकी यथार्थता अभीलों भली भांति ज्ञात नहीं हुई है इस कारणसे मैं कुछ लिख नहीं सकता हूँ। और कितने पंथके लोग ऐसे हैं कि, जिनके पंथके मनुष्य अब कबीर साहबको नहीं मानते सुतरां नानकशाह और दाऊद राम और शिवनारायणदास इत्यादि।

जो लोग कबीर साहबको नहीं मानते उनका नाम शिष्यों-में लिखना किसी प्रकार युक्तिसंगत नहीं है। तो भी यह नहीं कहा जा सकता है कि, जो कबीर साहबको नहीं मानते हैं उसमें उनके गुरुओंका दोष है. अथवा उनके पंथदर्शकोंका जिसको दोष होगा वही दोषी माना जावेगा।

### महाप्रलयका वृत्तांत

महाप्रलयके विवरणका निचोड़ यह है कि, प्रलयके अनेक भयानक चिह्न परिलक्षित होंगे और पृथ्वीपर पाप विशेष होंगे। महाप्रलयके सवासौ वर्ष पूर्वपर्यन्त बराबर ग्रहण लगता जावेगा, एकसौ वर्ष पर्यन्त बराबर चन्द्रग्रहण होगा और इसके उपरान्त सूर्यग्रहण होगा जब सूर्य और चन्द्रग्रहण समाप्त हो चुकेगा तब महाप्रलय आवेगी। इतनी पानीकी विशेषता होगी कि, पृथ्वीसे ऊपर इतना ऊँचा चढ़ेगा कि, जलकी लहर व झाग दश सहस्र योजन ऊँची उठेगी और समस्त जीव मर जावेंगे और समस्त शून्य हो जावेगा। पृथ्वी तथा. आकाशमें कहीं कुछ दिखलाई नहीं देगा। और समस्त संसारकी रचनाको कालपुरुष समेट लेगा। और पांच तत्त्व तीन गुण कालपुरुषमें समाजावेंगे और आद्याको कालपुरुष निगल जावेगा। और निरंजनके मस्तकमें एक अर्ध गोलाकार

प्रसादश्रृंगके समान एक स्थान है उसी स्थानमें समस्त रचना सूक्ष्म वेषमें होकर प्रवेशित हो जाती हैं। और समस्त रचनाको वह अपने मस्तकके उसी विशेष स्थानमें रख लेता है और समस्त रचनाको अपने शिरके बीचके गुम्बदमें लिये हुए सत्तर युगपर्यन्त बराबर शून्यमें फिरा करता है, सत्तरयुगके उपरान्त उसका चित्त व्याकुल होता है। जब एकान्त होनेके कारण उसके मनमें अत्यन्त घबराहट होती है और उससे कुछ हो नहीं सकता है और वह अपने चित्तमें यह सोचता है कि, मैं स्वयम् सत्यपुरुष हूं और वह बल अपनेमें नहीं पाता और दुःखी होता है कि अब क्या करूं ? तब वह सत्यलोककी छाया अर्थात् आस पास जाकर निवेदन करता है तब समर्थकी आज्ञा होती है कि, ऐ ज्ञानी ! शून्यमें निरंजनके पास जाओ और कहो कि, वह जाकर अब कूर्मजीकी पीठके ऊपर तीन लोककी रचनाका प्रस्तार करे। उस समय ज्ञानीजी सत्यपुरुका समाचार लेकर निरंजनके पास जाते और समर्थकी आज्ञा सुनाते जब पुरुषकी आज्ञा सुनता है, उसी समय निरंजन दौड़कर कूर्मजीकी पीठके ऊपर तीनों लोककी रचनाका सामान करते। तब निरञ्जन अपने मुँहसे आद्याको उगल देता और आद्या तथा निरञ्जन मिलकर तीन देवताको उत्पन्न करते फिर पांचों मिलकर सब सृष्टिकी उत्पत्ति करते और पहले सत्यस्वरूप सृष्टि उत्पन्न होती है और सब लोक नितान्त ही धर्मात्मा होते हैं और जैसा कुछ कि, मैंने पूर्वमें लिखा है उसी प्रकार समस्त रचना प्रकट होती है। इस प्रकार उत्पत्ति, स्थिति तथा विनाश हुआ करता है। और जब उत्पत्ति होती है तब इसी प्रकार कबीर साहब मनुष्योंकी शिक्षा

के निमित्त पृथ्वीपर आया करते और मनुष्योंको मुक्ति प्रदान किया करते हैं।

यह तो ब्रह्माण्डके महाप्रलयका विवरण हुआ और इसी प्रकार पिंडकी प्रलय भी होती है। कारण यह कि, जो कुछ पिंडमें है सोई ब्रह्माण्डमें है तनिक भी न्यूनता नहीं है। परन्तु सबसे बड़ा महाप्रलय भी एक दिवस होगा। जब केवल एक सत्यपुरुष और सत्य लोकही रह जावेगा और कहीं कुछ न रहेगा। अर्थात् दयाद्वीप नासूतसे लेकर सहज द्वीप अर्थात् आहूत स्थान पर्यंत सब विलोपित हो जावेंगे। केवल सत्य-लोकमें ही शान्ति रहेगी। और सत्य लोकके हंस सब सुरक्षित और सत्यपुरुषकी रक्षामें सदैव समान रहेंगे।

कबीर साहबके अन्तर्धान होनेका वृत्तान्त

जब काशीके मनुष्योंने कबीरसाहबकी अनेक लीलाएँ देखली और जान लिया कि, यह तो स्वयम् परमेश्वर हैं और न किसीके मारनेसे मरते हैं न काटनेसे कटते हैं और न डुबानेसे डूबते हैं और न जलानेसे जलते हैं और न कोई हथियार आपके ऊपर फलित होता है और न मनुष्य तथा पशु और देवता आदि आप पर किसी प्रकारकी क्षति पहुँचा सकता है। तब उन लोगोंने आपसे पूछा कि, आपकी मृत्यु क्यों कर होगी? उस समय आपने कहा था कि मैं मग्गह देशमें जाकर छिप जाऊंगा। अपने कथनानुसार जब कबीर साहब एकसौ बीस वर्ष पर्यंत काशीजीमें रह चुके। दो दिवस आपके जानेमें शेष रह गए तब आपने लोगोंसे कहा कि, अब मैं यहांसे कूच करूंगा और मग्गह देशको जाऊंगा-वहां छिप रहूंगा। यह बात सुनकर

काशीके लोगोंको अत्यन्त दुःख हुआ और दुखका बादल काशीजीपर छा गया और लोग अत्यन्त दुखित हुए और कहने लगे कि, आज काशी शून्य तथा उजाड़ जान पड़ती है। आज काशीका सूर्य छिप चला और नेत्रोंके सामने अन्धकार होने लगा, सब लोग कहने लगे कि हाय! हम बड़े ही अभागे हैं हमने ऐसे सत्यवादी महात्माकी आज्ञाको अंगीकार नहीं किया। समस्त नगरमें इस बातकी धूम मच गई कि, अब कबीर साहब काशीजीसे चले जावेंगे। समस्त नगर दुःख तथा कष्टसे भर गया। काशीके लोग हाहाकार करते और कहते थे कि अब हम क्या करेंगे? हाय! हमने ऐसे महात्माका कहना नहीं माना। पीछेसे खरा खोटा जान पड़ता है। अबलों हम लोगोंको दिखलाई नहीं दिया। राय वीरसिंह बघेल राजा बनारसने जब सुना कि, सतगुरु मग्गह देशको जावेंगे वहां जाकर अन्तर्धान हो जावेंगे। अब जानेके केवल दो दिवस शेष बचे हैं तब उक्त राजा अपने दलबल सहित पहलेहीसे वहां जा पहुँचा और वहांपर सत्यगुरुकी प्रतीक्षा कर रहा था। काशीवासी कबीर साहबको घेर रहे थे और उस समय आपके समीप दश सहस्र सेवक शिष्य उपस्थित थे, उनमें कुदराम पड़ रहा था और सब बिलाप कर रहे थे और मग्गह देशका अधिपति नब्वाब बिजलीखां पठान था। वह पठान कबीर साहबका शिष्य था। जब उसने सुना कि, कबीर साहब अपना अन्तिम दिवस यहां करेंगे तब बड़ा प्रसन्न हुआ कि, भली बात हुई कि, सत्यगुरु अपना अन्तिम दिवस यहां करेंगे मैं अंतिम क्रिया तथा कफन दफन सब कुछ अपने मत्यनुसार करूँगा। वह आपकी प्रतीक्षा

कर रहा था और कबीर साहब काशीसे चलकर मग्गहदेश को जा पहुँचे । आमी नदीके किनारेपर किसी साधुकी कुटी थी इस कुटीमें जाकर वह बैठ गये। और इस समय राजा बीरसिंह और नौवाब बिजलीखाँ और कबीर साहबके बहुत सेवक और शिष्य थे। वह नदी जिसके किनारेपर कबीर साहब आकर बैठ गए थे, वह अनेक दिवसों शुष्क पड़ी थी तब कबीर साहबने गुप्त रीतिसे कमलपुष्प तथा दो चादरें मँगाई और आप लेट गये और लोगोंसे कहा कि, अब ताला बंद कर दो । तब राजा वीरसिंहने कहा कि, गुरुजी मैं आपके शवको लेकर हिन्दू धर्मानुसार क्रिया कर्म इत्यादि करूंगा । तब नौवाब बिजलीखां बोले कि, मैं आपको ऐसा कदापि करने नहीं दूंगा, मैं मुसलमानधर्मानुसार उनकी कफन दफन करूंगा, तब कबीर साहबने देखा कि, ये दोनों युद्धके निमित्त प्रस्तुत हैं, इसमें व्यर्थका रक्तपात होगा और दोनों-को युद्धके निमित्त प्रस्तुत–दोनोंको दलबल सहित~प्रस्तुत पाया । तब आपने दोनोंसे समझाकर कहा कि, सावधान दोनों आपसमें विवाद न करना और कदापि शस्त्र मत चलाना जो मेरी बात मानेगा सो प्रसन्न रहेगा, और सत्यगुरुकी आज्ञाको दोनों दलने स्वीकार कर लिया । तब सबोंने सत्यगुरुको दंडवत् प्रणाम किया और सबका चित्त खेदसे भर गया तब कबीर साहबने चलानेका शब्द पढ़ा और चादर तानकर लेट गये अपने मुंहपर कपड़ा ले लिया और लोगोंसे कहां कि, अब इस कोठरीका ताला वन्द कर दो लोगोंने वैसाही किया । जब ताला बन्द किया तब एक ऐसा शब्द हुआ कि, जिसको सुनकर उपस्थित मनुष्योंके चित्तपर बड़ा प्रभाव पड़ा और जयजयकार हुआ कि, सत्यगुरु सत्यलोकको सिधार गये ।

जब उस कोठरीका ताला खोला तब केवल दो चादर मिले और कुछ कमलके पुष्प मिले, इनमेंसे एक चादर और आधे फूल राजा वीरसिंहने लिये और दूसरी चादर और कमलके फूल नौवाब बिजलीखांने लिया। कबीर साहबका शव कहीं दिखलाई नहीं दिया। राजाने चादर तथा पुष्प लेकर सत्यगुरु की समाधि काशीमें बनायी और बिजलीखाँने भी समाधि बनायी जो मगहरमें है।

हिन्दू मुसलमान दोनों गुरुभाइयोंने एक मंदिर बनाया। अद्यापि हिन्दू मुसलमान दोनों कबीरपंथी वहां मौजूद हैं। आमीनदी जो बहुत कालसे शुष्क पड़ी थी उसमें जल भर गया। जो अबतक प्रवाहित है, अगहन सुदि एकादशी सम्बत् १५७५ विक्रमीको कबीर साहब छिप गये! अन्तिम प्राकट्य में एक सौ उन्नीस वर्ष पाँच महीने और सत्ताईस दिवसों पर्यंत आम पृथ्वीपर लोगोंको शिक्षा देते रहे थे।

कबीर साहबका आदि और अन्तमें शरीर नहीं था केवल एक तेजका प्राकट्य था। ऐसा ही कबीर साहबका प्रकट होना तथा छिप जाना है। जब इच्छा हो तब प्रकट हों और जब इच्छा हो तब छिप जावें। जब कबीर साहब मगहरमें गुप्त हुए तब पुनः मथुर नगरमें प्रकट हुए, वहां रत्नको शिक्षा देकर फिर धर्म्मदासजीको बाँधोगढमें दर्शन देकर उनको सब सत्यपंथका पथ और धर्म्म धर्म्मकी राह बता बयालीस वंशके नियम भली प्रकारसे कह और कालपुरुषके कपट जालसे भली भांति सावधान करके अन्तर्धान हो गये।

गजल

खुरशेद परख परतव मादूम हुआ है इन्सान खबर खैरसे

महरूम हुआ है ॥ आई जो खिजां और गया वक्त बहारी । बुलबुल गुजरा जाए नशीं बूम हुआ है । है कौन जहांमें जो मिटा डाले वह तस्तीर । जो कुछ कि कजा काजी से मरकूम हुआ है ॥ तकदीर बयक नाकः बिठाला है दो महमल । एक नेकनुमा दूसरा बदशूम हुआ है बाकी न रहे और कहीं शम्स शोआय । अफवाज लिये तब महे मालूम हुआ है ॥ पा खाक तेरेसे धरा एक जर्रः सर अपने । सो रहम दो दारैंन का मौसूम हुआ है ॥ जो जहर मो अस्सर बहमः सालिको मसलूक । हर इन्स व जिन उससेही मसमूम हुआ है ॥ आई सब और पुश्त दिखाया शहे आदल । रैयत जमाः जम जोरसे मजलूम हुआ है । इस अहदमें कोई न सुन मर्दुम फरियाद । मखलूक मलिक मौतका महकूम हुआ है ॥ है मौत का चारः आदम जाद बिचारः । अज रोजे अजल उसके ही मकसूम हुआ है ॥ क्या कह सके तुझसे न कहा जाय सो आजिज । जो कुछ कि तुझे गैंबसे मफहूम हुआ है ॥

## कबीरपंथके धार्मिक नियम

### कबीर मन्शूरसे

१–एक अविगत अतीत ब्रह्म सत्य पुरुषकी भक्ति करना, उसके अतिरिक्त किसी ओर भी ध्यान न करना । वह ब्रह्म ( सत्य पुरुष ) केवल पारख गुरुकी शिक्षा और स्वसंवेदक अध्ययन ( पढ़ने ) से जाना जाता है, अन्य कोई भी मार्ग उसके प्राप्तिका नहीं है ।

२–सत्य पुरुष और कबीर साहब एकही हैं, केवल नाम मात्रका ही भेद है । वह एकही दो नामसे कहे जाते हैं, उनमें

लेशमात्र भी भेद नहीं समझना, जो भेद समझेगा उसकी मुक्ति होनेमें भी भेद रहेगा।

३–अपने गुरुकी सेवा तन, मन, धनसे करना। गुरु बचन का विश्वास करना। गुरुका आज्ञाकारी रहना। सत्य कबीर और गुरुमें कुछ भी भेद न समझना, गुरुके ऐश्वर्य्य और सिद्धि आदिका विचार न करना। जो अपने गुरु को ईश्वर करके मानता है और ईश्वरके समान ही उसमें भक्ति रखता है उसीका कार्य्य पूर्ण होता है। जो गुरुमें भेद बुद्धि करता है वह हतभाग्य सदा निष्फलता ही पाता है।

अपने उपार्जनका दशवाँ भाग अवश्य गुरुके भेंट करना। सदा अधीनतासे गुरुका धन्यवाद करते रहना।

४–साधुकी सेवा, भेदबुद्धि त्यागकर, सदा प्रेम और भक्तिसे करना जिसपर सत गुरुकी दया होती है, वही दोनों लोकोंमें भाग्यवान होता है। वही दोनों लोकोंमें सफलकाम होता है।

सर्व प्रकारकी साधुओंकी सेवा निष्कपट हृदयसे करना परन्तु ज्ञानी विचारवान, विवेकी पारखी सन्त जो सत्य पुरुकी भक्तिका उपदेशकर सदाचरणमें लगावें, उनकी सेवामें सदा तत्पर रहना। विशेषतः स्वधर्म्मके सच्चे विवेकी सन्तोंकी क्षिक्षाको सावधानीसे सुनना और उनको ध्यानपूर्वक विचारना चाहिये क्योंकि, स्वधर्ममें पूर्ण और दृढ़ सन्तोंके वचनसे धर्ममें दृढ़ आस्था और स्वधर्म प्रवीणता होती है। इसके उलटा परधर्म ( विपक्षीधर्म ) के पक्षपाती साधुओंके वचनसे स्वधर्ममें अश्रद्धा और भ्रम होता है।

---

१ पर धर्मके पक्षपातीको अपने धर्म पुस्तकमें भी किसी प्रकारसे हस्ताक्षेप करने न दे। उनसे कभी भी अपनी धर्म पुस्तकके शुद्ध करने अथवा अनुवाद आदिकी अभिलाषा न करे।

जिस साधुमें अपने गुरुसे मिलते हुए गुण पाये जावें उसको अपने गुरुसे भिन्न न समझना, अभेद बुद्धिसे श्रद्धापूर्वक निष्कपट भक्ति करना।

५-सर्व चराचर जीवधारियों पर समान भावसे दया रखना किसी स्वरूप आकारमें भी कोई जीवधारी हो सबको अपने शरीर और आत्मा समान जानना। किसी देशकालमें भी किसी जीवधारीको दुःख न देना। संसारमें अपना निर्वाह इस प्रकार करना कि, कभी भी अपनी ओरसे किसी जीवधारीको किसी प्रकारकी हानि न पहुँचे। सब जलचर, थलचर, वनचर, पशु, पक्षी, स्थावर जंगम पर समान दया दृष्टि रखना, सबको अपने ही शरीर और प्राणके समझना।

६-मांस आहारको सब घोर पापोंमें बड़ा पाप समझना। मांस अहारी चाहे कैसे भी गुण और पुण्यसे पूर्ण क्यों न हो परंतु कभी भी वह सत्य मार्गको प्राप्त नहीं कर सकता। मांसाहारी आत्मज्ञानका अधिकारी नहीं हो सकता, उसकी मुक्ति कदापि नहीं हो सकती।

७-मदिरा तथा अन्य सर्व मादकपदार्थ भी मांसके समान ही त्याज्य हैं। कोई मादकपदार्थका व्यसनी ध्यान नहीं कर सकता, ध्यान बिना ज्ञान प्राप्त नहीं होता, ज्ञान बिना मोक्ष नहीं मिलता।

८-व्यभिचारी नर्कको प्राप्त होता है।

९-जितने आकार और रूप ब्रह्माण्ड हैं वे बुत कहलाते हैं, उनमेंसे किसीको भी पूजनेवाला मोक्षका अधिकारी नहीं हो सकता। जिस प्रकार बुतपरस्ती (मूर्तिपूजा) ज्ञान

१-आत्मवत्सर्वभूतेषु यः पश्यति स पश्यति।

मार्गकी टट्टी है, उसी प्रकार गुरु मूर्तिका ध्यान और उसकी भक्ति, ज्ञानद्वारकी कुंजी है।

१०-जो कुछ भोजन, छाजन आदि अर्थात् अपने यात्रा सम्बन्धी पदार्थ होवे, सो सब प्रथम परमात्मा ( सत्यपुरुष ) को अर्पण करले तब स्वयम् स्वीकार करना।

कोई भी पदार्थ जो प्रथम किसी देवी देवताको अर्पण हो चुका हो उसे सत्यपुरुषके भक्ति करनेवालेको कदापि ग्रहण न करना चाहिये उसे कभी भी अपने काममें न लाना चाहिये क्योंकि सत्यपुरुषको अर्पण किये बिना किसी भी पदार्थका ग्रहण करना महापाप है और जो पदार्थ दूसरे देवी देवताको भोग लग गया वह सत्यपुरुषको अर्पण हो नहीं सकता क्योंकि दूसरे देवका अर्पित पदार्थ सत्यपुरुषको अर्पण करना एक तुच्छ सेवकके जूठे पदार्थका बादशाहको अर्पण करनेके तुल्य महान अपराध और अनर्थका कर्ता है।

सत्यपुरुषको भोग लगाये बिना भी कदापि कोई पदार्थ ग्रहण न करे। जो सत्यपुरुषको अर्पण करके किसी पदार्थको ग्रहण करता है उसका फल अमृत समान मिलता है इसलिये उचित है कि, अत्यन्त शुद्ध और स्वच्छ भोजन आदि काममें लावे।

११-न झूठ बोलना न झूठ वचन देना, न झूठे का संग करना और न झूठेसे किसी प्रकारका व्यवहार करना।

१२-न चोरी करना, न चोरोंको साथ देना, न उनकी सम्मतिमें सहमत होना, न उनको सम्मति देना न उनका माल लेना, न उनके निकट जाना।

१३--जूआ न खेलना, जूआ महान दुखका घर है,

जुआरियोंकी महान् दुर्दशा होती है। महाराज नल, महाराजा युधिष्ठिर आदि पुण्यस्वरूप धर्मावतारोंको भी इस जूआने कैसा नष्ट और दुर्दशाग्रसित कर दिया। जूआ, झूठ, चोरी, व्यभिचार और हिंसा आदि सब पाप परस्पर ऐसे संबन्ध रखते हैं कि, एक दोष आनेसे क्रमशः सर्व आपही आप आ जाते हैं। इनमेंसे एकको भी धारण करनेवाले पुरुष महान् कष्ट और दुःखोंको संसारमें अनुभव करते हुए परलोकमें नर्कके भागी होते हैं।

१४-शरीरके ऊपर द्वादश तिलक लगाना, कपालमें खडी लकीरके समान सीधी तिलक करना, वैसे ही मस्तक, दोनों आंख, नाभि, हृदय, दोनों भुजा और दोनों छातीसे लेकर मोढे-की ओर फिरता हुआ, पीठपर और कानपर तिलक करे।

१५-वस्त्र श्वेत और उज्ज्वल रखे।

१६-ग्रीवामें तुलसीकी माला और तुलसीकी कंठी धारण करे।

१७-सत्य नामका जप, कीर्तन और भजन करे।

१८-सत्य पुरुषकी भक्ति और सत्य पंथका उपदेश करे।

एक मनुष्यको सत्य पुरुषकी भक्ति और सत्य पंथमें प्रवेश करानेका फल क्रोड़ों गऊको कसाईके हाथसे बचानेके पुण्यसे भी बढ़कर है।

१९-यंत्र, मन्त्र, तन्त्रादिकी ओर कभी ध्यान भी न दे, ये मुक्ति और भक्तिके शत्रु हैं, इनका साधन करनेवाला छल कप-टके व्यसनमें फँसकर महा दुराचारी हो नर्कका अधिकारी होता है, जितने तन्त्रादिके साधन हैं सब नर्कके मार्ग हैं।

२०-स्वसंवेदके बिना दूसरी पुस्तकोंसे मुक्तिपथ मिलनेकी

१ यंत्र मन्त्र तन्त्रका आशय देखो, पण्डित श्रद्धामणि फिल्लोरी विरचित सत्यामृत प्रवाह पृष्ठ १८० में।

२-वेदादी विद्या सबै, बोध हेतु हिय धार। सब मत महरम करे, तब देखो निजसार॥

आशा न रखना, परन्तु अन्य पुस्तकोंको बोध और ज्ञान वृद्धिके हेतु पढ़ना ।

२१-सत्य कबीर और उनके सच्चे हंस और कडिहारके अतिरिक्त दूसरेको मुक्तिपथका दर्शन नहीं समझना ।

२२-पारख गुरुकी शिक्षा बिना मुक्ति कदापि नहीं हो सकती।

२३-सत्य पुरुषकी भक्तिके अतिरिक्त अन्य सब भक्तियां भवसागरमें डुबानेवाली हैं ।

२४-तीर्थ, व्रत आदि सब यमके बन्धन हैं ।

२५-नौधा भक्ति और चार प्रकारकी मुक्ति सब बन्धनही हैं।

२६-निर्गुण और सगुणके ध्यान करनेवाले सदा बन्धनमें रहते हैं ।

२७-हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, यहुदी आदि सब जाति और धर्म्मके लोग कबीरपन्थमें मिल सकते हैं सबके हेतु समान ही भक्ति और मुक्ति है ।

२८-नर्क स्वर्ग तथा अन्य सर्व लोक अज्ञानियोंके हेतु ठहराये गये हैं जिसको सत्य आत्मज्ञान प्राप्त हुआ उसके हेतु सब असत्य और भ्रममात्र हैं।

२९-सार शब्दके अतिरिक्त मुक्तिका द्वार कोई भी नहीं ।

३०-निन्दा, ईर्षा, वैमनस्य, छल, कपट, अभिमान आदि मुक्तिके शत्रु हैं।

३१-अधीनताके द्वारा सर्व शुभगुण और पुण्य प्राप्त होते हैं ।

३२-मुक्ति मार्ग बहुत सांकरा और नर्कका मार्ग बहुत चोड़ा है।

---

१-कबीर-हम बासी वहि देशके, जहां जाति वरण कुल नाहिं, । शब्दमिलवा होय रहा, देह मिलावा नाहिं, ।। जाकी मर्यादा जौन विधि, वरते सोई प्रमान । जमा मांहि कछु भेद नहीं, उज्ज्वल धर्म औ ज्ञान ।

३३–कबीर साहब विदेह हैं उनका देह कभी नहीं कल्पे ।

३४–कैसीहू विपति क्यों न आन पड़े अपने सत्यगुरुके अतिरिक्त किसी दूसरेकी सहायताका ध्यान न करें । सत्यगुरुके अतिरिक्त किसीसे भी किसी प्रकारकी आशा न रखे ।

३५–जो कोई सतगुरुकी शरणमें आवे उसे शरणके नियमोंको भली प्रकार पूर्ण करना उचित है । पूर्ण विश्वास रखे कि सत्य गुरु अवश्य कालके जालसे निकालेगा और दुःख सागरसे पार करेगा ।

३६–सत्यगुरुकी कृपाका धन्यवाद कभी न भूले, क्षण क्षण में धन्यवाद ही देता रहे । ऐसा नहीं कि, प्रथम तो प्रार्थना करता रहे और पश्चात् भूल जावे । कृतघ्नी कभी भी मुक्त नहीं होता ।

३७–ईश्वरीय भय मुक्तिका चिह्न है मृत्युको सदा स्मरणमें रखना ।

३८--सच्चे प्रेमके बिना भक्ति निष्फल है ।

३९--धन्य हैं वे जो शरीरका मोह छोड़कर भक्तिमें लगते हैं ।

४०--उदारताके बिना कोई भी भक्तिता पद प्राप्त नहीं कर सकेगा । उदार दोनों लोकमें सुखी होता है उसका थोड़ा पुण्य भी बहुत फलदायक होता है । कृपणके भजन और तपस्या निष्फल होते हैं,चाहे वह जितना भक्ति और भजनका ढोंग करे परन्तु निष्फलताके अतिरिक्त उसको कुछ भी प्राप्त न होगा । कृपण दोनों लोकमें दुःखका ही भागी होता है ।

४१--मौन परम उत्तम गुण है । आवश्यकताके अनुसार यथा अवसर बोलना, निरर्थक बकबक न करना । मिथ्यालाप करनेसे आत्मा और शरीर सबकी हानि है ।

४२-सत्यगुरु ( कबीर साहब ) की वाणीका पाठ करना, बारम्बार मनन करना, उनके आशयके ऊपर विचार करना, उसके भेदको भली प्रकार सोचना, समझना और सदाकाल उन्हींका चिंतन रखना उनके आशय समझनेमें कोई भी युक्ति उठा नहीं रखना। सत्यगुरुके शब्दोंको यथा अवसर गाना और कीर्तन करना, सत्य गुरुकी प्रशंसा और प्रार्थना सदा करते रहना।

४३-जितने धर्म संसारमें प्रचलित हैं सबके आचार्य्य कबीर साहब हैं परन्तु मुक्तिदाता तो स्वयम् ( कबीर साहब ) और चार गुरु तथा उनके वशोंकोही ठहराया है, अन्यको नहीं।

४४-किसीको कभी शाप न देना, किसीको कुवचन न कहना, न किसीका अहित चिंतन करना।

४५-परमात्माको सर्वत्र पूर्ण जानना। किसी प्राणीको भी दुःख देनेको ईश्वरको दुःख देनेके तुल्य जानना।

४६-अभिमानी कभी परमात्माको व्यापक नहीं देख सकता।

४७-गुरुकी आज्ञाकारिता परम तपस्या है।

४८-जबतक शरीरसे लाड़ प्यार है उसकी पोषणमें वृत्ति लगी है तबतक आज्ञाकारिता असम्भव है।

४९-मूर्ख, शठ और विद्याहीनको मुक्तिपद कदापि नहीं मिलता।

५०-जबतक शरीरका भय और चिंतन है अर्थात् देहाभिमान है तबतक विदेह कदापि प्राप्त नहीं हो सकता। जो स्वयम् विदेह हो वही विदेहको प्राप्त हो।

### कबीर साहबके लोक और हंसोंका वृत्तांत

कबीर साहबका वह लोक है जिसका गुण कहने और सुननेके बाहर है, केवल स्वसंवेद थोड़ासा विवरण करता है

जिस समय उस लोकको हंस चलते हैं उस समय उनके प्रतापका वर्णन कुछ किया नहीं जा सकता है, उनके सौन्दर्यका बखान किससे हो सकता है जिनका एक एक बाल ऐसा देदीप्यमान और तेजमय है कि, जिसके सामने करोडों सूर्य और चन्द्र छिप जावें, उनके सौन्दर्य्यका वर्णन कौन कर सके उन हंसोंके मनमें तनिक भी बासना नहीं रहती है और निरंजन, आद्या, ब्रह्मा, विष्णु, शिव, ऋषि, मुनि इत्यादि वासनाके ही अधीन हो वारम्वार संसारमें जन्म लेते हैं। राम कृष्ण सिद्ध साधु इत्यादि सब धर्म वासनासे जन्म लेते हैं।

जिस समय कोई मनुष्य मरता है तब उत्तरकी ओर होकर ऊपर चलकर प्रथम विष्णुके निकट अपने पाप पुण्यका लेखा देनेके निमित वैकुण्ठको जाता है और जब हंस कबीर चलते हैं तब सत्यगुरुके शब्दके लवद्वारा अपने पूर्ण बलसे ऊपर की ओर चढ़े चले जाते हैं जब ब्रह्माण्डके पार हुआ चाहते हैं तब धर्मरायकी तीन सौ साठ कन्या मिलती हैं जिनके वस्त्र आभूषण और सौन्दर्य आदिका मैं क्या विवरण करूँ? सत्यकबीरके अतिरिक्त ऐसा कोई भी तीनों लोकोंमें नहीं है कि, उनको देखकर आसक्त न हो जावे; वे कन्यायें उस स्थानपर इस कारण नियत की गई हैं कि, हंस कबीरको अपने जालमें फँसालेवें जब वे हंस कबीरके निकट जाती हैं तब नाना प्रकारके हावभाव कटाक्ष द्वारा उनको मोहित करना चाहती हैं। परन्तु वे उनकी ओर तनिक भी ध्यान नहीं देते! वे कहते हैं कि, दूर हो और चली जा तुम्हारी तनिक भी इच्छा तथा कामना हमको नहीं है। तब वे निराश होकर लौटती हैं। भला मकडीके जालमें भारी पदार्थ कैसे फँस सकते हैं। जब

हंस उनको अनादर करके चलते हैं तब आगे धर्मराय मिलते हैं दंडवत् प्रणाम करते हैं और हंस ऊपरकी ओर चले जाते हैं। जब सत्यलोकको पहुँचते हैं तब सत्यलोकके हंस उनकी अगवानीके निमित्त बाहर निकलते हैं और प्रत्येक हंस अपने हृदयसे लगता मिलता और प्रसन्न होकर कहता है कि, बहुत दिवसोंके पृथक् हुए हंस आज हमसे आकर मिले। समस्त हंस मिलकर उनको सत्य पुरुषके निकट ले जाते हैं और वे हंस सत्य पुरुषका दर्शन पाते और दंडवत् प्रणाम करके कृतार्थ हो लोकमें बास करते हैं।

शेर

मुर्गे रूह आखिरी नफसको। जब छोड़े इस उनसरी कफसको॥
सतलोक सिधार साथ सतमाज। उसवक्त करे बुलन्द परवाज॥
दर सिम्त शुमाल सरबसर जाय। बाहुर अत सो उबूर कर जाय॥
वह नूरो जलाल बेबयाँ है। गुफ्तारे कबीरमें अयाँ है॥
जब सुकृत लोक रुखरवाँ हो। रागोरंग देखते दवाँ हो॥
देखे कही सब्जः लाल जाराँ। बाहुस्नोजमाल गुलअजराँ॥
सदहा गुलशन चमनबहारी। शीरीं नहरों पुर आब जारी॥
गहे बर्क बदन है नाजनीनाँ। हे खूब लगी बजार मीनाँ॥
है फिरते कहीं ये हूरो गिलमाँ। बैठे कहीं जाहिदो मुसलमाँ॥

सैकड़ों प्रकार की बस्तियां और सृष्टिकी रचना देखते हुए ऊपरको चलता है-और स्वर्गों तथा वैकुण्ठोंकी सैर करते और समस्त बस्तियों और शून्यको पार करके तब सत्यलोकको पहुँच जाता है।

कबीर साहबका मंगल

चल हंसा सतलोक हमारे, छोड़ो यह संसारा हो।

यहि संसार काल है राजा, कर्म्मको जाल पसारा हो।
चौदह खंड बसे वाके मुखमें, सबही को करत अहारा हो।
जारबार कोयला कर डारन, फिर फिर दे अवतारा हो।
ब्रह्मा विष्णू शिवतन धरिया, और को कौन विचारा हो।
सुर नर मुनि सब छलछल मारले, चौरासीमें डारा हो।
मध्य अकाश आप जहँ बैठे, ज्योति शब्द ठहियारा हो।
ताको रूप कहांलग बरनो, अनंत भान उजियारा हो।
श्वेतस्वरूप शब्द जहां फूले, हंसा करत बिहारा हो।
कोटिन चांद सूर्य छिपि जैहैं, एक रोम उजियारा हो।
वही पार इक नगर बसत है, बरसत अमृत धारा हो।
कहैं कबीर सुनो धर्मदासा, लखो पुरुष दरबारा हो।

इस सत्य लोककी मनोहरता और हंसोंका रहन सहन और रीति व्यवहार सूक्ष्मवेदके पढ़नेसे जाना जावेगा।

मुसद्दस

यह हरदो जहां काल पुरुषके है हिजारे।
हर सिम्त व हर जायमें यम जाल पसारे॥
यक लोक व यक वेद दो दरियाके किनारे।
सैयादके काबूमें हैं सब जीव बेचारे॥
चलती है यहां तेग व तलवार दो धारे।
चल हंस अचल मोलिदो मावाय हमारे॥
जब भूल गया आदमको आपही आपा।
पावन्द हुवा तिफली जवानी व बुढ़ापा॥
सबपर है लगा मलिक मौत मोह व छापा।
है आग लगी बेशः जलेगा यह सरापा॥
जलते हैं धोल उड़ते धुवें धार शरीरे।

चल हंस अचल मोलिदो मावाय हमारे ॥
अफसोस लिया लूट धरम धरमन धूरत ।
एक इश्क जदः भई है हुस्न है औरत ॥
हर कौन किया भौन है यह मोहिनी मूरत ।
दिल पार हुवा पारः बमह पारए सूरत ॥
बाजार खड़े मार वा बीमार नजारे ।
चल हंस अचल मोलि दो मावाय हमारे ॥
कैलास चलेगा व जिनूँ लोक चलेगा ।
अमरावती अलकावती गोलोक चलेगा ॥
सब स्वर्ग चलेगा व तपोलोक चलेगा ।
जो हद्द जनो मर्दमें सो लोक चलेगा ॥
वो भी चल जावे जहां नौलाख सितारे ।
चल हंस अचल मोलि दो मावाय हमारे ॥
कोई न रहे एक पुरुष लोक रहेगा ।
आवे जो वहांसे सो खबर उसकी कहेगा ॥
सब कौल कर शमः अजिले सोल बहेगा ।
जिसको वह नजर आवे सो फिर कछु न चहेगा ॥
निश्चल सो रहे कायक जहां अमृतधारे ।
चल हंस अचल मोलि दो मावाय हमारे ॥
हंसोंकी हुस्न खूबी कही जाए सो कैसे ।
यह नातिकः गुम सुम्म बयां कीजिए ऐसे ॥
एक मूय मुनौविर कह इस नूरका जैसे ।
छिप जायँ करोडों महेहुर तलअत तैसे ॥
सब हंसापुरुषरूप पुरुष उनको दुलारे ।

चल हंस अचल मोलिदो मावाय हमारे ॥
जहाँ रात न दिन है व नहीं सूरज चन्दा ।
सोहँग दुरै चँवर करे पुरुष अनन्दा ॥
यक सूरत सारे न खुदावन्द न बन्दा ।
इस मंजिल नजदीक नहीं कालका फन्दा ॥
जिस लोक महेशःको परमहंस पधारे ।
चल हंस अचल मोलि दो मावाय हमारे ॥
सतगुरुकी शरण लेके चलो बहके उसपार ।
वह कादिर मुतलक हुवा जिस जीवका मददगार ॥
कर पलमें सुबुकदोष उठा उसका गराँ बार ।
पहुँचावे वतनमें न बुतनमें होवे औतार ॥
आजिज से गुनहगार कतारोंको जो तारे ।
चल हंस अचल मोलिदो मावाय हमारे ॥

इति कबीर चरित्र बोध समाप्त



सत्य

# अथ गुरुमाहात्म्य-प्रारंभः

★

भारतपथिक कबीर पंथी-
स्वामी श्रीयुगलानन्द द्वारा संशोधित

★

मुद्रक व प्रकाशक

**गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,**

**अध्यक्ष-" लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर "-प्रेस**

**कल्याण-बम्बई.**

---

सत्यनाम



श्री कबीर साहिब

### सत्यनाम

सत्यसुकृत, आदि अदली, अजर, अचिन्त, पुरुष,
मुनीन्द्र, करुणामय, कबीर, सुरति योग संतान,
धनी धर्मदास, चुरामणिनाम, सुदर्शन नाम,
कुलपति नाम, प्रबोध गुरुबालापीर, केवल नाम,
अमोल नाम, सुरतिसनेही नाम, हक्क नाम,
पाकनाम, प्रकट नाम, धीरज नाम,
उग्र नाम, दया नामकी दया, वंश-
व्यालीसकी दया

# अथ श्रीबोधसागरे

### अष्टत्रिंशतिस्तरंगः

## अथ गुरुमाहात्म्य–प्रारम्भः

★

#### धर्मदास वचन

धर्मदास कर जोरे ठाढ़े। एकटक सुरति प्रेमचित बाढ़े॥
करहु दया तुम निर्गुण स्वामी। वचन सुनावहु अन्तर्यामी॥
किमि गुरु ध्यान बन्दना कीजे। होहि सुदृष्टि मोहि कहि दीजे॥
जा पद जीव तरे भवसागर। शोक हिये हंसनपति आगर॥
तेहि मगाशिष गुरुपद लागू। नहिं धन धाम होय अनुरागू॥

सतगुरुवचन

धर्मदास बूझे भल ज्ञाना । तुमसे कहौं सत्य चितमाना ॥
साहेब सम सतगुरु कहँ जानो । दुजी भावना चित्त न आनो ॥
जब गुरु मिले करे परनामा । छन छन पल पल आगे जामा ॥
गुरु चाहत जो शिष हे नागर । होय अधीन शीख मतिआगर ॥
शीष सुमिरि निशदिन अनुरागा । पानदेन वाइस मतभागा ॥
सद्गुरु शब्द गहे टकसारा । भवजल जीव उतारे पारा ॥
सद्गुरु कर्म देखि जिव केरा । तत्क्षण गुरू करहि निर्वेरा ॥
तिनुका तोरी देइ जिव याना । फिर नहिं जन्म धरे भवआना ॥
तुरते तब पावे टकसारा । होय हिरण्मय हंस हमारा ॥
वर्णभेद निर्णयकरि पावे । कालत्रास तेहि निकट न आवे ॥
प्रथमहि गुंजबरणको लेषा । सत्यशब्द गुरु कहै विशेषा ॥
गुंजवरण जो हंसा होई । गुरुलहि तेई हंस समोई ॥
गुंजवरण पावे परवाना । राय बंकेज हंस मगु जाना ॥
कर्म देखिकै तिरन तुरावे । राय बंकेजको पान जो पावे ॥
साखी–देहि पान जेहि जीवको, कर्म कटा तेहि जान ।
हंस होय सत्यपुर चले, सद्गुरु वचन प्रमान ॥

चौपाई

वरण भेद पावही प्रवाना । सो हंसाकर लोक पयाना ॥
पावे दर्श पुरुषके जाई । रहे अटल पुनि छत्र तनाई ॥
करे अटल युग युगका राजू । जिन पाया निर्णयका साजू ॥
होय बहुरि स्थिर गर्भ न आवे । वरण भेद परवाना पावे ॥
सो गुरुकी पुनि आरति कीजे । चरण पखारि चरणरज भीजे ॥
सो रज हिय अरु शीश चढावे । कालप्रबल तेहि निकट न आवे ॥
ऐसे गुरू मुक्तिके मूला । तेहि पद सम दूजा नहिं तूला ॥

गुरुसाहेब जाने दृढ़ हीता। जेहि परताप काल जग जीता॥
शिष्य जो करे गुरूसे चोरी। अजगर योनि होय तेहि केरी॥
शिष्य जो गुरुसे अन्तर करई। जन्म जन्म चौरासी परई॥
गुरु निंदा श्रवण सुने जबही। वेगिहि ठांव तजे पुनि तबही॥
जेहि कानन सुमिरन सुनि लीन्हा। निंदा सुनि चह मूँदन कीन्हा॥

साखी–गुरुनिंदा श्रवणन सुने, तत्क्षण छोड़े ठांव।
जेहि कान गुरुस्तुति सुने, निन्दा निकट न ल्याव॥
गुरुसे द्रोही शिष्य जो, संतन कीन्ह विरोध।
सो चौरासी भर्म ही, मारे काल करि क्रोध॥

चौपाई

गुरुकी आशीष नहिं मानी। करि अभिमान कालसम जानी॥
गुरुहि छोट करै शीष समाई। सोई जन्म जन्म भरमाई॥
शिष्य जो भोगै गुरुकी नारी। होइ अजगर बसै विपिन मँझारी॥
तन छूटै धरि बृष अवतारा। लहि अनेक विधि पाप विकारा॥
काया छुटै वृभषकी जहिया। स्वानजन्म पुनि पावे तहिया॥
भूँकि भूँकि जग मरे गँवारा। विषय पाप पचवे संसारा॥
शूकर जन्म होय पुनि ताही। सकल अपावन निशिदिन खाही॥
निलज होय योनिनमें परई। लख चौरासी भ्रमता फिरई॥

साखी–पाप विषय नहिं परिहरे, मरि मरि ले अवतार।
कहें कबीर धर्मदाससों, ऐसे कर्म अपार॥

धर्मदास वचन–चौपाई

धर्मदास विनती अनुसारी। हे सद्गुरु मैं तुम बलिहारी॥
तेहि जीव किमि होय उबारा। फांसी डारै काल अपारा॥
सो साहब कहिये मोहिं सांचै। जैसे जीव कालसे बांचै॥

सद्गुरु वचन

धर्मदास बूझेहु भल बाता। सो अब तोहि कहों विख्याता॥

कुटिल है जीव कर्म अति आगर। तासु कथा भाषों सुनो नागर ॥
चौथी पीढ़ी अंश मम होइहैं। नाम प्रमोददास जग पैहैं ॥
दास प्रमोद प्रकटि संसारा। लेखा शब्द देहि टकसारा ॥
जीव अंध शरण कर्म जैहैं। तासु कर्म सब दूरि बहैहैं ॥
नरियर हाथ लेहि पुनि जाका। तिरन तुराव कर्मगति ताका ॥
ता पीछे परवाना देहैं। हंस उबार अपन कर लेहैं ॥
सत्यशब्द चले टकसारा। पलमें हंस उतारे पारा ॥
दास प्रमोद प्रकटे जगमाहीं। बिछुरे हंस लोककूं जाहीं ॥
अमृत धारी देहि प्रवाना। सो हंसा पूरुष मनमाना ॥

साखी-कर्म कटे तेहि जीवके, जाकहँ देहै प्रान।
ऐसे ऐसे पुरुषके, हंस करे निर्वान ॥

चौपाई

जेहि जीव देहैं कड़हारी। सत्यशब्द देहैं टकसारी ॥
ध्यानभेद भाषो समुझाई। निर्णय देख हंस मुकताई ॥
निर्णय पाय करे कडहारी। धर्मराय मुख जरत उबारी ॥
सो कडिहार सत्य धर्मदासू। जीवन कर्म करे जो नासू ॥
निर्पवनहिका करे विचारा। तासु जीव हम पार उतारा ॥
निर्पवनहि ले गहिहे हाथा। " " " ॥
छेहत्तरके आगे भाषा। तावट हंसलोक ले राषा ॥
सोई पवन हंसन रखवारा। भवजल जब उतारे पारा ॥

साखी-छेहत्तरके आगे, सतहत्तर गह योग।
जरा मरण भ्रम मेटके, कबहि न व्यापै सोग ॥

चौपाई

सात पाँच नरियरमें नाहीं। ता सजीव जानें गहिहो वाहीं ॥
ताहे जीव आपना जानी। कर्मरूपता कर्म न मानी ॥

युग बंधन पाये जो पाना । हंस होय सत्यलोक समाना ॥
दृढ प्रतीत होइ करे गुरुसेवा । भक्तिहीन गुरु पावन देवा ॥
साखी–दीन्ह नील जेहे नानहूँ, भक्तिभाव अनुराग ।
निश दिन गुरु चरण गहे, हंस होवे बड़भाग ॥

धर्मदास वचन–चौपाई

धर्मदास कहे हंसन पति राजा । भलविध कीन्ह हंसको काजा॥
तुमहि पुरुष हो तुमही ज्ञानी । तुमहीं वंश रूप हम जानी ॥
पुरुष रूप तुम उत्पन्न कीन्हा । वंश रूप जग तारण लीन्हा ॥
सतयुग कौन जीव जग रेहू । केहि विध हंसन आन उबारेहू॥
कौन नग्र कहवा तुम गयऊ । केतिक जीव शरण तुम भयऊ॥
कैसे सेवा कीन्ह बनाई । हिये दलक होकै समुझाई ॥

सतगुरु वचन

पुरुष अवाज आये भव सागर । सत्य सुकृत हम नाम उजागर॥
उत्तर दिशा गयउ निज ठामा । श्रीनग्रे पहुँचेउ तब ग्रामा ॥
राय मोहम तहाँके राजा । भक्त करत भेटत कुल लाजा ॥
सुन्दर बदन रूप अधिकाई । परजा सुखी राजसुख पाई ॥
शुचि संयमआत्मज्ञान उजागर । दीन लीन्ह संतन सो आगर ॥
करत खोज साधू सो प्रीती । अति आनंदरूप सुखरीती ॥
भांति भांतिके मंडप छावा । साधु संत आदरके लावा ॥
करे महोत्सव साधु बोलाई । प्रेम पुरुष निशदिन मनभाई ॥
निश दिन वेद कथासों प्रीती । कौन भांति जिव यमसों जीती॥
साखी–खोज करत चित व्याकुल, ढूंढत सगलो भेष ।
सिरजनहार बतावई, सबही कहत अलेष ॥

चौपाई

चले राय तहां बद्रीनाथा । सुत सुमित्र लिये रानी साथ ॥

साधुरूप हमही कर लीन्हा । रायसंग तत्क्षण पग दीन्हा ॥
गये नृप जहवाँ प्रीतम बिराजा । भांति भांतिकर बाजन बाजा ॥
कछुक द्रव्य ले आगे राषा । विनय दंडवत बहुविध भाषा ॥
होत कुलाहल मंगल चारी । भांति भांति गावे नर नारी ॥
बद्रीपरश रायकर आसन । बैठ नृपति जाय सिंहासन ॥
हम जीवन सौशब्य पुकारा । धार धार फिरे सेवनके धारा ॥
चेतहु प्राना शब्द सँदेशा । चलो जहां तहां हंस नरेशा ॥
तहवाँ जाय बहुरि नहिं आवे । एक चित्त होय नाम लोलावे ॥
सकल जीवसे कहेउ चेताई । एको जीव नहिं पतिआई ॥
सात दिवस रायहि तब बीता । कौतुक एक तहां हम कीता ॥

छंद–गयउ मंडपपास तत्क्षण जहां बद्रीनाथ हो ।
रूप पाहन कीन्ह पारस दिनेहु मस्तक हाथ हो ॥
बीति निशि भिनसार भो तब जाय पंडा पूजही ।
करत आरति भयउ चक्रित देखादे जावे तब बूझही॥

सोरठा–आरत आहेकू घात, प्रतिमापद कंचन भयो ।
कहत सकल सो बात, राजारामदास जाय जनायो ॥

चौपाई

राजा सुनत हर्षे चित दीन्हाँ । प्रभु मायाको जानन लीन्हाँ ॥
भयो अचम्भो लोगन सबही । लीला आप कीन्ह प्रभु अबही॥
स्तुति करत बहुत हर्षाहीं । सत्य भेष कोइ चीन्हत नाहीं ॥
राजा दिल केरे सब साधू । चले संत जुथ जुथ मतबाधू ॥
राजा झारी लीन्हे हाथा । सकल भेद कह नावहि माथा ॥
रानी साधुन चरण पखारा । राजा आपन कर जल ढारा ॥
सकल भेष कहे बैठे जेवनारा । जय जय मंगल होत उचारा ॥
तब हम ताहां बैठे जाई । पूर्ण शशी सम रूप दिखाई ॥

श्वेत अंग कीन्हेउ अति पावन । बैठे अधर सुकृत मन भावन ॥
देखि लोग सब भये अचंभा । हर्षित राय चरण गहिथंभा ॥
बहुतक साधू मम गृह आया । ऐसे साधू नहिं हम पाया ॥
को तुम आहु कहांते आई । आपन परचे कहो बुझाई ॥

सुकृत बचन

जो तुम बूझहु राय सुजाना । आपन कथित कहां सैदाना ॥
अमरलोकते पुरुष पठाई । जीव उबारन हम जग आई ॥
आए उत्तर दिशि चितलावा । श्रीनग्र तुम कारण आवा ॥
बद्रीनाथ आवे तुम जहिया । पापपुञ्ज सब भागे तहिया ॥

छन्द–जीव सबसों कहेउ घरघर, शब्द काहू ना गहे ।
गयउ बद्रीजीको मंदिर, चित्त मम हर्षित अहे ॥
दीन्ह मस्तक हाथ तत्क्षण, रूपपारस जिन दियो ।
प्रीति तुव हिय देखि दृढ़ होय,दरश अब तोकह दियो ॥

सोरठा–भक्त हेतु तुव अंग, साधन प्रिय तुव हिये अहे ।
निश साधनके अंग, तातचित तोहे राचहे ॥

चौपाई

एतिक बचन राय सुने जबहीं ।राजा बचन माहि विहसि तबहीं॥
निःसंगत जिमि उगे अकाशा । कोक शोक मिट होत हुलासा॥
इमि राजा दर्शन आनंदा ।जिमि चकोर पायो निशिचन्दा॥
रानी राय चरण उर धारा ।क्रिया कीन्ह मम ब्रिथा बिसारा॥
मोहि सनाथ कीन्ह प्रभु पावन। मग अकर्म हारा मनभावन ॥
आपनकर कीजे मोहि दाया । हम चीन्हा यह तुम्हरी माया ॥
सकलजीव चकित मन भायउ । नगर लोग सब देखन धायउ ॥
तरुण वृद्ध औ बालक धाए । सबही देखि प्रदक्षिण लाए ॥
सन्त वृद्ध बहु जुरे अपारा । अस्तुति करे सकल बहु वारा ॥

छन्द-पाणि जोरे राय ठाढे दोहु पद मोहि पावनो ।
चरण कमलअधार तुम्हारे उभय ओर नभावनों ॥
छोड़ी नारी पुत्र पुत्री तुरग धन गज संपता ।
राज काज गूमान छोड़िउ देखत तव पद मन रता॥
सोरठा-अब प्रभु तुमते काज, यहि विध मनमें मानि तोहि ।
तजे लोक कुल लाज, सत्यपद चित अनुराग मोहि॥

सतगुरु वचन-चौपाई

राजा विनय कीन्ह बहु मोरी । हृदय गुमान तजी है तोरी ॥
कैसे तोह काल उठ भाजा । ऐसी तब मति भई दराजा ॥
राजगुमान छोडि गहु चरणा । भेंटो तोर जरा औ मरणा ॥
सतगुरु चरण सीख मन लाई । काल प्रबल तब निकट न आई॥
सत्रह रानी कुँवर पचासा । एकचित होय भर्म सब नासा ॥
जब लग भर्म मिटे हिय नाहीं । तोलग काल गहे जिव बाही ॥
गृह जिव सुमत होय सब एका । तब तुम गहो सन्तका टेका ॥
एकही सुर्ति भक्ति होय ठाना । ते हंसा मम संग सिधाना ॥
बातन भक्ति होय नहिं राजा । बातन नाहे सरत कछु काजा ॥
जब तुम मोहत जो मद माया । तब तेहिले हम लोक सिधाया ॥
गृहसंपत सब देह लुटाई । राज काज छोड़ो चतुराई ॥
गज धन तुरग सकल तुम छोड़ो । दुर्लभ मारगमुख मति मोड़ो ॥
तब मैं तोहि अपनो करि जानो । भक्त प्रेमचित ज्ञान समानो ॥
छन्द-मोह मद अभिमान संयुत, लोभ तृष्णा अतिबली ॥
कामि कामिनी करत क्रीडा, देवऋषि जिव सब छली ॥
वह सकल त्यागै सबू पागै, ज्ञान अविचल पद गहे ॥
ताहि जीवले लोक पहुँचे, काल कर तेहि ना गहे ॥
सोरठा-सो जीव सँग मम होय, सकल त्याग एकनाम गह ।
और आश नहिं कोय, शब्द गहे मन हर्षिके ॥

### राजामोह वचन–चौपाई

एतिक शब्द सुनो मतिमाना । दृढ प्रतीति उपजा चित ज्ञाना ॥
तत्क्षण हस्ती तुरग मँगवावा । धनसंपति सब तुरत लुटावा ॥
एकचित होय राय औ रानी । कुँवर पचास सुर्त एक आनी ॥
पुत्र पचास संग वे रहई । एक सुर्त ते बाते करई ॥
इमि सतगुरुकी सेवा कीजे । जेहि परतीत अभयपद लीजे ॥
हे सद्गुरु जीवन सुख दाता । देत राज युग युग यह बाता ॥
नेगी योगी राय बुलावा । सकल नग्र तुम कहैं गोहरावा ॥
सद्गुरु शरण राय गहि पाई । जेहि अनुराग होय हो आई ॥
नेगी जाय कहे सब पासू । राजा गह साहेब विश्वासू ॥
प्रजा सकल कीन्हा मत एका । होय सुमति गहो शब्दहि टेका॥
नेगा और प्रजा सब आये । राजासो उठि विनती लाए ॥
राय मता तुम है अवगाहा । हम सब जीव संग तुम आहा ॥
जो आयसु होवै महराजा । सो हम करें मेंटि कुल लाजा॥

### राजाका मोह वचन

सफल जन्म चाहो रे भाई । सद्गुरु शरण गहो लौलाई ॥
एक सुर्त हर्षों दृढ नागर । गुरु रानिय हंसा होय आगर ॥
ऐसे गुरुसों बिनती लाऊ । सकलो नग्र संग ले जाऊ ॥

छंद–सकल जीवन सुर्ति करके, राय चल हर्षित भये ।
जहाँ आप विराजे सुकृती, धाय पदपंकज नये ॥
जीव सब तुम शरण आये, आपने करि लीजिये ।
दया करि जिव बन्दि छोरे, अमर वासा दीजिये ॥

सोरठा–रानी सत्रह साथ, कुँवर पचास पद गहि लिये ।
सब जीवन नायेहु माथ, दरस दान प्रभु दीजिये ॥

चौपाई

साहेब चलो महल पग दीजै । हंसराज आपन कर लीजै ॥
दूजो चित कीजै जनि मोही । बारबार बिनवौं प्रभु तोही ॥
हम अजान कछु जानत नाहीं । तुम तो पुर रहे सबही माहीं ॥
कृपा करो मम बिथा विसारो । कालजाल जीवन निर्बारो ॥
चलि मंदिर पगु दीजे स्वामी । विनय करों सुनों अन्तर्यामी ॥
चले सुकृत महल पगु धारा । परजा रानी कुँवर भूआरा ॥
राजा रतनसिंहासन लाई । चरण बंदि सुकृतहि बैठाई ॥
सत्रह रानी आरति करहीं । बहुविध चितसों विनती धरहीं ॥
सकल जीव हैं शरण तुमारे । भवसागरते जीव उबारे ॥
हंसमती जेठी नृपरानी । साहेब चरण पखारे आनी ॥
हाथे चवँर कुँवर सब ढावत । एकहिटक सबे रूप निहारत ॥
ठाढ़े राय जोर दोय पाना । साहेब कहो शब्द सहेदाना ॥
जेहि विध जीवमुक्त परभाऊ । सो साहेब मोहि भाषि सुनाऊ ॥

सुकृत वचन

छंद-वचन साहेब भाषे राजा, करहु आरति पावनं ।
चार गुरु किंकरहु साजी, कालकर्म नसावनं ॥
चित्र चै चित्र धोती, श्वेत वस्त्रहि लावनं ।
चित्र आरति साज राजा, करहु मंगल गावनं ॥
सोरठा-मेवा अष्ट प्रवान, चौका चंदन फेरहू ।
दलझारी तहां आन, सवासेर महँ चेतहू ॥

चौपाई

तंदुल सवासेर ले आना । हार आरती कलश परवीना ॥
पुंगीफल अरु श्वेतहि पाना । चौकामहँ धरो जो आना ॥
जिव पीछे नरियर कर लेहू । जनियर सुकृत हाथ सो देहू ॥

कञ्चन कलस पांच धरो बाती । ज्वलित कपूर धरो बहु भांती ॥
दल अमृतकी कञ्चन झारी । डार सुगन्ध धरो तेहि बारी ॥
खरचा सात मँगावहु सेता । गासे सात वजन कर लेता ॥
आगरू साते ताहि प्रवाना । सो खरचा ले दल ये आना ॥
खरचा सात धरे दल जबही । धर्म देख थरहर भये तबही ॥
कनक पटम्बर कीन्ह सिंहासन । तापर साहेब कीन्हे आसन ॥
आनंद मंगल कीन्ह उचारी । राय धरा नरियर तेहि बारी ॥
युथ युथ जूरे जीव सब आए । नरियर धरे सुकृत मन भाए ॥
सत्रह रानी सुत सुत नारी । ते सब आय चरण चितधारी ॥
युग बंधे राजा अरू रानी । सोविधिसकलजीवमिलजानी ॥
भावरि देय प्रदक्षिण दीन्हा । हंस उबार अपनकर लीन्हा ॥

छंद-तब चरण मृदु मंजुल पावन अतिहि सुहावन भावन ।
अमि मूरतिसूरत धारत त्रिविध ताप नसावन ॥
आदि अनंत अनादि पुरुष करहु दया जाहिको ।
जीव जेहि तुम पकरि बहियां कालग्रस नहिं ताहिको ॥

सोरठा-तुम प्रभु शब्दस्वरूप, अमित भाव लखि ना तरे ।
तुच्छ बुद्धि मनरूप, जीवनपकरि नचावहुँ रे ॥

### चौपाई

दीजे मोहि शब्द सहिदानी । तुमते नहीं बड़ो कहु दानी ॥
जेते जीव अमरघर जाई । होइ अमर भव बहुरि न आई ॥

### सुकृतवचन

राजा रानी तृणहि तूरावा । त्रिगुण पदवितें जीव बचावा ॥
कुँवर पचास रायमत लीन्हा । हर्षित हाय सुमत इन कीन्हा ॥
प्रजा सकल नग्रनके आवा । सत्य सुकृतके दर्शन पावा ॥

बालक तिया वृद्ध सब आए। सो साहबके पद लपटाए ॥
पुरुष अंक दीन्हेउ मति आगर। पाय पान भये हंस उजागर ॥
स्मतकहाथ दीन्ह जिव सबही। जाते यम नहिं रोके कबही ॥
पाय पान तब भए सनाथा। सकल जीव तब नाये माथा ॥

राजाका मोहवचन-छन्द

जिमि घन नभमें शशि अवलोकत सिद्ध होत उमंगही ॥
शब्द नभ गुरुचरण इमि निशि कर्म सूर्त तरंगही ॥
तिमि हर्षे राजा सकल जिव मिला करत कोलाहल सोहही ॥
बृद्ध हंसन यूथ ठाढे निरखि सुकृतहि मोहहीं ॥
सोरठा-अब दीन्हा निज पान, अधम जीव अपने किये ॥
बिनय एक अनुमान, देश आपने ले चली ॥

चौपाई

यह भवसागर अति अवगाहा। सुर नर देव पाए नहिं पाहा ॥
दर्शन आय दीन्ह तुम जाही। आपनकर राखे गहि ताही ॥
निशदिन यमहीफंद लगावत। शब्दहि त्यागि विषयमन ध्यावत॥
पलपल काल करत है घाता। शब्द तुम्हारा श्रुति नहिं राता ॥
ताते बिनय करों बहुबारा। सकल जीव हैं शरण तुमारा ॥
एकहि सुरत सकल जिव केरा। अब जनि साहेब लावहु बेरा ॥
बेगि लै चलो वाही देशा। अमरपुरी जहां हंस नरेशा ॥
अबजनिमोहिराखहु भवसागर। ले चलो जहवां हंस उजागर ॥
दीनबंधु प्रभु कीजे दाया। सकल हंस ले लोक सिधाया ॥
भेटे चरण पुरुषके जाई। अब भव चिर नाहीं ठहराई ॥

सकल हंस वचन-छन्द

जीव चढ़ावें करत करुणा सुनहु नरपति नागरा।
करहु सद्गुरु बिनय दृढ़ होय, नहिं रहब भवसागरा ॥

गुरु करे हिय दया त्यागे, मामा चिता व्याकुल अहे।
अमर शोभा देख वे गुन, हर्ष जीवन अति अहे॥

सोरठा–अब जिन लावहु बेर, ठाढ़े सकल अकुलावहीं।
प्रभु दयावंत जो होइकै, वे पुरुष दर्श करावहीं॥

राजाका मोहवचन–चौपाई

राजा रानी कुँवर पचासा। सकल जीव विनती परकाशा॥
बेग लये चलो हंस पति राजा। वह विनती करे सकल समाजा॥
चातक स्वाति रटत जिमि जैसे। तृषावंत सबरे जिव तैसे॥

सुकृत वचन

सत्य सुकृतमें सूरति समानी। होय निशंक करो रजधानी॥
पुरुष नाम राजाकहँ दीना। संग लोग हंसन सब लीन्हा॥
राय मोह हम लोक चलि जाई। सत्तर सहस्र हंस सँग लाई॥
ऐसे सुमति करो जो बंदा। कालत्रास नहिं हो दुखद्वंद्वा॥
एकचित होय सुरति जेहि लागा। सत्य शब्द सो तन मन पागा॥
देखि काल दूरहिते भागे। जो पदपुरुष नाम दृढ़ लागे॥
राय गए जहां हंस समाजा। आए हंस आरती साजा॥
गावहिं मंगल करहि कुलाहल। षोडश शृंगारा अंग भल॥

राजाका मोह वचन

राजा देखि चकित मन पागा। बार बार सुकृत पद लागा॥
देखेउ लोक वरन अतिपावन। अब हमपाये निज मनभावन॥

सुकृत वचन

सुकृतहि चले राय ले साथा। जाय पुरुष कहु नायउ माथा॥

छंद–दर्श पाय नित जीव वे सब, रूप भयो परकाश हो।
अमिय फल जब पाये हंसा, द्वीप द्वीप विलास हो॥

सुबना सज्य शिर छत्र सोहे, बैठ हंस समाज हो ।
भए हर्षित राय रानी कीन लोक निवास हो ॥

सोरठा--इमि हंसन परसंग, युग बाधे सो हंस होय ।
लोक लाज तज रंग, ते पहुँचे अमरा पुरी ॥

इति श्रीगुरुमाहात्म्य ग्रंथ संपूर्ण

सत्य

# अथ जीवधर्मबोध-प्रारंभः

★

भारतपथिक कबीर पंथी-

स्वामी श्रीयुगलानन्द द्वारा संशोधित

★

मुद्रक व प्रकाशक

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,

अध्यक्ष-" लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर "-प्रेस,

कल्याण-बम्बई.

सत्यनाम



श्री कबीर साहिब

सत्यसुकृत, आदिअदली, अजर, अचिन्त, पुरुष,
मुनीन्द्र, करुणामय, कबीर, सुरति योग, संतान,
धनी धर्मदास, चुरामणिनाम, सुदर्शन नाम,
कुलपति नाम, प्रबोध गुरुबालापीर, केवल नाम,
अमोल नाम, सुरतिसनेही नाम, हक्क नाम,
पाकनाम, प्रकट नाम, धीरज नाम,
उग्र नाम, दयानामकी दया, वंश-
ब्यालीसकी दया

# अथ श्रीबोधसागरे

एकोनचत्वारिंशस्तरंगः

## अथ जीवधर्म बोध

*

दोहा–कौन धर्म है जीवको, सब धर्मन सरदार ।
जाते पाव मुक्ति गति, उतरे भवनिधि पार॥
धर्मरूप यक वृक्ष है, मूल गुरू विख्यात ।
ज्ञान फूल फल मुक्ति है, शुभ कर्म शाखापात॥
ज्ञान जीवको धर्म है, भ्रम त्रास जो मेंट ।

सत्य पंथ पावे परखि, तब तेहि सतगुरु भेंट ॥
जबलों नहिं सतगुरु मिले, तबलों ज्ञान न होय ।
ऋद्धि सिद्धि तपते लहै, मुक्ति न पावै कोय ॥

अथ जीवको सत्यस्वरूपी देह और ज्ञानको लोप होना
और स्थूलदेह और संसारको भासना और
नानाप्रकार की सृष्टिको फुरना और
कर्मधर्मको विस्तार वर्णन ।

चौपाई

जीव धर्म बरनो अब सोई । सब भ्रम भासजाय जिहि खोई ॥
मोह रैन जग सोवन हारा । स्वप्नरूप यह जग विस्तारा ॥
नींद गई कछु दरसै नाहीं । सबही भर्म भास मिटि जाहीं ॥
छूटे सकल कालको फंदा । ज्ञान पाय जिव होय अनंदा ॥
जेते धर्म धर्म कोइ माहीं । जीव भर्म सबही ये आही ॥
सत्य असत्य सकल है माया । माया सब मिथ्या बतलाया ॥
मायाते सब काया जागी । तनमनधन उपाधि संगलागी ॥
जब अभाव कायाको होई । माया सबही जाय बिगोई ॥
प्रथहि सत्यरूप जिव रहेऊ । कच्ची देह बहुरि सो गहेऊ ॥
जिहि कारन सतरूप लोपाना । स्वसंवेदमें प्रथम बखाना ॥
अहंकार कर निरखि निकाई । ताते अपनो रूप गवाई ॥
अपने रूपसे जब सो भटका । अतिशय दुःखद्वन्द्वमें अटका ॥
काल स्वरूपी है हंकारा । ताते प्रकट काल बरियारा ॥
काल कराल सोई अन्याई । सकल जीवको धरिधरि खाई ॥
यही जीवको बंधन कीने । भवसागरमें गोता दीने ॥
जाको हिय हंकाराते जूटे । निश्चय शीश तासुको टूटे ॥
अहंकार कह तीन प्रकारा । द्वै प्रकार कर अंगीकारा ॥

जीवन मुक्त केर गुन दोई । त्याग तीसरो कह श्रुति सोई ॥
प्रथम दृश्य जेती जग माहीं । मोते इतर और कछु नाहीं ॥
मैं अद्वैत परमातम सारा । जीवनमुक्त परम हंकारा ॥
पुनि दुतिया हंकार बखानो । आपको जो अति सूक्षम जानो॥
सवां भाग कच तेहौं कीन्हा । दोउ हंकार केर यह चीन्हा ॥
जीवनमुक्तको दोउ हंकारा । पुनि तीजा यहि भांति उचारा॥
देहको जो आपा करि माना । ऐसी निश्चय तुच्छ बखाना ॥
जाने सत्य जो अपनी देहा । बन्धनको कारण है येहा ॥
शुद्ध आतमते चित्तको फुरना । ताको नाम अविद्या धरना ॥
दोय भाँतिकी फुरना होई । यक संसार और कह जोई ॥
ताको नाम अविद्या राखा । आतम औरफुर अविद्या भाषा॥
दोऊ स्पंद रूप उर मद्या । नाश अविद्या करे अविद्या ॥
जो विकल्पको कारण गाई । चित्त शक्ति क्षेत्रज्ञ कहाई ॥
नाम शरीर क्षेत्र सो जाना । तेहि अंतर बाहरको ज्ञाना ॥
नाम तासु क्षेत्रज्ञ कहीजै । सो जब सहित वासना भीजै ॥
आत्मते इतर रूप जो धारे । निश्चय कलना ताहि पुकारे ॥
निश्चय कलना जब सो गहई । बुद्धि नाम ताहीको कहई ॥
अहंभावते निश्चय जोई । पुनि संकल्प ताहिमें होई ॥
ताही कलनाको मन कहिये । चित्तशक्ति मनभाव जो गहिये॥
घन विकल्प मनमाह जो बंधा । शब्द स्पर्श आदिक भे गंधा ॥
ताते इंद्रियानी फुरि आई । हाथ पांव प्राण आदि बताई ॥
इंद्रिन सहित देह तब भासे । चार खानकी थित कह तासे ॥
अचलते दृश्य दिशा फुरि आवा । तासु नाम संकल्प कहावा ॥
संकल्पहिते सकल पसारा । सबही स्थूल मूल हंकारा ॥
अग्निस्वरूपी है हंकारा । ताते तमगुनको बिस्तारा ॥

तमते त्रिगुन तत्त्वको होना । ताते जक्त बीजको बोना ॥
ब्रह्मा बुद्धि रूप तन धारा । बुद्धिते रचित सकल संसारा॥
अग्निरूप है प्रकटा काला । ताते जक्तकेर जंजाला ॥

सत्यकबीर वचन

तेज रूप गुरु काल उपाया । ताते सकल सृष्टि दुःख पाया ॥

दोहा-मैं करता मैं भोगता, मेरो सकल जहान ।
मैंही जगमें पूज्य हो, सुर मुनि मनुष महान ॥

चौपाई

अहं ब्रह्मास्मी कह ब्रह्मा । ताते रचनाको आरंभा ॥
अहंते सकल सृष्टि यह ठाढी । कथा कहानी जगमें बाढी ॥
यही अहं अज्ञानको मूला । ताते जीव सहै सो शूला ॥
अहं बोलि यह जीव सिधारै । बहुरि नवीन कलेवर धारै ॥
आवा गौन अहंते होई । यक तन तजि दूसर गह सोई ॥
ज्यौं ज्यौं जीव तुच्छता गहई । त्यौं त्यौं अधिक अहंसो लहई॥
ज्यौं ज्यौं श्रेष्ठ पदनको पावै । त्यौं त्यौं ताही दीनता आवै ॥
भृगमुनि विष्णुको मारचौ लाता। सोकरि क्षमा कह्यौ मृदुबाता ॥
देखो दारिद्री कंगाला । धनपाये तेहि गर्व विशाला ॥
गहे न अहंकार हरि प्यारे । जीवहि अहं तुच्छ करि डारे ॥
अहंकारके है षट अंगा । ताते जीव केरि मति भंगा ॥
जब मति भंग जीवकी होई । नाना विधिको तन गह सोई ॥
देह सदा वासना ते पूरी । सुखी होय करि ताको दूरी ॥
जबलों रहै वासना मनमें । तबलों बिचर विषयके बनमें ॥
जीव कहाव देह अभिमानी । ताको मुक्तिपात्र नहिं जानी ॥
निर्बासनिक होय निस्प्रेही । जक्त पूज्य है साधू येही ॥
जिनके हृदयमें अभिमाना । तिनको कबहु उगै न ज्ञाना ॥

जो कोई कह मैं बड़ा कुलीना । सबसे ताको जाय मलीना ॥
जो कोइ कह मैं हौं बड़ सुन्दर । महाकुरूप सो होय छछूंदर ॥
जो कोइ कह मैं उत्तम जाती । सो बैठे कुकुरनकी पाती ॥
जो कोइ कह मैं पंडित ज्ञानी । होय निरक्षर पुरुष प्रानी ॥
जो कोइ कह मैं बड़ गुनवन्ता । होय सोय विष्टाको जन्ता ॥
जो कोइ कह मैं बड़ बलवाना । होय अबल सो कीटसमाना ॥
जाति पांति कुलके अभिमानी । भ्रमत फिरै चौरासी खानी ॥
अभिमानिनकी कहो कहानी । धर्म महम्मद यथा बखानी ॥
त्रिविध तकब्बुर निर्णय ठानी । प्रथमजो भये ऐसे अभिमानी ॥
जस नमरूद आदि फिर उन्ता । नृप मद आपको ईश्वर गुन्ता ॥
प्रथम तकब्बुर प्रभुके ऊपर । नबीपै बहुरि तकब्बुर दूसर ॥
तृतीय तकब्बुर जग लोगनपैं । मैं गड तुच्छ और सब जन हैं ॥
हौं बड़ श्रेष्ठ गुनन मलसही । औरनमें यह गुन कह बस ही ॥
प्रथम कहौं विद्या अभिमानी । दुतिये तपसीतपजिन ठानी ॥
विद्याके अभिमानी जोई । तिनके मत विचार अस होई ॥
हमही मनुष और सब पशु गन । जिनके हृदय न विद्याको धन ॥
विद्या धन सर्वोपर गाई । ताते हम ईश्वर लखि पाई ॥
जगमें हम सबके शिर ताजा । हमरे हाथ है काज अकाजा ॥
दुतिये तपसिन केर समाजा । बिना मान नहिं कोई ऋषिराजा ॥
सो ऐसो निजु मनहि विचारी । दरश हमार जक्त हितकारी ॥
आपको मुक्त युक्त लख औरा । और तुच्छ हम सब शिरमौरा ॥
ये दोनों पदको मद भारी । रूप गर्व धारत है नारी ॥
धनअभिमानी पुनि अस बोला । मैं चाहों औरहि लेव मोला ॥
बलमदकुलमदकुटुंबअरुचाकर । शिखशाखा बहु मानधरे नर ॥
अभिमानिनकी दशा बखाना । हशरगाह जो न्याय स्थाना ॥

चिउँटी रूप होय हंकारी । तिनहि लताडे सब नर नारी ॥
हशरगाह ते जब सो चाले । हबहब कूप नरकमें डाले ॥
हजरत सुलेमानकी बानी । वृथा सकल तप हो अभिमानी ॥
राई भरि जामें हंकारा । सो विहिशतको नहिं पग धारा ॥
पुनि रसूल मकबूल बतावे । होय दीन बड़ि पदवी पावे ॥
ऐसो नर जगमें नहिं कोई । जाके शिर लगाम नहिं दोई ॥
गहे लगाम सो दोय फिरिशते । जगजिव तिनहि दीनहो दिस्ते ॥
तब दोउ प्रभुसे बिनय उचरना । हे प्रभु याको ऊँचा करना ॥
धरि लगाम तेहि ऊँचा करही । जगमें श्रेष्ठ नाम तब परही ॥
जब जिव ऊंचा शीश उठावे । दोऊ फिरशते बिनय सुनावे ॥
हे प्रभु याको कीजै नीचा । धरि लगाम नीचेको खींचा ॥
अभिमानिनके शिरमें पौना । ताकौ चित्त फलावे तौना ॥
सोई पौन हंकार कहावे । बुरी चाल सब ताते आवे ॥
पढ़ि विद्या जगको भरमावे । आप न शुभकरनी मनलावे ॥
विद्याके अनुसार न करनी । अन्तमें तिनकी यह गति बरनी ॥
नरकमाह प्रभु तिन्है पठै हैं । औरनते दशगुन दुःख पैहैं ॥
गरदन पीठ तासु टुटि जाई । नरकमाह अतिशय दुख पाई ॥
जिमि खर चक्की को भरमावे । तैसे यम ताहि नाच नचावे ॥

दोहा—अग्नि कतरनी करगहे, कतरे तिनको ओठ ।
नरकमाह बड़ दुख भरे, विद्या पढ़िभे खोट ॥

चौपाई

अभिमानिनकी कथा बखानी । ईश्वरको बैरी तेहि जानी ॥
सकल बड़ाई प्रभुको सोहै । और बड़ा जगमें कहु कोहै ॥
जिनके हृदयेमें हंकारा । तिनको कोई करे नहिं प्यारा ॥
नृप फिर ऊन महाअभिमानी । आपको जो ईश्वरकरि जानी ॥

अबिरहामके जो संताना । निजु गोला गोली करि जाना ॥
मूसामें प्रभु सो गुन खोला । ईश्वर बना तासुको गोला ॥
फिर ऊबर मूसा ह्वै जाई । मानमर्दके गर्द मिलाई ॥

सोरठा–एक गृही यक साधु, दोय पक्ष हैं जीवको ।
यक संग्रही उपाय, एक रसिक निजु पीवको ॥
निज निज धन सुखहेतु, दोनों उद्यमको करे ।
होय सजग चित्त चेतु, जेती बुद्धि विवेक जिहि ॥
कृपा जो करे करतार, पूर्ण होय मनकामना ।
यह धन वह भवपार, जैसो जाके आगमें ॥

दोहा–ग्रहीके धन अधिकात जब, तब तेहि कहे अमीर ।
अधिक अधिक धन बितलह्यौ, कह्यौ अमीर कबीर॥
जबहि अमीर कबीरमों, तामें किब्र समाय ।
यथा दर्ब दिन दिन अधिक, तथा किब्र अधिकाय॥
किब्र अधिक अधिकान जब, तब लाग्यो बलकान ।
बलकत बलकत अंत भो, आप किब्रिया जान ॥
आप किब्रिया जान जब, गह्यौ ज्ञान शब्दाद ।
भूपर मोहिसम नहिं रहा, हरि ऊपर कर वाद ॥
प्रथम अमीर कबीर भो, पुनि अकबर अल्लाह ।
सो कबीर अकबर सोई, कहे किब्रिया ताह ॥
अल्लह जब बनि बैठिऊ, पहुँची तिनकी मौत ।
दोजखमें दाखिल भये, सेन सहित भै फौज ॥
जगमें भये कबीर बहु, जो लागे गहि तीर ।
आप तरे जग तार जो, सोई साच कबीर ॥
जिन जिन धारयो किब्र उर, टूटयौ सबको शीश ।
जासु किब्र टूटे नहीं, परम पुरुष जगदीश ॥

जाको किब्र अघट्ट रह, तीन काल युग चार ।
ताहीको सब ठट्ट है, हट्ट लगी पन सार ॥
जिन जिन शीश उठायऊ, टूटचो सबको किब्र ।
सत्यकबीरको किब्र जो, सदा एक रस तिब्र ॥
श्रीमुख सत्यकबीर कह, किब्र जाहिमें दीप ।
मोड़ा तेहि छोड़ो नहीं, तोड़ो ताको शीश ॥
किब्र सहित जब जोय नर, होय नहीं तब खैर ।
परे किब्र या संगमें, याहि ढंगते बैर ॥
वैर किब्रियासे भयौ, गयौ नरक जिव सोय ।
कुशल कौनि बिधि तासुकी, रिपु जाको हरि होय॥
जासु किब्रिया नाम है, किब्र ताहिको सोह ।
और किब्र जो कोइ गहे, ले कबीर सँगलोह ॥
धनवितकों यह अंत है, सत बिचारो जाहि ।
सो धन पर हंकारकर, अहं दुःखद सब आहि ॥
जैसे गृहीकी कथा, कहति निकर्कीरकी आहि ।
जब फकीर गुनज्ञान गह, तब हकीर कह ताहि ॥
घर घर मांगत भीख जो, दरदर होत हकीर ।
कोई गालीदे मार कोई, तनक न तन मन पीर ॥
अथ हकीरको तुच्छ है, कुछ रह्यौ नहीं मान ।
अधिकते अधिक हकीर भो, तब साहिब पहिचान॥
तब साहिब पहिनेऊ, फना कियौ तब आप ।
गना आपके कुछ नहीं, तन मन धन लखि पाप ॥
अंत हकारत जब भयौ, तूही तू तब टेर ।
जहँ तहँ देखो तूहि तू, मैं नाहीं कहु हेर ॥
मैं नाहीं जब ही रह्यौ, कह्यौ तूहि तू सर्व ।

जल थल वायू व्योममें, तुही व्याप सब दर्ब ॥
तूही भू जब देखेऊ, रहा कतहुँ नहिं आप ।
आप आप में रमि गयौ, पुनि दुतियाकिन थाप ॥
दुतिया गयौ गवाय जब, सिंधुमें बूंद समान ।
गहे गरीबी संत जब, अंत दुःख तब जान ॥
जब हंकार अतिशय बना, धन्य फकीर हैं सोय ।
किब्र तकब्बुरके गहे, गयौ धनिक सब खोय ॥
यथा फकीर हकीर भो, गृही अमीर कबीर ।
दोहु गुन दोष बिचारके, जीव तरे भवतीर ॥

इति अहंशब्द

अथ कामवर्णन--चौपाई

अहंते तम तमते आकाशा । तमते त्रिगुणतत्त्व परकाशा ॥
गुण प्रकृतमय तत्त्व जो पांचो । जगके अस्तंभन ये सांचो ॥
प्रथम अकाश है पंच प्रकृतमय । काम अरुक्रोध लोभमोहमय ॥
प्रथम कामको यह गुन जानू । दहन ज्ञान बन कठिन कृशानू ॥
स्वसंवेदमें प्रथमहि कहेऊ । ज्ञान गोप जब जिवको भैऊ ॥
तब निज सम्मुख दृष्टि उठाई । झांई रूप नजरमें आई ॥
सो झांई नारी तन गहेऊ । ताके संग भोग जिव कियऊ ॥
पुरुष छाहते प्रकटी नारी । सो भ्रम रूप जक्त बिस्तारी ॥
जबलों नारि पुरुषकी चाहा । तबलों नहीं कर्म कुल दाहा ॥
अपनी छाहते करे लड़ाई । भ्रम कटि जूनिनमें भरमाई ॥
सोई कहो जक्तकी जननी । परम रूपके ज्ञानकी हननी ॥
वृद्ध जक्तकी कामते आहीं । बुद्धि विवेक तहां कुछ नाहीं ॥
कामविवश जिव हो जिहिबारा । ताके हृदय न रहौ बिचारा ॥

ताको गुन यह प्रकट देखावो । आवा गौनको लेख लगावो ॥
प्रथमहि दृष्टि दौरि जब जोई । नारि देखि केहि यह हरषाई ॥
जब नर ताहि निकट नियराया । कुचनके ऊपर हाथ चलाया ॥
कुचनको जब निजु करते परसा । अधिक मोद मनमें तब सरसा ॥
कुच नहिं भोजन पात्र पयोधर । अधिक प्रीति मानुष ताते कर ॥
प्रथमहि भोजन पात्र टटोले । आवागौन राह पुनि खोले ॥
तिहि मारगमें जब जिव धसेऊ । पुत्र होय पुनि बाहर खसेऊ ॥
भर्ता ह्वै तिहि मारग पैठा । पुत्र होय पुनि बाहर पैठा ॥
भोजन पात्र टटोल जो पहिले । बालक ह्वै भाजन सोइ गहिले ॥
भोजन भाजन भार्या माता । पुरुष पुत्र एकै द्वै बाता ॥
भीतर बाहर पैठे निकलेरे । आवा गौन आपनो सकरे ॥
मनते मनमथ भयौ प्रचंडा । महाकाल सत सो बरिबंडा ॥
पांचबान सो निज कर लीने । सकल जीव अपने बस कीने ॥

दोहा-मोहन मारन बसकरन, उच्चाटन उनमाद ।
पांच बान ये काम गह, तिहु पुर परा विषाद ॥
भवसारगमें आयके, कोइ न भयौ समरत्थ ।
यक कंचन यक कुचनपर, को न पसारयौ हत्थ ॥

कुंडलिया

भवसागरमें आनिके, भै कबीर समरत्थ ।
कंचन कुचन दोहूनपै, सो न पसारयौ हत्थ ॥
सो न पसारयौ हत्थ, आप कमला चलि आई ।
चित चंचलावनहित, कीन सो विविध उपाई ॥
कीनेसि विविध उपाय, कबीरको मन किमिहाली ।
ह्वै निरास श्री तास, बहुरि बैकुंठहि चाली ॥

चौपाई

कोई ह्वै पती पयोधर पकरे । कोई बनि पुत्र ताहिते टकरे ॥
भरता पुत्र होय नहिं दोऊ । सत्य कबीरते और न कोऊ ॥
नारिके बसमें सब संसारी । रचना तिहु पुरमाह पसारी ॥
भवसागर भगसागर जानी । भवके करता भव रु भवानी ॥
तीनों पुरको ईश कहाया । जिन भगर्चारके राह बनाया ॥
भगके रुधिरते भगवा भेषा । देव निरंजन अकथ अलेषा ॥
उज्ज्वल भेष पुरुषको बाना । भगवा भेष निरंजन राना ॥
अंग पिंड भग माह समाना । सत्य कबीर बचन परमाना ॥
अंतर ज्योति शब्द यक नारी । हरि ब्रह्मा ताके त्रिपुरारी ॥
ताहि तियहि भग लिंग अनंता । तेउ न जाने आदिवो अंता ॥
लिंग रूप यक शंकर कीना । धरती खिला रसातल दीना ॥
भा बालक भग द्वारे आया । भग भोगनको पुरुष कहाया ॥
अबला सम कहुँ बली न कोई । तीन लोक ताकी बस होई ॥
अष्ट प्रकारके मैथुन अहई । ताते न्यारा कोइ न रहई ॥

दोहा—श्रौतो सुमिरन कीर्तनो, चितबन बात यकंत ।
दृढसंकल्पो रत्न पुनि, प्रापति अष्ट कहंत ॥

चौपाई

मिथुन बिकार जीव सब पागा । जरे तीन पुर तिय अनुरागा ॥
जेती जगमें कथा किहानी । नारिप्रताप सकल से जानी ॥
जबलों रहें देहको खेला । तबलों हो नारी सँग मेला ॥
नारि परे जो जाना चहई । ताकी देह तहां नहिं रहई ॥
भग भोगै अरु भक्त कहावै । फिर फिर भगभोगनको आवै॥
जड़ चेतन दोउ नारि स्वरूपा । कनक कामिनी जिव भ्रमकूपा॥
बिषकी बेल दोहूको जानी । लगे ताहिमें जिव अज्ञानी ॥

महामहाऋषि मुनि छलि मारा । यह मनोज पापी हत्यारा ॥
तप जप सकल भ्रष्ट करि दीने । ज्ञानी ध्यानी निज बस कीने ॥

छंद माधवी

सूखे पत्र अहार अरु पौन भषे । धृत धर्म परासरके सरके ।
दृग जोहनि मोहनि रूपमहा, मनमोहित नाहरके हरके ॥
बिधि नारद चंद स्वच्छंद भये, हृदया बजरोधरके धरके ।
अस कौतुक भो जो मन दौन कियौ, सब जी भवसागरके गरके ॥

चौपाई

साध सिद्ध चल वनमें भागी । जाय नारि तिनके सँग लागी ॥
मौनी होय बसै गिरकंदर । बसै नारि तिनके उर अंदर ॥
मैथुन अष्ट तबो नहिं जाई । ताते बिकल सकल ऋषिराई ॥
बाहरको बिकार जो त्यागे । पुनि अंतरको दुःख दौ दागे ॥
इन्द्री मर्दके गर्द मिलाई । तऊ साधुको काम सताई ॥
जतन अनेक करे ऋषिराई । विजय मार पर ताऊ न पाई ॥
जस नट मरकट खेल खिलावैं । तथा मनोजभव जीव नचावैं ॥
नारिके बसन आभूषन ओरा । साधु कबहू न निजु दृग जोरा ॥
नारि चित्र कागज मूरत गन । ताहि न सन्त लखै निजु नैनन ॥
निरखै ध्यान आव सो मूरत । चढ़ै काम पुनि ताहि विसूरत ॥
नारि पुरुष जिमि घरमें रसहीं । ताके निकट साधु नहिं बसहीं ॥
कामकलोल करे पशुखग जहँ । साधु न कबहुँ दृष्टि डारे तहँ ॥
मदन विकार अनेक बिधाना । सो सब त्यागे ज्ञान निधाना ॥
जब लों यह बिकार दिल दागे । तब लों ज्ञान किरिन नहिं जागे ॥
कामकरे जिहि औसर अंधा । करे जीव कछु उलटा धंधा ॥
छन्द-रतिनाथ भाथ जो हाथ गहि, निजु सुमनसरसंधानेऊ ॥
तजि नीति गह बिपरीत रह, नर धर्मबंधन भानेऊ ॥

चैतन्यभे जड़ रूप जड़, चित चेत निजु उर आनेऊ।
शृंगार साजन लाल कहुं, कुसु कानिकौ मन मानेऊ।

इति काम

अथ क्रोधवर्णन-चौपाई

द्वितीये क्रोध महा बलवंता। सोसमस्त शुभ गुनको हन्ता॥
जाको देखि बुद्धिवर कम्पत। रहै न निकट भाजिहो चंपत॥
महा काल यह क्रोध उचारा। यह खल प्रकट होय जेहिबारा॥
धर्मको लेश रंच नहिं रहई। यह अपराधी जप तप दहई॥
प्रलय करे सतगुनहि बिडारा। आप दाहि और न दुहि डारा॥
वर्षहजार जो मुनि तप कीने। पलमें क्रोध भ्रष्ट करि दीने॥
नरकवास सुनि बरहि पठाई। कतहुँ न रही ज्ञान गहिराई॥
तप जप कहां क्रोध जब होई। जिवको निश्चय नरक बिगोई॥
सकल धर्मकी धूल उडावै। क्रोधको अंधकार जब आवै॥
अहंकार क्रोधादि विकारा। तुच्छ जीवमें अधिक निहारा॥
कीडा एक रहे घासनमें। ऐसो क्रोध ताहिके मनमें॥
जो कोई ताको परसे जाई। महा-क्रोध ताके उर छाई॥
क्रोधितह्वै अस मनहि बिचारी। छूवन हार को डारो मारी॥
कूदे उछलै जो रन चलई। आपको अबल जानिके टलई॥

इति क्रोध

अथ लोभवर्णन-चौपाई

तृतिये लोभकी कथा बखानी। शुभ गति लहै न लोभी प्रानी॥
लोभी निशदिन माला फेरा। ताको पार होय नहिं बेरा॥
सूम है नरक केर अधिकारी।जपतप कियहु न जन्म सुधारी॥
लोभी जीव जेते जग माहीं। नरक हेत सबही सो आहीं॥
लोभ ते शुभ करनी नहिं भावै। सोई सब अघकर्म करावै॥

सो नरपर कलियुग को बासा । तेहि प्रिय कीने बुद्धि विनासा ॥
सोई दुष्ट सब करे अकाजा । प्रीछित धर्म-धुरंधर राजा ॥
ताहूको सो बुद्धि बिगारा । कञ्चनपरकलि आसन धारा ॥
धर्म महम्मद करे बखाना । सोरनको भागी शैताना ॥
गहि कर कञ्चनहग न लगाये । चूमि ताहि पुनि कह गोहराये ॥
कञ्चनसे जो प्रीति लगाई । सो नहिं भगवत भक्ती पाई ॥
सो लोभी इबलीसको बन्दा । निश्चय परे ताहिके फन्दा ॥
पुनि ऐसो इबलीस पुकारा । साधु सूम है मित्र हमारा ॥
सूम साधु जो जप तप करई । लोभ समस्त कृपा संहरई ॥
तैसे पापी दाता जोई । परमशत्रु मेरो है सोई ॥
जो कछु पाप करे सो दाता । दान किये सो सकल निपाता ॥
सो शैतानके वश नहिं परई । दाता कोटि पाप जो करई ॥
दोय वृक्ष द्वै ठौरमें देखा । यक औदारता लोभ है एका ॥
दानवृक्ष वैकुण्ठमें बरनी । गड़ी तासु जड़ ताही धरनी ॥
साष तासु दुनियामें आई । नरहित हेत सो दियो झुकाई ॥
जो कोई पकरे साष सखावत । सो निश्चयबिहिशतको जावत ॥
साष सखावत पकरि जो रहई । अघ औगुन सब ताको दहई ॥
नवीन प्रसंशिके बचन सुनावे । सखी अवश्य मेरे ढिग आवे ॥
ऐसहि लोभवृक्षकी लड़ है । घोर नरकमें ताकी जड़ है ॥
साष तासु जगमाह झुकाई । जो कोइ गहै नरकमें जाई ॥
शुभ करनी सब तासु नशावै । सूमको दौजखमें पहुँचावै ॥
सब धर्मनको मत है एहा । लोभी करे नरकमें गेहा ॥

अथ मोहवर्णन-चौपाई

चौथे मोह महा दुःखदानी । भव भोगनकी यही निशानी ॥
ता पिता सुहृद परिवारा । सगे सहोदर सह सुत दारा ॥

प्रथमहि मातु पिताकी मोहा । अंधभो जिमि काई लग लोहा ॥
जिहि औसर घरनी घर आई । मातु पिताकी प्रीति भुलाई ॥
परम प्रीतमा नारी अहई । बाघिन यथा गरासन चहई ॥
मधुर मधुर बोलै मुसकाई । महा ठगिन जिव ज्ञान ठगाई ॥
हनै जबहि सो काम कटारी । सरबस छीन लेय सो नारी ॥
ताते प्रकट भये जो पूता । पूत नहीं आयो यमदूता ॥
मधुर बोल बोलै मन हरही । दिन दिन अधिक प्रीति पितु करही ॥
पुत्र कि मोहमें जन्म गँवाये । ताते कबहुं न छूटन पाये ॥
ताकी मोह भयो जिव अंधा । चला अंतको यमपुर बंधा ॥
पुत्रसे कहो कौन सुख पाया । शूल गड़े जड़ मूल नशाया ॥
जन्मतही युवती हरि लीनो । युवा भये तब धन वित छीनो ॥
मूयहुपर कपालको फोरा । मा यह सुत धौं वैरी मोरा ॥
शत्रुको सदा मित्र जग जाना । मूढ़ नहीं चेते बिन ज्ञाना ॥
मेरो मेरो कर अज्ञानी । ममतामें भूले सब प्रानी ॥
मोर तोर कहि जन्म गँवावै । भक्ति महातम हाथ न आवै ॥
बन्धु मित्र अरु संगे सखागन । सो समस्त है भक्तिके दुश्मन ॥
इन्हैं पेलिके हरि यश भनिये । प्रीति कबहुँ मति ठगनते ठनिये ॥

छन्द पद्धडी

दशदिश देख बहु दृष्टि पसार । कोई नहिं तेरो यहि संसार ॥
मातु पिता स्वारथ हितकार । सुतदारादि सकल परिवार ॥
कोई न तेरो उबारनहार । सब मिलि तोहि नरकमें डार ॥
ताते तजो सकलकी प्रीत । यह दुनिया मतलबको मीत ॥
जिहि औसर स्वारथ ना होय । तेरो संग करे नहिं कोय ॥
बुद्धि विचारि विलोक विलोय । यह जग जान महाठग होय ॥
ठगसे प्रीति किये धन खोय । लहे अमरफलको विष जोय ॥

क्यों नहिं चिन्तामनि चित चीत। यह दुनिया मतलबकी मीत ॥
जठर अग्निते तेहि जो बचाय। काहे ताको दियो भुलाय ॥
महा दुःख जब घेरे आय। संकटमें सो करे सहाय ॥
भजु तेहि जन्म सुफल ह्वै जाय। परमहंसकी पदवी पाय ॥
ताकी कृपा चलो यमजीत। यह दुनिया मतलबकी मीत ॥

इति मोह

अथ भयवर्णन चौपाई

पंचम भय बटमार बड़ेरा। जो गहि जीव नरकमें गेरा ॥
भयवश तपी न जपतपकरहीं। भयते कायर घरमें मरही ॥
भय करि शूरा करे न करनी। भय करि सती न अग्निमें जरनी॥
भय कीने शुभ कर्म न होई। भय करि शुभगति लहै न कोई ॥
भयकरि विद्याबुद्धि की हानी। भय भ्रम करि भर्मै चहुँखानी॥
पांच वर्षका वय ध्रुव पाया। तप कारन सो वनहिं सिधाया॥
मिले ताहि नारद ऋषिराया। विविधि भांतिसे भय दिखलाया
कानन महाभयावन कहेऊ। ध्रुवके हृदय न भय कछु गहेऊ॥
बनमें जाय गूढ़ तप ठानी। रंच न सो मनमें भय मानी ॥
तपकरि हरिहि लियो प्रकटाई। धन्य धन्य ध्रुव धन्य कहाई॥
जिनको हृदया भयते पूरा। तिनमें कबहुँ न साहस जूरा॥
दोहा—पंचप्रकृति आकाशकी, कीने कछुक बखान।
एकते एक महाप्रबल, सकल नरककी खान ॥

इति भय

चौपाई

पंच प्रकृत आकाश बखानो। पंच बहुरि बागूको जानो ॥
पंच अग्नि जलकी है पांचो। धरती पंच प्रकृति उर जांचो ॥
यही जीवको बंधन करही। इनहींते देही थित धरही ॥

तेहि सर्वथा अभाव जो कीजै । तब कैसे निज देह धरीजै ॥
पै अभाव कीजै गुरु द्वारे । तब जिव अपनो काज सँवारे ॥
पुत्र अकाशको बायू होऊ । पिता समान शून्य है सोऊ ॥
बायू बेटा अग्नि बखानी । सो तद्रूप तातके जानी ॥
तासुत जल जलते यह धरनी । ये सब सन्न एक सम उरनी ॥
शून्य अकाश शून्य तिहु गुन है । तम अरु अहंकार सब सुन है ॥
पुत्र पिता परपिता सहीते । सर्व सुन कहु सार न चीते ॥
शून्नको रचित देह यह अहई । शून्न सर्वथा ताको कहई ॥
शून्नकि कृपा सूत्र सब जानो । शून्न सर्वसंसारहि मानो ॥
तन मन धन सब शून्य बताओ। नाम रूप गुन शून्य कहाओ॥
सो तन मन धन गुरुको दीना । नाम तासु बदले गहि लीना ॥
शून्न जो दीना शून्नहि लीना । कहो कहा कारज निज कीना॥
शून्यहि दीन जो सूत्रहि पाया । तेहि व्योहार हाथ क्या आया॥
है परंतु कारण तह एका । तामें लहो भिन्न कछु लेखा ॥
निश्चय नामहु शून्न बिचारी । तामै है कारज यक भारी ॥
नाम डोरि दृढ़ गहै जो कोई । शून्न पार पथ पावै सोई ॥
शून्नकि पारपंथ जब पावत । बहुरि शून्नमें सो नहिं आवत ॥
शून्न रूप भवसागर धारा । अंड पिंड सब शून्न सँवारा ॥
भ्रमकरि शून्नमें खल प्रकाशे । जस मृगजल मरुथलमें भासे॥
फेन बुदबुदा वारि तरंगा । वायु प्रसंग बनावहु ढंगा ॥
जेहि औसर वायू नहिं चलही । गलके सकल मिले तेहि जलही॥
जल विकार सब जलहै जैसे । माया ब्रह्म जीव यक तैसे ॥
भ्रम करि नाम धरे बहु डोरा । एकब्रह्म तजि कतहु न औरा ॥
जेहि औसर जिव सोलखि पावै । एकै माह अनेक समावै ॥
दृश्य अनेक जो एक समाई । पिंड अंडकी थाह सो पाई ॥
थाह पाय जब जीव थिरोना । तब जान्यो हो चारु चिरोना॥

मैं हौ आदि मध्य अरु अन्ता । मोहि फुराफुर वेद बदन्ता ॥
पक्की तत्त्व देह जब पावै । तबनिजुघरजिव बहुरिके आवै॥
पक्की तत्त्व प्रकृत पच्चीसा । स्वसंवेदकी विधि जो दीसा ॥
ताकौ गह कच्चीको त्यागे । ऐसे योग युक्तिमें लागे ॥
तनकी कृपा योग अष्टंगा । ताको तज भज मनको अंगा ॥
मन अष्टांग योग उरधारो । स्वसंवेद जाको निरधारो ॥
तनकी कृपाकाज नहिं सरही । मन करनी जिवपार उतरही ॥
मनको रचित सकल संसारा । हो निवृत्त जिव मनके द्वारा ॥
तन मन यद्यपि मिथ्या दोई । मन करनी अति उत्तम होई ॥
तन है जाय आपनी बसमें । जेहि औसरआवे मन कसमें ॥
तन मन दोनों बश ह्वै जाई । तब निज रूप नजरमें आई ॥
ऐसे साधु जो जगमें आही । हरि ब्रह्मा शिव ध्यावै ताही ॥
ताकी गतिको सके बखानी । लखे न शारद वेद अरु बानी ॥

मौनीजि वचन विचार माला

दोहा—स्वसंवेद नहिं कहि सके, लक्षण सन्त महन्त ।
परसंवेद कहे कछू, संग प्रताप कहंत ॥

चौपाई

जिनकी गति अगम अगाधू । बानी वेद पारसो साधू ॥
स्वसंवेद गुण तासु न कहई ।तिनको भेद जीव किमि लहई॥
समदृष्टि सो साधू ऐसे । सोई ब्रह्म रूप मैं पैसे ॥
काहू नहिं सो दुःख दुःखावै । जिनकी दृष्टिमें साहेब आवै ॥
को हिन्दू को मूसलमाना । को ब्रह्म केहि शूद्र बखाना ॥
कौन यहूदी कौन नसारा । एकै ब्रह्मको सकल पसारा ॥
रह्यौ चराचरमें सो पूरी । जाहि लखे हो सब दुःख दूरी॥
आप आप लख ब्रह्म सनेही । जहँ तहँ देखो नेरी देही ॥

मोहितजि और कतहु कोइ नाही । भ्रमकरि भिन्न भाव दरसाही ॥
मेरो मन अरू तन सब मेरो । तनमें मन मनमें प्रभु डेरो ॥
लखे अलखगति झगरा टूटा । जीव काल बंधनते छूटा ॥
अपनी देह सकल जग जानी । ताते सबहीको सनमानी ॥
काहूको नहिं करे निरादर । सब कोइ ओढ़े मेरी चादर ॥
स्वर्ग नरक मृत आपै आपा । जैसो कर्म तहां ले थापा ॥
सबदिल महल वहां प्रभुको है । आपै आप सर्वमें सोहै ॥
काहूको अनभल नहिं ताका । निजु अनभल ताते परिपाका ॥
औरको अनभल ताके जोई । अनभल अवश्य ताहिको होई ॥
एक मोगल क्रमकरे जो बनियां । तेहिढ़िग रह यक बैललदनियां ॥
मोगल परोसी धोबी रहई । लादनको एक गदहा गहई ॥
जिमि औसर खर करे पुकारा । मोगल दुखित होय तेहि बारा ॥
प्रभुसे नीति अस विनय उचरई । यहि धोबीको गदहा मरई ॥
यकदिन ऐसे कारन भयऊ । बैल मोगलको तब मरि गैऊ ॥
तिहि औसर मोगल गहि रोषा । परमेश्वरहि लगावै दोषा ॥
केते काल खुदाई कीना । गदहा बैल अजौं नहिं चीन्हा ॥
ऐसेहि सकल जीव अज्ञानी । प्रभु कह दोष लगावहि प्रानी ॥
सो नहिं दोष लगावन योगा । सबजिवनिजु२क्रमफल भोगा ॥
परभल किये भला हो अपना । निश्चय यह प्रमाण करिथपना ॥
जो काहूको कछु दुःख देई । सो दुःख अवश्य आप शिरलेई ॥
जो सबला अबला दुःखदानी । सो दुख अपने सिरपर आनी ॥
मांसरुधिर जिन जाको चाखा । परगल काटि आपसुख राखा ॥
औरकोशिरनहिनिजु शिरकाटा । अपनो तनकर बारह बाटा ॥
कोटिन यतन करे किन कोई । बदला अमिट छुटैं नहिं सोई ॥

सत्यकबीर वचन-शब्द

अपनो कर्म न मेटो जाई ।
कर्मको लिखा मिटै धौं कैसे जो युगकोटि सिराई ॥
गुरु वशिष्ठ मुनि लगन सोधाई सूर्य मंत्र यकदीना ।
जो सीता रघुनाथ विवाही पलयक संचन कीना ॥
तीन लोकका करता कहिये बालि बध्यौ बरि पाई ।
एक समय ऐसी बनि आई उनहू औसर याई ॥
नारदमुनिको बदन बिगार्‍यौ कीन्हे कपिको रूपा ।
शिशुपालकी भुजा उखारी आप भये हरि ठूँटा ॥
पारवतीको बांझ न कहिये ईश न कही भिखारी ।
कहै कबीर करताकी बातें कर्मकि बात है न्यारी ॥

चौपाई

मेरो कर्म मोहि दुःख देता । जाने बिना भये वश प्रेता ॥
बदला भोगे आदि भवानी । बदला हरि हर अयशि आनी ॥
बदलाके कारन जिव झारी । भोगे दुःख भये संसारी ॥
दिल दुःखाव मति काहू केरो । सब तन अपने तन सम हेरो ॥
सबको दुःख सुख एक समाना । एकै रूप रूप सब जाना ॥
एकै रूप अनेक बरन है । एकै इन्द्री एकै तन है ॥
मनु सतरूपा वेदमें कहेऊ । सोई सकल रूप निजु गहेऊ ॥
चौरासी लख योनि उपानी । एकै अंग न और बखानी ॥
सबमें रमा सो अकथ अनूपा । सबको जानो मनु सतरूपा ॥
मनु सतरूपा आपै साहेब । देखि परे जगमें नाना ढब ॥
आदि पिता सबजग जिन हेरा । सो समदृष्टी सन्त बडेरा ॥
निर्बासनिक आदि ओंकारा । हिरनगर्भ वासना जो धारा ॥
भई वासना जगको कारन । दोय स्वरूप कीन तब धारन ॥

हिरण्यगर्भ चितचाह जो चाली । एक चना कीना द्वै दाली ॥
नारि पुरुष मिलि द्वन्द्व मचाया । ताते रचना राम रचाया ॥
स्वामी एक एक भे दासा । करे एक दूजाकी आसा ॥
वासना जब निवृत्त ह्वै जाई । स्वामी सेवक तब मिलिजाई ॥
जैसे प्रथम भयो द्वै ढंगा । तैसे दोनों होय करंगा ॥
सकल वासना लियौ बटोरी । द्वन्द्व खेल तब कतहु न हेरी ॥
मन इन्द्री कछु रहा न बाकी । निश दिन होय ब्रह्मकी झांकी॥
जस प्रथमै रह अंडकि गोली । तस ह्वै बहुरि वचनको बोली ॥
तन मन इन्द्रीकी गम नाहीं । परम रूप रमि अलख कहाहीं॥
लखै न कोई अलख गुरु देवा । जाने बिना करे सब सेवा ॥
जब जान्यौ तब सेवा नाहीं । मैं तू तह तब कछु न रहाहीं ॥
मोहिमें तूमें तोहि समाना । एक भयौ नहिं दुतिया जाना ॥
सकल बासना मनते हरई । पारब्रह्म जब दाया करई ॥
ब्रह्मके खोजी साधो भाई । कैसे ब्रह्म की खोज बताई ॥
भजनानन्दी संत सुजाना । ब्रह्म सर्वमय पूरण जाना ॥
जाना तौ पै मिले न ताही । बिना मिले कछु सुख है नाहीं ॥
जैसे नारि पुरुष बर होई । एक दूसरो जाने सोई ॥
जानेते कछु सुख नहिं सरसे । नारि पुरुष जबलों नहिं परसे॥
अरश परशते सुख सरसाना । तब मनहीमनमें सुखसमाना ॥
कहे कहा सो कहो न जाई । निज सखियनते सैन बुझाई ॥
सखीकि सैन सखी कोई बूझे । पियामिलनको सुखजेहि सूझै॥
और कोई जो पूछे जाई । चुप ह्वै रहै तबै मुसकाई ॥
ब्रह्मको सुख जो कोई लहई । गूँगा होय न सो कछु कहई ॥
लून पूतली निज मनठाना । सागर थाह लेनको जाना ॥
जलमें पैठत जल ह्वै जाई । ताकी खबर कहै को आई ॥

कीट पतंगसे पूछे बाता । दीपक गिरे कौन सुख आता ॥
तेहि पतंग अस वचन सुनावो । तुमहि दीप ढिग चलि सुख पावो ॥
कीट तबहि दीपक नियराया । पुनि पतंग ढिग सो चलि आया ॥
आय पतंगसे वचन सुनाई । मैं कछु ज्योति स्वाद नहिं पाई ॥
तेहि पतंग बोला चिल्लाई । तैं किमि ज्योतिके सुखको पाई ॥
अरे मूढ संसारी कीडा । तोहि न व्यापी तन मन पीडा ॥
सुख पतंग आसिक सो जाना । दीपकमें जो धाय समाना ॥
तू तो फिरा देखिके आगी । जाने कहा मूढ दुरभागी ॥
शीश काटि निज करमें लीजै । ब्रह्मके सुखमें तब चित्त भीजै ॥
चले जक्त सब देखी देखा । सार असार करे को लेखा ॥
भेड़ा चाल सकल संसारा । नर पामरको यह व्यवहारा ॥
सबकोई कह यह मेरो धर्मा । मेरो गुरू कह्या यह कर्मा ॥
सबते हमरो धर्म बडारा । सो बुधवंत जो करे विचारा ॥
चले अंधके पीछे अंधा । बिना बिचार करे सोई धंधा ॥
यक शृगाल तेहि औसर बोला । ततछन तासु जाति मुह खोला ॥
वायस एक जो बोल उचारी । सबहि जातिगण तबहि पुकारी ॥
कीटके पीछे कीट जो चाला । तैसे जक्त धर्म प्रतिपाला ॥
यक धोबी यक गदहा राखा । सोढर नाम तासुको भाखा ॥
घाटके ऊपर धोबी गयऊ । ताहि ठौर सोढर मरिगयऊ ॥
ताते धोबीको दुःख होई । सोढर सोढर कहिके रोई ॥
घाटके ऊपर धोबिन आई । रुदन करत धोबीको पाई ॥
पुनि धोबिन निजघर फिर आई । सोढर कहिके रुदन कराई ॥
राजाकी रानी तेहि बेरी । धोबी गृह पठयो निज चेरी ॥
रुदन करत धोबिनिहि निहारा । सोढर सोढर करे पुकारा ॥
चेरी पुनि तहँते फिरि आई । सोऊ रुदन करे बिलखाई ॥

बांदी विलपत देखा रानी । रुदन बिलाप सोऊ तब ठानी ॥
राजा जब निज महलमें आया । रुदन करत रानीको पाया ॥
रानी रोवै सोढर कहि ताहा । सुनि सो रुदन रोवै नरनाहा ॥
राजा रुदनकरन जब लागा । नग्र नारि नर धीरज त्यागा ॥
सकल नग्रमें परा खँभारा । नृप मंत्री तब तहँ पग धारा ॥
मंत्री नृपते बचन उचारी । कारन कहा रुदन भो भारी ॥
तब नरनाथ बचन अस कहेऊ । दुखी सकल सोढर मरि गएऊ ॥
सोढर कौन सो मन्त्री बूझा । तब नृप कह्यौ मोहि नहिं सूझा॥
रानी को मैं रोवत देखा । कीन्ह्यौ मैं पुनि सोई लेखा ॥
रानीते जब पूछा जाई । सोढर कौन सो देहु बताई ॥
रानी कहे न जाने सोढर । मैं रोई वांदीके औढर ॥
जब पूछै बांदीसे जाई । सोढर कौन कहा बतलाई ॥
बृषली बोलै मैं नहिं जानी । धोबिन देखि रुदन मैं ठानी ॥
धोबिन कह मोर धोबी रोई । सो लखि सोग मोहिको होई ॥
धोबीसे जब पूछा जाई । सोढर गदहा नाम बताई ॥
ऐसेही अंधा संसारा । देखा देखी कर्म पसारा ॥
जिनके हृदये माह बिचारा । सो नहिं लीकलीक पग धारा ॥

दोहा—लीक लीक गाड़ी चलै, लीके चलै कपूत ॥
तीन लीकमें नहिं चलै, सूरा सन्त सपूत ॥

चौपाई

जगमें कतहुँ न तुर्क न हिंदू । सकल देखिये नाद अरु बिंदू ॥
जेते नाद बिंदु मय बंदा । सबही कर्मके फंदमें फंदा ॥
जैसो कर्म करे जो कोई । तैसोई फल पावै सोई ॥
कर्म कुरूप स्वरूप सँवारा । कर्महि ऊँच नीच गति डारा ॥
कर्महि दुःखसुख जीव भोगावै । कर्महि सकल योनि भरमावै ॥

अष्ट कर्म बिधि जैन बखाना । बहुरि मिमांसा कर्मप्रधाना ॥
सत्यकबीर कहै पुनि ऐसे । सब जिव कर्म फन्दमें पैसे ॥

सत्यकबीर वचन–कर्मखंडकी रमैनी

कर्महि धरती पवन अकाशा । कर्महि चंद सूर परकाशा ॥
कर्महि ब्रह्मा विष्णु महेशा । कर्महि ते भये गौरि गणेशा ॥
सात वार पंद्रह तिथि साजा । नौग्रह ऊपर कर्म बिराजा ॥
कर्महि राम कृष्ण औतारा । कर्महि कंस रावन संसारा ॥
साखी–कबीर कर्म रख सागरबंध्यौ, सौ योजन मरजाद ॥
बिन अक्षर कोइ ना छुटै, सो अक्षर अगम अगाध ॥

रमैनी

सो सागर भवसागर धारा । नहिं कछु सूझै वार न पारा ॥
तहँवा बावन अक्षर लेखा । कर्मरेख सबहिन पर देखा ॥
कर्मरेख बांधा सब कोई । खानी बानी देख बिलोई ॥
वेद कतेव कर्मही गाया । कर्महिको निह कर्म बताया ॥
सतगुरु मिले तो भेद बतावे । कर्म अकर्ममध्य देखलावे ॥
कर्मरेख तहँवा लगि राखा । जहँलगि वेद व्यास कछु भाषा ॥
साखी–कबीर कर्मफांस छूटे नहीं, केतो करे उपाय ॥
सतगुरु मिले तो ऊबरे, नातो परलय जाय ॥
कबीर बहु बंधनते बांधिया, एक बिचारा जीव ॥
जीव विचारा क्या करे, जो न छुडावे पीव ॥

रमैनी

सूरा होय सो सन्मुख जूझै । भोंदू शब्द भेद नहिं बूझै ॥
दुखिया होय रैन दिन रोवे । भोगी भोग करे सुख सोवै ॥
दुःख सुख भोग सोग समजाने । भली बुरी कछु मन नहिं आने ॥
भली बुरीको करे सो त्याग । निश्चै पावै पद वैराग ॥

साखी–आसन साधे आपमें, आपा डारे खोय ।
कहैं कबीर सो योगी, सहजे निर्मल होय ॥

कुण्डलिया

मानुष है नहिं कोई मुवा, मुवा सो डंगर ढोर ।
चौरासी भर्मंत फिरे, टूटै न कर्मकी डोर ॥
टूटै न कर्मकी डोर, भोर बुधि जहँ तहँ भटके ।
लहे न ज्ञान अनूप, कूप भवमें पुनि पटके ॥
पुनि पुनि पटके काल, कर्म बेरी पग भारी ।
वचन कह यक मृग चोट, जहां लख कोट शिकारी ॥

चौपाई

कृपा करे गुरु धनी दयाला । जीवहि खच लोक ले चाला ॥
ताकी कृपा योग जब होना । लगे मही तब कालको टोना ॥
कृपा योग जबलों नहिं लोई । कृपा कौनविधि तापर होई ॥

सत्यकबीर वचन

धर्मदास तोहि लाख दोहाई । सार शब्द बाहर नहिं जाई ॥
सारशब्द बाहर जो परि है । बिचले पीढी हंस नहिं तरि है ॥
युगन युगन तुम सेवा कीनी । ता पीछे हम इहां पगदीनी ॥
कोटिन जन्म भक्ति जब कीन्हा । सारशब्द तबही पै चीन्हा ॥
अंकूरी जिव होय जो कोई । सारशब्द अधिकारी सोई ॥
सत्यकबीर प्रमाण बखाना । ऐसो कठिन है पद निर्वाना ॥
पै दुतिये विधि कह्यो बहोरी । जापर सद्गुरु कृपा न थोरी ॥
धर्मदास प्रति ऐसे कहेऊ । मांगु जो कछु तेरो चित चहेऊ॥
धर्मदास तब वचन उचारा । तारो मोहि सहित परिवारा ॥
पिता पितामह सखा समेता । सबहि पारकर कृपानिकेता ॥

तेहि अवसर सतगुरु विहसाना । का मांगे कछु मांग न जाना ॥
तारो सकल सृष्टिको भाई । तुम तो आप रहे अरुगाई ॥
यामें नहिं कछु दोष तुम्हारा । कालपुरुष तुमरी मति मारा ॥
ऐसो समरथ सत्य कबीरा । पलमें सब क्रम कागज चीरा ॥
कोटिन जन्म जो परा भुलेषा । करे जो कृपा चुकावै लेखा ॥
जहँ तहँ देख आप सद्गुरु है । नहिं कहुँ असुर नहीं कहुँ सुर है ॥
असुर भाव जब सुरको आया । ता छन ताको असुर बनाया ॥
सुरते असुर असुर सुर होई । नारिते पुरुष पुरुष तिय सोई ॥
नीचते ऊंच ऊंचते नीचा । उत्तम मध्यम योनिमें खींचा ॥
ताते देखो दृष्टि पसारी । सकलधर्म प्रभु आप बिहारी ॥
मेरे मतसों सब धर्मनमें । खेले खेल सकल कर्मनमें ॥
जो कोइ चीन्है लाल बिहारी । दुबिधा सकल दूरकरि डारी ॥

सत्यकबीर वचन

राम रहीम करीमा केशव हरि हजरतहै सोई ।
गहना एकै दृढ है गहना दुतिया और न कोई ॥

चौपाई

सब धर्मनमें आपै खेले । एक दूसरेसे नहिं मेले ॥
भर्मत सारी सृष्टि भुलानी । होय चहूँदिश ऐंचातानी ॥
झूठ सांच जब लख सविवेका । झूठको तज गहु सत्तको टेका ॥
यह संसार सकल भ्रम छाही । भ्रमकरि सर्व सत्य दरशाही ॥
एक अनेक अनेक भो एका । ज्ञानते होय सो एक अनेका ॥
यथा कांचके मंदिर माहीं । कोटिन मणि मानिक रहजाहीं ॥
झाड़ फनूस अनेकन टांगा । तामें यक भ्रम दीपक जागा ॥
भ्रम दीपक जब तहां प्रकासा । कोटिन दीप मंदिरहि भाषा ॥
यक प्रतिबिम्ब अनेकन देखो । वार न पार लेख कह लेखो ॥

यक भ्रम दीप जो दियो बुझाई । सकलो भास नाश ह्वै जाई ॥
ऐसे एकते भयौ अनेका । बहुरि अनेक एकही एका ॥
यहि विधिसकलजक्त यहलागा । जस भ्रम दीप कांचगृह जागा ॥
ज्ञान उदयते रहै न कोई । यथा नखतगण जलमें जोई ॥
जल सूखे नहिं दरसै तारे । कोई नहिं देखजात किहि द्वारे ॥
ऐसेहि सकल जक्त यह थापा । सबमें शोभित आपै आपा ॥
ब्रह्म सब देसी लख ऐसे । यथास्फटिकमणि देखी तैसे ॥
यही स्फटिक मणिकेर सुभाऊ । जहँजसमतितसगति दरसाऊ ॥
जौन रंग तेहि सन्मुख आना । गहै स्फटिक मणि सोई बाना ॥
कर्मरंग जाढँग सघट्टा । देखफटिक मणिमें सोई ठट्टा ॥
राता पीता आदिक रंगा । होयस्फटिकमणि को सोई ढंगा ॥
सर्वांगी अस ब्रह्म बखाना । कर्म बनाव अनेक बिधाना ॥
जहँ जसकर्म तहां तस भासू । सो निरलेप है स्वतह प्रकासू ॥
कर्मडोरि जबलों नहिं तोरे । अपनो रूप न पावै भोरे ॥
कर्मबंधते अलग जो होई । परम सोहावन उज्जल सोई ॥
कर्मसूतमें बंधा जो रहई । नाना रंग ढंग गुन गहई ॥
जेते धर्म जक्तके मांही । सबमें सोई ब्रह्म दरसाही ॥
जो दरसै सो सब भ्रम भासा । नहिं दरसै तेहि कौन प्रकाशा ॥
जो नहिं कहन सुननमें आवै । ताको कथा कौन कहि गावै ॥
मन बानीकी गम जहँ नाहीं । पुनि मनबानी किमि कहताही ॥
नैनते सकल जक्त दरसाई । पै निज रूप न सो लखिपाई ॥
देखे आंख सुने सब काना । रसना रसिक गंध गह घ्राना ॥
त्वचा स्पर्श तेहीको अहई । सबइंद्री निज निज कर्म गहई ॥
आंखिन रशनाको गुन जाना । स्वाद भेद नहिं सो पहिचाना ॥
कान न कबहु रूपको देखे । नाक न कबहु स्पर्शको लेखे ॥

इंद्री निज निज कर्मही योगा । निजनिज भोग और नहिं भोगा ॥
सो इन्द्री जेहि ब्रह्म लखाही । कोई इन इन्द्रिनमें नाहीं ॥
जातें आतमको पहिचाना । ताकी है कछु और ठेकाना ॥
मौन दशा ताते गह साधू । यह सब दीखैं भर्म उपाधू ॥
बिन जाने जो मौन गहाई । सो नहिं साधु मूर्ख कहलाई ॥
जौ कछु कहो कहत नाहिं बनई । जो चुप रहौं रहत नहिं बनई ॥
आपै आप खेल सब खेले । भर्म कूपमें मोहि क्यों ठेले ॥
रसै बसै सब माह समावै । अर्श पै अपनो तखत बतावै ॥
जो जाने सो कैसे कहई । नहिं जाने बहु बानी बहई ॥
सबही धर्म जक्तमें तेरो । कहो तो दोष देय सब मेरो ॥

सत्यकबीर वचन

काल दयाल हमै है भाई । छोड़ो दुबिधा काल पराई ॥
सबही धर्म ताहि सतगुरुके । चीन्हे बिनाकाल नहिं मुरके ॥
स्वसंवेदमें कहा बखानी । ताहि बूझि सुख पावै ज्ञानी ॥
काल पुरुष सतपुरुष समायो । सत्य पुरुषकी देह जो पायो ॥
सत्यपुरुष दीनों निज देही । कालपुरुष गहि लीनो येही ॥
विषयभोग सब कालकी अंगा । देखहु स्वसंवेद परसंगा ॥
विषयवासना जिहि जिवजागी । सबको धर्मराय है भागी ॥
निर्विकार अरु विनय विहीना । सकल वासना त्याग जोकीना ॥
सो समस्त सतपुरुष सनेही । सत्यपुरुष पुर पहुँचे येही ॥
इन्द्रीभोग विषय जो ध्यावै । धर्मरायके धाम समावै ॥
सदा रहै सो कालके फंदा । सो नहिं सत्यपुरुषको बंदा ॥
रस प्रीतिसे भक्ति जो करही । विषय विहायनाम निति रहही ॥
कालहिमें दयाल प्रकटाई । गहि करतासु लोक ले जाई ॥
सत्य पुरुषको भक्त कहावै । विषय विकार तेजो मनलावै ॥

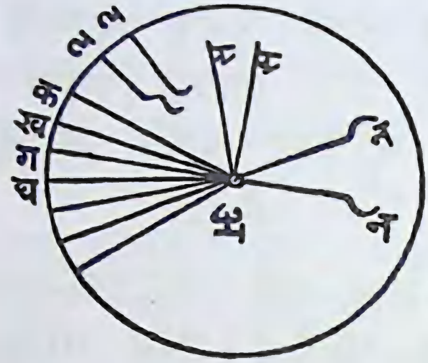
प्रेमभक्ति जामें नहिं कोई । नहिं संतनकी सेवा होई ॥
सो सतपुरुषकि भक्तिसे गिरता। काल पुरुषके बंधन परता ॥

छंद–सत्यपुरुष जो निज बपुवरकह काल पुरुषको दीन्हेऊ ।
ताही पुरुषमें काल पुरुष कालमें तेहि चीन्हेऊ ॥
अंतरो बाहर दोऊ ठाहरमें निरखि भल लीन्हेऊ ॥
मोरे मते सतपुरुष सबही दूर दुबिधा कीन्हेऊ ॥

चौपाई

जाहि धर्ममें जो जिव रहई । जब नखशिखसुकर्म सब गहई ॥
तब सांचा सतगुरु समुहै है । परम धर्मको मारग पैहै ॥
जबलों नहिं अति उत्तम करनी। परमपंथ तबलों नहिं धरनी ॥
हो यथा यक गोलाकारा । चहुँदिश ताके घेर सँवारा ॥
मध्यमें बिन्दु घेरके आही । घेरते बिन्दुको लीक जो जाही ॥
सो लकीर सब होहि बराबर । जौं नहिं इंग बिङ्ग मारगधर ॥
तेसे यह मृतलोक बखानो । सब धर्मनको थोक बखानो ॥
गोलाकार जान यह धरनी । ब्रह्मबिन्दु सतगुरुको बरनी ॥
लीक समान धर्म सब जगको । गह सब ब्रह्मबिन्दु मारगको ॥
जौ सुकर्म सब उत्तम होई । पहुँचे ब्रह्मबिन्दुको सोई ॥
टेढ़े टेढ़े चले जो कोई । ब्रह्मबिन्दु पहुँचे नहिं सोई ॥
इमि सब धर्मनके आचारी । टेढ़ चाल जब तज एक बारी ॥
ब्रह्मबिन्दुको तब सो पाई । ठाढ होहि तापर पुनि जाई ॥
सीधे खडे होहि तेहि ऊपर । तब चहुँओर निहारेहि भूपर ॥
सब धर्मनकी दशा निहारी । केहि कर्मन अरुझे नरनारी ॥
ब्रह्मबिन्दुपर पहुँचे जो कोई । सीधे ठाढ न तापर होई ॥
शुद्ध रूप तेहि दृष्टि न आवै । फेरि फेरि भव भटका खावै ॥
बिन्दुपै सीधे खड़े भे आई । शुद्ध स्वरूप ताहि दरशाई ॥

शुद्ध स्वरूप जीव जब हेरी । करे न सो भवसागर फेरी ॥
गोलाकार स्वरूप बनावो । तामें सकल खेल दरशावो ॥




ब्रह्मबिन्दु है आदि पुकारा । कखग आदिकसबधर्म पुकारा॥
निज निजमत जो आछे पाला। तौ सब ब्रह्मबिन्दुको चाला ॥
टट्टा टेढ़े मारग जाहीं । ब्रह्मबिन्दु पहुँचे सो नाहीं ॥
सस्सा बिन्दुपे पहुँचै जाई । सीधे खड़े भये तहँ आई ॥
पूरन ज्ञानदृष्टि तिन पायौ । परम रूप रमि भवनहि आयौ॥
नन्नाहू लह बिन्दु ठेकाना । ठाढ़ होनगति सो नहिं जाना॥
टेढ़े जायके ठाढे भयऊ । ताते शुद्ध स्वरूप न लहेऊ ॥
गोलाकार जो कथा बखानी । यह संसार सकल है पानी ॥
पानीमें जिव गोता मारा । बूड़ि जाय पुनि शीश निकारा॥
बूडै उछलै पार न पावै । लख चौरासी माह समावै ॥
जिमि शिशुमारचक्र यह फिरता। यकपलभरिनहिं ताको थिरता॥
जो लग्नादिक चक्रमें आही । सबही ताके संग भ्रमाही ॥
भ्रमनकरे निशिदिन सब सोई । तिनको थिरता कबहुँ न होई ॥
ऐसहि गुरू संग सब चेले । भवसागरमें बाजी खेले ॥
उत्तर दक्षिणको जो छोरा ।तहँ जो पहुँचहो थिर तेहिठौरा ॥

जो कोई पहुंचे तेहि खूटा । ध्रुव तारा सम भ्रमनते छूटा ॥
ज्ञानी पहुंचे कुतुबके किल्ले । अटल होहि सो बहुरिन हिल्ले ॥
सतगुरु किला जो ऐसे पैहै । बहुरि न सो भवमें भरमैहै ॥
यह दृष्टांत जो कोई बूझै । निश्चय परम पंथ तेहि सूझै ॥
सकल धर्मको एकै साईं । सब पालै निज पुत्रकि नाईं ॥
एक सोनार गढै सब गहना । जैसो कर्मरूप तस लहना ॥
सोन रूपको तार बनावै । गढ़िगुढ़ि ठोकि ठांकि सुधरावै॥
ठोंकि ठांकि जब सीधा करई । यंत्रमें तबहि तारसों धरई ॥
खैंच तार धरि यंत्रके माही । इंग बिंग तब सब मिट जाही ॥
ऐसहि सर्व धर्म जग केरो । टेढ बिंग व्यौहार जो हेरो ॥
धर्म कबीर धरहि जेहि बारी । खोट कर्म तब दूर पवारी ॥
तार समान सकल मत मंत्री । धर्मकबीर सोनारको यंत्री ॥
दोय प्रकार वासना अहई । भली बुरी जाको सब कहई ॥
दोनों भवसागरमें डारा । कहा करे यह जीव बेचारा ॥
अर्थ अरु धर्मकाम अरु मोखा । चारों त्यागे साधु सो चोखा ॥
चारते पार और जो होई । सतगुरु भेद बतावै सोई ॥

सत्यकबीर वचन

साखी-तीरथ गयेते एक फल, संत मिले फल चार ।
सतगुरु मिले अनेकफल, कहै कबीर विचार ॥

चौपाई

कर्मको फल नर पावै कैसे । भोजन रस तन व्यापै जैसे ॥
जैसे भोजन जो को खाई । ताहीको गुन तामें आई ॥
आकशमात कर्म फल पावत । दुःखसुखसबजिवकोप्रकटावत॥
जस बासना कर्म कर तैसा । तेहि अनुसार धर्म गह ऐसा ॥
सब निज निज वासना गहाई । ता तोषनकी करे उपाई ॥

नवी मलेक्षस्थानको यक रह । प्रभुप्रति विनतीकरि ऐसे कह ॥
हे प्रभु मोहि तियरति बलथोरा । यह बरदेव होय सो जोरा ॥
तेहि नभ वानी कीन पुकारा । रति कारन कर मांसु अहारा ॥
मांसु खान लागा तब सोई । जान्यो प्रभुकी आज्ञा होई ॥
जस मनोरथ तैसी प्रभु आज्ञा । सत्य कहो करिके परितिज्ञा ॥
जस वासना जीव उर खोले । ताको यतन अकाशते बोले ॥
तथा फिरिशते स्वपना सुथरे । तस कलाम अछाको उतरे ॥
मिश्रसे जबहि यहूदी चाले । जब उजाड़में आय निराले ॥
मांसु खान कह प्रभु प्रतिटेरी । दियो लगाय बटेरकी ढेरी ॥
खातहि खात मृत्यु तेहि डाला । कर्मको फल पायो ततकाला ॥
जिन जिन मांसु खानको रोये । बचन एक प्रान सब खोये ॥
बीस बर्षके ऊपर जोई । सब मरि गयौ बचा नहिं कोई ॥
ज्ञान बिनाको प्रभु पहिचाना । ताको धर्म न कोई जाना ॥
जैसो धर्म धरे जो कोई । तैसी गति निश्चय लह सोई ॥
कोई स्वर्ग नर्कको भोगा । कोई अधर मृत्यु पुर लोगा ॥
जीव वासना प्रेरि लेआवै । ताही गतिमति स्थित करावै ॥
तीनों पुर पसरा यमजाला । कोइ बचै जेहि राख दयाला ॥

सत्यकबीर वचन

तीनों लोकमें लागी आग । कहैं कबीर कहँ जैहो भाग ॥

चौपाई

उभयवासनां ते जिव अटका । छूटै न आवा गौन को खटका ॥
कालहि रचै कालही पोषे । कालहि सब रचनाको सोषे ॥
कालको कृत कालही खैहै । कोई विरला गुरुगमबचजैहै ॥

कुंडलिया

निर्विकार आतम सदा, बंधाकर्मकी डोर ।
मरकट नटके हाथ जिमि, फिरताखोरिन खोर ॥

फिरता खोरिन खोरि, कंठमें कर्म जञ्जीरा ।
दर दर नाचत जाय, पाय तन मन बहु पीरा ॥
पीरा लह मतिमंद, होय नहिं बन्द खलासी ।
बंद दयाल जेहि काल, कालकी काटे फांसी ॥
कबीर खड़े बाजारमें, गल कट्टोंके पास ।
जो कोई करे सो भरेंगे, तुम क्यों भये उदास ॥
तुम क्यों भये उदास, भाष कर्महिको सारा ।
कर्मको रचित जहान, खान चहुँ कर्म सँवारा ॥
कर्म सँवारा दर्ब, सर्ब जहँलों जग दरसै ।
आतम तो निरलेप, एक सम सबमें सरसै ॥
हदमें चल सो मानुवा, वेहद चले न कोय ।
हद बेहदके बीचमें, रह्यो कबीरा सोय ॥
रह्यो कबीर सोय, कोय नहिं ताको परखै ।
परखै संत सुजान, ज्ञानके नैनन निरखै ॥
निरखै ज्ञानके नैन, परख पूरन सो पावै ।
जहँ तहँ दरशै आप, ताप तिहुँ दूर बहावै ॥
हदमें चलै सो मानुवा, बेहद चलै सो साध ।
हद बेहद जो दोनों त्यागे, ताको मता अगाध ॥
ताको मता अगाध, आध अरु व्याध न लागे ।
कर्म जनित सब रोग, भोग भवमें नहिं पागे ॥
नहिं पागे भवभोग योग, जग नाता तोरे ।
टूटे न भजनको तार, प्रीति नामहिते जोरे ॥
हिंदू कही तो हौं नहीं, मुसलमान भी नाहिं ।
पांच तत्त्वको पूतला, खेलै गैबी माहिं ॥
खेलैं गैबी माह गैबको गैबी जाने ।

कहन सुनन कछु नाहिं, विचार हृदय निजआने ॥
आने हृदय विचार, चारु चिर चोर चपेरे ।
मूसे जो घर मोर भोर, निश ताको हेरे ॥

चौपाई

काल कराल आपही जानी । ब्रह्मा विष्णु महेश भवानी ॥
षटदरशन सोई प्रभु थापा । सब पंथनमें आपै आपा ॥
मूसा ईशा महम्मद आदिक । सोई सब मतके मरजादिक ॥
सब धर्मनको सोइ अचारज । सबहीको कीने प्रभु कारज ॥
सब ही धर्म ताहिको जानी । प्रणवों सबहि मनोक्रम बानी ॥
सोई प्रभु सबही ये देखा । बपुरा जीव करे कह लेखा ॥

छन्द–आप खास है आप दार है आप खेल खेलायऊ ।
मलसोध जीव प्रबोध कीनो बौध होकर आयऊ ॥
जग जगन्नाथको माथ नावैं रूप और बनायऊ ।
थापे महातम बौधको खुद बौधीदास कहायऊ ॥

चौपाई

दोय पुत्र ब्रह्माके भयऊ । यक सुर दुतिय असुर जो कहेउ ॥
सतोगुनी सुर कह सब कोई । विषय विकारी असुर सो होई ॥
तीन लोकमें विषय विकारा । चौथा लोक विषयते न्यारा ॥

सत्यकबीर वचन–चौपाई

विषय विकार मान मद जेते । सो सब प्रभु असुरनको देते ॥
जाने थोर बहुत जो कहई । तीनों काल मूर्ख सो रहई ॥
जेते जाने तेते जो भनिये । मध्यम गतिमें ताको गनिये ॥
जाने बहुत कहे जो थोरा । सोई ज्ञानी सब शिरमौरा ॥
सब धर्मनको भेद जो पावै । ताकी बुद्धि शुद्ध है जावै ॥
जाके धर्म ताहिते जांचो । तब लखिपरे झूठ कह सांचो ॥

जौन धर्मगति चहु चित सुनिया। ढोढों ताको पंडित गुनिया ॥
पक्षरहित जो बात बतावै। तामें कछू कसर जौं आवै ॥
तौ पूछो औरन बुध लोई। निजबल बुद्ध बतावे सोई ॥
एक कि भूल दूसरा कहई। यहिविधिचतुरशंकनिजदहई ॥
औरको धर्म औरते बूझै। ताको दिनदोपहर नहिं सूझै ॥
वायस मिल वायसहि प्रशंसा। हम सम नहिं ब्रह्माको वंशा ॥
हमसम और न बोल सुधारा। जाने कह कोकिला गँवारा ॥
सो सुनि भूलि जाहि जिवसंठा। जानन कागहि जो कटुकंठा ॥
जिमि उलूक निजपरको ठानू। कानते सुने न देखे भानू ॥
तामें सब कोइ मिथ्या करई। जगमें कतहु न सूरज अहई ॥
ताकी शाख भरनको साचा। चमगुदरी उठि बोली बाचा ॥
सुनि लीजै उलूक मम भ्राता। जो कछु कहो सत्य तुम बाता ॥
मैं कबहूँ दिनकर नहिं देखा। कहै जक्त सब झूठा लेखा ॥
भरे बहुरिके ताकी साखी। आय छछुन्दर ऐसे भाषी ॥
सत्य बचन तुम दोहुकी आही। दिनकर तीनकाल कहुनाहीं ॥
ऐसहि अंधहि अन्ध सराहत। जो दिनपतिहि दूरकरचाहत ॥
तिनके वचनमें जो जिव बंधे। तिनसमान सो सबही अन्धे ॥
जाघर पकै हरामको दाना। तिनको धर्म कर्म बिन माना ॥
जो कोई करे हराम कमाई। आप खाय अरु और खिलाई॥
जो हरामको दाना दैहे। ताको दंड आप शिर लैहे ॥
खाय हराम हरामही करि है। करि हराम भवसागर परि है ॥
जो कोई अन्न हरामको खाई। ताकी बुद्धि अन्ध हो जाई ॥
बुद्धि विभंग होय जब जाको। धर्मकथा भावै नहिं ताको ॥
अन्धकार जब हृदयें घेरे। शुद्धपन्थ सो कबहु न हेरे ॥
खाय हराम हरामी जायौ। मातु पिताकुलकानि गवायौ ॥

करि श्रम शुद्ध अन्नभक्ष जोई । ताकी कृपा शुद्ध सब होई ॥
भक्ष सुअन निजधर्म जो पाला । ज्ञान दृष्टि पावै ततकाला ॥
विषकी बेल है यह संसारा । चहुँदिश आवै विषकी झारा ॥
जलथलमें विष रहा समाई । बिष नहिं तजै भजै चितलाई ॥
विषहीमें निज भौन बनाई । बिषय भोगि विषको तनपाई ॥
सबही सन्त श्रुति कहे बखानी । नरस्वरूप नारायण जानी ॥
लिखो वेद वेदान्त पुराना । तौरे तो इञ्जील कुराना ॥
सब ही मिल करते निरधारा । नर ईश्वर निज रूप सँवारा ॥
निश्चय नर नारायण देही । पै जब ईश्वर गुनगह येही ॥
जबलों ईश्वर गुन नहिं गहई । संज्ञा जीव तासुको रहई ॥
ताते जीव शीव शिव कहिये । विषयबिकारनतनमन गहिये ॥
जब सबही शुभगुनगहि लीना । ब्रह्मस्वरूप ताहि कहि दीना ॥
ब्रह्मस्वरूप आप जब मंडा । तब रचि सके कोटि ब्रह्मण्डा ॥
सिरजै पोष प्रलय करिडारी । पुण्यपाप नहिं ताहि बिचारी ॥
जिमि शिशुमाटीधूल खेलोना । नाना भांति रचै मनभौना ॥
खेलि खेलि पुनि मिट्टी मेला । ऐसहि ब्रह्म सृष्टि को खेला ॥
सकल सृष्टिको करता होई । ताको नाम जपै सब कोई ॥
जो जिव विषयनमें लपटावै । दिन दिन तुच्छ देह सो पावै ॥
जब जब तुच्छ अन्त ह्वै जाई । नरकनमें निज भोन बनाई ॥
ताते विषई जीव सबनकी । विषयबिहिन देह ईश्वरकी ॥

सत्यकबीर वचन

साखी—कबीर कबीर तु क्या करो, साधो अपना शरीर ।
पांचो इन्द्री वश करो, तुमही दास कबीर ॥

बुल्लेशाह वचन

काम क्रोध लोभ मोह हंकार । पञ्जो कट्ठवां जू दो मार ॥
इन्हा करवी है बदवो । बुल्ला आपै अल्लह हो ॥

यह संसार दुसह दुःख दागा । बिरत विचारी सन्तसो त्यागा॥
कौन राम कौनी विधिजपना । कौन ठौर तेहि प्रभुको थपना॥

सत्यकबीर-वचन

साखी-रामजपत है नामको, नाम जपता है थीर ।
ताहूते कछु अपर है, ताको जपै कबीर ॥

चौपाई

उत्तम धर्म जो कोइ लखि पैये । आप गहो अरु और गहैये ॥
ताते सत्यपुरुष हिय हर्षें । कृपा वारि तब तोपर वर्षें ॥
सत्यकबीर केर परमाना । यहि विधि तैसो करे बखाना॥
जो कोउ जीवहि राह बतावै । परमपुरुषकी भक्तिमें लावै ॥
ऐसो पुण्य तासुको बरना ।एक मनुष्य प्रभु सन्मुख करना॥
कोटि गाय जिमि गहे कसाई । ताके करते लेत छोड़ाई ॥
परम पुरुषते जब जिव जूटै । काल कसाई करते छूटै ॥
भक्ति कठिन अतिशय कठिनाई । बिना भक्ति कोइ पार न पाई॥
भक्ति भवन अति उत्तम ऊंचा । इनसीढी बिरला कोइ पहुँचा॥
लागे तहां त्रिविधि सोपाना । एकते एक विचित्र बखाना ॥
रजगुन तमगुन सतगुन बरतो । द्वै तजिके तृतिये पग धरतो ॥
जब सतगुन सीढीपर चढ़िये । तब तहँ ज्ञान अगोचर पढ़िये॥
पढ़िके ज्ञान भयौ जब पक्का । तब सो भक्ति भवनको तक्का ॥
भक्तिभौत जब चाहत चलिये ।तब सतगुरु प्रतिहारते मिलिये॥
ताहि पौरि यहि भेट चढ़ावो । भक्तिभौन तब पैठन पावो ॥
तन मन धन सब अर्पन कीजै । शिर उतारि तेहि चरणधरीजै॥
जो दयाल हो सो प्रतिहारा । भक्तिभौन तब हो पैठारा ॥
भक्तिभौनको भेद जो पाया । त्रिगुन पौरि सो बहुरि न आया॥
आदि अन्त सतगुरु गुनगावो । जिन तोहि भक्तिभौन बैठावो॥

भक्तिहि भक्ति भेद बहुतेरा । गहसो भक्ति भेट भवफेरा ॥
विमल भक्ति गहिये मन लाई । जाते त्रिगुनातीत कहाई ॥
आप आप जिव आप फँसाई । आपै बँधा आप दुख पाई ॥
जस कृमयक जेहि कह खुसियारी। ताकी ऐसी कथा उचारी ॥
सो ऐसो निज भौन बनावै । आपको तामें आप फँसावै ॥
आप चरित ग्रह बंधै आपू । काहूको कछु दोष न पापू ॥
ताहीमें सो फँसि मरिजाई । विविध भांतिसे सो दुखपाई ॥
बंधा तौ पै खुलै न कोई । जब लगि सतगुरु कृपा न होई ॥
हाथ पांव पटकै औ रोवै । तब गुरुकृपा केर भ्रम खोवै ॥
जाति पांति कुल कानि गवावै । भली बुरी कछु चित्त नहिं ल्यावै ॥
सकल नेहको नाता तोरे । प्रीति सदा सतगुरुसे जोरे ॥
वेद कितोब शरा अरु सुन्नत । सो नहिं कछु निज मनमें उन्नत ॥
यह सबही दुनियांकी फांसी । ताते नहिं भेंटे अविनाशी ॥

कवित्त–शरीअतकी सलाई जिव आँखन चलाई भय अंध यमबन्ध धोखधन्धमें परत है । कोई कह हम हिंदू हौ जो ऊंचे कुलबिंदू कोई कह हौं ईसाई ईशा आसराध रत है ॥ कोइ वह मुसलमान होही साबित ईमान मारो काफिरन सारा जंग जेहाद करत है । नहिं चीन्है कोइ देव करे भरम कि सेव गुरु सैन बिन येव लड़ि लड़िके मरत है ॥

सत्यकबीर वचन

मुसलमानकी काटी चमड़ी हिंदूकी बेधे कान ।
कहे कबीर इस बोलतेको पहिचान हिंदूकी है मुसलमान ॥

चौपाई

जीवधर्म पुरुषारथ गोगू । ताते सुख पावै सब लोगू ॥

कछुक कहो पुरुष पुरुषारथ । जो हित स्वारथ अरु परमारथ॥
शिव दधीच हरिचंद समाजा । बलि विक्रम करणादिक राजा ॥
सूराशाह सिकन्दर हातम । हनुमत भीष्म द्रोण भाषेतिम ॥
ब्रह्मा हरि शिव मनु सतरूपा । गोरखदत्त कि कथा अनूपा ॥
कौशिक व्यास वशिष्ठो नारद । शृंगी शुक विज्ञान विशारद ॥
केते ऋषि मुनि करनी करहीं । कीरति जासु जक्त उच्चरहीं ॥
जीअत ही साधू जो मरेऊ । सूरसती शुभ करनी करेऊ ॥
साकजके हरि कानन कहई । स्वान शृगाल पेट तेहि भरई ॥
सूर सन्त इमि करनी करही । जक्त जीव ले पार उतरही ॥
तप बल शेष धरे महि भारा । तपबल ब्रह्मा सिरजन हारा ॥
तप बल विष्णु जक्तको पोषै । तप बल शंभु ताहि पुनि सोषै॥
तप आधार जक्त जगदीशा । तप बल जीव बने हैं ईशा ॥
जैसे जगमें सूर सयाना । निजभुजबल अरिदलदलनाना॥
करि श्रम सुखी भये सब सोई । तन धन मोह स्यार सब रोई ॥
जहँ लगि जब विद्या चतुराई । पुरुषारथसे सब कछु पाई ॥
आलसी जीवको विद्या नाहीं । धन नहिं होय अविद्या पाहीं ॥
निरधनको कोइ मित्र न होई । बिना मित्र निरबल नर सोई ॥
निरबलको सबही दुख घेरे । दुखिया दीन तुच्छ जग हेरे ॥
पुरुषनको पुरुषारथ चाही । नारि पतिव्रत धर्म निबाही ॥
मृदु सज्जापर सोवनहारे । भय सो कीट पतंग बेचारे ॥
विविध प्रकार विषय जिन भोगा । अंतकाल सहसो सब शोगा ॥
मचै जबै घमसान लड़ाई । कोई धीर वीर ठहराई ॥
कैसहु महा महिप किन होई । जो रन तजिके भागे सोई ॥
कतल कैद हो राज विभंगा । कायर नहिं देखे रनरंगा ॥
ऋषि मुनि शूर वीरकी करनी । कहलो कहो जाय नहिं वरनी॥

जहँ लगि तन पोषक नर नारी । सो नहिं करनीके अधिकारी ॥
सिन्धुमें जो कोई गोता मारा । सो नहिं राखै भय घरियारा ॥
जबलों सिंधु न डुबकी मारे । तबलों रत्न हाथ नहिं धारे ॥
शर शय्यापर भीष्म विराजे । करि षटमास शयनगति साजे ॥
तन मन कसहि मुनीश्वर ज्ञानी । लहै भक्ति सब सुखकी खानी ॥

सत्यकबीर वचन-रेखता

हमनसे मतमिलो यारो हमन खफकी दिवाने हैं ।
खुशीकी राह छोड़ी हैं कठिनमें जा सामने हैं ।
हमन दिन रैन रोते हैं वौ रामसे जान खोते हैं ।
सुली की सेज सोते हैं बिरहके ये रकाने हैं ॥
हम न हथियार हैं जानी पिया हरिनामको पानी ।
आखिर सब होवैंगे फानी बलीमें जा समाने हैं ॥
तजी खिदमत वजीरीकी लही लज्जत फकीरीकी ।
चढ़े किस्ती सबूरीकी फुकुरके रकाने हैं ।

चौपाई

पुरुषारथकी ऐसी बातें । कर अवश्य पुरुषारथ ताते ॥
यथा कृषान कृषानी करई । उपजैं अन्न पेट निज भरई ॥
हलवाही अवश्य तेहि करना । भली भांति निजखेत सँवरना ॥
बीज बोय रखवाली कीजे । पशु पंछी करिसो मति कीजै ॥
करि निज श्रम बिनवै प्रभुपाही । भरे खेत वर्षाकरि ताही ॥
जौ ईश्वर वर्षा नहिं करई । वृथा कृषानी ताकी परई ॥
जौ बरषैं बरवारी सुकाला । तो कृषान सो होय निहाला ॥
जौ आलस करिके नर कोई । संशय पै हल जोतै नहिं सोई ॥
बीज न बोय न कर रखवारी । बर्षै घन अरु भरे कियारी ॥
ताहि अन्न फल हाथ न आये । मूरख मिथ्या आस लगाये ॥

बिन बोये कहु किनकिन लुनिया । सो जड़ जो यह ज्ञान न गुनिया ॥
ताते पुरुषारथको कीजै । दोऊ लोकमें सुयश लहीजै ॥
सर्वशास्त्र सदग्रंथ बिलोका । जान्यौ सर्व धर्मको थोका ॥
तजि असार सार जो ग्राही । सो पंडित मराल मति आही ॥
उत्तम धर्म धरे जो कोई । उत्तम करनी करिहै सोई ॥
नीच धर्म जो कोई गहई । उत्तम करनी सो किमि लहई ॥
साधु पुत्र नहिं करे कुकर्मा । पुत्र असाधु कुकर्महि धर्मा ॥
कर्मयोनिजनिज मातुपिताका । जिव तेहि भली दृष्टिकरि ताका ॥
ऐसहि सब धर्मनके लोगा । करहि कर्म निज गुरु संयोगा ॥
शुद्ध अशुद्ध विचार न हारा । सो हंसा बिरला संसारा ॥
कहूं कहूं बिपरीति देखावै । साधु सुअन असाधु कहावै ॥
कहूं भक्तभा सदन कसाई । पै यह कथा अनोख बताई ॥
धर्म तुच्छ गहि बड़ पद पावै । ऐसेहु कहूं कहूं देखलावै ॥
है परंतु यह अति अज युतरी । रसिकस्वाद कहँ दे कठपुतरी ॥
कोई चंडाल करे द्विज करनी । सो सतसङ्ग केर फल बरनी ॥
उत्तम कुलमें जो जिव होई । मध्यम करनी जाय बिगोई ॥
त्यागहि पक्ष साधु जो ज्ञानी । हो अपक्ष यह मुक्ति निशानी ॥
निजनिज गुरुपद गह सब आछे । यथा भेड़गण पालि न पाछे ॥
निज निज धर्म सत्य सब कहई । ताते परमपन्थ नहिं लहई ॥
जब काहू सच शंका आवै । निज पद पौर गुरू बैठावै ॥
रामचन्द्र मन संशय आई । देह विदेह मुक्ति अर्थाई ॥
मुनि वशिष्ठ निज ज्ञान सुनाये । अपनी ठौर फेर बैठाये ॥

### योगवाशिष्ठ द्वितिय मुमुक्षुप्रकरण चतुर्थसर्गः

### वशिष्ठ वचन

दोहा–जीवन मुक्ति बिदेहको, तू नहिं जाने हेत ।
सहित असम्यक्ज्ञानके, जान न रघुकुलकेत ॥
स्वसंवेदमें भेद जो, भाषत ज्ञान बिहीन ।
ज्ञानवन्तको भेव नहिं, सम्यकदृग जेहि पीन ॥

### चौपाई

सदाकाल ऐसहि चलि आई । निज निजमता मुनीश मिलाई ॥
कोई कह भिन्न जो मारग लेई । गुरु निज पक्षन बिचलन देई ॥
उत्तम करनी जौं नहीं करिये । तो नहिं उत्तम गुरुपद धरिये ॥
शम दमादि करि इन्द्री जीते । आवागौन दुसह दुःख बीते ॥
चारि खानि जिव जौ तन धारी । मानुष प्रभु निज रूप सँवारी ॥
भक्ति हेत यह उत्तम देही । प्रभुहि बिसार जो धरि तन येही ॥
सोई अधर्म आत्महत्यारा । नर तन पाय न काज सुधारा ॥

इति

### अथ मनुष्यको नित्यकर्म वर्णन

### चौपाई

भोरहि उठि नित कर्म करीजै । करि तन शुद्ध भजन चित दीजै ॥
प्रभु प्रति बिनय बचनते मांगे । महा दीन ह्वै ताके आगे ॥
मोर मनोरथ कर प्रभु पूरा । दीनबन्धु कीजै दुख दूरा ॥
सर्व समय तुहि जग करता । तेरो हुकुम सर्वपर बर्ता ॥
मोर उधार करो प्रभु सोई । विघ्न बिहाय कृपा तौ होई ॥
गुरू अचारजको निज टेरे । सदा सहायक अपनो हेरे ॥
बार बार कर प्रभु प्रति बिनती । यद्यपि सो न करे कछु गिनती ॥
कबहुके दाया प्रभुकी होई । दुःखदरिद्र सब डारे खोई ॥
लाभालाभ एक सम गनिये । सदाकाल प्रभु गुनगन भनिये ॥

जपतप वेद पाठ शुभ कर्मा। गुरू जासु वश भाषे मर्मा ॥
गृही होयके साधू होई। निजु निजु धर्म धरे सब कोई ॥

इति

अथ नरशरीर गुरु अधीन वर्णन—चौपाई

प्रथमै जिव जब गर्भमें आवै। तीन तापते सो अकुलावै ॥
जठरानलकी तीक्षन तापा। महादुःख तहँ जीवहि व्यापा ॥
जठर अग्निसे अस दुख पावा। जैसे तप्त लाल हो तावा ॥
तेहि तावापर जिव जो धरई। तलफि तलफि गरमीते भरई ॥
ऐसे जठर अग्नि तेहि दागे। तहँ जिव बिनय करे प्रभु आगे॥
अबकि बार प्रभु मोहि बचावो। बाहरनिकसि भजन मन लावो॥
दुतिये मल अरु मूत्र मलीना। तामें दूवा दुखिया दीना।
भोगे दुःख महा दुरगंधा। तृतीये उलटा टांगा बंधा ॥
यहि विधि जीव नर्क तहँ भोगा। तीन ताप व्यापे सौ शोगा ॥
बार बार तहँ करे करारा। त्राहि नाथ कर मोर उबारा ॥
भजन छोड़ि न करो कछु आना। प्रभुकी भावभक्तिमें ध्याना ॥
तहँ जिवके सन्मुख प्रभु ठाढ़ा। दया करे सो दुख लखिगाढ़ा॥
सो करार सुनि हरि हर्षाना। बन्धन काठके बाहर आना ॥
जबहि गर्भसे बाहर काढ़ा। भूला कौन मोहमद बाढा ॥
गर्भमें पोषे पालै आपै। प्रभुकी दया दुःख नहिं व्यापै ॥
पालि पोषि पुनि बाहर धरई। मातु पिताको आश्रित करई ॥
मातु पितहि सौंपे शिशुसेवा। गुप्त हो तबहि परम गुरुदेवा ॥
मातु पिता तबलो तेहि पाला। जबलों नहिं बीते पन बाला ॥
बालापन जबही बितजाई। विद्या पाठ गुरू ढिग जाई ॥
मातुपिता गुरु आदि अवस्था। ताबिन जीव न पावै रस्ता ॥
पुनि गुरु कुटुम्ब जातिगण जोई। कुल मरजाद सिखावै सोई ॥

विद्या पाठक पहँ जब जावै । विद्या सकल ताहिते पावै ॥
विद्यापढ़ि जब भयो परवीना । धर्म अधर्म मर्म सब चीन्हा ॥
वेद शास्त्रको सबही छाना । तऊ न भक्तिभेद कछु जाना ॥
तब जिव संतकी संगति गहई । ताते ज्ञान लाभ सो लहई ॥
ज्ञानपाथ जब सतगुरु चीन्हा । ताके चरनमें चित दीन्हा ॥
आठ गुरूके नाम बखानो । जिनते जग जिव लाभ लहानो ॥
पहिले गुरू मातु पितु जानी । रज बीरजते देह उपानी ॥
दूजा गुरु है मनको दाई । गर्भमाह जिन युक्ति बनाई ॥
तीजा गुरू नाम जिन धारा । ताहि नाम ले लोग पुकारा ॥
चौथा गुरु जिन विद्या दीना । कुल मर्याद रीति सब चींन्हा ॥
पंचम गुरु जिन दीक्षा दीनो । रामकृष्णको सुमिरन कीनो ॥
छठयें गुरु जिनभ्रम गढ़ तोड़ा । सबसे तोड़ एकसे जोड़ा ॥
सतवां गुरु जिन सत्य लखाया । जहांको था तहँवा बैठाया ॥
एते गुरु हैं जक्त मझारा । जीवहि राह बतावनहारा ॥
अठयें गुरु पारख पद बंदा । जाते कटे सकल यमफंदा ॥
भक्तिहि भक्ति भेद अधिकाई । तासु कथा कछु देहु सुनाई ॥
अक्षर तीन भक्तिमें धारी । ताको ऐसो अर्थ उचारी ॥
प्रथम भकारसो भव बतलावो । आवागमन जो दूर करावो ॥
दुतिये ककार करे कल्याना । तृतिये तो जिवको दे ज्ञाना ॥
भक्ती दोय प्रकार बखानो । विहित अविहित जाको जानो ॥
ऐसे प्रथम बिहित निरतावो । वेद शास्त्र विधि भक्ति कमावो ॥
ताहि विहितमें चार प्रकारा । प्रथम कामना सहित उचारा ॥
जिमिहरिपदध्यायौवृजवनिता । निजमनोरथयुतभक्तिसोभनिता ॥
दुतिये बैरभाव करि ध्यावन । जिमि हरिनाकुस आदिकरावन ॥
तृतिये भयकरि भक्ति गहाई । जस मारीच भक्त रघुराई ॥

चौथ प्रथम भाव मर्यादिक। जैसे नारद अरु सनकादिक ॥
तिनमें द्वैको त्याग बखाना। भय अरु वैर न भक्ति प्रमाना ॥
पुनि दुतिये अविहित कहावै। प्रेम उमंग हृदयमें आवै ॥
आपसे आप प्रेम उमडाना। वेद शास्त्र विधि कछु नहिं जाना॥
उठै उमंग प्रेमकी धारा। आपै भक्ति गहै हरि प्यारा ॥
सबसे श्रेष्ठ भक्ति है येही। मिले धाय निज परम सनेही ॥
याहूमें कहिये द्वै ढंगा। प्रथम प्रमान कीन ज्ञान अंगा ॥
ताके अंगा भक्ती कह सोई। ज्ञान उपाय मुक्तिकर जोई ॥
दुतिये सो मंत्र भाषिये ताही। याके आप ज्ञानमय आही ॥
भक्तिको भाग ज्ञान कहलावे। भक्तिमें सकल ज्ञानगुन पावै ॥
विहित अविहित कीन उचारा। बहुरि भक्ति कह तीन प्रकारा ॥
उत्तम मध्यम प्राकृत ताना। तिनको ऐसे अर्थ बखाना ॥
उत्तम भक्तीको यह लेखा। सर्व मई ईश्वरको देखा ॥
जल तरंग जस भेद न कोई। भक्ती श्रेष्ठ कहावै सोई ॥
शत्रु मित्र जगमें नहिं कोई। आपै आप रमै प्रभु सोई ॥
दुतिये मध्यम भक्ति बन्दता। भगवत भक्त और भगवन्ता ॥
दोनों ते सो प्रीति लगावै। दुरजन देखि न ताको भावै ॥
तृतिये प्रतिमा पूजा ठाना। मूरत को भगवत करिजाना ॥
भगवत भक्तनसे नहिं प्रीति। प्राकृत भक्त केर यह रीति ॥
बहुरि भक्ति कह तीन बिधाना। सात्त्विकराजसतामस जाना ॥
सात्त्विक भक्ति कहे निष्कामा। राजस होय कामना जामा ॥
तामस बैरी विजयके कारन। त्रिविधभक्ति पुनि कीन उचारन॥
मानस बाचक कायक होई। बहुरि चार बिधि कहिये सोई ॥
प्रथम जो द्रौपदि आरतनिजहित। दुतिये जिज्ञासू नृप प्रीछित ॥
तृतिये अर्था अर्थी सोई। दुनिया चाहे ध्रुव जस होई ॥

चौथो ज्ञानीको मरजादा । जैसे सनकादिक प्रह्लादा ॥
बहुरि तीन विधि भक्ती धरिये । प्रथमहिभक्ति आप जो करिये ॥
दुतिये औरनसे करवावै । पुनि लखिभक्ति करत हरषावै ॥
नौधा भक्ती बहुरि बखानो । श्रौनो कीर्तन सुमिरन जानो ॥
सेवा अरु अर्चा पुनि वंदन । दाससख्यपुनि आत्मनिवेदन ॥
पुनि बारह प्रकारकी भक्ती । प्रथमै संतन संगत युक्ती ॥
पुनि हो भक्तन कृपाके लायक । ऐसे करिये कर्म सुभायक ॥
तृतिये भक्तन चरित जो आही । श्रद्धा अरु निश्चय तेहि माही ॥
चौथे हरिचरित्र सुन काना । पंचम सुनत प्रेम अधिकाना ॥
षष्ठम हरि निजरूप निरताये । जस अद्वैत बाद बतलाये ॥
सप्तम प्रीति माह नित गाढ़े । अष्टम प्रभु प्रकाश उर बाढ़े ॥
नौमें सकल बिकारहि त्यागा । हरिगुन आपमें आवन लागा ॥
सर्वज्ञता होय पुनि दशमें । ग्यारहे सब हरि गुनहो इसमें ॥
बारहे निज्ु तम हरिकी प्रीति । सकल भर्मभय जीवकी बीति ॥
तीन प्रकार भक्तिको भेवा । प्रथम कीजिये गुरुकी सेवा ॥
तन मन धनसे प्रीति लगावै । गुरुकी सेवा सब सुख पावै ॥
दुतिये साधुन सेवा अहई । ताते जीव परमपद लहई ॥
तृतिये जप तप कीन प्रमाना । निर्गुणसर्गुण भक्ति त्रिधाना ॥
अगुण सगुण जोभक्ति उचारा । स्वसंवेद थापे दोहु बारा ॥
दोहुते पार भक्ति जो गहई । परम पुरुषकी भक्ति सो अहई ॥
ब्रह्मा भक्ती शिवकी भक्ती । रामकृष्ण विष्णू अरु शक्ती ॥
निर्गुण भक्ति योगेश्वर धारी । पुरुष भक्ति इनतेहैं न्यारी ॥
जैते भक्ति जक्त में कीना । सबही जानिये गुरु आधीना ॥
प्रथमैं निश्चय गुरु की करई । निश्चयबिन कछु काज न सरई ॥
सबही धर्मकेरि समताई । गुरु निश्चय बिनमुक्ति न पाई ॥

धर्म महम्मदमें बतलाये । निश्चय तरुपर गुरु बैठाये ॥
निश्चय माह गुरुका बासा । बिन गुरु निर्गुण नर्कनिवासा ॥
निश्चयमें जब सद्गुरु बैठे । जिवके हृदय ज्ञान तब पैठे ॥
जिनके हृदये निश्चय नाहीं । तो सबही निगरे नर आही ॥
द्वन्द्वते भया सकल संसारा । द्वन्दहि तासु छोड़ावन हारा ॥
पुरुष नारिको भया जो मेला । ताते जगको पसरा सेला ॥
तैसे जब गुरु शिष्य मिलजाई । सकल भर्म भय जाय नसाई ॥
बिन गुरु जीव राह नहिं पावै । जप तप दान वृथा सब जावै ॥
गुरुके बचन चरन चित दीजै । कबहू ताहि उलंघ न कीजै ॥
करिये गुरुकी सदा बड़ाई । गुरुअस्तुति सब अघ बिनसाई॥
निशदिन ताहि सेवामें रहिये ।ताते अधिक न तप कोइ कहिये ॥
तन मग धन गुरु अर्पन करना । गोखुरसो भवसागर तरना ॥
गुरु निरुद्ध करिये जो कर्मा । होय शुद्धपै तजे अधर्मा ॥

सत्यकबीर वचन

साखी-कबीर गुरुबिन माला फेरत, गुरुबिन देते दान ।
गुरु बिन दाम हराम है, पूछो वेद पुरान ॥
गर्भयोगेश्वर गुरु बिना, लागा हरिकी सेव ।
कहै कबीर बैकुण्ठते, फेरि दियो शुकदेव ॥
कबीर गुरुबिन भर्मा, यौ फिरे ज्यौं रामकोरोझ ।
सतगुरुसे परचै भई, पाया हरिको खोज ॥
कबीर जौ निगुरा सुमिरन करे, दिनमें सौ सौ बार ।
नगर नायक सत करे, तौ जरे कौनके लार ॥
गुरु आज्ञा निरखत रहै, जैसे मणिहि भुअंग ।
कहै कबीर संसारमें, यह गुरु मुखको अंग ॥
गुरुकी आज्ञा आवई, गुरुकी आज्ञा जाय ।

कह कबीर सो सन्त है, आवागौ न नशाय ॥
कबीरगुरु मानुषकरि जानते, चरणामृतको पान ।
ते नर नरकहि जायँगे, जन्म जन्म हो श्वान ॥
कबीरते नर अन्ध हैं, गुरुको कहते और ।
हरि रूठे तो ठौर है, गुरु रूठे नहिं ठौर ॥
कबीर गुरु है बड़े गोबिन्दते, मनमें देख बिचार ।
हरि सुमिरे सो बार है, गुरु सुमिरे सो पार ॥
कबीर गुरुसे ज्ञान जो लीजिये, शीश दीजिये दान ।
केतिक भोंदू पचिमुये, राखि जीव अभिमान ॥
कबीर तीन लोक नौखंडमें, गुरुते बड़ा न कोय ।
करता करे न करि सकै, गुरू करे सो होय ॥

चौपाई

गुरुके लक्षन चार बखाना । प्रथमहि वेद शास्त्रको ज्ञाना ॥
पुनि हरि भक्त मनो क्रम बानी । तृतीये समदृष्टी कहि गानी ॥
चौथे वेदकी विधि सब कर्मा । यह चौ गुरुगुन जानो मर्मा ॥
मुख्य एक गुन गुरु कहि दीजै । चेलेको हरि सन्मुख कीजै ॥
गूको अर्थ अज्ञ तिमिराना । रू जाते प्रकटे हिय ज्ञाना ॥
दूर करे जो अज्ञ अधेरा । गुरू नाम ताही को टेरा ॥
ऐसहि शिष्य धर्म चौ भनते । गुरुकी सेवा तन मन धनते ॥
दुतिये सेव मैं विषयको त्यागे । तृतीये मन हंकार न जागे ॥
चौथे गुरुके वचन प्रतीती । जो कोइ गहै चलै यम जीती ॥
शिष्यको दोय धर्म सर्वोपर । गुरु सेवा वाती निश्चयकर ॥
जामें दोय धर्म ये बसि हैं । गुरु असीबते सब गुन लसिहैं ॥
आठ गुरु जो कीन प्रमाना । सबहि श्रेष्ठ अति उत्तम जाना ॥
सर्वोपरि दीक्षा गुरु भाषी । जाते भक्ति मुक्ति पद राखी ॥

गुरु गोविंद दोउ एक स्वरूपा । बिनु गुरु परा जीव भ्रमकूपा ॥
बिन गुरु कोई विद्या नहिं आवै । अलख अभेद सो कैसे पावै ॥
बिना निशाने तीर चलावै । अंध समान ठौर नहिं पावै ॥
अच्छे गुरुके ढूँढन मांही । निगुरा रहन भलो कछु नाहीं॥
जो कोई कर्म धर्म बतलाये । सो गुरु करि लीजे मन भाये ॥
बहुरि जहां उत्तम गुरु पैये । ताके चरननमें चित लैये ॥
जो दृढ हो सांचा गुरु ढूंढा । निश्चय लहै गहै पद गूंढा ॥
गुरु बिन अज्ञ रहै नर कैसे । मानुष ज्यौं पशु देखी जैसे ॥
जो मानुष हो गुरु बीहीना । सो जड़ पशु पंछी ते दीना ॥
पशु पंछी जेते जगमांही । बिन गुरु सबही ज्ञान गहाही ॥
निज पितु मातु ढंग सब धरही । बिना सिषाये सब कछु करही ॥
बिनगुरु करहि कर्म विधि नाना । नरके कबहुँ आव न ध्याना ॥
नर सब जिवंते अबला बहूता । गुरुद्वारे पावै बल बूता ॥
शिष येते पशुहू सिपि जाहीं । मनुष सो ज्ञान होय तेहि नाहीं॥
गुरु द्वारे नर सो गुन पावै । नरते सो ईश्वर है जावै ॥
यहि विधि नर है गुर आधीना । करिये कर्म कर्म हो छीना ॥
कर्म कीजिये सतगुरुसङ्गा । तब उर उपजे ज्ञान अभंगा ॥

दोहा-गुरुवानी रविकर निकर, कर उर शिष्य प्रकाश ।
ज्ञानदीपके जगमगे, भयौ धर्मको नाश ॥

चौपाई

सर्वोपरि गुरुकेर महातम । बिन गुरु को लखि पावै आतम॥
गुरुकी सेवा गुरुकी पूजा । गुरुसमान कोइ देव न दूजा ॥
गुरुके चरनन जिन चित दीन्हा । आतम परमातम तिन चीन्हा॥
गुरुकी कृपा हनै सब शोका । सोई सुखदायक दोहु लोका ॥
रामकृष्ण गुरुके गुन गायौ । ताके चरननमें चित लायौ ॥

संत कबीर गह्यौ गुरु चरना । बारबार ताको जस वरना ॥
गुरु करिके जो दोष लगावै । सूकर श्वान केर तन पावै ॥
नारद गुरुको दोष लगायो । चौरासी ताको भरमायो ॥
पूरव कथा यह कागभसुंडर । उठिकेनहिंप्रनाम गुरुको कर॥
नाथ करत शिवमंदिर मांही । गुरू तासु चलि आयौ ताही॥
गुरुको देखि न सो सनमाना । निरखि अनीत शंभु रिसियाना॥
भै अकाशबानी तेहि काला । रे खल तैं गुरुधर्म न पाला ॥
धरु जड़ माहस सर्प शरीरा । गुरु अपमान पाव बहुपीरा ॥
एक बार पथकी यह बाता । बद्रिकाश्रममहिंमें चलिजाता॥
जाता दीख महि पंथ दुहेला । एक गुरू ताको एक चेला ॥
परम प्रीति निजु गुरुसे धरई । चरनामृत बिन भोग न करई॥
लागे तहां पहारको पानी । खेदते दुःखित गुरु कह जानी॥
गुरुकी सेव शिष्य सो त्यागा । गारी देना ताहिको लागा ॥
गुरुहि दुखी तजिके चलि गेऊ । बद्रिपतिकी मारग लियऊ ॥
तहँते पलटिके सो जब आई । कुष्ठवरन ताके तन छाई ॥
बाटहि माह कुष्ठ भरि मारा । यह चरित्र निज नैन निहारा ॥
गुरु निरादरको जिमि पापा ।तिमि सेवाफल अगिनित थापा॥
कोटिन जप तप करे जो कोई । गुरुविहीन सब निरफल होई॥
मुनि सुकदेवसे को बड़ि ज्ञानी । गर्भते योगमुक्ति जिन ठानी ॥
तपबल सो वैकुण्ठ सिधाया । बिन गुरु तहां रहन नहिं पाया॥
गुरुकी निंदा करे जो प्रानी । घोर नरकमें वासा ठानी ॥
गुरुते ईर्षा जो जड़ करिहै । सो यमदंड भांति बहु भरिहै॥
गुरुकह बड़ गोविंदते कीन्हा । जाकी कृपा गोविंदहि चीन्हा॥
गुरुसम और न दूजा दाता । सबको मन वेदन विख्याता ॥
रिद्धि सिद्धि गति मुक्ति अमाया । बिनगुरु दया न कहुँ कछु पाया॥

गुरुबिन कहो गांठि को खोले । गुरुबिन अंध टटोलत डोले ॥
बारबार कर गुरु गुण गाना । कहा कौन गुरुदेव समाना ॥
धन्य धन्य गुरु देव गोसांई । तार्यौ भव गोखुरकी नाई ॥
गुरुगुरु जपिके जागे योगी । विरति विचार प्रपंच वियोगी ॥
जादिनते गुरु शरनमें आये । तादिनते दुःख दोष दुराये ॥
गुरुकी पारन सकल सुखदाई । गुरुप्रसाद अमरावति पाई ॥
जौ गुरु जीवहि नाम न देता । तौ कहु कौन मुक्तिपद चेता ॥
ताते गुरु सब सुखको कारन । तासु चरन रजकर शिर धारन ॥
धन्य धन्य सो शिष्य बड़भागी । तन मन धन गुरुसेवा लागी ॥
तीरथ व्रत कछु काज न नाहीं । गुरुके चरणनमें पति जाही ॥
गुरुसमान तीरथ नहिं औरा । गुरू महात्मविदित सब ठौरा ॥
कोटिन तीर्थ गुरुजीके चरना । संत कबीर जो निजमुख बरना ॥
गुरुको शीव न मानै जोई । सो जिव निश्चय जाय बिगोई ॥
गुरुसे लगन जासुकी लागे । तन मन धन तृनसम सो त्यागे ॥
अब सुनिये गुरुपारख पदको । सोई परम गुरु है बेहदको ॥
हदके गुरुको जिन भल पूजा । ताहि मिले पारख गुरु दूजा ॥
हद्द बेहद्द माह गुरु सोई । बिना ज्ञान लखि परत है दोई ॥

### सत्यकबीर बचन–चौपाई

गुरुसम दाता कोइ न भाई । मुक्तिको मारग दियौ बताई ॥
गुरुबिन हृदये ज्ञान न आवै । ज्यौं कस्तूरी मृगा भुलावै ॥
गुरुबिन मिटै न अपनो आपा । धर्मजबड़ी बांधा शापा ॥
गुरुबिन केहरि कूपमें पड़िया । गुरु बिन गजछायासे लड़िया ॥
गुरुबिन श्वान देखि बहु भेषा । मन्दिर एक कांचकी देखा ॥
चहुँदिश दीस आपनी छाया । भूँकत भूँकत प्रान गँवाया ॥

गुरुबिन सुवा नलनिसे बंधा । गुरूबिना कपि पड़ौ जो फंदा ॥
कहे कबीर भर्म संसारा । बिन सदगुरु को उतरे पारा ॥
साखी-भर्म जेवड़ी जगबंधा, फिर जन्मै मरिजाय ।
कहैं कबीर सतगुरु मिलै, तब सतलोकसिधाय ॥
मीन चकार मगल मधु, पशु ह्वै तजे न नेह ।
नर ह्वै तजै कबीर जो, तिनके मुँह दे खेह ॥

शब्द

नरको नहिं परतीत हमारी ।
झूठी बनिज कियौ झूठे संग पूजी सबैं मिलिहारी ॥
शब्दरशन मिलि पंथ चलायो तिरदेवा अधिकारी ॥
राजा नग्र बड़ो परपंची रैअत रहत उजाड़ी ॥
इतने उत उतते इत राखत यमकी साट सँवारी ॥
ज्यौं कपि डोरि बांधी बाजीगर अपनी खूशी रारी ॥
इहै पेड उतपति पर्लयको विषया सबै बिकारी ।
जैसे श्वान अपावन राजित त्यौं लागी संसारी ॥
कहैं कबीर यह अद्भुत ज्ञाना को मानै बात हमारी ॥
अजहूँ लेत्र छोडाय कालसे जौंकै सुरति सँभारी ॥
दोहा-गुरुकी महिमा अधिक है, थके विष्णु विधि वाम ॥
जोरि युगलकर पायपरि, कोटि कोटि परनाम ॥

इति नर शरीर गुरूआधीन

अथ शरनागतीको वर्णन-चौपाई

सतगुरु शरण सकल सुखदाई । ताते जिव सत लोक समाई ॥
साचे गुरुकी गहिये शरना । सोई जीव दुसह दुःख हरना ॥
झूठे गुरुसे काज न सरिहै । धोखे जिव यमके सुख परिहै ॥
सूर कि शरण परे जो कोई । सो जिव कबहुँ न जाय बिगोई ॥

कायर क्रूरकी शरणमें लागे । अंतमें छोड़िके ताको भागे ॥
श्वान पूछि गहि जाय न पारा । बूड़ि मरे भवसागर धारा ॥
अंधको राह देखाव कि अंधा । बंधेको खोले कह बंधा ॥
केत उपासक भाषे सोई । भक्ती अरु शरणागत दोई ॥
उभय भांतिसे प्रभुपद पाये । तामें ऐसो भेद बताये ॥
भक्ती ग्राहक ऐसे कहई । युक्ति जतन करि हरिपद गहई ॥
एकजन्म नहिं जन्म अनेका । छूटें नहीं भक्तिको टेका ॥
काहू जन्म मिले हरि अपना । छूटै सकलभय भर्म कलपना ॥
पुनि कह शरनागत जो ग्राही । करन करावन मोहि कछु नाहीं ॥
शरन हो आपको हरि अर्पनकर । बहुरि नहीं कछु युक्ति यतनकर ॥
शरण हो फेर यतन जौं गहिये । तो शरणागत मिथ्या कहिये ॥
शरन हैं जौं निश्चयमें घाटा । ताकी यमगन रोकै बाटा ॥
जो सतगुरुकी शरणको ताकी । तेहि कछु यतन रहै नहिं बाकी ॥
ताते शरणागत सब परहै । शरण गहै ते जीव उबरहै ॥
शरणागत कह सब गुण आवै । ज्ञानभक्ति तेहिमाह समावै ॥
शरण हो जब यह निश्चय आई । प्रभु मोहि दोनों लोक सहाई ॥
सकल पाप ताको जरि जावै । जो सतगुरुकी शरणमें आवै ॥
शरणागतहो षटगुन गहिये । ऐसे ताको ब्यौरा कहिये ॥
विधि निषेध निजगुरुकी टेवा । दुतिये साधु प्रीत अरु सेवा ॥
तृतिये यह निश्चय उरधारे । मो अध बिसरि नाथ मोहितारे ॥
चौथे यह निश्चय मन माहीं । प्रभु तजि मोर सहायक नाहीं ॥
कैसेहु दुःख सांकरे गूढा । प्रभुत जि और सहाय न ढूंढा ॥
पञ्चम सतगुरु मूर्तिको ध्याना । ताके सन्मुख बिनती ठाना ॥
प्रभु तजि मोर ठेकाना नाहीं । पावन पतित नाम प्रभु आहीं ॥
मो सम पतित न कतहु निहारा । प्रभु सम और न तारनहारा ॥

छठयें आपको प्रभुहिं समर्पै । ताको कबहुँ काल नहिं दर्पै ॥
यह षटगुन जो कोई धारा । शरणागत पलमें कर पारा ॥
काहू साधनको नहिं काजा । शरणागती सकल सुखसाजा ॥
कोइ कोइ आचारज हैं ऐसे । शरणागत विधि भापे जैसे ॥
निशदिन प्रभुको ध्यान लगावै । यक क्षण भरि बिसरै नहिं पावै ॥
टुटै न तार भजन दिन राती । शरणागत कहिये यहि भांती ॥

सत्यकबीर वचन

साखी–कबीर जो जाकी शरन गहै, ताको ताकी लाज ।
उलटि मीन जल चढ़त है, बह्यो जात गजराज ॥

चौपाई

जल अरु मीन कि प्रीति निहारो । तजे प्रान हो जलते न्यारो ॥
ऐसे सतगुरु पद रति राते । निशदिन तासु ध्यानमें माते ॥

कुण्डलिया

रामानन्द कि फौजमें, कबीरके शिरमौर ।
लूला लँगड़ा पांगुला, सबको करि गये ठौर ॥
सबको करि गये ठौर, सुनो कलिके नर नारी ।
गहिये ताकी शरण, हरण भवकी भय भारी ॥
भय भारी हटजाय, उपाय न कलिमें दूजी ।
मेटे यमकी त्रास, आस ताहीते पूजी ॥
शरणगहे सुख होय जिव, बीते सकल कलेश ।
गह्यौ बिभीषण शरण हरि, कीन्हा लंक नरेश ॥
कीन्हों लंकनरेश देशपति, प्रथम सो रहेऊ ।
शरण कबीर सराहि, जाहि खल दल बहु तरेऊ ॥
तऱ्यौ श्वपच चंडाल, डालअध रहेऊ न कनिका ।
परमपुरुष पद पाय, यथा काशी की गणिका ॥

शरणागतको धर्म यह तन मन करिये भेट ।
गुप्त प्रकट सब अर्पिये पुनि यम गहे न फेट ॥
फेट गहै तब कौन सकल तेरो नहिं मेरो ।
बाहर भीतर पौर ठौर सब तेरो डेरो ॥
तेरो डेरो भयो वस्तु तामें सब तेरी ।
तूही तहँ रखवाल छुटी सब संशय मेरी ॥

चौपाई

अब कलिमें आयू नर थोरी । को चित योग युक्तिमें जोरी ॥
पुण्यदान कह ध्यान अगाधू । कर्मबिहीन गृही अरु साधू ॥
ताते शरनागत सुखदाई । और यतन कलिमें नहिं पाई ॥
कलिके जीव अनन्त अपारा । शरण कबीर होय भवपारा ॥
मूर्ख पुरोहित जस बिन ज्ञाना । ताको दान देत यजमाना ॥
दृढ़ ह्वै सतगुरु शरण गहीजै । सकल भर्मभय ताते छीजै ॥

सत्यकबीर वचन–शब्द

बिरिजमें महरि न खेले सिकार ।
चारपांच दश बीश महाभट संग लीने तीनो भरतार ।
मीनरूप ह्वै रहै जगतमें डारि बहावै तिरगुन जार ॥
जलरूपी ह्वै रहै संत कोई गहि पकरे गुरुचरण करार ।
कहै कबीर सुनो भाई साधो यहिते रहियौ सदा होशियार ॥

इति शरण

अथ सतसंग कुसंगका वर्णन–चौपाई

सर्व शास्त्रको यामें एका । बिनसतसंग न उपजे विवेका ॥
बिनविवेक नहिं उज्जल करनी । जाते मुक्तिपन्थ पग धरनी ॥
सतसंगतकी महिमा भारी । लिखते शेष शारदा हारी ॥
वेद कतेब पार नहिं पावैं । संतनको नित गुन गन गावैं ॥

विधिहरि हर नितजाको ध्यावै । संतको भेद सोऊ नहिं पावै ॥
सतसंगत सब सुखकी खानी । सर्वलाभ ताहीते जानी ॥
जौ तप कीजै वर्ष हजारन । छनसतसंगत कष्ट नेबारन ॥
सत्यस्वरूपी ईश्वर कहिये । ताके भक्तन संगत गहिये ॥
तासु नाम सतसंग कहावै । सो संगतगहि जिव तरिजावै ॥
साधुनकी सेवा मन लावै । तब सतसंगतको नर पावै ॥
सतसंगत कह विविधि प्रकारा । तामें द्वैविधि मुख्य उचारा ॥
हरिभक्तन ढिग बैठन ढंगा । दुतिये वेद पाठ सतसंगा ॥
जोकर भगवतभक्तन सेवा । ताते मिलै परम गुरु देवा ॥
सदशास्त्रन पढ़ि तिनहि बिचारे । कंठ पाठ मुख तिनको धारे ॥
तेहि अनुसार कर्म सब करई । सार असार तहां निरुबरई ॥
सोई शास्त्र है जिव सुखदाई । जाते भक्ती मुक्ती पाई ॥
जाहि शास्त्रपढ़ितन मन भटके । ताको ले पानीमें पटके ॥
जैसे साधन अरु सतसंगा । वर्णन वेदकीन बहु ढंगा ॥
हरिभक्तनकी सङ्गत जोई । तेहि समान कहु तुलै न कोई ॥
सतसङ्गत जो ढूँढन चहई । सबही ठौर ताहिको लहई ॥
अपने पापको कारण आही । सतसङ्गत जेहि दरसे नाहीं ॥
अपनी दृष्टि दोष जो धारे । तेहि कारण परदोष निहारे ॥
निजु दृग दोष चंद द्वै दरसै । अंधेको अन्धेर सब सरसै ॥
भक्तीमें दृढ हो न जबलों । सतसंगत करते रह तबलों ॥
मनक्रम साधुकि सेवा गहिये । गाहीते सबही सुख लहिये ॥
साहिब सदा सन्तके साथा । विन सतसङ्ग न आवे हाथा ॥
सन्तजान साहिबकी देही । भक्तन सङ्ग पाइये तेही ॥
भक्तन मुख हरि भोजन करही । सदा सो तिनके सङ्ग विचरही ॥
वरन विवेक एक नहिं करिये । साधु जानि सेवा चित धरिहै ॥

साधु सेवके वैरी पांचा । तामें भटकि जाय जिव कांचा ॥
रूप वरन विद्या बल धनमद । ताते जीवन लहै सेवापद ॥
जेते सुख श्रुति संत बखानी । तातो स्वर्ग मुक्ति सुखदानी ॥
ताहूते सुख अधिक जो होई । सत संगत सम तुलै न कोई ॥
सतसंगतसे ईश्वर पावै । ताते अधिक और कह गावै ॥
जहँ ईश्वर तहँ सुरगन छाया । सब दयाल जब प्रभुकी दाया ॥
गुन गन युक्ति मुक्ति जिन पाई । जहँ लगि लखो विभूति भलाई ॥
सो सबही सतसंग प्रतापा । यह पद सब संतन मिलि थापा ॥
अब कुसंगको वर्णन करिये । दुष्ट देखि ततछन परिहरिये ॥
भरुअहि निज उर लेहु लगाई । दुष्ट संग याते दुखदाई ॥
सर्प तो एक प्रानकर घाता । क्रूर संग ले नरक निपाता ॥
दोहूँ लोकमें काज त्रिभंगा । मति मलीन हो किये कुसंगा ॥

इति

अथ मनमायाको वर्णन—कवित्त

यह मन महराज मनहीहै यमराज मन कीने सब काज मन पोषत भरत है । ठाकुरवो ठग मन फैला सब जग मन कालवो दयाल मन तारत तरतहै ॥ मनसो न खोट मन कीने हरि ओट जिव भवमें डुबाय बरमायके छरत है । अकथ अनूप मन ईश्वर स्वरूप मन तिहुँ पुर भूप जो उपायके हरत है ॥

चौपाई

यह मन तीन लोकको नाथा । तीन देव इंद्री तेहि साथा ॥
गुन इंद्री याते प्रकटाही । पुनि याहीमें लय ह्वै जाही ॥
यहि मनको कोइ भेद न जाना । सुर नर मुनि परे बंदीखाना ॥
ऊपर मन अरु हेठ है माया । तासुमध्य जग जीवनिकाया ॥

चक्की चलै दल सब जिवको । होहि पिसान न पावै पिवको ॥
कहा बापुरा जीव कडारा । सुरनर मुनिसबछलिछलिमारा ॥

कुंडलिया

चलती चक्की देखिके दिया कबीरा रोय ।
दोपट भीतर आनिके साबित गया न कोय ॥
साबित गया न कोय मिले नहिं सन्त सनेही ।
कठिन कालको घेर फेर पर समुझावै तेही ॥
समुझाये जौंचेतसो किले सतगुरु अटको ।
फेर न पीसो जाय देख तेहि यमगनसटको ॥

चौपाई

यह मन सकलजक्त बिस्तारा । यहिं मनको कछु वारन पारा ॥
मनको रचना सकल जहाना । सात प्रकार सृष्टि जग नाना ॥
मानुष देव नाग कहि देता । किन्नर पशु पच्छी अरु प्रेता ॥
सात जीव हैं सृष्टिके साता । तिनकी अब सुनिये यह बाता ॥

दोहा-स्वप्ना जाग्रत प्रथमपुनि, संकल्प जाग्रित होय ॥
केवल जागृत त्रितयकह, चिर जागृत चौथो होय ॥
पंचम दृढ़ जाग्रित कहै, छठे जागृत सुपनाहि ॥
सतय छोन जागृत कहो, सात सृष्टि यह आहि ॥

चौपाई

स्वपने विषे जो जागृत होई । स्वपना जागृत कहिये सोई ॥
पुनि संकल्प जागृतकह जोई । अजौं नींद नहिं आई होई ॥
तामें जो मनराज फुराना । तेहि मनराजमें जग दरसाना ॥
दृढ़ वासना भई तेहिमाही । पूर्व वासना बिसरी जो जाही ॥
यहि मनराजको रचित जो देही । अभिभूतकता दृढ़ गहयेही ॥

केवल जागृत तृतीये होई । परमातम ततसे फूरोई ॥
सङ्कल्प मात्र जक्त जो गहई । निश्चय आतम पदमें रहई ॥
चौथे चिर जागृत कह लाया । आतमतत्त्वसे जो फुरिआया॥
निश्चय करि जो ताको गहेऊ । जन्मांतरको प्राप्ति जो भयऊ॥
पंचम सुषुति जागृत नाना । दृढ घनभूत जो होय वासना ॥
पाप कर्म करि नो मन लाया । ताते थावर यूनी पाया ॥
षष्ठहि स्वपना जागृत कहिये । जब संतनकी सङ्गत गहिये ॥
पढ़ि सच्छास्त्र भयो जो बोधा । नहिं विचारनिज मनकोशोधा॥
तबसो जागृत स्वपना होई । शुद्धबोध उर थपना होई ॥
सप्तम बोध विषे दृढ़ जोई । तुरिया नाम कहावे सोई ॥
छीन जागृत सो नाम बखाना । परमानंद प्राप्ति जिव जाना ॥
सप्त सृष्टि मन राजा केरो । मन जीते न करे भव फेरो ॥

सत्यकबीर वचन

साखी-कबीर मन गोरख मन गोविंदा, मनही औघड होय ।
जो मनराखै जतनकरि, तो आपै करता होय ॥
कबीरकीटिकर्मपलमें, करे यह मन विषयास्वाद ।
सतगुरु शब्द माना नहीं, जन्म गँवाया बाद ॥
कबीर मन पंछी भया, बहुत चढ़ा आकाश ।
ऊहाँ हांत गिर पड़ा, मन मायाके पास ॥
कबीर-मन जो गया तो जानदे, गहिके राख शरीर ।
उतरी परी कमान है, क्योंकर लागै तीर ॥

छन्द भुजंगप्रयात

महामत्त मातंग निर्द्वन्द गाजा ।
गहै कौन पावै मनी रामराजा ।
लियौ योगमा छन्दरा नाथ केरा ।

तपी सूर सिद्धा जपी नर्क गेरा ॥
यही जीवको नित्य बहकावता है ।
यही ज्ञानी ध्यानीको डहकावता है ॥
महाकाल अन्याइया जो कही है ।
यही है यही है यही है यही है ॥

इति मन

अथ वाक्इंद्रीको दमन–चौपाई

शम दमादि यह जिवको कर्मा । गहे सुचाल बहे सब भर्मा ॥
प्रथम वाक इंद्री वश करना । सुधा वचनते जगमन हरना ॥
भलिविधि बूझिविचारिकेबोले । जीनबाक विष अमृत घोले ॥
कटुकवचनविषे कबहुं न कहिये । जाते श्रोताको उर दहिये ॥
काहूसे बोलो मति करुई । ऐसो ऊंच न ऐसो हरुई ॥
मध्य बोल तोलके आनो । धर्म नीतिमय वचन बखानो ॥
द्वै नर जबहि करे कनफुसकी । कान लगावन तब दिश उसकी ॥
जब द्वै मानुष बात कराही । बात न काटो तिनके माही ॥
वचन पै तर्क करे जो कोई । शुद्ध होय तो मानो सोई ॥
वृथा पक्ष निज बात न करिये । शुद्धको गह अशुद्ध परहरिये ॥
तर्क करत जो आपते ऊंचा । तो तामें ही रहिये नीचा ॥
मिथ्या निन्दा तजो भदेशा । सत्य वचन कर हित उपदेशा ॥
वेदपाठ कर विद्या दाना । पात्र कुपात्र भले पहिचाना ॥
वेद पाठ सच्छास्त्र उचारी । धर्म की विद्या कर्म सुधारी ॥
श्रुति ज्ञान विज्ञान कि पौरी । तासु प्रताप विदित सब ठौरी ॥
कथनी मती महम्मदको है । विद्या सहित साधु किमि सोहै ॥
पूर्णचन्द्र जिमि तारागनमें । विद्वज्जन तिमि तपसिन घनमें ॥
निद्रावश जो पंडित होऊ । मूरखके तपते भल सोऊ ॥

त्रिया होय विनय संपन्या । ता पंडितको कहिये धन्या ॥
विद्या पढ़ि अभिमान भुलाना । सो जिव कीनो यमपुर थाना ॥
रसना सब संशयको छेदा । परमपंथको पावै भेदा ॥
रसना द्वार ज्ञान गुन आवै । रसना द्वार अगनि गति पावै ॥

इति रसना

अथ नेत्र और श्रवणका दमन—चौपाई

निज दृग दमन करो यहि लेखे । अन देखनी वस्तु मति देखे ॥
गुप्तस्थान मनुष पशु केरा । अति विशेष नहिं तादिशहेरा ॥
नरपशु परदा देख न जैसो । परे कुबानि जाहिमें ऐसो ॥
काल पाय निज दृष्टि गवावै । सो अवश्य अंधा ह्वै जावै ॥
जो परछिद्र निहारन हारे । दुःखी होहिविन सुमति बिचारे॥
करता कृत निज दृष्टि निहारी । प्रभुहि सराह जीव तप भारी ॥
काम अरु क्रोध कुदृष्टि न हेरे । सहज सुभाव नैन निज फेरे ॥
कामदृष्टि परतियपर डाले । जनु मैथुन करि धर्महि चाले ॥
निज पत्रिका लिखत जब कोई । ताहि न पढ़ो न निज दृगजोई॥
जब तिय संग अनंग बिहारी । तब न गुप्त अस्थान निहारी ॥
जौ तादिश तेहिकालमें देखे । जन्मे पुत्र अंध यहि लेखे ॥
नैन न माह निरंजन थाना । स्वसंवेद इमि करे बखाना ॥
दृगन सपक्षी माह बसेरा । भोग हेत निज नैनन फेरा ॥
भोगे भोग दृगन आसीना । ताको छल नहिं कोई चीन्हा ॥
मन चंचल नैनन चपलाई । मन थिर हो तिनकी थिरताई ॥
नेत्रनमें है यमको बासा । सोइ जीव गल डारे फांसा ॥
जब जिव रोग सोग तन छावै । सबही अंग छीन ह्वै जावै ॥
नैन होहि कबहू नहिं छीना । सदा एकरस देखी पीना ॥
कैसहु कृशित रोग मल घेरी । ज्योति अघटु निरंजन केरी ॥

अंधी आंख निरंजन जूझे । बिन देखे मुनि सब कछु बूझे ॥
ताते साधु प्रथम दृग बांधे । पीछे मन इंद्रीको साधे ॥
श्रवणको ऐसे कीजै दमना । अनसुनती बातैं मति सुनना ॥
चुगली चाई निंदा वानी । सुने न श्रवण जीव जो ज्ञानी ॥
महा प्रबल इंद्री हैं येही । जीवहि दुःखसुख व्यापे जेही ॥
गुरूपदेश कि कथा बताया । जीयत कैदी हाड तोडाया ॥
देखन ताहि जुरे नारीनर । एक गर्भिणी रहे तिहि ठाहर ॥
कैदी हाड लगा जब टूटे । निरखि गर्भिणी धीरज छूटे ॥
फिर देखी जब लोग लोगाई । सबही निजु निजु भौन सिधाई ॥
निजघर जाय गर्भिनी बाला । कैदी सुरति कीन कछु काला ॥
मुनि ताको दीन्हो बिसराई । गर्भ कि थित सरनता पाई ॥
जन्यौ पुत्र तिहि औसर नारी । ता शिशुकी यह दशा निहारी॥
कैदी अस्थि टुटी रह जेतो । बालक हाट टुटा सब तेतो ॥
हस्पताल सो शिशुले गयऊ । बीसवर्ष लो जीअत रहेऊ ॥
टूटा हाड़ बाल सो जीया । औषध ताहि न कछु गुनकीया॥
मातु दृष्टि बालक दुःख पाया । गर्भहि निजु हाड़ तोड़ाया ॥
ऐसो नैन महाबलवाना । व्यासदृष्टि सुत तीनउपाना ॥
ऐसहि श्रवन प्रबलकहि गानो । एकबारकी कथा बखानो ॥
बंधा परा रहै जिहि ठांई । एक कलावत तहँ चलि आई ॥
गावन और बजावन लागा । सुनते बौरा मन अनुरागा ॥
बौरा रागको भेदी रहई । सुनि सुर ताल प्रीति अतिगहई॥
परे परे निज अंग हलावै । ज्यौं सुरताल कि गतिसुनि पावै॥
परे परे निज अंग हलावै । खाट से खोलि दियौ पुनि वाको॥
गूँगे बहिरे चंगे होई । श्रवण नयन हारे ते जोई ॥

प्रान देत मृग मधुरीबानी । ऐसहि प्रबल नासिका जानी ॥
इंद्री सकल अकलको हरही । ले सब जिव भवसागर भरही ॥

इति नेत्र श्रवण दमन

अथ हाथ पांवको दमन–चौपाई

उत्तर कर्म करनते कीजै । काहूको मति दुःख कछु दीजै ॥
पंथमें पाहन कंटक होई । करते दूर डार गह सोई ॥
दान पुन्य हाथन ते करिये । दुःखी दीनको सुखते भरिये ॥
मन्दे कर्मन हाथ उठाये । परधन परतिय दिस न चलाये ॥
चरननको यह कर्म बखाना । हरितीरथ सतसंगत जाना ॥
संतदरस रोगी सोगी पह ।यथा योग चलके दुःखदलतह ॥
हरुये हरुये महि पग धरई । देखत चले न जिव कोइ मरई ॥
लाखन जिव पायनतर आवै । दाया करिके तिनहि बचावै ॥

इति हाथ पांवको दमन

अथ श्रेष्ठ पुरुषनकी सभा प्रवेश वर्णन–चौपाई

श्रेष्ठ सभामें जब पग दीजै । तहँ सब कर्म विचारते कीजै ॥
सभामध्य जेहिं औसर पैठे । आज्ञा पाय तहां तब बैठे ॥
बिन बोले नहिं बोलो बोला । बिन पूछे कछु भेद न खोला ॥
बुद्धि विरुद्ध न बोलो बानी । जाकी कोई प्रतीत न आनी ॥
बहुत बड़ाई अस्तुति छोड़ो । निंदा चुगुलीते मुख मोड़ो ॥
कबहुँ न निजगन बुद्धि सराहा । दुःखमतिभाषो सभा उच्छाहा ॥
ऐसो वचन कहो जनि ताही । मनभायक नरनायक नाहीं ॥

इति सभाप्रवेष

अथ मद्यमांस अभक्ष्यवर्णन–चौपाई

मद्य मांस भक्षमलिनबखानी । ताहि न ग्रहन करे नर ज्ञानी ॥
निज निज हृदय विचारो येहा । मल अरु मूत्र कि जेती देहा ॥

सकल अभक्ष घिनावन सोई । चहूँ खानि जलमलते होई ॥
शुद्ध अशुद्ध ताहि पहिचानी । जलकृत शुद्ध अशुद्ध मलानी॥
मलकृत जो जिव जंतु उपाये । हो अज्ञान ताहिके खाये ॥
जलकृत जो फल अन्न अंकूरा । ताते भूखको दुःख कर दूरा ॥
नरपशु जीव जंतु खग नाना । सबको दुःख सुख एक समाना॥
नरपशु खग जो मासके भक्षक । सो नहिं कबहु जीवके रक्षक ॥
जिनके हृदये दाया नाहीं । सोई अधोगति मांह समाहीं ॥
मांसु अहारीके कस दाया । एकखाय बहु मारि गिराया ॥
जो कोई काहूको दुःख देहै । बदला तासु आप शिर लेहै ॥
सुरापान अरु मांसु अहारी । नरकधाम सो अवश्य सिधारी॥

सत्यकबीर वचन

साखी–कबीर–मासुअहारीमानुवा, परतख राक्षस जान ।
ताकोसंगत मतिकरो, होयभक्तिमें हान ॥
कबीर–काजी को बेटा मुवा, उरमें सालै पीर ।
वह साहिब सबको पिता, भला न मानै वीर ॥
कबीर काटा कूटि जे,करे यह परवण्डको भेस ।
निश्चयराम न जानही, कहै कबीर संदेह ॥
कबीर–करता हूँ कहि जातहो,कहा जो मान हमार।
जिसका गलातुकाटिसो,फिर गलाकाटितुमार ॥

चौपाई

मुसलमान आदिक ईसाई । कबहु मदामि अशुचि बताई ॥
ईसाइनमें एक जमाती । अमली नहिं बैठे तिन पाती ॥

अथ टेम्पेरिस सुसैटीको वर्णन–चौपाई

टीटो टलर सुसैटी नाऊ । टेम्पेरिस बहुरी बतलाऊ ॥
दोऊ नाम अँगरेजी भाषा । अमल त्यागियोंकी यह सापा॥

जगमें जेते अमलको नामा । तिनके लेखे सकल हरामा ॥
तिहि मंडली मिलै जो कोई । यह सौगंध करावे सोई ॥
आजते कौल करार हमारा । कोई अमल मुखमें नहिं डारा॥
आप न खाय न औरहि देही । नहिं बेचै न बेचावै येही ॥
कबहुं न करे तासु व्यौहारा ।अमल निकट नहिं निजु पगधारा॥
जो कोइ ऐसो नियम गहावै । कागज परवाना लिखपावै ॥
सो परवाना निजू ढिग राखे । मूलि कबहुँ कछु अमल न चाखे॥
जिनके मते ग्रंथ बहुतेरा । विषहू ते विष अमल बडेरा ॥
सबही अमलकि निंदा करही । टीटो टलर धर्म आचरही ॥
जो कोइ क्रियामें होय न पक्का । तेहि जमातिसे पावै धक्का ॥
यूरुम नर केते यहि माही । टीटो टलरको धर्म धराही ॥
मुसलमान साधू बहुतेरे । मांसअहार कबहु ना हेरे ॥
धर्म अहिंसा सम नहिं आना । वेदविदित सब संतन जाना ॥

नानकशाह वचन

क्या बकरी क्या भेड है क्या आपन जाया ।
रक्तमासु सब एक है तुके किन फरमाया ॥
नानक घट परचै भई सबही घट पीरा ॥
सकलजक्तके आतमा महबूब कबीरा ॥

इति मद्यमांस अमल सर्वथा अभक्ष

अथ विचार जीवहितकारी वर्णन

कवित्त-बोलत बिचार कर डोलत बिचार कर मुक्तिद्वार पालन विचार सरदार है । बैठत बिचार कर उठत बिचार कर हाट बाट घाटहू बिचार घरबार है ॥ योगहू समाधि माँह ज्ञानहू अगाध माँह साधक अरु सिद्धको बिचार सब सार है । रनबन घन यज्ञदान सुमिरन महँ जहँ तहँ देखिये बिचार जिव तार है ॥

सोरठा-जीवधर्म है येह, बारहि बार बिचार कर।
मैं कह कह मम देह, केहि कारन फंदेपरा ॥

चौपाई

करत बिचार होय उजियारा। तेहि प्रकाश निज दोष निहारा॥
जब आपनो दोष लखि लीजै। तासु नाश हित उद्यम कीजै ॥
स्वसंवेद वद भेद अनूपा। प्रथमै जिवको सत्य स्वरूपा ॥
सो सब प्रथमहि कहे बखानी। जाते जीव भ्रमै चहुँ खानी ॥
अपने फन्दमें आप फँसाई। आपै आप रहा भरमाई ॥

सत्यकबीर वचन-शब्द

अपनेको आपही बिसरो।
जैसे श्वान काँचि मंदिरमें भर्मत भूसि मरो ॥
ज्यौं केहरि वपु निरखिकूप जल प्रतिमा देखि परो।
ऐसेही गज लखि स्फटिकशिलामें दरसन हीते अरो ॥
मरकट मूठी स्वाद न छोड़ै घर घर रटत फिरो।
कहै कबीर नलनिके सुगना कौने तोहि पकरो ॥

दोहा-मनकी वृत्ती पंच है, प्रथम कहे परमान ॥
बीपरजयौ विकल्पकह, निद्रास्मृति मान ॥

चौपाई

मनकी वृती पंच उच्चारा। मनहीको है सकल पसारा ॥
सुन स्वरूप भर्म यह मन है। तेहि कारन सब योग जतन है॥
मन बिनसात जक्त बिनसाना। अंडपिंड दोउ शून्य समाना ॥
जड़ शरीर चेतन चित्त संगा। कर्म फन्द जिव ज्ञान विभंगा ॥
जड़चेतन जन होय मिलौनी। दुःखसुख भोगे सुर नर मौनी ॥
द्वंदते परा जीव को धोखा। कौन भांतिसे पावै मोखा ॥
जिव निरद्वंद दोहू ते न्यारा। सत्य स्वरूपी अगम अपारा ॥

पांच तत्त्वको जानन वारा । सदा सो इन पांचोंते न्यारा ॥
मन इन्द्री निरगुनते पारा । आप भूलि गल फन्दा डारा ॥

सोरठा-फन्दपरा जब जीव, अपनो रूपबिसारके ।
ढूंढन लागा पीव, विविधि प्रकारकी यतनकरि ॥

चौपाई

जिमि कपिकण्ठलगी जंजीरा । बँधा रहै बांसके तीरा ॥
कबहुंके बांस ऊपर चढ़ि आवै । कबहुंके हेठ उतरि सो आवै ॥
उतरा चढ़ि न छूटै ताको । दृढ़ जंजीर परी गल वाको ॥
तिमि जिव क्रमहीक्रम लहदेही । बिनसतगुरु पद पाव न येही ॥
जब जंजीर गलेकी छूटै । तब जिवरूप आपनो जूटै ॥
वपु विज्ञान शिखरकी चोटी । देही थूल मूल महिं मोटी ॥
मूलते जब चोटी चढ़ि जावै । निज प्रतिबिंबपै ध्यान लगावै ॥
ऊपर हेठ लख मोर स्वरूपा । झांई भेद न जाने गूपा ॥
यही देहु विज्ञान कहावै । झांई निरखि अपनको गावै ॥
जैसे तप्त तीख अंगारा । पर ताहीपर क्रमक्रम छारा ॥
ज्ञान अग्नि जब अन्त बुझाई । थूल शरीर बहुरि जिव पाई ॥
पुनि करि यत्न अग्नि उदगारा । तब विज्ञान देह सो धारा ॥
होय जाय इमि कालहि पाई । आवागौन सूत्र नहिं जाई ॥
जब कपि कंठ कड़ी गुरु छोरे । तब भ्रम धोखा होय न भोरे ॥
बन्धन सो विज्ञान कि देही । आवागौन न छूटै जेही ॥
इहां लगि वेद पुरान बखाना । आगे मरम न कोई जाना ॥
दशों दिशा दश सूरज होई । तब छाया नहिं दरसै कोई ॥
छाया माया होय विनाशा । जीवहि निजुस्वरूप तब भासा ॥
दशों दिशा जब रवि खरधारा । प्रलय होय तबही संसारा ॥
जहँ संसार तहां नहिं ज्ञाना । जहां ज्ञान तहँ जक्त नसाना ॥

जबलों पारख पद नहिं पावै। तबलों आवागौन समावै ॥
ताते मनहिं विचार करीजै। कच्ची तत्त्वदेह किमि छीजै ॥
पक्की तत्त्व बहुरि जिहि पैये। कह संग्रह कह त्याग करैये ॥
पांचो तत्त्व पचीस प्रकृत्ती। भर्म रूप सबही ये बर्त्ती ॥
जाग्रित स्वप्न सुषुप्ति तुरिया। सो सब भर्म भावकी पुरिया ॥
जैसे जीव त्याग निज भूमी। चार खानिमें रहा सो झूमी ॥
ब्रह्मजीव जग दीसो माया। इत्यादिक बहु नाम धराया ॥
तैसे स्वसंवेद की बानी। धरि बहुरूप जक्त बिहरानी ॥

इति

अथ तत्त्वमसि तीनोंपद मिथ्यावर्णन-चौपाई

जान ज्ञान द्वैभेद बखाना। स्वसंवेद अस करे प्रमाना ॥
मलसंयुक्त ज्ञानको वरना। सर्वजीवमें सो संचरना ॥
ज्ञान अमल विकार कहावै। ज्ञानहि मात्र जीव बतलावै ॥
मेघ झंप जिमि भानु लोपाई। मुख न दीख दरपन लगिकाई ॥
तैसे जान भर्मकी ओटा। सत्य न भासै भासै खोटा ॥
पौन प्रसंग पटल घन बूरी। स्वतह भानु बहुडिस रह पूरी ॥
भानुउदय नहिं दरसै तारा। ज्ञानउदय नहिं यह संसारा ॥
अमल अखंड उदय दिनकरके। रहे न भर्मत तच्छन सरके ॥
जानति माया झंपन जबही। ज्ञान नाम कहिये सो तबही ॥
ज्ञानहिं मात्र जीवको कहई। विना ज्ञान सब मृत्तक अहई ॥
जक्त मांह जेते वैपारी। जीव जमावै पार पसारी ॥
बिना जमावै पार न होई। खर्च कहांते करिहै कोई ॥

सत्यकबीर वचन

साखी-कहै कबीर विचार, यह निर्णय परमान।
जीव जमा जाने बिना, सबै खरचमें जान ॥

चौपाई

जो दीसै सबही बिनसाई । जो बिनसै सो जिव न कहाई ॥
जीव सोई जीवै तिहुकाला । जड़ चेतन ते सदा निराला ॥
आप मानि बंधनमें आया । भ्रमकरि तत्त्वमसी ठहराया ॥
तत्त्वमसी तिहुँपद है जोई । आवागौन मूल है सोई ॥
ततपद ईश्वर त्वं जिवरासी । असि पदक है ब्रह्म अविनासी॥
ततपद ज्ञान है त्वं अज्ञाना । असि पद वेद ब्रह्म अज्ञाना ॥
वस ब्रह्मांड ब्रह्मसो ईसा । जिव अभिमानी पिंडमें दीसा ॥
असि पद जो दोनोंमें सनई । यमअनंद कछु कहत न बनई ॥
ज्ञानी अज्ञानी विज्ञानी । ततसागर त्वं सर असि पानी ॥
नामरूप मिथ्या है दोई । आत्मा एक जल सबमें सोई ॥
मानन्दी यह तीन प्रकारा । मानि मानि निज बन्धन डारा॥
यही तीन है जिवको फांसा । षटदेहींमें कीनो बासा ॥
दोविधि ज्ञान द्वैविधि अज्ञाना । दोय भांति विज्ञान बखाना ॥
यक विशेष अपरोक्ष बतावो । दुतियोको परोक्ष कहि गावो ॥
निर उपाधि अपरोक्ष बखाना । सहित उपाधि परोक्ष प्रमाना ॥

इति

अथ त्वंपद द्वैभांतिको अज्ञानवर्णन–चौपाई

जो विशेष अपरोक्ष कहावे । विषयी जीवनके मन भावे ॥
विषय आसक्त जीव जब रहई । जाति पांति कुलकानि न गहई॥
भोग मदामिष परतिय संगा । विषयिन सङ्ग अनंग तरंगा ॥
वेद शास्त्र मानै नहिं कोई । गति अपरोक्ष कहावे सोई ॥
सो अपरोक्ष दोय विधि वरना । परइच्छा निज इच्छा चरना ॥
परइच्छा जो हो अज्ञाना । सो समान अधिकरण बखाना॥
निज इच्छा अज्ञान गहीजै । सो विशेष अधिकरण कहीजै ॥

गुरुजनकी कछु कानि न माने । वेद शास्त्रकी निन्दा ठाने ॥
गुरु सतगुरुको आदर नाहीं । ईश्वर देव कौन कह आहीं ॥
वामपंथ इच्छा आचरई । बाद अन्यथा सबसे करई ॥
जो कोइ ताको ज्ञान सुनावै । ताते उठिके झगरन धावै ॥
रस शृङ्गार गीत भल गावै । विषय सराह स्वाद मन लावै ॥
निंदै ज्ञान भक्ति सतसंगा । सदाकाल विषयन रतिरंगा ॥
मृगनैनी तजि भे बैरागी । इन समान नहिं कोउ दुर्भागी ॥
साधु संग करि नर बौराना । ताते विषय स्वाद नहिं जाना ॥
कर्महीन दारिद्री येहा । हम ज्ञानी सब गुनको गेहा ॥
जो कछु है सो है यह देही । इन्द्री भोग देह भल हेही ॥
मुये पिछार मुक्ति सब पाई । और सबहि जग भ्रम उपजाई ॥
जैसे वृक्षते पत्ता टुटता । फेर न सो तरुवरमें जुटता ॥
जैसे मुये मुक्त सब होई । और मुक्ति कतहूँ नहिं कोई ॥
यह बिसे अपरोक्ष अज्ञाना । विषयी जीवनके मनमाना ॥
अब दुतियेको वरनन कीजै । तेहि परोक्ष अज्ञान कहीजै ॥
सो परोक्ष अज्ञान है जोई । समान अधिकरन कहावे सोई ॥
जो समान अधिकरन कहावै । कर ताको दूजा बतलावै ॥
यंत्र मंत्र अरु देवी देवा । विनिधि प्रकार करे सो सेवा ॥
तीरथ व्रत अस मूरत पूजा । कर्म करहि ईश्वर लखि दूजा ॥
वेदकि विधि सब करे अचारा । क्रम उपाछाको ब्यौहारा ॥
कर्मोमाह दोय विधि जाना । यक विशेष कह एक समाना ॥
सुन धन धान्यलाभ जग हेता । पूजा सेवामें चित देता ॥
निज मनोर्थहिन जो मन लावै । सो विशेष अधिकरण कहावै ॥
कर्ता हेत कर्म जो करिये । मुक्ति वासना चितमें धरिये ॥
शम दमादि अरु योग समाधू । तन मन बहुविधि साधे साधू ॥

यही कर्म भक्तन मन भावै । कोइ बड़भागी तेहि मन लावै ॥
नाम समान तासुको धरते । मुक्तिवासना जिवमें बरते ॥
दोय प्रकार कहे अज्ञाना । अकरम करम करै विधिनाना ॥
अकरम सकल अकरमी केरा । करमिष्ठी कर कर्म घनेरा ॥
परइच्छा निज इच्छा होई । समान विशेष कहावै सोई ॥
याहीको त्वंपद कर जानी । तामें बँधे सकल अज्ञानी ॥
द्वै प्रकार अज्ञान उचारी । तामें फँसे सकल संसारी ॥

इति त्वंपद अज्ञान

अथ ततपद द्वैविधिको ज्ञानवर्णन-चौपाई

ततपद द्वै विधि कह सविवेका । एक विशेष समान है एका ॥
सहित उपाधि विशेष बखाना । निरउपाधि है मुक्त समाना ॥
ज्ञान विशेष ते ईश बखानी । ज्ञान समान कहावै ज्ञानी ॥
निज जनकी उपाधि सब जाना । पर उपाधि सबही पहिचाना ॥
तीन अवस्था दुःख सुखसारा । इन्द्री अरु इन्द्रिन ब्यौहारा ॥
सब मिथ्यामृगजलवत जाना । सब असत्य मैं सत्य सुजाना ॥
तीन देह माया भ्रम माना । बारम्बार फुरै अज्ञाना ॥
सोई ज्ञान परोक्ष प्रमाना । ताहूमें द्वै भेद बखाना ॥
सर्व समर्थ गहे सब सत्ता । ऋद्धि सिद्धि युत जगमें वर्त्ता ॥
जो षटगुन ईश्वर जग होई । सोई सिद्धि ईश कह सोई ॥
होनी अनहोनी करि डारा । अब समान करिये निरधारा ॥
निरउपाधि कहियत है ताही । ऋद्धि सिद्धि कछु मानत नाहीं ॥
सकल उपाधि नास्ति करिभाषी । मैं आस्तीक सर्वको साखी ॥
त्रिगुणातीत मोर ब्यौहारा । विधि हरिहर नहिं पावत पारा ॥
ऐसो ज्ञान जाहिके तीरा । सोई ज्ञानी ज्ञान गंभीरा ॥
यह परोक्ष द्वैविधि चितधरिये । अब अपरोक्षकि निर्णय करिये ॥

तीन काल कोई नहिं भासा । त्रिपुटी सकलको होय बिनासा॥
ज्ञानाज्ञान गेय नहिं कोई । ध्याता ध्यान ध्येय ना होई ॥
आपन भाव रहै तिहुँ काला । द्वैत उपाधि नास्ति जंजाला ॥
यही ज्ञान अपरोक्ष कहावा । सो ज्ञानी शिवरूप बतावा ॥
योग समाधिसे जो मन मारे । मध्यम पक्ष सो वेद उचारे ॥
तामें कसर वेद निर्धारा । परो अविद्याको अंधियारा ॥

इति ततपद

अथ असिपद विज्ञान द्वैविधि वर्णन चौपाई

जानि बूझि जड़ वृती जो धारा । जस उनमत्त महा मतवारा ॥
यहिविधि सहजदसा जब गहई । एक अनेकन भ्रम कछु रहई ॥
महदानन्द मगन मन होई । याहूमें प्रकार है दोई ॥
जहँ विज्ञान दशा रह आई । सो विज्ञान हंस कहलाई ॥
कहवे मात्र बानीको ज्ञाना । सो मिथ्या विज्ञान बखाना ॥
दुतिये सो विज्ञान कहाई । जहां तहां आपै रह छाई ॥
द्वैतभाग कहूं नहिं रहई । कारन कारज आपै रहई ॥
आपै बोले आप बोलावै । आपै डोलो आप डोलावै ॥
करे करावै आपै आपू । द्वैतभाव कतहूं नहिं थापू ॥

इति

अथ स्वसंवेदमते चतुर्थपारखपदवर्णन-चौपाई

यहि विधि तीन भूमिका भाषी । चौथि भूमि पारखपद राखी ॥
तीन भूमिका है भ्रम भासा । चौथे परख काटे जिव फांसा ॥
तत्त्वमसीको ज्ञान जो गहता । तावमसीसे न्यारा रहता ॥
जैसे गूँगेने गुड़ खाया । बाक बिना कह स्वाद बताया ॥
तत्त्वमसाको ज्ञान जो धारी । जानि बूझि सो भयौ सुखारी॥
गूंगा गुड़को स्वाद जो गहई । सो तो गुड़से न्यारा रहई ॥

स्वादी स्वादसे भिन्न सदाई । क्या गूँगा गुड़ही ह्वै जाई ॥
नयन समस्त जक्तको देखे । अपनो रूप न सो पै पेखे ॥
मुखको भास परे दरपनमें । पै मुख नहीं बिचारो मनमें ॥
तत्त्वमसीगह ज्ञान जो कोई । अपनो भास आपना होई ॥
झाँई निरखी भूलि सो जाई । ताहीको आपा बतलाई ॥
जाते आवा गौनमें रहई । पारख बिना न सो पद लहई ॥
सब ऊपर गुरु पारख पद है । यहै जीवके ज्ञानको हद है ॥
षट प्रकारकी भूमि कहावै । पारख गुरू सकल परखावै ॥
छिप्रा प्रथम गतागत दोई । तृतीये सो लेष्टा कह सोई ॥
चौथी भूमि शूलनी गाई । पंचम भूमि आप भौराई ॥
छठई सत्य भूमि कहि दीजे । सप्तम पारख भूमि भनीजे ॥
पारख पर कोइ पद नहिं जाना । ताकी कृपाते भय भ्रम भाना ॥
पारख बिन जीव यह भूला । ताते सहै त्रिविध तन शूला ॥

सत्यकबीर वचन—शब्द

यह जग पारख बिना भूलाना ।
निर्गुण सर्गुण द्वै कर थापै अजपा धरि धरि ध्याना ॥
द्वैतहि ब्रह्म सकल घट व्यापै निर्गुणमें लपटाना ।
आवै जाय उपै फिर बिनशै जरि मरि कहा समाना ॥
सहस पाखुरी कमल विराजै मन मधुकर लपटाना ।
जलके सूखे कमल कुमिलाना तब कहु कहा ठेकाना ॥
छवो चक्र व्रत चार चतुर्दश वेद मते अरुझाना ।
बंक नालकी डोरी खैंचे योगिन युक्ति बखाना ॥
घटमें करता लोग बोलत है पांचों तत्त्व बीलाना ।
सर्गुन विनशी निर्गुन गुन रहि तमगुन बिन कहाँ समाना ॥

करहु विचार सकल मिलि ऐसो भेष बिबिधि बिधि बाना ।
कहै कबीर कोइ गुरुगम पावै पहुँचे ठौर ठिकाना ॥

इति पारखभूमि

सोरठा–ज्ञानको मूल बिचार, बिन बिचारको ज्ञान गह ।
हृदय घोर अँधियार, सार असार न परखकर ॥
ताते बारहि बार, मनमें भूले विचारकर ।
कोहं को संसार, कौनि भांति कहते भया ॥
करता कारण कौन, यह समूह जो दृश्य है ।
परखी लीजिये तौन, निज विचार द्वारे सकल ॥
देह सदा जडरूप, चित्त फुरित चैतन्य है ।
कर्मक्रिया भ्रमकूप, जड़ चैतनते मैं अलग ॥

चौपाई

अस बिचार आवै हिय जनही । तब गह सार भर्म भय भनही ॥
जहँ लगि जगमें कथा कहानी । सकल जीवकी बात बखानी ॥
सर्वज्ञो अलपज्ञ समाजा । जीवहि रंक जीव ही राजा ॥
जीवहि गिरही जीव भिखारी । जीवहि पुरुष जीवही नारी ॥
जीव ब्रह्म माया जगदीशा । जीवहि सूर लग्न रजनीशा ॥
जीवहि क्रूर सुगम सुरबाना । जीवहि जल थलमें बिहराना ॥
जीवहि काल युवा अरु बूढ़ा । जीवहि ज्ञानी जीवहि मूढ़ा ॥
जीव समष्टि व्यष्टि कहलावै । जीवहि पोषै सोष उपावै ॥
जीवते इतर कतहुँ कछु नाहीं । उर्ध मध्य अध जीवहि आहीं ॥
जीवको सबही खेल विहारी । ताकी दशा अवस्था न्यारी ॥
ब्रह्म कहूँ बिन जीव न होई । जीव बिना जिव जिये न कोइ ॥
जौपैं ब्रह्म जीव बिन होता । कैसे जीव बीज सो बोता ॥
जीवकर्म निर्जीव न करई । जीव बिना जिवकाज न सरई ॥

जीवभूमिका पर सब ठाढ़े। कहूँ तुच्छ कहुं गुणगण बाढ़े ॥
कर्म किये सर्वज्ञ हो सोई। जैसे मूरख पंडित होई ॥
सम्पति विपतिमें जिव एक सारा। भिन्न भिन्न पदवी सो धारा ॥

दोहा-अल्पज्ञता जो जीवकी, सर्वज्ञता जो ईश।
दूर दोहूको कीजिये, जीवहि विश्वा बीश ॥

चौपाई

चारों खानि जीव यक रासी। सबको लगी कर्मकी फांसी ॥
नरतन यही ज्ञान अधिकारी। ताते जीव भ्रम तिमिर बिड़ारी॥
कञ्चनको भूषण बहु करही। न्यारो न्यारो नाम सो धरही ॥
भूषणदशा स्वर्ण जब लहिये। तब क्या कंचन नाम न कहिये॥
धातु रूपहू कहिये कंचन। भूषणहू पुनि सोई बिरंचन ॥
कंचन आहि सत्य यक ताते। जो कछु चाहे रचिये बातें ॥
ऐसे जीव धातुसे सब है। माया ब्रह्मादिक बहु ढब है ॥
सांचो जीव जमा यक अहई। और खर्च बहु बानी बहई ॥
सूक्षम थूल जीवकी करनी। अज्ञ तज्ञ कछु भिन्न न वरनी ॥
पारख गुरु कोइ ढूँढ़न जावै। जीवते इतर ताहि नहिं पावै ॥
पारख सदा जीवके पाहीं। प्रकट होत भ्रम तम बिनसाहीं ॥
भल विचार करिहै जे प्रानी। सारासार सोई पहिचानी ॥
जेते हंस पारख पदधारा। पारख पाय न पुनि संसारा ॥
अलख कि गति कहूँ लखी न जाई। पारख कृपाते सो दरसाई ॥

सत्यकबीर वचन-शब्द

साधो सतगुरु अलख लखाया, जाते आप आप दरसाया ॥
बीज मध्य ज्यौं तरुवर दरसै, वृक्ष मध्य ज्यौं छाया।
आतममें परमातम दरसे, परमातममें माया ॥

ज्यौं नाभीमें शून्य देखिये, शून्य अण्ड आकारा।
निहअक्षरसे अक्षर ऐसा, क्षर अक्षर विस्तारा॥
ज्यौंरविमध्ये किरन देखिये, किरनि ज्योति परकाशा।
पारब्रह्मसे जीव ब्रह्म है, जीवब्रह्मसे श्वासा॥
श्वासामध्ये शब्द देखिये, शब्द अर्थके माहीं।
पारब्रह्मसे जीव ब्रह्म है, न्यारा है वह साईं॥
आपै बीज वृक्ष अंकूरी, आप पुहप फल छाया।
सूर्य किरन परकाश आप है, आप ब्रह्म जिवमाया॥
आतममें परमातम दरसै, परमातममें झांई।
झांईमें यक झांई दरसै, लखो कबीरा सांई॥
छन्द-यह ज्ञान अगम अगाध कोई साधके मन भाय है।
सो परख पारख परम गुरुकह परख पद परखाय है॥
परखाय है सो परखपद जब दयानिधि हर्षाय है।
सत्यनामके परताप पर्बल ताप त्रिविध नसाय है॥

इति

अथ पंचकोष मिथ्यावर्णन—चौपाई

आप भूलि निजु फांसा लीना। पंचकोषमें बासा लीना॥
पंचकोष यहि विधि पहिचानी। प्रथम अन्नमय कोष बखानी॥
दुतिय प्राणमय कोष प्रमानो। तृतिय मनोमयकोषको जानो॥
पुनि विज्ञान मय कोष अहई। फिरि अनंदमय पंचम कहई॥
प्रथम अन्नमय कोष बखानो। अन्न भोगते ताथित मानो॥
पंचतत्त्व परकृत्त पचीसा। तीनो गुन करि जिवतन दीसा॥
जैसे घटको भाजन ठाटी। उपादान कारन है माटी॥
तासु निमित्त कारन कोम्हारा। समवाय कारन चक्र बिचारा॥

तिमि तम उपादान कारनतन । राजसतामसनिमित्तको कारन ॥
सातकसो समवाय बखानी । तीनों गुन करि देह उपानी ॥
सो तन कहे अन्नमय कोषा । बंधन ताहि चार है चोखा ॥
बसियौ रसियौ ग्रसियौ कसियौ। ये चारों बंधन तन लसियौ ॥
प्रथमैं बसियो कहो बखानी । देहोहं यह तन मम मानी ॥
देहको सो आपा करि जानी । बंधन माह परा अज्ञानी ॥
दुतियौ रसियौ भेद उचारी । जेहि वर्णाश्रम जिव तनधारी ॥
सोइ वर्णाश्रम कर्म जो करिये । तेहिते रसियौ बंधन परिये ॥
तृतिये ग्रसियौ कहिये ताही । निजु वर्णाश्रम जीव सराही ॥
तुच्छ इतर वर्णाश्रम देखे । बंधन ग्रसियो गहे विशेषे ॥
चौथे कसियौकरे अकाजा । कुलकी लाज लोककी लाजा ॥
वेद अरु देव लाजामें फंसा । ताते परा जीवको संसा ॥
इन चारों बंधनको काटो । तब जिवकी भ्रम संशय फाटो ॥
कुल अरु लोक वेद सुर लाजा । अस जब भाषे कुटुम समाजा ॥
हमरे कुलको यहि पथ डगरा । कुलकरनी तजि तू जस बिगरा ॥
तब जिव दुरि कुलधर्म सभारी । भिन्नपंथ नहि सो पगधारी ॥
जो कोइ यह लज्जा काटे । लोकलाज पुनि ताको डाटे ॥
लोग जो ऐसी बचन सुनायौ । बिगर्‌यौ श्रेष्ठ पुरुषको जायौ ॥
लोकलाज तब जिव नहिं छोड़े । अपने कर्म ते सो मुख मोड़े ॥
लोक लाज जौं तोरके जाई । वेद लाज तेहि लेत फँसाई ॥
वेद लाज सो बंधन अहई । जब संसारी अस मिलि कहई ॥
काहू वेद शास्त्र परमाना । जो तू कर्म करे मनमाना ॥
वेदहु लाज लंधि जब जावै । देव लाज पुनि तोहि दबावै ॥
देव लाज कह कौन उलंघा । करे देव करनीमें भंगा ॥
इन्द्री द्वारे देवन थाना । विषय भोग तिनके तन माना ॥

आवत देख जो बिषयबयारी । इन्द्री पटल सो देहि उघारी ॥
विषयानन्द जीव जब होई । तब शुभ करनी करे न कोई ॥
जब चहुलाज लंघि जिव जावै । बड़भागी कोइ प्रभु पद पावै ॥
अन्नमय यह कोष बखाना । जामें जक्त जीव गल ताना ॥
प्राणमयी कोष याके आगे । विविधिप्रकार पौन संग लागे ॥
प्राण अपान समान उदाना । व्यानो नाग कूर्म कहि गाना ॥
किर्कल देवोदत्त धनंजय । ये सब पौन हैं कोष प्राणमय ॥
जेहि औसर जिव ऐसो कहई । प्राण हमारो तीक्षन बहई ॥
प्राण पौनको स्वतह सुभाऊ । आपासो आरोप कराऊ ॥
गुदा अपान प्रवेश कराया । पवन सुभावन जीव सुभाया ॥
हृदय समान उदान सिरोई । व्यान अन्नपाचक है सोई ॥
नाग डकार कूर्म दृग खोले । किर्कल छीक स्वतह सो बोले ॥
देवदत्त जमुहाई पूजै । मृतक शरीर धनंजय सूजै ॥
इतने इतर पौन बहुवादी । अंगफर्कन अफरन हिचक्यादी ॥
पौन कर्म सब मानै आपा । कोष प्रानमय बंधन थापा ॥
कोष मनोमय तासु अवांतर । पुनि हंकार कहे ताते पर ॥
शुभऔरअशुभकर्म जो कछु कर । पुन्य पाप व्यौहारादिक नर ॥
सो सब मन इन्द्रीके करतब । कोषविज्ञानमयी कहिये अब ॥
पंच ज्ञान इंद्री छठये बुधि । तासु अवांतरचित्त सहित सुधि ॥
परमारथ सब उत्तम करनी । सो सुभाव सब इनको बरनी ॥
जिवसो कर्म आपनो धरई । कोष विज्ञानमय बंधन करई ॥
पुनि अनंदमय कोष पर तेही । बुद्धिको ऐसो ज्ञान भयो जेही ॥
हौमैं करि जिव करे बखाना । आपको बड़ अनंद हम जाना ॥
सो अनंद बंधन जिव केरा । कोष अनंदमयी यह टेरा ॥
पांचो कोष अवस्था पांचो । जागृतरूप अनन्तमय बांचो ॥

प्राण मनो विज्ञान जो तीनी । स्वप्न स्वरूप तिन्है कहि दीनी॥
पुनि अनंदमय कोष जो आही । रूप सुषुप्ती कहिये ताही ॥
जागृत रजगुन रूप कहीजै । सतगुन रूप स्वप्न कहिदीजै ॥
तमगुन रूप सुषुप्ति कहावै । देहमंत्री गुन सुभाव बतावै ॥
पुण्यदया वांछा रजगुनकह । पुन्य पिछार विषाद तमो यह ॥
वांछा रहित सतोगुन जानी । त्रिगुन कर्म नानाविधि मानी ॥
जिव अज्ञानते आपको कहई । पुण्यपाप सब मेरो अहई ॥
ज्ञानी गुनन सुभाव सो जाने । अज्ञानी अपनो करि माने ॥
यहि बिधि जेते तनके कर्मा । सो सब मन इंद्रिके धर्मा ॥
पांचो तत्त्व त्रिगुनते भयऊ । गुन आज्ञा शक्तिसे कहेऊ ॥
चितसे अज्ञान शक्ती होई । मन अरु चित्त भेद नहिं कोई ॥
सर्व कर्म जो जगके माहीं । मनहीं केर पसारा आहीं ॥
मन माया तिरगुन व्यौहारा । जक्तमाह भ्रम जाल पसारा ॥

अथ योग और भोग दोनों मिथ्या वर्णन

दोहा–षटदल चक्रको भेदके, योगी पौन चढ़ाय ।
दल सहस्रके कमलमें, निर्विकल्प हो जाय ॥
हो विदेह पद अमर लह, विद्यामें ठहराय ।
भे निरद्वन्द न कल्पना, आपमें आप समाय॥

चौपाई

जिमि योगी तिमि भोगी देखे । कमल भेद दोनों यक लेखे ॥
द्वन्ददींब दोनोंको खेला । इत नरनारी उत गुर चेला ॥
योगी उरध पौन चढ़ावै । भोगी अधषानी ले आवै ॥
नादके बल योगी अविनाशी । विंदके चल भोगी सुखराशी ॥
नारिपुरुष जब भा संयोगा । दोनों मिले भोग सुख भोगा ॥
माथेसे जब माथ जुरेऊ । सिखर कमलते बिंद उतरेऊ ॥

नेत्रसे नेत्र जुटे जिहि बारा । द्वैदल कमल भेदि चलु पारा ॥
मुखसे मुख जेहि औसर चूमा । तबही बिंद अधो दिस घूमा ॥
तब षोडश दल कमल बधाना । द्वादशदलपर पुनि ठहराना ॥
अनहद चक्रते बिंद उतारा । मणिपूरकपर आसन धारा ॥
मणिपूरकते हेटको हेरा । स्वाधिष्ठान चक्र कर डेरा ॥
नारिपुरुष मिलि द्वन्द मचाया । स्वाधिष्ठान उतरि जल आया ॥
टिका अधारचक्र जब पानी । सह विकल्प भोगी तब जाना ॥
ज्ञान पुत्र योगी जब पायौ । अमर भयौ फिर गर्भ न आयौ ॥
योगी हृदये जबलों ज्ञाना । तबलों ताको अमर बखाना ॥
ज्ञान लोप होवे जेहि काला । तब योगीको हो जंजाला ॥
ज्ञानदृष्टि करि योगी जाना । मेंहंमि जगमें पसराना ॥
अज्ञ पुत्र तिमि योगी जाया । वंशवृद्धि जगमें फैलाया ॥
भोगी अमर भयौ तेहि बारा । तासु वंश जगमाह पसारा ॥
जबलों वंश जक्तमें ताका । भोगा अमर भयौ परिपाका ॥
तासु वंश जब हो संसारा । भोगी मृतक होय तेहि बारा ॥
आपै आप सकल जगमाही । अज्ञदृष्टि करि जा तन नाहीं ॥
योगी विद्या द्वारे जाना । भोगी अविद्याते अज्ञाना ॥
योग भोग दोनों हैं झूठे । संत सुजान दोहूते रूठे ॥
योगअरु भोग ब्रह्म जिव माया । नादबिंद जो कछु उपजाया ॥
सो सब भर्म एक नहिं सांचा । सांचे सतगुरुको यह वाचा ॥
भर्मै नाद अरु भर्मै बिंदू । भर्महि तुर्क अरु भर्मै हिंदू ॥
भर्म निमाज भर्महो रोजा । भर्महि ते सब ईश्वर खोजा ॥
भर्महि देऊल भर्महि देवा । भर्महि पूजा भर्महि सेवा ॥
भर्महि धरती भर्म अकाशा । भर्महिको यह सकल प्रकाशा ॥
भर्मको रचित सकल संसारा । टूटै भर्म होय भव पारा ॥

इति योग और भोग मिथ्या

अथ स्वसंवेदमते अष्टांगयोगवर्णन सत्यकबीरवचन अष्टांगयोगकी रमैनी

अविगति लीला अगम अपारा। धरती धरचौ सत्य औतारा ॥
अविगति लीला अगम अलेखा। अबरन बरन रूप नहिरेखा ॥
जाकी गति सुर मुनि नहिं पाई। अविगतिकीगतिवरनि न जाई ॥
शेष सहस्रमुख निशिदिन गावे। अस्तुति करति पार नहिं पावे ॥
वेद जो कोट सहस्र पुन गावै। अविगति गतिबरनी नहिं जावै॥

साखी-अविगतिकी बेगति है, मन बुध चितते दूर।
आपमेटि सतगुरु मिलै, पावै दरस हजूर ॥

रमैनी

योगी बहुत योग जो करई। कृपा योगते नहिं निस्तरई ॥
फिर फिर आवै फिर-फिर जाई। कर्महि कर्म बहुत अरु झाई ॥
है निष्कर्म नाम जो ध्यावै। योनी संकट बहुरि न आवै ॥
क्रमही क्रम बंधावहु भारा। क्रमही क्रम अटका संसारा ॥
देह कर्म जो लीन उठाई। मनको कर्म छुटै नहिं भाई ॥
जब लगिमनकी कर्म न खोवै। तबलगि मननिर्मल नहिं होवै ॥
जब मनकी किरिया मिटि जाई। तब हरि मिलै सहजमें आई ॥

साखी-तन किरियाको छोड़िके, मन किरिया रुचिराख ॥
कर्म क्रिया अभिमान तजि, सत्यनाम निज्जु भाष ॥

रमैनी

तनकी करनी देहु बहाई। मनकी करनी सत्य मिलाई ॥
मनकी किरिया सत्य जो कोई। ताहि समान और नहिं कोई ॥
सांख्य योग करनी है सारा। जेहिते उतरे भव जल पारा ॥
सत्य क्रियाते ज्ञानी भैऊ। सत्यक्रिया साहिब मिलगैऊ ॥
सत्य क्रिया सतपुरुष हि ध्यावै। सत्कक्रिया सतनाम मिलावै ॥

साखी-सत्यक्रिया निर्बान है, तन मन ते सो भिन्न।
मन पौना दृढकै गहै, सत्यनाम निज्जु चिन्ह ॥

चौपाई

अब मैं सांख्ययोग जो कहऊँ । योग अष्टांगको लक्षण लहऊ ॥
एकएकके चार चार लक्षण । जो जानै सो होय विचक्षण ॥
येतो कहिये लक्षण बतीसा । योग अष्टांगमें एकै दीसा ॥
अष्टांग योग सांख्य जो जाने । अरु लक्षण बत्तिस पहिचाने ॥
समौ-तेई भवसागर तरे, याकरनी निजु सार ।
सत्यक्रिया सतसे गहै, सत्यनाम आधार ॥

रमैनी

प्रथमै योग ज्ञान है भाई । ताहिते सुखव परमपद पाई ॥
निरालंब आलंब न कोई । सतगुरु इच्छा होय सो होई ॥
कर्म भरम तजि साहेब जाने । भली बुरी कछु चित्त नहिं आने॥
निरवासनिक वास नहिं कोई । जंगल वस्ती एक सो होई ॥
है निरवैर रहै ततसारा । बाहर भीतर अलख अपारा ॥
समौ-एकनामको जानिके, दूजा देय बहाय ।
तीरथ व्रत जप तप नहिं, आतम ताव समाय ॥

रमैनी

दूजा योग विचार बिचारे । निरमोही है आप बिचारे ॥
है निर्वै रहै जगमाहीं । जगके सुखमें लागै नाहीं ॥
मातु पिता सुत नारि न भावै । काम क्रोध मद लोभ भुलावै ॥
है निष्कंट शब्दसे लागे । अनहद सुने आतमा जागे ॥
देही छोड़ि विदेह समाना । हंसा पावै पद निर्बाना ॥
समौ-जो कछु करे बिचारके, रह पुन्यपापते न्यार ।
कहै कबीर नामहि जाने, जाय पुरुष दरवार ॥

रमैनी

तीजे योग विवेक कहावै । बिन विवेक कोइ पार न पावै ॥

जाको समाधान मन होई। भली बुरी कहि जावै कोई ॥
समदरशी समज्ञान बिचारे। सबघट भीतर ब्रह्म निहारे ॥
प्रीति गहे सो नाम समाना। और सकल जग मिथ्या जाना ॥
जाके शांति होइ घट नाहीं। कोइ कछु कहै क्रोध मन नाहीं ॥

रमैनी

चौथा योग शील कहि दीना। विना शील साहेब नहिं चीन्हा॥
निर्मल सोचे सोचि बिचारे। शुचि रुचि दया धर्म उर धारे॥
मनको संयम करै जो ज्ञानी। पांचों पकरि एक घर आनी ॥
सत्य शब्द भाषै संसारा। सत्यहिसे उतरे भवपारा ॥
होय औतारा सत्य बखाने। भावै बुरा भला कोइ माने ॥

समौ-शीलक्षमा जब ऊपजै, अलख दृष्टि जब होय।
बिना शील पहुँचे नहीं, लाखो कथै जो कोय ॥

रमैनी

पचवां योग सन्तोष बखानी। बिन संतोष बुड़े अज्ञानी ॥
मानै नहीं रंक औ राजा। है अमान नहिं काहूते काजा ॥
नर्क स्वर्ग बांछै नहिं कोई। होय अबंछक साहेब सोई ॥
मन अस्थिर करि प्रेम उपजावै। अनहद शब्द सुने चितलावै ॥

समौ-निरमल शब्द प्रकाशकर, रह सुखसेज समाय।
सत्य नाम सन्तोष बिन, सत्यलोक नहिं जाय ॥

रमैनी

छठै योग रहै निरवैरा। जाते जगते होय न वैरा ॥
सब घट भीतर एक करि जानी। होय सुदृष्टि परम परमानी ॥
सुख दाई सबहिनको भावै। जलस्वरूप है अग्नि बुझावै ॥
शीतल है सबहीको भावै। समता हो रमताको पावै ॥

समौ-कंचन कांचि है एकसम, दुष्ट मित्र सम एक।
दूजा भाव न जानहीं, एक नामकी टेक ॥

रमैनी

सतवां योग सहज है मीता । सहज भावसे यम से जीता ॥
एक विचार प्रेम उपजावै । पांचों इन्द्री सहज समावै ॥
निरलोभी ह्वै लोभ भुलावै । भवसागरमें बहुरि न आवै ॥
निस्संशीक होय जो कोई । संशय काल रहै नहिं कोई ॥
ह्वै निर्लेप कतहु नहिं लागे । सत्य शब्द गहि आतम जागे ॥
समौ–सब जग जूठा जानिके, सत्य नाम ह्वै सार ॥
सहजे सहज प्रकट भया, सतगुरु शब्द सँभार ॥

रमैनी

अठयौ योग शून्य है नीका । एकनाम आगे जग लागे फीका ॥
शून्नहीते सब जग उपराजा । शून्नहीते शब्द जो बाजा ॥
सहज शून्न जो लावै कोई । अलखको लखै आपही सोई ॥
सहज शून्य जो ध्यान लगावै । भवजल तरत वार नहिं लावै ॥
सुरति शब्द ले सहज समावै । सहज समाधि परमपद पावै ॥
समौ–ज्ञानविचार विवेकते, शील संतोष समाय ।
नाम गहों निर्भय रहो, सत्यलोक सहजे जाय ॥

इति अष्टांग योगकी रमैनी

अथ ज्ञानपरीक्षा चार

निरालंब । निर्भर्म । निर्वासनिक । निरस्वादी ॥ १ ॥

विचारपरीक्षा चार

निरमोही । निरबंध । निःशंक । निर्वान ॥ २ ॥

विवेकपरीक्षा चार

सर्वंगी । सावधान । सुचेत । सारग्राही ॥ ३ ॥

शीलपरीक्षा चार

शुची । संयमी । श्रोता । वक्ता ॥ ४ ॥

संतोषपरीक्षा चार

अयाची । अवांछी । अमानी । अस्थिर ॥ ५ ॥

निर्वैरपरीक्षा चार

सुहृद । समता । शीतल । सुखदाई ॥ ६ ॥

सहजपरीक्षा चार

निष्प्रपंच । निस्तरंग । निर्द्वंद । निर्लेप ॥ ७ ॥

शून्यपरीक्षा चार

लौलक्ष । धीरज । ध्यान । समाधि ॥ ८ ॥

समौ–कबीर बतीसो जब उगवै, तैतीसो छपि जाय ।
कहै कबीर सुन गोरख, आवागमन नसाय ॥

इति अष्टांगयोग स्वसंवेदमतें

अथ सातज्ञानभूमिकावर्णन

दोहा–सीषता बिचार समानता, सिसरातो सुखपंत ।
बहुरि पदार्थ अभावनी, तुरिया ज्ञान गहंत ॥

चौपाई

प्रथम सीषता भूमि जो कहिये । शुभइच्छाते शुभ गति लहिये ॥
ज्ञानचाह सच्छास्त्र उचारन । सत्संगत अपकर्म निवारन ॥
द्वितीय विचार भूमिका सोई । ढूँढ सुसंग सुविद्या जोई ॥
तृतिय समाता है बैरागा । तन मनते विषयनको त्यागा ॥
चौथे भूमि सिस्तांत कहावै । गेह नेह तजि अलग रहावै ॥
हो निवृत्त सब विषय बिहाई । हरिपद प्रीति न और सोहाई ॥
पंचई भूमि सुषुप्ति कहीजै । ईश्वरलीन भर्म भय छीजै ॥
छठे पदारथ अभावनी भाषा । प्रभुपद लीन न सुधितन राखा॥
ऐसो ध्यान नाह अनुरागा । बिना जमाये सो नहिं जागा ॥
सतई भूमि कहावै तुरिया ।जहां पहुंचपुनिचितनहिंफुरिया॥

ऐसो ईश्वरमें लौ लागे । कोऊ जगावै तऊ न जागे ॥

इति ज्ञानभूमिका

अथ सात अज्ञानभूमिकावर्णन

दोहा-अशुची है जागृतो, महा जागृती गत्त ।
जागृत स्वप्ना स्वप्न, जागृत पुनि स्वप्ना सुषुपत्त ॥

चौपाई

प्रथम अशुचि जागत अज्ञाना । तन सुख चाह सदा अलसाना ॥
दुतिये जागृत जाहि बखाना । अहं कुलीन श्रेष्ठ गुनज्ञाना ॥
तृतिये महाजागत यौं भाषे । दोहू लोक पौरुष हम राखे ॥
ऐसो मैं गुणज्ञान निधाना । मेरे वशमें अहै फलाना ॥
चौथे जागृत स्वप्ना यांचा । जो मैं कहों सुनो सब सांचा ॥
पंचम स्वप्ना जागत भाषा । देखे स्वप्न सुरति सब राखा ॥
छठयें स्वप्न भूमिका कहई । देखे स्वप्न सुरति नहिं रहई ॥
सप्तम भूमि सुषोपति होई । सुधिबुधिरहित जीव जब सोई ॥
सातो भूमि ज्ञान उर धारो । पुनि सातो अज्ञान विचारो ॥
यक पौरीपर दूजी पौरी । होय सघनता अगिली ठौरी ॥
प्रभुमें शुभ इच्छा जब होई । सच्छास्त्रन अवलोके सोई ॥
सच्छास्त्रनको रस भल चीखी । ताकी बुद्धि भई तब तीखी ॥
सच्छास्त्रन पढि भयौ जो पक्का । तब तो दुतिय मूगिका तक्का ॥
दुतिय भूमिका आहि विचारा । तब सत्संगतको पग धारा ॥
सत्संगत जब जीव टटोले । तब ग्रन्थनकी ग्रन्थी खोले ॥
जबलों नहिं सत्संगत जूटे । ग्रन्थनकी ग्रन्थी नहिं छूटे ॥
दुतिय भूमिमें जब जिव पागा । तब तृतियेमें हो वैरागा ॥
दृढ बैराग होय जिहि काला । चौथ भूमिकामें पग डाला ॥
जब चौथीमें दृढ जिव भैऊ । तब पंचम हरिपद गहिलैऊ ॥

जब हरिपद तजि और न भावै । तब छटवीं भूमिकामें जावै ॥
भयौ लीन जब छटवीं भूमी । तब तेहि माह रह्यो सो रूमी ॥
जबलों लागि प्रीति अति गाढ़े । सतई भूमिमें भे तब ठाढ़े ॥
सतई भूमिमें जब जिव होई । तब नहिं तनहिंमें नहिं कोई ॥
छूटि गयौ तब देहको नाता । तब नहिं जक्त न जगतकी बाता ॥
विद्या और अविद्या दोई । भर्मरूप जानो सब सोई ॥
दोनों ब्रह्मा केर कल्पना । सो ब्रह्मा आवै भ्रम स्वप्ना ॥
ब्रह्मा आप जो भो भ्रमरूपा । ताकी कृत्त सकल भ्रमकूपा ॥

इति

अथ जीवनमुक्ति और विदेहमुक्ति मिथ्यावर्णन--चौपाई

ब्रह्मा विष्णु महेश्वर टेरे । जीवनमुक्त न माह बडेरे ॥
सो तिहु भवसागरके कारन । बारबार तिनको बसुधारन ॥
व्यास वशिष्ठ पराशर बादा । दशरथ जनको ध्रुव प्रहलादा ॥
सो सब जीवनमुक्त कहावै । पुनि पुनि तन धरि जगमें आवै ॥
सत्यकबीर बचन परमाना । ध्रुव प्रहलाद श्रेष्ठ करि जाना ॥
साठि हजार वर्ष ध्रुव भोगकर । प्रहलाद भोग चौकरी बहत्तर ॥
इतने बड़ा भक्त नहिं कोऊ । आवागौन युक्त रह सोऊ ॥
जेते जीवनमुक्त कहावै । पुनि पुनि तनधरि जगमें आवै ॥
प्रलय विदेहमुक्त सब होई । उतपतिमें तनधर सब सोई ॥
आवै जाय सो मुक्त न मानो । दोनों मुक्ति भर्म करि जानो ॥

सत्यकबीर वचन--शब्द

भर्मसेवा भर्मपूजा, भर्म जपतप ध्यान ।
भर्मकरिकरि भर्मबंधा, नहीं सब पहिचान ॥
भर्म इंद्री करी निग्रह, भर्म गुफा में वास ।

भर्म तो तहँ लोकहो जहँ, जीवनमुक्तको वास ॥
कहो जी तुम आये कहते, जाहुगे किस ठाँव ।
औरको उपदेश देतहो, आप समुझत नाह ॥
जानबेको कहा कहिये, कहेको पतियाय ।
कहै कबीर अनंतरधुनि उपजै, सहज शून्य समाय॥

चौपाई

लोमस ऋषि आदिक मुनि नाना । जिनको हंस कबीर बखाना ॥
कोटिन उत्पति प्रलय जो होई । कबहुं गर्भ नहिं आवै सोई ॥
मुक्तस्वरूप संत कह तिनको । आवागौनसूत्र नहिं जिनको ॥
सारशब्द सतगुरुको लहेऊ । जन्ममरनको संशय दहेऊ ॥
जक्तमाह जेते हैं कर्मा । सो सब मिथ्या जिवको भर्मा॥
झूठ सत्य दोउ एकसम आहीं । यहि संसार सार कछु नाहीं ॥
उत्तम करनी जिवको करना । यद्यपि नहीं सार कछु बरना ॥
गर्भते शिशु बाहर हो जबसे । कर्मकरन लागे सो तबसे ॥
कर्मक्रिया सब तबते जागे । हाथपांव शिशु फेकन लागे ॥
हाथपांव मारन ते जाहीं । नफा होय कछु शिशुको नाहीं॥
शिशुहि भलो कर पगमारनहै । बिन कर पग फेके दुखतन है ॥
हो बाल जब अधिक सयाना । माटी धूल खेल अरु काना ॥
ताहु कर्म नफा नहिं पावै । तऊ खेलमें द्यौस बितावै ॥
कर्म करत पहुंचै तरुणाई । लाभ कर्मते तब कछु पाई ॥
सोऊ लाभ नफा कछु नाहीं । सर्व कर्म मिथ्या है ताहीं ॥
आदि अवस्था यथा निहारी । कर्म करत बीते बयसारी ॥
कर्म करनकी बानि न होई । तौ निश्चय जिव जाय बिगोई॥
भलो कर्म करिये तेहि काजा । जाते शुभगतिको सज साजा॥

वेद कि बिधिते जो कोइ ध्यावै । जीवन्मुक्तकी पदवी पावै ॥
स्वसंवेद विधि कर्म जो करिये । पाय अमरपद बहुरी न मरिये ॥

सत्यकबीर वचन-शब्दहेली

हेली तीरथ जाय बलाय । हरदम परबी नहाय ॥
तीरथ कोट अनंत है रे गंग यमुन जहँ दोय ।
मध्य सरस्वती बहत है न्हाये निरमल होय ॥
ब्रह्म नग्रके घाटमें हो आगे शिवको लिंग ।
ताहूँपै दक्षिना दीजिये रे बहे सहसमुख गंग ॥
आगे कलाली कि हाट है रे चोखा फूल चुबंत ॥
बिन सतगुरु पावै नहीं कोई साधूजन पीवंत ॥
शीश उतारि धरनि धरेरे ऊपर धरि ले पाय ।
ब्रह्म नग्रके घाट मेरे याबिधि परबी न्हाय ॥
ऋग यजुर साम अथर्वना रे चार वेदको ज्ञान ।
उनकी कहो उहो कौनगति बांधे गांठि पखान ॥
चारवेदको पिता है रे स्वसंवेद संगीत ।
साहिब कबीर जूके मोकदिमे रे अविगति ब्रह्म अतीत ॥

इति जीवनमुक्तमिथ्या

अथ वर्णाश्रममिथ्यावर्णन-चौपाई

वर्णाश्रम सब मिथ्या जाना । नरकृत सो अज्ञानते माना ॥
पूर्व कर्म बिन यहि तनमाहीं । केते विप्र शूद्र ह्वै जाहीं ॥
केते शूद्र विप्र सो भैऊ । मातु पिता नहिं ब्राह्मण रहेऊ ॥
जो कोई वर्णाश्रमते अटका । निश्चय सो सत्पन्थसे भटका ॥
मल अरु मूत्र कि देही जोई । ताको ब्राह्मण कहे न कोई ॥
ज्ञान द्वार जो ब्राह्मण भैऊ । वर्णाश्रम ताके नहिं रहेऊ ॥

राजा पंडित मिसके दोई। वर्णाश्रम थापे सब सोई॥
जिते जीव वर्णाश्रम बंधा। उत्तम विद्यासे सो अंधा॥
उत्तम धर्म गहे नहिं पावै। वर्णाश्रम तिनको अटकावै॥
लहै कबहुं नहिं ज्ञान कि घाटी। जिनको वर्णाश्रमकी टाटी॥
प्रथम जैन मते मैं भाषा। तीन वर्ण कुल करते राखा॥
भरथने ब्राह्मण वर्ण थपाई। चार वर्णकुल यहि भांति कहाई॥
चक्रवर्तिपद भरथ जो पायौ। दान देनको प्रजा बुलायौ॥
प्रजा परीक्षाको मनलाया। बीच राहमें जल ढरकाया॥
जलमय धरती हो जेहि ठाई। जीव असंख्य तहां प्रकटाई॥
दान लेनको प्रजा जो चाले। दयावंत पथ गह्यो निराले॥
जहां कीच तहँ पग नहिं दैऊ। भरथ भूप तेहि न्यारा कियऊ॥
ब्रह्मचीन्हि जिन दाया पालो। कीच बीचमें सो नहिं चालो॥
ब्राह्मण तिनको नाम उचारा। सबपर श्रेष्ठ धर्मसो धारा॥
अजयपाल कनउजको राजा। रचे ताहिमें यज्ञ समाजा॥
सातसौ वर्षके ऊपर भैऊ। लखब्राह्मण सो नेवति बोलैऊ॥
येतो ब्राह्मण सो नहिं पाये। तब नरेश अस हुक्म लगाये॥
जो कोइ विप्र चिह्नते आवै। द्विजसम आदर दछिना पावै॥
वर्ण विवेक न कीने राजा। जो आये तेहि यज्ञ समाजा॥
भूप सबहि को द्विजकरि माना। विप्रतुल्य दे आदर दाना॥
केते विप्र बने तेहि बेला। निज गल माह जनेऊ मेला॥
नृप बुलाय सेनपति बंगाला। ताहूकी कहिये अस चाला॥
कनउजसे द्विज पंच बोलाई। बंगालेमें सो चलिजाई॥
ब्राह्मण पांच अरू कायथ पांचा। पहुँच जहां महीपति जांचा॥
तिन्है प्रतिष्ठा दीन सो राजा। बस बंगाले सहित समाजा॥
तिनको वंश पसारा कीना। भिन्न भिन्न पदवी सो लीना॥

उत्तम मध्यम तिनमें कीने । जैसो कर्म जासु लखि लीने ॥
ब्राह्मण तिनमें तीन बडेरे । चतुरजी वणुर्जी मुकुरजी टेरे ॥
कायथ श्रेष्ठ कहे मुनि तीनी । घोस बोस मीतर कहि दीनी ॥
यहि विधि जात वरण ठहराई । असल नकल दोनों मिलजाई॥
असल नकल मिल एक जो भैऊ। मान बड़ाई जिव सब गहेऊ ॥
जात वरनमें जिव अरुझाना । बिन श्रमसाधु सो बंधनभाना॥
जिमि नृप जातिवरन बिलगाई । भांति भांतिकी रीति चलाई ॥
तिमि विदेव तिहुँपुरके राजा । कीने जक्तकेर सब काजा ॥
षट्‌दरशन पांखंड बनाई । श्रुति स्मृतिमें जग अरुझाई ॥
कुल मरजाद थाप सो सारा । बंधनमाह बंधा संसारा ॥
जातिवरनके हद्दमें जोई । संसारी कहलावै सोई ॥
षट्‌दरशनके हद्दके माहीं । जातिबरनको बंधन नाहीं ॥
सो बेहद्दके चालनहारे ।साधु सो मुक्तिके मग पग धारे॥
हद्द बेहद्द दोहू जिन त्यागा । गुरुलखि परमधर्ममें लागा ॥
जाति बरन सब मिथ्या होई । ताको साधु न माने कोई ॥
विप्र शूद्र कर्मंहि ते होई । उत्तम मध्यम कर्मंहि जोई ॥
गजते अचल मुनीश उपाये । केशपिंगल मुनि उलूू जाये ॥
पुष्य अगस्त्य अगस्त्यउपाना । कौशिकमुनि कुशसे प्रकटाना ॥
कपिसे कपिल मुनीस उपाये । लता शाखगौतम ऋषि जाये॥
दोनासे द्रोनाचार्य बखाना । ऋषि तीतरी तीतरसे माना ॥
रजसे परसराम प्रकटाये । शृंगी ऋषि हरनीके जाये ॥
कैवर्तिनसे व्यास कहाई । विश्वामित्र चंडालिन जाई ॥
ब्रह्मा आप कमलसे होई । सकल सृष्टिको करता जोई ॥
वेश्यासे वशिष्ठ मुनि भैऊ । इत्यादिकमुनि ब्राह्मण कहेऊ॥
नहीं ब्राह्मणी इनकी माता । तऊ जक्तमें द्विज बिख्याता ॥

उत्तम मध्यम कर्महि आही । कर्मते उग्र क्षुद्र ह्वै जाही ॥

सत्यकबीर वचन

साखी–जबलगि नाता जातिको, तबलगि भक्ति न होय ।
नाता तोर हरि भजै, भक्त कहावै सोय ।
बड़े गये बड़ आपने रोम रोम हंकार ।
सतगुरुकी परचै बिना, चारो बरन चमार ॥

रमैनी

पहिलो तारो कोरि चमारा । फिर तारो राजन दरबारा ॥

शब्द

नाम सुमिरले अमृत बानी । क्या चतुराई ठाने नर प्रानी ॥
पढेरे भरथरी चारो वेदा । बिन सतगुरु नहिं पायौ भेदा ॥
गोरख खोजत जन्म सिराने । कायाकी गति उनहु न जाने ॥
पंडौने बहु विप्र हंकारा । तबहुँ न घंटबजा ओहि बारा ॥
जबहि जुरेहे कोटिन ऋषि राजा । तबहुँ न घंट अधरबिच बाजा ॥
जबहि श्वपच मंदिर पग धारा । बाजै घण्ट होय झनकारा ॥
कहै कबीर चारो बरन है नीचा । सबसे श्वपच भक्त है ऊँचा ॥

चौपाई

वैशंपायन ऋषिके पासा । नृपतियुधिष्ठिर वचन प्रकाशा ॥
कृपाकरो कहिये ऋषि राया । कहगुनगही ब्राह्मण कहलाया ॥
तब ऋषिराय कहे समुझाई । ब्राह्मणको यह गुण बतलाई ॥
गहे धर्म अरु धर्मके गुनको । कबहूँ अधर्म अकर्म न उनको ॥
दुतिये कबहूं मांस न खावै । कबहू न कोई जीव सतावै ॥
प्रथमें वस्तु पड़ी कोई पावै । बिन स्वामी आज्ञा न उठावै ॥
काम क्रोध लोभ मोह मत्सर । कबहुँ न जगविषयनमेंचितधर ॥
पंचम गहे पंच न गुन जबही ।तप दम दया सत्य प्रियसबही ॥

सोई ब्राह्मण जब ये गुन गहिये । बिन गुन सदा शूद्र तेहि कहिये ॥
जो चंडालमें ये गुन होही । निश्चय ब्राह्मण जानो सोही ॥
षटउर्मी विकार सब माहीं । गुण करि विप्र शूद्र बिलगाहीं ॥
जो गह परमारथ शुभ करनी । मुक्तसे और चाह नहिं धरनी ॥
शमदम दान आदि शुभ गुनगह । ऋद्धि सिद्धिआदिक गुनगन लह ॥
एकै विधि चहुँ बरन बनाया । रुधिर बिन्दुते सबकी काया ॥
सतसंगमें सब एकै जाती । लिखा भागवतमें यहि भांती ॥
नृप शौनक चहुँ बरन बनाये । गुणकरि भिन्न भिन्न बिलगाये ॥
केते शूद्र विप्र है जाही । केते विप्र शूद्र गुनग्राही ॥

इति वर्णाश्रम मिथ्या

अथ कर्तापुरुष विषै शवजीवनका विचार—चौपाई

अलख अगोचर जो प्रभु अहई । तासु कथा कैसे कोइ कहई ॥
हरि हर ब्रह्मा पार न पावै । और जीवकी कौन चलावै ॥
कर्ता पुरुष जक्तको जोई । ताको नाम न जाने कोई ॥
जेते नाम जक्तते माहीं । राय निरञ्जनको सब आहीं ॥
वेद कहे जस अण्ड उगाये । ताते अण्डज ब्रह्मा जाये ॥
नारा जलको नाम बतायन । जलमें गृह कीनो नारायण ॥
के पुनि जलको नाम कहे जो । जलपर शयन करे सो केशो ॥
निर्णय स्वसंवेद पुनि भाषा । अण्डज देव निरञ्जन राखा ॥
बहुरि कहे तो रेतको लेखा । ईश्वर जलपर तरते देखा ॥
पुनि जब्बुर जाहि निरताये । जलपर शब्द यहूह उठाये ॥
गर्ज यहूह समुद्र न ऊपर । वासा ईश्वर करे जलनपर ॥
यह सबही उर ला व्यौहारा । करता भेद है अगम अपारा ॥
अस प्रभु किमि बिचारते जानी । ताते सुन सतपुरुषन बानी ॥

सत्यपुरुषनकी बचन जो सुनिये । पुनि पुनि निज हृदयेमें गुनिये ॥
करि बिचार गहिये सत सारा । जाते उतरे भवनिधि पारा ॥

इति

अथ धर्मव्योरा वर्णन–चौपाई

सब धर्मनको व्यौरा वर्णो । जेते धर्म कर्म संचरणो ॥
स्वसंवेद है सबकी आदी । ताते सकल मता मरजादी ॥
वेद अरु वानी जेते जगमहँ । स्वसंवेद है सकल पितामह ॥
ताते चार वेद प्रकटाने । आदि पिताकी खबर न जाने ॥
स्वसंवेद ते वेद बनाये । तामें ऋषि मुनि मता मिलाये ॥
यज्ञादिकमें हिंसा कर्मा । सो नहिं स्वसंवेदको धर्मा ॥
ऋषि मुनिनिजर शब्द जो मेला । ताते खिला और कछु खेला ॥

दोहा–पा कहिये त्रैदेवको, भाग कहावै खण्ड ।
ताते धर्म जो प्रकट भे, तासु नाम पाखण्ड ॥

चौपाई

षटदरशन सातवे पाखण्डा । धर्म कर्म पृथ्वी नौ खंडा ॥
सबही तीन वेदके अंशा । ऋषिमुनिसकल निरंजनवंशा ॥
स्वसंवेदते वेद भे चारी । ताते चार किताब निकारी ॥
स्वसंवेदते गह त्वच ज्ञाना । ताते सर्व शास्त्र बंधाना ॥
यजुः साम ऋग्वेद जो तीनी । तौरेत जब्बूर इञ्जील कीनी ॥
अथर्बन वेदणे रचे कुराना । मता महम्मद सकल बखाना ॥
पीर नवी निज मता मिलाई । वेद विरुद्ध कर्म ठहराई ॥
यहि विधि भये विरोधी सारे । स्वसंवेद तजि पथगह न्यारे ॥
पांच तत्त्व गुण तीन कहाया । शक्ती और निरञ्जन राया ॥
इनहीकी पूजा जगमाहीं । परमपुरुष कोई जानत नाहीं ॥
शक्ति निरञ्जन छल बल कीने । परम पुरुषपद परदा दीने ॥

भिन्न भिन्न पूजा परकाशा । सकल जीव गल डारे फांसा ॥
रजगुण ब्रह्मा है संसारी । कर्मजाल जिन जक्त पसारी ॥
तमगुण रूप महादेव केरा । भवसागरमें ताको डेरा ॥
सतगुन मारग जो कोउ धरई । भवसागरके पार उतरई ॥
द्वन्द खेल सतगुणमें बर्ते । ताहु भिन्नभाव बहु करते ॥
प्रथमहि विष्णु संप्रदा चारी । दुतिये सत्यपंथ आचारी ॥
वेद कि विधि पूरणता पावै । स्वसंवेद कह तब समुहावै ॥
जीवहि अवश्य कर्म सो करनो । सतगुणकी मारग पग धरनो ॥
सात प्रकार कहों पुनि धर्मा । भिन्न-भिन्न तिनको सुन भर्मा ॥
शक्ति निरंजन त्रिगुन है पांचो । वेद विदित शुभ धर्म है सांचो॥
छठा धर्म कहिये शैतानी । जिनको गुरु इबलीस बखानी ॥
सप्तम धर्म कबीर कृपाला । जरतजक्त जिव जिन प्रतिपाला॥
प्रथमें ब्रह्मा रजगुण कहिये । कर्मकांड सब ताते गहिये ॥
दुतिमें विष्णु उपासना हेता । तृतिये शंभु योग चित चेता ॥
चौथे ज्ञान निरञ्जन राया । पंचम शक्ति पसार्‍यौ माया ॥
तीन तीन विधि तिनमें आही । उत्तम मध्यम कनिष्ठ कहाही ॥
छठे धर्म इबलीसको जाई । तीन विभाग ताहुमें होई ॥ ॥
उत्तम कर्म करंता जोई । बुधि विद्या सागर है सोई ॥
कोउ गुणगण कोउ धनमद पूरे । कोउ बाह विजयी है शूरे ॥
जो मद मान सहित हंकारा । मैं बड़ डोरहि तुच्छ विचारा ॥
मोरे योग गुरू कहुँ नाहीं । सो शैतानको पन्थ गहाहीं ॥
उत्तम कर्म जो करे करावै । मलिन कर्म लख दूर परावै ॥
ऐसे सुकर्म करे जो लोगा । ताते नर्क भोग नहिं भोगा ॥
तिनको आवागौन न छूटे । योनी संकट पुनि पुनि जूटे ॥
दुतिये आपन उत्तम करनी । और सिखाये सुख कह बरनी ॥

तृतिये करे करावै पापू। घोर नर्क ग्रह तिनका थापू ॥

दोहा-त्रिविधि कह इबलीस जन, उत्तम मध्यम नीच।
जस मति तस गति प्रेरिके, ल्यावै तिनको खींच ॥

चौपाई

कोई रजोगुण कर्म कहीजै। कोई मलीन रजोगुण भीजै ॥
कोई सतोगुण धर्म प्रचारा। कोई मलीन सतोगुण धारा ॥
कोई तमोगुण ऐसे जानो। त्रिविधि भेद तिनमाह प्रमानो ॥
पञ्चधर्म षटधर्म बखाना। इहांलो विषय वासना नाना ॥
यह षटधर्म जक्तमें जागे। सकल नारि नर तिनमें लागे ॥
छवो त्याग सप्तम जब चीन्हा। सत्य पन्थपर तब पग दीन्हा॥
देव कबीर धर्म नयसागर। तापद गहि बीते सब झागर ॥
विषय विकारकी भै तब हानी। सरिता सकल सिंधु समुहानी ॥
निश्चल होहि पाय प्रिय अपना। जहँ नहिं भ्रमभय केर कल्पना॥
मन बानीते पार जो होई। ताकी कथा कहे किमि कोई ॥
मीन विहंग कि मारग ढूँढ़ा। बुद्धिविहीन विचारन मूढ़ा ॥
पढि गुण तोता कहे कहानी। बिना विचार मूलकी हानी ॥

झूलना

मूल जाने बिना धूल रसरीवरे मीन पग पंथ कहु कौन पावै ॥
दूर नेरे नहीं कूर हेरे तही बिना गुरु गम्य तेहि को लखावै ॥
जासुको नाम नहीं रूप नहिं रेख है भेष आलेख कह देख कोई ॥
बकत बहु वाय है सार नहिं पाय है घोषको धर्म गहि भर्म भोई॥
स्वप्नकी वस्तु जौं ढूँढ जागृतमें हाथ आवै नहीं यत्न कीने।
चारहू दशाते पार सरकार जो तासु दरबार पथ कौन लीने ॥
खेचरी भूचरी चाचरी अगोचरी योग अरु युक्ति सब रहै पोले ॥
दुन्मुनी खातजहँ उन्मुनीफिरत है अलककीझलकको पलकखोले॥

भक्ति नौधा कही प्रेम पौधा यही बूझि बिन सूझि नहिं यार आवै।
यार चीन्हा नहीं प्यार कीना वृथा नाद अरु नृत्य कह गीत गावै॥

इति श्रीधर्मब्यौरा

अथ वेदधर्म ब्यौरा

दोहा—सतगुण सबमें श्रेष्ठ है, सतगुण विष्णू देव।
सतगुणकी साखा गहे, लहे अगमको भेव॥

चौपाई

सतगुनको सेवै बैरागी। तन मनते प्रभु सेवा लागी॥
चार संप्रदा सगुण उपासी। नौधा भक्ति गहे सुखरासी॥
भाव भक्ति प्रभु प्रतिमा पूजा। राम कृष्ण सम और न दूजा॥
कोई बाल रघुपति कर ध्याना। कोई कृष्ण शिशु सेव प्रमाना॥
नाना भांति सेव जिवधारी। लषण जानकी औध बिहारी॥
गान करहि बहु साधु समाजा। नादनृत्त बाजहि बहु बाजा॥
धर्म वैष्णव परम सोहाई। दान पुण्य अति उज्ज्वल ताई॥
गृह आश्रमी भाव भल धरही। सन्त गुरूकी सेवा करही॥
वेद धर्मकी बात घनेरी। जहँतहँ कविकृत मिश्रित हेरी॥
ताते शुद्ध न ब्यौरा लहिये।जो जिहिभाव सोई गति गहिये॥
पौरानिक बहु कथा कहानी। शुद्धाशुद्ध जक्त बिहरानी॥
ब्यास आदि ऋषिमुनि बहुतेरे। जो जेहि भासा सत्यसो टेरे॥
केते पंडितन ग्रंथ सँवारी। ब्यासनाम धरि जक्त प्रचारी॥
पुरुष प्रमानि बचन प्रमाना। सो विधि गहे भर्मभय भाना॥
झूंठ सांच जो कछु जगमांही। निश्चय किये सत्य दरसाही॥
झूंठकी जबही झुठाई जाना।तब तेहि त्यागहि पुरुष सयाना॥

इति वेदधर्म

## अथ जैनधर्म ब्यौरावर्णन–चौपाई

जैनधर्म जिव दाया भारी । हिंसा पंथ नसो पग धारी ॥
शौच क्रिया जैनीमें थोरी । सतगुण मलिन मतामय सोरी ॥
रात समै ढिग जल नहिं घरही । अशुचि शरीर रहै का करही ॥
अशुचि देह नहिं मन सकुचाही । इन्द्री शुद्ध बिना जल नाहीं ॥
देवी देवकी सेवा साधन । यन्त्र मन्त्र बहु देव अराधन ॥
दिन गति जबहि रैन नियरावै । जल अरु अन्तनसो कछु खावै ॥
प्राण जाय तो जान दे भाई । मुखमें कबहुँ न जल परिजाई ॥
महा कठिन ब्रत जैनी ठाना । भूखसे त्यागे अपनो प्राना ॥
जेते इतर धर्म बहु भांती । जैनी सबहि कहै मिथ्याती ॥
जैनेश्वरकी केवल बानी । इतर ग्रंथ नहिं जैनी मानी ॥
दान पुण्य अरु शौच अचारा । जैन धर्म अति अल्प निहारा ॥
दान पुण्य बिन कर्म जो करही । उर कठोरता जैनी धरही ॥
दान पुण्य नहिं जहां निहारा । हृदयमें न होय उजियारा ॥
दाया कहां जहां नहिं दाना । बिना दान किमि हो कल्याना ॥
तप जप करि साधू कछु सुखिया । जैनी गृही दान बिन दुखिया ॥
जैन यती वह सीष सिषाई । जो ताहूके धन अधिकाई ॥
फूटे कूपमें धनबरु डारो । बिना पात्र मतिदान बिचारो ॥
पात्र बिना नहिं देत जो दाना । तिनके पात्र मिलै नहिं आना ॥
तिनके पात्र हैं साधू जैनी । भोजनदान तिन्है कछु दैनी ॥
घरघरते भिक्षा ले येई । एक ठौर भोजन नहिं लेई ॥
ताते जैनमें दानकि हानी । जीव दया सुख पावै प्रानी ॥
बिना दिये पावे किमि कोई । देन लेन चारो युग होई ॥
दान न करहिं बर्त बहु करही । करि करि बर्त भूखते मरही ॥
जौ नहिं देहै सो नहिं पैहै । निश्चय भूखते प्रान गवैहै ॥

चौथा काल जैनी जो कहेऊ। बज्रशरीर मनुष को रहेऊ॥
जैनी करहि तबहि तप भारी। करि करनी सुख धाम सिधारी॥
अब यह काल होयसो नाहीं। ज्ञान मुक्ति नहिं तिनके पाहीं॥
परमारथ न होय बिनदाना। गहे साधु परमारथ बाना॥
जहँ परमारथ दान कि हानी। तहां सुगति पावै कह प्रानी॥
जैनमते अब मुक्ति न पाई। अन्य धर्म जिवको सुखदाई॥
पंचम काल जैनको येहा। ज्ञानी सन्त धरे बहु देहा॥
और धर्ममें जैनमें नाहीं। जो परमारथ दान कराही॥
धर्मके चार चरण बतलाया। सत अरु सौच दान अरु दाया॥
कलिमें कहा सत्त पदवर्ता। नाम दान कलिमल संहर्ता॥
जैनमें सत्त शौच अरु दाना। तीनों चरण विभंग बखाना॥
महा कठिन तप करि जब ध्यावत। चौथकाल कोई गति पावत॥
अब यहि कालसो व्रतको पाले। एक टांगते धर्म न चाले॥
संबंधी तन मन धन तीनों। यह प्रमान सब धर्महि कीनों॥
तन मन धन बिन कार्य न कोई। स्वारथ अरु परमारथ दोई॥
तन मन दे जब कर सेवकाई। तब धन लाभ होय दुनियाई॥
धनको त्यागि औरको दीजे। तन मन ताते लाभ लहीजे॥
तन मन धन दे जिहि जिन साधा। कोई दुनिया कोई हरि अवराधा॥
तिहुदे सोइ अवश्य लहीजे। जब काहू दिश निज दिल दीजे॥
तिहु बिन कर्म जो साधा चहई। सो शठ हठ अज्ञानी अहई॥
तजि धन साधु जो वनमें बसही। घोर घोर तप करि तन कसही॥
धनको दान दंड तिहि नाहीं। रहे नहीं धन जिनके पाहीं॥
दारिद्री अरु भिक्षुक जोई। ताते दान लेत नहिं कोई॥
जिहि औसर नर वज्र शरीरा। सहै परीसा लहै न पीरा॥
दुःख अनंत देहीपर परही। जप तप साधु गृही दोउ करही॥

महा कठिन तप करि अघ दहई । दोनों यक समान गुण गहई ॥
पंचये छठये कालमें सोई । जनीसे नहिं सो तप होई ॥
दान देनकी बानि न तिनको । कहु कल्यान होय किमि इनको ॥
धन सो धरहि दान नहिं करही । कौन भांति इनको अघ हरही ॥
ताते पंचये छठये काला । जैनी कोइ न मुक्तिको चाला ॥
तनहित धन दे तन सुख पाई । धन जो गहतो तन दुख आई ॥
जैनी कहै सुनो रे भाई । मिथ्याती मिथ्या फैलाई ॥
एवनको राक्षस कहि गाया । मिथ्याती सो झूठ बताया ॥
एवन जैनी छत्री सोई । राक्षसनाम वंशको होई ॥
राक्षस वंशी क्षत्री एवन । जैनधर्म ताके मनभावन ॥
ब्राह्मणहिंसा कर अधिकाई । ताते जैन महादुख पाई ॥
यज्ञमें जीव भस्म जब करही । मनमें रोष सदा जब धरही ॥
क्षत्रीवंशके सबही राजा । जैनधर्मधर सहित समाजा ॥
जिवकी हिंसा जबसों देखे । क्रोधवंत धावै यहि लेखे ॥
यज्ञविध्वंस करे सो आई । ताते ब्राह्मण देहि दोहाई ॥
यहि विधि एवन विप्रविरोधी । हिंसा देखी होय अति क्रोधी ॥
ब्राह्मण ताते बैर गहाई । एवनको राक्षस बतलाई ॥
अमिश अहारी मद्यप भाषे । वैरभावको कारण राखे ॥
वीश बाहु दश शीश बखाना । ताको भेदनसो कछु जाना ॥
एवन सिद्ध मंत्र एक करेऊ । ऐसो भेष ताहिते धरेऊ ॥
ताके पास रहै एक माला । ताते ऐसो दरसै ख्याला ॥
सो माला जब गलमें डारे । वीश बाहु दश शीस निहारे ॥
मालाको प्रताप बतलाई । भेष भयंकर लेत बनाई ॥
और मनुष सब देखो जैसे । रातन यकशिर द्वैभुज तैसे ॥
इन्द्रनाम यक राजा केरो । मंत्री जुत्थप तासु चनेरो ॥

अग्नि पौन आदिक जो कहाऊ । इंद्रके दरबारिनको नाऊ ॥
इन्द्रहि रणमें रावन जीता । बंधन डारिके देतेहि कीता ॥
नृपको जब बंधनमें डारा । मन्त्रिनको कर चेरवा डारा ॥
नीचटहल दरबारिन गहेऊ । अग्नि पौन रावन बस भैऊ ॥
अग्नि पौन आदिक जो कहेऊ । सो सब नाम मनुषको रहेऊ ॥
सुरपति नहिं बंधनमें आवै । मिथ्याती सब कूट बतावै ॥
छनमें इन्द्र प्रलय जग करई । ताहि कौन बंधनमें धरई ॥
प्रलय करे फिर जग प्रकटावै । सो किमि रावनकी बस आवै ॥
ऐसो अग्नि पौन बलकारा । छनमें प्रलय करे संसारा ॥
मिथ्याती सब कूठ वर्णके । अग्नि पौन रह बस रावनके ॥
ब्रह्मन क्षत्री होय लराई । क्षत्री द्विजनको मारि हटाई ॥
परशुराम तब द्विजकुल होई । परमशत्रु क्षत्रीको सोई ॥
ताते अनगिन क्षत्री मारा । तब सुभूमि लीवो औतारा ॥
क्षत्री चक्रवर्त पदधारा । पशुरामको ताने मारा ॥
हनिवर द्वीपकौ राजा जोई । हनोमानको नाना सोई ॥
हनोमान ननिओ रे गैऊ । आदर मान तहां बड़ भैऊ ॥
हनिवर द्वीपमें आदर पाई । ताते हनोमान कहलाई ॥
बानरवंशी क्षत्री सोई । हनोमान विद्याधर होई ॥
रूप अनूप महा छबि जाको । कामदेव औतार है ताको ॥
बज्र अंग बल बरनि न जाई ।गुणगण शील जासो अधिकाई॥
राजा पौन जय कहलाये । हनुमान है ताके जाये ॥
पौनते मनुष न जन्मै कोई । यह कपोलकलपित सब होई ॥
हनोमानको बानर भाषा । पीठके ऊपर पूछ सो राखा ॥
कूठ कथा मिथ्याती कहई । नर वानर किमि संगत गहई ॥
बालि सुकंठ आदि नृप जेते । बानरवंशके क्षत्री तेते ॥

यह सब विद्याधर कहलाई। नभकी मारग चलै उड़ाई ॥
चंद्रनखा भगिनी रावनकी। सूपनखा तेहि विप्र कथनकी ॥
ब्रह्मन वेद पुरान बनाई। झूठी कथा अनेक मिलाई ॥
चौथा काल बहुरि जब ऐहै। भिन्नतिथ करतब प्रकटैहै ॥
कृष्णलक्ष्मण आदिक जानू। जरासंध रावण हनुमानू ॥
देव तिथंकर जब प्रकटाई। जैनधर्म सब जीव गहाई ॥
जैनधर्म बिधि करनी करहीं। नर विद्याधर सो मत धरहीं ॥
अब मिथ्यात फैलि बहु गैऊ। नर विद्याधर अंतर भैऊ ॥
यहि बिधि जैनकथा सब न्यारी। वेदधर्मते भिन्न उचारी ॥
ऐसहि बुद्ध धर्मकी चाली। वेद जैनते कथा निराली ॥

इति श्री जैनमतव्यौरा

अथ स्वसंवेदव्यौरा

दोहा–चारवेदको पिता है, सर्व धर्म गुरु जोय।
परम पुरुषको भेद है, स्वसंवेद कह सोय ॥

चौपाई

सत्य कबीरको निज मुख बानी। स्वसमवेदसो नाम बखानी ॥
सतगुणपर जब सतगुण सरसे। तब शिव परम पुरुषपद परसे ॥
ताको नहिं जाने संसारा। अलख अगोचर अगम अपारा॥
नहिं निर्गुण नहिं सर्गुण सोई। निर्गुण सर्गुण निरंजन होई ॥
निर्गुण सर्गुण फंदपसारा। सत्यमता है इनते न्यारा ॥
कहूँ न ताको मंदिर सेवा। सबमई परमातम देवा ॥
जब जिव धर्म कबीर गहंता। बाद बिबाद होय सब अंता ॥
स्वसमवेदकी विधि जो गहई। तामें बहुरि न औगुण रहई ॥
सब औगुणको दूर बहावै। स्वसमवेद विधि तब जिव पावै॥
इहां न कोई विषयबिकारा। निर्मल जीव सन्त मतधारा ॥

मान सरोवर हंस निवासा । बकुला तहां करहि नहिं बासा॥
भोजन भैक मीन जिन केरा । तिनको डाबर माह बसेरा ॥
जो हरिनाम चुगै शुचि मोती । बसे मानसर तिनके गोती ॥
सब जीवनके जो हितकारी । परमारथमें तन धन वारी ॥
स्वसंवेदकी आस गहाई । अन्य नती बहु रीति चलाई ॥
निर्मल जल अकाशते आवै । भूमि परत डाबर ह्वै जावै ॥
तिमि सब स्वसंवेदते वानी । भिन्न भाव धरिजग प्रकटानी ॥
सत्यपंथके गृही विरागी । परम पुरुषकी सेवा लागी ॥
जुरे समाज जहांयक तीरा । ढोल मृदंग मधुर मञ्जीरा ॥
बजै झांझ खँजरी करताला । बाजन बिबिधि प्रकार सुताला॥
सत्य कबीरको नाद उठावै । रहसि-रहसि प्रभुको गुण गावै ॥
सन्त गुरूकी सेवा माहीं । इन्है समान और कोउ नाहीं ॥
परमधर्म गुरुसन्तकी सेवा । ताते मिले पुरातन देवा ॥
धरे जेते धन द्रव्य शुभागे । सब गुरु सन्त सेवमें लागे ॥
गृही होय गुरु साधू सेवै । वैरागी तपमें चित देवै ॥
परम उदार चित्त जिन केरा । सत्यलोकमें तासु बसेरा ॥

इति स्वसंवेद

## अथ स्मार्तमत व्यौरा वर्णन

दोहा—सतगुण रजगुण धर्ममय, स्मृती मत संन्यास ।
उत्तम मध्य कनिष्ठ बिधि, कीजै कथा प्रकाश ॥

चौपाई

उत्तम मध्यम जो संन्यासा । सतगुण मयी ताही परकाशा ॥
दीगम्बर दंडी संन्यासी । दोनों धर्म सतोगुण राशी ॥
अब कनिष्ठ संन्यास कहीजै ।जब सत रज मिश्रित चित दीजै॥
कोइ कोइ दुराचार इन माही । मद्य मांसको भोग कराही ॥

योगी अरु संन्यासी दोई। एक स्वरूप जानिये सोई ॥

इति स्मार्तमत

अथ मीमांसाधर्म वर्णन–चौपाई

रजगुण ब्रह्मा रूप कहावै। धर्म मिमांसा जक्त चलावै ॥
कर्मते श्रेष्ठ और नहिं कोई। कर्महिते सब रचना होई ॥

इति मीमांसा

अथ मूसा और ईसाधर्म ब्यौरा–चौपाई

रजगुण तमगुण जहां मिलाई। मूसाधर्म और ईसाई ॥
होम यज्ञ तौरेत बखाना। यथा वेदविधि कीन प्रमाना ॥
सागपात जैसे तरकारी। तैसे नर मद मांसु अहारी ॥
मानुष घातसे पातक माना। इतर जीव सब साग समाना ॥
मूसा धर्म यहूदी धारा। यहि मतको नहिं अधिक पसारा॥
मूसाके कोइ शिष्य न रहेऊ। ताते धर्म कि वृद्धि न भयऊ ॥
अबीरामको जो सन्ताना। मूसाधर्म करे परमाना ॥
सतगुणरूप आहि ईसाई। क्षमा शीलतामें अधिकाई ॥
छल बल रहित दीनता धरही। उज्ज्वल क्रिया शौच आचरही ॥
मद्य मांसको करे अहारा। ताते तमगुणमय ब्यौहारा ॥
भजन अरु दान पुण्य कर थोरा। अधिक रजोगुणते चित जोरा ॥
क्षमा शांति सब औगुण ढकई। भर्मभूत तजि प्रभु दिशि तकई॥
ईसा शिष्य साखा बहु भयऊ। पृथ्वीपर जहँ तहँ रमि गयऊ ॥
देश देशमें धर्म प्रचारा। ईसा गुण सब ठौर उचारा ॥
जेहि औसर यह धर्म चलाई। नर भोले थोरी चतुराई ॥
थोरी विद्या बहुत निरअक्षर। धर्मकी गति जाने तब कहँ नर॥
थोरे ही उपदेशके करते। सब ईसाई धर्मको धरते ॥
यूरुप सबही भयो इसाई। देश एशिया गुण अधिकाई ॥

थोरे मनुष गह्यौ मत ईसा। हिंदू स्थान धर्म धुरदीसा ॥
चरित इहां पादरी आये। विरले जीवहि धर्म गहाये ॥
राज भयौ अंगरेजको जबते। भये अधिक ईसाई तबते ॥
मूसा ईसामतके माहीं। स्वर्ग नर्क निर्णय कछु नाहीं ॥
आतम गुण अरु झीना ज्ञाना। कछु नहिं इनमें कीन बखाना ॥
मोटा ज्ञान धर्म बतलाई। पुण्य पापकी थाप थपाई ॥

इति मूसाईसा

अथ महम्मद धर्म व्यौरावर्णन--चौपाई

तमगुण जहाँ रजोगुण पेला। धर्म महम्मदको यह खेला ॥
बिन अपराध जो मानुष मारे। मारि काटि निज धर्म प्रचारे॥
यह गुण मुसलमानमें कहई। यक अल्लाहकि भक्ति सो गहई॥
दुतिये गुण इनमें बड़ भारी। अभ्यागत आदर अधिकारी ॥
दान पुण्य अरु उज्वल कर्मा। चित्त उदार महम्मद धर्मा ॥
भये महम्मद ऐसे दाता। आपअलूने साग जो खाता ॥
माल करोरनको लुटवाई। सह्यौभुरक्खेकादुःख अधिकाई॥
वेद धर्मको जैसे देखा। मता महम्मदको तस लेखा ॥
कथा कहानि अधिक मिलाई। सुनी गुणी बहु बात बनाई ॥
स्वर्ग नर्क महि मध्य कहानी। धर्म महम्मद निर्णय ठानी ॥
आत्मवाद कछु ज्ञानको भेदा। जपतपशमदम आदिनिबेदा ॥
मोटा ज्ञान तीन हूको पद। मूसा ईसा धर्म महम्मद ॥

इति महम्मदधर्म

अथ शक्ति धर्म व्यौरावर्णन--चौपाई

धर्म तमोगुण जो लखि पाया। शक्ती धर्म आदि है माया ॥
भवसागर जिन कीन पसारा। नारीते यह सब संसारा ॥
शिव अरु शक्ती रूप द्वै कीन्हा। दोहू रूप मायाको चीन्हा ॥

जब संघट्ट होय दोहु रूपा । ताते जीव परे भ्रम कूपा ॥
द्वंदरूप मायाको खेला । ताते जीवको ज्ञान सकेला ॥
ज्ञानते माया पंथ बिरोधी । भवसागर पद जीव प्रबोधी ॥
हिंसा कर्म बुद्धि जिव घाटी । ज्ञानद्वारे पर दीनो टाटी ॥
भोगे भोग भोगमें रहई । भोगवासना चितमें गहई ॥
भोगमें भर्मि रहा सब लोगा । आवे जाय सहै सो सोगा ॥

इति

अथ अघोर धर्मव्यौरावर्णन—चौपाई

तमगुण पर तमगुण सरसाई । धर्म अघोर परम कठिनाई ॥
नर पशु जीव सकल धरखाही । धर्म विचित्र कहो कह जाही ॥
दुराचारको अन्त अघोरी । जिमि अचार वैष्णव घोरी ॥

इति अघोरधर्म

अथ विचारणीय वार्ता

दोहा—येते धर्म बखानेऊ, इनते कहूँ जो और ।
सकल त्रिगुणमय भक्त हैं, जक्तमाह सब ठौर ॥
त्रिगुणातीत जो कोय कहे, त्रिगुणातीत न होय ।
कहनको त्रिगुणातीत हो, त्रिगुणमें बांधा सोय ॥
जीवनमुक्त विदेह जो, सब तिरगुणके फन्द ।
सार शब्द लहि पार हो, तब जिव होय अनंद ॥

चौपाई

जेते धर्म प्रचारक होही । कहो न जाय कहै का ओही ॥
जिमि नृप थापे देशन देशा । धर्म प्रचारक जगमें ऐसा ॥
एक प्रानि दुतिये मत खंडा । अपनो धर्म धारा प्रचंडा ॥
यक जक्ती यक भक्ती पाला । दोनों ते प्रभु बसे निराला ॥

बिन गुरु गम सो लखो न जाई । कोटिन विधिकिन करे उपाई ॥
यह दश वस्तु आपमें देखो । पांच तत्त्व गुण तीन विशोषो ॥
ब्रह्मजीव माया कहि दीनी । एकते भिन्न न दुतिया कीनी ॥
सदा काल सो रहे सघट्टा । कबहु न बिलगहो तिनको ठट्टा ॥
सब रचना इनहीते होई । इनको पूजाकर सब कोई ॥
प्रथमैं पृथ्वीकी है पूजा । मूरत थाप आपते दूजा ॥
आठ प्रकारको प्रतिमा कीने । ताहि ध्याय जिव ईश्वर चीन्हे ॥
दुतिये जलकरि ईश्वर ध्यावै । योग क्रियाआदिक मनलावै ॥
शौचअचार आदिक सब जोई । वरुन देवकी पूजा होई ॥
तृतिये अग्नि हरी सेव अनूपा । यज्ञ होम धूप आदिक दीपा ॥
चौथे पौन देवकी सेवा । प्राणायाम आदिकको भेवा ॥
पंचम शून्य समाधि बखानी । पुनिनिरगुणपुनि आदि भवानी ॥
तिनपर ज्योति निरंजन जागे । सकल जीव भक्तीमें लागे ॥
वेदमें यह पूजा बतलाई । वरुण चन्द्र इंद्री रविराई ॥
अग्नि सरस्वती पृथ्वी पौना । तनमें सब रहते लख तौना ॥
थूल वस्तु येती दरसाई । सूक्ष्म थूलमें रही समाई ॥
थूलमें सूक्षम सूक्षममें थूला । सूक्षम सर्व थूलको मूला ॥
सो सूक्षम मोहिते नहिं न्यारा । मोही पाहि बसै मो प्यारा ॥
जेती पूजा जगके माहीं । सो सब अपनो दूसर नाहीं ॥

छन्द अस्कंध

दिलदेउलमें देव पुरातन पूज पुजारी तारा है ।
दिलहीमें पूजा सामग्री दिलही ठाकुरद्वारा है ॥
कहूं तीरथ कहुँ मूरत थापै सबपरपंच पसारा है ।
मनका फेरन कोई जानै मन का फेरत हारा है ॥
उठत बैठत परत रातदिन कानो अंगुली डारा है ।

रोजा और नमाज गुजारे पुतली स्वांगसँवारा है ॥
मस्जिद चूनाकंकर है क्यों सौ सौ टक्कर मारा है ।
दिलको खोज देवानेमोल्ला दिल अल्लह दीदारा है ॥

चौपाई

अहं अहं ब्रह्म बोलब नहिं जोगू । ब्रह्मकी गति जाने कहँ लोगू ॥
अहं ब्रह्म ब्रह्मा जो भाषा । अपने कर्मको ज्ञान न राषा ॥
बिन विचार सबही जिव भटके । सतगुरु त्याग भर्मपुर अटके ॥
भेडर चाल गहै संसारी । रंच न हृदये बुद्धि बिचारी ॥
जाने कहवां पुरा पतंगा । दीपक परे होय तन भंगा ॥
बिछाजालजौखग लखि पावत ।दाना चुगनसो कबहुँ न आवत॥
बिना विचार धर्म जिव धरही । सब मिलि बहुरि बड़ाई करही ॥
सदा काल जो करे विचारा । तिनके हृदय होय उजियारा ॥
रावनको जो राक्षस कहेऊ । वैर भाव द्विज ताते गहेऊ ॥
ब्राह्मण चार वरण शिर मौरा । तासु वचन प्रमाण सब ठौरा ॥
झूठ होयकै सत्य बखाना । विप्र वचन सब करे प्रमाना ॥
रावन रूप विप्र अस कहेऊ । नौनर यक खरको सिर गहेऊ ॥
विप्र रामलीलाकी वारी । रावनकी जब मूर्ति सँवारी ॥
नौशिर नर अकार बनावै । यक शिर गर्दभको देखलावे ॥
गर्दभको जौ शीस सँवारा । सो सब शिरनको ऊपर धारा ॥
गर्दभशीस भले सब देखे । निंदा हंसी होय यहि लेखे ॥
मनुषते रावन राक्षस भैऊ ।खरनिश्चय पुनि मिश्रितकियऊ॥
ऐसो विप्र वचन प्रमाना । चार वरणके लोगन माना ॥
जस रावनमें औगुण मानी । रामचन्द्र तिमिसबगुणखानी ॥
जती रावणता गुणगाहा । सीतारामहि कबिन सराहा ॥
रामचंद्र निजु सखा समेता ।गुणगणअतुलित कहा कविकेता॥

तिमि दोपी दशकंध समाजा । नरगह सत जा कह कवि राजा॥
परवत सम रावन बतलाई । मृदुल मनोहर सिय रघुराई ॥
शाह सिकन्दर जो यूनानी । ताने विजय कीन युग जानी ॥
जीत्यौ महि रिपु सागर बंदर । दोय शृङ्गशिर गह्यो सिकन्दर॥
पारस देशको बकरा चीन्हा । जब सो भूमि विजयनृप कीन्हा॥
शीसपै शाह गह्यो सो गहना । शृंगसिकन्दर ताको कहना ॥
शृंगसहित सिकन्दर सोई । तिमि रावन दशकन्धर होई ॥
यथा सिकन्दर शृंगनवाला । तिमि रावनबीसभुज दशभाला॥
सहसबाहु ब्रह्मा चतुरानन । विष्णु चतुर्भुज अरू षट आनन॥
पंचमुखी शिव आदि अनेका । जीवन जाने बिना विवेका ॥
ऐसहि द्वन्द परा संसारा । झूठ सांचकर कौन विचारा ॥
कालभेदको ऐसहि देखा । समुझे बिना करे सब लेखा ॥
द्वापर अन्त भो कलियुग आदी । कौरौ पंडौ भये विषादी ॥
करणराय जब बिनती कीने । परशुरामसे विद्या लीने ॥
परशुराम रघुराम जो दोई । एकै समै दोहुनको होई ॥
जाशिवन्त दुबिदा हनुमाना । शृंगी ऋषि आदिक नर नाना ॥
राजा मय मेरटको जोई । रावन श्शुर कहावै सोई ॥
राजा जनक अरुमुनि सुखदेवा । व्यास वशिष्ठ जो भाषे भेवा ॥
इत्यादिक वृत्तांत बहु चाला । सो सब रामकृष्णके काला ॥
कालको भेद न कतहु मिलाया । जक्त जीव माया भरमाया ॥
झूठहु सत्य शुद्ध सो लागा । सत्यकोझूठ जानी जिव त्यागा॥

दोहा—आदम आधे दिवसलो, कीन बिहिस्त निवास ।
पांचसो वर्षसो अर्धदिन, महम्मद धर्मप्रकाश ॥
कालको मेल मिलै नहिं, सो मायाकी खोट ।
कहुं पलभरी कहुं वर्षदिन, कहु भासे युग कोट ॥

## चौपाई

रावन बहिन बिचर वन वाटा । लक्ष्मण तासु नासिका काटा ॥
सो सुनि रावन क्रोधित भैऊ । छल बल करि सीता हरि लैऊ ॥
कोई न लक्ष्मण दोष लगावै । सब औगुण रावणको गावै ॥
निश्चर कीश शृंग द्रुम धारी । रावन रघुपति सैन सँवारी ॥
विविधि भांतिको बिना समाजा । नरगह सत जो कह कविराजा ॥
राम शत्रु रावण जिमि राक्षस । कृष्णके कंसादिक वैरी तस ॥
कंस कृष्ण मामा जग जाना । कर्महि राक्षस और न आना ॥
बेद महाभारत अस कहेऊ । कौन देवता मोहित भैऊ ॥
नाम केसरी वानर चीन्हा । तासु नारिसंग भोग सो कीन्हा ॥
ताते हनूमान प्रकटाना । सोई कौन पुत्र जगजाना ॥
बुधिवंतो मन देख विचारी । वानरके नहिं कोई नारी ॥
पशु पंछी कोई ब्याह न जूटी । जेहि संगर मैं सो तासु बधूटी ॥
पौन देवता गुण गण धामा । पशुलखिसोंकिमिहोय सकामा ॥
जांबुवंत जम्बूको राजा । रिच्छप रामके संग विराजा ॥
कृष्णशशुर पुनि ताहि बखाना । दियौ ताहि निज कन्यादाना ॥
रीछकी पुत्री रीछिन होई । मानुष संगमेलि नहिं कोई ॥
राक्षसवंशी वानर वंशी । रीछ नाग बछरा खरवंशी ॥
इत्यादिक सब गोत कहावै । बिन जाने कोई भेद न पावै ॥
ब्रह्मन ऐसी कथा उचारा । जैनबुद्धि विष्णू औतारा ॥
तनधरि असुरनको भरमाया । यज्ञ करन से तिन्है हटाया ॥
असुरन यज्ञ त्यागि जब दैऊ । सो सब अबल ताहिते भैऊ ॥
करि करि यज्ञ विप्रबल पाई । असुरनको तब मारि हटाई ॥
जैन बोध दायामय धर्मा । तिनके कहा असुरके कर्मा ॥
कर्ता पुरुष जो परम विवेकी । सबके संग करै सो नेकी ॥

काहूको नहिं सो भरमावै । राग द्वेष नहिं ताको भावै ॥
ब्रह्मन वैर जाहिसे गहेऊ । वेदविरोधी असुर सो कहेऊ ॥
पशुपंछी नरको दुःख देही । असुर कर्मकर असुर है येही ॥
कारे राते गोरे अंगा । असुर बखाने नाना ढंगा ॥
असुर कर्म जब जो नर त्यागा । सो अवश्य सुर होय सुभागा॥
लघु दीरघ तन सबही नरके । होहि सुरासुर कर्महि करके ॥
अजौ विप्र जैनीके द्रोही । औसर पाय देत दुःख ओही॥
तिर्थंकरकी मूर्ति जो आही । बाहर जैन निकास जो ताही ॥
ब्राह्मण तब असक्रोध गहाई । पहुँचै ले निजु सखा सहाई ॥
प्रतिमाके ऊपर तेहि बारा । पाथर ईंट करै बौछारा ॥
मुसलमान अस बचन सुनाया । कतल हुकुम अल्लाहते आया॥
जो अल्लाह कतलपै राजी । तो एकै मत जग किन साजी ॥
महम्मदमत जगमें फैलावत । और सकलमत दूर बहावत ॥
जो कलाम अल्लाह कहाई । यह कुरान असमानते आई ॥
सो अल्लाह निकटकै कहाई । रह्यो चराचरमें सो पूरी ॥
सोई कुरान ऐसो प्रकाशी । शहर गते प्रभु निकट निवासी॥
कंठ किनसते निकट जो रहई । पुनितेहिकिमिअकाशपरकहई॥
शहरगते हरि निकट बताई । तासु कलाम दूर किमि जाई ॥
अस नेरे अल्लाह बतावे ।किमि कलाम असमानते आवै॥
जहँ अल्लाह तहँ अल्लाह कलामा । अल्लाह निकट दूर कह कामा॥
जो अल्लाहको नहिं लखि पाया ।तेहि कलाम असमानते आया॥
जो अल्लाहको नहिं पहिचाना । किमि ताकी कलामको जाना॥
जबैह कत्तलते प्रभु नहिं राजी । भ्रमकरि भूले पंडित काजी ॥
कोई कह प्रभु मैं आखिन देखा । चर्मदृष्टिको मिथ्या लेखा ॥
चर्मदृष्टि सब माया भासा ।जो भासा सो सकल विनासा ॥

कोइ कह मैं कोई ठौरमें गैऊ। प्रभुके संग बातकही भैऊ॥
कोई कह मैं प्रभु सपने देखी। कोई कहै घटही मैं देखी॥
कोइ कह मो प्रति भै नभवानी। झूठ साच मैं ताते जानी॥
कोइ कह मैं लखि ज्ञानके द्वारा। सो कस जस बिजुली चमकारा॥
झूँठ सांच भल नहिं लखि पावै। और बात कछु और बतावै॥
यह सब जिवकी भर्म कहानी। विरला कोइ ईश्वर पहिचानी॥
बिना ज्ञानके सब यह बाते। ज्ञानभये भ्रम रहै न ताते॥
जो कोइ साधु ज्ञानके खानी। प्रभु इच्छा सब आपै जानी॥
तिन्है न स्वपना नहिं न भवानी। नहिं कहुँ अनतबतकही ठानी॥
ज्ञान द्वार हरदम हरिदरसै। दूर जाय कह तापद परसै॥
चार वर्ण ब्रह्मा परकासी। तिमि शंकर तनते संन्यासी॥
शीसते पुरी देह निज्ञु गहेऊ। पुनि भारती माथसे कहेऊ॥
जीभनोकते सरस्वती जाय। गिरपर्वत दोऊ भुजा उपाय॥
पसुलीते सागर तन गन्नो। दोहु जँघते बन आरन्नो॥
दो पदसे तीर्थआश्रम तनधारे। शंकरसे प्रकटे इमि सारे॥
जस बिचार जिवमाह प्रकासा। सो प्रतक्ष है ताको भासा॥
केते ऐसे भये परपंची। छल करि ग्रंथ नयौ निज रंची॥
छल बल करि निज नाम छपावै। जगमें इमि निज धर्म चलावै॥
पूर्वाचार्य श्रेष्ठ मत धारी। ग्रंथको करता ताहि पुकारी॥
श्रेष्ठ पुरुषको रचित विचारी। होय ग्रंथको आदर भारी॥
अकबरशाह वोजीर जो फैजी। नयौ धर्म परचारक पैजी॥
ताने नयौ कुरान बनाई। एक वृक्षके बीच छपाई॥
अकबर शाहसे जाय सुनाया। मोकहँ राति स्वप्न यक आया॥
तुमरे नाम नबूबत आई। है कुरान तरुमाह छपाई॥
अकबरशाह अचंभित भयऊ। शीघ्र ताहि तरुतर चलि गयऊ

वृक्षको चीर कुरान निकारा । फैजी छल खुलिगो तिहिबारा ॥
ऐसे केते कपटी जगमें । करे बिगार धर्मकी मगमें ॥
पंडित कह पै पंडित नाहीं । विद्या देखि जीव भरमाहीं ॥
कठिन प्रपंच करे सो लोगा । विद्या पढ़ न भक्ति संयोगा ॥
विद्धज्जन हैं द्वैविधि वक्ता । एक भक्त यक जक्तको ठगता ॥
षट पशु ऐसे कीन प्रमाना । प्रथमैं वेद पशूको जाना ॥
वेदादिक पढ़ि ग्रंथ अनेका । वेद पशू न हृदय विवेका ॥
दुतिय देवपशु गह सुर पक्षा । कह सुर श्रेष्ठ करे जग रक्षा ॥
तृतिये नर पशु ताको कहते । श्रेष्ठ मनुषको पक्ष जो गहते ॥
चौथे शास्त्र पशु शास्त्र ले बोले । पुनि पंचम पुराण पशु टोले ॥
छठे नारि पशु लंपट भाषे । ये षटपशु विचार नहिं राखे ॥

दोहा–गुरुपशु नरपशु वेदपशु, त्रियापशू संसार ।
मानुष सोई जानिये, जाके हृदय विचार ॥

इति विचारणीय वार्ता

## अथ धर्मसार वर्णन

दोहा–सर्व धर्म परमान यह, ईश्वर समरथ सत्य ।
किहि विधि सो प्रभु रीझई, कोइ न जाने गत्य ॥

चौपाई

शुभ कर्मनते हरि हर खाहीं । यह प्रमान सब धर्मनमाहीं ॥
शुभ अरु अशुभ कर्म द्वै राखी । दोनों कर्म धर्मते भाखी ॥
समरथ करता दोहुते न्यारा । ताकी गति को जाननहारा ॥
न्याय मिमांसा जैनी भाषे । केते ऋषि मुनि सोइ मद राखे ॥
जीव स्वच्छंद कर्म अधिकारी । जस चाहे तस कार्य सँवारी ॥
केते साधु कथै विपरीती । जिव नहिं सके कर्मकुलजीती ॥
कर्ताकी गति काहु न जाना । कथे अनेकन वेद पुराना ॥

जापर कृपा करे सो सांई। ताकी बाँह गहे बरियाई ॥
ब्रह्मानंद बनावै ताही। सबते श्रेष्ठ होय जिव वाही ॥
बहुविधि जिव शुभकर्म जो करई। बिन प्रभु दया कार्य नहिं सरई ॥
बार बार सो प्रभुहि नमामी। सर्व समर्थ सर्वके स्वामी ॥

सत्यकबीर वचन–शब्द

अवधू कुदरतकी गति न्यारी।
रंक नेवाज करे वह राजा भूपति करे भिखारी।
वाते लोग हरफ नहिं लागे चंदन फूल न फूला ॥
मच्छशिकारी रमै जंगल बिच सिंह समुंदर झूला।
रेंडरूख भयो मलयागिर चहुँदिश फूटी बासा ॥
तीन लोक ब्रह्मांड खण्डमें देखे अन्ध तमासा।
पंगा मेरु सुमेरु उलंघै त्रिभुवन मुक्ता डोले।
गूँगा ज्ञान विज्ञान प्रकाशे अनहद बानी बोले ॥
आकाशहि बांधि पताल पठावै शेष स्वर्गपर राजे।
कहैं कबीर राम हैं राजा जो कछु करे सो साजे ॥

चौपाई

महागूढ मुनिवर तप कीने। अंत नर्कमें बासा लीने ॥
पतित जौ नर्क भोगवे लायक। कृपा कीने कीन सुरनायक ॥
जौं मैं कर्मकरन समरत्था। ज्ञानमुक्ति तौ सब ममहत्था ॥
मैं हौं कौन कर्म है काको। जीव नहीं जाने परिपाको ॥
जौ यह जानै मैं कछु नाहीं। तौ अभिमान दूर दुरि जाहीं ॥

सत्यकबीर–वचन

साखी–कबीर–पैठा है सब घटनमें, बैठा है संचेत।
जब जैसी गति चाहत है तब तैसी मति देत ॥
कबीर–बहुबंधनते बांधिया, एक बेचारा जीव।
जीव बेचारा क्या करे, जौ न छोड़ावै पीव ॥

कबीर-मनको मनोरथछोडिदे, तेरा किया न होय ।
पानीमें घिव निकले तो, रूखा खाय न कोय ॥

नानकशाह बचन

करै करावै आपै आप । मानुषकै कछु नाहीं हाथ ॥
जो कहै कि मैं कुछ कर्ता । फिर फिर गर्भ योनिमें फिरता ॥

चौपाई

मैं कछु नहिं कछु है मेरा । अहमित जे अज्ञानते घेरा ॥
जो कोई पायो ज्ञान अमोला । अहंब्रह्म आपा लखि बोला ॥
ताहूकी यह दुर गति देखे । लखि नहिंपरतअलखयहिलेखे ॥

सत्यकबीर वचन-रेखता

मालिन पुकारे हे पिया है हे साहेब तूने क्या किया ॥
यक बून्द लज्जत कारने मन्सूर सूली यों दिया ॥
जल जलकि रोवै माछरी बनबनके रोवै मोरया ॥
महलोकि रोवै बीबिया अल्लाह इलाही क्या किया ॥
कायाके अंदर खोजिले छज्जेमें तेरा जीव है ॥
कहते कबीर गुरु ज्ञानसे तुजहिमें तेरा पीव है ॥

चौपाई

जस ईसाकी कथै कहानी । तस मन्सूरकेरि गति जानी ॥
दोनोंके मरनेकी बारी । प्रकटे केते चीन्ह भयकारी ॥
ऋषि मुनि जैसे करनी करही । तैसी हानि लाभमें परही ॥
ज्ञानी ध्यानी प्रभु नहिं जाना । पाय कर्मफल सुख सब माना ॥
कबहु कबहु विपिरीति देखावै । उत्तम कर्म तुच्छ फल पावै ॥
जैसो नीक नाथको लागा । तैसोई तप फल जिव मागा ॥
कुंभकरन तप करि हरि टेरी । मांगसि नींद माष षटकेरी ॥
बारह लक्ष वर्ष तप भारी । कर इबलीस हदीस पुकारी ॥

कछु नहिं ताको बस तहँ चाला। अंतकाल तेहि नर्कमें डाला ॥
जीवकि वसमें जो कछु रहता । तौन सुकर्म नीच गति गहता ॥
वेशुवा बहूदिनको लेआयो । ईश्वर कृपा ताहि परछायो ॥
जबकन आनदेशमें आया । तह बल्लाम साधु यक पाया ॥
तीनसौ वर्ष कीन तप जोई । जो कछु कहै सत्य सब होई ॥
बाद येशुपासे सो ठानी । तीनसौ वर्षकी तप विनसानी॥
जब जहि जस चाहे तस करई ।जीव जतन कछु काज न सरई॥
किनको नाथ दीन बरदाना । निज भ्राता पर हो जय माना ॥
जीत्यौं प्रभु आज्ञा अनुसारा । कोई न भा दोषी हत्यारा ॥
मूसा प्रभुकी आज्ञा पावो । चलि फिर उन भूप समुझावो ॥
देय यहूदिनको सो जाना ।पुनि अस वचन कह्यौ भगवाना ॥
मैं फिर उनको करों कठोरा । मूसा वचनसे मुख सो मोरा ॥
फिर उनहिय प्रभुकरि कठिनाई । मूसाको तब कहा बसाई ॥
को अस बली जो ताहि उबारा। प्रभु जेहि आप डुबावन हारा ॥
जैसे प्रथम भव्यकी बानी । हसन हुसेन मृत्यु इमि जानी ॥
कीन हुसैन युक्ति बहु तेरी । पहुंचे मृत्यु महि मरनकी बेरी॥
यकदिन अस कौतुक बतलाये । महम्मद द्वै किताब ले आये ॥
यक किताब दहने कर गहई । दूजी बाम हाथमें रहई ॥
दहने हाथ किताब जो दिखावा। नाम बिहिस्तिनकोतहँलिरकवा॥
जो किताब बायें कर ग्राही । नारख नाम लिखा तामाही ॥
प्रथमहिते भे स्वर्गी नर्की । कुदरतकी गति जाय न तर्की ॥
प्रभु केकइकी मनि हरि लीनो । रामचंदरको सो बन दीनों ॥
केकइको कह दूषन दीजे । हरिइच्छा किन अटक कहीजे ॥
बाबुल बुर्ज बनावन लागे । सब नर तिय तेहि उद्यम पागे॥
ताते नहिं ईश्वर सुखपाई । सबकी बोल दियौ पटलाई ॥
बरने बेद उपनिषद साखी । देव दनुज दोऊ दल रन भाखी॥

हारे असुर सुरन जय पाया। विजइन मन अभिमान समाया॥
जब देवन कीने अभिमाना। ब्रह्मरूप तब तहँ प्रकटाना॥
ऐसो तेजमई सो रहेऊ। कोईसुर नहिं सन्मुख ह्वै सकेऊ॥
सब सूर अग्नि पौनको टेरी। तेहि औसर तहँ दोउ कर फेरी॥
सब सुर अग्नि पौनसे कहेऊ। ब्रह्मरूप जो प्रकटे भैऊ॥
हम सन्मुख ह्वै सके न ताही। तुम करि कृपा तासु ढ़िग जाही॥
ताढ़िग पौनदेव जब गैऊ। ब्रह्म ताहिते पूछत भैऊ॥
तुम हो कौन कहा तौ कर्मा। पवन देवता भाष्यौ मर्मा॥
नाम पौन सुर मेरो होई। जो कुछ होय उडावो सोई॥
तहां रही यक तृणकी ढेरी। ब्रह्मसो पौनको पौकहि टेरी॥
वह ढेरीको देह उड़ाई। पौनदेवकर बल अधिकाई॥
यक तृण तासु न सका उड़ाई। बलकरि पवनदेव थकि जाई॥
लज्जित पौन गौन धरकीने। अग्निदेव पुनि तहँ पग दीने॥
पूछै ब्रह्म कौन तू भाई। अग्निदेव निजु नाम सुनाई॥
पूछै ब्रह्म कर्म तो काहा। अग्नि कहे मैं सब कुछ दाहा॥
कहे ब्रह्म तृणढेर जलावो। अग्निदेव वह जोर लगावो॥
तृण यक भस्म न सो करसकेऊ। जोर लगाय अग्नि तहँ थकेऊ॥
तब लजायके अग्नि सिधारा। ब्रह्मा सो गुप्त भयौ तेहि बारा॥
देवी प्रकट भई तेहि काला। देवनसे कहा बचन रसाला॥
तुम अभिमान भंजवे कारण। ब्रह्मस्वरूप कियौ निजु धारण॥
तुमरे मन हंकार जो आया। हम असुरनको मारि हटाया॥
तुमरो कियौ होय कछु नाहीं। हानि लाभ विधिकी बस आही॥
सर्वसमर्थ सर्वको दाता। ताकी गतिनहिं लख्यौ विधाता॥
सो सबहीको खेल खेलावै। वाजीगर गतिको लखि पावै॥
सबहीको जिन गर्व प्रहारा। लखि नहिं परत अलख करतारा॥

बल वीरज विद्या चतुराई। बाजीगरको खेल बनाई ॥
तीन देव जेते औतारा। कर्मके बन्धन नाचै सारा ॥
नाचै ब्रह्मा नाचै विष्णू। नाचै शंकर नाचै जिष्णू ॥
नाचै आप निरंजन ज्ञानी। तन धरि नाचै आदि भवानी ॥
नाचै ब्रह्म रुद्र हरि नारी। पीर पयम्बर नाचै झारी ॥
सिद्ध साधु सुर नर मुनि नाचै। सतगुरु कृपा सन्त कोई बाचै ॥
अहंकार करिके अज्ञानी। चाहत हरिमाया तरि जानी ॥
एक तपीकी कहो कहानी। जो अज्ञानते तप दृढ़ ठानी ॥
सो निज मन अस कीन बिचारा। तपकरि चल हरि माया पारा ॥
ऐसी अपनी देह बढ़ावो। माया लंघि ब्रह्म मिल जावो ॥
ऋद्धि सिद्धि बल तामें जागा। तप करि देह बढ़ावन लागा ॥
महादीर्घ देही जब कीने। ब्रह्मचिंतवनमें चित्त दीने ॥
बढ़ तन ब्रह्म प्रभा परशनमें। अंग उतंग भंग मैं छनमें ॥
ब्रह्म प्रभाको कीन जो ध्याना। ताछन बड़ा वपुष बिनसाना ॥
महादीर्घ तन ह्वै गिर परेऊ। पुनि सो मच्छरको तन धरेऊ ॥
घासनमें सो कियौ बसेरा। फिरत एक मृग वनमें हेरा ॥
तब ताको मृग लात जो लागा। ताते सो मच्छरतन त्यागा ॥
सुरति मसक मृग माह समाई। मच्छरतन तजि मृगतन पाई ॥
तेहि मृग मारन चले शिकारी। आय ताहिपर शस्त्र प्रहारी ॥
जब मृग निज तन त्याग कराई। बधिकमें ताकी सुरति समाई ॥
ताते बधिक भयौ मृग सोई। एक दिन वनमें विचरत होई ॥
विचरत बनहि मिले मुनि एका। ज्ञान दिये तेहि सहित विवेका ॥
मुनि उपदेश बधिक जो पाई। बहुरि सोभक्ति भाव मनलाई ॥
करि हंकार कर्म जो करहीं। तिनको कबहु न पूरा परहीं ॥

दोहा-राम बढ़ावै सो बढ़े, और बढ़ै नहिं कोय ।
बलकरि बढ़ै जो रावन, पलमें डारयौ खोय ॥

चौपाई

वेद कहै जो ऐसो लेखो । ईश्वर सर्व मयी बुध देखो ॥
वेद कह कर्म कर्‍यौ नहिं अर्पन। ताको अर्थ विचारो निजमन ॥
महा करता महा भोगी जैसे । महा त्यागी पुनि जानै तैसे ॥
त्यागी महा जानिये सोई । जासु हृदय हंकार न होई ॥
जाके हृदये ऐसो बरता । मैं नाहीं कछु कर्मको करता ॥
मैं नाहीं हरि आपै आपू । सो नहिं कर्म आपनो थापू ॥
जाने ऐसो कीन विवेका । पुण्यमान पापी तेहि एका ॥
मित्र शत्रु ताके कोइ नाहीं । जहां तहां हरि आपै आहीं ॥
कोई नहीं सुख दुःखको दाता । मैं तू जग सब भ्रमकी बाता ॥
जिन विचारि लीना यह लेखा। सर्वमयी तिन ईश्वर देखा ॥
जेहि ईश्वर सब मयलखि आवै । पूरन पण फल सोई पावै ॥

रामचंद्र वचन

दोहा-जिनके हृदय विचार अस, मति न टरै हनुमंत ।
मैं सेवक चराचर, रूपराशि भगवंत ॥

चौपाई

भालू कीश कटक ले साथा । लंकापर चढिगे रघुनाथा ॥
सहित सेन रन रावन मारा । दोउ दिश जूझे बहुत जुझारा॥
सुधा वृष्टि भै दोहु दल माहीं । जिये भालूकपि निश्चर नाहीं ॥
नाहीं राक्षस जिय कपि रिच्छा। ऐसी परमेश्वरकी इच्छा ॥
विष अमृत रिपु मित्र बनावै । भावे न्यारा खेल देखावै ॥
जापर कृपा करे करतारा । कन यक छनमें होय पहारा ॥

सोरठा-पुण्य पाप मोहि नाहिं, निर्लेपो निरद्वंद मैं ।
बंधा बंधन माहि, बिधि निषेधको ज्ञान गहि ॥

चौपाई

मैं यक भर्म पूतसा ठाढ़ा । मेरे ह्रदय मान अति बाढ़ा ॥
मेरे विद्या गुण चतुराई । मैं सुन्दर छबि रूप निकाई ॥
मैं कुलीन उत्तम सब लायक । मेरो कर्म सकल मनभायक ॥
पुण्यते हर्ष पाप डर कापे । कर्म अकर्म आप शिर थापे ॥
जौजिव बिधिनिषेध नहिं जानत । तौ कछु कर्म धर्म नहिं ठानत ॥
जानि बूझि करि है जो पापा । निश्चय ताहि नर्कदुःख व्यापा ॥
ऐसो मूढ कौन जगमाहीं । खरा खोट जो जानत नाहीं ॥
जो कोइ पुण्य पाप नहिं जाना । शिशुसमान निर्दोष बखाना ॥
जबते आदमको भो ज्ञाना । अहं भोगता करता जाना ॥ ॥
तबते परा कालको फांसा । पुण्यपापको व्यौरा भासा ॥
षटदरशन आतमको झगरे । न्यारे न्यारे मारग डगरे ॥
पीर पयंबरको मत न्यारा । एक विरुद्ध दुतिये व्यौहारा ॥
करतागति जो कोई लखिपावत । तौ काहेको झगर मचावत ॥
जिमि अंधरनमिसि चीन्हा हाथी। एक समान तासुके साथी ॥
मैं नहिं तू नहिं वह नहीं कोई । कहि नहिं जात ख्याल क्या होई॥
जो मैं ही तो मोहि किन बंधा । पायो ज्ञान गुरूकी संधा ॥
आप गुरू अरु आपै चेला । कहि न जात कुदरतको खेला॥
दुतिया बिन कौ ज्ञान गहावै । ज्ञानते दुतिया नजर न आवै ॥
ज्ञान पाय दुतिया नहिं माना । दुतिया धौं मोहि माह दुराना॥
अमीकुंडमें चिऊँटी डूबी । स्वाद पाय जान्यौ कछु खूबी॥
कुंडको अंत न पावै कबहूं । कोटिन गोता मारे जबहूं ॥
अस विज्ञान गम्यको गहई । ताको पारावार न लहई ॥

आपै भीतर बाहर बोले । बिरला साधु सो भेद टटोले ॥
देय दिलावै मागे जोई । सकल कर्मको करता सोई ॥
आपै देय आप नटि जाई । आपै चलै आप हटि जाई ॥
सिद्ध साधु चक्रित ह्वै थकही । सतासत न कछु कही सकही ॥
स्वप्न अवस्था जब जिव परई । अपनी बस कछु कर्म न करई ॥
स्वप्नदशामें जाने सोई । यह सब कर्म आपनो होई ॥
जब जाग्यौ तब न्याय निबेरा । मेरो कर्म न सपने केरा ॥
चार अवस्थाके सब कर्मा । ऐसेहि जानि लेहु जिव भर्मा ॥
चहूँ अवस्था मिथ्या राचा । ताको कर्म होय कहँ साचा ॥
ऐसेहि ज्ञान अवस्था माही । सर्वकर्म मिथ्या दरसाही ॥
मैं नहिं मैं मिथ्या अभिमानी । भर्मते कर्म आपनो जानी ॥
संत सुजान यह मनहि विचारी । सब मद मान दूर करि डारी ॥
अहंकार है नर्क निसानी । भक्ति गरीबी जीव सुख दानी ॥

दोहा–जानि बूझि जो जड़ भया, आपको जानै नीच ।
सोई सबसे श्रेष्ठ है, ज्ञानगम्य तेहि बीच ॥
जाना नहिं बूझा नहिं, जो जड़ दशा गहाय ।
अज्ञानी मूरख सोई, सो न भक्तिपद पाय ॥

सत्यकबीर वचन–शब्द

दासको दीनता जब आवै ।
सो पद देव दास अपनेको शिव ब्रह्मा नहिं पावै ॥
औरनको पूरा करि जाने आपको ओछ कहावै ।
अवधूतन ते सत कहत हो सो मेरे मन भावै ॥
एकै ब्रह्म सकल घट देखे दुबिधा दूर बहावै ।
इन पांचोंसे तोरि सनेहा जब गोविंद गुण गावै ॥

होय अधीन प्रेम लौलावै कुल अभिमान मिटावै ।
सहज शून्यमें रहे समाई पढिगुण सब बिसरावै ॥
गुरुकी दया साधुकी संगती भावभक्ति चितलावै ।
कहै कबीर सुनो भाई साधो कौन परमपद पावै ॥
कौन हमारे आये केशव क्यौं न हमारे आये ।
षट रस व्यंजन छोटि रसोई साग विदुरघर खाये ॥
जहँ अभिमान तहाँ हम नाहीं वह व्यंजन विष लागे ।
सोई मुनिजन पूरा कहिये अभिमानीको त्यागे ॥
जातिहीन जाके कुल नाहीं है दासीको जायौ ।
ताकीट परिव्या तुम जायके बैठे कहा बड़ापन पायौ ॥
सत्यासत्यवचन कहो दुरयोधन सुनिले बात हमारी ।
विदुर हमारे प्रानसो प्यारे तुम विषिया बेकारी ॥
पुरातन कथा तुम्हारी हरिजी वनमें छाक मँगाई ।
ग्वालनके संग भोजन करते सो मति तुममें आई ॥
प्रेम प्रीतिके हम हैं भूखे अभिमानी नहिं भावै ।
कहैं कबीर साधुकी महिमा हरि अपने मुख गावै ॥

रामचंद्रवचन-चौपाई

सबहि मानप्रद आप अमानी । भरथ प्रानसम ते मम प्रानी ॥
वेद प्रमान आदि ओंकारा । सो करता सोई श्रुति सारा ॥
सो ओंकारको अर्थ बखानो । दीनता और गरीबी जानो ॥
जहँ दीनता गरीबी बसई । सबगुण ज्ञान ताहिमें लसई ॥
तौरे तो इञ्जील सोयी नय । आहि दीनता ज्ञान गुणनमय ॥
पुनि जब्बूर कहे सो हेता । दीनको प्रभु सोभा गति देता ॥
पुनि कुरानको सोई मत हेरी । ऊँच बोल है गर्दभ केरी ॥
गदहा पर ईसा चढि चाले । सो दीनता धर्म प्रतिपाले ॥

धन्य दीनता कह इञ्जीला । ताते हो जिव बंधन ढीला ॥
जूठी बेर सेवरी ल्याई । रामचन्द्र अति रुचिते खाई ॥
लक्ष्मन निर आदिरकर ताही । भिलनी जूठा हम नहिं खाही ॥
भई सजीवन बूटी सोई । लक्ष्मन प्रान बचायौ सोई ॥
पंडो यज्ञ जुरे ऋषि भूरी । स्वपचभक्त विन यज्ञ न पूरी ॥
जातिपातिकुलगुण अभिमानी । भ्रमत फिरे चौरासी खानी ॥
भगते भगवा भेष बनाये । शिव शंकर निज शीश चढ़ाये॥
आदि भक्ति शिवजक्त प्रकाशी । भगवा भेष धरे संन्यासी ॥
भग पृथ्वीका रूप कहाये । तात भगवा वरन बनाये ॥
पृथ्वी तुल्य गरीबी आवै । संन्यासी जीवत मरिजावै ॥
बैरागी जो तिलक लगाई । ले मृतिका निजमाथ चढ़ाई ॥
आदम अघ तौ रेत प्रसंगा । कीनो प्रभुकी आज्ञाभंगा ॥
अदन बाहर आदन भैऊ । ताते प्रभु पुनि ऐसे कहेऊ ॥
खेहसे तेरी देह बनाई । जबलों बहुरि न तेहि मिलिजाई ॥
तबलौं श्रम करिकरिके खैहो । अब नहिं अमृत फलको पैहो ॥
ताको ऐसो गहिये ज्ञाना । जीवतही मिट्टी मिल जाना ॥
मुये तो सबही मिट्टी होता । पावै कर्म बीज यश बोता ॥
जीवतही लोधू मरजाना । यही सकल मतको परमाना ॥
चरनामृत अरु शीत प्रसादा । ताको आहि बड़ो मरजादा ॥
करिके कृपा साधु जो देही । दीनको शिष्य सेवक सो लेही ॥
ताको ऐसा अर्थ बिचारी । गहो गरीबी सब नरनारी ॥
बहुरि शिष्यसे भीख मंगावै । ताते तासु मान बिनसावै ॥
सुरगण जो अतिगुण गण धामा। आदमको कर दंड प्रणामा ॥
कारण यही तासुमें पायौ । प्रभु दीनताको श्रेष्ठ देखायौ ॥
कह आदम मिट्टीकी मूरत । कह इबलीस दीप्त शुचि सूरत ॥

कह नारद ब्रह्मा सुत होई । कहब पुरा कैवर्तक जोई ॥
कहु सुख देवगर्भके योगी । कह नृप जनक विषयरस भोगी॥
कह मूसा गुण ज्ञान निशाना । कह इबलीस दोजखी जाना ॥
बिनदी मतान जिव कोई तरिहै। करि सुकर्म भवसागर परिहै ॥

नानक शाह वचन

दोहा-नानक नन्हे हो रहो, जैसी नन्ही दूब ।
घास पात जरि जाहिगी, दूबखूबकी खूब ॥

सेख फरीद वचन

दोहा-फरीदा ऐसा हो रहो, जैसा करक्ख मंसीत ।
आठोपहरलताडिये, तेरीरब्बनालरह प्रीत ॥
सोरठा-धर्मसार यह जान, भक्ति दीन ता दिल गहे ।
तजि दीजै मदमान, होयपरम कल्यान तब ॥
तनमनधन गुरुअर्प, करनीकर गुरुद्वारनिज ।
बहुरि काल नहिं दर्प, प्रेमभाव पद पूजिये ॥

इति श्रीधर्मसार

अथ सर्वधर्मएकता वर्णन-चौपाई

एकै धर्म सकल संसारा । भिन्न भेदते दरसै न्यारा ॥
विषय अमृतमें दियौ मिलाई । ताते जिवकी सुधि बिसराई ॥
सप्त पंथ तजि कुफुर कमावै । न्यारी राह जीवको भावै ॥
कहु तीरथ व्रत मूरति बताया । कहुमदमास हरामको खाया ॥
जारी जोर जुलुम कहुं देखो । यक अल्लहको न्यारो लेखो ॥
उज्वल करनी सब देखलाई । तामें कछुक हराम मिलाई ॥
जबलों भोगकिआसा रहई । तबलों जिव हराम गतिगहई ॥
भोगकि इच्छा दिलसे त्यागे । तब जिव सत्य पंथमें लागे ॥
विषय विकारते मुक्ति न पावै । सतगुरु त्याग औरको ध्यावै ॥

परम पुरुष पदको जब त्यागा । तब हराम कारीमें लागा ॥
जीव गँवायो ज्ञान कि थैली । तजि शुभकर्म करै बदफैली ॥
जौन विकार जाहि मत माहीं । तजि सब जिव निर्मल ह्वै जाहीं ॥
निज औगुणजब जिव पहिचाना । भर्म छांड़ि शुभ धर्महि जाना ॥
हृदयमें जब उगे विवेका । तब सब जिवके मत हो एका ॥
सत्य पुरुषकी भक्ति जो गहेऊ । तजि विकार तब अमरसो भेऊ ॥

इति सर्वधर्मएकता

अथ ब्रह्माण्ड और पिंडकी एकता—चौपाई

यह ब्रह्मांड सकल है पानी । तामें अद्भुत ख्याल उपानी ॥
अण्ड पिंड दो उदधि अपारा । इन्द्रजाल तामें विस्तारा ॥
रच्यो ख्याल यह बाजीगरको । अन्न लहेको भवसागरको ॥
अण्डाकार पिंड ब्रह्मण्डा । तामें सकल द्वीप नौखण्डा ॥
यह समुद्र है अगम अगाहा । भरमत जीव न पावै थाहा ॥
चौरासी लख गोता खाही । बूड़े उछले पार न जाही ॥
जिमि ब्रह्मांड समुद्र बखानी । तिमियह पिंडबून्दयकजानी ॥
सिन्धु बून्द दोनों यकरूपा । कहिनजाय अति अकथअनूपा ॥
सिन्धुमें बून्द बून्दमें सागर । जाने बिनापर्‍यो जगझागर ॥
जो कछु रचना सिन्धुमें परखो । ज्यौंकीत्यौंसोई बुंदमें निरखो ॥
वारिद बुंद विचार विलोका । दोनों द्वैधौ दोनों एका ॥
दोनों एक तुल्य है चोखे । विषय विकार दोहुनको पोखे ॥
इंद्रिन सहित दोहु एक सारा । दोहुमें एकै खेल पसारा ॥
ताते प्रथम पिंड गति जानो । पुनि ब्रह्माण्डको लेखा ठानो ॥
पिंड खेल जबलों नहिं लहई । अंडलेख तबलों कह कहई ॥
पहिले पिंड आपनो तरना । पुनि ब्रह्मंडके पार उतरना ॥
जाते पिंड तरो नहिं जाई । सो ब्रह्मां पार कह पाई ॥

जबलों देह सत्यकरि जानी । तबलों पिण्ड तरे नहिं प्रानी ॥
आदिमें अण्ड रूप यक रहेऊ । हिरण्यगर्भ ताहीको कहेऊ ॥
हिरण्यगर्भ निज मनहि विचारा । द्वन्द्व खेल तेहि काल सँवारा ॥
हिरण्यगर्भ प्रजापति मेला । ताते खिला जक्तको खेला ॥
फूटा अंड भयो द्वै धारा । ताते द्वन्द्व जक्त हितकारा ॥
द्वन्दमता संसारहि मेले । नर नारी दोउ जगमें खेले ॥
दोनों मिले होय तब रचना । सकल स्वरूप ताहिते रचना ॥
जिहि अवसर जिव भर्महि भंडा । जो कछु पिण्ड सोइ ब्रह्मण्डा ॥
आपै लखे लखो सब जाई । आपहिमें सब सृष्टि समाई ॥
माया ब्रह्म मेल जब होई । यह संसार खेल तब होई ॥
माया दीख ब्रह्म नहिं दरसै । शून्य स्वरूप ताहिको परसै ॥
बिंदु रुधिर दूनो हैं पानी । अंड पिंड रचनाको खानी ॥
बिंदु पिता लोंहू है माता । श्वेत अरुण कहिये द्वै बाता ॥
यकभो द्वन्द द्वन्द जब टूटे । ह्वै अनन्त सब जगमें फूटे ॥
रुधिरसे तीन धातु प्रकटानी । चाम मासु अरु रुधिर बखानी ॥
तीन धातु नर बिन्दुसे होई । हाड अरु गूद बिन्द कह सोई ॥
माता तीन पिता मलतीनी । ताते जगकी रचना कीनी ॥
माताको सब कोई लखि पावै । पिता काहुकी नजर न आवै ॥
मातामें रह पिता छपाई । ताते कोई देखि नहिं पाई ॥
माता जबहि पिता बतलावै । तब कोई खबर तासुको पावै ॥
माताको अभाव जब होई । पिता दरस तब कर सब कोई ॥
यह दृष्टांत मैं प्रकट बखाना । मायामें इमि ब्रह्म लुकाना ॥
चाम मास लोहू है बाहर । हाड अरु गूद बिन्द हैं भीतर ॥
माता जैसे पिता छपावै । माया ऐसे ब्रह्म दुरावै ॥

माया ब्रह्म जीव कह आहीं । मोते इतर और कछु नाहीं ॥
आपै खोजि आपको पैये । और कहा केहि खोजन जैये ॥
पिंड अंड दोनों यक लेखो । बाहर भीतर एकै देखो ॥
पग पाताल कहे सतइ महि । चरण पृष्ठ पाताल छठा कहि ॥
पद अंगुली सो कहे असुरगण । पदके नख असुरनके बाहण ॥
अष्टालिग महातल पञ्चम । पेडीतलातल चौंथ विरञ्चम ॥
ठेघुनी सुतल तीसरे कहिये । जंघको बितल दूसरो गहिये ॥
काल समय अथवा यज्ञ होई । पाव चलनको कहिये सोई ॥
भगसो अतलहै पहिली धरनी । लिंग ताहि प्रजापति बरनी ॥
वरषा बीज नाम महि भनिये । महिते सो आकाशलो गनिये ॥
चूतर माथ सौ प्रभा प्रभाता । श्वेत रंग जो प्रथम लखाता ॥
मोट मास अथवा कह माया । सो प्रदोष सन्ध्या बतलाया ॥
नाभी गंभीरता है जोई । क्षीर समुद्र बखानो सोई ॥
इत जठरा उत बडवा आगी । नसा जाल सरितागण जागी ॥
पेट सो भुवर्लोक पहिचानो । बालभोग लघु पर्लय जानो ॥
तृषा सो लघु पर्लय जग सोवनू । हृदया स्वर्ग भूमि ऊपर भनू ॥
इत वैजन्ती माला जोई । उत लग्नादिक जाला सोई ॥
दक्षिण कुच यहि भांति बखाना । मांगनके प्रथम दे दाना ॥
बाम पयोधर ताहि कहीजै । दान याचना पीछे दीजै ॥
मन सोई गुण तीन मिलाना । रज सत तमगुण कीन प्रणामा ॥
मनसंकल्प सोई है ब्रह्मा । जग रचना जिन कीन अरंभा ॥
पोषण गुणसों वदे विष्णुवर । क्रोधहनन हंकार महेश्वर ॥
हास अनन्द सोई है माया । ज्ञान दुःख दंभ दूर कराया ॥
प्रानसो पौन पिष्ठ अपकर्मा । पीठ अस्थि हिमगिरि कह मर्मा ॥
पसुली इतर अस्थि गिर नामा । जो हिमगिरके दक्षिण बामा ॥
दहनाहाथ सो दान अस वर्षा । बाम सूम तासुष्को तर्षा ॥

हाथ चीन्ह अप्सरा सुभाती । कर नख सो सुरगण बहु जाती॥
दक्षिण करबंध अरु निजताई । लोकपाल देव अग्नि बनाई ॥
बाम जोड़कर जो अरु निजलो । अहं देव ईसान नामलो ॥
औरनिज सो कल्पद्रुम कहिये । आगे और भेद कछु कहिये ॥
दक्षिन कंध सो दांहना छोरा । वामकंध सो बायों ओरा ॥
गरदन मोढा वरुणदेववर । कंठसो महर्लोकके स्वर्ग ऊपर ॥
शब्दसो अनहद बुद्धि जो नीकी । महर्लोकके ऊपर ठीकी ॥
सो यम लोक बखानों ताहा । चिंतादुःखसे जगकी चाहा ॥
होटको ओष्ठ लोभको साजू । ऊपरको ओष्ठ हया अरु लाजू ॥
तालू पानी जिह्वा आगी । वचन सोई सरस्वती सुभागी ॥
दंतमोह जग पुनि कह भोजन । सब जग जीव करे जो भक्षण ॥
इतबानी उत चारों वेदा । हास्य सो माया रचना भेदा ॥
कानदो जक्त आठ विधि धारा । नाकपरा सो अश्विनी कुमारा ॥
देहगंध सो पृथ्वी योका । अधोतन दक्षिनपंचमयमलोका॥
अर्धदेह उत्तर जो हेरी । सो तपलोक षष्ठमो टेरी ॥
मस्तक बल सो नूर असलकह । आदि कि उत्पतिको सूरय वह॥
दृष्टि सदा जग उत्पति सारा । पलक मारन दिनरात उचारा ॥
दक्षिन दिशकी भृकुटी जोई । प्रीति देवता महतर सोई ॥
बाम और भृकुटी जो लस्ता । कहर क्रोध सुर कहे देवस्ता ॥
मस्तक सो तपलोक बखानो । सो जनलोकके ऊपर जानो ॥
शीस खोपड़ी लोकालोकू । सब लोकनते उपर विलोकू ॥
शिर कच महाप्रलय घनकारे । तनरोम नोक वनस्पति भारे ॥
रूप अनूप लक्ष्मी जाना । देहकांति रवि प्रभा प्रमाना ॥
महापुरुषको सोहैं गेहा । जगमें जेती मानुष देहा ॥
आतम चिदानंद करि मानी । खास महल पूर यतन ज्ञानी ॥
श्वास जबही नीचेको जाई । सारी सृष्टि तबै प्रकटाई ॥

जिहि औसर बिच श्वासा रोका। हरा होय तब सब जग लोका ॥
जबहि श्वास ऊपरको खीचा । महाप्रलयहो सबकी मीचा ॥

दोहा-पिंड और ब्रह्मांडमें, रंच भेद नहिं बाद ।
नानक सत्यकबीरको, अब सुनिये संवाद ॥

नानक वचन

तीन लोककी कहो गुसांई । कैसे जानि परे तन माही ॥
कहीये दयासिंधु मोहि बानी । तुम निज पुरुष पुरातन ज्ञानी ॥

जिंदा वचन

हेठ चरण दै शीश अकाशा । तीनलोक देही प्रकाशा ॥
शब्द खंड ब्रह्मांडमें सोई । माया ब्रह्म फैल घट दोई ॥
हमरे पदको लहै न कोई । भले बूझ तुम पारख होई ॥

नानक वचन

चार दिशा मोहि कहो गोसाँई । सातद्वीप निज कहो बुझाई ॥
प्रभु नौखंड अब कहो बखानी । चंद्रशूर तन कैसी मानी ॥

जिंदा वचन

आगा पीछा दक्षिन बाना । चार दिशा देही प्रमाना ॥
साढे तीन हाथकी देही । उनचास कोटि बिसियाहै पेही॥
नवो खंड नौ संधी जानो । पिंड अंडको लेखा मानो ॥
परवत यामें हाड लगाया । धड पासू ब्रह्मांड रचाया ॥
चंद्र शूर द्वै नेत्र जगावा । देखो पीठ सुमेर बनावा ॥
नसन दिया तन भीतर जानो । पेट गंडार पिंडमें मानो ॥

नानक वचन

तत्त्व प्रकार कही तुम वानी । वाकी शब्द संधि पहिचानी ॥
सातसमुद्र कहो बखानी । तुमही पुरुष पुरातन ज्ञानी ॥

जिंदा वचन

जीभ नासिका नेत्र बखानो । श्रवण नाभ गुद इंद्री मानो ॥

खार मीठ जल सब पहिचानो । नौसौ नदी पिंडमें मानो ॥
श्वासा नदी नासिका वासा । जिह्वा स्वाद करे रस भाखा ॥
ये सप्तुद्रमें जाय समानो । है गंडार नहीं त्रिप्तानो ॥

नानक वचन

सात सप्तुद्रकी लहर बखानो । इनकी लहर कौन विधि मानो ॥

जिंदा वचन

काम अरु क्रोध लोभ हंकारा । मनमायाकी लहर अपारा ॥
अग्नि पौन पानी प्रचण्डा । पांच तत्त्व वर्तें नौ खण्डा ॥

नानक वचन

बाही लहर हीरा अरु मोती । यामें कहा निकसि है सोती ॥
सभी भेद मोहिं कहु गुरुदेवा । नहिं छोड़ो अब तुमरी सेवा ॥

जिंदा वचन

जब गुरु मिलै भृङ्ग सम रंगा । ब्रह्मज्ञान उपजै सतसंगा ॥
सुमिरन भजन होय परकाशा । अनहद ध्यान पुरुषकी आशा॥
अर्श गैबमें ध्यान लगावै । तवासिंधु थाह कोइ पावै ॥
जाय हंस तहँ डुबकी मारा । ले निकसे तब वस्तु अपारा ॥
हीरा लाल नाम परकाशा । शब्द सुरति हंसाको बासा ॥
कथा समाज निकसिहै ज्ञाना । सो हीरा मणि माणिक जाना ॥

नानक वचन

खार मीठ जल इहां अपारा । उहां कहां गुरुकर निर्धारा ॥

जिंदा वचन

नयन नाक इन्द्री जल खारी । गुदा श्रवण जानौ जलधारी ॥
खार मीठ जल सभी भरा है । जो ब्रह्मांड सो पिंड कहा है ॥

नानक वचन

इहां है काठ लोहकी नौका । कहो स्वामी व्यौहार वहांका ॥

जिंदा वचन

नाम पुरुष नौका इहां भाई । खेवट संत गुरु संत मिलाई ॥
पुरुष शब्द सुमिरो लौ लाई । पुरुष प्रताप उतरि चल भाई ॥

नानक वचन

धन्य कबीर परम गुरु ज्ञानी । अमरभेद भाषी निज बानी ॥

साखी–तिलघोटत तारी लगी, दिलदरियाके तीर ।
नानककी संशय मिटी, जो सतगुरु मिले कबीर ॥

चौपाई

बहुरि अर्ब यूनानके ज्ञानी । पिंड अण्ड सम तूल बखानी ॥
जो सबही ब्रह्मांडमें देखो । पिंड केर सोई है लेखो ॥
अस्थि पहाड़ है मेघ पसीना । शिर नभ इंद्री कर्म प्रवीना ॥
सुर नर मुनि ग्रंध्रव अरु देवा । पिंड अण्डमें एकै भेवा ॥
सकल भांतिके पशु खग नाना । कर्म करंत बसै परधाना ॥
भोजन पावक पौरुष जोई । सोई रसोईदार कहोई ॥
जो बल अंतमें भोजन धरई । गन्धी नामक तासुको परई ॥
जो बल रुधिरको श्वेत बनावै । नारि कुचनमें दूध कहावै ॥
अण्डकोष नर बीरज धोवै । धोबी नाम तासुको होवै ॥
भोजन अंगमें बाटनहारा । नाम बंधानी तासु उचारा ॥
जल जो पसीना रूप निकारी । सो कहिये सक्का पनिहारी ॥
जो भोजन मल बाहर डारे । नाम हलाहलखोर सो धारे ॥
बात पित्त जो अन्तर गहई । सोई न्याय करंता कहई ॥
यह विधि सब पशुखगतनमाही । क्रोध स्वरूपी बीग सो आही ॥
अंड पिंडकी अकथ कहानी । मैं कछु सूक्षम लिखा प्रमानी ॥

दोहा–बूँद समाना सिंधुमें, यह जाने सब कोय ।
सिंधु समाना बूँदमें, जाने बिरला सोय ॥

कुंडलिया

जाते बिरला सोय होय जब सतगुरु दाया ।
मैंहि मैं सब ठौर और सबहीं भ्रम छाया ॥
भ्रम छाया सब ओर दौर मन ज्ञान कि टट्टी ।
टट्टी जब टुटि जाय आय नहिं पुनि या हट्टी ॥

इति ब्रह्मांड पिंड

अथ सर्वदेशभाषाकी एकता

दोहा–जेते मानुष जक्तमें, हिंदू सबकी आदि ।
भाषा सारे जक्तकी, संस्कृत पितु है बादि ॥

चौपाई

संस्कृत कह सोधित जनको । सोई पिता सर्व भाषनको ॥
संस्कृतके जो गुण औगाहा । ताकी नहिं कोई पावै थाहा ॥
वेदकि संस्कृत जो आहीं । अबके पंडित समुझत नाहीं ॥
एक सूत्रके अर्थ अपारा । कह सब निजु निजु मति अनुसारा ।
मर्म न जानै अर्थको सोई । यथा बुद्धि भाषे बुध लोई ॥
गूढ अर्थ जानै ब्रह्म-ज्ञानी । गुप्त वस्तु जेहि कछु न दुरानी ॥
संस्कृतको वर्ण बिचारो । और न कहुँ अस युक्ति निहारो ॥
प्रथम संस्कृतको वर्ण माला । और न कोई भाषामें भाला ॥
आदिके अक्षर बारह स्वरको । ब्रह्मस्वरूप जानिये तिनको ॥
अ आ इ ई उ ऊ ए ऐ ओ कह । औ अं अः रामरमित सब यह ॥
बारह ब्रह्म बसै ब्रह्मंडा । कथै कौन सब गुणमय मंडा ॥
एक अकारते बारह स्वर हैं । व्यंजन सकलको परम पितर हैं ॥
सबके आदि है एक अकारा । ताते वृद्ध भये पुनि बारा ॥
बारहरूप अकार सो बनेऊ । न्यारे न्यारे कारज ठनेऊ ॥
एक थूल यक सूक्षम रूपा । थूल प्रकट सूक्षम रह गूपा ॥
थूल अकार जो सूक्षम भैऊ । सो सब बरणनमें रमि गैऊ ॥
वासुदेव सब माहि बिहारी । कोई साधुजन सकै निहारी ॥

निर्गुणते सरगुण जब भैऊ। ताहीको ककार जग कहेऊ ॥
जब अकार निजु रूप गहाया। है ककार दशमें दरसाया ॥
पुत्र पौत्र सही तथा न कर। क ख ग घ ङ दशमें दर ॥
पञ्च ब्रह्म रह दशमें द्वारा। तिनके पुत्र अग्र पग धारा ॥
तालूपर सो कीन बसेरा। च छ ज झ ञ सोई टेरा ॥
तिनते पुनि ट ठ ड ढ ण भैऊ। तालू अग्रबास तिन लैऊ ॥
त थ द ध न फिर आगे आये। दंतमूल सो बैठक पाये ॥
प फ ब भ म अधरनपै बैठारी। मुख कपाट सो दीन उघारी ॥
य र ल व श ष स ह क्ष त्र ज्ञ अगाहा। बाहरको कर चले उछाहा ॥
खोलि कपाट सो बाहर बिचरे। ब्रह्मवेत्ता बुध बानी उचरे ॥
संस्कृतके हैं अक्षर जोई। सबके पिता जानिये सोई ॥
बारह ब्रह्म सकल ब्यंजनमें। धरि लघुरूप रमे सब तनमें ॥
जड़ चेतन सब माह बिहारी। जो चीन्है सो ब्रह्माचारी ॥
वासुदेव है आदि अकारा। सो रमिरहा सकल संसारा ॥
आदि ब्रह्म अकार कहाये। जहँ तहँ सोइ रहा जग छाये ॥
लखो न जाये अलख अविनाशी। सर्व खानिमें स्वतह प्रकाशी ॥
सोई अकार जो भयौ बिकारी। रचनासरिसो जक्त पसारी ॥

दोहा-जब अकार ब्रह्मांडसे, मृत मंडलमें आये।
दशमें दर परथान कर, सोई ककार कहलाये ॥
सो ककार काया रचे, जनक जगत करतार।
तारण कारण जीवके, गुरु है सो तनधार ॥

चौपाई

अब दुतिये बिधि कहो बखानी। आदि संस्कृत जावे जानी ॥
सर्व वेदकी भाषा जोई। एक मिलान बखानो सोई ॥
सब यूनानके देवी देवा। हिंदूको पूजा अरु सेवा ॥
हिन्दू जाको श्रीकह गाये। सीरिज यूनानी बतलाये ॥

इत जो देव गणेश बखानी । सो गम्मस रूमी यूनानी ॥
इंद्रको हिन्दू कह देव पितर । उत जु पितर कह लाववज्रधर ॥
हिन्दू अनपूर्णा कह भाषी । अनपूर्णा यूनानी साषी ॥
संस्कृतमें जो पित्र कहावै । सोई पारसी पितर बतावै ॥
अंग्रेजीमें फादर सोई । मातर मादर कहिये जोई ॥
भ्राता प्रादर नाम कहीजै । कृतकार कृतगार भनीजै ॥
अंग्रेजी कृयटार कहावै । हिन्दू सो करताहि बतावै ॥
मिह्र संस्कृत सूरज भाषा । अरबी मिह्र नाम सोइ राखा ॥
अभ्र संस्कृत बादल बोले । अब्र पारसीमें सोइ खोले ॥
पुत्र संस्कृत सुअन कहावै । अंग्रेजीमें सन बतलावै ॥
पृष्ठ पारसी पुस्त प्रमाना । नैन सो अर्बीऐन बखाना ॥
सृष्टि संस्कृत कीन बखाना । सो पारसी सरिस्त प्रमाना ॥
दुहिता संस्कृत बेटी होई । सो पारसी दुखतर कह सोई ॥
सो डाटर अंगरेजी माहीं । अस्व अस्य लो हासं कहाहीं ॥
शब्द अनेक बकी यक ताईं । बुधवन्तो सो लेहु मिलाई ॥
भाषा बहुत पढ़े जो कोई । बोलके मेल मिलावै सोई ॥
अब तृतिये दृष्टांत निरेखे । संस्कृत व्याकरण परेखे ॥
जो व्याकरण संस्कृत माहीं । ऐसो शुद्ध और कहुँ नाहीं ॥
संस्कृतसे है अरबी बानी । मिश्री यूनानी अलेनानी ॥
संस्कृतसे सब गुण महि सारी । उक्ति युक्ति कछु भिन्नसवारी ॥
अब चौथे यह भाषो भेदा । सर्व शास्त्रके प्रथमहि वेदा ॥
चारो महा बाल है जोई । संस्कृतमें पुनि उजरी सोई ॥
पुनि पञ्चम अस कहो बखानी । ताते आदि संस्कृत जानी ॥
मुख्य नाम परमेश्वर केरा । संस्कृत की बोलीमें हेरा ॥
और बोलमें आवत नाहीं । संस्कृतमें शुद्ध गहाहीं ॥
अब छठये यहि विधिते सुनिये । ताते आदि संस्कृत गुणिये ॥

सत्य कबीरके नाम जो चारो । चहुँयुगमें भिन्न भिन्न उचारो ॥
सत्य सुकृत मुनींद्र कहाये । करुनामय स्वामी बतलाये ॥
कलियुग माह कबीर उचारो । चारों युगके नाम हैं चारो ॥
नाम संस्कृतमें युग तीनी । कलियुग मिश्रीत करि दीनी ॥
अरबी संस्कृत मिश्रीत कबीरा । हिन्दू मुसलमान गुरु पीरा ॥
जेते और कबीरके नाऊ । सबही संस्कृत माह कहाऊ ॥
सतये स्वसंवेद कह येही । अज हरि हर मथुरा धर देही ॥
तीनों देव पिता सब नरके । तीन लोक ब्रह्मा हरि हरके ॥
ब्रह्म श्वासते वेद उपानी । उचरे तीन देव मुख बानी ॥
संस्कृत सुर बानी होई । ताते श्रेष्ठ और नहिं कोई ॥

इति देश

अथ ब्रह्मा और आदमकी एकता—चौपाई

ब्रह्मा आदम एकै अहई । सत्यकबीर बचन अस कहई ॥
ब्रह्मा सावित्री नर नारी । आदम हौवा ताहि पुकारी ॥
ब्रह्माको काशीमें वासा । अदनवाग सो नाम प्रकाशा ॥
काशी सम कोइ पुरी न आना । देखो काशी खंड प्रमाना ॥
बन अनद पथमें कहलाया । वाराणसी बहुरि बतलाया ॥
नाम तासु कहिये पुनि वासी । सब अनंद सब सुखकी रासी ॥
वाराणसी सो भयौ बनारस । सुखसे सावित्री ब्रह्मावस ॥
आदिमें कहे जो वन आनंदा । अरबी अदनबाग सुखकंदा ॥
वन है बाग अरबकी भाषा । नाम अनंद अदवसों राखा ॥
उलटि आनंद अदन हो सोई । कहे अरब पारसके लोई ॥
संस्कृतकी बोली बहुतेरी । अरब लोग उलटा कहि टेरी ॥
वन अनंद बाग अदन जो भैऊ । वाराणसी बनारस कहेऊ ॥
अरब न संस्कृत सके उचारी । उलटा सुलटा सो करि डारी ॥

इति आदमब्रह्मा

अथ मनुशतव्रता और नूहकी एकता-चौपाई

मनुशतव्रता नूहको जानी । पर्लय पयोध जो राख्यौ प्राणी ॥
नाव बहेतरा मनु नृपाला । रच्यौ बचावनजिव तेहिकाला ॥
ताही बहेत्रा सकल चढ़ाई । तेहि औसर जल परलय आई ॥
तब हरि लियौ मीन औतारा । दोय सींग निजु शीशमें धारा ॥
मीन रूप जो विष्णु बनाई । ताहि बहेत्रा शृंग लगाई ॥
भलिबिधि बांधे बहेत्रा ताही । निजु बलते गहि राख्यौ वाही ॥
नाव बाँधि हरि आज्ञा देऊ । मनूजाये तह आसन गहेऊ ॥
लीने सप्तऋषी निजु संगा । आठ जीव बैठे यहि ढंगा ॥
चहुँ दिश तबहि जलामय होई । भे संहार बचा नहिं कोई ॥
तरे बहेत्रा जलके माही । आठो जीव तहां बचि जाही ॥
प्रलैय कीन फिर सृष्टि बसाये । धर्म महम्मद अस बतलाये ॥
प्रलय पिछारी नूह पुकारा । प्रथमै नाम और कछु धारा ॥
आदिको नाम नूह ना होई । बदलि गयौ पीछे ते सोई ॥

इति मनुशतव्रत।

अथ महादेव और महम्मदकी एकता-चौपाई

श्रीमुख सत्यकबीर बखानी । महम्मद महादेव सो जानी ॥
महादेव क्षत्री रन वाके । सोइ महम्मदकी है साके ॥
धर्म जासुको शस्त्र प्रहारा । सोई करे सृष्टि संहारा ॥
तमगुण आदिमें वेद बखाना । रूह महम्मद प्रथम उपाना ॥
तमगुण आदि सृष्टिको करता । भवसागर ताते थिर धरता ॥
भव है नाम महादेव केरा । ताते यह भवसागर टेरा ॥
भव भवानी द्वै रूप बनाया । भवसागर सरदारी पाया ॥
शिवके संग नारि द्वै जानी । शीश गंग कटि गौरि भवानी ॥
महम्मदमें मकार द्वै देखो । दोहू नारि तेहि संग बिशेषो ॥
दोउ मकार महम्मद नामा । गंग गौरि बरणो वर बामा ॥

आप भिखारी अनधन देही । महम्मद महादेव है येही ॥
धन अरु दर्ब चाकरन पाही । आप अलोनो साग जो खाही ॥
महा उदार महम्मद दाता । जक्तमाह सो शिव विख्याता ॥
योग भोग दोनों गुण भीजा । साबर मन्त्रो दोवा तबीजा ॥
योग युक्ति शिवव्रत बताया । उत नमाजा रोज ठहराया ॥
ये ॐकार शब्द गोहरावै । वे भोरे उठि बाग उठावै ॥
खड़ी एक नस महम्मद माथे । दंडाकार तिलक तेहि साथे ॥
प्रकट दोऊ भृकुटीके बीचे । मस्तक अंत प्रजंतलों खींचे ॥
जस कबीरमुनि तिलक कराही । सोई महम्मद मस्तक माही ॥
क्रोधवंत जब महम्मद बोले । तेहि औसर सोई नस डोले ॥
रोमधार यक उर बिच धारी । सोऊ दंडाकार सँवारी ॥
नाभिते कंठप्रजंतलो सोही । जन कबीर मुनि रूप है ओही ॥
शिवके संग रहे बहु देवी । तिमि बहु तारि महम्मद सेवी ॥
चीन्ह चक्र सब ताके साथा । आदिभक्ति सोई पशुनाथा ॥

इति श्रीमहादेव और महम्मदकी एकता

अथ हनुमान और अलीकी एकता

छन्द—झुलना

हंक हनुमानते लंकमें शंकभ अलीके हंक गढ बंक टूटे । अली हनुमान दोऊ बांहके बली अरि अनी दलमली ज्यौ सनी कूटे ॥ १ ॥ शूद्र जेहि शत्रुगण बीर्य सासुद्रधन रुद्र शिव देखि दल दैत फूटे ॥ शूर संग्राममें गुणनके धाम दोऊ अली हनुमान गुणमाहँ जूटे ॥ २ ॥

इति हनुमान

अथ परशुराम और मूसाकी एकता—चौपाई

परशुराम मूसा यकताई । ऐसे दोहुको मेल मिलाई ॥

विप्र अवज्ञा कीनो हरिकी । क्रोधवन्त कमला तबसरकी ॥
विष्णुकि छाती चरण प्रहारा । सब दुःख द्वन्द्व घेर तिहि बारा ॥
रहे बेहाल काल बहु तेरे । तब प्रभु तिनहिं दयादृग हेरे ॥
परशुराम लीनों औतारा । ब्राह्मण कुलको पाऽनहारा ॥
विद्या बुद्धि तपोधन धारी । रूप शील बल बीरज भारी ॥
सो द्विजराज काज चित दीने । क्षत्री मारि निछत्तर कीने ॥
तथा यहूदिन विकल विचारा । तब मूसा लीनो औतारा ॥
सो फिर उनको मारि नसाया । इबरानिनको प्राण बचाया ॥
विद्या बुद्धि निपुण गुणखानी । बल वीरज शोभा सरसानी ॥
परशुराम कर फरसा जोटा । तैसे मूसाके कर सोटा ॥
जैसे ब्राह्मण तथा यहूदी । दोनों माह देखिये खूदी ॥
कुल अभिगान दोहुनमें भारी । अबिरहाम वंश तन धारी ॥
परशुराम मूसा यक सारा । दोनों विष्णु केर औतारा ॥

इति परशुराम और मूसा

अथ कृष्ण और क्रैष्टकी एकता—चौपाई

कृष्ण क्रैष्ट दोउ एक समाना । हरि औतार धरे नर बाना ॥
क्रैष्ट नाम ईसाको आही । अंग्रेजी बोलीके माही ॥
हिंदू कहे कृष्ण जगदीसा । ईसा इनके ईस हैं ईशा ॥
कृष्ण आगमन जबहि जनायौ । सो सुनि कंसराय भय पायौ ॥
इसा जन्म भव्य सुनि काना । तबहि रोद भूपति भय माना ॥
कृष्ण जो जन्म भयौ जेहि बारा । चहुँदिस फैल गयौ उजियारा ॥
कंसकी डर वसुदेव डेराये । मथुरासे गोकुलमें ल्याये ॥
यथा कृष्ण मथुराको त्यागे । तैसे ईसाको ले भागे ॥
गर्भसे जब ईसा प्रकटाने । चहुँदिश तबहि तेज चमकाने ॥
यूसुफ नृप हिरोद भय पाई । ले मसीहको मिश्र सिधाई ॥
कृष्ण जन्म सुनि कंस डेरायो । केते बालक मारि नशायो ॥

ईसा भय हिरोद भूपाला। हने बहुत बालक तेहि काला॥
रोग अनेकन कृष्ण घटाये। जीव केर दुःखद्वन्द हटाये॥
मृतकहूको फेरि जिलाये। गुण अनेक कहलों बतलाये॥
सा सबही गुण ईसा माहीं। देखि द्वैतदल दूर पराहीं॥
इन असुरनको मारि नशाया। उन भूतन अरु प्रेत भजाया॥
कुबरी कूबर कृष्ण सुधारा। तिमि ईसा कुबरी सुखसारा॥
साठि हजार शिष्य संग लयऊ। दुर्वासा ऋषि आवत भयऊ॥
चावल एक कृष्ण भंडारा। सबको तृप्त कीन तेहि बारा॥
रोटी पांच मीन द्वै रहई। सो मसीह निज करमें गहई॥
पांच हजार भीर नरदीसा। सबको पेट भर्‌यौ तेहि ईसा॥
ज्वाला कठिन कृष्णकर घाटा। ईसा अंधकारको डाटा॥
अर्जुन पर हरि कीनी दाया। तिहि निजरूप विराट देखाया॥
तिमि ईसा शोभा सरसाई। निजशिष्यन निजरूप दिखाई॥
कृष्णमें केते गुण सरसाई। तिमि कोइ गुण ईसा अधिकाई॥
कृष्ण क्रिष्ट दूनो यक रूपा। उभय भये भवसागर भूपा॥
कृष्णमृत्यु जिमिप्रथम बताया। भील तीरते प्राण नसाया॥
जगमें जगन्नाथ जग मगही। कृष्ण अस्थि हरिमेला लगही॥
ईसा को तिमि क्रूस चढाये। जिये बहुरि निज पंथ चलाये॥
इन गीता उत कथा इञ्जीला। दोनों विष्णु स्वरूप सुशीला॥

इति श्रीकृष्ण और क्रैष्टकी एकता

अथ राजा और पण्डितकी एकता चौपाई

राजा पंडित एक समाना। जंगमें श्रेष्ठ दोहूका जाना॥
राज पाये इनके मद भारी। विद्या मद उनके अधिकारी॥
ये बस करे सेन ले लोहा। अमृत वचन ते मेमन मोहा॥
ये धन हरबे मनको हरते। हुकुम दोहूको जगमें बरते॥
इन धन अरु दर्प घनेरा। उनके विद्या धन बहुतेरा॥

दिग विजयी दोनों तन धारी । विषयानंद अहै संसारी ॥
इनकी तृषा न धनते हटई । वह दिन दिन विद्यामें डटई ॥
धन विद्या बन माह भुलाने । ताते नहिं सतपदको जाने ॥
दोना जो विषयनको तजई । है निरद्वंद जो हरि पद भजई ॥
जक्तमें उत्तम देखो जैसे । भक्तमें श्रेष्ठ होहि सो तैसे ॥
विद्या भक्तिको अंग विचारी । तासु दृष्टि पांडितको भारी ॥
ताते बुध नृपते बड़ अहई । वेद प्रमान शास्त्र अस कहई ॥
विद्याधन सब धनन बड़ेरा । अंग सङ्ग ताको नित हेरा ॥
राजकर्म पंडित आधीना । बिन पंडित हो महीप मलीना ॥

इति एकता

अथ भवसागर वर्णन

दोहा-भवसागर वर्षा न करो, सुनो सयाने सन्त ।
जामें गोता खात जिव, लहै न कोई अन्त ॥
सोरठा-भाँति भाँतिके जीव, चौरासी लख योनि जग ।
विलग विलग कर पीव, खानि-खानि बिलगायके ॥

चौपाई

यह भव उदधि अपार बखाना । गोता खाहि जीव विधि नाना ॥
चौरासी लख योनि भ्रमावै । बूड़े उछले पार न पावै ॥
जेते जीव भवनिधि तन धारी । मानुष देह मुक्ति अधिकारी ॥
सो मानुष तन दुर्लभ कैसे । जैन धर्म वर्णन कर ऐसे ॥
यह दृष्टांत सुनाये सोई । अस चौड़ा सागर जो होई ॥
कोटिन योजनकी चौड़ाई । भवनिधि थूल कहा कहिजाई ॥
बैल केर जूवा गहि लीजै । जूवा डंडा अलग करीजै ॥
तेहि समुद्रके एक किनारे । जूवाको डंडा गहि डारे ॥
जूवा डारे दूजे छोरा । मारे वायूको झकझोरा ॥
बहुत फिरे डंडा अरु जूवा । बहै सदा इत उत सो हूवा ॥

जो संयोग कबहु गह सोई । जूवा दंड यकठें होई ॥
आपे आप मिले जो आई । पैठे ताहि छिद्रमें जाई ॥
बिन सहाय जूवामें पैठे । पहिली ठौर ठेकाने बैठे ॥
ऐसी दुर्लभ मानुष देही । चौरासी भ्रम पावे येही ॥
धर्म महम्मद बहुरि बतावे । एक बार मानुष तन पावे ॥
मूसा ईसा मतमें सोई । फेर नहीं मानुष तन होई ॥
वेद करे पुनि ऐसे वर्णन । पुनि पुनि जीव लहै मानुष तन॥
आठ लक्ष योनी भ्रमि आवे । पुनि गह जीव मनुष तन पावै ॥
सत्यकबीर जो बचन उचारा । अति दुर्लभ मानुष औतारा ॥
नरतनु पाये न भक्ति विचारा । सो पापी आतम हत्यारा ॥
सुरदुर्लभ यह मानुष देही । सो तन लहै भजु परम सनेही ॥
चार खानिके जीव अपारा । जो थावर जंगम तन धारा ॥
कोइ दीर्घ कोइ सूक्षम देखो । भारी थूल हरू लघु लेखो ॥
नाना वर्ण और गुणधारी । पूरि रहे भवसागर झारी ॥
युगन प्रजंत काहु थित गाई । अतिसै लघु आयू कोइ पाई ॥
स्वर्ग नर्क चौरासी लाखा । सो सब अंड पिंडकी साखा ॥
भवसागर त्रिदेव भे राजा । सब जिव तिनके देठ विराजा ॥
सोई सुर सुरपति शिरताजा । तिनके हाथ है काज अकाजा ॥
भवसागरमें द्वै तट जानो । एक लोक यक वेद बखानो ॥
वेद कूलपर मन आसीना । लोकछोर माया गहि लीना ॥
मध्यमें तीन देव गुणधारी । महा अपर्बल पाँच शिकारी ॥
भ्रमसागर कहिये भवसागर । दश दिश काल मचायौ झागर॥
भव पुनि भगको नाम कहावै । तामें सब जिव आवै जावै ॥
भव शिव नाम भवानी पतिको । जीव लखै को ताकी गतिको ॥
तीनों लोक वसै भग माही । बिन गुरु कृपा न बाहर जाही ॥
कोटिन योग युक्ति जो करिये । भग मारग पुनि पुनि पग धरिये॥

चौरासी लख मीन बनाये । मन मछुवा सब तिनहि फसाये ॥

सत्यकबीर वचन–शब्द

तन झौपडी मन बसै महरवा ।
नान्हेनान्हे डोभवन बीनै महजरवाडारि दिये नियक भरमसगरवा ।
गहिरेमें महरा पैठि न सकै बिन बूड़े नहिं मिलत सिकरवा ॥
यक ओर महरा यक ओर महरी मारि लिहे नियक मोहमछरवा ।
कहै कबीर सुनो भाई साधो ताकि लिहे नियक अमर सहरवा ॥

चौपाई

तीन देवमें विष्णु बड़ेरे । तिनको हुकुम फिरे चहुं फेरे ॥
तीन लोक भवसागर माही । तीन देव तहँ राज कराही ॥
तीन लोकको सूत्र बखानो । जामें सकल जीव भरमानो ॥
प्रथमहि विष्णु सर्व शिरमौरा । तासु हेठ सुरगण सब औरा ॥
दुतिये पौरी विद्याधर है । नहीं देवता नहिं सो नर है ॥
सुर नर माह जान यह सीढी । भाषो बहुरि तीसरी पीढी ॥
नर वानर यक लेखे कहिये । यक ब्यौहार दोहमें लहिये ॥
दोनों बीच भेद अति थोरा । पशु अरु मानुषमें यह डोरा ॥
बिन दुम नर कपि पूछ समेता । नर वानर यक गुण कह केता ॥
औरँग औटँग वानर जोई । नर आकार सर्व सो होई ॥
अंगरेजीके ग्रंथन माहीं । विना पूछ वानर यह आहीं ॥
दोनों पगते नर ज्यौं चाले । दोनों हाथ काममें डाले ॥
वानर इतर जाति बहु तेरे । भिन्नभेद क्रम क्रमसे हेरे ॥
अंगरेजी अखबार बखाने । द्वै मानुष दुमदार लखाने ॥
हबशदेशको जंगल जहँवा । द्वै मानुष दुम युत रह तहँवा ॥
डेढ़ हाथकी पूछ सो गहई । मादमें पशु समान सो रहई ॥
एक जाति मानुषको आही । रहे हिमालय पर्वत माही ॥
ऐसो निकट छोड़ तनधारी । पंछिन संग मचावै रारी ॥

चील्ह गीध गहि गगन उड़ाही । तेहि मानुषको धरि धरि खाही॥
तब सो नर गण जोरि सहाई । पंछिके संग करे लड़ाई ॥
ऐसे बिबिधि भांति नरजाती । तिनकी कथा न कथे सिराती ॥
नानारूप बरण गुणधारी । जहँ तहँ पृथ्वी माह विहारी ॥
चार लक्ष मानुषकी जाती । तिनकी कथा कथे बहु भांती ॥
जलमानुष थलमानुष देखो । वनमानुष आदिक बहु लेखो ॥
पशुमानुष कहु मिश्रित होई । अकथकथा कहि जात न कोई॥
बहुरि कहो मानुष पशु ख्याला । सब परिवार जो करे उगाला ॥
भोजन पीछे पागुर करही । बिन उगाल तिनको दुःखधरही ॥
पशु नर नरपशु एक सो हेरी । देखहु कुदरत करता केरी ॥
छायारूपी नर कहु सरसै । चेष्टा दीख रूप नहिं दरसै ॥
रचना विविधि भांति कहि गाई । ताको लेख लिखो नहिं जाई ॥
चौथो सूत्र बहुरि कहि गावो । जलचर मानुष मेल मिलावो ॥
रह समुद्रमें गर्गन मच्छी । अर्ध है मीन अर्ध तिय अच्छी॥
कटिके ऊपर सुन्दर नारी । अर्धहेट मच्छी तनधारी ॥
कबहूके सागर तीर सुखारी । कबहूके जलमें गोता मारी ॥
शृंगी ऋषि शिर सींग बताई । मुखमें सुण्ड गणेश गोसाई ॥
पंचम पौरी करो बखाना । पशुपंछीको मेल मिलाना ॥
चाम सुन्दरी वाको कहई । दोनों रंग ढंग गुण गहई ॥
सो नहिं खग अंडजकी जाती । चाम गूदरी है बहु भाँती ॥
नहिं पशु नहिं खग मध्यम थापू । मुरगी एकसे परसे टापू ॥
वृद्ध नारि सो सुख है जाको । जब कोइ दुःख देतहै वाको ॥
रुदन विलाप करे जस नारी । केते पशु खग नरगुण धारी ॥
दादुर एक अमेरिका देशा ! रुदन करे जब लहे कलेशा ॥
छठी पौरी बरणो सोई । जो चेतन रूप जड़ होई ॥

लजवंयक पौधा चेतन । पशु पंछी सम चेत तासु तन ॥
जड़ चेतन गुण दोहू गहावै । पशु पौधाको मेल मिलावै ॥
सतई पौरीको अर्थावो । जो चेतन जड़ सम सिथलावो॥
पलपी तारा दोनों मछरी । सो सम चेतनते अति पछरी ॥
जड़ समान यक ठौर गहाई । हले न चले गहे थिरताई ॥
पलपी देह दाग बहुताई । जो कोइ ताको काटै जाई ॥
जैसे माली कलम लगावै । फूल बेलको काटि बनावै ॥
जेतनो टूक करें कोइ ताको । होहि पालपी सबही वाको ॥
जेतनी दाग रहे तब माही । सो सबही पलपी ह्वै जाही ॥
जड़ चेतन दोऊ ता ढंगा । जड़समान चेतनको अंगा ॥
अष्टम पौरी कहो बखानी । जड़मय योनि गोदजिव जानी ॥
नर नारकी लोक जिव पौरी । जड़सम सदा रहै एक ठौरी ॥
नर्कहेत नारकसो नाही । जैन मते दुख देखो नाही ॥
तीन लोकको सत जो भाषा । काया तरुकी पह सब सापा ॥
जैसो कर्म जीव जो कर्त्ता । तैसो तनधरि जगमें वर्ता ॥
सब जिव पुण्य पापकी आसा । पुनि पुनि कर योगिनमें वासा ॥

इति जीवधर्मबोध समाप्त

खेमराज श्रीकृष्णदास

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, बम्बई.